ॐ श्रीसद्गुरवे नमः

महर्षि मेँहीँ सत्संग सुधा सागर

प्रथम भाग

श्रुतलेखक/सम्पादक
महर्षि संतसेवी परमहंस

महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर, बिहार
(भारत)

प्रकाशक

अखिल भारतीय संतमत-सत्संग प्रकाशन-समिति

महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर, बिहार (भारत)

[सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन]

ISBN 978-81-926828-1-5

भारतीय कॉपीराईट एक्ट के तहत प्रस्तुत पुस्तक में निहित समस्त प्रकाशित सामग्री के कॉपीराईट **अखिल भारतीय संतमत-सत्संग प्रकाशन** के पास सुरक्षित है, अतः कोई व्यक्ति अथवा कम्पनी इस पुस्तक का नाम, कवर, डिजाईन, प्रकाशित कोई भी सामग्री इत्यादि को किसी भी प्रकार से तोड़-मरोड़कर आंशिक या पूर्णरूप से किसी पुस्तक अथवा किसी सामयिक (न्यूजपेपर, मैगजिन इत्यादि) में प्रकाशक से लिखित अनुमति लिये बिना प्रकाशित करने की चेष्टा न करें, अन्यथा समस्त कानूनी हर्जे-खर्चे के स्वयं जिम्मेवार होंगे। किसी भी प्रकार के मुकदमे के लिए न्याय क्षेत्र भागलपुर रहेगा।

प्रथम संस्करण २००० प्रतियाँ संवत् २०६१ (सन् २००४ ई०)

द्वितीय संस्करण २००० प्रतियाँ संवत् २०६६ (सन् २००९ ई०)

तृतीय संस्करण २००० प्रतियाँ संवत् २०७३ (सन् २०१६ ई०)

सहयोग राशि : ४०० रुपये मात्र

मुद्रक

शान्ति-संदेश, प्रेस

महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३

☎ : ०६४१-२४२७४९८

फैक्स न० : ०६४१-२४०८१८३

प्राक्कथन

एक समय था, जबकि परम पूज्य गुरुदेव पूर्ण रूपेण स्वस्थ थे। वे संतमत-सत्संग के प्रचारार्थ भारत और नेपाल के शहरों एवं निट्ठाह देहातों में भी जाया करते थे। साथ ही मुझ जैसे तुच्छ दास को अपने पास साथ रखते थे। उन दिनों प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और रात्रि; तीन बार सत्संग होता था। प्रातःकालिक सत्संग में वे वेद, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, धम्मपद आदि संस्कृत एवं पाली ग्रंथों का; मध्याह्नकालिक सत्संग में रामचरितमानस का और रात्रिकालिक सत्संग में संतों की वाणियों का पाठ मुझसे करवाया करते थे। उन दिनों मेरे गले का स्वर सुमधुर और सुरीला था। पूज्य गुरुदेव को शब्दों का शुद्ध-शुद्ध उच्चारण भाता था। उनके आदेशानुसार मैं प्रातः और मध्याह्नकालीन सत्संग में पुस्तकों को देखकर तथा रात्रिकालीन सत्संग में संतवाणियों का स्वमौखिक गायन किया करता था। तीनों समयों के सत्संग में मेरे पाठ करने के पश्चात् वे अपना प्रवचन आरम्भ करते थे। अपने आसन के निकट नीचे में बायीं ओर मेरे बैठने के लिए आसन दिलवाते थे। वहीं बैठकर मैं पाठ किया करता था तथा उनके श्रीमुख से निःसृत वचनामृत को लिपिबद्ध करता था। [प्रतिदिन तीन प्रवचनों के हिसाब से एक महीने में नब्बे प्रवचन मेरे पास हो जाते थे।] उस समय के कुछ कम पढ़े-लिखे किंतु सत्संगप्रेमी सज्जन मुझसे प्रेमपूर्वक पूछा करते—'गुरु महाराज प्रवचन करते हैं और आप कुछ-न-कुछ लिखते रहते हैं। उनका प्रवचन क्यों नहीं सुनते?' उनको मैं उत्तर देता—'परम पूज्य गुरुदेव का प्रवचन जैसे आपलोग सुनते हैं, वैसे ही मैं भी सुनता हूँ, किंतु अन्तर यह है कि आपलोगों को उनका प्रवचन याद रहता होगा, मुझे याद नहीं रहता है, इसलिए लिख लिया करता हूँ।'

यदा-कदा विद्वान सत्संगी सज्जनों से मैं आग्रह करता कि परम पूज्य गुरुदेव का प्रवचन जहाँ-जहाँ होता है, वहाँ-वहाँ के लोग तो लाभान्वित होते हैं, किंतु अन्य लोग इससे वंचित रह जाते हैं। अन्य लोगों को भी इसका लाभ मिले, ऐसी कोई व्यवस्था हो पाती तो उत्तम होता। उन सज्जनों ने मेरे विचार का स्वागत किया। सन् **१९४९** ई० में अखिल भारतीय संतमत-सत्संग का विशेषाधिवेशन, डोभाघाट, पूर्णियाँ (बिहार) में हुआ था। उक्त अवसर पर भारत के विभिन्न प्रान्तों एवं नेपाल राज्य (मोरंग जिला) के सहस्रों सज्जन उपस्थित हुए थे। एक दिन परम पूज्य गुरुदेव के निकट पढ़े-लिखे कुछ सज्जन बैठे और मेरे पूर्वाग्रह पर विचार करते हुए पूज्य गुरुदेव से एक पत्रिका प्रकाशित करने का निवेदन किया। सबकी सामूहिक राय एक मासिक पत्रिका निकालने की हुई, जिसके द्वारा गुरुदेव के वचनामृत का पान सर्वसुलभ हो। उस पत्रिका का क्या नाम हो, इसपर

विचार-विमर्श हुआ। सभी सज्जनों ने गुरुदेव के समक्ष अपने-अपने विचार व्यक्त किए। परम पूज्य गुरुदेव को मुरादाबाद निवासी श्रीहरकिशन दास टंडन उर्फ चुन्नालाल साहब द्वारा प्रस्तावित 'शान्ति-सन्देश' नाम उत्तम लगा। उन्होंने इसी नाम से पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ करवाया। आज **५४** वर्षों से यानी सन् **१९५०** ई० से लेकर अब तक प्रतिमाह शान्ति-सन्देश का प्रकाशन होता चला आ रहा है। प्रत्येक पत्रिका में मैं गुरुदेव का एक प्रवचन दिया करता हूँ।

यह विचार कर कि इतनी लम्बी अवधि में सभी सज्जनों के पास शान्ति-सन्देश के सभी अंक सुरक्षित उपलब्ध हों, संभव नहीं। पहले इसके नियमित ग्राहक भी बहुत कम थे। अतः ऐसे बहुत कम सज्जन हो सकते हैं, जिनके पास शान्ति-सन्देश के सभी अंक हों। पर सत्संग से जुड़नेवाले नए लोग भी गुरुदेव के उन दुर्लभ प्रवचनों का लाभ लेना चाहते हैं। इसी दृष्टि को अपनाकर उन सभी प्रवचनों का एकत्रीकरण करके एक बृहद् ग्रन्थ 'महर्षि मेँहीँ सत्संग-सुधा-सागर (प्रथम भाग)' नाम से प्रणयन किया गया है, जिसमें पूज्य गुरुदेव के **३२३** प्रवचन संकलित हैं। इन प्रवचनों के अतिरिक्त बचे प्रवचनों को दूसरे भाग में प्रकाशित किया जाएगा। साथ ही, जो प्रवचन अभी तक शान्ति-सन्देश द्वारा प्रकाशित नहीं हो सके हैं, ऐसे हजारों प्रवचन मेरी हस्तलिखित बहियों में सुरक्षित हैं। उनको भी क्रम-क्रम से पुस्तकाकार में प्रकाशित करने की योजना है।

परम पूज्य गुरुदेव की साधना इतनी ऊँची थी कि उन्होंने ज्ञान की अंतिम अवस्था अर्थात् अनुभव ज्ञान को प्राप्त कर लिया था। अध्यात्म के क्षेत्र में उनका अनुभूत ज्ञान सामान्यजन के भवव्याधि को दूर करने के लिए महौषधि सदृश है। उन्होंने इन प्रवचनों के द्वारा जीव-ब्रह्म, बन्ध-मोक्ष, सृष्टि-माया प्रभृति जटिल विषयों को अत्यन्त सरल भाषा में समझाने की कृपा की है, ताकि सर्वसाधारण जन भी सरलतापूर्वक उन्हें हृदयंगम कर सकें। इन प्रवचनों में मात्र पारलौकिक बातें ही नहीं हैं, बल्कि जागतिक बातें भी हैं, जिनके अध्ययन से यह ज्ञान होता है कि संसार में किस तरह रहना चाहिए, हमारा आचार-व्यवहार और आहार कैसा होना चाहिए, समाज और देश में सुख-शान्ति कैसे आ सकती है....आदि। इस तरह प्रस्तुत पुस्तक में लौकिक और पारलौकिक दोनों जीवन को कल्याणमय बनाने का रहस्य छिपा है। आवश्यकता है श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पुस्तक के अध्ययन-मनन और तदनुकूल आचरण करने की। आशा है, भक्तिपथ के पथिक के लिए यह पुस्तक उत्तम पाथेय सिद्ध होगी।

शान्ति-सन्देश प्रेस और प्रकाशन विभाग से संबद्ध वे सभी व्यक्ति जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, उन्हें शुभकामनाओं सहित धन्यवाद है।

१ दिसम्बर, २००४ ई०
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट,
भागलपुर, बिहार (भारत)

—***'संतसेवी'***

प्रकाशकीय

'महर्षि मेँहीँ सत्संग-सुधा-सागर' सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज द्वारा विभिन्न समयों पर दिए गए प्रवचनों का संकलन है। एक समय महर्षि मेँहीँ परमहंस ने परमात्म-प्राप्ति के लिए एकान्त साधना हेतु सिकलीगढ़ धरहरा में गुफा बनाकर घोर साधना की थी, किंतु उतने से ही इन्हें संतुष्टि नहीं मिलने पर भागलपुर, कुप्पाघाट के प्राकृतिक गुफा में इन्होंने भजनाभ्यास करके परमप्रभु परमात्मा का साक्षात्कार किया। कठिन तपस्या के समय इनका शरीर जर्जर (कृश) हो गया था। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में अपने पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों के उपलब्ध सत्य का परीक्षण कर यह कहने में समर्थ होता है कि दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग ऑक्सीजन को मिलाकर जल बनता है, उसी भाँति सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंस ने पूर्ववर्ती संतों की भाँति ध्यानाभ्यास, सत्संग, सदाचार एवं शुच्याचार को जीवन में उतारकर यह कहने की समर्थता जतायी है कि उपनिषदों और संत-साहित्यों में विवेचित ज्ञान सत्य है और विन्दु-नाद-साधना के माध्यम से ही सत्यस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है।

सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज सत्संग-प्रचार के क्रम में जहाँ भी जाते थे, उनके परम शिष्य महर्षि संतसेवीजी छाया की भाँति उनके साथ रहते थे। वे गुरुदेव के पावन श्रीमुख से निःसृत वचनामृत को लिपिबद्ध कर लेते थे। महर्षि संतसेवीजी ने अपने परमाराध्य गुरुदेव महर्षि मेँहीँ परमहंसजी की सराहनीय सेवा की, तभी तो उन्होंने इनका नाम 'संतसेवी' रखा था। सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी के मानसपुत्रों में महाप्राज्ञ महर्षि संतसेवीजी का सर्वोपरि स्थान है। परमाराध्य गुरुदेव ने दिनांक **२७** दिसम्बर **१९८१** ई० को महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट के सत्संग-हॉल में अपने प्रवचन के क्रम में इनके संबंध में कहा था—'हमसे बेसी तो वही जानते हैं, अगर कोई उनके तरह बेसी जानते हैं, तो आएँ और जहाँ संतसेवीजी बैठे थे, वहाँ बैठ जाएँ। यह भी होने योग्य नहीं है।' महर्षि संतसेवी परमहंस ने अपने गुरुदेव के यत्र-तत्र बिखरे सारे प्रवचनों को एकत्र कर ग्रंथाकार किया है।

महर्षि मेँहीँ सत्संग-सुधा-सागर नामक इस ग्रंथ के मूल विषय—यम-नियम, सत्संग, सदाचार, शुच्याचार, गुरु, ध्यान, ज्ञान-योग-युक्त ईश्वर-भक्ति और सर्वधर्म समन्वय हैं। इसमें साम्प्रदायिकता के लिए कोई जगह नहीं है। महर्षि मेँहीँ ने साधना के द्वारा केवल अपने ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया हो, ऐसा नहीं; अपितु उन्होंने मनुष्य-जाति के लिए चिरकाल से अवरुद्ध मोक्ष-मार्ग को खोल दिया है। इसलिए तो इनका उद्घोष है—

जितने मनुष्य तन धारि हैं, प्रभु भक्ति कर सकते सभी।

आज बहिर्मुखी और चिन्ताग्रस्त मानव के लिए महर्षि मेँहीँ सत्संग-सुधा-सागर एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अध्यात्म-प्रेमी परमाध्यदेव के प्रवचनामृत का पान कर परितृप्त होंगे और आचरण में उतारकर मानव-जीवन का परमलक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

करुणेश्वर सिंह, महामन्त्री
अखिल भारतीय संतमत-सत्संग महासभा
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-**३**

दो शब्द

'संत' शब्द को यदि उसके मूल अर्थ– 'आत्मद्रष्टा या तत्त्ववेत्ता' के रूप में लें तो यह कहना युक्तिसंगत होगा कि संत 'ब्रह्म' में विचरण करते हैं, ब्रह्ममय होते हैं या यों कहें कि वे साक्षात् ब्रह्म ही होते हैं। हम अपनी अल्प बुद्धि में यह सोच सकते हैं कि वे सतत ब्रह्म का चिंतन करते होंगे, पर जब आत्मिक स्तर पर उनका अस्तित्व ब्रह्म में लय हो जाता है, तो द्वैत–भाव का कोई प्रश्न ही नहीं है और जहाँ द्वैत–भाव नहीं है, वहाँ कौन किसका चिंतन करेगा। ऐसे पुरुष की सारी कामनाएँ एवं इच्छाएँ योगाग्नि में जल कर भस्म हो जाती हैं। किन्तु निष्काम और अनीह होने पर भी हम पाते हैं कि एक कामना (जिसे शुभ कामना कहना ही ज्यादा उपयुक्त होगा) संतों के हृदय में पायी जाती हैं, वह है– 'लोककल्याण की कामना।' इसीलिए संत का लक्षण बतलाते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी को कहना पड़ा– 'विश्व उपकारहित व्यग्रचित सर्वदा' और 'पर उपकार वचन मन काया'।

संतों की सिद्धावस्था के बाद का जीवन 'सत्य–धर्म की संस्थापना के द्वारा लोककल्याण' के लिए पूर्णतः समर्पित हो जाता है। इसी सार्वभौमिक सिद्धान्त के साकार रूप थे– सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज। अध्यात्म–विज्ञान पर गंभीर प्रयोग कर उन्होंने ईश्वर–प्राप्ति का जो शुद्ध, सत्य, संक्षिप्त और निरापद मार्ग उद्घाटित किया, उसे जन–जन तक पहुँचाने के लिए उन्होंने गंभीर कष्ट सहा। जाड़ा, गर्मी और बरसात का विकट मौसम, देहात की ऊँची–नीची कच्ची सड़कें, बैलगाड़ी की सवारी, कभी पैदल–यात्रा, रहने को टूटी–फूटी झोपड़ी, पीने को नदी का जल तथा खाने को रूखा–सूखा भोजन; फिर भी चेहरे पर गहरा संतोष और बाल सुलभ आनन्द, यह थी नारायण की नर–लीला और उनकी इस नर–लीला में लीला–सहचर की भूमिका निभाते थे, उनके परम प्रिय शिष्य–महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज। वे ऐतिहासिक तथ्यगत लीलाओं के प्रामाणिक साक्ष्य भी हैं।

संत साकार ब्रह्म होने के कारण उनकी वाणी को ब्रह्मवाणी कहना अयुक्त नहीं है। महर्षि मेँहीँ सत्संग–सुधा–सागर उन्हीं ब्रह्मवाणी का संकलन है। वह ब्रह्मवाणी क्या है? अमरता प्रदान करनेवाला अमृत ही है, जो महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के श्रीमुख से प्रवचन के क्रम में निःसृत हुआ करता था। उस अमृत को संग्रह करने और उस प्रसाद को सत्संग–सुधा के रूप में वितरण करने का श्रेय संतमत के वर्तमान गुरुदेव महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज को ही है। जो व्यक्ति यह ज्ञानामृत का प्रसाद ग्रहण करेंगे, वे अंधकार से प्रकाश में, असत् से सत् में और मृत्यु से अमृत में प्रतिष्ठित होकर सर्वसुख–सर्वशान्ति के भागी होंगे। संतमत के वर्तमान गुरुदेव द्वारा प्रणीत यह ग्रंथ आकर्षक साज–सज्जा में छपाया गया है और इसके अन्दर ब्रह्मलीन सद्गुरुदेव के अनेक दुर्लभ चित्र भी दिए गए हैं, मानो अमृत को सुसज्जित कलश में भर दिया गया हो। इस तरह मेरी दृष्टि में यह ग्रंथ एक अमृत–कलश है। निःसन्देह इस ग्रंथ का अनुशीलन कर आप पाठकगण गुरुद्वय का आशीष प्राप्त करेंगे और कल्याण के भागी होंगे।

इस ग्रंथ को निर्धारित समय पर आकर्षक रूप में प्रकाशित करने में कुछ आश्रमवासी साधुओं ने हमें प्रशंसनीय सहयोग प्रदान किया है। इनके अतिरिक्त शान्ति–संदेश प्रेस के समस्त सदस्यों का परिश्रम भी सराहनीय है। इस ग्रंथ के प्रकाशन में अनेक भक्तों ने आर्थिक सहयोग प्रदान कर अपनी उदारता का परिचय दिया है। सब–के–सब धन्यवाद के पात्र हैं। मेरी कामना है कि इन लोगों पर परम पूज्य गुरुद्वय की कृपा सतत बनी रहे।

आशुतोष
संपादक, शान्ति–सन्देश
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर

प्रवचन-अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	प्रवचन तिथि	पृष्ठांक
१.	सन्तमत में ईश्वर की स्थिति	५.१२. १९४९	१
२.	वेद पुराण सन्तमत भाखौं	२४.१२. ,, ५०	५
३.	ब्रह्मलोक में भी दुःख है	२४.१२. ,, ५०	८
४.	अन्तर में डूबने से चैन	२५.१२. ,, ५०	१२
५.	मुक्ति और उसकी साधना	१७.०१. ,, ५१	१५
६.	ईश्वर इन्द्रिय ज्ञान से परे	१८.०१. ,, ५१	२३
७.	मेरे गुरुजी ने कहा था	१९.०१. ,, ५१	२५
८.	स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश का द्वार	२०.०१. ,, ५१	२७
९.	बाबा साहब के उपदेशों का सार	२१.०१. ,, ५१	३१
१०.	ध्यान-योग की महिमा	२६.०१. ,, ५१	३६
११.	ईश्वर भक्ति से सुख की प्राप्ति	२७.०१. ,, ५१	३८
१२.	सन्तमत के ज्ञान से परम कल्याण	०९.०२. ,, ५१	४३
१३.	बंदीगृह में स्वतंत्रता नहीं	३१.०३. ,, ५१	४९
१४.	घूँघट का पट खोल रे	३१.०३. ,, ५१	५०
१५.	सन्तवाणियों के अनुकूल चलें	२३.१२. ,, ५१	५६
१६.	सुरत का जगना क्या है?	२४.१२. ,, ५१	५९
१७.	मोह निशा में रहना पशुता है	३०.०४. ,, ५२	६१
१८.	नरतन की उपादेयता	०२.०५. ,, ५२	६३
१९.	बँधा हुआ कौन है?	०४.०५. ,, ५२	६५
२०.	अन्तर्ज्योति की खोज	११.०५. ,, ५२	६८
२१.	सन्त साहित्य से परम हित	०१.०६. ,, ५२	७१
२२.	पाप और पुण्य दोनों बंधन	०८.०७. ,, ५२	७६
२३.	परम पद से कभी गिरते नहीं	१८.०७. ,, ५२	७९
२४.	अन्तर में देखने का यत्न गुरु से सीखो	१८.१०. ,, ५२	८३
२५.	बहुदेव उपासना ठीक नहीं	२५.१०. ,, ५२	८५
२६.	मन बिजली से भी सूक्ष्म है	२५.१०. ,, ५२	८८
२७.	सज्जनों का धर्म क्या है?	२९.१०. ,, ५२	९२
२८.	गागर ऊपर गागरी चोले ऊपर द्वार	०१.११. ,, ५२	९५
२९.	पंडितों का वेद सन्तों का भेद	०८.११. ,, ५२	९८
३०.	सन्तों का संग दुर्लभ है	०८.११. ,, ५२	१०२
३१.	सूर संग्राम को देख भागै नहीं	०९.११. ,, ५२	१०५
३२.	ईश्वर भक्ति की विशेषता	०९.११. ,, ५२	१०८
३३.	शरीर छूटने पर क्या गति होगी?	११.११. ,, ५२	११४
३४.	शास्त्रों को मथने से क्या फल?	१६.११. ,, ५२	११७
३५.	इस जीवन के बाद और क्या होगा?	१८.११. १९५२	१२०
३६.	अपने शरीर को पार करो	१८.११. ,, ५२	१२३

क्रमांक	विषय	प्रवचन तिथि	पृष्ठांक
३७.	धर्म से विराग होता है	०९.१२. १९५२	१२८
३८.	तन धर सुखिया काहू न देखा	२२.१२. ,, ५२	१३०
३९.	दृश्य जगत का मूल विन्दु है	३०.१२. ,, ५२	१३२
४०.	सन्तमत का उपदेश	०३.०१. ,, ५३	१३३
४१.	जहाँ रहो सत्संग करो	१३.०१. ,, ५३	१३७
४२.	ईश्वर भक्ति की युक्ति	१७.०१. ,, ५३	१४३
४३.	दृष्टि साधन की महिमा	२०.०२. ,, ५३	१४८
४४.	आत्मा को जानना सच्चा ज्ञान है	२४.०२. ,, ५३	१५०
४५.	पिण्ड-ब्रह्माण्ड की खोज	२७.०२. ,, ५३	१५३
४६.	सूक्ष्म मार्ग का अवलम्ब	२८.०२. ,, ५३	१५६
४७.	साधन के अंत तक पहुँचो	०६.०३. ,, ५३	१६०
४८.	भोजन का प्रभाव मन पर भी पड़ता है	११.०३. ,, ५३	१६३
४९.	ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता एक ही है	१२.०३. ,, ५३	१६५
५०.	गोद में बालक नगर में ढिंढोरा	२१.०३. ,, ५३	१६८
५१.	आध्यात्मिकता की ओर चलिए	२८.०३. ,, ५३	१७२
५२.	मनुष्य अपने स्वरूप को जाने	०३.०४. ,, ५३	१७४
५३.	शरीर के सुखों में लिप्त होना दानवी स्वभाव है	०४.०४. ,, ५३	१७८
५४.	भौतिक विद्या भी आवश्यक	०४.०४. ,, ५३	१८२
५५.	मनुष्य-शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है	०८.०४. ,, ५३	१८५
५६.	मानस रोगों से मुक्ति	१६.०४. ,, ५३	१८७
५७.	चिट्ठी आधी मुलाकात होती है	०८.०५. ,, ५३	१८९
५८.	एक दिन सबको जाना होगा	२३.१२. ,, ५३	१९२
५९.	सहज रूप सुमिरण करै	२३.०२. ,, ५४	१९५
६०.	राम भगति जहँ सुर सरि धारा	२६.०२. ,, ५४	१९६
६१.	विद्या अच्छी तरह पढ़ो और नम्रता से रहो	२६.०२. ,, ५४	१९८
६२.	परमातम गुरु निकट विराजैं	२७.०२. ,, ५४	२०४
६३.	अमृत को नेत्रों से पान करो	२८.०२. ,, ५४	२०७
६४.	घर माहैं घर निर्मल राखै	२८.०२. ,, ५४	२११
६५.	भगवान का दर्शन और यह दुर्दशा!	०४.०३. ,, ५४	२१४
६६.	चित्तवृत्ति का निरोध करना योग है	१२.०३. ,, ५४	२१५
६७.	जीवनकाल में विदेह मुक्ति	१६.०३. ,, ५४	२१७
६८.	नैतिकता पूर्वक उपार्जन करो	३१.०३. ,, ५४	२१९
६९.	कोशिश करो तो ईश्वर मदद करेंगे	११.०४. ,, ५४	२२४
७०.	बिना प्रेम की सेवा ऊपरी भाव है	१२.०४. ,, ५४	२२८
७१.	तन काम में मन राम में	१२.०४. ,, ५४	२२९
७२.	त्रयकाल संध्या करनी चाहिए	१५.०४. ,, ५४	२३३

क्रमांक	विषय	प्रवचन तिथि		पृष्ठांक
७३.	नाद से बढ़कर कोई मंत्र नहीं...........................	१६.०४. ,, ५४	....	२३६
७४.	धन यौवन का गर्व न कीजै	१७.०४. १९५४	....	२३८
७५.	उत्तम संस्कृति..	१८.०४. ,, ५४	....	२४१
७६.	पाप और पारे को कोई हजम नहीं कर सकता.	१८.०४. ,, ५४	....	२४२
७७.	अबके माधव मोहि उधारि................................	१९.०४. ,, ५४	....	२४४
७८.	विन्दु ज्योतिर्मय शालिग्राम है..............................	२२.०४. ,, ५४	....	२४६
७९.	ज्ञान-योग-युक्त ईश्वर-भक्ति............................	२४.०४. ,, ५४	....	२५२
८०.	मेरा यहाँ कुछ नहीं है, सभी मेरे मालिक के हैं.	२५.०४. ,, ५४	....	२५५
८१.	बिना शब्द के सृष्टि नहीं हो सकती.................	२५.०४. ,, ५४	....	२५८
८२.	पाँच किस्म की मुक्ति..	०१.०५. ,, ५४	....	२६०
८३.	मौत को कौन नहीं जानता है?...........................	०९.०५. ,, ५४	....	२६१
८४.	हमारी इन्द्रियाँ बिल्कुल स्थूल हैं.......................	०९.०५. ,, ५४	....	२६४
८५.	अजर-अमर शब्द को कैसे जपोगे?..................	११.०५. ,, ५४	....	२६६
८६.	मन जीवात्मा में इतना मिलाप, जैसे दूध में घी..	१८.०५. ,, ५४	....	२७०
८७.	ईश्वर को मानिए, उसमें विश्वास कीजिए.........	२५.०५. ,, ५४	....	२७१
८८.	मछली की देह अधिक पवित्र है या तुम्हारी देह?	२८.०५. ,, ५४	....	२७३
८९.	संसार में पनडुब्बी चिड़िया की तरह रहो.........	०६.०६. ,, ५४	....	२७४
९०.	यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं....	१७.०७. ,, ५४	....	२७६
९१.	स्तुति, प्रार्थना और उपासना...............................	२६.०८. ,, ५४	....	२८०
९२.	संगत ही जरि जाय, न चरचा नाम की...........	१०.१०. ,, ५४	....	२८२
९३.	समस्त प्रकृति मंडल को जानिए........................	१०.१०. ,, ५४	....	२८४
९४.	तिल परिमाण जान जन कोई............................	११.१०. ,, ५४	....	२८७
९५.	जो कोई निर्गुण दर्शन पावै...............................	११.१०. ,, ५४	....	२८९
९६.	भगवान श्रीकृष्ण स्वयं संध्या करते थे.............	१४.१०. ,, ५४	....	२९५
९७.	एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो..............................	१८.१०. ,, ५४	....	२९७
९८.	सिमटी दृष्टि से देखो..	३१.१०. ,, ५४	....	२९९
९९.	भया जी हरि रस पी मतवारा...........................	१५.०२. ,, ५५	....	३०१
१००.	निज काम क्या है?...	१८.०२. ,, ५५	....	३०३
१०१.	सुमिरण से क्या होता है?.................................	१९.०२. ,, ५५	....	३०५
१०२.	गृहस्थाश्रम में रहकर स्वल्पभोगी.......................	२६.०२. ,, ५५	....	३०७
१०३.	वार्य हिंसा को छोड़ो...	२७.०२. ,, ५५	....	३१०
१०४.	नारदजी को वैकुण्ठ में मोह.............................	०२.०३. ,, ५५	....	३११
१०५.	केवल विद्वता से संतवाणी नहीं समझ सकते....	०३.०३. ,, ५५	....	३१३
१०६.	ईश्वर के पास क्यों जाना चाहिए?	१२.०३. ,, ५५	....	३१५
१०७.	कायारूप कपड़ों को धो डालो..........................	१२.०३. ,, ५५	....	३२४
१०८.	काम करते हुए भजन करो...............................	१८.०३. ,, ५५	....	३२६

क्रमांक	विषय	प्रवचन तिथि		पृष्ठांक
१०९.	अन्तर्मुख होना सबसे बड़ा पुरुषार्थ है..............	२७.०३. ,, ५५	....	३२९
११०.	ईश्वर को जानने के लिए सत्संग है..................	०९.०४. ,, ५५	....	३३१
१११.	संसार में खीरा की तरह रहो............................	२९.०५. १९५५	....	३३४
११२.	एक को जानने से शान्ति मिलेगी.......................	०६.०६. ,, ५५	....	३३५
११३.	नवधा भक्ति का उपदेश..................................	०६.०६. ,, ५५	....	३३८
११४.	भगवान श्रीराम का प्रजा को उपदेश................	१३.०६. ,, ५५	....	३४३
११५.	परमात्मा के लिए ईश्वर शब्द का प्रयोग...........	१६.०६. ,, ५५	....	३४६
११६.	भिक्षु जीवन का प्रत्यक्ष फल............................	१९.०६. ,, ५५	....	३४८
११७.	पहले मस्तिष्क ही पुस्तक थी...........................	२३.०६. ,, ५५	....	३५१
११८.	विषयों का उपभोग किस रूप में ?....................	२८.०६. ,, ५५	....	३५५
११९.	अन्तःकरण की शुद्धि..	०१.०७. ,, ५५	....	३६१
१२०.	श्रीकृष्ण का आह्वान..	१४.०७. ,, ५५	....	३६३
१२१.	चेतन के दो रूप..	३०.०७. ,, ५५	....	३६५
१२२.	तुलाधार वैश्य की तपस्या.................................	०४.०८. ,, ५५	....	३६९
१२३.	सुषुम्ना ही प्रधान तीर्थ है..................................	०५.०८. ,, ५५	....	३७१
१२४.	बिना ध्यान के समाधि नहीं.............................	१३.०८. ,, ५५	....	३७४
१२५.	श्रीमद्भगवद्गीता में ध्यानयोग.........................	१८.०९. ,, ५५	....	३७७
१२६.	भारतीय योगविद्या का चमत्कार......................	२५.११. ,, ५५	....	३८०
१२७.	प्राप्तव्य क्या है?..	२५.११. ,, ५५	....	३८४
१२८.	साम्यावस्थाधारिणी मूल प्रकृति........................	२६.११. ,, ५५	....	३८६
१२९.	पारमार्थिक सत्ता की विशेषता..........................	२७.११. ,, ५५	....	३९०
१३०.	गुरु गोविन्द सिंह की महानत्ता..........................	२६.१२. ,, ५५	....	३९६
१३१.	संस्कृति का आरम्भ माता के पेट से...........	०१.१०. ,, ५६	....	४०५
१३२.	दो विद्याएँ शब्द ब्रह्म और परब्रह्म....................	०१.१०. ,, ५६	....	४१३
१३३.	चेतन की धारा ब्रह्माण्ड से पिण्ड की ओर.......	२२.१२. ,, ५७	....	४१६
१३४.	साधन में विघ्न..	०९.०२. ,, ५८	....	४२५
१३५.	भौतिक चीजों से आत्मा को भिन्न करो...........	०९.०२. ,, ५८	....	४२८
१३६.	सबको ॐ कहने का अधिकार....................	१०.०२. ,, ५८	....	४३४
१३७.	शून्य में क्या मिलेगा?......................................	२५.१०. ,, ५८	....	४३८
१३८.	संत लोग पच्छिम तरफ रहते हैं........................	२६.१०. ,, ५८	....	४३९
१३९.	राजा कुरु का स्वाबलम्बी जीवन......................	०१.०३. ,, ५९	....	४४१
१४०.	मनुष्य की खोपड़ी कभी भरती है?...................	११.०३. ,, ५९	....	४४७
१४१.	युद्ध भी करो और स्मरण भी............................	२१.०४. ,, ५९	....	४५१
१४२.	श्री दुर्गा देवीजी का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप.............	२१.०४. ,, ५९	....	४५५
१४३.	मोटा और महीन ध्यान	१४.०५. ,, ५९	....	४६१
१४४.	अनैतिकता से छूटने का उपाय........................	२७.०६. ,, ५९	....	४६५

क्रमांक	विषय	प्रवचन तिथि	पृष्ठांक
१४५.	सावित्री के सतीत्त्व की महिमा	१७.०७. ,, ५९	४६६
१४६.	सोये हुए को जगाने की आवश्यकता	१८.०७. ,, ५९	४७०
१४७.	आगे के जीवन का प्रबंध	०२.०१. ,, ६०	४७१
१४८.	विद्या ददाति विनयम्	०५.०३. १९६०	४७२
१४९.	सब ससीमों के परे क्या है?	०५.०३. ,, ६०	४७६
१५०.	सूफी सन्त और कबीर साहब का मिलन	०६.०३. ,, ६०	४८०
१५१.	कर्म-धर्म से छूटने का उपाय	०६.०३. ,, ६०	४८३
१५२.	सगुण ब्रह्म की प्रत्यक्षता होने पर भी दुःख	०७.०३. ,, ६०	४८९
१५३.	जीवों का उपकार	०७.०३. ,, ६०	४९३
१५४.	नासाग्र ध्यान क्या है?	२२.०३. ,, ६०	४९५
१५५.	भक्ति का आरम्भ कहाँ से?	२६.०३. ,, ६०	४९६
१५६.	हमलोगों को पूरा मनुष्य होना चाहिए	१०.०४. ,, ६०	४९८
१५७.	योग का रहस्य	१५.०४. ,, ६०	५००
१५८.	सविकल्प-निर्विकल्प समाधि	१७.०४. ,, ६०	५०३
१५९.	श्रीराम की आरती	१७.०४. ,, ६०	५०४
१६०.	मनुष्य और पशु में अन्तर	१८.०४. ,, ६०	५०८
१६१.	सब रूपों में एक ही ईश्वर	२४.०४. ,, ६०	५११
१६२.	सन्तों के दिशा का सांकेतिक शब्द	१७.०८. ,, ६०	५१२
१६३.	योगी किसे कहते हैं?	०२.०९. ,, ६०	५१६
१६४.	सिंह का बच्चा भेंड़-बकरियों के साथ	०४.०१. ,, ६१	५१८
१६५.	राजविद्या राजगुह्य का तात्पर्य	०७.०२. ,, ६१	५२३
१६६.	अध्यात्म विज्ञान का प्रयोगशाला	१६.०२. ,, ६१	५२६
१६७.	तीन प्रकार के कर्म	२५.०३. ,, ६१	५२७
१६८.	देश में शान्ति कैसे आएगी?	१९.१०. ,, ६१	५३०
१६९.	सन्तमत और अनामी मत	२७.०१. ,, ६२	५३१
१७०.	द्रव्य यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ	२७.०१. ,, ६२	५३४
१७१.	विकारों ने सतयुग को भी नहीं छोड़ा	३१.०१. ,, ६२	५३८
१७२.	धनुष विद्या की परीक्षा	०८.०२. ,, ६२	५४३
१७३.	सभी देव ईश्वर के बनाए हुए हैं	०१.०४. ,, ६२	५४५
१७४.	राम कैसा है?	०२.०४. ,, ६२	५४८
१७५.	ईश्वर सबका आधार	०७.०४. ,, ६२	५५६
१७६.	तपस्वी को नश्वरता का ज्ञान	१०.०४. ,, ६२	५६१
१७७.	राम का प्रबल प्रतापः सूर्य	१३.०४. ,, ६२	५६३
१७८.	ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या	१६.०४. ,, ६२	५६५
१७९.	परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान	१९.०४. ,, ६२	५६८
१८०.	नशा सेवन से मष्तिष्क खराब	१६.०५. ,, ६२	५७०

क्रमांक विषय	प्रवचन तिथि		पृष्ठांक
१८१. पूर्ण धर्म..	१६.०५. ,, ६२	....	५७२
१८२. सरल राज योग..	३०.०५. ,, ६२	....	५७४
१८३. सबसे पहले का पदार्थ कैसा है?......................	०५.०८. ,, ६२	....	५७५
१८४. दिव्य जीवन क्या है?..	०८.०९. ,, ६२	....	५८०
१८५. दैत्य गुरु शुक्राचार्य की युक्ति..........................	०९.०९. १९ ६२	....	५८२
१८६. संसार में पाँच ही पदार्थ है..............................	०१.१०. ,, ६२	....	५८७
१८७. माया का फैलाव ब्रह्माण्ड तक.........................	१२.०१. ,, ६३	....	५८८
१८८. स्वराज्य में सुराज...	०३.०३. ,, ६३	....	५९२
१८९. सगुण-निर्गुण की महिमा.................................	३०.०३. ,, ६३	....	५९७
१९०. धर्म की परिभाषा...	०२.०४. ,, ६३	....	६०१
१९१. एक ॐ सतनाम...	०१.०५. ,, ६३	....	६०४
१९२. अनेक ब्रह्मा, विष्णु और शिव..........................	३०.०९. ,, ६३	....	६०७
१९३. पिण्डी मन की धारों को समेटो.......................	०१.१०. ,, ६३	....	६१२
१९४. भाठा से सीरा चलो..	०१.१०. ,, ६३	....	६१५
१९५. चेतन आत्मा को शरीर का बंधन.....................	०३.१०. ,, ६३	....	६१९
१९६. मनोलय कैसे होगा?..	०७.१०. ,, ६३	....	६२०
१९७. प्रकृति देश-काल का उपादान कारण...............	१०.१०. ,, ६३	....	६२२
१९८. सभी धर्मों को छोड़ने का रहस्य........................	१३.१०. ,, ६३	....	६२५
१९९. आप का निज विषय क्या है?............................	१७.१०. ,, ६३	....	६२८
२००. जीव किसको कहते है?.....................................	२१.१०. ,, ६३	....	६३२
२०१. नभ शत कोटि अमित अवकाशा......................	२५.१०. ,, ६३	....	६३४
२०२. सृष्टि को स्वबस में कौन रखता है?................	३१.१०. ,, ६३	....	६३८
२०३. कल्याण किधर है?..	०१.११. ,, ६३	....	६३९
२०४. अनेकत्व के कारण संसार में झगड़ा................	०३.०४. ,, ६४	....	६४३
२०५. साधना में आलस बड़ा दुश्मन है	०४.०४. ,, ६४	....	६४८
२०६. मौत सबके सिर पर है......................................	२१.०४. ,, ६४	....	६५१
२०७. चमत्कार के फेर में नहीं पड़िए........................	२५.०४. ,, ६४	....	६५५
२०८. सन्तों की वाणियों को पढ़ो, यह भी सत्संग है..	२०.०३. ,, ६५	....	६५६
२०९. गुरु कैसा होना चाहिए?..................................	१२.०४. ,, ६५	....	६५९
२१०. बाहर संसार में भाग कर कहाँ जाओगे?...........	२१.०४. ,, ६५	....	६६८
२११. ईश्वर की महिमा..	२३.०४. ,, ६५	....	६७०
२१२. ध्यानाभ्यास में लौ लगने से तरक्की.................	०५.०९. ,, ६५	....	६७३
२१३. भगवान बुद्ध की साधना : ज्योति और शब्द ...	०७.०९. ,, ६५	....	६७४
२१४. सन्तमत का शब्द विज्ञान..................................	२६.१०. ,, ६५	....	६७७
२१५. सन्तमत-सत्संग : केवल सत्संग में अन्तर...........	०२.१२. ,, ६५	....	६७९
२१६. जन्म लेना और मरना : संसार का धर्म............	१९.१२. ,, ६५	....	६८२

क्रमांक	विषय	प्रवचन तिथि		पृष्ठांक
२१७.	कल्याण केवल शब्द ध्यान से...........................	१९.१२. ,, ६५	....	६८५
२१८.	योग के आरम्भ का नाश नहीं होता.................	२५.१२. ,, ६५	....	६८७
२१९.	आपका निज ज्ञान क्या है?................................	२५.१२. ,, ६५	....	६८८
२२०.	सोचना और समझना दार्शनिक ज्ञान है............	२६.१२. ,, ६५	....	६८९
२२१.	योगी देवता के पद से भी आगे जाते है............	२६.१२. ,, ६५	....	६९०
२२२.	सन्तवाणी में नाम-भजन वेदानुकूल है...............	२७.१२. १९६५	....	६९१
२२३.	मन से स्वतंत्र कैसे होंगे?................................	२७.१२. ,, ६५	....	६९२
२२४.	आपने नई उम्र में क्यो साधु वेश लिया?..........	२२.०२. ,, ६६	....	६९४
२२५.	सन्तमत किसको कहते हैं?................................	१०.०४. ,, ६६	....	६९६
२२६.	अन्धी श्रद्धा से कुछ ग्रहण और त्याग मत करो.	१०.०४. ,, ६६	....	७००
२२७.	दर्शन पाने के लिए बहुत दूर जाना है..............	११.०४. ,, ६६	....	७०४
२२८.	यह सत्संग तीर्थ राज है......................................	११.०४. ,, ६६	....	७०६
२२९.	सन्तमत निर्भर करता है-साधना अनुभूत ज्ञान पर....	१२.०४. ,, ६६	....	७११
२३०.	बाहर फिरत विकल भय धायो.........................	१२.०४. ,, ६६	....	७१३
२३१.	मन में बहुत प्रकार के संस्कार भरे पड़े हैं.........	२४.०४. ,, ६६	....	७१७
२३२.	इश्वरीय ज्ञान का महत्त्व....................................	०५.०५. ,, ६६	....	७२०
२३३.	निर्गुण राम के दर्शन से मोक्ष............................	०६.०५. ,, ६६	....	७२२
२३४.	अपने को शुभ गति में ले जाने का उपाय........	०८.०५. ,, ६६	....	७२४
२३५.	अपवर्ग किसे कहते है?.....................................	०८.०५. ,, ६६	....	७२७
२३६.	भजन करनेवाला कभी नीचे नहीं गिरेगा..........	२१.०५. ,, ६६	....	७३१
२३७.	साधना में धैर्य और प्रेम..................................	२३.०५. ,, ६६	....	७३२
२३८.	संतो के प्रभाव से उद्धार..................................	२८.०५. ,, ६६	....	७३४
२३९.	शरीर-रूपी खेत में सत्संग-रूपी फसल लगाते रहें..	०४.०६. ,, ६६	....	७३७
२४०.	सेवाहीन होने से रंगने के स्थान में भी नहीं रंगोगे	१८.०६. ,, ६६	....	७३९
२४१.	बहिर्मुख सुख में दुख लगा हुआ है..................	२१.०६. ,, ६६	....	७४३
२४२.	सदाचार का पालन ही चमत्कार है..................	२६.०६. ,, ६६	....	७४६
२४३.	नाम-भजन की साधना प्रधान है.......................	१७.०७. ,, ६६	....	७४८
२४४.	साधना आरम्भ में अन्तर की अनुभूतियों में सुख	२४.०७. ,, ६६	....	७५१
२४५.	मस्तिष्क को ताजा बनाने के लिए सत्संग..........	२८.१०. ,, ६६	....	७५४
२४६.	शरीर में नौ द्वार हैं..	२८.१०. ,, ६६	....	७५६
२४७.	पढ़ने के लिए प्रतिज्ञा..	२९.१०. ,, ६६	....	७५८
२४८.	सृष्टि के आरम्भ में क्या है?.............................	२९.१०. ,, ६६	....	७५९
२४९.	नीच योनियों में जाना महाभय है......................	३०.१०. ,, ६६	....	७६१
२५०.	दमशीलता कैसे आवेगी?..................................	३०.१०. ,, ६६	....	७६५
२५१.	मन तुरन्त ही समेट में नहीं आता......................	१४.११. ,, ६६	....	७७१
२५२.	मूल में ही भूल..	०२.१२. ,, ६६	....	७७३

क्रमांक विषय	प्रवचन तिथि		पृष्ठांक
२५३. सत्यनिष्ठ ही ईश्वर की उपासना में अग्रसर हो सकता है	२६.१२. ,, ६६	....	७७६
२५४. इन्द्रिय-ग्राह्य पदार्थ को माया कहते हैं.............	२६.१२. ,, ६६	....	७७८
२५५. जहाँ सत्यता वहाँ दुर्गुण नहीं...........................	०१.०१. ,, ६७	....	७८२
२५६. शरीर छोड़ने के बाद क्या हालत होगी?...........	०२.०१. ,, ६७	....	७८४
२५७. ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ विभूति : ज्योति और शब्द...	०८.०१. ,, ६७	....	७८७
२५८. भक्ति बीज का उल्टा परिणाम नहीं होता.........	०५.०२. ,, ६७	....	७९१
२५९. दो प्रकार के स्वार्थ..	१६.०२. १९६७	....	७९३
२६०. जवानी में अच्छी तरह भजन करो....................	०२.०४. ,, ६७	....	७९६
२६१. हर का नासा, सबकी आशा..............................	०२.०४. ,, ६७	....	७९८
२६२. मिथ्या धारणा को दूर करें................................	०३.०४. ,, ६७	....	८००
२६३. मन की सम्हाल भक्ति में परम आवश्यक है.....	०३.०४. ,, ६७	....	८०१
२६४. नगद सौदा...	०४.०४. ,, ६७	....	८०३
२६५. अन्तर्नाद क्या है?..	०४.०४. ,, ६७	....	८०५
२६६. शहरग का रास्ता कौन बतावेगा?.....................	०४.०४. ,, ६७	....	८०७
२६७. मन का स्वरूप क्या है?..................................	१९.०४. ,, ६७	....	८१०
२६८. कृतज्ञता से मुक्त होने के लिए-स्तुति करें........	२३.०४. ,, ६७	....	८१४
२६९. शिवजी का भी रूप बदलता है........................	११.०६. ,, ६७	....	८१८
२७०. सम्पूर्ण संसार का शासन कर्त्ता कौन है?...........	२४.०६. ,, ६७	....	८२१
२७१. गौ-माता का पालन अच्छी तरह करो..............	१८.०७. ,, ६७	....	८२६
२७२. चित्त वृत्ति का पूर्ण निरोध विन्दु ध्यान में.........	२३.०७. ,, ६७	....	८३०
२७३. प्रकाश मंडल भी मायिक है..............................	२०.०८. ,, ६७	....	८३३
२७४. रूप का आरम्भ कहाँ से होता है?....................	२७.०८. ,, ६७	....	८३४
२७५. बाहर में सन्तपथ नहीं है, अन्दर में है...............	०३.०९. ,, ६७	....	८३७
२७६. स्वर्ग में भी पाँच प्रकार के विषय हैं..................	०१.१२. ,, ६७	....	८३९
२७७. सेवा का महत्व	२४.१२. ,, ६७	....	८४२
२७८. माया का आक्रमण..	२४.१२. ,, ६७	....	८४४
२७९. निर्गुण पा लेने का ज्ञान	२५.१२. ,, ६७	....	८४७
२८०. लोग रूप उपासना को ईश्वर उपासना मानते हैं.....	२५.१२. ,, ६७	....	८४९
२८१. सन्तमत की विलक्षण बात................................	२६.१२. ,, ६७	....	८५१
२८२. सगुण उपासना के बाद ही निर्गुण तत्त्व की प्राप्ति.	२६.१२. ,, ६७	....	८५३
२८३. ऋषि ऋण पृत्रि ऋण और देव ऋण से मुक्ति..	१३.०१. ,, ६८	....	८५७
२८४. सुख पाने की साधन : ईश्वर भक्ति....................	०७.०३. ,, ६८	....	८६०
२८५. जड़ माया की पट्टी खोलने के लिए दृष्टियोग...	०८.०३. ,, ६८	....	८६३
२८६. ईश्वर तक जाने का रास्ता कहाँ है?...................	०८.०३. ,, ६८	....	८६५
२८७. सभी धर्मों के लोगों के लिए उपासना................	०९.०३. ,, ६८	....	८६९
२८८. आपस में मेल नहीं रहने से नाश......................	२३.०३. ,, ६८	....	८७२
२८९. ईश्वर के मूल स्वरूप का दर्शन : नाद ध्यान से.	२४.०३. ,, ६८	....	८७५

क्रमांक विषय	प्रवचन तिथि		पृष्ठांक
२९०. ईश्वर समुद्र हैं और सज्जन बादल......................	०८.०६. ,, ६८	....	८७८
२९१. किस विधि से इन्द्रियों का संग छूटेगा?............	०८.०६. ,, ६८	....	८८०
२९२. पवित्र भूमि से पवित्रता की प्रेरणा....................	०९.०६. ,, ६८	....	८८२
२९३. स्वप्न से छूटे, इसके लिए कोई यत्न है?..........	०९.०६. ,, ६८	....	८८६
२९४. परमात्मा की तेजोमयी विभूतियाँ	१०.०६. ,, ६८	....	८९०
२९५. कमाकर खाओ नहीं तो खून खराब हो जाएगा..	१०.०६. ,, ६८	....	८९३
२९६. निर्गुण ब्रह्म की महिमा..	१६.१२. १९६८	....	८९८
२९७. उन्नीस सौ दस ईस्वी में सत्संग का रूप...........	०९.०३ .,, ६९	....	९०३
२९८. भक्ति रूपा माता का सुख निराला है..............	०९.०३ .,, ६९	....	९०५
२९९. साकार और निराकार उपासना में भेद..............	१०.०३ .,, ६९	....	९०८
३००. गुरु से ज्ञान लेना उनका शिष्य होना है.............	१०.०३ .,, ६९	....	९१३
३०१. सहस्त्रदल कमल में जाने पर देवताओं का दर्शन..	११.०३ .,, ६९	....	९१७
३०२. सगुण दर्शन से अष्टसिद्धि की प्राप्ति................	११.०३ .,, ६९	....	९१९
३०३. मैत्रेयी और मुनि याज्ञवल्क्य का वैराग्य............	०८.०४.,, ६९	....	९२३
३०४.जीवात्मा को कर्मानुसार स्थान मिलता है..........	१५.०८.,, ६९	....	९२६
३०५. लोग दुःख को सह लेते हैं, लेकिन सुख को नहीं..	१६.०९.,, ६९	....	९२९
३०६. हरि कूँ भूले जो फिरै सहजो जीवन छार..........	१७.११.,, ६९	....	९३२
३०७. गुरमति लोग बज्र कपाट खोलते हैं..................	२१.११.,, ६९	....	९३७
३०८. मनुष्य-शरीर मांस-रक्त का पिंजरा..................	०२.०१.,, ७०	....	९३९
३०९. सगुण-रूप के दर्शन से मुनियों के मन में भ्रम...	०२.०१.,, ७०	....	९४१
३१०. जहाँ आपस में प्रेम रहता है, वहाँ सुबुद्धि रहती है.	०९.०१.,, ७०	....	९४४
३११. सुख के लिए भटको नहीं : अन्दर चलो...........	०१.०३.,, ७०	....	९४६
३१२. जड़ आवरणों को हटाने पर ईश्वर-दर्शन.........	०१.०३.,, ७०	....	९४९
३१३. चौथी अवस्था में जाने का यत्न	०२.०३.,, ७०	....	९५३
३१४. अध्यात्म और सदाचार में मेल.........................	०२.०३.,, ७०	....	९५५
३१५. आत्मवत् सर्वभूतेषू कैसे होगा?...........................	०३.०३.,, ७०	....	९५८
३१६. मानस जप से मानस बल बढ़ता है...................	०३.०३.,, ७०	....	९६१
३१७. ज्ञानियों ने ईश्वर की स्थिति को माना है..........	१९.०३.,, ७०	....	९६८
३१८. सुरत लगाने का यत्न जानो............................	२९.०३.,, ७०	....	९७०
३१९. भगवान का दर्शन भी हुआ और सन्देह भी रहा!..	२९.०३.,, ७०	....	९७२
३२०. परमात्मा की दो प्रकृतियाँ...............................	०५.०४.,,७०	....	९७५
३२१. आनन्द और मंगल की जड़ : सत्संग................	०८.०४.,,७०	....	९७६
३२२. सन्तवाणी संतों की प्रतिमूर्ति है........................	११.०४.,,७०	....	९७८
३२३. सामूहिक स्तुति अवश्य करो...........................	१३.०४.,,७०	....	९८०
३२४. देश-रक्षार्थ मंगलमयी प्रेरणा...			९८३
३२५. प्रातः एवं सायंकालीन स्तुति, विनती और आरती..			९८४

१. ईश-स्तुति

सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर, औरु अक्षर पार में।
निर्गुण सगुण के पार में, सत् असत् हू के पार में॥ १ ॥
सब नाम रूप के पार में, मन बुद्धि वच के पार में।
गो गुण विषय पँच पार में, गति भाँति के हू पार में॥ २ ॥
सूरत निरत के पार में, सब द्वन्द्व द्वैतन्ह पार में।
आहत अनाहत पार में, सारे प्रपंचन्ह पार में॥ ३ ॥
सापेक्षता के पार में, त्रिपुटी कुटी के पार में।
सब कर्म काल के पार में, सारे जंजालन्ह पार में॥ ४ ॥
अद्वय अनामय अमल अति, आधेयता गुण पार में।
सत्तास्वरूप अपार सर्वाधार, मैं-तू पार में॥ ५ ॥
पुनि ओ३म् सोऽहम् पार में, अरु सच्चिदानन्द पार में।
हैं अनन्त व्यापक व्याप्य जो, पुनि व्याप्य व्यापक पार में॥ ६ ॥
हैं हिरण्यगर्भहु खर्व जासों, जो हैं सान्तन्ह पार में।
सर्वेश हैं अखिलेश हैं, विश्वेश हैं सब पार में॥ ७ ॥
सत्शब्द धर कर चल मिलन, आवरण सारे पार में।
सद्गुरु करुण कर तर ठहर धर, मेँहीँ जावे पार में॥ ८ ॥

२. प्रातःसायंकालीन सन्त-स्तुति

सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी।
उनकी स्तुति केहि विधि कीजै, मोरी मति अति नीच अनाड़ी॥ सब०॥ १ ॥
दुःख-भंजन भव-फंदन-गंजन, ज्ञान-ध्यान-निधि जग-उपकारी।
विन्दु-ध्यान-विधि नाद-ध्यान-विधि, सरल-सरल जग में परचारी॥ सब०॥ २ ॥
धनि ऋषि-सन्तन्ह धन्य बुद्ध जी, शंकर रामानन्द धन्य अघारी।
धन्य हैं साहब सन्त कबीर जी, धनि नानक गुरु महिमा भारी॥ सब०॥ ३ ॥
गोस्वामी श्री तुलसि दास जी, तुलसी साहब अति उपकारी।
दादू सुन्दर सूर श्वपच रवि, जगजीवन पलटू भयहारी॥ सब०॥ ४ ॥
सतगुरु देवी अरु जे भये, हैं, होंगे सब चरणन शिर धारी।
भजत है 'मेँहीँ' धन्य-धन्य कहि, गही सन्त पद आशा सारी॥ सब०॥ ५ ॥

३. प्रातःकालीन गुरु-स्तुति

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार। मंगलमय मंगल करण, विनवौं बारम्बार॥ १ ॥
ज्ञान-उदधि अरु ज्ञान-घन, सतगुरु शंकर रूप। नमो नमो बहु बार ही, सकल सुपूज्यन भूप॥ २ ॥
सकल भूल-नाशक प्रभू, सतगुरु परम कृपाल। नमो कंज पद युग पकड़ि, सुनु प्रभु नजर निहाल॥ ३ ॥
दया दृष्टि करि नाशिये, मेरो भूल अरु चूक। खरो तीक्ष्ण बुधि मोरि ना, पाणि जोड़ि कहुँ कूक॥ ४ ॥

नमो गुरु सतगुरु नमो, नमो नमो गुरुदेव। नमो विघ्न हरता गुरू, निर्मल जाको भेव॥ ५ ॥
ब्रह्म रूप सतगुरु नमो, प्रभु सर्वेश्वर रूप। राम दिवाकर रूप गुरु, नाशक भ्रम-तम-कूप ॥ ६ ॥
नमो सुसाहब सतगुरु, विघ्न विनाशक दयाल। सुबुधि विगासक ज्ञान-प्रद, नाशक भ्रम-तम-जाल ॥ ७ ॥
नमो-नमो सतगुरु नमो, जा सम कोउ न आन। परम पुरुष हू तें अधिक, गावें संत सुजान॥ ८ ॥

४. छप्पय

जय जय परम, प्रचंड, तेज तम-मोह-विनाशन। जय-जय तारण तरण, करन जन शुद्ध बुद्ध सन ॥
जय जय बोध महान, आन कोउ सरवर नाहीं। सुर नर लोकन माहिं, परम कीरति सब ठाहीं ॥
सतगुरु परम उदार हैं, सकल जयति जय- जय करें। तम अज्ञान महान् अरु, भूल-चूक-भ्रम मम हरें ॥ १ ॥
जय-जय ज्ञान अखण्ड, सूर्य भव-तिमिर-विनाशन। जय-जय-जय सुख रूप, सकल भव-त्रास-हरासन ॥
जय-जय संसृति- रोग - सोग, को वैद्य श्रेष्ठतर। जय-जय परम कृपाल, सकल अज्ञान चूक हर ॥
जय-जय सतगुरु परम गुरु, अमित- अमित परणाम मैं। नित्य करूँ, सुमिरत रहूँ, प्रेम-सहित गुरु नाम मैं ॥ २ ॥
जयति भक्ति-भंडार, ध्यान अरु ज्ञान-निकेतन। योग बतावनिहार, सरल जय-जय अति चेतन ॥
करनहार बुधि तीव्र, जयति जय-जय गुरु पूरे। जय-जय गुरु महाराज, उक्ति- दाता अति रूरे ॥
जयति-जयति श्री सतगुरू, जोड़ि पाणि युग पद धरौं। चूक से रक्षा कीजिये, बार-बार विनती करौं ॥ ३ ॥
भक्ति योग अरु ध्यान को, भेद बतावनिहारे। श्रवण मनन निदिध्यास, सकल दरसावनिहारे ॥
सतसंगति अरु सूक्ष्म वारता, देहिं बताई। अकपट परमोदार न कछु, गुरु धरें छिपाई ॥
जय-जय-जय सतगुरु सुखद, ज्ञान संपूरण अंग सम। कृपा-दृष्टि करि हेरिये, हरिय युक्ति बेढंग मम ॥ ४ ॥

५. प्रातःकालीन नाम-संकीर्तन

व्यक्त अनादि अनन्त अजय, अज आदिमूल परमातम जो ॥
ध्वनि प्रथम स्फुटित परा धारा, जिनसे कहिये स्फोट है सो ॥ १ ॥
है स्फोट वही उद्‌गीथ वही, ब्रह्मनाद शब्दब्रह्म ओ३म् वही ॥
अति मधुर प्रणव ध्वनि धार वही, है परमातम-प्रतीक वही ॥ २ ॥
प्रभु का ध्वन्यात्मक नाम वही, है सारशब्द सत्‌शब्द वही ॥
है सत् चेतन अव्यक्त वही, व्यक्तों में व्यापक नाम वही ॥ ३ ॥
है सर्वव्यापिनि ध्वनि राम वही, सर्व कर्षक हरि कृष्ण नाम वही ॥
है परम प्रचंडिनी शक्ति वही, है शिव-शंकर हर नाम वही ॥ ४ ॥
पुनि रामनाम है अगुण वही, है अकथ अगम पूर्णकाम वही ॥
स्वर-व्यंजन रहित अघोष वही, चेतन ध्वनि-सिंधु अदोष वही ॥ ५ ॥
है एक ओ३म् सत्‌नाम वही, ऋषि-सेवित प्रभु का नाम वही ॥
मुनि-सेवित गुरु का नाम वही ॥
भजो ॐ ॐ प्रभु नाम यही, भजो ॐ ॐ मेँहीँ नाम यही ॥ ६ ॥

६. संतमत-सिद्धान्त

१. जो परम तत्त्व आदि-अन्त-रहित, असीम, अजन्मा, अगोचर सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे है, उसे ही सर्वेश्वर-सर्वाधार मानना चाहिए तथा अपरा (जड़) और परा (चेतन) दोनों प्रकृतियों के पार में

अगुण और सगुण पर अनादि-अनन्त-स्वरूपी, अपरम्पार शक्तियुक्त, देशकालातीत, शब्दातीत, नामरूपातीत, अद्वितीय, मन-बुद्धि और इन्द्रियों के परे जिस परम सत्ता पर यह सारा प्रकृति-मंडल एक महान यंत्र की नाईं परिचालित होता रहता है, जो न व्यक्ति है और न व्यक्त है, जो मायिक विस्तृतत्व-विहीन है, जो अपने से बाहर कुछ भी अवकाश नहीं रखता है, जो परम सनातन, परम पुरातन एवं सर्वप्रथम से विद्यमान है, संतमत में उसे ही परम अध्यात्म पद वा परम अध्यात्मस्वरूपी परम प्रभु सर्वेश्वर (कुल्ल मालिक) मानते हैं।

२. जीवात्मा सर्वेश्वर का अभिन्न अंश है।

३. प्रकृति आदि-अंत सहित है और सृजित है।

४. मायाबद्ध जीव आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। इस प्रकार रहना जीव के सब दुःखों का कारण है। इससे छुटकारा पाने के लिये सर्वेश्वर की भक्ति ही एकमात्र उपाय है।

५. मानस-जप, मानस-ध्यान, दृष्टि-साधन और सुरत-शब्द-योग द्वारा सर्वेश्वर की भक्ति करके अंधकार, प्रकाश और शब्द के प्राकृतिक तीनों परदों से पार जाना और सर्वेश्वर से एकता का ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पा लेने का मनुष्य मात्र अधिकारी है।

६. झूठ बोलना, नशा खाना, व्यभिचार करना, हिंसा करनी अर्थात् जीवों को दुःख देना वा मत्स्य-मांस को खाद्य पदार्थ समझना और चोरी करनी; इन पाँचों महापापों से मनुष्यों को अलग रहना चाहिए।

७. एक सर्वेश्वर पर ही अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अंतर में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना, सद्गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानाभ्यास; इन पाँचों को मोक्ष का कारण समझना चाहिए।

७. श्रीसद्गुरु की सार शिक्षा

श्री सद्गुरु की सार शिक्षा, याद रखनी चाहिए।
अति अटल श्रद्धा प्रेम से, गुरु भक्ति करनी चाहिये ॥ १ ॥
मृग वारि सम सबही प्रपञ्चन्ह, विषय सब दुख रूप हैं।
निज सुरत को इनसे हटा, प्रभु में लगाना चाहिये ॥ २ ॥
अव्यक्त व्यापक व्याप्य पर जो, राजते सबके परे।
उस अज अनादि अनन्त प्रभु में, प्रेम करना चाहिये ॥ ३ ॥
जीवात्म प्रभु का अंश है, जस अंश नभ को देखिये।
घट मठ प्रपञ्चन्ह जब मिटैं, नहिं अंश कहना चाहिये ॥ ४ ॥
ये प्रकृति द्वय उत्पत्ति लय, होवैं प्रभू की मौज से।
ये अजा अनाद्या स्वयं हैं, हरगिज न कहना चाहिये ॥ ५ ॥
आवागमन सम दुःख दूजा, है नहीं जग में कोई।
इसके निवारण के लिये, प्रभु-भक्ति करनी चाहिये ॥ ६ ॥
जितने मनुष तनधारि हैं, प्रभु-भक्ति कर सकते सभी।
अन्तर व बाहर भक्ति कर, घट-पट हटाना चाहिये ॥ ७ ॥
गुरु जाप मानस ध्यान मानस, कीजिये दृढ़ साधकर।
इनका प्रथम अभ्यास कर, स्रुत शुद्ध करना चाहिये ॥ ८ ॥
घट-तम प्रकाश व शब्द पट त्रय, जीव पर हैं छा रहे।
कर दृष्टि अरु ध्वनि योग साधन, ये हटाना चाहिये ॥ ९ ॥
इनके हटे माया हटेगी, प्रभु से होगी एकता।
फिर द्वैतता नहिं कुछ रहेगी, अस मनन दृढ़ चाहिये ॥ १० ॥
पाखण्ड अरु अहंकार तजि, निष्कपट हो अरु दीन हो।

सब कुछ समर्पण कर गुरु की, सेव करनी चाहिये ॥ ११ ॥
सत्संग नित अरु ध्यान नित, रहिये करत संलग्न हो।
व्यभिचार चोरी नशा हिंसा, झूठ तजना चाहिये ॥ १२ ॥
सब सन्तमत सिद्धान्त ये सब, सन्त दृढ़ हैं कर दिये।
इन अमल थिर सिद्धान्त को, दृढ़ याद रखना चाहिये ॥ १३ ॥
यह सार है सिद्धान्त सबका, सत्य गुरु को सेवना।
'मेँहीँ' न हो कुछ यहि बिना, गुरु सेव करनी चाहिये ॥ १४ ॥

८. संतमत की परिभाषा

१. शांति स्थिरता वा निश्चलता को कहते हैं।
२. शांति को जो प्राप्त कर लेते हैं, संत कहलाते हैं।
३. संतों के मत वा धर्म को संतमत कहते हैं।
४. शांति प्राप्त करने का प्रेरण मनुष्यों के हृदय में स्वाभाविक ही है। प्राचीन काल में ऋषियों ने इसी प्रेरण से प्रेरित होकर इसकी पूरी खोज की और इसकी प्राप्ति के विचारों को उपनिषदों में वर्णन किया। इन्हीं विचारों से मिलते हुए विचारों को कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि सन्तों ने भी भारती और पंजाबी आदि भाषाओं में सर्वसाधारण के उपकारार्थ वर्णन किया, इन विचारों को ही संतमत कहते हैं; परन्तु संतमत की मूल भित्ति तो उपनिषद् के वाक्यों को ही मानने पड़ते हैं; क्योंकि जिस ऊँचे ज्ञान का तथा उस ज्ञान के पद तक पहुँचाने के जिस विशेष साधन नादानुसंधान अर्थात् सुरत-शब्द-योग का गौरव संतमत को है, वे तो अति प्राचीन काल की इसी भित्ति पर अंकित होकर जगमगा रहे हैं। भिन्न-भिन्न काल तथा देशों में संतों के प्रकट होने के कारण तथा इनके भिन्न-भिन्न नामों पर इनके अनुयायियों द्वारा संतमत के भिन्न-भिन्न नामकरण होने के कारण संतों के मत में पृथकत्व ज्ञात होता है, परन्तु यदि मोटी और बाहरी बातों को तथा पंथाई भावों को हटाकर विचारा जाय और संतों के मूल एवं सार विचारों को ग्रहण किया जाए, तो यही सिद्ध होगा कि सब संतों का एक ही मत है।

९. अपराह्न एवं सायंकालीन विनती

प्रेम-भक्ति गुरु दीजिये, विनवौं कर जोड़ी। पल-पल छोह न छोड़िये, सुनिये गुरु मोरी ॥ १ ॥
युग-युगान चहुँ खानि में, भ्रमि-भ्रमि दुख भूरी। पाएउँ पुनि अजहूँ नहिं, रहुँ इन्हतें दूरी ॥ २ ॥
पल-पल मन माया रमे, कभुँ विलग नहोता। भक्ति भेद बिसरा रहे, दुख सहि-सहि रोता ॥ ३ ॥
गुरु दयाल दया करी, दिये भेद बताई। महा अभागी जीव के, दिये भाग जगाई ॥ ४ ॥
पर निज बल कछु नाहिं है, जेहि बने कमाई। सो बल तबहीं पावऊँ गुरु होयँ सहाई ॥ ५ ॥
दृष्टि टिकै स्रुति धुन रमै, अस करु गुरु दाया। भजन में मन ऐसो रमै, जस रम सो माया ॥ ६ ॥
जोत जगे धुनि सुनि पड़ै, स्रुति चढ़ै अकाशा। सार धुन्न में लीन होइ, लहे निज घर वासा ॥ ७ ॥
निजपन की जत कल्पना, सब जाय मिटाई। मनसा वाचा कर्मणा, रहे तुम में समाई ॥ ८ ॥
आस त्रास जग के सबै, सब वैर व नेहू। सकल भुलै एके रहे, गुरु तुम पद-स्नेहू ॥ ९ ॥
काम क्रोध मद लोभ के, नहिं वेग सतावै। सब प्यारा परिवार अरु सम्पति नहिं भावै ॥ १० ॥
गुरु ऐसी करिये दया, अति होइ सहाई। चरण-शरण होइ कहत हौं, लीजै अपनाई ॥ ११ ॥
तुम्हरे जोत-स्वरूप अरु, तुम्हरे धुन-रूपा। परखत रहूँ निशि-दिन गुरु, करु दया अनूपा ॥ १२ ॥

१०. गुरु-कीर्तन

भजु मन सतगुरु सतगुरु सतगुरु जी ॥ १ ॥
जीव चेतावन हंस उबारन, भव भय टारन सतगुरु जी । भजु०॥ २ ॥
भ्रम तम नाशन ज्ञान प्रकाशन, हृदय विगासन सतगुरु जी । भजु०॥ ३ ॥
आत्म अनात्म विचार बुझावन, परम सुहावन सतगुरु जी । भजु०॥ ४ ॥
सगुण अगुणहिं अनात्म बतावन, पार आत्म कहैं सतगुरु जी । भजु०॥ ५ ॥
मल अनात्म ते सुरत छोड़ावन, द्वैत मिटावन सतगुरु जी । भजु०॥ ६ ॥
पिण्ड ब्रह्माण्ड के भेद बतावन, सुरत छोड़ावन सतगुरु जी । भजु०॥ ७ ॥
गुरु-सेवा सत्संग दृढ़ावन, पाप निषेधन सतगुरु जी । भजु०॥ ८ ॥
सुरत-शब्द मारग दरसावन, संकट टारन सतगुरु जी । भजु०॥ ९ ॥
ज्ञान विराग विवेक के दाता, अनहद राता सतगुरु जी । भजु०॥ १०॥
अविरल भक्ति विशुद्ध के दानी, परम विज्ञानी सतगुरु जी । भजु०॥ ११॥
प्रेम दान दो प्रेम के दाता, पद राता रहें सतगुरु जी । भजु०॥ १२॥
निर्मल युग कर जोड़ि के विनवौं, घट-पट खोलिए सतगुरु जी । भजु०॥ १३॥

११. सन्त तुलसी साहब द्वारा रचित आरती

आरति संग सतगुरु के कीजै । अन्तर जोत होत लख लीजै ॥ १ ॥
पाँच तत्त्व तन अग्नि जराई । दीपक चास प्रकाश करीजै ॥ २ ॥
गगन-थाल रवि-शशि फल-फूला । मूल कपूर कलश धर दीजै ॥ ३ ॥
अच्छत नभ तारे मुक्ताहल । पोहप-माल हिय हार गुहीजै ॥ ४ ॥
सेत पान मिष्टान्न मिठाई । चन्दन धूप दीप सब चीजैं ॥ ५ ॥
झलक झाँझ मन मीन मँजीरा । मधुर मधुर धुनि मृदंग सुनीजै ॥ ६ ॥
सर्व सुगन्ध उड़ि चली अकाशा । मधुकर कमल केलि धुनि धीजै ॥ ७ ॥
निर्मल जोत जरत घट माँहीं । देखत दृष्टि दोष सब छीजै ॥ ८ ॥
अधर धार अमृत बहि आवै । सतमत-द्वार अमर रस भीजै ॥ ९ ॥
पी-पी होय सुरत मतवाली । चढ़ि-चढ़ि उमगि अमीरस रीझै ॥ १०॥
कोट भान छवि तेज उजाली । अलख पार लखि लाग लगीजै ॥ ११॥
छिन-छिन सुरत अधर पर राखै । गुरु-परसाद अगम रस पीजै ॥ १२॥
दमकत कड़क कड़क गुरु-धामा । उलटि अलल 'तुलसी' तन तीजै ॥ १३॥

१२. संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज द्वारा रचित आरती

आरति तन मन्दिर में कीजै । दृष्टि युगल कर सन्मुख दीजै ॥ १ ॥
चमके बिन्दु सूक्ष्म अति उज्ज्वल । ब्रह्म जोति अनुपम लख लीजै ॥ २ ॥
जगमग जगमग रूप ब्रह्मण्डा । निरखि निरखि जोती तज दीजै ॥ ३ ॥
शब्द सुरत अभ्यास सरलतर । करि-करि सार शबद गहि लीजै ॥ ४ ॥
ऐसी जुगति काया गढ़ त्यागि । भव-भ्रम-भेद सकल मल छीजै ॥ ५ ॥
भव-खण्डन आरति यह निर्मल । करि 'मेँहीँ' अमृत रस पीजै ॥ ६ ॥

महर्षि मेँहीँ सत्संग-सुधा-सागर (प्रथम भाग) समाप्त

१. संतमत में ईश्वर की स्थिति

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

प्यारे लोगो!

संतमत में ईश्वर की स्थिति का बहुत दृढ़ता के साथ विश्वास है; परन्तु उस ईश्वर को इन्द्रियों से जानने योग्य नहीं बताया गया है। वह स्वरूपतः अनादि और अनंत है, जैसा कि संत सुन्दरदासजी ने कहा है—

व्योम को व्योम अनंत अखण्डित,
आदि न अन्त सुमध्य कहाँ है।

किसी अनादि और अनंत पदार्थ का होना बुद्धि-संगत प्रतीत होता है। मूल आदि तत्त्व कुछ अवश्य है। वह मूल और आदि तत्त्व परिमित हो, ससीम हो, तो सहज ही यह प्रश्न होगा कि उसके पार में क्या है? ससीम को आदि तत्त्व मानना और असीम को आदि तत्त्व न मानना हास्यास्पद होगा।

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनंता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता।
सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा।
नित्य निरंजन सुख संदोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी।
ब्रह्म निरीह विरज अविनासी।।

उपर्युक्त चौपाइयों में मूल आदि तत्त्व का वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी ने किया है। संतों ने उसे ही परमात्मा माना है। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी सम्भउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर विटहु कुरबाणु, ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ।
साचे सबदि नीसाणु।। इत्यादि।

संतों का यह विचार है कि जो सबसे महान है, जो सीमाबद्ध नहीं है, उससे कोई विशेष व्यापक हो, सम्भव नहीं है। जो व्यापक-व्याप्य को भर कर उससे बाहर इतना विशेष है कि जिसका पारावार नहीं है, वही सबसे विशेष व्यापक तथा सबसे सूक्ष्म होगा। यहाँ सूक्ष्म का अर्थ 'छोटा टुकड़ा' नहीं है, बल्कि 'आकाशवत् सूक्ष्म' है। जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, उसको स्थूल या सूक्ष्म इन्द्रियों से जानना असम्भव है।

वह ईश्वर आत्मगम्य है। केवल चेतन-आत्मा से जाना जाता है। शरीर के भीतर आप चेतन-आत्मा हैं और उस आत्मा से जो प्राप्त होता है, उसी को परमात्मा कहते हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पाँचों में से प्रत्येक को ग्रहण करने के लिए जो-जो इन्द्रिय हैं अर्थात् आँख से रूप, जिभ्या से रस, नासिका से गन्ध, त्वचा से स्पर्श और कान से शब्द; इन इन्द्रियों के अतिरिक्त और किसी से ये पाँचो विषय ग्रहण नहीं किए जाते हैं। इसी प्रकार जो चेतन-आत्मा के अतिरिक्त और किसी से नहीं पकड़ा जाय, वही परमात्मा है। जो जितना विशेष व्यापक होता है, वह उतना ही सूक्ष्म होता है। परमात्मा अपनी सर्वव्यापकता के कारण सबसे विशेष सूक्ष्म है। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का

ग्रहण नहीं हो सकता है। एक बहुत छोटी घड़ी के महीन कील-काँटों को बढ़ई और लोहार की सँड़सी, पेचकश आदि मोटे-मोटे यंत्रों से घड़ी में बिठाने और निकालने के काम नहीं हो सकते। उसके लिए यंत्र भी महीन ही होते हैं। हमारी भीतरी और बाहरी सब इन्द्रियाँ—नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा, मुख, हाथ, पैर, गुदा और लिंग—बाहर की इन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—अन्तर की इन्द्रियाँ; सब-की-सब उस दर्जे की सूक्ष्म नहीं हैं, जो परमात्म-स्वरूप को ग्रहण कर सकें। ये तो परमात्मा की सूक्ष्मता के सम्मुख स्थूल हैं। भला ये उसको कैसे ग्रहण कर सकती हैं!

ओ३म् सयोजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमिते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्म शृंगो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ।।

(सा० उ०, अ० ८, मं० ३)

इस मन्त्र के द्वारा वेद भगवान उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! हाथ, पैर गुदा, लिंग, रसना, कान, त्वचा, आँख, नाक और मन-बुद्धि आदि इन्द्रियों के द्वारा ईश्वर को प्रत्यक्ष करने की चेष्टा करना झूठ ही एक खेल करना है; क्योंकि इनसे वह नहीं जाना जा सकता है। वह तो इन्द्रियातीत है।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

—कनोपनिषद् (खण्ड १, श्लोक ५)

अर्थात् जो मन से मनन नहीं किया जाता, बल्कि जिससे मन मनन किया हुआ कहा जाता है, उसी को तू ब्रह्म जान। जिस इस (देशाकालाविच्छिन्न वस्तु) की लोक उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँस्वाम् ।।

—कठोपनिषद् (अ० १, वल्ली २, श्लोक २३)

अर्थात् यह आत्मा वेदाध्ययन-द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणा-शक्ति अथवा अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है, यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है, उस आत्मा से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

अब यह साफ तरह से जना देता हूँ कि अनादि आदि परम तत्त्व परमात्मा केवल चैतन्य आत्मा से ही ग्रहण होने, पहचाने जाने योग्य है। जबतक शरीर और इन्द्रियों के सहित चैतन्य आत्मा रहेगी, तबतक परमात्मा को नहीं पहचान सकेगी। आँख पर पट्टी बँधी हो, तो आँख में देखने की शक्ति रहने पर भी बाहरी दृश्य नहीं देखा जाता और आँख पर रंगीन चश्मा लगा रहने पर बाहर का यथार्थ रंग नहीं देखने में आता है, चश्मे के रंग के अनुरूप ही रंग बाहर में देखने में आता है। आँख पर से पट्टी और चश्मा उतार दो, बाहर के यथार्थ रंग देखने में आएँगे। शरीर और इन्द्रियों के आवरण से छूटते ही या यों कहो कि चैतन्य आत्मा पर से शरीर और इन्द्रियों की पट्टी और चश्मे उतरते ही चैतन्य आत्मा को परमात्म-स्वरूप की पहचान हो जाएगी। शरीर, इन्द्रिय और स्थूल, सूक्ष्म आदि मायिक सब आवरणों के उतर जाने पर, जो इस पिण्ड में बच जाता है, वही चेतन-आत्मा है और इनसे जो पहचाना जाता है, वही अनादि आदि तत्त्व परमात्मा है। मैं तो इस अनादि आदि परमतत्त्व को परमात्मा कहता हूँ और कहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इस मूल अनादि परमतत्त्व को जिस नाम से पुकारना चाहे, पुकारे। परन्तु यथार्थ में यह अवर्णनीय—अनिर्वचनीय है।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूँगहि मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै ।।

परम स्वाद सबही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।।
मन बानी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ।।
—भक्त सूरदासजी

नैना बैन अगोचरी, श्रवणा करनी सार ।
बोलन के सुख कारनै, कहिये सिरजनहार ।।
आदि अन्त ताहि नहिं मधे । कथ्यौ न जाई आहि अकथे ।।
अपरंपार उपजै नहिं विनसै । जुगति न जानियै कथिये कैसे ।।
जस कथिये तस होत नहिं, जस है तैसा सोइ ।
कहत सुनत सुख ऊपजै, अरु परमारथ होइ ।।
—कबीर साहब

शरीर, इन्द्रियों और मायिक जड़-आवरण से चैतन्य आत्मा को अलग कर परमात्मा को पाना केवल ध्यान-साधना से ही हो सकता है। इड़ा अर्थात् बायीं ओर की धारा में तामसी वृत्ति रहती है। पिंगला अर्थात् दायीं ओर की धारा में राजसी वृत्ति रहती है और सुषुम्ना अर्थात् मध्य की धारा में सात्त्विकी वृत्ति रहती है। ध्यान-साधना सुषुम्ना में करने की विधि है। गुरु महाराज से जैसा सुना, आपलोगों को वैसा सुना दिया। वैज्ञानिक लोग ऑक्सीजन और हाइड्रोजन—दो वाष्पों द्वारा पानी बनाकर दिखला देते हैं। वैसे ही ध्यान-अभ्यास के प्रयोग द्वारा परमात्मा की प्रत्यक्षता होती है; परन्तु यह आधिभौतिक वैज्ञानिक का बाहरी प्रयोग नहीं है। वह प्रयोग अपने अन्दर में करने का है। ध्यान-योग का साधक संशय में नहीं रहता है। वह ध्याना-भ्यास के प्रयोग से जो कुछ पाता है, उसको सत्य मानता है और त्रुटि-विहीन ध्यान-अभ्यास के प्रयोग में जो नहीं पाया जाता है, उसको असत्य मानता है। उसको संशय कैसा?

अब ध्यान-अभ्यास के विषय पर कुछ प्रकाश पाने के लिए सन्त दादू दयालजी महाराज के वचन सुनिये—

सब काहू को होत है, तन मन पसरै जाइ ।
ऐसा कोई एक है, उलटा माहिं समाइ ।।१।।
क्यों करि उल्टा आणिये, पसरि गया मन फेरि ।
दादू डोरी सहज की, यौं आणै घेरि घेरि ।।२।।
साध सबद सौं मिलि रहै, मन राखै बिलमाइ ।
साध सबद बिन क्यौं रहै, तबहीं बीखरि जाइ ।।३।।
तन में मन आवै नहीं, निसदिन बाहरि जाइ ।
दादू मेरा जिव दुखी, रहै नहीं ल्यौ लाइ ।।४।।
कोटि जतन करि करि मुए, यहु मन दह दिसि जाइ ।
राम नाम रोक्या रहै, नाहीं आन उपाइ ।।५।।
मन हीं सन्मुख नूर है, मन हीं सन्मुख तेज ।
मन हीं सन्मुख जोति है, मन हीं सन्मुख सेज ।।६।।
मन हीं सौं मन थिर भया, मन हीं सौं मन लाइ ।
मन हीं सौं मन मिली रह्या, दादू अनत न जाइ ।।७।।
सबदैं बन्ध्या सब रहै, सबदैं सबही जाइ ।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाइ ।।८।।
सबदैं ही सूषिम भया, सबदैं सहज समान ।
सबदैं ही निर्गुण मिले, सबदैं निर्मल ज्ञान ।।९।।
एक सबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोइ ।
आगैं पीछैं तौ करै, जे बलहीणा होइ ।।१०।।
यन्त्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार ।
पंचौं कारज नाद है, दादू बोलणहार ।।११।।
पंच ऊपना सबद थैं, सबद पंच सौं होई ।
साईं मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ ।।१२।।
सबद जरै सो मिली रहै, एकै रस पूरा ।
काइर भाजे जीव ले, पग माँड़ै सूरा ।।१३।।

दादूदयालजी कहते हैं कि सर्वसाधारण का मन शरीर में पसरा हुआ रहता है; परन्तु ऐसा कोई बिरला है, जिसका मन उलटकर (बहिर्मुख से) अन्तर्मुख होकर अन्दर में समाता है। (मन का स्थान तो शरीर के अन्दर है ही, फिर अन्दर में समाने का तात्पर्य यह है कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में जिस-जिस स्थान पर मन रहता है, उन तीनों स्थानों से विशेष अन्तर में मन प्रवेश कर जाय। ये तीनों स्थान शरीर के अन्दर के स्थूल

तल पर ही हैं। इन तीनों से छूटकर मन सूक्ष्म तल पर आरूढ़ हो, मन के अन्दर समाने का भाव यही है) ।।१।। मन को किस तरह उलटाकर (अंदर में) लावें ? यह फिर पसर गया, हे दादू ! संग-संग उत्पन्न होनेवाली स्वाभाविक डोरी (धारा) पकड़ और मन को घेर-घेरकर अन्दर में ला। (सृष्टि-निर्माण के आदि में कम्प अवश्य होता है और कम्प का सहचर शब्द अनिवार्य रूप से होता है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य (जड़-विहीन चेतन), स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों से सृष्टि के ये पाँच मण्डल जानने में आते हैं। इन सबके केन्द्रों एवं उनसे उत्थित कम्पों के सहित शब्द के उदय से ही सम्पूर्ण सृष्टि का विकास तथा पूर्णतया निर्माण हुआ है। कथित केन्द्रीय शब्द को ही 'सहज डोरी' कहा गया है। अपने केन्द्र में आकृष्ट करने का गुण शब्द में है, इसलिए इस शब्द-रूप सहज डोरी को ग्रहण करके मन बहिर्मुख से अन्तर्मुख खिंचकर रहेगा) ।।२।। साधु शब्द से मिलकर रहे और मन को ठहराकर रहे। साधु शब्द के बिना क्यों रहता है ? तभी तो (शब्द-विहीन रहते हुए साधु का मन) बिखर जाता है ।।३।। मन (उलटकर) शरीर में नहीं आता है, दिन-रात बाहर-बाहर जाता है। (इसलिए) दादूदयालजी कहते हैं कि मेरा मन दुःखी है; क्योंकि साधन में मन लगकर नहीं रहता है। ।।४।। लोग मन रोकने के करोड़ों उपाय करके मर जाते हैं, परन्तु मन रुकता नहीं, दसो दिशाओं में जाता रहता है, यह रामनाम (रामनाम के ग्रहण) से रुका रहता है। दूसरा उपाय नहीं है।।५।। (यहाँ पर राम-नाम से तात्पर्य सर्वव्यापिनी अनाहत ध्वनि से है। इस ध्वनि को नाम इसलिए कहते हैं कि इसके द्वारा चैतन्य आत्मा को आदि मूलतत्त्व अक्षर पुरुषोत्तम परमात्मा की पहचान हो जाती है—

नीके राम कहतु है बपुरा।
घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा।। टेक।।
सहज समरपण सुमिरण सेवा, तिरवेणी तट संयम सपरा।
सुन्दरि सन्मुख जागण लागी, तहँ मोहन मेरा मन पकरा।।
बिन रसना मोहन गुण गावै, नाना वाणी अनभै अपरा।
दादू अनहद ऐसैं कहिये, भगति तत यहु मारग सकरा।।

सन्त दादूदयालजी के इस शब्द से विदित है कि रामनाम से उनका तात्पर्य अनाहत नाद से है। मन के सन्मुख ही प्रकाश है और आराम करने का स्थान—बिछावन है। (जाग्रत् अवस्था में आज्ञाचक्र के केन्द्र में मन की बैठक है। उसके सम्मुख वृत्ति के सिमटाव और स्थिरता से प्रकाश और चैन का स्थान प्रत्यक्ष होता है)।। ६।। मन से मन को लगाकर मन स्थिर हो गया, मन से मन मिलकर रहा, तब अन्यत्र नहीं जाता है। (मन के केन्द्रीय रूप को निज मन—आत्ममुखी मन कहते हैं और उसकी किरणें वा धारा जो समस्त शरीर में फैली हुई है, उसे तन-मन या शरीर-मुखी मन कहते हैं। तन-मन को निज मन में समेटकर केन्द्रित करने को मन से मन को मिलाकर रखना है)।। ७।। वर्णन हो चुका है कि शब्द से ही सारे विश्व का तथा उसके पंच मण्डलों का निर्माण और विकास हुआ है, इसीलिए शब्द के विषय में उपर्युक्त रीति से कहा गया है। ध्यान-साधना में ज्योति और शब्द के ग्रहण की विशेषता, मुख्यता और विशेष आग्रह है। युक्ति जानकर सब लोगों को इस ध्यान का अभ्यास करना चाहिये; क्योंकि इसी साधना के द्वारा निर्वाणपद पर पहुँचना और अपना परम कल्याण बना लेना पूर्ण सम्भव है। परम प्रभु परमात्मा की दया सब लोगों पर हो! ❐

यह प्रवचन ग्राम डोभाघाट (जिला पूर्णियाँ) अ० भा० सं० स० विशेषाधिवेशन के अवसर पर दिनांक ५.१२.१९४६ ई० के सत्संग में हुआ था

२. वेद पुरान संतमत भाखौं

प्यारे भाइयो!

मैं आपलोगों के दर्शन से बहुत प्रफुल्लित होता हूँ। आप सब लोगों को मैं वन्दगी और प्रणाम करता हूँ।

अररिया इलाके में मैं बुलाया गया था। वहाँ एक पुराने सत्संगी थे, अब उनका शरीर नहीं है। मिड्ल स्कूल में सत्संग का प्रबंध था। मैं स्वभावतः अपने जैसा (धीरे-धीरे) बोला। लोग कुछ दूर, कुछ नजदीक थे। कुछ सुने, कुछ नहीं सुने, इसलिए लोगों ने हल्ला किया। वहाँ लाउड-स्पीकर का प्रबंध नहीं था। उसी प्रकार मैं जोर से नहीं बोल सकता। आपलोग नजदीक-नजदीक बैठिए तो अच्छा है।

आज आप क्या देखते हैं ? देश में अनेक ख्याल—विचार-धाराएँ हैं। एक कांग्रेस है, जिसका राज्य शासन है, दूसरा सोसलिस्ट—समाजवादी और तीसरा साम्यवादी है। ये तीनों हमसे पूछते हैं कि तुम क्या कहते हो? तुम शरीर और संसार से अपने को छुड़ाने के लिए कहते हो, इससे देश को क्या फायदा होगा? इस प्रश्न का उत्तर सुन लीजिए और इसमें अगर देश को कोई फायदा हो तो चुन लीजिए। इस सत्संग के उपदेशों में क्या है, सुनिये। जो सदाचारी होगा, वह शरीर और संसार को छोड़ेगा, वही आत्मज्ञान में ऊँचा होगा और माया के आवरणों को पार करेगा। अपने को ऊँचा चढ़ावेगा, ऊँचे-से-ऊँचा पद जिसे मुक्ति कहते हैं, प्राप्त करेगा। जिसमें सदाचार की कमी है, वह मुक्ति-लाभ नहीं कर सकेगा। सदाचार जिस समाज में होगा, उसकी सामाजिक नीति बहुत अच्छी होगी। जहाँ की सामाजिक नीति उत्तम होगी, वहाँ की राजनीति अनुत्तम हो, संभव नहीं। सब सदाचारी होंगे तो समाज अच्छा होगा। अच्छे समाज जब राजनीति को बनाएँगे, तो वह कितनी अच्छी होगी! यह मेरी युक्ति नहीं, बाबा देवी साहब की है। उन्होंने यह युक्ति १९०९ ई० में बतलाई थी।

सुल्तानगंज से पश्चिम बरियारपुर रेलवे स्टेशन के पास पुरुषोत्तमपुर बिलिया एक ग्राम है। वहाँ प्रेम दास नाम के मेरे एक प्रेमी साधु रहते थे। वे मुझे अपनी कुटिया में बुलाकर सत्संग करवाए। अंग्रेजों का समय था। कांग्रेस का दमन हो रहा था। संयोग से दारोगा साहब उसी ओर आ पहुँचे। देखा कि सामियाना टंगा है। चौकीदार को कहा कि साधु को बुलाओ। प्रेम दास गए। दारोगाजी ने पूछा— ऐ साधु! क्या हो रहा है? प्रेम दास ने उत्तर दिया— मेरे गुरु—साधु महाराज आए हैं, सत्संग होगा। ईश्वर का नाम लेंगे, उन्हें याद करेंगे। दारोगा साहब दफादार को वहीं छोड़ गए। दफादार सत्संग सुनकर बोले—ऐसा सत्संग हो तो चोरी-डकैती सब बंद हो जाय। हमलोगों को पहरा भी नहीं देना पड़े। मैंने उनसे कहा—आप तो समझे, अब दारोगा साहब को जाकर कहिए। सत्संग में पाँच पाप—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार छोड़ने के लिए कहते हैं। अगर सब सदाचारी बन जाएँगे, तो वहाँ झगड़ा मिट जाएगा। मुकदमा वगैरह भी नहीं होगा। शासन अच्छा हो जाएगा। शासनकर्ता को बहुत सुविधा होगी। इसलिए आपलोगों से प्रार्थना है कि अपने देश को ऊँचा उठाने के लिए सदाचारी बनिए। अभी वेद-मंत्र—केन और कठ उपनिषदों के श्लोकों का पाठ हुआ। संत कबीर तथा गुरु नानक आदि संतों के वचनों का पाठ भी आपलोगों ने सुना। वेदमंत्र पढ़ना नहीं जाने तो संतों की वाणी को पढ़कर जान सकेंगे।

इन सबको पढ़कर विचारिए कि सबका मत एक है अथवा नहीं? अगर है तो जिस पदार्थ को प्राप्त करने कहते हैं, वह एक ही है या नहीं? काम का है या नहीं? काम का पदार्थ होगा तो लेना चाहिए, नहीं तो नहीं। अगर सबका मत नहीं मिलता है तो जो उसमें श्रेष्ठ जाना जाता है, उसे ही मानेंगे। अगर सबका एक ही मत हो तो सामुदायिक भाव मिट जाए। यह जो अलग-अलग मत का नाम सुनते हैं, इससे मालूम होगा कि इन सबका अलग-अलग मत है। लेकिन जैसे कोई गोरे, कोई काले हैं, किंतु मनुष्य ही हैं; वैसे ही सब संतों का मत है। सब एक ही मत के लोग हैं। तो फिर साम्प्रदायिक भाव के कारण जो लड़ाई होती है, मिट जाएगी।

बहुत पहले राजा लोग देश को टुकड़े-टुकड़े करके अलग-अलग रहते थे। आपस में लड़ते-झगड़ते थे तो दूसरे देश के लोग आकर चढ़ बैठे। 'घर फूटे गँवार लूटे'—यह बात बहुत दिनों से चली आ रही है। किंतु वे इस ज्ञान को अपने काम में नहीं लाए। पचास वर्षों से बेशी कोशिश करने के बाद अब अपना देश स्वतंत्र हुआ है। शासनकर्ता कहते हैं— साम्प्रदायिकता का भाव एक होने नहीं देता। हमलोगों की तरफ देखिए—मोक्ष, परलोक, ईश्वर को रखते हुए संसार के सारे लोग एकता में रहें, साम्प्रदायिकता का भेद-भाव मिटकर एक हो जाए तो उसका नाम क्या कहा जायगा? संतमत। यह कोई नयी बात या नया नाम नहीं।

यहाँ न पच्छपात कछु राखौं।
बेद पुरान संतमत भाखौं।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है। 'घर फूटे गँवार लूटे'—कहकर भी जैसे उसे कार्यान्वित नहीं करते; उसी प्रकार संतमत को मानते हुए भी भेद-भाव रखते हैं, यह अच्छा नहीं। संतमत में चलते-चलते ईश्वर को प्राप्त कर लेंगे, मोक्ष प्राप्त होगा और आवागमन से मुक्त हो जाएँगे। इस सत्संग में घर छोड़ने के लिए नहीं कहा जाता। कमाई करके खाओ। इच्छाओं को समेटते-समेटते एकदम कम कर दो तो आनंदपूर्वक रह सकोगे। अगर इच्छाओं को बढ़ाओ तो संसार की सब संपत्ति मिलने पर भी शान्ति नहीं मिलेगी।

बसुधा सपत दीप है सागर कढ़ि कंचनु काढ़ि धरीजै।।
मेरे ठाकुर के जन इन्हु न बांछहि हरि मांगहि हरि रसु दीजै।।

जो इच्छाओं को बढ़ाते हैं, वे इससे दुःख पाते हैं।

भक्ति का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना चरनन लौ लीना रे।।

संत कबीर साहब भी कहते हैं—इच्छारहित मन बने। यह देह संसार में आकर अकेले नहीं रहेगा। इसके लिए कपड़े-भोजन चाहिए। परिवार में लोगों की संभाल बड़ा कठिन है। बाबाजी बन जाओ, स्त्री, पुत्र आदि अगर नहीं हो, शादी नहीं हुई हो तो अकेले ही रहो, जैसे मैं। परंतु दोनों ओर कठिनाइयों के समुद्रों को ही पार करने पड़ते हैं। वा दोनों ओर अग्निकुण्डों में गिरकर ही अपने को सुरक्षित रखना होता है। गृहस्थी में रहना किले के अंदर रहकर लड़ना है, परंतु गृहस्थी छोड़कर रहना, मैदान में रहकर लड़ना है।

शूर संग्राम को देखि भागै नहीं।
देख भागै सोइ शूर नाहीं।।
काम औ क्रोध मद लोभ से जूझना।
मड़ा घमसान तहँ खेत माहिं।।
साँच औ शील संतोष शाही भये।
नाम शमशेर तहँ खूब बाजै।।
कहै कबीर कोई जूझिहैं शूरमा।
कायराँ भीड़ ता तुरत भाजै।।

अच्छी बात है कि गृहस्थी में रहकर लोग भजन करें। यदि मेरी निस्वत पूछो कि तुमने गृहस्थी क्यों छोड़ी? तो जानना चाहिए कि पहले जैसी जानकारी थी, वैसी आजकल नहीं है, बदल गयी है। परंतु जिस व्रत को धारण करना चाहिए, उसको निभाना चाहिए।

बौद्ध संन्यासी नागसेन ने राजा मिलिन्द से पूछा—आप किस पर आए? राजा बोला—रथ पर। क्या पहिया रथ है? धूरी रथ है? जुआ रथ है? पहिए धूरी आदि जितने यंत्र हैं, सब मिलाकर रथ है। उसी प्रकार आपका शरीर है। वैसे कोई अकेला नहीं हो सकता। अद्वैत पद में जाकर ही अकेला हो सकता है। संसार में अकेला रह नहीं सकता।

बाबा साहब (बाबा देवी साहब) ने मुझसे पूछा था—तुलसी सिस्टम में रहना चाहते हो या स्वावलंबन में? मैंने कहा—तुलसी सिस्टम में। जिसे सुनकर सब हँस पड़े। बल्कि एक सत्संगी ने तो मुरादाबाद में ऐसा कहा कि माँगकर लाओगे तो फेंक दूँगा।

मैंने पौन दो वर्षों तक लड़कों को पढ़ाया। मैं स्वयं खेती का काम भी देखता हूँ। उपदेश यह है—अपने जीवन-निर्वाह के लिए उपार्जन करो। गुरु महाराज का जोर था कि अपने जीवन-निर्वाह के लिए कमाओ। काम करते रहो, निठल्ला मत बैठो। भजन—सत्संग का काम करो। अपने गुजारा के लिए भी काम करो। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से बचने का प्रयास करते रहो। बाबा साहब डाकघर में काम किए, खेती भी किए। बैंक में कुछ जमा हुआ, फिर बैंक फेल भी हो गया। अपनी कमाई से ही अपना गुजारा करो। सदाचार से रहो, ईश्वर की भक्ति करो।

जीवात्मा बहुत हैं, ईश्वर कोई नहीं है—कोई ऐसा भी कहते हैं, किंतु यह बात भीतर नहीं जाती। यहाँ आध्यात्मिक, राजनीति किसी के लिए विरोध नहीं है। आपको संतमत कहना पसंद नहीं है तो आर्यसमाज या संन्यासी जो कहिए। किंतु मैं तो कहूँगा कि अपने में पृथक-पृथक की भावना न हो, एक मिल-जुलकर रहें। हम देश की रिवाज नहीं तोड़ते। आप सबका छुआ खाइए या स्वयं पाकी बनिए। इसके लिए सत्संग को कोई दखल नहीं। देश में छोटा-बड़ा बहुत दिनों से रहा है। देश में नया विधान हो, इसके लिए मुझे कोई लड़न्त-भिड़न्त नहीं।

अभी आपलोग ईश्वर के विषय में सुन रहे हैं। परमात्मा, ईश्वर है। उसकी स्थिति को हमलोग मानते हैं। संत मानते हैं, इसलिए हम मानते हैं, ऐसा नहीं। हमें तो विश्वास है। घर-घर में बचपन से राम-राम, वाह गुरु आदि कहते आए हैं। यह श्रद्धा नहीं मिट सकती। राम-राम तो बच्चे में कहते थे, किंतु पदार्थ रूप में परमात्मा कैसा है, क्या है, यह सत्संग से जाना जाता है। कोई कहते हैं कि ईश्वर नहीं है तो आश्चर्य मालूम होता है। वेद-पुराण संत की वाणी में एक राय यह है कि ईश्वर को जानकर जानना और पहचानकर जानना। ईश्वर इन्द्रिय से जानने योग्य नहीं है। हाथ-पैर से नहीं जानेंगे, स्वाद, गंध आदि मालूम ही नहीं होगा। किंतु वह बिन पावन की राह है, बिन बस्ती का देश।

बस्ती न शुन्यं शुन्यं न बस्ती, अगम अगोचर ऐसा।
गगन शिखर मँहि बालक बोलहिं, वाका नाँव धरहुगे कैसा।।

बस्ती या शून्य, देश या काल, इन्द्रिय-ज्ञान में है। जो इन्द्रिय-ज्ञान से ऊपर है, उसके लिए मालूम होता है, जैसे हई नहीं है। वेद में आया है कि आत्मा से आत्मा जाना जाता है। आँख, कान दोनों इन्द्रियाँ हैं, किंतु एक का ज्ञान दूसरे के द्वारा नहीं हो सकता। उसी प्रकार मन-बुद्धि के द्वारा उस परमात्मा को नहीं जान सकते। अपने से ही जानेंगे अपने को इन्द्रिय से रहित करके। गोरख, नानक, कबीर; सबकी वाणी में यही कहा गया है कि इन्द्रियों से नहीं, आत्मा से जानेंगे। तभी अन्तर साधना सफल है। जिस किसी देश में यह सत्संग होगा, जिस देश में ईश्वर के मानने में हिचक नहीं है, उसके लिए फायदा है। सब राष्ट्र एक हों, जैसे मुंगेर, भागलपुर आदि अलग-अलग जिलों में रहकर भी एक देश के हैं, ऐसा मानते हैं। उसी प्रकार अलग-अलग देश में रहकर भी अगर अपने को एक मानें तो लड़ाई-झगड़ा सब मिट जाय। जबतक अपने को अलग-अलग मानेंगे, तबतक लड़ाई होती

रहेगी। नदी के दोनों पार में एक ही देश के लोग हैं। इसी तरह से एक देश से दूर तक समुद्र में चलकर जो दूसरा देश कहलाता है, वह भी तो इसी भूमंडल का देश है। दोनों देशों के लोग एक ही भूमंडल में हैं। दोनों को एक ही भाव से रहना चाहिए। हम दोनों देश के सब अपने ही हैं, ऐसा जानें तो सब लड़ाई झगड़ा मिट जायँ।

❐

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला विशेषाधिवेशन, ग्राम—मोकमा में दिनांक २४.१२.१९५० ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

३. ब्रह्मलोक में भी दुःख है

प्यारे धर्मानुरागी भाइयो !

हमलोग संतमत का सत्संग करते हैं। यह सत्संग हमलोगों को ईश्वर की भक्ति सिखलाता है। ईश्वर की भक्ति से सब दुःख दूर हो जाएँगे। इसी आशा को लेकर हमलोग सत्संग करते हैं। साथ ही अगर सत्संग के ख्याल के मुताबिक रहेंगे तो शांतिपूर्वक रहेंगे। शांतिपूर्वक रहने का नमूना ठीक-ठीक प्रत्यक्ष उनलोगों को होता है, जो मन बनाकर सत्संग के अनुकूल रहते हैं। इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त कर लें और अगर मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकें तो फिर दूसरे जन्म में काम को खतम करें; इसीलिए सत्संग है। इहलोक-परलोक दोनों को सुधारने के लिए हम सत्संग करते हैं तथा लोगों को भी करने के लिए कहते हैं। इसी ईश्वर-भक्ति के संबंध में थोड़ा-सा कहूँगा, जैसी मेरी शिक्षा है, जैसा मैं जानता हूँ। पहली बात यह है कि ईश्वर-स्वरूप को जानें कि वह कैसा है? प्राप्तव्य वस्तु की जानकारी होनी चाहिए। जो आप इन्द्रिय से जान सकें, वह परमात्मा नहीं। तुलसीकृत रामायण में ईश्वर-स्वरूप जानने के लिए लक्ष्मण से रामजी कहते हैं—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानहु भाई।।

इन्द्रियों को जो प्रत्यक्ष हो और जहाँ तक मन जाय, सब माया है। ईश्वर-स्वरूप इससे बहुत आगे है। इन्द्रियगम्य जो कुछ भी है, वह मायिक पदार्थ है। ईश्वर आत्मगम्य है। जिसे केवल आत्मा से ही पहचान सकते हैं, वह ईश्वर है। जो इन्द्रियों से जानते हैं, वह ईश्वर नहीं है। राम उपदेश करते हैं— 'एहि तन कर फल विषय न भाई।'

स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।

नर-तन का यह फल नहीं है कि विषयानुरागी बनो। स्वर्ग का विषय भी ओछा है और अंत में दुःख देता है। विषय उसे कहते हैं, जिसे इन्द्रियों से जानते हैं; इसके पाँच प्रकार हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। स्पर्श त्वचा से, शब्द कान से, रस जिभ्या से, गंध नाक से और रूप नेत्र से; इनके अतिरिक्त संसार में कुछ जानने में नहीं आता। कोई भी पदार्थ हो—कठिन (ठोस), तरल, वाष्पीय; लेकिन पंच विषयों में से कोई एक अवश्य है। पुराण में स्वर्ग के लिए जाना जाता है कि इन्द्रियों के विषय वहाँ भी भोगते हैं; चाहे कितने ऊँचे दर्जे का स्वर्ग क्यों न हो। राजा श्वेत ब्रह्मलोक गए। उन्होंने दान नहीं किया था, फलस्वरूप उनको ब्रह्मलोक में भूख-प्यास सताने लगी। तब उन्होंने ब्रह्माजी को कहा। ब्रह्माजी ने कहा—'यहाँ

खाने का सामान है ही नहीं। आपने कभी दान नहीं किया, उसका ही फल है कि यहाँ आपको भूख-प्यास सता रही है। इसलिए आप अमुक सरोवर में जाएँ, वहाँ आपका मृत शरीर सुरक्षित है, उसी का भोजन करें।' राजा श्वेत ने पूछा—'महाराज! यह भोग मुझे कबतक भोगना पड़ेगा?' ब्रह्माजी ने कहा—'जब आपको अगस्त्य मुनि के दर्शन होंगे और उनका आशीर्वाद आपको मिलेगा, तो आप इस कष्ट से मुक्त हो जाएँगे।'

राजा श्वेत लाचारी नितप्रति उक्त सरोवर जाते और अपने मृत शरीर का मांस खाकर भूख बुझाते। संयोगवश वहाँ अगस्त्य मुनि पहुँचे। उन्होंने देखा कि दिव्य शरीर है, लेकिन मृतशरीर का मांस खा रहे हैं तो उनसे पूछा—'आप कौन हैं?' राजा श्वेत ने अपना परिचय दिया और आशीर्वाद माँगा, तब वे उस भोग से मुक्त हुए।

ब्रह्मलोक जाकर भी भूख-प्यास सताती है। इसीलिए कहा—'स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।' वहाँ भी जबतक पुण्य है, तभी तक रहो, फिर मृत्युलोक आओ। इससे यह जाना गया कि जैसे विषय यहाँ है, वैसे ही वहाँ भी। यह विशेष बात है। इसी का विचार कीजिए, नित्यानित्य विचारिए। वहाँ पर क्या सुख? इन्द्रियगम्य पदार्थ का ग्रहण करना। जो इन्द्रियों के ज्ञान से ऊपर है, वह है ईश्वर-ज्ञान। चाहे भीतर की या बाहर की इन्द्रिय से जो आप जानते हैं, सो माया है। इन्द्रियों का संग छोड़कर जो आप जानें, वही परमात्मा—ईश्वर है। उसकी भक्ति करें, उसका भक्त बनें, उसको प्राप्त करें फिर सुख की कमी क्या? यहाँ का सुख थोड़ा तथा अंग-अंग में दुःख है। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का सुख प्राप्त करने के लिए कमाई और परिश्रम कीजिए, कितना करना पड़ता है? कितना दुःख है ! फिर भी एक ही दिन की कमाई से काम नहीं चलता है। संतोष नहीं होता। परमात्मा को जिन लोगों ने प्राप्त किया, उन्होंने कहा— यही सुख है। जबतक प्राप्त नहीं हो, परिश्रम करें। भक्ति करने के अभ्यास में आनंद मिलता है।

भजन में होत आनंद आनंद।
बरसत बिसद अमी के बादर, भींजत है कोइ संत।।
अगर बास जहँ तत की नदिया, मानो धारा गंग।
करि असनान मगन होइ बैठी, चढ़त शब्द कै रंग।।
रोम रोम जाके अमृत भीना, पारस परसत अंग।
शब्द गह्यो जिव संसय नाहीं, साहिब भयो तेरे संग।।
सोइ सार रच्यो मेरे साहिब, जहँ नहिं माया अहं।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, जपो सोहं सोहं।।

अगर=चन्दन। शब्द का रंग चढ़े तो क्या होगा? साहिब भये तेरे संग। संग में हई है, जबसे हम नहीं जानते, तबसे ही। किंतु शब्द को पकड़ लेने से प्रत्यक्ष हो जाएगा। बिना शब्द गहे प्रत्यक्षता हो जाएगी? नहीं होगी। ध्यानविन्दूपनिषद् में है—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

अक्षर का बीज विन्दु है। पेन्सिल या कलम रखो, पहले विन्दु ही बनता है। लकीर बनाते हैं, वह विन्दुमय है। आपलोगों ने जो ध्यानविन्दूपनिषद् के पाठ में सुना, वही परम विन्दु है। यहाँ आपलोगों ने सुना 'विन्दु ध्यान विधि, नाद ध्यान विधि, सरल सरल जग में परचारी।' विन्दु इतना छोटा होता है कि उसका विभाग नहीं हो सकता। बहुत छोटा है, इसीलिए इसे विन्दु नहीं कहकर परम विन्दु कहा। संसार में लोग चिह्न करके विन्दु मानते हैं। लेकिन उसकी परिभाषा के अनुकूल बाहर में विन्दु नहीं बना सकते। इस परम विन्दु को प्राप्त करने से शब्द मिलता है। फिर शब्द का भी जहाँ लय हो जाता है, वह 'निःशब्दं परमं पदम्' है। अंतस्साधना करते-करते आनंद आने लगेगा। मलयागिरि का सुगंध मालूम होगा तथा शब्द का रंग चढ़ जाएगा। तब हो जाएगा— 'साहिब भयो तेरे संग।' (कबीर) कोई कहे

शब्दातीत परम पद है और यहाँ शब्द को ही परम पद बना दिया, ऐसा क्यों? इसके उत्तर में कहा जा सकता है, गुरु नानकदेव ने कहा है—'ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ, साचे शबदि नीसाणु।' शब्द ही सही चिह्न है। देवता को प्रसन्न करने के लिए देवताओं की प्रतिमा पूजते हैं; उसी प्रकार यह शब्द भी परमात्मा है। प्रतिमा पूजते हैं तथा उसे ठाकुरजी कहते हैं। उसी प्रकार यह शब्द भी परमात्मा है। शब्द अपने उद्‌गम स्थान पर पहुँचाता है। घोर अँधेरी रात में जहाँ से शब्द आता है, वहाँ चलते-चलते पहुँच जाय, असम्भव नहीं। जो कोई विन्दु को ग्रहण करेगा, वह शब्द को ग्रहण कर लेगा। जहाँ से इस शब्द का विकास हुआ है, वहाँ पहुँचा देगा। इसलिए मन-बुद्धि आदि इन्द्रियों से आगे बढ़कर शब्द को पकड़ने की कोशिश करें। आँख, कान; सब मोटी-मोटी इन्द्रियाँ हैं। इसमें सूक्ष्म रूप से जो चेतनवृत्ति है, उसके अंदर रहने के कारण सूक्ष्म इन्द्रियाँ हैं। यह वृत्ति आँख में आई तो देखने की शक्ति दृष्टि हुई। जो स्थूल में लिपट कर रहेगा तो सूक्ष्म में क्या उठ सकता है? इन सब पदार्थों को लें तो वह विन्दुमय है। परमात्मा की कृपा, गुरु की दया हो, विन्दु पर अपने को रख सकें तो पूर्ण सिमटाव होगा। सिमटाव का फल ऊर्ध्वगति होगी। कठिन या तरल किसी पदार्थ को समेटिए ऊर्ध्वगति होगी। जहाँ मन का समेट है, स्थूल में सिमटने पर सूक्ष्म में प्रवेश होगा। इसके शौकीन को बाबा नानक की बात याद रहे—

सूचै भाडै साचु समावै बिरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।

पवित्र बर्तन में सत्य अँटता है। हमारा अंत:करण शुद्ध होना चाहिए। इसके लिए संयम तथा परहेज करें। अपने को काम-क्रोध से बचाकर रखें। बाहर में पाप कर्म नहीं करें। जिस कर्म को करने से अधोगति हो, उसे पाप कहते हैं। पाप—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करें, तब ईश्वर की ओर जाएँगे। इस पर संशय उठेगा कि क्या यहाँ ईश्वर नहीं है? इसका उत्तर गो० तुलसीदासजी ने लिखा है—

अग जग मय सब सहित विरागी।

यहाँ हम नहीं पहचानते हैं, इसलिए हम जहाँ जाकर पहचानेंगे, वहाँ जाएँगे। प्रत्यक्ष वहाँ पाएँगे, जहाँ जाएँगे। उसको प्राप्त करने के लिए अभ्यास करना तथा परहेज करना; इतनी बातों को जानें। इससे विशेष जानें तो और अच्छा। यह बहुत दृढ़ है कि कोई बिना संयम किए प्राप्त करना चाहे तो 'भूमि पड़ा चह छुवन आकाशा' वाली बात है। संयमी होने पर संसार में भी सुखी रहता है। वह फजूल खर्च नहीं करता है। उसके पास धन भी जमा हो जाता है। संयमी आदमी बहुत रोग में नहीं पड़ते। धन एकत्रित होने के कारण और पापविहीन होने के कारण लोगों की नजर में वे श्रेष्ठ देखने में आते हैं तथा अंत में परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। पुरुष को स्त्री का और स्त्री को पुरुष का संग करना पड़ता है। इसके लिए वैवाहिक विधान है। विवाह करने से व्यभिचार नहीं होगा। शास्त्र के नियम छोड़कर अथवा विवाह नहीं होने पर जो संग है, वह व्यभिचार है।

तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, खैनी—नशा है। दाँत खराब, थू-थू करने की आदत, ऐसी चीज क्यों खाते हो? बच्चे थे, तब इसकी आदत नहीं थी, बड़े होकर लगाया तो आदत लग गई। अब रास्ते चलते नशा करते हैं। तम्बाकू संसार में क्यों हुआ? औषधि के लिए हुआ। तम्बाकू की गद्दी में साँप ठहर नहीं सकता। साँप के मुँह में खैनी देने से वह मर जाता है। चावल को धोकर खाते हैं, किंतु खैनी को क्या करते हैं? यह अपवित्र तथा नशा भी है। हमारे सत्संग में यह कहा जाता है कि ताड़ी को कौन कहे, तम्बाकू तक मत लो।

'भाँग तमाखू छूतरा, अफयूँ और सराब।
कह कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार।।'

'मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय।।
विद्या मद और गुनहु मद, राज मद्द उनमद्द।
इतने मद को रद करै, तब पावै अनहद।।'

—संत कबीर साहब

छुतिया=छू जानेवाली चीज। लोग कहते हैं बिना हिंसा किए कैसे रह सकते हैं? एक हिंसा वार्य तथा दूसरा अनिवार्य होता है। वार्य से बच सकते हैं, किंतु अनिवार्य से नहीं बच सकते हैं। शरीर खुजलाने पर भी शरीर के कीड़े मरते हैं। जल पीने, हवा लेने में भी हिंसा है। इसको रोकने की कोई विधि नहीं है। यह अनिवार्य हिंसा है। खेती करने, घर बुहारने, आग जलाने आदि में भी हिंसा है, किंतु अनिवार्य है। इसका प्रायश्चित अतिथि-सत्कार और परोपकार से करो। राजा के लिए युद्ध अनिवार्य है। गृहस्थ के लिए घर बनाना, खेती करना अनिवार्य हिंसा है। जान-बुझकर स्वार्थ के लिए जो हिंसा होती है, वह वार्य हिंसा होती है, इसे त्यागना चाहिए। मांस-मछली भी छोड़ो, खाओ मत। मनुस्मृति में आठ आदमी को पाप लिखा है। भूपेन्द्रनाथ सान्याल ने कहा है—

अष्ट कुलाचल सप्त समुद्रा ब्रह्म पुरन्दर दिनकर रूद्रा।
न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः।।

हमारे देह में जो परमाणु है, जलचर, नभचर आदि में जो परमाणु है एक नहीं। हमलोगों के शरीर में मानषिक परमाणु है तथा उनमें पाशविक परमाणु है। मनुष्य शरीर में पशु शरीर का परमाणु रखना उचित नहीं। मानसिक हिंसा भी छोड़ो। ईश्वर पर विश्वास करो, उसकी प्राप्ति अपने अंदर में होगी। तब 'बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुर गिआन बताई।' ऐसा ध्यानाभ्यास से होगा।

सबकी दृष्टि पड़े अविनाशी बिरला संत पिछानै।
कहै कबीर यह भ्रम किबारी जो खोले सो जानै।।

सत्संग करो, ध्यानाभ्यास करो; यह अंतर का सत्संग है और गुरु की सेवा करो।

तेल तुल पावक पुट भरि धरि, बनै न दिया प्रकाशत।
कहत बनाय दीप की बातें, कैसे हो तम नाशत।।

—संत सूरदास

साधना करते-करते करने की शक्ति प्राप्त होगी, तब मालूम होगा कि पहले से कुछ बदल गए। अन्यथा, हनोज रोज अब्बल—अब भी पहला ही दिन है। बाबा साहब से एक सत्संगी ने कहा था—जिसका नाम रंगलाल था।

पानी बहुत दूर में है। मानो हजार हाथ नीचे है। हजार हाथ की रस्सी लगेगी, पानी खींचने के लिए बाल्टी भी चाहिए। रस्सी कुएँ में गिराकर केवल छोर पकड़े रहते हैं फिर पानी निकालकर पीते हैं। अगर छोर छूट जाय तो पानी नहीं पी सकते हैं। उसी प्रकार भजन तथा आशा की छोर पकड़े रहो, कल्याण होगा। आशा कभी मत छोड़ो।

आशा से मत डोल रे तोको पीव मिलेंगे। ❐

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला विशेषाधिवेशन, मोकमा में दिनांक २४.१२.१९५० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

४. अन्तर में डूबने से चैन

प्यारे लोगो!

जो 'अहं ब्रह्मास्मि', 'अनलहक'; ऐसे शब्दों की पुकार करते हैं, उन्हें मैं ज्ञानमार्गी कहता हूँ। जो कहते हैं—प्रभु हम तुमसे मिलना चाहते हैं, प्रभु के लिए पुकार लगाते हैं, मैं उन्हें भक्त कहता हूँ। ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग को मैंने ऐसा ही समझा है।

कुछ लोग निर्गुण उपासक को ज्ञानी तथा सगुण के स्थूल उपासक को भक्त कहते हैं। जो जिसकी भक्ति करता है, उसे वह अपना प्रभु मानता है, चाहे अपने इष्टदेव को निर्गुण नहीं माने, सगुण ही माने। सगुण के माननेवाले संत निर्गुण नहीं मानते थे ऐसा नहीं; निर्गुण भी मानते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

हिय निर्गुण नयनन्हि सगुण रसना राम सुनाम।

उनके हृदय में निर्गुण भरा था। तुलसीदासजी, सूरदासजी एवं कबीर साहब की वाणी में एक ही बात झलकती है।

'संतो आवै जाय सो माया।
है प्रतिपाल काल नहिं वाके, ना कहुँ गया न आया।'
'दस अवतार ईश्वरी माया कर्ता कै जिन पूजा।
कहै कबीर सुनो हो संतो, उपजै खपै सो दूजा।।'

—संत कबीर साहब

रामचरितमानस में है—

'निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ।।'
'भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेहु तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।'

—गोस्वामी तुलसीदास

गुरु साहब तो एक है, दूजा साहब आकार।
आपा मेटै गुरु मिलै, तो पावै करतार।।

—कबीर साहब

अवतारी राम को जिस गद्दी पर तुलसीदासजी ने बिठाया, उसी गद्दी पर गुरु को संत कबीर साहब ने बिठाया। तुलसीदासजी के हृदय में निर्गुण भरा है, किंतु अपने-अपने कहने का ढंग है। सगुण का अर्थ है गुण सहित, गुण को धारण करनेवाला। जिसने त्रयगुण को धारण किया है, उसे सगुण कहते हैं। जो निर्गुण ही निर्गुण मानते हैं, किंतु गुरुचरण में नबते हैं तो वे सगुण को भी मानते हैं।

लीला सगुन जो कहहिं बखानी।
सोइ स्वच्छता करइ मल हानी।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा।
बरनव सोइ बर बारि अगाधा।।

—रामचरितमानस, बालकाण्ड

रामचरितमानस में सगुण सरिता जल है, निर्गुण उसकी गंभीरता है। जो गंभीरता है उसका महत्व विशेष है। सगुण मिठास है। मीठा खाने में लोगों को अच्छा लगता है, किंतु मीठा खाने से बीमारी भी होती है। निर्गुण तीता नीम-सा है।

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै।।

अविगत=सर्वव्यापी। निरालंब होने के कारण मन उसे ग्रहण नहीं कर पाता है। चक्कर काटता रहता है। मन-बुद्धि के परे जानकर सूरदासजी सगुण लीला

पद गाते हैं। जिसने उसे पाया है, मन वाणी से आगे जाकर पाया है।

तापर अकह लोक है भाई। पुरुष अनामी तहाँ रहाई।।
जे पहुँचे जानेगा साँई। कहन सुनन ते न्यारा है।।

—राधास्वामी साहब

जब 'गुरु की मूरति मन महि ध्यानु' कहते हैं, तब कहाँ निर्गुण रहता है, सगुण हो जाता है। फिर जब 'अलख अपार अगम अगोचर' कहते हैं तो निर्गुण हो जाता है। निर्गुण-सगुण किसी की पकड़ संतों ने नहीं छोड़ी। जाते-जाते वे अंत तक चले जाते हैं।

संतों की वाणी में अंतस्साधना विषय पर विशेष जोर है। सगुण-निर्गुण, द्वैत-अद्वैत, त्रैत कुछ मानिये; खूब वर्णन कीजिए हाथ में कुछ नहीं आएगा। अंतर में गोता लगाओ, तब पाओगे। जहाँ तक गति है वहाँ तक चले जाओ, तब जो पाओ सो असली है। तब सगुण-निर्गुण क्या है, द्वैत-अद्वैत क्या है—प्रत्यक्ष हो जाएगा। इस मतलब का विचार सुनें। जिस विचार को लोग विशेष सुनते हैं, उसको करने का मन होता है। संतलोग संतवाणी कहकर ध्यान करने के लिए प्रेरणा करते हैं। संत तुलसी साहब कहते हैं—

सखी सीख सुनि गुनि गाँठि बांधौ,
ठाठ ठठ सत्संग करो।

सत्संग बहुत करें। इससे मिलता क्या है? प्रतिष्ठा से ऊँचे आसन से बैठते हैं। बड़े लोगों से मेल है। यह बाहर में देखे जाते हैं, किंतु संतुष्टि नहीं। संतुष्टि जिसमें है, वह यह बात है कि संसार में छोटे होकर रहें, लेकिन आप बाहरी चीज में चंचल नहीं होवें। अपने को इतना समेटें कि एकविन्दुता प्राप्त कर लें। मन जमा हुआ रहे। उस समय आप कितना संतुष्ट होंगे, ठिकाना नहीं। यदि मिठास मालूम नहीं हो तो भी थोड़े-से-थोड़े काल ध्यान कीजिए तो उसका मिठास मालूम होगा। अंतर में डूबनेवाले को जो चैन मिलता है, बाहर में भटकनेवाले को नहीं। इसके लिए परमात्मा ने एक नमूना आपके अंदर दिया है, किंतु आप उसपर विचारते नहीं हैं।

तन्द्रा के समय में (स्वप्न जाग्रत के बीच में) हाथ-पैर में कमजोरी होती जाती है, चैन मालूम होता है। भीतर प्रवेश करते जाते हैं। अगर कोई थोड़ा-सा भी खट-खुट करे तो बड़ा दुःख मालूम होता है। इसको कौन सुख कहें? पाँच इन्द्रियों में जो सुख-रस मिलता है वैसा है या कैसा है? इसे भी तो नहीं बोल सकते। इससे जाना जाता है, अंतर में डूबने से चैन मिलता है। अंतर में डूबते-डूबते जब अंतिम गति तक पहुँचोगे, तो किसी से पूछना नहीं पड़ेगा कि क्या है? सत्संग में खास करके यह बात बताई जाती है कि अंदर में डूबते जाओ। यात्री बनो, जैसे जगन्नाथ के यात्री चलते हैं। यह भक्ति है। इसी तरह से अपने अंदर में डूबो।

संतलोग कहते हैं— हाथ-पैर को मत डुलाओ, मन को अंतर में चलाओ। मन चलते-चलते फिर आप चलेंगे। पहले मन के साथ-साथ आप चलेंगे जैसे दूध में घी रहता है।

सहस कँवल दल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्राण पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो।।

—तुलसी साहब

फिर मन से छूटकर आप स्वयं चलेंगे, यह पराभक्ति है।

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिये रहै।
मिलि परमातम सों आतमा पराभक्ति सुन्दर कहै।।

यहाँ (संसार में) अंग से मिलता है, किंतु वहाँ तो बिना अंग के ही संग होता है। इसे हमलोगों को करना चाहिए। आप करके देखिए, करने से सब पता

चल जाएगा। योगी को संशय कहाँ? जो पाओ सो सत्य है, जो नहीं पाओ असत्य है।

भौतिक विज्ञानवाले एक चीज दूसरे से मिलाकर तीसरी चीज बनाते हैं। यह तो बाहर की बात है। इनमें बहुत से सामान इकट्ठे करने पड़ते हैं। किंतु अंतर में चलने के लिए सब सामान आपके साथ है। किंतु ईमानदारी से (practical) प्रयोग करो।

चश्म बंद गोश बंद लब बंद।
गर नवीने नूर हक बरबन बखन्द।।

मौलाना रूम का वचन है—चश्म, गोश, लब, आँख, कान, मुँह बन्द करके देखो। अगर ब्रह्म ज्योति (नूरे हक) नहीं देखो तो मुझपर हँसना।

मुरशिद नैनों बीच नबी है।
स्याह सफेद तिलोंबीच तारा, अविगत अलख रबी है।।
आँखी मद्धे पाँखी चमकै, पाँखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुरबीन लगावै, उतरे भव जल पारा।।
सुन्न शहर में वास हमारा, तहुँ सरवंगी जावै।
साहब कबीर सदा के संगी, शब्द महल लै आवै।।

मुर्शद=गुरु। हमलोग बहुत प्रकार के गुरु का प्रयोग करते हैं, किंतु यहाँ आध्यात्मिक गुरु के लिए लिया गया है। हे मुर्शिद! आँखों के बीच में नवी है अर्थात् संदेशवाहक है। उनके पैगम्बर मुहम्मद साहब थे। उनको खुदा का नूर भी कहते हैं। अर्थात् वे खुदा के नूर थे। वह ब्रह्म प्रकाश तुम्हारी आँख में है। रब्ब=शब्द को रबी किया है। काले-उजले तिलों के बीच में तारा है। यह भी बाहर में कैसे समझाया जा सकता है। जब दृष्टि एक होती है तो पहले काले फिर उजले तिल का दर्शन होता है। जो अंधकार में एक ही स्थान पर देखता है, उसे वह काला चमकदार मालूम होता है, पीछे वही उजला हो जाता है, फिर तारा का दर्शन होता है। यह जो तारा है वह सर्वव्यापी सब में है।

खोज करो अंतर उजियारी छोड़ चलो नौ द्वार।

—राधास्वामी साहब

श्याम कंज लीला गिरि सोई। तिल परमान जान जन कोई।।
छिन छिन मन को तहाँ लगावै। एक पलक छूटन नहिं पावै।।
स्रुति ठहरानी रहे अकाशा। तिल खिरकी में निसदिन बासा।।
गगन द्वार दीसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा।।

जबतक आप जिन्दा हैं, तबतक आँख में चमक है, प्राण निकल जाने से आँख की ज्योति चली जाती है, वह चमक नहीं रहती। उस ज्योति में द्वार है। जहाँ ज्योति नहीं है, वहाँ द्वार कैसे पाते हैं? एक स्थान में देखने से। एकविन्दुता प्राप्त होने से ज्योतिमण्डल में पहुँचता है। दृष्टियोग करने से शून्य शहर में वास होता है। सरवंगी=जो अंग में हो। सदा के संगी सब शरीर में सदा व्यापक है। उस शब्द की महिमा क्या है? जो सदा के संगी परमात्मा हैं, उनके महल में वही शब्द ले जाएगा। कबीर साहब कहते हैं—परमात्मा सदा के संगी हैं। उस महल में शब्द ही ले जाएँगे। संतो की वाणी में दृष्टियोग और शब्दयोग सूक्ष्म साधना है, किंतु स्थूल में—

नाम जपत स्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरति शब्द एकै भया, जल ही ह्वैगा मीन।।
नाम जपत कुष्टी भला, चुई चुई पड़ै जो चाम।
कंचन देह केहि काम का, जा मुख नाहीं नाम।।

—कबीर साहब

वर्णात्मक जाप स्थूल है। गुरु की मूरति, यह स्थूल रूप ध्यान है, इसके बाद है दृष्टियोग और शब्द ध्यान। शब्द ध्यान वहाँ तक ले जाता है जहाँ कि शब्द विलीन न हो जाय। वहाँ देखना-सुनना सब बंद हो जाता है। वहाँ निःशब्द—परमात्मा मिलते हैं। ❐

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला विशेषाधिवेशन, मोकमा में दिनांक २५.१२.१९५० ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

५. मुक्ति और उसकी साधना

प्यारे धर्मप्रेमी सज्जनो!

मुक्ति का अर्थ है— छूट जाना। किससे छूट जाना? शरीर और संसार से। जब शरीर और संसार से छूटा जाय, तब मुक्ति है। शरीर और संसार का आपस में बड़ा संबंध है। जितने तत्त्वों से संसार बना है, उतने ही तत्त्वों से शरीर भी बना है। तत्त्वों के स्थूल-सूक्ष्म भेद से जितने ही शरीर के तल हैं, संसार के भी उतने ही तल हैं। शरीर को पिण्ड तथा संसार को ब्रह्माण्ड कहते हैं। शरीर के जिस तल पर जब जो रहता है, संसार के भी उसी तल पर तब वह रहता है। शरीर (पिण्ड) के जिस तल को जब जो छोड़ता है, संसार (ब्रह्माण्ड) के भी उसी तल को तब वह छोड़ता है। इससे यह जानने में आता है कि अगर शरीर के सब तलों को कोई छोड़े, तो संसार के भी सब तलों को वह छोड़ेगा।

लोग अगर समझे कि मरने पर शरीर से छूटता है और संसार से भी छूट जाता है, तो जानना चाहिए कि इस साधारण मृत्यु से किसी की मुक्ति नहीं होती। यह एक स्थूल देह देखने में आती है, किन्तु इसके भीतर तीन और शरीर हैं, जिन्हें सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण शरीर कहते हैं। ये चारो शरीर जड़ हैं। इनके भीतर भी एक और शरीर है, जिसको चेतन शरीर कहते हैं। कबीर साहब तो छह प्रकार के शरीर मानते हैं, जैसे उनके इस शब्द से ज्ञात होता है—

साधो ! षट प्रकार की देही।
स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण कैवल्य हंस की लेही।।

अर्थात् वे छठा शरीर हंस का मानते हैं। किन्तु चारो शरीरों से छूट जाय, तो जड़ावरण से छूट जाता है। साधारण मृत्यु में केवल एक स्थूल शरीर छूटता है, किन्तु इसके अन्दर में तीन और जड़ शरीर रह जाते हैं, जिससे फिर स्थूल शरीर हो जाता है। जैसे वृक्ष के कट जाने पर अगर जड़ मजबूत है, तो पुनः वृक्ष उग आता है। कैसे विश्वास करें कि पाँच शरीर हैं? हम देखते हैं कि यह स्थूल शरीर है। किन्तु किसी भी स्थूल का बनना तबतक सम्भव नहीं है, जबतक सूक्ष्म न हो अर्थात् बिना सूक्ष्म के स्थूल नहीं हो सकता है। और सूक्ष्म भी बिना कारण के नहीं हो सकता। इस घर में आपलोग हैं, यह स्थूल है, किन्तु यह स्थूल घर तबतक नहीं बना, जबतक कि इसका चित्र पहले मन में नहीं आता। पहले मन से बनता है, पीछे कागज पर नक्शा खींच लेते हैं, फिर घर बनता है। बिना कारण के कार्य नहीं होता, इसके बिना सूक्ष्म नहीं बनता। कारण भी एक ही हो तब तो? अनेक कारण हैं। इस तरह सब कारणों को एकत्र कर देखें, तो वही महाकारण कहलाता है। संसार में कारण उत्पन्न होते जाते हैं और घर बनते जाते हैं। एक बर्त्तन बनाने में जितनी मिट्टी लगती है, वह एक बर्त्तन का कारण है। सब बर्त्तनों के कारण वही नहीं है। एक बर्तन के कारणरूप मिट्टी से असंख्य बर्तनों के कारण अथवा सब बर्त्तनों के कारण की मिट्टी अवश्य ही अत्यन्त अधिक होगी। उसके अतिरिक्त समस्त भूमण्डल की मिट्टी, जो कार्यरूप होने से बची रहती है, कितनी अधिक है, जानने में आती है? यही महाकारण का स्वरूप है। महाकारण=त्रयगुणमयी साम्यावस्थाधारिणी मूल प्रकृति। कारण दो होते हैं—एक उपादान, दूसरा निमित्त

कारण। कुम्हार निमित्त कारण है और मिट्टी उपादान कारण। सृष्टि का निमित्त कारण परमात्मा है। जिससे सृष्टि बनती है, उसे उपादान कारण कहते हैं, यह महाकारण है। साम्यावस्थाधारिणी कहने का अर्थ है—जिसमें उत्पादक शक्ति, पालक शक्ति तथा विनाशक शक्ति अर्थात् रजोगुण,सतोगुण तथा तमोगुण—ये तीनों शक्तियाँ समान हों। इन तीनों से खाली संसार का काम नहीं है। मूल प्रकृति त्रयगुणमयी होते हुए भी उसकी प्रथमावस्था सम अवस्था में है। रज, सत्त्व, तम; तीनों बराबर रहने से कुछ बनता नहीं है। जबतक किसी की शक्ति में कमी वा बेशी नहीं, तबतक तीनों में सम शक्ति है। इसलिए तबतक मूल रूप में कोई हलचल नहीं। जैसे तीन पुरुष बराबर जोरवाले हों और एक रस्सी में तीन छोर हों, तीनों पुरुष एक-एक छोर लेकर खींचे, तो कोई हलचल नहीं होगी।

'मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ'—जब ईश्वर की यह मौज होती है, तब उस प्रकृति में उनकी मौज-रूपी वेग से उसके जिस भाग में ठोकर लगी, उस भाग में स्थित त्रयगुण में से किसी में उत्कर्ष तथा किसी में अपकर्ष हुआ। और वह भाग कम्पित हो गया, यह कम्पित भाग कारण-रूप है, जिससे अनेक पिण्ड-ब्रह्माण्ड बनते हैं। कुम्हार संसार से मिट्टी लेकर वर्तन बनाता है, किंतु संसार की मिट्टी का अंत नहीं होता। आशय यह है कि अनेक पिण्ड-ब्रह्माण्ड बनते रहने पर भी साम्यावस्था-धारिणी मूल प्रकृति का सम्पूर्ण मण्डल कारण और कार्य-रूप नहीं बना है। बल्कि कारण और कार्य-रूप बनने से वह कितनी अधिक बची हुई है, इसकी माप कोई बतला नहीं सकता, यही महाकारण है। उस कम्पित भाग से जो कुछ बना, वह सूक्ष्म है, उससे फिर यह स्थूल, जो हमलोगों का शरीर है। इन चारों से जो छूट जाता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है।

शरीर के जितने तल हैं, संसार के भी उतने ही तल हैं। जाग्रत् अवस्था में शरीर के जिस तल पर रहते हैं या काम करते हैं, संसार के भी उसी तल पर रहते हैं या काम करते हैं। जाग्रत् अवस्था से स्वप्नावस्था में जाते हैं। इन दोनों अवस्थाओं के बीच में तन्द्रावस्था होती है। उस समय क्या होता है? बाहरी बातों को भूलते जाते हैं; हाथ-पैर कमजोर होने लगते हैं, इनकी शक्ति भीतर की ओर खिंचती जाती है, शरीर का ख्याल भूलते जाते हैं, संसार से भी बेखबर होते जाते हैं। इससे मालूम होता है कि स्थूल शरीर के स्थूल तल से दूसरे तल पर चले जाते हैं। इसलिए स्थूल संसार के भी स्थूल तल को छोड़कर दूसरे तल पर जाते हैं। इसलिए शरीर के सब तलों को जो पार करें, तो ब्रह्माण्ड के भी सब तलों को पार कर लेंगे। जिसने पिण्ड को जीता, उसने ब्रह्माण्ड को भी जीता। पिण्ड से तबतक नहीं छूटता, जबतक कि 'मैं सुखी हूँ, दुखी हूँ, कर्त्ता हूँ, भोगता हूँ'—यह न छूटे। जाग्रत् या स्वप्न में यह नहीं छूटता। नशे में—क्लोरोफॉर्म में यह थोड़ी देर के लिए नहीं जानता, किन्तु कुछ देर के बाद जानता है। 'मैं कर्त्ता हूँ, भोक्ता हूँ, सुखी हूँ, दुःखी हूँ'—यह जाग्रत् तथा स्वप्न—दोनों अवस्थाओं में होता है। सुषुप्ति में यह नहीं होता, परन्तु जगने पर कहता है—'मैं आज खूब सुख से सोया।' सुषुप्ति में ऐसा नहीं कह सकता। ऐसा क्यों होता है? तीन अवस्थाओं में तीन प्रकार का बोध क्यों होता है? तीन अवस्थाओं में तीन स्थानों में रहते हैं। स्थान-भेद से अवस्था-भेद होता है, अवस्था-भेद से ज्ञान-भेद होता है।

इस तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरुगम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
सतगुरु भेद बताइया, सब सन्तन्ह सिरमौर।।

—कबीर साहब

नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि संस्थितम्।।

—ब्रह्मोपनिषद्

तीनों अवस्थाओं से ऊपर जाय, तब 'मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, कर्त्ता हूँ, भोक्ता हूँ' मिट जायगा। जाग्रत् से स्वप्न और स्वप्न से सुषुप्ति में जाना यह स्वाभाविक है। किन्तु इन तीनों से ऊपर जाने के लिए साधन करें। ख्यालों को छोड़ना, यही यत्न है। ध्यान में ख्यालों को छोड़ते हैं। प्रत्याहार से ख्यालों को भगाते हैं। ख्याल आता है और उसे भगाते हैं। इस युद्ध में जो हार गया, वह पस्त हो जायगा तथा कायर कहलावेगा; किन्तु इस लड़ाई में जो जीत जायगा, वही शूर कहलावेगा।

शूर संग्राम को देख भागै नहीं, देख भागै सोइ शूर नाहीं।
काम औ क्रोध मद लोभ से जूझना, मँड़ा घमसान तहँ खेत माहीं।।
साँच औ शील सन्तोष शाही भये, नाम शमशेर तहँ खूब बाजै।
कहै कबीर कोइ जूझिहै शूरमा, कायराँ भीड़ तहँ तुरत भाजै।'
'साध संग्राम तो विकट बेड़ा मती, सती और शूर की खेल आगे।
शूर संग्राम है पलक दो चार का, सती संग्राम पल एक लागे।।
साध संग्राम है रैन दिन जूझना, जन्म पर्यन्त का काम भाई।
कहै कबीर टुक बाग ढ़ीली करै, उलटि मन गगन सों जमीं आई।।'

— कबीर साहब

यह युद्ध करना होगा। यह पुरुष के प्रयत्न से साधित होगा। जैसे पुत्रकामी व्यक्ति पुत्रेष्टि-यज्ञ द्वारा पुत्र, धनार्थी व्यक्ति वाणिज्यादि द्वारा धन तथा स्वर्गकामी मनुष्य ज्योतिष्टोम यज्ञ द्वारा स्वर्ग-लाभ करते हैं, वैसे ही पुरुष के प्रयत्न से साधन-द्वारा वेदान्त श्रवणादि जनित समाधि से जीवन्मुक्त्यादि लाभ होते हैं।

लोग धन-पुत्रादि से ऊब जाते हैं। किसी को धन है, तो पुत्र नहीं, पुत्र है तो धन नहीं। शान्ति किसी को नहीं मिलती। अपने जीवन-काल में यज्ञ करके अथवा लोगों के कहे अनुसार श्राद्ध-क्रिया से स्वर्ग चले जायँ, तो क्या लाभ होगा? वहाँ भी सुख नहीं। यहाँ के समान ही वहाँ भी छोटे-बड़े होते हैं। काम-क्रोधादिक विकार वहाँ भी उत्पन्न होते हैं तथा दूसरे से ईर्ष्या होती है आदि। फिर पुण्य क्षीण होने पर वहाँ से वापस होना पड़ता है। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी अपनी रामायण में लिखते हैं—

'एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वरगउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।'

'नर तन दुर्लभ देव को, सब कोई कहै पुकार।।
सब कोइ कहै पुकार, देव देही नहिं पावै।
ऐसे मूरख लोग, स्वर्ग की आस लगावै।।
पुण्य क्षीण सोइ देव, स्वर्ग से नरक में आवै।
भरमै चारिउ खानि, पुण्य कहि ताहि रिझावै।।
तुलसी सतमत तत गहे, स्वर्ग पर करे खखार।
नर तन दुर्लभ देव को, सब कोइ कहै पुकार।।'

— तुलसी साहब, हाथरसवाले

स्वर्ग या बहिश्त कहीं भी जाओ, विषय-सुख ही है। इसलिए सूफी लोग बताते हैं—मुक्ति (नजात) को प्राप्त करो। स्वर्ग के राजा को भी विषय-सुख से तृप्ति नहीं। उस राजा के गुरु बृहस्पति को भी विषय से तृप्ति नहीं हुई, ऐसी कहानी है। वहाँ भी काम-क्रोधादि विकार सब-के-सब रहते हैं। अन्तर यह कि वहाँ विषय-सुख अल्पायास में प्राप्त होते हैं। विषयानन्द से कोई तृप्त नहीं हुआ, होने की संभावना भी नहीं। इसलिए नित्यानंद को, जो सदा एक-सा रहे, प्राप्त करे। इसलिए मुक्ति का प्रयोजन है। मुक्ति जीवात्मा की होगी, जब यह अकेले होकर रहे, जब केवल अपने आप ही रहे। जहाँ इन्द्रियाँ नहीं हैं, वहीं आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होती है, जो निर्विषय है। इसी में नित्यानन्द है, इसी के लिए मोक्ष का प्रयोजन है। शरीर छूटने पर मुक्ति होगी, ऐसा नहीं। पहले जीवन्मुक्ति होगी, पीछे विदेहमुक्ति।

जीवन मुक्त सो मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुक्ता हो।।
— कबीर साहब

जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होय।
जीवत काटे कर्म सब, मुक्ति कहावै सोय।।
— दादू साहब

शरीर के साथ मोक्ष—जीवन्मुक्त-दशा है, शरीर छूटने पर विदेहमुक्ति है। मोक्ष पाने का साधन करें वा परमात्मा को प्राप्त करने का साधन करें, दोनों एक ही बात है। स्थूल-सूक्ष्मादि सब आवरणों से जहाँ छूटे, वहीं मुक्ति है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई।
कोटि भाँति कोउ करइ उपाई।।
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई।
रहि न सकइ हरि भगति बिहाई।।
— गोस्वामी तुलसीदासजी

भक्ति को छोड़कर मुक्ति अलग नहीं रह सकती।

राकापति षोड़स उअहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दब लाइय, बिनु रबि राति न जाय।।
ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेसा। मिटहिं न जीवन केर कलेसा।।

श्रवण-ज्ञान के बाद मनन-ज्ञान, फिर निदि—ध्यास-ज्ञान और तब अनुभव-ज्ञान। श्रवण-ज्ञानकहते हैं—सुनने को। मनन-ज्ञान कहते हैं—सुने हुए विषयों को विचारने को। निदिध्यास-ज्ञान कहते हैं—सुने तथा विचारे हुए विषय को अमल में लाने को अर्थात् उसकी प्राप्ति के लिए यत्न करने को तथा अनुभव-ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान को कहते हैं, जिसके बाद और ज्ञान नहीं है। श्रवन-ज्ञान अग्नि के समान है, जो मायारूपी जल के बरसने पर बुत जाय। मनन-ज्ञान बिजली के समान है, यह जल से तो नहीं बुझता, किन्तु यह चंचल है, इसमें स्थिरता नहीं है। निदिध्यास-ज्ञान बड़वानल के समान है। बड़वानल समुद्र में रहता है, समुद्र को मर्यादित रखता है, किन्तु समुद्र के समस्त जल का शोषण नहीं कर सकता। उसी प्रकार निदिध्यास-ज्ञान माया को मर्यादित रखता है; किन्तु इससे सम्पूर्ण माया का नाश नहीं होता। अनुभव-ज्ञान महाप्रलय की अग्नि के समान है, वह द्वैत-प्रपंच अर्थात् माया को जलाकर भस्म कर देता है। अनुभव-ज्ञान पूर्ण समाधि में प्राप्त होता है। तुरीयावस्था से परे अर्थात् तुरीयातीतावस्था में जहाँ ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय—त्रिपुटी का लय है, वहाँ पूर्ण समाधि है। यह अवस्था प्राप्त करनेवाले पुरुष की सदा सहज समाधि-अवस्था बनी रहती है।

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली।।
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा।।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खावँ पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।।
आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नयन पहिचानौं हँसि-हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।।
शब्द निरंतर से मन लागा, मलिन वासना भागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी ताड़ी लागी।।
कहै कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
दुख सुख से कोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समाई।।

यही अपरोक्ष ज्ञान है, यही अनुभव ज्ञान है, इसी से तृप्ति हो सकती है। इसके अतिरिक्त कितनाहू पढ़े-लिखे, बके—व्याख्यान दे; किन्तु यह अवस्था नहीं आ सकती।

चित्तवृत्तियों के या ख्यालों के रोकने के विषय में अब विशेष प्रकाश डाला जाता है।

द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य प्राणस्पन्दनवासने।
एकस्मिंश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यतः।।

अर्थ—चित्तरूपी वृक्ष के दो बीज हैं—प्राणस्पन्दन और वासना। इन दोनों में से एक के क्षीण हो जाने

से दोनों ही नाश को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या—जैसे एक बीज में दो दालें होती हैं, उसी प्रकार चित्त के बीज की दो दालें—प्राण-स्पन्दन और वासना हैं। इसमें एक तो प्राण, दूसरा प्राणवायु—दो बातें हैं। फेफड़े में संकोचन-विकासन होता है, इसी से श्वास-प्रश्वास की क्रिया होती है। संकोचन- विकासन की जो शक्ति है, वह प्राण है। चेतन—शक्ति ही प्राण है। फेफड़े से इसको विशेष संबंध है। जिस वायु को प्राण से सम्बन्ध हो, उसे प्राणवायु कहते हैं। यहाँ प्राण-स्पन्दन को बन्द करने के लिए कहा गया है, यह कैसे होगा? किसी हिलती हुई चीज पर आप बैठिये, अगर आपमें विशेष शक्ति नहीं रही, तो आप भी हिलिएगा, किन्तु आपमें विशेष शक्ति हो, तो हिलती हुई चीज को भी आप बैठा देंगे। इसी प्रकार वायु का हिलना बन्द हो सकता है—रुक सकता है। वायु को सम रखना अर्थात् सुषुम्ना में वायु रखना। जो श्वास को नासापुट के भीतर रखता है, तो उसको ध्यान अच्छा लगता है। प्राण को सम करने में रेचक—पूरकादि जो क्रियाएँ की जाती हैं, वे अगर विहित रूप से की जायँ, तब तो ठीक है, नहीं तो—

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्।।

—शाण्डिल्योपनिषद्

अर्थात् जैसे सिंह, हाथी और बाघ धीरे-धीरे काबू में आते हैं, उसी तरह प्राणायाम (वायु का अभ्यास कर वश में करना) भी किया जाता है, प्रकारान्तर होने से वह अभ्यासी को मार डालता है।

दूसरी बात केवल ध्यानाभ्यास से प्राणस्पन्दन का निरोध हो जायगा। वासना आती है, हटाते हैं। चित्तवृत्ति भागती है, उसको सँभाल-सँभालकर स्थिर रखते हैं। यही बारम्बार की जो कोशिश होती है, इसी को प्रत्याहार कहते हैं। इसी को बारम्बार करते-करते कुछ-न-कुछ काल अवश्य ठहरेगा, यह धारणा होगी तथा जब धारणा देर तक रहेगी, वही असली ध्यान होगा। यह ध्यानाभ्यास निरापद है, किन्तु प्राणायाम सापद है। किसी बात को मन लगाकर सोचिए, तो साँस की गति मन्द पड़ जाती है। कोई चंचल काम करने पर, काम-क्रोधादिक से उत्तेजित होने पर श्वास की गति तीव्र हो जाती है। मन की स्थिरता में श्वास भी स्थिर होता है। मन को कितनी दूरी पर स्थिर करने से प्राण की गति रुकती है, यह भी लिखा है—

द्वादशांगुल पर्यन्ते नासाग्रे विमलेऽम्बरे।
संविद्दृशि प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दो निरुध्यते।।

—शाण्डिल्योपनिषद्

अर्थात्—जब ज्ञान-दृष्टि (सुरत—चेतनवृत्ति) नासाग्र से बारह अंगुल पर स्वच्छ आकाश में स्थिर हो, तो प्राण का स्पन्दन रुद्ध हो जाता है।

इन दोनों (प्राणस्पन्दन बन्द करने तथा वासना-परित्याग करने) में जो अच्छा लगे, कीजिए। अगर आपदा से लड़ना-झगड़ना है, तो प्राणायाम कीजिये, अगर लड़ना-झगड़ना नहीं है, तो ध्यानाभ्यास कीजिए।

अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः।
अमनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा।।

अर्थात्—मन जब वासना-विहीन होकर विषय को ग्रहण नहीं करता है, तब मन का अस्तित्व नष्ट हो जाता है और परम शान्ति का उदय होता है।

व्याख्या— संकल्प-विकल्पकारक ही मन है। जब मन गल गया या लीन हो गया, तो शान्ति किसने भोगी? वह पदार्थ जो मन से परे है, मन जिसे जान नहीं सकता। आप मन से परे हैं, आपको स्वयं वह शान्ति प्राप्त होगी।

मन बुद्धि चित हंकार की, है त्रिकुटी लग दौड़।
जन दरिया इनके परे, ब्रह्म सुरत की ठौर।।

—दरिया साहब, मारवाड़ी

सहस कँवल दल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्रान पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो।।
—तुलसी साहब, हाथरसवाले

एकतत्त्व दृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः।
प्रक्षीणचित्त दर्पस्य निगृहीतेन्द्रियद्विषः।
पद्मिन्य इव हेमन्ते क्षीयन्ते भोगवासनाः।।

अर्थ— जबतक मन नहीं जीता गया हो, एक तत्त्व के दृढ़ अभ्यास से चित्त-अहंकार को पूर्ण रूप से नष्ट करके इन्द्रिय-शत्रु का निग्रह करना। ऐसा होने से ही हेमन्तकाल के कमल-सदृश भोग-वासना का नाश हो जायगा।

व्याख्या— एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास; वह एक तत्त्व क्या है? चाहे कोई प्राणायाम करें अथवा ध्यानाभ्यास करें; दोनों क्रियाओं में जप अनिवार्य रूप से करना ही पड़ता है, क्योंकि यह आरम्भिक क्रिया है। इस जप से मन कुछ समेट में आता है। जप के लिए बहुत छोटा शब्द हो। शब्द जितना छोटा होगा, उतना ही सिमटाव होगा और जितना बड़ा शब्द होगा, उतना ही फैलाव होगा। तन्त्र में एकाक्षर का ही जप करने का आदेश है और वेद में भी वही एक अक्षर। कबीर साहब कहते हैं—

पढ़ो रे मन ओ ना मा सी धं।

अर्थात् 'ॐ नमः सिद्धम्।' तात्पर्य यह कि सृष्टि इसी 'ॐ' से है। शब्द से सृष्टि हुई है। यह (ॐ) त्रैमात्रिक है, इसीलिए इस प्रकार भी 'ओ३म्' लिखते हैं। इसको इतना पवित्र और उत्तम माना गया कि इस शब्द के बोलने का अधिकार अमुक वर्ण को ही होगा, अमुक वर्ण को नहीं। इतना प्रतिबन्ध लगाया गया कि बड़े ही कहेंगे। सन्तों ने कहा, कौन लड़े-झगड़े; 'सतनाम' ही कहो, 'रामनाम' ही कहो, आदि। बाबा नानक ने 'ॐ' का मन्त्र ही पढ़ाया—

१ॐ सतिगुरु प्रसादि।

और कहा— चहु वरणा को दे उपदेश।

यह ईश्वरी शब्द है; किन्तु हमलोग इसका जैसा उच्चारण करते हैं, वैसा यह शब्द सुनने में आवे, ऐसा नहीं। यह तो आरोप किया हुआ शब्द है, जिसके मत में जैसा आरोप होता है। जैसे— पंडुक अपनी बोली में बोलता है, किन्तु कोई उस 'कुकुम कुम' और कोई उसी शब्द को 'एके तुम' आरोपित करता है।

किन्तु यथार्थतः इस (ओ३म्) को लौकिक भाषा में नहीं ला सकते, यह तो अलौकिक शब्द है। इस अलौकिक शब्द को लौकिक भाषा में प्रकट करने के लिए सन्तों ने 'ॐ' कहा। क्योंकि जिस प्रकार वह अलौकिक ॐ सर्वव्यापक है, उसी प्रकार यह लौकिक 'ॐ' भी शरीर के सब उच्चारण-स्थानों को भरकर उच्चरित होता है। इस प्रकार का कोई दूसरा शब्द नहीं है, जो उच्चारण के सब स्थानों को भरकर उच्चरित हो सके। इसी शब्द का वर्णन सन्त कबीर साहब इस प्रकार करते हैं—

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बन्धन मोह।।
शब्द शब्द सब कोइ कहै, वो तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह।।
शब्द शब्द बहु अन्तरा, सार शब्द चित देय।
जा शब्दै साहब मिलै, सोइ शब्द गहि लेय।।

आदिनाम वा शब्द सर्वव्यापक है। इसी प्रकार एक शब्द लो, जो उच्चारण के सब स्थानों को भरपूर करे, तो संतों ने उसी को 'ॐ' कहा तथा इसी शब्द से उस आदि शब्द ॐ का इशारा किया। यह जो वर्णात्मक ओ३म् है, जिसका मुँह से उच्चारण करते हैं, यह वाचक है तथा इस शब्द से जिसके लिए कहते हैं, वह वाच्य है तथा उस परमात्मा के लिए वह भी वाचक है तथा परमात्मा वाच्य है। तो इस एक शब्द का दृढ़ अभ्यास, एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास करना है।

पहले वर्णन हो चुका है कि जप में जो शब्द जितना छोटा होता है, उससे उतना ही विशेष सिमटाव होता है। इसलिए किसी एक छोटे शब्द का जप करो। फिर जप छोड़कर स्थूल ध्यान कीजिए। स्थूल-ध्यान वह, जिसमें आपकी पूर्ण श्रद्धा हो। यह एक शब्द का जपना तथा एक रूप का ध्यान करना भी एक तत्त्व का अभ्यास करना है। किन्तु जब आप सोचिएगा, तो मालूम होगा कि इस एक रूप में भी अंग-प्रत्यंग हैं, तो अंग-प्रत्यंग होने के कारण इसमें भी पूर्ण सिमटाव नहीं होगा, फैलाव ही रहेगा। इसलिए इससे आगे कुछ दूसरा और होना चाहिए, जिसमें फैलाव न होकर पूर्ण सिमटाव हो। इसके लिए कबीर साहब ने कहा—

शून्य ध्यान सबके मन माना। तुम बैठो आतम असथाना।।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ में भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा है— 'सब ओर फैले हुए चित्त को खींचकर एक स्थान में स्थिर करे और फिर अन्य अंगों का चिन्तन न करता हुआ केवल मेरे मुस्कान-युक्त मुख का ही ध्यान करे। मुखारविन्द में चित्त के स्थिर हो जाने पर उसे वहाँ से हटाकर आकाश में स्थिर करे। शून्य-ध्यान किसे कहते हैं? शून्य में भी एक जगह होनी चाहिए। वह ऐसा विलक्षण स्थान है, जिसका स्थान तो है, किन्तु परिमाण नहीं। वह क्या है? विन्दु। स्थूल में उसको चिह्नित नहीं कर सकते। अपने को जब कोई उस स्थान पर रखेगा, जिसका स्थान है, परिमाण नहीं, तब वहाँ पर पूर्ण सिमटाव होगा। यही एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास है।

इसमें हेमन्त-काल के कमल-पत्रवत् भोग-वासना का नाश हो जाएगा। जप और स्थूल रूप-ध्यान, स्थूल साधन है। इसका अभ्यास करके तब सूक्ष्म ध्यान करे; क्योंकि मोटे अक्षर के लिखे बिना बारीक अक्षर नहीं लिख सकते।

चित्तैकाग्रयाद्यतो ज्ञानमुक्तं समुपजायते।
तत्साधनमथो ध्यानं यथावदुपदिश्यते।।

अर्थ—ध्यान का कारण, जिससे ज्ञान तथा मुक्ति उपजती है, मन की एकविन्दुता (चित्त की एकाग्रता) है। अब तुमको जना दिया गया।

व्याख्या—ध्यान से ज्ञान तथा ज्ञान से शान्ति उपजती है। यह ध्यान एक विन्दु का ध्यान है। एकविन्दुता होने से मन का हिल-डोल बन्द हो जायगा। यहाँ पूर्ण सिमटाव होगा। यह क्रिया कैसे होगी? दो रेखाओं के मिलन पर एक विन्दु होता है। अपनी आँखों की दोनों धाराओं को एक बनाइये। दृष्टि का बहुत संकोचन होना चाहिए। एक फैली हुई दृष्टि होती है, जिसका व्यवहार हमलोग बराबर करते हैं तथा इसका फल भी देखते हैं। दूसरी सिमटी हुई दृष्टि होती है। सिमटी हुई दृष्टि वह है—जिस चीज को देखना चाहें, केवल वही अवलोकित हो, दूसरी चीज नहीं। यह असली देखना या सिमटी हुई दृष्टि है, जैसे तीर तथा बन्दूक का निशाना करनेवाला लक्ष्य वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता। एक बार आचार्य द्रोण कौरवों तथा पाण्डवों को संग लेकर वन में भ्रमण करने के लिए निकले। द्रोण ने वृक्ष पर बैठी हुई चिड़िया की आरे संकेत कर अर्जुन के अतिरिक्त सब भाइयों को लक्ष्य वस्तु पर निशाना करने कहा। बारी-बारी से लक्ष्य करते समय द्रोण उन सबसे पूछते जाते थे—'कहो, क्या देखते हो?' एक ने कहा—'वृक्ष, डालियाँ तथा पत्तों सहित चिड़िया।' आचार्य ने उसे हटाकर दूसरे से पूछा—'तुम क्या देखते हो?' दूसरे ने उत्तर दिया—'डालों के सहित पक्षी को।' एवं प्रकार से एक-एक करके सबसे पूछते गये; किन्तु किसी ने ठीक उत्तर नहीं दिया। और अन्त में अर्जुन को लक्ष्य पर निशाना करने कहा और पूछा—'तुम क्या देखते हो?' उन्होंने उत्तर दिया— 'मैं केवल

चिड़िया को देख रहा हूँ, इसके अतिरिक्त और कुछ नजर नहीं आता।' आचार्य ने कहा— 'तुम्हारा निशाना ठीक है।' निशाना इसी प्रकार होना चाहिए।

उपर्युक्त घटना के पहले ही एक बार द्रोण ने स्वयं अपने निशाने का परिचय दिया था। एक बार कौरव तथा पाण्डव सब भाई मिलकर गेंद खेल रहे थे। संयोगवश गेंद कुएँ में गिर पड़ा। अब इन लोगों को कुएँ से गेंद निकालने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। उसी समय द्रोण उसी होकर वहाँ आ निकले। इन लोगों ने उनसे गेंद निकाल देने की प्रार्थना की। द्रोण ने एक सींकी से गेंद में मारा। पुनः सींकी के पेंदे में दूसरी सींकी से, एवं प्रकार सींकी के पेंदे को सींकी से छेदते हुए कुएँ के ऊपर तक सींकी का छोर लगा लिया और गेंद को निकालकर उन लोगों को दे दिया।

सींकी के पेंदे में सींकी मारना दृष्टि को कितना महीन करना है? इनकी दृष्टि कितनी सिमटी हुई थी? अपनी दृष्टि को इस प्रकार सूक्ष्म बनाओ। इतना कह देने पर भी गुरु के संकेत की आवश्यकता रह जाती है। 'कहै कबीर चरण चित राखो, ज्यों सूई में डोरा रे।'

एकविन्दुता से पूर्ण सिमटाव होगा, इससे ऊर्ध्वगति होगी, ऊर्ध्वगति में एक तल से दूसरे तल पर की गति होगी। इस तरह मायिक सब आवरणों के पार होना हो सकेगा। कैवल्य प्राप्त होगा, ईश्वर-दर्शन होगा। जैसे आँख की पट्टी खोले बिना कोई चीज नहीं देख सकते, उसी प्रकार शरीर और माया की पट्टी उतारे बिना परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता।

इस माया की पट्टी अथवा चश्में को उतारने के लिए शारीरिक श्रम की आवश्यकता नहीं, यह कोई कठिन कार्य नहीं, इसके लिए चाहे पलँग पर बैठकर या जमीन पर बैठकर किसी प्रकार भी अभ्यास कर सकते हैं। इसमें घर-वार छोड़ने की आवश्यकता नहीं। कोई घर के काम-धन्धों को छोड़कर केवल इसी को करे, तो नहीं होगा; क्योंकि मन उतना समेटा हुआ नहीं है कि हर समय इसी को करता रहेगा। इसलिए घर-गृहस्थी के कामों को करते हुए भजन करे। सदाचारी बने अर्थात् व्यभिचार, चोरी, नशा, हिंसा और झूठ; इन पाँच पापों से अपने को पृथक् रखे। अपने को इन पापों से बचावे। एक ईश्वर पर विश्वास करे।

मोर दास कहाइ नर आसा। करई तो कहहु कहा बिस्वासा।।

—ऐसा नहीं होना चाहिए। उनकी (परमात्मा की) प्राप्ति अपने अन्दर में होगी, बाहर में नहीं; यह दृढ़ निश्चय रखना चाहिए। बाहर में इन्द्रियगम्य पदार्थ है। अन्दर में इन्द्रियगम्य पदार्थ नहीं है। आँख का विषय रूप है। इससे शब्द-ग्रहण करना चाहे, तो नहीं हो सकता है। जिस इन्द्रिय का जो विषय है, वह उसी को ग्रहण करेगी। उसी प्रकार परमात्मा इन्द्रियगम्य पदार्थ नहीं है, आत्मगम्य है। इसलिए ईश्वर-भजन करने का ऐसा यत्न होना चाहिए कि कैवल्य दशा प्राप्त कर ले, फिर उसे कहीं खोजना नहीं होगा, वह तो प्राप्त ही है।

सत्संग के द्वारा कर्म में प्रेरणा होती है, इसलिए सत्संग नित्य करना चाहिए। गुरु की सेवा करनी चाहिए; क्योंकि इसके बिना अध्यात्म-पथ में चलना असम्भव है। किन्तु गुरु होना चाहिए, गोरू (गाय, बैल) नहीं। जो सन्मार्ग पर चलता हो, जिस ज्ञान का उपदेश करता हो, उसके मुताबिक चलता हो। अगर ज्ञानोपदेश के मुताबिक चलता नहीं है, तो वह नीचे गिर जाता है, उसके संग से अच्छा रंग नहीं लगेगा। नित्य ध्यानाभ्यास करना चाहिए। ये पाँच विधि कर्म हैं। इन्हें नित्य करना चाहिए।

❒

यह प्रवचन श्रीरामचन्द्रजी अष्ठाना, (के निवास पर) ग्राम—तारवा, पो०—शाहगंज, उत्तरप्रदेश में दिनांक १७.१.१९५१ ई० के सत्संग में हुआ था।

६. ईश्वर इन्द्रिय ज्ञान से परे

प्यारे धर्मप्रेमी महाशयो!

प्रभु की प्राप्ति के लिए उनकी भक्ति करनी आवश्यक है। भक्ति-मार्ग में तीन बातों का होना आवश्यक है— स्तुति, प्रार्थना और उपासना। स्तुति से परमात्मा की प्रभुता जानने में आती है।

राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई।।
जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति।।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगेस जल कै चिकनाई।।

ईश्वर-स्तुति के पद्यों में परमेश्वर की जो स्तुति की जाती है, उससे उसकी महानता जानने में आती है। इससे उसमें श्रद्धा तथा प्रेम उत्पन्न होता है। वह परमात्मा अव्यक्त है, इन्द्रियों के ज्ञान से परे है। अव्यक्त परमात्मा की तुलना में व्यक्त संत होते हैं। वे इन्द्रियों से जाननेयोग्य होते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

सन्त भगवन्त अन्तर निरन्तर नहीं,
किमपि मति विमल कह दास तुलसी।।

इसलिए ईश-स्तुति के बाद सन्त-स्तुति करते हैं। इसके बिना अध्यात्म-पथ कुछ भी जानने में नहीं आता। फिर प्रार्थना करते हैं अर्थात् परमात्मा से कुछ माँगते हैं। क्या माँगते हैं ? मोक्ष। भिन्न-भिन्न देवता और सब वरदान दे सकते हैं; किन्तु यह वरदान (मोक्ष) नहीं दे सकते। मोक्ष देना अथवा परमात्मा की प्राप्ति करा देना सिवाय परमात्मा के और कोई नहीं कर सकते, अगर दें तो सन्त ही दे सकते हैं।

ओ३म् सयोजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमिते न गावः।
परीणसं कृणुते तिग्मशृंगो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः।।

सारांश—ईश्वर को प्राप्त करने के लिए हाथ, पैर, गुदा, लिंग, रसना, कान, त्वचा, आँखें, जिह्वा, नाक और मन-बुद्धि आदि इन्द्रियाँ असमर्थ हैं; क्योंकि ईश्वर इन्द्रिय-ज्ञान से परे हैं। मैं इस शरीर में रहकर भी इन्द्रियों से भिन्न हूँ, अगर यह बात कोई नहीं जानता है तो उसे यह जानना चाहिए कि इन्द्रियों में चेतन-धार है। क्योंकि जाग्रत् अवस्था में चेतन-धार इन्द्रियों में रहती है, तभी इन्द्रियाँ काम करती हैं। जब स्वप्नावस्था में चेतन-धार सिमट जाती है, तो इन्द्रियाँ कुछ नहीं कर पातीं, निश्चेष्ट हो जाती हैं। इन्द्रियाँ तो यन्त्र हैं। प्रत्येक इन्द्रिय का अपना-अपना काम है, उसी प्रकार सब इन्द्रियों को छोड़कर निज, अपना काम क्या है? सब इन्द्रियों को छोड़ने पर अपना निज काम परमात्मा की प्रत्यक्षता है। इसलिए अपने को शरीर और इन्द्रियों से छुड़ाओ। जिस कर्म के द्वारा शरीर और इन्द्रियों से छूटकर रहोगे, वह साधन करो। जबतक यह ज्ञान नहीं होता, तबतक लोग भूले रहते हैं, परमात्मा की प्रत्यक्षता नहीं होती। दोभुजी, चौभुजी, अष्टभुजी आदि का दर्शन करना, परमात्मा का दर्शन नहीं है। जिसने उस रूप को धारण किया है, उसको पहचानो। श्रीकृष्ण को उसके समकालीन बहुत-से लोगों ने देखा था; किन्तु उनके स्वरूप को अधिकारी जन ही देखते थे। राजा जनकजी की सभा में राम को सब लोगों ने अपनी-अपनी भावना के अनुरूप देखा था; किन्तु योगी लोग उनके निज स्वरूप को देखते थे।

जिन्ह कै रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।।
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रस धरेउ सरीरा।।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी।।
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।।
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई। नर भूषन लोचन सुखदाई।।

नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरुप।
जनु सोहत शृंगार धरि, मूरति परम अनूप।।

विदुषन्ह प्रभु बिराट मय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा।।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिँ जैसे।।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी।।
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा।।
हरि भगतन देखे दोउ भ्राता। इष्ट देव इव सब सुख दाता।।

अर्थात् केवल संत-योगी के अतिरिक्त उनके यथार्थ रूप को और कोई नहीं देख सका। भगवान् श्रीकृष्ण के संग-संग अर्जुन रहते थे। किन्तु भगवान् ने यह नहीं कहा कि तुमने मेरे रूप को देख लिया, अब काम समाप्त हो गया; बल्कि यह कहा—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।

—गीता ७-२४

अर्थात् यद्यपि मैं अव्यक्त हूँ, तथापि मूर्ख लोग मुझे व्यक्त अर्थात् देहधारी मानते हैं; परन्तु यह बात सच नहीं है; मेरा अव्यक्त रूप ही सत्य है। फिर जब अपना विराट् रूप नारद को दिखलाते हैं, तो कहते हैं—'तू मेरे जिस रूप को देख रहा है, यह सत्य नहीं है, यह माया है। मेरे सत्यस्वरूप को देखने के लिए इससे भी आगे तुझे जाना चाहिए।' —महाभारत, शान्तिपर्व ३३९—४४

अगर अर्जुन का काम समाप्त हो गया होता, तो फिर गीता-जैसे सुन्दर सदुपदेश देकर 'यह करो' कहकर कर्म करने के लिए भगवान क्यों प्रेरित करते ! अतः किसी के रूप को देखकर उसके स्वरूप को नहीं जाना जा सकता।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

इसलिए यह बात आवश्यक जाननी चाहिए कि उसको अपने से कैसे जानेंगे।

जो पाप-कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ अशान्त हैं, वह इसे आत्म-ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता। अर्थात् पाप-कर्मों से नहीं बचनेवाले का मन चंचल रहता है, इन्द्रियों में बँधा हुआ रहता है, विषयों में आसक्त रहता है, इस कारण वह असमर्थ है; क्योंकि चंचलता के कारण अपने को समेट नहीं सकता, नहीं समेटने से ऊर्ध्वगति नहीं हो सकती, ऊर्ध्वगति नहीं होने के कारण परदों (आवरणों) का छेदन नहीं हो सकता और न कैवल्य प्राप्त हो सकता है। कैवल्य प्राप्त किये बिना कोई परमात्म-स्वरूप को प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्यों को पापों से अलग रहना चाहिए। पापों से अलग रहनेवाले का हृदय शुद्ध होता है। तब—

सूचै भाडै साचु समावै बिरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।

बाबा नानक का यह वचन पूर्णरूपेण लागू हो जायगा।

मृतक का शरीर और इन्द्रियाँ निश्चेष्ट रहती हैं, उसी प्रकार जो अपने शरीर और इन्द्रियों को साधन-द्वारा साधकर रहता है, वही मृतक है। मृतक शरीर में नाड़ी नहीं रहती, नाड़ी बन्द हो जाती है और मर जाता है। अर्थात् शरीर के त्याग को मृतक कहते हैं। इस प्रकार ध्यानाभ्यास में जिसकी नाड़ी बन्द हो जाती है, वह अन्तर-ही-अन्तर प्रवेश करता है तथा जैसे-जैसे वह अपने शरीर में डूबता है, वैसे-वैसे उसकी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ती जाती हैं। आत्मबल प्राप्त होता जाता है और इन्द्रियाँ सधती जाती हैं। धीरे-धीरे उसकी इन्द्रियाँ बिल्कुल सध जाती हैं। शरीर से छूटना मरना है। जो स्थूल शरीर से सूक्ष्म में तथा सूक्ष्म से कारण में एवं प्रकार से साधना-द्वारा सब शरीरों को छोड़ देता है, वह पूरा मरा हुआ है। जो इन्द्रियों के वेगों का दमन कर सकता है, वह शरीर में रहते हुए भी मृतक है। वही परमात्मा को प्राप्त कर सकेगा। ❐

यह प्रवचन श्रीरामचन्द्रजी अष्ठाना, (के निवास पर) ग्राम—तारवा, पो०—शाहगंज, उत्तरप्रदेश में दिनांक १८.११.५१ ई० के सत्संग में हुआ था।

७. मेरे गुरुजी ने कहा था

प्यारे लोगो!

हमलोगों को चाहिए कि गुरु महाराज के उपदेशों को याद करें कि उनका क्या उपदेश था? मेरी जानकारी में जो कुछ है; वही आपलोगों के समक्ष रखता हूँ। बाबा साहब का उपदेश मोक्ष प्राप्त करने के लिए था। इसलिए वे उपदेश करते थे कि सब मोक्ष को प्राप्त हो जायँ। मोक्ष किसे कहते हैं? शरीर और संसार से छूटने को मोक्ष कहते हैं। इस मोक्ष को प्राप्त करने के लिए ईश्वर की भक्ति का ही परम अवलंब है। ईश्वर-भक्ति में केवल मोटी भक्ति ही नहीं है, बल्कि उस भक्ति के लिए अत्यन्त सूक्ष्म तथा अत्यन्त सरल साधन बाबा साहब ने बतलाया था। उन्होंने ही इस सूक्ष्म साधन मार्ग को निकाला था, ऐसी बात नहीं। वे तो कहते थे कि सब संतों का निकाला हुआ यह साधन है। वह बारीक साधन क्या था? केवल दो ही। एक तो दृष्टि साधन तथा दूसरा शब्द साधन; इसके पहले जप तथा मोटा ध्यान भी बतलाते थे, जो संतों की वाणियों में मिलता है। यही समास रूप में मैं जो जानता था, वही आपलोगों से कहा।

ईश्वर-भक्ति का आधार तथा उसकी प्राप्ति के लिए उसके स्वरूप को जानना परमावश्यक है; क्योंकि स्वरूप-ज्ञान से विहीन रहकर अपने को किस ओर लगाया जाय तथा उसकी भक्ति भी कैसे की जाय? अर्थात् स्वरूप-ज्ञान से विहीन रहकर उसकी भक्ति करनी भी असंभव ही है। इसलिए उसके स्वरूप को अवश्य जानना चाहिए। स्वरूप-ज्ञान के लिए ऋषियों, वेदों तथा संतों की वाणियों से यही जानने में आता है कि ईश्वर इन्द्रियातीत है। इन्द्रियों से उसको प्राप्त करने की चेष्टा करना खेल भर है। उस स्वरूप को मन से मनन नहीं कर सकते, मन उसे छू नहीं सकता। जो देशकाल से घिरा हुआ है, मर्यादित है, ऐसी वस्तु ईश्वर नहीं हो सकती। इस स्थान से उस स्थान तक तथा इस समय से उस समय तक, ऐसी जो वस्तु है, वह ईश्वर नहीं। तब प्रश्न होगा कि वह इन्द्रियगम्य नहीं है, तो किस प्रकार जाना जा सकता है? तो कहेंगे कि आत्मगम्य है—आत्मा से ही जान सकते हैं। एक इन्द्रिय से एक ही विषय का ज्ञान होता है, दूसरे का नहीं। जैसे—आँख से केवल रूप-विषय का ज्ञान होता है, शब्द का नहीं, तथा कान से केवल शब्द का ज्ञान होता है, स्पर्श का नहीं। इसी प्रकार और सब इन्द्रियों के विषय में जानिए। बाहर के पदार्थों को गिनें तो बहुत है, किंतु विचारने पर केवल पाँच ही होते हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। ऐसी एक कोई इन्द्रिय नहीं, जिससे पाँचों विषय का ज्ञान हो। इनमें केवल एक-एक इन्द्रिय से एक-एक विषय को ही जान सकते हैं। एक पदार्थ को ग्रहण करने के लिए जैसे एक ही इन्द्रिय है, उसी प्रकार उस परमात्मा को ग्रहण करने के लिए क्या हो सकता है, जिससे उसको जाना जाय? हम केवल मायिक पदार्थों को जानते हैं, बाहर की कौन कहे, भीतर की इन्द्रिय भी माया ही जानती है। माया किसे कहते हैं? जो एक तरह नहीं रहे—जो परिवर्तनशील है। मायातीत पदार्थ कुछ है; बुद्धि इसे सोच सकती है, किंतु पहचान नहीं सकती। भीतर तथा बाहर की इन्द्रियाँ केवल मायिक पदार्थों को ग्रहण कर सकती हैं। केवल आत्मा से जो पदार्थ जाना जाता है, वही परमात्मा है। जो आत्मा से ही जाना जाता है, उसे इन्द्रियों से ग्रहण करने की चेष्टा करना खेल भर है। इसके लिए कोई बहुत पढ़े, सुने, स्मरण शक्ति बहुत तेज हो, फिर

भी वह ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकता, ऐसा आपलोगों ने उपनिषद् से सुना। आत्मा शरीर में है ही, फिर भी हम ईश्वर को क्यों नहीं पहचानते हैं? जबतक आत्मा पर आवरण है; वह शरीर और इन्द्रियों के साथ है, तबतक वह ईश्वर को नहीं पहचान सकती। जैसे आँख पर रंगीन चश्मा जबतक लगा है, तबतक संसार की वस्तु चश्मे के रंग के अनुरूप हम देखते हैं, पट्टी रहने से तो और कुछ भी नहीं दरसता। उसी प्रकार शरीरों और इन्द्रियों के मायिक चश्मे तथा पट्टियाँ जबतक आत्मा पर लगी हुई हैं, तबतक परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता। इन मायिक चश्मों तथा पट्टियों को हटा दें, तब साक्षात्कार होगा। यही बाबा साहब का उपदेश था, यही साधन वे बतलाया करते थे। ईश्वर को देखने की शक्ति प्राप्त करने के लिए दृष्टियोग की साधना करनी चाहिए। दृष्टियोग का साधक स्थूलावरण से ऊपर उठ जाता है। दृष्टि वहाँ तक रहेगी,जहाँ तक दृश्य है। दृश्य-मण्डल से पार होने की योग्यता केवल दृष्टिसाधन से नहीं होगी, इसके लिए शब्द अभ्यास करना होगा। बाबा साहब का यह वचन युक्तियुक्त है। शब्द अभ्यास करना संतों के वचनों के अनुकूल सुरतशब्दयोग या नामभजन है। ऋषियों ने इसी को नादानुसंधान कहा है। ध्यान—विन्दूपनिषद् में—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
स शब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परं पदम्।।

कहकर बहुत थोड़े में ही सारी बातें बतलाई गई हैं। परम विन्दु ही बीजाक्षर (वर्णमाला का अक्षर) है। उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (ब्रह्म) में लय हो जाता है तो निःशब्द परम पद है। उपनिषद् कहती है कि अक्षर का बीज जो परम विन्दु है उसका पता लगाओ, तब उसके ऊपर नाद मिलेगा। नाद जहाँ जाकर लय होगा, वही निःशब्द परम पद है। उसी को अनाम पद तथा शब्दातीत पद भी कहते हैं। 'अनाम' सब संतों की वाणी में आया है। इस (अनाम) से परे कुछ और का होना मानना केवल अंधविश्वास भर ही होगा, परंतु विचार में नहीं अँटेगा। जो शब्द कहने में नहीं आवे, उसकी भी जहाँ समाप्ति हो जाय, वह शब्दातीत या अनाम पद है। तुलसी साहब की वाणी में—'तुलसी तोल बोल अबोल बानी।' जहाँ यह भी समाप्त हो जाय, तब और कुछ है, कहना व्यर्थ है।

लोग देखते हैं कि वे जहाँ तक संसार में जाते हैं, उन्हें शब्दहीन स्थान कहीं नहीं मिलता। जहाँ सृष्टि होगी, वहाँ शब्द होगा। जहाँ शब्द लय होता है, वहाँ सृष्टि का अंत होता है। जहाँ तक सृष्टि है, वहाँ तक कम्प है। कम्प नहीं रहेगा तो शब्द भी नहीं रहेगा। शब्द के नहीं रहने से सृष्टि रह नहीं सकती। ऐसा कि जहाँ सृष्टि हो और कम्प वा शब्द नहीं हो, यह मानने योग्य नहीं है। अनाम में कम्प तथा शब्द; दोनों लय को प्राप्त हो जाते हैं। अनाम से आगे कुछ और है या सृष्टि के अंदर अनाम है, इसको कोई मान नहीं सकता। वही अनाम पद सबसे ऊँचा है। इसी पद तक पहुँच हो, यही बाबा साहब का उपदेश था।

हमलोगों को जैसा साधन मिला है, हमको पूर्ण विश्वास है कि इस साधन द्वारा भक्ति करके अवश्य मोक्ष प्राप्त होगा। मोटे में भक्ति की क्रिया तो बहुत कम है, किंतु अंतस्साधन में सूक्ष्म क्रिया बहुत है। भक्ति का केवल यही अर्थ नहीं है कि किसी सेव्य का पैर दबावे, भोजन करावे, स्नान करावे, धोती पहनावे और बाह्य पूजापाठ इत्यादि करता रहे। भक्ति तो उसे कहते हैं, जिसमें स्थूल-सूक्ष्म सब तरह की भक्ति करके उस परमात्मा को प्राप्त कर लें। बाहर में स्थूल भक्ति के द्वारा हम कुछ प्रेमी बनते हैं, किंतु और विशेष ऐसी भक्ति है—

ऐसी सेवकु सेवा करे, जिसका जिउ तिसु आगे धरे।

—गुरु नानक

ऐसी सेवा कि अपने को समर्पण कर दे, यही आत्मनिवेदन है। इसी भक्ति का उपदेश बाबा साहब करते थे। इसका साधन दृष्टियोग और शब्द योग के द्वारा होता है। किंतु इन दोनों साधनों में वही सफलता प्राप्त कर सकता है, जो इस साधन का पूर्ववर्ती साधन (सत्संग, साधु की सेवा, जप तथा स्थूल ध्यान) भी करता हो। नाद का पता विन्दु प्राप्त करने पर लगता है।

विन्दुपीठं विनिर्भिद्य नादलिंगमुपस्थितम्।

—योगशिखोपनिषद्

विन्दुपीठ को भेदन करने की यह क्रिया है।

जब या मुक्ति जीव की होई ।मुक्ति जानि सतगुरु पद सेई।।
सतगुरु संत कंज में बासा। सुरत लाइ जो चढ़ै अकाशा।।
श्याम कंज लीला गिरि सोई। तिल परिमान जान जन कोई।।
छिन छिन मन को तहाँ लगावै। एक पलक छूटन नहिं पावै।।
स्रुति ठहरानी रहे अकासा। तिल खिरकी में निसदिन वासा।।
गगन द्वार दीसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा।।

—तुलसी साहब

इसी तरह विन्दु का भेदन कर नाद प्राप्त करना है। हमलोगों को चाहिए कि गुरु महाराज के विचारों को बारम्बार स्मरण करें तथा साधन करें। सत्संग इसलिए करते हैं कि बोध हो। बिना बोध के क्या करेंगे, कुछ पता नहीं चलता। कोई कहे कि बोध हो गया, अब सत्संग करके क्या करेंगे, तो उसे जानना चाहिए कि सत्संग साधन करने की प्रेरणा करता है, बिना सत्संग के यह प्रेरणा नहीं मिलती। प्रेरणा से भजन होता है। भजन नहीं हो तो केवल बोध से ही क्या होगा? ईश्वर तथा गुरु महाराज से प्रार्थना है कि हमलोग अपने कर्तव्य कार्य से गिरें नहीं। ❒

यह प्रवचन बाबा देवी साहब की जयन्ती के शुभ अवसर पर संतमत सत्संग मन्दिर, मुरादाबाद, उत्तरप्रदेश में दिनांक ९.१.१९५१ ई० के सत्संग में हुआ था।

८. स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश का द्वार

प्यारे लोगो!

परमात्मा की प्राप्ति के लिए ज्ञान तथा योग; दोनों आवश्यक हैं। आज मैं योगशिखोपनिषद् के आधार पर दोनों की विवेचना करना चाहता हूँ। इस उपनिषद् में शिवजी वक्ता हैं और ब्रह्माजी श्रोता हैं।

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमोमोक्षकर्मणि।।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्।।

'योगहीन ज्ञान मोक्षप्रद भला कैसे हो सकता है? उसी तरह ज्ञानरहित योग भी मोक्षकार्य में समर्थ नहीं हो सकता है। इसलिए ज्ञान और योग दोनों का दृढ़ता के साथ अभ्यास मुमुक्षु को करना चाहिए।' पहले कुछ जानना होगा। उस जानकारी से निर्णय होगा कि योग करना चाहिए—जोड़ना चाहिए। क्या जोड़ना चाहिए? फैली हुई वृत्ति को समेटकर जोड़ना चाहिए। इस काम का निर्णय विचार से होता है। इसलिए योग तथा ज्ञान, दोनों का अभ्यास करे, तो सिद्धि-प्राप्ति होती है। केवल योग करे और प्राप्तव्य वस्तु को न जाने, तो भटक जाएगा। इसलिए ज्ञानविहीन योग फलप्रद नहीं होता। योग परमात्मा तक पहुँचाता है तथा पहले ही ज्ञान में

निर्णय होता है कि परमात्मा तक पहुँचना है। केवल वाक्य विनोद से काम नहीं चलेगा। योग से सिमटाव होता है, सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। ऊर्ध्वगति में आवरण छेदन होता है तथा सब आवरणों को पार कर कैवल्य दशा प्राप्त होती है, तब परमात्मा की प्रत्यक्षता होती है। हमलोगों को गुरु महाराज का उपदेश है, 'ध्यान करो तथा सत्संग करो' अर्थात् योग एवं ज्ञान दोनों करो। मेरे पास गुरु महाराज की बहुत-सी चिट्ठियाँ हैं। एक चिट्ठी में लिखते हैं—'रोजाना अभ्यास करो, चाहे कुछ देखो या न देखो।' अभ्यास के समय देखते जाओ, चाहे कुछ दृश्य देखने में आवे या नहीं। बाबा साहब कहते थे—'जिस प्रकार लाह से लपेटी हुई लकड़ी को अग्नि के तेज में रखो तो पिघलते-पिघलते लाह गिर जाएगी और केवल लकड़ी रह जाएगी, उसी तरह ध्यानाभ्यास से सब आवरण उतर जाएँगे और तुम अकेले रह जाओगे।' यह गुरु महाराज की आज्ञा है। इसका पालन हमलोगों को करना चाहिए। उनकी यह हिदायत थी; योग और ज्ञान, दोनों करो।

देहावसान समये चित्ते यद्यद्विभावयेत्।
तत्तदेव भवेज्जीव इत्येव जन्मकारणम्।।

देह-त्याग के समय चित्त में जो-जो भावनाएँ जीव करता है, वही-वही वह होता है, यही जन्म का कारण है।

जीवनभर जो अपने मन में सोचते हैं, वही भावना अंत में याद आवे, यह संभव है। जन्मभर में कभी जो काम नहीं किया अथवा कभी कभी किया, वह अंत समय याद आवे, संभव नहीं। इसलिए नित्य भजन करें। सब कामों को छोड़कर तथा सब कामों को करते हुए, दोनों ढंग से करें तो अंत समय में अवश्य याद आवेगा तथा अपना परम कल्याण होगा।

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

—गीता ८/१०

अर्थात् जो मनुष्य मृत्यु के समय अचल मन से भौओं के बीच भक्ति से शराबोर होकर और योगबल से अच्छी तरह प्राणों को स्थिर करता है, तो दिव्य परम पुरुष को प्राप्त करता है। यह शरीर चला जाएगा, कुछ संग जाने को नहीं है।

माल मुलुक को कौन चलावे, संग न जात शरीर।
करो रे बन्दे वा दिन की तदवीर।।

इसलिए हमलोग भजन-अभ्यास अधिक करें। केवल जानें अथवा पढ़ें, किंतु ध्यान नहीं करें तो उसको लाभ नहीं होता। वैसे ही जैसे—

धन धन कहत धनी जो होते, निर्धन रहत न कोय।

केवल धन-धन के कहने से कोई धनी नहीं होता। काम करते हुए भी अपना ख्याल भजन में लगाकर रखना चाहिए।

कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।
सो ध्यानी परमान, सुरत से अण्डा सेवै।
आप रहे जल माहिं, सूखे में अण्डा देवै।।
जस पनिहारी कलस भरे, मारग में आवै।
कर छोड़े मुख वचन, चित्त कलसा में लावै।।
फणि मणि धरै उतार, आपु चरने को जावै।
वह गाफिल ना परै, सुरति मणि माहिं रहावै।।
पलटू कारज सब करै, सुरति रहै अलगान।
कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।

—पलटू साहब

भगवान श्रीकृष्ण का गीता में अर्जुन के प्रति यह उपदेश है—'युद्ध भी करो तथा ध्यान भी करो।' काम करने के समय भी हमारा ध्यान न छूटे, ऐसी कोशिश करनी चाहिए। जो दोनों तरह से भजन करते हैं, उनका मन विशेष बिखरता नहीं। इसलिए ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि

प्रयाणकाल में हमारा ख्याल गड़बड़ न हो जाय कि बारम्बार जन्म लेना पड़े तथा दुःख उठाना पड़े। इससे जो नहीं डरते, वह नहीं कर सकते।

'डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहे सो ऊबरे, गाफिल खावै मार।।'

'पिण्डपातेन या मुक्तिः सा मुक्तिर्नतु मन्यते।
देहे ब्रह्मत्वमायाते जलानां सैन्धवं यथा।।
अनन्यतां यदा याति तदा मुक्तः स उच्यते।'

अर्थ—मरने पर जो मुक्ति होती है, वह मुक्ति नहीं है; मुक्ति वह है, जबकि जीव ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है, जैसे नमक जल में घुलकर एक हो जाता है। इस तरह जब जीव उससे अन्य नहीं रह जाता, तब मुक्ति होती है।

जीवन-काल में जिसने मुक्ति प्राप्त कर ली है, उसे मरने पर भी मुक्ति प्राप्त होगी। जीवन- काल में मुक्ति प्राप्त नहीं हो तो मरने पर मुक्ति प्राप्त हो, यह संभव नहीं। संतों ने इसका अपनी वाणी में इस भाँति वर्णन किया है—

लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

जीवन मुक्त सो मुक्ता हो।
जब लग जीवनमुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो।
—संत कबीर साहब

जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ।
जीवत काटै कर्म सब, मुक्ति कहावै सोइ।।
जीवत जगपति कौं मिलै, जीवत आतम राम।
जीवत दरसन देखिये, दादू मन विसराम।।
जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ।।
मूआँ पीछे मुकति बतावै, मूआँ पीछै मेला।
मूआ पीछै अमर अभै पद, दादू भूले गहिला।।
—दादू दयाल

चिता में जलने—कब्र में दाखिल होने के पहले मोक्ष प्राप्त करो। —बाबा देवी साहब

बाबा साहब ने इस उपदेश को विज्ञापन में छपवाकर बँटवाया था। सब संतलोग मजबूती के साथ कहते हैं—'जीवनकाल में जो प्राप्त होगा, मरने पर भी वही प्राप्त होगा।'

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्ति निकेतनम्।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

विन्दुनाद महालिंग है और शिवशक्ति का घर है। इस देह को शिवालय कहते हैं। सभी प्राणियों को इसमें सिद्धि मिलती है।

विन्दु जलढरी है और नाद शिवलिंग है। शिवालय में देखते हैं—जलढरी पर शिवलिंग स्थापित है। उसी तरह यह शरीर शिवालय है। शरीर को पवित्र बनाकर मंदिर बना लें अथवा अपवित्र कर पैखाने का घर बना लें। पवित्र होने में पापों की ओर झुकते रहें, तो पवित्र कैसे होंगे? हमलोग अपनी इन्द्रियों को विषयों की ओर न ले जायँ, तब पाप नहीं होगा तथा तभी यह शिवालय होगा और तभी पवित्र दशा में इस शरीर में शिव अर्थात् कल्याण प्राप्त होगा। मंदिर को लोग साफ करते हैं, उसी प्रकार शौच के द्वारा शरीर को पवित्र रखना चाहिए तथा झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पाँचों पापों से बचना चाहिए। अगर कभी गलती से करो तो बहुत पश्चात्ताप करो तथा ईश्वर से प्रार्थना करो कि हे ईश्वर! मुझमें शक्ति दो, जिससे मैं इससे बच सकूँ तथा स्वयं खूब मुस्तैद रहो।

ध्यान के समय अगर कुछ चिह्न मालूम होता है तो कैसा कल्याण जान पड़ता है। संतों की वाणी में केवल बात ही नहीं है। भजन करो तो अवश्य चैन—कल्याण मालूम होगा।

भजन में होत आनंद आनंद।
बरसत विशद अमी के बादर, भीजत हैं कोई संत।।
—कबीर साहब

अपने को इन्द्रियों के घाटों से छुड़ाते हुए उस ओर चलो, जहाँ परमात्मा का साक्षात्कार कर सकोगे। जिस तरह से हो सके, अपने को इन्द्रिय-धारों से कुछ भी आगे सरकाओ। जाग्रत और स्वप्न के बीच एक अवस्था होती है, जिसे तन्द्रा कहते हैं। उसमें ज्ञात होता है कि हम बाहर की बातों को भूलते जाते हैं। हाथ, पैर, गला; सब कमजोर होते जा रहे हैं, शक्ति भीतर की ओर खिंची जा रही है। इस समय बड़ा चैन मालूम होता है। यह परमात्मा का दिया हुआ नमूना है। इस (तन्द्रा) अवस्था में कुछ गड़बड़ होने से बहुत दुःख होता है। भजन करो, भजन बनने लगेगा और चैन होता जाएगा। इसलिए यह शरीर शिवशक्ति का घर है। शरीर में चेतन-धारा को समेटकर विन्दु प्राप्त करना शक्ति को प्राप्त करना है तथा विन्दु-भेदन करके नाद को ग्रहण करना शिव को प्राप्त करना है। इस प्रकार विन्दु तथा नाद दोनों को ग्रहण करने से शक्ति और शिव, दोनों प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए अपने शरीर को विषयों में फँसाकर नरक मत बनाओ। इसे विषयों से हटाकर शिवालय बनाओ।

नादरूपं भ्रुवोर्मध्ये मनसो मण्डलं विदुः।

नादरूप मन का मण्डल भौओं के बीच में है, यह ज्ञानियों ने कहा है।

पहला स्थान आज्ञाचक्र संबंधी बातों का संकेत किया है, 'भ्रुवोर्मध्ये'। इसी को तीसरा तिल कहकर भी जनाया गया है। इसको ऊपर-नीचे, मध्य का स्थान भी कहते हैं। स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करने का यह द्वार है। इसी द्वार होकर सूक्ष्म में प्रवेश करने से ऊर्ध्वगति होती है। इसलिए भ्रुवोर्मध्ये की बड़ी महिमा है। संतों की वाणियों में भी इसका विस्तृत वर्णन है।

बाँका परदा खोलि के, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साइयाँ, आदि अंत का यार।।

बाँका परदा खोलकर सम्मुख ही दर्शन करो। बाँका परदा—अंधकार का परदा कठिन है। इसको खोलने का भेद जानो। दृष्टियोग के द्वारा यह कठिन परदा खोला जाता है। इसके लिए शांभवी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। शांभवी मुद्रा का अभ्यास तीन तरह से करते हैं—अमादृष्टि, प्रतिपदा दृष्टि तथा पूर्णिमा दृष्टि। आँख बंदकर देखना अमादृष्टि से, आधी आँख खुली तथा आधी आँख बंदकर देखना प्रतिपदा दृष्टि से और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा दृष्टि से अभ्यास करना है। आधी आँख खोलकर यानी प्रतिपदा दृष्टि से तथा पूरी आँख खोलकर यानी पूर्णिमा दृष्टि से अभ्यास करना कष्टसाध्य है; किंतु आँख बंदकर अर्थात् अमादृष्टि से अभ्यास करना कष्टसाध्य नहीं, सुगम यथा सरल साधन है।

अन्तरि जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा।

बाबा नानक ऐसा नहीं कहते कि फलाने किताब में अथवा फलाने ग्रंथ में ऐसा है। वे कहते हैं, अंतर में ज्योति जग गई, यही गुरु की साक्षी है। तब राम की ओर से जो बख्शीश—दयादान होता है; पहचान में आता है। ❒

यह प्रवचन संतमत सत्संग मंदिर, मुरादाबाद, उत्तरप्रदेश में दिनांक २०.१.१९५१ ई० के सत्संग में हुआ था।

९. बाबा साहब के उपदेशों का सार

प्यारे लोगो!

मैं पहले पहल सन् १९०९ ई० के अंत में बाबा साहब (पूज्य देवी साहबजी) के साथ यहाँ (मुरादाबाद) आया था। बाबा साहब सत्संग-प्रचार के लिए बहुत भ्रमण करते थे। वे भागलपुर गए थे, वहाँ पहले से ही उनका प्रचार था। सत्संग के लिए भागलपुर में एक घर बन चुका था, जो खपड़े से छाया हुआ था। उसमें लगभग पाँच-सात सौ आदमी बैठ सकते थे। वह समय अक्टूबर दुर्गापूजा का था। वहाँ वे एक पखवारे से अधिक ठहर गए। चलते समय मेरे विनय करने पर उन्होंने मुझे भी संग लेने की कृपा की। यहाँ (मुरादाबाद) आते-आते १९०९ का अंत ही हो गया। उनके (बाबा साहब के) साथ मैं यहाँ (मुरादाबाद) पहुँचा। सत्संग होता था तो मैं बहुत कम समझता था। बाबा साहब मुझे विशेष समझाना चाहते थे। सत्संग वचन कहकर वे सबसे पूछते थे, क्या समझा? हमसे भी पूछते थे। वे विद्यालय की शिक्षा के समान ही—जिससे याद रहे, सत्संग वचन समझाकर प्रश्न किया करते थे। इनका (बाबा साहब का) लेख बहुत कम मिलता है। रामायण के 'बाल का आदि तथा उत्तर का अंत' तथा 'घटरामायण की भूमिका'; इन दो ही पुस्तकों में इनका लेख पाया जाता है। इनका मत ऐसा नहीं था कि जिसमें किसी दूसरे मत का खंडन हो। मैं यही जानकर उनके सत्संग में सम्मिलित हुआ था। पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम जोतरामराय में बाबू धीरजलालजी सत्संग कराते थे। मैंने उनसे पूछा—'सत्संग क्या है?' उन्होंने उत्तर दिया—'ईश्वर-भक्ति का उपदेश।' मैंने पूछा—'आपका क्या मत है?' उन्होंने उत्तर दिया—'संतमत।' मैंने फिर पूछा—'संतमत क्या है ?' उन्होंने उत्तर दिया—'जो सब संतों का मत है।' मैंने फिर पूछा—'आप सब संतों को मानते हैं?' उन्होंने उत्तर दिया—'हाँ, सब संतों को मानता हूँ।'

मेरे हृदय में यह सुनकर कि ये सब संतों को मानते हैं, संतमत-सत्संग की ओर बड़ा आकर्षण हुआ। मैं पहले सत्संग का विरोधी था। अन्य लोगों को भी सत्संग में जाने के लिए मना करता था। मैं लोगों से कहता था—'ये लोग (सत्संगी) गुरु को नहीं मानते, वहाँ मत जाओ।' क्योंकि मैं तो कभी सत्संग में गया था नहीं, केवल लोगों से सुना था कि ये लोग गुरु, देवता-देवी आदि किसी को नहीं मानते।

बाबा साहब कहते थे—'वैदिकधर्मी, मुसलमान, ईसाई कुछ बने रहो, असली चीज धर्म को जानो और ध्यानाभ्यास किए बिना एक दिन भी मत रहो।' इनमें (बाबा साहब में) मत-मतान्तर नहीं था, उनको यह उपदेश करते मैंने देखा था। हमलोग उनको याद करें, इसलिए मैं उनके उपदेशों का वर्णन करता हूँ, उनके शरीर का नहीं। उनके उपदेश का वर्णन करने से हममें उस कर्म को करने के लिए प्रेरणा होती है। सन् १९०९ ई० में मुझे बाबा साहब के प्रथम दर्शन हुए। सन् १९१९ ई० में वे परमधाम सिधारे। वे सिखाते थे—'सत्य बोलो।' अगर कोई झूठ बोले और उनको मालूम हो तो वे कहते थे—'ऐसा क्यों किया?' अपनी झूठ बोलनेवाली जिह्वा को निकालकर क्यों नहीं फेंक देते?'

सन् १९१२ ई० में मैं फिर मुरादाबाद आया।

वे कहते थे, 'सबको दुनिया में आजादी हासिल करनी चाहिए।' उनके कथनानुसार अपनी कमाई से अपना गुजर करना, दुनिया में आजादी हासिल करना था। कभी-कभी तो वे यह भी कहा करते थे कि चालीस वर्ष की उम्र तक अपनी कमाई से इतना जमा कर लो, फिर पीछे काम न करना पड़े।

बाबा साहब के पूछने पर मैंने मधुकरी वृत्ति से अपने जीवन-यापन के विषय में (बाबा साहब से) कहा था। इस पर बाबा साहब ने कहा कि जो अपनी इच्छा कम रखते हैं, वे थोड़ी-सी पूँजी पाकर भी संतुष्ट रहेंगे। विशेष इच्छा रखनेवाले संतोषी नहीं होते और इसी कारण वे दुःखी रहते हैं। फिर मुझसे बोले—'तुम थोड़ी-सी जमीन लेकर बाँस लगाओ।' किंतु मुझे पिताजी से जमीन माँगने में लज्जा आती थी; क्योंकि मैंने पिताजी की सेवा कुछ भी नहीं की थी। उन्होंने मुझको पढ़ाया, लिखाया तथा बचपन में सेवा की आदि, लेकिन मैंने उनका बदला कुछ नहीं दिया था। दूसरी बात यह थी कि अगर जमीन मिल भी जाय तो पूँजी चाहिए थी उसे जोतने, कोड़ने तथा कुछ लगाने के लिए। मैंने बाबा साहब से कहा—'अगर जमीन तैयार करते-करते ही शरीर चला जाय तब?' बाबा साहब बोले—'तुम मुझे ज्ञान सिखाने आए हो, अगर तुम सौ वर्ष तक जीते रहे, तब क्या खाओगे?' उन्होंने मुझे बहुत फटकारा और मुझे ८० रुपये देने लगे और बोले—'इससे जाकर काम करो। कम जाय तो फिर लेना, जब तुम्हें हो तब वापस करना।' मैंने मन में कहा—'**गुरुऋण रहा सोच बड़ जी के**।' फिर मैंने कहा—'अगर आपकी ऐसी इच्छा है, तो गुजारा हो जाएगा। मैं जाता हूँ काम करने।'

वे (बाबा साहब) चाहते थे कि कोई आदमी ऐसा न हो जो अपने कमाई से नहीं खा सके। इसलिए मैंने कुछ मोटा काम किया, बाँस बाड़ी लगाई। फिर पौने दो वर्षों तक लड़कों को पढ़ाकर अपना गुजारा किया। उन बाबा साहब की कृपा से अब यों ही चलता है। कुछ दिनों तक यहाँ (मुरादाबाद) रहने के पश्चात् मैं अपने वहाँ लौट गया। फिर लौटकर जब मैंने यहाँ बाबा साहब से भेंट की, तब बाबा साहब बोले—'मोक्ष तो दूर की बात है, पर संसार से तुम आजाद हो गए।' खाने के लिए कोई दूसरे का मुहताज बने, ऐसा उनका ख्याल नहीं था। लालची की नजर में कितना ही धन हो, वह कम ही है। लालच पर एक सुप्रसिद्ध कथा है—

एक राजा बड़ा लालची था। कितना ही धन मिले, पर वह संतुष्ट नहीं होता था। अपनी प्रजा से अनेक प्रकार के कर लेकर जब उसे संतोष नहीं हुआ, तो उसने फौज लेकर समुद्र पर चढ़ाई कर दी और कर माँगने लगा। जब सीधी बातों से समुद्र ने कर नहीं दिया, तो वह राजा समुद्र में गोले, बम आदि बरसाने लगा। समुद्र मनुष्य के रूप में आकर बोला—'राजन्! क्या बात है? जो गोले गिराकर मेरे अंदर रहनेवाले मगर, मछली, कछुए आदि अनेकों जीवों की हत्या कर रहे हो?' राजा बोला—'समुद्र! तुम मेरे राज्य के अंदर कितने वर्षों से निवास करते हो, किंतु आजतक तुमने मुझे कर-स्वरूप कुछ भी नहीं दिया है। वही कर वसूल करने के लिए तुम्हारे पास आया हूँ।' समुद्र बोला—'राजा! तुम जितना धन लेना चाहो; मैं तुम्हें एक खजाना बता देता हूँ, उससे ले लो।' यह कहकर समुद्र राजा को धन का एक खजाना बताकर गुप्त हो गया। समुद्र के बताए हुए खजाने से राजा धीरे-धीरे धन ढोने लगा। धन ढोते-ढोते राजा के कितने बैल मर गए; गाड़ियाँ टूट गईं; कितने नौकर बीमार हो गए, राजा का घर धन से भर गया, किंतु राजा का मन नहीं भरा; क्योंकि

समुद्र के बताए हुए खजाने के धन का अंत ही नहीं होता था। राजा फिर फौज लेकर समुद्र किनारे पहुँचा और बम-गोला आदि बरसाने लगा। समुद्र फिर मनुष्यरूप में आकर बोला—'राजन्! अब क्या बात है, कहिए?' राजा बोला—'तुम्हारे धन को ढोते-ढोते मेरे सब घर भर गए, किंतु तुम्हारे धन का अंत नहीं हुआ। अब मेरे पास स्थान नहीं, जहाँ धन को ले जाकर रख सकूँ। इसलिए कोई ऐसा बर्तन दो, जिसमें सब धन अँट सके।' समुद्र ने राजा के हाथ में मनुष्य-खोपड़ी देते हुए कहा—'राजा! यह खोपड़ी लो, इसी में रखो।' यह कहकर समुद्र अंतर्द्धान हो गया। राजा तो पहले मन-ही-मन घबड़ाया। भला! इसमें कितना धन अँट सकता है? फिर जब उसमें धन भरने लगा, तब न तो खोपड़ी ही भरती है और न धन का ही अंत होता है। यह देखकर राजा और भी विशेष व्याकुल हो गया। उन्होंने (राजा ने) फिर समुद्र पर गोले बरसाना आरंभ कर दिया। समुद्र फिर मनुष्यरूप में प्रकट हुआ और बोला—'राजा! क्या बात है, जो बारम्बार मुझ पर गोलेबारी करते हो?' राजा बोला—'समुद्र! देखो, यह न खोपड़ी भरती है और न इस धन का अंत होता है। अब क्या किया जाय?' समुद्र बोला—'राजा! तुम बड़े मूर्ख हो, मनुष्य की खोपड़ी भी कहीं भरती है? इसपर राख डालो, तभी यह खोपड़ी भरेगी।' यह कहकर समुद्र ने थोड़ी-सी मिट्टी ले खोपड़ी में रख दी। मिट्टी रखते ही खोपड़ी भर गई। इसका सारांश यह है कि मनुष्य जबतक अपनी इच्छा पर धूल नहीं डालता, अर्थात् मनुष्य जबतक संतोष धारण नहीं करता, तबतक वह बराबर दुःखी रहता है और संतोष कर लेने पर ही वह दुःख-रहित हो जाता है। इसलिए मनुष्य को संतोषी होना चाहिए।

गोधन गजधन बाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

अपनी जीवन-रक्षा के लिए सच्ची कमाई करके खाओ, यही सांसारिक आजादी है।

संतों के मत में सबसे बड़ी चीज मोक्ष है। किंतु शरीर के अंदर जो कैद हो, इससे तुम्हारा छूटकारा हो जाय तो संसार से भी छूटकारा हो जाय। पिण्ड से छूट जाय तो ब्रह्माण्ड (बाह्य जगत) से भी छूटकारा हो जाय। कोई कहे—पिण्ड से निकल जाय तो बाहर संसार से भी कैसे निकल जाएगा? तो इस शरीर और संसार में बड़ा सरोकार है। जितने तत्त्वों से शरीर बना है, संसार भी उतने ही तत्त्वों से बना है। तल की दर्जेबंदी करने पर स्थूल-सूक्ष्म भेद से जितने तल शरीर के होते हैं, संसार के भी उतने ही तल हैं। शरीर जिस प्रकार पाँच तत्त्वों तथा तीन गुणों से बना हुआ है, संसार में भी पाँच चीजें अर्थात् आकाश, अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी तथा तीन गुण—रज (उत्पादक शक्ति), सत्त्व (पालक शक्ति) और तम (विनाशक शक्ति) है।

जाग्रत में शरीर के स्थूल तल पर काम करने से संसार के भी स्थूल तल पर ही काम करते हैं। स्वप्न में शरीर के स्थूल तल पर काम नहीं करने से संसार के भी स्थूल तल पर काम नहीं कर सकते। इस प्रकार यदि आप अपने शरीर के सूक्ष्म तल पर पहुँच जायँ तो संसार के भी सूक्ष्म तल पर पहुँच जाएँगे तथा जिस प्रकार शरीर के स्थूल तल पर रहकर स्थूल संसार को दूर तक देखते हैं तथा विचरण करते हैं, उसी प्रकार शरीर के सूक्ष्म तल पर पहुँचने पर आप सूक्ष्म संसार (ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म तल) को दूर तक देखेंगे तथा विचरण करेंगे। इस प्रकार जो पिण्ड को पार करेगा, वह ब्रह्माण्ड को भी पार कर जाएगा। स्थूल को देखकर सूक्ष्म का ज्ञान होता है। सूक्ष्म भी बिना कारण के नहीं हो सकता तथा कारण भी बिना महाकारण के हो नहीं सकता। इन चारों से

छूटने पर कैवल्य परम पद है। बाबा साहब इसी का उपदेश करते थे तथा साधन बताते थे। वे कभी नहीं कहते थे कि हम तुमको ऊपर चढ़ा देंगे। वे कहते थे कि उस ईश्वर को पाने के लिए उसका अवलंब, उसके प्रति तुम्हारी भक्ति होनी चाहिए। इसके लिए साधन ठीक है, करो। जहाँ ईश्वर की प्राप्ति होती है, वहाँ सारे मायिक आवरणों का पार होना होता है। जहाँ सब आवरणों का पार होना होता है, वहीं परमात्मा है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई।।
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकई हरि भगति बिहाई।।

—गोस्वामी तुलसीदास

बाबा साहब वही बतलाते थे, जो वेद, उपनिषदों तथा संतवाणियों में है। वे कहते थे—'कब्र में दाखिल होने तथा चिता में जलने के पहले मोक्ष प्राप्त कर लो।' इसके साधन बतलाते थे—'मन को एकाग्र करो।' इसकी बड़ी आवश्यकता है।

सुरत फँसी संसार में, ताते परिगा दूर।
सुरत बाँधि सुस्थिर करो, आठो पहर हजूर।।

पहले मोटा-मोटी जप करो। फिर किसी स्थूल रूप का मानसध्यान करो। फिर सूक्ष्म ध्यान के लिए दृष्टिसाधन करो। दृष्टिसाधन उसको कहते हैं कि जो आँख के साथ अभ्यास किया जाता है। इसके साधन करने के सैकड़ों गुर और अमल हैं कि जो भारतवर्ष और दूसरे मुल्कों में जारी है, लेकिन बाजे इनमें ऐसे हैं कि जिनसे आँख के दोनों गोले टेढ़े पड़ जाते हैं। और बाजे ऐसे हैं कि जिनसे आँख जाती रहती है और बाजे कायदे ऐसे भी हैं जो कि आँख की दोनों पुतलियों को, जिनमें होकर रोशनी बाहर को निकलती है, खराब कर देते हैं। जिससे फिर आँखों से धुँधला दिखाई पड़ता है और चाहे तमाम उमर हकीम, वैद्य, डॉक्टर इलाज करे, किसी तरह पुतलियाँ दुरुस्त नहीं होतीं। दृष्टि से अभ्यास करने का वह भी कायदा है जिसको आँख और आँख के गोले से कुछ तअल्लुक नहीं है और न दृष्टि के मानी आँख और आँख के गोले हैं, जिससे कि यह नुकसान होते हैं। जो ऊपर बयान किए गए हैं, दृष्टि निगाह को कहते हैं कि जो मांस और खून की बनी हुई नहीं है। मनुष्य में यह निगाह ऐसी बड़ी ताकतवर चीज है कि जितने बड़े-बड़े छिपे हुए साइन्स और विद्याओं को निकालकर दुनिया में जाहिर किया है और सिद्धि वगैरह की असलियत और मसालों का पता जिससे कि वह हो सकती है। सिवाय इसके और किसी से नहीं लग सकता है।

योगविद्या सीखने का दृष्टि पहिला कायदा है और इससे अभ्यास करने का गुर ऐसा उमदा है, जिससे स्थूल शरीर के किसी हिस्से को कुछ तकलीफ नहीं होती है और अभ्यासी इसके अभ्यास से उन निसानों को जिनको की ईश्वर या खुदा की आकाशी या आसमानी ग्रंथों और किताबों में सबसे बड़ा बतलाया है। जल्द पाकर मालूम कर लेता है और तमाम दुनिया के सिद्धांत और उसूल अभ्यासी के रूबरू हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं कि जो तमाम उमर पोथियों और ग्रंथों के पढ़ने और सुनने से हासिल नहीं होते, लेकिन दृष्टि सिर्फ उसी जगह पहुँच सकती है, जहाँ तक की रूप है और जहाँ से कि आवागमन हो सकता है, दृष्टि उसके आगे नहीं जा सकती, जहाँ कि रूप और रेखा कुछ भी नहीं है और जहाँ से कि मोक्ष होता है। संतों के मत में सबसे बड़ा पदार्थ मोक्ष है और उस जगह तक दृष्टि नहीं जा सकती। इसलिए शब्द का दूसरा कायदा वहाँ पहुँचने को उपदेश दिया गया है।

बाबा साहब के दृष्टियोग (दृष्टिसाधन) तथा शब्दयोग (शब्दसाधन) विषयक वर्णन को कबीर साहब का यह शब्द अत्यंत पुष्ट करता है—

गगन की ओट निशाना है।
दहिने सूर चंद्रमा बायें, तिनके बीच छिपाना है।।

तन की कमान सुरत का रोदा, शब्द बान ले ताना है।
मारत बान बिंधा तन ही तन, सतगुरु का परवाना है।।
मारयो बान घाव नहिं तन में, जिन लागा तिन जाना है।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जिन जाना तिन माना है।।

इसी प्रकार की वाणी सब संतों की वाणियों में पायी जाती है। बाबा साहब कहते थे कि दृष्टि-अभ्यास के बाद शब्द-अभ्यास करो। भजन के समय सब ख्यालों का विर्सजन कर बैठो। भाव-शून्य होकर बैठो। गुरु के बताए निसाने पर अपने को लगाओ। भावना करते हुए जो बैठता है, वह भावना के अनुकूल होता है। इसलिए भावना को छोड़ो। वे अनेक शब्दों का जिकर नहीं करते थे, एक सार शब्द पर ही विशेष जोर देते थे। गवैया लोग गाने के लिए बैठते हैं, तो बाजा मिलाते हैं। क्या मिलाते हैं? सितार, सारंगी, तबला, डुग्गी, हारमोनियम, मजीरा आदि। इन सबकी अलग-अलग आवाजें हैं— उनलोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि हमलोग साज को एक समान कसते हैं, जिससे सबका स्वर एक मिले। सबका स्वर मिलने पर सब ध्वनियाँ एक ही मालूम होती है। सब साजों की ध्वनियों में एकता होने पर तब यह मालूम नहीं होता कि यह इसकी और यह उसकी आवाज है। सब एक ही हो जाती है। उसी प्रकार सब आवाजों की एक आवाज सारशब्द है यह बाबा साहब कहते थे। वह ध्वनि देर तक रहती है।

महति श्रूयमानोऽपि मेघ भेर्यादिके ध्वनौ।
तत्र सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नादमेव परामृशेत्।।

(हठयोग प्रदीपिका, गोरखनाथजी महाराज के शिष्य स्वात्मारामजी महाराज)

अर्थ—मेघ, भेरी आदि का जो महान शब्द है, उसके तुल्य शब्द के सुनने पर भी उन शब्दों में सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जो नाद है, उसका चिंतन करे; क्योंकि सूक्ष्म नाद चिरकाल तक रहता है। उसमें आसक्त हुआ है चित्त जिसका, ऐसा मनुष्य भी चिरकाल तक स्थिरमति हो जाता है।

इसलिए बाबा साहब एक सारशब्द के लिए उपदेश देते थे। एक शब्द को कहाँ पकड़ोगे? इसलिए दृष्टियोग पर बहुत जोर देते थे।

सुखमन के घरि राग सुनि, सुन मण्डल लिव लाइ।
अकथ कथा बीचारीऐ, मनसा मनहिं समाइ।।
उलटि कमलु अंमृति भरिआ, इहु मन कतहुँ न जाइ।
अजपा जाप न बीसरै, आदि जुगादि समाइ।।
सभि सखिया पंचे मिलै, गुरमुखि निज घरि वासु।
सबदु खोजि इहु घर लहै, नानकु ताका दासु।।

— गुरु नानक साहब

यही उपदेश हमलोगों को बाबा साहब दे गए हैं, जिसका वर्णन कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि संतों की वाणियों में भी पाया जाता है। सदाचार का पालन करना चाहिए। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा तथा व्याभिचार; इन पाँचों पापों से अलग रहना चाहिए। बाबा साहब हमलोगों को जो उपदेश दे गए हैं, वह अत्यंत दृढ़ है तथा रास्ता बिल्कुल ठीक है। हमलोगों को उसपर दृढ़ता के साथ चलना चाहिए। ❐

यह प्रवचन बाबा देवी साहब के निर्वाण दिवस पर संतमत सत्संग मंदिर, मुरादाबाद, उत्तरप्रदेश में दिनांक २१.१.१९५१ ई० के सत्संग में हुआ था।

१०. ध्यान-योग की महिमा

प्यारे लोगो!

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहु योजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।
बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

संसार में लोग बराबर काम किया करते हैं। कामों को साधारणतः दो भागों में बाँट सकते हैं—शुभ और अशुभ। शुभ कर्म को पुण्य कहते हैं तथा अशुभ कर्म को पाप कहते हैं। जिस कर्म से आत्मा की ऊर्ध्वगति हो, उसे पुण्य तथा जिस कर्म से आत्मा की अधोगति हो, उसे पाप कहते हैं। पुण्य कर्म करनेवाले को पुण्यात्मा—धर्मात्मा कहते हैं और पाप कर्म करनेवाले को पापात्मा कहते हैं। पाप का फल दुःखमय तथा पुण्य का फल सुखमय होता है। लोग अधिकतर पाप ही करते हैं तथा उसका फल दुःख भोगना नहीं चाहते, शान्तिमय सुख प्राप्त करने की ही अभिलाषा रखते हैं। फिर लोग यह भी समझते हैं कि पाप किया, फिर पुण्य करने पर पाप कट जायेगा, किन्तु ऐसा नहीं होता। यहाँ यह हिसाब नहीं है कि दो में से दो घटाओ (२ – २ = ०), तो बाकी कुछ नहीं बचेगा। हाँ, यह अवश्य है कि पुण्य का फल अलग तथा पाप का फल अलग भोगना पड़ेगा।

महाराज युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा थे। नित्य ब्राह्मण भोजन कराते थे, दान करते थे, बड़े-बड़े यज्ञ करते थे, दुर्गम-से-दुर्गम स्थान में तीर्थ करने गये थे। जहाँ वे स्वयं नहीं जा सकते, वहाँ भीम के पुत्र घटोत्कच की सहायता से उस दुर्गम स्थान में जाते थे। भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन भी उनको बराबर ही हुआ करता था। वे सदा सत्य बोलते थे; लेकिन केवल एक शब्द झूठ बोलने पर मिथ्या नरक देखना पड़ा तथा नरक का दुःख भोगना पड़ा, जैसा कि महाभारत में लिखा है। तप, दान-पुण्य, तीर्थ, यज्ञ आदि कितना शुभ कर्म, पुण्य कर्म उन्होंने किया, किन्तु इतने पुण्य करने पर भी एक झूठ बोलने के कर्म-फल से नहीं बच सके। इससे जानना चाहिए कि पुण्य करने से पाप कर्म के फल से कोई बच नहीं सकता। किन्तु ध्यानविन्दूपनिषद् के उपर्युक्त श्लोक एक से जानने में आता है कि कई योजन तक फैला हुआ पहाड़ के समान यदि पाप हो, तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है; इसके समान पापों का नाश करनेवाला कभी कुछ नहीं हुआ है।

तो अब विचार करना चाहिए कि ध्यानाभ्यास से पाप नष्ट हो जायगा, यह ऋषि-वाक्य (उपनिषद् में) है; इसलिए मान लें अथवा इसको तर्क-बुद्धि से भी जानने की कोशिश करें, तो तर्क-बुद्धि से विचारने पर भी यही ज्ञात होता है कि ध्यानाभ्यास से अवश्य नष्ट होगा; क्योंकि जो मनुष्य ध्यानाभ्यास करता है, वह अपने मन को विषयों से हटाकर एक ओर लगाता है। वह एकओरता एक विन्दु है। विन्दु उसे कहते हैं, जिसका स्थान हो, परिमाण नहीं। तो इतने सूक्ष्म पर अपने मन को पहले-पहल लगाना सम्भव नहीं; क्योंकि मोटे अक्षर के लिखे बिना बारीक अक्षर नहीं लिख सकते। इसलिये पहले मोटा-मोटी इन्द्रिय-गम्य पदार्थ का ही अवलम्बन लेना उचित होगा। साधु-सन्तों ने पंच विषयों में से दो विषयों—रूप और शब्द को लेने बताया अर्थात्

किसी एक रूप को, जिसमें अपनी पूर्ण श्रद्धा हो, उस रूप के मानस-ध्यान का तथा उस इष्ट-सम्बन्धी शब्द के मानस-जप का अवलम्ब सन्तों ने बताया। यह आरम्भिक साधन है। इस प्रकार मन को एक ओर करते हैं। फिर विन्दु-ध्यान के द्वारा मन का पूर्ण सिमटाव हो जाता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। ऊर्ध्वगति होने के कारण वह स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश कर जाता है। लोग स्थूल विषयों में फँसकर ही पाप करते हैं। जो स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश कर जाय, उससे पाप होना सम्भव नहीं; क्योंकि इस प्रकार सूक्ष्म-ध्यान करते-करते उसका मन स्थूल विषयों से हट जाता है। ऐसी अवस्था में उससे पाप हो सके, असम्भव है अर्थात् उससे पाप-कर्म नहीं हो सकता है। फिर सूक्ष्म में सूक्ष्म नादों का ग्रहण होगा, जिसके द्वारा ऊर्ध्व की ओर खिंचाव होगा, तब कारण और महाकारण को भी पार कर कैवल्य दशा प्राप्त कर, इस प्रकार वह जड़ के सब मण्डलों को पार कर कर्म-मण्डलों को पार कर जाता है। जो कर्म-मण्डलों को पार कर गया, उसका पीछे का किया हुआ जो सञ्चित कर्म है, उससे वह छुटकारा पाकर प्रारब्ध के बन्धन से छूट जाता है। जो कर्म-मण्डल को पार कर गया है, वह कर्म-फल के घेरे में नहीं रह सकता। इस प्रकार ध्यानाभ्यास के द्वारा सब पापों से मुक्त हो जाता है और परमपद प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्महत्या सहस्राणि भ्रूणहत्या शतानि च।
एतानि ध्यानयोगश्चदहत्यग्निरिवेन्धनम्।।३८।।

—उत्तरगीता, अ० २

किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि पाप करते जाओ और ध्यान करते जाओ, पाप कट जायगा। बात तो यह है कि जबतक कोई संयमी नहीं बनेगा, पाप-कर्मों से अपने को नहीं बचावेगा, तबतक उससे ध्यान हो नहीं सकता है। अतः मनुष्य को संयमी होना चाहिए अर्थात् झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पाँच पापों से मनुष्यों को अलग रहना चाहिए। एक सर्वेश्वर पर अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अन्तर में ही उसकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना चाहिए।

आप कहेंगे कि बाहर में परमात्मा को क्यों नहीं प्राप्त करेंगे? तो पहले यह जानना चाहिए कि परमात्मा इन्द्रियगम्य नहीं है, वह आत्मगम्य है। बाहर में आप इन्द्रियों के संग-संग चलेंगे; किन्तु अन्तर में चलने के समय इन्द्रियों से छूटते हैं। इसके लिए जाग्रत् से स्वप्नावस्था में जाने की स्थिति पर विचार कीजिए। जाग्रत्-स्वप्न के बीच एक तन्द्रावस्था होती है। उसमें क्या होता है? हाथ-पैर कमजोर होते जाते हैं। उसमें गला झुक जाता है, ज्ञात होता है कि शक्ति भीतर की ओर खिंची जा रही है, बाहर का ज्ञान जाता रहता है। सामने का कोई रूप नहीं देख सकते; कोई सुमधुर शब्द में गाना गाता है, तो उसे भी नहीं सुन सकते, क्यों? उस समय बाहर से सिमटकर भीतर प्रवेश करने में बाह्य इन्द्रियों का संग छूटता है। इन्द्रियों का संग छोड़कर आप अकेले रहकर उस परमात्मा की पहचान कर सकते हैं। इसलिए अपने भीतर प्रवेश कीजिये। जब अपने अन्दर में पहचान हो जायगी, तब बाहर में भी पहचान सकते हैं।

सब किछु घर महि बाहरि नाहीं।
बाहरि टोलै सो भरमि भुलाहीं।।
गुरु परसादी जिनि अन्तरि पाइआ।
सो अन्तरि बाहरि सुहेला जीउ।।

—गुरु नानकदेव

सद्गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्याना-भ्यास; इन त्रिविध कर्मों को नित्य करना चाहिए।

यह प्रवचन बिहपुर (जिला—भागलपुर) हाई स्कूल के प्रांगण में दिनांक २६.१.१९५१ ई० के सत्संग में हुआ था। ❐

११. ईश्वर-भक्ति से सुख की प्राप्ति

प्यारे धर्मप्रेमी सज्जनो!

हम सब लोग सुख की ओर दौड़ते हैं। दुःख नहीं होने पावे, ऐसी इच्छा करते हैं। इसके लिए जो यत्न जानने में आता है, उसका प्रयोग करते हैं, किन्तु फिर भी पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त नहीं कर पाते। यह आज ही ऐसा है, यह बात नहीं। पौराणिक काल के इतिहास को पढ़कर देखते हैं, तो मालूम होता है कि तब के लोगों की भी यही हालत थी तथा आगे भी यही हालत रहे, संभव है। क्यों? आखिर इसका कारण क्या है? हमलोग उसी को सुख कहते हैं, जो मन और इन्द्रियों को सुहाता है तथा मन और इन्द्रियों को जो नहीं सुहाता, उसे ही दुःख कहते हैं। जो विषय जिस इन्द्रिय का है, वह विषय उस इन्द्रिय को मिलने से सुख तथा वही विषय उतना नहीं मिलने पर दुःख मानते हैं। किन्तु यथार्थतः इन विषयों से कभी भी तृप्त नहीं हो पाते। सुख की तलाश में अपनी शक्ति भर कोशिश करते हैं, फिर भी अतृप्ति ही रहती है। पहले के लोगों ने इस सुख के लिए स्वर्ग पाने की कोशिश की; क्योंकि वहाँ विशेष सुख है। अतः वहीं चलना चाहिए। किन्तु जब स्वर्ग के विषय में विचारते हैं, तो श्रीराम का यह उपदेश 'एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।' सामने आ जाता है। वहाँ भी सुख के बाद दुःखः, दुःख के बाद सुख—ऐसे ही आते-जाते रहते हैं, जैसे गाड़ी का पहिया—'चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।' उसी प्रकार हमलोगों के पीछे सुख-दुःख घूमते रहते हैं। दिन-ही-दिन रहे, रात न हो, ऐसा हो नहीं सकता। किन्तु लोग दुःख को नहीं चाहते, सुख ही चाहते हैं। सुख भी ऐसा हो, जो तृप्तिदायक, कल्याणदायक तथा पूर्ण शान्तिदायक हो। किन्तु ऐसा सुख नहीं मिलने पर मालूम होता है कि यथार्थ में ऐसा सुख है ही नही। जैसे कोई जन्मांध कहे कि रूप है ही नहीं, तो क्या यह विश्वास—योग्य है? संतों ने जो उस सुख को प्राप्त किया, वे दृढ़ता के साथ कहते हैं कि ऐसा सुख भी अवश्य है। अगर ऐसा सुख नहीं होता, तो क्या सन्त लोग झूठ-मूठ अपनी वाणी में कहते? अथवा क्या यह गप है? किन्तु उनकी बातों पर दृढ़ होने से यह ज्ञात होता है कि वे मिथ्या नहीं बोल सकते। क्या झूठ बोल कर ही वे लोग साधु-सन्त कहलाए? कभी नहीं। उनलोगों से पूछने पर मालूम होता है कि लोग जो साधारण रीति से दुःख-सुख जानते हैं, वह इन्द्रियजन्य दुःख-सुख है। यह विषय-सुख है—विषयानन्द है। विषय-सुख परिवर्तनशील, क्षणभंगुर सुख है। इन्द्रियों में वह पूरी-पूरी शक्ति भी नहीं है, जो विषयों को पूर्णरूपेण भोग सकें तथा पूर्ण तृप्ति प्राप्त कर सकें। जिसमें पूर्ण शक्ति ही नहीं, वह विषय को पूर्णरूपेण भोग कैसे सकती है तथा उससे जो तृप्ति हो, वह पूर्ण कैसे? वह अनित्यानन्द है। इसके अतिरिक्त कुछ और है, जो इन्द्रियगम्य (पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पैर, गुदा, लिंग तथा मुँह; पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा त्वचा; चार अंतःकरण—मन, बुद्धि चित्त और अहंकार—कुल चौदह इन्द्रियाँ) नहीं है। वह इन्द्रियों से परे क्या है? इन्द्रियों के ज्ञान से परे चेतन आत्मा है। इससे जानने अथवा ग्रहण करने योग्य जो पदार्थ है, उस पदार्थ को प्राप्त कर लेने पर सुख-ही-सुख है, दुःख लेशमात्र भी नहीं है। वह पदार्थ क्या है? ईश्वर। वह केवल

चेतन-आत्मा से जानने योग्य है। चेतन-आत्मा क्या है? जब इस पर विचारते हैं, तो पता चलता है कि इस शरीर में मैं रहता हूँ; मेरी आँखें, मेरे हाथ, मेरे पैर, मेरा शरीर आदि कहकर जानता हूँ, किन्तु अपने को नहीं पहचानता। अपने स्वयं कौन हैं? इसपर सन्त सुन्दरदासजी की यह वाणी सुनिए—

तू तौ कछु भूमि नाहिं , अप तेज वायु नाहिं।
व्योम पंच* विष नाहिं, सो तौ भ्रम कूप है।।
तू तौ कछु इन्द्रिय रु, अन्तःकरण नाहिं।
तीन गुण तू तौ नाहिं, न तौ छाहिं धूप है।।
तू तौ अहंकार नाहिं, पुनि महतत्त्व नाहिं।
प्रकृति पुरुष नाहिं, तू तौ स्व अनूप है।।
सुन्दर विचार ऐसे, शिष्य सूँ कहत गुरु।
नाहिं नाहिं कहत रहै, सोई तेरो रूप है।।

--सुन्दरदासजी

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।

—गोस्वामी तुलसीदास

इस प्रकार अपने शरीर में रहने का बौद्धिक ज्ञान तो हो जाता है; किन्तु यथार्थ में मैं कौन हूँ, इसकी पहचान नहीं होती। अपनी पहचान नहीं होने पर भी यह ज्ञान अवश्य बना रहता है कि 'मैं हूँ' तथा ये (पंच ज्ञान की, पंच कर्म की तथा चार अंतर की) इन्द्रियाँ मेरी हैं, मैं इनसे भिन्न हूँ। किन्तु जिस तरह मैं अपने शरीर को पहचानता हूँ, उस तरह अपने को नहीं। अपने की पहचान नहीं होने का क्या कारण है? इसपर सन्त लोग बतलाते हैं कि तुम अपने को इन्द्रियों से जानना चाहते हो, यह कैसे होगा? तुम अन्दर में हो और इन्द्रियों को बाहरी विषयों का ज्ञान है, अन्तर का नहीं। इसलिए तुम अपने को तभी पहचान सकते हो, जब तुम अपने अन्तर में प्रवेश करो तथा शरीर के घेरे से पार हो जाओ। शरीर का तात्पर्य यह नहीं कि केवल स्थूल शरीर को पार करो, बल्कि जड़ के चारो (स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण) शरीरों को भी पार करो। तब पता चलेगा कि तुम कौन हो तथा उसे अकेलेपन में अर्थात् चारो जड़ शरीरों से छूटकर कैवल्य दशा में रहने पर जो सुख मालूम होगा, वह कौन सुख है? वह हरि-रस का सुख है। उसी को पाने का यत्न करो, तभी वह सुख मिलेगा, जिसके बाद दुःख नहीं, जो सुख कभी बिछुड़नेवाला नहीं, जिसमें उकताहट नहीं, जो तृप्तिदायक, कल्याण दायक तथा पूर्ण शान्तिदायक है।

यत्न क्या है? ईश्वर-भजन करो, इसी से सब क्लेश (दुःख) मिट जाएँगे।

राकापति षोड़स उअहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दब लाइये, बिनु रवि राति न जाइ।।
ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

पूर्णिमा के सोलह चन्द्रमा (अथवा सोलह कलाओं से युक्त चन्द्रमा) उगें; तारेगणों के सब झुण्ड भी उगें, सब पर्वतों में आग लगा दी जाय, परन्तु बिना सूर्य के रात नहीं जाती। हे गरुड़जी! इसी प्रकार बिना हरि-भजन किए जीवों का क्लेश नहीं मिटता।

ईश्वर का भजन करने के लिए उसके स्वरूप को जानना आवश्यक हो जाता है। इसलिए उसके स्वरूप की खोज करने जब चलते हैं, तब गोस्वामी तुलसीदासजी तथा संत कबीरदासजी के वचन सामने आते हैं—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा।नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी।ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

---

*पाँच विषय—रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श।।

इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

'नाद बिन्दु तें अगम अगोचर, पाँच तत्त तें न्यार।
तीन गुनन तें भिन्न है, पुरुष अलक्ख अपार।।
संपुट माहिं समाइया, सो साहिब नहिं होय।
सकल माँड़ में रमि रहा, मेरा साहिब सोय।।
सर्गुण की सेवा करौ, निर्गुण का करु ज्ञान।
निर्गुण सर्गुण के परे, तहैं हमारा ध्यान।।
कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़े बन माहिं।
ऐसे घट में पीव है, दुनिया जानै नाहिं।।'

'श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूप अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।'

— कबीर साहब

अब गुरु नानक साहब के पास चलो, वे क्या कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा ।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा ।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु ।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु ।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी ।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी ।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई ।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई ।।

ऊपर वर्णनानुसार जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी के 'अविगत अकथ अपार', 'अखण्ड अनन्ता', कबीर साहब के 'पुरुष अलक्ख अपार', 'श्रूप अखण्डित' तथा गुरु नानक के 'अलख अपार अगम अगोचरि' से सन्तों की वाणी में 'अनन्त, अपार' शब्द आता है, इन्हीं को ईश्वर—परमात्मा कहकर पुकारते हैं। अगर कहें, ऐसा हो सकता है कि नहीं? अगर कहें, नहीं हो सकता है, तो विचारिए—जो कुछ होगा, अगर सब सीमावाला ही होगा, तो सब ससीमों को एकत्रित करने पर क्या होगा? ससीमों का पुंज भी ससीम ही होगा, असीम नहीं होगा। साथ ही यह प्रश्न उठेगा कि सब ससीम पदार्थों के पार में क्या है? यह प्रश्न तबतक हल नहीं हो सकता, जबतक कि असीम न कह दें। इसलिए संतों की वाणियों में जो 'अनन्त-अपार' शब्द आता है, वह अतिशयोक्ति नहीं, यथार्थ ही जँचता है। एक अनादि अनन्त तत्त्व अवश्य है। इसमें तर्क का स्थान नहीं है। लोग बहस करते हैं, ईश्वर को नहीं मानते हैं। कहते हैं कि 'आस्तिकवादियों ने ईश्वर को अपने विचार में बना लिया है, यथार्थतः ईश्वर की स्थिति है ही नहीं।' इस विचार का भी प्रचार हो रहा है, किन्तु ऐसा विचार मन में धँसता नहीं। बचपन से ही माता-पिता ने राम-राम, शिव-शिव, कृष्ण-कृष्ण आदि कहलाया तथा इन्हीं शब्दों से मस्तिष्क भर दिया है। तभी से श्रद्धा आई और जमी हुई है। जिस समय तर्क-वितर्क का ज्ञान नहीं था, पाठशाला में पढ़ने गए, पण्डितजी ने कहा— यह 'अ' है। बस, इसमें कुछ भी तर्क-वितर्क नहीं किया, वैसे ही लिखा और पढ़ा। सीखते-सीखते सीखा, तो इसका ज्ञान अब होता है

कि पंडितजी ने बचपन में जो—'अ' पढ़ाया था, ठीक है। साथ ही इसका भी ज्ञान हुआ कि पहले की वर्णमाला से आजकल की वर्णमाला में क्या अन्तर है। पहले की वर्णमाला की लिपि या लिखावट से आजकल की वर्णमाला की लिपि या लिखावट में परिवर्तन हो गया है। फिर आगे और भी इसमें परिवर्तन हो संभव है। किन्तु उच्चारण में वर्णमाला नहीं बदलेगी, सदा पूर्ववत् रहेगी, उसी प्रकार ईश्वर है और रहेगा। एक अनादि अनन्त असीम तत्त्व का मानना आस्तिक और नास्तिक—दोनों के लिए अनिवार्य है। उस तत्त्व का नाम बदलकर दोनों भले ही स्वीकारात्मक और नकारात्मक भिन्न-भिन्न नामों से कह सकते हैं; परन्तु उसकी स्थिति को नहीं मिटा सकते हैं। इसपर तर्क करना व्यर्थ है। तर्क क्या है? तर्क तो बुद्धि से होती है; किन्तु परमात्म-स्वरूप-ज्ञान के लिए बुद्धि भी लँगड़ी है। बुद्धि से केवल निर्णय होता है; किन्तु पहचान नहीं होती; क्योंकि वह तो 'वचन अगोचर बुद्धि पर' है। उस परमात्मा को प्राप्त करने का जो यत्न है, वही उसकी भक्ति है। या यों कहो कि जिस यत्न के द्वारा परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति हो, वही भक्ति है। जिस प्रकार जिह्वा पर मिसरी डालने से मीठी मालूम होती है, उसी प्रकार परमात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान हो।

सूचै भाड़ै साचु समावै बिरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुम्हारी।।

अर्थात् पवित्र वर्तन में सत्य अँटता है। —'पवित्र वर्तन' कहने का तात्पर्य है—शुद्ध अन्तःकरण। 'साचु' का अर्थ है—सत्यब्रह्म। अन्तःकरण की शुद्धि के बिना सत्यब्रह्म को नहीं प्राप्त कर सकते। उत्तम विचार से अन्तःकरण की शुद्धि होती है; उत्तम विचार भले लोगों के संग से होता है। भले लोग उसे कहते हैं, जो आत्मानन्द के विषय में जानते हैं, उसकी प्राप्ति के लिए इच्छुक हैं और जो प्राप्त कर गए हैं, उनके लिए तो कहना ही क्या है! उनका संग ही सत्संग है। जिन्होंने आत्मानन्द को प्राप्त किया है, उनकी पहचान दुर्लभ है, फिर भी वे अपना गुण कुछ-न-कुछ अवश्य देंगे। घटा में छिपा हुआ सूर्य अपनी गर्मी देने से चूकता नहीं है, उसकी गर्मी हमलोगों तक आती है। उसी प्रकार सन्त अपने स्वभाव के कारण कुछ दिए बिना नहीं रहते।

कबीर संगति साध की, ज्यों गंधी का बास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौ भी वास सुवास।।
— कबीर साहब

ईश्वर की प्राप्ति के लिए पापों से बचिए। पापों से बचना अन्तःकरण की शुद्धि पर निर्भर है। झूठ बोलना पाप है। झूठ नहीं बोलना चाहिए। लोग अपना दोष छिपाने के लिए अथवा कुछ ठगने के लिए झूठ बोलते हैं। झूठ सब पापों का भण्डार है। किसी ने खराब काम किया, उससे पूछने पर उसने बोल दिया—नहीं, मैंने नहीं किया। गोया झूठ की आड़ में उसको छिपा लिया। अतः पापों से बचने के लिए झूठ मत बोलो। चोरी मत करो। नशा न खाओ, न पियो। तम्बाकू तक नशा है।

भाँग तमाखू छूतरा, अफयूँ और शराब।
कह कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार।।
— कबीर साहब

दारू गाँजा भाँग अफीमा। ताड़ी चण्डू मदक कोकीना।।
सहित तम्बाकू नशा हैं जितने। तजन योग्य तज डारो तितने।।

नशीली वस्तु के सेवन से मस्तिष्क अच्छा नहीं रहता। नशा लगते-लगते ऐसा हो जाता है कि शरीर तक को बर्बाद कर देता है। व्यभिचार मत करो अर्थात् पुरुषवर्ग स्त्री को तथा स्त्री-वर्ग पुरुष को कुदृष्टि से अवलोकन न करे; बल्कि 'परदारा निज माता जान।' हिंसा मत करो। हिंसा उत्तम ध्यान-ज्ञान से वंचित रखती है। जानवरों का मारना हिंसा है। कटु वचन कहना, दूसरे की हानि के लिए कुछ

काम कर देना हिंसा है। इसलिए मन, वचन तथा कर्म; तीनों तरह की हिंसा से बचो। हिंसा दो प्रकार की होती है—एक वार्य, दूसरी अनिवार्य। अपनी रक्षा के लिए श्वास लेते हैं, इससे भी हिंसा होती है; किन्तु यह अनिवार्य हिंसा है। एक देश पर दूसरे देश के लोग चढ़ाई करें या लूटें अथवा किसी के घर में डकैती हो, ऐसी हालत में अपनी रक्षा के लिए उसपर चढाई करनी, मार-काट करनी अनिवार्य हिंसा है। घर के लेप-पोत, बुहारने, खलिहान करने आदि में हिंसा है; किन्तु अनिवार्य हिंसा है। किसान खेती का काम करते हैं, इसमें भी हिंसा होती है, किन्तु वह भी अनिवार्य हिंसा है। अनिवार्य हिंसा का प्रायश्चित्त होता है; किन्तु वार्य हिंसा का प्रायश्चित्त नहीं होता। खेती आदि अनिवार्य हिंसा के प्रायश्चित्त के लिए लोग दान-पुण्य करते हैं, अभ्यागत-सत्कार करते हैं। पहले अभ्यागत-सत्कार करो, पीछे अपने खाओ। अब वार्य हिंसा के विषय में भी थोड़ा-सा सुन लीजिए। वार्य हिंसा उसे कहते हैं, जिसके बिना हम बच सकते हैं। इस प्रकार पंच पापों से बचने के लिए सन्त-महात्मागण उपदेश करते हैं। साथ ही मांस-मछली का भोजन भी मत करो; क्योंकि इसमें भी हिंसा होती है। मनुस्मृति में आठ घातक लिखे हैं—१. हिंसा करने के लिए आज्ञा देनेवाला, २. हिंसा करनेवाला, ३. टुकड़ा करनेवाला, ४. बेचनेवाला, ५. खरीदनेवाला, ६. पकाने (राँधने) वाला, ७. परोसनेवाला तथा ८. खानेवाला। दूसरी बात यह है, भोजन में अपना-अपना गुण कुछ-न-कुछ अवश्य रहता है। अगर अपना-अपना गुण अलग-अलग नहीं होता, तो भाँग खाने पर नशा क्यों आता? स्वर्ण-भस्म खाने पर जितनी गर्मी आती है, गोयठे को जलाकर खाने से उतनी गर्मी क्यों नहीं आती? इससे प्रत्यक्ष है कि भोजन अपना-अपना गुण रखता है। हमारे शरीर में जो परमाणु हैं तथा पशु शरीर में जो परमाणु हैं, दोनों एक ही गुणवाले नहीं हैं। पशुओं के परमाणुओं में विशेष अन्धकार और अज्ञानता है। हमारे अन्दर में भी अज्ञानता तो है ही, परन्तु पशुओं से कम। फिर पशुओं को खाकर, उनके परमाणु को अपने शरीर में बढ़ाते हैं। इसलिए ईश्वर-भक्ति में ये बाधक हैं।

कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बड़ा हुलास।
मन मनसा माँजे नहीं, होन चहत है दास।।

उपनिषद् में है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

– कठ, द्वितीय वल्ली, अध्याय १

जो पापकर्मों से निवृत नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं और जिसका चित्त असमाहित या अशान्त है, वह इसे आत्मज्ञान-द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता।

इसलिए पापों का परित्याग कर ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए; क्योंकि हमें सुख की अभिलाषा है। सुख की प्राप्ति के लिए हमें यत्न करना चाहिए, केवल 'सुख-सुख' कहने से सुख नहीं होगा। वह यत्न ईश्वर-भजन है। इसी से परम शान्तिमय सुख मिलेगा। ❐

यह प्रवचन शाहआलमनगर, जिला—मधेपुरा में श्रीसीताराम भगत जी के द्वारा आयोजित दिनांक २७.१.१९५१ ई० के सत्संग में हुआ था।

१२. सन्तमत के ज्ञान से परम कल्याण

प्यारे धर्मप्रेमी सज्जनो!

आपलोगों को यह बात मालूम हो चुकी है कि यहाँ सन्तमत का सत्संग होगा। सन्तमत कोई खास सम्प्रदाय नहीं है, सब सन्तों के मत को मिलाकर 'सन्तमत' कहते हैं। यहाँ किसी सन्त को छोटा अथवा किसी सन्त को बड़ा नहीं कहा जाता। साम्प्रदायिकता का भाव लेकर जो झगड़ा उठता है, वह इसमें बिल्कुल नहीं। सन्त चाहे अपने देश के हों या दूसरे देश के, सब एक हैं। कितने ही सन्तों के नामों के जो पन्थ या सम्प्रदाय सुनते हैं, पता लगाने पर ज्ञात होता है कि वे पन्थ या सम्प्रदाय उन सन्तों के बनाए हुए नहीं हैं; बल्कि उनके नामों पर श्रद्धालु भक्तों ने बनाए हैं। किन्तु उन सन्तों का सिद्धान्त उनके ग्रन्थों में है। मेल मिलाने से सबका एक ही मत होता है। जीवों को चाहिए कि वे सारे दुःखों से छूट जाएँ। दुःख से छूटने तथा सुख प्राप्त करने की अभिलाषा सब जीवों को है। सुख भी वैसा कि जिस सुख से ऊब नहीं हो, आनन्द-ही-आनन्द हो। कभी अल्प सुख, कभी विशेष सुख; ऐसा भी नहीं हो; एक समान उदार सुख मिले, जिसमें नित्यानन्द हो। इस प्रकार के सुख को सन्त के अतिरिक्त दूसरे कोई पाते हैं, कहा नहीं जा सकता। सन्त का मतलब यह नहीं कि जो घर छोड़कर रहता हो, बल्कि ऐसा कि पुत्र-कलत्रवाले गृही, अपने परिश्रम की कमाई से गुजर करता हो अथवा भिक्षा माँगकर भी जीविका करता हो; दोनों ही तरह के सन्त होते हैं।

उस नित्यानन्द सुख को बहुत कम लोग जानते हैं। उस सुख के अतिरिक्त दूसरा सुख वह है, जो इन्द्रिय और मन को सुहावे। इसी को विशेष लोग जानते हैं। किन्तु जैसे दिन के बाद रात तथा रात के बाद दिन होता है, उसी प्रकार यह सुख-दुःख आता-जाता रहता है। यह सुख वह है, जिसे इन्द्रियाँ विषय की ओर प्रेरित होकर लेती हैं। यह विषय-सुख है; किन्तु वह सुख जिसका वर्णन पहले हुआ, ब्रह्म-पीयूष प्राप्त करने का सुख है। विषय में अनित्य आनन्दप्रद सुख है तथा उसमें (ब्रह्म प्राप्त करने में) नित्यानन्द सुख है।

ब्रह्म पियूष मधुर शीतल जो, पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृग जल रूप विषय, कारण निशिवासर धावै।।

— विनय-पत्रिका

इसी ब्रह्म-पीयूष के मिलने के सुख को प्राप्त करने के लिए सन्तों का आदेश है। सन्त घर छोड़ने के लिए नहीं कहते, पारिवारिक पालन-पोषण करते हुए यह काम करो। धीरे-धीरे होगा। एक-एक अक्षर सीखकर विद्वान होते हैं, उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते-करते उस परम सुख को प्राप्त करेंगे। भगवान् श्रीकृष्ण का गीता में यह उपदेश है—

'पुण्यकर्त्ता पुरुषों को मिलनेवाले (स्वर्गादि) लोकों को पाकर और (वहाँ) बहुत वर्षों तक निवास करके फिर यह योगभ्रष्ट पुरुष पवित्र श्रीमान लोगों के घर में जन्म लेता है अथवा बुद्धिमान योगियों के कुल में जन्म पाता है। इस प्रकार का जन्म (इस) लोक में बड़ा दुर्लभ है, इसप्रकार प्राप्त हुए जन्म में वह पूर्वजन्म के बुद्धि-संस्कार को पाता है; और हे कुरुनन्दन! यह उससे भूयः अर्थात् अधिक सिद्धि पाने का प्रयत्न करता है। अपने पूर्वजन्म के उस अभ्यास से ही अवश अर्थात् अपनी इच्छा न रहने पर भी वह (पूर्ण सिद्धि की ओर) खींचा जाता है। जिसे योग की जिज्ञासा अर्थात् जान लेने की इच्छा

हो गयी है, वह भी शब्द-ब्रह्म के परे चला जाता है। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक उद्योग करते-करते पापों से शुद्ध होता हुआ योगी अनेक जन्मों के अनन्तर सिद्धि पाकर अन्त में उत्तम गति पा लेता है।' (श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ६, श्लोक ४१ से ४५)

यह बहुत विश्वास की बात है कि स्थूल शरीर छूटता है, पर इसके अन्दर रहनेवाले मन-बुद्धि आदि नहीं छूटते। सूक्ष्म शरीर में जीवात्मा रहकर स्वर्ग-सुख भोगता है, फिर स्थूल शरीर को धारण करता है। यह रास्ता बड़ा लम्बा है—

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहौ सन्तो क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि दीदार।।

फिर— **ऊँची अटरिया पोल चढ़ौ गिरि गिरि पड़ौ।**
सतगुरु बुधि लइ नाहिं पार कैसे पड़ौ।।
जहाँ गैल सिलहली चढ़ौ गिरि गिरि पड़ौ।
उठौ सम्हारि सम्हारि चरन आगे धरौ।।

— कबीर साहब

गिरना क्या है? सुरत का पिछड़ना। सँभालते-सँभालते अथक परिश्रम-द्वारा प्रत्याहार करते-करते अवश्य धारणा होगी। जब बार-बार धारणा होगी, तब उसमें अवश्य गहराई आएगी। इसी को ध्यान कहते हैं। उतावलेपन के साथ यह होना संभव नहीं। इस सुख को पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए बहुत दूर तक जाना है। किन्तु कम-से-कम समय भी अगर ठीक-ठीक भजन बने तो मुझे विश्वास है कि इस थोड़े समय का सुख जो आपको मिलेगा, तो कहिएगा कि ऐसा सुख विषय में नहीं है। इस सुख के लिए यत्न करें। इस सुख के लिए कोई आवश्यकता नहीं कि घर-वार छोड़े।

नानक सतिगुरु भेटिऐ पूरी होवै जुगती।
हसं दिआ खैलं दिआ पैनं दिआ
खावं दिआ बिचे होवै मुकती।।

बाबा नानक ने गृहस्थी के कार्यों को करते हुए दिखलाया कि देखो! गृह-कार्य करते हुए मैंने यह पद पाया है। गुरु अर्जुनदेवजी ने जैसा कहा, वैसा करके दिखला दिया। विपत्तियों में प्रसन्नचित्त रहे और दुःखों को झेला। उन्होंने कहा था—

ब्रह्म गियानी सदा निरलेप। जैसे जल महि कमल अलेप।।
ब्रह्म गियानी कै धीरज एक। ज्यों बसुधा कोउ खोदै कोउ चन्दन लेप।।

एक लेखक लिखते है— 'लोग श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ करते हैं; किन्तु सिक्ख-सम्प्रदाय के दस गुरुओं ने उसका आचरण करके दिखाया।' भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'युद्ध भी करो और ध्यान भी करो।' कबीर साहब जाति-कर्म करके अपना पालन-पोषण करते थे। ये रामानन्द स्वामी के शिष्यों में एक प्रसिद्ध शिष्य थे। ये प्रसन्नचित्त से कहते थे—

जोलहा बीनहुँ हो हरिनामा।
तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा देखहु मेरा ज्ञाना।।

ये अपना ताना-बाना करते थे तथा थोड़े में सन्तुष्ट रहते थे। कपड़े बेचने के लिए जाते तो एक ही दाम कहते थे, दुहराते नहीं थे। इस विषय की उनकी यह कहानी प्रसिद्ध है—

एक समय कबीर साहब एक दुपट्टा (चादर) तैयार कर हाट में बेचने के लिए गए। लोगों के पूछने पर उस चादर का एक ही मूल्य कबीर साहब ने पाँच रुपये बताया। लोग उस चादर का मूल्य चार-साढ़े चार रुपये कहते थे। संध्या होने चली; किन्तु इनकी चादर बिकी नहीं। अन्त में ये अपनी चादर उठाकर घर की ओर चलते बने। रास्ते में एक परिचित आदमी से भेंट हो गई। उन्होंने पूछा— 'कबीरजी! हाट से लौट गए, क्या चादर बिकी नहीं? कबीर साहब ने उत्तर दिया— 'नहीं, मैं पाँच रुपये इस चादर का मूल्य बताता था, लोग चार-साढ़े चार रुपये बताते थे।' उस आदमी ने कहा कि आप यह चादर मुझे दे दें, मैं

बिक्री करके मूल्य पाँच रुपये आपको दे दूँगा। और इनसे विशेष जो बचेगा, मैं ले लूँगा। कबीर साहब ने कहा—'भाई! मुझे तो इसका मूल्य पाँच रुपये ही चाहिए, इससे विशेष की मुझे आवश्यकता नहीं; इससे जो विशेष हो, उसे आप ले लेना।' यह कहकर कबीर साहब ने वह चादर उस आदमी को दे दी। वह आदमी उस चादर को लेकर हाट चला गया और उसका मूल्य आठ रुपये सुनाने लगा। किसी ने सात रुपये में उस चादर को खरीद लिया। उस आदमी ने हाट से लौटकर पाँच रुपये तो कबीर साहब के हाथ में दिए और दो रुपये दिखाते हुए कहा कि यह नफा मेरा हुआ अर्थात् आप जिस चादर को पाँच रुपये में नहीं बेच सके, उसे मैंने सात रुपये में बेचा। इस पर कबीर साहब का यह शब्द प्रसिद्ध है—

कबीर चाले हाट को, कहै न कोइ पतियाय।
पाँच टके का दोपटा, सात टके को जाय।।

कबीर साहब थोड़ी-सी चाहना रखते थे और थोड़ी-सी कमाई में पूरे सन्तुष्ट रहते थे तथा इसी थोड़ी-सी कमाई से ही साधु-सन्त की सेवा—अभ्यागत-सत्कार; सब किया करते थे। इनके दोहे से स्पष्ट विदित होता है कि ये कितने सन्तोषी थे—

साहब इतना दीजिए, जामें कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।

इसलिए साधक को कम इच्छा रखनी चाहिए। जो विशेष इच्छाएँ रखते हैं, वे एकान्तचित्त होकर भजन नहीं कर सकते।

कोई ऐसे भी हुए हैं, जो अपने शरीर के लिए भिक्षा कर लेते थे, जैसे शंकराचार्य। भिक्षा करनेवाले भी तथा अपने घर के कामों को करनेवाले भी सन्त होते हैं। इसलिए सन्तों का ख्याल यह नहीं कि घर छोड़ो, तब भक्त बनोगे। योगी भूपेन्द्रनाथ सान्याल एक बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति थे। बात के सिलसिले में उन्होंने मुझसे कहा—'आप संन्यासी हैं; मैं गृहस्थ हूँ; इसलिए मुझसे आप अच्छे हैं।' इसपर मैंने कहा—'आप अच्छे हैं; क्योंकि मुझे देखकर लोग समझेंगे कि संन्यासी होकर, घर-वार छोड़कर ही आत्म-सुख मिलता है; किन्तु आपको देखकर लोग यह समझेंगे कि गृहस्थ-आश्रम में रहकर भी यह सुख मिलता है। आपका यह सौम्य भेष है; किन्तु मेरा भयंकर।'

मैं स्वयं अपने विषय में कहता हूँ—

एक बार भागलपुर में बाबा साहब ने मुझसे पूछने की कृपा की कि तुम अपना जीवन कैसे व्यतीत करना चाहते हो, स्वावलम्बी बनकर अथवा तुलसी-सिस्टम (मधुकरी वृत्ति) से? मैंने उत्तर दिया—'तुलसी-सिस्टम से।' इस पर बाबा साहब हँसे और बोले—'संतमत के लोगों को स्वावलम्बी बनकर रहना होता है।' इसलिए मैंने बाड़ी लगायी तथा कुछ दिनों तक लड़कों को पढ़ाया। बाबा साहब के आदेशानुसार अपने पिताजी के गृह में रहने लगा; किन्तु पिताजी के घर में रहने में वे कहते थे कि 'पिताजी का कुछ काम कर दो, तब अन्न खाओ, नहीं तो खून खराब हो जाएगा।'

संन्तों ने कहा—'आत्म-सुख को प्राप्त करने के लिए भक्ति-मार्ग सरल है, इसपर चलो।' तब प्रश्न होगा—किसकी भक्ति? एक परमात्मा की। फिर प्रश्न होगा—वह ईश्वर या परमात्मा कैसा है? स्वरूपतः अव्यक्त और अचर-चररूप धारण करते हुए व्यक्त।

अचर-चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत इति वासना धूप दीजै।
— गोस्वामी तुलसीदासजी

इसलिए व्यापक तथा व्याप्य—दोनों रूप परमात्मा के हैं। व्यापक रूप अव्यक्त निर्मायिक है; किन्तु व्याप्य रूप व्यक्त तथा मायिक है। अभी हमारी योग्यता अव्यक्त को ग्रहण करने की नहीं

है, इसलिए प्रथमावस्था में स्थूल सगुण-रूप को लेकर ही भक्ति का आरम्भ करें। स्थूल सगुण रूप के लिए आप किसी अवतारी रूप—राम, कृष्ण, शिव आदि देवता, देवी, गुरु, पिता आदि किसी एक को लेकर आरम्भ करें, यह सन्तों ने कहा है। फिर यह भाव कि एक मनुष्य का इष्टदेव त्राण कर सकते हैं, परन्तु दूसरे का नहीं, ऐसा ख्याल नहीं करना चाहिए। फिर ऐसा भी ख्याल नहीं होना चाहिए कि जिस किसी व्यक्त रूप को पकड़ा है, उसी को पकड़े रहें, बल्कि उस रूप में जो व्यापक है, उसको भी पकड़ें, यह ख्याल भी अवश्य ही होना चाहिए। क्षेत्र, शरीर-पिण्ड, विश्व-विराट ब्रह्माण्ड; सब नाशवान और बदलनेवाले पदार्थ हैं, अतएव क्षर हैं। और अक्षर, जो नष्ट नहीं होता, स्थिर रहनेवाला पदार्थ है तथा इन दोनों (क्षर-अक्षर) से जो परे है, उसे पुरुषोत्तम कहते हैं। क्षर-अक्षर दोनों को ग्रहण करके फिर पुरुषोत्तम को ग्रहण करें। इस प्रकार ईश्वर को जानें। ठीक-ठीक युक्ति जानकर अभ्यास किया जाएगा, तो कभी-न-कभी अवश्य मार्ग तय होगा, चाहे हजारों कोस का रास्ता क्यों न हो! जो चलता है, घबड़ाता नहीं है, चलने में अनवरत रूप से चलता है, चाहे धीरे-धीरे ही चले, कभी-न-कभी निर्दिष्ट स्थान पर अवश्य पहुँचेगा। इसके लिए कछुए और खरहे की कथा प्रसिद्ध है—

किसी जंगल में एक खरहा रहता था। समीप ही तालाब में एक कछुआ भी रहता था। एक दिन दोनों में परस्पर भेंट हुई और दोनों ने उस जंगल को पार करने की बाजी लगायी। दोनों नियमित समय पर जंगल को पार करने के लिए अपनी-अपनी चाल से चल पड़े। खरहा छलाँग मारता हुआ बहुत आगे बढ़ गया और पीछे उलटकर देखता है, तो कछुए का कहीं पता नहीं है। खरहा मन में सोचने लगा—'भला, कछुआ कब मुझसे आगे बढ़ सकता है! अच्छा, कुछ देर इसी झाड़ी में आराम कर लूँ, फिर छलांग मारता हुआ जंगल को पार कर जाऊँगा।'

यह स्वाभाविक बात है कि चलते-चलते बैठने की, बैठने पर लेटने की तथा लेटने से सोने की इच्छा होती है। ठीक इसी तरह खरहे की हालत हुई। वह आराम करना चाहता था, लेट गया और प्रगाढ़ निद्रा में सो गया। उधर कछुआ धीरे-धीरे आ रहा था। आते-आते वह वहाँ पहुँचा, जहाँ खरहा गहरी निद्रा में बेहोश पड़ा था। खरहे को निद्रा में देखकर कछुआ दबे पैर आगे निकल गया और चलते-चलते उस जंगल को पार कर गया। जब खरहे की नींद टूटी, तब उसने चलना आरम्भ किया और चौकड़ी भरता हुआ जंगल को पार करने पर वह देखता है कि कछुआ पहले से ही वहाँ बैठा हुआ है। यह देखकर उसे बहुत लज्जा हुई और उसे नीचा देखना पड़ा। अँगरेजी की एक छोटी-सी किताब में मैंने पढ़ा था। 'Slow and steady wins the race' अर्थात् धीरे ही हो, किन्तु जो अनवरत रूप से चलता है, उसी की जीत होती है।

नचिकेता को यम ने यही उपदेश दिया था— 'हे नचिकेता! यह आत्म-दर्शन—यह तत्त्वज्ञान बहुत ही कठिन विषय है। निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचना कोई आसान काम नहीं। जिन्हें बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि मिली है, केवल वे ही उसका दर्शन कर पाते हैं, वे ही उसको समझा सकते हैं। परन्तु इसमें निराश होने की बात नहीं है। उठो, जागो और कर्म-निरत होओ। जबतक लक्ष्य पर न पहुँच सको, अपने उद्योग में शिथिलता मत आने दो।'

भक्ति-मार्ग में तीन बातों की प्रधानता है— १. स्तुति, २. प्रार्थना और ३. उपासना। ये तीनों भक्ति-मार्ग में अनिवार्य रूप से रहती हैं। इन तीनों

में किसी एक को निकाल लेने से भक्ति अधूरी हो जाती है। स्तुति कहते हैं, गुण-गान करने, बड़ाई करने को। इससे श्रद्धा होती है।

राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई।।

उनकी महानता को जानना, कहना स्तुति है। उनकी महानता को जानने से विश्वास होता है। विश्वास से प्रेम तथा प्रेम से भक्ति उत्पन्न होती है।

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगेस जल कै चिकनाई।।

— गोस्वामी तुलसीदासजी

स्तुति किए बिना कोई श्रद्धावन्त नहीं हो सकता। श्रद्धाहीन को प्रेम नहीं हो सकता तथा बिना प्रेम के भक्ति नहीं हो सकती।

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ विचार।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार।।

— कबीर साहब

प्रार्थना क्या है? माँग है। संसार के जितने जन हैं, सब कुछ-न-कुछ अपनी माँग अवश्य ही रखते हैं। जो कुछ नहीं माँगते, वे ही पूरे सन्त हैं। माँगने के लिए जाओ, तो उस विशेष प्रभु से क्या माँगोगे? भगवान श्रीराम नारदजी को वर माँगने के लिए कहते हैं, तो नारदजी कहते हैं—'जो दीजिए।' फिर कहते हैं—'आपका नाम सब नामों से बड़ा हो।' इसलिए जो माँगना हो, विचारकर माँगना चाहिए।

जो सुख सुर पुर नरक गेह बन, आवत बिनहिं बोलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत नर, समुझत नहिं समुझाये।।

कोई पशु-पक्षी पुत्र, धन, घर आदि के लिए किसी से याचना नहीं करता।

पौ फाटी पगरा भया, जागे जीवा जून।
सब काहू को देत है, चोंच समाना चून।।

परमात्मा जो चीज स्वयं देता है, उससे फिर वही (धन, पुत्र आदि) माँगने की क्या आवश्यकता है।

ऐसी दिवानी दुनियाँ, भक्ति भाव नहिं बूझै जी।।
कोई आवै तो बेटा माँगे, यही गुसाईं दीजै जी।।
कोई आवै दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।।
कोई आवै तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी।।
कोइ करावै ब्याह सगाई, सुनत गोसाईं रीझै जी।।
साँचे का कोइ गाहक नाहीं, झूठे जगत पतीजै जी।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अन्धों को क्या कीजै जी।।

— कबीर साहब

अगर माँगना चाहिए, तो वह चीज, जो अत्यावश्यक हो, जिसे कोई आदमी अथवा देवता भी नहीं दे सकते अर्थात् उस परमात्मा से उसी को माँगो।

प्रभुता को सब कोइ भजै, प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय।।

— कबीर साहब

कोई देवता ईश्वर की प्राप्ति नहीं करा दे सकते।

देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवश बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपुनपौ हारे।।

— गोस्वामी तुलसीदासजी

'उपासना' का अर्थ होता है— नजदीक आसन। यही परमात्मा की उपासना है। जिस कर्म के द्वारा परमात्मा की समीपता प्राप्त हो, उसे उपासना कहते हैं। पूजा-पाठ, जप और ध्यान ही उपासना है। मानस जप और मानस ध्यान से स्थूल में एकाग्रता होती है। जप में भी उत्तम जप वह है, जो जपते हैं, केवल वही ख्याल रहे। ध्यान तो वह है—'ध्यानं निर्विषयं मनः।' थोड़ा भी ध्यान बनता है, तो उसमें बड़ा आनन्द मिलता है। जैसे-जैसे भजन बनता जाता है, आनन्द बढ़ता जाता है। कबीर साहब कहते हैं—'भजन में होत आनन्द आनन्द।' इसके लिए यत्न जानना चाहिए और भजन करना चाहिए। आरंभ में मायिक-रूपों को लेकर चलें, फिर मायातीत स्वरूप को जानने के लिए आगे बढ़ें। माया में

रहकर अर्थात् इन्द्रिय और शरीर के संग रहकर उसे प्राप्त नहीं कर सकते, स्वयं कैवल्य दशा प्राप्त करके ही उसे ग्रहण कर सकेंगे। जहाँ यह दशा आवेगी, वहीं प्रत्यक्ष होगा। हम शरीर और इन्द्रियों से आवृत हैं, जैसे अपने शरीर को कपड़े से लपेटते हैं। अपने शरीर को देखने के लिए कपड़े को उतारकर ही देख सकते हैं। उसी प्रकार अपने निज-रूप पर से शरीर और इन्द्रियों की लपेटन को उतारकर ही उसको देख सकते हैं। भजन करने की रीति गोस्वामी तुलसीदासजी इस प्रकार बतलाते हैं—

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनन्त।।

तीन अवस्था अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। इन तीनों अवस्थाओं को पार करो, तब क्या होगा? चौथी अवस्था आवेगी, जिसे तुरीय कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी इसी तुरीय अवस्था में रहकर ध्यान-भजन करने कहते हैं। जो इस अवस्था को प्राप्त नहीं करता तथा इस अवस्था से भी आगे तुरीयातीत अवस्था को नहीं प्राप्त करता, उसके लिए परमात्म-स्वरूप अप्राप्त ही रहेगा। तीनों अवस्थाओं को छोड़कर भजन करना ही असली उपासना है।

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनन्द बढ़ावै।।
बिनु शीश नवै जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिये रहै।
मिलि परमातम सों आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

— सन्त सुन्दरदासजी

यह परा भक्ति है। इस भक्ति में बिना कान के शब्द सुनते हैं, बिना आँख के रूप देखते हैं, बिना जिह्वा के उच्चारण करते हैं, बिना पैर के नृत्य करते हैं, बिना हाथ के ताल बजाते हैं और शरीर-रहित होकर संग होते हैं; इसमें बहुत आनन्द होता है। अपने सेव्य को बिना सिर के नवते हैं आदि ...। ये बातें बड़ी विचित्र मालूम होती होंगी, किन्तु विचारने पर ये बातें ठीक-ठीक जँचती हैं। आप कौन हैं? आपका निज स्वरूप यही है—

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।।२२।।

— कठ, द्वितीय वल्ली, अध्याय १

आप शरीर में शरीर-रहित तथा अनित्यों में नित्य हैं। शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण) रूप कुरतों को हटाकर आप अकेले हो जाइए, तब उसको (परमात्मा को) कहीं खोजना नहीं पड़ेगा। इसलिए जिस उपाय से हो, अपने ऊपर के इन सब आवरणों को उतारिए, तभी कल्याण है। इसके बिना कल्याण नहीं।

हमलोग चाहते हैं कि इस कर्म में शीघ्र सफलता मिले, तुरत कैवल्य दशा प्राप्त कर परमात्मा का साक्षात्कार कर लें। यह इच्छा तो बहुत अच्छी है; किन्तु यह तो विचारिए कि कोई विद्यार्थी विद्यालय में भर्ती होने पर तुरत ही सब विद्याओं को सीख लेता है? विद्यालय में भर्ती होने पर तुरत सब विद्याओं को सीख लेना चाहे, तो कैसे होगा ? लेकिन हाँ, थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते-करते वह बड़ा विद्वान हो जाता है। उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा ध्यानाभ्यास नित्य नियमित रूप से कीजिए, अवश्य सफलता मिलेगी तथा कभी-न-कभी परमात्मा का साक्षात्कार भी अवश्य ही होगा। यह एक जन्म की बात नहीं है—

अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति परां गतिम्'। —गीता

किन्तु इसके लिए ऐसा नहीं करना चाहिए कि अच्छा, आज नहीं, कल करूँगा।

आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल।

आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल।।

बल्कि ऐसा होना चाहिए—

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगा, बहुरि करैगा कब्ब।।

यह प्रवचन जिला सासाराम में श्रीभरतभुआल सिन्हा के यहाँ दिनांक ६.२.१९५१ ई० के सत्संग में हुआ था। ❐

१३. बंदीगृह में स्वतंत्रता नहीं

प्यारे लोगो!

हमलोगों के सत्संग से ईश्वर-भक्ति का प्रचार होता रहता है। इसी विषय का हमलोग मनन करते रहते हैं। ईश्वर-भक्ति में तीन बातें परमावश्यक रूप से होती हैं— स्तुति, प्रार्थना और उपासना। इन तीनों में से किसी को हटाने से भक्ति पूरी नहीं होती। इसलिए हमलोग नित्यप्रति नियमित रूप से इन तीनों कामों को करते रहते हैं।

सन्तों के वचनों का पाठ किस उद्देश्य से किया जाता है? यही कि हमलोग जानें कि इस देश में हमारे पहले जो बड़े-बड़े साधु, सन्त, महात्मा, अवतार वगैरह हुए हैं, उनका विचार ईश्वर और उनकी प्राप्ति के विषय में क्या है? इसीलिए हमलोग अवतारों और सब संतों की वाणियों का पाठ सत्संग में किया करते हैं। मुक्तिकोपनिषद् भारती-सन्तवाणी से पहले की है। इसमें श्रीराम हनुमानजी को उपदेश देते हैं—'नित्यानन्द प्राप्त करने के हेतु ईश्वर की भक्ति करके मुक्ति को प्राप्त करो।'

जीव शरीर और संसार में बन्दी हो गया है, उसका इससे छूट जाना उसकी मुक्ति है। इस बन्दीगृह में पड़े रहने से स्वतंत्रता नहीं है। स्वतंत्रता नहीं रहने से अवश्य कष्ट होता है। शरीर और इन्द्रियों के घेरे में रहने से चेतन-आत्मा विषयों की ओर रहती है। विषयों में रहने से चंचलता रहती है और तृष्णा बढ़ जाती है। चेतन-आत्मा तृष्णा की डोरी पर दौड़ती रहती है; फिर शान्ति, तृप्ति और मुक्ति कहाँ? इसी शान्ति, तृप्ति और मुक्ति के लिए कहते हैं कि चित्त की वृत्ति का निरोध करो। शरीर में रहते हुए इसका निरोध होने पर जीवन्मुक्ति तथा शरीर छूटने पर विदेहमुक्ति होती है।

पुनः श्रीराम ने बताया—'मेरे स्वरूप का ध्यान करो। मेरा स्वरूप अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अविनाशी, अस्वाद, अगन्ध, अनाम और गोत्रहीन, दुःख-हरण करनेवाला है, मेरे इस तरह के रूप का नित्य भजन करो।'

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनामगोत्रं ममरूपमीदृशं भजस्व नित्यं पवनात्मजार्तिहन्।।

इस ध्यान में बड़ी एकाग्रता की जरूरत है; क्योंकि एकाग्रता में सुरत का सिमटाव, सिमटाव में उसकी ऊर्ध्वगति और ऊर्ध्वगति से ही मायिक आवरणों से पार कर परमात्म-स्वरूप का ग्रहण हो सकेगा। चित्त-धर्म-निरोध वा एकाग्रता के लिए प्राण-स्पन्दन और वासना; इन दोनों में से किसी एक को रोको। प्राण का हिलना बन्द करो, तो वासना नष्ट हो जायगी और वासना रोकने पर प्राण-स्पन्दन रुक जायगा। इसके लिए एकतत्त्व का दृढ़ अभ्यास करो। ऐसा करने से जैसे बहुत जाड़े के समय (हेमन्त ॠतु) में कमल का नाश हो जाता है, इसी तरह जो एकतत्त्व का दृढ़ अभ्यास करेगा, तो वह काम-वासना का नाश करेगा और वही परमात्मस्वरूप को प्राप्त कर परम शान्ति को भोगेगा।

इसके लिए अध्यात्म विद्या की शिक्षा, साधु-संग, वासना-परित्याग तथा प्राणस्पन्दन-निरोध—ये चार बातें आवश्यक हैं। इन चार बातों को त्यागकर जो हठात् ही चित्तवृत्ति का निरोध करना चाहता है, वह इस काम में असफल होता है। जिस प्रकार कमल-नाल में बहुत कोमल सूत होते हैं, उनमें मस्त हाथी को नहीं बाँध सकते, उसी प्रकार दुराग्रह से मन को नहीं रोक सकते। प्राण-स्पन्दन-निरोध तथा सुरत के पूर्ण सिमटाव के लिए एकविन्दुता प्राप्त करो। मन की एकविन्दुता में एक-ही-एक का ग्रहण होता है। इसी में ध्यान स्थिर होता है, इसी में ज्ञान की वृद्धि होती है और बढ़ते-बढ़ते जहाँ तक बढ़ना चाहिए, बढ़ जाता है। इससे मोक्ष मिलेगा, जिसमें एक परमात्मा का स्वरूप ही रह जाता है। तब संसार को देखते हुए भी साधक ब्रह्म को ही देखता है, तब वह ब्रह्म-स्वरूप ही हो जाता है।□

यह प्रवचन बाँका जिला, मंदार पहाड़ पर श्रीकीर्तिनारायण सिंह द्वारा आयोजित दिनांक ३१.३.१९५१ ई० के प्रातःकाल के सत्संग में हुआ था।

१४. घूँघट का पट खोल रे

प्यारे लोगो!

मैं बड़े लोगों से कुछ उपदेश-वाक्य कहूँ, यह योग्यता मुझमें नहीं। इसलिए मैं उनको सम्बोधित नहीं करता, वे केवल मेरी निगरानी करें कि मेरे कहने में जो त्रुटि हो, उसे वे कृपया सुधार दें।

नई बात एक भी नहीं, सब पुरानी बातें हैं। केवल लिखने-कहने का तर्ज कुछ अलग-अलग है। हमलोगों ने गुरु महाराज के उपदेश से यही समझा है कि सन्तों की वाणियों को पढ़ना और समझना चाहिए। पहले हमको चाहिए कि सन्तों की वाणियों को पढ़ें, सुनें और समझें। जब इससे कर्तव्य कर्म का निर्णय हो जाय, तब उसको करें। केवल वाक्य-ज्ञान को ही धरे रहने से कर्तव्य करके जो फल प्राप्त होता है, सो नहीं मिलेगा।

वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण भव पार न पावइ कोई।
निशि गृह मध्य दीप की बातन्हि तम निवृत्त नहिं होई।।
—गोस्वामी तुलसीदास

तेल तूल पावक पुट भरि धरि बनै न दिया प्रकाशत।
कहत बनाय दीप की बातें कैसे हो तम नाशत।।
—सूरदासजी

सन्त-वचन के अनुकूल कर्म करने का जो महत्व है, केवल कहने-सुनने का वह महत्व नहीं है। मैं सन्त कबीर साहब, गुरु नानक साहब, गोस्वामी तुलसीदासजी तथा तुलसी साहब के पद्यों को गाकर आपलोगों को सुनाता हूँ और यथासाध्य इनके आशयों को भी आपके सामने रक्खूँगा। आपलोग कृपा कर सुनें—

घूँघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।
घट-घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे।।
धन यौवन का गर्व न कीजै, झूठा पँच रंग चोल रे।
शून्य महल में दियना बारि ले, आशा से मत डोल रे।।
जोग जुगत से रंग महल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।।
—सन्त कबीर साहब

सब किछु घर महिँ बाहरि नाहीं,
बाहरि टोलै सो भरमि भुलाहीं।
गुर परसादी जिनी अन्तरि पाइआ,
सो अन्तरि बाहरि सुहेला जीउ।।
झिमि-झिमि बरसै अंम्रित धारा,
मनु पीवै सुनि सबदु विचारा।

अनद विनोद करे दिन राती,
सदा सदा हरि केला जीउ।।
जनम जनम का बिछुड़िआ मिलिआ,
साध क्रिपा ते सूका हरिआ।
सुमति पाए नामु धिआए,
गुर-मुखि होए मेला जीउ।।
जल तरंग जिउ जलहि समाइआ,
तिउ जोती संग जोति मिलाइआ।
कहु नानक भ्रम कटे किवाड़ा,
बहुरि न होइऐ जउला जीउ।।
—गुरु नानक साहब

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानइ, सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।
— गोस्वामी तुलसीदासजी

आली अधर धार निहार निजकै। निकरि सिखर चढ़ावहीं।।
जहाँ गगन गंगा सुरति जमुना। जतन धार बहावहीं।।
जहाँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि। धुर गुरू गति गावहीं।।
जहाँ सन्त आस विलास बेनी। विमल अजब अन्हावहीं।।
कृत कुमति काग सुभाग कलिमल। कर्म धोइ बहावहीं।।
हिय हेरि हरष निहार घर कौ। पार हंस कहावहीं।।
मिलि तूल मूल अतूल स्वामी। धाम अविचल बसि रही।।
आली आदि अन्त विचारि पद कौ। तुलसी तब पिउ की भई।।
— तुलसी साहब

अब यथासम्भव इन शब्दों के आशयों को कहता हूँ। कोई पुजारी जैसे प्रसाद बाँटते हैं, वैसे ही मैं सन्तों की वाणियों की प्रसादी देता हूँ। इससे बड़ा कल्याण होगा, मुझे बड़ा विश्वास है। जो संतवचनामृत का सेवन करते हैं अर्थात् उनके वचनों का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करके आदर करते हैं, उनका परम कल्याण होता है। इसमें किसी को रंच मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए। सन्तपद से ऊँचा कोई और हो, मैं नहीं जानता।

सन्त भगवन्त अन्तर निरन्तर नहिं,
किमपि मति विमल कह दास तुलसी।।
— तुलसीदासजी

परम पुरुष की आरसी, साधुन की ही देह।
लखा जो चाहे अलख को, इनही में लखि लेह।।
— सन्त कबीर साहब

शान्ति-पद प्राप्त करनेवाले को सन्त कहते हैं। शान्तिपद को ही परमात्मा का पद कहते हैं, इससे ऊँचा पद नहीं है। यह जानकर 'सन्त कबीर साहब' शब्द मेरे मुँह से निकलता है। गृहस्थी भेष छोड़कर किसी अन्य प्रकार का विशेष भेष बनाने से कोई सन्त नहीं होता। आत्मोन्नति के शिखर पर पहुँचनेवाले को सन्त कहते हैं। इसकी पहचान कठिन है—'जो कोइ कहै साधु को चीन्हा। तुलसी हाथ कान पर दीन्हा।।' (तुलसी साहब)। केवल भेष बना लेने से नहीं होता है—'अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कवि कोविद योगी।।' (गोस्वामी तुलसीदासजी)। ये होते हैं सन्त। यह बड़ा गुण है।

सन्त कबीर साहब कहते हैं कि घूँघट का पट खोलो, परमात्मा मिल जायेंगे। घूँघट—इस चेतन आत्मा पर शरीर-रूप घूँघट लगा हुआ है। केवल यह स्थूल शरीर ही नहीं, सूक्ष्म, कारण, महाकारण भी, जो क्रमशः एक के अन्दर एक वा एक के ऊपर एक है। हमलोगों के यहाँ श्राद्ध-क्रिया होती है। इस क्रिया से क्या विश्वास होता है? आत्मा की अमरता या नित्यता और शरीर की नश्वरता या अनित्यता। शरीर में रहनेवाला अमर है, वह नहीं

मरा है; शरीर छोड़कर कहीं चला गया है और शरीर मरकर नष्ट हो गया है। श्राद्ध-क्रिया से यह वेदान्त-ज्ञान जाना जाता है। आप यह भी कह सकेंगे कि इस स्थूल शरीर से जीवात्मा मुक्त, और शरीर निकल गए। सावित्री और सत्यवान की कथा सब कोई जानते ही हैं। यमराज सत्यवान के स्थूल शरीर से लिंग अर्थात् सूक्ष्म शरीर निकालते हैं और सती सावित्री की प्रार्थना पर उस सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर में प्रविष्ट कर देते हैं। स्थूल शरीर फिर जीवित हो जाता है। इस कथा में यही व्यक्त किया गया है कि शरीर के अन्दर दूसरे शरीर भी हैं। नारी जाति अबला नहीं, सबला है। यमदूत सती सावित्री के पास नहीं जा सका। पातिव्रत्य धर्म का पालन कर नारी प्रचण्ड सबला हो जाती है। इसलिए स्त्रियाँ इस व्रत का अच्छी तरह पालन करें। सूक्ष्म हो, कारण नहीं हो, यह हो नहीं सकता। फिर महाकारण के बिना कारण भी नहीं हो सकता। ये ही चार जड़ शरीर हैं, ये ही घूँघट हैं, इन्हीं को उतारो। यहाँ संसार में शरीर पर कपड़ा नहीं रहने से शरीर असुन्दर लगता है; किन्तु चेतन-आत्मा के ऊपर से जड़ शरीर-रूप सब कपड़े उतर जायँ, केवल 'चिदानन्दमय देह तुम्हारी' रह जाय, तो सुन्दरता की विशेषता का पूछना ही क्या! अलौकिक सुन्दरता से चेतन-आत्मा शोभायमान हो जाती है।

इस मनुष्य-जीवन का खास काम है—परमात्मा को पहचानना। मैं संतालपरगना के गोड्डा डिविजन के कई ग्रामों में सत्संग-सेवा करता हुआ भागलपुर पहुँचने के लिए पंजवारा बाजार होकर एक बार यात्रा कर रहा था। वहाँ के कुछ बनिये भाइयों ने मुझसे कहा—'कुछ कहिए।' मैंने कहा—'रास्ते चलते?' अच्छा सुनिए—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वरगउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।

—गोस्वामी तुलसीदास

मनुष्य-शरीर का यह फल नहीं है कि विषय-सुख में लगे रहो। यहाँ का क्या, स्वर्ग का सुख भी थोड़ा ही है और अन्त में दुःख देनेवाला है। यह बात कहने में तो थोड़ी ही है; किन्तु सब बातें इसी के अन्दर हैं। विषयों को कैसे छोड़ा जाय? जिन इन्द्रियों से विषयों को भोगते हैं, उन इन्द्रियों से अपने को ऊपर उठाओ, घूँघट के पट से अपने को छुड़ाओ। यही तो करना है। यह साधन द्वारा होता है और परमात्मा में अत्यन्त रत होना भी तभी हो सकता है। प्रभु से मिलने का जिसको शौक नहीं है और जिसको विषयों में अधिक आसक्ति है, उसे ईश्वर में विश्वास रखने पर भी उससे मिलने के साधन करने में वह कमजोर रहता है।

अब आगे सन्त कबीर साहब उपदेश देते हैं— किसी से कड़ुवा वचन मत कहो; क्योंकि सब घटों में प्रभु विराजते हैं। जब किसी को कड़ुवा वचन न कहो, तब किसी के लिए अप्रिय कर्म करो, यह कब संभव है? धन और जवानी का घमण्ड मत करो; यह पंचरँगा—पाँच तत्त्वों का चोला नाशवान है। शरीर की नश्वरता का दृश्य तो सदा से सब अवस्थाओं में देखा जाता रहा है।

नहँ बालक नहँ यौवने, नहँ बिरधी कछु बन्ध।
वह अवसर नहिं जानिए, जब आय पड़े यम-फन्द।।

--गुरु नानकदेव

किस समय शरीर छूट जाएगा, इसका ठिकाना नहीं। जितने बच्चे और जवान मर गए हैं, आज उतने संसार में नहीं हैं। बूढ़े का तो कहना ही क्या? बूढ़े के लिए तो लोग कहते हैं, 'ये अब जायेंगे।'

अपने देश में बँटवारा होने के लिए जो साम्प्रदायिकता का भाव लेकर एक सम्प्रदाय के लोगों ने दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को कष्ट पहुँचाया, उसमें धन-जन को कितनी हानि हुई है और कैसे-कैसे परिणामों को लोगों ने देखा है, सो धन-

जन की नश्वरता का दृश्य अभी लोग भूल गए हों, संभव नहीं है। अब चीन के पूर्व कोरिया देश उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर युद्ध की प्रचण्डता से बार-बार रौंदा जा रहा है। वहाँ धन-जन का क्या ठिकाना है, सोचने-योग्य है।

कबीर साहब के उपर्युक्त उपदेश से शरीर तथा संसार-सुख से आसक्ति छूटती है, मन विषयों की ओर से फिर जाता है। तब घूँघट-पट खोलने के कामों में मन लगता है। सन्तों की वाणियों से उपर्युक्त काम करने के लिए बहुत प्रेरणा मिलती है। मन में संसार की ओर से विरक्ति आती है। बिना इस विरक्ति के जो घूँघट-पट खोलने का काम करता है, वह सफल नहीं होता है। आगे उक्त यह उपदेश है—

शून्य महल में दियना बारि ले, आशा से मत डोल रे।

शून्य-महल क्या है? आपके मन से सब ख्याल चले जायँ। बाहर संसार में शून्य-महल नहीं पा सकते। अंदर की ओर अवलोकन करें, बाहरी ख्यालों को छोड़ दें, तो शून्य-महल हो जाता है। गुरु भेद से अवलोकन करो, अवश्य चिराग जलेगा। सूर्यमुखी पत्थर को सूर्य की किरणें पार करती हुई एक विन्दु होकर जहाँ स्थिर होती हैं, वहाँ आग जल जाती है। दृष्टियोग साधन-रूप चकमक पत्थर से निकलती हुई दृष्टि-धार की एकविन्दुता के स्थिर रहने पर ब्रह्म-तेज का दीपक अवश्य ही बलता हुआ दीखता है। करके देखो, यह अवश्य होगा। कथित अभ्यास से सिमटाव होगा, सिमटी हुई सुरत अन्धकार को पार कर जाएगी। (क्योंकि सिमटाव में ऊर्ध्वगति स्वाभाविक है) और वह अवश्य कथित प्रकाश को देखेगी। दृष्टि की स्थिरता के बिना एकविन्दुता नहीं होगी, और उसके बिना पूर्ण सिमटाव नहीं होगा, और पूर्ण सिमटाव के बिना ऊर्ध्वगति नहीं होगी। ऊर्ध्वगति होगी, तब अन्धकार से पार हो जाओगे। कबीर साहब का यह वचन सत्य है। जाँचने पर प्रत्यक्ष है। गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

अन्तरि जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा ।

दियना बलेगा, प्रकाश मिलेगा, इस आशा से डोलो मत। कर्म बनेगा, प्रकाश की प्राप्ति होगी। आशा छोड़नेवाला कर्म करना छोड़कर बैठ जाता है, तब होने-योग्य काम भी वह नहीं कर सकता है। इसलिए उपर्युक्त फल प्राप्त करने की आशा से डोलो मत अर्थात् इस आशा को दृढ़ हो धरे रहो और उसके लिए कथित साधन को करते रहो। कहा गया साधन योग की युक्ति है। योग की महिमा बड़ी है। और शास्त्र वचन-द्वारा निरूपण करके छोड़ देते हैं; किन्तु योग प्रत्यक्ष करानेवाला है। इसी से परमात्मा की प्राप्ति होती है। भाई! केवल ज्योति की ही महिमा नहीं है, अनहद ढोल भी बजता है, जिसकी ध्वनि मिलने पर नित्यानन्द की प्राप्ति हो जाती है। उपनिषदों में भी ज्योति को पार करके शब्द-धारण कर परमात्मा की प्राप्ति का होना लिखा है; यथा—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मूखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

— ईशावास्योपनिषद्

अर्थात्—आदित्य-मण्डलस्थ ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका हुआ है। हे पूषण! मुझ सत्यधर्मा को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिए तू उसे उघाड़ दे।

विन्दुपीठं विनिर्भिद्य नादलिंगमुपस्थितम्।

— योगशिखोपनिषद्

अर्थात्— विन्दु-पीठ का भेदन करके नाद-लिंग उपस्थित होता है।

बीजाक्षरं परं विन्दु नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

— ध्यानविन्दूपनिषद्

अर्थात्—परमविन्दु ही बीजाक्षर है, उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अनाश ब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है।

तदेतद्दृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुस्यः श्रुतो भवति।

— छान्दोग्योपनिषद्, अध्याय ३, खण्ड १३

अर्थात्— इस तरह उसे देखा भी, और सुना भी, अतः चक्षुस्य और श्रुत, दोनों से उसकी उपासना करनी चाहिए।

प्रभा शून्यं मनः शून्यं बुद्धि शून्यं चिदात्मकम्।
अतद्व्यावृत्तिरूपोऽसौ समाधिर्मुनिभावितः।।

— मुक्तिकोपनिषद्, अध्याय २

अर्थात्— ज्योति, मन तथा बुद्धि-रहित होकर केवल चैतन्य आत्मा ही रहे, यह अतद्व्यावृत्ति (जिसको किसी दूसरे की आवश्यकता न हो) समाधिस्थ मुनियों से अभिलषित है।

जहाँ प्रभा नहीं है, वहाँ क्या है? वहाँ केवल शब्द-ब्रह्म (प्रणव-ध्वनि, अनाहत नाद, सारशब्द, सत्यनाम, रामनाम) है।

अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।

— योगशिखोपनिषद्

अर्थात्—अक्षर (अनाश) परम नाद को शब्द ब्रह्म कहते हैं। यही शब्द सुरत को प्रभु तक ले जाता है।

कबीर साहब के उपर्युक्त थोड़े-से पद्य में परमात्म-प्राप्ति-विषयक बातें समाप्त हैं।

बाबा नानक के पद्य के आशय ये हैं—बाहर में क्यों खोजते हो, सब कुछ तुम्हारे अन्दर है। बाहर में जो टटोलता है, वह भ्रम में भूला रहता है। गुरु की दया से जो अन्तर में अपने प्रभु को पाता है, उसके लिए अन्दर और बाहर सुहावना प्रत्यक्ष रहता है। बाहर में जो कुछ प्राप्त होता है, वह इन्द्रियों के द्वारा ही; परन्तु अन्दर में इन्द्रियों से छूटकर जड़-विहीन हो कैवल्य दशा में इन्द्रियातीत प्रभु से मिला जाता है। जो अन्दर में प्रवेश करता है, वह अमृत (जो शरीर को जिलाता है— चेतन) को प्राप्त करता है। चेतन दो प्रकार में लक्षित होते हैं, पहले प्रकाश-रूप में, फिर शब्द-रूप में। प्रकाश और शब्द से ज्ञान होता है, इसलिए इसको चेतन वा अमृत-रूप मानते हैं। अन्दर में इस अमृत की धारा की वर्षा होती है, जिसको साधक प्रत्यक्ष पाता है और पीता है। तब वह हरि के साथ आनन्द-विनोद करता है। उससे जो प्रभु अनेक जन्मों से बिछड़ा हुआ था, सो साधु की कृपा से मिल गया। यह कैसा हुआ ? जैसे सूखा वृक्ष हरा हो जाय। गुरुमुख—गुरु की बुद्धि के अनुकूल चलनेवाले को सुबुद्धि मिलती है; वह नाम— शब्दब्रह्म का ध्यान करता है और उसको हरि—परमात्मा से मिलाप होता है। जैसे जल की लहर जल में लीन हो गयी, उसी तरह ज्योति के संग में ज्योति मिल गई। चेतन-आत्मा उस परमात्मा का ढेव रूप है, सो उसमें मिल गई। गुरु नानक कहते हैं कि भ्रम का किवाड़ कट गया, फिर बन्धन नहीं होगा।

गुरु नानकदेव अन्तर में ढूँढ़ने कहते हैं। अन्तर में ढूँढ़ने से सन्त कबीर साहब-कथित 'घूँघट पट' निःसंशय उतरेगा। इसलिए सन्त कबीर साहब और गुरु नानक साहब के ख्यालों में ईश्वर और मोक्ष की प्राप्ति के लिए एक ही विचार प्रत्यक्ष मिलता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज का यह शब्द 'रघुपति भगति करत कठिनाई' भी आपलोगों ने सुना। ये ईश्वर की भक्ति को कभी 'कठिनाई' और कभी 'असि हरि भगति सुलभ सुखकारी' भी कहते हैं। कहीं रोचक, कहीं भयानक तथा कहीं यथार्थ वचन कहते हैं। रोचक में 'सुलभ सुखकारी' है। परन्तु यथार्थ में तो 'रघुपति भगति करत कठिनाई' ही है; क्योंकि इस बात को भक्ति-साधन में पूर्ण भक्त जानता है कि साधन में अनेक कर्म करने पड़ते हैं, इसलिए भक्ति करने में कठिन है। फिर कहते हैं—घबड़ाते क्यों हो? जो जिस कला में कुशल होता

है, उसके लिए वह सदा सुलभ और सुखकारी होती है। कुशल होना क्या है? कोई भी किसी विद्या या कार्य में तुरत ही कुशल वा प्रवीण नहीं हो जाता, बारम्बार उसका अभ्यास करते-करते होता है। पहले एक अक्षर लिखने में हाथ कितना टेढ़ा हो जाता है! फिर लिखते-लिखते पूर्ण अभ्यस्त होने पर सुलभ हो जाता है और सुन्दर-से-सुन्दर अक्षर लिख सकता है। उसी प्रकार बारम्बार के अभ्यास से भक्ति सुलभ हो जाएगी। छोटी-सी-छोटी मछली जल के सम्मुख-प्रवाह में भाठे से सीरे की ओर चली जाती है, लेकिन यह काम हाथी नहीं कर सकता। मछली को इसका अभ्यास है। चीनी के बालू में मिश्रित हो जाने पर बालू से फुटाकर उसे निकालना अत्यन्त कठिन है, किन्तु छोटी चींटी बहुत सुलभता से निकाल लेती है। सब दृश्यों को अपने पेट में घुसाकर नींद को छोड़कर योगी सो जाता है अर्थात् सारे ब्रह्माण्ड का दृश्य वह अपने अन्दर में रहते हुए देखता है। हाथी—फैली हुई सुरत। तमाम शरीर में फैली हुई सुरत हाथी है। सिमटी हुई सुरत सफरी मछली और सूक्ष्म पिपीलिका है। वह ब्रह्माण्डी चेतन धारा को पकड़कर ऊपर को चल देगी। यह योग के अन्दर की बात है। बालू जड़ है, चीनी चेतन है। अगर चींटी बनो अर्थात् सिमटाव हो तो जड़ छोड़कर चेतन को ग्रहण करोगे। तब क्या होगा? योगी हो जाओगे। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति को छोड़कर ऊपर उठ जाओगे। नींद को छोड़कर अर्थात् सुषुप्ति से ऊपर उठकर बाहर संसार और शरीर से वह बेखबर है, गोया निद्राह नींद में सो गया है। ऐसा भजन करनेवाला ही परमात्म-पद का प्रत्यक्ष सुख प्राप्त करता है। वह द्वैत को अत्यन्त कर त्यागनेवाला होता है। वहाँ शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन-रात तथा देश-काल कुछ भी नहीं है। इस दशा में नहीं पहुँचनेवाले का संशय निर्मूल होकर नष्ट नहीं होता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज भी भक्ति-साधन में अन्दर में प्रवेश करने को ही आवश्यक बतलाते हैं। इस प्रकार इनका विचार भी कबीर साहब और गुरु नानक साहब के भक्ति-साधन के विचारों से पूर्णरूपेण मिल जाता है। अन्तर्मुख हो अन्तर में प्रवेश करनेवाले का घूँघट-पट खुलेगा, इसमें संशय नहीं है। क्या कबीर साहब, क्या गुरु नानक साहब और क्या गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज; सबका यही उपदेश है कि घूँघट का पट खोलो, तो तुमको प्रभु मिलेंगे। यही सब सन्तों का विचार है। उनकी ओर से यही प्रसाद है, इस प्रसाद को पावें केवल सुनने से पाना नहीं होता, इसके लिए युक्ति प्राप्त कर साधना करें, तब पाना होगा।

तुलसी साहब का तो कहना ही क्या? ये तो अपने प्रत्येक शब्द से अन्तर में प्रवेश कर भक्ति करने को बताते हैं। ये कहते हैं—ब्रह्माण्ड-स्थित निज चेतना- त्मक गगन-धारा को पिण्ड से निकलकर अर्थात् पिण्ड के ऊपर उठकर देखो वा धारण करो। यह कथित धारा परम पावनी गगन-गंगा है। अपने को यमुना-धारावत् इसमें मिला दो। यह मिलन-स्थान प्रयागराज का तीर्थस्थान है। इस मिलन में गंगा-धारा की ध्वनि आदिगुरु—गति की खबर देती है। सन्त लोग इसी मिलन-स्थान के त्रिवेणी तीर्थ में पवित्र स्नान करके सारे कर्म-बन्धनों को धोकर बहा देते हैं और 'तूल मूल अतूल स्वामी' से मिल जाते हैं।

इस कर्म को करते हुए आप अपने को रामानन्दी, कबीर-पंथी, नानक-पन्थी और दरिया-पंथी आदि किसी पंथ का मानिए, तो अवश्य ही आप उस पंथ के यथार्थ पंथी हैं।

परम श्रद्धेय सद्गुरु बाबा देवी साहब ने एक पत्र मुझे लिखा था—'पहले तुम दरिया-पंथी थे, अब समुद्र-पंथी हो गए।' उनके इस कृपामय वचन की यथार्थता मुझे प्रत्यक्ष-सी ज्ञात हो रही है; क्योंकि उनकी कृपा से संतों के परमानन्ददायक

वचन-समूह के समुद्र में मैं अपने को पाता हूँ। और सब संतों का एक ही पंथ उस परमानन्द-सिन्धु में गुरु-कृपा से मुझे दर्शित हो रहा है।

श्री गुरु महाराज ने प्रत्यक्ष में अनेक पंथ-से ज्ञात होने योग्य बातों में एक ही पंथ का दृढ़ता से बोध करा दिया है। गुरु धन्य हैं! गुरु धन्य हैं!!□

यह प्रवचन बाँका जिला, मंदार पहाड़ पर श्रीकीर्तिनारायण सिंह द्वारा आयोजित दिनांक ३१.३.१९५१ ई० के रात्रिकाल के सत्संग में हुआ था।

१५.संतवाणियों के अनुकूल चलें

प्यारे लोगो!

हमलोग सत्संग करने के लिए यहाँ पर एकत्र हुए हैं। सत्संग में सन्तों की वाणियों को पढ़ते-समझते हैं। परम श्रद्धेय बाबा देवी साहब जी द्वारा प्रचारित इस सन्तमत (सन्तमत के अनेक प्रचारक पहले हो चुके हैं। परन्तु उन प्रचारकों के नामों पर अलग-अलग पन्थ या सम्प्रदाय भारत में वर्त्तमान हैं; जैसे कबीर-पन्थ, नानक-पन्थ, दरिया-पन्थ और राधा स्वामी-पंथ आदि।) सत्संग का इस प्रान्त में सन् १८९२ या १८९६ ई० से आरम्भ हुआ है। और उसी समय इसकी नींव भागलपुर में पड़ी तथा वहीं से प्रचार भी हुआ। अवश्य ही उस समय पटने में भी सत्संगी थे, किन्तु उनलोगों ने प्रचार करने की कोशिश नहीं की। पटने में एक बंगाली डॉक्टर सत्संगी थे। श्री गुरु महाराज के साथ पटना जाने पर मैंने उन्हें देखा था। अब ऐसा मालूम होता है, जैसे पटने में अपने सत्संगी ही नहीं हैं। (यह प्रवचन आज से कई वर्ष पूर्व का है।) गुरु महाराज का उपदेश है। 'सन्तवाणियों को पढ़ो, समझो और उनके अनुकूल चलो।' इतने दिनों में मैंने कोई नयी बात सुनी हो या मुझे कोई नयी उक्ति आयी हो, तो मेरा ज्ञान कहता है— नहीं सब बातें पुरानी ही हैं। जिस ज्ञान को ऋषियों तथा सन्तों ने कहा, उसे ही बुद्धि-वचन के फेर-फार में लाकर दूसरे ढंग से औरों ने भी बताया। इसका मतलब यह नहीं कि पुरानी बातों को ही मानें, नयी को नहीं। यदि नयी बातों से लाभ हो, तो क्यों न मानें? किन्तु सन्तमत की सब बातें पुरानी हैं, जिन्हें सन्तों ने वचन-रूप में हमलोगों के लिए रख दिया है। लोग संसार के सब दुःखों से छूट जायँ, इसी विशेष अभिप्राय से सन्तों ने उपदेश दिया है।

सन्त पन्थ अपवर्ग कर, कामी भव कर पन्थ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रन्थ।।
— गोस्वामी तुलसीदासजी

सन्तों का मार्ग मोक्ष में पहुँचाने का है। उनका मार्ग संसार-सागर को पार करने के लिए, संसार के सारे बन्धनों से छूट जाने के लिए है। उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि वर्णभेद से, जाति-भेद से या देश-भेद से कोई इसके योग्य है वा कोई इसके योग्य नहीं है; किन्तु हाँ, आचरण-भेद से योग्य वा अयोग्य अवश्य है। गुरु महाराज कहते थे— 'जिसको भजन करने के लिए दो घण्टे की भी फुर्सत न हो, उसे भजन-अभ्यास मत बताओ।' संसार में उत्तम ढंग से बरतो। जो कोई उत्तम ढंग से बरतते हैं, वे चाहे नर हों या नारी,

आनन्द-ही-आनन्द में रहेंगे। 'कहै कबीर निज रहनि सम्हारी। सदा आनन्द रहै नर नारी।।' संसार में रहने का अच्छा ढंग है—'व्यभिचार, चोरी, नशा, हिंसा और झूठ; इन पाँच पापों को त्याग कर रहो।' इस तरह संसार में बरतने से संसार तथा परलोक, दोनों में आनन्द से रहोगे। परलोक कहने का तात्पर्य केवल स्वर्ग-वैकुण्ठादि ही नहीं, बल्कि मोक्ष-धाम तक से है। सन्तलोग भजन करने के लिए घर छोड़ने को नहीं कहते। वे कहते हैं—

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।।टेक।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि बन नहिं जावै ।
वन के गये कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ।।
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ।।
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ।
सुरत निरत सों मेला करिके, अनहद नाद बजावै ।।
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै ।
कहै कबीर सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै ।।
— कबीर साहब

नानक सतिगुरु भेटिऐ पूरी होवै जुगती ।
— गुरु नानक

यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि 'सन्तों का भेद और पंडितों का वेद' दोनों में बड़ा संबंध है। यदि दोनों हैं, तो सोने में सुगन्ध है। 'वेद' का अर्थ ज्ञान और 'भेद' रहस्य वा मर्म को कहते हैं। इसी को योगयुक्ति भी कहते हैं।

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि।।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्।।
—योगशिखोपनिषद्

योग-हीन ज्ञान मोक्षप्रद भला कैसे हो सकता है? उसी तरह ज्ञान-रहित योग भी मोक्षकार्य में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए ज्ञान और योग; दोनों का दृढ़ता के साथ अभ्यास मुमुक्षु को करना चाहिए।' सन्तों की वाणी और सत्संग में ज्ञान और योग प्राप्त होते हैं। गुरु नानक कहते हैं—

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे।
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु बखाणे।।
रहहि इकांति एको मनि बसिआ आसा माहि निरासा।
अगमु अगोचर देखि दिखाए नानक ताका दासो।।
बिनु सतगुरु सेवे जोगु न होई।
बिनु सतगुरु भेटे मुक्ति न कोई।
बिनु सतगुरु भेटे नामु पाइआ न जाई
बिनु सतगुरु भेटे महा दुखु पाई।।
बिनु सतगुरु भेटे महागरबि गुबारि।
नानक बिनु गुर मूआ जनमु हारि।।

ऊपर की वाणी में बतलायी हुई युक्ति से जो नहीं रहते हैं, परन्तु क्षणभंगुर शरीर, स्वल्प जीवन-काल और दुःख-परिणामी क्षणिक विषय-सुख में जो लवलीन रहते हुए माते रहते हैं और इसी में अपना कुशल समझते हैं, वे अत्यन्त भूल में हैं। उनको समझना चाहिए—

चलना है रहना नहीं, चलना बिस्वाबीस।
सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुँथावे सीस।।
—भक्तिन सहजोबाई

संसार के पदार्थों में अनासक्त रहते हुए अपनी घर-गृहस्थी के कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए तथा उन कर्त्तव्यों के संग-संग परमात्मा के भजन में भी लौ लगाते रहने का अभ्यास करना चाहिए। इसी आशय का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्-भगवद्गीता में अर्जुन को दिया है—'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।' सदा मुझे स्मरण कर और जूझता रह। और सन्तों ने भी इस प्रकार कहा—

'जो कोइ या विधि मन को लगावै। मन के लगाये हरि पावै।।
जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, ढोलिया ढोल बजावै।
अपना बोझ धरै सिर ऊपर, सुरति बाँस पर लावै।।

जैसे भुवंगम चरत बनी में, ओस चाटने आवै।
कभी चाटै कभी मनि तन चितवै, मनि तज प्राण गँवावै।।
जैसे कामिनी भरत कूप जल, कर छोड़ै बतरावै।
अपना रंग सखियन संग राचै, सुरति गगर पर लावै।।'
'जाके रहनि अपार जगत में, सो गुरु नाम पियारा हो।।
जैसे पुरइन रहि जल भीतर, जलहि में करत पसारा हो।
वाके पानी पत्र न लागै, ढरकि चलै जस पारा हो।।'

—कबीर साहब

कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।
सो ध्यानी परमान, सुरत से अण्डा सेवै।
आप रहै जल माहिं सूखे में अण्डा देवै।।
जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै।
कर छोड़ै मुख वचन चित्त कलसा में लावै।।
फणि मणि धरै उतारि आपु चरने को जावै।
वह गाफिल ना पड़ै सुरति मनि माहिं रहावै।।
पलटू कारज सब करै, सुरति रहै अलगान।
कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।

—पलटू साहब

कहने का आशय यह है कि संसार में रहकर तुम्हारा जो कर्त्तव्य है, सो भी करो और भजन भी करो। लोकमान्य बालगंगाधर तिलकजी तथा महात्मा गाँधीजी इसी उपदेश के अनुकूल रहकर देश-सेवा और निज-निज जीवन-यापन के कार्यों में लगे हुए थे। भजन करनेवाले संसार का काम करके भी भजन कर सकते हैं तथा संसार का काम छोड़कर भी वे भजन नहीं कर सकते, जिनको भजन करने की इच्छा नहीं है। भजन करनेवाले सब भेषों में रहकर भजन कर सकते हैं। भजन नहीं करनेवाले किसी भेष में रहकर भी भजन नहीं कर सकते। कबीरजी का जीवन याद करके मेरा मन बड़ा प्रसन्न होता है। वे बहुत सन्तोषी, बहुत बुद्धिमान, इच्छा को जीते हुए, मितभोगी—अल्पभोगी थे। इसलिए वे थोड़े पदार्थों में ही सन्तुष्ट एवं खुश रहते थे। कपड़ा बनाकर बेचते थे, यही उनका रोजगार था। वे केवल परिश्रम और सूत का मूल्य लेते थे।

कबीर चाले हाट को, कहै न कोइ पतियाय।
पाँच टके का दोपटा, सात टके को जाय।।

एक दिन कबीर साहब दुपट्टा बनाकर बाजार में बेचने गये थे। वह पाँच टके उसका मूल्य बतलाते थे। लोग कम दाम में लेना चाहते थे। कबीर साहब दुपट्टा लेकर लौटे आते थे। रास्ते में एक चतुर मनुष्य ने कबीर साहब से दुपट्टा ले लिया और उनसे कहा कि बेचकर मैं ला देता हूँ। वह सात टके में बेचकर कबीर साहब के पास लौट आया और कहा, 'देखो! मैंने सात टके में बेचा है।' कबीर साहब ने कहा, 'भाई! मुझे तो पाँच ही चाहिए।' वह चतुर मनुष्य कबीर साहब को पाँच टके देकर बाकी दो टके को अपने हाथ में लिये घर चला आया। जिनपर ईश्वर की बड़ी कृपा होती है, वे ऐसे ही सन्तुष्ट होते हैं।

खुश खाना है खीचड़ी, माहिं पड़ा टुक नोन।
मांस पराया खाय कर, गला कटावै कौन।।

कबीर साहब ने तो ईश्वर से प्रार्थना की थी कि मुझे सूखी रोटी दो। चुपड़ी माँगते मैं डरता हूँ कि सूखी भी न छिन जावे।

कबीर साईं मुज्झ को, सूखी रोटी देय।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ, यह भी छीनि न लेय।।

जो इन्द्रियों के स्वाद को तुच्छ जानता है, इन्द्रियों के स्वाद में फँसना अपने पर बन्धन जानता है, वह गृहस्थ होते हुए भी योगी है। भजन करने की युक्ति से विहीन को कितनाहू वैराग्य हो, तो उसका काम पूर्णरूप से बनने को नहीं है। इसलिए योग्य गुरु से युक्ति जानकर साधन में लगे हुए रहकर संसार के कामों को करते रहना चाहिए।❐

यह प्रवचन ग्राम धरहरा (जिला—पूर्णियाँ) जिला विशेषाधिवेशन के अवसर पर दिनांक २३.१२.१९५१ ई० के सत्संग में हुआ था।

१६. सुरत का जगना क्या है?

मेरी सुरत सुहागिनी जाग री।
क्यों तू सोवत मोह नींद में, उठि के भजनियाँ में लाग री।।
चित से शब्द सुनो सरवन दे, उठत मधुर धुन राग री।।
दोउ कर जोरि शीश चरणन दे, भक्ति अचल वर माँग री।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, जगत पीठ दै भाग री।।

प्यारे भाइयो! आपलोगों ने सन्त कबीर साहब का वचन 'मेरी सुरत सुहागिनी जाग री' का पाठ सुना। सुरत का जगना क्या है?

जबतक मनुष्य अज्ञानता की नींद में सोया है; विषयों में लवलीन रहता है, तबतक जगा हुआ नहीं है। अज्ञानता किसे कहते हैं ? आत्म-ज्ञान-विहीनता को अज्ञानता कहते हैं। विषयों से मन को उलटो, भजन में लगो; उठो, बेखबर मत होओ। भजन में लगना, विषयों की ओर से फिरकर जगना है। हमलोग स्थूल विषयों में फँसे रहते हैं तथा इनमें सुख मानकर इन्हीं विषयों में लगे रहते हैं। इनसे यदि मुड़ जायँ, तो स्थूल विषय से सूक्ष्म विषय की ओर हो जाएँगे। स्थूल विषय से सूक्ष्म विषय की ओर होकर फिर उससे आगे की ओर बढ़ना चाहिए। जब स्थूल विषय का कुछ भी चिन्तन किए बिना रहता है, तब स्थूल विषय छूटता है। यह दृष्टि-साधन से होता है। अपने को रूप-रसादि से हटाकर किसी एक जगह पर रख सकें, तो विषयों से छूट सकते हैं। स्थूल विषय से मुड़ जाने के लिए नहीं जानें, तो जग नहीं सकते। यह जगना दृष्टि-साधन से होगा। नादविन्दूपनिषद् में लिखा है—

दृष्टिः स्थिरा यस्य विना सद्दृश्यं वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम्।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं स ब्रह्मतारान्तरनादरूपः।।

अर्थात् जिसकी दृष्टि बिना किसी दृश्य आधार के स्थिर हो जाती है, जिसका प्राणवायु बिना किसी प्रयत्न के अचल हो जाता है और जिसका चित्त बिना किसी अवलम्ब के स्थिर हो जाता है, वह तारब्रह्म (प्रणवब्रह्म) के आन्तरिक नाद का स्वरूप ही हो जाता है।

इस प्रकार की क्रिया द्वारा स्थूल विषय से सूक्ष्म विषय में जायेंगे। इसका निशाना कहाँ होना चाहिए, यह भेदी-भक्त ही जानते हैं। इसका खुलासा करना गुरु-आज्ञा नहीं है। जिनको समझने की जरूरत हो, उनको बताने के नियुक्त किए हुए समय पर इसका खुलासा मिलता है। बाहर का दृश्य बिल्कुल छोड़ दिया, मन में जो चित्र उदय हुआ, उसको भी छोड़ दिया; फैली निगाह से नहीं देखना, सिमटी निगाह से देखना, दृष्टि का ऐसा सिमटाव हो कि कुछ भी फैलाव न रहे। जहाँ फैलाव का स्थान नहीं रहे, ऐसे स्थान पर दृष्टि को रक्खे। सिमटी निगाह से देखना, दृष्टि-साधन है। इस साधन से स्थूल दृश्य से तथा स्थूल विषय से मुड़ियेगा, यही पहला जागना होगा। यही काम करते रहना भजन करना है। स्थूल से मुड़कर सूक्ष्म में प्रवेश करें, यही भजन में लगना है। भजन कोई किसी को देता नहीं है, भजन करने की युक्ति बता दे सकता है। भजन कैसे दिया जाएगा? वह तो करने से होगा।

जो कोई घोर निद्रा में सोया हुआ होता है, उसे पुकारा जाता है उठाने के लिए। पुकार से नहीं

उठने पर शरीर को पकड़कर हिलाते हैं। शब्द कहकर जगाना सूक्ष्म है, देह पकड़कर हिलाना स्थूल है। मानस जप और मानस ध्यान स्थूल साधन हैं। इन दोनों सीढ़ियों पर स्थिर होकर आप अपनी परीक्षा आप करें कि कितनी देर तक उन्हें एकाग्र मन से आप करते हैं? मैं तो कहता हूँ कि दो मिनट भी ऐसा जप करें कि जप है और आप हैं, तो मैं कहूँगा कि बहुत अच्छा करते हैं। जो मानस जप ठीक से करते हैं, उससे मानस ध्यान भी ठीक-ठीक होता है। मानस ध्यान ऐसा होना चाहिए कि हू-ब-हू देख लिया जाय। परम श्रद्धेय बाबा देवी साहब ने एक दिन मुझसे पूछने की कृपा की, 'क्या तुम मानस ध्यान में रूप हू-ब-हू निकाल लेते हो?' मैंने कहा—'जी नहीं, धुँधला दिखाई देता है।' इस बात पर बाबा साहब ने कहा—'मैंने मानस ध्यान किया और हू-ब-हू निकाल लिया है।' तो इस प्रकार दोनों सीढ़ियों पर मजबूत होने पर विशेष युक्ति-द्वारा बिना दृश्य आधार के दृष्टि स्थिर हो जाती है, तब विन्दु का उदय होता है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्यधातारमचिन्त्यरूपमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।।

— गीता ८/९

इसके दर्शन करनेवाले स्थूल जगत् के साँवले- गौर आदि सब रूपों को भूल जाते हैं। यहाँ तक देह डुलाकर जगाना है।

अब आगे पुकारने की बात आती है। किन्तु यहाँ विघ्न है। यहाँ आज्ञाचक्र में पुकार आती है और तब ऋद्धि-सिद्धि प्रेरणा करने लगती है। इससे यदि बच जायँ, तो यहाँ क्या आवेगा?

बीजाक्षरं परं विन्दु नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

— ध्यानविन्दूपनिषद्

अर्थात् विन्दु के बाद नाद आवेगा। यथार्थतः यहाँ नाद तो हई है; किन्तु पकड़ नहीं सकते। पुकार का शब्द यही है, ईश्वर पुकारता है, आदमी क्या पुकारेगा? 'है आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिए।'—आदि से जोर की आवाज तुमको बुलाने के लिए आ रही है।

क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रास्ता शहरग में है दिलवर पै जाने के लिये।।

अपने मित्र की खोज में क्यों भटक रहे हो, उनके पास जाने के लिए सुषुम्ना में रास्ता है। दृष्टि-साधन से सुषुम्ना में जा सकते हो।

गोश बातिन हो कुशादा जो करे कुछ दिन अमल।
ला इलाह अल्लाह हो अकबर पै जाने के लिये।।

उस शब्द को बाहर के कान से नहीं, भीतर के कान से (सुरत के कान से) सुनते हैं।

तीनों बन्द लगाइ देखि, सुनि धरि ध्वनि धारा।
चलिय शब्द में खिंचत, बजत जो विविध प्रकारा।।
झिंगुर का झनकार, भँवर गुंजार हो।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' घण्ट शंख शहनाइ, आदि ध्वनि धार हो।।
आगे शून्य समाधि, नाद ही नाद की।
लहै सन्त का दास, जाहि सुधि आदि की।।
मीठी मुरली सुनै सुरत के कान से।
अरे हाँ रे 'मेँहीँ' बड़ा कौतुहल होय, ध्वनिन के ध्यान से।।

कुछ दिन अभ्यास करने पर शब्द खुल जायगा। यह अनुपम शब्द परमात्मा के पास ले जाने के लिए होता है, यही पूरा जगना है। 'चित से शब्द सुनो सरवन दे, उठत मधुर धुन राग री।' यह कहाँ प्राप्त होगा? इसलिए कहा— 'दोउ कर जोरि शीश चरणन दे भक्ति अचल तर माँग री।' यहाँ चरण कहने से 'स्थूल मूर्ति' आ जाती है। किन्तु यहाँ गुरु-चरणों को शीश पर लेने का अर्थ है—आज्ञा-चक्र में उसका ध्यान करना। इसलिये यहाँ 'कर' का अर्थ किरण लेंगे। दोनों किरणों को जोड़कर भक्ति का वर माँगो। सन्त तुलसीदासजी ने कहा है—

औरउ एक गुपुत मत, सबहिं कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर, भगति न पावइ मोरि।।

अर्थात् मैं सबको और एक गुप्त विचार कहता हूँ। (वह यह है कि) किरणों (चैतन्यवृत्तियों—सुरत की धारों) को जोड़कर (एकत्र करके) कल्याण करनेवाला भजन किये बिना कोई मेरी भक्ति नहीं पाता है। कर = किरण। किरण प्रकाश—रूप होनी चाहिए। शरीर में चैतन्यवृत्ति वा सुरत की धार ज्ञानमयी तथा प्रकाशमयी है, अतएव इसी वृत्ति वा धार को किरण मानना चाहिए।

कहै कबीर सुनो भाइ साधो जगत पीठ दै भाग री।

संसार की ओर पीठ देकर भाग जाओ। पीठ दिखाना कैसे होगा? कहीं भी जाओ, संसार में रहना होगा। जबतक इन्द्रियों के ज्ञान से ऊपर नहीं उठें, तबतक संसार में रहना होगा। इन्द्रियों के ज्ञान से ऊपर उठने पर जगत को पीठ देना होगा। जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति से परे तुरीय में चला जाय, तो संसार की ओर पीठ हो जायेगी। 'सकल दृस्य निज उदर मेलि सोवइ निद्रा तजि योगी।' जबतक सुरत का सिमटाव नहीं होगा, जगत को पीठ देना नहीं होगा। सुरत को केन्द्र में केन्द्रित करने से जगत को पीठ देना होगा, वही वैरागी है तथा संन्यासी है। केवल घर छोड़ने से कोई वैरागी अथवा संन्यासी नहीं होता और न जगत को पीठ देना हो सकता है। इसके लिए दृष्टि-साधन करके नादानुसन्धान करें। तभी वह पूर्ण रूप से 'जगत पीठ दै भाग री' होगा।

❑

यह प्रवचन ग्राम धरहरा (जिला—पूर्णियाँ) विशेषाधिवेशन के अवसर पर दिनांक २४.१२.१९५१ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१७. मोह निशा में रहना पशुता है

प्यारे लोगो!

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत क्षुरस्य धारा।
निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।
— कठोपनिषद्

(अरे अविद्याग्रस्त लोगो!) उठो, (अज्ञान-निद्रा से) जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार क्षुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्त्वज्ञानी लोग उस मार्ग को वैसा ही दुर्गम बतलाते हैं।

'जाग पियारी अब का सोवै। रैन गई दिन काहे को खोवै।।'
'जनम जनम तोहि सोवत बीते, अजहुँ न जाग सबेरे।'
'भक्ती का मारग झीना रे।'
— कबीर साहब

खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।
— गुरु नानकदेव

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।।
— गोस्वामी तुलसीदासजी

क्या सोवै जग में नींद भरी। उठ जागो जल्दी भोर भई।।
— राधास्वामी साहब

लेटे और बैठे हुए को कहा जा सकता है—'उठो !' उठते ही वह ऊँचा हो जाता है। और निद्रित रहकर यदि कोई स्वप्न या सुषुप्ति में रहता है, तब भी उसको कहा जाता है—'उठो!' जब वह जगता है, तब वह जाग्रत् के स्थान पर आकर जाग्रत-अवस्था में आ जाता है। स्थान बदलने से

अवस्था बदलती है और तभी ज्ञान भी बदलता है।

सुषुप्ति का स्थान हृदय, स्वप्न का स्थान कण्ठ और जाग्रत का स्थान आँख है।

नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि संस्थितम्।।

— ब्रह्मोपनिषद्

जीव का वासा जाग्रत में नेत्र में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीयावस्था में मस्तक में होता है। अवस्थाओं के स्थानों को जानकर विदित होता है कि निद्रित रहनेवाला नीचे रहता है और जाग उठनेवाला ऊपर उठता है। स्वप्न में रहनेवाले को साधारणतया यह ज्ञान नहीं होता है कि मैं स्वप्न में हूँ। वह तब जो कुछ भोगता है, जो कुछ जानता है और जो कर्म करता है, सबको सत्य ही प्रतीत करता है। परन्तु जब ऊपर उठता है, जाग्रत के स्थान पर आकर जगता है, तब जगकर स्वप्न की सब बातों को मिथ्या बोध करता है। जगने के स्थान से नीचे उतरने पर स्वप्न और उससे भी नीचे उतरने पर सुषुप्ति के स्थान पर जाकर पूर्ण-रूप से अचेत हो जाना—दोनों ही बातें होती हैं।

सर्वसाधारण को यह नहीं ज्ञात है कि जगने के स्थान (आँख) से ऊपर उठा जाता है या नहीं? यदि ऊपर उठा जाता है, तो उस स्थान का क्या नाम है? उस स्थान पर पहुँचने पर कौन-सी अवस्था होती है और उस अवस्था में रहने के सदृश ही इस स्थूल जगत्-सम्बन्धी ज्ञान रहता है वा इससे भिन्न प्रकार का ज्ञान होता है? चेतन विश्व-ब्रह्माण्ड और पिण्ड में; दो रूपों (समष्टि और व्यष्टि) में परिव्याप्त है और वही अन्तःकरण-व्यापी रहकर अन्तःकरण-सम्बन्धी बाह्य करणों (इन्द्रियों) द्वारा ज्ञानगुण को प्रकाशित करता है और व्यष्टि चेतन कहलाता है। संतमत में इसको सुरत भी कहते हैं। इसी का भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में होना होता है। भक्तयोगी अपनी सुरत को वा अपने को आँख के ऊपर के स्थान में ले जा सकते हैं। इसका वर्णन उपनिषदों और सन्तवाणियों में भरपूर है। ऊपर के स्थानों में तुरीय और तुरीयातीत; दो अवस्थाओं के नाम इनमें मिलते हैं।

पंचावस्थाः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयतुरीयातीताः।

— मण्डलब्राह्मणोपनिषद्

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत; ये पाँच अवस्थाएँ हैं।

सर्वपरिपूर्ण तुरियातीत ब्रह्मभूतो योगी भवति।

— मण्डलब्राह्मणोनिषद्, ब्राह्मण २

पूर्ण योगी तुरीयातीत अवस्था को प्राप्त कर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

तुरिया सेति अतीत सोधि फिर सहज समाधी।
भजन तेल की धार साधना निर्मल साधी।।

— पलटू साहब

जैसा कि ऊपर में वर्णन हुआ है, इससे जानना चाहिए कि स्थान-भेद से अवस्था-भेद हुआ और अवस्था-भेद में ज्ञान-भेद होता है। तब आँख से ऊपर के स्थान पर पहुँचने से तुरीय अवस्था में रहकर जाग्रत् अवस्था-सदृश ज्ञान नहीं रहकर अवश्य भिन्न प्रकार का ज्ञान होगा, जो सर्वेश्वर—परमात्मा की सूक्ष्म विभूति-सम्बन्धी होगा और जो ब्रह्म-संबंधी कहा जा सकेगा। इस अवस्था में स्थूल इन्द्रिय-संबंधी विषयों से मन उपराम रहकर कथित सूक्ष्म विषय में अनुरक्त होगा और साधारण जाग्रत अवस्था तुरीयावस्था वाले के लिए स्वप्न-सदृश होगी।

माया मुख जागे सभे, सो सूता कर जान।
दरिया जागे ब्रह्म दिसि, सो जागा परमान।।

—दरिया साहब

इसी अवस्था में आने के लिए 'उठो, जागो'

शब्दों का प्रयोग हुआ है।

जबतक कोई श्रेष्ठ पुरुष—गुरु के पास जाकर ज्ञान-लाभ नहीं करता है, तबतक वह अविद्या-ग्रस्त रहता है और उपर्युक्त उठने-जगने में नहीं आता है। इसी अवस्था में प्रवेश करने के लिए छुरे की धार-सदृश और बाल से भी बारीक सूक्ष्म मार्ग कहा गया है। इस मार्ग पर शरीर को चलना नहीं है। मन-सहित सुरत को चलाना है। सूक्ष्म मार्ग पर सूक्ष्म यात्री यात्रा करेगा, इसमें आश्चर्य ही क्या? चाहिए कि सत्संग हो और इस मार्ग को जाननेवाले तथा इस मार्ग के छोर को पकड़ने की युक्ति बतलानेवाले गुरु मिलें, इसपर चलने का अपना अत्यन्त अनुराग और आग्रह हो। साथ ही, संयम में बरतते हुए, प्रमाद और शिथिलता से बचते हुए नित्य प्रति नियमित रूप से दृढ़ता के सहित अभ्यास होता रहे।

यह अन्तर-मार्ग है, इसी मार्ग पर चलनेवाला परमार्थी, योगी, भक्त कहलाता है और परमार्थ-स्वरूप परमात्मा को वह पाता है।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अविगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल विकार रहित गत भेदा।
कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।।

—गोस्वामी तुलसीदास

ऊपर कथित यत्नों को करो। अवश्य उठोगे, अवश्य जगोगे और यह मोह-निशा समाप्त हो जाएगी। मोह-निशा में रहना पशु-देह का काम है। अब मनुष्य-शरीर मिला है, मोह-निशा का प्रभात हुआ है। अब मत सोओ, जगो।

❐

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत ग्राम ढोलबज्जा (जिला—भागलपुर) में दिनांक ३०.४.१९५२ ई० के सत्संग में हुआ था।

१८. नरतन की उपादेयता

प्यारे महाशयगण!

मनुष्य-योनि के शरीर से सबसे उत्तम काम यही हो सकता है कि अपने को संसार के बन्धनों से छुड़ा लिया जाय। दूसरी योनि के शरीरों में यह काम नहीं हो सकता है। उनमें इसका ज्ञान भी नहीं हो पाता है कि संसार से अपने को किसलिए छुड़ाना चाहिए। किन्तु मनुष्य-शरीर में यह ज्ञान सोचने-विचारने से, सत्संग से और विद्याध्ययन करने से होता है। पशु में भी ऐसा नहीं है। सब शरीरों में देव-दुर्लभ मनुष्य-शरीर हमलोगों को मिला है। केवल इसी शरीर से यत्न करके संसार-सागर को पार किया जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामचरितमानस में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का ऐसा उपदेश है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।
सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ।।
एहितन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।
नर तनु पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई।।
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।
नर तनु भव वारिधि कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सद्गुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।
जो न तरइ भव-सागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मन्द मति, आतम-हन गति जाइ।।

इस सारे संसार को भवसागर कहा गया है। इसमें पंच विषयों का जल सर्वत्र उमड़ रहा है। देव, दानव, नर और किन्नर आदि सब-के-सब इसमें डूब रहे हैं। निद्रा और भय आदि इसके जीव-जन्तु सबको निगले जा रहे हैं। हिंसा-तरंग, तृष्णा-भँवर और ममता-पंक में थपेड़े खाते, घूमते और फँसे रहकर सब-के-सब दुःख भोग रहे हैं। अतएव इस संसार-सागर को पार करने के लिए मनुष्य-शरीर-धारी जीव को अवश्य यत्न करना चाहिए। यह यत्न केवल मनुष्य-शरीर में ही हो सकता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का उपदेश यह है कि इहलोक और स्वर्गादिक लोकों में दुःख-परिणामी स्वल्प सुख है। यह दुःख-परिणामी स्वल्प सुख विषय-सुख है। मनुष्य-शरीर का फल विषय-सुख प्राप्त करना नहीं है। इस सुख में लगा हुआ मनुष्य अमृत त्याग कर विष लेता है और बहुत भारी हानि में पड़ा रहता है। मनुष्य को चाहिए कि सद्गुरु का सहारा ले और संसार-समुद्र को पार कर जाय। उपर्युक्त उपदेश के अनुकूल तो सब मनुष्यों को निर्विषय तत्त्व की ओर चलना परम आवश्यक है। निर्विषय की ओर चलने का पथ स्थूल नहीं है। उसपर यह स्थूल शरीर चलेगा, ऐसा वह पथ नहीं होना चाहिए। उसपर पहले मन-सहित चेतन-आत्मा चले और पश्चात् केवल चेतन आत्मा ही चले, ऐसा वह सूक्ष्म मार्ग होना चाहिए। पहले स्थूल विषय छूटना चाहिए, फिर सूक्ष्म विषय को भी पार कर निर्विषय तत्त्व तक पहुँचना चाहिए। निर्विषय-स्वरूप स्वयं परम पुरुष परमात्मा हैं। परमात्म-स्वरूप को प्राप्त करने के पूर्ण यत्न में चेतन-आत्मा संसार-समुद्र को पूर्ण रूप से पार कर जाती है। मनुष्य-शरीर पाने का यही परम फल है। सूक्ष्म मार्ग ग्रहण करने के लिए नासाग्र और भ्रुवोर्मध्य में ध्यान लगाने को सद्ग्रन्थों में कहा गया है। ये स्थान आज्ञाचक्र (षटचक्र) संबंधी हैं। सारांश यह है कि सूक्ष्ममार्ग का ग्रहण आज्ञाचक्र से होता है। इस मार्ग के ग्रहण से निर्विषय की ओर चलना और विषयों से छूटना होता है। इसको दृढ़ जानना चाहिए। इस संबंध में विभिन्न सन्तों के वचन सुनिये—

निद्राभयसरीसृपं हिंसादितरंगं तृष्णावर्तं दारपंकं संसारवार्धिं तर्तुं सूक्ष्ममार्गमवलम्ब्य सत्त्वादि गुणानतिक्रम्य तारकमवलोकयेत्। भ्रूमध्ये सच्चिदानन्दतेजः कूटरूपं तारकं ब्रह्म...। —मण्डलब्राह्मणोपनिषद्

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै,
गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं ।।
गुरुदेव बिन जीव का तिमर नासै नहीं,
समुझि विचारि ले मने माहीं ।।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये,
जन्म अनेक की अटक खोलै ।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै,
जीव और सीव तब एक तोलै ।।
— कबीर साहब

भगता की चाल निराली।
चाल निराली भगताह केरी बिखम मारगि चलणा।।
लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाहीं बोलणा।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।।
गुर परसादी जिनि आपु तजिआ हरि वासना समाणी।
कहै नानक चाल भगताह केरी जुगहु जुगु निराली।।

मार्ग, पथ या रास्ते को कहते हैं। जिस लकीर पर कोई चलता है और चलकर कहीं-से-कहीं तक पहुँचता है, वही लकीर मार्ग कहलाती है। उपर्युक्त सूक्ष्म मार्ग भी ऐसा ही है। इसका निचला छोर जो प्रथम धरा जा सकता है—ज्योतिर्विन्दु है। यह इस छोर से आगे दूर तक तेजोमय ज्योति-लकीर—ज्योतिपथ कहा गया है।

प्रगटी ज्योति ज्योति महि जाता। —गुरु नानक

हंसादिच्चपथे यन्ति...........।

—बुद्ध-वचन, धम्मपद, लोकबग्गो, वचन १७५

हंस सूर्यपथ पर जाते हैं, इससे आगे शब्द-मार्ग है।

सुरत शिष्य सबदा गुरु मिलि मारग जाना हो।

—तुलसी साहब

शब्द-पथ पर चलते हुए जहाँ शब्द लय हो जाता है अर्थात् जहाँ शब्द-पथ की समाप्ति हो जाती है, वहाँ सृष्टिप्रसार का अन्त हो जाता है, परमात्म-स्वरूप की प्रत्यक्षता वहीं हो जाती है। सन्तों का ज्ञान और उनकी साधना यहाँ तक पहुँचाती है, यही अन्त और परम पद है।

बीजाक्षरं परं विन्दु नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

परम विन्दु ही बीजाक्षर है; उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अविनाशी ब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है।

❐

यह प्रवचन सहरसा जिलान्तर्गत ग्राम—धुरियाकलासन (अब जिला—मधेपुरा) में दिनांक २.५.१९५२ ई० के सत्संग में हुआ था।

१९. बँधा हुआ कौन है?

प्यारे लोगो !

यह सत्संग संतों के विचारों के अनुकूल होता है या संतों के विचारों को जानने के लिए होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रंथ।।

संतों का रास्ता मोक्ष का है और वासना-युक्त मनुष्यों का मार्ग संसार में रहने का होता है। मोक्ष में जाने का जो रास्ता हो वह संतों का रास्ता है। पाँच सौ वर्षों से कुछ पूर्व और अंदर में जो संत हुए, सबने अपनी-अपनी प्रांतीय भाषा में अपना उपदेश कहा। किसी ने लिखा, किसी ने लिखा नहीं लिखवाया तथा किसी ने लिखवाया भी नहीं, केवल कहा और लोगों ने सुन-सुनकर लिख लिया। इसी प्रकार उपनिषदों में भी मोक्ष का ही उपदेश है और संतों के विचार उपनिषदों के विचार के अनुकूल ही हैं। मोक्ष का अर्थ है छुटकारा। जबतक कोई दुःख में या बंधन में नहीं बँधा हो तो छूटे तो किससे? बँधा हुआ कौन है? यह जीव एक-एक शरीर में बँधा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य को मालूम होता है 'मैं देह में हूँ'। इस देह में जो आप भोगते हैं, वह भोग आपको तृप्त नहीं करता है। इसमें कभी सुख, कभी दुःख, कभी संपत्ति, कभी विपत्ति आती है। सुख सुहाता है, दुःख सुहाता नहीं

है। परंतु जैसे दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आते जाते रहते हैं, उसी प्रकार सुख-दुःख आते-जाते रहते हैं। दुःख शारीरिक और मानसिक; दोनों मिलते रहते हैं। सुख जिसमें मानते हैं, वह विषय अनस्थिर है और भोगने की इन्द्रियाँ स्वल्प शक्तियुक्त हैं। तब इन दोनों के योग से तृप्तिदायक पूर्ण सुख कैसे मिल सकता हैं? भूख लगी, भोजन किया; कुछ काल संतुष्ट हुए, सुखी रहे। पच गया, फिर भूख लगी और वही भूख लगी और वही भूख का दुःख लौटा। विषय-भोगों का सुख-दुःखात्मक चक्र उसी तरह अनवरत घूमा करता है। भला, इन भोगों में तृप्ति, शान्ति और सुख कहाँ?

शिशुपन में कुछ ज्ञान नहीं, भूख लगती है, देह में दर्द है, किंतु व्यक्त नहीं कर सकते; केवल रोते रहते हैं। अपना अख्तियार नहीं, मल-मूत्र पर पड़े रहे। जवान हुए, कुछ अच्छा, कुछ बुरा ज्ञान हुआ। कभी विहित, कभी अविहित कर्मों को किया। वही शरीर है, बूढ़ा हो गया है, शरीर में शक्ति नहीं है, विषयों की ओर मन दौड़ता है। किन्तु उनका संग्रह और भोग नहीं कर सकते; बहुत दुःखी रहते हैं। काम-क्रोधादिक विकार मन में उपजते रहते हैं, जिनसे अनेक कष्ट मन में होते रहते हैं। जो समझते हैं, उनको कष्ट होता है। इन्हीं मनोविकारों को साधुओं ने मानस रोग कहा है।

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्निपात दुखदाई।।
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।
ममता दादू कन्डु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई।।
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दम्भ कपट मद मान नहरुआ।।
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी। त्रिविध ईषना तरुण तिजारी।।
जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका।।

एक व्याधि बस नर मरहिं, ये असाधि बहु व्याधि।
पीड़हिं सन्तत जीव कहँ, सो किमि लहै समाधि।।

कहाँ सुख है? शरीर और मन सुख देनेवाले नहीं हैं। इनसे यदि अलग हो जाते—दूर हो जाते तो कितना सुख मिलता? इनसे दूर होने में आप कठिनाई मालूम करते होंगे। सोचते होंगे इनसे निकलना कैसे होगा? जैसे आप शरीर नहीं हैं, वैसे ही मन भी आप नहीं हैं। आप शरीर और मन से भिन्न पदार्थ चेतन-आत्मा हैं। बाहर देह में जैसे दश इन्द्रियाँ हैं, उसी प्रकार इसके भीतर में भी चार इन्द्रियाँ हैं, जिनमें एक मन है। आप शरीर से छूट जायँ, इन्द्रियों के बंधन से छूट जायँ; इसी छूटने को मुक्ति कहते हैं। मोक्ष समझने के लिए बंधन समझना होगा। आप शरीर, इन्द्रिय और अंतःकरण में बँधे हैं। जैसे कोई कारागार में रहता है, वैसे ही आप शरीर में बंद हैं। शरीर से निकलने के लिए यदि कहें कि विष खाकर वा और किसी तरह वा साधारण मृत्यु से शरीर छोड़ सकते हैं, तो इस प्रकार शरीर छोड़ने से शरीर नहीं छूटता। अंतःकरण सहित सूक्ष्म, कारण और महाकारण; ये तीनों जड़ शरीर रह जाते हैं। जिनके रह जाने से पुनः-पुनः स्थूल शरीर का पाना या इस भूमि पर जन्म होना होता रहता है। शरीर के अंदर शरीर है। यह स्थूल शरीर क्या है? हड्डियों का ढाँचा (नगर) बना है, जिसपर मांस और लहू का लेप चढ़ा है, जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और द्वेष छिपे हैं। इसमें क्या खुशी है? भगवान बुद्ध का यह वचन पूर्ण रूपेण सत्य है। शरीरों के इस कारागार से छूटने का यत्न सीखो और छूटो। संतों का उपदेश इसी कारागार से छूटने का है। और इसी छूटने का नाम मोक्ष है। मुक्ति में नित्यानंद की प्राप्ति होती है। इसी आनंद की प्राप्ति के लिए मुक्ति का प्रयोजन है। संतों ने इसी प्रयोजन की पूर्ति के हेतु मोक्ष का उपदेश दिया है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भगवान का भी यही उपदेश मुक्तिकोपनिषद् में है। इसमें बतलाया गया है कि मैं करनेवाला, भोगनेवाला, सुखी तथा

दु:खी हूँ। यह चित्त का धर्म है। इनके निरोध को ही मुक्ति कहते हैं। इनके निरोध के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन और अनुभव ज्ञान प्राप्त करने का साधन करना चाहिए। इन साधनों के द्वारा जीवन्मुक्त होना असंभव नहीं है। यदि असंभव होता तो श्रीराम ऐसा उपदेश नहीं देते। जन्मान्ध को प्रकाश असंभव मालूम होता है, किंतु यदि उसे आँख हो जाए तो संभव होता है।

मोक्ष-प्राप्ति के लिए सुनो, विचारो, साधन अभ्यास करो और अभ्यास के अंत तक पहुँचो। सुनना, विचारना तो लोग समझते हैं, किन्तु साधन क्या करना है यह नहीं जानते हैं। इस पर कहते हैं—चित्तरूप वृक्ष के दो बीज हैं। प्राणस्पन्दन और वासना। प्राण का हिलना और इच्छा दोनों में से किसी को चुप करो। एक को खतम करने से दोनों खतम हो जाएँगे। एक को रोकने से दोनों समाप्त होते हैं। प्राण का अर्थ है—जीवनीशक्ति। नाक से निकलनेवाली वायु प्राण नहीं है। प्राणवायु वह है जिस वायु का प्राण से संबंध हो। वायु खींचने के लिए आपके पास यंत्र है, जिसे फेफड़ा कहते हैं। इसमें संकोचन-विकाशन दो क्रियाएँ होती हैं। संकोचन में हवा खींचते हैं और विकाशन में हवा निकल जाती है। फेफड़े को जो पसारे और समेटे उस शक्ति को प्राण कहते हैं। वायु से यह काम नहीं होता। फेफड़े में जो हवा आती-जाती है वह है—प्राणवायु। इसे चुप करने कहा गया है। इसी हवा के साथ व्यायाम करते हैं, उसे प्राणायाम कहते हैं। इसमें तीन क्रियाएँ हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक। पूरक में वायु खींचते हैं, कुम्भक में रोकते हैं तथा रेचक में निकाल देते हैं। हवा का साधन करके प्राण स्थिर करना चाहते हैं। दूसरा है—इच्छा का रोकना। प्राणायाम में भी इच्छा का रोकना होता है। परंतु मुख्यत: हवा की तीनों क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। दूसरा साधन है—मन को एक ओर लगाओ। इच्छा आवे, हटाओ। कोई इच्छा आने न पावे। मन समेटकर एकान्त मन से कुछ सोचने से स्वाँस धीमा हो जाता है। चंचल काम में स्वॉस तेजी से चलता है। मन अचंचल हो तो हवा भी स्थिर होगी। हवा को खींचने, ठहराने और फेंकने में हवा की ठोकर भीतर में लगती है, जैसे बाहर की हवा देह में टकराती है। बाहर के चमड़े से भीतर के तंतु कोमल होते हैं। इसमें प्राणायाम की क्रिया से हवा की यदि कड़ी ठोकर लग जाए तो मस्तिष्क बिगड़ जाय, कलेजा में चोट लगना संभव है। ऐसा सुनने में आया भी है कि किसी का मस्तिष्क घूमता है, कितने को रोग हो गया है इत्यादि। इसलिए इसको सापद कहा गया। यदि ठीक तरह से किया जाय तो जो लिखा है वह फल प्राप्त होगा। किंतु यह सापद है। फिर दूसरा साधन है—आप बैठे-बैठे मन को एक ओर लगाओ। मन भागता है समेटो, एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास करो, तो हेमन्तकाल के कमल-सदृश भोग-वासना का नाश हो जाएगा। इसके लिए फिर चार बातें बतलाई गई हैं। अध्यात्म-विद्या की शिक्षा, साधुसंग, वासना-परित्याग और प्राणस्पन्दन निरोध। इन युक्तियों को छोड़कर जो मनमाना ही काम करते हैं, तो वे प्रकाश को छोड़कर अंधकार में ढूँढ़ते हैं। अथवा मदमस्त गजराज को कमलनाल के तंतु में बाँधते हैं। इसके आगे मुक्तिकोपनिषद् में कहा गया है कि वासनापरित्यागार्थ चित्त की पूर्ण एकाग्रता अर्थात् मन की एकविन्दुता के ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। इसके द्वारा अंतर की ज्योति मिलेगी। इस ज्योति की प्राप्ति में विशेष संलग्न होना चाहिए। पुन: इस ज्योति, मन और बुद्धि से ऊपर उठ जाना चाहिए। और भी विशेष ऊपर उठकर अदृश्य (शब्द—प्रणवध्वनि, सारशब्द) को भी पारकर श्रीराम के अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अविनाशी, अस्वाद, अगंध, अनाम और गोत्रहीन दु:खहरण करनेवाले

स्वरूप की उपर्युक्त साधन द्वारा भजन कर प्राप्ति करनी चाहिए। इसमें पारमार्थिक समाधि प्राप्त होकर मोक्ष हो जाएगा। परंतु बिना सतगुरु के यह काम नहीं हो सकता। इसलिए कबीर साहब ने कहा है—

बिन सतगुरु नर रहत भुलाना, खोजत फिरत राह नहिं जाना।।
केहर सुत ले आयो गड़रिया, पाल पोस उन कीन्ह सयाना।
करत कलोल रहत अजयन संग, आपन मर्म उनहुँ नहिं जाना।।
केहर इक जंगल से आयो, ताहि देखि बहुतै रिसियाना।
पकरि के भेद तुरत समुझाया, आपन दशा देख मुसक्याना।।
जस कुरंग बिच बसत वासना, खोजत मूढ़ फिरत चौगाना।
कर उसवास मनै में देखै, यह सुगन्धि धौं कहाँ बसाना।।
अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है, छक्यो रूप नहिं जात बखाना।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, उलटि आपु में आपु समाना।।

❐

यह प्रवचन सहरसा जिलान्तर्गत ग्राम—पुरैनीबाजार (अब जिला—मधेपुरा) के हाई स्कूल के पास दिनांक ४.५.१९५२ ई० के सत्संग में हुआ था।

२०. अन्तर्ज्योति की खोज

प्यारे लोगो!

सब आँख बन्द करके देखते हैं, तो अन्धकार मालूम होता है। सन्तों की वाणियों में यह है कि तुम्हारे शरीर के अन्दर अखुट (अघट) भण्डार है। इसमें प्रकृति के सब रूपों और उसके सब विभागों के सहित परमात्मा भी हैं। उन सबको अपने अन्दर पहचान सकते हो। किन्तु जब तुम्हारे अन्दर में अन्धकार है, तब तुम क्या देख सकते हो? इसके लिए अन्तःप्रकाश की जरूरत होती है। इसी अन्तःप्रकाश को प्राप्त करने के लिए सन्त कबीर साहब ने कहा है—

अपने घट दियना बारु रे।।टेक।।
नाम का तेल सुरत कै बाती, ब्रह्म अगिन उद्गारु रे।
जगमग जोत निहारु मन्दिर में, तन मन धन सब वारु रे।।
झूठी जान जगत की आसा, बारम्बार बिसारु रे।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, आपन काज सँवारु रे।।

अन्तर में प्रकाश होगा, इसके लिए साधन कीजिये। राधास्वामी साहब कहते हैं—

सुरत क्यों भूल रही, अब चेत चलो स्वामी पास।।
हे मनुवाँ तुम सदा के संगी, त्यागो जगत की आस।
हे इन्द्रियन तुम भोग दिवानी, क्यों फँसो काल की फाँस।।
जल्दी से अब मुख को मोड़ो, अन्तर अजब विलास।
जैसे बने तैसे करो कमाई, धर चरनन विश्वास।।

विषयों की ओर से मन हटे और बहकना छूटकर अन्तर्मुख हो जाय, यही मन का फेरना है। तब अन्तर के अजब विलास प्रत्यक्ष पाये जायँगे।

सखी री क्यों देर लगाई, चटक चढ़ो नभ द्वार।
इस नगरी में तिमिर समाना, भूल भरम हर बार।
खोज करो अन्तर उजियारी, छोड़ चलो नौ द्वार।।
— राधास्वामी साहब

नौ द्वारों से सुरत सिमटे, इसके लिए युक्ति मालूम होनी चाहिये। केन्द्र में यदि सुरत केन्द्रित हो जाय, तो अवश्य ही प्रकाश होगा। जबतक सुरत फैली हुई है, तबतक अन्धकार है। सुरत सिमटकर एकविन्दुता हुई कि प्रकाश हुआ। सुरत-सिमटाव के लिए ध्यानाभ्यास की आवश्यकता है। इसके लिए शरीर को तोड़ने-मरोड़ने की आवश्यकता नहीं है। अन्धकार से पार जाना बहुत आवश्यक है। सन्त तुलसी साहब ने कहा है—

सम सील लील अपील पेलै। खेल खुलि खुलि लखि परै।
नित नेम प्रेम पियार पिउ कर। सुरति सजि पल-पल भरै।।

जो मनोनिग्रह का स्वभाववाला है, वह लील = काला = अंधकार को काटेगा—पार कर जाएगा। तब उसे परमात्मा की लीला देखने में आएगी। फिर परमात्मा के प्रति प्रेम अधिक-से-अधिक हो जाएगा। जब परमात्मा की लीला मालूम होने लगे, तब जो आनन्द होगा, वह आनन्द बाहर की लीला में क्या थोड़ा भी हो सकता है? कदापि नहीं। साधक उस ब्रह्मलीला को शरीर और संसार को भूलकर देखता रहेगा। अंदर में अवश्य प्रकाश है। उपनिषत्कार, मुनिगण और सन्त-महात्मागण— सब-के-सब इस प्रकार का वर्णन करते हैं।

भगवान बुद्ध का यह वचन 'धम्मपद' नामक ग्रन्थ में है—'अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ।' (जरावग्गो, वचन १४६) अंधकार से घिरे तुम प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते ? भगवान श्रीराम भी श्रीहनुमानजी से अंतर की ज्योति की खोज करने कहते हैं—

बहुशास्त्र कथाकन्थारोमन्थेन वृथैव किम्।
अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन मारुते ज्योतिरान्तरम्।।
— मुक्तिकोपनिषद्

अर्थात्—बहुत-से शास्त्रों की कथाओं को मथने से क्या फल? हे वायुसुत! अत्यन्त यत्नवान होकर केवल अंतर की ज्योति की खोज करो।

यह वचन मिथ्या नहीं है। ये बातें उनके लिए झूठी हैं, जिनको परमात्मा पर विश्वास नहीं और संतों की सत्यता पर विश्वास नहीं। किंतु जिनको ईश्वर पर विश्वास है और संतों की सत्यता पर विश्वास है, उनके लिए अंतर्ज्योति होने के विषय में अविश्वास की कोई बात नहीं है। बाबा नानक कहते हैं—

अन्तरि ज्योति भई गुर साखी चीनै राम करंमा।

लोग सद्ग्रंथों की गवाही देते हैं, किंतु वे कहते हैं कि अपने अंदर में प्रकाश हुआ, यही गुरु की साक्षी है। जिनको अंतर में प्रकाश मालूम पड़े, उनको अविश्वास कैसे होगा? और जो श्रद्धालु हैं, वे संत-वचन पर ही पूर्ण विश्वास कर लेते हैं कि संतों के वचन ठीक हैं। परंतु जो विचारवान, श्रद्धालु एवं अच्छे साधक भी हैं, वे तो विचार से, श्रद्धा से और साधन से; तीनों तरह से अंतर के प्रकाश का विश्वास करते हैं। ज्ञान के साथ श्रद्धा और श्रद्धा के साथ ज्ञान चाहिए। ज्ञान हो, श्रद्धा नहीं हो तो उसकी स्थिरता नहीं होगी। वे तर्क-वितर्क में किधर-से-किधर बह जाएँगे। जिनको श्रद्धा है और ज्ञान नहीं है, तो हो सकता है वे भी गिर सकते हैं। अंधविश्वास के कारण जो नहीं ग्रहण करने का है, वह ग्रहण कर ले, संभव है। इसलिए ज्ञान और श्रद्धा; दोनों चाहिए।

परमात्मा के पास चलो, तो वहाँ प्रकाश ही प्रकाश है। यहाँ की राजधानी में बिजली बत्ती जलती है और नौबत बाजा बजता है, उसी प्रकार ईश्वर के दरबार में बिना बिजली के प्रकाश और बिना लौकिक यंत्र के ही वहाँ पर नौबत बाजा बजता है। इस चर्मदृष्टि और कर्ण से उसे नहीं देख-सुन सकते।

रोशनी के ऊपर लाल या हरा शीशा रहने से शीशे के रंग की रोशनी मालूम होती है; किंतु उस शीशे के आवरण को हटाकर देखने से रोशनी का शुद्ध रूप देखा जाता है। उसी तरह स्थूल से दृष्टि छुड़ाकर केवल दृष्टि रहे, तब अंतःप्रकाश देख सकते हैं। यह दृष्टिसाधन से होगा। अंतर्ज्योति के विषय में संतों ने बहुत उपदेश किया है। दृष्टि वहाँ तक जाती है, जहाँ तक दृश्य है। जहाँ दृश्य नहीं है, वहाँ के लिए शब्द साधना कीजिए। यह शब्द कैसे मिलता है? इसके लिए उपनिषद् में लिखा है—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।

सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

अर्थात् परम विन्दु ही बीजाक्षर है। उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अनाश ब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है। विन्दु-ग्रहण होने से सूक्ष्म नाद की पहचान होगी। अन्धकार में भी शब्द सुन सकता है; किन्तु केन्द्रीय शब्द पकड़ने में उसे मुश्किल होगी। इसीलिए सूक्ष्म में प्रवेश करके शब्द पकड़ने के लिए ऋषियों तथा संतों ने कहा है। दृष्टियोग ऐसा हो, जिससे एकविन्दुता प्राप्त हो जाय। इसके लिए तीन प्रकार से दृष्टि-साधन या दृष्टियोग होता है— **अमादृष्टि, प्रतिपदा दृष्टि और पूर्णिमा दृष्टि। तद्दर्शने तिस्रो मूर्तयः अमाप्रतिपत् पूर्णिमा चेति। निमीलित दर्शनममादृष्टिः अर्धोन्मीलितं प्रतिपत्। सर्वोन्मीलनं पूर्णिमा भवति।**

—मण्डलब्राह्मणोपनिषद्

अर्थात् उसके देखने के लिए तीन दृष्टियाँ होती हैं— अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा। आँख बन्द करके देखना अमादृष्टि है; आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा है और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा है।

हमलोगों का साधन अमादृष्टि है। प्रतिपदा और पूर्णिमा दृष्टि में आँख में कष्ट होता है। सर्व-साधारण के लिए अमादृष्टि ठीक है। भगवान् बुद्ध का ध्यानावस्थित चित्र जहाँ देखिये, वहाँ उनको चित्र में आँख बन्द करके ही ध्यान करते देखियेगा। मेरे पास व्यासदेवजी का एक चित्र है, जिसमें व्यासदेवजी आँख बन्द करके ध्यान कर रहे हैं, ऐसा दर्शन होता है। इसलिए अन्तःप्रकाश को पाने के लिए आँख बन्द कीजिये; किन्तु नींद से बचते रहिये। भजन में ये दो बड़े विघ्न हैं— एक तो आलस्य और दूसरा गुनावन। गुनावन आता जाय, हटाते जाओ। जैसे श्रावण-भाद्र महीने में गंगा की धारा में घास-कूड़े बहते रहते हैं, किन्तु स्नान करनेवाला घास-फूस को हाथ से हटाकर डुबकी लगा लेता है, उसी तरह मन की धारा में बहुत-सी चीजें बह-बहकर आती हैं, उनको हटाकर डुबकी लगाइये, ध्यान कीजिये। ध्यान ऐसा कीजिये कि एकविन्दुता प्राप्त हो जाय। यदि आप कहें कि एकविन्दुता से परमात्मा को क्या सम्बन्ध है, तो गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी ने उस विन्दु-रूप को परमात्मा का रूप बताया है—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।

—गीता, अध्याय ८/९

यह परमात्मा का सूक्ष्म रूप है। मैं तो इसे ज्योतिर्मय शालिग्राम कहता हूँ। शालिग्राम (शालीग्राम) में भी हाथ-पैर नहीं हैं और विन्दु में भी हाथ-पैर नहीं हैं। योगशिखोपनिषद् के प्रथम अध्याय में लिखा है—

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्तिनिकेतनम्।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

अर्थात्— विन्दु-नाद महालिंग है और शिव-शक्ति का घर है। इस देह को शिवालय कहते हैं। सभी प्राणियों को इसमें सिद्धि मिलती है। पुनः इसी उपनिषद् के पाँचवें अध्याय में इस प्रकार कहा है—

विन्दुनाद महालिंगं विष्णुलक्ष्मीनिकेतनम्।
देहं विष्ण्वालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

अर्थात्—विन्दुनाद-रूप जो महालिंग है, वही विष्णु और लक्ष्मी का घर है। इस देह को विष्णु-मंदिर (ठाकुरवाड़ी) कहते हैं। सभी प्राणियों को इसमें सिद्धि मिलती है।

इस (विन्दु) का दर्शन हो, मन टिक जाय, तो कहना ही क्या? एक बंगाली साधु कहते हैं— 'देखे आँखी कोनो मते फिरे ना।' जिसको ईश्वर के अणोरणीयाम् रूप का दर्शन होता है, वह ब्रह्मनाद

को ग्रहण करता है तथा ब्रह्मनाद को ग्रहण कर परमात्मा को प्राप्त करता है।

जिस शब्द से परमात्मा की पहचान हो, वह परमात्मा का नाम है। परमात्मा के नाम वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक; दोनों प्रकार के हैं। जाग्रत में वर्णात्मक नाम का जप होता है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति; तीनों अवस्थाओं को छोड़ने पर वर्णात्मक नाम का जप नहीं हो सकता, तब ध्वन्यात्मक नाम का ध्यान होगा। वर्णात्मक नाम का अर्थ होता है; ध्वन्यात्मक नाम का अर्थ नहीं होता है; किन्तु ध्वन्यात्मक नाम बड़ा सुरीला और आकर्षक होता है। इस शब्द से खिंचकर परमात्मा तक पहुँच जाते हैं।

यही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं ऊबरै, केता करै उपाय।।

चुम्बक सत्त शब्द है भाई। चुम्बक शब्द लोक ले जाई।।
मृतु अंध जबही नियरावै। चुम्बक शब्द जीव मुक्तावै।।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा। सत्त शब्द जो बसै सरीरा।।
—दरिया साहब बिहारी

कोई उपासक गाणपत्य, कोई शैव, कोई शाक्त, कोई सौर तथा कोई वैष्णव होते हैं। इनमें किसी एक को विशेष और दूसरे को न्यून बतलाना ठीक नहीं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य तथा आत्मस्वरूप; आपको और आपके इष्ट को भी है। शुद्ध आत्मु-स्वरूप सबका एक है। अपने इष्ट के सब रूपों का दर्शन कीजिये, तब आपकी भक्ति पूरी होगी। चाहे आप जिसकी भी भक्ति कीजिये, इन दर्शनों के लिए आपको अन्तर्मुख होना ही पड़ेगा तथा अन्तर्मुख होकर आपकी ऊर्ध्वगति हो, इसके लिए (ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद) का सहारा लेना पड़ेगा। इन दोनों (ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद) का सहारा लेकर जो कोई अन्त तक पहुँचेगा, वह कहेगा—जो देवीजी हैं, वे ही शिवजी, वे ही विष्णु, वे ही गणेश और वे ही सूर्य भी हैं— सब एक ही हैं। इसलिए ऐसा भजन हो कि अन्तःप्रकाश और अन्तर्नाद का सहारा लेकर उनके आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लें। तब उसके लिए गणेश, शिव, विष्णु और सूर्य—सब एक ही हो जायँगे। तो इस प्रकार अपने कल्याण के लिए सबको साधना करनी चाहिए। ❐

यह प्रवचन बिहार राज्य के भागलपुर जिलान्तर्गत ग्राम—दयालपुर में दिनांक ११.५.१९५२ ई० के सत्संग में हुआ था।

२१. संत-साहित्य से परम हित

प्यारे विद्वान साहित्यसेवी सज्जन, महाशयगण तथा अन्य सर्व सज्जनवृन्द!

मैं अपने को आप सबके बीच में उपस्थित करके अवश्य ही प्रसन्न हो रहा हूँ। क्योंकि आप महानुभावों के साक्षात्कार से मुझे सुख हो रहा है। परंतु जिस पद पर आप महानुभावों ने मुझे बैठाया है, उस पद पर बैठने की योग्यता अपने में मैं रंचमात्र भी नहीं पाता, इसलिए मुझे संकोच हो रहा है। मैंने अपनी इस अयोग्यता को सम्मेलन के मंत्री महोदय तथा श्रीनरेन्द्र प्रसादजी 'स्नेही' के सामने प्रकट कर दिया था और भागलपुर से पत्र लिखा था कि मैं आपके बुलाने की अवहेलना करने का साहस नहीं करता हूँ। आपके सम्मेलन में उपस्थित होऊँगा, परंतु सभापति के आसन पर योग्य विद्वान को ही आप आसीन करें। मैं उस आसन पर बैठने की योग्यता नहीं रखता। इसके उत्तर में मंत्री

महोदयजी ने लिखा—'आपके सभापति होने में जनता और साहित्यिक सभी प्रसन्न हैं। अतः यह निर्णय अब नहीं बदला जा सकता। इसलिए इस संबंध में आपको कृपा करनी ही होगी।' निज भाषा के साहित्यिक सम्मेलन में बुलाए जाने पर उसमें उपस्थित नहीं होना अपनी भाषा की शिक्षा से अपने को वञ्चित रखना है, जो निज-दुःख का हेतु है। मेरी सम्मति में ऐसे सम्मेलनों में सब लोग उपस्थित होकर लाभ उठाया करें। जबकि मुझ अयोग्य को ही सभापति के आसन पर बैठाया गया है, तब एक अयोग्य से जो होने की संभावना होती है, वही होगी। इसके लिए मैं आप सज्जनों से क्षमाप्रार्थी हूँ।

वाङ्मय अथवा पठन-पाठन विषयक सर्व-साधारण-हित-संबंधी गद्य-पद्यात्मक वाक्यों को अथवा इनकी पुस्तकों को मैं साहित्य कहकर जानता हूँ। परंतु वाक्य का कहने या लिखनेवाला मनुष्य होता है, इसमें किसी को भी संशय नहीं। पुस्तकें मनुष्य के वाक्यों को सुरक्षित रखनेवाली हैं, इसीलिए ये अत्यन्त यत्नपूर्वक विशेष सुरक्षित रखने-योग्य है। इन्हीं पुस्तकों के भण्डार को मैं साहित्य-भण्डार कहूँगा। आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक; दोनों पक्षों के हितों और उन्नतियों में सफल रहना मनुष्य जीवन की सफलता है, जो मनुष्य का हित मानने योग्य है। इसी हित के ज्ञान देनेवाले ग्रंथों को साहित्य कहा जा सकता है। साहित्य से सदा लाभ होता आया है और सदा लाभ होता रहेग। साहित्य-हीन देश और समाज में हानि-ही-हानि और हीनता ही हीनता देखने को मिलती है। आर्य और अनार्य; दोनों समाज इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आर्यों में भी जो साहित्यिक ज्ञान से हीन हैं, वे हीन दशा का ही भोग, भोग रहे हैं। इहलौकिक, पारलौकिक, सांसारिक तथा पारमार्थिक लाभों का ज्ञान देनेवाला, कला-कौशल और विज्ञान का सिखलानेवाला, गिरे हुए को उठानेवाला, असाहसी को साहसी, आलसी को निरालसी, निरुत्साही को उत्साही, निरुद्यमी को उद्यमी, असंयमी को संयमी, विचारहीन को विचार-शील, अज्ञानी को ज्ञानी, अभक्त को भक्त, आसक्त कर्मनिरत को निरासक्त कर्मनिरत, अवनत को उन्नत करनेवाला और रोते को हँसानेवाला साहित्य है। जिस भाषा का साहित्य-भण्डार आध्यात्मिक और आधिभौतिक; दोनों पक्षों के संपूर्ण विषयों की पुस्तकों से भरा हुआ है, उस भाषा के साहित्य से सर्वसाधारण का परम हित होगा। हमारे साहित्य-सेवी विद्वान सज्जन अपनी भाषा के साहित्य-भंडार को ऐसा ही बनाने का प्रयत्न करें। जनता इसमें सहायता पहुँचावे और अपनी सरकार भी इसमें सब प्रकार से बल देने की विशेष कृपा करे।

मैं पुनः साहित्यिक विद्वानों से निवेदन करता हूँ कि वे अपने मस्तिष्क के साहित्य-भण्डार की धन राशि को लेखबद्ध करके रखते जाएँ। इसके लिए वे किसी पुरस्कार वा आय की इच्छा न करें। सेवा का फल लोकहित होना चाहिए।

अपने देश में अब कई वर्षों से स्वराज्य प्राप्त है। यह हमें भारतीय जनता के लिए सर्वेश्वर की असीम कृपा से अहोभाग्य है। स्वराज्य प्राप्त होने के पहले आशा थी कि स्वराज्य प्राप्त होने पर हमलोगों को सुराज्य होगा और हमलोग सुखी हो जाएँगे। परंतु हमलोग स्वराज्य पाने पर अपने को सुखी नहीं पा रहे हैं। क्योंकि अपने में अनैतिकता, भ्रष्टाचार, केवल भौतिकता की ओर झुकाव और आध्यात्मिकता की ओर से मुख मोड़ाव का साम्राज्य हमारे यहाँ हो गया है। इसी से स्वराज्य में हम सुराज्य नहीं देख रहे हैं और जनता दुःखी है। जैसे विदेशी शासन की प्रबल शक्ति को हमलोगों ने अनेक कष्टों और अपमानों को सहन करके अपने

देश से हटाया है, उसी तरह चाहिए कि इस कथित साम्राज्य को भी हमलोग दूर कर दें। विदेशी शासन को उखाड़कर फेंकने में साहित्य और साहित्यिकों का बड़ा हाथ था। साहित्य से ही देश में स्वराज्य प्राप्ति की प्रेरणा, ज्ञान और शक्ति मिली थी। ऊपर कथित अनैतिकता आदि के साम्राज्य को भी हमलोग साहित्य से ही बल पाकर दूर कर सकेंगे। मैं केवल संत-साहित्य का ही स्वल्पातिस्वल्प अंश जानता हूँ, जिसमें कथित साम्राज्य को नष्ट करने का प्रेरण और बल मैं पाता हूँ। संत कबीर साहब कहते हैं—

छिमा गहो हो भाई, धर सतगुरु चरणी ध्यान रे।।
मिथ्या कपट तजो चतुराई, तजो जाति अभिमान रे।
दया दीनता समता धारो, हो जीवन मृतक समान रे।।
सुरत निरत मन पवन एक करि, सुनो शब्द धुन तान रे।
कहै कबीर पहुँचो सतलोका, जहाँ रहै पुरुष अमान रे।।

इस अमृतमय शब्द को समझकर इसमें निहित सदुपदेशों के अनुकूल यदि लोग आचरण करें, तो वे झूठ, चोरी, चोर-बाजारी और घूसखोरी, घृणित स्वार्थ, पर-पीड़न, धूर्तता और कपट आदि जो सुराज्य के परमबाधक हैं और जनता के परम दुःखदायी हैं, सबको छोड़ देंगे। देश में सुराज्य होगा, जनता सुखी हो जाएगी और साथ-ही-साथ मोक्ष धर्म-साधन में भी जनता लग जाएगी, जिससे उसका परम कल्याण हो जाएगा। संत-साहित्य में ऐसे सदुपदेशों की प्रचुरता है, जिससे जनता को इहलोक और परलोक; दोनों में सुख प्राप्त हो। वर्तमान साहित्यिकों को चाहिए कि अपनी भाषा के साहित्य के भण्डार को समृद्धशाली बनाने के लिए संत-साहित्य का अध्ययन तथा अनुसरण करें। परमात्म-भक्ति की ओर अर्थात् आध्यात्मिकता की ओर का प्रेरण, समाज को सदाचार पालन की ओर प्रेरण करेगा। सदाचार पालन से सामाजिक-नीति और आचरण उत्तम बनेंगे। राजनीति तथा शासनसूत्र का संचालन भी तब निर्दोष और सुखदायक होगा। इस तरह स्वराज्य में सुराज्य होगा और देशवासी सुखी हो जाएँगे।

उपर्युक्त कहे गए प्रेरणों की पुरानी और नई रचनाओं के प्रचार की देश में अत्यंत आवश्यकता है। सबलोग इस ओर अच्छी तरह ध्यान दें और इसके व्यापक प्रचार तथा प्रसार में विशेष संलग्नता से तन, मन और धन लगाने की कृपा करें।

साहित्यिक महानुभावों से नम्र निवेदन है कि संत-रचनाओं का अर्थ साहित्यिक ज्ञान-बल के साथ-साथ संतों के पारिभाषिक शब्दार्थ-बल तथा संत साधना-बल को मिलाकर करने की कृपा करें, तो संभव है कि उसमें त्रुटि नहीं रहने पाएगी। संत साधना की युक्ति जानकर साधन करते हुए तथा उनमें निरन्तर बढ़ते रहकर रहस्य का ज्ञान अनुभूति के द्वारा प्राप्त होने पर संतवाणी का शुद्ध बोध होना संभव है। भूगोल के पुस्तकीय ज्ञान और भूमण्डल भ्रमण करने के व्यावहारिक ज्ञान में अवश्य ही अंतर होना चाहिए। इसी तरह संत साहित्य के केवल साहित्यिक-ज्ञान तथा संतसाधना साधक के ज्ञान में अंतर मानना चाहिए। अब अपने देश और अपनी भाषा के नामों के विषय में कुछ कहना मुझे आवश्यक जान पड़ता है।

क्या हमलोग अपने को 'हिन्दू' ही कहते रहें? क्या अपने देश को 'हिन्द' वा 'हिन्दुस्तान' ही कहें? क्या अपनी भाषा को हमलोग हिन्दी ही कहें? 'साहित्यालाप' में उच्चकोटि के साहित्यिक श्रीमहावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने लिखा है—'हिन्द' शब्द फारसी भाषा का है। फारसी 'हिन्द' बहुत पुराना है। उसका प्रचार इस देश में मुसलमानों के द्वारा हुआ। ''फारसी भाषा में 'हिन्दू' शब्द जो काले के अर्थ में व्यवहृत होता है, वह मुसलमानों की कृपा का फल है।''

जबकि 'हिन्द' या 'हिन्दू' शब्दों के विषय में उपर्युक्त जानकारी है, तब 'हिन्द' या 'हिन्दू' शब्दों का अर्थ फारसी कोष में जो दिया गया है, वही मानना ठीक है, न कि संस्कृत के अनुकूल मानना ठीक है। यदि हमारे पूर्वजों के द्वारा हिन्द शब्द अपने देश के लिए और हिन्दू शब्द अपने लिए रखे गए होते और मुसलमानों के द्वारा प्रचार के पहले से ही ऐसा हुआ होता तो हिन्द शब्द फारसी भाषा का है, कहने का कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता है। जिन लोगों ने हमारे देश के नामकरण के लिए फारसी का शब्द हिन्द रखा और हमको हिन्दू कहा, उन्होंने ही इन शब्दों का प्रचार हमारे देश में किया तो उनका ही अर्थ न्यायत: संसार को उचित जँचेगा, न कि संस्कृतवाला अर्थ। लोग यह भी कहा करते हैं कि अफगानिस्तान, कन्दहार, ईरान और अरब इत्यादि के रहनेवाले 'स' का उच्चारण नहीं कर सकते। उन्होंने सिन्धु नदी को हिन्द कहा और उसी से हिन्दू और हिन्दुस्तान बने हैं। फारसी लिपि में चार 'स' हैं। से, सीन, शीन और साद। ये लोग सुभान अल्लाह, शख्स, साहब, गुलशन और शाह आदि बोल सकते हैं, पर सिन्ध वे नहीं बोल सकते, यह कैसे विश्वास किया जाय? सिन्ध को हिन्द कहने से समस्त भारतवर्ष का नाम हिन्द हो गया, पर सिन्ध प्रांत का नाम सिन्ध ही रह गया। हमारे सप्ताह को उन्होंने हप्ता कहा है। वे 'स' के बदले 'ह' कहा करते हैं। उसके पुष्टिकरण के लिए कुछ लोग उपर्युक्त प्रमाण भी देते हैं, पर यह प्रमाण भी मुझे संतुष्ट नहीं करता।

'साहित्यालाप' में संस्कृत व्याकरण के अनुसार हिन्द और हिन्दू शब्दों को संस्कृत शब्द सिद्ध किया गया है और अर्थ 'हिंसा करनेवाले को खण्डन करनेवाले अथवा संताप पहुँचानेवाला' कहा गया है। यह भी कहा गया है कि हिन्दू शब्द का प्रयोग संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता है। एक स्थल में उसका अर्थ भी लिखा है—हीन लोगों पर दोषारोपण करें, उसे हिन्दू कहते हैं। भेद इतना ही है कि यहाँ हिंसक अर्थ न लेकर हीन लिखा गया है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथ के अनुसार जब हीन अर्थ किया है, तब उस स्थान पर जो हिंसक अर्थ कहा गया है, तो बतलाना चाहिए था कि दोनों में से कौन सा अर्थ शुद्ध और पूर्ण है? और उद्धरणों के सहित उन प्राचीन ग्रंथों के नामों को भी लिखकर बता देना चाहिए था। यह भी बता देना चाहिए था कि संस्कृत भाषा विज्ञान के अनुकूल उन प्राचीन संस्कृत ग्रंथों की प्राचीनता कितनी है? परंतु ये सब कुछ नहीं बतलाए गए हैं। अतएव मैं साहित्यालाप से भी हिन्द, हिन्दू, हिन्दुस्तान और हिन्दी के अर्थों के विषय में संतुष्ट नहीं हूँ। क्योंकि हमलोग मुसलमानों के राजत्वकाल से अपने को हिन्दू कहते और कहलाते चले आ रहे हैं, इसीलिए हिन्दू, हिन्द, हिन्दुस्तान और हिन्दी शब्दों को महत्व देकर अपना लें, यह मुझे उचित नहीं जँचता। मुझे तो काला, गुलाम और चोर आदि अर्थवाले शब्द से अपने को अलग रखना ही अच्छा मालूम पड़ता है। गुलाम, गुलाम का देश और गुलाम की भाषा अर्थवाले शब्दों से संसार की दृष्टि में अपने को हेयतर दर्शाना हमारे लिए अत्यंत अयोग्य है।

महाभारत युद्धकाल में और उसके बाद महाभारत पुस्तक बनने के समय तक तथा बौद्ध और जैनकाल तक भी हमारे पूर्वज अपने को हिन्दू अपने देश को हिन्दुस्तान और अपनी भाषा को हिन्दी संभवत: नहीं कहते थे। कर्मकाण्ड में कुछ संकल्प कराते समय हमको हमारे पुरोहित आर्यावर्ते, भरतखण्डे आदि पढ़ाते हैं, न कि हिन्दे वा हिन्दुस्ताने। इससे अच्छी तरह विदित होता है कि मुसलमानों के द्वारा हिन्द वा हिन्दुस्तान और हिन्दू शब्दों के प्रचार

के पहले हमारे पूर्वज अपने देश को हिन्द वा हिन्दुस्तान और अपने को हिन्दू नहीं कहा करते थे। इस तरह जानकर अपनी भाषा को हम हिन्दी कहें, यह उचित नहीं जँचता। ऐसा कौन है, जो अपने देश तथा अपनी भाषा के लिए घृणित और घोर अपमानजनक शब्दों को सहन करे और रखे रहे? हमको हेय और नीच दृष्टि से देखनेवाले लोगों के द्वारा दिए गए जिन शब्दों से अपना घोर अपमान किया गया जानने में आता है, उन शब्दों का अर्थ आदरसूचक मानकर अपने लिए रहने देना, मुझे उचित नहीं जँचता। साहित्यालाप में फारसी हिन्दी बहुत पुराना है, लिखा गया है और फिर दूसरी जगह उस शब्द को संस्कृत का शब्द सिद्ध किया गया है। हिन्द शब्द को फारसी कहना और फिर उसको संस्कृत बना लेना मुझे अयुक्त प्रतीत होता है। तब यह भी विश्वास होने लगता है कि हिन्दू शब्द को भी इसी तरह संस्कृत बनाया गया है और बनाया जाता है। यदि हमारे पूर्वज अपने को हिन्दू कहे होते और उनके लिए यह शब्द उसी काल में अधिक प्रचलित हुआ होता तो फारसवाले हिन्दू शब्द की उत्पत्ति हिन्दू शब्द से किए होते। परंतु ऐसा प्रतीत नहीं होता है। साहित्यालाप को संस्कृत हिन्द से हिन्द शब्द की उत्पत्ति संभव मालूम होता है। जबकि हिन्द को संस्कृत भाषा का शब्द सिद्ध किया गया है, तब फिर उसकी उत्पत्ति हिन्द से फारसवाले किए हों और वह शब्द फारसी बन गया, इस प्रकार का कथन मुझे संतुष्ट नहीं करता। यदि हमारे पूर्वज अपने को हिन्दू कहे होते तो अपने देश को भी हिन्दुस्थान अवश्य कहते, हिन्दुस्तान नहीं। देश के लिए जिन वीरों ने विदेशी शासन को दृढ़ और भारी जंजीर को तोड़ डाला है, उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं कि वे हिन्द, हिन्दुस्तान और हिन्दी शब्दों को हटाकर अपने देश, अपने और अपनी भाषा के लिए दूसरे अशोभनीय शब्दों का व्यवहार करें। जबतक मैं अपने विद्वानों और शासन-सूत्र संचालकों द्वारा दूसरे शोभनीय शब्दों को स्थिर किया हुआ नहीं पाऊँगा, तबतक मैं अपने देश को भारत, अपने को भारतीय और अपनी भाषा को भारती कहा करूँगा। अतएव मैं इस साहित्य-सम्मेलन को भारती साहित्य-सम्मेलन कहता हूँ।

मुझे ज्ञात हुआ है कि साहित्य-सम्मेलन के लिए कार्यालय तथा कला भवन बनाने की माँग कई वर्षों से चली आ रही है। इस माँग की पूर्ति करके साहित्य की उन्नति करने में कार्य-कर्ताओं को सहयोग और साहस देना परमोचित है। अपने जिला के साहित्य-सम्मेलन के सदस्यों और हितैषियों से मैं निवेदन करता हूँ कि वे इस ओर कृपया अपना पूरा ध्यान दें।

मैं भारती भाषा, जिसको अनेक लोग अभी हिन्दी भाषा कहते हैं, के साहित्य की पूर्ण उन्नति चाहता हूँ। जो सज्जनवृन्द इस उन्नति में सफल सचेष्ट हैं, उनको अनेकानेक धन्यवाद देता हूँ। उनकी इस उदारता पर तो मैं अत्यंत मुग्ध हूँ कि ये मुझसे अयोग्य का भी आदर करते हैं। मैं इसलिए इनको पुनः धन्यवाद देता हूँ। मैं परम प्रभु परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी शुभ उन्नतियाँ हों और ये उत्तरोत्तर सफल होते जाएँ।

हे प्यारे विद्वान महोदयगण! आपके सामने जो धृष्टता और भूलें मैंने की हों, उसके लिए आप कृपा कर मुझे क्षमा करें।

❐

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला साहित्य–सम्मेलन का १४ वाँ अधिवेशन, उच्च माध्यमिक विद्यालय बनमनखी में दिनांक– १.६.१९५२ ई० के सत्संग में हुआ था।

२२. पाप और पुण्य दोनों बंधन

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

पुण्य और पाप; इन दोनों शब्दों को सर्वसाधारण जानते हैं। अच्छे-अच्छे कर्मों को पुण्य और बुरे-बुरे कर्मों को पाप कहते हैं। पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख होता है। पुण्य करने से स्वर्ग और पाप करने से नरक में जाते हैं। दोनों भोगियों का पुनः जन्म होने पर स्वर्ग जानेवाले श्रीमान के घर में और दूसरे ठीक उसके उलटे घर में जन्म लेते हैं। पाप को लोग पसंद नहीं करते और पुण्य को पसंद करते हैं। पाप करनेवाले की बदनामी और पुण्य करनेवाले की नेकनामी होती है। पाप करनेवाले अप्रतिष्ठा और पुण्य करनेवाले प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हैं। पुण्य वांछनीय है और पाप अवांछनीय है। ऐसा कोई नहीं जिससे कुछ पुण्य और पाप नहीं हुआ हो। कुछ लोगों से पुण्य अधिक और पाप कम होते हैं, वे ही भले कहे जाते हैं। किसी से पाप अधिक और पुण्य कम होते हैं, वे ही बुरे कहे जाते हैं। ऊँचे पद पर रहनेवाले भी यदि पाप करते हैं तो सामने में नहीं, किंतु पीछे में लोग उनकी निंदा करते हैं। कुछ भले लोग भी ऐसे काम करते हैं और भले कहे जाते हैं, किंतु वे भले नहीं हैं। उनके सामने में उनकी बुराई लोग नहीं कहें, किंतु पीछे अवश्य कहते हैं। लहसुन खाने से गंध होती है, छिपती नहीं। उसी प्रकार एकांत में पाप करने पर भी वह प्रकट हो जाता है। श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम का पद लोगों ने संसार में दिया है, उनको लोग विष्णु भगवान का अवतार मानते हैं। उनकी जितनी प्रतिष्ठा है औरों की उतनी नहीं हो सकती। राजनीति का पेंच और बालि को मिला हुआ वरदान की कठिनाई के कारण उन्होंने बालि को छिपकर मारा। उनसे भी भूल हो गई। बालि का शासन कुशासन था। उसने अपने भाई के साथ अन्याय किया था। ऐसा श्रीराम ने उसे कहा भी। बालि को वरदान था कि जो उसके सामने होकर लड़े, उससे दूना बल उसको हो जाय। इसलिए सुग्रीव से लड़ते हुए बालि को 'बिटप ओट देखहिं रघुराई'—तुलसीकृत रामायण में लिखा हुआ है। बालि के मारे बिना उसका कुशासन नहीं मिटता, इसलिए श्रीराम ने उसको मार डाला। फिर भी कितने लोग कहते हैं कि श्रीराम ऐसे महान से भी भूल हुई। बालि जानता नहीं था कि किधर से वाण आवेगा। वह तो अपने भाई से लड़ता था। उसका बदला दूसरे अवतार में अर्थात् कृष्णावतार में उस भगवान को व्याधा ने छिपकर वाण से मारा था। महाभारत के मैदान में भगवान श्रीकृष्ण को किसी अस्त्र से कुछ नहीं हो सका। जैसे समुद्र में सब लय होते हैं, उसी तरह सब अस्त्र-शस्त्र उनकी देह में लय हो जाते थे। किंतु एक तीर से उनका शरीर छूटता है, गोया वाण को वह ग्रहण कर लेते हैं। युधिष्ठिर को लीजिए, इतने धर्मात्मा कि उनके रथ का पहिया पृथ्वी से ऊपर होकर चलता था, जमीन में स्पर्श नहीं करता था। राजनीति का पेंच आता है, दोनों दल आमने-सामने युद्ध के लिए खड़े हैं। युधिष्ठिर अस्त्र-शस्त्र छोड़कर खाली देह भीष्म के पास चले जाते हैं। लोग समझने लगे उनकी शरण में जा रहे हैं। कौरव दल में खूब हँसी मच रही थी। भीष्म पितामह को जाकर राजा युधिष्ठिर ने प्रणाम किया और कहा—आप वरदान

दीजिए कि मैं शत्रुओं को परास्त करूँ। भीष्म बोले—तुम बड़े सुशील हो। मैं कौरव की ओर से तुम्हारे विरुद्ध लड़ने को हूँ, फिर भी तुमने मुझको आकर प्रणाम किया, मैं बहुत प्रसन्न हुआ। वर माँगो, किंतु मुझको अपनी ओर लेने का वर छोड़कर। युधिष्ठिर ने कहा—वर दीजिए कि मैं जीत जाऊँ। भीष्म बोले—तुम सब भाई मिलकर मुझे किसी तरह गिरा देना। फिर वह द्रोणाचार्य के पास गए और उनको प्रणाम किया। वे बोले कि मैं कहता हूँ—तुम सब भाई मिलकर किसी तरह मुझे मार देना। पुनः वे कृपाचार्य के पास गए और उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने कहा—मेरे रहते हुए भी तुम जीतोगे।

भीष्म के गिरने के बाद द्रोण सेनापति हुए और युद्ध आरंभ हुआ। घनघोर लड़ाई हुई। द्रोण हारते ही नहीं थे। अश्वत्थामा नामक एक हाथी को मारकर भीम ने हल्ला कर दिया कि द्रोणपुत्र अश्वत्थामा मारा गया। भीम की बातों का द्रोण को विश्वास नहीं हुआ। श्रीकृष्ण के कहने पर लाचार होकर युधिष्ठिर को झूठ बोलना पड़ा। द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर से तीन बार पूछा, तीनों बार युधिष्ठिर ने नर अश्वत्थामा के मरने की बात कही। इतने बड़े मनुष्य से भी पाप हो गया। उन्होंने कितने तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दानादि पुण्य-कर्म किया था, किंतु झूठ बोलने का एक पाप-कर्म करने से उन्हें नरक देखना पड़ा। 'भलेउ प्रकृति वश चूक भलाई।' लाचार होकर भी ऐसा काम हो जाने पर कोई पाप के फल से बच नहीं सकता। पाप का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। लोग पाप करते हैं और चाहते हैं कि पाप का फल दुःख न हो। तो क्या ऐसा कुछ उपाय है, जिससे पाप का नाश हो जाय? तो ध्यानविन्दूपनिषद् में लिखा है—

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहु योजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

कई योजन तक फैला हुआ पहाड़ के समान यदि पाप हो तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है; इसके समान पापों का नष्ट करनेवाला कभी कुछ नहीं हुआ है।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। जो किसी प्रारब्ध के कारण से नहीं होता, केवल पुरुषार्थ ही से होता है, वह नया है। पुराने कर्म के कारण से ऐसा हुआ सो नहीं, वह क्रियमाण कहलाता है। जितने कर्म करते हैं वे जमा होते हैं, उस जमा में से थोड़ा-थोड़ा भोगते हैं वह है प्रारब्ध। और अभी जो जमा है और उसमें जमा होता रहता है, वह है संचित कर्म। ध्यानाभ्यास करनेवाला क्रियमाण कर्मरूप पाप से बचता रहता है। क्योंकि पाप करनेवाले से ध्यान नहीं होगा। पापकर्म करनेवालों का मन विषयी होता है, वह संसार में लिपटा रहता है। उसे ध्यानाभ्यास में एकाग्रता आवे और उसका ध्यान बने, यह संभव नहीं है। ध्यान करनेवाला मन को विषयों से हटाता है और पाप से बचाता है। खाना, पीना, पहनना भी विषय है; किंतु वह इन सबको भोगते हुए इनमें लिप्त नहीं होता। डॉक्टर जानता है कि शरीर अस्वस्थ होने से कौन भोजन नहीं करना चाहिए और कौन भोजन करना चाहिए। उसकी बातों के अनुकूल रोगी चलता है और धन पास रखनेवाला धनी यात्री संकट के रास्ते से बचता है। बुद्धिमान पापों से बचने का इच्छुक, गुरु-वाक्य के अनुकूल विषय के कुपथ्य से बचता है और वह परमार्थ मार्ग का यात्री प्रमाद और कुसंग रूप संकटों से भी बचता है। इसलिए क्रियमाण पापकर्म उसको नहीं होता है। शरीर में बरतते हुए प्रारब्ध का भोग नहीं हो, कब संभव है? कितना हू ध्यान में चढ़ा हो, उसका फल भोगना ही पड़ेगा। किंतु उसका भोग वैसा होगा, जैसे कोई मद्य या भाँग पीनेवाला मस्त

हो जाता है, तब कहीं चोट लगने से उसका दर्द उसे कम मालूम होता है। डॉक्टर क्लोरोफॉर्म देकर किसी रोगी की चीर-फाड़ करता है, किंतु उसका दर्द उसे मालूम नहीं होता, उसी प्रकार भजन के नशे में उसे कर्म-फल भोग का दुःख और सुख कभी कम और कभी कुछ मालूम नहीं होता। संसार का सुख भी उसे आकर्षित नहीं करता। वह सुख को सह लेता है। साधारण लोग सुख नहीं सह सकते, दुःख को भले सह लें। सांसारिक सुख में लिप्त होना और अहंकारी बनना सुख नहीं सह सकना है। किंतु ध्यानाभ्यासी सुख-दुःख; दोनों को सहते रहते हैं। फिर ध्यानाभ्यास द्वारा ऊर्ध्वगति होती है और अभ्यासी कर्ममण्डल को पार कर जाता है। उसका कर्म-बीज जल जाता है और उसके तीनों कर्म नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए उपनिषदों में लिखित श्लोकों में ध्यानाभ्यास द्वारा कर्मों का क्षय दृढ़ता से बतलाया गया है। पाप-पुण्य दोनों कर्मों के फलों से बचने के लिए ध्यानाभ्यास करना सीखो। पाप-पुण्य दोनों बंधन हैं। ध्यान क्या है? 'ध्यानं निर्विषयं मनः।' विषय को मन जरा भी नहीं पकड़े। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द; ये पाँच विषय हैं। इन विषयों को छोड़कर मन रहे, ऐसा होना मन के लिए मुश्किल है। मूर्ति-ध्यान रूप हो ही जाता है, भोजन करते ही कुछ रस हो ही जाता है, संसार में रहोगे कुछ न कुछ गंध लगेगी ही। जप करते हो, शब्द को पकड़े हुए हो, विषय से मन कहाँ हटा? इसका अर्थ नहीं कि जप और इष्ट का ध्यान ही नहीं करो। जपो, ध्यान करो। संसार में बहुत रूप हैं, सब रूपों से आसक्ति हटाकर अपने मन को एक रूप पर रखो। कितने रूप छूट गए? बहुत शब्द हैं, सब शब्दों को छोड़कर एक शब्द के जप में लगे रहो। कितने शब्द छूट गए? इस अभ्यास में पहले दृढ़ हो जाना चाहिए, तब स्थूल रूप का ध्यान और अभ्यास करना चाहिए। भजन करने के समय यदि ख्याल करो कि हलुआ खाऊँ, तो ध्यान कैसे होगा? मतलब यह कि नाम जप और इष्ट-मूर्ति ध्यान के अतिरिक्त मन में कुछ न आने दो। इस तरह सब विषय छूटकर केवल एक नाम और एक रूप रह जायँ, ये स्थूल नाम-रूप हैं। इस साधन के दृढ़ हो जाने पर इसको छोड़कर सूक्ष्म-रूप और सूक्ष्म-नाम के साधन में मन को लगाना चाहिए। सूक्ष्म-रूप का साधन ही दृष्टि-साधन है। जिस रूप को कभी नहीं देखा है, उसे देखने की कोशिश करनी चाहिए। स्थूल मण्डल में आँख खुलते ही स्थूल रूप देखने में आता है। उसी प्रकार दृष्टि साधन ठीक-ठीक बनने से सूक्ष्ममंडल में सूक्ष्म दृष्टि खुल जाती है और सूक्ष्म रूप देखने में आता है। तब कहो कि इष्ट का ध्यान छूट गया? नहीं, इष्ट के स्थूल रूप का ध्यान छूटा, अब उनके सूक्ष्म रूप के ध्यान में मन लग गया। यहाँ सूक्ष्म विषय रह जाता है, इसको भी त्यागकर इष्ट का निर्विषय स्वरूप (आत्म-रूप) प्राप्त करना होगा। इस प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म रूप छूटेंगे, किंतु इष्ट नहीं छूटेंगे। सूक्ष्म रूपमंडल में सूक्ष्म शब्द अर्थात् ध्वन्यात्मक नाम का ग्रहण हो सकेगा। जिसके विशेष भजन से सूक्ष्म रूपमंडल, कारण और महाकारण जड़-रूपमण्डल छूट जाएँगे। और सच्चिदानंद पद के केन्द्र में वह शब्द भी लय हो जाएगा। वही केन्द्र निर्विषय तत्त्व पद इष्ट का परम स्वरूप या आत्म-रूप है। ध्वन्यात्मक शब्द जहाँ छूटेगा, वहीं परमात्मा का साक्षात्कार होगा। इस प्रकार निर्विषय तत्त्व को पाते हैं। जिसके पानेवाले को संचित और प्रारब्ध कर्म छू नहीं सकते हैं। ❐

यह प्रवचन बिहार राज्य के पूर्णियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—रघुवंशनगर में दिनांक ८.७.१९५२ ई० के सत्संग में हुआ था।

२३. परम पद से कभी गिरते नहीं

प्यारे लोगो!

जितने मनुष्य हैं, सब लोग सुख पाना चाहते हैं—यह स्वाभाविक है। जो मन-इन्द्रियों को सुहाता है, वह सुख है। जो मन-इन्द्रियों को नहीं सुहाता है, उसे दुःख कहते हैं। मन-इन्द्रियों को सुहानेवाले पंच विषय हैं। विषय सुखों के अंदर लोग जितने बढ़ते हैं, उनकी तृष्णा भी उतनी ही बढ़ती है। फल यह होता है कि अतृप्त रहकर ही वे शरीर छोड़ते हैं। देवलोक में जाने पर भी वे ही विषय वहाँ मिलते हैं, जो यहाँ मिलते थे। जो इन्द्रियाँ यहाँ सताती थीं, देवलोक में भी वे ही वहाँ सताती हैं। इन्द्रियों के कारण ही देवताओं को भी कलंक लगा। इन्द्रिय-सुख स्वल्प है और दुःखपरिणामी है, यह सुख कभी तृप्तिदायक नहीं, क्षणभंगुर है। मन और इन्द्रियों के सुख के अतिरिक्त और कोई सुख है, जिसे इन्द्रियाँ नहीं जानतीं हैं, वह आत्म-सुख है। सर्वसाधारण में इसकी चर्चा तो कभी-कभी होती है। किंतु आत्म-सुख कैसा होता है, बहुत लोग जानते नहीं हैं। आत्म-सुख नित्य, पूर्ण और तृप्तिदायक है। भक्तवर साधु सूरदासजी महाराज ने अपने सूरसागर में इस सुख का इस प्रकार गुण-वर्णन किया है—

परम स्वाद सब ही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।

इस सुख के लिए मनुष्य को यत्न करना चाहिए। जिस प्रकार पंच विषय पंच इन्द्रियों के विषय हैं, उसी प्रकार जीवात्मा का विषय परमात्मा है। जबतक चेतन-पुरुष जीवात्मा या सुरत शरीर, इन्द्रिय और अंतःकरण से आवृत्त रहती है, तबतक इसको ईश्वर की पहचान नहीं होती है। जड़ के स्थूल वा सूक्ष्म जिस प्रकार के आवरण में यह रहती है, उसी प्रकार के पदार्थ को पकड़ सकती है। आपकी आँख अच्छी होने से संसार की जो चीजें जिस रूप में या जितनी लंबाई-चौड़ाई में हैं, आप उनको ठीक वैसे ही जानेंगे। किंतु यदि आँख पर मोटी पट्टी बाँधी जाय तो कुछ भी नहीं देखेंगे। यदि कोई इस प्रकार का शीशा या चश्मा पहना दिया जाय, जिससे छोटी चीज बड़ी और कम चौड़ी चीज बड़ी चौड़ी देखने में आती है अथवा लाल या हरे रंग का चश्मा लगा दिया जाय, तो चश्मे के गुण और रंग के अनुरूप उस चीज की लंबाई, चौड़ाई और रंग को आप देखेंगे; न कि उसकी असली लंबाई, चौड़ाई और रंग को। इसी तरह जीवात्मा के ऊपर जड़ का परदा पड़ा हुआ है। इस जड़ावरण के अंदर रहकर जीवात्मा को जड़ तत्त्व के विविध भेद-रूप ज्ञान के अतिरिक्त ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का कुछ ज्ञान नहीं हो पाता। इस स्थूल आँख से स्थूल रूप देखा जाता है। कोई तो ऐसा भी कहते हैं—ईश्वर है ही नहीं। किंतु यह कहना ठीक नहीं। यह जो मोटा शरीर या आवरण है, इसमें रहकर मोटी-मोटी चीजों को देखते हैं, महीन चीजों को नहीं देख सकते। महीन चीजों को देखने के लिए महीन यंत्रों की आवश्यकता होती है, जिसे खुर्दबीन कहते हैं। हम जो कुछ भी संसार में देखते हैं, वह कभी सुंदर देखते हैं तो कभी वही असुंदर हो जाता है। इस आँख से जो कुछ भी देखते हैं, माया-ही-माया देखते हैं।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

इन परदों में रहकर ईश्वर के ज्ञान को नहीं जान सकते। जीवात्मा के ऊपर से शरीर-रूपी पट्टी और इन्द्रिय-रूप चश्मा उतर जाय और अकेले होकर रहे, तब जीवात्मा अपने विषय परमात्मा को पहचानेगा। परमात्म-स्वरूप का बौद्धिक ज्ञान अवश्य होता है, किंतु प्रत्यक्ष ज्ञान होने के लिए शरीर और इन्द्रियों के आवरण से छूट जाना चाहिए। उस दर्शन का जो आनंद है, वह तृष्णावर्द्धक नहीं; परम संतोषदायक है। माया के विषयों में संतुष्टि नहीं है, इसलिए तृप्ति नहीं है। ईश्वर-प्राप्ति का सुख संतुष्टि देनेवाला है और इसीलिए इसमें तृप्ति है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है। परमात्मा पूर्ण है। इस पूर्ण को पाकर कभी कोई अतृप्त रहे, संभव नहीं। संत-महात्मागण यही कहते हैं कि जो लोग सुख पाने की इच्छा करते हैं, उन्हें ईश्वर प्राप्ति का यत्न करना चाहिए। इसके लिए कोई योग, कोई ज्ञान और कोई भक्ति पर जोर देते हैं, किंतु समझानेवाले ज्ञानी समझाते हैं—आप तीनों को पृथक्-पृथक् क्यों मानते हैं? तीनों एक ही जगह हैं। जहाँ योग है, वहीं ज्ञान और भक्ति है। जहाँ भक्ति है, वहीं ज्ञान और योग है। तथा जहाँ ज्ञान है, वहीं भक्ति और योग है। लोग कहते हैं—योग कठिन और भक्ति सरल है। किंतु तीनों का अर्थ जानना चाहिए। भक्ति का अर्थ है सेवा, ज्ञान का अर्थ है जानना और योग का अर्थ है मिलाप। बिना ज्ञान के अर्थात् जाने बिना किसकी सेवा और कैसे सेवा की जाय? और यदि योग अर्थात् मिलाप करने के लिए नहीं जाने तो भक्ति करता है किसलिए? मिलने के लिए, यह कैसे होगा? इसलिए ज्ञान, भक्ति और योग; तीनों एक संग हैं। अर्थात् तीनों का अभ्यास करना चाहिए। हाँ! आरंभ में कोई तीनों को पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर सकता। पहले तो स्वल्प-ज्ञान है। संतों के संग से उनपर रंग लगता है। कोई-कोई ऐसे भी होते हैं, जो संतों का संग तो करते हैं, किंतु मन संसार में लगाकर रखते हैं। उनपर वैसा रंग नहीं लगता।

नित प्रति दरशन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी काहि वियोग ते, नहिं लागा हरि रंग।।
मन तो रमे संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग ते, नहिं लागा हरि रंग।।

—तुलसी सतसई

साधु के पास जाकर भी सांसारिक वस्तु पाने की इच्छा करते हैं।

ऐसी दीवानी दुनिया, भक्ति भाव नहिं बुझै जी।।
कोई आवै तो बेटा माँगै, यही गुसाईं दीजै जी।।
कोई आवै दुख का मारा, हम पर कृपा कीजै जी।।
कोई आवै तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी।।
कोई करावै व्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी।।
साँचे का कोई गाहक नाहीं, झूठे जक्त पतीजै जी।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजै जी।।

किंतु चाहिए तो ऐसा होना—

विषयन सों जो रहे उदासा। परमारथ की जा मन आशा।।
धन संतान प्रीति नहिं जाके। विषय पदारथ चाह न ताके।।
तन इन्द्री आसक्त न होई। नींद भूख आलस जिन खोई।।
बिरह बान जिन अंतर लागा। खोजत फिरै साध गुरू जागा।।

—राय बहादुर शालिग्राम, राधास्वामी द्वितीय आचार्य

ऐसा रहे तो झट रंग लग जाय। इसलिए पहले साधु-संग करें। संग करने से, सदाचार पालन करने का, अनुकरण करने को मिलता है। साधु-संग में जाने पर परमार्थ ओर की कोई कथा अवश्य होगी। इसलिए दूसरी भक्ति कथा प्रसंग है। कथा प्रसंग से ज्ञान उपजेगा और गुरु से भक्ति करने के लिए सीखेगा। गुरु की सेवा करेगा, यह तीसरी भक्ति होगी। कोई किसी की सेवा करेगा, तभी उससे कुछ गुण प्राप्त करेगा। सेवा करनेवाला मान-प्रतिष्ठा का ख्याल छोड़कर करेगा, तभी गुण

प्राप्त करेगा। फिर ईश्वर का गुण-गान गावेगा, चाहे पद्य में अथवा गद्य में। यह चौथी भक्ति होगी। फिर पाँचवी भक्ति आती है, दृढ़ विश्वास से गुरु मंत्र का जप करना। विश्वास इस बात का कि जपने का जो शब्द है, वह ईश्वर की ओर कर देता है। जिस शब्द का जप करना हो उसका अर्थ जानना चाहिए। जप करने से जापक की वृत्ति ईश्वर की ओर जावेगी। जप करते समय मन को समेटकर जप करना चाहिए। जप तीन प्रकार के हैं—बहुत लोग जानते हैं। वाचिक, उपांशु और मानस। वाचिक जप में, जप के शब्द को मुँह से उच्चारण करते हैं, जिसे स्वयं तो सुनते ही हैं और दूसरे लोग भी सुनते हैं। उपांशु जप में होठ हिलते हैं और मुँह में ही उच्चारण होता है, स्वयं ही सुनते हैं, बाहर और किसी को सुनाई नहीं देता। मानस जप में मुँह से उच्चारण नहीं होता है, मन से ही मंत्रावृत्ति होती रहती है। उत्तम मानस जप है। और आगे बढ़ते हैं—इन्द्रियनिग्रह करने का स्वभाव वाला हो जाना। यह बहुत बड़ी बात है। इन्द्रियाँ वश में हो जाएँ, बहुत से कर्मों की ओर से चित्त हट जाय और संसार में सज्जनों के धर्म के अनुकूल बरता करे। पाप की ओर—बुराई की ओर न जाय। भलाई की ओर—पुण्यकर्म की ओर जाय। जानना चाहिए कि बाहर की इन्द्रियाँ मन की प्रेरणा से चलती हैं। और जब बाहर की इन्द्रियाँ बाहर विषय की ओर होती है, तब मन में उस विषय की चाहना होती है। जैसे आँखें खुली हैं, कोई सुंदर रूप देखा तो मन में सुंदर रूप देखने की इच्छा होती है। फिर मन आँख को प्रेरणा करता है, उस सुंदर रूप को देखते रहने को। इस प्रकार जानना चाहिए कि मन की धार जो इन्द्रियों में है, विषयों में लगकर विषयों को जानती है। बाहरी इन्द्रियों में असल में तो मनोवृत्ति ही है। इसलिए मनोवृत्ति को समेटने का साधन होना चाहिए। आजकल लोग कहते हैं, यह समय यांत्रिक है। यंत्र से सब काम होते हैं। खेत को यंत्र से जोतते हैं, यंत्र से पानी पटाते हैं, आटा-चावल यंत्र से तैयार करते हैं तथा चलना-फिरना भी यंत्र से होता है। यह शरीर भी यंत्रमय है, हमलोग इसमें पड़े हैं। पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ बाहर की ओर और चार अंतःकरण भीतर की ओर हैं। इन दोनों में बड़ा मेल है। बिजली के यंत्र में बिजली सार है, उसी के बल पर चलती है। उसी प्रकार मन है। जिस प्रकार पानी खींचने का जो यंत्र है, उसको गाड़ी में लगा देने से गाड़ी को खींचता है। उसी प्रकार मन जिस विषय में दौड़ता है, उसको उससे उलटाकर यदि निर्विषय की ओर लगाओ तो वही करने लगेगा। इन्द्रियों की घाटों पर जबतक मन रहता है, विषय की ओर होता है। उनसे उनको समेट लेने पर वह विषय से निर्विषय की ओर हो जाएगा। निर्विषय तत्त्व परमात्मा है। पंच ज्ञानेन्द्रियों में से मन की धारों को खींचकर उसे वहाँ ले जाय, जहाँ से इसका प्रसार होता है। अर्थात् वहाँ सबको समेटकर मिला दे, तब यही हो जाएगा योग। अथवा इसी को आप चित्तवृत्ति-निरोध कहेंगे। क्योंकि चित्तवृत्ति-निरोध को ही योग कहते हैं। ऐसा होने से केन्द्र में केन्द्रित होकर आगे को बढ़ाव होगा, इसी को कहेंगे भक्ति। क्योंकि यह बढ़ाव स्थूल विषयों की ओर के प्रतिकूल जाना निर्विषय परमात्मा की ओर जाना है। किसी चीज को समेटिए तो वह अपने प्रथम प्रसार की ओर से विपरीत दिशा को हो जाती है। इसी प्रकार स्थूल में सिमटाव होने से उसके विपरीत सूक्ष्म की ओर सुरत की गति होगी। कोई किसी की पूजा करने के लिए अथवा दर्शन के लिए चलता है तो यह चलना उसकी भक्ति में दाखिल है। इसी प्रकार जो अपनी वृत्ति को समेटता है और उपर्युक्त गति होती

है, तब यह गति ही उसकी भक्ति होगी। अंतर की ऊर्ध्वगति में जैसे-जैसे उससे उत्पन्न स्वाभाविक चैन और ब्रह्मज्योति तथा ब्रह्मनाद की प्रत्यक्षता होती है, वैसे-वैसे विषयों की ओर से मन छूटता जाता है। यही होगी छठी भक्ति। कथित योग युक्ति के जाने बिना तीनों क्रमश: बढ़ते हैं और साधक पूर्णज्ञान, पूर्णयोग और पूर्णभक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। तब तीनों तीन नहीं रहेंगे, एक हो जाएँगे। इसलिए कहते हैं भक्ति करो। किसकी और कैसे भक्ति करें? इसके लिए आपलोग रामचरित मानस की नवधा भक्ति सुनिए और समझिए—

प्रथम भक्ति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भक्ति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन, करै कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
षट दमशील विरति बहुकर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहिमय जग देखा। मोते संत अधिक कर लेखा।।
आठवँ यथा लाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

ये नवो प्रकार की भक्तियाँ क्रमबद्ध हैं। पहली भक्ति है संतों का संग। भक्ति में जो पूर्ण हैं, वे संत हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

—महोपनिषद्

अर्थात् परे से परे को (परमात्मा को) देखने पर हृदय की ग्रंथि खुल जाती हैं, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। या गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज के वचन में है—

षट विकार जित अनघ अकामा।
अचल अकिंचन सुचि सुख धामा।।
अमित बोध अनीह मित भोगी।
सत्य सार कवि कोविद योगी।।

अर्थात् (संत) छहों विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य) को जीते हुए, निष्पाप, इच्छारहित, स्थिर, धनत्यागी, पवित्र और सुख के स्थान होते हैं। वे अति विशेष ज्ञानवान, इच्छारहित, अल्पभोगी, सत्य के साररूप कवि, विद्वान और योगी होते हैं।

ऐसे जो कोई हों, वे संत हैं। सर्वसाधारण इनको पहचान नहीं सकते। और ऐसे पुरुष बहुत कम होते हैं। इसलिए संतों की पहचान कठिन हो जाती है। फिर जिनको आप सचाई में बरतते देखें, ईश्वर की आराधना नित्य करते देखें और उत्तम आचरण के हों तो उनको साधु-संत कहकर जानने में कोई आपत्ति नहीं। इनकी पहचान भी तभी होती है, जब उनका कुछ दिनों तक संग किया जाय। भले लोग साधारण रूप में देखे जाते हैं। उनका संग करने से उनकी विशेषता जानने में आ जाती है। बुरे लोग अपने को अच्छे रूप में दरसाते हैं, किंतु उनका संग करने से उनके अवगुण उघर जाते हैं।

उघरे अंत न होहिं निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू।।

इसलिए पहले संतों का संग करने को कहा और बिना उसके अभ्यास के छठी भक्ति नहीं हो सकेगी। इसी में दमशीलता होती है। इसके किए बिना कोई छठी भक्ति नहीं कर सकता। मन और इन्द्रिय का जबतक संग-संग साधन होता रहता है, तबतक 'दम' का साधन है, जिससे दमशीलता प्राप्त होती है। और जब केवल मन का साधन होता है, तब होता है 'शम'। दम और शम दोनों में विशेष संबंध है। शम के साधन में प्रवृत्त रहना सातवीं भक्ति है। बिना शम के कोई 'सम' प्राप्त नहीं कर सकता। दम और शम के साधन में ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद प्राप्त होते हैं। जहाँ ब्रह्मज्योति हैं, वहीं ब्रह्मनाद भी हैं। जब सुरत अनहद ध्वनि में रत होती रहती है, तब शम का साधन होता

रहता है तथा जब साधक ब्रह्मनाद के निरुपाधिक मूल और शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, तब वह शम हो जाता है। अर्थात् उसको समता प्राप्त हो जाती है। ऐसे भक्त साधक को 'यथा लाभ संतोषा' का गुण प्राप्त हो ही जाएगा। और वह सरल और छलहीन होकर एक परमात्मा का ही भरोसा रखते हुए हर्ष, द्वेष, दीनता आदि विकारों से रहित हो जाएगा। इस तरह वह साधक नवो प्रकार की भक्तियों को प्राप्त कर लेता है। भक्ति केवल मोटी भक्ति में ही समाप्त नहीं होती हैं। भक्ति सूक्ष्म भी है और अत्यंत सूक्ष्म भी है।

कथित प्रकार से भक्ति को जानें और इसका साधन करके साधक परम भक्त होकर परमप्रभु परमात्मा को पाकर पूर्ण शांतिमय निर्बन्ध पद को प्राप्त करता है और नित्यानंद में निमग्न होकर उस पद से कभी नहीं गिरता है। इसी भक्ति से लोग आवागमन के चक्र से छूटते हैं। नित्य सुख को सदा भोगते रहते हैं। यह जानकर सबको ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। ❐

यह प्रवचन बिहार राज्य के भागलपुर जिलान्तर्गत ग्राम—बैकुण्ठपुर दियारा दिनांक १८.७.१९५२ ई० के सत्संग में हुआ था।

२४. अंतर में देखने का यत्न गुरु से सीखो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मन और चित्त का संबंध बहुत घनिष्ठ है। कहीं-कहीं मन की जगह चित्त और चित्त की जगह मन का व्यवहार करते हैं; किंतु दोनों दो चीज हैं। जिस प्रकार बाहर में दश इन्द्रियाँ हैं, उसी प्रकार अंदर में चार इन्द्रियाँ हैं, जिसे चतुष्ट्य अंतःकरण कहते हैं। मन का संकल्प-विकल्प करने का काम है। बुद्धि का विचार करने का, चित्त का हिलाने का और अहंकार का 'मैंपन' का बोध करने का। लोगों के चित्त में यह उठता रहता है कि मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, मैं कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ। ये अनिवार्य रूप से आते रहते हैं। यदि चित्त को चुप करें तो यह रुक सकता है, किंतु केवल विचार से रुक नहीं सकता। भूख को भोजन करके ही चुप कर सकते हैं, केवल ख्याल से चुप नहीं कर सकते। उसी प्रकार मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ; इसको भी केवल विचार से चुप नहीं कर सकते। इसको चुप करने के लिए चित्त को चुप करो, इसके लिए साधन करना होगा। साधन द्वारा जो जीवन में रहते हुए इसको चुप करके रहता है, वह जीवन-मुक्त कहलाता है। शरीर में रहनेवाला जीवात्मा है। जीवात्मा के लिए शरीर उपाधि है। यह शरीर बड़ा वृक्ष है। सूक्ष्म शरीर अंकुर है, कारण शरीर बीज है।

बिना क्रियमाण के प्रारब्ध नहीं होता। पुरुषार्थ को क्रियमाण कहते हैं। पुरुषार्थ का एकत्रित होना संचित कर्म कहलाता है। संचित से थोड़ा-थोड़ा (भोग) खर्च होता है, वही प्रारब्ध कर्म है। जब प्रारब्धकर्म क्षय हो जाय, तब सभी कर्म छूटने पर विदेहमुक्त होता है, जड़-चेतन की गाँठ खुल जाती है। दूध को मथकर घी अलग कर फिर घी में रखने से जैसे रहता है; उसी प्रकार जड़-चेतन की ग्रंथि खुल जाय और फिर इस शरीर में रहे, वह विदेहमुक्ति है। संसार में जो आनंद होता है, वह स्वल्पानंद है, अनित्यानंद है। नित्यानंद में शान्ति है, संतोष है। इसी नित्यानंद प्राप्ति के लिए

मोक्ष का प्रयोजन है।

जीवन कमजोर रस्सी है। दिन-रात उजला और काला मूसा है, सांसारिक विषय-सुख शहद के समान है। यह थोड़ा-सा सुख नित्यानंद नहीं है। नित्यानंद की प्राप्ति का यत्न करो।

पुत्र चाहनेवाला पुत्रेष्टि यज्ञ करता है। ज्योतिष्टोम यज्ञ से स्वर्ग-लाभ करते हैं। वाणिज्यादि द्वारा धन-लाभ करते हैं। इसी प्रकार वेदान्त श्रवणादि-जनित ज्ञान से जीवनमुक्तादि लाभ होता है। ज्ञान को चार दर्जों में बाँटा गया है—श्रवण, मनन, निदिध्यासन और अनुभव। अनुभव जो ज्ञान सबसे पीछे उत्पन्न हो। सुनता है, विचारता है, साधन करता है, साधन करके अंत कर देता है, तब अनुभव ज्ञान होता है। इसलिए ये तीनों कर्म करो। तीनों का अंतिम फल अनुभव ज्ञान है।

चित्त का धर्म तब रुकेगा, जब इसकी क्रिया रुके। चित्त की क्रिया हिलना है। इस हिलने को बंद करो। चित्त के हिलने से ही सब इन्द्रियाँ काम करती हैं। इन्द्रियों को प्रेरण करनेवाला मन है। चित्त का हिलना बंद होते ही संसार का पसार बंद हो जाता है। पसार का बंद होने से सिमटाव होता है। सिमटाव से ऊर्ध्वगति होती है। ऊर्ध्वगति इतनी होती है कि कर्म-मण्डल को पार कर जाता है और प्रारब्ध कर्म क्षय हो जाता है। तो चित्त के हिलने को बंद करने के लिए श्रीराम ने कहा—चित्तवृक्ष के दो बीज हैं, प्राणस्पन्दन और वासना। इन दोनों में से एक को चुप करो, दोनों बंद हो जाएँगे। प्राणस्पन्दन को बंद करके भी चित्त को रोकते हैं और दूसरा है वासना को रोकना। मन किसी एक ओर लग जाता है, तो दूसरी ओर से फिर जाता है। किसी तरफ की इच्छा प्रबल हो जाती है, तो दूसरी तरफ से फिर जाता है। ईश्वर की तरफ इच्छा प्रबल हो जाय, तो संसार की ओर से छूट जाएगी। इच्छा को छोड़ने के लिए एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास करने कहा। प्राणायाम द्वारा प्राणस्पंदन रोकना विपद्जनक है।

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्।।

—शाण्डिल्योपनिषद्

जैसे सिंह, हाथी और बाघ धीरे-धीरे काबू में आते हैं, इसी तरह प्राणायाम (अर्थात् वायु का अभ्यास कर वश में करना) भी किया जाता है, प्रकारान्तर होने से वह अभ्यासी को मार डालता है। वासना को रोकने के लिए यत्न करना सरल साधन है। एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास करने से हेमन्त-काल के कमल के समान भोग-वासना का नाश हो जाएगा। एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास—एक मंत्र का जप करना, एक मूर्ति का ध्यान करना। (अनेक मूर्ति का ध्यान करने से मनोजय नहीं होगा) एक मूर्ति का ध्यान नख से शिख तक लोगे। हाथ, पैर, नाक, मुखारविंद, माला, वस्त्र आदि होने से ये भी एक तत्त्व नहीं हुआ। एक तत्त्व वही होगा, जिसे श्रीराम ने कहा—एकविन्दुता, जिसमें अंग-प्रत्यंग नहीं है। मोटे-रूप में एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास शालिग्राम है, इसमें हाथ, पैर, नाक, कान, मुँह नहीं। अल्प ज्ञान के लिए सुंदर-असुंदर रूप को जानते हैं, यह मायिक ज्ञान है। यदि आत्मा से देख पाओ तो वहाँ का सुंदर-असुंदर कुछ भी नहीं रहेगा। आत्मा की सुंदरता को प्राप्त कर इस सांसारिक रूप में नहीं फँसता। एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास विन्दु ध्यान है। बिना दिव्यदृष्टि खुले उसका दर्शन नहीं हो सकता। यही श्रीमद्भगवद्गीता का अणोरणीयां है। यह मन से गढ़ने का नहीं है। इसमें लंबाई-चौड़ाई नहीं है। देखने के ढंग से देखो। तुलसीदासजी ने बहुत आढ़, परदे से कहा है—

लोचन चातक जिन्ह करि राखै। रहहिं दरस जलधर अभिलाखै।।

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप विन्दू जल होहिं सुखारी।।

देखने का यत्न गुरु से सीखो। यह एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास है। ऐसा रहनेवाले की भोग-वासना एकदम छूट जाएगी। इसके लिए साधु-संग, वासना-परित्याग, अध्यात्म-विद्या की शिक्षा और प्राणस्पन्दन-निरोध करो। इच्छा छूटेगी, मन एक ओर होता जाएगा, प्राणस्पंदन रुक जाएगा। साधु-संग, वासना-परित्याग, प्राणस्पंदन-निरोध, अध्यात्म-विद्या की शिक्षा; ये चारो बातें सद्युक्ति हैं। इनको छोड़कर जो हठात् चित्त पर काबू करना चाहता है, वह प्रकाश त्यागकर अंधकार में ढूँढ़ता है। मदमस्त गजराज को कमल-नाल के तंतु में बाँधना चाहता है। सब लोगों को चाहिए कि ईश्वर का भजन करें। ईश्वर का स्वरूप अमायिक है, आत्मा से ग्रहण होने योग्य है। जड़-चेतन ग्रंथि नहीं खुलने से दिव्यदृष्टि नहीं हो सकती। दिव्यदृष्टि प्राप्त करने के लिए यत्न सीखो। इसके लिए पहले किसी मंत्र का जप, किसी स्थूल रूप का ध्यान करो। फिर विन्दु रूप का ध्यान करो। ज्योति के जितने प्रकार हैं, सूक्ष्म रूप हैं, इसके और आगे बढ़ो। स्थूल-सूक्ष्म रूप उपासना के बाद अरूप उपासना होगी, वह नाद उपासना है। वह ब्रह्मनाद है—चेतन-धारा सुनती है, कान नहीं सुन पाता। उसमें जो ध्यान लगाता है, उसमें खिंचाव होता है। नाद उपासना से नाद के उद्गम में खिंचाव होगा और वह नाद भी लय होगा, निःशब्द हो जाएगा। जिस क्लेश में हमलोग पड़े हैं, यह क्लेश नहीं हों, इसलिए ईश्वर की भक्ति कर मोक्ष-प्राप्ति कर लें।

यह प्रवचन संतमत सत्संग मंदिर मनिहारी, जिला कटिहार में दिनांक १८.१०.१९५२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२५. बहुदेव उपासना ठीक नहीं

प्यारे लोगो!

लोका मति का भोरा रे।
जौं काशी तन तजे कबीरा, रामहिं कौन निहोरा रे।।
तब हम ऐसे अब हम ऐसे, यही जनम का लाहा।
जौं जल में जल पैठ न निकसे, यौं ढूरि मिला जुलाहा।।
राम भगति में जाको हित चित, वाको अचरज काहा।
गुरु प्रसाद साधु की संगति, जग जीते जात जुलाहा।।
कहै कबीर सुनो हो संतो, भरम परो जनि कोई।
जस काशी तस मगहा ऊसर, हृदय राम जौं होई।।

कबीर साहब कहते हैं—अरे, सीधी बुद्धि का मनुष्य! यदि काशी में कबीर शरीर छोड़े अर्थात् काशी की लोकोक्ति-महिमा के भरोसे कबीर काशी में शरीर छोड़े, तो राम से विनय करने का (राम भजन करने का) कौन-सा फल? तब अर्थात् शरीर धारण से पूर्व में ऐसा था और अब अर्थात् शरीर धारण करके ऐसा हूँ अर्थात् शरीर धारण के पूर्व में विकार-रहित था और अब शरीर धारण करने पर भी विकार-रहित हूँ—यही मनुष्य जन्म का लाभ है। जिस तरह जल में जल प्रविष्ट होकर फिर भिन्न होकर नहीं निकलता है, उसी तरह मैं (जुलाहा) शरीर-रूपी घड़े से ढरककर ईश्वर से जा मिला। राम-भक्ति में जिसका चित्त प्रेम से लगा है, उसके लिए यह कौन-सा आश्चर्य है! गुरु की कृपा और साधु के संग से जुलाहा (कबीर) संसार को जीतकर जाता है। कबीर साहब कहते हैं कि हे संतो! भ्रम में मत कोई पड़ो। यदि हृदय में राम हो तो

काशी जैसा है, ऊसर (मगहा) भी वैसा ही है।

बहुदेव उपासना में ईश्वर का ज्ञान नहीं होता। एक ईश्वर पर निर्भरता भी नहीं होती। ऐसे व्यक्ति से पूछने पर ईश्वर के विषय में कुछ कह भी नहीं सकते। किंतु इसी भारतवर्ष के अंदर जो केवल एक ईश्वर की उपासना करते हैं, वे कह सकते हैं। आर्य-समाजी या कबीर, नानक आदि संतवाणी को समझने, बूझनेवाले जानते हैं। किंतु इन लोगों में भी अब कमी आ गई है। एक ईश्वर पर विश्वास नहीं और बहुदेव उपासना करनी एक प्रकार की नास्तिकता ही है। किंतु आजकल ऐसी हवा चल गई है कि लोग बाहरी आडम्बर के कारण बाह्यपूजक को ही आस्तिक कहते हैं। जो बाह्य-पूजन नहीं करते, उसे ही नास्तिक कहा करते हैं। यह इस देश के लिए ठीक नहीं हुआ। संतवाणी में देवताओं का भी वर्णन है, किंतु इनको उतना स्थान नहीं दिया गया है। एक ईश्वर पर स्थिर होने कहा गया है।

देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया विवश विचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी, प्रभु कहा अपुनपौ हारे।।

गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने कहा— 'देवताओं का व्रत करनेवाले देवताओं के पास, पितरों का व्रत करनेवाले पितरों के पास, (भिन्न-भिन्न) भूतों को पूजनेवाले (उन) भूतों के पास जाते हैं और मेरा भजन करनेवाले मेरे पास आते हैं। संत कबीर साहब ने कहा—

देवता पित्तर भूइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की।

इसलिए मेरी भी यही इच्छा है कि सब कोई एकदेव उपासी अर्थात् ईश्वर उपासी बनें। जो कोई ऐसा समझते हैं कि देवता की भक्ति नहीं करके एक ईश्वर की भक्ति करने से देवता रुष्ट हो जाएँगे, तो उनको क्या कहा जाय? वे तो राक्षस हैं। कोई-कोई कहा करते हैं कि साधारण लोगों में यह ज्ञान देना ठीक नहीं। उन्हें गंगा स्नान करने, दान-दक्षिणा देने की ही शिक्षा दो। यदि सदा सबको यही शिक्षा दी जाय तो ऊँची शिक्षा कैसे प्राप्त करेगा? यदि कहो कि सबलोग खूब पढ़-लिख लेंगे, विद्वान होंगे, तब उन्हें यह शिक्षा दो। तो इतने ऊँचे-ऊँचे विद्यालय में पढ़कर सब विद्वान हो जाय, कठिन है। यह ईश्वरीय ज्ञान तो धीरे-धीरे सुनते-सुनते सीख जाएँगे, चाहे एक अक्षर का भी ज्ञान नहीं हो। तोता जिसे मनुष्य के समान कण्ठ नहीं, उसे सिखाते- सिखाते मनुष्य की तरह बोलने लगता है और अपनी ओर से भी पीछे बोलने लगता है, तब मनुष्य क्यों नहीं सीख सकता? लोग हमारे सत्संग पर आक्षेप करते हैं कि ये सबको ब्रह्मज्ञानी बना देंगे। वे चाहते हैं कि सबको नीचे ही रखें, तो रहो सब मिट्टी पूजते ही। लोग कहते हैं ये नीची जाति के लोग हैं, इन्हें उपदेश नहीं दो। यह कितना संकीर्ण हृदय है। यह बात अच्छी नहीं। एक ईश्वर की उपसनावाले की ऊर्ध्वगति होती है और वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। किंतु अनेक देव-उपासी संसार की ओर जाता है और जन्म-मरण के चक्र में रहता है। यह संतमत एक उपासी बनने के लिए शिक्षा देता है। इसलिए ईश्वर के स्वरूप को जानो। ईश्वर के स्वरूप को जानने के लिए थोड़े में जानना चाहो तो पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पैर, मुँह, गुदा और लिंग; पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा और चार अंतःकरण—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार; कुल चौदहों इन्द्रियों से उसका ज्ञान नहीं होता। पैर से तीर्थादि जाओ, हाथ से हवनादि करो, मुँह से स्तुति या अच्छे-अच्छे शब्दों में भजन गाओ, किंतु ईश्वर को नहीं जान सकते। ये सब चौदहों इन्द्रियाँ ईश्वर को पाने के सर्वदा अयोग्य हैं। मन तो अंधा है, यह पहचान ही नहीं सकता। बुद्धि के विचार में

ईश्वर-स्वरूप आता है, किंतु पहचान नहीं सकती। चित्त केवल कम्पन अर्थात् मन को डुलाने के लिए जानता है और अहंकार से 'मैंपन' का ज्ञान होता है। इन इन्द्रियों से पहचान नहीं सकते। अपनी चेतनात्मा से पहचान सकते हो, जब इसपर इन्द्रिय आदि चश्मे का आवरण न हो। इन इन्द्रियों से अपने को छुड़ाकर चलना भक्ति है। जगन्नाथजी का दर्शन करने अथवा गंगा-स्नान करने के लिए चलना उसकी भक्ति है। उसी प्रकार ईश्वर से मिलने के लिए चलना ईश्वर की भक्ति में दाखिल होना है।

ईश्वर-भक्ति का ज्ञान सबको देना चाहिए। एक ईश्वर की उपासना ठीक है। बहुदेव उपासना ठीक नहीं। बहुदेव उपासी ईश्वर को भूल जाता है। वही नास्तिक है। फिर ऐसा भ्रम कि अमुक जगह मरने से स्वर्ग और अमुक जगह मरने से नरक होगा, यह बात नहीं हो सकती। गंगा-स्नान करने से, आपके मृतक शरीर को गंगा के किनारे जलाने से अथवा आपकी हड्डियाँ या भस्म को गंगाजी में देने से स्वर्ग हरगिज नहीं हो सकता। पाप करके पुण्य करें, इससे पाप नहीं कट सकता। पुण्य का फल अलग और पाप का फल अलग मिलेगा। आपने किसी से दो रुपया कर्ज लिया और किसी को दो रुपया दान दिया, इसलिए वह महाजन आपसे रुपया नहीं माँगे, यह कहाँ की बात है? वह तो कहेगा कि आपने दान अपने लिए किया, मुझे उससे क्या? मेरा रुपया दो।

युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण के समक्ष झूठ बोले, बल्कि उनकी प्रेरणा से झूठ बोले, फिर भी दो मुहूर्त तक नरक में रहना पड़ा। उसके लिए खातिरदारी नहीं हुई।

जो कर्म कीजिएगा, उसका फल भोगना ही पड़ेगा। तब आप कहेंगे कि क्या कर्म-फल से कोई छूट नहीं सकता? सौर-जगत में रहने से सूर्य का प्रभाव पड़ेगा ही। यदि सौर जगत से कोई पार हो जाए तो उस पर सूर्य का प्रभाव नहीं पड़ता। उसी प्रकार कर्म मंडल में रहने से कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा। कर्ममण्डल पार कर जाने से कर्मफल छूट जाएगा। इसीलिए मैंने पहले ही कहा कि अपने को इन्द्रियों से छुड़ाओ।

चौथ चारि परिहरहु, बुद्धि मन चित अहंकार ।
विमल विचार परमपद, निज सुख सहज उदार ।।

—विनय-पत्रिका

विचार में अपने का ज्ञान होता है, किंतु पहचान नहीं। अपने को चतुष्ट्य अंतःकरण से छुड़ाओ, कर्ममण्डल से पार हो जाओगे। अपनी पहचान होगी और मोक्ष मिलेगा। फिर कर्मबंधन से छूटोगे। 'कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चिन्हें।' लोक-लोकान्तर में जाने से मुक्ति नहीं मिलती। कभी न कभी फिर यहाँ आना ही पड़ेगा। इसलिए अपने को सब आवरणों से छुड़ाकर कैवल्यता प्राप्त करो और मोक्ष प्राप्त कर लो। फिर आवागमन से रहित हो जाओगे।

अगस्त्यजी ने श्रीराम को कहा था कि राजा श्वेत ब्रह्मा के लोक में गए, दान नहीं किया था, अतः उसको वहाँ भी भूख-प्यास सताती थी। उसको निज-मृत शरीर का मांस भोजन करने की आज्ञा ब्रह्मा ने दी। वहाँ भी भूख-प्यास सताती थी, कर्म से छुट्टी वहाँ भी नहीं। बैकुण्ठ में जय-विजय एक समय सनक, सनन्दन और सनत्कुमार आदि को रोका तो वहाँ भी शाप लगा और रावण-कुम्भकर्ण हुआ। जहाँ तक द्वैत है, वहाँ तक ऐसा ही रहेगा। अद्वैत में ऐसा नहीं होगा।

एक ईश्वर उपासना में कोई विघ्न नहीं हो सकता। मजबूत होकर एक ईश्वर की उपासना में लगो। ईश्वर नहीं है, यह सोचना बहुत बुरी बात

है। पहला—जो जीव माने, ईश्वर नहीं; दूसरा—ईश्वर माने, किंतु उपासना नहीं, बहुदेव उपासी हो और तीसरा—जीव, ईश्वर कुछ नहीं माने; स्वर्ग, नरक भी नहीं माने—ये तीन प्रकार के नास्तिक हैं। इन तीनों से बचना चाहिए।

यह प्रवचन संतमत सत्संग मंदिर मनिहारी, जिला कटिहार में दिनांक २५.१०.१९५२ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२६. मन बिजली से भी सूक्ष्म है

प्यारी जनता!

सत्संग में संतों के वचन का पाठ होना चाहिए। सुनने में मीठा, समझने में और भी विशेष मीठा मालूम होता है। पहले ध्यानविन्दूपनिषद् का पाठ हुआ। इसमें कहा गया कि पाप को नाश करने के लिए ध्यान ही सबसे बड़ी चीज है। ध्यान का आरंभ प्रत्याहार से होता है। प्रत्याहार के बिना धारणा नहीं होगी, धारणा बिना गहराई नहीं होगी, गहराई के बिना ध्यान नहीं हो सकता।

मन भागता है, उसको समेटकर लगाओ, यह प्रत्याहार है। फिर कुछ काल ठहरता है, वह धारणा होती है। धारणा बहुत बार होने पर गहराई होती है। मन देर से टिकता है, तब ध्यान होता है। पहले प्रत्याहार, फिर धारणा; यह ध्यान के लिए प्रयास करना है। यह प्रयास के बिना ध्यान नहीं हो सकता।

लोग कहते हैं, मन भागता है, यह ठीक है, सबको ऐसा होता है। थोड़ा-सा यत्न करके कोई कहे, नहीं होता है तो भूल है। जितना अभ्यास करना चाहिए उतना करना जरूरी है। पहले किसी का मन नहीं लगता है। भागे तो सम्हाल कर रखो। यह जितनी बार भागे, उतनी बार समेटो। कितनी बार समेटना पड़ेगा, ठिकाना नहीं! करते-करते होगा। कबीर साहब ने कहा—

लखत लखत लखि पड़ै, कटै जम फंद है।

भगवान श्रीकृष्ण भी कहते हैं—तुम्हारा मन जहाँ-जहाँ भागे, वहाँ से हटा-हटाकर फिर लगाओ। लोग कहते हैं—कुछ काल देखा, फिर भाग गया। अरे! वह नहीं भागा, वह जहाँ का तहाँ है, तुम भाग गए।

'बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादि।'

पहले लिखते समय कितनी बार हाथ टेढ़ा हुआ, फिर ठीक हुआ है। यह करना होगा। भजन-भेद जाननेवाले सब अभ्यास कीजिए, कभी निराश नहीं होइए, होगा कि नहीं! पहले प्रत्याहार होगा, उसका फल धारणा होगी, धारणा का फल ध्यान होगा। ध्यान कहते हैं—मन की एकाग्रता को, इतना सिमटाव कि जिसका बाँट नहीं हो सकता। जिससे छोटा कुछ नहीं हो सकता, वह है विन्दु—गीता का अणोरणीयाम्। इस तरह की धारणा हो कि एकविन्दुता हो। उसपर पूर्ण सिमटाव हो, यही श्रीमद्भागवत का शून्य ध्यान होगा।

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपिचिन्तयेत।।

—स्कन्ध ११, अध्याय १४

मुखारविन्द में चित्त के स्थिर हो जाने पर उसे वहाँ से हटाकर आकाश में स्थिर करें, तदनन्तर उसको भी त्यागकर मेरे शुद्ध-स्वरूप में आरूढ़ हो और कुछ भी चिंतन न करे।।१४।।

मुखारविन्द का ध्यान, फिर शून्य का ध्यान।

शून्य ध्यान सबके मन माना।

—संत कबीर साहब

जबतक कोई एक स्वरूप अवयव सहित रहता है, मन की बाँट समस्त शरीर पर होती है। एकविन्दुता पर पूर्ण सिमटाव होता है। सिमटाव का फल ऊर्ध्वगति स्वाभाविक है। जिस परिमाण में पूर्ण सिमटाव होगा, उसके विरुद्ध की ओर गति हो जाएगी, बढ़ाव हो जाएगा। किसी चीज को समेटो तो ऊपर की ओर वह बढ़ेगी। चाहे वह ठोस, तरल या वाष्पीय हो। जो जितना सूक्ष्म है, उसका उतना ही अधिक सिमटाव और ऊर्ध्वगति होगी। बर्फ से पानी और पानी से वाष्प अधिक सूक्ष्म होने के कारण बर्फ से पानी, पानी से वाष्प में विशेष ऊर्ध्वगति होगी।

अब मन को लो, मन बिजली से भी सूक्ष्म है। इसको समेटकर देखो, तब मन की चाल देखोगे। मन जाय, ठीक-ठीक जाय। वहाँ तीव्रता जो आती है, उसको देखो। यहाँ पूर्ण सिमटाव पहले स्थूल मंडल में होगा। स्थूलमंडल कर्ममंडल के अंदर का है। यहाँ सिमटाव होने से सूक्ष्ममंडल में जाता है, यह भी कर्मभूमि है। यह स्वर्ग या देवलोक है। यहाँ भी सिमटाव होने से जहाँ कर्म बीज रूप है, वहाँ चला जाएगा। वहाँ भी सिमटाव हो जाय तो कर्ममंडल को पार कर जाएगा। पाप-पुण्य कर्म दोनों छूट जाएँगे। पाप-पुण्य कर्म का फल भोगने के लिए संसार ही है। हमलोग जो कर्म करते हैं, इन कर्मों के फल को भोगकर कोई समाप्त नहीं कर सकता, किंतु ध्यानाभ्यास द्वारा कर्ममंडल को पार कर जाएगा और पाप-पुण्य दोनों कर्मों से छूट जाएगा। इस पाप से निवृत्त हो जाएगा। पाप ही क्यों? पुण्य-कर्म का फल भी संसार में ही भोगना पड़ता है। संत तुलसी साहब कहते हैं—

आली अधर धार निहार निजकै। निकरि सिखर चढ़ावहीं।।
जहाँ गगन गंगा सुरति जमुना। जतन धार बहावहीं।।
जहाँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि। धुर गुरू गति गावहीं।।
जहाँ संत आस विलास वेनी। विमल अजब अन्हावहीं।।
कृत कुमति काग सुभाग कलिमल। कर्म धोइ बहावहीं।।
हिये हेरि हरष निहार घर कौ। पार हंस कहावहीं।।
मिलि तूल मूल अतूल स्वामी। धाम अविचल बसि रही।।
आली आदि अंत विचारि पद कौ। तुलसी तब पिउ की भई।।

त्रिवेणी संगमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

अर्थात् देह में जहाँ उल्लिखित तीनों नाड़ियों का संगम है, उस स्थान को गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम—त्रिवेणी कहते हैं। यह त्रिवेणी सर्वप्रधान तीर्थ कहकर गिनी जाती है। इस तीर्थ में स्नान करने से सब पापों से मुक्ति मिलती है।

इस प्रकार कर्ममंडल से पार हो सकेंगे। एक तो ऋषि वाक्य है, इसलिए दूसरे विचार द्वारा भी यह बात ठीक जँचती है। पाप-कर्म करनेवाले से ध्यान नहीं होगा। पुण्य-कर्म करनेवाला भी यदि फलाशा रखता है तो वह भी बँधा हुआ रहेगा। सत्संग के बल से विचार के द्वारा पाप कर्मों से बचें। पुण्य कर्म करें, किंतु फलाशा नहीं रखें। पुण्य कर्म क्यों करें? तो संसार में रहकर कोई निष्कर्म नहीं रह सकता। कुछ कर्म करना ही होगा। यदि कहो कि पाप-पुण्य दोनों बाँधते हैं तो पाप करो ही नहीं, किंतु पुण्य करो। फिर फलाशा त्यागकर, इससे बंधन नहीं होगा।

ध्यानाभ्यास के द्वारा उसकी वहाँ तक गति होगी, जिसको कोई पार नहीं कर सकता। वह है परमात्मा। उसको पाने पर फिर जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ेगा।

पहले बीजाक्षर, फिर नाद और फिर नाद को भी लयकर देना। बीजाक्षर क्या होता है ? अक्षर का बीज जहाँ कलम रखते हैं, पहले विन्दु होता है, फिर कोई अक्षर। विन्दु के बिना लकीर नहीं हो सकता। बिना लकीर के कोई आकार या अक्षर नहीं हो सकता। इसलिए किसी आकार या अक्षर का बीज विन्दु है। फिर उन्होंने विन्दु में भी परम लगा दिया है। रेखागणित में विन्दु पढ़ता है, किंतु उसकी परिभाषा के

अनुकूल बाहर में कोई बना नहीं सकता। बाल की नोक से एक चिह्न देने पर भी परम विन्दु नहीं हो सकता। परम विन्दु लिखने के लिए परमात्मा ने कलम दे दी है, वह है दृष्टि।

दृष्टि दो प्रकार की होती है—एक फैली हुई, दूसरी सिमटी हुई। अर्जुन को निशाना मालूम होता था और कुछ नहीं। सूई की छेद में तागा करते समय कितना सम्हाल करना होता है ?

कहै कबीर चरणचित राखो, ज्यों सूई बिच डोरा रे।

एक बार द्रोण ने स्वयं अपने निशाने का परिचय दिया था। एक बार कौरव तथा पांडव सब भाई मिलकर गेंद खेल रहे थे। संयोगवश गेंद कुएँ में गिर पड़ा। अब इन लोगों को कुएँ से गेंद निकालने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। उसी समय द्रोण उसी होकर वहाँ आ निकले। इन लोगों ने उनसे गेंद निकाल देने की प्रार्थना की। द्रोण ने एक सींकी से गेंद में मारा, पुनः सींकी के पेन्दें में दूसरी सींकी से, एवं प्रकार सींकी के पेन्दे को सींकी से छेदते हुए कुएँ के ऊपर तक सींकी का छोर लगा दिया और गेंद को निकालकर उनलोगों को दे दिया। सींकी के पेंदे में सींकी मारना दृष्टि को कितना महीन करना है? इनकी दृष्टि कितनी सिमटी हुई थी? अपनी दृष्टि को इस प्रकार सूक्ष्म बनाओ।

बाहर में भी कितनी दृष्टि सिमटी है, जो अभ्यास कर पाता है वह जानता है। यह गप वाली बात नहीं। केवल सिद्धांत ही हो और प्रयोग नहीं, ऐसी बात नहीं। यह बाहर का हाईड्रोजन, ऑक्सीजन नहीं है, जो दोनों वाष्पों को मिलाकर दिखलाया जाय कि जल किस प्रकार होता है। एकविन्दुता होने पर जो दर्शन होता है, वह परमात्मा का सूक्ष्म-रूप है। शालिग्राम में हाथ-पैर नहीं है, मुकुट नहीं है, पर भगवान मानते हो। यह विन्दु ज्योतिर्मय है, इसे भगवान क्यों नहीं मानते, यह भीतर का शालिग्राम है। बड़भागी पुरुष एक बार भी दर्शन कर पाता है तो कितना हृदय शांत मालूम होता होगा। उसका दर्शन होने पर मुनि कहते हैं— नादं तस्योपरिस्थितम्। संसार में जहाँ भी देखो, शब्द होता है।

सृष्टि शब्दमय है। स्थूल जगत में शब्द है, उसी प्रकार सूक्ष्म जगत में भी शब्द है। ध्यान करके देखो, ठीक है या नहीं। चित्त जैसे-जैसे स्थिर होगा, शब्द सुनने में आता जाएगा। विन्दु प्राप्त करने पर सूक्ष्म नाद खुल पड़ेगा। यह वचन अतिशयोक्ति या रोचक नहीं है, यथार्थ है। शब्द से क्या होगा? शब्द में अपने उद्गम स्थान पर आकर्षण करने का गुण है। सब प्राणी शब्द के आकर्षण में खींच जाता है। विन्दु पर जहाँ से शब्द आता है, उसको पकड़नेवाला वहाँ लय होता है। जहाँ से वह शब्द आया है, वह लय होता है निःशब्द में। वही परमपद है। अंत में शब्द का अभ्यास होता है।

नास्ति नादात्परो मंत्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसंधे परा पूजा न हि तृप्ते परं सुखम्।।

अर्थ— नाद से बढ़कर कोई मंत्र नहीं है, अपनी आत्मा से बढ़कर कोई देवता नहीं है, (नाद वा ब्रह्म की) अनुसन्धि (अन्वेषण या खोज) से बढ़कर कोई पूजा नहीं है तथा तृप्ति से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

नासनं सिद्ध सदृशं न कुंभक सदृशं बलम्।
न खेचरी समा मुद्रा न नाद सदृशो लयः।।

अर्थ— न सिद्धासन सम आसन, न कुंभक सम बल, न खेचरी के समान मुद्रा और न नाद के तुल्य लय है।

विन्दु के प्रकट होने से नाद स्वयं प्रकट हो जाता है। गुरुदेव कहते थे—'माता का स्तन पान करने में बच्चा को जो आनंद मिलता है, उससे विशेष आनंद नाद को प्राप्त करने पर होता है।' इसको अपने अंदर में देखो। जैसे तेलधारा अटूट है। घंटे का दीर्घनादवत् जो नाद है, उसको ग्रहण करे। इसके लिए

मनिहारी में रहो या काशी में। श्वपच अपने घर मे करें, वहाँ होगा। भूदेव अपने घर में करें, वहाँ भी होगा, किंतु हृदय दोनों का एक होना चाहिए।

युधिष्ठिर के यज्ञ में भगवान श्रीकृष्ण ने श्वपच को चुना था। नाभाजी इस युग में हुए हैं, जिनकी 'भक्तमाल' बनाई हुई है। ये तुलसीदासजी के समय में हुए थे। किसी बड़ी या छोटी जाति के कारण हृदय बनेगा या नहीं यह बात नहीं। रविदास को सब कोई जानते ही हैं चमार थे। हृदय वैसा ही था, जैसा तुलसीदासजी का।

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोई।
सर्वभाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ।।

तो ध्यान से मोक्ष होना, परमपद का प्राप्त होना, आवागमन का छूट जाना है। इसके लिए बाहर में भटकने की जरुरत नहीं।

कबीर गुरु की भक्ति कर, तजि विषया रस चौज ।
बार बार नहिं पाइए, मानुष जन्म की मौज ।।
—कबीर साहब

विषय की मौज छोड़ने कहा। विषय की मौज में रहनेवाला अपने सुख में लगा रहेगा। दूसरे की सेवा करनेवाले को अपना शारीरिक सुख छोड़ना पड़ता है। तन, मन, धन की आसक्ति छोड़नेवाला तन, मन, धन से सेवा कर सकता है। विषय से संसार भरा हुआ है। विषय छोड़कर कहाँ जाओगे? तो विषय में आसक्त होकर मत रहो। फिर कहो, इस बार मौज करने दो, दूसरे जन्म में देखा जाएगा। तो कबीर साहब ने कहा—'बार-बार नहिं पाइये मानुष देह की मौज।'

राजा भरत को मरने के समय हिरण का ख्याल हो गया, मरने के बाद हिरण हो गया। भक्ति सब कर सकते हैं, इसके बीज का विनाश नहीं होता। हिरण हो जाने पर भी बीज नष्ट नहीं हुआ। दूसरे जन्म में और बढ़ गया। इसी को गीता के छठे अध्याय में भगवान ने कहा है—

अनेकजन्मसंसिद्धिस्ततो याति परांगतिम्।
—अध्याय ६, श्लोक ४५

अनेक जन्मों से अन्तःकरण की शुद्धिरूप सिद्धि को प्राप्त हुआ और अति प्रयत्न अभ्यास करनेवाला योगी संपूर्ण पापों से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर, उस साधन के प्रभाव से परमगति को प्राप्त होता है अर्थात् परमात्मा को प्राप्त होता है।

भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जो विष्ठा परै, घटै न ताको मोल।।
भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तउ संत को संत।।

नीच कुल में जन्म होने पर बीज नष्ट नहीं होता। 'भक्ति ठानि शब्दै गहै, बहुरी न काछै भेख।' शब्द को पकड़ ले। जाग्रत से ऊपर उठकर देखो तुरीय अवस्था में, तब यह जाग्रत स्वप्नवत् मालूम होगा। इसके ऊपर जाओ, अद्वैत पद में पहुँचो, तब फिर मिलना-बिछुड़ना, सुख-दुःख देनेवाला कोई नहीं रहेगा। जहाँ जड़-चेतन की ग्रन्थि खुल जाय।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।
— महोपनिषद्, अध्याय ४

अर्थ— परे से परे को (परमात्मा को) देखने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

उसी कर्म को करने में मनुष्य की सार्थकता है। सबको यही विचार ग्रहण करना चाहिए। सब संतों का मार्ग एक ही है। इसके लिए विषय की तरफ से आकर्षण को हटावें विचार से। विचार से कोई विषय की ओर से मन को हटाए बिना भजन में बढ़ नहीं सकता। खुलाशा में समझो तो झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार मत करो। एक ईश्वर पर अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने

अंतर में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना, सद्गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्याना भ्यास; इन पाँचों को मोक्ष का कारण समझना चाहिए।

❐

यह प्रवचन संतमत-सत्संग मन्दिर, मनिहारी, कटिहार में दिनांक २५.१०.१६५२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२७. सज्जनों का धर्म क्या है?

प्यारी जनता!

आपलोग और संसार के लोग पूर्ण शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं। मनुष्य ही क्या? संपूर्ण प्राणी सुख पाने की इच्छा करते हैं, चेष्टा करते हैं; किंतु पूर्ण संतुष्टि नहीं होती। सांसारिक सुख में दौड़ते हैं और पूर्ण संतुष्टि चाहते हैं, यह हो नहीं सकता। आप इतिहास, पुराण पढ़कर देखिए, कोई भी इस विषय सुख में पूर्ण सुखी और संतुष्ट नहीं हुए। इसलिए संतों ने कहा— परम सुख, शांतिमय सुख चाहते हो तो वह परमात्मा में है। उसको प्राप्त किए बिना पूर्ण सुख नहीं मिलेगा। इसलिए आपलोगों को नवधा-भक्ति सुनायी गयी।

संतों ने कहा कि भक्ति करो। और कोई कर्म करो तो उससे ईश्वर नहीं मिलेंगे, भक्ति करने से ईश्वर मिलेंगे। इसलिए आपलोगों को भक्ति का विषय सुनाया। बहुत धन, प्रतिष्ठा, हुकुमत मिल गई; किंतु इसमें सुख नहीं, यह महाजंजाल है। प्रबन्धकर्ता हैरान रहते हैं, किंतु फिर भी जैसा चाहते हैं, वैसा कर नहीं पाते।

श्रीराम देव-प्रेरणा से जंगल को चले गए। माता कैकयी और राजा दशरथ का कोई दोष नहीं—

काहू न कोउ सुख दुखकर दाता ।
निज कृत करम भोग सुनु भ्राता ।।

श्रीराम जंगल में घुमते थे। वे जीव-कोटि के नहीं थे, ईश्वर-कोटि के थे। संसार में सज्जनों के कल्याण के लिए, दुष्टों के दमन करने के लिए आए थे। रावण के द्वारा सीताजी का हरण हुआ। ऐसा होने से रावण के साथ दुष्ट आए और श्रीराम के द्वारा सबका दमन हुआ।

मातंग ऋषि के रहने का स्थान जंगल में था। उनके शिष्य उस आश्रम में रहते थे। ऋषि का शरीर छूट गया। उस कुटी में उनकी शिष्या शवरी रहती थी। वह बड़ी कुरूपा थी। उसकी कुरूपता देखकर उसके पति ने उसको छोड़ दिया था। जबतक मातंग ऋषि थे, तबतक शवरी उस आश्रम में रही, बाद में साधुओं ने उसे हटा दिया। वहाँ के तालाब से भी पानी लेने से मना कर दिया। फल यह हुआ कि तालाब का पानी सड़ गया। तब साधुओं को भी दूर से पानी लाना पड़ने लगा। अंत में श्रीराम उस आश्रम में आए। उन्होंने साधुओं से पूछा कि आपलोगों को कोई कष्ट भी है? उनलोगों ने कहा कि जिस तालाब से हमलोग पानी लाते थे, उसका पानी सड़ गया है। हमलोगों को दूर से पानी लाना पड़ता है; यही कष्ट है। तब भगवान के कहने पर शवरी उस तालाब में गई, तो पानी शुद्ध हो गया।

शवरी भक्ति में पूर्ण थी, किंतु भगवान ने उससे नवधा-भक्ति का उपदेश इसलिए कहा कि पीछे के लोग इस उपदेश का अनुकरण करेंगे। नवधा-भक्ति में प्रथम भक्ति संतों का संग बतलाया गया है। पढ़ा-लिखा हो, दो-चार बातें बोलना जानता हो, वेश-भूषा साधु का हो, इसलिए कोई संत नहीं होते। संत होने के लिए उपनिषद् में लिखा है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

—योगशिखोपनिषद्, अध्याय ५

उस परे से परे ब्रह्म को देख लेने पर हृदय की ग्रन्थि (गाँठ-गिरह) टूट जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने लिखा है—

अमित बोध अनीह मित भोगी।
सत्य सार कवि कोविद योगी॥

ऐसे लोगों का संग प्रथम भक्ति है। अग्नि के पास बैठने से गर्मी लगती है, मनुष्य के पास बैठने से उसकी गर्मी एक दूसरे में जाती है। इसी प्रकार संतों के पास बैठने से उनकी गर्मी भी समाती है, उसमें पवित्रता बढ़ेगी। संतों में योग, ज्ञान आदि भरे रहते हैं। उनके पास बैठने से उसी प्रकार की गर्मी समाती है। संतों के पास जाय और कुछ परदा रखे तो बेरोक गर्मी नहीं जाती। मन में कुछ-से-कुछ विचार बनाकर जाता है, यह परदा है। सांसारिक इच्छा लेकर संतों के पास जाते हैं, यही परदा है। संत लोग ज्ञान-ध्यान समझाते है, तो वह आम और इमली माँगता है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

नितप्रति दरसन साधु का, औ साधु का संग।
तुलसी काहि वियोग तें, नहीं लागा हरि रंग॥
मन तो रमै संसार में, तन साधु के संग।
तुलसी याहि वियोग तें, नहीं लागा हरि रंग॥

संत कबीर साहब ने कहा है—

ऐसी दिवानी दुनियाँ, भक्ति भाव नहिं बूझै जी।
कोई आवै तो बेटा माँगे, यही गुसाईं दीजै जी॥
कोई आवै दुख का मारा, हम पर कृपा कीजै जी।
कोई आवै तो दौलत माँगे, भेंट रुपैया लीजै जी॥
कोई करावै विवाह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी।
साँचे का कोई गाहक नाहीं, झूठे जक्त पतीजै जी॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अंधों को क्या कीजै जी॥

यही परदा है। यह परदा संतों के संग बैठने से दूर होगा। दूसरी भक्ति है—ईश्वर की चर्चा में प्रेम करना। तीसरी भक्ति—मान, घमण्ड छोड़कर गुरु की भक्ति करो। जैसे छत्रपति शिवाजी राव थे—आर्य धर्म को बचानेवाले और मुगलों से टक्कर देनेवाले। इतने बड़े होते हुए भी गुरु की सेवा अपने हाथ से करते थे। श्रीराम और श्रीकृष्ण भी अपने गुरु की सेवा अपने हाथों से करते थे। लकड़ी पर्यन्त तोड़ते थे। इस समय भी ऐसे लोग हुए हैं। अपने देश में स्वतंत्र राज्य के थे—छत्रपति शिवाजी राव।

गुरु कैसा होना चाहिए? जैसे संत का वर्णन पहले हुआ। चौथी भक्ति है—निष्कपट होकर ईश्वर का गुणगान करो। ये सब क्रमबद्ध हैं। संतों का संग करेगा, संग से ज्ञान होगा और गुरु-सेवा करेगा। गुरु ईश्वर-उपासना के लिए मंत्र देते हैं। यह मंत्र जप पाँचवीं भक्ति है। पहले मंत्र या शब्द का अर्थ जानो। वह शब्द ईश्वरपरक होता है। उस शब्द को जपते हुए, उसका अर्थ जानते हुए ईश्वर की ओर मन जाता है। मन एकाग्र हो जाता है, इसी को योग कहेंगे। छठी भक्ति और इससे विशेष है। गुरु से ज्ञान जानकर भक्ति करो। कोई कहे मैं तो किताब में पढ़कर अपने ही मंत्र जपने के लिए और भक्ति करने के लिए जानता हूँ। किंतु यह विधि नहीं है। शुकदेवजी गर्भ से ही ईश्वर की भक्ति करते थे,

किंतु बैकुण्ठ में रहने योग्य नहीं समझे गए।

गर्भ योगेश्वर गुरु बिना लागा हरि के सेव।
कहै कबीर बैकुण्ठ से फेर दिया सुकदेव।।
जनक विदेही गुरु किया लागा हरि के सेव।
कहै कबीर बैकण्ठ में जाय मिला सुकदेव।।

मंत्र को एकाग्रता से जपेगा तो चित्त एकाग्र होगा, यह पाँचवीं भक्ति होगी। '**छठ दम शील विरति बहु करमा।**' दम— इन्द्रियों के निग्रह का स्वभाववाला हो जाना। इस प्रकार का विचार और मन हो जाय तो इन्द्रियाँ काबू में हो जाएँ। उसकी इन्द्रियाँ विषयों की ओर बहके नहीं और सज्जनों के धर्म के अनुकूल बरते; यह है छठी भक्ति।

सज्जनों का धर्म क्या है? झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पापों को करते हुए कोई सज्जन होता है? तमाम संसार के धर्मों के लोगों से पूछिए, इन पाँच पापों को करना सज्जन का धर्म है? कोई नहीं कह सकते। सज्जन इन पापों से अलग रहते हैं। दमशीलता कैसे होती है ? गुरु महाराज की कृपा ने मुझे जैसा ज्ञान दिया है, वह यह है सुनिए— इन्द्रियों का सूत्र मन तक और मन का सूत्र इन्द्रियों तक है। मन चलेगा तो इन्द्रियाँ चलेंगी, नहीं तो नहीं। आप कहिए कि फलानी चीज चाहिए। आप आँख से देखते हैं, तब कहते हैं— फलॉनी चीज चाहिए। आप एक ओर देखिए और कान दूसरी ओर रखिए या मन किसी दूसरी बात को सोचे तो किसी के पूछने पर कि आप ने क्या-क्या देखा, तो ठीक-ठीक कह नहीं सकते। लड़के कॉलेज में पढ़ने जाते हैं, प्रोफेसर शिक्षा देते हैं। लड़के का मन यदि दूसरी ओर रहा तो प्रोफेसर का लेक्चर कुछ सुन-समझ नहीं पाते। इन्द्रियों का निग्रह कैसे होगा? अब सोचिए। मन-सूत्र जो इन्द्रियों में फैला हुआ है, उस सूत्र को उस ओर फिरा ले, जिस ओर से इसका बिखार होता है; ऐसा होने से फिर बिखार नहीं होगा, तभी दमन होगा और शास्त्रों का 'दम' कहलावेगा। यह कैसे होगा? मन का सूत्र कैसे घुरेगा? इसके लिए गुरु जो बताते हैं, वही छठी भक्ति है। मन के सूत्र सब इन्द्रियों के साथ है और मन के साथ भी है। और इन्द्रियों की अपेक्षा आँख के साथ विशेष है। कोई रूप को आँख देखती है, तब उस ओर और इन्द्रियाँ जाती हैं, तब रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द का भोग करते हैं। किसी पुष्प की गंध नासिका को लगी, इसी से संतुष्ट नहीं होता। आँख से देखे बिना मन नहीं मानता। आँख का सूत्र फेरिए तो सब सूत्र आप ही फिर जाएँगे। दायीं-बायीं आँखों की धारों को मिलाकर एक ओर फेरिए, यही है दृष्टि-साधन। इसको सुन कर मत कीजिए। आँख को उलटा-पुलटा देने से आँख खराब हो जाएगा, इसलिए जानकार से जानिए। यहाँ मन इन्द्रियों के संग-संग साधन होता है, यह है 'दम'। सातवीं भक्ति आती है— मनोनिग्रह, इसको 'शम' कहते हैं। पहले 'दम' शब्द आता है, इसलिए यहाँ 'शम' लिया है, 'सम' नहीं। जहाँ 'दम' और 'शम' है, वहाँ सम आ ही जाएगा। सम=बराबर=भेदरहित। शम होने से सम होगा। 'शम' के बिना 'सम' नहीं हो सकता। इन्द्रियों के निग्रह के लिए शाम्भवी मुद्रा या दृष्टियोग करने कहा। जबतक आपके अंदर कुछ संकल्प-विकल्प है, तबतक मन है। जब संकल्प-विकल्प छूट जाय, तब मन उन्मुन हो जाता है। इसके लिए ऐसा साधन चाहिए, जिसको इन्द्रियों के साधन का कुछ भी संबंध न हो। जब इतना हो जाएगा, तब स्थूल को कौन कहे सूक्ष्म विषय भी छूट जाएगा, तब कारण रहेगा। कारण कहते हैं बीज को। उस कारण माया में उसका स्वरूप शब्द है। शब्दविहीन सृष्टि नहीं होती है। सृष्टि के आदि में शब्द अवश्य होता है सृष्टि के आदि में शब्द है, उसका सहचर कम्प

है। कारण शब्दरूप है, उस शब्द को जब कोई ग्रहण करता है, तब उसकी वृत्ति संसारमुखी नहीं रहती, ईश्वरमुखी हो जाती है और 'शम' को प्राप्त करके 'सम' हो जाता है; यह सातवीं भक्ति है। मुनियों के शब्द में नादानुसंधान कहते हैं, इसके समान और दूसरी साधना में लय नहीं होता। 'न नाद सदृशो लयः।' इसमें नाद साधन होगा। इसको इस कान से नहीं सुन सकते, सुरत सुनती है। शम का साधन नादानुसंधान है। आठवीं भक्ति है— जो मिल जाय, उसी में संतुष्ट रहना है। जो 'सम' को प्राप्त किया है, उसको 'यथा लाभ संतोष' होगा ही। दूसरे का दोष वह क्यों देखेगा? हाँ, यदि पहले से भी ऐसा हिसाब लगावे कि जो मिले, उसमें संतुष्ट रहे तो बहुत अच्छा है। कोई आशा करे कि सातवीं भक्ति करके, समता प्राप्त करके ऐसा कर लेंगे, तो ऐसा उसके लिए बहुत मुश्किल होगी। अंतर का साधन भी हो और बाहर में ऐसा मन भी हो तो बड़ा मजबूत हो जाएगा।

नौवीं भक्ति है कि सबसे सरल हो जाए— महात्मा गाँधी के समान। जो करेंगे, वे पहले कह देते थे। इंगलैंड के एक पादरी ने कहा है कि बहुत सीधा होना खतरे से खाली नहीं, किंतु यह संसार के लिए है। जब वे इंगलैंड गए तो उन्हें सबसे उच्च स्थान पर बैठाए।

एक ईश्वर का भरोसा करो। इस प्रकार ईश्वर-भक्ति सब कोई करें। जब रास्ता कोई पकड़ लेता है, तो अंत भी कभी-न-कभी अवश्य होता है। संतों ने जो रास्ता बता दिया है, उसके अनुकूल सब कोई चलिए। हम तो चाहते हैं कि सब कोई सुखी हों। और सुखी होने के लिए जो यत्न होना चाहिए, बता दिया। अब सबको जानकर भक्ति करनी चाहिए। ❒

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत मनिहारी, निवासी श्रीशुकदेव पोद्दार के निवास पर दिनांक २६.१०.१९५२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२८. गागर ऊपर गागरी चोले ऊपर द्वार

प्यारी जनता !

विषय अनित्य है, इसका सुख क्षणभंगुर है। जीवन स्वल्प है। यह बाल, युवा और वृद्ध होता है, फिर एक दिन 'रामनाम सत्त है' कहकर श्मशान में ले जाकर जला देते हैं। यह देखकर आपको ज्ञान होना चाहिए कि एक दिन हमारी भी हालत यही होगी। संसार के अंदर विषयों में रहकर कोई सुखी नहीं हुआ। ऐसा कोई इतिहास नहीं कि इन्द्रियों के सुखों से कोई तृप्त हुआ हो। धनवान, ऐश्वर्यवान, विद्वान किसी से पूछिए— सबको कोई-न-कोई कमी है। शारीरिक एवं मानसिक दुःख व्यापते हैं, चाहे धनी रहो या निर्धन रहो। तो क्या ऐसा सुख नहीं है, जो नित्य हो, पूर्ण हो, संतुष्टि-दायक हो? संतलोग कहते हैं—हाँ, अवश्य है। वह सुख है ईश्वर की प्राप्ति में। ईश्वर की प्राप्ति पूर्ण सुख, शांति, कल्याण और तृप्तिदायक है। उस

ईश्वर की प्राप्ति इन्द्रियों से नहीं हो सकती। इन्द्रियों में वह शक्ति नहीं कि उसे ग्रहण कर सके। इन्द्रियों को एक-एक विषय ग्रहण करने की शक्ति है, दूसरे विषय को ग्रहण करने की नहीं। ग्रहण करनेवाला आप हो। आप ईश्वर का अंश हो।

ईस्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।

जैसे महदाकाश का अंश घटाकाश और मठाकाश है, उसी प्रकार तुम ईश्वर के अंश हो, अटूट अंश हो, अभिन्न अंश हो। ईश्वर अपरम्पार शक्तियुक्त है, इसके अंश में कुछ भी शक्ति नहीं हो, कैसे संभव है। समुद्र के जल में तरलता है, तो क्या एक बूँद में तरलता नहीं है ! महदाकाश का गुण शब्द, घटाकाश, मठाकाश और पटाकाश में नहीं हो कैसे संभव है? शून्य नहीं रहने से ढोलक नहीं बज सकता। उसको ठोस रखो खोखला नहीं रखो तो आवाज नहीं होगी। तो उस ढोलक के अंदर आकाश है। उसी का गुण शब्द है। महदाकाश में शब्द है तो उसका अंश ढोलक में है। वह भी शब्दयुक्त है। उसी प्रकार तुम ईश्वर के अंश हो, तुममें कुछ नहीं हो कब संभव है। तुम केवल देह नहीं हो। केवल देह रहने से मृतक शरीर कोई काम नहीं करता, क्यों? आप ईश्वर को बुद्धि के द्वारा भी पहचान नहीं सकते। आप अकेले होकर रहो तो परमात्मा हेराया, खोया हुआ नहीं रहेगा। यही है कैवल्य दशा। शरीर, इन्द्रिय को छोड़कर देखो। जब आपको ईश्वर प्राप्त होगा, तब आपको क्या कमी रहेगी। जो विद्वान हैं, वे सब अक्षरों का मिलान जानते हैं। जो ईश्वर को प्राप्त करते हैं, वे महाविद्वान हैं। जो ईश्वर को प्राप्त करेंगे, उनकी सब इच्छा चली जाती है। जिसे इच्छा नहीं वही पूर्ण सुखी है। जिसको कोई चीज लेने की इच्छा है, उसे अभी कमी है। विषयों में रहकर, शरीर में रहकर कभी कोई पूर्ण सुखी नहीं होता।

ईश्वर-दर्शन के लिए आपको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। वह तो अनादि अनंत अपरिमित है। जो चाहे कि यहीं आकर भगवान दर्शन देंगे, तो वह दर्शन मायारूप का ही होता है। वह ईश्वर कैसा है—

ब्यापक ब्याप्य अखण्ड अनंता। अखिल अमोघ शक्ति भगवंता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी।।

यदि उसका होना कहो कि नहीं है, ऐसा हो नहीं सकता है। इसको तुम पहचान नहीं सकते हो। जबतक मन बुद्धि के साथ रहोगे, कभी सुखी नहीं होओगे। श्रीराम से लक्ष्मण ने पूछा, माया क्या है? श्रीराम ने कहा—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

आँख, कान आदि इन्द्रियों से जो कुछ गोचर हो, वह माया है। जो आकर दर्शन दे अथवा आप किसी लोक में जाकर इस आँख से देखें, वह माया ही है। आप आडम्बर को पहचानते हैं, उनके स्वरूप को नहीं। उनके स्वरूप को इस आँख से तो क्या, दिव्यदृष्टि से भी उसे देख नहीं सकते। सुन्दरदासजी ने कहा है—

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सो आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

इसके लिए किसी इन्द्रियों की जरूरत नहीं। इन्द्रिय-शरीर-रहित होकर कैवल्य दशा प्राप्त कर जो दर्शन होता है, उस दर्शन के लिए दिव्यदृष्टि भी लाचार है।

उघरहिं विमल विलोचन हिय के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।

सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जब जो जेहि खानिक।।

तुम अपने को चारो जड़ शरीरों से छुड़ा लो। चाहे जहाँ रहो—वह ठण्ढ देश हो या गर्म देश हो, घर में रहो या वन में जाओ, इन्द्रियों से अपने को छुड़ाओ।

गागर ऊपर गागरी चोले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरा जहाँ बुलावे यार।।

स्थूल शरीर में स्थूल इन्द्रियाँ, सूक्ष्म शरीर में सूक्ष्म इन्द्रियाँ, कारण शरीर में कारण इन्द्रियाँ हैं। साधारण मृत्यु में केवल स्थूल शरीर छूटता है, सूक्ष्म शरीर वा लिंग शरीर रह जाता है। इसलिए एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने का जो रास्ता है, उसको जानो। इसी रास्ता को जना देनेवाला गुरु होता है। आप बड़े विद्वान या अविद्वान हों, ऐसा करें कि एक शरीर से दूसरा शरीर निकालकर अलग रखिए तो देखें! 'चोले ऊपर द्वार कहा' नव द्वार— आँख, कान, नाक, मुँह, लिंग आदि। सबसे ऊपर कौन द्वार है? आँख है, इसी में द्वार है।

जानि ले जानि ले सत्त पहचानि ले सुरत साँचि बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजे मिलै परख परवीन दिव्यदृष्टि ताना।।

यही चोले ऊपर द्वार है। शूली=लोहे का एक छड़। एक धार जो सारे प्रकृति मंडलों को छेद किया हुआ है। यह विषय गूढ़ है। कम्प नहीं होता तो सृष्टि नहीं होती। जहाँ शब्द है, वहाँ कम्प है; जहाँ कम्प है, वहाँ सृष्टि है। शब्द या कम्प ही एक धार है, जो प्रकृति-मंडल में ओर से छोर तक व्यापक है। इस धार को पकड़ने के लिए अपने को अंतर्मुखी बनाना, साधनशील बनाना और संयमी बनाना होगा। इस प्रकार अपने को बनाने में बड़ा कष्ट होता है। यदि इस कष्ट को नहीं उठाया तो आप मनुष्य नहीं। नाराज मत होइए। यदि अपने को संयम में, साधन में नहीं लगाया, तो मनुष्य क्या? क्या झगड़ा करना, दूसरे को दबाने की चेष्टा करना, युद्ध करना; यही मानवता का काम है? मनुष्यता प्राप्त करने में आधिभौतिक विज्ञान पूर्ण नहीं है। अवश्य ही संतों ने जो कहा है कि अपने को ऊपर उठाओ। शरीर इन्द्रियों से ऊपर उठाओ, यही मनुष्यता है।

एक ही शरीर नहीं, सब शरीरों से अपने को ऊपर उठाओ। केवल मुख से 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' कहने से नहीं होगा। भीतर में 'आत्मवत् न सर्वभूतेषु' और बाहर में 'आत्मवत् सर्वभूतेषु'—यह मनुष्यता नहीं है। फिर कहा—

वास सुरति ले आवई, शब्द सुरति ले जाय।
परिचय श्रुति है स्थिरे सो गुरु दई बताय।।

इच्छा संसार में ले आती है और सुरत जब शब्द में लग जाय तो वह खींच जाती है।

यही बड़ाई शब्द की जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहीं ऊबरै केता करे उपाय।।
चुम्बक सत्त शब्द है भाई। चुम्बक शब्द लोक ले जाई।।
लेइ निकारि होखै नहीं पीड़ा। सत्त शब्द जो बसै शरीरा।।

यह कहीं से लाना नहीं है। वह तुम्हारे अंदर में हई है, पहचानो। इसीलिए कबीर साहब ने कहा—

'परिचय स्रुति है स्थिरे सो गुरु देइ बताय।'
'हम चाले अमरापुरी टारे टूरे टाट।
आवन होय तो आइयो सूली ऊपर बाट।।'

कहने का आशय है कि परमानंद—परमसंतुष्टि को प्राप्त करो। वह सुख परमात्मा की प्राप्ति में है। उसके पास जाने के लिए सबका एक रास्ता है। चाहे वह भारतीय, मुसलमान, ईसाई कुछ भी होओ, सबके लिए संयम एक ही है। सबको चाहिए संयम से रहकर उस परमात्मा के पास जाने का राह जानकर उस पर चलें।

संतों का मत कबीर साहब, नानक, दादू, सूर, तुलसी साहब आदि सबकी वाणियों में यही दर्शाया गया है। उपनिषदों में भी यही दर्शाया कि सब संतों का एक ही मत है। ईश्वर प्राप्ति का एक ही

रास्ता है। उसको दर्शाने में मैंने कुछ सफलता भी पाई है। वह मैंने संग्रह कर सत्संग-योग में दे दिया है।

ठाकुरजी बनावें, उसे भोग लगवावें, यह तो राजाओं का काम है। श्रीराम मुनियों की कुटी में गए थे। वहाँ कहाँ वर्णन है कि मुनियों की कुटी में ठाकुरबाड़ी थी। हाँ, अवश्य ही राजा जनक, रावण आदि राजा के यहाँ ठाकुरबाड़ी थी।

देहि सत्संग निज अंग श्रीरंग भवभंग कारण सरण शोकहारी।

सत्संग को ठाकुरजी का निज अंग कहा है। जिस घर में सत्संग हो, वह ठाकुरबाड़ी है। ठाकुरजी की स्थापना सब ठाकुरबाड़ी में सब तरह से होती है। यहाँ सत्संग निज अंग है, उसी को यहाँ स्थापित किया है। इसके लिए किसी ठाकुरबाड़ी की मूर्ति की निंदा करें, ठीक नहीं। सुतीक्ष्ण मुनि राम का आना सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। आनन्दित होकर उनका ध्यान करने लगे। ध्यान में इतना मग्न हुए कि श्रीराम उनके आगे में खड़े हैं, किंतु उन्हें मालूम नहीं। वे अपने अंदर की ठाकुरबाड़ी में ही ठाकुरजी के दर्शन कर रहे थे। तो आपको यह ठाकुरबाड़ी प्राप्त है, उसमें ऐसा यत्न कीजिए कि ठाकुरजी का प्रत्यक्ष दर्शन हो। ध्यान कीजिए। सदाचार से रहिए। सदाचार-पालन के बिना ध्यान ठीक-ठीक नहीं हो सकेगा। ध्यान होने से सदाचार में दृढ़ता हो जाएगी। यदि सबके सब सदाचारी बन जाएँ, तो सारे देश में कल्याण हो जाय। झूठ-फूस, घूस सब मिट जायँ। हमारे ऊपर कोई राजा नहीं है, फिर भी दुःखी हैं। इसका कारण है कि हमलोग सदाचार का पालन नहीं करते। यदि सब सदाचार का पालन करने लगें तो देश सुखी हो जाए। विशेष लोग सदाचारी बन जाय, कम लोग सदाचारी नहीं बने तो पीछे वे भी सुधर जाएँगे। इसी के लिए सबको उपदेश दिया। सब कोई सदाचारपूर्वक रहिए, ध्यानाभ्यास कीजिए, तभी सुखी रहेंगे। ❐

यह प्रवचन संतमत-सत्संग मंदिर मनिहारी, जिला कटिहार में दिनांक १.११.१९५२ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२९. पंडितों का वेद संतों का भेद

प्रिय महाशयो !

सत्संग करने हमलोग यहाँ आए हैं। सत्संग विलास-विनोद का, आमोद-प्रमोद का स्थान नहीं, पूजा-पाठ-ध्यान करने का स्थान समझते हैं। पूजा, पाठ, ध्यान हम क्यों करें, इस बात को समझने के लिए सत्संग में जाते हैं। और हमलोग पूजा-पाठ करें, इन्हीं दो बातों के लिए यह सत्संग है। सत्संग उसे कहते हैं कि इन बातों का उपदेश हो और जहाँ पारमार्थिक बात सुनने-समझने के लिए लोग एकत्र होते हैं, वह बाहरी सत्संग है और ध्यान करना आंतरिक सत्संग है। ऐसा बाबा साहब कहते थे। घूम-घूमकर नहीं, किंतु बासे में बैठकर ही मालूम हुआ कि हमलोग अपने कर्तव्य को भूल गए हैं। आप काल की उपासना नहीं करते। काल की उपासना यह है कि जिस समय जो काम करने का, नहीं करते; इसीलिए समय-समय पर जो काम है, वह करना काल उपासना है। काल कोई भयंकर जीव नहीं है। काल का अर्थ समय है। काल की उपासना किए बिना कोई मुक्ति या मोक्ष नहीं पा सकता। पूजा की तो कितनी सामग्रियाँ हैं, लोग उतने कर भी नहीं सकते। किंतु पूजा वह कीजिए जिससे प्रभु प्रसन्न हों।

कबीर सोया क्या करै, जागन की करुचौंप।
ये दम हीरा लाल है, गिन गिन गुरु को सौंप।।

गुरु का अर्थ यहाँ परमात्मा है। गुरु का अर्थ बहुत गंभीर है। परमात्मा से लेकर अपने से श्रेष्ठ गुरुजनों को भी गुरु कहते हैं। गुरु का अर्थ है ज्ञानदाता। आदि ज्ञानदाता परमेश्वर है। उस मनुष्य को मनुष्य सिखाता है, जिसको परमात्मा ने ज्ञान दिया है। यदि किसी को दावा है कि मैं महागुरु हूँ तो उसने किसी वृक्ष या बैल, पशु को मोक्ष का उपदेश दिया है? आपलोग जानते हैं कि सात बजे से सत्संग का कार्यक्रम आरंभ है। अपने समय को उसमें लगाइए, जिससे लाभ हो। लाभ भजन करने में है और संसार के काम में। सत्संग के समय सत्संग कीजिए और संसार के काम के समय संसार का काम कीजिए।

ध्यानविन्दूपनिषद् का पाठ आपलोग सुने। कहावत है पंडितों का वेद, संतों का भेद। वेद नहीं पढ़े, केवल भेद जाने और करे, तो संत हो जाएगा। ईसामसीह कोई विशेष विद्वान नहीं थे। यहाँ कबीर, नानक क्या पढ़े-लिखे थे ? तुलसीदासजी भी बड़े-बड़े विद्वानों के सामने बहुत कम थे। संत पढ़े-अनपढ़े सब हो सकते हैं। किंतु पंडित बिना पढ़े नहीं हो सकता है। पंडित अयोध्या प्रसाद ने कहा—'वेद का अर्थ आकाश में लिखा है।' बाबा साहब कहते थे मैं वह पुस्तक पढ़ा हूँ, जिसमें १ पत्र, २ पृष्ठ और ४ अध्याय। पढ़ते-पढ़ते थक जाता हूँ, अंत नहीं होता। भारी इतनी कि हजारों इंजिन नहीं खींच सकती। १ पत्र है, २ पृष्ठ और ४ अध्याय क्या है? सारा विश्व (पिण्ड-ब्रह्माण्ड मिलाकर) एक पत्र है। सारा विश्व का अर्थ सारा प्रकृतिमण्डल। यदि कहें कि समस्त प्रकृति मंडल का संसार बन गया है। प्रकृति का विकृत रूप होकर और कितना बचा है, ठिकाना नहीं। ये ही प्रकृति एक पत्र है। दो पृष्ठ—एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। अंधकार, प्रकाश, शब्द, निःशब्द—चार अध्याय हैं। यह पढ़ो, गुरु महाराज कहे थे। १९०९ ई० की जुलाई में मैं सत्संग में सम्मिलित हुआ था। धरती पर के किसी विश्वविद्यालय में यह पढ़ाई नहीं होती है। कोई प्रोफेसर और गुरुजी नहीं कह सकते, न पढ़ा सकते। वह तो चुप बैठेगा। अंतर में प्रवेश करेगा, जन्मों पढ़ेगा और अंत में समाप्त करेगा। यह आकाश में जो वेद का अर्थ लिखा है, सो पढ़ेगा। बाबा साहब इसी पुस्तक को पढ़ने कहते थे। और अन्य पुस्तकों का भी आदर करते थे—तुलसी साहब का घटरामायण, तुलसीदासकृत रामायण और भगवान बुद्ध का धम्मपद।

आपने सुना पाप बहुत बड़ा हो, बहुत योजन तक फैला हुआ पहाड़ के समान हो तो ध्यानयोग के द्वारा नष्ट हो जाता है। सुनकर आश्चर्य मालूम होता है। ऋषि-मुनियों का वचन हो, इसलिए मानो, यह भी अच्छी बात है, वचन प्रमाण भी लोग मानते हैं। फिर एक बात और यदि बड़े लोगों के कहने में भी त्रुटि हो तो उनके विचारों की त्रुटि निकालकर तब अभ्यास करो। मन की एकओरता को ध्यान कहते हैं। यदि कहो मेरा खेत है, उसी ओर मन लगाकर रहेंगे, तो पाप नाश हो जाएगा? नहीं। खेत का अर्थ मैंने स्थूल ध्यान के लिए इशारा किया। इससे और बड़े के पास जाकर सुनिए—ध्यानं निर्विषयं मनः। मन को निर्विषय कैसे करें? शून्य में जाना कैसे होगा? तो दोनों में मेल है। शून्य में जाना—आकाश में जाना और बाबा साहब का वह १ पन्ने की किताब पढ़ना आ जाता है। विषय छूटेंगे कैसे? इसपर विचारो। लोग कहते हैं संसार में बहुत वस्तुएँ हैं,किंतु विद्वान विचार कर कहते हैं। अरे! पाँच ही वस्तुएँ हैं—रूप, रस, गंध,

स्पर्श और शब्द। इन सबों से अपने को खाली करो, तब ध्यान होगा। सुनकर असंभव मालूम होता है। फिर ज्ञानी कहते हैं कि असंभव नहीं, असंभव होता तो उपदेश नहीं देते। पहले बचपन में खेलते हैं, फिर पढ़ते हैं, फिर उपार्जन करते हैं। उसी प्रकार बिना एक छोड़े एक नहीं हो सकता। परमात्मा की भक्ति करने के लिए संतों ने कहा। यदि कहो, परमात्मा को नहीं देखा तो उसकी भक्ति, उसकी सेवा-सुश्रुषा कैसे करें? तो संतों ने कहा, कुछ नहीं जानते हो तो राम-राम, शिव-शिव कहो। एक मन से मंत्र जपो। कोई ऐसा कहे मेरा मंत्र अच्छा है, उसका अच्छा नहीं, यह सुनकर भूलिए नहीं। एक मंत्र को जपिए, जिसका अर्थ ईश्वर-संबंधी हो। स्थूल जप जपिए। सब शब्द छूटकर एक शब्द रहेगा। अन्य विषयों को छोड़कर केवल शब्द में लगे रहो। फिर लोग ध्यान करने बतलाते हैं। अपने इष्टदेव का ध्यान करो। कोई गुरु का ध्यान, कोई राम का, कोई कृष्ण का ध्यान करते हैं। आँख बंदकरके जप जपना और मानस-ध्यान करना। कोई ॐ का ध्यान करते हैं और कोई अल्लाह लिखकर ध्यान करते हैं। अलीफ पर और विशेष सिमटाव होता है, इसका भी ध्यान करते हैं। देखते-देखते सोना के समान, चाँदी के समान चमकता है। पहला अध्याय अंधकार मंडल में रहकर स्थूल जप, स्थूल ध्यान है। पहला अध्याय थोड़ा है, दूसरा अध्याय बहुत बड़ा है। स्थूल जप में और ध्यान में बहुत रूप और बहुत शब्द छूट जाते हैं। फिर दूसरे अध्याय में जाने से स्थूल रूप और स्थूल शब्द छूट जाता है। किंतु ऐसा नहीं समझिए कि इष्ट छूट गए। इष्टदेव का सूक्ष्म रूप रह गया। इसको मोटी आँख से नहीं, सूक्ष्म आँख से देखेंगे। वहाँ स्थूल कान भी नहीं। जहाँ स्थूल आँख है, वहीं स्थूल कान है। उसी प्रकार जहाँ सूक्ष्म दृष्टि है, वहीं सूक्ष्म श्रवण भी है, तब स्थूल रूप, नाम को नहीं देख सकेंगे। सूक्ष्म दृष्टि और सूक्ष्म श्रवण से सूक्ष्म रूप और सूक्ष्म शब्द को सुनोगे। तब सुन्दरदासजी का यह वचन आ जाएगा—

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सों आतमा परा भक्ति सुंदर कहै।।

गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं—

श्रीगुरुपद नख मनि गन जोती।सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती।।

ज्योतिवाला नख स्थूल नख नहीं है। यह दृष्टियोग से देख सकेंगे। फैलाव से सिमटाव में आओ, दृष्टि सूक्ष्म हो जाएगी। दृष्टि तो सूक्ष्म है ही। आँख और डीम, पुतली को दृष्टि नहीं कहते हैं। दृष्टि सूक्ष्म हई है। इसको समेटो तो सिमटाव में ऊर्ध्वगति होगी। स्थूल दर्शन और स्थूल श्रवण छूट जाय तो स्थूल विषय छूट जाएँगे। इससे सूक्ष्म का फैलाव विशेष है। होना ही चाहिए। स्थूल से सूक्ष्म का फैलाव विशेष होता ही है। संतों ने सूक्ष्ममण्डल में आकर सुनने के लिए कहा। शब्द अपनी ओर खींचते हुए अपने उद्‌गम स्थान पर खींचता है। शब्द बहुत हैं। हाथरस-निवासी संत तुलसी साहब कहते हैं—

सुरत सिरोमनि घाट, गुमठ मठ मृदंग बजै रे।।टेक।।
किंगरी बीन संख सैनाई, बंकनाल की बाट।
चितवत चाट खाट पर जागी, सोवत कपट कपाट।।
मुरली मधुर झाँझ झनकारी, रंभा नचत वैराट।
उड़त गुलाल ज्ञान गुन गाँठी, भर भर रंग रस माट।।
गाई गैल सैल अनहद की, उठै तान सुर ठाट।
लगन लगाई जाइ सोइ समझी, सुरति सैल नभ फाट।।

तुलसी निरख नैन दिन राती, पल पल पहरौ आठ।
यहि विधि सैल करै निस वासर, रोज तीन सै साठ।।

पहले विविध शब्दों में सुरत चलेगी। पहले शब्द का पता लगा उसके उद्गम पर पहुँचा, तब दूसरा शब्द मालूम हुआ, उसको पकड़ा। इस प्रकार चलते-चलते सुरत निःशब्द में पहुँच जाएगी। साधक गुण को पकड़े हुए गुणी में रहता है। शब्द को पकड़कर रखना आकाश में रहना है। इस साधना में होने से सभी पाठ समाप्त हो जाएँगे। परंतु इसके लिए बहुत लंबा समय चाहिए और परवाह करनेवाले कर सकेंगे, बेपरवाह कर नहीं सकते। भगवान बुद्ध ने कहा—'बुद्ध केवल उपदेश कहनेवाले हैं, करना तो तुम्हें ही पड़ेगा।' तो क्या किसी की आशा छोड़ दें? नहीं। जिसको श्रद्धा है, आशा है तो जिस प्रकार वर्षा का पानी गड्ढे में जाकर जमा हो जाता है, उसी प्रकार जिनमें श्रद्धा है, उनमें ज्ञान आकर टिक जाता है। भगवान बुद्ध के एक शिष्य भगवान के शरीर छूटने के समय रोने लगे तो बुद्ध ने कहा, अपना दीपक आप बन। वेद की पुस्तकों को खूब पढ़िए और समझिए। अच्छी तरह तो प्रायः ही कोई कह सकेंगे कि मैं बिल्कुल समझ गया। जानने के लिए बहुत बातें हैं, किंतु जिससे अपना काम चले, वह अवश्य जानना चाहिए। बाबा साहब कहते थे—संतमत का सिद्धांत बहुत छोटा है और दो सफे में है।

शून्यगत मन और निर्विषय मन। जब मन निर्विषय होता है तो पाप आप ही नष्ट हो जाते हैं। यदि कहो कि पहले का जो पाप किया हुआ है? कर्म तीन प्रकार के होते हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। जिस कर्म को भोग रहे हैं प्रारब्ध है। थोड़ा भोगा है, थोड़ा बाकी है भोगने को, वह संचित। क्रियमाण वह है जिसका कारण प्रारब्ध नहीं है। अभी जो हम नया कर्म करते हैं बिना प्रारब्ध के, आधार के वह क्रियमाण है। जो ध्यान में स्थित होगा, उसका क्रियमाण पाप छूट जाएगा, बाकी प्रारब्ध और संचित का स्थूल और सूक्ष्म में भोग होगा। जहाँ तक कर्ममंडल है, वहाँ तक सुख-दुःख का भोग भोगना ही पड़ेगा। किंतु परमात्मा के पास दोनों बराबर है, जिससे सब तृप्त है। वहाँ कम, विशेष सुख नहीं। इससे नीचे के लोक में अपने कर्मानुसार कम, विशेष सुख पाते हैं। ध्यानाभ्यासी तो कहीं किसी लोक में नहीं ठहरते, वे चले ही जाते रहते हैं। ध्यानाभ्यास में ऊर्ध्वगति होती है और राधास्वामी साहब ने कहा है—

बैठे ने रास्ता काटा चलते ने बाट न पायी।।
है रहनि गहनि की बाता, बैठा रहे चला पुनि जाता।
कहे को तात्पर्य है ऐसा, जस पंथी वोहित चढ़ि बैसा।।

इस प्रकार की ऊर्ध्वगति में वह कर्ममंडल को पार कर जाता है। और स्वरूप की पहचान हो जाती है, तब कर्म नहीं होता। 'कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हें।' बुद्ध को पेचिस की बीमारी हुई थी तो वे कहते थे आनंद! जबतक समाधि में रहता हूँ, तो आराम रहता है। पिण्ड में आने पर बहुत कष्ट होता है। उनको ऐसी शक्ति हो जाएगी कि परमात्मा को प्राप्त कर कर्मफल का दर्द कम रहेगा। जैसे किसी को क्लोरोफॉर्म सुँघा दिया जाय तो चीर-फाड़ के समय उसे दर्द महसूस नहीं होता। बिल्कुल नष्ट तो नहीं होगा, दुःख कम हो जाएगा। इसके लिए 'बीजाक्षरं परं विन्दुं' है। कहा, विन्दु परिभाषा के अनुकूल हो। यह विन्दु हाथ से नहीं पकड़ सकते। सूक्ष्म मण्डल में प्रवेश होने से बाबा साहब का दूसरा अध्याय प्रारंभ होगा। इस विन्दु को धारण करने से नाद प्राप्त होता है। एक ही श्लोक में सब बात आ गई। यदि मोटे में समझो तो—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

फिर दूसरे अध्याय में—

गगन मंडल के बीच में, तहवाँ झलके नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर।।
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकोंकी चिक डारी के, पिय को लिया रिझाय।।
कबीर कमल प्रकासिया, उगा निर्मल सूर।
रैन अंधेरी मिटि गई, बाजे अनहद तूर।।

आँख, डीम, पुतली थिर रखो। आँख बंदकर रखने में कोई कष्ट नहीं, बल्कि विशेष देर तक आँख खोलकर देखने से कष्ट होता है। बाह्यजगत के सूर्य में तो गरमी है, किंतु उस अंतर के सूर्य में शीतलता है, जिससे काम, क्रोधादिक सब विकार दूर हो जाएँगे। ज्ञान-विज्ञान बढ़ जाएँगे। पिण्ड-ब्रह्माण्ड का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। केवल वचन ज्ञान नहीं। बाबा नानक के वचन में सुनें।

सागर महि बूंद बूंद महि सागरु कवणु बुझै विधि जाणै।
उतभुज चलत आपि करि चीनै आपे ततु पछाणै।।
ऐसा गिआन विचारै कोई। तिसते मुकति परम गति होई।।
दिन महि रैणि रैणि महि दीनी अरु उसन सीति विधि सोई।
ताकी गति मति अवरु न जाणै गुर बिन समझ न होई।।
पुरख महि नारि नारि महि पुरखा बूझहु ब्रह्म गिआनी।
धुनि महि धिआनु धियान महि जानिआ गुरमुखि अकथ कहानी।।
मन महि जोति जोति महि मनुआँ पंच मिले गुरभाई।
नानक तिनके सद बलिहारी जिन एक सबदि लिवलाई।।

आप संसार में रहते हैं तो देखते हैं कि बाहर ब्रह्माण्ड में यह पिण्ड है। किंतु यदि अपने पिंड में प्रवेश कर देखिए तो देखिएगा, पिण्ड में ब्रह्माण्ड है। दिन में रात, रात में दिन, गरमी में सर्दी, सर्दी में गरमी करने कहा। दोनों धारों को मिलाकर, ठहराकर रहो। बिना गुरु के इसका बोध नहीं होता। पुरुष में नारी, नारी में पुरुष का मतलब ब्रह्म में प्रकृति और प्रकृति में ब्रह्म व्यापक है। मन के अंदर ज्योति है। ज्योति में मन को रखो तो उस नाद को प्राप्त करोगे। पंच सहायक गुरु भाई मिलेंगे। बिना निदिध्यासन के स्थिरता नहीं आती। विचार-ज्ञान बिजली के समान है, पढ़ने-सुनने, करने के लिए प्रेरणा करता है। इसीलिए पढ़ो, सुनो और करो। अंत समय में कुछ काम नहीं आवेगा। गप-शप, विचार-ज्ञान, लेक्चर झाड़ना किस काम का। हमको तो गीता का यह श्लोक बड़ा मीठा मालूम होता है—

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

भक्तियुक्त पुरुष अंतकाल में भी योगबल से भृकुटि के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप परमपुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है। ❒

यह प्रवचन सहरसा जिला विशेषाधिवेशन ग्राम—खापुर (अब जिला—मधेपुरा) में दिनांक ८.११.१९५२ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

३०. संतों का संग दुर्लभ है

प्यारे धर्मप्रेमी महाशयो!

हमलोग सत्संग, संतों की वाणी के सहारे किया करते हैं। हमारे गुरु महाराज यही बतलाए हैं।

संत संसर्ग त्रैवर्ग पर परम पद प्राप्य निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने।

संतों के संग का नाम सत्संग है। संतों का संग दुर्लभ है, पहचान दुर्लभ है। संत की पहचान

होना साधारण प्राणी से असंभव है। संत बड़े ऊँचे होते हैं। त्रयवर्ग पर परमपद—तीनों पदों से ऊपर पहुँचे हुए; स्थूल, सूक्ष्म, कारण मण्डलों से ऊपर उठे हुए। विद्वान अर्थ, धर्म, काम; इन तीनों से परे को भी त्रयवर्ग कहते हैं। उनको धन चाहिए ऐसा नहीं। उनको धर्म-शिक्षा की कमी नहीं रहती। इहलोक, परलोक कामना से रहित होते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण से जो ऊपर होंगे वे अर्थ, धर्म, काम में क्यों फँसेंगे ? अथवा यह कि जो—

अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कवि कोविद योगी।।

संसार में रहकर कुछ-न-कुछ लिया करते ही हैं, मितभोगी होते हैं। विषयासक्त नहीं होते, स्वल्पभोगी होते हैं। बिना कुछ लिए संसार में कोई नहीं रह सकते। इसलिए वे थोड़ा लेते हैं। किंतु संसार का बड़ा उपकार करते हैं। संत लिखने-पढ़ने जाने या नहीं जाने; पंडित वे ही नहीं होते, जो खूब पढ़े-लिखे हो; बिना पढ़े-लिखे भी पण्डित होते हैं। पहले लिखना नहीं था, केवल श्रवण-ज्ञान था, सुनते थे। कबीर साहब के लिए लोग कहते हैं कि वे बहुश्रुत थे। किंतु वे कहते हैं—

मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक ।
मुट्ठी लाया ज्ञान का, जामें वस्तु अनेक ।।

इस प्रकार शरीर में डुबकी लगाने से ये ज्ञानी हुए। बहुश्रुत होने से, अंतर में गोता लगाने से ज्ञानी होते हैं। कोई पढ़े भी, सुने भी, अंतर में गोता भी लगाए। तीनों तरह तथा एक तरह भी; जैसे भगवान बुद्ध। उनके गुरु अवश्य थे, किंतु उनको उस ज्ञान से तृप्ति नहीं हुई। वे कहते हैं—मैं अपने -आप सीखकर अपना गुरु किसे बताऊँ? पूर्ण योगी वही हैं, जो पूर्ण योग द्वारा पद प्राप्त करते हैं। तो संत बहुत बोध रखते हैं, अमित बोध। इतने बड़े को साधारण लोग पहचान जाय, कैसे संभव है? कल्याण के एक लेख में आया था—मैं साधु, महात्मा, ज्ञानी आदि भले कहूँगा; किंतु संत नहीं कह सकता। संत उसे कह सकते हैं, जिनके लिए यह उपनिषद- वाक्य सार्थक हो चुका हो—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थ—परे से परे को (परमात्मा को) देखने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, सभी संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। तुलसी साहब—

जो कोई कहै साधु को चीन्हा। तुलसी हाथ कान पर दीन्हा।।

इतने बड़े को कौन पहचाने? बरेली स्टेशन के बाद के एक स्टेशन पर एक सज्जन का गाड़ी पर चढ़ना—स्थितप्रज्ञ का लक्षण कहाँ? पूछने से संत की पहचान हो तब सत्संग करे, तो संतों की पहचान असंभव है। फिर सत्संग कैसे हो, तो गुरु महाराज ने कहा—संतों की वाणी को पढ़ो, यही सत्संग होगा। सत्संग का आधार संत है। बिना संत के सत्संग हो नहीं सकता।

सत्संग भगवान का निज अंग है। संसार दूर हो जाय, इसके लिए सत्संग है। क्या संसार छोड़ने योग्य है? देखो, यह सबको मानना पड़ेगा कि यह शरीर माता के पेट में था। लोगों को याद तो नहीं, किंतु यह कहते हैं कि सिर नीचे होता है और पैर ऊपर। माता के पेट में रहना ऊपर लटका हुआ कितना दुःख होता होगा? अभी कोई वैसे लटका दे, तब देखिए क्या दुःख है? समय पूरा हुआ और निकले, तो क्रन्दन पसार दिया। जनमते समय बच्चा रोवे नहीं, तो लोग समझेंगे मरा हुआ है। रोना दुःख की पहचान है। इससे जाना जाता है, उसको दुःख अवश्य हुआ होगा। मुँह से कुछ बात नहीं कर सकते कि भूख लगी है या कुछ रोग। मल-मूत्र त्याग हो, उसी पर पड़े रहना। अपने से हिल-डुल नहीं सकता।

सोने का झूला हो, मखमल का पलंग हो, कोई बच्चा उसपर पड़ा हुआ हो तो भी उसे क्या सुख? फिर कुछ बढ़े तब क्या हुआ ? जो मुँह में नहीं देने का वही दिया, जो नहीं छूने का वह भी छुआ। फिर बढ़े, कुछ पढ़े-लिखे नहीं, तो उसका भी भारी दु:ख। पढ़ने पर घर-गृहस्थी में गए, पारिवारिक झंझट। फिर दैहिक, दैविक, भौतिक ताप से कौन बच सकता। श्रीराम भी रोए। इससे कौन बच सकता है? 'काम' आया कुकर्म में चले गए, लोगों की नजर से गिर गए। अपने मन में भारी ग्लानि हुई। 'क्रोध' आया हृदय जल गया, अंधे हो गए, क्या करें, नहीं करें, कुछ सूझता नहीं। 'लोभ' आया, जो नहीं लेने का वह ले लिया, चोरी कर ली, राजा से दंडित हुए; इसी प्रकार सब विकारों को जानिए, तो क्या इस प्रकार संसार में रहना पसंद करते हैं? कभी नहीं। इसीलिए संत कहते हैं—सत्संग करो।

प्रबल भव जनित त्रयव्याधि भेषज भक्ति,
भक्त भैषज्यमद्वैत दरसी।

औषध भक्ति है और वैद्य भक्त हैं। यह औषधि लेनी आवश्यक है। इसलिए सत्संग करना आवश्यक है। भक्ति करो तो किसकी? परमेश्वर की—ईश्वर की भक्ति समझने के लिए पहले ईश्वर को समझना होगा। ईश्वर नहीं है, सुनकर रुलाई आती है। आधार को छोड़कर कैसे रहोगे? आधार को मत छोड़ो। जो आधार तुमको अच्छा बनावेगा, उसको छोड़कर तुम कैसे रहोगे? वह ईश्वर हई है।

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनंता। अखिल अमोघ शक्ति भगवंता।।

यह ईश्वर है, जो सबमें भरा हुआ है ही। ईश्वर है, अंतरहित है, नहीं रहेगा सो नहीं, रहेगा ही। हई है, कहीं से आया नहीं है। जब कुछ नहीं था, तब भी वह था, रहेगा ही। सारी प्रकृति को भर कर कितना विशेष है, कहा नहीं जा सकता। इसका नहीं होना असंभव है। यदि कहो, नहीं है तो प्रश्न उदय होगा, सारे सांतों के पार में क्या होगा? अनंत कहना ही पड़ेगा। यदि कहो अनंत के पार में क्या है, तो तुम्हारा प्रश्न ही गलत है। अनंत का अंत ही नहीं होगा। उसके पार में कैसे क्या होगा? वह ईश्वर नहीं है, ऐसा कहने से गुंजाइश नहीं है। वह स्थूल इन्द्रियों से प्राप्त नहीं हो सकता। उपनिषद् में सुना—मन से जिसका मनन नहीं हो सकता, बुद्धि भी नहीं जान सकती। लोग समझते हैं मन, बुद्धि आदि इन्द्रिय नहीं रहेगी तो हम कैसे देखेंगे, समझेंगे। आप बहुत शक्तिशाली हैं, जैसे एक-एक इन्द्रिय का एक-एक विषय है, उसी प्रकार आपके निज का विषय परमात्मा है। इन्द्रियों का संग छूटे शरीर-रहित होकर, अकेले होकर रहे तो आप महान हैं, तब परमात्मा को प्राप्त करेंगे। इन्द्रियों के संग से आपकी शक्ति घट जाती है। जैसे रोशनी पर आवरण पड़ने से उसका तेज कम हो जाता है। जैसे आँख से जो देखते हो, उसे ही रूप कहते हैं; उसी प्रकार जो चेतन-आत्मा से पकड़ा जाय, वह परमात्मा है। जन्मांध व्यक्ति चीजों के रूप को नहीं देख सकते। आँखवाले पहचानते हैं। यह बात दूसरी है।

परमात्मा सबका आधार है, इसी की भक्ति करो। जो विषयों में फँसते हैं, अपना दुर्नाम करवाते हैं। कभी-कभी राजा से दंडित होते हैं और अंत में नरक भी होता है, तो इस प्रकार विषय सुख से होता है। यदि परमात्मा की भक्ति करो, तब उस परमात्मा को प्राप्त कर देखो कि वह सुख कैसा है?

जिसकी इन्द्रियाँ शांत नहीं, जिसका मन अशांत है, वह आत्मज्ञान द्वारा परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। पापात्मा को ईश्वर की भक्ति में दिल नहीं लगता।

सेख सबूरी बाहरा, क्या हज कावे जाय।

जाका दिल साबत नहीं, ताको कहाँ खुदाय।।

रूहे पाक से पहचान सकते हो, हवस से नहीं। पवित्र आत्मा से ईश्वर को पहचानो। शरीर-युक्त इन्द्रियों के संग के कारण जो मलिनता है, उससे जबतक ऊपर नहीं उठेंगे, तबतक ईश्वर को पहचान नहीं सकते। ईश्वर की भक्ति कैसे हो, इसपर कल्ह कहूँगा।

देहि सत्संग निज अंग श्रीरंग, भवभंग कारण सरन सोकहारी।

मुझे सत्संग दीजिए, वह आपका अपना शरीर है। जन्म को नाश करने का कारण और शरणागत के शोक को हरनेवाला है।

यह प्रवचन सहरसा जिला विशेषाधिवेशन ग्राम—खापुर (अब जिला—मधेपुरा) में दिनांक ८.११.१९५२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३१. सूर संग्राम को देख भागै नहीं

प्यारे भाइयो !

आपलोगों ने संतों के वचनों का पाठ सुना। आपलोगों को सुनने में प्रिय लगे, इसलिए कुछ लय और बाजा बजवाया। लय सुनकर जो अच्छा लगा हो तथा अर्थ समझ-समझकर गोता लगाते हों तो बहुत अच्छा। यदि लय-बाजा अच्छा नहीं लगता हो, केवल अर्थ को समझ-समझकर गोता लगाते हो, तो यह भी अच्छा है, किंतु यदि केवल लय में आनंद हो तो वह अच्छा नहीं है।

संतों की माला मेरे हृदय में है। माला में एक सुमेरु होता है। सुमेरु को टपते नहीं हैं। सुमेरु से लौटकर फिर गिनते-गिनते सुमेरु तक जाते हैं। कोई भी सुमेरु को टपते नहीं हैं। मेरी माला संतों की माला है। सुमेरु में संत कबीर साहब हैं। इसलिए संत कबीर साहब का वचन मेरे पाठ में सबसे प्रथम आता है। इनको सबसे प्रथम धक्का लगा और धक्का को सह गए। जिस समय सामाजिक और धार्मिक समस्या ऐसी थी कि उसके सामने ठठना मुश्किल था, कबीर साहब ने इन धक्कों को सहा। चूल्हे पर देकर देग में उबाला गया, बाँधकर हाथी के पैरों तले दबवाया गया; सिकंदर लोदी का समय था, उन्होंने बहुत जबरदस्त धक्का दिया। किंतु ये सह गए और अपनी जो उक्ति थी कही, जो उक्ति उपनिषदों में है। नानक, दादू, तुलसी आदि संत कोई कम नहीं थे, किंतु पहले इन्हीं को सब धक्का सहना पड़ा। वे कहते हैं—सबलोग अंधकार में पड़े हुए हैं। आपलोग कहेंगे—हमलोग चन्द्र, सूर्य, तारे आदि के प्रकाश से प्रकाशित हैं; अनेक प्रकार की रोशनियों को जलाकर प्रकाश करते हैं, फिर अंधकार में कैसे? कहेंगे विद्या नहीं रहने के कारण। किंतु इससे भी प्रकाश नहीं होता। इतना पढ़ गए कि पढ़ने का अंत ही कर डाले, किंतु आँख बंदकर देखो तो अंधकार ही मिलेगा। छान्दोग्योपनिषद् में नारद की कथा है कि—

नारद ऋषि सनत्कुमार अर्थात् स्कन्द के यहाँ जाकर कहने लगे—'मुझे आत्मज्ञान बतलाओ।' तब सनत्कुमार बोले—'पहले बतलाओ, तुमने क्या सीखा है, फिर मैं बतलाता हूँ।' इसपर नारद ने कहा—'मैंने इतिहास—पुराणरूपी पाँचवें वेद सहित ऋग्वेद प्रभृति समग्रवेद, व्याकरण, गणित, तर्कशास्त्र, कालशास्त्र, नीतिशास्त्र, सभी वेदांग, धर्मशास्त्र, भूतविद्या, क्षेत्र-विद्या, नक्षत्रविद्या और सर्पदेवजनविद्या प्रभृति सब

कुछ पढ़ा है; परंतु जब इससे आत्मज्ञान नहीं हुआ, तब अब तुम्हारे यहाँ आया हूँ।' इसको सुनकर सनत्कुमार ने यह उत्तर दिया—'तूने जो कुछ सीखा-पढ़ा है, वह तो सारा नाम-रूपात्मक है, सच्चा ब्रह्म इस नाम-रूपात्मक ब्रह्म से बहुत आगे है।'

विद्या का प्रकाश, बाहर का प्रकाश रहते हुए भी आत्मज्ञान नहीं होता है। अपरोक्ष ज्ञान—अनुभव ज्ञान नहीं हो सकता। अनुभव को लोग विचार में ले लेते हैं, किंतु नहीं। समाधि द्वारा अनुभव-ज्ञान प्राप्त होता है। संत कबीर साहब कहते हैं—'अपने घट दियना बारू रे।'

चिराग है, बत्ती है। आग लगा दीजिए, फुन-फुनाकर जलता है, फिर बुत जाता है। यह प्रकाश क्या है? उसी प्रकार कुछ भजन करते हैं, ईश्वर की कृपा से कुछ देखने में आता है, फिर बुत जाता है। तेल नहीं है इसलिए। संत कबीर साहब कहते हैं—नाम का तेल दो। अर्थात् प्रकाश में पहुँचकर यदि शब्द को पकड़ो तो वह स्थिर प्रकाश मिलेगा, जो बुतेगा नहीं। उसमें सुरत की बाती दो। ब्रह्म अग्नि से जलाओ। ब्रह्मज्योति कहाँ है? संत सूरदासजी के वचन में सुना—

नैन नासिका अग्र है, तहाँ ब्रह्म को वास।
अविनाशी विनसै नहीं, हो सहज ज्योति प्रकास।।

इस शरीर-इन्द्रिय से अपने की पहचान नहीं होती है, फिर परमात्मा को कैसे पहचानेगा?

आपुन ही कूँ खोज, मिलै जब राम सनेही।
—सहजोबाई

देह के अतिरिक्त 'मैं' कुछ और हूँ, देह नहीं हूँ। देह में हूँ, किंतु देह में अंधकार है। जैसे घर में कुछ वस्तु है, किंतु घर में अंधकार है, फिर क्या देख सकेंगे? इसी प्रकार देह के अंदर अंधकार है, क्या देखेंगे? इसलिए संत कबीर साहब अपने में प्रकाश करने के लिए कहते हैं। नाम का तेल और सुरत की बत्ती के लिए कहते हैं। सुरत चेतन को कहते हैं। (प्रो० विश्वानंदजी का प्रश्न—'चेतन-आत्मा और चेतन-धार में क्या अंतर है?' परमाराध्य महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज का उत्तर—'जैसे सूर्य और सूर्य की किरण।')

नाम में सुरत लगाकर रखिए, चिराग जलती रहेगी। लोग कहेंगे—चिराग, चाँद, सूर्य देखते ही हैं, इससे क्या होता है? क्या होगा?

जिस समय सुरत सिमटती है, स्थूल विषय में फैलाव नहीं रहता। इन्द्रियों में फैलाव तब होता है, जब चेतन-धार इन्द्रियों में रहती है। इन्द्रियों में रहने पर ही पाप-पुण्य कर्म करते हैं और स्वर्ग-नरक भोगते हैं। इनसे निवृत्ति तभी होगी, जब कोई इन्द्रियों से अपनी चेतन-धारा को सिमट ले। इसलिए संत कबीर साहब कहते हैं— अपने अंदर प्रकाश करो और जगमग ज्योति को निहारो। देखने से उसमें तल्लीनता आ जाएगी, पापों से छूट जाएँगे। बंगला पद्य में कल्ह सुना—'देखे आँखी कोनो मते कीनी ना।' फिर संत कबीर साहब ने कहा— अपने काम को सँभालो। अपना काम बनाना यही है। हम सबसे ऊँचे रहें, लोग नीचे रहें, अपना काम बनाना नहीं है। एक मुखिया दूसरे मुखिया को दबाना चाहते हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दबाना चाहते हैं। यह अपना काम बनाना नहीं है। सबसे मिलकर रहो, तभी आनंद से रहोगे। भजन करो। मन-इन्द्रियों से युद्ध करो।

सूर संग्राम को देख भागै नहीं, देख भागै सोई सूर नाहीं।
काम व क्रोध मद लोभ से जूझना, मरा घमसान तहँ खेत माहीं।।
साँच औ शील संतोष शाही भये, नाम शमशेर तहँ खूब बाजे।
कहै कबीर कोई जूझिहैं शूरमा, कायराँ पीठ दै तुरत भाजै।।

सच्चाई, शीलता, संतोष ध्वजा है। जो सूरमा है, वह लड़ाई में लड़ेगा। कायर भागेगा, उसका काम नहीं बनेगा। उन्होंने दिलाशा दिया—

करता की गति अगम है, चल गुरु की उनमान।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचोगे परमान।।

काम बहुत बड़ा है। मन-इन्द्रियों को समेटना, अधोगति से ऊर्ध्वगति करना कठिन है, किंतु कठिन कहकर छोड़ने से काम चलने का नहीं। एम०ए० तक पढ़ना बड़ा मुश्किल है। बच्चे से गुरुजी की मार कौन खाए, फटकार को कौन सहे, कॉलेज में कौन सड़े; यह सोचकर नहीं पढ़ने से कोई विद्वान नहीं हो सकता, उसको पद-प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती। जो पढ़ते हैं—गुरुजी की मार खाते हैं, फटकार सहते हैं, कॉलेज जाते हैं; वे विद्वान होते हैं, उनको पद-प्रतिष्ठा मिलती है। उसी प्रकार यदि तुम पढ़ो, अध्यात्म-ज्ञान सीखो, तो उतने ही बड़े होओगे, जितने बड़े संत कबीर थे। भगवान कृष्ण ने कहा—भक्त तो मुझसे भी बड़े हैं, इतने ऊँचे दर्जे में हैं कि जिनका दर्शन मैं नहीं कर पाता।

ऊँचा पद पर आसीन होना कोई साधारण काम नहीं। किंतु थोड़ा-थोड़ा करते-करते सरल हो जाएगा। भगवान बुद्ध का वचन—पानी की बूंदों से घड़ा को भरते-भरते वह भर जाता है, उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा ध्यान करते-करते पूर्णता को प्राप्त करोगे। यही अपना काम है। अपना काम बनाना क्या है, इसपर कहा।

संसार में जो कोई प्रतिष्ठावान होकर हैं, वही अच्छा है। प्रतिष्ठाहीन किस काम का? संसार में प्रतिष्ठा का मोल जितना है, धन का उतना नहीं। झूठे को, विषयी को प्रतिष्ठा नहीं मिलती। जो झूठे नहीं, विषयी नहीं, उनको प्रतिष्ठा मिलती है।

छपरा के पास एक संत थे। वे बोले थे—'दिन में रात होगी, इतने आदमी मरेंगे कि आदमी को आदमी नहीं फेकेंगे।' पहली बात सूर्यग्रहण हुआ। पूरा सूर्य डूब जाने पर अंधकार हो गया। जैसे संध्या के समय चिड़िया बोलती है, चिड़िया बोलने लगी। दूसरी बात प्लेग की बीमारी हुई, जिसमें इतने लोग मरे कि लोग नहीं फेंक सकते। नगरपालिकावाले गाड़ी पर भर-भरकर उन लाशों को फेंकते थे। तीसरी बात यह देश स्वतंत्र हो जाने के कारण आजकल संत का राज्य हो गया और संत-राज्य होगा। उनकी तीनों बातें मिल गईं। पहली बात हुई सूर्यग्रहण होना, अंधकार होना, चिड़िया बोलना। दूसरी बात प्लेग की इतनी बीमारी हो गई कि लोगों को फेंकना पड़ा। आजकल संत-राज्य हो गया। डाकघर के टिकटों पर संतों का छाप चल रहा है।

दादू जानै न कोई, संतन की गति गोई।।टेक।।
अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।
अंड न पिंड खण्ड ब्रह्मण्डा, सुरत सिंध समोई।
निराकार आकार न जोती, पूरन ब्रह्म न होई।।
इनके पार सार सोइ पइहैं, मन तन गति पति खोई।
दादू दीन लीन चरनन चित, मैं उनकी सरनोई।।

अर्थ—अ=नहीं। गोई=कहना। अगोई= अनिर्वचनीय।

अंतर शून्यं बाहर शून्यं, त्रिभुवन शून्यं शून्यं।
तीनों शून्य को जो कोई जाने, ताको पाप न पुण्यं।।

१. स्थूलाकाश=अंधकार का आकाश। २. सूक्ष्माकाश=प्रकाशाकाश। ३. कारण का आकाश= शब्दाकाश। दादू दयालजी का वचन है—'सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा।' अर्थात् शून्य, महाशून्य और भँवर गुफा के परे जो जाता है, उसको पाप-पुण्य नहीं लगता। त्रैगुण रहितता का गुण है, त्रैगुण का गुण नहीं है। दिव्यगुण-सहित और त्रैगुण-रहित होने से ईश्वर सगुण हैं, किंतु इस प्रकार केवल सगुण कहने से साधारण लोग ओरझा जाएँगे। इसलिए संतों ने सगुण-निर्गुण तथा उसके परे कहकर समझाया। त्रैगुण-सहित सगुण, त्रैगुण-रहित निर्गुण तथा इन दोनों के परे भी। सगुण जड़,

निर्गुण चेतन तथा इन दोनों के परे जो है, वही परमात्मा है। बाहर इन्द्रियों से जो हम जानते हैं स्थूल सगुण है। अंतर में प्रकाश तथा अनहद शब्द सूक्ष्म सगुण है तथा सारशब्द सार्थक निर्गुण है। सारशब्द की उपासना निर्गुण उपासना है। इसकी उपासना करनेवाले इसके पार हो जाते हैं। वे निर्गुण-सगुण के परे चले जाते हैं—'पूरण ब्रह्म न होई।' जो प्रकृति-मंडल में व्यापक है, वही पूरण ब्रह्म है। प्रकृति व्याप्य और वह व्यापक है। किंतु 'प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्मनिरीह बिरज अविनाशी।।' जो प्रकृति के पार में है, उसे पूरणब्रह्म नहीं कह सकते। किनके पार? यानी पिण्ड-ब्रह्माण्ड के परे, सगुण-अगुण के परे और सुन्नी सुन्न सुन्न के परे जो है, वही परब्रह्म परमात्मा है। ❐

यह प्रवचन सहरसा जिला विशेषाधिवेशन ग्राम—खापुर (अब जिला—मधेपुरा) में दिनांक ६.११.१९५२ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

३२. ईश्वर-भक्ति की विशेषता

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता !

मैं आज क्या कहूँगा, कल्ह ही विदित कर दिया हूँ। आज का वर्णन है—ईश्वर की भक्ति कैसे की जाएगी? किंतु आपको याद दिलाने के लिए कह दूँ कि इसकी आवश्यकता क्या है। लोग कहते हैं, ईश्वर-भक्ति का प्रचार तो होता ही है, फिर इसका क्या काम? तो ठीक ही है, सब कोई प्रचार करें; किंतु कुछ इस सत्संग को भी थोड़ा मौका मिले कहने-सुनने के लिए।

देखिए मन कैसा है, किधर जाता है? विशेष करके विषय की ओर ही दौड़ता है। सत्संग करते-करते भी मन भाग जाता है। यदि कहिए कि भक्ति-प्रचार का क्या काम है, तो—

राकापति षोडस उअहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, बिनु रवि राति न जाय।।
ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेशा। मिटहिं न जीवन केर कलेसा।।

इसके लिए भक्ति का प्रचार है। अपने हृदय से पूछिए कि कुछ तकलीफ, दुःख भी है? प्रति घंटे अपने क्लेश का वर्णन करता है। काम- क्रोधादिक विकार आने पर कैसे करते हैं? विचारिए—

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।

काम-रूप वात है, लोभ-रूप अपार कफ है और क्रोध-रूप पित्त है, जो सदा हृदय जलाता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्निपात दुखदाई।।

हे भाई! जब ये तीनों प्रीति करते हैं, तब दुःखदायी सन्निपात (त्रिदोष ज्वर) उत्पन्न होता है।

एक व्याधि बस नर मरहिं, ये असाधि बहु व्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहँ, सो किमि लहइ समाधि।।

मनुष्य तो एक ही रोग के वश होकर मर जाते हैं; परंतु ये बहुत से असाध्य रोग हैं, जो जीव को सदा दुःख दिया करते हैं—इस दशा में वह(जीव) कैसे सुख पा सकता है?

बहुत दुःख है इस संसार में, तो करना क्या है? ईश्वर-भजन करके ही इन दुःखों से छूट सकते हैं। सूर्योदय होने से ही अंधकार दूर होता है, उसी प्रकार ईश्वर-भक्ति से ही क्लेश दूर होगा। इसी उद्देश्य से ईश्वर-भक्ति का प्रचार करते हैं।

संतो भक्ति सतोगुर आनी।
नारी एक पुरुष दुई जाया, बूझो पंडित ज्ञानी ।।
पाहन फोरि गंग इक निकसी, चहुँ दिसि पानी पानी ।

तेहि पानी दोउ पर्वत बूड़े, दरिया लहर समानी ।।
उड़ि माखी तरुवर कै लागै, बोलै एकै बानी ।
वह माखी को माखा नाहीं, गर्भ रहा बिनु पानी ।।
नारी सकल पुरुष लै खाये, तातैं रहै अकेला ।
कहहिं कबीर जो अबकी समझौ, सोइ गुरू हम चेला ।।
—संत कबीर साहब

जिन्होंने भारती भाषा में प्रवाह रूप से कहने का आरंभ किया, वे संत कबीर साहब थे। उनके बाद और सब कहे। इसलिए मैं उन्हें सुमेरु रूप में रखता हूँ। ये विशेष थे और नानक, तुलसी कम थे, इसलिए नहीं; बल्कि इसलिए कि ईश्वर की मौज से पहले संत कबीर साहब आए थे, पीछे ये लोग। इसलिए इनकी दूसरी ही भक्ति है, जो प्रचलित रूप से जानते हैं, वह नहीं।

एक स्त्री ने दो पुरुष उत्पन्न किया, उसको पंडित-ज्ञानी बुझिये। नारी प्रकृति को कहते हैं। प्रकृति के बिना कोई जीव पुरुष और ब्रह्म पुरुष नहीं बोल सकते। ब्रह्म और जीव दोनों थे ही, किंतु प्रकृति के पहले जीवत्व और ब्रह्मत्व दशा नहीं हो सकती। व्यापक व्याप्य भेद के बिना ब्रह्म कौन कहे और कैसे कहे? प्रकृति से शरीर, इन्द्रिय, अंतःकरण बने। शरीर, इन्द्रिय, अंतःकरण के बिना जीव कैसे कहा जाय? इसलिए 'नारी एक पुरुष दुई जाया, बूझो पंडित ज्ञानी।' यह जड़ता पाहन है। यह जीव यदि परमात्मा से मिलना चाहता है, क्लेश से छूटना चाहता है तो जड़ को फोड़कर निकल जाय। वह धारा पवित्र है। इक निकसी=जीव निकला। और चहुँ दिशि पानी पानी= सच्चिदानंद पद में जाना। उस पानी में जाने से जीवत्व दशा नहीं है। व्याप्य के हट जाने से जीव पुरुष और ब्रह्मपुरुष नहीं कहे जाते; क्योंकि जीव उसमें लय हो गया।

उड़ि माखी तरुवर कै लागै, बोलै एकै बानी।

मक्खी उड़कर एक वृक्ष पर बैठ गई। एक वाणी बोलने लगी। मक्खी=सिमटी सुरत। सिमटी हुई सुरत अंतराकाश में उड़ी और तरुवर (तरुवर= अछय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार। त्रिदेवा साखा भया पात भया संसार।।) परमात्मा में लग गया।

एकै वाणी=एक शब्द=सारशब्द।

विकारों को पुरुष वर्ग में लिया है, ज्ञान-वैराग्य आदि को वह नारी अपने में पचा ली। अब वह अकेले-अकेले है। इस प्रकार की भी भक्ति है।

इस ज्ञान का कितना विशेष कम प्रचार है, जान लीजिए। इस सत्संग के द्वारा इसी भक्ति का प्रचार होता है। किसकी भक्ति करेंगे? ईश्वर की भक्ति करेंगे। परमात्मा के लिए ही कभी ईश्वर और कभी परमात्मा कहूँगा, इसको जान लीजिए। ईश्वर की ओर कैसे लगावें, कल्ह कहा गया था कि जो मन, बुद्धि इन्द्रियों को ग्रहण नहीं हो वह परमात्मा है। वही 'व्यापक व्याप्य अखंड अनंता'—राम, परशुराम आदि दश अवतारों में होने से वे बँट गए? नहीं। सब रूपों में होते हुए कितना विशेष है, ठिकाना नहीं।

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनेकन भेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव दिखावइ, आपुन होइ न सोइ।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

कसौटी पर कसकर जानिए कि परमात्मा का स्वरूप क्या है?

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी।।

या आप उपनिषद को लीजिए—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।
—महोपनिषद्, अध्याय ४

परे से परे को (परमात्मा को) देखने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। जब दर्शन करें और आपको ऐसा मालूम हो कि कुछ संशय नहीं रहा, कोई बंधन मुझपर नहीं है, जड़-चेतन का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाय, वही परमात्मा है। जितने इन्द्रियों के द्वारा दर्शन है, उसके द्वारा 'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः' हो नहीं सकता। इसी बात को गोस्वामीजी ने कहा है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

जब ये माया ही है, तब इसे परमात्मा कैसे कहिएगा? अब उसकी भक्ति कैसे की जाय, जो मन, बुद्धि से बाहर है। इन्द्रियाँ पहचान नहीं सकतीं। कितनी बुद्धि कहती है—ईश्वर है, कितनी बुद्धि कहती है—ईश्वर नहीं है। आजकल नास्तिकवाद की भी पताका उड़ रही है। जीव माने ईश्वर नहीं। कोई जीव ईश्वर कुछ नहीं माने। कहते हैं—तुम्हारा शरीर है, जड़-जड़ के मिलने से ऐसा कुछ काम करने के योग्य हो गया है। शरीर छूटेगा, कुछ भी बाकी नहीं रहेगा। किंतु हमारा सत्संग तो कहता है—ईश्वर है, तुम जीव हो, दुःख में पड़े हो। ईश्वर की भक्ति करो सुखी होओगे। फिर कहेंगे, जब ईश्वर मन-बुद्धि आदि इन्द्रियों से परे हैं, उसे कैसे पकड़ा जाय? हमलोगों को विश्वास है, ईश्वर अवश्य है।

अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनि संभउ ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरबाणु ना तिसु रूप
बरणु नहिं रेखिआ साँचे सबदि नीसाणु।

— गुरु नानक साहब

एक-एक विषय को एक-एक इन्द्रिय ग्रहण करती है। उसी प्रकार तुम अकेले होकर स्थूल, सूक्ष्मादि चारो शरीरों को छोड़कर कैवल्य दशा में रहो, ईश्वर की प्रत्यक्षता होगी। मन तुम्हारा नौकर है, इन्द्रियाँ नौकरानी हैं। तुम नौकर-नौकरानी के पंजे में फँस गए हो, इससे निकलो। तुम इनके भरोसे क्यों रहते हो? तुम स्वयं बहुत शक्तिमान हो, किंतु अपने को भूले हुए हो। कबीर साहब ने कहा है—

बिन सतगुरु नर रहत भूलाना।
खोजत फिरत राह नहीं जाना।।टेक।।
केहर सुत ले आयो गड़रिया, पाल पोष उन कीन्ह सयाना।
करत कलोल रहत अजयन संग, आपन मर्म उनहूँ नहिं जाना।।
केहर इक जंगल से आयो, ताहि देख बहुतै रिसियाना।
पकड़ि के भेद तुरत समुझाया, आपन दसा देख मुसक्याना।।
जस कुरंग बिच बसत बासना, खोजत मूढ़ फिरत चौगाना।
कर उसवास मनै में देखै, यह सुगंधि धौं कहाँ बसाना।।
अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है, छक्यो रूप नहिं जात बखाना।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, उलटि आपु में आप समाना।।

बकरी और भेड़ को चरानेवाला एक गड़ेरी सिंह के एक बच्चे को ले आया। सिंह के उस बच्चे की आँखें बंद थीं। सिंह-बाघ के बच्चे की आँखें जन्मकाल में बंद रहती हैं। वह सिंह का बच्चा नहीं जान सका कि वह किसका बच्चा है। कुछ दिनों के बाद उसकी आँखें खुलीं तो उसने अपने को बकरी-भेड़ के बच्चों के साथ पाया। जैसे भेड़ बकरी का बच्चा खेल-कूद करता, वैसे ही वह भी उसके साथ खेल-कूद करने लगा। एक दिन एक सिंह जंगल से आ गया। उसने देखा कि यह तो मेरी ही जाति का बच्चा है, लेकिन भेड़-बकरी के साथ रहता है। जंगली सिंह को देखकर गड़ेरी, भेड़ और बकरियाँ सभी भागते हैं, उन सबके साथ सिंह का बच्चा भी भागता है। यह देख जंगली सिंह ने उसको पकड़ा। उसने उसको पकड़कर पानी में अपना और उसका मुँह दिखाया और कहा—'देखो, तुम्हारा

रंग-रूप जैसा है, मेरा भी वैसा ही है।' पानी में अपने रूप को देखकर उसको ज्ञान हो गया कि मैं भी सिंह ही हूँ।

ऐसे ही जीवात्मा, परमात्मा-रूपी सिंह का बच्चा है यानी परमात्मा का अंश है। इन्द्रियाँ जितने हैं, वे भेड़-बकरी के समान हैं। जीवात्मा इनके साथ रहकर अपने को इन्द्रिय समझता है। जब सच्चे सद्गुरु मिलते हैं तब उसको दिखला देते हैं कि तुम संसार की ओर से उलटो, अपने अंदर देखो। वैसे तो विचार में हम ईश्वर के अंश हैं, जानते हैं, लेकिन उलटकर देखने से प्रत्यक्षता होती है। हम ईश्वर को तब प्रकट कर सकते हैं, जब हम शरीर और इन्द्रियों से अपने को छुड़ा सकें। यह कैसे होगा? यह तबतक नहीं होगा, जबतक सद्गुरु नहीं मिलते हैं। सद्गुरु मिलते हैं तो बता देते हैं कि तुम भी आत्म-स्वरूप हो। जो गुण ईश्वर में है, वही गुण तुममें भी है। परमात्मा का गुण शरीरस्थ चेतन-आत्मा में है। जो अपने शुद्ध चेतन रूप को पहचानता है, वही ईश्वर को पहचानता है। कबीर साहब अनपढ़ थे, पर उनका वचन अद्भुत है। गुरुजी से 'क', 'ख' भी नहीं जाने और उनका वचन इतना दृढ़।

तुम अपने स्वरूप को अपने अंदर में देखो। कैसे देखोगे, तो का—'अर्ध-उर्ध बीच लगन लगी है।' उलटकर बहिर्मुख से अंतर्मुख हो जाओ। अपने नौकर-नौकरानी का संग छोड़कर कबीर के बतलाए हुए स्थान पर लगन लगावें, तो अवश्य अपने को पहचान पाएँगे।

मायाबस मति मंद अभागी। हृदय जवनिका बहुविधि लागी।।
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं।।

काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुःखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ पड़े तम कूप।।

—गोस्वामी तुलसीदास

जो काम, क्रोध, मद और लोभ में लिप्त, घर के कामों में फँसे हुए, दुःखरूप हैं, वे अंधकार के कुएँ में गिरे हुए मूर्ख राम को कैसे जान सकते हैं? अर्थात् नहीं जान सकते हैं। अंधकार के कुएँ से अपने को निकालो। भीतर में जितने स्थूल-सूक्ष्मादि जड़ आवरण हैं, उसको हटावें। यही भक्ति है। इसी विषय को संत कबीर साहब की वाणी में पाहन फोड़ना कहा गया है। कहेंगे कि यह भक्ति कैसे? तो विचार में जानने में आता है कि जब हम सब आवरणों को पार कर जाएँगे, तब ईश्वर से इस प्रकार सटेंगे कि कभी हटेंगे नहीं। इसलिए ईश्वर पाने के लिए जो यत्न है, उसको करना भक्ति है। बाबा नानक ने कहा—

भगता की चाल निराली।
चाल निराली भगताह केरी विखम मारगि चलणा।।
लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाहीं बोलणा।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।।
गुर परसादी जिनि आपु तजिआ हरि वासना समानी।
कहै नानक चाल भगताह केरी जुगहु जुगु निराली।।

—नानक साहब

तलवार की धार से भी तेज और बाल की नोंक से भी महीन वह रास्ता है। कहेंगे इस पर कैसे चला जाय? आपको डरना नहीं चाहिए। इस तलवार की धार पर पैर नहीं चलेगा, इसपर मन चलेगा। कहेंगे—चलना चाहिए चेतन को, कहते हैं मन को? तो जानना चाहिए कि जहाँ दूध रखो, वहीं घी भी है; उसी प्रकार जबतक मन-चेतन संग-संग है। जहाँ मन रखो, वहीं चेतन है। '**मन उलटे तब सुरत कहावै।**' मन को उलटो अर्थात् सिमटो तो पहले जिस ओर था, उसके विपरीत ओर को हो जाएगा। स्थूल पसार में हो, इसमें सिमटने से सूक्ष्म में प्रवेश करोगे।

सुरत फँसी संसार में ताते परिगा दूर।
सुरत बाँधि सुस्थिर करो आठो पहर हुजुर।।

—कबीर साहब

यदि कहिए यह तो कॉलेज की बात है। नीचे वर्ग की पढ़ाई भी कहिए, तो कबीर साहब की वाणी में ही सुनिए—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

इससे उलटिए तो—

गगन मंडल के बीच में, तहँवा झलके नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर।।
बाँका परदा खोलि के, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साईयां, आदि अंत का यार।।
—कबीर साहब

मायाबस मति मंद अभागी। हृदय जवनिका बहुविधि लागी।।

अन्धकार बाँका परदा है। यदि मोटी बात ही लीजिए तो तुलसीदासजी की वाणी में है— 'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।' संत कबीर साहब भी सत्संग करने कहते हैं। सब संत सत्संग करने कहते हैं। शवरी से राम कहते हैं—'दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।' नवो प्रकार की भक्ति कहते-कहते अंत में कहते हैं—'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।' गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान। मान मर्यादा को छोड़कर गुरु की सेवा करो शिवाजी की तरह। अथवा हाल के रायबहादुर शालिग्राम की तरह। पोस्टमास्टर जनरल होते हुए भी अपने गुरु के लिए अपने से आटा पीसना, रोटी बनाना, जमुनाजी से पैदल पानी लाना, इसपर भी यदि कोई कहे—पानी नहीं है, बच्चा रोता है तो उसे पानी दे देते थे और फिर अपने पानी लाने चले जाते।

गुरु का सेवक अपने समय में शिवाजी ऐसे बहुत कम हैं। वे छत्रपति होते हुए भी अपने हाथ से सब प्रकार की सेवा करते थे। शिवाजी अपने हाथ से अपने गुरु को तेल लगाते थे। अपना संपूर्ण राज्य अपने गुरु को दिए थे।

एक दिन समर्थ रामदासजी कुछ चेलों के साथ चले आ रहे थे। चेलों ने कहा—'हमलोगों को भूख लग गई है।' समर्थ रामदासजी ने कहा—'देखो, खेत में मकई के भुट्टे लगे हैं, खा लो।' शिष्यों ने वैसा ही किया। तबतक खेतवाले आ गए। वह गुस्से में आकर समर्थ रामदासजी को मकई के डण्ठल से मार बैठा। समर्थ मार बर्दाशत कर गए और शिष्यों से कहा—'शिवा को यह बात मत कहना, नहीं तो इसे भारी दण्ड देगा।' जब समर्थ रामदासजी शिवाजी के यहाँ पधारे, तो शिवाजी उनको अपने से ही स्नान कराने लगे। पीठ में मार का दाग देखकर अन्य शिष्यों से पूछा कि यह दाग पीठ में कैसे आया? सबके सब चुप थे, कोई कुछ बोलते ही नहीं थे। शिवाजी ने कहा—'सही-सही बोलिए, नहीं तो आपलोगों को ही इसका दंड भोगना पड़ेगा।' तब उनलोगों ने उक्त किसान का नाम कहा, जिसने समर्थ रामदासजी को मारा था। उसको शिवाजी ने पकड़वाकर अपने सामने मँगवाया। शिवाजी के डर से वह किसान बहुत ही कंपित हो रहा था। समर्थ रामदासजी ने कहा, शिवा! देखो, तुम्हारे डर से यह बहुत दुःखी हो रहा है, इसे क्षमा कर दो। इसका मालपोत (मालगुजारी) माफ कर दो।

ये महान त्यागी पुरुष गुरु की भक्ति करते थे।

चौथि भगति मम गुन गण, करइ कपट तजि गान।

पाँचवीं भक्ति— **मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा।**
पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।

ऐसा नहीं कि—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।

बल्कि ऐसा—

तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय।।

पहले जैसे मन भागता था, उससे कम भागे। संतों

का संग होगा, कथा प्रसंग होगा, उनसे ज्ञान सीखेंगे।

ईश्वर-भक्ति कैसे होगी? गुरु की सेवा करेंगे। ईश्वर का गुणगान करेंगे, जप करने कहेंगे। यह क्रमबद्ध है। छठी भक्ति 'दम' आती है। इन्द्रियों को रोकने का स्वाभाव आपको हो जाय, तब दमशील हो जाइएगा। बहुत-से कर्मों से अपने मन को हटाइए। सज्जनों के धर्म के अनुसार संसार में बरतिए। सज्जनों का धर्म है—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करने का। इस तरह आप इन्द्रियों के रोकने का स्वभाववाला हो जाइएगा। इन्द्रियों के साथ मन की धार है। इन्द्रियों में मन की धार होने से ही इन्द्रियाँ सचेष्ट होती हैं और काम करती हैं। मन ही विषयों की ओर इन्द्रियों को ले जाने की प्रेरणा करता है। इन्द्रिय बेरोक में दमशीलता नहीं होती। जिस केंद्र से इस धार का बिखार हुआ है, उस केन्द्र में केंद्रित करो। केंद्र में केंद्रित होने पर विषयों की ओर नहीं जाएगा। इस प्रकार अभ्यास बारंबार करते- करते इन्द्रियों को रोकने का स्वभाववाला बन जाइएगा। आप कहेंगे, मन को विषयों में बड़ा अच्छा लगता है, इससे विपरीत कैसे जाएगा? तो देखिए, भीतर जाने में भी बड़ा आनंद मालूम होता है। जाग्रत से तंद्रा में जाने पर बड़ा आनंद मालूम होता है,उस समय कोई गड़बड़ करे तो मन बड़ा रंज हो जाता है। तन्द्रा=जागने से स्वप्न में जाने के बीच रास्ते में जो मिलता है= अधनिनिया। वहाँ कोई विषय नहीं है, फिर भी आनंद है। इसलिए कबीर साहब ने कहा—

भजन में होत आनंद आनंद।
बरसत बिषद अमी के बादर भींजत है कोई संत।।

अगर अंदर के सरकाव में दुःख होता, तो आप सो नहीं सकते। सब दिन सोते हैं और यह हालत होती है। छठी भक्ति से सूक्ष्म भक्ति का आरंभ होता है। अपनी धारों को कैसे और कहाँ पर उलटेंगे? तो कहेंगे—तुम हो कहाँ, वहीं से उलटो। दरिया साहब की वाणी है—

जानि ले जानि ले सत्त पहचानि ले ।
सुरत साँचि बसै दीद दाना ।।

आँख का तिल=शिवनेत्र। दोनों आँखों के मध्य मुकाबले अंदर में। राय शालिग्राम साहब ने कहा है। संत कबीर साहब का वचन लीजिए—

इस तन में मन कहाँ बसत है, निकसि जाय केहि ठौर ।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और ।।
नैनों माहिं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर ।
सतगुरु भेद बताइया, सब संतन सिरमौर ।।

ब्रह्मोपनिषद् में है—

जाग्रत्स्वप्ने तथा जीवो गच्छत्यागच्छते पुनः।
नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत् ।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्निसंस्थितम् ।।

जीव जाग्रत, और स्वप्न में पुनः-पुनः आता-जाता रहता है। जीव का वासा जाग्रत में—नेत्र में और स्वप्न में—कण्ठ में, सुषुप्ति में—हृदय में और तुरीयावस्था में—मस्तक में होता है। आप जाग्रत में काम करेंगे, इसलिए यहीं से चलो। जगने में आप आँख में हैं। फिर कहेंगे, कैसे चलेंगे? तो दोनों धारों को एक करो, कैसे करो, यह बात गुरु से जानो। इससे सरल और कुछ नहीं हो सकता। १९०४ ई० से १९५२ ई० तक की मेरी खोज है। मैं इतने दिनों तक क्या करता रहा !

यह दृष्टि साधन है। अमादृष्टि, प्रतिपदादृष्टि, और पूर्णिमादृष्टि। 'तद्दर्शने तिस्रो अमाप्रतिपत्पूर्णिमा चेति निमीलितदर्शनममादृष्टि। अर्धोन्मीलितं प्रतिपत्। सर्वोन्मीलिनं पूर्णिमा भवति।'

उसे देखने के लिए तीन दृष्टियाँ होती हैं; अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा। आँख बंदकर देखना अमादृष्टि है, आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा है।

अंधकार में यत्न करो तो तारा चमकेगा। ईसा

मसीह ने दो आँख को एक आँख करने को कहा। सुषुम्ना में जाना चाहते हो, तो गुरु से जानकर करो। किसी का दोनों हाथ पकड़कर कोई खींचे, तो संपूर्ण शरीर उसी ओर हो जाता है। उसी प्रकार दोनों दृष्टिधारों को एक करो तो फैली हुई सब धारें उसी ओर हो जाएँगी, यही दमशील होगा। दृष्टियोग के साधन में कुछ कष्ट नहीं होता है। बिना प्राणनिरोध के ही ध्यानाभ्यास द्वारा श्वास बंद हो जाता है। इस प्रकार होने से छठी भक्ति होगी। अब सप्तमी भक्ति आती है। '**सातम सम मोहिमय जग देखा।**' जहाँ दम है, वहाँ शम होना ही चाहिए। यदि कहो कि मन का साधन तो हो ही चुका, तो देखिए मन और इन्द्रियों का संग-संग साधन होना दम है। केवल मन का निग्रह शम है। यहाँ दृश्य नहीं है, केवल नादानुसंधान है। न नाद सदृशो लयः। मनोलय होकर तब क्या होता है—

सहस कमलदल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्राण पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो।।

निर्मल-चेतन परमपुरुष से जाकर मिलती है। यहाँ दम और शम क्या होता है वर्णन किया। इसी प्रकार की भक्ति सब किया करें। 'आठम यथा लाभ संतोषा।' जिसको 'शम' होगा, उसको 'सम' भी हो जाएगा। इसके लिए अपना-पराया, सुख-दुःख, शीत-उष्ण सब 'सम' हो जाता है। ऐसा होनेवाले के लिए 'आठम यथा लाभ संतोषा।' उसकी खरीदी हुई चीज हो जाएगी। वह टेढ़ा क्यों होगा? सरल हो जाएगा। एक ईश्वर पर भरोसा रखो।

भक्ति तो सात ही समझिए। बाकी दो भक्ति तो फल है, यही जानिए। भक्ति को केवल मोटी ही नहीं जाननी चाहिए। उन छठी और सातवीं भक्ति को भी जानिए। इसके लिए संयम की जरूरत है। झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, व्यभिचार मत करो, नशा का सेवन मत करो। पंच पाप मत करो। आगे बढ़नेवाले को चाहिए—पापों से बचें। पापों में फैला हुआ आदमी आगे नहीं बढ़ सकता, वह विषयों में अनुरक्त रहता है। नशा के विषय में तम्बाकू तक मना है। अपना खून आप पीओ तो घृणा होगी, किंतु अपने उच्च रक्त में पशुओं के नीच रक्त को क्यों मिलाते हो? इसी के लिए किसी संत ने कंठी पहनायी, किसी ने कहा—कंठी पहनो या नहीं पहनो, अपने मन को ठीक करो।

यह प्रवचन सहरसा जिला विशेषाधिवेशन ग्राम—खापुर (अब जिला—मधेपुरा) में दिनांक ६.११.१९५२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३३. शरीर छूटने पर क्या गति होगी?

प्यारे धर्मप्रेमी सज्जनो!

सबलोगों को जीवन भर सुख से रहने का ख्याल रहता है। वे इसी के लिए काम करते हैं और आज का काम कल्ह के लिए नहीं छोड़ते। सोचते हैं—आज का काम कल्ह के लिए छोड़ने से जो लाभ होना चाहिए, नहीं होगा। कृषक खेती करते हैं। जोतने के समय, बोने के समय, कोड़ने के समय जोतते, बोते और कोड़ते हैं। सोचते हैं कि ठीक समय पर काम नहीं करने से जमीन परती रहेगी, उपज नहीं होगी। भूखे रहेंगे तो दुःख होगा। आपलोग कृषक हैं, जानते हैं। धूप में, पानी में सब कुछ बर्दाश्त करके खेती करते हैं। इसलिए कि सालभर सुखी रहें। इसके अतिरिक्त जो और कोई काम करनेवाले हैं, सबको डर रहता है। बड़े पदवाले

को डर है कि ठीक से काम नहीं करने से पद से नीचे गिरा दिए जाएँगे। देश की हालत खराब हो जाएगी। विद्यार्थी को डर रहता है कि ठीक से पढ़ाई नहीं करने पर परीक्षा में असफल हो जाएँगे। यह काम एक जीवन का है। साधु- महात्मा लोग कहते हैं, जिस प्रकार डर-डरकर संसार का काम करते हो, उसी प्रकार यह भी डर रखो कि तुम्हारा शरीर छूट जाएगा, तब तुम क्या करोगे? तब के लिए क्या प्रबंध करोगे? सब धर्मों में, अपने वैदिक धर्म में भी इसकी चिंता है कि शरीर छूटने पर क्या मेरी गति होगी? इसके लिए सब धर्मों में कुछ-न-कुछ प्रयत्न किया करते हैं। कोई-कोई कहते हैं— पुत्र श्राद्ध-क्रिया करते हैं, इससे स्वर्ग-प्राप्ति होती है। इस प्रकार कुछ-न-कुछ कर्म किया करते हैं। स्वर्ग में भी सदा के लिए रहना नहीं होता। पुण्य-भर स्वर्ग में रहता है और क्षीण हो जाने पर फिर स्थूल संसार में, स्थूल शरीर में आना पड़ता है। इसलिए साधु-संत कहते हैं—अरे! स्वर्ग का सुख भोगते हो तो क्या? यहाँ भी इन्द्रियों का भोग और वहाँ भी इन्द्रियों का भोग! फर्क इतना ही है कि यहाँ विशेष परिश्रम करने पर विषय-सुख प्राप्त होता है, किंतु वहाँ का सुख बिना परिश्रम के ही मिलता है। जैसे पहले का जमा किया हुआ पुण्य मिलता है। यहाँ का सुख विशेष टिकाऊ नहीं, किंतु वहाँ का उससे कुछ विशेष टिकाऊ है। किंतु जिस प्रकार विषयों में यहाँ संतुष्टि नहीं, उसी प्रकार वहाँ भी है। जिन विषयों में यहाँ सुख नहीं, वहाँ भी पूर्ण शान्ति, संतुष्टि नहीं। इसके लिए यत्न करना किस काम का? इसीलिए संत कबीर साहब कहते हैं—

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा बिनसत नाहीं बार।।

लोग देखते हैं कि उनकी उम्र से छोटे, बड़े और समान के कितने लोग मर गए। यह शरीर अबतक है, तो यह ईश्वर की कृपा है। जब स्वर्ग के सुख में भी पूर्ण शांति नहीं है, तब उससे जो विशेष सुख है उसके लिए यत्न करो। यह शरीर कब छूटेगा ठिकाना नहीं। इसलिए शीघ्र यत्न करो। अशुभ कर्म करना नहीं चाहिए। इसलिए शुभ कर्मों को करो। यदि चूक से अशुभ कर्म हो भी जाय तो उसके लिए पछताओ तथा फिर नहीं करने का बंधन अपने ऊपर लो। फिर शुभकर्मों को करके भी अपनी आसक्ति न रखो, अहंकारी मत बनो। आसक्ति रहित होकर शुभकर्मों को करोगे और ईश्वर का भजन करोगे तो वह बंधन तुम पर नहीं पड़ेगा, गौण हो जाएगा। आसक्त और अहंकारी बनकर शुभ काम करोगे, तो फिर बंधन में पड़ोगे। पाप में लिप्त मत होओ। इसमें लगने से महान दुःख में पड़ोगे। इसलिए पाप कर्मों को छोड़ो और ईश्वर का भजन करो।

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहि गावा।।

श्रीराम का उपदेश है—'बड़े भाग्य से मनुष्य-शरीर मिलता है, सब ग्रंथों ने कहा है कि यह देवताओं को भी दुर्लभ है।' संसार-सागर से पार होने के लिए यत्न करो। खेती का काम नहीं करने से डरते हैं, डरकर काम करते हैं। इसी प्रकार इसके लिए भी डरो और भजन करो।

डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो उबरै, गाफिल खावै मार।।
जाकी जिभ्या बंध नहीं, हिरदे नाहीं साँच।
ताके संग न लागिये, घाले बटिया काँच।।

—संत कबीर साहब

जिभ्या में बोलने का बंधन रखो। सत्य और प्रिय बोलने का बंधन रखो। असत्य और कडुवा नहीं बोलने का बंधन रखो। दूसरी बात यह है कि भोजन विशेष मत करो, जिससे पचे नहीं, अपच

होकर शरीर में रोग उपजे। शरीर में अधिक रस उत्पन्न होकर विकार उत्पन्न न हो। स्वाद के मारे जो नहीं भोजन करने का वह भोजन मत करो।

कबीर भेदी भक्त से, मेरा मन पतियाय।
सेरी पावै शब्द की निर्भय आवै जाय।।

भजन करनेवाला भेदी भक्त है। युक्ति जानकर जो भजन करता है, उसका भजन अच्छा होता है। युक्ति यह है कि शब्द की सीढ़ी को पकड़ो। ईश्वर का नाम जप करना शब्द की सीढ़ी पर आरूढ़ होना है। इसके बाद शब्द-ध्यान भी होता है, जिसे ऋषियों ने नादानुसंधान कहा। मन को बहुत अंतर्मुखी करने से इस शब्द का पता मिलता है। यह शब्द की सीढ़ी है। इन दोनों (वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक) शब्दों के भेद को जो जानता है, वही भेदी भक्त है। वह विश्वास पात्र भक्त है। इसलिए संतों ने कहा सब कोई इसको जानें। वैसे तो सब कोई कुछ-न-कुछ नाम जपते हैं, किंतु जपने की युक्ति चाहिए। युक्ति जानकर भजन करनेवाला मुक्ति पाता है। भवसागर से पार हो जाता है।

मांस मछरिया खात है, सुरा पान से हेत ।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी की खेत ।।
यह कूकर को खान है, मनुष देह क्यों खाय ।
मुख में आमिख मेलता, नरक पड़े सो जाय ।।

— कबीर साहब

संतों ने कहा मांस-मछली मत खाओ। तुम्हारे शरीर और पशु-पक्षी का शरीर; दोनों में महान अंतर है। तुम्हारे शरीर का रक्त उच्चकोटि का रहै और पशु-पक्षी के निम्नकोटि का। उच्चकोटि के रक्त में निम्नकोटि का रक्त मिलाना उचित नहीं। इससे बुद्धि भ्रष्ट होती है, आलस आता है। फिर नशा के लिए कहा—

भांग तमाखू छूतरा, अफयूँ और सराब ।
कह कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार ।।

इसका सेवन मत करो। कोई नशा लेने योग्य नहीं, इनसे बचो। यक्ष्मा (टी०बी०), थाइसिस इससे बहुत बढ़ता है। सब नशाओं को संतों ने मना किया। मत्स्य-मांस न खाओ, नशा को मत पीओ, खाओ। इन शिक्षाओं को ग्रहण करना चाहिए। केवल सुनकर नहीं रहना चाहिए। माया मद, शरीर का मद, मेरे पास धन है, हुकुमत है, इन सब मदों का त्याग करो। माया मद में आदमी ऐसा काम कर बैठता है कि जैसा नहीं करना चाहिए। सब मदों से अपने को बचाकर रखो, घमण्डी की पस्ती होती है।

राम आदर्श राजा थे। वे केवल कर वसूल ही नहीं करते थे, प्रजा को सुखी करने के लिए भी प्रबंध करते थे। प्रजा का शरीर छूटेगा, शरीर छूटने पर भी वे सुखी रहें, उनको इसकी भी चिंता थी। इसलिए उन्होंने उपदेश दिया कि देवताओं को नहीं मिलने योग्य शरीर तुमको मिला है। इस शरीर का सदुपयोग करो। इस शरीर का फल विषय-भोग करने के लिए नहीं। इसलिए विषय-भोगों में लीन मत होओ। सद्गुरु मल्लाह हैं—

नरतन भव वारिधि कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

—गोस्वामी तुलसीदास

मनुष्य-देह और ईश्वर की कृपा हो, फिर भी कोई भक्ति न करे तो उसे आत्महत्या का पाप लगेगा। कोई कहे मनुष्य शरीर प्राप्त है, पर ईश्वर की कृपा नहीं है, यह फिजुल बात है। ईश्वर की कृपा हई है। सद्गुरु को ढूँढ़ो। सद्गुरु एक ही नहीं होते। सद्गुरु जितने होते हैं सबका आचरण एक ही होता है। उनसे युक्ति जानकर ईश्वर की भक्ति करो, कल्याण होगा।

यह प्रवचन जिला—मधेपुरा, ग्राम—देवैल में दिनांक ११.११.१९५२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३४. शास्त्रों को मथने से क्या फल?

प्यारी जनता !

संत कबीर साहब का वचन है—

अस संगति जरि जाय, न चर्चा राम की ।
दुलह बिना बारात, कहो किस काम की ।।

जिस संगति में रामनाम की चर्चा न हो, वह संगति बेकार है, जैसे बिना दुल्हे की बारात। हमलोगों का सत्संग ईश्वर-भक्ति का वर्णन करता है। इस सत्संग में जो कुछ कहा जाता है, वह परमात्मा राम को प्राप्त करने के यत्न के संबंध में ही। किस यत्न से हम उन्हें पावें, यह हम जानें। स्वरूप से वे कैसे हैं? उनके स्वरूप का निर्णय करके ही हम यत्न जान सकेंगे कि इस यत्न से ईश्वर को प्राप्त करेंगे। इसलिए पहले स्वरूप-ज्ञान अवश्य होना चाहिए। श्रीराम हनुमानजी से कहते हैं—

बहुशास्त्र कथा कन्थारो मन्थेन वृथैव किम्।
अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन मारुते ज्योतिरान्तरम्।।

—मुक्तिकोपनिषद् २

बहुत-से शास्त्रों की कथाओं को मथने से क्या फल? हे हनुमान! अत्यंत यत्नवान होकर केवल अंतर की ज्योति की खोज करो। जैसे अंधकार-घर में बिना प्रकाश के किसी चीज को ढूँढ़ने के लिए कोई जाता है तो उसे वह चीज मिले या नही मिले, कोई निश्चित नहीं। किंतु प्रकाश लेकर जाने से वह चीज मिले, संभव है। आँख बंद करने से सब कोई अंधकार देखते हैं। यह मत सोचो कि तुम्हारे अंदर प्रकाश नहीं है। तुम्हारे अंदर प्रकाश नहीं रहने से तुम देख नहीं सकते। साधु, संत और ज्ञानी, ध्यानी, योगी कहते हैं—हमारे अंदर प्रकाश है। इसके लिए किसी जाँच से जाँचते हैं तो जानने में आता है कि यदि हमारे अंदर प्रकाश नहीं होता, तो हम देख नहीं सकते। दो सजातीय वस्तु आपस में सहायक होते हैं, किंतु विजातीय वस्तु को सहायता मिले संभव नहीं। यह दर्शन ज्ञान है। आपकी दृष्टि को प्रकाश से सहायता मिलती है। तब जानना चाहिए कि यह दृष्टि भी प्रकाशस्वरूप है। साधनशील को समझाने की जरूरत नहीं। किंतु जो नहीं जानते हैं, तर्कबुद्धि से जानना चाहते हैं, तो उन्हें जानना चाहिए कि प्रकाश से जब दृष्टि को सहायता मिलती है तो यह दृष्टि भी प्रकाशस्वरूप है। इन दोनों दृष्टियों से जो प्रकाश निकलता है, इसके मूल में ज्योति नहीं हो, तो दोनों दृष्टि में प्रकाश नहीं आ सकता। इसलिए जानना चाहिए कि इसके केंद्र में प्रकाश का पुंज है, वह प्रकाश का पुंज बाहर में नहीं है, अपने अंदर में है। इसलिए हनुमानजी को श्रीराम अंतर की ज्योति की खोज करने कहते हैं। जैसे अंधकार-घर की वस्तु को लोग नहीं पाते, प्रकाश होने से पाते हैं, उसी प्रकार अपने अंदर में ईश्वर है। उसे ढूँढ़ने के लिए प्रकाश की जरूरत है। अंधकार हो तो ठाकुरबाड़ी में ठाकुरजी के रहने पर भी दर्शन नहीं हो सकता। प्रकाश हो जाने से ठाकुरजी का दर्शन होगा। उसी प्रकार आपका शरीर भी ठाकुरबाड़ी है। इसमें प्रकाश कीजिए, तभी ठाकुरजी का दर्शन होगा। अभी सुना, दृश्य और अदृश्य को छोड़कर पुरुष कैवल्यस्वरूप हो जाता है। वह ब्रह्मज्ञानी नहीं, स्वयं ब्रह्मवत् हो जाता है।

केवल विचार से दृश्यमण्डल को पार नहीं कर सकता। इसीलिए दृश्यमण्डल से पार होकर

जहाँ तक सीमा है, वहाँ तक आप जाइएगा। पहले ज्योति होकर गुजरना होगा, तब अदृश्य में जाइएगा। यह पहला पाठ है कि ज्योति की खोज करो। जो ज्योति की खोज नहीं करता, वह अदृश्य में नहीं जा सकता। अपने अंदर की ज्योति कोई कैसे खोज करे—अंतर में प्रवेशकर या बाहर फैलकर? अंतर्मुखी होने से ही उस प्रकाश को देख सकेंगे। आप जागते हैं, स्वप्न में जाते हैं, गहरी नींद में जाते हैं। बाहर के सब ख्यालों को छोड़कर आप स्वप्न में जाते हैं। इसलिए जानना चाहिए, अंदर में जाने के लिए कामों की चिन्ता को छोड़कर प्रवेश कीजिए। सब चिन्ताओं को, काम को साथ में लेकर कोई अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए जितने समय भजन करते हो, उतनी देर के लिए भी केवल काम-धंधा, घर की चिन्ताओं को छोड़ो, तभी अपने अंदर में प्रवेश कर सकोगे। बाहरी काम और ख्यालों को छोड़ने के लिए कोई काम चाहिए। जैसे शरीर को साबुन से धोने पर भी मैल उगता रहता है, उसी प्रकार मन में कुछ न कुछ उगता रहता है, यह स्वाभाविक है। विद्यार्थी अपने पाठ को ठीक-ठीक पढ़ेगा, तभी उसको पाठ याद होगा। मन को कुछ करने नहीं दो, ऐसा होगा ही नहीं। जबतक मन की स्थिति है, तबतक मन का काम छूट नहीं सकता। इसलिए संतों ने जप बतलाया। जप भी ऐसा हो कि एकाग्र मन से जप को जपो। चाहे माला, चाहे हाथ पर जपे तो भी अंतर में प्रवेश नहीं कर सकते। जप—वाचिक जप, उपांशु जप और मानस जप; तीन प्रकार के होते हैं। वाचिक जप बोलकर किया जाता है, उपांशु जप में होठ हिलते हैं, पर दूसरे उसे नहीं सुनते हैं और मानस जप मन-ही-मन होता है। इसमें होंठ-जीभ आदि नहीं हिलते। अन्तर में प्रवेश करने के लिए पहले मानस जप कीजिए। वैसा नाम जिसका अर्थ ईश्वर संबंधी है, उस नाम को जपिए, मानस जप के बाद मानस ध्यान कीजिए। अंतर्मुख होकर अंतर में जाना और अंतर में ठहरना मुश्किल है। बड़े अक्षरों को लिखकर ही छोटा अक्षर लिखा जाता है। अंतर की ज्योति ठीक-ठीक ग्रहण करने के लिए पहले जप करें, फिर ध्यान। जप अन्धकार में करता है, ठहरना भी अन्धकार में है। मानस-जप और मानस-ध्यान के बाद विन्दु-ध्यान कीजिए। इसके लिए ऐसा साधन चाहिए कि एकविन्दुता प्राप्त किया जाए। एकविन्दुता प्राप्ति के कारण पूर्ण सिमटाव का गुण ऊर्ध्वगति है। तो क्या होता है? मानस- जप, मानस-ध्यान और दृष्टियोग करने से अंधकार से प्रकाश में पहुँच जाएगा। इस प्रकार साधक स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करता है। जिस द्वार से स्थूल से सूक्ष्म, अंधकार से प्रकाश में जाना होता है, वह बता दिया। अब केवल करने मात्र की देरी है। अगर शब्द छूट जाय तो सब छूट जाता है। शब्द अदृश्य है। दृश्य के अवलंब से दृश्य को पार किया जाता है। जैसे पानी के अवलंब से पानी को पार करता है, ज्योति से ज्योति को पार करता है; उसी प्रकार शब्द को पकड़कर शब्द को पार करता है। और उसके परे जो परमात्मा है, उसको प्राप्त कर लेता है। श्रीराम ने कहा—

अशब्दमर्स्पशमरूपव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्चयत्।
अनाम गोत्रं मम रूपमीदृशं भजस्व नित्यं पवनात्मजार्त्तिहन्।।

—मुक्तिकोपनिषद्, अध्याय २

हे हनुमान! अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अविनाशी, अस्वाद, अगंध, अनाम और गोत्रहीन, दुःखहरण करनेवाले मेरे इस तरह के रूप का तुम नित्य ध्यान करो। अभी आपलोगों ने संत कबीर साहब का वचन सुना—

नाद विन्दु ते अगम अगोचर, पाँच तत्त्व ते न्यार।
तीन गुनन ते भिन्न है, पुरुष अलख अपार।।

विन्दुनाद में रहकर ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते, नाद को पार करने पर ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। अपार—जिसकी सीमा नहीं है। वह कभी उत्पन्न हो, पीछे बने, संभव नहीं। वह सदा से है। ईश्वरवादी तो मानेंगे ही, किंतु जो अनीश्वरवादी हैं, उनको भी एक अपार तत्त्व को मानना ही पड़ेगा। चाहे उसको ईश्वर नहीं कहकर दूसरा ही नाम कहे। सबको ससीम मानने पर प्रश्न रहेगा ही कि उसके बाद क्या है? जबतक ऐसा नहीं कहो कि असीम है, तबतक प्रश्न हल नहीं होगा। ईश्वर को अपने से पहचानना पड़ेगा। इन्द्रियाँ उसको पहचान नहीं सकतीं।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।
रामस्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

उपनिषदवाक्य है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

उस परे से परे (ब्रह्म) को देख लेने पर हृदय की ग्रन्थि (गाँठ—गिरह) टूट जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

लाल लाल जो सब कोई कहे, सबकी गाँठी लाल ।
गाँठी खोलि के परखे नाहीं, तासो भयो कंगाल ।।

—कबीर साहब

कितने आदमी कहते हैं कि, वहाँ आँख नहीं है, देखेंगे कैसे? उन्हें जानना चाहिए कि आपकी सत्ता पर सब इन्द्रियाँ आश्रित हैं। इन्द्रियाँ आपके नौकर-चाकर हैं, इनको शक्ति कहाँ? आपके रहने से ही इन्द्रियाँ देखती-सुनती हैं। आप अकेले होकर रहिए, तब देखिए कि आपमें कितनी शक्ति है। अकेले रहकर ही उसकी पहचान कर सकते हैं। कैसे पहचान करो? इसके लिए कहा—

सर्गुण की सेवा करौ, निर्गुण का करु ज्ञान ।
निर्गुण सर्गुण के परे, तहैं हमारा ध्यान ।।

—कबीर साहब

निर्गुण-सगुण के परे क्या है? जो कुछ देखते सुनते हैं, ये पंच विषय सगुण हैं। जड़ के सब रूप सगुण हैं। जड़ के परे चेतन, निर्गुण-सगुण के परे परमात्मा है। कोई कहते हैं—निर्गुण तो हो ही नहीं सकता। तो जिद्द करने पर कहते हैं हाँ, ठीक है। दिव्य-गुण-सहित त्रयगुण-रहित, यह भी तो एक गुण है। इसलिए यह भी सगुण ही है। इसके लिए बड़ी पवित्रता की आवश्यकता है। अंतर हृदय को पवित्र रखो, पंच पापों से बचो, एक ईश्वर पर पूरा भरोसा रखो।

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहहू कहा विश्वासा।।

लोग यह भी कहते हैं कि सगुण ईश्वर तो प्रत्यक्ष मदद करते हैं, अर्जुन का रथ भी हाँका था। निर्गुण से तो कुछ नहीं हो सकता है। तो देखो—कबीर साहब को पानी में डुबाया गया, पहाड़ से गिराया गया, बर्तन में बंद करके चूल्हे पर चढ़ाकर औंटा गया, तो बर्तन खाली हो गया। कबीर साहब दूसरे ओर से टहलते हुए आ गए। हाथी के पैर के नीचे दबाया गया तो हाथी को वह सिंह-जैसा देखने में आया। साधु से श्राप दिलाने के लिए साधु को निमंत्रण दे दिया।

वह ईश्वर सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं। परमात्मा को साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण या सगुण-निर्गुण के परे, किसी प्रकार भी मानो, किंतु पूर्ण भरोसा रखो, सुख-दुःख में, हानि-लाभ में; सबमें भरोसा रखो। सत्संग करो, ध्यान करो और गुरुजनों की सेवा करो। H

यह प्रवचन जिला—पूर्णियाँ, ग्राम—सिकलीगढ़ धरहरा सत्संग मंदिर में दिनांक १६.११.१९५२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३५. इस जीवन के बाद और क्या होगा?

प्यारी जनता!

आप सबलोग खेती करते हैं। यदि आपलोग खेती न करें तो क्या होगा? अन्न नहीं होगा, भोजन समाप्त हो जाएँगे, संसार में कैसे जीवन रहेगा? भूख लगने पर जो कष्ट होता है लोगों को मालूम है। भोजन नहीं मिलने पर जो नहीं खाने का वह खा लेता है, जो नहीं करने का वह कर लेता है। विश्वामित्र बड़े तपी थे। उनके समय अकाल पड़ा था, तो किसी तरह प्राण बचाने के लिए लोग वृक्ष का छिलका, पत्ता खा गए। विश्वामित्र ऐसे तपस्वी होते हुए भी डोम के यहाँ कुत्ता का मांस लिया, सो भी चोर के रूप में। डोम के पहचानने पर विश्वामित्र बोला—मनुष्य मरने की अवस्था में प्राण बचाने के लिए, प्राण रक्षार्थ कोई भी उपाय कर सकता है। प्राण बचने पर अनेक धर्म हो सकते हैं, कहकर भोजन किया। भंगहा में एक माई दूसरे गाँव से आई थी। भूख सहन न कर सकी, तो अपने बच्चे को पकाकर खा गई। बिना खेती किए खाना कैसे होगा, वस्त्र कैसे पहने, द्रव्य भी कहाँ से आवे? केवल हीरा-मोती घर में रहे और खाने की चीज न रहे, तो भूखे मर जाएँगे। लोग इसी डर से खेती करते हैं कि खेती नहीं करेंगे तो भूखे रहना पड़ेगा। लड़के गुरुजी के डर से, घर में माता-पिता के डर से पढ़ते हैं। इस अवस्था में नहीं पढ़ने से पीछे संसार में विद्याहीन होकर महादुःखी होगा।

ऊँचे-ऊँचे हाकिम तक डर के मारे अपना-अपना काम करते हैं। ठीक-ठीक काम नहीं करने से पद से नीचे गिरा दिये जाएँगे, बदनामी होगी। इस प्रकार अपने जीवन में सुख से रहने के लिए लोग डर के मारे प्रबंध किया करते हैं। जो अपने लिए सुप्रबंध नहीं करते, वे दुःखी रहा करते हैं। डर बहुत बड़ी कड़ी छड़ी है। डर से लोग संसार का प्रबंध करते हैं, सुखी रहने के लिए। यह भी डर रखो कि इस जीवन के बाद और क्या होगा? केवल शरीर को जला देने से ही काम समाप्त नहीं हो जाता, शरीर छूटने पर वह अपने कर्म के अनुकूल लोक में जाते हैं— पितृलोक, ब्रह्मलोक या नरक; जैसा कर्म किया है उसके अनुकूल। फिर उसको भोगकर इस संसार में आता है। गाड़ी की पहिया के समान उलट-पुलट होता रहता है। प्रत्येक बार के जन्म में दुःख-सुख होता रहता है। ब्रह्मा के धाम में जाओ तो भी कर्म फल नहीं छूटता। इस प्रकार आवागमन का कष्ट लगा रहता है। सब सुकर्म या सब दुष्कर्म ही, किसी से हो संभव नहीं। सब कुछ-न-कुछ सुकर्म और दुष्कर्म करते हैं। आदमी कर्म से ही बुरे या भले का संग करता है। सुकर्म करके लोग स्वर्ग जाते हैं, किंतु सब दिन वहाँ रहना नहीं होता। संसार में एक जीवन के लिए प्रबंध करते हैं, किंतु इस एक जीवन के बाद फिर क्या होगा, इसके लिए भी करो।

'निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार।।'
'पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग।।'

—संत कबीर साहब

पूर्ण ईश्वर का भजन करो तो सब दुःखों से छूट जाओगे।

शरीर का यह स्थूल तल है, इसके भीतर जो प्रवेश करता है तो वह सूक्ष्मतल में जाता है। सूक्ष्मतल जहाँ तक है उसको पार करने पर कारण आता है। यह कारण भी छूट जाता है, तब महाकारण होता है। ये चारो जड़ शरीर हैं। जड़= अज्ञान, इसके बाद चेतन अर्थात् ज्ञानमय शरीर आता है। ये ही पाँच तल हैं। इन्हीं पाँचों तल से शब्द होते रहते हैं। कोई कहे शब्द क्या होता है? बिना शब्द के सृष्टि नहीं होती है। इन पाँचों के केन्द्र हैं। बिना केन्द्र के मण्डल नहीं बन सकता।

बिना विद्या के कोई ईश्वर को, धर्म को नहीं समझ सकता। कबीर साहब नहीं पढ़े थे। उनका नकल नहीं हो सकता। सूर्य ईश्वर का बनाया हुआ है। मनुष्य अपने से ऐसा कोई बना नहीं सकता। उसी प्रकार कबीर साहब बनाए हुए थे, उनको बनना नहीं था।

मिट्टी से बर्तन बनता है। भूमंडल की थोड़ी-थोड़ी मिट्टी एक-एक बर्तन का कारण है। उन सब थोड़ी मिट्टी का खजाना भूमंडल है। जितनी मिट्टी से बर्तन बनता है और वह जहाँ से मिट्टी ली गई, वह भी स्थान है। तो जहाँ से मिट्टी ली गई, वह महाकारण है। सब मिट्टी कारण है और उसकी खानि महाकारण है। कारण=बीज, सबब। जो कारण रूप में आता है वह फूट-फूट= अलग-अलग रूप में हो जाता है। यह व्यष्टि रूप में है। जो समष्टि रूप में है, महाकारण है। तीन गुणों के मिलने को प्रकृति कहते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और विनाश; ये ही तीन गुण हैं। उत्पन्न करने की शक्ति रजोगुण, पालन करने की शक्ति सतोगुण, विनाश करने की शक्ति तमोगुण है।

इन तीन गुणों से विशेष संसार में क्या है? संसार में यही तीनों गुण काम करते हैं। तीन गुणों के समरूप जो है वह प्रकृति है। उत्पादक, पोषक, विनाशक; तीनों का सम्मिश्रण रूप जो है, वह है प्रकृति। यही प्रकृति समरूप में रहने से महाकारण है। इसका नाप-जोख नहीं हो सकता। तीन शक्ति जहाँ समरूप में है, कुछ हलचल नहीं हो सकता। तीन छोरवाली रस्सी को तीन बराबर बलवाला आदमी खीचे तो हलचल नहीं होगा। उसी प्रकार तीनों गुण समरूप में रहने से महाकारण है। जब ईश्वर की मौज होगी, प्रकृति के किसी अंश पर मौज पड़ने से उस अंश का भाग कंपित हो जाएगा, यह हो जाएगा कारण और अकंपित भाग महाकारण होगा। महाकारण के बिना कारण नहीं होगा। धान का बीज कारण है। धान बोने से अंकुर होता है, यह है सूक्ष्म। फिर धान का वृक्ष हो जाता है, तब होता है स्थूल। इस प्रकार प्रकृति के चार रूप हैं, यही रचना है। हमलोग प्रकृति के स्थूल भाग में हैं। अपने अंदर धँसो तो सबसे बारीक वह है, जो आँख बंद करने पर अंधकार मालूम पड़ता है। अंधकार से आगे बढ़ो तो सूक्ष्म में चले जाओगे। अंधकार छूटने पर क्या मिलेगा? प्रकाश। अंधकार से जिसकी वृत्ति प्रकाश में गई, वह सूक्ष्म में चला गया। यही ऊपर उठना है। स्थूल भाग में रहने पर कितना दूर देखते हो, कितना दूर तक विचरण करते हो ! उसी प्रकार सूक्ष्म में जाने पर सूक्ष्म संसार को दूर तक देखोगे और विचरण करोगे। यह अवस्था जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—किसी में नहीं रहोगे, तीनों अवस्थाओं को पार कर जाओगे, तब पाओगे। स्थूल में ये तीन अवस्थाएँ हैं। किंतु सूक्ष्म में प्रवेश करने पर ये तीनों अवस्थाएँ छूट जाती हैं और वह अवस्था तुरीय होती है। तुरीय अवस्था का मैदान बहुत लम्बा है। सूक्ष्म, कारण, महाकारण इसी अवस्था में है। यह चौथी अवस्था है। अन्धकार से ऊपर उठने

पर अपने शरीर का और संसार का ज्ञान नहीं रहता। इस शरीर के भी पाँच दर्जे हैं और संसार के भी पाँच दर्जे हैं। हमलोग जिसमें घूमते-फिरते हैं-कहाँ? शून्य में। स्थूल आकाश बाहर में भी है और आपके अंदर में भी है। शून्य सूक्ष्म है, सूक्ष्म स्थूल में स्वाभाविक समाया हुआ रहता है। शरीर स्थूल है, इसमें शून्य का समाना स्वाभाविक है। लोहा जो ठोस है, उसमें भी शून्य है। शून्य नहीं रहने से अग्नि में डालने से वह लाल रंग का नहीं हो सकता, वह गर्म नहीं हो सकता। उसी प्रकार स्थूल में सूक्ष्म, सूक्ष्म में कारण, कारण में महाकारण एक दूसरे में समाए हुए हैं। इन दोनों में (आपके शरीर और संसार में) बड़ा मेल है। आप अपने शरीर के स्थूल भाग में रहते हैं, तो संसार के भी स्थूल भाग में रहते हैं। शरीर के सूक्ष्म भाग में जाने पर संसार के भी सूक्ष्म भाग में चले जाते हैं। शरीर के जिस तल पर जब जो रहता है, संसार के भी उसी तल पर तब वह रहता है। शरीर के जिस तल को जब जो छोड़ता है, संसार के भी उस तल को तब वह छोड़ता है। जिभ्या में चेतन रहने से मिश्री मीठी मालूम होती है। स्वप्न में जिभ्या से समेटकर भीतर में प्रवेश करता है, तब उस में मिश्री मीठी नहीं लगेगी, क्यों? स्थूल मिश्री और स्थूल जिभ्या भी है, किंतु चेतना सिमटकर जाग्रत से स्वप्न में चली गई है, इसलिए स्थूल मिश्री का ज्ञान नहीं होता है।

सृष्टि कम्पमय है। बिना हील-डोल के कुछ नहीं होता है। पहाड़ बढ़ता है और सड़ता भी है। यह भी कम्पन ही है। शरीर बढ़ता-घटता है। बिना कंपन से घटना-बढ़ना नहीं हो सकता। कंपन में शब्द अनिवार्य है। पाँच नौबत के पाँच केन्द्र हैं, पाँचो में शब्द होते हैं। जिस मंडल में रहते हो उस मंडल के शब्द का ज्ञान छोटा है। पाँचो मंडल के जो शब्द हैं, वह नौबत है। नौबत खुशयाली में बजाया जाता है। इस अंदर की नौबत में भी बहुत मीठा शब्द होता है। शब्द में अपनी ओर आकर्षण करने का गुण है, अपने उद्‌गम स्थान पर खींचता है। अपने अंदर रहकर सूक्ष्म मण्डल का जो शब्द सुनेगा, उसको क्या होगा? सूक्ष्म के केन्द्र में उसकी वृत्ति चली जाएगी। दूसरी बात है ऊपर का शब्द नीचे दूर तक आता है। नीचे का शब्द ऊपर दूर तक नहीं जाता। इसलिए सूक्ष्म के केन्द्र पर पहुँचने पर कारण के शब्द को पहचानना, सुनना संभव है। इसी प्रकार कारण के केन्द्र पर पहुँचने पर महाकारण के शब्द को पकड़ना संभव है और महाकारण के केन्द्र पर पहुँचकर कैवल्य के शब्द को सुनना सम्भव है। इस पाँचवें केन्द्र में पहुँचने पर वह सतनाम को पहचानेगा, उसी को ऋषियों ने ॐ, उद्‌गीथ आदि कहा। उसका केन्द्र परमात्मा है। उसको पकड़ने से परमात्मा को प्राप्त कर लोगे। इसीलिए कबीर साहब ने कहा—

पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग।।

तुम्हारे अंदर में ऐसे महान यंत्र हैं, जिनको पकड़ो तो ईश्वर की पहचान हो जाए। इनको काम में नहीं लिया तो शरीर नाश हो गया। यंत्र खराब हो गए, कौआ बैठने लगा, किस काम का? इस शरीर पर कौआ बैठाओ या ईश्वर को प्राप्त करो।

एक केन्द्र से उसके ऊपर के केन्द्र के शब्द को पकड़ना शब्द की सीढ़ी पाना है। उस पर चढ़ जा सकता है। ऊपर पहुँचकर वह जीवन-मुक्त होता है। जबतक जीवन है, उसपर चढ़कर जाता है और आता है।

अन्तर में चलने के लिए भोजन पवित्र होना चाहिए। मांस-मछली का तो कहना ही क्या? आपलोगों को पहले से ही मालूम है, जिस-जिस कुल में मांस-मछली खाने का चलन नहीं है, वह कुल बहुत उत्तम है। नशा में अपव्यय, अपवित्रता

और रोग है। चावल को धोकर भी खाते हैं, किंतु तंबाकू को बिना धोए ही मुँह में डालते हैं। कोई भी नशा अच्छा नहीं है, इससे रोग उत्पन्न होते हैं। इसको नहीं खाना चाहिए। जो खाते हो, उन्हें छोड़ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त और नशा है—

मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तनमद मनमद जातिमद, मायामद सब लोय।।
विद्यामद और गुणहु मद, राजमद उनमद्द।
इतने मद को रद्द करै, तब पावै अनहद।।

—कबीर साहब

तानसेन से बैजूबाबरा गाने में विशेष था। अकबर के दरबार में तानसेन रहता था। वह गाने-बजाने में बहुत प्रवीण था। वह अकबर से हुक्म दिला दिया कि दिल्ली में कोई गाना गाने न पावे। जो गावे, उसको सजा मिल जाती थी। बैजूबाबरा जान-बूझकर शहर में गाना गाने लगा। गिरफ्तार करके दरबार में लाया गया। तानसेन से उसका मुकाबला हुआ। तानसेन हार गया।

भगवान बुद्ध का वचन है—'किसी से वैर मत करो। जो तुमसे वैर करता है, उससे प्रेम करो। वैर पर ख्याल मत करो। वह पीछे तुम्हारा मित्र बन जाएगा।' इसी तरह जीवन जीना चाहिए। ◫

यह प्रवचन ग्राम—बेलसरा, जिला—पूर्णियाँ में दिनांक १८.११.१९५२ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

३६. अपने शरीर को पार करो

प्यारे धर्मप्रेमी महाशयो!

बड़े हर्ष की बात है कि एक देहात में इतने लोग एकत्रित होकर सत्संग सुनने के लिए उत्सुक हैं। शुभ दिन जब आते हैं, तब धर्म की ओर मनुष्य की रुचि होती है। मैं जहाँ-तहाँ जाकर देखता हूँ तो ज्ञात होता है कि इस देश में विशेष लोगों को धर्म में रुचि है, किंतु ऐसे भी लोग हैं, जो रुचि नहीं रखते। यहाँ सत्संग का नाम सुनकर कई गाँवों के लोग आए हैं। हमलोगों के लिए यह शुभ है।

बड़े भाग पाइये सत्संगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा।।

मैं सत्संग करता-फिरता हूँ और लोग इसमें जो कुछ कहते हैं, सुन लेता हूँ, समझता हूँ। इस सत्संग से बड़ा लाभ होता है। देश को भी बड़ा लाभ है। अब मैं अपने विषय पर आता हूँ। रामायणजी के पाठ में आपलोगों ने सुना कि मनुष्य की क्या-क्या दशा होती है। पहले पशु पर विचार करें। कोई पशु बंधन में रहता है, कोई बिना बंधन का। आपके पास जो जानवर रहते हैं, उन्हें आप बाँधते हैं। कोई ऐसे हैं, जो यों ही विचरण करते हैं। मनुष्य में भी ऐसे लोग हैं, जो कसूर के कारण कारागार में रहते हैं। कारागार नहीं समझनेवाले कैदखाना या जेल समझे। पर, यह दुःख की बात है कि लोग कारागार नहीं समझे, कैदखाना और जेल समझे। यह हमारी भाषा नहीं है, मुसलमानों और अंग्रेजों की भाषा है। जो बंधन में रहते हैं, वे दुःख अनुभव करते हैं। अब कुछ विचार करें। आप निर्बन्ध दशा में हैं या बन्धन में? यदि आप कहें कि मैं किसी के अधीन नहीं, मैं स्वतंत्र हूँ, मेरा देश स्वतंत्र है। जनता का राज्य है, फिर जनता का या अपना राज्य होते हुए भी आप सुखी हैं या दुःखी, विचारिए। जिस प्रकार अन्न-वस्त्र से पहले सुखी थे, उस प्रकार आज नहीं हैं।

जहाँ अन्न-वस्त्र की कमी है, वहाँ दैहिक सुख कहाँ? यह तो मोटी बात है। फिर आप विचारिए, जिस समय आपको अन्न-वस्त्र मिलते थे, तब रोग-शोक होते थे कि नहीं? या अब होते हैं कि नहीं? कोई नहीं कह सकते कि अन्न-वस्त्र के विशेष होने के समय रोग-शोक नहीं था, अब है। अरे! उस समय भी शारीरिक-मानसिक कष्ट झेलने पड़ते थे और अब भी। जब विकार उत्पन्न होता है, तब लोग अनुचित-से-अनुचित कर्म कर लेते हैं। पीछे पछताते हैं—मैंने क्या किया? इस प्रकार लोभ-मोह आदि से ग्रसित होते हैं। काम उत्पन्न होता है। उस वेग में आकर नीचे-से-नीचे गिर जाते हैं। ईर्ष्या होती है, दूसरे को देखकर जलते हैं। जो बाहरी सुखों में विलास कर रहे हैं, उनके हृदयों को विकार जितना जलाता है, उतना बाहरी सुखों में नहीं बरतनेवाले को नहीं जलाता। शारीरिक व्याधि को तो कौन कहे, मानसिक अनेक व्याधियाँ मनुष्य को सदा सताती रहती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

एक व्याधि बस नर मरहिं, ये असाधि बहु व्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहँ, सो किमि लहइ समाधि।।

आपका यह शरीर जो हड्डियों और मांसों से घिरा हुआ है, जब स्वप्न में जाता है तो यह पृथ्वी पर पड़ा रहता है, केवल साँस लेता है। स्वप्न में जाने पर जागने के समान ही काम-क्रोधादिक विकार उत्पन्न होते देखते हैं। यह स्थूल शरीर तो वहाँ नहीं है, एक दूसरा ही शरीर है। जिस शरीर से आप संसार में घूमते दिखलाई देते हैं, यह स्थूल शरीर तो यों ही खाट पर पड़ा हुआ था। कहानी है कि सत्यवान के स्थूल शरीर से दूसरा लिंग शरीर निकाल कर यमराज लेकर चले गए थे। सत्यवान और सावित्री दम्पति थे। सत्यवान अपने पिता के राज्यभ्रष्ट हो जाने के कारण जंगल में लकड़ी काटकर अपने माता-पिता-पत्नी का भरण-पोषण करते थे। एक दिन सावित्री ने अपने पति से कहा—आर्य! तुम जंगल लकड़ी चुनने जाओगे, मैं भी जाऊँगी। वह पति के साथ जंगल गई। जंगल में लकड़ी काटते-काटते ही सिर दर्द से सत्यवान बेचैन होकर बेहोश हो गए। संयोगवश सावित्री उस दिन साथ में ही थी। उसने अपनी जंघा पर अपने पति का सिर रख लिया। सत्यवान का अंतिम समय जान, यमदूत उसे लेने आए। किंतु सती स्त्री के तेज के सामने वे ठहर न सके। अंत में यमराज स्वयं आकर सत्यवान के स्थूल शरीर से उनके सूक्ष्म शरीर को निकालकर चलते बने। सावित्री यमराज के पीछे-पीछे अनुनय-विनय करती चली। यमराज ने प्रसन्न हो सावित्री को इच्छित वर देकर सत्यवान के स्थूल शरीर में उनके सूक्ष्म शरीर को प्रविष्ट कर दिया। फलस्वरूप सत्यवान जीवित हो उठे।

आर्य का अर्थ है—जो बुद्धिमान हो, विद्या को जानता हो, सभ्य हो, विद्वान हो। हमलोगों के धर्म का नाम वैदिक धर्म या आर्य धर्म है। महाभारत का छोटा अंश श्रीमद्भगवद्गीता है। बड़ा तेजस्वी टुकड़ा है। महाभारत से यदि इस गीता को निकाल दिया जाय, तो महाभारत वैसे ही हो जाएगा, जैसे ढाई या पाँच मन मांस-खून से लदे शरीर से सूक्ष्म प्राण निकल जाय। गीता या महाभारत में कहीं हिन्दी या हिन्दू नहीं लिखा गया। यह पुस्तक कलि-काल के आदि में हुआ था। आज कलि-काल को हुए पाँच हजार वर्ष हुए। युधिष्ठिर को यहाँ से गए पाँच हजार वर्ष के करीब हुए। आज से ढाई हजार वर्ष पहले या कलि-काल के आरंभ के ढाई हजार वर्ष बाद भगवान बुद्ध हुए। उनके वचन में कहीं हिन्दी या हिन्दू नहीं है। इनके वचन में भी आर्य शब्द ही प्रयोग हुआ है। महाभारत में भी आर्य है। उसी प्रकार

सावित्री अपने पति को आर्य कहकर संबोधित करती है। यमराज सत्यवान की देह में लिंग शरीर को प्रवेश करा देते हैं। इससे यह समझो कि इस शरीर के अंदर एक और शरीर है, जिसे लिंग शरीर कहते हैं। हमलोगों के यहाँ घर-घर में श्राद्ध-क्रिया होती है। श्राद्ध-क्रिया इस विश्वास पर होता है कि शरीर में कोई था, वह शरीर छोड़कर चला गया। वह अच्छे लोक में जाए, अच्छी गति में जाए। इस श्राद्ध-क्रिया से यह वेदांत शिक्षा मिलती है कि शरीर के जलाने से इसमें रहनेवाला चेतनात्मा जलता नहीं, काटने से कटता नहीं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः।।

फिर ज्ञानी कहते हैं— सूक्ष्म ही नहीं, इसके अंदर कारण और कारण के अंदर महाकारण, फिर इसमें भी चेतन शरीर है।

चिदानंदमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।

इन पाँचों शरीरों से युक्त चेतनात्मा जीवात्मा कहलाता है। जबतक किसी इन्द्रिय में या अंतःकरण या किसी शरीर में रहते हैं, इस स्थूल शरीर से आप किसी भी तरह निकल नहीं सकते। स्थूल से जब आप निकल नहीं सकते; सूक्ष्म, कारण-महाकारण से कैसे निकल सकते हैं? इसलिए जीव इन्हीं शरीरों के फँदे में पड़ा हुआ है। एक कारागार में बंद रहते हुए किसी को अच्छा नहीं लगता। यहाँ तो जीवात्मा चार कारागारों के अंदर पड़ा है। क्या आराम मिलेगा? जिस स्थान में जो रहते हैं, उस स्थान के भोग से बचे, संभव नहीं है। इसी प्रकार शरीर में रहकर शरीर के विकार से कैसे बचोगे। इसके लिए संतों ने बताया, अपने शरीर से निकल जाओगे तो सब विकारों से छूट जाओगे। जीव संसार में देहों के बंधनों से लिपटा हुआ रहता है। शरीर में रहनेवाला संसार में रहता है। संसार में रहनेवाला शरीर में रहता है। शरीर और संसार का बड़ा मेल है। स्थूल शरीर में रहनेवाला स्थूल संसार में रहेगा। अभी आपलोग सुने—

जो न तरइ भवसागर, नर समाज अस पाय।
सो कृत निन्दक मंद मति, आतम हन गति जाय।।

भवसागर से पार होने के लिए अपने शरीर को पार करो। इसके लिए बाहर में कोई यत्न करने से नहीं होगा और न शरीर छूटने के बाद होगा। जीवनकाल में ही भवसागर तरना होगा।

जीवन मुक्त सोइ मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुक्ता हो।
—संत कबीर साहब

जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ।
जीवत काटै कर्म सब, मुक्ति कहावै सोइ।।
—संत दादू दयाल

इस शरीर में रहकर हम शुभ कर्म कर सकते हैं। जीवन-मुक्त की दशा प्राप्त कर सकते हैं। दूसरे शरीर में नहीं होगा। इसीलिए अपने जीवन-काल में यत्न करो। जो जीवन-काल में अपने को मुक्त कर पाता है, वह जीवन-मुक्त है। जो जीवन-मुक्त नहीं है, उसे कोई कहे कि तुम जीवन-मुक्त हो, यह कैसे हो सकता है? जिसके पास में धन नहीं है, उसे यदि लोग कहे कि तुम धनी हो, कैसे होगा? वह स्वयं जानता है, मेरे पास धन नहीं है। जो जीवन-काल में मुक्त है, वह जीवन-मुक्त है। जीवन-मुक्त पुरुष ब्रह्म पर है। ब्रह्म=जो प्रकृति मंडल में व्यापक है। सारा प्रकृति-मण्डल व्याप्य है और उसमें जो व्यापक है, वह ब्रह्म है। जैसे लोहे के गोले को अग्नि में देने से उसमें अग्नि प्रवेश कर जाती है। लोहे का गोला व्याप्य है और अग्नि व्यापक है। उसी प्रकार सारे प्रकृति मण्डल में व्यापक को ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म परमात्मा का अंश है। परमात्मा प्रकृति के पार

कितना विशेष है, इसका अंदाजा नहीं किया जा सकता, वह परमात्मा है। प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। तो प्रकृति के पर या ब्रह्म के पर जो परमात्मा है, उसको प्राप्त करनेवाला जीवन-मुक्त ब्रह्म कहलाता है। जीवन-मुक्त पुरुष की अपनी इच्छा रहती है— जबतक संसार में रहना चाहें या जब शरीर छोड़ना चाहें, किंतु वे ईश्वरीय विधान का खंडन नहीं करते, ईश्वरीय नियम का पालन करते हैं। जबतक जीवन है, संसार में रहते हैं, उन्हें अपने लिए कुछ करना बाकी नहीं रहता। संसार में रहते हैं तो संसार की सेवा के भाव से कर्म करते हैं और सत्संग करते हैं। उनके बिना सत्संग में जो आनंद होना चाहिए, जो सदुपदेश होना चाहिए नहीं होता। इसलिए जहाँ जाना चाहिए, वहाँ जाकर वे सत्संग करते हैं। जब इस प्रकार के लोग भी सत्संग करते हैं तो साधारण जन जो सत्संग नहीं करते, उनका हृदय पत्थर के समान है।

श्रीराम का राज्य बहुत अच्छा था। इसलिए आज भी लोग रामराज्य बनाना चाहते हैं। बौद्ध काल में अशोक के राज्य का भी बहुत अच्छा प्रबंध था। राज्य बहुत बड़ा था। कोई बकरी को नहीं बाँधते थे। कहते थे कि यह गरीब जीव है, इसे मत बाँधो।

श्रीराम आदर्श राजा थे। एक साधारण मनुष्य के कहने पर सीता ऐसी सती का परित्याग कर दिया। वे अपना सब कुछ छोड़ सकते थे, जिसमें प्रजा सुखी रहे। संसार में जबतक प्रजा रहेगी, सुखपूर्वक रहेगी। किंतु शरीर छोड़ने पर भी ये प्रजाएँ सुखी रहे, इसके लिए श्रीराम ने उपदेश दिया—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहि गावा।।

देव देही भोग देही है। मनुष्य देह में योग-भोग दोनों होता है। मनुष्यों को भोगने के पदार्थ कम मिलते हैं और इन्द्रियों में भोगने की शक्ति भी कम है; किंतु देवता में भोग बहुत मिलते हैं और भोगने की शक्ति भी बहुत है। इसलिए इस भोग से छूटना देवताओं को कठिन हो जाता है।

नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनि नायक आतमवादी।।
मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।

'देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवस विचारे।'

ये सब माया के विवश में हैं, तो हमलोगों को देवताओं से भी श्रेष्ठ शरीर मिला है। यह शरीर साधन का घर है। भण्डार से जो निकालना चाहो, निकाल सकते हो। इसी प्रकार यह साधनों का भण्डार और मोक्ष का द्वार है। पहले वर्णित पाँचों शरीरों से निकलना ही मोक्ष है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए द्वार की खोज कीजिए। शरीर में नौ द्वार हैं। बड़े-बड़े छिद्र को द्वार और छोटे-छोटे को खिड़कियाँ कहते हैं। रोएँ-रोएँ के छिद्र खिडकियाँ हैं। मोटे-मोटे छिद्र द्वार हैं। आँख के दो, कान के दो, नाक के दो, मुँह, मल-मूत्र के एक-एक-नव छिद्र हैं। इनमें पड़े रहो तो बंधन में पड़े रहोगे। मोक्ष का द्वार कौन है ?

नउ दरवाजे नवे दर फीके रसु अमृतु दसवै चुईजै।।
नउ दरि ठाकै धावतु रहाए, दसवें निज घरि वासा पाए।।

नौ द्वार में ठहरनेवाला संसार में दौड़ता रहता है। दसवें द्वार में जानेवाला आत्मघर, निजघर, मोक्ष घर में जाता है। इसको बतानेवाला गुरु पूरे भाग्यवान को मिलता है। बाहर में नौ दरवाजे हैं। भीतर में दसवाँ दरवाजा है। शिवजी का चित्र देखिए, इनके दो आँखों के बीच में एक और आँख है। शिवजी इसको जानते थे। इस आँख से जो करना चाहिए, वे प्रयोग किए थे। उसी आँख से चेतन धाराएँ निकलकर इन दोनों आँखों में आती है। यह स्थूल में नहीं सूक्ष्म में है। बाहर में नहीं, भीतर में है। स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से

स्थूल में आने का द्वार है। मन सहित चेतन उसमें प्रवेश कर सकता है। इसका यत्न जानें और घुसने के लिए प्रयत्न करें। यह शाम्भवी मुद्रा, वैष्णवी मुद्रा से होगा। साधारण वचन में दृष्टि-साधन से प्राप्त होगा। बड़ा भण्डार कर लेने पर भी इसमें प्रवेश नहीं कर सकते।

चीन देश के राजा ने बहुत पुण्य किया था। एक साधु ने कहा—जिधर जाना चाहिए, उधर तुम एक डेग भी नहीं चले हो। हाँ, जिसके पास धन है, दान देने से भण्डारा करने से आसक्ति छूट सकती है। वह इस ओर चलने में सहायक है। उसे शुभ कर्म भी करना चाहिए। किंतु केवल इसी कर्म से मुक्ति नहीं मिलेगी। उस कर्म से सहायता मिलेगी।

'सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि धुनि पछताय ।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय ।।'
'लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।'

यह मार्ग लंबा है। एक जन्म का काम नहीं है। जन्म-जन्मांतर का काम है। अनेक जन्म करो, करते-करते मोक्ष मिलेगा। भगवान ने कहा—

दिन दिन बढ़त सबाई,राम धन कबहु न लागी काई ।

यह भजन का लसंग ऐसा है कि छूटनेवाला नहीं। जरा-सा लग जाने से भजन करते-करते भजन का अंत करवाकर ही छोड़ेगा।

कर्म दो प्रकार के होते हैं। पहले मन से, फिर कर्म से। इसलिए पहले सूक्ष्म भोग को भोगोगे, फिर स्थूल को। स्वर्ग में सुख भोगना सूक्ष्म भोग है और इस स्थूल संसार में आकर भोगना स्थूल। पहले मन में कर्म किया जाता है, फिर बाहर में। इसलिए पहले स्वर्ग में भोगकर यहाँ भी भोगना पड़ता है। मनुष्य शरीर का काम केवल विषय भोगना नहीं है। विषय केवल पाँच ही हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा से जो ग्रहण करते हैं। इन्हीं में सब लगे हैं। श्रीराम कहते हैं—विषय में लगे रहो यह मनुष्य शरीर का काम नहीं। स्वर्ग का सुख भी थोड़ा है और अंत में दुःख देनेवाला है। विषयों से कैसे बचा जाएगा, इसका उपाय पीछे कहूँगा।

नर तन पाय विषय मन देही। पलटि सुधा ते सठ विष लेही।।
ताहि कबहुँ भल कहहिं न कोई। गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई।।
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जीव अविनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाउ गुन घेरा।।

मनुष्य का शरीर माया, काल-कर्म के घेरे से छूटने के लिए है, न कि विषयों के पहिए की पुट्ठी की तरह घूमने के लिए। फिर कहा—

नरतन भव वारिधि कहँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

सन्मुख मरुत अनुकूल पवन है। नारद को बंदर का मुँह अच्छा नहीं लगता था। किंतु भगवान ने अच्छा ही किया। नारद विषय-धार में बहना चाहता था, भगवान ने रोका। जो हवा उलटे जाने के लिए ठोकर दे, वह अनुकूल हवा है। वेग बहाव का है। इसलिए उलटी हवा रहने पर भी नाव कुछ-न-कुछ बह ही जाती है अर्थात् मन विषय की ओर बहता है। ईश्वर की कृपा-रूप अनुकूल वायु होने पर भी नाव बहती है, लेकिन सद्गुरु रूप मल्लाह खेवकर पार लगाते हैं। जो सद्ज्ञान में अपने रहे, दूसरों को सद्ज्ञान की शिक्षा दे, वह सद्गुरु हैं। वे युक्ति बतावेंगे और उस ओर चलने के लिए प्रेरित करेंगे। जो बात बहुत सुनी जाती है, मन वही करने के लिए चाहता है। किसी को जिस ओर फेरना हो, उस तरह की बात सुनाइए, उस ओर हो जाएगा। अच्छी-अच्छी बातों को सुनते-सुनते मन अच्छा हो जाता है। अच्छा कर्म करने लगता है। सद्गुरु सद्ज्ञान की शिक्षा देते हैं। विषय

की ओर से मन को फेरने की शिक्षा देते हैं। उसका मन फिर जाता है। गोया नाव उलट गई।

जो न तरइ भवसागर, नर समाज अस पाय।
सो कृत निंदक मंद मति, आतम हन गति जाय।।

विषय से कैसे बचा जाय? एक को पकड़ो, अनेक को छोड़ो। हमलोग बहुत शब्द सुनते और बोलते हैं। अनेक शब्दों में से एक शब्द को लीजिए। शब्द का अर्थ होता है। एक शब्द को लो, जो शब्द ईश्वर की ओर खींचता हो। एक शब्द लेकर जपो। पंच विषयों में रूप और शब्द दो ही प्रबल हैं। गंध उतनी दूर तक नहीं जाती, स्पर्श तो चमड़ा सटने पर ही मालूम होता है, रस भी जिभ्या में स्पर्श होने पर ही स्वाद जाना जाता है। आँख का विषय दूर तक जाता है, किंतु प्रकाश रहने पर ही। अंधकार में विशेष दूर तक नहीं जाता। किंतु शब्द तो अंधकार, प्रकाश सब में सुन सकते हैं। इसलिए शब्द के समान और प्रबल दूसरा कोई विषय नहीं है। तो एक शब्द को लीजिए। रामनाम, शिवनाम, कृष्णनाम, जो लीजिए सब एक ही है। राम सर्वव्यापक को कहते हैं। शिव कल्याणकारी को कहते हैं। किसी एक नाम को लेकर जपो, जो नाम ईश्वर की ओर झुकानेवाला हो। त्रैकाल संध्या करने के लिए ऋषियों ने बतलाया। हमलोग ऋषि पुत्र हैं, थोड़ा समय लेकर एक घण्टा या आधा घण्टा भी सब शब्दों को छोड़कर एक ऐसे शब्द को जपो। फिर अपने इष्ट के रूप को ले लो और उसका ध्यान करो। काम करते हुए भी उन दोनों को गौण रूप से करते रहो। तन काम में, मन राम में।

कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।
सो ध्यानी परमान, सुरत से अण्डा सेवै।।

—संत पलटू साहब

इन दोनों विषयों को पकड़ो और तीन विषय को छोड़ दो। फिर दृष्टिसाधन करके पाँचो विषयों को छोड़ दो। दृष्टिसाधन से स्थूल विषय छूट जाएँगे। फिर सूक्ष्म विषय से छूटने के लिए नादानुसंधान करो और भवसागर से पार हो जाओ। संसार में अनासक्त होकर काम करो। जैसा कि पहले कहा— तन काम में, मन राम में। इसके लिए कोई मन को संसार में रखे और इस ओर जाना चाहें, हो नहीं सकता।

दुई कि होइ एक समय भुआला। हसब ठठाइ फुलाउब गाला।।

इसलिए नित्य नियमित रूप से भजन-अभ्यास करते रहिए। ◨

यह प्रवचन ग्राम—बेलसरा, जिला पूर्णियाँ (बिहार) में दिनांक १८.११.१९५२ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३७. धर्म से विराग होता है

प्यारे लागो !

इतिहास भी कुछ-कुछ सुनना चाहिए। इसलिए कि जो कोई अच्छे-अच्छे कर्म किए हैं, उनके कर्मों का इतिहास सुनकर अच्छे-अच्छे कर्म करने की इच्छा होती है और इतिहास में ऐसी भी बातें होती हैं कि बुरे-बुरे कर्म करनेवाले भी लोग हुए हैं। उनका परिणाम जो दुःख होता है, उसे सुनकर लोग बुरे कर्म नहीं करेंगे।

स्त्री को पातिव्रत्य-धर्म का पालन करना चाहिए। वह लोक में भी यश पाती है और परलोक में भी सुखी रहती है। विपरीत चलनेवाली को दुःख और नरक होता है। पातिव्रत्य-धर्म से मोक्ष नहीं मिलता। मोक्ष तो ईश्वर की भक्ति से होता है, किंतु पातिव्रत्य-धर्म का पालन करने से

इहलोक और परलोक दोनों में सुखी रहती है।

मैं और मेरा दोनों माया है। माया दो हैं—विद्या और अविद्या। अविद्या माया अंधी है, अपने को भी नहीं देखती। यह दुष्ट माया है। इसके बाद विद्या माया है। दान, पुण्य, सत्संग विद्या माया है। अपने को जो नहीं पहचानता, ब्रह्म को नहीं पहचानता, माया को नहीं पहचानता, वह जीव है। ईश्वर वह है, जो माया को अपने अधीन रखता है, जीव को बंधन और मुक्ति दोनों दे सकता है।

ज्ञान किसको कहते हैं? जो सबमें एक ईश्वर को देखता है। विराग वह है, जो त्रयगुण (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की शक्ति को तुच्छ समझता है। उसमें जो आसक्त नहीं है, विरक्त वही है। ज्ञान से मुक्ति, योग से ज्ञान और धर्म से विराग होता है। दान-पुण्य भी धर्म है। धर्म-कर्म करनेवाले की आसक्ति धन से छूटती है। ध्यान करने में उसका मन लगता है, उसको पहले से ही विरक्ति है।

तुम्हारा शरीर समुद्र है। लंबा साढ़े तीन हाथ, चौड़ा एक हाथ देखने में आता है; किंतु यह समुद्र है। इसका अंत नहीं मिलता। संत इसका अंत करते हैं। शरीर का अंत पाकर ही कोई संत होते हैं। मृतक होकर रहना—इन्द्रियाँ मृतक देह में निश्चेष्ट रहती हैं। इसी प्रकार साधना में जिसकी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हैं, वह मृतकवत् है। जो मृतक है, वही इस शरीररूपी समुद्र में डुबकी लगा सकता है। कबीर साहब कहते हैं—

मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ग्यान की, जामें वस्तु अनेक।।

कबीर साहब कहते हैं—जो शरीर समुद्र के समान गहरा है, मैंने उसमें ध्यान द्वारा डुबकी लगायी। अर्थात् इस शरीर के अंतर में प्रवेश किया तो वह वस्तु (परमात्मा) प्राप्त हुई, जिसमें अनेक प्रकार की चीजें भरपूर हैं। फिर कहते हैं—

डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकाश।
गगन मण्डल में घर किया, हीरा पाया दास।।

अर्थात् डुबकी शरीररूपी समुद्र में मारते हैं और आकाश में निकलते हैं। यह तो भजन करने से मालूम होगा।

भक्त वह है जो ईश्वर को पाने का यत्न है, उसको करता है। जो कोई अपने अंदर में अच्छी तरह से ध्यान करता है, उसी को ईश्वर मिलता है। एक बार ईश्वर मिलने से फिर हेराता नहीं है। और चीजें मिलकर हेरा जाती हैं; किंतु यह हेराता नहीं है। इसलिए नित्य ध्यानाभ्यास करना चाहिए, सत्संग करना चाहिए। इसमें गफलत नहीं करनी चाहिए।

जिस प्रकार पत्नी के लिए एक पातिव्रत्यधर्म है, उसी प्रकार पुरुष को भी एक पत्नीव्रतधर्म का पालन करना चाहिए। श्रीराम भगवान विष्णु के अवतार थे। वे चक्रवर्ती राजा थे। वे जितनी शादी करना चाहते, कर सकते थे, किंतु एक सीता ही उनकी पत्नी थी।

पुरुष एक पत्नीव्रत धर्म का पालन करे और स्त्री एक पातिव्रत्य-धर्म का पालन करे, साथ ही भजन-अभ्यास करे, इससे स्वर्ग को कौन कहे, मोक्ष भी मिल जाएगा। ज्ञान-प्राप्ति के लिए सत्संग कीजिए और ध्यानाभ्यास नित्य कीजिए।

यह प्रवचन संतमत सत्संग मंदिर सैदाबाद, जिला पूर्णियाँ (अब जिला—अररिया) में दिनांक ६.१२.१९५२ ई० के साप्ताहिक सत्संग में हुआ था।

३८. तन धर सुखिया काहू न देखा

प्यारे लोगो !

मुक्ति का अर्थ है छुटकारा। कोई बंधन में रहता है, तब उससे छूटना चाहता है। तो हमलोग बंधन में बँधे हैं। जिस प्रकार कोई कारागार में हो, उसी प्रकार हमलोग शरीर और संसार के कारागार में बंदी हैं। बंदी नहीं समझो तो कैदी जरूर समझो। कारागार नहीं समझो तो जेल और कैदखाना जरूर समझोगे। हमारा दुर्भाग्य कि अपने भाषा को भूलकर अन्य भाषा को अपनाए हुए हैं।

यहाँ लोग जहाँ पर हैं, यह सौर जगत है। अर्थात् यहाँ से सूर्यमण्डल जहाँ देखते हैं—स्थूल मंडल है। इसके सहित सूक्ष्म, कारण, महाकारण; ये चार मण्डल जड़ के हैं। आँख बंद करने से अंधकार मालूम होता है। लक्ष्मणजी ने परशुरामजी से कहा था— 'मुंदे आँख कतहुँ कोउ नाहीं।' अंधकार में जो चीज है, वह आप नहीं पा सकते, वह चीज तभी मिलेगी, जब प्रकाश हो। आप चाहते हो कि मेरे शरीर में कोई रोग नहीं आवे। संयम से रहते हैं, तो भी दैहिक, दैविक, भौतिक किसी-न-किसी प्रकार का रोग आ ही जाता है। संत कबीर साहब ने कहा—

तन धर सुखिया काहू न देखा, जो देखा सो दुखिया हो ।
उदय अस्त की बात कहतु हौं, सबका किया विवेका हो ।।
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही वैरागी हो ।
शुकदेव अचारज दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागी हो ।।
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो ।
आसा तृष्णा सबको व्यापै, कोई महल न सूना हो ।।
साँच कहौं तो कोई न मानै, झूठ कहा नही जाई हो ।
ब्रह्मा विष्णु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो ।।
अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी विपरीती हो ।
कहै कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो ।।

भगवान श्रीराम संसार में रोने की लीला करते हैं। जब वे ही रोते हैं, तब औरों की बात ही क्या? बालक जन्म लेते ही रोता है। राज-राजेश्वर का पुत्र भी रोते ही जन्म लेता है। श्रीराम ने प्रकट होकर कौशल्याजी को दर्शन दिया चतुर्भुजी रूप में। माता कौशल्या बोली, यह रूप छोड़िए और साधारण बच्चे का भेष धरकर रोइए।

सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना।

संसार में जाओगे, तो संसार में रोना-ही-रोना पड़ेगा। संसार दुःखमय है। इसमें जो आवेंगे, उनको रोना ही पड़ेगा। हिमालय के शिखर पर जाने से भी दुःख नहीं छूटेगा। शरीरिक, दैविक, भौतिक और मानसिक कोई न कोई कष्ट होगा ही।

शरीर और संसार की फाँस में हमलोग फँसे हैं। इससे छूटने का नाम है—मुक्ति। यदि कहो कि मरने पर शरीर छूट जाएगा, मुक्ति होगी, तो सो नहीं। स्थूल शरीर छूटेगा, लेकिन सूक्ष्म शरीर रहेगा। फिर स्थूल शरीर होकर दुःख होगा। यदि दान-पुण्य कर स्वर्ग जाओ तो भी फिर यहाँ आकर दुःख भोगना पड़ेगा। युधिष्ठिर ने कितने दान-पुण्य, तीर्थ किए। उसके बदले में स्वर्ग आदि भोगे, फिर उनको नरक भी देखना पड़ा, थोड़ा-सा झूठ बोलने पर। चित्त का स्वभाव है—मैं सुखी-दुःखी, भोग करनेवाला हूँ। यह स्वभाव चित्त से कोई हटा नहीं सकता। जैसे देह से मैल को कोई हटा नहीं सकता। चाहे उबटन लगाकर स्नान करो। इस प्रकार चित्त में कर्ता भोक्ता, सुखी-दुःखी

होते रहना दुःख का कारण है।

अभी जो आपलोगों ने मुक्तिकोपनिषद् का पाठ सुना। उसमें भगवान श्रीराम हनुमानजी को उपदेश देते हैं—मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, करनेवाला हूँ तथा भोगनेवाला हूँ—यह चित्त का धर्म है। यही बंधन का कारण है। चित्त के धर्म पर जो काबू पा लेता है, वह जीवन-मुक्त है। शरीर रहते मुक्ति मिल गई, शरीर में है, किंतु शरीर-संसार का बंधन उसपर असर नहीं करता। ऐसे पुरुष का जब शरीर छूटता है, तो केवल स्थूल नहीं, जड़ के तीनों शरीर छूट जाते हैं। घर के अंदर जो आकाश है, घट आवरण टूटने से मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार जीवन-मुक्त के शरीर के छूटने से वह घटाकाश की तरह मुक्त हो जाता है। तब वह विदेह-मुक्त हो जाता है। राजा जनकजी जीवन-मुक्त थे। शरीर में रहते हुए भी वे विदेह कहलाते थे। जीवन-मुक्त पुरुष को अख्तियार है कि वह शरीर और संसार में रहें या नहीं। किंतु नियम पालन के लिए अपने शरीर को रखे रहते हैं। जैसे हनुमानजी को ताकत थी कि मेघनाद की फाँस को काट दे; किंतु ब्रह्मफाँस की मर्यादा रखने के लिए अपने बँधकर रावण के दरबार में गए। उसी प्रकार जीवन-मुक्त परमात्मा के विधान का पालन करते हैं और संसार का उपकार करते हैं। तो यह जीवन-मुक्ति शरीर में रहते हुए ही होती है, मरने पर नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—

लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग।

संत कबीर साहब ने भी कहा है—

जीवन मुक्त सोइ मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो।
देह संग ना होवै मुक्ता, मुए मुक्ति कहँ होई हो।
तीरथवासी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो।।
जीवत कर्म की फाँस न काटी, मुए मुक्ति की आसा हो।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हो।।
ह्वै अतीत बंधन तें छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो।
बिना अतीत सदा बंधन में, कितहूँ जानि न पाई हो।।
आवागमन से गये छूटि कै, सुमिरि नाम अविनासी हो।
कहै कबीर सोई जन गुरु है, काटी भ्रम की फाँसी हो।।

इस प्रकार उपनिषद् और संतवचन मिलाने पर एक ही मिल जाता है। यह एक जन्म की बात नहीं है। एक जन्म में नहीं होगा, तो दूसरे, तीसरे कई जन्मों में हो जाएगा। यह राम धन है।

दिन दिन बढ़त सवाई, रामधन कबहूँ न लागै काई।।

श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में पढ़िये—भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने कहा—हे महाबाहो! यदि ध्यानयोग में श्रद्धा रखे, परंतु साधन में ढीला रहे तो ये योगभ्रष्ट पुरुष किस गति को प्राप्त करेंगे? भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—ऐसे योगभ्रष्ट पुरुष अपने स्वल्पातिस्वल्प ध्यानयोगाभ्यास के फल से दुर्गति को प्राप्त न होकर प्रथम स्वर्ग सुख भोगेगा; पुनः इस पृथ्वी पर किसी पवित्र श्रीमान के घर में अथवा किसी ज्ञानवान योगी के घर में जन्म लेगा। पूर्व के अभ्यास संस्कार से प्रेरित होकर ध्यान योगाभ्यास में लग जाएगा। वह मोक्ष की ओर आगे बढ़ेगा और इस प्रकार अनेक जन्मों की कमाई के द्वारा पापों से छूटकर पवित्र होता हुआ परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करेगा।

विद्यालय में जो विद्यार्थी पढ़ते हैं। पढ़ते-पढते कितने की आधी उम्र खतम हो जाती है, तब कहीं योग्य समझे जाते हैं और इस जीवन-मुक्त अवस्था के लिए कहना कि जल्दी क्यों नहीं होती है? जिस तरह विद्यार्थी धीरे-धीरे पढ़ते-पढ़ते योग्य होते हैं, उसी प्रकार यह अवस्था प्राप्त करने के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके अनुभव ज्ञान में जीवनमुक्त की दशा प्राप्त करेंगे। ■

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—पटनेगा (अब जिला—अररिया) में दिनांक २२.१२.१९५२ ई० को साप्ताहिक सत्संग में हुआ था।

३९. दृश्य जगत का मूल विन्दु है

प्यारे लोगो!

नाद का अर्थ है शब्द और विन्दु का अर्थ है छोटे-से-छोटा चिह्न। पाठशाला में पढ़नेवाले विद्यार्थी पढ़ते हैं कि जिसका स्थान है परिमाण नहीं, वह विन्दु है। वह इतना छोटा है कि उसका बाँट नहीं हो सकता। नाद ध्वन्यात्मक शब्द है, हमलोग जो बोलते हैं, वह वर्णात्मक है। बाजों का शब्द ध्वन्यात्मक आहत नाद है। परंतु जिस नाद का अभी वर्णन किया जा रहा है, वह आंतरिक अनाहत ध्वन्यात्मक नाद है। जो ईश्वर को माननेवाले हैं, वे ईश्वर को सबसे पूर्व का मानते हैं। ईश्वर के पहले कुछ और था माना नहीं जा सकता। ईश्वर किसी शरीर को धारण किए हुए हैं एक ख्याल है। दूसरा ख्याल यह है कि ईश्वर है, किंतु उनको शरीर नहीं है। रंगरूप माननेवाला भी उस रंग-रूप के अंदर ईश्वर को शरीर रहित मानते हैं। पहला शरीर-रहित स्वरूप है या जो शरीरवाला है, वह दोनों में पहले से कौन है? जो हाथ-पैर आदि इन्द्रियों से युक्त तथा गोचर है वह कैसा है? तथा आपकी इन्द्रियाँ कैसी हैं? बनती हैं, ठहरती हैं और बिगड़ती हैं। रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण; त्रैगुणों से निर्मित इन्द्रियाँ हैं। इन्हीं (रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण) तीनों गुणों को त्रिगुण कहते हैं। त्रिगुण से बनी हुई इन्द्रियाँ त्रिगुण से रहित पदार्थ को पकड़े कैसे संभव है? शरीर त्रिगुण निर्मित है, इसके सहित रहनेवाले को सगुण कहते हैं। शरीरधारी सगुण है। सगुण कहने से दो पदार्थों का बोध होता है। एक वह जो धारण करता है। और दूसरा वह जिसे वह धारण करता है। जो त्रिगुण को धारण करता है, वह त्रिगुण नहीं है; वह निर्गुण है, वह गुणातीत है। असल में मूल स्वरूप निर्गुण है।

अगुन अखंड अलख अज जोई। भगत प्रेम वस सगुण सो होई।।

—गोस्वामी तुलसीदास

यह चौपाई विदित करती है कि पहले अगुण= त्रैगुण रहित, अखण्ड=खण्डरहित, अलख=जो नेत्र के ज्ञान से बाहर है, अज=जो कभी जन्मा नहीं है; जो हई है। वही भक्त के प्रेमवश सगुण होता है। यानी त्रैगुण को धारण करता है।

(**गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।** इस सिद्धांत से कोई भी इन्द्रिय-गोचर रूप मायिक होगा। चाहे वह दिव्य ही क्यों न कहलावै। चाहे उसका स्थूल इन्द्रियों से दर्शन हो अथवा सूक्ष्म या दिव्य-दृष्टि से दर्शन हो। इस तरह के मायिक दर्शन को निर्गुण निर्मायिक स्वरूप का दर्शन कहा नहीं जा सकता।) यह तुलसीदासजी का विचार है। मूल स्वरूप परमात्मा का निर्गुण है। वहाँ पर रूप या दृश्य नहीं है। निर्गुण अरूप ईश्वर पहले पहल क्या बनावेगा नाद को अथवा विन्दु को? पहले रूप को या अरूप को? अरूप रूप से सूक्ष्म है। रूप स्थूल है और अरूप सूक्ष्म है। पानी देखने में आता है और हवा देखने में नहीं आती। पानी स्थूल है और हवा उससे सूक्ष्म है। यह जगत जो पंचभौतिक है, आकाश सबका मूल है। पहले आकाश है, तब वायु। आकाश अदृश्य है, इससे उत्पन्न वायु भी अदृश्य है। फिर वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी ऐसे क्रमशः पाँचों तत्त्व बने हैं। पृथ्वी से जल, जल से

अग्नि और अग्नि से हवा सूक्ष्म है। पृथ्वी, जल और अग्नि दृश्य है, हवा और आकाश अदृश्य है। आकाश से वायु उत्पन्न हुआ। वह आकाश अदृश्य और हवा भी अदृश्य है। तात्पर्य यह कि अदृश्य से अदृश्य उत्पन्न हुआ, परंतु कुछ भेद-सहित। भेद यह कि आकाश स्पर्श रहित और हवा स्पर्श सहित। अतएव आकाश सूक्ष्म और हवा स्थूल है। इसी प्रकार निर्गुण, अलख ईश्वर से सृष्टि की आदि में जो उत्पन्न हुआ वह ईश्वर की सूक्ष्मता से न्यून सूक्ष्मता रूप अदृश्य ध्वन्यात्मक नाद हुआ। उसके बाद रूप अर्थात् सब रूपों का बीज विन्दु उस नाद से उत्पन्न हुआ। विन्दु दृश्य जगत का उपादान कारण हुआ और अदृश्य जगत नादात्मक हुआ। जहाँ नाद और दृश्य दोनों हैं, वह दृश्य जगत है। दृश्य जगत का मूल विन्दु है। कुछ नक्शा बनाने में पहले विन्दु होगा। दृश्य जगत का जहाँ अंत होगा, वह भी एक विन्दु पर होगा। नाद तो वह चीज है, जिसे सृष्टि की आदि में परमात्मा ने सृजन किया। एकविन्दुता प्राप्त होने अर्थात् विन्दु पर आरूढ़ हो जाने से दृश्य जगत के अंत तक आ जाओगे। विन्दु-ध्यान से दृश्य जगत से छूट जाओगे। दृश्य का आवरण छूट गया।

नाद-ध्यान से क्या होता है, सो सुनो। नाद में अपने उद्गम स्थान पर खींच लाने का गुण है। इसका उद्गम स्थान स्वयं परमात्मा है, इसलिए इसके ध्यान से खींचकर उस परमात्मा तक पहुँच जाओगे। हमलोग जो प्रतिदिन संत-स्तुति में 'विन्दु ध्यान विधि नाद ध्यान विधि, सरल सरल जग में परचारी।' गाते हैं, सो विन्दु और नाद-ध्यान की यही महिमा है।

यह प्रवचन संतमत सत्संग मंदिर मनिहारी, जिला कटिहार (बिहार) में दिनांक ३०.१२.१९५२ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

४०. संतमत का उपदेश

प्यारे लोगो!

आपलोगों में से बहुतों को यह मालूम है कि मैं किस कारण से यहाँ आया करता हूँ। इसपर कुछ कहना व्यर्थ ही समय बिताना है। मेरे गुरु महाराज बाबा देवी साहब थे। एक बार उन्होंने मुझसे यहाँ (मुरादाबाद मुहल्ला अताई में) ही कहा था कि तुम कहाँ रहते हो और मैं कहाँ रहता हूँ? तुम बिहार के पुरैनियाँ जिले में और मैं यहाँ। तुम कहाँ और मैं कहाँ? दोनों में कैसे सरोकार हो गया? पहले जन्म में भी तुमको मुझसे संतमत के द्वारा संबंध था।

बाबा साहब का प्रचार संतमत का उपदेश है। संतमत का मतलब कोई अपना—निज मतलब का मत निकालना और उसका नाम संतमत रखना नहीं। बल्कि सब संतों के मत को गुरु महाराज मानते थे और कहते थे कि सब संतों की वाणियों को मानो। बाबा साहब के पितामह तथा पिता आदि के गुरु हाथरस निवासी तुलसी साहब थे, जिनको लोग 'घटरामायण' (घटरामायण बाबा देवी साहब ने छपवायी है, जिसे सत्संग में पढ़ने का आदेश वे दे गए हैं।) के कर्ता मानते हैं। उन्होंने भी यही कहा कि मेरा कोई खास मत नहीं है। सब संतों ने जो कहा, वही मत मेरा है।

(**तुलसी संत भेद विधि गाई। संत भेद तब अगम लखाई।।**

—घटरामायण, पृष्ठ १६४

संत गुरु और पंथ न जाना। ये ही संत पंथ हित माना।।
—घटरामायण, पृष्ठ १६८

तुलसी गति गाई, शब्द सुनाई। पंथ अगम सुर्त सार भई।।
नानक और दादू, दरिया साधू। मीरा सूर कबीर कही।।
नाभा नभ जानी, भाखी बखानी। सुरति समानी पार गई।।
सबकी विधि न्यारी, एक विचारी। सब संतन एक राह लई।।
सब चढ़े एक धारा, पहुँचे पारा। लखी गगन गति गवन गई।।
कोई करिहैं शंका, महापति रंका। तुलसी डंका दीन कही।।
—घटरामायण, पृष्ठ २३६

तुलसी मैं अति नीच निकामा। मैं गुरु बिन कछु नाहिं बखाना।।
मैं किंकर संतन कर दासा। सतसंगति में सुनौ विलासा।।
अस अस संत सबन मिलि गाई। दास बनैजिन जिन कछु पाई।।
तुलसी तासे पंथ न कीना। भेष जगत भया पंथ अधीना।।
तुलसी मैं कछु जानौ नाई। पलक राम तुमरी सरनाई।।
मैं हूँ संत चरन की लारा। बन्दौं चरणन बारम्बारा।।
संत बिना कोउ देख न आना। सत सत सुरत संत को माना।।
—घटरामायण, पृष्ठ ३७४

संतन गति गाई, अगम सुनाइ। जिन जिन पाई पार भई।।
सब सब मिलि गावा, मैंहूँ सुनावा। अगम अथाहा आदि कही।।
देखौ निज बानी, संत बखानी। जिन जिन जानी, जानि लई।।
—घटरामायण, पृष्ठ ३७५

हम संतन मत अगम बखाना। हम तो इष्ट संत को जाना।।
—घटरामायण, पृष्ठ ४३४

देखौं सब संतन की साखी। बूझि ज्ञान जब खुलिहैं आँखी।।
—घटरामायण, पृष्ठ ४३५)

सब संतों की वाणियों से यही जाना कि—ईश्वर की भक्ति करो। सब संतों की वाणियों को पढ़ा जाय तो यही जानने में आएगा कि सब संत ईश्वर की भक्ति करने के लिए कहते हैं। सब मनुष्य दुःखी हैं। कोई धनी, गरीब, विद्वान, अविद्वान कुछ भी हों; सब-के-सब दुःखी रहते हैं। दैहिक विकार के साथ-साथ मन के विकार सताते रहते हैं। इनसे छूटना मनुष्य का काम है। दुःख से बिल्कुल छुट्टी मिल जाय, इसीलिए संत कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति करो। यहाँ तुलसीकृत रामायण की यह बात याद आती है—

राकापति षोडस उअहिं, तारागण समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइय, बिनु रवि राति न जाय।।
ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेशा। मिटहिं न जीवन केर कलेसा।।

अर्थात् पूर्णिमा के सोलह चंद्रमा (अथवा सोलह कलाओं से युक्त चंद्रमा) उगें; तारेगणों के सब झुण्ड भी उगें, सब पर्वतों में आग लगा दी जाय, परंतु बिना सूर्य के रात नहीं जाती। हे गरुड़जी ! इसी प्रकार बिना हरि भजन किए जीवों का क्लेश नहीं मिटता। यह बिल्कुल ठीक है। इसीलिए संतों ने ईश्वर का भजन करने कहा। ईश्वर का भजन कैसे हो, इसके लिए ईश्वर का स्वरूप जानना चाहिए। पहले स्वाध्याय और साधु-संत, विद्वान से सुनकर श्रवणज्ञान होता है। पढ़े-सुने के विचार करने को मननज्ञान कहते हैं। श्रवण और मनन के बाद जानने में आता है कि प्राप्तव्य वस्तु क्या है? ईश्वर को प्राप्त करो, वही प्राप्तव्य वस्तु है। जिस कर्म से वह पाया जाय, वही भक्ति है। ईश्वर स्वरूप क्या है? इसके बारे में संतों के ग्रंथों में ऐसा लिखा है कि स्वरूपतः वह परमात्मा इन्द्रियातीत है अर्थात् बाहर की दश इन्द्रियाँ और भीतर की चार इन्द्रियाँ; इन चौदहों इन्द्रियों के ज्ञान से वह परे है।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

यह उनका स्वरूप है।

जग पेखन तुम देखनिहारे। विधि हरि सम्भू नचावन हारे।।
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। अउर तुम्हहिं को जाननिहारा।।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।।
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहिं रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।
चिदानंदमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।
—गोस्वामी तुलसीदास

चिदानंदमय-देह कोई मनुष्य-देह नहीं हो सकती, उसे अधिकारी-जन जानते हैं। अधिकारी जन साधन-भजन कुछ करके ही बनते हैं। तब चिदानंदमय-देह को पहचान कर वह जानते हैं; अन्य प्रकार से नहीं। देह क्षेत्र है, आत्मा क्षेत्रज्ञ है। अन्नमय कोष चिदानंदमय नहीं है, चेतन शरीर चिदानंदमय है। चिदानंद और नरतन में भेद नहीं था, ऐसा नहीं। नरतन और चिदानंद में पृथकता है। नरतन को सब कोई देखते हैं, किंतु चिदानंद को अधिकारी-जन ही जानते हैं। जिस शरीर में लड़कपन, युवावस्था और बुढ़ापा होता है तथा जिसका होना रहना और विनसना होता है, वह चिदानंद-शरीर नहीं है। जिसमें शोक-दुःख हो, वह चिदानंद-शरीर नहीं है, वह तो नर रूप है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने क्षीरशायी भगवान विष्णु का नर-रूप धारण करना इस भाँति लिखा है—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनकेन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ।।

इस दोहे से स्पष्ट है कि नरतन और चिदानंद देह में अंतर है। अपनी लीला के हेतु नरतन धारण किया। नरतन धारण करने से वे स्वरूपतः नर ही थे, मानने योग्य नहीं है। जैसे नाटक करनेवाला नाटक के खेल में जो रूप धारण करता है, वह वही नहीं हो जाता है। चेतन ही चिदानंदमय शरीर को देखेगा। अपने को जड़ के चारों शरीरों से ऊपर उठावे, तभी वह अधिकारी भक्त उसे जान सकता है। इसलिए 'जान अधिकारी' कहा। वह चेतनमय देह और उसका फिर देही क्या है और कैसे है ? वह शुद्ध आत्मस्वरूप है। वह चेतन से वैसे संबंध रखता है जैसे आकाश वायु से। बीच में कुछ परदा नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी की विनयपत्रिका में है—

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत।।

वचन से, कर्म से और मन से उसे पहचान नहीं सकते। 'व्याप्य' और 'व्यापक' फिर 'अनंत' कहा। व्याप्य के बाद वह और कितना बाकी है, ठिकाना नहीं। यह ईश्वर का स्वरूप है।

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवई निद्रा तजि योगी।
सोइ हरि पद अनुभवइ परम सुख, अतिशय द्वैत वियोगी।।
शोक मोह भय हरष दिवस निशि, देश काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दशा हीन, संशय निर्मूल न जाहीं।।

योगी, जो सकल ब्रह्माण्ड के दृश्य को अपने उदर में मेलकर देखता है, देश-कालातीत अर्थात् स्थान और समय से रहित शुद्ध आत्मतत्त्व पद को प्रत्यक्ष रूप से जानता है और अत्यंत द्वैतरहित होकर हरिपद के परम सुख को पाता है। देश-कालातीत परम तत्त्व ही हरिपद या परमात्म-स्वरूप है। सूरदासजी से पूछने पर कहते हैं—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगहिं मीठे फल को रस, अंतर्गत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु, निरालंब मन चक्रित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातें, 'सूर' सगुण लीला पद गावै।।

विषयों में संतुष्टि नहीं, परंतु विभु-परमात्मा तो परमस्वाद-रूप निरंतर अमित तोषदायक है। वह स्वाद विनसनेवाला नहीं, सदा स्वाद बना रहता है, उसमें पूर्ण संतुष्टि है, मानो अधिकारी भक्त संतुष्टि के समुद्र में डूबा रहता है, वह कुछ चाहता नहीं है। जो मन, वचन से अगोचर है, उसे वही जानता है, जो पाता है। कबीर साहब कहते हैं—

'नैना बैन अगोचरी, श्रवणा करनी सार।
बोलन कै सुख कारने, कहिये सिरजनहार।।'

'जस कथिये तस होत नहीं, जस है तैसा सोय ।
कहत सुनत सुख ऊपजै, अरु परमारथ होय ।।'
श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सबके मध्य निरंतर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभा नमूना ऐना।।

दृष्टि की दृष्टि अर्थात् आत्मा से देखने योग्य है। ये भी बुद्धिवचन के परे कहते हैं। बाबा नानक कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर विटहु कुरवाणु ।।
ना तिसु रूप वरणु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।रहाउ।।

उपनिषद् में पढ़ने से यही मालूम होता है कि जो संतों का ज्ञान है, उपनिषद् में भी वही है। या उपनिषद् में जो बात है, संत भी वही बात बताते हैं। पंच विषयों को पंच ज्ञानेन्द्रियों से जानते हैं। जिस इन्द्रिय का जो विषय है, उसी इन्द्रिय से वह जाना जाता है। एक इन्द्रिय का जो विषय है, उसके अतिरिक्त दूसरी इन्द्रिय से उस विषय को नहीं जान सकते। कोई पूछे कि रूप विषय क्या है, तो कहेंगे जो आप नेत्र से ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार परमात्म-विषय वही है, जिसे केवल चेतन आत्मा से जान सकते हैं। वही सतनाम, सतसाहब और कर्ता पुरुष है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है। आकाश कहने से घर के भीतर और बाहर दोनों का ज्ञान होता है। इसी तरह आत्मा कहने से शरीरस्थ आत्मा और सर्वपर आत्मा; दोनों का ज्ञान होता है। चाहे कोई शरीरस्थ आत्मा कहे, कोई परमात्मा कहे; एक ही बात है।

यह जान लेने पर अब भक्ति कैसे करें? उस परमात्म-पुरुष को देख लेते, पहचान लेते तो हम संतुष्ट हो जाते। वह है, सर्वत्र है। अपना रहना अपने शरीर में है, वह परमात्मा भी अपने अंदर में है। फिर पहचानते क्यों नहीं? हम शरीर और इन्द्रियों में फँसे हुए हैं। इसलिए हमको चाहिए कि अपने को शरीर और इन्द्रियों से निकालें, तभी हम देखेंगे। जिस प्रकार दूध में घी मिला है, उसी तरह शरीर और इन्द्रियों में जीवात्मा मिला है। इससे अलग करना कठिन मालूम होता है। किंतु यह हो सकता है, ऐसा संतों ने कहा है। दूध से मथकर घी निकाल कर उसमें रखने से फिर उसमें पहले जैसा वह मिलता नहीं, उसी प्रकार शरीर और इन्द्रियों से अपने को निकाल लेने पर पुनः शरीर और इन्द्रिय में रहकर उसमें पूर्ववत् मिलाप से बचते हुए रहकर परमात्मा को प्रत्यक्ष पहचान सकते हैं। ऐसा हो जाने पर तुम उसे बाहर भीतर सब जगह आत्मदृष्टि से देखोगे।

बाहरि भीतरि एकहु जानहु इहु गुर गिआन बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।।
—गुरु नानक साहब

अपने शरीर से अपने को अलग करो। इसी भक्ति के लिए सब संतों का उपदेश है। गुरु महाराज का भी यही उपदेश था। गुरु महाराज का उपदेश था कि अपने अंदर में कोशिश करो। ईश्वर बाहर में भी है, किंतु इन्द्रियों से पहचानने योग्य नहीं। संसार देखने के नेत्र से हम संसार को पहचानते हैं, परंतु यदि उसपर पट्टी बँधी हो तो उससे हम दृश्य जगत को कैसे देखें? इसी प्रकार चेतन आत्मा पर जड़ आवरण की पट्टी रहने से परमात्मा को कैसे पहचान सकते हैं? आप शरीर के संग-संग काम करते हैं, जब आप जगे रहते हैं। इसके बाद और स्वप्न के पहले तन्द्रा या अधनिनियाँ होती है। इसमें बाहर का

कुछ ज्ञान रहता है और कुछ भूलते भी जाते हैं। शक्ति भीतर सिमटती जाती है, गला झुक जाता है। धीरे-धीरे बाहर का ज्ञान बिल्कुल भूल जाते हैं। स्वप्नमें जाने से आपकी सब बाह्य इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं। मुँह में मिसरी रहने से भी उसकी मिठास कुछ मालूम नहीं होती। इस प्रकार मोटी इन्द्रियों से आपको छुट्टी मिली, किंतु मानसिक इन्द्रियाँ रहती हैं। फिर आप गहरी नींद में सो जाते हैं और इनसे भी छुट्टी मिल जाती है। किंतु आप बेहोश रहते हैं। फिर जगते हैं और पहले जैसे बरतते हैं। यह साधारणतः होते रहता है। ऐसा कोई साधन हो, ऐसी कोई अवस्था हो, जिसमें नींद भी नहीं रहे और जगा भी नहीं रहे। संतों ने उसी को तुरीय अवस्था कहा है। इस अवस्था में रहने से इन्द्रियों से आपका ऊपर उठा रहना होगा। इसी का उपदेश गुरु महाराज हमलोगों को दे गए हैं। इस काम के करने में स्थूल शरीर को कोई कष्ट नहीं होता। लेट कर करो या बैठकर, किंतु आलस्य न आवे, इसपर पहरा कीजिए। लेटा हुआ भजन करना शवासन से होता है। किंतु यह आसन साधन में कुछ बढ़े लोगों का है। साधारणतः बैठकर भजन करे, इसी का अभ्यास करे और भजन के समय को बढ़ावे। होते-होते अपने को इन्द्रियों से और शरीरों से छुटा सकेंगे और ईश्वर का साक्षात्कार कर सकेंगे।

यह प्रवचन संतमत सत्संग मंदिर मुरादाबाद (यू.पी.) में बाबा देवी साहब की जयंती के अवसर पर दिनांक—३.१.१९५३ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

४१. जहाँ रहो, सत्संग करो

पूज्य संतजन!

आपको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। आपको कुछ सुनाकर आनन्दित करूँ, मैं इस योग्य नहीं; क्योंकि आप मुझसे विशेष हैं। सज्जनवृन्द जो उपस्थित हैं, संभवतः ये सबके सब कई दिनों से मेरे कथन को सुन रहे हैं। इनसे भी कुछ विशेष कहना नहीं है। केवल कही हुई बातों को पुनः कहकर इन्हें स्मरण दिलाना है। मेरे पूज्य गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी थी कि 'जहाँ रहो, सत्संग करो।' सत्संग की विशेषता पर अपने देश में घटित प्राचीन काल की एक कथा है—

गोपीचन्द एक राजा थे। उनकी माता बहुत बुद्धिमती और योग की ओर जानेवाली साधिका थी। वे योग जानती थीं और करती भी थीं। उनके हृदय में ज्ञान, योग और भक्ति भरी थी। गोपीचन्द वैरागी हो गए थे। गुरु ने कहा—'अपनी माता से भिक्षा ले आओ।' वे माता से भिक्षा लेने गए। माताजी बोलीं—'भिक्षा क्या दूँ ? थोड़ा-सा उपदेश लेकर जाओ। वह यह है—बहुत मजबूत किले (गढ़) के अंदर रहो। बहुत स्वादिष्ट भोजन करो और मुलायम शय्या पर सोओ। यही भिक्षा है जाओ।' गोपीचन्द बोले—'आपकी ये बातें मेरे लिए पूर्णतः विरुद्ध हैं।' माताजी बोलीं—'पुत्र! तुमने समझा नहीं। मजबूत गढ़ सत्संग है। इससे दूसरा और कोई मजबूत गढ़ नहीं है। जिस गढ़ में रहकर काम-क्रोधादिक विकार सताते हैं, जिससे मनुष्य-मनुष्य नहीं रह जाता और वह पशु एवं निशाचर की तरह हो जाता है, वह गढ़ किस काम का?

संतों का संग ही ऐसा गढ़ है, जिसमें रहकर विकारों का आक्रमण रोका जाता है और उनका दमन करते-करते नाश किया जाता है।' फिर सुस्वादु भोजन तथा मुलायम शय्या के लिए माता बोलीं—'कैसा ही सुंदर स्वादिष्ट भोजन क्यों न हो, भूख नहीं रहने से वह स्वादिष्ट नहीं लगेगा। इसलिए खूब भूख लगने पर खाओ। मुलायम बिछावन वह है कि जब तुमको खूब नींद आवे, तब तुम कठोर वा कोमल जिस किसी भी बिछौने पर सोओगे, वही तुम्हें मुलायम मालूम पड़ेगा।' यह शिक्षा सबको धारण करने योग्य है। गुरु महाराज कहते थे—'जहाँ रहो, सत्संग करो। स्वयं सीखो और जहाँ तक हो सके, दूसरों को भी सिखाओ, जिससे उनको भी लाभ हो।'

लोगों की इच्छा ऐसी है कि दुःख भागे और सुख-ही-सुख मिले। साधारणतः जो मन और इन्द्रियों को सुहाता है, उसे सुख और जो नहीं सुहाता, उसे दुःख कहते हैं। मन और इन्द्रियों को सुहानेवाले पंच विषय हैं। लोग इन पंच विषयों को भोगते हैं, किंतु संतुष्ट नहीं होते हैं। संतों ने कहा है कि विषय-भोग में सुख नहीं है। तुम स्वयं सुख-स्वरूप हो। मन-बुद्धि आदि इन्द्रियों से अगम्य, केवल आत्मगम्य—परमात्मा, नित्य सुख का समुद्र है। विषय-सुख क्षणिक और अनित्य है। परमात्मा नित्य है। उसको प्राप्त करने से नित्य सुख मिलेगा, इसलिए उसकी भक्ति करो। भक्ति का अर्थ भजन- सेवा है। जिसकी भक्ति करेंगे, वह पदार्थ रूप में कैसा है? यह नहीं जानने से उसकी सेवा-भक्ति नहीं की जा सकती। परमात्म-स्वरूप क्या है? इस विषय पर कई दिन कह चुका हूँ। फिर भी समास रूप में कहता हूँ—'इन्द्रियों के द्वारा नहीं, जिसको आप स्वयं (चेतन-आत्मा) पहचानें, वह परमात्मा है। आप शरीर और इन्द्रिय नहीं हैं। शरीर और इन्द्रियाँ आपकी हैं। इनका संग छोड़कर अकेले हो जाइए, तब जो पहचानेंगे, वह परमात्मा है। उस परमात्मा की भक्ति कैसे हो? जैसे गंगाजी स्नान करने अथवा किसी विशेष देवालय में लोग जाते हैं, तो यह जाना गंगा तथा देवालय के देवता की भक्ति है। वैसे ही अपने को जब आप शरीर और इन्द्रियों से छुड़ा सकेंगे, तभी परमात्मा को पाएँगे, यही भक्ति है। इसके लिए गमन करना होता है। शरीर और इन्द्रियों से ऊपर उठना, यही गमन है—जाना है। प्रभु सर्वव्यापी हैं, किंतु यहाँ उन्हें पहचान नहीं सकते। यहाँ पहचान हो जाती, तो कहीं जाना नहीं पड़ता। यहाँ हम इन्द्रियों के संग रहते हैं, इसलिए पहचान नहीं सकते। आँख पर रंगीन चश्मा लगाने से संसार के पदार्थ उसी रंग के मालूम होते हैं, जिस रंग का वह चश्मा है। या आँख पर पट्टी लगाने से कुछ भी नहीं देख सकते। हमारे ऊपर जड़ का आवरण है। इसके रहने से कुछ सूझता ही नहीं है। इन्द्रियरूपी चश्मा लगा है। गोस्वामी तुलसीदासजी के वचनानुकूल—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

हरे, पीले जो देखने में आते हैं, सभी माया है। परमात्मा को पहचानने की शक्ति उस चश्मे में नहीं है। इस चश्मे को उतारकर देखो। जिस प्रकार रज्जु में सर्प का भ्रम होता है, उसी प्रकार ब्रह्म में जगत का भ्रम होता है। यह शंकर स्वामी के ज्ञान के अनुकूल है तथा गोस्वामी तुलसीदासजी ने उसी के अनुकूल कहा है—

रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि।
यद्यपि मृषा तिहुँ काल सो, भ्रम न सकै कोउ टारि।।
यहि विधि जग हरि आश्रित रहई। यदपि असत्य देत दुख अहई।।

जबतक पूर्व कथित पट्टी और चश्मे नहीं

उतरेंगे, तबतक उपर्युक्त भ्रम दूर नहीं होगा। इन पट्टी और चश्मे से ऊपर होना है। हम पर चश्मा और पट्टी नहीं रहे; हम अकेले रहें।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

केवल यही रहे।

सो माया वस भयेउ गुसाईं। बंधेउ कीर मर्कट की नाईं।।

चेतन-आत्मा पर यह वश्यता नहीं रहे, तब वह परमात्म-स्वरूप को पहचान सकती है। इन आवरणों से छूटने के लिए चेतन-आत्मा को जहाँ जाना होगा, वहाँ उसे जाना चाहिए। संतों ने कहा—बाहर में जहाँ जाओगे, शरीर और इन्द्रियों के साथ जाओगे। अपने अंदर जाने से शरीर और इन्द्रियों से छूटते हुए जाओगे और अंत में पूर्ण रूपेण इनसे छूट जाओगे। इसके लिए जाग्रत और स्वप्न की स्थिति पर विचार करो। जाग्रत में रहने पर बाहर संसार के कामों को करते हैं। स्वप्न में बाहर की कोई इन्द्रिय बाहर में कुछ काम नहीं करती। मुँह में मीठा डालने पर भी स्वाद मालूम नहीं होता। जग जाओ तब मीठा लगेगा। इसका यह कारण है कि जाग्रत में चेतन-धारा इन्द्रियों के घाटों पर रहती हुई काम करती है और स्वप्न में बाहरी इन्द्रियों के घाटों से सिमटकर अंतर्मुख हो मनोमय कोष में रहती है और वहीं काम करती है। फिर जाग्रत अवस्था में स्वाभाविक ही वह बाह्य इन्द्रियों के घाटों पर आ जाती है। अंदर में चेतनवृत्ति के प्रवेश करने पर बाहर की इन्द्रियों से छुट्टी मिलती है, यह इसका नमूना है। अन्न का थोड़ा नमूना दिखाकर लाखों मन का दाम करके बेचते हैं। उसी प्रकार संत लोग नमूना दिखाते हैं। जाग्रत से स्वप्न में जाने से तुम बाह्य इन्द्रियों से छूट जाते हो। यदि और अंदर धँसो और अंतर के अंत तक पहुँचो तो कहना ही क्या है? स्थूल और सूक्ष्म, सब इन्द्रियों से छूट जाओगे। इसी अंतर्गमन के विषय में तुलसी साहब ने कहा है—

हिय नैन सैन सुचैन सुंदरि साजि स्रुति पिउ पै चली।
गिरि गवन गोह गुहारि मारग चढ़त गढ़ गगना गली।।
जहँ ताल तट पट पार प्रीतम परसि पद आगे अली।
घट घोर सोर सिहार सुनिकै सिंध सलिता जस मिली।।

यह भेद की बात है और अंदर में चलने के विषय का वर्णन किया गया है। बाहर में खूब पूजा करें—आरती उतारें, किंतु इससे भीतर में प्रवेश नहीं कर सकते। नैवेद्य, पुष्प, धूप, दीप लेकर मन को उपास्यदेव की ओर, एकओर करते हैं। यदि कोई दूसरा ख्याल नहीं रहे तो मन अवश्य एकओर होता है। स्तुति करने में भी एकओर होता है। जप में भी यही बात होती है। बल्कि स्तुति से जप में विशेष सिमटाव होता है। कारण यह है कि स्तुति करने में बहुत शब्द उच्चारण करने पड़ते हैं। जप में केवल एक ही शब्द को जपते हैं।

पूजा कोटि समं स्तोत्रं स्तोत्र कोटि समं जपः।
जाप कोटि समं ध्यानं ध्यान कोटि समो लयः।।

पूर्ण सिमटाव होने से स्थूल सूक्ष्मादि आवरणों का छेदन होता है। महाकारण रूप आवरण के छूटने से जड़ के सभी आवरण उतर जाते हैं। अब अपनी और अपने प्रभु की पहचान होती है। तब प्रभु हेराया हुआ नहीं रहेगा। इसी का प्रचार हमारे गुरु महाराज करते थे और मैं भी इसी का करता हूँ। और इसी विषय को जहाँ जाता हूँ, सुनाता हूँ, समझाता हूँ। किंतु यदि किसी तरफ जाना चाहे और पीछे को पिछड़ता रहे, तो निर्दिष्ट स्थान तक कोई कैसे पहुँच सकता है? बाबा नानक ने कहा—

सूचै भाड़ै साचु समावै विरले सूचाचारी।

चलना चाहे पवित्रता में और पिछड़े अपवित्रता की ओर, तब उस ओर कैसे बढ़ सकते हैं? इसलिए सदाचारी बनो—पवित्र बनो यानी व्यभिचार, चोरी, नशा, हिंसा और झूठ; इन पाँचों पापों को

मत करो। यह संयम है।

सतगुरु वैद्य वचन विस्वासा। संयम यह न विषय कै आसा।।

—गोस्वामी तुलसीदास

एक ईश्वर पर अचल विश्वास और पूर्ण भरोसा करो। ऐसा नहीं कि—

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहौ कहा विस्वासा।।

प्रभु अपने अंदर में पहले मिलेंगे, फिर सर्वत्र। एक बार प्रत्यक्ष मिलने पर फिर वह मिलन कभी नहीं छूटेगा। अन्य सभी पदार्थ मिलकर छूटते हैं, किंतु यह कभी छूटता नहीं। यह साक्षात्कार बराबर बना रहता है। कबीर साहब को वह प्राप्त था। वे कहते हैं—

न पल बिछुड़ें पिया हमसे, न हम बिछुड़ें पियारे से।

ध्यानाभ्यास करो। त्रयकाल संध्या प्रसिद्ध है। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर भजन करो। दिन में स्नान के बाद करो। स्नान करने से मस्तिष्क ठण्ढा रहता है। इस ठण्ढे मस्तिष्क में भजन अच्छा बनेगा। फिर सायंकाल पैर-हाथ धोकर भजन करो, फिर दूसरा काम करो। रात में सोते समय दो मिनट भी भजन करके उसमें मन लगाते हुए सो जाओ, तो बुरा स्वप्न नहीं होगा। इसके अतिरिक्त सब कामों को करते हुए भजन में मन लगाते रहो। 'तन काम में मन राम में।' संत पलटू साहब ने कहा है—

कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान ।।
सो ध्यानी परमान, सुरत से अण्डा सेवै ।
आप रहे जल माहिं, सूखे में अण्डा देवै ।।
जस पनिहारी कलस भरे, मारग में आवै ।
कर छोड़ै मुख वचन, चित्त कलसा में लावै ।।
फणि मणि धरै उतार, आपु चरने को जावै ।
वह गाफिल ना पड़ै, सुरत मणि माहिं रहावै ।।
पलटू कारज सब करै, सुरत रहै अलगान ।
कमठ दृष्टि जो लावइ, सो ध्यानी परमान ।।

'बंगाल में बाउल नाम के एक सम्प्रदाय के साधु होते हैं। वे एक हाथ से तंबूरा और दूसरे हाथ से करताल बजाते हैं और मुँह से गाना भी गाते हैं। इसी तरह ऐ संसारी जीव! तुम भी दोनों हाथों से संसार के सब काम करते जाओ और मुख से भगवान का नाम जपा करो; चुको मत।'

—रामकृष्ण परमहंस

मतलब यह कि काम करते और चलते-फिरते हुए भी किसी न किसी तरह जप या मानस ध्यान द्वारा उस ओर आपका ख्याल लगा रहे। जो कहते हैं कि भजन करने के लिए मुझको समय नहीं है, यह बहुत गलत बात है। गप-शप करने के लिए समय है, सिनेमा देखने के लिए समय है और भजन करने के लिए समय नहीं है। यह बहुत गलत बात है।

फिर सबकी जड़ है, गुरु की सेवा करो। 'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।' एक सर्वेश्वर पर ही अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अंदर में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखो और नित्य सत्संग करो। इन पाँचों को करो और पहले के कहे पाँच पापों को छोड़ो। यदि भूल से पाँच पापों में से कोई हो जाय तो झूरो—पछताओ। ईश्वर से प्रार्थना करो कि फिर ऐसा कर्म मुझसे नहीं बने। स्वयं सचेत रहो और पापों से बचने के लिए शक्ति लगाओ। मन पवित्र करो। क्योंकि पवित्र मनवाले को ही समाधि लगती है। 'सहज विमल मन लागि समाधी।' चंचलता में दुःख होता है, स्थिरता में सुख है। ध्यान में स्थिरता होती है, इसमें सुख मिलता है। इसी स्थिरता में सुख पाते हुए अपने अंतर में प्रवेश होता है। अपने भीतर में जाने के लिए खुलाशा यह है कि मन को एक ओर करो। जप-ध्यान से मन एकओर होता है। स्तुति से विशेष जप में, जप से विशेष ध्यान में मन की एकओरता होती है। ध्यान

पहले रूप का, फिर अरूप का होता है। इष्ट-मूर्ति का ध्यान करो, इसमें मन को लगाओ। इसके आगे बढ़ो, सूक्ष्म-ध्यान करो। सबसे सूक्ष्म रूप कौन है? एक तस्वीर बनाओ, पहले क्या हुआ? पेन्सिल रखते ही एक छोटा चिह्न हुआ। उसी चिह्न को इधर-उधर करने से रूप बना। तो वह प्रथम चिह्न अर्थात् विन्दु ही सब रूपों का बीज हुआ। किन्तु यह तो माना हुआ विन्दु है। परिमाण-रहित यथार्थ विन्दु वह है, जिसका वर्णन ध्यानविन्दूपनिषद् के इस श्लोक में है—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
स शब्दं चाक्षरे क्षीणे निशब्दं परमं पदम्।।

जिसे परम विन्दु कहा गया है, उसे पेन्सिल से नहीं लिख सकते। हाँ, दृष्टि की पेन्सिल से लिख सकते हैं। जहाँ दृष्टि का पसार खतम हो जाएगा, उसकी धारा का जहाँ अटकाव हो जाएगा, वहीं परमात्मा का अणोरणीयाम् रूप उदय हो जाएगा। जबतक यह नहीं होता है, तबतक मन को सँभालने में बड़ी कठिनाई मालूम होती है। दृष्टि सँभालकर रखनी चाहिए, तब ज्योतिर्विन्दु का उदय होगा, ऐसा ध्यान करो। यह सूक्ष्म रूप-ध्यान हुआ। इतना ही नहीं, उसके बाद रूपातीत ध्यान अर्थात् नाद-ध्यान करना होगा। जिसको विन्दु प्राप्त हो जाएगा, उसके लिए यह अंतर्नाद खुल जाएगा। उस नाद को ग्रहण कर परमात्मा तक पहुँचना होगा। नाद परमात्मा से स्फुटित है और उनसे लगा हुआ है। इस प्रकार ध्यान करना चाहिए। बहुत लोग केवल गाने और बजाने में ही परमात्मा की प्राप्ति और मुक्ति मानते हैं, परंतु केवल गाने-बजाने से ही मुक्ति नहीं होती है।

मुक्ति न होवै नाचे गाये। मुक्ति न होवै मृदंग बजाये।।
मुक्ति न होवै साखी पद बोले। मुक्ति न होवै तीरथ डोले।।
गुप्त जाप जानै जो कोई। कहै कबीर मुक्त भल सोई।।

गुप्त जप के लिए ऐसा कहा गया है—

जाप अजपा हो सहज धुन परख गुरु गम धारिये।
होत ध्वनि रसना बिना करमाल बिनु निरवारिये।।

— कबीर साहब

मुख कर की मेहनत मिटी, सतगुरु करी सहाय ।
घट में नाम प्रगट भया, बक-बक मरै बलाय ।।
सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माहिं ।
सुरत शब्द मेला भया, बिछुड़त कबहुँ नाहिं ।।

— कबीर साहब

संतों का अजपा जप है। स्वामी शंकराचार्य ने भी कहा है—

भेरीमृदंगशंखाद्याहत नादे मनः क्षणं रमते।
किं पुनरनाहतेऽस्मिन्मधु मधुरेऽखण्डिते स्वच्छे।।

—प्रबोध सुधाकर- नादानुसंधान

मन तो भेरी, मृदंग और शंख आदि के आघातजन्य नादों में भी एक क्षण के लिए मग्न हो जाता है, फिर इस मधुवत् मधुर, अखंडित और स्वच्छ अनाहत नाद की तो बात ही क्या है?

नादानुसंधान से बढ़कर कोई साधन नहीं है। यह ऐसा सहारा है कि हम नहीं पकड़ेंगे, शब्द ही हमको पकड़ लेगा। जैसे चुम्बक से लोहा पकड़ा जाता है। चुम्बक से लोहे को लोग अलग भी कर सकते हैं, किंतु इस शब्द से पकड़े जाने पर शब्द से सुरत को कोई छुड़ा नहीं सकता, चाहे उसको बाघ पकड़े या उसपर बमगोला बरसे।

शब्द निरन्तर से मन लागा, मलिन वासना भागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटे, ऐसी ताड़ी लागी।।

— कबीर साहब

सोवत जागत ऊठत बैठत टुक विहीन नहिं तारा।
झिन झिन जंतर निस दिन बाजै जम जालिम पचिहारा।।

—दरिया साहब, बिहारी

यदि कहा जाय कि साधन एक शरीर में

समाप्त नहीं होगा, तो साधन का कष्ट व्यर्थ ही किया जाएगा। तो इसके उत्तर में कहा है कि एक देह में किए गए साधन का संस्कार दूसरी देह में पुनः जागृत होता है। इसलिए एक देह में साधन समाप्त नहीं होगा तो दूसरी वा तीसरी देह में, कभी न कभी अवश्य समाप्त हो जाएगा।

साधना में सफल होने के लिए कितने लोग कृपा माँगा करते हैं। किंतु कृपा केवल माँगने से नहीं होगी। कृपापात्र बनना चाहिए, तब बिना माँगे ही कृपा मिलती रहेगी। टीले पर पानी बरसने से भी गहरे में जाकर पानी जमा होता है। इसलिए अपने को पात्र बनाओ। इसके लिए घर छोड़ने की जरूरत नहीं। कबीर साहब के बताए अनुकूल चलो।

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै।।टेक।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि वन नहिं जावै।
वन के गए कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै।।
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै।।
उनमुनी रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै।
सुरत निरत सों मेला करिके, अनहद नाद बजावै।।
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै।
कहै कबीर सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै।।

संसार में कैसे रहोगे? अब यह भी सुनो। संसार में महात्मा गाँधीजी के समान रहो अर्थात् संसार के भी सब कामों को करो और परमार्थ के साधन को भी निभाते जाओ। इसीलिए महात्माजी के निधन होने पर सब राष्ट्रों ने अपना-अपना झण्डा झुकाया। अमेरिका, इंगलैण्ड तथा रूस आदि सभी राष्ट्रों ने झण्डा झुकाया।

हमलोगों को स्वराज्य मिला है, किंतु सुराज्य नहीं। यहाँ चोरी, घूसखोरी और नैतिक पतन आदि वर्तमान हैं, जिनसे जनता में दुःख फैला हुआ है। इनसे बचने के लिए संतमत उपदेश करता है। कानून से नैतिक पतन छूट नहीं सकता। कानून चलता ही है और घूस-फूस चलते ही हैं। जहाँ झूठ नहीं, वहाँ घूस कहाँ से आवे? इसलिए सदाचार का पालन करो। सदाचार के पालन से स्वराज्य में सुराज्य हो जाएगा। हमारा देश द्रव्य के लिए महाकंगाल है। लाचारी है, कमाओ, जमा करो; किंतु सच्ची कमाई करो।

हम देखते हैं कि शब्द के लिए भी हम कंगाल हो गए हैं। अपनी भाषा से अपनी भावों को प्रकट नहीं कर सकते। अपने शब्द को भूल गए। हमलोग हिन्दू नहीं, हमारी भाषा हिन्दी नहीं और हमारा देश हिन्दुस्तान नहीं। हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तान; ये तीनों शब्द हमारे देश की भाषा के शब्द नहीं हैं। दूसरी बात है कि अपनी भाषा में दूसरे की भाषा को फेंटकर नहीं बोलो। आजकल ऐसा हो गया है कि जो एक अक्षर भी अंग्रेजी लिखना-पढ़ना नहीं जानता है, वह भी अपनी भाषा में अंग्रेजी शब्दों को मिला-मिलाकर बोलता है। यहाँ तक कि घर की माई-दाई भी समय के स्थान पर टाइम बोलती हैं। टाइम नहीं बोल सकती है, तो टेम बोलती हैं। यह बात अच्छी नहीं। सब कोई सदाचार का पालन करो, सब दुःख भाग जाएँगे।

हमारे गुरु महाराजजी ने १९०९ ई० में कहा था—पहले आध्यात्मिकता का पद है, तब सदाचार, फिर सामाजिक नीति और अंत में राजनीति का पद है। तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिकता की ओर चलने से सदाचार का पालन करना अवश्य होगा। समाज के लोग सदाचारी बन जाएँगे, तो सामाजिक नीति अच्छी हो जाएगी और सामाजिक नीति जब अच्छी होगी, तो राजनीति कभी बुरी नहीं हो सकेगी। वह आप-ही-आप सुधर जाएगी।

अपने देश तथा सारे संसार को गुरु महाराज के उपर्युक्त उपदेश को मानना और पालन करना बहुत आवश्यक है। नहीं तो स्वराज्य में सुराज्य नहीं आ सकता, यह बात सब लोग दृढ़ता से जान लें।

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत रोहतास जिले के सासाराम में दिनांक १३.१.१९५३ ई० के रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

४२. ईश्वर-भक्ति की युक्ति

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं ईश्वर-भक्ति के बारे में इस समय कहूँगा और यही एक विषय है, जिसपर मैं बराबर कहता हूँ। संसार में लोग सुख पाने के लिए चाहते हैं, परन्तु सांसारिक वस्तुओं से सुखी नहीं होते हैं, यह प्रत्यक्ष है। यहाँ जो अल्प सुख मालूम होता है, इससे तृप्ति नहीं होती। जिस सुख से तृप्ति होती है, वह अलौकिक है और वह सुख ईश्वर की प्राप्ति में है। सद्ग्रन्थों से ऐसा ही विदित होता है। ईश्वर की भक्ति से सब दुःखों का अन्त हो जाता है, और किसी दूसरे उपाय से उसका अन्त नहीं हो सकता है।

राकापति षोड़स उअहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइय, बिनु रवि राति न जाय।।
ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेसा। मिटहिं न जीवन केर कलेसा।।

अर्थात्—पूर्णिमा के सोलह चन्द्रमा (अथवा सोलह कलाओं से युक्त चन्द्रमा) उगें, तारेगणों के सब झुण्ड भी उगें, सब पर्वतों में आग लगा दी जाय; परन्तु बिना सूर्य के रात नहीं जाती। हे गरुड़जी! इसी प्रकार बिना हरि-भजन किए जीवों का क्लेश नहीं मिटता।

ईश्वर-भक्ति करने के लिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। स्वरूप-निर्णय हुए बिना उसकी भक्ति कैसे की जाय, विदित नहीं हो सकती है। ईश्वर के लिए कोई उसे साकार कहते हैं, कोई निराकार कहते हैं और कोई कहते हैं, साकार-निराकार दोनों हैं। सर्वव्यापी होने के कारण सब रूपों में वे रहते हैं, इसलिए वे सर्वरूपी हैं। अतएव रूप-सहित साकार हैं। कोई रूप स्थूल साधारण दृष्टि से और कोई रूप सूक्ष्म दिव्य दृष्टि से दर्शित है, किन्तु रूप और रूप में बसनेवाले में भेद है, जैसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में भेद है। क्षेत्ररूप इन्द्रिय-गोचर होने के कारण लोग पहचानते हैं, किंतु क्षेत्रज्ञ इन्द्रिय-गोचर नहीं रहने के कारण लोग नहीं पहचानते हैं। ईश्वर-स्वरूप-निर्णय के लिए सन्तों की वाणियाँ हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सबके मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभा नमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेश बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूह अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।

—कबीर साहब

अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।

जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा।
साचे सचिआर विटहु कुरबाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ, साचे सबदि नीसाणु।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप, ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु, सगली जोति तुमारी।
घट-घट अन्तरि ब्रह्मु लुकाइआ, घटि-घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती, निरभै ताड़ी लाई ।।
जंत उपाइ कालु सिरिजंता, बस गति जुगति सबाई ।
सतिगुर सेवि पदारथु पावहि, छूटहि सबदु कमाई ।।
सूचै भाड़ै साचु समावै, बिरले सूचाचारी ।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ, नानक सरणि तुमारी ।।
—गुरु नानक साहब

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी।।
अगुन अखण्ड अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।
भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप ।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ।।
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ ।
सोइ सोइ भाव दिखावइ, आपुन होइ न सोइ ।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहि मीठे फल को रस, अन्तर्गत ही भावै ।।
परम स्वाद सब ही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ।।
रूप रेख गुण जाति जुगुति बिनु, निरालम्ब मन चक्रित धावै ।
सब विधि अगम विचारहिं तातें, सूर सगुण लीला पद गावै ।।
—संत सूरदासजी

मुक्तिकोपनिषद् में श्रीरामजी का अपने स्वरूप के विषय में श्रीहनुमानजी से ऐसा ही कथन है, (अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनामगोत्रं मम रूपमीदृशं भजस्व नित्यं पवनात्मजार्तिहन्।।) जो सन्तवाणी से मिलता है।

जिसकी सीमा नहीं है, ऐसा एक तत्त्व अवश्य है, ऐसा बुद्धि को जँचता है। सबको सान्त-सान्त कहने से प्रश्न होगा कि सब सान्तों के पार में क्या है? सारे सान्तों के पार में अनन्त कहे बिना प्रश्न हल नहीं होता। इसी अनन्त को सन्तों ने परमात्म-स्वरूप माना है। जो अनन्त है, वह सबसे विशेष झीना है। विशेष झीना होने के कारण वह सबमें व्यापक है और सबसे बाहर भी है। 'है सबमें सब ही तें न्यारा। जीव जन्तु जल थल सब ही में, सबद वियापत बोलनहारा।।' —कबीर साहब। इन्द्रियगोचर-रूप को आँख से देख सकते हैं, इसलिए ठाकुरवाड़ी में चित्र रखते हैं, दर्शन करते हैं। कितने को सगुण का दर्शन हुआ; किन्तु दर्शन होने पर जब उन देवों ने कहा—यह करो और वह करो, तब जानना चाहिए कि यदि रूप-दर्शन से ही काम समाप्त हो जाता, तब फिर और काम करने की आज्ञा श्रीराम या श्रीकृष्ण क्यों देते? श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्यदृष्टि दी, जिससे अर्जुन ने उनके दिव्य-रूप का दर्शन किया। इन्द्रियों से दर्शन होने योग्य रूप से दिव्य-दर्शन श्रेष्ठ है; किन्तु इससे भी परे और कोई स्वरूप है, जिसे दिव्य दृष्टि से भी नहीं देख सकेंगे, आत्मदृष्टि से देख सकेंगे। जाग्रत् की दृष्टि, स्वप्न की दृष्टि, मानस दृष्टि और दिव्यदृष्टि के बाद पाँचवीं दृष्टि वह है, जहाँ स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण— कोई जड़ शरीर नहीं रहता। अर्जुन को दिव्यदृष्टि मिलने पर भी वह देह के साथ था। मामूली दृष्टि नहीं रही, दिव्यदृष्टि हुई। भगवान के तेज के कारण से अर्जुन को भय हो रहा था। भगवान की कृपा से वह उस दर्शन को

कर पाता था।

सीताजी की खोज में श्रीराम-लक्ष्मण; दोनों भाई जाते हैं। अगस्त्य मुनि के आश्रम में आते हैं, मुनिजी ने श्रीराम से कहा—'शिवजी की उपासना करो। पाशुपत अस्त्र मिलेगा, तब रावण मारा जाएगा।' श्रीराम ने तप किया, शिवजी के विराट-रूप का दर्शन हुआ। लक्ष्मण बेहोश हो गए और श्रीराम ठेहुने के बल बैठ गए। (शिव-गीता पढ़िए)। यह आपस की लीला उनलोगों ने की थी। अर्जुन श्रीकृष्ण के विराट-रूप का दर्शन करता है और विनती भी करता है, जो अवयव-युक्त पदार्थ है, उसको देखता है। अनेक रूप होकर व्यापक होना पूर्ण सर्वव्यापकता नहीं है। अनेक में एक-दो की गिनती तब होगी, जब उनके बीच में कुछ अवकाश हो। ऐसी अवस्था में बीच के अवकाश में वह व्यापक नहीं होता है। किन्तु जो एक ही तत्त्व अत्यन्त सघनता से ऐसा फैला हो कि एक-दो की गिनती नहीं हो सकती, उसे दिव्यदृष्टि से भी नहीं देख सकते। चेतन-आत्मा ही उसका दर्शन कर सकती है। कठोपनिषद् पढ़कर देखिए— 'यह आत्मा वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणा-शक्ति अथवा अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है। यह (साधक) जिस आत्मा का वरण करता है, उस (आत्मा) से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।'

(नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्।।
—कठोपनिषद्, द्वितीय वल्ली, अध्याय १)

उस सर्वव्यापी का दर्शन करनेवाली चेतन-आत्मा जड़ शरीरवाली नहीं होगी, सब जड़ शरीरों से छूटी हुई होगी। इस दर्शन का जिसको ज्ञान हो जाता है, वह जानता है कि शरीर में रहते हुए शरीर-सम्बन्धी दर्शन होता है। परन्तु जबतक चेतन-आत्मा स्वयं शरीर में लिप्त है, तबतक अलिप्त सर्वव्यापी का दर्शन वह नहीं पा सकती है। भक्ति-साधन के आरम्भ में ही यह दर्शन होने योग्य नहीं है। स्थूल में रहता हुआ स्थूल पदार्थ को ही ग्रहण कर सकता है। इसलिए ईश्वर-भक्ति में पहले स्थूल-उपासना है। श्रीराम ने नवधा भक्ति बतलायी है—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनहुँ नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

पहली से पाँचवीं भक्ति तक स्थूल भक्ति है। मन्त्र-जप स्थूल ज्ञान में होता है। इसके आगे छठी भक्ति में दमशील बनने कहते हैं, अर्थात् इन्द्रियों को रोकने का स्वभाववाला होने कहते हैं। जबतक नाम जपते थे, तबतक मन में था, ईश्वर का नाम जपते हैं। किन्तु अब छठी भक्ति से ईश्वर का क्या संबंध हुआ? पहले जो जप करते थे, उससे विशेष काम हुआ। इन्द्रियों का दमन करने के स्वभाववाले होने के कारण विषय से निर्विषय की ओर जाते हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पाँच विषयों से चित्त हट जाएगा। कम-से-कम स्थूल विषय से सूक्ष्म विषय में तो अवश्य गति हो जाएगी। श्रीराम ने प्रजा को जो उपदेश दिया— 'एहि तन कर फल विषय न भाई,' सो विषय-त्याग दम के साधन से ही होने योग्य है। पहले स्थूल विषय छूटेगा, फिर सूक्ष्म विषय। इन्द्रियों के निग्रह

के स्वभाववाले की वृत्ति निर्विषय की ओर हो जाती है, तब वह प्रभु की ओर विशेष लग जाता है। साधक के लिए अवश्य यह बात है। तर्कबुद्धि से भी यही बात जँचती है। जो स्थूल विषय से छूटता है, वह सूक्ष्म विषय को ग्रहण करता है। सूक्ष्म विषय क्या है? ब्रह्म-तेज ही सूक्ष्म विषय है। जिस प्रकार दर्शक सूर्योदय होने के पहले सूर्य-किरण को देखता है, उसी प्रकार साधक ब्रह्म प्राप्त करने के पहले ब्रह्म-तेज को प्राप्त करता है। सूर्य की किरण को लेनेवाला अपना सीधा संबंध सूर्य से करता है, उसी प्रकार बह्म-तेज को पकड़नेवाला ब्रह्म से संबंध करता है। मन और इन्द्रियों का संग-संग साधन करने को दम कहते हैं। इसके बाद 'शम' है। 'शम' मनोनिग्रह को कहते हैं। केवल मन के साधन को 'शम' कहते हैं। इन्द्रियों का संग छोड़कर केवल मन का साधन करना 'शम' का साधन करना है। 'शम' के साधन से हीन किसी तरह गिर भी सकता है, किन्तु 'शम' में पूर्ण हो जानेवाला गिर नहीं सकता है।

ईश्वर के अंश जीवात्मा आप हैं। आपका शरीर जड़ है। शरीर में आपके रहने से आपका शरीर जीवित है। चारो अन्तःकरणों का संग जीवात्मा को ऐसा हो गया है, जैसे दूध के साथ घी का। इसके लिए यही अच्छी उपमा है। जबतक मन-चेतन संग-संग हैं, तबतक जहाँ मन है, वहाँ चेतन है। आप अपनी देह में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न स्थानों में रहते हैं। जगने की हालत से स्वप्न में और स्वप्न से गहरी नींद में जाते हैं। इन तीनों अवस्थाओं में तीन स्थानों में रहते हैं। मन का केन्द्र जगने के समय नेत्र में है। प्रश्न होगा— बायें या दायें में? तो कहेंगे बायें-दायें में उसकी धारें हैं, किन्तु केन्द्र तीसरी आँख (शिवनेत्र) में है। उससे नीचे उतरकर कण्ठ में जाते हैं। यह सोलह स्वरों का स्थान है। इसलिए स्वप्न में बोलते भी हैं। इसका चित्र बनानेवाले सोलह दलों का कमल बनाकर प्रत्येक दल में एक-एक स्वर लिख देते हैं। योगी लोग इसको षोड़श दल कमल कहते हैं। उससे नीचे उतरने पर हृदय में चले जाते हैं। यहाँ रहने पर श्वास की क्रिया होती है। यह द्वादश व्यंजनों का स्थान है, इसलिए इसको द्वादश दल कमल कहते हैं। बिना स्वर के व्यंजन बोल नहीं सकते, इसलिए यहाँ उच्चारण-ज्ञान जाता रहता है। फिर हृदय से ऊपर कण्ठ में और कण्ठ से ऊपर आँख में आकर जगते हैं। स्थान के बदलने से अवस्था-भेद होता है। इन तीन अवस्थाओं में रहने से स्थूल विषयों से नहीं छूट सकते। श्रवण-मनन जाग्रत में होते रहते हैं। इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर उठने पर इन्द्रियों का निग्रह होगा और साधक दमशील होगा। यह भजन, विशेष भजन होगा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।
मन क्रम बचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनन्त।।

—विनय-पत्रिका

पहले ब्रह्म का दर्शन नहीं होता। पहले ब्रह्म-तेज का दर्शन होता है, जैसे सूर्य-दर्शन होने के पहले सूर्य के तेज का दर्शन होता है। इन्द्रिय-निग्रह को ईश्वर से क्या संबंध है, इसपर कहा। पहले अन्धकार में रहकर जप आदि स्थूल भजन किया जाता है। अन्धकार से पार होकर, प्रकाश में आकर अर्थात् तुरीय अवस्था में रहकर परा-भक्ति का दिव्य वा सूक्ष्म भेदवाला भजन किया जाता है। यह श्रेष्ठ भजन है। इसके आगे शम का साधन आता है। शम का साधन वहाँ होता है, जहाँ इन्द्रियों के संग से मन छूट जाता है और बाहर देखने-सुनने के सब यंत्रों से वह अलग हो जाता है। साधक प्रत्यक्ष अनुभूति में रहते हुए

कल्पित वस्तुओं से भी ऊपर उठ गया है। दृश्य के ऊपर अदृश्य नाद है, वही नाम है। किन्तु यह नाम सगुण नहीं, निर्गुण है।

जाके लगी अनहद तान हो, निर्वाण निर्गुण नाम की।
जिकर करके शिखर हेरे, फिकर ररंकार की।।

—जगजीवन साहब

बन्दौं राम नाम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।
विधि हरिहर मय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।।
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

नाद-उपासना ही 'शम' का साधन है।

नासनं सिद्ध सदृशं न कुम्भक सदृशं बलम्।
न खेचरी समा मुद्रा न नाद सदृशो लयः।।

—शिव-संहिता

अर्थात्—न सिद्धासन-सम आसन, न कुम्भक-सम बल, न खेचरी के समान मुद्रा और न नाद के तुल्य लय है।

सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवानुसंधेयो योगसाम्राज्यमिच्छता।।

—वराहोपनिषद्, अध्याय २

अर्थात्— योग-साम्राज्य की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को सब चिन्ता त्यागकर सावधान होकर नाद की ही खोज करनी चाहिए।

नाद ग्रहणतश्चित्तमन्तरंग भुजंगमः।
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः कुत्रचिन्नहि धावति।।
मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।
नादोऽन्तरंग सारंग बन्धने वागुरायते।
अन्तरंग समुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा।।

—नादविन्दूपनिषद्

अर्थात्—नागरूप चित्त नाद का अभ्यास करते-करते पूर्ण रूप से उसमें लीन हो जाता है और सभी विषयों को भूलकर नाद में अपने को एकाग्र करता है।।४३।। नाद मदान्ध हाथीरूप चित्त को, जो विषयों की आनन्द-वाटिका में विचरण करता है, रोकने के लिए तीव्र अंकुश का काम करता है।।४४।। मृगरूपी चित्त को बाँधने के लिए यह (नाद) जाल का काम करता है। समुद्र-तरंगरूपी चित्त के लिए यह (नाद) तट का काम करता है।।४५।।

साँप बाहर में टेढ़ा-मेढ़ा चलता है; किन्तु बिल में जाने के समय सीधा हो जाता है। उसी प्रकार यह मन टेढ़ा है, नाद में प्रवेश करने पर सीधा हो जाता है। तात्पर्य यह कि नाद-उपासना में शम (मनोनिग्रह) का साधन पूर्ण होने पर नवधा भक्ति की सातवीं भक्ति पूरी हो जाएगी। इसके पूर्ण होने से परमात्म-राम के स्वरूप की प्राप्ति हो जाएगी; क्योंकि शब्द में अपने उद्गम-स्थान पर आकर्षण करने का गुण होने के कारण उपासक उससे ब्रह्म तक खिंच जाएगा। शरीर और इन्द्रियों से रहित होकर वह अपने को प्रत्यक्ष परमात्मा की शरण में अर्पित कर देगा। यह बड़ी ऊँची भक्ति है।

ऐसी सेवकु सेवा करै। जिसका जीउ तिसु आगे धरै।।

गुरु नानकदेवजी के इस आदेश का वह ठीक-ठीक पालन करेगा। यही असली शरणागत होना है, यही आत्म-निवेदन है। किसी के सम्मुख अपने शरीर को गिरा देने से अथावा मन को भी अर्पित कर देने से आत्म-निवेदन नहीं कहा जा सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता के १८वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा।' (सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। —गीता अ० १८। ६६) भगवान तो अर्जुन के सब प्रकार से अवलम्ब थे ही और अर्जुन भी भगवान् की शरण में तन-मन से थे ही, फिर भगवान ने ऐसा क्यों कहा? केवल मानसिक निवेदन पूर्ण निवेदन नहीं है। मानसिक और बौद्धिक

निवेदन तक ही निवेदन का भाव पूर्णरूपेण परिपुष्ट और ध्रुव—दृढ़ नहीं होता है। अतएव ऐसा भक्त नीचे भी गिर सकता है। किन्तु जिसने बाह्याभ्यन्तर इन्द्रियों से ऊपर उठकर कैवल्य दशा को प्राप्त कर आत्मनिवेदन किया है, वह कदापि गिर नहीं सकता है। ऐसा होकर शरण में आना अर्जुन के लिए भगवान का उक्त आदेश जानने में आता है।

इस प्रकार भक्ति का साधन करते हुए आप किसी इष्ट को मानिए, राम, कृष्ण, शिव—सब एक ही हैं; क्योंकि पृथक-पृथक रूपों में पृथक-पृथक आत्मा नहीं बल्कि एक ही आत्मा है। भक्त उस आत्मा का आत्म-निवेदन करके भक्ति का साधन समाप्त करता है और परम गति को प्राप्त करके सारे क्लेशों से छूट जाता है। भक्ति-साधन में तन-मन की पवित्रता अत्यन्त अपेक्षित है। इस हेतु पंच पापों (व्यभिचार, चोरी, नशा, हिंसा और झूठ) से बचिए। सदाचार का पालन कीजिए। सदाचार का पालन किए बिना भक्ति-पथ पर कोई एक डेग भी नहीं चल सकता है। सदाचार को ध्यान का बल है और ध्यान को सदाचार का बल है। एक के बिना दूसरा नहीं बढ़ सकता। दोनों में बड़ा मेल है। बढ़ते-बढ़ते जहाँ तक बढ़ना चाहिए, दोनों बढ़ जाते हैं। दोनों का साधन संग-संग होता है। पूजा-पाठ कीजिए; त्रयकाल संध्या कीजिए। भक्ति का साधन धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते बढ़ेगा। इसके लिए घर छोड़ने की जरूरत नहीं। कोई उपासक बनिए, साम्प्रदायिकता के फेर में नहीं आइए।

यह प्रवचन जवाहर टाउन, गया में दिनांक १७.१.१९५३ ई० को श्रीगौरीशंकर एवं श्रीलक्ष्मीनारायण डालमिया के द्वारा आयोजित सत्संग में हुआ था।

४३. दृष्टिसाधन की महिमा

प्यारे लोगो!

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।
— गोस्वामी तुलसीदासजी

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै।।
— भक्त सूरदासजी

स्थूल मण्डल में जहाँ तक स्थान है, वहाँ तक लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई और मोटाई होती है। स्थान हो और इन पाँचो में से एक भी नहीं हो, असम्भव है। स्थान में ये पाँचो होते ही हैं। इसलिये लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई और

मोटाई जहाँ है, वहाँ स्थान है। विन्दु में स्थान है, किन्तु उसका परिमाण नहीं है। रेखा में लम्बाई है, चौड़ाई नहीं; किन्तु परिभाषा के अनुकूल बाहर में विन्दु या लकीर नहीं बन सकती। दृष्टिसाधन से विन्दु देखने में आता है। जहाँ स्थान है, वहाँ समय है। देश है, समय नहीं और समय है, देश नहीं; ऐसा नहीं हो सकता। जहाँ देश-काल नहीं है, वहाँ लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई और गहराई कुछ नहीं है। परमात्मा देशकालातीत है तथा सर्वव्यापी है। समय और स्थान माया में है, माया से ऊपर समय और स्थान नहीं हो सकते। परमात्मा में लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, गहराई और ऊँचाई मानने से वह माया-रूप हो जायगा। जिसमें विस्तृतत्व या फैलाव नहीं है, वह कैसा है ? बुद्धि में नहीं आ सकता। इसलिये वह बुद्धि के परे है। परमात्मा निर्विकार है। वह विस्तृतत्व-रूप नहीं है। सब फैलावों में रहते हुए वह उन सबसे बचकर है। इसी परमात्म-स्वरूप को गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने 'देस काल तहँ नाहीं' कहा है।

लोग कहते हैं कि श्रीसूरदासजी भगवान श्रीकृष्ण के भक्त थे। वे कहते हैं—'अविगत गति कछु कहत न आवै।' अ = नहीं। विगत = खाली। अविगत अर्थात् सर्वव्यापी। सर्वव्यापी की महिमा को कुछ कह नहीं सकते। इसका मतलब यह नहीं कि वह है ही नहीं। बल्कि वह ऐसा है कि उसके विषय में कहने में कुछ नहीं आता। प्राप्त होने पर भी उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। जैसे गूँगा किसी मीठे फल के स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता, उसी प्रकार अविगत की प्राप्ति तो होती है, किन्तु उसका वर्णन करने के लिये जिह्वा में शक्ति नहीं है, भीतर-ही-भीतर अच्छा लगता है, कहने में नहीं आता। उसे पा लेने से क्या होता? तो कहा—परम स्वाद। जो उसको पाता है, उसको सर्वोत्कृष्ट स्वाद मिलता है। सब स्वादों से जो बढ़कर स्वाद है, वह उसको मिलता है। जब कोई उसको पाता है, तबसे उसका स्वाद उसे बराबर लगा ही रहता है। एक पल—क्षण भी नहीं छूटता। वह अमित सन्तुष्टि को पाता है। उसको पा लेने पर इच्छा ही नहीं रहेगी। इच्छा में रहकर ही मन चंचल होता है। उसको सन्तुष्टि नहीं कहते कि भूख लगी, खा लिया, फिर पच गया तो भूख लगी। वह सन्तुष्टि ऐसी है कि फिर और कुछ पाने की इच्छा ही नहीं रहती। मन और वचन की पहुँच से बाहर है। यदि मन-वचन के बाहर नहीं होता, तो मन जानता और वचन से वर्णन होता। किन्तु वह वैसा नहीं, मन-वचन से परे है। उसे वही जानता है, जो उसे पाता है। रूप नहीं है, रेखा नहीं है और गुण भी नहीं, त्रिगुणातीत है। किसी किस्म का नहीं है, कहने के लिए युक्ति नहीं है। इसलिए परमात्म-स्वरूप के विषय में केवल माया तक की गतिवाला मन (**गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।**—रामचरितमानस) बिना अवलम्ब के चक्कर खाता रहता है। इसी कारण से श्रीसूरदास जी ने सगुण-लीला के अनेक पद्यों को गाया है।

वहाँ जाने के लिये, उसका कुछ प्रकाश देखने के लिए श्रीसूरदासजी महाराज कहते हैं—

नैन नासिका अग्र है, तहाँ ब्रह्म को वास।
अविनासी बिनसै नहीं, हो सहज जोति परकास।।

ऐसा देखने का ढंग जानो और करो, तो प्रकाश देखोगे। सूर्योदय के पहले जैसे थोड़ा प्रकाश मालूम होता है, फिर लालिमा देखते-देखते सूर्य को देखते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म को देखने के पहले ब्रह्म का प्रकाश देखने में आता है, फिर ब्रह्म को देखते हैं। देखने के लिए दृष्टिसाधन करो। परन्तु यह न समझो कि दृष्टिसाधन करके देख सकने पर भी वह देशकालातीत परमात्मा प्राप्त हो जायगा। स्थूल

वा सूक्ष्म दृश्य, सब ब्रह्म के रूप हैं। वह परमात्मा—ब्रह्मतत्त्व ऐसा है कि केवल चेतन-आत्मा ही कैवल्य दशा में रहती हुई उसको प्रत्यक्ष पा सकती है। दृष्टिसाधन से प्राप्त दिव्य दृष्टि केवल सूक्ष्म माया तक ही रह जाती है। वह अन्तःकरण के परे की दृष्टि नहीं है। अन्तःकरण और मूल प्रकृति से परे हो जाने पर ही चैतन्य आत्मा कैवल्य दशा प्राप्त करती है, तब उससे अभिन्न चेतनमय दृष्टि से ही उस देशकालातीत परमात्मा—ब्रह्म की अपरोक्षता होती है। इसी अपरोक्षानुभूति में देशकालातीत भाव का बोध होता है। परन्तु इस सर्वोच्च पद तक आने के लिए दृष्टियोग अभ्यास इसलिए परमावश्यक है कि चैतन्य आत्मा स्थूलावरण से निकलकर ब्रह्म-ज्योति मण्डल में अपने को रख सके और उससे भी आगे बढ़ जाने के लिए सूक्ष्म अनहद नादों को ग्रहण करते हुए अन्त में स्फोट—प्रणव ध्वनि—आदिनाम—सत्यनाम—सारशब्द— राम-नाम को ग्रहण करके बचे हुए सारे मायिक आवरणों को पार कर अपने को कैवल्य दशा में ला परमात्मा का दर्शन करे।

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी में दिनांक २०.२.१९५३ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

४४. आत्मा को जानना सच्चा ज्ञान है

प्यारे सज्जनो!

बहुत पहले यहाँ संस्कृत का अत्यधिक प्रचार था। प्रायः सब संस्कृत में बोलते थे। उस समय ऋषियों तथा मुनियों ने जो समय-समय पर प्रवचन कहे, उन्हीं के सदुपदेशों को उपनिषद् कहते हैं। कुछ काल पहले अपने देश में संकुचित विचार भी था। लोग सर्वसाधारण को यह उपनिषद्-ज्ञान नहीं बताते थे, इसलिए इसका विशेष प्रचार नहीं हुआ। योगशिखोपनिषद् में शिव और ब्रह्मा का संवाद है। ब्रह्मा ने शिवजी से पूछा—कोई योग और कोई ज्ञान को मोक्ष-प्राप्ति के लिए बतलाते हैं, आपका क्या मत है? इसपर शिवजी ने उत्तर दिया—ज्ञानहीन योग और योगहीन ज्ञान मोक्ष कर्म में समर्थ नहीं होता, इसलिए मुमुक्षु को ज्ञान और योग; दोनों का दृढ़ता के साथ अभ्यास करना चाहिए।

मोक्ष का अर्थ है—बन्धन से छूट जाना। हम सबलोग बन्धन में बँधे हुए कैद हैं। शरीर में कैद हैं और जड़-चेतन की गिरह से बँधे हुए हैं। इसलिए सब लोग दुःख उठाते हैं। यह दुःख क्यों होता है? शरीर रहने पर ही दुःख होते रहते हैं, काम-क्रोध उत्पन्न होते रहते हैं। इसका कारण शरीर है। शरीर और संसार से छूटने से ही दुःख छूटेगा। ज्ञान का अर्थ है—जानना। योग का अर्थ है—मिलना। ज्ञान से जानने में आवेगा कि किससे मिलना है। योग जानने से उसकी क्रिया करके उससे मिलेंगे। ईश्वर से मिलने के लिए जो क्रिया है, वह योग है। जप-ध्यान सरल योग का अभ्यास है। सत्संग करना ज्ञान का अभ्यास करना है। शरीर और आत्मा को जानना ज्ञान है। लिखा-पढ़ा आदमी पुस्तक पढ़ता है, तो उससे उसको ज्ञान होता है; किंतु किसी विशेषज्ञ के पास जाकर सुनने से विशेष ज्ञान होता है। अक्षर और मात्रा को पढ़ने से पुस्तक पढ़ लेते हैं, किंतु उसका अर्थ ठीक-ठीक नहीं समझ सकते। ठीक-ठीक समझने-पढ़ने के लिए ही लोग कॉलेज और विद्यालयों में जाते हैं। इसीलिए पढ़े-लिखे लोगों को चाहिए कि जहाँ

कहीं कोई विशेषज्ञ हों, उनके पास जाकर सुनें और सीखें। यह जानकर ज्ञान और योग; दोनों का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है।

बहुतों का ख्याल है कि थोड़ा जप-ध्यान करते हैं, मरने पर मुक्ति हो जाएगी; किंतु उपनिषद्कार ने बताया कि मरने पर जो मुक्ति होती है, वह मुक्ति नहीं है। जब तुम जीवन में मुक्ति प्राप्त करो और तुम्हें परमात्म-स्वरूप की प्रत्यक्षता हो, तब तुम मरने पर मुक्त ही हो।

जीवन मुक्त सो मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो।
देह संग नहिं होवे मुक्ता, मुए मुक्ति कहँ होई हो।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने मरे पियासा हो।।

—कबीर साहब

जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ।
जीवत काटै कर्म सब, मुक्ति कहावै साइ।।
जीवत जगपति कौं मिलै, जीवत आतम राम।
जीवत दरसन देखिये, दादू मन विसराम।।
जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ।।
मूआँ पीछे मुकति बतावै, मूआँ पीछै मेला।
मूआ पीछै अमर अभै पद, दादू भूले गहिला।।

—दादू दयाल

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

फिर इस योगशिखोपनिषद् में कहा गया है कि 'मरते समय जैसी भावना रहेगी, उसी के अनुकूल शरीर होगा।' यदि मरने के समय पाशविक भावना हो तो बड़ा बुरा होगा। इसलिए सचेत रहो कि मरने के समय यह बुरी भावना न आने पावे। जिस आदमी की जाग्रत अवस्था के काल में जिस ओर विशेष ख्याल लगा रहता है, स्वप्न में भी वही वह देखता है। उसी प्रकार जीवनकाल में जैसी भावना बारम्बार होती रहेगी, मरने के समय भी वैसी ही भावना होगी। इसलिए जीवनकाल में अच्छी भावना रखो, जिससे कि मरने के समय भी अच्छी भावना हो। श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।
प्रयाण काले मनसा चलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

—गीता, अध्याय ८/९—१०

अर्थात् जो मनुष्य मृत्यु के समय अचल मन से, भक्ति से सराबोर होकर और योगबल से भृकुटी के बीच में अच्छी तरह प्राण को स्थापित करके सर्वज्ञ, पुरातन, नियन्ता, सूक्ष्मतम, सबके पालनहार, अचिन्त्य, सूर्य के समान तेजस्वी, अंधकार से पर स्वरूप का ठीक स्मरण करता है, वह दिव्य परमपुरुष को पाता है।

जीवन-भर अपना कुछ पूजा-पाठ करो, यदि उससे दर्शन नहीं हो या किसी प्रकार का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो जाय, तो संतोष नहीं होता। संतों की युक्ति है, जिसके अनुकूल साधन-भजन करने से ऐसा होता है। जैसे ठाकुरबाड़ी में कोई जाय और ठाकुरजी को नहीं देखे तो कहना चाहिए कि उसको देखने की आँख नहीं है। उसी प्रकार जिससे परमात्मा का कुछ चिह्न देखने में आता है, वह दृष्टि सबको है, किंतु उससे काम लेने के लिए—देखने के लिए लोग नहीं जानते हैं। जानकर भी कितने साधन नहीं करते। यदि साधना किया जाय तो प्रत्यक्ष हो जाय। जिनको दर्शन हुआ वे कहते हैं—आपका शरीर शिवालय है, इसमें शिवलिंग की स्थापना है। बाहर में प्रस्तर का शिवलिंग बनाकर पूजते हैं। आपके अंदर बनी हुई प्रतिमा या शिवलिंग प्राकृतिक है। वह बना हुआ है ही, बनाने की

जरूरत नहीं। वह नादरूप है। शब्दरूप शिवलिंग है। शिवलिंग के नीचे जलढरी रहती है, उसी प्रकार उस नाद के नीचे विन्दु है। शिवलिंग नाद है और विन्दु (शक्तिचिह्न) रूप जलढरी है। जो साधन करे, उसको ये अपने अंदर में प्रत्यक्ष होंगे। जो अच्छी तरह कोशिश करे, तो अवश्य देखेगा। ये कोई ऊँचे दर्जे की चीजें नहीं है, नीचे की ही हैं। किन्तु मन को पवित्र रखना जरूरी है। जिसका मन पवित्र नहीं है, वह उसे देख नहीं सकता। नाद का अर्थ है—शब्द और विन्दु का अर्थ है—छोटे-से-छोटा चिह्न। जिसमें परिमाण नहीं, केवल स्थान है, वह विन्दु है। बाहर में ऐसा चिह्न नहीं हो सकता है, जो आँख से देख सकते हो। कोई भी आकार या दृश्य विन्दु के बिना बन नहीं सकता। कोई चित्र बनाओ, पेन्सिल रखने से जो पहले चिह्न उदय होगा, वही विन्दु होगा। फिर उसी को बढ़ाकर, लंबाई, चौड़ाई बनाकर आकार बनाते हैं। इसलिए बिना विन्दु के कोई आकार नहीं बन सकता। असली विन्दु को कोई यौगिक दृष्टि से देख सकता है। उसके लिए किसी पेन्सिल वा कलम की जरूरत नहीं। अपनी दृष्टि की नोक जहाँ दृढ़ता से ठहरा रखेंगे, वहीं विन्दु उदित होगा। विन्दु जलढरी है। जलढरी पर शिवलिंग खड़ा रहता है। उसी प्रकार जहाँ विन्दु उदित होता है, उसके ऊपर नाद खड़ा हो जाता है। संसार में बिना शब्द के कोई जगह नहीं है। शब्द कैसे होता है? शब्द संघर्ष से होता है, गति से होता है। गति कहते हैं, चलने को—कम्प को। तारे चलते हैं, पृथ्वी चलती है। सबकी गति में शब्द होता है। किंतु आप सुन नहीं पाते। गति में ध्वनि है, संसार में सब पदार्थों की गति है। बिना शब्द के संसार का एक रत्ती भी खाली नहीं। हमलोगों का शरीर बढ़ता है, इसमें भी गति होती है। इसके शब्द को सुन नहीं पाते। नाड़ियाँ चलती हैं, इससे भी आवाज होती है। जहाँ कुछ गति है—संचालन है, वहाँ ध्वनि है। संसार गतिशील है, इसलिए संसार शब्द से भरा है। आपके शरीर में भी शब्द है। स्थूल शब्द को डॉक्टर लोग कान में यंत्र लगाकर सुनते हैं; किंतु बारीक शब्द को नहीं सुन सकते। बारीक शब्द तब सुन सकते हैं, जब आप विन्दु को प्राप्त कर लें। विन्दु को प्राप्त करनेवाला उस सूक्ष्म शब्द को सुन सकता है। वह शब्द शिवरूप है। शिव का अर्थ 'कल्याणकारी' है। उसको जो प्रत्यक्ष करता है, उसका कल्याण होता है। विन्दु में जो अपने मन को समेटता है, दृष्टि को समेटकर देखता है, तो उसमें शक्ति आ जाती है। फैलाव में शक्ति घटती है, सिमटाव में शक्ति बढ़ती है। जिसकी दृष्टि सिमट गई है, उसकी शक्ति बढ़ जाती है। रूप या दृश्य का बनना बिना विन्दु के नहीं होता। इसलिए सब दृश्य का बीज विन्दु है। किसी आकार और दृश्य का आरम्भ एक विन्दु से होता है और उसका अंत एक विन्दु पर ही होता है। दृश्य जगत का बीज विन्दु है और अदृश्य जगत का बीज शब्द है। जिसकी वृत्ति शब्द-रूप शिव को पकड़ लेती है, वह सारी सृष्टि को अंत कर जाता है। उसे मोक्ष के साथ परमात्म-स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है।

यह प्रवचन खगड़िया जिलान्तर्गत ग्राम—मानसी में दिनांक २४.२.१९५३ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

४५. पिण्ड-ब्रह्माण्ड की खोज

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

प्यारे लोगो!

जिसको अपने तईं का ज्ञान नहीं है, उसको दूसरे का भी ज्ञान नहीं होता। जैसे गहरी नींद में सोए को अपने तईं का ज्ञान नहीं है, तो उसे दूसरे का भी ज्ञान नहीं होता। बुद्धिमान पुरुष अपने को खोजकर पाता है तो उसे दूसरे की भी ठीक-ठीक खोज मिल जाती है। फिर दूसरी बात यह है कि यह जो जगत दिखाई पड़ता है, जो देहधारियों के रहने का स्थान मालूम होता है, यह क्या है? इसमें कोई विशेष तत्त्व ऐसा भी है, जो इसके अंदर के अंत तल पर अन्दर-अन्दर है।

उसको हम नहीं पहचान रहे हैं। बुद्धिमान इसका पता लगाना चाहते हैं और इसको यथार्थत: पहचान लेने को उत्सुक रहते हैं। अति प्राचीन काल में यह खोज और यह उत्सुकता मुनियों के हृदय में हुई और उन्होंने इसका पता लगाया, पहले विचार में, फिर इसकी प्रत्यक्षता की विधि में। इसका प्रत्यक्षानुभव हो जाने पर उन्होंने दृढ़तापूर्वक लोगों से कह दिया कि एक-एक पिण्ड में जो व्यापक सार-तत्त्व है, संसार में भी वही व्यापक है। अर्थात् पिण्ड में जो सारतत्त्व व्यापक है, वही ब्रह्माण्ड में भी व्यापक है। यह पता मनुष्य को ही लगा, दूसरे को नहीं; क्योंकि मनुष्य ही यह पता लगाने के योग्य है। इसका पता लगने से क्या फल? इसका पता जिनको नहीं लगा है, वे सांसारिक—मायिक चीजों में संलग्न हैं। इस संलग्नता में संतुष्टि नहीं, शान्ति नहीं और सुख नहीं है। परंतु जिनको पिण्ड-ब्रह्माण्ड में व्यापक उस एक सार-तत्त्व का पता लगा, उन्होंने कहा कि उस सार-तत्त्व का पता लगते ही सांसारिक—मायिक वस्तुओं की संलग्नता छूट जाती है और कथित सार-तत्त्व में उनकी संलग्नता हो जाती है। सब दु:ख छूट जाते हैं, फिर नीचे गिरना नहीं होता है। इस संसार के दु:खों में वह कभी नहीं आता है।

यह शरीर पिण्ड कहलाता है। बाहर विश्व-ब्रह्माण्ड है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड की खोज कोई पक्षी नहीं कर सकता या चार पैरवाला पशु नहीं कर सकता। जो स्थावर है (जो अपने से कहीं नहीं जा सकता), वह तो यह खोज कर ही नहीं सकता। जो जंगम है, उसमें किसी को कम, किसी को विशेष ज्ञान है। स्थावर में इसके लिए ज्ञान है ही नहीं। जंगम प्राणी में भी मनुष्य के अतिरिक्त दूसरा कोई पिण्ड-ब्रह्माण्ड की खोज कर ही नहीं सकता। शरीर जब मृतक होता है, तब उसे जला देते हैं। उसमें जो सार था, वह कहीं चला गया। इस शरीर में जो अव्यक्त था, उसे नहीं देखा; वह चला गया। इस संसार के अंदर भी सार है। जो इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं आता, वह अव्यक्त है। शरीर में जो सार है और ब्रह्माण्ड में जो सार है; इन दोनों में कुछ अंतर है कि नहीं? कोई कहता है अंतर नहीं, एक ही है। यही शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धांत है। दूसरा वह है, जो कहता है कि पिण्ड-ब्रह्माण्ड में व्यापक एक ही ईश्वर है, किंतु पिण्ड में ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा और भी है,

जिसे जीव कहते हैं। हमारे यहाँ ऐसे विचार—ज्ञान को ही वेदान्त-दर्शन कहते हैं। इसके छह आचार्यों ने छह प्रकार के सिद्धांत बताए हैं—अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत और त्रैत। (१.—श्रीमदाद्य शंकराचार्य का अद्वैत, २.—श्रीमाधवाचार्य का द्वैत, ३.—श्रीरामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत, ४.—वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत, ५.—श्रीनिम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत और ६.—श्रीदयानंद स्वामी का त्रैत) ये छहो विचार आज आपस में लड़ते हैं, परंतु ये सब मिल-जुलकर एक सिद्धांत पर नहीं आए हैं। इनमें के एक-एक के दूसरे-दूसरे पर ऐसे-ऐसे प्रश्न हैं, जिनका पूर्ण समाधान कर देने के उत्तर नहीं मिलते हैं। एक कहता है कि माया देश-काल के ज्ञान से अनादि हैं, किंतु उपज ज्ञान से सादि हैं; क्योंकि यह ब्रह्म से उपजी हुई है। जहाँ देश होगा, वहाँ समय जरूर होगा। माया कब से है, बता नहीं सकते, किंतु उसका अंत है, इसलिए उसे अनादि सांत कहते हैं। माया को भ्रम कहते हैं, चाहे इसकी स्थिति माने या न माने, किंतु दोनों माया के पार होने कहते हैं। 'प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी।।' अद्वैतवादी के ऊपर यह प्रश्न होता है कि यदि एक-ही-एक है, दूसरा कुछ नहीं है तो भ्रम किसको हुआ? सर्प और रस्सी दोनों को देखता है, तब उसको धुँधली रोशनी में भ्रम होता है, किंतु जिसने कभी साँप को देखा नहीं है, उसको भ्रम क्यों होगा? यहाँ अद्वैत सिद्धांत भी ठण्ढा पड़ जाता है। द्वैतवाले से प्रश्न होता है कि आप ब्रह्म को स्वरूप से अनादि मानते हैं कि देश-काल-ज्ञान से अनादि मानते हैं? तो कहेंगे कि वह सब तरह से अनादि है। तत्त्वरूप से अनादि अनंत है तो फिर प्रश्न होगा कि अनादि अनंत एक ही हो सकता है कि दो? तो कहना पड़ेगा कि अनंत एक ही हो सकता है। तत्त्वरूप में अनंत एक ही हो सकता है, जिसकी सीमा नहीं हो। असीम या अनन्त तत्त्व एक ही हो सकता है, दो नहीं। यदि दो मानो तो दोनों की सीमा जहाँ होगी, दोनों ससीम हो जाएँगे। दो पदार्थ तब मालूम होंगे, जहाँ सीमा मालूम होगी। असीम या अनंत एक ही होगा। तत्त्व में उससे दूसरा तत्त्व उसके अंदर मानो तो वह दूसरी चीज जो उसके अन्दर में होगी, उस पदार्थ से उसको फुटाने के लिए तो कुछ सीमा बतानी होगी। जहाँ सीमा होगी, वहीं दो हो जाएँगे। यदि कहो कि अनंत उसके परमाणु-परमाणु में व्यापक है तो परमाणु वह वस्तु है, जिसमें पोल नहीं होता, जो उसमें दूसरा कुछ घुसेगा। तब यह कहा जाएगा कि जो उसके परमाणु में भी व्यापक है, तब वह परमाणु भी उसी से बना हुआ है। मैं कहता हूँ, इन सब झगड़े से अलग रहो। द्वैत मत वाले अपने मत को जबर्दस्त और अद्वैत मत वाले अपने मत को जबर्दस्त बताते हैं। दोनों अपने-अपने मत पर अड़े हैं। किन्तु नम्रता से कहो कि एक परमात्मा ही सब तरह से अनादि-अनंत है, तो इसको सब मानते हैं। इसकी खोज में चलो। खोजकर निर्णय हो जाएगा कि क्या है? उसको प्राप्त करने से जिस सुख के लिए अभी ललचते हो, उसको प्राप्त कर लोगे, नित्य सुख मिलेगा। उसके पास जाओगे कैसे, इसको जानो। पहले यह जानो कि जिस ज्ञान से तुम संसार को पहचानते हो, यह जानते ही हो कि इससे तुम ईश्वर को नहीं पहचानते। तुम इन्द्रिय-ज्ञान से संसार को जानते-पहचानते हो, इस इन्द्रिय-ज्ञान से ईश्वर को नहीं पहचानोगे। इन्द्रियों से युक्त होकर जो ज्ञान होना चाहिए, वह तुम जानते हो। इन्द्रियों से अलग होकर जो ज्ञान होना चाहिए, वह ज्ञान तुमको नहीं है। इसलिए इन्द्रियों से अलग होकर केवल आत्मा से देखो। संसार के रूप-ज्ञान के लिए नेत्र है। घ्राण

को ग्रहण करने के लिए नाक है। जिसकी घ्राण-शक्ति खराब हो गई है, वह नेत्र से गन्ध ग्रहण नहीं कर सकता। एक-एक विषय के लिए एक-एक इन्द्रिय है। उसी प्रकार तुम्हारे निज के लिए अर्थात् आत्मा के लिए भी कोई विषय है। सब इन्द्रियों को छोड़कर, मन-बुद्धि को छोड़कर केवल तुम्हारा विषय परमात्मा है। वह परमात्मा आत्मगम्य है। आत्मा से उन्हें तब पहचानोगे, जब इन्द्रियों से छूट जाओगे। इन्द्रियों से छूटने का उपाय सीखो। बाहर पर्वत पर जाओ या मक्का जाओ या पवित्र स्थान में जाओ या जगन्नाथजी जाओ; कहीं जाओ, इन्द्रियाँ साथ रहेंगी। अपने अंदर चलो। पहले मोटी इन्द्रियों से फिर सूक्ष्म इन्द्रियों से छूटोगे। जाग्रत में बाहर के इन्द्रियों के संग रहते हो। स्वप्न में बाहर की इन्द्रियाँ छूट जाती हैं। नाक से इत्र का फूहा रहने पर भी स्वप्न में उसकी सुगंध नहीं मालूम होती। अपने अंदर में प्रवेश करो। श्रीमद्भगवद्गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विचार दिया है। क्षेत्र मानी खेत और क्षेत्रज्ञ मानी खेत को जाननेवाला। आकाश, हवा, अग्नि, जल, मिट्टी, अहंकार, बुद्धि अव्यक्त; पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द; इच्छा, द्वेष, दुःख, सुख, संघात, चेतना और धृति; इन इकतीस तत्त्वों के समुदाय को क्षेत्र (महाभूतान्यऽहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च। इन्द्रियाणि दशैकं च पंचचेन्द्रिय गोचराः।। इच्छा द्वेष सुखं संघातश्चेतना धृतिः। एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।) कहते हैं। बत्तीसवाँ क्षेत्रज्ञ है। आप क्षेत्र नहीं हैं, क्षेत्रज्ञ हैं। क्षेत्र के सब तत्त्वों से जीवात्मा या क्षेत्रज्ञ अलग हो जाय तो आप अकेले हो जाओगे। अब अकेले में जो पहचान हो, वही परमात्मा है। इसके लिए बाहर में कहीं जाने से क्षेत्र से नहीं छूट सकते। स्वप्न में जाने से स्थूल शरीर और स्थूल इन्द्रियाँ छूट जाती हैं। यह थोड़ा-सा नमूना है कि अंतर्मुख होने से स्थूल शरीर और इन्द्रियों से छूटते हो। इस प्रकार अंदर-ही-अंदर चलने से तुम सब शरीरों और इन्द्रियों से छूटकर अकेले होकर रहोगे, तब तुम अपने को और परमात्मा को पहचान सकोगे। देह के सब अंगों को आँख से देखते हो, किंतु आँख को देखने के लिए आँख ही है। वैसे ही परमात्मा को आत्मा से ही पहचानोगे। बाहर से भीतर जाने में सब ख्यालों को छोड़ना होगा। इसके लिए अनेक पीढ़ियों के संस्कार की, दीर्घोद्योग की तथा दृढ़ ध्यानाभ्यास की अत्यंत आवश्यकता है। इसी शरीर में जैसा संस्कार बैठाओगे, वैसा ही शरीर मिलेगा। मानवीय संस्कार मन में बैठाओगे तो मनुष्य-शरीर मिलेगा। भजन में पूरे हो जाने से ईश्वर को प्राप्त कर लोगे। पूरा भजन नहीं होने से फिर मनुष्य का शरीर मिलेगा; क्योंकि भजन-संस्कार को बढ़ानेवाला दूसरा शरीर नहीं है। यदि पाशविक ख्याल का संस्कार हृदय में रखोगे तो पशु शरीर हो जाएगा। जैसे राजा भरत को हुआ था। (राजा भरत जंगल में तप करते थे। उनको हरिण के बच्चे से प्रेम हो गया था। इसी ख्याल में उनका शरीर छूट गया तो हरिण का ही शरीर मिला। पूर्व जन्म के तप के कारण उनका ज्ञान नष्ट नहीं हुआ था। इस शरीर को पाकर वे बहुत पश्चात्ताप करते थे। उनका वह हरिण का शरीर छूटने पर ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ और उनका नाम जड़भरत पड़ा।) ईश्वर का भजन करो, सदाचार का जीवन बिताओ। भजन में अपूर्ण रहने से दूसरे जन्म में मनुष्य होना ध्रुव है। मन को एकाग्र कर भजन करो, पूजा पाठ के द्वारा मन को एकाग्र करते हैं, जप के द्वारा एकाग्र करते हैं। एकाग्रता एकविन्दुता तक है। जबतक एकविन्दुता नहीं होगी, पूर्ण सिमटाव नहीं होगा, पूर्ण सिमटाव के लिए एकविन्दुता प्राप्त करो। एकविन्दुता में पूर्ण

सिमटाव होगा, ऐसे सिमटाववाले की ऊर्ध्वगति हो जाएगी। तुलसी साहब के पद्य में है कि—

सुरत शिरोमणि घाट गुमठ मठ मृदंग बजैं रे।

नव दरवाजा शिरोमणि घाट नहीं, दसवाँ दरवाजा शिरोमणि घाट है। यहाँ पर सिमटाव होने से मृदंग बजेगा। तुलसी साहब के वचन पर विश्वास करो तथा ध्यानविन्दूपनिषद् में पढ़ो—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
स शब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।
—ध्यानविन्दूपनिषद्

योगशिखोपनिषद् में लिखा है—

विन्दुपीठं विनिर्भिद्य नादलिंगमुपस्थितम्।

यही संतमत है। मुझे किसी सम्प्रदाय—द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैती, त्रैत आदि से झगड़ा नहीं, मैं किसी का खण्डन नहीं करता। मैं कहता हूँ, परमात्मा को पहचानने के लिए चलो। चलने के लिए बाहर जाना छोड़कर अन्दर में चलो। अन्दर में चलने के लिए कोट-कमीज तथा कुर्तेरूप शरीरों को उतारो। शरीर-रहित जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होगा। इसलिए जिस युक्ति से सब शरीरों से रहित होओगे, वह यत्न करो। सदाचार का पालन करो। सबके लिए हित की बात है। बहुत प्राचीन काल में केवल यज्ञ था। पीछे कुछ देव-उपासना का ख्याल हुआ और पीछे चलकर अध्यात्म-ज्ञान हुआ। अध्यात्म-ज्ञान से निर्णीत पद पर आरूढ़ करा देने के लिए योग शास्त्र बना।

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत ग्राम—रामगंज सत्संग मंदिर में दिनांक २७.२.१९५३ ई० के सत्संग में हुआ था।

४६. सूक्ष्म मार्ग का अवलम्ब

प्यारे लोगो!

सब लोग दुःखों से छूटने के लिए उत्सुक हैं। वैसे ही वे सुख की प्राप्ति के लिए भी उत्सुक हैं। लोग जितना सुख पाते हैं, उससे वे संतुष्ट नहीं होते । साधारणतया लोग जो सुख जानते हैं, वह विषय सुख है, जिसे इन्द्रियों के द्वारा भोगते हैं। इन विषय सुखों से कोई संतुष्ट नहीं हुए और न होते हैं। इसके लिए ज्ञानियों ने कहा है कि तुम जो संतोषप्रद नित्य सुख चाहते हो, वह इन्द्रियों के सुख में नहीं है। उसको पाने का रास्ता दूसरा है। वह सांसारिक सुख नहीं है, ब्रह्म सुख है। उस ओर चलो, यही उनका आदेश है। ईश्वर की ओर चलने से उनका तात्पर्य है। यद्यपि ईश्वर सर्वव्यापी हैं, परंतु उसको पहचान नहीं सकते। इसलिए उनकी पहचान और मिलन से जो प्राप्त होना चाहिए नहीं होता है। संसार को पहचानते हैं, उससे जो प्राप्त होता है, उससे संतुष्टि नहीं होती। परमात्मा को पहचानने चलो। किंतु उसकी पहचान के लिए चलने में आपका शरीर नहीं जाएगा। वह रास्ता शरीर के चलने का नहीं है, जिसके लिए कबीर साहब ने कहा है—

बिन पावन की राह है, बिन बस्ती का देश।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहै कबीर सन्देश।।

उसपर पहले आपका मन चलेगा। क्योंकि मन भी सूक्ष्म है और वह रास्ता भी सूक्ष्म है। मन स्वयं जड़ है, यह अपने से कुछ करता हो, संभव

नहीं। इसके अंदर चेतन-धारा है। मन और चेतन इस प्रकार मिला है जैसे दूध में घी। दूध से घी को अलग कर सकते हैं, उसी प्रकार चेतन को मन से अलग कर सकते हैं। मन और चेतन अलग-अलग हो जाय, इसके लिए सूक्ष्ममार्ग का अवलम्बन करना होगा। सूक्ष्ममार्ग पर मन चलते-चलते कुछ दूर जाएगा, फिर आगे नहीं जा सकेगा। तब केवल चेतन ही अकेला चलेगा।

सहस कमल दल पार में मन बुद्धि हेराना हो।
प्राण पुरुष आगे चले सोइ करत बखाना हो।।
—तुलसी साहब, हाथरस

बाहर की दश इन्द्रियों और भीतर की चार इन्द्रियों को शक्ति नहीं कि परमात्मा को पहचाने। परमात्मा को पहचानने के लिए चेतन-आत्मा ही योग्य है। किंतु चेतन-आत्मा अभी इसलिए नहीं पहचान रही है कि यह जड़ के संग-संग है। इसलिए इसको जड़ से फुटाओ। जड़ से फुटाने के लिए उपनिषद्कार कहता है— सूक्ष्ममार्ग (निद्राभय सरीसृपं हिंसादितरंगं तृष्णावर्तं दारपंकं संसारवार्धिं तर्तुं सूक्ष्ममार्गमवलम्ब्य सत्त्वादिगुणानतिक्रम्य तारकमवलोकयेत्। भ्रूमध्ये सच्चिदानन्दतेजः कूटरूपं तारकं ब्रह्म। —ब्राह्मणोपनिषद्, ब्राह्मण १

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै,
गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं।
गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासे नहीं,
समुझि विचारि ले मने माहिं।।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइए,
जनम अनेक की अटक खोलै।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै,
जीव और सीव तब एक तोलै।।
—कबीर साहब)

का अवलंबन करो। मार्ग वह है, जिसका कहीं पर न ओर है और न कहीं पर छोर है, बीच में कुछ फासला है, जिस पर चला जा सकता है। जो जहाँ बैठा रहता है, वह वहीं से चलता है। शरीर में मन का बैठक या इसका केन्द्रीय रूप जहाँ है, वहीं से चलेगा। जाग्रत अवस्था में नेत्र (**नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत। सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि संस्थितम्।। (ब्रह्मोपनिषद्) , नैनों माहीं मन बसै निकसि जाय नौ ठौर। गुरु गम भेद बताइया सब संतन शिरमौर।। (कबीर साहब), जानि ले जानि ले सत्त पहचानि ले, सुरत साँची बसै दीद दाना। खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।—दरिया साहब, बिहारी।**) में वासा है। नेत्र कहने से तीसरी आँख जाननी चाहिए, जहाँ से इन दोनों आँखों में धारा आती है। जिसे शिवनेत्र कहते हैं, इसे आज्ञाचक्र का केन्द्र भी कहते हैं। आज्ञाचक्र के दो भाग हैं; एक भाग को अंधकार और दूसरे भाग को प्रकाशमय बतलाया है। आज्ञाचक्र का जो केन्द्र है, वहीं मन की बैठक है, किंतु बाह्य इन्द्रियों से संबंधित रहने के कारण उसका रुख बिल्कुल अंधकार और बाह्य विषयों की ओर है। इसलिए जब पहले वह अपने अंदर में देखता है, तब उसे अंधकार मालूम होता है। इन्द्रियों में जो मानस-धारा है, वह नीचे की ओर है। यदि इसकी धारा इन्द्रियों से हटे तो इन्द्रियाँ सचेष्ट हो नहीं सकेंगी। जो कोई लेटा पड़ा है, उसके दोनों हाथ दो तरफ और पैर तीसरे तरफ है, यदि वह उठना चाहे तो हाथ-पैर समेटकर उठना होगा। उसी प्रकार चेतन की धारा जो संपूर्ण शरीर में फैली हुई है, जबतक केन्द्र में केन्द्रित न हो, तबतक मन और चेतन की ऊर्ध्वगति नहीं हो सकती। चेतनधारा केन्द्र में केन्द्रित हो तब वह उस मार्ग पर चलेगी। वहाँ स्थूल देह का कोई अंश नहीं है। वह लकीर या मार्ग सूक्ष्म है, जिसपर सुरत चलेगी। चेतनमय मानस-धारा इन्द्रियों के घाटों से छूटते ही और केन्द्र में केन्द्रित होते ही मन का रुख नीचे की

ओर से ऊपर की ओर उलट जाएगा। रुख फिरते ही उसे प्रकाश मालूम होगा।

सूक्ष्म-मार्ग ज्योति-मार्ग है। इसी सूक्ष्म-मार्ग पर चलना है। इस विषय को यदि कोई सिर्फ पढ़े और सुने, किंतु उस मार्ग पर चलने के लिए नहीं जाने, तो वह लाभ नहीं होगा जो होना चाहिए। सूक्ष्म-मार्ग ज्योति-मार्ग है, किन्तु वह ज्योति भूमण्डल की ज्योति नहीं है, वह ब्रह्मज्योति है। उस पथ पर पहले मन सहित चेतन जाएगा, फिर मन को छोड़कर केवल चेतन जाएगा। इसके वास्ते बाहर-बाहर यत्न करने पर पता नहीं लग सकता। यह यत्न अंदर-अंदर करने का है। अपनी वृत्तियों को समेटकर अंदर कीजिए। इस सिमटाव के लिए शाम्भवी या वैष्णवी मुद्रा का अभ्यास कीजिए। देखने के किसी विशेष ढंग को शाम्भवी और वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। देखने के लिए उपनिषदों में तीन दृष्टियों—

(तद्दर्शने तिस्रो मूर्तयः अमाप्रतिपत्पूर्णिमा चेति। निमीलितदर्शनममादृष्टिः अर्धोन्मीलितं प्रतिपत्। सर्वोन्मीलनं पूर्णिमा भवति।..........

तल्लक्ष्यं नासाग्रम्। ....तदभ्यासान्मनः स्थैर्यम्। ततो वायु स्थैर्यम्। —मण्डल ब्राह्मणोपनिषद्, ब्राह्मण २

द्वादशांगुल पर्यन्ते नासाग्रे विमलेऽम्बरे।
संविद्दृशि प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दो निरुध्यते।।
भ्रूमध्ये तारकालोक शान्तावन्तमुपागते।
चेतनैक तने बद्धे प्राणस्पन्दो निरुध्यते।
चिरकालं हृदेकान्तव्योमसंवेदनान्मुने।
अवासनमनोध्यानात्प्राणस्पन्दा निरुध्यते।।
—शाण्डिल्योपनिषद्, अध्याय १)

का वर्णन है। अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा। आँख बंदकर देखना अमादृष्टि है, आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा है और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा है। उसका लक्ष्य नासाग्र होना चाहिए। प्रतिपदा और पूर्णिमा में आँखों में कष्ट होता है, किन्तु अमावस्या की दृष्टि में कोई कष्ट नहीं होता। दृष्टि—आँख, डीम और पुतली को नहीं कहते, देखने की शक्ति को दृष्टि कहते हैं। दृष्टि और मन एकओर रखते हैं, तो मस्तिष्क में कुछ परिश्रम मालूम होता है। इसलिए संतों ने कहा—जबतक तुमको भार मालूम नहीं हो, तबतक करो, भार मालूम हो तो छोड़ दो। किसी गम्भीर विषय को सोचने से मस्तिष्क पर बल पड़ता है, मस्तिष्क थका-सा मालूम होता है, तब छोड़ दीजिए। रेचक, पूरक और कुम्भक के लिए कुछ कहा नहीं गया है, केवल दृष्टिसाधन करने को कहा। प्राणायाम करने के लिए नहीं कहा। जो ध्यानाभ्यास करता है, उसको प्राणायाम आप-ही-आप हो जाता है। मन से जब आप चंचल काम करते हैं, तो स्वाँस की गति तीव्र हो जाती है और जब उससे कोई अचंचलता का काम करते हैं, तो स्वास-प्रस्वास की गति धीमी पड़ जाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने बैठने के स्थान और आसनियों के नाम बतलाकर उसपर शरीर को बैठाकर रखने का ढंग बतलाया है। परंतु प्राणायाम के लिए उस सम्पूर्ण अध्याय में नहीं कहा है, केवल ध्यानयोग का ही वर्णन किया है। और अंत में चलकर इसी से परमगति की प्राप्ति को निश्चय कर दिया है। (**प्रयत्नाद्यत मानस्तु योगी संशुद्ध किल्विषः। अनेक जन्म संसिद्धस्ततो यान्ति परां गतिम्।।**—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ६/४५) बिना प्राणायाम किए हुए भी ध्याना-भ्यास द्वारा श्वाँस की गति रुकती है। इसके लिए दृष्टियोग बहुत आवश्यक है। किंतु दृष्टियोग के पहले कुछ मोटा अभ्यास करना पड़ता है। क्योंकि जो जिस मण्डल में रहता है, वह पहले उसी मण्डल का अवलम्ब ले सकता है। इसीलिए दृष्टियोग के पहले मानस जप और मानस ध्यान

की विधि है। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में भी इसी क्रम से अभ्यास करने का आशय विदित होता है।

(इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ।।
तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ।।
तत्र लब्ध पदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिन्तयेत् ।।)

इसमें श्रीकृष्ण भगवान ने उद्धव से पहले संपूर्ण शरीर का, फिर चेहरे का और फिर शून्य में ध्यान करने को कहा। ध्यानाभ्यास के आरंभ में कुछ-न-कुछ स्थूल अवलम्बन लेना ही होगा। परन्तु ऐसा नहीं कि उसी को जीवनभर पकड़े रह जाइए। आर्य संन्यासी श्रेष्ठ श्रीनारायण स्वामी ने चित्र बनाकर बताया है—पहले एक बड़ा गोलाकार, फिर उससे छोटा, फिर उससे भी छोटा एवम् प्रकार से बड़े से छोटा गोलाकार बनाते-बनाते विन्दु के मोताविक चिह्न बनाकर उसपर ध्यान करते जाने को कहा है। यह क्या हुआ? स्थूल अवलम्ब हुआ। ऐसा जिद्द नहीं होना चाहिए कि जो अवलम्ब एक ले दूसरा भी उसी को ले। कितने ईश्वर के नाम को लिखकर ध्यान करते हैं। मुसलमान फकीरों में भी ऐसी बात है। इसपर ठीक हो जाने से सूक्ष्म-ध्यान कीजिए। भागवत की यह बात अच्छी तरह जँचती है—समस्त रूप का ध्यान करके चेहरे का, फिर शून्य में ध्यान। इस प्रकार फैलाव से सिमटाव की ओर आता है। किसी चित्र वा रूप का मूल एक विन्दु है। सबसे सूक्ष्मरूप विन्दु है, इसकी बड़ी तारीफ है। उपनिषद् में ब्रह्मरूप को 'अणोरणीयाम् महतो महीयान्' कहा है तथा श्रीमद्भगवद्गीता में भी अणोरणीयाम् कहो या विन्दु कहो एक ही बात है। विन्दु मन से नहीं बनाया जा सकता है। देखने के ढंग से देखिए। दृष्टि को जितना समेट सकें, समेटिए।

कहै कबीर चरण चित राखो, ज्यों सूई में डोरा रे ।

—कबीर साहब

एक बार आचार्य द्रोण कौरवों तथा पाण्डवों को संग लेकर जंगल की ओर टहलने गए। वृक्ष पर बैठे हुए एक पक्षी की ओर संकेत कर गुरु द्रोण ने प्रत्येक को एक-एक करके निशाना करने को कहा। निशाना करने पर सबसे पूछते जाते थे कि कहो, क्या देख रहे हो? किसी ने कहा—वृक्ष, उसकी डालियाँ तथा पत्तों के सहित पक्षी को देख रहा हूँ। किसी ने वृक्ष की डालियाँ एवं पत्तियों के सहित पक्षी को देखने की बात कही, किसी ने डाली सहित पक्षी को देखा। अंत में अर्जुन के निशाना करने पर आचार्य ने पूछा—कहो, क्या देख रहे हो? अर्जुन ने उत्तर दिया—केवल पक्षी देख रहा हूँ। इसमें दृष्टि का कितना सँभाल है? स्वयं द्रोण ऐसे थे कि सींकी के पेंदे को सींकी से छेदकर कुएँ से गेन्द निकाले थे। द्रोण की दृष्टि बाहर में कितनी सिमटी थी। विन्दु के लिए और भी दृष्टि को समेटना पड़ेगा। बहिर्मुख होकर नहीं देखो, अंतर्मुख होकर देखो; फैली दृष्टि से नहीं, सिमटी दृष्टि से देखो। पेन्सिल की नोंक जहाँ पड़ेगी, वहीं विन्दु होता है; उसी प्रकार दृष्टि की नोंक जहाँ टिकेगी, वहीं विन्दु उदय होगा। यहीं से सूक्ष्ममार्ग का आरम्भ होता है। कबीर साहब ने कहा—'मुर्शिद नैनों बीच नबी है। स्याह सुफेद तिलों बिच तारा अविगत अलख रवी है।।' पहले काला चिह्न होगा, फिर सफेद हो जाएगा। अंदर सुषुम्ना में सिमटी दृष्टि का अवलोकन दृढ़ रहने से इन्द्रियों की धार सिमटकर उस केन्द्र में केन्द्रित हो जाएगी। इससे ऊर्ध्वगति होगी। जो चीज जितना सूक्ष्म है, उसमें उतना ही अधिक सिमटाव होगा और सिमटाव के अधिकाधिक मान के अनुकूल ही

अधिकाधिक उसकी गति उतनी ही ऊर्ध्व होगी। इसलिए अंधकार मण्डल में समेटने से उसकी ऊर्ध्वगति होने के कारण प्रकाश में जाएगा। इसका अभ्यास अमादृष्टि से करना आसान है। यही सूक्ष्ममार्ग का अवलम्ब है। दृश्यमण्डल में का यह अवलम्ब है। यह स्थूल ज्योति नहीं, सूक्ष्म ज्योति है। किन्तु यह निर्मायिक नहीं मायिक ही है। किन्तु यह विद्या माया है। दृश्य समाप्त होता है अदृश्य में। जहाँ ज्योति काम नहीं करती, वहाँ दृष्टि भी समाप्त है। जहाँ ज्योति नहीं है, वहाँ शब्द से रास्ता मिलता है। मनुष्य को कौन कहे, पशु भी शब्द सुनकर आता है। अँधेरी रात हो, कुत्ता को पुकारिए, वह आपके पास पहुँच जाएगा। शब्द अपने उद्गम स्थान पर आकृष्ट करता है। शब्द वह है जो अंधकार और प्रकाश दोनों में भरपूर है, फिर इन दोनों के परे भी है और वहाँ 'निःशब्दं परमं पदम्' हो जाता है, परमात्मा से मिला देता है।

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

प्रकाश के शब्द को पकड़ने के लिए संतों ने कहा, यही सूक्ष्ममार्ग है। इसपर अच्छी तरह विचार करना चाहिए। और विचार में जँचे, श्रद्धा करने योग्य हो तो श्रद्धा करनी चाहिए। गुरुवाक्य है, उस पर हमलोगों को तो बड़ा विश्वास है। गुरु महाराज तो कहते थे, जाँचकर देख लो। इसके लिए सदाचार का पालन करो। जो सदाचार का पालन नहीं करते उनका मन विषयों में आसक्त रहता है, वह इस ओर बढ़ नहीं सकता। इस हेतु सदाचार का पालन अवश्य करो।

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत ग्राम—खगड़िया में दिनांक २८.२.१९५३ ई० के सत्संग में हुआ था।

४७. साधन के अन्त तक पहुँचो

प्यारे महाशयो!

आपलोगों का यह वार्षिक सत्संग होना मैं भी आवश्यक समझता हूँ। क्योंकि अखिल भारतीय संतमत सत्संग में इधर के बहुत लोग उपस्थित नहीं हो सकते हैं। ठीक ही है कि आपलोगों ने ऐसा सत्संग किया है। संथाल परगना के अंदर के और भागलपुर के दक्षिण बांका इलाके के सत्संगियों को यह छठा वार्षिक सत्संग है। इस (वार्षिक सत्संग) का जन्म ग्राम कोरका में १९४८ ई० में हुआ। वहाँ 'संथाल परगना जिला अधि-वेशन' नाम रखा गया। बांका डिवीजनवाले बोले—हमको क्यों अलग करते हो? हमलोगों ने तो सब दिन आपके साथ मिलकर सत्संग किया है। अतएव बांका (दक्षिण भागलपुर) और संथाल परगना दोनों का यह सत्संग है। इसका उपयुक्त नाम 'बांका (भागलपुर) और संथाल परगना वार्षिक सत्संग' होना चाहिए। यह संतमत-सत्संग किसी मत विशेष का खण्डन करनेवाला नहीं है। इसीलिए आपलोग संत-स्तुति पढ़ते हैं—

सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी।
उनकी स्तुति केहि विधि कीजै,
मोरी मति अति नीच अनाड़ी।
दुःख-भंजन भव-फंदन-गंजन,
ज्ञान-ध्यान-निधि जग उपकारी।

विन्दु-ध्यान-विधि नाद-ध्यान-विधि,
सरल-सरल जग में परचारी ।।
धनि ऋषि संतन्ह धन्य बुद्ध जी,
शंकर रामानन्द धन्य अघारी ।
धन्य हैं साहब संत कबीर जी,
धनि नानक गुरु महिमा भारी ।।
गोस्वामी श्री तुलसिदास जी,
तुलसी साहब अति उपकारी ।
दादू सुन्दर सूर श्वपच रवि,
जगजीवन पलटू भयहारी ।।
सतगुरु देवी अरु जे भये हैं,
होंगे सब चरणन शिरधारी ।
भजत है 'मेँ हीँ' धन्य धन्य कही,
गही संत पद आशा सारी ।।

किसी संत को हेय मत समझो। किसी एक संत के नाम पर पंथ का नाम रखकर उसपर श्रद्धा रखनी और दूसरे को नीचा दबाना, हेय समझना उचित नहीं। कोई राम, कोई ब्रह्म, कोई अल्लाह या खुदा कहता है। इस प्रकार किसी एक नाम से कोई ईश्वर को पुकारता है तो वह कम नहीं। ईश्वर, गॉड, खुदा आदि नहीं कहकर यदि कोई उसी को दूसरे शब्द से संकेत करता है तो वह भी आस्तिक है। जैसे—महात्मा बुद्ध। उन्होंने ईश्वर है या नहीं, इसपर कुछ नहीं कहा, किन्तु सदाचार का पालन करने, ध्यान-अभ्यास करने और नामरूपातीत पदार्थ को ग्रहण करने की शिक्षा दी। वे ईश्वर नहीं कहकर नामरूपातीत तत्त्व को बताते हैं, तो मेरी समझ में वे भी उसी ईश्वर का संकेत करते हैं; जिसके लिए और संतों ने कहा है। संतों के विचारानुकूल मूलतत्त्व में कुछ भेद नहीं। जो प्रत्यक्ष संत हैं, उनका आदर करो। यदि किसी की तारीफ नहीं कर सको, तो उसकी निन्दा भी मत करो, तटस्थ रहो। निन्दा-स्तुति दोनों से अलग रहो।

कबीर साहब के वचन में पाठ हुआ, सुरत को जगाने का, नादानुसंधान करने का, संत के पास जाकर नम्रता से उनको प्रणाम कर भक्ति मार्ग की शिक्षा-दीक्षा लेने का और संसार की ओर पीठ कर भागने का आदेश है। उनके वचन में 'सुरत' 'जीवात्मा' के लिए प्रयोग हुआ है। 'सुरत' उनका पारिभाषिक शब्द है। और संतों ने भी सुरत का प्रयोग कबीर साहब के अर्थ में ही किया है। सुरत का अर्थ केवल ख्याल ही नहीं है। 'आदि सुरत सतपुरुष से आई। जीव सोहं बोलिये सो ताई।।' कबीर दास सुरत को जगाते हैं और कहते हैं कि अज्ञानता की नींद में तुम क्यों सोए हो? उठो और भजन में लगो। उठने के वास्ते वे कहते हैं कि चित्तवृत्ति को जोड़कर—चित्त लगाकर आंतरिक कान से सुनो, मधुर ध्वनि का स्वर होता है। यह कहाँ सुनने को कहते हैं—कहीं बाहर में या अंदर में, अपने अंदर में सुनने को कहते हैं; क्योंकि सुरत को सुनने कहते हैं। इसी को सुरत-शब्द-योग या नादानुसंधान कहते हैं। ऋषियों ने इसी को नादानुसंधान कहा और आजकल के सन्तगण इसको नाम—नाम-भजन या सुरत-शब्द-योग कहते हैं। सब संतों ने इसी का साधन किया और इस विषय में प्रचुरता से उपदेश वाक्य कहे भी हैं। कबीर साहब के पहले भी श्रीरामानन्द स्वामी का प्रचार था। श्रीरामानन्द स्वामी के पहले गोरखनाथजी का प्रचार था। किन्तु उनका प्रचार साथ-साथ हठयोग लिए हुआ था। श्री रामानन्द स्वामी ने इस नादानुसंधान के द्वारा भगवद्भक्ति का प्रचार किया था। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामायण की चौपाइयों में इस साधन का संकेत किया है—

बन्दउँ रामनाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।
विधि हरिहर मय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।।
नाम रूप दुइ ईश उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।

निर्गुण और अकथ अनादि रामनाम वर्णात्मक नहीं, ध्वन्यात्मक ही हो सकता है।

सुरत को जगानेवालों में दो प्रकार के मनुष्य हो सकते हैं। एक वह जो देख-सुन सकते हैं। दूसरे वह जो केवल सुन सकते हैं। जन्मान्ध को देखना नहीं होता, वह सुन सकता है। किन्तु जिनकी आँख अच्छी है, वह देख और सुन सकते हैं। यह अच्छा है जहाँ कि देखना-सुनना दोनों हो सकते हैं। लेकिन नहीं देख सकनेवाला नहीं देखता है, केवल सुनता है। यदि आप अपने अन्दर देखना चाहो तो बाहर देखना बन्द करो। यानी आँख बन्द कर लो, तो बाहर देखना नहीं होगा। बाहर देखना बन्द होने से और भीतर देखने से अंधकार मालूम होगा। ऐसा सबको होता है। इस देखने में कुछ देखना नहीं होता है, किन्तु सुनना चाहो तो अन्दर में कुछ सुन सकते हो! सुरत अन्धकार में है और सुन भी सकती है। इसको जगना कहो तो जगना है, किन्तु देखता नहीं है, सुनता है। दूसरा वह है, जो अंतःप्रकाश में अपनी सुरत को ले गया है। वह देखता और सुनता दोनों है। जो पहले तरह आँख बंद करने से मालूम होता है, वह पहले तल पर है। किंतु जो प्रकाश में जाकर देखता-सुनता है, वह वैसा है, जैसे आँखवाला हो। इन दोनों में बड़ा फर्क है। देखने और सुननेवाला ऊँचे में है, केवल सुननेवाला नीचे में है। साधन के अंदर देखो भी और सुनो भी, यह जगना ठीक है। यह प्रातःकाल है, आप जगे हुए हैं ही, थोड़ी देर पहले आप सोए थे। सोए में कभी स्वप्न भी देखते होंगे। दिन-रात में बहुत काल जगे रहते हैं, अल्पकाल ही सोते हैं। फिर जगाते क्या हैं? तो ये कहते हैं—अज्ञानता में पड़े हो, गोया सोए हो। ज्ञानीजन ज्ञान से समझाते हैं, गोया जगाते हैं। फिर कहते हैं—वचन ज्ञान से जगना अल्प है। पहले सुनो, फिर विचारो; विचार से जो कर्म निर्णय हो जाय, उसका साधन करो, फिर साधन के अंत तक पहुँचो, तब पूरा जगना होगा। इसी को श्रवण, मनन, निदिध्यासन और अनुभव ज्ञान कहा गया है। सुनो, विचारो, साधन करो और साधन के अंत तक पहुँचो। जो प्राप्त होना चाहिए, प्राप्त हो गया, यह अनुभव ज्ञान है। सुनना—श्रवण ज्ञान है, विचारना—मनन ज्ञान है, अभ्यास करना—निदिध्यासन ज्ञान है। श्रवण-मनन का जगना अंधों का जगना है। जैसे अन्धा जगता है, किंतु कुछ देखता नहीं है।

वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण, भव पार न पावइ कोई।
निशिगृह मध्य दीप की बातन्हि, तम निवृत नहिं होई।।
— गोस्वामी तुलसीदास

अन्धकार दूर करने के लिए जो यत्न करना चाहिए, करना होगा, तब ठीक जगना होगा।

तेल तूल पावक पुट भरि धरि, बनै न दिया प्रकाशत।
कहत बनाय दीप की बातें, कैसे हो तम नाशत।।
— संत सूरदासजी

तात्पर्य यह कि प्रकाश पाने का जो यत्न है, वह करते नहीं केवल बोलते हैं, इससे प्रकाश नहीं हो सकता। भगवान बुद्ध ने भी कहा—तुम जो अंधकार में पड़े हो, प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते। और मुक्तिकोपनिषद् में श्रीराम ने श्रीहनुमानजी से अंतर की ज्योति की खोज करने के लिए कहा है। प्रकाश पाने के लिए जो दृष्टि होती है, वह साधारण दृष्टि नहीं। साधारणतः तीन अवस्थाओं में जो आते-जाते रहते हैं, सो क्यों? एक ही जगह में सब समय नहीं रहते हैं। यह शरीर एक घर के समान है, इसी को घट भी कहते हैं, इसी में आप रहते हैं। इसमें कभी जगते हैं, कभी स्वप्न में जाते हैं और कभी सुषुप्ति में जाते हैं, ऐसा क्यों? जाग्रत के स्थान में जाने से जगते हैं, स्वप्न के स्थान में जाने पर स्वप्न होता है और सुषुप्ति के

स्थान में जाने पर वह अवस्था होती है। इन तीनों अवस्थाओं में आना-जाना जगना नहीं है। सुनने, समझने, विचारने से मोह नहीं छूटता। तुरत ज्ञानी बन जाते हैं और तुरत अज्ञानी के समान काम करते हैं। यह जगना नहीं है। इसके लिए कुछ और बात है। जाग्रत से स्वप्न में जाते समय आपकी शक्ति भीतर खींचती है। हाथ पैर कमजोर होते जाते हैं। शक्ति खींचकर उस स्थान में चली जाती है और स्वप्न में चले जाते हैं। जाग्रत का स्थान आँख, स्वप्न का कण्ठ, सुषुप्ति का हृदय और तुरीय में आँख के ऊपर जाना होता है। भजन किया अंत:प्रकाश पाया और आंतरिक नाद को सुना भी, यह जगना है। यह जगना बिना साधन के नहीं हो सकता। इसके लिए चाहिए कि 'दोउ कर जोड़ि शीश चरणन दे, भक्ति अचल वर माँग री।' किसी के यहाँ जाकर नम्र होओ, उसको प्रणाम करो और जानो। अर्थात् जनाने के लिए गुरु चाहिए, उनसे जानो और करो। फिर कहा 'जगत पीठ दै भाग री' कहीं भी जाओ, संसार रहेगा ही। धरती पर कहीं जाने से संसार की ओर पीठ नहीं हो सकती। जब वह साधन के समय संसार के ज्ञान से रहित हो जाता है, इन्द्रियों के ज्ञान से ऊपर रहता है, तब जगत की ओर पीठ देना होता है। उपनिषद् में भी लिखा है—उठो, जागो और ज्ञानी के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। फिर बतलाया कि वह छुरे की धार के समान है। इस सूक्ष्म मार्ग पर पैर नहीं चलता मन सूक्ष्म है, सूक्ष्ममार्ग पर मन चलेगा। मन का सिमटाव हो तब जा सकता है। फैलाव होने से सूक्ष्म पथ पर नहीं चल सकता। फैलाव से सिमटाव में आने के लिए ही भजन-अभ्यास करना है। क्योंकि इसी भजन से परमात्म-स्वरूप प्राप्त होता है। लोगों को डर नहीं होना चाहिए कि छुरे की धार पर चलना विकट काम है। हाँ! इस रास्ते पर चलना कठिन है, परंतु असम्भव नहीं। जितने जो कोई बड़े हुए हैं, वे सब इसी रास्ते पर चलकर। उस रास्ते पर चलकर किधर जाना होगा? परमात्मा की ओर। लोग संसार की ओर रहते हैं, तो संसार की अस्थिरता में कभी शान्त नहीं होते—सुखी नहीं होते। किंतु परमात्मा को पाने से सांसारिक कष्टों से वे छूट जाएँगे। परमात्मा को पाकर उस मिलन-सुख में निमग्न हो जाएँगे। उपर्युक्त मार्ग को केवल जानने से ही काम समाप्त नहीं होगा। जानना होगा और उसके अंत तक चलना होगा। इस रास्ता को जानिए और चलिए। यह रास्ता सबके अंदर एक तरह है। किसी दूसरे देश के रहने वाले हों या दूसरी जाति के हों, इस कारण से उनके लिए दूसरा रास्ता हो, यह बात नहीं। सबके लिए एक ही रास्ता है। यह भी दृढ़ता से जानिए कि जो सदाचारपूर्वक रहता है और गुरु से युक्ति जानकर नित्य दृढ़ ध्यानाभ्यास करता है, वह अज्ञानता से छूटकर ब्रह्म को पाता है और पूर्ण रूप से जगकर ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है।

यह प्रवचन बिहार राज्य के संथालपरगना जिलान्तर्गत ग्राम—तेलो, (अब साहेबगंज) में दिनांक ६.३.१९५३ ई० को हुआ था।

४८. भोजन का प्रभाव मन पर भी पड़ता है

प्यारे धर्मप्रेमी सज्जनो!

पापों का नाश करने के लिए लोग यज्ञ, तीर्थ, दान, व्रत आदि करते हैं, किंतु पौराणिक इतिहास से पता चला है कि इस प्रकार दान-पुण्यादि कर्म से पाप नहीं कटता। हाँ, पाप का फल अलग और पुण्य का फल अलग भोगना पड़ेगा। महाराज

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से एक झूठ कहा था। उसके बाद और पहले भी उन्होंने कितने दान-पुण्य आदि किए, भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन तो बारम्बार और बहुत समय तक उनको हुआ ही करता था। किंतु पाप का फल उनको भोगना ही पड़ा। वह फल न भगवान के दर्शन और सान्निध्यता से मिटा, न पुण्य कर्म करने से ही कटा। कर्म—मन से, वचन से और कर्म से; तीन प्रकार से होते हैं। तीनों के फल भी अवश्य होते हैं। हम जो कुछ भी करते हैं, सब पुण्य-ही-पुण्य या सब पाप-ही-पाप नहीं कर सकते। कुछ अच्छे और कुछ बुरे कर्म दोनों अनिवार्य रूप से होते रहते हैं तथा इन दोनों का फल इस लोक और परलोक दोनों में अनिवार्य रूप से भोगना पड़ेगा। कायिक, वाचिक और मानसिक तीन तरह से कर्म होते हैं और कर्म भी तीन तरह के होते हैं। कर्मों में जो पूर्व संस्कार रूप कारण के बिना अथवा प्रारब्ध रूप कारण के बिना हो वह पुरुषार्थ जनित क्रियमाण कर्म कहलाता है। जिनके फल भोगे नहीं गए हैं, जो एकत्र हुए पड़े रहते हैं, वे संचित कर्म कहलाते हैं। और संचित कर्मों में से जिन कर्मों के फल को जीव भोगते हैं, वे प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। हमलोगों के अनेक जन्म हुए हैं, अनेक जन्मों के कर्म को हमलोग भोगते रहते हैं। तीनों कर्मों से छूटने के लिए ध्यानयोग के अतिरिक्त और कोई साधन हो, ऐसा संभव नहीं। ध्यानयोग करनेवाला सदाचारी होगा। अगर सदाचारी नहीं होगा तो उससे ध्यानयोग नहीं बन सकता। इसलिए हमारे यहाँ के सत्संग में पंच पाप—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार का निवारण करने के लिए कहा जाता है। पाप कर्म करनेवाला ध्यान की ओर नहीं जा सकता। कोई झूठ बोलता है, क्यों? पापों को छिपाने के लिए, किसी को ठगने के लिए। सब पापों को छिपाने के लिए झूठ एक आड़—परदा है। झूठ बोलना अनैतिक है। अनैतिक में बरतनेवाला विषयासक्त होगा, वह निर्विषय की ओर बढ़ नहीं सकता। चोरी मत करो। चोरी-कर्म करनेवाला कितना अर्थ लोलुप हैं कि दूसरे का धन छिपकर लेने जाता है। मादक द्रव्यों के सेवन से तामस प्रधान राजसी वृत्ति होती है। ऐसी वृत्तिवाले को ध्यानाभ्यास में सफलता की प्राप्ति नहीं होती। जो व्यभिचारी है, वह काम लोलुप है, विषयासक्त है; वह ध्यानयोग में कैसे बढ़ सकता है।

आहार से मन-बुद्धि पर असर पड़ता है। बकरे का मांस और हिरण का मांस दोनों का एक ही गुण नहीं होता। सोना-भस्म खाने से और गोइठा-भस्म खाने से दोनों एक समान नहीं होता। रजोगुणी भोजन में चंचलता और तमोगुणी भोजन में मूढ़ता उत्पन्न होती है। सात्त्विकी भोजन में सात्त्विक ज्ञान, मनोनिरोध और शान्ति का गुण उपजता है। आजकल के कुछ नए ख्याल के लोग जिनके यहाँ पहले अण्डा नहीं खाया जाता था, अण्डा खाने लगे हैं। सुनकर दुःख होता है। मानव शरीर का उच्च गुण जलचर, थलचर और नभचर आदि पशु-पक्षियों के शरीर में नहीं है। अपने उच्च गुणवाले शरीरों में नीच गुणवाले शरीरों का मांस और अण्डा देकर अपनी बुद्धि को नीच गुणवाले शरीरधारी की बुद्धि की तरह मत बनाओ। क्योंकि भोजन का प्रभाव मन-बुद्धि पर अवश्य होता है। यदि कोई बड़े कह दें कि अण्डा खाने में हर्ज नहीं, तो जानना चाहिए कि उस बड़े से भी भूल हो गई है। यदि डॉक्टरी ख्याल से दूध और अण्डा में एक ही शक्ति है तो भी राजसी, तामसी और सतोगुणी ख्याल से वह भोजन के योग्य नहीं।

अमेरिकावाले और अंग्रेज आदि भी राजनीतिज्ञ थे और महात्मा गांधीजी भी राजनीतिज्ञ थे। वे लोग मांस-मत्स्यादि खानेवाले थे और महात्माजी ये सब नहीं खाते थे। उन लोगों ने दूसरे की खून-खराबी करके अपनी सत्ता स्थापित करना सीखा, किन्तु महात्माजी ने बिना खून-खराबी के ही अपनी सत्ता स्थापित की। खून-खराबी के भोजन से वे लोग जो विज्ञान में बढ़े हुए हैं, दूसरों को मारने के लिए ही यंत्र बनाया है। आज तक वे ऐसा यंत्र नहीं बना सके कि किसी मरे हुए को जिलावें। भारत में अशोक के समान बड़ा राज्य किसी का नहीं हुआ। अंग्रेज का भी यहाँ उतना बड़ा राज्य नहीं हुआ। अशोक बिना खून-खराबी के शासन करते थे, मांस-मछली नहीं खाते थे। हमलोगों के भारत का मस्तिष्क कैसा है? देखिए। अशोक ने कलिंग की लड़ाई में बहुत-से लोगों को मारा था। उनकी स्त्रियाँ लड़ने को आईं। अशोक ने अपनी तलवार रख दी और कहा देवियो! तुम जो चाहो, करो। किंतु अंग्रेज ने एक झांसी की रानी को मारने के लिए कितनी फौजें भेजीं। क्या-क्या उपाय किया और अंत में मार ही दिया। गुरु गोविन्द सिंह के पास सिक्ख शत्रुओं की कई स्त्रियों को कैद करके ले आए। इसपर गुरु गोविन्द सिंह बहुत बिगड़े और उन सब स्त्रियों को उनके घर वापस करवा दिया। और उन्होंने कहा—यदि शत्रु पाप करें तो हम भी वही करें? भोजन का प्रभाव मन पर पड़ता है। इसलिए संतों ने मत्स्य-मांसादि भोजनों को मना किया। ध्यानाभ्यासी को सदाचारी बनना पड़ता है। सदाचारी पाप कर्म नहीं करता। उससे नया कर्म में पाप नहीं हो सकता। तब सञ्चित कर्म जो है, उसको वह भोगता है, किन्तु सांसारिक लोगों के जैसे नहीं। उसको उन कर्मों को भोगने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। ध्यानाभ्यासी को समाधि में कोई दुःख नहीं होता, शरीर ज्ञान में आने से उसे दुःख होता है। परन्तु उसकी सहनशक्ति बढ़ा रहने के कारण वह साधारण मनुष्य की भाँति दुःख में विकल नहीं होता। दिन में गेन्द खेलते समय पैर में चोट लगी, स्वप्न में उस चोट का दर्द नहीं है और सपने में भी गेन्द खेलता है। फिर जगने पर चोट का दर्द भी मालूम होता है और गेन्द नहीं खेल सकता। उसी प्रकार जो समाधि में चला जाता है, इन्द्रियों से ऊपर उठ जाता है, कर्ममण्डलों को पार कर जाता है, उसके संचित और प्रारब्ध कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। इसी तरह जानना चाहिए कि ध्यानयोग से पापों का नाश हो जाता है और कर्मपाश का क्षय हो जाता है। ■

यह प्रवचन संथालपरगना जिलान्तर्गत ग्राम—कोरका के संतमत सत्संग मंदिर में दिनांक ११.३.१९५३ ई० को हुआ था।

४९. ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता एक ही है

प्यारे लोगो!

सब लोग सुख चाहते हैं। सुख भी वह जो सदा रहे और जिसमें संतुष्टि हो। साधारणतया सब लोगों को जो विषयसुख होता है, उसमें सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख दिन-रात की तरह बरबस आते रहते हैं। इसमें पूरी संतुष्टि नहीं, इसलिए पूर्ण सुख भी नहीं। पूर्व के लोगों ने सोचा कि क्या ऐसा भी सुख हो सकता है, जिसके बाद दुःख नहीं है। पहले उन लोगों ने विचारा, देखा—हम संसार की पीठ पर हैं, इसलिए ऐसा होता है।

संसार से ऊपर चले जायँ, तब जो है वह परिवर्तन-शील नहीं। उसी को सब धर्मों के लोगों ने कोई ईश्वर, कोई अल्लाह कहा है। वह संसार से बिल्कुल उलटा है। संसार को पहचानने से पूर्ण सुख नहीं मिलता। पूर्ण सन्तुष्टि नहीं मिलती। किन्तु संसार के परे का जो पदार्थ है, उसको पाने से पूर्ण सन्तुष्टि और पूर्ण सुख होगा। संसार के सुख को इन्द्रियों से प्राप्त करते हैं, किन्तु उस सुख को इन्द्रियों से छू नहीं सकते। हमारी देह-इन्द्रियाँ माया से बनी हुई हैं। इसके अन्दर उस प्रभु का अंश जो इस शरीर में है, उसी से उस सुख को पहचानेंगे। शरीरस्थ उसी ईश्वर अंश को जीव कहते हैं। वह प्रभु भी इस शरीर में है और जीव भी। यही जीव उस प्रभु को छू सकता है। इसको पूर्व के लोगों ने ठीक से सोचा और प्रत्यक्ष पहचानने तथा पाने का यत्न किया। यत्न करने में सफल होने पर इस बात को संसार में विदित कर दिया। देह-इन्द्रियों के संग में रहकर क्या होता है, उसे लोग जानते हैं, किंतु इनका संग छोड़कर लोग देखें कि क्या होता है? शरीर, इन्द्रियों का संग छोड़ने के लिए चलना पड़ेगा। चलने के लिए बना हुआ रास्ता रहता है या रास्ता बना लेते हैं। बड़े-बड़े रास्तों को लोग बनाते हैं, पगडंडी तो चलते-चलते ही बनती है। यूरोप, एशिया आदि सब महादेश के आदमियों के शरीरों में इन्द्रियाँ और द्वार जहाँ एक को हैं, वहीं दूसरे को भी है। तथा इन्द्रिय-द्वारों का कर्म सबका एक-सा है। सब शरीरों में जीवात्मा या रूह का भी रहना एक ही तरह है। इसी तरह परमात्मा की ओर चलने का मार्ग भी सब शरीरों में एक ही तरह है। बाहर में पूजा का ढंग भले ही अलग-अलग हो, किन्तु अन्दर का काम एक ही तरह होगा। भीतर का रास्ता एक ही है। रास्ता किसको कहते हैं? रास्ता कहते हैं लकीर को। जिसका एक किनारा एक स्थान पर हो और दूसरा किनारा दूसरे स्थान पर हो, बीच में कुछ फासला हो। हम जब अपने शरीर में परमात्मा की ओर चलेंगे तो इसका भी शरीर के भीतर-ही-भीतर कोई मार्ग अवश्य चाहिए। जब हम अपने शरीर को जानने लगते हैं, तो इसके दो भाग मालूम होते हैं। एक स्थूल भाग और दूसरा सूक्ष्म भाग। स्वप्न में जाने पर बाहर की इन्द्रियों में जैसे जान ही नहीं रहती है। इत्र यदि कान में या कपड़े में लगा है, तो जगने के समय उसका सुगन्ध मालूम होगा, किन्तु स्वप्न में नहीं। जागने में जीवनीधारा—रूहानी धारा जिस स्थान में रहती है, स्वप्न में वहाँ से भीतर की ओर हो जाती है। तन्द्रा के समय बाहर का कुछ खटखुट मालूम भी होता है और भूलते भी जाते हैं। उस तन्द्रा या अधनिनियाँ में जानने में आता है, शरीर की शक्ति भीतर को खींच रही है, गला झुक जाता है। वैदिक धर्म के माननेवाले को एक तरह, कुरान माननेवाले को दूसरी तरह और बाइबिल को माननेवाले को तीसरी तरह नहीं मालूम होता, एक ही तरह मालूम होता है। इस तरह जाना जाता है कि सब कोई एक तरह भीतर में चलते हैं। चलने में एक चैन मालूम होती है। सब मजहबों के वास्ते ईश्वर से मिलने के लिए चलने में एक ही रास्ता है। किसी पहाड़ पर या किसी समुद्र के तट पर ईश्वर का दर्शन हो जाय, संभव नहीं। पनडुब्बी जहाज से पानी के भीतर जाने पर भी वहाँ ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। चाहे घर में बैठा रहे या मक्का या बद्रीनारायण में उसका दर्शन नहीं होगा। किंतु इन स्थानों में कहीं भी रहे, अपने अन्दर-अन्दर चले तो वहीं दर्शन होगा। बाहर की दुनिया में चलने से शरीर और इन्द्रियों से संग छूटता है। यह स्वप्न में जाने की स्वाभाविक क्रिया से जाना जाता है। भीतर में रवानगी के लिए ख्यालों को छोड़ना

पड़ता है। बहुत चिन्तित आदमी को नींद नहीं आती है। चिन्ताओं को—ख्यालों को छोड़ने से अंतर में प्रवेश करेंगे, ऐसा पहले के लोगों ने सिद्धांत निकाला। किसी प्रकार का ख्याल नहीं रहे, यह भी असंभव है। तो ग्रंथों में लिखा भी है कि अपने को किसी एक पर लगाओ। कोई राम, कोई शिव, कोई गुरु किसी एक पर लगाते हैं। इसलिए हमारे यहाँ मूर्तिपूजन है कि बारम्बार उसको देखो। बारम्बार के दर्शन से उसका रूप अन्दर में छप जाएगा, फिर उसका ध्यान करो। इसलिए नहीं कि केवल उसको दण्डवत् करके चले जाओ। लोग कहते हैं मिट्टी, पत्थर या धातु पूजते हैं। तो मिट्टी, पत्थर या कोई धातु नहीं पूजता है, वह जो उसी शकल को पूजता है—ध्यान करता है। बौद्ध धर्म के लोग बुद्ध की मूर्ति बनाते थे, इसलिए कि मूर्ति बनाते-बनाते उसका रूप उनके हृदय में छप जाता था। कोई भी लिपि लिखो, जब वह दिमाग में छप जाता है, तब लिखते हैं। वैदिक धर्म के अन्दर भी ऐसे लोग हैं, जिनको किसी मूर्ति का ध्यान करना पसंद नहीं होता। किंतु कोई मोटा रूप अवश्य लेते हैं। आर्य समाज में नारायण स्वामी एक साधु हुए। वे पहले बड़ा गोलाकार, फिर छोटा एवम् प्रकार से छोटे-से-छोटा बनाकर ध्यान करने को कहते हैं। कोई ॐ लिखकर ध्यान करते हैं। कोई अल्लाह लिखकर ध्यान करते हैं, कहते हैं चाँदी जैसे चमकने लगता है। कोई फनाफिल लिखकर ध्यान करते हैं। कोई मुर्शिद के चेहरे का ध्यान करते हैं, फनाफिल मुर्शिद हो जाते हैं। उनको विश्वास है कि फनाफिल मुर्शिद से फनाफिल रसूल हो जाएँगे और फिर वही अल्लाह हो जाएँगे। इसमें जिस किसी रूप पर अपनी श्रद्धा हो वह लीजिए। साम्प्रदायिक खैंच में नहीं पड़िए कि खास करके यही होना ही चाहिए। रूप के सहित नाम अवश्य रहेगा और ऊँचे दर्जे में जाकर नाम रहेगा और रूप नहीं रहेगा। अर्थात् शकल नहीं रहेगा, निराकार नामी और नाम रहेगा। कोई-न-कोई एक शब्द जपना, वह भी एक पर अपने को लगाना है। किसी एक रूप पर मन लगाना यह भी मन को एकओर करना है, किन्तु यह पूर्ण रूप से एकओर होना नहीं है। वर्णात्मक शब्दों का टुकड़ा वर्णों में होता है और मूर्ति का अंग-प्रत्यंग में। शब्द जपने में और रूप ध्यान करने में भी कुछ फैलाव है, पूर्ण सिमटाव नहीं। इसलिए किसी ऐसा एक पर आओ, जिसमें फैलाव नहीं। वही है नोख्ता या विन्दु। इसमें फैलाव नहीं है, देखने के यत्न से देखो। इसको मन से बनाने की आवश्यकता नहीं। पेन्सिल की नोक जहाँ रखेंगे, वहीं विन्दु बनेगा, उसी प्रकार दृष्टि की नोंक जहाँ रखेंगे, वहीं ज्योतिर्विन्दु का उदय होगा। किंतु इसका गुर किसी गुरु से जानना चाहिए। एक स्थान पर दृष्टिधारों के आकर टिकने से विन्दु उदय होता है और पूर्ण सिमटाव हो जाता है।

सुन्नहि मारग आइया, सुन्नहिं मारग जाइ।
चेतन पैंड़ा सुरति का, दादू रहु ल्यौ लाइ।।

—संत दादू दयाल

यही रास्ता का छोर है। यहीं से रास्ता पर चलकर ईश्वर के पास सब धर्म के लोग जाते हैं। शरीर-इन्द्रियों को छोड़कर शरीर के अन्दर-अन्दर चलते हैं। यही एक रास्ता है। पथिक को ब्रह्मज्योति का सहारा मिलता है। एकविन्दुता प्राप्त करने पर उसको प्रकाश मिल जाता है, यही रास्ता और सहारा होता है। जिस प्रकार जल में तैरनेवाले का रास्ता भी जल ही है और सहारा भी जल ही है, उसी प्रकार प्रकाश ही सहारा और रास्ता भी है। इसके बाद—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

विन्दुपीठं विनिर्भिद्य नाद लिंगमुपस्थितम्।

—योगशिखोपनिषद्

केवल नाद रहेगा, ओ३म् रहेगा, इसमें आजम रहेगा। यह ज्योतिर्मार्ग और शब्दमार्ग सबके लिए है, जो अपने अन्दर प्रवेश करता है। हाँ, एक बात अवश्य है कि ज्योति छूट जाती है और शब्द रह जाता है, किन्तु यह शब्द भी जहाँ जाकर लय हो जाता है, वहीं रास्ता का ओर या अन्त हो जाता है। तब आप रह जाएँगे और आपको प्रभु मिल जाएँगे। इसी मार्ग का उपदेश गुरु महाराज करते थे।

सुरत शिष्य शब्दा गुरु मिलि मारग जाना हो।

—तुलसी साहब

हम सब लोगों का ईश्वर एक है, उस तक पहुँचने के लिए रास्ता भी एक ही है; उस अन्तर मार्ग को पकड़कर हमलोग चलें।

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत आशानन्दपुर परवत्ती के संतमत सत्संग मन्दिर में दिनांक १२.३.१९५३ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

५०. गोद में बालक नगर में ढिंढोरा

प्यारे लोगो!

संतमत-सत्संग में प्रधान उपदेश ईश्वर-प्राप्ति का है। मुख्यता इसी विषय की रहती है। केवल इसी का उपदेश हो और संसार में जीवन-यापन का कोई विषय नहीं हो, ऐसा नहीं। संतों के सदुपदेशों को जानकर संसार में निरापद रह सकते हैं। जैसे—

'छिमा गहो हो भाई, धरि सतगुरु चरनी ध्यान रे।
मिथ्या कपट तजो चतुराई, तजो जाति अभिमान रे।।
दया दीनता समता धारो, हो जीवत मृतक समान रे।।
सुरत निरत मन पवन एक करि, सुनो शब्द धुन तान रे।।
कहै कबीर पहुँचो सतलोका, जहाँ रहे पुरुष अमान रे।।'

'भाई कोई सतगुरु संत कहावै, नैनन अलख लखावै।।
डोलत डिगै न बोलत बिसरै, जब उपदेश दृढ़ावै।
प्रान पूज्य किरिया तें न्यारा, सहज समाधि सिखावै।।
द्वार न रूंधे पवन न रोकै, नहिं अनहद अरुझावै।
यह मन जाय जहाँ लग जबहीं, परमातम दरसावै।।
करम करै निःकरम रहै जो, ऐसी जुगत लखावै।
सदा विलास त्रास नहिं मन में, भोग में जोग जगावै।।
धरती त्यागी अकासहुँ त्यागै, अधर मड़इया छावै।
सुन्न शिखर के सार सिला पर, आसन अचल जमावै।।
भीतर रहा सो बाहर देखै, दूजा दृष्टि न आवै।
कहै कबीर वसा है हंसा, आवागमन मिटावै।।'

—कबीर साहब

कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।
सो ध्यानी परमान, सुरत से अण्डा सेवै।
आप रहै जल माहिं, सूखे में अण्डा देवै।।
जस पनिहारी कलस भरे, मारग में आवै।
कर छोड़ै मुख वचन, चित्त कलसा में लावै।।
फणि मणि धरै उतारि, आपु चरने को जावै।
वह गाफिल ना परै, सुरति मणि माहिं रहावै।।
पलटू सब कारज करै, सुरति रहै अलगान।
कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।

—पलटू साहब

कर से कर्म करो विधि नाना। मन राखो जहँ कृपा निधाना।।

संतों की वाणी में इस तरह सांसारिक कार्यों के सम्पादन सहित ईश्वर-दर्शन के साधन का वर्णन है और उनकी वाणी में ईश्वर से प्रेम और उसकी प्राप्ति के विषय का भी प्रचुर वर्णन है। जहाँ प्रेम है, वहाँ भक्ति है; जहाँ प्रेम नहीं, वहाँ भक्ति

नहीं। बिना श्रद्धा या विश्वास के प्रेम नहीं होता है। ईश्वर की सत्ता और प्रभुताई जानने पर आपको ईश्वर में श्रद्धा होगी, प्रेम होगा और उसके प्रति भक्ति होगी। संतों ने कहा है—ईश्वर, परमात्मा की स्थिति अवश्य है, इसको आप अन्धविश्वास से मान लें, सत्संग का यह आग्रह नहीं है। बल्कि तर्कयुक्त विचार से भी इसे मानिए। यदि वहाँ तक आपका विचार नहीं जाता है, तो आप इसके लिए यत्न कीजिए। करते-करते यत्न का अन्त होगा, तब आपको मालूम होगा, उसकी—परमात्मा की स्थिति है या नहीं? संतों के ग्रंथों में परमात्मा उस परम पदार्थ को माना गया है, जो आदि अन्त रहित स्वरूपत: असीम और अज है।

आप पहले अज पर विचार लीजिए। अज का मतलब जो जन्म नहीं ले। जो जन्म लेता है, उसका जन्म माता के पेट से भले नहीं हो, किंतु किसी तरह उत्पन्न होना भी एक प्रकार का जन्म है। अब विचारणीय है कि ऐसा कुछ है कि नहीं, जो किसी से उपजा नहीं, बना नहीं और बनाया गया नहीं। संसारके पदार्थों में विचार को दौड़ाइए तो मालूम होगा कि यह पदार्थ इससे जनमा और वह पदार्थ उससे हुआ। इस प्रकार का ज्ञान आजकल भौतिक विज्ञान देगा। इससे विशेष दर्शनशास्त्र ज्ञान कराता है। दर्शनशास्त्र केवल विचार में समझाता है। आधिभौतिक-विज्ञान प्रयोग द्वारा दिखा देता है। दर्शन जितना बोध करा देता है, उन सबको आधिभौतिक-विज्ञान प्रत्यक्ष नहीं करा सकता। आधिभौतिक-विज्ञान के प्रत्यक्ष प्रयोग को हम इन्द्रियों से देखते हैं। आधिभौतिक विज्ञान स्थूल इन्द्रियों को प्रत्यक्ष कराता है। भले ही इस आँख से नहीं देखते हैं, तो खुर्दबीन आदि लगाकर दिखाते हैं। किंतु आखिर आपको उसका ज्ञान इन्द्रियों से ही होता है। दर्शनशास्त्र इससे आगे बतलाता है। मन को पकड़ने का यंत्र अभी तक नहीं निकला है; क्योंकि यह स्थूल इन्द्रियों से ऊपर की चीज है। दर्शनशास्त्र सूक्ष्म भौतिक ज्ञान का बोध कराता है, फिर अभौतिक का भी बोध कराता है। दर्शन मायिक और अमायिक दोनों का बोध कराता है। परंतु भौतिक-विज्ञान स्थूल मायिक तत्त्व तक रहता है। फिर भी कहा जाता है कि अभी यह अपूर्ण है, कब पूर्ण होगा, ठिकाना नहीं। भौतिक-विज्ञान के सहारे जो कोई ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं, वह असंभव को संभव करना चाहते हैं। भौतिक-विज्ञान को स्थूल मायिक पदार्थों की प्रत्यक्षता होती है। भौतिक-विज्ञान से जो ऊपर है, जो अमायिक है, वह भौतिक-ज्ञान से प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? यहाँ पर परमात्मतत्त्व है,यह अभौतिक है, निर्मायिक है, इसको भौतिक-विज्ञान से कोई जान नहीं सकता। दर्शनशास्त्र कह सकता है कि उसकी स्थिति है। जैसे कहते हैं—वह अनादि है, असीम है, अजन्मा है। संसार में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ से तथा दूसरे तीसरे से उत्पन्न होते हैं। सांसारिक पदार्थों में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो सदा से हई है, कभी जन्म नहीं लिया है। स्थूल इन्द्रियों के ज्ञान में जो है, उसमें अज कुछ भी नहीं है। माया का अर्थ छल है। इन्द्रिय-गोचर निश्छल पदार्थ तो कुछ हई नहीं है। सांसारिक पदार्थ रहता है और नहीं भी रहता है। गंगाजी की धारा यहाँ थी, अब नहीं है। गंगाजी यहाँ नहीं थी, अब है और प्रलय होने पर फिर नहीं रहेगी। संसार के जितने पदार्थ हैं, सब होते हैं, विनसते हैं, इसलिए सांसारिक पदार्थ कोई अज नहीं है। जो पदार्थ अज नहीं है, उसे अविनाशी मानने के लिए बुद्धि नहीं मानती। भगवान श्रीराम तथा श्रीकृष्णजी आए, उनको लोग अपने देश में भगवान मानते हैं। वे संसार में आए और चले गए। रूप में अदल-बदल हुआ। वाल्मीकीय रामायण में है—'श्रीराम बहुत

लोगों के साथ सरयू नदी के जल में गए। सबकी देह छूट गयी और श्रीराम की देह छूटी तो नहीं, देह बदल गया।' परंतु महाभारत में तो उनका भी शरीर छूटना लिखा है। (रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम। योऽन्वकम्पत वै नित्यं प्रजाः पुत्रानि वौर सान।। शान्ति-पर्व, राजधर्म अ० २९, किसी-किसी प्रति में यह श्लोक अ० २८ में है। पुनः—रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम। यं प्रजा अन्वमोदतं पिता पुत्रानि वौर सान।। द्रोणपर्व। दशरथजी के पुत्र रामचन्द्रजी को देह छोड़नेवाला सुनते हैं। महाभुजवाले रामचन्द्रजी ने ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त राज्य किया। वह भी तुझ (सृंजय) पिता-पुत्र से अधिक पुण्यात्मा, दानी, प्रतापी होकर इस अनित्य शरीर को त्याग गए। फिर तू पुत्र शोक व्यर्थ करता है।) श्रीराम जिस समय जन्म लिए चतुर्भुजी रूप थे। माता बोली— बालक रूप बनिए, तो भगवान श्रीराम उस रूप को छोड़कर बालक रूप में आ गए। श्रीकृष्ण के लिए तो लिखा है उनका शरीर छूटा (ततः शरीरे रामस्य वासुदेवस्य चोभयोः। अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः।। महाभारत मूसलपर्व अ० ७, 'यः स मेघवपुः श्रीमान्बृहत्पंकज लोचनः। सकृष्णः सः रामेण त्यक्त्वा देहं दिवं गतः।।' महाभारत मूसलपर्व अ०९।) जिनका दाह अर्जुन ने किया। भागवत में लिखा है जैसे कोई एक काँटे से दूसरे काँटे को निकालकर फिर दोनों को फेंक देते हैं, उसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने दुष्ट के विनाश के लिए जो नर शरीर धारण किया था। उससे दुष्टों का विनाश कर अपना उस नर शरीर को छोड़ दिया। (ययाऽहरद् भुवो भारं तां तनुं विजहावजः।। कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापीशितुः समम्। —श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अ० १५। यथा मत्स्यादि रूपाणि धत्तेजह्याद् यथा नटः। भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम्। —श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अ० १५। अर्थात् भगवान कृष्ण ने लोक दृष्टि में जिस यादव शरीर से पृथ्वी का भार उतारा था, उसका वैसे ही परित्याग कर दिया, जैसे कोई काँटे-से-काँटा निकालकर फिर दोनों को फेंक दे। भगवान की दृष्टि में दोनों ही समान हैं। जैसे वे नट के समान मत्स्यादिरूप धारण करते हैं और उनका त्याग कर देते हैं,वैसे ही उन्होंने जिस यादव शरीर से पृथ्वी का भार दूर किया था उसी का त्यागकर दिया। लोकाभिरामाः स्वतनु धारणा ध्यान मंगलम्। योग धारणयाऽऽग्ने -याऽऽदग्ध्वा धामा विशत्स्वकम्।। —श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० ३१।

अर्थात् भगवान का श्रीविग्रह उपासकों के ध्यान और धारण का मंगलमय आधार है और समस्त लोकों के लिए परम रमणीय आश्रय है, इसलिए उन्होंने अग्नि देवता संबंधी योग धारण के द्वारा उसको जलाया नहीं सशरीर अपने धाम में चले गए। महाभारत और श्रीमद्भागवत दोनों के कर्ता व्यासदेव माने जाते हैं। उद्धृत किए गए महाभारत के श्लोकों के विषय का मेल तो श्रीमद्भागवत के पहले स्कन्ध के श्लोकों से मिलता है। परंतु श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध से उद्धृत किया हुआ श्लोक से वह मेल नहीं मिलता है। इसलिए पहले स्कन्ध के श्लोकों के विषय का पक्ष विशेष दृढ़ जान पड़ता है।) इस प्रकार का शरीर भी अज नहीं है। कोई भी व्यक्त या इन्द्रियगोचर पदार्थ को अज अविनाशी नहीं मान सकते। प्रत्येक देह में अव्यक्त आत्मा है। मनुष्य अपनी देह को देखता है, किन्तु अपने को नहीं। अपने अन्दर दृष्टियोग साधन से दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर भी आत्मस्वरूप देखा नहीं जा सकता। आत्मा अव्यक्त तत्त्व है। आपकी एक-एक देह में वह अव्यक्त भरा है। किसी का शरीर छूट जाने पर—मर जाने पर उसका मृत शरीर रहता है। किंतु वह बोलता,

चलता और कुछ करता नहीं। जिससे बोलता, चलता और कुछ करता था, वह क्या है? वह ज्ञानमय अव्यक्त पदार्थ है। वह चेतन तत्त्व है। चेतन तत्त्व अव्यक्त है, किंतु उसका कार्य व्यक्त होता है। शरीर में चेतन के रहने से शरीर हिलता डुलता है तथा उसके नहीं रहने से शरीर निश्चेष्ट रहता है, इससे मालूम होता है कि चेतन चलनात्मक है। तब यह कहेंगे कि उसका जनम हुआ या नहीं? शरीर के मरने पर वह मरा या नहीं? तो उसके मरने की बात नहीं। स्थूल शरीर का विनसना बारम्बार होता है, किन्तु सूक्ष्म देह का विनसना स्थूल की भाँति नहीं होता। अब इसपर विचार करते हैं कि यह आदि-अंत-रहित है कि नहीं? जो आदि-अंत-रहित हो, असीम हो, उससे बचा हुआ कुछ खाली स्थान नहीं रह सकता है। जब खाली स्थान नहीं है, तब वह हिल-डोल कैसे सकता है? चेतन चलनात्मक है, इसलिए उसके अगल-बगल में खाली जगह है। इसलिए यह असीम नहीं है, सादि सांत है। उसके अतिरिक्त कुछ दूसरा पदार्थ होगा, जो कम्पनमय नहीं होगा, ध्रुव होगा। आदि-अन्त सहित ससीम के बाद कुछ नहीं है, कहना बुद्धि के विपरीत है। सादि सांत के बाद अनादि अनंत तत्त्व है, यह बुद्धि को मानना पड़ता है। जो अनादि अनंत है, असीम है, वह ध्रुव है, निश्चल है। ऐसा एक पदार्थ का होना अवश्य मानना पड़ेगा। असीम जो होगा, वह अजन्मा होगा। वह किसी से जन्मा हुआ नहीं होगा। जो चलनात्मक है, उसका पैदा होना उसी परमात्मा से हुआ है। जिस प्रकार आकाश से हवा उत्पन्न होती है। यदि शून्य नहीं रहे तो हवा नहीं पा सकते। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है। आकाश से वायु उपजती है। आकाश ध्रुव है, कँपता नहीं है, किन्तु हवा कँपती है। उसी प्रकार परमात्मा से चेतन उपजा है। चेतन-मण्डल बहुत बड़ा है, किन्तु वह अज नहीं है। वह कारणरूप नहीं, कार्यरूप है। संतों ने कहा, मायिक पदार्थ को पकड़े हो, तब देखो तुम्हारी क्या हालत है? कभी तृप्ति नहीं होती और दरिद्रता छूटती नहीं है। 'नहिं दरिद्र सम दुःख जग माहीं। संत मिलन सम सुख कछु नाहीं।।' किसी को बहुत धन है, किंतु उसको तृप्ति नहीं है, तो वह महादरिद्र है। संतों ने कहा—यहाँ तुमको सुख, संतोष और तृप्ति नहीं हो सकती। तुम छल की दुनिया में पड़े हो। इससे परे परमात्मा को पकड़ो तो तुम तृप्त हो जाओगे। उसको पकड़ना तो दूर है, किंतु यदि तुम उसके पकड़ने के रास्ते पर चलो तो तुमको शांति और तृप्ति मिलने लगेगी। उस प्रभु को अपने अंदर में पकड़ो। जो अपने घर में वस्तु है और बाहर में भी है, तो घर में लेना सुगम होगा कि बाहर का लेना? गोदी में बालक शहर में ढिंढोरा। कभी-कभी ऐसा होता है, गमछा कंधे पर है और बाहर में खोजते हैं।

अपुनपौ आपुन ही में पायो।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।।
ज्यों कुरंग नाभि कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो।
फिर चेत्यो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तन छायो।।
राज कुँआर कण्ठे मणि भूषण, भ्रम भयो कह्यो गँवायो।
दियो बताइ और सत जन तब, तनु को पाप नशायो।।
सपने माहिं नारि को भ्रम भयो, बालक कहुँ हिरायो।
जागि लख्यो ज्यों को त्यों ही है, ना कहूँ गयो न आयो।।
सूरदास समुझै की यह गति, मन ही मन मुसुकायो।
कहि न जाय या सुख की महिमा, ज्यों गूँगो गुर खायो।।

—सूरदासजी महाराज

अपने अन्दर तलाश करो। इसका यत्न संतों ने सिलसिले के साथ बताया है। तुलसी साहब का छन्द है—

'हिये नैन सैन सुचैन सुन्दरि। साजि श्रुति पिउ पै चली।।
गिरि गवन गोह गुहारि मारग। चढ़त गढ़ गगना गली।।
जहाँ ताल तट पट पार प्रीतम। परसि पद आगे अली।।
घट घोर सोर सिहार सुनि कै। सिंध सलिता जस मिली।।
जब ठाट घाट वैराट कीना। मीन जल कंवला कली।।
आली अंस सिंध सिहार अपना। खलक लखि सुपना छली।।
अस सार पार सम्हारि सुरति। समझि जगजुग जुग जली।।
गुरु ज्ञान ध्यान प्रमान पद बिन। भटकि तुलसी भौ मिली।।'

'जब बल विकल दिल देखि विरहिन। गुरु मिलन मारग दई।
सखी गगन गुरुपद पार सतगुरु। सुरति अंस जो आवई।।
सुरति अंस जो जीव घर गुरु। गगन वस कंजा मई।।
आली गगन धार सवार आई। ऐनि वस गोगुन रही।।
सखी ऐन सूरति पैन पावै। नील चढ़ि निर्मल भई।।
जब दीप सीप सुधार सजकै। पछिम पट पद में गई।।
गुरु गगन कंज मिलाप करिकै। ताल तज सुनि धुनि लई।।
सुनि शब्द से लखि शब्द न्यारा। प्राल बद जद क्या कही।।
जेहि पार सतगुरु धाम सजनी। सुरति सजि भजि मिलि रही।।
जस अलल अंड अकार डारै। उलटि घर अपने गई।।
यहि भांति सतगुरु साथ भेंटै। कर अली आनन्द लई।।
दुःख दाव कर्म निवास निसदिन। धाम पिया दरसत बही।।
सतगुरु दया दिल दीन तुलसी। लखत भै निरभै भई।।'

अपने अन्दर की दृष्टि से अपने को सजाकर सुरत सुन्दरी अपने पिउ के पास चली। दृष्टि आपके पास है, उसे अन्तर्मुखी कीजिए। अन्तर्मुख होने से अन्तर की यात्रा कर सकेंगे। बाहर के दर्शन को कोई परमात्मा का दर्शन कहे तो मेरी समझ में नहीं आती। बाहरी इन्द्रियों से उसे कोई ग्रहण नहीं करता। वह इन्द्रियों से परे है। बाहर की इन्द्रियों से खोज करनी थोथी खोज है। आँख से सुनना चाहें तो कैसे होगा? उसी प्रकार इन्द्रियों से ईश्वर को ग्रहण करना नहीं हो सकता। इसको चेतन आत्मा ही पहचान सकती हैं, इसके लिए अन्तर-ही-अन्तर चलना होगा। सन्तों ने विश्वास दिलाया कि एकबार भी यदि भीतर में पाओगे, तो बाहर भीतर एक ही हो जाएगा। 'बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुर गिआन बताई।' (गुरु नानक) संतों के विचार में ऐसा ही है और सदग्रंथों में भी ऐसा ही है। इसपर विश्वास रखना चाहिए। उपर्युक्त साधन में अनिवार्य रूप से सदाचार का पालन करना पड़ता है, जिससे संसार में भी निरापद रहना पूर्ण संभव है।

यह प्रवचन पूणियाँ जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मंदिर, मनिहारी में दिनांक २१.३.१९५३ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

५१. आध्यात्मिकता की ओर चलिए

प्यारे लोगो!

संसार की सँभाल बहुत जरूरी है। साथ ही यह भी जरूरी है कि संसार के उस पार में देखो। संसार में जबतक जीवन रहता है, तबतक इसकी सँभाल किए बिना आराम नहीं मिलता। संसार के पार में क्या है, इसकी खबर यदि नहीं लो तो वह आराम, जिस आराम के बाद कोई तकलीफ नहीं आती, जिसके बाद कोई दूसरा आराम पाने की इच्छा नहीं होती, वह आराम नहीं मिलता। संसार में बहुत थोड़ी देर का आराम मिलता है। इस आराम या चैन का सुख क्षणिक है—अपूर्ण है। किंतु संसार के बाद का सुख कल्याणपूर्ण और नित्य है।

संतों ने कहा है कि संसार के कामों को भी करो और संसार के पार में भी दखने की कोशिश करो।

पलटू कारज सब करै सुरति रहै अलगान। —पलटू साहब

इसके लिए यत्न सीखो और अमल (अभ्यास) करो। उस अभ्यास को बढ़ाओ। ऐसी बात नहीं कि संसार का काम करते हुए वह अमल नहीं होगा। शंकराचार्य के हाथ में कितना काम था, फिर भी वे लोगों को रास्ता बताते फिरते थे कि जिससे संसार का कल्याण हो। शंकराचार्य का कुटुम्ब समस्त संसार था—'वसुधैव कुटुम्बकम्।' संतों ने कहा है कि नैतिकता के पतन से दुःख पाओगे। सदाचारहीन होने से नैतिक पतन होगा। सदाचार का पालन करो। सदाचार का पालन करना, बिना आध्यात्मिक ज्ञान के नहीं होगा। केवल आधिभौतिक पदार्थों को लेते रहो, तब तुम सदाचारी बनोगे, यह नहीं होगा। संसार का पदार्थ येन-केन विधि से ले सकोगे, किंतु जो रूहानी चीज है, उसको जिस-तिस तरह से नहीं ले सकोगे। दुरुस्त और ठीक एखलाक वा त्रुटि-विहीन सदाचार से ही अध्यात्म-तत्त्व का पाना हो सकता है, जिसमें शांतिदायक सुख है। सदाचार के पालन में लगे रहने से नैतिकता का पतन नहीं होगा और जनता में नैतिकता की बढ़ती से संसार सुखी हो जाएगा। यदि सदाचार से गिरे तो नैतिक पतनवालों को संसार में चैन कहाँ? श्रीशंकराचार्य जी महाराज ने लोगों को उपदेश दिया और इसमें उन्हें बहुत कष्ट तथा परिश्रम हुआ, तो भी उन्होंने जनसुख हेतु कथित परिश्रम को नहीं छोड़ा।

श्रीशंकराचार्यजी महाराज का जिस समय आविर्भाव हुआ, उस समय आजकल की तरह सवारियों की भरमार सुविधा नहीं थी। पैदल ही उन्होंने सारा देश भ्रमण कर अपना ज्ञान फैलाया। उन्होंने 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की पुकार लगायी। संन्यासी होते हए उन्होंने देश का बहुत बड़ा काम किया। देश में सदा अध्यात्मवाद का प्रचार होते रहना चाहिए। यह विश्वास मत करो कि केवल भौतिकवाद में ही शान्ति और संतुष्टि मिलेगी, ऐसा कभी नहीं हुआ और न कभी होगा। आध्यात्मिकता की ओर बढ़ो और सांसारिक वस्तुओं को भी सँभालते रहो। मैं देखता हूँ कि आजकल देश में नैतिक पतन हो गया है। जो जिस कदर खाने-पहनने पाते हैं, उसी में किसी तरह गुजर करते हैं। किंतु सदाचार का पालन हो, अध्यात्म-ज्ञान हो, तो जिन्हें खाने-पहनने कम मिलते हैं, उन्हें विशेष मिल जायँ।

हमारी सरकार देश को सुखी बनाने के लिए विधान बनाती है, किन्तु उस विधान के रहते हुए भी नैतिक पतन के कारण लोग अन्न और वस्त्र की कमी को अत्यधिक महसूस करते ही हैं। इसलिए नैतिक पतन न हो, इसके लिए सदाचार का पालन कीजिए। इस सदाचार का अवलम्ब ईश्वर की भक्ति है। ईश्वर की भक्ति कीजिए अर्थात् आध्यात्मिकता की ओर चलिए। योग, ज्ञान और ईश्वर भक्ति; सब संग-संग मिले-जुले हुए हैं। बिना ज्ञान के किसकी भक्ति हो, जान नहीं सकते। भक्ति सेवा को कहते हैं। सेवा में क्या ईश्वर का पैर दबाया जाय या उनको कोई बीमारी है, जो उनकी चिकित्सा की जाय? परंतु परमात्मा के लिए यह सेवा नहीं है, यह सेवा साधारण लोगों के लिए है।

एक राजा शिकार खेलने के लिए जंगल गया। वहाँ उसने एक भोले-भाले सुन्दर बालक को देखा। उस बालक की सुन्दरता पर मुग्ध होकर राजा ने उसे अपने यहाँ ले जाने की इच्छा उस बालक के समक्ष प्रकट की। बालक बोला—'राजा! यदि तुम मेरी शर्त को मंजूर करो तो मैं तुम्हारे साथ जाऊँ।' शर्त यह थी कि मुझे खिलाओ, तुम

मत खाओ; मझे अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनाओ, तुम मत पहनो तथा मुझे सुलाओ, तुम मत सोओ, तुम जगकर मेरी रक्षा करो।

राजा ने कहा—'ऐसा तो नहीं होगा, किन्तु मैं जैसा खाऊँगा तथा पहनूँगा, उसी तरह तुम्हें खिलाऊँगा तथा पहनाऊँगा और जिस तरह मेरे सोने पर पहरे- दार पहरा करते हैं, उसी तरह तुम्हारे सोने पर भी पहरा होगा।'

बालक बोला—'मुझे ऐसा मालिक नहीं चाहिए। मेरा मालिक तो मुझे खिलाता है, किंतु स्वयं नहीं खाता, मुझे वस्त्र पहनाता है, किंतु वह स्वयं नहीं पहनता। मैं सोता हूँ और वह जगकर मेरा पहरा करता है।'

परमात्मा के लिए खाना, पीना, पहनना और सोना नहीं। उस प्रभु की सेवा क्या होगी? उनके पास जाओ, अपने को उनके पास हाजिर करो, यही उनकी सेवा है।

ऐसी सेवकु सेवा करै। जिसका जीउ तिसु आगे धरै।।

—गुरु नानक साहब

अपने को ईश्वर के चरणों में समर्पित करो, यही संयम है। शम-यम के पालन के साथ त्रिवेणी पर सुमिरण करो।

सहज समर्पण सुमिरण सेवा। तिरवेणी तट संयम सपरा।।

—दादू दयालजी

ऐसा ही सेवक ईश्वर से मिलता है। सदाचार का पालन करना जरूरी है। सदाचार के पालन से संसार में सुख और परलोक में भी मोक्ष मिलेगा। सब लोगों को इसका पालन करना चाहिए। ◻

यह प्रवचन पूणियाँ जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मंदिर, मधुबनी में दिनांक २८.३.१९५३ ई० को सत्संग में हुआ था।

५२. मनुष्य अपने स्वरूप को जाने

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संसार के जितने प्राणधारी हैं, सबको अपना सुख बहुत पसन्द है। अपने सुख को छोड़कर कोई भी आनन्दित नहीं होता। सुख के लिए सभी कोशिश करते हैं। इसके लिए सभी परिश्रम करते हैं। सुख को पहचानना चाहिए। बच्चे खेल-कूद में सुख समझते हैं। कुछ दिनों के बाद वे खेल-कूद को छोड़ देते हैं, जिस तरह वे बचपन में खेलते हैं। या तो विद्याध्ययन करते हैं अथवा घर के कामों में लगते हैं। जवान लोग विषयों को भोगते हैं, उसमें सुख मानते हैं। उम्र बढ़ने पर फिर कुछ ज्ञान-ध्यान की बात समझने लगते हैं और तब इसी में सुख मानने लगते हैं। सबको इस सुख के लिए चेष्टा करनी चाहिए। धर्म को सभी चाहते हैं, लेकिन बिना कर्म के धर्म नहीं होता। सुख के पहले थोड़ा दुःख उठाना होता है। शिक्षा पाने के पहले बच्चे शिक्षा पाने में दुःखी होते हैं, फिर वे सुखी होते हैं। जो विषय में सुख समझते हैं, उसके बाद जो निर्विषय सुख है, उन्हें उसको भी समझना चाहिए। इहलोक के सुख को छोड़ने से परलोक के सुख की प्राप्ति होती है। परलोक को पाने के लिए जब दत्तचित्त होते हैं, उसको पाने पर तब धीरे-धीरे वे इधर के सुख को छोड़ते हैं और उधर के सुख को पाने लगते हैं। कितने यहाँ के सुख के सुख में लगे रहते हैं और परलोक के सुख का ख्याल नहीं करते, यह ठीक नहीं है। संतों ने कहा है कि

परलोक सुख को भी देखो। इन्द्रियजन्य सुख को सुख कहें, यह ठीक नहीं है। भौतिक के बाद आध्यात्मिक है, उसके लिए भी यत्न करना चाहिए। जो आध्यात्मिक सुख पाने की कोशिश करता है, वही धर्मवान होता है। वही इस लोक और परलोक; दोनों में सुखी रहता है। हमलोग सुख चाहते हैं। संसार में धनवान, प्रतिष्ठावान, शक्तिमान किसी तरह से कुछ बनकर रहो, उसमें कभी दुःख न आवे, सुख-ही-सुख रहे, ऐसा नहीं होता। बड़े-बड़े हुकूमतवाले, बड़े-बड़े ज्ञानी आए, राजराजेश्वर आए, उन सबको सुख के साथ दुःख भोगना पड़ा। श्रीराम, श्रीकृष्ण जैसे अवतारी पुरुषों के जीवन में भी ऐसा नहीं मालूम होता है कि उनको दुःख नहीं हुआ। इसलिए परलोक के सुख की ओर देखना चाहिए। हमलोग शरीर और संसार के बंधन में पड़े हैं, इनसे छूटना चाहिए। यह शरीर स्थूल हाड़-मांस-चाम का बना हुआ है। इसकी आयु है। आयु भोगकर १०० वा ५० वर्ष में ही यह शरीर छूट जाता है, लेकिन इसके छूटने से ही मुक्ति नहीं होती। जड़ के चार शरीर होते हैं, वे सभी छूट जायँ तब मुक्ति होती है। आयु पूरी होने पर जो शरीर छूटता है, इससे मुक्ति नहीं होती है। अपने अख्तियार से स्थूल-सूक्ष्म आदि चारों शरीरों को छोड़ता है, तब मोक्ष पाता है, उसको दुःख नहीं होता। जीवनकाल में जो बंधनों से छूटे होते हैं, वे जीवनमुक्त कहाते हैं। ऐसे पुरुष भी सत्संग करते हैं। संसार में रहकर वे संसार का उपकार करते हैं। संसार में रहकर भी सुखी रहो, इसके लिए उद्यमी, पुरुषार्थी बनो, डरपोक नहीं। जो आलसी हैं, अनुद्यमी हैं, वे दुःखी होते हैं। जो साहसी, पुरुषार्थी, उद्यमी और परिश्रमी होते हैं, वे संसार में सुखी होते हैं और परलोक का यत्न करने पर वहाँ भी सुख पाते हैं।

रामचरितमानस में है कि श्रीराम राज्य करते थे, उनकी सारी प्रजा सुखी थी, उनका राज्य बहुत अच्छा था। उन्होंने देखा कि केवल ऐहिक सुख ही हो, परलोक सुख नहीं हो तो प्रजा को अवश्य दुःख होगा। इसलिए उन्होंने एक सभा की और उपदेश दिया। यद्यपि उनके गुरु भी उस सभा में थे, जो बड़े ज्ञानी थे। उस सभा में और बड़े-बड़े ज्ञानी विद्वान भी थे। उनलोगों से नहीं कुछ कहलाकर स्वयं कहा। ऐसा क्यों? इसमें बात है कि कोई विद्वान और कोई महात्मा हैं तो उनको उपदेश देने का बल है और राजा उपदेश देता है तो उसको उपदेश देने का भी बल है और शासन का भी बल है। इसलिए उन्होंने अपने से अपनी प्रजा को उपदेश दिया। श्रीराम ने जो पहली बात कही, वह यह कि 'बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहि गावा।।' मनुष्य शरीर पानेवाले सभी बड़े भाग्यवान हैं, चाहे वे कोई भी कहीं के हों। एक नीच कुल का लोग अगर मोक्ष का यत्न करके उसको पाता है, तो उसका सुख जैसा उनको मिलता है, उच्चवर्ण के लोग यत्न करेंगे तो उनको भी वैसा ही सुख मिलता है। आप देखते हैं कि मनुष्य ही बाघ, सिंह और हाथी को भी काबू में करके नाच तमाशा करवाता है। आप जानते हैं कि आराधना के द्वारा देवताओं को भी मनुष्य वश में कर लेते हैं। इसलिए यह शरीर बहुत उत्तम है, जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है। इस शरीर को पाकर यदि आप पशुओं की तरह विषयों में लगे रहो तो क्या हुआ? आप किसी रूप को देखकर प्रसन्न होते हैं, शब्द सुनकर प्रसन्न होते हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द; ये पाँच प्रकार के विषयों को लोग भोगते हैं। इन्हीं विषयों के भोगों को सुख कहते हैं। ये पाँचो विषयसुख पशु में भी हैं। साँप विषैला जन्तु है। शब्द से उसको ऐसा प्रेम है कि शब्द सुनकर मस्त हो जाता है और नाच दिखाता है।

उसको भी अपनी जिभ्या में जो स्वाद मालूम होता है, खाता है। मनुष्य भी पंच विषयों में लगा रहा तो क्या विशेष हुआ? मनुष्य को सोचने-विचारने की शक्ति है। मनुष्य अपने को जाने, केवल अपने शरीर को ही नहीं। पशु को अपने शरीर का ज्ञान होता है, अपने स्वरूप का नहीं। कितने मनुष्य तो अपने शरीर को ही जानते हैं और स्वरूप को जानने की कोशिश भी नहीं करते। शरीर नाशवान है और जीवात्मा अनाशवान है।

आज जो आपके देश में बहुत आवश्यक काम है, वह है—जैसा कि अभी ग्रामोफोन के रेकार्ड में सुना। 'देश कुर्बानी माँगता है, अपने को न्योछावर करने कहता है।' यह देश दूसरे देश पर चढ़ाई नहीं करता। हाँ, जो देश पर चढ़ाई करता है, उसको इस देश के लोग मार भगाते हैं। जो डरपोक है, वह लड़ नहीं सकता। मूल चीज है कि—

आकर चारि लच्छ चौरासी। योनि भ्रमत यह जीव अविनासी।।

जीव अविनाशी है, इसका विनाश नहीं होता। महाभारत का युद्ध आरम्भ होने वाला था। श्रीकृष्ण से अर्जुन ने कहा कि हमको दोनों सेनाओं के बीच में ले चलिए। श्रीकृष्ण दोनों सेनाओं के बीच में रथ को ले गये। युद्ध के मैदान में दोनों सेनाओं में अपने स्वजन परिवार को देखकर अर्जुन को मोह हुआ। लड़ना अच्छा नहीं है, अर्जुन ने कहा। श्रीकृष्ण ने कहा— तुम बुद्धिमान आर्य की भाषा नहीं बोलते। अभी युद्ध करने का समय है, यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो लोक में हँसी होगी और परलोक में भी दुःखी होओगे। शरीर को कोई मार सकता है, शरीर के अन्दर में जो आत्मा है, वह पानी में सड़ती नहीं है, अग्नि में जलती नहीं है, हवा से सूखती नहीं है, अस्त्र-शस्त्र से उसका भेदन नहीं होता। मेरा मामा, मेरा दादा कहकर तुम अपने को क्षत्रिय-धर्म से नीचे गिराते हो। शरीर मरेगा, शरीर में रहनेवाला नहीं मारा जाएगा। मेरे और तेरे बहुत जन्म हो गए हैं। जैसे पुराना कपड़ा फटने पर नया कपड़ा पहनते हैं, इसी तरह चेतन आत्मा पर नया-नया शरीर चढ़ता है। इस तरह उन्होंने आत्मज्ञान की शिक्षा देकर अर्जुन को मजबूत बनाया और कहा कि तुम युद्ध भी करो और परलोक-चिन्तन भी मत छोड़ो। इस तरह हमारे देश के लोगों को आज भी जरूरत है। आत्मज्ञान बलवान बनाता है और शरीर-ज्ञान कमजोर बनाता है।

इस देश के पंजाब प्रान्त में बन्दावीर ने अपना पुरुषार्थ दिखलाया था। वह गुरु गोविन्द सिंह का शिष्य था। जब वह मुगल बादशाह से पकड़ा गया था तो लोहे के चूँटे को आग में तबाकर उसका मांस नोचा जाता था, फिर भी वह प्रसन्न था। बादशाह फर्रुखसियार ने पूछा—'तुम अभी भी प्रसन्न मालूम पड़ते हो, ऐसा क्यों?' उन्होंने कहा—'हमारे यहाँ श्रीमद्भगवद्गीता है, तुम मेरे शरीर को नोचते हो, मुझे नहीं नोच सकते।' अध्यात्म-ज्ञान के बिना आदमी घबराता है, साहसी नहीं होता है। इसलिए अध्यात्म-ज्ञान होना आवश्यक है। इसीलिए श्रीराम ने अध्यात्म-ज्ञान का उपदेश दिया। अध्यात्म-ज्ञान केवल सुनने से पूरा नहीं होता। इसके लिए साधन करना चाहिए, जिससे आत्मा की पहचान हो। केवल सुनने से ज्ञान पूरा नहीं होता। पहले सुनने से, विचारने से, साधन करने से और साधन के पूर्ण होने से अंत में पूर्ण ज्ञान होता है। इसी को श्रवण, मनन, निदिध्यासन और अनुभव ज्ञान कहते हैं। इसलिए तबतक उतने मजबूत नहीं होते, जबतक कि वे पहचानवाला ज्ञान प्राप्त नहीं करते।

'समत्व प्राप्त कर युद्ध करो' श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था। समत्व की प्राप्ति समाधि में होती है। इसके पहले श्रवण-मनन अवश्य चाहिए। श्रवण-मनन से निर्णय हो जाता है, तब कोई कुछ

कर सकता है। निदिध्यासन ज्ञान के पूरा होने पर पूरा ज्ञान होता है। श्रीराम ने प्रजा को उपदेश दिया था—'एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुःखदाई।।' अर्थात् मनुष्य-शरीर प्राप्त करने का फल विषय-सुख भोगना नहीं है। अगर स्वर्ग का सुख प्राप्त कर सको, तो वह भी थोड़ा ही है। यहाँ जैसे विषयों से कोई तृप्त नहीं होता, वैसे ही स्वर्ग में भी विषयों से कोई तृप्त नहीं होता और उसका कर्मफल समाप्त होने पर फिर यहाँ लौटा दिया जाता है। इसलिए श्रीराम ने कहा कि पंच विषयों को, जो पंच ज्ञान—इन्द्रियों से ग्रहण होते हैं, उनको छोड़ो। ये सुख पूर्ण नहीं हैं, अल्प सुख हैं। इन्द्रिय-ज्ञान के परे के सुख को पूर्ण सुख कहते हैं। इन्द्रिय-ज्ञान के परे के सुख को विषय सुख नहीं कहते हैं। इन्द्रिय-ज्ञान से विशेष सुख वह है, जो चेतन-आत्मा से प्राप्त होता है। वह पूर्ण आत्मज्ञान का सुख है। उसी को निर्विषय सुख कहते हैं। श्रीराम ने इसी सुख की तरफ संकेत किया था अर्थात् 'नर तन कर फल निर्विषय भाई।।' यह इन्द्रिय-ज्ञान में आने योग्य नहीं है। यह तुम्हारा शरीर है, इस शरीर में उस निर्विषय सुख को पाने के लिए तुम कोशिश कर सकते हो, अन्य शरीरों में नहीं। ईश्वर की विशेष कृपा होती है, तब मनुष्य-शरीर मिलता है। इसमें ईश्वर की कृपा है, जो तुमको आगे की ओर बढ़ाती है। मनुष्य- शरीरधारी उस सुख को पा सकता है, जो सुख संसार-समुद्र को पार कर मिलाता है। जैसे नाव हो, नदी हो और मल्लाह नहीं हो तो उसको पार कौन लगावे? उसी तरह मनुष्य-शरीर नाव है, संसार समुद्र है, इसमें सद्‌गुरु मल्लाह चाहिए। सद्‌गुरु उनको कहते हैं जो सद्ज्ञान जानें, उसके अनुकूल अपना आचरण करें और औरों को भी इसकी शिक्षा-दीक्षा दें। मल्लाह ठीक होता है तो नाव को खतरे से बचाता है। जो इस मनुष्य शरीर-रूप नाव को चलावें, वे सद्‌गुरु मल्लाह हैं। मनुष्य शरीर-रूपी नाव को ईश्वर की कृपारूप अनुकूल वायु प्राप्त है, अब चाहिए सद्‌गुरु। सद्‌गुरु पहले भी थे, अब भी हैं, सदा से होते आए हैं और होते रहेंगे। शरीरधारी सद्‌गुरु होते हैं, उनकी जो कोई खोज करता है, वह सत्संग के अंदर जाकर खोज करता है। कहीं संत-महात्मा का नाम सुनता है, वहाँ जाता है—खोज करता है, तो कहीं-न-कहीं मिल ही जाते हैं। जो उनकी बताई हुई युक्ति से कोशिश करता है, वह मोक्ष को पाता है।

श्रीराम ने कहा था—'यह शरीर साधन का धाम और मोक्ष का द्वार है।' मन्दिर के बड़े-बड़े छिद्रों को द्वार और छोटे-छोटे छिद्रों को खिड़कियाँ कहते हैं। हमलोगों के शरीर में नौ बड़े-बड़े छिद्र हैं, ये द्वार हैं। संत लोग कहते हैं कि नौ द्वारों में रहोगे तो संसार में भटकते रहोगे। नौ द्वारों के अतिरिक्त और भी द्वार है, वह बाहर में नहीं है, अन्दर में है। स्वप्न में नौ द्वार से जो अन्दर होते हो, वह थोड़ा अन्दर जाते हो और यदि उस दशवें द्वार में जाओ, तो अधिक अंदर जा सकते हो। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से भी विशेष तुरीय में जाओगे। स्वभावतः जैसे नौ द्वारों में लोग बरतते हैं अर्थात् उनमें आते-जाते रहते हैं, वैसे ही इस दशवें में जाना नहीं होता, इसके लिए क्रिया की जाती है और तब उसमें जाना होता है। और तब श्रीराम के कहे अनुकूल निर्विषय की ओर होता है। यह साधन द्वारा होता है। अपने देश में यह विद्या बहुत प्राचीन है। यही विद्या है जो सारे संसार को चकित करती है। सारे संसार में यहाँ से यह ज्ञान गया है। यह विद्या डरपोक नहीं बनाती। कमजोर को भी बलवान बनाती है। इस विद्या का जानकार किसी से डरता

नहीं है। श्रीराम ने यह जानकर ही प्रजा को अध्यात्म-ज्ञान दिया था और यह कि विषय-सुख में लिपटकर कमजोर न हो जाय। यह विद्या कहीं खो नहीं गई है। सभी इस विद्या को जानें, करें और सीखें।

अभी देश को जो जरूरत है, वह यह है कि लोग साहसी बनें। देश की मांग के मोताबिक देश के लिए तन, मन और धन की कुर्बानी करें। बिना आध्यात्मिक विद्या के कमजोर होंगे। शरीर के बलवान होने पर भी अध्यात्मज्ञान के बिना मनुष्य कमजोर रहता है। आध्यात्मिक ज्ञान संसार के सुखों में लट्टू नहीं होने देता, मितभोगी बनाता है। जैसे मात्रा के मोताबिक औषधि लेते हैं, उसी तरह मात्रा के अनुकूल विषयों को लेना चाहिए; क्योंकि बिना विषय के कोई रह नहीं सकता।

यह प्रवचन बिहार राज्य के सहरसा जिलान्तर्गत ग्राम—तुलापट्टी में दिनांक ३.४.१९५३ ई० के सत्संग में हुआ था।

५३. शरीर के सुखों में लिप्त होना दानवी स्वभाव है

प्यारे लोगो!

यद्यपि शरीर बहुत प्यारा होता है और सुन्दर भी होता है, फिर भी यह अवश्य छूट जाता है और इसके हाड़-मांस अलग-अलग हो जाते हैं या जल जाते हैं। संतों का उपदेश है कि ऐसे शरीर में आसक्त मत होओ। शरीर में आसक्त न होने का मतलब है कि शरीर-सुख में लिप्त मत होओ। शरीर बनता है और बिगड़ता है। संसार में यह उत्पन्न होता है, देखा जाता है और फिर नहीं देखा जाता है। अंत का फल लोग प्रत्यक्ष देखते हैं कि यह सड़ जाता है—इसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, जला देने से यह भस्म हो जाता है; किंतु इसमें जो रहता था, वह जलता और सड़ता नहीं। वह जलने-सड़ने से बचा रहता है। इस शरीर को छोड़कर जब वह चला गया, तभी यह शरीर जला और सड़ा। कितनी बार ऐसा हुआ, इसका ठिकाना नहीं। बहुत जन्मों से जीवात्मा शरीर को पहनती हुई चली आयी है, जैसे आप अपने जीवन में कितने कपडों को बदल देते हैं। पुराने कपड़े बिगड़कर खराब हो जाते हैं और छोड़ दिए जाते हैं; उसी तरह जीवात्मा शरीरों को पहनती है और छोड़ती है। इसलिए शरीर के सुख में आसक्त होना दानवी स्वभाव है और शरीर को अनित्य समझकर इसके सुख को नाशवान समझकर उसमें आसक्त न होना दैवी स्वभाव है।

उपनिषद्-कथा है कि देवताओं के राजा इन्द्र और दानवों के राजा विरोचन ने आपस में आत्मज्ञान प्राप्त करने की बातचीत की। दोनों मिलकर ब्रह्मा के पास गए और उनसे आत्मज्ञान देने की प्रार्थना की। ब्रह्मा ने उन दोनों को कहा—'तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन कर मेरे पास आओ, तब बताऊँगा।' दोनों तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन कर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा—'तुम्हारे पास पहनने के जितने वस्त्राभूषण हैं, पहनकर आओ और जल में अपने-अपने रूप को देखो।' जल में उन दोनों ने अपने-अपने रूप को देखा। ब्रह्मा ने कहा—'पानी में जो रूप देखते हो, वही ब्रह्म है।' बहस करने का साहस नहीं हुआ। जो कहा गया,

उसे सुन लिया। उन्हें कुछ कहने की युक्ति भी नहीं आई। दोनों चले गए। विरोचन दानव था। उसने समझा—'शरीर ही आत्मा है। खूब खाओ, पीओ और इसी के विलास में रहो।' इन्द्र ने सोचा—'पितामह ने इस शरीर की छाया को आत्मा बताया। यदि शरीर में हाथ टूट जाय, तो छाया में भी हाथ टूटा हुआ मालूम होगा। रूप जैसा बनाएँगे, वैसी छाया देखने में आएगी। तो ब्रह्म या आत्मा के भी कई रूप हो जाएँगे।' ऐसा विचारकर वे फिर लौटकर ब्रह्मा के पास गए और बोले—'मुझे सन्देह है।' अपना सन्देह प्रकट करने पर ब्रह्मा ने उन्हें तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करने कहा। दूसरे तीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य पालन करने के बाद इन्द्र पुनः ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा—'आँख में सबका चित्र देखा जाता है, वही आत्मा या ब्रह्म है।' फिर इन्द्र ने विचारा—'यदि आँख फूट जाय तो उसमें कुछ नहीं दीख पड़ेगा। फिर तो वही बात हुई।' यह सोचकर इन्द्र फिर ब्रह्मा के पास लौटे और उन्होंने फिर अपना सन्देह प्रकट किया। पुनः ब्रह्मा ने कहा—'तीस वर्ष तक फिर ब्रह्मचर्य पालन करके आओ।' इन्द्र फिर तीस वर्ष के बाद ब्रह्मा के पास उपस्थित हुए। तब ब्रह्मा ने कहा—'तुम्हारे शरीर की जो छाया है, वही आत्मा है।' फिर इन्द्र को सन्देह हुआ तो वह पुनः लौटा और ब्रह्मा से अपना सन्देह प्रकट किया। ब्रह्मा ने पुनः पाँच वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने कहा। पाँच वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन कर इन्द्र ब्रह्मा के पास गए। तब ब्रह्मा ने कहा—आत्मा शरीर नहीं, शरीर में जो रहता है, वही आत्मा है।' ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया।

शरीर के सुखों में लिप्त होना दानवी स्वभाव है। जो शरीर-सुखों के भोग में नहीं फँसता, दुःखों को सहता है, वह दैविक स्वभाव का है। आपलोगों को क्या चाहिए? दानवी बुद्धि की प्रशंसा नहीं की जाती। सबों को दैविक बुद्धि चाहिए। उपर्युक्त कथा से सब लोगों को जानना चाहिए कि आत्मतत्त्व क्या है? केनोपनिषद्, खण्ड १ में है—

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।

अर्थात् मन से जो नहीं जाना जाता और जो आपके पास में है यानी जिसका ज्ञान इन्द्रियों से होता है; वह ब्रह्म नहीं है। साधारणतः हम इन्द्रियों से जिसे नहीं जानते, उसके लिए कहते हैं कि वह नहीं है। जैसे वायु में अनेक पदार्थ मिले हैं, किंतु इस आँख से नहीं देख सकते, यंत्र से देख सकते हैं। घर में खिड़की या छिद्र होकर सूर्य की रोशनी आती है, तो उसमें बहुत टुकड़े देखने में आते हैं; किंतु युक्ति और यंत्र से नहीं देखने पर—केवल हवा है, ऐसा कहते हैं। उसमें और क्या है, नहीं जानते। कैसा भी सुन्दर और पवित्र शरीर क्यों न हो, जिसको हम प्रणाम करते हैं, किन्तु यह शरीर परमात्मा या ब्रह्म नहीं है; चाहे वह शरीर इष्ट या गुरु आदि का ही क्यों न हो। कोई भी इन्द्रिय-गोचर पदार्थ ब्रह्म नहीं हो सकता है। इस तरह से आपका यह शरीर इन्द्रिय-गोचर है, अतएव यह ब्रह्म नहीं है। कोई भी शरीर—पवित्र-अपवित्र, सुन्दर-असुंदर, जिस शरीर से अद्भुत कार्य ही क्यों न होता हो, चमकीला हो, दिव्य हो, फिर भी वह परमात्मा नहीं। वह परमात्मा की माया है। इन्द्रिय-गोचर पदार्थ निर्माया—ईश्वर नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़ा अच्छा कहा है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।
—रामचरितमानस

इस कसौटी पर कसिए तो जो मन से या इन्दियों से जानते हैं, माया है। जो बदलता जाय, एक तरह नहीं रहे, वह माया है। जो किसी प्रकार के भ्रमवश मालूम हो, परन्तु यथार्थतः वह वैसा

नहीं हो, वह माया है। जैसे, धुँधली रोशनी में रस्सी को साँप समझने का भ्रम होता है, उसको देखकर लोग डर भी जाते हैं, लेकिन वह साँप नहीं है—माया है। माया को भ्रम भी कहते हैं। सीपी में सूर्य की किरण लगने से चाँदी-सी भासती है, किंतु चाँदी नहीं है; उसी को माया कहते हैं। हमारा शरीर मांसपिण्ड था, वह फिर बच्चा, जवान और बूढ़ा हुआ—यह माया है। एक वृक्ष कभी अंकुर था, वह बढ़ा, फूला, फिर सूख गया—यह माया है। इस प्रकार सब इन्द्रिय-गोचर पदार्थ सत्य ब्रह्म परमात्मा नहीं, माया है। केनोपनिषद् खण्ड २ में लिखा है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।

अर्थात् इस जन्म में यदि ब्रह्म को जान लिया तब तो बहुत ठीक है, नहीं तो बड़ी भारी हानि होगी। बुद्धिमान लोग उसे समस्त प्राणियों में उपलब्ध करके इस लोक से जाकर (मरकर) अमर हो जाते हैं।

जानना दो तरह से होता है। एक जाना है, परंतु पहचाना नहीं है; यह परोक्ष ज्ञान है। जिसको पहचान कर जाना है, वह अपरोक्ष ज्ञान है। जिसको परमात्मा का अपरोक्ष या परोक्ष, कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ, उसके लिए बहुत बड़ी हानि हुई। परोक्ष ज्ञान भी मनुष्य को ही होता है—बैल, कुत्ते आदि अन्य शरीरधारियों को नहीं। जो मनुष्य परोक्ष ज्ञान भी प्राप्त करके मर गया है, तो उसके लिए भी उतना अच्छा नहीं, किंतु उसका जन्म होगा तो मनुष्य योनि में ही होगा; क्योंकि ब्रह्म-सम्बन्धी परोक्ष ज्ञान के संस्कार को धारण करने और बढ़ानेवाला और दूसरा शरीर नहीं है। एक वृक्ष के अंकुर के लिए यदि उसे ठीक हवा, प्रकाश और अवकाश न हो तो वह अंकुर ठीक-ठीक नहीं बढ़ सकता। किन्तु जहाँ ये सब चीजें हैं, वहाँ अंकुर बढ़ते-बढ़ते वृक्ष होगा। उसी प्रकार मनुष्य शरीर के अतिरिक्त दूसरा अनुकूल शरीर नहीं है, जिसमें यह संस्कार बढ़े। इसलिए मनुष्य देह में जब यह बीज उगेगा, तब ब्रह्मज्ञान-संबंधी संस्कार पूर्ण-रूप से उन्नत दशा को प्राप्त होगा। तब इसको कुल और मूल की अपेक्षा नहीं होगी।

मैंने एक हरिजन (मेहतर) को संभवतः १९१० ई० में छपरा शहर में देखा था, जिनका नाम तहबल दास था। उनको सत्संग सुनने का बड़ा अच्छा शौक था। वे मांस, मछली तथा मद्यादि नहीं खाते-पीते थे। उन्होंने अपने टोले को सुधार दिया था। वे जगजीवन साहब के पंथ के महन्थ सियाराम दासजी के शिष्य थे। वे अपने टोले भर को पवित्र किए हुए थे। उस टोले में एक सत्संग घर भी था। उसमें उस टोले के सब हरिजन सत्संग करते थे।

एक बार श्रीतहबल दासजी ने दो बड़े विद्वान संन्यासियों से आत्मज्ञान दान के लिए प्रार्थना की थी। उनको (श्रीतहबल दासजी को) हाथ में झाड़ू लिए हुए देखकर उन्हें मेहतर जानकर दोनों संन्यासियों ने आश्चर्यचकित हो उनसे पूछा—'क्या तुम आत्मज्ञान समझ सकोगे?' श्रीतहबल दासजी ने कहा—'यदि सरकार समझा दीजिएगा तो मैं समझ सकूँगा।' संन्यासियों ने कहा—'क्या इस विषय में कभी कुछ सुना है?' तहबल दासजी ने कहा—'हाँ, सरकार! श्रीगुरुजी के सत्संग में थोड़ा सुना है।' संन्यासियों ने कहा—'हमलोगों को ज्ञात नहीं था कि तुमलोगों में भी इस ज्ञान की खोज है। अच्छा, हमलोग अभी अमेरिका जा रहे हैं, लौट आने पर तुमलोगों के दरजे के लोगों में प्रचार करेंगे। अभी तुम अपने गुरु के सत्संग में सुनो और समझो।'

ईश्वर संबंधी ज्ञान के लिए जाति-पाँति की कोई विशेषता नहीं है। मनुष्य जाति के किसी भी

कुल के शरीर में आने पर उस ज्ञान का संस्कार मिटता नहीं।

भक्ति बीज बिनसे नहीं, आय पड़े जो चोल।
कंचन जौं बिष्ठा पड़ै, घटै ना ताको मोल।।

—कबीर साहब

यह ज्ञान जब किसी एक जन्म में आरम्भ हो जाता है, तो उस ज्ञान को धारण करने और बढ़ाने के लिए पुनः-पुनः मनुष्य शरीर होता है। मनुष्य-शरीर के अतिरिक्त कोई दूसरा शरीर इसको धारण करनेवाला नहीं है। जो परोक्ष आत्म-ब्रह्म-ईश्वर-ज्ञान में भी रत रहता है, वह बारम्बार मनुष्य-शरीर पाते हुए एक दिन अपरोक्ष ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है। तब उसका काम समाप्त हो जाता है। वह संसार में नहीं लौटता, उसको मोक्ष हो जाता है।

आत्मज्ञान से विहीन केवल शरीर-ज्ञान में रहने के कारण पशुवृत्ति रहती है, इसलिए वह पशु-योनि में जन्म लेता है। जो श्रवण-मनन द्वारा परोक्ष तथा निदिध्यासन और अनुभव द्वारा अपरोक्ष ज्ञान नहीं प्राप्त करता है, उसको मरने पर मुक्ति होगी, इसका विश्वास नहीं करना चाहिए। जीवन-काल की मुक्ति को ही संतलोग मानते हैं। कोई कितना ही वेद-वाक्य जानता हो, ज्ञान का विषय बहुत कण्ठस्थ हो, स्मरण-शक्ति विशेष हो; परंतु इससे ब्रह्म को नहीं प्राप्त कर सकता। जिनको सांसारिक चाहना नहीं है, केवल परमात्म-प्राप्ति की जिनको चाहना है, वह परमात्मा को प्रत्यक्ष पाता है।

यह जानना चाहिए कि आत्मा से ही परमात्मा का ज्ञान होता है। आँख से कोई शब्द को नहीं सुनता तथा कान से कोई रूप नहीं देखता; उसी तरह एक चेतन-आत्मा के सिवाय और किसी से ब्रह्म को ग्रहण नहीं कर सकते। एक-एक इन्द्रिय के लिए एक-एक विषय है, उसी भाँति चेतन-आत्मा का विषय परमात्मा है।

मन का काम प्रस्ताव करना तथा संकल्प-विकल्प करना है। मन संकल्प-विकल्प उसका करता है, जिसको उसने कभी देखा-सुना है। जिससे और जिसके सम्बन्ध में कभी कुछ देखा-सुना नहीं है, उसका संकल्प-विकल्प वह नहीं करता। भ्रमवश रस्सी में साँप का देखना तब हो सकता है, जब पहले साँप देखा हो। पहले साँप नहीं देखा हो तो सर्प होने का भ्रम नहीं हो सकता।

आप इन्द्रिय से काम करते हैं, मन से काम करते हैं। उनमें आप रहते हैं, तब इन्द्रियाँ या मन काम करता है; किन्तु आपका निज काम क्या है? वह अपना निज काम है—ईश्वर या ब्रह्म की पहचान। किंतु शरीर और इन्द्रियों को पहनकर आपका निज काम नहीं होगा। सब ख्याल छूटकर केवल परमात्म-दर्शन की लालसा जिनकी रहती है, उनके मन और बुद्धि का काम छूट जाता है और उनका उपर्युक्त निज काम तभी होता है। मन-बुद्धि से छूटने के लिए अंदर-अंदर चलना होता है। मन-बुद्धि के अंदर ब्रह्म है, किंतु उसे पहचान नहीं सकते। उस ब्रह्म को जना देने के लिए—उसकी प्राप्ति का उपाय बताने के लिए सत्संग का प्रचार है—केवल कथा कहने के लिए नहीं। फिर मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझता कि इसके लिए किसमें योग्यता है या नहीं है? सुग्गा पक्षी होते हुए भी मनुष्य की भाषा—राम-राम बोलता है; उसी प्रकार सत्संग में सुनते-सुनते अयोग्यों में योग्यता हो जाएगी। लोग कहते हैं कि जिसको योग्यता नहीं, उसे यह ज्ञान नहीं कहना चाहिए; किंतु जिसको योग्यता नहीं, उसकी योग्यता को कौन बतावेगा। आप (अयोग्यों) को योग्य बना दीजिए।

पलटू ऊँची जाति का मत कोइ करै हंकार।
साहब के दरबार में केवल भगति पियार।। H

यह प्रवचन मोरंग मण्डलान्तर्गत श्रीसंतमत-सत्संग मंदिर अमरदह (नेपाल) में दिनांक ४.४.१९५३ ई० के सत्संग में हुआ था।

५४. भौतिक विद्या भी आवश्यक

प्यारे लोगो!

विद्या की बड़ी आवश्यकता है। विद्या नहीं प्राप्त करनेवाले संसार के कामों को ठीक-ठीक नहीं कर सकते और न वे परमार्थ के कामों को कर सकते हैं; क्योंकि विद्या ही जानने की शक्ति है। विद्या कर्तव्य को जना देती है। विद्या नहीं रहे तो यह जानना नहीं हो सकता। विद्या का अर्थ भी जानना ही है। जो उसको अपनाता है, वह जानकार हो जाता है। जो नहीं अपनाता, वह जानकार नहीं होता है।

विद्या शब्दमयी है। कोई कुछ जानता है तो शब्द के द्वारा ही। मन में कुछ जानता है तो मनोमय शब्द होता है। इसलिए विद्या पाने के लिए शब्द, उसके प्रयोगों और उसके अर्थों को जानना पड़ता है। संसार में जितने विद्यालय हैं, सबमें शब्द की ही शिक्षा मिलती है। सब कोई शब्द ही सीखते हैं। इस शिक्षा के बिना लोग बहुत बातों को सुनने पर भी समझ नहीं सकते। हमलोगों का जो यह सत्संग है, इसमें भी शब्दों को ही सीखना है। बिना शब्द को जाने सत्संग का विचार नहीं जान सकते। इसलिए जहाँ शब्द को ठीक-ठीक नहीं समझते हैं, वहाँ संतों के वचन भी लोग ठीक-ठीक नहीं समझ सकते। इसलिए कहता हूँ कि आप भी जो बूढ़े ही क्यों न हों, और आपके बाल-बच्चे सबको विद्या सीखनी चाहिए। आप शब्द को अर्थ सहित नहीं जानेंगे तो सत्संग वचन को ठीक-ठीक नहीं समझ सकेंगे। बिना शब्द-ज्ञान के संत के उपदेशों को सुनेंगे, किंतु समझ नहीं सकेंगे। इसीलिए मेरी ओर से आपलोगों को ताकीद है—प्रेरण है कि विद्या सीखो और बच्चों को सिखलाओ। साधारणत: आपलोग अपने-अपने घर में बच्चों को कम पढ़े-लिखे गुरुजी से पढ़वाते-लिखवाते हैं, नहीं से तो यह कुछ अच्छा है, किंतु इससे विशेष काम चलने का नहीं। जो गुरुजी शुद्ध-शुद्ध अपने ही न पढ़ सकते, न लिख सकते हैं, तो वह लड़कों को किस तरह शुद्ध-शुद्ध लिखा-पढ़ा सकते हैं? तब बच्चा नीचे से ही गलत तरह से उच्चारण करेगा और बूढ़ा होते-होते तक भी वह गलती उससे नहीं छूटेगी। इसलिए आपलोगों को ताकीद है कि आपलोग खर्च करें। भोज-भण्डारा में खर्च करते हो, घर बनाने में खर्च करते हो, मुकदमा करने में खर्च करते हो; किन्तु विद्या के लिए खर्च नहीं करते—यह ठीक नहीं। योगशिखोपनिषद् में आदेश है—

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ।।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् ।।

योग-हीन ज्ञान और ज्ञान-हीन योग; दोनों मोक्ष कार्य में असमर्थ हैं। योग कहते हैं, मनो-निरोध करने को वा मन को एकाग्र करने को। मन अनेक विषयों में दौड़ता रहता है, एक पर स्थिर नहीं रहता। मन की चंचलता छोड़ देने योग्य है। इसी को मन की एकाग्रता कहते हैं। इसी को चित्तवृत्ति-निरोध कहते हैं। मन को एकओर लगाओ, इधर-उधर मन बहके नहीं, यह योग है। ऐसा क्यों करो? मन की चंचलता में शान्ति नहीं आती है। जब शांति नहीं आती तो सुख नहीं होता। अशांत को सुख कभी नहीं होता, चाहे वह कोई हो— पढ़ा-लिखा हो, अनपढ़ हो, व्यापारी हो, या खेती करनेवाला—कोई हो, यदि उसका मन अशांत

है, तो उसको सुख नहीं होता। साधु-संत-महात्मा कहते हैं—'जिससे सुखी रहो, वह उपदेश देता हूँ। मन को एकाग्र करो, सुखी होओगे।'

लोग समझते हैं कि विशेष धन हो और लोगों पर हुकूमत हो जाय, इन्द्रिय के भोग मिलें तो सुखी होऊँ, किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। किसी को भी धन, हुकुमत और इन्द्रिय-भोग में सुख नहीं होता। सुख मन की एकाग्रता में है, चंचलता में सुख नहीं है। मन की एकाग्रता में जो शान्ति मिलती है, उसके साथ-साथ और बातें हैं। मन एकओर लगा रहता है, चंचल नहीं होता। जैसे आपकी देह स्थिर रहे तो आपको आराम मालूम होता है, दौड़ने चलने से दुःख मालूम होता है, उसी तरह मन स्थिर रहने से सुख होता है। सुखी होने के लिए बाहर का सामान नहीं चाहिए। अपने अंदर मन को समेटो। स्थिरता का स्वरूप बिल्कुल ऐसा होना चाहिए कि थोड़ा-सा भी फैलाव न रहे। ऐसा सिमटाव हो कि एक ऐसा रूप पकड़ ले, जिसमें बाँट न हो—फैलाव न हो। इतना होने में पूर्ण सिमटाव होगा। किसी देवता या इष्ट के रूप पर मन लगाने से उसके हाथ, पैर, मुँह आदि पर मन दौड़ता है। चेहरा देखने से पैर नहीं देखा जाता, इसलिए कभी चेहरा देखते हैं और कभी पैर। इसमें भी चञ्चलता रहती है। मानो और ख्याल छूट गए, किन्तु एक ही रूप में भी मन की चंचलता नहीं गई। कबीर साहब के वचन में है—

गगन मण्डल के बीच में, तहवाँ झलके नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर॥

ठीक-ठीक बीच कितना बड़ा होता है? किसी मण्डल का बीच केवल एक ही विन्दु होगा। विन्दु से बड़ा करने से ठीक-ठीक बीच नहीं होगा। वह किसी ओर विशेष और किसी ओर कम होता। किन्तु छोटे-से-छोटा चिह्न विन्दु है, उसमें फैलाव नहीं है। मन की एकाग्रता के अभ्यास को क्रमशः धीरे-धीरे करते-करते मन एकाग्र होता है। मन का फैलाव शरीर और इन्द्रियों में है। इसका सिमटाव होने से ऊर्ध्वगति होती है। ऊर्ध्वगति होने से ऊपरी दर्जे की बात मालूम होती है। मालूम होते-होते सबसे ऊँचे दर्जे की बात मालूम होती है। बढ़ते-बढ़ते वहाँ तक जाता है, जिसके आगे और कुछ नहीं है। वही परमात्मा है। संसार में तो एक पदार्थ के ऊपर दूसरा और फिर उसपर तीसरा होता है, किन्तु परमात्मा के ऊपर कुछ नहीं है। योग में एकाग्रता होती है, शान्ति होती है, ऊर्ध्वगति होती है, ऊर्ध्व-गति में परमात्मा की प्राप्ति होती है और इसी में मुक्ति है। शान्ति, मुक्ति और परमात्मा की प्राप्ति योग में है। योगशिखोपनिषद् में कहा गया है कि योग और ज्ञान दोनों सीखो। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। ज्ञान कहते हैं जानने को। कोई बिना जाने कुछ करेगा तो वह जो नहीं लेने का, वह भी ले लेगा! ऊर्ध्वगति में साधक ऊपर उठता है। प्रत्येक मण्डल में उस मण्डल के अनुकूल उसको शक्ति मिलती है। यदि नीचे दर्जे में ही फँसकर रह जाय, तो परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए ज्ञान सीखने को कहा। गुरु महाराज ने कहा है—'सत्संग करो।' इसमें ज्ञान की शिक्षा होगी। फिर कोई केवल ज्ञान में लगे रहे—योग नहीं करे तो प्राप्तव्य वस्तु प्राप्त नहीं होगी। जैसे केवल आम-आम कहने से न तो आम मिलता है और न उसका स्वाद या मजा ही।

ज्ञान दो तरह के होते हैं—परोक्ष और अपरोक्ष। इसलिए ज्ञान और योग; दोनों का अभ्यास नित्य करना चाहिए। सत्संग से ज्ञान का साधन होता है। यह थोड़ी देर सबको करना चाहिए। जैसे भाँग पीने से नशा होता है, उस नशे में जबतक कोई रहता है—नशे में रहने से जो करना चाहिए, वही वह

करता है, उसी प्रकार सत्संग वचन मन में रहने से सत्संग में जो काम होना चाहिए—वह काम होगा। इस सत्संग-वचन का नशा छूटने से वह अपकर्म भी करने लगता है, किंतु जो सत्संग-वचन के नशे में रहता है, उससे अपकर्म नहीं होता।

योग तीनों काल करें। हमलोगों के यहाँ त्रयकाल संध्या प्रसिद्ध है—भोर में, दिन में स्नान के बाद और फिर संध्याकाल। संध्या का अर्थ है—सन्धि करना। परमात्मा की ओर अपनी वृत्ति को जोड़ना, मेल करना संध्या है। इसी में एकाग्रता है। इसका यत्न जाने और त्रयकाल संध्या करे। तब बढ़ते-बढ़ते बढ़ेगा। योग-अभ्यास करने से डरना नहीं चाहिए कि इसके लिए घर छोड़ना पड़ेगा या अँतड़ी धोनी पड़ेगी। अँतड़ी को धोना तो कम खाना है। कम खाइए, आलस्य नहीं आवेगा।

मुक्ति के विषय में जानना चाहिए कि मरने पर जो मुक्ति होती है, वह मुक्ति नहीं है। जीवनकाल में ही मुक्ति हो जाय; जैसे लवण समुद्र में घुलकर एक हो जाता है—उसी प्रकार परमात्मा से मिलकर एक हो जाओ, वही मुक्ति है। किसी लोक—ब्रह्मलोक, विष्णुलोक या शिवलोक में जाना, असल में मुक्ति नहीं है। जिस ख्याल से उसको मुक्ति कहते हैं, उसको चार दर्जे में बाँटते हैं—सालोक्य—उपास्यदेव के लोक की प्राप्ति; सामीप्य—उपास्यदेव की समीपता प्राप्त करनी; सारूप्य—उपास्यदेव के शरीर सदृश रूप प्राप्त करना और सायुज्य—उपास्यदेव के साथ युक्त होना अर्थात् उपास्यदेव के शरीर से भिन्न अपना दूसरा शरीर नहीं रखना। किन्तु पहले जो मैंने कहा है, वह ब्रह्मनिर्वाण मुक्ति है। ब्रह्मनिर्वाण उसको कहते हैं, जिसमें न तो आपकी देह और न इष्टदेव की देह रहे, आत्मा से आत्मा युक्त हो जाय। वह ब्रह्मनिर्वाण मुक्ति है। असली मोक्ष यही है। और लोक-लोकान्तरों से इस नरलोक में पुनः पुनः जाना-आना पड़ता है; किन्तु ब्रह्मनिर्वाण में आना-जाना नहीं होता। जीवनकाल में मुक्ति असली मुक्ति है। मरने पर जो मुक्ति होती है, वह मुक्ति नहीं है। जिस प्रकार भोजन करनेवाले को स्वयं मालूम होता है कि मेरा पेट भर गया या रोगग्रसित होनेवाले को रोग छूटने से स्वयं मालूम होता है कि मैं रोगमुक्त हो गया और कैदखाने से छूट जाने पर कैदी को मालूम होता है कि मैं कारागार से मुक्त हो गया; उसी प्रकार जीवनकाल में ही महाभाग्यवान भजनीक महापुरुष को भजनान्त में निजी प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है कि मैं मायिक आवरणों से छूट गया हूँ—जीवनमुक्त हूँ। इस तरह इसलिए कहा जाता है कि संतों की वाणी में ऐसी ही दृढ़ता से कहा गया है। जिस जीवनकाल में ऐसा मालूम नहीं हुआ, साधन करता रहा, तो फिर मनुष्य शरीर मिलेगा और भगवान श्रीकृष्ण के कहे अनुकूल अनेक जन्मों के अनन्तर वह मुक्ति प्राप्त कर लेगा।

मरने के समय पाशविक भावना रहने से उस पशु-भावना के अनुकूल शरीर मिल जाय, इसमें कोई संशय नहीं। आपलोग सुने होंगे कि राजा भरत राज्य छोड़ जंगल तप करने गए थे। एक हिरणी के बच्चे को प्यार से पालते थे। वह बच्चा जंगल में भाग गया तो उनका ख्याल उसी हिरणी के बच्चे पर लगा रहता था। मरने के समय उनको वह ख्याल बना रहा तो पुनर्जन्म में उनको हिरण का शरीर मिला। इससे मालूम होता है कि मरने के समय जो भावना होगी, उसी के अनुकूल शरीर होगा। जो भावना जीवनकाल में बहुत होती है, मरने के समय वैसी भावना हो—यह संभव है। किन्तु जो भावना जीवनकाल में नहीं हो, वह भावना मरने के समय हो—यह संभव नहीं। अब आप अपनी भावना

चुन लीजिए। मुक्ति नहीं मिले तो यही भावना रहे कि मरने के समय ध्यान-भजन करते रहें। दूसरी भावना रहने से और शरीर मिलेगा, जैसे राजा भरत को। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

प्रयाण काले मनसा चलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।
—गीता, अध्याय ८/१०

अर्थात् जो मनुष्य मृत्यु के समय अचल मन से, भक्ति से सराबोर होकर और योगबल से भृकुटी के बीच में अच्छी तरह प्राण को स्थापित करता है, वह दिव्य परम पुरुष को पाता है। इसके पहले भगवान ने कहा है—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।
—गीता, अध्याय ८/९

कहकर विन्दु रूप का वर्णन किया और कहा कि जो अंधकार के पार में आदित्य वर्ण का अणु-से-अणु रूप है अर्थात् विन्दु रूप है, उसका ध्यान करो। यह परमात्मा की दिव्य माया है। किंतु इस दिव्य माया रूप का उपासक स्थूल माया के ऊपर उठा रहेगा। इसका साधन बराबर कीजिए कि मरने के समय इसी तरफ मन फिरे। नहीं तो विशेष दुर्गति होगी। मरने के समय आपकी पवित्र भावना हो। मनुष्य-देह पाने से भी वह मनुष्य-शरीर मिले, जिसमें अध्यात्मज्ञान मिले। बिना अध्यात्मज्ञान जाने मनुष्य शरीर किस काम का? H

यह प्रवचन मोरंग मण्डलान्तर्गत ग्राम—सिजुआ (नेपाल) में दिनांक ४.४.१९५३ ई० के सत्संग में हुआ था।

५५. मनुष्य शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है

प्यारे लोगो!

मनुष्य का शरीर अद्‌भुत है। अज्ञानी लोग ख्याल करते हैं कि यह शरीर केवल मांस, हड्डी, चर्म आदि का समूह है, परंतु विशेषज्ञ जानते हैं कि इतना ही नहीं है। केवल स्थूल ज्ञान में रहनेवाले जो जानते हैं, वह तो प्रत्यक्ष है; किन्तु इस प्रत्यक्ष के अन्दर अप्रत्यक्ष भी है, उसे विशेषज्ञ और सूक्ष्मदर्शी जानते हैं। स्थूलदर्शी दो तरह के होते हैं—एक विद्या-बुद्धि में बढ़े लोग और दूसरे विद्या-बुद्धि में कम और हीन। अच्छे-अच्छे डॉक्टर शरीर के भीतर को जानते हैं, किन्तु उसके स्थूल अंशों को ही। इसके अतिरिक्त जो अधिक जाननेवाले हैं, वे जानते हैं कि शरीर के अन्दर स्थूल भाग के अतिरिक्त सूक्ष्म भाग भी है, जो डॉक्टरी यंत्र से नहीं जाना जाता। कोई केवल पढ़-सुनकर, समझकर जानते हैं, दूसरे सुन-समझ और प्रत्यक्ष पाकर जानते हैं। उन लोगों के ज्ञानानुसार यह शरीर विचित्र है। विश्व ब्रह्माण्ड में जो सब तत्त्व हैं, शरीर में भी वे सब ही हैं। यदि अपने अन्दर सूक्ष्मतल पर कोई जाय, तो उसको सूक्ष्मतल पर का सब कुछ वैसा ही मालूम होगा, जैसा स्थूल तल पर रहने से उस तल का सब कुछ मालूम होता है। स्थूल तल पर आप दूर तक देखते हैं और विचरण करते हैं; उसी प्रकार सूक्ष्मतल पर आरूढ़ हुआ दूर तक देख सकता है और विचरण कर सकता है। स्थूल तल पर रहने से आपको मालूम होता है कि स्थूल शरीर में रहता हूँ और स्थूल संसार में काम करता हूँ। उसी प्रकार आप अपने सूक्ष्म तल पर रहें तो मालूम करेंगे कि सूक्ष्म शरीर में हूँ और सूक्ष्म संसार में विचरण

करता हूँ, काम करता और देखता हूँ।

ब्रह्माण्ड लक्षणं सर्व्व देहमध्ये व्यवस्थितम्।

— ज्ञानसंकलिनी तंत्र

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवइ निद्रा तजि योगी।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

जो जग घट घट माहिं समाना। घट घट जग जीव माहिं जहाना।।

पिण्ड माहिं ब्रह्माण्ड, ताहि पार पद तेहि लखा।

तुलसी तेहि की लार, खोलि तीनि पट भिनि भई।।

—तुलसी साहब

सागर महिं बुंद बुंद महि सागरु, कवणु बुझै विधि जाणै।

उतभुज चलत आपि करि चीनै, आपे ततु पछाणै।।

—गुरु नानक साहब

बूँद समानी समुँद में, यह जानै सब कोय।

समुँद समाना बूँद में, बूझै बिरला कोय।।

—कबीर साहब

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शरीर में है और सब देवता भी इस शरीर के अंदर हैं। आँख में चन्द्रसूर्य का, कान में दशों दिशाओं का, नाक में अश्विनी कुमार का, मुँह में अग्निदेव का, जिभ्या में वरुण का, हाथ में इन्द्र का और पैर में उपेन्द्र (वामन—वामन अवतार में श्रीविष्णुदेव ने उन्हीं के यहाँ अवतार लिया, जिनके यहाँ इन्द्र ने अवतार लिया था। इन्द्र पहले जन्मे थे और ये पीछे, इसलिए उपेन्द्र कहलाए।) का वासा है। पुनः मूलाधारचक्र (गुदाचक्र) में गणेश का, स्वाधिष्ठान (लिंग) चक्र में ब्रह्मा का, मणिपूरक (नाभि) चक्र में विष्णु-लक्ष्मी का, अनाहत (हृदय) चक्र में शिव-पार्वती का, विशुद्ध (कण्ठ) चक्र में सरस्वती का, षटचक्र (आज्ञाचक्र) में शिव का वासा है और परमप्रभु परमात्मा भी इसी शरीर में विराजमान हैं, जो अन्दर के सब मायिक स्थानों के परे केवल चेतन आत्मा को प्रत्यक्ष ज्ञान में आने योग्य हैं। इस प्रकार का वर्णन संतवाणी में पाया जाता है। उर्पयुक्त वर्णनानुसार परमप्रभु परमात्मा के सहित सब देव अन्दर में हैं—

देहस्थाः सर्व्वविद्याश्च देहस्थाः सर्व्वदेवताः।

देहस्थाः सर्व्वतीर्थानि गुरुवाक्येन लभ्यते।।

— ज्ञानसंकलिनी तंत्र

किन्तु इसको वही देखेगा, जो अपने अन्दर में प्रवेश करेगा। भीतर जाने का मार्ग जानिए। यह कैसे जाना जाएगा? गुरु उपदेश से। इसलिए गुरु की आवश्यकता है। गुरु मुँह से कहेंगे और देखेंगे तो साधना के द्वारा आप ही, जब गुरु के कहे अनुकूल साधन करेंगे। कोई कहे कि ये सब ख्याल-ही-ख्याल हैं, यथार्थ में नहीं, तो कहनेवाले कहते हैं कि तुम अभ्यास करके देख लो। अभ्यास करने पर तुमको मालूम नहीं हो, तब झूठा बनाओ। वैज्ञानिक ने कहा कि हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलाने से पानी होता है। कोई कहे—झूठा है, तो दोनों गैसों को मिलाकर देखो कि होता है कि नहीं। उसी प्रकार संतों की युक्ति के अनुकूल साधन करो—अवश्य देखा जाएगा। भीतर का काम, जो भीतर में होता है, वह दिखाया नहीं जा सकता। स्वयं करके देखा जाएगा। जो करने का काम है, उसे नहीं करते हैं और कहते हैं कि नहीं होता है। इस तरह कहना अयोग्य है। संतवाणी में जैसी युक्ति बताई गई है, उस युक्ति से करके देखिए, तब यदि देखने में नहीं आवे, तब झूठा कहिए। H

यह प्रवचन मोरंग मण्डलान्तर्गत श्रीसंतमत-सत्संग मंदिर झुरकिया (नेपाल) में दिनांक ८.४.१९५३ ई० के सत्संग में हुआ था।

५६. मानस रोगों से मुक्ति

प्यारे धर्मप्रेमी सज्जनो!

देह की बीमारी को लोग प्रत्यक्ष देखते हैं और अपने शरीर में पाते हैं। साधु-संत कहते हैं—सब बीमारियों से आप छूटें, अच्छी बात है, किन्तु बीमारी सिर्फ आपकी देह में है या और भी कहीं है? आपके मन में भी काम है, जैसे आपकी देह में बीमारी होती है। किसी को कोई देह की बीमारी हो, परन्तु मन अच्छा हो तो वह खुश रह सकता है। किन्तु मन बीमार हो और शरीर अच्छा हो तो वह खुश नहीं रह सकेगा। देह की बीमारी आपकी छूट जाय, अच्छी बात है। कोई कह नहीं सकता कि मेरे मन में बीमारी नहीं है। अज्ञ लोग भले ही कहें कि मेरे मन में बीमारी नहीं है, किन्तु ज्ञानी लोग कहेंगे कि मन बीमारियों से भरा है। मोह अर्थात् अज्ञानता सब रोगों की जड़ है। नहीं जानना अज्ञानता है। क्या नहीं जानते हैं? तो अब यह सोचिए कि जानना कितने तरह का होता है? उत्तर है कि ये दो तरह के होते हैं—एक पढ़-सुनकर जानना और दूसरा पहचान कर जानना। पढ-्सुनकर जानना पूरा जानना नहीं है, पहचानकर जानना पूरा जानना है। साधु-संत कहते हैं कि अपने को तुम जानते हो कि तुम शरीर में हो, किन्तु क्या तुम अपने को पहचानते हो? अपने को जानते हो, परन्तु अपने को पहचानते नहीं। इस तरह स्वज्ञान नहीं होने की अज्ञानता या मोह में अपनी देह को ही कहते हो कि मैं यही हूँ। देह अवश्य छूट जाएगी। देह छूटने को लोग मर जाना कहते हैं।

हमलोगों के धर्मशास्त्र के अनुकूल, मरने पर श्राद्ध-क्रिया होती है। इससे विश्वास यह होता है कि मरनेवाली देह है। इसमें रहनेवाला इसे छोड़कर कहीं चला गया है। उसकी अच्छी गति हो, इसलिए लोग श्राद्ध करते हैं। अपनी देह को भले पहचानते हो, किन्तु अपने को नहीं पहचानते और अपनी देह को ही अपने तईं जानते हो, यह है मोह। इसी देह की पहचान की सबब से देह के सरोकार में जितनी चीजें, पशु और आदमी आदि आते हैं, उनसे सम्बन्ध हो जाता है, उनमें ममता हो जाती है। यह मोह का तमाशा है। इसी मोह-ममता के कारण अहंकार, क्रोध, लोभ, काम, द्वेष, ईर्ष्या आदि मन के सब रोग उत्पन्न होते हैं। और इन मानस रोगों में पड़कर पाप और कसूर; दोनों करते हैं। पाप उसको कहते हैं, जिसकी सजा परमात्मा देते हैं और कसूर उसको कहते हैं, जिसकी सजा राष्ट्रीय सरकार देती है। बहुत-से कसूर और पाप, इन विकारों में फँसकर होते हैं। एक मोह से ही बड़े-बड़े पाप हो जाते हैं। अज्ञानता—अविद्या सब मन के रोग हैं। इन्हीं रोगों में रहकर मन रोगी रहता है। किसी देश के चिकित्सालय में इसकी इलाज नहीं है। इसकी इलाज सत्संग में होता है। इसकी औषधि वचन है, जिसमें ज्ञान है। अज्ञान को ज्ञान से साफ किया जाता है। कोई औषधि ऐसी है, जिससे रोग को दबा दिया जाता है, किन्तु वह मूल से नष्ट नहीं होता।

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी।।

मानस रोगों को जड़ से नष्ट करने के लिए साधु लोग जानते हैं। वे उसकी युक्ति बतलाते हैं—उस युक्ति से रोग को जड़ से उखाड़ देते हैं। पहले कहा जा चुका है कि ये सब काम,

क्रोध, लोभ, मोहादि रोग हैं। संसार में कौन कहेगा कि मैं कामी, क्रोधी, लोभी मोही आदि नहीं हूँ? किसी का तो प्रकट हो जाता है कि फलाँ महा-क्रोधी है, फलाँ महालोभी है; कोई इन रोगों को छिपाकर रखते हैं। पहले मोह, काम, क्रोधादिक को मानस रोग कहकर जानो, जिससे ये कुछ भी हटे। फिर समूल नष्ट करने के लिए जानना। इन रोगों को समूल नष्ट करने के लिए ईश्वर का भक्त बनना चाहिए। ईश्वर का दर्शन अपने अंदर होता है, बाहर में नहीं। बाहर मायिक दृष्टि से देखा जाता है। ईश्वर इस दृष्टि से देखा नहीं जा सकता। अंतर की आत्मदृष्टि से देखा जाएगा। किसी की खोज लोग आँख और कान से करते हैं। कोई बोलता तो नहीं है, कान से सुनते हैं। फिर देखते हैं कि कौन बोलता है? इसी तरह ईश्वर की खोज अपने अंदर संवित् या सुरत के द्वारा देखने और सुनने से करनी चाहिए। सबके अन्दर में ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद अवश्य है; क्योंकि सर्वव्यापी ब्रह्म की ये विभूतियाँ, परमात्मा ब्रह्म के सहित सबमें व्यापक होकर रहें, इसमें संशय नहीं है। ब्रह्मनाद, ब्रह्मज्योति के दर्शन के बिना सुना नहीं जा सकता।

पहले बिजली की चमक देखते हैं, फिर बादल का गर्जन सुनते हैं। ईश्वर का पता लगाने के लिए पहले ईश्वर का प्रकाश देखो, फिर उनका शब्द पकड़ो। वह शब्द सबके अन्दर होता है, किन्तु लोग उसे सुन नहीं पाते। सुरत अन्दर की ओर नहीं होती, इसलिए आवाज सुन नहीं सकते। संतों का कहना है कि अपने अन्दर में जैसे-जैसे प्रवेश करोगे, वैसे-वैसे ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद की अनुभूतियाँ पा सकोगे। दिव्यदृष्टि अन्तर में देखते-देखते खुलती है। अंतर में कोई साधन करें—ईश्वर के तेज को देखें तो उनके विकार दूर हो जायँ। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में लिखा है—

जब तें राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका।।
जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी।।
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।
विविध कर्म गुण काल सुभाउ। ये चकोर सुख लहहिं न काउ।।
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा।।
धरम तड़ाग ज्ञान विज्ञाना। ये पंकज बिकसे विधि नाना।।
सुख संतोष विराग विवेका। विगत सोक ये कोक अनेका।।
यह प्रताप रवि जाके, उर जब करइ प्रकास।
पिछले बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास।।

जिसकी दिव्यदृष्टि खुलती है, वह परमात्मा—राम—ब्रह्म का परम प्रताप विभूति-रूप प्रबल दिनेश का दर्शन पाता है और वह तीनों लोकों को भी अंदर में देखता है और उसके सब मानस रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। केवल सुनकर-पढ़कर अज्ञानता दूर नहीं होती। अन्दर में ध्यान करने से राम का प्रबल प्रकाश पाता है। सूर्य से बड़ा तेज कुछ भी नहीं होता। ब्रह्म का प्रकाश सब प्रकाशों से बढ़कर है। पहले प्रकाश का कुछ तेज, फिर उससे विशेष तेज—फिर और उससे भी विशेष तेज देखने में आता है, जिससे विशेष तेज नहीं हो सकता। उसको देखनेवाले की अज्ञानता दूर हो जाती है। पाप-कर्म सब भाग जाते हैं, वह पाप-कर्म की ओर नहीं जाता। काम, क्रोध, लोभ, मोह,तृष्णा, पाखण्ड आदि भाग जाते हैं उस सूर्य के दर्शन से। कथित सूर्य-दर्शन से विहीन कितना ही ज्ञान-ध्यान की बातें कहे, किन्तु उसके अन्दर से विकार दूर नहीं होता। अपने अंतर में साधन करे, ब्रह्म-प्रकाश को देखे, तो सब विकार दूर हो जायँ। भजन और सत्संग करो, यही इसकी चिकित्सा है।

बाहर की दवाई से मानस रोग नहीं छूटते। केवल बाहरी सत्संग से मानस रोग कम हो सकता

है, किंतु बिल्कुल नष्ट नहीं होता। इसको नष्ट करने के लिए जो ब्रह्म-तेज का दर्शन करे तो वह नष्ट होगा। अपने को अन्दर में ले चलो। इसके लिए गुरु करो और युक्ति जानकर अभ्यास करो, तो मानस रोग से मुक्त होकर कान्तिमय सुख मिल जाएगा। H

यह प्रवचन मोरंग मण्डलान्तर्गत श्रीसंतमत-सत्संग मंदिर डाइनियाँ (नेपाल) में दिनांक १६.४.१६५३ ई० के सत्संग में हुआ था।

५७. चिट्ठी आधी मुलाकात होती है

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता!

संत अथवा सत्जन—सत्पुरुषों के संग का नाम सत्संग है। साधारणतया लोग अच्छे आचरणवाले को—शीलता से बरतनेवाले को सज्जन कहते हैं। संत भी ऐसे ही होते हैं; किन्तु कुछ विशेषता यह कि—

अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कवि कोविद योगी।।

अर्थात् वे अति विशेष ज्ञानवान, इच्छारहित, अल्पभोगी, सत्य के साररूप, कवि, विद्वान और योगी होते हैं।

यह बहुत बड़ी बात है। इतने गुणोंवाले लोगों की पहचान होना कोई साधारण बात नहीं। सीधी बात में, शान्ति प्राप्त करनेवाले को संत कहते हैं। शान्ति प्राप्त कर लेने के लिए जबतक कोशिश है, तबतक संत नहीं। अपरिवर्तनशील और पूर्णरूपेण हलचल से मुक्त पदार्थ को शान्ति कहते हैं। इस शान्ति को जो प्राप्त करते हैं, वे संत कहलाते हैं। इस प्रकार का पदार्थ परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। आशय यह कि परमात्मा को जो प्राप्त करते हैं, वे संत कहलाते हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थात् परे-से-परे को (परमात्मा को) देखने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है; सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। संत के लिए यह उपनिषद्-वाक्य प्रत्यक्ष है। इस उपनिषद्-वाक्य के अनुकूल जिनमें कोई कोर-कसर नहीं, वे संत हैं। जिनके जड़-चेतन की ग्रन्थि खुल गयी है, वे सन्त हैं। इस शरीर के अन्दर चेतन है। शरीर तो जड़ है ही। इन दोनों की गिरह जिनकी खुल गई, कर्म-मण्डल के ऊपर जिनकी चढ़ाई हुई, वे ही परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन पाते हैं, वे ही संत हैं। बड़े विद्वान को बड़े विद्वान ही जान सकते हैं कि बड़े विद्वान हैं। उसी प्रकार संत को संत ही पहचान सकते हैं। संत की पहचान अत्यंत दुर्लभ है। हमारा अख्तियार नहीं कि इनको पहचानें। फिर सत्संग कैसे करें? गुरु महाराज ने कहा—साधारणतः लोग कहते हैं कि चिट्ठी आधी मुलाकात होती है। चिट्ठी में अपना-अपना ख्याल लिखते हैं, लेकिन रहते हैं दूर-दूर में। इस प्रकार चिट्ठी से भी किसी के ख्याल जानते हैं, गोया भेंट हो गई। याज्ञवल्क्य, रामानुज, गोस्वामी तुलसीदास, कबीर साहब आदि संत गुजर गए हैं। आज ऐसे बहुत कम लोग होंगे, जिनको कि विश्वास नहीं होगा कि ये लोग संत नहीं थे। इन संतों की वाणी को पढ़ो, सुनो, समझो और समझाओ—वही सत्संग है। इसलिए मैं जहाँ जाता हूँ, संतों की वाणी का पाठ करता हूँ या कराता हूँ। फिर उस वचन को समझने और समझाने की कोशिश करता हूँ। इसलिए आपलोगों के सामने

कबीर साहब, गुरु नानक साहब, गोस्वामी तुलसी-दासजी, सूरदासजी, पलटू साहब—पाँचों संतों की वाणी का पाठ कराया। एक ही संत के वचन से काम चल सकता था; किंतु एक ही तरह की बात यदि अन्य संत कहें तो यह बात बहुत मजबूत हो जाती है, विश्वास दृढ़ हो जाता है। हमारे यहाँ कई पंथ हैं, कई धर्म के दल हैं। कोई कबीरपंथी, तो कोई नानकपंथी, कोई गाणपत्य, तो कोई शैव हैं। अनेक संप्रदायों के कारण लोगों के मन में होता है कि इन संतों के विचार अलग-अलग हैं। इस प्रकार जो जिन संत के सम्प्रदाय को अपनाते हैं, उसे विशेष कहा करते हैं। इस व्यवहार से आपस में कटुता, वैमनस्य हो जाता है। इस कटुता को दूर हटाने के लिए आवश्यक है कि अनेक संतों के विचारों को जानो। यदि विचार मिल जाय तो कटुता आप ही दूर हो जाएगी। कटुता से जो वैमनस्य होता है, वह दूर हो जाएगा। आपस में मेल होगा, घर में मेल, गाँव में मेल, देश में मेल होगा। इसलिए संतों ने कहा कि सभी संतों की वाणियों को जानो। संतों की सबसे बड़ी बात है—एक ईश्वर को मानना।

संगति ही जरि जाव, न चर्चा राम की।
दुलह बिना बारात कहो किस काम की।।

जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम प्रधानू।।

एक ईश्वर की विशेषता उड़ा दो, तो संतों के वचन का सार उड़ जाएगा। पूर्वकाल में भी ऐसे आदमी थे और आज भी हैं, जो ईश्वर के होने में सन्देह किया करते हैं। वे ईश्वर को व्यक्त रूप में जानना चाहते हैं। उनके लिए बात यह है कि तुम पहले भौतिक विज्ञान की ओर सोचो। पहले प्रयोग द्वारा प्रत्यक्ष की गई वस्तु को अथवा उसके लिए पहले कुछ सोचा गया, विचारा गया कि ऐसा होना संभव है कि नहीं? बिना सोचे-विचारे प्रयोग नहीं होता। पहले सोचना-विचारना होता है, तब फिर प्रयोग होता है। इसी तरह ईश्वर के लिए पहले सोच-समझ लीजिए। कितने कहते हैं कि ईश्वर सोच-समझ से बाहर है। इसलिए श्रद्धा से मान लो। कितने ऐसे हैं कि श्रद्धा से मान लेते हैं। हमारा देश तो ऐसा है कि बच्चे के मुँह से ही राम-राम, शिव-शिव, वाह-गुरु कहलाना आरंभ कर देते हैं। उस समय बच्चा 'राम-राम' कहता है, किंतु जानता नहीं कि 'राम-राम' क्या है? कोई तर्क भी नहीं, जैसे बच्चे को गुरुजी ने कहा—यह 'अ' है, लड़के ने सीख लिया। कोई तर्क नहीं किया। जैसे उसको कहा गया, वैसे सीख लिया। इस श्रद्धा से भी काम चलता है; किन्तु अन्धी श्रद्धा गड्ढे में गिराती है। ज्ञानवान अंधी श्रद्धा लेकर नहीं चलें। बचपन में राम-राम कहा, अब उम्र आयी है समझने के लिए कि राम क्या है और प्रयोग द्वारा जाना जाएगा कि राम क्या है। जो जैसी वस्तु है, उसके लिए प्रयोग भी वैसा ही होना चाहिए। संतवाणी में पढ़ते हैं कि राम-राम क्या है। राम-नाम का रामानंद स्वामी ने विशेष प्रचार किया। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी राम-नाम का बहुत जोर से प्रचार करवाया।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।

पारमार्थिक स्वरूप मायिक स्वरूप नहीं है।

सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।।

सर्वव्यापी वह है, जो कहीं से भी खाली नहीं। वही परमार्थस्वरूप है।

देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं।।

जो कान के सुनने से बाहर है, जो आँख से देखने योग्य नहीं है; मन से जो छुआ नहीं जाता है, वह परमार्थ-स्वरूप है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

इन्द्रियों के परे निर्विषय तत्त्व परमार्थ है; राम वही है। देश-काल से परे पदार्थ असीम होगा वा

सीमावाला? जिसके पहले कुछ नहीं है, वही अनादि होगा। वही सबसे प्रथम का होगा, उसके पहले का कुछ नहीं होगा। कितना भी विचार करो, दार्शनिक दृष्टि या विज्ञान के विचार से देखो, एक पदार्थ सबसे पहले का जो अनादि है, वह होगा। इसलिए—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

देश-काल के अन्दर और बाहर एक अनादि अनन्त तत्त्व है या नहीं? निर्णय करने पर ऐसा अवश्य है, ऐसा जानने में आता है। यद्यपि बुद्धि से नहीं जान-पहचान सकते, फिर भी बुद्धि निर्णय कर देती है कि एक पदार्थ अनादि अनन्त अवश्य है, असीम पदार्थ एक अवश्य मानना पड़ेगा। सब ससीमों को जोड़कर भी असीम नहीं हो सकता। ससीमों के पार अनन्त,असीम के कहे बिना बुद्धि को संतोष नहीं होता। सभी संतों ने परमात्म-स्वरूप को असीम बताया है। चाहे वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् वचन—कहीं देखो। यदि कहो कि जो अनादि अनंत है, उसको ईश्वर क्यों मानें? तो उत्तर में कहा जाएगा कि जिसके अन्दर सब हैं, तो उसका प्रभुत्व उन सब पर है। इसलिए वह सबका ईश्वर है। फिर कहा—माना कि वह सबका ईश्वर है, फिर उसकी भक्ति क्यों करो? मैंने कहा—संसार में रहते संसार के पदार्थ को एकत्रित करते-करते बहुत लोग संसार से चले गए। संसार के भौतिक पदार्थ को संचित करनेवाले क्या चीज लेकर संसार से गए? असंतुष्टि लेकर। यह सबके लिए है। चाहे तैमूरलंग हो, महमूद गजनवी हो या पृथ्वीराज हो अथवा आज के लोगों को देखिए, स्वयं अशांत हैं और लोगों को अशान्त करते हैं। लोगों को भी लूटकर सुख करें, ऐसी इच्छावाले लोगों की यह हालत होती है। वर्षों लड़-झगड़कर स्वराज्य प्राप्त किया; किंतु सुख कहाँ? हमारा देश कंगाल है, किंतु तमाम संसार के हाल को देखो, क्या होता है? शेख सादी ने कहा था कि जो बहुत लालची है, उसकी आँख संसार-भर की दौलत से वैसे ही नहीं भरती, जैसे शीत से कुआँ नहीं भरता।

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।।
रामभजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा।।
—रामचरितमानस

इसलिए संतों ने जोरों से कहा कि ईश्वर है, उसको पकड़ो, शान्ति आएगी। रावण, सहस्रबाहु— जैसे भी हो जाओ; किंतु शान्ति नहीं आएगी। तेज में, बल में परशुराम—जैसे हो जाओ, फिर भी संतोष नहीं। दिन के बाद रात, रात के बाद दिन अनिवार्य रूप से होता ही रहता है। उसी तरह दुःख के बाद सुख, सुख के बाद दुःख होगा ही। संसार में रहने से ऐसा होगा ही। इसलिए ईश्वर को पहचानो। संसार को देखते हो, तो संसार का गुण तुम पर होता है। इसलिए संसार से परे परमात्मा को पकड़ो, शान्ति मिलेगी। इसलिए संतों ने ईश्वर को पकड़ने पर बहुत जोर दिया।

राकापति षोडस उअहिं, तारागण समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ, बिनु रवि राति न जाय।।
ऐसे हि बिनु हरि भजन खगेसा। मिटहिं न जीवन केर कलेसा।।
—रामचरितमानस

आजकल की बिजली-बत्तियों को जला दो, तो भी रात नहीं जा सकती, वैसे ही जागतिक कितना भी वैभव हो जाय, ईश्वर-भजन किए बिना दुःख दूर नहीं होता। संसार का काम छोड़कर ईश्वर भजन करो—ऐसी बात नहीं। लोगों को जमीन का कर देना पड़ता है। इसी तरह संसार में रहकर संसार का काम करो; किंतु उसमें लिप्त मत होओ। संसार के कामों को करते हुए भजन करो।

मन को परमात्मा में लगा रखो। ऐसा करने से ईश्वर-भजन होगा। ईश्वर सबके अन्दर हैं और सब उसके अन्दर हैं।

हमलोग अभी जगे हुए हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। शरीर के जिस तल पर जब हम रहते हैं, संसार के भी उसी तल पर तब हम रहते हैं। शरीर के जिस तल को जब हम छोड़ते हैं, संसार के भी उसी तल को तब हम छोड़ते हैं। इसी प्रकार शरीर के समस्त तलों को यदि हम छोड़ सकें, तो संसार के भी सभी तल छूट जाएँगे। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओं में रहने से ईश्वर की पहचान नहीं होती। उसके लिए चौथी अवस्था है। अवस्था में परिवर्तन होने से नीचे से ऊपर चढ़ते हैं। हल जोतने वाले हो, चाहे बारीक काम करनेवाले हो, इसकी युक्ति गुरु से सीखो। आज का साधन कल के लिए नहीं छोड़ो। योग सुनकर डरना नहीं चाहिए।

अगर है शौक मिलने का तो हरदम लौ लगाता जा।

परमात्मा की ओर मन लगे, इसके लिए मन कैसा होना चाहिए? मन को पवित्र बनाने के लिए इसकी विधि जानकर प्रयोग करना होगा। ईश्वर सर्वव्यापी है, देशकालातीत है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, परमात्मा इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं है आदि-आदि; सब संतों ने एक ही बात कही है।

इन्द्रियों के द्वारा परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते। अन्तर्मुखी होने से इन्द्रियों से छूटना होता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ छूट जाएँ, ऐसा भजन करो। जब कैवल्य दशा प्राप्त होगी, तब सब संशय छूट जाएँगे। इसके लिए अंतर्मुख होना पड़ेगा। इसकी युक्ति किन्हीं संत से जानो और साधना करो।

H

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—टीकापट्टी में दिनांक ८.५.१९५३ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

५८. एक दिन सबको जाना होगा

प्यारे लोगो!

आपलोग खेती करते हैं, आपलोग किसान हैं। खेती से ही सब लोग जीते हैं, खेती नहीं करने में आपलोग डरते हैं, क्यों? इसलिए कि यदि खेती नहीं करेंगे तो खाने-पहनने के लिए तकलीफ हो जाएगी। फिर आप लोगों की संतति है। अपनी संतान के पालन-पोषण के लिए पिता की इच्छा रहती है। साथ में डर रहता है कि यदि संतान को अच्छी शिक्षा नहीं दें, तो संसार के योग्य काम को वह नहीं कर सकेगा। सरकारी नौकर या अपना नौकर ही लीजिए, वे भी डरते हैं कि यदि ठीक से काम नहीं करेंगे तो पद से हटा दिए जाएँगे।

चुनाव में क्या होता है? हर पाँच वर्ष के बाद चुनाव होता है। उसमें भी डर रहता है कि इस चुनाव में मतदान नहीं मिलेगा, तो हटा दिए जाएँगे। सिपाही अपने बड़े अफसर से डरता है। डरने से ही सब काम संसार का चलता है। संत कबीर साहब ने कहा है—

डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार।।

यहाँ तो खेती करने का डर, नहीं पढ़ने का डर आदि-आदि डर बना रहता है। यह डर करना कब तक के लिए है? मात्र एक जीवन के लिए। एक साल सुख से रहने के लिए कितना परिश्रम

करते हैं? डरकर खेती करते हैं, अच्छी बात है। किन्तु इसके साथ-साथ एक बात और है कि आज हम हैं; लेकिन हमारे पिता या पिता के पिता कहाँ चले गए? उसी तरह हमको भी एक दिन जाना होगा।

अभिमन्यु के मरने पर युधिष्ठिर को नारदजी ने बहुत समझाया और कहा कि भगवान श्रीराम ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त राज्य कर फिर इस असार संसार से चले गए। तुम पुत्र-शोक व्यर्थ करते हो।

जब यह समझ में आता है कि एक दिन हमको भी जाना होगा, तब घर-दरवाजा आदि बेकार मालूम होने लगता है। यदि कोई किसी को कहे कि मरने पर तुम नरक में जाओगे, तो यह सुनकर महादुःखी होगा। इसके लिए ऐसा उपाय करो कि शरीर छूटने पर दुःख में न चले जाओ। अभी जो आपलोगों ने पाठ में सुना है, उसमें कबीर साहब कहते हैं—

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार।।

पानी का फोंका (बुदबुदा) कुछ काल ठहरता है, फिर फूट जाता है। उसी तरह शरीर थोड़ी देर रहेगा, फिर नाश हो जाएगा। इसलिए भजन करो और डरो कि कब शरीर छूट जाएगा।

भय से भक्ति करै सबै, भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को, निर्भय होय न कोय।।

—कबीर साहब

भजन करने के लिए हमको वैसा बनना पड़ेगा, जिससे हम भजन करने के योग्य होंगे। अतरदान में अंगुलि देनी हो, तो गोबर जिस हाथ से फेंके हो, उस हाथ की अंगुलि को धो लो, तब इत्र की सुगंध मालूम होगी। उसी तरह ईश्वर भजन करने के लिए अपने मन-हृदय को शुद्ध करना होगा। इसके लिए पाँच पाप मत करो। पहला पाप है झूठ। झूठ मत बोलो। यदि गाँव भर के लोग झूठ नहीं बोलेंगे तो किसी से किसी को लड़ाई-झगड़ा आदि नहीं होगा। झूठ में सब पाप छिपे हैं। झूठ छोड़ा तो सब पाप भाग जाएँगे। संत कबीर साहब ने कहा है—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप।।

चोरी मत करो। व्यभिचार मत करो। व्यभिचार कहते हैं—अनैतिक मिलन को। मनुष्य के लिए जो शास्त्रानुकूल वैवाहिक नियम है, उस तरह विवाह कर पुरुष-स्त्री एक साथ रहें। इसके विरुद्ध जो है, वही है—व्यभिचार। नशा नहीं पियो और न खाओ। संत कबीर साहब ने कहा है—

मांस मछरिया खात है, सुरापान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी की खेत।।

खेत से मूली उखाड़ने पर उसका कुछ नहीं बचता है। उसी तरह जो मांस मछली खाता है, मद्य पीता है, वह धर्म के खेत से उखड़ जाता है।

भांग तम्बाकू छूतरा, अफयूँ और शराब।
कह कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार।।

नशीली चीज सत्यमार्ग से गिरानेवाली है। हिंसा मत करो। हिंसा नहीं करने के सम्बन्ध में मांस-मछली भोजन मत करो। मांस-मछली खाने से केवल हिंसा ही नहीं होती है, उसकी तासीर भी कुछ और है। गाय के दूध में जो गुण है, भैंस के दूध में वैसा गुण नहीं है। बकरी के दूध में फिर दूसरा ही गुण है। उसे आप पी सकते हैं, किन्तु गदही का दूध नहीं पी सकते। दूध-दूध में भी गुण है। गदही के दूध को अपवित्र समझते हैं। आप अपनी देह को समझिए और एक मछली की देह को समझिए। दोनों पर विचार कीजिए। मछली की देह में कितनी गन्ध रहती है? मछली खानेवाले मछली को धोकर खाते हैं। मछली क्या खाती है, सो विचारिए। वह निकृष्ट-से-निकृष्ट वस्तु को

खाती है। 'जैसा अन्न वैसा मन।' उस खराब वस्तु को खाने से मन कैसा होगा, विचारिए। मछली छूने पर हाथ धोते हैं। उसके शरीर के गुण और अपने शरीर के गुण में अंतर है। इसलिए अपने उत्तम शरीर में नीच गुणवाले शरीर को देकर अपने को नीचे गिराना है।

परमात्मा ने अनेक प्रकार के फल दिए हैं, मिठाई दी है, उसे खाइए। खराब चीज खाने से मन भी खराब हो जाता है। इन पंच पापों से अपने को बचाकर रखिए। मनुस्मृति में आठ घातक बताए गए हैं—१. वध करने की आज्ञा प्रदान करनेवाला, २. शस्त्र से मांस काटनेवाला, ३. मारनेवाला, ४. बेचनेवाला, ५.मोल लेनेवाला, ६. मांस पकानेवाला, ७. परोसने के लिए लानेवाला और ८. खानेवाला। ये आठो घातक कहलाते हैं।

इसलिए हिंसा से बचो। जो पंच पापों से बचेगा, वही भजन कर सकेगा। भजन करने में टालमटोल मत करो।

आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल्ह।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल।।
—कबीर साहब

इसलिए उन्होंने कहा—

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलय होयगा, बहुरि करैगा कब्ब।।

यह अच्छे कर्म के लिए कहा है, बुरे कर्म के लिए नहीं।

पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह की साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज।।
—कबीर साहब

काल राजा एक दिन सब पर झपट्टा मारता है। कब झपेटा लगेगा, ठिकाना नहीं। इसलिए होशियार रहो।

भक्त शब्द की सीढ़ी पाता है। सबके अंदर ईश्वर की ध्वनि होती है। उस शब्द को जो पकड़ता है, वह परमात्मा तक पहुँचता है। इसके लिए घर छोड़ने की जरूरत नहीं। घर में रहो, भजन करो। हल जोतो, खेती करो और भजन करो। जो सोवै, सो खोवै। जो जागै सो पावै।'

जग-जगकर भी ध्यान करो। हमारे ऋषियों ने त्रयकाल संध्या बतायी है। भैंस चराने जिस समय जाते हो, उस समय भजन करो। यदि कहो कि भैंस चरावेंगे कि ध्यान करेंगे? तो भैंस चराने के कुछ काल पहले उठो, भजन करके फिर भैंस चराने जाओ। भैंस चराने जाओ तो किसी दूसरे का खेत मत चराओ। नहीं तो सब ध्यान उसीमें खतम हो जाएगा। दोपहर में स्नान करके, फिर शाम में ध्यान करो। समय तो बहुत रहता है। किंतु लोग गपशप में बिता देते हैं। कुछ नींद को जीतो और गपशप छोड़ो, तो भजन कर सकोगे। आपलोगों ने पहले नशे के सम्बन्ध में सुना। वे तो मोटे-मोटे नशे हैं। बारीक नशे के सम्बन्ध में भी सुनिए—

मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय।।
विद्या मद और गुनहु मद, राजमद्द उनमद्द।
इतने मद को रद्द करै, तब पावै अनहद्द।।

सदाचारपूर्वक सबसे मिलकर रहिए। गाँव-समाज में भी मिलकर रहिए। आपस में झूठ व्यवहार नहीं कीजिए। सुचरित्र से रहिए। जरा-सा झूठ के कारण भगवान शिवजी ने सती को मन से त्याग दिया था। इसलिए झूठ को छोड़िए।

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—बोकनतरी में श्रीरूपलाल यादवजी के निवास स्थान पर दिनांक २३.१२.१९५३ ई० को साप्ताहिक सत्संग में हुआ था।

५९. सहज रूप सुमिरण करै

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संत कबीर साहब ने कहा है—

पिउ पिउ करि करि कूकिए, ना पड़ि रहिये असरार।
बार बार के कूकते, कबहुँक लगै पुकार।।

ईश्वर का नाम सदा जपो। जपते-जपते कभी-न-कभी अवश्य पुकार सुनी जाएगी।

पड़ा रह संत के द्वारे, तेरा बनत बनत बन जाय।

संत दादू दयाल साहब ने कहा—

सुरति सदा सनमुख रहै, जहाँ तहाँ लै लीन।
सहज रूप सुमिरण करै, निहकर्मी दादू दीन।।

बड़े-बड़े विद्वान सहज स्वरूप का सही अर्थ समझने में बहुत गड़बड़ाए हैं। लिखा है खूब; किन्तु 'सहज रूप सुमिरण' के विषय में लिख नहीं सके। कुछ भी करते रहो, पाखाने में रहो, चाहे पेशाब करो, चाहे कोई काम करो, उसका सुमिरन करते रहो तो तुम निष्कर्मी हो। इसका सब भाई अभ्यास करो। हमारे एक बहुत ऊँचे दर्जे के सत्संगी थे यदुनाथ चौधरी। उनका शरीर छूटे हुए तीन साल हुए। उनकी बीमारी का नाम सुना और सुना कि वे सख्त बीमार हैं; बचने की संभावना नहीं है। मेरे लिए सवारी आयी, मैं उनके यहाँ गया और भेंट होने पर कहा—

निसदिन रहै सुरति लौ लाई। पल पल राखो तिल ठहराई।।

इसी को श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है—

प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

अर्थात् वह भक्तियुक्त पुरुष अंतकाल में योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापित करके और निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्यपुरुष परमात्मा को प्राप्त होता है।

इसका खूब अभ्यास करो। यही अन्त समय में काम देगा। कभी मानस जप, कभी मानसध्यान, कभी दृष्टिसाधन—इन तीनों को रखो। इसी से वृक्ष लगेगा और मोक्ष का फल फलेगा।

आरती कीजै आतम पूजा, सत्त पुरुष की और न दूजा।।
ज्ञान प्रकाश दीप उँजियारा, घट घट देखो प्रान पियारा।।
भाव भक्ति और नहीं भेवा, दया सरूपी करि ले सेवा।।
सतसंगत मिलि सबद विराजै, धोखा दुन्द भरम सब भाजै।।
काया नगरी देव बहाई, आनन्द रूप सकल सुखदाई।।
सुन्न ध्यान सबके मन माना, तुम बैठो आतम अस्थाना।।
सबद सुरत ले हृदय बसावो, कपट क्रोध को दूरि बहावो।।
कहै कबीर निज रहनि सम्हारी, सदा आनंद रहै नर नारी।।

संतों की वाणियों से प्रेरणा लेकर सत्संगियों के हृदय में ऐसी प्रेरणा होनी चाहिए कि वे खूब ध्यान करें। ध्यान करने में कुशल होने पर सब काम करते हुए भी ध्यान करना होता है। विद्वान ऐसा वर्णन करते हैं कि कहना ही क्या! किन्तु सहज सुमिरन के वर्णन करने में पैर लड़खड़ा जाता है; किन्तु हमलोगों के समझने के लिए तो कठिन नहीं जान पड़ता। संत दादू दयालजी महाराज ने कहा—

सुरति सदा स्यावित रहै, तिनके मोटे भाग।
दादू पीवै राम रस, रहै निरंजन लाग।।

प्रेम इतना हो कि उसके मिलने की इच्छा बराबर लगी रहे। घूमते-फिरते, कुछ काम करते हुए भी उस ओर मन को घुमाते रहना चाहिए। इसके लिए तो रोना चाहिए कि अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। विवेकानन्द के लिए कहा जाता है कि

वे इतना रोते थे कि तकिया भींग जाता था। संत कबीर साहब के पद्य में कितना विरह है—ऐसा अन्यत्र मिलना कठिन है—

कैसे मिलौंगी पिय जाय।।टेक।।
समझि सोचि पग धरौं जतन से, बार बार डिग जाय।
ऊँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।।
लोक लाज कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय।
नैहर बास बसौं पीहर में, लाज तजी नहिं जाय।।
अधर भूमि जहँ महल पिया का, हम पै चढ़ो न जाय।
धन भइ बारी पुरुष भये भोला, सुरत झकोला खाय।।
दूती सतगुरु मिले बीच में, दीन्हों भेद बताय।
साहब कबीर पिया से भेंटे, सीतल कण्ठ लगाय।।

'कैसे मिलौंगी पिय जाय। समझि सोचि पग धरौं जतन से' का अर्थ 'पैर रखना—सुरत जमाना' है। 'बार बार डिग जाय'—सुरत हट जाती है। यदि कोई कहे कि कबीर साहब तो पूर्ण थे ही, तो उनके लिए यह कहना उचित नहीं। उत्तर में कहा जा सकता है कि उक्त सज्जन का कथन अनुचित नहीं होगा कि वे पूर्ण थे; किन्तु और लोगों के लिए उन्होंने ऐसा करने के लिए कहा, अथवा यदि वे इस प्रकार साधन करके ही पूर्ण हुए तो यह कहने में भी क्या हर्ज?

वार्षिक सत्संग सन्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरणा के लिए होता है, ऐसा नहीं कि यह मनोरंजन के लिए होता है। सब लोगों को इस सत्संग से प्रेरणा मिले, सबका ख्याल नवीन हो जाय, इसलिए यह वार्षिक सत्संग होता है।

जिस सत्संग में अंतर की प्रेरणा न मिले, वह सत्संग नहीं हुआ। भगवद्भजन खूब करो। इसकी प्रेरणा सत्संग से लो। H

यह प्रवचन संताल परगना जिलान्तर्गत ग्राम—कोरका में दिनांक २३.२.१९५४ ई० को साप्ताहिक सत्संग में हुआ था।

६०. राम भगति जहँ सुरसरि धारा

प्यारे सज्जनो!

जिस तरह ठाकुरबाड़ी में प्रसाद बँटता है, ठीक उसी तरह सत्संग में भी बँटता है। सत्संग में संतों की वाणियों का प्रसाद बँटता है। अभी छह संतों के वचनों के पाठ हुए। उनको आपलोग प्रसाद के रूप में स्वीकार करें। समास रूप में इन सबका खुलासा यह है कि अपने अन्दर में अपने को ले चलो। चलते-चलते अपने अन्दर वहाँ चलो, जहाँ तक चलना हो सकता है। फिर देखोगे कि न अपने तई के लिए और न परमात्मा के लिए अनजान रहोगे। अपने शरीर को लोग पहचानते हैं; लेकिन अपनी आत्मा और अपने को नहीं पहचानते। यह पहचान बाहर में कहीं नहीं हो सकती। जंगल, पहाड़, नदी, समुद्र कहीं जाओ, न अपनी पहचान होगी और न परमात्मा की। तुम अपने को और परमात्मा को इन्द्रियों के द्वारा नहीं पकड़ सकते। कभी मत विश्वास करो कि ईश्वर को इस आँख से देख लोगे। यदि कहो कि इसी आँख से श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीदेवीजी, श्रीशिवजी का दर्शन होता है, तो हमको क्यों नहीं होगा? यदि आप श्रीराम और श्रीकृष्ण के विचार को समझने लगेंगे, तो कहेंगे कि बाहर में जो दर्शन हुआ, वह माया का दर्शन हुआ। माया में जो निर्माया है, उसका दर्शन नहीं हुआ। भगवान श्रीराम ने कहा—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

—रामचरितमानस

शरीर को क्षेत्र और उसके जाननेवाले को क्षेत्रज्ञ कहते हैं—ऐसा भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है। श्रीमद्भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय में लिखा है—

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचरा:।।
इच्छा द्वेष: सुखं दु:खं संघातश्चेतना धृति: ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ।।

महाभूत, अहंता, बुद्धि, प्रकृति, दस इन्द्रियाँ, एक मन, पाँच विषय, इच्छा, द्वेष, दु:ख, संघात, चेतन शक्ति, धृति—यह अपने विकारों सहित क्षेत्र संक्षेप में कहा है। पाँच स्थूल तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश; पाँच सूक्ष्म तत्त्व—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द; पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पैर, लिंग, गुदा और मुँह; पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ; मन, बुद्धि, अहंकार, चेतना, धृति, संघात, इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख और प्रकृति—इन इकतीस तत्त्वों के समुदाय को सविकार क्षेत्र कहते हैं। इन इकतीस तत्त्वों में एक प्रकृति भी है। प्रकृति उस मसाले को कहते हैं, जिस तत्त्व से सारा विश्व बनता है। जिस प्रकार मिट्टी से कुम्हार बर्तन बनाते हैं, उसी प्रकार प्रकृति से सारा विश्व बनता है। प्रकृति कहते हैं—उत्पादक, पालक और विनाशक शक्ति को। तीन गुणों के सम्मिश्रण रूप को प्रकृति कहते हैं। उसी प्रकृति से समस्त जगत, पिण्ड और ब्रह्माण्ड बनते हैं। इसलिए समस्त संसार में जहाँ देखो, इन्हीं तीन गुणों के खेल हैं। किसी बड़े-से-बड़े देवता के रूप में देखो कि ये इकतीस हैं या नहीं? इन इकतीस के अतिरिक्त जो इनसे भिन्न तत्त्व है, वह है क्षेत्रज्ञ। कितने ही तेज से तेज रूप का दर्शन हो, किन्तु क्षेत्रज्ञ या आत्मतत्त्व का दर्शन बाकी रहता है। जबतक क्षेत्रज्ञ वा आत्मतत्त्व का दर्शन न हो, तबतक जो होना चाहिए, सो नहीं होता है। योगशिखोपनिषद् में लिखा है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया: ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

अर्थात् परे-से-परे को (परमात्मा को) देखने पर हृदय की ग्रंथि खुल जाती है; सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिस किसी भी दर्शन से ऐसा हो जाय, तो समझो कि परमात्मा का दर्शन हुआ। किन्तु आत्मतत्त्व के सिवाय और किसी के दर्शन से ऐसा नहीं हो सकता। सम्पूर्ण शरीर को आँख से देखते हो और आँख को देखना चाहो, तो आँख से ही देख सकते हो। उसी तरह आत्मा को चेतन आत्मा से ही देख सकेंगे। जो देखेंगे, उनको किसी से और कुछ पूछना बाकी नहीं रह जाएगा। किसी भी लोक लोकान्तर में ऐसा दर्शन नहीं होता, चाहे वे क्षीर समुद्र, ब्रह्मा का धाम, शिव का धाम, इन्द्रलोक आदि किसी भी लोक के निवासी क्यों न हों। वहाँ जञ्जाल लगा ही रहता है। क्षीर समुद्र में भी लड़ाई-झगड़ा होता है। जहाँ कहीं भी शरीर है, वहाँ कुछ-न-कुछ विकार अवश्य होगा; किन्तु जहाँ आत्मतत्त्व का दर्शन होता है, वहाँ विकार उत्पन्न नहीं हो सकता।

इसी का प्रचार सभी संतों ने किया और उनके पहले ऋषि, मुनियों ने भी इसी का प्रचार किया। बाबा देवी साहब इसी का उपदेश देते थे और कहते थे कि इसी का प्रचार करो। तीर्थस्नान करने से उतना लाभ नहीं होता। किसी भी तीर्थस्नान में ऐसा नहीं होता कि काम, क्रोधादिक विकार मिटते हैं। बहुत यज्ञ करे। बहुतों को खिलावे। इससे आपका मन पवित्र नहीं हो सकता। आत्मदर्शन में विकारों का छूटना और अंतर में धँसना; ये दोनों होते हैं।

जागने से स्वप्न में जब जाते हो, बिस्तर पर आप पड़े रहते हो। यदि आपके चारों ओर विषय

हो तो आप उन्हें ग्रहण नहीं कर सकते। उस समय हाथ, पैर आदि कोई इन्द्रिय कुछ काम नहीं करती। स्वप्न काल में मुँह में मिसरी रहने पर भी उसका स्वाद मालूम नहीं होता। स्वप्न में बाहर की इन्द्रियों से हम काम नहीं ले सकते। अन्दर की ओर जो चलता है, विषयों से छूटता है। जो कोई अपने अंदर प्रवेश करते हैं, उनकी इन्द्रियाँ विषयों में नहीं जातीं। संतों ने इस सत्संग को गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम—त्रिवेणी बतलाया है।

राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।।
विधि निषेधमय कलिमय हरनी। करम कथा रवि नंदिनी बरनी।।

अपने अंदर की त्रिवेणी में आप जाइए, तो कोई विकार आपको डिगा नहीं सकता। अपने अंदर चलनेवाले सभी शरीरों के आवरणों से मुक्त हो जाते हैं। शरीर पाँच हैं—स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य। संत दादू दयालजी ने पाँचों शरीरों को धोने के लिए कहा है। ऐसा जो कोई करते हैं, उनके लिए यह सम्प्रदाय और वह सम्प्रदाय नहीं रहता। जबतक संसार को चीन्हते थे, तो संसार में दुःख-ही-दुःख उठाते थे। यहाँ कभी शान्ति नहीं, तृप्ति नहीं। किन्तु अपने अन्दर प्रवेश करके देखो, तब जो आनन्द मिलेगा, वह आनन्द वह सुख मिलेगा, जो आनन्द, जो सुख कभी विषयों में नहीं हुआ। इसलिए कबीर साहब ने कहा—'भजन में होत आनन्द आनन्द।'

इसमें यह वर्ण और वह वर्ण, धनी या निर्धन आदि कोई भी बाधा नहीं करता। विद्वान, अविद्वान, ऊँच पद या नीच पद, हमारा देश या अन्य देश, सभी तरह के लोग, सभी देश के लोग इसको कर सकते हैं। सभी देश के लोग एक हो जायँ। मुँह में, आँख में, कान में, नाक में जो छिद्र हैं, सब देशों के लोगों को बराबर-बराबर छिद्र हैं। जो सुख-दुःख सबको होता है, वही सुख-दुःख हमको भी होता है। आपको जानने में आवे कि जैसे और देश के लोगों की जितनी इन्द्रियाँ हैं, उतनी ही हमारे देश के लोगों को हैं। इस तरह सारे संसार के लिए एक ही समान इन्द्रियाँ हैं। सबका क्षेत्रज्ञ एक ही है। उस क्षेत्रज्ञ को जानो। आपस में सब मेल से रहो।

H

यह प्रवचन गोड्डा जिलान्तर्गत श्रीरामनन्दन प्रसाद वर्मा (एग्रिकल्चर इंजिनियरिंग इंसपेक्टर) के निवासस्थान पर दिनांक २६.२.१९५४ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

६१. विद्या अच्छी तरह पढ़ो और नम्रता से रहो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मेरे कहने का विषय आज का यह होगा कि ईश्वर को लोग सर्वव्यापी और इन्द्रियातीत क्यों मानते हैं? फिर उस तक पहुँचने के लिए जो भक्ति है, वह किस तरह की जानी जाती है। मेरे सामने में बहुत बच्चे हैं, इसलिए बच्चों की समझ में आने योग्य बात पहले कहना ही ठीक है। यद्यपि जवान और बूढ़े भी हैं, किन्तु बच्चों की संख्या विशेष है।

प्यारे बच्चो! विद्या बहुत अच्छी चीज है। जहाँ तक पढ़ाई होती है, पढ़ोगे तो तुम्हारी बहुत उन्नति होगी। आजकल राजा कोई नहीं, जनता का

राज्य है। कोई किसी पर राज्य नहीं करता है। इतिहास में पढ़ो और जितने पढ़े हो, याद करो। अपना देश छोटे-छोटे राज्यों से भरा पड़ा था। लोग आपस में मेल नहीं रखते थे। अनमेल के कारण विदेश के लोग आए और उनका राज्य हो गया। छोटे-छोटे राज्य थे, इसलिए हर्ज नहीं। आपस में मेल से नहीं रहना विष है। इसलिए बच्चो! याद रखो कि किसी से बेमेल मत होओ। आपस में लड़ोगे-झगड़ोगे तो कष्ट होगा। अध्यापक के पास कहोगे, तो वे भी तुमको दण्ड देंगे। विद्यालय में और घर में मेल से रहो। अनमेल बहुत बड़ा विष है। इसी अनमेल के कारण आज स्वराज्य होते हुए भी दुःख भोग रहे हैं।

अभी तुमलोग राजकुमार हो। बड़े होओगे, तब राजा हो जाओगे। **विद्या अच्छी तरह पढ़ो और नम्रता के साथ रहो।** उम्र में जो बड़े हैं, जिनसे विद्यापाठ सीखते हो, उनसे नम्रता से रहो। जो घर में माता-पिता की बातों की परवाह नहीं करता, बड़े लोगों की आज्ञा नहीं मानता, अध्यापक की बात नहीं सुनता, वह विद्वान नहीं हो सकेगा, जिससे उसे पीछे कष्ट होगा। इसलिए माता-पिता, गुरुजनों की आज्ञा को मानो और आज का पाठ कल के लिए मत छोड़ो। नित्य का पाठ नित्य याद करो। पाठ नित्य याद नहीं करने से उसका पाठ पीछे पड़ जाता है और परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है। अपनी तन्दुरुस्ती बनाए रखने के लिए कुछ खेलो भी, जिससे तुम्हारी तन्दुरुस्ती अच्छी रहे, ऐसा नहीं कि पढ़ने के समय में खेलो। कुछ बड़े बच्चों के लिए बात यह है कि मस्तिष्क मजबूत रहने से पाठ अच्छी तरह याद कर सकता है। शरीर और मस्तिष्क को बलवान बनाकर रखने के लिए भोजन और व्यायाम है। भोजन से रक्त, रक्त से वीर्य और वीर्य से ओज बनता है। जिसका वीर्य पतला होता है, उसका ओज ठीक नहीं बन सकता। ओज ठीक नहीं बनने से वह पाठ को ठीक धारण नहीं कर सकता; उसकी स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है, वह विशेष विद्वान नहीं हो सकता। इसीलिए वीर्यरक्षा, नित्य पाठ-अध्ययन और अपनी तन्दुरुस्ती; इन तीनों बातों पर ध्यान दो।

मैं अपने प्रान्त के अतिरिक्त दूसरे प्रांतों में भी घूमता हूँ, किंतु ऐसा कोई गाँव नहीं, जहाँ कि लोग 'राम-नाम', सत्नाम, वाहगुरु आदि न बोलते हों। इसका मतलब है कि हमारे देश के लोग आस्तिक हैं। ईश्वर को हम मानते हैं। माता-पिता के कहने से 'राम-राम' कहते हैं। यह तो बचपन से ही कहते हैं, परन्तु नहीं समझते थे कि ईश्वर का होना यथार्थ में है या नहीं। तर्क-वितर्क करके नहीं जान सके थे। अध्यापक महोदय विद्यालय में स्तुति कराते हैं, जिससे बच्चों के मन में ईश्वर के होने का भाव उत्पन्न होता है। इतना होने पर भी हम मान लेते हैं, किन्तु ठीक से जान नहीं पाते। कितने आदमी तो कहते हैं कि ईश्वर एक कल्पना है। बुद्धि-विचार के द्वारा ईश्वर की स्थिति को जानें और उसपर पूर्ण विश्वास करें। बुद्धि-विचार में सुनो—हमारे बच्चे कभी-कभी देखते हैं कि कोई मर जाता है, तो उस मृतक को रंथी पर चढ़ाकर ले जाते हैं। कोई रोते-रोते जाते हैं, कोई रामनाम सत्त कहते जाते हैं। शरीर में से कुछ निकल गया, तब शरीर मर गया। इसके लिए श्रद्धापूर्वक एक काम होता है, जिसको श्राद्ध-क्रिया कहते हैं। वह कर्म करते हैं और विश्वास करते हैं कि शरीर में से जो चला गया, उसका कल्याण होगा। हमारे मुसलमान भाई कहते हैं कि शरीर छूट गया और उससे रूह निकल गई। चालीस दिनों तक जाकर कब्र पर नमाज पढ़ते हैं। ईसाई लोग भी कुछ ऐसा अनुष्ठान करते हैं। शरीर मरा है, किन्तु शरीर में

रहनेवाला नहीं मरता। जैसे अन्धड़ में घर टूट जाय और घर में रहनेवाला भाग जाय वह मरता नहीं, उसी प्रकार शरीर मर गया; किंतु रूह जीवात्मा मरा नहीं। जिस शरीर में रूह नहीं है, वह कुछ बोलता-चालता नहीं, सोचता-विचारता नहीं। एक चीज में बोलना-चालना, विचारना नहीं होता और दूसरा बोलता-चालता, विचार करता है—इस प्रकार दो पदार्थ हुए। शरीर में ज्ञानमय पदार्थ के रहने से चलता-फिरता, बोलता है; इससे जीवात्मा निकल जाने पर यह शरीर सड़-गल जाता है, कुछ कर नहीं सकता। इस शरीर को जड़ कहते हैं। इसमें रहनेवाला चेतन है। कोई कहे कि जड़-जड़ मिलकर चेतन हो गया, तो यह किस तरह विश्वास हो? जिस वस्तु का स्वाद कड़ुवा हो, उन सब पदार्थों को मिलाओ, तो वह कड़ुवा ही रहेगा, दूसरा स्वाद नहीं होगा। यह कभी मानने योग्य नहीं कि जड़-जड़ के मिलने से चेतन हुआ हो। यह चेतन पदार्थ भिन्न-भिन्न शरीरों में रहते हुए भिन्न-भिन्न दिखाई देता है, यह व्यष्टि रूप है। इस न्याय से हम सब एक तत्त्व हैं। इसलिए एक ही भाव से रहना बहुत अच्छा है। हमलोग जो बचपन से ही ईश्वर को मानते चले आये हैं, तो उसे संतवाणी, वेद, पुराण आदि से खोजते हैं, तो जानने में आता है कि वह अनादि-अनन्त-स्वरूपी है, पूर्ण है, हीनशक्ति नहीं, जिसकी शक्ति चूकती नहीं। वह स्वरूप से अपरम्पार है। इसलिए उसकी शक्ति भी अपरंपार ही है।

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
—गोस्वामी तुलसीदास

और गुरु नानकदेव ने कहा—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनि संभउ, ना तिसु भाव न भरमा।।

कबीर साहब के वचन में देखें, तो वे कहते हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूप अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।
— कबीर साहब

बड़ा से बड़ा अनन्त ही होता है। अब बुद्धि -विचार से देखिए। एक अनादि-अनन्त नहीं मानने से उपाय नहीं। अनन्त=लामहदूद। यदि कोई कहे कि सभी सादि, सान्त हैं, तो प्रश्न होता है कि उसके बाद क्या है? एक अनादि, अनन्त को मानना आवश्यक है। दो अनन्त कहने से दोनों की सीमा हो जाएगी। जो सबमें व्याप्त है, तो सब उनके अन्दर हैं। जो सबसे विशेष है, उसके अन्दर सबको रहना पड़ता है। उसे ही ईश्वर कहते हैं। किसी विद्वान ने कहा कि एक अनादि-अनन्त है, तो रहने दो; किन्तु उसको ईश्वर क्यों मानें? जो अनन्त है, तो सभी पदार्थ उसके अंदर हैं। जो सबके अन्दर हैं, तो उनपर उनका आधिपत्य है, फिर उसे ईश्वर क्यों न कहें? जो सर्वत्र घुसा हुआ है, वह तरल, वाष्प सभी में होगा; तभी वह अनन्त होगा। अनन्त होने के कारण ही वह सर्वव्यापक है। इन्द्रियों से उसका ग्रहण इसलिए नहीं होता कि जो पदार्थ जैसा रहता है, उसको पकड़ने के लिए भी वैसा ही यंत्र चाहिए। हाथ की घड़ी और एक बड़ी घड़ी के यन्त्र दोनों बराबर ही

रहते हैं; किंतु जो पदार्थ जैसा रहता है, उसको पकड़ने के लिए यंत्र भी वैसा ही होना चाहिए। संसार में आप पाँच ही पदार्थ पाते हैं, जिन्हें पंचविषय कहते हैं। एक-एक इन्द्रिय एक- एक विषय को ग्रहण करती है। जब एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय के विषय को ग्रहण नहीं कर सकते, तब इन मोटी इन्द्रियों से ईश्वर को कैसे पहचान या पकड़ सकते हैं? संसार के जितने पदार्थ हैं, सब माया ही माया हैं।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

—रामचरितमानस

वह अपरम्पार वचन में आने योग्य नहीं। इन्द्रियों से बाहर वह परमात्मा है। आप याद रखें, तो संतवाणी और बुद्धि-विचार से इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि ईश्वर को इन्द्रियों से पकड़ा नहीं जा सकता। सदाचार का पालन करो। सदाचारी ईश्वर का भक्त बनता है। भक्त बनने से उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं। ईश्वर की भक्ति करो, तो मुक्ति मिलेगी। विद्वान बनो और सदाचारी होकर ईश्वर की भक्ति करो, तो संसार में ऊँचापद प्राप्त करोगे और मुक्ति भी प्राप्त करोगे। लोग कहते हैं कि विद्या की क्या आवश्यकता? कितने संत हुए, जो पढ़े-लिखे नहीं थे। तो जानना चाहिए कि केवल स्कूल-कॉलेज जाने से ही पढ़ना-लिखना नहीं होता है। पहले मौखिक विद्या ही थी। हाल में स्वामी दयानंद सरस्वती के गुरु विरजानन्द स्वामी थे। ये जन्मान्ध थे। वे कैसे विद्वान हुए? यह कहना नहीं पड़ेगा कि भक्ति में विद्या की आवश्यकता नहीं। संतों में जो पढ़े-लिखे नहीं हुए, उन्होंने संतों के पास जाकर सुना, समझा और ध्यानाभ्यास किया। ईश्वर अनादि-अनन्त है, सर्वव्यापक है। वह अत्यन्त झीना है। उसको इन इन्द्रियों से पकड़ नहीं सकते। सब इन्द्रियों में जो चेतन तत्त्व है, उसी से उसे पकड़ सकते हैं। जैसे रूप आँख का विषय है, उसी तरह चेतन आत्मा का निज विषय परमात्मा है। कोई कहे कि शब्द क्या होता है? तो कहा जाएगा—जो कान से सुनते हैं। उसी तरह ईश्वर क्या है? तो कहिए, जो चेतन आत्मा से पकड़ा जाय। चेतन आत्मा अभी शरीर और इन्द्रियों में बंधी हुई है, इसलिए ईश्वर का दर्शन नहीं होता है। शरीर और इन्द्रियों से अपने को ऊपर उठाना यही भक्ति है।

सीताजी का हरण हुआ था। श्रीराम उसे खोजते-खोजते शवरी के आश्रम गए। वहाँ उनको नौ प्रकार की भक्ति बताई। नवो को पूर्ण करो, तब भक्ति पूर्ण होगी।

ईश्वर के सम्बन्ध में, मोक्ष के सम्बन्ध में सत्संग में बातचीत होती है। इसलिए पहले संतों का संग करो। यह पहली भक्ति है। सत्संग सुनो, तो मन लगाकर सुनो—यह दूसरी भक्ति है। तीसरी भक्ति है—मान-रहित होकर गुरु-पद-पंकज की सेवा करनी। गुरु-सेवा में अपनी मान-मर्यादा को खोना पड़ता है। मान-प्रतिष्ठा खोओ, तो गुरु-सेवा होगी। सेवा में सेवक को तन-सुख और मन-सुख खोना पड़ता है। जो स्वयं अपना तन-सुख और मन-सुख चाहता है, वह दूसरे की सेवा नहीं कर सकता। बड़े के सामने में नवो। बड़े घराने में भी लोग नवते हैं। बड़े भाई, चाचा आदि—सबकी सेवा करो। वृद्ध चार प्रकार के होते हैं—वयोवृद्ध, सम्बन्धवृद्ध, पदवृद्ध और ज्ञानवृद्ध। ज्ञानवृद्ध सबसे बड़े होते हैं। इन सब गुरुजनों की सेवा करो। जो अपने तन-मन के सुख में डूबा हुआ है, जो अपनी मान-प्रतिष्ठा खोजता है, उससे सेवा नहीं हो सकती। इसलिए अमानी

होकर गुरु-पद की सेवा करो। ऐसा नहीं होना चाहिए कि—

अहं अग्नि हिरदे जरै, गुरु से चाहै मान।
तिनको जम न्योता दिया, हो हमरे मेहमान।।

चौथी भक्ति है—ईश्वर का यशोगान करो। पाँचवीं भक्ति है—मंत्र जाप करो, जो गुरु बता दे। किन्तु गुरु हो गोरू नहीं हो। ज्ञानवान को गुरु कहते हैं।

गुरु नाम है ज्ञान का, शिष्य सीख ले सोय।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरू शिष्य न कोय।।

ज्ञानवान और चरित्रवान हो, तो वह गुरु है। ज्ञानवान हो और चरित्रवान नहीं हो तो उस गुरु को छोड़ देना चाहिए; क्योंकि वह झूठा गुरु है।

झूठे गुरु के पच्छ को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै शब्द का, भटकै बारम्बार।।
साँचे गुरु के पच्छ में, मन को देय ठहराय।
चंचल ते निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय।।

एकाग्र मन से जपो। लोग कहते हैं—

भाव कुभाव अलख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू।।

दशो दिशाओं में मंगल—शुभ होगा। दसो दिशाएँ माया में हैं, इसलिए माया में शुभ होगा। इससे मुक्ति नहीं होगी। उस नाम को भी जानो।

नाम दो प्रकार के होते हैं—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। जप वर्णात्मक नाम का होता है और ध्यान ध्वन्यात्मक शब्द का होता है। छठी भक्ति है—इन्द्रियों को रोकने का स्वाभाववाला बनना। इन्द्रियों का सूत मन के साथ है। मन इन्द्रियों को चलाता रहता है। इन्द्रियों के साथ मन भी साधा जाता है। मन का जो सूत इन्द्रियों से लगा है, उसको उस स्थान में समेटो, जहाँ से यह बिखरा है। दमशीलता के साधन में इन्द्रियों के साथ-साथ मन का भी साधन होता है। ध्यान की क्रिया से मन के सूतों को समेट सकते हैं। समेटने से ही इन्द्रियों की धार मन में आकर एकत्रित होती है। इस सिमटाव में एक विचित्र मौज मिलती है। ऐसे साधक का मन विषयों से अलग हो जाता है। श्रीराम कहते हैं—'**एहि तन कर फल विषय न भाई।**'

इन्द्रियों में से चेतनधारों को समेटकर केन्द्र में केन्द्रित करो। केन्द्र में केन्द्रित करने से उसमें जो आनन्द है, वह मिलेगा। यहाँ एक पल के लिए भी यदि ठहरेगा, तो उसका मन बारम्बार उस ओर होता रहेगा। तब विषयों की ओर से उसका मुँह मुड़ने लगेगा और परमात्मा की ओर होने लगेगा। और बहुत से कर्मों को छोड़कर सज्जनों के अनुकूल चलो। भक्त हानि-लाभ के दुःख-सुख से विरक्त रहता हुआ काम करता है। काम कुछ-न-कुछ अवश्य करेगा। कर्म त्याग नहीं हो सकता। कर्म-फल का त्याग हो सकता है। समाधिस्थ होने पर कर्मफल त्याग होता है। शरीर में रहने पर कुछ न कुछ काम अवश्य करेगा; किन्तु कर्म की सफलता-विफलता में आसक्त नहीं होगा। सज्जनों के धर्म में बरतना छठी भक्ति है। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करे—यह सज्जनों का धर्म है।

एक ईश्वर पर भरोसा करो। ईश्वर की प्राप्ति अपने अंदर होगी, इसका दृढ़ निश्चय रखो। सत्संग करो। ध्यान करो और गुरु-सेवा करो। इन पंच विधि कर्मों को करना और पाँच निषेध कर्मों को नहीं करना—सज्जनों का धर्म है। सातवीं भक्ति है—

सातवँ सम मोहिमय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।।

सातवीं भक्ति में मन का साधन होता है। यह ऊँचे दर्जे का साधन है। 'शम' के साधन के लिए मनोलय होना चाहिए। शिवसंहिता में लिखा है—न नाद सदृशो लयः। इसलिए नादसाधन करने के लिए कहा। मन और दृष्टि का बहुत संबंध है। जहाँ आप देखेंगे, मन वहीं रहेगा, इसलिए दृष्टिसाधन से मन सधता है। दृष्टिसाधन आँख से होता है।

इसलिए इन्द्रियों के साथ मन का साधन 'दम' कहलाता है और केवल मन का साधन 'शम' कहलाता है। दृष्टिसाधन के बाद नाद अभ्यास है। नाद खोजने के लिए बाहर जाना नहीं पड़ता। वह आपके अंदर है। वह परमात्मा की ध्वनि है। उस ध्वनि को जो प्राप्त करता है, शमशील हो जाता है, फिर वह समता प्राप्त कर लेता है। समता प्राप्त करने पर वह दूसरों के दुःख-सुख को अपने समान मानता है। वह दूसरों का दोष नहीं देखता। इस प्रकार जानकर सबको चाहिए कि ईश्वर की भक्ति करें।

ईश्वर को जो प्राप्त नहीं करते, वे सदा दुःख में पड़े रहते हैं। संसार को चीन्हतें हो, तो दुःख-सुख लगा रहता है, मायाजाल में फँसे रहते हो, आवागमन में पड़े रहते हो। ईश्वर को प्राप्त करो, तो आवागमन से छूट जाओगे; संसार के दुःखों से छूट जाओगे। जो पदार्थ आपस में उलटे-उलटे होते हैं, उनके गुण भी उलटे-उलटे होते हैं संसार नाशवान है और परमात्मा अविनाशी है। संसार मायिक है तो परमात्मा निर्मायिक है। संसार को चीन्हते हो तो देखो तुम्हारी क्या हालत है? ईश्वर को पहचानो, तो इसका बिल्कुल उलटा हो जाएगा। किंतु यह याद रखो कि ईश्वर का दर्शन इस आँख से नहीं होगा। यदि कहो कि प्रह्लाद को इसी आँख से दर्शन हुआ, तो यह माया का। गोस्वामीजी की यह पंक्ति याद रखो—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

यह क्षेत्र दर्शन हुआ, क्षेत्रज्ञ का दर्शन नहीं हुआ। क्षेत्रज्ञ को मन-बुद्धि से भी पहचान नहीं सकते, फिर और इन्द्रियाँ उसके लिए काफी नहीं हैं। उसको तो आत्मा से पहचान सकते हो। नररूप, देवरूप, विराटरूप, नरसिंहरूप के दर्शन में माया के बहुत काम बनते हैं; किंतु सब काम नहीं बनते। अर्जुन भगवान के साथ रहते थे। भगवान के चले जाने पर उनके शरीर में बल ही नहीं रहा। युधिष्ठिर को भगवान के दर्शन कई बार हुए थे; अपने भी वे बड़े धर्मात्मा थे, किंतु द्रोणाचार्य को मरवाने के लिए एक झूठ बोले थे, जिससे उनको कुछ काल के लिए नरक देखना पड़ा। तो इस प्रकार के दर्शनों से आप मुक्ति नहीं पा सकते। मुक्ति तो आत्मस्वरूप के दर्शन से ही होती है। इसलिए सभी संतों ने परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करने के लिए उपदेश दिया। ईश्वर-भक्ति में ऊँच-नीच, जाति-पाँति का विचार नहीं है। यदि आप भक्त होंगे, ईश्वर की भक्ति करेंगे, तो आप बड़े हो जाएँगे, लोग आपका आदर करेंगे। रविदासजी चमार थे; किंतु उन्हें लोग आदर की दृष्टि से देखते हैं, पूजते हैं। आज आप राजा हैं। आपकी संतान राजकुमार है; किंतु फिर भी दुःख-सुख भोगते हैं, इसलिए कि संतों के कहे अनुकूल चलते नहीं। यदि संतों के कहे अनुकूल चलें तो शिष्ट हो जाएँगे, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं होगा। पुलिस जो पहरा देती है, उसको भी काम से फुर्सत मिलेगी। आप सबलोग भक्ति करें और सदाचार का पालन करें, तो संसार और परलोक—दोनों जगह सुखपूर्वक रहेंगे। H

यह प्रवचन गोड्डा जिलान्तर्गत श्रीरामनन्दन प्रसाद वर्मा (एग्रिकल्चर इंजिनियरिंग इंसपेक्टर) के निवासस्थान पर दिनांक २६.२.१९५४ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

६२. परमातम गुरु निकट विराजैं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

हम सबलोग सत्संग के लिए यहाँ एकत्र हैं। मैं जानता हूँ कि संतों के संग का नाम सत्संग है। मैं नहीं कहता हूँ कि मैं संत हूँ और न मैं पहचानता हूँ कि यहाँ जो एकत्र हैं, कौन संत हैं?। इसलिए संतों के संग से सत्संग में संशय रह जाता है। संत का गृहत्यागी और वैरागी वेश में रहना ऐसा समझना भूल है। संत गृहस्थ वेश में और वैरागी वेश में भी रहते हैं। मैंने पढ़ा था—'मत कोइ करै गुमान, संत एक-से-एक हैं। जानत है भगवान, कोइ गुप्त कोइ प्रगट हैं।' संत कबीर साहब ने कहा—

कबीर संगति साधु की, ज्यों गन्धी का वास।
जो कुछ गन्धी दे नहीं, तौ भी वास सुवास।।

इसी प्रकार कोई गुप्त संत रहते हैं, तो उनकी आभा आती है। वे अपनी आभा को रोक नहीं सकते हैं। हम सब लोग एकत्र हुए हैं कि सत्संग हो, तो सत्संग का एक और जरिया है, उसी के सहारे हमलोग सत्संग करते हैं। लोग जानते हैं कि चिट्ठी आधी मुलाकात होती है। दूर-दूर में रहकर पत्र द्वारा एक-दूसरे के ख्यालों को जानते हैं। उससे प्रभावित भी होते हैं। इसी तरह यह जरिया है कि संतलोग जो हो चुके हैं या अभी जिनपर लोगों का विश्वास है, वे यहाँ वर्तमान नहीं हों, फिर भी उनकी पुस्तक हो या कोई जबानी गावे, तो उनके वचन से हम प्रभावित होते हैं; किस दिशा में चलना चाहिए मालूम होता है। इसलिए संतवचन अवश्य पढ़ना चाहिए। संतों के वचन से उन संतों की आधी मुलाकात होती है। किंतु मैं तो कहता हूँ कि यदि संतों का रत्ती-रवा भी संग हो तो अहोभाग्य है। अभी आपलोगों ने संत कबीर साहब, गुरु नानक साहब, संत पलटू साहब, गोस्वामी तुलसीदासजी, संत सूरदासजी और संत तुलसी साहब के वचन सुने। संत लोगों के पास सबसे बडा धन—अनमोल पदार्थ यदि है तो वह है ईश्वर या परमात्मा। संत लोग ईश्वर की खोज में चले और मुझको विश्वास है कि जिन संतों के वचन आपको सुनाए गए, वे ईश्वर को प्राप्त किए हुए थे। मैं जोर नहीं देता हूँ कि आप भी विश्वास कीजिए। जो मानते हैं, वे तो मानते ही हैं, किन्तु जो इस पर विश्वास नहीं करते हैं कि वे संत थे, उनसे भी घृणा नहीं। उन संतों के वचनों को पढ़िये, विचारिए और यदि जँच जाय, तो उनपर विश्वास कीजिए। संतों ने कहा—ईश्वर-ईश्वर बचपन से कहते चले आ रहे हो, चाहे किसी भाषा में; किन्तु इसका निर्णय आज तक जाने हो कि ईश्वर कहाँ है? यदि जाने हो तो वहाँ जाकर उसे ठीक-ठीक पहचानो। यदि नहीं जानते हो तो संतों के वचनों को सुनो। आपने पहले संत कबीर साहब का वचन सुना। आपके मन में होता होगा कि मैं कबीर सम्प्रदाय का हूँ। तो मैं कभी कबीर सम्प्रदाय का नहीं हूँ। और न मेरा वेश उस तरह का है। मैं कबीर साहब के वचनों से प्रभावित हूँ। किन्तु कबीर साहब पहले आते हैं। सब संत एक समय में प्रकट नहीं हुए थे। पहले कबीर साहब प्रगट हुए थे। हाँ, यह अवश्य है कि कबीर साहब और गुरु नानक साहब दोनों समकालीन थे; किंतु दोनों के वचन एक साथ कैसे कहे जायँ? इसलिए पहले कबीर साहब के वचन, फिर गुरु नानक साहब के

वचन का पाठ आपलोगों ने सुना। इसी तरह गोस्वामी तुलसीदासजी और सूरदासजी के वचन सुने। उसके बाद आपलोगों ने संत पलटू साहब और संत तुलसी साहब के वचन सुने। पहले पीछे नाम कहने का यह मतलब नहीं कि मैं किन्हीं को विशेष और किन्हीं को कम मानता हूँ; बल्कि जो जैसे प्रकट हुए, उनका नाम वैसे ही लेकर भजन गाए गए। संत कबीर साहब कहते हैं कि तुम्हारे निकट परमात्मा विराज रहे हैं; किन्तु तुम सोए हुए हो— 'परमातम गुरु निकट विराजैं, जाग जाग मन मेरे।'

जन्म लेते हो, तब सोते हो, मरते हो तब सोते हो, स्वर्ग जाते हो, तब सोते हो, तुम सभी अवस्थाओं में सोए रहते हो। जगने के लिए संत कबीर साहब कहते हैं और इसके लिए कहते हैं 'गुरु के निकट जाकर ज्ञान प्राप्त करो।' सुनना, समझना और विचारना जबतक होता रहता है, तबतक परमेश्वर याद रहते हैं; सचेतता रहती है, किन्तु तुरन्त ही भूल जाते हैं और अचेतता आ जाती है। केवल समझने में ही नींद नहीं टूटती। आप भी जगे हैं, कुछ देर पूर्व आप सोए थे, तो आपको स्वप्न भी हुआ होगा और सुषुप्ति भी हुई होगी। यह सोना-जागना कैसे होता है, इसको समझिए। इस शरीर में आपके रहने का एक केन्द्रीय स्थान है। जाग्रत में एक स्थान में, स्वप्न में दूसरे स्थान में और सुषुप्ति में तीसरे स्थान में होता है। स्थान-भेद से ज्ञान-भेद होता है। स्वप्न में अचेतता रहती है। अभी जो हमलोग जगे हैं, यह भी संत कबीर साहब के ख्याल में सोना ही है। मेरा जाना हुआ है कि जिस तरह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के तीन स्थान हैं, उसी तरह एक चौथी अवस्था और स्थान भी है, जिसमें संसार की ओर से सोया रहता है और अंतर में जगता रहता है; लेकिन वह स्वप्न अवस्था नहीं है। उसमें जो रहता है, उसको वह बड़ा विचित्र मालूम पड़ता है। स्वप्न में बाह्य विषय की ओर जैसे मन रहता है, उस समय वैसा नहीं होता। उस समय में वह कुछ आन्तरिक रस पाता रहता है, जिसको कह सकते हैं ईश्वर संबंधी विशेष वस्तु, जिसको पाते रहने पर ईश्वर की ओर रहता है, विषय की ओर नहीं। उस अवस्था को तुरीय अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में जो जगता है, वह ईश्वर की ओर जाता है। जाग्रत में हमलोग संसार की ओर जगते हैं।

माया मुख जागे सभै, सो सूता कर जान।
दरिया जागे ब्रह्म दिसि, सो जागा परमान।।

संत दरिया साहब ने कहा है। और गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

सपने होय भिखारी नृप, रंक नाकपति होय।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोय।।

इस सारे संसार को उन्होंने स्वप्न कहा। किन्तु हमलोग तो देखते हैं कि संसार है। फिर वे खुलासा करते हैं—

मोह निसा सब सोवनहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।
यहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

मोह मानी अज्ञानता। असत् ज्ञान में जबतक रहते हैं, तबतक सोए रहते हैं। यह मेरी चीज है, वह उसकी चीज है, यह ज्ञान स्वप्न का ज्ञान है। अनेक प्रकार में जो विविधता देखते हैं वा शत्रु-मित्र का जो ज्ञान होता है, वह मोह-निशा में सोते-सोते होता है। इसमें जगते हैं कौन?

यहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

गोस्वामी तुलसीदासजी के ख्याल में योगी जगते हैं। योगी कैसे जगते हैं? तो वे कहते हैं—

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि योगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिशय द्वैत वियोगी।।

योगी वह है जो अन्तर्मुख होता है। अंदर में रहते हुए जो सारे ब्रह्माण्ड का दर्शन करता है,

वही ईश्वर के परमपद को जानता है। जो अपने अंदर ठहरे, वह योगी है। अन्दर में ठहरने के लिए तीन अवस्थाओं और तीन स्थानों के अतिरिक्त कोई चौथा स्थान और चौथी अवस्था होनी चाहिए। उसी को संतों ने तुरीय अवस्था कहा है। इस चौथी अवस्था में आना जगना है। केवल विचार विचार का जगना, भाव ही भाव में मोह होना—यह जगना नहीं है। प्रत्यक्ष जगने के लिए चौथे स्थान में जाना होगा।

ईश्वर सबके अन्दर है। उसको आप तब पाएँगे, जब आप जगिएगा और जगिएगा तब, जब आप चौथी अवस्था में जाइएगा। लड़कपन से ही हमलोग राम-राम, शिव-शिव, वाह-गुरु आदि कहते हैं। अपने अन्दर में ईश्वर है—ऐसा जाननेवाले लोग बहुत हैं, किन्तु कितने तो ऐसे हैं, जिनको मालूम नहीं कि ईश्वर अपने अन्दर है। संतों ने बताया कि तीसरे स्थानों से चौथे स्थान में जाओ, तब जानोगे। ईश्वर को प्रत्यक्ष पाना चाहो, तो अपने अन्दर चलो। गुरु नानकदेवजी के वचन में अभी आपलोगों ने सुना—

इस गुफा महि अखुट भंडारा। तिसु विचि बसै हरि अलख अपारा।
आपे गुपुतु परगट है आपे गुर सबदि आप वंञावणिआ।।

इस शरीररूप गुफा में ऐसा भण्डार है कि खर्च करते जाओ, किन्तु वह भरा ही रहेगा। उसके अन्दर हरि है, जो इस आँख से नहीं देखा जाता। जिसका वार-पार नहीं, वह स्वरूपतः अपार है। सारे विश्व को अपने से भरपूर करता है, किन्तु स्वयं कहीं समाप्त नहीं होता। गुरु नानकदेवजी कहते हैं—तुम नौ द्वारों में यानी आँख के दो, नाक के दो, कान के दो, मुँह का एक और मल-मूत्र विसर्जन के दो द्वारों—में ठहरे हुए हो, तो तुम संसार में दौड़ते रहते हो। दसवें द्वार में पहुँचो, जिसको शिवनेत्र कहते हैं। नौ द्वारों से सिमटकर दसवें द्वार में जाओ, तब ईश्वर की कुछ खबर मिलेगी। बचपन में सुना था कि गोस्वामी तुलसीदासजी को पहले प्रेत से दर्शन हुआ था। फिर हनुमानजी से और फिर भगवान के स्थूल रूप का दर्शन हुआ था। जब गोस्वामीजी को अन्दर में दर्शन हुआ, तब उन्होंने ऐसा कहा—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल, परम सुगंध कहाँ ते आयो।।
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेंवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।।
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुण, तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि, विषय बबूर बाग मन लायो।।
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम, मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय, कीजै नाथ उचित मन भायो।।

इस शरीररूपी तालाब में परमात्मरूपी निर्मल जल है। यदि माया के परदे को हटा दो तो परमात्मा का दर्शन होगा। जिसको देखना चाहो, उधर अपनी दृष्टि को ले जाओ। पलक बन्द करने पर अन्धकार का परदा दीखता है।

मायाबस मति मन्द अभागी। हृदय जवनिका बहु विधि लागी।।
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं।।

काम क्रोध मद लोभरत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ पड़े तम कूप।।

(अन्दर में परदे रहने से परमात्मा को कैसे पहचानोगे?) इच्छा-द्वेष को छोड़ो। सेंवार-रूप परदों का छेदन करो, अंधकार के परदे को हटाओ, तब दर्शन होगा। तुलसीदासजी कहते हैं—अन्तर के अन्तिम तह में चलकर दर्शन होगा। सूरदासजी कहते हैं—

अपुनपौ आपुन ही में पायो।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।।
ज्यों कुरंग नाभि कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो।

फिर चेत्यो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तनु छायो।।
राज कुँआर कण्ठे मणि भूषण, भ्रम भयो कह्यो गँवायो।
दियो बताइ और सत जन तब, तनु को पाप नशायो।।
सपने माहिं नारि को भ्रम भयो, बालक कहुँ हिरायो।
जागि लख्यो ज्यों का त्यों ही है, ना कहूँ गयो न आयो।।
सूरदास समुझै की यह गति, मन ही मन मुसकायो।
कहि न जाय या सुख की महिमा, ज्यों गूँगो गुर खायो।।
—सूरदासजी महाराज

सूरदासजी कहते हैं कि जागो, तो बालक को पाओगे। बालक को ईश्वर से पटतर कर दिया है। कबीर साहब ने आगे कहा है—

बालक रूपी साइयाँ, खेले सब घट माहिं।
जो चाहे सो करत है, भय काहू को नाहिं।।

पलटू साहब ने कहा—वह ईश्वर तुम्हारे अन्दर है, जैसे दूध में घी है। तुलसी साहब ने कहा—पहले पवित्र बनो, तब ईश्वर का दर्शन होगा। पवित्रता के लिए स्नान करो, कैसा स्नान करो? तो कहा—

आली अधर धार निहार निजकै, निकरि सिखर चढ़ावहीं।
जहाँ गगन गंगा सुरति जमुना, जतन धार बहावहीं।।
जहाँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि, धुर गुरू गति गावहीं।
जहाँ संत आस विलास बेनी, विमल अजब अन्हावहीं।।
कृत कुमति काग सुभाग कलिमल, कर्म धोय बहावहीं।
हिय हेरि हरष निहारि घर कौ, पार हंस कहावहीं।।
मिलि तूल मूल अतूल स्वामी, धाम अविचल बसि रही।
आलि आदि अंत विचारि पद कौ, तुलसी तब पिउ की भई।।

अंतर की गंगा में स्नान करो, तो शुभ और अशुभ—सभी कर्म धुल जाएँगे, आवागमन से छूट जाओगे। जब उस परमात्मा को पाओगे, तो कभी दुःख में न जाओगे। सभी संतों ने कहा कि ईश्वर तुम्हारे अंदर है। ऐसा भजन करो कि अपने अंदर अंदर चलो और परमात्मा को पाकर सारे दुःखों से छूट जाओगे। H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महल्ला मिरजानहाट में दिनांक २७.२.१९५४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

६३. अमृत को नत्रों से पान करो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आप सब यहाँ सत्संग के लिए एकत्रित हैं। सत्संग में बहुत तरह की बातें होती हैं। ऐसा नहीं कि जो आध्यात्मिकता के खिलाफ बातें हैं, वे भी होती हैं। मैं आपका ख्याल उधर ले जाना चाहता हूँ, जो आपने पहले सद्ग्रंथों के पाठ में सुना था। मेरा यह कायदा और सहारा भी है कि संतों की वाणी का मैं आदर करूँ और उसके सहारे चलूँ। संतों की वाणी को ही मैं सत्संग कहूँगा। जो मुझे जानते हैं, वे तो वैसे ही मुझे कहते होंगे कि संतों की वाणी का सहारा मुझे उतना ही है, जितना कि बिना वायु के श्वास कोई नहीं ले सकता।

मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में संसार को समुद्र कहा गया है। उसमें निद्रा-भय जीव-जन्तु हैं, ऐसा बतलाया गया है। समुद्र में बड़े-बड़े जीव होते हैं और जीव को जीव निगल जाते हैं। उसी प्रकार नींद है। उसके पेट में जो जाते हैं, उसकी सुधि-बुद्धि सब खो जाती है। भय भी उसी तरह है। भयातुर होकर अपनी शक्ति को लोग खो बैठते हैं। उसमें तृष्णा भँवर है, इसको पार करने के लिए सूक्ष्म मार्ग का अवलम्ब ग्रहण करें। जीव भँवर में चक्कर खाते हैं। ऐसे ही इच्छा की तरंग में पड़े

हुए लोग सूक्ष्ममार्ग का अवलम्ब ग्रहण करें। सूक्ष्म का अर्थ है—महीन। सूक्ष्ममार्ग के लिए बतलाया गया कि उसके द्वारा किस तरह ब्रह्म का अवलोकन होता है। चन्द्र-बिम्ब **अमृत को नत्रों से पान करो**। उसके दर्शन के लिए तीन प्रकार की दृष्टियाँ चाहिए। अमादृष्टि, प्रतिपदादृष्टि और पूर्णिमादृष्टि। पूरी आँखें बंदकर देखना अमादृष्टि है। आधी आँखें खोलकर और आधी आँखें बंदकर देखना प्रतिपदादृष्टि है, जिसे शाम्भवी मुद्रा कहते हैं और पूरी आँखें खोलकर देखना पूर्णिमादृष्टि है, जिसे वैष्णवी मुद्रा कहते हैं।

इस तरह देखने से क्या होता है? तो कहते हैं कि इससे वायु की स्थिरता होती है, मन की स्थिरता होती है। क्या यह बात सत्य है? उपनिषद् की बातों को झूठलावें, मेरी समझ से बाहर है।

दृष्टि वह चीज है, जहाँ पर यह ठीक से लगी रहती है, मन वहीं पर पड़ा रहता है। ऐसा नहीं होगा कि दृष्टि को एक जगह स्थिर किए हैं और मन दूसरी ओर भाग जाय। यदि ठीक-ठीक देखते हैं तो मन वहीं रहता है। दृष्टि डीम-पुतली को नहीं कहते, देखने की शक्ति को कहते हैं। दृष्टि स्थूल है या सूक्ष्म? दृष्टि को हाथ से आप नहीं पकड़ सकते। आप मेरी ओर देखते हैं और मैं आपकी ओर देखता हूँ, तो दोनों की दृष्टि दोनों पर पड़ती है, किन्तु उसे देख नहीं सकते। इस प्रकार दृष्टि सूक्ष्म है और मन भी सूक्ष्म है। सूक्ष्म को सूक्ष्म का सहारा मिलना अवश्य मानने योग्य है। इसलिए दृष्टि से मन का स्थिर होना पूर्ण सम्भव है। दृष्टि और मन दोनों सूक्ष्म है, इसलिए उपनिषद् का यह वाक्य सत्य है, ऐसा विचार में जँचता है। बाकी रही बात वायु-स्थिरता की। तो आप देखिए, किसी गम्भीर बात को सोचिए, तो मन इधर-उधर नहीं भागता। ऐसी अवस्था में श्वास-प्रश्वास की गति भी धीमी पड़ती है। आप स्वयं आजमाकर देख सकते हैं।

मन की चञ्चलता में श्वास तेज होता है और मन की स्थिरता में श्वास की गति धीमी होती है। याद रहे कि मैं प्राण और प्राणवायु दोनों को एक ही नहीं मानता। योगिवर भूपेन्द्रनाथ सान्यालजी ने कहा था—'जैसे दूध में घी रहता है, उसी प्रकार वायु में प्राण रहता है।' प्राणवायु वह है, जो वायु प्राण से सम्बन्धित हो। उपनिषद् में जो बताया गया कि दृष्टि-साधन से मन और वायु की स्थिरता होती है, बिल्कुल ठीक है और जो कहा गया कि भवसागर से पार हो जाओगे, वह भी ठीक है। यदि कहा जाय कि मन और वायु की स्थिरता में ईश्वर की प्राप्ति कैसे होगी? तो देखिए, मन के सिमटाव से ऊर्ध्वगति होती है, ऊर्ध्वगति से मायिक तल का छेदन होता है। माया के तल से ऊपर जाने पर निर्मायिक का दर्शन होता है।

परमात्मा का दर्शन हमको इसलिए नहीं होता है कि हमने पहले जाना नहीं कि परमात्मा का दर्शन कैसे होता है। पहले जानो कि शब्द का ग्रहण कान से होता है। रूप का दर्शन आँख से होता है। परमात्मा तो बहुत दूर है, पहले आप अपने को जानिए। कोई ऐसा नहीं कहता कि मैं नहीं हूँ। मैं हूँ—ऐसा सबको विश्वास है। कहाँ हैं? तो कहेंगे—शरीर के अंदर हैं। शरीर के अंदर मनोवृत्ति के संग-संग हैं। जिस प्रकार दूध के संग-संग घी रहता है, उसी तरह मन के संग-संग जीवात्मा रहता है।

एक आदमी है, जो चारचित लेटा पड़ा हुआ है। उसको उठकर कहीं जाना है, तो वह क्या करेगा? पहले हाथ-पैर समेटेगा, तब वह उठकर चलेगा। बिना हाथ-पैर समेटे चल नहीं सकता है। उसी प्रकार इन इन्द्रियों की सम्भाल जबतक नहीं

होगी, तबतक परमात्म-दर्शन सम्भव नहीं। उसके लिए साधन बताया गया कि शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करो। शाम्भवी मुद्रा तीन तरह की होती है। भगवान विष्णु को जहाँ देखिए, तो खुली आँखें, शिवजी को जहाँ ध्यानावस्थित देखिए, आधी आँखें खुली और आधी आँखें बन्द। भगवान बुद्ध को देखिए, तो आँखें बन्द। व्यासदेवजी भी आँख बन्द करके ध्यान करते थे, ऐसा चित्र मुझे मिला है।

हमारे गुरु महाराज कहते थे कि आँखें खोलकर देखोगे, तो तुमको आँखों में कष्ट होगा। पाल ब्रंटन ने एक पुस्तक लिखी है, उसमें उन्होंने लिखा कि एकटक लगाओ। एक साधु थे, जिनकी आँखों से पानी टपकता था। आपको पोथी-प्रमाण की आवश्यकता नहीं। विचार से देखिए—जहाँ आपकी दृष्टि गड़ी रहेगी, मन वहीं रहेगा। मन सूक्ष्म है और दृष्टि भी सूक्ष्म है। इसलिए स्वजाति को स्वजाति से मदद मिलती है। मैंने श्रीभूपेन्दनाथ सांन्यालजी से पूछा कि प्राणायाम करके ध्यान करना चाहिए अथवा ध्यान करके प्राणायाम करना चाहिए। उन्होंने कहा—'प्राणायाम करके ध्यान करना चाहिए।' मैंने कहा—'श्रीगीताजी के छठे अध्याय में बैठने के लिए आसन और आसन के तरीके सब बतलाए हैं, किन्तु वहाँ प्राणायाम के लिए कोई जिक्र नहीं है। जहाँ-जहाँ मन भाग जाय, वहाँ वहाँ से लौटाने कहा है। ध्यान से प्राणस्पन्दन बन्द हो जाय, तो यही प्राणायाम हो गया।'

पहले दूध-मक्खन साथ-साथ रहते हैं। जहाँ दूध रहता है, मक्खन भी वहीं रहता है। फेफड़े में संकोचन-विकासन की क्रिया होती रहती है, किन्तु बाहर की वायु से नहीं, जीवनी शक्ति से। जीवनी शक्ति प्राण है। प्राण परमात्मा से उत्पन्न होता है और वायु आकाश से उपजती है। हाँ, हम जो बाहर से वायु खींचते हैं, वह प्राण से सम्बन्धित हो जाती है, इसलिए उसको प्राणवायु कहते हैं। यदि शाम्भवी मुद्रा से अभ्यास करें तो मन स्थिर हो जाता है। मन स्थिर हो जाता है तो प्राण भी स्थिर हो जाता है। दृष्टि का ऐसा प्रयोग है, जिससे मन स्थिर हो जाता है। स्थिरता में सिमटाव होता है। सिमटाव से मायिक आवरणों का छेदन होता है। मायिक आवरणों के छेदने पर उधर परमात्मा ही बाकी रहते हैं। उसे परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

अष्टांग योग में पहले यम, नियम और तब आसनसिद्धि के बाद प्राणायाम कहा, किन्तु प्राणायाम में ही समाप्त नहीं किया। प्राणायाम के बाद प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि भी कहा है। इसलिए पहले यम, नियम, आसनसिद्धि आदि और अन्त में समाधि होगी। प्राणायाम से आपदा भी हो सकती है, किन्तु ध्यान से आपदा नहीं होती। प्राणायाम से उन्माद भी होता है। 'कल्याण' पत्र में ऐसा लेख भी निकला है। गुरु नानक, दादू दयाल, कबीर साहब, तुलसी साहब आदि संतों ने ध्यानयोग पर ही जोर दिया है। दृष्टिसाधन से आरम्भ करके अन्त तक का वर्णन किया। प्राणायाम के बाद ध्यान-योग में जाना ही पड़ेगा, किन्तु ध्यान-योग से प्राणायाम में नहीं जाना होगा।

मन को ठीक-ठीक लगाओ, दृष्टि को ठीक-ठीक लगाओ, जैसा बताया गया है। अवश्य शांति मिलेगी। मेरे कहने का तात्पर्य ऐसा नहीं कि प्राणायाम नहीं करो। जिनसे निबहता है, करें; किन्तु खतरे से—आपदा से बचते रहें। बिना प्रत्याहार के धारणा नहीं होगी। बिना धारणा के ध्यान नहीं होगा। इसलिए पहले प्रत्याहार होगा। मन जहाँ जहाँ भागेगा, वहाँ-वहाँ से लौटा-लौटाकर फिर वही लगाया जाएगा, तो अल्प टिकाव अवश्य होगा। 'रसरी आवत जात ते सिल पर पड़त निसान' यही धारणा होगी। फिर विशेष देर तक

टिकते-टिकते ध्यान होगा और अन्त में समाधि होगी। केवल किसी एक पर जोर देना उचित नहीं।

लोग पूजा-पाठ, मूर्ति-ध्यान करते हैं, इसमें भी एकाग्रता होती है। शरीर कपड़े की तरह बदलता है, किन्तु हम रहेंगे। हम पर जो संस्कार पड़ेगा, वह भी रहेगा। भगवान ने कहा कि जहाँ-जहाँ मन भागे, वहाँ-वहाँ से लौटा-लौटाकर लाओ। ऐसा संदेह नहीं करना चाहिए कि इधर साधना से गए और उधर सांसारिक भोग से भी। तो भगवान श्रीकृष्ण ने कहा— कल्याणकारी कर्म करनेवालों की अधोगति नहीं होगी। ऐसा वर्णन है। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में दृष्टिसाधन करने के लिए कहा—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

अर्थात् काया, सिर और गले को समान एवं अचल करके और स्थिर होकर अपनी नासिका के आगे दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ देखे। नासाग्र ध्यान में भी भेद है।

एक सेठ ने अपने गुप्त धन रखने का स्थान अपने बही-खाते में लिखकर रख दिया था कि अमुक महीने की अमुक तिथि के दिन, दोपहर के समय धन अमुक ताड़ गाछ की फुनगी पर रखा है। जब वह मर गया और उसके बेटे ने जब इसे पढ़ा, तो अति आश्चर्यित हुआ कि ताड़ वृक्ष तो अभी वर्तमान है, पर वहाँ तो धन है नहीं! और सोचा कि वहाँ धन रह भी सकता है कैसे?

उसके पिता के समय का एक वृद्ध मुनीम था। जब लड़के ने इस विषय में उससे पूछा तब उस वृद्ध ने कहा—'वह महीना, तिथि और वह समय आने दो, तो मैं बतला दूँगा।' जब वह समय आ गया, तब उस वृद्ध ने उस सेठ के पुत्र को उस स्थान पर ले जाकर ताड़ गाछ की फुनगी की छाया जहाँ पड़ती थी, वह स्थान बतला दिया और बोला कि इसी जगह में वह धन गड़ा है। सेठपुत्र ने कोड़कर अपना धन निकाल लिया। संत धरनीदासजी ने कहा—

धरनी निर्मल नासिका, निरखो नैन के कोर।
सहजै चन्दा ऊगिहैं, भवन होइ उजियोर।।

निर्मल नासिका को समझो। शाण्डिल्योपनिषद् में भी नासाग्र का जिक्र आया है।

विद्वान्समग्रीवशिरो नासाग्रदृग्भ्रूमध्ये
शशभृद्बिम्बं पश्येन्नेत्राभ्याममृतं पिबेत्।।

विद्वान गला और सिर को सीधा करके नासिका के आगे दृष्टि रखते हुए, भ्रुवों के बीच में चन्द्रमा के बिम्ब को देखते हुए नेत्रों से अमृत का पान करें।

कुछ लोगों का कहना है कि आज्ञाचक्र से नीचे पाँच चक्र हैं। इनमें से पहले नहीं गुजरकर आकाश में ही कैसे उड़ने लगेंगे? तो मैं कहूँगा कि दोनों आँखों से दृष्टि की धार निकलती है। बिजली के गिरने से यदि कोई उसे देख लेता है, तो उसकी दृष्टिधार निकलते ही उसका शरीर भी छूट जाता है। दृष्टि शरीर का प्राण है।

अजगर की दृष्टि किसी आदमी की दृष्टि पर पड़े तो अजगर की दृष्टि से उसकी दृष्टि मिलने से वह व्यक्ति उस ओर खिंचता चला जाता है।

'शिवसंहिता' में भगवान शिव ने एक-एक चक्र के साधन का तथा उनके गुणों का वर्णन किया है। फिर आज्ञाचक्र के वर्णन में उन्होंने कहा है—'पंच पद्मों का जो-जो फल (पंच चक्रों के ध्यान का जो-जो फल) होता है, सो समस्त फल आप ही इस आज्ञा कमल (आज्ञाचक्र) के ध्यान से प्राप्त हो जाएगा।

आपके दोनों हाथों को पकड़कर कोई खींचे, तो तमाम शरीर उसी ओर खींचा जाएगा। उसी

प्रकार दोनों दृष्टि की धारें जिधर खींची जाएँगी, संपूर्ण शरीर की धार उस ओर फिर जाएगी। इसी का वर्णन गुरु नानक, कबीर साहब आदि संतों ने किया है। जिसका मन एक क्षण के लिए भी उस ओर लग जाएगा, तो वह एकाग्रता का सुख और कुछ-न-कुछ झलक अवश्य देखेगा। यही साधन निरापद है। करते जाओ, सुगम साधन है। इसके साथ संयम करो। बिना संयम किए न हठयोग चलेगा, न दृष्टियोग और न शब्दयोग। इसलिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार मत करो। यदि कभी भूल से भी हो जाय, तो परमात्मा से प्रार्थना करो कि हमसे अब ऐसा न होने पावे। अपनी शक्ति भी लगाओ कि ये अपकर्म आपसे न होने पावें, केवल कहो नहीं।

धन-सम्पत्ति के लिए जो बहुत दुष्कर्म करते हो, यह साथ जाने को नहीं है। साथ ही जब आपका शरीर छूट जाएगा और कहीं जन्म होगा, तब उस धन के लिए कहो कि मेरा धन है, तो आपको कौन दिला देगा? इसलिए धन-सम्पत्ति में आसक्ति मत बढ़ाओ। ध्यान करो। ध्यान करने के लिए पहले किसी नाम का जप करो, फिर जिस नाम का जप करते हो, जिसमें श्रद्धा हो, उसी से संबंधित रूप का मानस ध्यान करो। फिर—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।

—गीता, अध्याय ८/९

विन्दुध्यान करो। ध्यानविन्दूपनिषद् में आया है—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

विन्दु के बाद शब्द का—नाद का ध्यान करो। 'न नाद सदृशो लयः।' पहले विन्दु का ध्यान करो, फिर नाद का। इस प्रकार लोग नित्य अभ्यास करते हुए आगे बढ़ सकते हैं। कोई पूछे कि ईश्वर क्या है, तो पूछो कि रूप क्या है? जो इन आँखों से देखा जाय। उसी तरह जो चेतन आत्मा से ग्रहण हो, वह ईश्वर या परमात्मा है। चेतन आत्मा को जड़ का संग छूटे, इसी के लिए दृष्टि-साधन और शब्द-साधन है। दृष्टि-साधन करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए मानस जप और मानस ध्यान है। इसके लिए ऐसा नहीं कि काम आज शुरू करो और आज ही खतम। भगवान बुद्ध ने ५५० जन्मों में सिद्धि प्राप्त की थी। भगवान कृष्ण ने भी अनेक जन्मों की बात कही है। यह सुनकर शिथिलता लाने की बात नहीं। धीरे-धीरे करते जाओ, एक-न-एक दिन काम अवश्य समाप्त होगा। H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महल्ला मिरजानहाट में दिनांक २८.२.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

६४. घर माहैं घर निर्मल राखै

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं क्या कर रहा हूँ, यह कल से आप सज्जनों को विदित हो रहा है। मैं भागलपुर के लिए नया आदमी नहीं हूँ। मैं १९०९ ई० के पहले से यहाँ आता हूँ। यह प्रचार, जिसे मैं कर रहा हूँ, ईश्वर-भक्ति का है। इसका आधार संतों का वचन है। ईश्वर भक्ति में तीन बातें खास कर ली जाती हैं—स्तुति, प्रार्थना और उपासना। इन तीनों को छोड़कर कोई ईश्वर की भक्ति में गुजर नहीं सकता।

स्तुति कहते हैं—ईश्वर की मर्यादा के गुण-

गान को, बड़प्पन का वर्णन करने को। इससे श्रद्धा उपजती है और अपने लिए मालूम होता है कि यदि वे मुझे मिलें तो मैं सारे कष्टों से छूट जाऊँ। ऐसा होने से मन में होता है कि कैसे मिलेंगे? इससे उसको प्रेम होता है और उससे मिलने के लिए जो यत्न करता है, वह भक्ति होती है। ईश्वर प्राप्ति के विषय में संत कबीर साहब का पद है—घूँघट का पट खोलो, तो तुमको प्रभु मिलेंगे—

घूँघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।
घट-घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे।।
धन यौवन का गर्व न कीजै, झूठा पँच रंग चोल रे।
शून्य महल में दियना बारि ले, आशा से मत डोल रे।।
जोग जुगत से रंग महल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे।।
—सन्त कबीर साहब

तात्पर्य यह कि इस शरीर में चेतन आत्मा है। उसके ऊपर जड़ आवरण पड़े हैं। जड़ आवरण भी एक नहीं, चार हैं—स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण।

सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर के विषय में बहुत लोग जानते हैं। कथा है सावित्री—सत्यवान की। इससे पता चलता है कि सूक्ष्म शरीर भी है। महाभारत में श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को शिक्षा दी है और कहा है कि लोग जैसे सींक को खींचकर मूँज देखते हैं, उसी तरह योगी चेतन आत्मा को देखता है। चेतन आत्मा के ऊपर पहले महाकारण, फिर कारण और सूक्ष्म, फिर स्थूल—ये चार जड़ावरण हैं। इन आवरणों से अपने को (चेतन आत्मा को) पृथक कर लो, तो परमात्मा मिलेंगे। संत पलटू साहब ने कहा है—

साहिब साहिब क्या करै, साहिब तेरे पास।।
साहिब तेरे पास याद करु होवे हाजिर।
अन्दर धसि के देखु मिलैगा साहिब नादिर।।
मान मनी हो फना नूर तब नजर में आवै।
बुरका डारै टारि खुदा बाखुद दिखरावै।।
रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलाबा।
तीसो रोजा रहै अंदर में सात रिकाबा।।
लामकान में रब्ब को पावै पलटू दास।
साहिब साहिब क्या करै, साहिब तेरे पास।।

इस बुरके को हटाओ, तो प्रभु मिलेंगे। यही बुरका, नकाब या आवरण है। इसी को संत दादू दयालजी महाराज ने कहा—

घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौ धोवै काया कपरा।।

चार जड़ के और एक चेतन का—इन पाँचों को उतारा। पाँचवाँ आवरण तो चेतन चोला है। इस स्थूल शरीर रूपी घर के अन्दर जो सूक्ष्म शरीररूप घर है, उस घर को पवित्र रखो। स्थूल शरीर को जल से धोओ। सूक्ष्म शरीर तब धुलता है, जब इसपर के स्थूल का आवरण उतरता है। कारण तब धुलता है, जब इसपर से सूक्ष्म का आवरण उतरता है। महाकारण तब धुलता है, जब इसपर से कारण शरीर का आवरण उतरता है और कैवल्य (चेतल) तब धुलता है, जब इसपर से महाकारण का आवरण उतरता है।

इस पाँचों आवरण उतर जाने पर प्रभु छिपकर नहीं रहते। जैसे पलक का आवरण उठाने पर या किसी के मोतियाबिन्द के पत्थर को निकाल देने पर सूझने लगता है, उसी तरह जीवात्मा के ऊपर से आवरण हट जाने पर परमात्मा दीखते हैं। संत तुलसी साहब ने कहा—

है नेरे सूझत नहीं ल्यानत ऐसो जिन्द।
तुलसी या संसार को भयो मोतियाबिन्द।।

जीवात्मा को जिसका ज्ञान पहले नहीं था, चेतन दशा में होन पर उसका ज्ञान होने लगता है। किसी का घात मत करो। कटुवचन से हिंसा होती है। जैसे तलवार से काटते हैं, उसी तरह वचन से भी लोग पीटते हैं, काटते हैं। पुनः संत कबीर

साहब ने कहा—संसार के धनयौवन का घमण्ड मत करो। यह शरीर रूप पंचरंगा चोला झूठा है। संत कबीर साहब शून्य में ध्यान करने की युक्ति बताते हैं। भगवान श्रीकृष्ण भी बताते हैं—'पहले संपूर्ण शरीर का ध्यान करो, फिर चेहरे का, फिर शून्य में ध्यान करो।' इसी शून्य का ध्यान करने के लिए संत कबीर साहबने कहा—

शून्य महल में दियना बारि ले, आशा से मत डोल रे।।

इसका लक्ष्य बहुत छोटा होना चाहिए। वही परम विन्दु है। जैसा विन्दु बाहर में स्थापित करते हो, वस्तुतः विन्दु वैसा नहीं होता। इसके लिए संतों ने कहा—आँखें बन्द करते हो, वही कागज के सामने देखने में आता है। अन्धकार-ही-अन्धकार नजर आता है। पेन्सिल रखो, ख्याल मत करो कि वहाँ क्या होगा? पेन्सिल रखते ही चिह्न होता है, उसी प्रकार दृष्टि की नोक जहाँ स्थिर होगी, वहीं कुछ उदित हो जाएगा। इस प्रकार कुछ ख्याल किए बिना दृष्टि को स्थिर करो, अपने ही आप उदित होगा। निराशा देवी की गोद में मत जाओं नाउम्मीदी की गोद में मत बैठो। जो नाउम्मीदी की गोद में बैठते हैं, उनसे होनवाला काम भी नहीं होता है।

बिना विन्दु के रूप मण्डल नहीं बन सकता। विन्दु को पकड़कर स्थान पर पहुँच जाना बहुत बड़ी बात है। स्थूल से ऊपर उठा, गोया एक घूँघट उतर गया। यह पहला विन्दु है। जहाँ तक आकाश है, वहाँ तक शब्द है। इसलिए साधक को चाहिए कि उसको पकड़े।

शब्द साधना से सृष्टि के अंत तक जाना होता है। शब्द दृश्य से ऊपर का पदार्थ है। कुछ बनने के पूर्व शब्द हुआ। शब्द तीन प्रकार के होते हैं—इन्द्रियमय, मनोमय और प्राणमय। इसको बहुत गहरे ध्यान से जानने की आवश्यकता है। शब्द की उत्पत्ति अशब्द से है और लय भी अशब्द में ही है। जो आँख से देखने की शक्ति रखता है, वह उससे वह देखता है, जो रूप है। इसी कारण संत तुलसी साहब ने कहा है—

हिय नैन सैन सुचैन सुन्दरि। साजि स्रुति पिउ पै चली।

अर्थात् अंतरात्मा सुरत को सजाकर प्रभु से मिलने चली। इस साधन में सहायक जप है, फिर ध्यान। ध्यान में रूपध्यान भी है और अरूप ध्यान भी।

बंदउँ राम नाम रघुवर को। हेतु कृसान भानु हिमकर को ।।
विधि हरि हर मय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो ।।

नाम की महिमा का वर्णन संत कबीर साहब ने भी बहुत अच्छा किया है। योगशिखोपनिषद् में कहा—'अक्षरं परमो नादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।' नाम दो प्रकार का होता है। एक वचन में आता है, दूसरा श्रवण में आता है। जो मुँह से बोलते हैं, वह वर्णात्मक है और जो वर्णों में लिखा नहीं जाता, जिसकी ध्वनि होती है, उसे ध्वन्यात्मक कहते हैं।

शब्द में गुण होता है कि सुननेवाले को वह अपने उद्गम स्थान पर ले आता है और उसक मूल में जो गुण रहता है, उसको लिए रहता है और सुनने-वाले को उससे गुणान्वित करता है। एवम् प्रकार से शब्दसाधना के द्वारा ईश्वर तक पहुँचा जाता है।

H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महल्ला मिरजानहाट में दिनांक २८.२.१९५४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

६५. भगवान का दर्शन और यह दुर्दशा !

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

लोगों में इस बात का विश्वास है कि ईश्वर की भक्ति करो, ईश्वर आकर दर्शन देंगे। इसके लिए कहते हैं कि गोलोक, साकेत, वैकुण्ठ, क्षीरसमुद्र आदि में जो बसते हैं, वे आकर दर्शन देंगे अथवा तुम चतुर्भुजी, विराट आदि जिस रूप में देखना चाहोगे, आकर दर्शन देंगे। किन्तु संतलोग कहते हैं—ईश्वर का भजन करो और अपने से जाकर दर्शन करो। दोनों उलटी-उलटी बातें मालूम होती हैं। एक कहता है—ईश्वर आकर दर्शन देंगे और दूसरे कहते हैं—तुम अपने से जाकर दर्शन करो। जो कहते हैं कि आकर दर्शन देंगे, वे कहते हैं कि देवरूप में, चतुर्भुजी रूप में, विराटरूप में तुमको दर्शन देंगे। किन्तु दूसरे कहते हैं कि तुम इन्द्रियों से परमात्म-स्वरूप के दर्शन नहीं कर सकते। तुम सुरत से दर्शन कर सकते हो। इसके लिए तुमको चलना होगा। चलने में तुम्हारा शरीर नहीं चलेगा, तुम्हारा मन चलेगा। चलते-चलते मन भी छूट जाएगा, तब तुम अकेले चलोगे। मन तुम्हारा साथी नहीं है, मन तो एक खोल है। जबतक तुम मन में रहते हो, मन काम करता है, इससे तुम निकल गए, तो मन मिट्टी हो जाएगा। जैसे कि तुम शरीर में हो तो शरीर काम करता है। शरीर से तुम निकल जाते हो तो शरीर मिट्टी हो जाता है। अब विचारो कि बाहर में दोभुजी, चतुर्भुजी, विराटरूप आदि रूपों के दर्शन से क्या होता है? इन दर्शनों से धन, जन, प्रतिष्ठा का लाभ होता है और उन लोक लोकान्तरों में बासा होगा—यह लाभ होगा। अब विचार करो कि इसमें लाभ-ही-लाभ है कि हानि भी। श्रीकृष्ण का दर्शन अर्जुन को बराबर होता था। अर्जुन कोई साधारण नहीं थे। वे तो नर थे। नर-नारायण विष्णु के रूप हैं। वे ही नर के अवतार अर्जुन और नारायण के अवतार श्रीकृष्ण हुए थे। विराटरूप, दोभुजी, चतुर्भुजी का दर्शन अर्जुन को हुआ था। श्रीकृष्ण के बिना अर्जुन रह नहीं सकते थे। जैसे श्रीकृष्ण नहीं तो अर्जुन भी नहीं। कथा है कि—

श्रीकृष्ण के शरीर छूट जाने पर अर्जुन का बल-पौरुष बिल्कुल चला गया। पंजाब के निकट लुटेरों ने लाठी-डण्डे से सब कुछ अर्जुन से छिन लिया। उनसे कुछ न बन पड़ा। जिस अर्जुन से बड़े-बड़े वीर, यहाँ तक कि देवता भी पार नहीं पाते थे, ऐसे वीर अर्जुन भी समय-समय पर रोए। अभिमन्यु मारा गया, तब रोए, बहुत रोए। उनका चित्त ही कहीं नहीं लगता था। श्रीकृष्ण ने उन्हें चंद्रलोक में ले जाकर उसको दिखलाया। 'पुत्र! पुत्र!! कहकर पकड़ने लगे, तो उसने फटकारा और कहा कि यह नरलोक नहीं है। तुम 'पुत्र!' किसको कहते हो! भगवान के दर्शन होने पर भी बाईस या तेईस वर्ष तक भीख माँग-माँगकर खाया, द्रौपदी से विवाह होने से पहले ही। फिर कुछ दिनों तक राज्य किया। उसके बाद सभा में ही द्रौपदी का वस्त्र हरण किया गया। राजराजेश्वर होते हुए भी उनके मुँह से कुछ वचन न निकल सका। एक गरीब से गरीब की स्त्री का सभा में कपड़ा खींचो, तब देखो कि वह कुछ बोलता है या नहीं। पाण्डव राजराजेश्वर से गुलाम बने। राजसी कपड़े उन पाँचों भाइयों के शरीर से उतार लिए गए। आसन

से नीचे गुलाम– जैसे नीचे में बैठाया। कृष्ण की दया से द्रौपदी की साड़ी बढ़ी; पाँचों भाइयों को राज्य मिला; किंतु फिर दुहराकर जुआ खेला और सब कुछ हारकर बारह वर्ष तक वनवास और एक वर्ष अज्ञात वास किया। राजा विराट की नौकरी की। भीम हुआ रसोइया, अर्जुन हुआ नाचनेवाली, नकुल घोड़े का जमादार, सहदेव गौ का रखवार। विराट का साला था कीचक। उसने द्रौपदी को एक लात भी मारी। विराट ने जुए का पासा युधिष्ठिर के सिर में मारा कि सिर से खून बहने लगा। देखो! दर्शन से लाभ ही लाभ है या हानि भी। देखो, कितनी दुर्दशा है! द्रौपदी लौंडी का काम करती थी। केवल जूठा नहीं उठाती थी और किसी का पैर नहीं दबाती थी, और सब लौंडी का काम करती थी। कहाँ राजा की लड़की और कहाँ यहाँ दासी का काम। देखो, भगवान का दर्शन और यह दुर्दशा! ऐसा नहीं कि सुख ही सुख मिलेगा। सुख के साथ दुःख लगा ही रहेगा।

अब प्रह्लाद पर आइए। इसको नरसिंह का दर्शन हुआ था। जैसा दर्शन होने से लोगों की अँतड़ी गिर जाय। प्रह्लाद को दर्शन हुआ। उसका पिता मरा और वह राजा हुआ।

किसी भी लोक लोकांतर में रहिए, देह का कुछ-न-कुछ गुण अवश्य रहता है। किसी लोक लोकांतर में रहने से मुक्ति नहीं हो सकती।

ध्रुव को दर्शन हुआ। राज्य मिला। फिर उसके भाई को किसी ने मार दिया। फिर उससे लड़ने गए। इस प्रकार झंझट-बखेड़ा रह ही जाता है। संतो ने कहा–जिससे सांसारिक बखेड़ा नहीं रहे, ऐसा उपाय करो। इन दर्शनों से तुम बखेड़ों से नहीं छूट सकते। भगवान के आत्मस्वरूप का दर्शन करो तो इस संसार में नहीं आओगे और सब झंझट बखेड़ा मिट जाएगा। इसके लिए तुम अपने अन्दर-अन्दर चलो, शरीर इन्द्रियों से छूट जाओ, तब तुमको दर्शन होगा। चेतन आत्मा से परमात्मा का दर्शन होगा। तब 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' हो जाओगे।

H

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी में दिनांक ४.३.१९५४ ई० को सत्संग में हुआ था।

६६. चित्तवृत्ति का निरोध करना योग है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

ज्ञान का पूरक योग है और योग का पूरक ज्ञान। योग का अर्थ है मिलना और ज्ञान का अर्थ है जानना। बिना कुछ जाने, मिले तो किससे? ज्ञान भी दो तरह के होते हैं? एक वह ज्ञान है, जिससे जानते हैं, लेकिन पहचानते नहीं हैं। दूसरा ज्ञान वह है, जिससे हम जानते हैं और पहचानते दोनों हैं। जाना किन्तु पहचाना नहीं, यह अधूरा ज्ञान है। और जानकर पहचानने पर पूरा ज्ञान होता है। बिना मिलन के भी पूरा ज्ञान नहीं होता, पूरी पहचान भी नहीं होती। इसलिए ज्ञान और योग; दोनों की आवश्यकता है। योग जैसे-जैसे बढ़ेगा, वैसे-वैसे ज्ञान भी बढ़ेगा। बढ़ते-बढ़ते योग भी बढ़ेगा और ज्ञान भी बढ़ेगा। चित्तवृत्ति का निरोध करना योग है। यदि कोई कहे तो कहना चाहिए कि चित्त की धारें एक नहीं होने से निरोध कैसे हो सकता है?

चित्तवृत्ति के एकत्र होने से ही निरोध होगा। तब प्रश्न होगा कि ज्ञान और योग तो हुआ, लेकिन भक्ति तो नहीं हुई। तो कहो कि भक्ति का अर्थ है सेवा। प्रणाम करना भी सेवा है। प्रणाम करने से आदर होता है। आदर होने से उसके दिल में प्रसन्नता होती है। यह जीवित प्राणी के लिए है। जो जीवित प्राणी नहीं है, उसके लिए क्या सेवा है? जैसे औषधि-सेवन है। औषधि को खा जाते हैं, शरीर में लगाते हैं अथवा सूँघते हैं, यह भी सेवा है। जिससे जैसा काम लेना चाहिए वैसा लेना सेवा है। जैसे गंगा-सेवन। गंगा में स्नान करते हैं, वायु में टहलते हैं, गंगा का जल पीते हैं। गंगा-जल जड़ पदार्थ है। जड़ ज्ञानहीन पदार्थ को कहते हैं। जैसे यह कागज का फूल है। इसको ज्ञान नहीं है। यह जड़ है, यह शरीर भी जड़ है, किन्तु इसमें चेतन है। जैसे लोहे को अग्नि में तपा देने से वह लाल हो जाता है, अग्नि का रूप हो जाता है और अग्नि का काम करता है; किन्तु उसको आग से थोड़ी देर अलग रख दो, तो उससे लाली निकल जाती है और वह ठण्ढा पड़ जाता है, फिर उससे अग्नि का काम नहीं होता। उसी तरह इस शरीर में जबतक चेतन है, तबतक यह चेतन सा काम करता है। मुर्दा शरीर में से चेतन निकल जाता है, तब वह जड़ का जड़ हो जाता है। तो यह जड़ और चेतन पर कहा।

अब सेवा पर आते हैं। जैसे गंगा की सेवा। गंगा-जल जड़ है। उसको ज्ञान नहीं है। उसको पीते हैं, उसमें स्नान करते हैं। यह भी सेवा है। सेवा किसकी करोगे, यदि ज्ञान नहीं हो? ज्ञान नहीं हो तो मिलोगे किससे? ईश्वर की सेवा करोगे—भक्ति करोगे, यदि ईश्वर के सम्बन्ध में जानो नहीं, तो उससे कैसे मिलोगे? इसलिए ज्ञान और योग करने से भक्ति भी हो जाती है। भक्ति या सेवा को लोग इस तरह समझते हैं—शिव, राम, कृष्ण, देवी आदि किसी की मूर्ति को बनाकर पूजना भक्ति या सेवा है। शिवलिंग में हाथ, पैर, नाक कुछ भी नहीं है। किन्तु इस रूप को शिव मानकर पूजते हैं; किन्तु पूजन इतना ही है कि और भी है? यदि इतना ही रहता तो श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद, शास्त्र आदि क्यों होते? यह मोटा ज्ञान उसके लिए है जो पहले से कुछ नहीं जानता।

यह ईश्वरकृत शरीर भी जड़ है। एक पत्थर लो और अपनी देह देखो। दोनों में मोल किसका विशेष है? दोनों ईश्वरकृत हैं। शरीर की इज्जत पत्थर से विशेष है। हीरा, लाल, मोती आदि भी मनुष्य से कम नहीं हैं। फिर भी मनुष्य देह जड़ है। तब और जो पत्थर है, उसका क्या मूल्य है? गुरु यदि गोरू हो तो उसकी सेवा से क्या लाभ होगा? ईश्वर को जानना है, तो यदि इतना ही जाने कि शालिग्राम ही ईश्वर है, तो इतने से काम नहीं चलेगा। यदि गुरु को ही ईश्वर मानो, जैसा तुलसीकृत रामायण में है—

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

वाल्मीकि जी ने भी श्रीराम से कहा था—

तुम्ह तें अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।

ईश्वर सबमें है। इसलिए कि ईश्वर सबसे पहले का है। उसके पहले कुछ नहीं था। खुदा—खुद+आ=स्वयं आया। इसी का जोड़ा हमलोगों के यहाँ 'स्वयंभू' शब्द है। किंतु यह शब्द भी कमजोर है। जो पहले से है, वह छोटा नहीं हो सकता या बड़ा भी हो तो परिमाण-सहित, आदि-अंतसहित चाहे करोड़ों योजन लम्बा-चौड़ा हो, अनादि-अनंत से छोटा ही है। यदि कहा जाय कि सबसे पहले का सीमावाला पदार्थ था, तो प्रश्न होगा कि उसकी सीमा के पार में क्या था? सीमावाला मान लेने पर

ईश्वर सबसे पहले का सिद्ध नहीं होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता ।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता ।।

जो पहले का होगा, उसकी सीमा नहीं होगी और वह सबमें होगा। इसीलिए कबीर साहब ने कहा—

है सब में सबही तें न्यारा।
जीव जन्तु जल थल सबही में, सबद वियापत बोलनहारा।

शालिग्राम, श्रीराम या गुरु की मूर्ति को जो बताया गया है, वह तो इसलिए कि तुम कुछ नहीं जानते हो, तो उनमें मन लगाने के लिए बताया। यदि कहो कि ईश्वर से मिलकर क्या होगा? तो देखो, यहाँ पर आराम नहीं है, बेचैनी लगी रहती है। चाहे राजा हो या कुछ बने रहो।

अंग्रेज हमलोगों के यहाँ से भाग गया। वह यहाँ था, तब उसको बेचैनी थी। इसको छोड़कर भाग गया, तब भी बेचैनी है। सोचकर देखिए, आपकी एक कट्ठा जमीन कोई ले लेता है, तो आपका कैसा मन होता है? जिसके हाथ से सारा भारतवर्ष छूट गया, उसका मन कैसा होता होगा? इसलिए संसार में शान्ति चैन कहीं नहीं है, चाहे कुछ बन जाओ। सूर्य, चन्द्र, तारे आदि सभी देश काल से घिरे हैं। देश-काल के अंदर रहोगे, तो बेचैनी में और दुःख में रहोगे। इन्द्र, ब्रह्मा, शिव आदि सब-के-सब बेचैन रहते हैं। इसलिए देश-काल से जो परे है, उससे मिलो। यही योग है। इसी योग का अर्थ 'भक्ति' है। परमात्मा से मिलने के लिए कोशिश करो। यही भक्ति है।

मोटी बातों से भक्ति का आरंभ है। भक्ति का जहाँ अंत है, वहाँ परमात्म-दर्शन है। इस भक्ति में ईश्वर के पास जाना है, ईश्वर को बुलाना नहीं है। यदि कोई कहे कि ईश्वर को सर्वव्यापी मानते हो, तो उसको यहाँ क्यों नहीं पकड़ते? तो उत्तर में कहेंगे कि जानने-पहचानने के लिए हमारे पास पंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ये मोटी मोटी हैं; किंतु ईश्वर झीने से झीना है। उसको इन मोटी इन्द्रियों से कैसे पकड़ सकेंगे? इसलिए वहाँ जाना है, जहाँ सब शरीरों और सब इन्द्रियों से छूट जायँ, तब ईश्वर दर्शन होगा। H

यह प्रवचन नेपाल राज्यान्तर्गतमोरंग जिला के ग्राम राजावासा में स्व० तेजुदासजी के निवासस्थान पर दिनांक १२.३.१९५४ ई० को हुआ था।

६७. जीवनकाल में विदेहमुक्ति

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

हमलोग जितने हैं, सब-के-सब बन्धन में पड़े हैं। हमारे ऊपर शरीर और संसार का बंधन है।जैसे कोई कारागार में हो, उसका आहाता बहुत बड़ा होता है। उसमें बहुत कोठरियाँ होती हैं। उसमें कारावास भोगनेवाले होते हैं।

ब्रह्माण्डरूप कारागार का यह एक-एक पिण्ड एक-एक कोठरी के समान है। इसमें जीव कारावास भोगता है। इस शरीर में हमारा रहना कैदी की तरह है। यही कारण है कि संसार की परिस्थिति के कारण बड़े हों या छोटे, सब-के-सब दुःख का अनुभव करते हैं। संतों ने इन दुःखों से छुटने के लिए कहा; और कहा कि इनसे छूटना ही कल्याणकारी है। इसके लिए संतलोग जो रास्ता बतलाते हैं, उसपर चलिए। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

संत पंथ अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रंथ।।

मोक्ष के लिए चेष्टा करो, प्रयास करो। सारे बंधनों से छूट जाओ। यही उनकी पुकार है। बंधन में रहने के वास्ते उसका बीज या अंकुर तुम्हारे अंदर है। ऐसा संतों ने कहा है। अपना अंदर शुद्ध करो, बीज को नष्ट करो, तो तुम बंधन से छूट जाओगे। यह बीज क्या है? चित्त का धर्म है। मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ—ये चारों बातें उठती रहती हैं। जिस प्रकार शरीर को कितनाहू धोओ, उसमें मैल आती ही रहती है, उसी प्रकार चित्त में इसका धर्म होता ही रहता है। इसको क्षय करने के लिए भगवान श्रीराम ने उपदेश दिया और कहा कि शरीर रहते मुक्ति प्राप्त करो। इसी को जीवनमुक्त कहते हैं। जीवनकाल में भी विदेहमुक्त कहलाता है, इसलिए कि शरीर में जो सुख-दुःख होते हैं, उनको वह कुछ नहीं जानता। कर्ममण्डल से जबतक कोई ऊपर नहीं उठता, तबतक चित्तधर्म होता ही रहता है। इसके लिए भगवान श्रीराम ने श्रवण, मनन, निदिध्यासन और अनुभव-ज्ञान प्राप्त करने के लिए कहा। सुनो, समझो, और सुन समझकर जो निर्णय हो, उस कर्म को करो। कर्म करते-करते कर्म का अंत होगा, तब अनुभव होता है, तभी चित्त का धर्म छूटता है। यह उसी तरह साधा जाता है, जिस तरह कोई किसी विद्या का सीखने का अभ्यास करता है। थोड़ा थोड़ा सीखते-सीखते उस विद्या में वह निपुण होता है। तुम संसार में जबतक रहते हो, विषयभोग में लगे रहते हो। किंतु संतुष्टि होती नहीं। संतुष्टि नहीं तो सुख कहाँ? विषयानंद में तुम कभी सुखी नहीं हो सकते। चित्त-धर्म से ऊपर उठो। विषयानंद में खींचो मत। विषयों से ऊपर आत्म अनुभवानंद है। उसको प्राप्त करो तब नित्यानंद मिलता है, जिस आनंद को पाकर किसी प्रकार की कल्पना नहीं होती। आगे बढ़कर वे कहते हैं—जबतक तुम्हारे अंदर इच्छा रहेगी और प्राणस्पंदन रहेगा, तुम्हारा चित्त-धर्म नाश नहीं हो सकता। इसके लिए तुम दोनों में से किसी एक का दमन करो, तो वासना और प्राणस्पंदन—दोनों दमित हो जाएँगे। 'प्राण' का अर्थ प्राणवायु नहीं जानना चाहिए। फेफड़े में जो वायु खींचने और फेंकने का काम जिस जीवनीशक्ति से होता है, वह प्राण है। जो वायु उससे संबंधित होती है, वह प्राणवायु है। उसके स्पन्दन को रोको या इच्छा को दबाओ। दोनों में से किसी को रोको, तो दोनों रुक जाएँगे। प्राण में स्पन्दन होने से मन में कुछ-न-कुछ भाव उत्पन्न होता है। इच्छा को रोको, यह सरल तरीका है। इच्छाओं को रोकने के लिए ध्यान सरल उपाय है। एक ओर मन को लगाने से, जहाँ मन लगाते हैं, वहाँ से मन भागता है। फिर लौटा-लौटाकर उसी स्थान पर लाते हैं, यह प्रत्याहार है। बारंबार प्रत्याहार होते-होते धारणा होती है और फिर ध्यान होता है। पूर्ण सिमटाव होने से ऊर्ध्वगति होती है। ऊर्ध्वगति होने से आवरणों का छेदन होता है, तब चेतन आत्मा सब आवरणों को पार कर ऊपर उठ जाती है। यही मोक्ष है। इससे क्या होता है? परमात्मा को पाता है। आवरणहीन हो जाने से जैसे मठाकाश, घटाकाश और महदाकाश एक ही होता है, उसी तरह उपाधिहीन या आवरणहीन होने पर चेतन आत्मा अपने को पाती है और परमात्मा को भी पाती है। इस अवस्था को जिसने प्राप्त किया, वह फिर मरता नहीं। इस अवस्था का मरना जो नहीं मरता, वह संसार में फिर फिर जनमता-मरता है। कबीर साहब ने कहा है—

मरिये तो मरि जाइये, छूटि पड़ै जंजार।
ऐसी मरनी को मरै, दिन में सौ सौ बार।।

जैसे-जैसे इच्छाओं से छूटता जाता है, वैसे-वैसे प्राणस्पंदन रुकता है। भीतर-भीतर चलने से इच्छाओं की निवृत्ति होती है, प्राणस्पंदन रुद्ध हो जाता है और एकविन्दुता प्राप्त हो जाने पर प्राणस्पंदन बिल्कुल बन्द हो जाता है। इसी के लिए कबीर साहब ने मृतक होने के लिए कहा।

ध्यानाभ्यासी स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है। फिर सूक्ष्म से कारण में और कारण से महाकारण में प्रवेश करता है। इस प्रकार जड़ के चारों शरीरों को त्यागकर अपने स्वरूप में आता है। फिर चेतन शरीर को भी छोड़कर परमात्मा में विलीन होता है। यही पूरा-पूरा मरना है। इस प्रकार जो मरता है, वह फिर कभी मरता नहीं। अपने अन्दर जो मानस जप और मानस ध्यान करता है और पूर्ण सिमटाव के लिए यत्न करता है, यह यत्न एकविन्दुता प्राप्त करने के लिए है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा— 'तुम अपनी दृष्टि को अंतर्मुखी बनाओ।' साधु का संग करो, अध्यात्म-विद्या की शिक्षा ग्रहण करो। अध्यात्म-विद्या की शिक्षा बिना साधु-संग के नहीं होगा। इसलिए साधु-संग करो। उनसे अध्यात्म-विद्या सीखो। प्राणस्पंदन निरोध और वासना परित्याग करो। गुरु महाराज ने जो क्रिया बतायी है, उससे प्राणस्पंदन का निरोध और वासना का परित्याग होता है। जिसको यह युक्ति मालूम है, उसे नित्य करना चाहिए। कभी गाफिल नहीं होना चाहिए। साधुसंग, वासना-परित्याग, प्राणस्पन्दन-निरोध और अध्यात्म-विद्या की शिक्षा—ये ही चारो आत्मज्ञान को प्राप्त करा सकते हैं।

भगवान श्रीराम ने हनुमानजी को उपदेश दिया कि तुम मेरे अशब्द, अरूप, अस्पर्श,अगंध और गोत्रहीन दु:खहरण करनेवाले रूप का नित्य भजन करो। लोग स्थूल सौन्दर्य में आसक्ति रखते हैं; किंतु यदि सूक्ष्म के विन्दु रूप सौन्दर्य को प्राप्त करें तो स्थूल सौन्दर्य स्वत: छूट जाएगा। और वह जब कारण के दिव्य सौन्दर्य को प्राप्त करेगा, तो सूक्ष्म का सौन्दर्य भी छूट जाएगा। इस प्रकार क्रमक्रम से वह रूप से अरूप में चला जाएगा, फिर परमात्मा को प्राप्त करेगा।

यम ने नचिकेता को समझाया कि मनुष्य को बहुत शुद्ध होना चाहिए। ब्रह्मवत् परिशुद्ध नहीं होकर कोई परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार मत करो। खानपान सात्त्विक होना चाहिए। जो सात्त्विकता के लिए यत्न नहीं करता, रजोगुण और तमोगुण में फँसा रहता है और परमार्थ की ओर चलना चाहता है, तो वह वैसा ही होगा, जैसे 'भूमि पड़ा चह छुअन आकाशा' कहा गया है। इसलिए खानपान को पवित्र रखो। खान-पान का असर मन पर पड़ता है। यदि खान-पान का असर मन पर नहीं पड़ता, तो भाँग खाने और शराब पीने से मस्तिष्क क्यों गड़बड़ा जाता है। खान-पान को पवित्र रखो। संतों के कहे अनुकूल चलो। कल्याण होगा। H

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी में दिनांक १६.३.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था

६८. नैतिकतापूर्वक उपार्जन करो

प्यारे लोगो!

हमलोग सत्संग मे इसलिए एकत्र होते हैं कि हम यह समझ सकें कि यही संसार जो कुछ है, वही है या इससे परे और कुछ है? यदि संसार है

और इसके परे कुछ नहीं है, तो संसार में रहने के लिए अच्छी तरह रहें। इसके लिए परिश्रम से धन संग्रह करें। धन-संग्रह करने का अर्थ ठगी, बेइमानी या अनैतिक रूप से नहीं। अनैतिक रूप से संग्रह होने पर राजनीतिक दण्ड, सामाजिक दण्ड और दुर्नाम भी होता है। । इस प्रकार का दण्ड और दुर्नाम जीवन के लिए बहुत बुरा है। चाहिए कि नैतिकतापूर्वक परिश्रम करके धन का उपार्जन करें। यदि संसार के परे कुछ समझो, जैसा कि संतलोग कहते हैं, तो ठीक है। जितना आप संसार देखते हैं, उतना ही यह संसार नहीं है। जैसे जितना आकाश आप देखते हैं, उतना ही आकाश नहीं है। उससे भी बहुत विशेष है। यह तो मोटा संसार है। इस मोटे संसार के परे दूसरा संसार भी है, जिसे आप इस दृष्टि से भी नहीं देख सकते। यह स्थूल दृष्टि स्थूल तल के पदार्थों को देखती है। सूक्ष्म तल पर यह दृष्टि काम करे, संभव नहीं। स्थूल संसार के परे सूक्ष्म संसार है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म रचना जहाँ तक है, वहाँ तक संसार है। इसका वर्णन करने से बहुत होगा; किंतु साधारणतः इसको दो रूपों में मानिए। एक वह, जिसको आप स्थूल दृष्टि से देखते हैं और दूसरा वह, जिसको आप इस दृष्टि से भी नहीं देख सकते। जिसको आप दिव्य दृष्टि से नहीं देख सकते, वह संसार से परे है। संतलोग कहते हैं कि संसार के परे कुछ है और वही असल है। वह हई है। उससे पहले कुछ था, ऐसा नहीं। वह सदा से है, समय के ज्ञान से पहले का है। समय का ज्ञान संसार से परे में नहीं है। स्थान का ज्ञान भी संसार में ही होता है। शास्त्रों में देश-काल कहा गया है। देश-काल के परे उत्कृष्ट पदार्थ को संतों ने ईश्वर, परमात्मा कहा है। उसे अनेक नामों से पुकारते हैं; जैसे— ईश्वर, परमात्मा, खुदा, गॉड, अल्लाह आदि। वह सदा से है। उसका अभाव कभी नहीं हो सकता।

संतों ने कहा कि संसार में आप पूर्ण रूप से सुखी रहेंगे, संभव नहीं। यहाँ कभी दैहिक, कभी दैविक और कभी भौतिक—ये तीनों ताप होते रहते हैं। इनके बाद मानसिक ताप भी होता है। करोड़ों रुपये हाथ में हैं, पलंग पर सोए हैं; किंतु कोई चिन्ता की बात हो जाती है तो चैन नहीं मिलता। उपर्युक्त चार प्रकार के तापों से धार्मिक भी तपते हैं और अधार्मिक भी तपते हैं; बल्कि अधार्मिक भाव से बरतने पर और विशेष रूप से तपते हैं। संसार में रहना, संसार को पहचानना और संसार के परे को नहीं पहचानना, इससे मनुष्य की बहुत बड़ी हानि होती है। इससे विशेष और कोई हानि नहीं हो सकती। इस हानि से बचने के लिए संतों ने कहा कि संसार के परे परमात्मा को जानो। संसार में रहकर चारो तापों से तपते रहते हो। परमात्मा को प्राप्त करो, तो सब ताप दूर हो जाएँगे।

परमात्मा के लिए लोगों में साधारणतः दो प्रकार के ख्याल हैं। एक ख्याल है कि परमात्मा व्यक्ति रूप में शरीरधारी चाहे मनुष्य शरीरधारी, चाहे देवरूपधारी रूप में हैं अथवा इन दोनों के परे विराट रूप वाला है। दूसरे का ख्याल है कि परमात्मा व्यक्त में नहीं है। वह किसी तरह किसी आधार पर अवलंबित नहीं है। विराट रूप लो, नरसिंह रूप लो या विष्णु रूप को लो—ये धरती पर खड़े हैं। किसी स्थान का अवलंब लेकर रहनेवाला ईश्वर नही है। कोई कहे कि आकाश में है, तो आकाश में वायु ही उसका अवलंब है। यदि सूक्ष्म रूप मण्डल का रहनेवाला माना जाय, तो वह मण्डल उससे बड़ा हो जाता है, वह मण्डल ही उसका आधार हो जाता है। किंतु वह परमात्मा आकाश या मूल प्रकृति के आधार पर नहीं रहता। मतलब यह कि उसमें स्थान और स्थानीय—इन

दोनों का भेद नहीं है। जो किसी आधार का आधेय नहीं, जो सबके आदि का है, वह ईश्वर– परमात्मा है। जो सबसे पहले का है, उसको मूल प्रकृति मण्डल में रहनेवाला माने, तो वह उस मण्डल के अंदर हो जाएगा। इस प्रकार वह मण्डल उससे बड़ा हो जाएगा। ऐसा परमात्मा नहीं होता। जो सावलंब है, वह जिस आधार पर रहता है, जैसे पाँच तत्त्व यानी आकाश से लेकर मिट्टी तक जितने तत्त्व हैं, सब एक के आधार पर दूसरे हैं। इन पाँच तत्त्वों के अंदर आप आकाश को लीजिए तो आकाश निराधार है। चारो मण्डलों से आकाश मंडल बड़ा है। मतलब यह कि जिस मण्डल के अंदर कोई या कुछ रहता है, तो वह रहनेवाला उस मंडल से छोटा होता है। यदि परमात्मा किसी मण्डल में है, तो वह मण्डल परमात्मा से बड़ा हो जाएगा, तो वह मण्डल असीम हो जाएगा और परमात्मा ससीम हो जाएगा। किन्तु तर्क-बुद्धि ऐसा मंजूर नहीं करती। संतों ने कहा कि वह परमात्मा कभी आधेय नहीं हुआ। विराटरूप कहने पर उसको भी किसी न किसी मण्डल में रहना पड़ेगा। अर्जुन जिस विराट रूप को देखता था, वह विराट रूप और अर्जुन–दोनों ही उसी मण्डल में थे और बीच में कुछ फाँक भी था। ससीम-असीम पर शासन करे, कब संभव है? इसलिए संतों ने बताया कि परमात्मा वह, जो अपनी सीमा नहीं रखता। वह किसी मण्डल में आ नहीं सकता। वह सबमें है और सबसे न्यारा भी है। संत कबीर साहब ने कहा–

है सबमें सबही तें न्यारा।
जीव जन्तु जल थल सबही में, शब्द वियापत बोलनहारा।
सबके निकट दूर सबही ते, जिन जैसा मन कीन्ह विचारा।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, शब्द गहे सो हंस हमारा।।

जैसे संसार में हमारा योग हो गया है–संबंध हो गया है, उसी तरह हम परमात्मा से योग करें–संबंध करें। संसार में संबंध करने से आपकी क्या हालत है, देखें। अब परमात्मा से संबंध करके देखिए कि क्या होता है? संबंध करने की विधि क्या है, इसी को बताने के लिए संतमत है। परमात्म संबंधी ज्ञान देने के लिए संतों का उपदेश है। यह ज्ञान वेद-पुराणों में मौजूद है और संतों ने भी यही बात कही है। यदि कोई यह कहे कि यह ज्ञान नवीन है, पहले यह ज्ञान नहीं था, तो ऐसा कहना पुराने ग्रंथों का अनादर करना है। जो कहते हैं कि वेद में सब ज्ञान है और जब वे ही कहें कि यह ज्ञान नवीन है, तब वे वेद की मर्यादा को घटाते हैं। संस्कृत ग्रंथों में और हमारी भारतीय भाषा में भी यह ज्ञान है। कलिकाल के संतों की पोथी में भी यह ज्ञान है। यदि वे कहें कि पहले के ग्रंथों में यह बात नहीं थी, तो इतना अवश्य कहेंगे कि उनको इस बात का ज्ञान नहीं था कि पहले की पुस्तकों–ग्रंथों में क्या था?

परमात्म-ज्ञान के लिए ग्रंथों में बताया गया है कि इन्द्रियातीत पदार्थ ही परमात्मा है–

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।
–रामचरितमानस

किसी मायिक रूप के दर्शन को परमात्म-दर्शन नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मा का देश, इन्द्रलोक, गोलोक आदि सभी लोक संसार के अंदर हैं। इन लोकों में रहने पर पूर्ण सुख नहीं है। इन सब स्थानों में भी चारो ताप लगे रहते हैं। वैकुण्ठ और गोलोक में भी कष्ट आता है। भृगु जी– ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी को जाँचने के लिए गए कि देखें इन तीनों में कौन बड़ा है? ब्रह्मा और शिव तो आवेश में आ गए; किंतु उन्होंने भगवान विष्णु की छाती में लात मारी, तो लात मारने पर भृगुजी को विष्णु की गंभीरता मालूम हुई। इनमें से किसी स्थान में पूर्ण शान्ति नहीं है।

ज्ञानी जानता है कि माया में निर्माया व्यापक है; किंतु जानने मात्र से ही उसकी पहचान तो होती है नहीं। भगवान ने नारद को विश्वरूप का दर्शन देकर कहा था—'तुम जो मेरे रूप को देख रहे हो, यह मेरी उत्पन्न की गई माया है।' जो संसार से पहले का पदार्थ है, उसको पाए बिना सुखी नहीं हो सकते। अर्जुन ऐसे वीर को अभिमन्यु के मरने पर भारी कष्ट हुआ था, जिसकी वीरता में अत्यंत प्रसिद्धि थी। वह अर्जुन साधारण लोगों की लाठी से बेहोश हो गया। दोभुजी, चतुर्भजी, बहुभुजी—इन तीनों प्रकार के रूपों के दर्शन अर्जुन को हुए थे। किंतु यह परमात्मा का दर्शन नहीं। संतों के विचार के अनुकूल परमात्मा वह है, जिसको आप इन्द्रियों से पहचान नहीं सकते। जिसको आप इन्द्रियों से पहचानते हैं, वह माया है। स्वाद जिभ्या का विषय है। स्पर्श त्वचा का विषय है। उसी प्रकार चेतन आत्मा का विषय परमात्मा है। संतों ने कहा कि ऐसी कोशिश करो, जिससे परमात्मा को प्राप्त कर लो। अपने जाकर दर्शन करो। ऐसा नहीं कि वे आकर दर्शन देंगे। हम चलकर वहाँ जायें। शरीर के अन्दर-अन्दर चलें। यह मार्ग ऐसा है कि स्थूल इन्द्रियों को, सूक्ष्म इन्द्रियों को और प्रकृति मण्डलों को पार करेंगे, तब अकेले होंगे और तभी परमात्मा को पहचानेंगे। मन के मण्डल को पार करें, जड़ प्रकृति मण्डलों को पार करें, तब अपनी चेतन आत्मा से ही परमात्मा को प्राप्त कर सकेंगे। दृष्टि इतनी सिमटे कि सभी इन्द्रियों से बिल्कुल छूट जाएँ। अन्दर-अन्दर चलने पर जाग्रत, स्वप्न—दोनों छूट जाते हैं; सुषुप्ति भी छूट जाती है। ऐसा आप हो जाएँ कि बाहर का ज्ञान आपको कुछ न रहे। आप स्थूल इन्द्रियों से ऊपर शिवनेत्र—तीसरे तिल में ठहरिए, तो आपको ज्योतिर्मय शिव के दर्शन होंगे, जैसा कि योगशिखोपनिषद् में लिखा है—

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्तिनिकेतनम् ।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम् ।।

विन्दुनाद महालिंग है और शिवशक्ति का घर है। इस शरीर को शिवालय कहते हैं। सभी प्राणियों को इसमें सिद्धि मिलती है, मुक्ति मिलती है। यदि कहो कि नाद क्या है, तो जहाँ विन्दु है, वहाँ नाद है। ध्यानविन्दूपनिषद् में लिखा है—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम् ।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

आप अपने को एक जगह—केन्द्र पर स्थिर कीजिए। पूर्ण सिमटाव होगा तो नाद खुल पड़ेगा। वहाँ ज्योतिर्मय विन्दु देखिएगा और ज्योतिर्मय नाद सुनिएगा। यदि कहिए कि नाद तो नाद ही है, फिर ज्योतिर्मय नाद कैसा? तो उत्तर है कि अंधकार का शब्द काला और ज्योति के शब्द को पकड़ने पर श्वेत शब्द मिलता है। उसी ज्योतिर्मय शब्द के विषय में संत बुल्ला साहब ने कहा है—

पैठि अंदर देखु कन्दर, जहाँ जिय को वास ।
उलटि प्राण अपान मेटो, सेत सबद निवास ।।

इस पर सुरत चलती है, पैर नहीं चलता। संत कबीर साहब के वचन में है—

बिन पावन की राह है, बिन बस्ती का देश ।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहै कबीर संदेश ।।

पहले मन के साथ चेतन चलेगा। फिर मन छूटकर चेतन रहेगा। तब परमात्म-दर्शन होगा। इसके लिए घर में बैठकर साधना कीजिए। ऐसा नहीं कि किसी खास स्थान में दर्शन होगा। अच्छा तो यही है कि आप वहाँ जाकर दर्शन कीजिए, जहाँ उनके स्वरूप का ज्ञान हो। ऐसा नहीं कि उनको यहाँ बुलाकर दर्शन कीजिए। किसी मंदिर में जाने के लिए अपवित्र होकर क्यों जाइए, पवित्र होकर जाइए। पवित्र होने के लिए त्रिवेणी में स्नान कीजिए।

वह त्रिवेणी क्या है? तुलसी साहब कहते हैं—

आली अधर धार निहार निजकै, निकरि सिखर चढ़ावहीं।
जहाँ गगन गंगा सुरति जमुना, जतन धार बहावहीं।।
जहाँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि, धुर गुरू गति गावहीं।
जहाँ संत आस विलास बेनी, विमल अजब अन्हावहीं।।
कृत कुमति काग सुभाग कलिमल, कर्म धोय बहावहीं।
हिय हेरि हरष निहारि घर कौ, पार हंस कहावहीं।।
मिलि तूल मूल अतूल स्वामी, धाम अविचल बसि रही।
आलि आदि अंत विचारि पद कौ, तुलसी तब पिउ की भई।।

बाहर त्रिवेणी के स्नान से पाप कट नहीं सकता। पवित्र तो अंदर की त्रिवेणी में स्नान करने से ही होगा, बाहर के तीर्थों में स्नान करने से नहीं। तीर्थ-स्नान करने के लिए जाइए; किंतु मेले के समय में नहीं जाइए। स्नान-दान से आप पाप से नहीं छूट सकते। पाप से छूटना ध्यान द्वारा ही हो सकता है। परमात्मा की पहचान आत्मा से ही होगी। यदि कोई कहे कि हम, अपनी देह में आत्मा हई हैं और परमात्मा भी अपने अंदर में है तो पहचान क्यों नहीं होती? तो उत्तर होगा कि आत्मा शरीर, इन्द्रिय और प्रकृति के आवरण में है, इसीलिए पहचान नहीं होती है। जब इन तीनों आवरणों से छूट जाएँगे, तब दर्शन होगा—पहचान होगी। जैसे आँख पर रंगीन चश्मा रहने से बाहर की चीज चश्मे के रंग के अनुरूप देखते हैं। चश्मा उतारकर देखने से वस्तु का सही रूप दीखता है। उसी प्रकार चेतन आत्मा के ऊपर मायिक आवरण रहने के कारण मायिक दर्शन होता है। मायिक आवरण उतर जाने पर निर्मायिक परमात्मा का दर्शन होता है। अपने अंदर सुरत से यात्रा करते हुए परमात्मा को प्राप्त कीजिए। झूठ, चोरी,नशा, हिंसा और व्यभिचार से छूटकर रहिए तो आप संसार में सुखी रहेंगे और परलोक में भी सुखी रहेंगे।

हमलोगों को स्वराज मिला है, उसमें सुराज हो जाय। रामराज वहाँ है, जहाँ राम-ही-राम है; बिल्कुल आराम ही आराम है। पृथ्वी पर रामराज्य होना असंभव है। भजन कीजिए और अपने अंदर में प्रवेश कीजिए, वहीं असली रामराज्य मिलेगा। आत्मा शरीर और इन्द्रियों से मिली-जुली है और प्रकृति मण्डल के आवरण में है। इनसे छुड़ाइए, तब परमात्म-दर्शन होगा। उपनिषद् में है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

जड़ से चेतन के छूटने से ही परमात्मदर्शन होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जान्हु भाई।।

—रामचरितमानस

इन दोनों वचनों को यानी उपनिषद् और गोस्वामीजी के वचनों को याद रखिए, तब जाँच लीजिए कि ठीक ही ईश्वर का दर्शन हुआ या नहीं। अपनी परीक्षा आप कर लीजिए। लोगों को भजन करना चाहिए। भजन के लिए जितनी पवित्रता होनी चाहिए, उतनी पवित्रता रखिए। पंच पापों यानी झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से बचिए। इन पापों को नहीं करेंगे, तो इतने पवित्र हो जाएँगे कि ईश्वर को पहचानने के योग्य हो जाएँगे।

H

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मंदिर सिकलीगढ़ धरहरा में दिनांक ३१.३.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

६९. कोशिश करो तो ईश्वर मदद करेंगे

प्यारे लोगो!

श्रीराम पिताजी की आज्ञा से वनवास गए। वनवास में कितना कष्ट होता है, लोग जानते हैं। उनको वनवास के लिए उनके पिता ने नहीं कहा कि आप जंगल जाएँ, बल्कि वन जाने के संबंध में वे मौन रहे। उनका मन तो था कि श्रीराम जंगल नहीं जाए तो अच्छा हो। कैकेई के कारण ही श्रीराम वन गए; क्योंकि उन्होंने ही कहा कि श्रीराम वन जाएँ। पिता के मौन रहने का श्रीराम समझ गए कि मुझे वन जाना चाहिए। वन गए और सब कष्टों को सहन किया और संसार का यह कार्य कि दुष्टों का दमन करना चाहिए, किया। भरतजी ननिहाल से घर आए। उनको मालूम हुआ कि श्रीराम जंगल गए। पिता के मरने का उनको उतना दुःख नहीं हुआ, जितना कि श्रीराम के वन जाने का। श्रीराम को लौटाने के लिए भरतजी उनके पास जंगल गए; किन्तु श्रीराम ने कहा कि पिताकी आज्ञा मेरे लिए वनवास की है। चौदह वर्षों में एक दिन भी कम रहने से मैं जा नहीं सकता। भरत लौट आए। श्रीराम चौदह वर्षों के बाद अयोध्या आए और अच्छी तरह राज्य करने लगे। प्रजा दुःखी नहीं थी। शोषण, लूट आदि नही थी। प्रजा सब तरह से सुखी थी। श्रीराम ने समझा कि प्रजा तो संसार में सुखी हैं, किन्तु शरीर छोड़ने पर भी सुखी रहें, इसके लिए श्रीराम को चिन्ता हुई।

महाराजा अशोक भी बहुत अच्छा शासन करते थे। उन्होंने भी प्रजा की मुक्ति के लिए उपाय किया था। श्रीराम ने समझा कि प्रजा को मामूली सुख-स्वर्ग तो क्या, जिससे मुक्ति हो जाय, ऐसा उपाय करना चाहिए। इसलिए श्रीराम ने एक बार सभा बुलाकर सबों से कहा कि मैं ममता में आकर नहीं कहता हूँ। बल्कि आपकी भलाई के लिए कहता हूँ। यह मनुष्य-शरीर बड़े भाग्य से मिलता है। यह शरीर देवताओं को भी कठिनाई से मिलता है। आप उच्च वर्ण के हैं या आपको किसी प्रकार का विशेष गुण है, इसलिए बड़े नहीं हैं; बल्कि यह मनुष्य-देह ही बड़े भाग्य से मिलती है। यह शरीर साधन का भण्डार और मोक्ष का द्वार है। मोक्ष छुटकारा, मुक्ति को कहते हैं। कोई कारागार में पड़ा हो, उससे छूट जाय, तब कारागार से उसकी मुक्ति है। इसी प्रकार शरीर रूप कारागार से जीव छूट जाय, यह मुक्ति है। यह बहुत बड़ी चीज है। मोक्ष और मुक्ति किसकी? जो बंधा हुआ है, जो कैद है। एक-एक जीवात्मा एक-एक शरीर में कैद है। यह शरीर पिण्ड है और बाहर का संसार ब्रह्माण्ड है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड में बड़ा सरोकार है। संसार और शरीर में इतना सम्बन्ध है कि जितने तत्त्वों से शरीर बना है, संसार भी उतने ही तत्त्वों से बना है अर्थात् आपकी देह में पांच तत्त्व—क्षिति, जल, पावक, समीर और गगन है। उसी तरह संसार में भी उपर्युक्त पांचों तत्त्व हैं। यथा—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा।।

—रामचरितमानस

इन तत्त्वों का वजन तो किया नहीं जा सकता, किंतु जितने तत्त्व शरीर में हैं, उतने ही तत्त्व संसार में भी है। जितने तल संसार के हैं, शरीर के भी उतने ही तल हैं। माया के पिण्ड में भी चार तल (स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण) हैं और संसार में भी चार तल हैं। यह मोटा शरीर जो बना है, इसका बारीक रूप इसमें नहीं है—कहा

नहीं जा सकता। एक मोटा घर आप देखते हैं, तो उसका सूक्ष्मरूप पहले मन में बना लेते हैं, फिर स्थूल रूप बनाते हैं। बड़े-बड़े महल बनाने में चित्र कागज पर खींचकर कारीगर को देते हैं और वह घर बना देता है। बिना सूक्ष्म के स्थूल नहीं बनता; उसी प्रकार बिना कारण के सूक्ष्म नहीं बनता। ब्रह्माण्ड का भी कारण माना जाएगा और पिण्ड का भी। जैसे एक बर्तन बनाना चाहें, तो उस बर्तन के लायक मिट्टी लेकर बर्तन बना सकते हैं, सम्पूर्ण संसार की मिट्टी लेकर नहीं। भूमण्डल भर की मिट्टी लेकर नहीं। उसे आप नाप नहीं सकते; किंतु एक बर्तन में जो मिट्टी लगी है, वह कम है। पदार्थरूप में एक कम है, दूसरा विशेष है। थोड़ी-सी मिट्टी कारण है और अधिक मिट्टी, जिसमें से थोड़ी-सी मिट्टी ली गई, महाकारण है। जिससे सारा पिण्ड-ब्रह्माण्ड बना है, वह प्रकृति है। प्रकृति के जितने अंशों की जरूरत पिण्ड-ब्रह्माण्ड बनाने में होती है, वह अंश कारण है। और फिर सूक्ष्म और स्थूल होता है। ये चारों जड़ हैं।

मनुष्य-शरीर में भी चार तल हैं और ब्रह्माण्ड में भी चार तल। दोनों में इतना सम्बन्ध है कि पिण्ड के स्थूल तल पर जब रहते हैं, तब संसार के भी स्थूल तल पर रहना होता है। जाग्रत से स्वप्न में जाने पर आपको स्थूल शरीर का ज्ञान नहीं होता, तो आपको स्थूल संसार का भी ज्ञान नहीं रहता। उस समय आप अपने हित-अनहित को नहीं जानते। किस बिछौने पर लेटे हैं, यह भी ज्ञान नहीं रहता। किंतु जगने पर सब मालूम होता है। इसी तरह अपने शरीर के सूक्ष्मतल में जाएँ, तो संसार के भी सूक्ष्म तल का ज्ञान होगा। हमलोग समस्त शरीर में फैले हैं, तो संसार में भी फैले हैं।

शरीर के स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण के तलों से छूट जाएँ, तो संसार के भी सब तलों को पार कर जाएँगे। इसके लिए ऐसी बात नहीं है कि शरीर छूटने के बाद मुक्ति होगी—ऐसा ज्ञान नहीं दिलाया गया है। यहाँ तो कहा गया है—

लहहिं चारि फल अछत तनु,..........
जीवनमुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्हके हिय पाषान।।

—रामचरितमानस

तथा—

जीवन मुक्त सो मुक्ता हो........

—संत कबीर साहब

जिन्होंने जीवनकाल में हीं चारो तलों से अपना छूटकारा कर लिया, अपने को प्रत्यक्ष पा लिया, तब उनको अपने लिए कुछ करना नहीं रह जाता। एक काम रहता है कि संसार में वे रहते हैं, तो संसार का उपकार करें। जहाँ सत्संग होता है, वहाँ वे जाते हैं; क्योंकि ऐसे महान जन के जाने से ही सत्संग होता है। नहीं तो सत्संग, सत्संग नहीं होता।

श्रीराम को अपने लिए कुछ करना नहीं था। उन्होंने लोगों को मुक्ति में ले जाने के लिए सभा की और मुक्ति का उपदेश दिया। उन्होंने कहा—

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।
सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ।।

छोटे-छोटे छिद्र को खिड़की और बड़े-बड़े छिद्र को द्वार कहते हैं। आपके शरीर में नौ बड़े बड़े छिद्र हैं। ये ही नौ द्वार हैं। गुरुनानक देव ने कहा—

नउ दरवाजे नवै दर फीके रसु अंम्रित दसवैं चुईजै।

इनके अतिरिक्त एक और द्वार है, जिसको दसवाँ द्वार कहते हैं। आपलोग जानते होंगे कि शिवजी ध्यान में बैठे थे, तो देवताओं ने कामदेव को भेजा। शिवजी का ध्यान छूटा, तो उन्होंने अपनी तीसरी आँख खोल दी।

तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा।।

नौ दरवाजे तो पहले गिना दिए और शिवजी ने तीसरी दृष्टि खोली, यह दसवाँ द्वार है। इस तीसरी दृष्टि से, क्रूर दृष्टि से देखा जाय, तो नाश हो और दया की दृष्टि से देखें, तो अमृत बरस जाय। साधु-संत कहते हैं कि केवल शिवजी को यह आँख नहीं थी, सबको है। किन्तु शिवजी का उस पर काबू था। अब भी जो यत्न करेंगे, तो दसवाँ द्वार देख सकते हैं। जितने साधु-संत हुए हैं, सभी ने इस तीसरी आँख को अपनाया, तब साधु-संत कहलाए। शिव, पार्वती और गणेश की तीन तीन आँखों के होने की बात तस्वीर से जानी जाती है। यह तस्वीर सिखाती है कि तीन-तीन आँखें सबको हैं। जबतक आप नौ दरवाजे में रहिएगा, तो मुक्ति का द्वार नहीं मिलेगा। दसवें द्वार में जाने से मुक्ति का द्वार मिलेगा। श्रीराम स्वर्ग-वैकुण्ठ जाने की शिक्षा नहीं देते हैं। वे कहते हैं कि तुम्हारे अंदर मोक्ष का द्वार है, उसको प्राप्त करो। वह मुक्ति दिन-रात के अन्दर नहीं है; देश-काल से छूटी हुई रहती है। देश-काल से छूटा हुआ परमात्मा रहता है—

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।
— गोस्वामी तुलसीदासजी

परमात्मा देश-काल में नहीं रहते; वे देश-कालातीत हैं। आप यह समझें कि बिना धरती के हम नहीं रह सकते, बिना आकाश के हवा नहीं ले सकते; उसी तरह परमात्मा बिना धरती-आकाश के नहीं रह सकते, तो ऐसी बात नहीं है। हमलोग साधार हैं; किंतु परमात्मा निराधार हैं। हमलोगों को पांच तत्वों की आवश्यकता होती है। तीन गुणों के प्रभाव में हम रहते हैं, किंतु परमात्मा के लिए ऐसी बात नहीं है। पिण्ड-ब्रह्माण्ड से छूटकर, समस्त संसार से छूटकर जो अपने को परमात्मा में मिला देता है, वह मोक्ष पाता है। जीवन काल में जबतक ऐसे पुरुष रहते हैं, तो वे जीवन मुक्त और शरीर छोड़ने पर विदेह-मुक्त कहलाते हैं। भगवान श्रीराम इसी मोक्ष को प्राप्त करने के लिए कहते हैं। स्वर्ग में जाओ, तो वहाँ भी दुःख नहीं छूटता। ऊँच-नीच पद स्वर्ग में भी होते हैं। ब्रह्मा के धाम में भी अपना कर्मफल भोगना पड़ता है। राजा श्वेत अपने पुण्यकर्म के कारण ब्रह्मलोग गए। अतिथि-सत्कार नहीं करने के कारण उनको वहाँ भूख-प्यास सताती थी। ब्रह्मा ने उनको अपने मृत शरीर का मांस खाने की आज्ञा दी। यह कथा बतलाती है कि ब्रह्मलोक जाने पर भी कर्मफल पीछा नहीं छोड़ता, भोगना पड़ता है। ऐसे ही जितने लोक-लोकांतर हैं, सबमें यह बात है। वैकुण्ठ से ही जय-विजय गिरे थे। नारदजी मोह लेकर वैकुण्ठ गये; परंतु वहाँ उनका मोह और बढ़ गया। इसीलिए श्रीराम का यह ख्याल नहीं हुआ कि प्रजा किसी लोक-लोकांतर में जाकर रहे। बल्कि मोक्ष को प्राप्त करे, इसके लिए शिक्षा दी। उन्होंने कहा—

यहि तन कर फल विषय न।
भाई स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदायी।।

विषय पांच हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। आँख, जिह्वा, नाक, त्वचा और कान—इन पांचों ज्ञान-इन्द्रियों से जो जानते हैं, वे हैं विषय। मन इन्हीं पांचों विषयों को जानता है। श्रीराम कहते हैं कि मनुष्य-शरीर के अतिरिक्त जिस-जिस शरीर में तुम थे, तब तुमको इन पंच विषयों से छूटने का ज्ञान नहीं था। अब मनुष्य-शरीर में आये हो, अब तुम पांचों विषयों से ऊपर हो जाओ। यह मनुष्य देह का कर्तव्य है। स्वर्ग के लिए कहा कि स्वर्ग में स्वल्प सुख है। और अंत में दुःख है। उस स्वर्ग का सुख भी थोड़ा है। मनुष्य-शरीर पाकर जो विषयों में मन लगाता है, उसके लिए कहा कि अमृत के बदले में वह विष लेता है। नौ द्वारों में विष है और

दसवें द्वार में अमृत है। उसे कभी कोई अच्छा नहीं कह सकता, जो कर्जनी (घुँघची) को ले ले और पारसमणि को फेंक दे। मनुष्य-शरीर पाकर जो विषयों में मन लगाता है, उसको बहुत हानि होती है।

चार खानियों में चौरासी लाख योनियाँ हैं। अण्डज, पिण्डज, उष्मज और अंकुरज—स्थावर; ये चार खानियाँ हैं। यह अविनाशी जीव चौरासी लाख योनियों में काल, कर्म, स्वभाव, और गुण के घेरे में घूमता रहता है। कभी दया करके इस जीव को परमात्मा मनुष्य का शरीर देते हैं। यह शरीर संसार-सागर को पार करने के लिए नाव है। नाव के लिए अनुकूल पवन होना चाहिए। नाव पूरब की ओर जाय और पुरवैया हवा लगे, तो पश्चिम की ओर जाने में सरल होगा। विषय के प्रवाह में हमलोग बह रहे हैं। परमात्मा की कृपारूपी अनुकूल वायु है कि उस विषय की ओर से फेरती है। इस नाव के लिए मल्लाह सद्गुरु हैं। सद्गुरु उसे कहते हैं, जो स्वयं सद्ज्ञान जाने, सद्ज्ञान की शिक्षा दे, स्वयं परमात्मा का ध्यान करे और दूसरे को ध्यान करने के लिए प्रेरणा दे।

मुक्ति मारग जानते, साधन करते नित्त।
साधन करते नित्त, सत्त चित जग में रहते ।।
दिन दिन अधिक विराग, प्रेम सत्संग सों करते ।
दृढ़ ज्ञान समुझाय, बोध दे कुबुधि को हरते ।।
संशय दूर बहाय, संतमत स्थिर करते।
'मेँ हीँ' ये गुण धर जोई, गुरु सोई सतचित्त ।।
मुक्ति मारग जानते, साधन करते नित्त।

मनुष्य-शरीर-रूप नाव प्राप्त है। मनुष्य-शरीर होने से ईश्वर की कृपा हुई है और खोज करे, तो उसे सद्गुरु भी मिल जाय। इस तरह के साज-सामान को पाकर जो भवसागर से अपना उद्धार नहीं करता, वह आत्महिंसा करनेवाले की जा गति होती है, वह पाता है।

भगवान राम का आज जन्म-दिवस है। हमको चाहिए कि भगवान के इस उपदेश के अनुकूल मोक्ष प्राप्त करने के लिए अन्तस्साधना करें। भक्ति करने में संयम कीजिए। संयम यह कि पाप नहीं करें। पाप करना और ईश्वर की भक्ति; दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते।

'हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।' दोनों एक साथ नहीं हो सकते। इसलिए पाप नहीं कीजिए। सब पापों का मूल है झूठ— झूठ मत बोलो; चोरी नहीं करो; हिंसा नहीं करो; व्यभिचार मत करो; मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करो। इन पंच पापों को छोड़ दो। इन्हें छोड़ने के लिए अपनी शक्ति लगावें तो भगवान भी मदद करेंगे। लोग समझते हैं कि हम झूठ नहीं बोलेंगे, तो काम नहीं चलेगा; हमसे झूठ नहीं छूट सकता। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

जौं तेहि पंथ चलइ मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई।।

जहाँ आप अपने को बलहीन पाइए, तो भगवान को याद कीजिए और अपनी शक्ति लगाइए, अवश्य मदद मिलेगी।

एक हनुमान-भक्त था। वह बैलगाड़ी हाँकते हुए कहीं जा रहा था। रास्ते में गाड़ी का पहिया पंक में फँस गया। वह गाड़ी पर बैठे-बैठे हनुमानजी को पुकारने लगा—'हे हनुमानजी! हे हनुमानजी! मेरी गाड़ी को पंक से निकाल दो।' आर्त्त पुकार सुनकर एक सज्जन के रूप में हनुमानजी आए और बोले—'हनुमानजी! हनुमानजी!! क्या करते हो? गाड़ी से उतरो, कमर में फेंटा बांधो और पहिए में जोर लगाओ। तब हनुमानजी का बल मिलेगा। वे मदद करेंगे।' वह भक्त गाड़ी से नीचे उतरता है और कमर कसकर पहिए में जोर लगाता है। परिणामस्वरूप गाड़ी पंक से बाहर निकल जाती है।

इस कथा से यह जानने में आता है कि अपने से कोशिश करो, तो ईश्वर मदद करेंगे।

'हिम्मते मरदा मददे खुदा।'

God helps those who help themselves.

ईश्वर उनकी मदद करते हैं, जो अपने से अपने की मदद करते हैं। कल कहूँगा कि ईश्वर की भक्ति कैसे कीजिएगा। जो सुनिए, उसको बार-बार विचारिए कि क्या सुना। यह श्रवण है। इसके बाद मनन है—सुने को विचारना, फिर है निदिध्यासन।

आजकल हर्ष का दिवस है कि हमलोगों का अपना राज्य हुआ है। स्वराज्य=अपना राज्य। स्वराज्य में सुराज लावें। कांग्रेस=बड़ी सभा। कांग्रेस के ऊपर भार है कि इसको किस तरह चलावे। लोग कसूर और पाप न करें। कसूर=जिसका दण्ड राजा दे। पाप=जिसका दण्ड ईश्वर दे। पाँचों पापों की जो व्याख्या हुई, वह कसूर और पाप दोनों हैं। कसूर और पाप कैसे छूटेगा? कानून से जेल देते हैं। जेल देते-देते भी यह नहीं छूटता है। कानून भी है और पाप-कसूर भी होते रहते हैं। इसके लिए मैं कहूँगा कि ईश्वर का भजन करो। नेक-नीयत से रहो। सद्ज्ञान की शिक्षा हो, सदाचार-पालन का प्रचार हो। इस लोक और परलोक—दोनों की इससे सँभाल होगी, उन्नति होगी। घूस, झूठ को हटाइए, स्वराज्य में सुराज आएगा। H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत ग्राम पुनामा श्रीरामकृष्ण सिंहजी के आवास पर दिनांक ११.४.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

७०. बिना प्रेम की सेवा ऊपरी भाव है

प्यारे सज्जनो!

संतों के ज्ञान में सबसे विशेष बात ईश्वर का ज्ञान है, मोक्ष का ज्ञान है। यद्यपि दोनों वाक्य पृथक-पृथक मालूम होते हैं, किंतु दोनों दो नहीं, एक ही हैं। ज्ञान के साथ योग रहता है और योग के साथ भक्ति रहती है। ज्ञानविहीन योग और योगविहीन ज्ञान मोक्षप्रद नहीं होता। फिर भक्ति के बिना योग और ज्ञान पूरा नहीं होता। इन सब बातों के मूल में ईश्वर का ज्ञान है। यदि ईश्वर को आप न जानें, ईश्वर तत्त्व का बोध नहीं हो तो ज्ञान किसके लिए? ज्ञान में तीन बातें होती हैं—ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय। जो जानने योग्य है, उसका पता नहीं, फिर ज्ञान किसका? बिना ज्ञेय का ज्ञान किस काम का? इसलिए ईश्वर-स्वरूप का निर्णय जानना आवश्यक है। उसे जानना ज्ञान है। उसमें जो अत्यन्त आसक्ति है, उसको प्राप्त करने के लिए वह प्रेम है, वही भक्ति है। जहाँ संलग्नता नहीं, वहाँ सेवा-भाव नहीं रह सकता। **बिना प्रेम की सेवा ऊपरी भाव है।** जैसे ज्ञान में तीन बातें होती हैं, वैसे ही भक्ति में भी तीन बातें होती हैं; वे हैं— भक्ति, भक्त और भगवन्त। इन तीनों में से किसी को अलग नहीं किया जा सकता। सेवा में मिलन होता है। मिलन वह कर्म है, जो सेवा के लिए होता है। यदि सेवा और मिलन—दोनों को अलग-अलग कर दो, तो सेवा हो नहीं सकती। मिलन के ही कार्य से सेवा होती है। भक्ति और योग बिना ज्ञान के छूँछ पड़ जाता है। इसलिए भक्ति, ज्ञान और योग—तीनों साथ-साथ रहते हैं। मूल में बात यह है कि ज्ञातव्य क्या है? किसकी सेवा हो? संतों ने ईश्वर से मिलने, योग करने, सेवा करने के लिए कहा है। संतों की बतायी भक्ति ईश्वर में प्रेम-भाव रखकर भक्ति करने की

है। सबसे पहले ईश्वर का स्वरूप जानना चाहिए। उपनिषद् और संतवाणी के अनुकूल ईश्वर-स्वरूप ऐसा है कि वह इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है। सांसारिक ज्ञान इन्द्रियों से होता है। आपके शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वे हैं—आँख, कान, नाक, जीभ और चमड़ा। इनसे पंच विषयों का ज्ञान होता है। एक इन्द्रिय के विषय का ज्ञान दूसरी इन्द्रिय से नहीं होता; जैसे जो ज्ञान कान से होता है, वह नाक से नहीं और जो नाक से होता है, वह आँख से नहीं। जिस पदार्थ को ईश्वर कहते हैं, उसका ज्ञान इन पाँचों से नही हो सकता। अंदर की इन्द्रियों से भी उसे प्राप्त नहीं कर सकते।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

—रामचरितमानस

जो माया है, वह विषय है और जो निर्माया है, वह निर्विषय है। बाहर-भीतर की सब इन्द्रियों को छोड़ दीजिए, तब आप स्वयं बच जाते हैं। मन, बुद्धि आदि इन्द्रियों को छोड़ो। बाहर की पंच ज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मेन्द्रियों को छोड़ो, तब जो बचे, वह आप हैं। यदि कहो कि शरीर किसका? तो कहिएगा—मेरा। उसी प्रकार बुद्धि किसकी? तो कहिएगा—मेरी बुद्धि। इस प्रकार आप शरीर और बुद्धि—कुछ भी नहीं, आपके संग शरीर और बुद्धि है। जैसे कपड़ा आप नहीं, आपका कपड़ा है। इस प्रकार जो मन-बुद्धि से परे है; जो अपने से ग्रहण करनेयोग्य है, वह ईश्वर है और आप हैं, ईश्वर के अंश। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामचरितमानस में लिखा है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

जैसे बाहर का आकाश और घर का आकाश—दोनों एक ही हैं, लेकिन घर की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई के कारण उसकी नाप-जोख के अंदर ही शून्य जाना जाता है और बाहर का आकाश उससे विशेष है; किंतु बाहर का आकाश और घर का आकाश तत्त्वरूप में एक ही है। जैसे एक लोटा पानी और दरिया का पानी या समुद्र का पानी तत्त्वरूप में एक ही है। परमात्मा का जातीय पदार्थ चेतन आत्मा है। इसलिए चेतन आत्मा ही उसे ग्रहण कर सकती है। उसको ग्रहण करने से नित्य सुख-शान्ति मिलती है, तृप्ति होती है। इसी के लिए सभी संतों का कहना है कि उस ईश्वर का भजन करो। H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत ग्राम पुनामा श्रीरामकृष्ण सिंहजी के आवास पर दिनांक १२.४.१९५४ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

७१. तन काम में मन राम में

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस समय आपलोगों के सामने ईश्वर की भक्ति पर कहना है। ईश्वर-स्वरूप का जब निर्णय हो जाता है, तब समझ में आने लगता है कि ईश्वर की भक्ति कैसे हो? ईश्वर-स्वरूप के लिए आज प्रातःकाल कह दिया गया है। मुख्य रूप में यह कि जैसे रूप विषय क्या है—जो नेत्र से ग्रहण होता है। शब्द विषय क्या है—जो कान से ग्रहण होता है। परमात्म-विषय क्या है—जो आत्मा से ग्रहण हो। यदि कहो कि सब इन्द्रियों में वही चेतन आत्मा है, तब क्यों नहीं इन्द्रियों से जानेंगे? जो यंत्र जिस पदार्थ के लिए होता है, उसी यंत्र से वह

पदार्थ ग्रहण होता है। जैसे रूप आँख का विषय है, तो उसे कान से नहीं जान सकते। रूप को जानने के लिए आँखरूपी यंत्र लगाते हैं। परमात्मा इन सब यंत्रों से ग्रहण नहीं हो सकता। चेतन आत्मा से परमात्मा का ग्रहण होगा। अब जानिए कि ईश्वर की 'भक्ति' कैसे हो? भक्ति का अर्थ है—सेवा। जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, उसे वह वस्तु दे दीजिए, तो उसकी सेवा हुई। जैसे कोई बीमार है, उसे दवाई दीजिए, तो वह उसकी सेवा हुई। किसी की आवश्यकता पूरी होनी, उसकी वह सेवा है। परमात्मा को क्या आवश्यकता है, वह पूरी कर दीजिए, वही उसकी सेवा होगी।

हमलोगों की तरह परमात्मा को भूख नहीं लगती। शारीरिक आवश्यकताएँ जो हमलोगों की हैं, वे उसे नहीं चाहिए। लोग कहेंगे कि हमलोग जो भोग लगाते हैं, वह क्या खाते नहीं हैं? यदि खरे ज्ञान में कहिए, तो उससे परमात्मा का कोई निजी काम नहीं है। उससे आपका अपना काम होता है। जैसे पिता पुत्र का काम देखकर प्रसन्न होता है, उसी तरह आपकी श्रद्धा जो परमात्मा की ओर है, उससे वह प्रसन्न होता है। केवल भोग ही लगाया जाय कि और कुछ भी है? भोग लगाइए। भोग लगाने में आप अपना प्रेम अर्पित करते हैं। बहुत दाम का प्रसाद या कम दाम का प्रसाद या केवल तुलसीदल—जहाँ विशेष प्रेम है, वहीं परमात्मा को भोग लगा।

'भाव अतिशय विसद प्रवर नैवेद्य सुभ
श्री रमन परम संतोषकारी।
प्रेम ताम्बूल गत सूल संसय सकल
विपुल भव वासना बीज हारी।।'
'रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा।।'
—गोस्वामी तुलसीदासजी

आपका प्रेम जहाँ है, वहीं मन लगा रहता है। जिस ओर जिसका प्रेम बहुत होता है, किसी काम को करते हुए भी उस ओर उसका ख्याल लगा रहता है। यही है—तन काम में मन राम में।

अभी नवधा भक्ति का पाठ आपलोगों ने सुना। मेरे ख्याल में शवरी को किसी भक्ति में कमी नहीं थी। वह भक्ति में पूरी थी, श्रीराम ने कहा—**सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।** शवरी ने कहा—**अधम जाति मैं जड़मति भारी।** जो बुद्धिमान होते हुए भी अपने को बुद्धिमान नहीं जानता, वह ज्ञानी है और जो बुद्धिमान नहीं है, फिर भी अपने को बुद्धिमान मानते हैं, यथार्थ में वे बुद्धिमान नहीं है।

शवरी पढ़ी-लिखी तो नहीं थी, किंतु मतंग ऋषि के साथ वर्षों रह चुकी थी, बहुत ज्ञान प्राप्त कर चुकी थी। श्रीराम ने कहा—पहली भक्ति संतों का संग है। इसमें गुण क्या है? संत कबीर साहब ने कहा—

कबीर संगति साध की, ज्यों गंधी का वास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौ भी वास सुवास।।

इसी तरह कोई साधु के पास में जाय, साधु यदि कुछ नहीं भी बोले, तो भी कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य होगा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक बात कही है—

नित प्रति दरसन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी काहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

उत्तर में उन्होंने ही कहा—

मन तो रमे संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

जिसका मन किसी और तरफ है और साधु का संग करता है, तो उस पर उसका रंग नहीं चढ़ता। इसकी एक कहानी है कि लोहे के बक्से में किसी ने पारस रखा था, किंतु वह बक्सा सोना नहीं हुआ। सुनकर आश्चर्य होगा कि भला लोहे के बक्से में पारस रहे, तो सोना कैसे नहीं हुआ?

इसलिए कि पारस को कपड़े में लपेटकर रखा था। पारस से लोहे को सटाने से ही लोहा सोना हो सकता है, कुछ अंतर रहने से नहीं। दूसरी भक्ति है—ईश्वर की कथा में प्रेम। सत्संग-वार्ता को मन लगाकर सुनिए। तीसरी भक्ति है—गुरु की सेवा अमानी होकर करो। चौथी भक्ति है—ईश्वर का गुणगान करो। पाँचवीं भक्ति है—मंत्रजाप करो। मन एकाग्र करके जपो। ऐसा नहीं कि—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दह दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।

बल्कि—

तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय।।

जप ऐसा होना चाहिए कि स्थिरता आवे। पाँचों भक्तियाँ क्रम से हैं। प्रथम भक्ति संतों का संग है। संतों का संग होने से कथा-प्रसंग होता है। कथा-प्रसंग से यह भी निर्णय हो जाएगा कि गुरु कैसा होना चाहिए। कथा प्रसंग में मन लगाकर सुनो। इधर-उधर मन भटके नहीं। गुरु की सेवा भी मन लगाकर करो। मन लगाकर गुरु की सेवा नहीं करोगे तो उस सेवा को गुरु स्वीकार नहीं कर सकते। सब भक्तियों में अपने मन का पूर्ण योग और क्रमबद्धता है। जैसे-जैसे जो-जो भक्ति है, उसको उसी क्रम से रखना ठीक है। ईश्वर का यशगान मन लगाकर करो। कोई गुरु के संग में रहता है, तो गुरु को स्वयं ईश्वर का भक्त होना चाहिए और अपने पास रहनेवाले शिष्य को भी ईश्वर-भक्त होने की शिक्षा देंगे।

एक भक्ति से पाँचवीं भक्ति तक सबमें मन लगाने कहा। पाँचवीं भक्ति तक स्थूल भक्ति है। इसके आगे और भक्ति है। छठी भक्ति जहाँ से है, वहाँ से सूक्ष्म भक्ति है। छठी भक्ति है इन्द्रियों को काबू में रखने का स्वभाववाला बनना। इन्द्रियाँ काबू में नहीं हैं, तो कोशिश करके उनको रोकते हैं, यह एक बात है। दूसरी बात है कि अब इन्द्रियाँ विषयों की ओर जाती नहीं हैं। इन्द्रियों की रोक होने में ही सज्जनों के धर्म के अनुकूल चलना हो गया। इन्द्रियों के रोकने का स्वभाव कैसे होगा, इन्द्रियों का समेट कैसे हो सकता है? मन और बाहर की सब इन्द्रियों में बड़ा लगाव है। जिस विषय की ओर मन गया, उस विषयवाली इन्द्रिय उस ओर हो गई या जिस विषय को जिस इन्द्रिय ने ग्रहण किया, मन उसी ओर लग गया। मन उन वस्तुओं को ग्रहण करता है, जिनको इन्दियाँ ग्रहण करती हैं। इन्द्रिय से किसी विषय को आप पहले ले चुके हैं; किंतु अब आपके मन को बोध हुआ कि उस ओर नहीं जाएँ, तो बाहर में रोकने का हिस्सक लगाने पर भी मन उस ओर भागता है; किंतु जब उसको बराबर रोकते रहते हैं, तो रोकते-रोकते वह रूक जाता है। जैसे कोई मांस-मछली पहले खाते थे, वे जब पहले छोड़ते हैं, तो मन उसपर दौड़ता है; किंतु समझाते-समझाते मन समझ जाता है और पीछे ऐसी दुर्गन्ध लगती है कि जिस थाली में कोई मांस-मछली खाता है, उस थाली में उनसे खाया नहीं जाता। बाहरी इन्द्रियों को रोकते-रोकते मन रूक जाएगा। उसी प्रकार तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट पीनेवाले सबकी यही बात है। पहले बीड़ी पीनेवाले जो बीड़ी छोड़ते हैं, तो पहले मन लुक-पुक करता है और यदि शरीर, मुँह और हाथ को रोके रहो तो मन भी रुक जाता है। इसलिए मन कहीं जाए, तो जाने दो; किंतु शरीर को रोके रहो, तो वह कर्म नहीं होगा। पीछे मन उस कर्म को करने के लिए नहीं दौड़ेगा। इसलिए कबीर साहब ने कहा—

मन जाय तो जाने दे, तू मत जाय शरीर।
पाँचो आत्मा बस करे, कह गए दास कबीर।।

मन का तार सभी इन्द्रियों में लगा हुआ है। मन का तार सिमटते ही इन्द्रियाँ उधर से मुड़ जाती हैं। जैसे जाग्रत से स्वप्न में जाते हैं, तो एक अवस्था होती है, जिसे तन्द्रा कहते हैं। उसमें मालूम होता है कि शक्ति भीतर की ओर सिमटती है। सिमटते-सिमटते बिल्कुल सिमट जाती हैं और इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं। मन की धार को कैसे समेटेंगे? इसके लिए मन कहाँ है, यह जानिए। जहाँ यह है, वहीं धार को समेटिए। कबीर साहब ने कहा है—

इस तन में मन कहाँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और॥
नैनों माहीं मन बसै, निकस जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर॥

ब्रह्मोपनिषद् में आया है—

जाग्रत्स्वप्ने तथा जीवो गच्छत्यागच्छते पुनः।
नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्निसंस्थितम्॥

अर्थात् जीव जाग्रत और स्वप्न में पुनः-पुनः आता-जाता रहता है। जीव का वासा जाग्रत में नेत्र में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीयावस्था में मस्तक में होता है।

जाग्रत में नेत्र में है, इसलिए दृष्टियोग अच्छी तरह कीजिए। दृष्टि एक ओर करने के लिए यत्न जानिए और उसका अभ्यास नित्य प्रति किया कीजिए। फिर आपको ज्ञात होगा कि इन्द्रियाँ विषयों में दौड़ती नहीं हैं। बिना दृष्टियोग के दमशीलता नहीं आती। हठक्रिया के द्वारा भी लोग दमशीलता प्राप्त करने कहते, किंतु हठयोग के किए बिना ही यदि दृष्टियोग ठीक-ठीक किया जाय तो दमशीलता आ जाएगी। छठी भक्ति में जिस निशाने पर दृष्टि रहती है, वह निशाना वही है, जिसे गीता में अणु-से-अणु अर्थात् छोटे-से-छोटा विन्दु कहा है। जो एकविन्दुता प्राप्त करते हैं, वे परमात्मा का सूक्ष्म रूप—अणु-से-अणु रूप प्राप्त करते हैं। परमात्मा सर्वरूपी हैं—

अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत इति वासना धूप दीजै।
—गोस्वामी तुलसीदासजी।

विन्दु भगवान का तेजस्वी रूप है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥
—गीता, अध्याय ८/९

जो दृष्टियोग करता है, वह ईश्वर के इस रूप का ध्यान करता है। इसका मानस ध्यान नहीं होता। केवल देखो, आप ही उदय होगा। किसी रूप का चिन्तन मत करो। सब आकार-प्रकारों का ख्याल छोड़कर होश में रहकर देखने के यत्न से देखो, उदय होगा। जब हमारे ख्याल से, सब रंग-रूप छूट जायँ, वचन बोलने की सब बातें चली जायँ, तब परमात्मा बच जाएगा। इसका बहुत अच्छा अभ्यास होना चाहिए। यह छठी भक्ति है। यह हुआ दम। मन-इन्द्रियों के संग-संग के साधन को दम कहते हैं। 'शम' कहते हैं मनोनिग्रह को। 'शम' और 'सम'—दोनों में बड़ा मेल है। 'शम' के बिना 'सम' (समता) हो नहीं सकता।

सातवँ सम मोहिमय जग देखा। मोतें अधिक संत करि लेखा॥

'मोहिमय जग देखा' मान लेने से नहीं होगा। स्वाभाविक है; किंतु इसको देखने के लिए जानो। वह सर्वत्र है।

सबकी दृष्टि पड़ै अविनाशी, बिरला संत पिछानै।
कहै कबीर यह भर्म किवाड़ी, जो खोलै सो जानै॥

'शम' है मनोनिग्रह। दृष्टिसाधन में विन्दुग्रहण होता है। विन्दु पर नाद अवस्थित है—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्॥
—ध्यानविन्दूपनिषद्

सब रूपों का—दृश्यमण्डल का बीज विन्दु है।

उसके ऊपर शब्द है, जो न पशु-पक्षी की भाषा है, न किसी बाजे-गाजे का। वह अंतरध्वनि है, ब्रह्मनाद है। बिना विन्दु प्राप्त किए हुए भी शब्द सुनने में आता है, किंतु वह शब्द नहीं सुनने में आता, जो विन्दु ग्रहण करने पर सुनने में आता है। वह सूक्ष्म मण्डल का शब्द है। बिना विन्दु पर आरूढ़ हुए जो शब्द सुनते हैं, वह शरीर के रग-रेशे, धमनियों के चलने से उत्पन्न शब्द है। किंतु विन्दु प्राप्त करके जो शब्द सुना जाता है, वह असली ध्वनि है। सातवीं भक्ति नादानुसंधान है। इसी को ॐ, स्फोट, रामनाम आदि कहा है। उसमें केवल मन का साधन होता है। वहाँ बाहरी इन्द्रियों को कोई सरोकार नहीं रहता। इस नाद साधना में जो सफलता को प्राप्त कर लेता है, उससे पूर्णरूपेण 'शम' का साधन हो जाता है। अब आठवीं भक्ति और नवमी भक्ति बिल्कुल सरल है। जिसे इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह हो गया है, उसके लिए 'यथा लाभ संतोषा' हो ही जाएगा। वह सबके प्रति सरल हो जाएगा।

श्रीरामकृष्ण परमहंसजी महाराज से किसी ने पूछा—सिद्धपुरुष कैसे होते हैं? उन्होंने उत्तर दिया—आलू और बैगन की सब्जी नहीं खाए हो! आलू-बैगन की सब्जी मुलायम होती है, वैसे ही मुलायम होते हैं। जिसको शम-दम होगा, वह सरल, मुलायम हो ही जाएगा। यदि कहो कि नवधा भक्ति में मानस ध्यान नहीं हुआ। तो समझना चाहिए कि 'गुरु पद पंकज सेवा' इसी में मानस ध्यान हो गया अथवा मानस जप के बाद मानस ध्यान होता है। पाँचवीं भक्ति जप है, उसी में मानस ध्यान भी है।

आपकी श्रद्धा जिस रूप में हो, उसका मानस ध्यान कीजिए। एक से पाँच तक स्थूल भक्ति है। छठी और सातवीं सूक्ष्म भक्ति है। आठवीं और नवमी तो फल स्वरूप है। इस प्रकार भक्ति को जानकर सबको करना चाहिए।

H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत ग्राम पुनामा श्रीरामकृष्ण सिंहजी के आवास पर दिनांक १२.४.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

७२. त्रयकाल संध्या करनी चाहिए

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता!

संतों की वाणी को जब हम सुनते हैं और उसका मनन करते हैं, तो साफ तौर से ज्ञात होता चला जाता है कि संतों के उपदेश का केन्द्र विन्दु परमात्मा है। संतलोग परमात्मा को छोड़कर उपदेश करते हैं—ऐसा नहीं। यह केवल भारती भाषा में ही संतों ने नहीं कहा, संस्कृत विद्या में, उपनिषद् में भी ऋषि मुनियों ने कहा है। लोग ख्याल करते हैं कि इन्द्रियों से ईश्वर का दर्शन कर लेंगे; किंतु सभी संतों, महर्षियों ने कहा—वह इन्दियों से नहीं जाना जा सकता। इन्द्रियों की पहुँच या उसका ज्ञान वहाँ तक नहीं हो सकता। बाहर के विषयों को जानने के लिए पंच ज्ञानेन्दियाँ हैं। जैसे आँख से रूप का ज्ञान, कान से शब्द का ज्ञान, नाक से गंध का ज्ञान, जिभ्या से रसास्वादन का ज्ञान और त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है। इन पाँचों ज्ञानों के अतिरिक्त और कोई ज्ञान नहीं होता। मन से संकल्प-विकल्प, बुद्धि से विचार, चित्त से कम्पन और अहंकार से विचार उत्पन्न होता है कि 'मैं हूँ'। जिससे अपने तई के होने का ज्ञान होता है। चित्त ऐसा यंत्र है कि

वह सबको चालू कर देता है, कँपा देता है।

बुद्धि बिना डोले विचार नहीं कर सकती। मन जो प्रस्ताव उठाता है, चित्त के बिना डुलाए वह प्रस्ताव नहीं कर सकता। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और पंच कर्मेन्द्रियाँ—इन दसों इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय ऐसी नहीं है कि अपने विषय को छोड़कर दूसरे विषय का ज्ञान करे। जैसे बुद्धि में विचार है, तो उस काम को मन नहीं कर सकता। जो बुद्धि से होता है, वह मन से नहीं हो सकता। जो मन से होता है, वह बुद्धि से नहीं हो सकता। और बाहर में जो इन्द्रियाँ हैं, जैसे आँख, तो आँख का काम रूप देखना है, इससे सुनना नहीं हो सकता। इसी प्रकार पाँचों बाहर की इन्द्रियों को जानिए। कोई भी इन्द्रिय नहीं है कि उसी एक इन्द्रिय से सब विषयों का ज्ञान हो। इन्द्रियाँ अत्यंत अल्प शक्तिवाली हैं। इनसे परमात्मा का ज्ञान होना कब संभव है? संत लोगों के विचार में परमात्मा इन्द्रियों के परे है।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

अर्थात हे राम! आपका स्वरूप वचन से जानने योग्य नहीं। बुद्धि के परे, सर्वव्यापक, आँखों से देखे जाने योग्य नहीं, अनंत और वेद जिसको नेति-नेति कहता है, ऐसा है।

गोस्वामी तुलसीदासजी को भी ऐसा कहना पड़ा। जिन तुलसीदास महाराज को सगुण साकार का बड़ा भक्त मानते हैं, उनको भी कहना पड़ा कि ईश्वर का स्वरूप यानी निज रूप मन-बुद्धि से परे है। उन्होंने यह भी कहा कि—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

गोस्वामीजी की विशेष आसक्ति किधर है, इसपर वे कहते हैं—

हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

सगुण का अर्थ है—तीनों गुण सहित जो है। उत्पादक शक्ति, पालक शक्ति और विनाशक शक्ति—ये ही तीनों गुण हैं। इन तीनों गुणों का संग सदा रहता है। तमाम संसार में इन तीन गुणों की विविधता है। इन तीन गुणों से जो बना है; इन तीन गुणों को जो धारण करता है, वह सगुण है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि सगुण को आँख से पकड़े हुए हैं और हृदय से निर्गुण को, जो हृदय है, वह अंदर है और जो आँख है, वह बाहर है। बाहर सगुण सोने का डब्बा है और अंदर में निर्गुण रत्न है। गोस्वामीजी कहते हैं—

रामचरित मानस एहि नामा। सुनत श्रवण पाइअ विश्रामा।।

मानस में जल रहता है। उसमें जल-जन्तु रहते हैं और गहराई भी रहती है। वे कहते हैं—

नव रस जप तप योग विरागा। ते सब जलचर चारु तडागा।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनव सोइ वर वारि अगाधा।।
अगुन अखंड अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होई।।

भक्त के प्रेम से सगुण होता है, सो कारणवश होता है। वह स्वरूपतः निर्गुण है। इस तरह ईश्वर का निर्गुण स्वरूप, जिसका संतों ने वर्णन किया है, इन्द्रियों के ज्ञान में आने योग्य नहीं है। बाहर की दस और अंदर की चार इन्द्रियों को छोड़कर तब आप बचते हैं। आप शरीर नहीं हैं, इन्द्रियाँ नहीं हैं। इनके अतिरिक्त और जो बचता है, वह आप हैं। आप जीवात्मा हैं। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और बाहर की इन्द्रियाँ यदि इससे अवलंबित नहीं रहें, तो कुछ भी नहीं कर सकतीं। उसी चेतन आत्मा के आधार पर सब इन्द्रियाँ काम करती हैं। जाग्रत में इन्द्रियों के साथ-साथ वह मौजूद है, तब

सब इन्द्रियाँ काम करतीं हैं। जब आप सो जाते हैं, तब वह चेतन की धारा सिमटकर अंदर चली जाती है; तब आप से कुछ भी काम नहीं होता। चेतनधारा इन्द्रियों के घाट पर रहने से इन्द्रियाँ काम करतीं थीं, सिमट जाने पर इन्द्रियाँ निर्बल हो गयीं। जिससे बल पाकर सब इन्द्रियाँ काम करती हैं, वह स्वयं कुछ काम कर सकती है या नहीं? इन्द्रियों को बल देती हुई वह धारा विषयों का उपभोग करने की शक्ति देती है; किंतु इन्द्रियों से छूटकर उसका निज विषय क्या है? कठोपनिषद् में कहा गया है कि जीवात्मा का निज विषय परमात्मा है।

विशेष पढ़ने से, विशेष याद रखने से, विशेष प्रवचन करने से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। इसीलिए इन्द्रियों से ईश्वर को पहचानने का ख्याल भूल है। परमात्मा या सतसाहब या ब्रह्म को चेतन आत्मा ही जान सकती है। ईश्वर-दर्शन के लिए कौन-सा प्रयोग किया जाय? स्वरूप जानना बिना अंतस्साधना के नहीं हो सकता। इसके लिए सत्संग में जाकर सुन-सुनकर उसका ज्ञान प्राप्त करो। आप स्वयं उसको पहचान सकते हैं। हमारी इन्द्रियाँ हमारे नौकर हैं। नौकर से वह पकड़ा नहीं जाता। आपके कोई विशेष पूज्य आपके पास यहाँ आवें, तो आप स्वयं उनकी सेवा कीजिए—यह अच्छा हो कि नौकर को फरमावें कि फलाना काम करो; कौन अच्छा होगा? कितना भी करो, परमात्मा इन्द्रियरूपी नौकर से पकड़ा नहीं जा सकता। इन्द्रियों से छूटकर आप ही उसे पकड़ सकते हैं। वह परमात्मा सर्वत्र है। दृष्टि से सब कुछ देखते हैं। दृष्टि में भी वह है; किंतु दृष्टि उसे पहचान नहीं सकती। दिव्य दृष्टिमें भी वह परमात्मा है, किंतु दिव्यदृष्टि से भी वह पकड़ा नहीं जा सकता। वह परमात्मा सर्वव्यापक है। उसको इन्द्रियों से नहीं जान सकते। कबीर साहब ने कहा—निरंजन परमात्मा न्यारा ही है—

राम निरंजन न्यारा रे। अंजन सकल पसारा रे।।
अंजन उतपति वो ऊँकार। अंजन मांड्या सब बिस्तार।।
अंजन ब्रह्मा शंकर इन्द। अंजन गोपी संगि गोव्यंद।।
अंजन वाणी अंजन वेद। अंजन किया नाना भेद।।
अंजन विद्या पाठ पुरान। अंजन फोकट कथहि गियान।।
अंजन पाती अंजन देव। अंजन की करै अंजन सेव।।
अंजन नाचै अंजन गावै। अंजन भेष अनंत दिखावै।।
अंजन कहौं कहाँ लगि केता। दान पुंनि तप तीरथ जेता।।

और अंत में उन्होंने कहा—

कहै कबीर कोइ बिरला जागै, अंजन छाड़ि निरंजन लागै।।

गुरु नानकदेवजी ने कहा—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरबाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।
जंत उपाइ कालु सिरिजंता बसगति जुगति सवाई।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई।।
सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।

बाबा साहब ने भी कहा है—दृष्टि वहाँ तक जाती है, जहाँ तक रूप है। परमात्मा को यह दृष्टि पहचान नहीं सकती। इसलिए दृष्टि के बाद शब्द का दूसरा कायदा है।

परमात्मा सर्व सृष्टि को व्याप्त कर और कितना बाहर है, कहा नहीं जा सकता। परमात्मा की स्थिति अवश्य है। जोर इसलिए देते हैं कि एक आदि तत्त्व अवश्य होगा। वह आदि तत्त्व असीम होगा। जो असीम नहीं माने, ससीम माने, तो प्रश्न होगा कि तब वह ससीम किसके अंदर

है? वह ससीम जिसके अंदर है, वह असीम हो जाएगा। जो असीम है, वह विशेष सूक्ष्म है। वह ब्रह्म घट-घट में समाया हुआ है। गुरुमुख लोग निडर ध्यान लगाकर वज्र कपाट को खोल लेते हैं। इसलिए ध्यान का यत्न जानना चाहिए। समय बाँध-बाँधकर ध्यान करना चाहिए। संसार का भी काम कीजिए और ध्यान भी कीजिए। संसार में रहकर काम करते हुए शान्ति नहीं मिलती; किंतु भजन में थोड़ा भी मन लगे, तो देखेंगे कि कितनी शान्ति मिलती है; शरीर के साथ रहते हुए शान्ति और शरीर छूटने पर भी शान्ति। त्रयकाल संध्या करनी चाहिए। किसी को ऐसा ख्याल नहीं करना चाहिए और किसी के बहकाने से विश्वास नहीं करना चाहिए कि हम तुच्छ हैं, हमसे भजन-ध्यान नहीं होगा। जिनको यहाँ के लोग छोटी जाति का कहते हैं, वे लोग भी इतने बड़े-बड़े ध्यानी, ज्ञानी हुए कि बड़े-बड़े लोगों ने भी जाकर उनके आगे सिर झुकाया। इसलिए ध्यान खूब कीजिए। व्यासदेव जी ने महाभारत में त्रयकाल संध्या पर बहुत जोर दिया है। इसलिए ध्यान खूब कीजिए। H

यह प्रवचन मिरजानहाट, भागलपुर में श्रीतिलक मोदीजी के आवास पर दिनांक १५.४.१९५४ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

७३. नाद से बढ़कर कोई मंत्र नहीं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संतों की वाणी चाहे संस्कृत, चाहे पाली, चाहे भारती, चाहे किसी भी भाषा में हो, उसमें यही बात है कि मनुष्य को बहुत पवित्रता से रहना चाहिए। पवित्रता शरीर की और हृदय की भी होनी चाहिए। पवित्रता में रहते हुए अपने को ऊपर उठाओ। ऊपर उठाने का अर्थ अपने अंदर सूक्ष्मता में प्रवेश करो। यह जैसे-जैसे अधिक होता जाएगा, वैसे-वैसे उधर बढ़ते जाओगे, जिधर ईश्वर का ज्ञान होगा। जैसे-जैसे कोई स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाता है, उधर वह अपने को और परमात्मा को पहचानता है। संसार को पहचानते हुए जो भोग भोगते हैं, सबको प्रत्यक्ष है। उसमें कभी कोई सुखी नहीं, कोई तृप्त नहीं।

संतों के ख्याल में है कि बारंबार जन्म लेना और मरना पड़ता है। यह शरीर है, कभी-न-कभी अवश्य छूटेगा। फिर दूसरा शरीर होगा। जैसे एक शरीर में सुख-दुःख भोगना होता है, उसी तरह दूसरे-दूसरे शरीरों में भी दुःख-सुख भोगना पड़ेगा। संतों ने कहा—ईश्वर-दर्शन करो। उसको पहचानो, तब कल्याण होगा। संतों की वाणी में इसी का उपदेश है, प्रेरण है। हृदय की शुद्धि यानी हृदय की पवित्रता के लिए उन्होंने कहा—हृदय में राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि विकार नहीं रखो। किसी से वैर भाव के कारण जो उसका अनिष्ट सोचता है, वह कभी ऊर्ध्वगति को प्राप्त नहीं कर सकता। संतों में सबसे बड़ी शक्ति सहनशक्ति है। उसको अपनाओ। अंदर में प्रवेश करने के लिए, स्थूल से सूक्ष्म में जाने के लिए ऐसा ध्यान हो कि एकविन्दुता प्राप्त कर लो। विन्दु इतना सूक्ष्म होता है कि जिसको कोई बाहर में बना नहीं सकता। विन्दु उसको कहते हैं, जिसका स्थान है, परिमाण नहीं अर्थात् परिमाण रहित चिह्न को विन्दु कहते हैं। बाहर में परिभाषा के अनुकूल विन्दु नहीं बन सकता। अपनी दृष्टि को खूब समेटो। दृष्टि को समेटकर एक स्थान पर रखो, अपने अंदर में। एक

स्थान पर कहने का मतलब यह कि दृष्टि को वहाँ रखो जहाँ मांस, हाड़, चाम, खून नहीं है। शून्य में ध्यान करो। जब कोई अपने अंदर देखना चाहे, तो देखने के लिए नेत्र बंद करे। तब उसको अंधकारमय आकाश दीखता है। उसमें हाड़, मांस, खून, चाम नहीं है। जो अपनी दृष्टि को ऐसा बनाता है, जैसे सूई में धागा पिरोने में या शिकार में निशाना करने में करते हैं, तब जैसे मन और दृष्टि एक जगह होती है, उसी तरह मन और दृष्टि को अपने अंदर एक जगह रखो। तब जो उदय होगा, वह परम विन्दु है। उस परम विन्दु पर जो ठहरकर रह सकता है, वह सूक्ष्म में प्रवेश कर जाता है। ऐसा प्रवेश कर जाने से बाह्य पदार्थों की आसक्ति छूट जाती है। या यों भी कहिए कि आरंभ में मन की आसक्ति को छोड़कर ध्यान करता है, तब ऐसा होता है। उसके लिए ध्यान करने में कोई तकलीफ नहीं होती। फेफड़े में चोट नहीं लगती। हाँ, ध्यान करने में मस्तिष्क में कुछ भारीपन अवश्य लगता है। तो जब ऐसा लगे, तब ध्यान करना छोड़ दीजिए। फिर पीछे कीजिए। जैसे कमजोर शरीरवाले का शरीर व्यायाम करते-करते मजबूत होता है, उसी प्रकार ध्यान करते-करते उसका ध्यानबल बढ़ जाता है। सूक्ष्म में प्रवेश करने पर नाद को प्राप्त करता है। योगशिखोपनिषद् में कहा गया है—

नास्ति नादात्परो मंत्रः न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसंधेः परा पूजा न हि तृप्तेः परं सुखम्।।

नाद से बढ़कर कोई मंत्र नहीं, अपनी आत्मा से बढ़कर कोई देवता नहीं है, (नाद वा ब्रह्म की) अनुसन्धि (अन्वेषण वा खोज) से बढ़कर कोई पूजा नहीं है और तृप्ति से बढ़कर कोई सुख नहीं है। इसी को ध्यानविन्दूपनिषद् में कहा गया है—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम् ।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ।।

परम विन्दु ही बीजाक्षर है, उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अनाश ब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है।

अनाहतं तु यच्छब्दं तस्य शब्दस्य यत्परम्।
तत्परं विन्दते यस्तु स योगी छिन्नसंशयः।।

अनाहत के बाद जो निःशब्द परमपद है, योगी उसे सबसे बढ़कर समझते हैं, जहाँ सब संशय दूर हो जाते हैं।

यह ज्ञान किसी भाषा में हो, ग्रहण करना चाहिए। संतों की वाणी में श्रद्धा होनी चाहिए। जो कोई संतों की वाणी में अश्रद्धा करता है, वह गलत करता है। यदि संतवाणी में हो और उसको करके देखने में लाभ हो, तो उससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है। संतों की वाणी में स्थूल ध्यान भी बतलाया गया है। कबीर साहब ने कहा है—

गुरु साहब करि जानिये, रहिये शब्द समाय।
मिले तो दंडवत बन्दगी, पल पल ध्यान लगाय।।

स्थूल ध्यान के बाद सूक्ष्म ध्यान बतलाया गया है। सूक्ष्म ध्यान में विन्दु और नाद का ध्यान है। स्थूल ध्यान में भी दो बातें हैं—स्थूल जप और स्थूल ध्यान। इससे स्थूल ध्यान में दृढ़ होकर सूक्ष्म ध्यान में बढ़े। हृदय की शुद्धता के कारण वह संसार में अच्छी तरह रह सकता है। जो राग- द्वेष रहित है, वह संसार में आसानी से प्रतिष्ठा से रह सकता है। इस प्रकार वह संसार में भी अच्छी तरह रहेगा और परलोक में भी उसका भला होगा। H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत मिरजानहाट में श्रीमान तिलक मोदीजी के आवास पर दिनांक १६.४.१९५४ ई० को प्रातः कालीन सत्संग में हुआ था।

७४. धन यौवन का गर्व न कीजै

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैंने तो आज तक अपने को कुछ ऐसा नहीं जाना है। अपनी परख और अपनी जाँच से मैंने अपने को वैसा नहीं पाया, जैसा कि आपने अभिनंदन पत्र देकर मुझे सम्मानित किया है। मैं उसके सर्वथा अयोग्य हूँ। कल्ह भी आपलोगों ने अभिनंदन पत्र दिया था। उसे आशीर्वाद समझकर ग्रहण करता हूँ। आपलोग जानते हैं कि मैं सत्संग के निमित्त यहाँ आया हूँ। सत्संग में संतों के वचनों का अवलंब लेता हूँ। गुरु महाराज की यही आज्ञा है। सन् १९०९ ई० से लेकर आज १९५४ ई० तक संत-वचन के आधार पर सत्संग हुआ है, होता चला आ रहा है। संतों के वचन में ईश्वर को मानने का बड़ा आग्रह है। ईश्वर नहीं हो तो संत-वचन छूँछ है। जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, संत उससे सहमत नहीं। बहुत लोगों का कहना है कि ईश्वर को बुद्धि के विचार से समझा दो। जो बुद्धि-विचार से परे है, उसे बुद्धि के विचार से कैसे समझाया जाय? संतलोग कहते हैं, ईश्वर कैसा होता है—यह जानो। ईश्वर ससीम वस्तु, व्यक्त वस्तु नहीं है। ईश्वर-स्वरूप के लिए—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

तथा—**राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।**
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

गोस्वामीजी ने कहा है। वह स्वरूपतः अपार अर्थात् असीम है। इस पर सोचो कि ऐसा कुछ हो सकता है या नहीं। अपार यानी जिसकी सीमा नहीं हो सकती हो किसी परिधि से घेरा नहीं जाय। ऐसा कुछ हो सकता है या नहीं। यदि कहो सब ससीम ही ससीम है, तब प्रश्न होगा कि सब ससीमों के पार में क्या है? इसके उत्तर में बिना असीम कहे प्रश्न हल हो नहीं सकता। यदि कहो कि सब ससीमों को जोड़कर एक असीम होगा, तो यह हो नहीं सकता कि सब ससीमों को जोड़कर असीम हो गया। सबसे पहले का जो है, वह असीम अवश्य है। यदि उसे ससीम माने तो उसकी सीमा के पार में कुछ और क्या होगा, वही असीम होगा। तब उसी असीम को क्यों नहीं परमात्मा माना जाय। सभी संतों यानी कबीर साहब, नानक साहब, पलटू साहब, तुलसी साहब, उपनिषद् आदि सभी के वचनों में यही है कि ईश्वर स्वरूपतः अनंत है। थोड़ा तर्क और विचार भी दृढ़ कर देता है कि एक अनंत तत्त्व—परमात्मा अवश्य है। एक-एक पिण्ड में जो रहनेवाला है, वह उत्सुक रहता है कि सुख मिले। इसकी पूर्ति के लिए वह संसार के पदार्थों में अपने को लगा-लगाकर खोजता है। फिर भी सुख दूर ही रहता है। संसार में विद्वान, धनवान कोई भी हो, वह पूर्ण रूपेण सुखी नहीं। बलवान, रूपवान, धनवान कबतक रहेगा। संयोग-लगन से धन घट जाता है। बुढ़ापा आने से रूप और बल घट जाता है। पहला रूप और बल नहीं रहता। बुढ़ापा आता है, वह सुरूप को कुरूप और बलवान को निर्बल बना देता है। पहले तो रोग होता है। शायद ही कोई रोग से बचते हों। इसीलिए कबीर साहब ने कहा—

धन यौवन का गर्व न कीजै, झूठा पँच रंग चोल रे।

कितना भी सुंदर शरीर हो, एक दिन अवश्य

छूटेगा। धन-परिवार सभी छूटेंगे। जो इस शरीर में रहनेवाला है, जो शरीर-सुख में भूला रहता है, असली सुख का जिसको पता नहीं है। तो वह हानि में जा रहा है। इस बात को संत लोग जानते हैं और कहते हैं संसार में सुख नहीं। संसार के परे का जो पदार्थ है, उसकी ओर चलो, उस तक पहुँचो, उसको पहचानो। संसार को पहचानकर तुम अतृप्त रहते हो, लेकिन परमात्मा को पहचानकर तुम तृप्त हो जाओगे। परमात्मा सबको दे रहा है, किंतु वे जान नही सकते हैं कि परमात्मा हमको देता है। सबसे विशेष देना यह है कि परमात्मा अपने को हमसे छिपाकर नहीं रखे। उसके दर्शन से मन तृप्त हो जाता है, तब कुछ माँग नहीं रहती, इच्छा नहीं रहती कि जागतिक सुख मिले। इसलिए ईश्वर की भक्ति करो। गुरु नानकदेवजी का वचन याद आता है—

ऐसी सेवकु सेवा करै, जिसका जीउ तिसु आगे धरै।

फूल, पत्ती, नैवेद्य आदि को चढ़ानेवाले बहुत होते हैं, किंतु अपने को कैसे चढ़ावें, यह नहीं जानते। यह जीव इस शरीर में ऐसा फँसा हुआ है कि उसको शरीर और जीव एक ही जैसे मालूम होते हैं। किसी मृतक को देखते हैं तो एक विचित्र वैराग्य होता है कि यह शरीर बेकाम हो गया। कितने समझते हैं, शरीर गया, तुम भी गए। किंतु मुझे इसका विश्वास नहीं। शरीर जड़ है। इसमें चलना, बोलना, फिरना कैसे होता है? बिना ज्ञानमय पदार्थ के यह जड़ तत्त्व कुछ कर नहीं सकता। कोई कहे कि बुद्धि-यंत्र से बूझता-सूझता है, इन्द्रिय यंत्र से काम करता है। सभी जड़-जड़ तत्त्व मिलकर चेतन उत्पन्न हो गया। किंतु इसका विश्वास नहीं होता। जड़ अपरा प्रकृति और चेतन परा प्रकृति श्री मद्‌भगवद्‌गीता के अनुकूल है। जड़ असत्, परिवर्तनशील है और चेतन सत् अपरिवर्तनशील है। जीव सदा सुख के लिए इच्छुक रहता है। वहाँ चेतन जब शरीर से निकल गया, तब यह शरीर मर गया।

संतों ने कहा कि यह मत समझो कि यही केवल पंचरंगा चोल है। 'पंच रंग चोल' यानी पंच तत्त्वों का शरीर। रंग कहने का मतलब पंच तत्त्वों के पाँच रंग। पृथ्वी का रंग पीला, पवन तत्त्व का रंग हरा, अग्नि का रंग काला, जल का रंग लाल और आकाश का रंग सफेद होता है। यह पंच तत्त्वों का शरीर झूठा है। केवल एक ही शरीर नहीं है। केवल दार्शनिक ढंग से कहकर ही नहीं समझाया, बल्कि कथा कहकर समझाया। सावित्री और सत्यवान की कथा से ज्ञात होता है कि स्थूल शरीर के अंदर सूक्ष्म शरीर भी है। सूक्ष्म शरीर को ही लिंग शरीर कहते हैं। यमराज ने सत्यवान के स्थूल शरीर से लिंग शरीर को निकाला था, तब सत्यवान मर गया था। जब उसी लिंग शरीर को यमराज ने स्थूल शरीर में प्रवेश करा दिया, तो सत्यवान जीवित हो उठा। मतलब यह कि शरीर के अंदर शरीर है। साथ-ही-साथ यह भी सीखना चाहिए कि पातिव्रत्यधर्म कितना बड़ा धर्म है। जिस प्रकार स्त्रियों के लिए पातिव्रत्य धर्म है, उसी प्रकार पुरुषों के लिए पत्नीव्रत धर्म है, जैसे श्रीराम ने इस धर्म का पालन किया था। एक पत्नीव्रती पुरुष की आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है। खैर, यह एक छोटी-सी शाखा निकली थी। उसे छोड़ दीजिए और अब अपने मूल विषय पर आइए।

जड़ शरीर चार हैं—स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण। ये चारो शरीर छूट जायँ, चेतन आत्मा पर कोई आवरण नहीं रहे, अकेले रहे, तब ईश्वर कहीं छिप नहीं सकता। ये ही चारो जड़ शरीर घूँघट के पट हैं। संतों ने यहाँ ईश्वर-भक्ति का बड़ा आग्रह किया है। शरीर लेकर किसी के आगे गिरना शरण होना नहीं है। बल्कि 'ऐसी

सेवकु सेवा करै, जिसका जीउ तिसु आगे धरै।' यह शरण होना है। ऐसी भक्ति का काम करें कि सब शरीर छूटकर ईश्वर के सामने हो जायँ। इसी का प्रचार हमारे गुरु महाराज ने किया। इसी भक्ति पर संतों का बड़ा जोर है। यह विषय तो गहरे ग्रंथ में अवश्य है, किंतु बहुत कम लोग जानते हैं। यह सब कहने से लोगों को मालूम होता है कि कोई नयी बात कह रहे हैं, किंतु बात पुरानी है। चारों शरीरों से निकल जाइए, तो आप ईश्वर के सामने हो जाइएगा। इसके लिए सोचिए कि यह कैसे होगा। आप नित्य प्रति सोते-जागते हैं। जागने से गहरी नींद में जाने के समय एक अवस्था तन्द्रा होती है, उसमें सबको मालूम होता है कि बाहर की तरफ से बेखबरी हो रही है और कुछ-कुछ ज्ञान भी होता रहता है। शरीर की शक्ति भीतर की ओर खिंचती है। फिर बाहर की ओर से अचेत हो जाते हैं। एक ही बिछावन पर और कुछ होता हो, तो आपको उसका ज्ञान नहीं होता। इसी तरह साधना द्वारा बाहर स्थूल तल से छूटना हो सकता है, जब आप भीतर प्रवेश करें। इसलिए संतों ने अंतर्मुख होने कहा। जैसे-जैसे भीतर चलेंगे, वैसे-वैसे घूँघट उतरते जाएँगे। जब सब उतर जाएँगे, तब प्रभु को पहचानेंगे।

लोग कहते हैं, ईश्वर सर्वत्र है, फिर जाओगे कहाँ? मैं कहता हूँ—ईश्वर सर्वत्र है, तो तुम पहचानते भी हो? जहाँ जाकर पहचानेगे, वहाँ जाना होगा। परमात्मा सर्वत्र है। संत कबीर साहब ने कहा—

सबकी दृष्टि पड़ै अविनाशी, विरला संत पिछानै।
कहै कबीर यह भरम किवाड़ी, जो खोलै सो जानै।।

परमात्मा सब जगह है, पहचान में क्यों नहीं आता? परमात्मा स्वरूपतः अनादि, अनंत, असीम है। वह सर्वव्यापक है। जो सर्वव्यापक है, वह सबसे विशेष सूक्ष्म है। जो सबसे विशेष सूक्ष्म है, उसको इन्द्रियों से कैसे पकड़ सकते हैं? इन्द्रियाँ स्थूल हैं। जैसे आँखों पर पट्टी बंधी रहने से बाहर का दृश्य नहीं देखा जाता, उस पट्टी को हटाने से देखा जाता है। उसी प्रकार शरीररूप पट्टी को हटाइए, तब ईश्वर के दर्शन होंगे। इसके लिए भक्ति कीजिए। भक्ति का अर्थ सेवा है। भूखे को खिलाना, प्यासे को पानी पिलाना, दुखियों की सेवा करनी भक्ति है। किंतु ईश्वर को क्या चाहिए? उनको तो खाना-पीना कुछ नहीं, सोना-जागना कुछ नहीं। वह तो ऐसा है कि सबको खिलाता है, वह खाता नहीं। सबको पहनाता है, वह कुछ नहीं पहनता। सब कोई सोते हैं और वह जगकर पहरा करता है। फूल-पत्ती आदि चढ़ाते हैं, यह आपका प्रेम है। इसके द्वारा आप अपने को ईश्वर की ओर लगाते हैं। किंतु ईश्वर को ये सब चीजें कुछ नहीं चाहिए। ईश्वर सर्वव्यापी है, सर्वगत है। सर्वरूपी कहने से सगुण होता और सर्वगत कहने से निर्गुण होता है। सगुण और साकार कहने से दो का बोध होता है। सगुण अर्थात् गुण सहित। साकार अर्थात् आकार सहित। आशय यह है कि कोई बिना गुण का है। उसने गुण को धारण किया तो सगुण हुआ। कोई निराकार है, उसने आकार धारण किया तो साकार हुआ। भक्ति ऐसी होनी चाहिए कि स्थूल सगुण साकार से आरंभ कर निर्गुण निराकार के पार तक पहुँचा जा सके।

यह पवित्र मंगल कार्य सबको करना चाहिए। किंतु कैसे कीजिएगा? हाथ में गोबर लगा रहे तो उसको इत्रदान में डुबाना ठीक नहीं होगा। उसी प्रकार हृदय को विकारों से, पापों से अपवित्र कर परमात्मा को कैसे छू सकते हो? इसलिए अपने को पवित्र बनाओ यानी झूठ चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से अपने को बचाकर रखो और अंतस्साधन करो, तो प्रभु को पाओगे।

औषधि करै औ पथ रहै, ताका वेदन जाय ।

कोई आदमी अपने रोग निवारण के लिए औषधि तो करे, किंतु पथ्य नहीं करे, तो रोग कैसे छूटेगा? अंतर्मुख होइए, पवित्र रहिए और ईश्वर का भजन कीजिए, कल्याण होगा।

H

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत जमालपुर निवासी राय बहादुर श्रीदुर्गादासजी तुलसी के आवास पर दिनांक—१७.४.१९५४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

७५. उत्तम संस्कृति

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

बिना आध्यात्मिकता के राजनीति में शांति नहीं आ सकती। संतों ने जगतकल्याणार्थ आध्यात्मिकता के प्रचार का कार्य किया और आज भी वही बात चल रही है।

हमलोग सुधरे हुए कम हैं। अच्छे आचरण से चलें, यही सुधार है। अच्छा सुधार बिना अच्छे संग और अच्छी विद्या के नहीं हो सकता।

भगवान बुद्ध का वचन है—जो बूढ़ों को प्रणाम और उनका आदर करते हैं, उनकी चार चीजें बढ़ेंगी—आयु, सुख, सुन्दरता और बल।

उत्तम संस्कृति के लिए बड़ों का आदर और उनके सामने में नम्र अवश्य रहें और अपने से छोटों को प्यार करें। तुलसीकृत रामायण पढ़िए। कितना अच्छा कहा गया है कि—

प्रातकाल उठिकै रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा।।

हमलोग राम के नमूने पर चलें तो हमारा सुधार हो। शील धारण करें। शील निभाना है तो आवश्यक यह है कि जिस काम के लिए जो व्रत है, उसमें मजबूत रहें। आर्य-संस्कार में विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। आचार्य, गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। ब्रह्मचर्य व्रत पर बहुत ख्याल रखना चाहिए। जहाँ ब्रह्मचर्य पर ख्याल नहीं है, वहाँ ओजपूर्ण तेज नहीं हो सकता। विद्या-ग्रहण की शक्ति पूर्णतया विकसित नहीं हो सकती। सभी विद्यालयों—महाविद्यालयों में आध्यात्मिक परिषद् का रहना अच्छा है। आध्यात्मिक पुस्तकालय भी हो। हमारे प्यारे विद्यार्थीगण भी अध्यात्मज्ञान को अपने मस्तिष्क में रखें।

ईश्वर भक्ति करनी चाहिए। बाह्य पूजा का सार यह है कि उसके द्वारा भक्त अपना भाव भगवान को अर्पण करता है। जप, स्तुति, प्रार्थना, प्रेयर (prayer)—सब कुछ कीजिए। मन की एकाग्रता के लिए कीजिए। एकाग्रता के लिए प्राणायाम की उपयोगिता मानी जाती है। अच्छी संस्कृति के लिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करें।

प्यारे विद्यार्थियो! विद्या सीखो। मन से पढ़ो। अच्छे मन से पढ़ो। सांसारिक कामों को भी करो, किंतु अनासक्त होकर। यही हमारे यहाँ की आध्यात्मिक शिक्षा है।

H

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत जमालपुर निवासी राय बहादुर श्रीदुर्गादासजी तुलसी के आवास पर दिनांक १८.४.१९५४ ई० को रात्रि कालीन सत्संग में हुआ था।

७६. पाप और पारे को कोई हजम नहीं कर सकता

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

अपने देश में 'महाभारत' नाम से एक बहुत बड़ी पुस्तक है। बहुत लोग पढ़ते हैं। एक ही परिवार के दो नामधारी परिवार थे—एक कौरव और दूसरा पाण्डव। पाण्डव पाँच भाई थे। कौरव एक सौ भाई थे। पाण्डवों में युधिष्ठिर श्रेष्ठ थे, बड़े धर्मात्मा थे। बारह वर्ष वनवास और तेरहवाँ वर्ष अज्ञात वास किया। बारह वर्ष तक उनको बड़ा कष्ट हुआ, किंतु उसमें बड़े-बड़े अच्छे साधु-संतों के दर्शन होते रहे। तीर्थ-स्नान करते थे, दान-पुण्य करते थे। बड़े दुर्गम-से-दुर्गम स्थान में जाते थे। जहाँ स्वयं नहीं जा सकते थे, वहाँ घटोत्कच अपनी देह पर बैठाकर तीर्थ-स्नान कराते थे। होते-होते लड़ाई हुई। उनकी जीत हुई, राजा हुए। अश्वमेध यज्ञ किया। राज्य-प्राप्ति के पहले राजसूय यज्ञ भी किया था। वे बहुत पुण्य करते थे। उनके सहायक भगवान श्रीकृष्ण थे। उनके यहाँ भगवान बहुत रहते थे। भगवान श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से उम्र में छोटे थे। युधिष्ठिर को भगवान श्रीकृष्ण प्रणाम भी करते थे। भगवान की सहायता से उनलोगों की जीत हुई थी। भगवान जब इस संसार से चले गए, तो वे बिल्कुल पुरुषार्थहीन हो गए। श्रीकृष्ण के नहीं रहने से उनलोगों को बहुत वैराग्य हुआ और तमाम तीर्थों में दान-पुण्य, स्नान करते हिमालय में कोई कहीं गिरे, तो कोई कहीं गिरे। युधिष्ठिर देह-सहित स्वर्ग गए, किंतु पहले उनको नरक का दर्शन कराया गया। भगवान का दर्शन, दान-पुण्य, तीर्थ व्रत; सब कुछ होते हुए भी जरा-सा झूठ बोलने के कारण नरक उनको देखना पड़ा। विशेष पुण्य किया था, उसके बदले स्वर्ग मिला। थोड़ा पाप किया था, इसलिए थोड़े काल नरक देखना पड़ा। आपलोग अपने-अपने मन में सोचिए कि कितना पाप किया, उसका क्या फल होगा? ऐसा नहीं कि पाप-कर्म पुण्य-कर्म करने से नष्ट हो जाता है। पाण्डव बिल्कुल भगवान श्रीकृष्ण पर निर्भर थे। अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण का इतना भक्त था कि नारायणी सेना न लेकर केवल भगवान श्रीकृष्ण को लिया, किन्तु पाप-कर्म का फल कटा नहीं, भोगना पड़ा। श्रीरामकृष्ण परमहंसजी ने कहा है—'पाप और पारे को कोई भी हजम नहीं कर सकता।'

पाण्डवों का इस तरह से दान-यज्ञ आदि करने पर भी पाप-कर्म कटा नहीं, तब फिर क्या उपाय है कि जिससे पाप कटे? विभीषण जब भगवान श्री राम के पास गया, तो वानरी सेना ने पहले तो भगवान श्रीराम के पास जाने नहीं दिया; किंतु भगवान श्रीराम की आज्ञा से फिर उनके सामने किया गया। भगवान श्रीराम ने कहा—

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

सुनकर आश्चर्य होगा कि भगवान श्रीराम ने जो कहा, उसके अनुकूल भगवान श्रीकृष्ण के सम्मुख पाण्डवों के होने पर भी पाप का नाश कैसे नहीं हुआ? भगवान ने करोड़ जन्म का नाम कहा, किंतु ऐसा नहीं कहा कि सब जन्मों का। यदि करोड़ जन्म से विशेष का पाप हो, तो सब पाप नाश कैसे होगा? ध्यानविन्दूपनिषद् में है—

यदि शैल समं पापं विस्तीर्ण बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

कई योजन तक फैला हुआ पहाड़ के समान

यदि पाप हो तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है, इसके समान पापों को नष्ट करनेवाला कभी कुछ नहीं हुआ है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अर्थात् सब धर्मों को छोड़कर तू केवल एक मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

हो सकता है कि सब धर्मों को छोड़ने में कसर हो। लोग बहस करने लगते हैं कि सब धर्मों को कैसे छोड़ा जाय? पिता-माता की सेवा धर्म है, क्या यह धर्म छोड़ दिया जाय? कर्म होने पर धर्म होता है। कर्म बड़ा है, धर्म छोटा है। इन्द्रियों से आप कर्म करते हैं। इन्द्रियों से कर्म छूट जाय, तब धर्म से बचेंगे। जिसके द्वारा इन्द्रियाँ काम करती हैं, वह इन्द्रियों में रहने नहीं पावे, तब इन्द्रियों से कर्म नहीं होगा। कर्म नहीं होगा तो धर्म नहीं होगा।

ऐसा भजन कीजिए कि इन्द्रियों से कर्म न हो। मन-बुद्धि से भी ऊपर वृत्ति उठ जाय, तब वह परमात्मा की शरण हो जाएगा। पापवृत्तिवाला विषयी होता है। विषयी का मन बाहर में लगा रहता है। उसका मन अंदर—भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। जो पाप नहीं करता, उसका मन अंदर में प्रवेश करता है और ध्यान के द्वारा कर्म-मण्डल को भी पार कर जाता है। तब वह काग से हंस हो जाता है, जिसके लिए तुलसी साहब ने कहा—

आली अधर धार निहार निजकै निकरि सिखर चढ़ावहीं।
जहाँ गगन गंगा सुरति जमुना, जतन धार बहावहीं।।
जहाँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि धुर गुरू गति गावहीं।
जहाँ संत आस विलास बेनी विमल अजब अन्हावहीं।।
कृत कुमति काग सुभाग कलिमल कर्म धोय बहावहीं।
हिय हेरि हरष निहारि घर कौ पार हंस कहावहीं।।
मिलि तूल मूल अतूल स्वामी धाम अविचल बसि रही।
आलि आदि अंत विचारि पद कौ तुलसी तब पिउ की भई।।

ध्यानविन्दूपनिषद् में है कि ध्यानयोग द्वारा पापों से छूट जाएगा। ध्यानाभ्यासी पाप-पुण्य, दोनों से छूटकर परमात्मा को पाता है। इसलिए सब कोई ध्यानी बनो। पलंग पर बैठो या अपने योग्यतानुकूल बिछावन पर आराम से बैठो, शरीर का, मन का आलस्य छोड़ो, ध्यान करो।

प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण—कर्म तीन तरह के होते हैं। जो कर्म हम वर्तमान में करते हैं,वे क्रियमाण कहलाते हैं। ये क्रियमाण कर्म ही एकत्रित होने पर सञ्चित कहलाते हैं। उसी सञ्चित में से जब जिसका भोग करने लगते हैं, तब वह प्रारब्ध कहलाता है।

जो ध्यानी होगा, वह पाप-कर्म नहीं करेगा; पुण्य-कर्म में आसक्ति नहीं रखेगा कि हमको यह फल मिले। ध्यान के द्वारा कर्ममण्डल से ऊपर जाना होता है। ध्यान करनेवाला पुरुष बुरे कर्मों से बचा रहेगा। वह क्रियमाण में पाप-कर्म नहीं करेगा; संचित कर्म भी उसका छूट जाएगा; क्योंकि वह कर्ममण्डल को पार कर जाएगा। कर्म का फल कर्ममण्डल तक ही लागू हो सकता है, फिर उसका प्रारब्ध कहाँ रहेगा! इसलिए मैं कहता हूँ कि ध्यानाभ्यास कीजिए। पाप नहीं कीजिए। पुण्य कीजिए तो उसमें आसक्ति नहीं रखिए; क्योंकि पुण्य मीठा जहर है। ईश्वर के भक्त बनिए। ईश्वर से प्रेम कीजिए।

ध्यानी पुरुष पहले जप करता है, फिर परमात्मा के स्थूल रूप का ध्यान करता है, सूक्ष्म रूप का ध्यान करता है और अंत में परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इसलिए आपलोग अच्छी तरह ध्यान कीजिए।

H

यह प्रवचन श्रीरायबहादुर श्रीदुर्गादासजी तुलसी (जमालपुर, मुंगेर) के आवास पर दिनांक १८.४.१९५४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

७७. अबके माधव मोहि उधारि

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जो पाठ आपने अभी सुना है, वह उपनिषद् का पाठ हुआ था—मण्डलब्राह्मणोपनिषद् का। यह संसार महासमुद्र है। इसमें निद्रा, भय बड़े-बड़े जीव-जंतु हैं। जो निद्रा के अंदर चले जाते हैं, तब मानो वे बड़े जीव के पेट में चले जाते हैं। उन्हें अपना कोई होश नहीं रहता। डर भी वह चीज है कि जहाँ आपको डर हो गया, वहाँ करने योग्य काम भी आप नहीं कर सकेंगे। दूसरे का अपकार करना, बुरा चिंतन करना—हिंसा है। वह उस समुद्र की लहर है। तृष्णा उसके भँवर हैं। फिर जल में पंक भी है। शरीर के जितने संबंधी हैं, उनकी ओर आसक्ति लगी रहती है; यही पंक है। सूरदासजी ने कहा है—

अबके माधव मोहि उधारि।
मगन हौं भव अंबुनिधि में, कृपासिन्धु मुरारि।।
नीर अति गंभीर माया, लोभ लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल में, गहे ग्राह अनंग।।
मीन इन्द्रिय अतिहि काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सेंवार।।
काम क्रोध समेत तृष्णा, पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय सुत, नाक नौका ओर।।
थक्यो बीच बेहाल विहवल, सुनहु करुणा मूल।
स्याम भुज गहि काढ़ि डारहु, 'सूर' ब्रज के कूल।।

इस संसार-सागर को पार करो। अवश्य ही सांसारिक संबंध की ममता में लोग लगे रहते हैं। भजन के समय वे ही सब याद आते हैं, भजन बनता नहीं। इसलिए निद्रा, भय, तृष्णा आदि से बचो। मन में होता है कि बचना चाहिए; किंतु बच नहीं सकते हैं। विचार के द्वारा बच नहीं सकते। इसके अतिरिक्त और कुछ होना चाहिए। पहले श्रवण ज्ञान, फिर मनन ज्ञान, निदिध्यासन ज्ञान और अनुभव ज्ञान।

केवल मनन या विचार ज्ञान से ही हम संसार की लसंग (चिपकन) से, भँवर से, जीव-जन्तु से, पंक से बचें, यह संभव नहीं है। विचार से बुद्धि में कुछ स्वच्छता आती है, किंतु फिर उसमें मैल जमती है। इसके लिए सूक्ष्ममार्ग का अवलंब करने के लिए कहा। बाबा गुरु नानकदेवजी ने कहा—

भगता की चाल निराली।
चाल निराली भगता केरी विखम मारगि चलणा।।
लबु लोभ अहंकार तजि त्रिसना बहुतु नाहीं बोलणा।।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।।
गुर परसादी जिनि आपु तजिया हरि वासना समाणी।।
कहै नानक चाल भगताह केरी जुगहु जुग निराली।।

कबीर साहब से पूछते हैं तो वे कहते हैं—

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै,
गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं।
गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासे नहीं,
समुझि विचारि ले मने माहिं।।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइए,
जनम अनेक की अटक खोलै।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै,
जीव और सीव तब एक तोलै।।

यही सूक्ष्म मार्ग है। कितने जन्म हुए, कितने शरीर में अटके। यह शरीर भी चला जाएगा। हमलोगों के बहुत शरीर हुए। जबसे शरीर हुए, तबसे शरीर में अटके हुए हैं। आप ख्याल कीजिए

कि कोई कैदी हो, तो उसका चित्त सदा लगा रहता है कि इस कैदखाने से निकल जाता। किंतु रास्ता मिलता नहीं। यदि पहरेदार या कोई उसे निकलने का रास्ता बता दे, तो वह उससे निकल जाय। लोग इस संसार से निकलने का रास्ता नहीं जानते। यदि कोई इस राह को बता दे तो वह कितना बड़ा उपकारी होगा। सूक्ष्ममार्ग पर चलने से आप संसार से निकल जाइएगा। अपने शरीर से भी निकल जाइएगा। यह संसार और आपका शरीर—दोनों एक ही तत्त्व से बने हैं। जितने तल आपके शरीर के हैं, संसार के भी उतने ही तल हैं। आपके शरीर और संसार में बहुत संबंध है।

यदि आप शरीर से पार हो जाएँ, तो संसार से भी पार हो जाएँगे। यह स्थूल मण्डल है, इससे महान सूक्ष्म मण्डल, इससे भी महान कारण मंडल और इससे भी महान महाकारण मंडल है। ये चार दर्जे ब्रह्माण्ड के हैं। आपके शरीर में चार दर्जे हैं। अपने शरीर में जो स्थूल तल है और संसार में जो स्थूल तल हैं—दोनों में इतना संबंध है कि आप जाग्रत में शरीर के स्थूल तल पर रहते हैं, तो संसार के भी स्थूल तल पर रहते हैं। जब स्वप्न में आपको स्थूल शरीर का ज्ञान नहीं रहता, तो स्थूल संसार का भी ज्ञान नहीं रहता। इस नमूने से समझना चाहिए कि शरीर के जिस तल पर आप रहते हैं, संसार के भी उसी तल पर आप रहते हैं। शरीर के जिस तल को आप छोड़ते हैं, संसार के भी उस तल को आप छोड़ते हैं। इस प्रकार यदि आप शरीर के सब तलों को पार करेंगे, तो संसार के भी सब तलों को पार कर जाएँगे। जिसने पिण्ड को जीता, उसने ब्रह्माण्ड को जीता। इसको जीतने के लिए सूक्ष्ममार्ग का अवलंब करने कहा। संसार में रास्ता देखते हैं, तो पैर से चलते हैं। यहाँ देखने के लिए तीन दृष्टियों का वर्णन हुआ—एक अमा, दूसरी प्रतिपदा और तीसरी पूर्णिमा। कबीर साहब ने आँख बन्द करके दृष्टिसाधन करने कहा—

बंद कर दृष्टि को फेरि अंदर करै, घट का पाट गुरुदेव खोलै।
कहै कबीर तू देख संसार में, गुरुदेव समान कोइ नाहिं तोलै।।

गुरु नानकदेवजी भी तीन बन्द लगाकर ध्यान करने कहते हैं—

तीनों बंद लगाय के, सुन अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाधि में, नहिं साँझ नहिं भोर।।

'आँख कान मुख बंद कराओ, अनहद झींगा शब्द सुनाओ।
दोनों तिल एक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है।।'

— कबीर साहब

आपसे जो हो सके, जो सरल मालूम हो, वह कीजिए। भगवान बुद्ध की प्रतिमा में देखिए, वे आँखें बन्द करके बैठे हुए ध्यान में मिलेंगे। व्यासदेवजी भी आँख बन्द करके बैठे हुए हैं और ध्यान कर रहे हैं। इस तरह यदि आप आसानी से सूक्ष्म मार्ग को पकड़ना चाहें तो अमादृष्टि से कीजिए। उस सूक्ष्ममार्ग पर पैर नहीं चल सकता।

बिन पावन की राह है, बिन बस्ती का देश।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहै कबीर संदेश।।

देखत-देखते स्वयं उस पर चल पड़ेंगे। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है, उसके सिमटाव से उसकी उतनी अधिक ऊर्ध्वगति होती है। सुरत से कोई विशेष सूक्ष्म नहीं हो सकता। इसका सिमटाव होने से इसकी विशेष ऊर्ध्वगति होगी। इसके लिए किसी जानकार से जानकर भजन कीजिए। आँखें बंद करके ध्यान करने पर कहते हैं कि नींद आ जाती है, तो जो निशाना बताया गया है, उसको दृढ़ता से पकड़ो, नींद नहीं आएगी। यदि निशाना छूट जाय, मन बहक जाए, तो अवश्य ही नींद आ जाती है।

सतोगुण में वृत्ति रखने को कहा। इड़ा-पिंगला में तमोगुण-रजोगुण की प्रधानता रहती है। सुषुम्ना

में सतोगुण की प्रधानता रहती है। बाबा नानक देवजी ने कहा—

सुखमन कै घरि राग सुनि सुन मंडल लिव लाइ।
अकथ कथा वीचारीअै मनसा मनहिं समाइ।।

एक बंगाली साधु ने कहा—

बायें इड़ा नाड़ी दक्खिणे पिंगला, रजस्तमोगुणे करिते छे खेला।
मध्य सत्वगुणे सुषुम्ना विमला, धरऽ धरऽ तारे सादरे।।

सुषुम्ना में अपने को स्थिर कीजिए। इस सूक्ष्म मार्ग पर पहले मन-सहित चेतन आत्मा चलती है। चलते-चलते मन आगे नहीं जा सकता। केवल चेतन आत्मा चलती है। संत तुलसी साहब ने कहा—

सहस कमलदल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्राण पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो।।

सहस्रदल कमल के ऊपर त्रिकुटी का स्थान है। यह बाहर में नहीं अंतर में है। वहाँ जाकर मन-बुद्धि हेरा जाती हैं। इसके आगे प्राण पुरुष या चेतन आत्मा चलती है। सूक्ष्ममार्ग के द्वारा सबको संसार से पार होना चाहिए। संतों ने संसार से पार हो जाने के लिए कहा। यह संसार कैदखाना है। एक-एक पिण्ड एक-एक कोठरी है। जो कोठरी से छूटेगा, वह घेरे से भी छूटेगा। इसका अभ्यास अपने घर में करो या कहीं दूर देश में करो; किंतु अपने को संयम में रखो। पंच पापों से बचते रहो। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करना चाहिए। गरीबी-अमीरी का ख्याल छोड़ दो। सच्ची कमाई से अपना गुजर-बसर करो। दरिया साहब ने भी सूक्ष्ममार्ग के लिए कहा—

जानि ले जानि ले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।
ऐन के भवन में बैन बोला करै चैन चंगा हुआ जीति दाना।
मनी माथे बरै छत्र फीरा करै जागता जिन्द है देखु ध्याना।।
पीर पंजा दिया रसद दाया किया मसत माता रहै आपु ज्ञाना।
हूआ बेकैद यह और सभ कैद में झूमता दिव्य निशान बाना।
गगन घहरान वए जिन्द अमान है जिन्हि यह जगत सब रचा खाना।
कहै दरिया सर्वज्ञ सब माहिं है कफा सब काटि के कुफुर हाना।।

अमीरी का लालच मत करो और गरीब होकर दुःखी न होओ। इन्द्रियों के भोग में पड़कर गरीब, अमीर—दोनों कैद में पड़े रहते हैं। जो अपने को इन्द्रियों के भोग से बचाकर रखते हैं, तो बहुत भले हैं। गरीब भी अपने को इन्द्रियों के भोग से बचाकर रखते हैं, तो वे भी अच्छे हैं। इसमें दोनों बराबर हैं। इसलिए अपने को विषयों से बचाकर भजन कीजिए।

H

यह प्रवचन श्रीरायबहादुर श्रीदुर्गादासजी तुलसी (जमालपुर, मुंगेर) के आवास पर दिनांक १९.४.१९५४ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

७८. विन्दु ज्योतिर्मय शालिग्राम है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपके सामने उपनिषद् का पाठ और कबीर साहब, गुरु नानक साहब, गोस्वामी तुलसीदासजी, स्वामी विवेकानंद और भगवान बुद्ध के वचन का पाठ हुआ। इसलिए कि 'संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकारि।'

संतों के वचन में जो लेने योग्य हो, आपलोग ले लें। हमलोग भी ऐसा ही करते हैं। हमलोग किसी संत को कम, किसी को विशेष नहीं मानते। उनके वचनों को हमलोगों को जानना है, समझना है और उसके अनुकूल चलना है। मैंने जो कुछ संतों की फुलवाड़ी से सुंदर-सुंदर पुष्पों को पाया

है, उसमें जो सुगंधियाँ मुझे मिली हैं, वे भी मेरे पास हैं। वे भी आपलोगों को दूँगा।

बचपन से ही अपने-अपने घर में किसी-न-किसी शब्द में ईश्वर के लिए सुना। बचपन में ही मुँह में शब्द आते ही हमारे बड़ों ने राम-राम, शिव-शिव आदि नाम जपाया है। बचपन से ही यह छाप पड़ गई है; किंतु इसकी स्थिति कैसी है, नहीं जान पाया; किंतु मान लिया। ठीक वैसे ही, जैसे स्कूल में अध्यापक कहते हैं कि कहो 'अ' कहो 'क' तो ठीक इसी तरह 'अ' और 'क' कहा। बिना तर्क किए अध्यापक के अनुकूल मान लिया। कुछ बड़ा हुआ और उनके उच्चारणों को समझने लगा, तो कहा—अध्यापकजी ने ठीक ही कहा था। उसी तरह जब हम संतों की वाणी आदि को पढ़ते हैं, तो उसमें ईश्वर की स्थिति पाते हैं और वह विश्वास पक्का हो जाता है। कितने भाई कहते हैं कि ईश्वर तर्क में नहीं आ सकता। कितने भाई कहते हैं कि जो तर्क में नहीं आता, वह है ही नहीं। ये दो प्रकार के ख्याल लोगों में हैं। 'ईश्वर है'—पक्ष में विशेष और 'ईश्वर नहीं है'— इसके पक्ष में बहुत कम लोग हैं; किंतु वे ऐसे हैं जो विशेष विद्वान हैं। ऐसे लोग भी, जिनको तर्क करने में ईश्वर में विश्वास नहीं है—मेरे बहुत साथी हैं। ईश्वर में विश्वास रखनेवाले विशेष और नहीं विश्वास रखनेवाले कम हैं। आजकल चुनाव का दिन है। इसलिए लोग इसी को विशेष मानते हैं। इसलिए यही पक्ष मजबूत है कि ईश्वर है। किंतु उसका अनादि, अनंत, असीम, अपरिमित; इस तरह कुछ होना संभव है या नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने कहा है—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

कबीर साहब कहते हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूप अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।

असीम हुए बिना 'बड़ा तें बड़ा' नहीं हो सकता। 'छोटे-से-छोटा' और 'बड़े-से-बड़ा' 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' का उलटा है। बाबा नानक ने कहा—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।
जंत उपाइ कालु सिरिजंता बसगति जुगति सवाई।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई।।
सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।

इस प्रकार संत-वचन और उपनिषद् के वाक्यों में परमात्मा को अनंत ही कहा गया है। विवेकानंद स्वामी ने भी अनंत ही कहा है। इस प्रकार सभी संत कहते चले आए हैं और इसी तरह मानते चले जाएँ।

इस प्रकार का असीम, अनादि एक तत्त्व होगा या नहीं? यदि नहीं, तो ससीम है—कहेंगे। तो प्रश्न

होगा कि सब ससीमों के पार में क्या है? बहुत ससीम मिलकर एक असीम नहीं हो सकते। सब ससीमों को मिलाने से वह मण्डल बहुत बड़ा हो जाएगा; किंतु वह अनंत नहीं होगा। प्रश्न होगा कि सब ससीमों के पार में क्या है, तब असीम कहे बिना उत्तर हल नहीं हो सकता। सब ससीमों के पार में एक असीम होना पूर्ण संभव है। असीम दो हो नहीं सकते। दो असीम होने से दोनों ससीम हो जाएँगे। इसलिए यह कहना होगा कि असीम एक ही होगा। स्वामी विवेकानंदजी ने भी एक ही असीम माना है।

एक विद्वान भागलपुर से पूर्णियाँ सफर करते समय मेरे पास आए। उन्होंने मुझसे पूछा—ईश्वर के विषय में आप क्या मानते हैं? मैंने कहा—मैं मानता हूँ, जो असीम है। उन्होंने पूछा—जो असीम है, उसे ईश्वर क्यों मानें? मैंने उत्तर दिया—असीम होने से सब कुछ उसके अंदर है और जो जिसके अंदर में है, गोया काबू में है, इसलिए उसका वह ईश्वर है। इस प्रकार विचार में भी ईश्वर की स्थिति पाते हैं और संतों ने भी इसी प्रकार का वर्णन किया है। हमारे पूर्वजों ने जो हमें 'राम-राम' सिखलाया था, वह ठीक है। जैसे अध्यापक ने हमें 'अ' 'क' आदि बतलाए थे; ठीक है— अब समझने लगे हैं; किंतु जिस समय अर्थात् बचपन में जो अध्यापक ने कहा, वहाँ तर्क नहीं किया। उसी प्रकार माताजी, पिताजी ने जो कहा, वह ठीक है। आज संतों की वाणी से वह पुष्ट हो जाता है।

पहले श्रवणज्ञान, फिर मननज्ञान, निदिध्यासन ज्ञान और अनुभवज्ञान। 'अनुभव' का अर्थ प्रत्यक्ष होता है। भजन करते हुए अंत में पूर्ण समाधि हो जाती है, वह अनुभव ज्ञान है। अनुभव ज्ञान प्राप्त करने के लिए जो साधन करते हैं, वह है निदिध्यासन ज्ञान। ईश्वर के संबंध में जो कुछ हम सुनते हैं, वह श्रवणज्ञान है। और फिर उस पर विचारते हैं, वह मननज्ञान है। ये चार प्रकार के ज्ञान हैं। इन चारों को भी दो भागों में बाँट सकते हैं—एक परोक्ष और दूसरा अपरोक्ष। इस तरह ज्ञान को समझ लेने पर संतों की वाणी को वचन-प्रमाण से मानते हैं; विचार-प्रमाण से मानते हैं, किंतु जिनको अनुभव हो गया है, वे संत हैं और जो अभी साधन कर रहे हैं, प्राप्त नहीं हुआ है, वे साधु हैं। साधक को साधन के अंत में अनुभव ज्ञान होगा। अभी जो कुछ पाठ हुआ, उसमें आपलोगों ने सुना कि वह ईश्वर इन्द्रियों, मन और बुद्धि से परे है, महतत्त्व से परे है। 'महतत्त्व' का प्रयोग कहीं बुद्धि के लिए हुआ है और कहीं जड़ात्मिका प्रकृति के लिए हुआ है। यहाँ 'महतत्त्व' का प्रयोग जड़ात्मिका प्रकृति के लिए किया गया है। अव्यक्त=जो इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है, प्रकृति का मूल रूप। प्रकृति एक अपने रूप में रहती है, दूसरी विकृति-रूप में। विकृति-रूप इन्द्रियगोचर होता है, किंतु मूल-रूप अव्यक्त है। श्रीमद्भगवद्गीता में अपरा प्रकृति को अष्टधा प्रकृति कहा है। परा प्रकृति में विकृति नहीं आती, वह ज्यों-की-त्यों रहती है। परा प्रकृति अत्यंत सूक्ष्म है। 'सूक्ष्म' का अर्थ छोटा टुकड़ा नहीं, बल्कि आकाशवत् सूक्ष्म। ईश्वर को कितने लोग खण्ड-खण्ड करके व्यापक मानते हैं; किंतु भिन्न-भिन्न पिण्डों में होकर व्यापक होने से बीच में कुछ-न-कुछ अवकाश होगा। परंतु एक-ही-एक सघनता से फैला हुआ हो, ऐसा जो स्वरूप रखता हो, वह कितना सूक्ष्म और झीना होगा! दूसरी बात यह है कि छोटी-सी घड़ी के यंत्र बहुत छोटे-छोटे होते हैं। उसको खोलने के लिए बढ़ई का पेचकश काम नहीं करता। उसके लिए छोटे-छोटे पेचकश चाहिए। उसी प्रकार परमात्मा के समक्ष ये इन्द्रियाँ अत्यंत स्थूल हैं। इन्द्रियों के परे मन, मन के परे बुद्धि, बुद्धि के परे महतत्त्व, महतत्त्व

के परे वह आत्मा है। फिर उस आत्मा को इन्द्रियादि से कैसे ग्रहण कर सकेंगे? इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

— रामचरितमानस

अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति वासना धूप दीजै।

— विनयपत्रिका

यह सगुण रूप हुआ। एक शरीर में रहते हुए आपका जोर है कि यह शरीर मेरा है और यह रूप मेरा है, उसी प्रकार परमात्मा सबमें है। इसलिए सब शरीर उन्हीं के हैं और सब रूप उन्हीं के हैं। **अग जग मय प्रभु रहित बिरागी। प्रेम तें प्रकट होहिं जिमि आगी।।** सबमें वे रहते हैं। जैसे आप वस्त्र पहनते हैं, तो आपका जो आदर करते हैं, तो आपके वस्त्र का भी आदर करते हैं। हमारे गुरु महाराज की खड़ाऊँ अभी रहती तो हम उसको नहीं पहन सकते, प्रणाम करते। उनकी गुदड़ी अभी रखी हुई है। हमलोग पहनते नहीं हैं, प्रणाम करते हैं। तुलसी साहब की गुदड़ी रखी हुई है, लोग उसका दर्शन करते हैं, प्रणाम करते हैं। गुरु महाराजजी की मूर्ति अभी है, गुरु महाराज अभी नहीं हैं, किंतु उस मूर्ति को पूजते हैं; क्योंकि उस रूप में वे आए थे। इसलिए आज हमारे यहाँ मूर्ति-पूजन होता है।

एक भक्त ने कहा कि राजा कपड़ा नहीं होता, उसी प्रकार भगवान जो रूप धारण करते हैं, वे वह नहीं हो जाते। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

—रामचरितमानस

ऐसा कहने से रूप का अपमान नहीं हुआ। आप अपने शरीर के लिए विचारिए। कितने शरीर धारण किए। अनेक रूपों को धारण करते हुए आप उनसे न्यारे ही रहे; क्योंकि 'ईस्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।' वह सब रूपों में रहता है; किंतु किसी के रूप-जैसा नहीं होता। रूप व्यक्त है, गोचर है। रूपधारी अव्यक्त है, अगोचर है। अच्छा हो कि हम रूप को पहचानें और रूपधारी को भी पहचान लें, तब कभी भ्रम नहीं होगा। ब्रह्मा को भगवान श्रीकृष्ण के लिए भ्रम हुआ। ब्रह्मा को ही नहीं, नारद, कागभुशुण्डि, इन्द्र आदि को भी भ्रम हुआ। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ।।

तुलसीदासजी को भगवान के स्थूल सगुण साकार रूप के दर्शन हुए, किंतु वे पहचान न सके। प्रसिद्ध है कि—

चित्रकूट के घाट पर, भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसै, तिलक देत रघुबीर।।

सगुण साकार रूप में यह बात है। रूपधारी में यह बात नहीं। यदि रूपधारी एक बार पहचान में आ जाए, तो फिर वह हेराने को नहीं। संतों ने कहा—दोनों को पकड़ो। ईश्वर स्वरूपतः 'अगुन अखण्ड अलख अज' है, किंतु प्रकट होने के लिए कुछ कारण होना चाहिए। इसलिए 'भगत प्रेमबस सगुन सो होई।' सब रूपों में वह व्यापक है। इन सब रूपों में जो रूप विशेष प्रभावशाली है, धर्मवान है, वह विशेष है।

महात्मा गाँधीजी ने कहा कि मनुष्य अवतार है—''अवतार' से तात्पर्य है शरीरधारी पुरुष विशेष। जीव मात्र ईश्वर के अवतार हैं, परंतु लौकिक भाषा में सबको हम अवतार नहीं कहते। जो पुरुष

अपने युग में सबसे श्रेष्ठ धर्मवान होता है, उसी को भावी प्रजा अवताररूप से पूजती है। इसमें मुझे कोई दोष नहीं जान पड़ता, इसमें न तो ईश्वर के बड़प्पन में ही कमी आती है, न सत्य को ही आघात पहुँचता है। 'आदम खुदा नहीं, लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं'। जिसमें धर्म-जागृति अपने युग में सबसे अधिक है, वह विशेषावतार है। इस विचार-श्रेणी से कृष्णरूपी सम्पूर्णावतार आज हिन्दूधर्म में साम्राज्य उपभोग कर रहा है।''

साधारण लोग जो उच्च हो गए, वे भी पहले साधारण थे। पाठ के आरंभ में बड़ा-बड़ा अक्षर लिखकर सीखते हैं। उस अव्यक्त रूप का पहले निदिध्यासन करें, संभव नहीं। केवल मानें कि ईश्वर इन्द्रियातीत है। मानने से उतना काम चलने को नहीं। इसलिए पहले किसी सगुण रूप में आसक्ति हो सुतीक्ष्ण मुनि की तरह। सुतीक्ष्ण मुनि अगस्त्य ऋषि के शिष्य थे, बड़े सदाचारी थे। कथा है कि जब उनको जानकारी मिली कि भगवान श्रीराम जनकनन्दिनी श्रीजानकीजी की खोज में जंगल होते हुए इधर ही आ रहे हैं, तो वे चले दर्शन हेतु। भगवान श्रीराम के प्रेम में वे इतने मग्न हो जाते हैं कि वे भगवान श्रीराम का मानस ध्यान करने लग जाते हैं और बाहर की सुध-बुध खोकर मार्ग में ही बैठ जाते हैं। भगवान आते हैं। भगवान श्रीमुनिजी को जगाना चाहते हैं, किंतु ध्यान में वे इतने तल्लीन हैं कि उन्हें भगवान के आने की जानकारी ही नहीं हो पाई। बाद में भगवान श्रीराम उनके ध्येय को ही बदल देते हैं। सुतीक्ष्ण मुनिजी दोभुजी राम का मानस ध्यान कर रहे थे। भगवान बदलकर चतुर्भुजी रूप सामने कर देते हैं, तब मुनिजी हड़बड़ाकर आँखें खोलते हैं, तो देखते हैं कि भगवान राम सामने खड़े हैं। इस तरह का ध्यान बहुत उत्तम ध्यान है, किंतु इतने में ही अंत नहीं है और भी आगे जाना है। विवेकानंद स्वामी ने कहा—'अंतर की दृष्टि चाहिए। बाहर देखने की अभिलाषा निवृत्त कर देनी चाहिए।' दृष्टि पाँच प्रकार की होती हैं— जाग्रत की दृष्टि, मानस दृष्टि, स्वप्न की दृष्टि, दिव्य दृष्टि और आत्म दृष्टि। सुतीक्ष्ण मुनि मानस दृष्टि में डूबे थे, किंतु दिव्य दृष्टि उससे विशेष है। इसके लिए लोग यत्न करते हैं। मैंने कहा था कि संतवाणी के पुष्प की गंध जो मेरे पास एकत्र हुई है, उसे भी दूँगा, वही देता हूँ। आप बाहर की ओर नहीं देखिए और फैली हुई दृष्टि से नहीं देखिए, तब होगा—

उघरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।

संत पलटू साहब ने कहा—

काजर दिहे से का भया, ताकन को ढब नाहिं।।
ताकन को ढब नाहिं, ताकन की गति है न्यारी।
एकटक लेवै ताकि, सोई है पिव प्यारी।।
ताकै नैन मिरोरि, नहीं चित अंतै टारै।
बिन ताकै केहि काम, लाख कोउ नैन संवारै।।
ताके में है फेर, फेर काजर में नाहीं।
भंगि मिली जो नाहिं, नफा कया जोग के माहीं।।
पलटू सनकारत रहा, पिय को खिन खिन माहिं।
काजर दिहे से का भया, ताकन को ढब नाहिं।।

उपनिषद् में तीन प्रकार की दृष्टियों का वर्णन किया गया है—अमादृष्टि, प्रतिपदा दृष्टि और पूर्णिमा दृष्टि। दोनों आँखें बंद करके ध्यान करने को अमादृष्टि कहते हैं। आधी आँखें खुली और आधी आँखें बंद करके देखने को प्रतिपदा दृष्टि कहते हैं और पूरी आँखें खोलकर देखने को पूर्णिमा दृष्टि कहते हैं। भगवान बुद्ध को अमादृष्टि से लाभ हुआ था। आज भी उनकी ध्यानस्थ मूर्ति में आँखें बंद की हुई देखी जाती हैं। बाबा नानक कहते हैं—

सुखमन कै घरि राग सुनि सुन मंडल लिव लाइ।

अकथ कथा वीचारीऐ मनसा मनहि समाइ।।

ताकने का ढंग सीखो। उससे दिव्य दृष्टि खुलती है। दिव्य दृष्टि से दिव्य रूप के दर्शन होते हैं। भगवान ने अर्जुन को थोड़ी देर के लिए दिव्य दृष्टि दी थी, किंतु इसी में समाप्त नहीं है। इससे आत्मा का दर्शन नहीं होता। इसके लिए और कोई दृष्टि नहीं है। चेतन आत्मा स्वयं दृष्टि-स्वरूप है। मन, बुद्धि, कान, आँख—सब इन्द्रियों में वही चेतनधारा है। उसी के बल से सब इन्द्रियाँ काम करती हैं। वह स्वयं शक्तिहीन नहीं है। यदि सब इन्द्रियों से वह छूट जाय, तो उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सों आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।
—संत सुन्दरदासजी

केवल चेतन आत्मा ही आत्मा है। चार जड़ शरीरों—स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण को छोड़कर चेतन आत्मा रहे, तब परमात्मा की पहचान होगी। जैसे आँख से सबको देखते हैं, किंतु आँख को फिर आइने में आँख से ही देखते हैं। इसी तरह चेतन आत्मा परमात्मा के दर्शन करे। यह उपमान का प्रमाण है। यदि विश्वास नहीं है तो करके देखो। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन को मिलाने से जल होता है। कोई कहे कि नहीं होता है, तो मिलाकर देख लो! त्वचा का सुख त्वचा को होता है। बच्चा माता की गोद से अलग होना नहीं चाहता, इसलिए कि त्वचा का सुख मिलता है। परमात्मा से आत्मा के मिलन में महान सुख है। इसी को सुंदरदासजी ने कहा—

अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।

जबतक दिव्य दृष्टि रहती है, तबतक सूक्ष्म शरीर रहता है। परमात्मा साकार भी है और निराकार भी। परमात्मा के सूक्ष्म साकार के दर्शन इस दिव्य दृष्टि से होते हैं। निराकार को पाने के लिए निराकार का अवलंब लेना होगा। वह अवलंब नाद है। आपलोगों ने सुना कि—

विन्दु-ध्यान-विधि नाद-ध्यान-विधि,
सरल-सरल जग में परचारी।

यह विन्दु और नाद क्या है? यह विन्दु ज्योतिर्मय शालिग्राम है। विद्वान लोग जानते हैं कि विन्दु एक छोटे-से छोटा चिह्न है। पेंसिल की नोक जहाँ रखो, वहीं विन्दु उत्पन्न हुआ। किसी आकार का आरंभ विन्दु से होता है और अंत विन्दु पर होता है। निराकार से साकार जब बना है, तब पहले एक विन्दु बना है। इधर से उलटिए तो उस विन्दु को पकड़िए। इसी को गीता में भगवान ने 'अणोरणीयान्' कहा। ध्यानविन्दूपनिषद् में कहा—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।
—ध्यानविन्दूपनिषद्

परम विन्दु क्यों कहा? परम विन्दु किसी पेन्सिल से बाहर में नहीं बनाया जा सकता। परिभाषा के अनुकूल विन्दु अपने अंदर में उदित होता है—

विन्दुनाद महालिंगं विष्णुलक्ष्मीनिकेतनम्।
देहं विष्ण्वालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।
—योगशिखोपनिषद्, अध्याय ५

इसी योगशिखोपनिषद् के पहले अध्याय में है—

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्तिनिकेतनम्।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

लोग ठाकुरवाड़ी और शिवालय को पवित्र रखते हैं, उनको पूजते हैं। यह ठीक ही है; किंतु यह शरीररूप ठाकुरबाड़ी और शिवालय अपवित्र ही है। खेद है कि इस ठाकुरबाड़ी को हमने पवित्र रखने की कोशिश नहीं की और इसको भोग का

एक साधन मात्र समझा। आप स्वयं इसमें रहते हैं। आप अपने शरीर में चलिए, पहले मन के साथ चलना होगा। लोग मुंगेर गए हैं। मुंगेर के विषय में सोचते हैं, तो कहते हैं कि मन मुंगेर चला गया। किंतु यह बात ठीक नहीं है। मन का जाना ऐसे नहीं होता। यदि मन मुंगेर गया तो कहिए तो इस समय मुंगेर में क्या हो रहा है? यह तो मन ने मुंगेर को पहले जैसा देखा था, उसी को अपने में बना-बनाकर देखता है। मन को चलना तब होता है, जब मन का सिमटाव हो। जहाँ यह मन ठहरा हुआ है, मन का वहाँ से सिमटाव हो, तो इसकी ऊर्ध्वगति होगी। सिमटाव में ऊर्ध्वगति स्वाभाविक है। कोई भी तरल, कठिन, वाष्पीय पदार्थ हो, सिमटाव में ऊर्ध्वगति होगी। इसी के लिए कहा—

बैठे ने रास्ता काटा, चलते ने बाट न पाई ।
है कुछ रहनि गहनि की बाता । बैठा रहे चला पुनि जाता।।

मन का सिमटाव करना, बैठना है। ऐसा करे तो चलेगा। मन आगे बढ़े तो दिव्य दृष्टि हो जाएगी। दिव्य दृष्टि से दिव्य माया देखने में आवेगी। परमात्मा निराकार भी है। उसको कैसे पकड़े, तो उसके लिए नाद ग्रहण करना होता है। यह रूपातीत उपासना है।

नास्ति नादात्परो मंत्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसंधे परा पूजा न हि तृप्तेः परं सुखम्।।

—योगशिखोपनिषद्

नाद-उपासक निराकार-उपासक होता है। शब्द में अपने उद्‌गम स्थान पर खींचने का गुण है। आदि शब्द परमात्मा से हुआ है। संतों ने इसी को ओ३म्, स्फोट, रामनाम, सतनाम आदि कहा है। कितने कहते हैं कि शब्द आकाश का गुण है, किंतु उस समय आकाश कहाँ? आकाश तो बहुत पीछे हुआ। वह शब्द सृष्टि के आदि में परमात्मा की मौज से हुआ। भागवत में तीन प्रकार के शब्दों का वर्णन है—प्राणमय, मनोमय और इन्द्रिमय।

वह चेतन शब्द परमाात्मा से उत्पन्न हुआ है और परमात्मा से लगा हुआ है। जो उस शब्द को पकड़ता है, वह परमात्मा को प्राप्त करता है। इसके लिए बहुत विशुद्ध होना पड़ेगा। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार—इन पंच पापों को नहीं करो। एक सर्वेश्वर पर ही अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अंतर में ही उनकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना, सद्‌गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्यानाभ्यास; इन पाँचों को मोक्ष का कारण समझना चाहिए। इनसे ही मन की विशुद्धि होती है। जिनका मन विषयों में आसक्त है, उनका मन समेट में नहीं आता। जिनका मन विषयों में आसक्त नहीं है, उसका मन समेट में आता है। श्रीराम ने तो कहा—'**एहि तन कर फल विषय न भाई।**'

H

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत उच्च विद्यालय, सूर्यगढ़ा में दिनांक २२.४.१९५४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

७९. ज्ञान-योग-युक्त ईश्वर-भक्ति

प्यारे लोगो!

यदि किसी दर्शनीय वस्तु की पहचान करनी हो, तो उसको आप किससे पहचान करेंगे? बहुत ही ठीक है कि उसकी पहचान आप अपनी आँखों से करेंगे। यदि गंध विषय हो, तो नाक से और शब्द विषय हो तो कान से पहचान करेंगे। इसी तरह यदि आप ईश्वर की पहचान करना चाहें, तो किससे करेंगे? इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से नहीं;

स्वयं अपने से कर सकेंगे। आप अपनी आँखों से जो देखते हैं, वह अपने से नहीं देखते हैं, अपनी आँखों से देखते हैं। जैसे कोई चश्मे से देखते हैं, तो आँखों से नहीं, बल्कि आँखों के सहारे चश्मे से देखते हैं। इन्द्रियों को छोड़कर केवल अपने से क्या करना होगा, इसको सबलोग नहीं जानते। जो आत्मा के विषय में ग्रंथों में पढ़े हैं अथवा सत्संग किए हैं, वे इस बात को समझते होंगे। आप अपने से समझ सकते हैं कि किसी मृतक को देखकर ज्ञान करेंगे कि शरीर में जो रहनेवाला था, वह चला गया। शरीर मर गया। इस ज्ञान से आपको जानना चाहिए कि जितनी इन्द्रियाँ हैं, सबसे आप भिन्न हैं। आपके कारण ही इन्द्रियाँ सचेष्ट हैं। पढ़े-लिखे लोग जानते हैं कि स्वयं चेतन आत्मा अपने विषय को ग्रहण करती है। उसका निज विषय अपने स्वरूप की पहचान और परमात्मा की भी पहचान है। जैसे आँखों से सब रूपों को देखते हैं और अपनी आँखों को भी आँख से ही देखते हैं।

बचपन से सब कोई राम-राम, शिव-शिव आदि कोई-न-कोई ईश्वरवाचक शब्द को जानते हैं, ईश्वर में विश्वास करते हैं। किंतु ईश्वर तत्त्वरूप में क्या है, इसको बहुत कम लोग जानते हैं। मैं अपने तईं क्या हूँ? यदि अपने से अपने को पहचानो, तो तब जो हो, वही तुम हो और उसी से परमात्मा का ग्रहण होता है। वह कहाँ है? शरीर के बाहर या भीतर? अपने भी अंदर और सर्वव्यापी होने के कारण परमात्मा भी अपने अंदर है। उसकी खोज अपने अंदर करो। परमात्मा से निकट और कुछ भी नहीं है। कबीर साहब कहते हैं—

परमातम गुरु निकट विराजैं जाग जाग मन मेरे ।

यह संसार मोह का शहर है। विविधता और अनेकत्व मोह के कारण देखते हैं। इस मोह निशा से जगने के लिए ऐसा भजन करें, जो योग-युक्त हो; क्योंकि गोस्वामीजी ने लिखा है—

यहि जग जामिनी जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

बिना योग-युक्ति के अपने अंदर खोज नहीं हो सकती, अपनी पहचान नहीं और न परमात्मा की पहचान हो सकती है। मनोवृत्ति या चेतनवृत्ति जो इन्द्रियों के घाटों में लगी है, इसका सिमटाव होना चाहिए। यदि केन्द्र में स्थापित हो, ऐसा भजन हो तो यह सुरत अंतर्मुखी हो जाती है। इस अंतर्मुखी वृत्ति से अंदर में प्रवेश होना होता है। जैसे-जैसे अंदर में प्रवेश होता है, सुरत इन्द्रियमण्डल से आग्रे बढ़ती है। इसी प्रकार बढ़ते-बढ़ते चेतन आत्मा कैवल्य दशा को प्राप्त करती है। तब अपने की और परमात्मा की पहचान होती है।

जो लोग कहते हैं कि परमात्मा नहीं है, वे भूल में हैं। वह वैसी ही बात है, जैसे कोई जन्मान्ध कहे कि रूप विषय नहीं है। किंतु आँखवाला रूप देखता है, वह कहता है, उसको आँख नहीं है। इसलिए वह कहता है कि रूप नहीं है। जिसको चेतन आत्मा का ज्ञान नहीं है, वह कहता है—शरीर मर गया, तो चेतन आत्मा भी नहीं रही। यह उनकी भूल है। हमारे ऋषियों, मुनियों, संतों ने बताया—ईश्वर अवश्य है और तुम चेतन आत्मा भी अवश्य हो। यदि विश्वास नहीं होता है, तो अंदर प्रवेश करके देखो। योग की युक्ति जानो। ज्ञान-योग-युक्त ईश्वर की भक्ति करो। भक्ति में त्रिपुटी होती है।

भक्ति-भक्त-भगवन्त, सेवक-सेव्य-सेवा; ये तीनों अवश्य होंगे। मिलाप होने से सेवा होती है। मिलन को ही योग कहते हैं। योग से जो लोग डरते हैं, उनको डरना नहीं चाहिए। चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहते हैं। लोग शारीरिक कठोर कर्म—जैसे नेती, धौती, आसन आदि को योग समझते हैं। अपने शरीर को किसी सरल आसन से बैठाने का हिस्सक लगाओ। इस काम को हल

चलानेवाला, लिखा-पढ़ी करनेवाला आदि सभी कोई कर सकते हैं। जिस बच्चे को कुछ समझने-बूझने का ज्ञान है, उस बच्चे को बता दो, तो वह भी एक आसन से बैठ सकता है।

ईश्वर की स्तुति करो और उसका जप करो। सत्संग में जाओ। स्तुति करने के लिए सीखो। पहले जप करो और स्थूल मूर्ति का ध्यान करो। इसमें मजबूती आ जाय तो उसके बाद गुरु से आगे की क्रिया पूछ लो। सूक्ष्मरूप का ध्यान करना सीखो। रूपातीत ध्यान करना सीखो। इन्द्रियों से ऊपर उठकर कैवल्य दशा प्राप्त कर लोगे, तब अपने का और परमात्मा का साक्षात्कार होगा।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

इसको प्रत्यक्ष पावेगा। सुगम तरीके से जप ध्यान करो। लोग कहते हैं कि बिना प्राणायाम के ध्यान नहीं होता, किंतु प्राणायाम किए बिना भी ध्यान होता है और प्राणायाम करके भी ध्यान होता है। उपनिषद में वर्णन है कि बिना प्राणायाम के भी ध्यान होता है। जो प्राणायाम के बाद ध्यान करते हैं, तो यह भी ठीक है। किंतु प्राणायाम कठिन है। प्राणायाम करनेवाले को कष्ट भी होता है। किसी बात को सोचते-विचारते हो तो उस समय श्वास-गति धीमी हो जाती है। जो मन को एकाग्र करने का अभ्यास ध्यान द्वारा करेगा, तो उसकी भी श्वास-गति धीमी पड़ जाएगी। जप-ध्यान से अंतर्मुख हो जाओगे। जप-ध्यान करने के लिए अंदाजी नहीं, किसी जानकार से जानकर करो। ईश्वर का ध्यान कोई कठिन काम नहीं। थोड़ा-थोड़ा करते-करते अभ्यास हो जाने से उसमें अभ्यस्त हो जाता है। फिर सुलभ और सुखदायी हो जाता है, किंतु किसी काम में अभ्यस्त उसका अभ्यास करते-करते ही कोई होता है। मोटे-से-मोटा काम करने के लिए अभ्यास की जरूरत होती है। उसी तरह ध्यान का भी अभ्यास धीरे-धीरे, करते-करते कोई अभ्यस्त होता है।

जैसे दूध से घी निकाल लेने पर ही घी का निज काम होता है, उसी तरह शरीर से चेतन आत्मा के अलग होने पर ही चेतन आत्मा का निज काम होगा। दूध में घी है, किंतु दूध से पूड़ियाँ, मिठाइयाँ नहीं बनतीं। उसी प्रकार शरीर में चेतन आत्मा है, किंतु ईश्वर की पहचान नहीं होती। इन्द्रियों और शरीरों से चेतन आत्मा को अलग करने पर ही परमात्मा की पहचान होती है। यही बात सभी संतों ने कही है। 'एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।' गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी अपने अंदर खोजने के लिए कहा। गुरु नानकदेवजी ने कहा—

काहे रे वन खोजन जाइ।
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई।।

बाहर की खोज इन्द्रियों के द्वारा होगी। अंदर में चलने से इन्द्रियों से छूटोगे। इसलिए अंदर में खोज करो।

बैरागिन भूली आप में जल में खोजै राम।।
जल में खोजै राम जाय के तीरथ छानै।
भरमै चारिउ खूँट नहीं सुधि अपनी आनै।।
फूल माहिं ज्यों बास काठ में अगिन छिपानी।
खोदे बिनु नहिं मिलै अहै धरती में पानी।।
दूध मँहै घृत रहै छिपी मिंहदी में लाली।
ऐसे पूरन ब्रह्म कहूँ तिल भरि नहिं खाली।।
पलटू सत्संग बीच में करि ले अपना काम।
बैरागिन भूली आप में जल में खोजै राम।।

पलटू साहब ने कहा—जैसे फूल में सुगंध है, काठ में अग्नि है, धरती में पानी है, दूध में घृत है और मेंहदी में लाली है; उसी तरह परमात्मा सबमें है। ईश्वर की खोज अपने अंदर करने के लिए सभी संतों ने कहा। किसी अच्छे गुरु से इसकी क्रिया सीखिए और कीजिए। मैं सरल-सरल क्रिया बतलाता हूँ। नेती, धौती, वस्ती, नौली

आदि क्रियाएँ करने के लिए नहीं बतलाता हूँ। मध्य में रहो यानी न विशेष सोओ और न विशेष जागो। न विशेष खाओ और न विशेष भूखे रहो। अपने घर में रहो। सच्ची कमाई करके अपना गुजर करो। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से बचते रहो। ईश्वर का भजन करोगे, तो मनुष्य का जीवन सफल होगा।

आजकल हमलोग स्वतंत्र हैं। अपने प्रभु आप हो, पंचायत का राज्य है। जनता का राज्य है। राज्य सुखदायी होना चाहिए, किंतु सुख कहाँ है? इसका कारण है कि हमलोग पाप बहुत करते हैं। झूठ बहुत बोलते हैं। यदि झूठ बोलना छोड़ दें, तो सुख-ही-सुख होगा। झूठ गया, तो घूस गया। और झूठ-फूस चला गया तो मुकदमेबाजी नहीं होगी। पंच पापों को करते रहने से तुम संसार में भले आदमी बनकर नहीं रह सकोगे। परमार्थ तो और कहाँ से होगा? जनता अच्छी हो जाय, तो सब ठीक हो जाय।

पुण्य का फल सुख होता है, लेकिन इसमें पहले थोड़ा कष्ट होता है। इसको सहो। महात्मा गाँधीजी को अफ्रीका में इतना मारा कि उनका दाँत तोड़ दिया। उनसे मैला फेंकवाया। उन्होंने इन कष्टों को सहन किया। पीछे उन्हीं महात्मा गाँधी जी की इतनी इज्जत हुई कि कहा नहीं जाय। अपने देश की तो बात ही क्या, दूसरे देश के लोगों ने भी इनकी बहुत इज्जत की। धनोपार्जन पाप करके भी होता है, किंतु परमार्थ पाप करने से नहीं हो सकता। इसलिए पाप मत करो। सत्संग ध्यान करते रहो। संसार और परमार्थ—दोनों ठीक-ठीक चलेंगे।

H

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत ग्राम—तौफिर दियारा में दिनांक २४.४.१९५४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

८०. मेरा यहाँ कुछ नहीं है, सभी मेरे मालिक के हैं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

सबलोग अपनी मंगल-कामना करते हैं। सबलोग बराबर कर्म करते हैं। कर्म दो ही तरह के होते हैं—शुभ और अशुभ। इन दोनों कर्मों को करने के लिए लोग लगे रहते हैं। जो अशुभ कर्म विशेष करते हैं, वे पापी और जो शुभ कर्म विशेष करते हैं, उन्हें पुण्यात्मा कहते हैं; किंतु ऐसा नहीं कि पुण्यात्मा से पाप नहीं होता। उनसे भी पाप कर्म हो जाता है, जैसे महाराज युधिष्ठिर। लोग पाप का फल दुःख भोगना नहीं चाहते। पुण्य का फल सुख भोगना चाहते हैं। पाप और पुण्य; दोनों का फल दुःख और सुख है। किंतु पाप और पुण्य; दोनों कर्म बंधनवाले हैं। एक लोहे का बंधन है, तो दूसरा सोने का। पापकर्म करके लोग दान, पुण्य, तीर्थ आदि करके चाहते हैं कि पाप नाश हो जाएगा, किंतु ऐसा नहीं होता। महाभारत के मैदान में द्रोण के तीर से सब व्याकुल हो गए थे, उन्हें कोई रोक नहीं सकता था। भगवान ने कहा कि 'झूठा हल्ला कर दो कि अश्वत्थामा मारा गया।' क्योंकि द्रोण को था कि वह अपने पुत्र की मृत्यु का नाम सुनने से मर जाएगा। अर्जुन ने भगवान की बात को सुना ही नहीं। भीम ने अवन्तिदेश के राजा के हाथी को, जिसका नाम अश्वत्थामा था, मारकर हल्ला कर दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोण को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि यदि राजा युधिष्ठिर कहें, तब विश्वास करूँगा। सब लोगों और भगवान

की प्रेरणा से उनको झूठ बोलना पड़ा कि अश्वत्थामा मरा, मनुष्य या हाथी। हाथी कहने के समय धीमें स्वर में कहा और मनुष्य कहने के समय में जोर से कहा। उसी समय लोगों ने बाजे बजा दिए। द्रोण कमजोर हो गया और मारा गया। इस झूठ के पाप का फल युधिष्ठिर को भोगना पड़ा और नरक भोगना पड़ा। भगवान श्रीकृष्ण के संसार में नहीं रहने की खबर जब पाँचों पाण्डवों और द्रौपदी को मिली, तो राज्य छोड़कर चल दिए। व्रती होकर दान देते हुए तीर्थों में भ्रमण करने लगे।

पहाड़ों में पहले घटोत्कच ले जाता था, किंतु वह तो युद्ध में मारा गया था। ये लोग पैदल ही चलते थे। चलते-चलते द्रौपदी गिर गयी।

चारों भाइयों के गिरने की बात और भीम का पूछना कि ये सब क्यों गिरे? द्रौपदी को चाहिए था कि सब भाइयों को बराबर देखना, किंतु वह अर्जुन का पक्ष करती थी। सहदेव को पंडिताई का घमण्ड था। नकुल को अपनी सुंदरता का घमण्ड था। अर्जुन को अपने बल-पौरुष का घमण्ड था। जितना मनसूबा बाँधता था, उतना कर न सका। जितना काम कर न सको, उतना बोलो नहीं, इसी पाप से गिरा। भीम ने अपने लिए पूछा तो कहा कि तुम अपने बल के आगे किसी को कुछ नहीं समझते थे। युधिष्ठिर सदेह स्वर्ग गए, किंतु देवदूत उन्हें अंधकार के मार्ग से—खराब रास्ते होकर ले चले, जहाँ बहुत दुर्गन्ध थी। लौटने लगे, तब देव-माया से अर्जुन, नकुल, भीम, द्रौपदी आदि के मुँह का शब्द सुना। दो मुहूर्त्त के बाद फिर समाप्त हो गया।

इससे शिक्षा मिलती है कि पाप फल भोगना पड़ेगा। स्वर्ग में जाकर फल भोगो। फल समाप्त हो जाय, तो फिर उसी के अनुकूल अमीर-गरीब के घर जन्म लो, दुःख-सुख सहो। मनुष्य पहले मन से कर्म करता है, फिर मन और देह दोनों से करता है। पहले सूक्ष्म मन से करता है। फिर सूक्ष्म मन और स्थूल देह से करता है। इसलिए स्थूल जगत में आकर स्थूल देह और सूक्ष्म मन के साथ दुःख सुख भोगता है। बिना अंकुर से वृक्ष नहीं होता। संसार में बहुत तरह के बर्तन बनते हैं। इसका मसाला मिट्टी है। इस शरीर के बनने के मसाले का नाम प्रकृति है। यह गुणों का सम्मिश्रण रूप है। ये त्रयगुण हैं—रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण। रजोगुण—उत्पादक, सतोगुण—पालक और तमोगुण—विनाशक है। ये तीनों बराबर-बराबर भाग से बने हैं। वह प्रकृति कैसी है? इसके लिए बुद्धि निर्णय करती है, किंतु पहचान नहीं सकती, वर्णन नहीं कर सकती; क्योंकि वह इन्द्रिय-ज्ञान से परे है।

पहला वह मसाला जिससे सब कुछ बने, पहले स्थूल-ही-स्थूल कैसे बनेगा? इसलिए पहले ऐसा बनेगा, जो आकार-प्रकारवाला नहीं है। फिर वैसा बनेगा, जिसमें आकार-प्रकार रहेगा, किंतु सूक्ष्म। फिर ऐसा रूप बनेगा, जिसे सब देखते हैं। इसलिए इस सूक्ष्म लोक—स्वर्ग को इस स्थूल दृष्टि से नहीं देख सकते। लोग समझते हैं कि इसी संसार में सुख से रहना स्वर्ग में रहना है और दुःख में रहना नरक में रहना है। किसी को लूटकर धन लाते हो, धन लाते समय मन कैसा रहता है, दूसरे के यहाँ लूटने जाते हो, तब मन कैसा रहता है? भोगते समय भी हृदय में चैन नहीं रहता। डर सदा लगा रहता है। किंतु जो गरीब है, एक शाम भूखा ही रहता हो, किंतु यदि वह लूट-खसोट नहीं करता है तो वह घर में चैन से रहता है। उसे डर नहीं रहता कि कोई उसे चोर-डाकू कहकर पकड़ेगा। दान, पुण्य, तीर्थ करने से पाप कटा कि नहीं। इसकी जाँच है कि जब तुम्हारे मन में पाप-वृत्ति उदय न हो, तब समझो कि पाप खतम हो गया। जबतक पाप-वृत्ति उठती रहे,

तबतक समझो कि पापों का नाश नहीं हुआ। भीम, युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई जहाँ-जहाँ से आए थे, वहीं-वहीं गए। यह निश्चय है कि कर्म-फल नहीं छूटता, सबको भोगना पड़ता है।

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सुनु भ्राता।।

कर्म-फल से कोई बच नहीं सकता। जब श्री राम और सीताजी भी कर्म-फल का भोग करते हैं, तो और लोगों के लिए कहना ही क्या? किंतु ध्यानविन्दूपनिषद् में आया है—

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

पाप करने के लिए वृत्ति भीतर में नहीं आवे, तो समझो कि पाप छूटा। ध्यानयोग करनेवाला, भगवद्भजन करनेवाला पाप के ख्यालों को छोड़-छोड़कर ध्यान में मन लगाता है। संसार में कर्म करता है, तो पुण्य-कर्म करता है। उसमें भी आसक्ति नहीं रखता। पाप करने की वृत्ति नहीं रहती। यह आजमाइस करने की बात है। ध्यान करनेवाले का मन पाप की ओर नहीं जाता।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं—क्रियमाण, सञ्चित और प्रारब्ध। जो कर्म हम वर्तमान में करते हैं, वे क्रियमाण कहलाते हैं। क्रियमाण कर्म ही एकत्र होने पर संचित कहलाते हैं। उसी संचित में से जिसका भोग करने लगते हैं, वह प्रारब्ध कहलाता है।

ध्यानशील का क्रियमाण कर्म पवित्र होता है, क्रियमाण कर्म को फलाशा छोड़कर करता है।

करना सही न लेना कुछ भी, बाना झाखर झूरों का।
—काष्ठ जिह्वा स्वामी

मस्त आदमी का यह काम है कि पाप नहीं करे। भला कर्म करे तो उसका फल नहीं चाहे। प्रारब्ध कर्म तबतक भोगेगा, जबतक शरीर रहेगा।

ध्यान में सिमटाव होता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। उसकी इतनी ऊर्ध्वगति होती है कि कर्म मण्डल को पार कर जाता है, जिसके लिए गोरखनाथजी ने लिखा—'जाता जोगी किनहुँ न पावा।' जबतक शरीर रहता है, प्रारब्ध भोगना पड़ता है, किंतु उसी तरह भोगता है, जैसे नशे में आदमी मस्त रहता है। ध्यानयोगी परमात्मा के पास जाता है, परमात्मा को पहचानता है। जैसे सूर्य के ताप से जाड़ा भाग जाता है, उसी तरह परमात्मा की पहचान में पाप-ताप सभी भाग जाते हैं। इसलिए सभी कोई ध्यान करो।

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार।।
आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल।।

ऐसा मत करो। डर के मारे खेती करते हैं। खेती नहीं करेंगे तो अनाज नहीं होगा। भूखों रहना पड़ेगा; वस्त्र नहीं मिलेगा—इस डर से खेती का काम करते हैं। समय पर खेत जोतते हैं, कोड़ते हैं, बोते हैं, फसल काटते हैं। उसी तरह डरो कि यह शरीर कब छूट जाएगा, ठिकाना नहीं। इसलिए डरो और ईश्वर का भजन करो। मांस-मछली नहीं खाओ, नशा नहीं खाओ। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा—'धनियों के घर की नौकरानी की तरह संसार में रहना सीखो। नौकरानी मुँह से तो हमेशा यही कहा करती है कि लड़के-बच्चे, घर-वार सब मेरे ही हैं, पर उसका मन जानता है कि **मेरा यहाँ कुछ नहीं है, सभी मेरे मालिक के हैं।** इसी तरह बाहर में सब काम अपना जानकर करते रहो, किंतु मन से हमेशा जान रखो—तुम्हारा यहाँ कुछ भी नहीं है, सभी मालिक के हैं। उसका हुक्म होते ही सब छोड़कर चला जाना पड़ेगा। इसके सिवा काम में त्रुटि होने पर मालिक की धमकी का भी डर रहता है।'

संसार में अनासक्त होकर रहो और ईश्वर

का भजन करो। यह सुनकर मन बहुत प्रसन्न हुआ कि यहाँ के लोग बीड़ी-सिगरेट आदि नहीं पीते। जो बनिया बीड़ी बेचे, उसे पाँच रुपये जुर्माना होंगे और जो उसे खरीदे, उसे दो रुपये जुर्माना। यह सुनकर कि मांस-मछली नहीं खानेवाले की संख्या विशेष है, बहुत खुशी हुई। जो कुछ अन्य आदमी मांस-मछली खाते हैं, उन्हें भी छोड़ देना चाहिए।

मत्स्य-मांस, नशादि खाना-पीना छोड़ दो। सात्त्विक भोजन करो, भजन करो, पाप-कर्मों से बचो। शान्ति-सुख से रहने का यही यत्न है। H

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत ग्राम—तौफिर दियारा में दिनांक २५.४.१९५४ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

८१. बिना शब्द के सृष्टि नहीं हो सकती

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संसार परिवर्तनशील और नाशवान है। जहाँ लोग बसते थे, वहाँ आज गंगाजल का प्रवाह होता है और जहाँ गंगाजल का प्रवाह था, वहाँ लोग बसते हैं। यहाँ पहले क्षत्रिय का राज्य था। हजार वर्ष तक वह रहा। भगवान श्रीराम जिस वंश में हुए, वह वंश भी रहने नहीं पाया। मुसलमान लोग आए, उन्होंने राज्य किया। फिर उनलोगों का राज्य चला गया। अंग्रेज आए, उन लोगों का भी राज्य चला गया। अपने शरीर को सोचो। बच्चा, जवान और बूढ़ा होकर फिर लापता हो जाता है। अपने शरीर में भी अनेक टुकड़ों के मिलने से एक होता है। यह संसार भी कण-कण से बना हुआ है। इसलिए खण्डणीय है। संसार में कोई पदार्थ नहीं जो अखण्ड हो।

हमलोग शब्द सुनते हैं। इसका भी खण्ड होता है। प्रत्येक अक्षर पर खण्ड होता है। शब्दों में भी जिसको एकाक्षर ब्रह्म कहते हैं, उसका भी पसार करने से—अ, उ, म् हो जाते हैं। बाजे-गाजे के जितने शब्द हैं, सबके खण्ड होते हैं। संसार का कोई पदार्थ अखण्ड नहीं। संतलोग कहते हैं—ईश्वर का नाम अखंड है, किंतु जिस शब्द का उच्चारण हम मुँह से करते हैं, जो परमात्मवाची है, वह भी अखण्ड नाम नहीं है। संत कबीर साहब ने कहा—'अखण्ड साहिब का नाम और सब खण्ड है।' तथा—

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह ।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ।।

यह अखण्ड नाम है—आदिशब्द, जिससे सृष्टि हुई है। बिना शब्द के सृष्टि नहीं हो सकती। शब्द हुआ, कम्पन हुआ। आदि सृष्टि में आदि कम्प हुआ। वह शब्द ईश्वर से लगा हुआ है। उस शब्द को जो पकड़ेगा, वह खींचकर ईश्वर तक चला जाएगा। वह शब्द अक्षरों में लिखा नहीं जा सकता, मुँह से बोला नहीं जा सकता।

अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अतालुकण्ठोष्ठमनासिकं च।
अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।

उसको चेतन आत्मा जानती है। उस शब्द को जो पकड़ता है, तो वह उसी तरह हो जाता है, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है, इस शब्द को पकड़ने से बंधनमुक्त हो जाता है। यह अखण्डनीय है। श्रीमद्भागवत पढ़ो, उसमें लिखा है—शब्द तीन प्रकार के होते हैं—प्राणमय, मनोमय और इन्द्रियमय।

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रिय मनोमयम् ।
अनन्त पारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ।।

प्राणमय शब्द चेतनधारा को कहते हैं। ईश्वर का नाम प्राणमय शब्द है। उसको जपने की जरूरत नहीं, ध्यान में जाना जाता है, उसको पकड़ो। उसको क्या पकड़ोगे, वही तुमको पकड़ लेगा। वही अखण्ड साहिब का नाम है। संतों के ग्रंथों को पढ़ो। बराबर सत्संग करते रहो, तो इसको अनपढ़ लोग भी जान सकते हो।

सन् १९२२ ई० में छपरा में मैं एक महीने ठहरा हुआ था, वहाँ एक सत्संगी था। वह पढ़ा-लिखा नहीं था, किंतु सत्संग सुना था। शब्द के बारे में चर्चा होने पर उसने कहा—एक शब्द और होता है, जिसको श्रुतात्मक शब्द कहते हैं। उस सत्संगी का नाम था—तहबल दास। जाति का वह मेहतर था, लेकिन सत्संग के प्रभाव से वह इस बात को जानता था। आपलोग भी सत्संग कीजिए। आपलोग भी बहुत बात समझिएगा।

नाम-भजन की बड़ी महिमा है। यह नाम-भजन ध्वन्यात्मक शब्द का होता है। ध्यान में डूबनेवाला ही उस ध्वन्यात्मक नाम को पकड़ सकता है। इसके लिए संत कबीर साहब ने बताया कि—

चंचल मन थिर राखु जबै भल रंग है।
तेरे निकट उलटि भरि पीव सो अमृत गंग है।।

अपने को उस अमृत को पाने के लिए उलटाओ अर्थात् बहिर्मुख से अंतर्मुख करो। बहती हुई पवित्र धारा को गंगा कहते हैं। आपके अंदर बहती हुई चेतन-धारा पवित्र गंगा है। अपने अंदर जो उलटेगा, वही इस गंगा को पावेगा और उस शब्द को भी पावेगा। यह जानकर भजन कीजिए। अपने अंदर में खोजिए। आपके अंदर ऐसा भण्डार है, कितना भी खर्च कीजिए, कमने को नहीं है।

इस शरीर रूपी गुफा के अंदर परमात्मा रहते हैं। इस शरीर में बुद्धि है। आजकल के वैज्ञानिकों ने भी माना है कि बुद्धि से क्या-क्या चीजें निकलती रहती हैं। कितनी चीजें, कितनी बातें और निकलेंगी, ठिकाना नहीं। पता लगाइए कि विज्ञान का छोर किधर है? अपने अंदर है। भगवान श्रीराम का राज्य किधर है, आपके अंदर है। उस रामप्रताप-रूपी सूर्य के दर्शन से अज्ञानता जाती रहती है। काम, क्रोधादिक विकार दमित होते हैं। सुख, संतोष, विराग, विवेक आदि बढ़ जाते हैं।

संत लोग कहते हैं—परमात्मा पर विश्वास करो। उस परमात्मा को पाने का यत्न अपने अंदर करो। गुरु के बताए अनुकूल यत्न करने के लिए सत्संग प्रेरण करता है। इसलिए सत्संग करो। बिना सत्संग के लोग मार्ग से गिर जाते हैं। आपलोग नित्य प्रति प्रातः-सायंकालीन सत्संग कीजिए। नित्य सद्ग्रंथों का पाठ कीजिए। जो समझ में नहीं आवे, वह बात अपने से विशेष जानकार से समझ लीजिए। कभी-कभी मेरे पास आकर भी समझिए। एक आदमी सब आदमी के पास नहीं जा सकता, लेकिन सब आदमी एक आदमी के पास जा सकते हैं।

इन बातों को समझाने के लिए मासिक पत्र 'शान्ति संदेश' महीने-महीने निकलता है, उसको पढ़िये। इससे मेरा विचार आपलोगों को मालूम होता रहेगा। रविवार को दिन में सत्संग किया कीजिए। जो सत्संग नहीं करते हैं, उनका ख्याल पाप में गिर जाता है। सत्संग करते रहने से, पाप-कर्म करने से मन रुकता है। कटिहार शहर के सत्संग मंदिर में दिन को, सुबह में और शाम में भी सत्संग होता है। आपलोग भी नित्य सत्संग किया कीजिए। सत्संग नहीं करने से वह समय फजूल-फजूल बातों में लग जाता है। इसलिए नित्य प्रातः और सायंकाल सत्संग कीजिए। रविवार को दिन के अपराह्नकाल में भी सत्संग कीजिए। H

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत ग्राम—तौफिर दियारा में दिनांक २५.४.१९५४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

८२. पाँच किस्म की मुक्ति

प्यारे लोगो!

हमलोग अभी जिस हालत में हैं, यह बंध दशा है। हमलोग शरीर और संसार में बंधे हुए हैं। जितने संत-महात्मा हो गए हैं, सभी ने इस बंधन से छूटने के लिए कहा है। इस बंध दशा से छूट जाने को मुक्ति कहते हैं। अपने यहाँ पुराणों और अध्यात्म ग्रंथों में मुक्ति के भिन्न-भिन्न नाम कहे गए हैं—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य और ब्रह्मनिर्वाण। ये **पाँच किस्म की मुक्ति हैं।** मुक्तिकोपनिषद् में भगवान श्रीराम ने श्रीहनुमानजी को उपदेश देते हुए बताया है—

चतुर्विधा तु या मुक्तिर्मदुपासनया भवेत्।।

(सालोक्य=उपास्यदेव के लोक की प्राप्ति, सामीप्य=उपास्यदेव की समीपता प्राप्त करनी, सारूप्य=उपास्यदेव के शरीर सदृश रूप प्राप्त करना, सायुज्य=उपास्यदेव के साथ युक्त होना अर्थात् उपास्यदेव के शरीर से भिन्न अपना दूसरा शरीर न रखना।) इन चार प्रकार की मुक्तियों का वर्णन हुआ, ये मेरी उपासना से होती हैं।

इन चारों प्रकार की मुक्तियों में देह का रहना कहा गया है। सायुज्य मुक्ति में ऐसा कि अपना स्थूल शरीर नहीं रहा। इष्ट की देह में रहा, किंतु देहसहित रहा। ब्रह्मनिर्वाण में इष्टदेव का रूप-रंग नहीं रहता और भक्त का भी रूप-रंग नहीं रहता। वहाँ कोई लोक नहीं, स्थान और समय नहीं; देश और काल से घिरा हुआ नहीं। उस दशा को जो प्राप्त करता है, वह हुआ ब्रह्मनिर्वाण।

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

— गोस्वामी तुलसीदासजी

यह है ब्रह्मनिर्वाण—विदेह मुक्ति। मुक्तिकोपनिषद् में श्रीराम ने हनुमानजी को यही उपदेश दिया था। इसमें कहा गया कि जबतक चित्त का स्वभाव होता रहता है, तबतक बंध दशा है। चित्त का स्वभाव है—मैं कर्ता, भोक्ता, सुखी और दुःखी हूँ। इस तरह की उपज जबतक होती रहती है, तबतक जीव बंधन में रहता है। कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी होने के भाव से जब वह मुक्त होता है, गोया ऐसा भाव उठता नहीं, तब जबतक उसका शरीर रहता है, वह जीवन-मुक्त कहलाता है और जब शरीर छूट जाता है, तब विदेह-मुक्ति होती है। जैसे घड़े की दीवार फूट जाने से वह घटाकाश घट से मुक्त हो गया, उसी तरह जब साधक का शरीर नहीं रहा, प्रारब्ध नाश हो गया, तब वह विदेह-मुक्त हो गया। वहाँ भी भगवान श्रीराम के कथानुकूल विदेह-मुक्ति को श्रेष्ठ बतलाया। तुलसीकृत रामायण में भी भगवान श्रीराम का उपदेश है—

जीवन मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्हके हिय पाषान।।

मुक्तिकोपनिषद् में जिन चार प्रकार की मुक्तियों का वर्णन हुआ, उन मुक्तियों से विदेह-मुक्ति नहीं होती है। ये चार प्रकार की मुक्तियाँ शरीर छूटने पर मिलती है; किंतु ब्रह्मनिर्वाण या जीवन-मुक्त ऐसा नहीं। जीवन-काल में जीवन-मुक्त होता है और शरीर छूटने पर विदेहमुक्त होता है। कुम्भकर्ण के मरने पर उनके मुँह से एक तेज निकला। वह तेज श्रीराम के मुँह में प्रवेश

किया। रामचरितमानस में लिखा है—

तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचम्भव माना।।

चार प्रकार की मुक्तियों में ऐसा होता है, उसमें स्थूल आवरण से छूट जाता है। भीष्म अष्ट वसुओं में से थे। मरने पर उसकी सायुज्यता वसु में हो गई। युधिष्ठिर की सायुज्यता धर्मराज में और श्रीकृष्ण की सायुज्यता सनातन नारायण में हुई। विदेह-मुक्ति वह है, जिसमें कोई शरीर नहीं रहता। देश-काल के घेरे में जो नहीं रहता, वह ब्रह्मनिर्वाण है। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

जल तरंग जिउ जलहि समाइआ।
तिउ जोती संगि जोति मिलाइआ।।
कहु नानक भ्रम कटे किवाड़ा, बहुरि न होइअै जउला जीउ।।

जल तरंग की तरह जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। जिस मुक्ति के लिए संतलोग कहते हैं, वह ब्रह्मनिर्वाण है। वह ऐसा सायुज्य है, जहाँ कोई शरीर नहीं। किसी शरीर में नहीं समाया, निर्गुण निराकार में या उससे भी परे जाकर समाया। इसी मुक्ति के लिए भगवान श्रीराम ने हनुमानजी को उपदेश दिया।

इसके लिए अध्यात्म-विद्या की शिक्षा, साधु-संग, वासना-परित्याग और प्राणस्पंदन-निरोध करने के लिए भगवान श्रीराम ने बतलाया। प्राणायाम के द्वारा प्राण-निरोध होता है। वासना-परित्याग या प्राणायाम करने से प्राणस्पन्दन-निरोध होता है। उपर्युक्त चारों कामों को करो। ध्यान अभ्यास से प्राण-स्पन्दन-निरोध और वासना-परित्याग होता है। साधु-संग से अध्यात्म-विद्या की शिक्षा मिलती है। इन चारों में दो बातों की मुख्यता हुई—साधु-संग और ध्यान। जब अहंकार वृत्ति ब्रह्माकार होकर रहे, तब सम्प्रज्ञात समाधि है। जाग्रत और स्वप्न में अहंकारवृत्ति रहती है। गहरी नींद में मैं हूँ या नहीं हूँ, कुछ भी नहीं रहता, अचेतपन रहता है। अहंकारवृत्ति में पृथक्त्व रहता है। अहंकारवृत्ति ब्रह्माकार होकर रहने से 'सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा' होती है। जब यह वृत्ति भी नहीं रहती, तब असम्प्रज्ञात समाधि होती है। अहं ब्रह्मास्मि में द्वैत रहता है। ब्रह्मनिर्वाण में अहं ब्रह्मास्मि कहनेवाला कोई नहीं रहता। वह वही रूप होकर रहता है। रामचरितमानस में 'एहि तन कर फल विषय न भाई' कहा गया है। यह चौपाई भी ब्रह्मनिर्वाण की ओर संकेत करती है। इसी ब्रह्मनिर्वाण के लिए भजन है और सदाचार का पालन है। ब्रह्मनिर्वाण का अर्थ है—ब्रह्म प्राप्ति संबंधी मोक्ष। साधक को उस ओर चलने से उसका जीवन पवित्र होता है। पवित्र जीवन से संसार में मर्यादा भी होती है। इसके द्वारा दूसरे को भी लाभ पहुँचता है।

H

यह प्रवचन संतमत सत्संग मंदिर मनिहारी, कटिहार में दिनांक १.५.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

८३. मौत को कौन नहीं जानता है?

धर्मानुरागी प्यारे महाशयो!

यह बात कहने की आवश्यकता नहीं कि बुढ़ापा आता है, मृत्यु होती है। लोग बराबर इसको देखते ही हैं, फिर भी स्मरण के लिए संतलोग कहते हैं। जिस समय मृतक को उठाकर कोई श्मशान ले जाता है, उस समय का ज्ञान और उसके बाद का ज्ञान कैसा होता है? पहलेवाला ज्ञान पीछे भूल-सा जाता है। जब वह कंधे पर मृतक को

जलाने के लिए चलता है, तब उसके मन में विराग रहता है कि मेरी भी एक दिन यही हालत होगी।

बलख बुखारे का बादशाह बहुत विलासी था, परंतु सत्य का अन्वेषण करता रहता था। वह यह नहीं समझता था कि साधु लोग संसार से विमुख क्यों होते हैं, लोग संन्यासी-फकीर क्यों बनते हैं? जो साधु उसके दरबार के सामने जाता, उससे वह पूछता कि तुम फकीर क्यों हुए? जो साधु ठीक-ठीक नहीं समझा सकता था, उसको कैद कर लेता था। उस देश के बहुत फकीर कैद हो गए। भारत के भी बहुत फकीर वहाँ जा-जाकर कैद हुए। यह खबर रामानंद स्वामी के पास पहुँची। उन्होंने अपनी शिष्य-मण्डली से कहा कि कोई वहाँ जाकर राजा को समझा सकता है और फकीरों को छुड़ा सकता है? कबीर साहब ने इसका बीड़ा उठाया और वहाँ जाकर बोले—'मैंने भी घर छोड़ दिया है, मुझे कुछ खिलाओ।' बादशाह ने उनसे पूछा कि तुम संन्यासी फकीर क्यों हुए? उन्होंने कहा कि यदि मैं अपने फकीर होने का कारण कहूँ तो तुम भी फकीर हो जाओगे। बादशाह ने कहा—'कहो।' संत कबीर साहब ने कहा—'मैंने मौत को पहचाना है।' बादशाह के वजीरेआजम ने कहा—'मौत को कौन नहीं जानता है? सबलोग जानते ही हैं कि एक दिन मरेंगे ही, फिर भय कैसा?' बादशाह ने आदेश दिया—'यह फकीर बात बनाता है। इसको भी कैद कर लो।' कबीर साहब को जेल ले जाया जाने लगा तो उन्होंने बादशाह के कान में कहा—'यदि आप ठीक ही मौत को जानना चाहते हैं तो आज यह आदेश पारित करवा दीजिए कि आज से सातवें दिन वजीरेआजम को फाँसी की सजा होगी। फाँसी होगी नहीं।' बादशाह ने आदेश पारित कर दिया। अब वजीरेआजम को काटो तो खून नहीं। अब तो मृत्यु उनके सामने नृत्य करने लगी। उनको मौत ही मौत सूझने लगी। न खाना अच्छा लगता था और न कुछ। सातवें रोज फाँसी का सब साज-सामान इकट्ठा किया गया और वजीर साहब को फाँसी के लिए तैयार कर खड़ा कर दिया गया। कबीर साहब को भी बुला लिया गया। कबीर साहब पूछते हैं—'वजीर साहब! आप अपनी घोड़ी पर सैर कर आइए।' वजीर ने कहा—'मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता।' तब कबीर साहब ने कहा—'अच्छा, अब तो आपकी मृत्यु होगी ही। मृत्यु के पहले अपनी प्यारी बच्ची को थोड़ा प्यार से खिला लें। वजीर ने कहा—'मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।' कबीर साहब ने पूछा—'क्या अच्छा लगता है?' वजीर ने कहा—'मुझे तो बस मौत-ही-मौत दिखायी देती है और कुछ नहीं।' कबीर साहब ने कहा—'मौत को तो आप आज से सात रोज पहले भी, जब मैं दरबार में यहाँ आया था, देख रहे थे, फिर आज क्या हुआ? आप उस दिन तो इतने दुःखी और उदास नहीं थे?' वजीर ने कहा—'उस दिन तो केवल सुनी-सुनाई बात ही कही थी। वास्तव में मौत को आज मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।'

जो मौत को इस तरह देखता है कि अब कुछ ही क्षण में मैं मर जाऊँगा, तो उसका मन संसार से विरक्त हो जाता है। मौत को जानने से सभी विलास छूट जाते हैं। मौत को ठीक-ठीक जानने से संसार छोड़ सकते हो। साधु-संत लोग कहते हैं तो कुछ-कुछ ख्याल आता है और जब किसी मृतक को जलाने जाते हैं, तब ख्याल आता है। जन्म होने पर और उससे बढ़ते जाने पर मालूम होता है कि अच्छा होता है, किंतु उसकी आयु क्षीण होती जाती है। रोग सताने पर भी शरीर क्षीण होता है। बुढ़ापा होने पर भी शरीर क्षीण होता है और अंत में 'रामनाम सत्त' हो जाता है।

५५० जन्मों में भगवान बुद्ध ने सिद्धि प्राप्त की। साधना के जन्म ५५० हुए। ५५० जन्म तक साधन-भजन किया और दृढ़ता से कहा कि अब शरीर का कर्ता इस शरीर को बना नहीं सकता अर्थात् मैं इस संसार में फिर नहीं आऊँगा और जो

संसार में आने से दुःख होता है, वह नहीं भोगूँगा। संसार में दुःख-ही-दुःख है। जनमने से पहले माता के गर्भ में उलटे लटके हुए रहते हो, जन्मभर कष्ट होता है। मरने पर स्वर्ग-नरकादि जाते हो। कोई भी केवल नरक या कोई स्वर्ग ही नहीं जाता। सबसे कुछ-न-कुछ पाप-पुण्य होता है, जैसे युधिष्ठिर को थोड़े पाप के कारण नरक देखना पड़ा। उपनिषद् कहती है कि मरने के समय जो-जो भावना करोगे, वही-वही होगा। इसलिए ऐसा यत्न करो कि फिर जन्म लेना न पड़े। भगवान बुद्ध ने अपना रास्ता आप निकाला। उनको बहुत कष्ट हुए। छह वर्षों तक इतना तप किया कि एक आसन से उठे ही नहीं, किंतु उनके ही शिष्यों ने उनके समय में उनकी सहायता से उतना कष्ट भोगे बिना ही सिद्धि प्राप्त की। सारिपुत्र और मोदगल्यायन बुद्ध के बड़े साहसी और बड़े भजनीक भक्त थे। उपालि नाइक भगवान बुद्ध के यहाँ गए, उनसे शिक्षा-दीक्षा ली और वे बहुत बड़े महात्मा हुए। आनंद, महाकश्यप आदि बहुत बड़े-बड़े महात्मा हुए। उनको रास्ता खोजना नहीं पड़ा। उनके गुरु रास्ता बतलानेवाले हुए। संतों के ग्रंथों में उस रास्ते का भेद बतलाया गया है, किंतु उसे बिना गुरु के जान नहीं सकते। हमलोगों के समय में हमलोगों को अवश्य ही अच्छे गुरु मिले, जिस कारण भगवान बुद्ध, गुरु नानक, कबीर साहब आदि किन्हीं संत की वाणी को पढ़ते हैं तो वही ज्ञान मालूम होता है।

सबकी लाठी एक-सी नहीं होती। लाठी सहारा होती है। टेढ़ी-सीधी सभी लाठियाँ सहारे हैं। इसी तरह से जो लोग उपासनाओं के लिए कहते हैं कि उनकी उपासना वह है और उनकी वह है तो ये सब सहारे हैं। सबसे एक ही काम होता है। शैव, शाक्त, वैष्णव आदि अनेक उपासक होते हुए भी काम एक ही होता है। इस तरह यदि समझ जाओ तो स्पष्ट होगा कि अनेक उपासनाएँ लिए जो अनेक सम्प्रदाय हैं, उनमें एक ही काम होता है। जानने के बाद भेद भाव नहीं रहता, परंतु यह क्यों जानना चाहिए? इसलिए कि इस संसार में आने-जाने से छूट जाएँ। जिस केन्द्र पर पहुँचने पर संसार से छूटना होता है, वह केन्द्र परमात्मा है। उसके अनेक नाम हैं— कोई ईश्वर, कोई अल्लाह, कोई गॉड कहते हैं। कोई कहते हैं कि वह केन्द्र आत्मतत्त्व है। आत्मतत्त्व कहो, परमात्मा कहो—एक ही बात है। जैसे आकाश कहने से मठाकाश और महदाकाश—दोनों का ज्ञान होता है, वैसे ही 'आत्मा' कहने से जीवात्मा और परमात्मा— दोनों का ज्ञान होता है। हाँ, यह अवश्य है कि हमारे यहाँ कितने ही वाद हैं—अद्वैत, द्वैत, त्रैत आदि; किंतु सबका केन्द्र परमात्मा है। असीम अनंत तत्त्व जो महान है, वह दो नहीं हो सकता। एक ही एक है। दो कहने से दोनों जहाँ मिलेंगे, वहाँ सीमा हो जाएगी। इसलिए अनादि अनंत तत्त्व एक ही होगा। जिस समय जिस वाद के प्रवर्तक और उसके माननेवाले विशेषरूप से होते हैं, उस वाद का प्रचार उस समय विशेष रूप से होता है। कभी अद्वैतवाद का डंका बजता है, तो कभी द्वैत का। शंकराचार्य ने अद्वैत का डंका बजाया। एक परमात्मा है। एकान्त होकर अपने अंदर प्रवेश करो। इसमें शिव-शक्ति का दर्शन कर सकते हो। इसका यत्न सत्संग से, सद्गुरु से प्राप्त करो। दर्शन करके कृतकृत्य हो जाओगे। इसी का यत्न सभी संत बताते हैं, इसका यत्न जानो और कोशिश करके अपने अंदर की शिव-शक्ति का दर्शन करो। सब दुःखों से छूट जाओगे। 'शिव' का अर्थ ही कल्याण है। तुम करोगे, तुम्हारा कल्याण होगा और जो सब कोई करेंगे, उन सबका कल्याण होगा। इसलिए तो सबको इसका अभ्यास करना चाहिए। H

यह प्रवचन शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र टीकापट्टी, पूर्णियाँ में दिनांक ६.५.१९५४ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था

८४. हमारी इन्द्रियाँ बिल्कुल स्थूल हैं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संतों के मत में यह अत्यंत आग्रह है कि सब लोगों को ईश्वर से मिलना चाहिए। पहले ईश्वर-स्वरूप का निर्णय जानना चाहिए। फिर ईश्वर से मिलने का यत्न जानना चाहिए और उनसे मिलने का यत्न करना चाहिए तथा जो आचरण अपेक्षित है, वह आचरण करना चाहिए। इसके लिए पहले श्रवण और मनन करना चाहिए। फिर निदिध्यासन करना चाहिए और अंत तक पहुँचकर उसकी प्राप्ति करनी चाहिए।

परमात्मा के स्वरूप के विषय में ऐसी बात है कि जैसे कोई पूछे कि रूप क्या है? तो उसका उत्तर होगा—जो आँखों से देखा जाय। उसी तरह ईश्वर क्या है? तो उसके लिए यही कहना बिल्कुल ठीक-ठीक है कि जिसको आप अपने से यानी चेतन आत्मा से, न कि इन्द्रियों से, पहचानें; वह ईश्वर है। सबलोगों को यह जानना चाहिए कि यह समझ में आना कोई कठिन नहीं है कि जीवात्मा शरीर में है, किंतु शरीर जीवात्मा नहीं है। लोग जानते हैं कि मृत्यु होती है, शरीर से जीव निकल जाता है। शरीर को जला देते हैं। हमलोगों के यहाँ लोग श्राद्ध-किया करते हैं। यह क्रिया इस बात कों दृढ़ कर देती है कि शरीर छूटने पर जीवात्मा रहता है। शरीर से चेतन आत्मा निकल गई है। शरीर सड़ जाएगा, दुर्गन्ध होगी, इसलिए शरीर को जला देते हैं। जीवात्मा इससे चला गया, इसलिए श्राद्ध-क्रिया करते हैं। यदि शरीर के साथ चेतन आत्मा भी नष्ट हो जाती, तब श्राद्ध किसके लिए किया जाता? शरीर छोड़कर जीवात्मा कहीं चला गया है, उसके लिए श्राद्ध क्रिया करते हैं। शरीर में चेतन आत्मा है। शरीर में रहकर यह दुःख-सुख भोगती है। इन दुःखों से बचने के लिए सभी संतों ने उपदेश दिया है।

शरीर के भीतर और बाहर की सभी इन्द्रियाँ यंत्र हैं, जिनके द्वारा देखते, सुनते, रस चखते हैं; संकल्प-विकल्प करते हैं, अहं भाव लाते हैं आदि। इन सबको छोड़कर चेतन आत्मा अकेले रहकर क्या करती है—लोग नहीं जानते हैं। किसी भी इन्द्रिय में यह शक्ति नहीं है कि वह ईश्वर को पहचाने। चेतन आत्मा अपने ही ज्ञान से परमात्मा को पहचानेगी। इसको समझने के लिए ऐसा जानना चाहिए कि जो वस्तु जिस तरह की होती है, उसी किस्म का यंत्र हो, तभी उसका ग्रहण किया जाना संभव हो सकता है। पेचकश, सँड़सी—लोहार के पास में है और घड़ीसाज के भी पास में है। जैसे-जैसे महीन यंत्र होते हैं, उसी तरह की उनके पास में सँड़सी और पेचकश भी होता है; किंतु बढ़ई की सँड़सी, पेचकश से घड़ी के कल पूर्जों का ग्रहण होना असम्भव है।

परमात्मा आदि-अंत-रहित असीम है। इससे अधिक और सूक्ष्म क्या हो सकता है? एक सेर बर्फ के ढेले को देखिए, कितनी दूर व्यापक है। फिर एक सेर पानी को देखिए, वह कितना व्यापक है। जो पदार्थ जैसे-जैसे फैला, उसी तरह सूक्ष्म भी हुआ। जो सबसे विशेष व्यापक है, वह सबसे विशेष सूक्ष्म है। हमारी इन्द्रियाँ बिल्कुल स्थूल हैं। ये हमारी मोटी-मोटी इन्द्रियाँ परमात्मा को ग्रहण करें, सम्भव नहीं है। मन-बुद्धि से भी ग्रहण नहीं हो सकता। परमात्मा को चेतन आत्मा ग्रहण करे, यही

सम्भव है। यह बाहर-बाहर का काम नहीं है। चेतन आत्मा इन्द्रियों के संग में है, इसलिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म को इन्द्रियों से नहीं पा सकती। मन और चेतन आत्मा इस तरह संग-संग हैं, जैसे दूध में घी रहता है। जिस साधन, अभ्यास से यह काम हो सके, वह काम करो। अंतर्मुख ध्यान करो। यही ईश्वर की असली भक्ति है। अंतर्मुख भजन करने के लिए अंदर-अंदर चलना होगा और तभी मायिक सब आवरणों को पार करना होगा।

जाग्रत अवस्था से स्वप्न में जाने से पहले तन्द्रा में जाना पड़ता है और उस समय कुछ-कुछ ज्ञान भी रहता है और कुछ-कुछ भूलते भी जाते हैं। ऐसी अवस्था में कोई जगा दे, तो दुःख होता है; क्योंकि उसमें चैन—आराम मिलता है। अंतर के सरकाव में सुख है। यह प्रत्यक्ष नमूना है कि अंदर में सरकाव होता है। इसमें स्वाभाविक बात है कि अंदर के सरकाव में सुख मिलता है। चिंताओं को छोड़ो। अवश्य ही गुरु महाराज ने जो बताया है, वह याद रखो और सब कुछ भूल जाओ। ध्यान अंतर्मुख होकर करो।

शरीर के जिस तल पर मन रहता है, सिमटाव होने से वहीं से उसकी ऊर्ध्वगति होगी। ऊर्ध्वगति होने से अंधकार से प्रकाश में जाएगा। वहाँ शब्द का सहारा मिलने पर विशेष ऊर्ध्वगति होगी। तब चेतन आत्मा के ऊपर जो इन्द्रियों की पट्टी लगी है, इससे वह मुक्त हो जाएगी। तब वह अपने को और परमात्मा को भी पहचान लेगी।

ऐसा ध्यान करो कि पूर्ण सिमटाव हो और सिमटाव में ऊर्ध्वगति हो। ऊर्ध्वगति में आवरण भेदन होगा, फिर परमात्मा की प्रत्यक्षानुभूति होगी। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण—इन चारों जड़ावरणों से पार उतरने पर तब वह स्वयं रहता है। सूक्ष्म रूप-रंग में वह देखा नहीं जा सकता। चारों खोलों के उतर जाने पर परमात्मा की प्राप्ति होती है। जहाँ अपनी पहचान होती है, वहीं पर परमात्मा की भी।

स्थूल मण्डल का रूप अंधकार है। अंधकार से पार गुजरने पर प्रकाश पाता है। ब्रह्म के प्रकाश की ओर खींच जाता है। इसमें ज्योति का बड़ा आग्रह है। पहले ब्रह्मज्योति का, फिर ब्रह्मनाद का सहारा होता है। संतों के ज्ञान का यही रहस्य है।

संतों ने मनोनिरोध के लिए जो बतलाया, वह बड़ा ही सरल है। नैति-धौति करने की जरूरत नहीं है। भोजन उतना करो, जितना पच सके। न बेशी खाओ, न कम खाओ। न बेशी सोओ, न बेशी जगो। मध्य में रहकर जगो, बैठो, ध्यान करो। किसी नाम में विशेष महत्त्व है, किसी में कम—ऐसा नहीं। राम, कृष्ण, गॉड, अल्लाह—सब एक ही हैं। जप के लिए ऐसा शब्द अवश्य होना चाहिए, जो गुरु बतलावे। ऐसा जप करो कि मन भागे नहीं। एकाग्र मन से जप हो, तो समझो कि मन बहुत बहका नहीं, तब जप हुआ। फिर उसके एक रूप का ध्यान करो। जो जिस शरीर में रहता है, उसके शरीर का ध्यान करो। पहले किसी एक पर श्रद्धा रखकर उसका ध्यान करो। कोई एक रूप बिना अंग-प्रत्यंग के नहीं रहता। इससे ऐसा ध्यान करो, जो अंग-प्रत्यंग के बिना हो, वही है विन्दु। यह भगवान का सूक्ष्म रूप है। पेन्सिल की नोक जहाँ पड़े, वहीं विन्दु होता है। स्थूल में पूर्ण सिमटाव होने से स्थूल ज्ञान से ऊपर उठ जाता है। भेद की बात किसी जानकार से जानो। वे जो कहें, जैसा ध्यान करने के लिए बतलावें, वैसा करो। गुरु का काम है सिखलाना और शिष्य का काम है, उसे करके बताना।

गुरु नाम है ज्ञान का, सिष्य सीख ले सोइ।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु शिष्य न होइ ।।

— संत कबीर साहब

जो गुरु स्वयं ध्यान करते हों और दूसरों को बताते हों, वे जिन कर्मों की मनाही करें, उन कर्मों को छोड़ो। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार मत करो। मत्स्य-मांस का भोजन नहीं करो। मछली पानी में रहती हुई दुर्गन्धित रहती है। स्नान करने से जो पवित्रता होती है, ध्यान में उससे विशेष पवित्रता होती है। खुजलाहट होने पर नोचने से कीड़े मरते हैं। यह अनिवार्य हिंसा है। खेती करने, औषधि-सेवन करने में जो हिंसा होती है, वह अनिवार्य हिंसा है। आक्रामक के साथ युद्ध करना—यह अनिवार्य हिंसा है।

H

यह प्रवचन शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र, टीकापट्टी, पूर्णियाँ में दिनांक ६.५.१९५४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

८५. अजर अमर शब्द को कैसे जपोगे?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संतमत के सत्संग से ईश्वर-भक्ति का प्रचार होता है। यही एक विषय इस सत्संग का है। यह इतने बड़े कोष का भण्डार है, जिसमें अध्यात्म-संबंधी, योग संबंधी सारी बातें आ जाती हैं। इतना ही नहीं, इस ज्ञान से संसार में भी लोग अपना जीवन-यापन अच्छी तरह कर सकते हैं। एक किसी कुत्ते या किसी पशु या किसी जलचर या और किसी का क्या दर्जा है? दूसरी ओर मनुष्य का क्या दर्जा है?

मनुष्य से उच्च कोई जलचर, नभचर या इतर थलचर नहीं हो सकते। मनुष्य को आत्मा-अनात्मा, सत्य-असत्य का विचार अवश्य होता है, यदि वह उसकी तरफ अपने को जरा भी लगावे; परंतु मनुष्य के अतिरिक्त और किसी जीव को इस तरह का ज्ञान, जिस तरह का ज्ञान मनुष्य को बतलाया गया है, संभव नहीं है। मनुष्य विचार करके असत्य की ओर से सत्य की ओर चल सकता है, किंतु और कोई जीव नहीं।

मनुष्य के अतिरिक्त और सब जीव-जंतुओं में यह ज्ञान कि विषयों की ओर से मुड़ो और इन्द्रियों के भोगों से अपने को ऊपर उठाओ, असम्भव है। यह ज्ञान इतना विशेष है कि देवताओं को भी दुर्लभ है। इसलिए मनुष्य-देह देवताओं को भी दुर्लभ कहा गया है; यथा—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहि गावा।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।

इसीलिए कहा गया है, शरीर मोक्ष का द्वार है। शरीर यदि एक घर है, तो सम्पूर्ण घर-द्वार नहीं हो सकता। घर में द्वार और खिड़कियाँ होती हैं। बड़े-बड़े छिद्रों को द्वार और छोटे-छोटे छिद्रों को खिड़कियाँ कहते हैं। हमारे शरीर में आँख के दो, कान के दो, नाक के दो, मुँह का एक और मल- मूत्र विसर्जन के दो—ये नौ द्वार हैं और जितने रोम- कूप हैं—ये खिडकियाँ हैं। अनेक बार जनमने-मरने से छूट जाने के लिए इसमें दसवाँ द्वार है। यह शरीर बड़ा पवित्र है। अभी हमलोगों को वही शरीर प्राप्त है। क्या हमलोगों को पशु की तरह रहना चाहिए?

पशु की तरह विषय-भोग ही को यदि हम जानें, तो पशु से उच्च कैसे हो सकते हैं? ईश्वर की भक्ति में यह अत्यंत आवश्यक है कि इन्द्रियों के भोगों से हम अपने को ऊपर उठाकर उसका भजन करें। जो अपने को भोगों में लगाकर रखता है, वह उस ओर बढ़ नहीं सकता। जिस ओर जाने

से भव-बंधन छूटता है, मुक्ति मिलती है, उस निर्विषय की ओर चलो। अर्थात् विष के ग्रहण से यानी खा जाने से मृत्यु होती है, किंतु उसी विष को वैद्य के बताए यत्न से सेवन करते हैं, तो रोग का नाश होता है। इसी तरह से संसार में जबतक जीवन है, संसार में से कुछ भी न लेना असंभव है। जिस प्रकार वैद्य के बताए प्रयोग से विष को दवाई के रूप में लिया जाता है, उसी तरह संतों के बताए अनुकूल विषय को सहायक बनाया जा सकता है। इसलिए साधु लोग मितभोगी होते हैं। बिना कुछ खाए-पिए, साँस लिए रह नहीं सकते। जलपान करना, खाना, साँस लेना भी रोग है, इसके बिना आप जी नहीं सकते। इसलिए इसे दवाई के रूप में लीजिए। किसी के ज्ञान में ऐसा नहीं आ जाय कि विषय से छूटा नहीं जा सकता। संतलोग विषयों से अलग रहने के लिए कहते हैं, इसलिए संतों का उपदेश झूठा है। संतों ने यह बतलाया कि भक्ति करते-करते ऐसे तल पर अपने अंदर में पहुँच सकते हो, जिस तल पर पहुँचने से तुम संसार के भोगों से बिल्कुल छूटे हुए रहोगे। वहाँ हरि-रस प्राप्त करते रहोगे।—

सोइ हरिपद अनुभवइ परमसुख अतिशय द्वैत वियोगी।

इस पद तक उठ सकते हो।

ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल रूप विषय कारन निसिवासर धावै।।

—विनय-पत्रिका

गोस्वामीजी का ब्रह्म सम्बन्धी अमृत और गुरु नानकदेवजी का कथन—'झिम झिम बरसै अम्रित धारा' दोनों एक ही बात है। यदि मन उस ब्रह्म-पीयूष को प्राप्त कर जाय, तो विषयों की ओर क्यों दौड़े? यदि विषय-रस से अधिक रस मालूम हो, तो विषय आप ही छूट जाय। जो अमृतधारा को प्राप्त कर सकता है और प्राप्त करके उस तल से नीचे आता है अर्थात् तुरीय अवस्था से पिण्ड में आकर बरतता है, तो उसको उसका ख्याल रहता है। जैसे आप परसाल जो खाए थे, उसका स्वाद अभी तक याद है, उसी तरह तुरीय अवस्था के ब्रह्म-रस को जो प्राप्त करेगा, उसको सदा वह रस याद रहेगा और यहाँ के विषय-रस को कुरस मालूम करेगा। संतों के मत में वह यत्न बताया जाता है, जिससे चौथे तल के हरि-रस को साधक प्राप्त कर सकता है।

पहले जो विषयों से मुड़कर तुरीय पर अवस्थित होता है, उसको हरि-रस मिलता है। तुरीय अवस्था में जानेवाले के लिए विषय-रस कुछ मूल्य नहीं रखता। तुरीय अवस्था के रस का विस्मरण नहीं होने के कारण संसार के विषय का रस तुच्छ-से-तुच्छ हो जाता है। यदि ऐसा नहीं होता, तो आज तक कोई संत-महात्मा नहीं होते। इसलिए नाम भजन करो। आपलोगों ने संत कबीर साहब के वचन में सुना—'अजर अमर एक नाम है, सुमिरन जो आवै।' नाम शब्द होता है। शब्द नहीं, तो नाम नहीं। जिस शब्द से जिस किसी पदार्थ या जिस किसी व्यक्ति की पहचान होती है, वह शब्द उस पदार्थ या व्यक्ति का नाम कहलाता है और वह उसका नामी होता है। यह शब्द ऐसा होता है, जिसको आप वर्णों में लिख सकते हैं। इसलिए यह वर्णात्मक शब्द है। यथा—रामनाम, शिवनाम आदि सब वर्णात्मक शब्द हैं।

शब्द केवल वर्णात्मक ही नहीं, ध्वन्यात्मक भी होते हैं। पाठशाला में भी लड़के सार्थक और निरर्थक शब्द पढ़ते हैं। सार्थक का अर्थ होता है—वह वर्णात्मक है और दूसरा है बिना अर्थ का, वह ध्वन्यात्मक है। निरर्थक का अर्थ बेकाम का नहीं। परंतु वह बहुत महत्त्व रखता है। अर्थ नहीं होता, किंतु महत्त्व वर्णात्मक से विशेष है। किसी विशेष गवैये को मँगाइए, तो आप देखेंगे कि एक

भजन के टुकड़े को गाने में ही वह कितना समय लगाता है और आप पर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, इस बात को सर्वसाधारण नहीं जानते; विशेष बुद्धिमान जानते हैं।

एक वकील वर्णात्मक शब्द को बना-बनाकर बहस करके जन्मभर में जितनी कमाई कर सकते हैं, उतनी कमाई तानसेन ऐसे गवैये के एक ही भजन में हो जाएगी।

वर्णात्मक से ध्वन्यात्मक का महत्त्व विशेष होता है। वर्णात्मक शब्द से दीपक नहीं जल सकता; किंतु ध्वन्यात्मक राग से दीपक भी जल जाता है। तानसेन ने दीपक जलाया था, प्रसिद्ध है। उसका गला दीपक राग के गाने से जल गया था, तो दो महिलाओं ने मेघ राग गाकर ठीक कर दिया।

ध्वनि बहुत बड़ी बात है। भीष्म ने प्रतिज्ञा की थी कि वे पाँचो तीरों से पाँचों पाण्डवों को मारेंगे। पाँचो पाण्डव महादुःखी हुए। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—सोचो मत, इसके लिए उपाय करो। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को संग लेकर दुर्योधन के पास गए और भगवान के निर्देशानुसार अर्जुन ने दुर्योधन से उसका मुकुट माँग लिया और भीष्म के पास जाकर दुर्योधन के स्वर में उच्चारण करके उन वाणों को माँगा। अर्जुन का रूप दुर्योधन से मिलता-जुलता था। भीष्म ने दुर्योधन जानकर अर्जुन को पाँचो वाण दे दिए। इस प्रकार पाँचो पाण्डवों के प्राण बच गए।

आंतरिक ध्वन्यात्मक शब्द सुनने के लिए कान बंद करो। सदा आवाज होती है, वह सुनने में आएगी। बाजे-गाजे की आवाज ध्वन्यात्मक है; किंतु आहत है। वर्णात्मक शब्दों में जैसे परमात्मा का नाम है, वैसे ही ध्वन्यात्मक में भी है। वर्णात्मक शब्द परमात्मा की ओर झुकाता है, ध्वन्यात्मक शब्द निर्मल चेतन की ओर खिंचकर परमात्मा से मिला देता है। हमलोग बोलते हैं, तो शब्द होता है; नहीं बोलते हैं, तो शब्द नहीं होता है, ऐसा नहीं। जबतक आकाश है, तबतक शब्द रहता है। स्थूल आकाश जबतक है, तबतक स्थूल शब्द रहेगा। यह शब्द अजर अमर नहीं है। संत कबीर साहब 'अजर अमर' शब्द के लिए कहते हैं कि उस शब्द को कैसे जपोगे? तो कहते हैं कि बिना मुँह के जपो। अपनी सुरत को उलटाओ, तब 'अजर अमर नाम' को पाओगे।

अपने अंदर पश्चिम की ओर जाने को कहा। अपने अंदर में चारो दिशाओं को संतों ने माना है। पूर्व का अर्थ है पहले। पहले अंधकार है, यह पूर्व है। उसके उलटे पश्चिम है। अंधकार का उलटा प्रकाश होता है। संत कबीर साहब पश्चिम जाने के लिए कहते हैं। अर्थात् प्रकाश में जाने के लिए कहते हैं; वहाँ पर नाम प्राप्त करने के लिए कहा। इसी को गुरु नानकदेवजी महाराज ने कहा—

सुमति पाए नाम धिआए, गुरुमुखि होए मेला जीउ।

संतों ने वर्णात्मक नाम का जप और ध्वन्यात्मक नाम का ध्यान करने के लिए कहा। वर्णात्मक शब्द के जप से स्थिरता आती है—

नाम जपत स्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत सबद एकै भया, जल ही ह्वैगा मीन।।

सुरत-शब्द-योग का जो अभ्यास करता है, वह शरीरस्थ होने की दशा को छोड़कर ऊपर उठता है। जैसे मछली पानी में पानी को भोगती हुई रहती है, उसी तरह जीव शरीर में रहकर शरीर के सुख-दुःख को भोगता है। किंतु जो ध्वन्यात्मक शब्द का ध्यान करता है, वह शरीर से ऊपर उठकर ब्रह्म-रस को प्राप्त कर ऐसा मग्न हो जाता है कि संसार के विषय उसके लिए तुच्छ-से-तुच्छ हो जाते हैं। इसी ध्वन्यात्मक नाम का भजन करने के लिए संतों ने कहा।

लोग संतों की वाणी की गहराई को नहीं

जान पाते, इसीलिए उन्हें छोड़ देते हैं, जिस हेतु उससे जो लाभ होना चाहिए, उससे वञ्चित रहते हैं। संतमत ऐसा नहीं कहता कि भक्ति के मोटे-मोटे कर्मों को करो ही नहीं, उसी को बराबर करते रहो; बल्कि ऐसा कहते हैं कि पहले मोटे-मोटे कर्मों को करो, फिर उससे सूक्ष्म कर्मों में भी आ जाओ। श्रीमद्भागवत में प्राणमय, मनोमय और इन्द्रियमय—तीन प्रकार के शब्द बताए गए हैं। प्राणमय शब्द को पकड़ोगे, तो प्राणमय शब्द में पिता को पाओगे। इसी का ध्यान अजर-अमर नाम का ध्यान है। यदि मोटी-मोटी भक्ति से ही काम चल जाता, तो गोस्वामीजी ऐसा क्यों लिखते—'रघुपति भगति करत कठिनाई।' रामायण में 'रघुपति भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सुहाई' ऐसा लिखा है। वहाँ सुखदायी और यहाँ कठिनाई ऐसी बात क्यों? तो गोस्वामीजी कहते हैं—कहने में सुगम है, किंतु करनी अपार है। इसे वही जानता है, जिससे बन आया है। सफरी मछली जल की धारा में भाठे से सिरे की ओर चढ़ जाती है; किन्तु हाथी नहीं चढ़ सकता। जबतक मन फैला हुआ है, तबतक हाथी-रूप है और जब उसका सिमटाव होता है, तब मछली-रूप होकर ऊपर उठेगा।

जड़-चेतन की फेंट बालू-चीनी का मिलाप है। जो अपने को सूक्ष्म चींटी बनाता है, वही चेतन रूपी चीनी को चुन लेता है। यह उससे होता है, जो सब दृश्यों को समेटकर अपने अंदर में प्रवेश करता है। उस समय आप सोचेंगे भी नहीं और संसार का भी ज्ञान नहीं रहेगा। इसी के लिए गोस्वामीजी ने लिखा—

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।

— विनय-पत्रिका

जो अपनी चेतन-धारा को समेटकर अन्दर कर लेता है, वह सब दृश्यों को अपने अंदर देखता है। नींद छोड़कर सो जाता है, वह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में नहीं रहता, तुरीयावस्था में रहता है। वही हरिपद का परम सुख भोगता है। द्वैत-वियोगी यानी अद्वैत होकर।

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

— विनय पत्रिका

नाम जपने के समय नाम जपो और ध्यान की जगह ध्यान भी करो। इस प्रकार संतों की वाणी में नाम की बड़ी महिमा है। संतों से सद्युक्ति प्राप्त करो, रहनी अच्छी रखो।

कहै कबीर निज रहनी सम्हारी। सदा आनंद रहै नर नारी।।

सदाचार का पालन करो, तो संसार में भी प्रतिष्ठा होगी और परमार्थ के लिए भी आप अग्रसर होकर परमात्मा को प्राप्त करेंगे। इसके लिए नित्य सत्संग करो। मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए कि नजदीक-नजदीक ही पुस्तकालय है। पुस्तकालय से लोगों को ज्ञान होता है, ज्ञान का प्रचार होता है। उत्तम-उत्तम ग्रंथों को रखो, ऐसा ग्रंथ नहीं रखो, जिसको पढ़कर लोग विषयी बनें; ऐसी पुस्तकों का संग्रह नहीं करो। अच्छी-अच्छी पुस्तकों का संग्रह करो और संघ बनाकर पढ़ो। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इन छोटे-छोटे देहातों में भी पुस्तकालय है। पुस्तकालय से सत्संग को लाभ होगा और सत्संग से पुस्तकालय को लाभ होगा। पुस्तकालय का अर्थ 'पुस्तक का घर' होता है। पुस्तक के लिए अलग-अलग घर बनाइए। सत्संगालय को धार्मिक दृष्टि से देखिए। इस घर से हमें शिक्षा मिलती है। इस घर के लिए लोगों को तन, मन, धन लगाना चाहिए। सत्संगालय का अंग पुस्तकालय है। इसलिए पुस्तकालय के लिए भी तन, मन, धन दीजिए। H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत ग्राम—नवटोलिया में दिनांक ११.५.१९५४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था

८६. मन-जीवात्मा में इतना मिलाप, जैसे दूध में घी

प्यारे लोगो!

आपलोगों को यह अच्छी तरह जानने में आता होगा कि शरीर से जो कुछ भी काम करते हैं, उसको काम करने के लिए लगानेवाला मन है। मन यदि किसी काम को करने के लिए प्रेरणा नहीं करे तो हाथ, पैर, शरीर आदि कोई काम नहीं कर सकता। मन भीतर में रहता है और सब काम करता रहता है। एक बात और है कि मन ही सब कुछ नहीं है, मन के साथ आप भी हैं अर्थात् जीवात्मा रहता है। आप जीवात्मा हैं, भीतर में रहते हैं। मन के संग जीवात्मा नहीं रहे तो मन कुछ नहीं कर सकता, जैसे इन्द्रियों के साथ मन नहीं रहे तो इन्द्रियाँ कुछ कर नहीं सकतीं। जैसे बाहर में इन्द्रियाँ हैं, वैसे ही भीतर में इन्द्रिय, मन है। कोई कहता है—मेरा मन है। तो वह वैसा ही हुआ जैसे आप कहते हैं—मेरा घर, मेरा शरीर है। घर उसका है, जो उसमें रहता है; वह घर नहीं है। उसी तरह जो कहता है—मेरा पैर, तो वह पैर नहीं है, पैर उसका है। उसी तरह 'मेरा मन' कहनेवाला भी मन नहीं है, वह मन के संग में वहाँ रहता है। मन का काम बाहर-भीतर होता है, किंतु अपना काम क्या है—कुछ मालूम नहीं होता।

मन और जीवात्मा में इतना मिलाप है, जैसे दूध में घी। दूध और घी दोनों एक साथ रहते हैं और दोनों को अलग-अलग भी किया जाता है। जो काम दूध से होता है, वह काम घी से नहीं और जो काम घी से हो सकता है, वह दूध से नहीं होता। उसी तरह मन से जो काम हो सकता है, वह जीवात्मा से नहीं और जो जीवात्मा से हो सकता है, वह मन से नहीं। जीवात्मा सूक्ष्म है।

संसार में दो तरह के पदार्थ हैं—एक सत् और दूसरा असत्। जो विनाश नहीं हो, बदले नहीं, वह सत् है। जो विनाश हो, बदलता रहे, वह असत् है। शरीर कुछ दिनों तक रहता है; किंतु यह बच्चे से जवान, फिर बूढ़ा हो जाता है। कुछ काल शरीर ठहरता है, फिर नहीं रहता है। मन भी एक तरह नहीं रहता। यह सभी जानते हैं। बच्चे में मन कैसा, जवान में कैसा और बूढ़े में कैसा? कभी मन एक तरह का, फिर दूसरी तरह का। जैसे देह में अदल-बदल होता है, वैसे मन में भी अदल-बदल होता है। शरीर जैसे कमजोर और बलवान होता है, उसी तरह मन भी कमजोर और बलवान होता है। जो ज्ञानी है, उनका मन वैसा नहीं बदलता, जैसे साधारण जन का बदलता है। ज्ञानी लोग समझाते हैं कि झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करना चाहिए, तो नहीं करते हैं। किंतु साधारण लोग इन बातों को सोच-समझकर भी संसार की ओर झूक जाते हैं। भोग की ओर मन हो जाता है और वे पाप में गिर जाते हैं। इस प्रकार मन एक तरह नहीं रहता।

दूध से घी निकाला जाता है, तो दूध का दाम कम हो जाता है। जितनी देर में बिना घी का दूध खराब होता है, उतनी जल्दी दूध के साथ घी रहने से नहीं। उसी तरह जब जीवात्मा मन से निकल जाता है, तब मन मर जाता है; किंतु यह ऊँची बात है। इसी प्रकार मन भी असत् है, किंतु जीवात्मा सत् है। शरीर और मन बलवान और कमजोर होते हैं, किंतु जीवात्मा एक तरह रहता है। अपने को जीवात्मा समझो। जबतक कोई अपने को मन समझता है या शरीर को ही अपना कहकर जानता है, तबतक शरीर और संसार का जो मेल

होता है, वही ज्ञान होता है अर्थात् वह शरीर और संसार को ही जानता है। जैसे स्वप्न में शरीर का ज्ञान नहीं रहता, तो संसार का भी ज्ञान नहीं रहता, संसार का भी सरोकार नहीं मालूम होता है। उसी तरह जबतक जीवात्मा मन के साथ है, तबतक इसको अपने का ज्ञान नहीं होता है और जो इससे काम होना चाहिए, वह भी नहीं हो पाता है। मन और इन्द्रियों से जानने योग्य संसार है और केवल जीवात्मा से जानने योग्य परमात्मा है। जबतक जीव संसार के पदार्थों को एकत्रित करने में रहता है, तबतक दुःखी-सुखी होता रहता है। शान्ति नहीं मिलती है। संत लोग कहते हैं—परमात्मा को पहचानोगे तो तुम दुःख-सुख से छूट जाओगे। वह वैसा सुख है, जो मन इन्द्रियों के भोगों से ऊपर है। उसके बाद दुःख नहीं होता। उसको पाकर और कुछ पाना नहीं रहता। उसके पाने से संसार-बंधन से छूटकर मुक्ति पाता है, जन्म-मरण से छूट जाता है। इसी का उपदेश संतों ने दिया। उन्होंने कहा, यदि तुम उसे नहीं प्राप्त करते हो, तो तुम काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों में फँसकर दुःख उठाते रहोगे। इसके लिए 'नेम, धरम, आचार, तप, ज्ञान, जोग, जप, दान' आदि कितना ही करो; किंतु ये रोग नहीं छूटते। इसका मतलब यह नहीं कि नेम, धरम, आचार, तप, ज्ञान, जोग, जप, दान आदि नहीं करो। यह सब काम तो समय-समय पर करना ही पड़ता है। किंतु यह मत समझो कि इन्हीं से सब विकार दूर होंगे। इसके लिए ईश्वर की भक्ति करो। उसको पहचानो। पहले अपने को पहचानो। अपने को पहचानने के लिए नयन से देखते रहो अर्थात् दृष्टि-साधन करो। इसके पहले मूर्ति-ध्यान करो। इसके भी पहले जप करो। जप करने से मूर्ति-ध्यान करने में बल मिलेगा। मूर्ति-ध्यान करने से दृष्टि-साधन में सहायता मिलेगी। जिसकी दृष्टि-साधन क्रिया ठीक-ठीक होती है, उसको अपनी स्थूल देह का भी ज्ञान नहीं रहता है। वह जानता है कि मैं कुछ हूँ और कुछ पा रहा हूँ। इतना ही नहीं है, और भी है। इसके बाद शब्द को पकड़ना है, जो ईश्वर की ध्वनि है। जो इस शब्द को पकड़ता है, उसके बचे और सूक्ष्म, कारण, महाकारण आदि सब शरीर छूट जाएँगे। वह अकेला हो जाएगा और ईश्वर को प्राप्त कर लेगा। इतना मार्ग तय करना है। इसमें बहुत समय लगता है। जो विशेष करते हैं, उनके लिए जल्दी रास्ता तय होता है और जो आहिस्ते-आहिस्ते करते हैं, उनको देर में। इसलिए सब कोई नित्य नियमित रूप से ध्यान अभ्यास कीजिए। धीर-धीरे, होते-होते एक-न-एक दिन उस मंजिल को तय करके अवश्य परम प्रभु परमात्मा को प्राप्त करेंगे। सत्संग से विचार संभलता है और ध्यान के लिए प्रेरणा मिलती है। सत्संग नहीं करने से जो नहीं करने योग्य कर्म है, वह भी करने लगता है। इसलिए प्रतिदिन सत्संग अवश्य करना चाहिए। H

यह प्रवचन अररिया जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मंदिर, सैदाबाद में दिनांक १८.५.१९५४ ई० के सत्संग में हुआ था

८७. ईश्वर को मानिए, उसमें विश्वास कीजिए

प्यारे लोगो!

आपलोगों को बहुत उत्तम शरीर मिला है। इसे पाकर आप साँप, बिच्छू भी बन सकते हैं और देवता भी बन सकते हैं। पाप-कर्म करेंगे, अधर्म कर्म करेंगे तो फिर साँप, बिच्छू बनेंगे और सदाचार का पालन करेंगे; भगवद्भजन करेंगे, पाप नहीं

करेंगे, तो देवता-तुल्य हो जाएँगे। झूठ नहीं बोलें, एक शब्द को छिपा लेने से भी झूठ है। बात मत चुराइए। एक बात से किसी को लाख रुपये मिल जाते हैं और किसी को लाख रुपये की घटी हो जाती है। हिंसा नहीं करें। मन से, वचन से और कर्म से—तीनों प्रकार की हिंसा से बचें। किसी भी नशीली चीज का सेवन न करें। व्यभिचार न करें। यह तो हुआ संसार में कैसे रहेंगे। अब ईश्वर भजन कैसे हो, इसके लिए सुनिए— आप कहेंगे—हम कमाते हैं, खाते हैं, ईश्वर-भजन का क्या काम है? दूसरे कहते हैं—ईश्वर नहीं माने तो नहीं सही, किंतु दुनिया में प्रतिष्ठा से रहो। तो वे कहते हैं—दुनिया में धन से प्रतिष्ठा होती है, तो धन जैसे-तैसे जमा कर लो। तो कोई कहता है—अभी जैसे-तैसे धन जमा कर लो; लेकिन मरने पर नरक जाओगे तब? तब वे कहते हैं—नरक-स्वर्ग कहाँ है? खाओ पियो, धन जमा करो। पाप-पुण्य किसको लगता है? जबतक जियो, सुख से रहो, नहीं तो ऋण लेकर भी घी पियो। मरने पर शरीर जलकर भस्म हो जाता है। यमराज कहाँ है? सब कल्पना है।

किंतु ऐसा मत समझो। ईश्वर और जीवात्मा दोनों हैं। मरोगे तो जीवात्मा अवश्य रहेगा। पाप करोगे तो शरीर छूटने पर नरक देखना पड़ेगा। युधिष्ठिर जरा-सा झूठ बोले थे तो नरक देखना पड़ा था। यहाँ आप देखते हैं कि कोई बच्चा जन्म लेता है तो हृष्ट-पुष्ट और कोई बच्चा दुबला-पतला रोग लिए हुए। कोई धनी के यहाँ जन्म लेता है, तो कोई निर्धन के यहाँ। ऐसा क्यों होता है? इसके लिए पूर्व जन्म का संस्कार मानना पड़ेगा। पूर्व जन्म के कोई दानी पुण्यात्मा होंगे, इसलिए श्रीमान् के यहाँ जन्म लेकर वे बचपन से ही सुखी रहते हैं। पाप-कर्म का भी फल मिलता है। किसी को तो इसी जन्म में उसका फल मिल जाता है।

सिकलीगढ़ धरहरा में एक अंग्रेज रहता था। वह मनुष्य को मनुष्य नहीं समझता था, पशु समझता था। बड़ा बदमाश था, लोगों को बहुत सताता था। कुछ दिनों के बाद वह पागल हो गया। भीख माँगकर खाया। राजदण्ड हुआ। पुलिस उसको खूब पीटती थी। उसी से चाबी लेकर उसी का धन खोल-खोलकर लेता था।

ईश्वर को मानिए, उसमें विश्वास कीजिए। स्वर्ग-नरक है, इसको भी मानिए। कर्म-फल के अनुसार नरक-स्वर्ग और दुःख-सुख भोगना पड़ेगा ही। संसार में तो सुख है ही नहीं। ईश्वर-भजन कीजिए, मोक्ष मिलेगा, तभी सुख है। पहले ईश्वर को जानिए कि स्वरूपतः कैसा है? लोग समझते हैं कि ईश्वर बड़ी सुन्दर देहवाला और सिंहासन पर विराजमान होगा। किंतु असली बात तो यह है कि ईश्वर की पहचान आँख से होने योग्य नहीं है। वह कान से सुनने और नाक से सूँघने योग्य भी नहीं है। त्वचा से स्पर्श होने योग्य नहीं है। वह इन्द्रियों से ऊपर है। शरीर और इन्द्रियों को छोड़कर आप स्वयं रहते हैं, तब अपने से जो पकड़ेंगे, वही ईश्वर है। लेकिन जबतक वह चेतन आत्मा मन, बुद्धि और शरीर इन्द्रियों में रहती है, तबतक पहचान नहीं सकती। जो चेतन आत्मा से जाना-पहचाना जाय, उसके लिए कोशिश कीजिए। उसकी युक्ति गुरु से जानिए। अपने गाँव से आप यहाँ आए हैं। जब आप घर जाने लगेंगे, तो जैसे-जैसे जिस रास्ते से यहाँ आए हैं, यहाँ से उधर जाने में वैसे-वैसे इन सब गाँवों को छोड़ते-छोड़ते अपने गाँव पहुँचेंगे। उसी तरह आप शरीर, इन्द्रिय और मन-बुद्धि में आ गए हैं। इन सबको पार कर वहाँ पहुँचिए, जहाँ से आए हैं।

किसी चीज को समेटिए, तो उसके विपरीत की ओर उसकी गति हो जाती है। इसी तरह जब

यह मन इन्द्रियों की ओर से रोका जाएगा, तो जिधर मन-इन्द्रिय आदि नहीं है, उधर को बढ़ेगा। इसी तरह से जाते-जाते ईश्वर के स्थान पर पहुँचेगा, वहाँ जाकर ईश्वर को पहचानेगा। वह ईश्वर को पहचान कर मुक्ति प्राप्त करेगा। इसके लिए जो जप और ध्यान करने के लिए बतलाया गया है, उसको करते रहिए। जो आदमी पाप में फँसा रहेगा, वह उस ओर नहीं जा सकता है। जिसका मन सत्संग में जाने से कतराता है तो समझिए कि उसका मन पापी है। जिसके मन में लगा रहे कि सत्संग में कब जायँ, कब जायँ तो उससे पाप नहीं होगा। यदि उससे पाप हो भी जाय और वह कह दे कि भाई! मुझसे यह पाप हो गया तो उससे फिर पाप नहीं होगा। जो गलती से झूठ बात आप में आ गयी है, उसको छोड़ दीजिए। अपने को पाप में मत डुबाइए। H

यह प्रवचन अररिया जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मंदिर, सैदाबाद में दिनांक २५.५.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

८८. मछली की देह अधिक पवित्र है या तुम्हारी देह?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जितने लोग हैं, सब डर से काम करते हैं। किसान को होता है कि खेती का काम जिस-जिस समय में जो-जो होता है, उस-उस समय में काम नहीं करने से खेत नहीं उपजेगा। अन्न के लिए वस्त्र के लिए दुःख होगा, किसान को डर है। लोग कहते हैं कि वह स्वतंत्र है, किंतु नहीं, पेट का नौकर है। ठीक समय पर खेती का काम नहीं करने से उसको दुःख होगा, इसी डर से धूप में खेती करता है, पानी में सड़-सड़कर काम करता है।

नौकरीवाले को अपने से ऊपर के हाकिम का डर रहता है कि ठीक से काम नहीं करने से नौकरी से अलग न कर देवे, ऊँचे से नीचे पद पर न दे देवे। लड़के को पिता का डर रहता है, शिक्षक या मौलवी साहब का डर रहता है कि नहीं पढ़ेंगे, तो ये लोग मारेंगे। बड़े होने पर जानते हैं कि ठीक से नहीं पढ़ने पर परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होंगे, लज्जा होगी। किन्तु इसके साथ-साथ यह भी जानना चाहिए कि यह शरीर अवश्य छूटेगा, चाहे कब्र में गड़े या चिता में जले। इसी के लिए संत कबीर साहब कहते हैं—'यह शरीर जल के बुदबुदे (बुलबुले) के समान है।' बच्चे मर गए, जवान मर गए, बूढ़े मर गए। बूढ़े देह से मरते हैं, किंतु उनका मन नहीं मरता।

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार।।
आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल।।
काल करै सो आज कर, आज करै से अब्ब।
पल में परलै होयगा, बहुरि करैगा कब्ब।।

इससे शरीर भी बिगड़ जाता है और धर्म भी बिगड़ जाता है धर्म के बिगड़ने से दुनिया में भी हँसी होती है और दुनिया छोड़ने पर नरक जाना पड़ता है।

साधु-संत जो भोजन करने के लिए बतावें, वह भोजन करो। जितना भोजन ठीक-ठीक पच जाय, उतना भोजन करो। जीभ-स्वाद के लिए धर्म का नाश मत करो। जीभ का स्वाद क्या है? वह तो आदत है, उसको अच्छा लगता है, किन्तु जो नहीं खाता, उसे पसन्द नहीं होता।

हमारे यहाँ दो धर्म हैं—एक धर्म में मांस-मछली

नहीं खाने की बात है और दूसरे धर्म में मांस-मछली खाने की बात है। मांस-मछली खाने में कोई दोष भी लगा सकता है, किंतु नहीं खाने में कोई दोष नहीं लगा सकता। इसलिए जिसमें दोष नहीं लगावे, वही अच्छा है। जो लोग मांस-मछली नहीं खाते हैं, उनको दूसरे लोग जो मांस-मछली खाते हैं, नहीं कहते कि तुम नहीं खाते हो, इसलिए तुमको दोष लगेगा; बल्कि जो नहीं खाता है, वह उसे जो मांस-मछली खाता है, कहता है कि तुमको दोष लगेगा। उसको अधर्मी कहता है। खानेवाले को एक अच्छा कहता है, दूसरा अच्छा नहीं कहता। इसके लिए जिसको अच्छा नहीं लगता, क्यों खाया जाय? मुसलमानों के धर्म में है कि जबतक शगल (साधना-भ्यास) करते रहो, कोई चिकनी चीज नहीं खाओ। मांस-मछली नहीं खाओ। शगल करना एक दो दिन की बात नहीं है। शगल करते-करते सालों लग जाते हैं। जो साल-साल, कई सालों तक नहीं खाएगा, उससे फिर आप ही वह खाना छूट जाएगा। इस तरह उसमें भी मांस-मछली आदि का खाना मना है।

मछली की देह अधिक पवित्र है या तुम्हारी देह? चिड़िया की देह मनुष्य देह से उत्तम नहीं है। इसलिए अपने से नीच शरीर के मांस को अपनी ऊँची और पवित्र देह में डालना ठीक नहीं।

हमा आस्त=सब वही है। हमा अज आस्त—सब उससे है। सब वही है—यह अद्वैतवाद है। सब उससे है—इसमें द्वैतवाद है। हमलोगों के यहाँ अद्वैतवाद है, उसमें है—एक वही है।

मंसूर ने 'अनलहक' कहा था।

जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अंतर नाहिं।
पाला गलि पानी मिला, यों हरिजन हरि माहिं।।

— कबीर साहब

जैसे पाला गलकर पानी हो जाता है, उसी प्रकार ईश्वर से मिल जाने पर एक ही हो जाता है। संत कबीर साहब ने कहा—

बुन्द समानी समुँद में , यह जानै सब कोय ।
समुँद समाना बुन्द में, बूझै बिरला कोय ।।
निरबन्धन बन्धा रहै, बन्धा निरबन्ध होय ।
करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ।।

झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पाँचों पापों को नहीं करने का बंधन रखो। एक ईश्वर पर विश्वास, उसकी प्राप्ति अपने अंदर होगी—इसका दृढ़ निश्चय रखना, गुरु-सेवा, सत्संग और ध्यान; इन पाँचों को करने का बंधन रखो।

कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम।
जब लग संत न सेवई, तब लग सरै न काम।।
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटे, चारो दीरघ रोग।।
अहं अग्नि हिरदे जरै, गुरु से चाहै मान।
तिनको जम न्योता दिया, हो हमरे मेहमान।।

— संत कबीर साहब H

यह प्रवचन श्रीसंतमत सत्संग मंदिर पलासी, अररिया में दिनांक २८.५.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था

८९. संसार में पनडुब्बी चिड़िया की तरह रहो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जहाँ कहीं कभी नहीं गए हो, राजाज्ञा हो कि वहाँ जाना पड़ेगा; किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी, उस स्थान पर जाना होगा, तब तुम्हारे मन में कैसा दुःख होगा! नहीं मालूम कि कहाँ ले जाया जाएगा, वह स्थान कैसा है, दुःख-सुख वहाँ के

कैसे हैं? परन्तु जाना अवश्य होगा। बिना गए कल्याण नहीं होगा। जिस क्षण के लिए आज्ञा हो जाएगी, उस क्षण से कुछ आगा-पीछा नहीं होगा; कुछ मुरौवत (लिहाज) नहीं होगा।

चलना है रहना नहीं, चलना बिस्वावीस।
सहजो तनिक सुहाग पै, कहा गुथावै सीस॥

संत लोग कहते हैं कि इस आज्ञा में अदल-बदल नहीं हो सकता। किंतु तुम यदि कोशिश करो तो जिस स्थान में तुम जाओगे, उसको जीवन में देख लोगे। यदि पूरी कोशिश करो, तो उस स्थान में भी जा सकोगे, जहाँ सदा सुख-ही-सुख है, वहाँ से लौटना नहीं होता। सब लोगों के घर में कोई-न-कोई शरीर छोड़ते हैं। ऐसा कोई घर नहीं, जिस घर में किसी ने शरीर न छोड़ा हो। जो जाता है, वह जानता नहीं कि कहाँ जाना होगा; किंतु जाना होता है। सुख-दुःख मिला हुआ भी स्थान है और कहीं दुःख-ही-दुःख का भी स्थान है, ये ही स्वर्ग-बैकुण्ठादि स्थान हैं। वहाँ का भोग समाप्त होने से या किसी कारण के उपस्थित हो जाने से बहुत शीघ्र ही इस मृत्युलोक के किसी स्थान पर जन्म हो जाएगा।

राजा ययाति बड़े प्रभावशाली और पुण्यात्मा थे। किसी कारण इन्द्र लुके (छिपे) हुए थे। इन्द्रासन खाली था, तो विचार हुआ कि मृत्युलोक में वैसा कोई है, जिसे इस आसन पर बैठाया जाय, जो इन्द्र जैसा ठीक-ठीक प्रबंध कर सके। ययाति को ही चुना गया। ययाति गए और उस आसन पर विराजे। यदि ययाति ठीक तरह से रह सकते, तो जबतक इन्द्र नहीं आते, तबतक वहाँ रहते; किंतु ययाति को घमण्ड हो गया। वहाँ लोगों को वे अपमानित करते थे। सभी ने विचारा कि इनको नीचे गिराना चाहिए, इसलिए उनके सामने उनके पुण्य की चर्चा करो। वे अपने मुख से पुण्य की चर्चा करेंगे और नीचे गिर जाएँगे। ऐसा ही हुआ, घमण्ड में आकर अपने पुण्य का वर्णन करने लग गए और वहाँ से नीचे गिरा दिए गए। 'सुर पुर ते जनु खसेउ ययाती।' उनके गिरते समय मुँह से बहुत लार निकली, वही कर्मनाशा नदी है। उनके कुल का कोई तपस्या कर रहा था। उसने समझा कि मेरे कुल के श्रेष्ठ आदमी नीचे गिर रहे हैं। इसलिए उसने कहा कि ठहर जाइए, तो वे वहीं ठहर गए।

भगवान विष्णु के पार्षद जय-विजय ने सनक, सनंदन आदि को द्वार पर रोक दिया, जिस कारण वे क्रोधित हुए और शाप दिया—मृत्युलोक में जाकर राक्षस होकर जन्म लो। वे बहुत डरे और विनती की, तब उन सनक, सनंदन आदि ऋषियों ने कहा—'भगवान से प्रार्थना करना, वे तुम्हारा उद्धार करेंगे।' भगवान के पास वे बहुत गिड़गिड़ाए। भगवान ने कहा—'मैं तुम्हारे लिए अवतार लूँगा और अपने हथियार से उद्धार करूँगा। चाहे बड़ी अवधि ही क्यों न हो, किंतु उनके समाप्त होने पर फिर यहाँ जन्म लेना पड़ेगा।'

गोलोक में राधाजी ने कृष्ण के सखा श्रीदामा को शाप दिया। श्रीदामाजी ने भी राधाजी को शाप दिया। श्रीदामाजी राक्षस हो गए और राधाजी को इस पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ा। श्रीदामाजी राक्षस हुए और भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें मारा। इस प्रकार कितने इतिहास हैं। ऊँचे-से-ऊँचे लोक से भी गिरना होता है। स्वर्गादि जो पितृलोक हैं, वहाँ के भोग समाप्त होने पर फिर यहाँ जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार कहाँ जाना होगा, ठिकाना नहीं। निरापद तो कोई भी लोक नहीं। संतों ने कहा—निरापद स्थान भी है, जहाँ जाकर कोई आपदा नहीं रहती। संतों की आज्ञा के अनुकूल यदि तुम बरतो (आचरण करो) यानी भक्ति करना आरंभ करो

और पूरी भक्ति नहीं कर सको, तो शरीर छूटने पर फिर तुम स्वर्ग स्थान को पाओगे और वहाँ से लौट आकर फिर ईश्वर का भजन करोगे और उस निरापद पद को भी प्राप्त कर लोगे। किंतु तुम उसका ख्याल नहीं करते और निडर होकर बैठे हुए हो। कब तुम्हें काल की ठोकर लगेगी और तुम चले जाओगे, ठिकाना नहीं। इसलिए चेतो और ईश्वर-भजन करो। यह शरीर पानी का बुदबुदा है, कब फूट जाएगा, ठिकाना नहीं।

नहिं बालक नहिं यौवने, नहिं बिरधी कछु बंध।
वह औसर नहिं जानिये, जब आय पड़े जम फंद।।

बालकपन में मरोगे कि जवानी में मरोगे कि बूढ़े होकर मरोगे, ठिकाना नहीं। यम के फन्दे में कब पड़ोगे, तुम नहीं जानते। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—

प्रयाण काले मनसा चलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

अर्थात् वह भक्तियुक्त पुरुष अंतकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी तरह स्थापित करके, फिर निश्छल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य परमपुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

जो कोई इसके दर्शन का हिस्सक (आदत) लगा लेता है और मरने के समय उसी ओर मन लगाता है, तो उसी परम पुरुष को प्राप्त करता है। 'उस' शब्द यहाँ पर अणु-से-अणु तमस से परे के लिए कहा गया है। यह बिल्कुल निरापद तो नहीं है; किंतु इसको जो प्राप्त करके शरीर छोड़ेगा, तब जो फिर इस संसार में आएगा, तो इस संस्कार से प्रेरित होकर फिर भजन करेगा और निरापद स्थान को प्राप्त कर लेगा। इसलिए संसार में पनडुब्बी चिड़िया की तरह रहो।

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणै।
सुरति सबदि भवसागरु तरिऐ नानक नामु बखाणै।।

हमलोगों का दृष्टियोग-साधन अणोरणीयान् को पकड़ने के लिए है। अनहद नाद का ध्यान सुरत-शब्द-योग का अभ्यास करना है। इसके आगे अनाहत नाद है। अनाहत नाद से ही ईश्वर की पहचान होगी, परंतु पहले उस अणोरणीयान् का ध्यान किए बिना अनहद नाद को पकड़ना नहीं हो सकता। इसलिए पहले विन्दु को पकड़ो, फिर अनहद शब्द को सुनो। पापी हृदय में भजन नहीं हो सकता; झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार आदि पाप बुद्धि से भजन नहीं कर सकते।

तुलसी दया न छोड़िये, जब लगि घट में प्राण।

हमारा किसी ने अपकार किया है, हम उसका अपकार नहीं करें। जिसने अपकर्म किया—पाप किया, वह दया का पात्र होगा, उसपर दया करो, उसका अपकार मत करो। अभी कुछ दिन जियोगे, किंतु जीव का जीवन अनंत है। इसलिए अनंत जीवन के लिए पाप-कर्म क्यों करो, जो दुःख-ही-दुःख भोगते रहो। इसलिए पाप-कर्म छोड़ो और भजन करो। H

यह प्रवचन श्रीसंतमत सत्संग मंदिर सिकलीगढ़ धरहरा, पूर्णियाँ में दिनांक ६.६.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

९०. यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहीं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जब किसी प्रकार का दुःख नहीं ज्ञात होता है, तब लोग अपना कल्याण मानते हैं; परंतु यह संसार ऐसा है कि ऐसा हो ही नहीं सकता। सांसारिक पदार्थों को भोगते हुए, उसमें रहते हुए क्लेश नहीं हो, क्लेश से छूटे हों, हो नहीं सकता।

इसको संतों ने समझा और कहा कि इसमें कल्याण नहीं, कल्याण परमात्मा में खोजो। परमात्म-प्राप्ति का उपाय खोजो। जबतक प्रभु को न पा लो, तबतक जिस तरह हो परमात्म-प्राप्ति का उपाय करो। इसके लिए संतों ने प्रेम करने के लिए कहा। प्रेम ही भक्ति में प्रधान है। प्रेम से ही भक्ति होती है। बिना प्रेम के भक्ति या सेवा नहीं होती। दिखलावे के लिए कोई सेवा करे, तो वह भक्ति में दाखिल नहीं है। आपलोगों ने सुना—

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भूइँ धरै, तब पैठे घर माहिं।।
सीस उतारै भूइँ धरै, ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय सो जाव।।

भक्ति प्रेम का घर है। प्रेममय घर नहीं है, तो भक्ति नहीं। 'खाला' माता की बहन को कहते हैं। मौसी बहुत प्यार करती है। मौसी के घर में जैसे आप प्यार किए जाते हैं, वह वैसा घर नहीं है। इसमें आपही को प्यार करना होगा। किसी भी संत की वाणी में पढ़िए, तो ईश्वर की भक्ति करने कहते हैं। और प्रेम करने कहते हैं। सिर उतारकर भूमि पर रखने कहा। फिर ऐसा भी कहा कि कटे सिर पर फिर पैर रख दो, तब इस घर में पैठोगे; इतना ऊँचा वह घर है। 'सिर' का अर्थ है—बड़प्पन, मर्यादा, अहंकार, बुद्धि। इसको उतारो, गोया इस पर पैर रख दो। अहंकारी मत बनो। अहंकारी से प्रेम नहीं किया जाता। कोई किसी का प्रेमी नहीं हो सकता, जो उसके यहाँ जाकर अहंकारी बने। मित्र बनने के लिए अहंकार को छोड़ना होता है। दो लोहों को जोड़ना होता है, तो आग में तपाकर लोहे से खूब पीटते हैं, तब ऐसा जुड़ जाता है कि संधि नहीं दिखलाई पड़ती। ऐसा हो, तब दोनों में मैत्री होगी। किंतु कच्चा लोहा हो, तो उसको पीटने से पसरता नहीं, ठीक से जुटता नहीं। दो आदमी आपस में मैत्री करने के लिए कड़ाई छोड़ देते हैं। एक छोड़े, दूसरा नहीं छोड़े, तब भी नहीं होगा। यदि किसी को विशेष गरज है कि किसी से प्रेम करूँ, तो इसको बहुत नवना (झुकना) होगा। चाहे वह कितनाहू कड़ा हो, इसके नवते-नवते वह भी मुलायम हो जाएगा। इसी प्रकार ईश्वर से प्रेम करो। ईश्वर को पहले कोई प्रत्यक्ष देखता नहीं, विचार में होता है। प्रत्यक्ष नहीं देखने के कारण मन में होता है कि हम तो प्रेम करते हैं और वह प्रेम करता है कि नहीं। तो वैसे ही बनना होगा, जैसे कोई बड़ा कड़ा हो, उससे प्रेम करना हो तो एक को बहुत नवना होता है, उसी तरह नवना होगा। संतों की वाणी में तो ऐसी बात है कि अव्यक्त परमात्मा व्यक्त भी हो जाता है। इसके लिए ईश्वर के किसी विभूति-रूप का ध्यान करो। जो अपने को सब व्यक्त पदार्थों से हटा लेता है, तो वह अव्यक्त की ओर हो जाता है। यह बहुत बुद्धिगम्य साधन है। इसको बड़े-बड़े ज्ञानी कर सकते हैं। 'बड़े-बड़े ज्ञानी' का अर्थ वेदान्त के केवल पढ़े हुए नहीं, बल्कि उसे आचरण में भी लानेवाले हों। गंगा के बहाव को रोक दीजिए, तो उसकी गति उसके विपरीत की ओर हो जाएगी। जिधर बहाव है, उसको उधर से रोको, तो उससे उलट जाएगा। व्यक्त में आसक्ति है, इससे रोकें तो अव्यक्त की ओर गति हो जाएगी। श्रवण, मनन, अध्ययन बहुत हो, आचरण भी वैसा ही हो, तो वे ज्ञान-साधन में रह सकते हैं। यहाँ भी भक्ति और प्रेम है। ज्ञान तो है और जिधर आसक्ति है, उधर प्रेम है। प्रेम में अहंकार नहीं होता। अहंकारी से प्रेम नहीं होता। जो अपने मान का मर्दन करता है, वही प्रेमी होता है।

बलख बुखारे का बादशाह इब्राहीम संत कबीर साहब के उपदेश से फकीर हो गया था। राजपाट

छोड़कर फकीरी वेश में घूमता था। एक बार का प्रसंग है कि वह अपने बाल बनवाने के लिए नाई के यहाँ गया। नाई बादशाह को पहचान न सका। उसका नियम था कि जो जिस क्रम से उसके पास आता था, उसकी हजामत वह उसी क्रम से बनाता था। नाई ने एक पात्र अपने पास रख रखा था। जिस समय बादशाह वहाँ पहुँचा, उसके पूर्व से ही कई लोग वहाँ पहुँच चुके थे। बादशाह ने उन लोगों को देखकर सोचा कि इतने लोगों की हजामत बनाकर तब हजाम मेरी हजामत बनाएगा। क्यों नहीं, और लोगों से अधिक पैसे हजाम को देकर इन लोगों से पहले ही बाल बनवा लूँ। ऐसा सोचकर बादशाह ने हजाम के पात्र में एक अशर्फी रख दी। हजाम ने उस अशर्फी को उठाकर अपनी जेब में रख लिया। किंतु उसका बाल उस समय नहीं बनाकर जब उसकी बारी आयी, तब बनाया। नाई के इस व्यवहार से बादशाह के मन में दुःख नहीं हुआ, बल्कि खुशी हुई और सोचा कि अपने नियम में नाई पक्का है और मैं कच्चा हूँ। अभी भी मेरे मन में अहंकार भरा हुआ है, इसको दूर करना चाहिए। इसी विचार में वह घूम रहा था।

बादशाह को घर से निकले बहुत दिन हो गए थे। अतः शाहजादा के मन में चिन्ता हुई और उसने अपने पिता की खोज में सिपाही को भेजा। सिपाही को उससे भेंट हुई; किंतु वह उसको पहचान न सका; क्योंकि बादशाह शाही लिवास में नहीं था, बादशाह फकीरी वेश में था। सिपाही ने फकीर से पूछा—'आप बादशाह इब्राहीम को जानते हैं जो कि राजपाट, कुटुम्ब-परिवार; सबको छोड़कर फकीर हो गए हैं? फकीर ने उत्तर दिया—'वह कमबख्त इब्राहीम क्या फकीर बनेगा, वह तो मक्कार है। फकीर का वेश बनाकर घूमता है। उसके मन में अभी तक बादशाही बू निकली नहीं है।' अपने बादशाह की निन्दा सुनकर सिपाही को क्रोध आया और उसने फकीर को खूब पीटा। जब सिपाही चला गया, तब फकीर अपने-आप से कहने लगा—'अब अच्छा हुआ। बादशाही तख्त छोड़ने के बाद भी अभी तक तुममें बादशाहत की बू थी, वह आज निकल गई।'

ईश्वर के प्रेमी में अहंकार नहीं होता। तुम ईश्वर से प्रेम करो, तभी कल्याण होगा। विषयों से प्रेम करके कितना कल्याण हुआ है, सो अपने अपने जान लो। ईश्वर-भक्ति में ईश्वर का ज्ञान होना चाहिए। हमारे देश में ईश्वर के अव्यक्त और व्यक्त दो रूपों का ख्याल है। व्यक्तवालों का ख्याल है कि ईश्वर देखने में बहुत सुन्दर, बहुत बलवान, हमारे जैसा ही हाथ-पैरवाला आदि है। दूसरे अव्यक्तवालों के ख्याल में है कि वह इन्द्रिय-गोचर नहीं है। तीसरे कहते हैं कि वह अव्यक्त एवं व्यक्त दोनों हैं, जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी। गुरु नानक साहब और कबीर साहब ने बेशक अवतारवाद को नहीं माना, किंतु गुरु को माना।

गुरु तो शुद्ध स्वरूप है, शिष तो मानै देह ।
कहै कबीर गुरुदेव से, कैसे बढ़ै सनेह ।।

ईश्वर व्यक्त एवं अव्यक्त—यह ख्याल, ईश्वर अव्यक्त—यह ख्याल और केवल व्यक्त—ये तीन ख्याल हैं। जिस तत्त्व को अव्यक्त कहते हैं, वह परमात्मा का स्वरूप है। वह सर्वव्यापी है, सबमें रहता है। सबके अंदर वही है। सगुण-निर्गुण भाववाले, दोनों को मान्य है कि वह सर्वव्यापी है। संत लोग कहते हैं कि जब वह तमाम रहता है तो सब और सबमें रहनेवाला—ये दो पदार्थ हुए। 'सब' व्यक्त पदार्थ हुआ और सबमें रहनेवाला अव्यक्त पदार्थ हुआ। अव्यक्त पदार्थ है ईश्वर का स्वरूप। व्यक्तरूप के दर्शन से किसी का पूर्ण कल्याण हुआ, ऐसा आज तक किसी इतिहास में नहीं है।

इसके प्रमाण के लिए अठारह पुराण, रामायण, महाभारत, भागवत आदि हैं।

'भागवत' पुराण के अंदर नहीं है, महापुराण है। इन सब ग्रंथों में क्या वर्णन है? एक क्लेश का समय था, वह दूर हुआ। फिर दूसरा आया, वह दूर हुआ। फिर तीसरा आया। इस प्रकार क्लेश का क्रम आता ही रहता है। रावण को विष्णु, ब्रह्मा और शिव का भी दर्शन हुआ था; किंतु जब क्लेश का समय आ गया, तब रोना-पीटना भी क्या, दुःखी हुआ। इसके अलावा रावण एक रूप से अनेक रूप बन सकता था। अनेक राम, अनेक लक्ष्मण, अनेक हनुमान आदि का शरीर भी बना-बनाकर युद्ध में लड़ता था। ऐसी माया भी वह जानता था। श्रीराम के अतिरिक्त सभी योद्धा चकित हो गए। इस तरह शक्तिशाली होते हुए भी वह दुःखी हुआ। अर्जुन को इन्द्र का दर्शन हुआ था, शिव का दर्शन हुआ था और श्रीकृष्ण उनके मित्र ही थे; किंतु फिर भी उसने दुःखों को भोगा। युधिष्ठिर ने धरातल पर और स्वर्ग में जाकर भी कर्मफल को भोगा।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

—रामचरितमानस

इन आँखों से जो कुछ देखिए, वह माया है। इस माया में जो हानि-लाभ, दुःख-सुख का गुण है, वह तो होगा ही। जैसे लवण-समुद्र में रहकर आप कहें कि पानी खारा नहीं लगे, कब संभव है? उसी प्रकार माया में जो गुण है, उससे कैसे छूट सकते हैं? किंतु परमात्मा जो इन्द्रियों से परे है, उसमें ऐसी बात नहीं। उसे इन्द्रियों से नहीं पकड़ सकते हैं, शुद्ध सुरत से पकड़ सकते हैं। वहाँ माया नहीं है, फिर मायिक दुःख-सुख कैसे हो? वहीं कल्याण है। पहले अव्यक्त भाव में नहीं रह सकोगे, तो व्यक्त रूप में ईश्वर का भाव चाहिए, गुरु-रूप में या अवतारी रूप में। कबीर साहब और नानक साहब ने गुरु-रूप को ईश्वर रूप मानने कहा है। आप किसी अवतारी में ही वह भाव रखिए तो ठीक है; किंतु और आगे चलिए, स्थूल से सूक्ष्म की ओर भी चलिए। ईश्वर के सूक्ष्म रूप में आसक्त होइए। श्रीमद्भगवद्गीता बतला देती है कि ईश्वर का अणोरणीयाम् रूप है। उपनिषद् भी अणोरणीयाम् कहती है। इसी को हमलोग विन्दु कहते हैं। यह दर्शन सूक्ष्म-दर्शन है। स्थूल व्यक्त छूट गया, सूक्ष्म व्यक्त उपस्थित हो गया। केवल इतना ही कहकर संतों ने नहीं छोड़ा। विवेकानन्दजी ने कहा—'वह प्रभु अंतर्दृष्टि से ही देखा जाता है।' जब केवल आत्मा ही रहे, तब जो आत्मदृष्टि होती है, उस अंतर-आत्मदृष्टि से परमात्म-दर्शन होता है। आत्मा ही दृष्टिरूप है और आत्मा ही सब ज्ञान को जानती है। केवल चेतन आत्मा हो, तब अंगविहीन आत्मा से परमात्म-स्वरूप की पहचान और प्राप्ति होती है।

अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।

—संत सुन्दरदासजी

अंतर में चलो और अंतर के अन्तिम तह तक चलो। किसी मंत्र का जाप करो। स्थूल मूर्ति का ध्यान करो। दृष्टि-साधन करो। रूपातीत का ध्यान यानी शब्द-ध्यान करो। शब्द की समाप्ति में अव्यक्त की प्राप्ति होती है। यह एक सिलसिला है। इसी का वर्णन सभी संतों ने किया। संसार में व्यावहारिक ज्ञान भी होना चाहिए। इसलिए रामायण से पातिव्रत्य धर्म का पाठ सुनाया गया। वेद में पति-पत्नी कैसे रहो, राज्य-प्रबंध कैसे हो, इसका विशेष वर्णन है। योग, ज्ञान, ध्यान, आध्यात्मिक विषय भी है; किंतु कम। किंतु संसार-प्रबंध बहुत है। मनुस्मृति में पति-पत्नी साथ रहे और पत्नी पति के साथ रहे, इसके लिए भी बहुत वर्णन है; क्योंकि इसमें

गड़बड़ होने से संसार का काम कैसे चलेगा? पति के प्रति कैसा ख्याल होना चाहिए, गोस्वामीजी ने बहुत अच्छा वर्णन किया है। जैसे एक स्त्री को पतिव्रता होना चाहिए, उसी तरह पुरुष को भी एक पत्नीव्रत होना चाहिए श्रीराम की तरह। सीता-वनवास होने पर या सीता पाताल-प्रवेश करने पर भी श्रीराम ने दूसरी शादी नहीं की। यज्ञ में सोने की सीता बनायी गयी थी। आजकल पिता-पुत्र में वैमनस्य है, क्यों? इसी कारण से कि पुत्र के सयाने रहने पर भी पिता दूसरी शादी करते हैं। शाहजहाँ के समय में एक लड़की ने मन-ही-मन एक क्षत्रिय को वरण कर लिया। वह बूढ़ी हो गई, किंतु उसने दूसरे की ओर नहीं देखा। क्षत्रिय भी बूढ़ा होने चला, किंतु विवाह नहीं किया। अंत में शाहजहाँ ने बूढ़े और बूढ़ी की शादी करा दी। यह एक अच्छा नमूना है कि वह बूढ़ी हो गई, किंतु एक वरण करके दूसरे को पतिरूप में नहीं देखा। संसार में कैसे रहो? पति-पत्नी मिलकर रहो, सुख से रहोगे। आगे के सुख के लिए दोनों मिलकर ईश्वर का भजन करो, सुखी होओगे। H

यह प्रवचन श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी, कटिहार में दिनांक १७.७.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

९१. स्तुति, प्रार्थना और उपासना

प्यारे लोगो!

बारंबार का जन्म लेना दुःखकर है। इसलिए संतों ने साग्रह कहा कि इस जन्म-मरण से छूट जाने के लिए ईश्वर का भजन करो। जिस प्रकार कोई भले आदमी किसी के दुःख को देखकर उसको सुख पाने की शिक्षा देते एवं उपाय करते हैं, उसी प्रकार संतों ने संसार के लोगों को दुखिया देखकर ईश्वर की भक्ति करने के लिए बताया। ईश्वर की भक्ति में केवल तीन बातों को बताया गया—स्तुति, प्रार्थना और उपासना। स्तुति कहते हैं यशगान को। अपने उपकारक का गुणगान करना स्तुति है। ईश्वर ने माता के गर्भ-काल से ही सबों की रक्षा की है। जन्म लेने से पूर्व ही माता के पास दूध का भण्डार देना, यह ईश्वर की दया है। हमलोग हर घड़ी, हर समय, हर जगह ईश्वर से अपने को उपकृत पाते हैं। ऐसे परम उपकारक परम प्रभु परमात्मा का यशगान नहीं करना कृतघ्नता है।

प्रार्थना कहते हैं, माँग को। ईश्वर से क्या माँगें? ईश्वर से ईश्वर को माँगो। जब ईश्वर की प्राप्ति होगी, तो कोई माँग नहीं रहेगी। इसलिए ईश्वर की प्रार्थना करो। ईश्वर के पास जाने के लिए भजन करना, उपासना है। संतों की शिक्षा के अनुकूल गुरु महाराज ने हमलोगों को तीनों प्रकार की शिक्षा दी। त्रयकाल संध्या करने बताया—ब्राह्ममुहूर्त्त में, दिन में स्नान के बाद और सायंकाल। इन तीनों समयों में अबाधित रूप से उपासना करो। वह कर्म पाप है, जो ईश्वर-भक्ति में विघ्न डाले। इसलिए संतों ने कहा—झूठ मत बोलो, चोरी नहीं करो, व्यभिचार मत करो। नशाओं का सेवन नहीं करो और हिंसा मत करो। मत्स्य-मांस का भक्षण मत करो।

जैसे हाथी-घोड़े को सिखाकर लोग उनपर सवारी करते हैं। उसी प्रकार तुम अपने को सिखाओ, संयत में रखो अपने को। यदि तुम संयत में रखोगे, तो अपने पर ही अपनी सवारी द्वारा परमात्मा तक पहुँचोगे। भजन में जप, ध्यान दो ही बातें हैं। जप में वाचिक, उपांशु और मानस; तीन प्रकार के होते

हैं। बोल-बोलकर जप करना वाचिक जप है। इससे श्रेष्ठ जप है उपांशु जप। उपांशु जप में केवल होठ हिलते हैं। उसकी आवाज केवल अपने सुन सकते हैं। मानस जप—जपों का राजा है। यह केवल मन से ही जपा जाता है। वाचिक और उपांशु से हजार गुणा श्रेष्ठ है मानस जप। मानस जप एक प्रकार से ध्यान ही है। तीनों में विशेष मानस जप है। यह सब जपों से श्रेष्ठ है। इसके बाद गुरु-मूर्ति का ध्यान है। जैसा कि संत कबीर साहब ने कहा—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

स्थूल ध्यान के बाद सूक्ष्म ध्यान करो। सूक्ष्म ध्यान के लिए कबीर साहब ने कहा—

गगन मण्डल के बीच में, तहवाँ झलके नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर।।
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय।।
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अंधेरी मिटि गई, बाजे अनहद तूर।।

तथा बाबा नानक के वचन में भी आया है—

तारा चड़िया लंमा किउ नदरि निहालिआ राम।
सेवक पूर करंमा सतिगुरसबदि दिखालिआ राम।
गुरु सबदि दिखालिआ सचु समालिआ
अहिनिसि देखि विचारिआ।
धावतु पंच रहे घरु जाणिआ कामु क्रोध विषु मारिआ।
अंतरि जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा।
नानक हउमै मारि पतीणे तारा चड़िया लंमा।।

और श्रीमद्भगवद्गीता के अनुकूल अणोरणीयाम् प्रत्यक्ष हो जाता है। इसी अणोरणीयाम् को उपनिषद् में परम विन्दु कहा है—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

अर्थात् परम विन्दु ही बीजाक्षर है; उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अनाश ब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है।

इस विन्दु को पकड़कर नाद को ग्रहण करके परमात्मा तक पहुँचो। नाद यानी शब्द तीन प्रकार के होते हैं—प्राणमय, इन्द्रियमय, मनोमय। प्राणमय शब्द ध्वन्यात्मक है। जो सूक्ष्म ध्यान में प्रकट होता है। मुँह से कहना, कान से सुनना इन्द्रियमय शब्द है। इसके लिए गुरु से जानो कि किस शब्द का जप करेंगे। फिर इसको मन ही मन जपना मनोमय शब्द है।

नित्य इस विषय को सुनिए। सुनने से इस ओर प्रेरण होता है। इसलिए नित्य सत्संग करो। सत्संग से ही लोग ईश्वर-भजन करते हैं। सत्संग से जितना लाभ होता है, उससे विशेष कोई लाभ नहीं।

किसी एक खास उपासना या सम्प्रदाय को श्रेष्ठ कहना, दूसरे को न्यून समझना गलत बात है। जो जिस सम्प्रदाय में हैं, उसमें जो उपासना है, वह करें। किसी को नीच, किसी को ऊँच कहना हमारे गुरु महाराज (बाबा देवी साहब, मुरादाबाद) के ज्ञान में पाप है। किसी सम्प्रदाय से लड़ाई-झगड़ा मत करो। सभी मिलकर रहो। ईश्वर का भजन करो। सभी संतों ने सदाचार पालन करने कहा, ध्यान करने कहा और सत्संग करने कहा। इन तीनों को नित्य किया कीजिए। n

यह प्रवचन कटिहार नगर स्थित श्रीसंतमत सत्संग मंदिर में दिनांक २६.८.१९५४ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

९२. संगत ही जरि जाय न चरचा नाम की

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जैसे प्रत्येक जाप करने की माला में सुमेरु होता है, वैसे ही संसार में सुमेरु पर्वत सबसे ऊँचा है। उसी तरह धर्मों में सुमेरु ईश्वर की मान्यता है। ईश्वर की मान्यता को हटा दो तो धर्म उथल-पुथल हो जाएगा। धर्म मिट जाएगा। किसी भी धर्म में जहाँ ईश्वर की मान्यता नहीं है, वहाँ धर्म-भाव अवश्य डगमग रहेगा। संतों में उसकी मान्यता बहुत बड़ी है। संत कबीर साहब कहते हैं—

संगत ही जरि जाय, न चरचा नाम की ।
दूलह बिना बारात, कहो किस काम की ।।

ईश्वर की मान्यता को केवल कहा ही नहीं है कि मान लो और बुद्धि से कुछ काम मत लो। बुद्धिगम्य बात यह है कि सोचने-विचारनेवाले जान सकते हैं और निर्णय कर सकते हैं कि इस विश्व का आदि तत्त्व अवश्य है। वह आदि तत्त्व ऐसा नहीं कि थोड़ा ही हो, व्यापक न हो। जो व्यापक नहीं होगा, थोड़ा ही होगा अपना तल थोड़ी दूर में समाप्त कर लेता है। तो दूसरे कहेंगे कि उस तल के बाद में क्या है? इस प्रकार कम समझी के साथ संतों ने नहीं कहा है। उन्होंने कहा है जैसे संत बाबा नानक के वचनों में है—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।

अपार शब्द का व्यवहार किया। उपनिषद् वाक्यों में भी है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

वह ऐसा है जैसा वायु प्रत्येक के अन्दर भी है और बाहर भी है। सबके अंदर और सबके बाहर के तत्त्व पर सोचने से अपार तत्त्व हो जाता है। वह आदि तत्त्व अनादि-अनंत है। ऐसा विचार में भी निर्णय होता है। जो स्वरूपतः अनादि-अपरिमित है तो उसकी शक्ति भी अपार अपरिमित हो तो क्या संदेह है? अपरिमित, शक्तियुक्त, आदि और अनादि भी। सबसे पहले का इसलिए आदि और उसका कहीं कभी आदि नहीं—इसलिए अनादि। उसको सर्वेश्वर कुल्ल मालिक मानते हैं। इस ईश्वर का ज्ञान देते हुए संतों ने कहा कि उसका दर्शन आँख से नहीं कर सकते। उसे हाथ से नहीं पकड़ सकते। वह इन्द्रियों के ज्ञान से परे है, इसलिए 'अगम अगोचर' शब्द कहा। यह कह कर उन्होंने कहा—तुम अपने शरीर और इन्द्रियों से भिन्न पदार्थ अपने शरीर के अंदर रहते हो। इन्द्रियों को छोड़कर तुम क्या कर सकते हो, क्या पहचान सकते हो, इसको नहीं जानते हो। तुम्हारा काम ईश्वर की पहचान करना है। इन्द्रियों से ईश्वर की पहचान करना चाहो तो यह ज्ञान अपूर्ण है। प्रेममय गाना को गाना, उसके विचार में तल्लीन होना, केवल इतना ही बस नहीं है। आत्मज्ञान को विचार से विचार लो, सुन लो, समझ लो; किंतु कहोगे कि पहचान नहीं हुई। जाना, किंतु पहचाना नहीं। तुलसी साहब का आदेश है—

हिय नैन सैन सुचैन सुंदरि साजि स्रुति पिउ पै चली।

पिय के पास चलो। चलने के लिए अंतर-दृष्टि का सहारा लो। सहारा कैसे लिया जाए? केवल ख्याली पोलाव नहीं है, जिससे पेट नहीं भरता। यह कैसे होता है? यह गुरुगम्य है। जैसे कोई महिला अपने रूप को बनाती है और पति से

मिलने के लिए जाती है, उसी प्रकार जीवात्मा अपने को अंतर-दृष्टि से सजाकर ईश्वर से मिलने के लिए जाती है और इसकी युक्ति गुरु से प्राप्त होती है। अन्न-अन्न कितनाहू कहो, किंतु बिना भोजन किए पेट नहीं भरता। इसी तरह ज्ञान की बातें कितनी ही कहो, इससे ज्ञान के पद तक पहुँचा नहीं जाता और न संतुष्टि होती है। जो ईश्वर सर्वव्यापी है, उनको पहचानने के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं, यदि ऐसा कोई कहे तो वे सज्जन अपने हृदय पर हाथ रखकर कहें 'सर्वेश्वर-सर्वेश्वर कहते-कहते कभी उनको प्रत्यक्ष हुआ?' मिट्टी में पानी अवश्य है, किंतु बिना खोदे नहीं मिलता। मिट्टी खोदते-खोदते पानी तक जाओ, तभी पानी पाओगे। उसी तरह तुम अपने अंदर धँसो तो सर्वेश्वर को पाओगे। इसी को 'सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर औरु अक्षर पार में। निर्गुण सगुण के पार में......।।' वाले भजन में कहा गया है। किसी सज्जन ने मुझसे कहा—'सब पार में ही है, इधर नहीं है?' मैंने कहा—'इधर भी है, किंतु उसे पहचान नहीं सकते। उधर अर्थात् मायिक आवरणों से पार जाकर ही पहचान करेंगे।' ईश्वर को पार नहीं किया जाता। सृष्टि के तत्त्वों को जिधर पार करो (उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम) उधर ही मिल जाएँगे। इन तत्त्वों को पार करना ही कठिन मसला है। मेरे सामने सृष्टि के तत्त्व हमेशा रहते हैं। इसीलिए उपनिषद् में है जिस इस (देशकालाविच्छिन्न वस्तु) की लोक उपासना करता है, वह ब्रह्म नहीं है।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धिनेदं यदिदमुपासते।।

—केनोपनिषद्

यह जो भूतल है, एक महान टापू है। कई महादेश हैं, सब मिलाकर महान टापू है। इन सबको जिधर पार करो, उधर ही जल है। उसी तरह सृष्टि के तत्त्वों को जिधर पार करो, उधर ही ईश्वर है। ईश्वर का स्वरूप और उसका ज्ञान ऐसा देकर संतों ने कहा है—ईश्वर का भजन करो। भजन वही है, जिससे सृष्टि के सब तत्त्वों को पारकर ईश्वर को पहचाना जा सके। इसी को हमलोग समझते, सोचते और विचारते हैं। मायिक तत्त्वों से ही मनुष्य-पिण्ड बना है। जिसमें सतगुरु बाबा देवी साहब ने चौदह दर्जे बताए हैं। मूलाधार से आज्ञाचक्र तक छह और उसके ऊपर आठ दर्जे मानते हैं। इन चौदहों दर्जे में आप चलें तो धर्म की सचाई मापने में आ जाएगी। उन्होंने कोई खास किताब नहीं लिखी। तुलसी साहब की घटरामायण उन्होंने छपवायी, उसकी भूमिका में यह लिखा है। हमलोगों को चाहिए कि ईश्वर की उपासना अंतर्मुख होकर करें। उपनिषद् में बड़ा अच्छा लिखा है—

ना विरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः।
ना शान्तो मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।।

—कठोपनिषद्

जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं और जिसका चित्त असमाहित या अशान्त है, वह इसे आत्मज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है। पाप करनेवाला विषयों में लसका हुआ रहता है। जो अपने को पापों से छुड़ावे, वही उसको पा सकता है। पापों से छूटने के लिए संतों ने कहा है—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार मत करो। इनसे छूटने की ताकत आपमें तब होगी, जब आप इनसे बचने के लिए कोशिश करेंगे और आप की चढ़ाई ऊपर होगी। इन दोनों प्रकारों की कोशिश होनी चाहिए। इसलिए 'नाम का तेल सुरत की बाती, ब्रह्मअगिन उद्गारु रे।' आँख बंदकर देखो और सोचो कि मैं कहाँ हूँ? आपको उत्तर आवेगा—मैं अंधकार में हूँ। इसमें क्या मिलेगा? अंधकार में क्या मिलेगा? भगवान बुद्ध ने कहा—'अंधकारेन ओनद्धा

प्रदीपं न गवेस्सथ।' अंधकार में पड़े हुए तुम प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते? कोई कहे मैं तो विद्वान हूँ, मैं अंधकार में कहाँ हूँ? तो आप आँख बंदकर देखिए, अंधकार मिलेगा। आपके अंदर प्रकाश का तल भी है। अंधकार के तल को पार कीजिए, फिर प्रकाश का तल मिलेगा। तब 'जगमग जोत निहारु मंदिर में' संत कबीर साहब की यह वाणी चरितार्थ होगी। यह कोई गप की बात नहीं है। सब कोई अभ्यास कीजिए, प्रत्यक्ष होगा।

n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत मुरादाबाद में दिनांक १०.१०.१९५४ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

९३. समस्त प्रकृति मण्डल को जानिए

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

हमलोग संसार में अच्छी हालत में हैं या बुरी हालत में, इसका विचार करना चाहिए। यदि अच्छी हालत में हैं तो ठीक है। यदि बुरी हालत में हैं, तो क्या इसी हालत में रहना अच्छा है? यदि इससे कोई अच्छी हालत है, तो उसमें जाना चाहिए। पशु भी बुरी हालत में रहना नहीं चाहता, हम तो मनुष्य हैं। यह संसार बहुत बड़ा है। जो पढ़े-लिखे हैं, वे जब इस संसार के चित्र को मन में लाते हैं, तो उन्हें बहुत विस्तृत मालूम होता है। संसार के जिस तल पर हमलोग हैं, संसार इतना ही बड़ा नहीं है। हमलोग जिस तल पर रहते हैं, वह स्थूल है। स्थूल तबतक नहीं हो सकता, जबतक इसका पूर्व रूप सूक्ष्म न हो। सूक्ष्म भी तबतक नहीं हो सकता, जबतक उसका पूर्व रूप कारण न हो। इसके, अर्थात् संसार के, स्थूल तल को बहुत लोग भूगोल में पढ़े हैं। किंतु इसके जो दो तल और बच जाते हैं, इसको किसी स्कूल और कॉलेज में किसी ने पढ़ा है? कभी नहीं। यह संसार अनंत नहीं है, किंतु बहुत बड़ा है। तुलसीकृत रामायण में है—

प्रकृति पारप्रभु सब उरबासी।ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

एक अनादि-अनंत अवश्य है। दो अनादि-अनंत कभी नहीं हो सकते। दो अनंत के होने से दोनों की सीमा मिल जाएगी, दोनों सान्त हो जाएँगे। अनंत दो नहीं हो सकते, एक ही होगा। प्रकृति व्याप्य है और परमात्मा व्यापक है। परमात्मा मोहितेकुल्ल और प्रकृति मोहान है। परमात्मा इस प्रकृति को भरकर और भी आगे है। समस्त प्रकृति मण्डल को जानिए कि कितना बड़ा है? समस्त प्रकृति मण्डल का कहीं नक्शा है? कहीं नहीं। गुरु महाराज कहा करते थे—वह नक्शा मनुष्य के अंदर है, उसने किसी छापेखाने का मुँह नहीं देखा है। बहुत बड़ा संसार है, इसलिए उसको समुद्र कहा गया। इसमें हमलोग रहते हैं, क्या हालत है? आप बड़े धनवान हैं तो क्या आप सब तरह सुखी हैं? आपकी प्रतिष्ठा बहुत बड़ी है। आप बहुत विद्वान हैं; तो क्या आप सब तरह सुखी हैं? कभी नहीं। कहेंगे यह दुःख है और वह दुःख है। महात्मा बुद्ध को भी पेचिश का रोग हुआ। वे पहुँचे हुए महात्मा थे। समाधि में सुखी रहते थे। समाधि से उतरने पर दुःखी होते थे, उन्होंने अपने शिष्य आनंद से कहा था। जो पिण्ड में रहता है, स्थूल संसार में रहता है। इससे ऊपर उठता है, तो उन कष्टों से बचता है। उस तल से ऊपर उठकर भगवान बुद्ध रहते थे, तब कष्ट नहीं होता था। इस संसार में कोई सुखी नहीं रह सकता। संत कबीर

साहब ने कहा है—

तन धर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहतु हैं, सबका किया विवेका हो।।
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो।
सुकदेव अचारज दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागी हो।।
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो।
आसा तृस्ना सबको व्यापै, कोई महल न सूना हो।।
साँच कहौं तो कोइ न मानै, झूठ कहा न जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो।।
अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी विपरीती हो।
कहै कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो।।

तुलसी साहब को लोग 'साहब' कहते थे, वे अपने को 'दास' कहते थे। 'साहब' अरबी शब्द है। इसका अर्थ है— प्रभु, स्वामी आदि। तुलसी साहब ने कहा है—

आली देख लेख लखाव मधुकर भरम भौ भटकत रही।
दिन तीनि तन संग साथ जानौ अंत आनंद फिरि नहीं।।

संत लोग ऐसा ही कहते चले गए हैं। यह संसार सुख का स्थान नहीं है, दुःख का स्थान है। यहाँ रहकर हम अच्छी हालत में नहीं रह सकते हैं। इसलिए यहाँ से हमलोग चल दें, तभी अच्छा है। किंतु फिर चलें तो किधर? पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण? चारो ओर संसार-ही-संसार दिखता है। यह संसार बहुत बड़ा है। ऊपर की ओर आकाश है, यह भी संसार है। नीचे भी संसार है। बचे हुए आठो दिशाओं में भी संसार है। इसलिए किसी जानकार से जानें कि किधर जाएँ? कबीर साहब कहते हैं—'संत सुखी मन जीती हो।' इसलिए मन जीतने की ओर चलें।

चंचल मन थिर राखु जबै भल रंग है।
तेरे निकट उलटि भरि पीव सो अमृत गंग है।।

— संत कबीर साहब

चंचल चित्त को थिर करो तो भला रंग देखोगे। तुम्हारे नजदीक ही अमृत की गंगा बहती है। तुम उलटकर पीओ। संत कबीर साहब की एक कड़ी और याद आती है—'उलटि पाछिलो पैंड़ो पकड़ो, पसरा मना बटोर।' बड़े मजे का भजन है—

मोरे जियरा बड़ा अन्देसवा, मुसाफिर जैहो कौनी ओर ।।
मोह का शहर कहर नर नारि, दुइ फाटक घन घोर ।
कुमती नायक फाटक रोके, परिहौ कठिन झिंझोर ।।
संशय नदी अगाड़ी बहती, विषम धार जल जोर।
क्या मनुआँ तुम गाफिल सोवौ, इहवाँ मोर न तोर ।।
निसि दिन प्रीति करो साहेब से, नाहिंन कठिन कठोर ।
काम दिवाना क्रोध है राजा, बसैं पचीसो चोर ।।
सत्त पुरुष इक बसैं पछिम दिसि, तासों करो निहोर ।
आवै दरद राह तोहि लावै, तब पैहो निज ओर ।।
उलटि पाछिलो पैंड़ो पकड़ो, पसरा मना बटोर ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, तब पैहो निज ठौर ।।

पता कौन बता देगा? तो कहा—

सत्त पुरुष इक बसैं पछिम दिसि, तासों करो निहोर।
आवै दरद राह तोहि लावै, तब पैहो निज ओर।।

मन को जीतने के लिए किधर जाइएगा? आकाश में उड़ने से मन वश होता तो आकश में उड़नेवाला, वायुयान पर चलनेवाले का मन काबू हो जाता। पहले जानो कि मन कहाँ है?

इस तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकस जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।

— कबीर साहब

ब्रह्मोपनिषद् में भी यही बात है—'नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्...' यह आँख में रहता है। आँख का स्थान सबसे ऊँचा है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों में सबसे ऊँचे में आँख है। कान से भी ऊपर आँख है। संत दरिया साहब बिहारी ने कहा है—

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।

खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।

इस साधन अभ्यास में—

मन में मन नैनन में नैना, मन नैना एक होइ जाई।

मन में मन तब होगा, जब नैनन में नैना होगा।।

दरिया साहब ने कहा—'दृष्टि भीतर अब दृष्टि समोए। लागी झरी अमृत रस पोए।।' मन को काबू में करने के लिए बाहर जाना नहीं है। मन को सम्हाल कर उसके केन्द्र में समेटना है। समेट लो तो मन में मन हो जाएगा। उसको मिठास मिल जाएगा, अपना आनंद अपना सुख उसको मिल जाएगा। भगवान श्रीकृष्ण के वचन अनुकूल 'कछुए की तरह अंगों को समेट लेगा।' शरीर के अंग तो नहीं सिमटेंगे, इन्द्रियों की चेतनधारा सिमटेगी। यदि कोई कहे कि यहाँ भी संसार में सुख मिलता है, तो वह अल्प है। भगवान बुद्ध ने कहा यदि विशेष सुख-प्राप्ति की संभावना दीखे तो विशेष सुख की प्राप्ति के लिए स्वल्प सुख छोड़ दे। मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में है—

निद्रा भय सरीसृपं हिंसादि तरंग तृष्णावर्त्तंदारपंकं

संसार वार्धितर्तु सूक्ष्म मार्गमवलम्ब्य..............।

शरीर के जितने सरोकारी हैं, सब पंक हैं। सन का बंधन, लोहे का बंधन, मजबूत बंधन नहीं है। जिसमें अपनी ममता है, वह बड़ा बंधन है' भगवान बुद्ध ने कहा। अज्ञानता से ममता उत्पन्न होती है। इस अज्ञानता के कारण हम पंक में लसके हैं। इसको पार करने के लिए सूक्ष्म मार्ग का अवलंब करो। '**मन में मन नैनन में नैना**' जो कहा, वह सूक्ष्ममार्ग है। कबीर साहब ने कहा है—

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै,

गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं।

गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासे नहीं,

समुझि विचारि ले मने माहिं।।

राह बारीक गुरुदेव तें पाइए,

जनम अनेक की अटक खोलै।

कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै,

जीव और सीव तब एक तोलै।।

अनेक जन्मों से इस पिण्ड में अटके थे। यह अटक सूक्ष्म मार्ग के अवलंब से खुलता है। इस संसार से पार होने के लिए सूक्ष्ममार्ग का अवलंबन करें। सूक्ष्ममार्ग का अभ्यास करने के लिए गुरु से जानो। इससे आखिर में क्या मिलता है? जीव परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। उसकी प्राप्ति में जो मिठास है, उसको पाकर फिर जीव दुःखी नहीं होता। इस संसार में नहीं आता है। 'फिर आवना नहिं या देश।' फर्ज करो कि मैं पहली बार यहाँ (मुरादाबाद) आया। निशाना था कि मुरादाबाद पहुँचूँ। रास्ते में बहुत शहर से मिले, किंतु वह मुरादाबाद नहीं। सबको पार करता हुआ अब मुरादाबाद पहुँचा हूँ। उसी तरह अपना लक्ष्य परमात्मा में रखो और चलो। कबीर साहब ने कहा—'उलटि पाछिलो पैंड़ो पकड़ो।' इस पिछले पैड़े को पकड़ो। बहिर्मुख से अंतर्मुख होओ। यह चेतन आत्मा सूक्ष्म तल से स्थूल तल (पिण्ड) में आई है। सूक्ष्मतल में जाने को ही ब्रह्माण्ड में जाना कहते हैं। पिण्ड से ब्रह्माण्ड की ओर चलो, यही उलटना है। सिमटी हुई चीज की ऊर्ध्वगति होती है। सुरत के सिमटाव से उसकी ऊर्ध्वगति हो जाएगी। रास्ता पकड़ने के लिए सत्संग करो। जिसमें श्रद्धा हो, उसको गुरु धारण कर उसके बताए हुए रास्ते पर चलो। सिनेमा की बिजली क्या है? अपने अंदर एक बार भी देख पाओ तो समझ में आ जाए कि सिनेमा की बिजली कुछ नहीं है। अंदर में तारा देखने से क्या होगा?—मेरे एक मित्र ने कहा। मैंने कहा—'जिस कर्म के करने में विशेष कष्ट होता है, उसको पाकर वह उतना ही सुखी होता है। इस तारे को (बाहर आकाश के तारे को) देखने में क्यों, कष्ट है? गर्दन ऊपर

उठाया कि देखा। किंतु अंदर के तारे को देखने में कितना परिश्रम होता है? सतोगुण को पार कर दोनों भौओं के बीच में तारक ब्रह्म (...सत्त्वादि गुणानतिक्रम्य तारकमवलोकयेत्। भ्रूमध्ये सच्चिदा-नन्दतेजः कूट रूपं तारकं ब्रह्म।।) का अवलोकन करने के लिए मंडल ब्राह्मण उपनिषद् में वचन आया है। सतोगुण से कैसे पार होंगे?

बायें इड़ा नाड़ी दक्षिणे पिंगला, रजस्तमो गुणे करि ते छे
खेला, मध्ये सत्त्व गुणे सुषुम्ना विमला धर धर तारे सादरे।

दायें-बायें को रोक कर सुषुम्ना में चलो, सतोगुण को भी पार कर जाओगे। यह परा भक्ति है।

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सों आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

इसी का प्रचार गुरु महाराज करते थे। गुरु महाराज की दया से १९०९ ई० में मुझे विश्वास हुआ। १९०४ ई० में मैंने स्कूल छोड़ा। इस मार्ग के पहिला मेरे गुरु थे बाबू राजेन्द्रनाथ सिंह वकील। मैंने उनसे पूछा—'कैसे विश्वास हो कि तारा अंदर में देखने में आवेगा?' उन्होंने कहा—'आकाश के तारे को कैसे देखते हो? बाहर के तारा की ओर नजर करके देखते हो, उसी तरह उस तारा की ओर भी नजर करो तो देखोगे। 'जौं लग नहिं देखौं निज नैना। तब लग नहिं मानौं गुरु के बैना।।' जिस तरह गुरु कहें उस तरह करो, तब नहीं देखोगे तो कहो कि गुरु झूठा है। जैसा गुरु ने कहा, वैसा किया नहीं और कहे कि नहीं है, ठीक नहीं। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत मुरादाबाद में दिनांक १०.१०.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

९४. तिल परिमाण जान जन कोई

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता!

हमलोग संतों की तारीफ में गाते हैं—विन्दु-ध्यान-विधि नाद-ध्यान-विधि, सरल-सरल जग में परचारी।।' विन्दु-ध्यान और नाद-ध्यान बतलानेवाले संत होते हैं। यह सरल साधन है। वैसे तो सरल-से-सरल और मोटे-से-मोटा काम भी अभ्यास नहीं होने के कारण कठिन जान पड़ता है।

जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।
— गोस्वामी तुलसीदासजी

संशयों को निर्मूल करने के लिए विन्दु-ध्यान और नाद-ध्यान है। विन्दु और नाद-ध्यान के लिए ध्यानविन्दूपनिषद् में है—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।
—ध्यानविन्दूपनिषद्

परमविन्दु कहने का मतलब क्या है? एक छोटे-से-छोटा चिह्न बाहर में अंकित कर उसे विन्दु

कहते हैं, किन्तु उसकी परिभाषा को पढ़ने पर कहते हैं कि उसका विभाग नहीं होता। छोटे-से-छोटा चिह्न भी अंकित कीजिए, फिर भी उसका विभाग होगा। परमविन्दु बाहर में अंकित नहीं किया जा सकता। पतली-से-पतली कोई भी नोंक, विन्दु अंकित करने योग्य नहीं है। परम विन्दु से स्थूल में कोई स्थान छेका नहीं जा सकता। बाहर में उसको अंकित करना असम्भव है। आप अपनी दृष्टि की नोंक से अपने अन्दर के प्रथम तल पर उसे अंकित कर सकते हैं। अंकित करने का अर्थ है—प्रथम पट पर दृष्टि की नोंक रखिए, स्वयं परम विन्दु उदित हो जाएगा। जैसे पेन्सिल की नोंक जहाँ रखते हैं, वहाँ स्वतः विन्दु हो जाता है, परन्तु इसका विभाग हो सकेगा। परम विन्दु अर्थात् परिभाषा के अनुकूल विन्दु का विभाग नहीं होगा। कबीर साहब का कहना है कि—'स्याह सुफैद तिलों बिच तारा अविगत अलख रबी है।' पहले स्याह है, फिर सफेद हो जाता है—वही तारा हो जाता है। बाबा नानक साहब के वचन में भी है—'तारा चड़िया लंमा....।' तुलसी साहब का इसके लिए कथन है—

स्याम कंज लीला गिरि सोई। तिल परिमाण जान जन कोई।।

श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय के श्लोक ९ में 'अणोरणीयाम्' कहकर परमात्मरूप का वर्णन है और मनुस्मृति के अध्याय १२, श्लोक १२२ में भी अणुरूप को परमात्म-ध्यान कहा गया है—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।

—गीता, अध्याय ८/९

प्रशासितारं सर्वेषामनीयां समणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्न धीमगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम ।।

—मनुस्मृति, अध्याय १२/१२२

बाहर के विषयों का ध्यान छूटता है, तब अंदर का ध्यान होता है। बाहरी विषयों के चिंतन से मोटा ध्यान भी नहीं हो सकता है, फिर उस चिंतन में रहकर कोई सूक्ष्म ध्यान कैसे कर सकता है? ध्यानाभ्यासी की वृत्ति पाप की ओर से हटी होती है। उससे पाप-रहित कर्म होगा। जो पहले का किया हुआ पाप है, वह ध्यान-योग से नष्ट हो जाएगा। ध्यानाभ्यासी ध्यानबल से कर्ममण्डल के ऊपर उठ जाता है। इस तरह वह पाप-पुण्य; दोनों से ऊपर उठ जाता है। उसे पाप और पुण्य वहाँ से लौटा नहीं सकते। इसलिए उपनिषद् के वचनों पर विश्वास करना चाहिए। जितने भी अक्षर (लिपि), या दृश्य या रूप हैं, सबका बीज विन्दु है। किसी भी दृश्य का रूप बनाने के लिए पहले विन्दु बनता है। बिना विन्दु के कोई रूप नहीं बना सकते। जैसे वट के बीज के बिना वट का वृक्ष नहीं हो सकता, उसी प्रकार समस्त आकारों की उत्पत्ति विन्दु से है, अंत भी विन्दु है। उस विन्दु को जो प्राप्त करता है, वह दृश्य जगत के शिखर पर चढ़ जाता है। इसी को ब्रह्मरन्ध्र से होकर ब्रह्माण्ड में जाना कहते हैं। रूप दृश्यमान है। रस जिभ्या से, गंध नाक से, शब्द कान से तथा स्पर्श छूने से आपको मालूम होता है। इन सबका रूप क्या है? गन्ध का क्या दृश्य है? इसी प्रकार अदृश्य पदार्थ भी संसार में हैं। दृश्य का आरम्भ विन्दु से और अन्त विन्दु पर होता है। और अदृश्य का आरम्भ किससे होता है? अदृश्य का आरंभ शब्द से होता है, जो अदृश्य है। गति या कम्प का सहचर ध्वनि है। कम्प के बिना कुछ नहीं बन सकता। ध्वनि कम्प या गति के साथ अवश्य होती है।

साधो गति में अनहद बाजै।
झंझकार और झनक झनक है, एहि मन्दिर में साजै।।

—दरिया साहब, बिहारी

अतएव सारी सृष्टि शब्द से अवश्य ही हुई है। जबतक शब्द रहेगा, तबतक संसार रहेगा। जब

शब्द को पार कर जाय, तब संसार के पार में पहुँच जाय। संसार का दूसरा हिस्सा अरूप है, वह नाद-ध्यान से पार किया जाएगा। नाद भी अरूप है। जैसे जल के सहारे से जल को पार किया जाता है, उसी तरह अरूप के सहारे से अरूप को पार किया जाएगा। शब्द में आकर्षण करने का गुण है—

यही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं ऊबरै, केता करै उपाय।।

—कबीर साहब

चुम्बक सत्त शब्द है भाई । चुम्बक शब्द लोक ले जाई ।।
लेई निकारि होखै नहिं पीरा । सत्त शब्द जो बसै शरीरा ।।

—दरिया साहब, बिहारी

विन्दु-ध्यान की यह महिमा है कि उसके द्वारा रूप जगत से ऊपर उठ जाएँगे और नाद-ध्यान से अरूप जगत से ऊपर उठ जाएँगे। कितने लोग कहते हैं कि शरीर के अंदर अनेक रग-रेशे चलते हैं, उनकी ये ध्वनियाँ हैं; उनको सुनकर क्या होगा? मैं उनसे कहता हूँ कि अपनी वृत्ति को आप स्थूल मण्डल से ऊपर उठा लीजिए, तब सुनिए, उस समय आपकी वृत्ति स्थूल में नहीं रहेगी, तब आप स्थूल ध्वनियों को कैसे सुन सकते हैं? उस अंतर्नाद को सुनिए। इसी को तुलसी साहब ने कहा है—

स्रुति ठहरानी रहे अकाशा। तिल खिरकी में निसदिन बासा।।
गगन द्वार दीसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा।।
तिल परमाने लगे कपाटा। मकर तार जहँ जीव का बाटा।।

शब्द की धार सबके अंदर है। मकड़ा तार पर नीचे से ऊपर जाता-आता है, उसी तरह शब्द के द्वारा भी नीचे से ऊपर उठ सकते हैं। अपने अंदर में यात्रा करने के लिए विन्दुनाद ही सहारा है। इसी का अवलंब लेकर हम वहाँ पहुँच सकते हैं, जहाँ परमेश्वर परमात्मा का साक्षात्कार होगा। यही विन्दु-नाद-ध्यान की महिमा है। यही मुनियों का नादानुसंधान है।

नास्ति नादात्परो मंत्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसंधे परा पूजा न हि तृप्तेः परं सुखम्।।

—योगशिखोपनिषद्, अध्याय २

नादानुसंधान के समान कोई पूजा नहीं है। सबको चाहिए कि नाद और विन्दु का ध्यान करे। गुरु महाराज हमलोगों को कृपा करके इसकी शिक्षा और युक्ति दे गए हैं। उनका अभ्यास हमलोगों को करना चाहिए। भोजन कम कीजिए। विशेष भोजन से निद्रा आएगी और भजन नहीं होगा। इसलिए कम खाइए और भजन कीजिए। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत मुरादाबाद में दिनांक ११.१०.१९५४ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

९५. जो कोई निर्गुण दरसन पावै

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपलोगों को यह विदित हुआ है कि अखिल भारतीय संतमत सत्संग का यह वार्षिक अधिवेशन यहाँ हो रहा है। और कल्ह से ही हो रहा है और कल्ह समाप्त होगा। मुझे जानने में आया है कि कुछ लोग कुछ विचित्र-सा मानते हैं कि संतमत कौन-सी बात है? तो मैंने सोचा यह प्रश्न तो उन्हीं के अंदर उठ सकता है जो संत का अर्थ और मत का अर्थ नहीं जानते। और यह शब्द पहले व्यवहृत हुआ है कि नहीं, यह उनको मालूम नहीं है। और

इस मत में ईश्वर की मान्यता है कि नहीं? यह प्रश्न तो और विचित्र है। जो संतवाणी का पाठ नहीं किए होंगे, नहीं सुने होंगे, वे ऐसी बात कहें तो ठीक ही है। मैं उस विद्यालय में आज हूँ, जहाँ से मैं इस विद्या का शिक्षा पाया हूँ। गुरु महाराज अताई मुहल्ले में विराजते थे। सन् १९०९ ई० में मैं यहाँ आया था। वहाँ सत्संग हुआ करता था। ताज्जुब की बात है कि मैं कहाँ पुरैनियाँ जिला बिहार प्रान्त के पूर्व-उत्तर के अंत में और यहाँ मुरादाबाद युक्त प्रान्त के उत्तर-पश्चिम के अंत भाग के निकट। इतनी दूर की फासला में मैं संतमत के बारे में जानता हूँ और खास मुरादाबाद में इसकी चर्चा हो कि संतमत क्या चीज है? विचित्र बात है। १९०९ ई० से अबतक शायद ५-६ वर्ष यहाँ नहीं आया हूँ। और तो मैं प्रत्येक वर्ष यहाँ आया हूँ। जब गुरु महाराज थे, तब मैं यहाँ साल-साल आता था। कभी-कभी तो साल में दो बार भी आया। इस वर्ष भी मैं दो बार आया हूँ, जनवरी में और इस बार अक्टूबर में। बात यह है कि संतमत परम आस्तिक मत है। ईश्वर की मान्यता जिस मत में नहीं है, **'ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।'** जहाँ नहीं है, वह नास्तिक है। किंतु यहाँ तो ये दोनों हैं ही। हाँ! ईश्वर के बोध होने में लोगों को कठिनाई होती है। ईश्वर के लिए जो अनेक नाम—सतनाम, शिव, राम, कृष्ण आदि हैं; इस बात को बहुत लोग जानते हैं। किंतु स्वरूप नहीं जानते। स्वरूप का अर्थ निजरूप। इस निजरूप को लोग नहीं समझते।

अगुन अखंड अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होई।।
उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

—रामचरितमानस

इन चौपाइयों से ईश्वर-स्वरूप का विचार सार रूप में मिलता है। मूल में 'अगुन अखण्ड अलख अज' है। अगुण का अर्थ त्रैगुणातीत न कि सम्पूर्ण विशेषणों से रहित। सम्पूर्ण विशेषणों से रहित का वर्णन नहीं हो सकता। राम, ब्रह्म, परमात्मा कहने से कुछ-न-कुछ विशेषण आ ही जाता है। इसलिए सम्पूर्ण विशेषणों से रहित मानना हो नहीं सकता। किंतु सत, रज, तम से रहित मानना ठीक है। अखण्ड अर्थात् जिसका खण्ड नहीं हो सकता। अलख अर्थात् इन्द्रियातीत। अज=जो उत्पन्न नहीं हुआ हो, जो हई है, कहीं से आया नहीं, हुआ नहीं। इन्द्रियों के ज्ञान से ऊपर, बुद्धि के ज्ञान से भी ऊपर है। यह किसी कारणवश प्रगट और इन्द्रियगोचर होता है। भक्त के प्रेमवश होकर सगुण रूप धारण करता है। प्रश्न होता है—**'जो गुण रहित सगुन सो कैसे।'** तो शिवजी उत्तर देते हैं—**'जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे।।'** जल, हिम, उपल तत्त्व रूप में अलग-अलग पदार्थ नहीं, सब एक ही है। किंतु आज तक यहाँ किसी ने नहीं जाना है कि संसार का सम्पूर्ण जल पाला है या उपल? जो आकाश से गिरता है, पानी है। किंतु पानी से पाला और ओला रूपान्तर दशा में है। पानी से खेती सींची जाती है, किंतु ओला और पाला से खेती का नाश होता है। सम्पूर्ण जल कभी हिम या उपल नहीं होता, उसी तरह सम्पूर्ण अगुण, अखण्ड, अलख, अज कभी सगुण नहीं हो सकता है। इतना बड़ा कभी कोई मन्दिर नहीं हो सकता है, जिसमें संपूर्ण आकाश अँट जाय। मंदिर में आकाश व्यापक है? अवश्य, किंतु संपूर्ण आकाश उसमें अँट नहीं सकता। उसी प्रकार जो स्वरूपतः अपार है, वह परिमित हो जाय, यह बुद्धि में अँटने के काबिल बात नहीं है। श्रद्धा से मान लें तो उसको कौन रोक सकता है? संतों ने परमात्मा के उस

स्वरूप को लखाया है। उस स्वरूप को पकड़ो, तो मोक्ष हो जाएगा। लोग कहते हैं जो हाथ से पकड़ने, आँख से देखने योग्य नहीं, उससे प्रेम कैसे करें? उसमें अपना मन कैसे लगावें? लोग अपनी कमजोरी दिखलाते हैं। संतमत कहता है—तुम और कुछ सुनो—समझो, तब तुम स्वयं कहोगे कि ठीक मैं उससे प्रेम कर सकता हूँ, उसे प्राप्त कर सकता हूँ। यदि कहो कि सगुण से ही काम चल जाएगा, निर्गुण की क्या आवश्यकता, तो गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

और निर्गुण स्वरूप के लिए कहते हैं—

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

रामचरितमानस का वर्णन करते हैं तो कहते हैं—कथा-रूप जल है, जल में स्वच्छता और मिठास सगुण का वर्णन है। गंभीरता चाहिए तो कहते हैं—

रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।

यह निर्गुण महिमा है। जहाँ तक कहना चाहिए कह देते हैं। गोस्वामीजी की दोहावली पढ़िए तो—

हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

हृदय में निर्गुण है और आँखों में सगुण है। बेचारी आँख को सगुण के आगे गति ही नहीं है, करे तो क्या? फिर कहते हैं 'रसना राम सुनाम' यह कैसा हुआ? मानो सोने के डिब्बे में सुन्दर रत्न हो। हृदय में निर्गुण है, आँख में सगुण है और जिभ्या पर सुन्दर राम नाम है। यह क्या हुआ? मेरी समझ से सगुण सोने का डब्बा है और उसके अंदर 'ललित ललाम' निर्गुण है। वह उसमें शोभा पा रहा है। उसी तरह मेरे हृदय में निर्गुण है और आँख से सगुण को देखता हूँ। यह भाव ईश्वर मानने का है। जो लोग यह कहते हैं कि निर्गुण में अपने को कैसे सटावें, इन्द्रियों से मैं मिलाजुला हूँ। इसका उत्तर है कि तुम ईश्वर के अंश हो। यदि तुम अपने को ईश्वर का अंश मानते हो, तो भी तत्त्वतः वही हो। शरीर का जन्म हुआ है। यह वैसे हुआ है, जैसे कोई घट बन जाय। यहाँ सत्संग-घर नहीं था, घर बन गया। घर के अंदर शून्य है, शून्य के अंदर घर है। ईंट और पत्थर के जुड़ जाने से घटाकाश और मठाकाश के हो जाने से आकाश नहीं टूट जाता। जब आप कहते हैं कि मेरी आँख और मेरा पैर, आप आँख और पैर नहीं हैं। जैसे कहते हैं कि मेरा कुरता है, तो आप कुरता नहीं हैं। आप अपने को शरीर और इन्द्रियों से पृथक तो जानते ही हैं और पृथक भी कर सकते हैं, यह आपके लिए असंभव नहीं है। अपने को शरीर और इन्द्रियों से पृथक करके ही कैवल्य दशा में संतों ने परमात्म-स्वरूप को पाया था और इसी दशा में अपने को लाकर उन्होंने परमात्मा को प्राप्त करने की शिक्षा दी है। शरीर और इन्द्रियों से अपने को छुड़ाने में कोई आपदा नहीं है। इसके लिए संतों की सुगम रीति जानकर ईश्वर की भक्ति का अभ्यास करना चाहिए।

कर्ण कैसा वीर था कि कवच लिए जन्म लिया था। शरीर बढ़ता था तो कवच भी बढ़ता था। वह सदा कवच के साथ रहता था। अर्जुन से उसका युद्ध होगा, अर्जुन उसका संहार करेगा, किंतु कवच सहित उसका संहार नहीं कर सकता है। इन्द्र का पुत्र अर्जुन था। इसलिए उसको हुआ कि किसी तरह कर्ण का कवच लेना चाहिए। सूर्य का पुत्र कर्ण था। सूर्य ने कर्ण से कहा था कि इन्द्र तुमसे कवच-कुण्डल माँगने आवेगा, तुम नहीं

देना। नहीं तो तुम मारे जाओगे। कर्ण ने कहा—माँगने आवेगा, तो कैसे नहीं दूँगा? इन्द्र एक भिक्षुक के रूप में आये। वे कहते हैं, हम तुमको जाँचने आए हैं, तुम अपना कवच उतारकर मुझे दे दो। देह से सटा हुआ उसका कवच था। जन्म से ही था। देह से सटे को तलवार से काटकर वह दे देता है। आज भी इस दान के लिए उसकी प्रसिद्धि है। इस कर्म में उसका रक्त भी बहा होगा और उसको कष्ट भी हुआ होगा। किंतु अपने को शरीर से, इन्द्रिय से और मन से फुटा लेने में रक्त भी नहीं बहेगा और न कोई कष्ट होगा। तुम अंश हो, अपने अंशी में अपने को मिलाओ तो इसमें क्या कष्ट है? अपने सम्पूर्ण शरीर को आँख से देखते हो और आइने में अवलोकन कर आँख को आँख से देखते हो। इसी तरह जीवात्मा को परमात्मा का दर्शन होता है और जैसे त्वचा के स्पर्श का ज्ञान त्वचा से ही होता है, उसी तरह जीवात्मा से परमात्मा के मिलन का ज्ञान होता है। उसका सुख कैसा है, तो सूरदासजी कहते हैं—

अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै ।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ।।

परमस्वाद = अलौकिक स्वाद है, सांसारिक स्वाद नहीं। जबसे वह स्वाद मिले, तब से वह बराबर बना रहेगा। स्वाद हो, तुष्टि नहीं सो नहीं। स्वाद के सहित अत्यंत तुष्टि होती है। गोस्वामी तुलसीदासजी जिस तरह श्रीराम के उपासक थे, उसी तरह सूरदासजी श्रीकृष्ण के उपासक थे। इन्होंने भी सगुण का वर्णन करते हुए निर्गुण का वर्णन किया है। निर्गुण के लिए तो सूरदासजी कहते हैं—

रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै।

निर्गुण को सब तरह से अगम विचारकर सगुण का वर्णन किया। हमलोगों को यह नहीं समझना चाहिए कि हम निर्गुण स्वरूप को नहीं प्राप्त कर सकेंगे। परमात्मा और जीवात्मा स्वजातीय पदार्थ हैं। हम पिण्ड, ब्रह्माण्डादि आवरणों से आवरणित हैं। हमको काम, क्रोध, लोभ, मोह सताते हैं। यह आवरण से आवृत रहने के कारण ही होता है। इससे अपने को पार करो। कैसे पार करोगे, तो किसी संत से पूछ लो। एक प्रेमी ने गाया है—

भेद यह गुप्त पाना किसी ग्रंथ से ।
है असंभव समझ लो किसी संत से ।।

प्रसिद्ध है कि संतों का भेद और पण्डितों का वेद। कबीर साहब पढ़े-लिखे नहीं थे, रामकृष्ण परमहंस भी पढ़े-लिखे नहीं थे। किंतु इतने बड़े ज्ञानी थे कि नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद) उनसे सीखते थे। उनसे कोई वेद का और कोई कुरान का अर्थ पूछने जाते थे। वे उनका अर्थ उन्हीं से पूछते थे, फिर अपनी बात कहते थे कि इस तरह का अर्थ करने से नहीं होगा? और इन्हीं का अर्थ ठीक होता। हमारे यहाँ योगशास्त्र प्रसिद्ध है।

जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानु । जहँ नहिं राम प्रेम प्रधानू ।।

योगशिखोपनिषद् में है कि योग बिना ज्ञान और ज्ञान बिना योग मोक्ष कार्य में समर्थ नहीं होता।

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः ।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ।।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत् ।।

चित्तवृत्ति-निरोध को योग कहते हैं। संत वेश बनाने से नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्यसार कवि कोविद जोगी।।

संत केवल गेरुआ वस्त्र पहनने से नहीं होता। किसी वेश में रहो, संत हो सकते हो, किंतु जानो इसका भेद।

कबीर भेदी भक्त से, मेरा मन पतियाय ।

सेरी पावै शब्द की, निर्भय आवै जाय ।।
भेदी जाने सबै गुण, अनभेदी क्या जान ।
कै जानै गुर पारखी, कै जाकै लागा बान ।।
—संत कबीर साहब

यहाँ से जगन्नाथजी जाएँगे, जगन्नाथ के लिए जैसे-जैसे पैर पड़ता है, वैसे-वैसे उसकी भक्ति होती है। उसी तरह शरीर-इन्द्रियों से जैसे-जैसे अपने को छुड़ाते हैं, उसकी भक्ति होती है। संतों ने इसका सरल तरीका बताया है। जप करो और ध्यान करो। ध्यान के बहुत दर्जे हैं। कबीर साहब की वाणी है—

जो कोई निरगुन दरसन पावै।।टेक।।
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै।।
बिन जिभ्या नामहिं को सुमिरै, अमिरस अजर चुवावै।
अजपा लागि रहै सूरति पर, नैनन पलक डुलावै।।
गगन मंदिल में फूल फुलाना, उहाँ भँवर रस पावै।
इंगला पिंगला सुखमनि सोधै, प्रेम जोति लौ लावै।।
सुन्न महल में पुरुष विराजै, जहाँ अमर घर छावै।
कहै कबीर सतगुरु बिनु चीन्हे, कैसे वह घर पावै।।

कुछ पढ़े-लिखे लोग भी भ्रम वश कहते हैं कि कबीर साहब कुछ करने नहीं कहते। वे कहते हैं—'साधौ सहज समाधि भली।....आँखि न मूंदौं कान न रुधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं। खुले नयन पहिचानौं हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।' संपूर्ण पद्य को पढ़ा कि नहीं, किंतु इतना पढ़ लिया कि—'आँखि न मूंदौं कान न रुधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं। खुले नयन पहिचानौं हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।' संपूर्ण पद्य को भी पढ़ो—

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली ।।
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा ।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा ।।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खावँ पियौं सो पूजा ।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा ।।
आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं ।
खुले नयन पहिचानौं हँसि-हँसि, सुन्दर रूप निहारौं ।।
शब्द निरंतर से मन लागा, मलिन वासना भागी ।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी ताड़ी लागी ।।
कहै कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई ।
दुख सुख से कोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समाई ।।

समस्त पद्य को पढ़कर पाठक को यह सोचना चाहिए कि 'गिरह उजाड़ एक सम लेखौं,भाव मिटावौं दूजा' के अनुकूल ठीक-ठीक उनकी दशा हुई है या नहीं? फिर 'शब्द निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी। ऊठत-बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी लागी।' इस पद्य में वर्णित 'निरंतर शब्द' में उनकी सुरत सदैव लगी रहती है या नहीं? यदि 'दूजा भाव' (द्वैत बुद्धि) सम्पूर्णतः छूट गया हो, घर और उजाड़ यथार्थ में एक ही तरह मालूम होते हों, निरन्तर शब्द में सुरत सदा लगी रहती हो और 'मलिन वासना'—कभी नहीं आती हो, तो इस दशा पर पहुँचे हुए को अवश्य ही 'सहज समाधि' प्राप्त है। 'निरन्तर शब्द' के विषयों में तो बिहारी दरिया साहब कहते हैं—

सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक विहीन नहिं तारा ।
झिन झिन जंतर निस दिन बाजै, जम जालिम पचिहारा ।।

परन्तु यह 'सहज समाधि' की अवस्था किसी को आरंभ में ही होने योग्य नहीं है। दृष्टियोग और नादानुसन्धान करते-करते जब कोई साधन को अंत कर देता है, तब उसे यह दशा प्राप्त होती है। फिर उसको आँख बन्द और कान बन्द करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रथम से ही आँख-कान बन्द नहीं करते हुए अथवा अभ्यास के कुछ भी कष्ट को नहीं धारण करते हुए सहज समाधि प्राप्त हो कभी संभव नहीं है। उसके अतिरिक्त वराहोपनिषद्

का यह वाक्य भी ध्यान में रखने योग्य है—

दुर्लभो विषय त्यागो दुर्लभं तत्त्व दर्शनम् ।
दुर्लभासहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना ।।

और कबीर साहब ने कहा ही है—

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली ।।

बिना योगाभ्यास के समाधि नहीं होती है। कबीर साहब कहते हैं—

'सबद खोजि मन बस करै, सहज योग है येहि।'
'नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय।।'
'बंद कर दृष्टि को फेरि अंदर करै, घट का पाट गुरुदेव खोलै।'
'आँख कान मुख बंद कराओ। अनहद झींगा शब्द सुनाओ।
दोनों तिल एक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है।।'
'सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के वचन समाई हो।
मेली चित्त चराचित राखो, रहो दृष्टि लौ लाई हो।।'

गुरु नानक साहब कहते हैं—

'सुखमन कै घरि राग सुनि सुन मंडल लिव लाइ।
अकथ कथा वीचारीऔ मनसा मनहि समाइ।।'
'तीन बंद लगाय कर सुन अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाधि में नहीं साँझ नहि भोर।।'

दादू दयालजी महाराज कहते हैं—

'सहज समरपण सुमिरन सेवा, तिरवेणी तट संयम सपरा।
सुन्दरि सन्मुख जागण लागी, तहँ मोहन मेरा मन पकरा।।'
'सहज सुन्नि मन राखिये, इन दुन्यूँ के माहिं।
लय समाधि रस पीजिये, तहाँ काल भय नाहिं।।'
'क्यों करि उलटा आणिये, पसरि गया मन फेरि।
दादू डोरी सहज की, यों आणै घेरि घेरि।।'
'साध सबद सौं मिलि रहै, मन राखै बिलमाय।
साध सबद बिन क्यों रहै, तबहीं बीखरि जाय।।'

पलटू साहब कहते हैं—

धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव ।।
सो मेरा गुरुदेव सेवा मैं करिहौं वाकी ।
शब्द में है गलतान अवस्था ऐसी जाकी ।।
निसदिन दशा अरूढ़ लगै ना भूख पियासा ।
ज्ञान भूमि के बीच चलत है उलटी स्वासा ।।
तुरिया सेती अतीत सोधि फिर सहज समाधी ।
भजन तेल की धार साधना निर्मल साधी ।।
पलटू तन मन वारिये, मिलै जो ऐसा कोउ ।
धुन आनै जो गगन की, सो मेरा गुरुदेव ।।

इन सब उद्धरणों से यही सिद्ध होता है कि आरंभ से ही 'आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं। खुले नयन पहिचानौं हँसि-हँसि, सुन्दर रूप निहारौं ।।' नहीं होता है। इस दशा पर आने के लिए पहले दृष्टियोग फिर नादानुसंधान पूर्णरूपेण करके उपर्युक्त दशा की प्राप्ति होती है। पद्य में कथित सहजयोग के अभ्यास के बिना सहज समाधि कदापि प्राप्त नहीं होगी। केवल मानसिक चिंतन ही सहज समाधि की अवस्था पर नहीं पहुँचाएगी, जिस समाधि में पहुँचकर पिण्ड में उतार होने पर भी सहज समाधि लगी रहती है, उस समाधि में मन नहीं पहुँचता। वहाँ केवल चेतनधारा की ही गति है। एक बार भी इस समाधि की प्राप्ति होने पर इस समाधिवाले को समाधि में प्राप्त सार पदार्थ (शब्द निरन्तर) कभी छूटता नहीं है। यद्यपि यह विषय सम्पूर्णतः वचन में आने योग्य नहीं है, तथापि देश में फैले हुए सहज समाधि के भ्रामक विचारों को कुछ-न-कुछ कहकर दूर करना आवश्यक है। इसीलिए इस विषय पर यह थोड़ी-सी बात कही गई। पुनः कह देना चाहता हूँ कि यह अन्तिम बात है, आदि की नहीं। आदि में तो है—

गुरु की मूरति मन महि धिआनु। गुरु के शबद मंत्र मन मानु।।

— गुरु नानक साहब

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव ।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव ।।

— कबीर साहब

और सूक्ष्म ध्यान है—

नैंनो की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारिके, पिय को लिया रिझाय।।
गगन मंडल के बीच में, तहँवा झलके नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर।।
कबीर कमल प्रकाशिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अंधरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर।।

इन वाणियों से उनका ध्यान स्पष्ट मालूम होता है। कबीर साहब के पद्य में 'प्रथमहिं सुरत जमावै तिल पर' पहले कहा जा चुका है और अब 'मूल ध्यान गुरु रूप है' कहा गया। इसमें लोग भ्रम में आ सकते हैं और जिज्ञासा कर सकते हैं कि अभ्यास के आरंभ में गुरु-रूप का ध्यान होना चाहिए अथवा तिल पर सुरत जमाना चाहिए। इसके लिए जानना चाहिए कि गुरु-रूप का ध्यान स्थूल और मानस ध्यान है और तिल पर सुरत जमाने का ध्यान सूक्ष्म है और मन से विन्दु या तिल (इसकी युक्ति भेदी अभ्यासी गुरु से जानी जा सकती है।) बनाकर देखना नहीं है। अभ्यास के आरम्भ में स्थूल से ही आरम्भ करना स्वाभावानुकूल है। इससे दृष्टि और मन का सिमटाव स्थूल मूर्ति को मनोमय बनाकर मन और दृष्टि को उस पर रखने से मन और दृष्टि का जितना सिमटाव होता है, उससे तिल या विन्दु वा सूक्ष्म ध्यान के आरम्भिक अभ्यास करने की योग्यता अभ्यासी को होती है। जैसे मोटे-मोटे अक्षरों का लिखना सीखकर बारीक-बारीक अक्षरों के लिखने की योग्यता होती है। इसलिए अभ्यास के आरम्भ में गुरु-रूप का स्थूल ध्यान कहा गया है और सूक्ष्म ध्यान के आरंभ के लिए तिल वा विन्दु-ध्यान कहा गया है।

यह संतमत परम आस्तिक मत है। इसमें सगुण रूप का ध्यान भी है और निर्गुण स्वरूप की भक्ति भी है। अभ्यासी गुरु के बिना लोग गड़बड़ में पड़े रहते हैं। अभ्यासी गुरु हो, अपने अभ्यास करे, तब संतमत ठीक-ठीक समझ में आता है। इसमें परहेज है—पंच पापों (झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार) से बचो। इन पंच पापों से अपने को बचाने के लिए कोशिश करो। ईश्वर से प्रार्थना करो और अभ्यास करो। संतलोग यही कहते हैं कि तुम्हारा कल्याण हो। साथ ही जो संत बताते हैं वह करो। यही संतमत है।

n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत मुरादाबाद में दिनांक ११.१०.१९५४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

९६. भगवान श्रीकृष्ण स्वयं संध्या करते थे

प्यारे लोगो!

कबीर साहब की निस्बत विद्वान लोग कहते हैं कि वे बहुश्रुत थे। इससे वे ज्ञान-ध्यान की बात बहुत जानते थे। किंतु कबीर साहब स्वयं कहते हैं—

मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक।।

इसमें संशय नहीं कि कबीर साहब बहुश्रुत थे, किंतु उन्होंने साधन भी किया था और तब वे ज्ञानी हुए थे। जैसा कि उनके उपर्युक्त वचन से पता चलता है। वे कहते हैं—

डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकाश।
गगन मंडल में घर किया, हीरा पाया दास।।

दूसरी जगह वे कहते हैं—'**शून्य ध्यान सबके मन माना।**'

शून्य ध्यान कैसे होगा, इसका पता अभ्यासी

को मालूम होता है। शून्य ध्यान भगवान श्रीकृष्ण को भी पसंद था। श्रीमद्‌भागवत में आया है—उद्धव से भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—'पहले तुम मेरे सम्पूर्ण शरीर का ध्यान करो, फिर चेहरे का और इन दोनों में दृढ़ हो जाने पर शून्य में ध्यान करो।' यथा—

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः।।
तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्।
नान्यानि चिन्तयेद्‌भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्।।
तत्र लब्ध पदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।
—श्रीमद्‌भागवत, स्कन्ध ११, अध्याय १४

अर्थात् बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से खींचकर उस मन को बुद्धि रूपी सारथी की सहायता से सर्वांगयुक्त मुझमें ही लगा दे। सब ओर से फैले हुए चित्त को खींचकर एक स्थान में स्थिर करे और फिर अन्य अंगों का चिंतन न करता हुआ केवल मेरे मुस्कानयुक्त मुख का ही ध्यान करे। मुखारविन्द में चित्त के स्थिर हो जाने पर उसे वहाँ से हटाकर आकाश में स्थिर करे।

भगवान श्रीकृष्ण स्वयं संध्या करते थे। वे ब्रह्ममुहूर्त्त में संध्या करते थे। हर संध्या के समय करते होंगे; किंतु एक विद्वान ने लिख दिया कि महाभारत के मैदान में संध्या के समय अन्य लोग संध्या करते थे और भगवान श्रीकृष्ण घोड़े की परिचर्या करते थे। संत कबीर साहब की वाणी—'झीनी झीनी बीनी चदरिया।'—पर उन्होंने यह लिखा है कि कबीर चादर बिनता जाता था और यह पद 'झीनी झीनी बीनी चदरिया।' गाता जाता था। मानो परमात्मा को ओढ़ाने के लिए वह चादर बिनता हो। लेकिन उनके सम्पूर्ण पद्य को सुनिए—

झीनी झीना बीनी चदरिया।।टेक।।
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौने तार से बीनी चदरिया।।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी चदरिया।।
आठ कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।।
साईं को सियत मास दस लागै, ठोक ठोक के बीनी चदरिया।।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़िके मैली कीन्हीं चदरिया।।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया।।

एक विद्वान ने—'**सतपुरुष इक बसैं पछिम दिसि, तासों करो निहोर**' का अर्थ किया था कि 'कबीर मुसलमान खानदान के थे। इसलिए उन्होंने मक्का का संकेत किया।' किंतु वे इसका क्या अर्थ करेंगे, जब कबीर साहब ने चारो दिशाओं का हाल कहा है—

जानता कोई ख्याल ऐसा।.....
पूरब सोधि पछिम दिस लावै, अर्ध उर्ध के भेद बतावै।
सिला नाथि दक्खिन को धाओ, उत्तर दिसा को सुमिरन चाखो।
चारो दिसा का हाल।।ऐसा.।।

केवल विद्या-बुद्धि से ही संतवाणी का अर्थ नहीं हो सकता। इसके लिए युक्ति जाननी चाहिए और अभ्यास भी करना चाहिए, तभी संतवाणी का ठीक-ठीक अर्थ हो सकेगा। स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश करना मरना है। कबीर साहब ने कहा है—

मरिये तो मरि जाइये, छूटि पड़े जंजार।
ऐसी मरनी को मरै, दिन में सौ सौ बार।।

यहाँ दिन का अर्थ समय से है। समय में ही रहकर लोग जनमते-मरते हैं। लेकिन जबतक जन्म का कारण जो है, उसके पार न हो जाय, तबतक यह छूट नहीं सकता। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महा-कारण; इन सब शरीरों को जो पार कर जाएगा, तब जो उसका मरना होगा, तो फिर जनमना-मरना नहीं होगा। ऐसा जिस जन्म में होगा, उसके बाद फिर उसका जन्म नहीं होगा। इसलिए बहुत भजन करना है।

एक गरीब का बच्चा हो या अमीर का, दुःख सबको होता है। बचपन में मलमूत्र पर पड़े रहना, जवानी में विकारों में फँसना, इसी दुःख में लगे

रहना बुद्धिमत्ता नहीं है। इससे छूटने के लिए भजन करना चाहिए। ऐसा विश्वास है कि अभी कुछ जपते हैं, प्राणायाम करते हैं, इससे ही हमारी मुक्ति हो जाएगी, इसका विश्वास नहीं करना चाहिए। यह तो उतना ही है—जहाँ से योग का आरंभ किया जाता है। किंतु इस विन्दु के बिना काम नहीं चलता और केवल इसी में लगे रहने से भी काम नहीं चलता। इससे आगे बढ़ने के लिए किसी जानकार गुरु को धारण करो। योगशिखोपनिषद् में गुरु को कर्णधार कहा है—

कर्णधारं गुरुं प्राप्य तद्ववाक्यं प्लवव दृढम्।
अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम्।।

अर्थात् गुरु को कर्णधार (मल्लाह) पाकर और उनके वाक्य को दृढ़ नौका पाकर अभ्यास (करने की) वासना की शक्ति से भवसागर को लोग पार करते हैं। n

यह प्रवचन मुरादाबाद नगर स्थित श्रीसंतमत सत्संग मंदिर में दिनांक १४.१०.१९५४ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१७. एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो

प्यारे लोगो!

आपलोगों को संसार की वस्तुओं में से कुछ-न-कछ अवश्य प्राप्त है। किंतु इन वस्तुओं से आप अपने को कैसा समझते हैं, मालूम है। सांसारिक वस्तुओं में से अधिक या कम जो कुछ भी प्राप्त है, इसमें संतुष्टि नहीं आती है। जहाँ संतुष्टि नहीं है, वहाँ सुख-शान्ति नहीं है। यह खोज अवश्य चाहिए कि जिसको पाकर पूरी संतुष्टि हो जाए, वह क्या है? इसके लिए संसार में कोई खोजे तो संसार के सभी पदार्थ इन्द्रियों के द्वारा जानते हैं। रूप को आँख से, शब्द को कान से आदि; इन सब पंच विषयों से विशेष कुछ संसार में नहीं है। यदि है भी तो आप कैसे जान सकते हैं। इसलिए संत महात्मा कहते हैं कि जिसमें पूरी संतुष्टि है, वह पूरी संतुष्टि देनेवाला पदार्थ परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उस परमात्मा की खोज करो। इसका कारण है कि परमात्मा पूर्ण हैं और इन्द्रियाँ अपूर्ण शक्तिवाली हैं। अपूर्ण शक्तिवाली इन्द्रियों से पूर्ण सुख-शान्ति को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए पूर्ण परमात्मा को खोजो। वह परमात्मा कहाँ है, स्वरूपतः वह क्या है? इसका पता लगाओ। मुख्तसर में है कि जो इन्द्रियों से अगोचर है, आत्मगम्य है, वह वही है। वह सर्वत्र है। कहीं से भी खाली नहीं है। बाहर-भीतर एक रस सब में है। 'बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुर गिआन बताई।' (गुरु नानक साहब) इसलिए उसकी खोज करो। जो वस्तु आपके घर में हो और दूसरे के घर में भी हो तो उसे लेने की सुगमता कहाँ होगी? अपने घर में या दूसरे घर में? अपने घर की वस्तुओं को लेने में ही सुगम है। दूसरी बात है कि इन्द्रियों से विषयों का बाहर में ज्ञान होता है, किंतु परमात्मा इन्द्रिय-ज्ञान द्वारा जाना नहीं जाता। तब फिर उसे बाहर में इन्द्रियों से खोजकर कैसे प्राप्त कर सकते हैं। संत कबीर साहब ने कहा है—'परमातम गुरु निकट विराजैं जागु जागु मन मेरे।' परमात्मा अपने अंदर में अत्यंत निकट है। यह शरीर कब गुजर जाएगा, ठिकाना नहीं। भजन करने का अवसर निकल जाता है, पीछे पछतावा होती है। इसलिए इसके छूटने के पहले से ही भजन करो। परमात्मा को ढूढ़ने में विलम्ब मत करो।

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलै होयगा, बहुरि करैगा कब।।
— संत कबीर साहब

इसलिए जल्दी खोज करनी चाहिए। फिर कहा—

जुगन जुगन तोहि सोवत बीते, अजहुँ न जाग सबेरे।
— संत कबीर साहब

माया मुख जागे सभै, सो सूता कर जान।
दरिया जागे ब्रह्म दिसि, सो जागा परमान।।
— संत दरिया साहब

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज का कहना है—

मोह निशा सब सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति; ये तीनों अवस्थाएँ सबको प्रतिदिन हुआ करती हैं। यह कैसे होता है? जागने के समय में एक स्थान में, स्वप्न में दूसरे स्थान में, सुषुप्ति में तीसरे स्थान में जीव रहता है। स्थान-भेद से अवस्था-भेद और अवस्था-भेद से ज्ञान-भेद होता है। अभी आप जगे हुए हैं, किंतु साधु-संत इस जगना को भी जगना नहीं कहते हैं। तीन अवस्थाओं से ऊपर तरीय अवस्था में अपने को ले जाओ तब जगना है। 'तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।' जबतक तुरीय में जीव नहीं जाता है, तबतक जगना नहीं है। केवल विचार में जान लेने से जगना नहीं है, जगना तब होता है, जब चौथी अवस्था में जाओ। इसके लिए गुरु से यत्न जानो। गुरु यत्न बता भी दे और यत्न जाननेवाला अभ्यास नहीं करे तो वहाँ कैसे पहुँच सकता है? जितने पदार्थों में हमारी आसक्ति होती है, वहाँ-वहाँ हम लसकते हैं। इस लसकाव से अपने को विचार द्वारा छुड़ाओ और अंतर-अभ्यास द्वारा उस लसकाव के संबंध को ढीला करो। तुरीय का मैदान भी बहुत लम्बा है। इसमें बढ़ने पर आसक्ति छूटती जाती है। साधु-संत लोग ईश्वर की खोज अपने अंदर करने कहते हैं। गुरु नानकदेव ने भी कहा है—

काहे रे बन खोजन जाई।
सरब निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई।।
पुहुप मधि जिउ बासु बसतु है, मुकुर माहिं जैसे छाई।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि, घटही खोजहु भाई।।
बाहरि भीतरि एको जानहु, इहु गुर गिआन बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनै, मिटै न भ्रम की काई।।

गोस्वामी तुलसीदासजी को भी अपने अन्दर में ईश्वर की प्राप्ति हुई। वे कहते हैं—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल, परम सुगंध कहाँ ते आयो।।
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेंवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।।
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुण, तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि, विषय बबूर बाग मन लायो।।
तुम्ह सम ज्ञाननिधान मोहि सम, मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय, कीजै नाथ उचित मन भायो।।

लोग ग्रंथों को पढ़-पढ़कर व्याख्यानों को सुन-सुनकर ईश्वर का ज्ञान समझते हैं। किंतु यह ज्ञान पूर्ण नहीं है। पूर्ण ज्ञान प्रत्यक्षता में है। गोस्वामी तुलसीदासजी अपने लिए कहते हैं—

ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेंवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।।

सूरदासजी महाराज भी यही कहते हैं—

अपुनपौ आपुन ही में पायो।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।।
ज्यों कुरंग नाभि कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो।
फिर चेत्यो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तनु छायो।।
राज कुँआर कण्ठे मणि भूषण, भ्रम भयो कह्यो गँवायो।
दियो बताइ और सत जन तब, तनु को पाप नशायो।।
सपने माहिं नारि को भ्रम भयो, बालक कहुँ हिरायो।
जागि लख्यो ज्यों को त्यों ही है, ना कहूँ गयो न आयो।।

सूरदास समुझै की यह गति, मन ही मन मुसुकायो।
कहि न जाय या सुख की महिमा, ज्यों गूँगो गुर खायो।।

गोस्वामी तुलसीदासजी की तरह सूरदासजी भी मृगा की उपमा देते हैं। फिर ये एक माई की उपमा देते हैं कि जैसे कोई माई अपने बच्चे को साथ में लेकर सो गई और स्वप्न में देखती है कि बच्चा खो गया। किंतु जगने पर उसे अपने नजदीक ही मिलता है। उसी तरह माया में सोया हुआ प्राणी को ईश्वर खोया हुआ मालूम होता है, किंतु ईश्वर उसके नजदीक में ही है। पलटू साहब भी कहते हैं—

बैरागिन भूली आप में जल में खोजै राम।।
जल में खोजै राम जाय के तीरथ छानै।
भरमै चारिउ खूँट नहीं सुधि अपनी आनै।।
फूल माहिं ज्यों बास काठ में अगिन छिपानी।
खोदे बिनु नहिं मिलै अहै धरती में पानी।।
दूध मँहै घृत रहै छिपी मिंहदी में लाली।
ऐसे पूरन ब्रह्म कहूँ तिल भरि नहिं खाली।।
पलटू सत्संग बीच में करि ले अपना काम।
बैरागिन भूली आप में जल में खोजै राम।।

हमलोगों का यह संतमत-सत्संग है। संतमत वह है, जो सब संतों की राय है। यह ज्ञान कि ईश्वर अपने अंदर है, अपने अंदर उसकी खोज करो यही सब संतों की राय है। लोग ईश्वर की खोज में दूर-दूर तक हैरान न हों, उसकी खोज अपने अंदर में करें। इसलिए संतों का सत्संग है। शरीर से जैसे मनुष्य है, उसी प्रकार ज्ञान से भी मनुष्य होना चाहिए। जब बाहर के विषयों को छोड़कर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है, तब वह पूरा मनुष्य होता है। इसलिए हमलोगों को चाहिए कि पूरा मनुष्य बनें और सारे क्लेशों से दूर हो जाएँ। त्रैकाल संध्या अवश्य करनी चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर मुँह-हाथ धोकर, दिन में स्नान के बाद और फिर सायंकाल; तीनों काल संध्या करो। यह कितने पूर्व से है ठिकाना नहीं। हमारे मुसलमान भाइयों के लिए पंचबख्ती नमाज है। बहुत मुसलमान भाई करते हैं, वे बहुत अच्छा करते हैं। जो नहीं करते हैं, वे ठीक नहीं करते हैं, पाप करते हैं। उसी तरह हमारे भारतीय वैदिक धर्मावलम्बी को भी त्रैकाल संध्या करनी चाहिए। जो नहीं करते हैं, वे ठीक नहीं करते, पाप करते हैं। अपने अंदर में परमात्मा की खोज होनी चाहिए। मन्दिरों में जो दर्शन होता है, वह अपूर्ण है। इच्छा रह ही जाती है कि प्रत्यक्ष दर्शन होता। इसलिए अपने अंदर में खोजिए। n

यह प्रवचन रोहतास जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर डेहरी ऑन सोन में दिनांक १८.१०.१९५४ ई० के सत्संग में हुआ था।

९८. सिमटी दृष्टि से देखो

प्यारे लोगो!

मन की चंचलता में संसार है और मन की निश्चलता में परमात्मा है। मन चंचल होता है, विषयों के अवलम्ब से। जैसे भौंरा एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है सुगंधि के लिए; क्योंकि बगीचे में विविध प्रकार के फूल रहा करते हैं। जहाँ एक-ही-एक फूल हो और फूल नहीं हो, वहाँ भौंरा एक ही फूल पर रहेगा। इसी प्रकार रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पंच विषयों पर मन दौड़ता रहता है। यदि इन पंच विषयों को हटा दीजिए तो संसार क्या रहता है? जो आँख से देखा जाय, वह रूप है, जो कान से ग्रहण हो वह

शब्द है, जो जिभ्या से ग्रहण हो वह रस है, जो त्वचा से ग्रहण हो वह स्पर्श है तथा जो नासिका से ग्रहण हो वह गन्ध है। इन पाँचो को हटा दो तो संसार नहीं रहेगा। इन्हीं पाँचों में विविध प्रकार हैं। एक ही शब्द में छत्तीस प्रकार हैं। तीस राग और छह रागिनी। इसी प्रकार दृश्य कितने प्रकार के हैं, ठिकाना नहीं। इन्हीं सब विषयों की ओर मन दौड़ता रहता है। मन केवल एक ही विषय पर नहीं दौड़ता। जहाँ एक विषय है, वहाँ दूसरा विषय भी है। एक विषय दूसरे विषय का साथी है। इन सब विषयों में मन जब किसी एक विषय पर रहता है तो अन्य विषयों पर भी दौड़ता है। दूसरी बात यह कि घर में बहुत चीजें हैं, सबको निकाल दीजिए तो केवल शून्य बच जाता है। मन बिना किसी एक पर रहे नहीं मानता। मन से पंच विषयों को हटा दीजिए तो संसार नहीं बचता, तब परमात्मा बचता है। ईश्वर में मन को लगाना चाहे तो पंच-विषयों से मन को हटा लीजिए। परमात्मा की ओर हो जाएगा। ईश्वर की भक्ति यही है कि निर्विषय की ओर मन जाए।

ध्यान करना भक्ति है। मन को निर्विषय करना ध्यान है। 'ध्यानं निर्विषयं मनः।' संसार को पंच-विषयमय कहते हैं, तीन को छोड़ देने पर दो रहने पर भी संसार है नाम और रूप। शब्द और दृश्य। शब्द और दृश्य चले गए तो संसार भी चला गया। नाम और रूप संसार है। संसार-मुख नहीं, ईश्वर-मुख होना है। संसार को नहीं, ईश्वर को पकड़ना है। नाम और रूप छूट जायँ, तो ईश्वर को पाओगे। शब्द बहुत-से हैं और रूप भी बहुत-से हैं। ये कैसे छूटे? तो किसी एक शब्द को जपो और सब शब्दों को छोड़ दो, यही गुरु-मंत्र है। इसी तरह रूप भी बहुत हैं तो एक रूप को लो और सब रूपों को छोड़ दो। जो रूप गुरु ने दिखाया है, उस रूप पर आसक्त होकर उसमें लगे रहो। अब नाम-रूप में सिमटाव हो गया। केवल एक ही नाम और एक ही रूप है, फिर भी संसार मौजूद है। एक नाम और एक रूप में जो मन रहा तो स्थूल नाम रूप में रहा। एक ही नाम रूप में रहते-रहते मन का इतना सिमटाव हुआ कि एक पर रह सकता है। जैसे राम कहो, वाह गुरु कहो अथवा ओ३म् कहो, इसमें भी विस्तार है। बिल्कुल विस्तार सिमटाव में आ जाय, ऐसा कौन रूप है? जो रूप सब रूपों का बीज है, वही एक रूप है जिसमें विस्तार नहीं है। जब वर्णात्मक नाम को जपते हैं तो उसका सिमटाव नाद में होता है। नाम का सिमटाव नाद में और रूप का सिमटाव विन्दु में होता है। इसलिए विन्दु में सिमटाव होने से स्थूल से सूक्ष्म में चले आए। नाम-रूप छूटे नहीं हैं भगवान, तो क्या छूट सकते। वे तो सर्वगत हैं। विन्दु रूप भी हरि का है। अणोरणीयाम् रूप का वर्णन भी श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने किया है। विन्दु रूप भगवान का ज्योर्तिमय रूप है। यह इस दृष्टि से देखा नहीं जाता। दृष्टियोग-अभ्यास से प्राप्त होता है। वह दिव्य दृष्टि है। फैली दृष्टि से नहीं सिमटी दृष्टि से देखिए। ऐसा सिमटाव हो, ऐसा निशाना कि जिसका निशान हो कि केवल वही रहे। अर्जुन, भीष्म, कर्ण सबका ऐसा निशान था। दृष्टि समेटने के लिए बाहर मत देखो, अंदर देखो। फैली दृष्टि से नहीं, सिमटी दृष्टि से देखो।

इसी तरह अणोरणीयाम् रूप भगवान का दर्शन होता है। फिर भी सूक्ष्म जगत रहता है। इस दर्शन से भी ऊपर उठना होगा। विराटरूप जगतरूप है। जगतरूप से ऊपर उठने के लिए अरूपी को लेना होगा। इसलिए नाद लेना पड़ेगा। नाद अरूप है। जहाँ मन का पूर्ण सिमटाव होता है, वहीं नाद का उदय होता है। विन्दु पर मन का पूर्ण सिमटाव

होता है, वहीं नाद मिलता है। इसीलिए ध्यान-विन्दूपनिषद् में कहा है—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

शब्द में भी जबतक विविधता है, तबतक संसार है और तबतक परमात्मा का दर्शन नहीं होता है। जब अक्षर ब्रह्म में शब्द लय हो जाता है, वहीं परमात्मा का दर्शन होता है। शून्य के बिना सगुण शब्द नहीं होता। शून्य से सगुण शब्द की उत्पत्ति है और वहीं लय भी होता है। उसी प्रकार ईश्वर से निर्गुण शब्द का उदय होता है और वह शब्द फिर ईश्वर में जाकर लय हो जाता है। तब वहीं 'निःशब्दं परमं पदम्' है। 'एक अनीह अरूप अनामा' ही निःशब्दं परमं पदम्' है। मन की स्थिरता में भक्ति है, मन की चंचलता में भक्ति नहीं है। नाम-रूप के द्वारा इसको टप कर ईश्वर को प्राप्त करो। यही भक्ति है।

n

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर फुलवड़िया में दिनांक ३१.१०.१९५४ ई० के सत्संग में हुआ था।

९९. भया जी हरि रस पी मतवारा

विमल विमल अनहद धुनि बाजै, सुनत बने जाको ध्यान लगे।
सिंगी नाद संख धुनि बाजै, अबुझा मन जहाँ केलि करे।
दह की मछली गगन चढ़ि गाजै, बरसत अमि रस ताल भरे।।
पछिम दिसा को चलली विरहिन, पाँच रतन लिए थार भरे।
अष्ट कमल द्वादस के भीतर, सो मिलने की चाह करे।।
बारह मास बुन्द जहाँ बरसै, रैन दिवस वहाँ लखि न परे।
बिरला समुझि परे वहि गलियन, बहुरि न प्रानी देह धरे।।
काया पैसि करम सब नासै, जरा मरन के संसे गये।
निरंकार निर्गुन अविनासी, तीनि लोक में जोति बरे।।
कहै कबीर जिनको सतगुरु साहब, जन्म जन्म के कष्ट हरे।
धन्य भाग जिनकी अटल साहिबी, नाम बिना नर भटकि मरे।।
—संत कबीर साहब

भया जी हरि रस पी मतवारा।
आठ पहर झूमत ही बीते, डारि दियो सब भारा।।
इड़ा पिंगला ऊपर पहुँचे, सुखमन पाट उघारा।
पीवन लगे सुधा रस जब ही, दुर्जन पड़ी बिडारा।।
गंग जमुन बीच आसन मारयो, चमक चमक चमकारा।
भँवर गुफा में दृढ़ ह्वै बैठे, देख्यो अधिक उजारा।।
चित स्थिर चंचल मन थाका, पाँचों का बल हारा।
चरणदास कृपा सूँ सहजो, भरम करम भयो छारा।।
—भक्तिन सहजोबाई

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

भजन-कीर्तन को सुनो, समझो और वैसा करो। इसीलिए भजन-कीर्तन होता है। '**विमल विमल अनहद धुनि**' तब मालूम होती है, जब ध्यान किया जाता है। '**हरि रस पी मतवारा।**' हरि-रस पीकर मतवाला हो गया। यह कहाँ होता है? तो कहा—इड़ा-पिंगला के ऊपर सुषुम्ना पाट उघरने पर—'**इड़ा पिंगला ऊपर पहुँचे, सुखमन पाट उघारा।**' आपका मन भजन में लगे, मन में भजन करने का प्रेरण हो, इसलिए वार्षिक सत्संग होता है, प्रदर्शनी के लिए नहीं। हरि-रस किसको कहते हैं? जब ध्यान लगेगा और विमल-विमल अनहद ध्वनि सुनोगे, उसमें जो आनंद होता है, वहीं हरि-रस होता है।

दृष्टियोग करते हुए पहला दृश्य अन्धकार रह गया, तब तुम प्रत्याहार करते रहे, धारणा नहीं हुई। प्रत्याहार में ख्याल नहीं रहता है, मन भागता रहता है। कभी-कभी दूर-दूर तक, देर-देर तक

ख्याल नहीं रहता है। बहुत देर के बाद ख्याल आता है कि ध्यान करने के लिए बैठा था, मन कहाँ-कहाँ चला गया, यह लँगड़ा प्रत्याहार है। जिसको प्रत्याहार नहीं होगा, उसको धारणा कहाँ से होगी। धारणा ही नहीं होगी, तो ध्यान कहाँ से होगा? इसीलिए मुस्तैदी से भजन करो। भजन करने की प्रेरणा हो, इसलिए सत्संग है। मन-बहलाव के लिए सत्संग नहीं है। विमल-विमल अनहद ध्वनि होती है, सो बिना ध्यान लगे क्या सुनेगा? जब बाहर के बाजे-गाजे और मधुर संगीत को सुनकर भी मन उस ओर लग जाता है, तब अंदर की विमल-विमल अनहद ध्वनि सुनने में कैसा मन लगेगा, कहा नहीं जा सकता। बिना ध्यान किए विमल-विमल अनहद ध्वनि और हरि-रस को कोई नहीं जान सकता। हरि-रस को ही गोस्वामी तुलसीदासजी ने ब्रह्म-पीयूष कहा है—

ब्रह्मपियूष मधुर शीतल जो, पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृग जल रूप विषय, कारण निशिवासर धावै।।

जिसको विशेष पदार्थ मिल गया, वह विषयों में क्यों दौड़ेगा? जो कोई कहे कि मुझे हरि-रस मिल गया तो उसको देखिए कि वह विषय-रस की ओर दौड़ता है या नहीं। यदि मन विषय-पदार्थ की ओर दौड़ता है और वह कहता है कि मुझे हरि-रस मिला है तो वह झूठा आदमी है, वह झूठ कहता है।

श्रीगुरु पद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

यहाँ हरि-रस है। सहजोबाई कहती हैं—'**भया जी हरि रस पी मतवारा।**' हरि-रस के लिए सबको कोशिश करनी चाहिए। बिना हरि-रस के अपना कल्याण नहीं होगा और न दूसरे की भलाई हो सकती है।

केवल कर्मयोगी होने से नहीं होगा। कर्मयोगी बनने के लिए ऐसा कहना कि श्रीराम और श्रीकृष्ण भजन-ध्यान नहीं करते थे, ठीक नहीं। श्रीराम के भजन-ध्यान के लिए तो गोस्वामीजी ने ऐसा वर्णन किया है कि वे ध्यान में जैसे डूबे ही रहते थे।

भगवान श्रीराम केवल रावण को मारने और कुम्भकरण को पछाड़ने के लिए ही नहीं थे, जब श्रीराम रावण से युद्ध करने के लिए जाते हैं, तो विभीषण कहते हैं—'नाथ न रथ नहिं तन पदत्राणा।' हे नाथ! आप न तो रथ पर सवार हैं और न आपके पैर में जूते हैं। इस बलवान शत्रु को कैसे मारिएगा? श्रीरामजी ने कहा—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होय सो स्यन्दन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिज्ञान कठिन कोदंडा।।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।
सखा धरम मय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।।

कृपानिधान रामजी ने कहा कि हे मित्र! सुनो, जिससे जीत होती है, वह दूसरा ही रथ है। शूरता और धीरज उस रथ के पहिए हैं, सत्यता मजबूत ध्वजा और शीलता पताका है। सारासार का ज्ञानबल, इन्द्रियों की रोक और परोपकारी घोड़े हैं, क्षमा, कृपा और समता की रस्सी से जुड़े (बँधे) रहते हैं। ईश्वर का भजन अति चतुर सारथी है, वैराग्य ढाल और सन्तोष तलवार है। दान, फरसा, ज्ञान तेज बर्छी और श्रेष्ठ विज्ञान (अनुभवज्ञान) कठिन धनुष है। निर्मल और स्थिर मन तरकश के समान है; शम, यम और नियम नाना प्रकार के तीर हैं। ब्राह्मण और गुरु की पूजा नहीं छिदने योग्य सनाह (जिरह बख्तर) है, इसके समान विजय के लिए दूसरा उपाय नहीं है। हे सखा! जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ है, उसको जीतने के लिए कहीं भी शत्रु नहीं है। समता कैसे होगी? समता 'शम' से होगी। 'शम' मनोनिग्रह को कहते हैं। केवल मन में

कर लेना कि 'सम' है, हो नहीं सकता। कर्म से उसकी पहचान हो जाएगी। '**कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा**।' विप्र का अर्थ यहाँ विद्वान है। '**ईस भजन सारथी सुजाना**।' ईश्वर का भजन सुजान सारथी है। कृष्ण अर्जुन के सारथी थे। जिसका सारथी है ईश-भजन, वह ईश-भजन नहीं करे तो सारथी कहाँ से मिले। भगवान श्रीकृष्ण के लिए श्रीमद्भागवत में पढ़िए, वे नित्य ध्यान करते थे। यदि हम कहें कि सब कोई संध्या के समय ध्यान करते थे और श्रीकृष्ण घोड़े की परिचर्या करते थे, कितनी बुरी बात है! ऐसा कहना कि केवल काम ही करो, ध्यान नहीं करो; कितना आश्चर्य है! पाखाने के लिए, बोलने के लिए और गप-शप करने के लिए समय मिलता है और भजन करने का समय नहीं मिलता है! पखाना जाने से शरीर के भीतर का मल निकलता है और ध्यान करने से चित्त का मल निकलता है। देश का काम करते हो और पखाना भी जाते हो। इसी तरह देश का काम भी करो और ध्यान भी करो। ऐसा नहीं समझो कि ध्यान करने लगेगा, तो देश का काम नहीं करेगा। जो ऐसा समझते हैं, उनकी भूल है।

इड़ा पिंगला ऊपर पहुँचे, सुखमन पाट उघारा।

सहजोबाई ने कहा है। यही भजन-भेद है। जो भजन करता है, वह समझता है। शब्दार्थ करने की आवश्यकता नहीं। इड़ा बायीं धार और पिंगला दायीं धार और मध्य में सुषुम्ना है। वही ब्रह्म-पीयूष है। ध्यान में किसी ने विघ्न किया होगा, इसलिए कहा— '**दुर्जन पड़ी बिडारा।**' इसी को दूसरी तरह से कहा—

'गंग जमुन बीच आसन मार्यो, चमक चमक चमकारा।
भँवर गुफा में दृढ़ ह्वै बैठे, देख्यो अधिक उजारा।।'
'पिंगल दहिन गंग सूर्य, इंगल चन्द जमुन बाईं।
सरस्वती सुखमन बीच, चेतन जलधार नाईं।।'

'चमक चमक चमकारा' उनको प्रकाश होने लगा। भँवर गुफा में थिर हो गई, फिर क्या हुआ? चित्त स्थिर हुआ, चंचल मन थक गया और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का बल हार गया। सहजोबाई कहती है कि ऐसा जो हुआ, सो गुरु चरणदासजी की कृपा से हुआ। n

यह प्रवचन अखिल भारतीय संतमत सत्संग के विशेषाधिवेशन, भंगहा (कटिहार) में दिनांक १५.२.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१००. निज काम क्या है?

प्यारे लोगो!

आस्तिक कुल में जन्म लेने से जब किन्हीं को कुछ समझ-बोध होता है, तब से उनको अपने घर के विश्वास के अनुकूल विश्वास होता है कि ईश्वर है; क्योंकि आस्तिक घरों में कोई-न-कोई शब्द, जो ईश्वर-संबंधी है, बोला जाता है। यह सिलसिला चलता ही रहता है। वही बच्चा जिसने बचपन में अपने घर में ईश्वर होने का विश्वास पाया है, जवान और बूढ़ा होता है और यह विश्वास अपने संग लिए चल देता है। संग के कारण इसमें अदल-बदल भी हो जाता है। ईश्वर नहीं माननेवाले का संग अधिक हो जाने से पहला विश्वास जाता रहता है। जिन लोगों का विश्वास नहीं जाता है, उनसे आप युवा या वृद्ध किसी अवस्था में पूछिए कि ईश्वर क्या है, तो वे पूरा-पूरा कह नहीं सकते। घर के सिखाए अनुकूल वे शिव या महादेव कोई ईश्वर-वाचक नाम कहते हैं। किसी घर में कोई कहते हैं कि विष्णु भगवान हैं;

और वे उस रूप का वर्णन करते हैं। कोई माता के रूप में देवी का वर्णन करते हैं। किन्हीं के घर का ईश्वर अमूर्त्त है। वे ऐसा कहते हैं कि वह अकाल है, अमूर्त्त है; परन्तु बिल्कुल ठीक-ठीक बता देने में बहुत गम्भीरता है। कहनेवाले कहते हैं कि वह अनेक रूपों में है; लेकिन अनेक कहने पर भी वह एक है। अनेक नाम रूपों में वह एक-ही-एक है। ऐसा विशेष ज्ञान जाननेवाले लोग कहते हैं। वह शिव नहीं, विष्णु नहीं, अकाल अमूर्त्त नहीं—ऐसा नहीं कहते। वे कहते हैं, सब ठीक है। यह कहकर वे समझाते हैं कि अनेक नाम-रूप होने पर भी एक ही है वह। विष्णु एक रूप, शिव एक रूप और देवी एक रूप, ये अनेक रूप हैं; फिर भी वह एक है। उस एक को समझाना कठिन हो जाता है। इसके लिए मिसाल यह है कि बाहर में शून्य है। यह विस्तृत आकाश (शून्य) सब घरों के बनने से पहले का है और इसके अंदर बहुत से घर बन गए हैं और बनते जाते हैं, फिर सब घरों में शून्य है। वस्तु बनने पर भी शून्य रह ही जाता है। यदि घर से सभी वस्तुओं को निकाल लीजिए, तो फिर भी शून्य रह ही जाता है। जितने घर हैं और उन घरों के अतिरिक्त जंगल, पहाड़, चन्द्र, सूर्य, भूमण्डल जो कुछ हैं, सबके बनने के पहले से ही शून्य था। अगर शून्य नहीं हो, तो कोई वस्तु रख नहीं सकते। और सब कुछ के बनने पर जंगल, पहाड़, चन्द्र, सूर्य में शून्य समझना कठिन होगा, लेकिन घर का शून्य समझने में कठिन नहीं होगा। घर बनने के पहले शून्य था। घर में शून्य है। सब वस्तुओं को घर से निकाल दो, फिर भी शून्य है। घर के शून्य को बाहर के शून्य से मेल है। वह टूटकर अलग नहीं हो गया है। एक घर का शून्य एक प्रकार का, दूसरे घर का शून्य दूसरे प्रकार का। प्रत्येक घर का आकार अलग-अलग है। सब आकारों के शून्य को विचारिए तो घर और बाहर के शून्यों का एक ही प्रकार होता है। जैसे विविध आकार-प्रकार के घरों में आकाश एक ही है, उसी तरह शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश आदि सबमें वह ईश्वर एक ही है। इसलिए कहते हैं कि इनमें भेद नहीं है। सब आकारों को अलग कर दो, तब वह कैसा? तब वह आकार नहीं रखता। आकार में रहने के कारण आकार-सदृश और आकार को हटा दो, तो आकार-रहित। मूलस्वरूप उसका आकार-रहित है। अभी जो पाठ हुआ—

निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।।

ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान रखना चाहे तो यह ईश्वर है। आकाश का उदाहरण तो दिया, किंतु वह वस्तुतः आकाश के जैसा नहीं है। इससे भी विलक्षण है। विलक्षणता क्या है? पहाड़, नदी, जंगल आदि सब कुछ आकाश के अन्दर हैं। यह आकाश स्थूल आकाश है। यह कितना बड़ा है? यह प्रत्यक्ष नहीं देख पाते कि कहाँ इसका अंत है। ज्ञान कहता है कि इसका अंत है। स्थूल आकाश, सूक्ष्म आकाश, कारण आकाश, महाकारण आकाश ईश्वर के अंदर कितने घुसे हुए हैं ठिकाना नहीं। वर्णित आकाश उस परमात्मा में कितने समाए हुए हैं, ठिकाना नहीं, फिर भी वह खाली रहता है। इसलिए 'नभ सत कोटि अमित अवकाशा' कहा। आकाश स्वयं झीना है, किंतु वह कितना झीना है कि सभी उसमें समाए हुए हैं। बुद्धि निर्णय करती है, किंतु पहचान नहीं सकती कि वस्तु रूप में वह क्या है। वस्तु रूप में संसार की वस्तुओं को कैसे जानते हैं? बोला जानेवाला, सुना जानेवाला पदार्थ शब्द है। प्रश्न हो कि शब्द क्या है, तो कहेंगे कान से जो पकड़ा जाय, वह शब्द है। जो आदमी जन्म से बहरा है, वह आँख से देख सकता है, किंतु बहरा रहने के कारण कुछ सुन नहीं सकता। उसको

किसी तरह लिखने-पढ़ने के लिए सिखलाया जाय और उसको लिखकर दिया जाय कि कान से जो सुनते हो, वह शब्द है तो वह समझेगा कि कान से जो सुना जाता हो, वह शब्द है; किंतु हमारा कान खराब है, इसलिए हम नहीं सुन सकते हैं। वह समझ जाएगा कि श्रवण-शक्ति से जो पकड़ा जाय, वह शब्द है। जो नेत्र से ग्रहण हो, वह रूप है। इस तरीके से भी वस्तु को जाना जाता है। अंधे को यदि समझाया जाय कि तुम नहीं देख सकते हो; किंतु मैं देखता हूँ। आँख से जो पकड़ा जाय, वह रूप है। इसी तरह वस्तु रूप में वह परमात्मा क्या है? अनेक आकाश जिसके अन्दर समा जाते हैं, वह आकाश है, यदि ऐसा कहा जाय तो भी समझ में ठीक-ठीक नहीं आता। पहले तो अपने को पहचानो कि तुम कौन हो? प्रत्येक इन्द्रिय का अलग-अलग विषय है। तुम इस शरीर में रहते हो, तुम्हारा निज काम क्या है? अभी तुम इन्द्रियों में रहते हो। इन्द्रियों से अलग होकर तुम्हारा क्या काम है? अपने को इन्द्रियों के द्वारा नहीं पहचानते हो। अपने को अपने द्वारा और अपने ही द्वारा परमात्मा को प्राप्त करोगे। जो तुम्हारा निज विषय है, वह परमात्मा है। जैसे आँख का विषय कान से नहीं जाना जाता, आँख से ही जाना जाता है, उसी प्रकार आत्मा जीवात्मा से ही जाना जाता है, दूसरे से नहीं। ईश्वर का ज्ञान सत्संग से होता है। जो केवल निज आत्मा से जाना जाता है, वही ईश्वर है। आपको आँख से रूप देखने में आता है, कान से शब्द सुनने में आता है, किन्तु अपने से कुछ करने नहीं आता। आप देह और इन्द्रियों से फूटकर जान सकेंगे कि आप अपने से क्या कर सकते हैं। जाग्रतावस्था में आप काम करते हैं। स्वप्न से यदि आप जगकर देखें तो ज्ञात होगा कि यह शरीर बिछौने पर पड़ा था और मानसिक कर्म होता था। जिस प्रकार शरीर और इन्द्रियों को छोड़कर बौद्धिक कर्म होता है, उसी तरह शरीर और इन्द्रियों को छोड़कर परमात्म-ज्ञान होता है। वह ईश्वर एक है। जबतक उसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता, परम कल्याण नहीं होता। इसलिए संतों ने उसको प्राप्त करने के लिए कहा। वह अंतर्मुख होने से जाना जाता है। शरीर से संबंधित रहने से उसको नहीं जान सकते। अंतर-अंतर अभ्यास करना होगा। अभ्यास करते-करते जड़-चेतन अलग-अलग होंगे। तब उसकी पहचान होगी। श्रवण-ज्ञान और समझ-ज्ञान से उसका प्रत्यक्ष-ज्ञान नहीं होता। इसके लिए बहुत पवित्र बनना होगा। जो संसार के प्रलोभनों में नहीं उलझता, जो पापों से बचा रहता है, ध्यानाभ्यास करता है, उसको परमात्मा प्रत्यक्ष होता है। लोग कहते हैं कि अयोग्य को क्या कहना है। मैं कहता हूँ कि आप उसे योग्य बना दीजिए। केवल रामनाम, सतनाम आदि कहता है, तो यह अपूर्ण ज्ञान है। पूर्ण ज्ञान के लिए उसे समझाओ, सिखाओ।

n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर जोतरामराय में दिनांक १८.२.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१०१. सुमिरण से क्या होता है?

प्यारे लोगो!

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय।।

राजा राणा राव रंक, बड़ा जो सुमिरे नाम।
कह कबीर सोइ पीव को, जो सुमिरे निःकाम।।
नर नारी सब नरक है, जब लगि देह सकाम।

कह कबीर सोइ पीव को, जो सुमिरे निःकाम।।
सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्राण तजे छिन एक में, जरत न मोड़े अंग।।
सुमिरन से मन लाइए, जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरे नहीं, प्राण तजे तेहि संग।।
सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्राण तजे पल बिछुड़े, सत कबीर कहि दीन।।

सुमिरण का अर्थ स्मरण करना है। तरह-तरह से सुमिरण या याद किया जा सकता है। सुमिरण करने से क्या गुण—क्या फल होता है, सो भी कहा। सुमिरण से सुख होता है, दुःख भाग जाता है। अंत में परमात्मा मिल जाते हैं। राजा-रंक कोई हो, बड़ा वही है जो सुमिरण करता है। धन में बड़ा हो, प्रतिष्ठा में बड़ा हो, जाति में बड़ा हो; किंतु सुमिरण नहीं करता है, तो पारमार्थिक दृष्टि से वह बड़ा नहीं है। फल-सहित होकर जो भजन करता है, वह ठीक नहीं। जो निष्काम होकर भजन करता है, वह परमात्मा को पाता है। जैसे घर से सभी चीजों को निकाल देने से खाली जगह बच जाती है, उसी तरह हृदय से सभी फलाशा छोड़ देने पर हृदय में केवल ईश्वर रह जाएँगे। सांसारिक सभी इच्छाओं को छोड़ दो और भजन करो, तो परमात्मा मिल जाएँगे।

एक राजा की बहुत-सी रानियाँ थीं। विदेश जाते समय राजा ने सभी रानियों से पूछा—'तुम्हारे लिए क्या लाऊँ।' सभी ने अपनी-अपनी इच्छानुकूल चीजें लाने को कहा। किंतु एक रानी ने कहा कि मुझे कुछ नहीं चाहिए, केवल आप कुशलपूर्वक मेरे पास आ जाइए। राजा विदेश से लौटकर आया तो सब रानियों को उनकी माँग के अनुकूल चीजें दीं और अपनी उस रानी के पास चला गया, जिसने कुछ माँग नहीं की थी। अब सोचिए, जिसका राजा ही अपना हो गया, उसको क्या कमी रही? सभी खजाना उसी का हो गया। इसी प्रकार परमात्मा जिसके हो जाएँगे, उसको किसी चीज की कमी नहीं रहेगी।

सुमिरण तीन तरह से होता है—एक तो जोर-जोर से पुकारकर, दूसरा धीरे-धीरे बोलकर, जिसमें केवल होठ हिलते हैं और तीसरा है, जिसमें मन-ही-मन जपते हैं। मन-ही-मन जप करने से मन की स्थिरता आती है।

नाम जपत स्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरति शब्द एकै भया, जल ही ह्वैगा मीन।।

लोग मुँह से मिष्ट वचन, अश्लील वचन और कटु वचन बोलते हैं, किन्तु ईश्वर का नाम जपने के लिए एकाग्र मन होना चाहिए।

बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम।
कहा महौला खलक से, पड़ा धनि से काम।।
नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छान।
कंचन मंदिर जारि दे, जहँ गुरु भक्ति न जान।।
नाम जपत कुष्टी भला, चुई चुई पड़ै जो चाम।
कंचन देह केहि काम का, जा मुख नाहीं नाम।।

ईश्वर के गुण का वर्णन करते-करते जपनेवाला उस रंग में रँग जाता है। जो समझ-समझकर जपता है, वह ईश्वर के रंग में रँग जाता है। जैसे कंगाल पैसे को नहीं भूलता, वैसे ही पल-पल नाम को जपो, एक घड़ी भी मत छोड़ो, जैसे पनिहारी माथे पर गगरी लेकर चलती है और रास्ते में बातचीत भी करती जाती है। यह मानस ध्यान है।

सुमिरन से मन लाइए, ज्यों सुरभी सुत माहिं।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं।।

यह भी मानस ध्यान है। किंतु दोनों में अंतर है। गाय का बच्चा गाय के अंग-संग नहीं है; किंतु पनिहारी की गगरी उसके अंग-संग मौजूद है, तब उस पर ख्याल रखती है। गौ और गौ के बच्चे की जो मिसाल दी गई है, उससे यह गगरी और पनिहारीवाली उपमा विशेष है। जो चिह्न आपके

अंग-संग मौजूद है और साधन करके उसे कभी देख लिया, उसको यदि बराबर नहीं देख सकते हैं तो जिस स्थान पर वह चिह्न है, उस ओर आपका मन लगा रहे, सुरत उधर लगी रहे तो बहुत अच्छा है। दृष्टि-साधन में यदि आपने एक बार भी झलक देख ली और फिर वह नहीं देख पाते हैं तो उस ओर के लिए आपकी सुरत चलती रहेगी, उठी रहेगी, जिस ओर आपने देखा है। उसकी बारंबार याद आपको रखनी चाहिए। यह सूक्ष्म मानस ध्यान है। बाहर में रूप देखकर जो मानस ध्यान करते हैं, वह स्थूल मानस ध्यान है। यदि आप सूक्ष्म मानस ध्यान कर सकते हैं तो स्थूल मानस ध्यान करने की आवश्कता नहीं है। कबीर साहब ने कहा है—

सुमिरन सुरत लगाय के, मुख ते कछू न बोल ।
बाहर का पट देय के, अंतर का पट खोल ।।

ब्रह्मज्योतियों को देखने से और अनहद ध्वनियों को सुनने से बाहर की कोई चीज याद नहीं आती। केवल परमात्मा याद आता है। इससे परमात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान तो नहीं होता, किंतु उसकी वृत्ति ऊपर उठी हुई होती है। कबीर साहब ने दीप और पतंग की मिसाल दी है, वह है—प्रत्यक्ष ब्रह्मज्योति में अपनी वृत्ति लगी रहे। नाद-कुरंग की जो मिसाल दी है, वह है—शब्द अभ्यासी को नादध्यान में उसी तरह रहना चाहिए। पानी और मछली की जो उपमा है, वह है—जैसे पानी को मछली पसन्द करती है, उससे अलग करने से वह जी नहीं सकती, उसी तरह काम करता हुआ या एकान्त में बैठा हुआ या बहुत लोगों में बैठा हुआ—किसी भी तरह रहे, यदि उसकी सुरत उसमें लगी रहती है, तो वह मछली की तरह है। दीप और पतंग में ब्रह्मज्योति की उपमा है। नाद-कुरंग में शब्द अभ्यास का सहारा है। मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टिसाधन और सुरत-शब्द-योग—सब कुछ सुमिरण के अंदर है। इसलिए कबीर साहब ने कहा है—

जप तप संयम साधना, सब सुमिरन के माहिं।
कबीर जाने भक्तजन, सुमिरन सम कछु नाहिं।।

इसलिए सब किसी को इसकी तरकीब जानकर सुमिरण करना चाहिए। n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी में दिनांक १६.२.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१०२. गृहस्थाश्रम में रहकर स्वल्प भोगी

प्यारे लोगो!

क्लेशों से छूटने के लिए मनुष्य को स्वाभाविक ही अंत:प्रेरण होता है। शरीर धारण करना ही क्लेशों का कारण है। किसी लोक में रहो, उस लोक में रहने योग्य शरीर धारण करके रहो। क्लेश से छुट्टी नहीं है। नरलोक को लोग प्रत्यक्ष देखते हैं और स्वर्गादि लोकों के लिए पुराणों में पढ़ते हैं। संतों ने कहा कि ईश्वर की भक्ति करो। ईश्वर को प्राप्त कर लो, तो सभी शरीरों से छुटकारा हो जाएगा, सभी लोकों से छुटकारा हो जाएगा और सभी क्लेशों से भी छुटकारा हो जाएगा। इसके लिए ईश्वर का भजन करो। भजन करने के लिए पहले युक्ति—भेद जानो, फिर उनसे मिल जाने का अभ्यास करो। यही योग और ज्ञान है। इसको दृढ़ता से जान लो कि ईश्वर की प्राप्ति देहयुक्त रहने से नहीं होता है। आवश्यकता यह है कि एक शरीर को छोड़ो, फिर दूसरे को, तीसरे को एवम् प्रकार से सभी जड़-शरीरों को छोड़ो, तो

ईश्वर की भक्ति पूरी होगी। जैसे आप जगन्नाथ जाना चाहें तो रास्तों को, गाँवों को, नगरों को छोड़े बिना वहाँ नहीं पहुँच सकते। इसी तरह सभी शरीरों को छोड़े बिना परमात्मा की पहचान नहीं हो सकती। योग के नाम से लोगों को डरना नहीं चाहिए। ज्ञान को भी अगम्य न जानना चाहिए। योग—मिलने को कहते हैं और ज्ञान—जानने को कहते हैं। योग के बिना मिल कैसे सकते हैं और ज्ञान जाने बिना मिलेंगे किससे? हमलोग सत्संग करते हैं, यह ज्ञान का उपार्जन है और ध्यान करते हैं, यह योग है। योग चित्तवृत्ति-निरोध को भी कहते हैं। आपलोगों ने सुना होगा कि हठयोग में बहुत आसन आदि लगाने पड़ते हैं। घर को छोड़े बिना नहीं होगा। जो पूर्ण बैरागी होगा, ब्रह्मचारी होगा, उसीसे होगा; किंतु संतों ने ऐसा नहीं कहा। संतों ने कहा है—हठयोग के किए बिना भी ईश्वर की प्राप्ति होती है; किंतु हाँ, संयमी होकर रहना होगा। तब गृहस्थ रहो या विरक्त रहो—दोनों से होगा। संयमी होने का आशय है, मितभोगी होना। स्वल्पभोगी संयमी है। जो भोगों में विशेष आसक्त है, वह भोगी है। उससे संयम नहीं होगा। दो तरह से संयमी होते हैं—एक गृहस्थाश्रम से दूर रहकर और दूसरे गृहस्थाश्रम में रहकर स्वल्पभोगी होते हुए। गृहस्थाश्रम में रहकर संतानविहीन रहे, धनविहीन रहे—ऐसी बात नहीं। संयम से रहे, अपना रोजगार करते रहे और संतान भी उत्पन्न करे। आप कहेंगे कि हम साधारण जन से यह संयम नहीं होगा, तो आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। आपके यहाँ ऐसे बहुत लोगों का इतिहास है, जो गृहस्थ रहते हुए खेती करते-करते, मुंशी का काम करते-करते संत हो गए हैं।

कबीर साहब ताना-बाना करते-करते संत हो गए। आज कितना उनका नाम है, विद्वानों से पूछिए। प्रथम कक्षा से लेकर ऊँची कक्षाओं तक उनकी वाणी पढ़ाई जाती है। कबीर साहब ने दिखला दिया कि घर में रहकर अपना काम करते हुए भी लोग संत होते हैं। कबीर पंथ के लोग उनका गृहस्थ होना नहीं मानते; किंतु और लोग उनका गृहस्थ होना मानते हैं। खैर, जो हो। गुरु नानकदेवजी के लिए तो यह प्रसिद्ध है कि वे गृहस्थ थे। उनके दो पुत्र थे। श्रीशंकराचार्यजी बिना गृहस्थ जीवन बिताए संत हुए। किंतु सर्वसाधारण के लिए कबीर साहब और गुरु नानक साहब का नमूना अच्छा है। आज भी मंदार पहाड़ के नजदीक श्री भूपेन्द्रनाथ सान्यालजी बड़े भारी विद्वान मौजूद हैं, जो बड़े संयमी हैं और साधु-संत से कम दर्जा नहीं रखते हैं। आज जो राधास्वामी मत प्रचलित है, उसके लोग भी गृहस्थ हैं। जो कोई कहे कि गृहस्थ से भजन-साधन नहीं होगा, तो जानना चाहिए कि वे स्वयं इसको नहीं जानते हैं, अपने नहीं करना चाहते और न दूसरे को करने देने का उत्साह देते। इसलिए सब कोई ईश्वर का भजन कीजिए और शरीर रहते ही, यानी जीवनकाल में ही उस परम पुरुष को प्राप्त कीजिए, मुक्ति लाभ कीजिए। संतों ने कहा है कि—

जीवत मुक्त सोइ मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुखसुख भुक्ता हो।।

—कबीर साहब

संतों ने जीवनकाल में ही मुक्ति की मान्यता दी है। संत दादूदयालजी ने कहा है—

जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ।
जीवत काटै कर्म सब, मुक्ति कहावै सोइ।।
जीवत जगपति कौं मिलै, जीवत आतम राम।
जीवत दरसन देखिये, दादू मन विसराम।।
जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ।।

मूआँ पीछे मुकति बतावै, मूआँ पीछै मेला।
मूआ पीछे अमर अभै पद, दादू भूले गहिला।।

—दादू दयाल

आपलोगों ने उपनिषद् के पाठ में भी सुना कि मरने पर जो मुक्ति होती है, वह मुक्ति नहीं है। आप कहेंगे कि गृद्ध शरीर छोड़कर भगवान के रूप को धरकर बैकुण्ठ चला गया, उसकी मुक्ति हो गई, तो जानना चाहिए कि यह असली मुक्ति नहीं है। मुक्ति चार प्रकार की होती हैं—सालोक्य मुक्ति, सामीप्य मुक्ति, सारूप्य मुक्ति और सायुज्य मुक्ति। ये चारों मुक्तियाँ असली मुक्तियाँ नहीं हैं। असली मुक्ति वह है, जिसमें किसी प्रकार की देह नहीं रहे। उसी को ब्रह्मनिर्वाण भी कहते हैं। इसके लिए कोशिश कीजिए। एक शरीर में नहीं होगा,तो दूसरे-तीसरे किसी-न-किसी शरीर में अवश्य होगा। भगवान श्रीकृष्ण की बात याद कीजिए, जो उन्होंने गीता में कही है—योग के आरम्भ का नाश नहीं होता, उसका उलटा परिणाम नहीं होता और वह महाभय से बचाता है। जिस जन्म में आपको स्वयं मालूम हो जाय कि यह जड़ है और यह मैं चेतन हूँ, उसी जन्म में आपको ब्रह्मनिर्वाण हो जाएगा। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो थोड़ा भी योग—ध्यानाभ्यास करेगा, तो शरीर छूटने पर वह बहुत दिनों तक स्वर्गादि सुखों को भोगेगा। स्वर्ग सुख भोगने के बाद इस पृथ्वी पर किसी पवित्र श्रीमान् के घर में जन्म लेगा अथवा योगी के कुल मे जन्म लेगा और पूर्व जन्म के संस्कार से प्रेरित होकर योगाभ्यास करने लगेगा और करते-करते कई जन्मों में मुझको प्राप्त कर लेगा और मुझमें विराजनेवाली शान्ति को प्राप्त कर लेगा। इस योगाभ्यास को बारम्बार करते रहो, कभी मत छोड़ो। किसी के बहकावे में मत पड़ो कि नहीं होगा। आरम्भ कैसे किया जायगा? इसके लिए संतों की वाणियाँ हैं—स्थूल-साधना से सूक्ष्मतम साधना तक करने के लिए। मोटा जप, मोटा ध्यान फिर दृष्टि-साधन और अंत में शब्द-साधन—ये ही चार बातें हैं। मरने का डर नहीं करना चाहिए। शरीर मरता है, आप नहीं मरेंगे। जिनको मरने की आदत हो गई है, वह मरने से क्यों डरेगा? इसीलिए कबीर साहब ने कहा—

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द।।

मरने का डर उसको होता है, जो बुरे-बुरे कर्मों को करता है; क्योंकि उसकी दुर्गति होती है—भगवान श्रीकृष्ण ने गीता, ८/१० में कहा है—

प्रयाण काले मनसा चलेन भक्त्यायुक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

प्रयाणकाल में अर्थात् मरने के समय अचल मन से भक्तियोग युक्त होकर अपने प्राणों को दोनों भौओं के बीच में रखकर जो शरीर छोड़ता है, वह दिव्य परमपुरुष को प्राप्त करता है। जिसको जीते जी इसका खूब हिस्सक लगेगा, उसका कल्याण होगा। जीते जी जो भावना होगी, मरने के समय वही होगी; जैसे जड़भरत की हुई थी। हिरणी के बच्चे में उनकी आसक्ति थी, तो शरीर छूटने पर उनको हिरण का शरीर मिला। साधन-भजन की बात मन में बराबर लानी चाहिए। जो कहे कि हमको बाल-बच्चों की सेवा तथा अपने काम-धंधों से फुर्सत नहीं है, हम भजन-ध्यान क्या करेंगे, तो मैं कहता हूँ कि आपको मरने की फुर्सत है? यदि आपको मरने की फुर्सत नहीं है, तो क्या मौत इसको मान सकती है? समय पर आपको मरना ही पड़ेगा। इसलिए सब कामों को करते हुए कुछ समय बचा-बचाकर ध्यान योगाभ्यास भी किया कीजिए। n

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर बरईचक पाटम में दिनांक २६.२.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१०३. वार्य हिंसा को छोड़ो

प्यारे लोगो!

संतमत के सत्संग से बारम्बार कहा जाता है कि ईश्वर के लिए प्रत्येक को ऐसा ज्ञान रखना चाहिए कि वह आत्मगम्य है, इन्द्रियगम्य नहीं। तत्त्व रूप में परमात्मा वह है, जो चेतन आत्मा से पकड़ा जा सके, ग्रहण किया जा सके। इसको निश्चय करके जानना चाहिए। पंच विषयों में से पूछा जाय कि रूप विषय क्या है तो कह दिया जाय कि जो आँख से ग्रहण हो। उसी तरह परमात्मा क्या है? जो चेतन आत्मा से ग्रहण हो। परमात्म-प्राप्ति के लिए ध्यान-साधन में इसकी जरूरत नहीं है कि पहले मन से जान लें, तब ध्यान करें। मन से वह ग्रहण नहीं हो सकता। उसको मन से कैसे जान सकते हैं? चलो और वहाँ चलो, जहाँ जाकर शरीर-इन्द्रियाँ छूट जायँ और तुम अकेले रह जाओ। इसीलिए यह कहा गया है कि लम्बा मार्ग है। कबीर साहब ने कहा है—

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहुमार।
कहौ संतो क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि दीदार॥

परमात्मा यहाँ-वहाँ सर्वत्र है; किंतु अपनी कमजोरी के कारण हम पहचान नहीं सकते। कमजोरी क्या है? इन्द्रियों के संग में रहना। जो लोग ऐसे हैं, जिनके साथ रहने से ज्ञान की कमजोरी होती है, ज्ञान गिरा रहता है, तो उनके संग से वह भ्रष्ट हो जाता है। इसी तरह चेतन आत्मा को इन्द्रियों का संग हो जाने के कारण इसकी अपनी शक्ति-हीन हो गई है। ऐसा विश्वास करना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य आत्मा को जान सकता है। मनुष्य शरीर में रहकर जो परमात्मा को नहीं जानता है, वह कष्ट में पड़ा रहता है। जानना दो प्रकार से होता है—श्रवण-मनन द्वारा और साधना के द्वारा प्रत्यक्ष करके। श्रवण-मनन के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से पहले अवगत कर लेता है, तब साधना द्वारा परमात्मा को प्रत्यक्ष रूप से जानने लग जाता है। परमात्मा वह है, जो इन्द्रिगम्य नहीं है। इसके लिए जो साधना करता है, वह उस रास्ते पर चलता है। जो उसको पार कर गया है, जिसने कैवल्य पद पा लिया है, उससे परमात्मा हेराया हुआ नहीं रहेगा। इसके लिए परमात्मवत् शुद्ध होना चाहिए। जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं, जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता है। इन्द्रियों का विषयों से छूटकर रहना नहीं हो सकता है, तो मितभोगी, स्वल्पभोगी होते हुए उससे उदास रहना चाहिए। मितभोगी बनो, विषय के स्वाद से उदास रहो। मनुष्य-शरीर को उस काम में लगाना है, जिससे मनुष्य-शरीर सफल होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई॥

यदि ठीक-ठीक निर्विषय की ओर अपने को लगाना है, तो विषय की इच्छा मत करो। परमात्मा की ओर चलो। पाप से निवृत्त होने के लिए पंच पापों को मत करो। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार मत करो। हिंसा के सिलसिले में मत्स्य, मांस, अण्डा मत खाओ। शरीर से मन से हिंसा छोड़ दो। लोग बहुत प्रश्न किया करते हैं कि अनिवार्य हिंसा होती ही रहती है। तो अनिवार्य हिंसा के विषय में समझो, वार्य हिंसा को छोड़ो। खेती करनेमें हिंसा होती है। राष्ट्र पर कोई चढ़ाई करे तो इससे हिंसा होती है। यह अनिवार्य हिंसा है। घर में चोर-डाकू आए तो उससे लड़ना होगा।

अपने को बचाना होगा, यह अनिवार्य हिंसा है। साँस लेने में हिंसा होती है। औषधि खाने से कीटाणु मरते हैं, इसमें हिंसा होती है। लेकिन यह अनिवार्य हिंसा है। युद्ध करके राजा लोग यज्ञ करते थे; क्योंकि युद्ध में भी हिंसा होती थी। अनिवार्य हिंसा से बच नहीं सकते; किंतु वार्य हिंसा से बचो। कितने लोग रोग से पीड़ित होते हैं, तो डॉक्टर उन्हें मछली, मांस और उसका शोरवा खाने-पीने के लिए कहते हैं। किंतु कितने नहीं खाते हैं, फिर भी संसार में स्वस्थ रहते हैं। महात्मा गाँधीजी की पत्नी बीमार हुई। डॉक्टर ने मांस का शोरवा और अण्डा लेने को कहा। उन्होंने लिया नहीं, संयम और पथ्य जैसा महात्मा गाँधी ने बताया, किया, ठीक हो गई; स्वस्थ हो गई। संयम और पथ्य से ऐसा हो जाता है। जोर देकर ऐसा कहना कि मत्स्य-मांस के बिना तुम नहीं बचोगे, झूठी बात है, गलत बात है। यक्ष्मा रोग में बहुत अण्डे खिलाए जाते हैं। मेरा एक सत्संगी बीमार हुआ, पटना में उसकी इलाज हुई। उसने मत्स्य-मांस नहीं खाया। आज भी उसका शरीर है और वह स्वस्थ है। जिस भोजन से अपनी वृत्ति खराब होती है, मन का सात्त्विक रहना असंभव हो जाता है, वह मत खाओ। अपने धर्म की हानि मत करो। मनुष्य-शरीर में पशु-शरीर का मांस डालकर पशुवृति मत लाओ। मनुस्मृति में आठ घातक बतलाए गए हैं—' **अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।**
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः।।

१. पशुवध करने की आज्ञा प्रदान करनेवाला, २. शस्त्र से मांस काटनेवाला, ३. मारनेवाला, ४. बेचनेवाला, ५. मोल लेनेवाला, ६. मांस को पकानेवाला. ७. परोसने के लिए लानेवाला और ८. खानेवाला; ये आठो घातक (हिंसा करनेवाले) ही कहलाते हैं। इसलिए संतों ने पहले से ही इसको मना किया है। कबीर साहब मुसलमान घर में पाले पोसे गए थे। नूर अली और उसकी पत्नी नीमा को संतान नहीं थी। उनलोगों को बच्चे की ख्वाहिश थी। एकदम तुरत का जन्मा हुआ बच्चा मिल गया। नूर अली ने उसको पाला, जहाँ मांस मछली का खाना ही प्रधान था। किंतु कबीर साहब मांस-मछली नहीं खाते थे। और लोगों के लिए उन्होंने कहा है—

मांस मछरिया खात है, सुरा पान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी की खेत।।
तिल भर मछली खाय के, कोटी गौ दे दान।
काशी करवट ले मरे, तौहू नरक निदान।।
यह कूकर को खान है, मानुष देह क्यों खाय।
मुख में आमिख मेलता, नरक पड़े सो जाय।।

उन्होंने इतना मना किया है, तो स्वामी रामानन्द और स्वामी रामानुज क्यों नहीं मना करते? महात्मा बुद्ध और भगवान महावीर की पुकार है—'अहिंसा परमो धर्मः।' पंच पापों से बचते हुए, संतों की साधना के अनुकूल भजन करो और इतना भजन करो कि उस प्रभु को प्राप्त कर लो, कल्याण होगा। n

यह प्रवचन मुंगेर जिला के जमालपुर में रायबहादुर बाबू दुर्गादास तुलसी के निवास स्थान पर दिनांक २७.२.१९५५ ई० के सत्संग में हुआ था।

१०४. नारदजी को बैकुण्ठ में मोह

प्यारे लोगो!

महात्मा बुद्ध से लेकर अब तक इस कलि काल में बहुत से साधु-संत हुए हैं। उन लोगों ने जो कुछ शिक्षा दी है, लोगों ने उसे ग्रंथों में रख

दिया है। हाल के संतों ने अपने से लिख भी दिया है। संत दरिया साहब, भगवान बुद्ध, महावीर तीर्थंकर आदि ने अपने से लिखा नहीं, केवल कह दिया। बुद्ध, महावीर के बाद तुलसी साहब भी कुछ पढ़े-लखे थे, किंतु उन्होंने लिखा नहीं। लोगों के वचनों को सुनकर ग्रंथाकार किया। इसी तरह प्राचीन काल में ऋषि-मुनि हुए। उन्होंने भी लिखा नहीं, कहा। लोगों ने उसका संग्रह किया, वही उपनिषद् है। उपनिषद् वेद का ज्ञान मानी जाती है। उसमें कर्म और कर्मफल का वर्णन किया गया है, कर्म की विधियों का वर्णन किया गया है, जिससे इस लोक और परलोक में सुख की प्राप्ति लिखी है। उपासना काण्ड में भी दोनों लोकों के सुखों से हटने के लिए कहा और कहा कि ये दोनों बन्धन हैं। दोनों में से किसी में रहो तो आवागमन में पड़े रहोगे। दोनों के सुख क्षणभंगुर हैं, तृप्तिदायक नहीं हैं। जिसमें पूर्ण सुख-शान्ति मिलेगी, वह विषय सुख नहीं है अर्थात् इन्द्रियों से पाने योग्य नहीं है। अर्थात् इन्द्रियों और विषयों के संयोग से जो सुख होता है, वह तृप्तिदायक नहीं। संतों ने कहा कि इहलोक और परलोक दोनों का सुख अनित्य है। इससे परे का सुख नित्यानंद है। यह आत्मा से ग्रहण होने योग्य है। नित्यानंद वह है, जो सदा रह जाय। अनित्यानंद वह है, जो कुछ काल रहे, फिर नहीं रहे। इहलोक और परलोक— दोनों से चित्त हटा रहे, यही उपनिषद् और संतवाणियों में है—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।

यह चौपाई भी यही बात कहती है। 'उस नित्यानंद के लिए कहाँ ठहराव होगा?' यदि यह पूछा जाय तो उत्तर होगा— किसी देश में नहीं, देश-काल के परे। किसी आधार पर आधेय बनकर रहना किसी लोक-लोकांतर में रहना है। आधेय बनकर रहना नित्यानन्द नहीं है। वह अपना आधार आप है। शरीरों से अलग हटा हुआ है, केवल आत्मस्वरूप में रहता है। उसके रहने के लिए स्थान की आवश्यकता नहीं है। वहाँ स्थान नहीं है तो काल भी नहीं। वह देश-काल से अतीत पद है। उसमें आरूढ़ होने के लिए—पहुँचने के लिए संतों ने उपदेश दिया है। संतवाणी का निचोड़ यह है। इसके लिए मनुष्य पहले अपने को जाने। लोग ऐसा ख्याल करते हैं कि जैसे धरती पर रहना है, वैसे ही अन्य लोकों में जाकर सुख से रहना होगा। परन्तु इससे विशेष बात वह है, जिसको मैंने आपलोगों से कहा। चाहिए कि इसके लिए इच्छा उत्पन्न करे और इसको सोचे। मनुष्य अपने को नहीं जानता है, अपने शरीर को अपने तईं कहता है, तो गलत कहता है। शरीर मर जाता है, यह प्रत्यक्ष देखता है। फिर ख्याल होता है कि शरीर में रहनेवाला कहीं चला गया है। इसलिए वैदिक धर्म में हमलोगों के यहाँ जो पुराण में प्रचार है, उससे श्राद्ध-क्रिया करते हैं। शरीर मर गया, शरीर में रहनेवाला कहीं चला गया, उसकी शान्ति के लिए, सुख के लिए श्राद्ध-क्रिया करते हैं। श्राद्ध-क्रिया यह ज्ञान देती है कि शरीर में रहनेवाला कोई था, वह चला गया। उसके लिए श्राद्ध-क्रिया होती है। इस श्राद्ध-क्रिया से शरीर और शरीरी का ज्ञान होता है। यह पूरा ज्ञान तो नहीं है; किंतु आरम्भ का ज्ञान अवश्य है। जिस शरीर को लोग जला आते हैं, उसमें भी शरीर है। फिर उसमें भी शरीर है। एवम् प्रकार से चार जड़-शरीर हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण। मुंशी माखनलाल चले गए या और कोई कितने गए; किंतु क्या केवल आत्मा गयी? नहीं। स्थूल शरीर छोड़कर गयी और सूक्ष्म शरीर को साथ लेकर चली गयी। ऊपर का स्थूल शरीर छूट गया तो ऊपर में सूक्ष्म शरीर रहा। यह शरीर का पूरा ज्ञान है। इन सब शरीरों

के बाद एक शरीर और है, जिसको 'चिदानन्दमय देह तुम्हारी' कहते हैं। यह चेतन शरीर है। चेतन से भी परे स्वरूप आत्मा का है। जैसे स्थूल शरीर में होने पर स्थूल जगत में रहना होता है, इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर के लिए सूक्ष्म जगत होना चाहिए। इसी सूक्ष्म जगत में स्वर्ग-वैकुण्ठादि हैं। कितने लोग स्वर्गादि को नहीं मानते हैं। उस सूक्ष्म लोक और स्वर्गादि में यहाँ के सुख से विशेष सुख और विशेष दिनों तक रहना होता है। किंतु न यहाँ दुःख छोड़ता है और न वहाँ दुःख छोड़ता है। माया-मोह न यहाँ छोड़ता है और न वहाँ।

नारदजी वैकुण्ठ गए। वहाँ उनका मोह और बढ़ गया। गोलोक से श्रीदामाजी कंस के पास राक्षस बनकर आए। वहाँ विषय-सुख है और माया का पसार है। माया में जो होना चाहिए, सो होता है। इसलिए 'स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई'—भगवान श्रीराम ने कहा। संतों ने ज्ञान, योग और भक्ति; तीनों को मिलाकर चलने को कहा। घी, मीठा और अन्न तीनों मिलाकर सुन्दर मिठाई होती है। इसी तरह ज्ञान, योग और भक्ति; तीनों को मिलाकर संतों ने उपदेश दिया है। n

यह प्रवचन भागलपुर जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर एकचारी में दिनांक २.३.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१०५. केवल विद्वता से संतवाणी नहीं समझ सकते

प्यारे लोगो!

मनुष्य अपने परम कल्याण के वास्ते भजन करें। भजन ऐसा करें कि ईश्वर को प्राप्त कर लें। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ऐसा विश्वास मत करो कि अभी कुछ जप ध्यान कर लो, मरने पर प्रभु मिलेंगे। भजन इस जन्म में पूरा नहीं होगा, तो दूसरे जीवन में या अनेक जन्मों के बाद किसी जीवन-काल में ही परमात्मा मिलते हैं। नाम-भजन सबसे श्रेष्ठ है। नाम-भजन दो तरह से होता है—जप और ध्यान। वर्णात्मक नाम का जप और ध्वन्यात्मक नाम का ध्यान करो। इसी ध्वन्यात्मक नाम के ध्यान को नाम-भजन और सुरत-शब्द-योग भी कहते हैं। इसको अंतर्मुख होकर करना पड़ेगा। यह शब्द मनुष्य का बनाया हुआ नहीं है। इसको कोई मनुष्य मुँह से उच्चरित करके किसी से कह भी नहीं सकता है। इसकी युक्ति जानो और ध्यान करो। ध्यान करने से आप-ही-आप यह नाद सुन पड़ेगा। संतों की वाणी में जो पाँच शब्द आते हैं, वे ये हैं कि परमात्मा से सृष्टि के लिए जो मौज होती है, उससे जो धारा प्रवाहित होती है, उससे पाँच मण्डल बनते हैं। उन्हीं पाँच मण्डलों के केन्द्रीय शब्दों को पाँच शब्द कहते हैं। कबीर साहब ने कहा है—

पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग।।

और गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

पंच सबदु धुनिकार धुन तहँ बाजे सबदु निसानु।

जो अपने अंदर गहरा ध्यान करता है, उसको यह नाद मिलता है और उस नाद को गहण कर परमात्मा को पाता है। इससे सरल और सुलभ कोई मार्ग नहीं है। बाबा साहब ने यह नहीं कहा कि मैं एक पुस्तक बना देता हूँ, इसी को पढ़ो। बल्कि उन्होंने कहा कि दुनिया की सारी किताबों को पढ़ो, जो संतों की बनाई हुई हैं। किसी एक कोठरी में अपने को बन्द करके मत रखो। सभी कोठरियाँ तुम्हारी हैं। 'गुरुग्रंथ साहब' में कितने संतों के वचन हैं। यह उदारता है। सभी संतों के ग्रंथों को

पढ़ो। नानकपंथ के दसवें गुरु—गुरु गोविन्द सिंहजी ने कहा है—

बाजे परम तार तत हरि को, उपजै राग रसारं।

यह नादानुसंधान है। नादानुसंधान सभी संतों के ग्रंथों में मिलता है। आजकल बड़े-बड़े विद्वान लोग संतों की वाणियों की खोज करते हैं और उससे वे बड़े-बड़े पुरस्कारों को प्राप्त करते हैं; किंतु केवल विद्वता से कोई संतवाणी को नहीं समझ सकते हैं और ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कि विद्या की आवश्यकता नहीं। बिना विद्या के शब्द का अर्थ नहीं जान सकते। जो बहुत पढ़े हैं, रायचन्द, प्रेमचन्द पास करते हैं। उनके पास शब्दों का भण्डार हो जाता है। अगर वे साधन की क्रिया को जानते हैं, तो ठीक-ठीक अर्थ कर सकते हैं, समझ सकते हैं और समझा सकते हैं। यदि साधना की क्रिया नहीं जानते हैं, केवल पढ़-लिखकर विद्वान हुए हैं, तो संतवाणी का ठीक-ठीक अर्थ नहीं कर सकते हैं।

सत्त पुरुष इक बसैं पछिम दिसि तासों करो निहोर।

संत कबीर साहब की इस पंक्ति का एक विद्वान ने अर्थ किया था कि कबीर साहब मुसलमान खानदान में पाले पोसे गए थे, इसलिए पश्चिम कहकर उन्होंने मक्का का संकेत किया है। विद्वानों को संतों की साधना जाननी चाहिए। साथ ही उसका अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास के साथ- साथ सदाचारी भी बनना होगा। तभी संतवाणी को ठीक-ठीक जान सकेंगे। आजकल विद्वानों में एक भ्रामक विचार फैल गया है कि संतों की साधना में कुछ करना नहीं पड़ता है। आँख भी बन्द नहीं करनी पड़ती। वे कबीर साहब की ये पक्तियाँ कहते हैं—

आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नयन पहिचानौं हँसि-हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।।

पूरा इस प्रकार है—

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली।।
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा।।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खावँ पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।।
आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नयन पहिचानौं हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।।
शब्द निरंतर से मन लागा, मलिन वासना भागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी ताड़ी लागी।।
कहै कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
दुख सुख से कोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समाई।।

संत कबीर साहब ने कहा—'खाँव पिऊँ सो पूजा।' श्रीरामकृष्ण परमहंस भी पीछे चलकर ऐसे ही हो गए थे कि कोई जो कुछ भी काली माई को चढ़ाते थे, वे अपने मुँह में ले लेते थे और खा जाते थे—'कालिकाय्ये नमः' कहकर खा जाते थे। केवल कहने से नहीं होगा। इसकी योग्यता होनी चाहिए। श्रीरामकृष्ण परमहंसजी को इसकी योग्यता हो गयी थी।

गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा।।

इस कसौटी पर कसकर देख लीजिए कि उनमें द्वैत भाव है कि नहीं।

आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नयन पहिचानौं हँसि-हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।।

ऐसी स्थिति उनमें आ गई कि नहीं?

शब्द निरंतर से मन लागा, मलिन वासना भागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी ताड़ी लागी।।

आत्मस्वरूप के दर्शन में ही 'आँखि न मूँदौं कान न रूधौं' होता है। साधनारम्भ में नहीं होता है। साधना के लिए तो कबीर साहब ने कहा है—

बंद कर दृष्टि को फेरि अंदर करै,
घट का पाट गुरुदेव खोलै।

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै,
गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं।
गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासे नहीं,
समुझि विचारि ले मने माहिं।।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइए,
जनम अनेक की अटक खोलै।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै,
जीव और सीव तब एक तोलै।।

यह समाधि में होता है। बाबा नानक ने कहा—

तीनों बंद लगाय कर, सुन अनहद टंकोर।
नानक शून्य समाधि में, नहिं साँझ नहिं भोर।।

ये तीन बंद क्या है? कबीर साहब ने कहा—

आँख कान मुख बंद कराओ, अनहद झींगा शब्द सुनाओ।
दोनों तिल एक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है।।

संतों के पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान बिना साधु-संतों का संग किए नहीं होता। पूर्व का अर्थ होता है—जो पहले हो। इसलिए जो पहले हो, वह पूर्व है। इसका उलटा जो हो वह है पश्चिम। परम सहायक को दाहिना कहते हैं। गोस्वामीजी ने लिखा है—'जे बिनु काज दाहिने बायें।' जो उपकारक के विरुद्ध हो जाय, वह दाहिना नहीं है। दाहिना अर्थात् दक्षिण, जो बड़ा मददगार होता है। उत्तर यानी दक्षिण दिशा का उलटा। उत्तर सबसे परे होता है। नक्शे का उत्तर ऊपर होता है। इसलिए 'प्राणसंगली' के पहले भाग में नक्शा है, उसमें बताया है कि पूर्व अंधकार को कहते हैं। प्रकाश को पश्चिम, शब्द को दक्षिण और निःशब्द को उत्तर कहते हैं। संतों के पारिभाषिक शब्दों के ये अर्थ हैं। और विद्वानों को सूझ गया पश्चिम का अर्थ मक्का। विद्वता भी चाहिए और अच्छे साधु-संत का संग भी। ज्ञान-वृद्धि के लिए एकाग्रता की जरूरत है। एकाग्रता में ज्ञान-वृद्धि होती है। ध्यान में एकाग्रता होती है। एकाग्रता में सिमटाव होता है। सिमटाव होने पर ऊर्ध्वगति होती है। इससे परमात्मा तक पहुँच सकते हो। एकाग्रता जैसे हो, वैसे करो। मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में तीन प्रकार से सिमटाव करना बतलाया है—अमावस्या, प्रतिपदा और पूर्णिमा से। आँख बन्दकर देखना अमादृष्टि है, आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा है और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा है। उसका लक्ष्य नासाग्र होना चाहिए। जिससे जो निभता है, करता है। करने दो। ध्यान में स्थूल, सूक्ष्म—दोनों भेदों को जानिए। सदाचारी बनकर रहिए और ध्यान कीजिए। n

यह प्रवचन भागलपुर जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर एकचारी में दिनांक ३.३.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१०६. ईश्वर के पास क्यों जाना चाहिए?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं ईश्वर-भक्ति का प्रचार सत्संग के द्वारा किया करता हूँ। ईश्वर-स्वरूप जाने बिना उसकी भक्ति कैसे की जाय, निर्णय नहीं हो सकता। ईश्वर-स्वरूप के विषय में कहा जाता है कि आप इन्द्रियों से जो जानते हैं, वह माया है। आँख से देखते हैं माया है, कान से सुनते हैं माया है, बुद्धि से पहचानते हैं वह भी माया है। परमात्मा मायातीत है, उसकी भक्ति मायामय इन्द्रियों के द्वारा हो संभव नहीं। मनुष्य इन्द्रियों को छोड़कर कुछ काम करे असंभव प्रतीत होता है। एक-एक इन्द्री को एक-एक वस्तु का ज्ञान होता है। एक ही इन्द्री को

सब विषयों का ज्ञान नहीं होता। रूप आँख को व्यक्त है, तो कान को अव्यक्त है। शब्द कान को व्यक्त है तो और इन्द्रियों को अव्यक्त है। इसी प्रकार ऐसी कोई एक इन्द्रिय नहीं है, जिसके लिए सब विषय व्यक्त हो। मन सब विषयों को जानता है, परंतु बाहर की इन्द्रियों द्वारा बाहर की इन्द्रियों से हीन कर दो तो मन कुछ नहीं जान सकेगा। जो मन-बुद्धि से परे पदार्थ है, वह बाहर की तो सब इन्द्रियों से परे है ही, उसकी भक्ति हम कैसे करें? इसके लिए सरल मार्ग होना चाहिए। इसकी खोज है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

स्वरूप अर्थात् निजरूप—आत्मरूप। अविगत अर्थात् कहीं से भी खाली नहीं, सर्वव्यापक। अपार अर्थात् स्वरूपतः ससीम नहीं। इति उसकी होती नहीं। यह जो परमात्मा का स्वरूप है, उसका ग्रहण हम कैसे करें? 'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।' ईश्वर-स्वरूप का दर्शन हुआ, यह कैसे माना जाय?

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

—महोपनिषद्

अर्थात् परे से परे को (परमात्मा को) देखने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि यह जड़ है और यह चेतन है। तब प्रत्यक्ष होता है—'जड़ चेतनहिं ग्रंथि पड़ि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।' अभी तो यह है कि यह जड़ है और चेतन प्रत्यक्ष नहीं है, चेतन का कार्य जानते हैं। चेतन प्रत्यक्ष हो जाय, जैसे दूध से मक्खन अलग देखा जाता है। उसी तरह जड़ से अलग होकर चेतन देखा जाय। ऐसा दर्शन हो तब परमात्म-दर्शन उस चेतन से हुआ। परमात्म-दर्शन के लिए दो बातों को याद रखिए। पहली बात—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

—रामचरितमानस

और दूसरी बात उपनिषद् का—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

परमात्मा वह है, जिसके दर्शन से हृदय की ग्रंथि खुल जाय। सभी संशय छिन्न हो जायँ और सभी कर्म नष्ट हो जायँ। फिर एक बात कि जैसे रूप विषय क्या है? इसके लिए ठीक-ठीक उत्तर यही है कि जो आप आँख से ग्रहण करते हैं। इसी तरह और इन्द्रियों के विषय में भी जानना चाहिए। परमात्म-विषय क्या है? परमात्म-विषय वह है जिसको आप अपने से पहचान जायँ, बिना सहारे किसी इन्द्री के। आप स्वयं भी इन्द्रियों के विषय नहीं हैं। अपने शरीर को देखकर आप कहते हैं मैं हूँ। लेकिन विचारने पर कहते हैं मैं शरीर नहीं हूँ। निज स्वरूप क्या है, पहचान नहीं है। सद्ग्रंथों में है महात्माजन कहते हैं और जो इस विषय में लगे रहते हैं। वे कहते हैं जैसे आँख को आँख से ही देख सकते हो, यदि बिना आइने के सहारे नहीं तो भी आइने में चेहरे को देखते हो, आँख को आँख से देखते हो। आँख से ही कान, नाक, मुँह को भी देखते हो। इस उपमा से जानना चाहिए आँख से आँख को देखते हो तो उसी तरह अपने को अपने से देखोगे और अपने से ही बिना किसी इन्द्री के सहारे केवल अपने से अपने को पहचान सकोगे। उसी तरह परमात्मा को भी अपने से पहचानोगे। उसको पहचानने के लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है। भक्ति ऐसी होनी चाहिए कि निज चेतन द्वारा परमात्मा की प्राप्ति हो। भक्ति इसलिए की जाती है कि जिसके लिए भक्ति करते हैं, वह हमको मिल

जाय। इसके लिए नहीं कि जिसकी भक्ति की जाय, वह कभी मिले ही नहीं। भक्ति तो वह है कि परमात्मा मिल जाय। जिसके हृदय में यह उत्कण्ठा नहीं हुई कि वह हमको मिल जाय वह विरही नहीं है। अपने को शरीर, इन्द्रियों से छुड़ाकर अकेलेपन की हालत में आ जाओ। इन्द्रियों का सहारा लेना बिल्कुल छूट जाय। यह जिस तरह हो उस तरह करो, ईश्वर की भक्ति है। क्योंकि ऐसा होने पर ही ईश्वर का दर्शन होगा। कितने मुझसे कहते हैं कि यह क्या कहते हो? तुम सुगम को दुर्गम बताते हो। क्या प्रह्लाद को दर्शन नहीं हुआ था? क्या ध्रुव को दर्शन नहीं हुआ था? क्या शवरी को श्रीराम का दर्शन नहीं हुआ था? इन लोगों को तो आँख से ही दर्शन हुआ था। तब मैं कहता हूँ कि भगवान का कौन रूप असल है—गोपी ने जिस रूप को देखा था, वह रूप या अर्जुन ने जिस दोहरे-तेहरे (दोभुजी, चतुर्भुजी और बहुभुजी विराट) रूप का दर्शन किया था वह या ध्रुव जिस रूप को देखा था या वह प्रह्लाद जिस रूप को देखा था वह? तो किसी को कम-विशेष नहीं, सब असल-ही-असल, कोई नकल नहीं। यदि ऐसा कहो तो क्या वह अनेक रूप होते हुए अनेक हैं? तब लोगों को यह मंजूर नहीं। वे कहेंगे अनेक रूप होते हुए वह एक हैं। तो मैं कहूँगा कि ठीक है, जो ठीक नहीं कहे तो उसके दिमाग में क्या हो गया, कहा नहीं जा सकता। सब रूपों में भगवान है। 'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति वासना धूप दीजै।' सब रूपों में स्वरूप जो है, उसकी पहचान कैसे होगी, सो बता दो। कभी श्रीराम धनुष लिए तो कभी श्रीकृष्ण वंशी लिए, तो कभी विराट रूप, कभी चतुर्भुजी रूप, कभी और रूप; तो असली रूप कौन? यदि कहो कि एक को पहचान लो तो हो गया, तो इसमें दो बातें हैं—एक तो सबको एक ही मानने कहते हो तो सबाल यह होगा कि सबमें वह एक कैसा है? दूसरी बात यह है कि श्रीराम ने कहा कि—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

इससे तो यह बिल्कुल माया ही माया हो जाता है और उपनिषद् वाक्य है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

ऐसा बोलो कौन दर्शन से हुआ? यह जानना चाहिए कि जितने रूपों का वर्णन है, उससे वह नहीं जाना जाता कि उस दर्शन से '**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।**' हो गया।

श्रीकृष्ण भगवान पाँचो भाई पाण्डवों के संग रहते थे। भगवान श्रीकृष्ण उनके सर्वस्व थे। जब उनलोगों ने सुना कि श्रीकृष्ण इस धरातल पर नहीं हैं तो वे लोग भी सब कुछ छोड़कर इस धरातल को छोड़ दिए। किंतु ऐसा सिद्ध नहीं होता कि उनके दर्शन से उन पाण्डवों को '**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।**' ऐसा हो गया था। इसमें यह अवश्य कहना पड़ेगा कि वह जो है, उसका वयान सुनो। गोस्वामी तुलसीदासजी का सुनिये—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा।नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी।ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

यह कैसा है? केवल इतना ही रहता कि हाथ, पैर, नाक, कान, मुँहवाला है, तब तो कुछ बात ही नहीं। किंतु यहाँ तो—

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी।ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

कहकर प्रकृति पार कहा गया है। प्रकृति

सत, रज, तम; तीनों का सम्मिश्रण रूप है। सत्, रज, तम; तीनों से पार हो जाय अर्थात् त्रैगुणातीत हो जाय। त्रैगुणातीत निर्गुण हो गया। शरीर सगुण और शरीर धारण करनेवाला निर्गुण होता है।

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।

राम ने भूप का शरीर धारण किया, वह राम स्वयं कैसा?

जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

'आपुन होइ न सोइ' यह कैसा? इसके लिए आग्रह नहीं? यह तो गोस्वामी तुलसीदासजी के कहने के सहारे और कबीर साहब, गुरु नानक साहब के लिए तो कहना ही क्या? कबीर साहब कहते हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।

बड़ा-से-बड़ा वही हो सकता है जो अनादि अनंत है—असीम है, ईश्वर वह है, जिसकी परिधि कहीं नहीं, सभी जगह केन्द्र-ही-केन्द्र है। जीव वह है, जिसमें केन्द्र सहित परिधि है। चामचश्म—चर्मदृष्टि से नहीं, आत्मदृष्टि से खोजने कहा। बाबा नानक के पास जाएँ और उनसे पूछें कि ईश्वर के विषय में कहिए तो वे कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जाति तुमारी।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।

जैसे कबीर साहब ने कहा—'चाम चश्म सों नजरि न आवै खोज रूह के नैना।' वैसे ही गुरु नानक साहब ने कहा—'बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।' श्रीराम, श्रीकृष्ण, विराटरूप, शिवरूप, देवी रूप; सब रूपों को दण्डवत् करता हूँ। किंतु प्रश्न रह जाता है कि उन रूपों में रहनेवाला कौन है? तथा उसके बिना उपनिषद् की यह सार्थकता रह ही जाती है कि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

जैसे भागलपुर जाना है तो कहलगाँव को छोड़ना होगा। उसी तरह ईश्वर के पास जाना है तो इन्द्रियग्राम को छोड़ो। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि ईश्वर का केन्द्रीय रूप एक जगह है और व्यापक रूप किरणों से है। यह भी एक प्रश्न का उत्तर है कि ईश्वर के पास क्यों जाना चाहिए? ईश्वर तो सर्वत्र है। उसके उत्तर में है कि ईश्वर केन्द्रीय रूप से एक जगह है और किरण रूप से सर्वव्यापक है तो यह उत्तर भी गलत हो जाता है; क्योंकि केन्द्र और उसकी किरण होने से ससीम हो जाता है। वह एक रस व्यापक नहीं हो सकता। किरण वहाँ फैल कर जाती है, जहाँ वह स्वरूपतः नहीं है। इसलिए एक रस व्यापक नहीं हो सकता। सूर्य कितनाहूँ बड़ा हो फिर भी उसकी किरण ससीम ही होगी। क्योंकि ससीम पदार्थ की किरणें भी ससीम होती हैं। ऐसा क्यों न कहो कि सर्वत्र एक समान एक रस व्यापक। किंतु हमें पहचानने की शक्ति नहीं है। पहचानने की शक्ति यहाँ इसलिए नहीं है कि वह इन्द्रियगम्य नहीं है और हम इन्द्रियों के संग-संग हैं। इसलिए जहाँ इन्द्रियों और शरीरों का संग छूटा

वहीं उसका दर्शन हो जाएगा। दूध को मथकर मक्खन अलग कर लेने पर जो काम दूध से होगा, वह काम घी से नहीं होगा और जो काम घी से होगा, वह दूध से नहीं होगा। दूध से खीर बना सकते हैं, पूड़ी नहीं छान सकते। घी से पूड़ी बना सकते हैं, खीर नहीं बना सकते। उसी तरह इन्द्रियों के संग में रहकर जो काम होता है, इन्द्रियों से छूटने पर वह काम नहीं होगा। और इन्द्रियों से छूटने पर जो काम होगा, वह इन्द्रियों के संग में रहने से नहीं। इसीलिए ईश्वर के पास संत लोग जाने कहते हैं। कितने कहते हैं, उसको यहाँ बुला लो। फिर होता है कि उसको बुलाओ तो कहाँ? वह तो सर्वत्र है। किंतु फिर वही बात होती है कि सर्वत्र है तो फिर यहाँ क्यों नहीं पहचानते हैं? जैसे आँख पर पट्टी और रंगीन चश्मा लगा रहने से बाहर की चीज देखी नहीं जा सकती और जो देखी जाती है, वह चश्मा के रंग के अनुरूप रंग में। इसलिए ऐसी भक्ति हो जिससे शरीररूप पट्टी और इन्द्रियरूप चश्मा उतर जाय। मनु-शतरूपा को दर्शन हुआ, जिस रूप को उन्होंने पाने की इच्छा की थी। किंतु उस रूप में रहनेवाले का दर्शन नहीं हुआ। उनका साधन केवल तप था। शारीरिक कष्ट से 'हृदय जवनिका बहुविधि लागी' नहीं टूट सकती। यह वर्णन भी नहीं आया कि उनके हृदय की जवनिका टूट गई थी। उन्होंने इसी आँख से देखा था। माया के दर्शन से मायिक-मोहित बुद्धि रह गई। मनु-शतरूपा के लिए इस तरह कहना मेरी ढिठाई है। उन्होंने भगवान के ऐसा पुत्र माँगा। पुत्र के लिए क्या-क्या हुआ, सो रामायण में पढ़ लीजिए। राजा दशरथ हुए, निरपराधी श्रवण को मारकर शाप लिया। उतनी तपस्या फिर शिकार खेलने का इतना चश्का कि दिन में शिकार खेलते-खेलते नहीं थकते तो रात में शिकार खेलते। पहले तो मेरे मन में था कि रूप-दर्शन करो, किंतु अब समझता हूँ कि रूप-दर्शन से संतुष्ट मत होओ। रूप में कौन है, उसको पहचान कर जानो। नहीं तो केवल रूप-माया में भरमाता है। कितने कहते हैं कि भगवान मेरे पास आएँगे। मैं कहता हूँ नहीं, भगवान के पास मैं जाऊँगा। जो भगवान को बुलाते हैं तो भगवान कहते हैं तुम इस आँख से मुझे नहीं देख सकते हो। इस आँख से देखना चाहते हो तो लो मेरे मायारूप को देखो। किंतु मैं तो उस रूप में रहनेवाले का दर्शन करना चाहता हूँ और आपलोगों को भी मैं उसी को पाने की लालच देता हूँ। सूरदासजी कहते हैं—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।

परम स्वाद है, वह स्वाद कैसा है तो सूरदासजी ही जाने। किंतु यह स्वाद ऐसा है कि पूरी संतुष्टि होती है, माँग-चाँग समाप्त। सूरदासजी भी भगवान के माया-रूप के लिए बहुत लट्टू थे। किंतु चलते-चलते वे अविगत गति तक चले जाते हैं। वे कहते हैं—

जौं लौं सत्य स्वरूप न सूझत।
तौं लौं मनु मणि कंठ विसारे फिरत सकल वन बूझत।।
अपनो ही मुख मलिन मंद मति देखत दर्पन माँह।
ता कालिमा मेटिबे कारण पचत पखारत छाँह।।
तेल तूल पावक पूट भरि धरि बनै न दिया प्रकाशत।
कहत बनाय दीप की बातें कैसे हो तम नाशत।।
सूरदास जब यह मति आई वे दिन गये अलेखे।
कह जाने दिनकर की महिमा अन्ध नयन बिनु देखे।।

यह बुद्धि जबतक नहीं हुई थी, तबतक के दिन उनके बेहिसाब के ही चले गए। वह सत्य अव्यक्त परमात्म-स्वरूप है अवश्य उसको छिपाकर रखना और उसकी प्राप्ति के यत्नों को नहीं जानना,

जीवों के अमंगल का हेतु है। ऐसा सुन्दर रूप कि जिससे सुन्दर कुछ न हो। यदि उसका सब गहना-जेवर उतार लो तो वह कैसा लगेगा? वह रूप कैसा जिसमें गहना-जेवर देने से चमक-दमक बढ़ जाय, वह पूर्णरूप कहाँ है? पूर्णरूप तो वह है जिसका गहना-जेवर उतारते जाओ तो और चमक बढ़ता जाय। शरीर को लंगटा करने नहीं कहा। शरीर के ऊपर से शरीर को उतारो, जैसे-जैसे लगटा होओगे, वैसी-ही-वैसी खूबसूरती बढ़ेगी। चारो जड़ शरीरों को उतार दो, तो पूर्ण लंगटा हो जाओगे। तब पूर्ण चमक खिल उठेगी। इसी को सुन्दरदासजी ने कहा है—

व्योम को व्योम अनंत अखंडित आदि न अंत सुमध्य कहाँ है।
को परमान करै परिपूरन द्वैत अद्वैत कछू न जहाँ है।।
कारण कारज भेद नहीं कछु आप में आपहिं आप तहाँ है।
सुन्दर दीसत सुन्दर माहिं सु सुन्दरता कहि कौन उहाँ है।।

वहाँ हाथ-पैर कुछ नहीं रहता। अब कुछ सुगम कहकर दुर्गम की ओर ले जाऊँगा और तब सत्संग समाप्त कर दूँगा। आपलोग नित्य प्रति सोते हैं। सोते समय जाग्रत से स्वप्न में जाते समय, शक्ति भीतर को खींचती है हाथ-पैर कमजोर होने लगते हैं। बाहर शरीर कहाँ है, कुछ पता नहीं। मुँह में मिश्री रहने पर भी उसका स्वाद नहीं। देह तो मर नहीं गयी, श्वाँस तो चलती ही रहती है। देह के अंदर ही रहे और बाहरी ज्ञान से शून्य हो गए। बाहरी वस्तु का ज्ञान नहीं रहा। बाहरी विषय उसके पास धर दीजिए, किंतु उसको उसका ज्ञान नहीं होता। वह भीतर चला गया है। मानसिक धार—चेतन धार असली चीज है, उसी से सब इन्दियाँ सचेष्ट हैं। वह धारा इन्द्रियों की घाट से सिमट गई, स्वाभाविक ही सिमट गई। हमारे आपके करने से नहीं। जिस समय अंतर्मुख होता है, उस समय बड़ा सरूर वा चैन मालूम होता है। कोई इन्द्री अपने विषय में नहीं, फिर भी चैन। जिस वक्त उस ओर सरकाव होता है, शरीर ढीला होता-जाता है। उस समय कोई खटखुट कर दे, नींद टूट जाय तो बहुत दु:ख होता है। एक विचित्र चैन तन्द्रा में मालूम होता है। खाने-पीने की कोई चीज नहीं, फिर भी आनंद। सोते समय अन्तर्मुखी होते हैं, जब आप सोने लगते हैं, तब संकल्प—ख्याल छूटते जाते हैं। छूटते-छूटते सब छूट गए और आप गहरी नींद में चले गए। इससे जानने में आता है कि भीतर जाने के लिए ख्यालों को छोड़ना पड़ेगा। भीतर जाने के लिए बाहरी इन्द्रियों का संग छोड़ना होता है। स्थूल ज्ञान नहीं रहता। यह कैसे होगा? ख्यालों को छोड़िए। कैसे ख्याल छोड़ा जाय? इसके सहारे के लिए तुलसीकृत रामायण में नवधा-भक्ति का वर्णन पढ़िए और उसकी प्रत्येक विधि से भक्ति कीजिए। प्रथम विधि है संतों का संग कीजिए, जो बातें हों उनमें रत हो जाइए और गोस्वामी तुलसीदासजी की यह बात भी याद रखिए—

नित प्रति दरसन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी काहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

क्योंकि कबीर साहब कहते हैं—'कबीर संगति साध की ज्यों गंधी को वास। जो कुछ गंधी दे नहीं, तौभी वास सुवास।।' इसी में गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—'नित प्रति दरशन साधु के,' फिर हरि-रंग क्यों नहीं लगा? उस दूकान पर गंधी का गंध ही नहीं लगा। तो गोस्वामी तुलसीदासजी उत्तर देते हैं—

मन तो रमे संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

साधु के संग में चुपचाप बैठो। साधु की ओर ख्याल लगाकर रखो तो साधु का प्रभाव पड़ेगा। रामकृष्ण परमहंसजी गीत गाते थे और रानी रासमणि मन-ही-मन मुकदमा का ख्याल करने लगी।

परमहंसजी ने उसको एक थप्पड़ लगायी, बोले—मुझे गीत गाने कहती है और तुम मुकदमा की बात सोचती है। नानक साहब को मुसलमानों ने कहा कि तुम नमाज नहीं पढ़ते हो, नमाज पढ़ने चलो। गुरु नानकजी मस्जिद में गए। सब कोई नमाज पढ़ने लगे और ये बैठे रहे। कोई उलटकर देखता था, कोई मन ही मन कहता था वह नमाज नहीं पढ़ता है, काफिर है। और जो नबाब था, वह मन-ही-मन काबुल में घोड़े का मोल करता था। नमाज समाप्त होने पर उन लोगों ने कहा—तुमने नमाज नहीं पढ़ी। तो गुरु नानक ने कहा—तुमलोगों ने नमाज नहीं पढ़ी, तो मैंने भी नहीं पढ़ी। उनलोगों ने कहा—हमलोगों ने तो नमाज पढ़ी, तुम कैसे कहते हो कि हमलोगों ने नमाज नहीं पढ़ी। गुरु नानक ने कहा—तुमने नमाज कहाँ पढ़ी? तुम तो मन ही मन कहते थे कि वह काफिर बैठा है, नमाज नहीं पढ़ता है। और तुम्हारा नबाब काबुल में घोड़ा खरीद रहा था। पूछो, मैं सच कहता हूँ या झूठ? यह सुनकर उनलोगों ने कहा—छोड़ दो इनको, यह रोशन जमीर है।

हाँ, तो साधु के संग में जाकर ख्यालों को छोड़िए। कथा-प्रसंग में डूब जाओ।

गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।

जैसे छत्रपति शिवाजी समर्थ रामदासजी की सेवा करते थे। जैसे राय शालिग्राम बहादुर अपने गुरु की सेवा करते थे। ये यमुनाजी से नंगे पैर पानी लाते थे। रास्ते में कोई कह दिया कि मेरे घर में पानी नहीं है, तो कहते ले लो। उसे वह पानी देकर फिर यमुनाजी से पानी लेकर गुरु महाराज के पास आते थे। इसी प्रकार मान-प्रतिष्ठा छोड़कर गुरु की सेवा करो। बेमन सेवा करेगा तो जो सच्चा गुरु होगा, वह सेवा स्वीकार नहीं करेगा। इस तरह यहाँ भी मन लगाना है। किंतु गुरु के बारे में भी सचेत रहिए। बहुत लोग गुरु-भक्ति के विषय में बहुत बात कहते हैं। वे कहते हैं गुरु-सेवा के कारण बहुत बड़े-बड़े अनर्थ हुए हैं। तो जानना चाहिए कि—

तन मन ताको दीजिये, जाके विषया नाहिं।
आपा सब ही डारि के, राखे साहेब माहिं।।

—कबीर साहब

राधास्वामी साहब ने कहा—

सुरत शब्द बिन जो गुरु होई। वाको छोड़ो पाप कटा।।

ईश्वर का गुणगान करो, किंतु दिखलावे के लिए नहीं। मन समेटकर करो। पाँचवीं भक्ति है—गुरु से जो मंत्र पाए हो, उसको जपो। किसी मंत्र में विशेषता नहीं है। विशेषता जपने में है। किंतु जपने में भी ख्याल रखो। ऐसा न हो कि—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दह दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।

तब जप कैसा होना चाहिए, तो कहते हैं—

तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय।।

यदि कहो कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो कहा है—

भाव कुभाव अलख आलसहू।
नाम जपत मंगल दिसि दसहू।।

तो जानना चाहिए कि जो प्रेम से नाम जपने से होगा, सो कुभाव से कहने से नहीं होगा। अलख—(परमात्मा का) क्रोध से भी नाम लो, किंतु मन से नाम लो। सोकर उठने से आलस होता है तो उस समय तो कोई विशेष बात मन में नहीं रहती है, एकाग्रता से जपना है।

नाम जपत स्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरति शब्द एकै भया, जल ही ह्वैगा मीन।।

इस तरह ख्याल छोड़ने कहते हैं। तब छठी भक्ति पर आते हैं इन्द्रियों को काबू में रखने का स्वभाववाला बनो। बहुत से कर्मों से हटे रहो और

निरंतर सज्जन के धर्म में लगे रहो। इन्द्रियों को रोकने का स्वाभाववाला कैसे बनिएगा? केवल ख्याल से या और कुछ करना होगा? इन्द्रियों को रोकने का स्वभाववाला होने के लिए जानना चाहिए कि इन्द्रियाँ चलायमान कैसे होती हैं। पहले कहा जा चुका है कि इन्द्रियों से मानस-धारा समेटने से उसके पास विषय रहने पर भी वह उसको ग्रहण नहीं करती, इसीलिए जानो कि ऐसी क्रिया होनी चाहिए, जिससे चेतन धार अंतर्मुखी हो सके। विचार से मन को समेटोगे, किंतु वह थोड़ी देर के लिए रहेगा, फिर वैसा ही हो जाएगा। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि समाधि में बुद्धि स्थिर होगी। विचार द्वारा भी रोको और इन्द्रियों की धारों को केन्द्र में केन्द्रित करो, तब 'दम' का साधन होगा। इसके लिए ध्यान करना होगा। पहले देखे हुए पदार्थ को मन से बनाकर देखो। पहले बिना मोटे अक्षरों को लिखे महीन अक्षर नहीं लिख सकता। यहीं पर आता है जिस रूप में आपकी श्रद्धा हो, उसमें महानता है, उसका ध्यान कीजिए। ध्यान अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुकूल है। आपको एक रूप में श्रद्धा नहीं है, तो दूसरे रूप का ध्यान कीजिए। किंतु ऐसी बात नहीं है कि जो रूप-ध्यान आप करते हैं, वह ध्यान दूसरे भी करे। यदि आपको किसी रूप में श्रद्धा नहीं है तो आप ईश्वर का नाम लिखकर ही उसका ध्यान कीजिए। आर्यसमाजी भाई गुरु-रूप का वा किसी रूप का ध्यान नहीं मानते। मैंने कहा—ओ३म् लिखकर ध्यान करो। कितने सूफी लोग अलिफ या अल्लाह लिखकर ध्यान करते हैं।

जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करो गुरुदेव की नाईं।।

गोस्वामी तुलसीदासजी को रघुराई और गुरु दोनों में प्रेम है। चाहे गुरु नानक या कबीर साहब जैसा बनो, तब भी गुरु और तुलसीदासजी जैसा बनो तब भी गुरु। किंतु अयोग्य गुरु के लिए मैं नहीं कहता। स्थूल ध्यान कीजिए। स्थूल ध्यान कहाँ किया जाय? अपने हृदय में ध्यान कीजिए। मैं तो कहूँगा आप सुतीक्ष्ण मुनि जैसा ध्यान कीजिए। श्रीराम वनवास जाते हैं। सुतीक्ष्ण मुनि अगस्त्य मुनि के शिष्य थे। सुतीक्ष्ण को मालूम हुआ कि श्रीराम मेरी कुटी में आवेंगे, उन्हें बड़ा आनंद हुआ। आनंद में आकर वे नाचने-कूदने लगे। कुछ देर नाचने-कूदने के बाद वह आँख बन्दकर ध्यान करने बैठ गए। ध्यान करते-करते वे इतना मग्न हो गए कि उनको बाहर का कुछ भी ख्याल नहीं रहा। श्रीराम आए, वे उनको उठाते हैं, किंतु उनको पता नहीं कि श्रीराम मुझे उठा रहे हैं। वे राम के स्थूल रूप का ध्यान कर रहे थे। भगवान ने उनके मन के उस रूप को बदल दिया, जिस रूप का वह ध्यान कर रहे थे। रूप बदल जाने पर उनका ध्यान टूट गया और आँख खोलने पर श्रीराम को अपने पास खड़ा पाया। यह ध्यान मुझको बहुत पसंद है। इतना ध्यान में गर्क हुआ कि बाहर का ख्याल ही कुछ नहीं रहा। बाहर के सब रूप छूटकर एक रूप रहा। सब शब्दों को छोड़-कर एक शब्द का जप रखो। जप से विशेष ध्यान है।

पूजा कोटि समं स्तोत्रं स्तोत्र कोटि समं जपः।
जाप कोटि समं ध्यानं ध्यान कोटि समो लयः।।

केवल एक स्थूल रूप रह गया और सब छूट गए। रूप में भी अंग-प्रत्यंग पर ख्याल रहा, तब पूर्ण सिमटाव कहाँ हुआ? कोई भी रूप बनता है एक विन्दु से। रूप जगत का बीज विन्दु है। विन्दु को ही अणोरणीयाम् कहा है। 'बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा' कबीर साहब ने कहा है कि इसी को 'अणोरणीयाम् महतो महीयान्' उपनिषद् में कहा है। विन्दुरूप से कोई छोटा नहीं हो सकता। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि विन्दुरूप आ गया और भगवान का रूप छूट गया। किन्तु नहीं, जो सर्वव्यापी है, वह कहीं भाग नहीं सकता। स्थूलरूप

से छूटकर विन्दु रूप में आ गए। विन्दु में पूर्ण सिमटाव होता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। इन्द्रियों के घाटों से सुरत खिंचकर ऊपर उठ जाएगी। यह 'दम' का साधन होगा। 'दम' के साधन में मन और इन्द्रियों का संग-संग साधन होता है। शम में केवल मन का साधन होता है। मनोनिग्रह के बिना समता नहीं आती। इसलिए यदि 'शम' नहीं लेकर 'सम' लो, तौभी मनोनिग्रह करना होगा। विन्दु ध्यान एक मानस विन्दु बनाकर नहीं करना होगा। विन्दु ध्यान के लिए दृष्टि का प्रयोग होना चाहिए। जिसके लिए कबीर साहब ने कहा—'ज्यों सूई बीच डोरा रे'। दृष्टि की धार जहाँ स्थिर होगी, वहीं विन्दु का उदय हो जाएगा। यह ज्योतिर्मय शालिग्राम है।

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्ति निकेतनम् ।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम् ।।
विन्दुनाद महालिंगं विष्णुलक्ष्मीनिकेतनम् ।
देहं विष्णवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम् ।।

—योगशिखोपनिषद्

इस तरह विन्दु ध्यान करते-करते साधक दमशील हो जाएगा। 'शम' अर्थात् मनोनिग्रह के लिए लिखा है कि—'न नाद सदृशो लयः'। नाद विन्दूपनिषद् पढ़ो उसमें है—'नाद मदान्ध हाथी रूप चित्त को जो विषयों की आनंदवाटिका में विचरण करता है, रोकने के लिए तीव्र अंकुश का काम करता है। मृगरूपी चित्त को बांधने के लिए यह (नाद) जाल का काम करता है। समुद्र तरंग रूपी चित्त के लिए यह (नाद) तट का काम करता है।'

मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।
नादोऽन्तरंग सारंग बन्धने वागुरायते।
अन्तरंग समुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा।।

—नादविन्दूपनिषद्

विन्दु प्रगट होने पर नाद प्रगट होता है। नाद का अभ्यास 'शम' का साधन है। ब्रह्म के दो रूप हैं—शब्द ब्रह्म और पर ब्रह्म।

शब्द ब्रह्म परिब्रह्म भली विधि जानिये।
पाँच तत्त्व गुण तीनि, मृषा करि मानिये।।
बुद्धिवन्त सब संत, कहैं गुरु सोइ रे।
और ठौर सिष जाई, भ्रमे जिनि कोइ रे।।

—संत सुन्दरदासजी

यह नाद ब्रह्म की उपासना है। इससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है। नाद ब्रह्म की उपासना से सुरत सब आवरणों को पार कर 'शम' के स्वरूप का दर्शन करती है। तब उसको 'यथा लाभ संतोष' क्यों नहीं होगा? और वह सबसे 'सरल छल हीन' क्यों नहीं हो जाएगा?

महात्मा गाँधीजी के मरने पर इंगलैंड के पादरी कहते थे कि बहुत सीधा होना भी खतरनाक है। किंतु हमलोग कहते हैं कि बहुत सीधा बनो, सीधा बनने का अर्थ बेवकूफ होना नहीं है। अपनी बुद्धि को मत त्यागो! सरल सीधा बनो

शवरी राम से न कुछ माँगती है और न कुछ राम उनको वरदान देते हैं। बल्कि वे कहते हैं—'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे'। शवरी ने राम के सम्मुख ही योगाग्नि में अपने शरीर को छोड़ दिया। योगाग्नि कोई बाहर की अग्नि नहीं है, जिससे शरीर जल जाय। जो योग करता है, उसके अंदर योग-अग्नि प्रकट होती है। ब्रह्मज्योति मिलती है। जहाँ शवरी गई वहाँ दशरथ नहीं गए थे। गिद्ध भी वहाँ नहीं जा सका था। वही भक्ति कीजिए। सगुण और निर्गुण दोनों भक्ति हो जाएगी। पहले निर्गुण भक्ति नहीं हो सकती है। पहले सगुण भक्ति है, फिर निर्गुण। मानस जप, मानस ध्यान स्थूल सगुण रूप उपासना है। विन्दु ध्यान सूक्ष्म सगुण रूप उपासना है। सारशब्द के अतिरिक्त और

शब्दों का ध्यान सूक्ष्म सगुण अरूप उपासना है और सारशब्द का ध्यान निर्गुण निराकार उपासना है। उपासना की यहाँ समाप्ति है। इसके लिए आप को झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों से बचना होगा। नशा एक भी नहीं लेनी होगी। जर्दा भी नहीं लेना होगा। इस तरह भोजन वगैरह का सम्हाल होना चाहिए। ऐसा नहीं कि केवल जान लिया और सम्हाल नहीं है तो सफलता नहीं हो सकती है।

H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत कहलगाँव के धर्मशाला में दिनांक १२.३.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१०७. कायारूप कपड़ों को धो डालो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि जिस तरह मूँज से खींच-खींचकर सींक निकालते हैं, उसी तरह योगी आत्मा से शरीर को भिन्न करके देखते हैं, तब अपने से अपनी पहचान होती है। सींक के ऊपर कई खोल चढ़े होते हैं। एक-एक करके निकालने पर अंत में सींक मिलती है। इसी तरह शरीर के अंदर जीवात्मा है। उसके ऊपर पहला खोल जड़ का है, वह है महाकारण। महाकारण कहते हैं त्रयगुणों के सम्मिश्रण रूप को। वहाँ तीनों गुणों की शक्ति बराबर-बराबर रहती है। जहाँ तीनों गुणों की शक्ति बराबर रहती है, उसको कहते हैं साम्यावस्थाधारिणी जड़ात्मिका मूल प्रकृति। जड़ का पहला खोल यह है। इसके अंदर में दूसरा खोल है, जिसको कारण कहते हैं। महाकारण का कोई भाग जब परमात्मा की मौज से कम्पित होता है अर्थात् महाकारण के जिस भाग में तीनों गुणों की सम अवस्था छूटती है, तब कुछ रचना होती है। वही कारण है, उसके ऊपर है सूक्ष्म, जिसको इन्द्रियों से नहीं देख सकते; किंतु रूप-रेखा बन जाती है। उसके ऊपर स्थूल शरीर है, जो हाड़, मांस, चाम से बना है। इस प्रकार जीवात्मा के ऊपर चार जड़ शरीर हैं। इसी के लिए संत कबीर साहब के वचन में—घूँघट' शब्द आया है। इन चारों को खोल दें, तो फिर ईश्वर-दर्शन में कोई रुकावट नहीं। इसी को गुरु नानक साहब दूसरी तरह से कहते हैं—

घरि महि घरु देखाइ देइ सो सतगुरु परखु सुजाणु।

स्थूल में सूक्ष्म, सूक्ष्म में कारण और कारण में महाकारण व्यापक है। इसी को संत दादू दयालजी ने कहा है—

घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा।

घर में घर को पवित्र रखो और पाँचों कायारूप कपड़ों को धो डालो। स्थूल की पवित्रता बाहरी शौच और अंतःकरण की शुद्धता से होती है। स्थूल की लपेट सूक्ष्म पर से उतर गया, सूक्ष्म पवित्र हो गया। इसी प्रकार कारण और महाकारण के संबंध में समझिए। चेतनमय शरीर तब धुल गया, जब महाकारण उस पर से उतर गया। कहने का ढंग अलग-अलग है, किंतु सब हैं एक तरह। जैसे कई बाजाओं के तारों को एक समान कसकर रखिए, तो सबसे एक ही तरह की ध्वनि निकलेगी। मालूम होता है कि इन सब संतों ने एक ही तरह की आत्मोन्नति की थी और एक ही तरह की साधना की थी। केवल कहने का ढंग अलग-अलग है। इन शरीर-रूपी कपड़ों से—घूँघट से जो अपने को नहीं निकालता, वह घर में घर को नहीं

देखता तथा वह ईश्वर को नहीं पा सकता। घमण्डी बनकर संसार में मत रहो। यह शरीर पंचरंगा चोल है। पाँच तत्त्वों के पाँच रंग हैं। पृथ्वी का रंग पीला, जल का रंग लाल, अग्नि का रंग काला, हवा का रंग हरा और आकाश का रंग उजला है। इसके अंदर के शरीर भी प्रलयकाल में नष्ट होनेवाले हैं और बहुत बाधक हैं। जिस तरह फल खा लो और बीज रह गया, तो फिर उससे गाछ हो जाता है, उसी तरह स्थूल शरीर-रूप गूदा तो नष्ट हो जाता है और बीजरूप सूक्ष्मादि शरीर रह जाते हैं, तो फिर स्थूल शरीर हो जाता है। घमण्डी की सुरत फैली हुई होती है और नम्रता से रहनेवाले की सुरत सिमटती है। मन के सारे संकल्पों को छोड़ दो, तो शून्य महल में दियना जलेगा। एक ऐसी वस्तु पर अपने को लगाओ, जो बाहर में नहीं है और जिसे कभी देखा नहीं है। वह शून्य है, उपनिषद् का अणोरणीयाम् है। जो यत्न से युक्तिपूर्वक दृष्टिधारों को गुरु के बताए हुए अनुकूल रखता है यानी ऐसा रखता है कि दोनों दृष्टियों की नोक मिलकर एक हो जाती है, तब विन्दु उदय होता है। यह केवल समझाने और कहने की बात नहीं है। अभ्यास करके देखने की बात है। जिस तरह से हाइड्रोजन और ऑक्सीजन को मिलाने से पानी हो जाता है (मिलाकर देख लो), उसी तरह दोनों दृष्टियों की धारों को मिलाओ, देख लोगे कि अणोरणीयाम् है। जो प्रयोग कर लेता है, वह देख लेता है। उसकी साधना करो, अवश्य होगा। आशा से मत डोलो। निराशा गिराती है, आशा ऊपर चढ़ाती है। होने योग्य काम भी निराशा होने से नहीं होता है। कठिन-से-कठिन काम भी आशा से धीरे-धीरे करते-करते पूरा होता है। यह योग की युक्ति है। प्रयोग करो, पाओगे। अपने अंदर में जैसे-जैसे कोई प्रवेश करता है, वैसे-वैसे अंतर्नाद सुनता है और शब्द के साथ उसके उद्गम स्थान तक पहुँच जाता है, परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। इसी तरह गुरु नानकदेवजी ने भी कहा है—

> **पंच शबदु धुनिकार धुन, तहँ बाजै सबदु निसाणु ।।**
> **सुखमन कै घरि राग सुनि सुन मंडल लिव लाइ ।**
> **अकथ कथा वीचारीऐ मनसा मनहि समाइ ।।**
> **सभि सखिया पंचे मिलै, गुरुमुखि निज घरि वासु ।**
> **सबदु खोजि इहु घरु लहै, नानकु ताका दासु ।।**

गुरु नानक साहब के दर्जे के जितने संत हुए, सभी को 'पंच सबदु धुनिकार धुन' मिले। जिनको ये शब्द मिलते हैं, उनका परमात्म-घर में वासा होता है। संत दादू दयालजी घर में घर को पवित्र रखने के लिए कहते हैं। पवित्र कैसे होगा, सो पहले कहा जा चुका है। त्रिवेणी तट पर अपनी वृति को रखकर शम-दम की साधना करो, तो पाँचों शरीर-रूप कपड़े धुलेंगे। और जहाँ सुरत की बैठक है, उसके सामने ही उसकी स्थिति बन जाएगी। वह ईश्वरीय आकर्षण से उधर को खींच जाएगा। सुरत सम्मुख जगेगी और वह पकड़ा जाएगा। इस तरह भक्ति करते हुए अपना उद्धार होगा। यह भक्ति का सार है। साथ-ही-साथ यह रास्ता सँकरा है। यह हाथी-घोड़ा ले जाने का रास्ता नहीं है। इसमें सुरत जाती है। इसके लिए तंग रास्ता है। इसी तरह—'रघुपति भगति करत कठिनाई' गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है। घबराओ नहीं, कठिन काम है तो यह समझो कि जो जिस कला में पारंगत हो जाता है, विशेष अभ्यस्त हो जाता है तो वह विद्या उसके वास्ते सुगम और सुख देनेवाली हो जाती है। अभ्यास किए बिना कोई अभ्यस्त नहीं होता। छोटी मछली नाले में भाठे से सिरे की ओर जिसकी धारा तेज होती है, चली जाती है। किंतु गंगा की चौड़ी धारा में हाथी नहीं जा सकता, वह बह जाता है। बालू और चीनी का मिश्रण करने से

बुद्धिमान प्राणी जो मनुष्य है, वह उसको अलग-अलग नहीं कर सकता; किंतु छोटी चींटी चीनी को चुन लेती है और बालू को छोड़ देती है। सिमटी हुई सुरत सफरी है, चींटी है और फैली हुई सुरत हाथी है। जिसकी सुरत सिमटती है, वह पिण्ड से ब्रह्माण्ड की ओर चला जाता है। वह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में नहीं रहता, तुरीय अवस्था में रहता है। वह संसार के ख्यालों से ऊपर उठा हुआ होता है; इसीलिए वह बाहर संसार से सोया हुआ है; लेकिन अंदर में जगा हुआ है। गोस्वामीजी ने कहा है—

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।
यहि जब जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

वह अपने अन्दर सारे विश्व को देखता है। गोया सारे दृश्य को अपने अन्दर घुसाकर देखता है। वह हरि-पद का अनुभव करता है, द्वैत से हटा रहता है और अद्वैत पद में स्थित रहता है। वह अद्वैत पद कैसा है? तो कहा—

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि इस दशा से जो हीन है, उसका संशय निर्मूल नहीं होता है। यह सूक्ष्म भक्ति है। हाँ, कुछ मोटी बात भी है—जप करो, कीर्तन करो। किंतु जबतक कोई यहाँ नहीं आता, देश-काल से परे नहीं हो जाता, तबतक भक्ति समाप्त नहीं होती। यह अन्तस्साधना के विषय की बात है। अभ्यासी शून्य में आरूढ़ रहता है, जहाँ एक शून्य से दूसरे शून्य में जाता है। ऐसे द्वार पर चढ़ो, जिससे अंधकार के आकाश से प्रकाश के आकाश में जा सको। इसी के लिए राधास्वामी साहब कहते हैं—

सखी री क्यों देर लगाई, चटक चढ़ो नभ द्वार।

मन और दृष्टि को दसवें द्वार पर स्थिर करके रखो। स्थिर रखना ही चलना है—

बैठे ने रास्ता काटा। चलते ने बाट न पाई।।
है कुछ रहनि गहनि की बाता। बैठा रहे चला पुनि जाता।।
कहै को तात्पर्य है ऐसा। जस पंथी वोहित चढ़ि बैठा।।

इस नगरी में अंधकार समाया हुआ है। इसलिए भूल-भ्रम हर बार होते रहते हैं। अपने अंदर की ज्योति की खोज करो। अपने अंदर-अंदर चलो। चलने के लिए जो जहाँ बैठा रहता है, पहले वहीं से चलता है। तुम अंदर में जहाँ बैठे हुए हो, अंदर-अंदर वहाँ से चलो। संतों ने अंदर-अंदर चलने का आदेश दिया है।

n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत कहलगाँव के धर्मशाला में दिनांक १२.३.१९५५ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१०८. काम करते हुए भी भजन करो

प्यारे लोगो!

शरीर में जीवात्मा का निवास है, इसीलिए शरीर जीवित मालूम होता है। शरीर जड़ है अर्थात् ज्ञानहीन पदार्थ है और जीवात्मा-चेतन अर्थात् ज्ञानमय पदार्थ है। दोनों का संग ऐसा है कि साधारणतः इसको कोई भिन्न नहीं कर सकता। शरीर में रहने का जीवन थोड़ा है और शरीर छोड़ने के बाद का जीवन अनंत है। क्योंकि जीवात्मा अविनाशी है। अनंत जीवन बहुत जीवन है एक शरीर का जीवन बहुत कम है। अवश्य ही वर्तमान शरीर के बाद के जीवन में स्थूल शरीर अनेक हो सकते हैं—शरीर बहुत हो सकते हैं। उन जन्म-मरणशील जीवन को

जोड़ो तो बहुत हैं। इस शरीर से छूटने पर केवल जीवात्मा नहीं रहता। वह तीन जड़ शरीरों के अंदर रहता है। बारम्बार जनमने-मरने में केवल स्थूल शरीर छूटता है और तीन शरीर रह जाते हैं। इन तीनों शरीरों में रहने का जीवन बहुत है। इन्हीं शरीरों में रहते हुए स्वर्गादि परलोक का भोग होता है। वहाँ के भोग के समाप्त होने पर फिर कर्मानुसार किसी के यहाँ जन्म लेता है। लेकिन यह चक्र कबतक चलता रहेगा, कोई ठिकाना नहीं। इतना ठिकाना है कि जबतक शरीर और संसार से छुटकारा नहीं हो जाय—मुक्ति नहीं प्राप्त कर ले, तबतक लगा रहेगा। सबसे उत्तम जीवन यही है कि किसी शरीर में नहीं रहना। किसी शरीर में रहना, पुण्य के अनुकूल स्वर्गादि में रहो फिर वहाँ से नीचे गिरो, यह जीवन कोई अच्छा जीवन नहीं है। हमलोग वर्तमान शरीर में हैं, इसमें कितने दिन रहेंगे, ठिकाना नहीं। उस अनंत जीवन के समक्ष यह जीवन अत्यन्त स्वल्प है। लोग दुःख में एक सेकेण्ड के लिए लिए रहना नहीं चाहते। सुख की ओर दौड़ता हुआ, दुःख से भागता हुआ यह जीव चलता है। किंतु जो सुख यह चाहता है, वह कहीं नहीं मिलता। साधु-सन्त लोग कहते हैं कि थोड़े-से जीवन के लिए तुम दौडे-दौड़े फिरते हो और डरते हो कि आज यह काम नहीं किया जाएगा तो यह हानि होगी। डर के मारे ठीक-ठीक नौकरी, वाणिज्य-व्यापार, खेती आदि करते रहते हो। ऐसा नहीं करो तो कोई हर्ज नहीं। बहुत धनी आदमी भी धन को सम्हालने और बढ़ाने में रहता है। धन के सम्हालने और बढ़ाने में भी कष्ट होता है। गरीब आदमी देखता है कि आज खाने के लिए है कल के लिए यत्न नहीं करो तो क्या खाओगे? उससे विशेष जो कृषक हैं, सोचते हैं कि इस साल के लिए खाने को है, आगे वर्ष क्या खाएँगे, इस डर के मारे खेती करते हैं। तो एक शरीर के जीवन के लिए डरते हो और काम करते हो। और इसके लिए नहीं डरते कि इस शरीर के जीवन के बाद का जो जीवन है उससे क्या होगा? चाहिए कि ऐसा काम करो कि शरीर छोड़ने के बाद भी तुम सुखी रहो। इसके लिए क्या करना होगा? ईश्वर का नाम जपो। इसी को कबीर साहब ने कहा है—

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार।।

यदि समझ लो तो फिर आज कल के लिए बहाना नहीं करो कि आज नहीं कल करूँगा। क्योंकि गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

नहँ बालक नहँ यौवने, नहिं बिरधी कछु बंध।
वह औसर नहिं जानिये, जब आय पड़े जम फंद।।

अनंत जीवन में दुःखी न होओ, इसके लिए ईश्वर का नाम-भजन करो। आजकल करते हुए समय बर्बाद मत करो। बल्कि—

काल करै सो आज कर, आज करै से अब्ब।
पल में परलै होयगा, बहुरि करैगा कब्ब।।

भर दिन, भर रात बैठकर भजन नहीं करने कहा जाता। समय बांध-बांधकर भजन करो। काम करते हुए भी भजन करो और काम छोड़- छोड़कर भी भजन करो। ब्राह्ममुहूर्त्त में मुँह-हाथ धोकर, निरालस होकर भजन करो। दिन में स्नान के बाद भजन किया करो। 'तन काम में मन राम में' हमारे यहाँ प्रसिद्ध है, इसको काम में लाओ। फिर सायंकाल भी बैठकर भजन करो। रात में सोते समय भजन करते हुए सोओ, तो खराब स्वप्न नहीं होगा। नाम-भजन को लोग जानते हैं कि गुरु ने जो मंत्र दिया है, वही नाम-भजन है। वह नाम-भजन है किंतु और भी नाम-भजन है। जो शब्द लोग बोल सकते हैं, सुन सकते हैं, वह वर्णात्मक नाम-भजन है। ध्वन्यात्मक नाम-भजन भी होता है। वह ध्वनि

तुम्हारे अंदर है। उस ब्रह्म ध्वनि में जो अपने मन को लगाता है, तो वह शब्द से खींचकर ब्रह्म तक पहुँचा देता है। नाम का जप और नाम का ध्यान भी होता है। वर्णात्मक नाम का जप होता है। जिसकी युक्ति गुरु बताते हैं और ध्वन्यात्मक नाम का ध्यान होता है। इसकी भी युक्ति गुरु बताते हैं। इस साधन के लिए भला चरित्र से रहना होगा। जिसका चरित्र भला नहीं है, जो सदाचार का अवलम्ब नहीं लेता है, वह विषयों में—भोगों में बँधा रहता है। जब वह भजन करने लगता है तो उसका मन गिर-गिर जाता है। इसलिए अपने को पवित्र आचरण में रखो।

जाकी जिभ्या बंध नहीं, हिरदे नाहीं साँच।
ताके संग न चालिये, घाले बटिया काँच।।

जिभ्या पर खाने और बोलने का बंधन रखो। झूठ और कड़वा बोलना खराब है। झूठ बोलना सब पापों की जड़ है। कड़वा बोलना आपस में फूट पैदा करता है। इसलिए सत्य बोलो और नम्र होकर रहो।

साधू सोई सराहिये, साँची कहै बनाय।
कै टूटै कै फिर जुरै, कहे बिन भरम न जाय।।

जो साँच बोलते हैं और कड़वा बोलते हैं तो उसको भी लोग सहन नहीं कर सकते। जो भोजन तुम्हारी बुद्धि को नीचा करे, शरीर में रोग पैदा करे, वह मत खाओ। इसके लिए संतों ने कहा—

मांस मछरिया खात है, सुरा पान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी की खेत।।
यह कूकर को खान है, मानुष देह क्यों खाय।
मुख में आमिख मेलता, नरक पड़े सो जाय।।

मांस, मछली तथा नशा आदि खाने-पीने से पाशविक वृत्ति रहती है। इसमें राजस-तामस वृत्ति रहती है। सात्त्विक वृत्ति से भजन होता है। इस प्रकार के भोजन से सात्त्विक बुद्धि दमन हो जाती है और राजस-तामस की प्रधानता हो जाती है। जिससे भजन में चंचलता और आलस आता रहता है। जो भोजन शीघ्र नहीं पचे, वह भोजन भी मत करो। क्योंकि यह भी भजन नहीं होने देता। जितने नशे हैं, यहाँ तक कि तम्बाकू तक लेने योग्य नहीं। इसलिए कबीर साहब ने कहा—

भाँग तम्बाकू छूतरा, अफयूँ और शराब।
कह कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार।।

तम्बाकू को लोग साधारण समझते हैं, किंतु यह भी बहुत बुरी नशा है। नशाओं से, कुभोजन से, कडुवी बात से और असत्य भाषण से बचो। इन्द्रियों में संयम रखो और भजन करो तो भजन बनेगा। केवल भाँग, तम्बाकू ही नशा नहीं है, बल्कि—

मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय।।
विद्या मद और गुनहु मद, राजमद्द उनमद्द।
इतने मद को रद्द करै, तब पावै अनहद्द।।

इन सब नशाओं को भी छोड़ना चाहिए। यही संतों का उपदेश है। जो संतों के उपदेश के अनुकूल रहते हैं, वे पवित्र हैं। जो संतों के उपदेश के अनुकूल नहीं चलते, वे किसी कारण पवित्र क्यों न कहे जाएँ, किंतु अपवित्र हैं। यथार्थ में हृदय पवित्र होना चाहिए। शरीर पवित्रता के लिए क्या बात है? शिवजी के रूप को देखिए, अमंगल वेष रहने से अपवित्र नहीं है। हृदय की पवित्रता चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि स्नान नहीं करे, पवित्रता से नहीं रहे, शारीरिक पवित्रता भी चाहिए। झूठ सब पापों का झोरा है। सत्य बोलनेवाले का झूठ का झोरा जल जाता है। जो सत्य बोलता है, उससे कोई पाप नहीं हो सकता है। साँच बोलने की जिसकी प्रतिज्ञा रहेगी, वह चोरी नहीं करेगा, कोई पाप नहीं करेगा। चोरी करने से झूठ बोलकर छिपाता है। सत्य बोलो तो चोरी भी छूट जाएगी। हिंसा मत करो। हिंसा करोगे तो क्या होगा? संत कबीर साहब ने कहा—

कहता हूँ कहि जात हूँ, कहा जो मान हमार।
जाका गर तू काटिहौं, सो फिर काट तोहार।।

कर्मफल किसी को नहीं छोड़ता। श्रीराम-सीता वन गए। वे गंगा नदी के किनारे ठहरे। पत्तों के बिछौना पर श्रीसीता-राम लेटे थे और लक्ष्मण पहरा दे रहे थे। वहाँ गुहनिषाद भी बैठा और कहा कि कैकेयी ने इनको बहुत दुःख दिया। तब लक्ष्मणजी ने कहा कि—

काहू न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सुनु भ्राता।।

युधिष्ठिर को थोड़ा-सा झूठ बोलने का फल भी मिला ही। यद्यपि वह भगवान के समक्ष और उनकी प्रेरणा से बोला था। भगवान श्रीकृष्ण को भी व्याधा ने तीर से मारा। यह भी कर्मफल ही था। इसलिए हिंसा से बचो। व्यभिचार मत करो। पर पुरुषगामिनी स्त्री व्यभिचारिणी है और परस्त्रीगामी पुरुष व्यभिचारी है। इन पंच पापों से बचो। एक ईश्वर पर विश्वास करो, उनका पूरा भरोसा करो। उनकी प्राप्ति पहले अपने अंदर होगी, फिर सर्वत्र। ध्यान करो, सत्संग करो और गुरु की सेवा करो। पहले कहे पंच निषेध कर्मों को नहीं करो और पीछे कहे पंच विधि कर्मों को करो। यही 'विधि निषेधमय कलिमल हरणी। करम कथा रविनन्दिनी बरनी।।' है। इस तरह अपने जीवन को बिताने पर मुक्ति मिलेगी। मुक्ति होने से स्वयं मालूम होगा कि मुक्ति मेरी हो गई। जैसे भोजन करने से स्वयं मालूम होता है कि पेट भर गया। जो जीवन-मुक्ति प्राप्त कर लेता है, मरने पर उसे विदेह-मुक्ति हो जाती है। यदि मुक्ति नहीं हुई तो भगवान श्रीकृष्ण के कहे अनुकूल बहुत वर्षों तक स्वर्गादि का भोग करके इस संसार में किसी पवित्र श्रीमान् के घर में जन्म लेगा। अथवा योगियों के कुल में ही जन्म लेगा। इस प्रकार का जन्म इस लोक में बहुत दुर्लभ है। फिर वह पूर्व जन्म के संस्कार से प्रेरित होकर साधन-भजन करेगा और अनेक जन्मों के बाद मुक्ति को प्राप्त कर लेगा। यह कभी नहीं भूलना चाहिए, सदा याद रखना चाहिए कि सदाचार के धरातल पर भजन-रूप मकान बनता है। n

यह प्रवचन रविदास सत्संगियों के संतमत सत्संग मंदिर, सिकन्दरपुर, भागलपुर में दिनांक १८.३.१९५५ ई० के सत्संग में हुआ था।

१०९. अन्तर्मुख होना सबसे बड़ा पुरुषार्थ है

प्यारे लोगो!

मनुष्यों के वास्ते संतों का क्या प्रचार है, इसी का उपदेश इस सत्संग से हुआ करता है। संतों ने दृढ़ता से कहा है कि केवल सांसारिक वस्तुओं से कोई तृप्त नहीं हो सकता। जहाँ तृप्ति नहीं, वहाँ सुख कहाँ! ऐसी तृप्ति कि जिसमें फिर भोगेच्छा न रह जाय। ऐसा सुख जिसके बाद दुःख नहीं और शान्ति ऐसी जिसके बाद अशान्ति नहीं। संतों ने कहा कि विषयों से बहुत विशेष परमात्मा है। विषयों को पहचानते हो तो उसको ग्रहण करते हो। इन्द्रियों से जो ग्रहण हो, वह विषय है। पंच ज्ञानेन्द्रियों के पंच विषय—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द हैं। इन्हीं में लोग सुख, शान्ति और तृप्ति खोजते हैं। इनसे किसी को सुख, शान्ति और तृप्ति नहीं हुई है। संतों ने कहा है कि इनसे परे की वस्तु को खोजो। इन्द्रियों से विषयों को ग्रहण कर लोग सुखी, शान्त और तृप्त होना चाहते हैं; किंतु इन्द्रियों के ग्रहण होने योग्य पदार्थों में ऐसा नहीं हो सकता।

इसमें सुख-भ्रम है। साधारण लोग उसी को सुख कहते हैं, जो मन-इन्द्रियों को सुहाता है। और जो मन इन्द्रियों को नहीं सुहाता, उन्हें वे दुःख कहते हैं। इसलिए ऐसा पदार्थ खोजो, जो पंच विषयों से परे है अर्थात् जिसको कोई इन्द्रियाँ पहचान नहीं सकतीं। ऐसा सुख जिसके बाद दुःख नहीं, सूरदासजी ने कहा है—

परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।

ऐसी सन्तुष्टि हो, जिसका अन्त न हो। यह सुख-संतोष परमात्म-प्राप्ति में है। इसलिए उस परमात्मा की खोज करो। ज्ञान यही कहता है कि वह कहाँ नहीं है? वह स्थान ही नहीं जहाँ परमात्मा न हो। वह देश-काल में व्यापक है और उनसे बाहर भी है। अर्थात् परमात्मा सबके अंदर-अंदर रहते हुए सबसे बाहर भी है। इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं आने के कारण उसको लोग बाहर में नहीं प्राप्त कर सकते। बाहर के पदार्थों को ग्रहण करने के लिए इन्द्रियाँ हैं और इन्द्रियों के ज्ञान से ईश्वर परे है, फिर भला बाहर में उसको कोई इन्द्रियों से कैसे ग्रहण कर सकते हैं? संतों ने कहा है और अपने को भी प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि बाहर से उलट, सिमट कर अन्दर में रहने से इन्द्रियों से छूटना होता है। जाग्रत में इन्द्रियों के साथ काम होता है—विषयों का ग्रहण होता है। स्वप्न में स्थूल इन्द्रियों का संग छूटता है। उस समय बाहर का कोई ज्ञान नहीं रहता। संतों ने जिसको सुरत कहा है, वही स्वप्न में अन्तर्मुखी हो जाती है—सिमट जाती है। सिमटने से वह इन्द्रियों के घाटों में नहीं रहती, जगने पर वह इन्द्रियों के घाटों पर आ जाती है, फिर संसार का ज्ञान होता है। इससे जानने में आता है कि अंदर में जाने से विषयों से और इन्द्रियों से छूटना होता है। इसलिए यत्न जानकर अपने अंतर में प्रवेश करो। यह शरीर देखने में साढ़े तीन हाथ का है, परंतु यह समुद्र से भी विशेष गहरा है।

कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय।।
मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक।।

— संत कबीर साहब

अंतर्मुख होना सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। यह सबसे बड़ा पुरुषार्थ इसलिए है कि बाहर विषयों से अभ्यासी की आसक्ति छूटती है। जैसे-जैसे विषयों से छूटता है, वैसे-वैसे वह परमात्मा की ओर बढ़ता है। ब्रह्मज्योति को प्राप्त कर ब्रह्म को पाता है और सारी तृष्णाओं से मुक्त हो जाता है। सभी संतों ने यही कहा और यदि संतवाणियों के पहले की बात जानना चाहते हैं, तो उपनिषदों को पढ़िए, उसमें भी यही बात है। उपनिषद् का सार गीता है, यह भी अंतर्मुख होने के लिए ही सिखाती है। ईश्वर की खोज अपने अंदर करो। जबतक इस ज्ञान को कोई नहीं जानता है, तबतक वह सोया रहता है। जैसे कोई स्वप्न में अनेक काम करे, तौभी बाहर में—जाग्रत में जो काम होना चाहिए, एक भी नहीं होता। उसी तरह लोग, जो माया-मोह में—विषयों में पड़े हैं, वे सोए हुए हैं। इसलिए कबीर साहब कहते हैं—

परमातम गुरु निकट विराजैं जागु जागु मन मेरे।

जाग्रत में जहाँ जीव रहता है, स्वप्न में उस जगह नहीं रहता—दूसरी जगह चला जाता है। स्थान बदल जाता है, तो ज्ञान भी बदल जाता है। वहाँ से तीसरी जगह पर जाता है, तो वह बेहोश होकर रहता है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति; तीनों अवस्थाओं में वह संसार में ही रहता है। यद्यपि वह सुषुप्ति में कुछ नहीं जानता है, फिर भी स्वप्न और जाग्रत में जानता और करता है। जाग्रत,

स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओं में सुरत के जाने का और इन तीनों अवस्थाओं के होने का कारण, सुरत का अंतर्मुख होना है। जाग्रत के स्थान से नीचे स्वप्न का और उससे नीचे सुषुप्ति का स्थान है। जब जाग्रत स्थान के ऊपर हो जाय, तब परमात्मा की ओर होना होता है। इसका ज्ञान और युक्ति किसी जानकार से जानना चाहिए। यदि जान भी लिया और उसका अभ्यास नहीं किया, तो उससे जो लाभ होना चाहिए वह नहीं होता। इसलिए कबीर साहब जो जगने कहते हैं, उसका अभ्यास करना चाहिए। दरिया साहब (बिहारी) कहते हैं—

'माया मुख जागे सभै, सो सूता कर जान।
दरिया जागे ब्रह्म दिसि, सो जागा परमान।।'

'जानिले जानिले सत्त पहचानिले,
सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै,
पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।'

— संत तुलसी साहब

और गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

योगीजन जगते हैं—योगी शरीर से बाहर नहीं जाते हैं, अपने अंदर सिमटते हैं, जैसे कछुआ अपने सब अवयवों को खोखड़े में समेट लेता है; उसी तरह जो अपने शरीर में इन्द्रियों के घाटों से चेतन को समेट लेता है, तब जगता है। जो इस तरह नहीं जगता, उसको ईश्वर-दर्शन नहीं होता। जो उपर्युक्त तरह से जगता है, वह शरीर और इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं रहता और वही आत्म-दर्शन, परमात्म-दर्शन करता है। इसी को संतों के ख्याल में भक्ति करना कहते हैं।

भक्ति के मोटे-मोटे कार्यों से परमात्मा के पास जाने का जितना सिमटाव होना चाहिए, उतना सिमटाव तो नहीं होता, किंतु उससे उस सिमटाव के साधन करने के योग्य बनता है; जिससे कि अंतर में विशेष प्रवेश कर सके।

संतजन मोटी उपासना में ही भक्ति को खत्म करने नहीं कहते और न बिल्कुल मोटी उपासना छोड़ने ही कहते हैं। वे मोटी उपासना करने के लिए भी कहते हैं और उसके बाद की भी उपासना करने के लिए कहते हैं। सत्संग से इसका ज्ञान लेना चाहिए। पापों से छूटना चाहिए। साधन-भजन करनेवाले को प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि मैं करता हूँ तो कुछ मिलता है। संतों ने ऐसा नहीं कहा कि आज तुम करो और मरने पर पाओगे। बल्कि कहा कि तुम अपने जीवन में ही प्राप्त करके देख लो कि यह परमात्मा है।

इसके लिए पवित्र बनना होगा। पापों में लगा हुआ आदमी विषयों में लसका हुआ रहता है, उससे ईश्वर का भजन नहीं हो सकता। n

यह प्रवचन भागलपुर के मिरजानहाट में श्रीआनंदीलाल साह के द्वारा आयोजित सत्संग में दिनांक २७.३.१९५५ ई० के सत्संग में हुआ था।

११०. ईश्वर को जानने के लिए सत्संग है

प्यारे लोगो!

आपलोग जानते ही होंगे कि संतों के संग का नाम सत्संग है। जिस समय में कोई संत होते हैं, उनकी पहचान किन्हीं को होती है कि नहीं, कहा नहीं जा सकता। किंतु जो बीत गए हैं, जो अभी नहीं हैं, उनके प्रति श्रद्धा लोगों में होती है।

वे तो अब मिल नहीं सकते, किंतु उनकी वाणियाँ हैं। आजकल विद्वान लोग उनकी वाणियों को खोज-खोजकर प्रकाशित करते हैं। हमलोगों के सत्संग में संतों की वाणी की ही मुख्यता है। हमलोगों की श्रद्धा ऐसी है कि संतों के वचनों को ही उनका दर्शन समझते हैं।

चिट्ठी आधी मुलाकात है। संतों की वाणियाँ उनकी चिट्ठियाँ हैं। यदि संतों का पूरा दर्शन नहीं तो आधी मुलाकात ही क्या कम है? संतों की वाणी में असल बात ब्रह्म-ज्ञान, ईश्वर-दर्शन, आत्म-ज्ञान है। तीनों एक ही बात हैं। ईश्वर की प्राप्ति के यत्न और उनके स्वरूप को जानना चाहिए। उपनिषद् में ईश्वर का प्रयोग ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा कहकर किया गया है। आत्मा वह पदार्थ है जो अनादि-अनंत है। उसी को परमात्मा कहते हैं। जैसे आकाश कहने से घटाकाश और महदाकाश दोनों का ज्ञान होता है, उसी तरह आत्मा कहने से परमात्मा और जीवात्मा दोनों का ज्ञान होता है। जो सर्वव्यापी, सर्वव्यापकता के परे है और जो पिण्डस्थ है, उनका भी ज्ञान होता है। जीवात्मा और परमात्मा का भेद करने में पिण्डस्थ को जीवात्मा और सर्वव्यापक तथा सर्वव्यापकता के परे को परमात्मा कहते हैं। परमात्मा सर्वव्यापक है। उनके लिए कहा गया है कि वे मन से पकड़े नहीं जा सकते। मन जिनके सहारे है, मन की स्थिति नहीं रह सकती, यदि उसके आधार परमात्मा न हो। मन जिनको ग्रहण नहीं कर सकता, जिनसे मन ग्रहण होता है, वे परमात्मा हैं।

संसार में दो तरह के पदार्थ हैं। एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त। इन्द्रियों से जो ग्रहण हो, वह व्यक्त है और जो इन्द्रियों के ग्रहण में नहीं है, वह अव्यक्त है। उस अव्यक्त तत्त्व के लिए कहा गया है कि जिससे मन मनन किया हुआ कहा जाता है, उसको मन मनन नहीं कर सकता है, वह अव्यक्त है। व्यक्त पदार्थ जो इन्द्रियों से ग्रहण होता है, वह एक समान सदा नहीं रहता है। वह उपजता है, ठहरता है, बदलते-बदलते नाश की ओर जाता है और बाद में प्रत्यक्ष नहीं रहता है। इनमें से कोई पदार्थ ऐसा नहीं, जो उपजा नहीं हो और जिसका विनाश नहीं हो। ऐसे पदार्थ को कहा गया है—क्षणभंगुर। उपनिषदों में इसे माया कहा गया है। संतवाणियों में भी इसे माया कहा है। जो इन्द्रियों के ज्ञान से परे है, वह अव्यक्त है—निर्माया है। जो उपजा हो, कुछ काल रहे, फिर नाश की ओर जाय, वह नाशवान होगा। वह परमात्मा नहीं हो सकता। परमात्मा समय के पहले से है। समय और स्थान की मौजूदगी नहीं थी, तब से परमात्मा है। जब माया नहीं थी, तब से परमात्मा है। बल्कि माया परमात्मा से उत्पन्न हुई है। परमात्मा का ज्ञान है कि वे अभी उपजे नहीं हैं। गुरु नानकदेव के वचन में है—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।

अलख=आँख के ज्ञान से परे, दृष्टि के परे। जिनके स्वरूप की सीमा नहीं, इसलिए अपार, जो किसी से पार होने योग्य नहीं है, उसको समाप्त नहीं किया जा सकता। उनके लिए समय नहीं। समय और पदार्थ में माया के सब पदार्थ अँटते हैं। देश और काल से जो परे पदार्थ है, वही परमात्मा है। सभी संतों की वाणी में ऐसा वर्णन है। परमात्मा कभी हुए हैं, ऐसा नहीं, वे हई हैं। परमात्मा के ज्ञान के लिए कबीर साहब ने कहा—

राम निरंजन न्यारा रे। अंजन सकल पसारा रे।।

अंजन का अर्थ माया और निरंजन का अर्थ माया-रहित। परमात्मा या राम मायिक पदार्थ से परे है। जो कुछ आँख से देखते हैं, यह पसार माया

का पसार है। जो किसी भी इन्द्रियों के ग्रहण में आता है, वह माया है। जो व्यक्त है, वह तुम्हारे पास है। व्यक्त में पाँच पदार्थ हैं—रूप, रस, स्पर्श, गंध और शब्द। तमाम संसार में, इस लोक या परलोक पर जहाँ विचारिए, वहाँ पंच विषय हैं। जहाँ जो कोई रहते हैं, उनके चारो ओर पंच विषय रहते हैं। नजदीक की चीज को 'इस' और दूर की चीज को 'उस' कहते हैं। परमात्मा 'इस' श्रेणी के नहीं है। जो कोई इस पदार्थ की उपासना करते हैं, वह ब्रह्म की उपासना नहीं। हाँ, सबमें व्यापक ब्रह्म है। इस प्रकार मानने में उपनिषद् और संतवाणी में कोई हर्ज नहीं। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द—ये ब्रह्मस्वरूप नहीं हैं। यह उपनिषदों ने बताया है और संतों की वाणियों में भी यही बात है। गोस्वामी तुलसीदाजी ने कहा है—

अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा,
वसत इति वासना धूप दीजै।

अचर माने वृक्ष, पहाड़ आदि, जो अपने से कहीं आ-जा नहीं सके। जो अपने से चल-फिर सकता है, वह चर है। जैसे आपके शरीर का स्वरूप आपका रूप है, किंतु आप वह नहीं हैं। जैसे जो वस्त्र आप धारण करते हैं, वह वस्त्र आपका है, न कि आप वस्त्र हैं। परमात्मा अचर-चर रूप सब धारण किए हैं, इसलिए सब रूप परमात्मा के हैं, किंतु वे रूप परमात्मा नहीं हैं। बल्कि उन रूपों को परमात्मा ने धारण किया है। जैसे किसी धातु का जेवर बनाया जाता है, उसी तरह यह शरीर एक नक्शा है। परमात्मा चर-अचर रूप में व्यापक हैं। उपनिषद् के वर्णन में आपने सुना कि—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

अर्थात् वायु प्रत्येक वस्तु में रहते हुए उसी आकार का है, किंतु वह वही नहीं हो जाता। जैसे गिलास में वायु रहने से गिलास के आकार का मालूम होता है, किंतु वायु वस्तुतः वैसा नहीं है। वह तो गिलास में भी है और उसके बाहर भी है। उसी तरह परमात्मा अचर-चर में रहते हुए सबसे बाहर भी है। कहीं हटनेवाले नहीं, सदा रहते ही हैं। संतों की वाणियों में जैसा बताया गया है, उसी को परमात्म-स्वरूप के विषय में जानना चाहिए। आप इन्द्रियों से जो रूप देखते हैं, वह ईश्वर नहीं है। ईश्वर स्वरूपतः क्या है, उनकी भक्ति कैसे की जाय, उसको जानने के लिए यह सत्संग है।

ईश्वर के लिए अभी के सत्संग में ज्ञान दिया गया कि ईश्वर कभी हुए नहीं, वे सदा से हैं ही। उनके होने का यदि कोई समय बतावे तो यह गलत है। परमात्मा इन्द्रियों से ग्रहण होने योग्य नहीं। उनको आप अपने से ग्रहण करेंगे। शरीर और इन्द्रियों में रहते हुए जो आप हैं, उस अकेले ज्ञान में जो आवे, वे ही परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म हैं। उपनिषद् में भी आया है कि—

ना विरतो दुश्चरितान्नाशन्तो ना समाहितः।
ना शान्तो मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

—कठोपनिषद्, अध्याय १ वल्ली २

अर्थात् जो पाप कर्मों से बचा हुआ नहीं है, वह ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए सबको चाहिए कि पापकर्मों से बचें। पापकर्मों से बचने पर केवल ईश्वर ही नहीं मिलते, बल्कि पाप कर्मों से बचनेवाले अपने अंदर में शान्ति से रहते हैं। संसार में पूज्य होते हैं। देवता के समान लोग उनकी वन्दना करते हैं। वे स्वयं भी शान्त रहते हैं और शान्ति-स्वरूप परमात्मा को भी पाते हैं। दुश्चरित्र को इन्द्रियों में आसक्ति रहती है, वह इन्द्रियों में बंधा रहता है। इन्द्रियों से ऊपर नहीं उठ सकता। ईश्वर को पाने का रास्ता कैसा है, इसके लिए

उपनिषद् में कहा है—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।

अर्थात् वह रास्ता क्षुरे की धार के समान दुर्गम है। यदि रास्ता दुर्गम है और तीक्ष्ण है तो उस पर चलनेवाला कट नहीं सकता, उस रास्ते पर चेतन-सहित मन चलेगा। किंतु संयम से रहो, पापों से बचो और संभलकर उस पर चलो। गुरु नानकदेव ने कहा है— **खन्निअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।**' कितनाहूँ सूक्ष्म और तेज रास्ता हो तो मन और चेतन भी बहुत सूक्ष्म है, वह उसपर चलने से कटेगा नहीं। संयम से रहिए और उस सूक्ष्म मार्ग पर चलने के लिए जानिए। n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत ग्राम—सोनैली में दिनांक ६.४.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१११. संसार में खीरा की तरह रहो

प्यारे लोगो!

जहाँ से अनहद सुनने का आरंभ होता है, वह नाम का घर है। कंज=कमल। कंजाकमल= ध्यान का आरंभ जहाँ से होता है। लीलागिरि=कौतुक का पहाड़। शब्द के ध्यान में जो ज्ञान बढ़ा, वह है नाम का प्रकाश अथवा जिस प्रकाश से नाम प्रकट होता है, वह 'दीपक बारा नाम का' है। बाती दीन्ही टार=सुरत को आगे बढ़ाया। तल्ली ताल तरंग बखानी=तल पर शब्दों की तरंगें उठती हैं। तल्ली=तल।

इस सत्संग में कहा जाता है कि अपना उद्धार करो। इस संसार में पूर्णरूप से कोई सुखी नहीं होता है। यहाँ केवल कहलाने के लिए सुख है। दरअसल यह संसार सुख का स्थान नहीं है। इससे पार हो जाना चाहिए। जबतक आप देह में रहिएगा, तबतक संसार में रहना होगा। संसार का अर्थ केवल स्थूल जगत नहीं। जहाँ तक शरीर है, वहाँ तक संसार है। इस स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर है।

साधारण मृत्यु में केवल स्थूल शरीर चला जाता है—मर जाता है। जीवात्मा मरता नहीं है। सूक्ष्म, कारण, महाकारण शरीर नहीं मरते हैं। इसके साथ जीवात्मा रहता है। भजन करने से ही इन बचे शरीरों को मार सकते हैं। जिस तरह स्थूल शरीर से जीवात्मा निकल जाता है, तो स्थूल शरीर मर जाता है; उसी तरह सूक्ष्म, कारण, महाकारण शरीर से जीवात्मा के निकल जाने पर इन शरीरों की मृत्यु होती है। किसी भी लोक में रहिए, किसी भी शरीर में रहिए, स्वर्गादि लोक में रहिए, ब्रह्म के लोक में रहिए; सभी जगह कष्ट-ही-कष्ट है। शिवलोक में शिव को भी कष्ट होता है। सभी लोकों में झगड़ा-तकरार, शापा-शापी होते हैं। गोलोक में भी ऐसा होता है। गर्ग-संहिता पढ़कर देखिए। कितनाहूँ सुन्दर-से-सुन्दर देहवाला हो, कितनाहूँ ऊँचा लोक हो, सबमें दुःख है। इसलिए अपने उद्धार के लिए सब शरीरों को छोड़ना होगा। जैसे कोई घर से बाहर जाना चाहे तो पहले घर-ही-घर चलना पड़ता है। उसी तरह शरीरों से निकलने के लिए शरीर-ही-शरीर निकलना होगा और सब शरीरों से निकलने पर परमात्मा की प्राप्ति होती है।

अभी आपलोगों ने तुलसी साहब का पद 'जीव का निबेरा' सुना। उसमें अन्तर्मार्ग का वर्णन है। संसार में जो कुछ देखने में आता है, वह अपने अंदर भी देख सकते हैं। सब शरीरों को छोड़ने का अपने अंदर में ही यत्न होना चाहिए। परमात्मा के

दर्शन का यत्न अपने शरीर में ही होना चाहिए। बाहर में जो दर्शन होता है, वह माया का दर्शन होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

अपने अन्दर जो चलता है, तो उसको देव-रूपों का दर्शन होता है और अन्त में परमात्मा का भी दर्शन होता है। इसका यत्न है—अपने घर में रहो, सत्संग भजन करो और यह ख्याल रखो कि यह शरीर छोड़ना होगा। घर बढ़िया-बढ़िया हो, उसमें अपने आराम किया हो, तो उस सोने के महल में भी कोई नहीं रखता, जब इस शरीर से प्राण निकल जाता है। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

एक घड़ी कोऊ नहिं राखत, घर तें देत निकार ।

इसमें आसक्त होने से ठीक नहीं। कोई भी संसार में सदा नहीं रह सकता। संत चरणदासजी की शिष्या सहजोबाई ने बड़ा अच्छा कहा है—

चलना है रहना नहीं, चलना विश्वाबीस।
सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुथावै शीश।।

कोई कितनाहूँ प्यारा हो, सबको छोड़कर जाना होगा। इसलिए संसार में खीरा बनकर रहो। खीरा ऊपर से एक और भीतर से फटा हुआ होता है। इस तरह संसार में रहने से कल्याण होगा। न तो बाल-बच्चों को छोड़ो, न इनमें फँसो। फँसाव को छोड़कर अपने अन्दर साधन-भजन करो। जप करो और ध्यान करो। इसके लिए चाल-चलन अच्छी बनाओ।

झूठ एकदम छोड़ दो। जो झूठ बोलेगा, उसी से सब पाप होगा। जो झूठ छोड़ देगा, उससे कोई पाप नहीं होगा। चोरी मत करो। व्यभिचार मत करो। नशा मत खाओ, पिओ। नशा खाने से मस्तिष्क ठीक नहीं रहता। भाँग, तम्बाकू, गाँजा सबको छोड़ दो। हिंसा मत करो जीवों को दुःख मत दो। मत्स्य-मांस मत खाओ। मत्स्य-मांस खाने से जलचर, थलचर, नभचर के जो स्वभाव हैं—तासीर हैं, उस स्वभाव को, खानेवाले अपने अन्दर लेते हैं। अपने शरीर पर विचारिए और उन जानवरों के शरीर पर विचारिए। मनुष्य का शरीर तो देवताओं के शरीर से उत्तम है। फिर इतने पवित्र शरीर में अपवित्र मांस को देना ठीक नहीं।

हिंसा दो तरह की होती हैं—एक वार्य और दूसरी अनिवार्य। वार्य हिंसा से बच सकते हैं। जिह्वा-स्वाद के लिए नाहक जीवों को मारना वार्य हिंसा है। इससे बचना चाहिए। कृषि कर्म में जो हिंसा होती है, वह अनिवार्य है। अनिवार्य हिंसा से कोई बच नहीं सकता। वार्य हिंसा से बचो। मांस-मछली नहीं खाने से सात्त्विक मन होगा। तब भजन बनेगा। n

यह प्रवचन खगड़िया जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर रामगंज में दिनांक २६.५.१६५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

११२. एक को जानने से शान्ति मिलेगी

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मनुष्य बहुत कुछ पहचानता है। कोई थोड़ा पहचानता है, कोई उससे ज्यादे तो कोई उससे भी ज्यादे पहचानता है। आजकल के वैज्ञानिकों ने बहुत चीजों को पहचाना है और बहुत चीजों का आविष्कार किया है, जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। किंतु इसे जानने से ऐसा नहीं हुआ कि और कुछ जानने को बाकी नहीं। वैज्ञानिकों ने संसार में बहुत तत्त्वों को जाना है, किंतु वे कहते हैं कि अभी कितना जानना बाकी है, ठिकाना नहीं। अभी

तो समुद्र के किनारे के बालूकण ही देख रहे हैं, समुद्र भरा पड़ा है।

संतलोग कहते हैं—'एक को जानो तो सब को जान जाओगे।' उस एक को जानने से शान्ति मिलेगी। संतों ने उस एक परमात्मा को जाना और उन्हें शान्ति मिली। संत लोग उसी ईश्वर को जानने कहते हैं। जानने के लिए केवल बौद्धिक ज्ञान से नहीं, बल्कि उसे पहचानकर जानो। केवल परोक्ष ज्ञान ही नहीं, उसको अपरोक्ष ज्ञान से भी जानो। अपरोक्ष ज्ञान के लिए बहुत साधन और प्रयास करना पड़ता है। पहले श्रवण-मनन करना पड़ता है। इसमें भी समय लगता है और प्रयास करना पड़ता है। श्रवण, मनन के बाद मनुष्य को पहचानकर जानने के लिए निदिध्यासन करना चाहिए।

श्रवण से तत्त्व का कुछ बोध जानने में आता है। किंतु स्वरूपतः वह क्या है? उसे पहचानता नहीं है। इसलिए वह बहुत अधूरा ज्ञान है। संसार को देखने के लिए आँखों और कानों को खोलते हैं। उसी तरह परमात्मा को जानने के लिए आँख और कान की शक्तियों को बढ़ाओ। बाहर की ओर नहीं, अंतर की ओर देखने और सुनने का प्रयास करो। बाहर में देखने-सुनने से जैसे कोई बाहर का पदार्थ पहचानता है, वैसे ही अंतर में देखने-सुनने से तुम परमात्मा को पहचानोगे। बाहर की ओर इन्द्रियों में रहते हुए स्थूलता में फँसा रहता है—स्थूल बुद्धि होती है। यदि कहो कि वैज्ञानिक यंत्रों के द्वारा बहुत छोटे-छोटे पदार्थों को देखता है, अणु को भी चीर सकता है, तो भी यह स्थूल ही है। इसको स्थूल के अतिरिक्त सूक्ष्म नहीं कह सकते हैं। सूक्ष्म तत्त्व वह है, जो स्थूल इन्द्रियों से नहीं जाना जाता। स्थूल इन्द्रियों से जो जाना जाता है, उससे स्थूल ज्ञान ही होता है। अपने अन्दर देखने के ढंग से यदि देख सको तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रकट हो जाता है। बाहरी इन्द्रियों में जो शक्तियाँ हैं, वे जब उधर से फिरती हैं तो अन्दर में प्रवेश करती हैं, वे ही सूक्ष्म हैं। इन सूक्ष्म धाराओं से काम लो तो जो काम होगा, वह सूक्ष्म काम है। इसको जानो।

संतों ने कहा कि अपने अंदर देखो, अपने अंदर सुनो। अपने अन्दर देखने-सुनने से अंत में पता लगेगा कि यही ईश्वर है। फिर तुमको कुछ जानने के लिए बाकी नहीं रहेगा। आवागमन से छूट जाओगे। सभी दुःखों से छूट जाओगे।

ईश्वर-स्वरूप के लिए कहा गया है कि वह मन से ग्रहण नहीं हो सकता। वह इन्द्रिय-गोचर पदार्थों में से कुछ नहीं है। इन्द्रियों को जो कुछ प्रत्यक्ष है, वह माया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है कि श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

अर्थात् जो सब शरीरों में रहता है, वह शरीरों से निर्लेप रहता है। सब पदार्थों में भी जो रहते हुए अथवा सब आकारों में रहते हुए सबसे निर्लेप और निराकार है, वही आत्मा है। इसको पहचानो, यही ईश्वर है। आत्मा कहने से आत्मा परमात्मा दोनों को जानना चाहिए। जैसे आकाश कहने से बाहर के आकाश का और भीतर घर के आकाश का भी ज्ञान होता है। उपनिषदों में आत्मा शब्द का विशेष प्रयोग किया गया है। जबकि यह पृथक किया जाय, तो पिण्ड में व्यापक वह आत्मा, ब्रह्माण्ड में व्यापक वह आत्मा और प्रकृति में व्यापक आत्मा सब एक ही है। सब पिण्डों, ब्रह्माण्डों, सारे प्रकृति मण्डल में व्यापक तथा इन सबको भर कर फिर इन सबके जो परे है, वह है परमात्मा। और शरीरस्थ आत्मा का ज्ञान केवल आत्मा कहने से होता है। सबमें रहता हुआ सबके गुणों से जो निर्लेप है, वह आत्मा ही परमात्मा है, वही ईश्वर

है। उससे बाहर कुछ नहीं है। उसको पहचानने से फिर कुछ पहचानने के लिए बाकी नहीं रहेगा। उसको पहचानने के लिए संसार में कहीं जाना, शरीरों में फँसा रहना है।

शरीर एक ही नहीं है। हमलोग चार जड़ शरीरों में पड़े हुए हैं। जैसे मूँज होती है। मूँज के अन्दर सींकी होती है। सींकी के ऊपर मूँज के कई खोल होते हैं। एक-एक कर सभी खोलों को उतारने पर सीकीं निकलती है। केले में भी कई परतें होती हैं। उन परतों को एक-एक कर उतारने पर केले का थम्भ निकलता है। इसी तरह चेतन आत्मा इस शरीर में है। एक ही शरीर में नहीं, चार जड़ शरीरों—स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण में है। ऊपर से एक स्थूल शरीर देखने में आता है। साधारणत: एक स्थूल शरीर की मृत्यु होती है, बाकी और तीनों की मृत्यु हो जाती तो बड़ा कुशल होता। जब परमात्मा की पहचान होती है, तब ये तीनों भी झड़ जाते हैं।

परमात्मा की पहचान तबतक नहीं हो सकती, जबतक मायिक सभी आवरणों, पापों से छूट नहीं जाएँ। कबीर साहब ने कहा—

राम निरंजन न्यारा रे। अंजन सकल पसारा रे।।
अंजन उतपति वो ऊँकार। अंजन मांड्या सब बिस्तार।।
अंजन ब्रह्मा शंकर इन्द। अंजन गोपी संगि गोव्यंद।।
अंजन वाणी अंजन वेद। अंजन किया नाना भेद।।
अंजन विद्या पाठ पुरान। अंजन फोकट कथहि गियान।।
अंजन पाती अंजन देव। अंजन की करै अंजन सेव।।
अंजन नाचै अंजन गावै। अंजन भेष अनंत दिखावै।।
अंजन कहौं कहाँ लगि केता। दान पुंनि तप तीरथ जेता।।
कहै कबीर कोइ विरला जागे, अंजन छाड़ि निरंजन लागै।।

सब माया ही माया है। तीर्थ, दान, व्रत सब माया है। इसके अच्छे-अच्छे फल तुम पा सकते हो, स्वर्ग-वैकुण्ठ पाओगे, फिर यहाँ आना होगा। किंतु परमात्मा का दर्शन इससे नहीं होता। मनुष्य शुभ कर्मों को करे। पवित्र जल को ही तीर्थ कहते हैं। इसमें स्नान करो, किंतु यह मत समझो कि इसी से सब कुछ हो गया। परमात्मा का दर्शन या आवागमन से छूटना इससे नहीं हो सकता। इसके लिए अपने अन्दर में चलना होगा। अंदर में चलने से माया से छूटोगे। बाहर में चलने से माया में ही रहोगे। गुरु नानकदेव ने कहा कि वह परमात्मा अलख, अगम, अगोचर है। उसका बाहर में कोई चिह्न नहीं है। उसका यदि कोई चिह्न है तो ओ३म्, प्रणव ध्वनि, सत्शब्द है।

हमलोग मुँह से जो ओ३म्, सतनाम उच्चारण करते हैं, सतशब्द नहीं है। गहरे ध्यान में जाने से वह ग्रहण होता है। परमात्मा जैसे अव्यक्त है, उसकी प्रतिमा भी अव्यक्त है। वह हई है। कहीं से वह आवेगा सो नहीं। वह सब जगह है। तुम पहचानते नहीं हो। पहचानने की योग्यता ध्यान से होगी। इसलिए ध्यान करो। सब शरीरों में ब्रह्म छिपा हुआ है। उसकी ज्योति सब शरीरों में है। जो निडर ध्यान लगाता है, वह उसको प्राप्त करता है।

पवित्र बर्तन में सत्य अँटता है। अंत:करण रूप बर्तन को पवित्र करो, तब ईश्वर को पाओगे। सत्य आचरण करनेवाले बहुत कम होते हैं। सत्य आचरण करनेवाले की संसार में भी प्रतिष्ठा होती है। प्रतिष्ठा-युक्त होने का जीवन पवित्र आचरण से होता है। भ्रष्ट आचरण से नहीं होता। अपवित्रता का जीवन तो मरे हुए के समान है। तुम अपना जीवन पवित्र रखो। इससे बुरे-बुरे कर्मों को निकाल दो। बुरी-बुरी इच्छाओं को छोड़ दो। अच्छे-अच्छे कर्मों को अपने अन्दर लो।

झूठ मत बोलो। चोरी मत करो। व्यभिचार मत करो। व्यभिचार दो तरह के होते हैं—एक तो बलात्कार, दूसरा व्यभिचार मन के मेल से होता

है, दोनों से बचो। एक वकील ने मुझसे पूछा—'मन के मेल से व्यभिचार करने में पाप भी है?' मैंने कहा—'पहले आप पाप-पुण्य को जानिए। जिस कर्म से आत्मोन्नति हो, वह पुण्य है और जिस कर्म से आत्मा का अधःपतन हो, वह पाप है।'

नशा मत खाओ, न पिओ। तम्बाकू तक नशा है। हिंसा मत करो। पंच पापों से बचो, तब अंतःकरण पवित्र हो जाएगा। ईश्वर पाने का शौक हो और उसके लिए जो कर्म करना चाहिए, उससे गिरे रहो तो ईश्वर कैसे मिलेंगे। हिंसा तीन तरह की होती है—मन से, वचन से, और कर्म से। और भी हिंसा के दो विभाग कर लो—वार्य और अनिवार्य। खेत जोतने में कितनी हिंसा होती है? यदि खेती नहीं करो तो संसार के सब लोग समाप्त हो जाएँगे। भोजन नहीं मिले तो बिना एटम बम के ही सब लोग मर जाएँगे। हिटलर लड़ाई के सामानों को बनाने में लगा रहा और भोजन का प्रबंध नहीं किया, तो बिना भोजन के मारा गया। पानीपत की तीसरी लड़ाई में भोजन नहीं मिलने के कारण ही मराठे की हार हुई। कई लाख आदमी एक ही दिन में समाप्त हो गए। मनुस्मृति में अष्टघातक का वर्णन आया है—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः।।

—अध्याय ५ श्लोक ५१

अर्थात् १. वध करने की आज्ञा करनेवाला, २.शस्त्र से मांस काटनेवाला, ३. मारनेवाला, ४. बेचनेवाला ५. मोल लेनेवाला, ६. मांस को पकानेवाला, ७. परोसने के लिए लानेवाला, ८. खानेवाला; ये आठो घातक (हिंसा करनेवाला) ही कहलाते हैं।

वार्य हिंसा से बचो और अनिवार्य हिंसा के लिए प्रायश्चित करने कहा गया है। चोर-डकैत के आने पर लड़ने-भिड़ने में, एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र की चढ़ाई को रोकने में लड़ाई हो तो यह अनिवार्य है। इसमें लड़ो, वीरता के साथ लड़ो। अन्नोपार्जन जो हो, उसमें से दान दो। यह प्रायश्चित है। सबसे मूल है, ईश्वर का भजन करो।

भगवान बुद्ध ने कहा—'अंधकार में पड़े हुए तुम प्रकाश को क्यों नहीं खोजते।' ध्यानाभ्यास करो, प्रकाश प्रत्यक्ष होगा। n

यह प्रवचन खगड़िया जिलान्तर्गत ग्राम—मानसी में दिनांक ६.६.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

११३. नवधा भक्ति का उपदेश

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

रामचरितमानस का पाठ सुनकर आपलोगों को मालूम हुआ होगा कि आज का क्या विषय है? इस सत्संग में सदा जनाया जाता है कि 'ईश्वर की भक्ति करो।' ईश्वर-स्वरूप को जानने के पहले जानना चाहिए कि ईश्वर-भक्ति की क्या आवश्यकता है?

सबलोग माया की सेवा में लगे हुए हैं। फल यह होता है कि उससे शान्तिदायक सुख का लाभ नहीं करते हैं—संसार से नहीं छूटते हैं। इसकी बड़ी आवश्यकता है कि संसार से छूटा जाय, सदा का सुख पाया जाय और संतुष्टि—शान्ति प्राप्त की जाय। एक ईश्वर ही ऐसा है, जिसको पा लेने पर और कुछ पाने को बाकी नहीं रहता। उस संतुष्टि के बाद और कोई इच्छा नहीं रहती। ईश्वर-भक्ति ही आपको सदा के लिए सुखी कर सकती है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

राकापति षोडस उअहिं, तारागण समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ, बिनु रवि राति न जाय।।
ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा।।
—रामचरितमानस

अर्थात् चन्द्रमा सोलहों कलाओं के साथ उग जाय, सारे तारेगण भी निकल आवें और संसार के सभी पहाड़ों में आग लगा दी जाय, फिर भी बिना सूर्योदय के रात्रि नहीं जाती। उसी तरह बिना ईश्वर-भक्ति किए किन्हीं के जीवन का दु:ख-क्लेश नहीं मिट सकता। इसी तरह सभी अच्छे-अच्छे कर्म करो और ईश्वर-भजन नहीं करो तो उसी तरह है, जैसे कि बिना सूर्य के रात नहीं जाती, सुख-रूप दिन नहीं आता और दु:ख-रूप रात नहीं जाती। पहले ईश्वर-स्वरूप का निर्णय जानना चाहिए। बिना स्वरूप निर्णय के ईश्वर की भक्ति नहीं हो सकती। उसका स्वरूप मन-बुद्धि से परे है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
—रामचरितमानस

जबतक स्वरूप-निर्णय नहीं हो, तबतक उसकी भक्ति नहीं हो सकती। लोगों के मन में होगा कि जब परमात्मा को इन्द्रियों से प्राप्त नहीं कर सकते, तब किससे प्राप्त किया जाय? तो पहले अपने को जानो। इसमें भीतर से ज्ञान आता है। बाहर में केवल अंग हो और भीतर से ज्ञान नहीं आवे, तो यह जड़वत् है। जैसे लोहे को आग में देने से लाल हो जाता है और आग से निकालने से काला का काला रह जाता है। उसी तरह इस शरीर में चेतनमय—ज्ञानमय पदार्थ है। किन्तु शरीर जड़ है। इसमें ज्ञान नहीं होगा। शरीर का अन्त होने पर शरीर सदा के लिए जड़ ही रह जाता है। इसके सड़ने से रोग उत्पन्न होगा, इसके लिए इसको जला देते हैं। शरीर के साथ इन्द्रियाँ हैं। अन्त:करण की इन्द्रियाँ जलती नहीं हैं। बाहर की सब इन्द्रियाँ शरीर के साथ लगी हैं। ये सभी जल जाती हैं। अंत:करण सूक्ष्म शरीर में रहते हुए जीव के अपने कर्मवश उसके संग जाता है।

भीतर की चार इन्द्रियाँ—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार भी जड़ हैं। बाहर स्थूल शरीर से यह सूक्ष्म मन जड़ है। जब आप निद्राह नींद में सो गए, तब बुद्धि का विचार सब समाप्त हो गया। 'मैं हूँ' का ज्ञान भी समाप्त हो जाता है। इसमें गति होने का जो चेतन का स्वभाव है, वह बन्द नहीं होता। चेतन का काम बन्द हो गया तो श्वास नहीं लिया जा सकता। चेतन कभी जड़ नहीं होगा। जड़ से बनी हुई बाहर और भीतर की इन्द्रियों से ईश्वर की पहचान नहीं हो सकती। आपको जिस रंग का चश्मा पहना दिया जाय, बाहर में उसी रंग के अनुरूप चीज को देखिएगा। चेतन आत्मा पर मायिक चश्मा लगा हुआ है। इस चश्मे से केवल माया-ही-माया दीखती है। परमात्मा को इस मायिक चश्मे से कोई नहीं पहचान सकता है।

परमात्मा सबका आदि है। और स्वयं वह अनादि है। सबसे पहले जो है वह आदि है। सबका आदि यदि ससीम हो, एकदेशी हो तो ऐसा कहते बनता नहीं। क्योंकि प्रश्न होगा कि उस ससीम और एकदेशी के बाद और क्या है? यदि इसके पहले कुछ है, तब वह सबका आदि नहीं होगा। परमात्मा सबका आदि और अनादि होते हुए सर्वव्यापक और सर्वपर है। प्रकृति में जो व्यापक है, वह सर्वव्यापक है। और प्रकृति के परे और कितना बाकी है, जिसका ठिकाना नहीं। इसलिए सर्वव्यापकता के भी परे है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

जो एक अनादि-अनंत है, उसके सामने दूसरा असीम नहीं हो सकता। क्योंकि अनंत दो नहीं हो सकते। जो असीम है, वह एक ही होगा। जो जितना अधिक व्यापक होता है, वह उतना अधिक सूक्ष्म होता है। उस अणु वा त्रसरेणु को मैं झीना नहीं कहता। बल्कि जो आकाशवत् सूक्ष्म है। एक सेर बर्फ का फैलाव जितना होगा, उससे अधिक फैलाव सूक्ष्म एक सेर पानी का होगा। उससे भी अधिक फैलाव एक सेर पानी के वाष्प का होगा। वह वाष्प बर्फ और पानी से अधिक व्यापक और सूक्ष्म होगा। जो जितना अधिक सूक्ष्म होता है, वह उतना विशेष व्यापक होता है। कठिन से तरल और तरल से वाष्पीय विशेष व्यापक होता है। अनादि-असीम से व्यापक विशेष कुछ नहीं हो सकता। इसलिए वह विशेष सूक्ष्म है। वह तो सबसे विशेष सूक्ष्म और आपकी इन्द्रियाँ अत्यन्त स्थूल। तो स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व ग्रहण हो सकता है? इसलिए वेद और उपनिषद् में परमात्मा को इन्द्रियातीत कहा गया है।

परमात्मा सबसे पहले से है। परमात्मा से प्रकृति, प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से सेन्द्रिय और निरेन्द्रिय दो प्रकार की सृष्टि होती है। इस प्रकार भी परमात्मा से बहुत पीछे बने मन, बुद्धि आदि। यह परमात्मा के समक्ष स्थूल है। इससे वह ग्रहण नहीं हो सकता। एक-एक इन्द्रिय से एक-एक काम होता है। मन-बुद्धि से, शरीर से जो काम करते हैं, सो आप जानते हैं। और इनके संग से अलग होकर—अकेले होकर अपने से क्या करते हैं? सो आप नहीं जानते। आँखों से केवल देखते हैं। मन से केवल संकल्प-विकल्प होता है। यह जानते हैं, किन्तु आप अपने से स्वयं क्या करते हैं, यह नहीं जान सकते।

जबतक दूध से घी को अलग नहीं किया जाय, तबतक नहीं जान सकते कि घी से क्या होता है? उसी तरह शरीर-इन्द्रिय, अंतःकरण से अलग हुए बिना नहीं जान सकते कि हम स्वयं क्या कर सकते हैं। वेद-उपनिषद् में आया है कि केवल चेतन आत्मा से परमात्मा का दर्शन होता है। कितने कहते हैं कि इसी आँख से श्रीराम का, विष्णु भगवान का दर्शन हुआ। इतने बखेड़े में कौन पड़े कि शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि को छोड़ो, तब दर्शन होगा। तो विचारो श्रीराम या विष्णु भगवान का क्या देखा? उनके रूप को देखा। किंतु कितने को दर्शन होने पर भी पहचान नहीं हो सकी। तुलसीदासजी को घोड़े पर राम, लक्ष्मण जाते हुए दिखाई पड़े। किंतु पहचान न सके। फिर हनुमान से तुलसीदासजी ने निवेदन किया, तब दूसरे दिन जब तुलसीदासजी के सामने भगवान श्रीराम प्रकट हुए और उन्होंने बालक रूप में तुलसीदास से कहा— 'बाबा! हमें चन्दन दो।' हनुमानजी ने सोचा— कहीं इस बार भी ये धोखा न खा जाएँ, इसलिए उन्होंने तोते का रूप धारण करके यह दोहा कहा—

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें, तिलक देत रघुवीर।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका में बड़ा ही अच्छा लिखा है—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल, परम सुगंध कहाँ ते आयो।।
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेंवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।।
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुण, तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि, विषय बबूर बाग मन लायो।।
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम, मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय, कीजै नाथ उचित मन भायो।।

इसमें मूल बात यह है कि बाहर में उन्होंने नहीं पहचाना, अंदर में ही पहचाना। मृग और सरोवर का मिशाल देकर बताया कि ईश्वर अपने अंदर है, अंदर में पहचानोगे। प्रश्न होगा कि अंदर में दर्शन क्यों होगा? और बाहर में क्यों नहीं होगा? इसका उत्तर पहले हो गया कि इन्द्रियों से उसे पहचान नहीं सकते। बाहर में इन्द्रियों का संग रहता है। अंदर में होने से शरीर-इन्द्रियों के ज्ञान से छूटता है। सब छूटकर जब केवल चेतन आत्मा रहती है, तब दर्शन होता है। इसलिए ईश्वर की भक्ति ऐसी होनी चाहिए, जो अन्तर्मुखी कर दे। मन की चंचलता में बहिर्मुखता होती है और मन की स्थिरता में अन्तर्मुखता होती है। मन का जो सिमटाव होता है, यही अन्तर्मुखी करता है। इसलिए भक्ति के साधन में मन के सिमटाव की बातें हैं।

परमात्मा का दर्शन जो चेतन आत्मा से होता है, उसके लिए क्या करना चाहिए? शिव बाबा, श्रीराम आदि का जो दर्शन होता है, उसमें उनके शरीर की पहचान होती है, शरीरी की नहीं। आत्म-तत्त्व का दर्शन नहीं हुआ उनके शरीर को देखने से। रूप का दर्शन करो और रूप में अरूप का दर्शन करो, तब पूरा है। और गोस्वामी तुलसीदासजी का यह वचन याद रखें—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

और उपनिषद् का यह वाक्य—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थात् उस परे-से-परे परमात्मा के दर्शन से हृदय की गाँठ टूट जाती है, सारे संशयों का नाश हो जाता है और सब कर्म नष्ट हो जाते हैं।

जिस दर्शन से ऐसा हो, उसको परमात्मा का ठीक-ठीक दर्शन समझो। जो शरीर-इन्द्रियों के साथ दर्शन हो, वह मायिक दर्शन है। असली दर्शन चेतन आत्मा से होता है। इसके लिए क्या करो? बहुत सरल है।

अभी आपलोगों ने नवधा भक्ति का वर्णन सुना। शवरी का पहला जन्म खिखिरनी का था। ऋषि-मुनि की कृपा से वह दूसरे जन्म में रानी हो गई। राजा के राजमहल में उसको साधु-संतों का सत्संग नहीं मिलता था। राजा ने राजमहल में सत्संग-मन्दिर बनवा दिया। संयोग से एक पहुँचे हुए संत उनके यहाँ पहुँच गए। रानी ने बहुत आदरपूर्वक उनकी सेवा की। महात्माजी ने प्रसन्न होकर कहा—'माँगो, तुम क्या वरदान माँगती हो।' रानी ने कहा—'मैं शीघ्र मर जाऊँ। दूसरे जन्म में मैं कुरूपा होऊँ और साधारण कुल में मेरा जन्म हो।' महात्माजी के आशीर्वाद से वैसा ही हुआ। उसका जन्म भील के घर हुआ। देखने में भी कुरूपा थी। जब उसकी शादी हुई, उसका पति साथ लेकर जब जाने लगा, तो रास्ते में उसने सोचा, यदि इसको अपने साथ घर ले जाता हूँ तो बच्चे डरेंगे और लोग कहेंगे कि कहाँ से चुड़ैल ले आया है। ऐसा सोचते हुए वह शवरी को छोड़कर तेजी से निकल भागा। शवरी भी यही चाहती थी, उन्होंने भी सोचा—भले हुआ संसार के बंधन से मैं बच गई। वह मतंग ऋषि के आश्रम में रहने लगी। जब मतंग ऋषि संसार से प्रयाण करने लगे तो शवरी से उन्होंने कहा—'तुम धैर्य धारण करके यहाँ रहो। भगवान श्रीराम का दर्शन तुमको यहीं मिलेगा।' गुरु-वचन पर विश्वास करके भजन-साधन करती रही। एक दिन ऐसा समय आया कि भगवान राम शवरी के आश्रम पधारे और नवधा भक्ति का उपदेश किया—

पहली भक्ति में संतों का संग, दूसरी भक्ति कथा-प्रसंग जहाँ हो, वहाँ जाकर सुनो। ३. गुरु की सेवा मान-अहंकार छोड़कर करो। ४. परमात्मा

का गुणगान करो। ५. मंत्र जाप करो। ६. इन्द्रिय-दमनशील बनो। ७. शम का साधन करो और मुझसे बढ़कर संत को मानो। ८. यथा लाभ में संतोष करो, दूसरे का दोष मत देखो। ९. सबसे छलहीन होओ। मुझ पर भरोसा रखो, हृदय में हर्ष और दीनता नहीं लाओ। सबमें मनोनिग्रह की बड़ी आवश्यकता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

नित प्रति दरसन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी काहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

तो उत्तर में पुनः कहा—

मन तो रमे संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

चार भक्ति तक मन-लगाव, मन-लगाव ही है। मंत्र जपो और मन कहीं फिरे, तो यह जप नहीं है। कबीर साहब की वाणी में है—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।
तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय।।

केवल पाँच भक्ति तक में ही पूर्ण मनोनिग्रह नहीं होता है। इसके बाद की भक्ति को जानिए। इन्द्रियों को कौन चलायमान करता है? बच्चे को खोञ्चावाले को देखकर उसकी चीजों को खाने की इच्छा होती है। वयस्क को इच्छा नहीं होती। इसमें क्या है? मन की धार इन्द्रियों तक है। इन धारों को यदि समेट लीजिए तो इन्द्रियाँ सिमट जाएँगी। यह दृष्टियोग के साधन से होगा। यही वैष्णवी मुद्रा—शाम्भवी मुद्रा है। इसके बारम्बार अभ्यास से मन की धारा सिमट जाएगी। पहले विचार से भी कुछ रोको। किंतु केवल विचार से ही इन्द्रियों पर काबू नहीं होता। स्थिर विचार—स्थितप्रज्ञ संत हैं। श्रीमद्भगवद्गीता की यह सिद्धावस्था है।

मन की स्थिरता में स्थिरप्रज्ञता होती है। जबतक मन की धारा पसरी हुई है, तबतक स्थिरता नहीं होगी। ध्यान-अभ्यास विशेष करने से मन की चंचलता छूटती है। तभी विषयों के रस से मन छूटेगा। जब आप सोने लगते हैं, तो पहले तन्द्रा होती है। तन्द्रा में आपको ज्ञात होता है कि बाहर का भी कुछ ज्ञान होता है और हाथ-पैर कमजोर होते जाते हैं। शक्ति अंदर को खिंची जा रही है उस समय में कुछ न खाने को है, न सुनने को, न देखने को है। किंतु केवल अंतर्मुखी वृत्ति होती है। बड़ा चैन मालूम होता है। अंतर्मुखी होने से बहुत चैन मालूम होता है। इसीलिए कबीर साहब ने कहा है—'भजन में होत आनन्द आनन्द।'

यह ईश्वर-प्रदत्त है। यह एक नमूना है। ईश्वर बहुत दूर है। केवल थोड़ा-सा अन्तर्मुख होने में चैन होता है यदि और विशेष अंदर हो तो विशेष चैन मिलता है। विषयों से उसका मन हट जाता है। मन हट जाने से इन्द्रियों से उसके सूत हट जाते हैं। इन्द्रियाँ यों ही पड़ी रहती हैं। छठी भक्ति—इन्द्रियों के दमन का स्वभाववाला बनो और सज्जनों के धर्म के अनुकूल चलो। सज्जन पापों को नहीं करते। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार आदि पापों से अलग रहते। इन्द्रियों और मन का साथ-साथ साधन होता है। यह 'दम' का साधन है। पहले दम का साधन होता है, फिर शम का साधन होता है। 'शम' का अर्थ है मनोनिग्रह। 'शम' से 'सम' होता है। बिना 'शम' के 'सम' नहीं हो सकता है। केवल मन का साधन अंतर्नाद के अभ्यास से होता है। शिवजी ने शिवसंहिता में कहा है—'न नाद सदृशो लयः।'

जैसे नमक घुलते-घुलते समुद्र ही हो गया, सोना गलते-गलते पानी हो गया; वैसे ही मन गलते-गलते उसमें विलीन हो जाता है। प्रकृति मण्डल से छूटकर परमात्मा का दर्शन करता है।

नवधा भक्ति में सात भक्ति तक साधन है। आठवीं और नवीं भक्ति उसका फल है। इस प्रकार नौ प्रकार की भक्ति का आप साधन कीजिए तो परमात्मा के जिस स्वरूप का वर्णन हुआ, उसको प्राप्त करेंगे। इन्द्रियों के दर्शन-स्पर्श से जो रूप मालूम होता है, वह माया है। इन सब प्रकारों की भक्ति को कीजिए और पापों से बचिए। पापों से बचने पर संसार में प्रतिष्ठा भी होगी और ईश्वर-प्राप्ति भी होगी। ■

यह प्रवचन खगड़िया जिलान्तर्गत ग्राम—मानसी में दिनांक ६.६.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

११४. भगवान श्रीराम का प्रजा को उपदेश

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

हमलोग जहाँ रहते हैं, इसको संसार कहते हैं। यह संसार बहुत बड़ा है। इतना बड़ा है कि खड़ा होकर भी सम्पूर्ण संसार को नहीं देख सकते। ऊपर-नीचे कहीं भी संसार खत्म नहीं होता। देखने में यह संसार-सागर है। इस बहुत बड़ी दुनिया में—विराट रचना में हमलोग पड़े हुए हैं। हम देह में आए हैं और देह संसार में रहती है। इस देह में रहकर छोटी उमर का, कुछ बड़ी उमर का, जवानी उमर का, अधेड़ उमर का और बुढ़ापे का भोग भोगते हैं। फिर एक दिन शरीर को छोड़कर चले जाते हैं। लेकिन संसार में ही रहते हैं, जो सूक्ष्म संसार है; फिर वहाँ का भोग भोगकर पुनः इस संसार में आते हैं। कितनी बार आए और कितनी बार गए ठिकाना नहीं!

इस संसार में किसी-न-किसी प्रकार का दुःख होता ही है। दुःख कभी पीछा नहीं छोड़ता। यहाँ तक कि परलोक में भी दुःख नहीं छोड़ता। दूसरे जन्म में भी दुःख होता है। इसलिए हमारे यहाँ जितने अच्छे आदमी आए, उन्होंने एक स्वर से कहा कि इस संसार से बिल्कुल छूट जाओ। इस संसार में जबतक शरीर लेकर आओगे, तबतक अवश्य दुःखी होओगे। इसीलिए इस संसार-सागर को तरने के लिए सभी महापुरुषों ने कहा।

ईश्वर-भजन करके संसार-सागर से तरना होगा। ईश्वर-भजन ही ऐसा है, जिसका अवलम्ब लेकर सारे दुःखों को कोई पार कर सकता है। फिर वह दुःख में नहीं आवेगा। यही एक उपाय है। भगवान श्रीराम ने यही समझा था। वे राजा होकर शासन करते थे और कहते हैं कि उनके समय में लोग बहुत सुखी थे। फिर भी जो स्वाभाविक दुःख है, वह तो आवेगा ही। स्वयं उनको भी स्वाभाविक दुःख आया और उनको भी भोगना पड़ा। दैहिक ताप—शरीर में से जो रोग उत्पन्न होते हैं। दैविक ताप—अकस्मात् होता है, जैसे गाछ से गिर जाना या फिसलकर गिर गए, हड्डी टूट गई आदि। भौतिक ताप—प्राणियों द्वारा जो कष्ट प्राप्त हो, जैसे बिच्छू का डंक या सर्प का दंश आदि। ये तीनों होते ही रहते हैं। एक आदमी ने सीताजी के प्रति घृणा-भाव का कुछ शब्द कहा था। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—

सिय निन्दक अघ ओघ नसाये। लोक विसोक बनाय बसाये।।

भगवान राम को दुःख हुआ कि हमारी प्रजा सीताजी से प्रसन्न नहीं हैं। उन्होंने सीताजी को छोड़ दिया। सीताजी वन में चली गई। यह सीताजी के लिए दैविक ताप हुआ। इन तापों से छूटने का उपाय करो, यही संतों का उपदेश है। बिना ईश्वर-भजन के इन त्रय तापों से छूट नहीं सकते। भगवान श्रीराम ने इसको समझा कि प्रजा को जितना सुख

मिलना चाहिए, मिल रहा है; किंतु शरीर छोड़ने के बाद भी प्रजा सुखी रहे, इसीलिए उन्होंने सबलोगों को बुलाकर सभा की और यह शिक्षा दी—

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथहिं गावा।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।
सो परत्र दुःख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताय।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय।।
एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।
नरतन पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।।
ताहि कबहुँ भल कहहिं न कोई। गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई।।
आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जीव अविनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुणा नर देहीं। देत इस बिनु हेतु सनेही।।
नर तनु भव वारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करन धार सदगुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।
जो न तरइ भव सागर, नर समाज अस पाय।
सो कृत निन्दक मंद मति, आतम हन गति जाय।।

किसी भी जाति के शरीर में हों, छोटे-बड़े की बात नहीं। श्रीराम शवरी के यहाँ जाते हैं, वहाँ और भी बड़े-बड़े तपस्वी लोग थे। लेकिन उन सबों के यहाँ नहीं गए। वशिष्ठ मुनि ने निषाद को अपने हृदय से लगाया। भगवान श्रीराम ने शवरी के जूठे बेर खाए, यह प्रसिद्ध है। भगवान श्रीकृष्ण विदुरजी के घर पहुँचे। विदुरजी घर पर नहीं थे। उनकी पत्नी ने प्रेमपूर्वक भगवान को केला खिलाया। यह भी लोग जानते ही हैं।

शिवाजी के गुरु समर्थ रामदासजी थे। समर्थ रामदासजी की सेवा में एक शिष्य थे। वे बड़े गुरु-भक्त थे। समर्थ रामदासजी भोजन करने के बाद पान खाते थे। दाँत नहीं रहने के कारण वे पान को चबा नहीं पाते थे। इसीलिए उनके शिष्य पान को कूटकर देते थे। जिस पात्र में पान कूटा जाता था, उस पात्र को समर्थ रामदास के अन्य शिष्यों ने छिपा दिया। जब पान कूटकर देने का समय हुआ, तो उस पात्र को नहीं पाने पर वे शीघ्रता में अपने मुँह से ही पान चबाकर समर्थ रामदासजी को दिया। यह बात विपक्षियों ने शिवाजी से कही। शिवाजी को बहुत बुरा लगा। वे समर्थ के भोजनोपरान्त के समय पहुँचे। पान चबाकर जब समर्थ को दिया गया, तो शिवाजी ने कहा—'जिस पात्र में पान कूटा जाता है, वह पात्र कहाँ है? सामने लाइए।' यह सुनते ही पान चबाकर देनेवाले ने अपने मुँह का जबड़ा उखाड़कर समर्थ के सामने रखा। यह देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गए। उस शिष्य की ऐसी भक्ति थी कि उनका चबाया पान भी समर्थ रामदासजी खा गए।

ईश्वर का भजन मनुष्य-शरीर में होता है। मनुष्य-देह ऐसी है कि यदि आखिरी में भी इसका ख्याल हो जाय और मरने के समय में ईश्वर का ख्याल लेते हुए मरता है, तो उसका बड़ा कल्याण होता है। किंतु यह कैसे हो सकता है? जिसने जीवनभर इसके लिए कोशिश की है, मरने के समय उसी को वैसा ख्याल हो सकता है। जिनको यह बोध हो गया है कि अब इस शरीर से कुछ काम नहीं होगा, तो उनको यदि ऐसा चिन्तन हो कि ईश्वर मुझे मिलें, उनका ठीक-ठीक भजन करूँ। इस प्रकार जो ख्याल लेकर मरता है, तो उसका अगला जन्म बहुत सुन्दर होगा। बचपन से ही वह भक्ति करने लग जाएगा। उपनिषद् में आया है कि मरने के समय चित्त में जो-जो भावनाएँ जीव करता है, वही-वही वह होता है, यही जन्म का कारण है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी आया है—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदातद्भावभावितः।।

अर्थात् मनुष्य अंतकाल में जिस-जिस भाव को स्मरण करता है, उस-उस को ही प्राप्त होता है; क्योंकि सदा जिस भाव का चिन्तन करता है, अन्तकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है।

जिनको शरीर से कुछ काम नहीं हो सकता,

उनको बेकार सांसारिक वस्तुओं की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उस चिन्ता से तो कुछ होता नहीं है। तब फिर बेकार सांसारिक चिन्ता से क्या लाभ? ईश्वर के नाम को मन-ही-मन जपते रहो, इसको मन में घुमाते रहो। जिनको ईश्वर संबंधी जो शब्द प्रिय हो, उसको जपो। चाहे राम, चाहे शिव, चाहे कृष्ण, जो ईश्वर-वाचक शब्द हो, उसको जपो। अपने को शुभगति में ले जाने का यही उपाय है। अपने को अपने से शुभगति में ले जाना होता है। यदि शरीर छोड़ने के बाद कोई कुछ क्रिया उनकी शुभगति के लिए करते हैं, तो उसके लिए मैं उसे निषेधात्मक नहीं कहता। यदि दूसरे के किए से कुछ ऊपर उठ गए और यदि अपना भी कुछ करके ऊपर उठ जाएँ, तो कितना अच्छा हो। अपनी शुभगति के लिए ईश्वर का भजन ही सर्वश्रेष्ठ है। जो जीवन में भक्ति पूरा नहीं कर सका और मरते समय उसका वैसा ख्याल हो जाय कि भक्ति पूरी नहीं हो सकी, तो दूसरे जन्म में ईश्वर की भक्ति की भावना से प्रेरित होकर वह भक्ति करेगा। मरता शरीर है और भावना मन में होती है। मन सूक्ष्म शरीर के साथ जाता है। इसलिए उसका जो दूसरा जन्म होगा, उस शरीर में उसका वह मन मदद करेगा और वह भजन करेगा।

सभी को ईश्वर-भजन करना चाहिए। चाहे खेती करो, चाहे विद्याध्ययन करो, चाहे कोई काम करो। थोड़ा-थोड़ा सभी ईश्वर का भजन करो। 'तन काम में मन राम में।' सभी कोई ईश्वर का स्मरण करते हुए काम करो। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने फलाशा-त्याग करने कहा है। कर्म करके उसको ईश्वर में अर्पण कर दो। कबीर साहब ने कहा—

जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ किया नाहिं।
कबहुँ कहै कि मैं किया, तुमही थे मुझ माहिं।।

यहाँ अहंकार भाव का त्याग है। किंतु किसी को एक लाठी मार दो और कहो कि ईश्वर! तुमने मारा, सो नहीं। संत बनने के जितने अच्छे-अच्छे कर्म हैं, उसके लिए—'जो किया सो तुम किया, मैं कुछ किया नाहिं।' ईश्वर-भजन करने में यदि ईश्वर-भजन का अहंकार आता है, तो उसको परमात्मा भजन में ही गिराता है। ईश्वर का भजन मन में ऐसा बना लीजिए कि शरीर छोड़ते-छोड़ते भी वही याद रहे। कितने रोगी हों, कितने वृद्ध हों, यदि उनका मन फिर जाय और ईश्वर का भजन करते-करते शरीर छोड़े तो उनकी वह गति होगी जो श्राद्ध-क्रिया से नहीं हो सकती। इसलिए सबको ईश्वर-भजन करना चाहिए।

इसीलिए भगवान श्रीराम ने कहा—यह शरीर बड़े भाग्य से मिला है। संक्षेप में भगवान श्रीराम ने समझाया कि यह शरीर विषय-भोग के लिए नहीं है। स्वर्ग का सुख भी थोड़ा ही है और अंत में दुःख है। यह मनुष्य-शरीर नाव है। ईश्वर की कृपा अनुकूल वायु है। गुरु कर्णधार हैं। मनुष्य-शरीर है ही, ईश्वर की कृपा भी प्राप्त है। बाकी सद्गुरु बच जाते हैं। खोजने पर सद्गुरु भी मिल जाते हैं। सद्गुरु मिलने पर भी यदि उनके अनुकूल नहीं चलिए तो नाव पार नहीं लग सकती। इसलिए संसार से पार होने के लिए ये ही तीन चीजें हैं। ये तीनों चीजें भवसागर पार करने के लिए सबसे सरल हैं। पहले जप करो। बूढ़े शरीर से प्राणायाम नहीं हो सकता। उनके लिए नाम जपना और किसी रूप, जिस रूप में श्रद्धा हो, उसका ध्यान करें। यदि उनको दृष्टि-साधन करने कहा जाय, तो उनसे नहीं होगा। इसलिए उनको शब्द-साधन करना चाहिए। बहुत बूढ़े के लिए ये तीन काम हैं। इनमें किसी एक का भी अभ्यास करते हुए शरीर का त्याग करना चाहिए।

n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला के सिकलीगढ़ धरहरा में बाबू गिरो भगतजी के निवास स्थान पर दिनांक १३.६.१९५५ ई० के सत्संग में हुआ था।

११५. परमात्मा के लिए ईश्वर शब्द का प्रयोग

प्यारे लोगो!

इस सत्संग के द्वारा ईश्वर-भक्ति करने के लिए सदा से उपदेश होता हुआ चला आया है। ईश्वर-भक्ति करने के लिए सबसे पहले ईश्वर की स्थिति को जानना चाहिए। फिर उसके स्वरूप को जानना चाहिए। ईश्वर की स्थिति और उसके स्वरूप को पहले जानना चाहिए।

'ईश्वर' शब्द को लोग बहुत जगह प्रयोग करते हैं। जैसे नर+ईश्वर कहने से राजा का ज्ञान होता है। देवेश और देवेश्वर में भी ईश, ईश्वर लगा हुआ है। यहाँ ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं है। जैसे नरेश्वर से बढ़कर देवेश्वर है, तो देवेश्वर के ऊपर देव ब्रह्मा है। उनसे भी बढ़कर विष्णु हैं। देवियों के लिए भी ईश्वर शब्द प्रयोग हुआ है, किंतु यहाँ जिस ईश्वर के लिए कहा जाता है, उससे बढकर कोई नहीं।

परमात्मा के लिए ईश्वर शब्द का प्रयोग है। यहाँ एक ईश्वर की मान्यता है। अनेक शरीरों की अनेक जीवात्माओं को अनेक मानने से अनीश्वरवाद होता है, न कि ईश्वरवाद। ईश्वर-ज्ञान के लिए क्या वेद, उपनिषद्, संतवाणी सबमें है। जो इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है, जो आदि-अंत-रहित है, जिसकी सीमा कहीं नहीं है, जो अनादि, अनंत, असीम है, जिसकी शक्ति अपरिमित है, जो इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं, आत्मा के ज्ञान में आने योग्य है, वह परमात्मा है। यह बात कहते-कहते मुझे २० वर्ष हो गए, किंतु अफसोस है कि कुछ लोग ही इसे समझ पाए हैं।

शरीर-इन्द्रियों से जानने और मिलने योग्य ईश्वर मानोगे, तो उसमें ऐसी-ऐसी बात देखने में आवेगी, जिसे देखने से ईश्वर मानने के योग्य वह नहीं रह जाता। उसको ईश्वर मानना अन्धी श्रद्धा होगी। जो मन-इन्द्रियों से नहीं जानो, उसको किससे जानो? तो कहा—चेतन आत्मा से इन्द्रियों के पृथक-पृथक होने के कारण उनका पृथक-पृथक ज्ञान होता है। सब विषयों को एक ही इन्द्रिय से नहीं जान सकते। आँख से रूप देखते हैं, कान से शब्द सुनते हैं, नासिका से गंध ग्रहण करते हैं, जिह्वा से रस लेते हैं और चमड़े से स्पर्श का ज्ञान होता है। इन्द्रियों के पृथक-पृथक होने के कारण उनका पृथक-पृथक काम है, किंतु तुम्हारा निज काम क्या है? तुम्हारा निज काम परमात्मा की पहचान है और अपनी पहचान है। जो मानता है कि आत्मा बिना शरीर के नहीं रह सकती, सूक्ष्म शरीर में रहती है, उसका यह ज्ञान अधूरा है। स्थूल शरीर के बाद सूक्ष्म शरीर, सूक्ष्म के बाद कारण शरीर, कारण के बाद महाकारण शरीर, फिर कैवल्य शरीर है। उस चेतन आत्मा का निज ज्ञान परमात्मा की पहचान है। इसके अतिरिक्त परमात्मा को किसी से पहचाना नहीं जा सकता। एक असीम पदार्थ को नहीं मानो, तो प्रश्न होगा कि सब ससीम पदार्थों के बाद में क्या होगा? बिना असीम कहे प्रश्न सिर पर से नहीं उतर सकता। इसलिए एक असीम तत्त्व को मानना ही पड़ेगा। यदि कहो कि यह कल्पित है तो अकल्पित क्या है? ईश्वर को कल्पित कहनेवाले का ज्ञान मिथ्या है। कल्पित तो वह है, जिसकी स्थिति नहीं हो और मन से कुछ गढ़ लिया गया हो, किंतु एक अनादि-अनंत तत्त्व अवश्य है। उसकी

स्थिति अवश्य है, वह कल्पित कैसा? जो असीम है, जिसकी शक्ति अपरिमित है, उसको तुम अपनी परिमित बुद्धि से कैसे माप सकते हो? कोई यह नहीं कह सकता कि बुद्धि अपरिमित है।

आजकल विज्ञान का बहुत बड़ा विस्तार हुआ है, किंतु उनसे पूछो तो वे कहते हैं—अभी तो समुद्र के किनारे का एक बालूकण ही दीख पड़ा है। बुद्धि अभी कितनी विकसित होगी, ठिकाना नहीं। किंतु बुद्धि अपरिमित नहीं हो सकती। परिमित बुद्धि में अपरिमित को अँटा नहीं सकते। आज की बुद्धि जितनी दूर तक गई, उतनी ही रहेगी या उससे भी अधिक बढ़ेगी? यदि कोई योगेश्वर है तो बता दे कि बुद्धि कितनी बढ़ेगी? आजकल हमारे देश में अणु बम की खोज हो रही है। दूसरे देश के लोग इसको जानते हैं। यदि तुम जानते हो तो बता दो, तो समझूँ कि इतना ज्ञान तुमको है। किंतु इतना भी ज्ञान नहीं है। दूसरे देश के लोगों को बम बनाते देखकर गौरव करते हो कि अणु बम हमने बनाया। तारे, चाँद, सूर्य सभी हमने बनाए? दूसरे देश के लोगों से हम डरते हैं कि कहीं बम गिरा दे तो हमारा सर्वनाश हो जाएगा; और हम गौरव करते हैं कि ये सब हमने बनाये।

वेद में यही ज्ञान दिया गया है कि इन्द्रियों से परमात्मा को ग्रहण नहीं कर सकते। कबीर साहब ने कहा है—

राम निरंजन न्यारा रे। अंजन सकल पसारा रे।।
अंजन उतपति वो ऊँकार। अंजन मांड्या सब बिस्तार।।
अंजन ब्रह्मा शंकर इन्द। अंजन गोपी संगि गोव्यंद।।
अंजन वाणी अंजन वेद। अंजन किया नाना भेद।।
अंजन विद्या पाठ पुरान। अंजन फोकट कथहि गियान।।
अंजन पाती अंजन देव। अंजन की करै अंजन सेव।।
अंजन नाचै अंजन गावै। अंजन भेष अनंत दिखावै।।
अंजन कहौं कहाँ लगि केता। दान पुंनि तप तीरथ जेता।।
कहै कबीर कोइ विरला जागे, अंजन छाड़ि निरंजन लागै।।

यह पद कहकर सभी को माया बताया है और वह परमात्मा निरंजन है, निर्मायिक है। गुरु नानकदेवजी ने भी कहा है कि—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।

अर्थात् परम प्रभु परमात्मा देखने की शक्ति से परे, असीम, मन और बुद्धि की पहुँच से परे, अजन्मा, कुलविहीन, काल और कर्म से रहित तथा भूल और मनोमय संकल्प से हीन है।

एक-एक शरीर में एक-एक ईश्वर माननेवाले को कितना भ्रम है, उसका ठिकाना नहीं। जो परमात्मा सर्वव्यापी है, वह सबके घट-घट में है। उसको पाने का यत्न अपने अंदर करो। अंदर में यत्न करने पर तुम अपने को भी जानोगे और ईश्वर को भी पहचानोगे।

एक अनादि अनंत स्वरूपी ईश्वर को नहीं मानकर जो एक-एक शरीर में एक-एक ईश्वर को मानता है, वह ईश्वर कैसा? जरा सोचो—यदि एक-एक शरीर में एक-एक ईश्वर है, तो एक ईश्वर दूसरे ईश्वर को थप्पड़ लगाता है, गाली देता है, मार-पीट करता है। एक ईश्वर दूसरे ईश्वर पर मामला-मुकदमा करता है, तीसरा झूठा वकील—ईश्वर झूठा फैसला करता है। क्या यही ईश्वर है? ये सब ईश्वर नहीं हैं। वास्तव में परम प्रभु परमात्मा एक है, वह स्वरूपतः अनंत है।

n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी में दिनांक १६.६.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

११६. भिक्षु जीवन का प्रत्यक्ष फल

प्यारे लोगो!

सब लोगों को जानना चाहिए कि प्रत्येक शरीर में जीवात्मा रहता है, जैसे घर में लोग रहते हैं। शरीर में लड़कपन, जवानी, बुढ़ापा होता है और एक दिन इससे जीवात्मा निकल जाता है, जैसे घर से कोई निकल जाय।

यह शरीर एक ही नहीं है। इसके अंदर तीन और जड़ शरीर हैं। साधारण मृत्यु में एक शरीर को छोड़कर और तीन को लेकर जीवात्मा निकल जाता है। उसी को लोग मरना कहते हैं। अपने कर्मों के अनुसार नरक, स्वर्ग भोगकर उसके यहाँ जाकर जन्म लेता है, जिसके यहाँ उसका संबंध रहता है। इसी प्रकार आवागमन जीवात्मा पर लगा रहता है। यह कबतक लगा रहेगा, ठिकाना नहीं। इस प्रकार के जीवन में पड़े रहना यदि आनंददायक होता तो इसको कोई छोड़ना नहीं चाहता। किंतु इसमें सब को दुःख होता है। चाहे वह पढ़ा-लिखा हो, अनपढ़ हो, धनी हो या निर्धन हो। कोई इस प्रकार के दुःख में रहना नहीं चाहता। यहाँ जो भी सुख है, उसके मूल में दुःख है। सबको चाहिए कि ऐसा जीवन प्राप्त करे, जहाँ सब दुःखों से छूट जाय। मानव इस बात को विचार सकता है। उसको— मनुष्य को सुख की ओर जाना चाहिए। मनुष्य होकर सुख की ओर जाना नहीं चाहे तो मनुष्यत्व में कमी है। इस कमी को सत्संग के द्वारा दूर करना चाहिए। दुःख-रहित सुख तब होगा, जब सब शरीरों से छूटा जाय। जिस पर कोई देह नहीं, इस तरह की स्थिति सबसे ऊँची स्थिति है। यही परमात्मा की प्राप्ति या मुक्ति की स्थिति है।

जीवात्मा के एक-एक शरीर में रहने का जीवन बहुत अल्प है। एक शरीर को छोड़कर और दूसरे शरीरों में आने-जाने का समय—जीवन बहुत लम्बा है। और सब शरीरों को छोड़ने का जो जीवन है, वह अनंत जीवन, सुखमय जीवन है। अभी भी जीवात्मा का जीवन अनंत है। किंतु यह दुःखमय जीवन है, अभी मान-प्रतिष्ठा के लिए जो जीवन बिताते हैं, यह कोई ऊँचा जीवन नहीं है। पशु-पक्षी भी सुख का जीवन पसन्द करते हैं। वे खाने-पीने, इन्द्रियों के भोग में, प्रतिष्ठा में रहते हैं। प्रतिष्ठा के लिए ही साँड़-साँड़ से लड़ते हैं, बिलाड़-बिलाड़ से लड़ते हैं। यदि मनुष्य भी प्रतिष्ठा के लिए ही जीवन बितावे, तो मनुष्य पशु से क्या श्रेष्ठ हुआ? जैसे जो घोड़ा अच्छी चाल चलना जानता है, तो उसका विशेष मूल्य होता है। मनुष्य भी जो अधिक विद्या जानते हैं, उनकी अधिक प्रतिष्ठा होती है। किंतु इतने ही में कोई विशेष नहीं हो जाते हैं। एक शिक्षित पशु अच्छा काम करता है और मनुष्य भी उसी तरह रहता है, तो क्या विशेष है। मनुष्य केवल विद्वान, धनवान, प्रतिष्ठावान होकर रहे तो यह कोई विशेष बात नहीं है। इन्हीं बातों में अपना काम खतम मानना ठीक नहीं। इसका अर्थ यह नहीं कि अविद्वान, निर्धन और अप्रतिष्ठित होकर रहे। तात्पर्य यह है कि वह पशु की तरह न रहे। पाशविक वृत्ति न रखे। इन्द्रियों के अधीन न रहे।

एक चिड़िया बहुत अच्छी तरह गाती है। सीटी देती है। चोंचा पक्षी सुन्दर घर बना लेता है। इसी तरह यदि मनुष्य भी कारीगरी जानता है और पढ़ा-लिखा है, तो उसकी विशेषता नहीं। विचारवान

नहीं तो पूरा मनुष्य नहीं। मनुष्य कहते हैं विचारवान को। मनुष्य को चाहिए कि इन्द्रियों को काबू करके संसार में रहे। संतों ने इसी की विशेष तारीफ की है। बहुत विद्याओं को जाने, यह ऊँची बात है। किंतु विद्वान होते हुए सदाचारी बने, इन्द्रियों को वश में करके रखे, यह विशेष ऊँची बात है। विद्वान होने से संसार में प्रतिष्ठित होते हैं और सदाचारी होकर रहने से ईश्वर के यहाँ प्रतिष्ठित होते हैं। हमारे यहाँ के ऋषियों ने इसी को विशेष प्रतिष्ठा दी है।

ईश्वर की भक्ति करो, ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान प्राप्त करने से ही ऐसा जीवन मिलता है। पूर्णयोगी बनो। ज्ञान, भक्ति और योग को तीन बातें कोई भले कहे, किंतु तीनों एक ही हैं। यदि कोई कुछ नहीं जाने तो भक्ति कैसे करेगा? ईश्वर से कैसे मिलेगा? यह जानना ही ज्ञान है। उससे मिलने के लिए कुछ करेगा तो वह योग होगा। मिलने के लिए जो प्रेम है, वह भक्ति है। इसलिए ज्ञान, योग और भक्ति तीनों साथ-साथ है। मन उधर अधिक लगता है, जिधर प्रेम होता है। इसीलिए भक्ति को प्रेम प्रधान कहा गया है।

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिम्भ विचार।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार।।

— संत कबीर साहब

प्रेम उत्पन्न उसके लिए होता है, जिससे अपना कुछ लाभ होता है। परमात्मा सबसे बड़ा लाभ देते हैं। ईश्वर की महिमा, उनकी स्थिति के लिए ज्ञान होता है, तब श्रद्धा होती है। श्रद्धा होने से भक्ति होती है। परमात्मा की महिमा को समझाने के लिए थोड़ी-सी बात यह है। आप किसी भी हालत में रहते हो; किंतु बिना हवा के, भोजन के नहीं रह सकते हैं, श्वास नहीं लेने से हम जीवित रह नहीं सकते। गर्मी से हम जीते हैं। यह ईश्वर की दी हुई है। लोग कहते हैं यह गर्मी सूर्य की है। किंतु ईश्वर के बनाए हुए सूर्य, चन्द्र, हैं। सारी सृष्टि ईश्वर की बनाई हुई है। हवा मुफ्त मिलती है। इसके लिए किसी को खजाना (कर) देना नहीं पड़ता। परमात्मा की बनाई हुई मिट्टी है। इस मिट्टी को नहीं लेकर तब अन्न उपजाओ, हो नहीं सकता। हाँ, मिट्टी को लेकर, उसमें कुछ डालकर उसको उर्वरा भले बनाओ; किंतु मिट्टी नहीं बना सकते।

एक मुनि बालक था। वह जंगल में रहता था। एक राजा ने उस बालक को देखा। वह बालक बड़ा ज्ञानी था। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उस मुनि बालक से राजा ने कहा—'तुम मेरे साथ चलो। तुमको अच्छी तरह अपने राजमहल में रखूँगा। जो खाऊँगा, तुमको भी वही खिलाऊँगा। जो मेरी रक्षा में पहरा करेगा, वह तुम्हारी भी रक्षा करेगा।' मुनि बालक ने कहा—'मैं तुम्हारे साथ तभी चलूँगा, यदि तुम मेरी बात मान लो।' राजा ने कहा—'तुम अपनी बात कहो, वह क्या है?' मुनि बालक ने कहा—'मुझे खिलाओ, तुम मत खाओ। मुझे पहनाओ, तुम मत पहनो। जब मैं सो जाऊँ, तब तुम जगकर मेरी रक्षा करो।' राजा ने कहा—'ऐसा नहीं होगा।' मुनि बालक ने कहा—'मैं तब तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा। मेरे राजा ऐसे हैं, जो स्वयं नहीं खाते, मुझे खिलाते हैं। अपने कुछ नहीं पहनते, मुझे पहनाते हैं। जब मैं सो जाता हूँ, तो वे जगकर मेरी रक्षा करते हैं।' ऐसे राजा हैं परम प्रभु परमात्मा। परमात्मा सबको खिलाते हैं, वे अपने कुछ नहीं खाते हैं। सबको पहनाते हैं, अपने स्वयं कुछ नहीं पहनते हैं। सब कोई सोते हैं, अपने जगकर हमलोगों का पहरा करते हैं।

मन सांसारिक पदार्थों में लगता है। सांसारिक पदार्थ माया है। माया एक तरह नहीं रहतीं। परमात्मा सदा एक तरह रहते हैं। दोनों के आपस में उलटे-उलटे गुण हैं। माया में हम अपने को दुःखी पाते

हैं। इससे उलटे परमात्मा हैं। उधर अपने को करो, तो सुखी होओगे। प्रह्लाद की कथा बहुत पुरानी है। उनको पिता के द्वारा बहुत दुःख दिया गया। किंतु ईश्वर की कृपा से उनसे वे उद्धार पाते गए। ईश्वर में प्रेम होना चाहिए।

राजा अजातशत्रु ने भगवान बुद्ध से प्रश्न किया कि भिक्षु जीवन का कोई प्रत्यक्ष फल भी होता है? भगवान बुद्ध ने उत्तर में कहा था—'हे राजन्! मैं आपसे भी एक प्रश्न करता हूँ, आप पहले उसका उत्तर दीजिए। आपके दासगण प्रतिदिन आपकी सेवा करते हैं, यदि आपके दासों में से कोई एक दास यह विचार कर कि थोड़े से जीवन के लिए कौन इतनी पराधीनता स्वीकार करके दिन-रात कष्ट भोगे, वह साधु हो जाय और एकान्त में रहकर युक्ताहारपूर्वक अपनी इन्द्रियों का संयम करने लगे, तो क्या आप उसे दास बनने के लिए फिर बाध्य करेंगे?' राजा अजातशत्रु ने कहा—'ऐसा होने पर तो उसको दास बनने के लिए कभी नहीं बाध्य करेंगे। वरन् उसका सम्मान करेंगे और यथाशक्ति उसकी सेवा-सत्कार करेंगे।' भगवान बुद्ध बोले—'राजन्! तब तो आपको यह मानना पड़ा कि भिक्षु होने से इसी जीवन में फल मिलता है। राजन्! यदि कोई व्यक्ति एकान्तसेवी हो इन्द्रिय-संयम के द्वारा भक्ति-धर्म का पालन करे, तो लोक में अवश्य पूजित होगा; बल्कि त्यागशील पुरुषों को और भी अनेक फल मिलते हैं। आत्म-संयम के अभ्यास द्वारा मनुष्य क्रमशः उन्नत भिक्षु जीवन-लाभ करके रोगमुक्त, कारागार मुक्त, चिर-दासत्व मुक्त की तरह परमानन्द का लाभ करता है। हे राजन्! उसे जन्म-जन्मानन्तर की बात स्मरण हो जाती है। वह जान लेता है, हम पूर्व जन्मों में किन-किन अवस्थाओं में थे? कहाँ-कहाँ जन्मे? क्या-क्या किया? क्या-क्या भोगा? कौन व्यक्ति क्या-क्या कर्म कर रहा है और परिणाम में उसे किस प्रकार का फल भोगना पड़ेगा? इसको वह इस प्रकार देखता है, जैसे—कोई ऊँचे मकान के ऊपर से नीचे के मनुष्यों को देखता है कि कौन क्या कर रहा है? कहाँ से आ रहा है? किधर जा रहा है? यह भिक्षुजीवन का प्रत्यक्ष फल है।

साधु-संयमी परमात्मा में जब लग जाता है, तब वह रोगमुक्त रोगी की तरह, कारागार से मुक्त कैदी की तरह आनन्दित होता है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिसको ईश्वर में प्रेम होगा, वह सदाचारी होगा, जो जप-ध्यान है, उसको वह करेगा। ईश्वर की भक्ति में प्रेम की प्रधानता है। सबको ईश्वर में प्रेम करना चाहिए। उनकी महिमा को जानना चाहिए। परमात्मा की ओर से हमारी बहुत भलाई होती है। परमात्मा में लौ लगाने के लिए कोई जरिया चाहिए। कीर्तन से पूजा-पाठ से लौ लगती है। किंतु दिखलानेवाला कीर्तन और पूजा-पाठ नहीं होना चाहिए। जप-ध्यान से लौ लगाना सरल है। किंतु इसकी भूमि सत्संग है। लौ लगाने के लिए सत्संग से प्रेरणा मिलती है।

साधुओं का संग करना चाहिए। नित प्रति साधु का संग नहीं हो सकता। जिनको विशेष प्रेम है, उनको कभी-न-कभी साधु अवश्य मिलते हैं। चिट्ठी आधी मुलाकात है। साधु-संतों के वचन उनके ग्रंथों में है। उन ग्रंथों को पढ़ना चाहिए। इसमें आधा साधु का दर्शन होना होता है। सद्ग्रंथों को नित पढ़ो। बिना सत्संग के कोई ज्ञानी, योगी, भक्त नहीं हो सकता।

पंच पापों को नहीं करो। किसी भी नशा को लेना आपको लाभ नहीं पहुँचा सकता। अन्न और जल, दूध आपको लाभ पहुँचा सकता है। अन्न, जल, दूध लेना जरूरी है। बेजरूरी की चीज लेना हानिकारक है। तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, नस, खैनी

आदि जो नशा है, इनको छोड़ो। यदि आप इन सबों को छोड़ दीजिएगा, तो मालूम होगा कि इनके बंधनों से हम छूट गए। चोरी नहीं करनी चाहिए। झूठ नहीं बोलना चाहिए। व्यभिचार नहीं करना चाहिए। इसके बदले में एक ईश्वर पर पूर्ण भरोसा रखना चाहिए, वे अपने अंदर में मिलेंगे, इस पर अटल विश्वास रखना चाहिए। सत्संग नित करना चाहिए। ध्यान करना चाहिए और सद्गुरु की श्रद्धा-प्रेम से सेवा करनी चाहिए।

सब लोगों को मालूम है कि ईश्वर सब जगह हैं। आपके अंदर भी ईश्वर हैं। आप भी अपने शरीर में हैं। किंतु उनको पहचान नहीं सकते हैं। आप जिस दर्जे में हैं, उससे ईश्वर बहुत ऊँचे दर्जे में हैं। जिस दर्जे में आप हैं, उस दर्जे में ईश्वर नहीं हैं—इस विचार को नहीं मानना चाहिए। ईश्वर उस दर्जे में भी हैं, लेकिन उनको वहाँ पहचान नहीं सकते। उस दर्जे में आप शरीर और इन्द्रियों के साथ रहते हैं। सारे शरीरों—आवरणों को पार करने पर ही प्रभु मिलेंगे। चेतन आत्मा के ऊपर से जितने आवरण हटाए जाते हैं, उतनी ही उसकी दीप्ति और अधिक बढ़ती है। बिल्कुल आवरण हट जाय तो सूर्य से विशेष प्रकाशमान वह होगा। परमात्मा, पुरुष, स्त्रीलिंग आदि कुछ नहीं, नपुंसक भी नहीं।

सत्संग-ध्यान सबको नित करना चाहिए। ब्राह्ममुहर्त्त में उठना चाहिए। भजन करना चाहिए। दिन में स्नान के बाद को। और सायंकाल संध्या समय भजन करो। रात में सोते समय भजन करते हुए सो जाय, तो बुरा स्वप्न नहीं होगा। यही त्रयकाल संध्या है। दिन में सब काम करते हुए अपने मन को जप-ध्यान में लगाते हुए रहना चाहिए। ■

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर सिकलीगढ़ धरहरा में दिनांक १९.६.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

११७. पहले मस्तिष्क ही पुस्तक थी

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

सबसे गहन विषय जो हो सकता है, वह है ईश्वर-स्वरूप का निर्णय। जो लोग आस्तिक कुल में जन्म लिए हैं, उनको ईश्वर मानने में कोई अड़चन और कोई संदेह नहीं है। कोई अपने माता-पिता या बूढ़े के कहने से ईश्वर को मानते चले आए हैं। उनके बूढ़े लोगों ने ईश्वर के जिस-जिस नाम को लेकर पुकारा है, उन्होंने उसी को जाना है। उनको यह जनाया गया है कि ईश्वर का स्वरूप क्या है। लोग श्रद्धा से मानते चले आए हैं। ईश्वर-स्वरूप का निर्णय विशेष पढ़े-लिखे लोग विवेचना पूर्ण करके जानते हैं। लोग कहते हैं कि यह बात सबकी समझ में नहीं आएगी, इसलिए उनको कहने से क्या लाभ? किंतु जो नहीं समझेंगे, उनको यदि यह विषय कभी समझाया ही नहीं जाय तो वे कब समझेंगे? इसलिए साधु-संतों ने इसको समझा और कहा कि इसको बारम्बार समझाओ।

केवल विद्यालयों में ही जाकर ज्ञान नहीं होता है, सुनकर भी ज्ञान होता है। पहले कोई पुस्तक नहीं थी। संसार में सबसे पुराना ग्रन्थ लोग वेद को कहते हैं, लेकिन जब वेद ग्रंथ रूप में नहीं था, तब उसका ज्ञान ऋषियों के मस्तिष्क में था। जब अक्षर नहीं बना था, उस समय जितनी विद्याएँ थीं, लोगों को सुना-सुनाकर सिखलायी जाती थीं। लोगों की स्मरण शक्ति बहुत तीव्र थी। लोग सुन-सुनकर समझ लेते थे, सीख लेते थे। ज्ञान और

विद्या पहले, पुस्तक पीछे हुई। आज भी जो पुस्तक लिखी जाती है, वह ज्ञान पहले मस्तिष्क में रहता है,फिर पुस्तक में लिखते हैं। लोगों की स्मरण-शक्ति जब कम हो गयी, तब लोगों ने उस ज्ञान को रखने के लिए अक्षर बनाया और पुस्तक का रूप दिया। आज भी कितने ज्ञान हैं, जो पुस्तक में नहीं हैं।

राहुल सांकृत्यायन से भेंट हुई मुरादाबाद से आते समय। उन्होंने तालपत्र पर लिखे हुए अक्षरों को दिखलाए। पहले भोजपत्र पर, ताम्रपत्र पर लिखते थे, फिर कागज बना और उसपर लोग लिखते हैं। पहले मस्तिष्क ही पुस्तक थी। वह शक्ति आज भी है। आज भी कछ स्मरण-शक्ति है। महर्षि दयानन्द के गुरु स्वामी विरजानन्दजी जन्मान्ध थे, वे बड़े विद्वान थे। जिस गुरु के शिष्य स्वामी दयानन्द थे, वे गुरु कैसे थे, सो जानिए। विद्या कैसे आती है, इस पर कहा।

ऊँचे विद्यालयों में लड़के पढ़ते हैं, अध्यापक कहते हैं, लड़के सुनते हैं, याद रखते हैं और लिख भी लेते हैं। साधु लोग जो सत्संग करते हैं, इसको याद रखो अथवा लिख लो। यदि लिखना नहीं जानते हो तो सुनते-सुनते बहुत सीख जाओगे। हमारे चाचा के पिता एक सुग्गा पालते थे। वह सुग्गा सिखाने पर बहुत बातें सीख गया था। संयोग से एकदिन रात में चोर आया। सुग्गे ने हल्ला किया, 'बाबा हो चोर।' लोग जग गए, चोर भाग गया। पक्षी को मनुष्य का संग करते-करते ज्ञान हो गया कि चोर आया है। उसको यह बात सिखलाई नहीं गई थी। पक्षी जब सीख लेता है, तो मनुष्य बार-बार सुन लेने पर क्यों नहीं सीख लेगा?

हमारे यहाँ एक बड़ा भारी काला दाग है कि सभी वर्णों के लोगों को यह उपदेश मत दो। किंतु संत लोग सब ही दिन उदार रहे। 'चहुँ बरना को दे उपदेश' गुरु नानकदेव ने कहा। आपको इसका इच्छुक होना चाहिए। इच्छा नहीं करते हैं, इसीलिए इससे दूर रहते हैं। लोग राम, शिव, हरि आदि को ईश्वर समझते हैं, परंतु उनसे स्वरूप पूछिए तो चुप हो जाएँगे। कोई सगुण मानते हैं, तो निर्गुण मानते हैं। दूसरा दल कहता है कि क्या ईश्वर है? एक नास्तिक विद्वान ने मुझसे पूछा कि 'आपका क्या प्रचार है?' मैंने कहा—'ईश्वर-भक्ति।' उन्होंने पूछा—'क्या ईश्वर है?' मैंने कहा—'हाँ।' उन्होंने कहा कि मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ। मैंने कहा—'नहीं मानिए।' उन्होंने पुनः मुझसे पूछा कि 'तब मेरे लिए आपका क्या प्रचार है।' मैंने कहा कि 'आप तो पढ़े-लिखे है, विद्वान हैं, समेटकर बोलिए कि आप क्या चाहते हैं।' वे चुप हो गए। तब मैंने कहा—'यदि आपको ज्ञान और सुख मिल जाए तो कोई इच्छा रहेगी? उन्होंने कहा—'नहीं।' मैंने कहा—'आपके लिए मेरा यही प्रचार है कि ज्ञान और सुख होता है ध्यान से। आप ध्यान करेंगे तो ज्ञान होगा, सुख होगा और ध्यान के अंत में ईश्वर की प्राप्ति होगी। ध्यानाभ्यास से मन की एकाग्रता होती है। इससे मन में शान्ति आती है और ज्ञान भी बढ़ता है, मुझे विश्वास है कि आप यदि ध्यान के अंत में पहुँचिएगा, तो कहिएगा कि ईश्वर है।'

लोग कहते हैं कि 'एक प्रह्लाद के लिए भगवान ने अवतार लिया, एक दौपदी के लिए वस्त्रहरण के समय भगवान प्रकट हुए, आज बंगाल में, पंजाब में क्या-क्या हो गया, लेकिन भगवान कहाँ हैं? क्या आजकल भगवान ने वैसा करना छोड़ दिया है?' किंतु गुण, कर्म से ईश्वर का निर्णय नहीं हो सकता। कितने विद्वानों ने कहा कि ईश्वर श्रद्धा में है, तर्क में नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।
मत हमार अस सुनहु भवानी।।

किंतु ऐसी बात नहीं। बिल्कुल श्रद्धा-ही-श्रद्धा नहीं, तर्क भी है। अभी पाठ में आपलोगों ने सुना—

इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

तर्क में बतलाया—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

तब कहा है कि—'**इहाँ मोह कर कारन नाहीं**।' और कहा—'अज विज्ञान रूप बलधामा।' अज=अजन्मा। व्याप्य=जिसमें कुछ समावे। व्यापक=जो समावे। समूचा प्रकृति-मण्डल व्याप्य है, परमात्मा उसमें व्यापक है। अखण्ड=जिसका टुकड़ा नहीं हो। अनन्त=जिसकी सीमा कहीं नहीं, जो असीम है। अगुन=गुणरहित, तीन शक्तियों—गुणों के परे। संसार में तीन गुणों का खेल है। एक वृक्ष, एक पहाड़ या छोटे जीव या मनुष्य का शरीर या (देवता पर विश्वास रखते हो तो) देवता का शरीर—इन सबमें तीन गुणों का काम है। रजोगुण—उत्पादक शक्ति, सत्त्वगुण—पालक शक्ति और तमोगुण—विनाशक शक्ति। अगुण=तीन गुणों से रहित को कहते हैं। जो व्याप्य में व्यापक है, वह परमात्मा है। किंतु उसी में वह समाप्त नहीं होता। उससे परे भी है। इसीलिए कहा—

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

इन सब बातों को बतलाकर कहते हैं कि 'इहाँ मोह कर कारन नाहीं।' अब यहाँ तर्क होता है कि व्याप्य में व्यापक अर्थात् प्रकृति पार अनंत हो सकता है कि नहीं। पहले एक अनंत तत्त्व पर विचार करो कि है कि नहीं। यदि कहो कि 'कोई भी अनंत नहीं होगा, सब सान्त-ही-सान्त है।' प्रश्न होगा कि 'सब सान्तों के बाद में क्या है?' सब खेतों की सीमा है, सब खेतों को जोड़कर भूमण्डल होता है। भूमण्डल सान्त हो गया। सारे सान्तों के पार में क्या है? जबतक एक अनंत नहीं कह दो, तबतक यह प्रश्न सिर से उतर नहीं सकता। इसलिए एक अनंत का मानना अनिवार्य है। अनंत दो नहीं हो सकता। यदि कहो कि 'एक दूसरे में समाते हुए अनंत है।' तब प्रश्न होगा कि दोनों तत्त्वरूप में एक है कि दो? यदि एक दूसरे में घुसता है तो जब उसमें घुसता है तो उसमें पोल है, उसका खण्ड हो सकता है। उसके अणु-अणु में वह है, तब वह परमाणु भी उसी से बना होगा, इस तरह अनंत एक ही होगा, दो नहीं। एक एम०ए०, बी०एल० ने प्रश्न किया कि 'यदि वह अनंत है तो फिर उसको ईश्वर क्यों मानूँ?' तो उत्तर होगा—'अनंत से बाहर कोई नहीं हो सकता। जब सब उसके अंदर में है, तो वह ईश्वर नहीं हुआ तो क्या हुआ? जिसके अधीन सब हो।' अनंत के पहले का कुछ नहीं हो सकता। सबसे पहले का जो है, उसका जन्म नहीं हो सकता। इसलिए वह अज है। अनंत होने के कारण वह सर्वव्यापी है। जो जितना अपना विस्तार विशेष रखता है, वह उतना सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म का अर्थ छोटा टुकड़ा नहीं, बल्कि आकाशवत् सूक्ष्म। एक सेर बर्फ लो, उससे एक सेर जल का विस्तार ज्यादा होगा। यदि उसको वाष्प में परिणत किया जाय, तो उसका विस्तार और विशेष होगा। जो जितना सूक्ष्म होगा, वह उतना विशेष पतला होगा। जो जितना विशेष महीन होगा, वह अपने से स्थूल में स्वाभाविक ही समाया हुआ होगा। जैसे पृथ्वी में जल, जल में अग्नि, अग्नि में हवा और हवा में आकाश। जो सबसे विशेष सूक्ष्म है, वह सबमें व्यापक होगा। इसीलिए अति सूक्ष्म होने के कारण परमात्मा सर्वव्यापक है। इसीलिए कहा—'प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी।' प्रकृति कहते हैं उस मसाले को, जिससे यह सब कुछ बनता है। बनने

में दो भाग करो तो एक पिण्ड, दूसरा ब्रह्माण्ड होगा। पिण्ड-ब्रह्माण्ड में तीन गुणों का खेल होता है। बालकपन का शरीर कहाँ चला गया? शरीर गया नहीं, बल्कि बदल गया है। यदि तीनों गुणों का काम नहीं हो तो रूप नहीं बदल सकता। उत्पादक शक्ति का काम है—उत्पन्न करना, बदलते जाना। तमोगुण का काम है—नाश करना। ठहरा हुआ है—यह सतोगुण का काम है। तीनों का काम संग-संग होता है। जिसने जन्म नहीं लिया, उसमें तीन गुणों का काम कैसे होगा, इसलिए वह अज है। कार्य और कारण को समझने के लिए प्रकृति कारणरूप है और कार्यरूप में सब चीजें बन गई हैं। त्रयगुणों के सम्मिश्रणरूप को प्रकृति कहते हैं। बराबर-बराबर शक्तियों के मिलाप को प्रकृति कहते हैं। इसकी जड़ में तीन गुण हैं। इसलिए अपरा प्रकृति, अष्टधा प्रकृति इसको कहते हैं। कार्यरूप का जितना फैलाव है, उससे कारणरूप का विशेष फैलाव होता है। जहाँ से कुछ बनने का आरम्भ होता है, वह कारण है। उसके बाद जब कुछ बनता है, तब सूक्ष्म कहलाता है। अद्वैतवादी को पहले से दूसरा तत्त्व नहीं जँचता है। परमात्मा से प्रकृति उपजी हुई है। प्रकृति को अनाद्या भी कहते हैं, इसलिए कि प्रकृति के होने से समय होता है। प्रकृति नहीं होने के पहले देश काल बने, नहीं हो सकता। जब देश और काल नहीं था, तब प्रकृति हुई। इसलिए इसको अनाद्या कहते हैं। प्रकृति देश-काल ज्ञान से अनादि और उपज ज्ञान से सादि है। परमात्मा अनादि के भी आदि हैं। 'अनादिर आदि परम कारण।'

जो असीम है, सर्वव्यापी है, त्रयगुण रहित है, अज है, ऐसा तत्त्व टूटनेवाला नहीं हो सकता। इसलिए अखण्ड है। इस तरह ईश्वर का स्वरूप है। किंतु उसके कार्य से ईश्वर माना जाय, हो नहीं सकता। ससीम बुद्धि से असीम परमात्मा के कार्य का वर्णन किया जाय, नहीं हो सकता। बुद्धि रबड़ का एक थैला है। रबड़ के थैले में हवा भरो, हवा विशेष भरने से थैला फट भी सकता है। उसी तरह बुद्धि को समझो। ईश्वर को सुगम रीति से जानने के लिए क्या करो? बाहर में आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, भीतर में मन है। मन से कुछ करते हैं। इसको बुद्धि से विचारते हैं। बुद्धि पीछे बनी। फिर मन और पीछे बाहर की इन्द्रियाँ बनीं। जो जितना पीछे बना, वह उतना स्थूल है। बुद्धि सूक्ष्म है। उससे स्थूल मन है। उससे और इन्द्रियाँ स्थूल हैं। बुद्धि को सारथी, मन को लगाम और इन्द्रियों को घोड़े कहा गया है। सबसे सूक्ष्म परमात्मा हैं। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता। हाथ में बांधने की घड़ी और दीवार में टाँगने की घड़ी दोनों में एक ही तरह के यंत्र हैं, किंतु दोनों घड़ियों में एक ही औजार से काम नहीं होता। बड़ी घड़ी के लिए बड़े-बड़े और छोटी घड़ी के लिए छोटे-छोटे यंत्र काम में लाते हैं। परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म हैं, इन्द्रियाँ अत्यन्त स्थूल हैं। इन स्थूल इन्द्रियों से सूक्ष्म परमात्मा ग्रहण होने योग्य नहीं हैं। सामने में जो प्रत्यक्ष दृश्य है, उसको ग्रहण करने के लिए आँख है, किन्तु आँख को फोड़कर कान से देखना चाहें, तो नहीं होगा। कान से शब्द सुन सकते हैं। पाँच विषयों को ग्रहण करने के लिए पाँच इन्द्रियाँ हैं। रूप क्या है? जिसको आँख से ग्रहण करें। शब्द क्या है? जिसको कान से सुन सकते हैं। इसी तरह ईश्वर क्या पदार्थ है? जो केवल चेतन आत्मा से ग्रहण होता है। यदि कहो कि प्रत्यक्ष दिखलाओ तो प्रत्यक्ष आँख से नहीं हो सकता। मैं इसकी क्रिया—युक्ति बतलाता हूँ, अपने को शरीर-इन्द्रियों से छुड़ाकर कैवल्य दशा प्राप्त करो, तब प्रत्यक्ष होगा। इसके लिए मन को एकाग्र करो। मन को

एकाग्र करने के लिए लोग मोटे-मोटे काम करते हैं, परंतु पूरा एकाग्र नहीं होता। पूर्णता के लिए ध्यानाभ्यास करो। ध्यानाभ्यास का अर्थ यह नहीं कि मोटे-मोटे कर्मों को नहीं करो। मोटे-मोटे कार्यों—सत्संग, पूजा-पाठ से भी सिमटाव होता है। विशेष सिमटाव मंत्र-जप से होगा। इससे भी विशेष सिमटाव मूर्ति-ध्यान से होगा। भगवान बुद्ध की मूर्ति को भिक्षु लोग बनाते थे। लोगों ने पूछा कि 'भिक्षु! यह क्या करते हो?' उन्होंने कहा कि 'इस मूर्ति को बनाते-बनाते इसका रूप मन में छप जाएगा।' इसी के लिए हमारे यहाँ प्रतिमा-पूजन है, केवल प्रणाम करके चलने के लिए नहीं। प्रतिमा देखो और उसका ध्यान करो। एक पंडित ने मुझसे पूछा कि 'आप प्रतिमा को मानते हैं कि नहीं?' मैंने कहा कि 'मानता भी हूँ और नहीं भी मानता हूँ।' ध्यान करने के लिए प्रतिमा को मानता हूँ और मेला लगाकर पैसा कमाने के लिए नहीं।'

प्रतिमा का ध्यान क्यों किया जाया, इसका भी उत्तर है। एक मौलवी थे। उन्होंने कहा कि 'हिन्दू लोग बहुत ईश्वर मानते हैं।' मैंने उनसे कहा कि 'आप एक शरीर में रहते हैं, इसलिए आपका शरीर है। खुदा सबमें रहते हैं, इसलिए सब शरीर खुदा के है। इस तरह हिन्दू लोग सब रूपों को ईश्वर का रूप मानकर पूजते हैं। ईश्वर सबमें रहते हैं।' जैसे तुम घर में रहते हो, तुम घर नहीं हो। मूर्ति में परमात्मा है, मूर्ति परमात्मा नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ कहकर इसको अच्छी तरह समझाया गया है। मूर्ति-पूजा इसलिए है कि शक्ल का ध्यान करो। मूर्ति में ईश्वर हैं, मूर्ति ईश्वर नहीं है। मूर्ति का ध्यान करो, इससे एकाग्रता होगी, किंतु इससे पूर्ण सिमटाव नहीं होगा। श्रीमद्भागवत के एकादश अध्याय में उद्धवजी को भगवान श्रीकृष्णजी ने कहा कि 'पहले मेरे सर्वांग शरीर का ध्यान करो, फिर मेरे मुस्कानयुक्त मुखारविन्द का, फिर शून्य में ध्यान करो। भगवान ने शून्य-ध्यान करने कहा। विन्दु-ध्यान शून्य-ध्यान है। विन्दु-ध्यान शून्य-ध्यान क्यों है? विन्दु कहते हैं—परिमाण-शून्य, नहीं विभाजित होनेवाले चिह्न को। यह शून्य न हो गया तो क्या हुआ। इस प्रकार विन्दु-ध्यान से पूर्ण सिमटाव होगा। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होगी। ऊर्ध्वगति में उठते-उठते कैवल्य दशा प्राप्त होगी, फिर ईश्वर की प्रत्यक्षता होगी। ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान हो, फिर उसकी पहचान हो। पहले जानकर ज्ञान हो, फिर पहचान कर ज्ञान हो। जबतक पहचान कर ज्ञान नहीं हो, तबतक कल्याण नहीं। इसके लिए आपका चरित्र बहुत अच्छा होना चाहिए। झूठ बोलना, चोरी करनी, नशा खाना, व्यभिचार करना और हिंसा करनी—इन पाँचों महापापों को छोड़ने से चरित्र अच्छा होगा।

n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर तेतराही में दिनांक २३.६.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

११८. विषयों का उपभोग किस रूप में?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपलोग अपने-अपने जीवनकाल में बरत रहे हैं। यह जीवनकाल कबतक रहेगा, कोई ठिकाना नहीं। सम्भव है कोई ५० वर्ष, कोई ८० वर्ष, कोई १०० वर्ष और कोई ज्यादे भी रहे। किंतु इस जीवन-काल के पहले भी समय समाप्त हो जाय, संभव

है। यह जीवनकाल एक शरीर का है। आप शरीर नहीं हैं। बाहर की इन्द्रियाँ नहीं, भीतर की इन्द्रियाँ भी नहीं हैं। समस्त इन्द्रियों और शरीर के परे आप हैं।

इन्द्रियाँ सह शरीर जड़ हैं। किसी भी मृत शरीर में ज्ञान नहीं रहता है। जीवित शरीर में ज्ञान रहता है। यह ज्ञानमय पदार्थ चेतन आत्मा है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

आप ईश्वर-अंश हैं, अविनाशी हैं, चेतन हैं। एक शरीर का जीवन बहुत थोड़ा है। आप अजर, अमर, अविनाशी हैं। इस मरणशील शरीर में आपका रहना है, यह रहना कबसे है, ठिकाना नहीं। आपने एक ही शरीर को नहीं, अनेक शरीरों को भोगा है। प्रत्येक शरीर का जीवनकाल कुछ-न-कुछ रहा है। आपने अनेकों शरीर को भोगा है और फिर इस शरीर को भोग रहे हैं। एक शरीर का जीवन सौ, सवा सौ वर्ष का है और आपका जीवन अनंत है। एक शरीर के जीवन में जीवन भर आप सुखी रहना चाहते हैं। परंतु दुःख आए बिना बाज नहीं रहता। जैसे दिन के बाद रात, रात के बाद दिन, इसी तरह सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख अनवरत रूप से आते रहते हैं। इन दुःखों को छुड़ाने के लिए लोग बहुत उपाय करते हैं; किंतु दुःख पीछा नहीं छोड़ता।

एक शरीर के दुःख को दूर करने का काम करते हैं, यह अच्छा करते हैं। किंतु आपके स्वयं का जो जीवन है, उस सुख के लिए भी सोचें। इसके लिए लोग ख्याल नहीं करते।

लोग एक पहर, आधे पहर के दुःख को पसन्द नहीं करते हैं, उसे अच्छा नहीं कहते हैं; तब लम्बे जीवन के दुःख को मिटाने के लिए कोशिश नहीं की जाय, ठीक नहीं। यह शरीरवाला जीवन इहलोक और परलोक में कब तक होता रहेगा, ठिकाना नहीं। इस लोक-परलोक से छूटने के लिए जबतक यत्न नहीं किया जाय, तबतक दुःख उठाते रहना होगा। स्वर्ग में भी दुःख नहीं छोड़ता। ऊँचे-ऊँचे स्वर्ग-लोक में भी समय बंधा रहता है। जबतक कर्मफल है, तबतक वहाँ का सुख भोगते हैं। फिर वह समय बीतने पर वहाँ से लौटाया जाता है। इस आवागमन का चक्र बहुत लम्बा है। इससे तबतक नहीं छूटते, जबतक शरीर में रहने का जीवन समाप्त न किया जाय। इसलिए सबको चाहिए कि अमर जीवन के लिए कोशिश करें। यह जीवन शरीर-रहित जीवन है। शरीर-रहित जीवन परमात्मा में रहना है। वहाँ से कभी हटना नहीं है। कर्मफलों को पार करके ही कोई वहाँ पहुँच सकता है। इसका यत्न मनुष्य-शरीर में करना चाहिए।

संसार में जितने शासित देश हैं, सबके शासक चाहते हैं कि हमारे देश के रहनेवाले सुखी रहें। उनके बहुत प्रयास करने पर भी जितना सुख होना चाहिए, उतना सुख नहीं ला सकते। केवल हमारा देश ही नहीं, संपूर्ण संसार के लोग पूर्ण सुखी नहीं हैं। केवल इसी युग में नहीं, सब युगों की बात है।

भगवान श्रीराम त्रेतायुग में राज्य करते थे। उनका इतना सुन्दर प्रबंध था कि प्रजा सुखी थी। किंतु वहाँ दुःख नहीं था, ऐसी बात नहीं। इतना अधिक सुख था कि उस सुख में दुःख बिला जाता था। इन सुखों को ही भगवान श्रीराम ने पूर्ण नहीं समझा। इसलिए उन्होंने सबलोगों को बुलाकर शिक्षा दी।

आजकल भी लोग समझने लगे हैं कि केवल भौतिक सुख से पूर्ण सुखी कोई नहीं हो सकता। आध्यात्मिक सुख से पूर्ण सुखी होंगे। आध्यात्मिक सुख वह है, जो इन्द्रियों के सुख में नहीं है। वह परमात्मा का सुख है। इन्द्रियों और शरीरों के भोग में वह सुख नहीं है। वह चेतन आत्मा से भोगने में

सुख है। उस ओर चलने के लिए अपने को बहुत पवित्र करके रहना पड़ता है। यह केवल शारीरिक पवित्रता नहीं। शारीरिक पवित्रता के सहित मन-बुद्धि की पवित्रता है, मन में कुविचार न आवे, मन बुराई की ओर न जाए, तब अंतःकरण की पवित्रता है, ऐसा समझना चाहिए।

अंतःकरण की पवित्रता में यह गुण है कि इससे संसार में भी प्रतिष्ठा होती है। यदि मन बुरे-बुरे कर्मों को करना चाहे, इन्द्रियों को बुरे-बुरे कर्मों की ओर प्रेरण करता है तो वह बहुत झंझठ में पड़ता है। धनीमानी होते हुए भी उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती। किंतु जो अंतःकरण की पवित्रता से रहता है, तो धनी नहीं होने पर भी, विद्वान नहीं होने पर भी लोग उनकी प्रतिष्ठा करते हैं। अंतःकरण की शुद्धिवाले को संसार में और परलोक में—दोनों में सुख होगा। भगवान श्रीराम ने इन्हीं बातों को समझकर आध्यात्मिक शिक्षा दी है। भगवान श्रीराम ने कहा—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथहिं गावा।।

अर्थात् बड़े भाग्य से मनुष्य-शरीर मिला है। यह शरीर देवताओं को दुर्लभ है, ऐसा सद्ग्रंथों ने भी गाया है। ऊँचे कुल, धनवान, बलवान हैं, इसलिए आपका बड़ा भाग्य है, ऐसा नहीं कहा। बल्कि मनुष्य-शरीर मिला है, इसलिए बड़ा भाग्य है। लोग समझते होंगे कि मनुष्य देवता को पूजते हैं, देवता मनुष्य शरीर क्यों चाहेंगे। उपनिषद् की एक कथा है। उपनिषद् उसको कहते हैं, जिसमें प्राचीनकाल के ऋषियों ने अपना विचार प्रकट किया था। उपनिषद् की कथा इस प्रकार है—

एक समय ब्रह्माजी के पास देव, दानव और मानव तीनों गए। तीनों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि हमलोगों को उपदेश दिया जाय। ब्रह्माजी ने तीनों को अपने उपदेश में मात्र 'द' कहा। इसमें ब्रह्माजी ने देवों को 'दमन' अर्थात् इन्द्रिय-दमन, दानव को 'दया' और मानव को 'दान' की शिक्षा दी। मनुष्य से देवता माया की शक्ति अधिक रखते हैं। किंतु दमनशील का स्वभाव उनमें नहीं है। इसीलिए मनुष्य का शरीर वे चाहते हैं कि मनुष्य शरीर मिलने से इन्द्रिय-दमन होगा।

अर्जुन स्वर्ग गए थे। उनकी सुन्दरता देखकर वहाँ की अप्सरा उन पर मोहित हो गई। उसने एकान्त में अपनी मनोभावना अर्जुन के सामने प्रस्तुत की, परंतु अर्जुन अविचल रहे। इसपर उस अप्सरा ने असंतुष्ट होकर अर्जुन को शाप दिया। देवताओं को इन्द्रिय-दमन की शक्ति नहीं है। यहाँ ही देखिए, जिसको धन है, वे किस तरह रहते हैं। हो सकता है, कोई-कोई धनवान संयमी हों। जिनको भोग्य पदार्थ विशेष मिलते हैं, उनको विषय-विलास विशेष रहता है। देवताओं में इन्द्रियों के भोग भोगने की शक्ति विशेष है। इसलिए इन्द्रियों के भोग में बहुत प्रवृत्त होते हैं। जब मनुष्य ब्रह्मा के पास गए तो, उनको ब्रह्मा ने 'द' की शिक्षा दी। मनुष्य ने समझा कि ब्रह्मा ने 'द' कहकर दान देने की शिक्षा दी है। हम मनुष्यों में बड़ी कृपणता है। तनबल, बुद्धिबल, धनबल सबको चुराते हैं। तन, मन, धन से दूसरों की भलाई नहीं करते हैं। इसीलिए ब्रह्माजी ने इन कृपणता को दूर करने के लिए 'द' कहकर दान देने कहा। फिर आपने भगवान राम के उपदेश में सुना—'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।' अर्थात् यह शरीर साधन का घर है। जो साधन करना चाहे, इस शरीर में रहकर हो सकता है। जिस तरह एक कोई भण्डार हो, उससे जो लेना चाहो, ले लो। उसी तरह यह शरीर साधनों का भण्डार है। इससे जो कीजिए, सो होगा। आप सर्कसवाले को देखते होंगे, कैसा-कैसा खेल दिखाता है, यह सब साधन उन्होंने किया है। यह तो स्थूल साधन है। हमारे यहाँ ऋषि, मुनि, योगी लोग हो

गए हैं। उन लोगों ने इन्द्रियों को दमन किया है, जिनको दमन करना कठिन है। इस शरीर में मोक्ष का द्वार भी है। शरीर के जितने तल हैं, संसार के भी उतने ही तल हैं। जब हम स्थूल शरीर में रहते हैं, तो हम स्थूल संसार में रहते हैं। उसी तरह से सूक्ष्म, कारण, महाकारण आदि शरीरों के भी जिस तल पर रहते हैं, संसार के भी उसी तल पर रहते हैं। शरीर के जिस तल को छोड़ते हैं, संसार के भी उस तल को छोड़ते हैं। जो शरीर के सभी तलों से ऊपर उठ जाते हैं, वे संसार के सभी तलों से परे हो जाते हैं। जो शरीर से निकलता है, वह संसार से भी छूट जाता है। जाग्रत से जब हम स्वप्न अवस्था में जाते हैं तो स्थूल शरीर का ज्ञान नहीं रहता है, तो स्थूल संसार का भी ज्ञान नहीं रहता है। पिण्ड को पार करो तो ब्रह्माण्ड को भी पार कर जाओगे। इसलिए ऐसा कोई रास्ता मिले, जिससे इस शरीर से, संसार से छूटा जाय। इस शरीर में छोटे-छोटे बहुत छिद्र हैं, बड़े-बड़े नौ—आँख के दो, नाक के दो, कान के दो, मुँह का एक और मल-मूत्र के दो छिद्र हैं। छोटे-छोटे छिद्र झरोखे हैं। यह शरीर नौ द्वारों का घर है। नौ द्वारों में से एक भी द्वार ऐसा नहीं है, जिससे शरीर से छुटकारा मिले, मोक्ष मिले। ये सब द्वार भीतर से बाहर जाने को हैं और वह द्वार जिससे भीतर प्रवेश कर सकते हैं, दसवाँ द्वार है। वह आपकी आँख के पास है।

आपलोग शिवजी की प्रतिमा में तीन आँखें देखते होंगे। शिवनेत्र इसलिए कहलाता है कि जो उसको प्राप्त करता है, उसका कल्याण होता है। यह रास्ता ब्रह्म की ओर जाने का है। गुरु नानक साहब ने कहा—

नउ दरवाजे नवै दर फीके रसु अमृतु दसवै चुईजै।

और—**नउ दर ठाके धावतु रहाए दसवैं निज घरि वासा पाये।**

इन नौ द्वारों में रहते हुए आप कल्याण नहीं पाते हैं, दसवें द्वार में जाएँ, तब बहुत कल्याण होगा। दसवें द्वार में जाने के लिए बड़ी एकाग्रता की जरूरत होती है। एकाग्रता में शान्ति आती है।

आपलोग जब जगने से सोने के लिए कोशिश करते हैं तो एक अवस्था आती है, जिसको तन्द्रा कहते हैं, उस समय शरीर कमजोर होता जाता है, शक्ति भीतर की ओर खिंचती जाती है। उस समय कुछ सुनते हैं और कुछ भूलते हैं। किसी इन्द्रिय का वहाँ स्वाद नहीं है। अंदर सरकाव में चैन मालूम होता है। सोने के समय मन की चंचलता छूटती है। यदि मन में कोई चिन्ता लगी हो तो नींद नहीं आवेगी। सोने के समय अंदर प्रवेश करते समय सब ख्याल छूटते जाते हैं, एक चैन मालूम होता है, यह तो स्वाभाविक सबको होता है। जो कोई भजन करता है, उसको विचित्र आनंद मालूम होता है। संत कबीर साहब ने कहा है—

भजन में होत आनंद आनंद।

बरसत बिसद अमी के बादर, भींजत है कोइ संत।।

जो अंतर की ओर चलता है, वह संसार की ओर से छूटता है, जो संसार की ओर से छूटता है, वह परमात्मा की ओर जाता है। जो उस दसवें द्वार से गुजरता है, वह मोक्ष की ओर जाता है, वह भक्ति करता है। दसवें द्वार की ओर जाना भक्ति करनी है। जिसने इस मनुष्य शरीर को पाकर अपना परलोक नहीं सुधारा, वह दुःख पाता है। परलोक दो तरह के होते हैं—एक स्वर्गादि और दूसरा मोक्ष। यहाँ परलोक स्वर्गादि के लिए है। इसीलिए भगवान श्रीराम ने कहा—

सो परत्र दुःख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताय।

कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय।।

अर्थात् जो मनुष्य-शरीर पाकर अपना कल्याण नहीं कर लेते हैं, वे अंत में दुःख पाते हैं और सिर धुन-धुनकर पछताते हैं। वे काल, कर्म और ईश्वर

को झूठ ही दोष देते हैं। ईश्वर की बड़ी कृपा है कि मनुष्य का शरीर मिला है। ईश्वर की विशेष कृपा को आप प्राप्त कर सकते हैं, जब आप परमात्मा का भजन कीजिए। काल आपके अधिकार में है। समय को सोकर, बैठकर खो सकते हैं, कुछ काम करके बिता सकते हैं, ईश्वर-भजन करके बिता सकते हैं। समय किसी को कुछ करने में रोकता नहीं है।

कर्म का भी दोष देना बेकार है। अपने प्रारब्ध को अपने से ही बनाना होता है। इसलिए काल, कर्म, ईश्वर को दोष देना उचित नहीं। फिर भगवान श्रीराम ने कहा—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।

स्वर्ग में भी पुण्य के अंत में दुःख ही होता है। विषय-सुख से अपने को निवृत्त करो। स्वर्ग-सुख का लालच भी छोड़ो। पशुओं के शरीर में भी इन्द्रियों के सुख का भोग है। मनुष्य भी यदि इन्द्रियों के भोगों में बरते तो पशु से क्या विशेषता हुई? भगवान राम ने कहा—पंच विषयों से पर पदार्थ के लिए चेष्टा करो अर्थात् परमात्मा को प्राप्त करने कहा। भगवान राम ने कहा—

नरतन पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।।
ताहि कबहुँ भल कहहिं न कोई। गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई।।

मनुष्य-शरीर पाकर जो विषय में मन लगाता है, वह अमृत छोड़कर विष लेता है। आगे भगवान श्रीराम कहते हैं—

आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जीव अविनासी।।

अंडज, पिण्डज, स्वेदज और ऊष्मज; इन चार खानियों में ८४ लाख योनियाँ हैं। माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव, गुण के घेरे में पड़कर सदा अविनाशी जीव घूमा करता है। मनुष्य ८४ लाख योनियों को भोगते हुए आया है। इसलिए इससे छूटने का उपाय करो। इससे छूटने का उपाय है—वायु, नाव और मल्लाह। ईश्वर की कृपा 'सन्मुख मरुत' या अनुकूल पवन है। अनुकूल इसलिए कि नाव को पश्चिम जाना चाहिए, किंतु नदी का बहाव पूरब की ओर ले जाता है। यदि पुरबैया हवा चल पड़े तो वह हवा उसको पूरब की ओर जाने से रोकती है। उस नाव पर मल्लाह पाल टाँग देता है, तब नाव भाठे से सिरे की ओर चली जाती है। मनुष्य-शरीर नाव है, ईश्वर की कृपा अनुकूल वायु है और सद्गुरु मल्लाह हैं। सद्गुरु वह है, जो सद्ज्ञान में बरते, जो दूसरों को सद्ज्ञान देता हो, सत्स्वरूप परमेश्वर का भजन करता हो और दूसरों को भजन करने का प्रेरण देता है।

मुक्ति मारग जानते साधन करते नित्त ।।
साधन करते नित्त सत्त चित्त जग में रहते ।
दिन दिन अधिक विराग प्रेम सत्संग सों करते ।।
दृढ़ ज्ञान समुझाय बोध दे कुबुधि को हरते ।
संशय दूर बहाय संतमत स्थिर करते ।।
'मेँहीँ' ये गुण धर जोई , गुरु सोई सतचित्त ।
मुक्ति मारग जानते साधन करते नित्त ।।

सद्गुरु मल्लाह हैं। जो इन साज-सामानों को पाकर अपना कल्याण नहीं कर लेते हैं, वे कृत-निन्दक, मंदमति और आत्महत्या के दोष को पाते हैं। इसलिए लोगों को चाहिए कि भगवान श्रीराम के उपदेश को मानें और विषय को छोड़कर निर्विषय की ओर चलें।

जैसे दवाई की मात्रा के अनुसार दवाई-सेवन करते हैं, इसी तरह संसार में रहने के लिए दवाई के रूप में विषयों का उपभोग कीजिए, उसमें आसक्त नहीं होइए। संत लोग जो कहते हैं, उनके अनुकूल चलना चाहिए। यदि भला भी होना चाहो और बुराई भी करो तो कैसे हो सकता है। इत्रदान में गोबरवाली अंगुलि देना ठीक नहीं। ईश्वर का भजन करना चाहते हो, तो अपने अंतःकरण को शुद्ध करो। अंतःकरण को शुद्ध करने के लिए

अपने को पापों से बचाओ। पापों से बचने के लिए झूठ छोड़ो। झूठ ऐसा झोला है, जिसमें सब पाप छिपा रहता है। कोई पाप चुराकर करो तो वह प्रकट हो जाएगा। रामकृष्ण परमहंसजी ने कहा है कि पाप और पारा को कोई हजम नहीं कर सकता है। जैसे कोई छिपकर पारा खा ले तो वह शरीर को फोड़कर निकल जाता है। उसी तरह से छिपकर किया हुआ पाप भी कभी-न-कभी प्रगट हो ही जाता है। चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार मत करो। स्त्री-पुरुष का अनैतिक संबंध जोड़ना व्यभिचार है। वैवाहिक मर्यादा को तोड़कर अनैतिक संबंध जोड़ने-वाली नारी व्यभिचारिणी है और अनैतिक संबंध जोड़नेवाला पुरुष व्यभिचारी है। तम्बाकू भी नशा है। संत कबीर साहब ने कहा है—

भाँग तम्बाकू छूतरा, अफयूँ और शराब।
कह कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार।।

इतना ही नशा नहीं है।

मद तो बहुतक भाँति का ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय।।
विद्या मद और गुनहु मद, राजमद्द उनमद्द।
इतने मद को रद्द करै, तब पावै अनहद्द।।

झूठ को तुरत छोड़ो। ऐसा नहीं कि आज पाँच झूठ बालते हैं, तो कल चार झूठ बोलेंगे। हिंसाओं से बचो। अष्टघातक मनुजी ने बताए हैं—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः।।

अर्थात् १. पशुवध की आज्ञा प्रदान करनेवाला, २. शस्त्र से मांस काटनेवाला, ३. मारनेवाला, ४. बेचनेवाला, ५. मोल लेनेवाला, ६. मांस पकानेवाला, ७. परोसने के लिए लानेवाला, ८. खानेवाला; ये आठो घातक हिंसा करनेवाले ही कहलाते हैं। हिंसा के सिलसिले में मत्स्य-मांस नहीं खाओ। दूसरी बात यह है कि आपका शरीर पवित्र है और पशु-पक्षी का शरीर अपवित्र है। पवित्र शरीर में अपवित्र जीव-जन्तुओं का मांस लेना ठीक नहीं। संसार में इतने मीठे-मीठे फल हैं, मिठाइयाँ हैं कि मनुष्य उतने खा नहीं सकते।

हिंसा दो तरह की है—वार्य और दूसरा अनिवार्य। वार्य हिंसा से बचा जा सकता है। अनिवार्य हिंसा से कोई बच नहीं सकता। कृषि कर्म में जो हिंसा होती है, वह अनिवार्य है। कृषि द्वारा यदि अन्न का उत्पादन नहीं हो तो लोग भूखों मर जायँ। लोग कहा करते हैं कि बिना मत्स्य-मांस खाए शरीर स्वस्थ नहीं रहता; लेकिन इस विचार को महात्मा गांधी ने नहीं माना। एक बार कस्तूरबा गांधी बीमार हो गई थी। उनको इतनी कमजोरी आ गई थी कि जिसके लिए डॉक्टर ने गोश्त का शिरवा खाने के लिए कहा था। गांधीजी ने कहा—'कस्तूरबा स्वतंत्र है, वे अपनी जीवनरक्षा के लिए गोश्त का शिरवा लेना चाहें, ले सकती हैं।' लेकिन जब महात्मा गांधी ने उनसे पूछा तो कस्तूरबा गांधी ने कहा—'मैं आपकी गोद में मर जाऊँगी, लेकिन गोश्त का शिरवा नहीं खा सकती।' गांधीजी ने स्वयं कस्तूरबा का प्राकृतिक इलाज किया, जिससे वे बहुतांश में स्वस्थ हो गई। लेकिन भोजन में नमक का छोड़ना आवश्यक था। कस्तूरबा गांधी छोड़ने में असमर्थ थी। महात्मा गांधी ने कहा—'अब मैं भी नमक नहीं खाऊँगा।' उन्होंने स्वयं नमक खाना छोड़ दिया। लाचार होकर कस्तूरबा ने भी नमक खाना छोड़ दिया। फिर वे पूर्ण स्वस्थ हो गई।

मांस-मछली खाने से बलवान होंगे, यह बात मानने योग्य नहीं। मथुरा के चौबे मत्स्य-मांस नहीं खाते। उनका थप्पड़ किसी को कान में लग जाय, तो बहरा ही बना देगा। मारवाड़ी लोग आपके यहाँ हैं। वे मत्स्य-मांस नहीं खाते, कितने अच्छे-अच्छे शरीरवाले हैं। बिना मत्स्य-मांस के ही उनके रोगों

का इलाज होता है।

किसी के घर में चोर-डाकू आवे तो उससे लड़ना चाहिए। देश के काम के लिए हमारे योग्य बलवाले उस दुष्ट को रोकें। जिस हिंसा की मनाही है, वह वार्य हिंसा के लिए है, अनिवार्य हिंसा से बचने के लिए नहीं। शौक से हिंसा मत करो। बकरे मारनेवाले को देखा कि मरने के छह महीने पूर्व उनको ऐसा भ्रम होने लगा कि बकरी सींग से मारने आती है। एक शौकीन हिंसा करनेवाले के लिए दो लाख रुपये खर्च किए गए, लेकिन वे बचे नहीं। कर्मफल अमिट है। संत कबीर साहब ने कहा है—

कहता हूँ कहि जात हूँ कहा जो मान हमार।
जाका गर तू काटिहौ, सो फिर काट तोहार॥
मांस मछरिया खात है, सुरा पान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी की खेत॥
यह कूकर को खान है, मानुष देह क्यों खाय।
मुख में आमिख मेलता, नरक पड़े सो जाय॥

किसी की चीज बिना उसके दिए मत लो। चोरी-डकैती मत करो। पंच पापों से यदि बचकर रहो, तो देश में चैन हो जाय। पाप करने के कारण ही देश में चैन नहीं है। चोरी, डकैती, व्यभिचार आदि पाप करते रहने से कैसे चैन हो सकता है।

भारत में पहले घर में ताला नहीं लगाया जाता था। आज क्या हो गया है? स्वराज्य हुआ, लेकिन सुराज नहीं हुआ है। पंच पापों को छोड़िए और ईश्वर-भजन कीजिए। तभी कल्याण होगा। संतों ने सबके उपकार के लिए कहा है। पसंद पड़े तो कीजिए, नहीं पसंद हो तो नहीं कीजिए। उसका जो फल होगा, वह भोगिए। मेरा कोई बल नहीं है कि जबर्दस्ती कहेंगे कि कीजिए ही।

n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ नगर, कुशहा तेलियारी ग्राम में दिनांक २८.६.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

११९. अन्त:करण की शुद्धि

प्यारे लोगो!

अपने शरीर को शौच से पवित्र करो। किंतु इतने से ही यह पवित्र नहीं होता है। हृदय की पवित्रता असली पवित्रता है। हृदय में पाप-विचार न आने से हृदय पवित्र होता है। हृदय में पाप-विचार आने से पाप करते हैं। इस पाप-विचार से लोगों को डरना चाहिए। पाप-विचार करने से बाहर में लोग नहीं देखते हैं, किंतु परमात्मा सभी जानते और देखते हैं। यदि कोई पाप करता है तो परमात्मा के सामने करता है; क्योंकि परमात्मा सब जगह है। बाहर में भी यदि कोई किसी को पाप करते देख लेता है तो लोग उसे दुरदुराते हैं। इसलिए पाप नहीं करना चाहिए। पाप करनेवाले को लोग लजाते भी हैं।

अपने शरीर की शुद्धि बाहर में शौचादि से और अंत:करण की शुद्धि पवित्र कर्म करने से होती है। तुम्हारा शरीर शिवालय है, विष्णु मन्दिर है। इसके लिए पैसे खर्च करने की जरूरत नहीं। अपना अंत:करण शुद्ध करना होता है। बाहर में लोग शिवालय, देवालय बनाते हैं। इससे संसार में

भले कुछ प्रतिष्ठा हो, किंतु उससे मोक्ष नहीं मिलता। यदि अपने अंतःकरण को शुद्ध करता तो उससे मोक्ष हो जाता।

संतों ने कहा कि यदि अपने को शुद्ध करके रखो तो तुम्हारा शरीर शिवालय है, इसमें शिवजी का दर्शन होता है। बाहर में लोग शिवलिंग को मोल लेते हैं, लोगों का बनाया हुआ। किंतु आप के अंदर ज्योतिरूप और नादरूप शिवलिंग परमात्मा का बनाया हुआ है। इसका ध्यान करते-करते परमात्मा मिल जाते हैं। इसलिए शब्द की बड़ी महिमा है। ज्ञानियों ने कहा कि जो अपने अंदर में ठाकुरजी को देखना चाहता है, वह अपने अंदर ध्यान करता है। शिवालय में नीचे जलढरी और उसके ऊपर में शिवलिंग रहता है। उसी तरह अपने शरीररूप शिवालय में ज्योतिविन्दु जलढरी और उसके ऊपर नाद शिवलिंग है। परमात्मा ने अमीर-गरीब, धनी-निर्धन, सबके लिए उनके शरीर में शिवजी की स्थापना कर दी है। सब कोई दर्शन कर सकते हैं। इसमें जाति-पाँति, धनी-निर्धन, विद्वान-अविद्वान की कोई बात नहीं। यदि जाति-पाँति की बात रहती तो कबीर साहब, गुरु नानक साहब कौन पढ़े-लिखे थे? संत रविदास और श्वपच भक्त कौन ऊँची जाति के थे?

जैसे शिवालय को पवित्रता से रखते हैं, उसी तरह अपने शरीर को भी पवित्र रखो और जिस किसी ने संसार में बड़ा-बड़ा काम किया है, उसका नाम आज है; किंतु उसको मोक्ष नहीं मिला। यदि अपने अंतर की सफाई रखे और ध्यान करे तो उसको मोक्ष मिलता है।

पंच पापों से बचो। संतों ने लोगों को मोक्ष-प्राप्ति का ऐसा सरल उपाय बताया है कि लोग संसार में हैरान न हों। किसी को बहुत पैसा है, दान देता है, कुआँ बनाता है, पोखर बनाता है, मन्दिर बनाता है, लेकिन जिसके पास पैसे नहीं हैं, वह नहीं कर सकता है; लेकिन दान देने के सबंध में ऐसा जानना चाहिए कि यदि कोई लखपति है और कोई एकदम गरीब है, यदि अपनी-अपनी शक्ति के अनुकूल दोनों दान देते हैं यानी लखपति बहुत देता है और एक गरीब अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा ही देता है तो दोनों बराबर हैं। किंतु यह तो बाहर की बात है। असली बात है अपने शरीर को, अपने अंतःकरण को पवित्र रखो, ध्यान करो तो मोक्ष मिलेगा। सारे दुःखों से छूट जाओगे।

n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर भंगहा गाँव में दिनांक १.७.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१२०. श्रीकृष्ण का आह्वान

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

प्यारे लोगो!

सभी संतों ने यही शिक्षा दी है कि किसी प्रकार के शरीर में जबतक रहोगे, कल्याण नहीं होगा। चाहे विराट शरीर में ही क्यों न रहो। एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना-आना होता है। जीवात्मा का मरण शरीर में रहना, बारम्बार जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहना, मरणवाला जीवन होता है। इसमें कभी कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए ऐसा यत्न होना चाहिए कि किसी शरीर में नहीं रहो। किसी शरीर में नहीं रहना अमर जीवन है। आत्मा अमर हई है, किंतु मरण शरीर में रहता है, इसलिए उसका मरणशील जीवन होता है। इसीलिए उस जीवन को त्याग देने योग्य है। इसके लिए ईश्वर को पहचानो। भजन करो, किंतु यह भी याद रखो कि कोई अद्‌भुत शक्तिवाला शरीर क्यों न हो, यह मायारूप है। इन मायारूपों के दर्शन से ईश्वर का दर्शन नहीं होता। इससे माया के बहुत बड़े-बड़े काम होते हैं। माया के बड़े-बड़े काम होने पर भी यह न समझ लो कि माया से आनेवाली सारी आपदाएँ मिट जाती हैं। शरीरधारी भगवान और इसमें व्यापक भगवान दोनों को जानिए। शरीर कृष्ण—काले शरीरवाला और स्वरूपत: कृष्ण। कृष्ण का अर्थ है, आकर्षण करनेवाला। शरीरवाले श्रीकृष्ण ने पांडवों की बहुत-सी आपदाओं का हरण किया; किंतु सभी आपदाओं का नहीं।

संसार में धन, पुत्र और प्रतिष्ठा का चला जाना बहुत हानि है। पाण्डवों की प्रतिष्ठा भी गई, राजसूय यज्ञ में मातहत राजा लोग टहल करते थे। दुर्योधन भण्डारी था। दीगर राजाओं में कोई द्वारपाल थे, कोई कुछ, कोई कुछ काम करते थे। इतनी बड़ी सभा में राजा के पहनने के वस्त्र को ले लिया गया। अपने से ही राजसी पोशाक को हटाकर सिर नीचा कर लिया। एक बड़े आदमी का इतना अपमान हुआ। द्रौपदी की साड़ी खींची गई। यह कितनी बेइज्जती है! बाद को वनगमन किया। राजा विराट ने जुआ खेलते समय पासे से युधिष्ठिर को मारा, सिर से खून जाने लगा। द्रौपदी को कीचक ने लात मार दी। दुर्वासा साठ हजार शिष्यों के साथ वन में भोजन माँगने युधिष्ठिर के पास आए। युधिष्ठिर के पास सूर्य की दी हुई एक हंडी थी। जिस हंडी से बना हुआ भोजन कितने ही लोगों को खिलाया जाता था, लेकिन वह घटता नहीं था। जब द्रौपदी भोजन कर लेती थी, तभी उस हंडी का भोजन समाप्त होता था। जब दुर्वासाजी ने युधिष्ठिर से भोजन माँगा, तो उस समय हंडी का भोजन समाप्त हो चुका था। फिर भी युधिष्ठिरजी ने दुर्वासा ऋषि से कहा कि आप अपने शिष्यों के साथ स्नान करके आवें। वे लोग स्नान करने चले गए। युधिष्ठिरजी ने द्रौपदी से जब भोजन तैयार करने के लिए कहा, तो द्रौपदी ने कहा कि भोजन तो समाप्त हो चुका है। युधिष्ठिर बड़े दु:खी हुए और द्रौपदी से कहा कि दुर्वासा ऋषि साठ हजार शिष्यों के साथ स्नान करके भोजन करने आ रहे हैं। यदि उनको भोजन नहीं दिया जाएगा तो हमलोगों को शाप दे देंगे।

द्रौपदी ने भगवान श्रीकृष्ण का आह्वान किया। भगवान कृष्ण जब द्रौपदी के पास पहुँचे, तो उन्होंने कहा—मुझे भोजन कराओ। द्रौपदी ने कहा—'भगवन्! भोजन के लिए कोई चीज मेरे पास नहीं हैं। सूर्य की दी हुई हंडी भी खाली है।' भगवान ने कहा कि कुछ भी खिलाओ। द्रौपदी हंडी में लगी हुई साग की एक पत्ती भगवान श्रीकृष्ण को देती है। भगवान उसे खा गए। परिणाम यह हुआ कि दुर्वासा ऋषि स्नान करके जब युधिष्ठिरजी के यहाँ आने लगे तो सबके पेट फूलने लगे। दुर्वासाजी ने सभी शिष्यों से कहा जल्दी भागो, नहीं तो बहुत बड़ा अनिष्ट हो जाएगा। वे सब के सब भाग गए। युधिष्ठिरजी इस आपदा से बचे, किंतु संतान-नाश, धन की हानि हुई।

भगवान के चले जाने पर अर्जुन की क्या हालत हुई! पंजाब में थोड़े ही लोगों ने उनको लूट लिया। शरीर रूप भगवान के दर्शन से सब आपदाएँ नहीं कटतीं, किंतु शरीर-रहित भगवान के दर्शन से एक भी आपदा रहने नहीं पाती। संतों की यही युक्ति है कि शरीर में रहो ही नहीं। जैसे दूध से घी अलग हो जाय, वैसे ही सभी शरीरों से जीवात्मा अलग हो जाय। ध्यान-अभ्यास से ऐसा होगा। यही परम्परा से चला आया है। विवेकानंद स्वामी ने कहा कि 'बहिर्वृत्ति को अंतर्मुखी करो।' जो इसके प्रयोग को जानता है, अभ्यास करता है, कुछ अनुभूति होती है, तो उसको ऐसा होता है कि वह बारम्बार उसी ओर देखना चाहता है। जिसको कुछ मालूम हो जाता है, उसकी दृष्टि अंतर की ओर हमेशा लग सकती है, बाहर से हट सकती है, जब किसी का ध्यान भीतर में लग जाय। ध्यान के दो प्रकार हैं—एक मोटा ध्यान है, जैसे कबीर साहब के वचन में सुना—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

गुरु रूप, भगवान रूप किन्हीं के स्थूल रूप का ध्यान करो, किंतु इतना ही ध्यान, ध्यान नहीं है। अभी आपलोगों ने सुना कि ध्यान को ध्यान नहीं कहते हैं। शून्यगत मन को ध्यान कहते हैं। इसीलिए शून्य ध्यान असली ध्यान है। श्रीमद्भागवत में भी शून्य ध्यान का वर्णन है। दृष्टि साधन की क्रिया से शून्य ध्यान होता है। मन में कुछ नहीं रहे और बिना कुछ बात मन में रहे, शून्य में मन लगा रहे, यही दृष्टियोग है। शून्य में मन को लगाकर रखना विन्दुध्यान है। फैलाव से सिमटाव में आवे। विन्दु ही सबसे विशेष सिमटाव हैं विन्दु-ध्यान से पूर्ण सिमटाव हो जाता है। दृष्टि को ऐसा बनाकर रखो, जैसे सूई में धागा पहनाते समय सूई की छिद्र में दृष्टि एकाग्र हो जाती है, उसी तरह दृष्टियोग करो। इसको कैसे करो, तो इसकी युक्ति गुरु से जानो। शून्यगत=शून्य में प्रवेश। एक ही तरह शून्य रहने से एक ही जगत में बैठा रहना हुआ। शून्य में दृश्य का परिवर्तन हुआ, तब मन शून्यगत हुआ। कबीर साहब ने कहा—

गगन मंडल के बीच में, तहँवा झलके नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर।।
कबीर कमल प्रकाशिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अंधरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर।।

विन्दु-ध्यान से मन शून्यगत होता है और शब्द-ध्यान से भी मन शून्यगत होता है। दृष्टियोग से दृश्यवाले शून्य तक मन जाता है और शब्द-ध्यान से अदृश्य शून्य तक जाता है। इसके लिए पहले समझ होनी चाहिए। समझ के लिए सत्संग करना चाहिए। फिर प्रेम से ध्यान करना चाहिए। धीरे-धीरे ध्यान करते-करते वैसा होगा और परमात्मा की पहचान होगी। स्वामी विवेकानन्द ने कहा—स्वयंभू इन्द्रियों से दूर है।

संतमत का सत्संग बिल्कुल आध्यात्मिक है। संसार के प्रबंध के लिए कभी-कभी कुछ कहा जाता है। लोग कहते हैं कि पहले संसार का प्रबंध होना चाहिए, फिर आध्यात्मिक प्रबंध होना चाहिए। संसार- प्रबंध के बिना आध्यात्मिक ज्ञान कैसे टिक सकता है? तो सांसारिक प्रबंध के लिए कभी-कभी कहा ही जाता है। किंतु घर में यदि पाँच भाई हो तो अपने-अपने योग्य सभी सेवा करते हैं। कोई सामाजिक, कोई राजनीतिक, कोई आध्यात्मिक ज्ञान कहते हैं। संसार में दो रूप देखे जाते हैं—स्त्री और पुरुष। इन्हीं से सारी जीव-सृष्टि है। यहाँ दो काम हैं—एक तो राज्य प्रबंध; क्योंकि बिना राज्य-प्रबंध के कोई घर ठीक नहीं रह सकेगा। दूसरा, स्त्री-पुरुष का वैवाहिक सम्बन्ध वेदों में मैंने इन बातों को बहुत देखा। वैवाहिक सम्बन्ध जिस देश में गड़बड़ होगा, वह देश एकदम खराब हो जाएगा और जहाँ राज्य-प्रबन्ध ढीला हुआ, वहाँ दूसरे आकर बैठ जाएँगे। वैवाहिक संबंध के लिए अपने कुल में जैसा व्यवहार है, उस तरह बरतें। इस तरह जो बरतते हैं, वे ही ठीक सत्संगी और सत्संगिनी हैं। वैवाहिक संबंध का जो नियम है, उसके अनुकूल जो रहे, तो व्यभिचार नहीं होगा। जहाँ इसके प्रतिकूल करते हों, वहाँ धर्म टिक नहीं सकता। यदि कोई कहे कि स्त्री को पुरुष हो गया, तब परमात्मा की उपासना नहीं करे, वह पुरुष की ही आराधना करे, तो यह ठीक नहीं। ईश्वर की भक्ति स्त्री-पुरुष सबके लिए है। किंतु हाँ, कोई-कोई ऐसे भी पति हैं, जैसे भूपेन्द्रनाथ सांन्यालजी हैं। मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ। पहले उन्होंने अपनी स्त्री को दीक्षा नहीं दी। बहुत दिनों के बाद सुनता हूँ कि उन्होंने अपनी स्त्री को दीक्षा दी। किंतु अब पहले जैसा स्त्री-पुरुष का संबंध नहीं रहा। किंतु फिर भी साथ-साथ रहते हैं। लेकिन ऐसे कितने आदमी हैं?

सब दानों में धर्म का दान उत्तम है। धर्मदान ज्ञानदान है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि सब यज्ञों में ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है। धर्म के प्रचार में तन, मन, धन से सेवा करनी चाहिए। n

यह प्रवचन कटिहार जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी में दिनांक १४.७.१९५५ ई० को प्रातःक़ालीन सत्संग में हुआ था।

१२१. चेतन के दो रूप

प्यारे लोगो!

भक्ति हम क्यों करें, इसको पहले जानना चाहिए। ऐसा कोई नहीं है, जिसको कोई दुःख न हो। सबको कोई न कोई दुःख है। संसार में वेद से बढ़कर कोई पुराना ग्रंथ नहीं है। पारसी लोगों की किताब भी बहुत पुरानी है। परंतु हमलोगों के यहाँ ऐसा ख्याल है कि वेद से प्राचीन और कोई ग्रंथ नहीं है। उसमें बताया गया है कि ईश्वर की भक्ति करो तो सब दुःखों से छूट जाओगे। ऐसा क्यों कहा जाता है? संतलोग समझाते हैं कि जहाँ तक लोक-लोकान्तर हैं, किसी प्रकार का शरीर है, चाहे कितना ही दिव्य शरीर हो, वहाँ शापा-शापी और कोई-न-कोई आपदा आती ही है। चाहे विष्णुलोक, शिवलोक या किसी लोक का शरीर हो, भक्ति पूरी नहीं होती। भक्ति पूरी वहाँ होती है, जहाँ कोई शरीर नहीं, कैवल्य दशा प्राप्त हो, देश-काल जहाँ नहीं हो। गोस्वामी तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका में लिखा है—

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

भक्ति में इसकी युक्ति है कि सब शरीरों को छोड़कर मोक्ष-दशा प्राप्त कर लेना। चाहे द्वैती रहो, चाहे अद्वैती रहो। दोनों का एक भाव हो जाएगा। द्वैत-अद्वैत का कोई झगड़ा नहीं रहेगा। वहाँ जैसे रहना होता है, वैसे रहता है। यहाँ माया का चक्र है। इस चक्र पर बुद्धि घूमती रहती है और नाना तर्क करती है। किंतु वहाँ सब निर्मूल हो जाते हैं, चाहे किसी वाद के माननेवाले हों। वहाँ नास्तिक, आस्तिक सबके लिए एक ही है।

नास्तिक दो तरह के होते हैं—एक तो पूरे नास्तिक, जो जीव-परमात्मा कुछ न माने। उनका सिद्धांत है कि 'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्। ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मीभूत शरीरस्य पुनरागमन कुतो भवेत्।' उनके लिए यह उपदेश कुछ भी नहीं हैं इसके अतिरिक्त दूसरे तरह के नास्तिक वे हैं, जो जीव को माने और ईश्वर को नहीं माने। उन दोनों को मैं कहता हूँ, भजन करो, फिर जानोगे कि परमात्मा क्या है। कोई इस तरह की मुक्ति मानते हैं कि सूक्ष्म शरीर रह जाता है, किंतु संतों का सिद्धांत है कि कोई भी शरीर नहीं रहे। जो पूरे नास्तिक हैं, वे भी इसको मानेंगे कि एकाग्रता से ज्ञान की वृद्धि होती है। एकाग्रता के लिए ध्यान करो और ध्यान के अंत तक पहुँचो। फिर जानोगे कि ईश्वर है कि नहीं।

संतों ने बताया कि न शरीर सम्बम्धी रहो, न संसार संबंधी। शरीर और संसार के संबंध से अलग होओ। फिर जो दर्शन होगा, तो उसमें कभी दुःख नहीं होगा। वहाँ हृदय-आकाश में सूर्य बराबर उगा रहता है। कभी न उदय लेता है, न अस्त होता है।

उपनिषद् की एक कथा है कि एक ब्राह्मण थे। वे संध्या-वंदन कुछ नहीं करते थे। उनकी पत्नी जब कभी पड़ोस में जायँ, तो पड़ोस की महिलाएँ उससे कहतीं कि आपके पति कैसे ब्राह्मण हैं, जो संध्या-वन्दन नहीं करते। पत्नी जब आकर पति से आग्रह करती कि आप संध्या-वन्दन क्यों नहीं करते हैं, ब्राह्मण कोई उत्तर नहीं देते। एक दिन उनकी पत्नी को पड़ोस की महिलाओं ने उसके पति के लिए बहुत दुत्कारा। पत्नी ने ब्राह्मण से कहा कि आप कैसे ब्राह्मण हैं, कभी संध्या नहीं करते। पड़ोस की महिलाएँ मुझे दुत्कारती हैं। तब ब्राह्मण ने कहा—'तुम नहीं जानती हो, मेरे हृदयरूपी आकाश में सूर्य बराबर उगा रहता है, वह कभी न उदय लेता है, न उसका कभी अस्त होता है। अब बताओ कि मैं संध्या कैसे करूँ?'

किंतु इस अवस्था को पाकर भी संत लोग संध्या करते हैं, संसार के सामने नमूने के लिए। भगवान श्रीकृष्ण को साधन-भजन करने को कुछ बाकी नहीं था, किंतु लोगों को सुमार्ग पर चलाने के लिए, नमूने के लिए वे भी संध्या करते थे; ऐसा श्रीमद्भागवत में लिखा है।

जिस भूमि पर महल बनता है, महल से जमीन का दाम बहुत कम होता है। किंतु महल का आधार जमीन है। बिना जमीन के कितनाहू विशेष कीमत का महल बन नहीं सकता, उसी तरह बिना सत्संग-रूपी जमीन के भजन-रूपी महल बन नहीं सकता। इसलिए सत्संग की बड़ी जरूरत है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

जीवन मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्हके हिय पाषान।।

संसार में रहने पर प्रत्येक संत को देश के लिए, संसार के प्रति कोई-न-कोई काम अवश्य रहता है। इसीलिए सत्संग में यदि वे पहुँचे हुए महान संत रहें तो लोगों को बहुत लाभ हो। यदि संत न रहें तो संतवाणी से लाभ हो सकता है।

किंतु जितना लाभ पहुँचे हुए संत से होगा, उतना केवल साधारणजन के सत्संग से नहीं। ईश्वर-भजन में सत्संग, स्तुति, प्रार्थना, जप और ध्यान—ये पाँच चाहिए। सत्संग में जाने से बोध होता है। भेड़ियाधसान में किसी को नहीं पड़ना चाहिए भेड़ियाधसान की तरह किसी में बिना समझे-बूझे मत कूद पड़ो। हमलोगों के यहाँ तो कहावत है कि 'गुरु कीजिये जान, पानी पीजिये छान।' सत्संग से सिद्धांत का निर्णय होता है। क्या करें, इसका भी निर्णय होता है। चरित्र के लिए निर्णय होता है कि चरित्र सुधार करके रखो। सत्संग को पकड़े रहो तो भेड़ियाधसानपन छूट जाएगा।

देखादेखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सि रंग।
विपति पड़े यों छाड़सी, ज्यों केंचुली भुजंग।।

भुजंग—साँप केंचुली छोड़ता है, उसे वह उलटकर देखता भी नहीं है, उसी तरह जिसने ठीक से समझ नहीं लिया है, एक धर्म को पकड़ लिया है, दूसरा सुनता है तो उसी ओर कूद पड़ता है, ऐसा नहीं करना चाहिए। धर्म को अच्छी तरह समझ लो। यदि भूल से धर्म के बदले अधर्म पकड़ा गया हो, तो वह छोड़ देने योग्य है। पापी-पुण्यात्मा, दुःखी-सुखी सबमें परमात्मा है, किंतु परमात्मा पापी-पुण्यात्मा, सुखी-दुःखी नहीं होते। गोस्वामीजी ने कहा है—

उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहु कुविचारी।।

घन-पटल मानी बादलों का झुण्ड। बड़े-बड़े विद्वानों, महात्माओं ने कहा कि ईश्वर तर्क-सिद्ध नहीं, श्रद्धा-सिद्ध है। किंतु संतों ने बहुत दृढ़ता के साथ कहा। परमात्मा का वर्णन करते-करते इति कहने की शक्ति किसी में नहीं। जहाँ तक मैंने संतों की वाणी में, उपनिषदों में, वेदों के अर्थ को भी देखा, किंतु इस बात से खाली नहीं कि परमात्मा आदि-अंत-रहित है, वह हई है। कुछ फाँक छोड़कर यहाँ वहाँ, ऐसा नहीं। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकजी ने कहा—'अति सघनता से जो सर्वव्यापक अनादि-अनंत है, वह परमात्मा है।' ऐसे वर्णनों को पढ़कर कहा जाय कि ऐसा नहीं है तो क्या है? प्रश्न होगा कि यदि अनादि-अनन्त नहीं है तो क्या है? सादि-सान्त है? जब सादि-सान्त है तो वह कहीं जाकर अन्त अवश्य होगा। इसलिए उस सादि-सांत के पार में एक अनंत बिना माने प्रश्न सिर पर से उतर नहीं सकता। एक एम०ए०, बी०एल० ने प्रश्न किया कि एक अनादि-अनन्त है, मान लिया। फिर इसको ईश्वर क्यों मानें? मैंने कहा कि अनंत से बाहर आप कहीं जा सकते हैं? यदि नहीं तो उसके अंदर हैं। इसलिए वह ईश्वर है। फिर उन्होंने पूछा कि उनकी भक्ति क्यों की जाय? मैंने कहा कि उसकी माया को पहचानते हो तो दुःख में हो और परमात्मा को पाओ, पहचानो तो इसका उलटा जो गुण है, वह होगा। अर्थात् दुःख के बदले सुख होगा। इस प्रकार के अनंत, असीम परमात्मा को जड़ तो कह नहीं सकते, चेतन भी नहीं है। इसीलिए गीता में क्षर-अक्षर के परे पुरुषोत्तम कहा है।

चेतन गतिशील है। यदि चेतन गतिशील नहीं रहता तो चेतन रहते हुए भी शरीर हिलता-डुलता नहीं। चेतन का विस्तार बहुत है। फिर भी इसकी सीमा है। जिसकी सीमा है, उसके बाहर कुछ अवकाश है हिलने-डोलने के लिए। बिना अवकाश के हिल-डोल कैसे सकता है? इसीलिए चेतन को असीम नहीं, ससीम माना गया है। किंतु थोड़ा नहीं है, जड़ प्रकृति-मण्डल को भरकर उसके परे भी है। परमात्मा चलनात्मक इसलिए नहीं है कि उसकी सीमा नहीं है, असीम है। इसलिए वह निश्चल है। निश्चल हिमालय जैसा नहीं। हिमालय भी भूकम्प

में हिलता है। किसी भी पदार्थ का परमाणु धीरे-धीरे घटता है। संथाल-परगना में कितने पहाड़ सड़ते हैं। ऐसा कोई पदार्थ यहाँ नहीं, जिसका क्षय न हो। किसी पदार्थ का झड़ जाना भी हिलना है। इसीलिए परमात्मा के लिए गीता में सत्-असत् नहीं, क्षर-अक्षर नहीं ऐसा कहा गया है। बुद्धि उसका निर्णय कर सकती है, पहचान नहीं सकती है।

चेतन के दो रूप माने जाते हैं—सामान्य चेतन और विशेष चेतन। अंतःकरण-रूप यंत्र के कारण विशेष चेतन, इसलिए कि इससे काम का होना जाना जाता है। कोई पापी-पुण्यात्मा, दुःखी-सुखी होता है तो यह आत्मा पर कोई दोष नहीं होता। स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है—'प्राणिमात्र के नेत्रों मे जो दृष्टि-शक्ति होती है, उसके एक मात्र कारण सूर्य हैं। किंतु यदि किसी को नेत्र दोष होता है, तो वह अपने उस दोष की छाया सूर्य पर डालने में समर्थ नहीं हो पाता। यदि किसी को पाण्डु रोग हो गया होता है तो उसे सारी वस्तुएँ पीली-ही-पीली दृष्टिगोचर होती हैं। उस व्यक्ति की भी दृष्टि-शक्ति के कारण सूर्य ही हैं। किंतु उसके नेत्रों में हर एक वस्तु को पीली देखने का जो गुण है, वह सूर्य को तो नहीं स्पर्श कर पाता। इस तरह यह एकमात्र जीवात्मा प्रत्येक प्राणी के शरीर में व्याप्त रहकर भी बाहर की पवित्रता या अपवित्रता के संस्पर्श से बचा रहता है।' पुष्कर निवासी स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने भी कहा है— 'विशेषरूप से चैतन्य का दो प्रकार का रूप होता है, तिनमें जो सर्व चराचर जगत में समान रूप से व्यापक है, उसको सामान्य चेतन कहते हैं और जो अंतःकरण-उपाधि से मिला हुआ है, उसको विशेष चैतन्य कहते हैं। सो जैसे घट में स्थित भया आकाश, दूसरे घटाकाशों से भिन्न हो जावे है और जैसे दीपक पर आरूढ़ हुई अग्नि दूसरे दीपकों वा समान व्यापक अग्नि से भिन्न होती है, तैसे ही अंतःकरण उपाधि-युक्त चैतन्य भी दूसरे सर्व जीवात्माओं से या ब्रह्म से भिन्न हो जाता है। सो जैसे एक घटाकाश के रजोधूमादियुक्त होने से सभी घटकाश रजोधूमादियुक्त करके नहीं होते हैं और जैसे एक दीपक के हिलने-डोलने से वा धूम-धूलिवाले होने से सभी वैसे नहीं हो जाते, तैसे ही यहाँ जीवात्माओं की बाबत भी समझ लेनी चाहिए अर्थात् व्यापक चैतन्य एक होने पर भी अंतःकरणरूप-उपाधि के भेद से परस्पर जीवात्माओं के भिन्न होने से सुख-दुःख, बंधन-मोक्ष आदिकों को मिश्रितपन नहीं होवे है।'

ईश्वर, जीव और प्रकृति में इस तरह भेद है। इस भेद को ठीक-ठीक नहीं समझ लेने के कारण ही जीव, ईश्वर और प्रकृति पर भिन्न-भिन्न तरह से लोग कहते हैं।

आविष्कार और उत्पादन में अन्तर है। संसार की वस्तुओं को लेकर कुछ बना दिया, वह आविष्कार है और संसार से कुछ लिए बिना कुछ बनाना उत्पादन—निर्मित है। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

तदि अपना आपु आपहि उपाया।
ना किछु ते किछु करि दिखलाया।।

यह ईश्वर से हो सकता है, दूसरे से नहीं। अद्वैत-सिद्धान्त कथन में हो सकता है, व्यवहार में नहीं।

समाधि सिद्धवाले से जहाँ तक हो सकता है, समता का व्यवहार करते हैं। बहुत बड़े-से-बड़ा दुःख आता है, किंतु समाधि-सिद्ध महापुरुष उसको सुख से सहते हैं और साधारणजन उसको दुःख से सहते हैं। दुःख को लोग सहते हैं, किंतु सुख को सह नहीं सकते। सुख पाकर साधारण लोग उसमें मस्ता जाते हैं।

n

यह प्रवचन कटिहार जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी में दिनांक ३०.७.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१२२. तुलाधार वैश्य की तपस्या

प्यारे लोगो!

संसार में जितने शरीरधारी हैं, सब-के-सब कष्ट मालूम करते रहते हैं। मालूम होता है कि कष्ट छूट नहीं रहा है। दुःख किसी को पसन्द नहीं है। जिसका कभी नाश नहीं हो, ऐसा सुख संसार में किसी को नहीं मिलता।

पुराने इतिहासों से तथा आधुनिक इतिहासों से पता चलता है कि शरीर में रहते हुए इस तरह से सुखी नहीं हो सकते। जो सुख सदा रहता है, कभी नष्ट नहीं होता, उसकी सदा इच्छा करते चले आ रहे हैं। वह सुख ईश्वर की भक्ति में है। ईश्वर को प्राप्त करो, तो वह सुख मिलेगा। जो माया को पहचानते हैं, जानते हैं, मायिक काम करते हैं, वे माया के अंदर सुख-दुःख भोग करते हैं, बिल्कुल माया के सुख-दुःख में पड़े रहते हैं; किंतु ईश्वर को पाने से ये सुख-दुःख नहीं रहते। माया में रहकर ईश्वर को प्रत्यक्ष नहीं पा रहे हैं। इसलिए चाहिए कि सब कोई ईश्वर की भक्ति करें।

ईश्वर की भक्ति करने के लिए पहले ईश्वर-स्वरूप को समझो कि वह कैसा और क्या है? ईश्वर-स्वरूप के ज्ञान के लिए ही आपलोगों ने उपनिषद् के वचन सुने, गोस्वामी तुलसीदासजी के मानस का पाठ सुना—

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।
सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।
भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

आपलोगों ने उपनिषद् के वचनों में सुना—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्यु मुखात्प्रमुच्यते।।
—कठोपनिषद् अध्याय १ वल्ली ३

अर्थात् जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय तथा रसहीन, नित्य और गंधरहित है, जो अनादि, अनंत महतत्त्व से भी पर और ध्रुव (निश्चल) है, उस आत्मत्त्व को जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छूट जाता है।

ईश्वर-स्वरूप समझाने के वास्ते पाठ कराया गया। पाठ में यह था कि जो कुछ आँख से देखते हैं, कान से सुन सकते हैं, हाथ से छूते हैं, जिस वस्तु से किसी प्रकार की गंध मालूम हो, जिभ्या से जो मालूम हो, वह माया है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द—ये पाँचों माया ही माया हैं। इस तरह हमलोगों को ये ही मालूम होते हैं। उपनिषद् कहती है—जिसे इन्द्रियों से पहचानते हैं, वह ईश्वर नहीं है, माया है। बुद्धि भी उस परमात्मा के स्वरूप को नहीं पहचान सकती। बुद्धि निर्णय कर सकती है। लोग तब पूछते हैं कि मन-बुद्धि और इन्द्रियों के ज्ञान में जो नहीं हैं, वह किससे छूआ जाएगा, पकड़ा जाएगा? तो जानो कि शरीर में इन्द्रियों और मन-बुद्धि से परे चेतन आत्मा है। इन्द्रियों और मन-

बुद्धि के सहित शरीर के अंदर चेतन आत्मा है। शरीर छूट जाता है। शरीर छूटने पर उससे क्या निकल गया, लोग देखते नहीं हैं; किंतु कहते हैं कि इससे जीवात्मा निकल गया। ज्ञान इस बात को कहता है। श्राद्ध-क्रिया का मूल आधार यही है।

यदि यह विश्वास नहीं हो कि इस शरीर से जीवात्मा चला गया, तो श्राद्ध-क्रिया नहीं कर सकते। विश्वास किया जाता है कि शरीर से जीवात्मा निकल गया है, उसका कल्याण हो। इसीलिए श्राद्ध-क्रिया करते हैं। शरीर के अंदर जो मन-बुद्धि हैं, हम उनको भी नहीं पहचानते हैं, उनके कर्मों को जानते हैं। शरीर से चेतन आत्मा निकलती है तो अकेली नहीं। उसके साथ मन, बुद्धि और सूक्ष्म शरीर भी जाता है। लोग उसको प्रत्यक्ष नहीं देखते; किंतु ज्ञान से जानने में आता है। इसके लिए महाभारत में कथा भी है।

सावित्री का विवाह सत्यवान से हुआ। नारदजी से सावित्री को जानकारी मिल गई कि सत्यवान की मृत्यु अमुक तिथि को अमुक समय में होगी। सत्यवान के माता-पिता अंधे थे। उनका राज्य भी छिन गया था। इसलिए वे लोग जंगल में रहते थे। सत्यवान लकड़ी काटकर जीवन-यापन करते थे। जब सत्यवान की मृत्यु का समय आ गया, तो सावित्री ने सत्यवान से कहा कि आज आपके साथ मैं भी जंगल जाऊँगी। सत्यवान ने कहा—यदि तुम मेरे साथ जंगल जाना चाहती हो, तो माताजी तथा पिताजी से आज्ञा ले लो। सावित्री बड़ी नम्रता से सास-ससुर से निवेदन करती है कि आज मैं भी पतिदेव के साथ जंगल देखने जाना चाहती हूँ। दोनों सास-ससुर की आज्ञा हो गई। सत्यवान के साथ सावित्री भी जंगल गईं। जब सत्यवान गाछ पर चढ़कर लकड़ी काटने लगे, तो ऊपर से ही वे सावित्री से कहते हैं कि मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है। सावित्री ने कहा—आप वृक्ष से नीचे उतर आवें। नीचे उतरते ही सत्यवान बेहोश हो गए। सावित्री अपने पति का सिर अपनी गोद में रखकर बैठी है। सत्यवान को लेने यमदूत आता है। लेकिन सावित्री के पातिव्रत्य के तेज के कारण वह समीप नहीं आ सका। तब यमराज स्वयं आए और सत्यवान के सूक्ष्म लिंग शरीर को लेकर चलने लगे। सावित्री भी यमराज के पीछे-पीछे चलने लगी। यमराज ने पूछा—तुम क्या चाहती हो? यदि कुछ वरदान माँगना हो तो मुझसे माँगो। सावित्री ने कहा—'मेरे अंधे सास-ससुर मेरे सौ पुत्रों को भोजन करते देखें और उनका खोया हुआ राज्य वापस मिल जाय। यमराज ने कहा—एवमस्तु! जब यमराज आगे बढ़े, तो सावित्री फिर उनके पीछे चलने लगी। यमराज ने पूछा—'तुमको मैंने वरदान दे दिया, अब क्यों मेरे पीछे आ रही हो?' सावित्री ने कहा—'आप तो मेरे पति को लिए जा रहे हैं, मुझे सौ पुत्र होंगे कैसे?' यमराज चकित हो गए और सत्यवान के सूक्ष्म शरीर को उसके स्थूल शरीर में वापस कर दिया।

इस कथा से जानने में आता है कि स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर भी है। किंतु ज्ञान कहता है कि केवल सूक्ष्म शरीर ही नहीं है। कारण, महाकारण और कैवल्य शरीर भी हैं। अपने कर्मानुसार यह जीवात्मा उन लोकों में जाकर दुःख-सुख भोगता है। एक सती स्त्री (सावित्री) के प्रभाव से कितना लाभ हुआ कि सौ पुत्र हुए, राजा का राज्य लौट गया, अंधे-अंधी को फिर आँखें मिल गईं। इसीलिए स्त्रियों को पातिव्रत्य धर्म धारण करना चाहिए और पुरुष भी एकपत्नीव्रत धारण कर रहें तो उनका बहुत कल्याण होगा, किंतु कह सकूँगा कि इससे बिल्कुल कष्ट छूट नहीं जाते। बिल्कुल दुःख तो ईश्वर-भजन से छूट सकता है।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि ईश्वर को चेतन

आत्मा ही पहचान सकती है। यह चेतन आत्मा न स्त्री है और न पुरुष है, न नपुंसक है। ईश्वर-भक्ति की पराकाष्ठा यही है कि ईश्वर मिल जाय। जिस काम के करने से ईश्वर मिल जायँ, वही ईश्वर-भक्ति है। मन-इन्द्रियों के संग जबतक कोई रहेगा, तबतक ईश्वर को पहचान नहीं सकता। मन, बुद्धि आदि इन्द्रियों और स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण को पार कर कैवल्य दशा प्राप्त कर लेने पर ईश्वर की पहचान होती है।

ईश्वर की भक्ति करने के लिए शुद्धाचरण से रहना चाहिए। अंतःकरण में मलिनता नहीं रखनी चाहिए। अपने को शरीर और मन आदि इन्द्रियों से छुड़ाने के लिए ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। ध्यान कैसे किया जाय? संसार के जितने रूप हैं, सबमें ईश्वर है। किसी रूप को इष्ट मानकर उनका ध्यान करो। चाहे माता के रूप में मानो, पिता के रूप में मानो, गुरु-रूप को मानो, कृष्ण, राम किसी रूप को मानकर उसका ध्यान करो।

तुलाधार वैश्य अपने घर में रहकर रोजगार करता था; लेकिन वह बड़ा ही सत्यनिष्ठ था। अपनी माता तथा पिता की सेवा करता था। उसी समय जाजलि मुनि तप करते थे। उनको अपने तप का घमण्ड हुआ कि मैं बड़ा तपी हूँ। उसी समय आकाशवाणी हुई कि अभी तक तुम तुलाधार वैश्य के समान नहीं हुए हो। जाजलि मुनिजी तुलाधार के यहाँ गए। तुलाधार ने कहा—'महाराज! आप तप कर रहे थे, आपकी जटा में चिड़िया ने घोंसला बनाया, अण्डा दिया और उससे बच्चा हुआ। वह बच्चा उड़ भी गया। इसी का आपको घमण्ड है।' मुनि ने तुलाधार से पूछा—'तुम घर बैठे मेरे तप की सारी बातें कैसे जान गए?' तुलाधार ने कहा—'देखिए, मैं लोगों को सौदा देता हूँ, डण्डी को सीधा रखता हूँ। तात्पर्य यह कि मैं इस व्यापार में जरा भी असत्य का व्यवहार नहीं करता हूँ और भगवान का भजन करता हूँ। सबों को मैं ईश्वर का रूप मानता हूँ। इसीलिए किसी के साथ मैं बुरे व्यवहार नहीं करता हूँ।'

कहने का मतलब है कि किसी रूप में ईश्वर को मानो। मानो कि वह रूप ईश्वर का ही है। तब उसका ध्यान करो। इतने में ही समाप्त नहीं है। इसके बाद और है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—जितने विभूतिवान, तेजवान रूप हैं, सब मेरे ही रूप हैं। फिर कहते-कहते अणोरणीयाम् के लिए भी कहा और कहा कि शब्द ब्रह्म भी मेरा ही रूप है। इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण; सबको पारकर कैवल्य अवस्था प्राप्त करनी होती है। फिर परमात्मा की पहचान होती है।

n

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत मारवाड़ी पंचायती धर्मशाला, साहेबगंज में दिनांक ४.८.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१२३. सुषुम्ना ही प्रधानतीर्थ है

प्यारे लोगो!

संतों की वाणी में सब मनुष्यों को सदा से यही उपदेश है कि जो मनुष्य कष्टों में पड़े हैं, वे मुमुक्षु बनें। मुमुक्षु का अर्थ है—मुक्ति की इच्छा रखनेवाला। मुक्ति का अर्थ है—मोक्ष। शरीर और संसार के बंधन से छूटने को मुक्ति कहते हैं। मुक्ति की केवल इच्छा ही नहीं, बल्कि संसार में संयम से बरतें। जबतक संसार में संयम से नहीं

रहें, संसार के भोग विलास में फँसे रहते हैं। उसको लालच नहीं छोड़ते हैं, वे केवल कहते हैं कि मैं मुमुक्षु हूँ। यह उनका कथन मात्र है। संतों ने ऐसे मुमुक्षु के लिए कहा है कि जो संसार के भोगों, लालचों को छोड़ना चाहें, उनको ज्ञान और योग दोनों का अभ्यास करना चाहिए। ज्ञान का अर्थ 'जानना' है और योग का अर्थ 'मिलाप' है। चित्त की वृत्तियाँ बिखरी हैं, वे मिलकर एक हो जायँ—यही योग है। चेतन आत्मा ईश्वर से मिलेगी, तभी उसकी मुक्ति होगी।

ईश्वर ऐसा है कि वह इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है, माया यह है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जान्हु भाई।।

और ईश्वर के संबंध में लिखा है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

इसको पढ़ने और समझने पर ज्ञात होता है कि इन्द्रियों के ज्ञान में जो आता है, वह माया है। माया से परे जो परमात्मा है, उससे मिलने की उत्कट अभिलाषा करो। शरीर और इन्द्रियों को छोड़कर केवल चेतन आत्मा उससे मिलेगी। चित्तवृत्ति का निरोध करना अच्छा यत्न है। मन को एक ओर करना चित्तवृत्ति-निरोध करना है। मन के अनेक भावों को छोड़कर एक ओर करना चाहिए। जप और ध्यान इसका सरल साधन है। इससे सरल साधन संसार में और कुछ नहीं हो सकता। इसके लिए गृहस्थी आश्रम को छोड़कर वनवासी होने का काम नहीं। किंतु इस रास्ते का छोर जब कोई पकड़ लेता है तो भगवान श्रीकृष्ण के कहे अनुकूल वह उसको छोड़ता नहीं है। बारम्बार संस्कार बढ़ता जाता है। शरीर छोड़ने पर स्वर्ग जाता है। वहाँ का विशाल सुख भोगकर फिर श्रीमान् के यहाँ जन्म लेता है और बढ़ते-बढ़ते कई जन्मों में पूर्ण सिद्ध होगा। यानी परमात्मा मिलेगा, मुक्ति मिलेगी। अपनी सुरत उस ओर लगाए रहो। जहाँ सुरत लगी रहेगी, वहीं पहुँचोगे। 'जाकी सुरत लगी रही जहँवा। कह कबीर सो पहुँचे तहँवा।।' शरीर रहते जो प्रत्यक्ष नहीं हुआ, शरीर छूटने पर उसकी प्रत्यक्षता हो, ऐसा संतों ने नहीं कहा। शिवजी ने ब्रह्माजी से कहा कि संसार से पार होने के लिए ज्ञान और योग; दोनों का दृढ़ता से अभ्यास करो। ब्रह्माजी जाकर शिवजी से पूछते हैं कि संसार से जीव की मुक्ति कैसे होगी? इसके लिए आप क्या कहते हैं? शिवजी ने कहा कि मुक्ति जीते जी होनी चाहिए। जब किसी जन्म के जीवनकाल में मुक्ति होगी, तब मरने पर भी मुक्ति होगी। संतों ने भी ऐसा ही कहा है—

जीवत मुक्त सो मुक्ता हो।
जब लग जीवनमुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो।।

— कबीर साहब

जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ।
जीवत काटै कर्म सब, मुक्ति कहावै सोइ।।
जीवत जगपति कौं मिलै, जीवत आतम राम।
जीवत दरसन देखिये, दादू मन विसराम।।
जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ।।
मूआँ पीछे मुकति बतावै, मूआँ पीछै मेला।
मूआँ पीछैं अमर अभै पद, दादू भूले गहिला।।

—दादू दयाल

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग।।

सभी संतों की वाणी में यही उपदेश है। लोग योग के विषय में डरते हैं; क्योंकि वे जानते नहीं हैं। जप करना, ध्यान करना भी योग है—जपयोग, ध्यानयोग। मानस जप सब जपों में श्रेष्ठ है। इसमें जिभ्या और ओठ नहीं हिलते, फिर भी जप होता

है। जप होते रहने से मन किसी तरफ नहीं जाता। चित्तवृत्ति-निरोध के लिए जप करना चाहिए।

पूजाकोटि समं स्तोत्रं, स्तोत्र कोटि समं जपः।
जप कोटि समं ध्यानं, ध्यान कोटि समो लयः।।

अर्थात् पूजा से बढ़कर स्तुति है, स्तुति से श्रेष्ठ जप है। जप से बढ़कर ध्यान है और ध्यान से श्रेष्ठ लय है। संतों ने जप और ध्यान के द्वारा ईश्वर की भक्ति करने के लिए कहा। इसमें समझो कि तुम्हारे शरीर में दो भाग हैं। दायीं-बायीं ओर का मिलाप जहाँ है, वह मध्य है। दायीं ओर की वृत्ति पिंगला और बायीं ओर की इड़ा और बीच में सुषुम्ना है। कोशिश करो मध्य-वृत्ति में रखकर जप करने के लिए, उस स्थान में मन को लगाओ। तीर्थ-स्नान इसलिए लोग करते हैं कि उससे पुण्य होता है, ऐसा लोगों का विश्वास है। संतों ने कहा—दायीं गंगा, बायीं यमुना और बीच में सरस्वती की धारा है। इनमें गोता लगाकर देखो कि तुम्हारा मन कितना शुद्ध होता है। जो उस स्थान पर अपने को डुबाता है तो जितनी देर मन डूबा रहता है, उतनी देर तक विषय वहाँ जा नहीं सकता। इसीलिए यह सबसे उत्तम तीर्थ है। आपने अभी सुना—'सुषुम्नैव परं तीर्थं सुषुम्नैव परो जपः। सुषुम्नैव परं ध्यानं सुषुम्नैव परागतिः।।—योगशिखोपनिषद्।' अर्थात् सुषुम्ना ही प्रधान तीर्थ है, सुषुम्ना ही प्रधान जप है। सुषुम्ना ही प्रधान ध्यान है और सुषुम्ना ही परा (ऊँची) गति है। इसमें मन डूबता है, शरीर नहीं डूबता है। जिसका मन पवित्र है, उसकी देह से अपवित्र कर्म नहीं होगा; क्योंकि मन का प्रभाव देह पर विशेष पड़ता है। संतवाणी में गुरु के प्रति श्रद्धा रखने के लिए कहा गया है। पंजाब के महात्मा गरीबदासजी थे। उन्होंने भी कहा है—'गुरु, साधु संत की शरण में रहो, उनमें प्रेम रखो। उनके बताए नाम का जप करो और ध्यान करो।' नाम के ध्यान को ही नादानुसंधान कहते हैं। यह बाहर का शब्द नहीं, अंतर की ध्वनि है। शब्द बड़ा आकर्षक होता है। अंतर्नाद में जो मिठास है, उसको जो एक बार भी चख लेता है, तो मन बारम्बार उधर ही घूमता रहता है। लोग कहते हैं कि अप्रत्यक्ष में सुरत—मन नहीं लगता, तो व्यक्त शब्द में ही रहो, राम-राम, शिव-शिव कुछ जपो। किसी देखी हुई मूर्ति का ध्यान करो। नाम-जप और रूप-ध्यान मायिक ही है। स्थूल जपध्यान के बाद सूक्ष्मध्यान है। शून्य में अपनी वृत्ति को ले जाओ। चाहे अंधकार देखोगे, चाहे प्रकाश देखोगे। पहले तो अन्धकार ही रहेगा। वह अन्धकार तो व्यक्त हई है, उसमें अपनी सुरत को टिकाओ। जो आँख बंदकर देखता है, तो वह उस शून्य में अंधकार को पाता है। वहाँ जो अपनी सुरत को एक जगह केन्द्रित करता है, वह विन्दु ध्यान है। फिर उसको प्रकाश मालूम होता है। कोई आँख बन्द करके ठाकुरबाड़ी में जाय और तब आँख खोल दे, तो जो ठाकुरबाड़ी में है, उसे प्रत्यक्ष पाता है। उसी तरह जब वृत्ति सूक्ष्म में प्रवेश करती है, तब वह उसे देखती है, जो वहाँ है। प्रकाश के बाद शब्द की सीढ़ी है। प्रकाश में स्वतः शब्द मिलता है, फिर परमात्मा को पाता है। तो संतों ने कहा कि इसके लिए साधक को नित्य सत्संग का सहारा लेना चाहिए और ध्यान करना चाहिए। सत्संग के द्वारा ज्ञान होता है और जानने में आता है कि इसकी क्रिया क्या है? वह क्रिया किसी सच्चे गुरु से सीख लीजिए, जिनपर आपकी श्रद्धा हो। गुरु के ज्ञान को सीख लेने पर ही क्या लाभ होगा; यदि वह ध्यानाभ्यास नहीं करे। इसलिए ध्यान नित्य करना चाहिए। नित्य साधु-संग नहीं मिल सकते तो उनकी वाणी का पाठ कीजिए अर्थात् सत्संग कीजिए। n

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत मारवाड़ी पंचायती धर्मशाला, साहेबगंज में दिनांक ५.८.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१२४. बिना ध्यान के समाधि नहीं

प्यारे लोगो!

सत्संग में सबसे विशेष बात यह है कि ईश्वर-स्वरूप का ठीक-ठीक निर्णय हो जाय और वह बुद्धि को ठीक-ठीक जँच जाय। इसीलिए उपनिषद् और रामचरितमानस का पाठ हुआ।

उपनिषद् में ईश्वर को आत्मा कहा गया है। कहीं-कहीं परमात्मा कहा है। जैसे कोई आकाश कहे तो घर का आकाश और बाहर का आकाश दोनों का ज्ञान होता है। ऐसा नहीं कि आत्मा कहने से केवल शरीर के अंदर की आत्मा जानो। जैसे कोई-कोई आकाश कहने से घर के आकाश को समझे और बाहर के आकाश को नहीं समझे, यह उसकी भूल है। उसी प्रकार आत्मा कहने से केवल शरीर के अंदर की आत्मा जानना भूल है। जिस तरह वायु सब घट-मठ को भरकर उनके अनुरूप रूपों को धारण करती है। एक गिलास में भरकर हवा है। उस हवा का रूप उस समय गिलास के समान है। एक घर में व्यापक हवा घर के रूप के अनुरूप है और उससे बाहर भी है। उसी प्रकार उपमा देकर उपनिषत्कार ने समझाया है कि जैसे घर और बाहर की हवा सब एक ही है, उसी तरह सब भूतों में और सबके बाहर एक ही अंतरात्मा है। सब भूतों का अर्थ सब जीवों का है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार संपूर्ण भूतों का एक ही अंतरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

आत्मा कहने से जीव-दशा नहीं होती। वह सबमें है, किंतु सब-सा नहीं है। वह मन से जानने योग्य नहीं है। मन उसका मनन नहीं कर सकता है। जैसे और वस्तु को मन जानता-पकड़ता है, उस तरह उसको नहीं जान सकता, पकड़ सकता है। यह आत्मा वेद वाक्यों से, बुद्धि से, बहुत स्मरण रहने से प्राप्त नहीं हो सकता। आत्मा से ही आत्मा—परमात्मा प्राप्त होता है। जो सबके अंदर रहते हुए सबसे बाहर है, वह शरीरस्थ आत्मा से प्राप्त होता है। शरीरस्थ आत्मा एक अंतःकरण व्यापी होता है और दूसरे उससे परे होता है। अंतःकरण अर्थात् भीतर की इन्द्रियाँ।

मन से कुछ जानते हो, बुद्धि से विचारते हो, चित्त से कम्पन होता है, अहंकार में मैंपन का बोध होता है। इन चारों से युक्त है जीवात्मा। ये चारों इन्दियाँ जड़ हैं। चेतन आत्मा से नीचे है, चेतन आत्मा नहीं है। क्षर नाशवान है। अक्षर अनाश है, इससे परे पुरुषोत्तम है। इसी के लिए उपनिषद् में अनंत, अचल, ध्रुव कहा गया है। अनंत का अर्थ यदि कोई असंख्य करता है, तो वह भूल है। अनंत एक से अधिक नहीं हो सकता। दो अनंत होने से दोनों का जहाँ मेल मिलेगा, वहाँ ससीम हो जाएगा। जैसे घर के बाहर के आकाश का भेद जानने के लिए घटकाश और महदाकाश कहते हैं। उसी प्रकार शरीरस्थ आत्मा के लिए जीवात्मा शब्द का व्यवहार होता है और ब्रह्माण्ड में व्यापक ब्रह्म के लिए परमात्मा शब्द का व्यवहार होता है। जहाँ प्रकृति का फैलाव है, वह ब्रह्म। और जहाँ प्रकृति का फैलाव नहीं है, वहाँ उसको परमात्मा कहते हैं।

ईश्वर एक है, उससे बाहर कोई जा नहीं सकता; क्योंकि अनंत का कहीं अंत ही नहीं है। अनंत के बाहर कौन जा सकता है? परमात्मा अवर्णनीय है। बुद्धि वर्णन नहीं कर सकती है; क्योंकि बुद्धि बहुत पीछे हुई है। जीवात्मा का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान परमेश्वर का ज्ञान है। यदि कहा जाय कि 'एक ईश्वर नहीं अनेक ईश्वर हैं।' तो यह युक्ति संगत नहीं। आज तक संसार में जितने आचार्य हुए, किसी के वचन से 'वेदान्त—सिद्धान्त' का मेल नहीं है।

यहाँ के लोग यदि समझना चाहें, तो यहाँ आकर बहुत दिनों तक सत्संग करें। 'वेदान्त-सिद्धान्त' में अनेक आत्मा मानता है; यह नास्तिक है, आस्तिक हरगिज नहीं। इस पुस्तक में दो ही शरीर माना है। उपनिषदों में तीन शरीर माना है और संतवाणी में पाँच शरीर माना है। ये पाँचों शरीर उन तीनों में ही समा जाते हैं, इसलिए तीन मानो या पाँच। एक कोई भी ऐसा स्थूल पदार्थ नहीं, जिसमें सूक्ष्म का प्रवेश नहीं। सूक्ष्म ऐसा पदार्थ नहीं, जिसमें कारण न प्रवेश कर सके। 'वेदान्त—सिद्धान्त' में है कि 'ईश्वर सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ है, तो जीव में ईश्वर व्यापक है, तब वह सर्वज्ञ क्यों नहीं हो जाता है?' मैं कहता हूँ कि एक ही इन्द्रिय में सब ज्ञान क्यों नहीं होता? हाथ से देखते क्यों नहीं, आँख से सुनते क्यों नहीं? यह तो यंत्र के अनुकूल है। सर्वव्यापी ईश्वर सब में रहते हुए जीव अज्ञान में है। अल्पज्ञ और सर्वज्ञ एक साथ नही रह सकते। ऐसा उनका सिद्धांत है।

किसी विषय को तुम विशेष जानते हो, किसी विषय को कम जानते हो तो तुममें ही कम ज्ञान और विशेष ज्ञान दोनों है, तो इन दोनों को एक साथ रखते हुए कैसे रहते हो? इसका निर्णय कर लो। यदि तुम दोनों एक साथ रह सकते हो, तब अल्पज्ञ और सर्वज्ञ एक साथ है, तो क्या आश्चर्य है? व्यक्ति का सर्वज्ञ होना सिद्ध नहीं हो सकता। भगवान बुद्ध ने कहा—'मैं सर्वज्ञ हूँ।' कितने प्रश्न उन पर हुए। कितने में वे चुप हो गए। मलिन्द शाह ने नागसेन से पूछा कि 'तुम्हारे भगवान सर्वज्ञ थे, तब उन्होंने कितने का उत्तर क्यों नहीं दिया?' नागसेन ने कहा—'राजा! कितने ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर चुप होना ही उत्तर है।' कितनी चीजें बुद्धि में आती हैं, किंतु वचन में नही आती हैं। नमक का स्वाद कैसा होता है? इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अलग-अलग आम को खाते हो, आम के स्वाद को जानते हो, किंतु उसको फुटा-फुटाकर लिखना असंभव है। योगवाशिष्ठ नामक ग्रंथ में वशिष्ठ मुनि और भगवान राम का संवाद है। वशिष्ठ मुनि ने कहा—'जितने हमलोग हैं, सब एक ही हैं।' श्रीराम ने कहा—'तब आप कहते किसको हैं?' वशिष्ठजी चुप हो गए। श्रीराम ने कहा—'गुरुदेव! आप रूष्ट तो नहीं हो गए?' उन्होंने कहा—'नहीं बेटा! मैं उत्तर दे रहा हूँ। इसका उत्तर चुप है।' वाह्व और वास्कल मुनि का शंका-समाधान होते-होते अंत में वाह्व मुनि चुप हो गए। इसका उत्तर ही चुप है।

ईश्वर अनेक कभी नहीं हो सकते। यहाँ इस संसार में एक दूसरे पर काबू रखता है। यदि एक दूसरे पर काबू नहीं रखे तो संसार की क्या हालत हो? राष्ट्रपति हैं, मंत्री हैं, राज्य-राज्य में मंत्री हैं। थाने-थाने में दारोगा रहते हैं। इसके ऊपर के हाकिम इन पर काबू रखते हैं, तब ठीक-ठीक काम होता है। धर्म में आचार्य होते हैं। वे जैसे-जैसे बताते हैं, लोग उनके अनुकूल चलते हैं, तो वह संस्था ठीक-ठीक चलती है। यदि आचार्य नहीं हों, नियंत्रण करनेवाले नहीं हों, तो संस्था नहीं रह सकती।

अनेक ईश्वर मानते हैं। एक ईश्वर दूसरे से

लड़ते हैं, डाका मारते हैं। यदि कहो कि एक दिन हम ईश्वर हो जाएँगे।' तो जब ईश्वर हो जाओगे, तब कहना। एक साधारण साधक कहे कि मैं संत हूँ, हो नहीं सकता। संत का अर्थ मैं पूर्ण मानता हूँ। एक साधारण विद्यार्थी कहे कि कॉलेज की पढ़ाई समाप्त कर दी, हो नहीं सकता। कॉलेज की पढ़ाई पढ़े, पढ़ते-पढ़ते पढ़ाई समाप्त करे, फिर कहे। सत्संग से लोगों को यह ज्ञान दिया जाता है कि लोग बहके नहीं, ठीक-ठीक रास्ते पर चले।

ईश्वर का ज्ञान होना चाहिए। ईश्वर एक है। अनेक ईश्वर मानने से बीचमें अवकाश देना होगा। बिना अवकाश के एक दो का ज्ञान नहीं हो सकता। दोनों के बीच में उसको फुटाने के लिए कुछ फाँक अवश्य रहेगी। अपने शरीर को ही देखिए। आँख और कान के बीच में अवकाश के बिना पहचाना नहीं जा सकता। अपने अल्प ज्ञान में विशेष ज्ञान को दुहराओ, उचित नहीं।

आत्मा एक ही है। आत्मा से प्रार्थना करो। जब एक ही आत्मा है, तब प्रार्थना किसी दूसरे से करोगे? कहाँ तो काम का दास और कहाँ परमात्मा का दास—दोनों एक ही हैं? अपना गुलाम आप बनते हो। सवेरे पखाना जाते हो, तो अपना मैला साफ करते हो, इसकी लज्जा नहीं और परमात्मा का दास—भक्त बनो, इसमें लज्जा! यह कौन ज्ञान है? परमात्मा के सिवा संसार में और ऐसा पदार्थ नहीं है, जो अनंत हो। अनंत एक ही हो सकता है। विचारने से एक अनंत अवश्य सिद्ध होता है। गोस्वामी तुलसीदास या और कोई आचार्य झूठे नहीं। उनकी बातों को टालने से अपनी ही हानि होगी, उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा। अंतःकरण से जो तुम बोध करते हो, उससे विशेष वह है। जो तुम अंतःकरण रहित होकर बोध करोगे, तब तुम संतों की वाणियों को समझोगे। संतों की बुद्धि के परे की वाणी को तुम बुद्धि में अँटाओगे, हो नहीं सकता। जब सब ईश्वर ही हैं, तब मुनि, मुनिवर, मुनिरत्न आदि छोटी-बड़ी पदवियाँ क्यों? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।' अपने शरीरस्थ आत्मा को पहचान लो, तुम वही हो जाओगे। तब फिर सभी शंकाएँ मिट जाएँगी। इसके लिए बहुत शुद्ध आचरण चाहिए। इसलिए संतों ने झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पाँचों महापापों से बचने को कहा।

हमारे पेट में जोंकटी कीटाणुओं से भी बड़ी है। तन में भी चेतन है, किंतु वह लेक्चर नहीं देता। मनुष्य शरीर रहते हुए भी उसमें मनुष्य वाला ज्ञान क्यों नहीं होता है? उसी तरह परमात्मा के इसमें व्यापक रहने पर भी जीव को सर्वज्ञता नहीं होती। जैसे लकड़ी में अग्नि है, किंतु लकड़ी को पकड़ने से हाथ जलता नहीं है। अग्नि को पकड़ने से हाथ जलता है। लकड़ी को भी रगड़ने से अग्नि निकलती है। इस देह में चेतन है, तो इसको रगड़ने से चेतन क्यों नहीं निकलता है? तुम तो व्यक्त लकड़ी को व्यक्त लकड़ी से रगड़ते हो। यहाँ तो शरीर व्यक्त है और परमात्मा अव्यक्त है। इन दोनों को कैसे रगड़ सकते हो? ब्रह्मानन्द स्वामी ने कहा कि—

जिमि दूध के मथन से निकसत है, घी जतन से।
तिमि ध्यान के लगन से, परब्रह्म ले निहारा।।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुयायी ने कहा कि 'अब ध्यान करने का समय नहीं है।' जिन भगवान बुद्ध को ध्यान-योगी कहते हैं, उनके शिष्य कहते हैं अब ध्यान करने का समय नहीं है। सारे संसार के लोग जिस अध्यात्म-विद्या के लिए यहाँ आते थे, उस ज्ञान को झाँप दो, उचित नहीं। गीता में सबसे विशेष कर्मयोग को माना गया है। स्थिर बुद्धि रखकर समान दृष्टि से सब संसार को देखते हुए काम करो। अपना सुख-दुख जैसा, दूसरे का

भी सुख-दुःख वैसा ही समझो। सब काम करते रहो और ईश्वर की तरफ मन लगाते रहो, यह भक्ति-कर्मयोग है। स्थितप्रज्ञता—समत्व कैसे होगा, इसके लिए प्राणायाम योग करो या ध्यानयोग करो। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने प्राणायाम का वर्णन किया है, किंतु ध्यानयोग की जैसी विधि बतलाई गई है, वैसी नहीं। वहाँ कहा गया है कि 'समाधि में तुम्हारी बुद्धि स्थिर होगी।' **बिना ध्यान के समाधि नहीं हो सकती।** जिससे हो सके प्राणायाम करो। जिससे नहीं हो सके यह ध्यान करो। प्राणायाम में आपदा भी आ सकती है, उससे फेफड़ा बिगड़ सकता है, मस्तिष्क बिगड़ कर पागलपन हो सकता है, किंतु ध्यानयोग में आपदा नहीं शाण्डिल्योपनिषद् में आया है—

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्।।

अर्थात् जैसे सिंह, हाथी और बाघ धीरे-धीरे काबू में आते हैं, इसी तरह प्राणायाम भी किया जाता है। प्रकारान्तर होने से वह अभ्यासी को मार डालता है। नीचे के पाँच चक्रों का नहीं, केवल छठे चक्र (आज्ञाचक्र) से ही साधना आरंभ करो, तो पाँचों चक्रों के जो गुण हैं, वे भी आ जाएँगे, ऐसा वर्णन शिवसंहिता में है—

यानि यानि हि प्रोक्तानि पंच पद्मे फलानि वे।
तानि सर्वानि सुतरामेतज्ज्ञानाद्भवन्ति हि।।

अर्थात् पंच पद्मों का जो-जो फल पहले कहा, सो समस्त फल आप ही इस आज्ञाकमल के ध्यान से प्राप्त हो जाएगा।

यदि किसी को गुरु ने सिखाया हो नीचे के चक्र से ध्यान करने का, तो वही करो। गीता बहुत अच्छी पुस्तक है। जो उसके अनुकूल चलेगा, उसका कल्याण होगा।

भक्ति बहुत दूर तक अंदर-अंदर है। बाहर में सत्संग का सहारा है। जो पिछले जन्म से किया हुआ आया है, वह बाहर-बाहर की पूजा नहीं करे, अंदर-अंदर की करे, तो करे। ज्ञानकाण्ड में भी भक्ति है। बिना भक्ति के कल्याण नहीं, बिना सत्संग के भक्ति नहीं होती। बिना सद्गुरु के सत्संग नहीं हो सकता। जो गुरु, सत्संग, भक्ति-ध्यान की शरण लेगा, वह भव सागर से पार होगा। n

यह प्रवचन कटिहार जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी में दिनांक १३.८.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१२५. श्रीमद्भगवद्गीता में ध्यानयोग

प्यारे लोगो!

मोक्ष पाने के वास्ते अथवा परमात्म दर्शन के वास्ते ज्ञान और योग—दोनों की बड़ी आवश्यकता है। ज्ञान का अर्थ है—जानना। योग का अर्थ है—मिलना। ईश्वर संबंधी बातों का जानना, सत्य-असत्य का निर्णय होना, आत्मा-अनात्मा का विचार होना जिस ज्ञान में होता है, वह है ज्ञान। मात्र व्यावहारिक ज्ञान सत्य-असत्य ज्ञान के समक्ष अज्ञान में दाखिल है। श्रीमद्भगवद्गीता में एक अध्याय क्षेत्र-क्षेत्रज्ञवाला ज्ञानयोग है। इसमें है कि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं और सबको अज्ञान कहते हैं।

पाँच स्थूल तत्त्व (मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) पाँच सूक्ष्म तत्त्व (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द), दशेन्द्रियाँ (पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा। पाँ कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पैर, गुदा, लिंग और मुँह) तथा मन, अहंकार,

बुद्धि, प्रकृति, चैतन्य, संघात (कहे गए का संघ रूप), धृति (धारण करने की शक्ति), इनके विकार—इच्छा, द्वेष, सुख, दुख; इन इकतीस तत्त्वों को सविकार क्षेत्र कहते हैं। इनके अतिरिक्त जो शरीर में है, उसको क्षेत्रज्ञ या आत्मा कहते हैं। महाभारत में है कि यही क्षेत्रज्ञ जब शरीर के गुणों से छूट जाता है, तब परमात्मा हो जाता है। जैसे घटस्थित आकाश महादाकाश से भिन्न नहीं है, किंतु घट के फूट जाने पर वह एक-ही-एक महदाकाश रहता है। जैसे वह एक ही आकाश सबमें है, उसी तरह एक ही परमात्मा सबमें है, किंतु उस एक को पहचानना कठिन है। जैसे एक जेवर है सोने का। उस जेवर में सोना-ही-सोना है। जेवर का नाश होगा, सोना रहेगा। उसी तरह यह संसार जेवर है। परमात्मा सोना है, संसार का नाश होगा, परमात्मा रहेगा। दार्शनिक विचार भिन्न-भिन्न हैं। ऐसा क्यों?

एक जगह चार अंधे थे। उन लोगों के मन में हुआ कि हाथी देखा जाय। उनके सामने हाथी लाया गया। चारों ने हाथी के अंगों का अलग-अलग स्पर्श किया। जब हाथी चला गया, तब आपस में पूछने लगे कि हाथी कैसा है? जिसने हाथी के पाँव को छुआ था, उसने कहा—हाथी स्तम्भ के समान होता है। जिसने कान छुआ था—उसने कहा—हाथी सूप के समान होता है। जिसने सूँड़ छुआ था, उसने कहा—हाथी मूसल के समान होता है। जिसने पेट-पीठ छूए थे, उसने कहा—हाथी कोठी के समान होता है। जिस तरह उन अंधों को नयनहीनता के कारण हाथी का सही ज्ञान नहीं हुआ, उसी तरह केवल दार्शनिक-विचार में यह अंधापन नहीं छूटता। कोई बड़ा दार्शनिक है, किंतु उसकी आँख खुलती नहीं। यह आँख कैसे खुलेगी? योग के द्वारा। योग के द्वारा जो परमात्मा से जाकर मिलता है, वही ठीक-ठीक जानता है। इसलिए योग और ज्ञान—दोनों की बड़ी आवश्यकता है। यह योग हमारे देश में जितने अधिक दिनों से आ रहा है, उतने पुराने और किसी देश में नहीं। दार्शनिक विचार दूसरे-दूसरे देश में भी थे,किंतु योग के सहित दर्शन हमारे देश में भी था और है। हाल ही में हमारे देश में एक अंग्रेज पाल ब्रंटन नाम के आए थे योग की खोज में। दक्षिण भारत के मदुरै में श्री महर्षि रमण से बहुत संतुष्ट होकर वे अपने देश गए। लोग योग से डरते हैं, किंतु योग का अर्थ जोड़ना है। योगदर्शन पढ़नेवाले कहते हैं—चित्तवृत्ति-निरोध को योग कहते हैं। यह भी ठीक ही है। हमारे देश में हठयोग विशेष प्रसिद्ध है। यह इसलिए कि इस क्रिया के द्वारा शरीर की पूरी सफाई हो जाती है, जिससे राजयोग क्रिया करने में सुलभता होती है। हठयोग राजयोग की क्रिया करने के योग्य बनाने के लिए किया जाता है, न कि यह हठयोग-योग है। इसमें ठीक-ठीक रीति से किया जाय, तब तो ठीक है, यदि अविधि हुई तो बड़ी गड़बड़ी होती है।

एक योगी थे, वे लम्बे दतुवन अपने मुँह से धीरे-धीरे गले के नीचे उतारते थे, फिर उसे निकाल लेते थे। यह क्रिया वे प्रायः प्रतिदिन किया करते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि दतुवन असावधानी के कारण उसके पेट मे चला गया। उसके चलते दतुवन मुँह से निकल नहीं सका। परिणामस्वरूप उनका प्राणान्त हो गया। हठयोग में किसी का मस्तिष्क खराब हो जाता है। इससे लोग समझते हैं कि योग बड़ा कठिन है। शाण्डिल्योपनिषद् में लिखा है—

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्।।

अर्थात् जैसे सिंह, हाथी और बाघ धीरे-धीरे काबू में आते हैं, इसी तरह प्राणायाम (अर्थात् वायु का अभ्यास कर वश में करना) भी किया जाता

है, प्रकारान्तर होने से वह अभ्यासी को मार डालता है। इन घटनाओं से हमारे देश के लोग योग से बहुत डर गए हैं। अकेला हठयोग पूर्णता को प्राप्त नहीं करा सकता। उसके बाद राजयोग करने से ही पूर्णता प्राप्त होगी। और राजयोग बिना हठयोग के भी पूर्णता को प्राप्त करा देता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'यह योग मैंने पहले पहल सूर्य को बताया। सूर्य ने अपने पुत्र मनु को, मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को दिया था। इस भाँति राजर्षियों की परम्परा में यह उपदेश बहुत काल तक चलता रहा।' दीर्घकाल की प्रबलता से इस योग का लोप हो गया, जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सुनाकर प्रकट किया।

गीता में ध्यानयोग का एक अध्याय खास करके है। प्राणायाम के विषय में चर्चा तो है, किंतु एक भी अध्याय प्राणायाम योग का नहीं है। ध्यान योग के लिए तो कहा गया है कि ऐसी जगह पर बैठो, ऐसी आसनी रखो, इस ढंग से बैठो; किंतु प्राणायाम के लिए ये सब कुछ नहीं बतलाए गए हैं। इससे साफ मालूम होता है कि भगवान ने ध्यानयोग की ओर विशेष ध्यान दिया है। मन को पवित्र रखो और मन को साधना में लगाए रहो, इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करते रहने से ध्यान-योग सिद्ध होगा। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

गुर की मूरति मन महि धिआनु। गुरु कै शबदि मंत्र मनु मानु।।
गुर के चरण रिदै लै धारउ। गुरु पारब्रह्म सदा नमसकारउ।।
मत को भरमि भूलै संसारि। गुर बिनु कोई न उतरसि पारि।।
भूलैकउ गुरि मारगि पाइआ। अवरि तिआगी हरि भगती लाइआ।।
जनम मरण की त्रास मिटाई। गुर पूरे की बेअंत बड़ाइ।।
गुरप्रसादि ऊरध कमल विगास। अंधकार महि भइआ प्रगास।।
जिनि किआ सो गुरते जानिआ। गुर किरपा ते मुगध मने मानिआ।।
गुरु करता करणै जोगु। गुरु परमेसुर है भी होगु।।
कहु नानक प्रभि इहु जनाई। बिनु गुरु मुकति न पाइऔ भाई।।

संत कबीर साहब ने कहा है—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

संतों ने साधना के आरंभ में कुछ व्यक्त उपासना का सहारा अवश्य लिया है। किसी ने राम का , किसी ने कृष्ण का, किसी ने देवी आदि के स्थूल रूप का सहारा उपासना में लिया; किंतु इतना ही नहीं, इसके बाद उन्होंने सूक्ष्मध्यान भी बताया है, जैसे अणोरणीयाम् का ध्यान अर्थात् विन्दु ध्यान। तेजोविन्दूपनिषद् में आया है—

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।

अर्थात् हृदयस्थित विश्वात्म तेजस् स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है। ध्यानविन्दूपनिषद् में भी आया है—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

अर्थात् परम विन्दु ही बीजाक्षर है। उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अनाश ब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निशब्द परम पद है।

संयम के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में कहा है—

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् दुःखों का नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले का, कर्मों का यथायोग्य चेष्टा करनेवाले का और यथायोग्य सोने तथा जागनेवाले का ही सिद्ध होता है। इसलिए भोजन, शयन, जागरण और जागतिक कार्यों में भी संतुलन रखो।

शरीर की सफाई रखो। केवल शरीर की सफाई ही नहीं, शरीर मैला रहे और मन पवित्र रहे, तो वही विशेष है। केवल शरीर पवित्र हो और मन

मैला हो तो वह किस काम का? सूक्ष्म ध्यान के बाद अरूप ध्यान नाद है। इसी को कहा—

बाजत नाम नौबति आज।
ह्वै सावधान सुचित सीतल, सुनहु गैब आवाज।।
सुख कंद अनहद नाद सुनि, दुःख दुरित क्रम भ्रम भाज।
सतलोक वर सो पानि, धुनि निर्वान यहि मन बाज।।
तोहं चेत चित दै प्रेम मगन, अनंद आरति साज।
घर राम आये जानि, भइनि सनाथ बहुरा राज।।
जगजीवन सतगुरु कृपा पूरन, सुफल भे जन काज।
धनि भाग दूलन दास तेरे, भक्ति तिलक विराज।।
—संत दूलनदासजी

और कबीर साहब ने कहा—

पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग।।

किंतु जबतक विन्दु को कोई नहीं पकड़ सकता, वह नाद ध्यान करने के योग्य नहीं होता। संत पलटू साहब ने कहा—'विन्दु में तहँ नाद बोले, रैन दिवस सुहावनं।' इसकी युक्ति गुरु से जानकर त्रयकाल संध्या करो। इसके लिए घरवार छोड़ने की जरूरत नहीं। जो जिस अवस्था में है, उसी में रहते हुए भजन करो। फिर सोते समय भी थोड़ा-थोड़ा ध्यान करते हुए सो जाओ। तन काम में, मन राम में लगाए रहो। तामसी-राजसी भोजन नहीं करो। सात्त्विक भोजन करो। सात्त्विक भोजन भी हल्का करो। विशेष खाने से आलस्य विशेष आता है—उससे भजन नहीं बन सकता। कम खाने से ऐसा नहीं होगा कि शरीर में बल नहीं रहेगा। हल-फाल जोतनेवाले भी ध्यान कर सकते हैं। हमारे विशेष सत्संगी तो हल-फाल जोतनेवाले ही हैं। योग कोई हौआ नहीं है। इससे डरने की जरूरत नहीं है। थोड़ा-थोड़ा सब कोई अभ्यास कीजिए।

n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत मोहद्दीनगर के दुर्गास्थान में दिनांक १८.९.१९५५ ई० को प्रातः सत्संग में हुआ था।

१२६. भारतीय योग विद्या का चमत्कार

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

यह सत्संग हमलोगों को बहुत ऊँचे जाने को सिखलाता है। इतना ऊँचा जिससे विशेष कोई ऊँचाई नहीं हो सकती। ऊँचाई की शिखर पर पहुँचाने के लिए सत्संग सिखाता है। संतों के संग को सत्संग कहते हैं—

सत्संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दण्ड भरि एकउ बारा।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है। प्रत्यक्ष में संतों का संग वास्तव में बड़ा दुर्लभ है। संतों को पहचानने की योग्यता मुझमें नहीं है। बड़े-बड़े साधकों तथा संतलोगों ने संतों का गुण जैसा वर्णन किया है, मैं उन्हें पहचानने योग्य बनूँ, यह बहुत दुर्लभ है।

अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कवि कोविद योगी।।
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते।।
विधि हरिहर कवि कोविद वानी। कहत साधु महिमा सकुचानी।।
सो मो सन कहि जात न कैसे। साक वनिक मनि गनगुन जैसे।।
— गोस्वामी तुलसीदास

तुलसी साहब भी संत कहलाते हैं। वे बहुत अच्छे थे, लोग कहते हैं। उत्तर प्रान्त के लोग उनको जानते हैं। इधर के लोग उन्हे विशेष नहीं जानते। उन्होंने कहा है—

जो कोई कहै साध को चीन्हा। तुलसी हाथ कान पर दीन्हा।।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने

स्थितप्रज्ञ अर्थात् संत का लक्षण पूछा कि वे कैसे बोलते, चलते, बैठते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देकर भगवान ने केवल उनका, स्थितप्रज्ञों (संतों) का गुण ही गाया है। संत को ही मैं स्थितप्रज्ञ कहता हूँ। संतों के गुण का वर्णन है, किंतु उनको ठीक-ठीक पहचानना अति कठिन है। जो संत हों, वे ही संत को पहचान सकते हैं, जैसे जौहरी हीरा को पहचानते हैं—

हीरा परखे जौहरी, शब्द को परखे साध।
जो कोई परखे साध को, ताका मता अगाध।।

हमलोगों के सामने पहले अमुक संत थे और अब हमलोगों के सामने अमुक संत हैं, इस तरह परीक्षित भाव से संतों की पहचान, उनका संग अर्थात् सत्संग कैसे हो? गुरु महाराज ने कहा था— 'बेटा! चिट्ठी आधी मुलाकात होती है, सन्तों की वाणी जो उनके ग्रन्थों में है उसको पढ़ो। यह संतों की वाणी संतों की आधी मुलाकात है।' यह ही क्या कम है, बहुत है। लोग नये ग्रंथों का प्रकाशन करते हैं। मैं कहता हूँ जिन ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है, उन्हें समझना चाहिए तथा उनके अनुकूल कर्म निरत होना चाहिए। इसीलिए संतों की वाणी का पाठ हमारे सत्संग में होता है। संतों की वाणी को हम समझेंगे, उसके अनुकूल चलेंगे। संतों की वाणी में है—

जीवन से मरना भला, जौ मरि जाने कोय।
मरने पहले जो मरे, तो अजर अरु अम्मर होय।।
मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय।।
—सन्त कबीर साहब

नानक जीवतिया मरि रहिऐ ऐसा जोगु कमाइऐ।
बाजे बाझहु सिंञी बाजै तउ निरभउ पदु पाइऐ।।
—गुरु नानक साहब

आप कहेंगे जीते-जी मर जाना तो शाप है, संतलोग भले ऐसा कहते हैं, परंतु हमलोगों के लिए यह उत्तम बात नहीं है। कबीर साहब ने कहा—

जो मरने से जग डरे, मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानंद।।

छान्दोग्योपनिषद् में है कि ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर मरो तो कोई कष्ट नहीं होता है। मरने के समय बहुत कष्ट होता है। किसी मरनेवाले के निकट जाकर उन्हें देखिए कि उनका चेहरा कैसा-कैसा होता है। उन्हें कष्ट हो रहा है, उनके चेहरे से ऐसा विदित होता होगा। जन्म होता है, तो मृत्यु अवश्य होगी।

अण्ड कटाह अमित लयकारी। काल महा दूरित क्रम भारी।।

शरीर बहुत दिनों तक रहने पर भी कभी अवश्य नाश होगा। ऐसी मौत से मरो कि फिर जन्म न हो। असली मरना यही है। यह शाप नहीं है। यह बहुत कुशल की बात है कि ऐसा मरो कि फिर नहीं मरोगे, पुनः दुःख में नहीं आओगे। किंतु ऐसा मरन अपने जीवन में ही हो जाए।

पंजाब के स्वामी रामतीर्थ ने कुछ दिन विद्याध्ययन किया, उसके साथ ही उन्होंने योग-साधन भी किया। उनके गुरु बड़े अच्छे थे। कुछ दिनों तक वे प्रोफेसर थे, फिर घर छोड़कर संन्यासी हो गए। वे जापान गए वहाँ उन्होंने व्याख्यान दिया। वे अपने को राम बादशाह कहा करते थे और पास में एक पैसा भी नहीं रखते थे। वे जापान से अमेरिका गए। जापानी ने अमेरिका तक के जहाज का भाड़ा दे दिया था। अमेरिका पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने पूछा कि तुम कितने रुपये साथ लाए हो जो यहाँ उतरोगे। उन्होंने कहा—मेरे पास रुपये नहीं। अमेरिकन ने कहा—तब तुम यहाँ उतर नहीं सकते। उन्होंने कहा—अवश्य उतरूँगा। अमेरिकन ने पूछा तुम कौन हो? उन्होंने कहा—मैं राम बादशाह हूँ। पुनः अमेरिकन ने पूछा—कौन राम बादशाह, जिन्होंने भारत से जापान पहुँचकर व्याख्यान दिया है? उन्होंने कहा—हाँ, वही राम बादशाह। वहाँ के एक और अमेरिकन

सज्जन ने कहा कि इन्हें जहाज से उतरने दो। ये जबतक अमेरिका में रहेंगे, तबतक मैं इनका सब खर्च अपने ऊपर लेता हूँ। राम बादशाह हँसे और बोल उठे—खजाना तो बादशाह के खजाञ्ची के पास में रहता है, खुद बादशाह के पास नहीं। उन सज्जनों की ओर बताकर उन्होंने कहा—देखो, ये मेरे खजाञ्ची हैं। वहाँ के लोगों ने कहा कि आप विज्ञापन छपवाकर वितरण कराइए कि लोग आकर आपका व्याख्यान सुनें। राम बादशाह ने कहा कि मैं इस तरह विज्ञापन वितरण नहीं करता हूँ। शहर के अच्छे-अच्छे डॉक्टर मेरे पास आवें। सिवाय उनके और दूसरे कोई न आवें, वे ही डॉक्टर मेरे विज्ञापन होंगे। ऐसा ही हुआ। डॉक्टरों से उन्होंने अपने शरीर की जाँच करवाई। डॉक्टरों ने अपनी जाँच में उनके शरीर को बिल्कुल मृतक पाया। दिल का धड़कन और नाड़ियों के स्पंदन सभी बन्द थे। फिर वह जिन्दा कैसे हैं, यह देखकर डॉक्टर घबराए। राम बादशाह ने कहा कि शरीर सब दिन मृतक है। मैं जिन्दा था, अभी जिन्दा हूँ और जिन्दा रहूँगा। यही भारतीय योगविद्या है।

जीते-जी मर जाएँ, यह बड़ी खुशी की बात है। शरीर 'मर' है और जीवात्मा अमर है, यह कभी नहीं मरता। जीवन-काल में शरीर से संग छूट गया, फिर मरने पर संग नहीं हो सकता। जिसके जीवन में शरीर संग है, उसके मरने पर शरीर नहीं छूट सकता। इस शरीर से कैसे छूटा जाय, यही हमलोग जानना, जनाना, करना और कराना चाहते हैं। इसलिए पहले शरीर को स्थिर रखो, एक आसन से देर तक बैठो।

आसन दृढ़ आहार दृढ़, भजन नेम दृढ़ होय।
तौ प्राणी पावै कछुक, नहिं तो रहै विषय रस मोय।।

भोजनकी मात्रा जानो। कितना खाना चाहिए, कब खाना चाहिए, इसको जानो। गीता कहती है—न पूरा भरकर खाव, न बिल्कुल उपवासी रहो, स्वल्प भोगी बनो और तब भजन करो।

बचपन में पढ़ने में मन नहीं लगता था। हमारे पिता, हमारे अभिभावक ने हमको स्कूल भेजा। इस तरह विद्या पढ़ा। महर्षि शिवव्रतलाल महोदयजी ने कहा है कि सत्संग में एक आसन से बैठो, यह आसन का साधन है। ध्यान देकर सुनोगे तो क्या सत्संग हुआ, यह समझ सकोगे। इस तरह मन को एक ओर लगाने का भी साधन होगा। मुरादाबाद में उन महर्षिजी का मुझे पहला दर्शन हुआ था। यहाँ धरहरा वे बिना बुलाए हुए ही आए थे, वे सरल हृदय के थे।

उपर्युक्त प्रकार के फल-लाभ का भजन साधन आरंभ में एकान्त बैठ-बैठकर करना चाहिए। रामकृष्ण परमहंस देवजी का वचन है—'पहले कुछ दिन तक एकान्त में बैठकर ध्यान करना सीखो। पूरा अभ्यास हो जाने पर फिर जहाँ-तहाँ बैठकर भी ध्यान कर सकोगे। पेड़ जब छोटा रहता है, तब उसको घेरा लगाकर रखना पड़ता है, नहीं तो गाय-बकरियाँ चर जाएँ। जब वह पेड़ पूरा बढ़ जाता है, तब फिर उसमें दस-दस गाय बकरियाँ बंधी रहने से भी उसका कुछ बिगड़ नहीं सकता। गुरु नानकदेवजी ने कहा—

रहहिं एकान्ति एको मनि बसिआ आसा माहिं निरासो।
अगमु अगोचरु देखि दिखाए नानक ताका दासो।।

आजकल के कतिपय विद्वान साधनारम्भ में ही कहा करते हैं कि—

आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नयन पहिचानौं हँसि-हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।।

—कबीर साहब

उनको जानना चाहिए कि इस प्रकार की सहज समाधि की स्थिति तो साधन समाप्त हो जाने पर प्राप्त होती है। साधन के आरंभ में तो 'बंद कर

दृष्टि को फेरि अंदर करै, घट का पाट गुरुदेव खोलै।' और—

आँख कान मुख बंद कराओ, अनहद झींगा शब्द सुनाओ।
दोनों तिल एक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है।।

—सन्त कबीरसाहब

धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव।।
सो मेरा गुरुदेव सेवा मैं करिहौं वाकी।
शब्द में है गलतान अवस्था ऐसी जाकी।।
निसदिन दशा अरूढ़ लगै ना भूख पियासा।
ज्ञान भूमि के बीच चलत है उलटी स्वासा।।
तुरिया सेती अतीत सोधि फिर सहज समाधी।
भजन तेल की धार साधना निर्मल साधी।।
पलटू तन मन वारिये, मिलै जो ऐसा कोउ।
धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव।।

—सन्त पलटू साहब

हमको इन संतोक्त आरम्भिक साधनाओं का पहले अभ्यास करना चाहिए। अब मैं आता हूँ, जो शब्द अभी गाए गए—

मेरी सुरत सुहागिनी जाग री।।
क्या तुम सोवत मोह नींद में, उठि के भजनियाँ में लाग री।।
चित्त से शब्द सुनो सरबन दे, उठत मधुर धुन राग री।।
दोउ कर जोड़ि सीस चरणन दे, भक्ति अचल वर माँग री।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, जगत पीठ दै भाग री।।

सुहागिनी स्त्री वह है, जो पति से प्यार करे जो पति से प्यार नहीं करे, वह दुहागिनी है। जीवात्मा, सुरत को कहते हैं—

आदि सुरत सत पुरुष ते आई। जीव सोहं बोलिये सो ताई।।

सुरत का अर्थ ख्याल भी होता है। जीवात्मा के लिए 'सुरत' शब्द का प्रयोग संतवाणी में बहुत किया गया है। जिसका पति जीवित हो और जो पति से प्यार करे, वह सुहागिनी है। चेतन आत्मा को स्त्री कहा गया है, इसका पति परमात्मा है। चेतन आत्मा को जिधर नहीं जाना चाहिए, उधर भी जाती है। इसलिए जगने के लिए कहते हैं। भजन में लगने से जगना होगा। मोह-लोभ में जगना, जगना नहीं है, सोना है। असार तत्त्व के त्याग का और सार तत्त्व के ग्रहण का सुरत या जीव को ज्ञान होना चाहिए। तब वह उठा और जगा। यह त्याग और ग्रहण केवल विचार से नहीं होगा। स्वप्न में केवल विचार हो कि जग जाएँ, जग जाएँ तो केवल कहने से जगते हो या कोई स्वाभाविक क्रिया होती है? जाग्रत से स्वप्न में जाने के लिए बाहर के ख्याल छूटते हैं। स्वप्न में इसका ख्याल मन में होता है तो विविध स्वप्न देखते हैं। जगने और सपने में अन्तर्मुखी होना और बाहर होना स्वाभाविक है। जगने के स्थान से दूसरे स्थान में जाने से दूसरी अवस्था हो जाती है। लोभ-मोह में हम नहीं रहें, सार को पकड़ें, ऐसा ज्ञान होने पर भी भूल भटक जाते हैं। ऐसा क्यों? इसलिए कि जगने के स्थान में नहीं हैं। हमलोग इस शरीर में कहाँ हैं? आँख में हैं। आँख बंदकर पूछिये मैं कहाँ हूँ? तो उत्तर होगा कि अंधकार में। अंधकार कहाँ है? नयनाकाश में। नयनाकाश में अंधकार है और अंधकार में मैं हूँ। इसलिए मैं आँख में हूँ।

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।

—दरिया साहब, बिहारी

नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्...।

—ब्रह्मोपनिषद्

जाग्रत से स्वप्न में जाने पर स्थान छूट जाता है, उस समय आप कण्ठ में चले जाते हैं। स्वर का स्थान कण्ठ है, इसलिए स्वप्न में कभी-कभी बोल उठते हैं। कण्ठ को षोडस दल कमल भी कहते हैं। जबतक यहाँ रहेंगे, तबतक आप स्वप्न में रहेंगे। गहरी नींद में फेफड़ा में रहेंगे। वह स्वर का स्थान नहीं है, इसलिए हम बोल नहीं सकते। हम साधारणतः जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति; इन

तीनों अवस्थाओं में जाते-आते रहते हैं। स्वप्न से जागते हैं, किंतु इस जगने को जगना नहीं कहते हैं। मुर्द्धा में स्थित रखने से जगना होगा। दरिया साहब मारवाड़ी कहते हैं—

माया मुख जागे सभे, सो सूता कर जान।
दरिया जागे ब्रह्म दिसि, सो जागा परमान।।

हमलोग मोह में सोए हुए हैं, इससे कैसे जगा जाएगा। तो कहा—'चित्त से शब्द सुनो सरबन दे, उठत मधुर धुन राग री।' आपके अंदर राग होता है—'एहि घट बाजै तबल निशान। बहिरा शब्द सुने नहिं कान।।' ध्वनि को सुनने के लिए तुम वहाँ ठहरो, जहाँ पर जाकर तुम सुन सकते हो। कहाँ पर जाकर कोई सुन सकते हैं? इसके लिए पहले वैष्णवी मुद्रा वा शाम्भवी मुद्रा यानी दृष्टियोग करने के लिए नादविन्दूपनिषद् में कहा है और संतों की वाणी में इसकी विधि बतलाई गई है। दृष्टियोग करने से ही आप वहाँ पहुँचकर सुन सकते हैं, जहाँ पहुँचकर संतवाणीके अनुकूल आंतरिक नाद सुना जा सकता है। कितने कहते हैं कि बिना दृष्टियोग के किए ही तो सुनते हैं तो उनको जानना चाहिए कि वे उस शब्द को नहीं सुन सकते, जो सुनना चाहिए। यदि बिना दृष्टियोग के ही शब्द का सुनना होता तो संतलोग दृष्टि-साधन करने पर विशेष जोर नहीं देते। इसकी शिक्षा कहाँ होगी? जहाँ होगी, वहाँ जाइए अर्थात् संतों के पास जाइए। यह क्रिया कीजिए, तब संसार की ओर पीठ होगी। अभी संसार में कहीं भी जाओ सन्मुख संसार रहेगा। मुर्द्धा में जाने से संसार की ओर पीठ देना होगा। गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में सुनाया गया है—

जागु जागु जागु जीव जो है जग जामिनी।
देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी।।

इन्होंने भी एक दूसरे पद्य में चौथी अवस्था में जाने के लिए कहा है—

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनंत।।

अर्थात् तीनों अवस्थाओं को छोड़कर भजन करने कहते हैं। तीन अवस्थाओं को छोड़ना योगियों से ही हो सकता है। इसलिए तुलसीकृत रामायण में है कि—

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

इसी तरह सभी संत कहते हैं। उपनिषद् में भी है—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत..' अर्थात् अरे! अविद्याग्रस्त लोगो! उठो, अज्ञान निद्रा से जागो। बाहर में कहीं भी जाने से संसार से और तीनों अवस्थाओं से नहीं छूट सकते। जो अपने को तुरीय अवस्था में ले जाते हैं, तो वे मरकर फिर नहीं मरते। रोग व्याधि से मर जाने पर फिर-फिर मरना होगा। कुछ कोशिश करके मरने से यह संस्कार आगे जन्म में प्रेरण करेगा और यही संस्कार जमा होते-होते एक दिन ऐसा बना देगा कि संसार में आना नहीं होगा। इसी के लिए यह सत्संग है। इसमें कोई बाह्याडम्बर नहीं है।

हमलोग यहाँ सत्संग करने और सत्संग का प्रचार भी करने के लिए आए हैं। n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर सिकलीगढ़ धरहरा में दिनांक २५.११.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१२७. प्राप्तव्य क्या है ?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आप सोचिए कि आपको क्या चाहिए? किसी का हृदय ऐसा नहीं है कि जिसका हृदय कह दे कि दुःख चाहता हूँ। यदि किसी को आप देखते हैं

कि दुःख उठाने के लिए अमुक व्यक्ति तत्पर है तो आप समझिए कि वह सुख पाने के लिए दुःख उठाता है। सभी सुख-लाभ के लिए ही काम करते हैं।

स्कूल छोड़ने के कई वर्ष पहले मेरे मन में उत्पन्न होता था कि मैं अपने को किस तरह सुखी बना सकूँगा, तो समझ में आया कि ईश्वर की भक्ति में सुख होगा। रामायण का पाठ करने की अभिरुचि मेरे बचपन काल से थी। मैं रामायण पढ़ा करता था। उसमें ईश्वर-भक्ति के लिए बहुत प्रेरण है।

देह धरे कर यहि फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई।।

और—**राका पति षोड़स उअहिं, तारागण समुदाय।**

सकल गिरिन्ह दव लाइअ, बिनु रवि राति न जाय।।

ऐसहि बिनु हरि भजन खगेसा। मिटहिं न जीवन केर कलेसा।।

अर्थात् ईश्वर-भक्ति रूपी सूर्य का उदय हो तो दुःख रूपी रात का नाश हो जाएगा।

मैं पहले सोचा करता था कि क्या मुझसे परमात्म-भक्ति सध सकेगी? तो कभी पैर ढीला होता था और कभी बल मिलता था। मेरे कई गुरु हुए। मैं जिज्ञासु होकर कइयों के यहाँ गया। सबसे ईश्वर-भक्ति की प्रेरणा मिली। कहीं बाहर की भक्ति और कहीं भीतर की भक्ति करने का उपदेश मिला। अंत में यह ज्ञान पाया कि बहिर्मुख और अंतर्मुख दोनों प्रकार की भक्तियों का करना आवश्यक है।

प्राप्तव्य क्या है इसको जानो, फिर उसको पाने के लिए दौड़ो। बिना प्राप्तव्य जाने उसको पाने के लिए दौड़ना बुद्धिमानी नहीं है। ईश्वर क्या तत्त्व है, इसको जानो। मैं पहले जानता था कि राम ईश्वर है, शिव ईश्वर है। रामायण पढ़ने से राम और शिव दोनों को ईश्वर जानते थे। घर में भगवती की पूजा होती थी तो उनको भी देवी मानता था। फिर गाणपत्य और सौर भक्त को भी जानो। फिर समझा कि नरसिंहरूप, क्षीरसमुद्रवासी, साकेतवासी, दशावतारी; सभी रूप उन्हीं ईश्वर के हैं, ऐसा सुना और कहीं-कहीं ऐसा पढ़ा भी। गणेश, शिव, सूर्य, विष्णु, दुर्गादि देवियाँ तथा सम्पूर्ण चराचर एक ईश्वर के ही रूप हैं, ऐसा भी पढ़ा और सुना है। ईश्वर संबंधी इस ज्ञान पर सहज ही प्रश्न होता है कि ये सभी रूप जिनके, वे स्वयं अपने कैसे? उनका स्वरूप कैसा है? वह एक अनेक रूपों में है, वह कैसा? वह कितना बड़ा है अथवा कितना छोटा है, इसको जानने के लिए उत्सुकता आती है। होते-होते ऐसे लोगों से भी भेंट हुई, जिन्होंने कहा कि किस ख्याल में तुम हो, जिसको लोग ईश्वर कहते हैं, वह हई नहीं है। किंतु इस बात का विश्वास मुझे कभी नहीं हुआ। ईश्वर की स्थिति पर आक्षेपात्मक कितने ही प्रश्न उनके हुआ करते थे, जिनका उत्तर देना कठिन होता था। किंतु वे मेरे विश्वास को डिगा नहीं सके। कैवल्य शास्त्र नाम की एक पुस्तक मैंने पढ़ी, जिसमें है कि एक आदितत्त्व ऐसा है जो अनादि, अनंत है। गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण की चौपाई याद आती है—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।

अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

एक अनादि-अनंत तत्त्व अवश्य है। यदि इसमें कोई शक-सन्देह करे तो इसका जवाब है कि यदि सभी सान्त-ही-सान्त हैं और एक अनादि अनंत तत्त्व नहीं है तो सभी सान्तों को मिलाने से अनंत नहीं हो सकता। क्योंकि सान्त-सान्त का जोड़ सान्त ही होगा, वह अनंत नहीं होगा। तब प्रश्न होगा कि उस सान्त तत्त्व के पार में क्या है? इसका उत्तर होगा अनंत है, इसके सिवाय और कुछ उत्तर नहीं हो सकता।

इस संसार को देखकर लोग भले ही कहें कि संसार बनता और बिगड़ता है, इसके अंग-प्रत्यंग बनते और नाश होते हैं; यह अनंत नहीं हो सकता। परंतु यदि कोई उस अनादि-अनंत तत्त्व को

प्रत्यक्ष नहीं देख सकता है, इसलिए उसकी स्थिति को स्वाकार नहीं करे, यह ठीक नहीं। सारे सान्तों के पार में एक अनंत अवश्य है।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।
—रामचरितमानस

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य ।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा ।।
—कबीर साहब

बड़ा-से-बड़ा क्या हो सकता है? जिससे बड़ा और कुछ नहीं हो सके, वह अनंत के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता। एक अनंत तत्त्व की स्थिति अवश्य है, यह बात बुद्धि के ग्रहण में आती है।

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
—गुरु नानक साहब

कबीर साहब, गुरु नानक साहब और गोस्वामी तुलसीदासजी; इन तीनों संतों को इधर के लोग विशेष जानते हैं। ये तीनों संत कहते हैं कि एक अनादि-अनंत तत्त्व अवश्य है। परंतु वह अव्यक्त शरीरधारी लम्बे-चौड़े आकार का नहीं है। किसी आकार-प्रकार का कहने से वह ससीम हो जाएगा? सब ससीमों में वह पूर्ण है और सबसे बाहर भी है।

जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार संपूर्ण भूतों का एक ही अंतरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है। कितना बाहर जिसका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। वह एक अनादि अनंत तत्त्व अवश्य हैं, इसी का प्रचार सभी संत किए। और इस सत्संग से भी इसी का प्रचार होता है। यही प्राप्तव्य है, यही ईश्वर है। n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर सिकलीगढ़ धरहरा में दिनांक २५.११.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१२८. साम्यावस्थाधारिणी मूल प्रकृति

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं चाहता हूँ कि ईश्वर-स्वरूप का ठीक-ठीक निर्णय संतों की वाणी के अनुसार हो जाय। फिर आपके बोध में आवे कि उसकी भक्ति कैसे की जाय? जबतक स्वरूप समझ में नहीं आवे, तबतक उसकी भक्ति कैसी की जाय, बोध में नहीं आता। फिर उसके लिए संयम करना चाहिए। जिससे उस भक्ति मार्ग पर ठीक-ठीक चला जाय। इन्हीं सब आवश्यक बातों का बोध करने और कराने के लिए सत्संग है। आपको रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का प्रत्यक्ष ज्ञान है। इन बाहर के पदार्थों के अतिरिक्त और कोई कुछ प्रत्यक्ष रूप में जानते हैं, ऐसा नहीं। लोग इन्हीं को जानते हैं और इन्हें जानने के लिए सबको पंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। आँख से रूप, कान से शब्द, जिभ्या से रस, नासिका से गंध और त्वचा से स्पर्श जानते हैं। ये सब कैसे हैं, सो सोचिए। जो कुछ भी आप देखते हैं, सभी एक तरह से रह जाय, हो नहीं सकता। रूप एक तरह रहे, शब्द एक तरह रहे, हो नहीं सकता। शब्द के लिए लोग कहते हैं कि यह अनाश है। सुनने के

समय शब्द सुनते हैं, उसके बाद उस शब्द को नहीं सुन सकते। लोग विचार में ही जानते कि पहले के भी शब्द आकाश के गर्भ में हैं। परंतु इसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है। जब इसको प्रत्यक्ष कर ले तब उसको नित्य समझेंगे। प्रत्यक्ष नहीं रहने पर भी विचार में ऐसा ज्ञान है तो यह आज के ख्याल में अयोग्य नहीं है। शब्द ऐसा नहीं है कि वह पानी में सड़ जाय या आग में जल जाय। जब आप कहते हैं कि शब्द आकाश का गुण है, तो जहाँ गुणी है, वहाँ गुण रहे, यह असंभव नहीं है। आप स्थूल इन्द्रियों के द्वारा स्थूल यंत्रों से स्थूल आकाश के शब्द सुनते हैं। जल, बर्फ और वाष्प स्थूल है। बर्फ कठिन होने से कठिन, उसका जल होने से तरल और फिर वाष्प होने से वाष्परूप होता है। किंतु फिर भी स्थूल है। क्योंकि स्थूल इन्द्रियों से इसका ज्ञान होता है। सृष्टि का विकास एक ही बार में ऐसा हो गया, सो नहीं। इसका पूर्व रूप सूक्ष्म था और है। उसके बाद स्थूल है। पहले सूक्ष्म मण्डल है, जिससे स्थूल मण्डल बना। इस तरह जो बना सो कभी-न-कभी बिगड़ेगा, यह असंभव बात नहीं। ऐसी चीज को देखते हैं, जो थोड़े समय में बदल जाती है। कोई ऐसी चीज भी है जो जल्दी नहीं बिगड़ती। तो इसके लिए भी आप विचारते हैं कि यह कभी-न-कभी बदल जाएगा। स्थूलाकाश का विकास सूक्ष्माकाश से हुआ है। यह स्थूलाकाश बदलकर सूक्ष्माकाश में रहेगा और यह भी नहीं रहेगा। सांख्य ज्ञान और संतों के विचार के अनुकूल जानने में आता है कि सृष्टि बनने के लिए एक महान तत्त्व है, जिसको प्रकृति कहते हैं। सृष्टि में उपज, ठहराव और विनाश है। जिसके परिवर्तित—विकृत स्थूल में इन तीनों के काम होते देखे जाते हैं, उसके मूल में ये तीनों नहीं हों, सम्भव नहीं। उत्पन्न करने की शक्ति को रजोगुण, पालन करने की शक्ति को सतोगुण और विनाश करने की शक्ति को तमोगुण कहते हैं। ये तीनों गुण सृष्टि के मूल मशाले—प्रकृति में ही हैं। अथवा यों भी कह सकते हैं कि ये तीनों गुण ही साम्य रूप में प्रकृति कहलाते हैं अथवा यों भी कह सकते हैं कि त्रैगुण के सम्मिश्रण रूप को साम्यावस्थाधारिणी मूल प्रकृति कहते हैं। किसी गुण का उत्कर्ष और किसी का अपकर्ष होता है, तब सृष्टि होती है। उस प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से सेन्द्रिय, और निरेन्द्रिय दो प्रकार की सृष्टि हुई है। सेन्द्रिय में पहले मन बना और निरेन्द्रिय में पहले आकाश बना है। अब जानिए कि आकाश कितना नीचे है। पहले विचार द्वारा किसी वस्तु का सिद्धान्त स्थिर होता है, फिर प्रयोग द्वारा उसको प्रत्यक्ष किया जाता है। बिना दार्शनिक विचार के बोध नहीं हो सकता कि जिस स्थूलाकाश में हम हैं, यह आकाश का अपर रूप है, पूर्व रूप नहीं है। यह स्थूलाकाश सूक्ष्माकाश में लय हो जाएगा। इस प्रकार जब स्थूलाकाश का नाश होगा, तब उसका शब्द भी नहीं रहेगा। इसलिए इस स्थूलाकाश का शब्द सत्य नहीं हो सकता। मुँह से शब्द निकलता है, वचनवर्द्धक यंत्र उस शब्द को दूर तक फैला देता है। यंत्र नहीं रहे तो दूर-दूर तक उस शब्द को नहीं सुन पाते। इसलिए शब्द नहीं है, यह कोई बात नहीं। इस तरह वह कायल कर देते हैं कि तब शब्द नित्य कैसे नहीं हो सकता? मैं कहता हूँ कि जिस स्थूलाकाश का गुण शब्द है, उस स्थूलाकाश के लय होने पर स्थूल शब्द कैसे रह सकता है? इसलिए यह शब्द नाशवान है। विनाश दो प्रकार के हैं। एक केवल बदल जाय, परंतु अत्यन्ताभाव नहीं हो। जैसे आपका शरीर बदलता है। बचपन से अभी तक है, बदला है, किंतु अत्यन्ताभाव इसका नहीं हुआ है। शरीर के मरने और जलाए जाने पर भी इसका

अत्यन्ताभाव नहीं होता, किसी-न-किसी रूप में इसके भौतिक तत्त्व रहते ही हैं इसलिए उसका रहना हुआ। बदलते रहने के कारण असत् कहा गया। जैसे लोकमान्य बालगंगाधर तिलकजी ने कहा है कि—'कोई झूठ बोलता है, दूसरा कहता है कि वह झूठा है, इसका अर्थ यह नहीं कि वह आदमी है ही नहीं। है, किंतु वह अपना वचन बदलता रहता है, इसलिए वह झूठा है।' समर्थ रामदास की दासबोध नाम्नी पुस्तक में है कि सौ वर्ष केवल धूप-ही-धूप होगी। यह भूमण्डल जलकर चूना हो जाएगा। सौ वर्ष तक मूसलाधार जल की वर्षा होगी। जैसे इन्द्र ने ब्रज पर जल वर्षा की थी, उससे भी विशेष मूसलाधार वर्षा होगी। इस प्रकार वह चूना गलकर पानी हो जाएगा। तब सौ वर्ष तक केवल प्रचण्ड हवा चलेगी, तब सब पानी कण-कण होकर पवन स्थिर अग्नि में लय हो जाएगा। अग्नि हवा में लय हो जाएगी, हवा आकाश में लय हो जाएगी, आकाश अहंकार में, अहंकार महत्तत्त्व में अर्थात् बुद्धि में, बुद्धि प्रकृति में लय हो जाएगी और प्रकृति ईश्वर में लय हो जाएगी।

क्या अन्तिम के लय-स्थान के बाद अतिरिक्त और पदार्थों को आप ईश्वर मानते हैं? ये सभी नाशवान पदार्थ हैं। परमात्मा भी यदि नाशवान हो तो उसकी भक्ति करके क्या लाभ? सभी धर्म के लोग परमात्मा को अनाश मानते हैं गुरु नानक का वचन है—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा ।।

जो काल की मर्यादा से बाहर है, उसका नाश कैसे हो सकता है? केनोपनिषद् में लिखा है कि—

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम् ।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धिनेदं यदिदमुपासते ।।

अर्थात् जो मन से मनन नहीं किया जाता, बल्कि जिससे मन मनन किया हुआ कहा जाता है, उसी को तू ब्रह्म जान। जिस इस (देशकालाविच्छिन्न वस्तु) की लोग उपासना करता है, वह ब्रह्म नहीं है।

यहाँ 'इस' शब्द बहुत महत्त्व का है। 'इस' नजदीक की चीज को कहते हैं और 'उस' दूर की चीज को कहते हैं। 'इस' इन्द्रिय-गोचर पदार्थ को कहा गया है। जहाँ आप सशरीर हों, वहाँ इन्द्रिय-गोचर पदार्थ नहीं हो कैसे संभव है? इन्द्रिय-गोचर पदार्थ परमात्मा नहीं हो सकता। इन्द्रियों के ज्ञान में वह आ नहीं सकता।

श्वेतकेतु एक मुनि-पुत्र था। उन्होंने उपने पिता से ब्रह्म-स्वरूप की जिज्ञासा की। मुनि ने श्वेतकेतु से कहा कि तुम वट वृक्ष से एक फल ले आओ। आज्ञा पाकर मुनि पुत्र ने तुरंत एक फल ले आया। पिता ने कहा कि फल को टुकड़ा करो। श्वेतकेतु ने उसका टुकड़ा किया। पिता ने पूछा—इसमें क्या है? पुत्र ने कहा—इसमें छोटे-छोटे कई दाने हैं। पिता ने कहा—एक दाने को लेकर उसे भी तोड़ डालो और देखो कि क्या है? श्वेतकेतु ने उसे तोड़ा और कहा कि इसमें दो दालें हैं। पिता ने पुनः पूछा उन दोनों दालों के बीच में क्या है? पुत्र ने कहा—दोनों दालों के बीच में कुछ नहीं है पिता ने कहा—यदि दोनों दालों के बीच में कुछ नहीं है तो वृक्ष कैसे हुआ? बीच में कुछ अवश्य है, वह अव्यक्त है। जिससे वृक्ष हुआ वह इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं है। इन्द्रियों का राजा मन है। मन पर बुद्धि का शासन है। इसलिए बुद्धि तक इन्द्रियाँ मानते हैं। मन संकल्प-विकल्प करता है। बुद्धि उसको कहते हैं, जिसमें विवेचना-शक्ति है। अहंकार उसको कहते हैं, जिसमें अपनेपन का ज्ञान हो। चित्त उसको कहते हैं, जिसमें हिलाने-डुलाने की शक्ति हो। इसके हिलाए बिना मन संकल्प-विकल्प नहीं कर सकता है, बुद्धि विचार नहीं कर सकती और

अहंकार का 'मैं हूँ' ज्ञान नहीं हो सकता। चित्त इन तीनों को हिलाता है। इन इन्द्रियों से परमात्मा को नहीं पहचान सकते। इन्द्रियों के बाद कुछ और भी इस शरीर में है कि नहीं? तुम तो इसी शरीर में हो तुम क्या लूले-लँगड़े हो? तुम इन्द्रियों से परतत्त्व हो। मन, बिना इन्द्रियों के कुछ काम नहीं कर सकता है। बिना कान के मन बाहर में कुछ सुन नहीं सकता। बिना आँख के मन बाहर में कुछ देख नहीं सकता। किंतु तुम अपने को अपने से देख सकते हो और अपने से ही परमात्मा को भी देख सकते हो, जैसे समूचे शरीर को आँख से और आँख को फिर आँख से देखते हो। दादू दयाल जी का शब्द है—

दादू जानै न कोई, संतन की गति गोई।। टेक।।
अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।
अंड न पिंड खंड ब्रह्मण्डा, सूरत सिंध समोई।
निराकार आकार न जोति, पूरन ब्रह्म न होई।।
इनके पार सार सोइ पइहैं, तन मन गति पति खोई।
दादू दीन लीन चरणन चित, मैं उनकी सरणोई।।

संतों की चाल छिपी हुई होती है। वह कहाँ तक जाते हैं, किस होकर जाते हैं? वह अविगत तक जाते हैं। उसतक जाने का मार्ग अपने अंदर में है। उसपर चलते हुए सभी पर्दों को पार करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी के वचन में है।

मायाबस मति मन्द अभागी। हृदय जवनिका बहु विधि लागी।।
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं।।
काम क्रोध मद लोभरत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ पड़े तम कूप।।

उपर्युक्त दादू दयालजी के शब्द में तीन शून्य बताए गए हैं—'सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा।' इसी को हमारे गुरु महाराज बाबा देवी साहब कहते थे—अंधकार का शून्य, प्रकाश का शून्य और केवल शब्द का शून्य। स्थूल अंधकारमय शून्य, सूक्ष्म प्रकाशमय शून्य और कारण-महाकारण केवल शब्दमय शून्य। कतिपय विद्वान कारण और महाकारण नहीं कहकर केवल कारण वा प्रकृति कहते हैं। प्रकृति कोई छोटी चीज नहीं है। इसका मण्डल बहुत बड़ा है। किंतु बहुत बड़ा मण्डल होने पर भी इसको अनन्त नहीं कह सकते। कुम्भकार पृथ्वी को कोड़ते (खोदते) हैं,फिर भी पृथ्वी मौजूद है। जहाँ-जहाँ पृथ्वी कोड़ते हैं, वहाँ-वहाँ पृथ्वी कँपती है। जितनी मिट्टी से बर्तन बनाते हैं, उतनी मिट्टी उस बर्तन का कारण है। सभी कारणों को मिला दीजिए तो महाकारण है। जहाँ से सृष्टि होती है, वह प्रकृति का विकृति अंश है। ऐसी विकृतियाँ प्रकृति में अनेक हैं।

अन्धकार, प्रकाश और शब्द इन तीनों शून्यों के पार में जो है, उसको निर्गुण वा सगुण कुछ भी नहीं कह सकते। यहाँ गुण का अर्थ त्रैगुण से है और गुण का अर्थ विशेषता और प्रशंसा भी होता है। गुण सहित नहीं, तो त्रैगुण नहीं—निर्गुण। परंतु जब निर्गुण भी नहीं, तब वह क्या है? यह बोध में आना बहुत कठिन होता है। परा प्रकृति चेतन और अपरा प्रकृति जड़ हैं ये ही श्रीमद्भगवद्गीता के अक्षर पुरुष और क्षर पुरुष हैं। परंतु पुरुषोत्तम को इन दोनों से श्रेष्ठ बतलाया गया है। विचारने पर गीतोक्त ज्ञानानुकूल ही संतों की वाणियों में भी सगुण-निर्गुण, क्षर-अक्षर के परे परमात्म-स्वरूप का ज्ञान जानने में आता है। ऐसे भी विद्वान हैं, जो कहते हैं कि परमात्मा त्रैगुण रहित, पर दिव्यगुण सहित हैं। तो निस्त्रैगुण्य होने के गुण से उसे युक्त करने पर वह दिव्य गुणधारी सगुण होता है, किंतु केवल त्रैगुण-रहित होने के कारण वह निर्गुण भी है। गोस्वामी तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका का शब्द है—'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा, वसत

इति वासना धूप दीजै।' और संत कबीर साहब के वचन में है— **है सबमें सब ही तें न्यारा ।जीव जन्तु जलथल सबहीं में शब्द वियापत बोलनहारा ।।**

वह सब चर-अचर रूपों में अंश रूप है जैसे महदाकाश और मठाकाश।

उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहेहु कुविचारी।।
— गोस्वामी तुलसीदास

सूर्य इतना बड़ा है कि वह धरती से कई हजार गुना बड़ा है। आकाश में जो बादल है, उसने सूर्य को ढक लिया, ऐसा कहना अज्ञानता है। उस बादल ने आपकी दृष्टि को ढक लिया है न कि सूर्य को ढक लिया है। जिस तरह बादल सम्पूर्ण सूर्य को नहीं ढक सकता, वैसे ही माया परमात्मा को ढक नहीं सकती। परमात्मा सब जगह है, सबमें है, जिसको आप पवित्र-से-पवित्र और घृणित-से-घृणित मानते हैं। आकाश में कहीं धुआँ, कहीं धूली उड़ रही है और कहीं अंधकार-ही-अंधकार है। किंतु सबमें होते हुए आकाश धुआँ, धुल और अंधकार से परे भी है। आकाश का वह रूप, जो उसका निज रूप है; अंधकार,धुआँ और स्थूल को पार करो, फिर देखोगे। आकाश पर अंधकार,धुआँ और धूल कुछ सट (चिपक) नहीं सकती। तीनों रहने पर भी वह निर्मल-ही-निर्मल रहता है। इसी तरह परमात्मा सबमें रहने पर भी पवित्र और निर्लेप रहता है। सबमें रहते हुए एक मण्डल में अंश रूप से रहता है। अंश का अर्थ टुकड़ा नहीं, अभिन्न अंश। इस तरह से ईश्वर सबमें रहता हुआ सबसे न्यारा, सबसे निर्लेप है। आत्मगम्य है, इन्द्रियगम्य नहीं। इन्द्रियगम्य में व्यापक है। इन्द्रियगम्य पदार्थ के भीतर वह छिपा है जिसे आप इन्द्रियों से नहीं जान सकते। जबतक उस पदार्थ के भीतर की पहचान नहीं हो तबतक परमात्मा का दर्शन कैसे हुआ? सगुण में हम कितनाहु प्रेम करें, किंतु वह स्थिर नहीं रह सकता। कभी-न-कभी नाश होगा ही। जो अजर,अमर, अविनाशी है, वह ध्रुव है, निश्चल है, वह कहीं से टसमस नहीं हो सकता। जो अनादि-अनंत है, वह अपरिमित शक्तियुक्त है, उसमें क्या गुण है, मेरी परिमित बुद्धि उसका गुण वर्णन नहीं कर सकती।

निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।।
एहि भाँति निज निज मति विलास मुनीस हरिहिं बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सचु पावहीं।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

इसका पूरा-पूरा वर्णन कौन कर सकता है, वह अवर्णनीय है।

यह प्रवचन पुर्णियाँ जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर सिकलीगढ़ धरहरा में दिनांक २६.११.१९५५ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१२९. पारमार्थिक सत्ता की विशेषता

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में लिखा है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।
नर तनु धरेहु संत सुर काजा, कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।

राम का स्वरूप अर्थात् आत्मभावरूप (पारमार्थिक सत्ता), उनका चिदानन्दमय रूप (व्यावहारिक सत्ता), और उनका नर रूप (प्रातिभासिक सत्ता); इन तीन प्रकारों में राम को जानना चाहिए। मेरे बोध में स्वरूप वा आत्मभाव में वह अनादि, अनंत, असीम, अपरिमित, ध्रुव और अव्यक्त है। उनका चिदानन्दरूप वा सच्चिदानंद रूप, कथित आत्मभाव से भरा हुआ, गतिशील, इन्द्रियातीत वा अव्यक्त विकारहीन तथा उसके दर्शन की योग्यता रखनेवाले अधिकारी भक्त से जाननेयोग्य है। तथा उसका नररूप उस आत्मभाव से पूर्ण चिदानन्दमय रूप से व्याप्त इन्द्रिय-गोचर वा व्यक्त है। सच्चिदानंद रूप परा प्रकृतिमय है और नररूप अपरा प्रकृतिमय है। ये दोनों रूप अप्राकृत नहीं हैं। अवश्य ही परा प्रकृतिमय रूप का पद अपरा प्रकृतिमय रूप से उच्च है और आत्मभाव में ही राम अप्राकृत भाव में है।

चिदानन्दमय देह कभी नर शरीर नहीं हो सकता। लोहा अग्नि में तपते-तपते अग्नि रूप हो जाय, उसका काम भी आग का हो, किंतु कुछ देर के बाद ठण्ढा होने पर लोहा ही कहा जाएगा। इसी प्रकार चिदानन्दरूप नररूप में होने के कारण वह जो कुछ भी हो किंतु फिर नररूप ही है—जैसे लोहा लोहा ही है। त्रिशूल और फाल के लोहे को अग्नि में देने से दोनों के दो आकार होते हैं, दोनों लाल हो जाते हैं, अग्नि के समान हो जाते हैं, किंतु वे लोहा हैं। परंतु अग्नि (गर्मी) का उस प्रकार का कोई रूप नहीं। इसी तरह नररूप में चिदानन्दरूप नराकृतिवत् परंतु उसका भी निराकार-सा आकार नहीं। लोग कहते हैं—सूर्य अग्नि का गोला है और वह ठण्ढा होते-होते ठण्ढा हो जाएगा। हवा और अग्नि जिस-जिस रूप में होती हैं, वह उस-उस रूप में कहलाती हैं और उनसे बाहर भी हैं। उसी तरह परमात्मा का चिदानन्दमय रूप सब के बाहर और सब के भीतर भी है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।

—कठोपनिषद्

परमात्मा के इसी चिदानन्दमय रूप के दर्शन से उपनिषद् के इस वाक्य में कथित फल भक्त को होता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

—महोपनिषद्

अर्थात् उस परे-से-परे (ब्रह्म) को देख लेने पर हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। कितना ही कोई चमत्कार दिखावे, कितना ही कोई वाक्य-जाल रच दे, किंतु मैं नहीं मान सकता कि कोई भी इन्द्रियगम्य रूप चिदानन्दमय हो सकता है। सुग्रीव और श्रीरामजी ने अग्नि की साक्षी देकर आपस में मित्रता की—श्रीसीताजी की खोज करने के लिए। सुग्रीव राजमद में डूब गया और लक्ष्मणजी जब वहाँ डराने-धमकाने के लिए गए तो सुग्रीव आकर कहने लगा—

माया बस सुर नर मुनि स्वामी ।
मैं पामर पशु कपि अति कामी ।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने इतना ही लिखा और बाल्मीकि रामायण के शब्दों में इसका चित्र खींचा हुआ है। चिदानन्द-रूप का दर्शन हो गया और अतिकामी बना ही रहा! यदि कहो कि उसका हृदय दुरुस्त नहीं था, तो दर्शन कैसे हुआ? यदि हृदय दुरुस्त नहीं था तो चिदानन्दमय-रूप के दर्शन से ठीक हो जाना चाहिए था। कबीर साहब की ही भाँति सत्य कहना पसन्द करता हूँ, जिस सत्य के लिए कबीर साहब ने कहा कि —साँच कहूँ तो कोई न मानै झूठ कहा नहिं जाई हो।' परमात्म-

स्वरूप को लोग तीन सत्ताओं में विभक्त करके वर्णन करते हैं—पारमार्थिक, व्यावहारिक और प्रातिभासिक। पारमार्थिक सत्ता सबसे उच्च है। यह न जड़ है, न चेतन है; जड़-चेतन से परे है। यह सच्चिदानन्द से भी परे है। व्यावहारिक सत्ता सच्चिदानन्द पद है, उसको सत्तलोक कहते हैं। प्रातिभासिक सत्ता को भ्रम कहा गया है। यथा—

रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानु कर वारि।
यदपि मृषा तिहु काल सो, भ्रम न सकइ कोउ टारि।।
ऐसेहि जग हरि आश्रित रहई। यदपि असत्य देत दुख अहई।।

पारमार्थिक सत्ता का संतवाणी में ऐसा भी वर्णन किया गया है—

'तापर अकह लोक है भाई। पुरुष अनामी तहाँ रहाई।।'
'जो पहुँचे जानेगा वाही। कहन सुनन से न्यारा है।।'
—कबीर साहब

यहाँ तक आपको पहुँचना चाहिए। यहाँ तक आपको कैसे पहुँचना चाहिए, इसी का पता कबीर साहब के इस पद्य में कहा गया है—

गगन की ओट निशाना है।
दहिने सूर चंद्रमा बायें, तिनके बीच छिपाना है।।
तन की कमान सुरत का रोदा, शब्द बान ले ताना है।
मारत बान बिंधा तन ही तन, सतगुरु का परवाना है।।
मार्यो बान घाव नहिं तन में, जिन लागा तिन जाना है।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जिन जाना तिन माना है।।

चन्द्र और सूर्य के बीच में, चन्द्र बायें, सूर्य दायें को, इड़ा बायाँ, पिंगला दाहिना, दोनों के बीच निशाना आकाश की ओट में छिपा है। अंधकारमय आकाश पर्दा है। धूम धूलि से आच्छादित आकाश परदामय है। आकाश स्वच्छ हो और दृष्टि-शक्ति अच्छी हो तो दूर तक देख सकते हैं। आप किसी मैदान में खड़े हो जाइए तो आकाश पृथ्वी से मिला हुआ देखते हैं, जिसको क्षितिज कहते हैं। एक परिधि जैसा मालूम होता है, इससे विशेष आपकी दृष्टि नहीं जाती है। यदि उस परिधि के नजदीक जाकर देखिए तो फिर दूसरी परिधि दिखाई देगी। हाँ, तो आपका निशाना गगन की ओट में छिपा है। यह बाहर में निशाना नहीं हो सकता, अंदर में निशाना करना है।

महर्षि रमण की वैष्णवी मुद्रा थी। शिवजी की शाम्भवी मुद्रा और भगवान विष्णु की वैष्णवी मुद्रा। इस क्रिया को कैसे किया जाय? तो कहा गया है कि **'तन की कमान सुरत का रोदा, शब्द बान ले ताना है।'** याद रहे कि तीर तो लिया और निशाना ठीक नहीं है, तब वह छिद नहीं सकता। शब्दवेधी बाणवाले को बुद्धि-रूपी दृष्टि होती है। यह किसी-किसी को होती है। पृथ्वीराज को यह बुद्धि-रूपी दृष्टि थी। वह शब्दवेधी बाण चलाना जानते थे। शरीर का धनुष और सुरत की डोरी बनाइए। धनुष के ऊपर बराबर डोरी चढ़ी नहीं रहती है। आवश्यकता होने पर धनुष पर डोरी चढ़ाई जाती है। धुनष के एक छोर पर सुरत की डोरी लगी है। इसके दूसरे छोर पर भी डोरी चढ़ानी है। धनुष पर से डोरी उतरी हुई है तो उससे क्या लाभ? भगवान बुद्ध को छह वर्षों की तपस्या करने पर उनको यह ज्ञात हुआ कि जिस सत्य ज्ञान की खोज में मैं चला था, वह नहीं मिला। भगवान बुद्ध सोच रहे थे कि जिसके लिए राजपाट छोड़कर चला वह नहीं मिला और अब वहाँ जाने पर राजपाट चला भी नहीं सकूँगा। करूँ तो मैं क्या करूँ? इसी विचार में वे बैठे थे। बैठे-बैठे उनको नींद आई और देखा कि इन्द्र एकतारा लिए आए हैं। उसमें तीन तार थे। एक तार बहुत ढीला रहने के कारण उससे जो आवाज निकलती थी, वह अच्छी नहीं लगती थी। दूसरा तार जो बहुत कसा था, उससे ठस यानी कड़ी और कठोर आवाज निकलती थी और जो मध्य का तीसरा तार था, वह यथोचित कसा था, उसकी

आवाज बहुत मीठी थी। इतने में उनकी नींद टूट गई और उन्होंने समझा कि मैंने तार को बहुत कसा। संसारी लोगों का तार बहुत ढीला होता है। इसलिए उन्होंने मध्य का मार्ग अपनाया। ढीले तार से कुछ होने का नहीं। यह विषयों की ओर जाता है। विषयों की ओर विशेष वेग होना धनुष की डोरी ढीली होनी है। यह बुढ़ापा में भी ढीला रहता है। महात्मा गाँधीजी ने कहा है—'उपवासी होने से विषय मंद पड़ता है किंतु विषय-रस की स्मृति रह जाती है। वह तो परमात्म-साक्षात्कार करने पर छूट सकती है।' इसलिए अमा, प्रतिपदा या पूर्णिमा किसी दृष्टि से धनुष पर डोरी चढ़ाने का या तार कसने का अभ्यास करो। अमादृष्टि सबसे सरल है। यह तो इतना सरल और सुखद है कि ध्यान करते हुए लोग नींद में पड़ जाते हैं। तब जो कोई कहे कि आँख बंदकर ध्यान करने से नींद आती है, इसलिए आँख खोलकर करना चाहिए। तो मैं कहूँगा उनको मालूम नही है। आँख खोलकर ध्यान करने से भी औंघी आती है। संतों ने आँख बंदकर ध्यान करने कहा है—

आँख कान मुख बंद कराओ, अनहद झींगा शबद सुनाओ।
दोनों तिल एक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है।।

औंघी लगती है तो सम्हल-सम्हलकर ध्यान करो। खाने-पीने का संयम करो। विशेष खाने से नींद आएगी, भजन नहीं बनेगा। 'नाक तलक पूरन करै, कौन कहै परसाद।' संयम से खाना चाहिए। इससे भजन ही नहीं होता, शरीर भी स्वस्थ रहता है। शब्द अभ्यास करे और शरीर के अन्दर-ही - अन्दर बिन्ध जाय। यह सतगुरु का परमाना है।

'मारयो बान घाव नहिं तन में, जिन लागा तिन जाना है।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जिन जाना तिन माना है।।'

'चुम्बक सत्त शब्द है भाई, चुम्बक शब्द लोक ले जाई।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा, सत्त शब्द जो बसै शरीरा।।'

— संत दरिया साहब, बिहारी

दूसरे शब्दों में आपलोगों ने सुना—

जब से अनहद घोर सुनी।
इन्द्री थकित गलित मन हुआ, आशा सकल भुनी।।
घूमत नैन शिथिल भई काया, अमल जो सुरत सनी।
रोम रोम आनंद उपज करि, आलस सहज भनी।।
मतवारे ज्यों शब्द समाये, अंतर भींज कनी।
करम भरम के बंधन छूटे, दुविधा विपति हनी।।
आपा बिसरि जक्त कूँ बिसरो, कित रहि पाँच जनी।
लोक भोग सुधि रही न कोई, भूले ज्ञानि गुनी।।
हो तहँ लीन चरण ही दासा, कहैं सुकदेव मुनी।
ऐसा ध्यान भाग सूँ पैये, चढ़ि रहै शिखर अनी।।

मन नादानुसंधान के अभ्यास से काबू में आ जाता है। इसके लिए नादविन्दूपनिषद् में बहुत उपमाएँ हैं। 'घूमत नैन'—अंधकार से प्रकाश में, बाहर से भीतर में। 'भूले ज्ञानि गुनी'—मौलाना रूम, शम्स तबरेज के यहाँ गए और उनका हाथ चूमा। इस पर शम्स तबरेज ने उसे एक थप्पड़ लगाया। मौलाना रूम ने पूछा—हजरत! मुझसे क्या खता हुई? उन्होंने कहा—तेरे से बदबू आती है। मौलाना ने पूछा—वह कैसी बदबू है? उन्होंने कहा—इल्मियत (विद्वता) की बदबू है। पुनः मौलाना ने पूछा—क्या करूँ? उन्होंने कहा—कुँए में डाल। ज्ञान का तर्क-वितर्क सभी छोड़कर भजन करो। मुँह बन्द करो, मन बन्द करो, तब भजन ठीक-ठीक बनेगा। भजन करने का है, कहने-सुनने का नहीं। बहिर्मुख से मुड़ना है, अन्तर्मुख होने से स्थूल इन्द्रियों का संग छूटता है। जाग्रत से स्वप्न में जाने पर सभी बाहर की इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं। जगने पर कहते हैं कि अच्छी तरह सोया। यह अनुभव करनेवाला कौन है? कितना भी कोई नींद में हो, शरीर को कोई किसी तरह डुला दे, जग जाएगा।

कुम्भकर्ण तक की नींद टूट जाती है। जब कुम्भकर्ण साधारण तरह से जगाने पर नहीं जगा,

तब जैसे बैल से धान बगैरह दौनी करते हैं,वैसे ही कुम्भकर्ण की नाक में खूँटा गाड़कर हाथी को चलाया गया, तब उसकी नींद टूटी। इसी तरह दृष्टि की खूँटी गड़ जाय तो नींद नहीं आएगी। इस संसार में जाग्रत अवस्था में रहने पर दूर-दूर तक देखते हैं। अच्छी जगह भी है और बुरी जगह भी है। उसी तरह तुरीयावस्था का मैदान दूर तक है और इसमें ऊँचे-ऊँचे स्थान भी हैं, बुरी जगहें भी हैं। बुरी जगह वह है, जिसमें ऋद्धि-सिद्धि प्रेरित करके माया में गिराती है। जो इसमें फँस गया, वह ऊपर नहीं उठ सकता। इसी को कबीर साहब ने कहा—

गंग जमुन के रेत पर, माली बाग लगाया हो।
कच्ची कली इक तोड़िकै, मलिया पछिताया हो।।

गंग-जमुन = इंगला-पिंगला है, बाग लगाना = सुरत जमाना है और कच्ची कली तोड़नी = कुछ अभ्यास करके जो अपरिपक्व बल हुआ उसको खर्च कर देना है। तुरीयावस्था के आरंभ से ही कच्ची कली है। ध्यान से ऊर्ध्वगति होती है। किसी भी पदार्थ को चाहे वह कठिन हो, तरल हो, वाष्पीय हो, उसको समेटने से ऊर्ध्वगति होती है। मन ईथर से भी सूक्ष्म है। जो जितना सूक्ष्म होता है, सिमटाव होने पर उसकी उतनी ही विशेष ऊर्ध्वगति होती है। तुरीयावस्था में आधा मंजिल कोई पार कर जाय यानी त्रिकुटी में पहुँच जाय, त्रिकुटी उसको कहते हैं, जहाँ से प्रकृति के तीनों गुणों का कार्य आरंभ होता है। यह अन्दर की है, बाहर के भौओं के बीच की त्रिकुटी नहीं। यहाँ जो पहुँचता है, वह बहुत पवित्र होता है। जब साम्यावस्था-धारिणी मूल प्रकृति को पार करता है, वह बिल्कुल पवित्र हो जाता है। यहाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' रहता है। यह तुरीयावस्था है। पहले ही मंजिल में यदि कोई कुछ करके दिखलाने लगे, कुछ लेने लगे तो उसकी ऊर्ध्वगति कहाँ से हो सकती है। इसलिए भगवान बुद्ध ने अपने शिष्य को फटकारा था। कहानी है कि किसी आदमी को सोने का एक कटोरा मिला। उसने उस कटोरे को, एक बाँस गाड़कर उसकी फुनगी पर बाँध दिया और कहा कि जो कोई अपना हाथ बढ़ाकर उस कटोरे को ले लेगा, वह कटोरा उसी का हो जाएगा। उस रास्ते से भगवान बुद्ध के एक शिष्य जा रहे थे, उनको यह बात मालूम हुई। उन्होंने अपने योगबल से हाथ बढ़ाकर उस कटोरे को ले लिया। जब यह बात भगवान बुद्ध को मालूम हुई तो उन्होंने अपने शिष्य को बहुत फटकारा और उस कटोरे को चूर-चूर कर फेंक दिया। ऐसी ही बातें तुलसी साहब के लिए भी है कि उनके शिष्य गिरधारी साहब ने किसी कारणवश लोगों पर अपनी सिद्धि-शक्ति का प्रयोग किया था और जब तुलसी साहब को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने अपने शिष्य गिरधारी साहब को बहुत फटकारा और कहा—'साधु-संत दूसरों की रक्षा करने के लिए होते हैं कि सिर फोड़ने के लिए! आज से तुम कभी मेरे सामने मत आओ।' तब से वे जीवन-पर्यन्त उनके सामने नहीं गए। यह इसलिए कि तुम अहंकार में नहीं फँसो। बाहर-बाहर चलने में, जो पदार्थ मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। इसलिए अपने अंदर चलो। अंदर में चलने से सिमटाव होगा, सिमटाव से ऊर्ध्वगति होगी। किंतु बिना विचारे तो संसार ही महारमणीय मालूम होता है। 'अनविचार रमणीय महा संसार भयंकर भारी।' ध्यानाभ्यास में साधक तुरीयावस्था के आरंभ में ऋद्धि-सिद्धि में फँसता है। संत लोग इससे हटाते हैं। उसको अंदर में मदद मिलती है। दृष्टि स्थिर होने पर ब्रह्मज्योति देखने में आती है। 'देखे आँखी कोनो मते फिरे ना।' वह परमात्मा के तरह-तरह के प्रकाशों को पाता है—देखता है। गीता में है कि भगवान ने अर्जुन को विराट रूप दिखलाया,

उसमें इतना प्रकाश था कि करोड़ों सूर्य का प्रकाश उसका मुकाबला नहीं कर सकता था। उस प्रकाश को उस रूप से हटा दीजिए तो क्या सुन्दरता रह जाती है? बिना तेज के रूप सुन्दर नहीं दिखता। 'जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं।' असल तेज ही वह पदार्थ है जो अपनी ओर वा रूप की ओर आकर्षित करता है। सभी जीवित चेहरे में प्रकाश रहता है, मृतक शरीर के चेहरे में वह सौन्दर्य नहीं रहता। ब्रह्मतेज ही तेज है, किंतु बहुत लुभानेवाला है, यह अवलम्ब मिलता है। जिसको यह अवलम्ब मिलता है, वह उधर ही टन (खींच) जाता है, इधर नहीं आता है। दूसरा अवलम्ब शब्द का होता है। सृष्टि का स्थूल या सूक्ष्म कोई भी मण्डल हो, बिना शब्द के नहीं है। वहाँ के शब्द को सुननेवाला वही होता है, जिसकी दृष्टि प्रकाश में पहुँच गई है, जहाँ जाओ कि सुन सको। वहाँ तक पहुँचने के लिए दृष्टियोग चाहिए। शब्द का सहारा इतना उत्तम है कि कहा नहीं जाता। शोक से मुरझाया हुआ आदमी है तो उसको ऐसे-ऐसे शब्द सुनाए जायँ, जिससे वह मुरझाया हुआ नहीं रहे, वह प्रसन्न हो जाय। शब्द में चार गुण हैं। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है, नीचे का शब्द ऊपर दूर तक नहीं जाता है, अपने उद्‌गम स्थान पर खींचता है और अपने स्थान के गुण को लिए रहता है—उस शब्द को जो कोई सुनता है, वह गुण उसमें हो जाता है। सिनेमा-नाटक आदि देखते हैं तो उसमें शोक का दृश्य देखने से शोकित और हर्ष के दृश्य को देखकर हर्षित होते हैं। आप जिस शब्द को पकड़ना चाहें, उसे पकड़िए, उसके केन्द्र पर पहुँचिएगा। जिस-जिस शब्द को पकड़ा जाएगा, वह-वह शब्द अपने केन्द्र में केन्द्रित करावेगा। सच्चिदानन्द पद मण्डल के केन्द्र से जो शब्द आता है, वही रामनाम, ॐ, आदिनाम है। उस शब्द से जो खींचा जाएगा, वह परधाम में पहुँचेगा। जिस विषय को विशेष सुनिए उस ओर आकर्षण होगा। कौरव लोगों ने चाहा कि पांचो भाई पाण्डवों को किसी तरह अपने राज्य से बाहर करना चाहिए। कौरवों ने विचारा कि उनलोगों को काशी भेजा जाय। किंतु स्पष्ट रूप में उनलोगों से यह बात करने में सभी सकुचाते थे। अंत में कौरवों ने अपने में यह परामर्श किया कि पाण्डव जब सभा में आवें, तब उनके सामने काशी की विशेषताओं का वर्णन करना चाहिए। सुनते-सुनते उन लोगों की इच्छा उस ओर झुकेगी और तब वे लोग स्वयं काशी चले जाएँगे। बात ऐसी ही हुई। वे पाँचो भाई जब-जब सभा में आते, कौरव गण तब-तब काशी की ही चर्चा करने लगते। फलतः काशी की विशेष चर्चा सुनते-सुनते अंत में युधिष्ठिर का मन उस ओर झुका और वे पाँचो भाई काशी चले गए। जिस विषय को आप बहुत सुनिए, उधर मन फिर जाएगा। इसलिए हमारे बाबा साहब सत्संग करने के लिए बहुत प्रेरणा देते थे। भजन करते समय सब भूल जाइए। पवित्र मन रखकर ध्यान कीजिए। विषयी इस ओर बढ़ नहीं सकता। उपनिषद् में भी कहा है, जो पाप कर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं और जिसका चित्त असमाहित या अशांत है, वह इसे आत्मज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है।

ना विरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः।
ना शान्तो मानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।।

—कठोपनिषद्

गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

सूचै भाडै साँचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी ।।
ऐसी सेवकु सेवा करै, जिसका जिउ तिसु आगे धरै ।।

यह भागवत की नवधा भक्ति में का

'आत्मनिवेदनम्' है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि शरीरों से अपने को टपाकर रखो तभी आत्मनिवेदनम् होगा। शरीर से किसी के सामने साष्टांग गिरना यथार्थ में आत्मनिवेदनम् नहीं है। जिसको सत्संग से भी प्रेम है, वह पशु योनि में नहीं जाएगा। दृश्य-सृष्टि का आरंभ विन्दु से होता है। पहले विन्दु, फिर सब दृश्यों की रचना। दृश्य-जगत के शिखर पर तब चढ़ोगे, जब विन्दु ध्यान करोगे। यह विन्दु दृश्य जगत का बीज है और नाद अरूप-अदृश्य जगत का मूल बीज है। कम्पन और शब्द दोनों संग-संग रहते हैं। कम्पन से या शब्द से जिससे कहिए उससे सृष्टि हुई। यह शब्द ईश्वर का है। इसलिए बाइबिल में लिखा है कि 'आदि में शब्द था और शब्द ईश्वर के संग था. ...।' संतलोग भी शब्द से सृष्टि का होना मानते हैं। नाद ध्यान से अदृश्य सृष्टि के शिखर पर पहुँचते हैं और परमात्मा को प्राप्त करते हैं। यही विन्दु और नाद ध्यान की महिमा है। n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला के श्रीसंतमत सत्संग मंदिर सिकलीगढ़ धरहरा में दिनांक २७.११.१९५५ ई० को प्रात:कालीन सत्संग में हुआ था।

१३०. गुरु गोविन्द सिंह की महानता

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मेरे कहने का विषय ईश्वर-भक्ति है। ईश्वर-भक्ति के लिए पहले ईश्वर का स्वरूप जानना चाहिए। ईश्वर-स्वरूप को जाने बिना आप उसी तरह चलिएगा, जिस तरह किसी को निर्दिष्ट स्थान मालूम नहीं है और वह चलता हो। ईश्वर का स्वरूप इन्द्रिय-ज्ञान से परे है। इन्द्रिय-ज्ञान में जो आते हैं, वे किसी-न-किसी तरह नाशवान हैं—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

इन्द्रियों को जो कुछ प्रत्यक्ष है, सब माया है। दूसरी बात यह याद कीजिए कि अपने राजत्वकाल में श्रीराम ने प्रजा को बुलाकर अध्यात्म-ज्ञान की शिक्षा थी। श्रीराम के राज्य को लोग आज भी बहुत अच्छा कहते हैं। अति उत्तम राजनीति बनाकर प्रजा को सुखी करना ही श्रीराम का काम था। उन्होंने सोचा कि प्रजा इस संसार में तो सुखी है ही, शरीर छूटने के बाद भी ये सुखी रहें, दु:खी न हों, इसलिए प्रजा को बुलाकर उन्होंने शिक्षा दी थी। एक बात और हुई होगी कि श्रीराम तो राजनीतिज्ञ थे, राजनीतिज्ञ ही नहीं वे राजनीतिज्ञों के आचार्य थे। जो बातें तुलसीकृत रामायण या वाल्मीकि रामायण में अयोग्य जँचती हैं, हो सकता है, वे क्षेपक हों । श्रीराम ने सोचा होगा कि प्रजा को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि जिससे वह इस लोक और परलोक दोनों में सुखी रहें। लोग समझते हैं कि अर्थहीन बहुत दु:खी होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा कि—'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहिं।' लोग अर्थ के लालच के कारण ही चोरी, डकैती, वटमारी, बेइमानी, लूट आदि किया करते हैं।

'ज्ञान-सरोवर' में लिखा है कि महाराज युधिष्ठिर ब्राह्मणों को नित्य सोने की थाली में भोजन कराते थे। एक दिन एक ब्राह्मण एक थाली चुरा ले गए। खोज करने पर पता चला कि अमुक ब्राह्मण ने थाली चुराई है। चोर को दण्ड मिलना चाहिए। किंतु ब्राह्मणों के अदण्डणीय होने के कारण उन्हें दण्ड दिया जाय तो कैसे? युधिष्ठिर इस असमंजस में पड़े थे। इस न्याय के लिए भगवान

श्रीकृष्ण ने उन्हें राजा बलि के पास जाने की अनुमति दी। भगवान को साथ लेकर महाराज युधिष्ठिर राजा बलि के पास गए और उस ब्राह्मण के सोने की थाली चुराने की बात कही। राजा बलि बोले कि तुम्हारी प्रजा धनहीन है, इसलिए चोरी करती है, यह दोष तुम्हारा है। तुम अपनी प्रजा को पूरा धन नहीं दे सकते। तुम अपनी प्रजा को पूरा धन दो तो फिर कोई प्रजा चोरी क्यों करेगी? इस प्रकार आप धन देकर प्रजा को सुखी कर सकते हैं। राजा लोग ऐसा ही करते थे कि उनको पूरा धन देते थे, जिससे वह चोरी डकैती आदि नहीं करती थी। लोग झूठ बोलकर, धोखा देकर, ठगकर, किसी-न-किसी तरह पैसा खींच लेते हैं। यह सब तो आपलोग जानते ही हैं। मगर गैरवाजिब नहीं लेना चाहिए। यदि कबीर साहब के समान खरा निर्लोभी हो तो ठीक है। उनका एक दोहा सुनिए—

कबीर चाले हाट को, कहे न कोई पतियाय ।
पाँच टके का दोपटा, सात टके को जाय ।।

कबीर साहब कपड़े बिन-बिनकर बेचा करते थे। एक दिन वे एक चादर लेकर बाजार में बेचने गए और उस चादर का मूल्य उन्होंने पाँच रुपये बतलाए। ग्राहक उनसे तीन चार रुपये कहते थे। अंत में वे चादर लिए हुए घर लौट रहे थे। रास्ते में एक चतुर व्यक्ति से भेंट हो गई। उसने कबीर साहब से पूछा—'क्यों, चादर वापस ले जा रहे हैं?' कबीर साहब ने कहा—'हाँ, यह चादर पाँच रुपये की है, किंतु कोई पाँच रुपये देना नहीं चाहते।' चतुरजन ने कहा—'मुझे यह चादर दीजिए। मैं इसे बेचकर पाँच रुपये आपको दे दूँगा और इससे विशेष जो होगा, उसे मैं ले लूँगा।' कबीर साहब ने कहा—'भाई! मुझे तो पाँच ही रुपये चाहिए।' उस चादर को लेकर वह चतुर व्यक्ति बाजार गया और उसका मूल्य आठ रुपये सुनाने लगा। किसी ने सात रुपये में उस चादर को खरीद लिया। उस चतुरजन ने पाँच रुपये तो कबीर साहब को दिए और दो रुपये खुद रख लिए। इस तरह यदि कोई कबीर साहब के समान सब्रदार और संतोषी है तो उसका भी गुजर-बसर हो जाता है। और जनता की निगाह में वह प्रतिष्ठा का पात्र भी समझा जाता है। किंतु ऐसे आदमी कम होते हैं। लालची की आँख संसार-भर की दौलत से उसी तरह नहीं भरती, जिस तरह ओस से कुआँ नहीं भरता। अनैतिकता से धन कमाना ठीक नहीं है। चोर-डकैत तो पहले यहीं पर पीटे जाते हैं और कचहरी में सजा पाते हैं। यहाँ सांसारिक सुखों में ऐसी ही बात होती है। धन-अर्जन, सांसारिक प्रबंध और राजनीति के साथ आध्यात्मिकता और आध्यात्मिक ज्ञान वा रूहानियत (चैतन्यता) वा इल्मे रूहानी कर दो। जब एखलाक (शील) वा सदाचार ऊँचा होगा तब आत्मज्ञान में ऊँची गति यानी रूहानी तरक्की होगी। संसार में सदाचरण में बरतते हुए परलोक में भी ठीक-ठीक कुशल से रहा जाएगा। विषयी सदाचरण में बरतकर आत्मोन्नति-पथ में चल नहीं सकता। इसी से तुलसीकृत रामायण में श्रीराम का उपदेश है—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।
नरतन पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।।

एक बार रास्ते में जाते-जाते मुझको पंजवारा बाजार के कुछ सज्जनों ने कहा—'कुछ सुनाइए।' मैंने कहा—'समय नहीं है, थोड़े में सब सुन लो—राम राजा सकल प्रजा।' राम व्यक्त रूप में इस धरातल पर नहीं हैं, किंतु वे अव्यक्त रूप में हैं ही। राजा का वचन मानोगे तो सुखी रहोगे, नहीं तो दुखी रहोगे। वह वचन यह है—'एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदायी।।' स्वर्ग में भी सभी बराबर सुखी नहीं रहते, कोई अल्प और कोई विशेष सुखी रहते हैं। श्रीराम

कहते हैं, वहाँ भी सुख थोड़ा ही है और अंत में वह दुख देनेवाला है। श्रीराम प्रजा को विषय से विमुख करते हैं, विषय से दूसरी ओर ले जाते हैं। इल्मे (विद्या) रूहानी (चैतन्य) की ओर ले जाने के लिए उन्होंने नसीहत (शिक्षा) दी कि जो हवास (इन्द्रियाँ) में आने योग्य चीजें हैं, उनको छोड़ो। परवर दीगार को जानना चाहते हो तो हवास के इल्म (इन्द्रिय-ज्ञान) से आगे जाओ।

विषय कितने हैं? रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द; ये पाँच हैं। ये आँख से, कान से, त्वचा से, और जिभ्या से ग्रहण किए जाते हैं। विषय-सुख भोग में जो आराम मालूम होता है, उस आराम में रहना अच्छा नहीं। स्वर्ग (बहिस्त) में भी बेचैनी लगी रहती है, यही श्रीराम कहते हैं। वहाँ भी लड़ाइयाँ होती हैं। वहाँ और यहाँ में यही अंतर है कि वहाँ भोग-विलास की सामग्री अधिक है। इस शरीर के लिए तो यह कहा गया है कि—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाँचत जेही।।

—गोस्वामी तुलसीदास

श्रीराम ने कहा—विषय की ओर मत जाओ। इसका आशय क्या हुआ? निर्विषय की ओर जाओ। निर्विषय तत्त्व क्या है? जो हवास में नहीं आता, जो पंच विषयों से परे है। उस ओर चलने के लिए श्रीराम उपदेश देते हैं। इन्द्रियों की पकड़ में जो आवे वह माया है। 'अनविचार रमणीय महा संसार भयंकर भारी।' नहीं विचार करो तो संसार बहुत अच्छा है। यदि विचार करो तो यह संसार बहुत भयंकर है, तब क्या करो?—निर्विषय की ओर चलो। यदि कोई कहे, क्या निर्विषय की ओर चलना ही भक्ति है? मैं कहूँगा हाँ, निर्विषय की ओर चलना ही ईश्वर की ओर चलना है, यही ईश्वर की भक्ति है। दूसरे कहते हैं कि ईश्वर तुम्हारे पास हैं, फिर बुलाओ किसको और जाओगे किसके पास? तुलसी साहब के पास एक विश्वासी मुसलमान गए, कुछ जिज्ञासा करने के लिए। उनका नाम तकी था। तुलसी साहब ने उससे कहा—

सुन ऐ तकी न जाइयो जिनहार देखना।
अपने में आप जलवए दिलदार देखना।।

फिर उसका रास्ता बतलाया—

पुतली में तिल है तिल में भरा राजकुल का कुल।
इस परदये सियाह के जरा पार देखना।।

यदि काले परदे के पार में देखो तो क्या होगा? तो कहा—

चौदह तबक का हाल अयाँ हो तुझे जरूर।
गाफिल न हो ख्याल से हुशियार देखना।।

यहाँ के भक्तों से या दूसरे देशों के भक्तों से पूछो, सभी अंतर में चलने के लिए कहते हैं। कितने मुझसे झगड़ते हैं कि ध्रुव और प्रह्लाद को क्या इन आँखों से भगवान के दर्शन नहीं हुए? तो मैं कहूँगा कि तुलसीकृत रामायण में जो श्रीराम ने कहा है उसे देखिए—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

क्या यह झूठ है?

देवी, काली, राम, कृष्ण, शिव, आदि अनेक रूपों में लोग भगवान को मानते हैं? क्या उन अनेक रूपों में अनेक भगवान हैं? या केवल एक ही भगवान सब रूपों में हैं? रूप के दर्शन से केवल शरीर-रूप दर्शन हुआ, परंतु उन सब रूपों में जो एक ही हैं, उन आत्मरूप भगवान का दर्शन नहीं हुआ। किसी को चतुर्भुजी, किसी को दोभुजी का दर्शन हुआ। गोस्वामीजी को हनुमानजी सहायक थे। हनुमानजी से तुलसीदासजी ने विनय किया कि मुझे भगवान का दर्शन कराइए। वहीं का यह दोहा है—

चित्रकूट के घाट पर, भइ संतन की भीर।
तुलसि दास चंदन घिसे तिलक देत रघुवीर।।

तुलसीदासजी ने उन्हें तिलक लगाया, किंतु

फिर भी वे उन्हें पहचान नहीं सके। फिर घोड़े पर राजकुमार के रूप में दर्शन हुए, किंतु फिर भी पहचान नहीं सके। तुलसीदासजी से पूछिए, उनका अपना लिखा क्या है, सो पढ़िए। उनका अंतिम ग्रंथ विनयपत्रिका है। उसमें लिखा है कि—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो ।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल, परम सुगंध कहाँ ते आयो।।
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेंवार तृन छायो ।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।।
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुण, तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि, विषय बबूर बाग मन लायो।।
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम, मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय, कीजै नाथ उचित मन भायो।।

जबतक गोस्वामी तुलसीदासजी बाहर भटकते रहे, तबतक वे उसी तरह भटकते रहे जिस तरह मृगा कस्तूरी के लिए भटकता है। जैसे कोई प्यासाजन किसी तालाब पर जाता है, वहाँ पानी के ऊपर सेंवार (पानी में उगनेवाला एक प्रकार का घास) है, उस तृण को हटाए बिना ही पानी पीना चाहता है। आशय अपने अंदर में आवरण हैं, जबतक उन आवरणों को नहीं हटाया जाय, तबतक परमात्मा रूपी निर्मल जल को कोई नहीं पी सकता। आवरण क्या है? इसपर कहा—

मायाबस मति मन्द अभागी। हृदय जवनिका बहु विधि लागी।।
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं।।

काम क्रोध मद लोभरत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ पड़े तम कूप।।

जबतक अंधकार के कुँए से नहीं निकलो, अंदर के आवरणों का टूटना नहीं हो सकता। जबतक अनासक्त होकर घर में नहीं रहा जाएगा, तबतक ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते। इसलिए अंधकार के कुँए से अपने को निकालो। जबतक सदाचार का पूरी तौर से पालन नहीं किया जाय—कभी गिर जाय, कभी पालन करे—तबतक वह फल बहुत दूर है। यह तो गोस्वामी तुलसीदासजी का वचन हुआ। कबीर साहब और गुरु नानक साहब के लिए तो मुझसे पूछना ही क्या है? आमतौर से लोग समझते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजी केवल स्थूल उपासना में लगे थे और कबीर साहब तथा गुरु नानक साहब केवल निर्गुणवादी संत थे। आप उनके साहित्य को पढ़िए, केवल सुनी सुनाई बात से संतों के प्रति अश्रद्धा, अपने लिए बहुत हानिकारक है। सूरदासजी, तुलसीदासजी, कबीर साहब सभी अंदर की ओर ले जाते हैं। ईश्वर दर्शन इन्द्रियों से नहीं होता हैं उपनिषद् के वाक्यों में भी ईश्वर को आत्मगम्य बताया है—

आतम गम्य भजहिं जेहि संता।

इसी शरीर में जीवात्मा और परमात्मा है, फिर भेंट क्यों नहीं होती है? इसका कारण क्या है? माया और छाया का आवरण जो जीव पर पड़ा है,यह आवरण जबतक नहीं हटे, तबतक पहचान नहीं हो सकती। इस आवरण रूप का जहाँ तक पसार है, वहाँ तक यह किस पर आवरण है? क्या पूर्ण परमात्मा माया के आवरणों से आवृत हैं? नहीं, वह माया के पसारों को भरकर और कितना विशेष है कुछ पता नहीं। उसका अंशरूप ही ढका है, पूर्ण रूप नहीं। यह अंश टूटा हुआ नहीं, बल्कि महदाकाश का अंश मठाकाश। जैसे एक ही आकाश ऊपर से नीचे तक फैला हुआ है। यह आपके शरीर रूप आवरण के अंदर भी है। उसी तरह परमात्मा आपके अंदर है, किंतु आप उसका दर्शन नहीं कर सकते हैं; क्योंकि आप इन्द्रियों के द्वारा ही कुछ जानते हैं और आपकी इन्द्रियाँ स्थूल हैं। उन स्थूल इन्द्रियों से परमात्मा को कैसे पकड़

सकते हैं। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता। परमात्मा अनादि, अनंत, असीम है। जो पदार्थ जितना व्यापक होता है, वह उतना ही विशेष सूक्ष्म होता है। बर्फ, पानी और वाष्प की उपमा से बोध कीजिए। जो अनादि-अनंत तत्त्व है, वह सबसे विशेष सूक्ष्म है। जो सबसे विशेष सूक्ष्म होगा, वह सबमें घुस सकता है। उन सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थों को स्थूल हाथ से नहीं पकड़ सकते। इसलिए वेदों में आया है कि परमात्मा इन्द्रियातीत है। वह चेतन आत्मा के ज्ञान में आने योग्य है। वह पकड़ा क्यों नहीं जाता है? कबीर साहब ने कहा है—

सुरत फँसी संसार, में तातें पड़िगा दूर।
सुरत बाँधि सुस्थिर करो, आठो पहर हजूर।।

अपने को इन्द्रियों से और शरीरों से बिना छुड़ाए केवल बाहर-बाहर के भागने से परमात्मा पकड़ा नहीं जा सकता। जाग्रत में इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में फँसती है, स्वप्न में स्वयं अपने अंदर जाते हुए पाते हो कि मैं अब सोता हूँ। तन्द्रा में बाहर से कुछ अचेतपन होता जाता है, उस समय गला झुक जाता है, हाथ-पैर कमजोर होने लगते हैं, इस समय भीतर की ओर शक्ति सिमटती है। जिभ्या पर मिठाई रहने से भी मीठा मालूम नहीं होता। बहिर्मुख से अंतर्मुख होना बाहर के विषयों से छूटना होता है। इससे जानने में आता है कि बाहर से भीतर होने पर इन्द्रियों का विषयों से छूटना होता है। केवल स्थूल विषयों से ही नहीं, सूक्ष्म विषयों से भी छूटना होता है। इसी को कबीर साहब ने कहा—'भक्ति सतो गुर आनी।' सतगुरु की भक्ति दूसरी है। इसी भक्ति का उपदेश गुरु महाराज करते थे और मैंने जो सीखा है उसी को आपलोगों के सामने रखा। अंतर में प्रवेश करने के लिए आप मानस जप और मानस ध्यान करके दृष्टियोग और नादानुसंधान कीजिए। दृष्टियोग में विन्दुध्यान होता है। यह विन्दु सूक्ष्म है, इसको मन से गढ़ा (बनाया) नहीं जाता। विन्दु वह है, जिसका स्थान है, परिमाण नहीं। परिमाण-रहित सूक्ष्मतम पदार्थ को विन्दु कहते हैं। आपकी दृष्टि जहाँ सिमटकर रहेगी, वहीं विन्दु उत्पन्न होता है। जहाँ विन्दु है, वहीं नाद है।

विन्दु में तहँ नाद बोलै रैन दिवस सुहावनं।
—पलटू साहब

विन्दुपीठं विनिर्भिद्य नाद लिंगमुपस्थितम्।
—योगशिखोपनिषद्

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
—ध्यानविन्दूपनिषद्

मुसलमान भाइयों के लिए—

सुन लामकां पै पहुँच के तेरी पुकार है।
है आ रही सदा से सदा यार देखना।।
मिलना तो यार का नहीं मुश्किल मगर तकी।
दुशवार तो ये है कि है दुशवार देखना।।
—तुलसी साहब

इसमें दृष्टिसाधन पर जोर दिया गया है। फिर कहा—

तुलसी बिना करम किसी मुर्शिद रसीदा के।
राहे नजात दूर है उस पार देखना।।
—तुलसी साहब

दुर्लभो विषय त्यागो दुर्लभं तत्त्व दर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना।।
—वराहोपनिषद्

गुरु चाहिए, साधन की युक्ति चाहिए और इसके लिए प्रयास चाहिए। जो इसका अभ्यास करता है, वह भक्ति की चरम सीमा तक पहुँचता है।

फिर भी किन्हीं का कहना है कि भगवान को गुरु मानकर चलना बहुत उत्तम है। श्रीरामचरितमानस में भगवान श्रीराम ने परम भक्तिन साधिका शवरीजी के प्रति जो नवधा भक्ति का उपदेश दिया है, उसमें—'गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।' का

कथन करके अंत में शवरीजी को कहा है कि 'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।' इससे विदित होता है कि पुरुष और स्त्री दोनों को उपर्युक्त नवधा भक्ति की साधना करनी चाहिए। यह प्रसिद्ध है कि शवरीजी मातंग मुनि की शिष्या थीं। श्रीमीराबाई का यह शब्द है—

मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी।।
ज्यों हिय पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।।
रैन दिवस मोहि नींद न आवत, भावै अन्न न पानी।।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन विहानी।।
ऐसा वैद मिलै कोइ भेदी, देश विदेश पिछानी।।
तासों पीर कहौं तन केरी, फिर नहिं भरमौं खानी।।
खोजत फिरौं भेद वा घर की, कोइ न करत बखानी।।
रैदास संत मिले मोहि सतगुरु, दीना सुरत सहदानी।।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी।।
मीरा खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी।।

यह शब्द श्रीमीराबाईजी के गुरु का पता बताता है। सहजोबाई तथा दयाबाई के गुरु श्री चरणदासजी महाराज थे। उनकी वाणियों को पढ़कर देख लीजिए—

चरण दास गुरु सहजो केरे, नमो नमो बारम्बार। और-
चरण दास किरपा सूँ सहजो, भरम करम भयो छारा।। आदि

शिक्षा और दीक्षा सबको चाहिए, किन्तु कान फूँकना कोई दीक्षा नहीं है और न अध्यात्म-पथ में इसका कोई अर्थ है। भक्तिन सिस्टर निवेदिता श्री स्वामी विवेकानन्दजी की शिष्या थीं। श्रीसमर्थ राम-दासजी महाराज (क्षत्रपति श्रीशिवाजी राव के गुरु) की भी शिष्याएँ थी। भगवान बुद्ध और कबीर साहब आदि संतों की भी शिष्याएँ थी। जिससे विदित होता है कि स्त्रियों के वास्ते पति-सेवा और पातिव्रत-धर्म का पालन के सहित अध्यात्म-धर्म (मोक्ष धर्म) के पथ में योग्य गुरु से शिक्षा और दीक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता अनिवार्य रूप से है। तभी तो भक्तवर श्री जयदयाल गोयन्दका महाराज जी अपने परमार्थ पत्रावली में गुरु मंत्र जपने कहते हैं और पुरुषों तथा महिलाओं के समाज में भी बैठकर उन्हें शिक्षा देते हैं। जब भगवान श्रीराम स्त्री-पुरुष सभी के लिए गुरुसेवा की विधि त्रेतायुग के प्राचीनकाल में ही दे गए हैं, तब संतों का, स्त्रियों को शिक्षा-दीक्षा देकर गुरु बनाना भगवान के उपदेश के अनुकूल ही है और युक्तिसंगत भी है। यदि स्त्री के पति स्वयं ही—योगीवर भूपेन्द्रनाथ सान्याल के सदृश अध्यात्म पथ के पथिक हों तो स्त्री अपने पति के द्वारा ही वह पथ पा सकती है। उसको दूसरे गुरु की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जो विद्या और गुण जिनको हों, उनके द्वारा उनकी विद्या और गुण दूसरे को मिले यह पूर्ण संभव है। परन्तु इसके विरुद्ध अर्थात् जो विद्या और गुण जिनमें नहीं हो, वह विद्या और गुण उनके द्वारा किसी को मिले असंभव है। पत्नी को पति का गुण-स्वभाव, पवित्रता, अपवित्रता का ज्ञान भली भाँति अवश्य होता है; तदनुकूल वह अपनी श्रद्धा अवश्य रखेगी। इसके अतिरिक्त किसी दबाव से उसकी श्रद्धा अपने पति में हो, यह संभव नहीं जँचता। किसी भी अध्यात्म पथ के गुरु में पवित्रता, ज्ञान और कर्म के कारण ही उनमें श्रद्धा हो सकती है। नहीं तो—

गुरु सिष अंध बधिर कर लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई।।

— रामचरितमानस

गर्वित कार्य अकार्य नहिं, जानत चलत कुपन्थ ।
ऐसे गुरु कहँ त्यागिये, यही कहत शुभ ग्रंथ ।।

— महाभारत

ज्ञानान्मोक्षमवाप्नोति तस्माज्ज्ञानं परात्परम् ।
अतो यो ज्ञान दानेहि न क्षमस्तं त्यजेद् गुरुम् ।।

— बृहत्तन्त्रसार

ऐसे गुरु का संग सर्वथा अनुचित है।

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार ।
द्वार न पावै शब्द का, भटकै बारम्बार ।।
— कबीर साहब

कतिपय लोग श्रीमीराबाईजी को केवल मोटी भक्ति-उपासना की ही भक्तिन समझते हैं,परन्तु उनका जो शब्द पहले कहा गया है और इस दूसरे शब्द—

ऊँची अँटरिया लाल किवड़िया, निर्गुण सेज बिछी ।।
पंचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली ।
बाजूबंद कड़ूला सोहै, माँग सिन्दूर भरी ।।
सुमिरण थाल हाथ में लीन्हा, शोभा अधिक भली ।
सेज सुखमणाँ मीरा सोवै, शुभ है आज घड़ी ।।

से विदित होता है कि वह योग्य गुरु संत रविदासजी की कृपा से अंतर्मार्ग के योग संबंधी योग साधनाओं को भी करती थीं। अर्थात् वह सूक्ष्म उपासना में भी अपनी अच्छी गति रखती थी। यह नहीं कि वह केवल पति की ही उपासना किया करती थी।

अध्यात्म-पथ में पुरुष और स्त्री सबको बराबर अधिकार है। स्त्रियों में भी योग्यता विशेष की साधिकाएँ हुई हैं और अब भी जहाँ-तहाँ हैं। श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव को तांत्रिक शिक्षा-दीक्षा एक भैरवी ब्राह्मणी से मिली थी, यह प्रसिद्ध है। तंत्रशास्त्र में स्त्रियों के लिए पति के अतिरिक्त शुद्ध आचरणी, अध्यात्म-पथ के दाता योग्य गुरु से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने की विधि तो है ही और तुलसीकृत रामायण के अनुकूल श्रीराम का भी यही उपदेश है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज तो यहाँ तक कहते हैं कि—

बिन गुरु भवनिधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि शंकर सम होई।।

महारानी द्रौपदी के वस्त्रहरण के समय उनकी करुण पुकार पर, भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से, उनका वस्त्र बढ़ा था, लोगों में यह विख्यात है। इसी हेतु उन्हें भी बहुत लोग भक्तिन मानते हैं। महाभारत आदि पर्व के पढ़ने से विदित होता है कि पति हेतु उन्होंने कई जन्मों तक तपस्या की थी। एक जन्म के उनके तप के अवसर पर उनको धर्म, इन्द्र, पवन और युगल अश्विनी कुमार देवों के दर्शन हुए तथा उन्होंने पति रूप में पाँचों को मानस और मौन इच्छा से वरण किया था। उन पाँचों ने उनकी इच्छा पूर्ण करने का वरदान दिया था। पाण्डवों ने जब द्रौपदी के पिता द्रुपद राजा के सामने 'हम पाँचो भाई द्रौपदी से विवाह करेंगे',यह कहा था, तब राजा द्रुपद और उसके पुत्र धृष्टद्युम्न ने मिलकर इसका प्रतिवाद भी किया था, द्रौपदी ने भी इसका प्रतिवाद किया था, ऐसा महाभारत में कहीं भी लिखा नहीं है। महाभारत के वनपर्व में लिखा है कि अपने पाँचों पतियों और भगवान श्रीकृष्ण की उपस्थिति में, द्रौपदी ने अपने मन की सच्ची बात नहीं बतलाई, झूठ बात कह दी थी। जब अर्जुन ने उसे प्राणदण्ड देने की धमकी दी, तब उसने अपने दिल की सच्ची बातें कहीं थीं। वह अपने मन में वीर कर्ण को भी पति रूप में पा जाती, यह स्मरण करती रहती थी। इस गोपनीय विषय को जानकर वीरवर भीमसेन ने उसको बहुत डाँटा और उसकी बड़ी भर्त्सना भी की थी। महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व में लिखा है कि पाण्डवों के महाप्रस्थान के समय वह भी पाँचों भाई पाण्डवों के साथ-साथ चलती थी। वह उन सबके पीछे-पीछे चलती थी। उस पहाड़ी यात्रा में पहले द्रौपदी गिरकर परलोक सिधार गई। उस समय भीम ने युधिष्ठिर से पूछा कि यह इस तरह क्यों गिर गई? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि यद्यपि हम पाँचो भाई द्रौपदी के लिए समान थे, परंतु यह अर्जुन का पक्षपात बहुत करती थी, इसलिए वह इस तरह गिर गई। परलोक में उन्हें नरक की यातना देखनी पड़ी, फिर वह स्वर्ग की लक्ष्मी होकर विराजी।

द्रौपदी के विषय में उपर्युक्त बातों की जानकारी के बाद विद्वान एवं बुद्धिमान स्वयं विचारें कि द्रौपदी की पातिव्रत्य विषयक एवं परमात्म-भक्ति विषयक योग्यता उसमें कितनी और कैसी थी? तथा अन्य स्त्रियों को इसका अनुकरण करना चाहिए या नहीं? रामचरितमानस में श्रीअनुसूइया देवी ने श्रीसीताजी को पातिव्रत्य धर्म की शिक्षा इस प्रकार दी थी—

जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। वेद पुरान संत सब कहहीं।।
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।।
मध्यम पर पति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।।
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहई।।
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।

उपर्युक्त विवेचन के अनुकूल बुद्धिमान स्वयं ही विचार सकते हैं कि द्रौपदी अपने यथाकथित विव-रणानुकूल किस कोटि की नारी कही जा सकती है?

परंतु महाभक्तिन शवरी के लिए तुलसीकृत रामायण में लिखा है कि—'तजि योग पावक देह हरि पद लीन भई जहँ नहिं फिरे।' उपर्युक्त साधिकाओं के कथित कर्मों से लोग इनकी विशेषताओं को समझ सकते हैं और निर्णय कर सकते हैं कि भक्ति-पथ में स्त्रियों और पुरुषों को किस प्रकार चलना चाहिए? स्त्रियों के लिए जिस प्रकार पातिव्रत्य धर्म का पालन उनकी पवित्रता की श्रेष्ठता है, उसी तरह भगवान श्रीराम के सदृश्य एक स्त्रीव्रत का पालन करना पुरुष की भी पवित्रता की श्रेष्ठता है। परन्तु दोनों को सद्गुरु कर्णधार का आश्रय हो, अध्यात्म-पथ का पथिक बन, परमात्म-भक्ति का साधन कर, भव सिन्धु को पार करके अपना-अपना कल्याण बना लेना परम कर्तव्य है। यह कल्याण न केवल एक स्त्रीव्रत धारण से और न केवल पातिव्रत्य के पालन से मिल सकता है। इन व्रतियों के अनुसार अपने-अपने व्रतों के सहित कही गई रीति से परमात्म-भक्ति अवश्य करनी चाहिए। कोई-कोई परम ज्ञानवती विशेष साधिका बहुत से पुरुषों की पथप्रदर्शिका थीं। और अब भी हैं। उन पर उनके शिष्यगण धर्म-मातृभाव श्रद्धापूर्वक रखकर उनके आश्रित रहते हैं। उसी तरह पतिव्रता स्त्रियाँ भी अपने सद्गुरु पर धर्म-पिता का भाव रखकर उनके आश्रित रह परमात्म-भक्ति का साधन करती हैं।

धर्म पिता गुरु जानि जे दृढ़ता लावई। —चरणदासजी

जैसे किसी स्त्री के पिता, ज्येष्ठ भ्राता और श्वसुर उसके लिए पर पुरुष तो हैं ही, परंतु वे उसके लिए गुरुजन भी हैं। वैसे ही सद्गुरु भी उनके लिए गुरुजन ही हैं। पिता, ज्येष्ठ भ्राता और श्वसुर आदि के निकट संबंधी गुरुजनों से सम्भाषण और सदुपदेश आदि ग्रहण करने से, उनकी समयोचित सेवा से, स्त्रियों के सती-धर्मपालन में हानि नहीं होती। उसी तरह सद्गुरु से ज्ञान लाभ हेतु सम्भाषण से तथा उनकी समयोचित सेवा से स्त्रियों के सती धर्म-पालन में हानि नहीं होती। पाण्डवों की माता कुन्ती देवी ने दुर्वासा मुनि की अधिक दिनों तक बड़ी सेवा की थी। दुर्वासा मुनिजी ने कुन्ती देवीजी को उस मंत्र की दीक्षा दी थी, जिससे वह देवताओं को अपने पास बुला सकती थी। किंतु दुषित बुद्धिवालों के लिए तो पवित्र और उच्च संबंध में भी नीच भाव उपजे और तदनुकूल वे कर्म करें, इसमें आश्चर्य ही क्या है? गुरुडम जैसा किसी को सदोष झलकता है, उपदेशक डम और प्रचारकडम भी वैसे ही सदोष झलकना चाहिए। परंतु सद्शिक्षा और सद्दीक्षा का प्रचार अनिवार्य है, नहीं तो संसार की बड़ी हानि होगी। इसी तरह असद् शिक्षा और असद् दीक्षा के प्रचार का भी पूर्ण निवारण अत्यन्त वांछनीय है। नहीं तो इससे भी संसार की बड़ी हानि होगी। इसके लिए सदाचार का पालन करो। सदाचार पालन के लिए पंच पापों—झूठ, चोरी,

नशा, हिंसा और व्यभिचार से बचो। हिंसा दो प्रकार की होती है—वार्य और अनिवार्य। स्वाँस लेने, खेती करने और अपना राज्य बचाने के लिए युद्ध करने में जो हिंसा होती है, वह अनिवार्य हिंसा है। गुरु गोविन्द सिंह—गुरु भी और हथियार रखनेवाले भी थे। वे उदार भी बहुत थे। एक बार युद्ध के समय उन्होंने एक सिक्ख सिपाही से कहा कि जो सिपाही युद्ध करते करते गिर जाय, उसे पानी पिलाया करो। सिक्ख ने उस आज्ञा को शिरोधार्य कर गिर हुए सिपाहियों को पानी पिलाना शुरू किया। यहाँ तक कि वह शत्रु पक्ष के गिरे सिपाहियों को भी पानी पिलाता था। किसी दूसरे सिपाही ने कहा कि ऐ सिक्ख! यह क्या कर रहा है? दुश्मनों को पानी क्यों पिलाता है? सिक्ख ने उत्तर दिया—'मैं अपना काम कर रहा हूँ, तू अपना काम कर।' सिपाही ने गुरु गोविन्द सिंहजी से जाकर यह बात कही और कहा कि पानी पीकर दुश्मन स्वस्थ होकर फिर हमसे युद्ध करने लगता है। गुरु गोविन्द सिंहजी ने उस सिक्ख को बुलाकर पूछा—'क्या तुम ठीक ही दुश्मनों के गिरे सिपाहियों को भी पानी पिलाते हो?' उन्होंने कहा—'जी हुजूर!' गुरु गोविन्द सिंहजी ने कहा—'ऐसा क्यों करते हो?' सिपाही ने कहा—'हुजूर ने ही तो कहा कि गिरे सिपाहियों को पानी पिलाया करो। हुजूर! जबतक वह लड़ता है, तबतक वह मेरा दुश्मन है, किंतु जब वह गिर गया, तब वह दुश्मन कहाँ रहा?' गुरु गोविन्द सिंहजी ने उसकी पीठ ठोकते हुए कहा—'तू पानी पिलाया कर, तेरा विचार बड़ा पवित्र है।'

एक बार सिक्ख सिपाहीगण दुश्मनों की कुछ स्त्रियों को कैद कर ले आए। गुरु गोविन्द सिंहजी को जब यह मालूम हुआ तो बहुत बिगड़े और बोले—'तुमको किसने सिखलाया कि दुश्मनों की स्त्रियों को कैद करो।' सिक्खों ने कहा—'दुश्मन तो ऐसा करते हैं!' गुरु गोविन्द सिंहजी ने कहा—'दुश्मन यदि पाप करे, तो हम भी पाप करें? जाओ, इन सब स्त्रियों को अच्छी तरह उनके घर पहुँचा दो।' और फिर उन्होंने सख्त हिदायत कर दी कि आइन्दे कभी ऐसा काम मत करना। सिक्खों ने उन स्त्रियों को उनके घर पहुँचा दिया। इस प्रकार इनके संबंध में और ऐसी कितनी ही घटनाएँ हैं। गुरु गोविन्द सिंहजी गुरु नानकदेवजी की गद्दी के दशवें गुरु थे। शरण में आए की रक्षा करनी, स्त्रियों पर हाथ नहीं उठाना, कैद स्त्रियों को छुड़ाना आदि इनके काम थे। हाँ, तो मैं हिंसा के विषय में कह रहा था। संतमत नामर्द नहीं बनाता। चोर-डकैत आवे उसपर वार करो, दुश्मन चढ़ आवे तो उससे युद्ध करो। यह अनिवार्य हिंसा है। किंतु जिह्वा के लालच के लिए मांस खाओ, निशाना ठीक करने के लिए चिड़िया मारो, यह ठीक नहीं। प्रत्येक भोजन अपना-अपना गुण रखता है। बकरे, पशु, पक्षी आदि सभी की देहों के गुण अलग-अलग होते हैं। जहाँ मनुष्य-शरीर को देवताओं के शरीर से भी विशेष कहा गया है, वहाँ निम्न श्रेणी के जीव-जन्तुओं के मांसों को अपने अंदर डालना अच्छा नहीं। निम्न श्रेणियों के जीव-जन्तुओं का मांस खाने से तुम्हारी बुद्धि दूषित हो जाएगी, उससे भजन नहीं बन सकता। मांस-मछली खाने से बुद्धि तामसी हो जाएगी, इसलिए इसका त्याग करो। यदि कहो कि मांस, मछली खाने की आज्ञा नहीं देते और युद्ध करने के लिए आज्ञा देते हो, यह कैसी बात? तो इसके लिए रामायण की कथा प्रसिद्ध है। रावण के दल में सभी 'महिष खाय अरु मदिरा पाना' वाले थे और श्रीराम के दल में शाक-सब्जी और पत्ते खानेवाले, दोनों में लड़ाई होने पर शाक-सब्जी खानेवाले ही जीत गए। हाल में महात्मा गाँधीजी

और अंग्रेज की उपमा से भी जानिए। मस्तिष्क का बल देखिए—निरामिषाहारी महात्मा गाँधीजी जीत गए। और मांस-मछली खानेवाले अंग्रेज हार गए। कितने गुरु ढीले होते हैं, वे कहते हैं कि मांस-मछली खाना धीरे-धीरे आप ही छोड़ देंगे। तो मैं कहता हूँ—'भाई! जो मांस-मछली खाना चाहो तो उनके पास जाओ। किंतु मेरी रुचि इसमें नहीं है और न मेरे गुरु महाराज की ही आज्ञा है कि मांस-मछली खाया जाय। मांस-मछली और सभी प्रकार के मदों को छोड़ो।

मद तो बहुतक भाँति का ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय।।
विद्या मद और गुनहु मद, राजमद्द उनमद्द।
इतने मद को रद्द करै, तब पावै अनहद्द।।
—कबीर साहब

भक्ति भी इस प्रकार का संयम होना चाहिए। यह तो निषेध हुआ, अब विधि वचन सुनो; क्योंकि—

विधि निषेध मय कलिमल हरनी। करम कथा रविनंदिनी बरनी।।

विधि वचन है—एक ईश्वर पर विश्वास करो, उसी का पूरा भरोसा करो, जिसके स्वरूप का वर्णन किया गया। ईश्वर की प्राप्ति अपने अंदर में होगी, इसका दृढ़ निश्चय रखो। त्रिकाल संध्या करो, ध्यान करो, सत्संग करो, गुरुजनों की सेवा करो। अनासक्त भाव से रहकर अपने कर्तव्यों का पालन करो। स्त्री, पुत्र, भाई, भतीजे, परिवार आदि के लिए अपना हृदय खीरा बनाकर रखो। अंदर सबसे हटे रहो, बाहर सबसे मिले रहो। नहीं हटोगे, तो भी हटना ही पड़ेगा, जबरदस्ती हटना पड़ेगा। यदि पहले से नहीं हटे रहोगे तो बहुत दुःख होगा। इसलिए संसार में अनासक्त होकर रहते हुए कर्तव्य पालन और परमात्म-भजन करो तो दुःख नहीं होगा। n

यह प्रवचन अखिल भारतीय विशेषाधिवेशन, सिकलीगढ़ धरहरा पूर्णियाँ में दिनांक २६.१२.१९५५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१३१. संस्कृति का आरम्भ माता के पेट से

प्यारे विद्वानवृन्द तथा छात्रवृन्द!

आपके महाविद्यालय में आध्यात्मिक और सांस्कृतिक परिषद् भी है, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। आज आप उसका वार्षिक महोत्सव मना रहे हैं, जिसके उद्घाटन का भार आपने मेरे ऊपर दिया है। किंतु मैं एक ऐसा आदमी हूँ, जो एकपक्षीय है। एक ही विषय को जानता हूँ। मैं नहीं जानता हूँ कि उद्घाटन किस तरह किया जाय। मैं आध्यात्मिक प्रचार करता हूँ। मुझे विश्वास हो गया है कि बिना आध्यात्मिकता के राजनीति में शान्ति नहीं आ सकती। संतों ने जगत कल्याणार्थ आध्यात्मिकता के प्रचार का काम किया और आज भी वही बात चल रही है। इसका तो प्रचार होता ही है। सांस्कृतिक कार्य मनुष्य को सुधारकर उसके उदात्त गुणों को विकसित करता है। हमलोग सुधरे हुए कम हैं। कभी देखने में आता है कि सुधरे हुए नहीं हैं। इसलिए हमको सीखना होगा कि सुधरें कैसे? अच्छे आचरण से चलें, यही सुधार है। यदि अच्छे आचरण से नहीं चलें तो सुधार नहीं है। अच्छा सुधार बिना अच्छे संग और अच्छी विद्या के नहीं हो सकता। अच्छे आचरण से संसार में रहें, इसके लिए विद्या की बड़ी आवश्यकता है। साथ ही यह भी देखें कि हमारे यहाँ जो महान हुए, उनका आचरण कैसा था? उनके आचरण के मुताबिक

चलें तो हमारा कल्याण होगा।

एक साधुवेशी हैं, वे मिड्ल स्कूल तक जाकर आसन सिखलाते हैं। एक जगह वे गए और जाकर विद्यार्थियों से पूछा कि प्रातःकाल उठकर आप क्या करते हैं? सबों ने उत्तर में बताया कि वे सुबह में उठकर क्या करते हैं। किंतु प्रश्नकर्ता किसी के उत्तर से संतुष्ट नहीं हुए। यही प्रश्न उन्होंने अध्यापकों से भी पूछा और उनके उत्तर भी संन्यासी को ठीक नहीं जँचे। उन्होंने कहा कि आपलोग तुलसीकृत रामायण नहीं पढ़ते हैं, इसलिए आपलोग नहीं जानते हैं कि प्रातःकाल क्या करना चाहिए।

प्रातकाल उठिकै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।

यह! यह नहीं कि एक दिन, बल्कि प्रत्येक दिन। हमारे देश में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम आदर्श राजा हुए। उनके नमूने पर हम चलें तो हमारा सुधार हो। यह देखिए कि उपर्युक्त आचरण अपने में है कि नहीं। भगवान बुद्ध का वचन है—'जो बूढ़ों को प्रणाम और आदर करते हैं, उनकी चार चीजें बढ़ेंगी—आयु, सुख, सुन्दरता और बल।' आप पूछेंगे कि भगवान बुद्ध ने यों ही कहा या होना भी संभव है, तो कहूँगा—होना संभव है। जिनको आप प्रणाम कीजिएगा, उनकी शुभेच्छा आपके प्रति होगी, यह संभव ही है। आज के वैज्ञानिक विद्वान भी कहते हैं कि मनोबल में भी कुछ बल है। शुभेच्छा में भी मनोबल है। जिसके लिए शुभेच्छा की गई, उसकी भलाई हो, पूर्णतया संभव है। भगवान बुद्ध महान व्यक्ति थे। वे विशेष अवतारों में गिने गए हैं। उनका वचन मिथ्या नहीं है। हमारा सुधार माता की गोद से ही होना चाहिए अथवा माता के पेट से ही सुसंस्कारित करने का प्रयत्न होना चाहिए। इसका अर्थ है—माता-पिता स्वयं समुचितरूपेण सुसंस्कृत हों। आपको आश्चर्य होगा कि बच्चा पेट में भी वेद पढ़ता है।

पराशर मुनि शक्ति मुनि के पुत्र थे और शक्ति मुनि वशिष्ठ के पुत्र थे। वशिष्ठ के सौ पुत्र थे, वे मारे गए थे। उन्होंने देखा कि एक पतोहू के गर्भ में बालक है, इसलिए उसकी किसी तरह सुरक्षा की जाय। उसको सुरक्षित स्थान में रखने के के लिए वे कहीं ले जा रहे थे। वशिष्ठ आगे और पतोहू पीछे थी। शक्ति मुनि की तरह कण्ठ स्वर से वह पेट का बच्चा वेद-ऋचा गाता था। वशिष्ठ ने कहा—'पुत्री! यह कौन गा रहा है?' पतोहू बोली कि वह आपका पोता है, जो मेरे गर्भ में है। आपको आश्चर्य होगा कि यह कैसे संभव है! किंतु परमात्मा की सृष्टि में क्या नहीं हो सकता! एक विद्वान आज कहते हैं कि सब मैंने बनाया। मैंने कहा कि संसार-भण्डार से कुछ लिए बिना एक घास या एक चुटकी मिट्टी बना दीजिए, हो नहीं सकता। ईश्वर की लीला अद्भुत है। परमात्मा की आश्चर्यमयी लीला है। कौन चीज कैसे बनी, कोई ठीक-ठीक कह नहीं सकता। प्रह्लाद अपनी माता के पेट में था। नारद ने जो ज्ञान प्रह्लाद की माता को सुनाया, वह ज्ञान प्रह्लाद को मिल गया और गर्भ से ही ज्ञान-ध्यान लेता आया। चक्रव्यूह का भेदन करना कोई नहीं जानता था, एक अर्जुन जानता था; किंतु वह दूसरी जगह युद्ध करने के लिए चला गया था। जिस समय अभिमन्यु पेट में था, उसी समय उसकी माता ने अर्जुन से जिज्ञासा की थी कि चक्रव्यूह में कैसे प्रवेश किया जाता है? उन्होंने वर्णन किया और उस विद्या को अभिमन्यु ने गर्भ में ही सीख लिया। संस्कृति का आरम्भ माता के पेट से होता है। इसके लिए चाहिए कि माता-पिता दोनों सुसंस्कृत हों और जन्म होने पर माता-पिता उसको अच्छे आचरण से रखें। घर का आचरण अच्छा हो। पाठशाला में जब वह जाय तो अध्यापक के उत्तम आचरण को देखकर बच्चे भी

अच्छे आचरण सीख सकें।

मुहम्मद साहब के पास एक बुढ़िया अपने पोते को ले गई, जिसको सर्दी हुई थी। मुहम्मद साहब बोले—'इसे कल ले आना।' दूसरे दिन बुढ़िया फिर अपने पोते को लेकर मुहम्मद साहब के पास गई। मुहम्मद साहब बोले—'आज जाओ, इसे कल ले आना।' बुढ़िया फिर मुहम्मद साहब के पास आई। इस प्रकार कई दिनों तक लगातार उस बुढ़िया को मुहम्मद साहब बुलाते रहे और बुढ़िया आती रही। अन्त में मुहम्मद साहब बोले कि बच्चे को शक्कर नहीं खिलाओ, सर्दी छूट जाएगी। बुढ़िया भिन्नाई और बोली—'आपने पहले ही दिन यह बात क्यों नहीं कही, जो आज लगातार कई दिनों तक हैरान कर लेने के बाद आपने यह बात कही है। मुहम्मद साहब बोले—मुझे भी सर्दी लगी थी और मैं भी शक्कर खाता था। किंतु शक्कर छोड़ देने पर मेरी सर्दी छूट गई। यदि मैं शक्कर खाता और दूसरों को शिक्षा देता कि शक्कर मत खाओ तो इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मैंने शक्कर खाना छोड़ दिया है, तब आज मैंने तुमसे कहा है।

इसी तरह हमारे आचार्यगण, अध्यापकगण अपने में अच्छे आचरण लावें तो लड़के भी अच्छे आचरण से रहेंगे। उत्तम संस्कृति के लिए बड़ों का आदर और उनके सामने नम्र अवश्य रहें और अपने से छोटे को प्यार करें। यह शीलता है। शीलता कहते हैं सत्यता और नम्रता से मिल-जुलकर जो व्यवहार होता है। दिखलावे की बात नहीं हो, जो हो, सच्चाई की बात हो। तब हम अच्छे होंगे और हमारी संस्कृति अच्छी होगी। कितना अच्छा है कि—

प्रातकाल उठिकै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।

यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो आपने भारतीय आर्य के संस्कारों को छोड़ दिया है, यदि करते हैं तो भारतीय आर्य हैं। यों तो कई देश के लोग अपने को आर्य कहते हैं, किंतु हम भारतीय आर्य हैं। यदि हम नम्र नहीं होते हैं तो हम अपनी सुसंस्कृति छोड़ते हैं। आजकल विद्यालयों और महाविद्यालयों में लोग ऐसे बरतते हैं, जिससे अन्य लोग कुछ कहने लग गए हैं। लोगों को विद्यार्थी और अध्यापक दोनों के पक्ष में संशय हो गया है। जितने विद्यालय और महाविद्यालय हैं, उनमें—नम्रता तोड़कर व्यवहार करते प्राय: देखा जाता है। ये ऐसे संस्थान हैं, जहाँ से हम उत्तम संस्कार लेकर सुसंस्कृत होते हैं। यदि हम यहाँ भी नहीं सीखें तो फिर कहाँ जाकर सीखेंगे? यहाँ से शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद आप जहाँ कहीं भी रहें, वहाँ इतनी उत्तमता से रहें कि देश का कल्याण हो। हमको गौरव है कि हम परराज्य में नहीं रहते, अपने राज्य में हैं। इसमें उत्तमता तभी आवेगी, जब हम सुधरे हों। इसके लिए शील धारण कीजिए। शील निभाना है, तो आवश्यक यह है कि जिस काम के लिए जो व्रत है, उसमें मजबूत रहो। आर्य संस्कार में तो विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। आचार्य गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे। यहाँ ब्रह्मचर्य व्रत पर बहुत ख्याल रखना चाहिए। जहाँ ब्रह्मचर्य व्रत पर ख्याल नहीं है, वहाँ ओजपूर्ण तेज नहीं हो सकता, विद्या-ग्रहण की शक्ति पूर्णतया विकसित नहीं हो सकती। आपके महाविद्यालय में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परिषद् का भी स्थान है, यह बहुत अच्छा है। सभी विद्यालयों में इस परिषद् का रहना अच्छा है। अभी आपलोगों ने सूरदासजी की वाणी सुनी। इसकी पुष्टि वेद, उपनिषद् और भगवद्‌गीता के वाक्यों में भी है। किंतु साक्षात्कार के बिना फिर भी संशय रह जाता है। ऐसा कहकर मैं ग्रंथों की निन्दा नहीं करता हूँ! ग्रंथों से ही साक्षात्कार नहीं होता, साधन द्वारा साक्षात्कार होता है और साक्षात्कार होने पर ही

संशय छूटता है। सूरदासजी की वाणी को फिर दुहराता हूँ। वे कहते हैं—

अपुनपौ आपुन ही में पायो ।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो ।।
ज्यों कुरंग नाभि कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो ।
फिर चेत्यो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तनु छायो ।।
राज कुँआर कण्ठे मणि भूषण, भ्रम भयो कह्यो गँवायो ।
दियो बताइ और सत जन तब, तनु को पाप नशायो ।।
सपने माहिं नारि को भ्रम भयो, बालक कहुँ हिरायो ।
जागि लख्यो ज्यों को त्यों ही है, ना कहूँ गयो न आयो ।।
सूरदास समुझै की यह गति, मन ही मन मुसुकायो ।
कहि न जाय या सुख की महिमा, ज्यों गूँगो गुर खायो ।।

पहले श्रवण-मनन अवश्य चाहिए, इसके बाद फिर अभ्यास भी करना चाहिए। सुनिए, समझिए और अपने अंदर में चलिए। जबतक अपने अंदर नहीं चले, तबतक आध्यात्मिकता पूरी हो नहीं सकती। आत्मा की तरफ लोग दो तरह से चलते हैं। एक आत्म उपासी बनकर अपनी खोज में आप जाते हैं। यह ज्ञान का पथ है। दूसरा भक्ति-मार्गी बनकर; वहाँ भक्त-भक्ति-भगवन्त तीनों यानी त्रिपुटी रहती है। कबीर साहब भक्त बनते हैं, भगवान को अपना मित्र और प्रभु बनाते हैं और उसको पाना अपने अंदर में बताते हैं और पानेवाला प्रेम का पागल होता है। इसलिए—

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या ।
रहें आजाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या ।।
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर ब दर फिरते ।
हमारा यार है हममें, हमन को इन्तजारी क्या ।।
खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकता है ।
हमन गुरुनाम साँचा है, हमन दुनियाँ से यारी क्या ।।
न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़े पियारे से ।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या।।
कबीरा इश्क का माता, दूई को दूर कर दिल से ।
जो चलना राह नाजूक है, हमन सिर बोझ भारी क्या।।

होशियारी नहीं तो क्या, बेवकूफी में रहने को कहा है? धूर्त्त भी होशियार होता है, जिसको अंग्रेजी में कनिंग (Cunning) कहते हैं। धूर्तता छोड़कर कबीर साहब होशियार थे। आजकल बहुधा धूर्तता की होशियारी है। ऐसी होशियारी को छोड़कर शुद्ध और सीधा रास्ता पकड़ो और उसमें होशियार रहो। 'रहैं आजाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या।' दुनिया से यारी मत करो तो क्या वैर करो? नहीं। आसक्ति छोड़कर रहो, अपनी सच्ची कमाई करो और अपना जीवन-यापन करो।

कबीर चाले हाट को, कहे न कोइ पतियाय ।
पाँच टके का दोपटा, सात टके को जाय ।।

यह कथा प्रसिद्ध है। कबीर साहब इतने संतुष्ट थे। वे थोड़े में गुजर करनेवाले थे और आध्यात्मिकता के शिखर पर चढ़े हुए थे। यह संस्कार, यह संस्कृति अपने देश की है। वे आजाद क्यों थे? इसलिए कि सांसारिक पदार्थों की आसक्ति उन्हें नहीं थी। ऐसा नहीं कि घर में खर्च-वर्च नहीं देते—चलाते थे या कि घर से अलग रहते थे अकर्मी में कर्मी और कर्मी में अकर्मी रहो। कर्म करो किंतु उसके फल में आसक्ति मत रखो, यह कर्म में अकर्म है और चुपचाप बैठा है, बाहर में कुछ नहीं करता है और भीतर में कर्म करता है, यह अकर्म में कर्म है। यह पाखण्ड है। किंतु बाहर में कुछ नहीं करे और भीतर से ईश्वर-भजन करे तो यह उत्तम है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने कहा है कि यदि कोई माँ-बाप को मारता है और दूसरा कोई देखता है, कुछ बोलता नहीं है तो मारनेवाला तो विकर्म (निषिद्ध कर्म) करता ही है, साथ-ही-साथ वह देखनेवाला अकर्मी होते हुए भी उसके दुष्ट कर्म का भागी बनता है।

विकर्म का अर्थ निषिद्ध कर्म है। महात्मा

गांधीजी तथा रामानुजाचार्यजी ने भी बताया है। इससे विपरीत अर्थ कोई करे, तो मानने योग्य नहीं है। आजादी—स्वतंत्रता तभी पूरी होती है, जब विषय-भोगों से हृदय को छुड़ाकर रखा जाता है। विषय-भोगों में आसक्त रहने से हानि ही होती है। आप सांसारिक कामों को भी करें, किंतु अनासक्त होकर, तो यही हमारे यहाँ की सांस्कृतिक शिक्षा है।

परमात्मा जीवात्मा से कभी नहीं बिछुड़ता। कबीर साहब को इसका पूरा ज्ञान था। इसलिए वे कहते हैं—'**न पल बिछुड़ें पिया हमसे, न हम बिछुड़ें पियारे से।**'

अंत में उन्होंने कहा कि ईश्वर और अपने में से दूई का भाव मिटाओ। यह केवल विचार द्वारा नहीं होता है, प्रत्यक्षता से होता है। 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।' समष्टि रूप में परमात्मा और व्यष्टि रूप में जीवात्मा है। दोनों मिले ही रहते, किंतु जीव को यह ज्ञान नहीं होता। जब वह ध्यान करता है, तब उसकी प्रत्यक्षता होती है और द्वैत भाव मिटता है।

आपकी परिषद् सदा कायम रहे और आध्यात्मिक पुस्तकालय भी हो। यों तो आपके महाविद्यालय में पुस्तकालय होगा ही। पुस्तकों के द्वारा तो ज्ञानार्जन होगा ही, साथ ही इसको अपने मस्तिष्क में भी रखें। हमारे प्यारे विद्यार्थीगण भी अध्यात्म-ज्ञान को अपने मस्तिष्क में रखें।

आपस में जो पदार्थ उलटे-उलटे होते हैं तो उनके गुण भी उलटे-उलटे होते हैं। अपरिमित तत्त्व एक ही हो सकता है, दो नहीं। जहाँ दो ससीम मिलेंगे, वहीं दोनों ससीम हो जाएँगे। यदि कहें कि एक दूसरे में व्यापक है तो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि यदि वह जिसमें व्यापक है, उसके कण-कण में भी व्यापक है, तब कहेंगे कि परमाणु भी उसी तत्त्व से निर्मित है। यदि आप कहें कि परमाणु छोड़कर व्यापक है, तब कहेंगे कि वहाँ पर असीम व्यापक कहाँ हुआ। वहीं ससीम हो जाएगा। अद्वैतवाद पर भी ऐसा प्रश्न है कि जिसका उत्तर चुप्पी है। श्रीराम और वशिष्ठजी का संवाद 'योगवाशिष्ठ' में पढ़कर देखिए। वहाँ श्रीराम प्रश्न करते हैं तो वशिष्ठजी कुछ उत्तर नहीं देते हैं, चुप रहते हैं। श्रीराम पूछते हैं कि गुरुदेव! आप रुष्ट तो नहीं हो गए हैं? वशिष्ठजी कहते हैं—इसका उत्तर ही चुप है। यथार्थतः व्यवहार में अद्वैत कभी सिद्ध नहीं हो सकता, सिद्धान्त में अद्वैत रहता है। शरीर-ज्ञान में अद्वैत नहीं होता, आत्म-ज्ञान में अद्वैत होता है। सिद्धान्त सुनाने के लिए अद्वैत होता है।

ससीम जगत मे रहते हुए किसी को कल्याण नहीं है। इसका उलटा असीम है। उसका गुण कल्याणमय होना चाहिए। इसलिए ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। ईश्वर की भक्ति करने की क्या आवश्यकता है?

एक कहानी है कि राजा जंगल शिकार खेलने गया। उन्होंने एक मुनि बालक को देखा, जो बहुत सुन्दर था। राजा ने उस बालक से कहा कि तुम मेरे साथ चलो। तुम वहाँ अच्छा-अच्छा खाना, अच्छा पहनना और अच्छे महल मे रहना। वह मुनि बालक बड़ा ज्ञानी था। उसने कहा—मुझे अच्छे-अच्छे खाना खिलाओ, तुम मत खाओ, मुझे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाओ तुम मत पहनो और मैं सोऊँगा, तुम जगकर मेरी पहरा करो। राजा ने कहा—ऐसा नहीं होगा। मैं जैसा खाना खाऊँगा, तुमको भी वैसा खिलाऊँगा, मैं सोऊँगा तो मेरी रक्षा पहरेदार करेगा, वैसे ही तुम सोओगे तो तुम्हारी रक्षा पहरेदार करेगा। मुनि बालक ने कहा—'मुझे ऐसा मालिक नहीं चाहिए। मेरा मालिक ऐसा है कि मुझे खिलाता है, स्वयं बिना खाए रहता है। मुझे कपड़ा पहनाता है, स्वयं कुछ नहीं पहनता, मैं सोता हूँ और वह जगकर पहरा करता है। ऐसे मालिक को छोड़कर तुम्हारे साथ में क्यों जाऊँ।'

ईश्वर को न कुछ खाने की, न पहनने की, न कोई ऐसी चीज की आवश्यकता है। तब उसकी सेवा कैसे कीजिएगा? तब कहेंगे कि भगवान ने कहा है कि भक्तों के जल, पत्र, फूल को मैं ग्रहण करता हूँ, क्या इसको आप नहीं मानते? मैं मानता हूँ, किंतु वह चीज उन्हीं की है और उन्हीं को देते हैं, जिसकी उनको कोई आवश्यकता नहीं है। हम गौ पालन करते हैं, घी, दूध, मालपूआ भगवान को चढ़ाते हैं और कहते हैं कि हम चढ़ाते हैं। सब किया हुआ भगवान का है। उपर्युक्त बाह्य पूजा का सार यह है कि उसके द्वारा भक्त अपना भाव भगवान को अर्पण करता है। इसके अतिरिक्त और प्रकार की भक्ति है, भक्त को भगवन्त के दर्शन की जरूरत है, कुछ लेना-देना नहीं। भक्त पूजा करता है, ध्यान करता है और उसको पहचानता है, तो कहता है कि भगवान सदा से हमको अपनाए हुए हैं। किंतु भक्त जब नहीं भी जानता है, तब भी भगवान उसको अपनाए हुए रहते हैं, भगवान से बाहर कोई जा कहाँ सकता है? गंगा-सेवन करने में लोग गंगाजल पान करते हैं, गंगा किनारे में टहलते हैं और कहते हैं कि गंगा-सेवन करते हैं। औषधि-सेवन करते हैं और रोगमुक्त होते हैं। औषधि और गंगा के सेवन की जरूरत आपको ही है, किंतु उनको आपके सेवन की जरूरत नहीं। उसी तरह ईश्वर को अपनी भक्ति करवाने की कोई आवश्यकता नहीं, भक्त अपने लिए करता है। ईश्वर इन्द्रियगम्य नहीं, आत्मगम्य है। इसलिए ऐसा यत्न हो कि इन्द्रियों से छूटना हो सके। इन्द्रियों से छूटने के लिए यत्न करते हुए जो अंतर-अंतर चलता है, वह ईश्वर की भक्ति करता है। जैसे कोई गंगा-स्नान के लिए जैसे-जैसे पैर आगे बढ़ाता है, वैसे-वैसे गंगा की भक्ति होती है। गंगा किनारे पहुँचकर गंगाजी का दर्शन कर, उसके वायु मण्डल में रह उसका जल पान कर, उसमें स्नान करके गंगाजी की पूरी सेवा होती है, उसी तरह ईश्वर की ओर चलते-चलते ईश्वर का दर्शन करके उसके प्रभाव और उसमें रहकर भक्ति पूरी होती है। रामचरितमानस में नवधा भक्ति बतलाई गयी है—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।

वर्णित भक्तियों में मन लगाना ही प्रधान है। मन नहीं लगाने से भक्ति नहीं होती है। पाँचवीं भक्ति तक सरल है, उसके बाद छठी भक्ति है—

छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।

दमशील कहते हैं इन्द्रिय-निग्रह के स्वभाववाले को। जानना चाहिए कि इन्द्रियाँ चलायमान कैसे होती हैं? जाग्रत में विषयों की ओर इन्द्रियाँ चलती हैं, स्वप्न में बाह्य प्रत्यक्ष विषयों की ओर नहीं चलतीं। मन की धारा इन्द्रियों तक रहने से इन्द्रियाँ विषयों की ओर होती हैं। स्वप्न में बाह्य इन्द्रियों से मन की धारा सिमटती है। तब इन्द्रियाँ बाह्य विषयों में नहीं जातीं। इन्द्रियों में मन की धारा जाती है। इसका केन्द्र कहाँ है? आज्ञाचक्र में हैं। आज्ञाचक्र के नीचे पाँच चक्र और हैं। आज्ञाचक्र छठा चक्र है। इसके मध्य में शिवनेत्र है। शिवनेत्र में मन का बासा है। ब्रह्मोपनिषद् में लिखा है—

नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत् ।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्निसंस्थितम् ।।

अर्थात् जीव का वासा जाग्रत में नेत्र में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीयावस्था में मस्तक में होता है।

यदि आँख में वासा नहीं रहे तो हम कुछ नहीं देख सकते। आँख से देखते भी हैं और इन्द्रियों से काम भी करते हैं। तन्द्रावस्था में शक्ति

भीतर में सिमटती है और धीरे-धीरे स्वप्न में चली जाती है। बाहर की इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं। स्वप्न में कभी-कभी मुँह से भी बोल देते हैं, किंतु उसका ज्ञान आपको नहीं होता। स्वर आप बोल सकते हैं, किंतु व्यंजन बिना स्वर के नहीं बोले जा सकते। कण्ठ स्वर का स्थान है। इसलिए स्वप्न में कण्ठ में रहते हैं। उसके बाद सुषुप्ति में हृदय में चले जाते हैं, वहाँ स्वर नहीं है, व्यंजन है। इसलिए वहाँ कुछ बोल नहीं सकते। यहाँ द्वादश दल कमल का होना बताया जाता है। कण्ठ में षोडस दल कमल है। एक-एक अक्षर के स्थान को कमल का एक-एक दल कहते हैं। जाग्रत में आँख में, स्वप्न में कण्ठ में और सुषुप्ति में हृदय में वासा होता है। तुरीय में मूर्द्धा में वासा होता है।

इन्द्रियों को काबू में लाने के लिए आपको क्या करना चाहिए? आँख से नीचे रोज उतरते हैं, किंतु इन्द्रियाँ काबू नहीं होतीं। इसलिए इसके उलटे अर्थात् आँख के ऊपर जाइए। ख्याल से आँख के ऊपर जाना नहीं होगा। इसके लिए युक्ति है। युक्ति से अपने को आज्ञाचक्र में स्थिर रखिए। जब आप गुरु के द्वारा बतायी गयी युक्ति से विन्दुविशेष पर दृष्टिधारों को समेट लेंगे, तब मन का पूरा सिमटाव हो जाएगा। जब मन का पूरा सिमटाव हो जाएगा तो अनिवार्य रूप से उसकी ऊर्ध्वगति होगी। ऊपर होने से आप मूर्द्धा में होंगे। तब आपको बाह्य इन्द्रियों के ज्ञान से छुट्टी मिलेगी। जैसे स्थूल शरीर में रहते हुए आप बाहर संसार के स्थूल जगत पर विचरते हैं, उसी तरह पिण्डस्थ सूक्ष्म शरीर में रहकर आप सूक्ष्म जगत में विचरिएगा। यह है ब्रह्माण्ड में प्रवेश करना। इसका विशेष अभ्यास करने पर इन्द्रियों पर काबू होगा। आप तो अंतर में रहेंगे, बाहर की इन्द्रियाँ निश्चेष्ट रहेंगी। इसी को कहा है कि अपने अंदर में स्थिर होने पर गति होती है। 'बैठे ने रास्ता काटा, चलते ने बाट न पायी।' यही छठी भक्ति है। यह 'दम' का साधन है। योगशास्त्र में 'दम' और 'शम' का बहुत महत्त्व है। योगशास्त्र के असली पदार्थ ये दो ही हैं। 'दम' के साधन में मन और इन्द्रियों का साधन संग-संग होता है और 'शम' के साधन में केवल मन का। अपने को नयनाकाश के तल पर दृष्टि के प्रयोग से स्थिर करना होगा। दृष्टि के साथ-साथ इन्द्रियों की सभी धारें मिली-जुली हैं। जैसे दोनों हाथों से किसी चीज को पकड़ने से समूचे शरीर का बल उस ओर फिर जाता है, उसी तरह दोनों दृष्टियाँ जहाँ दृढ़तापूर्वक स्थिर होकर रहेंगी, समूचे शरीर की चेतनधारा उधर उलट और सिमट जाएगी। मेसमेराइजर लोग दृष्टि का प्रभाव डालकर काम करते हैं। अजगर साँप दृष्टि से दृष्टि लगाकर ही खींचता है। बिजली गिरते देखने से शरीर की चेतना-शक्ति खिंच जाती है और वह मर जाता है। इसलिए दृष्टि का साधन अच्छी तरह होना चाहिए।

सातवीं भक्ति के लिए आंतरिक नाद का अभ्यास करो। वह ब्रह्मध्वनि है। वहाँ केवल मन ही लगता है और जाता है। बाहरी इन्द्रियाँ न लगती हैं और न जाती हैं। नाद साधन में बड़ी शान्ति आती है और चंचलता दूर होती है।

नास्ति नादात्परो मंत्रो न देवः स्वात्मनः परः।
नानुसंधेः परा पूजा न हि तृप्तेः परं सुखम्।।

अर्थात् नाद से बढ़कर कोई मंत्र नहीं है, अपनी आत्मा से बढ़कर कोई देवता नहीं है, (नाद वा ब्रह्म की) अनुसन्धि (अन्वेषण वा खोज) से बढ़कर कोई पूजा नहीं है तथा तृप्ति से बढ़कर कोई सुख नहीं है—**'न नाद सदृशो लयः।'** —**शिव संहिता**

नादविन्दूपनिषद् में है—

मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।

नादोऽन्तरंग सारंग बन्धने वागुरायते।
अन्तरंग समुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा।।

अर्थात् नाद मदान्ध हाथीरूप चित्त को, जो विषयों की आनंदवाटिका में विचरण करता है, रोकने के लिए तीव्र अंकुश का काम करता है। मृगरूपी चित्त को बाँधने के लिए यह (नाद) जाल का काम करता है। समुद्र तरंग रूपी चित्त के लिए यह (नाद) तट का काम करता है।

नाद की बड़ी तारीफ है। संतों ने नाद-साधन पर बड़ा जोर दिया है, किंतु नाद-साधन तब किया जाता है, जब भीतर में प्रवेश करने का अभ्यास कुछ-न-कुछ हो। नाद-साधन को शब्द-साधन भी कहते हैं। इसमें केवल वृत्ति लगाकर रहते हैं, यही 'शम' का साधन है। कितने कहते हैं कि नवधा भक्ति में 'शम' नहीं है, 'सम' है। 'सम' का अर्थ 'समता' होता है। बिना 'शम' साधन के किए समता नहीं हो सकती है। समत्व को योग कहते हैं। समत्व समाधि में प्राप्त होता है, गीता में कहा है। जहाँ मनोनिग्रह नहीं है, वहाँ समत्व कैसे हो सकता है। नादानुसन्धान से मन का पूरा सिमटाव होगा। इतना सिमटाव होगा कि मन, मन ही नहीं रहेगा, केवल निर्मल सुरत रहेगी। वही उस नाद को सुनेगी। उस शब्द को पकड़ने से या उससे पकड़ा जाने पर वह उस ओर खिंच जाएगा। जैसे लोहा, जो चुम्बक से पकड़ा जाता है, चुम्बक के केन्द्र में खिंच जाता है। चुम्बक से लोहे को छुड़ाया भी जा सकता है, किंतु उस नाद से चेतन आत्मा के पकड़े जाने पर उसको कोई छुड़ा नहीं सकता। वज्राघात होने पर भी नहीं छूट सकता। इसीलिए कहा है—

सोवत-जागत ऊठत-बैठत, टुक विहीन नहिं तारा।
झिन-झिन जंतर निशि दिन बाजै, जम जालिम पचिहारा।।

यही भक्ति है। उसके बाद आठवीं और नवमी भक्ति तो उसके गुण हो जाते हैं। साधन तो नादानुसंधान तक है। निर्गुण नाम-भजन से ही वहाँ तक पहुँचा जाता है। मुँह, कान और मन सगुण है, इनसे निर्गुण नाद ग्रहण नहीं हो सकता। पहले सगुण नाम को जपते हैं, फिर निर्गुण नाद को ग्रहण करते हैं। आप जप कीजिए, पूजा कीजिए, किंतु मन उसी ओर रहे। पूजा-पाठ मन को एकओर करने के लिए है। बाहरी पूजा, जप भी ऐसी चीज नहीं है कि आध्यात्मिकता में उसकी कोई आवश्यकता नहीं। जप, प्रार्थना, स्तुति, प्रेयर (Prayer) सब कुछ कीजिए, मन की एकाग्रता के लिए कीजिए। मन की एकाग्रता के लिए प्राणायाम की भी उपादेयता मानी जाती है और यह बिना प्राणायाम के भी हो सकती है। प्राणायाम में कुछ विघ्न भी है, उसको छोड़कर केवल ध्यान कीजिए तो कोई हानि नहीं। कबीर साहब ने कहा है—

पासहिं बसत हजूर तू चढ़त खजूर है।

संस्कृति अच्छी होनी चाहिए। अच्छी संस्कृति के लिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करो।

प्यारे विद्यार्थियो! विद्या सीखो, पास या परीक्षोत्तीर्ण होना क्या है? जो विद्या पढ़ेगा, पास उसका गुलाम है। कितने लोग साधु के पास जाते हैं कि पास करा दो। यदि आपकी योग्यता पास की नहीं है, तो साधु भी तो इन्साफ करता है, वह कैसे आपको पास करावेगा। इसलिए मन से पढ़िए, अच्छे मन से पढ़िए। आपके अच्छे मकसद पूरे हों, यही मैं चाहता हूँ। n

यह प्रवचन वैशाली जिलान्तर्गत श्रीराजनारायण महाविद्यालय, हाजीपुर में दिनांक १.१०.१९५६ ई० को उद्घाटन भाषण के रूप में, प्रातःकालीन सत्संग के अवसर पर हुआ था।

१३२. दो विद्याएँ– शब्दब्रह्म और परब्रह्म

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपलोगों को अब विदित हो चुका है कि इस सत्संग में संतों की वाणियों का बिल्कुल सहारा है। उन वाणियों से यह निचोड़ निकलता है कि मनुष्य को ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। ईश्वर की भक्ति के लिए तीन बातों की बड़ी आवश्यकता होती है। स्तुति, प्रार्थना और उपासना। अपने देश में तीनों बातों के लिए एक ही शब्द नहीं है, तीनों को तीन तरह से कहते हैं। अवश्य ही पश्चिमी लोग तीनों के लिए एक ही शब्द प्रेयर कह देते हैं। प्रेयर को हम प्रार्थना में रखते हैं। ईश्वर की महानता और उनका प्रभुत्व बड़ा है, ये स्तुति के द्वारा विदित होते हैं। मनुष्य स्वभाव से ही कुछ-न-कुछ माँग रखता है। संतों ने कहा–वह माँग ईश्वर के सामने रखो। परंतु यह भी ख्याल रखो कि उस महान प्रभु के सामने कौन-सी माँग अच्छी होगी। इस संबंध में कबीर साहब ने एक शब्द में कहा है–

ऐसी दिवानी दुनियाँ भक्ति भाव नहिं बूझै जी।।
कोई आवै तो बेटा मांगै, यही गुसाईं दीजै जी।।
कोई आवै दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।।
कोई आवै तो दौलत मांगै, भेंट रुपैया लीजै जी।।
कोई करावै व्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी।।
साँचे का कोई गाहक नाहीं, झूठे जक्त पतीजै जी।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजै जी।।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं–

जो सुख सुरपुर-नरक गेह बन, आवत बिनहिं बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये।।

इन चीजों के लिए प्रार्थना अल्पज्ञता से ही की जाती है। ज्ञान बढ़ने पर तो गुरु नानक की वाणी में–

वसुधा सपत दीप है सागर, कढ़ि कंचनु काढ़ि धरीजै।
मेरे ठाकुर के जन इनहूँ न बाछहि, हरि माँगहि हरि रसु दीजै।।

जिस माँग से सब प्रश्न समाप्त हो जाय, ऐसी माँग माँगो। ऐसा नहीं कि एक माँग पूरी हुई, फिर दूसरी की आवश्यकता हुई। माँगो यह कि प्रभु ऐसी कृपा करो कि सिमटाव हो और तुम्हारी ओर चल पड़ें। स्वरूप की प्रत्यक्षता, मुझे दो। यह सब माँगों का अंत है। यह सबसे उत्तम माँग है। इस माँग के बाद और कुछ बाकी नहीं रहता। ईश्वर की स्तुति से उसमें श्रद्धा-विश्वास उपजता है। श्रद्धा से प्रीति होती है और प्रीति से भक्ति होती है। बिना प्रीति के भक्ति नहीं होती है। द्रौपदी ने प्रार्थना की कि मेरा वस्त्र बढ़े। वस्त्र बढ़ गया, ऐसी कथा है। इतना बढ़ा कि बलवान राजकुमार दुःशासन खींचते-खींचते थक गया, किंतु वस्त्र कम नहीं हुआ। इतने पर भी दुःख से पिण्ड छूटा नहीं, तुरंत ही जंगल जाना ही पड़ा और वहाँ बड़ी बेइज्जती हुई। युद्ध में उनके पाँचों पुत्र मारे गए, भारी कष्ट आ गया। एक लाभ हुआ और फिर हानि हुई। इस प्रकार हानि-लाभ होते ही रहते हैं। सूरदासजी ने कहा–

ताते सेइये यदुराई।
सम्पति विपति विपति सों सम्पति देह धरे को यहै सुभाई।।
तरुवर फूलै फलै परिहरै अपने कालहिं पाई।
सरवर नीर भरै पुनि उमड़ै सूखे खेह उड़ाई।।
द्वितीय चन्द्र बाढ़त ही बाढ़े घटत घटत घटि जाई।
सूरदास सम्पदा आपदा जिनि कोऊ पतिआई।।

सम्पत्ति-विपत्ति का ऐसा स्वभाव ही है। इन

दोनों में से एक भी स्थिर रहनेवाला नहीं है। ईश्वर की प्राप्ति से—बहुत सुख हुआ, फिर मिट गया—ऐसा नहीं होता। प्रार्थना ऐसी होनी चाहिए कि जिससे ईश्वर मिल जाय।

परंतु स्तुति करने से ही काम समाप्त नहीं होता। मिलने के लिए कोशिश करो। जैसे बच्चा माता की गोद में जाने के लिए उठता भी है और बाँह भी पसारता है, उसी तरह तुम भी उठो और अपना बल भी करो, यदि अपना बल नहीं है तो परमात्मा बल देगा। बाँह उठाने के लिए नाम-भजन है। नाम-भजन में वर्णात्मक शब्द का ज्ञान पहले सबको होता है। इसलिए मुँह से और मन से कहकर नाम-भजन होना चाहिए। किंतु एकाग्रता हो। गिनती में पाँच हजार बार हो जाय, गिनती का ख्याल रहे और एकाग्रता नहीं हो तो जप ठीक नहीं।

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दह दिसि फिरै, यह जो सुमिरन नाहिं।।

बल्कि—

तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय।।

मन में स्थिरता आवे, एकाग्र मन से जप हो। जिस शब्द का जप होता है, वह ईश्वर का गुण प्रकट करता है। गुण बखान करनेवाला शब्द है। जैसे 'राम' कहा, तो इसका अर्थ हुआ सर्वव्यापी—कहीं से हीन नहीं—सबमें रमण करनेवाला अथवा योगी जिसमें रमण करते हैं, वह राम है। इससे ईश्वर का गुण प्रकट होता है। जिसका गुण प्रकट होता है, उस ओर मन लगता है। उस ओर लोभ होता है कि वह गुण मुझमें हो अथवा उस गुण से मुझको लाभ हो। जिसकी ओर किसी को होना हो। उसके विषय में वह विशेष गुण सुने तो वह उस ओर हो जाएगा। कौरवों की इच्छा हुई कि पाण्डवों को किसी तरह काशी भेजा जाय। इसलिए जब कभी पाण्डव लोग उनके निकट आते, खास करके जब युधिष्ठिर उन लोगों (कौरवों) के पास जाते तो वे लोग काशी की प्रशंसा करने लगते। काशी के विषय में विशेष सुनते-सुनते युधिष्ठिर की इच्छा काशी जाने की हो गई और वे काशी चले गए। इसका आशय यह कि किसी ओर होने के लिए उस ओर की अच्छी बातें विशेष सुनिए, उस ओर मन झुक जाएगा। नाम रटते-रटते उसका अर्थ भी मालूम हो तो उस ओर मन झुकेगा। जपते-जपते ईश्वर दर्शन देते हैं, ऐसा लोग कहते हैं। यह भी अविश्वास करने योग्य नहीं, किंतु दर्शन में अंतर है। जपते-जपते ध्रुव को दर्शन हुआ। जंगल में पाण्डवों को बारम्बार भगवान के दर्शन हुए उनके स्मरण से। एक बार दुर्वासा मुनि साठ हजार शिष्यों के साथ उस जंगल में पाण्डवों के पास पहुँचे और उनसे बोले कि हमलोगों को कुछ भोजन कराओ। युधिष्ठिर बोले—बहुत अच्छा महाराज! किंतु आपलोगों को जो कुछ नित्य नैमित्तिक क्रिया-कर्म आदि करने का हो तो सो आपलोग कर आवें। सभी अपने-अपने क्रिया-कर्म करने के निमित्त नदी किनारे गए। इधर पाण्डवों को चिन्ता हुई कि वे मुनि लोग जब स्नानादि क्रिया-कर्म करके यहाँ आवेंगे, तो उन्हें भोजन क्या कराया जाएगा? क्योंकि पास में तो भोजन की कुछ सामग्री है ही नहीं। और यदि उन लोगों को भोजन नहीं करा सकूँगा, तो दुर्वासा मुनि शाप दे देंगे। इस डर के मारे पाण्डव लोग चिन्तित होकर भगवान श्रीकृष्ण की प्रार्थना करने लगे। भगवान वहाँ आ गए और युधिष्ठिर द्वारा दुर्वासा विषयक सब समाचार जानकर भगवान ने अपनी कुछ ऐसी लीला की जिससे वे लोग लौटकर फिर युधिष्ठिर के पास न आ सके। इस प्रकार इस संकट से भगवान ने पाण्डवों को मुक्त कर दिया। इस प्रकार की और बातें तो बारम्बार हुईं, किंतु

ऐसी कौन बात बाकी रही कि अर्जुन को उपदेश किया गया कि यह करो और वह करो। मैं कहता हूँ कि इस दर्शन से—संसार के अंदर के जो-जो काम उनमें—एक काम बनता है, तो दूसरा नहीं बनता है। यह परमात्म-दर्शन नहीं है, मायिक दर्शन है। क्षेत्र का दर्शन होता है, क्षेत्रज्ञ का नहीं। शरीर कहीं भी हो, चाहे यहाँ मृतलोक में, चाहे विष्णुधाम में, चाहे शिवधाम में, कोई पवित्र से पवित्र, सुन्दर-से-सुन्दर और बलवान-से-बलवान शरीरधारी हों, वहाँ उनको किसी प्रकार का कोई दु:ख न हो, किंतु ऐसी बात नहीं। यह तो लोक का बड़ा विचित्र वर्णन है, श्रीराधाजी का वर्णन बहुत विशेष है। गर्गसंहिता पढ़कर देखिए। वहाँ भी शापा-शापी होता है। श्रीराधाजी से कृष्ण के मित्र श्रीदामाजी को शाप हुए। श्रीदामाजी राक्षस हो गए। उनका कंस से युद्ध हुआ, दोनों में से कोई नहीं हारे, अंत में दोनों में मित्रता हो गई। कंस की आज्ञा पाकर श्रीदामा (जो कि राक्षस वेश में थे) भगवान श्रीकृष्ण को मारने चले। अंत में भगवान श्रीकृष्ण के हाथों से उस शरीर से उनकी मुक्ति हुई। नारदजी भगवान के यहाँ जाते हैं और उनको विशेष भ्रम उत्पन्न होता है। नारदजी भगवान को शाप भी देते हैं। भृगु, अज्ञानवश भगवान की छाती में लात भी मारते हैं। जय-विजय को बैकुण्ठ में शाप मिलता है। इसलिए जहाँ देश है, वहाँ काल है, जहाँ देश-काल है, वहाँ कुछ-न-कुछ उपद्रव होगा ही। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

सब धामों में, सभी लोकों में, सभी आपदाएँ ऐसे नाश नहीं होतीं। परमात्मा के दर्शन से ही इनका नाश होगा। श्रीराम या श्रीकृष्ण के क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ—दोनों का दर्शन हो तो सब काम ठीक हो जाय। इसमें सत्य को कोई आँच नहीं। श्रीमाताजी के क्षेत्र का और उनके अंदर क्षेत्रज्ञ का भी दर्शन हो। संतलोग इसी प्रकार का दर्शन करने कहते हैं। किंतु केवल वर्णात्मक नाम के जप से क्षेत्रज्ञ का दर्शन नहीं होगा। नाम जप से नामी के प्रति श्रद्धा होती है। और भजन करने में श्रद्धालु भक्त आगे बढ़ता है। भगवान के क्षेत्र रूप का दर्शन भी बड़े भाग्य से मिलता है और उनके क्षेत्रज्ञ-स्वरूप का दर्शन हो तो काम ही खतम हो जाएगा। जिस ईश्वर को सर्वव्यापी कहते हैं, वह वर्णात्मक शब्द में ही व्यापक हो और ध्वन्यात्मक में नहीं, यह कोई बात नहीं। शब्द केवल वर्णात्मक ही नहीं—ध्वन्यात्मक भी है। विद्वान जानते हैं कि शब्द दो तरह के होते हैं—सार्थक और निरर्थक। निरर्थक का अर्थ बेकार नहीं, अर्थरहित है। यह है ध्वन्यात्मक शब्द, और इसमें कितना गुण है कि गाते-गाते रोग छूटता है और चिराग भी जलता है। शंकराचार्य ने कहा है—'मन तो भेरी, मृदंग और शंख आदि के आघातजन्य नादों में भी एक क्षण के लिए मग्न हो जाता है, फिर इस मधुवत् मधुर अखण्डित और स्वच्छ अनाहत नाद की तो बात ही क्या है?' (प्रबोध सुधाकर) उन्होंने योगतारावलि में नादानुसंधान की स्तुति की है—

नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महेतत्त्वपदंलयानाम्।
भवत्प्रसादात् पवनेन साकं विलीयते विष्णु पदे मनो मे।।

अर्थात् हे नादनुसंधान! आपको नमस्कार है, आप परमपद में स्थित कराते हैं, आप ही के प्रसाद से मेरा प्राणवायु और मन; ये दोनों विष्णु के परमपद में लय हो जाएँगे।

ध्वन्यात्मक शब्द सुर है। श्रीमद्भागवत में तीन प्रकार के शब्दों का वर्णन है—प्राणमय, इन्द्रियमय और मनोमय। चेतन के संचार में जो ध्वनि हो वह प्राणमय शब्द है। मुँह और मन से वर्णात्मक नाम

को जपो और प्राणमय शब्द जो ईश्वर का नाम है, वह जपने का नहीं है, उसमें सुरत लगाने का है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी इसका वर्णन निर्गुण राम-नाम कहकर वर्णन किया है—

बन्दउँ रामनाम रघुवर को। हेतु कृषाणु भानु हिमकर को।।
विधि हरि हर मय वेद प्रान सो। अगुण अनूपम गुण निधान सो।।

जो वर्णात्मक शब्द है, वह त्रैगुणमयी है। क्योंकि इस कान से उसको सुनते हैं, मुँह से बोलते हैं। ध्वन्यात्मक अनाहत प्रणवनाद को सगुण कान से नहीं सुन सकते और न सगुण मुँह से बोल सकते हैं। वह निर्गुण है। नाम विषय में गोस्वामी तुलसीदासजी ने और भी कहा है—

श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक, वर्णात्मक विधि तीन।
त्रिविध शब्द अनुभव अगम, तुलसी कहहिं प्रवीन।।
भेद जाहि विधि नाम महँ, बिन गुरु जान न कोय।
तुलसी कहहिं विनीत वर, जो विरंचि शिव होय।।
—तुलसी सतसई

गुरु नानक साहब कहते हैं—

सुनि मन भूले बावरे गुरु की चरणी लागु।
हरि जपि नाम धिआइ तू जम डरपै दुख भागु।।

यह ब्रह्मध्वनि सम्प्रज्ञात समाधि में सुनी जाती है। संत भक्त का वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुण शब्द ब्रह्मैक पर ब्रह्मज्ञानी।

वह निर्गुण शब्द ब्रह्म के परे के स्वरूप को जाननेवाला होता है। यह शब्द ब्रह्म क्या है? 'अक्षरं परमोनादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते' है। यह निर्गुण है, यह ब्रह्म से प्रकट होता है। इसी के होने से त्रैगुणमयी प्रकृति का निर्माण होता है। इस नाद के बारे में उपनिषद् में ऐसा भी वर्णन है कि—

द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्द ब्रह्म परं च यत्।
शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।

अर्थात् दो विद्याएँ समझनी चाहिए, एक तो शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। शब्दब्रह्म में जो निपुण हो जाता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।

वह निर्गुण नाद है, यही अगुण शब्द है। इसका किसी संत ने कुछ कम और किसी ने कुछ विशेष वर्णन किया है।

गोस्वामी तुलसीदासजी और सूरदासजी को लोग केवल स्थूल सगुण उपासक मानते हैं और गुरु नानक साहब और कबीर साहब को निर्गुण उपासक। बात यह है कि गोस्वामी तुलसीदासजी और सूरदासजी ने सगुण का वर्णन विशेष किया और निर्गुण का कम। और गुरु नानक साहब और कबीर साहब ने निर्गुण का विशेष और सगुण का कम वर्णन किया है। साहित्यिक विद्वानों से मेरा निवेदन है कि वे संतों के पारिभाषिक शब्दों को और उनके साधनों को भी जानें, केवल शब्दार्थ के बल पर संतों की वाणी का अर्थ ठीक-ठीक नहीं लगता। उनकी योगविद्या को जानिए और साधन कीजिए, तब अर्थ ठीक-ठीक लगेगा। n

यह प्रवचन मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत श्रीराजनारायण महाविद्यालय, हाजीपुर में दिनांक १.१०.१९५६ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१३३. चेतन की धारा ब्रह्माण्ड से पिण्ड की ओर

प्यारे धर्मानुरागी सज्जनवृन्द!

मैं आपलोगों को संतमत के उपदेश तथा उसकी हितचिन्तना, जो सब लोगों के वास्ते है—की बातें कहूँगा। संतगण कह गए हैं कि मनुष्यों को अपने कल्याण के लिए कर्म करना चाहिए। लोग ऐहिक सुखों में अपना कल्याण खोजते हैं। इन सुखों में कल्याण नहीं पा सकते। इसलिए कि ऐहिक सुख क्षणभंगुर एवं दुःखपरिणामी है। सबसे

विशेष बात यह है कि ईश्वर को जानें, विश्वास करें, स्वरूप को जानें और उस तक पहुँचने की कोशिश करें, इसी में कल्याण होगा। इतना ही नहीं कि सांसारिक कल्याण होगा, बल्कि ईश्वर की ओर चलने से आप इहलोक और परलोक; दोनों में सुखी रहेंगे।

भक्ति-साधन से मन शान्त होता है। मन शान्त नहीं तो सुख नहीं। जो ईश्वर का भक्त होता है, उसका मन शांत होता है। सबको ईश्वर की भक्ति में लगना चाहिए। साधन-भजन में मन को रमा देना चाहिए। ईश्वर-स्वरूप निर्णय के बिना जो कोई ईश्वर-भक्ति में चलते हैं, उनको ठीक पता नहीं रहता कि ठीक चलते हैं या नहीं? जो ईश्वर-स्वरूप को जानते हैं, वे ठीक-ठीक चलते हैं। इसलिए ईश्वर-स्वरूप को जानना चाहिए। कितने ईश्वर-स्वरूप की स्थिति में ही संदेह करने लगते हैं। संत लोग कहते हैं कि—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

—गोस्वामी तुलसीदास

कबीर साहब ने कहा कि—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य ।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा ।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना ।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै ।।
जाहि रूप अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं ।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा ।।

गुरु नानकदेवजी महाराज कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा ।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा ।।
साचे सचिआर बिटहु कुरबाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु ।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी ।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई ।।
जंत उपाइ कालु सिरिजंता बसगति जुगति सबाई।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई ।।
सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी ।।

तात्पर्य यह कि ईश्वर-स्वरूप को बताते हुए संतगण कहते हैं कि वह बुद्धि के परे हैं, इन्द्रियों के परे हैं, स्वरूपतः अपार, असीम हैं—उनकी भक्ति करो। एक असीम तत्त्व की स्थिति है, यह बुद्धि को ग्रहण होने की बात है। यह केवल श्रद्धा से ही मानें—सो नहीं। श्रद्धा से मान लेना भली बात है, लेकिन बुद्धि से विचारने पर भी एक असीम अनंत तत्त्व की स्थिति सिद्ध होती है। यदि एक अनादि, अनंत, असीम की स्थिति नहीं मानें तो सभी सादि, सान्त और ससीम होंगे। बुद्धि को यह कबूल नहीं होता। जब सान्त है तो उसकी सीमा जहाँ समाप्त होती है, उसके परे क्या है? जबतक सब ससीमों के पार एक असीम-अनंत नहीं कहते हैं, तबतक बुद्धि को संतोष नहीं होता। संतों ने एक असीम-अनंत तत्त्व को ही परमात्मा कहकर पुकारा है। जो अनंत-अपार है, वह अपरम्पार शक्तियुक्त भी है। वह सर्वव्यापक है। इसमें सन्देह नहीं। सबसे विशेष व्यापक होने के कारण वह सबसे विशेष सूक्ष्म है। सूक्ष्म कहने से छोटा टुकड़ा नहीं समझना चाहिए। बल्कि आकाशवत् विस्तृत और सूक्ष्म।

आकाश कहने से आकाश ही नहीं समझना चाहिए, वह आकाश से भी अधिक सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म को स्थूल इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जा सकता। जो यंत्र जैसा होता है, उससे उसी तरह के तत्त्व का ग्रहण होता है। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता। परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और इन्द्रियाँ अत्यन्त स्थूल हैं। इनसे उसका (परमात्मा का) ग्रहण नहीं हो सकता। इन्द्रियों से जो ग्रहण किया जाता है, वह माया है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

—गोस्वामी तुलसीदास

माया परमात्मा का स्वरूप नहीं है। इस तरह जो परमात्मा इन्द्रियों से ग्रहण होने योग्य नहीं है, वह मन-बुद्धि से भी ग्रहण नहीं हो सकता है। तब बड़ी कठिनाई होती है कि उसकी भक्ति कैसे की जाय? जिनकी आस्था ईश्वर में नहीं है, वे यदि बता दें कि एक अनादि-अनन्त तत्त्व की स्थिति नहीं है, तो उनका कहना ठीक है, लेकिन एक अनादि-असीम के बिना बुद्धि को संतोष नहीं होता। यदि कहो कि असीम-अनन्त तत्त्व है, ठीक है, लेकिन उसको ईश्वर क्यों मानें? तो जो अनादि, अनंत, असीम है, उसके अंदर सब-के-सब हैं। उसकी शक्ति के बाहर कोई जा नहीं सकता। जिसके वश में रहा जाय उसको ईश्वर—परमात्मा कहने में गलती है? यदि कहा जाय कि ईश्वर है ही तो उसकी भक्ति करने से क्या लाभ? तो हमलोग सदा ससीम, सादि, सांत में रहते हैं। इसमें हम अशांत रहते हैं। अशान्त होकर रहना हमें पसन्द नहीं है—अशान्त में रहना किसी को पसन्द नहीं है। हमको शान्ति चाहिए। अनादि, अनंत, असीम का उल्टा सादि, सान्त, ससीम है। सान्त में रहते हुए हम अशान्त हैं, तो इसका उल्टा जो अनंत-असीम है, उसको पहचान लें, जान लें, प्रत्यक्ष जान लें—जैसे हम सान्त को प्रत्यक्ष जानते हैं, तो पूर्ण संभव है कि उसको पाकर शान्ति पाएँगे और कल्याण को प्राप्त करेंगे। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

राकापति षोड़स उअहिं, तारागण समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ, बिनु रवि राति न जाय।।
ऐसेहि बिनु हरिभजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा।।

इसलिए ईश्वर की भक्ति करो। इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि के परे को कैसे पकड़ें, पहचानें—उसमें अपने को लगावें, इसके लिए भक्त चिन्तित हो जाते हैं। संतलोग कहते हैं कि तुम चिन्तित क्यों होते हो? जो सर्वव्यापी है, वह सब में रहता है। चर-अचर, जो दृश्यमान व्यक्त पदार्थ हैं, सभी उसके ही रूप हैं। एक जीवात्मा एक शरीर में रहता है, तो वह उसको अपना रूप कहता है। जो सर्वव्यापी है, सब रूपों में है तो सब रूप उन्हीं के क्यों न होंगे। इसीलिए कहा गया है—

अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति वासना धूप दीजै।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

इसपर नहीं, नहीं कहना चाहिए। बल्कि यह कहा गया है कि—

सियाराम मया सब जग जानी। करउँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।

सबको उसी का रूप जानकर प्रणाम करो अथवा जब सब रूप उसी के हैं तो किसी एक रूप को पकड़ लो, साथ ही यह भी जानो कि उसका रूप है; सहज स्वरूप अथवा आत्मा नहीं। रूप मायामय होता है, परंतु आत्मा मायातीत है। इसीलिए कहा गया है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

सब रूपों में 'वचन अगोचर बुद्धि पर' आत्मतत्त्व व्यापक है। जितने भी रूप हैं, सब उसकी माया है।

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।

यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ।।

'आपुन होइ न सोय' जो कहा गया है, उसमें यह 'आपुन' क्या?—अर्थात् आत्मा रूप में व्यापक है, वह रूप नहीं है। लकड़ी में आग है, किंतु लकड़ी ही आग नहीं है। शरीर में जीवात्मा है, लेकिन शरीर ही जीवात्मा नहीं है। सब में से किसी एक पर आपकी अच्छी श्रद्धा हो, उस रूप को आप अपनी उपासना के लिए मान लीजिए और यह जानिए कि इस रूप में हमारे परमात्मा हैं। यहाँ से आप उपासना का आरंभ कर सकते हैं। इसलिए हमारे यहाँ रूप उपासना—सौन्दर्य उपासना प्रचलित है। इसीलिए ठाकुरबाड़ियाँ और देव-मन्दिर हैं। लेकिन रूप तक ही नहीं रह जाना चाहिए। उससे आगे भी जाना चाहिए। रूप के आगे अरूप है—वहाँ भी जाना चाहिए। उस अरूप आत्मा की भक्ति किस तरह करें? गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज की उक्ति लीजिए—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।
— गोस्वामी तुलसीदासजी

'करनी अपार' सुनकर ऐसा न समझें कि हमसे पार नहीं लगेगा। जिसके बिना बने नहीं, वह कितना भी मुश्किल क्यों न हों, फिर भी करना ही पड़ेगा। देश रक्षा के लिए लोग जान गँवा देते हैं। कृषि के लिए कृषक क्या करते हैं सो देखिए। धूप में देह जलाकर और पानी में अपने को सड़ाकर खेती करते हैं। पाट की खेती में अपने को सड़ाकर महादुर्गन्ध में काम करते हैं। लेकिन बैठकर ध्यान-भजन करने में कठिन मालूम होता है।

ऊपर कथित पद्य में हाथी, मछली और चींटी की उपमाओं के द्वारा योगाभ्यास की बात समझाई गयी है। जिसकी सुरत शरीर की सारी इन्द्रियों में फैली हुई है, उसको हाथी कहा गया है। जिसकी सुरत सिमटी हुई है, उसको छोटी मछली या चींटी कहा गया है। **चेतन की धारा ब्रह्माण्ड से पिण्ड की ओर** सदा बढ़ती रहती है। ऊपर से नीचे की ओर धारा प्रवाहित होती रहती है। सिमटी हुई सुरत धार को पकड़कर नीचे से ऊपर जाती है। पुनः बालू जड़ धार है और चीनी चेतन धार है। सिमटी हुई चेतन सुरत चींटी है। वह जड़ से अपने को फुटा (विलग कर) लेती है। इसके लिए योगाभ्यास अपेक्षित है। जो अपने को अपने अंदर अच्छी तरह समेट लेता है—जैसे कछुआ अपने अंगों को, वही योगी है। जो बहिर्मुख रहता है, वह इन्द्रियों में रहकर विषयों में रहता है। जो अपने अंदर प्रवेश करे, वह इन्द्रियों से सिमटकर विषयों से छूटकर उनसे ऊपर हो जाता है। इसके लिए एक विशेष अवस्था होती है, जो न तो जाग्रत, न स्वप्न और न सुषुप्ति की अवस्था है। परंतु तुरीय अवस्था कहकर विख्यात है। इसमें रहनेवाला अपने अंदर में रहता है और वही सारे ब्रह्माण्ड को देखता है। इसीलिए 'सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवई निद्रा तजि योगी' कहा गया है। स्वप्न, सुषुप्ति की अवस्थाओं को छोड़ दिया है तथा जाग्रत में भी नहीं है। इसलिए नींद छोड़कर सो गया है। वहाँ वह ब्रह्म-पीयूष का भोग करता हुआ ब्रह्मानन्द में मग्न होता है तथा 'अतिशय द्वैत वियोगी' पद में

अवस्थित हो जाता है। **'सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।'** भक्ति करते-करते इस अवस्था तक पहुँचा जा सकता है। व्यक्त से भक्ति का आरम्भ कर अव्यक्त में समाप्त कर सकता है। इसको और दूसरी तरह से भी गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामायण में लिखा है, जो नवधा भक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। यथा—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनहुँ नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

पहली भक्ति है संतों का संग करना, यह बहुत सीधी बात है। दूसरी भक्ति कथा-प्रसंग में प्रेम करना है। अपनी मान-प्रतिष्ठा का ख्याल छोड़कर गुरु-सेवा तीसरी भक्ति है। कपट त्यागकर ईश्वर का गुणगान करना चौथी भक्ति है। दृढ़ विश्वास के साथ गुरु-मंत्र का जप करना पाँचवीं भक्ति है। इस तरह पाँच प्रकार की भक्तियों तक समझना लोगों के लिए बहुत ही सरल है। परंतु इनके अन्दर और भी कुछ है, उसको भी जानिए। कहा गया है—

नित प्रति दरसन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी काहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

इसका उत्तर है—

मन तो रमै संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

साधु-संग में बैठो तो मन को इधर-उधर मत करो। सांसारिक बातों को लेकर मत बैठो। कहा गया है—**कबीर संगति साधू की, ज्यों गंधी को वास।**
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौ भी वास सुवास।।

इसी तरह साधु के संग में एकचित्त होकर बैठो तो कुछ-न-कुछ गुण होगा। दूसरी-तीसरी ओर मन लगानेवालों को कबीर साहब ने फटकार भी लगाई है—

ऐसी दिवानी दुनियाँ भक्ति भाव नहिं बूझै जी।।
कोई आवै तो बेटा मांगै, यही गुसाईं दीजै जी।।
कोई आवै दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।।
कोई आवै तो दौलत मांगै, भेंट रुपैया लीजै जी।।
कोई करावै व्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी।।
साँचे का कोई गाहक नाहीं, झूठे जक्त पतीजै जी।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजै जी।।

ऐसे मन से साधु-संग करने से हरि-रंग नहीं लगता है। मन को संयम में रखते हुए साधु-संग करो, तब हरि-रंग लगेगा। कथा-प्रसंग में मन लगाओ, यदि मन नहीं लगाओ तो कथा में क्या बात हुई, समझ नहीं सकोगे। गुरु की सेवा भी मन लगाकर करो। बे-मन सेवा गुरु जान जाएँगे तो उसको मंजूर नहीं करेंगे—फटकार कर निकाल देंगे या स्वयं हट जाएँगे। जप के लिए यह है कि एकाग्र मन से जपो। ऐसा नहीं कि—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दह दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।

जप की संख्या पुराने की कोई आवश्यकता नहीं है। माला पर एक लाख जप कर लिया, लेकिन एकाग्र मन से कितनी बार? एकाग्रतापूर्वक जितनी बार जप हो, वही श्रेष्ठ है। जप तीन प्रकार के होते हैं—वाचिक, उपांशु और मानस। वाचिक जप वह है, जो कि आवाज के द्वारा जपा जाय। उपांशु जप वह है जो अपने मुँह के अंदर ही बोलकर जपा जाय, इसमें होंठ तो हिले, पर आवाज कोई दूसरा व्यक्ति न सुन सके। मानस जप वह है जो केवल मन-ही-मन किया जाय, जो अपनी कान भी न सुन सके। मानस जप सब जपों का राजा है। मुँह से भी जपो, कोई हानि नहीं, लेकिन जप के प्रकारों में

मानस जप सर्वश्रेष्ठ है। इस शरीर में मन कहाँ रहता है? शरीर में मन जहाँ रहता है, उसी स्थान पर उसे रहने देकर, जप करना श्रेष्ठ है। संत कबीर साहब कहते हैं—

इस तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।

इसके उत्तर में है—

नैनों माहीं मन बसै, निकस जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।

जाग्रत अवस्था में शिवनेत्र में मन का वासा है। जाननेवाले गुरु से जान लेना चाहिए कि कैसे उस स्थान में ठहरकर जप करना चाहिए। पहली से लेकर पाँचवीं भक्ति तक सभी में मन लगाना ही सार है। अब चार तरह की भक्ति रह गई है। छठी भक्ति के लिए कहते हैं—

छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।

इन्द्रियों को रोकने का स्वभाववाला बनना दम-शील होना है। इसको छठी भक्ति कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज को योगविद्या भी आती थी। नवधा भक्ति में छठी 'दम' है और सातवीं 'शम' है। ये दोनों योगशास्त्र के सार हैं। शम-दम को योगशास्त्र से हटा दें तो वह छूँछ हो जाएगा।

मन को रोकते रहना चाहिए। कितने लोग कहते हैं कि विचार द्वारा मन को रोको। विचार द्वारा मन को थामकर रखना ठीक ही है, लेकिन जानना चाहिए कि विषयों की ओर इन्द्रियाँ क्यों जाती हैं? जाग्रत अवस्था से स्वप्न में जाने से मुँह में मिसरी का टुकड़ा रहने पर भी उसके स्वाद का ज्ञान नहीं होता। जाग्रत और स्वप्न के बीच में एक अवस्था होती है, जिसको तन्द्रा कहते हैं। इसमें हाथ-पैर कमजोर होते जाते हैं। शक्ति भीतर की ओर प्रवेश करती है। उस समय टोक-टाक करने से—जगा देने से बहुत दुःख होता है। स्वप्न में बाहर की इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं, बाहर विषयों में नहीं रहतीं, उनकी शक्ति शरीर से बाहर नहीं जाती। इन्द्रियों की शक्ति अर्थात् मनोमय चेतनधार अपने अंदर में रहने से इन्द्रियाँ बाह्य विषयों की ओर नहीं जाती हैं, स्वाभाविक रूप से नित्य ऐसा होता है। इसी नमूने पर ऐसा यत्न जाने कि जिस केन्द्र से चेतन निहित मानसधारा का बिखार होता है, वहाँ उसको समेट ले तो विषयों में मन नहीं जाएगा। केवल विचार द्वारा मन को रोकने में जो कमजोरी रह जाती है, सो इस अभ्यास में मजबूत हो जाने पर मिट जाती है। इन्द्रियों की धारों में मानस धारों के रहने से विषयों से मन और इन्द्रियों का सम्बन्ध बना रहता है—परमात्मा से नहीं। इन्द्रियों से संबंध टूटने से निर्विषय से संबंध होता है।

भक्त राम-राम कहे और राम की बात न माने, तो वह कैसा भक्त है? श्रीराम ने कहा है कि—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।

साथ ही छठी भक्ति करने का आदेश भी दिया है। इन्द्रियों को जो अव्यक्त (निर्विषय तत्त्व) है, वह परमात्म-स्वरूप है, उसका ग्रहण होना ही चाहिए। लेकिन आरम्भ में ही अव्यक्त ग्रहण नहीं किया जा सकता है। छठी भक्ति कैसे होती है, सो सुनिए। छठी भक्ति के लिए मन को एकविन्दुता चाहिए—क्योंकि एकविन्दुता में इन्द्रियों के घाटों में मानस धारों के प्रसार की कोई सम्भावना नहीं रहती। इससे दमशीलता होगी। एकविन्दुता के लिए वैष्णवी मुद्रा या शाम्भवी मुद्रा या दृष्टियोग या दृष्टिसाधन की क्रिया चाहिए। इससे मन की एकविन्दुता होती है। यह साधन बहिर्मुख न होकर अंतर्मुख होना चाहिए। इसके लिए अमादृष्टि से साधन चाहिए। अमादृष्टि में रहने से दृष्टि सिमटी रहती है। बाहर का दृश्य एकदम छोड़ दो। अन्दर में देखो। सिमटी हुई निगाह से देखो, फैली निगाह से

नहीं। अंदर देखो यानी आँख अंदर करके देखो। बाहर का ख्याल छोड़ो। बाहरी दृश्य जितना भी देखा है, सबको छोड़ दो। आँख बंद कर देखने से सबको अंधकार मालूम होता है। उस अंधकार में अपने को रख दृष्टि को समेटकर इस भाँति देखो जैसे तीर या बन्दूक का निशाना करते समय देखा जाता है। अच्छा निशाना करनेवाला केवल निशाना ही देखता है। अंदर में कथित भाँति से ठीक-ठीक देखने पर मन और दृष्टि एक जगह हो जाएगी। यथा—'**मन में मन नैनन में नैना, मन नैना एक ह्वै जाई।**'

यह कैसे होगा? किसी गुरु से जान लीजिए। यदि कहो कि गुरु के सामने नवने कौन जाय? तो जान लो कि बिना नवे कोई विद्या नहीं आ सकती। काठ कोरो नवता नहीं, उसको यह ज्ञान बताया नहीं जा सकता।

कबीर नवैं सो आप को, पर को नवैं न कोय।
घालि तराजू देखिये, नवैं सो भारी होय॥

सभा में भजन-भेद बताया नहीं जाता। यह दीक्षा एकान्त में दी जाती है। इसको प्राप्त करने के लिए विशेष गरज होनी चाहिए। जिसको गरज हो वह आवे तो बताया जाएगा। फिर कितनी गरज है, सो भी देखी जाती है। और जिस गुरु से दीक्षा लेनी हो, उस गुरु की भी जाँच कर लेनी चाहिए। यह जाँच एक ही दिन की भेंट से नहीं होगी।

दृष्टि साधन करने के लिए डीम और पुतलियों पर जोर लगाने की आवश्यकता नहीं। डीम, पुतलियों पर जोर लगाने को यदि कहा भी जाय तो वैसा मत कीजिए। डीम और पुतलियों पर बिना जोर लगाए जो दृष्टियोग किया जाता है, वह हठयोग नहीं—राजयोग है। अथक परिश्रम से प्रत्याहार करो तो मन एक स्थान पर ठहरेगा और तब एकविन्दुता प्राप्त होगी। इसमें पूर्ण सिमटाव होता है। विन्दु को आप मन से नहीं बना सकते। परिमाणशून्य चिह्न को आप मन से नहीं बना सकते। छोटे-से-छोटा चिह्न हो उसको मन से नहीं बना सकते। असली विन्दु मन से नहीं बनाया जा सकता। काल्पनिक विन्दु से रेखागणित का हिसाब कर लेते हैं। काल्पनिक रेखा से ही हिसाब बना लेते हैं। रेखा में लम्बाई है, चौड़ाई नहीं। पेन्सिल की नोंक जहाँ रखिए वहीं चिह्न होगा। जो दृष्टि और मन को अत्यन्त समेटकर स्थिर रखता है, उसको तब जो दीखता है, वही परम विन्दु है। वही ज्योतिर्मय विन्दु है।

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम्।
—तेजोविन्दूपनिषद्

हृदय स्थित विश्वात्म-तेजस् स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है। जो उस विन्दु को ग्रहण करता है, उसको ज्योति मिलती है। वैज्ञानिक अपने प्रयोगों के द्वारा बतलाता है कि हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलाने से पानी होता है। यदि विश्वास न हो तो खुद करके देख लीजिए। उसी तरह मेरी बातों में विश्वास नहीं हो तो मैं जो प्रयोग बतलाता हूँ, उसको करके देख लीजिए।

लोग लाल टीका लगाते हैं। वह विन्दु का द्योतक है, शक्ति का चिह्न है। सिमटाव से शक्ति एकत्रित और केन्द्रित होती है। केन्द्रित शक्ति ज्योति स्वरूपा है। शक्ति बढ़ने से दमशीलता आती है। जहाँ शक्ति, वहाँ शिवा और शक्ति श्रीसीताजी महारानी को भी कहते हैं। इसलिए जहाँ सीता वहाँ राम। योगशिखोपनिषद् में लिखा है—

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्तिनिकेतनम्।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्॥

फिर उसी उपनिषद् में अन्यत्र लिखा है—

विन्दुनाद महालिंगं विष्णुलक्ष्मीनिकेतनम्।
देहं विष्ण्वालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्॥

स्थूल मण्डल से आगे बढ़कर सूक्ष्म जगत में प्रवेश करने पर जिससे संबंध होता है, वह ब्रह्मज्योति

है। स्थूल जगत में जप, गुणगान और साधु-संग द्वारा ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। सूक्ष्म जगत में प्रवेश करने पर परमात्म-प्रकाश से सम्बन्ध होता है। उस प्रकाश से परमात्मा की ओर भक्त खींचता है। परमात्मा का प्रकाश पाना परमात्मा की खास भक्ति है।

जिस साधन में मन और इन्द्रियों का संग-संग साधन होता है, वह 'दम' का साधन कहलाता है। जिसमें केवल मन का साधन होता है, वह 'शम' का साधन कहलाता है।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।

सम का अर्थ है समता। गोसाईजी ने अपने ग्रंथों मे तालव्य 'श' के स्थान पर दन्त्य 'स' का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है। 'सम' में दन्त्य 'स' रखने से समता के साधन द्वारा सातवीं भक्ति होती है। लेकिन बिना 'शम' (मनोनिग्रह) के साधन के समता नहीं हो सकती। योगशास्त्र में 'शम' और 'दम' शब्द बड़े महत्त्व के हैं। 'शम' का अर्थ है मनोनिग्रह। समत्व की प्राप्ति समाधि में होती है। समत्व में स्थितप्रज्ञता होती है। (गीता अध्याय २ में देखिए) स्थितप्रज्ञता बहुत ऊँचा पद है। इससे ऊँचा पद और नहीं हो सकता है। स्थितप्रज्ञ वह होता है, जो समता प्राप्त करता है। मनोनिग्रह या शम के बिना समाधि नहीं हो सकती। मनोनिग्रह के बिना समाधि की ओर एक डग भी नहीं जाया जा सकता। इसलिए कहना पड़ता है कि गोस्वामीजी ने सातवीं भक्ति में 'शम' के लिए ही 'सम' लिखा है। इस सातवीं भक्ति को ईश्वर से क्या सम्बन्ध है, इस पर सुनिए—समत्व समाधि में प्राप्त होगा। समाधि प्राप्त होने पर ईश्वर दूर नहीं रह जाता। ब्रह्मज्योति में वृत्ति जाने पर ब्रह्मनाद की अनुभूति होने लगती है।

ऋषि-मुनि लोग ब्रह्मनाद के साधन को नादानुसंधान कहते हैं। इसी को संत नाम-भजन या सुरत-शब्द-योग कहते हैं। अपनी वृत्ति को स्थूल से सूक्ष्म में ले जाकर अन्तर्नाद में वृत्ति जोड़ो। केवल मनोवृत्ति से ही नाद ग्रहण होता है। वहाँ कोई बाह्य इन्द्रिय नहीं है। नादानुसंधान में सिवा मन के अन्य कोई इन्द्रिय नहीं रहती। नाद की बड़ी महिमा है। शिवसंहिता में लिखा है—'न नाद सदृशो लयः।' नाद साधन मनोलय का सर्वोत्तम साधन है। मन बहुत चंचल है। उसकी चंचलता मिटाने का सर्वोत्तम साधन नादानुसंधान है। मृगरूपी चित्त को बाँधने के लिए यह नाद जाल का काम करता है। समुद्र तरंग रूपी चित्त के लिए यह नाद तट का काम करता है।

शंकराचार्यजी ने अपनी योगतारावली मे लिखा है—'मन तो भेरी, मृदंग और शंख आदि के आघात-जन्य नादों में भी एक क्षण के लिए मग्न हो जाता है। फिर इस मधुवत् मधुर, अखण्डित और स्वच्छ अनाहत नाद की तो बात ही क्या है?

उन्होंने नादानुसंधान की विनती भी की है। यह एकदम परमात्मा से मिला देनेवाला है। बीच में रोकनेवाला कोई नहीं । भक्ति में व्यक्त से अव्यक्त की ओर जाना होता है। भक्ति सगुण से आरम्भ करते हैं और निर्गुण में जाते हैं। अंत में 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' की स्थिति आ जाती है। गंगाजी में श्रद्धा रखकर लोग स्नान करने जाते हैं। कितने पाँव पैदल जाते हैं। यह क्या है? यह है गंगा की भक्ति। गंगा की ओर चलना गंगा की भक्ति है। उसी तरह ईश्वर की ओर चलना ईश्वर की भक्ति है। भक्ति में एक ख्याल यह भी है कि रूपधारी होकर ईश्वर दर्शन देंगे। यह मायिक दर्शन है, लेकिन इन्द्रिय अगोचर रूप का नहीं। 'आपुन होइ न सोइ' का दर्शन नहीं होता। वेष का दर्शन होना भी बहुत अच्छा है। किंतु वेष देखने से ही भक्ति का काम खत्म नहीं होता। यदि काम

खत्म होता तो भगवान कह देते कि तुमने मुझे देख लिया, अब काम खत्म हो गया। लेकिन यह कहने की भी कोई आवश्यकता नहीं रहती कि तुम्हारा काम खत्म हो गया; क्योंकि जो भोजन करता है, वह स्वयं जानता है कि उसका पेट भर गया। दर्शन को इस कसौटी पर जाँच लीजिए—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थात् उस परे-से-परे (ब्रह्म) को देख लेने पर हृदय की ग्रंथियाँ टूट जाती हैं, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। रामचरितमानस के इस चौपाई को भी याद रखिए—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

किसी दर्शन को इन दोनों कसौटियों पर कसकर जाँचिए। जो दर्शन आँख को वा किसी इन्द्रिय को नहीं होता, वह बुद्धि की पहचान में नहीं आता। मन, बुद्धि आपके अंदर है। इन्द्रियों का संग करके विषयों का ज्ञान होता है। इन्द्रियों को छोड़ने पर निर्विषय तत्त्व का ज्ञान होता है। आत्मा से आत्मा का ज्ञान होगा। आत्मा से आत्मा का दर्शन करने के लिए आपको उधर चलना होगा, जिधर चलने से शरीर और इन्द्रियों से छूटा जा सके। इसके लिए 'शम' और 'दम' के साधन की बड़ी आवश्यकता है। सभी संतों ने यही बताया है। इतना पवित्र काम करने के लिए आपका हृदय कैसा पवित्र होना चाहिए? इसको भी समझिए। उपनिषद् में लिखा है—'ब्रह्मवत् परिशुद्ध हुए बिना ब्रह्म को कोई प्राप्त नहीं कर सकता।' ऐसी पवित्रता करने के लिए पंचशील का पालन करना अत्यावश्यक है। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से अलग रहना चाहिए। पंचपापों से अलग रहना पंचशील का पालन करना है। जो पंचशील का पालन सम्यक रूपेण करता है, वह परमात्मा की ओर है ही। सब पापों का सरदार है झूठ। शील को बेशील करना हो तो झूठ बोलो, झूठ बोलो तो सभी पाप तुम्हारे पास आवेंगे। झूठ छोड़ तो सभी पाप दूर हो जाएँगे। इसलिए कबीर साहब ने कहा है—

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाका हिरदय साँच है, ता हिरदय गुरु आप।।

एक ईश्वर का विश्वास करो और उन्हीं का पूरा भरोसा रखो। ऐसा नहीं कि—

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहो कहा विस्वासा।।

—रामचरितमानस

ध्यानाभ्यास करते-करते अंदर में आरोहण होगा। तब ईश्वर की ओर चलना होगा। (यदि कोई कहे कि शरीर छूट जाएगा, उसको जला दिया जाएगा, फिर ऊपर की चढ़ाई और क्या होगी?)

पिण्ड और ब्रह्माण्ड में बड़ा सम्बन्ध है। पाँच तत्त्व और तीन गुणों से जैसे शरीर निर्मित है, इसी तरह पाँच तत्त्व और तीन गुणों से ब्रह्माण्ड भी। पिण्ड में स्थूल-सूक्ष्मादि के भेद से जितने तल हैं, ब्रह्माण्ड में भी उतने तल ही हैं। जिसने पिण्ड को जीता, उसने ब्रह्माण्ड को भी जीता। ईश्वर-दर्शन के लिए अंदर-अंदर चलना होगा। अंदर-अंदर चलकर ईश्वर-दर्शन होगा तो बाहर में भी ईश्वर का दर्शन होगा। अंदर-अंदर ईश्वर-दर्शन नहीं होगा तो बाहर में भी ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। यह पराभक्ति है। संत सुन्दरदासजी महाराज कहते हैं—

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सो आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

अपरा भक्ति से परा भक्ति तक पहुँचो। मोटी भक्ति से आरंभ करो और सूक्ष्म भक्ति के अंत

तक पहुँचो। सगुण से आरम्भ करो और निर्गुण में चले जाओ। निर्गुण पद से भी ऊँचे पद में उठा जाता है। पहले ही निर्गुण में कोई नहीं जा सकता और न पहले निर्गुण की उपासना ही होती है। परमात्मा का जो सूक्ष्म प्रतीक मिलता है, वह भी सगुण है। स्थूल-सगुण से सूक्ष्म-सगुण में जाओ। सूक्ष्म-सगुण रूप से सूक्ष्म-सगुण अरूप में जाओ। फिर निर्गुण-निराकार में जाओ। अपने को पापों से बचाते हुए रहकर ईश्वर का भजन कीजिए—कल्याण होगा।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई।
कोटि भाँति कोउ करइ उपाई।।
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई।
रहि न सकइ हरि भगति बिहाई।।

जहाँ भक्ति है, वहीं मुक्ति है और जहाँ मुक्ति है, वहीं शान्ति और कल्याण है। n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत मारवाड़ी पाठशाला, भागलपुर में दिनांक २२.१२.१९५७ ई० में हुआ था।

१३४. साधन में विघ्न

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

अबतक जो कुछ मैंने सीखा है, उसके अंदर मैंने यही सार पाया है कि संतों का ज्ञान जनता को कल्याण देने के वास्ते है। सब कोई कल्याण चाहते हैं और उसे पसन्द करते हैं। कल्याण का ठीक-ठीक ज्ञान संत लोग देते हैं। संत लोगों ने इस ज्ञान का प्रचार अपने-अपने समय में किया है। अब भी जो हैं, वे करते हैं। मेरे गुरु महाराज कह गए हैं कि संतों के ज्ञान का प्रचार करो। इसीलिए यह सत्संग होता है—दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक और वार्षिक अधिवेशन। कभी-कभी विशेष अधिवेशन भी होते हैं। संतों के ज्ञान में ईश्वर की स्थिति बड़ी मजबूती के साथ है। उसमें जरा भी धोखा या संशय नहीं। अभी आपलोगों ने ग्रंथ-पाठ में और भजन-कीर्तन में सुना कि ईश्वर की स्थिति है। कहाँ है? बहुत लोग समझ गए होंगे और कुछ लोग ऐसे भी होंगे, जो नहीं समझ पाए हों। इसलिए मैं अल्प ही कहता हूँ। संतलोग कहते हैं कि इन्द्रियों से जो जानने में आवे, सो माया है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

जो कुछ दृष्टि लखन में आवैं सो माया का चीन्हा।।

—दरिया साहब, बिहारी

इन्द्रियों से जो परे हैं, वह है ईश्वर। वेद-मंत्र का पाठ हुआ, उसमें भी यही बात थी और उपनिषद् के पाठ में भी यही बात थी। उसमें एक बात और थी कि प्रभु को जानना चाहिए। यह जानना अपरोक्ष ज्ञान या प्रत्यक्ष ज्ञान है। यह ज्ञान इन्द्रियों को नहीं होता है, चेतन आत्मा को होता है। हमलोगों का जन्म आस्तिक घराने में हुआ। वहाँ बचपन से ही राम-राम, शिव-शिव, वाहगुरु आदि कहने के लिए सीखा। पदार्थ रूप में राम क्या है? तब नहीं जाना। राम कोई महान प्रभु हैं, इतना ही तब जाना। संतों का ज्ञान है कि जिसको तुम चेतन आत्मा से या अपने तईं से पहचानो वह है ईश्वर। इसको याद रखिए। जो इन्द्रियों से पहचान में आवे, वह है ईश्वर की माया। पहली बात है कि ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान हो और उसकी स्थिति के विश्वास में किसी तरह कसर नहीं रह जाय। तब उसका भजन करो, कल्याण होगा। ईश्वर-स्थिति का दृढ़ ज्ञान जानो, फिर उसकी प्राप्ति की युक्ति जानो,

जिससे उसकी प्रत्यक्षता हो। अभ्यास करो, उसको प्राप्त करो, तब कल्याण होगा। केवल भौतिकता में कल्याण नहीं है। भौतिकता का अर्थ केवल सांसारिक वस्तु में कल्याण नहीं। मेरे कहने का यह आशय है कि सांसारिक पदार्थ में पूर्ण कल्याण नहीं है, बल्कि जो कुछ कल्याण मालूम होता है, वह सत्य नहीं है। माया की पहचान से पूर्ण कल्याण नहीं होगा। ईश्वर की पहचान से पूर्ण होगा, इसलिए संतों ने ईश्वर को पकड़ने कहा है। ईश्वर को हाथ आदि इन्द्रियों से पकड़ नहीं सकते। माया में ईश्वर व्यापक है, लेकिन माया को पकड़ने से ईश्वर नहीं पकड़ा जाता। जिसको आप आँख से ग्रहण करें, वह है रूप और जिसको कान से श्रवण करें, वह है शब्द। इसी तरह जो चेतन आत्मा को प्रत्यक्ष हो, वह है ईश्वर। पंचेन्द्रियों से पंच विषय ग्राह्य होते हैं। कितना ही सुन्दर अद्‌भुत रूप देखो, वह माया है—विषय है। इन पंच विषयों में जो व्यापक है, वह ईश्वर है। इन्द्रिय-ज्ञान में वह नहीं है। लोग उसको ही जानते हैं, जो इन्द्रियों से ग्रहण किया जाता है। शरीर में जो स्वयं आप हैं, केवल उससे ही क्या ज्ञान होता है? इसको बहुत लोग नहीं सोचते। वह जानने, सोचने और प्रत्यक्ष पाने के योग्य है। संतों ने कहा है—अपने अंदर में चलो। इन्द्रियों का संग छोड़ो और स्वरूप को पहचानो। इन्द्रियों के संग वैसे रहना है जैसे गुड्डी के साथ ढेला बँधा हो। संत तुलसी साहब ने कहा है—

हिय नैन सैन सुचैन सुन्दरि साजि स्रुति पिउ पै चली।

यहाँ स्रुति का अर्थ जीवात्मा है। आपको आँख से रूप-ज्ञान के अतिरिक्त और चार विषयों का ज्ञान नहीं होता है। इसी तरह इन पंच ज्ञानेन्द्रियों से ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है। यह केवल चेतन आत्मा को ही होता है। आपको ऐसा बनना होगा जैसा बनकर ईश्वर की पहचान हो। सुना है कि राजा के दरबार में जाने के लिए दरबारी वस्त्र धारण कर दरबार में जाना होता है, जैसे-तैसे वेश से नहीं। परमात्मा के दरबार में अकेले होकर जाएँ। कपड़ा देह पर है, देह को भी छोड़कर जाएँ। अपने ऊपर से कपड़ा हटाकर राजा के दरबार में जाओ तो पगला कहकर, धक्का देकर निकाल देगा। लेकिन ईश्वर के दरबार में स्थूल सूक्ष्मादि सभी शरीरों को छोड़कर जाना होगा। जीवनभर वेद पढ़ो, ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। भारी-भारी तप करो, देह सुखाकर हाड़-हाड़ हो रहो—भगवान बुद्ध की तरह—फिर भी ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। भगवान बुद्ध ने छह वर्षों तक महान तप किया था। लोग उनको मृतकवत् समझने लगे थे। लेकिन उनको ज्ञान हुआ कि इससे भी परमज्ञान नहीं मिलता है। आप पढ़े-सुने होंगे कि फलाँ ने तप किया और उसको दर्शन हुआ। वह दर्शन इन्द्रियों से हुआ, केवल चेतन आत्मा से नहीं। मैं बारम्बार कहता हूँ कि इन्द्रिय ग्राह्य रूप में जो व्यापक स्वरूप है, उसको पहचानो तो ईश्वर-दर्शन हुआ। इसी के लिए आपने कबीर साहब के पद्य में सुना—'लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार......।' बड़ा भयानक कह दिया कबीर साहब ने। इतना डरा दिया कि लोग भाग जाएँ। गुरु नानकदेवजी ने भी कहा है—'जेहि मारग के गने जाय न कोसा।' लम्बा मार्ग है और रास्ते में बहुत आपदाएँ हैं। फिर ईश्वर-दर्शन कैसे हो? इसका उत्तर है—

अनहद बाजै निझर झरै उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अन्तरि प्रगटै लागै प्रेम धियान।।

—कबीर साहब

इसमें 'लम्बा मारग' कटेगा और इसी में ईश्वर-दर्शन हो जाएगा। गुरु नानकदेवजी ने कहा है कि—

घट घट अन्तरि ब्रह्मु लुकाइया घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमति निरभै ताड़ी लाई।।

ऐसी निर्भय ताड़ी ध्यान लगाने में ईश्वर- दर्शन होगा। लोग कहते हैं कि जो सर्वव्यापक है, उसके पास जाने के लिए 'लम्बा मारग' क्यों होगा? कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। उनसे प्रश्न कीजिए कि ईश्वर नजदीक है तो क्या आपने दर्शन पाया? साँच-साँच कहिए। यदि झूठ कहिएगा तो ईश्वर-दर्शन का जो गुण होता है, वह आप? में नहीं होगा, तो आप पकड़े जाएँगे। तब वे कहते हैं कि नहीं, दर्शन नहीं हुआ। इतना लम्बा जाना है कि जहाँ जाकर इन्द्रियों से छूटना हो। दादू दयालजी कहते हैं—

दादू जानै न कोई , संतन की गति गोई।। टेक।।
अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।
अंड न पिंड खंड ब्रह्मण्डा, सूरत सिंध समोई।
निराकार आकार न जोति, पूरन ब्रह्म न होई।।
इनके पार सार सोइ पइहैं, तन मन गति पति खोई।
दादू दीन लीन चरणन चित, मैं उनकी सरणोई।।

संतों की गति छिपी होती है। वह बाहर की गति नहीं, अन्तर की गति है। बाहर में तो खूब दौड़ जाएँ, लेकिन अंदर में एक बाल भर चलना मुश्किल है।

कितनों को तो शरीर में चेतन आत्मा के होने का विश्वास ही नहीं है। वे कहते हैं कि केवल शरीर-ही-शरीर है। इसके अंदर शरीर से भिन्न तत्त्व कुछ नहीं है। सो ऐसा विश्वास और कथन भूल है। जाग्रत अवस्था में चेतन आत्मा की बैठक शरीर में जहाँ है, वहाँ से एक बाल चलिये। एक बाल का अर्थ बाल की लम्बाई नहीं, उसकी मोटाई भर से है। जागने में बाहर इन्द्रियों के ज्ञान के दायरे में रहते हैं। स्वप्न में बाहर की इन्द्रियों के ज्ञान से छूटते हैं। यह प्राकृतिक है और ईश्वर की ओर से इशारा है कि अंदर की ओर चलो तो इन्द्रियों की ओर से छूटना होगा। संतलोग कहाँ तक जाते हैं? दादू दयालजी कहते हैं—

अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।

संत लोग सर्वव्यापी तक जाते हैं। जाते-जाते जहाँ जाना समाप्त हो जाता है, जहाँ गति का अंत है, आगे किसी तरह जाना नहीं होता, जाने के लिए जहाँ न मार्ग है, न स्थान है, वहाँ तक जाओ, तब ईश्वर-दर्शन मिलता है। संतगण ठीक से पता बताते हैं कि बाहर संसार में मत दौड़ो। तुम अपने अंतर पटों का अंत कर डालो। ख्याल करो, समझ लो कि इस स्थूल शरीर में आप रहते हो। आप शरीर के किसी एक तल पर रहते हो, वह शरीर का एक अंतर पट है। यह तल एक ही है या और भी उसके अंदर तल है? जागने का एक तल, सपनाने का दूसरा तल और सुषुप्ति का तीसरा तल है। ईश्वर की ओर जाने के लिए चौथा तल है। उस तल को भी पार करोगे तब 'अन्त अन्तर पट' होगा। लेकिन वह अगम (बुद्धि से परे) है। तीन शून्य है—अंधकार का शून्य, प्रकाश का शून्य और शब्द का शून्य। अंधकार मण्डल, प्रकाश मण्डल और शब्द मण्डल—ये तीन हैं। इन तीनो को छोड़ दे तो संसार-बंधन में जीव रहेगा कि नहीं, विद्वान विचारें—समझें। नीचे से अंधकार, प्रकाश और शब्द, यहीं तक रचना है। ऊपर से शब्द, प्रकाश और अंधकार है। इसी को तीन शून्य कहा है। इन तीनों को पार कर जाओ तो उसको निर्गुण-सगुण कुछ नहीं कह सकोगे। जो व्यक्त माया है, वह सगुण है, जो अव्यक्त है, वह भी सगुण है। एक तो त्रैगुणात्मिका जड़ प्रकृति का मूल रूप है। प्रकृति का मूल रूप अव्यक्त है और उसका कार्य व्यक्त। इन दोनों प्रकृतियों से जो परे चेतनात्मिका परा प्रकृति है, वह भी अव्यक्त है। इन दोनों पकृतियों से जो परे है, वह है पुरुषोत्तम। यह पुरुषोत्तम पद अंधकार, प्रकाश

और शब्द से भी परे है। इन तीनों पटों से अपने को ऊपर उठा लो। जहाँ जाकर शरीर इन्द्रियों से छूटता हो, वहाँ तक चलो, वह 'लम्बा मारग' है। दृष्टि की सम्हाल ही मार्ग पर चलने में विकट कार्य है, इसलिए 'विकट पंथ' है। साधन-काल में विषय रस की स्मृतियाँ बार-बार मानसपट पर उदय होकर साधन में विघ्न डालती रहती हैं, यही 'बहुमार' है। जो कोई साधन-मार्ग पर मन लगाकर चलते हैं, तो ईश्वर की कृपा होती है, और मार्ग की विकटता और कथित 'बहुमार' धीरे-धीरे दूर होती जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

जो तेहि पंथ चलई मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई।।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि भक्तों का योग-क्षेम मैं करता हूँ। इसकी जाँच हो सकती है, भक्त बनकर करो। हमलोग सोए रहते हैं, सोए में अपना कुछ ख्याल नहीं रहता। ईश्वर पहरा करते हैं। कहानी है—

एक राजा शिकार खेलने के लिए जंगल गया। वहाँ उसने एक मुनि बालक को देखा। राजा ने उस मुनि बालक को अपने राजभवन में ले चलने की इच्छा से कहा कि 'तुम मेरे साथ चलो।' मुनि बालक ने कहा—'मैं तुम्हारे यहाँ नहीं जा सकता।' राजा ने कहा—'मैं तुम्हें अच्छा-अच्छा खाना, पहनना और रहने को आलीशान मकान दूँगा।' मुनि बालक ने कहा—'तुम मत खाओ, मुझे खिलाओ, तुम अच्छे-अच्छे कपड़े मत पहनो, मुझे पहनाओ और मैं सोऊँगा, तुम जगकर पहरा करो। यदि तुम ऐसा कर सको तो तुम्हारे यहाँ जा सकता हूँ।' राजा ने कहा—'मैं जो खाऊँगा, तुम्हें वही खिलाऊँगा, जो पहनूँगा, तुम्हें भी पहनाऊँगा और मेरे सोने पर जो हमारा पहरा करेंगे, वे ही तुम्हारा भी करेंगे।' मुनि बालक ने कहा—'मुझे ऐसा मालिक नहीं चाहिए। मेरा मालिक ऐसा है कि स्वयं नहीं खाता और मुझे खिलाता है, स्वयं कपड़े नहीं पहनता और मुझे पहनाता है, मैं सोता हूँ और वह जगकर मेरा पहरा करता है।' तो ईश्वर इसी तरह का है। वह कुछ नहीं खाता, सबको खिलाता है, सब सोते हैं और उनकी वह रक्षा करता है। जो उस 'विकट पंथ' में चलता हैं, ईश्वर उसकी रक्षा करता है। जो उस मार्ग पर चलता है, उसका वज्र कपाट खुलता है। कबीर साहब ने कहा है कि अनहद बाजा बजता है, ज्योति की वर्षा होती है और ब्रह्मज्ञान होता है। कबीर साहब पढ़े-लिखे नहीं थे, उनको इसी तरह ब्रह्मज्ञान हुआ था। संतों के पास प्रेम बहुत बड़ा हथियार है। इसी के द्वारा वे सब विकटताओं को वश करते हैं। ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान, उसकी स्थिति का ज्ञान होना चाहिए और उसकी प्राप्ति अपने अंदर में होगी, इसका दृढ़ निश्चय रखना चाहिए। n

यह प्रवचन संथाल परगना जिलान्तर्गत ग्राम ढोढ़री में दिनांक ६.२.१९५८ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१३५. भौतिक चीजों से आत्मा को भिन्न करो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं यहाँ आपको संतों का विचार सुनाने के लिए उपस्थित हूँ। मेरे जिम्मे श्रीगुरु महाराजजी ने जनता की यही सेवा सौंपी है। हमलोग बचपन से सुन-सुनकर सीखे हैं। सीखे बिना हम संसार की वस्तुओं के उपयोग को नहीं समझते और न उन्हें व्यवहार में ही ला सकते हैं। इसलिए संतों ने अपना विचार सुना-सुनाकर लोगों का उपकार जहाँ

तक हो सकता है, किया है। और यह सिलसिला अबतक जारी है। ईश्वर में मनुष्य मात्र को विश्वास रखना चाहिए। जो ईश्वर में विश्वास नहीं करते, उनका भाग्य तबतक ठीक नहीं, जबतक वे ईश्वर में विश्वास नहीं करते। संतों ने जो ईश्वर का निर्णय बताया है, वह समझिये। साथ ही संतों ने यह उपदेश दिया है कि आपको अपने लिए ऐसा ख्याल नहीं आता है कि मैं नहीं हूँ। अपनी स्थिति में सबको विश्वास है। कुछ तार्किक लोग अपनी स्थिति में विश्वास नहीं करते और न ईश्वर में ही। वे लोग संसार की वस्तुओं को लेकर ही उसमें अपना भला चाहते हैं। लेकिन संसार का इतिहास नहीं बताता कि संसार की वस्तुओं को लेकर किसी का भला हुआ है। संसार की वस्तु मिले, पूर्ण ऐश्वर्य मिले, इसी में भला होगा, ऐसा वे विचारते हैं। लेकिन पूर्ण ऐश्वर्य किनको प्राप्त हुआ? जिनके लिए कहा जाय, उनमें कुछ-न-कुछ कमी अवश्य रह गई। जिनको पूर्ण ऐश्वर्यवाले समझते हैं, उनमें भी कमी दरसती है। श्रीराम भगवान को पूर्ण ऐश्वर्यवान मानते हैं, लेकिन उनका कहाँ तक भला हुआ, जानिए। श्रद्धा एक दूसरी चीज है। श्रीराम को संसार में आकर रोना पड़ा—संकट सहना पड़ा। अपने देश के लोग जो रामायण नहीं जानते हैं, उनके लिए मैं दुःख मानता हूँ। श्रीराम के जीवन के आरम्भ काल की और संसार के त्यागने के काल की कथा पढ़ने, सुननेवाले रोते हैं। उन्हें महान दुःख का भोग देखना पड़ा। यह दूसरी बात है कि वे महान योगी थे—उनकी लीला थी। लेकिन लीला में ही उन्होंने समझाया कि मेरे समान होने पर भी दुःख भोगना पड़ता है। इसलिए यह मानने योग्य नहीं कि फलाने को ऐश्वर्य मिला और उनके पास दुःख फटका तक नहीं। भौतिक वस्तु को लेकर पूर्ण सुख, पूरा भला किसी को हुआ, ऐसा नहीं देखा गया। कबीर साहब ने कहा है—

तन धर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।

दुःख के साथ-साथ कहाँ भलाई है? ऐसा भला मानना बहुत कम जानता है। संतगण कहते हैं कि तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारा शरीर भी है, जिसको भगवान श्रीकृष्ण के वचन में क्षेत्र कहते हैं। तुम शरीर के जाननेवाले क्षेत्रज्ञ वा जीवात्मा हो। तुम्हारी स्थिति है। तुलसी साहब कहते हैं, तुम अपने को पहले जान लो—तुम अपनी असलियत को नहीं जानते हो। शरीर गया, तुम गए, ऐसा ख्याल करो तो तुम्हारे लिए कोई उपदेश नहीं। लेकिन पहले अपने को जानो। उन्होंने कहा—

सत सुरत समझि सिहार साधौ निरखि नित नैनन रहौ।

उन्होंने कहा—तुम्हारे शरीर में दो तरह के पदार्थ हैं—जड़ और चेतन। जड़ अज्ञानमय और चेतन ज्ञानमय। तुम्हारा शरीर अज्ञानमय है, तुम ज्ञानवान हो। तुम इस शरीर में रहते हो तो शरीर ज्ञानमय है। अवस्था विशेष होने पर तुम्हारे इस शरीर में रहने पर भी यह जड़वत् रहता है। जैसे सुषुप्ति अवस्था। जड़-जड़ तत्त्वों के मिलने से चेतन हो गया है, ऐसा यदि कहो तो दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं—जड़ और चेतन। जड़ ही चेतन का जनक हो, हो नहीं सकता। जिस शर्बत में जो चीज नहीं डालिए, उसका स्वाद नहीं आता और गुण भी नहीं आता। इसी तरह जड़-जड़ के मिलाप से चेतन हो गया, ऐसा नहीं माना जा सकता। जो लोग गीता पढ़ते हैं, वे जानते हैं कि उसमें अष्टधा प्रकृति का भी वर्णन हुआ है। उसको क्षर पुरुष, असत् जड़ प्रकृति कहा गया है। अष्टधा प्रकृति में पंच तत्त्व और मन, बुद्धि, अहंकार है। परा प्रकृति को जीवरूपा चेतनमय कहा है। इन दोनों से भगवान रचना करते हैं। दोनों भिन्न-भिन्न दो तत्त्व हैं। जीवात्मा की स्थिति है। चेतन आत्मा, अक्षर पुरुष, परा प्रकृति भिन्न तत्त्व

हैं और क्षर पुरुष, अपरा प्रकृति भिन्न तत्त्व हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

जड़ चेतनहिं ग्रंथि पड़ि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।

इस भूमण्डल के किसी देश में रहो अथवा सूक्ष्म, कारण, महाकारण आदि मण्डलों में जबतक जहाँ कहीं भी रहो, तबतक वह भला—जिसके साथ बुराई नहीं हो—ऐसा हो नहीं सकता। संतों ने कहा है—तुम चेतन आत्मा हो, इसको जड़ से अलग करो। अपना पुरुषार्थ करो। किंतु याद रखो कि पुरुषार्थ किधर करना है। यह जीव माया के कण्टक से घिरा है, यद्यपि यह माया असत्य है, फिर भी बिना राम की कृपा के छूट नहीं सकती।

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड ।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड ।।
सो दासी रघुवीर कै, समुझै मिथ्या सोपि ।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि ।।

—रामचरितमानस

अभी यह माया बड़ी बलवती है। इसी को अष्टधा प्रकृति, क्षर पुरुष, अपरा प्रकृति कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है कि श्रीराम ने प्रजा को यही उपदेश दिया कि—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।

वे जितने बड़े राजा थे, उतने और कोई नहीं, ऐसा लिखा है। पहले हमारे यहाँ रामराज्य की चर्चा होती थी और अब भी चर्चा होती है। कहते हैं कि रामराज्य हो जाय। इसलिए कि वह प्रजा को अपने से शिक्षा देते थे। जबतक आध्यात्मिकता को नहीं अपनावे, तबतक भौतिक पदार्थ से किसी का कल्याण नहीं होगा। यह जानकर वे स्वयं उपदेश करते थे। उनके गुरु वशिष्ठजी बड़े ज्ञानी-योगी थे। उन लोगों का भी उपदेश होता होगा। और फिर भी श्रीराम ने अपने से उपदेश दिया। इसलिए कि उनके हाथों में शासन-सूत्र था। मुनियों के हाथ में शासन-सूत्र नहीं था। श्रीराम ने समझा होगा कि केवल भौतिक पदार्थ से सुख नहीं हो सकता। स्वयं शासन-सूत्र के धारक होने के कारण मेरी बातों को लोग मानेंगे, ऋषियों की बात मानें या नहीं मानें। लोग डरेंगे भी, शासन-सूत्रधारी की बात नहीं मानूँ तो न जाने कोई हानि हो जाय। इसका फल यह हुआ कि—'सब उदार सब पर उपकारी' हो गए। विचारिए जिस देश में सब उदार हैं, संकीर्णता हृदय में नहीं है, दूसरे का उपकार लोग करते हैं, वह देश कैसा होगा? देश में खर्च होना चाहिए—प्रबंध के लिए—उस खर्च को जुटा देने के लिए लोग हिचकते नहीं होंगे। देश में जो एक के पास थोड़ा है और दूसरे के पास अधिक है तो अधिकवाले से माँग करते हैं, एक नेता—हमारे भारत के। लेकिन केवल इससे कहाँ तक शान्ति आ सकती है। यद्यपि लोग जानते हैं कि आज कैसा समय आया है। विशेष जमीन किसी को नहीं रहेगी। लोगों ने जमीन दान दी है ऐसी जमीन, जिस जमीन को पानेवाला न जानें, उसे कब उपजा सकेगा—या तो बालू बुर्ज है या जलमय है या पत्थरमय है। अवश्य ही दान में कुछ अच्छी जमीन भी दी गई। कहीं-कहीं दान देनेवालों और दान दिलानेवालों के बीच संघर्ष भी हुआ। लेकिन जहाँ पर 'सब उदार सब पर उपकारी' हो वहाँ अनउदारता, कृपणता, कलह और संघर्ष कैसा? आज स्वराज्य है, उसमें सुराज लाइए। केवल भौतिकवाद में 'सब उदार सब पर उपकारी' वाला हृदय नहीं हो सकेगा। उसमें तो एक दूसरे को अस्त्र दिखाकर, डराकर, धन हरण कर लेगा। आध्यात्मिकता में परहित रत होने का गुण है—आधिभौतिकता में नहीं। अपना भला तभी होगा, जब ईश्वर-भक्ति करो। अध्यात्म-ज्ञान इतना ही नहीं है कि पढ़ लिया, लिख लिया, सुन लिया, अध्यात्म-ज्ञान

प्राप्त कर लिया और कहने लगे—अहं ब्रह्मास्मि। यह कहने की बात नहीं है, कर्म में लाने की बात है। दूसरी ओर है ईश्वर की भक्ति करो, इसी में कल्याण है। ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर-स्वरूप जानो—यह ज्ञान है। फिर उसको पाओ कैसे, इसके लिए यत्न करो। यही भक्ति है। रामचरितमानस में लिखा है—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

व्याप्य में व्यापक है। या समझो तो व्याप्य और व्यापक वही है। उसका कहीं अंत नहीं है। वाणी से वर्णन होने योग्य नहीं है। प्रकृति को भरकर और कितना विशेष है, कहा नहीं जा सकता। इसलिए कि वह अनंत है।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
—रामचरितमानस

इस तरह ईश्वर का स्वरूप है। तुलसीदासजी की रामायण लोग बहुत पढ़ते हैं। इसलिए चौपाई का पाठ हुआ। कबीर साहब ने भी कहा है—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।

गुरु नानक साहब ने भी कहा है—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।

इस तरह सभी संतों ने कहा है। अब विचारणीय है कि संतों ने जो कहा है उनकी बात को बिना विचारे मान लें? तो एक विचार कहता है कि हाँ, मान लो। वे महान थे। पाठशाला में पढ़ने गए थे तो पण्डितजी ने जैसा लिखाया-पढ़ाया, वैसा पढ़ा-लिखा। तो पीछे ठीक ही निकला। वहाँ तब तर्क नहीं किया कि पण्डितजी! इसको 'अ' उसको 'क' क्यों कहें? अध्यात्म-विद्या के लिए बड़ी उम्र के लोग भी बच्चे रहते हैं। हमारे गुरु महाराज ने बहुत भजन किया था। वे बहुत वृद्ध थे। अंत समय में उनसे पूछा गया तो उन्होंने कहा कि 'मैं अभी सीखता हूँ।' पूरी विद्या केवल पढ़ने व लिखने में नहीं है, तर्क में नहीं है, भजन-अभ्यास करने से वह पूरी होती है। ईश्वर की स्थिति का ज्ञान-विचार जो संतों ने दिया है, वह विचार में दृढ़ है। उपनिषद् में लिखा है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अंतरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

सबसे बाहर कहकर 'प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनाशी।।' की छाया गोस्वामी तुलसीदासजी की चौपाई में है। अपरम्पार स्वरूपी कोई एक है कि नही? पहले कह दें कि नहीं, अब सभी ससीम सादि हैं तो प्रश्न होगा कि सब ससीमों के पार में क्या है? जहाँ सीमा है, उसके पार कुछ होगा ही। जबतक असीम नहीं कह दें, तबतक प्रश्न रहेगा ही। एक असीम कह देने से फिर प्रश्न नहीं रहता। असीम के परे क्या है, पूछना मूर्खता है। सबकी आदि वह है और वह अनादि भी है। सब उसके अंदर है, बुद्धि में भी यह बात आती है। जो विशेष व्यापक होता है, वह सबसे विशेष सूक्ष्म होगा। जल, बर्फ और वाष्प की उपमा से जानिए। एक सेर बर्फ जितना व्यापक होगा, उतने बर्फ जल बनाने से कहीं अधिक व्यापक होगा और उसी का वाष्प बना लेने से और भी अधिक व्यापक होगा। बर्फ से जल सूक्ष्म है और जल से वाष्प। जो जितना अधिक सूक्ष्म होता है, उसकी व्यापकता उतनी अधिक होती है। जो सबसे विशेष व्यापक है, वह सबसे विशेष सूक्ष्म

है। जो परमात्मा सर्वव्यापी है, वह सबसे विशेष सूक्ष्म है। उसको स्थूल इन्द्रियों से ग्रहण नहीं कर सकते। जो वस्तु जैसी होती है, उसको ग्रहण करने के लिए उस तरह का औजार होना चाहिए। हमारी इन्द्रियाँ मोटी-मोटी हैं। बाहरी इन्द्रियों को कौन कहे, अंतर की इन्द्रियाँ भी उसे ग्रहण नहीं कर सकतीं। बुद्धि उसकी स्थिति का निर्णय कर सकती है, लेकिन उसे पहचान नहीं सकती। उसको चेतन आत्मा ही प्राप्त कर सकती है। क्योंकि वह भी उसी तरह सूक्ष्म है। चेतन आत्मा से परमात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसको खूब याद रखना चाहिए। जिस विषय के स्वरूप-ज्ञान के लिए कोई पूछे तो कह दीजिए कि अमुक इन्द्री से जिस विषय का ज्ञान होता है, वह सो है। तो प्रश्न खत्म हो जाएगा। जैसे रूप क्या है? तो जो आँख से ग्रहण होता है। इसी तरह जो चेतन आत्मा से ग्रहण हो, वही परमात्मा है। इस ज्ञान के बिना लोग भटकते फिरते हैं। संत सुन्दरदासजी ने थोड़े शब्द में कहा है—

शब्द ब्रह्म परि ब्रह्म भली विधि जानिये।
पाँच तत्त्व गुण तीन मृषा करि मानिये।।
बुद्धिवन्त सब संत कहै गुरु सोई रे।
और ठौर शिष जाइ भ्रमे जिनि कोइ रे।।

शब्द ब्रह्म को प्राप्त करके पर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। शब्द ब्रह्म क्या है, इसके लिए उपनिषद् में लिखा है—'अक्षरं परमोनादः शब्द ब्रह्मेति कथ्यते।' —योगशिखोपनिषद्। लोग वेद को भी शब्दब्रह्म कहते हैं, लेकिन उपनिषद् में जो शब्द ब्रह्म की परिभाषा लिखी है, उसी शब्दब्रह्म के द्वारा चेतन आत्मा को जो ग्रहण होता है, वही परब्रह्म परमात्मा ईश्वर है। उसका दर्शन अपने अंदर में होगा, बाहर में नहीं। लोग पूछते हैं कि ध्रुव को, प्रह्लाद को बाहर में ईश्वर-दर्शन हुआ। यह क्या ईश्वर-दर्शन नहीं है? मैं कहता हूँ कि राम, शिव, कृष्ण, दुर्गा और काली माता आदि सभी ईश्वर—ईश्वरियाँ हैं। लेकिन कहने से लोग हँसेंगे। ईश्वर एक है। एक आकर कहते हैं—ईश्वर एक ही है—वह शिव है। दूसरे कहते हैं श्रीराम ईश्वर हैं। तीसरे श्रीकृष्ण को ईश्वर कहते हैं, चौथे देवीजी को कहते हैं। इस तरह एक दूसरे से द्वेष और कटुता उत्पन्न करते हैं। लेकिन मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा—ये सब ईश्वर के रूप हैं। जैसे अपना फोटो खिंचवाते हैं तो दूसरे कहते हैं कि फलाने बाबू का फोटो है। उसी तरह सब उनके रूप हैं, लेकिन उन रूपों में जैसा कि अभी सुना—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

उस 'भूप रूप' में जो था, वह क्या? इसको जानिए। इन सब रूपों में वह एक-ही-एक है। जो अनेकों में प्रविष्ट होकर, फिर बाहर भी है, वही आत्मा है। वह आत्मगम्य है, इन्द्रियगम्य नहीं। इसका बोध कर लेना चाहिए। इसका बोध किए बिना जो भक्ति आरम्भ करते हैं, वे उसी तरह चलते हैं, जैसे कोई मुसाफिर हो और उसको निर्दिष्ट स्थान का ज्ञान नहीं हो, तो वह भटकता फिरेगा। इसीलिए सुन्दरदासजी ने कहा है—'और ठौर शिष जाय, भ्रमे जिनि कोइ रे।' उस स्वरूप को प्राप्त करने के लिए यत्न चाहिए। शरीर, इन्द्रिय आदि भौतिक चीजों से आत्मा को भिन्न करो और भिन्न करके उसे प्राप्त भी करो। केवल विचार में ही रखना कि मैं यह नहीं हूँ, वह नहीं हूँ, पूर्ण नहीं है। विचार में भी भिन्न करो और उसको भिन्न करने के लिए काम भी करो। काम गम्भीर है, लेकिन इसको किए बिना कल्याण भी

नहीं होगा। संतों ने जो साधन बताया है, वह विशेष कठिन नहीं है। भक्ति हठयोग से सरल है। राजयोग से भक्ति को अलग नहीं कर सकते। राजयोग कहिए चाहे भक्तियोग एक ही बात है। राजयोग में और भक्ति योग में—दोनों में मन लगाना होता है। हठयोग में नेती, धौती और प्राणायाम करने में जो कठिनाई है, वह राजयोग में नहीं है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान ने कहा है—खान-पान में, आहार-विहार में परिमित रहो—संयमित रहो। रामायण में भी है—'संयम यह न विषय कै आसा।' इसको कठिन जानकर छोड़ना नहीं होगा। अभ्यास करने से सभी कठिन काम सरल होते हैं—

जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।

साधन में उकताहट नहीं लानी चाहिए, साहस रखना चाहिए। Slow and steady wins the race, (स्लो एण्ड स्टीडी विन्स दि रेस) बचपन में मैंने पढ़ा था। जिस चाल से जल्दी थक न जाओ, उस चाल से चलो। भगवान श्रीकृष्ण ने तो बहुत ढाढ़स दिया है। अर्जुन ने कहा है कि मनोनिग्रह करना बहुत कठिन है, जैसे हवा की गठरी बाँधनी। श्रीकृष्ण ने कहा—अभ्यास और वैराग्य से होगा। वैराग्य कहते हैं विषयों में अनासक्त होने को। फिर अर्जुन ने पूछा—'श्रद्धा तो हो, परंतु पूरा प्रयत्न अथवा संयम न होने के कारण जिसका मन योग से विचल जावे, वह योग सिद्धि न पाकर किस गति को जा पहुँचता है? हे महाबाहु श्रीकृष्ण! यह पुरुष मोहग्रस्त होकर ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग में स्थिर न होने के कारण दोनों ओर से भ्रष्ट हो जाने पर छिन्न-भिन्न बादल के समान बीच में ही नष्ट तो नहीं हो जाता?' भगवान ने कहा—'क्या इस लोक में और क्या परलोक में ऐसे पुरुष का कभी विनाश नहीं होता। क्योंकि हे तात! कल्याणकारक कर्म करनेवाले किसी भी पुरुष की दुर्गति नहीं होती। पुण्यकर्ता पुरुषों को मिलनेवाले स्वर्गादि लोकों को पाकर और बहुत वर्षों तक वहाँ निवास करके फिर यह योगभ्रष्ट पुरुष पवित्र श्रीमान् लोगों के घर में जन्म लेता है अथवा योगियों के ही कुल में जन्म पाता है। इस प्रकार प्राप्त हुए जन्म में वह पूर्व के बुद्धि-संस्कार को प्राप्त करता है और प्रयत्न-पूर्वक उद्योग करते-करते अनेक जन्मों के अनन्तर सिद्धि पाकर अन्त में उत्तम गति पा लेता है। कबीर साहब ने कहा है—

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।
भक्ति बीज पलटै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।

भक्ति नहीं मर सकती है। इसका अंकुर भीतर में होना चाहिए, प्रेम होना चाहिए।

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजे ब्रह्म गियान।
आवगति अन्तरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।

'प्रेम' शब्द को देकर कबीर साहब ने बहुत मीठा बना दिया है। धन के लिए लोगों को लोभ होता है, उसी तरह ईश्वर प्राप्ति के लिए लोभ होना चाहिए। उसका यत्न जानना चाहिए। ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए।

आपके देश में कल्याण के लिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए सत्संग का प्रचार है। कांग्रेस के प्रचार से सैकड़ों साल पहले से सत्संग का प्रचार इस देश में रहा है। यह ज्ञान कि 'एहि तन कर फल विषय न भाई' सबकी समझ में आ जाये तो कितना अच्छा होगा? सभी उपकारी बन जाएँगे, सभी उदार बन जाएँगे, तब माँगने की आवश्यकता नहीं रहेगी। अमीर आदमी स्वयं गरीब को देंगे। देने-लेनेवाले इतने सन्तुष्ट हो जाएँगे, जितने अजाँबी मिश्र। यह भाव लाना होगा, तब आप

कुछ बँटवारा करवाइए या नहीं, आप ही सुव्यवस्था हो जाएगी। एक की सम्पत्ति दूसरे की सम्पत्ति हो जाएगी। एक दूसरे से कोई द्वेष नहीं रहेगा। श्रीराम ने कहा था—

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।
एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।

विषय नहीं तो निर्विषय की ओर श्रीराम चलने के लिए कहते हैं। श्रीगुरु महाराजजी की आज्ञा के अनुसार मैं भी कहता हूँ कि ईश्वर का भजन करो। ईश्वर-उपासना छोड़कर जो केवल भौतिकवाद की उपासना करेंगे, तो वे झंझट से नहीं छूटेंगे। इसलिए ईश्वर का भजन कीजिये—कल्याण से रहिये। n

यह प्रवचन संथाल परगना जिलान्तर्गत अखिल भारतीय संतमत सत्संग के ५०वाँ वार्षिक महाधिवेशन के अवसर पर ग्राम—ढोढरी में दिनांक ९.२.१९५८ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१३६. सबको 'ॐ' कहने का अधिकार

प्यारे लोगो!

संतों के विचार थोड़े से शब्दों में भी आ सकते हैं; किन्तु अच्छी तरह से विस्तार रूप से समझने के लिए उनके साहित्य को—उनके ग्रंथों को अवश्य पढ़िए। संतों के ग्रंथ को पढ़ने के पहले उनके पारिभाषिक शब्दों को और उनके अर्थों को अवश्य जानिए। संतों का भेद और पंडितों का वेद प्रसिद्ध है। इसलिए संतों की युक्ति जानिए और अभ्यास कीजिए, तब पूरा-पूरा समझ सकते हैं। हमलोगों के तीन दिनों के सत्संग में संतों के सभी विचारों का पूर्ण रूप से वर्णन हो, असम्भव है। लेकिन अल्प मात्रा में थोड़े विचारों का समास-रूप में वर्णन होता है। कई सन्तों के थोड़े-थोड़े वचन इसलिए आपको सुनाए जाते हैं कि किसी एक ही संत की वाणी से कैसे जान सकते हैं कि सब संतों का एक ही मत है। इसलिए सब संतों की वाणी को पढ़ना चाहिए। अनेक संतों की वाणी को नहीं पढ़कर एक ही संत की वाणी पढ़ने से आप साम्प्रदायिक झंझट में फँसे रहेंगे और लड़ाई-झगड़ा करते रहेंगे। लोक समाज में अशान्ति से छूटना नहीं हो सकता और संतमत में जाकर भी साम्प्रदायिक झगड़े में जो पड़े, तो कहाँ शान्ति पाने की आशा की जाय? समाज में भी शान्ति नहीं और साधु-सम्प्रदाय में शान्ति नहीं हो, तो शान्ति कहाँ हो?

सन १९०९ ईस्वी में मैं इस सत्संग में शामिल हुआ। तब मालूम हुआ कि सब संतों का एक ही ज्ञान है। पहले मैं दरियापंथ में था। मेरे गुरु बाबा देवी साहब ने कहा—'पहले तुम दरियापंथी थे, अब समुद्रपंथी हो गए।' हमलोग किसी एक संत के पक्ष के नहीं हैं, सभी संतों के पक्ष के हैं। १९०४ ई० में मैंने स्कूल छोड़ दिया। बचपन से ही मेरी रुचि इस ओर हो गई थी। कतिपय साधुओं का संग करने से मालूम हुआ कि 'संतों का ज्ञान इतना ऊँचा है कि वह वेद ज्ञान से भी ऊँचा है।' और जो वेदपक्षीय थे, चाहे वे वेद थोड़े ही पढ़े थे अथवा वेद से भेंट भी नहीं थी, केवल उसमें श्रद्धा रखनेवाले थे, वे कहते थे कि—'संतों का ज्ञान वेद-बाह्य है और श्रद्धा करने योग्य नहीं है।' मैं संतों के ज्ञान को अपना चुका था, उससे हटनेवाला नहीं था। लेकिन विचार हुआ कि दोनों पक्षों में

यथार्थ कहना किस पक्ष का है, इसकी खोज करनी चाहिए। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकजी के गीता-रहस्य में पढ़ा कि सारे मोक्षधर्म के मूलभूत अध्यात्म-ज्ञान की परम्परा हमारे यहाँ उपनिषदों से लगाकर ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास, कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास इत्यादि आधुनिक साधु-पुरुषों तक अव्याहत चली आ रही है।

स्वामी आत्मारामजी एक संन्यासी हैं, पहले उनका नाम पण्डित वैदेहीशरण दूबे था। उन्होंने वैदिक विहंगमयोग लिखा, उसको मैंने पढ़ा। फिर पण्डित जयदेव शर्मा विद्यालंकार महोदय द्वारा चारो वेद-संहिताओं का भारती अनुवाद पढ़ा। संतों का ज्ञान वेदबाह्य या वेद से ऊँचा, ये दोनों बातें झूठी हैं। बिना खोजू-ढूँढ़ के लोग इस तरह की बातें कहते हैं। बिना तलाश के ही किसी निश्चय पर आना गलत है। जिसको विश्वास नहीं हो, वह अपने से वेद और संतवाणी पढ़े और मेरे 'वेद-दर्शन-योग' को भी पढ़े। उसमें संतों की वाणी से वेदार्थ का मेल मिलाकर दिखलाया गया है। वेद के अध्यात्म -ज्ञान को संतों ने अपनाया, उसी का वर्णन किया तथा परमात्म-पद तक आरोहण करने का ज्ञान दिया। संतों का अध्यात्म-ज्ञान तर्क की कसौटी पर कसने से भी टलनेवाला नहीं है। मैं कहता हूँ कि साधना करने पर संतों को जो प्रत्यक्ष अनुभव-ज्ञान हुआ, वही बात उन्होंने कही, इसका मुझे विश्वास है। मैं विचार देता हूँ कि सभी अध्यात्म-ग्रंथों को पढ़ो। लेकिन पढ़ते-पढ़ते ही जीवन खत्म मत करो। बचपन में हजार, लाख, करोड़, अरब, नील, की गणना करते थे; लेकिन उक्त गणनानुकूल एकत्रित धन प्राप्त किया नहीं। नमक, रोटी, दाल, भात बोलो तो पेट क्या भरेगा? कबीर साहब ने कहा कि—बाँझ झुलाबे पालना तामें कौन सबाद।' करो कुछ नहीं और बक-बक करके बोलो बहुत, तो इससे क्या लाभ? संतों ने कहा इस सृष्टि का नियन्ता परमात्मा है। उनकी मौज से यह सृष्टि हुई। गुरु नानक ने कहा है—

तदि अपना आपु आपही उपाया।
नाँ किछुते किछु करि दिखलाया।।

जैसे मिट्टी से हँड़िया गढ़ दो, इस तरह कुछ नहीं था तब सृष्टि बना दी। कबीर साहब कहते हैं—'प्रथम एक सो आपे आप।' इस तरह सभी संतों ने एक ही से सब कुछ का होना कहा है। आगे और भी सिद्धान्त हैं—द्वैत, त्रैत आदि जिनके प्रश्न का उत्तर एक दूसरे से ठीक-ठीक नहीं बन पड़ता। कितने कहते हैं कि ईश्वर ने इस प्रकार की दुःखमय सृष्टि क्यों की? मैं उनसे कहता हूँ कि एक अनादि-अनंत सबका मूल है, ऐसा वह मानते हैं कि सादि, सांत, ससीम मानते हैं? यदि वे सादि-सान्त ससीम मानते हैं, तो उसके परे क्या है? इस प्रश्न का उत्तर अनादि, अनंत, असीम नहीं कहने से प्रश्न हल नहीं होता। अनादि-अनंत को अपनी ससीम बुद्धि में अँटा लेना नहीं हो सकता। परमात्मा ने सृष्टि की, चाहे द्वैत मानो वा अद्वैत। जब उन्होंने सृष्टि की, तो पहले कम्प हुआ, बिना कम्प के कुछ नहीं बन सकता। आदि सृष्टि के लिए आदि कम्प अवश्य हुआ। चाहे उन्होंने कम्प बनाया या सृष्टि की, कुछ कहना होगा। कोई भी कम्प बिना शब्द के नहीं है। शब्द कम्पमय और कम्प शब्दमय होता है। इस बात को मानने के लिए आज के वैज्ञानिक भी बाध्य है। जो आदि कम्प वा आदि शब्द हुआ वह आदि शब्द बहुत अद्‌भुत है, ऐसा संतों ने देखा। इसका प्रतीक वा वाचक जो मनुष्य भाषा में कहा जा सके, उसे उन्होंने ओ३म् कहा। यह एक ऐसा शब्द है जो उच्चारण के सब स्थानों को भरकर होता है। ऐसा और कोई शब्द नहीं है। भिन्न-भिन्न शब्दों के उच्चारण भिन्न-भिन्न

स्थानों से होते हैं, किंतु यह एक ओ३म् शब्द ही उच्चारण के सभी स्थानों को भरकर होता है। ऋषियों ने बहुत सोचा होगा। यह शब्द सब शब्दों का प्रतिनिधि है। पहले जमाने में ऐसा प्रतिबंध था कि सब कोई ओ३म् नहीं बोले। संतलोग लड़ाई-झगड़ा करने नहीं जाते। हार-जीत में वे नहीं जाते हैं। हारकर ही रहते हैं। कबीर साहब ने कहा—

हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा सतगुरु से मिले, जीता जम की लार।।

जबकि ओ३म् कहना मना था तो संतों ने कहा हम ओ३म् नहीं कहेंगे, राम कहेंगे। राम शब्द का अर्थ सर्वव्यापक है, इसलिए राम कहा। हमको अपना काम करना है, आपस में लड़ाई-झगड़ा करना नहीं है। गुरु नानक साहब खत्री कुल के थे। उनको ओ३म् बोलना मना नहीं था। इसलिए उन्होंने अपने मंत्र में कहा—'एक ओ३म् सतनाम' और वे इतने जबर्दस्त थे कि कहा—'चहु बरना को दे उपदेश।' और कबीर साहब ने कहा—'पढ़ो मन ओ ना मा सी धं।' दयानंद स्वामी आए, उन्होंने कहा—'सबको ओ३म् कहने का अधिकार है; कहो।' उनके प्रचार से जो नीच दृष्टि से देखे जाते थे, वे उच्च दृष्टि से देखे जाते हैं।

जो कम्प होता है, उससे जो बनता है, वह कम्प उसके कण-कण में व्यापक होता है। इस सृष्टि के बनने में जो कम्प हुआ वह सृष्टि के कण-कण में है। ऐसी कौन धारा है, जिसको पकड़कर परमात्मा तक जाया जाय? वह धारा उसी आदिशब्द की है। इन्द्रियों के संग में चेतन, आत्मा (जीव- सुरत) के रहते हुए वह शब्द उसे अवगत नहीं होता है। संतों ने साधन किया और प्रत्यक्ष देखा कि अपने अंदर ज्योति और शब्द है।

नाम रूप दुई ईश उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।
—गोस्वामी तुलसीदास

संतों ने कहा—तुम्हारे अन्दर ज्योति का खजाना है। बहिर्मुख से अंतर्मुख होकर देखो, वहाँ तुमको ज्योति और शब्द दोनों मिलेंगे। इसलिए उन्होंने दोनों का बड़ा आदर किया। अंतर्मुख होने की विधि तुलसी साहब की वाणी में सुनो—

सतगुरु संत कंज में वासा। सुरत लाइ जा चढ़ै अकासा।।
श्याम कंज लीला गिरि सोई। तिल परिमान जान जन कोई।।
छिन छिन मनको तहाँ लगावै। एक पलक छूटन नहिं पावै।।
स्रुति ठहरानी रहे अकासा। तिल खिरकी में निसदिन बासा।।
गगन द्वार दीसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा।।

ध्यानविन्दूपनिषद् में है—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

अर्थात् परम विन्दु ही बीजाक्षर है, उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अनाशब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है।

यही परमविन्दु तुलसी साहब का तिल है। यह मानसिक विन्दु नहीं है, यह गुरु से जानी हुई युक्ति के अभ्यास से आप-ही-आप प्रत्यक्ष होता है। कबीर साहब के वचन में है—

कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अंधेरी मिटि गई, बाजे अनहद तूर।।

संत दादू दयालजी के वचन में है—

मन ही सन्मुख नूर है, मनही सन्मुख तेज।
मन ही सन्मुख जोति है, मन ही सन्मुख सेज।।
मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ।
मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ।।

जो भजन-भेद जाने, उसके लिए साफ है और जो भजन भेद नहीं जाने, उसके लिए अंधकार है। शब्द के लिए कहते हैं—

साध शबद सों मिलि रहे, मन राखे बिलमाइ।
साध सबद बिन क्यों रहे, तबहीं बीखरि जाइ।।
—संत दादू दयालजी

सद्‌गुरु बाबा देवी साहब के वचन में है कि जहाँ तक दर्शनीय पदार्थ है, जहाँ से आवागमन होता है, वहाँ तक दृष्टि ले जाती है। इससे आगे जहाँ से आवागमन नहीं होता, इसका साधन शब्दयोग है। चौथा पद, सतलोक को कहा है। और उसको मोक्षधाम कहा है। कोई कहे कि दृष्टिसाधन करते-करते सतलोक तक जाता हूँ तो यह बाबा देवी साहब के कहने के अनुकूल नहीं है और न उपर्युक्त वचन का कहनेवाला अपने विचार को समझाकर बोध दिला सकता है। ऐसे फजूल ही बक-बक करनेवाले क्षमा के पात्र हैं।

दृष्टिसाधन को ही शाम्भवी मुद्रा, वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। इसका अभ्यास तीन तरह से करते हैं—अमा, प्रतिपदा और पूर्णिमा। आँख बंद करके देखना अमादृष्टि है, आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा है और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा दृष्टि है। पूरी आँख खोलकर और आधी आँख खोलकर साधन करने से कष्ट होता है। और आँख बंदकर अभ्यास करने से कोई तकलीफ नहीं होती। सब दिन आँख बन्दकर सोते हो, कोई तकलीफ नहीं होती। हमको गुरु महाराज ने जो बताया है उससे आँख में तकलीफ नहीं होगी। सद्‌गुरु महाराजजी ने ध्यान करने को कहा है। केवल ध्यान किया जाय और प्राणायाम नहीं तो कोई हानि नहीं। ऐसा केवल गुरु महाराजजी ने नहीं कहा है, बल्कि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के छठे अध्याय में प्राणायाम का कोई जिक्र नहीं है। ऐसी जगह में बैठो, ऐसी आसनी बिछाकर भजन करो, शरीर को इस तरह करके बैठो और अंत में परम शान्तिरूप फल पाओगे, ये सारी बातें उस ध्यानयोग के अध्याय में लिखी हुई हैं। परंतु प्राणायाम भी करो, यह बात कहीं नहीं लिखी है। हल जोतनेवाला हलवाहा ध्यान कर सकता है। आप विद्वान हैं, कुर्सी पर बैठते हैं, तो आप भी आराम से बैठकर ध्यान कर सकते हैं। लेकिन उकताना नहीं होगा कि आज ही हो जाएगा। आज आप विद्वान हैं, लेकिन एक ही दिन में विद्वान नही हुए। पढ़ते-पढ़ते बहुत दिनों में विद्वान हुए। उसी तरह अभ्यास करते-करते ध्यान दृढ़ और पूर्ण होगा। भगवान बुद्ध ने कहा है कि मुझे साधन करके बुद्धत्व लाभ करने में ५५० जन्म लेने पड़े हैं। भगवान बुद्ध ने भी प्रकाश की बातें कही हैं, धम्मपद पढ़कर देखिए। गुरु नानक ने भी कहा है—'भरि सागर भगति करीजै।' कुएँ भर भक्ति से नहीं होगा।

अपना लक्ष्य, अपनी दृष्टि, अपने अन्दर में समेटकर रखने का अभ्यास आत्मरत होने का अभ्यास है। दृष्टि जमी, सिमटाव हुआ तो ऊध्र्वगति होने पर श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में जो लिखित है, उसका प्रत्यक्षावगत होगा। सिमटी निगाह से अन्तर्मुख देखना, उलटकर देखना है। गुलाल साहब के वचन में है—

उलटि देखो घट में जोति पसार।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, विगसि कमल कचनार।।
पैठि पताल सूर शशि बाँधौ, साधौ त्रिकुटी द्वार।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार।।
इंगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत सिखर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठ गगन परन, सहज उठै झनकार।।
सोहं डोरि मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार।
कह गुलाल सतगुरु वर पायो, भरो है मुक्ति भंडार।।

n

यह प्रवचन संथाल परगना जिलान्तर्गत अखिल भारतीय संतमत सत्संग के ५०वाँ वार्षिक महाधिवेशन के अवसर पर ग्राम—ढोढरी में दिनांक १०.२.१९५८ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१३७. शून्य में क्या मिलेगा ?

प्यारे लोगो!

संतमत मोक्ष प्राप्त करने के लिए और संसार में सुख से रहने के लिए शिक्षा देता है। ईश्वर की भक्ति से मोक्ष या मुक्ति होती है। भक्ति में अपरा और परा दोनों प्रकार की भक्ति होनी चाहिए। अपरा भक्ति में स्थूल जप और स्थूल ध्यान है। परा भक्ति में विन्दुध्यान या ज्योतिर्ध्यान और नाद ध्यान है। विन्दु ध्यान में मन से कछ बनाना नहीं पड़ता है, केवल देखने के ढंग से देखा जाता है। देखने का ढंग गुरु बताते हैं। इड़ा और पिंगला के मध्य में अर्थात् सुषुम्ना में देखो। देखने का तात्पर्य है—वहाँ दृष्टि ठहरा दो। वहाँ ज्योतिर्विन्दु का उदय होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।
—गीता, अध्याय ८/९

और तेजोविन्दूपनिषद् में है—

तजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम् ।

अर्थात् हृदय स्थित विश्वात्म-तेजस्स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है। ज्योति-ध्यान में ज्योतिर्विन्दु से और भी विशेष-विशेष ज्योति होती जाती है, जिसका पूरा वर्णन कोई नहीं कर सकता। ज्योति के साथ नाद भी प्रकट होता है। ज्योति के साथ जो नाद होता है, वह सूक्ष्म नाद है और अंधकार में जो नाद होता है, वह स्थूल है। संतों ने स्थूल नाद-ध्यान करने को नहीं कहा यदि कोई स्थूल नाद को यानी अंधकार के नाद को सुनता है तो बहुत दिनों तक अभ्यास करते-करते संभव है कि कभी उस केन्द्रीय सूक्ष्म नाद को पकड़ सके। इस विषय को मैंने सत्संग-योग भाग ४ पारा ६० में लिख भी दिया है। लेकिन उपनिषद् के अनुकूल शाम्भवी अथवा वैष्णवी मुद्रा का अभ्यास कर शब्दसाधन करना चाहिए। वैष्णवी मुद्रा कड़ा ध्यान है।

दृष्टिसाधन तीन तरह से किया जाता है। अमादृष्टि से, प्रतिपदा दृष्टि से और पूर्णिमा दृष्टि से। आँख बन्दकर देखना अमादृष्टि है, आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा है और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा है। अमादृष्टि में कोई तकलीफ नहीं होती। संतों ने अमादृष्टि से ही अभ्यास करने को कहा है। कोई-कोई कहते हैं कि अमादृष्टि से अभ्यास करने से औंघी आती है। मैंने पूर्णिमा दृष्टि का तो अभ्यास नहीं किया है, लेकिन प्रतिपदा दृष्टि का अभ्यास किया है। इसमें भी औंघी आती है। हमलोग आँख खोले रहते हैं, लेकिन औंघी आती है और आँखें बंद हो जाती हैं। चाहिए कि होशियारी से रहें और औंघी से बच बचकर ध्यान करें। बिना ज्योति-ध्यान के नाद-ध्यान करने की गुरु आज्ञा गुरु महाराज ने नहीं दी। गुरु नानकदेवजी भी यही कहते हैं—'सुखमन के घर राग सुनि सुन मण्डल लिवलाइ।' लोग कहेंगे कि शून्य में क्या मिलेगा? शून्य ही मिलेगा— बिल्कुल खाली ही रह जाओगे—एक पण्डित ने कहा था। लेकिन थोड़ा विचारो। खाली जगह में वह रह जाता है जो कभी नहीं टलता। जो जगह भरी रहती है, वह आवरणित है। जैसे इस घर में माल भर दीजिए तो खाली—शून्य नहीं देखा जाएगा। लेकिन शून्य कहीं जाता नहीं। घर से सब चीजों को हटा दो तो शून्य बचेगा। उसी

तरह यह विश्व है और इसमें विश्व के तत्त्व भरे हैं। इन तत्त्वों को निकाल दो तो वह बचेगा जो कभी नहीं टलेगा। मनोभाव छोड़कर दृष्टि रखने की कोशिश करो तब सूझेगा, जो कभी तुम्हारे दिमाग में नहीं आया और सदा वहीं रहता ही है। वह है ज्योतिर्मयविन्दु। इसके बाद है सहस्रदल कमल—रूप जगत। लेकिन यहाँ भी ऐसा खाली नहीं हुआ, जहाँ केवल ईश्वर ही रहे। इसलिए इससे आगे बढ़ो— नाद-ध्यान करो। नाद से खींचकर वहाँ पहुँचो, जहाँ इसका केन्द्र है। अशब्द से शब्द होता है। सब चुप रहते हैं और फिर बोलते हैं तो शब्द होता है। इसी तरह निःशब्द से शब्द होता है। परमात्मा ध्रुव और अकम्प है। अकम्पता और ध्रुवता के कारण वह निःशब्द है। कम्प और शब्द के बिना संसार नहीं होता। इसलिए आदि में कम्प होता है। नादानुसंधान करते-करते उस नाद का पता लगता है, जो सबसे प्रथम हुआ। वह शब्द भी परमात्मा में जाकर लय हो जाता है। उस शब्द की धारा विन्दु तक लगी है। वही है—मकर-तार। मकरा अपने तार पर ऊपर से नीचे आता है और उसी को पकड़कर ऊपर जाता है। संतों ने अनहद ध्वनि को 'मकर तार' कहा है—

तिल परमाने लगे कपाटा,
मकर तार जहँ जीव के बाटा।

संतों ने कहा है, हमलोगों को उसका बहुत विश्वास है। ईश्वर के मायिक रूप को देखते हुए उनके निर्मायिक रूप को देखेंगे। यही ध्यान विधि है।

n

यह प्रवचन श्रीसंतमत सत्संग मंदिर आशानन्दपुर परबत्ती, भागलपुर में दिनांक २५.१०.१९५८ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१३८. सन्त लोग पश्चिम तरफ रहते हैं

प्यारे लोगो!

संसार और शरीर के घेरे में पड़े हुए अपने कर्मों के जाल में फँसे हैं। हमलोग इन घेरों में पड़कर कैसे हैं—सबको मालूम है। किसी भोग में सुख और किसी भोग में दुःख मानते हैं। यह दुःख-सुख का भोग बहुत जबर्दस्त तरह से होता है। हम इसमें बझे रहते हैं। सुख भी सुखदायक नहीं होता है और दुःख तो दुःख ही है। विषय-सुख सुखदायक इसलिए नहीं होता कि वह तृप्तिदायक नहीं है और न सदा रहनेवाला है। हमलोग कर्म के जाल में फँसे हैं। इसी जाल के अन्दर रहने के कारण क्षणिक सुख-दुःख में फँसे रहते हैं। इससे छूटने के लिए कोई यत्न है—तो संतलोग कहते हैं, हाँ है। वह है कर्म के जाल से छूटना। कर्म के जाल से छूटने को ही पाप-पुण्य से छूटना कहते हैं। पाप-पुण्य के भोग प्रत्येक क्षण होते रहते हैं। उपनिषत्कार कहते हैं कि इनसे छूट सकते हो। पाप से छूटना सभी चाहते हैं; क्योंकि इसको दुःखदायी समझते हैं और पुण्य से छूटना नहीं चाहते, क्योंकि यह सुखदायक है। लेकिन इसमें तृप्ति नहीं है, इसलिए इससे भी छूटना अच्छा है। जिस 'कर्म' से हम पाप से छूट सकते हैं, उसी कर्म से, पुण्य से भी छूट सकते हैं—वह है ध्यान। ध्यान से पाप पुण्य दोनो छूट सकते हैं। ध्यान कहते हैं एकओरता को। जिस अवयवयुक्त एक रूप को हम देखते हैं, वह अणु-परमाणु से युक्त है। उसमें अनेक अवयव

हैं, उसमें एक नहीं अनेक हैं। अनेक के समूह के गठन को यदि हम एक कहते हैं तो अमल में एक नहीं है। लेकिन जो एक-ही-एक है, उस पर मन को लगाओ। वह क्या है? विन्दु-ध्यान। पढ़े-लिखे लोग जानते हैं कि जिसका स्थान है और परिमाण नहीं, जिसका खण्ड नहीं हो सकता—विन्दु है। विन्दु को पकड़े बिना कोई ध्यान में मजबूत नहीं हो सकता। ध्यानविन्दूपनिषद् में केवल 'विन्दु' ही नहीं परमविन्दु कहा है और इसको बीजाक्षर भी कहा गया है। हमलोग कलम या पेन्सिल की नोंक जहाँ रखते हैं, वहाँ एक छोटा-सा चिह्न हो जाता है। उसको विस्तृत करने पर अक्षर बनता है। इसलिए वह छोटा चिह्न अक्षर का बीज है। जितने मुख्य दृश्य हैं सबका बीज विन्दु है। कोई भी आकार बनाते समय प्रथम विन्दु ही बीज रूप से बनता है। विन्दु के बिना रेखा नहीं और रेखा के बिना कोई आकारमय रूप नहीं बन सकता। जिस विन्दु का रूप मन में ख्याल किया जाता है, वह परम विन्दु नहीं है। परिभाषा के अनुकूल विन्दु को कोई मन में गढ़ (बना) नहीं सकता और न हाथ से चिह्नित कर सकता है। जिसका स्थान हो और परिमाण नहीं, उसको कागज पर चिह्नित नहीं कर सकते और न मन से गढ़ सकते हैं। इसको स्थूल दृष्टि से कोई देख नहीं सकता। किसी तरह इसको कोई देख नहीं सकता—ऐसी बात नहीं है। गुरु की युक्ति के अनुकूल देखने के अभ्यास द्वारा देख सकता है। ऐसा देखना ठीक-ठीक ध्यान में होगा। वह ध्यान कैसा होगा, जिसमें मन स्थूल-विषय से रहित होगा। विषयों से पूर्ण रूपेण छूट जाने के लिए उपरोक्त विन्दुध्यान के पीछे नादध्यान है। इसमें पहले का दृश्य विषय छूटकर नाद-विषय रहता है। जब नाद भी अनाद ब्रह्म में लीन हो जाता है, तब 'निःशब्दं परमं पदम्' की प्राप्ति हो जाती है।

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

तब कर्म-जाल में फँसकर रहना नहीं पड़ता, उससे पूर्णरूपेण छुटकारा मिल जाता है। इसी में मोक्ष और ईश्वर की प्राप्ति है। जब लोग इस ध्यान-अभ्यास में पड़ते हैं, तो संकल्प-विकल्प को छोड़ना होता है। जैसे पानी के बहाव में मैली-कुचैली गड़बड़ चीजें आती हैं, परंतु स्नान करनेवाला मलिन चीजों को टालकर जल में स्नान करता है। उसी तरह ध्यान में होता है, लेकिन अभ्यासी सबको हटाकर ध्यान करता है। जो बारम्बार अभ्यास करता रहता है, उसका मन विषयों से छूटता है। रजोगुण-तमोगुण से छूटकर सतोगुण की ओर वृति होती है। उससे फिर पाप नहीं होता। घमण्ड और तिरस्कार से किया हुआ पुण्य कर्म तामसी है, मायिक फलों को प्राप्त करने के लिए किया हुआ पुण्य कर्म राजस है। इन दोनों तरहों से बचते हुए किया हुआ पुण्य-कर्म सात्त्विक है। जो ध्यान-अभ्यास की ऊर्ध्वगति में अपना बन्धक प्रभाव कुछ नहीं रख सकता है, समझना चाहिए कि ध्यान में एकओरता होती है। एकओरता में सिमटाव होता है, सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। आपलोग बिछौने पर बैठे हैं, इसको समटिए तो एक ढेर हो जाएगा—ऊँचा हो जाएगा। मन के सिमटाव के कारण मन की भी ऊर्ध्वगति होती है। मन केवल मन नहीं है, मन के साथ चेतन भी है। मन के साथ चेतन की भी ऊर्ध्वगति होती है। स्थूल से ऊँचे दर्जे में—सूक्ष्मता में प्रवेश होता है। स्थूल में सिमटाव होने से सूक्ष्म में गति होती है, इसी को पिण्ड से ब्रह्माण्ड में जाना कहते हैं। इससे जहाँ तक कर्मफल पाना है यानी प्रारब्ध का भोग है—उस मण्डल को पार किया जाता है। जहाँ तक त्रैगुणी माया है, वहाँ तक कर्ममण्डल

है। इससे पार होने पर माया से उठा जाता है। ध्यानाभ्यास से ऊर्ध्वगति होती है, तब कर्ममण्डल से ऊपर उठा जाता है। यही उपाय है और दूसरा उपाय नहीं है। पुण्य सुख में बाँधता है तो पाप दुःख में बाँधता है, दोनों बंधन ही है। पुण्य के फल को भोगते हुए लोग बहुत पाप करते हैं। धनी होते हैं, जो नहीं करने का वह करते हैं। जो नहीं बोलना चाहिए, बोलते हैं। पुण्य करना अच्छा है, लेकिन पाप करना अच्छा नहीं है। फलाकांक्षा छोडकर ही कर्म करना अच्छा है। प्रारब्ध कर्म को ध्यानयोग से नष्ट कर सकते हैं। सिवाय ध्यानयोग के और कोई उपाय नहीं है, जिससे हम कर्म-जाल से छूटें। कर्म-जाल ही शरीर और संसार में बाँधता है। ध्यान ऐसा हो जो बाहर की ओर नहीं हो। इसलिए उपनिष-त्कार ने कहा कि आत्मा की ओर देखो। आत्मा एक ही है। शरीर जैसे उसको अवयव नहीं—जोड़ नहीं। साधक आत्मा की ओर चलता है, तो वह आत्मा बहुत दूर है, बहुत देर से मिलती है। लेकिन रास्ते में कुछ नहीं मिलता है, ऐसा नहीं। रास्ते में चन्द्रज्योति आदि का दर्शन होता है। जो दर्शन कभी संसार में नहीं हुआ। चलते-चलते वह परमात्मा को पाता है। ध्यानयोग अन्तर्मुखी करो और घर में रहो। ध्यानयोग की विधि गुरु से सीखो। जो इस युक्ति को नहीं जानते, उनके लिए कबीर साहब कहते हैं—

मोरे जियरा बड़ा अन्देशवा मुसाफिर जैहो कौनी ओर ।।
मोह का शहर कहर नर नारी, दुइ फाटक घनघोर ।
कुमती नायक फाटक रोके, पड़िहौं कठिन झिंझोर ।।
संशय नदी अगाड़ी बहती विषम धार जलजोर ।
क्या मनुवाँ तुम गाफिल सोवो, इहवाँ मोर न तोर ।।
निसदिन प्रीति करो साहब से नाहिंन कठिन कठोर ।
काम दिवाना क्रोध है राजा बसैं पचीसो चोर ।।
सत्तपुरुष इक बसैं पछिम दिसि, तासों करों निहोर ।
आवै दरद राह तोहि लावै, तब पैहों निज ओर ।।
उलटि पाछिलो पैंड़ो पकड़ो, पसरा मना बटोर ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, तब पैहों निज ठौर ।।

इस पद्य में भी ध्यान करने को कहा है। कहा कि जो संतलोग 'पछिम' की तरफ रहते हैं, (पश्चिम को संतलोग प्रकाश, पूर्व को अंधकार, दक्षिण को शब्द और उत्तर को निःशब्द कहते हैं) जो अपने को प्रकाश में रखते हैं और दूसरे को प्रकाश में चलने को बताते हैं, उनसे जानो। ब्रह्माण्ड से पिण्ड में आए हो, इससे उलटो। यानी पिण्ड से ब्रह्माण्ड की ओर चलो। पिण्ड से ब्रह्माण्ड की ओर चलने के लिए पसरे हुए मन को समेटो। कबीर साहब ने उपर्युक्त पद्यों में कहा है कि ऐसा करने से तुम अपने निज घर को पाओगे। n

यह प्रवचन श्रीसंतमत सत्संग मंदिर आशानन्दपुर परबत्ती, भागलपुर में दिनांक २६.१०.१९५८ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१३९. राजा कुरु का स्वावलम्बी जीवन

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

गोस्वामी तुलसीदासजी ने जो बात कही है, वही मेरी भी बात है। 'साधु चरित शुभ सरिस कपासू। निरस विशद गुणमय फल जासू।।' अर्थात् साधु का चरित कपास की तरह भला है, जिसका फल स्वाद से रहित है, पर निर्मल गुणमय (सूत= सद्वृत्तियुक्त) है। मैं बहुत कथाओं को नहीं जानता, पुराणों में बहुत कथाएँ हैं, लेकिन मैं बहुत कम जानता हूँ। रामायण और महाभारत की कथा कभी-कभी कहा करता हूँ। इसलिए कि लोगों को

थोड़ा सरस मालूम हो। कितने को कथा अच्छी लगती है, केवल ज्ञान नहीं और कितने को कथा अच्छी नहीं लगती, केवल ज्ञान अच्छा लगता है। तो दोनों बैठे रहें, कथा के संबंध में ज्ञान हो जाय और ज्ञान में कथा भी हो जाय।

हमलोगों की राजधानी दिल्ली है। इसका पहला नाम था इन्द्रप्रस्थ। उसी के नजदीक में हस्तिनापुर राजधानी थी। वहाँ राजा कुरु रहते थे। राजा होते हुए भी खेती के लिए अपनी जमीन रखते थे, जिसको आज कुरुक्षेत्र कहते हैं। पहले यह रीति थी कि छह मन उपजे तो एक मन राजा को कर रूप में दे दो। राजा कुरु इस कर को अपने निजी पालन-पोषण के, काम में नहीं लाते थे। स्वयं निज खेत उपजा कर खाते थे, कहते थे कि प्रजा का अन्न प्रजा के लिए है। इसलिए वे स्वयं खेती करके जीवन-निर्वाह करते थे। बादशाह नसरूद्दीन महमूद भी ऐसे ही थे, जो प्रजा का दिया नहीं खाते थे। वह (कुरान शरीफ) लिख-लिखकर गुजर करते थे। महाभारत में एक कहानी है—राजा कुरु के वंश में घृतराष्ट्र और पाण्डु हुए। धृतराष्ट्र बड़े और पाण्डु छोटे थे। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे, इसलिए उनके छोटे भाई पाण्डु ही राजा हुए। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे, वे कौरव कहलाते थे और पाण्डु के पाँच पुत्र थे, वे पाण्डव कहलाते थे। कौरवों में सबसे बड़े दुर्योधन और पाण्डवों में युधिष्ठिर थे और वह दुर्योधन से भी बड़े थे। बचपन से कौरव, पाण्डवों से ईर्ष्या करने लग गए थे। बड़े होने पर उनका यह भाव और बढ़ गया। वे नहीं चाहते थे कि युधिष्ठिर राजा बने। इसलिए उन्होंने षडयंत्र रचकर पाण्डवों को मारने का उपाया सोचा। दुर्योधन ने विचारा कि युधिष्ठिर धर्म प्रिय हैं, उनके सामने काशी की प्रशंसा बारम्बार की जाय तो वह काशी जाना अवश्य चाहेंगे। और इधर दुर्योधन ने अपने मंत्री को काशी भेजकर एक ऐसा मकान बनवाने के लिए कहा कि जो देखने में बहुत ही सुन्दर हो, किन्तु जरा-सी आग छुलाते ही वह तुरंत जलकर भस्मीभूत हो जाय। यह मंत्री काशी जाकर लाह, बारूद, चर्बी, घी आदि चीजों को मिलवाकर घर बनवाने लगा। इसके बाद जब-जब युधिष्ठिर राज्य सभा में आते, तब-तब सभा के लोग काशी की प्रशंसा करने लगते। बहुत बार काशी की महिमा सुनने से युधिष्ठिर के मन में हुआ, ये लोग हमलोगों को काशी भेजना चाहते हैं। इसलिए एक दिन युधिष्ठिर ने वृद्ध धृतराष्ट्र के पास जाकर कहा—हमलोगों की इच्छा होती है कि एक बार काशी देखें। धृतराष्ट्र ने कहा—'बहुत अच्छा, जाओ।' एक दिन पाण्डव लोग माता कुन्ती के साथ काशी के लिए चल पड़े। चलते समय विदुर ने कहा—'जहाँ कहीं रहना उस घर को अच्छी तरह जाँचकर रहना।' उधर काशी में मकान बनकर तैयार था। वहाँ जाने पर मंत्री ने पाण्डवों का बहुत आदर-सत्कार कर उस मकान में वासा दिया। पाण्डव लोग उस घर में चले गए। युधिष्ठिर ने भीम से कहा—'भाई भीम! तुम्हारी घ्राण शक्ति बहुत तेज है, जाँचकर देखो कि यह घर कौन चीज का बना हुआ है, सूँघकर, ठोंककर सब तरह से जाँच करो।' भीम ने घूम-फिरकर घर को अच्छी तरह जाँचकर देख लिया। बोला—'भाई साहब! यह मकान तो अग्निमय है। इसमें आग छुलाने भर की देर है, जलते कोई देर नहीं लगेगी। इस घर में रहना तो मौत के घर में रहना है।' युधिष्ठिर ने कहा—'घबराने की बात नहीं, अच्छा और भी कुछ देखा?' भीम ने का—'एक खम्भे के नीचे खोखला-जैसा मालूम होता है।' युधिष्ठिर ने कहा—'ठीक है। इसमें सब कोई सावधानी से रहो।' दिन में वे पाँचो भाई पाण्डव शिकार खेलने के बहाने जंगल

जाते और वहाँ जंगल होकर निकलने का मार्ग भी ढूँढ़ा करते थे। दुर्योधन का मंत्री उस लाह गृह के फाटक पर बहुत से हथियारों को लेकर सोता था। इस उद्देश्य से कि जिस दिन इस घर में आग लगाई जाएगी और इस द्वार होकर पाण्डव लोग भागेंगे तो इन हथियारों से उन लोगों का काम तमाम कर दिया जाएगा। गुप्तचर के द्वारा युधिष्ठिर को मालूम हुआ कि अमुक तिथि की रात इस घर में आग लगाई जाएगी। उस तिथि की रात को पहले ही युधिष्ठिर घर के खम्भे को तोड़वाकर माता कुन्ती सहित पाँचो भाई पाण्डव सुरंग होकर बाहर निकल आए, पीछे से उस घर में आग लगा दी। मंत्री उसी घर में जलकर मर गया। इधर गंगा में नाव पर पार होकर वे लोग जंगल में प्रवेश कर गए।

इस कथा से शिक्षा मिलती है कि जहाँ कहीं रहो, वहाँ अच्छी तरह जाँचकर रहो। अब विचारिए हमलोग कहाँ हैं? जहाँ हम हैं, वह रहने काबिल है कि नहीं? पाण्डवों ने जाँचा तो उनके रहने काबिल नहीं था। हम भी जाँचें कि यह संसार रहने योग्य है कि नहीं? सारा संसार काशी है। कल्याणकारी शिव या ब्रह्म का राज्य सब जगह है। एक-एक शरीर में जो हमलोग रहते हैं, यह रहने काबिल है कि नहीं? यदि नहीं रहने काबिल है तो पाण्डव की तरह भाग चलिए। यदि रहने काबिल है, तो रहिए।

दूसरी कथा है—सावित्री सत्यवान की। सत्यवान एक राजपुत्र था। उसके पिता का राज्य छिन जाने के कारण वह अपने माता-पिता और पत्नी सावित्री के साथ एक जंगल के किनारे निवास कर किसी तरह जीवन-यापन करता था। यानी सत्यवान जंगल से लकड़ी काटकर बाजार में बेचता और उसी से अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। एक दिन नारद मुनि ने आकर सावित्री से कह दिया कि तुम्हारा पति अल्पायु है—अधिक दिनों तक नहीं जीएगा। अमुक महीने की अमुक तिथि को वह मर जाएगा। सावित्री ने यह बात किसी से नहीं कही। जब उस महीने की वह तिथि आई और सत्यवान लकड़ी के लिए जंगल जाने लगा, तो सावित्री बोली—'आज मैं भी आपके साथ जंगल जाना चाहती हूँ।' सत्यवान ने कहा—'आप हमारे साथ जाएँगी, तो यहाँ बूढ़ी माता और बूढ़े पिता की सेवा कौन करेगा?' सावित्री बोली—'उन लोगों की सेवा के योग्य पानी वगैरह मैंने उनके पास दे दिया है और जंगल जाने के लिए मैंने उनसे आज्ञा माँग ली है।' फिर सत्यवान के साथ सावित्री जंगल को चल पड़ी। सत्यवान जंगल में प्रवेश कर एक वृक्ष पर चढ़ा और एक डाल को काटना आरम्भ किया। इतने में उसके सिर में दर्द आरम्भ हो गया। वह बोला—'सिर में भयानक दर्द हो रहा है।' सावित्री समझ गई कि इनका अंतिम समय अब निकट आ गया है। वह बोली आप शीघ्र ही पेड़ से नीचे उतर आवें। वह पेड़ से नीचे उतरा और सावित्री की गोद में सिर देकर सो गया। वह सोया और अचेत हो गया। यमदूत उसको लेने आए। किंतु पतिव्रता सावित्री के तेज के सामने वे ठहर न सके। वे लौटकर यमराज से बोले—'वहाँ बड़ी तेजस्विनी सती स्त्री बैठी हुई है। उनके तेज के सामने हमलोग टिक नहीं सकते। अब आप जो करना चाहें, करें।' यमराज भी तो विष्णु के रूप ही हैं, वे स्वयं वहाँ गए और सत्यवान के स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर यानी लिंग शरीर को निकालकर चल दिए। सावित्री उनके पीछे-पीछे उनसे अनुनय-विनय करती हुई चली। सावित्री के विनय से प्रसन्न होकर यमराज ने कहा—'अपने पति को जिलाने के अतिरिक्त कोई वर मुझसे माँग ले।' सावित्री बोली—'मुझे अपने पति से एक सौ पुत्र हों,

मेरे सास-ससुर अंधे हैं, उनको आँख हो जाए और जो राज्य छिन गया है वह पलट जाय। यमराज ने प्रसन्न होकर सब वर दे दिया और सत्यवान के स्थूल-शरीर में फिर लिंग शरीर प्रवेश करा दिया; सत्यवान जीवित हो उठा।

सती स्त्री का तेज कितना बड़ा होता है। मृत पति को जिलाती है, राज्य को पलटा लेती है, सास-ससुर को आँख हो जाती है। इसलिए स्त्रियाँ पातिव्रत्य का पालन करें। इससे सन्तान अच्छी होगी। देश मंगलमय होगा। पुरुषों को चाहिए कि श्रीराम की तरह एक पत्नीव्रत धारण करे।

यह शरीर पचमहला महल है। ऊपर मोटा शरीर है। इसके अंदर सूक्ष्म शरीर है, फिर कारण और महाकारण चार जड़ शरीर हैं। स्थूल शरीर को छोड़कर और शरीरों के साथ हमलोग चले जाएँगे। महाकारण के अन्दर चिदानन्दमय देह है। उपर्युक्त चारों जड़ शरीरों को लेकर चिदानन्दमय देह रहती है। स्थूल शरीर कितनी बार हुआ, कितनी बार गया—ठिकाना नहीं। शरीर से निकलने के लिए शरीर के अंदर-ही-अंदर चलना होगा। क्योंकि जिस घर में जो बैठा रहता है, उस घर से निकलने के लिए उसके अंदर-ही-अंदर चलकर वह उससे निकल सकता है। दूसरी बात है कि थोड़ा जहर खा लिया, शरीर छूट गया, लेकिन इतने ही से काम नहीं चलता। चारों जड़ शरीरों में रहते हुए हम कष्ट भोगते हैं। जितने बच्चे जन्म लेते हैं, जन्म लेते ही सभी रोते हैं। रोना दुःख की निशानी है। जन्म लेने में दुःख होता है। भगवान भी जन्म लिए तो रोने लगे। 'जनमत मरत दुसह दुःख होई।' बीच की हालत देखो। विद्वान, अविद्वान, उच्चवर्ण या निम्नवर्ण किसी तरह के कोई हों, उनसे पूछो कि सुखी हो कि दुःखी? संसार में ऐसा कोई नहीं, जो दुःखी न हो। चाहे राजा हो, महाराजा हो, संसार में आकर रोना पड़ेगा। श्रीकृष्ण भगवान रोए तो नहीं, लेकिन उदास बहुत हुए। और भगवान श्रीराम का रोना तो रामायण में लिखा हुआ हई है। इसलिए संत कबीर साहब कहते हैं—'तन धर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।'

कबीर साहब पढ़े-लिखे तो नहीं थे, लेकिन उनकी वाणी है। पढ़ने-लिखने की विद्या उनमें नहीं थी, लेकिन भजन करने की विद्या को वे जानते थे। यह संसार दुःख का धाम है। जो शरीर में आया, दुःखी हुआ। दैहिक, दैविक, भौतिक;तीनों ताप लोगों को सताते हैं। रामचरितमानस में आया है कि—

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड।।

अर्थात् माया की भयानक सेना संसार में फैली हुई है। काम, क्रोध और लोभ उसके सेनापति और अभिमान, छल और पाखण्ड आदि योद्धा हैं। सबके शरीरों के अंदर यह सेना फैली हुई है, माया की सेना बाहर में नहीं दिखती। काम, क्रोध, लोभ, मोह, पाखण्ड बाहर में कहीं खड़े नहीं दीखते, लेकिन अन्दर में ये काम करते हैं। भाई! इस तरह प्रचण्ड सेना से छूटकर भागना चाहिए। संत कबीर साहब ने कहा है—'जगत पीठ दै भाग री।' किसी तरफ दौड़िए, संसार-ही-संसार है। घर बार छोड़ने से, उपवास करने से पीठ दिखाना नहीं होगा। इस तरह संसार से छूटा नहीं जाता। पंचभौतिक शरीर के लिए जहर क्यों खाओ? यह तो आपही छूटेगा। स्थूल शरीर को जहर खाकर मार सकते हो, लेकिन सूक्ष्म शरीर को जहर क्या करेगा? इंतजाम वह करो जो इंतजाम पाण्डवों ने किया था। सुरंग का पता संतों को है, अनेक ग्रंथों में इसका पता है। जैसे विदुर की सहायता पाण्डवों को मिली, उसी तरह संत लोग सलाह दे गए हैं। सलाह है कि देह में जो छिद्र है, उस होकर भागो।

हरि की शरण में जाओ। हरि और गुरु दोनों की सहायता से निकलना होगा। हरि गुरु की तरह प्रकट नहीं हैं। गुप्त-ही-गुप्त सहायता करते हैं। माता की गोद में जाकर आराम पाने को बच्चा छटपटाता है। अपनी भुजाओं को माँ की ओर करता है तो माँ बच्चे को अपने हाथों से पकड़कर गोद में भर लेती है। इसी तरह तुम भी परमात्मा को पाने के लिए छटपटाओ, अपने को उसकी ओर बढ़ाओ, तो वह भी तुमको अपने पास खींच लेंगे। उनके भी दो हाथ हैं, जिनसे वे तुमको अपने पास खींच लेंगे। जिस समय तुम अपने अंदर में डूबोगे तो एक हाथ झलकेगा—'ब्रह्मज्योति।' वहीं पर दूसरा हाथ है, 'ब्रह्मनाद।' यह जहाँ मिला कि आप उससे खिंचते-खिंचते वहाँ पहुँच जाइएगा, जहाँ से आपको लौटकर फिर शरीर में नहीं आना होगा। इसकी खोज संतों के पास जाकर करो। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

—गीता अध्याय ४/३४

अर्थात् ध्यान में रख कि प्रणिपात से प्रश्न करने से और सेवा से तत्त्ववेत्ता ज्ञानी पुरुष तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

दूसरी सलाह यह है कि जिस ईश्वर की यह माया है, उसकी शरण लो और वहाँ उसका ऐसा भजन करो कि उसके मायातीत स्वरूप का दर्शन हो जाए। जो लोग ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान नहीं रखते और भक्ति के लिए कोशिश करते हैं, तो वे निर्दिष्ट स्थान को नहीं जानते हैं और चलते हैं, तो हैरान होते हैं। जो कुछ इन्द्रियों से जानते हैं, वह माया है। माया कहते हैं परिवर्तनशील को। परिवर्तनशील कहने में कोई सन्देह नहीं, चाहे द्वैत-अद्वैत कुछ भी मानो। यह शरीर माता के पेट से निकला। परमात्मा माता के हृदय में करुणा नहीं दे, तो सभी बच्चे मर जाएँ। अपने जीवन में कितना सुकर्म, कितना कुकर्म किया। सुकर्म की संख्या कम और कुकर्म की संख्या अधिक। जो कुछ देखने में आता है, माया है। शरीर बच्चा हुआ, जवान हुआ और बूढ़ा हुआ। अंकुर से गाछ हुआ फिर वृक्ष का पता भी नहीं रहा। गाछ को कौन कहे। पत्थर भी मरता है। संथाल परगने में मुर्दा पत्थर बहुत हैं। माया परिवर्तनशीला है, इसके अंदर आराम नहीं होगा। माया में पाँच विषय देखते हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। इन्द्रियों के ज्ञान में जो आवे, वह माया है, ईश्वर नहीं। कहते हैं कि जिनको हम देखते नहीं हैं—उनकी शरण में कैसे जाएँगे? तो सगुण ईश्वर को भी तो यहाँ आप नहीं देखते हैं, फिर किसकी शरण में कैसे जाओ? कहते हैं कभी जो वे रूप धारण किये थे, उसी को ख्याल में बनाकर शरण में आओ। तो बताओ त्रयगुणमय शरीर ईश्वर है कि शरीर में रहनेवाला ईश्वर है?

जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

परमात्मा इन्द्रियों के ज्ञान से परे हैं। परमात्म-स्वरूप के लिए कहा गया कि—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।

—रामचरितमानस

जो स्वरूपतः अनंत है, वह किसी एक रूप में पूरा-पूरा अँट नहीं सकता, जैसे समस्त महादाकाश का एक मन्दिर कभी नहीं बन सकता। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहेहु कुविचारी।।

अपने को धूल, धुआँ और अंधकार से निकालो, फिर निर्मल आकाश देखोगे। इसी तरह माया के स्थूल, सूक्ष्म, कारणरूप को पार करो, फिर परमात्मा का निर्मल स्वरूप को देखोगे।

सूर्य बादल से नहीं छिपता। एक गाँव में वर्षा होती है, उसी समय दूसरे गाँव में धूप रहती है। एक जगह अंधकार और दूसरी जगह प्रकाश। जैसे बादल के झुण्ड में सूर्य नहीं छिपता, उसी तरह राम का स्वरूप संपूर्णतः किसी भी आच्छादन से नहीं छिप सकता। भगवान श्रीकृष्ण को 'महायोगेश्वरो हरिः' कहा गया। मुख्तसर बात है कि परमात्मा इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं है। अवतारी रूप विराट रूप और देव रूप माया है, उस रूप में जो है, उसका दर्शन करो। आँख से वह दर्शन नहीं होगा। तब किससे होगा? जानो। आप शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि नहीं; आप ज्ञानवान तत्त्व हैं। आप अपने को कभी नहीं मानते कि मैं नहीं हूँ। शरीर को जिस तरह पहचानते हैं, अपने को उस तरह नहीं। सभी अपना होना विचारते हैं। जड़ के परे चेतन तत्त्व है, ऐसा विचार होता है। उसी की सत्ता पर इन्द्रियाँ काम करती हैं। जिसकी सत्ता पर इन्दियाँ काम करती हैं, वह स्वयं कुछ न कर सके, यह कैसे संभव है? जैसे आँख का रूप और कान का शब्द विषय है, उसी तरह आपका खास कोई विषय है कि नहीं? आपका अपना विषय आप हैं। अपने से अपने को पहचाननेवाला ही अपने से ईश्वर को पहचाननेवाला होता है। ईश्वर को अपने से पहचानो। ईश्वर वही है, जो चेतन आत्मा से ग्रहण हो। इस स्वरूप को श्रवण और मनन से जाने बिना ईश्वर-दर्शन के लिए चलना, केवल हैरान ही होना है। संत लोग कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति ऐसी करो कि ठीक-ठीक उनके स्वरूप का दर्शन हो जाए, जिसको केवल चेतन आत्मा से ही देख सकते हो। इन्द्रियों से केवल माया का ही ज्ञान पाते हो, परमात्मा का नहीं। परमात्मा ही प्राप्त करने योग्य है। आपके अंदर भागने का रास्ता है, इसका यत्न संतों से लीजिए।

हमलोगों को देखने के लिए दो आँखें हैं, भीतर में भी एक आँख है। एक बाबू साहब के दरवाजे पर मैंने देखा कि शिवजी, पार्वतीजी और गणेशजी की तस्वीर में सबको तीन-तीन आँखें हैं। मैंने कहा—ठीक है। शिवजी को तीन आँखें हैं, पार्वती माता को और गणेशजी को भी। मानी (मतलब) यह है कि शिवजी की जितने सन्तानें हैं, सबको वह तीसरी आँख है।' शिवजी की संतान सभी हैं। शिवजी ने तीसरी आँख को खोल ली थी, हम भी उसको खोलें। इस तीसरी आँख के खोलने का यत्न संत दरिया साहब बिहारी बतलाते हैं—

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।

यही मोक्ष का दरवाजा है। इसी को दसवाँ द्वार भी कहते हैं। इसी द्वार पर परमात्मा का ज्योतिरूप हाथ मिलता है। इसी दशवें द्वार होकर शरीर से भागने का द्वार है। 'नव दर ठाके धावतु रहाए दसवैं निजघरि वासा पाए। उथै अनहद शब्द बजहिं दिन राती गुरमति शबदु सुणावणिआ।।' यहाँ पर ठहरकर भजन करते रहो तो परमात्मा की ओर आकृष्ट होकर उनके उपर्युक्त दोनों हाथों से पकड़े जाओगे। स्थूल, सूक्ष्म, कारणादि को पार करोगे और परमात्मा अपनी गोद में उठा लेंगे। n

यह प्रवचन अखिल भारतीय संतमत सत्संग का ५१ वाँ वार्षिक महाधिवेशन, छपरा नगर में दिनांक १.३.१९५९ ई० के सत्संग में हुआ था।

१४०. मनुष्य की खोपड़ी कभी भरती है?

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता!

हम जितने प्राणी हैं, सभी सुख में रहना चाहते हैं। दुःख कोई पसन्द नहीं करते। सुख के लिए जीवनभर पुरुषार्थ करते हैं। जीवनभर प्रयास करते-करते जैसा सुख होना चाहिए नहीं हो पाता। और सुख की इच्छा लिए हुए ही संसार से चले जाते हैं।

सुख उसको हम कहते हैं, जो मन-इन्द्रियों को सुहावे। इसके विपरीत को दुःख कहते हैं। पाँच ही चीज संसार में हैं। उन चीजों को ग्रहण करने के लिए इन्द्रियाँ भी पाँच ही हैं। इन पाँचों इन्द्रियों के विषय—रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श हैं। इनमें प्रत्येक विषय के प्रकार बहुत हैं। लेकिन मोट में पाँच ही हैं। इनसे हम अपने को सुखी बनाना चाहते हैं और इसी के लिए हम प्रयास करते हैं। इसी के लिए हम धन उपार्जन करते हैं और धन उपार्जन करने के लिए परिश्रम करते हैं। फिर उन विषयों को भोगते हैं।

संसार में बड़े-बड़े धनी हो गए हैं। लेकिन अतृप्त ही वे खत्म हो गए। आज भी जहाँ-जहाँ जिनको धन है, वे तृप्त हैं कहा नहीं जा सकता। जितना धन होता है, और भी धन हो, और भी धन हो, इसकी इच्छा बनी ही रहती है। धन के लालच पर एक कथा है उसे सुनिए—

एक राजा था। उसको धन का बहुत लालच था। उसको जब यह मालूम हुआ कि समुद्र में बहुत धन है, इसलिए वह रत्नाकर कहलाता है। तो उसने समुद्र पर चढ़ाई कर दी। बहुत से बम-गोले बरसाए। समुद्र के अंदर रहनेवाले जीव व्याकुल हो गए। अंत में समुद्र राजा के सामने मनुष्य रूप में उपस्थित हुआ। समुद्र ने राजा से पूछा—' तुम क्यों तोप, गोले बरसाकर मेरे अंदर रहनेवाले जीवों को कष्ट दे रहे हो?' राजा ने कहा—'तुम मेरे राज्य में हो, तुमने कभी भी मुझे कर नहीं दिया है।' समुद्र ने राजा को धन का एक खजाना बता दिया और कहा—'इस खजाने से जितना धन लेना है, ले लो।' राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने धन ढुलवाना शुरू किया। धन ढोते-ढोते कितने बैल मर गए, कितने नौकर बीमार हो गए, कितनी गाड़ियाँ टूट गईं, ठिकाना नहीं, लेकिन खजाना धन से खाली नहीं हुआ। राजा ने पुनः समुद्र पर चढ़ाई की। समुद्र फिर प्रकट हुए। समुद्र ने राजा से पूछा—'अब क्यों आक्रमण करते हो?' राजा ने कहा—'धन ढोते-ढोते मेरा खजाना भर गया, अब मुझे धन रखने की जगह नहीं है, कोई ऐसा बर्तन दो जिसमें मैं अपना धन रख सकूँ।' समुद्र ने राजा को मनुष्य की एक खोपड़ी देते हुए कहा—'लो, इसमें धन रखो।' यह कहकर समुद्र अंतर्द्धान हो गया।' राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस खोपड़ी में कितना धन अँटेगा! लेकिन समुद्र की बात मानकर वे खोपड़ी में धन भरने लगा। अब न तो खोपड़ी भरती और न खजाना ही खाली होता। राजा खोपड़ी को धन से भरते-भरते परेशान हो गया। राजा ने पुनः समुद्र पर गोले बरसाना शुरू किया। समुद्र फिर प्रकट हुआ और बोला—'तुम क्यों मेरे ऊपर बारम्बार गोले बरसा रहे हो?' राजा ने कहा—'तुमने ऐसी खोपड़ी दी है, वह धन से भरती ही नहीं है और न तुम्हारा बताया खजाना ही खाली होता है।' समुद्र ने कहा—'अरे! मनुष्य की खोपड़ी कभी

भरती है? तू इस पर राख डाल।' राजा ने थोड़ी-सी मिट्टी उस खोपड़ी पर डाल दी, खोपड़ी भर गई।

यह कहानी कहने का मतलब है कि मनुष्य की खोपड़ी कभी भरती ही नहीं। इसलिए अपनी इच्छा पर मिट्टी डाल यानी संतोष कर ले, तभी यह खोपड़ी भर सकती है। मनुष्य को धन कितना हो, इसका ठिकाना नहीं। गोस्वामी तुलसीदाजी ने कहा है—

द्रव्यहीन दुःख लहहिं दुसह अति, सुख सपनेहुँ नहिं पाए।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों, धन दुःख प्रद स्रुति गाए।।

धन नहीं रहने पर जलते रहो और धन हो तो भूत की तरह नाचते रहो। तृप्ति आती नहीं धन से। समझ लेने पर भी आदमी तृप्त नहीं होता—संतुष्ट नहीं होता। संतुष्ट कैसे हो? गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।।
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा।।

संतोष के बिना इच्छा की निवृत्ति नहीं होती और संतुष्टि ईश्वर की भक्ति से होती है। जैसे बिना धरती के कोई भी वृक्ष जम नहीं सकता, उसी तरह परमात्मा के भजन के बिना इच्छा की निवृति नहीं हो सकती। इसीलिए राम-भजन की बड़ी आवश्यकता है—अपने को तृप्त करने के लिए, सुखी करने के लिए।

हमलोग लड़कपन से ही ईश्वर को मानते आए हैं, जब से हमलोगों के मुँह में बोल आया। क्योंकि हमारे घरों में आस्तिक भाव पहले से भरा है। लेकिन ईश्वर स्वरूपतः कैसे हैं, इसको नहीं जाना। किसी के घर में शिव ईश्वर हैं, किसी के घर में शक्ति माता को ही ईश्वरी कहकर मानते हैं। कोई गणेशजी को तो कोई विष्णु भगवान को ईश्वर मानते हैं। इस तरह ईश्वर को हमलोग मानते आए हैं। हमलोगों ने अपने ही घर के इष्टदेव को ईश्वर कहा या सबको ईश्वर कहा? शिव कहकर जो रूप सामने आता है, उसको ईश्वर कहा या दाशरथि राम को ईश्वर कहा? जिनको जिनकी उपासना करनी है वे उसी रूप में ईश्वर को जानें। बात तो बहुत अच्छी है, लेकिन यह नहीं जानना चाहिए कि ईश्वर अनेक हैं। राम, शिव, विष्णु, शक्ति आदि कहकर जो अनेक नामरूप मालूम होते हैं, वे अनेक नामरूप के कारण अनेक ईश्वर हैं, ऐसा नहीं। क्योंकि ईश्वर एक ही हो सकते हैं। इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म या वैदिक धर्म; ये तीनों धर्मावलम्बी ईश्वर को मानते हैं। हमारे यहाँ बहुत रूपों में ईश्वर को मानते हैं। कोई शिव को, कोई विष्णु को तो कोई राम को तो कोई कृष्ण को ईश्वर कहते हैं। अपने इष्टदेव को ईश्वर कहकर दूसरे के इष्ट को न्यून बताते हैं और आपस में सम्प्रदाय भाव में आकर लड़ते-झगड़ते हैं। यदि ऐसा भाव हो कि मेरे लिए जैसे शिव हैं, उनके लिए वैसी ही शक्ति और उनके लिए वैसे ही विष्णु। इस तरह एक ही ईश्वर मानना ठीक है। यह जान लें कि सब रूपों में ईश्वर एक ही हैं। जो शक्ति माता में है, वे ही राम में, शिव में, विष्णु में हैं। गुरु में भी वे ही हैं। वे ही एक ईश्वर सबमें हैं। इसलिए ईश्वर एक हैं, यह विचार के अनुकूल है।

ईश्वर सर्वव्यापी हैं। इसलिए सब रूपों में वे हैं। जिस रूप में उनका प्रभुत्व विशेष देखा जाता है, उसे विशेष करके मानते हैं। अगर ऐसा कहो कि एक-ही-एक है तो वे असीम हैं या ससीम? चाहे आप वैज्ञानिक हों या दार्शनिक हों, मैं कहता हूँ कि एक ऐसा परमतत्त्व होना चाहिए कि जिसका कहीं आरम्भ और कहीं अंत न हो। ऐसा नहीं कि फलाने काल से आरम्भ होकर फलाने काल में समाप्त होगा। जो देश-काल के परे है, वह असीम है, ऐसा कोई पदार्थ अवश्य है।

वैज्ञानिकों को भी यह मानना ही पड़ेगा। और

दार्शनिक तो कहते ही हैं। अगर मूलारम्भ में ऐसा नहीं मानो तो ऐसा मानना पड़ेगा कि सब-के-सब ससीम हैं। ऐसा कोई नहीं कि जो असीम-अनंत है। तो वहीं पर प्रश्न होता है कि सब ससीमों के परे आप क्या मानते हैं? सब ससीमों का एक झुण्ड बना लो; सब ससीमों को जोड़ने से असीम नहीं होता। ससीमों का जोड़ असीम नहीं होता, चाहे कितना बड़ा मण्डल क्यों न हो, वह ससीम होगा। तब वहीं पर सवाल होगा कि उस ससीम मण्डल के परे क्या है? जबतक असीम नहीं कहोगे, प्रश्न बना ही रहेगा। असीम के परे क्या है? यह पूछना ही गलत हो जाएगा। जिसके परे कुछ होता है, उसकी सीमा होती है; जिसकी सीमा नहीं,उसके परे क्या होगा? इसलिए सब ससीमों के परे एक असीम है। ऐसा विचार-दृष्टि से देखा जाता है। संस्कृत ग्रंथ में और भाषा ग्रंथ में असीम का वर्णन आता है। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।

जिसकी सीमा नहीं हो, उसको किसी आकार में कैसे वर्णन कर सकते हैं। जहाँ आकार है, वहाँ सीमा है। जहाँ कोई आकार नहीं, वहाँ असीम है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।।' कहा। और संत कबीर साहब ने कहा—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूह अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।

गुरु नानक साहब तथा और संत सब भी ऐसा ही कहते हैं। उपनिषत्कार ने कहा है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

—कठोपनिषद् अ०- २ व० २—१०

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है उसी प्रकार संपूर्ण भूतों का एक ही अंतरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

इसी तरह अग्नि के भी लिए कहा है। परमात्मा सबमें है और सबसे बाहर भी है। ऐसा नहीं कि कहीं वे खत्म हो जाते हैं। अनादि-अनंत होने के कारण वे सबमें है। गुरु नानक साहब ने कहा है—

बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुरु गिआन बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।।

सबमें परमात्मा एक-ही-एक है। बुद्धि में इस तरह आने पर भी पहचान नहीं सकते। संसार की किसी चीज से उनकी उपमा नहीं दी जा सकती। गो० तुलसीदासजी ने रामायण के उत्तरकाण्ड में लिखा है—

अनुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।।

जो ईश्वर कोटि के महान देव हैं, उनमें और हममें—सबमें वे परमात्मा हैं। आत्म-तत्त्व रूप में हममें और उन महान देवों में वे एक हैं। लेकिन अंतःकरण में बहुत फर्क है। हमारा अंतःकरण संकुचित है, लेकिन महान देवों का विकसित है। उनकी शक्तियाँ जगी हुई हैं, हमारी सोयी हुई है;

इसीलिए हम जीव कोटि के और वे देव कोटि के कहे जाते हैं। सबसे विशेष व्यापक और सूक्ष्म होने के कारण परमात्मा असीम है, अनंत है। जो असीम है, अनंत है, वे सर्वव्यापी क्यों न होंगे? जो जितना विशेष व्यापक होता है, वह उतना ही अधिक सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म का अर्थ छोटा टुकड़ा नहीं, बहुत महीन। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं होता। परमात्मा अत्यन्त बारीक है और हमारी इन्द्रियाँ स्थूल हैं। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

वे बुद्धि के परे तत्त्व हैं। ईश्वर-स्वरूप का निर्णय इस प्रकार जानना चाहिए। इस निर्णय को जाने बिना हम कहाँ तक पहुँचेंगे, इसका निर्णय नहीं कर सकते। मुख्तसर में कह सकते हैं कि स्वरूपत: ईश्वर वही है, जो इन्द्रियों से परे है। तब प्रश्न होता है कि राम, कृष्ण ईश्वर नहीं हैं? हैं। ईश्वर कोटि के हैं, उनमें हममें बहुत अंतर है। उनमें अष्ट सिद्धि, नवनिधि का खजाना भरा है, हममें नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी अवतारवाद के बहुत पक्के हैं, लेकिन वे ऐसा भी कहते हैं कि—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ।।

अर्थात् भक्त के लिए ईश्वर राजा का रूप धारण कर पवित्र लीला करते हैं। जैसे कोई बहुरूपिया अनेक रूप धारण कर कभी राजा का, कभी भिखारी आदि का भाव दिखाता है। लेकिन वह नट वही नहीं हो जाता। इसी तरह भगवान राम के लीलामय रूप से जो लीला होती है, तो उस रूप में ईश्वर है, वह रूप ईश्वर नहीं है। तब कहेंगे कि सब रूप में ईश्वर है। सब पूजने योग्य क्यों नहीं है? इसलिए कि भगवान का अंत:करण बड़ा विशाल है, हमारा विशाल नहीं है। यह अवश्य ही गूढ़ विषय है। इस गूढ़ विषय को सबलोग जल्द समझ नहीं सकते, सुनकर भी नहीं समझ सकते, जो विद्वान हैं, जो बहुत सत्संग किए हैं, वे समझ सकते हैं। सबलोग समझने लगेंगे, यदि वे ज्यादे ध्यानाभ्यास और ज्यादे सत्संग करें।

कितने लोग ईश्वर के लिए इन्कार करते हैं, यहाँ तक कि अपने लिए भी इन्कार करते हैं। इसलिए कि पंच ज्ञानेन्द्रियों में ही ईश्वर को लेना चाहते हैं। अरे! स्थूल यन्त्र से सूक्ष्म यन्त्र का ग्रहण नहीं हो सकता। तब कौन ग्रहण करेगा? प्रत्येक शरीर में चेतन आत्मा है। इसके लिए भी कितने प्रकार का ज्ञान है। लेकिन 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी।।' यह लीजिए तो बड़ा अच्छा। क्योंकि किसी एक रूप में वा सम्पूर्ण रूप में परमात्मा अँट नहीं सकते। जैसे सम्पूर्ण आकाश का कोई एक ही घर नहीं बन सकता। अंत:करण से युक्त जीव कहलाता है। शरीर में मन-बुद्धि आदि के अतिरिक्त जो चेतन आत्मा रह जाती है, ईश्वर-दर्शन के लिए वही योग्य है। जैसे बाहर में एक-एक इन्द्रिय एक-एक विषय को ग्रहण करती है। आँख का विषय कान और कान का विषय नाक ग्रहण नहीं कर सकती। आपकी ही सत्ता पर सब इन्द्रियाँ काम करती हैं। आप अकेले होकर क्या कर सकते हैं, इसको नहीं जानते हैं। आपका निज विषय ईश्वर-ग्रहण है। बुद्धि में आस्तिक लोग निर्णय करते हैं कि मेरे इस शरीर में ईश्वर है और मैं हूँ। नास्तिक अपना होना भी नहीं मानता।

श्रीमद्भगवद्गीता में इकतीस तत्त्वों का वर्णन है—पाँच स्थूल तत्त्व (मिट्टी, जल, अग्नि, हवा और आकाश), पाँच सूक्ष्म तत्त्व (रूप, रस,गंध,

स्पर्श और शब्द), अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, दशेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह, गुदा, लिंग; ये कर्मेन्द्रियाँ और आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा; ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), मन, चैतन्य, संघात (कहे गए का संघरूप), धृति (धारण करने की शक्ति) और इनके विकार—इच्छा, द्वेष, सुख और दुःख—इन इकतीस तत्त्वों के समूह को क्षेत्र कहते हैं। इनके अतिरिक्त आप इसमें से अलग हैं। उसी को जीवात्मा कहते हैं। वही ईश्वर को देखता है यानी ग्रहण करता है। देखना शब्द से, आँख से देखना नहीं समझें। आप सब इन्द्रियों को सत्ता देनेवाले हैं। बिना आँख के ही आप देख सकते हैं। आप अपने से ग्रहण कीजिए। इसमें आप लाचारी बतावें कि इन्द्रियों को छोड़कर हम अकेले कैसे रहेंगे? तो इसका भी उत्तर है। जैसे दूध से मक्खन को अलग कर लेते हैं, उसी तरह आप अपने को शरीर, इन्द्रियों से अलग कर सकते हैं। ब्रह्मानन्द स्वामी ने कहा है—

जिमि दूध के मथन से, निकसत है घी जतन से।
तिमि ध्यान के लगन से, परब्रह्म ले निहारा।।

ईश्वर-भक्ति के वास्ते ध्यान अनिवार्य है। ध्यान को छोड़कर न पूजा ठीक होगी, न जप। एक तरफ मन करके जप, पूजा, मोटा ध्यान करो। इतने में ही भक्ति खतम नहीं है, और भी है। मेरा प्रचार है कि पहले ईश्वर-स्वरूप को जानो और ईश्वर को कौन पकड़ेगा, इसको भी जानो। इसी दोनों का उत्तर हुआ है। ईश्वर को प्राप्त करके सुख होगा। इसका विश्वास क्या? श्रद्धालु भक्त को विश्वास होता है कि ईश्वर मिल गए तो बाकी क्या रहेगा? जो तर्कवाले हैं, वे जानें कि हम ससीम के अंदर हैं, तो सुखी नहीं हैं। उस असीम को प्राप्त करें तो सुखी रहेंगे। दूसरी बात माया की फौज के अंदर रहते हैं तो दुःखी रहते हैं। इनके उल्टे जो परमात्मा हैं, उनको प्राप्त करने से सुखी होंगे। क्योंकि जो पदार्थ आपस में उलटे-उलटे होते हैं, उनके गुण भी उलटे-उलटे होते हैं। यहाँ इन्द्रिय-ज्ञान में विषयानन्द होता है, तो वहाँ आत्मानन्द है। उसका वर्णन कोई कर नहीं सकता कि कैसा सुख होता है। सूरदासजी ने कहा है—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।

इन्द्रियों को छोड़कर आत्मा को जो ग्रहण होता है, वह परम स्वाद है। उसमें इतनी संतुष्टि है कि उसका हद्दो-हिसाब नहीं है। इसीलिए कहा—

राम भजन बिनु मिटहीं कि कामा।

परमात्मा इन्द्रिय-ज्ञान से परे है, यह जानना चाहिए। n

यह प्रवचन समस्तीपुर जिलान्तर्गत ग्राम—लगमा में दिनांक ११.३.१९५९ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१४१. युद्ध भी करो और स्मरण भी

प्यारे लोगो!

जानना और युक्त होना—ये दोनों आपस में बड़े संगी हैं। संसार भर में जो काम होते हैं, इन्हीं दोनों से होते हैं। बिना जाने युक्त हुआ नहीं जाता। युक्त हुए बिना, जाने हुए तत्त्व का ग्रहण नहीं होता। इसलिए जानना और युक्त होना—दोनों आवश्यक हैं। जानने को ज्ञान और युक्त होने को योग कहते हैं। बिना जाने आप क्या कर सकते हैं

और जानकर भी यदि युक्त नहीं होंगे तो क्या लाभ होगा? इसलिए ज्ञान और योग—दोनों का अच्छी तरह अभ्यास करना चाहिए।

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि।।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्।।
—योगशिखोपनिषद्

सांसारिक बातों में भी आप इसको लगा सकते हैं। आप जानेंगे कि नौकरी, व्यापार और खेती करने से धन होता है तो इसके लिए आप उनसे युक्त होंगे तो धन मिलेगा, यदि नहीं जानेंगे तो युक्त नहीं होंगे और उनसे जो लाभ होना चाहिए, नहीं होगा। हम चाहते हैं कि स्थिर सुख मिले, लेकिन ऐसा नहीं होता है। संत सूरदासजी ने एक भजन गाया है—

तातें सेइये यदुराई।
सम्पति विपति विपति सों सम्पति देह धरे को यहै सुभाई।।
तरुवर फूलै फलै परिहरै अपने कालहिं पाई।
सरवर नीर भरै पुनि उमड़ै सूखे खेह उड़ाई।।
द्वितीय चन्द्र बाढ़त ही बाढ़े घटत घटत घटि जाई।
सूरदास सम्पदा आपदा जिनि कोऊ पतिआई।।

सम्पत्ति या विपत्ति किसी को आप ठहराकर नहीं रख सकते। जैसे भूख, प्यास, नींद स्वाभाविक है। उसी तरह सम्पति-विपत्ति का होना स्वाभाविक है। इसलिए इसमें आसक्त मत होओ। आसक्त ईश्वर में होओ, जो कभी खोने को नहीं, कभी छूटने को नहीं, अपना शान्तिमय स्वभाव कभी छोड़ने को नहीं। उपमा देकर सूरदासजी कहते हैं—तरुवर फूलता, फलता और झड़ता भी है। सरोवर का नीर बढ़ता, उमड़ता और सूखता भी है। द्वितीया का चन्द्र बढ़ते-बढ़ते पूर्णमासी का होता है, फिर अमावस्या आती है। इसलिए सम्पति-विपत्ति का कभी विश्वास नहीं करो। विश्वास करो ईश्वर पर, जो एक बार मिले तो फिर कभी बिछुड़े नहीं। अटल एक ईश्वर रहता है। उसको जानो और उससे युक्त होओ। यही ज्ञान और योग है। यदि ईश्वर का भरोसा छोड़कर संसार में लीन हो जाओ तो कोई विश्वास नहीं। जिसको ज्ञान रहता है, वह सुख के दिन में बिनसेगा नहीं और दुःख के दिन मे बिलखेगा नहीं।

क्षत्रपति शिवाजी के समय में एक संत थे समर्थ रामदासजी और दूसरे थे तुकाराम जी। समर्थ रामदासजी लड़कपन में बहुत दौड़ने और फाँदनेवाले थे। लोग इनको हनुमानजी का अवतार कहने लगे थे। इनके विराग को देखकर इनके परिवारवालों ने इनकी शादी की बात की। इन्होंने शादी करने से इन्कार कर दिया। इनकी माताजी बोलीं—मण्डप पर जाने के पहले तुम विवाह से इनकार नहीं कर सकते। समर्थ रामदासजी माता के बड़े भक्त थे। इन्होंने कहा—माताजी ऐसा ही होगा। विवाह की सारी तैयारियाँ हो गयीं। माताजी की बात मानकर ये मंडप पर गए और वहाँ से भाग गए, तो भाग ही गए।

जो लोग ईश्वर पक्ष के होते हैं, उनका हृदय बहुत उत्तम होता है। उनके हृदय में विचित्र संतोष होता है। उससे उन्हें तृप्ति बनी रहती है। वे जानते हैं कि सम्पत्ति-विपत्ति ऐसे ही आती-जाती रहती है।

संसार के पदार्थों को पाकर जिनको संतोष रहता है, वे दुःखी-ही-दुःखी रहेंगे। सत्संग के द्वारा ज्ञान प्राप्त करो। सद्ग्रंथों का पाठ भी सत्संग है। संतों के संग को भी सत्संग कहते हैं, लेकिन नित्यप्रति संतों का संग नहीं मिल सकता। इसलिए उनकी वाणी का पाठ नित्य करो, बड़ा संतोष होगा। कबीर साहब ने कहा है—

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिए, सोई शाहंशाह।।

इसलिए ज्ञान प्राप्त करो और योग भी करो। बिना ज्ञान के योग नहीं कर सकते और बिना योग के निर्णीत पदार्थ को नहीं पाओगे।

ईश्वर से प्रेम करने को ही भक्ति कहते हैं।

इसको छोड़कर कोई और कुछ करना चाहते हैं तो वह योग नहीं है। वह तो—

जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम प्रधानू।।

सिद्ध महात्मा दो तरह के होते हैं। एक सदाचार में संलग्न रहते हैं, अपनी पहुँच वे आप जानते हैं, ईश्वर की ओर रहते हैं, वे सिद्धपुरुष हैं। रामकृष्ण परमहंसदेवजी ने कहा है कि सिद्धपुरुष आलू और बैगन की तरह मुलायम होते हैं। दूसरे वे होते हैं, जो चमत्कार दिखाते फिरते हैं। वे ईश्वर की तरफ नहीं हैं। संतों के दरबार में उनका आदर नहीं होता। योग से विन्दु और नाद को पकड़ो। उपनिषद् में आया है—

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्तिनिकेतनम्।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

—योगशिखोपनिषद्, अध्याय १

अपने शरीर को आप शिवालय बना सकते हैं और अंतःकरण को अशुद्ध करके निष्कृष्ट बना सकते हैं। इसी उपनिषद् में दूसरी जगह है—

विन्दुनाद महालिंगं विष्णुलक्ष्मीनिकेतनम्।
देहं विष्णवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्व देहिनाम्।।

—योगशिखोपनिषद्, अध्याय ५

विन्दु शक्ति है और नाद शिव है। विन्दु लक्ष्मी है और नाद विष्णु है। विन्दु जलढरी है और नाद शिवचिह्न है। इनकी उपासना कीजिए। लक्ष्मी और शक्ति में तथा विष्णु और शिव में भेद नहीं है। इसलिए दोनों तरह के श्लोक कहे गए हैं। यदि कोई कहे कि रूप देखने में तो भिन्न-भिन्न है, फिर दोनों एक कैसे? तो उत्तर में निवेदन है—किसी के स्थूल रूप पर ही विचार नहीं करो। उसके विन्दु रूप और नाद रूप पर भी विचार करो। विन्दु और नाद की जहाँ पर समाप्ति होती है, वहाँ एक ही है। उस शब्दातीत पद में पहुँचो तो वहाँ एक-ही-एक रहता है। यहाँ तो दो रहते हैं—विन्दु और नाद। जो विन्दु और नाद की उपासना करते हैं, वे एक ईश्वर की उपासना करते हैं। विन्दुपीठ का भेदन करके नादलिंग उपस्थित होता है। ऐसा उपनिषद् में भी वर्णन आया है। नाद स्वयं उपस्थित होता है। कोई कहे कि यह बिल्कुल सूक्ष्म-ही-सूक्ष्म है, स्थूल साधना नहीं है। तो उत्तर है कि अवश्य है। नाद का स्थूल रूप श्रवणात्मक शब्द अथवा इन्द्रियगम्य शब्द है, जिसको कान से सुनते हैं। विन्दु का स्थूल रूप शालिग्राम है। वर्णात्मक शब्द का जप और किसी पवित्र मूर्ति का मानस ध्यान करो। संतों के वचन में आया है—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।
सपनेहु में बर्राइ के, धोखेहु निकरै नाम।
वाके पग की पैंतरी, मेरे तन को चाम।।

—संत कबीर साहब

गुर की मूरति मन महि धिआनु। गुरु कै शबदि मंत्र मनु मानु।।
गुर के चरण रिदै लै धारउ। गुरु पारब्रह्म सदा नमसकारउ।।

—गुरु नानक साहब

कितना आदर है कबीर साहब के यहाँ वर्णात्मक नाम का जप और गुरु नानक साहब के यहाँ एक ॐ कर्तापुरुष का! ईश्वर के कितने ही नाम हैं, जो लेना चाहो लो।

दादू सिरजन हार के, केते नाम अनन्त।
चित भावे सो लीजिए, यौं साधू सुमिरै संत।।

लेकिन जो मंत्र गुरु से पाओ, उसी को जपो। फिर मानस ध्यान करो। इसके बाद विन्दु ध्यान है। विन्दु ध्यान इसलिए है कि नाद पकड़ा जा सके। मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टि साधन और शब्द साधन—ये ही चार साधन हैं, विशेष नहीं। कबीर साहब ने कहा है—

न योगी योग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।

प्राणायाम योग के लिए मना किया और तपसी जो पंच अग्नि तापते हैं उसके लिए भी मना

किया। मानस जप में, मानस ध्यान में, दृष्टियोग में और नाद ध्यान में सुरत का खेल है। केवल उपासना करते समय ही सुरत का खेल नहीं होता है, बल्कि संसार का काम करते हुए भी अपना ख्याल प्रभु में लगाकर रखो।

जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै।
कर छोड़ै मुख वचन चित्त कलसा में लावै।।

वेद में भी त्रिकाल संध्या करने को कहा है। गीता में बताया है कि मोक्ष का अधिकारी अपने को बनाकर कर्मयोग करो। जो सांसारिक वासनाओं को अपने से हटाकर निर्लिप्त रहता है, कर्म करता है, ईश्वर में अर्पण करता है, फलाश को छोड़कर कर्म करता है; वह कर्मयोगी है। आत्मरत होकर कर्म करो। यह बहुत अच्छा कहा। अपनी आत्मा में अपने को संलग्न कर कर्म करने कहा। आत्मा क्या है? शरीर यानी क्षेत्र को छोड़ दो, तब जो तुम हो सो आत्मतत्त्व है। तुम इन्द्रियगम्य नहीं हो। आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है। उसमें संलग्न होकर कर्म कैसे करें? यह तो अन्त की बात है। आरम्भ कैसे होता है, सो सुनो—अपना निशाना अपने अंदर है, अपने उसपर लगे रहो। यह आत्मरत होने का अभ्यास करना है।

कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।
सो ध्यानी परमान, सुरत से अण्डा सेवै।
आप रहे जल माहिं, सूखे में अण्डा देवै।।
जस पनिहारी कलस भरे, मारग में आवै।
कर छोड़ै मुख वचन चित्त कलसा में लावै।।

—पलटू साहब

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—युद्ध भी करो और मेरा स्मरण भी करो। यह कितना कठिन काम है। तीर से तीर को काटना कितना निशाना करना होता होगा। और फिर ध्यान करने को कहा। दृष्टियोग में आत्मरत होने का आरम्भ होता है। मानस ध्यान में देखा हुआ रूप लेते हैं, लेकिन दृष्टियोग में कुछ लेते नहीं हैं। केवल देखने के ढंग से देखा जाता है। धर्मदासजी ने कहा है—

सुखमन सेज बिछाओं गगन में नित उठि करौं निहोर।

गगन में ठहराव करते हैं। इसी को दूसरी तरह से कहा है—

गंग जमुन के वार पार बिच भरतु है अमिय करार।

—संत गुलाल साहब

इंगला-पिंगला के मिलन स्थान पर स्थिर अमृत है। दृष्टियोग में अपना निशाना है, अपने अंदर है, अपने उस पर लगे हैं। यह आत्मरत होने का आरम्भ है। प्रभु ईसा मसीह का वचन है—शरीर का दीपक आँख है। यदि तेरी आँख एक हो तो तेरा सारा शरीर उजियाला होगा।

मुझे किसी मजहब से घृणा नहीं है, मैं सभी मजहबों में ध्यान को देखता हूँ। किसी भी मजहब में तुम हो, ध्यान करते हो कि नहीं। ध्यान करो नाथनगर के खलील साहब नमाज पढ़ने के बाद ध्यान करते थे। संत दादू दयालजी ने कहा है कि मन को घेर कर लाता हूँ, फिर भाग जाता है। फिर कहा कि—

साध शबद सों मिलि रहे, मन राखे बिलमाइ।
साध सबद बिन क्यों रहे, तबहीं बीखरि जाइ।।
मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ।
मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ।।

मन का मन से लगकर स्थिर होना दृष्टियोग से होता है। दादू दयालजी ने कहा है—

सबदै बन्ध्या सब रहै, सबदै सब ही जाइ।
सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाइ।।

पृथ्वी चलती है, उसमें ध्वनि होती है। उस ध्वनि से पृथ्वी इस तरह लपेटी है, जैसे लट्टू जो घूमता है, उससे जो ध्वनि होती है, उससे वह बंधा रहता है। संसार में जितने प्रबंध होते हैं, सब शबद से होते हैं। सेना तैयार होओ—मुँह से कहा और सुनते ही सेना तैयार हो गयी, आदि। g

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर पाटम में दिनांक २१.४.१९५९ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१४२. श्रीदुर्गा देवीजी का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस समय के सत्संग में मैं 'ईश्वर की भक्ति किस तरह होती है, उसकी क्या विधि है' कहूँगा। ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान जैसा गहन है, उसकी विधि भी वैसी ही गहन है। ईश्वर-स्वरूप के बारे में दो दिनों तक कहा जा चुका है। फिर भी आप को याद दिलाने के लिए कहा जाता है कि ईश्वर वह है जो आप चेतन आत्मा से पहचान सकते हैं। ईश्वर इन्द्रियों के द्वारा पहचाना नहीं जाता। अपने देश में बहुत लोग कहते हैं कि ईश्वर के दर्शन इसी आँख से लोग करते थे। श्रीराम, श्रीकृष्ण के दर्शन इसी आँख से हुए। रामकृष्ण परमहंस को श्रीकाली के दर्शन इसी आँख से हुए, तो क्या ये ईश्वर के दर्शन नहीं हैं? जो गहन ज्ञान नहीं समझ सकते, उनको समझना चाहिए कि राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, दुर्गा आदि जितने रूप हुए तो क्या इतने पाँच-सात ईश्वर हैं? तो अवश्य समझेंगे कि ईश्वर पाँच-सात नहीं हो सकते। एक ही ईश्वर है। वैष्णव 'भगवान विष्णु' को ईश्वर कहेंगे और सबको सेवक। दूसरे कहेंगे 'शिव' ईश्वर और सब उनके सेवक। इसी तरह जो जिनके उपासक हैं, उनको वे ईश्वर कहेंगे और सबको वे सेवक कहेंगे। इसी भाव में साम्प्रदायिकता का भाव आता है। एक से कहा जाय कि जैसा आप अपने इष्ट के लिए कहते हैं; वैसे ही दूसरे भी अपने इष्ट के लिए कहते हैं, लेकिन ठीक कौन है? सब अपने-अपने इष्ट को बड़ा कहते हैं। इस प्रकार साम्प्रदायिकता का खूब झगड़ा हुआ है। कुछ वर्ष पूर्व शैव और वैष्णवों में लड़ाई हुई। अंग्रेजों का समय था। वाक्य-युद्ध ही नहीं, शस्त्र भी खुल पड़े। मुकदमा हुआ। तय हुआ कि शिव दल बड़े हैं, प्राचीन हैं। इसलिए कुम्भ के मेले में पहले शैव दल ही स्नान करे। इस साम्प्रादियकता के फेर में कितनी तकरार हुई, ठिकाना नहीं।

अपने देश में ही नहीं, ताजिया में भी झंझट हुआ। रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट में भी लड़ाई-झगड़ा हुआ। लेकिन असलियत क्या है? मुझसे पूछो कि राम ईश्वर हैं? मैं कहूँगा—'हाँ।' कृष्ण ईश्वर है? मैं कहूँगा—'हाँ।' इसी तरह सभी के लिए मैं ईश्वर मंजूर करूँगा। तो पूछेंगे कि क्या अनेक ईश्वर मानते हैं? मैं कहूँगा—'नहीं।' एक ईश्वर ही मानता हूँ। एक ईश्वर ही सर्वव्यापक हैं। जितने रूप कहे गए, उन सब रूपों में वही एक सर्वव्यापक है। रूप ईश्वर नहीं है। रूप की बड़ी मर्यादा गोस्वामी तुलसीदासजी ने दी। लेकिन यह भी कह दिया कि—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ॥

जैसे नाटककार वेष धर कर वैसा ही काम दिखाता है, जैसा कि किसी ने पहले किया था, लेकिन वह स्वयं 'वह' नहीं बन जाता। गीता 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' को बताती है। वह अध्यात्म तत्त्व सबमें भरपूर है। श्रीकृष्ण ने ऐसा नहीं कहा कि मेरा जो यह क्षेत्र है, वही क्षेत्रज्ञ है। लोग इसका भी प्रचार करते हैं कि भगवान के क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में कोई अंतर नहीं है, एक ही है। महाभारत पढ़कर देखिए या उसके अंदर एक गीता और है,

जिसको 'अणुगीता' कहते हैं। उसको भी पढ़िए। कहीं ऐसी बात नहीं है। फिर भी जोर देना कि उनके क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में भेद नहीं है, उचित नहीं। महाभारत में है कि क्षेत्रज्ञ जब प्राकृतिक गुणों से मुक्त हो जाता है यानी निस्त्रैगुण्य हो जाता है, तब वही परमात्मा हो जाता है। वह जो क्षेत्रज्ञ आत्मतत्त्व है, तमाम एक-ही-एक है। चाहे सोने का मन्दिर हो, चाहे शौचालय हो, देवालय हो, एक ही आकाश सर्वत्र है। उसी तरह सब शरीरों में एक ही आत्मा है। कठोपनिषद् में कहा है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

जैसे गिलास के अंदर की हवा गिलास के रूप की ही होती है, उसी तरह सब भूतों के अंदर आत्मतत्त्व एक ही है। रूप-रूप के अनुरूप उसका आकार होता है। लेकिन वह तत्त्व नहीं होता। कोई गिलास चाँदी का, कोई सोने का, कोई काँच का होता है। सबमें पानी-ही-पानी है। तत्त्वरूप में एक ही है,लेकिन बर्तन और पानी एक ही नहीं है। उसी तरह कोई भी शरीर हो, उसमें जो आत्मा है, सब एक ही है, लेकिन शरीर और आत्मा एक ही नहीं है। गीता के सातवें अध्याय में भगवान ने कहा है—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।

अबुद्धि अर्थात् मूढ़ लोग मेरे श्रेष्ठ उत्तमोत्तम और अव्यय रूप को न जानकर मुझ अव्यक्त को व्यक्त हुआ मानते हैं। शरीर व्यक्त है, परमात्मा अव्यक्त हैं। इस अव्यक्त तत्त्व को विचारो तो जो राम में है, वही कृष्ण शरीर में है, वही देवी रूप में भी है। जबतक श्रीकृष्ण क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ था, तबतक उसको कोई जलाया नहीं। लेकिन जब क्षेत्रज्ञ क्षेत्र से निकल गया, तब अर्जुन ने उसका दाह किया।

काली, दुर्गा, राम, कृष्ण सबके शरीर रूप को हटा दीजिए, तब जो बचता है, वह एक-ही-एक रहता है। एक बूढ़े सत्संगी ने कहा था कि तुम सबको मिलाकर एक कर देते हो। लोगों को काली, दुर्गा का उपासक बनाकर बकरा कटाओगे? मैंने कहा—रूप को छोड़कर उसमें जो है, उसको ग्रहण करो और दुर्गा सप्तशती में तो दुर्गा को नादरूपा कहा है तो नादानुसंधान ही करो। नादानुसंधान करनेवाला शाक्त है।

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्य जुषान्निधान।
मुद्गीथरम्य पद पाठवतां च साम्नाम्।।
देवी त्रयी भगवती भव भावनाय।
वार्त्ता च सर्व जगतां परमार्त्तिहन्त्री।।

—दुर्गा सप्तशती, अध्याय ४

हे देवि! आप शब्दात्मिका हैं। शब्द है आत्मा (अर्थात् स्वरूप) जिसकी, वह हुई शब्दात्मिका। आत्मन् के अनेक अर्थों में स्वरूप भी एक अर्थ है। आप अत्यन्त निर्दोष ऋक् और यजुः के निधान हैं तथा उद्गीथों के द्वारा रमणीय पद और पाठ वाले (अथवा पदों के पाठवाले) साम के भी निधान (निधि, खजाना) हैं। आप साक्षात् त्रयी देवी हैं। संसार की सृष्टि वा धारण के निमित्त आप वार्ता (कृषि वाणिज्यादि जीविका रूप) हैं, तथा सभी लोकों की कठिन बाधाओं, विपत्तियों और दुःखों को नाश करनेवाली हैं।

देवी के शब्दात्मिका होने से अभिप्राय मीमांसकों और वैयाकरणों ने शब्द को नित्य माना। पतंजलि ने महाभाष्य में शब्द की परब्रह्म से समता दिखाई है।

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्ता सो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आविवेश।।

इस मंत्र की व्याख्या में महा भाष्यकार पतंजलि मुनि ने कहा है कि शब्द रूपी महान देव मनुष्यों में

आकर प्रविष्ट हुआ है। अर्थात् परब्रह्म स्वरूप और अन्तर्यामी रूप शब्द मनुष्यों में पैठ गया है। जो पुरुष व्याकरण शास्त्र के ज्ञानपूर्वक शब्दों को संस्कार के साथ व्यवहार में लाता है, वह पाप रहित हो जाता है और इस अंत:प्रविष्ट शब्द ब्रह्म के साथ पूर्ण रूप से मिल जाता है।

यही अंत:प्रविष्ट नित्य शब्द संपूर्ण जगदादि प्रपंच को विस्तारित करता है। यह शब्दरूप ब्रह्म आदि और अंत-रहित है। यह अक्षर है अर्थात् विकार शून्य है। यही जगत के रूप में भासित होता है। इसी शब्दब्रह्म से जगत की रचना होती है। इस विषय को महावैयाकरण भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड में कहा है, यथा—

अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।। इति।

अर्थात् अवयवरहित (खण्डरहित) नित्य शब्द जिसको वैयाकरण स्फोट कहते हैं, संसार का आदि कारण है और ब्रह्म ही है। वह ब्रह्म सत्ता सभी शब्दों का वाच्य है। वह स्फोट रूप वाचक शब्द से भिन्न नहीं है। जो भेद दीख पड़ता है, वह आवरण से, या कल्पना से ही। जो पुरुष शब्दब्रह्म को ठीक-ठीक अवगत कर लेता है, वह परब्रह्म को पाता है अर्थात् उसमें अवस्थित होता है। हे देवि! आप उपर्युक्त शब्द ब्रह्मस्वरूपा हैं। शब्दात्मिका इस श्लोक में जो उद्‌गीथ शब्द आया है, इसका साधारण अर्थ ओंकार किया जा सकता है।

श्री श्री देवीजी का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप, जिसकी उपासना की जा सके, शब्द को ही मानना पड़ता है। शब्दब्रह्म के उपासक को परम शाक्त कहा जाय तो कुछ भी अनुचित नहीं।

आसीद्बिन्दुस्ततो नादो नादाच्छक्ति समुद्भव:।
नादरूप महेशानि चिद्रूपा परमा कला।।
—वायवीय संहिता

पहले विन्दु तब नाद और नाद से शक्ति उत्पन्न होती है। चैतन्यरूपा परमाकला महेशानि (शिवा) नादरूपा है।

लोग कहा करते हैं—'सियाराम मय सब जग जानी।' वचन से तो कह देते हैं, लेकिन व्यवहार हो तब तो। सो तो होता नहीं, केवल वचन में कहते हैं। कोई शरीर बहुत सुन्दर, कोई असुन्दर, कोई बलवान, कोई बलहीन होता है। इसी तरह किसी का अंत:करण बहुत बलवान और विकसित होता है। इसकी शक्ति को जिन्होंने अधिक जगा लिया, उसका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। यह शक्ति विद्याभ्यास, योगाभ्यास और सदाचार के पालन से जगती है। सदाचार के पालन के बिना विद्याभ्यास और योगाभ्यास कुछ नहीं। श्रीकृष्ण को तो योगेश्वर ही कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ।।

सगुण—त्रयगुण संबंधी रूप में, उसमें समझने में आने योग्य और नहीं आने योग्य कर्मों को देखकर मननशील को भी भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

शिव अज शुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म विचार विशारद।।
मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।

ब्रह्मा को मोह हुआ श्रीकृष्ण के प्रति, तो उन्होंने उनकी गौ और ग्वालवालों को छिपा लिया। भगवान ने अपने से बना लिया। ब्रह्मा को ज्ञान हुआ, तो फिर सब वापस किया। भगवान श्रीकृष्ण योगेश्वर कहे जाते हैं। उनका योगबल बचपन से ही विख्यात है।

एक समय एक योगी उनके निकट आए। उन्होंने श्रीकृष्ण से योगविद्या की प्रशंसा की और उनसे कहा कि तुम भी योगविद्या सीखो। भगवान ने कहा—'योगविद्या से क्या लाभ होता है?' उन्होंने उनको एक तलवार देकर कहा कि इस तलवार से मेरे शरीर पर वार करो और देखो इसके प्रहार से मेरा शरीर नहीं कटेगा। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने उनके

हाथ से तलवार लेकर उनके शरीर पर कई प्रहार किए, परंतु प्रत्येक वार वज्र के ऊपर प्रहार करने के समान तलवार की धार भोथी हो जाती और उनके शरीर का बाल भी बाँका नहीं कर सकी। तत्पश्चात् भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा कि अब आप इस तलवार का प्रहार मेरे शरीर पर कीजिए। इस पर योगी जी ने कहा कि तुम्हारा शरीर तो कोमल है, तलवार के आघात से वह कट जाएगा। इसपर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि आप तो योगी हैं। यदि तलवार की चोट से मेरा शरीर कट जाएगा तो आप अपने योगबल से उसे जोड़ दीजिएगा। इस योगी ने तलवार लेकर श्रीकृष्णचंद्रजी के शरीर पर कई आघात किए, परंतु प्रत्येक बार तलवार श्रीकृष्णचंद्रजी के शरीर के वारपार ठीक हवा में प्रहार करने के समानान्तर हो जाती, परंतु श्रीकृष्णचंद्रजी के शरीर पर तलवार के प्रहार का कोई चिह्न भी नहीं पड़ा। इस प्रकार योगिराज ने कई बार तलवार चलाई, किंतु सभी प्रहार निष्फल हो गए। इस पर योगी महाराज बड़े आश्चर्यित हुए और श्रीकृष्णचंद्रजी के योगबल की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।' श्रीकृष्णचंद्रजी को बचपन से ही यह सिद्धि प्राप्त थी। यह अष्ट सिद्धियों में से है। इनकी शक्ति बड़े लोगों को देखने में आई, इसलिए उनको लोगों ने ईश्वर माना। इसी तरह से श्रीराम आदि के शरीर के विषय में भी जानिए। श्रीराम ने कहा—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम शरीरा।।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा।।

उस पंचभौतिक शरीर के अंदर जो है, उसको पहचानो। जो नित्य है, जितने अनेक रूप हैं, उनसे अनेक लीलाएँ भगवान ने कीं; लेकिन ऐसा नहीं कहा कि यह शरीर ही, रूप ही सब कुछ है। बल्कि श्रीराम ने कहा—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।

विषय पाँच हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, और शब्द। इन पाँचों से बचो तो क्या बचता है, विचारो। श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीशिवजी किसी ने नहीं कहा कि मेरे शरीर रूप को देख लिया, हो गया; बल्कि सभी ने आत्मतत्त्व को पकड़ने कहा। जो इन्द्रियों का विषय नहीं है, वह निर्विषय है। निर्विषय तत्त्व परमात्मा हैं। इसी को ग्रहण करने के लिए मनुष्य शरीर हुआ है, भगवान ने कहा। वह ईश्वर एक ही है। श्रीराम के साथ जो रहे, उसका भी काम पूरा नहीं हुआ।

जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली ।
फिरि सुकण्ठ सोई कीन्हि कुचाली।।
सोइ करतूति विभीषण केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी।।

इनकी यह हालत क्यों? बिल्कुल पवित्र हो जाए, कुचाल से बचे, यह काम बाकी रहा। ईश्वर की भक्ति कैसे हो, अब कहता हूँ—

प्रभु तोहि कैसे देखन पाऊँ ।
तन इन्द्रिन संग माया देखूँ, मायातीत धरहु तुम नाऊँ।।
मेधा मन इन्द्रिन गहे माया, इन्ह में रहि माया लिपटाऊँ।
इन्द्रिन मन अरु बुद्धि परे प्रभु, मैं न इन्हें तजि आगे धाऊँ।।
करहु कृपा इन्ह संग छोड़ावहु, जड़ प्रकृति कर पार ही जाऊँ।
'मेँहीँ' अस करुणा करि स्वामी, देहु दरस सुख पाइ अघाऊँ।।

संसार में कुछ खाओ, पीओ, देखो, सुनो, तब सुख होता है, लेकिन यहाँ तो भूख, प्यास सब खतम केवल दर्शन मात्र से। ईश्वर की भक्ति में क्या करना होगा? शरीर लेकर जगन्नाथजी, बद्रीनाथ, जहाँ जाना चाहो, जा सकते हो। लेकिन अन्दर-अन्दर चलने में शरीर छोड़कर चलना होगा। घर से कोई बाहर होना चाहता है, तो पहले घर ही घर चलना पड़ता है। उसी तरह शरीर और इन्द्रियों से छूटने के लिए शरीर के अंदर-ही-अंदर चलना होगा। शरीर और इन्द्रियों का संग जहाँ छूट गया, वहीं ईश्वर दर्शन है। ईश्वर सर्वत्र है।

बाहरि भीतरि एको जानहु, इहु गुर गिआन बताई।
—गुरु नानकदेव

बाहर में तुम इसलिए नहीं पाते हो कि तुम इन्दिय-ज्ञान में रहते हो। अंदर-अंदर चलने से शरीर से छूटना होगा।

सब किछु घर महिं बाहरि नाहीं। बाहरि टोलै सो भरमि भुलाहीं।।

—गुरु नानकदेव

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल, परम सुगंध कहाँ ते आयो।।

— गोस्वामी तुलसीदासजी

अपुनपौ आपुन ही में पायो।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।।
ज्यों कुरंग नाभि कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो।
फिर चेत्यो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तनु छायो।।

—सूरदासजी

सूरदासजी और तुलसीदासजी को लोग सगुण उपासक बताते हैं और कबीर साहब, गुरु नानक साहब को निर्गुण उपासक बताते हैं। जिसको जो बताओ, लेकिन कबीर साहब, नानक साहब, तुलसीदासजी और सूरदासजी सभी निर्गुण और सगुण दोनों के उपासक थे।

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

यह क्यों लिखते, यदि निर्गुण उपासना नहीं करते। कबीर साहब ने कहा—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

यह निर्गुण कैसे हुआ? जिस सिंहासन पर तुलसीदासजी राम को बैठाते हैं, उसी आसन पर कबीर साहब गुरु को बैठाते हैं। गुरु में भी तुलसीदासजी की कम श्रद्धा नहीं है।

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

— रामचरितमानस

श्रीहरि गुरु पद कमल भजहिं, मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि, सुख निधान भगवान।।

— विनय-पत्रिका

कबीर साहब और गुरु नानक साहब उपासना के आरम्भ में गुरु को लिए हैं। यह कैसे सगुण उपासना नहीं है? सभी संतों ने अपने अंदर-अंदर चलने कहा। ख्याल से चलना नहीं, यथार्थ में चलो मन का सिमटाव हो, उसकी ऊर्ध्वगति हो। यदि कुछ सिमटाव हो जाए तो परमात्मा का ज्योति और नाद रूप हाथ पावोगे। जैसे माता अपने रोते बच्चे को हाथ पसारकर उठा लेती है, उसी तरह ज्योति और शब्दरूप हाथ पसारकर परमात्मा उठा लेते हैं। बाहर-बाहर चलने से इन हाथों से दूर रहोगे। बाहर में सत्संग और स्थूल उपासना अवश्य करो, किंतु अंदर भी चलो। योगशास्त्र में कठिन और सरल दोनों तरीके हैं। सरल मार्ग को पकड़ लो और कठिन मार्ग को छोड़ दो। 'ज्योति' परमात्मा का बायाँ हाथ है और 'शब्द' दाहिना हाथ है। बड़ा जबर्दस्त हाथ है। इसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। बिना शब्द के सृष्टि नहीं हो सकती। शब्द कम्पमय होता है और कम्प शब्दमय होता है। कम्प अपने सहचर शब्द के साथ अवश्य रहता है। आदि में शब्द हुआ। वह सर्वव्यापक है। इसलिए राम है। कल्याणकारी होने से शिव, सबका बीज होने से ॐ है। ऐसा यत्न मिलना चाहिए, जिससे ज्योति और नाद मिले। परमात्मा ने सब पर एक समान कृपा की है। गरीब, अमीर सबको आँख से देखना, कान से सुनना दिया। उसी तरह ईश्वर की ओर जाने के लिए सबके अंदर एक ही सुराख है, वह शिवनेत्र है, तीसरा तिल है, आज्ञाचक्र का केंद्र—विन्दु

है। गुरु जो तरकीब बतावे, उसके अनुसार चलो। जहाँ प्रवेश हुआ, ईश्वर का हाथ मिलेगा। प्रवेश-द्वार पर ही पहले सबको शीघ्र ठहराव नहीं हो सकता है और कोई किसी के लिए यह काम कर दे, सो नहीं हो सकता। आनंद भगवान बुद्ध के साथ बहुत रहते थे, उन्होंने उनकी अंत तक बड़ी सेवा की थी। इतने प्यारे शिष्य थे कि बिना उनके आए भगवान कुछ उपदेश वाक्य नहीं कहते थे। ऐसा उनको वरदान मिला था। 'अपना चिराग आप बन' भगवान ने उनको कहा था। पहले जाँच लो कि गुरु ठीक है वा नहीं, विश्वास हो तो उनसे यत्न जानो और करो। कोई कहता है कि मैं तुम्हारे बदले कर दूँगा तो वहाँ जाओ और उसकी सच्चाई देखो। लोग कहते हैं कि स्वामी विवेकानन्दजी को परमहंसजी ने पूरा कर दिया था। यदि वे पूरे ही थे तो वे रामकृष्ण परमहंसदेव के शरीर छूटने के बाद पौहारी बाबा के शिष्य बनना क्यों चाहते थे? मैं साफ-साफ कहता हूँ, कोई करा नहीं देगा, स्वयं करना होगा। एकान्त में बैठकर ध्यान-अभ्यास बराबर करो। ऐसा करते-करते अपने को ऊपर पाओगे। भजन करना आवश्यक है। भक्ति का बीज तुम्हारे साथ रहेगा—जबतक मुक्ति ना मिल जाय। जीवन काल में जो भजन (ध्यान) करता है, वह स्थूल-से-सूक्ष्म में प्रवेश करता है, वही जीते-जी मरता है। जो जीते-जी मरता है, वह फिर जन्म नहीं लेता। इसी के लिए संतों ने उपदेश दिया है। कोई नयी बात नहीं है। सभी पुरानी बात है। कहने का ढंग अलग-अलग होता है।

बिना सदाचार का पालन किए ईश्वर की भक्ति नहीं हो सकती। सदाचार पालन करने के लिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; पंच पाप नहीं करो। पापों से बचने पर अंतःकरण में बल मिलेगा भजन करने के लिए। इससे संसार में भी लाभ होता है। जो कोई पंच पापों से बचता है, वह संसार में प्रतिष्ठा पाता है। भगवान योगक्षेम अपने भक्त का करते हैं। मैंने फारसी में पढ़ा था कि जो परमात्मा अपने दुश्मन पर भी नेक दृष्टि रखता है, वह अपने भक्त को कैसे छोड़ सकता है। भक्त बनने में कसर रहता है, तो गड़बड़ होता रहता है। संसार के लोग यदि पंच पापों से बचें तो आपस में प्रेम होगा। अभी लोग बहुत झूठ बोलते हैं। इसलिए एक को दूसरे का विश्वास नहीं है। हिंसा नहीं करेगा तो लड़ाई-झगड़ा नहीं होगा, तकरार नहीं होगी। स्वराज्य हुआ है, सुराज नहीं। अध्यात्म-ज्ञान का, सदाचार का खूब जोरों से सरकार प्रचार करे, तो लोग सदाचारी बनने लगेंगे और तब देश में शान्ति आ जाएगी। राजनीति के मैदान में भी शान्ति हो जाएगी। सहूलियत हो जाएगी। ईश्वर-भक्ति करने के लिए सदाचार की बड़ी जरूरत है। लेकिन धन कमाने में इसकी कोई जरूरत नहीं। चोरी करो, धन हो जाएगा। पकड़े जाओगे, मार खाओगे। कोई भी सरकार, किसी भी देश की सरकार योग्य प्रचारकों को सहायता दे तो सदाचार और आध्यात्मिकता का विशेष प्रचार हो। कानून के डण्डे से लोग सदाचारी नहीं बन सकते। जनता ठीक नहीं है तो सरकार ठीक कहाँ से होगी। जनता की ओर से ही लोग जाते हैं, जिससे सरकार बनती है। ईश्वर-भजन करो और सदाचार का पालन करो तो यहाँ और वहाँ दोनों जगह अच्छे रहोगे। n

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर पाटम में दिनांक २१. ४. १९५९ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१४३. मोटा और महीन ध्यान

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

सब लोग ईश्वर की भक्ति करें, मैं यह कहूँगा। ईश्वर-भक्ति से इस संसार से छूटकारा होगा। ईश्वर की भक्ति के वास्ते जानना चाहिए कि इसकी क्या जरूरत है। जरूरत है भवसागर से उद्धार होने की। यदि सभी स्वतंत्र रहते तो उद्धार- ही-उद्धार था। लेकिन कोई धनवान, विद्वान, प्रतिष्ठित या अप्रतिष्ठित—संसार में कोई हों, दुःख से कोई छूटता नहीं है। इसके लिए बड़ी-बड़ी कथाएँ हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण, ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा, पैगम्बर जो आए—सबको दुःख हुआ। इस संसार में जबतक ठहरते हैं, कुछ-न-कुछ दुःख सबको होता है। यहाँ से छुटकारा हो जाना, दुनिया में नहीं रहना, दुःख नहीं भोगना है। इसलिए ईश्वर-भक्ति की बड़ी जरूरत है।

किसी को खाने-पीने को नहीं मिलता है, इससे दुःख होता है, किसी को बीमारी से दुःख होता है, किसी को दैवात् कष्ट आ जाता है। पंचम जार्ज फ्रांस में एक परेड देखने गए थे। बड़ी भारी फौज दो कतारों में खड़ी थी। एक घोड़े पर ये सवार थे। सिपाहियों ने इन्हें सलामी देने के लिए हाथ उठाए, तो घोड़ा भड़क गया। वे घोड़े पर से गिर गए। उनकी कमर में दर्द हो गयी। उन्हीं की गद्दी पर पहले अल्फ्रेड दी ग्रेट हुआ था। दुश्मनों की सेना ने जब उनको घेर लिया तो वे डर के मारे भाग गए और अपने ही देश में एक किसान के यहाँ जाकर छिप गए और कहा कि मैं तुम्हारे यहाँ रहूँगा। किसान ने पूछा कि तुम बोझा बाँधना, रोटी बनाना जानते हो? जब राजधानी दिल्ली के पृथ्वीराज राजा थे, मुहम्मद गोरी ने उनको जीत लिया था। तब वे पकड़े गए और अंधे कर दिए गए। कई मन लोहे की जंजीर में बाँधकर रखे गए। तो देखो संसार कैसा है? छोटे-छोटे को ही दुःख नहीं होता, बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को भी दुःख होता है। शाहजहाँ के बड़े लड़के का नाम था दारा शिकोह। शाहजहाँ बीमार हुआ और तीनों पुत्रों को खबर दी। सभी आपस में लड़ने लगे कि मैं बादशाह होऊँगा। आपस में लड़ाई हो गई। औरंगजेब की जीत हुई। दाराशिकोह भाग गया। होते-होते वह पकड़ा गया और बेरहमी के साथ मार डाला गया। कहाँ तो बादशाह का बड़ा लड़का होने के कारण भारत का बादशाह होता, कहाँ बेइज्जती के साथ मारा गया। अंग्रेज को देखो, जिसका राज्य यहाँ था। इसको भी छोड़कर यहाँ से जाना पड़ा। इस तरह कुछ भी बनकर रहो, कष्ट नहीं छूट सकता। इसीलिए ईश्वर का भजन करो। बिना ईश्वर-भजन के और ईश्वर को पाए बिना कोई सभी दुःखों से नहीं छूट सकता।

केवल यह संसार ही दुनिया नहीं है। इस दुनिया में मोटी-मोटी चीजें हैं। यह मोटी दुनिया है। इसके ऊपर स्वर्ग-बहिश्त भी दुनिया है। वह सूक्ष्म दुनिया है। उसमें भी बहुत दर्जे हैं। उन सब लोकों में भी दुःख होते हैं। उन सबसे छूट जाओ, तब उद्धार हुआ। इसके लिए ईश्वर की भक्ति करो। ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर का स्वरूप जानो।

साधारण तरह से लोग कहते हैं कि श्रीराम ईश्वर थे, श्रीकृष्ण ईश्वर थे, शिवजी ईश्वर थे, भगवान विष्णु ईश्वर थे, काली, दुर्गा ईश्वरियाँ थीं। लेकिन समझो कि ईश्वर तो एक ही होना

चाहिए। यहाँ तो राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, नृसिंह, काली, दुर्गा देवी आदि ईश्वर-ईश्वरियाँ हैं। किन्हीं एक के विषय में जैसे विष्णु को कहो तो उनके भक्त तो मान जाएँगे, लेकिन शैव कहेंगे कि शिवजी ईश्वर हैं। शिवजी की आराधना श्रीराम ने भी की है। शिवजी को ईश्वर कहने से शाक्त कहेंगे कि नहीं, शक्ति माता ईश्वरी हैं। लेकिन ईश्वर अनेक नहीं, एक ही होते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक हैं, मोहीतेकुल्ल हैं, जो सबमें एक-ही-एक हैं, वह ईश्वर हैं। उन ईश्वर के सबमें रहने के कारण सब ईश्वर कहलाते हैं। ऐसा मानने से सबकी मर्यादा रह जाती है। इस तरह के ख्याल में कोई झगड़ा नहीं। सबमें जो एक-ही-एक ईश्वर हैं, उन सर्वव्यापक ईश्वर को इस आँख से देखोगे? कोई कहता है—हाँ। कोई कहता है—नहीं।

आप अपने को समझो। आपका शरीर है। आप शरीर हो या शरीर में रहते हो? शरीर और आप एक ही हो या दो? शरीर और शरीर पर का कुरता दोनों एक नहीं है। शरीर में रहते हो तो शरीर तुम्हारे ऊपर कपड़े के समान है। इस शरीर के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (हवाश) हैं। आँख से देखने, कान से सुनने, नाक से गंध लेने, जिभ्या से रस लेने तथा त्वचा से स्पर्श करने का ज्ञान होता है। एक इन्द्रिय से ये पाँचो ज्ञान नहीं होते। एक-एक इन्द्रिय का एक-एक भोग है। आँख के वास्ते जो भोग है, वह नाक के वास्ते नहीं। इन्द्रियों से जो कुछ पाते हो सभी एक तरह रहनेवाले नहीं, सब बदलते रहते हैं—सब नाश हो जाते हैं। इन सबको माया कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसे माया कहा है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

इन्द्रियों से जो ज्ञान प्राप्त करोगे, माया का ज्ञान होगा। ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण सबमें व्यापक अवश्य हैं। लेकिन उन सबको देखकर ईश्वर की पहचान नहीं होती। अपने शरीर को देखकर अपनी पहचान होती है। शरीर को पहचानते हो, लेकिन शरीर में जो तुम हो, उसको तुम नहीं पहचान सकते। इसलिए कि इन्द्रियों में शक्ति नहीं है कि आत्मा को पहचान सके। इन्द्रियाँ बाहर की ओर हैं और अपने तुम अपने अंदर में हो, तब कैसे पहचान सकते हो? एक तो अंदर में हो, दूसरी बात यह है कि इन्द्रियों को स्थूल विषयों का ज्ञान होता है। आजकल लोग एक्सरे (X-Ray) भी लेते हैं तो उसमें भी मोटी-मोटी चीजों का चित्र आता है, आत्मा का नहीं। जब तुम बाहरी इन्द्रियों से अपने को ही नहीं पहचान सकते हो तो ईश्वर को कैसे पहचानोगे? ईश्वर की पहचान या ईश्वर-दर्शन तुम स्वयं करोगे शरीर और इन्द्रियों से छूटकर। जैसे आँख से सब कुछ देखते हो, किंतु आँखों को आँख से आइने में देखते हो। जैसे आँख को आँख से देखते हो उसी तरह चेतन आत्मा से परमात्मा को देखोगे और अपने तईं का भी ज्ञान होगा, क्योंकि ईश्वर जिस तरह इन्द्रिय-ज्ञान में आने योग्य नहीं है, उसी तरह तुम भी इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं हो। इससे जाना जाता है कि जो सूक्ष्मता या लताफत ईश्वर में है, तुममें भी वही है। इसीलिए कबीर साहब ने कहा है—'**खोजु रूह के नैना।**'

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूह अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।

रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।

जो कोई ईश्वर का दर्शन पावेगा, उसी का उद्धार होगा। ईश्वर कुछ लेता-देता है नहीं। सिर्फ उनका दर्शन करो। दर्शन करने पर कुछ जरूरत ही नहीं पड़ेगी कि रुपया मिले, पैसा मिले। और तब कोई दुःख नहीं होगा। श्रीराम भगवान कहकर हमारे यहाँ प्रसिद्ध हैं। वे राज्य भी करते थे। उनके राज्य में प्रजा बहुत सुखी थी। श्रीराम ने समझा कि प्रजा इस संसार में सुखी है, लेकिन शरीर छूटने पर भी ये सुखी रहें, इसीलिए उन्होंने इसके लिए भी प्रबंध किया। श्रीराम ने एक दिन बहुत बड़ी सभा बुलाई और उसमें उन्होंने कहा कि—

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथहिं गावा।।

इस शरीर का बड़ा मूल्य है। जितना दाम इस शरीर का है, उतना किसी शरीर का नहीं; क्योंकि—

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।

कहा। शरीर और इन्द्रियों से छूटना आश्चर्य मालूम पड़ता है। कोई कहे कि पानी में डूब जाओ, जहर खा लो, शरीर छूट जाएगा, तो इस तरह केवल स्थूल शरीर छूटता है। इसके अंदर सूक्ष्म, कारण, महाकारण बच ही जाते हैं। साधारण मृत्यु में केवल स्थूल शरीर छूटता है, इस तरह शरीरों से छुट्टी नहीं मिलती। छुट्टी तब मिलती है, जबकि जड़ के चारों शरीर छूट जाएँ। इसके लिए एक ही उपाय है—ईश्वर-भजन। जैसे कोई बाहर में किसी धाम के दर्शनों के लिए जाते हैं तो अपने गाँव को छोड़कर रास्ते में जितने गाँव पड़ते हैं, सबको छोड़ते हुए जगन्नाथ धाम पहुँचते हैं। इसी तरह अपने सब शरीरों को छोड़ते हुए जाओ। जैसे जो कोई जहाँ बैठा रहता है, वहीं से चलता है। उसी तरह तुम जहाँ बैठे हो, वहाँ से चलो। तुम अपने अंदर हो, अंदर चलो। चलने के लिए मन जाता है। ख्याली मन से जाना नहीं होता है। ठीक-ठीक मन से चलो।

किसी चीज को समेटो, तो उसकी ऊर्ध्वगति होती है। धान सुखाते हो, तो पसरा रहता है, उसको समेटते हो तो ढेर हो जाता है—ऊपर की ओर उठ जाता है। पानी को समेटो तो उसकी ऊर्ध्वगति होती है। मन को समेटो तो और भी अधिक ऊर्ध्वगति होगी। जैसे दूध और घी एक साथ रहता है। दूध जिधर बहता है, घी भी उधर बह जाता है। दूध को मथो तो दूध अलग और घी अलग हो जाएगा। उसी तरह मन और चेतन संग-संग रहता है। आगे चलकर मन और चेतन अलग हो जाते हैं। मन को समेटने के लिए पहले मोटा काम करो। सत्संग में भी मन सिमटता है। पूजा-पाठ, स्तुति, नमाज, जप—जिक्र करने से भी मन का सिमटाव होता है। उसके बाद ध्यान आता है। जिस रूप को पहले देखा है, उसका ध्यान करो, फिर सूक्ष्म ध्यान विन्दु ध्यान है। इसमें जिसका सिमटाव होता है, वह ऊपर उठ जाता है। इसमें कोई रोक नहीं सकता। पलटू साहब ने कहा—

साहिब साहिब क्या करै, साहिब तेरे पास।।
साहिब तेरे पास याद करु होवे हाजिर।
अंदर धसि के देखु मिलैगा साहिब नादिर।।
मान मनी हो फना नूर तब नजर में आवै।
बुरका डारे टारि खुदा बा खुद दिखरावै।।

इसी बुरका को कबीर साहब ने कहा है—

घूंघट का पट खोल रे तोको पीव मिलेंगे।

मन के सिमटाव के लिए सत्संग करो, जप करो, मोटा ध्यान करो, दृष्टियोग करो, नादानुसंधान करो। ईश्वर में अविश्वास मत करो। जो ऊपर को चढ़ता है, वह अपने को प्राप्त कर स्वर्ग-बहिश्त से ऊपर उठ जाता है। श्रीराम ने कहा कि यह शरीर

साधन का धाम है। इसमें मोक्ष का दरवाजा लगा हुआ है। श्रीराम, श्रीकृष्ण, नरसिंह, भगवती आदि किसी इष्ट का ध्यान करो, लेकिन उनके आत्म-स्वरूप को भी जानो। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा,
बसत इति वासना धूप दीजै।

सबमें एक ही ईश्वर है, जो इन्द्रिय-ज्ञान से बाहर है। यह आत्म-ज्ञान में है। आत्मा में ही रहो, आत्मसंतुष्ट रहो। इसके लिए केवल विचार-ही-विचार से नहीं होगा। जप करो और ध्यान करो। ऐसा ध्यान करो कि मन में कुछ नहीं बनाकर देखने के ढंग से देखो। मोटा और महीन दोनों ध्यान करो। बिना पैर का सिर लँगड़ा और बिना सिर का पैर मुर्दा है। मकान में पहले नींव होती है और छत बनती है। मोटी भक्ति नींव है और सूक्ष्म ध्यान नहीं किया तो छत नहीं बनी, तब ईश्वर-भक्ति का पूरा मकान नहीं बन सकता। इसके लिए—

सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
—गुरु नानकदेव

अपने को पापों से बचाओ। झूठ सब पापों का राजा है। झूठ ऐसा झोला है कि सभी पाप इसमें अँटते हैं। झूठ मत बोलो, चोरी नहीं करो, व्यभिचार नहीं करो। नशाओं को नहीं लो और हिंसा न करो। मनु ने अष्टघातक कहा है। अष्टघातक में आज्ञा देनेवाला, काटनेवाला, मारनेवाला, बेचनेवाला, मोल लेनेवाला, मांस पकानेवाला, परोसने के लिए लानेवाला, खानेवाला—ये आठो हिंसा करनेवाले ही कहलाते हैं। हिंसा दो प्रकार की है—वार्य और अनिवार्य। कृषि कर्म, घर की सफाई और औषधि-खाना, दूसरे देश के लोग चढ़ाई करे तो उसको रोकने में, चोर-डकैत को भगाने में हिंसा होती है, यह अनिवार्य हिंसा है। जिभ्या-लालच में, मजबूत होने के ख्याल में जो हिंसा करते हो, वह वार्य हिंसा है। इसलिए मांस, मछली, अण्डा नहीं खाओ। अंग्रेज और महात्मा गाँधीजी की उपमा से ज्ञात होता है कि गाँधीजी शाकाहारी थे, अंग्रेज का मांस, अण्डा, गोश्त खानेवाला दिमाग था। गाँधीजी की जीत हुई और अंग्रेज हार गया। राम और रावण की कथा प्रसिद्ध है। राम के दल में सभी शाकाहारी, फलाहारी थे। रावण के लिए है कि 'मांस खाय और मदिरा पाना।' अंत में जीत हुई राम की, रावण की नहीं। इसलिए संतों ने कहा कि इन पंच पापों से बचो और ईश्वर की भक्ति करो तो परमार्थ बनता चला जाएगा।

पापों से जो अपने को बचाता है, वह ईश्वर की ओर जाता है। जो पापों में गड़ा है, वह ईश्वर की ओर नहीं चल सकता। जो पंच पापों से बचेंगे तो संसार में भी उसकी प्रतिष्ठा होगी। संसार में कुशल से रहेंगे, यदि ऐसा समाज बन जाय तो देश में शान्ति आ जाएगी, दुनिया में भी फायदा हो जाएगा, राजनीति को भी फायदा हो जाएगा।

आपस में मेल से रहो। मजहबी झगड़ों में मत पड़ो। शैव, कबीरपंथी आदि कहकर जो लड़ते हैं सो ठीक नहीं। अंदर-अंदर चलने के वास्ते सबके लिए एक ही रास्ता है। सब कोई आँख से ही देखते हैं। सभी नाक से ही साँस लेते हैं। जैसे सबके लिए ये रास्ते एक ही हैं, उसी तरह ईश्वर के पास जाने का एक ही रास्ता है, जो अनेक रास्ते बतलाते हैं, वे अनेक रास्ते—जरिये हैं। हमारे लिए सभी पंथ के आचार्य पूज्य हैं। अपना-अपना सभी रोजगार करो, कमाकर खाओ और ईश्वर-भजन करो। n

यह प्रवचन संथाल परगना जिलान्तर्गत ग्राम—महेशलिट्टी में दिनांक १४.५.१९५९ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१४४. अनैतिकता से छूटने का उपाय

प्यारे लोगो!

मनुष्य को धर्मात्मा होना चाहिए। अधर्मी—धर्म-त्यागी नहीं होना चाहिए। धर्म कर्म से होता है। अगर कर्म नहीं किया जाय तो धर्म नहीं हो सकता। जिस कर्म के करने से यहाँ भी आराम-सुख हो और शरीर के छूटने के बाद परलोक में भी सुख-आराम हो, उसको धर्म कहते हैं। यहाँ आराम से रहने के लिए लोग नाना प्रकार से धन उपार्जन करते हैं। लोगों को विश्वास है कि धन से सुखी और धन नहीं रहने से हम दुःखी होते हैं। धन उपार्जन करने का कार्य ऐसा है कि बुरी तरह से भी, जिसको धर्म नहीं कह सकते, धन उपार्जन कर सकते हैं। और उस बुराई को छोड़कर सत्मार्ग पर चलकर भी धन उपार्जन कर सकते हैं।

जो बुरी तरह से धन उपार्जन करते हैं, वे यहाँ भी सुखी नहीं रहते। उनके हृदय में उसकी याद होती रहती है। वे चंचल-से रहते हैं, दुःखी होते हैं और परलोक में भी दुःखी होते हैं। इसलिए इस तरह के बुरे कर्म को छोड़कर सत्यता की नीति में रहकर जो धन उपार्जन करते हैं, वे चंचल नहीं रहते हैं। कोई उनको दोषी नहीं ठहरा सकते। परलोक में भी वे सुखी रहते हैं। संसार में धन उपार्जन हो, परंतु अधर्म से नहीं। अधर्म, अनैतिकता से छूटने के लिए एक ही यत्न है दूसरा नहीं, वह है ईश्वर में विश्वास और उनकी भक्ति। जो ईश्वर में विश्वास करते हैं, उनकी भक्ति करते हैं, उनको जरूरी तरह से अधर्म काम छोड़ना पड़ेगा, नहीं तो भक्ति नहीं होगी। ईश्वर-भक्ति को छोड़कर केवल धनोपार्जन में कोई बुराई से बचे, हो नहीं सकता। ईश्वर-भक्ति अवश्य चाहिए, जिससे यहाँ आराम से रहो और परलोक में भी दुःख नहीं हो। ईश्वर-भक्ति के साथ धर्म का सार रहता है।

ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान हो, उनमें तल्लीनता, अनुरक्ति, लौलीनता हो, तब भक्ति होती है। परमात्म-स्वरूप के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़ा अच्छा कहा—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।

—श्रीरामचरितमानस

परमार्थ की परिभाषा पहले हो गई है।

योग वियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।।

—श्रीरामचरितमानस

ये सब-के-सब जो संसार में देखे जाते हैं, सभी भ्रम के फन्दे हैं। भ्रम कहते हैं—जिसकी स्थिति नहीं हो, फिर इस तरह मालूम पड़े; जैसे धुँधली रोशनी में डोरी (रस्सी) देखकर साँप का भ्रम होता है। जैसे ही भ्रम हुआ, वैसे ही भ्रम संबंधी सभी डर वगैरह हो जाते हैं। लोग डरकर भाग जाते हैं। सीपी में सूर्य की रोशनी लगने से वह चाँदी-जैसी लगती है। सूर्य-किरण में जो चमक है, उसमें कभी-कभी बालू पर जल का भास होता है। उसी को मृग-भ्रम-वारि कहते हैं। मृग-वारि झूठ है। भला-बुरा होना भ्रम है। ये असल में हैं ही नहीं। जो कुछ भी प्रपञ्च दृष्टिगोचर है, स्वर्ग नरक है—सभी भ्रम-मूलक हैं।

देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं।।

तात्पर्य यह कि परमार्थ वही है, जिसमें दो भेद—जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, मालूम नहीं पड़े। ये भेद मोह से उत्पन्न हुए हैं। असली चीज नहीं

है। राम ऐसे हैं, जहाँ इन दो भेदों का पता नहीं हैं वे सर्वव्यापी, आँख के ज्ञान से परे, बराबर एकरस रहनेवाले और उपमा रहित हैं। ईश्वर संबंधी ज्ञान थोड़े में यह समझना चाहिए कि जो इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं हैं, वे ईश्वर हैं। इनमें अनुरक्ति चाहिए, प्रेम चाहिए।

जिसको अनुरक्ति होगी, वह पाप में नहीं बरतेगा। जिसको ईश्वर में अनुरक्ति नहीं है, वह दूसरे को भी ठग करके धन जमा कर सकता है। लेकिन ईश्वर-भक्ति में बहुत जरूरी है पापों से बचना। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार—इन पंच पापों को करनेवाले से ईश्वर की भक्ति नहीं हो सकती।

आत्मा से ही ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। बुद्धि में कुछ ज्ञान है, लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञान इससे नहीं होता। आत्मा को जो शरीर, इन्द्रिय से संग हो गया है, इससे छुड़ाना चाहिए। जैसे किसी को कहीं जाना है, तो वह जहाँ है, उस स्थान को छोड़ना होगा। हम शरीर में हैं—यह शरीर ऐसा है कि यह बड़ा कठिन है। महान-से-महान को इस शरीर में आकर कष्ट भोगना पड़ा है। भगवान श्रीराम को भी रोना पड़ा। यही यह संसार है। भगवान श्रीकृष्ण भी उदास हुए। युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा को दुःख उठाना पड़ा। यही संसार है, जिसमें राजा हरिश्चन्द्र को श्वपच के घर में बिकना पड़ा। इन दुःखों से कोई छुड़ा नहीं सकता। छुड़ानेवाला एक ईश्वर ही हैं। इसलिए ईश्वर की भक्ति करो। जैसे जगन्नाथजी जाना चाहो, तो बिहार प्रान्त को छोड़ना पड़ेगा। उसी तरह ईश्वर के पास जाने के लिए शरीर छोड़ो। शरीर से छूटने के लिए ध्यान करो।

ध्यान करके पहले स्थूल विषय से छूटे, फिर सूक्ष्म ध्यान होगा। सूक्ष्म ध्यान में फिर ऐसा हो कि सूक्ष्म विषय भी न रहे। 'ध्यानं निर्विषयं मनः।'

इसको गुरु से जानना चाहिए। भाग्यवान इसको जानकर करने लगता है। वही शरीर और इन्द्रियों के समूह को छोड़ सकता है, संसार के जाल को छोड़ सकता है, अपने को कैवल्य दशा में लाकर ईश्वर-दर्शन कर सकता है। तभी वह लौटकर संसार में नहीं आवेगा। सारे दुःखों से छूट जाएगा। बड़ों से सुनकर, सत्संग कर, कुछ अपना मनन भी कर यही निर्णय किया है कि ईश्वर की भक्ति करो। यही आप लोगों से कह दिया। सब लोगों को चाहिए कि ईश्वर की भक्ति करें। g

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मनिहारी में दिनांक २७.६.१९५९ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१४५. सावित्री के सतीत्व की महिमा

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आप देखते हैं कि एक आदमी का शरीर छूट गया। आप उसको कहते हैं कि मर गया, स्वर्गवास हो गया, परलोक चला गया। जो चला गया परलोक को, वह मरा नहीं; मरा शरीर, जिसका अग्नि संस्कार लोग करते हैं। शरीर छोड़कर जो परलोक को चला गया वा जिसका स्वर्गवास हो गया, शरीर और वह दोनों एक नहीं हैं। इसको अच्छी तरह समझा देने के लिए, जिनके घर में ऐसा होता है, उनके यहाँ श्राद्ध-क्रिया होती है। घर-घर में यह क्रिया होती है, इस क्रिया को करते हुए जानना चाहिए कि शरीर और तुम एक ही नहीं हो। शरीर में रहनेवाले की स्थिति मरने पर भी है। यह श्राद्ध-क्रिया से ही लोगों को सीखना

चाहिए। इस संबंध में लोग बहुत कुछ कह सुन और पढ़ सकते हैं।

महाभारत में एक कथा है सत्यवान और सावित्री की। सत्यवान अपने माता-पिता के साथ जंगल में रहते थे। उनकी धर्मपत्नी सावित्री थी। सावित्री को नारद मुनि के द्वारा यह पता लग चुका था कि अमुक तिथि को सत्यवान की मृत्यु होगी। जब वह तिथि आई, तो उस दिन सावित्री ने सत्यवान से कहा कि आज आपके साथ मैं भी जंगल देखने जाऊँगी। सत्यवान ने कहा कि माताजी और पिताजी से आज्ञा ले लो, तब तुम मेरे साथ चल सकती हो। सावित्री जब अपने सास-ससुर से अनुमति माँगने गई, तो सास-ससुर ने भी जंगल देखने की अनुमति दे दी। सावित्री अपने पति सत्यवान के साथ जंगल गई। जब सत्यवान लकड़ी काटने के लिए वृक्ष पर चढ़े, तो उनके सिर में दर्द होने लगा। सत्यवान ने वहीं से कहा—'मेरे सिर में बहुत जोर का दर्द हो रहा है।' सावित्री ने कहा—'आप अविलम्ब नीचे आ जाइए।' सत्यवान वृक्ष पर से उतरते ही मूर्च्छित हो गए। सावित्री उनके माथे को अपनी जंघा पर रखकर बैठी रही। जब यमदूत आया, तो सावित्री के तेज के सामने निकट नहीं पहुँच सका। यमदूत के लौटने पर यमराज स्वयं आए और सत्यवान के लिंग शरीर को लेकर चलने लगे। सावित्री उनके पीछे-पीछे चलने लगी। यमराज ने पूछा—'तुम क्यों आ रही हो? कुछ वरदान माँगना हो तो माँग लो।' सावित्री ने कहा—'मेरे सास-ससुर अंधे हैं, उन दोनों को आँखें हो जाएँ।' यमराज ने कहा एवमस्तु! यह कह यमराज जब आगे बढ़े, तो सावित्री फिर पीछे-पीछे चलने लगी। यमराज ने पुनः पूछा कि और कोई वरदान माँगना हो, तो माँग लो।' सावित्री ने कहा—'मेरे सास- ससुर का राज्य खो गया है, वह वापस हो जाए। यमराज ने पुनः वरदान दिया। जब यमराज आगे बढ़ने लगे, तो सावित्री फिर पीछे-पीछे चलने लगी। यमराज ने पूछा—'तुम्हें दो वरदान दे चुका, तब फिर मेरे पीछे क्यों आ रही हो?' सावित्री ने कहा कि एक वरदान और दिया जाय, वह यह कि मुझे सौ पुत्र हों। यमराज ने सावित्री को यह वरदान भी प्रदान किया। जब यमराज आगे बढ़े, तो सावित्री उनके पीछे-पीछे फिर भी चलने लगी। यमराज ने जब देखा तो कहा कि तुम्हें तीन वरदान दे चुका। अब मेरे पीछे क्यों आ रही हो? सावित्री ने कहा—जबकि आपने सौ पुत्र होने का वरदान दिया है, तब आप मेरे पति को ले जा रहे हैं? मुझे सौ पुत्र कैसे होंगे? सावित्री का प्रश्न सुनकर यमराज निरुत्तर हो गए और सत्यवान के लिंग शरीर को वापस कर दिया। यह है पातिव्रत्य धर्म की महिमा।

इन आँखों से लिंग शरीर को कोई नहीं देख सकता। लिंग शरीर या सूक्ष्म शरीर—दोनों एक ही बात है। शरीर से केवल चेतन आत्मा ही नहीं निकलती है, स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर के साथ चेतन आत्मा निकलती है। दूसरी बात यह कि स्थूल शरीर मरता है, सूक्ष्म शरीर नहीं मरता। सूक्ष्म शरीर के भीतर कारण शरीर और उसके भीतर महाकारण शरीर है। तब उसके अंदर चेतन आत्मा है। स्त्रियों को पातिव्रत्य धर्म का पालन करना चाहिए और पति को चाहिए कि वे बहुत अच्छे बनें। अपने बहुत बुरे हों और वे चाहे कि पत्नी पतिव्रता मिलें, ईश्वर की सृष्टि में ऐसा होना तो असंभव नहीं है, लेकिन साधारणतया यह असम्भव है। भगवान श्रीराम की तरह एकपत्नीव्रत धारण करो और स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्म का पालन करें, तो संतान अच्छी होगी।

जितने शरीरधारी हैं, सबके शरीर छूट जाएँगे। शरीर जबतक रहे, तो सुखपूर्वक रहना चाहिए। दुःख में रहना किसी को पसन्द नहीं। अपने को तो

सुख हो ही, लेकिन हमारे बाल-बच्चे भी सुखपूर्वक रहें, इसके लिए जीवनभर चेष्टा लोग किया करते हैं। शरीर छोड़कर दुःख में जाना, नरक में जाना कोई नहीं चाहता। जीवनभर सुख के लिए कोशिश करते हैं। शरीर छूटने के बाद भी सुखी रहें, इसके लिए भी कोशिश होनी चाहिए। इहलोक और परलोक में दो तरह से रहते हैं—एक तो ऐसा कि जैसा शरीर, वैसा लोक में रहना—सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म लोक में रहना। दूसरा, किसी शरीर में न रहना। शरीर के अनुकूल लोक में रहने से कर्म के अंत होने पर फिर संसार में आना होगा। यहाँ तक कि भगवान श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण भी यहाँ आए। जय-विजय को शाप हुआ, तो तीन जन्मों तक वे लोग राक्षस शरीर में रहे। किसी विशेष शरीर में रहने पर भी आना-जाना लगा ही रहता है और रोना पड़ता है। भगवान श्रीराम भी जन्म लेने पर शिशु लीला में रोए। शिशुकाल के बाद लड़ाइ-झगड़ा हुआ। राक्षसों से लड़ाई हुई। फिर उनका विवाह हुआ। फिर सीताहरण हुआ। वहाँ राक्षसों से लड़ाई हुई। और फिर कुछ दिनों तक सुखपूर्वक राज्य किया। किंतु इसके बाद फिर दुःख हुआ। सीतीजी का वनवास हुआ। भगवान श्रीराम ने श्रीसीताजी की फिर से परीक्षा लेनी चाही, तो वह पाताल प्रवेश कर गई और फिर वे लोग भी संसार से चले गए। इसलिए कबीर साहब ने कहा—

तन धर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो ।
उदय अस्त की बात कहतु हैं, सबका किया विवेका हो ।।
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो ।
सुकदेव अचारज दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागी हो ।।
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो ।
आसा तृस्ना सबको व्यापै, कोई महल न सूना हो ।।
साँच कहौं तो कोइ न मानै, झूठ कहा न जाई हो ।
ब्रह्मा विष्णु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो ।।
अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी विपरीती हो ।
कहै कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो ।।

इसीलिए किसी भी शरीर में नहीं रहो। सब शरीरों से मुक्ति पाने के लिए संतों ने यत्न बताया और कहा कि इस बारम्बार जन्म-मरण के दुःख से छूटने के लिए यत्न करो और डरो। वाणिज्य-व्यापारवाले डरते हैं। व्यापार के समय में व्यापार नहीं करे, तो पीछे हानि होती है, लाभ नहीं होता। इस डर से जैसा करना चाहिए, करते हैं। इसी तरह किसान भी अपने-अपने काम करते हैं। विद्यार्थी भी डर के मारे पढ़ते हैं। पहले तो माता-पिता के डर से, पीछे स्वयं ज्ञान होता है कि नहीं पढ़ेंगे तो नीचे गिरे रहेंगे। इस डर के मारे पढ़ते हैं। संत कबीर साहब ने कहा है—

डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार ।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार ।।

आवागमन से छूटने के लिए ईश्वर की भक्ति एक मात्र उपाय है। अभी आपलोगों ने सुना—

कथा कीरतन कलि विषे, भवसागर की नाव ।
कह कबीर जग तरन को, नाहीं आन उपाव ।।

कीर्तन गद्य-पद्य दोनों में होता है। पहले सत्संग करना चाहिए। इससे ज्ञान होता है कि क्या पाना चाहिए, क्या करना है। समय को व्यर्थ नहीं खोना चाहिए।

आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल ।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल ।।
काल करै सो आज कर, आज करै से अब्ब ।
पल में परलै होयगा, बहुरि करैगा कब्ब ।।

फिर कहा कि जिभ्या में बंधन दो। स्वाद और बोलने का बंधन जिभ्या में दो। जिससे सतोगुण की वृद्धि हो, वह खाओ। स्वाद की चीज को विशेष मत खाओ। रजोगुण और तमोगुण वाला भोजन नहीं खाओ। सत्य बोलो, प्रिय बोलो। मनु महाराज

ने कहा है—'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्।' कबीर साहब ने कहा है—

साधु सोई सराहिये, साँची कहै बनाय।
कै टूटै कै फिर जुरै, कहे बिन भरम न जाय।।

जिसको खाने और बोलने का हिसाब नहीं, साँच-झूठ का हिसाब नहीं, उससे परहेज रखो, लेकिन उससे वैर नहीं करो। अभी पाठ हुआ था—'निरबन्धन बन्धा रहे, बन्धा निरबन्ध होय। कर्म करै कर्ता नहीं, दास कहावै सोय।' जो अपने को बन्धन में नहीं रखता है, वह बन्धन में रहता है और जो अपने को बन्धन में रखता है,वह अपने को कर्तापन से मुक्त करके रहेगा, तो बन्धन-मुक्त हो जाएगा। असत्य नहीं बोलने के बन्धन से सत्य बोलने का बन्धन है। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार—इन पंच पापों को छोड़ो और सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य—इन पंचशील का पालन करो। भगवान बुद्ध ने बहुत दिन पहले इसका उपदेश दिया था। जो इन पंच पापों के नहीं करने का बन्धन लेता है, वह संसार में अच्छा रहेगा और परलोक—मोक्षमार्ग में भी अच्छा से रहेगा; देश में अच्छा से रहेगा, समाज में भी अच्छा से रहेगा।

किसी समय पहले एक राजा के अधिकार में यह देश था, वह सूर्य के समान तपता था। उसको आहिस्ते-आहिस्ते अलग कर दिया गया। उससे अस्त्र-शस्त्र से लड़ते, तो भारत उससे सकता नहीं; क्योंकि इसके पास हथियार ही नहीं था। महात्मा गांधी हाल में अगुआ हुए। इन्होंने सत्य और अहिंसा पर बहुत जोर दिया। वैसे तो ये पाँचों को यानी पंचशील को धारण किए हुए थे। सत्य-अहिंसा का पालन करते-करते वर्षों गुजर गए। लोग अपने को दुःख में डालते गए; क्योंकि वे लोग तो कैद करते थे, फाँसी पर झुला देते थे। लेकिन होते-होते ऐसा हुआ कि अंग्रेज मित्र की तरह यहाँ से चले गए। उनकी समझ में आ गया कि इन पर अब हम शासन नहीं कर सकेंगे। वे चले गए। हमारे प्रधानमंत्री (पण्डित नेहरू) ने दूर-दूर देशों में जाकर पंचशील का पालन बताया है, शान्ति का संदेश दिया है। इसीलिए बहुत देश शान्त हैं। पंच पापों को नहीं करना बहुत बड़ा बल है। नशे से फजूल खर्च होता है, बुद्धि सात्त्विकी नहीं रहती। चोरी करने से—किसी की चीज चुरा लेने से—आँख छिपाकर लेने से, जिसका लेते हो, वह तो रोकर रह जाएगा, लेकिन तुमको बहुत दुःख होगा। हिंसा का साथी है मांस-मछली खाना। इसपर कबीर साहब ने कहा—

मांस मछरिया खात है, सुरा पान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी की खेत।।

जो मांस-मछली खाते हैं, नशा पीते हैं, वे धर्म के खेत से ऐसे उखड़ जाते हैं, जैसे खेत से मूली। नशा एक ही तरह का नहीं है। शरीर की सुन्दरता, शरीर के बल से भी मद होता है—तन मद। विद्वान को स्फुरणा अधिक होती है। उनको मन मद होता है। इसलिए कबीर साहब ने कहा—

मद तो बहुतक भाँति का ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय।।
विद्या मद और गुनहु मद, राजमद्द उनमद्द।
इतने मद को रद्द करै, तब पावै अनहद्द।।

संतों की वाणी को सुनिए और उनके अनुकूल चलिए तो संसार-सागर से पार हो जाएँगे और संसार में प्रतिष्ठित भी रहेंगे। जो धनी हैं, विद्वान हैं, वे पंचशील का पालन नहीं करते तो लोगों के हृदय में उनका आदर नहीं रहता। काम लेने के लिए भले ही लोग उनकी प्रशंसा कर दें; लेकिन हृदय में उनका आदर नहीं रहता। जो पंचशील का पालन करते हैं, उनका कर्म परलोक पाने में मदद करता है और इस लोक में भी वे सुखी रहते हैं।

यह प्रवचन सुपौल जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मन्दिर मचहा ग्राम में दिनांक १७.७.१९५९ ई० के सत्संग में हुआ था।

१४६. सोये हुए को जगाने की आवश्यकता

प्यारे लोगो!

संसार-चक्र से छूटने के लिए संतों ने जो मार्ग बताया है, उसको छोड़कर जो लोग चलते हैं, वे हैरान होते हैं। संत-महात्मा कहने का तात्पर्य आजकल के संत ही नहीं, बल्कि मेरे कहने का आशय पहले के ऋषि-मुनियों से भी है।

सोए हुए आदमी को जगने की आवयकता नहीं जान पड़ती। जगने पर आवश्यकता मालूम पड़ती है। उसी तरह जो मोह-निशा में सोए हुए मानव हैं, उनको जगना आवश्यक नहीं मालूम पड़ता; लेकिन जगना आवश्यक है। जागकर देखो। जगने के लिए दो तरह से जागो। पहले श्रवण-मनन करके, पीछे साधना करके। संतों ने दुःख से छूटने के लिए सबको यत्न बतलाया। जैसे कोई ज्वर से व्याकुल है और अगर वह सो जाय, तो शरीर का दुःख उसे मालूम नहीं होता। वह शरीर के अंदर ही है, शरीर से बाहर नहीं गया है। जाग्रत अवस्था में वह ज्वर से छटपटाता था, लेकिन जाग्रत से स्वप्न में और गहरी नींद में चला गया, तब उसको वह तकलीफ मालूम नहीं होती, यह सभी जानते हैं।

एक साधु १६० वर्ष तक जीवित रहा, लेकिन उसको कभी कोई रोग नहीं हुआ। वह भगवान बुद्ध का शिष्य था। लेकिन ऐसे लोग बहुत कम होते हैं, नहीं के बराबर। शारीरिक पीड़ा सबको होती है। सिर में दर्द है, पेट में दर्द है, स्वप्न में जाने से छूट जाता है। जाग्रत के समय जहाँ रहते हो, स्वप्न और सुषुप्ति के समय भी वहीं रहते हो, ऐसा समझना भूल है। यदि स्थान नहीं बदलेगा, तो अवस्था भी नहीं बदलेगी। जाग्रत में ज्वर से पीड़ित है और स्वप्न में विलास करता है, बल का काम करता है। गहरी नींद में बिल्कुल खत्म, देह को कोई कष्ट मालूम नहीं पड़ता। एक प्रकार के सुख में मग्न हो जाता है, जिसमें संसार का सुख छूट जाता है। जो कोई भीतर में अपनी सुरत को समेट लेता है, वह संसार के झमेले से छूट जाता है। संतों ने इसका पता लगाया।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाएँ आप-ही-आप आती-जाती हैं। इन तीनों अवस्थाओं से और भी ऊपर जाया जा सकता है, जहाँ तीनों स्थानों की भूल, गलती, अचेतपन और जाग्रत का सुख-दुःख मालूम नहीं होता।

संतों ने यह भी पता लगाया कि जिसका यह संसार है, जो संसार का इन्तजाम करनेवाला (निरंजन) है, उसका भी दर्शन हो यानी ईश्वर का दर्शन हो, जिससे आवागमन से छूट जाएँ। संसार-चक्र से छूटना संसार के सुख-दुःखों से छूटना है। यह ईश्वर दर्शन से होगा, बाहर में दौड़ने से नहीं होगा।

सभी संतों की वाणी और उपनिषद् कुछ भी पढ़ लीजिए, सबमें एक ही बात है। इस सत्संग में कहा जाता है कि बाहर-बाहर दौड़ना छोड़ो, अपने अंदर में प्रवेश करो। लेकिन यह काम एक ही दिन में नहीं होता है। मन का समेटना बिना गुरु के नहीं होता। कोई भी काम बिना गुरु के नहीं होता है। संवत् १५७५ में संत कबीर साहब का शरीर छूटा। पन्द्रह सौ पचहत्तरा, रलौ पौन में पौन। और दरिया साहब १६३१ ई०या १६३३ में प्रकट हुए। लेकिन दोनों का ज्ञान एक है। सब संतों के ज्ञान-ध्यान का तरीका एक है। हमलोग सब संतों की वाणियों को मानते हैं। सभी संतों की वाणियों को सुनिए, पढ़िए और कीजिए। यही संतमत है। n

यह प्रवचन सुपौल जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मन्दिर मचहा ग्राम में दिनांक १८.७.१९५९ ई० के सत्संग में हुआ था।

१४७. आगे के जीवन का प्रबन्ध

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपलोगों का यह सत्संग-भवन है। यहाँ मैं बहुत बार आया हूँ। यहाँ आने पर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है, जब आपलोग मुझे यहाँ सत्संग हेतु बुलाते हैं। मैं प्रत्येक वर्ष यहाँ आता हूँ। शायद ही कोई वर्ष छूटा हो। मैं चाहता हूँ, अपना देश यानी भारत धर्म में मजबूत हो। मुझे विश्वास है कि सत्संग के प्रचार से देश के लोग धर्म में मजबूत होंगे। इसीलिए सब लोगों के लिए तथा आपलोगों के लिए सत्संग अत्यन्त अपेक्षित है। इस सत्संग का लक्ष्य है कि सारी जनता को भली बना दो। जनता भली बनेगी तब, जब लोगों का आचरण अच्छा हो।

लोगों में यह विश्वास है कि बहुत विद्या पढ़ने से लोग भले बनते हैं। परन्तु बहुत विद्या पढ़ने पर भी उनकी विद्या अविद्या बन जाती है। काम—क्रोधादि विकार जबतक उनके मन में हैं, तबतक विद्या अविद्या बनी रहती है। जिस विद्या से दुर्गुणों से बचा जाय, वही विद्या असली विद्या है। विद्या धर्म की रक्षा के वास्ते है। दुनियाँ में केवल कमाकर खाने के लिए विद्या नहीं है। अपने देश में साधु-सन्त, महात्मा बहुत हुए हैं। आचरण पवित्र होने के कारण ही वे लोग महान् हुए हैं। पढ़े-लिखे लोग भी अच्छे होते हैं। परन्तु आचरण की पवित्रता केवल विद्या पढने से ही नहीं होती है। इस युग का नमूना किसी से छिपा नहीं है। असली विद्या यह है कि साधु-सन्तों के पास जाकर उनके सत्संग से अध्यात्म-विद्या को ग्रहण करना। अध्यात्म-विद्या में संसार के प्रबन्ध के साथ-साथ ईश्वर-भक्ति की मुख्यता रहती है। शरीर में रहते हुए—संसार का प्रबन्ध कैसे किया जाय, यह भी शिक्षा मिलती है। केवल वर्तमान शरीर के लिए प्रबन्ध करो, सो नहीं। इसके आगे के जीवन का कोई प्रबन्ध नहीं किया तो कहाँ चले जाओगे, तुमको मालूम नहीं है। दुःख में जाना कोई पसन्द नहीं करते। यदि पहले इसका ख्याल नहीं किया कि शरीर छूटने के बाद भी जीवन रहता है, जिसे सुखी बनाना है। एक शरीर छूटने के बाद का बहुत लम्बा जीवन है जीवात्मा का। यह ज्ञान साधु-सन्तों के सत्संग में सिखलाया जाता है। यदि आगे के जीवन का प्रबन्ध नहीं करते हो, तो अपनी बहुत हानि करते हो। आगे का जो लम्बा जीवन है, उसके शुभ के लिए प्रबन्ध यह है कि ईश्वर का भजन करो। ईश्वर के भजन से तुमको शरीर छूटने के बाद भी सुख होगा। विद्या बहुत पढ़ोगे, लेकिन ईश्वर का भजन नहीं करोगे तो, उतना लाभ नहीं होगा।

संसार में अपने आचरण को सम्भाल कर चलो। ईश्वर के भजन में पाप-भाव मन में रखने से भजन नहीं बनता। दुनियाँ में कमा-खाकर रहने में लोग पाप-पुण्य पर नहीं सोचते। इसका विचार नहीं करनेवाले को आगे दुःख भोगना पड़ता है। ईश्वर के भजन में ऐसी बात नहीं। उसमें पाप से छूटना पड़ता है। इसलिए ईश्वर का भजन करो।

भजन में आज-कल मत करो। संत कबीर साहब ने बड़ा अच्छा कहा है—

आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल॥

ईश्वर के भजन के लिए पहले भजन को समझो। संसार में रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श ये पाँच पदार्थ हैं। इन पाँचों में से कोई ईश्वर नहीं। इन पाँचों को पहचानते रहोगे तो ईश्वर का दर्शन नहीं होगा। चाहे अद्भुत वा दिव्य शरीर हो या साधारण शरीर हो, सबमें ये पाँचों पदार्थ रहते हैं। इन पाँचों का समूह जहाँ हो, वहाँ समझो ईश्वर नहीं हैं। ईश्वर तो सबमें हैं, लेकिन किसी की तरह वे नहीं होते। पंच विषयों को पहचानने के लिए पंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन इन्द्रियों से जो तुम जानते हो, वे ईश्वर नहीं हैं। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के अलावा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार; ये चार अन्तःकरण हैं, इन सबों से युक्त जो कुछ तुम देखते हो, वह ईश्वर नहीं है। इन सबों के अतिरिक्त तुम अपने स्वयं हो। शरीर में तुम रहते हो। शरीर में रहते हुए तुम इससे विलक्षण हो। शरीर के साथ वाले ज्ञान को छोड़कर अपने आप में जो ज्ञान हो उसी ज्ञान में तुम ईश्वर को पहचानोगे। इन बातों को ठीक से याद रखो। तुम्हारा निजी ज्ञान क्या है? शरीर-इन्द्रियों से छूटकर निजी ज्ञान में जो पहचानोगे, वही ईश्वर है। ऐसा भजन करो कि ईश्वर को पहचान सको। इन्द्रियों के ज्ञान से अपने को हटा लो। ऐसा करने से ईश्वर की ओर जाओगे। इसके लिए बाहर जाने की जरूरत नहीं, अपने अन्दर जाना होगा। बाहर-बाहर जाना छोड़ दो। जो अपने को अपने में समेटता है, वह ईश्वर की ओर जाता है। अपने को अपने अन्दर समेटो, इसी के लिए यह सत्संग है।

बाहरी चीजें जो कुछ ईश्वर को चढ़ाते हैं, उनमें अपना भाव रखते हैं। ईश्वर-दर्शन करो, सारा दुःख भाग जाएगा। जैसे आग के नजदीक जाने से जाड़ा भाग जाता है। इसीलिए ईश्वर का भजन करो। चाहे तुम पढ़े हो या अनपढ़। अपने को पाप से बचाओ। ईश्वर का भजन करके मनुष्य-देह को सफल करो। ईश्वर का भजन जो थोड़ा भी करता है, वह महाभय से बचता है। महाभय यह है कि मनुष्य-शरीर के अलावा दूसरी योनि में जाना। जो अपने को पापों से बचाता हुआ संसार में रहता है, वह अपने को भला बनाकर रहता है। तुम्हारे रहने का घर कितना भी मजबूत हो, लेकिन वह सब दिन के लिए नहीं है। लेकिन सत्संग का घर सब दिन के लिए है, इसलिए यह घर मजबूत बन जाय। यहाँ समय-समय पर बैठकर भजन करो और लोगों को बुलाकर सत्संग भी करो, जैसे मुझे बुलाकर सत्संग करते हो।

n

यह प्रवचन भागलपुर नगर के सिकन्दरपुर महल्ला में दिनांक २. १. १९६० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१४८. विद्या ददाति विनयम्

मेरी सुरत सुहागिनी जाग री॥
क्या तुम सोवत मोह नींद में, उठि के भजनियाँ में लाग री।
चित से शब्द सुनो सरवन दे, उठत मधुर धुन राग री॥
दोउ कर जोड़ि शीश चरणन दे, भक्ति अचल वर माँग री।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जगत पीठ दै भाग री॥

—सन्त कबीर साहब

प्यारे लोगो!

हमलोग बचपन से जो कुछ सीखे, लिखे और पढ़े हैं, उसका तरीका यह था कि प्रथम एक ही पाठ को हम बारम्बार दुहराते थे। जब उसे कण्ठस्थ कर लेते थे, तब दूसरे पाठ में फँसते थे, ऐसा होता था। शनिवार को सब पाठ दुहरा जाते थे, उस दिन नया पाठ नहीं मिलता था; पुराने पाठों को दुहराया जाता था। पुराना पाठ नहीं दुहराने से भूल जाते हैं। भगवान् बुद्ध ने कहा—

असज्झाय मला मन्ता अनुट्ठानमला घरा ।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं ।।

—धम्मपद, मलबग्गो

अर्थात् पाठ न करना मंत्र का मैल है, मंत्र-स्मरण के लिए न दुहराना धब्बा है। झाड़-बुहार न करना घर का मैल है, आलस्य सौन्दर्य का मैल है, असावधानी पहरेदार का मैल है।

जिन पाठों को हमने बारम्बार दुहराया है, उनको नहीं भूले हैं और जिन पाठों को बारम्बार नहीं दुहराया है, भूल गए हैं। वार्षिक सत्संग में यही होता है। यानी पाठों को दुहराया जाता है। लोग कहेंगे कि यह पाठ पहले भी हो गया है, लेकिन दुहराया इसलिए जाता है कि हम न भूलें। दूसरी बात यह है कि जिस विषय को बारम्बार पढ़ो, सुनो और समझो, तो मन उस ओर झुक जाता है, दूसरी ओर नहीं जाता है। किसी विषय को बारम्बार दुहराना अच्छा है कि उसको भूलें नहीं।

हमारा विषय क्या है? हमारा विषय है कि यह मनुष्य-जीवन सब जीवों के जीवन से उत्तम है। विचार से यही सिद्ध होता है और जाना भी यही है। लेकिन हम जैसा सुख चाहते हैं, वैसा नहीं मिलता है। दैहिक, दैविक, भौतिक और मानसिक—दु:ख होते ही रहते हैं। इसलिए अशान्ति रहती है। इस अशान्ति से कैसे बचें? यही हमारा विषय है।

जिन्होंने इसका खूब मनन किया, उन्होंने जो कुछ कहा, उसी को हमलोग दुहराया करते हैं। साल भर में हमलोग दुहराते हैं। आपस में भेंट होती है, आपस की भेंट से प्रेम बढ़ता है। इसलिए यह वार्षिक सत्संग होता है।

हमारे यहाँ जो कीर्तन होता है, उसको मीठे स्वर में सुनकर आनन्द होता है; उसका अर्थ भी हम जानें। कबीर साहब का अभी वचन सुना—

मेरी सुरत सुहागिनी जाग री......।

संतों ने 'सुरत' शब्द का प्रयोग चेतन आत्मा के लिए किया है। कबीर साहब की पुस्तक में 'सुरत' शब्द की परिभाषा की गई है—'**आदि सुरत सत् पुरुष तें आई। जीव सोहं बोलिये सो ताई ।।**' आरम्भ में सत्पुरुष—परमात्मा, जिसका कभी अभाव नहीं होता, से यह जीव हुआ है।

ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।।

संतवाणी में कहीं 'सुरत', कहीं 'सति', कहीं 'सुरति' आदि का प्रयोग किया है। कबीर साहब कहते हैं— **मेरी सुरत सुहागिनी जाग री।**
क्या तुम सोवत मोह नींद में, उठिके भजनियाँ में लाग री ।।

सांसारिक सुख मिले, यह लोभ है। इस लोभ के झोरे में संसार के सब लोग हैं। असत्य को सत्य मानते हैं, असत्य को ही सत्य समझकर मानते है कि इसी से हमको सब सुख मिलेंगे—यह मोह है। तुम लोभ, मोह से छूटकर ऊपर उठो। ऐसी अवस्था प्राप्त करो कि संसार-सुख का लोभ तुमको नहीं हो। असत्य जगत, जो सत्य-सा प्रतीत होता है, इस मोह से ऊपर उठकर रहो, यही जागना है। अभी हमलोग जगे हैं; लेकिन मोह-नींद से नहीं जगे हैं। स्वप्न में भी कुछ ऐसा ही व्यापार होता है, जैसा यहाँ। तीसरी अवस्था होती है, उसमें हम अचेत पड़े रहते हैं। अपने चेतनमय-स्वरूप से मूढ़मय-रूप में रहते हैं, ज्ञान कुछ भी नहीं

रहता। इसमें रहना भी मोह में रहना है। सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत सबमें हम मोह में रहते हैं। इन तीनों अवस्थाओं से छूटकर कैसे भागा जाय? और बिना मोह से छूटे सुख-शान्ति भी नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिये सपन अनेक प्रकारा।।
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

अर्थात् अज्ञान की रात में सभी सोनेवाले अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं। मायात्यागी, सार-तत्त्वदर्शी योगीजन इस संसार-रूप रात में जगते हैं।

सर्वसाधारण-जन योगी नहीं हैं। इनमें से जो कोई भी योग-अभ्यास करते हैं, योगी होते हैं। जो अपने को तीन अवस्थाओं से परे ले जाते हैं, वे जगते हैं। योगी होने से ऐसा होता है। मोहमुक्त न जाग्रत में, न स्वप्न में और न सुषुप्ति में रहते होंगे। तीन अवस्थाओं से परे होने पर ही लोभ, मोह से छूटे रहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक शब्द में कहा है—

तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनंत।।

सर्वसाधारण यही जानते हैं कि स्वप्न और गहरी नींद छोड़कर जाग्रत में भजन करो। स्वप्न में भजन हो, यह संभव है; लेकिन सुषुप्ति में भजन नहीं होता। अपना ज्ञान जहाँ रहता है, वहीं शारीरिक वा मानसिक काम होता है। सुषुप्ति में अपना ज्ञान नहीं रहता, वहाँ भजन कैसे होगा? जाग्रत में भजन करो, तो स्वप्न में भी भजन हो सकता है।

इस तन में मन कहाँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरुगम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।

—कबीर साहब

कबीर साहब का बहुत बढ़िया हुक्म है—इस शरीर में तुम कहाँ रहते हो, इसको समझो। नहीं जानते हो, तो दूसरा गुरु करो, जो तुम्हें बतावे।

नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरुगम भेद बताइया, सब सन्तन सिर मौर।।

—कबीर साहब

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।

—दरिया साहब बिहारी

संतलोग कहते हैं कि तुम आँख में रहते हो और नौ द्वारों होकर बाहर विषयों में भागते हो। उनमें लिपटते हो और लोभ, मोह में फँसते हो। जाग्रत, स्वप्न में लोभ, मोह रहता है; सुषुप्ति में कुछ ज्ञान ही नहीं होता। इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर उठो। ब्रह्मोपनिषद् में है—

नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि संस्थितम्।।

अर्थात् जीव का वासा जाग्रत् में आँख में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीयावस्था में मूर्द्धा में होता है।

बिना कण्ठ के बोला नहीं जाता और स्वप्न में बोला जाता है, इसलिए जीव का वासा स्वप्न में कण्ठ में मानने योग्य है। गहरी नींद में श्वास-प्रश्वास लेते हैं। बिना फेफड़े के श्वास-प्रश्वास नहीं ले सकते, इसलिए सुषुप्ति में जीव का वासा हृदय में मानने योग्य है। आँख से ये दोनों स्थान नीचे हैं। यहाँ आते-जाते, अचेतता आती-जाती है। इन तीनों से ऊपर जाओ। इसी को तुलसीदासजी ने कहा—'तीन अवस्था तजहु.....'। जबतक कोई तीन अवस्थाओं को पार कर चौथी अवस्था में न जाय, जगना नहीं होता। इस अवस्था को जनाने के लिए आध्यात्मिक गुरु होते हैं। जो गुरु यह नहीं बतावे, उस गुरु और उसके शिष्य को क्या मालूम होता है? और यदि गुरु इसका उपदेश कर भी दे और शिष्य करे नहीं, तो उसे क्या लाभ होगा? गुरु से जानो और करो, तब लोभ-मोह से छूटोगे। जबतक

जगना नहीं हो, लोभ-मोह से नहीं छूट सकते और जबतक तीन अवस्थाएँ पार नहीं करो, जगना नहीं होगा। अभी तो जगना ही हुआ है, काम बाकी है।

भारत और नेपाल की सीमा एक है। नेपाल और उसके उत्तर की सीमा अलग है। इस हर एक स्थान की आव-हवा भी अलग-अलग है। इसी तरह अवस्थाएँ हैं। कबीर साहब ने कहा है कि—

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहौ संतो क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि दीदार।।

कितनी भी दूर का रास्ता हो, चलते-चलते हम एक दिन निर्दिष्ट स्थान पर जरूर पहुँचेंगे। हमको मन में होता है कि लोभ-मोह की पीड़ा से हम बचें। 'जाग री मेरी सुरत सुहागिनी.....' के गर्भ में बहुत-सी बातें हैं। अगर तुम जगते हो, तो चित्त से शब्द सुनो, बिखरी चित्तवृत्ति को जोड़कर सुनो। बिखरी सुरत में ग्रहण-शक्ति कम होती है, सिमटी में अधिक। बिखार = फूटफाट। फूटफाट में शक्ति संचित नहीं रहती। सिमटाव में शक्ति बढ़ती है, यह स्वाभाविक है। चित्तवृत्ति का सिमटाव करके सुनो। तब क्या होगा? कबीर साहब ने कहा— '**उठत मधुर धुन राग री.....।**'

सोये हुए को जैसे आवाज देकर जगाते हैं। शब्द सुनने से जाग्रत् की अवस्था से ऊपर उठना होगा। इसके लिए साधन करना होगा। केवल विचार-ही-विचार से नहीं होगा कि हम लोभ-मोह से छूट सकें। विचार में समझते हैं कि लोभ-मोह नहीं करना चाहिए, लेकिन मौका आता है और लोभ-मोह पछाड़ देता है। तीन अवस्थाओं से ऊपर उठने का सरल तरीका बताया। इसको कहाँ और कैसे सीखो, तो कहा—'**दोउ कर जोड़ि शीश चरणन दे, भक्ति अचल वर माँग री।**'

नम्रता से विद्या आती है और विद्या से नम्रता आती है। पहले नम्रता से विद्या सीखते हैं और विद्या सीखकर विशेष नम्र हो जाते हैं। इसलिए कहा गया है कि 'विद्या ददाति विनयम्।' व्याकरण के एक पंडित आये थे। वे बड़े नम्र थे। इतने नम्र थे कि उससे विशेष नम्र होना असंभव। वे चूड़ा और गुड़ खाते थे। मैंने कहा कि इन्होंने 'विद्या ददाति विनयम्' को पूर्णरूपेण चरितार्थ कर लिया है। उन्होंने अपने को अति सरल बनाया था। नम्रता सीखो। वहाँ तक सीखो, जहाँ इसकी पराकाष्ठा है। और, इच्छा मत रखो। माँगो, तो यही माँगो कि 'भक्ति अचल वर माँग री।' यह नहीं कि—

ऐसी दिवानी दुनियाँ, भक्ति भाव नहिं बूझै जी।।
कोई आवै तो बेटा माँगै, यही गुसाईं दीजै जी।
कोई आवै तो दुख का मारा, हमपर कृपा कीजै जी।।
कोई आवै तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी।
कोई करावे व्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी।।
साँचे का कोइ गाहक नाहीं, झूठे जक्त पतीजै जी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अंधों को क्या कीजै जी।।

—संत कबीर साहब

अन्त में कहा कि 'जगत पीठ दे भाग री' अर्थात् संसार की तरफ पीठ करके भाग जाओ। किधर भागो? जिधर भागो, उधर संसार। जैसे मछली की सब तरफ पानी, उसी तरह हमलोग संसार-सागर में पड़े हैं और सब ओर लोभ-मोह है। लोग कहते हैं कि विचार में संसार को नश्वर समझो, संसार से चित्तवृत्ति हट जाएगी। ठीक है, लेकिन पुनः पुनः गिरना क्यों होता है? जबतक इन्द्रियों में चेतन-धार है, विषयों में आसक्ति रहेगी। इन्द्रियों से चेतन-धार सिमट जाय, तो कोई इन्द्रिय, चाहे कर्मेन्द्रिय वा ज्ञानेन्द्रिय हो, काम नहीं कर सकती। चित्तवृत्ति का सिमटाव करके तुरीयावस्था—आँख से ऊपर के स्थान की अवस्था में रहो। जब आप तीनों अवस्थाओं को पार करके रहेंगे, तब संसार से भागना होगा।

एक व्यक्ति ने बहुत दिन पहले कहा था,

कहो साधु! यह क्या बात है?

नदी किनारे घर करे, करजा कर-कर खाय।
करजा वाला माँगन आवे, घुसक नदी में जाय।।

जहाँ तुम हो—आँख में, वह नदी का किनारा है। संसार में रहोगे, कर्म करना पड़ेगा। कर्म करने से तुम कर्मफल के भोक्ता बनोगे। कर्मफल-भोग को भोगकर चुकाने के लिए बारम्बार जन्म-मरण के चक्र में रहना होगा। परन्तु आँख के ऊपर से आनेवाली चेतन-धार में डूबने से कर्मफल-भोग को बिना भोगे ही टपा जायगा। यही तात्पर्य है—'घुसक नदी में जाय।' और उस धारा में सिमटकर रहने से संसार-ओरता से छूटा जायगा। यह संसार की तरफ पीठ देना है।

ऐसा साधन करो कि शरीर-ज्ञान से ऊपर उठो, तब तुम लोभ-मोह से छूटोगे। छूटने का यत्न इस पद्य में बता दिया—

चित से शब्द सुनो सरवन दे, उठत मधुर धुन राग री।

इस पद्य के द्वारा इशारे में कह दिया कि अन्तर्नाद को सुनो। बाबा नानक के वचन में आया—

तारा चड़िआ लंमा किउ नदरि निहालिआ राम।
सेवक पूर करंमा सतिगुर सबदि दिखालिआ राम।।
गुर सबदि दिखालिआ सचु समालिआ, अहिनिसि देखि विचारिआ।
धावतु पंच रहे घरु जाणिआ कामु क्रोध विषु मारिआ।।
अंतरि जोति भई गुरुसाखी चीने राम करंमा।
नानक हउमै मारि पतीणे तारा चड़िआ लंमा।।

तथा तुलसी साहब के शब्द में—

अजब अनार दो बहिश्त के द्वार पै,
लखै दुरवेश कोई फकीर प्यारा।
ऐनि के अधर दो चश्म के बीच में,
खसम को खोज जहाँ झलक तारा।।

दरिया साहब (बिहारी) ने कहा—

ब्रह्म साफ जैसे ध्रुव तारा। परा परद में घटा पसारा।।

संत लोग तारे का जिक्र करते हैं। झपट कर तारे पर चढ़ गए, गुरु नानक साहब ने कहा। जिसको कबीर साहब ने 'उठत मधुर धुन राग री' कहा, उसको गुरु नानक ने—'सतिगुरु सबदि दिखालिआ राम' कहा। जैसे बाजों को एक सुर में कस देते हैं, तो सभी की एक ध्वनि निकलती है, वैसे ही सभी संतों की एक ध्वनि है। इसी सामंजस्य का बोध करके हमलोगों का सत्संग—सन्तमत का सत्संग कहलाता है। हमलोगों का सबक बहुत पुराना है, इसको सिहारते रहना चाहिए, जैसा कि मैंने पहले कहा। n

यह प्रवचन श्रीसंतमत सत्संग मन्दिर सिकलीगढ़ धरहरा, पूर्णियाँ में दिनांक ५.३.१९६० ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१४९. सब ससीमों के परे क्या है?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं एक विषय जानता हूँ, वह है—ईश्वर की भक्ति। इसी पर आज कहूँगा, कल कहूँगा, जीवन भर यही विषय कहूँगा। मैंने इस भक्ति के विषय में बहुत पहले से खोज की है। सिलसिले के रूप में १९०४ ई० से खोज की है, उसके पहले की खोज क्रमबद्ध नहीं। आज तक उस खोज में जो पता लगा है, उस पता पर मैं निश्चित रूप से आरूढ़ हो गया हूँ। सबसे पहली बात कि ईश्वर की भक्ति चाहिए, क्यों? मनुष्य कुछ करता है, क्यों? इसका उत्तर है कि अपने को सुखी बनाने के लिए कोई कुछ करता है। चाहे उसका करना

गलती या सही तरीके में हो। भक्ति भी इसी तरह देखने योग्य है—वह भी अपने सुख के निमित्त। भक्ति का अर्थ है—सेवा-भजन। कैसी सेवा? ईश्वर के लिए जैसी सेवा होनी चाहिए। ईश्वर की स्थिति है? अवश्य है। ईश्वर ने ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों किया? इसको ढूँढने पर ईश्वर की स्थिति सिद्ध नहीं होती। मैं कहता हूँ आप इन बातों को छोड़ दें। आप जो कुछ करते हैं, उसका कारण आपके अतिरिक्त दूसरे कोई ठीक-ठीक जानते हैं? दूसरे लोग अन्दाज करते हैं कि इसलिए वे ऐसा करते हैं। लेकिन ठीक-ठीक कारण तो आप ही जानते हैं। ऐसे क्यों का उत्तर ईश्वर से ही पूछो, वह ठीक-ठीक बतावेगा। कहते हैं कि ईश्वर तो दीखता नहीं, उससे पूछूँ कैसे? ईश्वर को तुम क्या जानते हो? सोचो, संसार में इसके दो भाग हो सकते हैं— एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त। व्यक्त में विश्वास होता है, अव्यक्त में नहीं। अव्यक्त में विश्वास होना असाधारण है। सर्वसाधारण व्यक्त-अव्यक्त नहीं जानते हैं। तो जानना चाहिए कि जो इन्द्रियों को व्यक्त है—गोचर है, वह व्यक्त और जो इन्द्रियगम्य नहीं है, वह अव्यक्त है। तुम अपने को सोचो कि तुम अव्यक्त हो या व्यक्त? तुम स्वयं अव्यक्त हो। यदि तुम कहो कि मैं भी नहीं हूँ, मेरा रहना भी नहीं है तो सोचो कि जाग्रत् से स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में जाते हो, क्या हालत होती है? जाग्रत से स्वप्न में जाने के पहले तन्द्रा होती है। किसी को अल्पकालिक किसी को दीर्घकालिक। तन्दुरुस्त को तन्द्रा और स्वप्न अधिक नहीं होते हैं। पहले तन्द्रा आती है फिर स्वप्न और पीछे सुषुप्ति। तन्द्रा में ऐसा मालूम होता है कि मैं कुछ बाहर का जानता भी हूँ और भूलता भी जाता हूँ। होते-होते ऐसा होता है कि बाहर का जानना बिल्कुल बन्द हो जाता है और मानसिक भावनाएँ स्वप्न में दीखने लगती हैं। तन्द्रा को अधनिनियाँ भी कहते हैं। उसमें देखते हैं कि हाथ-पैर कमजोर होते जाते हैं। होते-होते स्वप्न में चले जाते हैं। किसी के मुँह में मिश्री का टुकड़ा हो और वह सपनावे कि मैं नीम खाता हूँ तो उसको मिश्री का नहीं, नीम का स्वाद मालूम होने लगेगा। जब आप सोने लगते हैं, तब अन्दर-ही-अन्दर एक चाल होती है—बाहर से भीतर की ओर। अन्दर में चलने के लिए एक स्वाभाविक चाल होती है। अब विचारो कि अन्दर-अन्दर चलनेवाला तुम हो कि तुम शरीर हो? स्वाभाविक चाल जो अन्दर-अन्दर होती है—जाग्रत से स्वप्न में जाने की, वह व्यक्त है या अव्यक्त? फूल आँख के लिए व्यक्त है, गन्ध अव्यक्त है, वह केवल नाक के लिए व्यक्त है। कान न देख सकती है, आँख न सुन सकती है। एक इन्द्री के लिए एक ही विषय व्यक्त है, इस तरह जिस इन्द्रिय के लिए जो विषय अव्यक्त है, वह इन्द्री यदि उस अव्यक्त विषय की स्थिति नहीं माने तो यह उसकी भूल और अयुक्त बात है। अपनी अवस्थाओं पर विचार करने पर यही मालूम होता है कि मैं भी अव्यक्त हूँ। कोई पूछे कि आपको अपने अन्दर-अन्दर चाल हुई, इसको अपनी चाल कहकर आपने क्यों माना? यह साफ है कि वह चाल जो हुई, यदि नहीं होती तो मैं अपने को नहीं जानता। वह मैं हूँ, जिसके लिए कहा जाता है कि तन्द्रा के आने पर वह बाहर से अन्दर की ओर होता है, उसको 'मैं हूँ' 'मैं हूँ' कहता हूँ; लेकिन वह है अव्यक्त। इस तरह जब मैं ही अव्यक्त भाव में रहता हुआ हूँ तब ईश्वर को अव्यक्त कोई कहता है तो क्या आश्चर्य और अयुक्त बात है? आपका शरीर, स्थावर-जंगम का शरीर—सबका शरीर अवयवयुक्त है। जैसे गाछ में डाल, पत्ता, तना मिलकर एक गाछ है, वैसे आपके

शरीर में हाथ-पैर आदि अवयव मिलकर एक शरीर है। वृक्ष और शरीर के सब अवयव ससीम-ससीम हैं। इनसे बने हुए एक वृक्ष और एक शरीर ससीम हैं। ससीमों के जोड़ ससीम के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। विराट् संसार भी ससीम ही है। इसलिए कि वह सब ससीमों को जोड़कर ही हुआ है, इसलिए वह भी ससीम ही है। तो प्रश्न होता है कि क्या सब ससीम-ही-ससीम है कि असीम भी? यदि आप ससीम से परे असीम का होना नहीं कहें तो आपके सिर पर से प्रश्न नहीं उतरेगा कि ससीमों के परे क्या है? सब ससीम-ही-ससीम है, यह बुद्धि-विपरीत बात है। सब ससीमों के परे एक असीम का मानना युक्ति-युक्त और बुद्धि को संतोषदायक बात है। सब ससीमों के परे असीम अवश्य है। असीम दो नहीं हो सकते। यदि दो असीम मानकर एक को दूसरे में व्यापक बताया जाय तो प्रश्न होगा कि दोनों के परमाणु एक हैं या दो? यदि कहो कि दो हैं तो दोनों की सीमा हो जाती है, तब दोनों ससीम हो जाते हैं। यदि कहो कि दोनों परमाणु एक ही तत्त्व के हैं, तब दो कैसे हुए? असीम एक-ही-एक है। असीम का होना अनिवार्य है। उसके साथ-साथ उसी की तरह दूसरा असीम उससे भिन्न तत्त्व का हो असम्भव है। सब ससीमों के परे एक ही असीम है, यह दृढ़ है। इसी को समझकर संतों की वाणी में समझा जाय। वेदों के मन्त्रार्थों में भी जहाँ तक मैंने देखा है उसमें भी ईश्वर की असीमता बतायी है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

— कठोपनिषद्

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता।
अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता।।

अनन्त कहो वा असीम एक ही बात है। कबीर साहब कहते हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सबके मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।

जिस बड़ा से कुछ बड़ा हो गया, वह क्या बड़ा-से-बड़ा हुआ? जिस बड़ा से और बड़ा नहीं हो सकता, वह 'बड़ा-से-बड़ा' हुआ। गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।आदि।

कोई अपार, कोई असीम, कोई अनन्त कहते हैं। ये सब शब्द उसकी असीमता को ही व्यक्त करते हैं। असीम परिधि विहीन केवल केन्द्र-ही-केन्द्र है। जैसे हम इन्द्रिय-ज्ञान से परे हैं, उसी तरह ईश्वर भी। इन्द्रिय-ज्ञान से ऊपर उठकर निजी ज्ञान से हम अपने आपको पहचान सकते हैं और इसी ज्ञान से परमात्मा को भी।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्।।

—कठोपनिषद्

अर्थात् यह आत्मा वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणा-शक्ति अथवा अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है। यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करता है उस (आत्मा) से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

जो सर्वव्यापी है, सीमारहित है, वह परतत्त्व है। 'परमात्मा शब्द' ईश्वर के लिए बहुत उत्तम है। परमात्मा को ईश्वर-ज्ञान के सिवाय और किसी ज्ञान में नहीं ले सकते। और शब्दों को दूसरे अर्थ में भी ले सकते हैं। लोग सुख पाने के लिए कोशिश करते हैं। ईश्वर की भक्ति से कैसे सुख होगा, ऐसा प्रश्न हो तो—देखिए, हमारा शरीर ससीम, संसार ससीम। इसमें हम वैसा सुख नहीं पाते, जैसा सुख हम चाहते हैं। जिस सुख के बाद दुःख न हो। जिस सुख में रहकर कभी शान्ति छूटे नहीं, वैसे सुख की चाहना होती है। यदि किसी को करोड़ों की भी सम्पत्ति हो, तो भी शान्तिमय सुख नहीं मिल सकता। पहले उसने सोचा था कि सम्पत्ति होने से सुख होगा, किन्तु करोड़ों होने पर भी चाह मिटती नहीं।

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिए, सोई शाहंशाह।।
—संत कबीर साहब

संसार में रहते हुए—ससीम में रहते हुए कभी कोई पूर्ण सुखी नहीं हो सकता। एक पदार्थ जो आपस में जिद्द में हो, दोनों के उल्टे-उल्टे गुण होते हैं। समीम में अशान्ति है तो उसका उल्टा असीम में शान्ति होगी। उसको पाने पर हम उस सुख को प्राप्त कर सकते हैं, जिसके बाद फिर दुःख नहीं। इसलिए ईश्वर की भक्ति है। इसलिए सन्तों ने ईश्वर की भक्ति करने पर बहुत जोर दिया। अव्यक्त की भक्ति व्यक्त व्यक्ति करे, कैसे संभव है? मैं महाभारत की एक छोटी-सी कथा कहता हूँ। राजा मरुत ने जो यज्ञ किया था, उसका दिया हुआ दान जो लोग नहीं ले जा सके थे, वह पहाड़ में गड़ा हुआ था। व्यासदेव के वाक्य को मानकर युधिष्ठिर वहाँ गए और खोदकर निकाल लिए और यज्ञ किए। यहाँ श्रद्धा काम आती है। जिस रास्ते से व्यासदेव ने कोशिश करने कहा, युधिष्ठिर ने कोशिश की। व्यासदेव को साथ लिया और धन प्राप्त किया। इसी तरह तुम भी विश्वास करो, वह जो अव्यक्त का पता बतावे, उसको मानो और जो कोशिश बतावे, वह कोशिश करो। वह धन युधिष्ठिर के लिए पहले अव्यक्त था, पीछे व्यक्त हुआ। उसी तरह अव्यक्त की भक्ति जो कठिन मालूम होती है तो वह भी इन्द्रिय-ज्ञान से ऊपर उठे हुए को व्यक्त हो जाएगा। आप अव्यक्त हो, अव्यक्त की ओर चलो। जैसे युधिष्ठिर ने अव्यक्त धन निकाल लिया उसी तरह तुम भी अव्यक्त परमात्मा को प्राप्त करो।

हमारे गुरु महाराज कहा करते थे कि, 'ईश्वर ने ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों किया' यदि पूछना है तो यह सब ईश्वर से ही पूछो। ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता मैं बतला सकता हूँ। तुम अपने अव्यक्त हो। जैसे जन्मान्ध के शरीर का रूप भी अव्यक्त है, यदि उसको आँख हो जाय तो वह देखने लगे। उसी तरह आत्मदृष्टि से देखो तो मालूम होगा कि जो पहले अव्यक्त था, वह व्यक्त हो गया। आँख यदि आँख को देखना चाहे तो कैसे देखे? आँख-से-आँख को पहले नहीं देख सकते। साधन लो आइने का, तब आँख को आँख से देखोगे। उसी तरह साधना की युक्ति लो, साधन करो, तब तुम अपने को अपने से बिना इस आँख के देखोगे।

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग बहुत आनन्द बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को सेवक भाव लिये रहै।
मिलि परमातम सों आतमा पराभक्ति 'सुंदर' कहै।।
— संत सुन्दरदासजी

जहाँ कहीं रहिये या जहाँ कहीं आप रहते हैं, तो जाँच कर रहते हैं। युधिष्ठिर को कौशल से कौशल के घर में रखा गया था। यदि वे उसकी जाँच नहीं करते तो वे जल मरते। उन्होंने जाँचा और वहाँ से भाग गए। जिन्होंने घर बनाया था, वे ही जल कर मर गए। इस दुःख के देश में रहना अच्छा नहीं है। 'रहना नहिं देश विराना है'। इसलिए—

सहजो जग में यों रहो, ज्यों जिभ्या मुख माहिं।
घीउ घना भोजन करै, तौ भी चिकनी नाहिं।।

—भक्तिन सहजोबाई

अनासक्त होकर संसार में रहो। आसक्त होकर रहोगे तो आप ही दुःख पाओगे। ईश्वर-भक्ति का कारण तथा उसके व्यक्त और अव्यक्त के संबंध में कहा। ईश्वर की भक्ति कैसे होगी, यह कल्ह दोपहर के सत्संग में कहूँगा।

n

यह प्रवचन श्रीसंतमत सत्संग मन्दिर सिकलीगढ़ धरहरा, पूर्णियाँ में दिनांक ५.३.१९६० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१५०. सूफी संत और कबीर साहब का मिलन

प्यारी धमानुरागिनी जनता !

मैंने अपने ऊपर बड़ा बोझ लिया है। यह बहुत बड़ी सभा हो रही है, इसीलिए नहीं। अपने होश के जीवन के आरम्भ से ही मैंने अपने ऊपर यह बोझ ले लिया है। मेरे गुरु महाराज ने कहा कि सम्प्रदाय के फेर में मत पड़ो। संतों के नाम पर जो सम्प्रदाय या पंथ विदित हैं, उनके सार को देखो। जिन संतों के नाम पर लोग गौरव करते हैं, उन संतों के सार को ग्रहण कर रहो और संसार में उसका प्रचार करो। यह बात मुझे बड़ी अच्छी लगी। पक्षपात की कोई बात नहीं। संतों के सार वचनों का प्रचार करो। साम्प्रदायिकता के कारण जो लोग अपने को विशेष और दूसरे को न्यून मानते हैं, इसमें ईर्ष्या-द्वेष भरे रहते हैं। संसार में शान्ति हो। धर्म-ज्ञान में आकर भी द्वेष के तवे-भाँड़े में पड़े रहे, दुःख पाते रहे, तो क्या लाभ? घर के प्रबन्ध में तंग रहते हो, भाई-भाई में मेल नहीं तो घर में जलते रहो। घर के सब लोगों में मेल नहीं तो भी जलते रहो। राजनैतिकता में जाओ तो वहाँ भी एक दूसरे की निन्दा करते हैं, धर्म में जाओ तो वहाँ भी साम्प्रदायिकता लेकर जलो, तो शान्ति कहाँ मिलेगी?

तुलसी साहब के नाम से 'घटरामायण' लिखी गई है। तुलसी साहब की गद्दी पर बड़े-बड़े अक्षरों में यह पुस्तिका लिखी हुई रखी है। उसमें एक जिज्ञासु ने तुलसी साहब से पूछा है कि आपका क्या पंथ है? उन्होंने कहा—

संत गुरु और पंथ न जाना। ये ही संत पंथ हित माना।।

मुझे यह बहुत पसन्द आया। हम जो संतमत कहते हैं, सो यही है। फिर भी लोगों के मन में होता है कि ये नया मत चला रहे हैं। मैं कहता हूँ कि भाई! कहो क्या कहूँ? सनातन धर्म कहने से वहाँ शैव, शाक्त आदि, और कौन-कौन मत हैं! 'संत' बहुत प्रिय शब्द है, यह सबको मान्य है। हमारे यहाँ संत, तो यूरोप में (Saint) सेण्ट। बात रही आर्य-अनार्य की तो और देश में भी आर्य और अपने विदेश में भी आर्य। लेकिन विचार कर देख लो—ज्ञान और कला से हीन को अनार्य कहते हैं और आर्य शब्द का अर्थ है—ज्ञान-कला से युक्त। सभी देशों में आर्य हैं। अब रहा संत, तो बहुत ऊँचे दर्जे के लोग संत होते हैं। संत लोग

कैसे होते हैं? वे लोग बहुत संयत होते हैं, उनको अपने पर बहुत काबू रहता है। अपने पर काबू उसी को होता है, जिसका मन काबू में हो। मन काबू में उसी का है जो विषय-लोलुप नहीं है। जो अपने मन को काबू में रख सकता है, वह अपने को संयत बनाकर रख सकता है। संत सभी देशों में होते हैं।

संत कबीर साहब काशी में रहते थे और एक सूफी संत ईरान में रहते थे। दोनों का मिलन सूरत में हुआ। ये दोनों आपस में एक दूसरे के हाथ पर हाथ रख कर चुपचाप बैठ गए और इसी तरह सारी रात बीत गई। सवेरा होने पर दोनों ने अपनी-अपनी राहें लीं। उन दोनों संतों के शिष्यों ने अपने-अपने महात्मा से पूछा कि आपलोग चुपचाप रात भर बैठे रहे—कुछ बोले तक नहीं, यह कैसा मिलन हुआ? दोनों संतों ने अपने-अपने शिष्यों को एक ही उत्तर दिया कि 'खूब बातचीत हुई, दिल खोलकर बातचीत हुई और ऐसा आनन्द आया जैसा कभी नहीं हुआ।'

इस तरह के संत होते हैं, इनमें भेद-भाव नहीं रहता। हमलोग उस संत के अनुयायी होकर मतभेद रखें, ठीक नहीं है। आपस में हम एक हों—मिलकर रहें, यह संतमत है।

संतों ने ईश्वर—परमात्मा की खोज की, उन्हें परमात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। श्रवण, मनन, निदिध्यासन ही नहीं; प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ। जो कोई ईश्वर को प्राप्त करता है, उसको शान्ति आती है, चैन होता है, वे ही ईर्ष्या-द्वेष से परे हो जाते हैं। उसी को हम अच्छी तरह समझें। संतों का कोई खास धन है, तो वह है—ईश्वर—परमात्मा।

मुझे स्वयं भी पसन्द है और गुरु महाराज की आज्ञा भी है कि संत-वचन का प्रचार करो। तो मैं उसी को आप लोगों को समझाऊँ। आपलोगों ने संत कबीर साहब और दादू दयालजी की वाणियाँ सुनीं।

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।।टेक।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि वन नहिं जावै ।
वन के गए कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ।।
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ।।
उनमुनी रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ।
सुरत निरत से मेला करिके, अनहद नाद बजावै ।।
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै ।
कहै कबीर सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै ।।

—कबीर साहब

दादू जानै न कोई , संतन की गति गोई ।। टेक।।
अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई ।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई ।।
अंड न पिंड खंड ब्रह्मण्डा, सूरत सिंध समोई ।
निराकार आकार न जोति, पूरन ब्रह्म न होई ।।
इनके पार सार सोइ पइहैं, तन मन गति पति खोई ।
दादू दीन लीन चरणन चित, मैं उनकी सरणोई ।।

—दादू दयालजी

'दादू जानै न कोई संतन की गति गोई' किसी ने पूछा—कोई नहीं जानते हैं? संत तो जानते ही हैं। उनकी गति और दूसरे लोग नहीं जानते हैं। 'गति' यानी 'पहुँच', 'गति' 'चाल' को भी कहते हैं। संतों की गति—चाल—पहुँच जहाँ तक होती है, लोग नहीं जानते हैं। वे सर्वव्यापी तक जाते हैं। वे सर्वव्यापी को कहाँ पाते हैं? तो कहा—'अविगत अंत अंत अंतरपट.....'अर्थात् अंतरपट के अंत में—आखिर में जाकर उनको पाते हैं। 'सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा...' कहकर तीन शून्यों को बताया। तुलसी साहब ने भी तीन शून्यों का वर्णन किया है। एक शून्य जिसमें अन्धकार भरा है, दूसरा वह शून्य है, जिसमें प्रकाश भरा है और तीसरा वह शून्य है, जिसमें शब्द भरा है। अंधकार, प्रकाश और शब्द, इन तीन शून्यों के परे हैं।

प्रकृति में आप तीन दर्जे पाते हैं। प्रत्यक्ष में कुछ पाते हैं और कुछ अप्रत्यक्ष में। कहने का मतलब यह है कि सभी प्रत्यक्ष नहीं पाते हैं। संसार में अन्धकार की प्रधानता है। सूर्य का प्रकाश भी उतना तेज नहीं है कि इससे अंदर देख पड़े। डॉक्टर लोग X-RAY (एक्सर) लेते हैं, लेकिन मन का एक्सरे नहीं ले सकते। अंदर के वायु का एक्सरे भी नहीं ले सकते। ऐसा तो इस सूर्य का प्रकाश है। एक्सरे को भी सूर्य का प्रकाश ही प्रकाशित करता है। जिस तरह सूर्य के प्रकाश में हम अपने शरीर को देखते हैं, उस तरह सूर्य के प्रकाश में अपने को नहीं देखते। जिस प्रकाश से कुछ देखा जाय और कुछ नहीं देखा जाय, उस प्रकाश के साथ कुछ अंधकार लगा हुआ है।

यह प्रकाश का मण्डल है, लेकिन इससे सब देखा नहीं जाता है। शब्द मण्डल है, लेकिन सब शब्दों को नहीं सुन सकते हैं। बहुत लोग यह भी नहीं जानते कि अंदर में शब्द-ध्यान होता है। जो जानते भी हैं, उनमें अधिक लोग नहीं पाये हैं। अंधकार-मंडल के बाद प्रकाश-मंडल है। प्रकाश-मंडल में दिव्य ज्योति देखी जाती है। दिव्य दृष्टि होने से अन्तर-जगत मालूम पड़ता है। जो अन्तर्नाद की उपासना करता है, वह वहाँ पहुँचता है, जहाँ आकाश नहीं। वहाँ शब्द में कुछ मिश्रित होकर रहे, ऐसा नहीं। अंधकार, प्रकाश और शब्द; इन तीनों को छोड़कर तब जो दर्जा होता है, वह सर्वव्यापी को पहचानने का दर्जा होता है। 'अगम अगाध अगोई' 'अ' संस्कृत है और 'गोई' फारसी।

श्रीमद्भगवद्गीता के ज्ञानवाले क्षरपुरुष, अक्षर पुरुष और पुरुषोत्तम को जानते हैं। पुरुष निर्गुण है, प्रकृति सगुण है और प्रकृति-पुरुष के परे पुरुषोत्तम मानते हैं। सांख्य—ज्ञान में अनेक निर्गुण पुरुष मानते हैं। 'अण्ड न पिण्ड खण्ड ब्रह्मण्डा सूरत सिंध समोई' सुरत का सिन्धु अर्थात् सच्चिदानन्द मंडल, पुरुषोत्तम में अँटा हुआ है। तीन शून्य, निर्गुण-सगुण, पिण्ड-ब्रह्माण्ड के परे अर्थात् इन सबको पार करके, मन, तन, गति-पति खोकर परमात्मा को पाते हैं।

एक अनादि-अनंत तत्त्व को माने बिना कल्याण नहीं। सब सान्तों को मिलाने से एक अनंत नहीं हो सकता है। अनंत, असीम कहकर मन में एक विस्तृत्व का ज्ञान होने लगता है। ऊँचाई, गहराई, मोटाई, लम्बाई, चौड़ाई इत्यादि का ज्ञान विस्तृतत्व में होता है, यह माया संबंधी ज्ञान है। लेकिन सर्व-व्यापक पुरुषोत्तम परमात्मा बुद्धि पर, माया संबंधी ज्ञान के परे है। वेद-वेदान्त, संतवाणी सब में यह बात है। विचारने पर भी ज्ञान होता है कि सब सान्त-ही-सान्त हो तो यह बुद्धि को कबूल नहीं।

जो कोई पूछे तेहि कर लेखा। कस कस भाषौं रूप न रेखा।

—तुलसी साहब, हाथरस

संसार में सभी दुःखी हैं, ईश्वर-उपासना के बिना दुःख दूर नहीं होता। ईश्वर-उपासना के लिए आपको क्या करना होगा? कबीर साहब कहते हैं—'अवधू भूले को घर लावै.......' घर छोड़ने नहीं कहा। घर ही में योग-भोग और घर ही में युक्ति- मुक्ति बतलाया; लेकिन शर्त है—'जो गुरु अलख लखावै।' अलख कैसे लखावे? तो कहा—'सहज सुन्न में रहे समाना'—आसानी के साथ शून्य में समाधि लगावे। गुरु ऐसा अलख लखावे। शून्य में समाओ, हमलोग स्थूलाकाश में हैं, सूक्ष्माकाश में मेरी गति हो, इसकी युक्ति गुरु बता दे। अलख का अर्थ ईश्वर ही नहीं है। उन्मुनि का अर्थ है—संकल्प-विकल्प का छूट जाना। लोग कहते हैं हमको ऐसा नहीं होता है। मैं पूछता हूँ, आपको जितना करना चाहिए, किया है?

काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं ।।
ताकन को ढब नाहिं ताकन की गति है न्यारी ।

इक टक लेवै ताकि सोई है पिय की प्यारी ।।
ताकै नैन मिरोरि नहीं चित अंतै टारै ।
बिन ताके केहि काम लाख ओउ नैन सँवारै ।।
ताके में है फेर, फेर काजर में नाहीं ।
भंगि मिली जो नाहिं नफा क्या योग के माहीं ।।
'पलटू' सनकारत रहा पिय को खिन-खिन माहिं ।
काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं ।।

—पलटू साहब

मैं कहता हूँ कि अभ्यासी को अभ्यास करने से अवश्य देखने में आवेगा। दृष्टि-शक्ति का प्रयोग करो। बाहर का प्रतिबिम्ब आइने में आता है। देखने की शक्ति को दृष्टि कहते हैं।

परमतत्त्व =सर्वोत्कृष्ट तत्त्व। परमात्मा ने सर्वप्रथम जिस तत्त्व को उत्पन्न किया, अथवा परमात्मा से, सबसे प्रथम जो हुआ, उसको परमतत्त्व कहते हैं। वह है—चेतन। चेतन गतिशील है। इसी के द्वारा सृष्टि हुई है। दरिया साहब ने कहा है—'संतो गति में अनहद बाजै'। संतों ने शब्द को परमतत्त्व माना। संत कबीर साहब कहते हैं—

शब्द हमारा आदि का, पल-पल करिये याद।
अंत फलैगी माहिं की, बाहर की सब बाद।।

बाइबिल में भी है कि सृष्टि के आरम्भ में शब्द था।

सब की आदि शब्द को जान। अन्त सभी का शब्द पिछान।।
तीन लोक और चौथा लोक। शब्द रचे यह सबही थोक।।
शब्द सुरत दोउ धार समान। पुरुष अनामी के ये प्रान।।
चेतनता सब इनकी मान। शब्द बिना कोइ और न आन।।
शब्द गुप्त तब हुआ अनाम। शब्द प्रकट तब धरिया नाम।।
नाम अनाम शब्द परिमान। शब्द बिना होय सबकी हान।।

—राधास्वामी साहब

शब्द तत्तु बीर्ज संसार। शब्द निरालमु अपर अपार।।
शब्द विचारि तरे बहु भेषा। नानक भेदु न शब्द अलेषा।।
शब्द सुरति भया प्रगासा। सभ को करै शब्द की आशा।।
पंथी पंखी सिऊँ नित राता। नानक शब्दै शब्दु पछाता।।
हाट बाट शब्द का खेलु। बिनु शब्दै क्यों होवे मेलु।।
सारी स्रिष्टि शब्द कै पाछै। नानक शब्द घटै घटि आछै।।

—गुरु नानक साहब

जहाँ-जहाँ गति है, वहाँ-वहाँ शब्द है। परमतत्त्व = अनाहतनाद।

जरूरत तो यही है कि गुरु योग्य हो। गुरु योग्य नहीं है, तो दूसरा गुरु बना लो। संतों का यह ज्ञान-उपदेश उपनिषद्, गीता आदि सभी सद्ग्रंथों में है। मैं कहता हूँ कि सत्संग करो। यह परमात्मा का निज अंग है।

देहि सत्संग निज अंग श्री रंग भवभंग कारण शरण शोकहारी।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

कैसा सत्संग करो, तो तुलसी साहब ने कहा—'ठाट ठट सत्संग करै।' बाहर में साधु-संतों का संग करो और अंदर में ध्यानाभ्यास करो। संतों की वाणियों में अन्दर और बाहर दोनों सत्संग करने के लिए कहा है—

नित सतसंगति करो बनाई। अन्तर बाहर द्वै विधि भाई।।
धर्म कथा बाहर सत्संगा। अन्तर सत्संग ध्यान अभंगा।।

यह प्रवचन श्रीसंतमत सत्संग मन्दिर सिकलीगढ़ धरहरा, पूर्णियाँ में दिनांक ६.३.१९६० ई० को प्रात:कालीन सत्संग में हुआ था।

१५१. कर्म-धर्म से छूटने का उपाय

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

ईश्वर संसार के सभी पदार्थों के कण-कण में भरा हुआ है और उसके बाहर भी है। वह इतना व्यापक है कि आप उससे कहीं अलग नहीं हो

सकते। ऐसा इसलिए दृढ़ता के साथ कहा जाता है कि एक अनादि-अनन्त तत्त्व की स्थिति अवश्य है। सबको सादि और सान्त मानने से बुद्धि को संतोष नहीं होता है। सब सान्तों के परे क्या है? अगर पूछो कि सब सान्तों के परे का प्रश्न क्यों? इसलिए कि सब सान्त, सान्त मिलकर अनन्त कभी नहीं होगा। इसलिए सब सादि-सान्त के परे क्या है? यह प्रश्न होगा ही। सादि-सान्त के परे अनादि-अनन्त कहे बिना संतोष नहीं। अनादि-अनन्त तत्त्व को ही संतों ने ईश्वर कहा है। इसी का वर्णन वेद, उपनिषद् और संतवाणी में है। गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।

वह अपार कहते हैं, वह परमतत्त्व है। परमार्थ स्वरूप है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

'राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।।'

'है सबमें सबही तें न्यारा।
जीव जन्तु जल थल सबही में, शब्द वियापत बोलनहारा।।
सबके निकट दूर सबही तें, जिन जैसा मन कीन्ह विचारा।।'

—संत कबीर साहब

अर्थात् परमात्मा सबमें होकर उतना ही है, ऐसा नहीं, उससे बाहर भी है। सब लोग एक ही बात कहते हैं। बुद्धि के विचार से भी ठीक ही है। गुरु महाराज कहते थे कि—'गुरु-वाक्य हो, सद्ग्रन्थ-वचन हो और विचार का मेल हो; तो उस पर पूरा विश्वास कर लो। परमात्मा को अनन्त-अनादि मानने के लिए संतों की वाणियाँ आज्ञा देती हैं। समझने पर मालूम भी होता है कि ठीक है। यदि सब सान्त-ही-सान्त हों, तो सब सान्तों को मिलाकर अनन्त नहीं हो सकता। अनन्त तत्त्व से अधिक व्यापक और कुछ हो, कहना, बालक जैसे कहना है। सबसे विशेष व्यापक ईश्वर वा परमात्मा ही है और एक-ही-एक है। व्यापकता में क्या गुण होता है, देखो। एक सेर बर्फ जितनी दूर में व्यापक होगा, उसका पानी बना लेने पर वह उससे अधिक व्यापक होगा। फिर उस पानी का वाष्प बना लिया जाय तो वह और भी उससे विशेष व्यापक होगा। अर्थ यह हुआ कि सूक्ष्मता में व्यापकता अधिक होती है। जो सबसे अधिक व्यापक होता है, वह सबसे अधिक सूक्ष्म भी होता है। बुद्धिमान को इसके मानने में कोई कसर नहीं होनी चाहिए। जो सबसे विशेष सूक्ष्म है, उसको स्थूल यंत्र से कैसे ग्रहण कर सकते हैं? जैसे छोटी घड़ी के महीन कल-पुर्जों को पकड़ने के लिए, बड़ी घड़ी के कल-पूर्जों को पकड़नेवाला यंत्र सदा अयोग्य रहता है।

परमात्मा सबसे अधिक व्यापक है, इसलिए सबसे अधिक सूक्ष्म है। हमारी सभी इन्द्रियाँ स्थूल-ही-स्थूल हैं। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण होना असम्भव है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार भी परमात्मा के सम्मुख अत्यन्त स्थूल हैं। इसलिए—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

'बुद्धि पर' कहो चाहे 'अगम', एक ही बात है। परमात्मा ऐसा है कि वह बाहर वा अन्दर की किसी भी इन्द्री से ग्रहण होने योग्य नहीं है। तब किससे ग्रहण होने योग्य है? शरीर, इन्द्रियों के अतिरिक्त आप स्वयं उनमें रहते हैं। इसी से ग्रहण होने योग्य है। जैसे दूध के मथे जाने पर मक्खन अलग हो जाता है, उसी तरह ध्यान के मन्थन से चेतन आत्मा शरीर और इन्द्रियों से अलग हो जाती है। जैसे कोई पूछे कि रूप क्या है? जो आँख से ग्रहण हो। शब्द क्या है? जो कान से ग्रहण हो। ईश्वर क्या है? जो तुम अपने से ग्रहण कर सको। नौकर-चाकर का साथ लेकर नहीं। हाथ-पैर आदि नौकर-चाकर हैं। किसी आवरण में रहकर उसको प्राप्त नहीं कर सकते। इन सबसे अपने को छुड़ा लो,

फिर परमात्मा तुम्हारी पहचान से बाहर नहीं रह सकेंगे। जिसको आप स्वयं ग्रहणकर सको, वह है परमात्मा।

जिस काम को करते-करते ईश्वर की प्राप्ति होती है, वही काम ईश्वर की भक्ति है। यह कैसे होगी? कबीर साहब ने कहा है—'संतो भक्ति सतोगुर आनी.....'। यह अपरा भक्ति नहीं है, परा भक्ति है। यह भक्ति ऐसी नहीं है कि ईश्वर को यहाँ बुलाओ। यह भक्ति वह है कि चलो ईश्वर के पास। दो तरह के ख्याल होते हैं। पहला कहते हैं कि ईश्वर को यहीं बुलावेंगे। ठीक है। बहुतों को दर्शन हुआ भी है। लेकिन यह इन्द्रियों के ज्ञान में हुआ। हाथ से पैर पकड़ा आदि। रूप का दर्शन हुआ, रूप धारण करनेवाले का दर्शन नहीं हुआ। गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते-लिखते यह भी लिख गए—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

भगवान श्रीराम के समय में कितनों ने कितने रूपों में उन्हें देखा। सभी ने अपनी-अपनी भावनाओं के अनुरूप देखा। भगवान श्रीकृष्ण को अर्जुन ने अपने सखा रूप में देखा। वसुदेवजी ने पुत्र के रूप में देखा। अर्जुन को भगवान का गहरा संग था। उनको विराट् रूप का भी दर्शन हुआ। भगवान ने जैसा कहा, अर्जुन ने वैसा किया। फिर यह कि 'सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा' यह क्या? अर्जुन तो उनकी शरण में था ही।

श्रीराम का भी ऐसा ही दर्शन लोगों को हुआ। लेकिन श्रीराम कहते ही रह गए कि ऐसा और वैसा करो। 'एहि तन कर फल विषय न भाई' अर्थात् समझ लो कि एहि तन कर फल निर्विषय भाई।' जब तक इन्द्रिय-ज्ञान से ऊपर नहीं उठो, विषयों से नहीं छूट सकते। अपने ऊपर इन्द्रियों का मायिक रंगीन चश्मा है, इसको उतार दो और शरीर की पट्टी लगी है, इसको भी उतारो। विवेकानन्द स्वामी ने कहा था कि अपनी दृष्टि को अन्दर करो। अपने को शरीर-इन्द्रियों से ऊपर उठाओ। **ब्रह्मानन्द स्वामी ने कहा है—**

जिमि दूध के मथन से, निकसत है घी जतन से।
तिमि ध्यान के लगन से, परब्रह्म ले निहारा।।

यह बड़ा उत्तम शब्द है। ऐसा नहीं कि भगवान यहाँ आकर दर्शन देंगे। रूप नाशवान है। यहाँ आकर किसी रूप में ही दर्शन देंगे। रूप में जो आए, उनकी तो पहचान नहीं हुई। श्रीराम, श्रीकृष्ण, विष्णु भगवान, शिव बाबा, काली माई का प्रत्यक्ष दर्शन लोगों ने किया। लेकिन दर्शन देने पर भी वे कहते थे कि यह काम करो और वह काम करो। तब तो श्री कृष्ण भगवान ने कहा—'सब धर्मों को छोड़ो' कर्म छूटने से ही धर्म छूट सकता है। सुकर्म करनेवाले को धर्मी और कुकर्म करनेवाले को अधर्मी कहते हैं। लोगों से कुछ-न-कुछ कर्म होगा ही। तुलसी साहब कहते हैं—

आली अधर धार निहार निजकै। निकरि सिखर चढ़ावहीं।।
जहाँ गगन गंगा सुरति जमुना। जतन धार बहावहीं।।
जहाँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि। धुर गुरू गति गावहीं।।
जहाँ संत आस विलास बेनी। विमल अजब अन्हावहीं।।
कृत कुमति काग सुभाग कलिमल। कर्म धोय बहावहीं।।

इस मिलाप को ही वेनी—त्रिवेणी कहते हैं। संतलोग यहीं पर स्नान करते हैं और जो शुभ-अशुभ कर्म हैं, वे सभी धुल जाते हैं। ध्यानशील ही को ऐसा होता है। ध्यान में ऐसा होता है कि जैसे तन्द्रा में स्वाभाविक चाल होती है, वैसे ही ध्यान के द्वारा मानसधार वा चेतनधार का सिमटाव होता है। सिमटाव होने से इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं और तब सभी कर्म छूट जाते हैं। इसके लिए योग्य गुरु और श्रद्धा सहित उनकी सेवा अत्यन्त अपेक्षित है। कबीर साहब ने कहा है—

सत्त नाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं ।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवश रही मन माहिं ।।
मन दीया तिन सब दिया, मन के लार शरीर ।
अब देवे को कछु नहीं, यों कथि कहै कबीर ।।

फिर चेताने के लिए उन्होंने कहा—

तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार ।
कबहुँ कहै कि मैं दिया, घनी सहैगा मार ।।
तनमन दिया तो क्या हुआ, निजमन दिया न जाय ।
कह कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय ।।
तनमन दीया आपना, निजमन ताके संग ।
कह कबीर निर्भय भया, सुन सतगुरु परसंग ।।

मन दो तरह के होते हैं—तनमन और निजमन। जब तक मन शरीर-मुखी है, तन-मन है। मन का सिमटाव हो जाय, तो वह आत्म-मुखी हो जायेगा।

इस तन में मन कहाँ बसत है, निकस जाय केहि ठौर ।
गुरु गम है तो परखि ले, ना तर कर गुरु और ।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर ।
गुरुगम भेद बताइया, सब सन्तन्ह सिर मौर ।।

जब मन की धार सिमटकर केन्द्र में केन्द्रित हो जाय, तब निज-मन और जब तक सिमटाव नहीं हुआ है, तबतक तन-मन कहते हैं। शरीर से जो सेवा की जाती है, उसको तन-मन की सेवा कहते हैं और ध्यान में मन का सिमटाव कर केन्द्रित करना निज-मन की सेवा है।

आप कहेंगे कि हठयोग— प्राणायाम का कुछ नहीं बताया। एक बार सन् १९३४ ई० में योगिवर श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल महोदयजी से इस विषय पर बातचीत हुई थी। मैंने पूछा था कि 'प्राणायाम करके ध्यानाभ्यास किया जाय वा केवल ध्यानाभ्यास?' सान्याल जी ने कहा—'पहले प्राणायाम, बाद को ध्यानाभ्यास।' मैंने कहा—श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में जहाँ वर्णन है कि इस तरह की भूमि पर, अमुक-अमुक आसनी बिछाकर, अमुक भाँति बैठकर अमुक भाँति से ध्यान करे; वहाँ तो प्राणायाम का कुछ भी जिक्र नहीं है। इस पर उन्होंने कहा—'ध्यानाभ्यास करने से भी प्राणस्पन्दन रुकता है तो प्राणायाम हो गया।' फिर उन्होंने कहा—'जैसे दूध में मक्खन होता है, वैसे ही वायु में प्राण है। वायु, प्राण नहीं है।' शाण्डिल्योपनिषद् में है कि बिना प्राणायाम किए ध्यान करने से प्राणस्पनदन रुकता है—

द्वादशांगुल पर्यन्ते नासाग्रे विमलेम्बरे ।
संविद्दृशि प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दो निरुध्यते ।।

अर्थात् सुरत, चेतन-वृत्ति नासाग्र से बारह अंगुल पर स्वच्छ आकाश में स्थिर हो तो प्राण का स्पन्दन रुद्ध हो जाता है।

गीता में वर्णन है कि अभ्यास से ज्ञान, ज्ञान से ध्यान और ध्यान से कर्मफल-त्याग विशेष है। 'अभ्यास' शब्द यहाँ प्राणायाम-योग के लिए ही आया है। केवल कहने से कर्मफल का त्याग नहीं होता। ध्यान-योग सबके लिए बहुत बढ़िया चीज है, चाहे आप विद्वान हों या अविद्वान, गीता में जहाँ ध्यान-योग है, उस अध्याय में प्राणायाम का कुछ भी वर्णन नहीं आया है। 'ध्यानं निर्विषयं मनः'—इसको ध्यान कहते हैं।

उद्धव जी ने श्रीकृष्णजी से पूछा कि आपका ध्यान कैसे करूँ? तो बताया कि पहले मेरे सम्पूर्ण रूप का, फिर चेहरे का और फिर शून्य में ध्यान करो। रामचरितमानस में काकभुशुण्डिजी के ध्यान-अभ्यास की चर्चा इस भाँति है—

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप यज्ञ पाकरि तर करई ।।
आम छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहिं दूजा।।
बटतर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा।।

मानस पूजा और ध्यान का अलग-अलग वर्णन किया है। स्थान बदल देते हैं—'पीपर तरु तर ध्यान' और 'आम छाँह कर मानस पूजा'। मानस-पूजा से ध्यान के लिए शक्ति होती है। गुरु

नानकदेवजी के वचन में है—

गुरु की मूरति मनमहिं धिआनु। गुरु कै शबद मंत्र मन मानु।।

संत कबीर साहब कहते हैं—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सत् भाव।।

गोस्वामी तुलसीदासजी का कथन है—

श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
वरणौं रघुवर विमल यश, जो दायक फल चारि।।

गो० तुलसीदासजी कहते-कहते यहाँ तक कह गए कि—**तुम्ह तें अधिक गुरुहिं जिय जानी।**
सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।

यह स्थूल ध्यान है। यहाँ से अभ्यास का आरम्भ है। इससे भी सिमटाव होता है, किन्तु कुछ विस्तार रहता है, पूर्ण सिमटाव नहीं होता है। इसलिए इससे आगे बढ़ो। साधक को भ्रम होता है कि इसमें हमारा इष्ट छूट जाएगा। किन्तु ईश्वर सबमें है। 'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत....'। वह किसी एक ही स्थूल वा सूक्ष्म में नहीं रहता, सबमें रहता है। आप कई पोशाक पहनते हैं तो क्या आप बदल जाते हैं—दूसरे हो जाते हैं? उसी तरह इष्ट का स्थूल रूप छूटा, पर उसका सूक्ष्म रूप तो रहेगा ही। फिर यहाँ से भी आगे बढ़ने को संतों ने कहा। सूक्ष्म रूप क्या है? **गीता,** ८/९ में कहा गया है—

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।

इसी अणु रूप को 'परम विन्दु' कहा है। 'बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्'—ध्यान-विन्दूपनिषद्। परिभाषा के अनुकूल विन्दु वह है जिसका स्थान है, परिमाण नहीं। इसको मन से नहीं बना सकते। देखने के कौशल से देखो।

श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवजी को काली के साथ ऐसा संबंध था, जैसा कि माता के साथ पुत्र का। एक बार दक्षिणेश्वर में तोतापुरी नाम के एक संन्यासी आए। उन्होंने श्री रामकृष्ण परमहंसजी से कहा कि तुम मुझसे दीक्षा ले लो। परमहंसजी ने कहा—जबतक माताजी (काली माई) आज्ञा नहीं देंगी, मैं दीक्षा नहीं ले सकता। फिर वे माताजी (काली माता) के पास आए और लौटकर तोतापुरी जी के पास जाकर बोले कि मुझे दीक्षा दीजिए, श्री माँ की आज्ञा हो गई है। तोतापुरीजी ने उनको ध्यान की क्रिया (दृष्टियोग की क्रिया) बतलाई। जब वे ध्यान करने लगते तो कालीजी की मूर्ति उनके सम्मुख आ जाती। परमहंसजी ने कहा—बहुत चेष्टा करेने पर भी ध्यान नहीं हो पाता है, माँ की मूर्त्ति सामने आ जाती है। तोतापुरीजी वहीं बरामदे पर टहल रहे थे, उन्होंने कहा—नहीं होगा? जरूर होगा। टहलते हुए उनकी दृष्टि काँच के एक टुकड़े पर पड़ी, उन्होंने उक्त शीशे के टुकड़े को उठा लिया और परमहंसजी के भ्रुवोर्मध्य में बिन्ध कर कहा कि यहाँ ध्यान करो। ऐसा करते ही परमहंसजी का ध्यान ठीक-ठीक जम गया।

रूप के बदलने से रूप का धारण करनेवाला नहीं बदलता। जो इस ज्ञान में नहीं रंगा है, उसको साम्प्रदायिक खैंच होती है। आपको जिसमें श्रद्धा हो, उसका ध्यान कीजिए। कोई राम का, कोई कृष्ण का, कोई शिव का, कोई अल्लाह का और कोई अलिफ को बनाकर ध्यान करते हैं। पहले जप करो, फिर ध्यान करो। जब कोई चित्तवृत्ति का निरोध प्राणायाम द्वारा करते हैं और कोई मन को एकओर करने का काम केवल ध्यान द्वारा करते हैं, तो ध्यान-योग से साधन करने में कोई भय और आपदा नहीं है। हाँ, मस्तिष्क पर कुछ जोर अवश्य पड़ता है, फेफड़े को कोई हानि नहीं होती। निज-मन द्वारा भजन होता है और निज-मन के ही स्थान से ईश्वर की ओर का मार्ग पकड़ा जाता है।

भक्ति का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरणन लौ लीना रे।।

साधुन के सत्संग में, रहे निसि दिन भीना रे।
शब्द में सुर्त ऐसे बसे, जैसे जल मीना रे।।
मान मनी को यों तजे, जस तेली पीना रे।
दया छिमा संतोष गहि, रहे अति आधीना रे।।
परमारथ में देत सिर, कछु विलम्ब न कीना रे।
कहै कबीर मत भक्ति का, परगट कह दीना रे।।
—कबीर साहब

भगता की चाल निराली।
चाल निराली भगताह केरी विषम मारगि चलणा।।
लबु लोभु अहंकार तजि त्रिसना, बहुतु नाहीं बोलणा।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी, एतु मारगि जाणा।।
गुर परसादी जिनि आपु तजिया, हरि वासना समाणी।
कहै नानक चाल भगताह केरी, जुगहु जुगु निराली।।
—गुरु नानकदेव

यदि कहो कि इस सूक्ष्म मार्ग पर कैसे चला जाय? तो जानिये जैसे रास्ता सूक्ष्म है, इस पर चलनेवाला भी बड़ा सूक्ष्म है। तलवार की धार से भी सूक्ष्म है। गोस्वामी तुलसीदासजी का सुनिए—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

इससे मोटी भक्ति सुनिए—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

सिमटाव होने पर अन्तर की ओर सुरत जाती है। कहाँ तक जाती है? 'अविगत अंत-अंत अन्तर पट' तक जाती है। दृष्टियोग और शब्दयोग की क्रिया से ऐसा होता है। असली चीज 'शम' है। 'दम' हो जाने से 'शम' भी होगा। मन के साथ इन्द्रियनिग्रह को 'दम' और केवल मनोनिग्रह को 'शम' कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'श' और 'स' में विशेष फर्क नहीं रखा है। यदि 'सम' ही लो, तो 'सम' का अर्थ 'समता' होता है। समता समाधि में होती है। मनोनिग्रह में समाधि होती है। केवल मन का साधन नाद-साधन से होता है। गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु बरजि रहाईऐ।
निझरु झरै सहज धुनि लागै घरही परचा पाईऐ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।।
नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ।
बाजे बाझहु सिंङी बाजे तउ निरभउ पदु पाईऐ।।

यह शब्द-साधन है। शब्द-साधन में मन का साधन होता है। दृष्टि-साधन में मन-इन्द्री का संग-संग साधन होता है। छठी भक्ति दृष्टि-साधन और सातवीं भक्ति शब्द-साधन है। आठवीं भक्ति में 'यथा लाभ संतोषा' हो जाता है। नवमी भक्ति में सबसे सरल और छलहीन होना होता है। श्रीरामकृष्ण परमहंसजी से किसी ने पूछा—सिद्धपुरुष कैसे होते हैं? उन्होंने कहा—'जैसे आलू-बैंगन की तरकारी मुलायम होती है।' भक्ति स्थूल से सूक्ष्म तक करो। ईश्वर-स्वरूप को जानो कि जो इन्द्रियगम्य नहीं है, आत्मगम्य है। ईश्वर क्या है? इसका उत्तर है—जिसको अपनी चेतन आत्मा से ग्रहण कर सको। संतों ने मरने के बाद की मुक्ति को नहीं माना है।

जीवत मुक्त सोइ मुक्ता हो।
जबलग जीवन मुक्ता नाहीं, तबलग दुख सुख भुगता हो।
—संत कबीर साहब

जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ ।
जीवत काटै कर्म सब, मुकति कहावै सोई ।।
मूआँ पीछैं मुकति बतावैं, मूआँ पीछैं मेला ।
मूआँ पीछै अमर अभै पद, दादू भूले गहिला ।।
—संत दादू दयाल

लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

योगशिखोपनिषद् में लिखा है—

पिण्डपातेन या मुक्तिः सा मुक्तिर्नतु मन्यते ।
देहे ब्रह्मत्वमायाते जलानां सैन्धवं यथा ।
अनन्यतां यदा याति तदा मुक्तः स उच्यते ।।

अर्थात् देह छूटने पर जो मुक्ति होती है, वह मुक्ति नहीं है, जिस प्रकार नमक जल में घुलकर एक हो जाता है, इस तरह जब जीव ब्रह्मत्व को प्राप्त कर उससे अन्य नहीं रह जाता, तब मुक्ति होती है। ईश्वर-भजन कीजिए। सदाचार का पालन कीजिए।

n

यह प्रवचन ५२वाँ महाधिवेशन सिकलीगढ़ धरहरा, पूर्णियाँ में दिनांक ६.३.१९६० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१५२. सगुण ब्रह्म की प्रत्यक्षता होने पर भी दुःख

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता !

ईश्वर-भक्ति के विषय में मैं कहा करता हूँ। ईश्वर-स्वरूप इन्द्रियातीत है। उसकी प्राप्ति हाथ, पैर, नाक, मुँह आदि इन्द्रियों से नहीं हो सकती।

संसार में कभी अच्छा, कभी बुरा होता है। भगवान श्रीकृष्ण के साथ पाण्डव लोग रहा करते थे। अर्जुन ने भगवान की दी हुई दिव्य दृष्टि से उनके विराट् रूप को देखा था। लड़ाई में उनकी जीत हुई। परन्तु लड़ाई में जीतने की उनको खुशी नहीं हुई; क्योंकि उनके चार भाइयों के अतिरिक्त बेटे और भतीजे आदि; सब लड़ाई में मारे गए। इससे जाना जाता है कि सगुण ब्रह्म की प्रत्यक्षता रहने पर भी सब दुःखों और सब अभावों से पूर्णरूपेण कोई छूट नहीं सकता। यह छुटकारा होना तभी सम्भव है, जब सगुण ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की प्राप्ति हो जाय। वही परमात्मा है। वह परमात्मा अनादि, अनन्त, असीम है। दिन-रात जब नहीं थे, देश-काल नहीं थे, वह तब से है। वही सर्वेश्वर है। उसके बाहर कोई वा कुछ नहीं है। उसके प्रभुत्व के अन्दर सब हैं। उसके बाहर रहना असंभव है। इसलिए वह सर्वेश्वर कहे जाने योग्य हैं। उस पर किसी का बल वा चारा काम नहीं कर सकता। इसलिए 'जा साहब से ना कछु चारा। ताको कीजै सद् नमस्कारा।' —गुरु नानक साहब। वह प्रकृति से बना हुआ नहीं है, प्रकृति को उसने बनाया है। लोग कहते हैं—प्रकृति नहीं थी तो ईश्वर ने कैसे सृष्टि की? गुरु नानकदेवजी जवाब देते हैं—'तदि अपना आपु आपही उपाया। ना किछु ते किछु करि दिखलाया।।' परमात्मा की यही विशेषता है कि सृष्टि बनने के उपादान—प्रकृति को भी बिना कुछ के उसने बनाया है। सांसारिक वैज्ञानिक कुछ के बिना कुछ नहीं बना सकते हैं। कुछ के बिना कुछ का नहीं बनना अर्थात् अभाव से भाव का होना असंभव है। यह लौकिक सिद्धान्त है। परन्तु परमात्मा अलौकिक है। उनके कामों में यह सिद्धान्त लागू नहीं है। परमात्मा के सामने

इन्द्रियाँ इस तरह स्थूल हैं, जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती। चेतन आत्मा से ही परमात्मा का दर्शन संभव है। ऐसी भक्ति करो कि अपने तईं को उसमें अर्पण कर दो। देखिये, हमारे यहाँ श्राद्ध-क्रिया होती है, उसमें यह बतलाया जाता है कि शरीर में रहनेवाला शरीर छोड़कर कहीं चला गया है। शरीर नाश हुआ है, शरीर में रहनेवाला कहीं-न-कहीं अवश्य है। शरीर जड़ है, उसमें चेतन आत्मा जड़ नहीं है। इसको इन्द्रियों से ग्रहण करना हो नहीं सकता। 'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।' अपने को शरीर-इन्द्रिय से पृथक करो। शरीर से चेतन आत्मा की पृथक्ता का प्रत्यक्ष ज्ञान हो, तब अपने तईं को परमात्मा में अर्पण किया जा सकेगा। 'अंग बिना मिलि संग बहुत आनन्द बढ़ावै। बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को सेवक भाव लिये रहै। मिलि परमातम सों आतमा पराभक्ति सुन्दर कहै।।' सुन्दरदासजी का यह आत्म-समर्पण है। यह जिस काम से हो, वही भक्ति है। लोग कहते है कि 'भक्ति में योग करना होगा'। योग में प्राणायाम करना पड़ेगा। प्राणायाम सबसे नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारी भक्ति को खारीज (रद्द) करते हैं। जो ऐसा कहते हैं उनको और जानना चाहिए। हमारे यहाँ दो तरह के साधक हुए हैं। एक प्राणायाम करके ध्यानाभ्यास करनेवाले और दूसरे केवल ध्यानाभ्यास करनेवाले। पुन: वे कहते हैं—प्राणायाम से वायु स्थिर होती है, मैं मानता हूँ, लेकिन जो प्राणायाम नहीं कर सकें, उनके लिए क्या है? हाँ, है। ध्यानाभ्यास करते-करते प्राण कुम्भक में हो जाता है। अर्थात् वायु स्थिर हो जाती है। इसको आजमा लेने की बात है। विचार करते हैं, तो समझ में आता है कि बिना प्राणायाम के भी वायु स्थिर होती है, तथा इसके लिए शास्त्र-प्रमाण भी है—

द्वादशांगुल पर्यन्ते नासाग्रे विमलेऽम्बरे ।
संविद् दृशि प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दोनिरुध्यते ।।
भ्रूमध्ये तारकालोक शान्तावन्तमुपागते ।
चैतनैकतने बद्धे प्राणस्पन्दो निरुध्यते ।।
चिरकालंहृदेकान्तव्योम संवेदनान्मुने ।
अवासन मनो ध्यानात्प्राणस्पन्दो निरुध्यते ।।

—शाण्डिल्योपनिषद्, अ० १

अर्थात् 'जब ज्ञान-दृष्टि (सुरत-चेतनवृत्ति) नासाग्र से बारह अंगुल पर स्वच्छ आकाश में पहुँचकर स्थिर होती है, तो प्राणस्पन्दन रुद्ध हो जाता है। जब चेतन वा सुरत भौओं के बीच के तारकलोक (तारामण्डल) में पहुँचकर स्थिर होती है तो प्राण की गति बन्द हो जाती है। हृदयाकाश में संकल्प-विकल्प और वासना-हीन मन से बहुत दिनों तक ध्यान करने से प्राण की गति रुक जाती है।' केवल ध्यानाभ्यास करो। ध्यानाभ्यास से यह होगा कि मन का सिमटाव एकविन्दुता तक होगा। किसी चीज को जिस ओर से समेटो तो वह उसकी उलटी ओर को जाती है। स्थूल में सिमटाव होने से सूक्ष्म में प्रवेश करेगा। इस तरह धीरे-धीरे सब छूटते हैं। चलते-चलते वह शरीर और इन्द्रियों से छूटकर कैवल्य दशा पाता है। तब परमात्मा की प्राप्ति होती है। अनादि, अनन्त, परमात्मा सर्वव्यापी है। उसको खोजने के लिए बाहर जाने की क्या जरूरत है? दादू दयालजी कहते हैं—

कोई दौड़े द्वारिका, कोई काशी जाहिं।
कोई मथुरा कौ चलै, साहिब घट ही माहिं ।।
कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिं।
ऐसे घट में पीव हैं, दुनियाँ जानै नाहिं।।

—कबीर साहब

स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण होना असंभव है। इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं होने के कारण बाहर में उनको ढूँढ़ना उचित नहीं है। चेतन आत्मा

अभी मन के साथ इस तरह है जिस तरह दूध में घीउ। जहाँ मन है, वहीं चेतन आत्मा। अन्दर में चलने के लिए पहले मन सहित चेतन आत्मा चलेगी; फिर उसके आगे केवल चेतन आत्मा। जाग्रत में चेतन आत्मा का वासा कहाँ है? शिवनेत्र में, आज्ञा चक्र के केन्द्र में, नयनाकाश में। वहाँ से चलने की कोशिश करो। उसका पूर्ण सिमटाव करो। **'मन में मन नैनन में नैना मन नैना एक होइ जाई'** —कबीर साहब। मन को उसके केन्द्रीय रूप में ले जाओ। यह ध्यानाभ्यास करने से होगा। आरम्भ में इस काम के करने में सुगमता नहीं विदित होती है, परन्तु पूर्व जन्म के संस्कारी को इसमें सुगमता का बोध होता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है, ऊर्ध्वगति में आवरण का छेदन होता है और अन्त में शरीर-इन्द्रिय को छोड़कर कैवल्य दशा में अपने को लाना होगा। इसी को संतों ने समझाया है। इसके लिए पहले स्थूल उपासना, फिर सूक्ष्म उपासना। सूक्ष्म उपासना में अवलम्ब चाहिए। अवलम्ब गुरु बता देंगे।

सुखमन के घर राग सुनि सुन मंडल लिव लाई।
अकथ कथा विचारिये मनसा मनहिं समाइ।।
—गुरु नानक साहब

'सुखमना' के घर में राग सुनो, शून्य मंडल में लव लगाकर—गुरु नानक ने कहा। शून्य मण्डल के अमुक निशाने पर मन लगाओ, यह गुरु बता देंगे। वहीं पर **'सुरत सिरोमणि घाट गुमठ मठ मृदंग बजै रे,** और **'झलक झाँझ मन मीन मजीरा, मधुर-मधुर धुनि मृदंग सुनीजै'** की अनुभूति हो जाएगी। कबीर साहब के शब्द में है कि— **'दहिने सूर चन्द्रमा बायें तिनके बीच छिपाना है'** इसका रहस्य गुरु-कृपा से ज्ञात होगा। तब होगा—'चमके बीज गगन के माईं।' प्रथम ज्योति-दर्शन करो। **तुलसी साहब (हाथरस) ने कहा है—**

श्याम कंज लीला गिरि सोई। तिल परिमाण जान जन कोई।।
छिन-छिन मन को तहाँ लगावै। एक पलक छूटन नहिं पावै।।
स्रुति ठहरानी रहे अकासा। तिल खिरकी में निस दिन वासा।।
गगन द्वार दीसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा ।।

यह तरीका संतों का है। यहाँ से ज्योति और शब्द दोनों मिलते हैं। ये दोनों हाथ परमात्मा के हैं। इन दोनों हाथों से परमात्मा अपनी गोद में ले लेता है। यह ध्यानविन्दूपनिषद् में है।

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम् ।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन ।।

अर्थात् कई योजन तक फैला हुआ पहाड़ के समान यदि पाप हो तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है; इसके समान पापों का नष्ट करनेवाला कभी कुछ नहीं हुआ है। ध्यान के अतिरिक्त और किसी कर्म के करने से पाप नहीं छूटता है। युधिष्ठिर ने युद्धकाल के अति संकट में एक झूठ बोला था और उसका फल उनको भोगना पड़ा। युधिष्ठिर ने पहले भी बहुत शुभ कर्म किए थे और युद्ध के बाद भी शुभ कर्म किये, लेकिन झूठ का फल भोगना पड़ा। योगी को कोई पकड़ नहीं सकता। गोरखनाथजी का वचन है—

काया हंस संगि ह्वै आवा । जाता जोगी किनहुँन पावा ।।

अधिक पुण्य करने से पुण्यात्मा और अधिक बुरे कर्म करनेवाले को पापात्मा कहते हैं। और इसका फल दुःख होता है, नरक होता है। पुण्य से पाप नष्ट नहीं होता है, ध्यान से नष्ट होता है।' 'कृत कुमति काग सुभाग कलिमल कर्म धोइ बहावहीं।' ध्यान वह चीज है कि जिससे क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध कोई भी कर्म हो, नष्ट हो जाता है। केवल विचार-ही-विचार से नहीं होगा कि हम आत्मा हैं, कर्म से छूटे हुए हैं। इससे लाभ कुछ नहीं होगा। 'धन-धन कहत धनी जो होते निर्धन रहत न कोई।' —कबीर साहब। इसके लिए कर्मयोगी बनना होगा। कर्म करना होगा और यदि आपका

मनोभाव अच्छा है तो ठीक ही है।

पहले मानस जप, मानस ध्यान, फिर ज्योति साधन और फिर शब्द-साधन करो। जो चेतन आत्मा शब्द में समा जाए, शब्द से पकड़ी जाए तो किसी भी तरह वह शब्द से छुड़ायी नहीं जा सकती। चाहे उसके शरीर को बाघ खराब कर दे या बिजली गिर जाय। वह शब्द—

अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अकण्ठतालवोष्ठमनासिकं च।
अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।

—अमृतनाद उपनिषद्

शब्द शब्द बहु अंतरा, वह तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवे नहीं, निरखि परखि करि देह।।

—कबीर साहब

तुलसी तोल बोल अबोल वाणी बूझि लखि विरले लई।

—तुलसी साहब (हाथरस)

उसी शब्द को ऋषियों ने ओ३म् कहा है। संसार में जितने शब्द हैं, सबका प्रतिनिधि स्वरूप ओ३म् है। इस शब्द का उच्चारण करने से उच्चारण के सभी स्थान उच्चारण के काम में लगते हैं। मानो यह शब्द उच्चारण के सभी स्थानों में व्यापक है। इसकी यह व्यापकता संकेत रूप में इसका वाच्य 'अबोल वाणी' की सृष्टि भर में सर्व व्यापकता का बोध दिलाती है। यह शब्द संतों का ध्येय है। गुरु नानक ने कहा— '**एक ओम् सतनाम करता पुरुष निर्भौ निर्बैर अकाल मूर्ति अयोनी सेभं गुरु प्रसादि जप।।**' कबीर साहब कहते हैं—**पढ़ो मन ओना मासी धंग।**

ओंकार सबही जग सिरजे, शबद सरूपी अंग।।

इस 'अघोषम् ३ॐ ध्वनि' को पाने के लिए नादानुसन्धान—सुरत-शब्द-योग करना होगा, जिस अभ्यास में ईश्वर-दर्शन और मोक्ष-लाभ में उपर्युक्त साधन की पूर्ण उपयोगिता पाटीगणित के हिसाब के समान ध्रुव है। रुपया लाख-करोड़ भले ही नहीं देखा, लेकिन हिसाब तो जोड़कर ठीक-ठीक कह देते हैं।

विज्ञान में पहले सिद्धान्त स्थापित करते हैं, फिर उसका निर्माण करते हैं। यहाँ भी पहले सिद्धान्त स्थापित होता है, फिर उसके लिए कर्म करना होता है। यह कर्म पहले से होता आया है। इसकी बड़ी विशेषता है। ज्योति शब्द को पकड़ाती है और शब्द परमात्मा को पकड़ाता है। जैसे हाथ, पैर, मुँह, नाक, कान में ईश्वर व्यापक है, उसी तरह ज्योति और शब्द में भी व्यापक है।

जैसे पानी में चलते-चलते पानी के खतम होने पर सूखी जमीन मिलती है, उसी तरह ज्योति और शब्द को पार कर परमात्मा को पाते है। इसके लिए बहुत मन लगाकर ध्यानाभ्यास करना होगा और अपने को ऐसा बनाना होगा कि 'नहिं अचाह नहिं चाहना चरणन लौ लीना रे।' चरण में लौ लगाने के लिए अचाह नहीं और सांसारिक वस्तुओं की चाह नहीं रखो। इस कर्म के करनेवालों के लिए पंचशील का पालन आवश्यक होता है। पंचशील पालन करने के लिए भगवान बुद्ध ने कहा था। और संतों ने भी पंच पापों को नहीं करने के लिए कहा। परमात्म भक्त संसार में भी सुखी रहता है। उसके पास धन कम होते हुए भी वह राजा होता है। राजा कहना ठीक नहीं, राजा से भी बढ़कर होता है। राजा को संतुष्टि नहीं होती, भक्त संतुष्ट होते हैं। पंच पापों—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से बचकर रहने की कोशिश कीजिए, संसार में भी सुखी रहेंगे। इससे आपस में मेल होगा, प्रेम होगा, झूठ का व्यवहार नहीं रहेगा, सभी शान्तिपूर्वक रहेंगे। n

यह प्रवचन ५२वाँ महाधिवेशन, सिकलीगढ़ धरहरा, पूर्णियाँ में दिनांक ७.३.१९६० ई० को प्रात:कालीन सत्संग में हुआ था।

१५३. जीवों का उपकार

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता !

चेतन आत्मा शरीर के अन्दर है, इसमें किसी को संशय नहीं होना चाहिए। उसके ऊपर शरीर के आवरण हैं— स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण के रूपों में। ये चारों किस्म के आवरण घूंघट हैं—परदे हैं। ये परदे खुल जायँ, तब ईश्वर-दर्शन हो जाय। चारों परदों से ऊपर उठा जाय, तब ईश्वर-दर्शन हो जाय। घमण्ड नहीं करो, अन्तर्ज्योति को ग्रहण करो, उसके अन्दर अपनी चेतन आत्मा को प्रवेश कराओ और अन्तर्नाद का साधन करो। इसी बात में यहाँ और वहाँ आपका कल्याण होगा। जो इस बात को जानकर भजन नहीं करते, उनके लिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है— 'शूकर श्वान शृगाल सरिस जन, जनमत जगत जननि दुख लागी।' केवल अपनी माता को कष्ट देने के लिए वे जन्म लेते हैं। बिल्कुल ठीक कहा। ईश्वर-भजन करो, घूँघट के पट से अपने को ऊपर उठाओ और शून्य में योग-युक्ति से प्रकाश करो। दादूदयालजी कहते हैं—

नीके राम कहतु है बपुरा।
घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा।।
सहज समरपण सुमिरण सेवा, तिरवेणी तट संयम सपरा।
सुन्दरि सन्मुख जागण लागी, तहँ मोहन मेरा मन पकड़ा।।
बिन रसना मोहन गुण गावै, नाना वाणी अनभै अपरा।
दादू अनहद ऐसैं कहिये, भगति तत्त यहु मारग सकरा।।

ये भी वही बात कहते हैं। घर के अन्दर घर को पवित्र रखो। स्थूल शरीर को शौचादि से पवित्र करो। सूक्ष्म शरीर को पवित्र करो उसके ऊपर से स्थूल शरीर को हटाकर। कारण शरीर को शुद्ध करो उसके ऊपर से सूक्ष्म शरीर को हटाकर और महाकारण शरीर को शुद्ध करो उसके ऊपर से कारण शरीर को हटाकर। पवित्रता के साथ-साथ गतिशीलता न हो, असंभव है। गतिशीलता से ही आवरण उतरते हैं। आवरणों से ऊपर उठकर आत्म-स्वरूप में रत होओ। संत लोग यही बात कहते हैं। हम लोग दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और वार्षिक सत्संग करते हैं। बारम्बार दुहराने से बात याद रहती है। सत्संग में ईश्वर-भजन के लिए प्रेरणा मिलती है, इसलिए सत्संग करना चाहिए।

आज इस समय यहाँ अ० भा० साधु-समाज के पुरैनियाँ जिला साधु-समाज के संयोजक आए हुए हैं और अपना लेखबद्ध वक्तव्य भी पाठ कर सबको सुनाया है। अतएव मैं भी उक्त साधु-समाज के विषय में कुछ कहूँ, उचित जँचता है। अखिल भारतीय साधु-समाज के संगठन का पहला काम साधु-समाज के सम्हाल के लिए अपेक्षित है। हम साधु लोग अपना सम्हाल करके जनता के सम्हाल के लिए भी प्रयास करें, यह उचित और आवश्यक है। मेरी परमात्मा से प्रार्थना है कि यह समाज उन्नति करता हुआ आगे बढ़े। यह समाज पहले अपना सम्हाल करे। जो महात्मा सुधरे हुए हैं, उनको कुछ कहना नहीं है। जो सुधरे हुए नहीं हैं, उनको अपना सुधार करना चाहिए। यदि गलती हो जाय तो सम्हलना चाहिए। साधु को वह काम नहीं करना चाहिए जो साधु के करने के योग्य नहीं हो। साधु को चाहिए कि पहले अपने को सम्हाल लें, फिर दूसरे को सिखावें। अपने को नहीं सुधार कर दूसरे को क्या सम्हालेंगे?

मामूली ज्ञान में हम सब जीवात्मा हैं। 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।' जैसा मैं वैसा दूसरे। मैं सुखी-दुःखी होता हूँ वह भी सुखी-दुःखी होता है। मैं भी दूसरे की सहायता चाहता हूँ, वह भी चाहता है। उसकी माँग के पहले उसकी पूर्ति हम करें तो परमात्मा रंज नहीं हो सकते। एक भाई दूसरे भाई की सेवा करता है तो पिता खुश होते हैं। उसी तरह एक जीव दूसरे जीव की सेवा करता है तो परमात्मा प्रसन्न होते हैं। एक भाई दूसरे भाई की सेवा करो, जीवों का उपकार करो। मैं सेवा करने से रोकता नहीं। किन्तु ईश्वर-भजन करो और जनता की सेवा भी करो। महात्मा गाँधीजी ने बहुत भजन किया था, तब तो मरते समय मुँह से 'हे राम!' निकला। नहीं तो 'बाप रे बाप' क्यों नहीं कहा? ईश्वर-भजन नहीं करके और कामों को करना, मैं वैसा ही समझता हूँ, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।।

ईश्वर-भजन छोड़कर जनता की सेवा अपवित्र सेवा है। अपने मन की हालत देखकर जानोगे कि तुममें कितनी पवित्रता या अपवित्रता है। सेवा पहले घर से होती है। बच्चे दाने-दाने के लिए तरसते हैं और अपने चले हैं जनता की सेवा करने। अपने घर की सेवा पहले करो, फिर जनता की भी सेवा करो। जो बहुत बड़े महात्मा हैं, जो ध्यान में मग्न रहते हैं, उनके लिए कुछ कहा नहीं जा सकता है। उनकी एक ही दृष्टि से जनता का क्या हो जाय, कहा नहीं जा सकता। वे जनता के लिए क्या-क्या सोचते हैं, करते हैं, वे ही जानते हैं।

नशीली चीजों को छोड़ो। मैं साधु हूँ, मुझको गृहस्थ क्यों नहीं खिलावेगा, यह दाबी नहीं रखो। घर-घर का मेहमान नहीं बनो, अपनी कमाई करो, और खाओ। गृहस्थी में रहो या विरक्ति में रहो, काम-रोजगार करो और परमात्म-भजन करो।

तुलसी कर पर कर धरो, कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरन भलो।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

संत कबीर साहब कहते हैं—

मर जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवै लाज।।

कोई कहे कि मैं माँगता नहीं हूँ, तो तुम कैसे नहीं माँगते हो? तुम किसी के यहाँ नहीं जाओ। जो कोई थोड़ा-थोड़ा कई घरों से माँग लेता है, वह विशेष भार नहीं देता है और जो एक ही आदमी के यहाँ जाकर खाता है, वह विशेष भार देता है। ईश्वर-भजन करो, अपना आचरण ठीक बनाओ, अपनी कमाई करके खाओ और जनता की सेवा भी करो।

गुरु महाराज के प्रतिज्ञा-पत्र पर हमने हस्ताक्षर किए हैं कि—'संतमत की उन्नति में तन, मन, धन से हमेशा मददगार रहेंगे।' इसको मत भूलिए। संतमत की उन्नति इसलिए कि इससे अध्यात्म-ज्ञान का प्रचार होता है। इस ज्ञान को फैलाना चाहिए। इसमें स्वार्थ-परमार्थ दोनों हैं। इससे जनता का बड़ा लाभ होता है। ऐसा मत चूको कि किसी वार्षिक सत्संग में उपस्थित न होओ। n

यह प्रवचन ५२वाँ महाधिवेशन, सिकलीगढ़ धरहरा, पूर्णियाँ में दिनांक ७.३.१९६० ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१५४. नासाग्र ध्यान क्या है?

प्रिय आत्मवत् प्रियगण !

भगवान श्रीकृष्ण से उद्धवजी ने पूछा था— मैं आपका ध्यान कैसे करूँ? श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्द में है। भगवान ने कहा कि पहले मेरे सर्वांग का ध्यान करो, फिर कहा—केवल मुखारविन्द का ध्यान करो। फिर कहा—उसको भी छोड़कर शून्य में ध्यान करो। यह तो भागवत में है। श्रीमद्भगवद् गीता के छठे अध्याय में है—'नासाग्र में ध्यान करो। दिशाओं को देखना छोड़ दो।' दोनों का मेल कैसे होगा? दिशाओं को देखना छोड़ने के लिए जानना चाहिए कि दिशाएँ दस होती हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, चारो कोना, ऊपर और नीचे। इन दशो को छोड़ दो। दशो दिशाओं को देखना छोड़ने के लिए आँखें बन्द करनी पड़ेंगी। आँख खुली रहेगी तो कोई-न-कोई दिशा देखी जाएगी। भागवत से मिलाने पर यह होगा कि दिशाओं को नहीं देखते हुए भगवान के सम्पूर्ण रूप का, फिर चेहरे का, फिर शून्य का ध्यान करो। दिशाओं को देखना, छोड़ने में यह मानना होगा कि पूरा रूप देखने के लिए सिर से पैर तक होता है, बाहर नहीं तो भीतर। उसको भी घटाने पर चेहरे में भी ऊपर-नीचे होता है। उसको भी छोड़ने पर बहुत ही सूक्ष्म हो जाता है। शून्य में ध्यान-नासाग्र में ध्यान होगा। दोनों को कैसे मिलाया जाय? शून्य में रंग-रूप कुछ बनाना है नहीं। चेहरे को छोड़कर, तब और कुछ सूक्ष्म होना है। जैसे सर्वांग से चेहरा कम फैलाव होता है, और उससे भी कम फैलाव होना चाहिए। वह है विन्दु। विन्दु का स्थान है, परिमाण नहीं है। इतना सूक्ष्म कि परिमाण-विहीन हो जाए। शून्य ध्यान कहो, चाहे विन्दु ध्यान कहो, एक ही बात हो जाएगी। गीता और भागवत दोनों की एक ही बात हो जाएगी। संतवाणी में भी शून्य ध्यान करने कहा है। कहीं-कहीं विन्दु ध्यान भी कहा है। कहीं-कहीं विन्दु को तिल भी कहा है। उपनिषद् में विन्दु को उत्तम ध्यान बताया है, परम विन्दु कहा है। बाहर में छोटे-से-छोटा चिह्न को लोग विन्दु कहते हैं, सो नहीं; परम विन्दु भी कहा है, तेजो विन्दु भी कहा है।

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम् ।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

अर्थात् परम विन्दु ही बीजाक्षर है, उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अनाश ब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है।

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम् ।

अर्थात् हृदयस्थित विश्वात्म तेजस्स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है।

समझने की बात है कि आप देखते हैं कि सूर्यमुखी पत्थर होता है। सूर्य की तरफ स्थिर करके रखने से, सूर्य की किरण उस पर स्थिर होने से एक ज्योतिर्मय विन्दु हो जाता है। उसको स्थिर रखो तो आग भी लग जाती है।

प्रयाग में एक बार प्रदर्शनी थी। हलवाई एक कड़ाह में घी रख देता था और सूर्यमुखी पत्थर को ऐसे बाँधे हुए था कि उसमें सूर्य की किरण लगकर घी पर पड़ता और घी खौलता था। वह उसी में पूड़ी छानता था। लोग तमाशा देखने जाते और मोल ले-लेकर खाते। इसी तरह आपके शरीर में

जो दृष्टि की धारें हैं, वह ज्योतिर्मयी हैं। जाति से जाति तत्त्व को सहायता मिलती है। पानी-पानी के मिलने से पानी में बढ़ती होती है। अग्नि-अग्नि में मिले तो अग्नि बढ़ती है। दो लकीर एक जगह मिलने पर एक विन्दुता होती है। दृष्टि स्थिर हो, तो जो दो दृष्टिधार की लकीर है, एक मिलती है और ज्योतिर्मय विन्दु उत्पन्न हो जाता है। दृष्टि स्थिर होनी चाहिए। दृष्टि स्थिर रहेगी तो प्रकाश हो जाएगा।

लोग कहते हैं—शून्य में क्या पाओगे? सूर्य कहाँ है, चन्द्र कहाँ है, तारे कहाँ हैं, पृथ्वी कहाँ है? शून्य के अन्दर क्या नहीं है! पृथ्वी शून्य के अन्दर है, पृथ्वी पर ही पेड़-पौधे, पहाड़ और धातुएँ मिलती हैं। सरकारी कानून नहीं रहे तो लोग पहाड़ से सोना ला सकते हैं। शून्य में क्या नहीं मिलता? भगवान का रूप शून्य में रहता है। शून्य नहीं रहे तो विराटरूप भगवान कहाँ रहते। भौतिक वैज्ञानिक जानते हैं, वे शून्य से क्या-क्या लेते हैं।

दृष्टियोग का ध्यान जो शून्य में होता है, लोग समझ नहीं सकते हैं। दृष्टि को सँभाल कर एक जगह रख नहीं सकते हैं। मन को सँभाल नहीं सकते हैं। मन भागता रहता है। प्रत्याहार में वह हारता है। मन भागता है, समेटकर लाइए, इसी को प्रत्याहार कहते हैं। बारम्बार प्रत्याहार करते-करते धारणा होती है, मन थोड़ा टिकता है, फिर ध्यान बनता है, तब प्रकाश का दर्शन अवश्य होता है। उस समय विषय-वासना नहीं रहती। ठीक-ठीक ध्यान बने तो समझ में आ जाएगा कि शून्य ध्यान से क्या होता है? सम्पूर्ण शरीर से चेहरा पर आया तो फैलाव से सिमटाव में आया। फिर उससे भी सिमट गया, जब दृष्टि-साधन की क्रिया की। ज्योति बहुत प्रकार की हैं, सब ज्योतिरूप ईश्वर के हैं। उस रूप के अन्दर ईश्वर व्यापक हैं। इसलिए उसको हिरण्यगर्भ कहते हैं। हिरण्य अर्थात् सोना यानी प्रकाश। प्रकाश के अंदर जो है, वह है हिरण्यगर्भ। संतलोग कहते हैं—अन्तर्नाद भी मिलेगा। नाद जहाँ विलीन होगा, वह परम पद होगा। कहने के लिए थोड़ा है, लेकिन करते-करते बहुत समय लगता है। अन्दर में बहुत प्रकार के शब्द होते हैं।

सातयें सात सहस धुनि उपजै, सुनि धुनि आनंद बाढ़ै।
सहजहिं दीन दयाल दया करि, बूड़त भवजल काढ़ै।।

—संत धरनीदास

शून्य के बिना शब्द नहीं मिलता। ज्योति में बहुत-बहुत ऋद्धि-सिद्धि का बल मिलता है। शब्द में और विशेष मिलता है। इसलिए,

सतगुरु सब कुछ दीन्ह, देत कछु ना रह्यो।
हमहिं अभागिन नारि, सुख तजि दुख लह्यो।।

— संत कबीर साहब

ऐसी कुंजी दे दी है कि उसको खोलकर देखो तो कितनी चीजें मिलती हैं? पहले शिक्षा तब दीक्षा होती है। बिना शिक्षा के दीक्षा किसी काम की नहीं। समझ में नहीं आवेगा कि क्या बात हुई।

n

यह प्रवचन महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर में दिनांक २२.३.१९६० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१५५. भक्ति का आरम्भ कहाँ से ?

प्यारे लोगो !

मनुष्य ईश्वर की भक्ति करे, इसी में मनुष्यता है। विषय-सुख में तृप्ति नहीं। इससे अपने को ऊपर उठाया जाय। जाना जाय कि इससे विशेष कोई सुख है कि नहीं? जानने में आ सकता है कि इससे विशेष सुख आत्म-सुख—ईश्वर-प्राप्ति का सुख है। इसी

में शान्ति है। इसी के वास्ते ईश्वर की भक्ति है।

विषयों से अपने को हटाकर ईश्वर में संलग्न रहना भक्ति है। विषयों से हटाने का तात्पर्य रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श से अपने को अलग कर रहने से है। तब संलग्न रहे। तब किधर संलग्न रहेगा? निर्विषय की ओर। जो कोई अपने को विषयों से हटावेगा, वही ईश्वर की ओर रहेगा।

भक्ति केवल इतना ही नहीं है कि किसी एक स्थूल-व्यक्त रूप में प्रेम करो। वहाँ से आरम्भ करो, यह अयोग्य नहीं है। जैसे किसी पथिक को कहीं जाना है, तो वह वहीं से चलता है, जहाँ वह रहता है। लेकिन पहला ही कदम निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँचता है। चलते-चलते वहाँ पहुँचता है। उसी तरह भक्ति का आरम्भ यहाँ से करो। जैसे चलनेवाले एक-एक जगह को छोड़ता हुआ चलता है, उसी तरह तुम भी साधना का आरम्भ कर स्थूल को छोड़कर फिर उससे भी आगे बढ़ो। इस तरह बढ़ने से ऐसा नहीं हो जाता कि ब्रह्म की सत्ता उससे छूट गई। जैसे कहीं जाते हैं, तो वहाँ शून्य रहता है। उसी तरह कितना भी बढ़ते जाओ, ईश्वर संग ही रहते हैं। पहले स्थूल रूप में तुम मन लगाते थे, अब तुम सूक्ष्म विषय में आ गए तो क्या परमात्मा उस सूक्ष्म विषय में नहीं है? परमात्मा सर्वव्यापी हैं, तो वहाँ कैसे नहीं हैं? जैसे किसी आदमी ने अपनी ऊपरवाली पोशाक बदल दी, नीचे वाली पोशाक में रहा, तो क्या पोशाक पहननेवाला बदल गया? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

देस काल दिसि बिदिसहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।

इस बात को क्यों भूलते हो? कितने का ख्याल है—'ईश्वर आवेंगे और दर्शन देंगे। जिस रूप का ध्यान करते हैं, वह दर्शन देकर मनोवांछित फल देंगे।' और यही भक्ति की पराकाष्ठा मानते हैं। दूसरे कहते हैं कि तुम्हीं चलो। तुम इन्द्रिय-गोचर नहीं हो—अव्यक्त हो। शरीर जड़ है और तुम चेतन आत्मा हो। यह चेतन आत्मा जहाँ से चले, वहीं से ईश्वर-भक्ति का आरम्भ होता है। जिन आवरणों में वह चेतन आत्मा रहती है, उनसे अपने को उठा लो। शंकराचार्यजी की भाषा में आत्मा-नुसंधान होना चाहिए। निज स्वरूप को प्राप्त करने, जान लेने, पहचान लेने की अवस्था जिसको आ गई, वही सारे आवरणों से हटाकर अपने को रखेगा। उसके लिए ईश्वर कहाँ छिपा रहेगा? यही ईश्वर-दर्शन है और भक्ति की पराकाष्ठा है।

इद्रियों से जो रूप-दर्शन होता है, वह ईश्वर के माया-रूप का दर्शन है। ईश्वर के आत्मरूप का दर्शन नहीं हुआ और यह दर्शन नहीं हुआ, तो ईश्वर-दर्शन कैसे हुआ? श्रीराम, श्रीकृष्ण का दर्शन अहोभाग्य है, जिस समय में ये लोग थे, उस समय में बहुतों को उनके दर्शन हुए। लेकिन सबका ऐसा ख्याल नहीं हुआ कि ईश्वर-दर्शन हो गया। भावना के भगवान थे।

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।।

सबसे पहले किसकी पूजा हो, इसमें पाण्डव भी घबड़ाये; लेकिन भीष्म ने श्रीकृष्ण की पूजा करने का निश्चय दिया। उसी सभा में शिशुपाल भी था। जो भगवान का विरोध करता था और वह मारा भी गया। भगवान श्रीराम स्वयं कहते हैं—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदायी।।

ये लोग इन्द्रिय-ग्रहण होनेवाले विषयों को लेने नहीं कहते। इन विषयों से आगे बढ़ने के लिए भगवान श्रीराम ने उपदेश दिया। भगवान श्रीकृष्ण ने क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विचार दिया। इस सत्संग में ऐसा नहीं कहा जाता कि स्थूल-उपासना का अनादर करो। स्थूल-सगुण-साकार की उपासना भी करो और उससे आगे बढ़ने के लिए भी चेष्टा करो।

जो कोई ऐसा विचार रखते हैं कि स्थूल-

सगुण रूप को छोड़कर सूक्ष्म-सगुण-रूप में जाने से ईश्वर छूट गए, यह संकुचित ज्ञान है। वह ईश्वर को सर्वव्यापी नहीं जानता। मायारूप का भी दर्शन करो और इससे आगे भी बढ़ो। मायारूप में ही लिपटकर नहीं रह जाओ। यही इस सत्संग से प्रचार होता है। और जो कोई अपने को ईश्वर मानता है, तो वह समाधि में ऐसा हो सकता है। लेकिन संसार में द्वैत-मण्डल में ईश्वरत्व का भाव लेकर कोई बरते, असम्भव है। इसलिए श्रीराम पर, श्रीकृष्ण पर भी लोग संशय करते हैं।

समाधि-साधन करो, ऐसा हो सकता है। विचार-ही-विचार में कोई ईश्वर नहीं हो सकता। अभी आपने पाठ में सुना—

'शब्द सनेही होय रहे, घर को पहुँचे सोय।'

शब्द-साधना से भक्ति का अन्त होता है। जब तक ईश्वर-दर्शन नहीं होगा, भक्ति साथ नहीं छोड़ सकती। इसीलिए—

भक्ति बीज पलटै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल॥
भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत॥

—संत कबीर साहब

जहाँ तक बने, ईश्वर की भक्ति करो। ईश्वर की भक्ति छोड़कर जो रहते हैं, वे अपना अपकार आप करते हैं। इससे बढ़कर और अपकार क्या हो सकता है? n

यह प्रवचन सन्तमत-सत्संग आश्रम, मनिहारी, कटिहार में दिनांक २६.०३.१९६० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१५६. हमलोगों को पूरा मनुष्य होना चाहिए

प्यारे लोगो !

स्वार्थ और परमार्थ इन दो शब्दों को लोग बोलते हैं। अर्थ जानते हैं और समझते भी हैं। इन दोनों से मनुष्य का जीवन बन जाना चाहिए। जीवन-भर स्वार्थ और परमार्थ का मेल रहे, यही संसार में रहने का अच्छा ढंग है। जो केवल स्वार्थ-ही-स्वार्थ में रहते, परमार्थ-चिन्तन नहीं करते, उनका जीवन अच्छा नहीं है। केवल परमार्थ ही हो, स्वार्थ नहीं, तो जीवन ही नहीं रहे। स्वार्थ का अर्थ लोग करते हैं—'अपने लिए सांसारिक-सुख का अर्जन और उसमें संलग्नता।' इस अपने का अर्थ है शरीर, इन्द्रिय, मन-बुद्धि से जो सुख प्राप्त होता है, जो इनको सुहाता है; वह अपने लिए करते हैं। इसको स्वार्थ-साधन कहते हैं। परमार्थ का अर्थ यह है कि शरीर, मन आदि से परे जो अपनी स्थिति है। अपनी अर्थात् चेतन आत्मा; उसके लिए जो सुख का अर्जन है, चिन्तन है, वह परमार्थ है। इन दोनों से मिल-जुलकर जीवन बनाना चाहिए।

संसार में फँसा रहकर, उसमें डूबा रहकर कभी भी शान्ति और सन्तुष्टि नहीं आयेगी। स्वार्थ के साथ परमार्थ मिलकर रहे, तो इन्द्रिय-सुख में संलग्नता अधिक नहीं रहेगी, हल्की रहेगी। आत्म-संलग्नता बढ़ेगी। इससे अपने का प्रत्यक्ष-ज्ञान होगा। केवल शरीर का ज्ञान नहीं, निजत्व—आत्मस्वरूप में संलग्नता आवेगी। उसमें संलग्नता आने पर ऐहिक-सुख—सांसारिक-विषयों की आसक्ति घट जाएगी। इसलिए कि आत्म-संलग्नता का सुख विषय-सुख से अधिक है। विषय-सुख कम होते-होते वह ऐसा संसार में और शरीर में रहेगा, जैसे शरीर-संसार में वह है ही नहीं। और तभी मनुष्य-जीवन

का फल है। मनुष्य-जीवन का फल यह नहीं कि पशु की तरह रहें।

आत्म-चिन्तन करे, विषय-भोग में लगा रहे, यह पशु-जीवन है। आत्म-चिन्तन के अन्दर-अन्दर परमात्मा की भक्ति है। जो ईश्वर-भक्ति में आसक्त होता है, वह ईश्वर को पहचानता है। जैसे संसार को पहचानने से संसार में आसक्ति होती है, उसी तरह ईश्वर को पहचानने पर उसमें आसक्ति होती है और परमात्म-सुख को पाता है। वह आत्मरत रहेगा। कर्मफल उसको नहीं लगेगा। यही पूरे मनुष्य का कर्त्तव्य है। हमलोग आत्मरत होकर आत्म-चिन्तन करके परमात्मा की प्राप्ति करें और उसके सुख को भोगें, यह मनुष्य-शरीर का काम है। यदि भोगमय जीवन है, तो पशु-जीवन के समान ही है। आत्म-चिन्तन या आत्मरत दो शब्द हैं; लेकिन बात एक ही है।

अपने अन्दर अपना निशाना है, अपने उस पर संलग्न रहता है, तो वह आत्मरत होने की कोशिश करता है और इसी को आत्मरत हुआ जाता है। जो कोई इसकी साधना करता है, तो वह उस केन्द्र में केन्द्रित होता है, जहाँ से इसका विस्तार हुआ है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है, ऊर्ध्वगति में आवरणों का छेदन होता है। इस तरह वह माया-मण्डल को पारकर परमात्मा को प्राप्त करता है। ऐसा ही पूरा मनुष्य होता है। **हमलोगों को पूरा मनुष्य होना चाहिए।** सत्संग करना चाहिए, भजन करना चाहिए। भजन का अर्थ केवल गीत गाना नहीं है। हमलोग सत्संग करते हैं, यह भी एक प्रकार का भजन है।

ईश्वर क्या है? संसार क्या है? इसका बोध दुर्गम और गंभीर है। बहुत सत्संग, साधन, गुरु-सेवा से इसका अच्छा बोध होता है। इस संसार में हम देखते हैं कि पृथ्वी है, इसके अतिरिक्त और चार तत्त्व हैं। पृथ्वी से अन्न उपजता है। विशेषज्ञ कहते हैं कि हीरा, मोती सभी मिट्टी से बने हैं। मिट्टी के ये रूपान्तर हैं। पानी से वाष्प और बर्फ बनते हैं, यह हम देखते हैं। इस बनावट को देखकर जाना जाता है कि सृष्टि—रचना में बनावट होती है। इसका कुछ मूल है, जिससे बनावट होती है। उसी मूल चीज को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति में रूपान्तर होता है अर्थात् बनता है, रहता है और मिटता है। बनना, रहना, मिटना इस तरह संसार में होता है। बनने के तासीर को रजोगुण, रहने के स्वाभाव को सतोगुण और मिटने के कार्य को तमोगुण कहते हैं। इन तीन गुणों के कारण हम ऐसा देखते हैं। तीन गुणों के समरूप को प्रकृति कहते हैं।

ईश्वर की मौज से कोई गुण बढ़ता है, कोई घटता है। प्रकृति पहले से है या पीछे से है, इस पर बहुत बहस है। कोई कहते हैं, प्रकृति पहले से है। कोई कहते हैं ईश्वर सबसे पहले से है। वेद में आया कि प्रकृति और जीव अनादि हैं। लेकिन ईश्वर इन दोनों से पूर्व का है। ईश्वर असीम-अनादि है, अनन्त है। इस तरह का दूसरा पदार्थ नहीं हो सकता है। यदि ऐसा तत्त्व दूसरा माना जाय और कहा जाय कि एक दूसरे में व्यापक है, तो उसके परमाणु में भी वह व्यापक होगा। तब दोनों तत्त्व एक ही हो जायेंगे। प्रकृति होने से देश और काल बनते हैं। इसलिए देश-काल के ज्ञान से प्रकृति अनादि है; किन्तु ऊपज-ज्ञान से सादि है।

अन्तःक़रण में व्याप्त जो परमात्मा का अंश है, वह जीव है। वह परमात्मा का अंश है, इसलिए इसको वैसा अनादि-अनन्त कहें। लेकिन जीवत्व-दशा के कारण इसे सादि कहते हैं। यह कब हुआ है, इसका समय बताया नहीं जा सकता है। इस तरह जीव, ईश्वर और प्रकृति के विषय में जानना चाहिए। जबतक इनको लोग नहीं जानते हैं, तबतक स्वार्थ-परमार्थ को भी नहीं जानते हैं।

इसके लिए सद्गुरु का संग, सद्ग्रन्थ-अवलोकन और सत्संग की बड़ी आवश्यकता है। स्वार्थ और परमार्थ दोनों के लिए विद्या चाहिए। अपने देश के लोग विद्या में बहुत पीछे हटे हुए हैं। अवश्य ही पहले से अभी कुछ अधिक बढ़े हैं। लोगों को चाहिए कि अपने जितनी विद्या अर्जन किए हैं, अपनी सन्तान को उससे अधिक सिखावें। जो बूढ़े हो गए हैं, उनको भी चाहिये कि सत्संग करें, भजन करें, सत्संग के रहस्य को समझें और अपना जीवन सफल बनावें। n

यह प्रवचन प्रथम वार्षिक अधिवेशन, बड़हरा, पूर्णियाँ ग्राम में दिनांक १०.४.१९६० ई० को में प्रात:कालीन सत्संग के अवसर पर हुआ था।

१५७. योग का रहस्य

प्यारे धर्मानुरागी सज्जनवृन्द !

संसार में हमलोग रहते हैं और सुखी होकर रहना चाहते हैं, सो हम उस तरह रहते हैं या नहीं रह सकते हैं, प्रत्येक आदमी इसका विचार अपने अन्दर करें। अगर मुझसे पूछा जाय कि तुम किस तरह रहते हो? तो मैं कहूँगा कि मैं सुख से नहीं रहता हूँ।

जिसको लोग सुख कहते हैं, उसमें मैं बहुत दुःख देखता हूँ। लोग शरीर, इन्द्रिय और मन को जो सुहावे, उसी को सुख मानते हैं। मैं सोचता हूँ कि इन सुहावने पदार्थों को—जिनमें शरीर, इन्द्रियों और मन को लगाकर सुख मालूम करते हैं; वे पाँच ही हैं— रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पाँचों से विशेष नहीं। इन पाँचों में जब हम संलग्न होते हैं, तो इनके संग्रह में महाप्रयास; लेकिन जीवन भर संग्रह करते रहो, कभी तृप्ति नहीं। किसी को इनसे पूर्ण तृप्तिदायक सुख नहीं हुआ, संग्रह करने में यह बात है। यत्किञ्चित् जो कुछ भी संग्रह हो, उसमें बहुत प्रयास। संग्रह करने के योग्य बनो, इसमें भी बहुत प्रयास। संग्रह करके उसको भोगो तो, वह भोग बताता है कि हमसे तुम तृप्त नहीं होओगे। जो संग्रह करने में प्रयास किया, योग्य बनने में प्रयास किया, जो संग्रह हुआ, उसका फल यही हुआ कि तृप्ति नहीं और जहाँ तृप्ति नहीं, वहाँ सुख कैसा? अतृप्त आदमी चिन्तित रहता है। सबके लिए ऐसी बात है, केवल मेरे लिए ही नहीं। फिर भी मन हारता नहीं या तो अधिक-अधिक विषयों को खोजता है या इनसे मुड़कर निर्विषय की ओर चलता है उस तुप्तिदायक सुख को ढूँढ़ने के लिए।

एक कैदी को कारागार में आराम से रखा गया। एक सुग्गे को आराम से पिंजड़े में रखा गया। दोनों को आराम से रखा गया, फिर भी कैदी है। कैद में रहने के कारण चाहता है कि मैं इससे छूट जाऊँ, स्वतंत्र होकर रहूँ। स्वतंत्रता का सुख उसको नहीं होता। वह सोचता है, जैसे और सुग्गे आकाश में उड़ रहे हैं, उसी तरह मैं भी आकाश में उड़ता। हम सभी पिंजड़े में बन्द हैं, यह संसार भारी कारागार है। एक-एक शरीर एक-एक कोठरी है। पहरेदार कोई नहीं है, और हम स्वयं इसमें रहना चाहते हैं।

अन विचार रमणीय महा संसार भयंकर भारी।

संसार को देखो, विषयों की लालसा बढ़ती जाएगी। विषयों की लालसा बढ़ने से और मिले और मिले, इसकी तृष्णा में खूब दौड़ते हो और अन्त में थक जाते हो। जरा-सा आराम किया और फिर दौड़े। इसी तरह दौड़ते-दौड़ते जीवन खत्म हो जाता है। इस तरह भी कैदखाना छूट जाय तो

ठीक है, लेकिन ऐसा होता नहीं। एक शरीर छूटा तो फिर दूसरे शरीर रूप कैदखाने में जाना पड़ता है। किसी लोक में जाना, फिर इस लोक में आना, आयु भर रहना, फिर जाना, इस तरह आवागमन के चक्र में हमलोग पड़े रहते हैं।

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुण घेरा।।
—गोस्वामी तुलसीदास

इसमें कभी शान्ति—संतुष्टि नहीं। शान्ति—संतुष्टि नहीं, तो सुख कहाँ? सूरदासजी ने सूरसागर में कहा है—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब मन चक्रित धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै।।

सूरदासजी महाराज पता बताते हैं कि तुम किधर जाने से सुख पाओगे। जो सर्वव्यापी है, उसके मिलन का परम स्वाद है। साधारण स्वाद को भी कोई बता नहीं सकता। रामरस स्वाद में कैसा होता है, कोई बता सकता है? गुड़ के मिठास में और मिश्री के मिठास में क्या फर्क है, कोई बता सकते हैं? तन्द्रा में एक चैन-सा मालूम पड़ता है, वहाँ कोई इन्द्री नहीं है, और गहरी नीन्द में इतना सुख होता है कि बेहोश हो जाते हैं। सोकर उठते हैं तो कहते हैं कि आज खूब सोया। इसका कोई वर्णन कर सकता है? परम स्वाद सब स्वादों से विशेष होता है। वह स्वाद हमेशा लगा रहता है और 'अमित तोष उपजावै' यह फल है उसका। सूरदास जी कहते हैं कि यहाँ कहाँ सुख है? सर्वव्यापक को साधारण लोग जान भी नहीं सकते। जिसकी बुद्धि सात्त्विक है, तीव्र है, वह उसको समझ सकता है। पूरी श्रद्धा, पूरा विश्वास तब होता है, जब प्रत्यक्षता होती है। प्रत्यक्षता नहीं होने के कारण परम स्वाद नहीं। तब अमित तोष कहाँ और बिना संतोष के सुख कहाँ? हम सुखी होना चाहते हैं, लेकिन इन्द्रियों के द्वारा विषयों के ग्रहण में थोड़ा रस मालूम होता है। इसीलिए उसका सुख अतृप्तिदायक, तृष्णावर्द्धक और अल्प है। हमलोग जबतक आवागमन के चक्र में पड़े रहेंगे तब तक ऐसा ही होगा। विषयों में चैन कहाँ? परमात्मा से तुम्हारा निजी योग हो, तब अमित तोष और परम स्वाद मालूम हो। मुझे तो इस निर्णय का पूर्ण विश्वास है। इसी से इसमें लगा हूँ और दूसरों को भी इसमें लगाता हूँ। कबीर साहब ने कहा है—

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै।।टेक।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि वन नहिं जावै।
वन के गए कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै।।
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै।।
उनमुनी रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै।
सुरत निरत सों मेला करिकै, अनहद नाद बजावै।।
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै।
कहै कबीर सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै।।

सन्तलोग जिस काम को पसन्द करते हैं, उसी ओर दूसरे को लगने कहते हैं। माता-पिता अपने बच्चों को प्यार करते हैं। चाहते हैं कि मैं मर जाऊँ, लेकिन मेरे बच्चे रहें। लोग चाहते हैं कि मेरा वंश रहे। मेरी वंश-परम्परा रहे। संत लोग भी यही चाहते हैं। पिता के समान संत भी प्यार की दृष्टि से जनसमूह को देखते हैं। पिता संत हो, तब तो कहना ही क्या। विद्वान पिता अपने पुत्र को जहाँ तक जानते हैं, विद्या देते हैं, उसको सुख देते हैं। अगर कोई भूले हों, उसको रास्ता भी बताते हैं। अबधू का अर्थ कुछ लोग अवधूत और कोई अबुध अर्थ करते हैं। अबुध = ज्ञान विहीन। जिसको

ज्ञान की कमी है, उसके लिए संत लोग कहते हैं, उसको घर लाओ। सभी कोई सुख को चाहते हैं। जिस मिठाई में थोड़ा-सा जहर हो, उसको खाना नहीं चाहिए। इसका जहर एक जन्म से दूसरे जन्म तक पीछा करता है।

चेत सबेरे चलना बाट।
मन माली तन बाग लगाया, चलत मुसाफिर को विलमाया।
विष के लड़वा देत खिलाई, लूट लीन्ह मारग पर हाट।।
—संत कबीर साहब

यह सवाल है कि सर्वव्यापी की ओर हम रहें कि संसार की ओर? भूख-प्यास लगने से कोई काम करने का मन नहीं होता है। केवल भोजन और पान करने की ओर मन लगा रहता है। शरीर में रोग हो जाय तो उसकी चिकित्सा हम कराते हैं। शारीरिक सुख को हम तिलांजलि दें, ऐसा नहीं हो सकता है। शारीरिक सुख के लिए संसार में कुछ काम करना पड़ेगा। शारीरिक सुख ऐसी मोटरी है, जिसके अन्दर संसार के सभी सुख हैं। संसार के सुख में भी रहना होगा और सर्वव्यापी की ओर भी होना पड़ेगा। इसलिए कबीर साहब ने कहा—

घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि वन नहिं जावै।

मैंने १९०४ ई० में यह फकीरी वेश लिया। १९०९ ई० में सद्गुरु बाबा देवी साहब से भेंट हुई। गुरु महाराज ने कहा कि तुम क्या करने चले हो? उन्होंने पूछा कि तुम साधु बनने चले, तुम्हारे खाने का इन्तजाम क्या है? कुछ दिन तक टाल-मटोल रहा। पीछे उनके आदेश से इन्तजाम किया। अब जो है, उनकी कृपा से काफी है। भिक्षा माँग-माँग कर द्वार-द्वार का मेहमान बनने से संसार-परमार्थ किसी तरफ के नहीं होओगे। संसार में रहकर संसार से छूटने का काम करो, तब सुखी रह सकोगे।

गीता में भी भगवान ने कर्मयोग की शिक्षा दी। कर्म करो और उसके फल में आसक्त मत बनो। थोड़े में संतुष्ट रहो। कबीर साहब बड़े संतुष्ट थे। इसीलिए उन्होंने कहा—

घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै।।

अलख, अव्यक्त और सर्वव्यापक एक-ही-एक है। उससे निजी योग का रहस्य गुरु से सीखो। रहस्य क्या है? तो कहा—

सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै।

जो स्वाभाविक शून्य है उसमें समाओ और जो ध्यान आसानी से हो, सो करो। घर में बहुत वस्तु हैं, सबको बाहर निकाल दीजिए। तब केवल शून्य रह जाता है, जो निकाला नहीं जा सकता। ऐसा ध्यान करो कि मन से मायिक सभी वस्तुएँ निकल जाएँ और अपने उन सबसे ऊपर उठ जावे। तब क्या बचेगा? कोई आवरण नहीं, कोई ढक्कन नहीं, तभी सर्वव्यापी का दर्शन होता है और अपना योग उससे होता है। यह बहुत ध्यानाभ्यास करने से होता है।

सत गुरु अगम अगम है ठाकुर भरि सागर भगति करीजै।
—गुरु नानक साहब

सार शब्द अर्थात् प्रणव-ध्वनि से सृष्टि हुई है। इस ध्वनि को परम तत्त्व भी कहा जा सकता है। इसको प्राप्त कर परमात्मा का दर्शन होता है। गरीब-अमीर जैसे हो, वैसे रहो और ऐसा गुरु खोजो जो तुमको परम तत्त्व को बतावे। श्रीकृष्ण भगवान के कहे अनुकूल आसक्ति रहित होकर कर्म करो। गुरु नानकदेवजी ने कहा—

सब किछु घर महि बाहरि नाहीं।
बाहरि टोलै सो भरमि भुलाहीं।।

परम सुखी होने के लिए बाहर भागने की जरूरत नहीं। अपने अन्दर में चलो। साधन करो। संसार के कर्म निर्लिप्त दशा में रह कर करो। जो पाप-बुद्धि से काम करता है, उसकी निर्लिप्त दशा नहीं हो सकेगी। निर्लिप्त दशा में रहकर जो कुछ करेगा, उसको परम सुख मिलेगा, कारागार से छुटकारा मिलेगी। n

यह प्रवचन दिनांक १५.४.१९६० ई० को मुंगेर जिला का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन मुंगेर टाऊन हॉल में प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१५८. सविकल्प निर्विकल्प समाधि

प्यारे लोगो !

वीर्यवान को भजन करने में बल मिलता है। व्यायाम से शरीर का बल, विद्या से मस्तिष्क का बल बढ़ता है। अगर शरीर कमजोर हो, तो वह कहाँ तक व्यायाम करेगा! उसी तरह जिसका मस्तिष्क कमजोर है, पौष्टिक तत्त्व शरीर से निकल गया है, वह न तो भजन कर सकता है और न विद्याध्ययन ही। वेदों से ही वीर्यवान बनने का यह ज्ञान आया है और अभ्यासी ने अभ्यास द्वारा इसको आजमाकर देखा है।

जानना केवल बौद्धिक ज्ञान से ही नहीं होता है। बौद्धिक ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। पूर्ण ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान में होता है। परोक्षज्ञान में होता है कि वस्तु ऐसी वा वैसी है। अपरोक्ष का अर्थ प्रत्यक्ष और परोक्ष का अर्थ अप्रत्यक्ष होता है। शरीर छोड़ने से पहले ब्रह्मज्ञान होना चाहिए। ब्रह्मज्ञान विचार में अपूर्ण होता है। जिसने भजन करके प्रत्यक्ष जाना, उसी का ज्ञान पूर्ण हुआ। जिसने जीवन-काल में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह का ज्ञान प्राप्त किया, वही आवागमन से छूटता है। जिसने नहीं प्राप्त किया, वह जन्म-मरण के चक्र में रहता है। इसका अर्थ हुआ कि जीते-जी मुक्ति प्राप्त करने कहा। संत-महात्माओं ने जीते-जी मुक्ति का उपदेश दिया है—

जीवत मुक्त सोइ मुक्ता हो।
जब लग जीवत मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो।।
देह संग ना होवै मुक्ता, मुए मुक्ति कहँ होई हो।
तीरथबासी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो।।
जीवत भर्म की फाँस न काटी, मुए मुक्ति की आसा हो।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हो।।
ह्वै अतीत बंधन तें छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो।
बिना अतीत सदा बंधन में, कितहूँ जानि न पाई हो।।
आवागमन से गये छूटि के, सुमिरि नाम अबिनासी हो।
कहै कबीर सोई जन गुरु है, काटी भ्रम की फाँसी हो।।

लोग कहते हैं कि सब इच्छाओं को छोड़कर मोक्ष की इच्छा भी छोड़ दो। मोक्ष की इच्छा तो आप ही छूट जायगी। जैसे कि भूख लगी और भोजन किया। भोजन करने पर खाने की इच्छा आप ही छूट जाती है। भजन-अभ्यास करने के लिए बल होना चाहिए। मनुष्य का शरीर-बल, मस्तिष्क-बल भी भजन करने के योग्य होना चाहिए। कितने कहते हैं औंघी (नींद) लगती है। कितने कहते हैं कि पहले जैसा भजन होता था, वैसा अब नहीं होता है। मैं कहता हूँ, करते रहो, जैसा बनता है; धीरे-धीरे बनेगा। अपने रहने के स्थान की रक्षा करो। भोजन का प्रबन्ध करो और भजन करो। अपने रहने के स्थान की रक्षा करनी देश-सेवा है। बिना उपार्जन किए अन्न-वस्त्र कहाँ से मिलेगें। इसलिए उपार्जन करो। इस जन्म में जैसी मन-बुद्धि है, भजन करने पर उससे अधिक बढ़िया शरीर और मन-बुद्धि आगे जन्म में होंगे। बारम्बार मनुष्य का जन्म होगा और उतना ही वह अधिक तेज होगा। जिस जन्म में वह परमात्मा को प्राप्त करेगा, उस जन्म में उसकी मुक्ति हो जायगी। संत दादू दयालजी कहते हैं—

जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ।
जीवत काटै कर्म सब, मुक्ति कहावै सोइ।।
जीवत जगपति कौं मिलै, जीवत आतम राम।
जीवत दरसन देखिये, दादू मन विसराम।।
जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ।।

मूआँ पीछे मुकति बतावै, मूआँ पीछै मेला।
मूआँ पीछै अमर अभै पद, दादू भूले गहिला।।

मरने के बाद मुक्ति नहीं होती, जीते-जी मुक्ति हासिल करो। गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़ा ही अच्छा कहा है—

लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग।

सत्संग के द्वारा क्या विचार ग्रहण करें, इसका निर्णय होना चाहिए। निर्णय हो, तो साधन करना चाहिए। सत्संग करने से साधन करने में प्रेरणा मिलेगी। साधन करने से बल बढ़ेगा उस मार्ग पर चलने के लिए। गुरु नानकदेव ने कहा है—

जा मारग के गने जाय न कोसा। तहँ हरि के नाम सदा संतोषा।।

जो आज रास्ते पर चलना शुरू कर दे, तो कभी न कभी अवश्य खत्म होगा। जो शुरू ही न करे, तो क्या बढ़ेगा?

मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहे, ता सिर कररा कोस।।

कठोपनिषद् में आया है—

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्।।

अर्थात् इन्द्रियों से मन पर (उत्कृष्ट) है। मन से बुद्धि श्रेष्ठ है। बुद्धि से महतत्त्व बढ़कर है तथा महतत्त्व से अव्यक्त उत्तम है।

शरीर में इन्द्रियाँ न होतीं, तो शरीर किसी काम का नहीं। एक इन्द्रिय के बिगड़ने से शरीर बेकाम हो जाता है। जब सब इन्द्रियाँ बिगड़ जायँ, तब क्या हो सकता है? शरीर की शोभा के लिए, शरीर के काम के लिए इन्द्रियाँ हैं। शरीर में इन्द्रियों की प्रधानता है। इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है। इन्द्रियों को मन जिधर प्रेरण करता है, इन्द्रियाँ उस ओर हो जाती हैं, जिस ओर से खींचता है, उस से रुकती हैं। मन से बुद्धि श्रेष्ठ है। जैसे अंकुश हाथी को वश करता है, उसी तरह बुद्धि मन को वश में रखती है। मन अंधा है। मन को बुद्धि जो कहती है, मन वही करता है। बुद्धि से महतत्त्व श्रेष्ठ है। यही है प्रकृति—जड़प्रकृति—अष्टधाप्रकृति। श्रीमद्भगवद्गीता में अपरा प्रकृति—अष्टधा प्रकृति कहा है।

यह जड़ है। मूल रूप में यह अव्यक्त है और विकृत रूप में व्यक्त है और अपनी निज हालत में वह प्रकृति है। जो इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आ सके, वह अव्यक्त है। पाँच तत्त्व, मन, बुद्धि, अहंकार जिससे बने हैं, वह है प्रकृति महतत्त्व। उससे भी ऊँचे दर्जे में अव्यक्त लिखा है। यह अव्यक्त परा प्रकृति है। इसमें विभाग नहीं, परिवर्तन नहीं, यह चेतनात्मिका (ज्ञानमयी) प्रकृति है। यह ऊँचे दर्जे की प्रकृति है। इससे भी जो श्रेष्ठ है, वह है परमात्मा। इन्द्रिय, मन, बुद्धि, महतत्त्व, अव्यक्त और परमात्मा—ये छह दर्जे हुए। चेतनात्मिका प्रकृति आइने के समान है। यहाँ सविकल्प समाधि है। आइना खुल जाय, तब निर्विकल्प समाधि है। ■

यह प्रवचन दिनांक १७.४.१९६० ई० को मुंगेर जिला के जमालपुर में स्व० रायबहादुर श्रीदुर्गादासजी तुलसी के निवास स्थान पर प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१५९. श्रीराम की आरती

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जितने लोग हैं, सब-के-सब अपना कल्याण अवश्य चाहते हैं। जिन कारणों से कल्याण में त्रुटि और बाधा होती रहती है, उन कारणों के नष्ट हुए

बिना अथवा उन कारणों को छोड़कर गए बिना कल्याण का मिलना असंभव-सा है। वे कारण क्या हैं? वे कारण हैं—हमारे अन्दर के मनोविकार और नैतिकता की त्रुटियाँ, जो हमसे होती हैं। हमारे अंदर से अनैतिकता दूर हो, हम कल्याण के पथ को जानें, हम उस पर चलें, तो हमारा कल्याण हो सकता है।

कल्याण-स्वरूप स्वयं परमात्मा हैं। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं, जिसको पाकर कल्याण में पड़े रहें। पौराणिक इतिहास को पढ़िए, आज का इतिहास देखिए, तो ज्ञात होगा कि संसार में जितने लोग थे और हैं, सभी कल्याण के इच्छुक थे और हैं। वे कल्याण चाहते थे और कल्याण की कमी में रहकर चले गए। परमात्मा ही ऐसे हैं, जिनका कभी अकल्याण नहीं। परमात्मा स्वरूपत: ऐसे हैं, जो किसी से आवृत्त नहीं हो सकते, वे अनादि, अनंत, असीम हैं। अनादि, अनंत, असीम को कोई आच्छादित नहीं कर सकता। जो किसी के घेरे में नहीं आता, किसी से आवृत्त नहीं होता, जिसका नाश नहीं होता, उसका अकल्याण होना असंभव है। ईश्वर-स्वरूप का यही निर्णय है। अनादि, अंनत, असीम तत्त्व का ज्ञान सदग्रंथों में है और बुद्धि को भी यह मान्य है; क्योंकि बिना असीम को माने बुद्धि को संतोष नहीं होता है कि सभी ससीम ही ससीम हैं। एक ईश्वर को ही असीम माना गया है। उनका अकल्याण कभी होने योग्य नहीं है।

हम कल्याण चाहते हैं, तो कहाँ जाएँ? जहाँ कल्याण है। संसार के सभी पदार्थ नाशवान हैं। इसलिए उन पदार्थों को पाकर हमारा कल्याण नहीं हो सकता। हम अपने को संसार से फेरकर परमात्मा की ओर करें, तो परम सुख, नित्यानन्द, परमानन्द को प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्य का जीवन इसीलिए है। भगवान श्रीराम ने प्रजा को यही शिक्षा दी थी—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।

स्वर्ग-सुख वा इहलौकिक सुख मनुष्य-शरीर का फल नहीं है। जो निर्विषय तत्त्व है, उसको प्राप्त करने के लिए श्रीराम का आदेश था। विषयों का ग्रहण इन्द्रियों से होता है। इनसे जो सुख होता है, वह मनुष्य-शरीर पाने का फल नहीं। विषयों से परे जो सुख है, उसे प्राप्त करना, मनुष्य-शरीर का काम है। यह काम और दूसरे से नहीं हो सकता।

परमात्मा की खोज के लिए हमको नहीं चाहिए कि हम संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक खोज करें। परमात्मा की प्राप्ति बाहर में नहीं होगी। इसीलिए कि हम बाहर में जो कुछ ग्रहण करते हैं, इन्द्रियों से ग्रहण करते हैं। परमात्मा इन्द्रियातीत हैं। परमात्मा सर्वव्यापी हैं, हमारे शरीर के अंदर भी हैं और हम भी अपने शरीर के अंदर हैं। अपने ही अन्दर हम अपने को चलावें, तो उस ओर जा सकते हैं। जो अपने को अपने अन्दर चला सकेगा, वह शरीर-इन्द्रियों से अलग होगा। यह वह स्वयं जानेगा। आप जब जगने से सोने में जाते हैं, तो कहीं बाहर नहीं जाते, अपने अंदर सिमटते हैं, सोने पर कुछ ज्ञान नहीं रहता। यदि उस समय किसी के मुँह में कोई मिसरी का टुकड़ा रख दे, तो उसका स्वाद उसको मालूम नहीं होगा। बात यह है कि इन्द्रियों में जो चेतन-धार है, स्वप्न में उनका सिमटाव हो जाता है, बाहर इन्द्रिय-घाटों पर नहीं रहती है। इससे जानने में आता है कि भीतर जाने से इन्द्रियों से छूटना होता है। बाह्य इन्द्रियों से छूट गया है; लेकिन अंदर की इन्द्रियों से छूटना नहीं हुआ है। इनसे भी छूटा जा सकता है, जब वह इनसे आगे बढ़े, साधन करे। साधन-भजन करके ही कोई ईश्वर के दर्शन के योग्य होता है। जो भजन करता है, वह ईश्वर-दर्शन करके नित्यानंद पाता है। यह यत्न अपने अंदर होना चाहिए।

जो जहाँ कहीं बैठा रहता है, वह वहीं से

चलता है। इस शरीर के अंदर जहाँ जीव की बैठक है, वहीं से वह चलेगा। इसका यत्न गुरु से जाना जाता है, यह अंदाज से नहीं होता। वहाँ पर जाने का रास्ता नहीं है। सिमटाव होने से उसपर जाना होता है। संत कबीर साहब ने कहा है—

बिन पावन की राह है, बिन बस्ती का देश।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहै कबीर संदेश।।

मन और चेतन आत्मा संग होकर चलते हैं। मन अपनी शक्ति की हद तक जा सकता है, आगे नहीं। आगे चेतन आत्मा ही चलती है। संत तुलसी साहब ने कहा—

सहस कँवल दल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्रान पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो।।

प्राण-पुरुष चेतन आत्मा है। जहाँ केवल चेतन आत्मा ही जा सकती है, वहीं परमात्मा के दर्शन होते हैं। जहाँ अंतःकरण का घेरा छूटा, तब ऐसी कोई बाधा नहीं रहती, जिससे ईश्वर-दर्शन नहीं हो। यह काम अन्दर में चलते-चलते होने योग्य है, कोई और उपाय नहीं है। गुरु नानक साहब ने कहा है—

इस गुफा महि अखुट भण्डारा। तिसु बिचि बसै हरि अलख अपारा।।
आपे गुपतु परगट है आपे, गुर सबदि आप वंञा वणिआ।।

और कबीर साहब ने कहा—

माया के रंग रची सब दुनिया, नहिं सूझ पड़त करतार।
पुरुष पुरान बसै घट भीतर, तिनका ओट सहार।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल, परम सुगंध कहाँ ते आयो।।
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेंवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।।
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुण, तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि, विषय बबूर बाग मन लायो।।
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम, मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय, कीजै नाथ उचित मन भायो।।

इस प्रकार सब अपने अंदर चलने कहते हैं, भक्तवर सूरदासजी कहते हैं—

अपुनपौ आपुन ही में पायो।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।।
ज्यों कुरंग नाभि कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो।
फिर चेत्यो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तन छायो।।
राज कुँआर कण्ठे मणि भूषण भ्रम भयो कह्यो गँवायो।
दियो बताइ और सत जन तब, तनु को पाप नशायो।।
सपने माहिं नारि को भ्रम भयो, बालक कहुँ हिरायो।
जागि लख्यो ज्यों को त्यों ही है, ना कहूँ गयो न आयो।।
सूरदास समुझै की यह गति, मन ही मन मुसुकायो।
कहि न जाय या सुख की महिमा, ज्यों गूँगो गुर खायो।।

इस प्रकार सभी संत अपने अंदर चलने के लिए कहते हैं। मतलब यह कि कोई संत हों या चाहे कोई ऋषि-मुनि हों, ईश्वर-प्राप्ति के लिए सब अंदर-अंदर चलने कहते हैं। इसीलिए कि ईश्वर आत्मगम्य हैं। साधन के लिए सत्संग, सदगुरु और सदाचार पालन की बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना कोई अंदर नहीं चल सकता। इसके लिए जीवन भर साधन करना होगा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

जीवन मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्हके हिय पाषान।।

जो जीवन-मुक्त संतपुरुष परम प्रभु परमात्मा को प्राप्त कर चुके हैं, वे भी परमात्मा का ध्यान छोड़कर सत्संग के वचनों को सुनते हैं। सदाचारी होने के लिए पंच पापों—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार को छोड़ना होगा। सदाचार-पालन से सभी अनैतिकता दूर हो जाती है। सदाचार में पंचशील का पालन है। पंच पापों को छोड़कर रहना सदाचार में रहना है। पंच पापों में रहना अनैतिकता और दुराचार में रहना है। सदाचार का

पालन करने से ईश्वर-दर्शन के मार्ग में सहायता मिलती है और ईश्वर-भजन से सदाचार पालन में मदद मिलती है। दोनों एक दूसरे के सहारे हैं। सत्संग करो, जिससे आपको उस मार्ग पर चलने में सहायता मिलेगी। गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीराम की आरती इस तरह करते हैं—

ऐसी आरती राम की करहिं मन।
हरण दुख द्वन्द्व गोविन्द आनंद घन।।
अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत,
इति वासना धूप दीजै।
दीप निज बोध गत क्रोध मद मोह तम,
प्रौढ़ अभिमान चित वृत्ति छीजै।।
भाव अतिशय विशद प्रवर नैवेद्य शुभ,
श्रीरमण परम संतोष कारी।
प्रेम ताम्बूल गत शूल संशय सकल,
विपुल भव वासना बीजहारी।।
अशुभ शुभ कर्म घृत पूर्ण दश वर्त्तिका,
त्याग पावक सतोगुण प्रकाशं।
भक्ति वैराग्य विज्ञान दीपावली,
अर्पि नीरांजनं जग निवासं।।
विमल हृदि भवन कृत शांति पर्यंक शुभ,
शयन विश्राम श्री राम राया।
क्षमा करुणा प्रमुख तत्र परिचारिका,
यत्र हरि तत्र नहिं भेद माया।।
आरती निरत सनकादि श्रुति शेष शिव,
देवरिषि अखिल मुनि तत्त्वदरसी।
जो करइ सो तरइ परिहरइ काम सब,
वदत इति अमल मति दास तुलसी।।

अर्थात् हे मन! दुख और कलह के हरनेवाले ज्ञानसिन्धु और आनन्दपुंज राम की इस तरह आरती कर। स्थावर, जंगम सब रूप राम के हैं और वे सबमें लीन हैं—सर्वव्यापी हैं, इसी इच्छा का धूप दीजिए, आत्मज्ञान का दीपक दीजिए। जिससे क्रोध, मस्ती और अज्ञान-अन्धकार नष्ट होकर बढ़ा हुआ अभिमान और चित्त की चंचलता नष्ट होती है। अत्यन्त शुद्ध प्रेम का उत्तम नैवेद्य और प्रेम ही का पान भोग लगाइए, जिनसे लक्ष्मीपति परम संतुष्ट होते हैं, सम्पूर्ण कष्ट और सन्देह दूर होते हैं और जो संसार के बीज—बहुत-सी इच्छाओं को हरनेवाले हैं। भक्ति, वैराग्य और विज्ञान के दीपों में शुभ-अशुभ कर्मरूपी घी से भरी हुई दश बत्तियों को त्याग की अग्नि से लेस कर सतोगुण की प्रकाशवाली आरती राम को अर्पण कीजिए। पवित्र हृदय—भवन में शान्ति के सुन्दर पलंग पर आराम करने के लिए श्रीरामराय को सुलाइए। वहाँ राम की सेवा के लिए क्षमा और दया मुख्य-मुख्य दासियों को रखिए। जहाँ राम (उपर्युक्त रीति से) रहेंगे, वहाँ द्वैत उत्पन्न करनेवाली माया नहीं रहेगी। इस आरती में सनकादिक, वेद, शेष, शिव, नारद और सार पदार्थ (निर्माया) के दर्शन करनेवाले समस्त मुनिगण विशेष रूप से रत रहते हैं, सब इच्छाओं को छोड़कर जो इस प्रकार का आरती करेगा, वह मुक्त होगा। हे तुलसीदास! निर्मल बुद्धिवाले लोग ऐसा कहते हैं।

जो अपने को समेटकर केन्द्र में केन्द्रित करता है, वह भक्त धन्य है, उसका हृदय शांत हो जाता है, माया के फेर में वह नहीं पड़ता। परमात्मा उससे भिन्न होता ही नहीं। यही आरती संत लोग सिखला गए हैं। जो कोई इसको नहीं समझते हैं, वे बाहर में आरती करते हैं। अंतर में आरती करो, परमात्मा का भजन करो, तब परमात्मा में मिलकर—'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' हो जाओगे। सारे दुःखों को वही पार करता है, वही परम कल्याण पाता है। इसी के लिए भगवान श्रीराम ने कहा है—

सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान स्रुति गाई।।

जो ईश्वर-भक्त होता है, उसके लिए सदाचार-पालन अनिवार्य हो जाता है। जो पंचशील का

पालन करता है, संसार-परमार्थ दोनों में वह कल्याण पाता है। जो सत्य बोलता है, वह किसी का अविश्वासी नहीं होता है, लोग उससे प्रेम करते हैं। चोरी वह नहीं करता, व्यभिचार नहीं करता। नशाओं से बचनेवाले फाजिल खर्च से बचता है। उसका मस्तिष्क ठीक रहता है। मांस-मछली जो भोजन नहीं करते हैं, वे जीवों पर दया करते हैं। सात्त्विक भोजन भी अधिक लेने से वृत्ति तामसी होती है। वह ईश्वर को भूलता है। आहार गुणानुसार होते हैं और उनका प्रभाव भी आहार करनेवालों पर होता है। आयुष्य, सात्त्विकता, बल, आरोग्य, सुख और रुचि बढ़ानेवाले, रसदार, चिकने, पौष्टिक और मन को प्रिय—ऐसे आहार सात्त्विक लोगों को प्रिय होते हैं। चरपरे, विशेष लवणयुक्त, बहुत गरम, नीमवत् तीते, रूखे और दाहकारक आहार राजस लोगों को प्रिय होते हैं। रोटी, भात आदि बनकर पहर भर से पड़ा हुआ, उतरा हुआ अर्थात् सड़ने पर आया हुआ फल, दुर्गन्धियुक्त, वासी, जूठा आदि अपवित्र आहार तामसी लोगों के हैं। उन्हें ऐसे ही भोजन प्रिय लगते हैं। यदि समाज के लोग ऐसे हो जाएँ कि पंच पापों से बचकर रहें, तो संसार में भी आराम होगा और परमार्थ भी सुखद होगा। संतों ने जो बताया है, उससे कल्याण होगा। ईश्वर-भक्ति का सहारा लो। मैं आप लोगों से निवेदन करता हूँ कि आप ईश्वर का भजन करें। आप साधन कीजिए, सदाचार का पालन कीजिए।

जो कोई ऐसा ख्याल करते हैं कि ईश्वर यहाँ आकर दर्शन देंगे, तो बाहर में जो दर्शन होंगे, वे इन्द्रियगम्य होंगे। भगवान श्रीकृष्ण के समय में उनके प्रिय और शत्रु दोनों ही तरह के लोग थे। शिशुपाल ने भगवान श्रीकृष्ण की निंदा की। बाहर के दर्शन से संसार में लाभ ही होता है और हानि निर्मूल भी नहीं होती। भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन से पाण्डवों को बहुत लाभ हुआ, लेकिन उनके पाँचो पुत्र एक ही रात में खत्म हो गए। ईश्वर करें—आपलोगों का मन ईश्वर-भक्ति में लग जाए। n

यह प्रवचन दिनांक १७. ०४. १९६० ई० को मुंगेर जिला के जमालपुर निवासी स्व० रायबहादुर श्रीदुर्गादासजी तुलसी के निवास स्थान में रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१६०. मनुष्य और पशु में अन्तर

प्यारे लोगो!

हमलोगों के सत्संग में सार ईश्वर की भक्ति है। बिना ईश्वर-भक्ति का जीवन असार है। वह मनुष्य शरीरवाला जीवन पशु-जीवन हो जाता है। पशु खाने का उद्योग करता है, चरने जाता है, यह भी उद्यम ही हुआ। चिड़िया दाना—चारा खोजती-फिरती है। इस तरह जलचर, थलचर, नभचर सभी अपने-अपने योग्य उद्योग-कर्म करते हैं। अपने-अपने भोजन की खोज में सभी रहते हैं। बगुला ध्यान लगाए बैठा रहता है मछली के लिए।

मनुष्य की तरह ही पशु-पक्षियों को काम-क्रोध होता है। कीट-पतंग को भी काम-विकार होता है। इसके अंदर ईश्वरीय ज्ञान का पता नहीं। बगुले को पानी के किनारे मछली के लिए ध्यान लगाते तो देखते हैं, लेकिन सूखी जमीन पर कभी देखा है कि बगुला ध्यान लगाकर बैठा है? खाना,

पीना, आराम से रहना—यदि इतना ही मनुष्य में रह गया, तो मनुष्यत्व क्या?

मनुष्य को चाहिए कि ईश्वर-भक्ति को जाने और करे। बिना ईश्वर-भजन का जीवन असार है। दुनिया में सभी अपना-अपना काम करते हैं। कोई ऑफिस में जाकर, कोई खेत आदि में। यह जीवन पशु-जीवन है, यदि इससे ईश्वर-भजन नहीं करे। पशु को अपना अच्छा आचरण रखने का ज्ञान नहीं है, मनुष्य में इसका ज्ञान है। ईश्वर की भक्ति और अच्छा आचरण, ये दो बातें मनुष्य में हैं, तो ठीक मनुष्य है, नहीं तो वह पशुवत् है।

ईश्वर इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आता है। इस बात को खूब समझकर रखिए। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से जिसका ज्ञान हो, वह ईश्वर नहीं है। जैसे आप रूप-रंग देखते हैं, गाछ आदि को देखते हैं। इस दृश्य को रूप कहते हैं। इसका केवल आँख से ही ज्ञान हो सकता है। इसका कान से ज्ञान करना चाहें तो नहीं होगा। इसी तरह शब्द का ज्ञान कान से होता है। एक-एक इन्द्रिय के वास्ते एक-एक चीज विषय है। दूसरी इन्द्रिय से उसका ग्रहण नहीं होगा। ईश्वर का ज्ञान इन्द्रियों से नहीं होता है। इसलिए कि जो चीज इन्द्रियज्ञान में आती है, वह विनाश को प्राप्त होती है, बदलती रहती है। वैज्ञानिक कहता है कि सूर्य की ताकत में भी कमी आ गई है। पहले जैसी वर्षा होती थी, अब वैसी वर्षा कहाँ? सूर्य की शक्ति घटते-घटते घट जाएगी और महाप्रलय हो जाएगा।

जो देखने में आए, वह ईश्वर नहीं है। यह शरीर है, देखने में आता है और एक दिन यह शरीर नहीं रहेगा। ईश्वर इन्द्रिय-ज्ञान में आने योग्य नहीं है। आप अपने शरीर को पहचानते हैं, लेकिन अपना ज्ञान—आत्मा का ज्ञान आपको नहीं है। इसी तरह ईश्वर भी अभी आपके ज्ञान में नहीं है। शरीर-इन्द्रियों का संग छोड़कर रह सकेंगे, तभी हम ईश्वर को चेतन आत्मा से पा सकते हैं। इसलिए ईश्वर-ज्ञान इन्द्रिय से नहीं होता है।

आत्मा को जबतक शरीर-इन्द्रिय का संग रहेगा, तबतक वह माया ही माया पहचानेगी। जैसे आँख पर जिस रंग का चश्मा होगा, बाहर की चीज उसी रंग की दिखाई पड़ेगी। लालटेन के अंदर रोशनी है। उस पर जिस रंग का शीशा लगाइए, उसी तरह का प्रकाश निकलेगा। शरीर-इन्द्रिय जबतक चेतन आत्मा पर है, तबतक वह ईश्वर की पहचान नहीं कर सकेगा।

जहर खाने से अर्थात् मरने से शरीर में पुनः-पुनः आना नहीं छूटता है। अपने घर-ही-घर चलो यानी अपने शरीर के अंदर-ही-अंदर चलो। दृष्टियोग से अंदर में प्रवेश होना होता है। शब्द ध्यान से अंतर के अंतिम तह में पहुँच जाता है। इसमें योगशास्त्र की भी आवश्यकता नहीं, अंतस्साधना की आवश्यकता है। इस आँख से परमात्मा के जिस रूप को देखा जाता है, वह माया है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा—तुम मेरे जिस रूप को देख रहे हो, वह माया है।

प्राणायाम के द्वारा और ध्यान के द्वारा दोनों तरहों से परमात्मा का भजन होता है। प्राणायाम सबके लिए अनुकूल नहीं है। ध्यानयोग सबके लिए है। परमात्मा को यहाँ बुलाने की चेष्टा न करो। स्वयं परमात्मा के पास जाओ। इसीलिए संत तुलसी साहब ने कहा—

सत सुरति समझि सिहार साधो। निरखि नित नैनन रहो।।
धुनि धधक धीर गंभीर मुरली। मरम मन मारग गहो।।
सम सील लील अपील पेलै। खेल खुलि खुलि लखि परै।।
नित नेम प्रेम पियार पिउ कर। सुरति सजि पल पल भरै।।
धरि गगन डोरि अपोड़ परखै। पकरि पट पिउ पिउ करै।।
सर साधि सुन्न सुधारि जानौ। ध्यान धरि जब थिर थुवा।।

जहाँ रूप रेख न भेष काया। मन न माया तन जुवा।।
आली अंत मूल अतूल कँवला। फूल फिरि फिरि धरि धसै।।
तुलसी तार निहार सूरति। सैल सतमत मन बसै।।

अर्थात् सुरत सत् है। इसका फैलाव और फँसाव पिण्ड और ब्रह्माण्ड के असत मण्डलों में हो गया है। इसलिए यह परम प्रभु सर्वेश्वर के सहज स्वरूप की प्राप्ति से विहीन रहकर दुःखद अधोगति का भोग भोग रही है। इस अधोगति के दुःखों से बचाव के लिए सुरत की ऐसी संभाल करो कि असत् मण्डलों में इसका सिमटाव और इनसे इसका छुटकारा होकर यह परमप्रभु सर्वेश्वर के सहज स्वरूप को प्राप्त कर सारे दुःखों से छूट जाय। सुरत की संभाल का अभ्यास पहले मानस जप से, फिर मानस ध्यान से, फिर दृष्टि साधन से और फिर सुरत-शब्द-योग से क्रमशः होगा। अपने अंतर का प्रथम पट कठिन और अछेद्य अंधकार है। दृष्टि-साधन के अभ्यास से सुरत इससे पार हो सकती है। अंधकार से पार होकर सुरत जब अपने शरीर में ब्रह्म के चमत्कारों को देखेगी, तब परम प्रभु के प्रेम में सदा सराबोर रहेगी। पुनः वह मुरली ध्वनि (अंतर की मायावी अनहद ध्वनियों) को युक्ति से पकड़कर आगे रास्ता चलेगी। गगन डोरी—अंतराकाश की ब्रह्मज्योति वा ब्रह्मनाद को धरकर सारशब्द को सुरत पहचानेगी। सारशब्द में रत होकर सुरत उस अपरम्पार पद में थिर होगी, जहाँ रूप, रेखा, भेष, शरीर, मन और माया नहीं है और जो अनिर्वचनीय और मूल पद है। जिसको यह अंतिम पद खुल जाएगा, उसकी सुरत बारम्बार उसमें धँसती रहेगी। जिस धार को पकड़कर इस अंतिम पद में जाना हो सकता है। उस धार को परखो, तो उपर्युक्त यात्रा के सच्चे विचार में मन डूबा रहेगा। यह कथन तुलसी साहब का है—

हिय नैन सैन सुचैन सुन्दरि। साजि स्रुति पिउ पै चली।।
गिरि गवन गोह गुहारि मारग। चढ़त गढ़ गगना गली।।
जहाँ ताल तटपट पार प्रीतम। परसि पद आगे अली।।
घट घोर सोर सिहार सुनिकै। सिंध सलिता जस मिली।।
जब ठाट घाट वैराट कीना। मीन जल कँवला कली।।
आली अंस सिंध सिहारअपना। खलक लखि सुपना छली।।
अस सार पार सम्हारि सूरति। समझि जग जुग जुग जली।।
गुरु ज्ञान ध्यान प्रमान पद बिन। भटकि तुलसी भौ भिली।।

अर्थात् परम प्रभु सर्वेश्वर से मिलने को चलने में सुरत को केन्द्रित करना होता है। दृष्टि-साधन से सुरत अत्यन्त सुखपूर्वक केन्द्रित होती है। केन्द्रित की हुई सुरत अंधकारमय नयनाकाश से मार्ग धरकर संकीर्ण मार्ग से ब्रह्माण्ड में चढ़ती है। फिर आगे वह अनहद ध्वनियों को सुनती हुई अर्थात् सुरत-शब्द-योग द्वारा मानसरोवर के पार प्रीतम से इस भाँति जा मिलती है,जिस भाँति नदी समुद्र से जा मिलती है। सब रचना नाशवान है और इसमें जीव सदा जलता रहता है। इस रचना से सुरत को फेरकर प्रभु की ओर करना चाहिए। तुलसी साहब कहते हैं कि गुरु के ज्ञान और ध्यान बिना सुरत संसार में भटकती रहती है और उसे सतलोक—मोक्ष धाम नहीं मिलता है।

ध्यान करने से आप शरीर और इन्द्रियों को छोड़कर अकेले रह जाएँगे, ईश्वर-दर्शन होगा, तब मोक्ष मिलेगा। जबतक मोक्ष नहीं हो, तबतक राजा-रानी, राष्ट्रपति, राम, कृष्ण कोई बने रहो, शरीर में रहने से कष्ट होता है। आप कोई कुछ भी बनकर रहो, ईश्वर की भक्ति करो। इसी से आप सारे दुःखों से छूट सकते हैं।

n

यह प्रवचन दिनांक १८. ०४. १९६० ई० को मुंगेर जिला के जमालपुर निवासी स्व० रायबहादुर श्रीदुर्गादासजी तुलसी के निवास स्थान में अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१६१. सब रूपों में एक ही ईश्वर

प्यारे लोगो!

सबलोग सुखी और आनन्दित रहना चाहते हैं। मन और इन्द्रियों को जो सुहाता है, उसको लोग सुख कहते हैं और इससे जो आनंद मिलता है, उससे आनंदित होते हैं। मन संसार के पंच विषयों को ग्रहण करता है। वे विषय हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। इन विषयों के अतिरिक्त और कुछ संसार में देखने में नहीं आता है। संसार के भोगों में फँसकर लोग उस आनंद को नहीं प्राप्त कर सकते, जो सदा आनंद-ही-आनंद बना रहे। इसीलिए जीवों को उस आनंद की प्यास लगी ही रहती है।

इन्द्रियाँ नाशवान हैं, इसलिए उनका सुख भी अनित्य है। चाहिए कि नित्यानन्द की प्राप्ति हो और जिसका कभी अन्त न हो, ऐसा सुख हो और इसी के सम्बन्ध का आनन्द हो। इसी की प्राप्ति के लिए यत्न है—ईश्वर की भक्ति। ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर-स्वरूप का जानना आवश्यक है। ईश्वर-स्वरूप अव्यक्त है, इन्द्रियातीत है। जीवात्मा भी अव्यक्त है और इन्द्रिय-ज्ञान से परे। परमात्मा को जीवात्मा ही जान सकता है। किसी एक इन्द्रिय से ग्रहण होने योग्य पदार्थ दूसरी इन्द्रिय से ग्रहण नहीं होता है। उसी तरह ईश्वर चेतन आत्मा के अतिरिक्त किसी से ग्रहण नहीं हो सकता।

ईश्वर क्या है? यह प्रश्न ठीक है। इसका उत्तर है कि जो चेतन आत्मा से ग्रहण हो। चेतन आत्मा जबतक इन्द्रिय, मन, बुद्धि में रहती है, तबतक उसको ईश्वर-दर्शन नहीं हो सकता। जैसे आँखों पर पट्टी रहने से बाहर की चीज दिखाई नहीं पड़ती, यद्यपि आँख में देखने की शक्ति है। इसी तरह चेतन आत्मा पर जो शरीर, इन्द्रिय का आवरण है, इस कारण से ईश्वर का दर्शन नहीं होता है। इन आवरणों को हटाइए तो ईश्वर का दर्शन होगा।

कितने लोग कहते हैं कि ईश्वर आकर स्वयं दर्शन देंगे, जिस रूप में हम दर्शन करना चाहेंगे। रूप को देखने से ईश्वर-स्वरूप का दर्शन नहीं होगा। राम, कृष्ण, दुर्गा, शिव आदि अनेक रूप हैं। और इन सब रूपों को लोग ईश्वर मानते हैं। ठीक है। लेकिन क्या अनेक रूपों में होने के कारण ईश्वर अनेक हैं? ईश्वर अनेक हैं, यह किसी को मंजूर नहीं हो सकता। ऐसा कह सकते हैं कि सब रूपों में एक ही ईश्वर है। उस एक ईश्वर को जानने के लिए क्या उपाय है? अपने को पवित्र करो। संत दादू दयालजी ने कहा—

घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा।।

और संत कबीर साहब ने कहा—

घूँघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।

जब ऐसा हो, तब ईश्वर का दर्शन होगा और यही ईश्वर-भक्ति की पराकाष्ठा है। अपने को स्थूल से सूक्ष्म में और सूक्ष्म से कारण में, कारण से ऊपर महाकारण में ले जाओ। फिर कैवल्य दशा प्राप्त करो। इसके लिए पहले सिमटाव की आवश्यकता है। प्रत्येक वस्तु, जिसका सिमटाव होता है, सिमटाव से विपरीत ओर को बढ़ती है। अभी हमारा मन चेतन आत्मा से मिला हुआ है। मन इतना सिमट जाय कि एकविन्दुता प्राप्त कर ले, तब इसकी ऊपर चढ़ाई हो जाएगी। इस चढ़ाई या आरोहण में चेतन आत्मा कैवल्य दशा प्राप्त करेगी और ईश्वर को भी प्राप्त करेगी। इसके लिए

ध्यान करना चाहिए।

ध्यान में पहले स्थूल अवलम्ब चाहिए। इसके लिए पहले स्थूल जप और फिर स्थूल मूर्ति का ध्यान हो, फिर सूक्ष्म ध्यान करो। सूक्ष्म ध्यान दृष्टियोग से होता है। सूक्ष्म ध्यान के लिए संत दादूदयालजी का वचन है—

मन ही सन्मुख नूर है, मन ही सन्मुख तेज।
मन ही सन्मुख जोति है, मन ही सन्मुख सेज।।
मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ।
मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ।।

शब्द के लिए कहा गया है—

साध शबद सों मिलि रहे, मन राखे बिलमाइ।
साध सबद बिन क्यों रहे, तबहीं बीखरि जाइ।।
—संत दादू दयालजी

जो दृष्टियोग करता है, सूक्ष्म मण्डल में प्रवेश करता है और शब्द ध्यान से सूक्ष्म मण्डल को—दृश्य और अदृश्य; दोनों जगत को पार करता है। मुक्तिकोपनिषद् में आया है—

प्रभा शून्यं मनः शून्यं बुद्धि शून्यं चिदात्मकम्।
अतद्व्यावृत्तिरूपोऽसौ समाधिर्मुनि भावितः।।

अर्थात् ज्योति, मन तथा बुद्धि-रहित होकर केवल चैतन्य आत्मा ही रहे, यह अतद्व्यावृत्ति (जिसको किसी दूसरे की आवश्यकता न हो) समाधिस्थ मुनियों से अभिलषित है।

उसके वास्ते ब्रह्मज्योति को पार करके नादानुसंधान—नाम-भजन करना है। यहाँ ईश्वर को किसी रूप में बुलाकर दर्शन करना नहीं है। बल्कि शरीर, इन्द्रियों को छोड़कर पवित्रतापूर्वक रहकर ईश्वर-दर्शन किया जाता है। घर-वार में रहनेवाले भी इसका साधन कर सकते हैं।

सब कोई इसका अभ्यास कर सकते हैं। इसके लिए मन की शुद्धि होनी चाहिए। मन की शुद्धि के लिए पाँच पाप नहीं करो। झूठ नहीं बोलो। चोरी नहीं करो। किसी प्रकार की नशा को मत लो। व्यभिचार मत करो और हिंसा नहीं करो। जो अपने को पापों से बचाता है, वह भजन ठीक-ठीक कर सकता है। जो भजन करता है, वह पाप कभी नहीं कर सकता है। इसके लिए यानी भक्ति के लिए प्रेम की बड़ी आवश्यकता है। संत कबीर साहब ने कहा है—

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ विचार।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार।।

यदि ख्याल करो कि यह भक्ति कलियुग में नहीं होगी, तो यह समझना भूल है। आज तक पाँच हजार वर्ष कलिकाल को हुए। इसके अंदर कितने संत महात्मा हो गए। कुछ लोग कहते हैं कि काल-धर्म भक्ति नहीं होने देता है? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

काल धर्म व्यापै नहिं तेही। रघुपति चरन प्रीति अति जेही।।

जो कलियुग परीक्षित के डर से गिड़गिड़ाया था, वह ईश्वर के सामने क्या कर सकता है? इसलिए ईश्वर-भजन करो। अपने को पवित्र रखो। ■

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर परवत्ती में दिनांक २४.४.१९६० ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१६२. संतों के दिशा का सांकेतिक शब्द

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

अपना कल्याण आपको प्रिय है, वही आप चाहते हैं। जबतक किसी को ईश्वर-दर्शन नहीं होता है, कल्याण नहीं पाता है। जबतक कोई मन

के विकारों में भ्रमता रहता है, विषयों में चलता रहता है, मन के विकारों में कष्ट पाते हुए भी उसी ओर चलता है, तबतक कल्याण कहाँ? इसलिए मन के विकारों से ऊपर उठो। मन के विकार आपको घृणित हो जाएँ। मन के विकारों में किसी को ईश्वर-दर्शन नहीं होता। मन के विकारों से अपने को ऊपर उठाओ अथवा ईश्वर-दर्शन के लिए काम करो; दोनों बातें एक ही हैं और सही है। भगवान श्रीराम ने कहा था—

काम क्रोध मद दंभ न जाके। तात निरन्तर वश मैं ताके।।

इसलिए मनोविकारों से बचना आवश्यक है। दूसरा विचार कि 'कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय' —कबीर साहब। अर्थात् मनोविकारों को रखते हुए भक्ति नहीं कर सकते और बिना भक्ति के ईश्वर को कौन पा सकता है? इसलिए मनोविकारों से बचना बड़ा आवश्यक है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—'अनाहारी रहने से शरीर कमजोर होगा, इन्द्रियाँ शिथिल होंगी, किंतु विषय-भोग का रस नहीं छूटेगा। जबतक रस आता रहेगा, इच्छा चलती रहेगी, इस तरह कोई मनोविकारों को दमन नहीं कर सकता है। वह तो ईश्वर-दर्शन से ही जाता है। ईश्वर-दर्शन होने से मनोविकार जाएगा। विषय-भोग की ओर उसका मन ही नहीं जाएगा। वह रस उससे उसी तरह हट जाएगा, जैसे कि कै कर देने के बाद आप उसे मुँह में नहीं डालते। वमन सदृश विषय-भोग की इच्छा जाती रहेगी। मनोविकार से बचने के लिए ईश्वर-भक्ति कर ईश्वर-दर्शन करो और ईश्वर-दर्शन के लिए मनोविकारों से बचो।'

समझो कि तुम मुसाफिर हो, इसको समझने की क्या बात? 'आये हैं सो जाहिंगे, राजा रंक फकीर'—कबीर साहब। हमलोग यहाँ हैं और कुछ दिन रहेंगे, फिर चले जाएँगे। तो हमलोग मुसाफिर नहीं हैं तो क्या हैं? यह सारा संसार मुसाफिर-खाना है। हमलोग आते हैं और जाते हैं। एक ही मुसाफिर-खाने में लोग कितनी बार आते हैं और जाते हैं, उसी तरह हमलोग इस संसार में हैं। कबीर साहब ने कहा है—

मोरे जियरा बड़ा अन्देसवा, मुसाफिर जैहो कौनी ओर।।
मोह का शहर कहर नर नारि, दुइ फाटक घन घोर।
कुमती नायक फाटक रोके, परिहौ कठिन झिंझोर।।
संशय नदी अगाड़ी बहती, विषम धार जल जोर।
क्या मनुआँ तुम गाफिल सोवौ, इहवाँ मोर न तोर।।
निसि दिन प्रीति करो साहेब से, नाहिंन कठिन कठोर।
काम दिवाना क्रोध है राजा, बसैं पचीसो चोर।।
सत्त पुरुष इक बसैं पछिम दिसि, तासों करो निहोर।
आवै दरद राह तोहि लावै, तब पैहो निज ओर।।
उलटि पाछिलो पैंड़ो पकड़ो, पसरा मना बटोर।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, तब पैहो निज ठौर।।

कहाँ जाना है, किस ओर जाना है, नहीं मालूम है। कितना दुःख और कितनी चिन्ता की बात है। यदि आपको कोई जबर्दस्ती खींचता हुआ अंधेरे में ले जाय, तो आपको कैसा लगेगा? 'इक तो अंधेरी कोठरी जामें दिया न बाती हो। बहियाँ पकड़ि जम ले चले कोइ संग न साथी हो।' यदि कहो कि संसार से बहुत लोग एक ही दिन जाते हैं, इस तरह हम समूह के साथ दल बांधकर जाएँगे, अकेले कैसे जाएँगे? तो बात ऐसी है कि जब तुम जाओगे तो उस रास्ते जाओगे कि अकेले ही जाना होगा, दूसरा कौन जाता है, तुमको पता भी नहीं रहेगा। 'जेहि मारग यह जात अकेला। हरि का नाम तहँ संगि सुहेला'—गुरु नानक साहब।

संसार में जिधर प्रीति होनी चाहिए, उधर नहीं होती और जिधर नहीं होनी चाहिए, उधर होती है। यह मोह का नगर है। यह जीवात्मा न स्त्री है न पुरुष। लेकिन आना पड़ता है स्त्री-शरीर

वा पुरुष-शरीर में। इस तरह यह बहुत खौफनाक (भयानक) फाटक है। खबरदार रहो और अपनी 'ओर' को समझो कि किस ओर जाना है? विकार से बचने और ईश्वर-भजन का 'ओर' कौन-सा है? समझो। इसके लिए किधर जाना होगा? पृथ्वी पर दौड़कर कहीं जाना होगा? समुद्र में गोता लगाना होगा? या पानी के भीतर-भीतर चलनेवाले जहाज से समुद्र के नीचे-नीचे जाना होगा? या आकाश में वायुयान से जाना होगा? संसार में किसी ओर किसी सवारी से जाना नहीं होगा। तुम्हारे अंदर ईश्वर का प्रेम जबर्दस्त होगा, तब तुम उस ओर को समझ सकते हो। उधर का प्रेम नहीं हो तो उस ओर नहीं जा सकते। यदि कहो कि ईश्वर को हम देखते नहीं हैं, फिर उससे प्रेम कैसे करेंगे? यदि तुम्हारे अंदर 'ईश्वर हैं' का विश्वास हो जाए, तब भी प्रेम कर सकते हो। जैसे किसी के पास धन नहीं है और उसको मालूम हो कि धन होने से सुख होता है और वह धन अमुक जगह है, तो उस बेदेखे हुए धन से उसको प्रेम हो जाता है। युधिष्ठिर ने धन देखा नहीं था, जिसके बारे में व्यासदेवजी ने उनसे कहा था। व्यासदेवजी के वचन में युधिष्ठिर ने विश्वास किया और उनके कहने के अनुकूल चलकर धन को निर्दिष्ट स्थान से उखाड़ लिया और वह यज्ञ किया। उसी तरह तुम ईश्वर को नहीं देखते हो, संतों ने बताया है कि ईश्वर है, इस पर विश्वास करो और वे जो रास्ता बता गए हैं, उस रास्ते पर चलो, जहाँ जाने कहें, वहाँ जाओ। ईश्वर में विश्वास करो, जो बतावें, उसमें श्रद्धा करो।

ईश्वर-ज्ञान में यह बहुत जरूरी बात है कि इन्द्रिय-ज्ञान का पदार्थ ईश्वर नहीं है। 'सबकी दृष्टि पड़ै अविनाशी विरला संत पिछानै। कहै कबीर यह भरम किवाड़ी, जो खोलै सो जानै।।' कबीर साहब ने माया को भ्रम कहा है। जिधर जाने से माया का परदा टूटे, उधर जाओ। माया के परदे चार हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण। जहाँ ये माया के परदे टूटे, वहीं ईश्वर-दर्शन होंगे। और सभी विकारों से छूट जाएँगे। सभी परदे टूट गए तो सभी विकार छूट गए।

घट घट कपाट खोलिये रे, अखण्ड ब्रह्म को देखना है।

—दरिया साहब, बिहारी

इन कपाटों को खोलिए। किसलिए? तो कहा—'अखण्ड ब्रह्म को देखना है।'

जो सज्जन, साधु-पुरुष 'पछिम दिशि' अर्थात् प्रकाश की ओर रहते हैं, उनके अधीन रहो, सेवा करो, दया लगेगी, वे राह बतावेंगे, तब आपको जिस ओर जाना चाहिए, जाएँगे। यहाँ 'पश्चिम को प्रकाश' इसलिए कहा गया है कि— संतवाणी में अंधकार को पूर्व, प्रकाश को पश्चिम, शब्द को दक्षिण और नि:शब्द—शब्दातीत पद को उत्तर कहते हैं। ये संतों के सांकेतिक और पारिभाषिक शब्द हैं। भक्त साधक साधना में प्रथम—पहले—पूर्व अंधकार पाते हैं, इसलिए अंधकार को पूर्व कहते हैं। अंधकार की उल्टी ओर प्रकाश पाता है, पूर्व की उल्टी ओर पश्चिम है, इसलिए प्रकाश को पश्चिम कहा गया है। प्रकाश में प्रविष्ट सुरत अनहद शब्दों को ग्रहण कर उसके सहारे आगे बढ़ती हुई शब्दातीत—अनाम पद तक पहुँचती है। इसलिए शब्द अंतिम सहायक—मित्र वा निज पक्ष का परम सहारा है। जैसे दाहिना हाथ वा दक्षिण हस्त से शरीर को बड़ा सहारा मिलता है। इसलिए शब्द को दक्षिण कहा गया है और शब्दातीतपद—जो सबसे पीछे प्राप्त होता है—को उत्तर कहा गया है। यह परमात्म पद है, इसके आगे कोई पद नहीं है। अंधकार, प्रकाश, शब्द तथा नि:शब्द; इन चारों में एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा और तीसरे के बाद चौथा पद शृंखलाबद्ध की तरह जानना चाहिए। इस शृंखलाबद्धता

में उत्तरोत्तर का भाव है। अंतिम पद वा शृंखला की अंतिम कड़ी शब्दातीत पद है। इसलिए इस पद को उत्तर कहा गया है। आप इस शरीर के अंदर जहाँ रहते हैं, वहाँ से चलिए। वह है आँख का स्थान।

इस तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।

—संत कबीर साहब

ब्रह्मोपनिषद् में भी यही बात है, पढ़ कर देख लीजिए। '**जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना**' —दरिया साहब। संतों की वाणी में ईश्वर विषयक सभी बातें मौजूद हैं। अंदर की ओर चलो। सब विकारों से बचने के लिए गोस्वामी तुलसीदाजी का कथन है—

जब तें राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका।।
जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी।।
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।
विविध कर्म गुण काल सुभाऊ। ये चकोर सुख लहहिं न काऊ।।
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कबनिहुँ ओरा।।
धरम तड़ाग ज्ञान विज्ञाना। ये पंकज बिकसे विधि नाना।।
सुख संतोष विराग विवेका। विगत सोक ये कोक अनेका।।

यह प्रताप रवि जाके, उर जब करइ प्रकास।
पिछले बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास।।

सूर्य का ज्ञान संत लोग बताते हैं। 'ज्यों दुपहैर गगन रवि छाई। तासों उजास भया घट माई।।' तुलसी साहब, हाथरस। अपने अंदर जाओ। जो अपने अंदर जाता है, उसको ईश्वर की प्राप्ति होती है। युक्ति गुरु बताते हैं। दृष्टि को दिव्य करने का प्रयत्न करो। संत दरिया साहब, बिहारी ने कहा है—

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।

'दृष्टिताना' का अर्थ आँख को टेढ़ा-मेढ़ा करना नहीं है। इसकी युक्ति गुरु से जानो। यह बड़ी विद्या है, योग का सार है, चित्तवृत्ति का निरोध, इन्द्रिय-दमन, ऊर्ध्वगति और कामादिक विकारों से बचना और ईश्वर तक पहुँचना है। यह बात जिनको मालूम हो, वे यत्न करें। इसको पाने के लिए जहाँ जाना पड़े, जाओ और इस काम को करने के लिए अत्यन्त संलग्न हो जाओ।

काल करै सो आज कर, आज करै से अब्ब।
पल में परलै होयगा, बहुरि करैगा कब्ब।।

—संत कबीर साहब

इसका संस्कार मनुष्य-शरीर लावेगा। श्रीमद्-भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—'इस पृथ्वी पर किसी पवित्र श्रीमान् के घर में अथवा किसी ज्ञानवान योगी के घर में जन्म लेगा और पूर्व के अभ्यास-संस्कार से प्रेरित होकर ध्यान योगाभ्यास में लग जाएगा। वह मोक्ष की ओर आगे बढ़ेगा और इस प्रकार अनेक जन्मों की कमाई के द्वारा पापों से छूटकर पवित्र होता हुआ परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करेगा।'—गीता अध्याय ६

पहले मनुष्य-शरीर होगा, गुरु मिलेंगे, यत्न मिलेगा, भजन बनेगा, ईश्वर-दर्शन होगा, फिर कभी संसार में लौटना नहीं होगा। संतलोगों ने जो कहा है, आपलोगों को सुना दिया।

n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत मोहद्दीनगर के दुर्गास्थान, भागलपुर में दिनांक १७ . ८.१९६० ई० को रात्रिकालीन सत्संग के शुभ अवसर पर हुआ था।

१६३. योगी किसे कहते हैं?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जितने जीव-जन्तु हैं, सबके लिए सबसे पहली बात है कि वह स्वयं आराम से रहें, शान्तिपूर्वक रहें। जिसको बहुत नींद सता रही है, वह जैसे-तैसे सो जाता है और अपने साथी के लिए भी सोचता है कि वह भी सो जाय। इसी तरह अन्यान्य बातें भी हैं। अपने भी नींद से व्याकुल है और दूसरा भी नींद से व्याकुल है, तो स्वभाव ऐसा नहीं होने देगा कि अपने जगकर रहे और दूसरे को सोने दे। अपने भी सोएगा और दूसरे के भी सोने की व्यवस्था करेगा। जो अपने सुख में रहता है और दूसरे के लिए सुख का प्रबंध नहीं करता, वह पशुवत् है। साधारणतया लोग अपने परिवार को संतुष्ट करना चाहते हैं, लेकिन कोई भी पूर्णरूपेण संतुष्ट नहीं होते।

कागभुशुण्डि की कथा रामचरितमानस में आप पढ़ते हैं, उसमें उन्होंने कहा है कि–

देखेउँ सब करि करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं।।

इस बार वे क्यों सुखी हुए? अनेक जन्मों से वे ईश्वर-भजन में मन लगाते आते थे और इस जन्म में आकर उनका भजन पूरा हो गया। सांसारिक कुछ चाहना नहीं रही। अपने भजन पूरा कर लिए और तब लोगों में उसका प्रचार करने लगे, चुपचाप बैठे नहीं रहते थे। वे जप करते थे, सत्संग करते थे, मानस पूजा करते थे और ध्यान करते थे। उनके सत्संग में बहुत लोग आते थे और उनसे वे ज्ञान-ध्यान की बातें कहते थे। उपासना के समय वे तीन बातें अवश्य किया करते थे; जप, मानस पूजा और ध्यान। आज भी वही बात है। यह नहीं कि उनके यहाँ कोई जाते थे तो वे उनके साथ सहानुभूति नहीं रखते थे। मैंने देखा कि दो मैने (चिड़ियाँ) आपस में लड़ रही थीं। एक कचबचिया उधर से आई और दोनों के शिर में चोंच मारकर लड़ाई छुड़ा दी। जब चिड़ियाँ में ऐसी बात है, तब मनुष्य को कैसा होना चाहिए? यह ईश्वर की तरफ से प्रेरण है कि एक दूसरे को सुख पहुँचावे। पहले अपने सुखी, तब दूसरे को सुख पहुँचाते हैं। संसार की चीजों में सुख नहीं है, अनासक्त होने में सुख है। आप देखते हैं कि जाग्रत एवं स्वप्न के बीच में एक अवस्था होती है–तन्द्रा। उस समय हाथ-पैर की शक्ति भीतर की ओर खिंचती हुई मालूम होती है। लेकिन उस समय एक विचित्र चैन-सा मालूम होता है। उस समय कोई खट-खुट करके उस अवस्था को छुड़ा दे तो बहुत कष्ट होता है। उससे भी जब वह बाहरी चीजों को भूलकर गहरी नींद में जाता है, तो वह जाग्रत के सब दुःखों को भूल जाता है, चाहे वह जाग्रत में कितना ही दुःखी क्यों न हो? कहाँ भाई, कहाँ बेटा और कहाँ स्त्री रोती है, कुछ पता नहीं। किंतु जग जाए तो वह फिर उसी तरह दुःखी होगा, जैसे पहले था। इस अवस्था से और भी आगे बढ़ना है, जहाँ जाकर घट-घट में जो सर्वव्यापी परमात्मा है, उसको देख लेना हो सके।

ईश्वर अपरिवर्तनशील है और संसार परिवर्तन-शील। परमात्मा नित्यानंद स्वरूप है–ब्रह्मानंद स्वरूप है, उसको जो पावेगा, वह वैसा ही हो जाएगा। संसार में रहकर–सौर जगत में रहकर सूर्य के प्रभाव से कोई बच नहीं सकता है, उसी तरह अशान्तिमय अपूर्ण जगत में रहकर कोई पूरी शान्ति

पावे, पूर्ण संतुष्ट हो, कैसे संभव है? कागभुशुण्डिजी को ईश्वर-भजन कर पूरी शान्ति और पूरी संतुष्टि हुई थी; तब उन्होंने कहा था कि—'सुखी न भयेउँ अबहिं की नाईं।' इसके लिए चाहिए कि ईश्वर को पकड़ो और दूसरों से भी ईश्वर को पकड़ने कहो। स्वयं खाओ और दूसरा कोई भूखा है तो उसको भी दो।

कबीर साहब ने कहा है—'धन यौवन का गर्व न कीजै, झूठा पंच रंग चोल रे' यह शरीर पंच तत्त्वों से बना है और पाँच उनके रंग है। ध्यानी ध्यान में उन पाँच रंगों को देखता है। करो क्या? तो कहा—'शून्य महल में दियना बारि ले, आशा से मत डोल रे' यह है ध्यान। इसी में 'ध्यानं शून्यगतं मन:' और 'ध्यानं निर्विषयं मन:' होता है। मन को विषयहीन कर लो। पंच विषयों से जिसका मन आगे बढ़ता है, वह निर्विषय में जाता है। सूक्ष्म में रहने से भी विषय है। शून्य महल में जाने का जो तरीका जानता है, उसमें प्रवेश करता है तो उसको अपने अंदर में चिराग मालूम होता है। यह कहने की बात नहीं है, करने की है। इस ध्यान में अभ्यासी का ज्ञान बढ़ता है और आगे बढ़ते-बढ़ते वह समता प्राप्त करता है। मान, अपमान, हानि लाभ, सुख-दु:ख सबमें वह समान रहता है। उसको एकात्म भाव हो जाता है और वह सब शरीरों में भिन्न-भिन्न नहीं, एक-ही-एक आत्मा को देखता है। वह देखता है कि सब शरीर मेरा और सब शरीरों में मैं। लेकिन इस भाव को पाना, बहुत दूर की बात है। इसमें संसार बहुत दबाता है, कुछ आगे बढ़ने पर संसार और भी दबाता है। लेकिन जो समझता है कि यह काम करना जरूरी है, वह संसार के दबावों को सहता हुआ अपने कामों को करता जाता है और होते-होते एक दिन पूर्ण भी हो जाता है। वह पूर्णरूपेण तृष्णाहीन हो जाता है, पूर्ण शान्ति पाता है और परमात्मा को भी पाता है।

शरीर रूप परदा जीवात्मा पर है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण चारों जड़ शरीरों को पार कर अपने स्वरूप में रहे, तब ईश्वर को पाता है। यह योग की सरल युक्ति है, प्राणायाम इसमें नहीं है। चाहिए ईश्वर से मिलन का प्रेम। जो ईश्वर से मिलन का यत्न जानता है, कोशिश करता है, अपने परिवार में रहता है और भजन करता है तो वह होते-होते पूर्ण होता है। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

जोगु न खिंथा जोग न डंडै जोगु न भसम चड़ाईऐ।
जोगु न मुंदी मूंड़ि मुड़ाइऐ जोग न सिंञी वाईऐ।
अंजन माहिं निरंजन रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।।
गली जोगु न होई।
एक द्रिसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीऐ सोई।
जोग न बाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाईऐ।
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ जोगु न तीरथि नाईऐ।
अंजन माहिं निरंजन रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।।
सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईऐ।
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईऐ।
अंजन माहिं निरंजन रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।।
नानक जीवतिया मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाइऐ।
बाजे बाझहु सिंञी बाजे तउ निरभउ पदु पाईऐ।
अंजन माहिं निरंजन रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ।।

लैक्चर झाड़ने से जोगी नहीं होता है। एक दृष्टि करो—दोनों दृष्टिधारों को एक करो। इसकी युक्ति जानो। एक दृष्टि करके जो मन में शान्ति आती है, एकाग्रता आती है, उसमें समता होती है, उसी को योगी कहते हैं। बाहर श्मशान में जाकर मठ बनाने से योग नहीं होता है और झूठी समाधि लगाने से भी योगी नहीं होता। इधर-उधर घूमा, तीर्थ-स्नान आदि किया, इससे योग नहीं होता। जिसको सतगुरु मिलते हैं, उसका संशय टूटता है, इधर-उधर जाने से बरज कर रहता है, ज्योति की

वर्षा होती है, सहज में जो ध्वनि होती है, उसमें अपने मन को लगाकर रखता है, इस प्रकार कोई योगी होता है। कबीर साहब, गुरु नानक साहब, दादू दयालजी, इन सभी संतों ने घर में रहकर साधन-भजन किया और इतने बड़े हुए।

जैसे मृतक शरीर में इन्द्रियाँ निश्चेष्ट रहती हैं, वैसे ही ऐसा साधन करो कि इन्द्रियाँ विषयों की ओर नहीं दौड़ें, यह जीवत-मृतक होना है। इसी के लिए गुरु नानकदेवजी ने कहा—

नानक जीवतिया मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाइऐ।
बाजे बाझहु सिंञी बाजे तउ निरभउ पदु पाईऐ।।

अंदर में बाजे बजते हैं, उसको सुनो। इसी को कबीर साहब ने कहा—'बाजत अनहद ढोल रे।'

किसी को शत्रु नहीं बनाओ। जिसको तुम शत्रु बनाओगे, वे तुम्हारी हानि करेंगे। सभी से प्रेम करो। तुम किसी की हानि नहीं करोगे तो तुम्हारी भी हानि दूसरे नहीं करेंगे।

ध्यान और मानस पूजा में अंतर है। मानस पूजा से ध्यान श्रेष्ठ है। मानस पूजा से मन का कुछ सिमटाव होता है, तब ध्यान किया जाता है और तब ध्यान से 'ध्यानं निर्विषयं मनः' और 'ध्यानं शून्यगतं मनः' होता है। प्राणायाम में कुछ खतरा भी है और कितने को खतरा हुआ भी है। लेकिन ध्यानाभ्यास में कोई खतरा नहीं है। इसको स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं। लेकिन सबको संयमी होना आवश्यक है। पाप मत करो। विषयी मत बनो। संयम से रहोगे और झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों से बचकर रहोगे तो तुम्हारी कोई भी हानि नहीं करेंगे। यदि समाज ऐसा बन जाए तो सबमें मैत्री-भाव होगा और देश में शान्ति विराजेगी। आज अपने देश में स्वराज्य है, लेकिन सुराज नहीं हो सका है। देश में चोर, डाकू नहीं हो, झूठ, चोरी, घूस नहीं हो, तभी देश में सुराज होगा। आज पुलिस में जो इतना खर्च होता है, वह दूसरे प्रबंध में खर्च होगा। मुकदमेबाजी में जो खर्च होता है, वह नहीं होगा और देश में सभी सुख, शान्ति से रहेंगे। जो सदाचार का पालन करता रहता है, वह यह लोक और परलोक दोनों में सुखी रहेगा। अपने को संयमित रखना बहुत जरूरी है। हम मुँह से कह सकते बहुत हैं, लेकिन अपने को संयमित रखने में कठिनाई है। अपने को बिना संयमित रखे कल्याण भी नहीं होगा। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को क्यों दबाना चाहता है?

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।
थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा।।
—रामचरितमानस

केवल वचन बनाने से शान्ति नहीं आएगी। ईश्वर-भजन करने से ही सुखी हो सकोगे। सब कोई प्रेम से रहो। ईश्वर करे, सभी शान्तिपूर्वक रहे।

n

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मन्दिर पाटम में दिनांक २.९.१९६० ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१६४. सिंह का बच्चा भेड़-बकरियों के साथ

प्यारे धर्मानुरागी महाशयो एवं सत्संगियो!

मैं अपनी ओर से कुछ सुनाऊँ, ऐसा नहीं। मैंने गुरु महाराज से शिक्षा पायी है कि जहाँ रहो, सत्संग करो और संतवाणी का सहारा लो। संतों की वाणी का सहारा लिए बिना मैं कुछ नहीं कह सकता—

नित सत्संगति करो बनाई। अंतर बाहर द्वै विधि भाई।।
धर्म कथा बाहर सत्संगा। अंतर सत्संग ध्यान अभंगा।।

बाह्य और अंतर दोनों तरह का सत्संग करो। गुरु की दीक्षा के अनुकूल एकान्त में बैठकर उपासना करो—यह अंतर सत्संग है और बाहर में संतों के सद्ज्ञान का श्रवण करो, यह बाहर का सत्संग है। संत कोई साधारण नहीं होते, पूर्ण होते हैं। पूर्ण मनुष्य, पूर्ण मनुष्यता के अंदर रहते हुए पूर्ण ज्ञानी, पूर्ण ध्यानी तथा अध्यात्म विषयक ज्ञान की कोई कमी न हो, ऐसे महापुरुष संत होते हैं। उपनिषद् में कहा गया है कि संत वही है, जिनमें ये गुण हों—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

— योगशिखोपनिषद्, अध्याय ५

अर्थात् उस परे-से-परे ब्रह्म को देख लेने पर हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

साधारण लोग इन बातों को नहीं जानते। पढ़े-लिखे—सत्संग किए जन जानते हैं कि शरीर में जड-चेतन की ग्रन्थि है तुम चेतन हो। चेतन ज्ञानमयी शक्ति है। यह अज्ञानमय तत्त्व में ऐसे समाया हुआ है, जैसे दूध में घी। जैसे दूध से घी अलग किया जाता है, उसी तरह चेतन आत्मा को शरीर से निकाला जा सकता है। जिसको ऐसा हो गया है, जिसको अपनी निस्बत केवल बौद्धिक विचार नहीं, वरन् प्रत्यक्षानुभूति है, वे ही संत हैं। जो ऐसे हैं, उनमें क्या त्रुटि हो सकती है? जो नहीं जानते हैं, वे ही त्रुटि बता सकते हैं। हमारे बीच में कोई संत हैं— इसकी पहचान बहुत कठिन है।

सत्संग कहते हैं, सद्ज्ञान के संग को। संतों का कहा हुआ उनके ग्रन्थ में हो, चाहे वह भारती भाषा में हो या संस्कृत में। भारती भाषा को ही आप हिन्दी कहते हैं। हमारे लिए हिन्दी शब्द अच्छा नहीं। मैं अपनी सरकार से निवेदन करता हूँ कि वे राष्ट्रभाषा का हिन्दी नाम उड़ा दें। यह शब्द, उच्चता को बहुत गिरा देनेवाला है। हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान; ये शब्द अच्छे नहीं। भाषा का नाम हिन्दी। हिन्दुस्तान को हटाकर भारत किया गया, यह बहुत अच्छी बात। लेकिन 'हिन्दी' कैसे रख लिया गया, ताज्जुब है। हमारी भाषा का यह शब्द नहीं है। इसका अर्थ है—चोर, लुटेरा, लामजहब आदि। यह शब्द यदि संस्कृत होता और प्रचीन काल से अपने देश में आदरणीय रहता तो पुरोहितगण यजमानों को 'जम्बूदीपे आर्यावर्ते भरतखण्डे' के पढ़ाने की जगह 'हिन्दुस्ताने' पढ़ाते। गीता वा बौद्धग्रन्थों में कहीं भी 'हिन्दू' कहकर आर्य या भारतवासी को नहीं जनाया गया है, लेकिन लोग अब उसे संस्कृत बनाना चाहते हैं। अभी आपने संत कबीर साहब की वाणी सुनी—

बिन सतगुरु नर रहत भुलाना, खोजत फिरत राह नहिं जाना।।
केहर सुत ले आयो गड़रिया, पाल पोस उन कीन्ह सयाना।
करत कलोल रहत अजयन संग, आपन मर्म उन्हुँ नहिं जाना।।
केहर इक जंगल से आयो, ताहि देख बहुतै रिसियाना।
पकड़ि के भेद तुरत समुझाया, आपन दशा देखि मुसक्याना।।
जस कुरंग बिच वसत वासना, खोजत मूढ़ फिरत चौगाना।
कर उसवास मनै में देखै, यह सुगंधि धौं कहाँ बसाना।।
अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है, छक्यो रूप नहिं जात बखाना।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, उलटि आपु में आपु समाना।।

बिना सद्गुरु के नर भूले रहते हैं, यह सभी कोई जानते हैं। इस पद्य में एक कहानी है—

एक गड़ेरिया ने जंगल से एक सिंह का बच्चा लाया। उसे भेड़-बकरियों के संग में पाला पोसा। एक दिन गड़ेरिया भेड़-बकरियों के साथ उसे भी चराने ले गया। जंगल से एक सिंह आया और उस सिंह को भेड़-बकरियों के बीच देखकर बड़ा क्रोधित हुआ। उस जंगली सिंह ने भेड़-बकरियों

के साथ भागते हुए उस पालतू सिंह को पकड़ लिया और उसे नदी किनारे ले जाकर पानी में अपने रूप का ज्ञान कराया। कहा—'देखो, जैसा मेरा रूप है, वैसा ही तुम्हारा भी रूप है। जो मैं हूँ, वही तुम हो। तुम भेड़ और बकरे नहीं, वरन् सिंह के बच्चे सिंह हो।' अपने रूप का ज्ञान पाकर वह भी सिंह की भाँति दहाड़ने लगा।

इस कथा को कहकर कबीर साहब बताते हैं कि तुम ईश्वर रूप सिंह का बच्चा मन रूप गड़ेरिये के अधीन हो, भूल गए हो। यदि तुमको सद्गुरु मिल जाएँ तो वे तुम्हें अपने स्वरूप का ज्ञान करा दें। लेकिन अपने स्वरूप-ज्ञान के लिए कहीं से कुछ लाना होगा? नहीं, वह साधन तुम्हारे साथ ही है, जैसे मृगा के साथ में कस्तूरी है। उसी तरह जिस साधन से तुम अपने को पहचानोगे, वह तुम्हारे साथ है, लेकिन तुम मृगा की तरह बाहर-बाहर ढूँढ़ते हो। उसका यत्न बताते हैं—'अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है, छक्यो रूप नहिं जात बखाना। कहै कबीर सुनो भाई साधो, उलटि आपु में आपु समाना।।' 'अर्ध' अध: शब्द का अपभ्रंश है, जैसे सगुण का अपभ्रंश 'सर्गुण' हुआ है। ऐसा सूरदासजी एवं तुलसीदासजी के वचन में नहीं है। ये लोग पंडित थे, लेकिन जो पण्डित नहीं थे, उन संतों की वाणियों में है। अध: ऊर्ध्व कहते हैं पिण्ड-ब्रह्माण्ड, नीचे-ऊपर और स्थूल-सूक्ष्म को। इनके संधि स्थान को देखो। शिर को लोग ब्रह्माण्ड कहते हैं। शिर का नीचा भाग आँख से मिला है। आँख से ऊपर का भाग ब्रह्माण्ड और नीचे का भाग पिण्ड है। इस ऊपर और नीचे के मध्य में देखो तो सूक्ष्मता दीख पड़ेगी। इसमें भी दो भेद हैं—एक अंधकारमय स्थान और दूसरा प्रकाशमय स्थान। इन दोनों के बीच में देखो लेकिन इतना कहने पर भी भेद बाकी बच जाता है। इसकी पूरी जानकारी तभी होगी, जब कोई सद्गुरु के आश्रित होते हैं। सभा में यह कहने की बात नहीं है, एकान्त में कहने की है। एकान्त में कहने की जगह कुछ लोग अब कान फूँकने लग गए हैं और कान में क्या कहना है, इसको वे भूल गए हैं। ऐसे भी महात्मा हैं, जो कान फूँकते हैं और दक्षिणा लेते हैं।

जो अर्ध-उर्ध के बीच में देखेगा, वह शिवनेत्र और सहस्त्रार का प्रत्यक्ष बोध करेगा। इसमें आगे बढ़ते-बढ़ते सहारा मिलेगा। साधन की सद्युक्ति सद्गुरु से प्राप्त कर सकते हैं और आगे बढ़ने के लिए उसका सहारा ईश्वर देते हैं। जैसे बिना हवा के हम नहीं रह सकते—हवा सहारा है, उसी तरह अंदर में ईश्वर सहारा देते हैं। गुरु नानकदेवजी के वचन में सुना—

घरि महि घरु देखाइ देइ, सो सतगुरु परखु सुजाणु।
पंच शबदु धुनिकार धुनि, तह बाजे शबदु निसाणु।।
दीप लोअ पाताल तह, खण्ड मण्डल हैरानु।
तार घोर वाजिंत्र तह, साचि तखति सुलतानु।।
सुखमन कै घरि राग सुनि सुन मंडल लिव लाइ।
अकथ कथा वीचारीअै मनसा मनहि समाइ।।
उलटि कमलु अंम्रित भरिआ, इहु मन कतँहु न जाइ।
अजपा जाप न बीसरै, आदि जुगादि समाइ।।
सभि सखिया पंचे मिलै, गुरु मुखि निज घरि वासु।
शबदु खोजि इहु घरु लहै, 'नानकु' ता का दासु।।

अपने घर वा मन्दिर में पैठने के लिए जो यत्न बता दे, वह गुरु है। उस घर में पैठने के लिए सहारा लो। सहारा क्या है? तो कहा—'पंच सबदु धुनिकार धुनि तह बाजे सबदु नीसाणु।' लेकिन इस शब्द को कैसे पकड़े? तो कहा—'सुखमन कै घरि राग सुनि, सुन मण्डल लिव लाई।'

शून्यमण्डल में लौ लगाकर रहो। सुन्दरदासजी के शब्द में सुना—

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा को गहै।
गुरु के प्रसाद भव दुख विसराइये।।

गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीतिहु अधिक बाढ़ै।
गुरु के प्रसाद रामनाम गुण गाइये।।
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जानै।
गुरु के प्रसाद शून्य में समाधि लाइये।।
सुन्दर कहत गुरुदेव जू कृपालु होइ।
तिनके प्रसाद तत्त्वज्ञान पुनि पाइये।।

कैसे शून्य समाधि लाइए, यह गुरु-गम्य है। तीन संतों के वचनों में जो पाठ हुआ, उनमें गुरु की महिमा है। दूसरी बात है अपने को और ईश्वर को अपने अंदर खोजो। उसकी युक्ति प्राप्त करो और साक्षात् करो।

अभी आप अपने को मन के वश में पाते हो, लेकिन अभ्यास करो तो मन आपके वश में हो जाएगा। हमलोग हाथी-घोड़े के बराबर बड़े शरीरवाले जीव नहीं हैं, लेकिन हाथी, घोड़े, सिंह आदि को लोग काबू करके सरकस में नचाते हैं। मनुष्य शरीर में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी शक्तियाँ होती हैं। यहाँ तक कहा गया है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है।

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथहिं गावा।।
—रामचरितमानस

हमको चेतना चाहिए, हमको विकारों से बचना चाहिए। बैल की तरह नहीं होना चाहिए। बैल की तरह क्या होता है? जैसे बैल जो एक खेत में खाता है, उसको मार लगती है, फिर वह उसी खेत में जाता है। उसी तरह जिस काम से हमको हानि होती है, पुनः उसी काम को हम करने दौड़ते हैं। काम के अधीन होकर हम गधे से भी आगे बढ़ जाते हैं। हमको चाहिए कि हम मनुष्य बनें। तब मन और इन्द्रियाँ बेकाबू नहीं रह सकतीं। आत्मा के नियंत्रण में बुद्धि, बुद्धि के नियंत्रण में मन और मन के नियंत्रण में इन्द्रियाँ रहेंगी। हमको चाहिए कि हम सत्संग करें, संतों की वाणियों—सदुपदेशों के अनुकूल चलने का यत्न करें। इसके लिए जितना हम धन पाने के वास्ते चेष्टा करते हैं, उससे अधिक चेष्टा करनी चाहिए।

ईश्वररूपी केन्द्र तक पहुँचने के लिए हमको चेष्टा करनी चाहिए। जो कर्म ईश्वर से संबंध नहीं रखता, उससे लाभ नहीं। ईश्वर स्वरूपतः क्या है? इसको जानिए। स्वरूपतः ईश्वर वैसा नहीं, जैसा हम संसार में देखते हैं। संसार में परिवर्तनशील पदार्थों को हम देखते हैं। ईश्वर अपरिवर्तनशील और अकम्प है। इस संसार को जिन इन्द्रियों से हम जानते हैं, उनसे ईश्वर को जानें, यह असम्भव है। ईश्वर इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है। इन्द्रियों से जो कुछ जानते हैं, वह माया है। 'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।' ईश्वर मन-बुद्धि से परे है।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
—गोस्वामी तुलसीदास

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
—गुरु नानक साहब

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
—संत कबीर साहब

मतलब यह कि ईश्वर इन्द्रिय-ज्ञान से परे है। गीता, उपनिषद् पढ़िए, वेद-पाठ कीजिए। ईश्वर

सम्बन्ध में यही ज्ञान होता है कि वह इन्द्रियातीत है। तब लोगों के मन में प्रश्न होता है कि जो अव्यक्त है—इन्द्रियातीत है, उसमें हम अपना मन कैसे लगावें? तो इस पर हम एक कहानी कहते हैं—

सोना के संबंध में युधिष्ठिर ने सुना। उन्होंने पहले देखा नहीं था। व्यासदेवजी के वचन में उन्होंने विश्वास किया, तो जो धन अव्यक्त था, कोशिश करने पर वह धन व्यक्त हो गया और युधिष्ठिर ने उस धन से अश्वमेध यज्ञ किय। इसी तरह अव्यक्त में भी लौ लगाया जाता है। अव्यक्त में कैसे मन लगाया जाता है, उसे अव्यक्त के उपदेश देनेवाले से पूछो। वह परमात्मा सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है। उससे पहले का कुछ नहीं है। वह निराधार है। उसके लिए वायुमण्डल, आकाश मण्डल, प्रकृतिमण्डल कुछ नहीं चाहिए। वह अपने पर आप अवलम्बित हैं। वह आदि-अन्त और सीमारहित है। वह केन्द्र-ही-केन्द्र है—परिधि से सीमित नहीं—ऐसा वह ईश्वर है। जीव को केन्द्र और परिधि दोनों हैं। उसी ईश्वर के अन्दर सारी सृष्टि है। सबमें वह ईश्वर है और उस ईश्वर में सब है। वह सब शरीरों में है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा,
बसत इति वासना धूप दीजै ।।'

'देशकाल दिशि विदिशहुँ माहीं।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ।।'

वह ईश्वर सर्वत्र है, लेकिन आप उसे पहचान नहीं सकते। इसलिए कि आप पंच ज्ञानेन्द्रियों से पंच विषयों के अतिरिक्त और कुछ जान नहीं सकते। 'सबकी दृष्टि पड़े अविनाशी, विरले संत पिछानै। कहै कबीर यह भरम किवाड़ी, जो खोलै सो जानै।।'—कबीर साहब। भरम माया को कहा।

आपकी वृत्ति जबतक बाहर की ओर रहेगी, तबतक ईश्वर-दर्शन नहीं हो सकता। आप जब अपने अंदर प्रवेश करें, तब दर्शन कर सकते हैं। पैर तो बाहर में ही छूट जाता है। पहले मन चलता है और पीछे मन भी छूट जाता है। तब आप स्वयं अकेले ही रहते हैं। इस शरीर के अन्दर संतों ने बहुत कुछ बताया है, लेकिन याद रखने योग्य हैं—चार चीजें। आँख बन्द कीजिए और देखिए। ख्याली बात नहीं, प्रत्यक्ष देखिए। अन्दर देखने में सबसे पहले अंधकार दीखेगा। अन्धकार का अन्त अन्दर में होता है, तब उसके बाद प्रकाश आता है। तीसरा दर्जा है, अंधकार-प्रकाश के परे शब्दमण्डल। जो सूक्ष्म होता है, वह अपने से स्थूल में स्वाभाविक ही व्यापक होता है। इसलिए शब्द, अंधकार और प्रकाश दोनों में व्यापक होता है। शब्द के परे अनाम है।

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा।।

यदि विश्वास हो तो युधिष्ठिर की तरह चलो। अपने अंदर चलो। कठिनाई होगी तो वह भी धीरे-धीरे सरल हो जाएगा।

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर पड़त निसान ।।

कबीर साहब ने कहा है कठिनता की कोई बात नहीं।

न योगी योग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै ।।
सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के वचन समाई हो।
मेली चित्त चरा चित राखो, रहो दृष्टि लौलाई हो ।।

संतों ने सहज ध्यान बताया है। मुझे भी खोजते बहुत दिन हो गए। इसके समान और कोई सरल नहीं है। अंधकार को पार करो। प्रकाश देखो। प्रकाश आपके अंदर है। इसका प्रमाण है कि आपकी आँखों में रोशनी है। दृष्टि का व्यायाम करो, आँख और पुतली का व्यायाम नहीं। इसका यत्न गुरु से जानो। शब्द वह चीज है, जो सबमें व्यापक है। बिना शब्द से सृष्टि नहीं हो सकती। शब्द कम्पमय और कम्प शब्दमय होता है। कम्पन-पुंज को सृष्टि कहते

हैं। शब्द से सृष्टि का विकास है। ईश्वर की मौज हुई और सृष्टि हो गई। दादूदयालजी ने कहा—

यन्त्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार।
पंचौ कारज नाद है, दादू बोलणहार।।
पंच ऊपना शबद थैं, शबद पंच सौं होय।
साईं मेरे सब किया, बूझे बिरला कोय।।

कबीर साहब कहते हैं—

साधो शब्द साधना कीजै।
जेहि शब्द से प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै।।
शब्दहि गुरु शब्द सुनि शिष भे, शब्द सो विरला बूझै।
सोई शिष्य सोइ गुरु महातम, जेहि अंतर गति सूझै।।
शब्दै वेद पुराण कहत हैं, शब्दै सब ठहरावै।
शब्दै सुर मुनि संत कहत हैं, शब्द भेद नहिं पावै।।
शब्दै सुनि सुनि भेष धरत हैं, शब्द कहै अनुरागी।
षट दर्शन सब शब्द कहत हैं, शब्द कहै वैरागी।।
शब्दै माया जब उतपानी, शब्दै केरि पसारा।
कहै कबीर जहँ शब्द होत है, तवन भेद है न्यारा।।

अंधकार में भी शब्द पकड़ा जाएगा, लेकिन बड़ा झंझट है। इसलिए संतों ने प्रकाश का शब्द पकड़ने कहा। शब्द अपने केन्द्र में खींचता है। कुत्ते को पुकारने से वह निकट आ जाता है।

चुम्बक सत्त शब्द है भाई, चुम्बक शब्द लोक ले जाई।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा, सत्त शब्द जो बसै शरीरा।।
—दरिया साहब, बिहारी

यह आधार है। शब्द से सभी दर्जे पार हो जाएँगे। यही ऋषि-मुनि का नादानुसंधान है और साधु-संतों ने इसे ही सुरत-शब्द-योग—नाम-भजन कहा है। नाम-भजन केवल वर्णात्मक में ही है—ऐसा नहीं, वर्णात्मक एवं ध्वन्यात्मक दोनों में है।

आपके पास शूच्याचार और सदाचार दोनों होना चाहिए। हमारे देश में बड़े-बड़े शुच्याचारी और सदाचारी हुए हैं। आज तो इन आचारों का इतना पतन हुआ है कि जिसका ठिकाना नहीं है। विद्वान बहुत बड़े-बड़े हैं, किंतु अपने हृदय को देखें कि कितने नीचे गिरे हुए हैं? ईश्वर-भजन से सदाचार को बड़ा संबंध है। सदाचार आपके हृदय को शान्त बना देगा। आज स्वराज्य है। सदाचार का पालन कीजिए तो सुराज्य हो जाएगा। सभी कोई सदाचारी बन जाओ तो एक सिपाही की भी जरूरत नहीं होगी। सभी कोई सदाचारी बन जाएँ, तो चोर, डाकू कोई नहीं हो सकते। पंच पापों—चोरी, जारी, नशा, हिंसा और झूठ से बचो। कानून की लाठी खूब चली और टूट गई, लेकिन देश में अत्याचार ज्यों-का-त्यों बना है। सदाचार का पालन कीजिए तो इहलोक तथा परलोक दोनों में आनंद से रहिए। धन कमाने के लिए सदाचार पालन करने की कोई जरूरत नहीं होती। जैसे-तैसे धन कमा सकते हैं, किंतु ईश्वर-भक्ति के लिए सदाचार का पालन अनिवार्य है। इसलिए सबको सदाचार का पालन करना चाहिए और शुच्याचारी भी बनना चाहिए। n

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत छपरा जिला के टाउन हॉल, छपरा में दिनांक ४.१.१९६१ ई० के सत्संग में हुआ था।

१६५. राजविद्या राजगुह्य का तात्पर्य

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जो सत्संग हमको सत् से नहीं बाँधता है, उसको हम सत्संग कहें, अनुचित है। सत् की खोज करने पर, सत् को समझने पर यही ज्ञान में आता है कि सत् परमात्मा है। परमात्मा वा ईश्वर वा कुल्लमालिक सर्वेश्वर ही सत् है। उससे जो सत्संग हमको नहीं जोड़ता, वह सत्संग कहने योग्य नहीं। परमात्मा हमको अपनी स्थूल इन्द्रियों के कारण,

शरीर के कारण प्रत्यक्ष दर्शन नहीं दे रहे हैं। इसीलिए हमको ऐसे सत्संग की आवश्यकता है, जो शरीर और इन्द्रियों से ऊपर उठने के लिए सहायक हो, तब सत्संग ठीक है।

संतों की वाणियों में इन्हीं बातों का भरपूर ज्ञान है। वेदों में तलाश करने पर, उपनिषदों में खोज करने पर उनमें भी यही बात है और गुरु के मुख से भी यही बात सुनी है।

ईश्वर-ज्ञान के लिए वेद का, उपनिषद् का जो ज्ञान है, कबीर साहब, गुरु नानक साहब, सूरदासजी, गोस्वामी तुलसीदासजी सबका वही ज्ञान है, दूसरा नहीं। युक्ति जानने के लिए संतों ने जिस तरह खुलासा तरीका बताया है, उस यत्न का संकेत पहले के ग्रंथों में भी अवश्य है, लेकिन साफ-साफ बता देना तो संतों के ग्रंथ में ही पाते हैं।

योगशास्त्र हमारे यहाँ है। इसके बिना सीढ़ी लगाकर ज्ञान की पूर्णता तक कोई नहीं पहुँचा सकता, यही ईश्वर तक पहुँचाता है। इस योग शास्त्र की युक्तियों के महान जलाशय से सीधा और सरल यत्न बता देना संतों का काम है।

ईश्वर-वरूप के लिए संतों ने जैसा कहा है, श्रीमद्भगवद्गीता और वेद में भी वही बात है। वहाँ सूर्य और चन्द्र नहीं, देश और काल नहीं, इन्द्रियों से उसका ज्ञान नहीं आदि। जैसा कबीर साहब आदि संतों ने कहा है, उसी तरह वेद, उपनिषदादि ग्रंथों में भी है। उस तरह पहुँचने का सरल मार्ग संतों ने बताया है। कबीर साहब ने कहा है—

न योगी योग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।

सुनने से होता है कि क्या बात हो गई। यह इसलिए कि हम युक्ति नहीं जानते हैं। लेकिन इसका आशय है कि हठयोग में प्राणायाम पर जोर दिया गया है, लेकिन प्राणायाम तक ही साधनाओं का अंत नहीं है। उसके बाद धारणा, ध्यान और समाधि है। न तो प्राणायाम करे और न तप से देह जलवावे; ध्यान की युक्ति कुछ और ही है। लोग हठयोग की क्रिया देखकर समझते हैं कि यह बड़ा कठिन है और जो स्वयं ध्यान नहीं करते थे, उन्होंने अंदाज से ही कह दिया कि ध्यान बड़ा कठिन है, मत करो, कुछ जप आदि स्थूल पूजा कर लो। तीसरी बात यह है कि मोटी पूजा के द्वारा जो आर्थिक लाभ होता है, सूक्ष्म भेद बताने से वह आर्थिक लाभ नहीं होगा। इसलिए उन्होंने मोटी उपासना का खूब जोर-शोर से प्रचार किया।

मैं यह नहीं कहता कि मोटी उपासना का कोई काम नहीं है, बल्कि ऐसा कि मोटी उपासना में ही लगे नहीं रहो, उसके बाद सूक्ष्म उपासना भी करो। स्थूल उपासना इसलिए की जाती है कि तुम सूक्ष्म उपासना के योग्य बनो। यदि सूक्ष्म उपासना ही नहीं हो तो गीता में राजविद्या राजगुह्य का तात्पर्य क्या है? राजविद्या यदि राजाओं की विद्या कहो, तो फिर उसके साथ गुह्य विद्या जो है, सो क्या है?

कबीर साहब, गुरु नानक साहब सभी संतों ने स्थूल उपासना करने कहा। ये लोग मोटी उपासना की मनाही करते, तो कबीर साहब और गुरु नानक साहब ही क्यों कहते कि—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

—संत कबीर साहब

गुर की मूरति मन महि धिआनु। गुरु कै शबदि मंत्र मंनु मानु।।
गुर के चरण रिंदै लै धारउ। गुरु पारब्रह्म सदा नमसकारउ।।

—गुरु नानक साहब

लेकिन यह नहीं कहते हैं कि यहीं तक भक्ति खत्म हो गई। गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

भगता की चाल निराली।
चाल निराली भगता केरी विखम मारगि चलणा।।

लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाहीं बोलणा।।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।।
गुर परसादी जिनि आपु तजिया हरि वासना समाणी।।
कहै नानक चाल भगताह केरी जुगहु जुग निराली।।

और कबीर साहब कहते हैं—

जो कोई निरगुन दरसन पावै।।
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै।।
बिन जिभ्या नामहिं को सुमिरै, अमिरस अजर चुवावै।
अजपा लागि रहै सूरति पर, नैनन पलक डुलावै।।
गगन मंदिल में फूल फुलाना, उहाँ भँवर रस पावै।
इंगला पिंगला सुखमनि सोधै, प्रेम जोति लौ लावै।।
सुन्न महल में पुरुष विराजै, जहाँ अमर घर छावै।
कहै कबीर सतगुरु बिनु चीन्है, कैसे वह घर पावै।।

संतों ने स्थूल सगुण रूप उपासना के बाद सूक्ष्म सगुण रूप उपासना, फिर सूक्ष्म सगुण अरूप उपासना और अंत में निर्गुण-निराकार-उपासना करने को कहा है। विद्वान लोग भी निर्गुण-सगुण उपासना को ठीक-ठीक नहीं समझ सकने के कारण लिखते हैं कि कबीर साहब और गुरु नानक साहब निर्गुणियाँ संत थे और गोस्वामी तुलसीदासजी और सूरदासजी सगुणियाँ भक्त थे। वे कहते हैं कि संतलोग भगवान श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण को नहीं मानते हैं। लेकिन मैं तो कहता हूँ कि संतलोग जैसा भगवान श्रीराम और भगवान श्रीकृष्ण को मानते हैं, वैसा तो और कोई मानते भी नहीं हैं। संतों की दृष्टि क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है, क्षेत्रज्ञ पर भी है। विद्वान लोग केवल टटोल-टटोलकर लिखते हैं। पढ़े-लिखे तो हैं ही, बहुत मोटी-मोटी किताब लिख देते हैं, लेकिन विशेष ढूँढ़ते नहीं इसलिए कि संतों की युक्ति का उन्हें ज्ञान नहीं और इसीलिए वे ठीक-ठीक लिख भी नहीं सकते। लेकिन जो युक्ति जानते हैं, वे ठीक-ठीक लिख सकते हैं। संतों ने स्थूल उपासना के बाद सूक्ष्म उपासना बतायी।

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

बीजाक्षर को—परम विन्दु को कैसे पकड़ोगे, इसकी युक्ति गुरु से जानो। अभ्यास करो, अवश्य पाओगे। जो विन्दु को धारण करेगा, वह नाद को पावेगा।

विन्दु में तहँ नाद बोलै, रैन दिवस सुहावनं।

—संत पलटू साहब

मैंने स्थूल उपासना करने से मना करता हूँ और न उसमें फँसकर रहने कहता हूँ। प्रतिमा है वा जीवित मूर्ति है, तो उसको प्रणाम करने में कोई हर्ज नहीं। परमात्मा सब जगह है ही। 'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत...' गोस्वामी तुलसीदासजी। जो परमात्मा सबमें रहता है, उसको पहचानो, तब कहना ही क्या? जो सबमें एक है, उसको कैसे पहचानोगे? अपने ही आप नहीं पहचान सकते। यदि अपने ही आप पहचान हो जाती, तो संसार में गुरु की आवश्यकता ही क्या थी।

पहले से ही कोई निर्गुण उपासना नहीं करता। पहले स्थूल सगुण रूप उपासना, फिर सूक्ष्म सगुण रूप उपासना, फिर सूक्ष्म सगुण अरूप उपासना और अंत में निर्गुण निरकार उपासना। मानस जप और मानस ध्यान स्थूल सगुण रूप उपासना है, विन्दु ध्यान और ज्योति ध्यान, सूक्ष्म सगुण रूप उपासना है, अनहद नाद का ध्यान रूप रहित होने पर भी सगुण उपासना है और सारशब्द का ध्यान निर्गुण निराकार उपासना है।

सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु, गुरु के वचन समाई हो।
मेली चित्त चरा चित राखो, रहो दृष्टि लौलाई हो।।

—संत कबीर साहब

यह सहज ध्यान है। चलनेवाले चित्त को अंदर समाकर, अचल करके रखो। संतों की युक्ति,

संतों का ज्ञान बिल्कुल ठीक है। असल है, ईश्वर तक पहुँचने का यह सरल और सुगम मार्ग है। इससे सुगम और कोई साधन नहीं है। इसीलिए 'न तपसी देह जरवावै' कहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि अभ्यास-योग से ज्ञान, ज्ञान से ध्यान और ध्यान से कर्मफल-त्याग विशेष है, यदि कहें कि ध्यान से कर्मफल-त्याग विशेष है, तो बिना समत्व के कोई कर्मफल त्यागी नहीं हो सकता। इसके लिए ध्यान करो। आप से जितना बने, करो। हड़बड़ मत करो कि तुरन्त ही हो जाए। यदि हड़बड़ करके तुरंत हो जाता तो गीता में भगवान अनेक जन्मों की चर्चा क्यों करते?

इसका थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते रहो, अंत में मोक्ष दिलाकर छोड़ेगा। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि 'योग के आरम्भ का नाश नहीं होता।' बड़ा ठीक कहा है। इसे करते रहो।

n

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत रोहतास जिला के डेहरी ऑन सोन में दिनांक ७.२.१९६१ ई० के सत्संग में हुआ था।

१६६. अध्यात्म-विज्ञान का प्रयोगशाला

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता!

अपने देश में भौतिक-ज्ञान और अध्यात्म ज्ञान दोनों ज्ञानों का प्रचार—शिक्षा बहुत प्राचीन काल से है। ऐसा किसी देश में है, मालूम नहीं। भौतिक-ज्ञान उसको कहते हैं, जिस ज्ञान के अंदर संसार के तत्त्वों की जानकारी, पहचान और प्रयोग सीखते और करते हैं। इसमें संसार का बहुत कुछ लाभ मालूम होता है। इसके साथ-साथ हानि भी बहुत है। हानि और लाभ दोनों हैं। लाभ की तरफ चलो तो इसके द्वारा लाभ होगा और अपने को लाभान्वित करो। लाभ उठाओ, लेकिन दूसरे को भी उसी तरह का लाभ नहीं होता। लाभ जितना होता है, उतना ही लोभ बढ़ता है। इसलिए शान्ति—तृप्ति होती नहीं। वासनाओं का पूर्णरूपेण क्षय होता नहीं। इसलिए तृष्णा और लालच उमड़ते रहते हैं। जीवनभर किसी भौतिक वैज्ञानिक को शान्ति मिले, संभव नहीं। दूसरी बात है कि जो मनुष्य बहुत कुछ सोचता-विचारता है, जिसने भौतिक तत्त्वों को उपलब्ध किया है, बहुत लाभ उठाया है, तो इसका मूल कहाँ है? मनुष्य, किसी को इसलिए कहते हैं कि उसकी शकल मनुष्य की तरह होती है। भौतिक विज्ञान के द्वारा लोगों ने यह निश्चय नहीं कर पाया कि इस शरीर में भौतिक तत्त्व ही केवल है या और कुछ? वे केवल भौतिक तत्त्व को ही जानते हैं। इसके अतिरिक्त और क्या है, वे नहीं जानते। दूसरी तरह से विचारने पर मालूम होता है कि भौतिक तत्त्वों के मिलाप से ज्ञानमय तत्त्व हो जाता है, जो संभव नहीं। भले ही कुछ पदार्थों को जोड़कर स्पन्दनयुक्त बनाते हैं। स्पन्दनयुक्त होने के कारण वह ज्ञान क्रियायुक्त हो, ऐसा नहीं। ज्ञानमय तत्त्व में स्पन्दन है अवश्य, लेकिन आज तक इसका आविष्कार हुआ नहीं कि जड़ तत्त्वों के मिलन से जो स्पन्दन होता है, वह ज्ञानमय हो। एक ऐसा तत्त्व है, जो सर्वव्यापी और ज्ञानमय है। इस ज्ञानमय तत्त्व को ही चेतन कहते हैं। यही सब उन्नतियों और लाभों का मूल है। इसके अतिरिक्त दूसरा जड़ तत्त्व है, जिससे सर्व पिण्ड और ब्रह्माण्ड बने हुए हैं। यह मनुष्य-शरीर अर्थात् मनुष्य-पिण्ड

कतिपय यंत्रों से युक्त एक ऐसा यंत्र है, जिसमें उस ज्ञानमय तत्त्व का विशेष विकास है। प्रत्यक्ष में देखो कि इस शरीर में कान है तो उससे शब्द सुन लो। इसके अतिरिक्त इससे और कुछ ज्ञान नहीं होता। अंधा शब्द सुनता है, लेकिन दृश्य नहीं देख सकता। आँख से शब्द और कान से रूप का ज्ञान नहीं होता है। चेतन सत्ता जड़ सत्ता से भिन्न है। दोनों के मिलाप तथा यंत्र विशेष से चेतन का कार्य विदित होता है, लेकिन जड़ इन्द्रियों के लिए चेतन अव्यक्त है। इन्द्रियों से अज्ञात तत्त्व को ग्रहण नहीं कर सकने के कारण भौतिक विज्ञानी को कथित चेतन सत्ता के होने में संशय होता है; क्योंकि वह उनको प्रत्यक्ष नहीं दीखता। अध्यात्म विज्ञानी आत्म-अनुभव में चेतन सत्ता को प्रत्यक्ष देखता है। वह उस सत्ता को भी देखता है, जिसके कारण चेतन सत्ता का प्रादुर्भाव हुआ है। शरीर के अंदर चेतन सत्ता और आत्म सत्ता नहीं हो तो केवल जड़ शरीर, ज्ञान का काम करे, सम्भव नहीं। जबतक चेतनयुक्त जड़ शरीर है, तबतक यह शरीर बोलता-चालता है। उससे विशेष है कि जिस ज्ञान वा विद्या से उसको प्रत्यक्ष किया जाता है, वह है अध्यात्म विज्ञान। अध्यात्म-विज्ञान के लिए भौतिक विज्ञान की तरह कोई प्रयोगशाला बाहर में नहीं है। इसकी प्रयोगशाला मानव-शरीर है। हाँ, इसमें भी शिक्षा देनेवाला—दीक्षा देनेवाला होता है। उस अध्यात्म-ज्ञान के द्वारा जो उपलब्ध होता है, शरीर के अंदर-अंदर जो प्रयोग होता है, उसको उन्होंने समझा है। भौतिक विज्ञानी के लिए भी यह आवश्यक है कि मन को एकओर करके सोचो, विचारो, जानो और प्रयोग करो। जरा भी गड़बड़ होगा तो जोखिम हो जाएगी। अध्यात्म-ज्ञान में भी मन को एकाग्र करने कहा गया है। इतना एकाग्र हो कि एकविन्दुता प्राप्त हो जाए। इसकी शिक्षा और दीक्षा गुरु लोग देते हैं। इसको साधक पहले सुनता है, समझता है और प्रयोग कर कुछ पाता है, तब उसका संशय जाता रहता है, सभी बन्धनों को तोड़ डालता है, परमानन्द और परम-शान्ति पाता है। इससे विशेष फल कुछ नहीं है। इसी की शिक्षा संतों ने अनेक प्रकार से दी है। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर सिकलीगढ़ धरहरा में मास ध्यान साधना के अवसर पर दिनांक १६.२.१९६१ ई० के सत्संग में हुआ था।

१६७. तीन प्रकार के कर्म

प्रियजनो!

हमलोग जो सत्संग करते हैं, इसका खास अभिप्राय यह है कि हम अपने कर्तव्य-कर्म को जानें। हम मायावश होकर कर्म करते हैं। हम कर्तव्य-कर्मों को जानें और कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करके तब कर्म करें, यह उत्तम है। बिना विचारे कर्म करना हानिकारक है। सभी जानते हैं कि कर्म का फल भोगना पड़ेगा। कर्मफल को भोगते-भोगते अनेक जन्म हो गए, फिर भी हम बंधन में हैं। इस बंधन से छूटे बिना हम संसार से छूट नहीं सकते। इसलिए अपने कर्म को जानने के लिए सत्संग का सहारा अवश्य चाहिए। बिना सत्संग के हम इस निर्णय को नहीं जान सकते कि क्या करना चाहिए? इसलिए दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, अर्धवार्षिक और वार्षिक आदि सत्संग करते हैं। संत और भगवन्त ने हमलोगों को जो कर्म की विधि बताई है, उसके अनुकूल चलने से हम कर्म-बंधन से छूटते हैं और अंत में संसार-बंधन से मुक्त हो जाते हैं। जन्म-मृत्यु और इन दोनों के बीच समय में जो हमलोगों को संसार में कष्ट होता

है, उससे हम छूट जाएँ, यदि हम भगवान श्रीकृष्ण और संतों की वाणी के अनुकूल चलें। इसीलिए इस सत्संग का आयोजन है। यह परिश्रम और खर्च सभी के लिए बहुत लाभदायक है।

ध्यानविन्दूपनिषद् में है कि कर्म से हम कैसे छूट सकते हैं? हमलोग कभी सात्त्विक भाव, कभी राजस भाव एवं कभी तामस भाव से कर्म करते हैं। जब हम सात्त्विक भाव में रहते हैं, तो राजस और तामस भाव भी उसमें रहते हैं, लेकिन ये भाव दबे रहते हैं और सात्त्विक की प्रधानता रहती है। इसी तरह राजस की प्रधानता होने से सात्त्विक और तामसभाव दबे रहते हैं और तामस की प्रधानता होने से सात्त्विक और राजस दबे रहते हैं। हमलोग विशेषत: तामस भाव का कर्म करते हैं, उससे कुछ राजस भाव का कर्म करते हैं। तामस पीछे-पीछे रहता है और सात्त्विक गुण गौण रहता है। ईश्वर कर्म-भोगों में हमको उसी तरह घुमाते हैं, जैसे कुम्हार चाक को घुमाता है या जैसे कोई कुम्हार के चाक पर घुमता हो। ईश्वर कर्म का फल देता है। वह उत्तम कोटि के सात्त्विक बंधन को उत्तम भोगों द्वारा शिथिल करता है और निष्कृष्ट तामस बंधन को नीचे की जीव योनियों में भेजकर शिथिल करता है और मध्यम श्रेणी के पाश को विविध योनियों के भोग से शिथिल करता है। शिथिल करने का अर्थ है कि उसकी प्रबलता नहीं रहती है। ऐसा नहीं कि वह कर्म नष्ट हो जाता है। कर्म नष्ट कैसे हो जाएगा? संतों की बताई विधि के अनुकूल चलने से हम परमात्मा को प्राप्त कर परम मोक्ष को प्राप्त कर सकेंगे। उनके बताए कर्म कैसे हैं? जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने बताए हैं। सात्त्विक भाव में रहने के लिए हमको क्या करना होगा? उत्तम विचार में रहने के लिए हमको क्या करना होगा? उत्तम विचार में रहना और साधन करना। साधन की युक्ति संतलोग बताते हैं कि जो साधन-भजन अंतर्मुख होता है, वह करो—ध्यानविन्दूपनिषद् में कहा गया है कि मनुष्यों को अपनी आत्मा की ओर देखना चाहिए। आत्मा की ओर होने के लिए कोई कहे कि बहिर्मुख होने से आत्मा की ओर होओगे, यह गलत बात है। आत्मा की ओर होने के लिए अपने शरीर के अंदर ही अपने को रखो। ऐसा कोई कहे तो बिल्कुल ठीक है। क्योंकि आत्मा बाहर में कहीं है, ऐसी बात नहीं। शरीर के अंदर उसकी स्थिति है, इसलिए उसके लिए अंतर्मुख होना होगा। अंतर्मुख होने के लिए किसी मर्मज्ञ से पूछते हैं, तो वे कहते हैं कि तुम्हारे अंदर तीन वृत्तियाँ हैं—बाईं, दायीं और इनके मध्य। जो दाईं और बाईं ओर की वृत्ति है, वह राजस और तामस है, मध्य की वृत्ति सात्त्विकी है। अपने को मध्य वृत्ति में रखने का कोई यत्न बता दे, तो वैसा करो। एक बंगाली योगी कहते हैं—

बायें इड़ा नाड़ी दक्षिणे पिंगला। रजस्तमो गुणे करिते छे खेला।
मध्य सत्त्वगुणे सुषुम्ना विमला, धर धर तारे सादरे।।

बहुत अच्छा कहा है। सुषुम्ना में वृत्ति रखो तो सात्त्विकता-ही-सात्त्विकता है। राजस और तामस की दखल नहीं है। जो मध्य में अपने को रख सकता है, वही सात्त्विकता में रहकर सात्त्विक कर्म कर सकता है। उपनिषद्-वाक्य है कि—

अकार: पीतवर्ण: स्याद्रजोगुण उदीरित:।
उकार: सात्त्विक: शुक्लो मकार: कृष्ण तामस:।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

अ, उ, म तीनों के मेल से ॐ बनता है। अभ्यासी अभ्यास करता है तो कभी पीले रंग का, कभी काले रंग का और कभी श्वेत रंग का उदय होता है। कालेपन में तामस भाव, पीलेपन में राजस भाव और श्वेतपन में सात्त्विक भाव होता है। लेकिन यह होता किसको है? जो अंतर की ओर चलने

का अभ्यास करता है—आत्मा की ओर होता है। जो कोई अपने को मध्यवृत्ति में रखने के लिए सुषुम्ना में ठहराने की कोशिश करता है, वही यह देखता है, दूसरा नहीं। उसमें रहते हुए जो कर्म करता है, वह आत्मा की ओर अंतर्मुखी होकर रहता है। वह उधर जाता है, जिधर जाकर अपने को—आत्मा को चीन्हेगा। आत्मा को चीन्हकर परमात्मा को भी चीन्हेगा। क्योंकि आत्मा ही परमात्मा को पहचानती है। ध्यानविन्दूपनिषद् में है—

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन ।।

अर्थात् कई योजन तक फैला हुआ पहाड़ के समान यदि पाप हो तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है। उसके समान पापों को नष्ट करनेवाला कभी कुछ नहीं हुआ है। इसलिए कि ध्यानयोग के अभ्यास से अभ्यासी अपने मन को और किसी ओर नहीं जाने देने में समर्थ होता है, सात्त्विकता के भाव को रख अपने को लक्ष्य में लगाकर रहता है। सारे चिंतनों को छोड़ता है यदि कोई चिन्तन आता है तो उसको हटाता है। इसका अभ्यास करते-करते वह राजस और तामस भाव से छूटता है और सात्त्विक भाव बढ़ता है। फिर ध्यान करते करते वह सात्त्विक भाव से भी ऊपर हो जाता है। ध्यान करते-करते सिमटाव होता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। ऊपर की ओर उठना होता है। ऊपर की ओर उठने का अर्थ है स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना। ऊर्ध्वगति में वह कर्ममण्डलों से ऊपर उठता है।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। पुरुषार्थ से जो कर्म होता है, उसे क्रियमाण कहते हैं। किए हुए कर्म जो जमा होकर रहते हैं, उसे संचित कहते हैं। संचित में जो थोड़ा-थोड़ा भोग होता है, उसे प्रारब्ध कहते हैं। प्रतिदिन कर्म होते ही रहते हैं। फिर संचित और प्रारब्ध होते रहते हैं। इस तरह कर्म का चक्र चलता रहता है। इस चक्र को पार करने के लिए ध्यानयोग है। इसका अभ्यास करते-करते पहले के लोगों ने कर्मचक्र को पार किया है। 'जाता योगी किनहुँ न पावा'—गुरु गोरखनाथजी ने कहा है। इसी बात को जानने के लिए यह सत्संग है। पौराणिक कथाओं को बहुत लोग जानते हैं। लेकिन उसमें इस ज्ञान का वर्णन स्वल्प-स्वल्प एवं यत्र-तत्र है। सत्संग से इसी का विशेष प्रचार होता है, चाहे आप वैष्णव बनकर, चाहे शाक्त बनकर ध्यानयोग का अभ्यास कीजिए। शाक्त का अर्थ मांस-मछली खाकर ऐसा नहीं। शाक्त का अर्थ है शक्ति का उपासक बनकर। आत्मभाव में स्त्रीलिंग और पुलिंग चिह्न कहाँ? यहाँ किसी सम्प्रदायवाले को ध्यानयोग करने में बाधा नहीं। इस ज्ञान के मानने से कोई अपने सम्प्रदाय से हट जाएँगे, ऐसी बात नहीं। संतमत कोई एक अलग सम्प्रदाय नहीं। सब संतों की जो राय है, वही संतमत है। यह सभी संत महापुरुषों का विचार है—इसी विचार को संतमत कहते हैं। सत्संगी महाशयगण संतमत के सिद्धान्त और उसकी परिभाषा को नित्य पढ़ें। नित्य पाठ से वे समझेंगे कि यह एकपक्षीय मत नहीं है। सभी संतों की वाणियाँ और विचार संतमत है। गीता में जो आया है कि कर्मफल त्यागकर कर्म करो—आत्मरत होकर कर्म करो, सो आत्मरत होने के लिए अपना निशाना अपने अंदर, अपने को उसपर लगाए हुए रहने से होता है। यह दृष्टिसाधन है। प्रत्याहार करते-करते अपने लक्ष्य पर स्थिर होते हैं। यह आत्मरत होने का आरम्भ है। संसार में भली तरह रहिए और आत्मरत होने का अभ्यास कीजिए। n

यह प्रवचन संथालपरगना जिलान्तर्गत सरकण्डा—गोड्डा में दिनांक २५.३.१९६१ ई० को वार्षिक अधिवेशन के सत्संग में हुआ था।

१६८. देश में शान्ति कैसे आएगी

प्यारे लोगो!

संत कबीर साहब ने कहा है—

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जाको कछु न चाहिए, सोई शाहंशाह।।

जब इच्छा की निवृत्ति हो जाती है, तब चिन्ता चली जाती है और मन बेपरवाह हो जाता है, निडर हो जाता है। उस निडर मन को भी जो काबू कर लेता है, वही हो जाता है राजाओं का राजा।

जो इच्छावाला होता है—यह चाहिए, वह चाहिए, आराम से नहीं रहता है। जो इच्छाओं को त्याग देता है, उसको कोई डर नहीं रहता है। यह कैसे होगा? यह होता है बाहर के सत्संग और अंतर के सत्संग द्वारा।

ईश्वर-संबंधी कथा बाहर का सत्संग है। ईश्वर से मिलने का जो यत्न है, उस यत्न को पाकर जो कोशिश करता है, वह मन को भी जीत लेता है। मन मण्डल को पार कर लेता है। यह है अंदर का सत्संग। इन दोनों तरह के सत्संगों से कभी न कभी उस गति को पाता है, जिसके बाद कोई गति नहीं है, वही है परममोक्ष या निर्वाण।

अध्यात्महीन राजनीति पवित्र दशा में नहीं रहेगी और जिस राजनीति में कुछ भक्ति और अध्यात्मिकता की नीति होगी, वह राजनीति पवित्र रहेगी और बहुत दिनों तक रहेगी।

हमारे देश के अध्यात्म-ज्ञान को विदेश में प्रचार करने के लिए दो तो प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं, एक स्वामी विवेकानंद, दूसरे स्वामी रामतीर्थ। स्वामी रामतीर्थ कुछ दिन गृहस्थाश्रम में भी रहे। फिर उनको ऐसे गुरु मिल गए, जिन्होंने उनसे कहा कि विद्या तो आपकी बड़ी है, इसमें आध्यात्मिकता मिला दीजिए तो सब कुछ मिल जाएगा। स्वामी रामतीर्थ पहले गए जापान, फिर गए अमेरिका 'युनाइटेड स्टेट्स' में। वहाँ विद्या भी बहुत है और धन भी बहुत है। उत्तरी अमेरिका—सबसे उत्तरी भाग को कनाडा कहते हैं। वहाँ मित्र राज्य होगा। इसीलिए उसको युनाईटेड स्टेट्स कहते हैं। वहाँ धन बहुत है, लेकिन शान्ति नहीं है।

भारत कहता है मन को काबू करो, शान्ति आएगी। जाग्रत में मन काबू में नहीं है, स्वप्न में मन काबू में नहीं है। गहरी यह नींद में केवल श्वास चलता है और कुछ मालूम नहीं होता। इसमें कुछ शान्ति में तो सोते हैं, लेकिन गहरी नींद सदा रहती नहीं। फिर सुषुप्ति से जाग्रत की अवस्था में आते हैं और शान्ति नहीं पाते हैं। जिन लोगों ने साधन किया, वे लोग कहते हैं कि तुरीयावस्था में चलो। फिर तुरीयातीतावस्था में चलो। यह काम रेल-गाड़ी और हवाई जहाज पर चलने से नहीं होगा। अंदर-अंदर चलने से होगा। इसका यत्न गुरु बताएँगे। गुरु के प्रति श्रद्धा हमारे देश में बहुत है। गुरु में, सच्छास्त्र में विश्वास-श्रद्धा है। गुरु के वचन में, माता-पिता के वचन में श्रद्धा होनी चाहिए। इसीलिए कहा गया है— **'प्रथम गुरु है माता पिता....।'**

जो दोनों तरहों से सत्संग करते हैं, उनकी मन पर कभी-न-कभी विजय अवश्य होती है। इस दुनिया से निकल जाने के वास्ते, परलोक से भी निकल जाने के वास्ते तुरीयावस्था में चलना होता है। इसके भी परे तुरीयातीतावस्था में चलना होता है। तभी जीवन-मुक्ति की दशा होती है।

जिनको जीवन-मुक्ति की दशा होती है, वे अपने से अपने को जानते हैं, ईश्वर को भी जान लेते हैं, उनको जानने के लिए कुछ बाकी नहीं रह जाता है। इसीलिए साधन करना चाहिए; भक्ति करनी चाहिए। भक्ति के बीज का नाश नहीं होता है। संत कबीर साहब ने कहा है—

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत॥
भक्ति बीज पलटै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल॥

यही जानकर साधन-भजन सीखना चाहिए। माता-पिता का आदर करना चाहिए। सिखलानेवाले गुरुओं का भी आदर करना चाहिए। इनके संग में क्या मिलता है?

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

इस तरह वे जीवनमुक्त हो जाते हैं।

जीवत मुक्त सो मुक्ता हो।
जब लगि जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुक्ता हो।

जो जीवन-मुक्त हो जाते हैं, उनका संसार में आने-जाने का काम बंद हो जाता है। यही हमलोगों को करना चाहिए। n

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत ग्राम—मिर्जापुर, कटिहार में दिनांक १९.१०.१९६१ ई० के सत्संग में हुआ था।

१६९. संतमत और अनामी मत

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपलोगों को मालूम हुआ है कि सहर्षा जिला संतमत-सत्संग का वार्षिक अधिवेशन है। इसलिए आपलोग यहाँ एकत्रित हैं। यह संतमत कोई ऐसा स्वतंत्र या खास सम्प्रदाय नहीं है, जिस स्वतंत्र और खास सम्प्रदाय में कुछ ऐसी कट्टरता होती है कि जिसके कारण खण्डन वा झंझट होने की संभावना होती है। शांति प्राप्त किए महापुरुषों को संत कहते हैं। उन महापुरुषों के विचार एक हैं। उनको ठीक-ठीक समझने और समझाने के लिए संतमत है। किसी एक महात्मा के नाम पर संतमत कहकर यह नहीं चल रहा है। इसमें इसके लिए कोई साहित्य चाहिए। एक बहुत बड़ी नहीं और न बहुत छोटी है, सन् १९४० ई० में एक पुस्तक छापी गई है, उसका नाम है—सत्संग-योग। जिसने उसको देखा होगा, उसमें उन्होंने देखा होगा कि कितने संतों के वचन उसमें हैं और कितना मिलान है। संतों के नाम अलग-अलग हैं, लेकिन सब का मत एक है और इसी के लिए वह संग्रह किया गया है। हमलोग नित्य के सत्संग में संतमत की परिभाषा और उसके सिद्धान्त का पाठ करते हैं। मैंने जहाँ तक सत्संग किया है और गुरु महाराज के वचनों से सुना है, जाना है कि संतलोग बड़े आस्तिक थे। यह संतमत पूर्ण आस्तिक मत है। यह केवल कलिकाल के संतों का ही ख्याल है, ऐसा नहीं। उपनिषदों का ख्याल भी मिलता है। वेद, उपनिषद् और संतों की वाणियों में एक ही ज्ञान है। मैंने कोशिश की कि लोग जानें कि यह वही बात है, जो बहुत पुरानी है। कुछ लोग ऐसा ख्याल करते हैं कि संतमत वेदानुकूल नहीं है और ठीक इसी के उलटे कुछ लोग कहते हैं कि संतों का ज्ञान वेद से ऊँचा है। मैंने सुना तो आश्चर्यित हुआ कि जो सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद है, उसमें संतों का ज्ञान कैसे नहीं होगा? और वेद से संतों का ज्ञान

ऊँचा कैसे होगा? इसलिए मैंने वेद-संहिताओं को मँगाकर पढ़ा और उनसे संकलित कर एक पुस्तक लिखी, जिसको 'वेद-दर्शन-योग' कहते हैं।

पहले के कुछ संत वेद और संस्कृत पढ़े थे और कुछ संत कुछ भी नहीं पढ़े थे। उन्हें केवल सत्संग के द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ था। जैसे कबीर साहब एक अक्षर भी पढ़े-लिखे नहीं थे। सत्संग से ही उनको ज्ञान हुआ। लेकिन उनकी साखी को जब पढ़ते हैं कि—

कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय।।
मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक।।

तो मालूम होता है कि वे बड़े भारी ध्यानी थे। शरीररूपी समुद्र में उन्होंने गोता लगाया था। उनको सुफी संतों का भी संग था। ठीक है, लेकिन कोई केवल श्रवण और मनन ज्ञान से ज्ञान में पूर्ण नहीं होता। समाधिजन्य ज्ञान में ही पूर्ण ज्ञान होता है। कबीर साहब पूर्ण ज्ञानी थे। गोस्वामी तुलसीदासजी कुछ पढ़े-लिखे थे। इनको संस्कृत में भी कुछ दखल था। सत्संग और साधना के द्वारा संतों ने ज्ञान प्राप्त किया। इन लोगों को ईश्वर की स्थिति में बहुत विश्वास था। साधन-भजन कैसे करो, इसका भी वर्णन इनकी वाणियों में है। मेरे कहने का मतलब यह कि लोग ऐसा न समझें कि कबीर पंथ वा अन्य पंथ वा सम्प्रदाय की तरह यह अलग पंथ 'संतमत' है। बल्कि यह ख्याल दिलाता हूँ कि सभी संतों का एक मत है।

राधास्वामी मत आगरा से चला है। उसमें लिखा है कि राधास्वामी मत अथवा संतमत। इसके प्रथम आचार्य जो हुए, वे गृहस्थ थे, परंतु बड़े भारी त्यागी थे। दूसरे आचार्य भी बड़े त्यागी थे। भारत में सबसे प्रथम भारतीय पोस्ट मास्टर जनरल वही हुए। और इतने बड़े कि मैं कह सकता हूँ कि वे भी अपने गुरु से कम नहीं। प्रथम आचार्य ने कहा कि मेरा तो संतमत और अनामी मत है। परन्तु शालिग्राम का चलाया हुआ राधास्वामी मत है, उसको भी चलने देना। कबीर साहब ने नहीं कहा कि मेरा कबीर पंथ है, परंतु उनके श्रद्धालु शिष्यों ने उनके नाम पर कबीर पंथ रखा। सब संतों की वाणियों और वेदों को पढ़ने पर मुझे पूरा विश्वास हो गया कि सब संतों का एक ही विचार है।

जहाँ-जहाँ सत्संगी हैं, वहाँ-वहाँ दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, विशेषाधिवेशन और अखिल भारतीय संतमत वार्षिक सत्संग होता है। इस तरह का सत्संग बिहार में अधिक तथा और प्रान्तों में भी होता है। हमलोगों को साम्प्रदायिकता का भेद-भाव रखकर किसी से भेद-भाव नहीं रखना चाहिए। मेरा मत बड़ा और दूसरे का मत छोटा, यह भेद-भाव कर झंझट-झगड़ा वैमनस्य नहीं करना चाहिए। संतमत सिखाता है—'ईश्वर की भक्ति करो।' ईश्वर-भक्ति में बिना सदाचारी बने नहीं चल सकता है। सदाचार के बिना संसार में कुशलपूर्वक नहीं रह सकते। अपनी हालत को सोचो, जिस हालत में हो। संसार में किसी भी पद पर रहो, विकारों से दबे रहते हो। बड़ी इज्जत, हुकूमत, धन और विद्या पा लो, फिर भी चित्त की शान्ति और संतुष्टि किसी को है, यह आपलोग विचार कर लीजिए। अगर किन्हीं को है, तो उन्होंने एक बात और की है— ईश्वर की ओर गमन, अन्तर्मार्ग द्वारा। तब उनको शान्ति है, सो भी तब, जब वे पूरे हों। संसार में बड़ा बनिए, सदाचार पालन कीजिए। लोग चाहते हैं—हुकूमत, विद्या और धन। इनके लिए अपने देश और सभी देशों में क्या-क्या होता है, सभी लोग जानते हैं। येन-केन-प्रकारेण करके ऐसा करते हैं। किंतु ईश्वर की भक्ति करने में सदाचार पालन करना आवश्यक होगा। संसार में आप बड़े हों,

ठीक है; लेकिन बिना ईश्वर-भक्ति के आप सदाचारी बन न सकेंगे। बिना सदाचारी बने आप संसार में किसी पद पर रहें, कल्याण नहीं पा सकते, शान्ति नहीं पा सकते।

मुक्तिकोपनिषद् में कहा गया है कि बन्ध और मोक्ष को जानो। वासना से तुम बँधे हो, इससे मुक्त होओ। पिण्ड और ब्रह्माण्ड इन दोनों के बंधनों से छूटो। दोनों को आपस में इतना सामंजस्य है कि पिण्ड के जितने तल हैं, ब्रह्माण्ड के भी उतने तल हैं। पिण्ड जितने तत्त्वों से बने हैं, ब्रह्माण्ड भी उतने तत्त्वों से बने हैं। पिण्ड के जिस तल से जब जो छूटता है, ब्रह्माण्ड के भी उस तल से तब वह छूटता है। इस सिद्धान्त को जो ठीक-ठीक समझते हैं और पिण्ड के तलों को पार करते हैं तो ब्रह्माण्ड के भी तलों को पार कर जाते हैं। जबतक स्थूल वा सूक्ष्म कोई भी तल रहता है, तबतक ईश्वर दर्शन नहीं होता। जबतक ईश्वर-दर्शन नहीं होता, तबतक बंधन नहीं छूटता। इसके लिए संतों ने बाहर में जाना नहीं बताया। अपने अंदर-अंदर चलने कहा, सत्संग करने कहा।

अध्यात्म-शास्त्र का पाठ करने के लिए मुक्तिकोपनिषद् में भी कहा गया है। यह भी सत्संग है। अपने मन को काबू में करने कहा। जैसे कोई संसार में कुछ अनुष्ठान करते हैं, उसी तरह नित्यानन्द-प्राप्ति के लिए वेदान्त श्रवण आदि करने कहा। वेदान्त में कहा है कि शम, दम, तितिक्षा आदि को पकड़ना चाहिए। श्रवणादि का अर्थ है—श्रवण, मनन, निदिध्यासन और अनुभव-ज्ञान प्राप्त करो। सुनो, समझो, विचारो और उनके अनुकूल साधन करो। साधन समाप्त करने पर ज्ञान पूर्ण होता है। इसी को अनुभव ज्ञान कहते हैं। निदिध्यासन की पूर्णता अनुभव ज्ञान में होती है। केवल पढ़ो और उसका आचरण नहीं करो तो कलछुल के तुल्य हो। जो साधन द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने के लिए कोशिश नहीं करते, उन्हें केवल पढ़ने से ही ईश्वर-दर्शन नहीं होता।

कबीर साहब ने कहा कि घर में रहकर ही ईश्वर-भजन—साधन करो। स्वयं कबीर साहब घर में रहते थे और उपदेश करते थे। यद्यपि लोगों ने इनको बहुत कष्ट भी दिया। गुरु नानक का जीवन 'राजस' ठाट का था और कबीर साहब का 'साधारण'। घर छोड़ने पर ही साधन-भजन कर सकोगे, ऐसा संतों ने नहीं कहा। बल्कि ऐसा कहा कि 'घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि वन नहिं जावै।' घर में रहकर सदा एकान्त ध्यान नहीं हो सकता। कभी एकान्त और कभी एकान्त नहीं। इसलिए पलटू साहब ने कहा—

कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।
सो ध्यानी परमान, सुरत से अण्डा सेवै।
आप रहे जल माहिं, सूखे में अण्डा देवै।।
जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै।
कर छोड़ै मुख वचन चित्त कलसा में लावै।।
फणि मणि धरै उतारि आपु चरने को जावै।
वह गाफिल ना परै, सुरति मणि माहिं रहावै।।
पलटू सब कारज करै, सुरति रहै अलगान।
कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।

जैसे कछुवी का ख्याल अण्डे पर और पनिहारी का ख्याल पानी भरे घड़े पर रहता है, उसी तरह संसार में संसार के कामों को करते हुए भगवान का ध्यान करते रहो। अंत में आती है—सहज समाधि।

शब्द निरन्तर से मन लागा, मलिन वासना भागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी ताड़ी लागी।।

—कबीर साहब

दरिया साहब ने कहा है—

सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक विहीन नहिं तारा।
झिन झिन जंतर निशदिन बाजै, जम जालिम पचि हारा।।

सहज समाधि आखिरी बात है, आरंभ की नहीं। सब दशा में भक्त उसमें लगा रहता है।

शबद खोजि मन वश करै, सहज योग है येहि।
सत्त शब्द निज सार है, यह तो झूठी देहि।।
—कबीर साहब

नादानुसंधान सबसे सरल साधन है। आरंभ में ही कोई इसका ध्यान नहीं करते। इसका ज्ञान सब कोई जानें। गीता में आया कि योगस्थ रहकर कर्म करना। योग कहते हैं—समत्व प्राप्त करने को। समत्व प्राप्त करने का जो साधन है, वह योग है। समत्व में बुद्धि स्थिर हो जाती है। स्थिर बुद्धि का अर्थ है—बुद्धि का स्थिर हो जाना। बिना आत्मरत हुए कोई समत्व नहीं प्राप्त कर सकता। आत्मरत होने के लिए साधन करना होगा—अपना निशाना अपने अंदर, अपने उस पर लगे हुए। गुरु से इसका यत्न सीखो। इस तरह आत्मरत होने से ज्ञान हो जाएगा। आत्मा और अनात्मा को ठीक-ठीक पहचानेगा। वह आत्मरत होगा, जो उपर्युक्त साधन करेगा। भगवान श्रीकृष्ण नित्य प्रति साधन करते थे। श्रीमद्भागवत में लिखा है। मेरे ख्याल से भगवान श्रीकृष्ण को साधन करने के लिए बाकी नहीं था, लेकिन सब लोग ध्यान करें, इसके लिए वे भी त्रय-काल संध्या किया करते थे। योगस्थ रहकर काम करना—'तन काम में मन राम में।' यह उसी को होगा, जो समाधि-साधन करेगा। साधन में नादानुसंधान करना होगा, तब पूर्ण आत्मरत हुआ जाएगा। n

यह प्रवचन सहर्षा जिलान्तर्गत ग्राम—बिहारीगंज (वर्तमान मधेपुरा) में दिनांक २७.१.१९६२ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१७०. द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आजकल हमलोग बहुत कडुवे समय के अंदर से चल रहे हैं। लोगों में हल्ला है कि यह अष्टग्रहों के संयोग का समय है। इसमें भयंकर-भयंकर रोग फैलते हैं, राष्ट्रों में युद्ध होते हैं, भूकम्प होता है, आदमी बहुत कष्ट पाते हैं। इन सब बातों से डरकर लोगों ने बहुत से शुभ अनुष्ठान किए हैं। यह बहुत अच्छा है। दुःख से बचने के लिए शुभ कर्म की ओर अपने मन को लगाओ, तो दुःख की ओर से मन हट जाता है। महाभारत के समय बहुत उत्पात हुआ था। युद्ध में युधिष्ठिर के बहुत से लोग मर गए थे, उनका मन राज्य करने में नहीं लगता था, वे जंगल जाकर तप करना चाहते थे। उनका मन बहुत दुःखी था तो उनके मन को दुःख की ओर से फेरने के लिए यज्ञ करवाया गया था। इसी तरह लोग कीर्तन, यज्ञ आदि की ओर मन को लगाकर दुःख को भुलाते हैं। हो सकता है, ईश्वर की कृपा से इन कर्मों से अष्टग्रह-योग का प्रभाव भी कम पड़े। लेकिन लोग जो इतना खर्च कर रहे हैं, यह थोड़े दिनों के लिए। इस आपदा से बढ़कर और भी आपदा है, जो सब दिन लगी रहती है। रामचरितमानस में आया है—

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड।।

आप इतिहास को याद कीजिए। एक समय ऐसा हुआ कि यहाँ से धन लूटकर ले जानेवाले ले जाते थे, गाँवों को जलाते थे, पुरुषों को गुलाम बनाते थे, स्त्रियों को भी पकड़-पकड़कर ले जाते थे; ऐसा अपने देश में पहले हुआ था। यदि फिर ऐसा हो तो आप इतने डरेंगे कि खाना-पीना भूल

जाएँगे। एक बार फ्रांसिसी सेना इंगलैंड में उतर गई, तो डर के मारे इंगलैंड के बहुत लोगों को पेचिश की बीमारी हो गई। यदि आपके ऊपर भी कोई आक्रमण करे तो आपकी क्या हालत होगी? इस तरह मनुष्य की फौज का आक्रमण कुछ काल तक रहता है, फिर नहीं रहता। लेकिन जो आक्रमण सदा से है, उसके दबाव में सब दिन पड़े हैं। उसका कुछ भी डर नहीं, आश्चर्य है! भारत ही नहीं, तमाम संसार में माया की भयानक सेना फैली हुई है। सेना की मार खाते हैं, दुःखद भोग भोगते हैं। फिर भी होश में नहीं आते। माया के सेनापति बाहर में नहीं, सबके अंदर-अंदर हैं। सोचिए, है कि नहीं? कभी काम, कभी क्रोध, कभी लोभ, कभी मोह इतना सताता है कि मनुष्य, मनुष्य नहीं रह जाता है, पशु से भी खराब हो जाता है। इस सेना के दबाव में हम सदा से पड़े हैं। इससे छुटकारा मिले, इसका क्या यत्न है? यह माया किसकी है?

सो दासी रघुवीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि।।

कोई उकताकर रोवे, चिल्लावे वा देह को नष्ट करे तो कोई लाभ नहीं होगा। जिसके द्वारा माया रचित है, उसको जानो। यदि उसकी शरण लो तो उसकी जरा-सी कृपा से माया खत्म हो जाए।

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।

जिस तरह आपलोग ग्रह से डरकर शुभ अनुष्ठान करते हैं, उसी तरह यह भी डरिए कि आप सब कोई माया की फौज से दबे हैं, इससे छूटें, इसके लिए भी शुभ अनुष्ठान करें। शुभ अनुष्ठान का एक ही यत्न है कि ईश्वर की कृपा प्राप्त करो; क्योंकि 'छूट न रामकृपा बिनु' कहा गया है। पहले राम को जानो।

यह भारत धर्म प्रधान देश है, ईश्वर की मान्यता के लिए मुँह फैलाकर कहता है कि ईश्वर है। हमारे देश में कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते। वे अनात्मवादी हैं। लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है। भारत देश की सर्वोत्तम निजी उपज आध्यात्मिक ज्ञान है। राम-राम, शिव-शिव आदि कहने के लिए बचपन से ही हमको सिखाया जाता है। आजतक कितने बच्चे, बूढ़े और जवान इस संसार से चले गए; लेकिन बहुत कम लोग ईश्वर-स्वरूप को जानते हैं। इसीलिए जो ईश्वर नहीं है, उसको भी ईश्वर कहकर मानते हैं। ईश्वर की प्राप्ति नहीं करके ईश्वर की माया को पाते हैं। श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है कि भूतों को पूजनेवाले भूतों को, देवताओं को पूजनेवाले देवताओं को और मुझे भजनेवाले मुझको पाते हैं।

ईश्वर की सत्ता का बोध हमको होना चाहिए। वह ईश्वर राम कैसा है? 'सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज विज्ञान रूप बलधामा।।' विज्ञान का अर्थ है विशेष ज्ञान। लेकिन आजकल यह प्रचलित है कि कुछ सामान लेकर जो यंत्र बनाते हैं, वह विज्ञान है। वैज्ञानिक ऐसे-ऐसे बम, तोप आदि बनाते हैं कि तीन, चार वा पाँच बमों से ही संसार को खत्म कर दें। लेकिन ऐसा एक भी यंत्र नहीं बन सका है कि मृतक को जीवित किया जा सके। कहानी है भगवान श्रीराम के दल के जो लोग मर गए, उन लोगों को अमृतवर्षा करके श्रीराम ने जिला दिया। यह भी विज्ञान है। ईश्वर महावैज्ञानिक हैं। भौतिक वैज्ञानिक संसार के तत्त्वों को लिए बिना कुछ बना नहीं सकते। लेकिन ईश्वर ऐसा वैज्ञानिक है कि बिना उपादान के ही सृष्टि करता है।

तदि अपना आपु आप ही उपाया।
नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया।।

गुरु नानक ने कहा। इसलिए परमात्मा 'अज विज्ञान रूप बलधामा' है। भौतिक विज्ञानी बिना उपादान के एक चुटकी मिट्टी भी नहीं बना सकता।

ईश्वर की तरह वैज्ञानिक आधिभौतिक विज्ञानी हो नहीं सकता। रामचरितमानस में कहा गया कि—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ।।

यह क्या है? जिसका रूप काछते हैं, वह वही नहीं बन जाता। जिसने राजा का रूप धारण किया, वह कौन था?

उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहेहु कुविचारी।।

आकाश में अंधकार, धूल और धुआँ फैला हुआ देखकर कुविचारी कहते हैं कि सूर्य इनसे ढँक गया है। लेकिन एक ही समय में समस्त संसार में धुआँ, धूल वा अंधकार नहीं हो सकता। हमारे यहाँ मालूम होता है कि दिन है और इसी समय अमेरिका में रात है। धुआँ, धूल वा अंधकार समूचे संसार को व्याप नहीं सकता। किसी अंश में है तो और अंश बाकी है। आप जो माया का फैलाव देखते हैं, ईश्वर इससे ढँक गए हैं, ऐसा नहीं। लेकिन ऐसा कि माया के आवरण से आवृत उसका कोई अंश ही हो सकता है। सूर्य बादल, धुएँ और धूल से ढँक नहीं सकता; क्योंकि वह बहुत बड़ा है। बादल का मण्डल उसके सामने बहुत छोटा है। हमारी दृष्टि दूर तक नहीं जाती है, इसलिए सूर्य को नहीं देखकर हम बादल-ही-बादल देखते हैं। इसी तरह माया से आवृत रहने के कारण जो आत्मस्वरूप है, उसे हम नहीं देख पाते। राम वैसा भी है, जिसका जन्म हुआ है—'जन्म कर्म अगनित हरि केरे।' और राम वैसा भी है,जिसका जन्म न हो। जन्म होने से आपको कहना पड़ेगा कि वे कभी हुए, उसके पहले वे नहीं थे। मायारूप का जन्म होता है, स्वरूप का नहीं। स्वरूप का कभी होना नहीं होता, वह सदा रहता ही है। स्वरूप के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

अनुराग सो निजरूप जो जग तें विलच्छन देखिये।
संतोष सम सीतल सदा दम देहवन्त न लेखिये।।
निर्मल निरामय एकरस तेहि हरष सोक न व्यापई।
त्रय लोक पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई।।

इसको समझिए। अवतार में देह है, लेकिन आत्मस्वरूप में देह नहीं है। भगवान का जन्म हुआ, इतने बड़े हुए और इतने दिन रहे, यह माया में होता है। लेकिन वहाँ 'निर्मल निरामय एक रस तेहि हरष सोक न व्यापई', यह आत्मस्वरूप है। इसका जन्म कभी नहीं हुआ। इसके पहले कुछ नहीं हो सकता। उसको परमात्मा—ईश्वर कहते हैं। जो सबसे पहले का है, वह कितना बड़ा है? अगर कहा जाय कि उसमें सीमा थी, तो आकाश उस सीमा के बाहर था। तब अवकाश पहले हुआ, उसी अवकाश में भगवान श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण ने विराट रूप धारण किया वा विष्णु भगवान ने विराट रूप धरकर बलि से पृथ्वी ली थी। मेरा वा आपका जो शरीर इस पृथ्वी पर है, यह माता के गर्भ में था, पीछे इस पृथ्वी पर आया। इसलिए जिसके पहले का कुछ नहीं, अपनी सत्ता से वह इतना व्यापक कि जिस व्यापकता के परे और कुछ मानना असंभव है। जो सदा असीम है, कभी ससीम हो नहीं सकता, वह परमात्म-स्वरूप है। वह असीम है, अपरिमित है, शक्तियुक्त है। गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्द में है—

'व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।'

'अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।'

—गुरु नानकदेव

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।

—कबीर साहब

'अणोरणीयान् महतो महीयान्' (कठोप०) और 'बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा' एक ही बात है। बड़े से बड़ा वही हो सकता है, जिससे बड़ा और कुछ नहीं हो। उसी में यह सारा विश्व है और इस विश्व में वह व्यापक है। जो परमात्मा इतना व्यापक है, वह इन्द्रियों से ग्रहण होने योग्य नहीं है। जो जितना अधिक व्यापक होता है, वह उतना ही अधिक सूक्ष्म होता है। जो सबसे अधिक सूक्ष्म होगा, वह सबसे अधिक व्यापक होगा। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता। हमारी इन्द्रियाँ स्थूल-ही-स्थूल हैं। इन स्थूल इन्द्रियों से उस सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण हो, संभव नहीं। लक्ष्मणजी से श्रीराम ने कहा था—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।
राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

यह स्वरूप परमात्मा का है। इन्द्रियों से जो ग्रहण हो, वह माया है, व्यक्त है। परमात्मा का असल स्वरूप अव्यक्त है। इसीलिए—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोइ।।

जो भाव दीखता है, वह माया है और जो उसमें व्यापक है, वह माया नहीं बना। इस बात को जाननेवाले कम हैं। सब लोगों को यह बूझना चाहिए। श्रीकृष्ण भगवान के कहे अनुकूल जो अव्यक्त को जानते हैं, वे बुद्धिमान हैं। जो अव्यक्त को नहीं जानते, वे मूढ़ हैं।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।७-२४।।

उस ईश्वर की कृपा से हम विकारों से छूटेंगे।

क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया।।

उसकी भक्ति हम करें। उसके स्वरूप को जानें। उसकी ओर जानेवाले कम हैं। जो नहीं जानते हैं, वे मोटी भक्ति में लगे रहते हैं। मैं कहता हूँ, मोटी भक्ति का आरंभ करो और सूक्ष्म भक्ति की ओर भी जाओ। मकान की नींव देने से ही काम खत्म नहीं होता, उस पर मकान बनाना होता है। इसी तरह मोटी भक्ति नींव है, उस पर सूक्ष्म की भक्ति मकान है।

सत्संग ज्ञानयज्ञ है। द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।

—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ४-३३

यदि श्रद्धा और प्रेम से आप ज्ञानयज्ञ और द्रव्ययज्ञ; दोनों करते हैं, तो आपके दोनों हाथों में लड्डू है। इसके अतिरिक्त अध्यात्म-यज्ञ भी होता है। ज्ञानयज्ञ परोक्ष ज्ञान है, अध्यात्म-यज्ञ प्रत्यक्ष कराता है। भगवान करें कि आप अध्यात्म-यज्ञ भी करें। वेद में भी अध्यात्म-यज्ञ का वर्णन आया है। यह करते-करते होता है।

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।
जामि ब्रबुत आयुधा।।

—सामवेद सूत्र, १० मंत्र २

अर्थात् ज्ञानीगण अपने स्त्रोतों द्वारा जब इन्द्र अर्थात् आत्मा ही को जीवनरूप-यज्ञ का साधन बना लेते हैं, तब विद्वान लोग अन्य प्राण आदि इन्द्रिय साधनों या यज्ञ के पात्रादि को प्रयोजन रहित ही सहयोगी मात्र कहते हैं। साधक लोग जब जब अध्यात्मयज्ञ करते हैं, तब द्रव्ययज्ञ व्यर्थ जान पड़ता है।

n

यह प्रवचन सहर्षा जिलान्तर्गत ग्राम—बिहारीगंज (मधेपुरा) में दिनांक २७.१.१९६२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१७१. विकारों ने सतयुग को भी नहीं छोड़ा

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

गुरु महाराज ने मुझको जैसा काम करने की आज्ञा दी है, अवश्य ही वह काम इतना विशाल, इतना भारी है कि मैं उसको पूर्ण रूप से कर सकूँ, यह मुझे बहुत कठिन मालूम हो रहा है। यह सत्संग का काम वही काम है।

अभी आपने सुना है—'बिनु सत्संग विवेक न होई।' सत्संग में सार और असार का ज्ञान होता है। सार और असार का ज्ञान करा देना सरल नहीं है। जो इसको नहीं समझते हैं, वे इसको हल्का समझें, हो सकता है; लेकिन जो इसको जानते हैं,वे जानते हैं कि दर्शनशास्त्र में जो ऊँचा स्थान रखता है, उसमें है कि उसको सार-असार का ज्ञान हो जाए। यह बहुत विशेष बात है। जो जानकार लोग हैं, वे जानते हैं। मैं जो थोड़ा जानता हूँ, वह आपलोगों से कहूँगा।

पहली बात यह है कि मनुष्य जहाँ भी हो, जिस हालत में हो, वहाँ वह सोचे कि वहाँ उसका रहना कैसा है? अच्छा है या अच्छा नहीं है। जिस हालत में वह है, उस हालत में उसको रहना चाहिए वा नहीं। बुद्धिमान लोग कहते हैं कि आपदाजनक स्थान हो तो वहाँ नहीं रहना चाहिए। जहाँ शान्ति नहीं, वहाँ से उसको शान्ति के स्थान में जाना चाहिए।

हमलोग इस संसार में रहते हैं। एक गाँव के लोग जिस हालत में रहते हैं, दूसरे गाँव के लोग भी उसी हालत में हैं। तमाम संसार की यह एक ही बात है। हमलोग जगते हैं, स्वप्न में जाते हैं, गहरी नींद में जाते हैं। पुन: जगते हैं। फिर जिनसे जो काम बन पड़ता है, करते हैं। ऐसा नहीं होता कि किसी देश के आदमी सोए नहीं, जगे नहीं, जगकर काम करे नहीं। बहुत विद्वान, अविद्वान, धनाढ्य वा निर्धन किसी भी तरह के होने पर सोना और जगना लगा ही रहता है। जगने में, स्वप्न में, गहरी नींद में हमलोग क्या-क्या फल पाते हैं, सबको मालूम है। तमाम संसार की यह हालत है।

हम दूसरों से पूछें कि आपको स्वप्न में, जगने में कैसा होता है? यह पूछना कठिन है; क्योंकि संसार बहुत बड़ा है। किंतु इतिहास-पुराणों को पढ़कर ज्ञात होता है कि जितने पहले हुए, अभी हैं और जो होंगे; सभी सोने-जगने में यही परिणाम पाते हैं और पावेंगे। किसी को जगने में चैन नहीं मिलता है। कहिए कि गहरी नींद में चैन होता है तो इसका पता नहीं कि उस समय वे चैन में थे वा चैन में नहीं थे। जगने पर कहते हैं—बहुत गहरी नींद में सोया। बहुत गहरी नींद के समय इसका ज्ञान नहीं था। ऐसा भी नहीं होता कि गहरी नींद में कोई काम नुकसान नहीं होता। बल्कि कहते हैं कि सो गया तो अमुक काम खराब हो गया। और गहरी नींद की अवस्था बराबर रहती भी नहीं है। इससे जाना जाता है कि वह अवस्था भी ठीक नहीं है। लोग ऐसा भी काम कभी कर लेते हैं, जो नहीं करना चाहिए। इससे जाना जाता है कि हमको इन अवस्थाओं में चैन नहीं है, चाहे कुछ बनकर संसार में रहो। संसार में रहना ही ऐसा है कि शान्तिपूर्वक रहने का स्थान नहीं है।

बिहार राज्यान्तर्गत पुरैनियाँ जिले के फारबिसगंज के एक ब्राह्मण थे। उनको बहुत कम जमीन थी। सर्वेकाल में उनकी जमीन बटाईदारों ने लिखा ली।

बेचारे ब्राह्मण बहुत दुःखी हुए। बटाईदारों से मुकदमा लड़ नहीं सकते थे। इसलिए वे तत्कालीन प्रधान-मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के पास दिल्ली चले गए। बहुत प्रयास और प्रतीक्षा के बाद उनको कई दिनों के पश्चात् १बजे रात्रि में मिलने का समय मिला। जब वे ब्राह्मण प्रधानमंत्री नेहरूजी के समीप गए तो उन्होंने देखा कि नेहरूजी अपने काम में १बजे रात होने पर भी बहुत व्यस्त हैं। नेहरूजी ने पूछा—'कहिए, आप क्या कहना चाहते हैं?' इन्होंने कहा—'आपको देखकर लगता है कि आपसे सुखी मैं ही हूँ। इतनी रात तक जगकर काम करने की मुझे कोई जरूरी नहीं रहती। आप इतने बड़े पद पर हैं, फिर भी चैन नहीं है।' यह सुनकर पण्डित नेहरू बहुत प्रसन्न हुए और इनका काम भी कर दिया। इस लिहाज से दुनिया में रहना अच्छा नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि घर-वार छोड़कर गाछ के नीचे रहो। तो गाछ के नीचे रहने पर भी दुनिया कहाँ छूटी? भूख लगने पर कंद-मूल खोजने और प्यास लगने पर कुँए की ओर जाना ही पड़ेगा। अथवा कंद-मूल जंगल में नहीं मिले तो गाँव की ओर, बाजार की ओर जाना ही पड़ेगा। अभी आपने सुना—

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड॥
—रामचरितमानस

कोई अपना सिर ऊँचा करना चाहे तो माया की यह प्रचण्ड सेना ऊपर होने नहीं देती। बाहर में तो नहीं, लेकिन सोचिए कि अपने-अपने अंदर हैं वा नहीं? इन विकारों में फँसकर लोग क्या-क्या करते हैं, विचारिए। एक हाकिम के लिए भी और एक किसान के लिए भी वही बात।

सबसे आसान काम किसानी है, उसमें भी झंझट है। विद्यालय कितना पवित्र होना चाहिए, उसमें भी सुनने में आता है, आपस में झगड़ा-झंझट होती है। निम्न विद्यालय, उच्च विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय की भी यह बात सुनी जाती है। अंगुलि दिखाने का काम श्रीराम से भी हो गया। बालि ने कहा—'आप तो धर्म के अवतार हैं, आपने छिपकर मुझे क्यों मारा?' युधिष्ठिर को दब कर झूठ बोलना पड़ा। अर्जुन ने कह दिया—'भाई साहब! आपको वह दोष लग गया, जो श्रीराम को लग गया था।'

यह संसार काजल की कोठरी है। यहाँ कुछ-न-कुछ दाग लग ही जाता है और उसका फल दुःख अवश्य होता है। इसलिए इस संसार से भाग जाना अच्छा है। काम, क्रोधादिक विकारों ने सतयुग को भी नहीं छोड़ा। कहते हैं कि पाप विशेष होने पर भगवान का अवतार होता है, तो सतयुग में ही हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए, जिनके लिए भगवान को अवतार लेना पड़ा। त्रेता, द्वापर में भी हुआ और कलियुग में हमलोग देख ही रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

कहहिं वेद इतिहास पुराना। विधि प्रपंच गुन अवगुन साना॥

इसलिए ऐसा मौका यदि मिले कि इससे निकल जाएँ, तो इससे निकलना ही अच्छा है। आजकल अष्ट ग्रह का डर हमलोगों के यहाँ बहुत है। इस डर के मारे लोग धर्मानुष्ठान करते हैं, यज्ञ करते हैं, कीर्तन करते हैं आदि। डर होना भी अच्छा है। संत कबीर साहब ने कहा—

डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहे सो ऊबरे, गाफिल खावै मार॥

जो लोग उद्यम करनेवाले हैं, सभी यदि डर करना छोड़ दें, आपके जिम्मे जो काम है, उसको छोड़ दें, तो उसका नतीजा बुरा हो जाएगा। अपने ऊपर ही हानि हो जाएगी। ऊपरवाले पद से हटा न दे, नीचे न कर दे; इस डर से लोग नौकरी करते

हैं। इस साल लोग यज्ञ बहुत करते हैं, क्यों? डर के मारे। लेकिन यह डर कितने दिनों के लिए? सुनने में आया है कि पण्डित लोग कहते हैं कि अढ़ाई वर्ष तक इसका प्रभाव रहेगा। लेकिन जो माया के प्रभाव जन्म-जन्मान्तर से हमारे ऊपर लगे हैं, उनसे क्यों नहीं डरते हैं? माया की सेना जो कराना चाहती है, वैसा करा लेती है, अपनी इच्छा नहीं रहने पर भी। इसलिए उस बड़े की शरण लेनी चाहिए, जिसके वश में माया है, जिसके इशारे पर माया नाचती है। संत कबीर साहब ने कहा है—

काल रूपी चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात।
अगुन सगुन दुइ पाटला, तामें जीव पिसात।।
आसे पासे जो रहे, निपट पिसावे सोय।
कीला से लागा रहे, ताको विघ्न न होय।।

जिस समय कबीर साहब थे, उस समय अष्ट-ग्रह की कोई बात नहीं थी। लेकिन समझिए तो कबीर साहब के पहले भी और अब भी उस काल की चक्की चलती ही रहती है। कीले से तात्पर्य है परमात्मा का। जिसके सहारे से सगुण और निर्गुण सारा विश्व गुँथा हुआ है, जैसे कील से जाँते का पट्टा गुँथा हुआ है। परमात्मा से सटकर रहा तो संसार में भी कुशल है और परलोक में भी। इसी से मोक्ष—मुक्ति—निर्वाण मिलता है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई।।
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकई हरि भगति बिहाई।।
—रामचरितमानस

अर्थात् जैसे बिना धरती के जल ठहर नहीं सकता, चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे। हे गरुड़जी! सुनिए, उसी प्रकार हरि-भक्ति को छोड़कर मोक्ष-सुख दूसरी जगह रह नहीं सकता। जहाँ भक्ति है, वहीं मोक्ष है। कोई कहे कि संसार से छूटने का और कोई उपाय है, तो वह हो नहीं सकता। ईश्वर की भक्ति करो कल्याण होगा। संसार में जो कल्याण है, स्वर्ग में जो कल्याण मिलता है, वह अकल्याण में बदल जाता है। इसलिए भगवान श्रीराम ने कहा—

स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई। —रामचरितमानस

जहाँ-जहाँ स्वर्गादिक लोक हैं, वहाँ-वहाँ कुछ न कुछ आपदा है। ब्रह्मा को भी दुःख होता है। ब्रह्मलोक में जाने पर भी दुःख होता है।

राजा श्वेत ब्रह्मलोक गए। उन्होंने दान नहीं किया था। फलस्वरूप उनको ब्रह्मलोक में भूख-प्यास सताने लगी। तब उन्होंने ब्रह्माजी को कहा। ब्रह्माजी ने कहा—'यहाँ खाने का कोई सामान है ही नहीं। आपने कभी दान नहीं किया, उसका ही फल है कि यहाँ आपको भूख-प्यास सता रही है। इसलिए आप अमुक सरोवर में जाएँ, वहाँ आपका मृत शरीर सुरक्षित है। उसी का भोजन करें। राजा श्वेत ने पूछा—'महाराज! यह भोग मुझे कब तक भोगना पड़ेगा?' ब्रह्माजी ने कहा—'जब आपको अगस्त्य मुनि का दर्शन होगा और जब उनका आशीर्वाद आपको मिलेगा तो आप इस कष्ट से मुक्त हो जाएँगे। राजा श्वेत लाचारी नित प्रति उक्त सरोवर जाते और अपने मृत शरीर का मांस खाकर भूख बुझाते। संयोगवश वहाँ अगस्त्य मुनि पहुँचे। उन्होंने देखा कि दिव्य शरीर है, लेकिन मृत शरीर का मांस खा रहे हैं, तो उनसे पूछा—'आप कौन हैं?' राजा श्वेत ने अपना परिचय दिया और आशीर्वाद माँगा। तब वे उस भोग से मुक्त हुए। और स्वयं ब्रह्माजी की भी कहानी है, वह कहने योग्य नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनि नायक आतमबादी।।
मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।
तृष्ना केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा।।
ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडम्बना, कीन्ह न एहि संसार।।

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नयन सर, को अस लाग न जाहि।।
गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही।।
जोवन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा।।
मत्सर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा।।
चिन्ता साँपिनी को नहिं खाया। को जग जाहि न व्यापी माया।।
कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा।।
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।।

चाहे ऊँचे से ऊँचे दर्जे का स्वर्ग हो, माया की सेना सर्वत्र फैली हुई है। गोलोक भगवान का विहार-स्थान है। सबसे ऊँचा लोक है। वहाँ भी शापा-शापी होती है। जैसे वैकुण्ठ में जय-विजय को शाप हुआ। वैसे ही श्रीदामा को शाप हुआ तो वह राक्षस हो गया। कंस से युद्ध हुआ। दोनों बली थे। कोई हारे नहीं। दोनों में मैत्री हो गई। कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के लिए भेजा। श्रीकृष्ण ने उसको मार डाला। संत कबीर साहब ने कहा है—

तन धर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहतु हैं, सबका किया विवेका हो।।
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो।
सुकदेव अचारज दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागी हो।।
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुख दुना हो।
आसा तृस्ना सबको व्यापै, कोई महल न सूना हो।।
साँच कहौं तो कोइ न मानै, झूठ कहा न जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो।।
अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी विपरीती हो।
कहै कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो।।

संसार से निकल जाने की बात यह है कि जहाँ संसार नहीं है, वहाँ जाया जाय। जहाँ काल की चक्की नहीं है, वहाँ जाया जाय। जहाँ काल है, वहाँ देश है। जहाँ देश है, वहाँ काल है। वहाँ स्पेश एण्ड टाईम (Space and Time) को कोई अलग नहीं कर सकता। देश कालातीत हुए बिना कल्याण नहीं। इसके लिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

भक्ति से देशकालातीत होना होता है और उस भक्ति के साथ योग होगा, जिससे होगा कि—

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।

इसी योग में शर्करा और बालू का मेल और सफरी मछली का भाठे से सिरा जाना होता है। सफरी मछली छोटी, किंतु बड़ी तेज होती है। वह भाठे से सिरे में जाती है। जो सुरत का सिमटाव करता है, उसकी ऊर्ध्वगति होती है। चेतन की धार ऊपर से नीचे आती है। जो सुरत को समेटकर उस धार में लगाता है, वह उसके उद्‌गम स्थान पर चला जाता है। चीनी चेतन-धार है और बालू जड़-धार। जो ध्यान करता है, सुरत का सिमटाव करता है,वह जड़-धार से चेतन-धार को फुटा लेगा, जैसे बालू से चीनी को चींटी अलग कर लेती है। यह योग की क्रिया है। ऐसा योगी नींद छोड़कर सोता है और वह उस पद को पाता है, जहाँ शोक, मोह, भय, हर्ष, दिवस नहीं है। गीता में भी कहा है—

न तद्‌भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्‌गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

अर्थात् उस पद को सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकती है। जिस परम पद को प्राप्त कर मनुष्य इस संसार में नहीं आते, वह मेरा

परम धाम है। संत कबीर साहब ने कहा—

कहौं उस देश की बतियाँ। जहाँ नहिं होत दिन रतियाँ।।

इसलिए सब आपदाओं से बचने के लिए केवल ईश्वर-भक्ति के और कोई साधन नहीं है।

ईश्वर-भक्ति में ईश्वर-स्वरूप का जानना आवश्यक होता है। इसमें सार-असार का ज्ञान होता है। यह भी विचार लेना अच्छा है कि इस संसार में किसी भी पद पर रहो, कल्याण नहीं। महात्मा गाँधीजी ने पंडित जवाहरलाल नेहरू को मंत्री पद देने कहा, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को राष्ट्रपति बनाने कहा, लेकिन अपने उन्होंने कोई पद नहीं लिया। वे बड़े बुद्धिमान थे।

आत्मा और अनात्मा का विचार ही वेदान्त ज्ञान है। इससे आगे ज्ञान नहीं जाता। जहाँ वेदान्त ज्ञान है, वहाँ कहा गया है कि ज्ञान को दो भागों में बाँटो—परोक्ष और अपरोक्ष। परोक्ष ज्ञान में गलती भी हो सकती है। अपरोक्ष में गलती नहीं हो सकती। परोक्ष ज्ञान के अंदर ही श्रवण, मनन ज्ञान है और जबतक साधन करते हैं, तबतक का निदि-ध्यासन ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। यहाँ ज्ञान की पूर्णता नहीं है। पढ़-सुनकर जो ज्ञान होता है, वह अधूरा ज्ञान है। जबतक निदिध्यासन में हो, तबतक भी पूरा नहीं हुआ। निदिध्यासन का अंत होने पर अनुभव ज्ञान होता है और तब पूर्ण ज्ञान होता है।

श्रवण ज्ञान अग्नि है। मनन ज्ञान बिजली है। निदिध्यासन ज्ञान बड़वानल के समान है और अनुभव ज्ञान प्रलय काल की अग्नि के समान है। सारे द्वैत प्रपञ्च को जलाकर भस्म कर देती है। यह अद्वैत वेदान्त का कथन है। जो कुछ तुम इन्द्रियों से जानते हो, वह माया है—अनात्मा है। रामायण में आया है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

इन्द्रियों के ज्ञान से जो ऊँचा ज्ञान है, मन-बुद्धि से भी जो ऊँचा ज्ञान है, मूल प्रकृति का जो ज्ञान है, उससे भी ऊँचा ज्ञान हो। इन्द्रियों से परे मन, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे प्रकृति, प्रकृति से परे पुरुषोत्तम है। इन्द्रिय-ज्ञान से परे, मन-बुद्धि के परे, जड़-प्रकृति और सच्चिदानंद पद से भी जो ऊँचा है, वह परमात्म-स्वरूप है। उसका कोई मिशाल नहीं। वह देशकालातीत है। देशकालातीत ही माया से परे है। प्रकृति के अन्दर ही विस्तृत्व है, लेकिन जो देश कालातीत है, वह विस्तृतत्व रहित है। देशकाल विस्तृतत्व है। इसलिए देश काल में व्यापक रहने के कारण वह विस्तृतत्व-सा मालूम होता है। लेकिन वह विस्तृतत्व नहीं है। जैसे हवा गिलास में रहने से गिलास जैसी है। गिलास टूट गया तो वह उसका रूप नहीं रहता। जो मन-बुद्धि से नहीं जाना जाय, वह है ईश्वर। प्रश्न है रूप क्या है? तो कहा जा सकता है कि नेत्र से जिसका ज्ञान हो। एक-एक विषय के लिए एक-एक इन्द्रिय है। पाँच विषय हैं। उनके ग्रहण के लिए पाँच इन्द्रियाँ हैं। मन-बुद्धि भी ईश्वर को छूने योग्य नहीं है। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

किसी इन्द्रिय गोचर पदार्थ को ईश्वर मानकर वहाँ तक पहुँचा जाय तो वेदान्त संतुष्ट नहीं है। इन्द्रियगोचर जो नहीं है, वह अव्यक्त है। हमलोग व्यक्त मण्डल में हैं। व्यक्त का काम करते हैं। जो अव्यक्त है, उसमें मन कैसे लगावें, ऐसा प्रश्न होता है। इसका भी उत्तर है। जब महाभारत की लड़ाई समाप्त हो गई। युधिष्ठिर राजा बने तो महिलाओं के विलाप से उनका मन उद्विग्न होने लगा। व्यासजी ने सोचा, इसके मन को बदलने के लिए यज्ञ कराना चाहिए। व्यासजी ने कहा—'तुम यज्ञ करो।' युधिष्ठिरजी ने कहा—'महाभारत के युद्ध में इतना खर्च हो चुका है कि अब यज्ञ करने

के लिए उतना धन कहाँ है?' व्यासजी ने कहा—'हिमालय में धन बहुत है। राजा मरुत ने यज्ञ किया था। पुरोहितों को इतना दान दिया था कि वे लोग सारे धन नहीं ले जा सके। इसलिए उनलोगों ने उस धन को हिमालय में गाड़ दिया है। मैं उसकी युक्ति बतला देता हूँ, तुम वहाँ से धन ले आओ।' व्यासजी की युक्ति के मुताबिक हिमालय से धन लाकर युधिष्ठिर ने यज्ञ किया। युधिष्ठिर के लिए पहाड़ का धन अव्यक्त था। व्यासदेवजी ने उसे प्राप्त करने का उपाय बताया। उनकी बात मानकर उनके कहे अनुसार युधिष्ठिर गए और धन लाकर यज्ञ किया। उसी तरह जो अव्यक्त परमात्मा है, उसके लिए जो चलता है, ईश्वर की भक्ति करता है, वह ईश्वर को पाता है। n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ नगर, कुसहा तेलियारी ग्राम के उच्च प्राथमिक विद्यालय में दिनांक ३१.१.१९६२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१७२. धनुष विद्या की परीक्षा

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मनुष्य जब सोया रहता है, उसको अपनी खबर नहीं रहती है, उसको अपना ज्ञान नहीं रहता है। जगने पर उसको अपना ज्ञान होता है और तब होता है कि हमको क्या करना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है कि—

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।

बात यथार्थ में समझी जाय तो ठीक ही है। जगने का कुछ दूसरा प्रकार भी है। लोग कहते हैं कि पढ़कर, सुनकर और समझकर ज्ञान प्राप्त करना भी जगना है। दरिया साहब कहते हैं—

माया मुख जागे सभै, सो सूता कर जान।
दरिया जागे ब्रह्म दिसि, सो जागा परमान।।

जगने के स्थान पर जगते हैं। स्वप्न के स्थान पर जाने से सपनाते हैं और गहरी नींद के स्थान पर जाने से सुषुप्ति अवस्था में जाते हैं। इसी तरह तीनों अवस्थाओं में रहना, सोना है। इसके अतिरिक्त शरीर के चौथे स्थान पर जाने से स्वप्न का बोध होता है, उसी तरह चौथी अवस्था में जाने पर यह जगना भी स्वप्नवत् मालूम होगा। इसके लिए साधना करनी होगी। शरीर और इन्द्रियों में जो सुख भोगना चाहते हैं, उस भोग में तृप्ति नहीं होती। हमको चाहिए कि हम उस सुख को पावें जो कभी छूटे नहीं। वह है नित्य सुख—परमानन्ददायक सुख। लेकिन जबतक हम मोह निद्रा में सोए रहेंगे, तबतक उसका ज्ञान नहीं हो सकता। माया को पकड़कर रखने से पूर्ण सुख कैसे हो सकता है? जबतक कोई श्रवण, मनन के द्वारा जानता है कि ध्यान-योगाभ्यास करने से, ईश्वर पाने से सुख मिलेगा, तबतक केवल जानने से ही वह सुख नहीं होता है। उसके लिए निदिध्यासन और अनुभव ज्ञान प्राप्त करना होगा। ईश्वर आपके शरीर में है और आप भी शरीर के अन्दर हैं। ईश्वर आपके अन्दर है और आप उसे बाहर खोजेंगे तो वह आप को कैसे मिलेंगे? अच्छी और असली बात यह है कि अपने घर में जो चीज हैं, उसे लेने में कोई कठिनाई नहीं होती है। अपने अंदर में परमात्मा को खोजो और पाओ। बाहर की इन्द्रियाँ उस ईश्वर का ज्ञान नहीं कर सकतीं। इन्द्रियों से जो ज्ञान होता है, वह अनात्म-ज्ञान है। बाहर में खोजने से ईश्वर कैसे मिलेंगे? इसलिए बाहर खोजना छोड़कर अंदर चलें। और अंत में स्वयं अपने को चेतन आत्मा

को ईश्वर का दर्शन होगा। तुलसी साहब हाथरस में रहते थे। वे सिद्ध पुरुष थे, वे कहते हैं—

सत सुरति समुझि सिहार साधौ, निरखि नित नैनन रहौ।

तुम्हारी वृत्ति बाहर में फैल गई है, उसको समेटो। जो चीज फैली हुई होती है, वह नीचे को गिरती है। जो चीज समेटी जाती है, वह ऊपर उठती है। जिस चीज को समेटिए, उसकी ऊर्ध्वगति होती है।

द्रोणाचार्यजी धनुष विद्या में अपने शिष्यों की परीक्षा ले रहे थे। उन्होंने काठ का एक पक्षी बनवाकर वृक्ष पर रख दिया और अपने शिष्यों से एक-एक कर उसकी आँख को बेधने के लिए कहा। बेधने के लिए तैयार हो जाने के समय उन्होंने प्रत्येक से पूछा—इस समय तुम क्या देख रहे हो? उत्तर में किसी ने 'वृक्ष सहित पक्षी को' किसी ने केवल पक्षी को देखने की बात कही। गुरु ने ऐसा कहनेवालों को लक्ष्य बेध करने से रोक दिया। अंत में अर्जुन से भी वही पूछा गया। उसने उत्तर दिया—'इस समय मैं केवल पक्षी की आँख ही देख रहा हूँ।' आचार्य ने उसे लक्ष्यबेध करने का आदेश दिया। अर्जुन के बाण ने लक्ष्यबेध कर दिया। अर्जुन सिमटी दृष्टि से देख सकता था। आज भी जो निशाना करते हैं, वह अपनी निगाह को समेटते हैं। अपनी वृति को समेटो तो उसकी ऊर्ध्वगति हो जाएगी। किसी भी चीज को समेटो तो उसकी ऊर्ध्वगति हो जाएगी।

बर्फ, जल और वाष्प की उपमा से आप इनको जान सकते हैं। एक सेर बर्फ से उसके जल की और जल से उसके वाष्प की अधिक ऊर्ध्वगति होगी। स्थूल से सूक्ष्म का सिमटाव अधिक होता है। मन के साथ चेतन है, इसलिए जहाँ मन है, वहाँ चेतन भी है। अतएव चेतनवृत्ति का सिमटाव करो। जो देखने के जरिए से होता है। सिमटाव से ऊर्ध्वगति होगी और चलते-चलते ईश्वर तक पहुँच जाएगी। जैसे ठाकुरजी के दर्शन के लिए ठाकुरबाड़ी जाते हैं तो वे पवित्र होकर जाते हैं, उसी तरह ईश्वर के पास जाने के लिए अपने को शुद्ध करना होगा। अपने को शुद्ध कैसे करना होगा? अपने शरीर में ज्ञानमयी धारा, चेतन धारा है। उसे इड़ा-पिंगला के संगम स्थल—सुषुम्ना पर स्थिर करो। इसी को तुलसी साहब ने कहा है—

आली अधर धार निहार निजकै निकरि सिखर चढ़ावहीं।
जहाँ गगन गंगा सुरति जमुना, जतन धार बहावहीं।।

यहीं पर संत लोग डुबकी लगाते हैं और अजब स्नान करके पवित्र हो जाते हैं।

कुछ लोगों को ख्याल है कि ईश्वर को पाने के लिए अंदर-अंदर जाने की क्या जरूरत? जिस रूप में तुम उन्हें भजोगे, उसी रूप में ईश्वर आकर दर्शन देंगे। लेकिन विचारें कि राम, कृष्ण, शिव, काली, दुर्गा आदि के जो रूप मन्दिरों में है, उनके दर्शन हों या उनके प्रत्यक्ष दर्शन हों, किंतु ये रूप दर्शन ही हुए। उनके क्षेत्रज्ञ के दर्शन नहीं हुए। जब रूप दर्शन से ही काम खत्म हो जाता तो भगवान क्यों कहते कि यह करो और वह करो। श्रीराम ने कहा—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।

विषय से परे क्या है? निर्विषय यानी इन्द्रियातीत पदार्थ। इन्द्रियों से इन्द्रियातीत का दर्शन नहीं होता। यह दर्शन तभी हो सकता है जब हम अपने अंदर-अंदर चलते हुए इन्द्रियातीत तक पहुँचेगे। जबतक इन्द्रियातीत तक नहीं पहुँचो तबतक कल्याण नहीं। इसलिए अपने अंदर-अंदर चलना चाहिए। जैसा महत्त्व अपने अंदर का है, वैसा बाहर का नहीं।

इस तरह के पवित्र काम करनेवाले के लिए पवित्र बनना होगा। इसलिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों से बचो। जो इस तरह पापों से बचकर रहेगा, विषयों से नहीं

गिरेगा। और वह अपने अंदर-अंदर चलते-चलते ईश्वर-दर्शन करेगा। जो इस आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर लेगा। वह राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा आदि सब में एक-ही-एक को देखेगा। संतों ने भी दो ही साधन बताए हैं—एक देखने के लिए और दूसरा सुनने के लिए। लेकिन देखने के लिए यह आँख और सुनने के लिए यह कान काम में नहीं आते हैं। सुन्दरदासजी ने कहा है—

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सो आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

संसार में वैवाहिक संबंध छोड़कर रहा नहीं जा सकता। यदि थोड़े लोग ऐसे हैं तो उनकी गिनती नहीं के बराबर हैं। पुरुषों का धर्म एक पत्नीव्रत पालन करने का और अपनी कमाई से अपनी पत्नी एवं अपने बाल-बच्चों के पालन करने का है। और स्त्रियों का धर्म एक पातिव्रत-धर्म पालन करने का है। स्त्रियाँ पातिव्रत्य-धर्म पालन करें और पुरुष एक पत्नीव्रत-धर्म पालन करें तो सभी सुखपूर्वक रहेंगे।

कहै कबीर निज रहनि सँभारी। सदा आनंद रहै नर नारी।।

इसके विपरीत होने से सभी दुःखी होंगे। गार्हस्थ्य-धर्म का पालने करते हुए ईश्वर-भजन भी करो। ऐसा ख्याल मत करो कि गृहस्थ आश्रम में ईश्वर-भजन नहीं होता है। गृहस्थ आश्रम में रहिए और ईश्वर का भजन कीजिए। यही संतों की सिखावन है, सो कीजिए। n

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत रोहतास जिला के डिहरी ऑन सोन में दिनांक ८.२.१९६२ ई० के सत्संग में हुआ था।

१७३. सभी देव ईश्वर के बनाए हुए हैं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

साधारणतया लोग माया की भक्ति करते हैं—धन चाहिए, पुत्र चाहिए, ऐश्वर्य चाहिए आदि। इन्हीं मायिक पदार्थों के लिए घोर परिश्रम करते रहते हैं। फल यह होता है कि जीवन भर शान्तिमय सुख नहीं मिलता। संतों ने कहा है कि माया की भक्ति के साथ ईश्वर की भक्ति भी करो, तभी शान्तिमय सुख मिलेगा।

ईश्वर की भक्ति में तीन बातों की प्रधानता है— स्तुति, प्रार्थना और उपासना। ईश्वर की स्तुति से उसमें श्रद्धा उत्पन्न होती है, श्रद्धा से प्रेम होता है और प्रेम से साधन करने में मन लगता है। प्रार्थना का अर्थ है—नम्रता सहित कुछ माँगना। मनुष्य के मन में कुछ-न-कुछ माँग सदा लगी रहती है। ईश्वर से सब कुछ मिल सकते हैं। सृष्टि परमात्मा की बनाई हुई है। जितने देव हैं, सब ईश्वर के बनाए हैं। इन देवों को जो शक्ति है, वह ईश्वर से दी हुई है। इसलिए जो वरदान सब देवता मिलकर दे सकते हैं, उनसे विशेष अकेले परमात्मा दे सकते हैं। इसलिए उस ईश्वर से जो कुछ माँगना हो, माँगो। लेकिन ऐसी चीजों को नहीं माँगो, जो आप ही मिलने योग्य है।

ईश्वर ऐसे हैं कि वे हम सबके योगक्षेम वहन करते हैं। हम सोते हैं और ईश्वर घातक जीव-जन्तुओं से हमारी रक्षा करते हैं। हमलोग सोते हैं और वे सोते ही नहीं और सबका पहरा

करते हैं। कोई कहे कि परमात्मा पहरा करते हैं, तो चोरी क्यों हो जाती है? यह इसलिए कि लोग धन संचय करने में अनैतिक यत्नों के द्वारा पाप भी करते हैं। और चोरी करनेवाले उनके पापमय धन को ले जाते हैं।

भक्त के लिए भक्ति अनमोल पदार्थ है। इसलिए भक्त को ईश्वर से भक्ति मांगनी चाहिए। जो ईश्वर का भजन नहीं करता, उनसे प्रेम नहीं करता, उसका भजन नहीं बनता। ईश्वर का प्रेमी होकर भजन करते-करते भजन बनता है। उपासना—जप और ध्यान को कहते हैं। उपासना में ये ही दोनों बातें खास हैं। मोटी और बाहरी पूजा से आंतरिक सूक्ष्म जप-ध्यान में कुछ लाभ पहुँचता है। लेकिन आडम्बरवाली पूजा हो तो वह किसी काम की नहीं। यदि आप किसी को कह दीजिए कि तुम अधर्मी हो, तो वे चिढ़ जाएँगे। कुछ लोग ऐसे हैं कि जो ईश्वर को नहीं मानते। लेकिन वे संसार में रहकर अच्छा कर्म करते हैं तो वही उसका धर्म है।

जो अपने धर्म का सिद्धान्त नहीं जानता और अपने को किसी धर्म का माने तो उसका कैसा धर्म है, उसको पता नहीं होगा। धर्म के पहले सिद्धांत में है—ईश्वर की स्थिति, प्रकृति वा माया को जानो। जीवात्मा क्या है? जीव, जगत और ईश्वर, इनके बारे में सिद्धान्त जाना जाता है। जिसमें यह वर्णन है, उसी को वेदान्त-शास्त्र कहते हैं। इसी वास्ते हमलोगों के सत्संग में ईश्वर की स्तुति होती है। उससे ईश्वर की विशेषता का ज्ञान होता है। ईश्वर का गुणगान करना स्तुति है। प्रार्थना कहते हैं कि प्रभु के पास जाने के मार्ग में जो अनुभूतियाँ होनी चाहिए, वह हों। प्रयास करना होगा। प्रयास करनेवाले को सहायता मिलती है। 'जौं तेहि पंथ चले मन लाई। तौ हरि काहे न होइ सहाई।।' God helps those who helps themselves. (गॉड हैल्प्स दोज हू हैल्प्स देमसेल्व्स) जो प्रयास नहीं करता, उसको ईश्वर की सहायता नहीं मिलती।

ईश्वर संबंधी ज्ञान जब से लोगों को हुआ है, तब से यह ध्यान-उपासना चली आती है। त्रयकाल संध्या बहुत प्राचीन है। ब्राह्ममुहूर्त्त में, दिन में स्नान के बाद और संध्या काल। त्रयकाल संध्या अवश्य करो, अगर आर्य हो। वेद में भी त्रयकाल संध्या की आज्ञा है।

ओऽम् श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।।

अर्थात् हम प्रातःकाल में, उस सत्य से जगत को धारण करनेवाले प्रभुशक्ति की प्रार्थना करते हैं। दिन के मध्यकाल में उस सत्य धारक प्रभु का ध्यान करते हैं। सूर्य के अस्तकाल में भी हम उसी श्रद्धामय प्रभु की उपासना करते हैं। हे श्रद्धे! सत्यधारणवति देवि! तू हमें इस जगत में सत्य ही को धारण करा।

जो त्रयकाल संध्या नहीं करते, वे 'आतमहन गति' में जाते हैं।

जो न तरइ भव सागर, नर समाज अस पाय।
सो कृत निन्दक मंद मति, आतम हन गति जाय।।

—रामचरितमानस

वेद, उपनिषद् एवं संतों की वाणियों में उपासना के लिए, ऊँचे दर्जे में दो बातें और नीचे में भी दो बातें हैं। नीचे में जप और मूर्ति-पूजन है।

एक महाशय मेरे पास संथाल परगना से आए थे। उन्होंने पूछा कि मूर्ति-पूजन करना चाहिए वा नहीं? मैंने कहा—'मूर्ति-पूजन करना भी चाहिए और नहीं भी करना चाहिए।' उन्होंने कहा—सो क्यों? मैंने कहा—'पूजा के लिए, ध्यान के लिए तो मूर्ति पूजन होना चाहिए और मेला-ठेला लगाने के लिए नहीं। यह सुनकर वह चले गए।

भगवान बुद्ध के बहुत दिनों के बाद उनकी

मूर्तियाँ लोग बनाते थे। किसी ने पूछा—'इतनी मूर्तियाँ क्यों बनाते हो?' उन्होंने कहा—'मूर्ति बनाते-बनाते उसका रूप मस्तिष्क में मूर्तिमान हो जाता है और इससे ध्यान में बड़ी सहायता मिलती है।'

कोई कहते हैं कि मिट्टी, पत्थर वा धातु की पूजा क्यों की जाए? लेकिन जानना चाहिए कि कोई भी मिट्टी, पत्थर वा किसी धातु की पूजा नहीं करता। कोई भी मूर्ति होती है तो उसको देखकर मनोमय रूप बनाता है। कितने संन्यासी ओ३म् का ध्यान करते हैं। मुसलमान अल्लाह लिखकर या अलिफ लिखकर ध्यान करते हैं। ऐसा नहीं कि जिस रूप का ध्यान हम करते हैं, उसी का ध्यान सब कोई करें। जितने भी रूप हैं, सबमें ईश्वर व्यापक है; इसका विश्वास रखना चाहिए।

ऊँचे दर्जे में भी दो बातें हैं— अन्तर्ज्योति को पकड़ो। इसके लिए शाम्भवी मुद्रा वा वैष्णवी मुद्रा का अभ्यास करना होता है। इसको मन से बनाना नहीं पड़ता। जो दृष्टि-साधन की क्रिया करता है, वही अन्तर्नाद को ग्रहण कर सकता है। जो अन्तर्नाद की उपासना करता है, वही निर्गुण उपासना के योग्य बनता है। निर्गुण शब्द एक-ही-एक केवल 'शब्दब्रह्म' है। अक्षरं परमोनादः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।—योगशिखोपनिषद्। अर्थात् अक्षर परमनाद को ही शब्द ब्रह्म कहते हैं। इसी की उपासना निर्गुण उपासना है। ध्यानाभ्यास द्वारा इसकी प्रत्यक्षता होती है।

संसार में ज्योति और शब्द की कितनी महिमा है, देखिए। संसार में तारा, बिजली, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि कुछ न रहे तो विचारिए कि संसार रह सकता है वा नहीं? संसार से शब्द को हटा दें तो कुछ काम नहीं चलेगा। किसी देश का शासन नहीं रहेगा। शब्द क्या है? कम्प का सहचर है। कम्प हो और शब्द नहीं हो वा शब्द हो और कम्प नहीं हो; असम्भव है। शब्द के साथ कम्प और कम्प के साथ शब्द अवश्य रहता है। अपने शरीर में कम्प नहीं रहे तो महा मुश्किल हो। जिसका प्रभाव संसार में और शरीर में है, उसको ग्रहण करने के लिए वेद, उपनिषद् और संतवाणी में बहुत वर्णन है।

पहले ज्योति पकड़ो। ज्योति कैसे पकड़ी जाती है और शब्द कैसे पकड़ा जाएगा? आकाश में बिजली चमकती है, तब ठनका ठनकता है। इशारा है कि पहले बिजली, तब शब्द। गुलाल साहब ने कहा है—'उलटि देखो घट में जोति पसार।' अर्थात् बाहर देखना छोड़कर अन्तर्दृष्टि से देखो, फैली दृष्टि को समेटकर देखो। ध्यानविन्दूपनिषद् में है—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

अर्थात् बीजाक्षर परमविन्दु है, उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर ब्रह्म में लय हो जाता है, तो निशब्द परम पद है। इसी की सहायता से ईश्वर तक पहुँचा जाता है।

संतों का भेद और पण्डितों का वेद प्रसिद्ध है। वैज्ञानिक पाँच तत्त्वों के स्थूल-सूक्ष्म को लेकर कुछ बनाते हैं। ईश्वर-भजन का यत्न लो, भजन करो, तब वह कल्याण मिलेगा और फिर संसार में आना नहीं पड़ेगा। इसके लिए अपना आचरण अच्छा रखना होगा। जो आचरण में हीन है, वह वहाँ नहीं जा सकता। जो अपना आचरण भला रख सकता है, वही ईश्वर की ओर जा सकेगा।

n

यह प्रवचन छपरा जिलान्तर्गत साहिबगंज में श्रीबद्रीनाथ सिन्हा द्वारा आयोजित दिनांक १.४.१९६२ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१७४. राम कैसा है?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं कोई व्याख्यानदाता, बहुत विद्वान आदि नहीं हूँ। मैंने अपने गुरुजी के पास में बैठकर जो थोड़े समय सत्संग का वचन सुना है, उनके वचन से जो जाना है, उसी जानने पर मैं कहता हूँ। और यह अवश्य है कि अपने वाक्यों में कहता हूँ। क्योंकि उनका वाक्य स्मरण नहीं है, भाव स्मरण है। उन्होंने कहा था—मनुष्य कल्याण चाहता है। मनुष्य ही क्या, प्राणिमात्र कल्याण चाहते हैं। यह उनके भाव से जाना जाता है, जो बोल नहीं सकते। लोग संसार के सुख में कल्याण खोजते हैं, किंतु आज तक पौराणिक वा ऐतिहासिक वर्णन नहीं है कि वे संसार के पदार्थों से कल्याण पा गए। कल्याण का अर्थ है कि वासना का क्षय हो जाए और किसी प्रकार का चाहे आधिभौतिक वा आध्यात्मिक कष्ट बाकी न रह जाए। नित्यानंद—ब्रह्मानंद प्राप्त हो जाए, जिससे भिन्न होने का अवसर नहीं है। इसको संतों की वाणी में खोजो। संतों की वाणी में खोजने के लिए उनका संग करना होगा। यही सत्संग है। सत् को प्राप्त करके साधक पुरुष संत हुए और सत् की प्राप्ति के कारण वे भी सत् हुए। उनकी वाणी सत् है। सत् को पाकर संत हुए, उनका वचन सत् और उनका संग सत्संग है। हमलोग इसीलिए संतों के वचन के अवलम्ब से सतसंग करते हैं। हमलोगों को अपना उतना ज्ञान नहीं कि स्वयं कुछ कह सकें। कुछ लोग उकताते हैं कि सुना, एक साधु आए हैं, उनका प्रवचन सुनूँगा। यहाँ तो गीत गाए-गवाए जाते हैं। कबीर साहब, गुरु नानक साहब, गोस्वामी तुलसीदास आदि संतों के वचन जो हैं, उनके सामने मैं कुछ कहूँ, शोभा नहीं देता। संतों के ज्ञान प्राप्त करने के लिए संतों की वाणी का संग करो। तथा कल्याणमय, कल्याण-स्वरूप परमात्मा को पाने के लिए उनकी भक्ति करो। कल्याण-स्वरूप परमात्मा के लिए बड़ा ऊँचा ज्ञान दिया है। उन्होंने ऐसा नहीं बताया कि दृश्य जगत में जो दृश्य पाते हो, वह ईश्वर है। उन्होंने कहा कि जो परम पुरातन है, वही ईश्वर है। इस परम सनातन के पहले कुछ हो, संभव नहीं है। उसके पहले कुछ हो, तो वह प्राचीन नहीं होगा। जो परम प्राचीन है, वह किसी अवकाश में रहे, संभव नहीं। जो किसी अवकाश में रहेगा, वह साधार हो जाएगा। इसके अतिरिक्त जो कुछ बचेगा, तो वही पहले का हो जाएगा, जिसमें उसकी स्थिति माने तो वह परमात्मा नहीं होगा। परमात्मा किसी आधार पर आधेयता का गुण धारण करे, हो नहीं सकता है। जो अपना आधार आप है, सर्वाधार है, सबको अपने अंदर रखकर सबको अपने प्रभाव से प्रभावित करके शासन में रखता है, वह परमात्मा है। सब जिसके प्रभाव में और शासन में रहते, वह सर्वेश्वर-कुल्ल मालिक हुआ। वह सर्वाधार होते हुए भी आप-ही-आप है। इसलिए दूसरा पदार्थ कुछ और विशेष व्यापक हो ही नहीं सकता। वह सीमाहीन तत्त्व है। उसकी सीमा कहीं नहीं है। अगर ससीम पदार्थ को कोई ईश्वर मानता है, तो प्रश्न होता है कि उसकी सीमा के परे क्या है? जो सीमा के परे है, वह उसके शासन में नहीं है, प्रभाव में नहीं है, वह परमेश्वर हो नहीं सकता। इसके लिए संतों की

बहुत वाणियाँ हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।

—कबीर साहब

अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरबाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।
जंत उपाइ कालु सिरिजंता बसगति जुगति सवाई।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई।।
सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।

—गुरु नानकदेव

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड।।
सो दासी रघुवीर कै, समुझि मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि।।

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।
सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

और भी संतों के ऐसे वचन बहुत हैं—

दादू जानै न कोई, संतन की गति गोई।। टेक।।
अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।
अंड न पिंड खंड ब्रह्मण्डा, सूरत सिंध समोई।
निराकार आकार न जोति, पूरन ब्रह्म न होई।।
इनके पार सार सोइ पइहैं, तन मन गति पति खोई।
दादू दीन लीन चरणन चित, मैं उनकी सरणोई।।

—संत दादू दयालजी

'शब्द ब्रह्म परिब्रह्म भली विधि जानिये।
पाँच तत्त्व गुण तीन मृषा करि मानिये।।
बुद्धिवन्त सब संत कहैं गुरु सोइ रे।
और ठौर सिष जाइ भ्रमे जिनि कोइ रे।।'

'श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सो आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।'

—संत सुन्दर दास

परमात्मा का स्वरूप क्या है, इस पर कहा। जो कोई भक्ति करता है, उसकी इच्छा भक्ति करने की है, करे; लेकिन ईश्वर-स्वरूप नहीं जानता है, तो वह वैसा ही है कि जैसे कोई यात्री यात्रा करता है, लेकिन उसको मञ्जिल-मकसूद का पता नहीं। ऐसे के लिए गुरु नानक ने कहा है कि वह बेगारी में खटता है। इसलिए स्वरूप-निर्णय अवश्य होना चाहिए। संतों के ज्ञान के मुताबिक

कोई ऐसा तत्त्व है वा नहीं?

अफसोस है कि आजकल के ऊँचे दर्जे के पढ़े लोग पढ़ते समय से ही मिथ्या धारणा में पड़कर नास्तिकवाद का प्रचार करते हैं, मुझे इसमें कभी विश्वास नहीं। संतों की वाणी में विश्वास है। उन्होंने जैसा ज्ञान दिया है, उसको नहीं कहने का अवसर नहीं है। इसके लिए बौद्धिक विश्वास भी है कि उससे विशेष अवकाश नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा, राम कैसा है? तो कहा—

राम काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा।।
मरुत कोटि सत विपुल बल, रवि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल, समन सकल भव त्रास।।
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूमकेतु सत कोटि सम, दुराधरष भगवन्त।।
प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरस कराला।।
तीरथ अमित कोटि सत पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।।
हिमगिरि कोटि अचल रघुवीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा।।
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना।।
सारद कोटि अमित चतुराई। विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।
विष्णु कोटि सत पालन कर्ता। रूद्र कोटि सत सम संघरता।।
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना।।
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा।।
निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।।
एहि भाँति निज निज मति विलास मुनीस हरिहिं बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सख पावहीं।।

इस तरह सौ करोड़, सौ करोड़ कहकर कहा कि यदि सौ करोड़ जुगनुओं के समान सूर्य को कहा जाय, तो सूर्य की हीनता होती है। इसी तरह सौ करोड़, सौ करोड़ की उपमा जो राम के लिए दी गई, इससे राम की बड़ी हीनता होती है। 'नभ सत कोटि अमित अवकासा' की उपमा भी ऐसी ही है। विश्वरूप का कोई रूप ऐसा नहीं हो सकता। तात्पर्य यह कि यह उपमा पूरी नहीं हुई। परमात्म-स्वरूप का ज्ञान कितना ऊँचा है, समझ लें। परमात्मा से बढ़कर और विशेष व्यापक कुछ नहीं हो सकता। एक सेर बर्फ की व्यापकता से उसके जल की व्यापकता विशेष होगी और उस जल का वाष्प बना लेने से वाष्प की व्यापकता अधिक होगी। वाष्प से जल की व्यापकता और जल से बर्फ की व्यापकता कम है। अर्थ यह हुआ कि जो जितना अधिक व्यापक होता है, वह उतना ही अधिक सूक्ष्म होता है, परमात्मा इतना सूक्ष्म है कि जिसकी उपमा नहीं हो सकती। हम संसार की चीजों को इन्द्रियों के द्वारा जानते हैं। हमारी इन्द्रियाँ सब मिलकर एक ही वस्तु को ग्रहण नहीं करतीं; प्रत्येक इन्द्रिय एक-एक विषय को ग्रहण करती है। नेत्र से रूप विषय, कान से शब्द विषय, जिभ्या से रस विषय, त्वचा से स्पर्श विषय और नाक से गंध विषय ग्रहण करते हैं। एक इन्द्रिय से दूसरे विषय का ग्रहण नहीं हो सकता। हमारी सब इन्द्रियाँ इनके ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं। ये सभी स्थूल हैं। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण हो सकना पूर्ण असंभव है। आप विद्वानों के सामने क्या कहना? छोटी घड़ी में जितने कल-पूर्जे होते हैं, बड़ी घड़ी में भी उतने ही। और छोटी घड़ी के कल-पूर्जों को खोलने वा लगाने के लिए जिन-जिन यंत्रों की आवश्यकता होती है, बड़ी घड़ी के कल-पूर्जों को खोलने वा लगाने के लिए उन्हीं-उन्हीं यंत्रों की आवश्यकता होती है; किंतु बड़ी घड़ी के यंत्रों से छोटी घड़ी में काम नहीं कर सकते। उसके लिए उस तरह के महीन यंत्रों की आवश्यकता होती है। इससे प्रत्यक्ष विदित है कि मोटे यंत्र से मोटी-मोटी चीजों को ग्रहण करो और बारीक चीज के लिए बारीक यंत्र चाहिए। हमारी

इन्द्रियाँ मोटी-मोटी हैं। परमात्मा परम सूक्ष्म हैं, इसलिए इन मोटी इन्द्रियों से सूक्ष्म परमात्म-स्वरूप को नहीं ग्रहण कर सकते। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है कि—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

संतों की वाणी से जो परमात्म-स्वरूप निर्णय है, उसको इन्द्रियों से ग्रहण नहीं कर सकने के कारण उसे अगोचर, अव्यक्त कहते हैं। भक्त इस पद तक पहुँचे, तब भक्ति पूरी होगी। इसी को पाकर कल्याण पाता है, और से नहीं।

देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया बिबस विचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपुनपौ हारे।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

देवताओं के लिए रामचरितमानस में कैसा लिखा है, पढ़ लें—

आये देव सदा स्वारथी। वचन कहहिं जनु परमारथी।।

कबीर साहब को संस्कृत नहीं आती थी, वे कहते थे—'देवता पित्तर भूइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की' तथा 'गुड़वा गुड़िया सूप सुपलिया तज दे बुध लड़कैयाँ खेलन की।'

श्रीमान् डॉक्टर सम्पूर्णानन्द महोदयजी ने 'गुड़वा गुड़िया' का वर्णन किया, किंतु 'सूप सुपलिया' नहीं कहा; लेकिन दोनों सम ही है। यह स्थूल उपासना की बात है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने यह भी कहा है कि—

पात पात के सींचबो, बरी बरी के लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु को न।।

इसमें आप ठगे जाएँगे। बरी बनाने में एक एक बरी को अलग-अलग नमक देने से किसी बरी में नमक ठीक हो, किसी में अधिक हो, किसी में कम हो, सम्भव है। लेकिन बेसन में ही नमक दे देने से सबमें बराबर रूप से रहेगा। उसी तरह वृक्ष के पत्ते-पत्ते में पानी देने से वृक्ष सूख जाय, सम्भव है। लेकिन उसकी जड़ में पानी दो, वृक्ष हरा-भरा रहेगा। इसी तरह एक ईश्वर की भक्ति में सबकी उपासना हो जाएगी। कोई कहे कि देवता की उपासना नहीं करके ईश्वर की उपासना करने से देवता नाराज हो जाएँगे, तो यह हँसी की बात है। जो देवता ईश्वर की उपासना से नाखुश हो, वह देवता, देवता नहीं।

वह ईश्वर इन्द्रियगम्य नहीं है। उसकी भक्ति करने के लिए संत लोग कहते हैं। यह कैसे हो? किससे जाना जाएगा? यहाँ पर तुलसी साहब कहते हैं, पहले अपने को जानो। 'सत सुरति समुझि सिहार साधौ। निरखि नित नैनन रहो।।' सुरत का अर्थ कहीं-कहीं ख्याल भी है। बेशी करके 'चेतन आत्मा' अर्थ लिखा है। 'अनुराग सागर' में लिखा है—

आदि सुरत सत पुरुष तें आई। जीव सोहं बोलिये सो ताई।।

उनका यह पारिभाषिक शब्द है। दादू दयालजी के शब्दों में है—'सूरत सिन्ध समोई।' परमात्मा इतना व्यापक है कि सुरत का समुद्र भी उसमें घुसा हुआ है। चेतन आत्मा सत् है, इसको जानो। 'मैं हूँ' सबको ज्ञान होता है। 'मैं नहीं हूँ' यह किसी जीवित को ज्ञान नहीं होता। शरीर है, शरीर पर कपड़ा है, इसका ज्ञान सबको है। लेकिन 'मैं हूँ', सो नहीं पहचानते। शरीर को देखकर पता चलता है कि जैसा कि वानरराज बालि की रानी तारा से श्रीराम ने कहा था—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।

यह शरीर पाँच तत्त्वों से मिलकर बना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश; ये सभी अज्ञानमय पदार्थ हैं। इन अज्ञानमय पदार्थों के मिलन से ज्ञानमय पदार्थ हो गया, यह विश्वास करने योग्य नहीं है। इसका भी प्रचार होता है। मैं कहता हूँ, आप पानी, चीनी और सौंफ मिलाकर शर्बत

बना लीजिए; किंतु उसमें नींबू नहीं डालिए तो क्या उस शर्बत में नींबू का स्वाद और गुण आ सकता है? अथवा आप जिस मिक्सचर दवाई में क्विनाइन नहीं मिलाते हैं तो उस औषधि में क्विनाइन का गुण आ जाता है क्या? यदि नहीं तो सब अज्ञानमय पदार्थों के मिलने से चेतन हो जाय, यह भी विश्वास करने योग्य नही है। श्रीमद्भगवद्गीता में अपरा और परा प्रकृति का वर्णन किया गया है। इन दोनों प्रकृतियों से रचना होती है। यहाँ शरीर और इन्द्रियों को पहचान लेते हैं। मैं कहता हूँ कि मेरा शरीर, मेरा मन, मेरी बुद्धि आदि कहकर जानता हूँ कि ये सब मेरे हैं, मैं इन सबका मालिक या इनमें शक्ति प्रदान करनेवाला हूँ। अपना स्वरूप जो चेतनमय है, उसका ज्ञान इन्द्रियों से नहीं होता। मैं स्वयं अव्यक्त हूँ; परमात्मा तो अव्यक्त हैं ही। कितने कहते हैं कि अव्यक्त में कैसे लगूँगा? मैं कहता हूँ कि आप भी अव्यक्त हैं और परमात्मा भी अव्यक्त; अव्यक्त को अव्यक्त पकड़ेगा, ग्रहण करेगा। कबीर साहब कहते हैं—

ऊँचा महल अजब रंग बंगला, साईं की सेज वहाँ लागी फूलन की।
तन मन धन सब अर्पण कर वहाँ, सुरत सम्हार पडूँ पैयाँ सजन की।।
कहै कबीर निर्भय हो हंसा, कुंजी बता द्यों ताला खुलन की।।

इसकी कुंजी संतों के पास है, लेकर खोलिए। गुरु नानक ने कहा है—

घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ, घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती, निरभै ताड़ी लाई।।

कैसे ग्रहण करोगे, तो कहा—गुरुमुख अर्थात् गुरु की आज्ञा के अनुकूल चलनेवाला निर्भय ध्यान लगाता है और जिस आवरण के कारण दर्शन हम नहीं पाते हैं, उस आवरण को तोड़ देता है। उसको तोड़ने वा खोलने की युक्ति है। जबतक युक्ति नहीं मिली है, तबतक क्या करें? उसकी खोज कीजिए। खोज करने में रहने पर भी उस ओर आपका ख्याल है। एक कथा मैं कहूँ—

महाभारत युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर का मन नहीं लग रहा था; क्योंकि वे महाशोकित थे। व्यासदेव जी ने उनका मन दुःख की ओर से फेरने के लिए यज्ञ में लगाना चाहा और उन्हें यज्ञ करने कहा। युधिष्ठिर ने कहा कि यज्ञ करने के लिए हमारे पास धन कहाँ? व्यासदेवजी ने कहा—'मैं तुझे धन का पता बताता हूँ। राजा मरुत ने यज्ञ किया था, उन्होंने इतना दान दिया कि दान लेनेवाले उस धन को नहीं ले जा सके। वह धन पहाड़ में गड़ा हुआ है।' युधिष्ठिर ने व्यासदेवजी की बात पर विश्वास किया और उनके संकेत के अनुसार पहाड़ से उखाड़कर धन लाए और उससे यज्ञ किया। वह धन युधिष्ठिर के लिए अव्यक्त था। व्यासदेवजी के वचन में उन्होंने विश्वास किया; व्यासदेवजी ने जो रास्ता बताया, उस रास्ते से वे गए, अनुष्ठान बताया, सो किया। उनको धन मिला और उससे यज्ञ किया। इसी तरह संतों के वचनों में विश्वास करना चाहिए। वे जो रास्ता बताते हैं, उसपर चलना चाहिए। जहाँ धन है, जो धन है, उसे पाने की कुंजी वे बता देंगे।

इन्द्रियों से वियुक्त होकर, कैवल्य दशा में रहकर उस अव्यक्त को पा सकते हो। तुम भी अव्यक्त और परमात्मा भी अव्यक्त है। वह कहाँ है? संत दादू दयालजी ने कहा है—

अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।

चलते-चलते जहाँ चलना बाकी नहीं, गति समाप्त हो जाय और इधर से जाओ, तो सबका जहाँ अंत हो जाय, वह अंतरपट के अंत में है। वह कहने योग्य नहीं है, तीन शून्यों के पार में है। पहला यह शून्य है जहाँ हमलोग हैं। यह अंधकार का शून्य है। दूसरा प्रकाश का और तीसरा शब्द का शून्य है।

यह स्थूल जगत की भी सभी चीजें हम नहीं देख पाते हैं, तो दूरबीन, खुर्दबीन आदि से देखते हैं, फिर भी सभी चीजें नहीं देख सकते। सूर्य को अन्य किसी प्रकाश से हम नहीं देखते। सूर्य को सूर्य की प्रकाश से ही देखते हैं। उसी तरह ईश्वर को ईश्वर की ज्योति से ही देख सकते हैं। गुरु नानक साहब ने कहा है—

घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।

सूर्य की ज्योति को देखकर जैसे सूर्य को देखते हैं, उसी तरह ईश्वर की ज्योति आपके अंदर है, इसके द्वारा ईश्वर को पहचानिए। अंदर में कहा, बाहर में क्यों नहीं जाने कहा? इसलिए कि बाहर में आप इन्द्रियों के संग रहेंगे और अंदर-अंदर चलने से आप इन्द्रियों से छूटते जाएँगे।

जाग्रत और स्वप्न के बीच में एक अवस्था होती है, जिसे तन्द्रा कहते हैं। उस समय एक सरूर—चैन मालूम होता है और मालूम होता है कि शक्ति भीतर की ओर खिंची जा रही है। धीरे-धीरे शक्ति भीतर सिमट जाती है, स्वप्न में चले जाते हैं। उस समय यदि आपके मुख में मिसरी का टुकड़ा है और स्वप्न में देखते हैं कि नीम का पत्ता खा रहे हैं तो मिसरी का मीठा स्वाद नहीं लगकर नीम का कड़वा स्वाद मालूम होगा। इससे जाना जाता है कि अंदर प्रवेश करने से इन्द्रियों से छूटना होता है। इन्द्रियों के ज्ञान से छूटकर जहाँ आप अकेले होंगे, वहीं ईश्वर-दर्शन होगा। जहाँ इन्द्रियों से छूटे, वहीं ईश्वर-दर्शन और परम कल्याण होगा। इसी के लिए कबीर साहब ने कहा—

घूँघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे।

शरीर का आवरण चेतन आत्मा के ऊपर है। यह शरीर एक ही नहीं है। कबीर साहब ने कहा है—

साधो ! षट प्रकार की देही।
स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण कैवल्य हंस की लेही।।

केवल 'हंस' मुक्त शरीर ही है। इधर चार जड़ शरीर हैं— स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण। संत दादू दयालजी ने कहा है—

नीके राम कहतु है बपुरा।
घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा।।

स्थूल शरीर को स्नान और अंतःकरण की पवित्रता से पवित्र करते हैं। स्थूल से सूक्ष्म निकल जाय तो सूक्ष्म शरीर पवित्र हो जाएगा। संत दरिया साहब (बिहारी) ने कहा है—

भीतर मैल चहल के लागी, बाहर तन का धोवै है।
अविगत मूरति महल के भीतर, वाका पंथ न जोवै है।।

स्थूल से सूक्ष्म ऊपर उठ जाय, यह सूक्ष्म की पवित्रता है। इसी तरह कारण के ऊपर से सूक्ष्म शरीर हट जाय, तो कारण शरीर पवित्र हो जाय और महाकारण के ऊपर से कारण शरीर हट जाय, तो महाकारण की पवित्रता है। चेतनमय शरीर की पवित्रता तब है, जबकि जड़ का बिल्कुल संग छूट जाय। इन्द्रियों से यह बहुत दूर है। लोग रेकार्ड में गाते हैं—

हाय रे इन्सान की मजबूरियाँ,
पास रहकर भी है कितनी दूरियाँ।

कबीर साहब ने कहा है—

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़ै वन माहिं।
ऐसे घट में पीव है, दुनिया जानैं नाहिं।।
समझै तो घर में रहै, परदा पलक लगाय।
तेरा साहब तुज्झ में, अनत कहूँ मत जाय।।

बाहर जाने के लिए संतों ने मना किया—

सुन ऐ तकी न जाइयो जिनहार देखना।
अपने में आप जलवये दिलदार देखना।।
पुतली में तिल है तिल में भरा राज कुल का कुल।
इस परदये सियाह के जरा पार देखना।।

यही वज्र कपाट है। इसकी युक्ति बताते हैं कि—

पुतली में तिल है तिल में भरा राज कुल का कुल।

बाहर जाने की जरूरत नहीं। काम-रोजगार करो। घर में रहो, लेकिन सत् आचरण से रहो। शरीर में शरीर है। इसको कथा के रूप में महाभारत में कहा है—

सावित्री के पति सत्यवान के स्थूल शरीर से यमराज ने लिंग शरीर निकाल लिया। उसका स्थूल शरीर मर गया। उसके लिंग शरीर को लेकर यमराज चला। सावित्री बड़ी पतिव्रता थी। वह अनुनय-विनय करती उसके पीछे-पीछे चली। उसकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर यमराज ने सत्यवान के स्थूल शरीर में उसके सूक्ष्म शरीर (लिंग शरीर) को प्रवेश करा दिया। सत्यवान जीवित हो गया।

इस कथा से विदित होता है कि केवल स्थूल शरीर ही नहीं है, सूक्ष्म शरीर भी है। लिंग शरीर को ही सूक्ष्म शरीर कहते हैं। शरीर के अंदर शरीर है। इसको बाबा नानक साहब ने कहा है—

घरि महि घरु दिखाइ देइ, सो सतगुरु परखु सुजाणु।
पंच सबदु धुनिकार धुनि, तहँ बाजै सबदु निसाणु।।

पतिव्रता स्त्री में कितना तेज है कि वह मृत पति को जीवित करती है, अंधे को आँख दिलाती है और राज्यभ्रष्ट को राज्य दिलाती है। इस कथा से यह सीखें कि स्त्रियाँ पतिव्रता हों। मैंने पढ़ा है—

कर्महीन को ना मिले, भली वस्तु का भोग।
दाख पके मुख काक को, होत पाक का रोग।।

जो कर्महीन है अर्थात् अच्छे कर्म जिसके नहीं हैं, उसको अच्छी चीज का भोग नहीं मिलता। कोई पुरुष चाहे कि मैं जैसे-तैसे रहूँ और पत्नी पतिव्रता हो, यह संभव नहीं। पुरुष श्रीराम की तरह एक पत्नीव्रती और स्त्रियाँ सावित्री की तरह पतिव्रता हों, तो आपकी संतानें बड़ी अच्छी होंगी, देश का कल्याण होगा। यह आपके हाथ में है, इसको समझिए। हाँ, तो मैं कह रहा था कि शरीर के अंदर शरीर है। इसे जानने के का रास्ता आपके अंदर है। संत दरिया साहब (बिहारी) ने कहा है—

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।

जो जहाँ बैठा रहता है, वह वहीं से चलता है।

इस तन में मन कहाँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।

—कबीर साहब

आप कहेंगे कि आप मन संबंधी बात कह रहे हैं। तो मैं कहता हूँ कि मन जहाँ है, चेतन आत्मा भी वहीं है। इस समय हमारा संग मन के साथ ऐसा हो गया है, जैसे दूध के साथ घीउ। ब्रह्मोपनिषद् में भी लिखा है—

नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्निसंस्थितम्।।

यहीं से चलना होगा। यह दशम द्वार भी है। यह द्वार दोनों नेत्रों के मुकाबले अंदर है। यही रास्ता सबके लिए है। ऐसा नहीं कि एक के लिए एक रास्ता और दूसरे के लिए दूसरा रास्ता है। संसार में जितने आदमी हैं, सब कोई एक ही रास्ते आँख से देखते हैं। सबके सुनने का एक ही रास्ता कान है। कितने कहते हैं कि लखनऊ आने के अनेक रास्ते हैं, इसी तरह ईश्वर के पास जाने के अनेक रास्ते हैं। मैं कहता हूँ— नहीं, रास्ता एक है और वह दसवाँ द्वार है, शिवनेत्र है, यहीं से कोई चलेगा।

कोई शिव उपासना, कोई शक्ति उपासना, कोई विष्णु उपासना आदि करते हैं, तो कहते हैं कि अनेक रास्ते हैं। मैं कहता हूँ—ये सहारे हैं, रास्ते नहीं। यदि आप किसी स्थूल मूर्ति की उपासना तक ही रहे, तो चौरासी से नहीं छूट सकते। स्थूल उपासना के द्वारा मन को कुछ एकाग्र किया जाता है और उसके बाद सूक्ष्म ध्यान में जाना होता है।

सूक्ष्म में जाने से उसको चैन मिलता जाता है और ईश्वर की तरफ से अवलम्ब भी मिलता है।

जौं तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई।।

जैसे सूर्य को देखने के लिए उसकी रोशनी का अवलम्ब मिलता है, उसी तरह परमात्मा को पाने के लिए उसकी ज्योति मिलती है। केवल ज्योति ही नहीं, शब्द भी मिलता है। ध्यानविन्दूपनिषद् कहता है—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

तथा—

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।
—तेजोविन्दूपनिषद्

इस ज्योति और शब्द को कैसे पकड़ा जाएगा? संत गुलाल साहब ने कहा है—

उलटि देखो घट में जोति पसार।
बिनु बाजे तहँ धुनि सब होवै, विगसि कमल कचनार।।
पैठि पताल सूर शशि बाँधौ, साधौ त्रिकुटी द्वार।
गंग जमुन के वार पार बिच, भरतु है अमिय करार।।
इंगला पिंगला सुखमन सोधो, बहत सिखर मुख धार।
सुरति निरति ले बैठ गगन पर, सहज उठै झनकार।।
सोहं डोरि मूल गहि बाँधो, मानिक बरत लिलार।
कह गुलाल सतगुरु वर पायो, भरो है मुक्ति भंडार।।

बहिर्मुख नहीं रहकर अंतर्मुख होओ और फैली दृष्टि से सिमटी दृष्टि करो। आकाश में जैसे बिजली के बिना शब्द नहीं सुन पड़ता है, उसी तरह ज्योति के बिना अंदर के शब्द को कोई नहीं पाता है। जो अंतर में प्रवेश करके ब्रह्म ज्योति को पाता है, वही ब्रह्मनाद को पाता है। यह रास्ता क्षुरे की धार के समान सूक्ष्म है—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।
—कठोपनिषद्

और मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में भी सूक्ष्म मार्ग का अवलम्बन करने कहा है—

'निद्रा भय सरीसृपं हिंसादि तरंगं तृष्णावर्तं दारपंकं संसारवार्धितर्तुं सूक्ष्ममार्गमवलम्ब्य सत्त्वादि गुणानतिक्रम्य तारकमवलोकयेत्। भ्रूमध्ये सच्चिदानंद तेजः कूट रूपं तारकं ब्रह्म।'

अर्थ—निद्रा, भय, आदि जहाँ जीव जन्तु हैं, हिंसा आदि तरंगवाले, तृष्णारूपी भँवरवाले, स्त्रीरूपी पंकवाले—संसाररूप समुद्र से तरने के लिए सूक्ष्म मार्ग का अवलम्बन करके, सत्त्वादि गुणों को पार करके दोनों भौओं के बीच में सत्-चित्-आनन्द तेजपुंज तारक ब्रह्म का अवलोकन करे। इसी को गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

भगता की चाल निराली।
चाल निराली भगता केरी विखम मारगि चलणा।।
लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाहीं बोलणा।।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।।
गुर परसादी जिनि आपु तजिया हरि वासना समाणी।।
कहै नानक चाल भगताह केरी जुगहु जुगु निराली।।

बारीक रास्ते पर सूक्ष्म मन जाय, कोई कठिन नहीं। चाहिए गुरु का यत्न। इतना पवित्र काम कौन करेगा? जो पंच पापों—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से नहीं बचेगा, वह इस रास्ते पर नहीं चल सकता। इसीलिए संतों ने पंच पापों का निषेध किया। इसी को भगवान बुद्ध ने पंचशील का पालन करने कहा। जो अंतर पथ में चलता है, उसमें आत्मबल आता है और उसकी पापवृत्ति छूटती है। जो पापवृत्ति को छोड़ता रहता है, उसका अंतर में प्रवेश होता है, उसको आत्मबल मिलता है। इससे संसार में भी आनंदित रहोगे।

कहै कबीर निज रहनि सम्हारी। सदा आनन्द रहे नर नारी।।

आप ख्याल कीजिए कि जो पंच पापों से बचकर रहेंगे, तो वे कितने शान्त रहेंगे। यदि इसका समाज बन जाय तो वह कितना अच्छा समाज बन जाएगा और कितनी शान्ति मिलेगी।

हमारे गुरु महाराज कहा करते थे—सबसे ऊपर लिखो spirituality (स्प्रीच्युलीटी) अर्थात् आध्यात्मिकता, उसके नीचे लिखो morality (मोरेलीटी) अर्थात् सदाचारिता, उसके नीचे लिखो Sociality (सोसलीटी) अर्थात् सामाजिक नीति और अंत में लिखो politics (पोलटिक्स) अर्थात् राजनीति। राजनीति को सुधारकर समाज को सुधारेंगे, ऐसा नहीं हो सकता। यह १९०९ ई० में हमारे गुरु महाराज ने कहा था। जो आध्यात्मिकता की ओर जाते हैं, उनका सदाचार अच्छा होता है। जहाँ के लोगों में सदाचारिता अच्छी होगी, वहाँ की सामाजिक नीति अच्छी होगी और जहाँ की सामाजिक नीति अच्छी होगी, वहाँ की राजनीति बुरी नहीं हो सकती। तब वहाँ रामराज्य होगा।

आज स्वराज्य है, लेकिन सुराज्य नहीं है; क्योंकि खल-उद्यम बहुत है। 'जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ'—यह नहीं हो पाया है।

लोग आध्यात्मिकता की प्रधानता दें। राज्य की शासन-प्रणाली से भी इसके लिए बहुत सहायता मिले, तो सभी सदाचार का पालन करते हुए शान्ति से रहेंगे और तब स्वराज्य में सुराज्य होगा।

गुरु महाराज ने जो कुछ हमसे कहा था, वही मैंने आपलोगों से कहा। आपलोग स्वयं बुद्धिमान, विद्वान और समझदार आदमी हैं। लेने योग्य हो तो लीजिए; नहीं लेने योग्य हो तो नहीं लीजिए। किंतु मेरी समझ से तो संतों के उपदेश लेने के ही योग्य हैं। बाहर कहीं जाना नहीं है, अंदर-ही-अंदर चलना है। इसमें किसी को उजुर नहीं होना चाहिए। कोई कहे कि सत्संग कर लिया, समझ लिया, बारम्बार सत्संग करने से क्या लाभ? तो जानिये कि बारम्बार के सत्संग से ध्यान करने में प्रेरण मिलता रहता है। भगवान बुद्ध ने कहा है—स्मरण के लिए न दुहराना धब्बा है। सुचरित्र से रहिए, ईश्वर-भजन कीजिए। जो लेने योग्य बातें हों, आप लीजिए और लेने योग्य बातें नहीं हों, नहीं लीजिए; किसी का किसी पर जोर नहीं। मैं समझता हूँ कि ऐसी कोई बात मैंने नहीं कही होगी, जो अनुचित हो। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेशान्तर्गत लखनऊ में दिनांक २.४.१९६२ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में श्रीमान् गंगाचरणलाल महोदय के निवास स्थान पर हुआ था।

१७५. ईश्वर सबका आधार

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

वर्ष में एक बार गुरु महाराज की स्मृति में सत्संग यहाँ हुआ करता है, यद्यपि ठीक वही तिथि आज नहीं है, फिर भी कारणवश वही स्मृति-दिवस हमलोग आज मना रहे हैं। गुरु महाराज ने हमलोगों को ईश्वर-भक्ति का उपदेश दिया है। ईश्वर-भक्ति में सबसे पहली बात यह है कि हम ईश्वर-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करें। तब हम ठीक-ठीक समझ सकेंगे कि ईश्वर-भक्ति के लिए क्या काम करना होगा? जबतक ईश्वर की स्थिति और उनके स्वरूप का निर्णय नहीं जान सकेंगे, तबतक हमको निर्णय नहीं होगा कि ईश्वर की भक्ति कैसे करेंगे। कोई यात्री यात्रा करता हुआ जाता हो, मार्ग में चलने का प्रयास करता हो, परंतु कहाँ उसको पहुँचना है, किस निर्दिष्ट स्थान में पहुँचना चाहिए, नहीं जानता है तो वह चलता ही रहेगा और जहाँ जाना चाहिए,

नहीं जाकर उसका प्रयास मात्र होगा। इसलिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए।

भक्ति-मार्ग में लोग कहते हैं कि ईश्वर का धाम और उसके नाम को जानना चाहिए। उस नाम को पकड़ते-पकड़ते उस धाम में जाना चाहिए। यह बात कुछ पीछे की है, पहले ईश्वर-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होना चाहिए। आज भारत में ईश्वर-ईश्वर कहकर रह जाते हैं, इतना ही नहीं कोई कुछ और कोई कुछ कहते हैं। कोई कहते हैं कि ईश्वर कोई एक नहीं हैं। ईश्वर का मानना भी गलत है। कोई कहते हैं, ईश्वर तो नहीं ही माना जा सकता है और तुम कोई अलग पदार्थ भी नहीं हो। शरीर के कारण तुम अपने को जानते हो। शरीर के छूटने से तुम नहीं रह सकते । जो ईश्वर को नहीं मानते हैं, परन्तु अपनी स्थिति मानते हैं, वे आधे नास्तिक हैं। दूसरे जो अपने का भी ज्ञान नहीं करते और ईश्वर के लिए भी उसकी स्थिति नहीं मानते हैं, उनको पूरा-पूरा नास्तिक कहना चाहिए। आजकल अपने देश में इसका यत्र-तत्र प्रचार होता है, जो अपने तईं को मानते हैं और ईश्वर को नहीं मानते हैं। अपने आप को ही सर्वव्यापक नहीं, बल्कि अनेक आत्माओं का जो बाहुल्य है, उसका पसार संसार में है, इसलिए वह सर्वव्यापक है। ईश्वर एक ही सर्वव्यापक नहीं, बल्कि इस तरह बहुसंख्यक होते हुए सर्वव्यापक है, ऐसा कहते हैं। उनके लिए यह उक्ति आती है—अनेकत्व में सर्वव्यापकत्व नहीं हो सकता। यदि बीच में कुछ अवकाश नहीं हो तो एक के बाद दूसरे का ज्ञान नहीं हो सकता है। बीच में कुछ अवकाश है, तब एक दो गिनते हैं चाहे वह कितना भी घना हो, फिर भी कुछ अवकाश अवश्य होगा। जो अवकाश बचता है, उसमें तो वह व्यापक नहीं होता। उसको सर्वव्यापक कैसे मानें? एक ही एक को सर्वव्यापक नहीं मानकर अनेक को सर्वव्यापक मानते हैं, तो वे ईश्वर को नहीं मानते हैं। अनेकता में जितने पदार्थों को रखेंगे, उसमें प्रत्येक की सीमा होगी। सब मिलाकर वह कितना ही बड़ा मण्डल हो, फिर भी वह मण्डल सीमावाला होगा। एक की सीमा है तो प्रत्येक की सीमा है और सबको मिलाकर जो सीमा होगी, उसके परे क्या है? यह प्रश्न होगा। यह यदि वह नहीं बता सकता है तो दूसरा कहता है कि उस सीमा के परे असीम है। उस असीम को वे क्या कहते हैं? वही सर्वव्यापक है, जो अनेकों के बाद भी बचता है। वही असीम तत्त्व है, असीम तत्त्व के परे और कुछ नहीं हो सकता है। ऐसे भी लोग हैं, जो इसका प्रचार करते हैं कि ईश्वर एक है, लेकिन उसके दो भाग हैं—एक भाग condensed (कॉन्डेंस्ड) और दूसरा भाग uncondensed (अनकॉन्डेंस्ड) अर्थात् एक भाग सघन और दूसरा अघन मानते हैं। दोनों के साथ प्रकृति सदा लगी रहती है और प्रकृति एक शक्ति है। सघन और अघन के साथ बराबर-बराबर मात्रा में प्रकृति है। जो भाग सघन है, उस भाग पर प्रकृति अपना प्रभाव नहीं कर सकती है; क्योंकि वह भाग बलिष्ठ है, वह निर्गुण है। जो भाग अघन है, वह सघन भाग की तरह बलिष्ठ नहीं है। इस पर प्रकृति अपना प्रभाव कर सकती है। यह इस तरह है, जैसे कुम्हार के हाथ में मिट्टी। इस भाग को प्रकृति जैसा करना चाहती है, करती है। वह भाग सगुण है। जो सघन है, बलिष्ठ है, वह अपनी स्थिति का भी ज्ञान नहीं रखता। और कहते हैं कि गुरु उस निर्गुण तक पहुँचा देंगे। सगुण ब्रह्म अपने स्वरूप से अणु चैतन्य को अलग करते हैं और पारी-पारी से उसको वहाँ पहुँचाते हैं। पहुँचाते-पहुँचाते कभी-न-कभी सबको पहुँचा देंगे। पीछे निर्गुण ही निर्गुण रहेगा।

ईश्वर ऐसा मानने योग्य नहीं कि उसका एक भाग सबल और दूसरा निर्बल हो। सबल भाग ऐसा कि उसको अपनी स्थिति का भी ज्ञान नहीं रहता। तब जो अणु चैतन्य उसमें जाकर मिलेगा, वह भी अचेत पड़ा रहेगा तो फायदा क्या होगा? जैसे समुद्र के अंदर हवा की वजह से पानी बर्फ का पहाड़ बन जाता है, उसी तरह सगुण है, निर्गुण का यह रूपान्तर है। उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुकूल यह मानने योग्य है कि अणु चैतन्य पर भी प्रकृति अवश्य लगी रहेगी। वह अणु प्रकृति के वश में रहते हुए निर्गुण तक कैसे पहुँचेगा? उत्तर में कहे कि अणु चैतन्य को गुरु पहुँचा देंगे तो गुरु भी तो एक अणु चैतन्य ही है। जब प्रकृति का हँटना मंजूर नहीं, तब गुरु अणु चैतन्य पर भी प्रकृति का रहना माना ही जाएगा। क्या सदेह गुरु निर्गुण मानने योग्य है? यदि ऐसा मानें तो निर्गुण को उपर्युक्त सिद्धान्त कथित अनुकूल अपनी स्थिति का ज्ञान नहीं है, यह निर्गुण गुरु औरों को ज्ञान देकर कैसे गुरुवाई करेंगे? यदि गुरु को सगुण ब्रह्म माना जाय तो उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुकूल वह प्रकृति रूप कुम्हार के अधीन में मिट्टी का लोंदावत् है, तो गुरु की महत्ता कुछ नहीं रहती। यदि सगुण ब्रह्म गुरु साधन द्वारा प्रकृति के गुण वा डोरी से अप्रभावित वा अगुणान्वित रहता है, तो अणु चैतन्य के लिए ऐसा होना असम्भव है; क्योंकि वह अघन का अणु चैतन्य होने के कारण अघन है। और वह सिद्धान्त कहता है कि प्रकृति बिजलीवत् एक शक्ति विशेष है। तो वह बिजली की तरह ही अज्ञान तत्त्व है। यह किसी अणु चैतन्य को ज्ञान देकर निर्गुण ब्रह्म से मिलाकर मुक्ति करा दे संभव नहीं। इस तरह कमजोर विचार लेकर ईश्वर-ज्ञान-प्रचार करते हैं। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि—

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।

गोया प्रभु के अख्तियार में माया पूर्ण रूप से है और उसकी आज्ञा मानती है। यहाँ तो बड़ी आशा है कि परमात्मा की शरण लो तो माया से छूट जाओगे। दूसरे ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक है, यह भारी गप है। ईश्वर को वे ससीम मानते हैं। रामचरितमानस में है—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

ऐसा वे नहीं मानते। यहाँ विचारणीय है कि ईश्वर कभी बन गए हैं क्या? ईश्वर नहीं थे और जरूरत होने पर वे बन गए? ईश्वर के माननेवाले ऐसा मान नहीं सकते। जो सबसे पूर्व का है, जिसके पूर्व कोई और कुछ न हो, जो परम सनातन, परम पुरातन है, वही ईश्वर है। उसे प्रभु कहो, ईश्वर कहो, गॉड कहो, खुदा कहो। वह ईश्वर जो परम सनातन है, वह किसी आधार पर होगा? हमलोग बिना आधार के नहीं रह सकते। पृथ्वी, पानी, हवा, भोजन आदि हमलोगों को अवश्य चाहिए। जो सबसे पहले का होगा, वह अपने लिए कोई अवलम्ब नहीं रखेगा। वह निराधार है, सबका अवलम्ब है। जो निराधार है, सबसे प्रथम का परम पुरातन है—वह ससीम हो नहीं सकता। उसको ससीम मानेंगे तो उसके अतिरिक्त और कुछ होना चाहिए। तब जो उसके अतिरिक्त अवकाश होगा, वह उसके पहले का होगा। लेकिन परम पुरातन वह है, जिसके अतिरिक्त और कुछ न हो सके। परम पुरातन एक ही होगा। जो किसी आधार पर नहीं है, वह आदि-अंत-रहित है। वह सीमाबद्ध होने योग्य नहीं है। वह देशकालातीत पदार्थ है। उस देश-कालातीत को कोई नहीं माने तो वह ईश्वर नहीं मानता है। उसके अतिरिक्त दूसरे कहते

हैं कि ईश्वर एकदेशीय होते हुए किरणों से सर्वदेशीय हैं, जैसे सूर्य एकदेशीय है और किरण से सर्वदेशीय है। वहाँ यह प्रश्न होगा कि जो स्वरूप से एकदेशीय है, उसकी किरण सर्वदेशीय हो जाय या अनन्त हो जाय, बुद्धि के बाहर की बात है। एकदेशीय पदार्थ से किरण निकली और वह सर्वव्यापक और अनंत-असीम हो गई, यह मानने योग्य नहीं। एक- देशीय पदार्थ की किरण कितनी भी लम्बी क्यों न हो, वह ससीम होगी। इस तरह उसकी असीमता नहीं रहती। वह 'अलख अपार अगम अगोचर' नहीं हो सकती। या गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में 'व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।' कहने योग्य नहीं होता। परम पुरातन कहने योग्य नहीं होता, निराधार और देशकालातीत भी नहीं हो सकता। आधार के आश्रित ईश्वर कैसे? निर्मल चेतन के अपार सिन्धु को मालिक-कुल्ल कहते हैं। 'अपार सिन्धु' न कि 'ससीम' गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

'अपार' शब्द कहा। उस अनंत के साथ कुछ और पदार्थ हो, ऐसा नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि जिस मशाला से सृष्टि बनी, वह मशाला ईश्वर के साथ था, तब संसार बना। वे यह भी कहते हैं कि बिना उपादान कारण के कुछ बन नहीं सकता। कुम्हार निमित्त कारण है और मिट्टी उपादान कारण है। इसी तरह प्रकृति उपादान कारण है और ईश्वर निमित्त कारण। कहते हैं कि प्रकृति पहले से है। तो विचारो कि एक अनादि-अनन्त तत्त्व के अतिरिक्त और दूसरा पदार्थ कैसे हो सकता है? यदि कहो कि प्रकृति के कण-कण में वह व्यापक है तो प्रकृति का परमाणु किस तत्त्व से बना है? संतों ने इसका जवाब बहुत जोरदार शब्दों में दिया है—'तदि अपना आपु आपही उपाया। नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया।' (गुरु नानकदेव) अर्थात् उपादान को भी बना लिया। यहाँ कुम्हार कहो वा वैज्ञानिक। आज के वैज्ञानिक बिना उपादान के एक चुटकी मिट्टी नहीं बना सकते। यह जीव कोटि की बात है। अगर परमात्मा में भी यही बात लागू हो तो परमात्मा कैसा? इसलिए संतों ने कहा कि वह अकेले था। कबीर साहब तथा और संतों के वचनों में सभी का कहना है कि आरंभ में एक ही ईश्वर था। तुलसीदासजी ने ईश्वर को वैज्ञानिक कहा है। 'अज विज्ञान रूप बलधामा।' (रामचरितमानस) लेकिन यहाँ पर कोई भी ज्ञानवान पूर्ण विज्ञान का स्वरूप नहीं है। आज के बड़े-बड़े वैज्ञानिक कहते हैं कि विज्ञान का अंत नहीं हुआ है। परमात्मा ही विज्ञान स्वरूप हैं। वैज्ञानिक की उपाधि देकर परमात्मा को कहना कि उपादान नहीं बना सकता, उचित नहीं। ईश्वर का उत्पन्न होना नहीं है। साचे सचिआर विटहु कुरवाणु' (गुरु नानकदेव) ईश्वर के मानने में ऐसा ही ईश्वर संतों ने माना है।

हमलोग ऐसा नहीं कि एक नया धर्म बनावें और प्रचार करें। हमारे गुरु महाराज कहते थे कि जो संतों ने बताया है, वही हमारा मत है। घटरामायण के प्रणेता तुलसी साहब माने जाते हैं। उसमें तुलसी साहब ने कहा नहीं है कि यह मेरा मत है। बल्कि उन्होंने कहा कि 'संत गुरू और पंथ न जाना। संत पंथ याही मन माना।।' 'जो कोइ संत अगम गति गाई। चरण टेक पुनि महूं सुनाई।।' जितने संत हुए हैं, सबका एक मत है। ईश्वर सबका आधार और अपने निराधार हैं।

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।

जो आदि-अंत-रहित है, उसको साकार कैसे बनाया जाय? आदि-अंत-रहित तत्त्व को निराकार

कहना ही होगा। 'प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी।।' प्रकृति मण्डल का अंत है, इसलिए 'प्रकृति पार' कहा।

संतों ने कहा ईश्वर-स्वरूप को प्राप्त करो, जबतक ईश्वर-स्वरूप प्राप्त नहीं करोगे, कल्याण नहीं होगा। संतलोग मोक्ष का उपदेश देते हैं। शरीर और संसार के बंधनों से छूट जाना मोक्ष है। यह मोक्ष तबतक नहीं होगा, जबतक 'व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता' का दर्शन न हो जाय। इसके लिए भक्ति करने का उपदेश संतों ने दिया है। लोगों के मन में होता है कि ईश्वर अलख, अगम है, उसकी भक्ति कैसे करूँ? जिसको हम इन्द्रियों से नहीं जान सकें, उसमें अपने को कैसे लगावें? यह प्रश्न होना ही चाहिए। मैं एक छोटा-सा बयान देता हूँ।

महाभारत युद्ध समाप्त होने के पश्चात् विजेता बनकर भी युधिष्ठिर बहुत दुःखित था। क्योंकि उस युद्ध में धनराशि तो नष्टप्राय हो ही चुकी थी, साथ ही उनके पुरजन और परिजन का भी विनाश हुआ था। न तो सामने सम्पत्ति थी और न उसका भविष्य भोक्ता ही। उनकी मानसिक व्यथा दूर करने हेतु व्यासदेव ने उन्हें यज्ञ करने की सलाह दी। युधिष्ठिर ने अपनी आर्थिक संकट—समस्या उनके समक्ष रखी। व्यासदेव ने पहाड़ स्थित रक्षित धन का पता बताया। युधिष्ठिर ने व्यासदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर उक्त पहाड़ से धन लाकर अश्वमेध यज्ञ किया। युधिष्ठिर के लिए वह धन अव्यक्त था, अगोचर था; लेकिन व्यासदेवजी के वचन में विश्वास किया और उन्होंने जो अनुष्ठान बताया, किया, तो धन पाया और यज्ञ किया। इसी तरह वह परमात्मा रूपी धन भी अव्यक्त है। संत लोग बताते हैं कि, वह धन कहाँ है? वह बुद्धिपर पदार्थ है। हमको बुद्धि से परे जाना चाहिए। यहाँ पर अपने तईं सोचना चाहिए कि मैं कौन हूँ? जबतक होश-हवाश में हैं, सभी जानते हैं कि 'मैं हूँ।' आप क्या हैं? शरीर हैं? नहीं। इन्द्रिय, मन, बुद्धि आप हैं? नहीं। ये सभी मेरे हैं। शरीर, इन्द्रियाँ और भीतर की मन-बुद्धि आदि से परे पदार्थ जो इस शरीर में है, वह मैं हूँ। इनके साथ-साथ मैं हो गया हूँ। इनके संग हो गए हो, तो इनका संग छोड़ दो।

पाँच तत्त्व, पंच विषय, बाह्य दशेन्द्रियाँ, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, मन, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात, चेतना और धृति; इन सबसे जो भिन्न है, वह आप हैं। इनसे आगे पहुँचिए आप, तो अपने को और ईश्वर को भी पहचानोगे। आप स्वयं भी अव्यक्त हो। अव्यक्त से ही अव्यक्त पकड़ा और पहचाना जाता है। अपने को व्यक्त से छुड़ाओ। इसे फुटाने के वास्ते संतों ने रास्ता बताया है। उसी रास्ते को बताने के लिए घटरामायण में है—'हिय नैन सैन सुचैन सुन्दरि साजि स्रुति पिउ पै चली। गिरि गवन गोह गुहारि मारग चढ़त गढ़ गगना गली।।' प्रभु को बुलाते नहीं, प्रभु के पास जाते हैं। यही भक्ति है। जगन्नाथजी में जिनकी श्रद्धा है, उस ओर कदम-कदम चलते हैं, यह कदम-कदम चलना उसकी भक्ति में दाखिल है। उसी तरह ईश्वर की ओर चलना उसकी भक्ति है। लेकिन यह बाहर की बात नहीं, अंतर की बात है। अपने को वेश-भूषा, कपड़ा-जेवर से सजाकर नहीं, अन्तर्दृष्टि से सजाकर चलते हैं। कबीर साहब ने कहा है—

बिन सतगुरु नर रहत भुलाना। खोजत फिरत राह नहिं जाना।।
केहर सुत ले आयो गड़रिया, पाल पोस उन कीन्ह सयाना।
करत कलोल रहत अजयन संग, आपन मर्म उन्हुँ नहिं जाना।।
केहर इक जंगल से आयो, ताहि देख बहुतै रिसियाना।
पकड़ि के भेद तुरत समुझाया, आपन दशा देखि मुसक्याना।।
जस कुरंग बिच वसत वासना, खोजत मूढ़ फिरत चौगाना।
कर उसवास मनै में देखै, यह सुगंधि धौं कहाँ बसाना।।
अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है, छक्यो रूप नहिंजात बखाना।

कहै कबीर सुनो भाइ साधो, उलटि आपु में आपु समाना।।

जैसे युधिष्ठिर को वहाँ व्यासदेव बतानेवाले थे, उसी तरह यहाँ लोगों को सद्गुरु बतानेवाले हैं। बिना सद्गुरु के ईश्वर के पास जाने का पता नहीं मिलता।

एक गड़ेरी जंगल के किनारे भेड़ बकरियों को चराने के लिए जाया करता था। एक दिन उस जंगल में सिंह का एक छोटा बच्चा उसको मिला, जिसकी आँख अभी खुली नहीं थी। गड़ेरी ने उस सिंह के बच्चे को वहाँ से उठाकर अपने घर ले आया और भेड़-बकरियों के साथ उसका भी पालन-पोषण करने लगा। उसकी जब आँख खुली तो उसने अपने को भेड़-बकरियों के बीच पाया। उसने समझा कि मैं भी इन्हीं की भाँति हूँ। यह जानकर वह सिंह का बच्चा उन्हीं भेड़ बकरियों के साथ रहकर आनंद-विनोद करता था। पूर्व की भाँति गड़ेरी फिर भेड़-बकरियों को जंगल के किनारे चराने के ले गया। उनके साथ सिंह का बच्चा भी गया। संयोगवश उस जंगल से एक सिंह निकला। उसने भेड़-बकरियों के साथ सिंह के बच्चे को देख। यह देखकर उसे बहुत क्रोध आया। उसने एक झपट्टा मारकर सिंह के बच्चे को पकड़ लिया। भेड़-बकरियों के साथ गड़ेरी भाग गया। सिंह का बच्चा डर से काँप रहा था। सिंह ने नदी के किनारे ले जाकर अपनी और उसकी परछाईं को दिखाकर कहा—'देखो, जो मैं हूँ, सो तुम हो। तुम भेड़ और बकरियों के बच्चे नहीं, तुम सिंह के बच्चे हो।' यह सोच-समझ और परछाईं को देख उसे विश्वास हो गया कि मैं भेड़-बकरे नहीं, अपितु सिंह का बच्चा सिंह हूँ। अपने को स्वरूप में पा उसे बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसी तरह संतलोग भी दिखाते हैं कि 'अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है'। अर्ध-ऊर्ध्व के बीच में जो लगन नहीं लगावेगा, वह दिव्य दृष्टि से अपने को नहीं सजा सकता। यही युक्ति गुरु महाराज बता गए हैं। मैं नहीं कह सकता कि मैं पूर्ण हूँ। युक्ति जानता हूँ और अभ्यास करता हूँ। बाबा जो बता गए हैं, उसको संतों के ज्ञान से और युक्तिवाद से मिलान करने पर भी सत्य सिद्ध होता है। जो एक पल भी ठीक से साधन कर सकता है, उसको कुछ-न-कुछ अवश्य मालूम होगा। लेकिन उसी कुछ में संतुष्ट नहीं हो जाओ। संतुष्ट होने से जो आगे मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। इसलिए और भी अभ्यास करो और आगे बढ़ो।

n

यह प्रवचन उत्तर प्रदेशान्तर्गत संतमत सत्संग आश्रम, कानूनगोयान मुहल्ला मुरादाबाद में दिनांक ७.४.१९६२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में परम श्रद्धेय बाबा देवी साहब के स्मृति दिवस के उपलक्ष्य में हुआ था।

१७६. तपस्वी को नश्वरता का ज्ञान

प्यारे लोगो!

शरीर और संसार की अनित्यता पर नित्य-प्रति विचार करना चाहिए। शरीर एक तरह नहीं रहता है, वह मर जाता है। संसार के पदार्थ भी सदा नहीं रहते, चाहे वे हमको छोड़ते हैं वा हम उनको छोड़ते हैं। शरीर स्थिर नहीं है। हम चेतन आत्मा स्थिर हैं। नाशवान पदार्थ परिवर्तनशील है। नाशवान और परिवर्तनशील पदार्थ के अंदर रहते हुए इसमें अपने को पाकर जो सांसारिक ज्ञान और दुःख होता है, वह भोग रहे हैं। शरीर को जानते-

पहचानते हैं, परंतु अपने को जानते-पहचानते नहीं। यदि पहचान लें तो उस ओर हम फिर जाएँगे। शरीर को नाशवान और अपने को अनाश समझकर अपने स्वरूप को जानिए। कितना भी सुन्दर, सुडौल शरीर है, मलमूत्र के अतिरिक्त उसमें कुछ और पदार्थ नहीं है। योगवाशिष्ठ की कथा है—एक राजकुमारी की सुन्दरता पर एक तपस्वी मोहित हुआ। उसको शिक्षा देने के लिए राजकुमारी ने विरेचक औषधि ले ली, जिससे उसे बहुत दस्त हुए। उसने अपने मल को घड़ों में बन्दकर रख लिया। उसके शरीर की हालत बिगड़ गई। तब राजकुमारी ने कहा कि तुम जिस सुन्दरता पर मोहित हुए थे, वह सुन्दरता इसी घड़ों में मलमूत्र के रूप में है। तब तपस्वी को नश्वरता का ज्ञान हुआ। इसलिए कितना भी सुन्दर शरीर हो, वह नाशवान है। अपने तईं के कल्याण के लिए सोचो। कल्याण चाहते हो तो ईश्वर का नाम-भजन करो। नाम-भजन के लिए गुरु नानकदेव ने कहा कि—

कासट महि जीउ है बैसन्तरु, मथि संजमि काढ़ि कढ़ीजै।
राम नाम है जोति सबाई, तत गुर मति काढ़ि लईजै।।

जैसे काठ में अग्नि छिपी है, घिसने से उससे निकलती है, उसी तरह राम-नाम अपने अंदर है। साधन की युक्ति से उसको पाओगे। यह किसी के कान में कहने की नहीं है। इसके लिए साधन करना होगा। कितना साधन करना होगा, तो गुरु नानकदेव ने कहा—'भरिसागर भगति करीजै।'

अर्थात् बहुत भक्ति करो। सतगुरु अगम और ठाकुर—परमात्मा भी अगम है। शरीर में नौ दरवाजों के अतिरिक्त दसवाँ द्वार है। वहाँ अमृत रस है। उसी के साथ ईश्वर का नाम है। उस दसवें द्वार में जो फिरता है, उसमें अपने को लगाता है, तब उसको वह नाम मिलता है। 'बिन शब्दै नाम न चाह।'— गुरु नानकदेव

उस शब्द को पकड़ने के पहले बहुत से शब्द मिलते हैं। परमात्मा का नाम वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक दोनों में है। असली नाम ध्वन्यात्मक में है। जो ध्वन्यात्मक को पहचानता है, वह ईश्वर को पाता है। अंतर में केवल चेतन आत्मा जाती है। शब्द में बहुत गुण है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने नाम के संबंध में कहा है—

श्रवणात्मक वर्णात्मक, ध्वन्यात्मक विधि तीन।
त्रिविध शब्द अनुभव अगम, तुलसी कहहिं प्रवीन।।
—तुलसी सतसई

शब्द के केन्द्र में मायिक सिद्धियाँ—शक्तियाँ हैं। जो उस शब्द को पकड़ता है, उसमें सिद्धि हो जाती है। शब्द में ज्ञान है। जो उस ज्ञान को पकड़ता है, वह ज्ञानी हो जाता है। सृष्टि के आरंभ में जो शब्द परमात्मा से हुआ, उसको जो पकड़ता है, वह परमात्मा को पाता है। संत कबीर साहब ने कहा है—

शब्द गह्यो जीव संशय नाहीं, साहब भयो तेरो संग।

इसकी जानकारी गुरु से होगी, वैसे नहीं। गुरु की कृपा से जीव उत्तम दशा को प्राप्त करता है। संत सुन्दरदासजी ने कहा है—

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा को गहै।
गुरु के प्रसाद भव दुःख बिसराइये।।
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीतिहु अधिक बाढ़ै।
गुरु के प्रसाद राम नाम गुण गाइये।।
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जानै।
गुरु के प्रसाद शून्य में समाधि लाइये।।
सुन्दर कहत गुरुदेव जू कृपालु होइ।
तिनके प्रसाद तत्त्वज्ञान पुनि पाइये।।

ईश्वर का भजन करो, साधन करो, मोक्ष प्राप्त करो। केवल शरीर और संसार में लिपटकर सांसारिक दुःख न उठाओ। n

यह प्रवचन उत्तर प्रदेशान्तर्गत मुरादाबाद में दिनांक १०.४.१९६२ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में बाबू श्रीकान्ति प्रसादजी द्वारा आयोजित सत्संग में हुआ था।

१७७. राम का प्रबल प्रताप : सूर्य

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

हमलोग सत्संग करते हैं। जानना चाहिए कि सत्संग कहते हैं किसको? सत् जो बदलता नहीं हो, जिसकी स्थिति का कभी लोप नहीं हो। अत्यन्त निश्चल—ध्रुव को सत् कहते हैं। सिवा परमात्मा के ऐसा कोई नहीं हो सकता। उसमें परिवर्तन नहीं होता और उसकी स्थिति का अभाव कभी नहीं होता, इसका संग हो, तब सत्संग।

यह ऐसी बात है, जिसमें लोगों को जिज्ञासा होती है कि हमलोग जो इस तरह बैठकर सत्संग करते हैं, यह सत्संग कैसे हुआ? ईश्वर से भेंट ही नहीं तो उसका संग कहाँ हुआ? इसलिए इस तरह के सत्संग को सत्संग कैसे कहें?

यह जिज्ञासा उचित ही है। दूसरी बात यह है कि संतों के संग को सत्संग कहते हैं। संत वे होते हैं, जो 'सत्' को प्राप्त किए होते हैं। अभी जिस 'सत्' अर्थात् परमात्मा का वर्णन किया गया, उसको जो प्राप्त करते हैं, संत हैं। 'सत्त पुरुष जिन जानिया, सतगुरु ताको नाम।' ऐसे की पहचान दुर्लभ है। जो संत गुजर गए हैं, उनका संग नहीं है। वर्तमान में संत कौन है, पहचानना असंभव-सा मालूम होता है। संतों की पहचान कैसे हो? इसके लिए बड़ी-बड़ी बातें हैं। महोपनिषद् में लिखा है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थात् परे से परे को (परमात्मा) को देखने पर हृदय की ग्रंथि खुल जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

यह ग्रन्थि क्या है? 'जड़ चेतनहिं ग्रंथि पड़ि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।' संत जड़ और चेतन को अलग-अलग करके प्रत्यक्ष देखते हैं। वे कर्म बंधन में, संशय में और हृदय की ग्रंथि में नहीं रहते। वे बहुत ऊँचे हैं, उनको कौन पहचाने? संतों के संग में जाते हैं, तो संशय होता है कि ये संत हैं या नहीं? मामूली तरह लोग कहते हैं कि जो घर-वार छोड़कर साधु-वेश लेते हैं, ये सभी संत कहलाते हैं। तो इनमें अच्छे भी हैं और कुछ बुरे भी हैं। जो नियम से रहते हैं, वे अच्छे हैं और जो नियम से नहीं रहते, वे अच्छे नहीं हैं। तब संतों का संग कैसे हो? गुरु महाराज कहते थे कि संतों का संग करोगे तो वे कुछ कहेंगे, उससे तुमको लाभ होगा। उनकी दूसरी बात है कि जो संत अभी नहीं हैं, उनकी वाणियाँ हैं। उनको पढ़ो, सुनो, समझो, यह भी सत्संग है। लोग दूर-दूर रहते हैं, चिट्ठियों के द्वारा काम करते हैं। संतों की वाणियों का संग उनकी आधी मुलाकात है; क्योंकि चिट्ठी को आधी मुलाकात कहते हैं। यह बाहरी सत्संग है। और एकान्त ध्यान, जिसमें ठीक-ठीक सत् से मिला जाता है, को अंतरी सत्संग कहते हैं। इसी के लिए गुरु की अत्यन्त आवश्यकता है कि जो उस रास्ते को बता दे, लेकिन गुरु की पहचान भी कठिन है। फिर भी बहुत दिनों तक संग करने पर अच्छे-बुरे का ज्ञान हो जाता है।

उघरे अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू।।

—रामचरितमानस

गुरु नाम है ज्ञान का, शिष्य सीख ले सोइ।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु शिष्य न कोइ।।
सत्तनाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं।

क्या ले गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं।।
तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार।
कबहुँ कहै कि मैं दिया, धनी सहेगा मार।।
तन मन दीया आपना, निज मन ताके संग।
कह कबीर निर्भय भया, सुन सतगुरु परसंग।।
तन मन ताको दीजिये, जाके विषया नाहिं।
आपा सबहीं डारिके, राखै साहिब माहिं।।
—कबीर साहब

पचविषयों की लवलीनता है कि नहीं, संग करने पर मालूम होगा। जब संग करने पर मालूम हो कि मितभोगी है, इतना भोजन, इतना शयन आदि करते हैं, चरित्रवान हैं, तो उनको अच्छा मानना योग्य है। इन बातों में योग्य गुरु की पहचान हो जावे, तब गुरु धारण करे। गुरु भी शिष्य को जाने और शिष्य भी गुरु को जाने।

अंतर में प्रवेश करके ईश्वर का चिह्न क्या पाना होगा, जिससे ईश्वर को पहचाना जाय? संसार में आप दो चीजों को देखते हैं। दिन में सूर्य का प्रकाश और रात्रि में चन्द्रमा तथा तारे का प्रकाश। बादल के कारण सूर्य-चन्द्र भले नहीं देखने में आवे, किंतु चन्द्र और सूर्य, शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में बराबर रहते हैं।

सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
शशि शोषक पोषक समुझि, जग यश अपयश दीन्ह।।
—रामचरितमानस

अंधकार और प्रकाश दोनों पक्षों में होते हैं, रात्रि में बादल के कारण अगर घोर अंधकार है तो कभी-कभी बिजली का प्रकाश अवश्य परमात्मा हमको देते हैं। दूसरी बात यह कि अंधकार रहे वा प्रकाश, लेकिन शब्द रहता है। संसार से शब्द और प्रकाश को परमात्मा हटा लें तो जितने जीव-जन्तु हैं, सभी ज्ञानहीन होकर मर जाएँगे। संसार, संसार के रूप में नहीं रहेगा। राज्य के सम्हाल में, राज्य की वृद्धि और उसके शासन के लिए प्रकाश और शब्द के सहारे लिए जाते हैं। अतएव इनकी शिक्षा अनिवार्य हो पड़ी है। माता के पेट से निकलते ही प्रकाश मिलता है और शब्द सुनते हैं। बच्चे से ही, बच्चा जब कुछ नहीं बोल सकता है, माता बोल सिखाती है। लोग बचपन से पढ़ते-पढ़ते मरने तक पढ़ते रहते हैं। बिना प्रकाश और शब्द के हम जीवित नहीं रह सकते। ज्योति निकालने से गर्मी निकल जाएगी और शब्द के निकाल लेने से गति बन्द हो जाएगी। महाप्रलय हो जाएगा। इनका प्रभाव संसार में ही नहीं, संतों ने देखा है कि अंदर में भी शब्द और प्रकाश है। साधक अपने अंदर ज्योति और नाद को पाता है। 'अंतरि जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा।'—गुरु नानक। ईश्वर की ओर से यही दया-दान होता है, साधक भक्त उसे पाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

श्री गुरुपद नख मणि गण जोति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू।।
उघरहिं विमल विलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।
सूझहिं राम चरित मणि माणिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।
जथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल वन, भूतल भूरि निधान।।
—रामचरितमानस

जिसके अंदर में ज्योति प्रकट होती है, वह एक ही भूतल क्या, सारा ब्रह्माण्ड देखता है—उसे सारे प्रकृति मण्डल का ज्ञान होता है।

जब लगि नहि निज हृदि प्रकाश, अरु विषय आश मन माहीं।
तुलसीदास तब लग जग योनि भ्रमत, सपनेहुँ सुख नाहीं।।
—विनय पत्रिका

संतलोग अंतर्ज्योति को प्राप्त करने के लिए बहुत कहते हैं।

काम क्रोध मद दम्भ न जाके। तात निरंतर वश मैं ताके।।

ये सब विकार कहाँ समाप्त हो जाते हैं? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

जब तें राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका।।
जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी।।
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचानै।।
विविध कर्म गुण काल सुभाउ। ये चकोर सुख लहहिं न काउ।।
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कबनिहुँ ओरा।।
धरम तड़ाग ज्ञान विज्ञाना। ये पंकज बिकसे विधि नाना।।
सुख संतोष विराग विवेका। विगत सोक ये कोक अनेका।।
यह प्रताप रवि जाके, उर जब करइ प्रकास।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास।।

राम का प्रबल प्रताप सूर्य उगने से सभी विकार, दुर्गुण नाश हो जाते हैं, यह बाहर वाला सूर्य नहीं, अंदर का है; ख्याली नहीं है, यथार्थ में है। 'ज्यों दुपहैर गगन रवि छाई। ता से उजास भया घट माईं।।' —तुलसी साहब, हाथरस।

घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
—गुरु नानक साहब

ईश्वर का प्रेमी वह है, जो अंदर में प्रवेश करके परमात्मा का प्रकाश पाता है। उसको परमात्मा से संबंध लगता है। जहाँ प्रकाश रहता है, वहाँ शब्द रहता है। प्रकाश नहीं रहने पर अंधकार में भी शब्द होता है। अंतर्जगत में जो कोई सुनने लगता है, वह अंधकार में भी और प्रकाश में भी शब्द सुनता है। जिस शब्द और जिस प्रकाश को परमात्मा ने हमारे अंदर दिया है, उसका सहारा लेकर हम परमात्मा को पावें और परम कल्याण पावें। हमलोग संतों की वाणियों को पढ़ते-समझते हैं। उसके अनुकूल गुरु-परख करते हैं। गुरु मिलने पर उनसे युक्ति पाकर साधन-भजन करते हैं, यही सत्संग है। n

यह प्रवचन उत्तर प्रदेशान्तर्गत बदायूँ में दिनांक १३.४.१९६२ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१७८. ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जबतक कोई स्वप्न में होता है, वह नहीं जानता है कि मैं स्वप्न में हूँ। इसलिए स्वप्न में सुख-दुःख का भोग सत्य ही मालूम होता है। परंतु जब जग उठता है, तब ख्याल करता है कि स्वप्न का सुख-दुःख मिथ्या था। इसलिए—

सपने होई भिखारी नृप, रंक नाकपति होय।
जागे लाभ न हानि कछु, तीमि प्रपंच जिय जोय।।

सोने की अवस्था में उसके पास ही कुछ होता है, लेकिन वह नहीं जानता कि मेरे पास क्या है? सूरदासजी ने कहा है—

सपने माहि नारि को भ्रम भयो, बालक कहुँ हिरायो।
जागि लख्यो ज्यों को त्यों ही है, ना कहुँ गयो न आयो।।

इसी तरह स्वप्न मिथ्या होता है, सत्य नहीं होता है। यह बात हमारे देश में प्रसिद्ध है कि यह संसार मिथ्या है, ईश्वर सत्य है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।' लेकिन यह हमलोगों को कहाँ मालूम होता है? ब्रह्म सत्य है, लेकिन देखते नहीं हैं और जगत मिथ्या है, वह तो प्रत्यक्ष है। संत लोग कहते हैं कि ये तुम स्वप्न देख रहे हो। हमलोग कहते हैं कि हम तो जगे हैं, स्वप्न में कहाँ हैं? संतलोग कहते हैं कि जैसे स्वप्न में कोई नहीं

जानता कि मैं स्वप्न में हूँ, जगने पर मालूम होता है कि वह स्वप्न है; उसी तरह जिस जगने में तुम हो, वह स्वप्न है। साहित्यिक लोग कहते हैं कि अच्छे ज्ञान में आ जाना जगना है, लेकिन यह विचार में ही स्वप्न मालूम होगा। भले ही विचार में कह दें कि संसार मिथ्या है, लेकिन आसक्ति नहीं जाती। हम नित्य स्वप्न देखते हैं, जगने पर जो स्वप्न की आसक्ति है, छूट जाती है। उस तरह संसार में कहाँ होता है कि उसमें हमारी आसक्ति नहीं रहती। यह विचार-ही-विचार से नहीं होता। अभी हम जाग्रत अवस्था में हैं, कुछ काल के बाद सो जाएँगे। स्वप्न होगा, गहरी नींद आएगी। इस तरह तीन अवस्थाओं में नित्य आते-जाते रहते हैं। ये तीनों अवस्थाएँ होती कैसे हैं? हमलोग शरीर में हैं, शरीर नहीं हैं। कितने कहते हैं कि तुम शरीर ही हो। शरीर के सभी तत्त्व मिलकर एक हो गए हैं। इसलिए तुमको अपने का ज्ञान होता है। शरीर के सभी तत्त्व बिखर जाएँगे, मृत्यु होगी, तब अपनेपन का ज्ञान भी नहीं रहेगा। लेकिन यह मानने योग्य नहीं है। यह शरीर पंच तत्त्वों से बना है। ये पाँचों अचेतन पदार्थ हैं। अचेतन को ही जड़ कहते हैं। जड़, जड़ के मिलन से चेतन उत्पन्न हो जाय, मानने योग्य नहीं। इस शरीर के अंदर चेतन पदार्थ है, जिसके कारण सभी इन्द्रियों में ज्ञान है और इन्द्रियों से, मन से जो काम होता है, करते हैं। सभी के घरों में किसी-न-किसी तरह से श्राद्ध क्रिया होती है। यह क्रिया क्या बताती है? शरीर मर गया, शरीर में रहनेवाला कहीं चला गया। वह जहाँ कहीं भी गया, उसी के निमित्त से क्रिया होती है कि उसको सुख पहुँचाया जाय। सुख उसको पहुँचे वा नहीं, लेकिन इतना ज्ञान इसमें है कि चेतन आत्मा मरती नहीं है, शरीर मरता है। श्राद्ध क्रिया यह 'वेदान्त ज्ञान' सिखाती है। किसी घर के लोगों को यह ख्याल नहीं करना चाहिए कि शरीर के मरने से चेतन आत्मा भी मर गई। शरीर में से शरीर निकलता है।

यह शरीर एक केला के गाछ की तरह है। केले के ऊपर का बक्कल (परत) निकालते जाओ, अंत में डण्ठल मिलेगा, जिसमें फल लगता है। मृत्यु में एक शरीर हाड़, मांस, चामवाला छूटता है। एक कथा मैं समास रूप में बताऊँगा।

सत्यवान और सावित्री दोनों दम्पति थे। सत्यवान का शरीर छूट गया। यमदूत उसे लेने आए। किंतु पतिव्रता सावित्री के तेज के कारण वे उसे छू न सके। अंत में, यमराज स्वयं आए और उन्होंने सत्यवान के स्थूल शरीर में से उसके लिंग शरीर को निकाल, उसे लेकर चल दिया। स्थूल शरीर मर गया। सावित्री यमराज के पीछे-पीछे अनुनय-विनय करती चली। अंत में, सावित्री की प्रार्थना को स्वीकार कर यमराज ने सत्यवान के स्थूल शरीर में पुनः लिंग शरीर (सूक्ष्म शरीर) प्रवेशित कर दिया, तब वह स्थूल शरीर पुनः जीवित हो गया। यह कथा सिखाती है कि किसी की मृत्यु होने पर स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर निकलता है। उसी के साथ चेतन आत्मा और मन-बुद्धि रहती है। उसका संस्कार उसके साथ जाता है। अपने कर्म के अनुकूल स्वर्ग-नरक का भोग भोगता है और फिर स्थूल शरीर धारण करता है और अपने पूर्व के संस्कार को साथ लिए आता है। महाभारत में लिखा है—'जैसे कि कोई मनुष्य सींक को मूंज से खैंचकर देखे, उसी प्रकार योगी भी शरीर से आत्मा को जुदा करके देखता है। मूंज को शरीर कहा, सींक को आत्मा रूप कहा; यह श्रेष्ठ दृष्टान्त बड़े उत्तम योगी लोगों से जाना गया है।' 'शरीर भी स्थूल और सूक्ष्म वा लिंग—दो ही शरीर नहीं, और भी हैं। सूक्ष्म बिना कारण के नहीं बन सकता और

कारण भी बिना महाकारण के नहीं होता।'

प्रकृति में जब विकृत भाव नहीं है, तब महाकारण और जब विकृत भाव हुआ, तब कारण और फिर विकृत होने पर सूक्ष्म और स्थूल हुआ। ये चार जड़ शरीर हैं। इनके अंदर हम चेतन आत्मा हैं। एक जड़ शरीर के छूटने पर अन्य तीन जड़ शरीरों के साथ जीवात्मा स्वर्ग-नरक का भोग करता है। यह चेतन आत्मा इस शरीर में कहाँ है? किस ढंग से है? मन के संग में है। चेतन आत्मा और मन का संग घीउ और दूध की तरह है। यह जगने की जगह जहाँ रहती हैं, वहीं वह बराबर रह जाए तो नींद नहीं हो। लेकिन उस जगह से जैसे ही हटती है कि तन्द्रावस्था आती है। हाथ-पैर कमजोर होते जाते हैं, शरीर के भीतर शक्ति सिमटती हुई मालूम होती है। उस सिमटाव में चैन होता है। स्वप्न से तन्द्रा में और तन्द्रा से जाग्रत में आते हैं। यदि सुरत इन्द्रियों के घाट से छूटती नहीं, तो हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जाते और न शरीर का कमजोर होना ही होता। हम जाग्रत में जहाँ रहते हैं, वहाँ से हटकर दूसरे स्थान पर जाते हैं, तब स्वप्न होता है। कबीर साहब ने कहा है—

इस तन में मन कहाँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।

इसका जवाब दिया है—

नैनों माहीं मन बसै, निकस जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।

—दरिया साहब, बिहारी

ब्रह्मोपनिषद् में कहा है—

नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत् ।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्निसंस्थितम् ।।

अर्थात् जीव का बासा जाग्रत में नेत्र में, स्वप्न में कण्ठ में,सुषुप्ति में हृदय में और तुरीयावस्था में मस्तक में होता है।

लेकिन बायीं वा दाहिनी किस आँख में? मैं कहूँगा कि इन दोनों के बीच तीसरी आँख में रहते हैं। शिवजी को त्रिनेत्रधारी कहते हैं। शिवजी को अख्तियार है कि जब वे चाहें, उसे खोलें वा बन्द करें। तीसरी आँख—शिवनेत्र इसी को कहते हैं। आँख में रहकर सम्पूर्ण देह का ज्ञान रखते हैं। एक आदमी दूसरे आदमी को उसके शब्द से भी पहचानते हैं। गले से ही कोई बोलता है। योगी कहते हैं कि गला सोलह स्वरों का स्थान है। उसको षोडस दल कमल भी कहते हैं। बिना गला के स्थान में रहने से कोई स्वर का उच्चारण नहीं कर सकता और स्वप्न में कभी-कभी मुँह से भी बोल देते हैं। सुषुप्ति में श्वास चलता रहता है, इस समय हृदय में रहते हैं। यह ज्ञान संतवाणी और उपनिषद् आदि ग्रंथों में भी है। तीन अवस्थाओं में हम नित्य जाते-आते हैं। आँख से कण्ठ में और कण्ठ से हृदय में आ जाते हैं, फिर हृदय से कण्ठ में और कण्ठ से आँख में आने से जगते हैं।

सुभग सेज सोवइ सपने बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिन्ह नाव न पार करै तहँ जब लगि आपु न जागै।।

—गोस्वामी तुलसीदास

साधारण तरह से तो हम लोग जगते हीं हैं, लेकिन और किस्म का जगना भी है; जिसको यौगिक जगना कहते हैं।

एहि जग जामिनी जागहिं जोगी। परमाथी प्रपंच वियोगी।।

परमार्थ किसको कहते हैं?

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।।

—गोस्वामी तुलसीदास

संत दरिया साहब मारवाड़ी कहते हैं—

माया मुख जागे सभे, सो सूता कर जान।

दरिया जागे ब्रह्म दिशि, सो जागा परमान।।

जाग्रत, स्वप्न और गहरी नींद में घोर माया है। जब जिसकी वृत्ति ईश्वर की ओर होती है, तब उसका जगना होता है। चौथी वा तुरीय अवस्था आँख से ऊपर है। संत लोगों का वहाँ आरोहण होता है। जगत को पहचानो। ईश्वर-स्वरूप को प्राप्त करो तो जाग जाओगे। जबतक कोई ईश्वर मुख नहीं होता, तबतक जगता नहीं। केवल विचार-ही-विचार का जगना ठीक नहीं। जगने का काम तभी होगा, जबकि हम कुछ साधन-भजन करेंगे। जब नेत्र से ऊपर उठा जाय, तब जगना होगा। इसलिए कबीर साहब ने कहा है—

परमातम गुरु निकट विराजैं, जागु जागु मन मेरे।

लेकिन इसमें गुरु की आवश्यकता है।

बिनु गुरु भवनिधि तरै न कोई। जौं बिरंचि शंकर सम होई।।

—रामचरितमानस

तीन अवस्थाओं को छोड़कर चौथी अवस्था में जाओ, तब जगना होगा। सुरत जो फैली हुई है, इसका सिमटाव करो तो ऊर्ध्वगति होगी। साधन भजन करो, तभी संसार से छुटकारा होगा। ■

यह प्रवचन सारण जिलान्तर्गत थ्योसोफिकल सोसाइटी, छपरा के प्रांगण में दिनांक १६.४.१९६२ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१७९. परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञान

प्यारे लोगो!

सब लोगों को जानने में आता है कि हम बन्धन में हैं। वह शरीर और संसार का बंधन है। दोनों का आपस में संबंध है। ऐसा संबंध कि शरीर मे रहो तो संसार में रहो और संसार में रहो तो शरीर में भी रहो। शरीर के जिस तल में जो रहता है, संसार के भी उसी तल में वह रहता है। शरीर के जिस तल को छोड़ता है, संसार के भी उस तल को छोड़ता है। शरीर के सब तलों को जो पार करता है, संसार के भी सभी तलों को वह पार करता है। एक ईश्वर के अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है कि शरीर और संसार के सभी तलों से छूटे हुए हों।

ईश्वर को लोग बचपन से जानते हैं। लेकिन दर्शन नहीं होता है। अवलम्ब लें तो क्या इसका पता लगता नहीं है? इसका पता गुरु बताते हैं। यह बिना गुरु के नहीं हो सकता। संसार में जितने लोग शिक्षित हैं, उनकी शिक्षा गुरु से हुई है। इसी तरह मुक्ति की शिक्षा सद्गुरु द्वारा प्राप्त होती है। यह आध्यात्मिक विद्या है। जैसे विज्ञान और साइन्स आप सुनते हैं, यह आधिभौतिक विद्या है। इससे संसार में बहुत लाभ है, लेकिन इससे संसार से छुट्टी नहीं मिलती।

ज्ञान कहते हैं, बुद्धि में जान लो, वस्तु निरूपण कर लो। विज्ञान कहते हैं कि उसका प्रत्यक्षीकरण कर लो। विज्ञान का अर्थ है विशेष ज्ञान। ज्ञान दो तरह के होते हैं—परोक्ष ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान। जो प्रत्यक्ष नहीं है, उसके लिए जानना यह परोक्ष ज्ञान है और प्रत्यक्षीकरण करना अपरोक्ष ज्ञान है। जबतक समझ में रहता है, तबतक परोक्षज्ञान है। उसको प्रत्यक्ष कर लिया, वह अपरोक्ष ज्ञान है।

हमलोग बचपन से ही 'ईश्वर है, ईश्वर है', सुनते आए हैं। किताब को पढ़ा है। बड़े-बड़े महात्माओं का संग कर ईश्वर-स्वरूप को सुना है। अध्यात्म-ज्ञान को बूझा है, लेकिन प्रत्यक्ष नहीं हुआ है। यह परोक्ष ज्ञान है। सुन-समझकर उसको पाओ, यह

प्रत्यक्ष ज्ञान, विज्ञान है। गुरु पहले परोक्ष ज्ञान बताते हैं, फिर वह प्रत्यक्ष कैसे हो, उसको बतलाते हैं। जैसे साइन्स के प्रोफेसर विधि बताते हैं और प्रयोगशाला में प्रयोग करने के लिए बताते हैं, उसी तरह अध्यात्म-ज्ञान में यह शरीर ही प्रयोगशाला है। गुरु की विधि चाहिए। उसकी विधि जानकर उसका यत्न-प्रयत्न करके उसको पाओ। ईश्वर के बिना मोक्ष मार्ग में सहायता देनेवाले कोई नहीं है। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवश विचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपुनपौ हारे।।

बेचारे जिसका चारा (वश) नहीं चलता। ईश्वर को प्रत्यक्ष पाने के लिए बतानेवाला गुरु है। अव्यक्त रूप में परमात्मा और व्यक्त रूप में गुरु है। ईश्वर का ज्ञान हम संतों और सद्ग्रंथों से सुनते हैं, तो बड़ा गंभीर मालूम होता है। अभी गोस्वामी तुलसीदासजी के वचन में आपलोगों ने सुना—

हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

अर्थात् आँख में सगुण है। सगुण का अर्थ है—गुण सहित। गुण का अर्थ है—स्वभाव। स्वभाव तीन प्रकार के हैं। इसी में संसार है। उत्पन्न होना, पोषण होना और विनाश होना। विनाश में दो भाव है—एक परिवर्तन होना, दूसरा कुछ रहे नहीं। जो उत्पादक है, उसको रजोगुण, पोषक को सतोगुण और विनाश करनेवाले को तमोगुण कहते हैं। जो उत्पन्न करता है, उसका देवता ब्रह्मा, पोषण करनेवाले का देवता विष्णु और संहार करनेवाले का देवता शिव है। संसार में ये ही तीन स्वभाव हैं, आप देख लीजिए। इन तीनों के साथ जो हैं, वह है सगुण। इन तीनों गुणों को हम नहीं देखते। लेकिन उनके कार्यों को देखते हैं।

जो दीखते नहीं, ज्ञान में हैं, वह हृदय में हैं। निर्गुण को हम देख नहीं सकते हैं। सगुण में निर्गुण है। सगुण सोने का डिब्बा है और निर्गुण ललित ललाम है। ईश्वर के दोनों रूपों को जानो।

अभी ग्रंथपाठ में पढ़ा गया कि गुरु कैसा होना चाहिए? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निर्गुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास।।

यह गुरु की विशेषता है। जो स्वयं ज्ञान में है, अज्ञान उसके पास नहीं जाता। प्रकाश वह चीज है, जिसको प्रत्यक्ष देखा जाता है। प्रकाश में अंधकार नहीं सूर्य के प्रकाश में अंधकार है। सूर्य के प्रकाश से सभी कुछ नहीं देख सकते, दूरबीन से देखते हैं। अपने शरीर में जो आत्मा है, उसको इस सूर्य के प्रकाश से नहीं देख सकते। इसलिए इसमें भी अंधकार है। गुरु ऐसे प्रकाश में रहते हैं, जिसमें अंधकार नहीं है। वह आत्मप्रकाश है।

सगुण पद को छोड़कर तब जो निर्गुण है, उसका वर्णन गुरु करते हैं। सगुण तक ही ईश्वर नहीं हैं। सगुण को भरकर और भी वह बाहर है। अभी उपनिषद्-वाक्य सुना—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ एक ही वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार एक की अंतरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है। यही है—'जो परम तत्त्व, आदि अंत-रहित, असीम, अजन्मा, अगोचर, सर्वव्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे है, उसे सर्वेश्वर सर्वाधार मानना चाहिए।

निर्गुण का एक भाव होता है और सगुण का दो। एक तो विश्वरूप, दूसरा एक-एक शरीर में। श्रीराम, श्रीकृष्ण, देवी आदि के शरीर में ब्रह्म मानते हैं।

अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत इति वासना धूप दीजै।

यह विश्वरूप है। सर्वगत निर्गुण है और जिसमें है, वह सगुण है। इन दोनों को भरपूर करते हुए जो है, वह परमात्मा है।

माता कौशल्या को भगवान श्रीराम ने विश्वरूप दिखाया था। राजा बलि से जो पृथ्वी ली थी, वहाँ भी विश्वरूप दिखाया था। विश्वरूप और विराटरूप एक ही बात है। यह रूप भी देशकालाविच्छिन्न हैं। यह अनादि-अनंत नहीं है। जब राजा बलि को छलने के लिए भगवान गए तो बड़ा रूप बनाकर, तीन डग में सारी पृथ्वी को नाप लिया। जामवन्त उस समय बहुत बलवान थे। उन्होंने कहा कि मैंने दो घड़ी के अंदर सात बार उनकी परिक्रमा की। यह प्रसंग बताता है कि वह विराट रूप भी ससीम था।

पृथ्वी देश है। बिना शून्य के पृथ्वी वा सूर्य नहीं रह सकता। देश और काल से घिरा हुआ यानी इतनी दूर तक और इतने समय तक, ऐसा परमात्मा नहीं है। कौन चीज कितनी देर तक ठहरेगी, इसका अन्दाज है, यह समय से घिरा हुआ है। समय हो स्थान नहीं और स्थान हो समय नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। जो समय और काल से घिरा है, वह ब्रह्म नहीं है। देश-काल से जो परे है, वह ब्रह्म है। यह बुद्धि से समझ गए, लेकिन प्रत्यक्ष नहीं है। फिर भी सहारा है। जैसे स्टेशन पर उतरा और जिज्ञासा की कि धर्मशाला कहाँ है, जाएँगे। किसी ने उसका रास्ता बता दिया, यह सहारा है। लेकिन जिसको ठिकाना नहीं कि कहाँ जाएगा, उसको सहारा नहीं। गुरु से सहारा मिलता है। वे बताते हैं ईश्वर-प्राप्ति के रास्ते को।

संसार के ऐश्वर्य को पाकर कोई संतुष्ट नहीं हो सकता। पृथ्वीराज सम्राट थे। उनकी आज्ञा के बिना उनके अधीनस्थ राजा बैठ नहीं सकते थे। लोग एक पाए के निकट खड़े रहते थे। उस पृथ्वीराज की यह दशा हुई कि उसको अंधा करके यहाँ से ले जाया गया अफगानिस्तान। जब वह कैद किया गया और अंधा बनाया गया, तब उसकी क्या हालत हुई? विचारें। जब दुर्योधन की सब सेना मर गई, वह तालाब में छिप गया, तब उसकी कैसी दशा हुई, पहले कैसी दशा थी, जबकि वह राजा था? अर्जुन जब पंजाब में लूट लिए गए, तब उनकी कैसी दशा हुई? बड़े-बड़े में भी ऐसा उलट-फेर होता है। मामूली आदमी की बात क्या? भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि आपस में लड़ो-झगड़ो नहीं। लेकिन भगवान की बात लोगों ने मानी नहीं। एक ही दिन में छप्पन कोटि यदुवंशी समाप्त हो गए। इसलिए यह नमूना है कि यह संसार कुशल का नहीं है। संतों ने बताया कि इस संसार को छोड़ो और मोक्ष प्राप्त करो, इसी में कुशल है।

n

यह प्रवचन मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत मारवाड़ी पाठशाला (जूतापट्टी), मुजफ्फरपुर में दिनांक १९.४.१९६२ ई० के सत्संग में हुआ था।

१८०. नशा सेवन से मस्तिष्क खराब

प्यारे लोगो!

सबलोग अपना भला सोचें, अपना भला करें। धन उपार्जन में—कमाने में अपना भला सोचते हैं। जिनसे जो होता है, धन कमाते हैं। परन्तु देखो, धन से बिल्कुल भला नहीं होता, थोड़ा मंगल मालूम होता है, फिर अमंगल हो जाता है।

धन नहीं चाहिए, ऐसा मैं नहीं कहता हूँ। लेकिन धन ही सब कुछ है, सो नहीं समझिए।

धन से, तन्दुरुस्ती से, इज्जत से और विद्या से लोगों को भला होता है, यह बात सभी कोई जानते हैं। लेकिन इनसे जितना भला होना चाहिए, उतना नहीं होत है। ये सब नहीं चाहिए, सो बात नहीं है। लेकिन इसी सब से सब तरह का भला होगा, सो बात नहीं है।

कभी-कभी शरीर रहते ही धन नाश हो जाता है और प्रतिष्ठा चली जाती है। मस्तिष्क खराब होने से विद्या काम नहीं देती। ये सब रहते हुए भी, एक दिन शरीर छूटने पर सभी अपने आप ही छूट जाते हैं। संतों ने कहा—ईश्वर का भजन करो, सब भला होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल सुमिरन-भजन करो और संसार का काम नहीं करो। बल्कि संसार का काम भी करो और ईश्वर का भजन भी करो। इसीलिए संत कबीर साहब ने कहा कि—

सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों गागर पनिहार।

संत पलटू साहब ने भी पनिहारी की उपमा दी है—

जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै।
कर छोड़ै मुख वचन चित्त कलसा में लावै।।

जैसे पनिहारी अपने सिर पर जल से भरा घड़ा लेकर चलती है, उसके एक हाथ में रस्सी-बालटी है, दूसरे हाथ से दूसरे घड़े को बगल में दबाए रहती है। अपनी सखी-सहेलियों के साथ बात भी करती हुई चलती है, लेकिन अपने ख्याल को सिर के घड़े पर रखती है। इसी तरह ईश्वर-भजन भी करो और संसार का भी काम करो। संसार का काम किए बिना संसार में गुजर नहीं होगा। संसार का काम करने से संसार में भला होगा और ईश्वर-भजन करने से शरीर छूटने पर भला होगा। सुमिरन नाम-जप को कहते हैं, जो नाम जपने के लिए गुरु बता देते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक है। वह मोटे-से-मोटे और बारीक-से-बारीक नाम में भी है। ईश्वर के अनेक नाम हैं। कोई उसको राम, कोई शिव, कोई वाहेगुरु आदि कहते हैं। इस तरह के ईश्वर-वाचक बहुत से शब्द हैं, जिनसे लोग ईश्वर को पुकारते हैं। एक तो मुँह से बोलते हैं और अक्षर में भी लिखते हैं। दूसरा प्रकार है कि भीतर में शब्द होता है, वह अपने आप होता है, उसको बोला या लिखा नहीं जाता, जो गुरु के भेद से पाया जाता है। उससे वह उस नाम को पाता है, जो बारीक है। यह सबसे उत्तम है। लेकिन यह पहले किसी को नहीं आता। यह भी उत्तम है कि मन-ही-मन नाम जपो। कबीर साहब ने कहा—

जप तप संयम साधना, सब सुमिरन के माहिं।
कबीर जानै भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिं।।

इसका यत्न गुरु से जानो। केवल नाम जपो और अपना आचरण अच्छा नहीं रखो तो नाम जपने में मन नहीं लगेगा। इसलिए संतों ने कहा है कि अपना चाल-चलन अच्छा रखो। अच्छा चाल-चलन सुधारने में यह बात है कि झूठ मत बोलो। झूठ बोलनेवाला छिप-छिपकर पाप करता है और झूठ बोलकर उसको छिपाता है। सबसे बढ़िया है कि झूठ मत बोलो। चोरी नहीं करो। हिंसा नहीं करो। हिंसा नहीं करने का अर्थ है—मांस, मछली, अण्डा नहीं खाओ। हिंसा के बिना कोई मांस-मछली नहीं खा सकता। व्यभिचार मत करो। वैदिक ढंग से विवाह का जो नियम है, उसके अनुकूल विवाहित रहो। जो व्यभिचारी है, उसका परमार्थ खराब हो जाता है। जो नशा लेता है, उसका मस्तिष्क खराब हो जाता है। जो थोड़ा लेता है, उसकी रजोगुणी बुद्धि रहती है। विशेष लेनेवाले की बुद्धि तमोगुणी होती है। नहीं लेनेवाले की बुद्धि सतोगुणी होती है।

हमलोगों के जैसे यानी जितना हमलोग चावल खाते हैं, अंग्रेज लोग उतना मांस खाते थे। लेकिन अपने राज्य को वे बचा न सके। महात्मा गांधीजी अण्डा, मांस, मछली कुछ नहीं खाते थे। उनका

मस्तिष्क साग, सब्जी, मक्खन आदि से बना हुआ था। बुद्धि की लड़ाई हुई। अंग्रेज पार पा न सके, महात्मा गांधीजी जीत गए और अंग्रेज हार गए। बंदूक, तोप, गोले से लड़ाई नहीं हुई, बुद्धि से लड़ाई हुई और अंग्रेज हार कर भाग गए। महात्मा गांधी ईश्वर-भक्त थे। उस भक्ति का बल भी उनको था। वे झूठ नहीं बोलते थे। वे बड़े अच्छे थे। वे भारत के अगुआ थे। उन्होंने जैसा कहा, हमारे देश के लोगों ने वैसा किया और अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए।

रामायण में राम-रावण का युद्ध क्या है? एक तरफ राम और दूसरी तरफ में रावण। राम के दल में बन्दर-भालू थे। वे फल-पत्ती खाते थे और रावण के दल में शराब, मछली, मांस आदि खाते थे। फल क्या हुआ? रावण हार गया और राम की जीत हुई। लोग कहते हैं कि हिंसा रोकी नहीं जा सकती, हिंसा होगी ही। लेकिन हिंसा दो तरह की होती है—वार्य और अनिवार्य। खेती करनी अनिवार्य हिंसा है। खेती का काम करना सभी छोड़ दे तो मोती, मूँगा, हीरा, लाल, जवाहरात कुछ काम नहीं कर सकता, आदमी भूखे मर जाएँगे। चोर-डकैत आ जाय, तो उससे लड़ाई करनी होगी। कश्मीर पर दुश्मनों ने चढ़ाई की तो महात्मा गांधी ने कहा— 'रोको।' रोको का अर्थ हुआ—युद्ध करो।

सभी राष्ट्रों की एक पंचायत है। उसने कहा— 'जो जहाँ तक है, वहाँ तक रहो।' इस तरह देश की रक्षा में, घर की रक्षा में और खेती करने में अनिवार्य हिंसा होती है। अनिवार्य के लिए शास्त्रों में मनाही नहीं है। बल्कि उसके लिए पुण्य-कर्म करने के लिए कहा गया है। राजा लोग यज्ञ करते थे, जिससे परोपकार होता था। अनिवार्य हिंसा का पाप नहीं होगा, ऐसा तो नहीं कहा, लेकिन उसका प्रायश्चित बता दिया। मांस-मछली खाए बिना लोग रहते हैं और रह सकते हैं। इसलिए संतों ने इसके खाने की मनाही की है।

घर में रहो, काम-काज करो और ईश्वर का नाम-भजन—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक दोनों प्रकार से करो। ऐसा नित्य करते रहने से कभी-न-कभी अवश्य मुक्ति मिलेगी, आवागमन से छूटोगे। सभी दुःखों से छूट जाओगे। रेशम दासजी ने सत्संग घर बनवाया। उनके पुत्रों ने इसको बढ़ाया। सुपुत्र अपने पिता के शुभ-कर्म को बढ़ाते हैं और कुपुत्र उसको मेटते हैं। सब कोई मिलकर सत्संग कीजिए। नाम-भजन कीजिए। n

यह प्रवचन नेपाल राज्यान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर सिजुआ, मोरंग में दिनांक १६.५.१९६२ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१८१. पूर्ण धर्म

प्यारे लोगो!

जिस मनुष्य को धर्म का ज्ञान होता है और उस धर्म के अनुकूल चलता है, तो वह उत्तम पुरुष कहलाता है। वह संसार में सुखी रहता है, पूज्य हो जाता है। शरीर छोड़ने पर ऊँचे स्वर्ग में जाता है। धर्म में पूरा होता है, तो मुक्ति प्राप्त करता है। धर्म उस कर्म को कहते हैं, जो पवित्रता और ऊँचाई को पहुँचाता है। धर्म में दो तरफ हैं। एक तरफ है—सदाचार और दूसरी तरफ है—ईश्वर उपासना। सदाचार ठीक है और ईश्वर उपासना ठीक है, तो पूर्ण धर्म है। १. झूठ नहीं बोलना, २. चोरी नहीं करनी, ३. व्यभिचार नहीं करना, ४. नशाओं का सेवन नहीं

करना तथा पाँचवीं बात है कि हिंसा नहीं करनी अर्थात् जीवों को दुःख नहीं देना और इस सिलसिले में मछली और मांस नहीं खाओ; क्योंकि मछली और मांस खाना, बिना हिंसा से नहीं हो सकता। अपने से नहीं मारे, लेकिन वह किसी-न-किसी तरह किसी से हिंसा करवाता है। मनुस्मृति में आठ घातकों का वर्णन है—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः।।

अर्थात् १. वध करने की आज्ञा प्रदान करने-वाला, २. शस्त्र से मांस काटनेवाला, ३. मारनेवाला, ४. बेचनेवाला, ५. खरीदनेवाला, ६. मांस को पकाने-वाला, ७. परोसने के लिए लानेवाला, ८. खानेवाला; ये आठों घातक हिंसा करनेवाले ही कहलाते हैं।

मनुस्मृति हमलोगों का वैदिक धर्मशास्त्र है। इसमें यह बात है जो हिंसा से, नशा से, व्यभिचार से, चोरी से, झूठ से बचता है, वह सत् आचरण करनेवाला होता है। और साथ-ही-साथ जो ईश्वर-उपासना करता है, वह धर्म में पक्का है। ईश्वर-भजन पूर्ण होगा, ईश्वर को पावेगा, मुक्ति प्राप्त करेगा। जबतक उपासना पूरी नहीं होगी, वह अच्छे-अच्छे मनुष्य शरीर पावेगा और शरीर छोड़ने पर अच्छे-अच्छे स्वर्ग में जाएगा और एवम् प्रकार से बारम्बार मनुष्य शरीर पाता हुआ, ईश्वर-भजन करता हुआ मोक्ष पावेगा। लेकिन सभी चीज सीखने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु नहीं हो तो संसार अज्ञानता से भर जाएगा और संसार भ्रष्ट हो जाएगा।

हमलोग माता-पिता, गुरु के द्वारा सीखते हैं। विद्यालय-कॉलेज में जाकर सीखते हैं। जहाँ कुछ सीखना है, वहाँ गुरु है। इसी तरह धर्म-ज्ञान के लिए भी गुरु होते हैं। जो धर्म-ज्ञान की अवहेलना करते हैं, वे मनुष्य शरीर में पशु-जीवन बिताते हैं। इस बड़ी हानि से बचना चाहिए।

आज का सत्संग रविवार का सत्संग नहीं है। आज का सत्संग इसलिए है कि मेरा जन्म वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को हुआ था। इसी के लिए यह सत्संग हुआ है। इसके लिए मेरी ओर से कोई आग्रह नहीं है। श्रद्धालु सत्संगी महाशयगण श्रद्धा से सत्संग करवाए हैं। कोई बुलाते हैं कि आपका जन्म-दिवस फलानी तिथि को है, हम सत्संग करेंगे, आप वहाँ चलें, तो मैं वहाँ नहीं जाता। संयोग से जहाँ कहीं रहता हूँ और वह तिथि आ पड़ती है तो लोगों के साथ सत्संग में बैठ जाता हूँ।

मुझे अपने गुरु महाराज की जन्म-तिथि मालूम नहीं। इसलिए हमलोग उनकी स्मृति-तिथि नहीं मनाते हैं। लेकिन उनका शरीर छोड़ना १९१९ ई० की १९ जनवरी को हुआ था। उस समय हमलोग मुरादाबाद जाकर सत्संग करते हैं। कबीर साहब ने कहा है कि—

गुरु नाम है ज्ञान का, शिष्य सीख ले सोय।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु शिष्य न कोय।।

गुरु के ज्ञान का स्मरण करना चाहिए। उसका कुछ वर्णन करना चाहिए। आपको मैंने क्या सिखलाया है, इसको आप याद नहीं करते हैं, बखान नहीं करते हैं, तो मेरा जन्म-दिवस मनाना ठीक नहीं हुआ। उस ज्ञान को याद करो, बखान करो, उसके अनुकूल चलो, तब जन्म-दिवस का उत्सव मनाना हुआ। इस अवसर पर कुछ लोगों को खिलाते हैं। उसमें गरीबों को खिलाना अच्छा है। विद्यार्थी को यहाँ खिलाया गया, यह भी अच्छा हुआ। ऐसा नहीं कि—

दौलत के झूठे नशे में हो चूर। गरीबों की दुनियाँ से रहते हो दूर।

ख्याल रखो कि गरीबों की दुनिया से दूर नहीं रहो। दौलत के नशे में चूर मत होओ। धन रहने को नहीं है। अंग्रेज चला गया, जमीन्दार की जमीन्दारी चली गई। वे जो हुकूमत करते थे, वह

हुकूमत भी चली गई और वे चुप बैठे हैं। राजा महाराजा की पदवी चली गई। केवल विद्या की पदवी—डॉक्ट्रेट रह गई है। अच्छे कर्मों के साथ गुरु के ज्ञान का ख्याल किया, बखान किया, ठीक यादगारी है। गुरु गोरे थे, काले थे, नाटे थे, यह बखान कुछ बखान नहीं है।

गुरु का ज्ञान बड़ा है। उनके ज्ञान की यादगारी कीजिए, बखान कीजिए, उसके अनुकूल चलिए, तब जन्म-दिवस की यादगारी होगी। नहीं तो केवल बाहर दिखावा मात्र होगा। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर कनखुदिया, अररिया में दिनांक १६.५.१९६२ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१८२. सरल राजयोग

प्यारे लोगो!

ग्रंथों के पदों में ईश्वर का ज्ञान, ईश्वर-प्राप्ति का यत्न, ईश्वर-प्राप्ति के वास्ते आचरण का यत्न, संसार में ईश्वर-प्राप्ति के योग्य होने के लिए शुद्ध आजीविका और सुमित्र के संग में रहने का उपदेश है। माता-पिता की सेवा का उपदेश है। गुरु और ज्ञानियों की सेवा का उपदेश है। बड़े-बूढ़ों को प्रणाम और नम्र-भाव से रहकर आदर करना लिखा है। मन मस्त पागल हाथी से भी विशेष पागल है। इस मन पर काबू करने का उपदेश है।

संसार में जितनी सवारियाँ हैं, किसी से मोक्ष-धाम में नहीं पहुँच सकते। लेकिन जिसने अपने मन को काबू कर लिया है, वे ही मोक्ष-धाम तक पहुँचते हैं, ये सब उपदेश हैं। ईश्वर के बारे में ऐसा उपदेश नहीं है कि वह व्यक्त-रूप का व्यक्ति है। कोई व्यक्त-रूप का व्यक्ति ईश्वर है? हरगिज नहीं। ईश्वर की ध्वनि घट-घट में होती है। जैसे माता गीत सुना-सुनाकर अपने बाल बच्चों को शान्त करती है, उसी तरह जीवात्मा अंतर की ध्वनि, परमात्म-ध्वनि सुनकर शान्ति प्राप्त करती है। संतों ने इसको जानकर प्राप्त किया। उसका सरल यत्न—कायदा का ध्यान बताया। जो अंतर्नाद है, उसको वह पा सकता है, जो सदा ध्यान करता है। वही शान्ति पाता है। वही मधुर ध्वनि—प्रणव नाद ईश्वर का नाम है। वह वर्णात्मक नहीं, ध्वन्यात्मक है। जो अंदर की ओर नहीं चलेगा, वह कभी इसको नहीं पावेगा और न कभी शान्ति पावेगा। इसीलिए संतों ने उलटने के लिए कहा। उलटने का अर्थ है कि बाहर में नहीं देखकर अंतर में देखो। पसरी दृष्टि से नहीं, सिमटी दृष्टि से देखो, बाहर में पसरी दृष्टि से देखते हो, इसको उलटो अर्थात् सिमटी दृष्टि से देखो, तो ईश्वर की ज्योति को देखोगे कि वह तमाम पसरी हुई है, यह प्रत्यक्ष होगा। कुछ ख्याल-ही-ख्याल में बनाना नहीं है। जिस कायदे से सिमटाव होगा, वह सरल और कठिन दोनों है।

सरल राजयोग है और कठिन हठयोग है। संतों ने राजयोग का वर्णन किया है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने छठे अध्याय में प्राणायाम की कुछ भी चर्चा नहीं करके सरल ध्यानाभ्यास करने बताया। इसलिए कबीर साहब ने जोर देकर कहा—

न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।

यहाँ योगी का अर्थ हठयोगी से है। हठयोग करके राजयोग करे वा ध्यान करे, ऐसी बात नहीं है। हठयोग में कठिनाई है। यह सर्वसाधारण के लिए नहीं है और राजयोग—ध्यानयोग सरल है,

सर्वसाधारण के लिए है। संतों ने यह भी बता दिया है कि संसार में पाँच विषय वा पंच तन्मात्राएँ हैं। इनसे ऊँचे में इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों से इनका ज्ञान होता है। इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से ऊपर मूल प्रकृति, उससे ऊपर अव्यक्त है। अव्यक्त जो इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आवे। मूल प्रकृति वा जड़ प्रकृति अव्यक्त है। यह भी इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आती है। इससे परे अव्यक्त चेतन प्रकृति है। इससे परे ईश्वर का स्वरूप है। संतों ने इसी स्वरूप को पकड़ने का यत्न बताया है। जो इसका यत्न जानकर अभ्यास करेगा, वह अंत में परमात्मा को पाकर कभी दुःख में नहीं पड़ेगा। यह काम मरने पर नहीं, जीवनकाल में ही होता है। संत दादू दयालजी ने कहा है—

जीवत छूटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ।
जीवत काटै कर्म सब, मुक्ति कहावे सोइ।।
जीवत जगपति कौं मिलै, जीवत आतम राम।
जीवत दरसन देखिये, दादू मन विसराम।।
जीवत मेला ना भया, जीवत परस न होइ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ।।
मूआँ पीछे मुकति बतावै, मूआँ पीछे मेला।
मूआँ पीछे अमर अभै पद, दादू भूले गहिला।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है—

लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग।

यह ज्ञान साधु-समाज—सत्संग में होता है। साधु-समाज से युक्ति मिलती है। जो यत्न करता है, तो कभी-न-कभी उसे वह पूर्ण करता है। यह एक ही जन्म की बात नहीं है। काम कितना भी बड़ा हो, आरंभ करता है, तो कभी-न-कभी अवश्य खत्म होगा। जो इसका ज्ञान पाकर चलता है, वह पार करेगा। श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं कि जो योग का आरंभ करता है, उसका नाश कभी नहीं होता।

जब कभी कोई शरीर छोड़ता है, तो ईश्वर भक्ति का संस्कार उसके मन पर रहता है। फिर जन्म लेने पर उसका भक्ति-संस्कार अपने साथ रहेगा। और इस फल के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'पहले वह स्वर्ग सुख भोगेगा, फिर पवित्र श्रीमान् या योगी के घर में जन्म लेगा। साधना पूर्ण करके अंत में वह परम शान्ति को प्राप्त करेगा।' यही पूर्ण आशा है इसी को संत कबीर साहब ने कहा—

भक्ति बीज पलटै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।

सब कोई सावधान होकर अवश्य भजन करो। रास्ते चलते भी जप-ध्यान करो, भूलो मत। ■

यह प्रवचन मधेपुरा जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर खोखसी श्याम में दिनांक ३०.५.१९६२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१८३. सबसे पहले का पदार्थ कैसा है?

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता!

मुझे यहाँ का आयोजन देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि धर्म के अनुरागी लोग इस तरह शान्त भाव से बैठकर सत्संग करते हैं। मैं सत्संग के विषय पर थोड़ा-सा कहूँगा। सत्संग के विषय पर इसलिए कहूँगा कि मैं जहाँ जाता हूँ, सत्संग की सेवा के लिए जाता हूँ और आपके बुलाने के अनुकूल मैं यहाँ भी सत्संग सेवा करने आया हूँ।

लोग मुझसे पूछा करते हैं कि पहले सत्संग की महिमा कहिए। मैं कहता हूँ कि—'आप क्या

चाहते हैं?' सत्संग से सब कुछ मिलता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई।।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ।।

बहुत मजबूती के साथ उन्होंने कहा है—मति बुद्धि, सुबुद्धि; कीर्ति = यश; गति = मोक्ष; भूति = ऐश्वर्य; भलाई = भलपन; ये पाँचों पदार्थ मिल जाएँ तो और क्या उत्तम पदार्थ बाकी रह जाता है? ये सत्संग के प्रभाव से ही मिलते हैं। इन पांचों से बढ़कर और कुछ नहीं है संसार में। वैदिक ज्ञान में इससे विशेष यत्न और कोई नहीं है।

'सत्' कहते हैं—अपरिवर्तनशील पदार्थ को। जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, वह क्या है? संसार में सब परिवर्तनशील है। लेकिन जिसका परिवर्तन नहीं होता, जिसका विनाश नहीं होता, वह क्या है? परमात्मा। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई अपरिवर्तनशील पदार्थ नहीं है। उस 'सत्' के संग को सत्संग कहते हैं।

संतों ने उस 'सत्' का बड़ा विशाल ज्ञान दिया है। हमलोगों के मुँह में जब से कुछ बोल आया, तब से ही राम-राम, शिव-शिव, वाह गुरु, शक्ति माता आदि कहकर हम पुकारते हैं, जिसके घर में जो रिवाज है। किंतु उस 'सत्' के स्वरूप का निर्णय क्या है, बहुत पीछे हमलोग जानते हैं। संतों से इसके लिए दरयाफ्त करें। संत कबीर साहब कहते हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींही तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूह अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।

'सत्तपुरुष जिन जानिया सतगुरु ताका नाम'—ऐसे ये संत हैं, इसीलिए इनके यहाँ जाकर पूछते हैं। संतों के संग में रहकर, उनके अधीन में रहकर श्रवण करना भी सत्संग है। बाबा नानकदेवजी के पास जाता हूँ, तो उपदेश मिलता है—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी।।
घट घट अंतरि ब्रह्म लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।
जंत उपाइ कालु सिरिजंता बसगति जुगति सवाई।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई।।
सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।

गोस्वामी तुलसीदासजी के पास जाने से वे कहते हैं—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

इस तरह संतों से हम ज्ञान पाते हैं। ईश्वर के संबंध में हमको सब मजहबों से विदित कराया गया है कि वह सबसे प्रथम का है, उससे पहले का और कुछ नहीं। सबसे पहले का जो परम सनातन पदार्थ है, वह कैसा है? प्रकृतिमण्डल को भरकर भी परे है।

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी । ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ।।

विन्ध्याचल के उत्तर तीन संतों—कबीर साहब, गुरु नानक साहब तथा गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज को लोग विशेष रूप से जानते हैं। ईश्वर के संबंध में इन संतों के वचनों से जानने में आता है कि तीनों के वचन एक हैं। कबीर साहब ने 'अनंत', गुरु नानक साहब ने 'अलख', 'अपार' और गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी 'अनन्त' कहा। कबीर साहब ने कहा कि वह चेतन आत्मा को भी चेतन करनेवाला है। आगे पीछे, ऊपर नीचे अर्थात् सब तरफ वह है। सबसे बाहर और सबके भीतर है—'है सबमें सबही तें न्यारा।' गुरु नानकदेवजी ने 'अलख —अपार' कहकर अनन्त को ही जनाया है और उसपर अपने को न्योछावर करने कहा।

सबसे पहले का पदार्थ कैसा है? सबसे पहले का पदार्थ कुछ-न-कुछ अवश्य होना चाहिए। जिसके अतिरिक्त कुछ अवकाश बच जाय, वह सबसे पहले का नहीं होगा। जो सबसे पहले का होगा, वह सर्वव्यापक और उससे भी परे होगा; उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। जो असीम है, अनंत है, ऐसा पदार्थ सबसे पहले का होगा। ऐसा नहीं मानने से सब ससीम मानना होगा। तो प्रश्न हो जाएगा कि उससे परे क्या है? एक अनादि-अनंत कहे बिना प्रश्न हट नहीं सकता। जो अनादि-अनंत है, वह सबसे विशेष व्यापक होगा। जो सबसे विशेष व्यापक होता है, वह सबसे विशेष सूक्ष्म होता है। एक सेर बर्फ की व्यापकता से उसके पानी की और पानी से (उसको वाष्प बना लेने पर) उसके वाष्प की व्यापकता अधिक होगी। परमात्मा सबसे विशेष सूक्ष्म है, इसीलिए उसको 'अलख अपार अगम अगोचरि' कहा गया। ऐसे का संग बाहर संसार में नहीं हो सकता। संसार में हम जहाँ जाएँगे, शरीर-इन्द्रिय के साथ जाएँगे। हम बाहर संसार में जाकर ईश्वर का संग करें, हो नहीं सकता है। बाहर का ख्याल छोड़कर अन्दर की ओर चलें, तब उसका संग होगा। जैसे-जैसे हम अन्दर जाते हैं, शरीर और इन्द्रियों का ज्ञान छूटता जाता है। जाग्रत-स्वप्न के बीच तन्द्रा अवस्था होती है, उस समय मालूम होता है कि शक्ति भीतर की ओर खींचती है। जो अन्दर में प्रवेश करता है, वह इन्द्रियों के ज्ञान से छूटकर अपने स्वरूप को पाता है।

ईश्वर का ज्ञान बहुत विस्तृत है, लेकिन मोटा-मोटी मैं कहता हूँ कि ईश्वर इन्द्रिय-ज्ञान से परे है। इसलिए बाबा नानकदेवजी ने 'अलख, अगोचर' आदि कहा है। आप संस्कृत ग्रंथों को वा अपनी भाषा के ग्रंथों को पढ़िए, सबमें मालूम होगा कि ईश्वर इनिद्रय-ज्ञान से बाहर है। इसलिए बाहर में ईश्वर का संग नहीं होता है। उनके संबंध में जो ज्ञान सुनते हैं, वह भी सत्संग है। ईश्वर के ज्ञान में, उनके रंग में जो मिले हुए हैं, वे भी संत सत्स्वरूप होते हैं। उनका संग भी सत्संग है।

ईश्वर-प्राप्ति का यत्न संतों से मिलता है। हम अपने अंदर-अंदर चलकर ईश्वर का दर्शन कर सकते हैं। अपने अंदर में जिन चिह्नों को कोई पाता है, उनके लिए गुरु नानकदेवजी कहते हैं—'घट घट जोति सबाई' और कहते हैं, 'साचे सबदि नीसाणु।'

रात्रि का अंत होने पर उषाकाल होता है। उस समय का प्रकाश सूर्य का है। उसके बाद के प्रकाश को अरुणोदय कहते हैं। इसके बाद सूर्य-दर्शन होता है। उसी तरह परमात्मा के प्रकाश को कोई तब पाता है, जब कोई परमात्मा का दर्शन पाता है।

'साचे सबदि नीसाणु' जो गुरु नानकदेवजी ने कहा है, यह कैसी बात है? प्राकृतिक ढंग से आप देखते हैं कि पहले बिजली चमकती है, फिर शब्द सुनते हैं। इसी तरह साधक पहले ज्योति को, फिर

नाद को पाता है और तब परमात्मा को पाता है। जो परमात्मा के प्रकाश में अपने को ले जाता है, वह ईश्वर के दयादान को पहचानता है और परमात्मा के शब्द को भी वह पाता है। कबीर साहब ने कहा है कि—

शब्द गह्यो जिव संशय नाहीं, साहब भयो तेरो संग।

ईश्वर चेतन आत्मा के ज्ञान से जानने योग्य है, इन्द्रियों के ज्ञान से नहीं। कोई पूछे कि रूप क्या है? तो कह दीजिए कि जो आप आँख से देखते हैं। उसी तरह ईश्वर क्या है? तो जो चेतन आत्मा से जाना जाता है। इसी के प्रत्यक्ष ज्ञान को सत्संग कहते हैं।

अभी एक विद्वान शवरी के विषय में कह रहे थे। श्रीराम ने शवरी से नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन किया है—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनहुँ नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

प्रथम भक्ति से मंत्र-जप तक सभी जानते हैं। इसमें जो सूक्ष्मता है, सुनिए—

नित प्रति दरसन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी काहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

तो कहा—

मन तो रमे संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

साधु संग वा कथा प्रसंग, कहीं भी रहो, एक मन से सुनो। गुरु-सेवा मन से करो। मंत्र-जप करो, तो स्थिर मन से करो।

तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय।।

साधु-संग में, कथा-प्रसंग में, गुरु-सेवा में, मंत्र-जप में, यश-कीर्तन में, सबमें मन की एकाग्रता चाहिए। छठी भक्ति में दमशीलता प्राप्त करने कहा। यह केवल विचार-ही-विचार से नहीं होता। मन को विचार से नियन्त्रित करो, ठीक है। लेकिन इतने से ही पूर्ण नियन्त्रित नहीं होगा। इसकी पूर्णता के लिए दूसरा साधन भी करो। विचारो कि इन्द्रियाँ विषयों की ओर कैसे जाती हैं? इन्द्रियों में चेतन की धारें होती हैं, तब इन्द्रियाँ विषयों की ओर जाती हैं। जब स्वप्न में इन्द्रियों से चेतन धाराएँ सिमट जाती हैं, तब इन्द्रियाँ बाह्य विषयों में नहीं जातीं। इसके लिए विशेष साधन दृष्टियोग है।

मन और दृष्टि का बड़ा संबंध है। जहाँ दृष्टि की संलग्नता है, वहीं मन भी रहता है। इसलिए अपने देखने की शक्ति को बढ़ाओ। इतना बढ़ाओ कि दोनों में फर्क न रह जाय अर्थात् समेटकर देखो। केवल निशाने को देखो; जैसे अर्जुन केवल निशाने को ही देखता था। आज भी अच्छा निशाना करनेवाला ठीक-ठीक देखते हैं। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—'तारा चड़िआ लम्मा किउ नदरि निहालिआ राम' तथा 'निसि दामिनि जिउ चमकि चंदाइणु देखै। अहिनिसि जोति निरतंर पेखै।' जब कोई यह देखता है, तब दमशीलता होती है।

योगशास्त्र में 'दम' और 'शम'—ये दो शब्द बड़ी कीमत के हैं। इन्द्रिय-निग्रह के साथ भी मनोनिग्रह होता है और केवल मन का भी साधन होता है। उस साधन को नादानुसंधान कहते हैं। नवधा भक्ति के अंदर जब हम सूक्ष्मता की ओर ध्यान देते हैं, तो छठी और सातवीं भक्ति 'दम' और 'शम' का साधन हो जाती है।

शवरी को भगवान राम ने कहा—'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।' इससे आगे कुछ भी जानने का साधन नहीं है। भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि

के दर्शन जिनको-जिनको हुए, उन लोगों ने कुछ माँगा अथवा भगवान ने ही कहा कि कुछ माँग लो। लेकिन शवरी के आगे लेन-देन कुछ नहीं और वह वहाँ गई, जहाँ से लौटकर कोई फिर आता नहीं।

तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भई जहँ नहिं फिरै।

शवरी की भक्ति में कोई कमी नहीं थी। ऐसा नहीं कि स्त्रीगण को गुरु की सेवा नहीं करनी चाहिए। बल्कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम शवरी से कहते हैं—'गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।' नौवीं भक्ति के अंत में साधक उस परमात्मा को पाता है, जिससे पूर्ण सत्संग होता है।

एक बात और कहूँ—हमारा यह शरीर एक नहीं है। इसके अंदर सूक्ष्म, कारण और महाकारण; ये तीन जड़ शरीर और हैं। इन चारों जड़ शरीरों से जब चेतन आत्मा छूटती हैं, तब परमात्म-दर्शन होते हैं। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

काहे रे वन खोजन जाई।

सरब निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई।।

ईश्वर सर्वत्र हैं, फिर दर्शन क्यों नहीं पाते? इसलिए कि हम जड़ शरीरों के आवरण से आवृत्त हैं। स्थूल शरीर के अंदर सूक्ष्म शरीर है। इस पर मैं एक कथा कहकर सत्संग समाप्त करूँगा।

सत्यवान और सावित्री दम्पत्ति थे। सत्यवान के पिता के राज्यभ्रष्ट हो जाने के कारण वे जंगल में लकड़ी काटकर अपने माता-पिता और अपनी पत्नी का भरण-पोषण करते थे। एक दिन जंगल में लकड़ी काटते-काटते ही सिर-दर्द से बेचैन होकर वे बेहोश हो गए। संयोगवश सावित्री उस दिन उसके साथ ही में थी। उसने अपनी जंघा पर अपने पति का सिर रख लिया। सत्यवान का अंतिम समय जान यमदूत उसे लेने आए; किंतु सती स्त्री के तेज के सामने वे ठहर न सके। अंत में यमराज स्वयं आकर सत्यवान के स्थूल शरीर से उनके सूक्ष्म लिंग शरीर को निकालकर चलते बने। सावित्री यमराज के पीछे-पीछे अनुनय-विनय करती चली। यमराज ने प्रसन्न होकर सावित्री को इच्छित वरदान देकर सत्यवान के स्थूल शरीर में उनके सूक्ष्म शरीर को प्रवेशित कर दिया। फलस्वरूप सत्यवान जीवित हो उठे।

इस संक्षिप्त कथा से समझाता हूँ कि पतिव्रता का तेज कितना है जानो। यमराज उसके पति को ले भी गए, तो लौटाकर दे दिया। हमारे देश में चाहिए कि स्त्रियाँ पतिव्रता हों और पुरुष एकपत्नी-व्रतधारी हों। जो पुरुष एकपत्नीव्रतधारी नहीं हैं, उसको पतिव्रता स्त्री नहीं मिल सकती।

कर्महीन को ना मिलै, भली वस्तु को भोग।

दाख पके मुख काक को, होत पाक का रोग।।

तुम अच्छे कर्मवाले बनो, तब अच्छे पदार्थ तुमको मिलेंगे। देश में स्त्रियाँ पतिव्रता हों और पुरुष एकपत्नीव्रतधारी हों। हमारे देश में जो आज इतना नैतिक पतन है, इसका कारण है कि हमारे देश में उस तरह की संतान नहीं सी है।

पंच पापों से छूटकर रहे, तो देश में कल्याण होगा। जहाँ ये पंच पाप—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं रहेंगे, वहाँ चोरी, डकैती, बदमाशी नहीं होगी। सभी शान्तिपूर्वक रहेंगे। पापों के करनेवाले से ईश्वर की भक्ति नहीं होगी। ईश्वर की भक्ति करनेवाले को पापों से छूटने का बल मिलता है और पापों से छूटने पर ईश्वर की भक्ति में बल मिलता है। n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत सुजागंज स्थित सिक्ख गुरुद्वारा में दिनांक ५.८.१९६२ ई० के सत्संग में हुआ था।

१८५. दिव्य जीवन क्या है?

पूज्य पुरुषो तथा धर्मानुरागिनी जनता!

मैं नहीं जानता हूँ कि लोग मुझको महर्षि क्यों कहते हैं। मैं अपने में ऐसी योग्यता नहीं देखता। मैं सभापति का काम नहीं जानता हूँ और आपलोगों ने मुझे सभापति बनाया है, यह आपलोगों की विशेषता है। आपलोग जानते होंगे कि मैं मामूली आदमी हूँ। संतमत का सेवक—प्रचारक हूँ। जिस देश में हमलोग हैं, वह भारतभूमि है। यह भूमि सदा से संतों को जन्म देती आयी है—संतों को अपनी गोद में रखती आयी है। आज इस समय हमलोग एक संत के जन्म-दिवस के उत्सव आयोजन पर कुछ कहने और सुनने के लिए उपस्थित हुए हैं। मैं जानता हूँ कि ऋषिकेश में स्वामी शिवानंद सरस्वतीजी महाराज रहते हैं। मैं कई बार वहाँ गया, लेकिन संयोगवश उनके दर्शन नहीं हुए। उनका जन्म-दिवस मनाया जा रहा है। यह बड़ा अच्छा है, सभी संत अच्छे हैं।

संत संत सब एक हैं, जस पोस्ते की खेत।
कोई कुदरती लाल हैं, कोई सेत का सेत।।

केवल वस्त्र से संत कहलानेवाले बहुत हैं। 'कुदरती लाल' कोई-कोई खास होते हैं, जो 'लाल' बनकर ही आए हैं। बनते-बनते, बनते हैं, यह और बात है; लेकिन बने हुए भी आते हैं। देश में बहुत ऐसे संत हैं। स्वामी शिवानन्द सरस्वतीजी भी इन दोनों में से कोई एक हैं।

डिवाइन लाइफ सोसाइटी (Divine life society) अर्थात् दिव्य जीवन संघ क्या है? सभी मिलकर आपस में प्रेमपूर्वक रहो, अंतःकरण से शुद्ध पवित्र रहकर ईश्वर-भजन करते रहो। शुद्ध जीविका उपार्जन करते हुए अच्छी तरह रहो, यह जीवन दिव्य है। मैं समासरूप में कहता हूँ। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कवि कोविद योगी।।

ऐसे ही जीवन के लोग संत, साधु-पुरुष कहाते हैं। उनको (संतों को) कितना ज्ञान है, ठिकाना नहीं। इसीलिए कहा—अमित बोध। मैं संतों की वाणी कहूँगा; क्योंकि मैं संतमत का आदमी हूँ न? कभी नानक का, कभी सूरदासजी का और कभी अन्य संतों का वचन कहूँगा। संत इच्छा-रहित होते हैं। कबीर साहब ने कहा है—

भक्ति का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरणन लौ लीना रे।।

अर्थात् ईश्वर-भजन करने की इच्छा रखो, संसार का धन बटोरने की इच्छा नहीं। संतजन संसार में रहते हैं, मितभोगी होकर। संसार में रहकर स्वाभाविक ही संसार का कुछ-न-कुछ लेना ही होगा। इसलिए वे मितभोगी होते हैं। सत्य के वे सार होते हैं, सत्य के बिना धर्म नहीं होता, ज्ञान नहीं होता। वचन रचना में वे दक्ष होते हैं, चाहे गद्य हो वा पद्य। वे पण्डित और योगी भी होते हैं। योगी हों, पण्डित हों,, अमित बोध रखते हों, आदि ये सब गुण जिनमें हों, उनका जीवन जीवन्मुक्त पुरुष का है—दिव्य जीवन का है। इसके लिए मैं साधारण शब्दों में कहूँगा कि भक्ति कीजिए। इसमें प्रेम, ज्ञान और योग तीनों हैं। इन सबको मिलाकर रखना होता है। योग को ईश्वर की भक्ति से अलग करें तो मिलावे कौन? प्रेम को बाहर पटक दें तो संयुक्त करने की क्रिया में कौन

रखे? मेरे ख्याल में, ईश्वर-भक्ति में ज्ञान, योग और प्रेम सभी हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'रघुपति भगति करत कठिनाई।' विनय-पत्रिका। और तुलसीकृत रामायण में है—'रघुपति भगति सुलभ सुखदाई।' यदि कोई कहे कि वहाँ कठिन और यहाँ सुलभ, यह कैसे? तो जानना चाहिए कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका के उसी पद में आगे चलकर यह भी कहा है—

कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।

और भी—

जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

यहाँ ज्ञान, योग और भक्ति; सभी मौजूद हैं। ईश्वर-भक्ति कीजिए और पवित्र जीवन—अलौकिक जीवन बनाइए। यह मनुष्य शरीर में ही होगा। मनुष्य-शरीर नहीं बनावें तो पशु जीवन में रहना होगा। हम केवल खाएँ, सोएँ और आराम करें तो पशु की तरह ही हो जाएँ। उससे विशेष हम तब होते हैं, जब ईश्वर की भक्ति करते हैं। ईश्वर क्या है? त्रयगुण-रहित पर, दिव्यगुण-सहित। निस्त्रैगुण्य होने का गुण ही दिव्यगुण है। परमात्मा दिव्य है, उसको जो पावेगा, वही दिव्य जीवनवाला होगा। अग्नि में गिरो तो अग्निमय हो जाओगे। उसी तरह उस दिव्य परमात्मा में मिलो तो दिव्य हो जाओगे। इसका यत्न क्या है, कबीर साहब की वाणी में सुनिए—

गगन की ओट निशाना है।
दहिने सूर चंद्रमा बायें, तिनके बीच छिपाना है।।
तन की कमान सुरत का रोदा, शब्द बान ले ताना है।
मारत बान बिंधा तन ही तन, सतगुरु का परवाना है।।
मारयो बान घाव नहिं तन में, जिन लागा तिन जाना है।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जिन जाना तिन माना है।।

पंडितों का वेद और संतों का भेद होता है। स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से कारण को वेधते हुए आगे चला गया, लेकिन घाव नहीं हुआ। यह दिव्य जीवन प्राप्त करने का संकेत है।

मनुष्य तीन गुणों के अंदर रहता है, कभी राजस प्रधान, कभी तामस प्रधान और कभी सत्त्व प्रधान में । लेकिन सत्त्वप्रधान में बहुत कम रहते हैं। बड़े सच्चरित्र जो हैं, उनका विचार सात्त्विकता में रहता है। सात्त्विकता का विचार कैसे होगा? अपने को कहाँ रखोगे? एक बंगाली संत का वचन सुनिए—

बायें इड़ा नाड़ी दक्षिणे पिंगला, रजस्तमोगुणे करिते छे खेला।
मध्य सत्त्वगुणे सुषुम्ना विमला, धर धर तारे सादरे।।

अगर सात्त्विकता में अपने को रखना चाहते हो, तो सुषुम्ना को आदर से पकड़ो। इसमें रहने से सात्त्विक विचार ही दिव्य जीवन देगा। गुरु नानक ने कहा है—

'सुखमन कै घरि राग सुनि सुन मंडल लिव लाइ।
अकथ कथा वीचारीऐ मनसा मनहि समाइ।।'

'सागर महि बूँद बूँद महि सागरु कवणु बुझै विधि जाणै।
उतभुज चलत आपि करि चीनै आपे ततु पछाणै।।
ऐसा गिआन विचारै कोई तिसते मुकति परमगति होई।
दिन महि रैणि रैणि महि दीनी अरु उसन सीति विधि सोई।
ताकी गति मति अवरु न जाणै गुर बिन समझ न होई।।
पुरख महि नारि नारि महि पुरखा बूझहु ब्रह्म गिआनी।
धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ गुरमुखि अकथ कहानी।।

इस तरह संतों ने दिव्य जीवन प्राप्त करने को कहा है। इसका भेद जानना चाहिए। यह छिपा

भी है और प्रकट भी। जो खोजता है, उसको मिलता है, उसके लिए प्रकट है और जो नहीं खोजता है, उसके लिए छिपा है। जो कोई ऐसा काम करते हैं, चाहे उनका नाम दफ्तर में हो वा नहीं, सभी दिव्य जीवन के हैं।

मैं 'संतमत' क्यों कहता हूँ? इसलिए कि साम्प्रदायिकता नहीं रहे। ईश्वर-भक्ति करो। ईश्वर इन्द्रियातीत है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

ईश्वर को इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं जानोगे।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।।

तुम अपने को सोचो—कौन हो? शरीर का ज्ञान छोड़ो। शरीर के ३१ तत्त्वों को छोड़कर तब जो हो, सो तुम हो। ईश्वर की भक्ति अपने से होगी, नौकर-चाकर से नहीं। हाथ-पैर, नाक-कान नौकर हैं। हमारे पिताजी आवें, तो हम अपने से उठकर पानी लावें, यह अच्छा है। उसी तरह ईश्वर की भक्ति अपने से होगी। ईश्वर की भक्ति सभी करें।

इस देश में ज्ञान और विज्ञान दोनों प्रचलित हैं। ज्ञान अर्थात् जानना और विज्ञान अर्थात् विशेष जानना। क्या जानो? क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान जानो। क्षेत्र से क्षेत्रज्ञ को फुटाकर ज्ञान से जानना ज्ञान है और अभ्यास करके पहचान कर जानना विज्ञान है। मैं शरीर नहीं, इन्द्रिय नहीं, अंतःकरण नहीं, ऐसा विचारना परोक्ष ज्ञान है। साधन द्वारा उसको प्राप्त करना अपरोक्ष ज्ञान है। यह अध्यात्म-विज्ञान है, आधिभौतिक-विज्ञान नहीं। अध्यात्म-विज्ञान का अंत ईश्वर साक्षात् में है। भौतिक-विज्ञान का अंत अभी तक नहीं हुआ है। आज जो भौतिक-विज्ञान की उन्नति सुनते हैं, यह इतना ही है, ऐसा नहीं। अपने देश में भौतिक-विज्ञान की उन्नति पहले नहीं थी, ऐसी बात नहीं। हम दोनों विज्ञानों को अपनावें। यदि दोनों नहीं अपनावें तो अध्यात्म विज्ञान को अवश्य अपनावें, नहीं तो मनुष्यता नहीं रहेगी, दिव्य जीवन नहीं होगा। अध्यात्म-विज्ञान में रहने से ही दिव्य जीवन होता है। मितभोगी जो रहता है, वही आराम से रहता है। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार—पंच पापों को नहीं करनेवाले 'दिव्य जीवन' वाले होंगे। अपने देश में जो स्वराज्य है, उसमें सुराज हो जाएगा। आज स्वराज्य है, लेकिन सुराज नहीं। सुराज किसी कानून के डण्डे से नहीं होगा, ईश्वर-भजन से होगा। पंच पापों से बचने से होगा। अपने देश में जो लोग गिरते हैं, वह नमूना नहीं अपनाना चाहिए। संसार में स्त्री और पुरुष का रहना आवश्यक है। इसके बिना संसार नहीं रहेगा। श्रीराम इसके नमूने थे कि वे एकस्त्रीव्रतधारी थे। स्त्रियों को सावित्री की तरह ही पतिव्रता होना चाहिए। इससे छिना हुआ राज्य पुनः लौटेगा, अंधों को आँखें होंगी और यमदूत डरेंगे। चेतन आत्मा का बल तब जगेगा, जब अपने अंदर-अंदर चलो।n

यह प्रवचन नवयुग विद्यालय, भागलपुर में आयोजित बृहत सभा में स्वामी श्रीशिवानन्द सरस्वती की जयंती के अवसर पर दिनांक ८.९.१९६२ ई० के सत्संग में हुआ था।

१८५. दैत्य गुरु शुक्राचार्य की युक्ति

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

यहाँ के प्रेमियों ने मुझको सत्संग के निमित्त बुलाया है, इसलिए मैं पहले आपलोगों को सत्संग के बारे में कहूँगा। सत्संग में दो शब्द हैं—सत् और

संग। सत् के संग को सत्संग कहते हैं। सत् उसको कहते हैं, जो अपनी सत्ता से हो, कभी परिवर्तित न हो और कभी नष्ट न हो। जिसकी निजी स्थिति हो, उसके संग को सत्संग कहते हैं, असल तो यह बात है। ऐसा पदार्थ जो अपनी सत्ता से रहता हो, जो किसी आधार पर आधेय होकर नहीं हो, जो कार्य-रूप नहीं हो, जिसमें परिवर्तन नहीं हो, ऐसा क्या पदार्थ होगा?

संसार के सभी पदार्थ बदलते हैं, सभी किसी-न-किसी आधार पर रहते हैं, सभी में विनाश का गुण है। अपनी देह को देखिए, पहाड़-पर्वत को देखिए, सभी आधार पर हैं। हम सभी पृथ्वी पर हैं और पृथ्वी भी आधार पर ही है। चाहे आप पौराणिक बातें लीजिए, तो कहेंगे कि शेषनाग पर है। यदि विज्ञान को लीजिए, तो यह सूर्य के आधार पर है। बिना आधार के कोई भी नहीं है। ये बिल्कुल-के-बिल्कुल बदलते हैं। कभी-न-कभी इसका नाश हो जाता है। बहुत दिनों के बाद ब्रह्मा भी नहीं रहते। ब्रह्मा के दिन में सृष्टि होती है और रात में विनाश। इसी तरह सृष्टि चली आ रही है। कबतक इस तरह बदलती रहेगी, ठिकाना नहीं। कोई कहते हैं कि जिससे यह सृष्टि होती है, वह भी नहीं रहेगी। सृष्टि प्रकृति से होती है। प्रकृति भी कभी-न-कभी लय हो जाएगी। कहते हैं कि जो जिससे उपजा है, वह उसी में समा जाएगा। सृष्टि में कोई भी अविनाशी नहीं है। अगर कोई ऐसा है, तो ईश्वर है। ईश्वर के अतिरिक्त और कोई ऐसा नहीं कि जिसमें परिवर्तन न हो और वह किसी आधार पर नहीं रहे।

ऐसा इसलिए कि संसार में देखने में आता है कि पहले कुछ, तब फिर कुछ। जैसे वृक्ष, फिर उसमें फल आदि। वैज्ञानिक ज्ञान में भी सृष्टि के लिए है कि पहले यह बना, पीछे वह बना। और पौराणिक ज्ञान में भी इसी तरह है। इस तरह जो बनता-बिगड़ता है, वह ईश्वर नहीं। पहले सूर्य है बाद को पृथ्वी। यह सूर्य पृथ्वी के पहले से है। इस तरह सोचें कि पृथ्वी और सूर्य के पहले का भी कुछ होना चाहिए। सबसे पहले का कुछ नहीं मानने से सृष्टि का पता भी नहीं रहेगा। सबसे पहले का वह पदार्थ होगा, जिसके अतिरिक्त कोई अवकाश नहीं। यदि कोई अवकाश माना जाय, तो उसमें रहनेवाला पीछे होगा और अवकाश पहले। यह भी समझने योग्य है कि जिसके अतिरिक्त कोई अवकाश नहीं हो, वह कैसा होगा? सादि सान्त वा अनादि-अनन्त? वह अनादि-अनन्त है। सादि-सान्त कहने से उसके अतिरिक्त कुछ अवकाश मानना पड़ेगा। जो अनादि-अनंत होगा, वह अपरम्पार शक्ति-युक्त होगा। ईश्वर के बारे में यही कहने योग्य है कि जो आदि-अंत-रहित, अपरम्पार, शक्तियुक्त है, वही सत् है, वही ईश्वर है। इससे विशेष व्यापक और कुछ नहीं हो सकता। यही सत् है, इसका संग हो, इसको सत्संग कहते हैं। इतनी ऊँची बात को ख्याल में लावें, तो मन हैरान हो जाता है कि वह सत कहाँ है और उसका संग कैसे होगा?

वह सत् सर्वव्यापी होने के कारण सबमें सर्वदा है। वह भले ही सबको जानता है, लेकिन सब उसको नहीं जानते। मनुष्य से ऊँचे रहनेवाले स्वरूपतः उसको पहचान नहीं सकते। जब कोई उस सत के लिए ज्ञान कहता है, तब समझ में आता है, लेकिन उसकी प्रत्यक्षता नहीं होती। विश्वास नहीं होता कि उसका संग हमको होता है, यद्यपि वह सर्वव्यापी है। यदि प्रत्यक्ष हो जाए, तब बात ही क्या? सो होता नहीं है। प्रत्यक्ष नहीं जानने के कारण उसका संग हो रहा है, विश्वास नहीं होता। प्रत्यक्ष नहीं होने के कारण जिसको हम सत्संग कहते हैं, संसार में होने योग्य नहीं मालूम होता। लेकिन सर्वव्यापी को पहचान लें, तब सत्संग

होगा। इसके बिना हमलोग जो यहाँ एकत्र हैं, यह सत्संग कैसा? यह सत्संग नहीं है, यह भी कहा नहीं जाता; क्योंकि उस सत् के विषय में हमलोग समझने-बूझने को एकत्र होते हैं, चर्चा करते हैं, इसलिए यह भी सत्संग है।

लोग कहेंगे, सत्संग से लाभ क्या होता है? किसी काम के करने से लाभ हो, तब उसमें प्रेम होता है, करने में मन लगता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है कि सत्संग से क्या लाभ है? लोग ज्ञान, यश, सुगति, ऐश्वर्य और शीलता चाहते हैं। लेकिन झूठी शीलता नहीं, जैसा कि हमलोग कभी-कभी बरतते भी हैं। कबीर साहब ने कहा है—'मन में आन बगल में छूरी।' सत्यता और नम्रता से बरतने को शीलता कहते हैं।

कथा है कि एक बार जब इन्द्र का राज्य छिन गया था, तब उसने देवगुरु बृहस्पतिजी से उसकी पुनः प्राप्ति के लिए उपाय पूछा। सद्युक्ति बताने में बृहस्पतिजी को असमर्थ पा इन्द्र ने दैत्य गुरु शुक्राचार्य से जिज्ञासा की। शुक्राचार्य ने कहा कि तुम प्रह्लाद की सेवा करो और जब वह तुम्हारी सेवा से प्रसन्न होकर कुछ माँगने के लिए तुमसे कहे, तब तुम उनसे कहना कि आप अपनी शीलता मुझे दीजिए। शुक्राचार्य की युक्ति इन्द्र को भायी। उसने छद्म वेश में प्रह्लाद के दरबार में जाकर विविध सेवा करनी आरंभ कर दी। कुछ दिनों के पश्चात् इन्द्र की सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन प्रह्लाद ने कहा कि तुम कुछ वर माँगो, जो तुम चाहते हो। इन्द्र ने कहा—'आप अपनी शीलता दीजिए।' प्रह्लाद समझ गए। उन्होंने कहा—'आप इन्द्र हैं। मेरे गुरु महाराज जी ने आपको सिखाया है। मैं अपनी शीलता तो आपको दूँगा ही, साथ ही आप अपना राज्य भी ले लीजिए।' तुलसीदासजी कहते हैं—

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

सत्संग से क्या नहीं मिलता है? आप मनुष्य हैं, आपको जो मिलना चाहिए, सभी सत्संग से मिलते हैं। मनुष्य हैं, ज्ञान नहीं है तो किस काम का वह है? यश नहीं है, अयशी है, उसका जीवन किस काम का? मनुष्य शरीरधारी जीव को ये पाँचों बातें चाहिए। सत्संग के बिना इसका मिलना नहीं हो सकता।

देवगुरु बृहस्पतिजी महाबुद्धिमान, ज्ञानवान थे। उनके पास इन्द्र गए; गोया सत्संग किया। शुक्राचार्य के पास इन्द्र गए, वह भी सत्संग हुआ। प्रह्लाद की सेवा में इन्द्र रहे, तो ऐश्वर्य भी लाभ हुआ। सत्संग से बढ़कर कुछ है, कहा नहीं जा सकता। हमलोग ईश्वर की चर्चा करते हैं, यह सत्संग है। महात्माओं का, संतों का संग भी सत्संग है। प्रह्लाद भी भक्त थे, उनका संग सत्संग हुआ। ऐसे महापुरुष नहीं मिलें, तब कैसे सत्संग हो? ग्रंथों में उन महापुरुषों का ज्ञान है, उनके ज्ञान का संग भी सत्संग है। दूर-दूर मित्र होते हैं, पत्र से समाचार जानते हैं। चिट्ठी आधी मुलाकात है।

संतों का ज्ञान उनकी ओर से उनके ग्रंथों के द्वारा हमको मिलता है, यह भी सत्संग है। इसलिए हमलोग संतों का कोई-न-कोई वचन अवश्य पाठ करते हैं। हमारे सत्संग का यह आधार है। कोई कोई बुद्धिमान कहते हैं कि किताब पढ़ने की क्या जरूरत है? जो तुम जानते हो, कहो। मैं कहता हूँ तुलसीदासजी आदि संतों के सामने मेरा ज्ञान तुच्छ है। उनका ज्ञान लेकर मैं कहता हूँ, तो इसमें क्या हानि है? आप विद्वान हुए हैं, कॉलेजों और विद्यालयों में दूसरे की किताब पढ़कर ही?

उत्तर भारत में भगवान बुद्ध के बाद कबीर साहब पूर्व में, गुरु नानक साहब पश्चिम में हुए। काशी में कबीर साहब भी और गोस्वामी

तुलसीदासजी भी—दोनों हुए। उत्तर भारत में सूरदास महाराज भी हुए हैं। ये सब संत ऐसे हुए हैं कि इनके प्रवचनों के द्वारा हमको सत्संग हुआ करता है। इसलिए सत्संग के वास्ते हमारे गुरु महाराज भी सद्ग्रंथों का सहारा लेते थे। हमारे गुरु का ज्ञान हमसे कितना अधिक था, ठिकाना नहीं। जब वे ग्रंथों का सहारा लेते थे और हमको भी आदेश दे गए, तब क्यों न पाठ किया जाय? अभी तुलसीकृत रामायण का पाठ हुआ, आपने सुना—

जीवन मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्हके हिय पाषान।।

जो मुक्ति प्राप्त करें, वे मुक्त हैं। मुक्ति का अर्थ है—छूट जाना। किससे छूट जाना? बंधन हो, तो उससे छूट जाना मुक्ति है। बंधन क्या है? किसको है? तो कहा जाता है कि जीवात्मा को बंधन है। शरीर के बंधन से छूट जाना मुक्ति है। जीवात्मा शरीर नहीं है। बालि मारा गया। उसकी स्त्री तारा रोती थी, तब श्रीराम ने कहा—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा।।

भगवान श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध में अर्जुन से कहा था कि तुम किसको मारोगे? कुरुक्षेत्र के मैदान में जितने लड़ने आए हैं, ये पहले नहीं थे और पीछे नहीं रहेंगे, ऐसी बात नहीं। शरीर बदलता है, आत्मा अविनाशी है। इस शरीर में जीवात्मा है और शरीर के बंधन में है। शरीर के बंधन में रहने से क्या होता है, यह सबको मालूम है। कभी सुख, कभी दुःख दिन रात की तरह आता-जाता रहता है। कभी लगभग चौदह घंटे की रात और कभी चौदह घंटे का दिन होता है। लेकिन बराबर न रात रहती है, न दिन रहता है। उसी तरह दुःख कभी अधिक, कभी कम। कभी पाण्डव बड़े सुख में थे और कभी भीख भी माँगी, कभी नौकरी भी की। नौकरी में युधिष्ठिर ने भी मार खायी और द्रौपदी ने भी। महारानी सीता भी रोयीं। एक बार कौन कहे, दो-दो बार। सूरदासजी ने कहा—

ताते सेइये यदुराई।
सम्पति विपति विपति सों सम्पति देह धरे को यहै सुभाई।।
तरुवर फूलै फलै परिहरै अपने कालहिं पाई।
सरवर नीर भरै पुनि उमड़ै सूखे खेह उड़ाई।।
द्वितीय चन्द्र बाढ़त ही बाढ़ै घटत घटत घटि जाई।
सूरदास सम्पदा आपदा जिनि कोऊ पतिआई।।

सम्पदा व आपदा, किसी का विश्वास नहीं करो कि यह सदा रहेगी। यह तो प्रत्यक्ष अपने देश में हुआ। अंग्रेज बात-की-बात में भाग गया। जमींदारों की जमींदारी चली गई। बहुत-बहुत जमीन भी अब किसी के पास नहीं रहने को। कभी भारत बड़ा धनी था और अब भारत ऋणी है; लेकिन सदा ऋणी रहेगा, ऐसा नहीं।

इस शरीर में कभी सुख, कभी दुःख होता है। सम्पत्ति में बाहर में तो अच्छा लगता है; लेकिन अंतर जलता रहता है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है—

द्रव्यहीन दुख लहइ दुसह अति, सुख सपनेहु नहिं पाये।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों, धन दुख प्रद स्रुति गाये।।

धन होने और नहीं होने, दोनों तरहों में दुःख है। धन नहीं है, तो जलते हैं और धन हो गया, तो जैसे भूत चढ़ गया, चैन नहीं लेने देता। जो सब राष्ट्र वा एक ही राष्ट्र बड़ा धनवान है, तो चुपचाप रहे। लेकिन चुपचाप रहता कहाँ है? उसको भूत लगा है, अपने ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिए। भारत कहता है कि हमारे पास धन नहीं है, इससे दुःखी हैं और अमेरिका कहता है—'हमारे पास अमित धन है, धन के भोगों से बचाओ।' वह भोग के मारे पागल हो रहा है। इस तरह धन सुख देनेवाला नहीं है। सुख कहने मात्र का है, यथार्थ में नहीं। जो-जो मन और इन्द्रियों को सुहाता है, वह

सुख और जो मन-इन्द्रियों को नहीं सुहाता है, वह दुःख है। इस सुख में मन-इन्द्रियों को तृप्ति नहीं और दुःख, अशान्ति रहती है। इसलिए शरीर से छूटो। शरीर से छूटने को मुक्ति कहते हैं। आप कहेंगे कि शरीर से छूटना तो मामूली बात है। जहर खा लो, छूट जाय। अथवा सब्र करके रहो, तो कुछ दिनों में १०, २०, ५० वा १०० वर्षों में शरीर छूट जाएगा। तो यह बात कहनेवाले केवल एक शरीर को ही जानते हैं। इसके अंदर सूक्ष्म (लिंग), कारण और महाकारण शरीर भी हैं। कोई-कोई तीन ही शरीर गिनाते हैं। हमलोग चार शरीर पढ़े हैं और विचार में भी आता है। ये चारो शरीर छूट जाएँ, तब मुक्ति है। साधारण मृत्यु में केवल एक शरीर छूटता है।

बहुत पुराने समय से हमलोगों के घर में कर्मकाण्ड होता है, जिसमें एक कर्मकाण्ड को श्राद्ध-क्रिया कहते हैं। श्रद्धापूर्वक जो क्रिया की जाती है, उसको श्राद्ध-क्रिया कहते हैं। जैसे एक आदमी अपने पुत्र-पौत्रों के साथ था। उस बूढ़े का शरीर छूट गया, उसको चिता पर जलाया और उसकी श्राद्ध-क्रिया की। श्राद्ध-क्रिया करने में एक श्रद्धा है कि दादाजी का शरीर छूट गया है, वे कहीं-न-कहीं हैं। श्राद्ध-क्रिया यह वेदान्त-ज्ञान बताती है कि शरीर छूटता है, आत्मा रहती है। और में सन्देह भी, इस बात में कोई सन्देह नहीं। शरीर छूटने पर देह से देह छूटती है।

सावित्री और सत्यवान की कथा से सीखो कि सावित्री में पातिव्रत्य के कारण तेज था। आज भी जो स्त्री पतिव्रता होगी, उसको भी तेज होगा। इसलिए स्त्रियों को पूर्ण पतिव्रता होना चाहिए। पुरुष को चाहिए कि भगवान श्रीराम की तरह एक पत्नीव्रती बनें। आज हमारे देश में इसकी बड़ी कमी है, जिस कारण कमजोर बच्चे होते हैं। देश में सभी स्त्रियाँ पतिव्रता हों और सभी पुरुष एकपत्नीव्रत धर्म का पालन करें तो देश में अच्छी संतान होगी, देश का कल्याण होगा। कबीर साहब ने कहा—

मरिये तो मरि जाइये, छूटि पड़ै जंजार।
ऐसी मरनी को मरै, दिन में सौ सौ बार।।
जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरण परमानन्द।।

इसी की प्राप्ति के लिए श्रीराम ने प्रजा को उपदेश दिया। संसार के सभी सुख लोगों को प्राप्त थे। लेकिन शरीर छूटने के बाद भी वे सुखी रहें, इसलिए श्रीराम ने प्रजा को सबसे पहली बात जो कही, सो यह कि—

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथहिं गावा।।

राजा का कर्तव्य होता है कि जहाँ प्रजा के सुख के लिए कार्य करे, तो उसके ज्ञान को बढ़ाने का यत्न भी करे। श्रीराम ने कहा—

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथहिं गावा।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।
सो परत्र दुःख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताय।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय।।
एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।
नरतन पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।।
ताहि कबहुँ भल कहहिं न कोई। गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई।।
आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जीव अविनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुणा नर देहीं। देत इस बिनु हेतु सनेही।।
नर तन भव वारिधि कहँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करन धार सदगुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।
जो न तरइ भव सागर, नर समाज अस पाय।
सो कृत निन्दक मंद मति, आतम हन गति जाय।।

परलोक दो प्रकार के होते हैं—एक स्वर्ग-नरक आवागमनवाला, दूसरा वह कि मुक्ति मिल गई, फिर संसार में लौटकर नहीं आता है। ईश्वर की कृपा नहीं है, यह नास्तिकता की बात है। प्रारब्ध

बनाया हुआ तुम्हारा है, आज भी जैसा चाहो, बना सकते हो। समय तुमको शुभ कर्म करने से मना नहीं करता। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पंच विषयों को लोग भोगते रहते हैं। श्रीराम कहते हैं—यह मनुष्य-शरीर का काम नहीं। स्वर्ग का सुख भी थोड़ा ही है और अंत में दुःख देनेवाला है। अर्थ यह हुआ कि 'नर तन कर फल निर्विषय भाई'। इन्द्रिय-ज्ञान से परे का ज्ञान ग्रहण करने के लिए मनुष्य का शरीर है। विषयातीत मोक्ष के लिए श्रीराम ने उपदेश दिया।

अच्छी नाव हो और अच्छी हवा भी हो, लेकिन खेवनेवाला नहीं हो, तो काम नहीं चलेगा। मनुष्य-शरीर नाव है, ईश्वर-कृपा अनुकूल वायु है और खेवनेवाला सद्गुरु हैं। सद्गुरु उसको कहते हैं, जो सद्ज्ञान जाने; उस ज्ञान के अनुकूल रहे और दूसरों को सद्ज्ञान का उपदेश दे।

जो मनुष्य भवसागर पार होने के ऐसे साज सामानों को पाकर भवसागर पार नहीं होता है, वह कृतघ्न, नीच बुद्धि आत्महिंसक की गति में जाता है। इसीलिए लोगों को ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए, जिससे कि मुक्ति मिले और निर्विषय तत्त्व की प्राप्ति हो। n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत सुलतानगंज में श्रीलक्ष्मीना० रामुका द्वारा आयोजित दिनांक ९.९.१९६२ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१८६. संसार में पाँच ही पदार्थ हैं

प्यारे लोगो!

मैं ईश्वर की भक्ति के बारे में कहता रहता हूँ और किसी के बुलाने पर मैं जाता हूँ। अपनी ओर से नहीं जाता। ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर-स्वरूप का जानना आवश्यक है। किसी भी पदार्थ को जानने के लिए ज्ञानेन्द्रियों से हम जानते हैं। संसार में पाँच ही पदार्थ हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। इन पंच विषयों को ही हम जानते हैं। इनसे अधिक हम जानते नहीं हैं और ये सभी विषय इन्द्रियगम्य हैं। ईश्वर कुछ ऐसा है कि उसके बारे में ये इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं। मुँह से भले ही राम-राम कहें, लेकिन पहचानते नहीं। राम-राम कहकर एक अवतारी राम को और दूसरे सर्वव्यापी राम को जानते हैं। सर्वव्यापी राम तो केवल कहते हैं, पहचानते नहीं हैं। अवतारी राम को भी अभी देखते नहीं हैं, उनके संबंध में सुनते हैं—पढ़ते हैं। उस अध्ययन के आधार पर उनका रंग-रूप बनाया जाता है। फिर भी सभी रूप एक प्रकार के नहीं। वे अवतारी राम ठीक ही हुए हैं। हम जो देखते हैं श्रीराम का चित्र वा प्रतिमा उसमें सर्वव्यापी राम को नहीं पहचानते। चित्र वा प्रतिमा इन्द्रियगम्य है। लक्ष्मण ने श्रीराम से पूछा था कि माया क्या है? श्रीराम ने ठोस रूप में कहा—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अवतारी राम का बहुत वर्णन किया है। साथ ही, जब वे व्यापक राम के विषय में कहते हैं, तो वे कहते हैं—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

अर्थात् आपका स्वरूप वचन से परे, इन्द्रिय में आने योग्य नहीं, बुद्धि से ग्रहण होने योग्य नहीं, देखने में आने योग्य नहीं, सर्वव्यापी है और जिसकी सीमा को कोई देख नहीं पाता। आप स्वरूपतः अपार हैं।

जग पेखन तुम देखनिहारे। विधि हरि शम्भु नचावनिहारे।।

तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। अउर तुम्हहिं को जाननिहारा।।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।।

अर्थात् संसार दृश्य (तमाशा) और आप उसको देखनेवाले तथा, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को नचानेवाले हैं। वे त्रिदेव भी आपके भेद को नहीं जानते हैं, फिर दूसरा कौन जाननेवाला है? आपको वही जानता है, जिनको आप जना देते हैं। फिर आपको जानते ही वे आप से निर्भेद हो जाते हैं।

यह ऐसा ज्ञान है कि जो मान्य है, अमान्य नहीं। अवतारी रूप, देवरूप सगुण-साकार है। इससे भक्ति का आरंभ होता है। इससे आगे भी भक्ति है। सगुण-साकार की आराधना करने की युक्ति गुरु से मिलती है। इससे आगे इन्द्रिय ज्ञान से परे की आराधना के लिए भी गुरु से ही भेद पाते हैं और आराधना करते हैं। सगुण और निर्गुण दोनों तरह की उपासना करनी चाहिए। सदाचार का पालन अवश्य होना चाहिए। दमशीलता चाहिए। दूसरे बहुत से कर्मों से विरत रहना चाहिए। पर सज्जनों के धर्म के अनुकूल बरतना चाहिए। सदाचार का पालन करना चाहिए।

छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
—रामचरितमानस

पुरुष लोग श्रीराम की तरह एक पत्नीव्रत धारण करें और महिलाएँ पातिव्रत धर्म का पालन करें। इस तरह के दोनों के मिलन से योग्य संतान होती है। संसार में सुख और शान्ति होती है। जब-जब ऐसे लोग हुए, संसार में सुख-शान्ति रही। सुख-शान्ति संसार में पूर्ण रूप से नहीं मिल सकती, आंशिक सुख-शान्ति मिलती है। इसकी भी प्राप्ति ठीक-ठीक तभी हो सकती है, जबकि दोनों पवित्र रहें। यह सदाचार पर निर्भर है। सदाचार ईश्वर-भक्ति पर अवलम्बित है। ईश्वर-भक्ति को सदाचार से सहायता मिलती है। नारि-वर्ग उस तरह की हों, जैसे अन्य पतिव्रताएँ हुई हैं। उनके लिए स्वर्गादि मामूली चीज है। वह मृतक को जीवित कर सकती है, हरण किए गए राज्य को पलटा सकती है तथा अंधे को आँख दे सकती है। इसके लिए सावित्री-सत्यवान की कथा हमारे यहाँ प्रसिद्ध है।

सबको ईश्वर-भक्ति और सदाचार का पालन करना चाहिए। संसार से सभी चले जाएँगे। संसार की सभी चीजें छूट जाएँगी। लेकिन यह यश रहेगा कि फलानी बड़ी भक्तिन थीं, पतिव्रता थीं। शवरी बड़ी भक्तिन थीं। श्रीराम उनके यहाँ गए थे और भी बड़े-बड़े विद्वान पण्डित लोग उस जंगल में थे, लेकिन श्रीराम पहले शवरी के यहाँ ही गए और श्रीराम ने स्वयं कहा—'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।' न तो श्रीराम कुछ माँगने कहते हैं और न शवरी ही कुछ माँगती है; क्योंकि वहाँ कमी नहीं थी और अंत में इसलिए शवरी की ऐसी गति हुई कि—

तजि योग पावक देह हरि पद लीन भये जहँ नहिं फिरै।

सभी कुशल से रहें और भक्ति में आप बढें। परमात्मा से यही मेरी प्रार्थना है। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत ग्राम—लुकरगंज, महिला सत्संग, इलाहाबाद में दिनांक १.१०.१९६२ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१८७. माया का फैलाव ब्रह्माण्ड तक

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

यह बात अब किसी की जानकारी से बची हुई नहीं है कि हमारी भारत भूमि पर चीनियों की चढ़ाई हुई। उनकी चढ़ाई न्यायपूर्वक नहीं है। अपने देश में वे स्वतंत्र हैं, हम भी अपने देश में स्वतंत्र भाव से रहें, यही न्यायसंगत है। इस चढ़ाई के

कारण हम त्रस्त भी हुए और इन्तजाम कर रहे हैं। हमारी कुछ भूमि जो उसने काबू कर ली है, उसमें से कुछ भूमि से उसे हमने भगाया है और जो बाकी भूमि रही है, उससे भी भगावेंगे। सभी स्वतंत्र रहना चाहते हैं। स्वतंत्रता में सुख है, परतंत्रता में दुःख। स्वतंत्रता ऐसी प्यारी है, जैसी प्यारी अपनी जान भी नहीं। इसलिए हमारे करोड़ों प्राणी स्वतंत्रता की रक्षा के हेतु प्राण लेकर खड़े हैं। यह देश की बात हुई। मान लिया कि उस आक्रमणकारी को हमने खदेड़ दिया। वह भाग गया, हम स्वतंत्र हो गए, कोई चिन्ता नहीं। ऐसा पुरुषार्थ कर लें, जिससे स्वतंत्रता में बाधा न आवे। स्वतंत्र रहें। तो क्या, इतना होने पर भी हम पूर्ण स्वतंत्र हैं? संसार के लिए ही कहा जाय तो हमको शंका रहती है कि दूसरा देश हमारे देश पर धावा न बोल दे। यह स्वतंत्रता में धक्का है। संसार में यह सदा बना ही रहता है। इसलिए पूर्ण स्वतंत्र रहना मुश्किल है।

दूसरी बात यदि सोचें कि हम क्या हैं? तो शरीर को कहें हम यही हैं, तो यह बिल्कुल निर्भूल बात नहीं है। यहाँ पुराणों की मर्यादा है, धर्मशास्त्र और वेद तीनों की मर्यादा है। साथ ही अध्यात्म-दर्शन को मिलाकर जो ज्ञान है, उससे हम अपेक्षित रहते हैं। हम अपने को उसी ज्ञान के अन्दर रखते हुए शुभ मनाते हैं और इसी से कल्याण होगा, ऐसा मानते हैं। एक यह भी ज्ञान है कि जो शरीर है, उसी को लोग समझें कि मैं यह हूँ। जिस ज्ञान का दिग्दर्शन मैंने थोड़ा कराया, उसमें है कि शरीर और शरीरी। शरीर को शरीरी इस तरह पहने हैं, जैसे कपड़ा और शरीर। कपड़े शीघ्र बदलते हैं, शरीर बहुत काल तक रहता है। जीवनकाल में बहुत बार कपड़ा पहना जाता है। उसी तरह शरीरी पर शरीर बहुत बार हुए। कितनी बार हुए, कितनी बार होंगे। शरीर के साथ-साथ रहकर हम दुःख भोगते हैं। जैसे हमारी स्वतंत्रता को जबर्दस्ती चापे हुए, छीने हुए हैं। इस स्वतंत्रता में क्या धक्का नहीं है? चाहिए कि हम इस स्वतंत्रता को भी नहीं खोवें। शारीरिक दुःख से छूटें, तभी हम दुःख से छूटे रहेंगे। नहीं तो नाना दुःख भोगेंगे। संसार में आदर, हुकूमत, धन, विद्या, बहुत-बहुत हों, किंतु निजी स्वतंत्रता इनमें रहकर कोई नहीं प्राप्त कर सकता। हमारी यह जो निजी स्वतंत्रता है, वह है आध्यात्मिक स्वतंत्रता। इस पर किसी शक्ति का ऐसा चापन है कि हम हटाने में असमर्थ हैं। यह चापन किसका है? माया का। रामचरितमानस में है—

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड॥

'चीनी' तो दूर है, लेकिन माया के सभी विकार अपने अन्दर हैं। माया का कटक—फौज—सेना बहुत प्रचण्ड है। यह तमाम संसार में व्याप्त है। काम-क्रोध इसके सेनापति और दम्भ, कपट, पाखण्ड आदि योद्धा हैं। इनके भोगाए भोग लोग भोगते हैं। इन भोगों में पड़कर कष्ट पाते हैं—अनेक जन्मों से।

क्या, इसका कोई उपाय नहीं है कि इनसे छूटा जाय? सर्वसाधारण के पास इसका उत्तर नहीं है। आध्यात्मिकता के लोगों को मालूम है। जो महापुरुष लोग हुए हैं, जो अत्यन्त उज्ज्वल चरित्र-धारी मुनि लोग हुए हैं, संतलोग हुए हैं, ऐसे गुरु हुए हैं, जो सद्गुरु हुए हैं, उन्होंने कहा कि मत सोचो कि आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए मत नहीं—उपाय नहीं है। है, अवश्य है। पहली बात यह है कि माया की प्रबल सेना,जो तुमको दबोचे रहती है, उससे बचने के लिए—छुटकारा पाने के लिए ऐसे की शरण लो, जो माया को अपने वश में सब तरह से रखता है। वह कौन है? उस मायापति को ही ईश्वर—परमात्मा कहते हैं। उनकी शरण में अपने को बनाओ। शरण में बनाने का मतलब है

कि उनका भजन करो। शरण में जाना क्या है? पहला मुगल बादशाह बाबर था। उसका बेटा हुमायूँ था। शेरखाँ से वह भगाया गया। वह ईरान के शाह की शरण गया और वहाँ से उसकी सहायता से फिर अपनी स्वतंत्रता को पाया। इसी तरह शरण लो, जिधर जाने से परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। संतों ने समझाया है कि पहले समझो कि ईश्वर क्या है? कहाँ रहता है? वहाँ तक इस पैर से जाओगे वा किस तरह? उसका दर्शन सशरीर पा सकते हो वा कैसे? यह इसलिए कि माया के दबोच में जो हम पड़ गए हैं, उससे बाहर निकलना चाहिए। इसके लिए पहली बात है कि हम उनकी शरण लें। ईश्वर के लिए समझना भी साधारण बात नहीं। हमारे घरों में जो शब्द ईश्वर के लिए परम्परा से चला आता है, उसी को पकड़कर हम चलते हैं। जैसे किसी घर में राम-राम, किसी में शिव-शिव, किसी में वाहेगुरु, किसी में माई आदि कहते हैं। इस तरह हमलोग विश्वास करते हैं कि एक ईश्वर कोई है, जिनके ये नाम हैं, लेकिन इतने से ही पूर्ण विश्वास नहीं होता। अध्यात्म शास्त्र की जरूरत होती है। अध्यात्म शास्त्र भी सरल नहीं है। आवश्यकता है सत्संग में जाने की, जहाँ जाकर ईश्वर का बोध हो। ईश्वर को पुकारनेवाले जितने हैं, उनको ऐसा विश्वास नहीं है कि ईश्वर कभी नहीं थे, कभी नहीं रहेंगे। ईश्वर के संबंध में जो विश्वास दिलाते हैं, वे कहते हैं कि परम प्राचीन जो है, वही ईश्वर है। वह सदा-सर्वदा हई है। इतना ही नहीं, यहाँ है और वहाँ नहीं ऐसा भी नहीं। यहाँ कुछ विशेष रूप से, वहाँ कुछ कम रूप से, ऐसा नहीं। सदा-सर्वदा सब स्थानों में समान भाव से है। जो सबसे आदि का है, उसके अतिरिक्त कोई स्थान बच नहीं सकता है। ऐसा स्थान बताने योग्य नहीं जहाँ वह नहीं। देश-काल माया में होता है। माया से परे ईश्वर है। देश के विस्तार होने पर यहाँ और वहाँ कहा जाता है। देश के विस्तार होने पर भी वह सर्वत्र है।

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

संसार में पदार्थों को हम आदि-अंत-सहित देखते हैं। इन्द्रियों से देखते हैं। लेकिन जिसका आदि-अंत नहीं, उसको बाह्य इन्द्रियों से और बुद्धि से भी हम नहीं पहचानते। सबसे प्रथम का ही हो सकता है,दूसरा नहीं। उस ईश्वर को चाहे आप जिस नाम से पुकारें, वह सब रूपों में रहता है, इसलिए उसको सर्वरूपी कहें, तो कोई हर्ज नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत....।' तब श्रीराम, श्रीकृष्ण, शिव; सब रूप उन्हीं के हैं। यदि अनेक शरीर के कारण अनेक ईश्वर मानो तो बड़ी गलती होगी। ईश्वर एक ही है। अधिक कभी नहीं। ईश्वर ऐसा विलक्षण है कि उसको हम इन्द्रियों से नहीं पहचान सकते। ईश्वर इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं हैं। आदि-अंत रहित है। इन्द्रिय-ज्ञान में आने योग्य नहीं हैं, इसलिए बाहर संसार में हम कहीं उसको पहचान लेंगे, तो संभव नहीं होगा। हम किससे पहचानेंगे? शरीर, इन्द्रियों में हम बसते हैं, शरीर-इन्द्रियों से भिन्न पदार्थ हम स्वयं इनमें रहते हैं। हम अपने को भी नहीं पहचानते। आँख के द्वारा हम अपने को नहीं देखते। हाथ से नहीं पकड़ते। जो शरीर में रहकर इन्द्रिय-ज्ञान से परे है, वही अध्यात्म है। इस शरीर में चेतन आत्मा नहीं हो तो किसी इन्द्रिय को ज्ञान नहीं हो। चेतन आत्मा के कारण ही इन्द्रियों को अपना-अपना ज्ञान होता है। तब केवल चेतन आत्मा का अपना निजी ज्ञान भी है। जैसे आँख का निजी ज्ञान रूपज्ञान है, कान का निजी ज्ञान शब्दज्ञान है। आँख को शब्द का ज्ञान नहीं है

और कान को रूप का ज्ञान नहीं है, यह सभी जानते हैं। इसी तरह चेतन आत्मा का निजी ज्ञान किसी इन्द्रिय को नहीं होता। जैसे लालटेन के अंदर टेम जलता है, उस पर हरा शीशा लगाने से उससे हरा प्रकाश फैलता है, लाल शीशा होने से लाल प्रकाश फैलता है, वह निज टेम का प्रकाश नहीं होता। उसी तरह इन्द्रियों के संग में जैसा ज्ञान होना चाहिए, सो होता है और उस चेतन आत्मा का ज्ञान भिन्न है। चेतन आत्मा का निजी ज्ञान अपने को पहचानने और ईश्वर को पहचानने का है। ईश्वर की ओर शरीर नहीं जा सकता, चेतन आत्मा जाती है। जिस ओर जाकर चेतन आत्मा ईश्वर को पावे, इसका यत्न जाने और चले, तब ईश्वर की शरण में जाना होगा। ईश्वर सर्वव्यापी होने से सर्वत्र व्यापक है। आपके शरीर में भी व्यापक है। अपने शरीर के अंदर चेतन आत्मा चले, तब ईश्वर-दर्शन संभव है। जिस ओर जाने से ईश्वर का ज्ञान हो। जब शरीर-इन्द्रियों के ज्ञान से चेतन आत्मा ऊपर उठती है, तब ईश्वर की शरण में जाती है। जो लोग इस रास्ते पर चलें, तो उधर के चिह्न भी उन्हें मिले, जिसका वर्णन पुस्तकों में है। अब भी जो चलते हैं, उनको वे निशाने मिलते हैं। लोगों को भरोसा करना चाहिए, ईश्वर मिलेंगे। ढिलाई करने से देर लगेगी, मुस्तैद होने से शीघ्र मिलेगा। जैसे-जैसे ईश्वर के चिह्न मिलेंगे, माया के सेनापति आदि से छूटते जाएँगे। इसलिए लोगों को ईश्वर की शरण में जाना चाहिए। ईश्वर के पास पहुँचते-पहुँचते माया का प्रभाव हटता जाएगा। जैसे-जैसे सूर्य के प्रकाश में जाते हैं, वैसे-वैसे अंधकार छूटता है। जैसे-जैसे ईश्वर की शरण में जाते हैं, वैसे-वैसे माया छूटती जाती है। ईश्वर माया को वश करके रखता है। उस ईश्वर का माया पर ऐसा काबू है कि—

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।

ईश्वर अपने काबू में माया को किए हुए हैं। लोगों को चाहिए कि ईश्वर की शरण लें। इसी को ईश्वर की भक्ति करना कहते हैं। तभी माया के दबाव से छूटोगे। सत्संग के अंदर यही बात कहने की है।

यही बड़ी विलक्षण बात है कि अंदर-अंदर चलकर ईश्वर का दर्शन करना। जो ऐसा ख्याल करते हैं कि ईश्वर को बाहर में ही पा लेंगे, वे भूल में हैं। नरलोक, पाताल, स्वर्ग कुछ भी हो, माया का फैलाव ब्रह्माण्ड तक है। मूल प्रकृति तक में भी रहने से माया के आवरण में रहेगा। यहाँ ईश्वर की पहचान नहीं होगी। सत्संग करो, गुरु- संग करो। इनसे ईश्वर-भजन का प्रेरण लो और साधन करो। बिना इसके माया के चक्कर से कोई छूट नहीं सकता। ईश्वर की शरण में जाओ। अंदर-अंदर जाने से इन्द्रियों का संग छूटता है, जैसे स्वप्न में जाने से बाहर के ज्ञान से छूटता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति; इन तीन अवस्थाओं से परे जाना है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।' वेद, उपनिषद्, संतों की वाणियाँ—सभी में यह कहा गया है कि अपने अंदर-अंदर चलो। n

यह प्रवचन संथालपरगना जिला वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर ग्राम—जमनी पहाड़पुर में दिनांक १२.१.१९६३ ई० के सत्संग में हुआ था।

£

१८८. स्वराज्य में सुराज

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

अभी हमलोग बहुत अन्देशे—चिन्ता में नहीं हैं। कुछ मास पूर्व हमलोगों को बहुत चिन्ता हुई थी। क्योंकि सुना था कि चीनियों ने चढ़ाई की है और वे बढ़े आ रहे हैं। आज उतनी चिन्ता नहीं है। चीनियाँ आता हम पर हुकूमत करता—हमारा नुकसान करता। हमलोगों को चिन्ता हुई कि हमलोग नुकसान में न पड़ें। जहाँ तक हमारी हद में वह आ गया है, हटा दें, उसको अपनी हद में पहुँचा दें। जब कोई दूसरे पर चढ़ाई करता है तो वह उसकी सम्पत्ति लूटने, उसको बेइज्जत करने और उसपर अपनी प्रभुता लादने आता है। इसीलिए तन, मन और धन से देश की सहायता कर उसको हटाना चाहिए। अभी आप पर किसी का दबाव नहीं है। कोई आप पर हुकूमत नहीं करता, अपनी सभा के द्वारा देश की शासन-सम्हाल होती है। एक ओर तो यह है और दूसरी ओर है कि हम अपने राज्य में रहकर भी अशान्त रहते हैं, क्यों? देश के निकट के लोग वा कुछ देश के लोग भी चोरी-डकैती करते हैं। हमको लूटते हैं, तो हम अशान्त हैं। आप अपने अन्दर सोचिए। सत्संग में आप जाते हैं, सद्ग्रंथों का पाठ आप सुनते हैं। वहाँ होता है कि तुम्हारे अन्दर क्रोध आवे तो क्रोध न करो। काम का विकार आवे तो वैसा मत करो कि परलोक और इहलोक बिगड़ जाय। कभी लोभ होता है, कभी मोह होता है। हम सत् को असत् और असत् को सत् समझकर चलते हैं, जिससे बहुत नुकसान होता है। दूसरे देश के लोगों को हटाओ और अपने देश के लोगों को भी, जो हमको लूटते हैं, उनको हटाने और सम्हालने कहते हैं। लेकिन हमारे अंदर में जो काम, क्रोध, लोभ, मोह होता है; इन विकारों द्वारा हमारा आध्यात्मिक ज्ञान मटियामेट हो जाता है।

विदेशी और दूसरे जब कोई हमको लूटते हैं, तो हम उसको मारते, पछाड़ते और भगाते हैं, किंतु अपने अंदर में जो ये विकार हैं, उनको क्या करो? आज के युग में जितने शस्त्रास्त्र निकले हैं, वे उन विकारों को मारने में सफल नहीं हैं। काम, क्रोध, लोभ और मोह सेनापति और दम्भ, कपट, पाखण्ड योद्धा हैं। ये बाहरी दुश्मनों से भी अधिक तबाह हमको करते हैं। हम इनसे बचें और बचकर जानें कि इससे सुख होता है वा दुःख? साधु-संतों ने जो इसे जाना, इसे दूर किया और कहा कि—

थाकेउँ सब करि करम गोसाईं। सुखी न भयेऊँ अबहिं की नाईं।।

सोचने की बात है कि हरेक प्रेमी, सत्संगी, ज्ञानवान, विचारिए कि आपके हृदय में काम, क्रोध, लोभ आदि नहीं उत्पन्न हों तो आपका हृदय कितना शान्त रहेगा? इतनी शान्ति, जितनी कि हम चाहते हैं। यह कैसे हो? ये हमको होते क्यों हैं? संसार में रहने से ऐसा होता ही है। फिर प्रश्न होता है कि हम संसार में क्यों रहते हैं? संसार में इसलिए रहते हैं कि हम शरीर में रहते हैं। शरीर में नहीं रहें तो संसार में भी नहीं रहें। जब से जीव सृष्टि में है, तब से हम शरीर में हैं; कभी उद्भिज, कभी उष्मज, कभी अण्डज और कभी पिण्डज बनकर। कितनी बार हम आए, गए और इनके कितने संस्कार पड़े, ठिकाना नहीं। इनके संस्कार प्रेरित करके हमसे अकर्तव्य और पाप कराकर मायाधीन बनाये रखते हैं।

लोग कहते हैं कि आप मनुष्य हैं, आपको ज्ञान होना चाहिए। कहते हैं कि कहते तो ठीक हो, लेकिन मौका आता है, ज्ञान भूल जाते हैं, अज्ञानता आ जाती है और जो नहीं करने का वह भी कर बैठते हैं। माया की सेना हमसे हटती नहीं है। तब ऐसा होता है कि कोई ऐसा जबर्दस्त सहारा मिलता, जिसके द्वारा इन दुष्टों को भगाया जाता। यह माया किसकी है? यह माया ईश्वर की है। उसके अधीन है। उसके अधीन में इस तरह है कि उसके जरा-सा इशारा पर जैसा वे कराना चाहते हैं, माया से कराते हैं। संतों ने कहा कि उस ईश्वर की शरण लो, उसका आश्रय ग्रहण करो। जो ईश्वर का भजन करता है, वह ईश्वर के शरण में है।

मैंने मनिहारी में एक स्थान बना रखा है। अब से बहुत वर्ष पूर्व वहाँ के एक आदमी पर मुकदमा हुआ था, उसको सजा हो गई। उसने कहा—'मैं अपने को समर्पण करने जा रहा हूँ।' उसके मन में था कि छूट जाऊँ, लेकिन गया समर्पण करने। एलेक्जेंडर दि ग्रेड की कथा मैंने पढ़ी थी। सिकन्दर ने एक बड़े नामी डाकू को पकड़ा था। उसने उस डाकू से पूछा—'तुम, लोगों को क्यों लूटते हो, सताते हो?' डाकू ने कहा—'मेरे शरीर को तुमने बांधा है, मेरे मन को नहीं। तुम बड़ा डाकू हो और मैं छोटा डाकू हूँ।' सिकन्दर ने डाकू के शरीर को बाँधा था, उसके मन को नहीं।

'ईश्वर पर अपने को समर्पण करता हूँ,' केवल कहने से नहीं होता है। लाठी की तरह (दण्डवत् प्रणाम) शरीर के गिर जानेसे शरीर ही गिरता है, मन शरण में नहीं जाता। मन भाग-भाग कर स्वतंत्र रूप से काम करने लगता है। जैसे शरीर को किसी की शरण में ले जाते हैं, उसी तरह मन को भी किसी की शरण में ले जाना चाहिए, जो माया के दबाव से बचा सके। ईश्वर की शरण लो। शरीर को गिरा देने से सरेण्डर—(Surrender) नहीं होता। माया का दबाव से बचने का यही उपाय है।

पहले यह समझो कि तुम शरीर हो? शरीर के अवयवों में कोई हो? शरीर के भीतर का कोई अंग हो? मन हो? बुद्धि हो? तो इसके उत्तर में ग्रंथों में है कि तुम इन सबमें कुछ नहीं हो। जब तुम कहते हो कि मेरा शरीर, तभी तुम और शरीर दो हो जाते हो। जैसे तुम कहते हो कि मेरा कपड़ा, तो तुम और कपड़ा दो हो जाते हो। इसी तरह बाहर में शरीर के अंग और भीतर की इन्द्रियों में से तुम एक भी नहीं हो। केवल शरीर को देखो, जबतक जीवित शरीर है, तबतक वह ज्ञानयुक्त मालूम पड़ता है। जब इसमें जीवनी शक्ति नहीं रहती है, तब इसको कुछ ज्ञान नहीं होता। जागने के समय जीवनी शक्ति काम करती है, समूचा शरीर सचेष्ट रहता है। तन्द्रा में मालूम होता है कि हाथ-पैर कमजोर हो रहे हैं। इन्द्रियाँ कमजोर होती जाती हैं। इससे मालूम होता है कि शरीर के अंदर में तुम कुछ हो, जिसका सरकाव भीतर की ओर होता है। स्वप्न में वही ख्याल होता है, जो मन में रहता है। नजदीक के दोस्त-दुश्मन का कोई पता नहीं। मुख में मिसरी रहे और स्वप्न देखे कि नीम का पत्ता खा रहा हूँ, तो मिसरी का मीठा स्वाद नहीं मालूम होकर नीम का तीता स्वाद मालूम होता है। मतलब यह कि जीवनी शक्ति वा ज्ञानमयी शक्ति वा चेतन पुरुष की ही शक्ति से शरीर में शक्ति है। और उसी से शरीर ज्ञानवान है। और विषयों का रस-ज्ञान करता है। शरीर के अंदर में शरीर से भिन्न पदार्थ तुम हो। कितने कहते हैं कि दो नहीं, शरीर बनने के जितने तत्त्व हैं, सभी के मिल जाने से एक जीवनी शक्ति आप ही प्रकट हो जाती है। शरीर मर जाने से जीवनी शक्ति नहीं

रहती। यह अनात्मवाद की दलील है। किसी शर्बत में आप सौंफ नहीं दीजिए तो क्या उसमें सौंफ की गंध और सौंफ का गुण हो सकता है? अथवा मिक्सचरवाली दवा में जो औषधि आप नहीं मिलाते हैं, उस दवाई का गुण नहीं होता है। इसलिए चेतन पुरुष कोई चीज नहीं है, इसको कैसे समझा सकते हो? मृतक शरीर में पांचो तत्त्व मौजूद ही हैं, उसको जड़ कहोगे कि चेतन? सोने की हालत में भी चेतन पुरुष का काम होता था। चेतन पुरुष के रहने पर ही स्वप्न में काम होता था, लेकिन उसके नहीं रहने से कोई काम नहीं करता, शरीर में ज्ञान नहीं रहता। असल में शरीर जड़ है। जड़-जड़ के मिलन से चेतन हो जाय, असंभव है। जैसे मिक्सचर में एक दवाई के नहीं रहने से उसका गुण नहीं हो सकता। ग्रंथकारों ने जड़-चेतन को अलग-अलग फुटाकर बता दिया है, इन दोनों में मेल हो गया है, इसी को दुःख-सुख है।

जड़ चेतनहिं ग्रंथि पड़ि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।

भगवान श्रीकृष्ण ने इकतीस तत्त्वों को श्रीमद्-भगवद्गीता में गिना दिया है, ये क्षेत्र कहलाते हैं। इस क्षेत्र में जब क्षेत्रज्ञ रहता है, तब इसमें ज्ञान होता है। यह करूँगा, वह करूँगा। राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि विकार होते हैं। हमारे सद्ग्रंथों में जड़-चेतन को अलग-अलग फुटाकर बताया है। बाली मारा गया, तारा रोती थी। श्रीराम ने कहा—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा।।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा।।

चेतन आत्मा को काट नहीं सकते, मार नहीं सकते, जला नहीं सकते, सड़ा नहीं सकते। हम सोचें कि हम क्या हैं? चेतन आत्मा। और हमारा शरीर यह है, इस शरीर में वह चेतन आत्मा है। इसलिए शरीर के गुण से हम गुणान्वित होते हैं। जैसे रोशनी के ऊपर रंगीन बल्ब लगा दें तो उस रंग के अनुरूप रोशनी बाहर निकलेगी। फिर वह बल्ब हटा देने से साफ रोशनी निकलेगी। यह आत्मा शरीर के संग से सुखी-दुःखी होने के और जो-जो भाव होते हैं, वे होते रहते हैं। आप वही हैं। जड़ और चेतन का मेल हो गया है। केवल शरीर ही जड़ नहीं है, मन और बुद्धि भी जड़ है। सृष्टि क्रम को बतलाते हुए शास्त्र में कहा है —प्रकृति से बुद्धि होती है। जड़ से जो चीज बने, वह जड़ है। मिट्टी से जो चीज बने, वह मिट्टी है। जड़ के संग चेतन आत्मा का ऐसा मेल हो गया है, जैसे दूध और घी। केवल दूध से जो काम हो, वह केवल घीउ से काम नहीं होता। दूध से धीउ निकाल लेते हैं, मूंज से जैसे सींक को निकाल लेते हैं। उसी तरह हाड़, मांस, चाम का जो यह स्थूल शरीर है, इसको पहले विचार कर देखो तो एक ही नहीं है। मूंज की तरह यह शरीर है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण; चारो जड़ शरीरों को हटा दो तो बिना बल्ब की बिजली हो जाओगे। तब तुम अपने तईं को पहचानोगे और जिसको परमात्मा कहते थे, उसको भी। अपने को परमात्मा की शरण में ले जाने की बात यह है कि जहाँ दूध रखोगे, वहाँ घी रहेगा ही। संसार में कहीं जाने से मन से छूटा नहीं जा सकता। स्वर्ग में जाओ तब भी संसार में ही रहोगे। बाहर संसार में कहीं जाना, ईश्वर की शरण में जाना नहीं है। तन्द्रा में हाथ-पैर की शक्तियों का सिमटाव होता है।

अन्तर्गति में चैन मालूम होता है। कोई जगा देता है तो बुरा मालूम होता है। अंदर की ओर चलोगे तो शरीर, इन्द्रियों का संग छूटेगा, चैन मालूम होगा। जाग्रत में आपका स्थान कहीं है और स्वप्न में कहीं, सुषुप्ति में कहीं। जाग्रत में चेतन जहाँ रहता है, स्वप्न में उससे नीचे घसकता है। चाहिए तीन अवस्थाओं से ऊपर जाना। अपने को

ऊपर उठाने के लिए बहुत अच्छा यत्न है कि अपना सिमटाव करना। बिस्तरे फैले हुए हैं, समेट लो तो ढेर हो जाएगा। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। मन और चेतन आत्मा का सिमटाव होगा, चेतन आत्मा चौथी अवस्था में चली जाएगी और बाहर संसार का ज्ञान नहीं रहेगा।

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।

यह, ऊपर की ओर उठनेवाला ईश्वर की ओर जाता है तन्द्रा में सिमटता है, उसको रस मालूम होता है, तो क्या ईश्वर की ओर जानेवाले को रस नहीं मिलता है?

भजन में होत आनंद आनंद।
बरसत बिसद अमी के बादर, भींजत है कोइ संत।।
—संत कबीर साहब

मन समेटने में भागता रहता है। कितनी ही बार मन भागता है, फिर सिमटता है, हारो मत। इसमें जो नहीं हारता है, तो धारणा होती है। इसमें किसी को भी हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। चाहे वह हलवाहा हो वा विद्वान। विद्वान-अविद्वान कोई रहो अभ्यास करो। अभ्यास करते-करते प्रत्याहार से धारणा होती है। जिस काम के लिए बहुत कोशिश होगी, चाहे वह काम कितना कठिन हो, कुछ-न-कुछ अवश्य होता है।

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर पड़त निसाना।।

ईश्वर की शरण में जाओ। ईश्वर की ओर जानेमें शरीर-ज्ञान नहीं होता। शरीर-ज्ञान में ईश्वर-ज्ञान नहीं होता। सिमटाव करते-करते शरीर का ज्ञान छूटता है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था—'सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा, तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा।' अर्जुन तो ऐसे शरण में थे कि भगवान के विचार के विरुद्ध चलने का न उनका इरादा था, न शक्ति थी। अर्जुन और दुर्योधन दोनों आदमी श्रीकृष्ण के पास गए, युद्ध का समाचार बताने और उनसे सहायता माँगने। अर्जुन कितनी शरण में थे कि सेना न लेकर केवल उनको ही लेते हैं। यद्यपि वे जानते थे कि भगवान युद्ध नहीं करेंगे। कितनी शरण में वे थे, फिर भी शरण में होने के लिए श्रीकृष्ण कहते हैं। और भी शरण होने के लिए श्रीकृष्ण कहते हैं। और परिभाषा यह कि सब धर्मों को छोड़कर....। कोई भी धर्म को कैसे छोड़ेगा? क्या संतान उत्पन्न करने के लिए वैवाहिक नियम छोड़ देगा? गरीबों को दान देना, देश की रक्षा करनी और देश को अच्छी हालत में रखना छोड़ देगा? संसार का धर्म कभी छोड़ नहीं सकता। इसका उत्तर है कि सभी धर्म तब छूटेंगे, जब सभी कर्मों को कोई छोड़ दें। संसार में रहकर कोई कर्मों से नहीं छूट सकता। चौथी अवस्था में जो जाता है, सुरत की ऊपर में बैठक होती है। वहाँ का ठहराव जिसको होता है, उससे बाहर का कोई कर्म नहीं होता। उसका पिता या पुत्र कोई बैठा रहे, उसको वह नहीं जानता। इस तरह सब कर्मों को छोड़कर, धर्म को छोड़कर वह ईश्वर की ओर रहता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनंत।।

इस तरह शरण में जाओ। पूर्ण सिमटाव हो, ऊर्ध्वगति हो, तब भगवान की शरण में जाना होगा। जो जहाँ बैठा रहता है, वहीं से चलता है। इस शरीर में कहाँ बैठक है?

इस तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।
—संत कबीर साहब

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
—दरिया साहब, बिहारी

ब्रह्मोपनिषद् में भी पढ़ लीजिए—

जाग्रत्स्वप्ने तथा जीवो गच्छत्यागच्छते पुनः।
नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्निसंस्थितम्।।

अर्थात् जीव जाग्रत और स्वप्न में पुनः-पुनः आता-जाता रहता है। जीव का वासा जाग्रत में नेत्र में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीयावस्था में मस्तक में होता है।

ध्यान कीजिए, सिमटाव होगा। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होगी, तब आत्मसमर्पण होगा, शरीर-समर्पण नहीं। ऐसा सिमटाव हो, ऊर्ध्वगति हो, तब शरण होना होगा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

ऐसी आरती राम की करहिं मन।
हरण दुख द्वन्द्व गोविन्द आनंद घन।।
अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत,
इति वासना धूप दीजै।
दीप निज बोध गत क्रोध मद मोह तम,
प्रौढ़ अभिमान चित वृत्ति छीजै।।
भाव अतिशय विशद प्रवर नैवेद्य शुभ,
श्रीरमण परम संतोष कारी।
प्रेम ताम्बूल गत शूल संशय सकल,
विपुल भव वासना बीजहारी।।
अशुभ शुभ कर्म घृत पूर्ण दश वर्त्तिका,
त्याग पावक सतोगुण प्रकाशं।
भक्ति वैराग्य विज्ञान दीपावली,
अर्पि नीरांजनं जग निवासं।।
विमल हृदि भवन कृत शांति पर्यंक शुभ,
शयन विश्राम श्री राम राया।
क्षमा करुणा प्रमुख तत्र परिचारिका,
यत्र हरि तत्र नहिं भेद माया।।
आरती निरत सनकादि श्रुति शेष शिव,
देवरिषि अखिल मुनि तत्त्वदरसी।
जो करइ सो तरइ परिहरइ काम सब,
वदत इति अमल मति दास तुलसी।।

एक तो विचार में है कि ईश्वर सर्वगत है। प्रेम ही पान है। प्रेम ही प्रसाद है, आरती के लिए दश बत्तियाँ, जो शुभाशुभ कर्मरूप घीउ से भींगी है, उसको त्याग की अग्नि में जलाओ। माया जो ईश्वर और जीव में भेद डालती है, भाग जाएगी। यह है ईश्वर की ओर जाना, यह अंतर पथ में चलना है। अपने को समेटो। समेटने का यत्न गुरु से सीखो। पहले स्थूल-सगुण रूप को लो। लेकिन इसमें संतुष्ट नहीं होओ कि इसी में समाप्त है। इससे और भी आगे बढ़ो। जो जहाँ गिरता है, वह वहीं का सहारा उठने के लिए लेता है।

'ध्यानं शून्यगतं मनः, ध्यानं निर्विषयं मनः' इसकी तरकीब गुरु से जानो। जो युक्ति जानकर अभ्यास करता है, स्थूल से सूक्ष्म में जाता है, वह परमात्मा की गोद में जाता है। जो परमात्मा की गोद में जाता है, वह उससे पकड़ा जाता है। संतों ने दो यत्न बताए हैं—शाम्भवी मुद्रा, वैष्णवी मुद्रा वा दृष्टियोग और नामभजन अर्थात् सुरत-शब्दयोग। ये दोनों ज्योति और नाद ईश्वर के हाथ हैं। जो इनको पकड़ा, वह ईश्वर से पकड़ा गया। नीचा गिरना उसका नहीं होता। दादू दयालजी ने कहा है—

साध शबद सौं मिलि रहै, मन राखै बिलमाय।
साध शबद बिन क्यौं रहै, तब ही बीखरि जाय।।

नादविन्दूपनिषद् में लिखा है—

मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।
नादोऽन्तरंग सारंग बन्धने वागुरायते।
अन्तरंग समुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा।।

अर्थात् नाद मदांध हाथीरूप चित को, जो विषयों की आनंदवाटिका में विचरण करता है,

रोकने के लिए तीव्र अंकुश का काम करता है। मृगरूपी चित्त को बाँधने के लिए यह नाद जाल का काम करता है। समुद्र तरंग रूपी चित के लिए यह नाद तट का काम करता है।

उनलोगों की आजमाई हुई बात थी। हमलोगों को करना चाहिए। कुछ-न-कुछ उसका नमूना अवश्य प्रकट होता है। भेद जानिए और भजन कीजिए, यदि माया से छूटना चाहते हैं। केवल मोक्ष ही मिलेगा ऐसी बात नहीं, संसार में भी अच्छी तरह रहोगे। रविदासजी पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन वे ऊँचे उठ गए। यदि हमारे यहाँ सभी कोई पंच पापों को छोड़ दें तो स्वराज्य में सुराज्य आ जाएगा। कानून के डण्डे से इन दुष्ट कर्मों को नहीं छुड़ा सकते। यदि सभी के मन में आ जाय कि दुष्ट कर्मों को छोड़ दें तो आपस में मेल रहेगा, कोई तोड़ नहीं सकता। स्वराज्य में सुराज्य होगा।

भगवान बुद्ध के समय की बात है— राजा अजातशत्रु राज्य का लोलुप था। उसने लिच्छवी वंश का राज्य लेना चाहा। लिच्छवी लोगों का कोई एक राजा नहीं था, पंचायत राज्य था। राजा अजातशत्रु के मंत्री ने कहा—लिच्छवियों को आपस में प्रेम है, उसके मेल को तोड़ दीजिए, तब वह राज्य आपके हाथ में आ सकता है। अजातशत्रु ने अपने आमात्य के साथ मंत्रणा कर मिथ्या प्रचार कर दिया कि मंत्री को मैंने अपने राज्य से निष्कासित कर दिया है। वह मंत्री घूमता हुआ लिच्छवियों के यहाँ जाकर मंत्री पद पर नियुक्त हो गया। धीरे-धीरे मंत्री ने उन लोगों के मेल को तोड़कर परस्पर विरोध और कलह पैदा करना आरंभ किया। कुछ दिनों के पश्चात् पारस्परिक प्रेम के छिन्न-भिन्न हो जाने पर जब लिच्छवी लोग बहुत कमजोर हो गए, तब मंत्री ने राजा अजातशत्रु को खबर दी। वह सेना ले लिच्छवी राज्य पर चढ़ आया और लिच्छवियों को पराजित कर अपना आधिपत्य जमा लिया। इस तरह लिच्छवी वंश का राज्य अजातशत्रु ने लिया।

ईश्वर की ओर जाने से संसार और परमार्थ दोनों बनेगा। सबके सब ईश्वर की ओर जाओ। इसकी शिक्षा और दीक्षा ग्रहण करो।

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर कनखुदिया अररिया में दिनांक ३.३.१९६३ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

१८९. सगुण-निर्गुण की महिमा

प्यारे लोगो!

ईश्वर-स्वरूप के निर्णय के लिए चार शब्द; निर्गुण, सगुण, साकार और निराकार बहुत प्रसिद्ध हैं। और लोगों ने इसपर बहुत विचार किया है। गुण का अर्थ है स्वभाव। स्वभाव तीन प्रकार के हैं। एक वह है, जिससे उत्पत्ति होती है, दूसरे से पालन और तीसरे से विनाश होता है। जिससे उत्पन्न होता है रजोगुण, जिससे पालन होता है, उसे सतोगुण तथा जिससे विनाश होता है, उसको तमोगुण कहते हैं। ये तीनों मूल में इस तरह मिले-जुले हैं कि उससे भिन्न-भिन्न कर कोई वहाँ अर्थात् मूल में जान सके कि यह रजोगुण है, यह सतोगुण है, यह तमोगुण है—नहीं होता है। इन्हीं तीनों गुणों के सम्मिश्रण रूप को साम्यावस्थाधारिणी जड़ात्मिका मूल प्रकृति कहते हैं। इसलिए प्रकृति से जो कुछ बना है, उसमें तीनों गुणों को देखते हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसमें ये तीन गुण नहीं हों। मूल में ये तीन नहीं होते तो उसके पसार

में ये तीनों कैसे होते? यह प्रकृति ईश्वर की मौज से बनी है। कितने कहते हैं कि ईश्वर की तरह प्रकृति भी अनाद्या है, हमलोग ऐसा नहीं मानते। ईश्वर की बनाई हुई प्रकृति है, ऐसा हमलोग मानते हैं। स्थान और समय; प्रकृति होने पर बनते हैं, इसलिए समय और स्थान का पता नहीं हो सकता बिना प्रकृति के। जहाँ समय है, वहाँ स्थान है, और स्थान जहाँ है, वहाँ समय है। देश और काल संग-संग होते हैं। स्थान के बारे में बोध होता है कि अब या तब बना; किंतु समय का बोध नहीं होता। जब स्थान बना, तब काल था। बिना प्रकृति के देश और काल का बनना नहीं होता। प्रकृति से जो बने, सबसे पहले देश और काल बने। देश और काल ही माया का पसार है। तीन गुण ईश्वरकृत हैं। और इन्हीं तीनों गुणों से युक्त को सगुण कहते हैं और इनसे रहित को निर्गुण कहते हैं। सगुण कहने से निर्गुण का ज्ञान आप ही होता है। सहित कहने से एक ही पदार्थ का बोध नहीं होता, दो पदार्थ का बोध होता है। सगुण कहने से एक तो वह, जो गुण को लिए हो, दूसरा गुण। निर्गुण जब गुण के साथ हुआ तब सगुण हुआ। मूल में निर्गुण है, वा सगुण? प्रकृति गुणमयी है, इसलिए मूल स्वरूप निर्गुण ही है। सगुण कहते किसको हैं? संसार बना और ईश्वर उसमें सर्वव्यापक रहा। ईश्वर जो व्यापक हुआ, वह सगुण ब्रह्म वा सगुण ईश्वर है। ऐसा भी लोग कहते हैं कि यह जो संसार रूप है, उसमें जो व्यापक है, वह सम्पूर्ण सगुण ब्रह्म है। दूसरी बात यह है कि संसार के एक-एक रूप वा पदार्थ उसी ईश्वर से व्याप्त है, इसलिए वह एक-एक भी सगुण ब्रह्म है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा, वसत इति वासना धूप दीजै।

चर=जो अपनी इच्छा से चले और जो अपनी इच्छा से नहीं चले, वह अचर है। ये बिल्कुल-के-बिल्कुल सगुण हैं। जब सबको ईश्वर का रूप कहते हैं तो जो सबसे विशेष तेजवान हो, वह विशेषावतार कहने योग्य है। इसलिए भक्तों ने विशेषावतार को भगवान कहा। जैसे शिव, राम, कृष्ण, भगवती आदि। उन सब रूपों में अर्थात् उन गुणमय दृश्यों में ईश्वर व्यापक हैं और उन रूपों में विशेष प्रभाव या ईश्वरी शक्ति लोगों ने देखी तो उन्हें ईश्वर कहकर पूजते हैं। असल में बात यह है कि जो आँख से देखने में आया, वह गुणमय है। उसमें जो निर्गुण ब्रह्म व्यापक हुआ, तो वह सगुण कहलाया। एक बहुत विचित्र बात कही गई है—'पूर्ण-से-पूर्ण निकलता है और पूर्ण ही बच जाता है।' इसको समझाने के लिए कुछ लोगों ने कहा है—'शून्य-से-शून्य निकालो तो शून्य ही बचता है।' मेरे बोध में है कि यह हिसाब के रूप में ठीक है, लेकिन एक और बात है कि जिसको ईश्वर कहते हैं, उसका कोई भी अंश, चाहे छोटे-से-छोटा अंश ही क्यों न हो, वह उतना ही शक्तिशाली है, जितना पूर्ण ईश्वर। जैसे राम, कृष्ण आदि हैं। सब अंश रूप हैं। इनमें भी पूर्ण शक्ति है, इसमें कोई शक नहीं। वे इस संसार में आ गए। यद्यपि ज्ञान में कहा नहीं जा सकता कि वे आ गए। फिर भी लोगों ने देखा कि वे अवतार लिए। उनको सगुण ब्रह्म मानने में कोई हर्ज नहीं। एक तो सम्पूर्ण प्रकृति मण्डल का एक रूप मानिए, उसमें व्यापक सगुण ब्रह्म है और एक-एक रूप को अलग-अलग मानकर व्यापक मानिए, वह भी सगुण ब्रह्म है। फिर लोगों को शंका होती है कि जिस तरह की शक्ति शिव, राम आदि में प्रकट हुई, वह हमलोगों में नहीं। इन लोगों ने बहुत तप किया—साधन किया—

तप बल रचइ प्रपंच विधाता। तप बल विष्णु सकल जग त्राता।।
तपबल शंभु करहिं संघारा। तपबल शेष धरहिं महि भारा।।

तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तप अस जियँ जानी।।
—रामचरितमानस, बालकाण्ड

उनकी शक्ति बढ़ गई। शिवजी ने बड़ी तपस्या की, पार्वतीजी ने भी तपस्या की। इनकी शक्ति बढ़ी। शक्ति कैसे बढ़ती है? तन्द्रा की हालत में कभी-कभी ऐसा होता है कि शरीर कमजोर हो जाता है। पैर उठाना चाहते हैं, तो उठता नहीं। जोर से कोशिश करते-करते जग गए तो हाथ, पैर हल्के हो जाते हैं। कमजोरी में यह बात होती है। कोई जगता है, अपने को पहचानता है, तब उसकी शक्ति बढ़ती है। भय दूर भागता है। तप वा ईश्वर का भजन करते-करते अपने तईं का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। फिर सब शक्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं। तब वह ईश्वरत्व को धारण करता है या प्राप्त करता है और 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।' को चरितार्थ करता है। हम अपने को बहुत न्यून समझते हैं। यहाँ भी एक दूसरे को श्रेष्ठ वा कनिष्ठ मानते हैं। उम्र के ख्याल से नहीं, ज्ञान के कारण, विद्या के कारण, शरीर बल के कारण आदि। जो साधन द्वारा शारीरिक वा मानसिक बल बढ़ा लिए हैं, वे शारीरिक और मानसिक शक्ति पाए हैं, उसी तरह जिन्होंने आध्यात्मिक साधना की, उन्होंने ईश्वरत्व की शक्ति पाई। जो साधना नहीं किए, वे अपने को नहीं जानते और अपने को शक्तिहीन पाते हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण ने तप किया। उनमें अपनेपन का ज्ञान हुआ। उनमें भी शक्ति आ गई ईश्वरत्व की। इसलिए पूर्ण में से पूर्ण निकलता है तो पूर्ण ही बच जाता है।

श्रीकृष्ण के लिए महाभारत में लिखा है कि वे नर-रूप को छोड़कर स्वर्ग गए और सनातन नारायण में प्रवेश कर गए। आप जो कुछ देखते हैं सभी सगुण हैं। विराट रूप सगुण है। कौशल्या, यशोदा आदि ने जो देखा, राजा बलि ने जो देखा, वह भी सगुण रूप ही है। एक-एक छोटे शरीर वाला भी सगुण और वह भी सगुण। इसीलिए '**अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा, वसत इति वासना धूप दीजै।**' कहा गया है। जो प्रविष्ट है, वह निर्गुण है। जो देखने में आता है, वह सगुण है। जो निर्गुण है—अपरिवर्तनशील है, अविनाशी है। जो सगुण है—वह परिवर्तनशील और नाशवान है। रूप नाशवान है। उसमें व्यापक निर्गुण तत्त्व अविनाशी है। जो सगुण रूप है, वह नाशवान है। सगुण को ही लोग साकार और निर्गुण को निराकार कहते हैं। सगुण-साकार का नाश है, निर्गुण-निराकार का नहीं। जो निर्गुण ब्रह्म है, उसका नाश नहीं होता। निराकार और भी है, उसका नाश होता है। अभी हम बोलते हैं। इसका रूप नहीं है, यह सगुण शब्द है। इसका नाश हो जाता है। बाहर के कान से निर्गुण शब्द सुना नहीं जा सकता। फिर स्थूल सूक्ष्म का भेद है। अपने शरीर और इसी संसार को देखते हैं, ये दोनों सगुण हैं और स्थूल हैं। इसी तरह बाहर संसार के रस, गंध, स्पर्श, शब्द; इनको देखिए तो दिखाई देने योग्य नहीं हैं। अदृश्य हैं, फिर भी सगुण हैं। इसी तरह स्थूल दृश्य सगुण और स्थूल अदृश्य भी सगुण होता है। स्थूल दृश्य सगुण साकार है और स्थूल अदृश्य सगुण-निराकार है। यह दृश्य और अदृश्य; दोनों हैं। संसार और शरीर को स्थूल-ही- स्थूल मानने से नहीं होता। एक मकान बनाने में भी पहले उस मन में बनाते हैं, जिसे सूक्ष्म मानना चाहिए।

स्थूल सगुण-साकार की उपासना आरम्भ में लोग करते हैं। ईश्वर का कोई राम में, कोई कृष्ण में, कोई शिव में, कोई शक्ति में मानते हैं। इस तरह कई ईश्वर हो जाते हैं। ईश्वर तो एक ही होना चाहिए। आपस में लोग बहस करते हैं और साम्प्रदायिकता का भाव फैलाते हैं। ईश्वर एक हैं। उनके कई रूप हैं। जैसे एक ही आकाश के घटाकाश, मठाकाश आदि रूप हैं। आकाश एक ही रहता है, चाहे घटाकाश, मठाकाश कितना भी आप कहें। उसी तरह ईश्वर एक ही है। उनके

अनेक नाम-रूप हैं। किसी एक रूप से उपासना का आरम्भ किया जाता है। कोई समझे कि स्थूल उपासना से ही उपासना समाप्त हो जाएगी तो वह कम जानता है, इतना कहने में शक नहीं। केवल स्थूल साकार सगुण में ही लगते हो और सूक्ष्म सगुण की उपासना में नहीं बढ़ते हो तो तुम्हारी शक्ति आगे बढ़ेगी कैसे? ऐसा मानने से ही ईश्वर का पूरा दर्शन हो गया, इसको सिद्ध करना चाहिए। सगुण रूप दर्शन करने से विकार दूर नहीं होता। श्रीराम, श्रीकृष्ण, शिवजी, देवी आदि के दर्शन से हृदय शुद्ध नहीं होता। शुम्भ-निशुम्भ ने देवी से युद्ध किया। देवी-दर्शन होने पर भी हृदय शुद्ध क्यों नहीं हुआ? इससे जाना जाता है कि इस स्थूल दर्शन से विचार की शुद्धता नहीं होती, माया में भले ही लाभ हो जाय। ईश्वर-दर्शन इस आँख से नहीं होता। इस आँख से जो देखोगे, वह माया है। ईश्वर को अपने से—चेतन आत्मा से जानोगे। शरीर और इन्द्रियों के साथ अपूर्ण ज्ञान होता है। शरीर-इन्द्रियों से छूटने पर ज्ञान होता है कि 'पूर्ण में से पूर्ण निकलता है और पूर्ण ही बचता है।' स्थूल सगुण उपासना के बाद सूक्ष्म सगुण-साकार की उपासना करनी चाहिए। मन से सूक्ष्म सगुण-साकार बनाया नहीं जा सकता। गुरु-युक्ति से इसकी साधना होती है। आगे चलकर सगुण अरूप की उपासना होती है, यहीं है ऋषि-मुनियों का नादानुसंधान। फिर है निर्गुण-निराकार उपासना। स्थूल सगुण से लेकर निर्गुण-निराकार तक इसी तरह पहुँचा जाता है। दोहावली में गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

पहले सत्संग के द्वारा ज्ञान होता है और साधना करने पर अंदर से इसका ज्ञान होता है। '**हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम। मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।**' गोस्वामी तुलसीदासजी ने ईश्वर को राम कहा है। शिव, देवी, गॉड, अल्लाह कहने से भी ईश्वर-ज्ञान में कमी नहीं होती। ईश्वर के लिए एक ही शब्द पर जोर देना साम्प्रदायिकता में बरतना है। स्थूल उपासना में जप और देखे हुए रूप का ध्यान किया जाता है। सूक्ष्म सगुण-साकार में ऐसा नहीं। उसमें केवल दृष्टियोग-अभ्यास द्वारा उसका अभ्यासी दर्शन पाता है। पुनः सगुण-निराकार और निर्गुण-निराकार उपासना में अंतर्नाद में सुरत को लगाना पड़ता है।

साकार, निराकार, निर्गुण और सगुण को जानना चाहिए। '**हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम। मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।**'

पद्य में जो सगुण-साकार है, वह सोने का डिब्बा है और उसके अंदर में जो कीमती रत्न है, वही निर्गुण है। सोने से रत्न अधिक मूल्य का है। इसी तरह सगुण-निर्गुण को भी जानो। गोस्वामी तुलसीदासजी ने यह भी कहा है—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकाश।
निर्गुण कहै जो सगुण बिनु, सो गुरु तुलसीदास।।

ऐसा क्यों? इसलिए कि ईश्वर तत्त्व अनादि-अनन्त है। अनंत किसी एक बड़े क्षेत्र में अँटकर रह नहीं सकता। कठोपनिषद् में लिखा है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

अर्थात् जिस प्रकार समूचे ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट वा व्याप्त एक ही वायु भिन्न-भिन्न रूपों में उन्हीं के समान रूपवाला-सा हो रहा है, उसी प्रकार सब प्राणियों का अंतरात्मा वा परब्रह्म भी एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसा रूपवाला हो रहा है तथा उन रूपों से वह बाहर भी है। इस तरह निर्गुण-सगुण और निराकार-साकार में भेद जानना चाहिए। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर मधुबनी में दिनांक ३०.३.१९६३ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१९०. धर्म की परिभाषा

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मनुष्य-जीवन में धर्म ही जीवन है। जिस मनुष्य के जीवन में धर्म-ज्ञान नहीं है, उसका जीवन यदि पाशविक कहा जाय तो कुछ अति-उक्ति और हानि नहीं; क्योंकि पशु धर्म का ज्ञान नहीं रखते। धर्म कर्म से होता है। बिना कर्म के धर्म नहीं होता। परमात्मा ने मनुष्य को कर्म करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया है, फल के लिए नहीं। कर्म करने के लिए परमात्मा ने बुद्धि दी है, असत् और सत् का निर्णय कर कर्म करने के लिए। इसी के लिए विद्याभ्यास और सत्संग है, पशु के लिए विद्याभ्यास और सत्संग कहाँ है? मनुष्य के लिए बड़े-बड़े विद्यालय हैं। मनुष्य विद्याभ्यास और सत्संग से अपनी बुद्धि को परिमार्जित कर लें। बुद्धि को सात्त्विक, राजस और तामस में रख सकते हैं। बुद्धि स्वाभाविक ही इन तीनों में बरतती है। लोगों की बुद्धि सात्त्विकभाव में कम रहती है। रजोगुण और तमोगुण में अधिक रहती है। सात्त्विक में शुद्ध विचार होता है, राजस में चंचलता और तामस में उलटा विचार होता है; प्रमाद और आलस्य—सुस्ती होती है। राजस और तामस; इन दोनों से सात्त्विक उत्तम है। विद्याभ्यास और सत्संग से यद्यपि बुद्धि को बल मिलता है, फिर भी मन को अपने अंदर ऐसे स्थान पर रखो, जहाँ राजस-तामस न रहे। एक तरफ रखने से राजस और दूसरी तरफ रखने से तामस में रहेगा। बीच में रखो तो सतोगुण में रहेगा। उन दोनों को इड़ा और पिंगला कहते हैं। जो यौगिक शब्द जानते हैं, वे समझ गए होंगे। इड़ा-पिंगला में, राजस-तामस में बुद्धि रहती है और सुषुम्ना में सात्त्विकता में बुद्धि रहती है। विद्याभ्यास, सत्संग और यौगिक साधना; तीनों करो तो सात्त्विक बुद्धि में जमे रहोगे। तब असत् और सत् का ठीक-ठीक निर्णय कर सकते हो। सात्विक वृत्ति में रहते कर्म करो तो वह धर्म होगा, जिससे यहाँ और परलोक दोनों जगह सुखी रहोगे। यहाँ सुखी और परलोक में दुःखी, वह राजस कर्म का फल है। यहाँ का सुख असल में सुख नहीं है। यहाँ दुःख मिश्रित सुख पाते हैं। यह चंचल सुख राजस लोगों को मिलता है। जिस कर्म से यहाँ और परलोक; दोनों में दुःख पाते हैं, वह दुष्टकर्म तामस का फल है। जिस काम से परलोक-इहलोक में सुख मिलता है और अंत में मोक्ष मिलता है, वह सात्त्विक कर्म का फल है। कुछ ऐसे सात्त्विक कर्म हैं, जिससे इस संसार और परलोक में सुखी रहो। ऐसे भी सात्विक कर्म हैं, जिससे यहाँ कुछ कष्ट मालूम होता है, जैसे दवा कड़वी मालूम होती है, परंतु आगे में सुखी होता है। लोग ऐसा कर लेते हैं कि वे सुख को भी नहीं सह सकते, कुछ-से-कुछ कर लेते हैं, लेकिन दुःख को तो रो-रोकर भोग लेते हैं। विद्या, सत्संग और सद्गुरु की बतायी यौगिक क्रिया; इन तीनों को करो।

प्रत्येक व्यक्ति अपने को धार्मिक जानने में अच्छा समझते हैं। कोई धार्मिक सिद्धान्त नहीं जानकर धार्मिक बनना चाहे तो उसकी आशा ही आशा

रहेगी। आशा पूरी नहीं होगी, इसलिए धर्म की परिभाषा जानो। धर्म में पहली बात यह है—ईश्वर में अडिग विश्वास। जिस धर्म में ईश्वर का विश्वास नहीं, वह धर्म ऐसा है जो विषाक्त है, जो देखने मात्र का शुभ है, लेकिन वह अशुभमय है। इसलिए ईश्वर की स्थिति का और उसके स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। ईश्वर-स्तुति होनी चाहिए। स्तुति से उसके स्वरूप का और उसकी स्थिति का ज्ञान होता है। इससे श्रद्धा होती है। श्रद्धा से प्रेम होता है। ईश्वर का प्रेमी धर्म से विचलित नहीं होता।

मनुष्य की इच्छा बराबर कुछ-न-कुछ माँगने की रहती है। किसी भी चीज को पाकर कोई तृप्त नहीं हो सकता। जिसको ईश्वर की प्राप्ति हुई, उन्होंने कहा—ईश्वर की प्राप्ति में तृष्णा जाती रहती है और इच्छाओं का नाश होता है। इसलिए जो माँगो, ईश्वर से माँगो। पहले तो माँगो ही नहीं, क्योंकि गौ अपने बच्चे को दूध पिलाती है, माता अपने बच्चे को बिना माँगे दूध पिलाती है। ईश्वर पर विश्वास करो, ईश्वर सब कुछ देंगे। यदि बिना माँगे मन नहीं माने तो एक ईश्वर से ही माँगो, किसी देव से नहीं। क्योंकि उस देव को उस ईश्वर से ही शक्ति मिली है।

सौ बरसा भक्ती करै, एक दिन पूजै आन।
सो अपराधी मानवा, पड़े चौरासी खान।।

—कबीर साहब

पात पात कै सींचवो, बरी बरी के लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु को न।।
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया विवश विचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपुनपौ हारे।।

—गोस्वामी तुलसीदास

देवता को, संसार के लोगों को जो शक्ति मिली है, ईश्वर की ओर से ही। लोग पुरुषार्थ करते हैं, जो मिलता है वह ईश्वरप्रदत्त है। जो पुरुषार्थ नहीं करे और उसको कुछ मिले, कैसा न्याय है? ईश्वर से वह माँगो जो और कोई न दे सके। ईश्वर से वह माँगो, जिससे ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग मिले। मार्ग में जो चिह्न मिलना चाहिए, सो मिले। इसलिए ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना करो। बाद में उपासना करो। उपासना में जप और ध्यान करने के लिए लोग कहते हैं। इन दोनों के भेदों को जानना चाहिए। जप और ध्यान में जो स्थूलता और सूक्ष्मता है, उसको भी जानो। किसी रूप को देखकर उसे मन में बनाना ही पूरा ध्यान नहीं है। ध्यान और भी है—'ध्यानं निर्विषयं मनः।' संतों ने बताया है कि दो ही चीजें हैं—एक प्रकाश और दूसरा शब्द। साधकों को ये दोनों सहारे ईश्वर की ओर से मिलते हैं। उपासना ठीक-ठीक जानो और करो। जैसे एक अक्षर जानने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है, उसी तरह इस अध्यात्म-ज्ञान के सिखलानेवाले गुरु की भी आवश्यकता होती है और इनकी बड़ी महिमा है। कहीं-कहीं इनको ईश्वर के तुल्य कहा गया है और कहीं-कहीं ईश्वर से भी बढ़कर। ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं हो सकता। लेकिन ईश्वर स्वयं प्रकट नहीं होते, संत लोग प्रकट होकर ईश्वर का ज्ञान बताते हैं, इसलिए ईश्वर से बड़े कहे जाते हैं।

मैं कह रहा था कि उपासना के लिए दो पदार्थों का संतों ने बहुत उपदेश दिया है। वे हैं—प्रकाश और शब्द। वे शब्द और ज्योति बाहर के नहीं, तुम्हारे अंदर हैं। ठीक-ठीक उपासना करो, तुम्हारे अंदर में ये दोनों मिलेंगे। संसार में ज्योति नहीं रहे, तो संसार नहीं रहे। ज्योति रहे और बादल के कारण अंधकार-ही-अंधकार हो तो सभी लोग अंधे-जैसे काम करेंगे। फिर कितनी गलती और कितने दुष्ट कर्म हो जाएँगे? इससे संसार भ्रष्ट हो जाएगा। ज्योति को बिल्कुल हटा लें, तो सौर मंडल समाप्त हो जाएगा। शब्द से ही विद्याभ्यास किया जाता है। जनमते ही आप शब्द करते हैं, तो आप जीवन में

हैं, जाने जाते हैं। छोटे-बड़े सभी काम शब्द से होते हैं। सभी गूँगे हो जाएँ तो क्या काम करेंगे! शब्द से ही काम करते हैं, जब गति वा कम्प होता है, तो शब्द अवश्य होता है। गति और कम्प नहीं हो तो शब्द नहीं हो। किसी की घटती और बढ़ती शब्द से होती है। हमारे दार्शनिक और वैज्ञानिक भी इसी बात को कहते हैं। संत दरिया साहब कहते हैं—'साधो गति में अनहद बाजे।' डॉक्टर कान में यंत्र लगाकर छाती वगैरह को जाँचते हैं—शब्द ठीक-ठीक होता है वा नहीं? नाड़ी चलती है, इसमें भी गति है। शब्द कम्पमय और कम्प शब्दमय होता है। सृष्टि के आदि में प्रथम कम्पन हुआ, कम्प का सहचर शब्द अवश्य हुआ। कम्प और शब्द को अलग- अलग नहीं कर सकते। शब्द में अपने उद्गम स्थान पर खींचने का गुण होता है। जिसको ओ३म्, रामनाम, सतनाम आदि कहते हैं। यह सबके अंदर-अंदर है और सृष्टि में भी है। लेकिन जो अपने को अपने अंदर नहीं रख सकता—बहिर्वृत्ति में रखता है, वह इसको नहीं जान सकता। जो अन्तर्वृत्ति रखता है, वह इसको पहचानता है।

अक्षरं परमोनादः शब्द ब्रह्मेति कथ्यते। —योगशिखोपनिषद्

यही गोस्वामी तुलसीदासजी का निर्गुण रामनाम है।

'बन्दउँ रामनाम रघुवर को। हेतु कृषाणु भानु हिमकर को।।
विधि हरि हर मय वेद प्रान सो। अगुण अनूपम गुण निधान सो।।'

'शब्द तत्तु वीर्ज संसार। शब्द निरालमु अपर अपार।।
शब्द विचारि तरे बहु भेषा। नानक भेदु न शब्द अलेषा।।
शब्द सुरति भया प्रगासा। सभ को करै शब्द की आशा।।
पंथी पंखी सिऊँ नित राता। नानक शब्दै शब्दु पछाता।।
हाट बाट शब्द का खेलु। बिनु शब्दै क्यों होवे मेलु।।'
सारी स्रिष्टि शब्द कै पाछै। नानक शब्द घटै घटि आछै।।
—गुरु नानक साहब

कबीर साहब कहते हैं—

साधो शब्द साधना कीजै।
जेहि शब्द से प्रकट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै।।

दूसरे देश के लोग भी मानते हैं। In the beginning was the word, the word was with God and the word was God. अर्थात् सृष्टि के आदि में शब्द था, वह शब्द ईश्वर के साथ था और शब्द ही ईश्वर था।

लोगों का विश्वास है कि क्राइस्ट इस देश में आकर बहुत दिनों तक रहे थे। मुहम्मद साहब भी यहाँ आकर रहे थे। शब्द वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक; दोनों प्रकार के होते हैं। इसके अतिरिक्त प्राणमय, इन्द्रियमय और मनोमय; इन तीनों के भेद को भी जानिए। बाहर के वर्णात्मक में राम, शिव, गॉड, अल्लाह आदि कहते हैं।

नाम जपते-जपते ईश्वर की ओर ख्याल होता है, यह बाहर का शब्द है। बाहर के ध्वन्यात्मक से ईश्वर की पहचान नहीं होती। अंदर के ध्वन्यात्मक में भी पहले ईश्वर की पहचान नहीं होती। नाद-साधना करते-करते अंत में निर्गुण रामनाम 'ओ३म्' को पाता है, तब ईश्वर की पहचान होती है। वह अकथनीय है। केवल अंतर्ध्यान से ही जाना जाता है। केवल वर्णात्मक पर जोर लगाकर अंदर के ध्वन्यात्मक को नहीं जानना अपने में ज्ञान की कमी रखना है। जानिए और साधन कीजिए। n

यह प्रवचन सहर्षा जिलान्तर्गत मनोहर उच्च विद्यालय, सहर्षा में दिनांक २.४.१९६३ ई० के सत्संग में हुआ था।

१९१. एक ॐ सतनाम

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जितने लोग आस्तिक हैं, उन सबको विश्वास है कि तमाम सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर है। जब सबसे पहले कुछ नहीं था, तब केवल ईश्वर ही था। उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं था। यदि कोई ईश्वर का नहीं माननेवाला है, ईश्वर के ज्ञान को भद्दा ज्ञान मानता है और ईश्वर को मानना बेवकूफी समझता है, उसको भी मानना पड़ता है कि सृष्टि की कर्त्री (बनानेवाला) प्रकृति ही है। तो उसको भी मानना पड़ेगा कि सबसे पहले प्रकृति है। वह सौर जगत (**Solar system**) को देखता है। सूर्य के पहले वाष्प-ही-वाष्प को मानता है। चाहे वाष्प मानो चाहे सूर्य; उसके बाद विविधता है। अध्यात्म-दर्शी कहता है कि इतना ही क्यों? यह भी समझो कि सूर्य का भी रचयिता कोई है। सूर्य निरवलम्ब नहीं है। सूर्य के चारो ओर शून्य है। यह नहीं कहा जाएगा कि पहले सूर्य है। यही कहा जाएगा कि पहले शून्य है, फिर सूर्य। सूर्यमण्डल से शून्य कितना अधिक है, जिसका नाप-जोख कोई नहीं बता सकता। इससे समझ में आता है कि सबसे पहले का कुछ ऐसा है, जो कुछ भी अवकाश छोड़े बिना केवल वही एक-ही-एक है। जो परम प्राचीन तथा परम सनातन है। परम प्राचीन, परम सनातन वही होगा, जिसके अतिरिक्त अवकाश नहीं रहे। जिसके अतिरिक्त अवकाश बचता है तो अवकाश ही पहले का है। उसके लिए दूसरा कोई अवलम्ब नहीं है। जो सबसे पहले का है, जिसके अतिरिक्त अवकाश नहीं है, वही ईश्वर है। इसके लिए संतों के बहुत शब्द हैं। 'व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता।।' कहीं उसका अंत नहीं। जिसका अंत नहीं, उसके बाद अवकाश नहीं।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

— रामचरितमानस

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

— विनयपत्रिका

देश-काल से जो परे है, वह समय-स्थान के घेरे में नहीं है। और उसके अतिरिक्त कोई अवकाश नहीं है।

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूह अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।

— कबीर साहब

अणोरणीयां महतो महीयान्।

बड़ा-से-बड़ा वही हो सकता है, जिसके अतिरिक्त अवकाश नहीं हो।

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।

—गुरु नानक साहब

संतों का विचार एक है कि उस परमात्मा की ही मौज से सृष्टि हुई है।

तदि अपना आपु आपही उपाया,
नाँ किछु ते किछू करि दिखलाया।
प्रथम एक सो आपे आप, निराकार निर्गुण निर्जाप।।

—गुरु नानक साहब

उसने उपादान को सृजन करके फिर और सृष्टि की। सृष्टि है, इसलिए कहना पड़ता है कि इसका बनानेवाला परमात्मा भी है। सृष्टि के लिए वैसा ही बोध होता है,जैसे और कुछ बनाने में। बिना कम्प के कुछ नहीं बन सकता। कम्प हो शब्द नहीं, शब्द हो कम्प नहीं, ऐसा माना नहीं जा सकता। आदि में शब्द है, इसलिए गुरु नानकदेव ने कहा है—

शब्द तत्तु वीर्ज संसार। शब्द निरालमु अपर अपार।।
शब्द विचारि तरे बहु भेषा। नानक भेदु न शब्द अलेषा।।
शब्द सुरति भया प्रगासा। सभ को करै शब्द की आशा।।
पंथी पंखी सिऊँ नित राता। नानक शब्दै शब्दु पछाता।।
हाट बाट शब्द का खेलु। बिनु शब्दै क्यों होवे मेलु।।
सारी स्रिष्टि शब्द कै पाछै। नानक शब्द घटै घटि आछै।

सभी कहते हैं कि आदि में शब्द हुआ। मिट्टी की गोली बनाने में जो कम्पन होता है, वह मिट्टी के जर्रे-जर्रे में व्यापक होता है। आदि शब्द तमाम ब्रह्माण्ड में व्यापक है। शब्द अपने उद्‌गम स्थान पर खींचता है, जैसे चुम्बक लोहे को अपने केन्द्र में खींचता है। दूसरा, शब्द में गुण है कि शब्द अपने केन्द्र के गुण को लिए रहता है और सुननेवाले में वह गुण हो जाता है। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है और नीचे का शब्द ऊपर तक नहीं जाता। आदि शब्द ईश्वर से प्रकट हुआ है और वह शब्द पिण्ड-ब्रह्माण्ड में व्यापक है। उस शब्द को पकड़ो तो ईश्वर तक जाओगे। इसके खिलाफ जो कहे तो वह संतवाणी के खिलाफ है। जैसे दो-दो के जोड़ने से चार होता है, उसी तरह यह निश्चित है कि जो उस शब्द को पकड़ेगा, वह ईश्वर तक पहुँचेगा।

यही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं ऊबरै, केता करै उपाय।।

—कबीर साहब

चुम्बक सत्त शब्द है भाई, चुम्बक शब्द लोक ले जाई।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा, सत्त शब्द जो बसै शरीरा।।

—दरिया साहब बिहारी

शब्दहिं शब्द भयो उजियारो सतगुरु भेद बतायो।

—सूरदासजी

गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसको 'नाम' कहा—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सु सामुझि साधी।।

हम मुँह से जो शब्द बोलते हैं, वह निर्गुण शब्द नहीं है।

अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अतालुकण्ठोष्ठमनासिकं च।
अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।

—अमृतनाद उपनिषद्

यह शब्द निर्गुण है। जिधर से शब्द आता है, वृत्ति उधर ही दौड़ती है। अंधेरी रात में सूझता नहीं हो, रास्ता भूल गया हो और कोई पुकार कर कहे कि यहाँ आओ तो शब्द सुनते-सुनते वहाँ तक वह पहुँच जाएगा। जैसे जल में चलने के लिए जल ही सहारा और जल ही रास्ता होता है, उसी तरह शब्द का ही सहारा और शब्द में ही चलना है। गो० तुलसीदासजी ने कहा कि अंदर का प्रकाश होना चाहिए।

जब लगि नहीं निज हृदि प्रकाश अरु विषय आश मन माहीं।
तुलसिदास तब लगि जग जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं।।

पहले आप आकाश से गर्जन को नहीं सुनते हैं। पहले बिजली चमकती है, उसको देखते हैं, पीछे शब्द सुनते हैं। चाहे दार्शनिक विचार हो, चाहे वैज्ञानिक विचार, किसी भी विचार से सोच-समझ कर देख लो। सृष्टि के आदि में शब्द है। शब्द से ही सृष्टि हुई। यह शब्द परमात्मा से हुआ है। उस शब्द को कहाँ पकड़ोगे? वह शब्द चेतनगम्य है। श्रीमद्‌भागवत में तीन प्रकार के शब्द का वर्णन है—मनोमय, प्राणमय और इन्द्रियमय। चेतन के

संचरण में जो शब्द होता है, वह प्राणमय शब्द है। पढे-लिखे लोग जानते हैं कि शब्द दो तरह के होते हैं—सार्थक और निरर्थक, वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक, वर्णात्मक विधि तीन।
त्रिविध शब्द अनुभव अगम, तुलसी कहहिं प्रवीन।।

जो ध्वन्यात्मक शब्द है, उसी में प्राणमय शब्द है। बाहर का ध्वन्यात्मक शब्द गाजे-बाजे का है। अंदर में भी ध्वन्यात्मक शब्द है। दादू दयालजी के वचन में है—

एक शबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोय।
आगे पीछे तौ करै, जे बल हीणा होय।।
यंत्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार।
पंचौ कारज नाद है, दादू बोलणहार।।

गुरु नानक ने भी कहा है—'पंच सबदु धुनिकार धुनि, तहँ बाजै सबदु नीसाणु।' सृष्टि को पाँच मण्डलों में बाँट सकते हैं। यह स्थूल जगत है। बिना सूक्ष्म के स्थूल नहीं हो सकता और सूक्ष्म भी बिना कारण के नहीं होता। फिर कारण भी बिना महाकारण के नहीं होता। ये चार मण्डल जड़ प्रकृति के हैं। इसके परे चेतन प्रकृति—परा प्रकृति है। कोई भी मण्डल तबतक नहीं बनता, जबतक उसका केन्द्र स्थापित नहीं हो और उस केन्द्र से उसकी धारा प्रवाहित नहीं हो। धारा के प्रवाहित होने में जो शब्द होता है, उसमें ध्वनि होती है। इसलिए पंच मण्डल के पाँच शब्द अवश्य हैं। प्रत्येक का केन्द्रीय शब्द अपने से नीचे मण्डल तक आवेगा और उसके ऊपर के मण्डल का शब्द उसके नीचे के मण्डल के केन्द्र पर आवेगा। इसी तरह आदि नाद जो सबसे पहले का शब्द है, उसको पकड़ेगा। उसको प्रणव, स्फोट आदि ऋषियों ने कहा है और सन्तगण उसे रामनाम, आदिशब्द, आदिनाम इत्यादि कहते हैं। जिस शब्द से किसी की पहचान हो, वह उसका नाम होता है।

जिस शब्द से ईश्वर की पहचान हो, वह ईश्वर का नाम है। रामनाम मनुष्य का रखा हुआ है। व्यापकता के कारण उसको 'ॐ' कहते हैं। जैसे 'ॐ' शब्द, उच्चारण के सभी स्थानों में व्यापक है, उसी तरह आदि शब्द सर्वव्यापी है, उसको ऋषियों ने 'ॐ' कहा। गुरु नानक ने कहा— **'एक ॐ सतनाम।'** यह एक ही शब्द है, जो ईश्वर की पहचान कराता है और जो दूसरा शब्द है, वह ईश्वर के गुण को प्रकट करता है, वही वर्णात्मक नाम है।

पहले स्थूल ध्यान होता है, पीछे सूक्ष्म ध्यान। यानी स्थूल ध्यान के बाद सूक्ष्म ध्यान होता है। इसमें न सगुण को छोड़ना है, न निर्गुण को। पहले सगुण की उपासना करो, फिर निर्गुण को पकड़कर परमात्मा तक पहुँचो।

लोगों को चाहिए कि ईश्वर-भजन करें। मेरे कहने का मतलब है कि नाम-भजन के द्वारा ईश्वर तक पहुँचो। कोई और दूसरी तरह कहे तो उससे पूछना चाहिए कि ईश्वर तक पहुँचने का और क्या यत्न है, उसे सिलसिला से बताओ। यहाँ तक कहा जाता है कि शब्द की धार ईश्वर से यहाँ तक लगी हुई है। उसको पकड़कर ईश्वर तक जाओगे।

अपने को पवित्र रखो। इसके लिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों से बचकर रहो। जो अच्छे गुरु होते हैं, वे पहले से ही खान-पान को सम्हालने कहते हैं।

खान पान को प्रथम सम्हारो। तब रस रस सब अवगुण मारो।।

जो पंच पापों से बचकर रहेगा, वह ईश्वर मार्ग पर चलेगा और संसार में भी प्रतिष्ठित रहेगा। आज दुनिया में चोरी-डकैती आदि अनैतिक कर्म होते हैं, यदि पंच पापों को छोड़ो, तो संसार में भी कल्याण से रहोगे—अनैतिकता मिटेगी।

n

यह प्रवचन नवादा जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर नवादा नगर में दिनांक १.५.१९६३ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१९२. अनेक ब्रह्मा, विष्णु और शिव

प्यारे प्रियदर्शनो !

परमात्मा की बड़ी कृपा है कि हमलोगों का जन्म भारत-भूमि पर हुआ है। यह बड़ा ही आस्तिक देश है। उत्तर हिमालय से दक्षिण कन्याकुमारी अंतर्द्वीप तक, जगन्नाथपुरी और द्वारिका—पूरब से पश्चिम तक तथा सभी प्रदेशों में इस आस्तिक भाव की मान्यता है। जब से बच्चे का जन्म होता है, तब से अथवा जब बच्चे अपने मुँह से कुछ बोलने लगता हैं, तोते की तरह बच्चे को माता-पिता तथा अभिभावक ईश्वरवाची नाम सिखाते हैं। कोई राम-राम, कोई हरि-हरि, कोई शिव-शिव आदि इस तरह के ईश्वरवाचक नाम कहलवाते हैं। किसी घर में सतनाम का आदर है, वे वह कहलवाते हैं। होता क्या है कि जैसे-जैसे बच्चे को ज्ञान होता जाता है, वैसे-वैसे ईश्वर के ज्ञान में वे मजबूत होते जाते हैं। पहले वे जानते नहीं कि राम-राम, शिव-शिव क्या है? माता-पिता सिखाते हैं कि सबके मालिक प्रभु भगवान हैं, उन्हीं के ये नाम हैं। बच्चे के मन में बैठ जाता है कि ईश्वर है। कितने बच्चे कहते हैं कि ईश्वर कहाँ है? तब माता-पिता उनको ठाकुरबाड़ी में ले जाकर प्रतिमा दिखाते हैं कि यही ईश्वर है। कितने दयानन्द स्वामी की तरह प्रौढ़ होते हैं, तो तर्क-वितर्क से और भी जानते हैं। ईश्वर का ज्ञान मामूली बात नहीं है। अंत में बच्चे अपने भी पढ़ते हैं कि ईश्वर सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं। सगुण ठाकुरबाड़ी की प्रतिमा को मानते हैं और निर्गुण का पता नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ऐसे गुरु मिलते हैं तो वे कहते हैं—

हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

निर्गुण हृदय—अन्दर की बात है। आँख से जो देखते हो, वह सगुण है। जिभ्या पर सुन्दर राम-राम वा शिव-शिव है। यह कैसा हुआ? जैसे सोने के डिब्बे में सुन्दर रत्न हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि निर्गुण देखना चाहते हो, तो अंतर्मुखी होओ। आँख से सगुण को देखते हो, लेकिन इस आँख से स्थूल को देखोगे, सूक्ष्म सगुण को नहीं। सूक्ष्म सगुण को अंदर में देख सकते हो, जबकि 'उघरहिं विमल विलोचन ही के' (दिव्य माया की दृष्टि) होगा।

सोने का डिब्बा कितना सुन्दर—कितनी कीमत का होगा, लेकिन उसके अंदर उससे मूल्यवान पदार्थ है। सोने का डिब्बा सगुण है और निर्गुण सुन्दर रत्न। तुलसीदासजी कहते हैं—दोनों देखने में चमकीले, सुन्दर और बहुमूल्य हैं। दोनों का आदर करो। सगुण कहते हैं—जो गुणों के साथ-साथ है। जो गुणों के साथ नहीं है, वह निर्गुण है।

अगुण अखंड अनंत अनादी। जेहि चिन्तहि परमारथवादी।।
अगुण अखंड अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुण सो होई।।

इन दोनों को समझो। जो निर्गुण और अखण्ड है, जो उत्पन्न नहीं हुआ है, वही भक्तों के प्रेम से सगुण होता है। गुण का अर्थ है, स्वभाव। स्वभाव तीन तरह के हैं—उत्पन्न करने, पालन करने और विनाश करने का। पर्वत को देखो, सागर को देखो, नाना वृक्षों को देखो, उद्भिज, अण्डज, पिण्डज किसी को देखो, सूर्य-चन्द्र ताराओं को देखो, जो कुछ देखो, तीन स्वभावों के अन्दर हैं। सभी कभी-न-कभी बने हैं। यह उत्पादन—रजोगुण का काम

है। कुछ काल तक ठहराव होता है। यह पालन करने का काम सतोगुण का है। फिर विनाश होता है। विनाश दो तरह के होते हैं—एक परिवर्तन और दूसरा अत्यन्ताभाव। यह तमोगुण का काम है। जिनको हम नहीं देखते हैं, उनको भी हम मानते हैं। इसके लिए भी यही बात है।

वशिष्ठजी ने श्रीरामजी से कहा कि एक-एक ब्रह्माण्ड में तीन-तीन देव हैं—ब्रह्मा, विष्णु और शिव। उन्होंने एक कथा कही कि मैंने ब्रह्माजी से पूछा कि एक आप ही ब्रह्मा हैं कि और भी हैं? ब्रह्माजी ने कहा—'अनेक हैं।' मैंने कहा—'कैसे मानूँ?' तो ब्रह्माजी ने मुझसे कहा—'मैं रास्ता बता देता हूँ। तुम जाओ।'

वशिष्ठजी को ब्रह्माजी ने रास्ता बता दिया। वे उस रास्ते से चले। रास्ते में एक नारी मिली, जो रो रही थी। वशिष्ठजी ने उससे रोने का कारण पूछा, तो उसने बताया कि ब्रह्माजी ने मुझसे विवाह करने का वचन दिया था; परंतु अब वे इसके लिए तैयार नहीं हैं। वशिष्ठजी ने कहा कि मेरे पिताजी तो झूठ नहीं बोल सकते। नारी बोली—'वे दूसरे ब्रह्माजी हैं।' यह सुनकर वशिष्ठजी उस ब्रह्मा के पास गए और वचन देकर पुनः विवाह नहीं करने का कारण उनसे पूछा। वह ब्रह्मा बोले—'इस ब्रह्माण्ड का अभी प्रलय होनेवाला है। इसके साथ मेरा भी प्रलय हो जाएगा। इसीलिए मैंने अस्वीकार किया है। आप शीघ्र यहाँ से भागिए, नहीं तो मेरे साथ आपका भी प्रलय हो जाएगा।' यह सुनकर वशिष्ठजी शीघ्रता से उस ब्रह्माण्ड की सीमा से बाहर अपने ब्रह्माण्ड में चले आए। यहाँ आते ही उन्होंने देखा कि वह दूसरा ब्रह्माण्ड शीघ्र ही उस ब्रह्मा सहित प्रलय को प्राप्त हो गया।

आपके यहाँ गंगा की धारा है। कहते हैं कि राजा बलि को परास्त करने के लिए और देवताओं को राज्य देने के लिए भगवान विष्णु ने वामन का रूप धरकर विराट् रूप दिखाया। उनके चरण की धोवन श्रीगंगाजी हैं।

दूसरी कहानी है कि एक बार ब्रह्माजी को अहंकार हो गया कि मैं ही सबसे बड़ा हूँ। इसी भाव में वे विष्णु भगवान के यहाँ गए। भगवान विष्णु ने उनका आदर नहीं किया। उसी समय चतुर्मुखी ब्रह्मा ने देखा कि वहाँ अष्टमुख ब्रह्मा आए। तदुपरान्त सोलह मुखवाले ब्रह्मा पधारे। पुनः बत्तीस मुखवाले, फिर चौसठ मुखवाले, फिर सौ मुखवाले आए। इसी भाँति हजार मुखवाले ब्रह्मा भी आए। चतुर्मुखी ब्रह्मा सबसे पीछे पड़ गए। तदुपरान्त शिवजी पधारे। विष्णु भगवान के अनुरोध से शिव जी ने वहाँ ताण्डव नृत्य दिखाया। उस नृत्य और गान को देख-सुनकर विष्णु के सहित सभी ब्रह्माओं की आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे। वही अश्रुजल यह गंगाजी हैं। अनेक ब्रह्मा, विष्णु और शिव के होने के संबंध में संतों की वाणियों में भी हम पाते हैं; यथा—

कोटि विष्णु अनंत ब्रह्मा, सदाशिव जेहि ध्यावहीं।
सोइ मिल्यो सहज सरूप केसो, आनंद मंगल गावहीं।।

—केशवदासजी

कोटि हैं विष्णु जहँ कोटि शिव खड़े हैं।
कोटि ब्रह्मा तहाँ कथैं वाणी।।

—पलटू साहब

अनेक ब्रह्मा, अनेक विष्णु और अनेक शिवजी हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने दूसरी तरह कहा है—

राम काम सत कोटि सुभग तन।
दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा।
नभ सत कोटि अमित अवकासा।।
मरुत कोटि सत बिपुल बल, रबि सत कोटि प्रकाश।
ससि सत कोटि सु सीतल, समन सकल भव त्रास।।

काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त ।
धूम केतु सत कोटि सम, दुराधरष भगवन्त ।।
प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला ।।
तीरथ अमित कोट सत पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।।
हिमगिरि कोटि अचल रघुवीरा। सिन्धु कोटि सत सम गंभीरा।।
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना।।
सारद कोटि अमित चतुराई। विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।
विष्णु कोटि सत पालन करता। रुद्र कोटि सत सम संघरता ।।
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना।।
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा।।

अंत में चलकर कहा है कि—

निरुपम न उपमा आन, राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि, कहत अति लघुता लहै ।।
एहि भाँति निज निज मति विलास, मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल, सप्रेम सुनि सुख पावहीं ।।

यह कोटि-कोटि की उपमा वैसी ही हुई, जैसे सूर्य को करोड़ों जुगनुओं से उपमा दी जाय। राम सूर्य हैं और ये सभी जुगनू हैं। आकाश में आप तारे देखते हैं। ज्योतिषियों ने इनकी गणना की है हिसाब के लिए। कहा जाता है, ईश्वर ऐसा है कि जिसमें सभी के सभी समाए हुए हैं। यहाँ तक कि 'नभ सत कोटि अमित अवकासा।' समझिए कि क्या बात हुई। आकाश के अंदर तो सभी रहते हैं, लेकिन जिसके अंदर 'नभ सत कोटि अमित अवकाशा' है, वह कैसा है? मालूम होता है कि तुलसीदासजी ने सगुण भाव में बताया है, लेकिन वह निर्गुण है। वह परम पुरातन, परम सनातन है। आदि-अंत-रहित, उत्पन्न होने का सवाल ही जहाँ नहीं है, वह ऐसा होगा कि उसका आधार नहीं होगा। आधार पहले होता है और आधेय पीछे। वह परमात्मा सर्वाधार है। सब उसी के अंदर हैं और सबके अंदर वह है। उसी को 'नभ सतकोटि अमित अवकासा' और 'अगुण अखण्ड अलख अज जोई' कहा गया है। वही सगुण बन गया, ऐसा नहीं। गुणों को संग ले लिया। उन तीनों गुणों का आवरण कितना ही बड़ा क्यों न हो, पूर्णरूपेण उसको ढँक नहीं सकता। यह आवरण साम्यावस्था-धारिणी मूल प्रकृति का है। त्रयगुणमयी प्रकृति का विस्तार बहुत बड़ा है, उसको भी पार किए हुए जो है, उसी के लिए ही—

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ।।

कहा गया है। बचपन से जो राम-राम, शिव-शिव कहते आए हैं—राम कहो वा शिव कहो, तुलसीकृत रामायण में शिव और राम दोनों का वर्णन है। जितना गुण राम का है, उतना ही गुण शिव का भी।

नमामीशमीशान निर्वाण रूपम्,
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम् ।
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम्,
चिदाकाशमाकाश वासं भजेऽहम् ।।

ईश्वर अनेक नहीं हो सकते। जैसे इस्लाम और क्रिश्चियन धर्मालम्बी हमको कहते हैं कि हिन्दू धर्म तुम्हारा है। मैं कहता हूँ कि हिन्दू धर्म तुमने कहाँ सुना? वे कहते हैं कि तुम अपने को हिन्दू कहते हो, इसीलिए मैं भी हिन्दू कहता हूँ। हिन्दू का अर्थ बड़ा खराब है, फारसी के शब्दकोश में देखो। हमारा धर्म वैदिक धर्म है। हम वैदिक आर्य हैं—ऐसा कहो। 'हिन्दू' शब्द हमको अपमानित करता है। वैदिक धर्म को जो 'हिन्दू धर्म' कहते हैं, यह अनुचित है। पुरैनियाँ जिला साहित्य सम्मेलन की सभा में भी मैंने कहा था—'आज देश का नाम भारत है, हम अपने को वैदिक आर्य कहें वा भारतीय कहें, सरकार कुछ नहीं कहेगी। 'हिन्दू' की भाषा हिन्दी है। भाषा का 'हिन्दी' नाम मुझे अच्छा नहीं लगता। 'भारती' इसका नाम दें, तो अच्छा-ही-अच्छा। 'हिन्दू' धर्मावलंबी कहकर अपने को जनावें, इसमें हमको बहुत दुःख होता है।

संतमत वैदिक धर्म का वह अंग है, जो ईश्वर-प्राप्ति का ज्ञान देता है। अन्य धर्म के लोग कहते हैं कि आप तो बहुत ईश्वरों को मानते हैं। मैं कहता हूँ, हम तो एक ईश्वर को मानते हैं। फिर वे कहते हैं—'आप तो राम को, शिव को, देवी आदि कितने को ईश्वर कहते हैं।' मैंने कहा कि सब रूपों में वह एक-ही-एक है। अच्छा कहिए, यह आपका जिस्म है? आप यह क्या पूछ रहे है! उन्होंने कहा। मैंने कहा—'आप कहिए तो सही।' उन्होंने कहा—'हाँ, यह मेरा जिस्म है।' मैंने कहा—'यह आपका जिस्म क्यों है?' वे चुप रहे। मैंने कहा—'इसलिए न, कि इस जिस्म में आप रहते हैं?' उन्होंने कहा—'हाँ।' मैंने कहा—'एक जिस्म में आप रहते हैं, तो वह जिस्म आपका है और जो सब जिस्मों—रूपों में रहता है, तो इस न्याय से सब जिस्म—सब रूप उसके क्यों नहीं होंगे?'

ईश्वर को मोहितेकुल्ल (सर्वव्यापक) कहते हैं। ईश्वर सबमें है। आप एक शरीर में रहते हैं, तो आप उसको अपना रूप कहते हैं, उसी तरह जो सभी शरीरों में है, वे सब रूप उसके हैं। जो सबमें व्यापक है, वह इस नेत्र से ग्रहण होने योग्य नहीं है। वह अनादि, अनंत, असीम है, वह एक है। अनेक रूपों में रहते हुए वह एक ही है। गंगाजी के जल में अनेक बुदबुदे निकलते हैं, सभी गंगाजी के जल ही हैं। परमात्मा से सभी उत्पन्न होते हैं। परमात्मा एक ही हैं। वह आप-ही-आप है, तो कोई उसका सहारा नहीं है। जो सबसे प्राचीन होता है, वह अवकाश छोड़े बिना होता है। अवकाश छोड़कर रहे, तो पहले अवकाश ही होगा। जो सबके अंदर और सबके बाहर भी है, वह परमात्मा है। 'है सबमें सबही तें न्यारा'—कबीर साहब। गुरु नानक ने आगे कहा है—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा ।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा ।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु ।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु ।।आदि।

अगर कोई तर्क करता है कि ईश्वर नहीं है, तो मैं प्रश्न करता हूँ कि एक अनादि-अनंत तत्त्व को मानते हो कि नहीं? यदि नहीं मानोगे तो सभी को सादि-सान्त कहना पड़ेगा, तो प्रश्न होगा कि उन सादि-सान्तों के परे क्या है? इसके उत्तर में जबतक अनंत नहीं कहा जाए, तबतक इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं हो सकता। सान्तों का बड़े-से-बड़ा मंडल बना लो, फिर भी उसका मण्डल सान्त ही होगा। सूर्य-चन्द्र, सारा ब्रह्माण्ड सान्त ही सान्त है। अनेक ब्रह्माण्ड भी अनंत नहीं होते। विराट रूप भी अनंत नहीं है।

सीताजी की खोज के लिए जब बड़े-बड़े वानर चले और समुद्र के किनारे पहुँचते हैं, भूख-प्यास से विकल होते हैं, उस समय एक विवर से एक पक्षी को निकलते और फिर उसमें प्रवेश करते देखा। ऐसा देखकर सभी बन्दरों ने एक दूसरे का हाथ पकड़कर उस गुहा में प्रवेश किया। वहाँ एक तपस्विनी तेजयुक्त माई को देखा। उस तपस्विनी ने उन बन्दरों को फल खाने और जल पीने का आदेश दिया, आँखें बंद करने के लिए माई ने कहा। आँखें बंद करने के बाद आँखें खोलने पर फिर सबों ने अपने को समुद्र के किनारे पाया। अब उस समुद्र को कौन पार करे? जाम्बवन्त ने कहा—'जिस समय मैं जवान था, विराट् रूप भगवान की मैंने दो घड़ी में सात प्रदक्षिणा की थी, लेकिन अब तो मैं बूढ़ा हो गया हूँ।' इससे जाना जाता है कि वह विराट् रूप भी अनंत नहीं था। कुरुक्षेत्र के मैदान में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो विराट् रूप दिखाया था, वह भी अनंत नहीं था; क्योंकि उस विराट् रूप के अतिरिक्त स्थान

बचा था, जिसमें कौरव—पाण्डव दल के लोग भगवान के मुँह में प्रवेश करते थे और मर-मर कर गिरते थे। अर्जुन भी एक जगह खड़ा होकर डर रहा था। अनादि-अनंत तत्त्व ही असीम होगा, सारे सातों के पार में एक अनंत को नहीं मानने से नहीं बनता। ईश्वर-स्वरूप को जाने बिना ईश्वर-भक्ति करनी हैरानी मात्र है, जैसे निर्दिष्ट स्थान को जाने बिना कोई यात्रा करता है। गुरु नानक ने कहा है—

राज महि राज योग महि योगी।
तप में तपीसुर गृहस्थ महिं भोगी।
ध्याय ध्याय भक्तः सुख पाया।
नानक तिस पुरुष का किन अंत नहीं पाया।।

तुम ईश्वर का ध्यान करो, ईश्वर तक पहुँचोगे, लेकिन उसका अंत नहीं पाओगे।

श्रीमद्भगवद्गीता में तीन पुरुषों का वर्णन हुआ है। क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष, और पुरुषोत्तम। जड़—अपरा प्रकृति नाशवान है। दूसरी परा प्रकृति है, जो चेतनात्मिका है, इसका नाश नहीं होता, पर ससीम है, जड़ से पृथक पदार्थ है। नाशवान क्षर पुरुष, अनाश अक्षर पुरुष है। परमात्मा क्षर और अक्षर से, सत् और असत् से, नाशवान और ससीम अनाश से भी ऊपर है, वही पुरुषोत्तम है। इस पुरुषोत्तम पुरुष को जानो। उस तक पहुँचने का यत्न खोजो। तुम भक्त बनो, नहीं तो नाशवान पदार्थों के बीच में रहते हुए ऊँचे-नीचे लोकों में भ्रमते रहोगे, आवागमन के चक्र में पड़े रहोगे।

ईश्वर की खोज बाहर में करने की जरूरत नहीं। अंदर में खोज करो। परमात्मा इन्द्रियातीत है। इसलिए बाहर में नहीं पहचान सकोगे। अंदर-अंदर चलनेवाला इन्द्रिय ज्ञान से छूटता है, चौथी अवस्था के शिखर पर पहुँचता है, कैवल्य दशा प्राप्त करता है, वही ईश्वर को जानने का अधिकारी है।

'विगत विकार जान अधिकारी।'
'हे नेरे सूझत नहीं, ल्यानत ऐसो जिन्द।
तुलसी या संसार को, भयो मोतियाबिन्द।।'
—गोस्वामी तुलसीदासजी

यह कैसे छूटेगा? गुरु नानकदेव ने कहा—

घरि महि घरु देखाइ देइ सो सतगुरु परखु सुजाणु।
पंच सबदु धुनिकार धुन तहँ बाजै सबदु निसाणु।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

मायाबस मति मन्द अभागी। हृदय जवनिका बहु विधि लागी।।
ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं।।
काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ पड़े तम कूप।।

अपने को अंधकार के कुएँ से निकालो, तब काम-क्रोधादि विकार घटते-घटते घटेंगे और परमात्म-स्वरूप का दर्शन होगा। ईश्वर इन्द्रियातीत है, आत्म-गम्य है। जिस इन्द्रिय का जो विषय है, उसके अति-रिक्त दूसरे विषय को वह ग्रहण नहीं कर सकती। आँख का विषय कान से और कान का विषय नाक से नहीं ग्रहण हो सकेगा। आँख का विषय आँख से और कान का विषय कान से ही ग्रहण होगा।

परमात्मा क्या है? जो चेतन आत्मा से ग्रहण हो। जैसे रूप विषय क्या है? जो तुम आँख से ग्रहण करो। आत्मगम्य परमात्मा पुरुषोत्तम है। तुम तबतक उसको नहीं पकड़ सकते, जबतक तुम शरीर-इन्द्रिय में फँसे हो। शरीर-इन्द्रिय से छूटने पर ही परमात्मा को प्राप्त कर सकते हो। बाहर में कितना उपाय करो, प्राप्त नहीं कर सकते। मीराबाई का एक शब्द है—

ऊँची अटरिया लाल किवड़िया निर्गुण सेज बिछी।।
पचरंगी झालर शुभ सोहै, फूलन फूल कली।
बाजूबन्द कडूला सोहै, माँग सिन्दूर भरी।।
सुमिरण थाल हाथ में लीन्हा, शोभा अधिक भली।
सेज सुखमणा 'मीरा' सोवै, शुभ है आज घड़ी।।

जैसे ईशावास्योपनिषद् में है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यास्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ।।

अर्थात् आदित्य मण्डलस्थ ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढँका हुआ है। हे पूषण! मुझ सत्यधर्मा को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिए तू उसे उघाड़ दे।

साधक अपने अन्दर पाँच तत्त्वों के रूप देखता है। पृथ्वी का रंग पीला, जल का रंग लाल, अग्नि का रंग काला, वायु का रंग हरा और आकाश का रंग साफ है। 'फूलन फूल कली' का अर्थ है—मण्डल खुल गया। बाजूबन्द अर्थात् शम और कडूला अर्थात् दम। तात्पर्य यह कि दम इन्द्रियनिग्रह और शम मनोनिग्रह है। मीरा कहती है कि इन्द्रियनिग्रह और मनोनिग्रह युक्त हो जाओ, तो मूर्द्धा में प्रकाश-ही-प्रकाश देखोगे। सिंदूर लाल रंग का होता है, लाल रंग प्रकाश का है। मीरा सुषमना की सेज पर सोती है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण; एक पर से एक उतारो, पवित्र हो जाओगे। इस प्रकार कर लेने पर अपरा प्रकृति मंडल के बहुत से शब्दों को सुनोगे। यह रास्ता बहुत बारीक है। ईसा मसीह अच्छे साधु थे, उन्होंने कहा है—'सकेत फाटक से प्रवेश करो; क्योंकि चौड़ा है वह फाटक और चाकर है वह मार्ग, जो विनाश को पहुँचाता है और बहुत हैं, जो उसमें पैठते हैं। वह फाटक सकेत है और वह मार्ग सकरा है जो जीवन को पहुँचाता है और थोड़े हैं, जो उसे पाते हैं।'

राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा ।।
विधि निषेधमय कलिमय हरनी। करम कथा रविनंदिनी बरनी ।।

कहते हैं कि सरस्वती नदी अंत:सलिला है। इड़ा-पिंगला गंगा-यमुना है और सरस्वती सुषुम्ना है। सुषुम्ना में सेज लगाना शुभ घड़ी है। कबीर साहब को कैसे ज्ञान हुआ, इस पर उन्होंने स्वयं कहा है—

कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय ।।
मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक ।।

केवल पढ़ने से क्या होता है? पढ़ने का महत्त्व तब है, जबकि उसके अनुकूल चला भी जाय। विद्या पढ़ने से मनाही भी नहीं। विद्या भी पढ़ो और साधन भी करो। तत्त्व क्या पाना है, उसके लिए यत्न करो। ■

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद के सिविल लाईन स्थित सत्संग भवन के प्रांगण में दिनांक ३०.९.१९६३ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१९३. पिण्डी मन की धारों को समेटो

प्यारे प्रिय दर्शनो!

किसी को कोई काम करना होता है और उसके लिए उसको कुछ सहारा मिलता है, तो वह बहुत प्रसन्न होता है और काम कर लेता है। ईश्वर-दर्शन सत्संग का सर्वश्रेष्ठ विषय है। इसका सहारा कुछ मिल जाय तो बहुत अच्छा हो। यहाँ ईश्वर-दर्शन के लिए पूजा-पाठ, कीर्तन आदि जितने करते हैं, इनमें से कोई ऐसा सहारा नहीं है, जो हम जानें कि अपने से आप ईश्वर प्रदत्त सहारा मिल रहा है। हमलोग अपनी श्रद्धा के अनुकूल प्रतिमाओं का दर्शन करते हैं और समझते हैं कि यह सहारा है। इससे भी कोई विशेष चीज मिले जो हमारी बनाई नहीं हो, स्वयं ईश्वरकृत हो तो विशेष सहारा जानने में आवे। ईश्वर बाह्य इन्द्रिय

का विषय नहीं है, मन बुद्धि आदि का भी विषय नहीं है, चेतन आत्मा का विषय है। हमलोगों को यदि चेतन आत्मा का ज्ञान हो कि वही हम हैं तो हमलोग उस सहारे को पहचान सकते हैं।

मन में चेतन आत्मा दूध में घीउ की तरह सम्मिलित है। जहाँ मन होगा, वहीं चेतन आत्मा होगी। मन सहित चेतन आत्मा इस शरीर में है। शरीर के अंदर में ही वह सहारा मिले तो बड़ा अच्छा हो। पहले ही मन को चेतन आत्मा से फुटाया नहीं जाता, इसलिए पहले स्थूल चिह्न लेते हैं। सो भी एक नहीं, किसी की श्रद्धा राम में, किसी की श्रद्धा कृष्ण में, किसी की श्रद्धा गुरु में, किसी की श्रद्धा देवी में, किसी की श्रद्धा शिव में आदि। ये सब-के-सब बाह्य इन्द्रिय के सहारे मन से पकड़ते हैं और उसको अपना सहारा कहते हैं। परंतु जब केवल चेतन आत्मा रहे, मन बुद्धि आदि इन्द्रिय नहीं रहे, तब परमात्म-स्वरूप को ग्रहण कर सकते हैं। जो मन बुद्धि आदि इन्द्रिय से ग्रहण नहीं हो, वह स्वरूप कैसा है? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

अनुराग सो निजरूप जो जग तें विलच्छन देखिये।
संतोष सम सीतल सदा दम देहवन्त न लेखिये।।
निर्मल निरामय एकरस तेहि हरष सोक न व्यापई।
त्रय लोक पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई।।

चेतन आत्मा बूढ़ा, बच्चा, जवान नहीं होती। यह चेतन स्वरूप है, इसका सहारा कैसा होना चाहिए? इसका सहारा बाहर में हो, ऐसा नहीं। लोगों ने अपने अंदर की खोज की, जैसे उपनिषद् के ऋषि लोग। और वेद की आज्ञा के अनुकूल जिन्होंने प्राप्त किया, वह है अंतर्ज्योति और अंतर्नाद। परमात्मा की ज्योति और नाद तुम्हारे अंदर है, ये सहारे मनुष्यकृत नहीं, ईश्वरकृत हैं। अंदर प्रवेश करो, पाओगे। वेद में है, अंतर्नाद आत्मा का पापशोधक नाद है। साधक चमकती हुई ज्योति को अपने अंदर पाते हैं। अपने अंदर ज्योति और नाद नहीं है, इसके माननेवाले को समझना चाहिए कि बिना प्रकाश के हम बाहर की चीज को नहीं देख सकते। जातीय पदार्थ को जातीय पदार्थ से सहारा मिलता है। यदि हमारी दृष्टि ज्योति की जाति की नहीं होती तो बाहर की ज्योति का सहारा नहीं मिलता। दूसरी बात है कि साधक अंधकार में ध्यान करता है, उसको प्रकाश मालूम होता है। यह ऐसा प्रकाश है कि संसार के सभी प्रकाश और सभी खूबसूरतियाँ किसी काम की नहीं रहती। उस प्रकाश के सामने यह सूर्य भी अंधकार है। जो करके देखने की चीज है, उसको बिना किए कोई कैसे अनुभव कर सकता है। अंदर में प्रत्यक्ष प्रकाश है, इसको करके देखो तो विश्वास होगा। हमारी दृष्टि जो ज्योति स्वरूप है, अपने अंदर के प्रकाश को देख ले तो उसका मुकाबला कोई खूबसूरत नहीं कर सकता। जिस रूप में तेज नहीं है, वह भद्दा लगता है। 'जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं' मृतक शरीर में से ज्योति निकल जाती है, तब वह पहले जैसा सुन्दर नहीं लगता। इस शरीर में ज्योति अवश्य है।

मन ही सन्मुख नूर है, मन ही सन्मुख तेज।
मन ही सन्मुख जोति है, मन ही सन्मुख सेज।।
—संत दादू दयालजी

इस शरीर में मन अपना स्थान कहीं अवश्य रखता है। आँख के अंदर उसका वासा है। दायीं-बायीं आँखों के बीच अंतरस्थित शिवनेत्र में इसका निवास है। इसके सामने ज्योति है।

मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ।
मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ।।

पिण्डी मन की धारों को समेटो और उसके केन्द्र में उसको लय करो। इसका यत्न जानो और

अभ्यास करो, तब मन स्थिर होगा। मन की स्थिरता में सब काम बन जाएगा। सूरदासजी ने कहा है—

नयन नासिका अग्र है, तहाँ ब्रह्म को वास।
अविनाशी विनसै नहीं, हो सहज ज्योति प्रकाश।।

बाबा नानक ने कहा है—

घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।

निडर ध्यान लगाओ, अंधकार का बज्र कपाट खुल जाएगा। ईश्वर की ज्योति जो सब में समाई है, देखोगे। सारे संसार में देखिए क्या खेल है? संसार से प्रकाश को हटाइए तो कोई काम नहीं होगा। सूर्य हट जाएगा तो गरमी हट जाएगी, कोई काम नहीं हो सकेगा। शब्द को बचपन से, जवानी और बुढ़ापे तक सीखते हैं। कठिन से कठिन काम शब्द से होता है। अभी चीन से अनबन हो गया है और यदि शब्द से लिखकर वा बोलकर मेल हो जाय तो सारा अनबन मिट जाएगा।

ईश्वर की उपासना में भी शब्द और प्रकाश का सहारा है। वह प्रकाश भौतिक प्रकाश से भिन्न प्रकार का है। ईश्वर प्रकाश स्वरूप है, अंधकार स्वरूप नहीं। ऐसा नहीं कि कोई अभ्यासी अपने अंदर सूर्य, चन्द्र, तारे नहीं देखता। अभ्यासी अपने अंदर में प्रकाश देखता है तो उसके लिए बाहर का प्रकाश फीका पड़ जाता है। यत्न करके इनको देखना चाहिए।

ईश्वर के प्रेमियो! केवल बाहर-ही-बाहर ईश्वर को नहीं खोजो। बाहर-बाहर खोजने के बाद अन्दर-अन्दर भी खोज करो। बिना किसी के सिखाए आप एक अक्षर भी नहीं लिख सकते। बुद्ध भगवान ने कहा है—'ज्ञानी केवल सिखानेवाले हैं, करना तुमको ही पड़ेगा।' (तुम्हेहि किच्चमातप्पं अक्खातारो तथा गतो—धम्मपद, मग्गवग्गो)। अपना सिमटाव करो, जहाँ मैंने बताया है। सदग्रंथ, गुरु का वाक्य और अपना विचार मिल जाय तो कितना विश्वास होगा! गुरु नानक ने कहा है—'अंतरि जोति भई गुरु साखी चीनै रमा करंमा।' अंतर में प्रकाश हुआ, यह गुरु की गवाही है और तब गुरु के दयादान को पहचाना। इस सहारा को पकड़ो। जो इसको पकड़ता है, वह विषयानन्द में नहीं दौड़ता। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

ब्रह्म पियूष मधुर शीतल, जो पै मन सो रस पावै।
तो कत मृगजल रूप विषय, कारण निसि वासर धावै।।

विषय-रस में जो दौड़ता है, इसका मतलब है कि ब्रह्म-पीयूष उसको मिला नहीं है। मनुष्य अपने अंदर अभ्यास करके ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद को प्रत्यक्ष देख सुन सकता है, यही सहारे हैं। संतों की वाणियों में हम यही बात पढ़ते हैं। क्या वेद, और क्या उपनिषद् ज्ञान, सबमें यह बात है। आज भी जो करते हैं, उनको चिह्न मिलता है। भजन करने की भी शक्ति होती है। जो अभ्यास को बढ़ा लेते हैं, उसको चिह्न देखने में आता है। जो बाह्य दृष्टि से कुछ देखना चाहता है, वह नहीं देख सकता। अंतर्दृष्टि करो, तब देखने में आवेगा। आँख बंद करो, मानसिक रचना को छोड़ो। बाहर का देखना छोड़ो, अंतर में दृष्टि रखो, तब देखने में आवेगा कि अंदर में क्या है। पवित्रता से रहो, ईश्वर-भजन करो। श्रवण, मनन और साधन होना चाहिए। इसमें बल पाने के लिए सदाचार का पालन आवश्यक है। सदाचार पालन के बिना अंतर्ज्योति और अंतर्नाद को कोई नहीं पा सकता। कबीर साहब ने कहा है—

गगन की ओट निशाना है।
दहिने सूर चंद्रमा बायें, तिनके बीच छिपाना है।।
तन की कमान सुरत का रोदा, शब्द बान ले ताना है।
मारत बान बिंधा तन ही तन, सतगुरु का परवाना है।।
मार्‌यो बान घाव नहिं तन में, जिन लागा तिन जाना है।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जिन जाना तिन माना है।।

उस निसाने को कौन पावेगा? तन की कमान और सुरत की डोरी बनाओ जिसकी इन्द्रियाँ बेकाबू हैं, उसकी डोरी खुली हुई है। उसपर से तीर नहीं छूट सकता। तमाम शरीर में जो चेतन की धार बिखरी है, उसको केन्द्र में केन्द्रित करो, जहाँ गुरु ने बताया है। उस निशाने पर जो कोई ख्याल रखता है, तो मन की सब धारें एक जगह स्थिर होती हैं। जैसे दोनों हाथों से किसी चीज को बहुत मजबूती से (पूरा बल से) पकड़ने से शरीर का सारा बल उस ओर हो जाता है।

गुरु नानक ने कहा है—'बेड़ा बाँधो सुरत का चढ़ि उतरो भवजल पार।' सुरत का बेड़ा बनाओ। यदि यत्न जानते हैं तो कीजिए। नहीं जानते हैं तो किसी से जानकर कीजिए। सदाचार से इसके अभ्यास करने में बल मिलता है। जिसका मन विषयों में लगा रहता है, उसको बल नहीं मिलता। सदाचार के पालन में वैराग्य होता है। विषयों को ग्रहण नहीं करने से वैराग्य होता है। जो अंतस्साधन करता है, इन्द्रियों से चेतनधारा खिंचकर केन्द्र में केन्द्रित करता है, तो उसको जो रस मिलता है, उसको बाहर का सब रस फीका पड़ जाता है। इसलिए 'नव दरवाजे नवेदरफीके रस अमृत दशवें चुआीजै।'

चाहे बाबू साहब का कपड़ा पहनकर, चाहे लंगोटी पहनकर करो। विद्वान करो, अविद्वान करो। स्त्रियाँ करो, पुरुष वर्ग करो। सभी देश और सभी जाति के सभी कोई इसका अभ्यास करें। इसमें शरीर को तोड़ने-मरोड़ने की जरूरत नहीं है। कबीर साहब ने कहा है—

न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।

इस विषय को थोड़ा-थोड़ा ही सुनना चाहिए। यह कोई कथा नहीं है, सैर नहीं है, जिसमें अधिक मन लगे। अधिक सुनने से भी क्या फायदा, यदि उसमें से करने योग्य कर्मों को नहीं किया। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद के सिविल लाईन स्थित सत्संग भवन के प्रांगण में दिनांक १.१०.१९६३ ई० के प्रात:कालीन सत्संग में हुआ था।

१९४. भाठा से सीरा चलो

प्यारे प्रिय दर्शनो !

मैं ईश्वर-भक्ति के विषय पर कहता चला आ रहा हूँ। अभी जो कुछ और कहना चाहिए समयानुकूल वही कहूँगा। ईश्वर-भक्ति करने के लिए पहले ईश्वर की स्थिति का ज्ञान, उसके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। फिर किस साधन से उसकी प्राप्ति होती है, जानना चाहिए। यह प्राप्ति शरीरयुक्त आत्मा को वा केवल चेतन आत्मा को होती है? इन सब बातों पर मैं अभी कहूँगा। ईश्वर की स्थिति के बारे में समझिए कि उसके पहले का कुछ नहीं है। जो परम प्राचीन है, वही ईश्वर है। ईश्वर से पहले का कुछ मान लेने में बड़ी गलती होगी। ईश्वर से परे का जो होगा, वह ईश्वर के काबू का नहीं होगा। लेकिन ईश्वर के काबू से बाहर कुछ है, ऐसा मानना भूल है। आज विद्या के मैदान में यह भी प्रचार हो रहा है कि ईश्वर कुछ नहीं है। वे तर्क से मानते हैं, श्रद्धा से नहीं मानते। मैं तर्क पर ही कुछ कहता हूँ। जो अनीश्वरवादी हैं, जिनका तर्क केवल बौद्धिक है, उसके लिए कहता हूँ। आप दार्शनिक वा फ्लासफर

वा वैज्ञानिक कुछ हो, यह बताओ कि सबसे पहले का कुछ मानते हो वा नहीं? सबसे पहले का कुछ होना आवश्यक है। सबसे पहले के जिस कुछ को मानना चाहिए,वही ईश्वर है। सबसे पहले का जो होगा, उसके अतिरिक्त कुछ अवकाश छूटे, ऐसा नहीं होगा। जो सबसे पहले का होगा, वह किसी अवकाश में किसी आधार पर नहीं रहेगा। जहाँ वह नहीं हो, ऐसा स्थान नहीं होगा। अर्थात वह आदि-अंत रहित अनंत, अखण्ड होगा। उपनिषद् पाठ करके वा वेद संहिताओं को पाठ कर जानो तो मालूम होगा कि परमात्मा अखण्ड, अनंत असीम है। इसके अतिरिक्त किसी और परम प्रचीन का होना, असंभव है। सभी इसके अंदर रहेंगे। जो अंदर में होगा, वह उसके प्रभाव और अधीन में होगा। जो उसके अधीन में है, तो वह उसका ईश्वर है। इन्द्रियों को ग्रहण होने योग्य पदार्थ नाशवान है, ईश्वर अनाश है। जो सबसे विशेष व्यापक होता है, वह सबसे विशेष सूक्ष्म होता है। जो जितना सूक्ष्म होता है, वह उतना ही अधिक व्यापक होता है। एक सेर बर्फ की व्यापकता से उसके जल की और उस जल की व्यापकता से उसके वाष्प की व्यापकता अधिक होगी। जो जितना अधिक व्यापक होगा, वह उतना ही सबसे अधिक सूक्ष्म होगा। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म पदार्थ का ग्रहण होना नहीं होता। परमात्मा सबसे विशेष सूक्ष्म है, उसको इन्द्रियों, बुद्धि और मन से नहीं पा सकते। क्योंकि ये बहुत पीछे बने। परमात्मा के समक्ष ये अत्यन्त स्थूल हैं। परमात्म-स्वरूप के लिए संतों के ये वचन हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूह अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।

— कबीर साहब

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।
जंत उपाइ कालु सिरिजंता बसगति जुगति सबाई।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई।।
सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।

—गुरु नानक साहब

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

इसी ईश्वर को उपनिषद् में आत्मा कहकर वर्णन किया गया है। उपनिषद् में ऐसा भी लिखा है कि—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

—कठोपनिषद् , अध्याय २, वल्ली २

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अंतरात्मा प्रत्येक

रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

उसको ग्रहण करने योग्य बाह्य इन्द्रिय नहीं है। इन्द्रियाँ उसकी बराबरी में स्थूल-से-स्थूल हैं। स्थूल इन्द्रिय से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता। इस शरीर के अंदर और क्या है? पाँच स्थूल तत्त्व (मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश), पाँच सूक्ष्म तत्त्व (रूप, रस,गंध, स्पर्श और शब्द), अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, दशेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह, गुदा, लिंग; ये कर्मेन्द्रियाँ और आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा; ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), मन चैतन्य, संघात (कहे गए का संघरूप), धृति (धारण करने की शक्ति) और इनके विकार—इच्छा, द्वेष, सुख और दुःख—इन इकतीस तत्त्वों के समुदाय को सविकार क्षेत्र कहते हैं। इनके अतिरिक्त क्षेत्र को जाननेवाला चेतन आत्मा क्षेत्रज्ञ है। इसी के बल से मन,बुद्धि में बल है। इसके बिना मन, बुद्धि से कुछ हो भी नहीं सकता और बाह्य इन्द्रिय तो और क्या कर सकती है? चेतन आत्मा से ही परमात्म-स्वरूप जाना जाता है, पहचाना जाता है, इसको कभी मत भूलो। इसको जो नहीं जानता है वह, जिसको ईश्वर नहीं कहना चाहिए, उसको ईश्वर कहकर मानता है। क्षेत्रज्ञ ही आत्मतत्त्व है। क्षेत्र का कोई टुकड़ा नहीं। आँख को रूप देखने का ज्ञान है, कान का विषय नाक का विषय नहीं हो सकता। एक-एक इन्द्रिय का एक-एक विषय है। चेतन आत्मा का विषय परमात्मा की प्राप्ति है। शरीर में रहकर चेतन आत्मा शरीर को जानती है, अपने आप को नहीं। तत्त्वरूप में चेतन आत्मा वैसी ही है जैसे परमात्मा। परमात्मा का यह अभिन्न अंश है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी।।

आँख को जैसे आँख से ही पहचानते हैं, बीच में आइने का साधन लेकर। उसी तरह चेतन आत्मा अपने को और परमात्मा को पहचानती है। इस तरह परमात्मा का ज्ञान जानना चाहिए। इसको जो भूल गया, वह वैसा ही है, जैसे कि कोई यात्री निर्दिष्ट स्थान को नहीं जानकर केवल यात्रा-ही-यात्रा करता है। किंतु जो निर्दिष्ट स्थान को जानकर चलेगा, वह अवश्य वहाँ पहुँचेगा। उस ईश्वर की भक्ति हम कैसे करें? यहाँ तो हम मन-बुद्धि का संग होकर ही कुछ कर सकते हैं। हमने जान लिया कि हम शरीर-इन्द्रिय से परे हैं। फिर भी बिना शरीर-इन्द्रिय के हम यहाँ कुछ कर नहीं सकते। फिर उस अव्यक्त परमात्मा में अपने को हम कैसे लगावें? मैं कहता हूँ, महाभारत की एक कथा सुनिए—

महाभारत के मैदान में पाण्डव पाँच भाई बचे और दुर्योधन वगैरह सभी मारे गए। बहुत दुःख की बात हुई कि घर में और पुरुष लोग कोई नहीं रहे, विधवा स्त्री-ही-स्त्री घर में रह गई। युधिष्ठिर बहुत दुःखी हुए और वे कहने लगे कि इस तरह के राज्य-भोग से जंगल में जाना ही अच्छा है। विधवाओं के करुण-क्रन्दन को सुनने की अपेक्षा जंगल के जन्तुओं की आवाज सुनना ही अच्छा है। इस तरह युधिष्ठिर को बहुत दुःखी देखकर व्यासदेवजी ने उनको बहुत समझाया और उनको यज्ञ करने कहा। युधिष्ठिर बोले—मेरे पास धन कहाँ, जो मैं यज्ञ करूँ? अधीनस्थ राजाओं के धन भी इसी युद्ध में समाप्त हो गए। व्यासदेवजी ने कहा—मैं तुमको बताता हूँ—राजा मरुत ने यज्ञ किया था और ब्राह्मणों को दान दिया था। वह धन इतना अधिक था कि वे लोग सब ले जा न सके। वह धन हिमालय की अमुक जगह में गड़ा है। वहाँ जाने का अमुक रास्ता है, उस रास्ते से जाओ तो वहाँ धन मिलेगा और तुम उसे ले आकर यज्ञ करो। पाँचो भाई पाण्डवों ने व्यासदेवजी के वचन में विश्वास किया। व्यासदेवजी के बताए अनुष्ठान से अव्यक्त धन में मन लगाकर

कर्म किया और व्यासदेवजी के बताए मार्ग से चलकर उस अव्यक्त धन को प्राप्त कर यज्ञ किया।

इसी तरह संतों के वचन में विश्वास करके और यह जानकर कि उपर्युक्त अव्यक्त परमात्म-स्वरूपी केवल चेतन से आत्मगम्य है और तीन अवस्थाओं में रहते हुए मन-बुद्धि आदि इन्द्रियों का ज्ञान होता है, इसीलिए चौथी अवस्था में उससे भिन्न ज्ञान होना चाहिए। अतएव तीनों अवस्थाओं के आगे चौथी अवस्था में पहुँच होनी चाहिए।

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

चौथी अवस्था में जाकर संसार और शरीर का ख्याल नहीं रहता है। बहिर्मुख से अंतर्मुख होने का यत्न गुरु से जो जानता है और करता है तो केन्द्र में केन्द्रित होता है। उसको ज्योति मिलती है और ज्योति मिलने पर फिर नाद की अनुभूति होती है। 'न नाद सदृशो लयः।'—शिवसंहिता

मन में बहुत तरंग है, सभी तरंग नाद में समाप्त होते हैं। नादविन्दूपनिषद् में लिखा है—

मकरन्दं पिबन्भृंगो गंधान्नापेक्षते यथा।
नादासक्तं सदाचित्तं विषयं न हि कांक्षति ।।
बद्धः सुनाद गन्धेन संत्यक्त चापलः ।।

अर्थात् जिस प्रकार मधुमक्खी मधु को पीती हुई उसकी सुगंध की चिन्ता नहीं करती है, उसी प्रकार चित्त जो नाद में सर्वदा लीन रहता है, विषय चाहना नहीं करता है। क्योंकि वह नाद की मिठास में वशीभूत है तथा अपनी चंचल प्रकृति को त्याग चुका है।

नाद ग्रहणतश्चित्तमन्तरंग भुजंगमः।
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः कुत्रचिन्नहि धावति।।

नागरूप चित्त नाद का अभ्यास करते-करते पूर्ण रूप से उसमें लीन हो जाता है और सभी विषयों को भूलकर नाद में अपने को एकाग्र करता है।

मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।

नाद मदान्ध हाथी रूप चित्त को जो विषयों की आनंदवाटिका में विचरण करता है, रोकने के लिए तीव्र अंकुश का काम करता है।

नादोऽन्तरंग सारंग बन्धने वागुरायते।
अन्तरंग समुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा।।

मृगरूपी चित्त को बांधने के लिए यह (नाद) जाल का काम करता है। समुद्र तरंगरूपी चित्त के लिए यह (नाद) तट का काम करता है। शंकराचार्य ने नादानुसंधान की स्तुति की है—

नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महेतत्त्वपदंलयानाम्।
भवत्प्रसादात् पवनेन साकं विलीयते विष्णु पदे मनो मे।।

हे नादानुसंधान! आपको नमस्कार है, आप परमपद में स्थित कराते हैं। आपके ही प्रसाद से मेरा प्राणवायु और मन; ये दोनों विष्णु के परमपद में लय हो जाएँगे।

यह नादानुसंधान है, जिससे मन शम को प्राप्त करता है। भगवान श्रीराम शवरी से कहते हैं—'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।' श्रीराम ने शवरी को बहुत ऊँचा करके दिखाया। भक्ति के लिए मोटा-मोटी जितने बातें हैं, उससे कितनी अधिक सूक्ष्म बातें हैं। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'अपने को जल में मछली की तरह उलटो। भाठा से सीरा चलो। शक्कर और बालू को अलग-अलग करने का अर्थ जड़-चेतन को अलग-अलग करके जानना है।'

यह संसार स्त्री और पुरुष का है। इन दोनों से संसार होता है। इन दोनों में से किसी को हटा दो, संसार नहीं रहेगा। ये दोनों अच्छी तरह अपने को नहीं रख सकें, तो संसार में भ्रष्टाचार फैल जाएगा। और दोनों अच्छी तरह रहें तो संसार से भ्रष्टाचार

चला जाएगा। स्त्रियाँ पातिव्रत धर्म का अंग-अंग पालन करें और पुरुष भगवान श्रीराम की तरह एकपत्नीव्रतवाला बने। आज देश में भ्रष्टाचार बहुत है। पहले पराधीनता के कारण दबे थे। आज भी ज्ञान का पूरा विकास नहीं हुआ है। देश के बड़े-बड़े लोगों ने बहुत कष्टों को झेलकर स्वराज्य प्राप्त किया। स्वराज्य हुआ, लेकिन सुराज नहीं हुआ। सुराज में चोरी, डकैती, व्यभिचार, घूस आदि का लेना-देना नहीं होता। आज देश में देखो कितना अत्याचार फैला हुआ है। इसको रोकने के लिए सरकार का कितना खर्च होता है। स्त्री-पुरुष दोनों अपने को संयम में रखो, तो सभी ठीक होंगे। यह कानून के डण्डे से ठीक नहीं हो सकता, कानून का डण्डा टूट जाएगा, ठीक नहीं हो सकता। जहाँ ईश्वर की भक्ति है, वहाँ बौद्धिक बल मजबूत होता है। ईश्वर भजन कीजिए। सदाचार का पालन कीजिए। अपने अंदर चलो। चाहिए अच्छी-अच्छी चीजों को लेना और गौण वस्तुओं को छोड़ते जाना। गुरु नानक ने कहा—'भगता की चाल निराली।' और कबीर साहब ने कहा—' भक्ति सतोगुर आनी।' संत लोग केवल कह गए, ऐसी बात नहीं। वे स्वयं कर गए और कह भी गए। थोड़ा भी करो तो बुनियाद होगा। इसलिए करो, अवश्य करो। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद के सिविल लाईन स्थित सत्संग भवन के प्रांगण में दिनांक १.१०.१९६३ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१९५. चेतन आत्मा को शरीर का बन्धन

धर्मप्रिय सज्जनो!

ग्रंथों के पाठ में जो विषय है, उस विषय से कोई विशेष बात कहे, संभव नहीं। हाँ, कहीं-कहीं ग्रंथों के वचनों का कुछ बोध दिलाना वा उस पर प्रकाश डालना हो सकता है। संतों के वचन तो आप ही साफ हैं, दूसरे क्या साफ कर सकते हैं।

हमलोग बंधन में पड़े हैं। इनसे छूटने के लिए वेद, उपनिषद् और संतवाणियों में उपदेश-वर्णन है। चेतन आत्मा को शरीर का बंधन, इन्द्रियों का बंधन है ही। फिर संसार का बंधन, मन की अनेक इच्छाओं का बंधन संसार के पदार्थ और सरोकारी सभी बंधन हैं। इनसे छूटना मोक्ष है। इस मोक्ष लाभ करने का उपदेश संतों ने दिया है। वे कहते हैं—'परमात्मा पर कोई बंधन नहीं है।'

जो भक्ति की चरम सीमा को खतम कर चुके हैं, वे परमात्मा की तरह निरबंध हैं। उस परमात्मा को प्राप्त कर सभी जन मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। परमात्मा की ओर अपनी वृत्ति को लगाना, बंधनों से छूटने का यत्न है।

ईश्वर माया से परे हैं। माया के अंदर सात्त्विक, राजस और तामस; तीनों तरह के कर्म होते हैं। ये ही सत्, रज, तम तमाम संसार में हैं। सात्त्विक कर्म शुभ कर्म वा पुण्य कर्म करने को कहते हैं। कुछ भले कर्म और कुछ बुरे कर्म मिलाकर कर्म करते हैं, यह राजस है। आलस में पड़ा रहना, बिना सोचे समझे कर्म करना तामस कर्म है। इन तीनों प्रकार के कर्मों के फल का वेद में वर्णन है—

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मद्वाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम्।।

अर्थात् हे परमेश्वर! तू उत्तम कोटि के सात्त्विक

बंधन को उत्तम भोगों द्वारा शिथिल करता है और निकृष्ट तामस बन्धन को नीचे की जीव योनियों में भेज कर शिथिल करता है। उन सब भोगों के अनन्तर हे शरण में लेनेहारे, ऐ सूर्य के समान प्रकाशक! हम तेरे दिखाए कर्तव्य कर्म में चलकर अखण्ड सुख—मोक्ष को प्राप्त करने के लिए निष्पाप—स्वच्छ हो जाते हैं।

जो कोई सात्त्विक कर्म को इच्छा-रहित होकर करेगा, वह भजन अच्छी तरह करेगा और अंत में ईश्वर को प्राप्त कर मोक्ष पावेगा।

जो शरीर इन्द्रियों से जानो वह ईश्वर नहीं है। ईश्वर तुम्हारे निकट है, लेकिन तुमको दूर मालूम होता है।

है नेरे सूझत नहीं, ल्यानत ऐसो जिन्द।
तुलसी या संसार को, भयो मोतियाबिन्द।।

शरीर-इन्द्रिय चेतन आत्मा के ऊपर आवरण है, जैसे आँख की पुतली के ऊपर कोई आवरण आ जाता है तो उसको सूझता नहीं। डॉक्टर ऑपरेशन कर आँख की पुतली पर का आवरण हटा देते हैं, तब सूझने लगता है। इसी तरह साधना द्वारा चेतन आत्मा के ऊपर से शरीर-इन्द्रिय रूप आवरण के हटने पर ईश्वर-दर्शन होता है।

बाह्य उपासना से ही भक्ति का काम समाप्त हो जाएगा, ऐसा विश्वास मत करो। भक्ति के स्थूल विषय में रह जाना, उसके आगे सूक्ष्म को नहीं पकड़नेवाले का ज्ञान संकुचित है, अभी विकसित नहीं हुआ है, ऐसा कहा जाएगा। स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार की भक्तियों को जानो, सगुण-निर्गुण के परे जाकर ईश्वर का साक्षात् करो। तब सभी बंधन छूटेंगे और ईश्वर-दर्शन होगा। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश के मुरादाबाद स्थित संतमत सत्संग आश्रम मोहल्ला कानून गोयान में दिनांक ३.१०.१९६३ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१९६. मनोलय कैसे होगा?

प्यारे लोगो!

संतमत ईश्वर से मिलने का रास्ता बताता है। इसका क्या जरिया है, क्या अवलम्ब है, बताता है। जितने संतलोग हुए, उनको ईश्वर से मिलने का बड़ा चाव था, इसमें उनकी बड़ी आसक्ति थी। उसके लिए उन्होंने यत्न किया, पाया और जो आनन्द हुआ; उसको उन्होंने लुटाया अर्थात् लोगों से इसका यत्न बताया। तीसरी बात संतलोग बताते हैं कि संसार में किस रहनी से रहोगे कि इस संसार में भी कामयाबी होगी और ईश्वर को भी पाओगे।

वे ईश्वर-स्वरूप का निर्णय ऐसा ठोस रूप से करते हैं कि कठोर तर्क से भी नहीं टूट सकता। तुम अपने को सोचो। केवल शरीर में ज्ञान की शक्ति अपने आप है, यह सिद्ध नहीं होगा। मुर्दा शरीर को छोड़ दो, जिन्दा शरीर में ही अभी जाग्रत में ज्ञान की शक्ति काम करती है, स्वप्न में तो मालूम होता है कि 'मैं हूँ', लेकिन संसार के लोगों को मालूम होता है कि इसको वह ज्ञान शक्ति अब नहीं है, जो जागने में थी। नजदीक में कोई बैठा है, इसका भी उस सोए हुए को ज्ञान नहीं होता है। स्वप्न से सुषुप्ति में जाने पर केवल श्वॉस लेता है, जिसका भी ज्ञान उसको नहीं होता है। यदि केवल शरीर में ज्ञान रहता तो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों समयों में ज्ञान रहता, लेकिन तीनों समय एक

समान ज्ञान नहीं होता। चेतन आत्मा के कारण ही ज्ञान शक्ति शरीर में है। जगकर उठता है तो कहता है कि में अच्छी तरह सोया।

शरीर से चेतन आत्मा निकल जाती है तो शरीर को दफना दिया जाता है। तुम शरीर नहीं हो, शरीर की इन्द्रियाँ नहीं हो, शरीर में रहनेवाला हो। लेकिन तुम अपने को पहचानते हो कि तुम जो इस शरीर में हो, सो कैसा हो? जब तुम अपने को ही शरीर-ज्ञान में नहीं पहचानते हो तो ईश्वर को शरीर-ज्ञान में कैसे पहचानोगे? ईश्वर का ज्ञान बहुत गंभीर है। जैसे आप अपने को इन्द्रिय-ज्ञान से नहीं जान सकते, उसी तरह ईश्वर को इन्द्रिय-ज्ञान से नहीं जानोगे। संतों ने कहा है जैसे कोई आइना लेकर अपनी आँख को अपनी आँख से ही देख सकता है, इसी तरह से साधन भजन-रूपी आइना लो, तब तुम अपने को अपने से पहचानोगे। साधन भजन से वह वहाँ तक पहुँचता है, जहाँ सारे मायिक आवरणों को पार कर वह अकेले हो जाता है, कैवल्य दशा प्राप्त कर ईश्वर को पाता है।

हाथ-पैर आदि इन्द्रियाँ नौकर चाकर हैं। इनके द्वारा ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते। तुम इस शरीर के अंदर आवरणों में पड़े हो, साधन द्वारा इन स्थूल, सूक्ष्मादि शरीर रूप आवरणों को पार करो और कैवल्य-दशा प्राप्त करो, तब ईश्वर को पाओगे।

रास्ता का आरंभ कहाँ से होगा? जो जहाँ बैठा रहता है, वह वहीं से चलता है। इस शरीर में जीवात्मा जहाँ है, वहीं से चलेगा। रास्ता अपने अंदर में है। किसी भी देश के लोग हों, पढ़े हों, अनपढ़े हों, नीच जाति के वा ऊँच जाति के, स्त्री वा पुरुष कोई भी हों, सभी कोई आँख से देखते, मुख से खाते और कान से सुनते हैं। इसी तरह अंदर में चलने के लिए सबका एक ही रास्ता है। अगर समझदार आदमी हो तो समझ सकता है। तीन आवरणों को पार करना होगा। अंदर चलने के लिए आँख बंद करो, अंधकार मालूम होगा। यह बज्र कपाट है। इसको पार करो, यह पहला आवरण है। अंधकार को पार करोगे तो प्रकाश मिलेगा, इस आवरण को भी पार करो। तब क्या होगा? शब्द। शब्द, अंधकार और प्रकाश दोनों में व्यापक है। सूक्ष्म पदार्थ अपने से स्थूल में व्यापक होकर उससे अपना स्थान ऊपर रखता है। जैसे मिट्टी से जल, जल से अग्नि, अग्नि से वायु और वायु से आकाश सूक्ष्म है। इसलिए मिट्टी में जल, अग्नि, वायु और आकाश चारो व्यापक हैं। जल में अग्नि, वायु और आकाश; ये तीन व्यापक हैं। इस तरह आकाश सबसे अधिक सूक्ष्म होने के कारण अन्य चारो में व्यापक है और अपना मण्डल इनसे ऊपर भी रखता है। शब्द अंधकार और प्रकाश; दोनों में व्यापक रहकर अपना स्थान ऊपर रखता है। यह तीसरा आवरण है। इस शब्द को भी पार करने के लिए संतों ने कहा है। 'सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा' संत दादू दयालजी ने कहा है। घटरामायण पढ़ो, उसमें भी इन तीनों आवरणों को पार करने का वर्णन है। इन तीनों आवरणों के अंदर सहस्रदल कमल, त्रिकुटी, शून्य, महाशून्य आदि अनेक स्थान बना लो, लेकिन रहेंगे ये तीन आवरण ही। इन तीनों के परे परमात्म-स्वरूप है। संतों ने शब्द को पकड़ने के लिए दृष्टियोग साधन करने कहा। दृष्टियोग से ज्योतिमण्डल में पहुँचकर शब्द को पकड़ने कहा। यह हुआ—जीवात्मा, परमात्मा और सहारा। आचरण कैसा हो? तो कहा—

कहै कबीर निज रहनि सम्हारी। सदा आनंद रहैं नर नारी।।

अपनी रहनी सम्हाल कर रहो तो संसार और परमार्थ दोनों में कल्याण होगा। सदाचार पालन के लिए विशेष बात नहीं, पंच पाप—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इनको छोड़ो।

ईश्वर की भक्ति के साथ-साथ सदाचार पालन चलेगा। ईश्वर-भक्ति नहीं तो सदाचार पालन नहीं होगा। संसार का धन कमाने में सदाचार पालन की कोई बात नहीं। झूठ बोलकर लोग धन कमाते हैं और चिन्तित रहते हैं। आपलोगों के पास क्या धन है? अमेरिका के पास इतना धन है कि धन के मारे वहाँ के लोगों को नींद नहीं आती है। इंजेक्शन लेकर सोते हैं। संतों ने कहा कि ईश्वर-भजन करो और सदाचार से रहो। इसके लिए घर छोड़ने की जरूरत नहीं। घर में रहो, साधन-भजन करो। इसके लिए गुरु होना चाहिए, बिना गुरु के ईश्वर-भजन नहीं होगा।

सदगुरु वैद्य वचन विश्वासा। संयम यह न विषय कै आसा।।

तथा—

घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ।।
उनमुनी रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ।
सुरत निरत से मेला करिके, अनहद नाद बजावै ।।

—कबीर साहब

इस तरह घर में रहकर मनोलय की अवस्था में रहे। मनोलय कैसे होगा? नादानुसंधान से। 'न नाद सदृशो लयः।' परमात्मा में प्रीति करो, उसको पाने की अभिलाषा रखो। गुरु से युक्ति लो और भजन करो। हमेशा याद रखो कि सदाचार से गिरे तो नहीं। सदाचार से गिरे तो भजन से गिरे। भजन से गिरे तो आवागमन के चक्र से छूट नहीं सकते।

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश के मुरादाबाद जिले के चमारों की पूलिया महल्ले में लाला कान्ति प्रसादजी के यहाँ दिनांक ७.१०.१९६३ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

१९७. प्रकृति : देशकाल का उपादान कारण

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

सत्संग में यह बताने की बड़ी आवश्यकता है कि ईश्वर का दर्शन कैसे होगा? इससे बढ़कर और आवश्यकता नहीं। श्रोता और जिज्ञासु जन भी इसी को जानने के लिए उत्सुक रहें। इसके लिए पहली बात यह है कि ईश्वर की स्थिति का ज्ञान हो और उसके स्वरूप को भी जानें। ईश्वर-स्वरूप निर्णय के बिना उसकी प्राप्ति का यत्न समझ में नहीं आवेगा कि कैसे होगा? ईश्वर का दर्शन कौन करेगा? जीवात्मा। किसके द्वारा? यह जटिल प्रश्न है। इसके लिए क्या साधन है? इसको जानना चाहिए कि जीवात्मा क्या है? ईश्वर क्या है? तब निर्णय होगा कि साधन क्या है और किस साधन से दर्शन होगा?

ईश्वर ऐसा नहीं है, जो नाशवान हो। ईश्वर को नाशवान माननेवाला गोया ईश्वर को नहीं मानता है। ईश्वर देश और काल अर्थात् स्थान और समय से बद्ध वा सीमित है? नहीं। मनुष्य अपने को देखता है कि वह देश-काल से सीमित है। वह सूर्य, चन्द्र, पहाड़, जंगल; सबको देश-काल से बद्ध और सीमित देखता है। जो सीमा के अंदर रहे वह सीमित है। जो देश काल से बद्ध है, वह देश काल के अंदर है। वे सभी परिवर्तनशील और नाशवान है। बड़ा-से-बड़ा पहाड़ भी सड़ते-सड़ते जर्रे-जर्रे हो जाता है। पहाड़ी इलाकों में घूमें तो देखेंगे कि पहाड़ भी सड़ता है। मूर्दा पहाड़ भी होता है।

कुछ विद्या का काम है। जानकार जान सकते हैं कि जिस सूर्य से हम जीवन धारण करते हैं, उस सूर्य के सहित चन्द्र, तारे वगैरह सभी की

शक्ति क्षय होती है। मैंने अपने जीवन के आरंभिक समय बालपन से जवान होते-होते तक देखा कि उस समय कितनी वर्षा होती थी। वर्षा ऋतु में रास्ता बंद जो जाता था। इसलिए श्रीराम वर्षा के कारण किष्किन्धा में ठहरे थे। इतनी वर्षा होने का क्या कारण? सूर्य के कारण से समुद्र का जल गर्म होता है, वाष्परूप में ऊपर उठता है और बादल बनकर वर्षा होती है। पहले जैसी शक्ति अब सूर्य में नहीं है, जिससे अधिक वाष्प बने और अधिक वर्षा हो। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

अंड कटाह अमित लय कारी। काल महा दूरति क्रम भारी।।

ये सभी जितने हैं, सभी देश काल के अंदर सीमित हैं, स्थान और समय किससे होते हैं? एक तत्त्व है, जिसको परमात्मा ने सृजन कर उपादान बनाया। उससे अनेक पिण्ड-ब्रह्माण्ड और देश-काल बने। देश-काल के बिना कुछ बन नहीं सकता। उसका नाम है—साम्यावस्थाधारिणी जड़ात्मिका मूल प्रकृति। देश और काल के होने से ही कुछ बनता है। जो देश और काल से सीमित है, वह असीम वा—

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

नहीं हो सकता है गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

देश-काल प्रकृति से बने हैं अर्थात् प्रकृति देश-काल का उपादान कारण है। जो भी हददार वा सीमित पदार्थ हैं, सभी माया और नाशवान हैं।

यदि कोई कहे कि 'प्रकृति के परे ही वह ईश्वर है, इधर नहीं है क्या?' तो देखो कि पाँच तत्त्वों में जो जितना सूक्ष्म है, वह अपने से स्थूल में व्यापक होता हुआ अपना मण्डल उन सबसे ऊपर भी रखता है। उसी तरह ईश्वर सर्वव्यापक होते हुए सबसे परे भी है।

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

यह है—राम, ईश्वर, परमात्मा। वह देश-काल में व्यापक होकर उससे भी परे है। इससे अधिक फैलाव रखनेवाला कुछ नहीं है। कुछ अवकाश छोड़कर वह रहेगा, ऐसा नहीं हो सकता। जो सबसे प्रथम का है, वह देशकाल को भरकर, प्रकृति मण्डल को भरकर, उससे ऊपर रहकर निर्लेप रहता है। जो जितना अधिक व्यापक होता है, वह उतना ही अधिक सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म तत्त्व को पकड़ने का यंत्र सूक्ष्म होता है। छोटी घड़ी के कल पूर्जों को पकड़ने के लिए महीन-महीन यंत्रों की और बड़ी घड़ी के कल पूर्जों को पकड़ने के लिए मोटे-मोटे यन्त्रों की आवश्यकता होती है। सूक्ष्म तत्त्व को स्थूल यन्त्रों से ग्रहण नहीं कर सकेंगे। जिस तरह के तत्त्व को ग्रहण करना चाहते हो, उसी तरह के यंत्र से ग्रहण कर सकते हो। आँख से रूप, कान से शब्द, जिभ्या से रस, नासिका से गंध, और त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों से पंच विषयों—तन्मात्राओं, सूक्ष्म तत्त्वों को ग्रहण कर सकते हो। एक इन्द्रिय से दूसरी इन्द्रिय का विषय ग्रहण नहीं कर सकते। स्थूल इन्द्रियों से स्थूल पदार्थों का ग्रहण होगा, सूक्ष्म का नहीं। सारी इन्द्रियाँ माया से निर्मित हैं। निर्मायिक से ही निर्मायिक तत्त्व का ग्रहण हो सकता है। परमात्मा को अव्यक्त ही ग्रहण कर सकता है। इसलिए यह खोज करो कि उस ईश्वर तक कौन जाए, कौन दर्शन करे? बुद्धि निर्णय कर सकती है, देख नहीं सकती। अपने को सोचो कि अपने आप क्या हो? अपनी बुद्धि से नहीं समझते हो, तो संत वाणी से ही समझो।

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।

तुम शरीर और इन्द्रियों के संग से जीवत्व दशा में हो। शरीरों और इन्द्रियों का संग छोड़कर तुम बूँद नहीं रहकर समुद्र हो जाओगे। तुम्हारी ज्ञान शक्ति से ही मन, बुद्धि आदि इन्द्रियों में ज्ञान शक्ति है। लेकिन तुम्हारा जो निजी ज्ञान है और इन्द्रियों के संग से जो ज्ञान है, इसमें अंतर है। जैसे लालटेन के भीतर टेम का जो निज प्रकाश है, सो पृथक है और उसके ऊपर लगे हुए रंगीन शीशे के अनुकूल उसका प्रकाश जो बाहर फैलता है, वह भिन्न प्रकार का। अर्थात् लाल शीशा के कारण प्रकाश का रंग लाल और हरा शीशा होने पर हरा प्रकाश होता है। इसी तरह माया के आवरण के कारण से माया संबंधी ज्ञानयुक्त होकर चेतन जीव माया को ही ग्रहण कर सकता है। इन आवरणों के अंदर रहकर तुम निर्मायिक स्वरूप को ग्रहण नहीं कर सकते। तुम कैवल्य दशा प्राप्त करो, तब तुम अपने निज स्वरूप में आओगे। रंगीन शीशा के कारण प्रकाश का रंग और बिना रंगीन शीशा के प्रकाश में जो अंतर है, वही तुम्हारा निज ज्ञान और इन्द्रिय-संग के ज्ञान में अंतर है। अभी तुम अपने को भी नहीं जानते हो। तुम कहते हो कि 'मैं हूँ' यह अहंकार इन्द्रिय के संग के कारण कहते हो। आँख का ज्ञान आँख को ही होता है, दूसरी इन्द्रिय को नहीं। कोई कहे कि आँख में लाली आ गई है तो आइने में आँख से ही देखी जाएगी। इसी तरह चेतन आत्मा से ही परमात्मा का दर्शन होगा, बीच में साधन लेना होगा। साधन में दिव्य-दृष्टि होती है, किंतु उसमें भी ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। दिव्य-दृष्टि होने से चेतन आत्मा पर से सारी मैल नहीं निकलती। जब चेतन आत्मा के ऊपर से सारी मैल उतर जाएगी, तभी चेतन आत्मा ईश्वर को पावेगी। यहीं मोक्ष होगा। यहीं असली दर्शन होता है। यह सबसे बड़ा काम है। इसके अलावे का दर्शन मायिक दर्शन है।

जब कोई अपने को शरीर, अंतःकरण और प्रकृति से अलग करे, तब इस प्रकार का ज्ञान होता है। अभी हम जहाँ बैठे हैं, वहीं से चलेंगे। इस शरीर में हम हैं। इसलिए हम ईश्वर से मिलने के लिए चलेंगे तो शरीर ही शरीर चलना होगा। जैसे इस प्रान्त को पार करते हैं, बिहार को पार करते हैं तब उड़ीसा जाकर जगन्नाथजी का दर्शन करते है। जगन्नाथजी के दर्शन के लिए चलना जगन्नाथजी की भक्ति में दाखिल है। उसी तरह अपने अंदर में ईश्वर से मिलने चलो, यह ईश्वर की भक्ति है। जहाँ चलकर माया से छूटना होता है, वहीं सभी बंधनों से छूटना होता है। यह यात्रा परा भक्ति है। इसलिए—'हिय नैन सैन सुचैन सुन्दरि साजि स्नुति पिउ पै चली।' तुलसी साहब ने कहा है।

माया की कितनी भी शक्ति ले लो, लेकिन ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। लोग कहते हैं कि अव्यक्त को व्यक्त कैसे धारण कर सकता है? लेकिन सोचते नहीं कि ईश्वर-स्वरूप क्या है? उसको कैसे ग्रहण किया जा सकता है? महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया था। युधिष्ठिर जीतकर भी प्रसन्न नहीं थे। व्यासदेवजी ने उनको यज्ञ करने कहा, पहाड़ से धन लाकर। युधिष्ठिर ने व्यासदेवजी की बात में विश्वास किया, उनका मन अव्यक्त धन में लगा। व्यासदेवजी के बताए रास्ते से गए, कहे अनुकूल अनुष्ठान किया, उनको धन मिला और उन्होंने यज्ञ किया। वह परम धन परमात्मा अव्यक्त है, उसका पता बता देनेवाले संत हैं। वे रास्ता बताते हैं, अनुष्ठान का यत्न बताते हैं। जैसे अव्यक्त धन में युधिष्ठिर का मन लगा था, उसी तरह अव्यक्त परमात्मा में मन लगाओ। संत लोग जो यत्न बताते हैं, उस यत्न से चलो, तो अव्यक्त ईश्वर को पाओगे। यदि कोई कहता है कि इसी शरीर से जाकर दर्शन करेंगे तो देखो कि जय-

विजय को वैकुंठ में श्राप मिला। जितने भी लोक-लोकान्तर हैं, सभी में मायिक रूप हैं। परमात्मा के रहने के लिए कोई अवलम्ब नहीं है। ईश्वर-स्वरूप क्या है, उसकी प्राप्ति कैसे होगी और उसको कौन प्राप्त कर सकता है? इन बातों को मैं साफ साफ समझा देना चाहता हूँ। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश के बदायूँ नगर में दिनांक १०.१०.१९६३ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१९८.सभी धर्मों को छोड़ने का रहस्य

प्यारे प्रतिष्ठित भक्त और सज्जनो!

मैंने सुना और देख भी रहा हूँ कि यह गीता भवन है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण का बताया हुआ गीता-ज्ञान हमको मिलना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण के बताए ज्ञान के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'सब उपनिषद् गौ रूप हैं, अर्जुन बछड़ा है और भगवान कृष्ण दोहनेवाले हैं। उपनिषदों के ज्ञान का सार निकालकर जो भगवान श्रीकृष्ण ने दिया है, वही श्रीमद्भगवद्गीता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता का ज्ञान विकट, संकट समय में अर्जुन को दिया था। वह समय कैसा था, आप जानते हैं। महाभारत युद्ध के आरंभ का समय था। खास अपने चचेरे भाइयों में यह युद्ध हुआ था। अर्जुन ने कहा कि भगवन्! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच ले चलिए, जिससे मैं देख सकूँ कि मुझे किन वीरों से लड़ना है। भगवान ने वैसा ही किया। दोनों तरफ दृष्टिपात करके अर्जुन ने देखा कि दोनों ओर मेरे अपने ही लोग हैं। इन सबों को अपने हिस्से के राज्य को प्राप्त करने के लिए मारो और मरवाओ, ऐसा क्रूर कर्म करना ठीक नहीं। उनका चित्त दयार्द्र होकर विह्वल हो गया और करुणा से भर गया। उन्होंने भगवान से कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। श्रीकृष्ण ने फटकारा और कहा— तू अपने क्षत्रित्व को भूलकर ऐसा बोल रहे हो। क्षत्रिय युद्ध के लिए ललकारे जाने पर मुँह नहीं मोड़ते। पुनः भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—तू किसको मारोगे? अध्यात्म ज्ञान यहीं से आरंभ होता है। सांख्य दर्शन के अनुकूल अध्यात्म-ज्ञान का उपदेश दिया कि शरीर मरा हुआ है ही, आत्मा अवध्य है, तू किसके लिए शोक करता है? जैसे अपने एक ही शरीर में अनेकों वस्त्रों को धारण किया है और अनेक वस्त्र धारण होंगे, उसी तरह यह चेतन आत्मा अनेक शरीरों को धारण कर चुकी है और अनेकों शरीर धारण करेगी। तुम्हारे और हमारे बहुत से जन्म हुए हैं, मैं जानता हूँ, तू नहीं जानता। भगवान महायोगेश्वर थे, अनेक जन्मों की बातें वे क्यों नहीं जानेंगे।

आप जानते हैं कि भगवान बुद्ध के दो बड़े शिष्य थे—सारिपुत्र और मौद्गल्यायन। मौद्गल्यायन सिद्ध पुरुष थे और सारिपुत्र भी सिद्ध थे। मौद्गल्यायन समाधि में बैठे थे। उनको दुष्टों ने साम्प्रदायिकता के द्वेष के कारण इतना पीटा कि हड्डी चूर-चूर कर दिया। इसी में उनका शरीर छूटा। शिष्यों ने भगवान बुद्ध से पूछा कि ऐसे सिद्ध महात्मा की यह दशा क्यों हुई? बुद्ध ने कहा—अपने माता-पिता को, जो बहुत वृद्ध थे, उन्होंने पूर्व के एक जन्म में जंगल में छोड़ दिया था।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—मुझे अनेक जन्मों की बातें याद हैं, तुमको नहीं, क्यों? इसलिए कि वे 'महायोगेश्वरो हरिः' थे। बचपन काल में दूध

पीते समय से ही वे अपनी महालीला दिखाने लगे थे। यह योग की महिमा है। भगवान ने सांख्ययोग का ज्ञान दिया, आत्मा की अमरता का ज्ञान दिया। आत्मतत्त्व अमर है, यह ज्ञान प्रत्यक्ष कैसे हो? इसलिए उन्होंने योग शास्त्र के अनुकूल वचन कहना आरंभ किया। मैं समझता हूँ दूसरा अध्याय ही समस्त गीता है।

योग कहते किसको हैं? कर्म करने की कुसलता को योग कहते हैं। समत्व को योग कहते हैं। समत्व प्राप्त होता है समाधि-साधन में। इन तीनों बातों को आप मुख्य मानिए। आगे चलकर कर्म करने का कौशल क्या है, वर्णन किया गया है। कर्म इस तरह करो कि उसके फल में आसक्ति नहीं हो। कर्मफल छोड़कर कर्म करो। ईश्वर में सब कर्म अर्पण करो। अविहित कर्म नहीं करो और आत्मरत होकर कर्म करो। ईश्वर-अर्पण बुद्धि से काम करो। समत्व धारण करके कर्म करो। यह कर्म करने का कौशल है, तब तुमको कर्म का बंधन नहीं होगा। कर्म में राजस, तामस और सात्त्विक का भी बहुत वर्णन किया और अंत में कहा कि 'सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा...।'

फलाशा छोड़कर कैसे कर्म किया जाय? कर्म हमको बंधन न दे, इस आशा से भी कर्म करता है, तो फलाशा है। पुत्र, धनादि के लिए जो कर्म करते हैं, फलाश से युक्त है। और इनको छोड़कर कर्म किया, यह क्यों? इसलिए कि बंधन से मुक्त होऊँगा। यह भी एक फलाश हुआ। फिर कहा कि योगस्थ होकर कर्म करो। समाधि-साधन करके ही कोई योगस्थ होगा। समाधि-साधन में समत्व की प्राप्ति होती है। इसके अंदर है कि आत्मरत होकर कर्म करो। ये सब बातें एक ही योग शब्द पर निर्भर हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को लड़ने के लिए साहस दिया और कहा कि 'लड़ो भी और मेरा स्मरण भी करो'। उस समय का युद्ध आज की तरह नहीं था। एक दूसरे के तीर को देखता था और काटता था। यह संसार कर्म-क्षेत्र है। जो कर्म करते हो, करते जाओ और ईश्वर का स्मरण भी नहीं छोड़ो। संत पलटू साहब ने कहा है—

कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।
सो ध्यानी परमान, सुरत से अण्डा सेवै।
आप रहे जल माहिं, सूखे में अण्डा देवै।।
जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै।
कर छोड़ै मुख वचन चित्त कलसा में लावै।।
फणि मणि धरै उतारि आपु चरने को जावै।
वह गाफिल ना परै, सुरति मणि माहिं रहावै।।
पलटू कारज सब करै, सुरति रहै अलगान।
कमठ दृष्टि जो लावई, सो ध्यानी परमान।।

कछुवी सूखी जमीन पर अण्डा देती है और अपने पानी में रहती है। ख्याल से अण्डा सेती है, चिड़िया की तरह अण्डे पर बैठकर नहीं। कछुवी को कोई मार दे तो अण्डा सड़ जाय। रामकृष्ण परमहंसजी ने भी बड़े मजे की बात कही है—धान कुटनेवाली स्त्री को देखो, ऊखल में से कैसे चावल निकालती है! जरा-सा मूसल से ध्यान हट जाय तो हाथ टुकड़े-टुकड़े हो जाय। इसी तरह संसार का काम करते हुए अपना ख्याल ईश्वर में लगाकर रखो।' पलटूदासजी की और रामकृष्ण परमहंस की कोई नई बात नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण की 'मामनुस्मर युद्धच' वाली बात ही है। समत्व-साधन आत्मरत होने से होगा। जो आत्मरत नहीं होगा, उसको समत्व नहीं होगा। विविध कर्मों में जानेवाला समत्व लाभ नहीं कर सकता। भगवान श्रीकृष्ण के कहने का मतलब है कि समाधि-साधन योग के द्वारा करो और स्थितप्रज्ञ होओ। स्थितप्रज्ञ होकर कर्म करने पर तुमको पाप नहीं लगेगा। उपनिषद् का सार भी श्रीमद्भगवद्गीता है। ध्यान विन्दूपनिषद् में है—

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

यदि पर्वत के समान कई योजन तक फैला हुआ पाप हो तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता हैं। इसके समान पापों को नष्ट करनेवाला अन्य कोई उपाय नहीं है।

इसका क्या मतलब है? ध्यानयोग में आत्मरत होना और समत्व होना होगा। उपनिषद्-वाक्य और भगवान के वाक्य में एकता है।

किसी भी जरिये से मन की एकओरता हो। वह ओर किधर हो? राजस वा तामस में नहीं, केवल सात्त्विक में। सात्त्विक भावों को आरंभ में हटाना नहीं होगा। ध्यान-योगवाला विषयों की ओर से ऊपर उठेगा और तब जो पाप होनेवाला है, वह नहीं होगा। ध्यानयोग में मन की एकओरता होती है। एकओरता में पूर्णरूप से एकविन्दुता होती है। लकीर में अनेक विन्दु होते हैं। ध्यान-विन्दूपनिषद् में इसलिए कहा है 'परम विन्दू' तेजोविन्दूपनिषद् में कहा है—

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।

लकीर के अंत और आरम्भ में एक विन्दु होता है। लकीरों के मिलन स्थान में एक विन्दु होता है। लकीर भी कोई मामूली चीज नहीं है। उसमें लम्बाई ही लम्बाई होती है, चौड़ाई नहीं। विन्दु का स्थान है, परिमाण नहीं। इस तरह आप न तो विन्दु और न रेखा ही मन से बना सकते हैं। विन्दु ही बीजाक्षर है। एक तस्वीर एक अक्षर आप लिखेंगे, उसमें सबसे पहले एक विन्दु उत्पन्न होगा। रूप जगत का बीज विन्दु है। विन्दु को मन से बना नहीं सकते। अथवा मानस ध्यान भी नहीं कर सकते। विन्दु कैसे प्राप्त हो, इसकी युक्ति गुरु-दीक्षा है। एकओरता में सिमटाव होता है। मन के सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। किसी भी चीज को आप समेटिए, उसकी ऊर्ध्वगति होगी। तब ध्यानी—साधक क्रियमाण अशुभ कर्म नहीं करेगा। प्रारब्ध कर्म भी धीरे-धीरे छूटते जाएँगे। अंत में अभ्यासी कर्म मण्डल को पार कर कर्म-बंधन से मुक्त हो जाएगा। पलटू साहब उपर्युक्त पद्य में कछुवी, पनिहारी और साँप की उपमा देते हैं। और कहते हैं कि काम भी करो और नाम भी भजो। हमारे पुराने गुरु महाराज कहते थे कि 'काम करो और नाम को मत भूलो।' कभी-कभी काम करते समय वे पूछ बैठते थे कि 'केवल काम ही होता है कि नाम भी जपता है?' आरम्भ में ध्यान होगा, कभी छूटेगा भी। इसका अभ्यास करते रहो, बढ़ते-बढ़ते बढ़ेगा। जैसे लोहा को चुम्बक अपनी ओर खींचता है, उसी तरह तुम नाम से खींचे जाओगे।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—'सभी धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ, तुमको सब पापों से मुक्त कर दूँगा।' पिता की सेवा करना पुत्र का धर्म है, पिता का धर्म पुत्रों को ज्ञानवान बनाना, पत्नी का धर्म है पातिव्रत्य धर्म पालन करना और पति का धर्म है एक पत्नीव्रत धारण करने का। क्या इन धर्मों को छोड़ा जाय? भगवान श्रीकृष्ण की शरण में अर्जुन किस तरह थे, सो विचारिए। महाभारत युद्ध के पूर्व ही अर्जुन और दुर्योधन भगवान श्रीकृष्ण के पास गए। भगवान लेटे हुए थे, उन्होंने एक कुर्सी अपने सिरहाने में रखवा दी थी। दुर्योधन पहले से ही आकर कुर्सी पर बैठे थे और अर्जुन पीछे से आकर श्रीकृष्ण के बिछावन पर पैताने में ही बैठ गए। अर्जुन अपनी प्रतिष्ठा का कुछ भी ख्याल नहीं करते हैं। इसीलिए कहा है—

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भूई धरै, तब पैठे घर माहिं।।

भगवान ने पूछा कि अर्जुन कहाँ आए हो? फिर उलटकर उन्होंने सिरहाने में दुर्योधन को बैठा

देखा। जिज्ञासा करने पर, दोनों से आपस में युद्ध की बात जानकर भगवान ने कहा—हम दोनों के कुटुम्ब हैं, हमारे बड़े भाई ने कह दिया है कि वे लोग युद्ध के लिए निमंत्रण देने के लिए आवेंगे, तो तुम युद्ध करने का निमंत्रण स्वीकार नहीं करना। किंतु जब आप दोनों आ गए हैं, तो मैं कहता हूँ कि एक तरफ तो मैं रहूँगा, लेकिन मैं युद्ध नहीं करूँगा और दूसरी ओर मेरी नारायणी सेना रहेगी। मैंने पहले अर्जुन को देखा है, इसलिए वह बतलावे कि दोनों में क्या चाहता है? अर्जुन ने नारायणी सेना को नहीं लेकर भगवान को लिया। श्रीकृष्ण युद्ध में लड़ेंगे नहीं, लेकिन श्रीकृष्ण को ही अर्जुन लेता है, कितनी निर्भरता है? वह उनकी केवल शुभेच्छा चाहता है। मान और प्रतिष्ठा कृष्ण के सामने वह कुछ नहीं रखता है। पैर दबानेवाले नौकर की तरह पायताने में अर्जुन बैठा है। इस तरह अर्जुन तो श्रीकृष्ण की शरण में था ही। फिर भगवान कहते हैं—'सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा....।' इससे मालूम होता है कि अर्जुन पूरी तरह से सब धर्मों को छोड़कर शरण में नहीं थे।

पहले कर्म होता है, तब धर्म होता है। श्रीकृष्ण ने योगी की उपमा कछुआ से दी है। जैसे कछुआ सब ओर से अंग समेट लेता है, वैसे ही जब वह पुरुष इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हुई है, ऐसा कहा जाता है।

यदा संहरते चायं कुर्मोऽंगानीव सर्वशः।
इन्दियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।

—गीता, अध्याय ३।५८

योगस्थ होते हुए अपनी चेतन धारा को जो अंदर में रखता है, वह विषय की ओर नहीं होकर निर्विषय की ओर होता है और तब वह सब धर्मों को छोड़कर भगवान की शरण में होता है। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेशान्तर्गत मथुरा स्थित विड़ला द्वारा निर्मित गीता भवन में दिनांक १३.१०.१९६३ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

१९९. आपका निज विषय क्या है?

प्यारे प्रियदर्शनो!

गत रात्रि के सत्संग में मैंने आपसे कहा था कि हमलोगों की जो तीन स्वाभाविक अवस्थाएँ हैं, इनके आगे एक और अवस्था है। यह किसलिए कहा था? असल में मेरा विषय है ईश्वर-भक्ति का प्रचार करना। गोस्वामी तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका में लिखा है—

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत ।।

इसमें ईश्वर-स्वरूप का भी निर्णय कहा है और तीनों अवस्थाओं के आगे चौथी अवस्था में जाकर भजन करने के लिए कहा है। इसी चौथी अवस्था को तुरीय अवस्था कहते हैं। मन से, वचन से, कितना भी कहो, पहचान नहीं होगी। और कर्मकाण्ड कितना भी करो, दर्शन नहीं पा सकते। वह व्याप्य में व्यापक है और अनंत है। जैसे एक मिट्टी का वा लोहे का गोला बनाकर अग्नि में दे दीजिए, तो अग्नि उसमें प्रवेश कर जाएगी। मिट्टी का वा लोहे का गोला व्याप्य है और अग्नि व्यापक है। इसी तरह सारा प्रकृति मण्डल व्याप्य है और परमात्मा व्यापक है। इतना ही नहीं, प्रकृति को भरकर और भी कितना वह

अधिक है, ठिकाना नहीं। इसलिए अनंत कहा। दूसरी जगह कहा—

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

उसको पाने के लिए चौथी अवस्था में जाकर भजन करो। भजन जाग्रत अवस्था में भी होता है, लेकिन इतने में पूर्ण भजन नहीं होता। इसलिए चौथी अवस्था में जाकर भजन करने कहा। मैं ईश्वर-भक्ति का प्रचार करता हूँ। चौथी अवस्था में रहकर भजन करना विशेष है। अपना भारत देश ऐसा है कि इसमें आस्तिक परिवार बहुत हैं। इसमें यह गुण है कि बच्चे को जब से मुँह में बोल आता है, तभी से उसके माता-पिता—अभिभावक उससे ईश्वर-वाचक शब्द कहलाते हैं। किसी घर में राम-राम, किसी घर में शिव-शिव, किसी घर में सत्तनाम और किसी घर में वाहेगुरु आदि। इसी तरह यह बात होती है कि बचपन से ही बच्चों के हृदय में ईश्वर मानने का बीज बोया जाता है। बच्चा नहीं समझता है कि राम-राम, शिव-शिव क्या है? वे कहते हैं कि वही सबका प्रभु है। बच्चा बढ़ता है, उसकी उम्र बढ़ती है, संतों का संग करता है, ग्रंथ-पाठ करता है तो ईश्वर में विश्वास जम जाता है। कहीं राम-राम से, राम-रूप का, कहीं शक्ति का नाम सुनकर उसके रूप का ज्ञान करता है, कहीं चतुर्भुजी रूप को जानता है, किसी घर में गणेशजी को जानता है, इस तरह कई रूपों में ईश्वर को जानने लगता है। वह स्वयं चिन्तन करता है, सुनता भी है कि ईश्वर एक ही है। तो फिर, कोई राम रूप में, कोई कृष्ण रूप में, कोई सूर्य रूप में, कोई गुरु रूप में जो जानते हैं, यह क्या है? पहले जानने में आता है कि अनेक रूप होने के कारण अनेक ईश्वर हैं, लेकिन ईश्वर तो एक ही होना चाहिए। दरियाफ्त करने पर शिव के उपासक कहते हैं कि सबसे श्रेष्ठ शिव हैं। गाणपत्य गणेश को सबसे श्रेष्ठ कहते हैं और वैष्णव विष्णु को। इसी तरह सभी उपासक अपने-अपने इष्ट को प्रभु मानते हैं और औरों को उनसे कम वा उनके आश्रित कहते हैं। इस तरह साम्प्रदायिक भावना होती है। इस तरह इस भावना के अंदर रहते संघर्ष भी होता है, हानि भी होती है तथा यथार्थ ज्ञान भी नहीं होता। इस संघर्ष में हम नहीं रहें। मनोमालिन्य और कलह से बचें। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसको हटाने की बड़ी कोशिश की। उन्होंने रामचरितमानस में वर्णन किया कि कहीं शिवजी राम की स्तुति करते हैं, तो कहीं राम शिव की स्तुति करते हैं। किसी एक इष्टदेव के लिए जैसी स्तुति है, उसी तरह दूसरे इष्ट के लिए भी स्तुति करते हैं। इस तरह गोस्वामी तुलसीदासजी ने बताया कि ये पृथक-पृथक देखने में आते हैं, लेकिन हैं एक ही। एक-ही-एक निर्णय हो, यह कैसे?

हमलोगों को सोचना चाहिए कि सृष्टि में हम देखते हैं कि इस स्थूल जगत में—इस सौर जगत में सूर्य की प्रधानता है। पढ़ते और सुनते भी हैं कि सूर्य के पहले सौर जगत नहीं हुआ। पहले सूर्य हुआ। पंच तत्त्वों में सर्वप्रथम आकाश को मानते हैं। इसके अतिरिक्त चार तत्त्व आकाश के अंदर ही हैं। हम पढ़ते भी हैं कि आकाश के बाद वायु, वायु के बाद अग्नि, अग्नि के बाद जल और जल के बाद पृथ्वी है। इस तरह सुन, समझ और पढ़कर ज्ञात होता है कि सौर जगत में सबसे पहले सूर्य है। केवल सौर जगत का नहीं, सारे जगत का कोई मालिक है वा नहीं? सबसे प्रथम का कुछ नहीं मानने से बुद्धि में संतोष नहीं होता। सबसे पहले का कुछ नहीं होकर विविध हुआ, यह मानने में बुद्धि को संतोष नहीं होता। क्योंकि पाँच तत्त्व और सौर जगत को देखकर जानने में आता है कि आरंभ में कुछ था। सबसे पहले का पदार्थ

एक-ही-एक होगा और वह परम प्राचीन, परम सनातन होगा, उसके अतिरिक्त अवकाश नहीं रहेगा और कोई अवलम्ब, कोई सहारा, कोई व्याप्य पदार्थ उसके पहले का नहीं होगा। वह स्वयं आधार स्वरूप होगा। उसका कोई आधार नहीं होगा। वह इतना व्यापक होगा कि उसके अतिरिक्त और कुछ अवकाश बचा नहीं रहेगा। वह अनंत, अपार और अपरिमित, शक्ति युक्त होगा। संसार में जो परिमित शक्तिवाला है, उसका आदि वही है, जो सबसे प्रथम का है। संतों के ग्रंथों में पढ़ने से भी यही बात ज्ञात होती है। जैसे—

है सबमें सबही तें न्यारा।।टेक।।
जीव जन्तु जल थल सबही में, शबद वियापत बोलनहारा।।
—संत कबीर साहब

बाबा नानक के वचन में है—

बाहरि भीतरि एको जान्हु इहु गुर ज्ञान बताई।

सबके बाहर होने के कारण उसको प्रकृति पार भी कहा गया है। ऐसा एक तत्त्व का मानना बुद्धि में आता है। सर्वव्यापक से बाहर कोई नहीं हो सकता। जिसके अंदर में सब हों, उन्हें उसके शासन में—उसके प्रभाव में रहना ही होगा। जो सब उसके प्रभाव और शासन में रहेंगे, उन सबका वह प्रभु होगा। बाबा नानक कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।

मतलब यह कि वह इन्द्रिय-ज्ञान से बाहर है। उसकी सीमा कहाँ है, कोई बता नहीं सकता। सबसे आदि का पदार्थ कैसा होगा? स्वरूपतः वह अनादि-अनंत होगा। इन्द्रियों से हम उसको ग्रहण नहीं कर सकते; क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म है। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं हो सकेगा, जैसे छोटी घड़ी के कील-काँटों को बड़ी घड़ी के पेंचकस और सँड़सी से खोल वा लगा नहीं सकते। यह बहुत समझाने की बात नहीं है। जो सबसे विशेष व्यापक होगा, वह सबसे विशेष सूक्ष्म होगा; जैसे एक सेर बर्फ की व्यापकता से उसके जल की और उस जल की व्यापकता से उसके वाष्प की व्यापकता अधिक होती है। क्योंकि बर्फ की अपेक्षा जल और जल की अपेक्षा वाष्प अधिक सूक्ष्म होता है। जो वाष्प की व्यापकता है, उससे कम व्यापकता जल की और उससे कम व्यापकता बर्फ की है। इसी नमूने को जानने, सोचने, समझने पर मालूम होता है कि सूक्ष्म सबसे विशेष व्यापक होता है। जो सबसे विशेष सूक्ष्म है, उसको स्थूल इन्द्रियों से कैसे ग्रहण कर सकते हैं? हमारी इन्दियाँ रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द; पंच विषयों को ग्रहण करती हैं। स्थूल इन्द्रियाँ इनसे अधिक को ग्रहण नहीं कर सकतीं। अंतर की इन्द्रियाँ स्थूल इन्द्रियों से श्रेष्ठ हैं, लेकिन परमात्मा की सूक्ष्मता के सामने ये भी बहुत स्थूल हैं। बुद्धि ईश्वर-स्वरूप का निर्णय कर सकती है, लेकिन पहचान नहीं सकती। इसीलिए—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
—रामचरितमानस

प्रश्न होता है कि तब फिर किससे पहचान हो? शरीर और इन्द्रियों के अतिरिक्त इस शरीर में तुम हो। शरीर और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है—पंच महाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ, मन, रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात, चेतना और धृति; इन इकतीस तत्त्वों के समुदाय को सविकार क्षेत्र कहते हैं। इन इकतीसों

के अतिरिक्त इनमें जो क्षेत्रज्ञ तत्त्व है, वही चेतन आत्मा है, वही शरीर को धारण किया है, इसी के कारण शरीर को ज्ञान है। शरीर जड़ है, इसमें चेतन आत्मा की स्थिति रहती है, तब इन्द्रियों में, शरीर में ज्ञान रहता है। इसके नहीं रहने से इनमें ज्ञान नहीं रहता। आप चेतन आत्मा इस शरीर में हैं। आपका निजी ज्ञान होना चाहिए। आपके ज्ञान से ही इन्द्रियों को ज्ञान होता है। एक लालटेन की बत्ती जलती है, उसका निज रूप या प्रकाश जो है, लाल शीशे होकर प्रकाश बाहर निकलने से लाल और हरा शीशा के अंदर से निकलने पर प्रकाश हरा होता है। उसी तरह आपका निज ज्ञान जो है, वह इन्द्रियों के संग होकर इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करता है। रूप विषय केवल नेत्र के लिए और रस विषय केवल जिभ्या के लिए है। इसी तरह पंच विषय पंच इन्द्रियों के लिए हैं। जिस इन्द्रिय का जो विषय है, वह उसको ग्रहण करती है। एक इन्द्रिय का विषय दूसरी इन्द्रिय ग्रहण नहीं कर सकती। आपका निज विषय भी होना चाहिए। वह क्या है? इन इन्द्रियों से अपने को भिन्न करके निज स्वरूप में रहकर आप क्या जानेंगे? इन्द्रियों का संग छोड़कर कैवल्य दशा में क्या जानेंगे? चेतन आत्मा वैसी ही सूक्ष्म है, जैसे परमात्मा।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

चेतन आत्मा निज ज्ञान से परमात्मा का दर्शन करे, यह विश्वास करने योग्य है। इसके अतिरिक्त और कोई ग्रहण नहीं कर सकता।

आतम आपको आपहिं जानै ।

ईश्वर वह है जो चेतन आत्मा से पहचान में आवे। इन्द्रिय-ज्ञान में आप अपने को भी नहीं पहचान सकते हैं।। गोस्वामी तुलसीदासजी ने खूबी के साथ कह दिया है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

जो इन्द्रिय-गोचर तथा मन से ग्रहण होनेवाला है, वह ईश्वर—परमात्मा नहीं है। मनुष्य-शरीर का क्या काम है, श्रीराम ने प्रजा को उपदेश दिया था—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।

स्वर्ग के सुख के लालच को भी छोड़ने कहा विषय-सुख के लिए मनुष्य शरीर नहीं है, तब किसके लिए है? **नर तन कर फल निर्विषय भाई।**

यह चेतन आत्मा परमात्मा का अभिन्न अंश है। शरीरस्थ होने के कारण जीवात्मा कहलाता है। यह निजी दशा में रहकर ईश्वर की पहचान कर सकता है, अपने स्वरूप का ज्ञान कर सकता है। अपने की पहचान और ईश्वर की पहचान एक ही है। सहजोबाई का वचन है—'आपुन ही कूँ खोज मिलै जब राम सनेही।' बाबा नानक के वचन में है—'जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।' घर के शून्य को जो देख लिया, वह बाहर के शून्य को भी पहचान लेगा। उसी तरह जिसने अपनी चेतन आत्मा को पहचाना, उसने ईश्वर को भी पहचाना। अपनी साधना से वा किसी की दी हुई दिव्य दृष्टि से भी परमात्मा की वा अपने की पहचान नहीं होती। दिव्य दृष्टि के अतिरिक्त आत्म दृष्टि होती है, आत्म दृष्टि में आँख नहीं होती। अर्जुन ने मानव रूप, देवरूप और विराटरूप; तीनों का दर्शन पाया था। विराटरूप को दिव्य दृष्टि से अर्जुन ने देखा। यह भी मायिक रूप ही था। अर्जुन को बोध हो जाय कि कौरव और पाण्डव दल के सभी भगवान के द्वारा मारे गए हैं। इसलिए भगवान ने विराटरूप धारण किया था। अर्जुन को हिम्मत देने के लिए वह रूप धारण किया गया था। अर्जुन देखते हैं कि कौरव-पाण्डव दल के सभी वीर भगवान के विकराल मुँह में प्रवेश करते हैं और कुछ मर-मरकर नीचे भी गिरते हैं। विराटरूप का दर्शन श्रीनारद मुनिजी को भी हुआ था। भगवान ने

उनसे कहा— तू मेरा जो रूप देख रहा है, यह मेरी उत्पन्न की हुई माया है। मेरे आत्म-स्वरूप को देखने के लिए इसके भी परे जाना चाहिए। आत्म दृष्टि में आँख नहीं है, लेकिन सभी ज्ञान उसको है। आँख तमाम शरीर को देखती है, लेकिन आँख, आँख को नहीं देख पाती। फिर आँख को आँख से ही आइने का सहारा लेकर देखते हैं। यहाँ साधन-भजन रूप आइने का सहारा लेकर अपने तईं में रह सकोगे। और तब निजी ज्ञान आत्मज्ञान में अपने तईं को अपने से पहचानोगे और ईश्वर को भी पहचानोगे। ईश्वर वही है, जो चेतन आत्मा से पहचाना जाय। इन्द्रियों का संग लेकर अपने तईं को नहीं पहचान सकते। अपने से अपने को पहचानने के लिए साधन-भजन है। आरम्भिक साधन से ही काम पूरा होने का नहीं। तुरीय अवस्था में जाकर ही ईश्वर दर्शन होता है। तुरीय अवस्था में कैसे जाना होगा, कल कहूँगा। जैसे स्थूल मण्डल में स्थूल रूप और स्थूल नाम का सहारा मिलता है, उसी तरह तुरीय अवस्था में आपको क्या सहारा मिलेगा, क्यों मिलेगा, वह युक्तियुक्त है या नहीं? कल के सत्संग में कहूँगा।

n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेशान्तर्गत अलीगढ़ स्थित स्वामी रामतीर्थ मिशन में दिनांक १७.१०.१९६३ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२००. जीव किसको कहते हैं?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस संसार को देखकर स्वाभाविक ही प्रश्न होता है कि सबसे पहले का कौन पदार्थ है? यहाँ हम देखते हैं कि एक के बाद दूसरा पदार्थ है। जैसे पहले पृथ्वी फिर पृथ्वी के ऊपर रहनेवाले पदार्थ। इससे आगे बढ़ने पर मालूम होता है कि इससे भी पहले सूर्य बना। बिना सूर्य के पृथ्वी बन नहीं सकती। यह स्थूल पृथ्वी है। स्थूल बिना सूक्ष्म के नहीं बन सकता। आपके शहर में बड़े-बड़े मकान हैं। इतना बड़ा ताजमहल पहले मन में नक्शा बनाए बिना बाहर में बन सकता था? उन दिनों में भी बड़े-बड़े कारीगर थे। महल बनवानेवाले के कहने के अनुकूल मन में नक्शा बनाया होगा वा कागज पर नक्शा बनाया होगा अथवा छोटा-सा मिट्टी का वा पत्थर का बनाया होगा। मन में बने बिना बाहर में नहीं बन सकता। बिना कारण के कार्य नहीं होता। कारण होना चाहिए। अर्थात् बीज होना चाहिए, फिर सूक्ष्म होना चाहिए और तब स्थूल। यह सूर्य और सूर्य के ऊपर जो कुछ भी दूर्बीन से देखे जाएँ, सभी स्थूल हैं। इसलिए स्थूल, सूक्ष्म और कारण मानना पड़ता है। कारण एक ही नहीं है, इसीलिए कारण की खानि को महाकारण कहते हैं। महाकारण किसको कहते हैं? इसमें तीन गुण हैं—रज, सत् और तम। इन तीनों के काम संसार के प्रत्येक पदार्थ में होते हैं। इससे पता चलता है कि ये बिल्कुल-के-बिल्कुल एक ऐसे मशाले से बनें हैं कि जिसमें तीनों गुण मिले हैं। मूल में ऐसा एक मशाला मानना पड़ता है, जिसको त्रयगुणात्मिका साम्यावस्थाधारिणी मूल प्रकृति कहते हैं। रज, सत्, तम; ये तीनों गुण उसमें सम रूप से रहते हैं। एक विनाश करता है, दूसरा उत्पन्न करता है और तीसरा बीच में रहता है, जो थाम्हे रहता है अर्थात् पोषण करता है। तीनों में बराबर-बराबर शक्ति है, इसलिए अपने-अपने काम करते हैं। तीनों की

शक्ति बराबर होने से सम अवस्था होती है, इसीलिए उसको साम्यावस्था कहा। वही सब बीजों का भण्डार है। उसी से सब कुछ बनता है। सब कारणों का वह भण्डार है। उसको प्रकृति कहो या महाकारण। अनेक पिण्ड और अनेक ब्रह्माण्ड प्रकृति के जिस अंश से बनते हैं, वह कारण रूप है। कुम्हार पृथ्वी से थोड़ी-थोड़ी मिट्टी लेकर बर्तन बनाते हैं। कब से बर्तन बनते हैं, पता नहीं। बर्तन बनते जाते हैं, फिर भी पृथ्वी है ही। महाकारण से पिण्ड-ब्रह्माण्ड बनने के लिए जो अंश लिया जाता है, वह कारण होता है और महाकारण रहता ही है। इस तरह बाहर ब्रह्माण्ड की यह बात है। ये सब जड़-ही-जड़ है। इनमें कोई हानि नहीं है। जड़ में कोई ज्ञान नहीं होता, इसलिए एक ज्ञानमय पदार्थ भी मानना पड़ता है, जिसको चेतन कहते हैं। गीता के पढ़नेवाले जानते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि मेरी दो प्रकृतियाँ हैं—परा और अपरा। यही चेतन और जड़ दोनों प्रकृतियाँ हैं, इसी से सृष्टि होती है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि चेतन कोई भिन्न वस्तु नहीं है। जड़-जड़ के मेल से चेतन हो जाता है, लेकिन इसका बोध नहीं हो सकता। शर्वत बनाने में पानी और चीनी मिलाकर उसमें सौंफ नहीं मिलाया जाय तो सौंफ का स्वाद अथवा गुण उस शर्वत में नहीं हो सकते। इसी तरह जिस मिक्सचर औषधि में जो दवा नहीं मिलाई जाय, उस दवा का गुण उस मिक्सचर औषधि में नहीं हो सकता। जड़-जड़ के मेल से ज्ञानमय पदार्थ हो जाय, मानने योग्य नहीं है। चेतन पदार्थ भी है, जो जड़ से भिन्न है। कठोपनिषद् में आया है कि इन्द्रियों से परे मन है, मन से ऊपर बुद्धि, बुद्धि से परे महतत्त्व, महतत्त्व से ऊपर अव्यक्त है और अव्यक्त से उत्तम पुरुष है।

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसःसत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्त्वं च गच्छति॥

—कठोपनिषद्, अध्याय २ वल्ली ३

महतत्त्व अपरा प्रकृति और अव्यक्त परा प्रकृति है। इन दोनों से ऊपर पुरुषोत्तम है। लोगों को कैसे विश्वास हो कि सब कुछ हो जाने के बाद ईश्वर हुआ है। नहीं, सबसे पहले का जो है, वह ईश्वर है। वह अवाङ्मनस गोचर है, ऐसा सामवेद में लिखा है। केनोपनिषद् में है कि वह ब्रह्म मन से मनन नहीं किया जा सकता, वह मन-बुद्धि से परे है।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धिनेदं यदिदमुपासते॥

श्रीलक्ष्मणजी ने भगवान श्रीराम से पूछा कि ब्रह्म क्या है, जीव क्या है, माया क्या है? श्रीराम ने कहा—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई॥

इस माया के पसार में जीव पड़ा हुआ है।

जीव किसको कहते हैं?

माया ईस न आप कहँ, जान कहिअ सो जीव।
बन्ध मोक्ष प्रद सर्बपर, माया प्रेरक सीव॥

रात में सो गए, अपना शरीर, अपना घर, अपना मित्र सभी को भूल गए थे। जगने पर पहले अपने को जाना, फिर घर-परिवार सबका ज्ञान हुआ। जिसको अपने का ज्ञान नहीं है, उसको ईश्वर और माया का क्या ज्ञान होगा। ईश्वर किसको कहते हैं? जो सब को प्रेरण करता है। माया को अपने अधीन रखता है, सबके परे जो है, वह ईश्वर है। ईश्वर-स्वरूप का निरूपण मन-बुद्धि से कर सकते हैं, लेकिन मन-बुद्धि से पहचान नहीं सकते। ऋषि-मुनियों ने कहा है कि अपने से जो जानो, वह है ईश्वर। जैसे आँख से जो जानो वह रूप, कान से जो जानो वह शब्द है। आँख से

देखना और कान से सुनना जिसके द्वारा होता है उस आपे को पहचानो। हमारे यहाँ आसानी से कहा जाता है कि राम ईश्वर हैं, शिव ईश्वर हैं, देवी ईश्वरी हैं आदि। लोग कहते हैं कि तब क्या ईश्वर अनेक हैं? अनेक ईश्वर कहते बनता नहीं। तब कहते हैं कि ईश्वर एक ही हैं और सब उनके अधीन हैं। श्रीराम ने तप किया, शिवजी का दर्शन हुआ, शिवजी ने विराटरूप दिखाया। लक्ष्मण अचेत होकर गिर गए, श्रीराम घुटने के बल बैठ गए। इस तरह शिव के उपासक शिव को विशेष बताते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—सबको बराबर जानो, किसी को कम, किसी को बेशी कहना ठीक नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीराम की जैसी स्तुति की, शिवजी की भी स्तुति उसी तरह की। इन्होंने निर्भेद कर दिया। ईश्वर इसमें है, उसमें नहीं,ऐसी बात नहीं।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

बाबा नानक ने भी कहा है—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।

अगम कहकर बुद्धि के ज्ञान से वह परे है, ऐसा बताया है। जिसका वारपार नहीं, जो सर्वव्यापक है, वह एक ही पदार्थ सबमें रहता है। न कोई बड़े हैं और न कोई छोटे। शरीर-भाव में जब जैसा मौका हुआ तो एक ने दूसरे को नमन किया। लेकिन सबमें रहनेवाला एक ही है। उसको बुद्धि से पहचान नहीं सकते। अपने से पहचानो। सर्वव्यापी होने से तुम्हारे शरीर में भी है। वही अध्यात्म तत्त्व है। जो अपने द्वारा ज्ञातव्य है, वही ईश्वर है। नौकर-चाकर रूप आँख, कान लेकर ईश्वर के पास चलो, सो नहीं होगा। इन सबों को छोड़कर कैवल्यता में जो प्रत्यक्ष होता है, वह ईश्वर है। इसी के लिए संतों ने यत्न बताया है कि किस तरह तुम जाओगे, वही भक्ति है। अपने को शरीर-इन्द्रियों से छुड़ाकर अकेलेपन में लाओ। चेतन तत्त्व अंतःकरण से भिन्न हो जाय तो वह उसी योग्यता का होता है, जिससे ईश्वर की पहचान कर सके। चाहिए कि साधन को जानकर भजन करें। बाहर की कोई चीज लेने की जरूरत नहीं। बाहर में सत्संग से विचार लेना चाहिए।

किसी घर में कोई बैठा है और उससे वह बाहर निकलना चाहे तो पहले घर-ही-घर में चलना होगा। इस शरीररूप घर में रहते हो, शरीर के अंदर-ही-अंदर चलो। शरीर को छोड़ो, आगे बढ़ो। जहर खाने से केवल स्थूल शरीर छूटता है और शरीर रह जाते हैं। जैसे बीज के रहने से वृक्ष हो जाता है, उसी तरह सूक्ष्म आदि शरीर के रहने से फिर स्थूल शरीर बन जाता है। साधारण मृत्यु में सब शरीरों से छूटना नहीं होता है। सब शरीरों से छूटने का यत्न सद्गुरु से जानिए और उसका अभ्यास कीजिए, तब कैवल्यता प्राप्त होगी और ईश्वर-दर्शन होगा। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेशान्तर्गत आगरा शहर स्थित अशोकनगर में दिनांक २१.१०.१९६३ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२०१. नभ शतकोटि अमित अवकाशा

प्रिय दर्शनो!

अब मेरा शरीर उस समय तक आ गया है, जिस समय भगवान बुद्ध ने शरीर छोड़ा था, किंतु मेरा ज्ञान अल्प है। मैंने गुरु महाराज से जो सुना है

और अध्ययन से जो जाना हुआ है, वही आप से कह देने का अवसर अभी मुझे मिला है। आपलोग सब जानते हैं, फिर भी कर्तव्यवश कुछ कहता हूँ।

मैंने गुरुजी से सीखा है कि देखो, घर में कलह होता है। जिस गाँव में रहो, आपस में मेल नहीं रहने से वहाँ भी कलह होता है। इसी तरह देश-विदेश की बात भी समझिए। इस कलह में कोई चैन नहीं पाता। इन कलहों को दूर करने के लिए धर्म की शरण लेते हैं। इस देश में धर्म के नाम पर बहुत से सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न नामों से आज हम पाते हैं और नए-नए सम्प्रदायों की स्थापना भी हुई और हो रही है। जब कोई अपने ज्ञान से अपना सम्प्रदाय स्थापित करना चाहते हैं, तो वे यह कोशिश करते हैं कि मेरे सम्प्रदाय की बात विशेष है और दूसरे सम्प्रदाय की कम। यह बात भी कलह पैदा करती है। गुरुजी ने कहा था कि भाई कुछ ऐसा ख्याल रखो कि सभी सम्प्रदायों के अन्दर जो सार-सार उपदेश की बातें हैं, उनको लो और देखो कि उसमें क्या रोचक है, क्या भयानक है और क्या यथार्थ है? उन्होंने मिलाकर देखा कि बाहरी तौर पर सभी सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन सार विचार पकड़ो तो किसी से अनमेल नहीं है। धर्म की शरण में जाकर उसकी सार बात को ग्रहण करो तो कलह, क्लेश, झंझट से बच जाएँ।

हमारे गुरुजी के घर में जो उनके पिता थे और परिवार थे, तुलसी साहब के शिष्य थे। तुलसी साहब ने एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम है—घटरामायण। ईश्वर घट-घट के वासी हैं, इसको कोई इन्कार नहीं कर सकता। संतों की वाणी में जैसा ईश्वर का विचार दिया है, लोगों का विचार उससे भिन्न दीखता है। व्यक्त रूप में अर्थात् इन्द्रिय-गोचर रूप ईश्वर-दर्शन मानने से वह अनेक होता है और अव्यक्त ईश्वर इन्द्रिय अगोचर होता है। जब अव्यक्त होता है तो वह सर्वव्यापी होता है। सर्वव्यापी होने से घट-घट-वासी होता है। तब किसी सम्प्रदायवाले को ऐसा नहीं होता है कि हमारा ईश्वर घट-घट-वासी नहीं है। जो व्यक्त रूप अनेक है, वह अनेकता माया की है, न कि परमात्म-स्वरूप की, न शुद्ध आत्म-स्वरूप। जो विचार करते हैं, वे सबसे पहले का कुछ अवश्य मानेंगे कि जो अव्यक्त होगा, वह साधन नहीं होगा, जो सबको अवकाश देनेवाला है। वह ऐसा नहीं मानने से आज जो विद्या मिलती है, उसका खजाना कहाँ है? जो सबसे प्राचीन है, वह अव्यक्त है, व्यक्त नहीं। वह इन्द्रियातीत होने के कारण अव्यक्त है। जो शून्य भी उसमें समा जाता है, इसी को गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'**नभ शत कोटि अमित अवकाशा।**'

इसमें भी उनको संतोष नहीं हुआ तो 'सौ करोड़ कामदेव, सौ करोड़ दुर्गा, सौ करोड़ इन्द्र, सौ करोड़ आकाश, सौ करोड़ वायु, सौ करोड़ सूर्य, सौ करोड़ चन्द्र, सौ करोड़ काल, सौ करोड़ अग्नि, सौ करोड़ पाताल, सौ करोड़ यमराज, सौ करोड़ तीर्थ, सौ करोड़ हिमालय, सौ करोड़ कामधेनु, सौ करोड़ सरस्वती, सौ करोड़ ब्रह्मा, सौ करोड़ विष्णु, सौ करोड़ शिव, सौ करोड़ कुबेर, सौ करोड़ माया, सौ करोड़ शेषनाग,' आदि बड़ी-बड़ी विभूतियों को कहते हुए कहते हैं कि—

निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।।

अर्थात् जैसे सौ करोड़ जुगनू को सूर्य के समान कहने से उसकी हीनता होती है, उसी तरह ऊपर वर्णित प्रत्येक सौ-सौ करोड़ के तुल्य राम कहने से राम की बड़ी हीनता होती है।

लोग कहते हैं कि भगवान बुद्ध शून्यवादी थे। ऊपर वर्णित 'नभ शतकोटि अमित अवकाशा'

के अनुसार गोस्वामी तुलसीदासजी भी यहाँ शून्यवादी हो जाते हैं। कुछ नहीं है, ऐसा कहा नहीं जा सकता। कुछ कहाँ तक कहते हैं? जहाँ तक आपकी बुद्धि जानती है। बुद्धि से जो बाहर है, उसको कहते हैं कि कुछ नहीं है 'राम' शब्द से हमको केवल व्यक्त रूप राम को नहीं लेना चाहिए। व्यक्त और अव्यक्त दोनों को लेना चाहिए।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
—रामचरितमानस

जो बुद्धि में नहीं आवे, कुछ नहीं कहा जाय तो शून्यवाद हो गया। यदि भगवान बुद्ध ने कहा कुछ नहीं है, तो उन्होंने क्या गलत बात कही? शंकराचार्य को प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं और उनके लिए कहते हैं कि बुद्ध ने जो कहा है शंकराचार्य भी उसी तरह कहते हैं। कबीर साहब और गुरु नानक साहब अव्यक्त में ही अधिक रहे।

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
—संत कबीर साहब

उपनिषद् में है—'अणोरणीयां महतो महीयान्' और बाबा नानक कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।

वह है अवश्य। उस पर अपने को न्योछावर करो। सोचो कि आदि में कैसा पदार्थ होगा? मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में पाँच शून्य का वर्णन किया है। शून्यवाद कहो वा ईश्वरवाद, कोई कुछ कहो, कोई हर्ज नहीं। उसको पाने के लिए बाहर में जाने की जरूरत नहीं। अंदर में जहाँ तक बुद्धि की दौड़ है, वहाँ तक माया है। तुलसी साहब की घट रामायण में है—

सुन ऐ तकी न जाइयो जिनहार देखना।
अपने में आप जलवए दिलदार देखना।।

स्वामी विवेकानंदजी के नाम पर आज यहाँ कोई उत्सव हो रहा है। स्वामी विवेकानंदजी महाराज ने कहा है—'अपनी दृष्टि शक्ति को अंतर्मुखी करो।' हमारे गुरु महाराज भगवान बुद्ध को आदि गुरु कहते थे। अंतर मार्ग की निस्बत वे कहते थे कि सबसे पहले जो मिलेगा—वह है अंधकार। भगवान बुद्ध ने कहा है—'अंधकार में पड़े तुम प्रकाश की खोज क्यों नहीं करते?' ज्योति के रास्ते पर चलने का भी संकेत 'धम्मपद में है। हमारे गुरु महाराज भी अंतर्ज्योति का वर्णन किए हैं। भगवान बुद्ध के अंतर्नाद का वर्णन थेरीगाथा में किया है, मैंने पढ़ा है। बिना कम्प के कुछ बन नहीं सकता। इसलिए संसार होने के लिए आदिनाद— आदिशब्द हुआ। यह नाद वहाँ से उत्पन्न हुआ, जिसके पहले का कुछ नहीं, जो अनादि, अनंत, असीम है। किसी चीज के निर्माण के लिए शब्द की आवश्यकता है। एक शब्द बोलना, एक अक्षर लिखना, बिना कम्प के नहीं हो सकता। गुरु नानकदेव ने कहा है—

शब्द तत्तु बीर्ज संसार। शब्द निरालमु अपर अपार।।
सारी स्रिष्टि शब्द कै पाछै। नानक शब्द घटै घटि आछै।।

कबीर साहब ने कहा है—

साधो शब्द साधना कीजै।
जेहि शब्द से प्रकट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै।।

हमारे बाबा कहते थे कि भगवान बुद्ध भी अंतर्नाद को जानते थे, जो अन्तस्साधन का अभ्यास करते हैं, वे अंतर में प्रवेश कर नाद को किस तरह नहीं पा सकते! चाहे भगवान बुद्ध हो चाहे और कोई संत, सभी ने शब्द और प्रकाश को

पाने के लिए कहा।

संसार में रहने के लिए भगवान बुद्ध ने पंचशील का पालन करने के लिए कहा। अर्थात् झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार से बिरत रहने कहा। कोई संत ऐसे नहीं, जो कहें कि इन पंच पापों में से किसी को करो। इस तरह हमको किसी धर्म-सम्प्रदाय में विषमता नहीं दीखती। जहाँ विषमता नहीं, वहाँ कलह और क्लेश, झंझट वा झगड़ा क्या? जहाँ निर्वाण है, वहीं मोक्ष है। कोई निर्वाण कहे, कोई मोक्ष कहे वा कोई ईश्वर की प्राप्ति कहें, एक ही बात है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत इति वासना धूप दीजै।' ऐसा ज्ञान होना चाहिए। उन्होंने एक बड़ी ऊँची बात कही—

उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहेहु कुविचारी।।

राम वा ईश्वर के विषय में लोगों को मोह है। जैसे आकाश में अंधकार, धूम और धूलि है। अंधकार, धूम और धूलि का अपना-अपना मण्डल है। इससे आकाश समाप्त नहीं होता। बहुत दूर तक धूल, बहुत दूर तक धूम और दूर तक अंधकार फैला है, लेकिन और भी कितना आकाश बचा हुआ रह जाता है। उसी तरह ईश्वर के अंदर जड़ माया फैली है, फिर भी उसके अतिरिक्त ईश्वर है। जैसे धूम, धूलि और अंधकार में भी आकाश है और उससे बाहर भी। उसी तरह ईश्वर माया में भी व्यापक है और उससे बाहर भी है। जैसे सूर्य बादल से ढँकता नहीं, उसी तरह ईश्वर माया से आवृत्त नहीं होता। एक ही गाँव में एक तरफ वर्षा होती है और दूसरी तरफ सूर्य दीखता है। बादल कितना भी हो, सूर्य को ढँक नहीं सकता। इसी तरह माया कितनी भी अधिक हो, ईश्वर को ढँक नहीं सकती।

ईश्वर का ज्ञान बुद्धि में आने योग्य नहीं है। उसकी प्राप्ति चेतन तत्त्व से होगी। कबीर साहब ने कहा—'**चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।**' चाहिए कि हम इसकी विधि जानें। अपने आप विधि नहीं जानते हैं तो किन्हीं से विधि जानें और अभ्यास करें। अभ्यास करने में पंचशील का पालन जरूरी है। जो पंचशील पालन नहीं कर सकता, वह साधन नहीं कर सकता। पंचशील के पालन से साधन बनता है और साधन बनने से पंचशील पालन में योग्यता आती है। संसार के ऐश्वर्यों को लूट-खसोट कर, मारकर, दूसरे को दुःख देकर भी प्राप्त कर सकते हो, लेकिन निर्वाण को प्राप्त करने के लिए बिना पंचशील के पालन किए नहीं हो सकता। अच्छे आदमी पंचशील पालन करने के लिए अपने मित्र से भी कहता है और स्वयं भी पालन करता है। यदि पंचशील का पालन करनेवाला समाज बन जाए तो सभी शान्तिपूर्वक रहेंगे। कहाँ लड़ाई, कहाँ झगड़ा, कहाँ झंझट?

स्वराज्य पाने के लिए हमलोग बहुत लालायित थे। उसके लिए लगभग ५० वर्षों तक दिमागी लड़ाई हुई। स्वराज्य मिला, लेकिन सुराज नहीं हो पाया है। इसलिए कि लूट-खसोट, बदमाशी दिन-दिन अधिक ही होते जा रहे हैं। ऐसा क्यों? इसलिए नहीं कि शासन सूत्रधारी इसका प्रबंध नही करते। परंतु इसलिए कि जनता नहीं सम्हलती है। लोग घर में ही अच्छे बनते हैं। घर से लोग विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं। जनता ही शासन सूत्रधारी को चुनती है। जनता को कौन ठीक करे? जनता ठीक होगी—साधु संतों के सदुपदेशों को सुनकर उस पर चल कर। हमारे गुरु महाराज कहते थे—सबसे पहले रखो, आध्यात्मिकता तब सदाचारिता, उसके बाद सामाजिक नीति और तब राजनीति। आध्यात्मिकता की ओर से सम्हालो, राजनीति आप ही सुधरेगी। सभी अपने-अपने को अच्छे बनावें। लोग आध्यात्मिकता

की ओर ध्यान दें। जब पंचशील का पालन होगा, तभी देश में कल्याण होगा। आपस में यदि सत्य व्यवहार हो तो मुकदमा क्यों हो? अपने को आध्यात्मिकता की ओर ले जाइए। मेरा निवेदन है कि सज्जनगण अपने को इस आध्यात्मिकता में लावें और अपने मित्रों को भी इसमें लाने का कष्ट करें। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेशान्तर्गत लखनऊ शहर स्थित रिसालदार पार्क के बुद्ध विहार मे दिनांक २५.१०.१९६३ ई० को र सत्संग में हुआ था।

२०२. सृष्टि को स्ववश में कौन रखता है?

प्यारे लोगो!

प्रातः उठकर क्या करो? ईश्वर का नाम लो। चाहे कोई भी शब्द हो, जो ईश्वरवाचक हो। राम, अल्लाह, गॉड आदि कुछ भी कहो; यह बड़ी अच्छी बात है। मनुष्य को मालूम पड़ता है कि वह जो कुछ करना चाहता है, उसके सभी कार्य बन नहीं पड़ते। वह स्वतंत्र नहीं है। कोई महान शक्ति उस पर शासन करती है। वही महान शक्ति परमात्मा है। चाहे कोई राजा हो, राष्ट्रपति हो, धनवान हो, ऊँचे पद पर हो; सबको मालूम पड़ता है कि जो कुछ वह करना चाहता है, सभी काम नहीं होते हैं। यद्यपि ईश्वर—परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन हम नहीं पाते, फिर भी बिना ईश्वर माने संशय दूर नहीं होता। कौन ऐसा महान प्रभु है, जो स्ववश में सृष्टि को रखता है। बिना एक महान शक्ति को माने काम नहीं चलता। इसलिए प्रातः स्तुति करो।

सूर्य नहीं हो तो, जिनके बिना अर्थात् पंच तत्त्वों के बिना हम रह नहीं सकते, हम जी नहीं सकते। पाँच तत्त्व इतना पर्याप्त रूप में हमको मिलता है, जितना चाहिए। वायु के बिना, सूर्य-किरण के बिना हम जी नहीं सकते, बिना मूल्य का मिलता है। मिट्टी से अन्न उपार्जन करके हम शरीर चलाते हैं। अग्नि से हमारा शरीर जीवित है। इस तरह पाँच तत्त्व और सूर्य को परमात्मा ने हमको दिया है। इसके लिए हम कुछ भी—एक पैसा भी नहीं देते। ऐसे परमात्मा की प्रातः स्तुति करो। उनका गुणगान करो।

हम बचपन में कुछ नहीं जानते। भूख लगती है तो रोते हैं, माता दूध पिलाती है। आगे बढ़कर हम सीखते हैं और मनुष्य होते हैं। शरीर का मनुष्य तो बचपन से ही होते हैं, लेकिन ज्ञान का मनुष्य विद्या प्राप्त करने पर और सत्संग करने पर होते हैं। विद्या वा ज्ञान गुरु से पाते हैं। गुरु के द्वारा ही ईश्वर का ज्ञान होता है। पहला गुरु माता-पिता है। ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं है, गुरु प्रत्यक्ष हैं इसलिए गुरु की भी स्तुति करो। ये गुरु एक ही नहीं, बहुत हुए हैं। गुरु संत होते हैं, इसलिए संत स्तुति करो। बिना धर्म के जाने मनुष्य पशुवत् जीवन बिताता है। इसलिए धर्म की परिभाषा और धर्म का सिद्धान्त जानो। प्रातः स्वाध्याय करो। जप को भी स्वाध्याय कहते हैं। आध्यात्मिक पुस्तक पाठ को भी स्वाध्याय कहते हैं। मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर पाशविक जीवन से छूटता है। पशुवत् जीवन बिताने से मनुष्य शरीर का जो लाभ होना चाहिए, नहीं होता। मनुष्य शरीर का सबसे कीमती लाभ यह है कि फिर दुःख में आना न पड़े। पुनः-पुनः जन्म लेना और मरना यह दुःख का जीवन है। ऐसा यत्न हो कि सभी दुःखों से छूटा जाय।

जो मोक्ष को नहीं जानता, वह शरीर से मनुष्य है, लेकिन यथार्थतः नहीं। शरीर का बंधन,

संसार का बंधन, मानसिक विकारों का बंधन, इन्द्रियों का बंधन; इन बंधनों में पड़कर जीव कष्टों को पाता है। अन्य शरीरों में इस दुःख के कारण को कोई नहीं जानता। मनुष्य शरीर में इसको जानता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए यत्न करना मनुष्यत्व है। ईश्वर-ज्ञान के बिना यह नहीं होता। जबतक कोई ईश्वर को नहीं जानता, उसे पाने का यत्न नहीं करता। वा जिस तरह संसार के पदार्थों को जानता है, उसके लाभों को जानता है और उसको प्राप्त करता है। इसी तरह ईश्वर को जो नहीं जानता, उसको पाने का यत्न नहीं करता, ठीक नहीं है। ईश्वर का ज्ञान जानो, उसकी भक्ति करो, उससे सुख का लाभ करो। परमानन्द—नित्यानन्द को लाभ करो। जबतक ईश्वर का ज्ञान नहीं हो, तबतक सुख नहीं पा सकता। इसलिए ईश्वर की ओर अपने को ले चलो। गोस्वामी तुलसीदासजी की दोहावली में है—

हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

इस दोहा में एक शब्द निर्गुण और दूसरा शब्द सगुण आया है। इन दोनों को जानिए। जिस प्रकार अग्नि का गुण दाहक है, उसी प्रकार तीन स्वभाव हैं—रज, सत् और तम। तमाम संसार में ये तीनों लगे हैं, चौरासी लाख योनियों में से कोई हो। सूर्य, तारे, चन्द्र; सभी में ये तीनों गुण लगे रहते हैं। उत्पन्न होता है, कुछ काल ठहरता है, फिर उसका विनाश होता है। यह संसार तीन गुणों से बना है। तीन गुणों से युक्त को सगुण कहते हैं। निर्गुण कहते हैं, जिसमें ये तीन गुण नहीं हैं। निर्गुण कहने से एक का और सगुण कहने से दो का ज्ञान होता है। पंच विषय गुणमय हैं। पाँच तत्त्व, पाँच विषय से युक्त शरीर गुणमय है। इससे जो युक्त होता है, उसको सगुण कहते हैं और जो नहीं युक्त होता है, उसको निर्गुण कहते हैं, वह कभी देखने में नहीं आता, उसका जन्म नहीं होता। जो निर्गुण है, वह गुण को धारण करता है तो सगुण होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—आँख में सगुण का और अंदर में निर्गुण का ज्ञान होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी राम के उपासक थे, इसलिए उनके शब्दों में राम शब्द अधिक है। और शिवजी की भी उन्होंने स्तुति की है—'नमामीशमीशान निर्वाण रूपं विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्...।'

ईश्वर को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में मानकर उसकी उपासना कीजिए। n

यह प्रवचन सारण जिलान्तर्गत इंगलिश हाई स्कूल मशरख में दिनांक ३१.१०.१९६३ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२०३. कल्याण किधर है?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

यह स्वाभाविक बात है कि मनुष्य अपनी भलाई और कल्याण चाहता है। यह चाहना मनुष्य के लिए कल्याणकर है। लेकिन निर्णय करें कि उसके लिए भलाई और कल्याण क्या है?

जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहि बुलाये।
तेहि सुख कहँ नर जतन करत बहु समझत नहिं समुझाये।।

—गोस्वामी तुलसीदास

स्वर्ग का सुख और नरक का सुख, घर का सुख और जंगल में जाकर जो सुख मिलते हैं; ये बिना बुलाए ही आते हैं। इन्हीं सुखों के लिए लोग बहुत यत्न करते हैं; समझाये नहीं समझते हैं।

संसार का सुख वा स्वर्ग का सुख, दुःखविहीन नहीं है। कल्याण उसको कहते हैं, जिस सुख के साथ दुःख नहीं है। कल्याण किधर है? कागभुशुण्डिजी के अनेक जन्म हुए। उनके अन्त के जन्म में जिसमें काक होने का शाप हुआ था और वरदान हुआ था कि जब जिस रूप को धारण करना चाहोगे, कर सकोगे। कागभुशुण्डिजी ज्ञान, योग और भक्ति; सबमें पूरे हो गए थे, तब उन्होंने कहा था—

थाकेउँ सब करि करम गोसाईं। सुखी न भयेउँ अबहि की नाईं।

मतलब अब कल्याण है। सुख तो हो सकता है, लेकिन कल्याण नहीं हो सकता है। क्योंकि देवता वा मनुष्य दुःख मिश्रित सुख ही भोगते हैं। ईश्वर की प्राप्ति में ही परम कल्याण है। वहाँ वह सुख है, जिसके साथ और जिसके बाद दुःख नहीं है। सूरदासजी ने कहा है—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै।

जो सर्वव्यापी परमात्मा है,उसकी महिमा कहने में नहीं आती है। बात ऐसी है जिस तरह गूँगा आदमी मीठे फल के गुण को नहीं बखान कर सकता। उसी तरह ईश्वर प्राप्ति में जो सुख है,वर्णन किया नहीं जा सकता। उसमें परम स्वाद है। प्रत्येक इन्द्रिय का जो स्वाद है, वह परम स्वाद नहीं है। क्योंकि उसमें चाह और तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा और इच्छा में शान्ति कहाँ? इच्छा की बढ़ती में क्या-क्या मिले, ठिकाना नहीं। इच्छा के वश में रहकर आदमी कभी कल्याण नहीं पाता। इच्छा पूरी करने के लिए हैरान-हैरान रहता है और इच्छा पूरी हुए बिना ही मर जाता है। ईश्वर-प्राप्ति का स्वाद निरन्तर लगा रहता है। एक फल बहुत अच्छा लगा। खाना खत्म हुआ, केवल स्मृति रही,स्वाद नहीं रहा। परम स्वाद वह है कि सदा प्राप्त ही रहे, कभी उसके स्वाद का अंत न हो, निरन्तर लगा रहे। जिसमें अत्यन्त संतुष्टि होती है, संतुष्टि में इच्छा की निवृत्ति होती है, इसी को कल्याण कहते हैं। नहीं तो कल्याण कहाँ? यह कैसा है? जो मन को, वचन को ग्रहण नहीं है और इन्द्रिय-ज्ञान में भी नहीं है। जो इसको पाता है, वही जानता है। मन-बुद्धि आदि इन्द्रियाँ नहीं रहीं, तब क्या रहा? जो रहा उसी को जीवात्मा चेतन आत्मा कहते हैं। मन-इन्द्रिय को वह स्वाद नहीं मिलता। अपने तईं को मिलता है।

ज्ञान के अनुकूल बात है कि अपने कल्याण को ठीक-ठीक समझो और उस ओर चलो। कागभुशुण्डिजी ने क्या पाया था? वे ईश्वर-भक्ति में पूर्ण थे। ज्ञान और योग में भी पूर्ण थे, उन्होंने ईश्वर को पाया था। कागभुशुण्डिजी कैसे भक्ति करते थे, पार्वतीजी से शिवजी ने कहा है—

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप यज्ञ पाकरि तर करई।।
आम छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहिं दूजा।।
बट तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक विहंगा।।

—रामचरितमानस

सत्संग करते थे, यह भी भक्ति है। 'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।' जप करते थे, मानस पूजा करते थे और मानस ध्यान करते थे। गुरु से पाए मंत्र को मन से जपना मानस जप है और गुरु के बताए मूर्ति का ध्यान मानस ध्यान वा मानस पूजा है। इसके बाद फिर भी ध्यान करते थे। वह ध्यान कौन सा है? उद्धवजी ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा कि आपका ध्यान किस प्रकार, किस रूप में और किस भाव से करना चाहिए? श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—

सम आसन आसीनः समकायो यथा सुखम् ।
हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्र कृतेक्षणः ।।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ।।
तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ।।
तत्र लब्ध पदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिन्तयेत् ।।

अर्थात् सुखपूर्वक सम आसन से शरीर को सीधा रखकर बैठे, हाथ को तर-ऊपर गोद में रखे और दृष्टि को नासिका के आगे स्थिर करे। बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से खींचकर उस मन को बुद्धि-रूपी सारथी की सहायता से सर्वांगयुक्त मुझमें ही लगा दे। सब ओर से फैले हुए चित्त को खींचकर एक स्थान में स्थिर करे और फिर अन्य अंगों का चिन्तन न करता हुआ केवल मेरे मुस्कानयुक्त मुख का ही ध्यान करे। मुखारविन्द में चित के स्थिर हो जाने पर उसे वहाँ से हटाकर आकाश में स्थिर करे, तदनन्तर उसको भी त्यागकर मेरे शुद्धस्वरूप में आरूढ़ हो और कुछ भी चिन्तन न करे। तंत्र में आया है—

ध्यानं शून्यगतं मनः। ध्यानं निर्विषयं मनः।

—ज्ञान संकलिनीतंत्र

और कबीर साहब की वाणी में है—

गगन मण्डल के बीच में, तहवाँ झलके नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर।।

यह सूक्ष्म ध्यान शून्य ध्यान है। भक्तवर सूरदासजी कहते हैं—

नयन नासिक अग्र है, तहाँ ब्रह्म को वास।
अविनासी विनसै नहीं, हो सहज ज्योति परकास।।

इसी को दर्शाने के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण, भव पार न पावई कोई।
निशि गृह मध्य दीप की बातन्हि तम निवृत्त नहिं होई।।

केवल वचन कहने-सुनने से कुछ नहीं होगा। जबतक हृदय में प्रकाश नहीं हो, कल्याण नहीं होगा।

जब लगि नहि निज हृदि प्रकाश अरु विषय आस मन माहीं।
तुलसि दास तब लगि जग योनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं।।

एक बात ज्योति और दूसरी बात शब्द; ये दो बातें खास हैं।

कबीर कमल प्रकाशिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अंधेरी मिटि गई, बाजे अनहद तूर।।

—संत कबीर साहब

अंधेरी रात मिट गई, प्रकाश हुआ और अनहद तूर बजा। ज्योति और शब्द ईश्वर के मुख्य चिह्न हैं। ध्यानविन्दूपनिषद् में इन्हीं दोनों बातों के लिए कहा गया है। और कहा कि—

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

वह ध्यान क्या है?

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

अर्थात् बीजाक्षर परम विन्दु है, उसके ऊपर नाद है। नाद जब अक्षर (अनाश) ब्रह्म में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है।

शब्दातीत अर्थात् अनाम पद में पहुँचकर परम पद पाता है। ये दो वस्तुएँ—प्रकाश और शब्द, बहुत ऊँची हैं। इनके बिना कल्याण नहीं है। जिस सुख में चाहना बनी रहती है, उसमें कल्याण नहीं। स्वर्ग-सुख में तृष्णा बुझती नहीं। किंतु परमात्मा की प्राप्ति में अभिलाषा समाप्त हो जाती है। उस सुख में तृष्णा नहीं रहती है। उसमें परम कल्याण होता है। इसके लिए अपने मन को समेटो। संत दादू दयालजी ने कहा है—

सब काहु को होत है, तन मन पसरै जाय।

ऐसा कोई एक है, उलटा माहिं समाय।।

जैसे सूर्य और सूर्य की किरण होती है, उसी तरह मन का एक केन्द्रीय रूप है और दूसरा धारा रूप। धारा रूप से तमाम शरीर में शक्ति और चेतना रहती है, तब इन्द्रियों को विषयों की ओर बहकने में शक्ति रहती है, यह तन-मन है। इस तरह रहकर सुखी होना कभी नहीं हो सकता। तन-मन को समेटकर केन्द्रीय रूप में ले जाओ। इस तरह जो बहिर्मुख से अंतर्मुख होता है, उसी को कल्याण– सुख मिलता है। इस काम को करने में कठिनाई मालूम होती है; क्योंकि कोशिश करते हैं और मन बहकता है। जो इस काम में लगा ही रहता है, कितना भी मन भागता है तो उसको समेट-समेटकर गुरु के बताए चिह्न पर लाता है। मन स्थिर होने लगता है तो चैन मालूम पड़ता है। जो डोरी स्वाभाविक है, वह ब्रह्म ज्योति और ब्रह्मनाद है। इसी के द्वारा मन का सम्हाल होता है।

मन ही सन्मुख नूर है, मनही सन्मुख तेज।
मन ही सन्मुख जोति है, मन ही सन्मुख सेज।।

मन की बैठक जहाँ है, उसके सीधे सामने में प्रकाश है। वहाँ समेटकर मन को लाओ।

मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ।
मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ।।

पिण्डी मन को सम्हालकर ब्रह्माण्डी मन में लगाओ। मनसे मन मिलकर स्थिर होगा। इसकी युक्ति गुरु से पाकर अभ्यास करे। अभ्यास कैसे करें? घर छोड़कर? नहीं। गुरु नानक साहब के वचन में है–

जोगु न खिंथा जोग न डंडै जोगु न भसम चड़ाइअै।
जोगु न मुंदी मूंड़ि मुड़ाइअै जोग न सिंञी वाइअै।।
अंजन माहिं निरंजन रहीअै जोग जुगति इव पाईअै।।
गली जोगु न होई।
एक द्रिसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीअै सोई।।
जोगु न बाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाईअै।
जोगु न देसि दिसंतरि भविअै जोगु न तीरथि नाईअै।।
अंजन माहिं निरंजन रहीअै जोग जुगति इव पाईअै।।
सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईअै।
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईअै।।
अंजन माहिं निरंजन रहीअै जोग जुगति इव पाईअै।।
नानक जीवतिया मरि रहीअै अैसा जोगु कमाइअै।
बाजे बाझहु सिंञी बाजे तउ निरभउ पदु पाईअै।।
अंजन माहिं निरंजन रहीअै जोग जुगति इव पाईअै।।

जिसको सद्‌गुरु मिलते हैं, उसका संशय छूटता है, स्वाभाविक ध्वनि में मन लगता है और घर ही में परख होती है। सब लोगों को चाहिए कि ऐसा सुख, जिसमें कल्याण हो, उसके लिए कोशिश करे। कोशिश अपने अंदर करे। जिसको ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद मिलता है, वही परमात्मा को पाता है, दूसरा नहीं। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में आया है कि कर्म करो, कर्म-फलाश छोड़कर कर्म करो, आत्मरत होकर कर्म करो। अपना निशाना अपने अंदर अपने उस पर लगे रहने से आत्मरत होना होता है। इसका यत्न जानकर अपने अंदर अभ्यास करे। इसी में अपना कल्याण है। मैं जहाँ बुलाया जाता हूँ, वहाँ यही बात कहता हूँ। सभी को अपना परम कल्याण बनाना चाहिए। n

यह प्रवचन सारण जिलान्तर्गत इंगलिश हाई स्कूल मशरक में दिनांक १.११.१९६३ ई० को प्रात:कालीन सत्संग में हुआ था।

२०४. अनेकत्व के कारण संसार में झगड़ा

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

संतमत का वार्षिक सत्संग १९१० ई० में पहले-पहल इसी जिले के अंदर जोतरामराय में हुआ था। तब जिला वार्षिक ही इसका नाम था। और १९१३ ई० में यह कटिहार में हुआ। उस समय हमारे गुरु महाराज विराजते थे। उन्होंने भी अपना पवित्र दर्शन उस सत्संग में दिया था। फिर बिहार प्रान्तीय रूप धारण किया। कुछ वर्षों के बाद बभनगामा में इसका नाम अखिल भारतीय संतमत-सत्संग पड़ा। १९०७ ई० से सत्संग आरंभ हुआ। बहुत लोग चले गए। शुरू में इसके प्रचारक, जो अल्पसंख्यक थे, उन्हें बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ी। लोग ख्याल करते थे कि इससे जनसमूह को कोई लाभ नहीं। लेकिन धीरे-धीरे अब लोग समझ रहे हैं कि बात पुरानी है। ये लोग उनकी याद दिला रहे हैं।

अध्यात्मवाद का इतना विचार इस देश में हुआ कि इसका नाम वेदान्त पड़ गया। इस ज्ञान को अंत तक महर्षियों और मुनियों ने जाना। बुद्ध के जमाने से और जो संत महात्मा हुए, तरह-तरह से इसी को लोगों के सामने रखा। आप नाना सम्प्रदायों एवं धर्मों को देखते हैं और उनके अलग-अलग नाम हैं। इन सम्प्रदायों के अंदर जो ज्ञान है; उसको पकड़िए। और बाहरी रीति रिवाज पर भी ध्यान दीजिए, लेकिन पहले आप ज्ञान को लीजिए। वह ईश्वरीय ज्ञान एक ही मिलेगा। ऐसा नहीं कि एक-एक सम्प्रदाय की अलग-अलग ईश्वर संबंध में बात है।

लोग समझते हैं कि जैसे एक गाँव में जाने के लिए अनेक रास्ते हैं, उसी तरह ईश्वर के पास जाने के लिए भी हैं। ठीक-ठीक इसको विचारो। कोई राम, कोई गॉड, कोई अल्लाह कहते हैं, तो ये ईश्वर अनेक नहीं होते। ईश्वर एक ही रहते हैं। उसी तरह से कोई शिव की पूजा की सामग्री लेकर शिवजी की पूजा करते हैं। कोई विष्णु की पूजा की सामग्री लेकर विष्णु की पूजा करते हैं। कोई गणेश की पूजा की सामग्री लेकर गणेश की पूजा करते हैं। कोई सूर्य के उपासक पूजा की सामग्री लेकर सूर्य की पूजा करते हैं। इन भिन्न-भिन्न तरह से पूजा को देखकर लोग कहते हैं कि ईश्वर पाने के बहुत रास्ते हैं। असल में ये रास्ते नहीं हैं। लेकिन ये अनुपयोगी हैं, यह मैं नहीं कहता। जिसको रास्ता कहते हैं, उसके द्वारा उस पर चलने के लिए सहायता मिलती है। रास्ता कहाँ तक है, कहाँ तक पहुँचाता है? रास्ता पर चलनेवाला कौन है? यह जानेंगे तो कहेंगे कि सबका एक ही रास्ता है। सभी आस्तिक कहते हैं कि एक ईश्वर तक जाना है, चाहे वह वैदिक धर्म तथा उसके अनेक सम्प्रदाय के कोई हों अथवा इस्लाम या ईसाई धर्म के हों। सभी धर्मवालों से आप पूछिए कि क्या ईश्वर आपके अंदर हैं? चाहे वे ईसाई धर्म या इस्लाम धर्म के हों। आप पूछिए कि ईश्वर सर्वव्यापक हैं, इसको मानते हैं? बहुत लोग नहीं जानते हैं और जाननेवाले कम हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर सबके अंदर हैं।

दूसरी बात यह कि अपने आप को समझो कि हो या नहीं? प्रत्येक के विचार में है कि 'मैं हूँ।' लेकिन मैं कौन हूँ, इसका निर्णय कम लोग जानते हैं। कुछ लोग अच्छे विद्वान हैं, साधु-संत हैं, सत्संगी हैं। वे जानते हैं कि कोई बौद्धिक ज्ञान

में मानते हैं और बहुत कम अनुभूति के रूप में जानते हैं। अपरोक्ष रूप में इसका ज्ञान हो कि मैं यही हूँ, जैसे अपने शरीर को देखता है। ऐसे बहुत कम लोग होते हैं, ये ही महात्मा होते हैं, जो संत कहलानेवाले होते हैं। वैसे तो भेष में कुछ कह दीजिए, लेकिन यथार्थ में संत वे ही हैं, जो ईश्वर को पहचानते हैं। अच्छे विद्वान और जो पढ़े नहीं हैं, किंतु जिन्होंने सत्संग अधिक किए हैं, वे भी सत्संग के द्वारा बौद्धिक ज्ञान में जानते हैं। मैं अपने शरीर में हूँ और ईश्वर सर्वव्यापक रूप से सब शरीरों में है।

जीवात्मा को चाहिए कि वह परमात्मा तक पहुँचे, दर्शन करे। यह इसलिए कि उस दर्शन से मनुष्य परम शान्ति को पाता है। बिना इस दर्शन के परम शान्ति नहीं मिलती। जो जाननेवाला है, वह जीवात्मा है और उसी को परमात्मा तक जाना है। दोनों इस शरीर में हैं, लेकिन कुछ कारणों से जीवात्मा को ईश्वर की प्रत्यक्षता नहीं होती। वे कारण ये हैं कि माया के स्थूल, सूक्ष्म आदि भेदों से जीवात्मा के आवृत्त रहने में उसे केवल इन्द्रिय ज्ञान में रहना पड़ता है। इसीलिए उसको इस दशा में ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान कहीं नहीं होता। चाहिए कि यह जीव (चेतन आत्मा) अपने को इन्द्रिय ज्ञान से बाहर कर निजी ज्ञान में हो जाए। तब ऐसा जहाँ पर हो सकेगा वहीं ईश्वर का दर्शन होगा। और ऐसा होने के वास्ते माया के सब आवरणों को पार करना उसके लिए जरूरी हो जाता है। एक ही घर में दो मित्र हैं वा एक ही घर में प्रभु और दास हैं। तो मिलने के लिए घर-ही-घर चलना होगा। बाहर जाने की क्या जरूरत? दिल-दिल में खुदा है, ईश्वर सर्वव्यापक है।

अपने शरीर में ईश्वर है और मैं भी इस शरीर में हूँ। इसलिए अंदर का रास्ता होगा, ईश्वर तक जाने के लिए। आँख, कान कुछ नहीं। दोनों का रहना शरीर में है, इसलिए शरीर के अंदर का रास्ता एक ही है। यह अंतर्मार्ग का रास्ता तिरछा-तिरछी नहीं है। बाहर कोई चीज भोजन के लिए लेते हैं, तो मुँह में देते हैं,वह पेट तक जाता है। क्या किसी दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को भोजन करने का दूसरा रास्ता है? सौर, शैव, गाणपत्य, इस्लाम, ईसाई कोई धर्म का आप क्यों न हों, सब के खाने के लिए, भेट भरने के लिए एक ही रास्ता है— मुँह। डॉक्टर जानते हैं कि सबके अंदर की बनावट एक है। इसी तरह ईश्वर के पास जाने का रास्ता एक ही है। ऐसा नहीं हैं कि एक धर्म के लोगों के लिए जीवात्मा शरीर की एक जगह में और दूसरे धर्म के लोगों के लिए जीवात्मा का निवास शरीर की दूसरी जगह पर। जिस तरह शरीर में आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियाँ सभी धर्म के लोगों को एक ही जगह पर हैं, उसी तरह सब धर्मों के लोगों के शरीर में जीवात्मा के रहने का स्थान एक ही जगह पर है। इसी जगह से चलने का रास्ता आरंभ है। ईश्वर तक जाने का एक ही रास्ता है, इसी को बताने के लिए संतमत का प्रचार है।

इस संसार में सबमें एकमेल हो, इसीलिए धर्म बना है। आज अनेक मत, सम्प्रदाय हैं और इन अनेकत्व के कारण संसार में झगड़ा और उपद्रव है। किसी को एक दूसरे से मेल नहीं है। जबतक जड़ से एक रूप में नहीं आवे, तबतक उसके डाल-पात में एकत्व होना संभव नहीं है। तमाम धर्म- मजहब का ईश्वर एक है। सबके लिए एक मार्ग है। सबमें एकीभाव आवे, इसलिए सत्संग का प्रचार है। पहले द्वन्द्व-द्वेष अपने देश से भागे, फिर विश्व से भागे। जबतक द्वन्द्व मचता रहेगा, तबतक शान्ति नहीं मिलेगी। जबतक धर्म को नहीं समझेगा, द्वन्द्व नहीं मिटेगा। धर्म का मूल ईश्वर है। एक ईश्वर को समझ लेने पर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' हो

जाएगा। जब बोलने का मुँह में बोल आता है, तभी से राम-राम, शिव-शिव, ईश्वर वाचक शब्द हमसे कहलवाया जाता है। यह भाव हमको आस्तिक भाव में प्रतिष्ठित करता है। राम क्या है, बूढ़े से पूछने पर वे जो जानते हैं, समझाते हैं। ईश्वर कोई है, उसी को हम राम—शिव कहते हैं। संसार में देखते हैं कि घर में भी एक मालिक होता है, प्रान्त में एक मालिक होता है, देश का एक मालिक होता है; उसी तरह विश्व का एक मालिक है, इसी को ईश्वर कहते हैं कोई ईश्वर को मानते हैं, कोई नहीं मानते हैं। नहीं माननेवाले काफिर वा नास्तिक कहलाते हैं। हमलोग ईश्वर को मानते हैं। पहले सोचो कि सबसे पहले का कुछ है वा नहीं? अपनी-अपनी पुस्तक को छोड़ दो अथवा पुस्तक में देखो कि सबसे पहले का कुछ माना है कि नहीं? सृष्टि को देखो, तो पाँच तत्त्व हैं। पाँचो तत्त्वों में सबसे पहले आकाश है। बिना आकाश के वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी कहाँ रहे? तारा-मण्डल कहाँ रहे? इसमें सिलसिला है। जैसे सबसे पहले आकाश को मानते हैं तो उसके बाद वायु को मानना पड़ता है। क्योंकि आकाश से स्थूलता हवा में है और उससे विशेष स्थूलता आई तो अग्नि, फिर उससे अधिक स्थूल, जल, अंत में मिट्टी कहते हैं।

इसलिए हमारे यहाँ कहा जाता है कि पाञ्चभौतिक जगत के प्रारंभ में आकाश था,फिर हवा, अग्नि, जल और पृथ्वी हुई। यह संसार सौर जगत है। इसमें पहले सूर्य हुआ। सूर्य से पहले वाष्प था, ऐसा वैज्ञानिक कहते हैं। इस तरह भी सृष्टि में क्रम मालूम होता है। इसी तरह वाष्प और आकाश से आगे बढ़ें तो वहाँ पर होता है कि समष्टि—अहंकार है। प्रत्येक जीव के अंदर व्यष्टि—अहंकार है। इसके पूर्व बुद्धि और बुद्धि के पूर्व प्रकृति अर्थात् त्रैगुणमयी—चीज वा मसाला। रचना के अंदर तीन गुण देखते हैं। चाहे किसी का शरीर हो या वृक्ष हो। सेन्द्रिय—निरिन्द्रिय, सभी चीजों में तीन गुण देखते हैं। तीनों गुणों का वर्णन—तमोगुण, विनाशक शक्ति है। रजोगुण—उत्पादक शक्ति, सतोगुण—पालक शक्ति एवं इन्हीं तीनों गुणों का तमाम पसार है। इसका एकीभाव होना चाहिए। इसी को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से सेन्द्रिय एवं निरिन्द्रिय दो प्रकार की सृष्टि हुई। निरिन्द्रिय सृष्टि में पहले आकाश और सेन्द्रिय सृष्टि में पहले मन हुआ। इन सब बातों को देखकर पता चलता है कि सृष्टिक्रम में पहले एक, फिर दूसरा, फिर तीसरा इस तरह हुआ, सबसे पहले का कुछ होना भी आवश्यक है। सबसे पूर्व का एक पदार्थ है, जो शक्ति और ज्ञान का पुंज है। यदि ऐसा नहीं हो तो संसार में जो ज्ञान और शक्ति देखते हैं, यह कहाँ से आई? इसलिए स्वर्ग (Heaven—हैवन) और बहिस्त में शक्ति-ज्ञान को देखते हैं। इसलिए इन सबका जो खजाना है, वह ऐसा होगा जो बिना अवकाश छोड़े होगा। उसके अतिरिक्त अवकाश बाकी नहीं रहेगा; क्योंकि जिसके अतिरिक्त अवकाश बचेगा, तो अवकाश ही पहले का होगा।

जो सबसे पूर्व का है, वह अपना आधार आप है—निराधार है। उसके अतिरिक्त कोई खाली जगह नहीं बचती। यदि इसको नहीं माने तो दूसरी तरह का पदार्थ कुछ मिले, संभव नहीं। जहाँ से सारी सृष्टि में ज्ञान और शक्ति है, उसका खजाना अवश्य मानना होगा। इसके होने का कोई समय माना नहीं जाएगा। किसी समय में इसका आरंभ नहीं है और न कहीं इसका अंत होता है। इसलिए इसको आदि-अंत-रहित ज्ञान और शक्ति का पुंज है अवश्य कहा जाएगा। इससे अधिक व्यापक कुछ नहीं हो सकता। सभी इसके अंदर हैं, सभी

इसके शासन में हैं। जिसके अंदर सभी रहें, जिसके शासन में सभी रहें, वही ईश्वर हैं, परमात्मा हैं। अभी रामचरितमानस के पाठ में आपलोगों ने सुना—'व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता।।' और उनको ज्ञानपुंज बताने के लिए कहा—

सोई सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।।

विज्ञान स्वरूप वह है। बौद्धिक ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान मिलकर तब विज्ञान होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान, जैसे आज कॉलेजों में जो विज्ञान का पाठ करते हैं, उसमें भी दोनों हैं। पहले बौद्धिक ज्ञान फिर प्रत्यक्ष ज्ञान। किताबों में का ज्ञान बौद्धिक और फिर उसको प्रत्यक्ष करके दिखाया जाता है। इसी तरह अध्यात्म-ज्ञान में भी है। सृष्टि का साजनेवाला परमात्मा हैं। किसको कैसे बनाऊँ, इसका पूर्ण ज्ञान उसी को है, इसलिए वह विज्ञान-स्वरूप है। भौतिक विज्ञान के वैज्ञानिक संसार भण्डार से कुछ लेकर कुछ निर्माण करते हैं। बिना उपादान के कुछ बना नहीं सकते। जैसे कुम्हार—पण्डित बर्तन बनाते हैं, उसका उपादान मिट्टी है। परमात्मा ने सृष्टि को बनाया है, उसका उपादान प्रकृति है। ईश्वर इस उपादान को भी बनाते हैं। भौतिक वैज्ञानिक मूल उपादान को नहीं बनाता। प्रकृति से परमात्मा सृष्टि का सृजन करता है—

तदि अपना आपु आप ही उपाया।
नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया।।

यह शक्ति मनुष्य में नहीं है। भौतिक वैज्ञानिक ने उपादान नहीं बनाया। परमात्मा उपादान को भी बनाते हैं।

'प्रथम एक सो आपै आप। निराकार निर्गुण निर्जाप।।'

'राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।'

अपार कहने से ही अनादि-अनंत हो जाता है। बाबा नानक कहते हैं कि—यह सृष्टि जो देखते हो, इसके उपादान को भी बनाकर ईश्वर ने सृष्टि को साजा। परमात्मा और भौतिक वैज्ञानिक की शक्ति बराबर नहीं हो सकती। क्योंकि भौतिक वैज्ञानिक बिना उपादान के कुछ बना नहीं सकता और परमात्मा उपादान को भी बनाता है। आजकल कुछ लोगों के अंदर ऐसा भी प्रचार है कि 'परमात्मा के दो भाग हैं, एक को सगुण और दूसरे को निर्गुण कहते हैं। एक भाग को प्रकृति ने अपने कब्जे में ऐसा किया है कि जैसे कुम्हार मिट्टी को जैसा चाहे, वैसा बनावे। दूसरा भाग में जो निर्गुण है, उसको अपने का भी ज्ञान नहीं है।' किंतु संतों के ज्ञानानुकूल परमात्मा निर्गुण और सगुण दोनों भावों में प्रकृति पर काबू रखनेवाला है।

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड।।
सो दासी रघुवीर कै, समुझें मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि।।

अद्वैतदर्शन का माया-मिथ्यात्ववाद है—

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।

हमलोग ऐसा नहीं मानते कि ईश्वर मायाधीन हैं। कोई तो कहते हैं कि सगुण ब्रह्म पर तो पूरा काबू माया का है और निर्गुण ब्रह्म में अपने को भी जानने की शक्ति नहीं है।

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

फारसी के जाननेवाले कहते हैं—खुदा कादिरे मुतलक है। अर्थात् सर्वशक्तिमान है। और (Almighty) 'आलमाइटि' अंग्रेजी में कहते हैं। आप सोचकर देखिए कि जो अत्यंत व्यापक है—उस समस्त का एक-ही-एक दृश्यमान पिण्ड हो सकता है? आप बहुत घरों को—बड़े-बड़े घरों

को बनाए हैं। लेकिन ऐसा कभी हो सकता है कि समस्त आकाश का कोई एक घर बना ले? हमारे यहाँ ईश्वर के सगुण रूप का बहुत वर्णन है, उसमें विराट रूप की बड़ी विशेषता है। राजा बलि से राज्य लेकर इन्द्र को देने के लिए जब विष्णु भगवान ने विराटरूप धारण किया था, उस समय उनका स्वरूप था—'पद पाताल शीश अज धामा।' यहाँ भी आदि-अंत कर ही दिया। क्योंकि ब्रह्मा के धाम से भी और ऊपर धाम है। जामवन्त जवान थे, उन्होंने दो घड़ी में उन विराटरूप की सात बार प्रदक्षिणा की थी। श्रीकृष्ण के समय में भी जामवन्त थे। उनकी पुत्री जाम्बबती थी। वानरी सारी सेना समुद्र के किनारे थी, लंका जाकर सीताजी की खोज करने के लिए। तब कहा था—'उभय घड़ी महँ दीन्ही, सात प्रदच्छिन धाई।' मेरा कहने का मतलब है कि यह विराटरूप भी आदि-अंत-रहित नहीं हुआ। अर्जुन को विराटरूप दिखाने के लिए श्रीकृष्ण ने विराटरूप धारण किया था। उस विराटरूप में कितने मुँह थे, जिसका ठिकाना नहीं। असंख्य हाथ, असंख्य पैर, असंख्य मुख, असंख्य आँख आदि सभी अवयव असंख्य थे। भयंकर और सुन्दर, दोनों भाँति के रूप उस विराटरूप में थे। कौरव-पाण्डव, दोनों दलों के रथी-महारथी उस विराटरूप के मुँह में प्रवेश कर रहे थे। अर्जुन अलग खड़े होकर स्तुति कर रहा था। योद्धा लोग जो उनके मुँह में प्रवेश करते थे, तो खाली जगह थी, तब तो उनके मुँह में जाते थे। हाथ, पैर, कान आदि का ज्ञान भी बिना अवकाश के नहीं हो सकता। सब ओर से योद्धा लोग आते थे, तो वह सब ओर भी खाली थी। इस तरह वह विराटरूप अनंत नहीं हो सकता।

जिससे बचा हुआ अवकाश नहीं रहे, वह अनंत होगा। बड़ा-से-बड़ा घर बना लीजिए, लेकिन सम्पूर्ण आकाश को किसी एक घर में अँटा नहीं सकते। विराटरूप व्यक्त है, इन्द्रियगम्य है। लेकिन अनंत रूप अव्यक्त और इन्द्रियगम्य रहित है। इसीलिए जो जितना अधिक व्यापक होता है, वह उतना ही सूक्ष्म होता है। आकाश, हवा, अग्नि, जल और पृथ्वी सब में व्यापक है। क्योंकि इनसे वह सूक्ष्म है। एक सेर बर्फ को पानी बना लीजिए, तो बर्फ से जल की व्यापकता अधिक हो जाएगी। और जल को वाष्प बना लेने से उसकी व्यापकता उससे भी अधिक हो जाएगी।

इस न्याय से जो सबसे विशेष व्यापक है, वह सबसे विशेष भी सूक्ष्म है। जब यह बात दृढ़ हो गई तो जानना चाहिए कि सूक्ष्म तत्त्व को स्थूल यंत्र से ग्रहण नहीं कर सकते। इन इन्द्रियों के द्वारा पाँच पदार्थों को ही जानते हैं। आँखों से जो ग्रहण करते हैं, उसको रूप कहते हैं; कानों से जो सुनते हैं, उसको शब्द कहते हैं; त्वचा से जो ग्रहण करते हैं, उसको स्पर्श कहते हैं; जिह्वा से जो ग्रहण करते हैं, उसको रस कहते हैं; नाक से जो ग्रहण करते हैं, उसको गंध कहते हैं। इन पाँचों से अधिक और कुछ आप पाते हैं? हर्गिज नहीं। आपको ग्रहण करने के लिए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही यंत्र हैं। इन इन्द्रियों में एक-एक विषय को ही ग्रहण करने की शक्ति है। आँखों को अख्तियार नहीं कि वह शब्द सुने, इसी भाँति शेष चारों इन्द्रियों की हालत है। ये सब जितने आप जानते हैं, सभी स्थूल हैं। जो परमात्मा इतना सूक्ष्म है कि उससे अधिक सूक्ष्म और कुछ नहीं हो सकता, उनको इन इन्द्रियों से कैसे ग्रहण कर सकेंगे। अभी एक सोरठा कहा था—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।

परमात्मा का यही स्वरूप है। आप कहेंगे कि

संसार ज्ञान के लिए पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, और ईश्वर को किससे जानें? तो मैं कहूँगा कि आप अपने को सोचिए कि आप क्या हैं? आप शरीर हैं? नहीं। आप शरीर में भी कोई इन्द्रियाँ हैं? नहीं। आप अपने शरीर को जिस तरह पहचानते हैं, उस तरह अपने को पहचानते हैं? हर्गिज नहीं।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं। आप शरीर के अंदर रहते हैं। आप अपने को इन्द्रियों से नहीं पहचानते हैं। ईश्वर को कैसे पहचानेंगे? अंश की पहचान नहीं हो तो अंशी की पहचान कैसे होगी? जैसे घटाकाश, मठाकाश, पटाकाश सब एक ही आकाश के अटूट अंश हैं, उसी तरह परमात्मा के आप अटूट अंश हैं। सूक्ष्म यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व को ग्रहण करेंगे, स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्त्व का ग्रहण नहीं कर सकते। आप उसी तरह के सूक्ष्म हैं, जैसे ईश्वर। जैसे आँख से जो देखिए, वही रूप है; इसी तरह जिसको आप अपने तईं से—चेतन आत्मा से पहचान लें, वही ईश्वर है। चेतन आत्मा स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। इन्द्रियों के कारण चेतन आत्मा को ज्ञान नहीं होता, बल्कि चेतन आत्मा के ज्ञान से ही इन्द्रियों को ज्ञान है। चेतन आत्मा की ही शक्ति हैं कि जिससे आँखें रूप को देखती हैं। यदि आप कहें कि जबकि उसी की शक्ति से इन्द्रियाँ विषयों को ग्रहण करती हैं, तो उसी से ईश्वर को क्यों नहीं ग्रहण किया जा सकता है? तो मैं बताता हूँ—कई पहल के, कई रंग के शीशेवाली लालटेन को आप लें। जिस पहल के शीशे का जो-जो रंग है, उधर के प्रकाश का भी वही-वही रंग हो जाता है, यद्यपि शीशे के अंदर का प्रकाश सदा एक ही जैसा है। इसी तरह आप ही के ज्ञान से इन्द्रियों में ज्ञान है। आपकी वही शक्ति आँख में है तो वह रूप को देखती है, लेकिन शब्द को नहीं सुन सकती। इसी भाँति शेष इन्द्रियों के विषय में भी आप समझ लें। इन्द्रियों से छूटकर आप अपने ज्ञान में ईश्वर की पहचान कर सकते हैं। ईश्वर ही सब धर्मों की जड़ हैं। वे ईश्वर सबके लिए एक-ही-एक हैं। उन ईश्वर तक जाने के लिए सबके पास एक ही रास्ता है। जैसे भोजन करने का मुँह ही सबके लिए एक रास्ता है, उसी तरह ईश्वर के पास जाने का एक ही रास्ता है। एक रास्ता, एक ईश्वर, उसको पाकर एक फल—परमशान्ति। इससे सभी झंझट साफ। ईश्वर तक जीवात्मा कैसे पहुँचे, इस पर कल्ह कहूँगा। मार्ग कहाँ-से-कहाँ तक है, साफ-साफ कहूँगा। संतलोग क्या कह गए हैं, क्या करना चाहिए, कल्ह कहूँगा।

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—रोशनाहाट में दिनांक ३. ४. १९६४ ई० के सत्संग में हुआ था।

२०५. साधना में : आलस्य बड़ा दुश्मन है

प्यारे प्रियदर्शनो!

आपलोग अपने-अपने घरों में नित्य सत्संग करते होंगे। हो सकता है कोई भूल भी करते होंगे। जो भूल करते हैं, वे अपनी हानि करते हैं। भूल नहीं करनी चाहिए। जिस गाँव में कुछ सत्संगी अधिक हुए हैं, गुरु महाराज ने जैसा कहा था कि जहाँ सात सत्संगी हों, वहाँ सत्संग-घर बना देना। उसमें नित्य सत्संग करो। उन्हीं की आज्ञा पालन के लिए इस जिले में कितने सत्संग-घर हो गए। फिर भागलपुर, मुंगेर, सहरसा, संथालपरगना में भी

सत्संग-मन्दिर है। जहाँ कम-से-कम सात सत्संगी हों, वहाँ सत्संग-मन्दिर बनाकर सत्संग करो, बड़ा पुण्य होगा। जो लोग भगवान में श्रद्धा रखते हैं, वे ठाकुरबाड़ी, शिवालय बनाते हैं। ये ठाकुरबाड़ी और शिवालय केवल पूजा के लिए नहीं, सत्संग के लिए भी ये स्थान हैं। सत्संग नहीं हो तो होते-होते पूजा छूट जाए। और सत्संग होते रहने से सत्संग प्रेरण करेगा पूजा करने के लिए। इसी तरह सत्संग-मन्दिर सत्संग करने के लिए प्रेरण करेगा। और सत्संग ध्यान करने के लिए प्रेरण करेगा। क्योंकि जिस बात को बारबार सुनो, उस काम को करने की प्रेरणा मिलती है। बारम्बार काशी की महिमा सुनाते-सुनाते युधिष्ठिर का मन काशी की ओर जाने के लिए फेरा गया। इसी तरह बारम्बार सत्संग सुनो, ईश्वर की ओर मन होगा। जितने ईश्वर की ओर हुए हैं, सत्संग से ही।

बिनु सत्संग भगति नहिं होई। ते तब मिलहिं द्रवहिं जब सोई।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है। इसलिए सत्संग की बड़ी आवश्यकता है। सत्संग करो, करते-करते ध्यान में मन लगेगा। तुम आलस में पड़कर सत्संग, ध्यान नहीं करते हो। सत्संग करो तो ईश्वर-भजन करने का प्रेरण मिलेगा।

एक नवयुवक ने कहा कि आप सत्संग करते हैं, सत्संग से क्या लाभ होता है, कहिए? मैं रेलगाड़ी पर चढ़नेवाला था। मैंने कहा—गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है कि—

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई।।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकउ बेद न आन उपाऊ।।

इन पाँचो को प्राप्त करना सत्संग के प्रभाव से होता है। इसलिए सत्संग करो। ये पाँचों चीजें ऐसी हैं कि जिनकी बड़ी महिमा है।

ये पाँचो पदार्थ मिल जाएँ, तो और क्या चाहिए? ये पाँचो पदार्थ बड़े भाग्य से मिलते हैं। जिनको ये मिले हैं, सत्संग प्रभाव से ही। इसलिए सत्संग अवश्य कीजिए। अभी संत कबीर साहब का भजन गाया गया—

मेरी सुरत सुहागिनी जाग री।
क्या तू सोवत मोह नींद में, उठि के भजनियाँ में लाग री।।
चित से शब्द सुनो सरबन दे, उठत मधुर धुन राग री।।
दोउ कर जोड़ि सीस चरणन दे, भक्ति अचल वर माँग री।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, जगत पीठ दे भाग री।।

अज्ञानता की नींद में क्या सोते हो? इस नींद से उठो, जागो। साधारण निद्रा की बात नहीं, मोह की नींद में आप सोए हैं। चाहे आप बैठे रहें, चलते रहें, मोह की नींद में हैं। उठो, भजन करो, मोह छूटेगा। लोग कहेंगे—'हम कब सोए हैं? हम तो चलते-फिरते हैं।' लेकिन गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।

और कबीर साहब कहते हैं—

तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं, सब देखा ठोक बजाय।।
सपने सोया मानवा, खोल देख जो नैन।
जीव पड़ा बहु लूट में, ना कछू लेन न देन।।

अगर जग जाओ तो 'कोउ काहू का है नहीं' यह प्रत्यक्ष हो जाएगा। यदि समझो कि यह बौद्धिक जगना है, तो बौद्धिक जगना मनन में होता है। मनन स्थिर रहता नहीं है। तब क्या तुम जग सकोगे? जगने में ही, फिर जगने कहते हैं—'खोल देख निज नैन' यह कौन आँख है? जिससे तुम भीतर देखोगे, वह आँख है। हाड़, चाम, मांस का शरीर है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे अंदर अंधकार है। इसके बाद ज्योति मण्डल है। बिना ज्योति के आँख में रोशनी कहाँ से आती है? इस आँख को खोलो, जिससे अंत:प्रकाश मालूम हो।

क्या जामा जमशेद का, क्या सिकन्दर ऐन।
दिल चशमा से देखिए, अविगत सूझै नैन।।

जामा=कटोरा, ऐन=ऐना। अंतर के नेत्र हैं, उससे देखो। अंतर में देखने की जो कोशिश होती है, उसी कोशिश से आँख को खोला जाता है।

उस आँख के खुलने से तीन अवस्थाएँ नहीं रहती हैं। जैसे सोए थे और जग गए तो संसार को देखने लगे। उसी तरह तीन अवस्थाओं से पार हो गए तो अंदर में देखते हो। इसलिए भजन करो। उठो और देखो। मतलब यह कि चौथी अवस्था में जाओ। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।

तीन अवस्था से परे चौथी में जाओ, तब जगना होगा, आरोहण होगा। इसी को पलटू साहब ने कहा है— **रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलावा** भजन कैसे करो, तो कहा—**चित से शब्द सुनो सरवन दे ।**

वेद में आया है—दृष्टि-शक्ति बढ़ाओ। श्रवण-शक्ति को बढ़ाओ। लेकिन यह सीखोगे कहाँ? जो इसको जानता है, उनके चरणों में शीश नवाकर, हाथ जोड़कर सीखो। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम किसी तरफ भी जाओ, संसार रहेगा। संसार की ओर पीठ कैसे दी जाएगी? चौथी अवस्था में जाओ तो संसार से ऊपर उठना होगा और तब संसार को पीठ देना होता है।

'खोल देख निज नैन' यह दृष्टियोग है। और 'चित से शब्द सुनो सरवन दे' यह शब्द-योग है।

संत लोग कहाँ तक पहुँचते हैं? लोग नहीं जानते हैं। संत दादू दयालजी कहते हैं—

दादू जानै न कोई , संतन की गति गोई।। टेक।।
अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।
अंड न पिंड खंड ब्रह्मण्डा, सूरत सिंध समोई।
निराकार आकार न जोति, पूरन ब्रह्म न होई।।
इनके पार सार सोइ पइहैं, तन मन गति पति खोई।
दादू दीन लीन चरनन चित, मैं उनकी सरनोई।।

संत लोग अविगत तक जाते हैं। वह अविगत कहाँ है? अंदर के अंतिम पट में है। अंदर-अंदर चलो तो अंत में मिलेगा। क्या मिलेगा? तो कहा— 'सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा।' यानी तीन शून्य— अंधकार, प्रकाश और शब्द; ये तीन शून्य मिलेंगे, उसके बाद 'अगुन सगुन नहिं दोई' है। तारीफ को भी गुण कहते हैं। इसलिए जिसकी तारीफ है, उसको निर्गुण कैसे कहा जाय? दूसरी बात है कि तीन गुणों के बाहर जो है, वह निर्गुण है और फिर सगुण भी नहीं है। तो क्या है? जड़-प्रकृति को ज्ञान नहीं है। वह मलिन माया है और एक निर्मल माया भी है। विद्या और अविद्या कहकर मानो तो हो सकता है। विद्या माया और अविद्या माया अर्थात् अविद्या माया अपरा प्रकृति और विद्यामाया—परा प्रकृति है। अपरा प्रकृति त्रयगुण है और परा प्रकृति निर्गुण है। इन दोनों के परे जो है, वह निर्गुण-सर्गुण नहीं है। परा प्रकृति निर्गुण है, जो शब्द-ब्रह्म है। **अक्षरं परमोनादः शब्द ब्रह्मेति कथ्यते। (योगशिखोपनिषद्)।** शब्द दो प्रकार के हैं—नित्य और अनित्य। नित्य शब्द में परिवर्तन नहीं होता। जिसको आदि नाद या स्फोट कहते हैं। वह निर्गुण है और जिस शब्द को आकाश का गुण कहते हैं, वह सगुण है।

जहाँ से जो शब्द निकलता है, वहाँ वह विलीन हो जाता है। वहाँ शब्द नहीं रहता। उसको संतों ने अनाम और उपनिषद् में 'निःशब्दं परमं पदम्' कहा है। परा प्रकृति निर्गुण और अपरा प्रकृति सगुण है। जो आदि निर्गुण तत्त्व है, उससे जो बढ़कर है, वह निर्गुण तो है ही नहीं और सगुण तो कहाँ से होगा?

पिण्ड—ब्रह्माण्ड, परा-अपरा प्रकृति के परे, शब्द-ब्रह्म के परे, तीन शून्यों के परे जो हो वह परमात्मा हैं, इससे आगे कुछ कहा नहीं जा सकता। उससे आगे कुछ कहा जाय और समझा

न हो तो ठीक नहीं है। नहीं तो दूसरे कहेंगे, उससे भी कुछ आगे है।

लोग कहते हैं कि मीराबाई भगवान श्रीकृष्ण के केवल सगुण-रूप की उपासिका थी। लेकिन ऐसी बात नहीं। मीराबाई कहती हैं—

ऊँची अटरिया लाल किवड़िया, निरगुण सेज बिछी।।
पंच रंगी झालर शुभ सोहै, फूलन फूल कली।
बाजू बंद कडूला सोहै, माँग सिन्दूर भरी।।
सुमिरण थाल हाथ में लीन्हा, शोभा अधिक भली।
सेज सुखमणाँ 'मीराँ' सोवै, शुभ है आज घड़ी।।

उपनिषद् में ज्योति को भी एक परदा बताया है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये।।
—ईशावास्योपनिषद्, मंत्र १५

अर्थात् आदित्य मण्डलस्थ ब्रह्म का मुख ज्यातिर्मय पात्र से ढका हुआ है। हे पूषन्! मुझ सत्यधर्मा को आत्मा की उपलब्धि कराने कि लिए तू उसे उघाड़ दे। मीराबाई के वचन में पंचरंगी झालर की चर्चा है। वह क्या है? ध्यान करते समय अभ्यासी को पाँच तत्त्व के पाँच रंग मालूम होते हैं।

स्याही सुरख सफेदी होई। जरद जाति जंगाली सोई।।
—तुलसी साहब

पृथ्वी का रंग पीला, जल का रंग लाल, अग्नि का रंग काला, वायु का रंग हरा और आकाश का रंग साफ; ये ही पाँचों रंग पंचरंगी झालर हैं। कडूला=कड़ा=दम। बाजूबन्द=शम है।

इस तरह भजन करो तो मूर्द्धा में प्रकाश मालूम होगा। यही माँग का सिन्दूर है। मीराबाई तो विधवा थी, उनको सिन्दूर की क्या जरूरत? यह उपमा के लिए कहा गया है। '**सेज सुखमणाँ 'मीराँ' सोवै, शुभ है आज घड़ी।।**' मीराबाई की तरह राजस्थान में सहजोबाई और दयाबाई भी हुई है। सहजोबाई कहती है—

भया जी हरि रस पी मतवारा।
आठ पहर झूमत ही बीते, डारि दियो सब भारा।।
इड़ा पिंगला ऊपर पहुँचे, सुखमन पाट उघारा।
पीवन लगे सुधा रस जब ही, दुर्जन पड़ी बिडारा।।
गंग जमुन बिच आसन मार्‌यो, चमक चमक चमकारा।
भँवर गुफा में दृढ़ ह्वै बैठे, देख्यो अधिक उजारा।।
चित स्थिर चंचल मन थाका, पाँचों का बल हारा।
चरणदास कृपा सूँ सहजो, भरम करम भयो छारा।।

आलस्य बड़ा दुश्मन है। सब तरह के इन्तजाम रहने पर भी आलस्य कहता है सोओ। भजन करने नहीं देता। भगवान बुद्ध ने कहा—निरालसी बनो। आलस्य मत करो। निरालसी होने से इन्द्र देवताओं का राजा हुआ। स्थूल काम में लोग आलस्य छोड़ेगा, लेकिन भजन करने में आलस्य आता है, इसको रोको। गुरु महाराज कहते थे कि गोरखनाथजी को भी आलस्य आता था। उन्होंने स्थूल-देह को कष्ट दे-देकर आलस्य छुड़ाया। देह को कष्ट नहीं दो लेकिन आलस्य छुड़ाओ। कोई ख्याल नहीं आवे और आलस्य नहीं आवे तो समझो कि भजन बन गया। जिस मिनट में वा जिस सेकेण्ड में ऐसा होता है, उसी मिनट में वा सेकेण्ड में भजन बनता है। ■

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—रोशनाहाट में दिनांक ४. ४. १९६४ ई० को सत्संग में हुआ था।

२०६. मौत सबके सिर पर है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं आपलोगों के दर्शनों से बहुत प्रसन्न हूँ। इन दर्शनों में विशेष बात यह है कि आपलोग बहुत शान्त-भाव से बैठे हैं। सत्संग में शान्तभाव से

बैठना ही चाहिए। बिना शान्तभाव से बैठे ठीक-ठीक समझ नहीं सकेंगे। मैं आपको कथा-कहानी कहने के लिए नहीं बैठा हूँ। हाँ, इत्तिफाक से कोई अध्यात्म-कहानी आ जाए तो कह देता हूँ। हो सकता है कि लोग ऐसी बातें पहले सुने हों और कुछ लोग नहीं भी सुनें हों।

ऋषियों एवं संतों की वाणियों में जग के लोगों को जगाने की बातें हैं। यथा—'**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्या दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।**' अर्थात् (अरे, अविद्याग्रस्त लोगो!) उठो (अज्ञान निद्रा से) जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार छूरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्त्वज्ञानी लोग उस मार्ग को वैसा ही दुर्गम बतलाते हैं।

कबीर साहब और गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज के वचन में है—'परमातम गुरु निकट विराजैं, जागु जागु मन मेरे।'—(कबीर साहब) 'जागु जागु जागु जीव जो है जग जामिनी।'—गोस्वामी तुलसीदासजी।

जागने की विशेषता ज्ञान है। जागरण में ज्ञान होता है। आप जब सो जाते हैं तो अपने तईं का भी आपको ज्ञान नहीं होता। जब जगते हैं तो अपने की सुधि होती है। फिर मेरे पास क्या है, कौन अपने हैं और कौन अपने नहीं हैं, जानने लगते हैं। मतलब यह कि जबतक कोई जागता नहीं है, सोया रहता है तो अपने को भी भूल जाता है। स्वप्न में अपने वह नहीं जानता कि जाग्रत में उसकी क्या स्थिति थी। स्वप्न में अपने को रोगी जान सकता है, यद्यपि जगे में वह नीरोग था। मुझे बचपन की याद है कि जब मैं गेन्द खेलता था तो ऐसी-ऐसी ठोकर लगी कि मैं बैठ जाता था। फिर जब सोता था, तो रात में फुटबॉल खेलता था, कुछ भी दर्द नहीं था। जाग्रत की स्थिति का ज्ञान स्वप्न में नहीं होता। हो सकता है कि जाग्रत में जैसा अपने को देखता है तो स्वप्न में भी देखे। लेकिन अधिकतर ऐसी बात नहीं होती। जगना आवश्यक है। ज्ञान नहीं तो जानकारी नहीं। जानकारी बिना, मूढ़ बने संसार में पड़े रहना, इसमें कुशल नहीं है। इसलिए संतों को हुआ कि संसार के लोगों को जगा दें। यदि कहिए कि सभी तो जगे ही हैं, फिर जगावेंगे क्या? जिस तरह आप स्वप्न में जिस समय रहते हैं, उस समय आपको मालूम नहीं होता है कि स्वप्न है। उस स्वप्न में जबतक रहते हैं, तबतक मन में जाग्रत ही बना रहता है। लेकिन यह तो बात सभी जानते हैं, कोई किताब पढ़ने की जरूरत नहीं। संतलोग कहते हैं कि अभी का जगना भी स्वप्न है। वह जगना कैसा है? जिसमें—'जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई।।' हो जाता है। वह जगना जिस जगने में यह संसार खो जाय। संसार, संसार नहीं रहेगा, किसको जानकर? ईश्वर को जानकर। बहुत लोग कहेंगे कि हम ईश्वर को जानते हैं। जो नास्तिकता में हैं, वे भले ही कहें कि ईश्वर नहीं हैं, लेकिन हमारा देश आस्तिक है। इसमें ईश्वर की मान्यता है। जो ईश्वर को जानता है, उसके लिए संसार खो जाता है। इस मुताबिक हम जगे हुए नहीं हैं। ईश्वर सबके अंदर, सबके बाहर मौजूद हैं। लेकिन हम पहचानते नहीं। यह ज्ञान नहीं कि ईश्वर हमारे अंग-संग हैं, कभी यह ख्याल भी नहीं आता। कभी संतों के संग में जाते हैं तो याद आता है, फिर भी खोया-खोया ही रहता है। संसार को देखते हैं और ईश्वर का पता नहीं। हम सभी स्वप्न में हैं। जब कुछ ज्ञान की बात सुनते हैं तो मालूम होता है कि ईश्वर सर्वत्र है, फिर भी यह पहचान में नहीं आता। ईश्वर की पहचान हो तो सारे दुःख निवृत्त हो जाएँ। गोस्वामी

तुलसीदासजी कहते हैं कि जग जाओ तो तीनों ताप नाश को प्राप्त हो जाएँगे। 'तुलसी जागे ते जाइ तिहू ताप ताय रे।' शरीर में ऋतु-परिवर्तन से वा कुपथ्य से जो रोग पाते हैं, वह दैहिक रोग है। जो दैवात् कष्ट होता है, वह दैविक दुःख है और जीव से जीव को दुःख होना भौतिक कष्ट है। ऐसा कोई नहीं जो कहे कि इन तीनों में से कोई ताप हमको नहीं। कोई बड़े-बड़े वैद्य या डॉक्टर को क्यों बुलाते हैं? रोग होने के कारण ही। जो गरीब हैं, वे घुट-घुटकर मरते हैं। जब दैहिक, दैविक और भौतिक; तीनों ताप छूट जाएँ, तब समझो कि ईश्वर-दर्शन हुआ। जिस जगने में सर्वसाधारण नहीं है, वह अलौकिक है। जिस जगने में ईश्वर खोया हुआ नहीं मालूम होता, वह अलौकिक जगना है। कबीर साहब ने कहा है—'परमातम गुरु निकट विराजैं जागु जागु मन मेरे।'

आदि ज्ञान-दाता परमात्मा हैं। ऋषियों के अंदर ज्ञान देनेवाला परमात्मा है। इसलिए आदि गुरु परमात्मा हैं। गुरु ज्ञानदाता को कहते हैं। इसलिए परमात्मा को भी गुरु कहते हैं। गुरु शब्द इतना व्यापक है कि अपने से बड़े को, पूजनीय को, माता-पिता को; सबको गुरु कहते हैं। गुरु के अंदर सभी पूजनीय मौजूद हैं। परमात्मा हमारे पास है। वह किसी से दूर नहीं है। कहने में कहता हूँ, समझने में समझता हूँ, लेकिन प्रत्यक्षता नहीं होती। इसलिए हमलोग साधारण जगने में भी निद्रित ही रहते हैं। इस निद्रा को छुड़ाओ। आज यदि कोई राजा कहलानेवाला है तो वह भी स्वप्न में है।

सपने होइ भिखारी नृप, रंक नाक पति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ।।

अर्थात् स्वप्न में राजा भिखारी और दरिद्र इन्द्र हो जाता है, पर जग जाने पर न तो राजा को कोई हानि होती है और न दरिद्र को कुछ लाभ होता है। ऐसे ही संसार को मन में (स्वप्नवत्) जानो।

जबतक स्वप्न से बाहर नहीं होता, तबतक उसकी जानकारी नहीं होती। बिना ईश्वर-दर्शन के तृप्ति नहीं होती—नींद नहीं छूट सकती। संसार के सुखों में किसी को तृप्ति नहीं है। सूरदासजी कहते हैं—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब मन चक्रित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै।।

बाहर किसी से बोल नहीं सकता; क्योंकि गूँगा है। गूँगा स्वाद कैसे बतावेगा? जैसे आम खाया, उसका स्वाद याद है, इसी तरह ईश्वर की प्राप्ति में कितनी संतुष्टि है, ठिकाना नहीं। बात यह है कि मन में उतनी शक्ति नहीं कि उसका वर्णन करे। मन-इन्द्रियाँ उसको नहीं जानतीं। जानता कौन है? समझो। चेतन का स्वाद लगा ही रहता है। जिस जगने में यह स्वाद प्रत्यक्ष मालूम होने लगे, जिसमें परम स्वाद हो, वह परम स्वाद इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं है। मन और इन्द्रिय ज्ञान में नहीं रहना, अलौकिक जगना है। इसी में जगने के लिए संत लोग कहते हैं। अभी भी जो संत हैं, उसी जगने में हैं। यह काल्पनिक नहीं है, करके देखो। इसीलिए अलौकिक जगना कहा।

आज साधारण जगने में, स्वप्न में और सुषुप्ति में कैसे जाते हैं? आप इस शरीर में जहाँ रहकर जगे हैं, वहाँ ही बराबर रह जाएँ, सो होता नहीं है। यह जगना भी स्वप्न है, यह कहने की बात नहीं है, प्रत्यक्ष करके देखो। जगने के समय में जिस स्थान में थे, वहाँ से हटकर कण्ठ में चले आए तो स्वप्न और वहाँ से हटकर हृदय में आ गए तो सुषुप्ति अवस्था हो गई।

जाग्रत्स्वप्ने तथा जीवो गच्छत्यागच्छते पुनः।
नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि संस्थितम्।।
—ब्रह्मोपनिषद्

अर्थात् जीव जाग्रत और स्वप्न में पुनः-पुनः आता-जाता रहता है। जीव का वासा जाग्रत में नेत्र में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीयावस्था में मस्तक में होता है।

मतलब यह कि स्थान-भेद से अवस्था-भेद और अवस्था-भेद से ज्ञान-भेद होता है। जगने से स्वप्न में जाने से आपको शरीर का ज्ञान नहीं रहेगा। जाग्रत से स्वप्न और उससे सुषुप्ति में जाने से क्या होता है?

सब इन्द्रियों से ऊपर आँख है। इसमें रहते हैं तो जगे रहते हैं। उससे नीचे कण्ठ में आते हैं तो स्वप्न होता है। यह सोलह स्वरों का स्थान है। इसलिए स्वप्न में कुछ बोलते भी हैं। कण्ठ को षोड़सदल कमल का स्थान कहते हैं। कण्ठ में रहते हैं तो आप बोलते हैं। वहाँ से नीचे होने से गहरी नींद में जाते हैं। स्वप्न में आपको अपने का ज्ञान होता है। सुषुप्ति में आप और नीचे चले गए तो अपने श्वास का भी ख्याल नहीं रहा, स्वाभाविक श्वास लेते रहे। तीन अवस्थाओं से परे चौथी अवस्था में जाओ। लोग समझते हैं कि राम-राम किया तो बहुत कुछ हुआ। सो नहीं, चौथी अवस्था में जाकर भजन करो।

तेरसि तीन अवस्था, तजहु भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

गोस्वामी तुलसीदासजी के वचन में है—'जागु जागु जागु जीव जो है जग जामिनी।' साहित्यिक महाशय कहेंगे—'विद्या वा ज्ञान प्राप्त करना जगना है।' विद्या वा ज्ञान प्राप्त कर भी बुद्धि-विचार द्वारा सचेत होओ और साधु-संतों का अर्थ भी ठीक है कि चौथी अवस्था का जगना जागो। इन दोनों तरहों से जागो।

वैज्ञानिक आज ऊपर बहुत दूर-दूर तक उड़ते हैं—चन्द्रलोक और मंगलग्रह में। किंतु गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।

एहि तन कर क्या फल होना चाहिए? 'एहि तन कर फल निर्विषय भाई।' इस निर्विषय पद को तुरीय में जानना होता है। जैसे संसार बहुत लम्बा-चौड़ा है, उसी तरह चौथी अवस्था का देश भी बहुत बड़ा है। जैसे-जैसे आँख से ऊपर उठता है, वैसे-वैसे ज्ञान बढ़ता जाता है।

जैसे सूर्योदय के पहले प्रकाश का चिह्न मालूम होता है—रात का अंधकार घसकता जाता है और एक प्रकार का प्रकाश आता है, लोग कहते हैं कि 'पौ फटा', गोया अब सूर्य का दर्शन होगा। उषाकाल का रंग ठीक-ठीक है, तो उम्मीद होती है कि सूर्य-दर्शन भी होगा। इसी तरह पहले ईश्वर का प्रकाश मिलता है, पीछे ईश्वर-दर्शन होता है। भजन में जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, ईश्वरीय चिह्न मिलते हैं, तब विश्वास होता है कि ईश्वर का दर्शन होगा। यह कोई भजन करते-करते जानता है। जबतक कोई वहाँ नहीं पहुँचता है, आशा बढ़ती जाती है और ज्ञान की वृद्धि भी होती है। अष्ट सिद्धि, नवनिधि की भी वह चाहना करता है।

अभी का जो जगना है, उससे परे चौथी अवस्था में जाओ तो पता चलेगा कि हम कभी मरते या जनमते नहीं हैं। जैसे मठ को बनाते हैं, लेकिन उसके अंदर के आकाश को कोई नहीं बनाते, वैसे हम हैं। जैसे मठाकाश महादाकाश का अभिन्न अंश है, उसी तरह हम अनादि-अनंत सर्वव्यापी परमात्मा के अभिन्न अंश हैं। परंतु इसका प्रत्यक्ष ज्ञान तुरीय

अवस्था के शिखर पर ही होता है। इसी अवस्था में आध्यात्मिक जागृति होती है। जिसके बिना—

'सुभग सेज सोवे सपने वारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिन्ह नाव न पार तरै तहँ जब लगि आपु न जागै।।'

स्वप्नावस्था में समुद्र में डूबने का भय होता है, लेकिन जग जाओ तो कोई भय नहीं।

कबीर साहब कहते हैं—परमात्मा-गुरु तुम्हारे निकट हैं, तुम जगो। उसको कैसे प्राप्त करोगे, सो जानो और आजकल करके टालो नहीं। मौत सबके सिर पर है, सद्गुरु की शरण में, चरण में जाओ। सद्गुरु से युक्ति जानो और उसका अभ्यास करो। सदगुरु उसको कहते हैं जो अपने को सद्ज्ञान में रखता है, स्वयं ज्ञान जानता है और दूसरे को उसकी शिक्षा देता है।

संसार में लोग देखते हैं कि शरीर संबंधी सभी हमारे हैं। परंतु शरीर संबंधी यह भूल ज्ञान तुरीय अवस्था में नहीं रहने से ही होता है। सबमें रहो और विश्वास रखो कि सबका संग जरूर छूटेगा। सभी को आप छोड़कर जाएँगे वा आपको छोड़कर सभी जाएँगे। भक्तिन सहजोबाई कहती हैं—

चलना है रहना नहिं, चलना विस्वावीस।
सहजो तनिक सुहाग पै, कहा गुथावै सीस।।

इस संसार का सोहाग थोड़े काल का है। अपने घर में रहना, पवित्रता से रहना, निर्लिप्त दशा में रहना, तभी कल्याण है, अन्यथा नहीं। ईश्वर- ईश्वर करते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष जानते नहीं हैं। जगने की चेष्टा कीजिए, तब ठीक-ठीक समझ में आवेगा। n

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत ग्राम—पहाड़पुर के श्री राष्ट्रीय शहीद विन्देश्वरी पुस्तकालय के प्रांगण में दिनांक—२१.४.१९६४ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२०७. चमत्कार के फेर में नहीं पड़िए

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संतों ने मनुष्य के कल्याण के वास्ते ईश्वर भक्ति का ही उपदेश दिया है। किसी अन्य काम से परम कल्याण नहीं होता। अन्य किसी दर्शन से या कर्म से न कभी परम कल्याण हुआ, न होगा। ईश्वर-भक्ति में ईश्वर-स्वरूप का निर्णय जानो। इन्द्रियों से जो जानते हो, वह माया है। ईश्वर सबके साथ रहते ही हैं और ईश्वर को प्राप्त करने के लिए दो अवलम्ब भी सबके अंदर हैं। वह है—अंतर्ज्योति और अंतर्नाद।

संसार में ज्योति नहीं तो कोई काम नहीं हो। ज्योति है गर्मी। गर्मी निकल जाय तो कोई जीवित नहीं रह सकता। एक बच्चा कोई जन्म लेता है, यदि वह बच्चा रोता नहीं है तो कहते हैं कि मुर्दा है। जनमते ही बच्चा रोता है तो कहते हैं कि जीवित है। जाग्रत में शब्द बोलते हो सुषुप्ति में नहीं बोलते, गोया अचेत रहते हो, मतलब यह कि शब्द के बिना अचेतन हो जाता है। शब्द और गति में अत्यन्त समत्व है। बिना गति के शब्द नहीं होता। गति और कम्प के बिना सृष्टि नहीं होती। ऐसा मालूम होता है कि संसार में इन दोनों के अतिरिक्त और कोई तेज नहीं है। विराटरूप को भी तेज ही चमकाता है। सूर्य प्रकाश रूप है। तेज और शब्द से बढ़कर परमात्मा की कोई विभूति नहीं है। यह सबके अंदर-अंदर है।

जो कोई परमात्मा का दर्शन चाहते हैं, उनको

इन दोनों से ही होगा। इन दोनों के बिना किसी को ईश्वर-दर्शन नहीं होता। पहले के ऋषि-मुनि लोग इसी को नाद और इसके अभ्यास को नादानुसंधान कहते थे। ज्योति के अंदर ईश्वर व्यापक है, ज्योति ही रूप ग्रहण कराती है, ज्योति ही रूप को चमत्कृत करती है। कितना भी सुन्दर रूप हो, ज्योति नहीं हो तो अंधकार में पड़ा रहेगा। संतों ने ईश्वर-प्राप्ति के लिए अंतर्ज्योति और अंतर्नाद ग्रहण करने कहा है। वेद, उपनिषद् एवं संतवाणी किसी को भी पढ़ो, सब में यह बात है।

पहले स्थूल मंत्र और स्थूल ध्यान के द्वारा मन का सिमटाव करो। बाद में पूर्ण सिमटाव के लिए एकविन्दुता प्राप्त करो, फिर नादानुसंधान करो। शब्द के अतिरिक्त और कोई भी धारा ऐसी नहीं है, जो परमात्मा तक पहुँचावे। ज्योति नीचे की धारा है, लेकिन बिना ज्योति को पकड़े, शब्द ग्रहण नहीं हो सकता। इसलिए ज्योति का ध्यान भी करो।

इस तरह का पवित्र काम करने के लिए पंच पापों—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार को छोड़कर रहना होगा। इस तरह के शुद्ध मन और शुद्ध आचरणवाले का संसार में सुनाम विदित होता है और वे पूज्य हो जाते हैं।

भागलपुर में एक साधु पहुँचा। उसने कहा—चमत्कार के बिना नमस्कार नहीं। मैंने पूछा—महाराज! चमत्कार क्या? वे कुछ न बोले। मैंने कहा—चमत्कार, सदाचार-पालन है। सिद्धि से बढ़कर शुद्धाचरण है। रावण ने बहुत चमत्कार दिखाया, लेकिन उसका नाम दुष्टों के लिस्ट में है। तब के और अब के भी साधु सिद्धि वगैरह दिखाए हैं और नीचे भी गिरे हैं।

रिद्धि सिद्धि प्रेरई बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावई जाई।।
होई बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी।।

जिनका आचरण सुधरा हुआ नहीं है, वह ईश्वर का भजन नहीं करता, संसार का भजन करता है। कोई कहते हैं कि फलाना साधु चमत्कार दिखाते हैं। उस चमत्कार के फेर में नहीं पड़िए। उनका आचरण देखिए। आचरण देखकर किसी पर विश्वास कीजिए।

कहै कबीर निज रहनि सम्हारी। सदा आनंद रहैं नर नारी।।

इसके बिना न संसार में कोई भला रह सकता है और न कोई मोक्ष के योग्य हो सकता है, इसको ठीक-ठीक समझिए। n

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मंदिर घोरघट में दिनांक २५. ४. १९६४ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२०८. संतों की वाणियों को पढ़ो, यह भी सत्संग है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

हमलोग यहाँ सत्संग करने के लिए एकत्र हुए हैं। सबको मालूम है कि संतों के संग का नाम सत्संग है। सन्तगण बड़े पवित्र होते हैं। उनका ज्ञान अगम होता है। संत की स्तुति में, उनकी प्रशंसा में लोग इतना अधिक कहते हैं कि जिससे ज्ञात होता है कि उनसे बढ़कर कोई नहीं है। 'उनसे बढ़कर कोई नहीं' का अर्थ उनसे अधिक पवित्र, ज्ञानवान, विचारवान, शीलवान और कोई नहीं होता। संतों के लिए बहुत तारीफ है। उपनिषदों को पढ़ने से पता चलता है कि संत उस परम पदार्थ को प्राप्त किए होते हैं, जो परे-से-परे का पदार्थ है।

यह जो दृश्यमान जगत है अर्थात् पाँच अज्ञानमय तत्त्व से बना जगत है, इसमें विविधता

है। इस अज्ञानमय पदार्थ से ऊँचे दर्जे में हम पाते हैं कि कुछ ज्ञानमय पदार्थ भी है। यदि केवल अपने शरीर का ख्याल करें तो जड़ है, जैसे मृतक शरीर में ज्ञान नहीं है। एक जीवित शरीर को देखकर ख्याल में आता है कि इस शरीर के अंदर ज्ञानमय पदार्थ भी है, केवल जड़ नहीं है। जड़ व्यक्त है और ज्ञानमय पदार्थ अव्यक्त है, उसका कार्य विदित होता है। ज्ञानमय पदार्थ को चेतन भी कहते हैं।

जो इन्द्रियों को प्रत्यक्ष हो,उसे व्यक्त कहते हैं और जो अप्रत्यक्ष हो, उसको अव्यक्त कहते हैं। कोई कहता है कि जड़-जड़ के मिलन से ही ज्ञानमय पदार्थ होता है।

ज्ञानमय पदार्थ भिन्न नहीं है। दूसरे कहते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता। जड़ पदार्थ संख्या में कितनी भी अधिक हो, जड़-जड़ के मिलन से ज्ञानममय पदार्थ हो नहीं सकता। जैसे वैद्य लोग औषधि बनाते हैं, मिक्सचर में जो दवाई नहीं डालते, उसका गुण नहीं होता। शर्बत में यदि सौंफ नहीं डाला जाय, तो उसका स्वाद और गुण नहीं आता, जिन तत्त्वों में जो गुण है, उनके मिलाप से वही गुण उत्पन्न होगा, उससे विपरीत नहीं। अज्ञानमय पदार्थ के मिलने से ज्ञानमय पदार्थ हो, मानने योग्य नहीं।

मैंने संतों के ग्रंथों—उपनिषद्-ग्रंथों में पढ़कर गुरु महाराज के चरणों में बैठकर, और भी संतों के चरणों में बैठकर, सुनकर और स्वयं भी विचारकर दृढ़ कर जाना है कि जड़ तत्त्व भिन्न है और चेतन तत्त्व भिन्न है। चेतन तत्त्व अव्यक्त है। शरीर जबतक जीवित रहता है, चेतन का कार्य देखते हैं, लेकिन इन्द्रियों से चेतन के स्वरूप को पहचान नहीं सकते हैं। शरीर व्यक्त है। व्यक्त तत्त्व से अव्यक्त तत्त्व ऊँचे दर्जे में है। जिस शरीर में चेतन नहीं है, उससे कोई काम नहीं होता, यह प्रत्यक्ष है। चेतन के अधीन में जड़ तत्त्व है। चेतन जड़ से काम कराता है। मनुष्य ज्ञानवान प्राणी है, इंजिन अज्ञानमय है, मनुष्य उसको बनाता है और उससे काम लेता है। ज्ञानवान यदि उसपर काबू नहीं रखे,तो उससे कोई लाभदायक काम नहीं हो सकता। इस तरह जड़ के ऊपर चेतन का काम नहीं हो, तो जड़ से कोई काम नहीं हो सकता।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने दो प्रकार की प्रकृतियाँ बताई हैं—अपरा और परा। अपरा अर्थात् अष्टधा प्रकृति—मिट्टी, पानी, अग्नि, हवा, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार; ये आठों अज्ञानमय हैं। इससे ऊँची चेतन प्रकृति है। अपरा जड़ प्रकृति है, इसके अंदर जो चेतन है, वह परा अर्थात् ऊँचे दर्जे की प्रकृति है। इन्हीं दोनों से संसार की रचना करता हूँ—भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता में कहा। संसार में जड़ और चेतन दोनों है। परा इसलिए कि यह जड़ से उत्कृष्ट है। जड़ से चेतन के निकल जाने पर वह विकृत होकर लापता हो जाता है। इसलिए चेतन से भी परे जो है, वह परमात्मा है। गीता के शब्दों में कहूँगा—परा प्रकृति और अपरा प्रकृति जिनकी है, वे स्वयं इन दोनों से भिन्न और इनके आधारभूत प्रभु हैं। परा प्रकृति को अक्षर पुरुष तथा अपरा प्रकृति को क्षर पुरुष तथा इन दोनों से परे को पुरुषोत्तम कहते हैं। भगवान कहते हैं कि पुरुषोत्तम सबसे परे है। उपनिषद् में आया है कि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

संत किनको कहते हैं, इसपर मैंने कहा। उस परे से परे अर्थात् जड़ से ऊपर चेतन और उससे भी परे परमात्मा। जिसको इनका दर्शन हो, उसके हृदय की ग्रन्थि छूट जाती है। जैसे दूध और घीउ का मिलाप रहता है, मथने से दोनों अलग-अलग हो जाते हैं, उसी तरह जड़ और चेतन अलग-

अलग होकर पहचान में आ जाता है। जिसके सारे संशय नाश हो गए, कर्मबन्धन नाश हो गए, ऐसे जो होते हैं, वे ही संत होते हैं। जिसको परमात्मा का दर्शन हुआ, उसके सारे कर्मबंधन छूट गए, उसने परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। जड़-चेतन की गाँठ खुल गई, संशय दूर हो गया, यह दशा जिनकी होती है, उनको संत कहते हैं। लेकिन इनकी पहचान कौन करे? बड़े विद्वान को बड़े विद्वान ही पहचानते हैं। कम पढ़े-लिखे या नहीं पढ़े-लिखे नहीं जानते। गोस्वामी तुलसीदासजी संत के लिए लिखते हैं—

अमित बोध अनीह मितभोगी।
सत्य सार कवि कोविद जोगी।।

बिना योग के हृदय की ग्रंथि नहीं खुलती है। संसार में जबतक शरीर है कुछ-न-कुछ खाना होगा। गोरखनाथजी के वचन में है—

धाये न खाइबा भूखे ने मरिबा,
अहि निसि लेबा ब्रह्म अगिनि का भेवं।

इतना भोजन लो, जिससे शरीर की रक्षा हो। भगवान बुद्ध के वचन में है कि भोजन की मात्रा जानो। गोरखनाथजी कहते हैं जिस भेद से ईश्वर की प्राप्ति होती है, ईश्वर-दर्शन होता है, उसमें दिन-रात लगे रहो। घमण्ड नहीं करो, सहज से रहो, स्वल्प भोगी बनो, सोओ कम, बोलो तौल करके, सभी काम में उनको तौल रहता है।

संत को कुछ प्राप्त करना नहीं रहता। ईश्वर-दर्शन करना भी अच्छा है। लेकिन जिनको दर्शन-ही-दर्शन है, उनको फिर इच्छा क्या? यही एक दर्शन है कि कभी अदर्शन नहीं होता।

सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक विहीन नहिं तारा।
झिन झिन जंतर निसि दिन बाजै, जम जालिम पचिहारा।।
—दरिया साहब, बिहारी

जो कुछ अप्राप्त है, उसके लिए इच्छा होती है। संत को कुछ भी अप्राप्त नहीं है, फिर भी संसार का काम करते हैं। इच्छा-रहित आदमी संसार में काम कैसे कर सकता है? इस बात को वह नहीं जानता जो इच्छा-रहित नहीं हुआ है। जो कभी स्वप्न नहीं देखा उसको उस सम्बन्ध में क्या मालूम?

अभी तुम सोए हुए हो, जगो। इसीलिए उपनिषद् में कहा है—उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो।' यह जाननेवाली अवस्था भी स्वप्न है। तीन अवस्था से ऊपर उठो, चौथी अवस्था में जाओ, तब इस जाग्रत को स्वप्न समझोगे। 'तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।' (गोस्वामी तुलसीदासजी)। इन तीन अवस्थाओं को छोड़कर तुम कभी नहीं रहे हो, फिर तो संसार को स्वप्न कैसे देखोगे? तीन अवस्था से ऊपर जाने के लिए आँख से ऊपर जाओ। गोरखनाथजी ने रास्ता बताया—'गगन मण्डल में औंधा कुआँ तहाँ अमृत का वासा।' बाहर कुआँ में पानी मिलता है और अंदर के कुआँ में अमृत मिलता है। यह बनौरी बात नहीं है, असली बात है। जो स्वयं ख्याली पोलाव बनाता है, वह दूसरे को भी वैसा ही समझता है। तीन अवस्था के ऊपर जाकर रहो तो इस संसार को स्वप्नवत् समझोगे। लोग संसार को बौद्धिक स्वप्न समझते हैं, प्रत्यक्ष नहीं। प्रत्यक्ष देखने के लिए तीन अवस्थाओं को पार करो। इसके लिए ज्ञानवान के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो, वह रास्ता क्षुरे के धार के समान है। क्षुरे की धार को सुनकर डर लगता है। क्षुरे की धार पर मन-चेतन चलता है, इसको क्षुरा काट नहीं सकता। इसी को कबीर साहब ने कहा है—'भक्ति का मारग झीना रे।' इस रास्ता को जो बतावे, वह गुरु है। राह बारीक गुरुदेव तें पाइए, जनम अनेक की अटक खोलै।' (कबीर साहब)। अनेक जन्मों का जो अटकाव था, सो छूट गया। गुरु नानक कहते हैं—खंनिअहु तीखी

बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।' लोगों को सुनकर कठिन मालूम होता है, लेकिन रास्ता जैसा बारीक है, उस पर चलनेवाला भी वैसा ही बारीक है।

संत रास्ते को तय किये होते हैं, उनको अब चलना नहीं है। पढ़े-लिखे नहीं रहने पर भी कबीर साहब जैसे विद्वान होते हैं। संत को कौन पहचान सकता है? कुछ संतवाणी याद है, सुचरित्र से रहता है—यह देखा जा सकता है। लेकिन वे कहाँ तक पहुँचे हुए हैं, इसकी पहचान कैसे हो सकती है?

गुरु महाराज ने कहा था कि संतों की वाणियों को पढ़ो, यह भी सत्संग है। दूर-दूर पर लोग रहते हैं, चिट्ठी से बातचीत होती है। चिट्ठी को आधी मुलाकात कहते हैं। संतों की आधी मुलाकात क्या कम है? बहुत है।

मैं दो चार बातें आपसे कहता हूँ, इससे मैं अपने को संत नहीं कहता। गुरु महाराज ने जो रास्ता बताया है—उसका छोर पकड़ा हूँ। संत-वचन अमृत-वचन है। इसके सहारे बिना अमृत-पद को कौन पा सकता है। परमात्मा बुद्धि के परे हैं। इसलिए बुद्धि में ही बँधे नहीं रहो। इसका मतलब यह नहीं कि अंध विश्वासी बन जाओ।

कई संतों के वचन पढ़ने का अर्थ यह है कि सभी संतों की वाणियों को पढ़ने से संतों का एक मेल मालूम होता है। ग्रंथों को पढ़कर समय टाला नहीं जाता। 'जब बहु काल करिअ सत्संगा। तबहिं होइ सब संशय भंगा।।' 'कुछ काल'—लाख वर्ष भी हो सकता है। कोई पूछे कि लाख वर्ष शरीर रहेगा? तो मैं कहूँगा—शरीर नहीं रहेगा, आप तो रहेंगे। कपड़ा फटता है, शरीर रहता है। इसी तरह शरीर छूटता है और आप रहते हैं।

संतों ने जो ज्ञान दिया है, उसका छोर पकड़ लिया है, कभी-न-कभी खत्म होगा। योग के आरंभ का नाश नहीं होता।

भक्ति बीज पलटै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।
—संत कबीर साहब

सभी दिन सत्संग कीजिए, कभी नहीं भूलिये।

n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत जिला वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर ग्राम—तिनटेंगा में दिनांक २०. ३. १९६५ ई० के सत्संग में हुआ था।

२०९. गुरु कैसा होना चाहिए?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

ईश्वर की प्राप्ति ईश्वर की भक्ति से ही होती है। ईश्वर की भक्ति ही ईश्वर की प्राप्ति के लिए सुगम साधन है, यह बात भारत में बहुत प्रसिद्ध है। इसलिए भारत के लोग अधिक-से-अधिक ईश्वर-भक्ति की चर्चा किया करते हैं। बात बिल्कुल यथार्थ है। केवल रोचक नहीं, रोचक होते हुए यथार्थ है। रोचक हो और यथार्थ नहीं हो, तब भी साधु-महात्मा, जो ऐसी बात कहते हैं, तो जिस ओर रुचि बढ़ानी चाहिए, बढ़ाते हैं; इसमें तो दोष नहीं है।

ईश्वर-प्राप्ति के लिए ईश्वर-भक्ति रोचक भी है और यथार्थ भी। ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर का स्वरूप जानना चाहिए। ईश्वर की प्राप्ति के लिए ईश्वर की भक्ति सुगम साधन है, इस बात को जो जानते हैं अथवा इस बात का जिसको ज्ञान है, वे ही ईश्वर-भक्ति में पड़ते हैं। मतलब यह कि ईश्वर-भक्ति

के लिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान अवश्य चाहिए। यदि विश्वास हो कि ईश्वर की स्थिति नहीं है, तो ईश्वर-भक्ति के लिए कोई आग्रह नहीं।

कुछ ज्ञान की आवश्यकता पहले होती है; क्योंकि बिना जाने क्या कर सकते हैं? अर्थात् कुछ नहीं कर सकते हैं। किसी प्रकार कुछ जानना बहुत आवश्यक है। इसलिए यह बहुत कहने योग्य है कि ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। किसी विषय के लिए हो, यदि अपने लिए हितकर होता है तो उस विषय की ओर एक आकर्षण-सा होता है।

आपलोगों को मालूम है कि अपने देश में द्वापर युग का अंत होते-होते एक बड़ा भारी युद्ध हुआ था और भरतवंशी में युद्ध हुआ था। भरत-वंशी दो भागों में बँटे थे—कौरव और पाण्डव।

भरतवंश में कुरु नाम का एक राजा हुआ था। इसीलिए कौरव और पाण्डवों के पिता का नाम पाण्डु था, इसीलिए पाण्डव; किंतु दोनों ही कौरव थे और भरतवंशीय थे। वह युद्ध अट्ठारह दिनों में समाप्त हुआ था। वह बड़ा भयंकर गृहयुद्ध था। पाण्डव जीत गए और कौरव सब मारे गए। सभी चचेरे भाई थे। और भी जो युद्ध करने आए थे, वे कोई उनके मामा, कोई चाचा आदि होते थे। उस भयंकर युद्ध में सब प्रिय और बड़े लोग एक दूसरे के द्वारा मारे गए। बच गए पाँच भाई पाण्डव। पाण्डवों में जो सबसे बड़े थे, वे थे युधिष्ठिर। उनके मन में हुआ कि अब हम राज्य करके क्या करेंगे? जो हमारे चाचा थे, भाई थे, अपने लड़के थे, भतीजे थे; सभी मारे गए अब राज्य किसके लिए करें। यह कहकर वे बहुत रोते थे कि मैंने बहुत पाप किए। लोग कहते कि तुम क्षत्रियों के धर्म के अनुसार युद्ध किए हो, मारे हो, तुम ऐसा क्यों कहते हो कि पाप हो गया है। फिर भी लोगों की बातों से इनका मन नहीं मानता था। व्यास और कृष्ण ने भी समझाया, लेकिन वे समझे नहीं। अंत में व्यासदेवजी ने कहा कि—तू पाप-पाप क्यों बोल रहा है, यज्ञ करो—अश्वमेध यज्ञ करो। युधिष्ठिर ने कहा कि अश्वमेध यज्ञ के लिए तो बहुत धन चाहिए, मेरे पास धन कहाँ? हमारे आश्रित जो राजे लोग थे, उनके कुछ धन लेकर मैंने खर्च किया और कुछ दुर्योधन ने लेकर खर्च किया। उनसे धन माँगूँ, तो कहाँ से वे देंगे और भी जो धन हस्तिनापुर का था, उसको दुर्योधन ने खर्च किया, हमलोग तो जंगल में थे। व्यासदेव ने कहा कि पहाड़ों में बहुत धन है, मरुत राजा ने यज्ञ किया था और उन्होंने इतना धन दान लोगों को दिया था कि लोग न ले जा सके, उसे पहाड़ में गाड़ दिया। मैं रास्ता और अनुष्ठान बताता हूँ, वहाँ जाओ, धन ले आओ और यज्ञ करो। युधिष्ठिर ने व्यासदेव की बात में विश्वास किया, उनके बताए हुए मार्ग से गए, अनुष्ठान कर धन प्राप्त किए और धन लाकर अश्वमेध यज्ञ किया।

मतलब यह कि बिना जाने आदमी क्या करेगा? इसलिए पहले जानना चाहिए अर्थात् ज्ञान चाहिए। युधिष्ठिर के लिए वह धन पहले अव्यक्त था। अव्यक्त में उसकी आसक्ति होती है, वही आसक्ति प्रेम में प्रवाहित होती है और उससे वह खिंचता है और धन लाने जाता है। ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर-स्वरूप का जानना आवश्यक है। नहीं तो अपना प्रेम किधर रखा जाय? इसलिए थोड़ी देर ईश्वर-स्वरूप के संबंध में सुनिए। इससे निर्णय होगा कि उसकी प्राप्ति के लिए क्या काम करना होता है।

ईश्वर कभी हुआ है, ऐसा नहीं; वह हई है। कबसे है? इसका समय बताना असंभव है। देश और काल माया के फैलने में होते हैं। जब देश-काल

नहीं थे, तबसे ईश्वर है। ईश्वर कितना पूर्व से है, कोई समय निर्धारित नहीं कर सकता। सबसे पहले का वह है। यह ज्ञान किसी धर्मवाले को पूछो कि ईश्वर सबसे पहले से है कि पीछे हुआ? सभी कहेंगे कि ईश्वर सबसे पहले का है। वह परम पुरातन, परम सनातन हैं। उससे पूर्व का और कोई सनातन नहीं है। वह अपने अतिरिक्त अवकाश छोड़कर रहता है, ऐसा नहीं।

सूर्य का गोला बहुत बड़ा है। इस पृथ्वी से कई हजार गुणा बड़ा है। लेकिन सूर्य की सब तरफ अवकाश है। तारामण्डल वा पृथ्वी—जिसको सौर जगत कहते हैं, वह भी अपना हद रखता है और उसकी चारो ओर अवकाश है। कबीर साहब ने कहा है कि ईश्वर के अतिरिक्त पहले कुछ नहीं था।

प्रथम एक सो आपे आप, निराकार निर्गुण निर्जाप।

वह (परमात्मा) कभी बन गया है, ऐसा नहीं। किसी कारण से वह हुआ, सो भी नहीं। कबीर साहब ने एक बड़ी बात कही है—

मूल न फूल बेलि नहीं बीजा, बिना वृक्ष फल सोहै।

न उसकी जड़ है, न फूल है, न लता है और न बीज है; केवल फल-ही-फल है। उसको किस रंग-रूप में जानें? तो कहा—'निराकार निर्गुण निर्जाप।' कोई आकार नहीं, रज, सत, तम कोई गुण नहीं अर्थात् त्रयगुणातीत वह है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा था—'**निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।**'

गोस्वामी तुलसीदासजी से पूछिए, तो वे कहेंगे—'अगुण अखण्ड अलख अज' है। तुलसीदासजी ने सगुण रूप के बहुत गुण-गान किए हैं और उन्होंने सगुण होने का कारण भी बताया है—'भगत प्रेमवश सगुण सो होई।' बाबा नानक से पूछिए तो वे कहेंगे—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।

अपार अर्थात् आदि-अंत-रहित। और संत लोग भी यही बात कहते हैं। उपनिषद् भी संतवाणी है। वेद-वाक्य के तुल्य उसका वाक्य माना जाता है। उसमें है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

—कठोपनिषद्

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अंतरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

सबसे बाहर होने पर प्रकृति से भी बाहर हो जाता है। इसीलिए 'प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनाशी।।' और दूसरी जगह—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

सगुण का अर्थ जो गुण के सहित है। जो गुण के सहित होता है, वह सगुण होता है और जब गुण को नहीं लेता है, वह निर्गुण है। निर्गुण जो सगुण होता है, तो क्या वह पूर्ण का पूर्ण सगुण हो जाता है? अभी सुना—'**राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर। अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।**' अपार को कोई दूसरा 'अपार' हो तो सम्पूर्ण को ढँक ले। लेकिन 'अपार' दो नहीं हो सकते। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

उमा राम विषयक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा।।
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहेहु कुविचारी।।

एक ही समय में कहीं बादल रहता है और कहीं सूर्य दीखता है। मतलब यह कि बादल का कितना बड़ा समूह भी सूर्य को ढँक नहीं सकता। बादल समूह को ऊपर करते जाओ तो रास्ते में ही बादल बिला जाएगा और सूर्य दीखने लगेगा। इसी तरह ईश्वर के सम्पूर्ण रूप को माया वा सगुण ढँक नहीं सकता है। उसके अल्पाति-अल्प भाग को ढँक सकता है। लेकिन त्रयगुण आवरण के अंदर

होने पर भी उसकी शक्ति घटती नहीं। दोनों हालतों में—निर्गुण रूप वा सगुण रूप में पूर्ण शक्ति है। आकाश में कुछ दूर तक धूल है, कुछ दूर तक धुआँ है और कुछ दूर तक अंधकार है। धूल, धूम और अंधकार से शून्य साफ-साफ देखा नहीं जाता और शून्य को पूरा-पूरा ये ढँक नहीं सकते। इसको पार करो तो शून्य को ठीक-ठीक देख सकोगे। इसी तरह स्थूल, सूक्ष्म और कारण; इन तीनों को पार करो तो स्वरूप को देख सकते हो।

लोग ईश्वर को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में मानते हैं। निर्गुण सनातन रूप है और सगुण पीछे का। एक जगह गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

उन्होंने निश्चित बात बता दी कि त्रयगुण रूप आवरण के धारण करने से वह त्रयगुण नहीं हो गया। अपने शरीर पर कितने भी कपड़े पहन लो, तुम्हारा शरीर भिन्न ही और कपड़ा भिन्न ही रहता है। इसी तरह चेतन आत्मा, चेतन आत्मा ही रहती है; शरीर, शरीर ही। चेतन आत्मा ज्ञानस्वरूप है और शरीर जड़—अज्ञानमय है। आवरण धारण करनेवाला वही हो जाता है, ऐसी बात नहीं। सृष्टि में ईश्वर का व्यापक विराटरूप सगुण है। लोगों ने विराटरूप में अनेक लोक-लोकान्तरों के दर्शन किए। अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण ने विराटरूप दिखाया और जब नारद को विराटरूप का दर्शन दिया, तब कहा कि 'तू जो मेरा रूप देख रहे हो, यह मेरी उत्पन्न की हुई माया है।' और श्रीमद्भगवद्गीता ७/२४ में भी कहा कि 'मैं अव्यक्त हूँ और बुद्धिहीन लोग मुझे व्यक्त मानते हैं।'

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।

असल में मूल स्वरूप त्रयगुणातीत,अज और अविनाशी है। और सब चीजें क्षणभंगुर और नाशवान हैं। यह सब समझकर जब ईश्वर-दर्शन के लिए इच्छा हो, तो उसको पाने की आसक्ति होनी चाहिए। व्यास के बताए अनुकूल युधिष्ठिर को धन का पता लगा, उस धन में उसकी आसक्ति हुई और उधर उसका प्रेम प्रवाहित हुआ। इसी तरह संतों के बताए अनुकूल ईश्वर के स्वरूप को जाने, आसक्ति लावे, उस ओर प्रेम प्रवाहित करे और ईश्वर की भक्ति करे।

भक्ति का अर्थ है सेवा। जिसको जिस चीज की आवश्यकता हो, उसको वह चीज दो, तो उसकी सेवा होती है। ईश्वर को क्या कमी है? ईश्वर से मिलने की इच्छा रखो, यही भक्ति है। संतों ने ईश्वर का जो ज्ञान दिया है, उस ओर हमारी बुद्धि प्रवाहित हो। दादू दयालजी ईश्वर-स्वरूप को बताते हैं—

दादू जानै न कोई , संतन की गति गोई।। टेक।।
अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।

वह ईश्वर कहाँ मिलते हैं? तो कहा—'अविगत अंत अंत अंतर पट।' अर्थात् वह सर्वव्यापी परमात्मा अपने अंदर के अंतिम पट को पार करने पर मिलेंगे। अकथ होने के कारण सूरदासजी ने भी कहा है—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब मन चक्रित धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै।।

उस सर्वव्यापी की प्राप्ति में ऐसी संतुष्टि होती है, जो कभी छूटने को नहीं है। अमित तोष होता है। मन-बुद्धि से आगे की बात है। अंदर में चलो,

जितने आवरण हैं, पार करो। दादू दयालजी ने तीन शून्यों का जिकर किया—'सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा... तीन शून्यों को पार करो तो, उसको पाओगे। तीन शून्य क्या है? यह शरीर हाड़, मांस, चाम का बना स्थूल कहलाता है। इसका दूसरा रूप सूक्ष्म है, यह भीतर में है। भीतर का अर्थ माथे के गुद्दे या अँतड़ी में नहीं। जैसे बर्फ स्थूल है और पानी सूक्ष्म है, इसी तरह अंधकार स्थूल है और प्रकाश सूक्ष्म है। हमारे अंदर प्रकाश नहीं होता तो हमारी आँख में ज्योति नहीं होती है। दूसरा तल ज्योति का है और तीसरा तल शब्द का है। शब्द अंधकार और प्रकाश में भी है और इन दोनों के परे भी है। इन तीनों को छोड़ो तो पता पाओगे—उस अविगत का। तुलसी साहब ने भी घटरामायण में तीनों शून्यों का वर्णन किया है—'जीव का निवेरा' में। कौन कह सकता है कि संसार में अंध ाकार, प्रकाश और शब्द नहीं है! इन तीनों को खतम कर दो तो स्थूल, सूक्ष्म, कारण; कुछ नहीं रहेंगे। सृष्टि समाप्त हो जाएगी। तीन को खतम करो। चौथे में जाओ, तो अंतरपट का अंत मिल जाएगा। जहाँ तक तुम्हारी गति है, वहाँ तक जाओगे और आगे नहीं। जाने का अंत कहाँ हुआ? अनंत में। जो बुद्धि के परे हैं। इस तरह ईश्वर का ज्ञान संतों ने बताया है। जैसे युधिष्ठिर को रास्ता और अनुष्ठान व्यासदेव ने बताया था। युधिष्ठिर ने विश्वास किया। उस रास्ते पर चलो, जहाँ तक जाना चाहिए, गया और अनुष्ठानपूर्वक कर्म करके धन प्राप्त कर यज्ञ किया। उसी तरह संतों ने जो रास्ता बताया, जो अनुष्ठान बताया, उस पर विश्वास कर उसके अनुकूल चलो और बताए अनुष्ठानों को करो तो ईश्वर रूप धन को पाकर कृतकृत्य हो जाओगे।

लोगों का ऐसा ख्याल हो कि 'अगर हम अपने अंदर चलेंगे, तो हम संसार को कैसे पार कर सकते हैं? तो शरीर और संसार में बहुत संबंध है। शरीर जितने तत्त्वों से बना है, संसार भी उतने ही तत्त्वों से बना है। शरीर के जितने तल हैं, संसार के भी उतने तल हैं। शरीर के जिस तल पर जब हम रहते हैं, संसार के भी उसी तल पर तब हम रहते हैं। शरीर के जिस तल को जब हम छोड़ते हैं, संसार के भी उसी तल को तब हम छोड़ते हैं। इससे यह निर्णय हुआ कि यदि हम शरीर के सभी तलों को पार कर जाएँ, तो संसार के भी सभी तलों को पार कर जाएँगे। चाहे अनेक ब्रह्माण्ड हों, किंतु अंधकार, प्रकाश और शब्द; इनसे परे कुछ सृष्टि नहीं हो सकती। संतों ने शरीर के अंदर चलने कहा। शरीर के तलों को पार करो तो संसार के भी तलों को पार कर सकोगे।

ये तल क्यों बने? स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि क्यों बने? इस बात को भी जानो। बिना सूक्ष्म के स्थूल नहीं हो सकता। बिना कारण के सूक्ष्म नहीं हो सकता। जो सूक्ष्म होता है, वह अपने से स्थूल में स्वाभाविक ही व्यापक होता है। पाँच भौतिक तत्त्वों में आकाश विशेष सूक्ष्म है, तो वह अन्य चार तत्त्वों में व्यापक है। माया के सारे आवरणों को जो पार कर गया, तो ईश्वर पाने को बाकी नहीं रह जाता। भगवान श्रीराम आगे-आगे श्रीलक्ष्मणजी पीछे-पीछे और बीच में सीताजी जाती थीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

आगे राम लखन बने पाछें। तापस वेष विराजत काछे।।
उभय बीच सिय सोहति कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे।।

यदि बीच से सीताजी हट जाएँ तो राम को लक्ष्मण देख लें। इसी तरह ब्रह्म का दर्शन माया के कारण जीव को नहीं होता है। जो माया के तीनों आवरण को पार करे, तो ईश्वर-दर्शन हो जाएगा। इसी को एक जगह में गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

मायाबस मति मन्द अभागी। हृदय जवनिका बहु विधि लागी।।

ते सठ हठ बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम पर धरहीं।।

काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ पड़े तम कूप।।

मतलब अंधकार के कुएँ से अपने को निकालो और अंदर के परदों को पार करो, तो राम प्रत्यक्ष होंगे। संतों ने जो मार्ग बताया है, उस पर हमको चलना चाहिए। इसके लिए सुगम से सुगम काम क्या है?

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।

गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनहुँ नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।
नव महँ एकउ जिन्हके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
सोइ अतिशय प्रिय भामिनी मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।।

पहली भक्ति संतों का संग है। लेकिन यह बात भी है कि—

नित प्रति दरसन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी काहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

इसके उत्तर में कहा है—

मन तो रमे संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

और—

ऐसी दिवानी दुनियाँ भक्ति भाव नहिं बूझै जी।।
कोई आवै तो बेटा माँगै, यही गुसाईं दीजै जी।।
कोई आवै दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।।
कोई आवै तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी।।
कोई करावै व्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी।।
साँचे का कोई गाहक नाहीं, झूठे जक्त पतीजै जी।।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजै जी।।

इन सब ख्यालों को लेकर साधु-संग में बैठोगे तो कैसे रंग लगेगा? कथा-प्रसंग में रहोगे तो कुछ करने की इच्छा होगी। कुछ करने के लिए गुरु की खोज करेगा। गुरु खोज करके उसकी सेवा करेगा। बिना गुरु-सेवा के कोई गुरु से विद्या नहीं ले सकता। अर्जुन के अतिरिक्त द्रोणाचार्य से और किसी ने अधिक विद्या नहीं ली। अर्जुन ने द्रोणाचार्य की बड़ी सेवा की थी। गुरु की सेवा करके लोग बड़े हुए हैं। क्षत्रपति शिवाजी गुरु समर्थ की सेवा अपने से ही करते थे। उनकी देह में तेल लगाते थे, पानी भरते थे आदि। राधास्वामी मत में राय शालिग्राम बहादुर महोदय की सेवा आपलोग जानते ही हैं कि कैसी सेवा उन्होंने की। लेकिन गुरु होना चाहिए, गोरु नहीं। गोरु कहते हैं—गाय-बैल को। गुरु कैसा होना चाहिए?

गुरु नाम है ज्ञान का, शिष्य सीख ले सोइ।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु शिष्य न कोइ।।
सत्तनाम के पट तरे, देवे को कछु नाहिं।
क्या ले गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं।।
मन दीया तिन सब दिया, मन की लार शरीर।
अब देवे को कछु नहीं, यों कथि कहै कबीर।।
तन मन दिया तो क्या भया, निज मन दिया न जाय।
कह कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय।।
तन मन दीया आपना, निज मन ताके संग।
कह कबीर निर्भय भया, सुन सतगुरु परसंग।।

फिर कहते हैं—

तन मन ताको दीजिये, जाके विषया नाहिं।
आपा सबही डारिके, राखे साहिब माहिं।।

ऐसे गुरु हों तो तन-मन से सेवा क्यों न करो? तन-मन और निज-मन में भेद है। पानी देना और कोई स्थूल सेवा करना तन-मन से सेवा है। तन-मन दो और आत्ममुखी मन भी दो। जब मन अंतर्मुखी होता है, तब वह निज मन कहलाता है। जो गुरु बाहरी सेवा से प्रसन्न होता है और अंतर

साधन का ख्याल नहीं रखता, वह तो—

हरइ शिष्य धन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई।।

जो गुरु बाहर की भी सेवा ले और अंतर साधन भी करावे, वह गुरु है। इस तरह गुरु की सेवा करो। हमारे यहाँ प्रसिद्ध है—'गुरु करो जान, पानी पीओ छान।'

यहाँ तक तीन भक्तियाँ हुईं। चौथी भक्ति है—कपट छोड़कर ईश्वर का गुणगान करना। कपट यह कि 'लोक दिखावे के लिए करता है, सो नहीं करे। संतों का संग, कथा-प्रसंग, गुरु-सेवा, कपट छोड़कर गुणगान करना; ये सभी क्रम से हैं।

पूजाकोटि समं स्तोत्रं, स्तोत्र कोटि समं जपः।
जप कोटि समं ध्यानं, ध्यान कोटि समो लयः।।

इसके बाद है पाँचवीं भक्ति—दृढ़ विश्वास से मंत्र जप करना, जो मंत्र गुरु बता दे। लेकिन ऐसा नहीं हो कि—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दह दिसि फिरै, यह जो सुमिरन नाहिं।।

सुमिरण कैसा होना चाहिए तो कहा—

तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय।।

एकाग्र मन से जप करो, केवल जप-संख्या पूरा करने के लिए नहीं। एकाग्र मन से कुछ देर तक जप हो, तो समझो कि जप हुआ। संतों के संग से लेकर मंत्र जप तक; सब में मन की एकाग्रता अत्यन्त अपेक्षित है। जो अत्यन्त अपेक्षित है, उसको नहीं जानकर भक्ति करो तो वह भक्ति नहीं। पाँच भक्ति तक लोग समझ जाते हैं। इनमें मन की एकाग्रता होती है। मन की एकाग्रता में पहाड़ पर चढ़ने की तैयारी होती है। अर्थात् भीतर के सूक्ष्म मण्डल में चलने की तैयारी है।

ईश्वर का दर्शन कौन करेगा? आँख नहीं। '**गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।**' संतों ने साफ कह दिया है। चेतन आत्मा से दर्शन होगा। माया में चेतन आत्मा के रहने से माया का ही दर्शन होता है। इसलिए लोगों को बाहर में ईश्वर का दर्शन नहीं होता। माया को पार कर ईश्वर का दर्शन होता है। जैसे एक ही लालटेन के पाँच पहलों में पाँच रंग के शीशे हों और बीच में मोमबत्ती जलती हो, तो जिस रंग के शीशे होकर वह रोशनी बाहर निकलेगी, वह रोशनी उसी रंग की होगी। अर्थात् लाल शीशा होकर जो रोशनी बाहर निकलेगी, वह लाल और जो हरा शीशा होकर रोशनी बाहर निकलेगी, वह हरी रोशनी होगी। इसी प्रकार पाँचों रंग के शीशे के संबंध में समझिए। किंतु भीतर में जो मोमबत्ती जलती है, उसके प्रकाश का रंग इन पाँचों रंगों से भिन्न ही होता है, यद्यपि पाँचों रंग के शीशों से मोमबत्ती की ही रोशनी निकलती है। इसी तरह पंच ज्ञानेन्द्रियों में यद्यपि चेतन आत्मा के कारण ही ज्ञान है, फिर भी इन्द्रियाँ मायिक होने के कारण मायिक वस्तु को ही ग्रहण कर सकती हैं, निर्मायिक को नहीं। निर्मायिक तत्त्व अर्थात् परमात्मा को चेतन आत्मा ही ग्रहण कर सकती है। अपनी रोशनी में अपने को रखकर ईश्वर-दर्शन करो।

ईश्वर क्या है? मैं कहता हूँ कि दृश्य क्या है? तो जो तुम आँख से देखो, वह दृश्य वा रूप है। जो कान से सुनो, वह शब्द है। इसी तरह जिसको तुम चेतन आत्मा से जानो, वही ईश्वर है।

अपने को मायिक आवरणों से छुड़ाकर अपने तईं में रखने के लिए अंदर चलना है। इस मंदिर में हमलोग बैठे हैं, इससे निकलने के लिए पहले मन्दिर-ही-मन्दिर चलना होगा। इसी तरह इस शरीर से निकलने के लिए शरीर के अन्दर-अन्दर चलना होगा। शरीर चार हैं—स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण। इन चारों जड़ आवरणों को पार करो,

ईश्वर-दर्शन होगा। बाहर में कितना भी दर्शन करो, ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। जैसे, जहाँ दूध है, वहाँ मक्खन; उसी तरह जहाँ मन है, वहाँ चेतन। इसीलिए संत तुलसी साहब ने कहा है—

सत सुरति समझि सिहार साधो। निरखि नित नैनन रहो।
धुनि धधक धीर गंभीर मुरली। मरम मन मारग गहो।।

मन को समेटो। मन को कैसे समेटोगे? प्रथम भक्ति से पाँचवीं भक्ति तक मन समेटने को कहा। मन जिधर से सिमटता है, उसके विपरीत ओर को जाता है। बिछावन फैला हुआ है, उसको समेटो तो ऊपर को उठ जाएगा। यह प्राकृतिक नियम है कि किसी पदार्थ को जिस ओर से समेटो, उसकी गति उसके विपरीत ओर को हो जाएगी। पाँच भक्ति से जितना समेट हुआ, और भी समेटने के लिए क्या करो?

छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।

अर्थात् इन्द्रियों को रोकने का स्वभाव बनाना, बहुत से कर्मों को करने से विरक्त होना और सदा सज्जनों के धर्म में लगा रहना, छठी भक्ति है। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों में बरतना सज्जनों के धर्म में बरतना नहीं है। पंच पापों से बचकर बरतना सज्जनों का धर्म है। दम= इन्द्रियनिग्रह। इन्द्रियों को काबू में रखने का स्वभाववाला बनना दमशील होना है। इन्द्रियों को काबू में कैसे करोगे? लोग कहते हैं कि विषयों की ओर से मन को विचार से हटाओ। ऐसा भी होता है, लेकिन विचार स्थिर नहीं रहता, बुद्धि स्थिर नहीं रहती है। इसलिए आदमी डिग जाता है। इसको छोड़ते भी नहीं बनता है। विचार भी रखो और देखो कि विषयों में इन्द्रियाँ कैसे जाती हैं? इन्द्रियों के घाटों में मन की धारा रहती है, तब इन्द्रियाँ विषयों को ग्रहण करती हैं। इसके लिए जाग्रत और स्वप्न की अवस्था प्रत्यक्ष प्रमाण है। मन की धारों को समेटो। मन को समेटने का साधन करने से और विचार द्वारा मन को रोकने से सूक्ष्मता में गति होगी। मन का इतना सिमटाव हो कि एकविन्दु हो जाए। एकविन्दुता में पूर्ण सिमटाव होता है। इसीलिए—

बीजाक्षरं परम विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

वह विन्दु क्या है? '**तेजो विन्दुं परं ध्यानं विश्वात्म-हृदि संस्थितम्। (तेजोविन्दूपनिषद्)**' अक्षर का बीज क्या है? अ,आ; A, B वा अलिफ, बे; कुछ लिखेंगे, तो पहले पेन्सिल जहाँ रखेंगे एक चिह्न होगा, उसको विन्दु कहते हैं। लेकिन यह परम विन्दु नहीं। परम विन्दु के लिए दूसरे पेन्सिल की जरूरत होती है, वह पेन्सिल है दृष्टि की। आपसे हम तक और हमसे आप तक दृष्टि आती-जाती है, लेकिन उस धार को देख नहीं सकते हैं।

द्रोणाचार्य ने एक बार अपने शिष्यों—कौरवों और पाण्डवों की परीक्षा ली। उन्होंने एक काठ का पक्षी बनवाकर वृक्ष पर रखवा दिया और एक-एक करके अपने सब शिष्यों को तीर से उसका निशाना करने कहा। आचार्य के पूछने पर किसी ने कहा—मैं वृक्ष-डालियों एवं पत्तों सहित पक्षी को देखता हूँ, तो किसी ने कहा—मैं डालियों और पत्तों सहित पक्षी को देखता हूँ; इस प्रकार किसी से भी उस पक्षी का ठीक-ठीक निशाना नहीं हुआ, अंत में अर्जुन से पूछने पर उसने कहा—मैं केवल पक्षी देख रहा हूँ। अर्जुन परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ।

एक संत ने कहा—'उलटि देखो घट में जोति पसार।' इसी को दृष्टियोग, शाम्भवी मुद्रा और वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। इसका अमा, प्रतिपदा और पूर्णिमा दृष्टि से साधन किया जाता है। आँख बंदकर देखना अमादृष्टि है, आधी आँख खोलकर देखना प्रतिपदा दृष्टि है और पूरी आँख खोलकर देखना पूर्णिमा दृष्टि है। प्रतिपदा और पूर्णिमा दृष्टि में

आँख में रोग भी हो सकता है। अमादृष्टि में कोई रोग नहीं। सुतीक्ष्ण मुनि और शमीक मुनि की कथा को पढ़िए, ये सब आँख बंदकर ध्यान करते थे। भगवान बुद्ध की ध्यानावस्थित प्रतिमा को देखिए, वे भी आँख बंदकर ही ध्यान करते दिखाई पड़ते हैं। कबीर साहब ने कहा है–

बंद कर दृष्टि को फेरि अंदर करै, घट का पाट गुरुदेव खोलै।

तथा–

नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारिके, पिय को लिया रिझाय।।

यह सुगम साधन है। दृष्टियोग से एकविन्दुता होती है। एकविन्दुता से पूर्ण सिमटाव होता है और तब प्रत्यक्ष होता है–'उलटि देखो घट में जोति पसार।' और बाबा नानक ने कहा–'अंतरि जोति भइ गुरु साखी चीने राम करंमा।' यह जो साधन करता है, इन्द्रियाँ काबू में आती हैं। एकविन्दुता होती है। केन्द्र में केन्द्रित होता है। वहाँ का रस साधक को बाह्य विषय रस से विशेष मनोहारी हो जाता है। बाह्य विषय रस कम हो जाता है। इसी तरह दमशील होना होता है। इन्द्रियों को विचार से भी रोको और साधन भी करो। केवल विचार से गिर भी सकता है।

विषय से छूटा तो क्या हुआ? निर्विषय की ओर हुआ। श्रीराम ने कहा था–'एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।' परमात्मा निर्विषय है, उससे जुटा। यह संबंध ईश्वर-भक्ति से है। उसके बाद सातवीं भक्ति में मनोनिग्रह का साधन है। कोई कहे कि दम के साधन में भी तो मन का साधन होता है। लेकिन वहाँ दोनों के साधन संग-संग होते हैं। सातवीं भक्ति में केवल मन का साधन होता है। क्योंकि मन के साधन के बिना ऋद्धि सिद्धि के प्रेरण में मन पड़ सकता है। 'ऋद्धि सिद्धि प्रेरई बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावई आई।। होई बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी।।' इसलिए मनोनिग्रह का साधन है। कैसे होगा? 'न नाद सदृशो लयः।' गुरु से इसका यत्न जानो। अंधकार के शब्द में स्वाद नहीं है। प्रकाश मण्डल के शब्द को पकड़ो, तब जो शब्द मिलता है, उसमें बहुत स्वाद है। उस शब्द को पकड़कर आगे बढ़ो। तुलसी साहब ने कहा है–

सहस कमलदल पार में, मन बुद्धि हिराना हो।
प्राण पुरुष आगे चले, सोइ करत बखाना हो।।

वह शब्द कहाँ से आया है? ईश्वर से सृष्टि हुई है, शब्द ईश्वर से है। बिना कम्प के सृष्टि नहीं हो सकती। आदि सृष्टि में आदि कम्प हुआ। कम्प शब्दमय होता है और शब्द कम्पमय होता है। जो कोई आदि शब्द को पकड़ता है तो 'परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह' ऐसा हो जाएगा। शब्द में अपने उद्‌गम स्थान पर खींचने का गुण है। इसलिए वह शब्द ईश्वर तक पहुँचाता है। वह शब्द वर्णात्मक नहीं है, ध्वन्यात्मक है।

अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अतालुकण्ठोष्ठमनासिकं च।
अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।

–अमृत नाद उपनिषद्

शब्द शब्द बहु अंतरा, वो तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवे नहीं, निरखि परखि करि देह।।

–संत कबीर साहब

जो लाभ हो, उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी दूसरे के दोष को न देखना, आठवीं भक्ति है। नवीं भक्ति सबसे सीधा तथा अकपट रहना और हृदय में न हर्ष और न दीनता लाकर मेरा (राम) भरोसा रखना है। ऊपर वर्णित सात भक्तियों में पूर्णता पाने पर ये आठवीं और नवीं; दोनों भक्तियाँ आप ही आप सध जाती हैं।

यह संतों का मार्ग है, इस पर चलो। सत्संग करो, गुरु खोजो और भजन करो तो कृतार्थ हो

जाओगे। एक जन्म में नहीं, तो कई जन्मों में। यह बीज ऐसा है कि मुक्ति दिलाकर ही छोड़ेगा।

भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।
भक्ति बीज पलटै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।

भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है कि 'योग का आरंभ का नाश नहीं होता। साधक पुण्यकर्ता पुरुषों को मिलनेवाले स्वर्ग आदि लोकों को पाकर और वहाँ बहुत वर्षों तक निवास करके पवित्र श्रीमान् लोगों के घर में जन्म लेता है अथवा बुद्धिमान योगियों के ही कुल में जन्म पाता है। इस प्रकार प्राप्त हुए जन्म में वह पूर्व के बुद्धि संस्कार को पाता है और उससे अधिक (योग) सिद्धि पाने का प्रयत्न करता है। प्रयत्नपूर्वक उद्योग करते-करते पापों से शुद्ध होता हुआ अनेक जन्मों के अनन्तर सिद्धि पाकर उत्तमगति पा लेता है।'

जैसे चुम्बक से लोहा खींच जाता है और उसमें लग जाता है, परंतु चुम्बक से लोहे को कोई छुड़ा भी सकता है, लेकिन जो भक्त उस आदि शब्द से पकड़ा जाएगा, उसको कोई बज्र भी नहीं छुड़ा सकता। आज तक जितने प्रकार के बम बनते हैं, कोई भी नहीं छुड़ा सकता है।

कोई कहते हैं कि नौ भक्ति में से एक भी कर लो, तो ईश्वर के अतिशय प्यारे बन जाओगे। मैं कहता हूँ कि एक भक्तिवाला अतिशय प्रिय है, तो नवो प्रकार की भक्ति जो करेगा, उसके लिए नौ बार अतिशय जोड़कर देखो, वह कितना प्यारा होगा? भक्त को तो भक्ति करने में न्योछावर हो जाना चाहिए। तुम कुछ भक्ति करना चाहो और कुछ नहीं, तो कैसे भक्त हो? तुम कायर हो। तुमको पुरुषार्थी बनकर सभी भक्ति करनी चाहिए। नवो प्रकार की भक्ति सिलसिले के साथ है, नवो भक्ति करो। n

यह प्रवचन मुरादाबाद स्थित श्रीसंतमत सत्संग मंदिर कानून गोयान मुहल्ले में दिनांक १२.४.१९६५ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२१०. बाहर संसार में भागकर कहाँ जाओगे?

प्यारे लोगो!

आप सबको विदित होना चाहिए कि संतों के ज्ञान के अनुकूल मैं आपको समास-रूप में कुछ कहूँगा। कारण है, सब लोगों को अपनी पूर्ण स्वतंत्रता विदित नहीं होती है। यह जो अपना राज्य कहलाता है, इस राज्य में रहकर भी या कोई सम्राट हो उनको भी, कोई जो राष्ट्रपति हैं, उनको भी बड़े-से-बड़ा—इन्द्र को भी स्वतंत्रता नहीं है। संसार, शरीर और इन्द्रियों के बंधन उनके ऊपर है। संसार और शरीर में रहते हुए उनके संबंधों और बंधनों से जीव जकड़ा हुआ है। इन बंधनों से जबतक कोई छूट नहीं जाता, कोई स्वतंत्र है, कहा नहीं जा सकता। स्वतंत्रता में जो सुख है, वह परतंत्रता में नहीं। घर है, सम्पत्ति है फिर भी और चाहिए। इसके अतिरिक्त दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट होते हैं, फिर मनोविकार सताते हैं। सुख पाने के लिए दौड़ते हैं, फिर भी सुख दूर ही भागता है। संतलोग कहते हैं—इनको छोड़ दो, संन्यासी बन जाओ, फिर भी मनोविकार तुम्हारे साथ है। शरीर का बंधन—संसार का बंधन तुम्हारे साथ है। इससे छुड़ावे कौन? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।

कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सदग्रंथ।।

अर्थात् संतों का संग मोक्ष का और कामी पुरुषों का संग संसार का मार्ग है। संत, कवि, पंडित, वेद, पुराण और सद्ग्रंथ ऐसा कहते हैं। इसीलिए संतों के ज्ञान का प्रचार है। संतों के ज्ञान को जानने और उसके अनुकूल चलने का यत्न करना चाहिए, तब मालूम होगा कि हम बंधन से छूटते जा रहे हैं। संत महात्मागण छूट गए, हम भी छूट जाएँगे।

संत-महात्मा कहने का अर्थ, संन्यासी-वैरागी से नहीं है, संत की रहनी में रहने से है। इसलिए संत के आचरण से रहो, उनके कहे अनुकूल चलो, बंधन से मुक्त होओगे। संसार में यह चाहिए और वह चाहिए, यह इच्छा बनी रहती है। रावण को सोना-चाँदी सभी थे, खाई के बदले चारो ओर समुद्र था। वह स्वयं पण्डित था, लेकिन उसको संतोष नहीं था, उसकी गिनती श्रेष्ठजनों में नहीं, दुष्टजनों में होती है। इसलिए कहा है—

कोइ करो महल कोइ करो टाटी।
उड़ जाय हंसा पड़ी रहै माटी।।

अपने रहते हुए भी सम्पत्ति चली जाती है। अपने देश में ही क्या-क्या परिवर्तन हुए, लोगों को विदित है। संसार में रहो और संसार के पदार्थों को औषधि के रूप में लो। संसार से छूटने का यत्न करो, आसक्ति छोड़ो। संत लोग कहते हैं कि सत्संग करो। सत्संग से विदित होगा कि सब बंधनों से छूटे हुए परमात्मा हैं। उनकी भक्ति करो, उनपर कोई बंधन नहीं।

बंधे को बंधा मिले, छूटे कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पलमें लेय छोड़ाय।।

भक्ति कहते हैं—सेवा को। किसी की कमी को पूरा कर दो, उसकी सेवा है। लेकिन परमात्मा को किसी चीज की कमी नहीं है। उसकी सेवा कैसे करोगे? परमात्मा स्वरूपत: क्या है? जैसे एक-एक इन्द्रिय का एक-एक विषय है, उसी तरह परमात्मा किस का विषय है?

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

परमात्मा मायातीत है। उसको जानने के लिए क्या करो? उसको जानने के लिए कोई भी इन्द्रिय समर्थ नहीं है। अपने आपको सोचो, कौन हो?

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

तुम्हीं उसको जानने योग्य हो। तुमसे जो जाना जाय, वही ईश्वर है। तुम शरीर और संसार में फँस गए हो। शरीर और मन-बुद्धि के ज्ञान से परे तुम हो। तुम अपने से जिसको ग्रहण करोगे, वह ईश्वर है। इन बातों को लोग भूलकर भटकते-फिरते हैं। सत्संग करो और जगो। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

जागु जागु जीव जड़ जो है जग जामिनी।

आज वा कल्ह कब यह शरीर छूटेगा, ठिकाना नहीं।

आज काल्ह के बीच में, जंगल होगा वास।
ऊपर ऊपर हर फिरै, ढोर चरेंगे घास।।
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह की साज।
काल अचानक मारसि, ज्यों तीतर को बाज।।
—संत कबीर साहब

चलना है रहना नहीं, चलना विस्वावीस।
सहजो तनिक सुहाग पै, कहा गुथावै सीस।।
—भक्तिन सहजो बाई

संसार से भागो! लेकिन बाहर संसार में भागकर कहीं जाओ, संसार से बच नहीं सकते। जगो, जागने से मालूम होगा कि किधर रास्ता है? कहाँ से रास्ता आरंभ होगा? रास्ता खत्म होने पर परमात्मा का दर्शन होगा। हमलोग रोजमर्रा शरीर के अंदर आते-जाते रहते हैं—तीन अवस्थाओं में। संत बताते हैं—इन तीन अवस्थाओं से ऊपर उठो। तब जो जगना होगा, वह ठीक जगना होगा। अभी जो

हमलोग जगे हैं, वह स्वप्न है। लेकिन स्वप्न में स्वप्न मालूम नहीं होता, जगने पर मालूम होता है कि स्वप्न था। इसी तरह चौथी अवस्था में जाओ, तो यह जगना स्वप्न हो जाएगा। लेकिन जो जहाँ बैठा रहता है, वहीं से चलना आरंभ करता है। शरीर के अंदर में रहते हो, शरीर के अंदर-अंदर चलो। तब मालूम होगा कि शरीर में शरीर है। मैं शरीर में रहता हूँ, लेकिन मैं शरीर नहीं हूँ। अपने की पहचान करो। अपने की पहचान अपने से होगी। जो अंतर-मार्ग में चलता है, वह प्रत्यक्ष रूप में ईश्वर को पाता है। बाहर में किसी भी इन्द्रिय से ईश्वर को नहीं पकड़ सकते।

संसार में रहने के लिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार—पंच पापों को नहीं करो। पंच पापों से बचने से ईश्वर की ओर चलने में सहायता होती है। संसार में पूज्य होकर रहोगे और लोगों में प्रतिष्ठा होगी। सब को सब पर विश्वास होगा। सबका कल्याण होगा, तब स्वराज्य में सुराज्य होगा। सुराज्य लाने के लिए बुराइयों से बचो। जो अनिवार्य रूप से ईश्वर-भजन करेगा, वह अनिवार्य रूप से परमात्मा को पावेगा। संतों का संग करो। उनके संग से धीरे-धीरे काम करते-करते खतम होगा। देश में शान्ति से लोग रहेंगे।

n

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत कांग्रेस आश्रम, तेघड़ा (बेगुसराय) में दिनांक २१.४.१९६५ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२११. ईश्वर की महिमा

प्यारे लोगो!

जीवों के प्रति ईश्वर का कितना उपकार है, वह वर्णनातीत है। जैसे कोई महा उदार हो और जो कोई माँगे, न माँगे, सबको सब कुछ दे; उसी तरह परमात्मा है। जिस चीज की जितनी अधिक आवश्यकता है, परमात्मा ने उस चीज का भण्डार उतना ही विशाल बनाया है। पाँच तत्त्वों में आकाश का कितना विस्तार है? हवा कितनी है कि कितना भी श्वास लो खतम नहीं होती। यह ऐसा भोजन है कि नींद में भी (हवा का) भोजन करते हैं। जल कितना है? पृथ्वी के बिना कोई रह नहीं सकता। पृथ्वी से अन्न उपजाते हैं, जीवन-यापन करते हैं। ईश्वर की महिमा में ये तुच्छ हैं, लेकिन मनुष्य के लिए ये महान हैं। मनुष्य की क्या शक्ति है कि इन पंच तत्त्वों को दे। देवता को कौन कहे, ईश्वर कोटि के देवता भी ये नहीं दे सकते। ईश्वर का कितना उपकार जीवों पर है, कोई वर्णन नहीं कर सकता। हमलोग परमात्मा के उपकार से बहुत उपकृत हैं। लदे हुए हैं। परमात्मा की कोई मदद करे, सो तो होगा नहीं। उनका स्मरण करो, यश गाओ, स्तुति करो। ईश्वर-भक्ति में तीन बातें अवश्य हैं। स्तुति, प्रार्थना और उपासना।

सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर औरु अक्षर पार में।
निर्गुण सगुण के पार में सत् असत् हु के पार में।।..

यह बहुत उच्चकोटि की स्तुति है। मनुष्य कुछ-न-कुछ चाहता रहता है। नम्रता सहित कुछ माँगना प्रार्थना है। मामूली चीज के लिए प्रार्थना क्या करनी है? जो कोई नहीं दे सके, वह माँगो। और ईश्वर से माँगो। ईश्वर से ईश्वर के स्वरूप को—उनकी प्राप्ति को माँगो। संतों के बिना ईश्वर को नहीं जान सकते। उस परमात्मा को पाने की विधि भी नहीं जान सकते। इसके बतानेवाले संत

हैं। इसलिए संतों के हम आभारी हैं। जो संत उपस्थित हैं, उनकी सेवा करो। जो संत मौजूद नहीं हैं, उनकी स्तुति करो। गुरु ईश्वर-प्राप्ति का यत्न बताते हैं। उनका भी बहुत उपकार है। उनकी भी स्तुति करो। उपकार नहीं मानना कृतघ्नता है। उपासना कहते हैं, जिससे ईश्वर की नजदीकी हो। उपासना भी नित्य करनी चाहिए। जो अच्छे गुरु होते हैं, वे केवल बाहरी सेवा में ही प्रसन्न नहीं होते। इसीलिए कबीर साहब ने कहा है—

सत्तनाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं।।
तन मन ताको दीजिये, जाके विषया नाहिं।
आपा सबही डारिके, राखे साहिब माहिं।।

किंतु तन-मन देना ही बस नहीं है। इसलिए कहा—

तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कह कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय।।
तन मन दीया आपना, निज मन ताके संग।
कह कबीर निर्भय हुआ, सुन सतगुरु परसंग।।

तन-मन से सेवा बाह्यमुखी सेवा है और निज-मन से सेवा अंतर्मुखी सेवा है। निज-मन से सेवा करनेवाला ही पवित्र होकर ईश्वर की ओर चलता है। कबीर साहब कहते हैं कि जो निज-मन नहीं दिया है, उसका विश्वास नहीं। वह कभी पवित्र रहेगा, कभी अपवित्र रहेगा और कभी सेवा भी छोड़ सकता है। भजन करनेवाले का इन्द्रियनिग्रह होगा, समता होगी और तब वह पूर्ण सेवक होगा। अच्छा गुरु वह नहीं होता जो विषय संबंध रखकर बाह्य सेवा में प्रसन्न रहे। गुरु अंतर्मुखी होने के लिए उपदेश देते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता सिखाती है कि योग-युक्त रहकर कर्म करो, तो कर्म-बंधन से छूटोगे, जैसे राजा जनक आदि हुए। कर्म को कोई छोड़ नहीं सकता। घर छोड़ सकता है, विरक्त हो सकता है, लेकिन फिर भी कर्म करना नहीं छोड़ सकता। शरीर के लिए, संसार के लिए वह कर्म करेगा। पुरुषार्थी कर्म करे, परंतु उसका फल नहीं चाहे। फल चाहने-वाला ईश्वर को नहीं चाहता। जो भोग चाहता है, वह भोग चाहनेवाला बंधन से नहीं छूटता।

शरीर में जो नित्य पदार्थ है, वह आत्मा है। सबमें एक ही आत्मा है, ऐसी समता की प्राप्ति उसको होती है जो अध्यात्म-वृत्ति रखकर काम करता है। इसकी कुंजी है आत्मरत होने का यत्न। अपना निशाना अपने अंदर रखकर अपने उसपर लगे हुए रहो। बाहरी सब ख्यालों को छोड़कर अपना निशाना अंदर में करो। बाहर में ऐसा नहीं होगा। उसमें ऐसी बात नहीं कि मैं मन से यह देखूँ वा वह देखूँ। अपना निशाना अपने अंदर रखें, आँख बंद करें। जो यह नहीं कर सकता है, उसके लिए यह है कि बाहर में कोई मोटी चीज लो, परमात्मा का प्रतीक मानकर ईश्वर के लिए जो जप करते हैं, यह भी आत्मरत होने का मोटा तरीका है। साधक अपना निशाना अपने अंदर रखे रहकर घर का काम कर सकता है।

सुरत सदा सन्मुख रहै, जहाँ तहाँ लै लीन।
सहज रूप सुमिरन करै, निःकर्मी दादू दीन।।

—संत दादू दयालजी

आत्मरत होने में दो चीजों की अनुभूति होती है। वह है प्रकाश और शब्द। ये दोनों अंतर में भी हैं और बाहर में भी। अंतर की चीजों को साधन करके देखो, है अवश्य। शब्द वही है जो सृष्टि का मूल है। प्रकाश क्या है? जो रूप जगत का मूल है। यह पहले विन्दु रूप में लक्षित होता है। दृष्टियोग से विन्दुध्यान होता है। विन्दुध्यान उत्तम ध्यान है। इसकी बड़ाई तेजोविन्दूपनिषद् में इस प्रकार है—

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम् ।

अर्थात् हृदयस्थित विश्वात्म-तेजस्-स्वरूप विन्दु

का ध्यान परम ध्यान है। जो कोई मोटी बुद्धि के हैं, वे कहते हैं कि आँख बन्द करने से क्या होगा? मैं कहता हूँ—बहुत आराम मिलता है। आँख बन्द करने पर ही सोते हैं। बिना सोए लोग पागल हो जाएँगे। आँख बन्द करो और कुछ क्रिया जानकर करो तो अंतर्मुख होना होगा। इससे बाहर के नए-नए संस्कार से साधक बचा रहता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में दृष्टियोग साधन करने के लिए नासाग्र में देखने कहा है, लेकिन दिशाओं को देखने नहीं कहा है। आँख खोलने से कोई-न-कोई ओर अवश्य देखी जाएगी। गीता के टीकाकारों ने नासिका के अग्रभाग देखने को बताए हैं। परंतु 'भाग' शब्द गीता में नहीं है, अपनी ओर से देकर अर्थ करते हैं।

संसार में दो बातों की बड़ी खूबी है, इसी से संसार में जीवन है। इन दोनों को संसार से निकाल लो तो, न तो कोई प्रबंध होगा और न कोई जीवित रह सकता है। प्रकाश नहीं रहने से गरमी चली गई, तब कोई वा कुछ नहीं रह सकता। शब्द नहीं रहे तो कम्पन नहीं रहा। बिना कम्पन से कोई चीज ठहर नहीं सकती। आजकल के वैज्ञानिक और विशेष विचारक कहते हैं कि यह स्पेस (Space) शून्य स्थान का कहीं अंत नहीं मालूम पड़ता है। क्षितिज को देखिए जैसे परिधि मालूम पड़ती है। परिधि की रेखा का कहीं-न-कहीं अन्त अवश्य होगा। क्षितिज को देखकर विचारकों ने विचारा है कि स्थान का अंत होता है। जहाँ देश है, वहाँ काल है; जहाँ काल है, वहाँ देश है। इसलिए जहाँ स्थान का अंत होता है, वहाँ काल का भी अंत होता है।

सृष्टि बनी है। इसका पहला रूप सूक्ष्म है। बिना बीज का अंकुर नहीं और बिना अंकुर के वृक्ष नहीं। बीज कारण है, अंकुर सूक्ष्म और वृक्ष स्थूल। कारण भी बिना महाकारण के नहीं बन सकता। कुम्हार मिट्टी से बर्तन बनाते हैं। एक बर्तन बनाने में जितनी मिट्टी की आवश्यकता होती है, उतनी मिट्टी उस बर्तन का कारण है। कारण वा बीज का भण्डार प्रकृति है। प्रकृति को महाकारण कहते हैं। इस तरह स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण; ये चार दर्जे होते हैं। ये चारो जड़ हैं। इसलिए इन चारो के परे एक चेतन अवश्य है। पाँच तत्त्व, गुण तीन; ये सब जड़ हैं। जड़-जड़ के मिलन से चेतन हो जाए, संभव नहीं। इसीलिए चेतन अलग तत्त्व है। श्रीमद्भगवद्गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अलग-अलग विचार लिखा है। संत दादू दयालजी ने कहा है—

पंच ऊपना शबद थैं, शबद पंच सौं होइ।
साँईं मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ।।

इन संतों को जैसे प्रत्यक्ष था। संत कबीर साहब की वाणी में हैं—

पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग।।

यह पढ़कर बहुत ताज्जुब हुआ। सोचते-सोचते समझ में आया। गिनती करो तो जितने तत्त्व पिण्ड में हैं, उतने ही ब्रह्माण्ड में। क्षितिज की परिधि को बढ़ाओ तो वह गोलाकार मण्डल बन जाएगा। पाँच नौबत कथित पाँच मण्डल के केन्द्रीय शब्द हैं। कोई भी मण्डल तबतक नहीं बनता, जबतक उसका केन्द्र स्थापित नहीं हो। केन्द्र से धारा प्रवाहित होती है, तब मण्डल बनता है। पाँच मण्डल के केन्द्रीय शब्द होते हैं। संतों के ग्रंथों में यही पाँच नौबत है। दादू दयालजी ने कहा है—

यंत्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार।
पाँचो कारज नाद है, दादू बोलन हार।।

यह पिण्ड और ब्रह्माण्ड परमात्मा का यंत्र है। कबीर साहब ने भी कहा है—

कबीर भेदी भक्त से, मेरा मन पतियाय।

सेरी पावै शब्द की, निर्भय आवै जाय।।

राधा स्वामी साहब ने कहा है—

शब्द शब्द पौड़ी चल चढ़ चल।

शब्द में उद्गम स्थान पर खींचने का गुण है। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है। इसलिए वह नीचले केन्द्र पर पकड़ा जाता है। इस प्रकार एक केन्द्रीय शब्द से दूसरे केन्द्रीय शब्द को पकड़कर अंत में 'निःशब्दं परमं पदम्' में पहुँचकर साधक परम प्रभु सर्वेश्वर को प्राप्त करेगा।

n

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत ५०वें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर श्रीसंतमत सत्संग मंदिर बारो (बेगुसराय) में दिनांक २३.४.१९६५ ई० के सत्संग में हुआ था।

२१२. ध्यानाभ्यास में लौ लगाने से तरक्की

प्यारे लोगो!

ध्यानाभ्यास में जिनका अधिक लौ है, वह उतनी ही अधिक तरक्की करेंगे। ध्यान-अभ्यास में जिनका मन नहीं लगता है और जो मन को फेर-फेर कर ध्यान में नहीं लगाते हैं, वे ध्यान में उन्नति नहीं कर सकेंगे। मन के दूसरे सारे ख्यालों को छोड़कर ध्यान करना होता है। अनेक जन्मों के संस्कार के कारण मन जहाँ-जहाँ घूमता है, इसको बार-बार रगड़ के द्वारा ध्यान में लगाना चाहिए। थकना नहीं चाहिए। बड़ी मुस्तैदी रहेगी, साहसपूर्वक करते रहेंगे, तो साधन का वह फल मिलेगा, जो संत कह गए हैं।

जो पुराने सत्संगी हैं वा जो अभी नए सत्संग करते हैं, सबको मालूम है कि ध्यान में बाहरी चीज का अवलम्ब तो केवल नाम मात्र है, जैसे कुछ जप करना और मानस ध्यान करना। लेकिन इस अल्प का भी अनादर नहीं करना चाहिए। जब स्थूल में मन को नहीं लगा सकते हैं तो सूक्ष्म में मन को कैसे लगा सकते हैं? इसलिए मानस जप और मानस ध्यान को भी मुस्तैदी से करना चाहिए।

इसके बाद दृष्टियोग और शब्दयोग का साधन है। दृष्टियोग से ज्योति में प्रवेश होता है। फिर नाद का ध्यान होता है। यही असली नाम-भजन है। बहुत लोगों को ध्वन्यात्मक नाम-भजन की खबर भी नहीं है। बहुत लोग नहीं जानते कि अंतर का नाद ईश्वर का नाम है। कबीर साहब ने कहा है—

'सुरत निरत मन पवन एक कर, सुनो शब्द धुन तान रे।
कहै कबीर पहुँचो सतलोका, जहँ रहैं पुरुष अमान रे।।'

'मुख कर की मेहनत मिटी, सतगुरु करी सहाय।
घट में नाम प्रगट भया, बक बक मरै बलाय।।
सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माहिं।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत नाहिं।।'

गुरु नानक ने कहा है—

कासट महिं जिउ है बैसंतरु, मथि संजमि काढ़ि कढ़ीजै।
राम नाम है जोति सवाई, ततु गुरमति काढ़ि लईजै।।

जैसे काठ में अग्नि है, उसी तरह ईश्वर का नाम सबके अंदर-अंदर प्रविष्ट है। और जैसे लकड़ी को रगड़कर अग्नि पाते हैं, इसी तरह दृष्टियोग के अभ्यास से इस नाम को प्रत्यक्ष पाते हैं। इसकी युक्ति बतानेवाले से युक्ति जानकर अभ्यास करो और नाम को अपने अंदर पा लो। ज्यादे ध्यान-अभ्यास करके काम खत्म होगा।

जो संसार में अधिक लोभ करते हैं, उनका मन उसमें फँसा रहेगा। गुफा में, कन्दरा में, कहीं बैठो, सांसारिक लोभ होने से मन उधर ही जाएगा। वह प्रत्याहार करते-करते थक जाएगा और कभी

छोड़ भी बैठेगा। लेकिन जो ज्यादा प्रत्याहार करेंगे, उनको धारण होगी और फिर ध्यान होगा। जो कोई मन लगाकर साधन करेंगे और करते हैं, वे कुछ-न-कुछ अवश्य पाते हैं। जो कोई पूछते हैं कि आपको ध्यान में क्या देखने में आता है? सो यह पूछने की बात नहीं है। जो कोई ऐसा पूछते हैं, वे ध्यान करना नहीं चाहते। यदि कुछ कह भी दिया जाय कि हाँ, हमने यह वा वह देखा, तो उसका विश्वास भी आप कैसे करेंगे कि ठीक ही हमने देखा वा नहीं? इन सब बातों को छोड़कर स्वयं ध्यान कीजिए और देखिए कि क्या देखने में आता है।

n

यह प्रवचन पटना जिलान्तर्गत मिनिस्ट्रियल आफिसर्स रेस्ट हाउस राजगीर में दिनांक ५. ९. १९६५ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२१३. भगवान बुद्ध की साधना : ज्योति और शब्द

प्यारे प्रिय दर्शनो!

मैं आज बहुत प्रसन्न हो रहा हूँ। मैंने इतिहास में पढ़ा था कि बौद्धकालीन नालन्दा विश्वविद्यालय के रूप में, बहुत विस्तार रूप में था। यहाँ देश-विदेश से लोग आकर विद्या-लाभ करते थे। विद्या दो प्रकार की हैं—एक पुस्तकों में और दूसरी अंतर अभ्यास से अभ्यासी को प्राप्त होती है। ये दोनों प्रकार की विद्याएँ यहाँ से मिलती थीं। आज हजारों वर्षों के बाद ऐसा रूप देख रहा हूँ—नालन्दा उत्थान कर रहा है, देश-विदेश के लोग यहाँ आकर विद्या-लाभ कर रहे हैं और करेंगे; मेरी यह आशा है।

आज भारत में जो राज्य चल रहा है, उसको संतों का ज्ञान बहुत पसन्द है। सरकार उसमें मदद भी करती है। खास करके यह बात कि आप विदेश से और दूर-दूर प्रान्त से जो यहाँ विद्याध्ययन के लिए आए हैं, उनको मैं धन्यवाद देता हूँ। नालन्दा विश्वविद्यालय का पुनरुत्थान हो रहा है। इसकी बुनियाद या नींव प्रशंसा-भाजन भिक्षु जगदीश काश्यपजी के साथ आप डाल रहे हैं। फिर यह अपना पूर्वरूप धारण करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। पूर्व में यहाँ से विद्या प्राप्त कर जो विदेश जाते थे, वे वहाँ प्रचार करते थे, पुनः वैसा ही होगा। इस विश्वविद्यालय की जड़ हैं—भगवान बुद्ध। भगवान बुद्ध के नहीं होने से यह विश्वविद्यालय होता वा नहीं, कहा नहीं जा सकता। मैं परम प्रभु परमात्मा से विनय करता हूँ कि इस देश का जो बड़ा विश्व-विद्यालय था, फिर उसी रूप में यह आ जाय।

भगवान बुद्ध ने जिस ज्ञान से, जिस धर्म से,जिस प्रभुत्व से समूचे संसार में अपना ज्ञान फैलाया था, वह फिर फैले। वह क्या ज्ञान था? जब वे घर से निकले तो वे उस ज्ञान को नहीं जानते थे। घर से निकलकर वे अग्निहोत्री, पण्डित आदि के यहाँ गए और उनके बताए साधन को किए। कठोर तप के बाद भी उनको नाउमीदी आई कि जिस परम ज्ञान को मैं चाहता था, वह प्राप्त नहीं हुआ। घर जाकर राज्य सम्हालूँ या संसार में घूमूँ? सोचा, राज्य में मन नहीं लगेगा। फिर उन्होंने विचारा—ध्यान करूँगा, चाहे शरीर गल जाय। ध्यान करने बैठ गए। उस प्रथम ध्यान में उन्हें मालूम हुआ कि कठोर साधन से कुछ नहीं होगा। और न उससे होगा जो इन्द्रियनिग्रह नहीं करता। मैंने सुना था कि जब वे प्रथम ध्यान में थे तो

उन्होंने देखा कि इन्द्र आए हैं। उनके हाथ में तानपूरा है। तानपूरा में तीन तार हैं। एक तार बहुत कसा हुआ है, जिसकी आवाज ठस मालूम पड़ती है, दूसरा तार बिल्कुल ढीला है, उसकी आवाज घड़ड़-घड़ड़ मालूम पड़ती है—अच्छी नहीं मालूम होती। मध्य का तार—तीसरा ठीक तरह से, यानी न तो अधिक कसा हुआ और न एकदम ढीला है—उसकी आवाज बड़ी मीठी और सुरीली है। इससे उन्होंने निर्णय किया कि मध्य का मार्ग पकड़ो। न तो इन्द्रिय आधीन होकर संसार में पड़े रहो और न शरीर को इतना कसो कि शरीर ही सूख जाय। इसलिए भगवान बुद्ध ने बीच का रास्ता बनाया।

इसका दूसरा अर्थ है कि अपने शरीर में दो भाग हैं। दायाँ और बायाँ। दाहिने बायें के बीच में रहो। इसी को संतों ने दूसरी तरह से कहा कि दाहिने भाग में एक नाड़ी है, जिसको पिंगला और बाएँ भाग में दूसरी नाड़ी है, उसको इड़ा कहते हैं। इसी को संतों ने इंगला और पिंगला भी कहा और मध्य की नाड़ी को सुषुम्ना कहा है। जो दाहिने भाग में है, उसमें रजोगुण का संचार होता है; जो बायें भाग में है, उसमें तमोगुण का और मध्य में जो है, उसमें सतोगुण का संचार होता है। मध्य में रहनेवाले की सात्त्विकी वृत्ति होती है, वह आगे बढ़ता है। राजस वृत्ति चंचल होती है तथा तामस वृत्ति आलस और मूढ़ता उत्पन्न करती है और उल्टी बात सोचती है। इसलिए सात्त्विकी वृत्ति में रहे और ध्यान करे।

ध्यान इतना करे जैसे भगवान बुद्ध ने किया था। उनका नाम तो राजकुमार सिद्धार्थ था। ध्यान के बल से ही उन्होंने अपने को 'बुद्ध' घोषित किया। उन्होंने वह ज्ञान पाया जो संसार में नहीं था। ध्यान से वे इतने बढ़े कि जिससे और अधिक बढ़ा नहीं जा सकता। आप जो पुस्तक की विद्या का लाभ करते हैं, ठीक है—चाहिए भी। साथ ही, आपको ध्यानशील होने के लिए मध्य का मार्ग भी पकड़ना चाहिए। केवल किताबी विद्या से इन्द्रिय-निग्रह नहीं होगा। ध्यान की विद्या से आरोहण होता है और वहाँ तक पहुँच जाता है, जहाँ हम परमात्मा का पद कहें वा निर्वाण कहें।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि संसार में जो कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण है, वह मेरी विभूति है। पहली विभूति तेज है अर्थात् ज्योति व प्रकाश है और दूसरी शब्द है। इन्हीं से संसार का काम होता है। इनसे विशेष विभूति भगवान की नहीं है। ये दोनों जैसे संसार में हैं, वैसे शरीर में हैं। शरीर में ज्योति और अंतर्नाद दोनों हैं। जो कोई साधन करेगा, वह इन दोनों को पावेगा। साधन करनेवाले पाते हैं। पंजाब में गुरु नानक हुए, उन्होंने कहा—'अंतरि जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा।' इसी में पहचान आया कि परमात्मा से कृपा होती है—क्या कृपा दान होता है। इसी तरह कबीर साहब, दादू दयालजी आदि सभी संतों ने वर्णन किया है।

मैं धम्मपद का पाठ सुनाता हूँ। कई दिन पहले श्रीकाश्यपजी (भिक्षु जगदीश काश्यप डाइरेक्टर पालि इंस्टिच्यूट, नालन्दा) मुझसे भेंट करने राजगीर गए थे। उस दिन भी मैं श्रीसंतसेवीजी से पालि धम्मपद का पाठ करवाया था। पाठ समाप्त होने पर श्रीकाश्यपजी ने कहा—'बहुत अच्छा पाठ हुआ।' बहुत दिन पहले मैंने धम्मपद के मैक्समूलर का अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा, फिर मेरे गुरु भाई का किया भाषा अनुवाद पढ़ा और काश्यपजी से भेंट होने पर पालि में पढ़ने की इच्छा हुई। फिर मैंने राहुल सांकृत्यायन और चन्द्रमणि भिक्खु आदि के अनुवाद को भी पढ़ा। बुद्धचर्या और दीर्घनिकाय आदि ग्रंथों को मैंने पढ़ा। इन सब ग्रंथों में भी ज्योति और शब्द का वर्णन पढ़ा। 'हंसादिच्च पथे यन्ति आकाशे यन्ति इद्धिया।'—धम्मपद लोकवग्गो। अर्थात् हंस सूर्य के रास्ते पर चलते हैं और ऋद्धि से योगी आकाश में गमन करते हैं।

आकाश में उड़नेवाले पहले भी थे। भगवान बुद्ध के पहले व्यासदेवजी हुए थे। उन्होंने अपने पुत्र से कहा था—'राजा जनक के पास ज्ञान प्राप्त करने जाओ, लेकिन आकाश मार्ग से मत जाओ, साधारण तरह से—पैदल जाओ। इससे मालूम हुआ कि आकाश में उड़ने से ही काम खत्म नहीं होता है। इससे भी आगे सीखना है।

भगवान बुद्ध ने भी ज्योति और शब्द के महत्त्व का वर्णन किया है। हमारे गुरु महाराज भगवान बुद्ध को आदि संत मानते थे।

संसार की रचना को तीन तलों में और अपने शरीर को भी तीन तलों में बाँट सकते हैं। अंधकार का तल—इस पर अभी हमलोग हैं। शरीर में जागने का जो स्थान है, जिसकी वृत्ति वहाँ रहती है, वह स्थूल संसार का काम करता है। स्थूल का रूप अंधकार है। यह पहला तल है। अंधकार के बाद प्रकाश आता है, यह दूसरा तल है। छान्दोग्य उपनिषद् में भी बताया है—'तुम्हारे शरीर में ज्योति है। इसी कारण से तुम्हारा शरीर गर्म है।' जो अन्तर्ज्योति को पाता है, वह अंतर्नाद को भी; जैसे बिजली की चमक के बाद आप कड़ाके की आवाज सुनते हैं। यह शब्द का तल तीसरा तल है। ज्योति और शब्द से ही सब सम्हाल होते, हम संसार में देखते हैं। ज्योति और शब्द के सहारे से ही संसार के सब काम चलते हैं। इन दोनों को यदि संसार से हटा दें, तो संसार का कोई काम नहीं चलेगा। इसी तरह अपने शरीर में ज्योति और शब्द से सब काम होते हैं। भगवान बुद्ध भी इस ज्ञान को जानते थे। उनकी पुस्तकों में है। केवल पुस्तकी विद्या में नहीं रहिए। इसके बाद भी जानिए। कबीर साहब ने कहा था—

कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय।।
मैं मरजीवा समुँद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक।।

कबीर साहब किसी के पास, किसी विद्यालय में पढ़ने नहीं गए थे, लेकिन वे सत्संग और ध्यान किए थे। उनको अपने अंदर में ही विद्या का खजाना मिला। वह खजाना आपके अंदर भी है। ध्यान के द्वारा वहाँ तक पहुँचा जाता है और पहुँचा गया है। जिसके बाद और कुछ नहीं, क्योंकि वह अनंत है।

आपलोग दोनों विद्याओं को अपनावें, यही मेरा निवेदन है। भगवान बुद्ध ने पंचशील का पालन करने कहा और संतों ने भी यही बात कही—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों से विरत रहें। यही शील पर प्रतिष्ठित रहना है। जो पंचशील के पालन में रहते हैं, वे संसार में भला होकर रहते हैं। संसार में पूज्य तथा प्रतिष्ठित होते हैं। वे कभी-न-कभी बुद्धत्व को अवश्य पावेंगे; जिसको कि सभी संतों ने भी प्राप्त किये हैं। भगवान बुद्ध ने ध्यान और पंचशील पालन करने के लिए बहुत कहा है। इन दोनों को हटा लें, तो बौद्ध ग्रंथ क्या होगा, समझ लीजिए।

मैं आग्रह करूँगा कि आप पुस्तक का ज्ञान भी जानें और ध्यान भी करें। संतमत किसी एक संत का पंथ नहीं है। सब संतों की जो राय है, वही संतमत है। आज पंचायती राज्य है और सब कोई राय मिलाकर काम करते हैं। उसी तरह सब संतों के ज्ञान, कार्य और राय; एक मिले हुए जानें जाएँ, उसी को संतमत कहते हैं।

आपलोगों को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। जो भिक्षु वेष में हैं और बाहर विदेश से दूर-दूर से यहाँ शिक्षा प्राप्त करने आए हैं तथा जो सज्जन विद्वान लोग इनको शिक्षा देते हैं, सबको मैं धन्यवाद देता हूँ। n

यह प्रवचन नालन्दा जिलान्तर्गत पालि इंस्टिच्युट नव विहार नालन्दा में दिनांक ७. ९. १९६५ ई० के सत्संग में हुआ था। पालि इंस्टिच्युट के डाइरेक्टर श्रद्धास्पद रेवरेण्ड भिक्षु जगदीश काश्यपजी महाराज ने स्वयं ले जाकर परम पूज्य महर्षिजी को सादर सविनय आमन्त्रित कर सत्संगार्थ वहाँ ले गए थे। इस सत्संग में जापान, लंका, वर्मा, कम्बोडिया, मंगोलया, जावा, , सुमात्रा, भारत प्रभृति विभिन्न देशों के विद्यार्थी बौद्ध भिक्षुक एवं विद्वान सज्जन उपस्थित थे।

२१४. संतमत का शब्द विज्ञान

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संतमत का मूल आधार 'शब्द' है। शब्द से ही ईश्वर की प्राप्ति और मुक्ति संतों ने बताई है। संतमत में शब्द ही श्रेष्ठ है। जो शब्द की महिमा और विशेषता को नहीं जानता, वह संतमत को नहीं जानता है।

संसार में जो कुछ भी बना है, वह शब्द से ही। कारण है कि कुछ भी बनने के पूर्व में शब्द होता है। शब्द कम्पमय होता है और कम्प शब्दमय होता है। यह नहीं हो सकता है कि कम्प है और शब्द नहीं अथवा शब्द है, कम्प नहीं। शब्द से सृष्टि हुई। इसका तात्पर्य है—कम्प से सृष्टि हुई। शब्द कहो वा कम्प कहो, एक ही बात है। जैसे, पानी कहो वा जल, शब्द कहो वा उसका अर्थ शब्द में अर्थ ऐसा सम्मिलित है कि उसको अलग-अलग नहीं कर सकते। इसी तरह कम्प और शब्द को अलग-अलग नहीं कर सकते।

सृष्टि के मूल में कम्प वा शब्द अनिवार्य रूप से मानना पड़ता है। सृष्टि का सबसे पहला पदार्थ शब्द है। जो शब्द से पहले का है, वह सबका बीज है। आप किसान लोग बीज बोते हैं, उससे नाना प्रकार के वृक्ष होते हैं। आपको मालूम होगा कि पहले जड़ नीचे जाती है कि ऊपर? जड़ नीचे की ओर पहले जाती है अर्थात् जड़ आधार है। उसी तरह शब्द सृष्टि का आधार है, जैसे पृथ्वी से किसी भी बीज की जड़ लगी हुई होती है, इसी तरह सृष्टि के पूर्व जो था, शब्द की जड़ उसी से लगी है।

सबसे पहले ईश्वर था। जो सबसे पहले का हो, वह ईश्वर है। ईश्वर सबका सृजनहार है। यदि ईश्वर का सृजनहार कोई हो जाय, तो वही ईश्वर हो जाएगा, जिसने उसका सृजन किया।

सृष्टि की जड़ शब्द है, वह ईश्वर से लगा हुआ है। वह सबके अंदर-अंदर है। जैसे, एक मिट्टी की गोली बनाते हैं, यानी मिट्टी की गोली बनाने के लिए आप उसको घुमाते हैं। आपके हाथ के कम्पन से उस गोली के अंदर वह कम्पन प्रविष्ट हो जाता है—गोया शब्द तमाम प्रविष्ट हो जाता है। सब पिण्ड-ब्रह्माण्ड एवं सम्पूर्ण प्रकृति मण्डल में शब्द व्यापक है। सृष्टि के अंदर छोटे- बड़े जितने पदार्थ हैं, सभी शब्द के द्वारा बने हैं। आदिशब्द सबमें व्यापक है। आपके शरीर में भी व्यापक है।

कबीर शब्द शरीर में, बिन गुण बाजै तांत।
बाहर भीतर रमि रहा, ताते छूटी भ्रांति।।

संत कबीर साहब कहते हैं—'आपके शरीर में शब्द है।' संसार में जितने पदार्थ हैं, सबमें तीन गुणों के काम आप देखते हैं। उत्पन्न होना रजोगुण का काम, पालन होना सतोगुण का काम और विनाश होना तमोगुण का काम है। 'बिन गुण बाजै तांत' का अर्थ है—'निर्गुण ध्वनि होती है। वह बाहर-भीतर तमाम है, उसी से भ्रान्ति छूट गई।

सृष्टि के पहले जो शब्द हुआ, वह अभौतिक था। भौतिक तत्त्व में तीन गुण होते हैं। इसीलिए 'बिन गुण बाजै तांत' कहा अर्थात् वह शब्द निर्गुण था। जो अभौतिक है, उसको नित्य कहें वा अनित्य? वह नित्य है। उस एक शब्द के अतिरिक्त और सभी भौतिक शब्द अनित्य हैं।

संतों ने ईश्वर के नाम को निर्गुण भी कहा है— 'जाके लगी अनहद तान हो, निर्वाण निर्गुण

नाम की'—जगजीवन साहब। ये जगजीवन साहब साइन्स नहीं पढ़े थे, लेकिन सत्संग से और साधना से जाने थे। एक बार मैं छपरा में एक महीना रह गया था। लोग सत्संग करने आते थे। एक आदमी था, वह पढ़ा-लिखा नहीं था। शब्द की बातचीत होने पर मैंने शब्द को वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक; दो तरह का बताया। उस भक्त ने कहा कि महाराजजी; एक शब्द और होता है, जिसको श्रुतात्मक कहते हैं। मैं समझ गया, कहा ठीक है। जो शब्द बाहर का है, वह वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक है, लेकिन जो शब्द अंदर में होता है, वह शब्द श्रुतात्मक है। सन्त कबीर साहब की वाणी में है—

कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय।।

मृतक होकर रहना, इन्द्रियों की चेष्टाओं से रहित होकर रहना है। स्वामी रामतीर्थ अमेरिका गए थे। वहाँ के लोगों ने कहा—'तुम अपना विज्ञापन वितरण करो।' स्वामी रामतीर्थजी ने कहा कि तुम्हारे यहाँ जितने बड़े-बड़े डॉक्टर हैं, उनको बुलाओ। वे ही हमारे विज्ञापन हो जाएँगे। बड़े-बड़े डॉक्टर बुलाए गए—आए। स्वामी रामतीर्थ ने कहा—'तुम मेरे शरीर की जाँच करो—यह जीवित है वा मृतक?' डाक्टरों ने यंत्रविशेष के द्वारा उनके शरीर की जाँच की तो उनके शरीर में न तो गरमी मालूम हुई और न उनके हृदय का धड़कन ही मालूम हुआ। यही भारत की विद्या है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा। गुरु महाराजजी भी कभी-कभी मौज में आकर दिखाते थे कि नाड़ी बंद हो जाती थी। इसको प्रत्यक्ष मैंने देखा।

सांसारिक विद्या पढ़ने से भी जो ज्ञान बचा रहता है, वह अनुभव-ज्ञान है। वह अंदर में पाया जाता है। जो बाहर की विद्या भी जाने, साधना करे और अंतर में अनुभव ज्ञान भी हो, तब कहना ही क्या? सारशब्द ही है, जो ईश्वर से मिलाता है। शब्दरूपी जड़ ईश्वर से लगी हुई है। शब्द में तासीर है कि जिधर से शब्द आता है, उधर ख्याल खिंच जाता है। शब्द में अपने उद्गम स्थान में खींचने का गुण है। जो चीज जहाँ से उत्पन्न होती है, वह उसका उद्गम स्थान है।

चुम्बक सत्त शब्द है भाई, चुम्बक शब्द लोक ले जाई।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा, सत्त शब्द जो बसै शरीरा।।

—दरिया साहब, बिहारी

यही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं उबरै, केता करै उपाय।।

— कबीर साहब

सार शब्द चुम्बक की तरह अपने उद्गम स्थान पर खींचता है। जो उस शब्द को पकड़ता है, उसके खिंचाव से परमात्मा तक पहुँचता है। एक आदमी कोई दुःखी होकर रोता है, उसके विलाप को सुनकर दूसरे के हृदय में भी करुणा वृत्ति आ जाती है। क्यों? इसलिए कि शब्द की जड़ की जड़ में जो गुण है, सुननेवाले को भी वह गुण हो जाता है। नाटक देखनेवाले हँसने और रोने का खेल देखकर हँसने और रोने लगते हैं। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है और नीचे का शब्द ऊपर दूर तक नहीं जाता। कुएँ में पैठकर शब्द करने से दूर तक नहीं जाता, मकान की छत पर चढ़कर शब्द करने से दूर तक जाता है। जब लाउड-स्पीकर नहीं था, तो लोग घर के मुण्डेरे पर से और ऊँचे बूर्जे पर से आवाज करते थे।

सबसे पहले के शब्द को मूल शब्द कहना अनुचित नहीं; इसी मूल शब्द से सृष्टि हुई है। सृष्टि के दो रूप हैं—व्यष्टि और समष्टि। गाछ, घर, शरीर—यह व्यष्टि है और सब मिलाकर देखो, समष्टि है। एक मिट्टी की गोली में उसका कम्प उसके कण-कण में प्रविष्ट होता है, उसी तरह आदि शब्द सृष्टि के कण-कण में है। वह

शब्द मनुष्य के अंदर भी है। जो उस शब्द को पकड़ता है, वह परमात्मा तक पहुँचता है; क्योंकि वह शब्द परमात्मा से लगा है। परमात्मा से शब्द लगा रहने के कारण परमात्मा का गुण उस शब्द में रहता है, इसीलिए जो उस शब्द को पकड़ता है, परमात्मा का गुण उसमें आ जाता है। इसीलिए उसमें ऋद्धि-सिद्धि आ जाती है।

संसार में और शरीर में पाँच-पाँच दर्जे हैं। नीचे के केन्द्र के शब्द को पकड़कर उसके ऊपर के केन्द्र पर पहुँचेंगे। सूक्ष्म शब्द में इतनी अधिक (frequency) फ्रीक्वेन्सी (आवृत्ति संख्या या कम्पनांक) है कि हम उनको यहाँ सुन नहीं सकते। जो शब्द द्वारा क्रम-क्रम से आगे बढ़ता जाता है, एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र पर जाता है एवं प्रकार से अन्त तक पहुँचता है तो उसके सहारे वह ईश्वर तक जाता है। नदी की कल-कल धारा तबतक सुन पड़ती है, जबतक वह नदी समुद्र में नहीं मिलती। समुद्र में जाने पर नदी का ढेब और आवाज; सब समाप्त हो जाते हैं।

सकल नाम जब एक समाना। तब ही साध परम पद जाना ।।

—कबीर साहब

शब्द सिंध में जाय सिरानी। अगम द्वार खिड़की नियरानी ।।

—तुलसी साहब, हाथरस

सार शब्द को मनुष्य की भाषा में कहा नहीं जा सकता। लेकिन उसके गुण को मनुष्य भाषा में कहकर पुकारते हैं—ॐ, शिवनाम, सतनाम, रामनाम आदि। 'ॐ' शब्द उच्चारण के सब स्थानों में व्यापक है, इसी तरह 'आदिशब्द' सृष्टि में व्यापक है। 'शिवनाम' अर्थात् ऐसा शब्द, जिसमें कल्याण हो। 'सतनाम' अर्थात् जो शब्द नित्य है। रामनाम अर्थात जो शब्द सर्वव्यापक है। यह है शब्दविज्ञान।

संतमत के शब्दविज्ञान को जानो। 'शब्द शब्द पौड़ी चढ़ चल चढ़' यह संतमत का विज्ञान है। संतमत का ज्ञान बहुत गंभीर है। केवल रामनाम, सतनाम कहने से नहीं होता, उसकी गंभीरता में प्रवेश करने की आवश्यकता होती है। n

यह प्रवचन संतालपरगना जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मन्दिर, विषहा (विश्वनाथ कुटी) में दिनांक २६.१०.१९६५ ई० के सत्संग में हुआ था।

२१५. संतमत-सत्संग : केवल सत्संग में अन्तर

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं यहाँ दुमका पहुँचकर इस सत्संग-मन्दिर को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। मुझे भागलपुर में जाकर ज्ञात कराया गया है कि इसका उद्घाटन आपको करना होगा। वृद्धावस्था में मैं बाहर अधिक नहीं जाता, लेकिन सत्संग-मन्दिर के उद्घाटन का नाम जानकर मैं यहाँ आया और बहुत प्रसन्न हुआ आपलोगों को देखकर।

'सत्संग' क्या है? जबतक पूर्णता नहीं हो, संत नहीं; जो पूर्ण हैं, वे संत हैं और उनका संग सत्संग है। संत के लिए तो यह बात है कि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

—महोपनिषद्

अर्थात् परे से परे परमात्मा को देखने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

जड़ और चेतन की अलग-अलग पहचान हो। जड़ को सभी चीन्हते हैं, लेकिन जो जड़ से चेतन को फूटाकर चीन्हते हैं। वे सन्त हैं। गोस्वामी

तुलसीदासजी कहते हैं—

अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्य सार कवि कोविद योगी।।

संत को कितना बोध है, ठिकाना नहीं। वे इच्छा-रहित, स्वल्पभोगी, सत्य के सार रूप, सत्य से कभी टलनेवाले नहीं, कवि, पण्डित और योगी होते हैं। बिना योगी हुए कोई पूर्ण हो नहीं सकता—यह है संत की परिभाषा।

भक्त को एवं भगवन्त को क्या बूझते हैं? 'राम ते अधिक राम कर दासा'। ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं होगा, लेकिन ईश्वर से भी बढ़कर संत होते हैं। 'सातवँ सम मोहिमय जग देखा। मोतें अधिक संत करि लेखा।।' तुलसीदासजी की रामायण में उनका गाया हुआ काव्य देखो तो मालूम होगा—सबसे बढ़कर संत की महिमा उन्होंने गायी है। लेकिन संत को कौन पहचानता है? अच्छे चाल-चलनवाले को हमलोग संत कहते हैं। वे अकपट होते हैं, सीधे चाल-चलन के होते हैं। बड़े विद्वान की परीक्षा कम विद्वान कहाँ तक ले सकता है? संत को तो संत ही पहचान सकते हैं, उनके संग का नाम 'सत्संग' है। जिसको सत्य से प्रेम है, सत्य—परमात्मा है, परमात्मा अडोल है, सर्वज्ञान-सम्पन्न हैं, उसको जो पाए हैं—संत हैं। उसका भेद जो खोलते हैं, उसके पाने का सीधा सरल रास्ता जो बताते हैं, वे संत हैं।

बाहर में ईश्वर के पाने का मार्ग नहीं है, मार्ग अपने अंदर है। अपने अंदर में चलने की विधि और मार्ग योग शास्त्र बताता है। जीव की बैठक जहाँ शरीर में है, वहाँ से लेकर ईश्वर-स्वरूप की प्रत्यक्षता तक का जो रास्ता है, वही मोक्ष का रास्ता है।

संत संग अपवर्ग कर, कामी भवकर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुराण सद्ग्रंथ।।

यह अंदर का रास्ता ईश्वर-कृत है। इस रास्ते पर जो चलता है, वह संतमतानुयायी है। जो इस मार्ग पर चलाते हैं, वे संत हैं। संतमत में गंगा, यमुना और सरस्वती की धारा बहती है।

राम कथा जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।।
विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रवि नंदिनि बरनी।।

रामकथा यानी सगुण अवतारी ब्रह्म; जैसे—शिव, विष्णु आदि ईश्वर-कोटि के देवता या राम, कृष्ण सब सगुण ब्रह्म हैं। जहाँ इनकी कथा होती है, वह गंगा की धारा है। जहाँ ब्रह्म, माया, नित्य, अनित्य आदि का ज्ञान हो, वह सरस्वती की धारा है और जहाँ कर्तव्य, अकर्तव्य का ज्ञान हो, वह यमुना की धारा है। सरस्वती की धारा के बिना अर्थात् ब्रह्मविचार के बिना गहराई नहीं आवेगी। केवल 'सत्संग' कहने से तीनों में से किसी को ले लो, 'सत्संग' है, लेकिन 'संतमत सत्संग' कहो तो तीनों को लेना होगा। जिसमें ब्रह्म विचार आवश्यक होता है। 'संतमत सत्संग' में ब्रह्मविचार का होना अनिवार्य होता है, किन्तु केवल सत्संग में ब्रह्म-विचार हो न हो, कोई बात नहीं। संतमत सत्संग में—'अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्य सार कवि कोविद योगी।।' का बोध होता है। बिना योग के ज्ञान नहीं। संतमत-सत्संग में अध्यात्म को छोड़ना नहीं होता। संतमत-सत्संग का अध्यात्म से बड़ा संबंध है। किंतु केवल सत्संग कहो तो उसमें अध्यात्म रहे वा नहीं भी रहे। केवल सत्संग कहो तो उसमें केवल गंगा की धारा होगी, सरस्वती की गहराई नहीं। संतमत-सत्संग और केवल सत्संग में यह अंतर है।

मैं कहता हूँ कि संतमत-सत्संग-मन्दिर में ईसाई, मुसलमान तथा अन्य धर्मावलम्बी भी आकर सत्संग करेंगे, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। लेकिन हिंसात्मक काम कोई नहीं कर सकते। ईश्वर सभी भाषा को जानते हैं। किसी एक भाषा की प्रार्थना को मानना और अन्य भाषा में की प्रार्थना को नहीं, संकीर्णता है। सामवेद में है मनुष्य सभी भाषाओं में

ईश्वर की स्तुति कर सकता है।

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्ने इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः।।
(अग्नेय-काण्ड)

'अर्थात् हे अग्ने! हे प्रकाश स्वरूप! आ, तेरे लिए इस प्रकार की वैदिक सत्यवाणियों और उनसे दूसरी लौकिक या वेदवाणी से अतिरिक्त मनुष्य वाणियों को मैं तेरी स्तुति में कहूँ। इन परम ऐश्वर्यों से तू महिमा में बड़ा है। ईश्वर अपने सामर्थ्य, ज्ञान और गुणों द्वारा सबसे बड़ा है। वैदिक और लौकिक सब वाणियाँ उनकी ही स्तुति करती हैं।'

ईश्वर तक कैसे पहुँचा जाएगा, कहाँ से चला जाएगा; यह संतमत सत्संग में बताया जाता है। संतमत सामाजिक कामों में कोई हस्तक्षेप नहीं करता। हाँ, हिंसात्मक काम से अलग अवश्य रहता है।

इस मन्दिर का नाम चाहे संतमत-सत्संग मन्दिर रखो, चाहे 'सत्संग भवन' रखो, मुझे इसमें हर्ष विषाद की कोई बात नहीं मालूम नहीं पड़ती। लेकिन मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा—'संतमत-सत्संग-मन्दिर' रखो तो ठीक है; क्योंकि उसके साथ अध्यात्म रहेगा। नहीं तो केवल सत्संग में अध्यात्म रहे वा नहीं रहे।

लोग तुलसीकृत रामायण का बहुत पाठ करते हैं और सुनते भी हैं। लेकिन क्या, उसमें यही लिखा है कि ईश्वर बाहर में ही मिलेंगे? बाहर दर्शन से क्या-क्या हुआ, सो इतिहास रामायण में है। और पुस्तकों में भी है, पढ़ लीजिए। रामायण में ही पढ़िए—

निर्गुण रूप सुलभ अति , सगुण, जान नहिं कोय ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय ।।

और स्वयं तुलसीदासजी ने अपनी निस्बत विनय पत्रिका में लिखते हैं—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो ।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल, परम सुगंध कहाँ ते आयो।।
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेंवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।।
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुण, तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि, विषय बबूर बाग मन लायो।।
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम, मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय, कीजै नाथ उचित मन भायो।।

लोग कहते हैं कि चित्रकूट में तुलसीदासजी को भगवान श्रीराम का दर्शन हुआ, चन्दन लगाए, लेकिन वे पहचान न सके। उसके बाद राजकुमार के रूप में घोड़े पर जाते हुए उन्होंने देखा, लेकिन फिर भी पहचान न सके। ब्रह्मा को श्रीकृष्ण भगवान के चरित्र को देखकर संशय हुआ। कागभुशुण्डि और नारद को भी मोह हुआ। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण जान नहिं कोय। सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय' कहा। निर्गुण रूप में भ्रम नहीं होता; क्योंकि उसमें 'सुगम अगम नाना चरित' नहीं है। सगुण की उपासना नहीं करो, मैं नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि उस सगुण में निर्गुण का भी ज्ञान करो। यह ज्ञान बाहर में नहीं होगा, अन्दर में होगा; यह 'संतमत' बताता है। संतमत ईश्वर प्राप्ति का रास्ता बताता है। ईसाई वा इस्लामधर्मी; किसी को भी संतमत के ईश्वर-स्वरूप में फर्क नहीं। बौद्ध, जैन, सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, कुछ बने रहो अंतर्मार्ग जानो और उस पर चलो। 'संतमत' इन किन्हीं से भिन्नता नहीं मानता। संतमत के ज्ञान को जानो और उस पर चलो।

ईश्वर-प्राप्ति का रास्ता एक है, दो नहीं और अनेक तो क्या होगा? रास्ता घूम फिरकर नहीं है—सीधा है। 'सीधे चला जाना वहाँ, मुर्शद ने यह फतवा दिया।' ईश्वर-प्राप्ति का रास्ता एक है, जैसे

भोजन करने का रास्ता एक है—मुँह। रूप निरीक्षण करने का रास्ता एक है—आँख, शब्द ग्रहण करने का एक रास्ता है—कान आदि। जो लोग यह कहते हैं कि 'गोड्डा जाने के अनेक रास्ते हैं।' वे भूल में हैं, वे जानते नहीं हैं। अभी आप अपने शरीर में जहाँ बैठे हैं, वहाँ से छोर पकड़ने के लिए भिन्न-भिन्न उपासनाएँ हैं, लेकिन ये भिन्न-भिन्न मार्ग नहीं। छोर पकड़ने का एक ही रास्ता है, चाहे किसी देश वा किसी धर्म का आदमी हो। रास्ता एक है और वह अंतर का रास्ता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त। मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्यापक अनन्त।।' तीन अवस्थाओं को छोड़कर चौथी अवस्था में जाकर भजन होगा। चौथी अवस्था में जाने का रास्ता अपने अंदर है, ठीक से समझ लो, लेकिन जो स्वार्थी लोग हैं, वे भरमा कर रखेंगे, उनसे सचेत रहो। अंत में, इस मन्दिर के बनवाने में और इस सत्संग के आयोजन में जिन लोगों ने हाथ बँटाया है, उन सब लोगों को मैं धन्यवाद देता हूँ। n

यह प्रवचन संथालपरगना जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मंदिर, दुमका में दिनांक २.१२.१९६५ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२१६. जन्म लेना और मरना : संसार का धर्म

प्यारे लोगो!

मैं बौद्धकालीन एक इतिहास सुनाता हूँ। उस समय भगवान बुद्ध काशी में विराजते थे। वहाँ की एक महिला का इकलौता पुत्र मर गया था; किन्तु उसको यह विश्वास नहीं होता था। वह लोगों से कहती फिरती कि मेरा पुत्र बीमारी से बेहोश हो गया है, इसको होश में ला दो। लोग समझाते कि यह मर गया है, फिर भी उसे विश्वास नहीं होता था। अंत में लोगों ने राय दी कि देखो, तुम्हारे पुत्र को कोई भी होश में नहीं ला सकता है। हाँ, यहाँ एक बहुत बड़े महात्मा—भगवान बुद्ध आए हुए हैं, उनके पास जाओ तो वे तुम्हारे पुत्र को होश में ला सकते हैं। वह महिला अपने मृत पुत्र को लेकर भगवान बुद्ध के पास गई और बोली— 'भगवन्! मेरा इकलौता पुत्र बीमारी से बेहोश हो गया है। लोगों ने बताया कि आप इसे होश में ला सकते हैं, इसलिए मैं आपके पास आयी हूँ। आप इसे होश में ला दें।' भगवान बुद्ध समझ गए कि यह मायामोहित, ममताग्रस्त महिला यह नहीं समझ रही है कि उसका पुत्र मर गया है। बुद्ध ने कहा—'हाँ, यह होश में आ सकता है, लेकिन तुम इस नगर में किसी के यहाँ से एक मुट्ठी सरसों के दानें ले आओ।' 'एक मुट्ठी सरसों के दानें'—सुनकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि काशी नगरी में कहीं न कहीं सरसों के दानें अवश्य मिलेंगे और मेरा बेटा चंगा होगा। वह वहाँ से चलना ही चाहती थी कि भगवान बुद्ध ने कहा—'सुनो, सरसों के दानें अवश्य लाना; किन्तु स्मरण रहे कि ऐसे घर से सरसों के दानें लेना, जिस घर में कभी किसी की मृत्यु नहीं हुई हो।' वह बेचारी महिला सरसों के लिए काशी में घर-घर फिरने लगी। सरसों के दानें तो उसे मिल जाते, किन्तु जब वह पूछती कि 'कहीं, तुम्हारे यहाँ किसी की मृत्यु तो कभी नहीं हुई है?' तो लोग झुँझला उठते और कहते—'पगली! ऐसा भी कहीं होता है कि कभी किसी के घर में कोई मरा नहीं हो?' इस प्रकार घुमती हुई समूची काशी

नगरी छान डाली, किंतु कहीं भी उसे ऐसा घर नहीं मिला, जिस घर में कभी किसी की मृत्यु नहीं हुई हो। अंत में उसको विश्वास हो गया कि मेरा पुत्र भी मर गया है।

ऐसा कोई घर नहीं, जिस घर में मृत्यु नहीं हुई हो। जन्म लेना और मरना; इस संसार का धर्म है। मोती दासजी हमारे शिष्य कहिए वा मित्र; बड़े अच्छे थे। पचास वर्षों से मैंने उनको देखा। वे गरीबी मिजाज के और बड़े सरल थे। उनकी श्राद्ध-क्रिया के उपलक्ष्य में आज सत्संग है। श्राद्ध कहते हैं, जो कर्म श्रद्धा से किया जाय। इस श्राद्ध-क्रिया में एक वेदान्त है कि शरीर नाशवान है और जीवात्मा नाशवान नहीं है। आज वही दिन है, जो दिन घर-घर में आत्मा के अमरत्व का ज्ञान देता है। किसी के घर में मृत्यु होने पर लोगों के मन में विषाद होता है कि हमारे घर से एक समांग चले गए; किंतु विषाद करने पर भी वे लौटकर नहीं आते। इसलिए विषाद करना व्यर्थ है। विषाद न हो, तो खुश होओ; लेकिन इस अवसर पर खुश होना लोग पसन्द नहीं करते।

मोती दासजी के चले जाने पर मैं विषाद नहीं करता, मुझे खुशी होती है। उनके बाल-बच्चे भी मेरे बाल-बच्चे जैसे हैं, वे कहते होंगे कि ये क्या कह रहे हैं। वे (मोती दासजी) अच्छे सुकर्मी थे, शुभ कर्मी थे। इसलिए उनके इस संसार से चले जाने से विषाद नहीं होना चाहिए। जो अपकर्मी हैं, उनके जाने से विषाद होना चाहिए।

जब किसी को शरीर और संसार के बंधनों से मुक्ति मिल जाती है, तो वह स्वयं जानता है कि मैं मुक्त हूँ। जैसे कोई बीमार हो और वह रोगमुक्त हो जाय, तो वह स्वयं जानता है कि मैं नीरोग हूँ। वह मुक्त स्वरूप परमात्मा को पाता है। वह सारे बंधनों से छूट जाता है। कबीर साहब ने कहा है—

मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय ।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ।।
जा मरने से जग डरै मेरे मन आनन्द ।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द ।।
मरिये तो मरि जाइये, छूटि पड़ै जंजार ।
ऐसी मरनी को मरै, दिन में सौ-सौ बार ।।

ऐसा मरना अच्छा है कि फिर जन्म न हो। यह बहुत ऊँची बात है। इसको वही पाता है, जो जीवनमुक्त होता है। उसको संसार का बंधन नहीं। ऐसा कुछ नहीं, जो वह नहीं जानता। ऐसा कैसे होता है? ईश्वर-भजन करने से।

मोती दासजी को संतमत का भजन-भेद मालूम था। वे नित्य ध्यान करते थे। सत्संग में नित्य जाते थे। यह उनका घर है और सत्संग-मन्दिर मानो दरवाजा है। देखिए, कितना बड़ा भाग्य है। वे खायँ अपने घर में और सोते थे सत्संग घर में। कभी-कभी अपने घर में भी सोते थे। वे बड़े भाग्यवान थे।

भगवान श्रीकृष्ण ने बड़ा अच्छा कहा है कि योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। अर्जुन ने पूछा है कि भगवन्! जो माया से खिंचकर योग-भ्रष्ट जो जाय, तो उसकी क्या गति होती है? भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'वह पुण्यकर्ता लोगों के मिलनेवाले स्वर्ग को पाता है और विशाल स्वर्गसुख भोगकर इस पृथ्वी पर किसी पवित्र श्रीमान् के कुल में जन्म लेता है अथवा योगी के कुल में जन्म लेता है और वह अंत में मेरे अंदर की शान्ति को पाता है अर्थात् मोक्ष पाता है।' मैं विश्वास करता हूँ कि मोती दासजी ने भजन तो पूरा नहीं किया, लेकिन वे अपकर्मी होकर नहीं मरे हैं। वे योगीकुल में जन्म लेंगे और मोक्ष को प्राप्त करेंगे। सभी कोई भजन करो। शरीर छूट जाय, तो छूट जाय, लेकिन संस्कार तुम्हारे साथ जाएगा।

भक्ति बीज पलटै नहीं, जो युग जाय अनंत ।

ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत ।।
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो चोल ।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल ।।

पहले भजन करनेवाला भजन-अभ्यास को पकड़ता है और पीछे भजन ही उसको पकड़ता है। मोती दासजी सब दिन भजन करते थे, उन्होंने कभी भजन करना नहीं छोड़ा। इनके मामा गुरु चरण दासजी थे। वे कभी जंगल के रास्ते में भी जाते थे, घोड़ा लादते थे। भजन का समय होता था, तो वे भजन करने लगते थे। उनके लड़कों को भी पिता का अनुकरण करना चाहिए। मोती दासजी को जबतक आने-जाने का शरीर होगा, मनुष्य- शरीर होगा। एक जन्म में जो भजन करेगा, वह दूसरे जन्म में भी भजन करेगा। कुकर्मी होकर भजन करेगा, तो वह उतना अच्छा नहीं, सुकर्मी होकर भजन करो, बड़ा अच्छा होगा।

मोती दासजी तो पढ़े-लिखे विशेष नहीं थे, बहुत कम थे; लेकिन सत्संग करते हुए संतवाणी का अर्थ भी करने लगे थे, उनकी बुद्धि बढ़ गयी थी।

कुकर्मी होकर भजन करोगे तो भूल-भंगठ भी होगा। लेकिन सुकर्मी होकर भजन करो तो भूल-भंगठ नहीं होगा। पवित्र श्रीमान् कुल में वा योगी कुल में जन्म अवश्य होगा। ऐसे श्रीमान् के यहाँ जन्म लेने से योगी-कुल में जन्म लेना उत्तम है;क्योंकि धन से किसी को संतोष नहीं होता और योगी-कुल में जन्म लेने से स्वाभाविक संतोष होगा। धन के द्वारा तृष्णा का नाश नहीं होता। संसार में जितनी चीजें हैं, सभी मिल जाएँ, तब भी तृष्णा दूर नहीं होती। लेकिन भक्त को संतोष होता है। बाबा नानक ने कहा है—

बसुधा सपत दीप है सागर, मथि कंचनु काढ़ि धरीजै ।
मेरे ठाकुर के जन इनहु न बांछहि, हरि मांगहि हरि रसु दीजै ।।
साकत नर प्राणी सद भूखे, नित भूखन भूख करीजै ।
धावतु धाइ धावहि प्रीति माइया, लख कोसन कउ बिखि दीजै ।।

हमलोगों को चाहिए कि हम तृष्णावन्त होकर नहीं रहें। इतना परिश्रम करें, जिससे सत्संग और ईश्वर-भजन करने का भी समय बचे; परोपकारार्थ कर्म करने का समय बचे।

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय ।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय ।।

संतोषी बनो, ऐसा नहीं कि कमाई नहीं करो। कमाई करो, लेकिन संतुष्टि रखते हुए। तृष्णा कभी नहीं बूझेगी, संसार के धन और भोगों से। यह जानकर जो ईश्वर-भजन करते हैं, उनको शुभगति— स्वर्ग आदि की प्राप्ति होती है और जो भजन पूरा करते हैं, तो उनको मुक्ति मिल जाती है। पूरा भजन नहीं होने से भजन के संस्कार के कारण मनुष्य-शरीर होता है और पुनः भजन में लगता है। मनुष्य-शरीर ही ईश्वर-भजन करने का शरीर है। किसी ने बहुत अन्न-दान किया है, तो मनुष्य शरीर के अलावा बैल, गाय, हाथी, घोड़े के शरीर में भी उसका फल-भोग सकता है। सोने, चांदी का दान किया है, तो हमारे गुरु महाराज कहते थे कि हाथी को देखो, कितने वजन का जेवर उसकी देह पर है, लेकिन ईश्वर-भजन करो और अच्छे-अच्छे कर्मों को भी करो, तो बहुत बढ़िया।

किसी नगर में एक वेश्या रहती थी। उस नगर के एक व्यक्ति की मृत्यु होने पर अपनी नौकरानी से बोली—'शहर में जाकर देख आओ कि उस मृत प्राणी को स्वर्ग हुआ वा नरक?' एक साधु उसी होकर उस नगर में प्रवेश कर रहा था। वेश्या के मुख से स्वर्ग-नरक की चर्चा सुनकर वह स्तम्भित हो वहाँ खड़ा हो गया। थोड़ी देर के बाद नौकरानी शहर से लौटकर आई और बोली— 'मालकिन! उसको स्वर्ग हो गया।' एक वेश्या की नौकरानी के मुख से स्वर्ग नरक संबंधी इस प्रकार

की परीक्षित बातें सुनकर साधु के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने वेश्या के पास जाकर पूछा—'ऐसी कौन सी विद्या तुम्हारे पास है, जिसके सहारे तुम्हारी नौकरानी भी जान पाती है कि अमुक व्यक्ति को स्वर्ग हुआ वा नरक?' वेश्या बोली—'साधु बाबा! आप यह बात नहीं जानते? जिनकी मृत्यु से बहुत लोग दुःखी हो, जिनकी लोग प्रशंसा करते हों, कहते हों कि वे बहुत अच्छे लोग थे, तो जानिए कि उनको स्वर्ग हुआ। और जिनकी मृत्यु से बहुत लोग उसकी निन्दा करते हों अथवा कहते हों कि भले ही वह मर गया, बड़ा दुष्ट था, तो जानिए कि उसको नरक हुआ।

मेरे जानते मोती दासजी के लिए बुराई की बात नहीं होगी। संसार में ऐसे कोई नहीं, जिनके खिलाफ में कोई कुछ न बोले। इसी तरह कुछ लोग मोती दासजी के खिलाफ भी कह सकते हैं, लेकिन मेरा ख्याल है कि मोती दासजी की अच्छी गति होगी, वे अच्छे थे। n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत स्व० मोती दासजी की श्राद्ध क्रिया के अवसर परं दिनांक १९.१२.१९६५ ई० के सत्संग में हुआ था।

२१७. कल्याण केवल शब्द ध्यान से

प्यारे लोगो!

'शब्द' की महिमा अपार है। शब्द का ज्ञान भी अपार है।

वर्णधार वारिधि अगम, को गम करै अपार।
जन तुलसी सत्संग बल, पायेउ विशद विचार।।
श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक वर्णात्मक विधि तीन।
त्रिविध शब्द अनुभव अगम, तुलसी कहहिं प्रवीन।।
—गोस्वामी तुलसीदास

कल्याण केवल शब्द ध्यान से ही होता है। वैसे लोग कहेंगे कि सभी अपने-अपने विचार को उच्च कहते हैं। मैं कहता हूँ, मेरा विचार उच्च नहीं हो, किन्तु विचार करो—सिद्ध करो कि क्या ठीक है? केवल अन्धी श्रद्धा से काम होना असंभव है। यह कार्य है, इसका यह कारण है; विचार होना चाहिए। युक्तिवाद की ओर से क्या निर्णय होता है, जानना चाहिए। युक्तिवाद के निर्णय बिना केवल विश्वास, अंधविश्वास है। युक्तिवाद में कारण और कार्य का ज्ञान अवश्य होता है।

मैंने कहा कि 'शब्द' की महिमा अपार है। आरम्भ में शब्द कारण नहीं है। जिसके होने का कोई वा कुछ हो, वह उसका कारण है। इसमें किसी को भी संदेह नहीं होना चाहिए कि कम्प के बिना कुछ नहीं बन सकता। कम्प शब्दमय होता है। कम्प हो और उसका सहचर-शब्द नहीं हो असंभव है। परन्तु इस बात को पढ़े-लिखे लोग समझ सकते हैं। बिना कम्प के एक अक्षर नहीं लिख सकते। बिना कम्प के मिट्टी की गोली भी नहीं बन सकती। अवश्य ही कुछ कम्प के शब्द को हम नहीं सुन सकते, लेकिन शब्द होता है। शब्द विज्ञान में यह बात है कि कान के परदे पर ठोकर होती है, तो शब्द सुनते हैं। शब्द में कम्पन होता है। कम्पन की संख्या भौतिक वैज्ञानिकों ने दृढ़ की है। उस संख्या में बताया है कि प्रति सेकेण्ड बीस से नीचे की संख्या नहीं सुन सकते और बीस हजार तक बहुत लोग सुनते हैं; कोई कोई तीस हजार तक सुनते हैं। इससे ऊपर की आवाज को नहीं सुन सकते। कम्पनांक—आवृत्ति संख्या (Frequency)—फ्रीक्वेन्सी साइन्स के पढ़े

लोग समझ सकते हैं। किसी कम्प में शब्द है, किसी में कम्प नहीं, ऐसा ज्ञान नहीं होना चाहिए। शब्द कम्पमय और कम्प शब्दमय होता है, तब कम्पन की संख्या होगी, इसमें आश्चर्य क्या! जल में अंगुली सटाते हैं, उससे कम्प होता है। कम्पन की रेखा बढ़ती जाती है, यह प्रत्यक्ष देखते हैं। यह रेखा कम्पनांक की है। रेखा बढ़ती है, तो कम्पनांक भी बढ़ता है। इसलिए हम जो नहीं सुन सकते हैं, उसमें भी कम्पन की संख्या है। बीस से नीचे और तीस हजार से ऊपर का कम्पन नहीं सुन सकते।

अब दूसरी बात सुनिए, जिसको कम्प और शब्द से संबंध है। यह वर्तमान सृष्टि बनी है। कोई कहे कि सृष्टि बनी नहीं है, यह मानने योग्य नहीं। सूर्य नहीं तो सौर जगत नहीं। पहले सूर्य भी नहीं, एक प्रकार का घोर उष्म—वाष्प, उससे फिर सूर्य। कम्प होने के कारण उस घोर उष्म—वाष्प के अनेक टुकड़े हुए। सूर्य को हम देखते हैं कि शून्य के अंदर है। यहाँ तक इस सिलसिले से है कि पहले शून्य, उसके अन्दर घोर-उष्म-वाष्प, उससे फिर सूर्य और सौरजगत। पहले सूर्य हो, पीछे शून्य हो, मानने योग्य नहीं है। क्रमबद्धता से एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद फिर और सृष्टि हुई। अवश्य ही इस क्रमबद्धता के आरंभ का काल नहीं बताया जा सकता। हम सृष्टि-जगत को ही माया कहते हैं। इसके मूलस्वरूप को, जिसमें जगतवत् विविधता नहीं है, त्रयगुणात्मिका—साम्यावस्थाधारिणी मूल माया वा प्रकृति कहते हैं।

कुछ लोग ईश्वर को और इस प्रकृति को भी अनादि कहते हैं। प्रकृति वा माया देश-काल-ज्ञान से अनादि अवश्य है, परन्तु उपज-ज्ञान से नहीं। उपज-ज्ञान से यह अनादि हो नहीं सकती। सृष्टि में एक के बाद दूसरे के होने का क्रम है, तो वह कैसा होगा, जो सबसे पहले का होगा? वह देश-काल-ज्ञान और उपज-ज्ञान से भी अनादि होगा तथा स्वरूपत: अनन्त भी होगा। तो यह समझो कि यदि वह चलायमान होगा, तो वह ससीम होगा। ससीम पहले से है और उसके पहले वा परे कुछ नहीं है, कहना नहीं चाहिए। सारे सान्तों के पहले का ही जो कुछ है, वह असीम वा अनन्त है। दो असीम कभी हो नहीं सकते। असीम का बनना और उसके बाहर अवकाश का होना असम्भव है। अतएव उसमें गतिशीलता वा किसी प्रकार का कम्पन नहीं। गतिविहीन अनादि-अनन्त परमतत्त्व को ही अपरिमित शक्ति-स्वरूप ईश्वर—परमात्मा मानना चाहिए। प्रकृति का निर्माण परम प्रभु परमात्मा ने ही किया है। अतएव इसके निर्माणार्थ परमात्मा ने ही स्वयं सबसे पूर्व कम्प का सृजन कर शब्दमय स्फोट प्रकट कर दिया और स्वयं गतिविहीन, अकम्प, निश्चल, ध्रुव रहा और है। जैसे कि आकाश जस का तस स्थिर है और उसके अन्दर उपजा हुआ वायु गतिशील है। तो निश्चित रूप से जानना चाहिए कि आदिशब्द की धारा परमप्रभु परमात्मा से हुई है और संसार में व्याप्त है।

मैं 'शब्द' की महिमा का कथन करते हुए आ रहा हूँ। यह 'शब्द' की महिमा है कि शब्द की धारा स्वयं परमात्मा तक पहुँचाती है; क्योंकि शब्द के द्वारा उस तक पहुँचा जा सकता है, जिससे शब्द होता है। परमात्मा के शब्द में वह गुण है कि 'सो परमातम होय जीवता जाय खोय।'(संत चरणदास)

जिस महात्मा ने कहा है, वे साइन्स पढ़े हुए नहीं थे, परन्तु साधन द्वारा शब्द विज्ञान को जानते थे। जो शब्द जिससे होता है, उसके गुण को वह शब्द लिए रहता है और जो उस शब्द को धारण करता है, उसमें भी वह गुण हो जाता है। हास्यात्मक खेल को सुनकर हँसते हैं और आपदाओं से ग्रसित खेल की रुलाई सुनकर रोते हैं; क्योंकि उस रुलाई

को सुनकर खेल में उपस्थित जनता को आपदाग्रस्त दुःखभाव होता है, इससे जानना चाहिए कि आदिसृष्टि के हेतु परमात्मा द्वारा जो आदि-कम्पनमय नाद प्रकट हुआ, उसको जो ध्यान-साधन द्वारा अपने अन्दर में ग्रहण कर सकेगा, उसमें ऊपर कथित गुण अवश्य हो जाएगा।

आज संसार के सारे विद्यालयों में शब्द की ही शिक्षा है और इस पर अपार धन खर्च होता है। संसार का सारा प्रबंध शब्द द्वारा ही होता है। अतएव शब्द की महिमा अपार है।

शब्दै मारे मरि गये, शब्दे तजिया राज।
जिन जिन शब्द विवेकिया, तिनका सरिया काज।।
शब्द बिना स्रुति आंधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै शब्द का, फिरि फिरि भटका खाय।।
सबद खोजि मन वश करै, सहज योग है येहि।
सत्त शब्द निज सार है, यह तो झूठी देहि।।

—कबीर साहब

कोटि ज्ञानी ज्ञान गावहिं, शब्द बिन नहिं वाँचहीं।
शब्द सजीवन मूल ऐनक, अजपा दरस देखावहीं।।
सत्त शब्द संतोष धरि-धरि, प्रेम मंगल गावहीं।
मिलहिं सतगुरु शब्द पावहिं, फेरि न भौजल आवहीं।।

—दरिया साहब, बिहारी

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मंदिर, कटिहार में दिनांक १९.१२.१९६५ ई० के रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२१८. योग के आरम्भ का नाश नहीं होता

प्यारे लोगो!

जो अचेत पड़ा हुआ हो, वह कुछ समझे बूझे—ऐसा नहीं हो सकता है। इसलिए संत-महात्मागण कहते हैं कि तुम सचेत हो जाओ। विषयों में लवलीनता अपने को अचेत रखना है। विषयों में लवलीनता नहीं हो, यह असम्भव नहीं है। पंच विषयोपभोग काल में जो जाग्रत दशा रहती है, उसमें थोड़ी-सी सचेतता है। तीन अवस्थाओं के अंदर हमलोग स्वभावतः गुजरते रहते हैं। इसमें विषय लवलीनता रहती है। जिस तरह ये तीनों अवस्थाएँ होती रहती हैं, उसी तरह एक चौथी अवस्था भी है। यह अवस्था योगी को प्राप्त होती है। जिन्होंने इसे पाने की ठीक विधि जानकर अभ्यास किया, उन्हें अवश्य ही इस अवस्था का ज्ञान होता है। चौथी अवस्था में यह स्थूल संसार खो जाता है। जैसे इस साधारण जागने की अवस्था में स्वप्नावस्था खो जाती है। केवल वाक्य-ज्ञान में निपुण होने से कोई विषयों से अनासक्त नहीं हो सकते। हमलोग सात्त्विक, राजस एवं तामस कर्म करते हैं। सात्त्विक कर्म का परिणाम वहाँ तक पहुँचाता है, जहाँ पहुँचकर तीनों गुणों से बाहर हुआ जाता है। तामस कर्म नीचे-नीचे की योनियों के भोगों को भोगता है। सात्त्विक कर्म ईश्वर की उपासना ही है। ईश्वर की उपासना इस तरह से करें कि वह हमें तीनों अवस्थाओं से ऊपर उठा सके। चौथी अवस्था का भेद बतानेवाले गुरु चाहिए। ऐसे गुरु के मिलने पर ही वह साधन हो सकेगा। पापों से छूटना ध्यान से ही हो सकता है और कर्मों से नहीं हो सकता। सुकर्मों को करते हुए जो ध्यानाभ्यास करते हैं, वही कर्मों के बंधनों से छूटते हैं।

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

अर्थात् यदि अनेक योजनों तक फैले हुए

पहाड़ के समान भी पाप हो तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है।

जिस कर्म का परिणाम दु:खद हो वा आवागमन करानेवाला हो, वह पाप है। ध्यान, लव लगाने को कहते हैं। कोई भी क्यों न हो, ध्यान सभी कर सकते हैं। ध्यान की युक्ति गुरु से सीखनी चाहिए। मैंने जो थोड़ा-सा अभ्यास किया है, उससे मुझे विश्वास हो गया है। इस अभ्यास में चलते रहो—अनवरत रूप से चलते रहो। अंत में वही होगा, जो संतों को प्राप्त हुआ है। ध्यानयोग के द्वारा सिमटाव होता है। सिमटाव से ऊर्ध्वगमन होता है। द्वैत का जहाँ तक विस्तार है, यदि ध्यान-योग से वहाँ तक की सीमा को पार कर गए तो सारे कर्मों—कर्म बंधनों से छूट जाता है। ध्यान-योग का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। एक-एक डेग चलते रहने से कितने कोस निकल जाते हैं, इसी तरह थोड़ा-थोड़ा नित्य नियमित रूप से ध्यानाभ्यास करते रहने से अवश्य लाभ होगा। ध्यानाभ्यासी का जब-जब जन्म होगा, मनुष्य योनि में ही जन्म होगा। इसका संस्कार कभी नष्ट नहीं होगा। भगवान कृष्ण ने कहा—'योग के आरम्भ का नाश नहीं होता।'

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।

संतों की वाणी से दिलाशा होती है। अपने को पवित्र रखना चाहिए।

n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—रूपौली में दिनांक २५.१२.१९६५ ई० के प्रात:कालीन सत्संग में हुआ था।

२२१. आपका निजी ज्ञान क्या है?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपलोगों को यह विदित हो गया है कि संतमत सत्संग का यह विशेषाधिवेशन है। यहाँ के श्रीछांगूर भगतजी ने इसे कराया। सत्संग से यह मतलब नहीं कि इसमें राजनैतिक बातें हों। सत्य क्या है? जो अकम्प है, जो अडिग है, जिसका नाश नहीं होता, जो है, जो था और जो सदा रहेगा, वह सत्य है। उसी सत्य के संबंध में यहाँ बात करेंगे।

यहाँ प्रश्न आ जाता है कि सत्संग की आवश्यकता क्या है? यदि हम सत्संग नहीं करें तो हमारी क्या हानि होगी? कर्म का फल अवश्य होगा। कोई धनवान है तो कोई धनहीन। सब तरहों में जीवन बिताते हुए कोई कहे कि मैं सुखी हूँ, यह कभी संभव नहीं। इस संसार में बड़े-बड़े बलवानों का बल थक गया। बड़े-बड़े धनवान भी धन छोड़कर चले गए। हम शरीर ही धारण नहीं करें, इसके लिए किस अवलम्ब को धारण करें? संतों ने विचार कर कहा कि इसके लिए तुम भक्ति करो।

जो प्रत्यक्ष नहीं, जो इन्द्रियों की पकड़ में नहीं रहते, उन्हीं को अव्यक्त कहते हैं। आवागमन में घूमना कबतक होगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। हाँ, इसका ठिकाना संतों ने ईश्वर-भक्ति करके जाना है। ईश्वर की भक्ति करने में यह जानना चाहिए कि ईश्वर का स्वरूप क्या है? वह अव्यक्त क्यों है? वह व्यक्त भी होगा? इसके उत्तर में कहा जाएगा कि वह इन्द्रियों को व्यक्त नहीं होगा, आप अपने को पहचानें तो वह व्यक्त होगा। तुम्हारा शरीर क्षेत्र है और तुम क्षेत्रज्ञ हो। बिना बीज का वृक्ष नहीं हो सकता। इसी तरह स्थूल शरीर वृक्षवत् है और सूक्ष्म शरीर बीजवत्। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण; इन चार शरीरों के साथ आप रहते हैं। इन्द्रियों के कामों को आप जानते हैं, पर

अपने निजी कामों को नहीं। आपका निजी काम क्या है, सो समझिए। दुःख की बात है कि आप अपने आपको नहीं पहचानते हैं। सब इन्द्रियाँ जड़ हैं, इनमें कोई अपनी निजी शक्ति नहीं। इन इन्द्रियों को आपके ज्ञान से ज्ञान होता है। आप अपने से अपने को पहचानेंगे। इन्द्रियाँ माया से निर्मित हैं। चेतन आत्मा के कारण देह सचेतन है। इस तरह यह सिद्ध होता है कि चेतन और जड़ में भेद है। एक ज्ञानमय है, एक ज्ञान-रहित। संत महात्मा कहते हैं कि आप अपने निजी ज्ञान से ही अपने को पहचान सकते हैं। अपने को पहचानेंगे तो ईश्वर को भी पहचानेंगे। ईश्वर वह है, जिन्हें आप अपने निजी ज्ञान से पहचानें। जैसे कोई स्वप्न में सपनाता हुआ अर्थहीनता का दुःख पाता है और जब जग जाता है, तभी अर्थहीनता का दुःख छुटता है। इसी तरह संतों का कहना है कि तीन अवस्थाओं अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति को पार करोगे तो चौथी अवस्था मिलेगी। चौथी अवस्था में आपका निजी ज्ञान धीरे-धीरे चमकता जाएगा।

यह शरीर माया से निर्मित है। जिसमें बदली हो, जिसका अत्यन्ताभाव हो, वह माया है। यह योगियों ने सिद्ध कर बतलाया है। ईश्वर-भक्त बनो, माया नहीं लगेगी। इस चर्मचक्षु से जिस रूप को देखोगे, वह माया का दर्शन होगा। जिसे आत्मदृष्टि से देखता है, वह परमात्मा है। जिस तरह आँख को देखने के लिए आइने का सहारा लेते हैं, उसी तरह ईश्वर को तथा अपने को देखने के लिए ध्यान-भजन रूप साधन की आवश्यकता है।

जबतक कोई ईश्वर-स्वरूप का निर्णय नहीं जानता, तबतक वह औनाया हुआ रहता है। जैसे यात्री को निर्दिष्ट स्थान मालूम नहीं रहता तो उसका चलना व्यर्थ ही होता है। श्रीरामायणजी के पाठ में अभी जो पढ़ा गया, उससे ज्ञात होता है कि माया ईश्वर के अधीन में इस तरह है, जिस तरह कठपुतली। परमात्मा अज है, विज्ञान-स्वरूप है। जो बिना कारण का कार्य दिखाता है। 'अज विज्ञान रूप बलधामा।'(गोस्वामी तुलसीदासजी)। आज के भौतिक विज्ञानवाले को यदि उपादान कारण नहीं रहे, तो वे कुछ भी नहीं बना सकते। परमात्मा उपादान कारण को बनाते हैं। 'तद् आप ही आप, आप उपाया, नहिं किछुते किछु कर दिखलाया। (गुरु नानक साहब)।' परमात्मा स्वरूपतः अनादि-अनन्त हैं। वे उपज-ज्ञान से भी अनादि हैं। सबसे पहले का एक अनादि-अनन्त तत्त्व अवश्य मानना पड़ेगा। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—रूपौली में दिनांक २५.१२.१९६५ ई० के अपराह्णकालीन सत्संग में हुआ था।

२२०. सोचना और समझना दार्शनिक ज्ञान है

प्यारे लोगो!

मनुष्य को ज्ञान होना चाहिए। जिसमें ज्ञान नहीं, वह जड़ कहलाता है। जो विद्या में विशेष, वही ज्ञानी और विद्वान है। संसार में सब वस्तुओं का ज्ञान हो, इसीलिए महाविद्यालय में साइन्स की पढ़ाई होती है। भौतिक विज्ञान अपूर्ण है। वैज्ञानिक भी कहता है कि विज्ञान की खोज खत्म नहीं हुई है। यह कहाँ तक बढ़ेगा, ठिकाना नहीं।

अपने शरीर का जैसा ज्ञान है, वैसा ज्ञान अपने तईं का भी होना चाहिए। बहुत से शरीर वा पिण्ड के रहने के लिए अवकाश अवश्य देखते हैं। वह कौन-सा अवकाश है, जिसके अंदर सबके सब

रहते हैं? यह वह परमाकाश है कि जिसके बाहर कुछ नहीं। जिसके विस्तार का अंत नहीं, उसके परे कुछ है, कहा नहीं जा सकता। जहाँ काल है, वहाँ देश है; जहाँ देश है, वहाँ काल है। जो देश और काल को भी अपने में पचा लेता है, वही ईश्वर है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—'अति कराल कालहु के काला।'

परमात्मा अपरिमित शक्तिवाले हैं। कोई ससीम सबके पहले का नहीं हो सकता है। सबसे पहले का असीम ही होगा। ईश्वर के बारे में जहाँ-जहाँ पढ़ते हैं, सबमें ईश्वर को परम पुरातन, परम सनातन कहा गया है। इनको नहीं मानना भारी भूल है। ज्ञान सभी कोई चाहते हैं। जानने का प्रेरण मनुष्य के हृदय में स्वाभाविक है। मेरा ज्ञान बढ़ता जाय और मैं शान्तिपूर्वक रहूँ, इसी में सारी इच्छाएँ समाप्त हो जाएँगी। जानना दो प्रकार से हो सकता है। एक परोक्ष, दूसरा अपरोक्ष अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान। परोक्ष ज्ञान में पछताता रहता है, पहचान नहीं होती। पहचान लेने पर अपरोक्ष ज्ञान होता है। सोचना और समझना दार्शनिक ज्ञान है। बिना सोचे-समझे एक कदम भी नहीं चल सकते। भौतिक विज्ञान में अभी संतुष्टि नहीं है। मनुष्य जब भौतिक विज्ञान से आगे बढ़कर अध्यात्म-विज्ञान की ओर आवेगा, तब वह संतुष्ट होगा। विज्ञान अव्यक्त को प्रत्यक्ष कर देता है। जो प्रत्यक्ष नहीं है, उसे प्रत्यक्ष करा दे, वही योग-विद्या है। सरल और सर्वसाध्य ध्यान-योग है। भगवान श्रीकृष्ण ने भी ध्यान-योग पर जोर दिया है। ध्यान से ज्ञान बढ़ता है। यह मानव-शरीर समुद्र है। इसमें जो घुसता है, वह ज्ञान पाता है। अध्यात्म-विज्ञान का यह शरीर प्रयोगशाला है। विन्दु ध्यान ऐसा है, जो अन्दर घुसावेगा, तब ज्ञान बढ़ेगा। खूब पढ़िए, परन्तु अपने अंदर नहीं घुसिएगा तो अपरोक्ष ज्ञान नहीं होगा। जो ध्यान करता है, वह सदाचार में मजबूत होता है, वह मननशील होता जाता है। ध्यान ईश्वर की उपासना है। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—रूपौली में दिनांक २६.१२.१९६५ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२२१. योगी देवता के पद से भी आगे बढ़ जाते हैं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपलोग शान्तिप्रिय बनें। शान्ति कैसे प्राप्त हो, यह इस सत्संग से जानें। सत्संग में भक्ति के बारे में कहा जाता है, ईश्वर-स्वरूप का ठीक-ठीक निर्णय बताया जाता है।

आपके अपने-अपने घरों में, ईश्वर संबंधी कोई-न-कोई शब्द बच्चों को रटाते हैं। यह बहुत अच्छी रिवाज है। ईश्वर को अनेक मानना गलती है। क्या! ईश्वर अनेक हो सकते हैं? जो भक्त ईश्वर को अनेक मानते हैं, वे कम जानते हैं। ईश्वर दो हो नहीं सकते, यह एकदम असम्भव है। अनेक ईश्वर को मानने की साम्प्रदायिक भावना आपस में झगड़े पैदा कर देती है। यथार्थ में ईश्वर एक ही हैं। नाम और रूप अनेक हैं। उपनिषद् का यह ज्ञान बहुत उत्तम है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

—कठोपनिषद्, अध्याय २, वल्ली २

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है। ब्रह्म या आत्मा एक-ही-एक है, वह वायु के ऐसा

सर्वव्यापक है और सर्व से परे भी है। ईश्वर का न केन्द्र होता है और न परिधि। जीव केन्द्र और परिधियुक्त है। ईश्वर केन्द्र और परिधि से परे है। उसकी सीमा कहीं नहीं होती है। उसी एक को राम, शिव, विष्णु आदि कहते हैं। यह नाम, रूप माया है। 'नाम रूप दुइ ईश उपाधी।' (गोस्वामी तुलसीदासजी)

पशु-योनि में जो मन रहता है, वही मन मनुष्ययोनि में भी रहता है। इसीलिए पशु-योनि का संस्कार मनुष्यों में पाया जाता है।

जीवात्मा परमात्मा का अभिन्न अंश है। यह अंश आवरण के कारण से माना जाता है। कितना भी बड़ा रूप बना लो, वह रहेगा आकाश के अंदर ही। ईश्वर माया के रूप को भरकर उससे बाहर कितना है, कोई नहीं कह सकता। ईश्वर इन्द्रियों को व्यक्त नहीं, परन्तु आपको व्यक्त है। जो कोई योगी होता है, वह देवता के पद से भी आगे बढ़ जाता है। जहाँ जाकर 'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।' होता है। मनुष्य वहाँ तक जा सकता है।

परमात्मा की भक्ति हम माया रूप पाने के लिए नहीं, उनके स्वरूप को पाने के लिए करें। मनु-शतरूपा को माया रूप का दर्शन हुआ, लेकिन उनका कष्ट नहीं छूटा। इससे छूटने के लिए अमायिक रूप का दर्शन चाहिए। उन्हें आत्मा से ही पहचान सकेंगे। आत्मा को अपनी कैवल्य-दशा में आना चाहिए। शरीर माया से निर्मित घर है। इसको जबतक हम पार नहीं कर जाएँ, तबतक हम कैवल्य-दशा को प्राप्त नहीं कर सकते। अंदर चलने के लिए ध्यानाभ्यास करो।

किसी रूप का ध्यान स्थूल ध्यान है। रूप ध्यान से सिमटाव होता है और सूक्ष्म ध्यान करने की योग्यता प्राप्त होती है। ध्यान करने के लिए कहीं घर छोड़कर भागने की आवश्यकता नहीं। कर्म करो और ध्यान भी करो। सज्जनों के धर्मानुकूल चलो। पंच पापों से रहित को सज्जन कहते हैं। दमशीलता का अभ्यास करो। दमशील इन्द्रियों को रोकने का स्वभाववाला होता है। दमशील केवल विचार से नहीं हो सकते। मन की सूतें इन्द्रियों से लगी हुई है। ध्यान से मन को इन्द्रियों की घाटों से समेटा जाता है। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—रूपौली में दिनांक २६.१२.१९६५ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२२२. संतवाणी में नाम-भजन वेदानुकूल है

प्यारे लोगो!

एक संत की वाणी पढ़कर जितना लाभ, उतना लाभ अन्य संतों की वाणी पढ़ने से भी होता है। सबमें एक ही बात जान पड़ती है, यही संतमत की विशेष बात है। सब संतों का आदर और सब सद्ग्रन्थों का आदर बहुत अच्छा लगता है।

जो सत्संग करें, वे सभी सत्संगी, कोई गैर सत्संगी नहीं। मनुष्य की हैसियत से हम सभी भाई-भाई हैं। यहाँ हमलोग सभी सत्संगी हैं। भले कोई भेद जानते हैं और कोई नहीं जानते हैं।

ईश्वर सत्य है और सब उसकी माया है। दिखावटी हो, असलियत नहीं, यह माया है। जबतक ईश्वर को पाया नहीं, माया सत्य मालूम पड़ती है। ईश्वर सत्य है। माया को पार नहीं करने के कारण हम माया में फँसे रहते हैं। उसके पार होने के लिए चिह्न चाहिए। ईश्वर-निर्मित और नर-निर्मित चिह्न

होते हैं। जो चिह्न ईश्वर से निर्मित है, वह श्रेष्ठ है। ईश्वर-निर्मित चिह्न के आधार से भक्ति करें। ईश्वर-निर्मित चिह्न ज्योति और शब्द हैं। ये दोनों नर निर्मित नहीं, ईश्वर-निर्मित हैं। सूर्य में से ज्योति निकाल लीजिए तो कुछ नहीं देखेंगे। ऐश्वर्यवान विभूति संसार में सूर्य है, यह प्रत्यक्ष है। इससे ज्योति निकल जाय तो कुछ नहीं बचेगा। इसलिए ज्योति ही सार है।

केवल ज्योति हो शब्द नहीं, तो काम नहीं चले। शब्द के ज्ञान के वास्ते सब विद्यालय हैं। शब्द में वह शक्ति है कि शत्रु को मित्र बना दे और मित्र को शत्रु। शब्द से धनोपार्जन कर ले और शब्द से ही धनहीन भी हो जाय। धर्मराज युधिष्ठिर शब्द से ही धन हार गए। राजा हरिश्चन्द्र शब्द से ही सब राजपाट दान कर दिए। अगर शब्द न होता तो न हार होती, न जीत और न तो दान ही होता। तोप के द्वारा गोला चलाया जाता है। बिना शब्द के गोला निकल नहीं सकता। शब्द की महिमा अपार है। शब्द ही निर्धन और धनवान बनाता है। शब्द मनुष्य-निर्मित नहीं हो सकता, शब्द ईश्वर-निर्मित है। इसलिए संसार में शब्द की महिमा अपार है। और तो क्या, अगर शब्द नहीं रहे तो आपका शरीर नहीं रहे। जो गति आपके शरीर में है, उस गति में भी शब्द होता है। गति बन्द हो जाय तो शब्द बन्द हो जाय। यह शब्द ईश्वर की विभूति है। ज्योति भी ईश्वर की विभूति है।

संतों ने कहा—ईश्वरकृत ज्योति और शब्द ही विभूतिरूप चिह्न लो। जानना चाहिए कि संतवाणी वेदानुकूल है। संतवाणी में जो नाम-भजन है, वह वेदानुकूल है। ज्योति और शब्द की उपासना बहुत उत्तम है। अपने अंदर की ज्योति और शब्द ईश्वरकृत हैं। अंदर की ज्योति की उपासना कैसे करें? अन्तर्ज्योति देखने की तरकीव से देखी जाती है। एक संत ने कहा—'उलटि देखो घट में ज्योति पसार।' बाहर की ओर देखना छोड़कर अंदर देखो। सिमटी निगाह से देखो। इस तरह देखोगे तो ज्योति का पसार पाओगे। इसका भेद भेदी गुरु से जानिए। संतवाणी से मालूम हुआ कि बाहर नहीं, अन्दर देखो। फैली निगाह से नहीं, सिमटी निगाह से देखो।

शब्द अंधकार में भी है और प्रकाश में भी। प्रकाश पाइए तो शब्द भी मिलेगा। इसकी युक्ति सीखनी चाहिए। बिना पढ़े कोई विद्वान नहीं बन सकता है। उसी तरह बिना सीखे कोई साधन नहीं कर सकता है। ईश्वर-भजन के लिए अंतर-ज्योति और अन्तर-नाद ही है। संतमत में यही खास चीज है। संतमत से इसे निकाल लें तो, मोक्ष-मार्ग खत्म हो जाएगा। पहले प्रकाश लो, फिर शब्द लो। सबके अन्दर-अंदर प्रकाश और शब्द हैं। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—रूपौली में दिनांक २७.१२.१९६५ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२२३. मन से स्वतन्त्र कैसे होंगे?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

ईश्वर की भक्ति को समझ सकें, इसके लिए आपको याद दिलाता हूँ। ईश्वर की भक्ति के समझने में, पहले ईश्वर-स्वरूप का निर्णय होना चाहिए। ईश्वर मायातीत होने के कारण इन्द्रिगम्य नहीं हैं। इसलिए वे प्रत्यक्ष नहीं हैं। भक्ति कहते हैं—सेवा को। जो प्रत्यक्ष नहीं है, उनकी सेवा हम कैसे करें? उनके प्रत्यक्ष रूप का भजन या भक्ति

संतों के संग भी हैं। यह एक तरह की सेवा है। जहाँ ईश्वर संबंधी कथाएँ हों, सुनो; यह भी एक तरह की भक्ति है। इन्द्रियों को काबू में रखने के लिए, बहुत से कर्मों से अपने को बचाए रखो। पंच पापों से बचे रहकर ही सज्जनों के धर्मानुकूल बर्ता जा सकता है। इन्द्रियों के रोकने का स्वाभाववाला बनने के लिए केवल विचार से ही नहीं होता है। इन्द्रियों के संग, मन की धारें लगी रहतीं हैं। इन धारों को इन्द्रिय के स्थानों से समेट कर एक केन्द्र पर रखो, तो दमशीलता होगी। दमशीलता के अंदर मन का रूप बहिर्मुख से अंतर्मुख हो जाता है। यह ऊर्ध्वगमन ही ईश्वर की भक्ति होती है। जैसे जगन्नाथजी जानेवाले का चलना जगन्नाथजी की भक्ति है, उसी प्रकार ईश्वर की ओर चलना भी ईश्वर की भक्ति है। जो लोग ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन के वास्ते अंदर-अंदर चलते हैं, उनका वह चलना ईश्वर-भक्ति के अंदर दाखिल है।

किसी भी मन्दिर में मूर्ति का दर्शन करके प्रत्यक्ष दर्शन की लालसा रह जाती है। दर्शन प्रत्यक्ष होना चाहिए। अन्तर्मार्गी को प्रत्यक्ष दर्शन होता है। बाहर घूमते हो इन्द्रियों के संगे-संग और अंदर घूमते हो इन्द्रिय और शरीर का संग छोड़कर। अंदर चलते-चलते अपने का पता लग जाएगा। उसी को ईश्वर का भी पता लगेगा। चेतन आत्मा के ऊपर से जब सब आवरण उतर जाते हैं, तो आत्मदृष्टि होती है। यह आत्मदृष्टि किसी के देने से नहीं होती। अन्तरंग साधना द्वारा ईश्वर की ओर चलना, ईश्वर की भक्ति है। यही परा भक्ति है। जीवात्मा शरीरों को छोड़ते-छोड़ते परमात्मा में अपने आप जा मिलती है। दमशील होने के साथ-साथ शमशील भी होना चाहिए। 'दम' के बिना 'शम' नहीं होता। 'शम' का साधन पूर्ण सिमटाव में पहले विन्दु पर अवस्थित रहकर वहाँ जो शब्द होता है, उसको ग्रहण करके होता है। जहाँ कम्पन है, वहीं शब्द है। जहाँ कम्पन नहीं, वहाँ रचना नहीं। कम्पन में शब्द अनिवार्य रूप से होता है। सभी शब्द सुन नहीं पाते, इसलिए कहते हैं कि कम्पन में शब्द नहीं होता। कम-से-कम २० कम्पनांक के शब्द को तथा ज्यादे-से-ज्यादे २० हजार वा ३० हजार कम्पनांक के शब्द सुन सकते हैं। उससे कम या अधिक कम्पनांक के शब्द कों सुन नहीं सकते। चाहे स्थूल जगत हो या सूक्ष्म जगत, बिना कम्प के रचना बन नहीं सकती। जहाँ रचना है, वहाँ शब्द है। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक आता है। अभ्यासी एक विन्दु पर, उस सूक्ष्म मण्डल के केन्द्रीय शब्द को सुनता है। एकविन्दुता के कारण सूक्ष्म मण्डल में प्रवेश हुआ, इसलिए सूक्ष्म मण्डल के केन्द्र का शब्द पकड़ा जाता है। संतों ने पुकारकर कहा है—'जेहि शब्द से प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै।। (कबीर साहब) यही ईश्वर का प्रतीक है। ईश्वर तक पहुँचने का दृश्यमान चिह्न विन्दु है। बाहर में प्रतीक बनाते हैं, यह स्वकृत है। ईश्वरकृत चिह्न जैसा मनुष्यकृत चिह्न नहीं हो सकता।

चलना रास्ते पर होता है। रास्ते का ओर-छोर होता है। इसका आरंभ एकविन्दुता से होता है और अंत परमात्मा में होता है। यह ज्योति मार्ग और शब्दमार्ग सबके अंदर-अंदर मौजूद है। अध्यात्म-वैज्ञानिक अपने शरीररूपी धरती में खोजकर ज्योति और शब्द पाते हैं। नहीं करनेवाला अगर कहे कि 'नहीं है' तो उसका यह कहना गलत है। प्रत्याहार में जो हैरानी होती है, वह साधन करते-करते मिट जाती है। शमशीलता शब्द-साधना से होती है। परा भक्ति को जो नहीं जानते हैं, वे मोटी भक्ति को पकड़े रहते हैं। पूजा-पाठ में जो एकाग्रता आती है, उससे अधिक एकविन्दुता में आती है। स्थूल भक्ति, भक्ति का पैर है और सूक्ष्म भक्ति, भक्ति का शिर

है। केवल पैर ही पैर नहीं जानो, शिर को भी जानो। पंच पापों (झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार) से बचे रहो। संसार में दुष्टकर्म से जनता में कष्ट होता है। हमलोगों को सुराज्य प्राप्त है। इसके लिए कितने गोली के शिकार हुए और फाँसी पर चढ़े। परन्तु सुखी हम अपने को नहीं पाते हैं। हमें पापों से रहित होना चाहिए। अपने को पापों से छुड़ा ले, तो दुष्ट कर्म बिल्कुल मिट जाएँगे और स्वराज्य में सुराज हो जाएगा। ईश्वर की भक्ति करनेवाले पापों से छूटते हैं। सबको चाहिए कि अपने को भक्त बना लें। किसी तरह धन कमा लो, इसमें पापों को नहीं छोड़ते हैं। परन्तु ईश्वर की भक्ति में पंच पापों को छोड़ना आवश्यक है। अपने तईं अपने को ईश्वर तक पहुँचाना ही ईश्वर की भक्ति है। हमलोग तन से स्वतंत्र हो गए हैं, परन्तु मन से नहीं। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—रूपौली में दिनांक २७.१२.१९६५ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२२४. आपने नई उम्र में क्यों साधुवेश लिया?

प्यारे लोगो!

मेरी जब नयी उम्र थी और घर-बार को छोड़कर साधुरूप धारण कर लिया था, तब आरा जिले में एक जगह गया। वहाँ एक साधु रहते थे। वहाँ कुछ लोगों ने मुझे बुलाया और मुझसे पूछा कि आपने नयी उम्र में क्यों साधुवेश लिया? मैंने कहा—'मैं अंग्रेजी में पढ़ता था। उसमें प्यारीचरण मुखर्जी की लिखी हुई एक पुस्तक थी, जिसका नाम था—First Book of Reading. आरम्भिक अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए यह एक किताब थी। उसमें लिखा था—'All men must die.' इसी वाक्य ने अंकुश का काम मेरे लिए किया। जैसे अंकुश की मार से हाथी सचेत हो जाता है, उसी तरह मैं भी सचेत हो गया। संसार का सुख तबतक है, जबतक मृत्यु नहीं हुई है। संसार के सुख में दुःख लगा रहता है। जैसे-जैसे सुख होता है, वैसे-वैसे दुःख भी होता रहता है। यह सोचने पर मेरे मन में हुआ कि संसार का सुख तो ऐसा है, तो संसार के सुख-दुःख से निवृत्त हुआ जाय। दुःख तो कोई चाहता नहीं, सब सुख चाहते हैं। सुख से भी निवृत्त होना चाहिए। श्रीमदाद्य शंकराचार्यजी ने कहा है—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

इस बारम्बार के जन्म-मरण में स्वाभाविक रूप से दुःख होते हैं। साधारण मृत्यु में यह दुःख नहीं छूटता है। संतों की वाणी को बारम्बार पढ़ने से मालूम होता है कि अपने बाप-दादा के घर को नहीं छोड़कर घर में रहकर ही ईश्वर-भजन करो, तो काम चल सकता है। सांसारिक दुःख-सुख से बचने का जो काम है, वह काम करना चाहिए। वह काम है ईश्वर-भजन। ईश्वर का भजन करना अच्छा है। सभी कोई जानते हैं। ईश्वर के भजन में सीधे-सीधे ईश्वर का गुणगान करना ही काफी नहीं है। जो लोग रामायण, महाभारत आदि पढ़ते हैं या सुनते हैं, उनको मालूम होगा कि भगवान राम जब थे, तब भी बहुत लोगों ने उनको देखा था, लेकिन सिर्फ देखने से ही किसी को मोक्ष नहीं हुआ। अपने को मोक्ष में पहुँचाने के लिए कोशिश करो। यही श्रीभगवान ने कहा। वाल्मीकीय रामायण,

अध्यात्म रामायण, तुलसीकृत रामायण—इन सबको पढ़कर जान सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर का भजन करना चाहिए। 'भजु मन जीवन नाम सवेरा।'— संत कबीर साहब

कितने प्राणी तो माता के पेट में मर जाते हैं और मरे हुए ही जन्म लेते हैं। उसमें माता को बड़ा कष्ट होता है। अबतक कितने लोग मर गए, जो जनमे थे। आगे जो जन्म लेंगे, वे भी मरेंगे। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'हमलोग अभी हैं, कभी नहीं थे, ऐसी बात नहीं या कभी नहीं रहेंगे, ऐसी भी बात नहीं।' इस जन्म-मरण के चक्र से छूटने के लिए ईश्वर-भजन करना चाहिए।

बिना सिखाए कोई नहीं सीखता। सिखाने वाला गुरु होता है और सीखनेवाला शिष्य होता है। जितनी भी विद्याएँ हैं, सबको सिखानेवाले और सबको सीखनेवाले होते हैं। आज जितने छोटे-बड़े विद्यालय हैं, सबमें वकालत, डॉक्टरी आदि की पढ़ाई होती है। डॉक्टरी में भी कई प्रकार हैं। पहले की आयुर्वेदिक शिक्षा को भी लोग जानते हैं और आजकल की भी एलोपैथिक शिक्षा को जानते हैं। संसार में जितने प्रकार की शिक्षाएँ हैं, उतने को कौन जानता है? मैं तो कहूँगा कि ईश्वर ही जानते हैं।

एक शिक्षा सबसे भारी है, वह है खेती करना। अगर खेती नहीं की जाय, अन्न नहीं उपजे, तो खाने के बिना संसार मर जाएगा, कोई काम नहीं कर सकता। इसलिए खेती अवश्य करो। खेती के लिए गाय पालो। दूध मिलेगा। बछड़े होंगे, उससे खेत जोतने का काम होगा। जब आदमी बूढ़ा हो जाता है, तब वह पराधीन हो जाता है। जब कोई काम नहीं कर सकता है, तब किसी को सरकारी पेंशन मिलती है, किसी को मुआवजा मिलता है। संतलोग कहते हैं—बारम्बार के जनमने-मरने से छूटने के लिए ईश्वर का भजन करो। ईश्वर-भजन के लिए जो युक्ति है, वह जानकर करो। जैसे खेत से अन्न उपजता है, वैसे सत्संगरूपी धरती से ईश्वर-भजन के वास्ते शिक्षाएँ मिलती हैं और ऐसी शिक्षाएँ भी मिलती हैं, जिनसे गुरु का चुनाव हो जाता है और पारमार्थिक गुरु की पहचान हो जाती है। गुरु की सेवा की जाय। उनके सत्संग को किया जाय। तब ईश्वर-भजन कैसे होगा, जाना जाएगा। बाहरी और भीतरी; दोनों तरह का भजन होता है। बाहरी भजन सत्संग है, जो अंदर की ओर जाने के लिए प्रेरणा देता है। मन को बाहर से अंदर ले आओ। इतना अन्दर ले आओ कि उन्मनी अवस्था को प्राप्त हो जाए; मनोलय हो जाय, केवल चेतन आत्मा रह जाए। यह मेरा ज्ञान नहीं है। गुरु ने जो ज्ञान दिया है, वही यह ज्ञान है। साधना करने से साधक को यह अपने ही आप मालूम होगा। शिवनारायण स्वामी ने कहा है—

मन रे तू लागि रहो यहि ओर।
सार शब्द कपाल भीतर होत अनहद शोर।
सुनि समुझहिं मन मुदित नेहारत पलक परो जनि भोर।।
मिलै गंगा सहित जमुना सुषमना की ओर।
उलटि नैन निहारो भीतर क्रोटिन होत इंजोर।।
सुन्न आसन आपु साईं बसन रंग रस भोर।
शिवनारायण कहि समुझावल चितवत नैन के कोर।।

अनहद शब्द में मनोलय होता है। उस शोर या आवाज या शब्द में जीव वा चेतन आत्मा प्रवेश करता है, तो वहाँ तक पहुँचता है, जहाँ तक शब्द है। शब्द का अंत होने पर 'निःशब्दं परमं पदम्' मिलता है। संतों ने अंतर्मख होने के लिए कहा। अंतर्मुख होने के लिए वचन से हिंसा, तन से हिंसा और मन से हिंसा जो छोड़ते हैं, उनके मन में आप ही दया उपजती है।

जैसे कछुआ अपने अंग को खोखले में समेट लेता है, वैसे ही जो अपने को बाहर से अंदर

समेट लेता है, वह अनहद शोर सुन पाता है और जहाँ इनका अंत होता है, वहाँ परमात्मा को पाता है। अपने को अंदर करने के लिए आँखें बंद करो।

बन्द कर दृष्टि को फेरि अंदर करै,
घट का पाट गुरुदेव खोलै ।।

जब ऐसा होगा, तब अनहद शब्द और अनाहत नाद को पाओगे। जो उनको पार कर जाता है, वह ईश्वर को पाता है, वही आवागमन के चक्र से छूटता है।

शब्द की चर्चा रामायण में भी है। अभी जो तुलसीकृत रामायण से नवधा भक्ति का पाठ हुआ उसमें भगवान श्रीराम ने शवरीजी को उपदेश दिया था। शवरी भील की लड़की थी। वह मतंग ऋषि के आश्रम में रहती थी। उसने उनकी बड़ी सेवा की थी। मुनि ने उसको उपदेश दिया था। उनकी साधना उसने बड़ी तन्मयता से की थी। परिणाम यह हुआ कि—

तजि योग पावक देह हरि पद, लीन भइ जहँ नहिं फिरै।

शवरी योगाग्नि में शरीर छोड़कर हरि-पद में लीन हो गई, जहाँ से कोई लौटता नहीं है। संतमत यही बताता है। सब कोई इस भेद को जानिए। संतमत का सिद्धान्त जानिए, गुरु से भेद लेकर साधना कीजिए, जिससे आवागमन का चक्र छूटे। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत श्रीसंतमत सत्संग मन्दिर दुर्गापुर में दिनांक २२. २.१९६६ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२२५. संतमत किसको कहते हैं?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

यह अ०भा० संतमत-सत्संग का ५८वाँ वार्षिक महाधिवेशन है। इसका होना बहुत आवश्यक है। इसका कारण है कि दूर-दूर के सत्संगीगण, जहाँ तक वे आ सकें, दूर और नजदीक के, सभी मिलकर एक साथ साल में एक बार भी सत्संग करें। कबीर साहब ने कहा था—

प्रमी ढूँढ़त मैं फिरों, प्रेमी मिलै न कोय ।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ति दृढ़ होय ।।

जब ईश्वर-प्रेमी एक जगह मिलते हैं, तो एक के भाव से दूसरे के भाव में वृद्धि होती है। आपस में धर्म-उत्साह बढ़ाते हैं और धर्म-कर्म में लगने का उत्साह उत्पन्न करते हैं। फिर घर में भी सत्संग करते हैं, जिला वार्षिक में भी जाते हैं। कहीं साप्ताहिक-सत्संग, कहीं मासिक सत्संग और कहीं भ्रमण-सत्संग होता है। मैं कहूँगा, जहाँ-जहाँ सत्संगी रहते हैं, नित्य सत्संग करते हैं। इस तरह बराबर सत्संग होता रहता है और इस तरह के सत्संग से सब मिल-जुलकर धर्म-उत्साह बढ़ाते हैं। जो अपने उद्धार के लिए बहुत उत्सुक हैं, वे सत्संग करते हैं। हम धर्म में अग्रसर हों और साधन-अभ्यास नित्यप्रति बढ़े; सभी सत्संगियों के हृदय में यही भाव रहे। धर्म में संकीर्णता उपयुक्त नहीं, ठीक नहीं। धर्म में उदारता ठीक है। उदारता यह कि पहले हम अपने देश को देखें। 'यह सम्प्रदाय, वह मत' आदि बहुत हैं, इनको हम देखें। यदि हम किसी एक सम्प्रदाय के अनुयायी होकर हम इस प्रकार रहें कि हमारा धर्म उदार नहीं हो और हम यह समझें कि हमारा ही सम्प्रदाय उत्तम है, और का नहीं; ऐसा अनुदार-भाव हमको नहीं रखना चाहिए। हमको जानना चाहिए कि बहुत से धर्म-सम्प्रदायों में सार क्या है? सबका समन्वय कहाँ

है? मिलावें, इस मिलान के ज्ञान में उदारता आती है, नहीं तो संकीर्णता आती है। आपका ख्याल संकीर्ण नहीं होना चाहिए।

संतमत किसी एक के खास नाम पर नहीं है। सब संतों के विचार का है। इसलिए हमलोग सभी संतों को मानते हैं। मैंने खोज की है, वेद-वेदान्त से खोजकर निकाला है। भगवान बुद्ध, कबीर साहब, गोस्वामी तुलसीदासजी आदि के वचन का समन्वय जहाँ हमको मिलता है, हम उसी को संतमत कहते हैं। संतमत किसी खास आचार्य के नाम पर नहीं है। कोई कहे कि यह कबीर मत है, तो मैं कहूँगा—हाँ, ऐसा ही है। इसी तरह नानक पंथ, दादू पंथ, दरिया पंथ आदि के संबंध में भी कोई पूछे, तो मैं उन सबमें भी हाँ कहूँगा।

ऐसा ख्याल नहीं करके अपने धर्म में संकीर्ण-भाव रखना ठीक नहीं। कूप-मण्डूक जैसा हमलोगों को नहीं होना चाहिए, हमलोगों को उदार होना चाहिए। अनेक संतों की वाणियों का पाठ करना चाहिए। हमारे गुरु महाराज कहते थे कि कलिकाल में आदि संत भगवान बुद्ध हुए। जब मैं उनके वाक्यों को विचारता हूँ, तो उनके वचन में भरपूर गंभीरता पाता हूँ। लोग पूछते हैं कि संतमत किसको कहते हैं? मैं कहता हूँ कि पहले लोग जानें कि संत किनको कहते हैं? संत को हम जानें, संतों की वाणियों को पढ़ें। एक मित्र दूसरे मित्र को पत्र भेजकर ख्याल बूझते हैं, उसी तरह संतों के ग्रंथों को पढ़कर उनका ख्याल जाना जाता है। संतों की वाणी, संतों के संग से बड़ा लाभ होता है। जो उपकार नहीं मानता, वह कृतघ्न है।

सारे संसार का आधार कुछ अवश्य है, जिस आधार पर यह संसार स्थित है। बिना आधार के आधेय वस्तु टिक नहीं सकती। सर्वाधार वह है, जिसका और कोई आधार नहीं है। प्रत्येक का आधार जानो तो अंत में वैसा आधार मालूम होगा, जिसके आधार पर सभी हैं। उस आधार को अपनी तरह से जैसा कहो—निर्वाण कहो वा ब्रह्म कहो। सर्वाधार होने के कारण सबका आधार वह है। जो सर्वाधार की स्तुति नहीं करता, वह कृतघ्न है। सर्वाधार ही ईश्वर है। ईश्वर की स्तुति अवश्य करो। इसलिए जहाँ-जहाँ सत्संग होता है, वहाँ प्रातः स्तुति अवश्य होती है। जो पढ़े-लिखे नहीं होते हैं, वे भी सुन-सुनकर सीख जाते हैं। पहले सुनो, सुनते-सुनते याद हो जाता है। चाहे ईश्वर नहीं कहकर, निर्वाण ही कहे तो मुझको उसके लिए कोई हर्ज नहीं।

बिना सत्संग के सर्वाधार का ज्ञान नहीं होता। संत ही सर्वाधार का ज्ञान बताते हैं और इसीलिए वे संत कहलाते हैं। योगशिखोपनिषद् और महोपनिषद् में लिखा है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

अर्थात् उस परे-से-परे (ब्रह्म) को देख लेने पर हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिनकी यह दशा होती है, वे ही संत होते हैं।

संतों की स्तुति हमलोग करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरू हरि सन्त समीरा॥

अर्थात् राम समुद्र-रूप हैं, धैर्यवान सज्जन मेघ-रूप, फिर राम चन्दनवृक्षरूप हैं और संत पवन रूप हैं।

राम कहो, कृष्ण कहो, शिव कहो वा अन्य ईश्वर-वाचक शब्द कहो, उसी ईश्वर के नाम हैं। संत लोग धैर्यवान होते हैं। मेघ जमीन को दूर-दूर तक फसल की उपज से सरसब्ज करता है और समुद्र जहाँ-का-तहाँ रहता है। संतलोग हवा हैं, ईश्वर चन्दन-वृक्ष हैं। सुगन्ध हवा के द्वारा दूर-दूर तक फैलती है। मतलब यह कि संत ईश्वर के ज्ञान का वर्णन करते हैं।

संत पूरे हों या अधूरे, हमारे गुरु बनते हैं।

उनका भी बहुत उपकार हम पर है। इसलिए गुरु की स्तुति अवश्य करो। जो नहीं करता है, वह कृतघ्न है। ईश्वर की स्तुति अवश्य करो। धर्म की परिभाषा और उसके सिद्धान्त को जानो। गुरु की स्तुति, संत-स्तुति और ईश्वर-स्तुति अवश्य करो। इसमें समय लगाना समय का सदुपयोग है। इससे हम अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं।

सब कोई रुपये का मूल्य जानें, पैसे का मूल्य जानें और नोट का मूल्य जानें। हीरा, मोती, जवाहर, अस्त्र-शस्त्र बहुत हों और अन्न नहीं हो, तो आपकी क्या गति हो? पानीपत की तीसरी लड़ाई में खाने के बिना मरहठे के लगभग एक लाख आदमी मर गए।

उपनिषद् में एक कथा आयी है, जिसमें लिखा है कि एक ऋषि कुमार को अपनी विद्या का बहुत घमण्ड था। एक दिन ऋषि ने अपने कुमार को बुलाकर पूछा—'वत्स! तू ऐसी विद्या जानता है, जिसके बिना अन्य सभी विद्याएँ फीकी पड़ जाती है?' पुत्र ने कहा—'जी नहीं।' पिता ने कहा—'तो जा, एक सप्ताह-पर्यन्त तू उपवास कर मेरे पास आ, फिर मैं तुझको वह विद्या सिखाऊँगा।' ऋषि-आज्ञा पा कुमार सप्ताह-पर्यन्त उपवास कर पिता के निकट उपस्थित हुआ। ऋषि ने कहा—'पुत्र! अमुक वेद की अमुक ऋचा की व्याख्या करके मुझे सुनाओ।' पुत्र ने उत्तर दिया—'पिताजी! अभी मैं भूख से पीड़ित हूँ। अन्न के बिना मैं बहुत कमजोरी मालूम कर रहा हूँ। उक्ति नहीं आ रही है, बोलने में असमर्थ हूँ। जीवन-धारण करना कठिन हो रहा है। कोई भी ऋचा अभी सूझ नहीं रही है।' पिता ने कहा—'अच्छा तो जाओ, भोजन कर स्वस्थ हो मेरे पास आओ।' ऋषिपुत्र ने वैसा ही किया, भोजन कर स्वस्थ हो पिता के सम्मुख उपस्थित हुआ। पिता ने पूर्व कथित वेद की उसी ऋचा की व्याख्या पुनः पूछी। कुमार ने बहुत ही सुन्दर ढंग से उसकी व्याख्या की। पश्चात् कुमार ने ऋषि से प्रार्थना की—'पिताजी! आपने जिस विद्या के लिए मुझसे कहा था, वह सिखलाइए।' ऋषि ने कहा—'पुत्र! वह है 'अन्न-ब्रह्म।' जबतक तुम्हारे पेट में अन्न नहीं था, तबतक तुम सारी विद्या भूल से गए थे और पेट में अन्न ब्रह्म के पहुँचते ही तुम्हें सारी विद्या की स्मृति हो आई।

इसलिए कृषि-कर्म आवश्यक है। हमारे यहाँ कहा जाता है—'उत्तम खेती मध्यम बान।' वेद में उपदेश आया है कि तुम संसार में अच्छे प्रकार रहो। गाय की सेवा माता की सेवा की तरह करो। हमलोग मिलकर रहें, गौ-सेवा करें और खेती करें। खेती करें, गौ-पालन करें और एक मेल से नहीं रहें, तो ठीक नहीं। जबतक लिच्छवी-वंश में मेल रहा, तबतक कोई उसको दबा नहीं सका। जब आपस में फूट पैदा हुई, तब दूसरे उस पर आकर चढ़ बैठे। वेद में हुक्म है कि 'आपस में मिलकर रहो और मिल-जुलकर ईश्वर की उपासना करो।' यह इसलिए कहा कि उपासना ऐसी चीज है, जो सबके चित्त को एक सूत्र में बाँध देती है। उपासना में स्तुति और विनती भी रहती है। हमलोग धर्म के एक सूत्र में बँधे हैं, इसलिए साल में एक बार भी भेंट करें।

हमलोग ऐसा न सोचें कि संसार ही आधार है। संसार के आधार को जानो। संसार में बिना आधार के वस्तु को नहीं पाते। आधार खोजते-खोजते आखिर में ऐसा मिलेगा, जिसका आधार कुछ नहीं और वही सर्वाधार है। सर्वाधार को प्रत्यक्ष-ज्ञान द्वारा जानने के लिए यत्नपूर्वक नित्य-प्रति दृढ़-ध्यान करते रहो। अगर कम समय है तो खड़े-खड़े करो। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मरयुद्ध्य च।' मन पर नियन्त्रण रखना चाहिए। लेकिन नियन्त्रण रखना कठिन होता है। अनियन्त्रित मन के कारण जो नहीं करने का वह भी कर लेते। मन पर नियंत्रण उपासना से होता है। इसमें क्या यत्न चाहिए, इसको प्रकाश

में लाने के लिए दादूदयालजी ने कहा—

मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ।
मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ।।

यह मन निशिदिन बाहर-ही-बाहर जाता है। मन को नियंत्रित करने के लिए उसको अंतर्मुख करना होगा। जिसका मन बाहर-बाहर जाएगा, उसका मन स्थिर नहीं होगा। मन दो प्रकार के हैं—तनमन अर्थात् शरीरमुखी मन और निजमन अर्थात् आत्ममुखी मन। मन का जो केन्द्रीय-रूप है, वह 'निजमन' है और जो मन इन्द्रियों के संग होकर बाह्य विषयों में भटकता है, वह तन-मन है। मन को बाहर के विषयों में आनन्द मिलता है। अंदर में प्रवेश करने पर और विशेष आनन्द मिलता है, इसको साधक जानते हैं। मन के सामने ही प्रकाश है।

मन हीं सन्मुख नूर है, मनहीं सन्मुख तेज।
मन हीं सन्मुख जोति है, मन हीं सन्मुख सेज।।

एक ही बात को तीन बार कहा कि मन के सामने में नूर है, तेज है और ज्योति है। यदि विश्वास नहीं है तो करके देखो। जो युक्ति जानता है, अभ्यास करता है, तो वह प्रत्यक्ष पाता है, ऐसा नहीं कि मरने पर फल फलेगा।

पढ़ना आरम्भ करते हो, तो पढ़ते-पढ़ते ही विद्वान होते हो। इसी तरह ध्यान-साधन का आरम्भ करो, करते-करते इसमें भी पूर्णता मिलेगी। बहुत से गुरु बहुत तरह की दीक्षा देते हैं, लेकिन यह दीक्षा कोई-कोई देते हैं। दशमें द्वार की बात जो जानते हैं, उसमें प्रविष्ट होने के लिए जो साधन करते हैं, वे अंदर का आनन्द पाते हैं। शरीर नाशवान है, सब दिन एक समान नहीं रहता। कितना भी सुन्दर होता है, एक दिन बूढ़ा होता है और शरीर छूट जाता है। इसीलिए भगवान बुद्ध के वचन में आया है—'राजा के सुचित्रित-रथ पुराने हो जाते हैं तथा यह शरीर भी पुराना हो जाता है, किन्तु सन्तों का धर्म पुराना नहीं होता, सन्तलोग सन्तों से ऐसा ही कहते हैं।'

लोग कहते हैं—'इन उपदेशों से मनुष्य निकम्में हो जाते हैं।' मैं पूछता हूँ—'क्या बुद्ध भगवान निकम्मे थे?' वे बड़े परिश्रमी थे, साहसी थे। दशवें गुरु गोविन्द सिंह कैसे थे, खालसा-इतिहास पढ़कर देखो। संसार की वस्तुएँ नाशवान हैं, इसलिए इसमें आसक्त न होओ। 'अनासक्त जग में रहो भाई। दमन करो इन्द्रिन दुःखदाई।।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'योगी होकर कर्म करो। कौशल से कर्म करनेवाले को योगी कहते हैं। ईश्वरार्पण-बुद्धि से कर्म करो। कर्तव्य जानकर कर्म करो। आत्मनिष्ठ होकर कर्म करो।'

मैंने विचारा तो मेरे बोध में आया कि दृष्टियोग में आत्मपरायणता होती है। अपना निशाना अपने अन्दर है, अपने उस पर लगे रहना, यह आत्मरत होने का आरम्भ है। इस तरह आत्मा में लगे रहोगे। इसके लिए कुछ एकान्त में भी बैठने का समय रहना चाहिए। लोग कहते हैं कि समय नहीं मिलता है। मैं कहता हूँ—सिनेमा देखने के लिए समय मिलता है और एकान्त में बैठकर थोड़ा ध्यान-साधन करेंगे, तो क्या समय नहीं मिलेगा? समत्व का— समाधि-साधन का थोड़ा-थोड़ा नित्य अभ्यास करो। जितने बड़े लोग हुए हैं, सबने किया है। संसार का भी काम होगा और संसार से छूटने का—मोक्ष का भी काम बनेगा।

इस वार्षिक-सत्संग के अवसर पर जो तीनों दिन शुरू से अन्त तक सत्संग-वचन सुनेंगे, वे संतमत को समझेंगे कि क्या है? हमारे गुरु महाराज सन १८९७ में भागलपुर आए थे। पहले मायागंज महल्ले में सत्संग मन्दिर था। खपड़े का घर था, टूट गया। अब जो कुप्पाघाट में बना है, उन्हीं गुरु महाराज- जी की कृपा से, उनकी पुण्य-स्मृति में बना है। n

यह प्रवचन भागलपुर जिला के महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट के निकट गंगातट पर ५८वाँ महाधिवेशन, दिनांक १०.४.१९६६ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२२६. अन्धी श्रद्धा से कुछ ग्रहण और त्याग मत करो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपके दर्शनों से मुझे बड़ा लाभ और सुख होता है। दुःख इस बात का होता है कि यद्यपि इस पण्डाल में १९,००० वर्ग हाथ स्थान है, तथापि आराम से बैठने के लिए आपको इस पण्डाल में जगह नहीं है; क्योंकि आपलोग बहुत संख्या में हैं। यदि आपलोग इसमें बैठकर सुख मानें, तो मुझे भी सुख हो और आपको दुःख हो, तो मुझे भी दुःख होगा। दुःख पाकर आप कोसें नहीं। यह इतनी गरीब संस्था है कि भारत में ऐसी गरीब कोई संस्था नहीं। आप शाप न दें, धन्यवाद दें। सत्संगियों में जिनसे जो काम हो सका, सबने किया। तन से, मन से, धन से सभी ने सहायता की। कितने तो सत्संग संस्था का भोजन करके श्रमदान करते थे। और कोई अपनी ओर से खाकर श्रमदान करते थे। इन सबको मैं धन्यवाद देता हूँ। कबीर साहब ने गरीबी मिजाज से रहकर सत्संग करने कहा है और सत्संग की महिमा जनायी है। उन्होंने कहा है—

कबीर संगति साधु की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय ।।

इस न्याय से बैठने का भाव भी मिलाइए, तो गरीबी मिजाज से बैठिए, तो मैं बार-बार धन्यवाद देता हूँ। आपलोग दूर-दूर से गुरु के उपदेश सुनने आए। मेरे अपने गुरु तो अब शरीर में नहीं हैं। उनका एक दुबला-पतला शिष्य (मैं) मौजूद हूँ। इस दुबले-पतले से क्या सेवा होगी, समझिए। गुरु महाराज कहते थे—'संतमत में तीन बातें हैं—गुरुसेवा, ध्यानाभ्यास और सत्संग।' इन तीनों का अमल करो, तो तुम ठीक-ठीक मनुष्य बनोगे, मोक्ष को प्राप्त करोगे और सारे क्लेशों से छूटोगे।

संतमत कोई ऐसी संस्था नहीं है, जो किसी एक खास व्यक्ति के नाम पर हो। जो सब संतों का सिद्धान्त और विचार है, वही संतमत का सिद्धान्त और विचार है। सब संतों की वाणी मिले, गुरु का वचन मिले और अपना विचार भी मिले, तब विश्वास करो। अन्धी श्रद्धा से कुछ ग्रहण और त्याग मत करो। कबीर साहब ने कहा है—

जब लगि नहिं देखौं निज नैना।
तब लगि नहिं मानौं गुरु के बैना।।

इसलिए देखने को जानो। तर्क-बुद्धि भी हो, विचार भी हो। तर्क भी सात्त्विक हो; क्योंकि राजस तर्क में चंचलता होती है और तामस विचार में उल्टी को सीधी और सीधी को उल्टी समझोगे। सात्त्विक विचार ठीक है। गुरु ने अंधविश्वास से कुछ मानने को नहीं कहा है। उन्होंने कहा कि मेरी बात भी यदि संतवाणी के अनुकूल नहीं हो और विचार में नहीं जँचे, तो कभी नहीं मानो। वे बड़े ठोस थे। संतमत-सत्संग में उन्होंने गुरु की मुख्यता दी और कहा कि गुरु वह है, जो ईश्वर की भक्ति ठीक-ठीक बतावे; क्योंकि ईश्वर-भक्ति से ही कल्याण होने योग्य है। तर्कबुद्धि ऐसी भी है कि ईश्वर की स्थिति में भी विश्वास नहीं करती और कहती है कि ईश्वर की भक्ति क्या? ईश्वर-भक्त कहते हैं कि मुझे ईश्वर में बड़ा विश्वास है। महात्मा गांधी ने कहा कि मुझे तर्क में कोई हरा दे, फिर भी मैं ईश्वर को मानता रहूँगा। जैसे कोई सात बहनें थीं। उन सात बहनों में एक मर गई। लोग उनको छह बहनें कहते, लेकिन वह कहती—मैं

सात-की-सात बहन हूँ।

गुरु महाराज कहते थे कि हम कमजोर बात नहीं कहते, मजबूत बात कहते हैं। ईश्वर कौन है? जिसके प्रभाव से, जिसके अन्दर से, जिसके शासन से कोई बाहर न हो सके, वह है ईश्वर। वह ईश्वर निराधार है, पर सबका वह आधार है। इसीलिए वह सर्वाधार है। ईश्वर की स्थिति बतायी उन्होंने। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में कहा है—

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड।।

अर्थात् माया की भयंकर सेना संसार में फैली हुई है। काम, क्रोध और लोभ उसके सेनापति और अभिमान, छल और पाखण्ड आदि योद्धा हैं।

बाहर शून्य में ये कहीं मिलते नहीं। अपने अन्दर सोचो, तो ये सबमें मौजूद हैं। एक साधु कुछ क्रोधित हुआ। दूसरे ने कहा, साधु को क्रोध नहीं होना चाहिए। साधु ने जिसका वर्षों मनन किया कि क्रोध नहीं होना चाहिए, परन्तु वह आकर उसमें उदय हुआ। किसी गोली या बम से इस सेनापति को कोई खत्म नहीं कर सकता। बाहर में इसके नाश के लिए कोई शस्त्र-अस्त्र नहीं है। इसलिए कहा है—

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।
तृस्ना केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहीं दाहा।।
चिन्ता साँपिन काहि न खाया। को जग जाहि न व्यापी माया।।
कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा।।

यह माया की सेना की प्रबलता है। इसकी प्रबलता में सभी कष्ट पाते हैं। इसके कब्जे से निकलने के लिए कोशिश करनी चाहिए। बिना इसके कब्जे से निकले ईश्वर का दर्शन नहीं होता। ईश्वर-दर्शन से ही परम कल्याण होता है, दूसरे से नहीं। परम कल्याण के लाभ के लिए ईश्वर की भक्ति करो। इसी से काम-क्रोधादिक विकारों का दमन होगा। जिन्होंने भक्ति की, उन्होंने जाना। किसी में भी इन बड़े-बड़े सतानेवाले प्रचण्ड दुर्गुणों को दूर करने की सामर्थ्य नहीं है, जबतक कि वह ईश्वर-कृपा का पात्र न हो।

क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटहि सकल राम की दाया।।

ईश्वर की भक्ति में—ईश्वर-दर्शन के रास्ते में बड़ा प्रकाश होता है। संतों ने गाया है, उस प्रकाश में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि भाग जाते हैं। जैसे बाहर में सूर्य का प्रकाश होता है, तो अन्धकार भाग जाता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अन्दर में सूर्य का प्रकाश होता है। कबीर साहब, गुरु नानक साहब ने कहा है तथा उपनिषद् में भी लिखा है कि अन्दर में सूर्य का प्रकाश होता है। इसको आजमाकर देखना चाहिए। तुलसीदासजी ने लिखा है।

जब तें राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका।।

जिसके अन्दर में प्रकाश होता है, वह तीनों लोकों को देखता है। उससे कुछ छिपा नहीं रहता। उस प्रकाश से बहुतों को सुख और बहुतों को दुःख होता है। बाहर के सूर्य में गर्मी मालूम पड़ती है और अन्दर के सूर्य के प्रकाश में मन शान्त हो जाता है। जैसे अधिक ठंड से पानी जम जाता है। दुःख किनको हुआ? प्रथम अविद्या निसा नसानी। अविद्या गई, अन्धविश्वास गया। अविद्या का ज्ञान राजस वा तामस है। अविद्या-रूपी रात को दुःख हुआ। मतलब, जिनको सूर्य-दर्शन हो, उनकी पापवृत्ति चली जाती है।

अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने।।
विविध कर्म गुण काल सुभाउ। ये चकोर सुख लहहिं न काउ।।
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा।।

पाप-रूपी उल्लू पक्षी जहाँ-तहाँ छिप गए। अनेक प्रकार के गुण, कर्म, काल और स्वभाव चकोर हैं, ये कभी सुख नहीं पाते हैं। डाह,

प्रतिष्ठा का विचार, अज्ञानता और अहंकार चोर हैं, इनकी कला किसी ओर न रही। सुख किनको हुआ?

धरम तड़ाग ज्ञान विज्ञाना। ये पंकज बिकसे बिधि नाना।।
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ये कोक अनेका।।

धर्म-रूपी तालाब में ज्ञान और विज्ञान-रूपी अनेक प्रकार के कमल हैं; ये खिल गए। सुख, सन्तोष, विराग और विवेक; ये अनेक चकवे पक्षी शोक-रहित हो गए। हमलोगों को जो सुख मिलता है, उससे यह सुख बहुत विशेष है। यह नित्य सुख है, संतोष भरा है। अविद्या के नाश होने से ये सब बढ़ गए। ईश्वर की भक्ति करो। ये सब विकार दमित होंगे। बिना ईश्वर-भक्ति के ये दमित नहीं होते। ईश्वर-स्वरूप-ज्ञान के बिना ईश्वर की भक्ति वैसे ही नहीं हो सकती, जैसे कोई मुसाफिर चलता है, लेकिन वह अपना निर्दिष्ट स्थान नहीं जानता, तो उसकी यात्रा समाप्त नहीं होती। जो निर्दिष्ट स्थान नहीं जानता, वह निर्दिष्ट स्थान नहीं पाता। और वह जैसे पहले दुःखी था, वैसे ही वह दुःखी रहेगा। ईश्वर वह है, जो माया को अपने काबू में रखकर नटी की तरह नचाते हैं। मायापति की सेवा करो, माया भाग जाएगी। ईश्वर-स्वरूप के लिए कहते हैं कि—

सोइ सच्चिदानन्द घनरामा। अज विज्ञान रूप बलधामा।।

वही सत्-चित्-आनन्द का पुञ्ज, अजन्मा, विज्ञान-स्वरूप, बल का स्थान राम है, जिस राम का जन्म नहीं हुआ, जो विज्ञान-स्वरूप है। यहाँ के वैज्ञानिक लोगों ने बड़ी-बड़ी चीजों का निर्माण कर संसार को दिखलाया है। परमात्मा भी बड़ा वैज्ञानिक है। वह विश्व की रचना करता है, उसके उपादान को भी उत्पन्न करता है। भौतिक वैज्ञानिक बिना उपादान के कुछ नहीं बना सकता। ईश्वर उपादान को भी उत्पन्न करता है। बाबा नानक ने कहा है—

तदि अपना आपु आप ही उपाया।
नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया।।

ईश्वर में भी उतनी ही शक्ति मानें कि बिना उपादान के वह कुछ बना नहीं सकता, तो वह मनुष्य वैज्ञानिक से विशेष नहीं हो सकता। ईश्वर प्रकृति को भी बनाता है, वह किसी अंश में कमजोर नहीं है। कबीर साहब ने कहा कि—

प्रथम एक सो आपै आप। निराकार निर्गुण निर्जाप।।
आवै जाय सो माया साधो, आवै जाय सो माया।
है प्रतिपाल काल नहिं जाको, ना कहुँ गया न आया।।

तात्पर्य यह कि वह हई है। उसका जन्म नहीं है। कोई कहे कि तुलसीदासजी ने तो राम के अवतार का वर्णन किया है, फिर वह अज कैसे? मैं कहूँगा— जन्म शरीर का होता है, आत्मस्वरूप का नहीं। जैसे कुम्भकार पण्डित बर्तन बनाता है। शून्य को नहीं बनाता, वह आप-ही-आप उसमें हो जाता है। पण्डाल-स्थित शून्य जो है, वह पण्डाल के बनानेवालों ने नहीं बनाया। आत्मस्वरूपी राम जन्म नहीं लेता। राम के शरीर में और शरीरी राम में विशेषता किसकी है? अवतारवाद की बहुत प्रशंसा करके भी गोस्वामी तुलसीदासजी ने यह कहा—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

यह बड़ा गूढ़ ज्ञान है। शरीर का नाम भी राम और शरीर के भीतर में भी राम। शरीर-रूप राम का जन्म होता है, आत्मरूप राम का नहीं। अध्यात्म रामायण पढ़कर देखिए, कबीर साहब की और तुलसीदासजी की इस बात की एकता हो जाती है। 'सत्संग-योग' पढ़कर देखिए।

हमको ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। उपनिषद् में 'परमात्मा' शब्द शायद ही कहीं आया है, 'आत्मा' शब्द आया है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।
—कठोपनिषद्, अध्याय २, वल्ली २

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

जैसे आकाश कहने से बाहर का आकाश भी मान सकते हैं और घटाकाश,मठाकाश, पटाकाश फुटाने के लिए कहा जाता है, इसी तरह आत्मा कहने से परमात्मा का भी बोध होता है। आत्मा का जन्म नहीं होता। परमात्म-स्वरूपी राम का जन्म नहीं होता। इसलिए 'अज' है। व्याप्य से बाहर भी है। इसलिए कहा—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

इससे आगे हम बढ़ नहीं सकते हैं। अनन्त के अन्दर सभी रहेंगे, बाहर कोई नहीं हो सकेंगे। अनन्त के अन्दर सबको रहना होगा। जिसके अंदर रहना होगा, उसके प्रभाव में रहना होगा। जिसके प्रभाव में रहना होगा, उसके शासन में रहना होगा। अनन्त की स्थिति माने बिना प्रश्न होगा कि जबकि सान्त-ही-सान्त सब है, तो उसके परे क्या है? सब सान्तों का बड़े-से-बड़ा मण्डल होने पर भी सान्त ही होगा, चाहे वह कितना बड़ा भी मण्डल क्यों न हो। सारे सान्तों के परे अनन्त है। 'अनन्त के परे क्या होगा'—जो पूछते हैं, उनको 'अनन्त' का अर्थ मालूम नहीं है। बुद्धि के विचार से भी, अन्धविश्वासी होकर नहीं, मानना पड़ता है कि एक ऐसा परम तत्त्व अवश्य है, जो अनन्त है। 'अनन्त' का अर्थ 'असंख्य' नहीं, वह एक-ही-एक है, उपादान प्रकृति पर भी उसका काबू है। जिसका शासन सब पर हो, उसको ईश्वर—परमात्मा क्यों न कहें? लेकिन एक ही शब्द पर जकड़ जाना ठीक नहीं कि वह राम ही हैं या शिव ही हैं। वह कल्याणकारी है, इसीलिए शिव कहते हैं। वह सबमें व्यापक है, इसीलिए राम कहते हैं। कोई ऐसा शब्द, जो उनके उत्तम गुण के अनुकूल नहीं हो, उनका नाम नहीं होता। परमात्म-स्वरूप की स्थिति अवश्य है। चाहे आप उसे जो कहिए। चाहे आप निर्वाण ही मानिए, तो निर्वाण किसका? 'बुझ जाना' यदि अर्थ करते हैं तो किसका बुझ जाना? कबीर साहब ने कहा—

जौं जल में जल पैस न निकसे, यौं ढुरि मिला जुलाहा।

यह भाव जहाँ आता है, उसमें लीन होने की बात आती है। निर्वाण का अर्थ 'सारे बन्धनों को छोड़कर हट जाना' भी समझते हैं। ऐसा जो हो जाता है, उसका 'दो भेद' मिट जाता है। उसको ईश्वर, परमात्मा, राम आदि हम कह सकते हैं। उस तक हम पहुँचें, यही हमारा विचार और निशाना होना चाहिए।

लोग कहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी है। फिर जाना कहाँ? तो मैं कहता हूँ, वह सर्वव्यापी है, लेकिन यहाँ मुझे पहचान नहीं होती। इसीलिए जाना वहाँ है, जहाँ पहचान हो। लेकिन जाने के लिए बाहर नहीं, अन्दर जाना है।

त्रयकाल सन्ध्या अवश्य करो। ब्राह्ममुहूर्त्त में करो। दूसरे समय—दिन में स्नान के बाद और तीसरे सन्ध्या समय करो। यदि करो नहीं, तो कहने से क्या होगा? बाबा नानक ने कहा—'गली जोगु न होई।' सत्संग करो। साधन-भजन करो। खाना जरूरी है, इसलिए बनाकर खाओ। गपशप नहीं करो। इतना खर्च करके दूर-दूर से आए, कामधन्धा छोड़-कर आए, भजन नहीं किया तो क्या लाभ? ■

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट के निकट गंगा तट पर ५८वाँ वार्षिक महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक १०. ४. १९६६ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२२७. दर्शन पाने के लिए बहुत दूर जाना है

प्यारे लोगो !

मैं चाहता हूँ कि आपको ईश्वर-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हो और अपने तईं (स्वयं) का यथार्थ ज्ञान हो। चूँकि सबके सब सुख को बहुत प्यार करते हैं, सुख के लिए ही तमाम जीवन परिश्रम करते हैं, इसलिए जो सुख पूर्ण रूप से आपको संतुष्ट कर सके, उसको आप प्राप्त करें। ऐसा नहीं कि आप कुछ भी सुख नहीं पाते। सुख पाते हैं, लेकिन संतुष्ट नहीं होते। ऐश्वर्य वाले, कम ऐश्वर्य वाले, जिनको जैसा सुख मिलता है, वे उससे संतुष्ट नहीं होते। वह सुख भी सदा नहीं रहता। सुख-भोगते हुए भी संतुष्ट नहीं होते, फिर जो सुख भागता रहता है, उससे लोग कैसे संतुष्ट होंगे?

आप अपना ज्ञान करें तो आप मन नहीं हैं, कोई इन्द्रिय नहीं हैं, इनसे कुछ विलक्षण हैं। अपने स्वरूप को मन-इन्द्रिय के परे जानकर आपको सोचना चाहिए कि मन-इन्द्रिय के ऊपर जो अपना स्वरूप है, उसका सुख कैसा है? संतों के ज्ञान के मुताबिक अपने तईं का वह सुख नहीं है, जो मन-इन्द्रियों का सुख है। मन-इन्द्रिय के सुख के लिए विषय चाहिए, लेकिन अपने तईं के सुख के लिए मायिक विषय कुछ नहीं चाहिए। मन-इन्द्रिय के संग में रहकर हम अपने को मन-इन्द्रिय नहीं जानें, ऐसा ज्ञान होना चाहिए। इसी ज्ञान में अपने का और पारमार्थिक सत्ता का दर्शन वा ज्ञान होगा। इसी का ठीक-ठीक यत्न आपको बताया जाय, सत्संग का यही प्रयोजन है। इसको जानकर जो उसपर लगते हैं, वे बड़े संयमी होते हैं, वे दुष्टकर्म नहीं करते।

संसार से दुष्टकर्म बिल्कुल नष्ट होना तो असम्भव है, लेकिन कम हो जाएगा। दुष्टकर्म कम हो जाएँ, तो संसार में शान्ति आ जाएगी। दुष्टकर्म से बचाव होने पर संसार में शान्ति विराजेगी। जिस राष्ट्र के शासन में शान्ति नहीं है, दुष्टकर्म की अधिकता है, उस राज्य में सुराज नहीं है। हमलोगों को स्वराज्य प्राप्त है, इसके साथ सुराज भी चाहिए। यह तभी होगा, जब हम दुष्टकर्मों को कम कर देंगे वा नहीं करेंगे।

हमारा आधार क्या होना चाहिए? वह आधार वही है, जहाँ दुष्टकर्मों की पहुँच नहीं है। वह क्या है? दो बातों में से एक बात कह सकते हैं। एक कहने से दूसरे का भी ज्ञान होता है। वह है मूल सत्ता-परमात्म-तत्त्व वा अपनी आत्मा। यह कैसी बात है? कितना दुःख है कि जो हम सब लोग नहीं हैं, उसी को पहचानते हैं और मैं हूँ, हम हैं—कुप्पाघाट कहते हैं, किन्तु अपने तईं जो हम हैं, इसका ज्ञान नहीं होता है। परोक्ष ज्ञान भी तो नहीं होता, अपरोक्ष ज्ञान कैसे होगा? प्रत्यक्ष प्राप्ति का ज्ञान अपरोक्ष ज्ञान है। यह केवल कहने से वा सुनने से नहीं होगा।

धन धन कहत धनी जो होते निर्धन रहत न कोई ।

—कबीर साहब

वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण, भव पार न पावइ कोई ।
निशि गृह मध्य दीप की बातन्हि तम निवृत्त नहिं होई ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

तेल तुल पावक पुट भरि धरि बनै न दिया प्रकाशत ।
कहत बनाइ दीप की बातें, कैसे हो तम नाशत ।।

—सूरदासजी

सत्यस्वरूप—निजस्वरूप वा आत्मस्वरूप का

अपरोक्ष और परोक्ष दोनों ज्ञान होना चाहिए। जिसको पहले परोक्ष ज्ञान होगा, वही अपरोक्ष ज्ञान को पा सकता है। यह केवल विचार-ही-विचार से नहीं होगा। ईश्वर की भक्ति करो। पहले परोक्ष ज्ञान होगा, बाद में अपरोक्ष ज्ञान हो जाएगा।

योग शास्त्र कहता है कि योग का पहुँचाना समाधि तक है। कबीर साहब ने कहा है—

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पन्थ बहु मार।
कहो सन्तौ क्यूँ पाइए, दूर्लभ हरि दीदार।।

दर्शन पाने के लिए बहुत दूर जाना है। उस रास्ते में चलते हुए बहुत विघ्न बाधा है। वहाँ तक कैसे पहुँचोगे? उत्तर दिया—

अनहद बाजै निझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अन्तरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।

इसीलिए भगवान बुद्ध ने भी कहा कि— भिक्षुओ, ध्यान करो। पहले प्रत्याहार, उसके बाद धारणा, धारणा के बाद ध्यान और अन्त में समाधि होती है। यह केवल संन्यासी के लिए ही है, ऐसा जानना गलत है। गृहत्यागी और गृहस्थ दोनों ही संयमी होकर रहने से लाभ कर सकते हैं। स्वयं भगवान बुद्ध को इसके लिए बहुत जन्म लेने पड़े। जब उन्होंने बुद्धत्व को लाभ किया, यह उनका आखिरी जन्म था।

शरीर और संसार को देखो। शरीर पिण्ड और संसार ब्रह्माण्ड है। तत्त्वों की जितनी संख्या से ब्रह्माण्ड की बनावट है, शरीर भी उतने ही तत्त्वों से बना है। संसार में जितने तल हैं, शरीर के भी उतने ही तल हैं। शरीर के जिस तल पर रहो, संसार के भी उसी तल पर रहोगे। शरीर के सब आवरणों को पार करो तो संसार के सब आवरणों को पार करोगे। यही ब्रह्मज्ञान है। यहीं पर पहुँच कर 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' होता है। हम इन सब बातों को जानें और साधन-भजन करें। शरीर के जीवन का अन्त है, लेकिन निज आत्मस्वरूप का विनाश नहीं होता। आत्मा का जीवन बहुत लम्बा है। शरीर के ज्ञान से तबतक नहीं छूटेगा, जबतक आत्मज्ञान नहीं होगा।

जैसे स्वप्न का दुःख-सुख मिथ्या है, सांसारिक दुःख-सुख भी वैसा ही है। जगना ऐसा होगा कि यह संसार स्वप्न मालूम होगा। इसीलिए मायामिथ्यात्व वाद का ज्ञान संसार में है। मायामिथ्यात्व वाद का ज्ञान तबतक नहीं छूटता, जबतक हम मोह में सोए रहेंगे—तीन अवस्थाओं में रहेंगे। चौथी अवस्था में जाने पर यह संसार स्वप्न होगा। थोड़ा करो, तब भी बड़ा लाभ प्राप्त होगा। थोड़ा करो तो थोड़ा-थोड़ा लाभ होता जाएगा। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। यह ज्ञान संसार में मनुष्य को गिरने नहीं देता।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है—हे पार्थ! उस पुरुष का न तो इस लोक में और न परलोक में ही नाश होता है; क्योंकि हे तात! कल्याणमार्ग में जानेवाले की कभी दुर्गति होती ही नहीं। पुण्यशाली लोग जिस स्थान को पाते हैं, उसको पाकर वहाँ बहुत समय तक रहने पर योगभ्रष्ट मनुष्य पवित्र और श्रीमान् के घर जन्म लेता है या ज्ञानवान योगी के ही कुल में वह जन्म लेता है। जगत में ऐसा जन्म अवश्य बहुत दुर्लभ है। हे कुरुनन्दन! वहाँ उसे पूर्व जन्म के बुद्धि-संस्कार मिलते हैं और वहाँ से वह मोक्ष के लिए आगे बढ़ता है। उसी पूर्वाभ्यास के कारण वह अवश्य योग की ओर खिंचता है। योग का जिज्ञासु भी शब्दब्रह्म को पार कर जाता है। लगन से प्रयत्न करता हुआ योगी पाप से छूटकर अनेक जन्मों से विशुद्ध होकर परमगति को पाता है।

भक्ति बीज पलटै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।

भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो चोल ।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल ।।
—कबीर साहब

रविदासजी में साधन-भजन का उतना ही बल था, जितना गोस्वामी तुलसीदासजी में। उच्च वर्ण के हों वा नीच वर्ण के, दोनों ने साधन किया, लेकिन दोनों पहुँचे वहाँ एक ही स्थान में। स्वरूप में कोई भेद नहीं।

हरि की भक्ति करै जो कोई । सूर नीच सू ऊँच सो होई ।।
—सूरदासजी

ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। उस तक पहुँचने का रास्ता चाहिए। रास्ता पर चलने का संयम चाहिए। औषधि सेवन करने से रोग कम हो जाता है। असंयमित होने से रोग बढ़ता है। संयम में जोर दे दो तो भजन में बढ़ोगे। भजन में जोर देने से संयम बढ़ेगा। जिभ्या का स्वाद तृष्णावर्द्धक और असन्तुष्ट रखनेवाला है। अपने आप में देखो तो बड़ा विचित्र है। जाग्रत से स्वप्न में जाने में चैन मिलता है। वहाँ संसार का कुछ भी नहीं है। यह थोड़ा सा नमूना है कि भीतर प्रवेश करने में चैन मिलता है। स्वप्न में आप मनोमय जगत में रहते हैं। जगने पर फिर इस संसार को देखते हैं। स्वप्न में मनोमय राज्य में—मनोमय भोग में थोड़ा-सा सुख पाते हैं। यह बहुत नजदीक की बात है। इतना अपने अन्दर में धँसो कि अपने की पहचान हो जाय। स्वप्न में अपने जाग्रत के सुख-दुःख का कुछ ज्ञान नहीं रहता। सुषुप्ति में तो और क्या रहेगा? सुषुप्ति अवस्था में ठहराव कम होता है, फिर भी अचेतन अवस्था वहाँ है। जाग्रत, स्वप्न वा सुषुप्ति; किसी में भी सुख नहीं है। जबतक निदिध्यासन करते हुए सफल रहो, तबतक चौथी अवस्था में रहोगे। एक तो अभ्यास द्वारा पकड़ना चाहता है और दूसरी बात है कि वह स्वयं पकड़ा जाता है।

लम्बा मार्ग यह है कि तीनों अवस्थाओं को पार करो। जाग्रत का संसार बहुत दूर तक है। इसमें भी ऊँचे-नीचे तल हैं। इसी तरह चौथी अवस्था दूर तक है और ऊँचा-नीचा तल है। इसका अभ्यास संन्यासी करे, गृहस्थ नहीं, बहुत गलत बात है।

हमलोग आर्य हैं। आर्य का अर्थ—बुद्धिमान, विद्वान, सभ्य आदि है। गीता में, महाभारत में, बौद्ध ग्रन्थों में हमारे लिए 'आर्य' शब्द छोड़कर दूसरा नहीं आया है। हाल में तुलसीदासजी हुए, इनकी रचना में 'आर्य' के सिवा दूसरा शब्द नहीं है। 'आर्य' कहते हैं—बुद्धिमान को। हमको बुद्धिमान बनना चाहिए। 'बुद्धि' वह हो, जिसमें आत्मज्ञान हो।

n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट के निकट गंगा तट पर ५८वाँ वार्षिक महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक ११. ४. १९६६ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२२८. यह सत्संग तीर्थराज है

प्यारे लोगो !

इस सत्संग में सरस्वती की धारा अधिक बहती है। गोस्वामी तुलसीदासजी का कहना है कि सत्संग तीर्थराज है। तीर्थराज में गंगा, यमुना और सरस्वती की धारा बहती है।

राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा ।।
विधि निषेधमय कलिमय हरनी। करम कथा रविनंदिनी बरनी ।।

मुझको सरस्वती की धारा में स्नान करना है और आपको भी इसी में स्नान कराना है। मैंने भ्रमण करते समय गंगा-यमुना में गोता लगाया; लेकिन

सरस्वती की धारा नहीं मिली। मैं सरस्वती की धारा में गोता लगाना चाहता हूँ। जो जिसको पसन्द करता है, औरों के लिए भी वह वही चाहता है। ब्रह्म-विचार सरस्वती की धारा है, यह बड़ी गम्भीर है।

मैं जो साधन-भजन करता हूँ, आपको उसी गम्भीरता में ले जाना चाहता हूँ, लेकिन पहले समझिए कि इसमें गोता लगावे कौन? गोता मन लगावेगा। शरीर जहाँ का तहाँ बैठा रहेगा। वह धारा बहती है। मन किसके सहारे गोता लगाता है? मन बाह्य इन्द्रिय के सहारे गोता लगाता है। मेरे कहने का विषय ऐसा है कि वह कथा कहानी नहीं है, ज्ञानमयी बात है। कान के सहारे उस सरस्वती की धारा में गोता लगाता है अर्थात् पहला सहारा कान है, जिसके सहारे श्रवण-ज्ञान होता है। श्रवण- ज्ञान कैसा होना चाहिए? जैसे मृगा बाँसुरी की ध्वनि सुनकर इतना तल्लीन होता है कि व्याधा उसको पकड़ते हैं, लेकिन वह भागता नहीं है। केले के वृक्षों को काटकर खड़ा कर देते हैं। मृग के पैर में एक ही हड्डी होती है, वह बैठ नहीं सकता है, खड़ा ही रहता है, खड़े-खड़े ही सोता है। व्याधा बाँसुरी बजाता है। मृग उस मधुर ध्वनि को सुनकर उसमें इतना लीन हो जाता है कि अपने शरीर की सुरक्षा को भूल करके केले के थम्भ से सटकर उस पर अपने शरीर का सारा बोझ दे देता है। वह थम्भ गिर जाता है; उसके साथ वह भी गिर जाता है, व्याधा उसको पकड़ लेता है।

मृग ही की तरह ज्ञान की बातों को सुनने में तल्लीनता होनी चाहिए अर्थात् सब ओर से मन को समेटकर सुनने में लगाना चाहिए। इसके बाद मनन ज्ञान है। जो सुनो, उसको विचारो। विचार में खूब डूबो। जहाँ तक बुद्धि शक्ति हो, खूब विचारो और विचार में इस तरह एकाग्र होकर विचारो कि पपीहा जैसे स्वाति बूंद के लिए रटता है। पहले श्रवण-ज्ञान में मन लगाओ। ब्रह्म क्या तत्त्व है? ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान बहुत ऊँचा है। इसके पूर्व मैं क्या हूँ, इसका ज्ञान होना चाहिए; क्योंकि सभी कहते हैं कि मैं हूँ। वह अपने तईं क्या है, इसको सोचे। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था कि यह शरीर रूपी क्षेत्र—पाँच स्थूल तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश; पाँच सूक्ष्म तत्त्व—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, संघात, चेतना, धृति, इच्छा, द्वेष, सुख और दुःख; यह आप नहीं हैं। इन इकतीस के समुदाय को क्षेत्र कहते हैं। इनसे पृथक पदार्थ इस शरीर में है, वह आप हैं, जिसको क्षेत्रज्ञ वा अध्यात्म भी कहना चाहिए। उपर्युक्त ३१ तत्त्वों के संग में पड़कर आप अपने को सुखी-दुःखी मानते हैं। इनमें से २७ तत्त्वों से भिन्न होकर रहें, तो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आपके लिए कोई वस्तु नहीं रहेगी। तब अपने से अपने को पहचानेंगे। अनेक जन्मों से 'मैं हूँ, मैं हूँ' कहते चले आ रहे हैं, लेकिन अपने तईं को पहचाना नहीं है। अपने को केवल विचार में ही नहीं, प्रत्यक्ष में पहचानिए, जैसे शरीर को पहचानते हैं। ऐसा ख्याल न करें कि वहाँ देखने के लिए इसी तरह की आँख है। जैसे कोई आँख से सबको देखते हैं, आँख को देखने के लिए आइने का साधन लेकर आँख से ही देख सकते हैं, इसी तरह ईश्वर-भजन का साधन लें तो उस साधन को करते-करते उन इकतीस तत्त्वों से अलग हो जायेंगे और तब समझेंगे कि सुरत अर्थात् चेतन आत्मा सत् है। संत तुलसी साहब (हाथरस) ने कहा है—

सत सुरति समझि सिहार साधौ। निरखि नित नैनन रहौ।
धुनि धधक धीर गंभीर मुरली। मरम मन मारग गहौ।।

आप जड़ नहीं, चेतन आत्मा हैं। यह मिटने वाली नहीं है, मिटनेवाला शरीर है। इसकी खोज

बाहर-बाहर होने योग्य नहीं है। यह खोज अपने शरीर के अंदर होनी चाहिए। इस खोज को करते-करते ३१ तत्त्वों से अलग होकर अपने को ऐसे पहचानेंगे, जैसे शरीर को पहचानते हैं। लेकिन यह बिना ईश्वर-भजन के नहीं होगा। ईश्वर-भजन की बातें बहुत हैं; लेकिन मैं उतना ही कहूँगा, जिससे काम चले। आप पंच विषयों को पंच ज्ञानेन्द्रियों से जानते हैं। केवल आँख से पंच विषयों को नहीं जानते। केवल कान से पंच विषयों को नहीं जानते। आँख के लिए केवल रूप और कान के लिए केवल शब्द है। कोई कहे कि आँख से हम सुन भी लें, हो नहीं सकता। इन बातों की जानकारी के बाद कोई पूछे कि रूप क्या है? तो आप कह दीजिए कि आँख से जो ग्रहण हो, वह रूप है। शब्द क्या है? जो कान से ग्रहण हो। इसी प्रकार पंच विषयों को जानिए। अपने को किससे ग्रहण करो? अपने तईं को अपने से ग्रहण करो, मुझको यह कहना है। अमुक की शादी अमुक से और अमुक की लड़ाई अमुक से—मैं यह कहने नहीं बैठा हूँ।

ईश्वर क्या? तुलसीदासजी ने बहुत अच्छा लिखा है। लक्ष्मणजी पूछते हैं कि माया किसको कहते हैं? बंध किसको कहते हैं? माया के लिए श्रीराम ने उत्तर दिया—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जान्हु भाई।।

इन्द्रियों से ईश्वर का ग्रहण नहीं होगा। मन से, बुद्धि से ईश्वर का ग्रहण नहीं होगा। विचार भले ही कर लें, पहचान नहीं होगी। इसीलिए 'राम स्वरूप तुम्हार,' 'राम नररूप तुम्हार' नहीं। आपको जनाया गया कि आप स्वयं मन-इन्द्रियों के परे हैं। अपने को मन-इन्द्रिय से पहचान कर सकते, तो पहचान कब न हो गई रहती। अपने से जिसकी पहचान हो, वह ईश्वर है। कोई पूछे कि मन-इन्द्रियों में निजी ज्ञान है? मैं कहूँगा मन-इन्द्रिय का ज्ञान आपका ज्ञान है। उनको अपना ज्ञान कुछ नहीं है। मेरे ही ज्ञान से मन में, बुद्धि में ज्ञान है। कोई कहे कि जब हमारा ज्ञान ही इन्द्रियों में है तो हम उससे ईश्वर को क्यों न जानेंगे? तो देखिए, एक लालटेन है, जिसके पाँचो पहलों में पाँच रंग के शीशे लगे हुए हैं और बीच में मोमबत्ती जल रही है। मोमबत्ती का प्रकाश लाल शीशे की ओर से निकलने पर उधर की रोशनी लाल मालूम होती है। पीले शीशे की ओर से निकलने पर उधर की रोशनी पीली मालूम पड़ती है। इसी प्रकार प्रत्येक पहल से प्रत्येक रंग की रोशनी निकलती है, किन्तु केवल मोमबत्ती की रोशनी उन रोशनियों से पृथक ही रहती है। जिस तरह लालटेन के शीशे के रंग के कारण मोमबत्ती के प्रकाश का रंग बदल गया, उसी तरह आपका निजज्ञान जो है, वह इन्द्रियों के संग के कारण, उसके असर के कारण शुद्ध, असली नहीं होता। इसलिए जो आप निजज्ञान से जानेंगे, वह इन्द्रियज्ञान से नहीं। निजज्ञान में ही ईश्वर को पहचान सकते हैं और अपने को भी। जो ईश्वर तत्त्व है, वही तत्त्व मैं हूँ। 'मैं' और 'वह' एक ही है, केवल आवरण भेद है अर्थात् परम प्रभु परमात्मा आवरणरहित और जीवात्मा आवरण सहित है। जो चेतन आत्मा से पहचान में आवे, वह ईश्वर है।

जगन्नाथजी जाने के लिए भागलपुर छोड़ना होगा। उसके आगे के गाँवों, शहरों को छोड़ना होगा, तब जगन्नाथजी पहुँचेंगे। इसी तरह अपने अन्दर के सभी आवरणों को पार करके हम ईश्वर तक पहुँच सकते हैं। ईश्वर कैसा है, कितना बड़ा? उपनिषद् कहती है—'अणोरणीयान् महतो महीयान्' और कबीर साहब कहते हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।

बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।

'बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा' 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' का अनुवाद है। 'दृष्टि-दृष्टि सों देखा'—देखने की शक्ति दृष्टि है। दृष्टि की दृष्टि चेतन आत्मा है। कबीर साहब ने और खुलासा किया, 'चाम चशम सों नजरि न आवै, खोजु रूह के नैना।' उस दृष्टि से खोजने की युक्ति है। उस युक्ति को तुलसी साहब ने प्रकाशित किया। तुम्हारी आत्मा सत् है। इसको सँभालने का साधन करो। तुम सारे शरीर में बिखर गए हो। जैसे सूर्य की किरण संसार में फैली है, वैसे ही तुम्हारी किरण शरीर और संसार में फैल गई है। इसको सम्भाल करके तब जो देखो, सो दृश्य भिन्न है। यह कैसे होगा? 'निरखि नित नैनन रहौ।' अपनी आँखों (दृष्टि) से गौर से देखो। देखने की विद्या है।

काजर दिये से का भया ताकन को ढब नाहिं।।
ताकन को ढब नाहिं ताकन की गति है न्यारी।
इक टक लेवै ताकि सोई है पिव की प्यारी।।
—पलटू साहब

यह शाम्भवी मुद्रा है, वैष्णवी मुद्रा है, दृष्टि-योग है। आँख बन्द करके देखो। अपनी दृष्टिधार को समेटकर देखो। बहिर्मुख से अन्तर्मुख होकर देखो। बाहरी बातों को छोड़ दो, आवे तो हटा दो और तब आँखें बन्द करके देखो। ऐसा देखोगे तो देखने में आवेगा। एकटक देखना होगा। देखा, छोड़ दिया, ऐसा नहीं, एकटक देखो। बाहरी ख्यालात को छोड़कर देखो। ऐसा देखोगे तो 'सम सील लील अपील पेलै' अर्थात् पत्थर के समान कालापन है, उसको छेद देता है। यह साधन की बात है। कोई कहे कि प्रमाण दो, तो इसका प्रमाण क्या? करके देखो। हो, तो ठीक है, नहीं तो गलत है। 'अंतरि जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा।' (गुरु नानक साहब)। तुम्हारे साधन में कसर नहीं हो, तो तुम देखोगे कि गुरु ने जो कहा, ठीक कहा। करके देखने का काम है। 'उघरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुःख भव रजनिके।। सूझहिं रामचरित मणि माणिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।' और 'खेल खुलि खुलि लखि पड़ै।' एक ही बात है। इस तरह करने से ईश्वर के चरणों में तुम्हारा प्रेम बढ़ेगा। ईश्वर के प्रति तुम्हारा झुकाव अधिक-से-अधिक होगा। जिसे आप अपने से पहचानो, वह ईश्वर है। शरीर का संग, इन्द्रिय का संग छूट जाना चाहिए। जैसे मथे गए दूध से मक्खन अलग होकर फिर दूध में ही रहे, उसी तरह अपनी शरीर-इन्द्रिय से छूटकर अपने में रहो; यही है जीवनमुक्त होना। यह शरीर ज्ञान से बहुत ऊँचा है। बुद्धि की गति वहाँ नहीं है। इसी दशा में ईश्वर की पहचान होती है।

बड़े जगमग रूप का दर्शन हुआ, यह मामूली बात है। मनु राजा और शतरूपा ने बहुत तप किया, लेकिन शरीर-ज्ञान से बाहर नहीं होकर, शरीर में रहकर सुन्दर दर्शन पाया। वह मायिक दर्शन था। कोई कूढ़े तो मैं कहूँगा कि '**गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जान्हु भाई।।**' इसको कहाँ फेंक दीजिएगा?

एक पण्डितजी ने कहा कि भगवान राम का शरीर 'चिदानन्दमय' था। 'चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।' मैंने कहा—'चिदानन्दमय रूप मायिक वा अमायिक?' उन्होंने कहा—'अमायिक।' मैंने कहा—'तो क्या अमायिक रूप का दर्शन इस मायिक आँख से हो सकता है?' थोड़ी देर चुप रहकर वे बोले—'हाँ, यह समझने की बात है।' भगवान कृष्ण के विराट रूप का वर्णन है कि उसमें बहुत से विकराल मुँह, हाथ, नाक, पैर, कान आदि थे। उस रूप को देखकर अर्जुन डर से थर-थर काँपता था। कहता था कि

आप अपना सौम्य रूप दिखाइए। नारद को भी विश्वरूप का दर्शन हुआ था। लेकिन भगवान ने कहा था—'तू मेरे जिस रूप को देख रहा है, यह सत्य नहीं है, यह माया है। मेरे सत्यस्वरूप को देखने के लिए इसके भी आगे तुझे जाना चाहिए।'

मायामय रूप के दर्शन से मनु-शतरूपा को क्या हुआ, रामायण में है। वर माँगा कि आपही की तरह पुत्र हो। भले ही यह सात्त्विक इच्छा हो। स्वर्ग सुख भोगा, फिर राजा दशरथ और रानी कौशल्या हुए। इतने तप के बाद भी शिकार खेलने का इतना चस्का कि दिन को क्या और रात को क्या! शिकार खेलते रहे। शरीर में इतना बल कि किसी का भय नहीं। शरीर रक्षक की जरूरत नहीं। शिकार के चस्के में रात में श्रवणकुमार को मार डाला। शाप लिया कि पुत्र शोक में मरोगे। इसी तरह कश्यप और अदिति की कथा है। वही तप, वही फल, वही श्रवण को मारना और शाप पाना। श्रीराम को कल युवराज पद मिलेगा, राजा खुश होकर रनिवास में गए। कैकेई के महल में गए, उनको मालूम हुआ कि वह कोप-भवन में बैठी हुई है। यह जब सुना तो उसकी दशा कैसी हुई, तुलसीदासजी ऐसे भक्त को लिखना पड़ा।

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुँड़ पड़इ न पाऊ ।।
सुरपति बसइ बाँहुँ बल जाके। नर पति सकल रहहिं रूख ताके ।।
सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई ।।

तुलसीदासजी असली बात को कैसे छिपाते? मैं आस्तिक का बच्चा हूँ। भारत का बच्चा हूँ। श्रीराम, श्रीकृष्ण, का माननेवाला हूँ। एक बार एक पादरी मेरे पास आया और कहलवाना चाहा कि ईसा मसीह, श्रीराम और श्रीकृष्ण से विशेष थे। मैंने यह बात मानी नहीं। वह फिर मेरे पास नहीं आया। जगमग दर्शन से मनोविकार नहीं जाते। इतना तप, फिर मनोविकार। तब किस काम का वह तप। 'सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।' इन बातों को देखते हैं तो होता है कि इनसे विशेष दर्शन होना चाहिए, जहाँ विकार न हों। इसके लिए यत्न है—'सम सील लील अपील पेलै...।' यह देखने की विद्या है, फिर सुनने की विद्या है।

धुनि धधक धीर गंभीर मुरली। मरम मन मारग गहौ ।।

देखने-सुनने के लिए सिनेमा जाना नहीं है। एक साधु को एक बाबू ने बड़ी जिद्द करके सिनेमा दिखाया। खेल समाप्त होने पर उक्त बाबू ने साधु से पूछा—'क्या देखा?' साधु ने कहा—'जो कुछ खेल देखा अन्धकार में।' सिनेमा देखने में पैसा बर्बाद और समय बर्बाद होता है; ऐसा क्यों करते हो? इसलिए कि अपने अन्दर देखना नहीं जानते हो। जो अपने अन्दर देखना जानते हैं, उनको बाहर में इन सबको देखने में रुचि नहीं होती। देखकर चलो, नहीं तो काँटा गड़ेगा। एक तो इस आँख से देखते हैं, फिर रूह के नैना से देखते हैं। 'यह जग है काँटे की बाड़ी, देखि दृष्टि पग धरना'—(गोरखनाथजी)। यह संसार काँटा-ही-काँटा है, इसमें उलझो मत। ईश्वर क्या है? अपने से जिसको पहचानो। अपने क्या हैं? शरीर-इन्द्रिय से जो छूटकर इस शरीर में है, जो आत्मदृष्टि में आवे, वह आत्मतत्त्व है। पहले दिव्यदृष्टि प्राप्त करो, फिर नादानुसंधान करो। यह है नामभजन—सरस्वती की धारा।

n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट के निकट गंगा तट पर ५८वाँ वार्षिक महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक ११. ४. १९६६ ई० को अपराह्णकालीन सत्संग में हुआ था।

२२९. संतमत निर्भर करता है :साधना-अनुभूत ज्ञान पर

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

संतों की वाणी का पाठ सत्संग में अवश्य होना चाहिए। संतों की वाणी ऐसी नहीं है जो हमें अन्धविश्वासी बनावे। संतों की वाणी में अन्धविश्वास का कारण नहीं है। संतों ने कहा तुम देखने की विधि नहीं जानते हो। हम बतलाते हैं, उस विधि से तुम देखो। संतों की वाणी में हमें इतनी मिठास मालूम पड़ती है, जितनी किसी मिठाई में नहीं।

एक बार एक अमेरिकन लड़ाकू विमान भटकते-भटकते भारत पहुँचा। उसके बम के फूटने का समय नजदीक आ गया था। पेट्रोल भी समाप्त हो गया था। अन्त में उस बम को एक बालूवाली नदी में उन्होंने गिरा दिया। वह किसी तरह घोघा पहुँचा, बम फूटा। उससे किसी तरह की हानि नहीं हुई। वायुयान में दो व्यक्ति थे, वे दोनों स्टेशन पहुँचे। यहाँ की भाषा वे जानते नहीं थे। उनको खाने के लिए रसगुल्ला दिया गया। वे रसगुल्ला नहीं खाए। जिसको जिसका रस मालूम नहीं, उसमें उसकी मिठास का क्या पता। संतों की वाणी में ज्ञान, ध्यान और सदाचार का उपदेश मिलता है। ज्ञान के बिना ध्यान नहीं और ध्यान के बिना ज्ञान की पूर्णता नहीं। सदाचार के बिना ध्यान-अभ्यास की कमर टूटी रहती है। सदाचार ही तो बल है। ध्यान करने में अवश्य ही मस्तिष्क में बल लगता है। सदाचार से ध्यान में बल मिलता है और ध्यान से सदाचार में दृढ़ता आती है। अपवित्र ब्रह्मचर्य में पूर्ण फल नहीं मिलता। इन बातों का ख्याल सत्संगियों को चाहिए। किसी बाहरी अद्‌भुतता में खींचना अपने लाभ की बात नहीं है। अद्‌भुतता अपने अन्दर है, देखने की युक्ति सत्संगीगण जानते हैं।

'मेरी सुरत सुहागिन जाग री।' कबीर साहब सुहागिन उस श्रीमती को कहते हैं, जो अपने पति से प्यार की जाती है। जो अपने पति से प्यार नहीं की जाती, वह दुहागिन है। चेतन आत्मा को भी संतों ने स्त्रीरूप माना है। वह सदा ईश्वर से प्यार की जाती है। जब यह सोयी रहती है, तब अपने पति रूप परमात्मा को नहीं देख पाती है।

माया मुख जागे सभै, सो सूता कर जान ।
दरिया जागै ब्रह्म दिशि, सो जागा परमान ।।

—दरिया साहब, बिहारी

जो माया मुख जागते हैं, वे मोह निशा में सोये रहते हैं। जो ब्रह्म की ओर जागते हैं, उनका असली जागना होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

ऐहि जग जामिनी जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

ब्रह्म की ओर योगी के अतिरिक्त और कोई नहीं जग सकते। कोई कितना भी कुछ रटते रहो, परन्तु जग नहीं सकते हो। जिसका विश्वास डोलता रहता है, उससे काम नहीं चलता। कितना भी रटोगे, पर जगोगे नहीं। शरीर के अन्दर आँख का स्थान जगने का है। आँख में नहीं रहते, तो बाहर संसार को देख नहीं सकते। शरीर के अन्दर कहाँ हो? शरीर के किस हिस्से पर हो? इसे देखने के लिए बाहर का देखना छोड़ दो। आँख बन्द करने पर अन्धकार मालूम होता है। इससे मालूम होता है कि मैं अंधकार में हूँ। नयनाकाश में अन्धकार है, उसी में तुम्हारा वासा है। ब्रह्मोपनिषद् में है—

नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत् ।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्निसंस्थितम् ।।

अर्थात् जीव का वासा जाग्रत में नेत्र में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीयावस्था में मस्तक में होता है। कण्ठ नहीं रहे, तो स्वर का उच्चारण नहीं हो सकेगा। स्वर को छोड़कर कोई व्यञ्जन बोल नहीं सकता। गहरी नींद में श्वास चलता है, परन्तु ज्ञान नहीं रहता। स्थान के छूटने से अवस्था का भेद और अवस्था भेद से ज्ञानभेद होता है। अगर अन्तर्मुखी होकर स्थान भेद हो जाए तो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति छूट जाएँ। यह अन्तर्मुख की ओर जगने से होता है। जाग्रत में मोह होता है। मोह एक प्रकार की नींद है। यहाँ से जगने के लिए आँख से ऊपर उठना होगा।

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप अनंत॥

—गोस्वामी तुलसीदासजी

यह ब्रह्म की ओर का जगना होगा। ईश्वर की ओर जगना उस धार की ओर लगना है, जो हमें नीचे नहीं गिरने दे। इसी को भजन कहते हैं। अपनी वृत्ति को शब्द में लगाओ। यहाँ जगने के लिए दृष्टियोग है। भगवान कृष्ण ने कहा था—'तत्त्वज्ञानी गुरु के पास जाओ और उनसे भक्ति की याचना करो।' गुरु से भक्ति का अचल वरदान माँगो। यही निवेदन गुरु से करो। संसार की ओर पीठ देकर भागो। किसी भी दिशा में जाओ, संसार है। संसार की ओर पीठ कैसे होगी? तीनों अवस्थाओं के ऊपर चौथी अवस्था में जाओ, तो संसार की ओर पीठ हो जाएगी। इसके लिए संत महात्मागण घर-द्वार छोड़ने को नहीं कहते। कबीर साहब कहते हैं—'अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै।' तथा 'माँगि न खाय न भूखा सोवै, घर अँगना फिरि आवै।' अर्थात् घर आँगन को नहीं छोड़ो, कर्म करके खाओ और नादानुसंधान करते रहो। यही कबीर साहब ने कहा। गुरु महाराज ने कहा था—'किसी को अपने ख्याल के मुताबिक बनाने की जिद्द मत करो, नहीं तो दुःख होगा। इसलिए मैं किसी पर जिद्द नहीं करता हूँ। मैं जानता हूँ संतों का ज्ञान बहुत ऊँचा है। संत दादूदयालजी ने कहा कि जाते-जाते वहाँ तक पहुँच जाओ, जो अनन्त है। उस अनन्त की खोज में अन्तर पट के अंत में जाओ। जो कहने में आने योग्य नहीं है।'

संतमत निर्भर करता है, साधना-अनुभूत ज्ञान पर तथा तत्सम्बन्धी विचार पर। संतों की वाणियाँ अनुभव युक्त एवं विचारपूर्ण हैं। इसलिए उसे हम आधार मान लेते हैं। संतों की वाणियों की अवहेलना हमलोग नहीं करते, आदर करते हैं। हमारे अन्दर यदि प्रकाश नहीं रहता, तो हम कुछ भी नहीं देख सकते। सजातीय पदार्थ को सजातीय पदार्थ से सहायता मिलती है। अपनी दृष्टि के प्रकाश से बाहर के प्रकाश को देखते हैं। अन्दर में आवाज सबको होती है। नादानुसंधान की साधना दृष्टियोग के बिना ठीक नहीं। दृष्टियोग के बिना नादानुसंधान में बहुत कमजोर रहते हैं। हमारे अंदर में अन्धकार, प्रकाश और शब्द का मण्डल है। इन तीनों को पार कर जाओ। और परमात्मा को पाओ। हमलोग आदि नाम को निर्गुण कहते हैं। कोई-कोई ऐसा भी कहते हैं कि परम प्रभु परमात्मा त्रैगुण रहित, किन्तु दिव्यगुण सहित हैं। त्रैगुण से रहितता को दिव्यगुण कहते हैं। परमात्मा प्रकृति मण्डल को भरकर समाप्त नहीं हो जाता। उससे बाहर भी है। साधना करो, प्रत्यक्ष होगा।

अपने धर्म को मत छोड़ो। चाहे कितना भी कुबोल सहना पड़े, दुःख भोगना पड़े और अपमान हो। इस देश के गुरु गोविन्दसिंहजी के छोटे-छोटे दोनों पुत्रों ने इसे करके दिखला दिया। कितनाहू देव पूजो, जो जानेवाला है, वह जाएगा ही। अगर एक ईश्वर की भक्ति में कोई देवता या देवी नाराज हों,

तो वे देवता या देवी नहीं। ईश्वर-भक्ति का विरोध कोई नहीं कर सकते। जो कोई ध्यान करते हैं, उन्हें पाँच तत्त्वों को अलग-अलग रंग दिखलाई पड़ता है। मीराबाई को लोग केवल स्थूल भक्तिवाली मानते हैं। मीरा ने भी अन्तस्साधना की थी, जैसा कि उनके इस पद से मालूम होता है—

ऊँची अटरिया लाल किवरिया, निरगुण सेज बिछी।।
पचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली।
बाजू बन्द कडूला सोहै, माँग सिन्दूर भरी।।
सुमिरण थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधिक भली।
सेज सुखमणाँ 'मीराँ' सोवै, सुभ है आज घड़ी।।

कबीर साहब ने बहिर्मुख उपासना में गुरु के रूप को लिया है। गुलाल साहब कहते हैं—'उलट कर देखो तो अन्दर में प्रकाश होगा।' ईश्वर की उपासना में अन्तर्मुख होना आवश्यक है। इसलिए अन्तर्मुखी बनो और एक ईश्वर की उपासना करो। n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट के निकट गंगा तट पर ५८वाँ वार्षिक महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक १२. ४. १९६६ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२३०. बाहर फिरत विकल भय धायो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस समय के सत्संग में मैं ईश्वर-भक्ति के विषय में बोलूँगा। भक्ति के विषय में जो आप पहले से जानते हैं, हो सकता है मैं आपके अनुकूल कहूँ। अथवा उसके अतिरिक्त दूसरी तरह भी कह सकूँ। भक्ति की जानकारी के लिए पहले समझना चाहिए कि ईश्वर स्वरूपतः क्या है? इन्दियज्ञान से ईश्वर दूर है। चेतन आत्मा से ही जो पहचान में आवे, वही ईश्वर है। इन्द्रियों के ज्ञान में ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि इन्द्रियज्ञान में जो आता है, सो माया है। माया उसको कहते हैं, जिसकी बदली होती है, जिसका विनाश होता है और जो असत्य है। ईश्वर की बदली नहीं, ईश्वर का विनाश नहीं। माया जड़ है। ईश्वर चेतन को भी चेतन करनेवाला परम चेतन है। केवल चेतन आत्मा से ईश्वर का दर्शन होगा। बाहर में कहीं भी ईश्वर का दर्शन नहीं होगा, क्योंकि बाहर में इन्द्रियों से ही काम होता है। जो इन्द्रियज्ञान में नहीं है, उसको इन्द्रियों से पावेंगे, ऐसी आशा दुराशा मात्र है। ईश्वर का दर्शन बाहर में मानते हैं, तो ज्ञान के खिलाफ होता है और उसकी सत्यता सिद्ध नहीं होगी। बाहर में ईश्वर का दर्शन नहीं होता। यह विचार देकर संतों ने कहा है—ईश्वर को अपने अन्दर खोजो। (गो० तुलसीदासजी महाराज) जिनका सात काण्ड रामायण है। विनय-पत्रिका में लिखते हैं—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।।

अर्थात् बाहर में खोजते रहे, तो विकल होते रहे, हैरान होते रहे। कुछ लोग गोस्वामी तुलसीदासजी की जीवनी में लिखते हैं कि उनको बाहर में भी ईश्वर का दर्शन हुआ था। श्रीराम का दर्शन हुआ था। हनुमानजी से तुलसीदासजी ने प्रार्थना की कि मुझे राम के दर्शन कराइए। चित्रकूट में तब वे रहते थे। एक दिन वे चन्दन घिस रहे थे। उन्होंने देखा कि दो सुकुमार बालक आए हैं और चन्दन लगाने के लिए कह रहे हैं, तुलसीदासजी ने उन दोनों को तिलक लगा दिए, किन्तु वे पहचान न सके कि ये ही श्रीराम और लक्ष्मण हैं। पुनः हनुमानजी से भेंट

होने पर तुलसीदासजी ने कहा—'मुझे राम के दर्शन नहीं हुए।' हनुमानजी ने कहा—'आपने पहचाना नहीं, जिन दो बालकों को आपने तिलक लगाए, वे ही राम और लक्ष्मण थे।' तुलसीदासजी ने पुनः दर्शन करवाने के लिए उनसे प्रार्थना की। हनुमानजी ने कहा—'अच्छा, फिर दर्शन होगा।' उसके बाद तुलसीदासजी ने देखा कि दो सुन्दर किशोर बालक घोड़े पर जा रहे हैं। किन्तु इस बार भी वे पहचान न सके। हनुमानजी से भेंट होने पर उन्होंने समझाया—'घोड़े पर जिन दो बालकों को आपने जाते देखा, वे ही दोनों बालक राम और लक्ष्मण थे।' इस तरह गोस्वामी तुलसीदासजी राम और लक्ष्मण को देखकर भी पहचान न सके। यथार्थ में क्या ईश्वर-दर्शन ऐसा ही होता है कि ईश्वर-दर्शन हो और ज्ञान नहीं हो कि ईश्वरदर्शन हुआ? बाहर के दर्शन से, इन्द्रियों के ज्ञान से दर्शन होने पर वह परमात्मा का दर्शन नहीं होता। तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है—

रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।।

तुलसीकृत रामायण में योग का वर्णन भी किया है—

सतगुरु ज्ञान विराग जोग के, विबुध बैद भव भीम रोग के।।

मतलब यह कि रामचरितमानस में योग भी है, लेकिन देखने के लिए अन्तर्दृष्टि चाहिए। 'उघरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुःख भव रजनीके।।' इसको भी जानो।

बाहर के दर्शन से क्या हुआ। कश्यप और अदिति ब्राह्मण थे और तप करने पर क्षत्रिय हुए। एक पद नीचे चले आए; क्योंकि क्षत्रिय, ब्राह्मण से नीचे होते हैं। माया दर्शन में माया के अंदर बहुत लाभ होता है। चमत्कारिक लोकों में जाना हो सकता है, लेकिन अपना ज्ञान नहीं होता। जबतक अपना दर्शन न हो, तबतक ईश्वर-दर्शन हुआ, कहा नहीं जा सकता। अन्दर में इसलिए दर्शन होगा कि जैसे-जैसे अन्दर जाओगे, बाहर की इन्द्रियों से छूटते जाओगे। स्वप्न में भी बाहर की इन्द्रियों से छूटा जाता है। यह विश्वास करना चाहिए कि अंतर्मुख होने से इन्द्रियों के ज्ञान से छूटते हैं। सुषुप्ति में भी इन्द्रियज्ञान से भिन्न रहते हैं। स्थूल शरीर में जागने से ज्ञान होता है, उसमें तथा स्वप्न के ज्ञान से एवं सुषुप्ति के अचेतपन से भी छूटे रहोगे। यह अनुभूति की बात है, साधन की बात है। यही भक्ति-मार्ग में योग का स्थान आता है।

भक्ति कहते हैं— सेवा करने को। किसी की आवश्यकता पूरी करनी, उनकी यह सेवा है। गंगा-सेवन करने लोग जाते हैं। वहाँ गंगा की सेवा क्या करो? गंगा में बकरी का बच्चा फेंकते हैं, लोग उसको लूटते हैं, यह भक्ति नहीं है। गंगाजल का स्पर्श करते हैं, पानी पीते हैं, उसकी हवा में रहते हैं; यह गंगा सेवन है। गंगाजी को कोई इच्छा नहीं, आप क्या सेवा कीजिएगा?

जबसे ईश्वर का ज्ञान सुनकर वह ज्ञान प्राप्त करने लगे, तबसे ईश्वर-भक्ति आरम्भ हो गयी। ईश्वर की ज्योति भी आप देख सकें, तो मन पवित्र हो जाएगा। जो सत्संगी इसका यत्न जानते हैं, साधन-भजन करते हैं, अन्दर में कुछ भी पाते हैं, तब मन कैसा होता है, वे जानते हैं। वे पुनः-पुनः वैसा ही देखना चाहते हैं। जैसे-जैसे आगे बढ़ते जाते हैं, ईश्वर का प्रकाश मिलता गया, गोया ईश्वर का आशीर्वाद आता गया। ईश्वर की खोज में अन्दर-अन्दर चलना ईश्वर की भक्ति है। भक्ति वहाँ समाप्त हो जाती है, जहाँ ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है। तुलसीदासजी को बाहर में दर्शन नहीं हुआ। दर्शन होने पर भी वे पहचान न सके। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण जान नहि कोय।

सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय।।

इस पर लोग ध्यान नहीं देते। स्थूल पर ही लौ लगाए रहते हैं, आगे बढ़ना नहीं चाहते। चाहिए कि अंतर्मुखी होकर खोज हो। जो जहाँ बैठा रहता है, वह वहीं से चलता है। दृष्टि और मन को स्थिर करो। 'बैठे ने रास्ता काटा। चलते ने बाट न पाई।।' अन्दर में असली दर्शन होता है। अमायिक रूप का दर्शन करो। अन्दर चलने के लिए कबीर साहब ने कहा है—'भक्ति का मारग झीना रे।' उस पर चलने के लिए केवल चेतन आत्मा है। अपने को स्थूल दृष्टि में रखे हुए लोग सूक्ष्म दृष्टि में अपने को ले जाएँ। गुरु नानकदेवजी ने कहा है—

भगता की चाल निराली।
चाल निराली भगता केरी विखम मारगि चलणा।।
लबु लोभ अहंकार तजि त्रिसना बहुतु नाहीं बोलणा।।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।।

कठोपनिषद् में है—

क्षूरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।

इसी बारीकी के कारण गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

सफरी की तरह सूक्ष्म हो जाओ। अपने को बहुत सम्भालो और सूक्ष्म में होकर उस तक पहुँचो। इसके लिए कला (विद्या) है, गुरु से भजन भेद लो और उसका अभ्यास करो। हमलोग अभी संसार के स्थूल तल पर हैं। सूक्ष्म की ओर बढ़ने के लिए शाम्भवी मुद्रा अथवा वैष्णवी मुद्रा का अभ्यास करो। अंदर चलने के लिए साधन लो और करो। संभव नहीं कि सूक्ष्म दृष्टि का अभ्यास नहीं हो सकेगा। अबतक जो ज्ञान हुआ है, साधन किया है, उसमें यह दृढ़ हो गया है।

'थोड़ा बनिज बहुत ह्वै बाढ़ी उपजन लागे लाल मई।'

'श्रद्धा किं? करिय जहँ प्रीति।
लखि न अभाव होइ विपरीती।।'

अभाव होने पर विपरीत नहीं हो, विश्वास डिगे नहीं, करता चला जाय। लेकिन अन्धविश्वासी नहीं बनो। साधन करोगे, तो अन्धी श्रद्धा नहीं रहेगी। कभी कुछ भी सफाई आ जाय, तो अहोभाग्य है। थोड़ी भी शान्ति आ गई तो अहोभाग्य है। यह जल्दबाजी की बात नहीं है। रामचरितमानस की नवधा भक्ति में है—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनहुँ नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

संतों का संग, कथा-प्रसंग, गुरु-सेवा, ईश्वर का गुणगान, मंत्र-जप; इस प्रकार पाँच भक्ति तक मन लगाने पर ही जोर है। छठी भक्ति में दमशील बनने कहा। शम-दम छोड़ दो तो योग कहाँ रहा? इन्द्रिय-निग्रह से मन सांसारिक विषयों को छोड़ता हैं सांसारिक विषयों को छोड़ने से निर्विषय की ओर होना होता है। तब 'एहि तन कर फल विषय न भाई' हो जाता है। मतलब यह कि छठी भक्ति

में इन्द्रिय निग्रह होता है। सातवीं भक्ति है, मनोनिग्रह के लिए। मनोनिग्रह में एकाग्रता होती है और मन से चेतन आत्मा का संग छूट जाता है। यह अन्दर का रास्ता है। इस रास्ते में चलने को भक्ति कहते हैं। इसके अलावा जो भक्ति है, वह मनोनिग्रह के लिए ही है।

पहले स्थूल उपासना करो। चाहे आप विष्णु की उपासना करो, शिव की उपासना करो वा शक्ति आदि की उपासना करो। इससे कुछ थोड़ा सिमटाव होता है; क्योंकि जिस रूप का ध्यान करोगे, उसमें कुछ सिमटाव होगा। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा है कि— पहले मेरे सम्पूर्ण शरीर का, बाद में चेहरे का और फिर शून्य में ध्यान करो। दृष्टियोग से रूप का ज्ञान होता है और शब्दयोग से अरूप का ज्ञान होता है। आकाश में बिजली चमकती है, लेकिन ठोकर पहले लगती है। पहले ठोकर लगती है, आवाज होती है, फिर बिजली चमकती है। आदि में शब्द है, फिर ज्योति। कम्प और शब्द ऐसा है कि उसको कोई अलग-अलग नहीं कर सकता। शब्द के अभ्यास में जो खिंचाव है, उससे खिंचकर परमात्मा तक पहुँचा जाता है।

चुम्बक सत्त शब्द है भाई, चुम्बक शब्द लोक ले जाई।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा, सत्त शब्द जो बसै शरीरा ।।

—दरिया साहब, बिहारी

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह ।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ।।

—कबीर साहब

ईश्वर तक पहुँचने के लिए नाम-भजन करो। नाम-भजन का भेद जानो।

श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक वर्णात्मक विधि तीन।
त्रिविध शब्द अनुभव अगम, तुलसी कहहिं प्रवीण।।
भेद जाहि विधि नाम महँ, बिनु गुरु जान न कोइ।
तुलसी कहहिं विनीत वर, जौं बिरंचि सिव होइ।।
बन्दउँ राम नाम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।
विधि हरिहर मय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

मुँह से, मन से जो कहते-सुनते हो, वह निर्गुण शब्द नहीं है।

नाम रूप दुई ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

शब्द शब्द सब कोइ कहै, वो तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह।।

—कबीर साहब

वर्णात्मक नाम से ईश्वर की पहचान नहीं होती। जाति नाम और सिफाती नाम राधास्वामी पन्थ के दूसरे गुरु ने कहा था।

झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों को मत करो। मनुस्मृति में अष्ट घातकों की चर्चा की है अर्थात् मारने की आज्ञा देनेवाला, मारनेवाला, टुकड़ा-टुकड़ा करनेवाला, बेचनेवाला, खरीदनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला और खानेवाला; ये अष्ट घातक हैं। पण्डितजी कहते हैं कि खाने में दोष नहीं है, ऐसा भी लिखा है। मैं कहता हूँ— नहीं खाय तो महाफल होगा, ऐसा भी लिखा है। तो खानेवाले तो महाफल से वञ्चित रहेंगे। एक योगी ने लिखा कि जल-जन्तु वा पशु के गुण उसके मांस में रहते हैं, उसके खानेवाले में पाशविक वृत्ति हो जाती है। एक महीने मांस-मछली नहीं खाओ और तब तुम्हारा मन कैसा रहता है, देखो और दूसरे महीने में खाकर देखो कि कैसा रहता है? दोनों को मिलाओ तो आप स्वयं छोड़ दोगे। महात्मा गाँधीजी ने अण्डा खाने के लिखा, सो लोगों ने पकड़ लिया। लेकिन अण्डा नहीं खाने के विषय में जो उन्होंने कहा, उसको माननेवाले कोई नहीं।

हमलोगों को स्वराज्य प्राप्त है, लेकिन सुराज्य

नहीं है। यह सुराज्य लाना जनता के हाथ में है। पंच पापों को छोड़ने से स्वराज्य में सुराज्य होगा।

ईश्वर सर्वव्यापक हैं, ऐसा हमलोग मानते हैं। कितनों का ख्याल है कि ईश्वर सर्वव्यापक नहीं हैं। कोई कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म को अपने तईं का भी ज्ञान नहीं हैं। जैसे चार चीजें मिलाकर गण्डा होता है, उसी तरह से बहुत से अणु चैतन्य को मिलाकर ईश्वर होता है।' ये सब गलत बातें हैं। लोगों को इन प्रचारों से बचना चाहिए।

ईश्वर-भक्ति का मोटा प्रचार भी बहुत होता है। मोटी भक्ति भी नहीं छोड़ो और सूक्ष्म भक्ति को भी नहीं छोड़ो। राम के उपासक शिव के उपासक नहीं हैं, ऐसा कहना संकीर्ण बुद्धि का काम है। शिव के उपासक राम के उपासक या भक्त नही हैं, संकीर्णता है। पहले सगुण, पीछे निर्गुण उपासना होती है। अनेक निर्गुणों के ऊपर के निर्गुण को जानो। सांख्य दर्शन के अनेक निर्गुण पुरुषों के ऊपर एक ही एक निर्गुण है। इसीलिए हम उनको जानें। जिस निर्गुण ब्रह्म को अपने तईं का ज्ञान नहीं हैं, ऐसे प्रचार से बचो। निर्गुण तक पहुँचने के लिए निर्गुण शब्द को अवश्य पकड़ो। शब्द की समाप्ति जहाँ हो गई, तब 'निःशब्दं परमं पदम्' हो जाएगा। झूठ सब दुर्गुणों का थैला है। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार—इन पापों से बचो। कोई बड़ा है, लेकिन उसकी झुठाई पकड़ी जाय, तो उसका सारा बड़प्पन दूर हो जाएगा। n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट के निकट गंगा तट पर ५८वाँ वार्षिक महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक १२. ४. १९६६ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२३१. मन में बहुत प्रकार के संस्कार भरे पड़े हैं

प्यारे लोगो !

पूर्व की बात हमलोगों को स्मरण नहीं है, परंतु सद्ग्रन्थों से विदित होता है कि हमारे बहुत से जन्म हुए हैं। कितने जन्म हुए, यह संख्या में बतलाने योग्य नहीं है। किसी भी संख्या—करोड़, अरब बताने योग्य नहीं है; क्योंकि यह पृथ्वी, यह सूर्य, यह चन्द्र—सब बहुत पुराने हैं। इनकी रचना कब हुई, कोई ठीक-ठीक नहीं बता सकता।

आज के लोग कुछ बताते हैं, लेकिन यह निश्चित नहीं है। हमलोग चार युगों की बात सुनते हैं। चार युग एक बार समाप्त होने पर एक चौकड़ी होती है। फिर कल्प और महाकल्प होते हैं। यह पुरानों के अनुकूल है। सृष्टि हुई है, लेकिन कब हुई है, कोई बता नहीं सकता। जबसे सृष्टि हुई है, तब से जीव-जन्तु हैं।

हमलोगों के भी कितने जन्म हुए, ठिकाना नहीं। अन्दाज करके मालूम होता है कि हमारे बहुत जीवन गुजरें हैं; क्योंकि हमारे मन में बहुत संस्कार हैं। इस जन्म में कितने प्रकार के संस्कार में हम बरतते हैं—यह भी अन्दाज से बाहर है। फिर भी भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न संस्कार के देखे जाते हैं। जब लोग कुछ सयाने होते हैं और उनके संस्कार उदित होते हैं, तो इसी जन्म के सभी संस्कार हैं, कहा नहीं जाता।

जो संस्कार इस जन्म में नहीं हुआ, उसके भी कर्म देखे जाते हैं। हमारे मन में बहुत प्रकार के संस्कार भरे पड़े हैं। इसीलिए हमारे बहुत जन्म हुए। हमारे अन्दर जितने संस्कार उदित हुए, वे सब संस्कार सुख के लिए ही। सुख की खोज में पड़े, उसी के अन्दर दौड़े। जो ज्ञानवान हैं, उनके अन्दर

में ज्ञान का उदय होता रहता है। यह ज्ञान का संस्कार पहले से ही है। कहा जाता है कि इस ज्ञान के पक्ष में बहुत जन्मों से रहे। शंकराचार्य, भगवान बुद्ध बड़े-बड़े महात्मा हुए हैं। कबीर साहब, गुरु नानक साहब—ये सब ऐसे हुए कि बचपन से ही ज्ञान के पक्ष में चले। इसलिए कहना पड़ता है कि कई जन्मों से इनके अन्दर ज्ञान चला आता था, जो इस जन्म में उदित हुआ।

साधारण मनुष्य विषय-भोग का संस्कार लेकर आते हैं और बचपन से उधर ही लगते हैं। वसन्त पंचमी में साल में एक बार हल की पूजा होती है। राजा लोग भी हल पकड़ लिया करते थे। सीताजी हल की पूजा के दिन ही निकली थीं, जबकि जनकजी हल जोत रहे थे। इसीलिए श्री जानकी जी को भूमिजा भी कहते हैं। जनकजी के हल की नोक लगने से घड़े से सीताजी निकली थीं। ढाई हजार वर्ष से कुछ पहले भगवान बुद्ध का जन्म हुआ। राजा शुद्धोधन हल जोतने गए थे। उस दिन बड़ा उत्सव था। भगवान बुद्ध को भी लेकर दाई वहाँ गई थी। दाई खेमे से बाहर निकली और फिर भीतर गई तो भगवान बुद्ध को ध्यानावस्थित उसने देखा और लोगों को भी दिखाया। ऐसा क्यों हुआ? बहुत से जन्मों से वे ध्यान करते चले आते थे।

हम साधारण मनुष्य विषय-भोग का संस्कार लेकर आते हैं। इसलिए उस ओर बचपन से ही जाते हैं। कितने कुछ ज्ञान-चिन्तन और कुछ विषय-चिन्तन करते हैं। कितने बिल्कुल विषय-चिन्तन ही करते हैं, ज्ञान-चिन्तन नहीं। कितने में ज्ञान-चिन्तन की मात्रा अधिक और विषय-चिन्तन की मात्रा कम रहती है। अनेक जन्मों से लेकर आज भी हम सुख की ओर दौड़ते हैं। कितने विषय-सुख की ओर से धक्का खाकर फिर उसी ओर जाते हैं। कितने उस सुख की ओर से धक्का खाकर ज्ञान की ओर जाते हैं, विषयसुख की ओर से उनकी आसक्ति हटती है।

आज के और पहले के संतों के ज्ञान से जानने में आता है कि विषय में सुख नहीं है। विषय पाँच हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। इन पाँचों से फाजिल को कोई जानता नहीं है। इनसे अधिक संसार में कुछ है भी नहीं। इन विषयों में दौड़ते-दौड़ते थकते हैं, दुःख पाते हैं, फिर भी उधर ही दौड़ते हैं। साधु-सन्त कहते हैं और जिन्होंने अच्छा भजन किया है, वे भी कहते हैं कि बाहर विषय-सुख में मत दौड़ो। यहाँ कहाँ सुख है? सुख तुम्हारे अंदर है। उस ओर जाओ। विषय-सुख भोगते हुए मन सन्तुष्ट नहीं होता, अधिक चंचल होता है और इसी में दुःख होता है। मन बाहर-बाहर दौड़ता है, तो अन्दर प्रविष्ट नहीं होता है। संतों ने बताया कि बाहर विषयों से सन्तुष्ट तुम नहीं होओगे। इसे संतोष करो।

सुख अन्दर में है। उधर चलो। तन्द्रा में अन्दर में रहते हो, तब कोई बाहर का विषय नहीं रहता, फिर भी तुम सुखी रहते हो, चैन मालूम होता है। तन्द्रा से कोई छूटता है, तो उसको दुःख लगता है। चैन तुम्हारे अन्दर है। मुख में मिसरी का टुकड़ा रहे और सो जाओ, तो उसकी मिठास तुमको मालूम नहीं होती। यदि स्वप्न में देखो कि नीम का पत्ता खा रहा हूँ तो नीम का स्वाद कड़ूवा मालूम पड़ेगा, मिसरी की मिठास का स्वाद नहीं। चेतन भीतर में था, इसीलिए भीतर का ज्ञान होता था, बाहर का नहीं। अन्दर में सुख है। इसलिए अन्दर में चलो। अन्दर में कहाँ तक जा सकते हो? संतों ने और साधकों ने कहा कि अन्दर में चला जाता है। जब तुम स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत में नहीं रहते, तब तुरीय अवस्था में चलते हुए अन्दर का सुख पा सकते हो। जैसे-जैसे आगे बढ़ो, वैसे-वैसे अधिक सुख मिलता जाएगा। जहाँ चौथी अवस्था समाप्त हो जाएगी, वहाँ चलना भी समाप्त हो जाएगा।

पहाड़ का अन्त उनकी चोटी पर होता है, इसी तरह तुरीय अवस्था का भी शिखर है। इसके शिखर

पर चढ़ो, तो उसके आगे में क्या है, सो भी जानोगे। पहाड़ की चोटी पर रहने पर पहाड़ तुम्हारे पैर के नीचे रहेगा, ऊपर में पहाड़ नहीं रहेगा। इसी तरह चौथी अवस्था के ऊपर जाने पर फिर जाने के लिए स्थान नहीं रहता। इसी को गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—'देश काल तहँ नाहीं।' जहाँ स्थान है, वहाँ समय है, और जहाँ समय है, वहाँ स्थान है। देश हो, काल नहीं; काल हो, देश नहीं—ऐसा हो नहीं सकता। इसको संतों ने विविध प्रकार से बतलाया है। संत दादूदयालजी महाराज ने कहा—

अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।

वहाँ पहुँचने पर ही पता मिलता है कि यह ईश्वर है। वहाँ ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, यहाँ केवल विचार में ही। वे परमात्मा इन्द्रियज्ञान से परे हैं; मन, इन्द्रियों से परे हैं। मन इन्द्रियों से ऊपर उठकर ईश्वर को पा सकते हो। ईश्वर पाने के लिए अन्दर जाने का रास्ता संतों ने बताया। संत कबीर साहब कहते हैं—

उलटि पाछिलो पैंड़ो पकड़ो पसरा मन बटोर।

पसरे हुए मन को समेटो। जप से मन का सिमटाव होता है। जप से अधिक सिमटाव मानस ध्यान में होता है। पूरा सिमटाव एकविन्दुता में होता है। विन्दु में फैलाव नहीं है। इसीलिए विन्दु ध्यान की बड़ी महिमा है। हाथ-पैरवाला ईश्वर को जानेगा तो बड़ी मोटी बात है। शिवलिंग में, शालिग्राम में हाथ, पैर नहीं है। फिर ईश्वर क्यों मानते हो? इसका मतलब यह है कि केवल हाथ-पैरवाला ईश्वर होता है—ऐसा मत समझो। ऐसा सिमटाव हो कि एकविन्दुता प्राप्त हो जाए। जितने चित्र बनते हैं, विन्दुओं से। लकीर बनती है, विन्दुओं से।

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम्।

अर्थात् हृदय स्थित विश्वात्म तेजस्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है। उपनिषत्कार ने लिखा है। सबके अन्दर-अन्दर हृदय में यह विन्दु मौजूद है। 'हृदय' शब्द छाती के लिए नहीं, योगी लोग छठे चक्र को योगहृदय कहते हैं। यहाँ तक रूप है।

संसार में रूप के बाद अरूप है। रूप स्थूल है और अरूप सूक्ष्म है। अरूप को प्राप्त करने के लिए अरूप अवलम्ब लो। अरूप अवलम्ब शब्द है। सबके अंदर शब्द गूंज रहा है। साधन करने वाला जानता है। इस शब्द का उद्‌गम परमात्मा है। जहाँ से यह शब्द उत्पन्न हुआ, वह परमात्मा है। कुछ बनाने में कम्प होता है। परमात्मा की मौज हुई सृष्टि बनाने में , उसमें शब्द हुआ। वह शब्द सृष्टि के अणु-अणु में प्रविष्ट है। शब्द-साधना करके जो परम पद को पाता है, वह वहाँ पहुँचता है, जहाँ से शब्द की उत्पत्ति हुई है। जहाँ से शब्द उत्पन्न हुआ, वहाँ शब्द की समाप्ति भी होती है। इसीलिए उपनिषत्कार ने कहा—'निःशब्दं परमं पदम्।'

संतों ने कहा कि सुख खोजते हो, तो यहाँ (निःशब्दं परमं पदम् में) सुख मिलेगा। इसके लिए अनेक पीढ़ियों के संस्कार की, इन्द्रिय-निग्रह की, दीर्घोद्योग की तथा ध्यान और उपासना की सहायता अत्यन्त आवश्यक है। (देखें—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक कृत 'गीता रहस्य' पृष्ठ २४७)

असली सुख अन्दर में मिलेगा, बाहर में नहीं। इसके लिए घर छोड़ने की जरूरत नहीं है। घर में रहो, काम करो और गुरु के बताए अनुकूल त्रैकालिक सन्ध्या अवश्य करो। रात में सोते समय भी कुछ करके सोओ। त्रैकालिक सन्ध्या अवश्य करो। सोना क्या है? गहरी नींद में जाना एक प्रकार से मरना है। मरने के पहले राम-राम कहो। इसलिए सोने के पहले कुछ जप-ध्यान करके सोओ। संसार के कामों को करते हुए भी ध्यान करो। ध्यान करते रहने से महा-से-महा संकट में भी कल्याण होगा। n

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत भागलपुर नगर के श्रीगंगातट-स्थित महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक २४.४.१९६६ ई० के सत्संग में हुआ था।

२३२. ईश्वरीय ज्ञान का महत्त्व

प्यारे लोगो !

मनुष्य को ज्ञान चाहिए। ज्ञान जानने को कहते हैं। जैसे कोई मनुष्य सो गया—निद्राह नींद में सोया पड़ा है। चाहे वह बहुत-सी विद्याओं को जाननेवाला है, नींद में वह कुछ नहीं जानता है। जबतक वह नींद की अवस्था में रहता है, तबतक उसकी कोई विद्या, विकास होकर काम नहीं करती। वह आदमी जबतक ज्ञान से हीन पड़ा रहता है, तबतक उसके गुण को कोई नहीं जान सकता। वैसा सोया हुआ मनुष्य किस आदर के योग्य है, लोगों को मालूम नहीं। जगने पर उसको जानकारी होती है, वह अपनी विद्या का प्रसार करता है। जैसे-जैसे विद्या का प्रसार करता है, वैसे-वैसे लोग उसका आदर करते हैं। लेकिन जबतक नींद में था, तबतक उसकी जानकारी लुप्त थी। लोग उस समय उसका आदर नहीं करते थे। जगने पर अपने ज्ञान का प्रसार किया और उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। उसके बाद वह सो जाता है। तब भी लोग कहते हैं कि यह बहुत विद्या का जानकार है। लोग उसका आदर करते हैं। ज्ञान वा विद्या वह चीज है, जो मनुष्य को आदरणीय और महत्त्वपूर्ण बनाती है। इसलिए मनुष्य को ज्ञान अवश्य चाहिए।

एक तो सांसारिक ज्ञान है। दूसरा ईश्वरीय ज्ञान है। इन दोनों की आवश्यकता है। सांसारिक ज्ञान के बिना संसार में कुशल से रहते बढ़ती नहीं होती और ईश्वरीय ज्ञान नहीं होने के कारण सांसारिक ज्ञान पवित्र नहीं होता और संसार में ठीक-ठीक प्रतिष्ठा का पात्र नहीं होता। ईश्वरीय ज्ञान का महत्त्व यह भी है कि वह ईश्वर का दर्शन पावे और ईश्वर के दर्शन से मोक्ष—मुक्ति का लाभ करे। मनुष्य की दशा बन्धन में रहने की है। शरीर और संसार के बंधन हैं। ये ऐसे बन्धन हैं कि किसी ने बाँधा है, ऐसा नहीं। लोग अपने-ही-आप बन्धे हैं और अनेक जन्मों तक दुःख पाते हैं।

शरीर के और संसार के बन्धन से छूट जाओ, यही मोक्ष है। शरीर और संसार का बहुत सम्बन्ध है। जो शरीर में रहता है, वह संसार में रहता है और जो संसार में रहता है तो वह शरीर में रहता है। इसमें वह ज्ञान चाहिए, जिससे ईश्वर का दर्शन हो।

संसार में महत्त्वपूर्ण लोगों का दर्शन हुआ, इससे काम नहीं चलता। उनसे सहायता मिले और लोग समझते हैं कि उनके दर्शन से मेरी भलाई हुई। लेकिन ईश्वर का दर्शन ऐसा है कि दर्शन से ही सभी सुख आप-से-आप होते हैं; सभी बन्धन झड़ जाते हैं, सभी विकारों से छूटकर निर्मल हो जाते हैं। इसलिए भक्त लोग ईश्वर के दर्शन के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते। सांसारिक प्रतिष्ठा मिलने से तृष्णाओं का नाश नहीं होता, ईश्वर-दर्शन से नाश होता है। ईश्वर का ज्ञान सर्वोच्च ज्ञान है।

सांसारिक ज्ञान विद्यालयों में जाकर सीखते हैं। जो जितना सीखते हैं, वे संसार में उतने ही महत्त्वपूर्ण लोग होते हैं, परन्तु यह नहीं कि वे बन्धनों से छूट गए। ईश्वरीय ज्ञान से बन्धनों से छूटना होता है। संसार के ज्ञान के बिना संसार में ठीक-ठीक गुजर नहीं होता। इसलिए संसार का ज्ञान भी अर्जन करो और उसके साथ ईश्वर का ज्ञान भी प्राप्त करो। ईश्वर-प्राप्ति के लिए क्या करना होगा, सो जानो और करो, तो इस संसार में भी और

परलोक में भी सुखी होओगे। संसार में रहने का ज्ञान और संसार से छूटने का ज्ञान; दोनों ज्ञानों को सीखो और दोनों जगह सुखी होओ। जैसे अलग-अलग ज्ञान के सीखते-सीखते विद्वान होता है, उसी तरह ईश्वर का ज्ञान भी धीरे-धीरे, सीखते-सीखते पूर्ण होता है। जैसे संसार के ज्ञान को सीखकर, उसको करके लाभ उठाते हैं, उसी तरह ईश्वर का ज्ञान जानकर लाभ उठाओ।

ईश्वर-स्वरूप क्या है, उसको जानो, उसकी प्राप्ति का भेद जानो और यत्नपूर्वक ईश्वर के दर्शन के लिए कोशिश करो। जो ठीक-ठीक भेद जानता है, कोशिश करता है, तो वह उस चीज को पाता है। जो संतों ने कहा है, इसको सभी लोग जानें, लेकिन जानकारी वैसे ही नहीं होगी। स्कूल, विद्यालय, महाविद्यालय में भी सिखलानेवाले की जरूरत है। वे ही गुरु कहलाते हैं। ईश्वर का ज्ञान बहुत गूढ़ है। दो हाथवाला या चार हाथवाला वा शरीरवाला वा आँख से दीखनेयोग्य, इन्द्रियों से जाननेयोग्य—ऐसा ईश्वर नहीं है। ईश्वर का ज्ञान यदि इन्द्रियज्ञान से जाना है, तो कम जाना है। वह भूल से खाली नहीं है। इन्द्रियज्ञान के परे निज ज्ञान है। निज को जानो—कौन हो? तुम जीवात्मा हो। जीवात्मा के कारण ही इन्द्रियों में ज्ञान है। इन्द्रियों के ज्ञान से छूटकर अकेलेपन में जो ज्ञान होता है, वही निजी ज्ञान है। तब जो दर्शन होता है, वह ईश्वर-दर्शन है। वह ईश्वर सब इन्द्रियों और सब शरीरों की सुन्दरता से बढ़कर सुन्दर है।

'राम' शब्द वा 'विष्णु' शब्द वा ब्रह्म कहो, ईश्वर का नाम है। 'राम' कहने से अवतारी रूप को जानना कोई विशेष जानना नहीं है। उस अवतारी रूप में जो है, उसको भी जानो। रामचरितमानस में आया है—

चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।

चेतनमय रूप का दर्शन इन्द्रियों से नहीं होगा सबके अन्दर वह है। शरीर मायाकृत है। स्थूल, सूक्ष्मादि इसके रूप हैं। इनके परे चेतनमय स्वरूप है। उससे ही उसका दर्शन होता है। शरीर-इन्द्रिय से रहित होकर अपने निज स्वरूप में रहना—यही भक्त कहता है। इसी अवस्था में ईश्वर-दर्शन होता है। ईश्वर-दर्शन बाहर में नहीं, अन्दर में होता है। जो शरीर-इन्द्रियों से छूटकर अपने तईं में रहता है, वही ईश्वर-दर्शन पाता है। यही संतों का ज्ञान है। ऐसा बनने के लिए पाप करते हुए नहीं होगा।

पाप उसे कहते हैं, जिस काम से लोक-परलोक में निन्दा होती है। एक झूठ बोलनेवाला कोई बड़ा आदमी है, धन से बड़ा है, विद्या से बड़ा है; लेकिन झूठ बोलता है, उसकी धन-सम्पत्ति के कारण लोग उससे झुकते हैं; लेकिन झुकनेवाले का हृदय जानता है कि यह झूठा आदमी है, इसलिए उसके हृदय में उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती। अतः झूठ मत बोलो। झूठ के थैले में सभी पाप समाते हैं। ईश्वर-भक्त बनना चाहते हो, तो झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, नशाओं का सेवन मत करो, हिंसा मत करो, व्यभिचार से बचो। इन पंच पापों से छूटते रहने की बहुत कोशिश करो।

ईश्वर-प्राप्ति के लिए अन्दर का साधन करो। अन्तस्साधन करने में पाप से छूटने में बल मिलेगा। पापों से छूटते रहने से ही अन्तस्साधन में बढ़ोगे, पंच पापों से बचोगे, तो संसार में भी आदरणीय बनोगे, महात्मा होओगे।

संसार में इस ख्याल के लोग अधिक हो जाएँ, तो देश में कल्याण होगा। चोरी, डाका नहीं होगा। आपस में मेल होगा। सच्चे से सच्चे को मेल होगा। सभी प्रेम से रहेंगे। ईश्वर-भजन करने से संसार में भी सुखी रहोगे और परलोक में भी।

तुम शरीर में जीवात्मा हो। जीवात्मा का ज्ञान

निज ज्ञान है। इन्द्रियज्ञान से छूटकर जो ज्ञान होता है, वह निज का ज्ञान है और इसी से ईश्वर का ज्ञान होता है। तुम ईश्वर अंश हो। तुम इतना ही जानते हो कि मैं हूँ, लेकिन प्रत्यक्ष नहीं जानते हो। दूध से मक्खन की तरह शरीर-इन्द्रियों से छूटकर रहो, अपना भी ज्ञान होगा और ईश्वर का भी।

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत श्री संतमत सत्संग मन्दिर मोहनियाँ में दिनांक ०५.०५.१९६६ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२३३. निर्गुण राम के दर्शन से मोक्ष

प्यारे लोगो !

आपलोगो को दो बातों के विषय में कहूँगा। एक तो राम और ईश्वर, दूसरी बात विज्ञान। 'राम' कहने से सब लोग साधारण तरह से जानते हैं कि जैसे हमलोग रामनवमी के दिन जहाँ-तहाँ उत्सव देखते हैं। गाँव में प्रतिमा बनती है। सब गाँवों में नहीं, लेकिन बहुत से गाँवों में राम की प्रतिमा बनती है। लोग ठाकुरबाड़ी जाते हैं, वहाँ दर्शन करते हैं। दर्शन करके जानते हैं कि श्रीराम शरीर-धारी विशेष पुरुष थे, जैसा कि प्रतिमा में, चित्र में और ठाकुरबाड़ी में है। मृतिका की प्रतिमा में जैसा रूप है अथवा जो पहले से ही स्थापित प्रतिमा है, उसका दर्शन करके समझते हैं कि इसी तरह के राम थे। 'राम' कहने से प्रतिमा का रूप, राम का ख्याल आता है। जैसा देखते हैं, वैसा ही ख्याल में आवे, यह प्रचलित स्वाभाविक बात है। यह गलती में जानते हैं, ऐसी बात नहीं।

जो पढ़े-लिखे अधिक हैं, वे केवल रूपधारी राम ही नहीं समझते, और भी समझते हैं। जैसे श्रीराम, जब जंगल गए थे, तो वे वाल्मीकि के आश्रम में गए, वहाँ वार्ता हुई। वहाँ रूपवाले राम वाल्मीकि के सामने थे ही, लेकिन वाल्मीकिजी कहते हैं—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

एक तो रूपधारी राम है, जो वचन में आते हैं और जिनके हाथ, पैर, मुँह, आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियाँ हैं। जो इन्द्रियज्ञान में आवे, उसको गोचर पदार्थ कहते हैं। रूपधारी राम का चरण छुआ जाता है। वे साँवले हैं। उनकी सुन्दरता को देखते हैं, बुद्धि ग्रहण करती है। ऐसा रूप 'वचन अगोचर बुद्धि पर' नहीं कहा जाएगा। 'अविगत' का अर्थ है—जो कहीं से हीन नहीं, सर्वव्यापी हैं। हैं तो राम सामने ही, लेकिन कहते हैं कि सर्वव्यापी हैं, अलख हैं। धनुषधारी राम देखने में आते हैं और कहते हैं 'अलख'। नख से शिखा तक देखते हैं, लेकिन कहते हैं 'अपार'। एक तो रूप और दूसरा स्वरूप होता है। एक तो शरीर का रूप होता है और दूसरा आत्मा का स्वरूप कहलाता है।

श्रीरामजी के शरीर को देखकर भी वाल्मीकि जी स्वरूप के लिए कहते हैं—इन्द्रियज्ञान में नहीं, बुद्धि से परे है,सर्वव्यापी है। देखने में आने योग्य नहीं। अपार है, वेद उसको नेति-नेति कहते हैं। राम का शरीर-रूप और राम का स्वरूप दोनों समझिए तो दोनों राम हैं। राम के दोनों रूपों का दर्शन और पहचान अच्छा है। देहरूप का दर्शन हो और आत्मस्वरूप का नहीं, तो काम बाकी रहेगा।

भगवान राम आज नहीं हैं। उनकी प्रतिमा है, लेकिन सभी प्रतिमाएँ एक-सी नहीं हैं। उनमें कौन-कौन-सी प्रतिमा ठीक हैं, कहा नहीं जा सकता। ग्रन्थ में जैसे रंग-रूप का वर्णन किया गया है,

उसी के अनुकूल सभी चित्रकार बनाते हैं। जिस चित्रकार में जितनी प्रवीणता है, वे उतने अच्छे बनाते हैं। इसीलिए कम जाननेवाले चित्रकार के बनाए रूप में अन्तर पड़ जाता है, लेकिन जो स्वरूप है, उसकी प्रतिमा नहीं बन सकती।

शरीर-रूप राम को सगुण राम और जो अलख, अपार है, वह निर्गुण राम है। राम के सगुण और निर्गुण, दोनों रूपों का ज्ञान होना चाहिए। सगुण का ज्ञान इन्द्रियों से होता है और निर्गुण का ज्ञान चेतन आत्मा से होता है। बुद्धि से परे चेतन आत्मा है। चेतन आत्मा से जो जाना जाता है, वही अविगत, अलख, अपार राम है। शरीर प्रकट होता और गुप्त भी होता है। स्वरूप के होने का कारण नहीं होता, किंतु शरीर के होने का कारण होता है। स्वरूप का होना किसी सबब (वजह) से नहीं होता। वह परम प्राचीन है, परम सनातन है। ऐसा जो पदार्थ है, वही अविगत, अलख, अपार है।

समय-समय जो भगवान का अवतार होता है, उसमें कारण होता है। राम के अवतार के कई कारण हैं। सब अवतारों के कई कारण हैं। सब अवतारों में एक ही रंग-रूप नहीं, विविध रंग-रूप। राम-रूप में, श्याम-रूप में बड़ा सुन्दर और नृसिंह रूप बड़ा भयंकर। वामन अवतार में बहुत छोटा रूप, केवल बावन अंगुली का।

असल में परमात्मा का ज्ञान अकथ, अपार के दर्शन से होता है। यह दर्शन शरीर में रहने से नहीं होता। शरीर से पृथक होकर शरीर में रहो, तब अपने में अपने से दर्शन होगा। ऐसा होने से तमाम दर्शन पाओगे। आँख से नहीं देखोगे, अपने से देखोगे। तुम स्वयं शरीर नहीं हो। गाँव में कभी-न-कभी कोई अवश्य मरता है और उसकी श्राद्ध-क्रिया होती है। सभी धर्मों में श्राद्ध-क्रिया होती है, किसी-न-किसी रूप में। इसमें विश्वास रहता है कि शरीर छूट गया है, चेतन आत्मा कहीं चली गई है। उसकी शुभ गति हो, इसलिए श्राद्ध-क्रिया होती है।

शरीर से केवल चेतन आत्मा नहीं निकलती। इस स्थूल शरीर से सूक्ष्म, कारण, महाकारण के सहित चेतन आत्मा निकल जाती है। ये तीन शरीर मरते नहीं। अपने स्वयं कोई शरीर नहीं है, शरीर निवासी है। जैसे दूध को मथते-मथते आखिर में उससे मक्खन अलग हो जाता है और उसी में रहता है। फिर आप अलग करते हैं। इसी तरह चेतन आत्मा शरीर में रहे और शरीर से फूटकर रहे, तब पहचान में आवेगा कि यही मैं हूँ, और यही राम है, जो 'अविगत अलख अपार' है। सगुण राम के दर्शन से माया में बहुत बढ़ती होती है और निर्गुण राम के दर्शन से मोक्ष होता है। निर्गुण राम अलग और सगुण राम अलग नहीं रहता। शरीर को पहन लिया तो सगुण है। सब शरीरों को छोड़ दिया, वह निर्गुण है। जो भजन करता है, वह शरीर से वैसे निकलकर रहता है, जैसे दूध से मक्खन। वही जीवन्मुक्त होता है, वही अपने को पहचानता है और राम के स्वरूप को भी।

आज लोग विज्ञान की ओर बहुत झुके हैं। इसमें बड़ी इज्जत होती है, बहुत पैसे भी मिलते हैं। अभी सुना कि 'बिनु विज्ञान कि समता आवै।' समता = एकीभाव। आज तो भौतिक विज्ञान बढ़ा है, उसने क्या किया है? एक भाव को मिलाया नहीं, टुकड़ा किया है। जितना भौतिक विज्ञान बढ़ा है, उतना ही नाशकारी बना है। यह है भौतिक विज्ञान, एक क्षण में क्या से क्या नाश कर दे। संसार के पदार्थों को विशेष रूप से जानना भौतिक विज्ञान है। भौतिक विज्ञान में समता नहीं आई है और न आ सकती है। भौतिक विज्ञान की बढ़ती हुई है, लेकिन अन्त नहीं हुआ है। सब-के-सब जिस मूल पदार्थ पर अवलम्बित हैं, वे राम हैं,

परमात्मा हैं, वे अध्यात्म-विज्ञान हैं। इसके लिए स्कूल-कॉलेज जाने की जरूरत नहीं है। अपने अन्दर अभ्यास करने की जरूरत है। भौतिक विज्ञान में समता आएगी, इसका विश्वास नहीं किया जा सकता है। आजतक जितनी कोशिश हुई है, इसमें थोड़ी-थोड़ी सफलता मिलती जाती है। भौतिक विज्ञान में मारने और नाश करने की बात तो बहुत आयी है, लेकिन बचाने की नहीं।

ईश्वर का दर्शन ही अध्यात्म-विज्ञान का मूल है। इसमें समता होती है। विश्वामित्र बड़े बली राजा थे। अस्त्र-शस्त्र के बहुत ज्ञाता थे। पीछे वे श्रीराम के गुरु हुए और थोड़े ही काल में उनको सिखा दिया। विश्वामित्र ने वशिष्ठजी को अस्त्र-शस्त्र के प्रभाव से दबाना चाहा, लेकिन दबा न सके। अन्त में उन्होंने तप किया। तप में कुछ गिरे भी। फिर सम्भले और इतना तप किया कि उनमें इतना बल हो गया कि जो कुछ किसी को कहे, सो हो जाय। उनके शाप के डर से सभी लोग थर-थर काँपते थे। वे लोगों से कहते थे कि लोग मुझे ब्राह्मण कहें। लोग कहते थे कि वशिष्ठजी आपको ब्राह्मण कह दें, तो हमलोग भी कहेंगे। लेकिन वशिष्ठजी उनको ब्राह्मण नहीं कहते थे। विश्वामित्रजी ने वशिष्ठजी के सौ पुत्रों को मरवा दिया, फिर भी वशिष्ठजी के हृदय में रंचमात्र भी क्लेश नहीं हुआ। एक बार जब वशिष्ठजी भोजन करने लगे, तो साक में नमक नहीं था। उन्होंने अपनी पत्नी अरुन्धती से पूछा कि साग में नमक नहीं है, क्यों? अरुन्धती ने कहा कि नमक समाप्त हो चुका है, इसलिए साग में नमक नहीं दिया गया। वशिष्ठजी ने कहा कि निकट ही में विश्वामित्रजी का आश्रम है, उनके यहाँ से नमक क्यों नहीं ले आयी? अरुन्धतीजी ने कहा कि जो मेरे सौ पुत्रों को मार चुके हैं, उनसे मैं नमक माँगती? वशिष्ठजी ने कहा—'अरी! उनकी आत्मा और मेरी आत्मा एक है।'

विश्वामित्र ने बहुत द्वेष किया, लेकिन वशिष्ठजी ने कुछ नहीं किया। यह अध्यात्म की समता है। यह आन्तरिक समता है। वैसे ज्ञान कहने वाले बहुत हैं। अध्यात्म-ज्ञान जानने के लिए योग-शास्त्र है। उसको सीखने के लिए बाहर में कोई घर नहीं है, अपना शरीर है। इसका यत्न संत सद्गुरु बताते हैं। करनेवाले समता पाते हैं।

n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत (अब अररिया) भटगामा में श्री संतमत सत्संग मन्दिर में दिनांक ६.५.१९६६ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२३४. अपने को शुभगति में ले जाने का उपाय

प्यारे लोगो !

हमलोग जहाँ रहते हैं, इसको संसार कहते हैं। यह संसार बहुत बड़ा है। इतना बड़ा है कि खड़ा होकर भी सम्पूर्ण संसार को नहीं देख सकते। ऊपर-नीचे कहीं भी संसार खत्म नहीं होता है, देखने में यह संसार सागर है। इस बहुत बड़ी दुनिया में—विराट रचना में हमलोग पड़े हुए हैं। हम देह में आए हैं और देह संसार में रहती है। इस देह में रहकर छोटी उम्र का, कुछ बड़ी उम्र का, जवानी उम्र का, अधेड़ उम्र का और बुढ़ापे का भोग भोगते हैं, फिर एक दिन शरीर को छोड़कर चले जाते हैं; लेकिन संसार में ही रहते हैं। जो सूक्ष्म संसार है, फिर वहाँ का भोग भोगकर पुन: इस संसार में आते हैं। कितनी बार आए और

कितनी बार गए, ठिकाना नहीं। इस संसार में किसी-न-किसी प्रकार का दु:ख होता ही है। दु:ख कभी पीछा नहीं छोड़ता। यहाँ तक कि परलोक में भी दु:ख कभी पीछा नहीं छोड़ता। दूसरे जन्म में भी दु:ख होता है। इसलिए हमारे यहाँ जितने अच्छे आदमी आए, उन्होंने एक स्वर से कहा कि इस संसार से बिल्कुल छूट जाओ। इस संसार में जबतक शरीर लेकर आओगे, तबतक अवश्य ही दु:खी होओगे। इसलिए इस संसार-सागर को तरने के लिए सभी महापुरुषों ने कहा—

ईश्वर-भजन करके संसार-सागर से तरना होगा। ईश्वर-भजन ही ऐसा है, जिसका अवलम्ब लेकर सारे दु:खों को कोई पार कर सकता है। फिर वह दु:ख में नहीं आवेगा। यही एक उपाय है। भगवान श्रीराम ने यही समझा था। वे राजा होकर शासन करते थे और कहते हैं कि उनके समय में लोग बहुत सुखी थे। फिर भी जो स्वाभाविक दु:ख है, वह तो आवेगा। स्वयं उनको भी स्वाभाविक दु:ख आया और उनको भी भोगना पड़ा। दैहिक ताप—शरीर में से जो रोग उत्पन्न होते हैं। दैविक ताप—अकस्मात् होता है, जैसे गाछ से गिर जाना या फिसलकर गिर गए, हड्डी टूट गयी आदि। भौतिक ताप प्राणियों द्वारा जो कष्ट प्राप्त हो, जैसे बिच्छू का डंक या सर्प का दंश आदि। ये तीनों होते ही रहते हैं। एक आदमी ने सीताजी के प्रति घृणा-भाव का कुछ शब्द कहा था। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—

सिय निन्दक अघ ओघ नसाये। लोक बिसोक बनाय बसाये।।

भगवान राम को दु:ख हुआ कि हमारी प्रजा सीताजी से प्रसन्न नहीं है। उन्होंने सीताजी को छोड़ दिया। सीताजी वन में चली गई। यह सीताजी के लिए दैविक ताप हुआ। इन तापों से छूटने का उपाय करो। यही संतों का उपदेश है। बिना ईश्वर-भजन के इन त्रयतापों से छूट नहीं सकते। भगवान श्रीराम ने इसको समझा कि प्रजा को जितना सुख मिलना चाहिए, मिल रहा है। किन्तु शरीर छोड़ने के बाद भी प्रजा सुखी रहे, इसीलिए उन्होंने सब लोगों को बुलाकर सभा की और यह शिक्षा दी—

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।

सो परत्र दु:ख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताय।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाय।।

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।
नरतन पाइ विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं।।
ताहि कबहुँ भल कहहिं न कोई। गुंजा ग्रहइ परसमनि खोई।।
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जीव अविनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुणा नर देहीं। देत इस बिनु हेतु सनेही।।
नर तनु भव वारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करन धार सदगुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

जो न तरइ भव सागर, नर समाज अस पाय।
सो कृत निन्दक मंद मति, आतम हन गति जाय।।

किसी भी जाति के शरीर में हो, छोटे-बड़े की बात नहीं। श्रीराम शवरी के यहाँ जाते हैं, वहाँ और भी बड़े-बड़े तपस्वी लोग थे। लेकिन उन सबों के यहाँ नहीं गए। वशिष्ठ मुनि ने निषाद को अपने हृदय से लगाया। भगवान श्रीराम ने शवरी के जूठे बेर खाए, यह प्रसिद्ध है। भगवान श्रीकृष्ण विदुरजी के घर पहुँचे। विदुरजी घर पर नहीं थे। उनकी पत्नी ने प्रेमपूर्वक भगवान को केला खिलाया। यह भी लोग जानते ही हैं। शिवाजी के गुरु समर्थ रामदासजी थे। समर्थ रामदासजी की सेवा में एक शिष्य थे। वे बड़े गुरु भक्त थे। समर्थ रामदासजी भोजन करने के बाद पान खाते थे। दांत नहीं रहने के कारण वे पान को चबा नहीं पाते थे। इसलिए उनके शिष्य पान को कूटकर देते थे। जिस पात्र में

पान कूटा जाता था, उस पात्र को समर्थ रामदास के अन्य शिष्यों ने छिपा दिया। जब पान कूटकर देने का समय हुआ, तो उस पात्र को नहीं पाने पर वे शीघ्रता में अपने मुँह से ही पान चबाकर समर्थ रामदासजी को दिया। यह बात विपक्षियों ने शिवाजी से कही। शिवाजी को बहुत बुरा लगा। वे समर्थ के भोजनोपरान्त के समय पहुँचे। पान चबाकर जब समर्थ को दिया गया, तो शिवाजी ने कहा—'जिस पात्र में पान कूटा जाता है, वह पात्र कहाँ है? सामने लाइए।' यह सुनते ही पान चबाकर देनेवाले ने अपने मुँह का जबड़ा उखाड़कर समर्थ के सामने रखा। यह देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गए। उस शिष्य की ऐसी भक्ति थी कि उनका चबाया पान भी समर्थ रामदासजी खा गए।

ईश्वर का भजन मनुष्य-शरीर में होता है। मनुष्य-देह ऐसी है कि यदि आखिरी में भी इसका ख्याल हो जाय और मरने के समय में ईश्वर का ख्याल लेते हुए मरता है, तो उसका बड़ा कल्याण होता है। किंतु यह कैसे हो सकता है? जिसने जीवन भर इसके लिए कोशिश की है, मरने के समय उसी को वैसा ख्याल हो सकता है। जिनको यह बोध हो गया है कि अब इस शरीर से कुछ काम नहीं होगा तो उनको यदि ऐसा चिन्तन हो कि ईश्वर मुझे मिले, उनका ठीक-ठीक भजन करूँ। इस प्रकार जो ख्याल लेकर मरता है, तो उसका अगला जन्म बहुत सुन्दर होगा। बचपन से ही वह भक्ति करने लग जाएगा। उपनिषद् में आया है कि मरने के समय चित्त में जो-जो भावनाएँ जीव करता है, वही-वही वह होता है, यही जन्म का कारण है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी आया है—

यं यं वापि स्मरंन्भावं त्यजायन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदातद्भाव भावितः।।

अर्थात् मनुष्य अन्तकाल में जिस-जिस भाव को स्मरण करता है, उस-उस को ही प्राप्त होता है; क्योंकि सदा जिस भाव का चिन्तन करता है, अन्तकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है।

जिनको शरीर से कुछ काम नहीं हो सकता, उनको बेकार सांसारिक वस्तुओं की चिन्ता नहीं करनी चाहिए; क्योंकि उस चिंता से तो कुछ होता नहीं है। तब फिर बेकार सांसारिक चिन्ता से क्या लाभ? ईश्वर के नाम को मन-ही-मन जपते रहो, इसको मन में घुमाते रहो। जिनको ईश्वर सम्बन्धी जो शब्द प्रिय हो, उसको जपो। चाहे राम, चाहे शिव, चाहे कृष्ण, जो ईश्वर-वाचक शब्द हो, उसको जपो। अपने को शुभगति में ले जाने का यही उपाय है। अपने को अपने से शुभगति में ले जाना होता है। यदि शरीर छोड़ने के बाद कोई कुछ क्रिया उनकी शुभगति के लिए करते हैं, तो उसके लिए मैं उसे निषेधात्मक नहीं कहता। यदि दूसरे के किये से कुछ ऊपर उठ गए और यदि अपना भी कुछ करके ऊपर उठ जाएँ, तो कितना अच्छा हो। अपनी शुभगति के लिए ईश्वर का भजन ही सर्वश्रेष्ठ है। जो जीवन में भक्ति पूरा नहीं कर सका और मरते समय उसका वैसा ख्याल हो जाय कि भक्ति पूरी नहीं हो सकी, तो दूसरे जन्म में ईश्वर-भक्ति की भावना से प्रेरित होकर वह भक्ति करेगा। मरता शरीर है और भावना मन में होती है। मन सूक्ष्म-शरीर के साथ जाता है। इसलिए उसका जो दूसरा जन्म होगा, उस शरीर में उसका वह मन मदद करेगा और वह भजन करेगा।

सभी को ईश्वर का भजन करना चाहिए। चाहे खेती करो, चाहे विद्याध्ययन करो, चाहे कोई काम करो। थोड़ा-थोड़ा सभी ईश्वर का भजन करो। 'तन काम में मन राम में।' सभी कोई ईश्वर का स्मरण करते हुए काम करो। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने फलाशा त्याग करने कहा है। कर्म करके उसको ईश्वर में

अर्पण कर दो। कबीर साहब ने कहा—

जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ किया नाहिं।
कबहुँ कहैं कि मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं।।

यहाँ अहंकार भाव का त्याग है। किंतु किसी को एक लाठी मार दो और कहो कि ईश्वर! तुमने मारा, सो नहीं। संत बनने के जितने अच्छे-अच्छे कर्म हैं उसके लिए—'जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ किया नाहीं।' ईश्वर-भजन करने में यदि ईश्वर-भजन का अहंकार आता है, तो उसको परमात्मा भजन में ही गिराता है। ईश्वर का भजन मन में ऐसा बना लीजिए कि शरीर छोड़ते-छोड़ते भी वही याद रहे। कितने रोगी हो, कितने वृद्ध हों, यदि उनका मन फिर जाय और ईश्वर का भजन करते-करते शरीर छोड़े तो उनकी वह गति होगी जो श्राद्ध-क्रिया से नहीं हो सकती। इसलिए सबको ईश्वर-भजन करना चाहिए।

इसीलिए भगवान श्रीराम ने कहा—'यह शरीर बड़े भाग्य से मिला है। संक्षेप में भगवान श्रीराम ने समझाया कि यह शरीर विषय-भोग के लिए नहीं है। स्वर्ग का सुख भी थोड़ा ही है और अन्त में दुःख है। यह मनुष्य-शरीर नाव है। ईश्वर की कृपा अनुकूल वायु है। गुरु कर्णधार हैं। मनुष्य-शरीर है ही, ईश्वर की कृपा भी प्राप्त है। बाकी सद्गुरु बच जाते हैं। खोजने पर सद्गुरु भी मिल जाते हैं। सद्गुरु मिलने पर भी यदि उनके अनुकूल नहीं चलिए, तो नाव पार नहीं लग सकती। इसलिए संसार से पार होने के लिए ये तीन चीजें हैं। ये तीनों चीजें भवसागर पार करने के लिए सबसे सरल हैं । पहले जप करो। बूढ़े शरीर से प्राणायाम नहीं हो सकता। उनके लिए नाम जपना और किसी रूप, जिस रूप में श्रद्धा हो, उसका ध्यान करें। यदि उनको दृष्टि-साधन करने कहा जाय तो उनसे नहीं होगा। इसलिए उनको शब्द-साधन करना चाहिए। बहुत बूढ़े के लिए ये तीन काम हैं। इनमें किसी एक का भी अभ्यास करते हुए शरीर का त्याग करना चाहिए। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत खजुरी में वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिनांक ८.५.१९६६ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२३५. अपवर्ग किसे कहते हैं?

प्यारे धर्मप्रेमीगण !

गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

संत पंथ अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रंथ।।

'अपवर्ग' कहते हैं—मोक्ष, मुक्ति, छुटकारा को। संसार में हमलोग जितने हैं, सभी बन्धन में पड़े हैं। बन्धन समझाने में कोई विशेष बात नहीं है। प्रत्येक को मालूम पड़ता है कि वह बन्धन में है। शरीर बन्धन है और संसार भी। शरीर में रहने से संसार में रहना होगा और संसार में रहकर उसके सुख-दुःख को भोगना पड़ेगा। न तो सुख में चैन है, न दुःख में। इन्द्रियों से विषयों को ग्रहण कर अल्प सुख होता है, उसमें तृप्ति नहीं होती है। तृष्णा बढ़ती है, दुःख होता है।

शरीर के अन्दर मन एक इन्द्रिय है। यह बड़ा चंचल है, हमेशा विषयी होकर रहता है। मन इतना सूक्ष्म है कि उसे आँख से देख नहीं सकते। यह बहुत तेज है। हमारे अनेक जन्मों से यह हमारा साथी है, अनेक जन्मों के संस्कार लिए विषय-वासना से भरा है। इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार होते ही रहते हैं। विकारों के मारे कोई चैन नहीं पाता। संसार के लोग—चाहे वे राजा, राष्ट्रपति, सेनापति,

विद्वान, धनवान वा कंगाल कोई हों, इन विकारों से सताए जाते हैं। ये सभी बन्धन हैं। इन बन्धनों से छूट जाने पर कैसा होगा, विचार कीजिए। कोई विकार उत्पन्न न हो, तो कितना चैन होगा, विचारिए।

निद्राह नींद में आपको कोई विकार नहीं होता। वहाँ एक ही दोष है कि अचेतता रहती है। जगने पर फिर विकार के चक्कर में पड़ते हैं। दर्जा वह भी होता है कि जहाँ विकार बिल्कुल नहीं होता और सचेतता रहती है। जिसमें सचेतता रहती है और विकार नहीं, वह कितना अच्छा होगा! संतों ने कहा है—इसी दर्जे में अपने को ले जाओ। यही है मोक्ष को प्राप्त करना, अपवर्ग को प्राप्त करना, छूटकारा पाना। विकारों का पता नहीं, किन्तु अचेतता रहती है, यह है गहरी नींद, किन्तु यह क्षणिक है।

संतों का रास्ता मोक्ष पाने का है। मनुष्य शरीर-धारी जितने हैं, सबके लिए यह बात है। बड़े विद्वान समझ सकते हैं कि जब विकार नहीं, सचेतता रहे और स्थायी रहे तो, कितना अच्छा होगा! इसी को पानेवाले संत होते हैं। इसी बात को समझा देने के लिए यह सत्संग है। संतों के संग का नाम सत्संग है। संत नहीं मिलें, तो संतवाणी का ही पाठ करें। इसलिए हमलोग संतवाणी का पाठ करते हैं।

संतों में एक संत का जितना हम आदर करते हैं, दूसरे संत का भी उतना ही। संतों की वाणियों को पढ़कर उनको मिलाते हैं, उनमें निश्चल श्रद्धा होती है। उनके अनुकूल आचरण करने का यत्न हमलोग करते हैं। इसीलिए अभी आपने देखा कि हमलोग वेद का भी, उपनिषद् का भी, गीता का भी और संतवाणी का भी पाठ करते हैं। जो लोग साम्प्रदायिक भाव को रखते हैं, वे समझते नहीं; वे कहते हैं कि एक संत की वाणी नहीं पढ़कर अनेक संतों की वाणियों को क्यों पढ़ते हैं? हमलोग सभी संतों का आदर करते हैं, उनकी वाणियों को समझते हैं और उनको अच्छी तरह सुनते हैं कि उन पर आचरण किया जाय।

जो पंचायती से दृढ़ हो, वह बात पक्की होती है। आज संसार में पंचायत राज्य है। अंग्रेज का देश है, वहाँ राजा-रानी मौके-मौके से होते हैं, लेकिन केवल नाम की पंचायत होती है, उसमें जो बात होती है, उसपर उसको दस्तखत करना पड़ता है। संसार में जितने देश हैं, सबमें पचायती राज्य है। कहीं-कहीं राजा है, तो नाम भर के लिए। सभी राष्ट्रों ने विचार-कर पंचायत कायम की है। इसी तरह संतों की वाणियों को पढ़िए, सुनिए, समझिए, मिलाइए, उनके अनुकूल चलिए, तो मोक्ष (अपवर्ग) मिलेगा।

संतों की वाणियों में ईश्वर की मान्यता बड़ी मजबूती से की गई है। ईश्वर की मान्यता में ईश्वर की भक्ति होती है। ईश्वर की भक्ति में स्तुति, प्रार्थना और उपासना; तीन बातें होती हैं। इसमें सब संतों के ख्याल का मेल है। स्तुति कहते हैं—बड़ाई करने को, गुणगान करने को। प्रार्थना कहते हैं—नम्रतापूर्वक कुछ माँगने को। सबका हृदय कुछ-न-कुछ माँगता है। क्या माँगो और किससे माँगो? जो बात विशेष फलदायक हो, वह माँगो और जो सब कुछ दे सकें, उनसे माँगो, दूसरे से माँगकर क्या करोगे? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

देव दनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवश विचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपुनपौ हारे॥

ईश्वर में सर्वशक्ति है, जिसने सारी सृष्टि को साजा है। सृष्टि नहीं थी, उसने सृष्टि की। कितनी बड़ी शक्ति उसमें है। इसलिए उस ईश्वर से माँगो।

एक राजा था, जिसको दो रानियाँ थीं। विदेश जाते समय राजा ने उन दोनों रानियों से पूछा—आपलोगों के लिए क्या लावें? एक रानी ने बहुत-सा सामान लाने को कहा और दूसरी रानी ने कहा—'आप विदेश से कुशलपूर्वक मेरे यहाँ लौट आवें।' विदेश से लौटने पर पहली रानी को उसके कहे अनुसार सामान देकर राजा स्वयं अपनी दूसरी रानी के महल

में चला गया और वहीं रहने लगा। अब राजा की सारी सम्पत्ति इसी रानी की हो गई।

इसी तरह ईश्वर से ईश्वर को ही माँगो कि 'हे ईश्वर! आपको हम पावें। जिस रास्ते से चलकर हम आप तक पहुँचें, वह रास्ता कोई बतावे। रास्ते में चलते हुए जो अनुभूति होनी चाहिए, हो।' यह कोई भी नहीं दे सकता, एक ईश्वर ही दे सकता है। इसलिए ईश्वर से ही माँगो। जहाँ जाकर कोई विकार नहीं रहता, जहाँ जाकर संसार के सभी भुलावे खत्म हो जाएँ, वही माँगो। हमलोग जो विनती पढ़ते हैं, उसमें यही बात रहती है।

विनय, विनती, प्रार्थना एक ही बात है। उपासना उस साधन के करने को कहते हैं, जिससे ईश्वर तक पहुँचा जाता है। उसके लिए दो ही बातें हैं—जप और ध्यान। संतों ने बहुत बात नहीं बतायी। जप करो और ध्यान करो। इसका यत्न इसके अच्छे जानकार से जानो। जो ईश्वर के राज्य में रहते हैं और ईश्वर की स्तुति नहीं करते और ईश्वर के दिए हुए को भोगते हैं, वे कृतघ्न हैं। कृतघ्न को आत्महत्या का पाप लगता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'आतमहन गति जाय।' इसलिए ईश्वर की स्तुति अवश्य करो।

हमलोग ईश्वर को नहीं जानते, यदि ईश्वर संत को प्रकट नहीं करते। ईश्वर का ज्ञान संत लोग देते हैं, इसलिए संत की भी स्तुति करो। संतों में ही कोई गुरु होते हैं। गुरु का दर्जा बहुत बड़ा होता है। वे रास्ता बताते हैं, युक्ति बताते हैं, हमारे सुख की चिन्ता करते हैं। इसलिए गुरु की भी स्तुति अवश्य करो।

हमलोग तीनों की स्तुतियाँ करते हैं। साथ ही साथ, धर्म की परिभाषा और उसका सिद्धान्त जानो। जो सिद्धान्त और परिभाषा नहीं जानता है, उसने धर्मग्रन्थों का ठीक-ठीक अवलोकन नहीं किया है और न सच्चे और योग्य गुरु को पाया है। इसलिए धर्म की परिभाषा और उसका सिद्धान्त भी जानो। जोर-जोर से इसलिए पढ़ते हैं कि जो लिखे-पढ़े नहीं हैं, वे सुन-सुनकर याद कर लेंगे। ग्रन्थों के पाठ में आपने कबीर साहब के वचन में सुना। उसमें बताया गया कि हमलोग जो मुँह से बोलते हैं, अक्षरों में लिख सकते हैं, उसको वर्णात्मक और सार्थक शब्द कहते हैं। शब्द दूसरे प्रकार का भी होता है, उसको मुँह से नहीं बोल सकते, लेकिन वह बहुत काम का है। व्याकरण के ज्ञाता लोग उसको निरर्थक शब्द कहते हैं। लेकिन निरर्थक का अर्थ बेकाम नहीं, अर्थविहीन ध्वनि। वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक; दोनों प्रकार के शब्दों में ईश्वर के नाम हैं। वर्णात्मक में बहुत शब्द हैं, उनमें से कोई एक शब्द लेकर जपो और ध्वन्यात्मक शब्द जितने हैं, उन सबको ग्रहण करो, जो साधन-पथ में आवें। मुँह से उतने शब्दों का जप नहीं हो सकता। ऋषियों ने जिसको नादानुसन्धान कहा है, आज के संत लोग उसको नाम-भजन वा सुरत-शब्द-योग कहते हैं। सगुण शब्द बहुत हैं, लेकिन निर्गुण शब्द एक ही है। यह एक शब्द ऐसा है कि ईश्वर का दर्शन करा देता है। इसी को आदिनाम कहते हैं—

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।

वर्णात्मक शब्द का जप करो और ध्वन्यात्मक का ध्यान करो। वर्णात्मक शब्द की इतनी महिमा है कि कबीर साहब ने कहा है—

नाम जपत कुष्टी भला, चुई चुई पड़ै जो चाम।
कंचन देह केहि काम का, जा मुख नाहीं नाम।।
सुपनेहु में बर्राय के, धोखेहु निकरै नाम।
वाके पग की पैंतरी, मेरे तन को चाम।।

ध्वन्यात्मक शब्द के भजन को कबीर साहब ने सहज-योग कहा है—

सबद खोजि मन बस करै, सहज योग है येहि।
सत्त शब्द निज सार है, यह तो झूठी देहि।।

ध्वन्यात्मक शब्द का ध्यान करो और एक शब्द के द्वारा दूसरे शब्द को पकड़ो, इसलिए—

शब्द शब्द बहु अन्तरा, शब्द सार का सीर।
शब्द शब्द को खोजना, शब्द शब्द का पीर।।

कहा है। जो एक शब्द को पकड़ता है, वह उसके द्वारा दूसरे शब्द को भी पकड़ता है और अन्त में निर्गुण नाम को पाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्द में भी है, इस पर ध्यान दीजिए—

बन्दउँ रामनाम रघुवर को। हेतु कृषाणु भानु हिमकर को।।
विधि हरि हर मय वेद प्रान सो। अगुण अनूपम गुण निधान सो।।

रामनाम निर्गुण भी है और सगुण भी। मुँह से जो जपते हैं, वह सगुण शब्द होता है और जो कण्ठ, तालु आदि से उच्चारण नहीं होता है, वह निर्गुण है।

अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अकण्ठताल्वोष्ठमनासिकं च।
अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।
—अमृतनाद उपनिषद्

शब्द शब्द सब कोइ कहै, वो तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह।।
—कबीर साहब

गुरु नानकदेवजी के वचन में इस शब्द का बहुत वर्णन है। दोहावली में गो० तुलसीदासजी ने लिखा है—

हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

हृदय में निर्गुण, जिभ्या पर सुन्दर रामनाम और आँख में सगुण रूप है। यह ऐसा है कि जैसे सोने के डिब्बे में सुन्दर रत्न भरा हो। जो ऊपर की चीज है, वह सोने का डिब्बा है, वह सगुण है और इस सगुण के अन्दर निर्गुण है। न सगुण से भागो, न निर्गुण से। न सगुण को छोड़ो, न निर्गुण को। न सोने का अनादर करो, न हीरे का।

दूसरों की निन्दा मत करो। दूसरों से कष्टों को पाकर भी, अपमान पाकर भी, धर्म नहीं छोड़ो। धर्म के लिए कोई कष्ट देता है, अपमान करता है, तो उसको सह लो, बहुदेव उपासना छोड़कर एक ईश्वर की उपासना करो।

श्रीमद्भगवद्गीता के पाठ में आपलोगों ने सुना, भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—कर्मयोगी बनो। कर्म भी करो और उपासना भी। कर्म करने के कौशल को 'योग' कहते हैं। कला यह कि कर्म किया जाय और उसके फल से बचा जाय। इसीलिए कहा कि कर्म करके ईश्वर पर अर्पण करो। आत्मरत होकर कर्म करो। कर्मफल छोड़कर कर्म करो। कर्मफल छोड़कर कर्म करने को लोग समझते हैं कि यह सरल है,लेकिन यह सरल नहीं है। आदमी ज्ञान तो बहुत कह सकता है, लेकिन आचरण करने में बड़ी कठिनाई होती है। बिना समत्व के ज्ञान कहना और ज्ञानानुकूल आचरण करना, दोनों एक नहीं हो सकता। इसलिए आत्मरत होने कहा। आत्मरत इस प्रकार होना होता है कि अपना निशाना अपने अन्दर, अपने उसपर लगा रहना। शाम्भवी मुद्रा और वैष्णवी मुद्रा से आत्मरत होने का आरम्भ होता है और चलते-चलते अन्त में पूर्ण होता हैं। ऐसे ही लोग जीवन्मुक्त कहलाते हैं, आत्मदर्शी होते हैं।

वेद में आज्ञा है कि आपस में सब मेल-जोल से रहो। स्वराज्य मिला है, लेकिन मेल-जोल की कमी है। एक साथ बैठकर सत्संग करते हैं, यह मिलजुल कर उपासना है। दूर-दूर के लोग आकर मिलते हैं, सत्संग-ध्यान करते हैं, इस तरह मिलजुल कर रहना होता है।

वेद में गौपालन की भी आज्ञा है और गौ हिंसा मना है। गौ की तारीफ बहुत है। गौ का प्रत्यक्ष फल है। लोग माता का दूध केवल कुछ महीने तक पीते हैं, लेकिन गाय का दूध तो जीवनभर पीते हैं। इसलिए गौपालन कीजिए, हिंसा नहीं कीजिए।

n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत खजुरी में वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिनांक ८.५.१९६६ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२३६. भजन करनेवाला कभी नीचे नहीं गिरेगा

प्यारे लोगो !

अभी श्रीसंतसेवीजी से आपलोगों ने गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज की वाणी के आधार पर जो कुछ सुना, उनका थोड़ी-सी बातों में खुलासा यह है कि गुरु और ईश्वर में प्रेम करो। गुरु की सेवा और ईश्वर का भजन करो। ऐहिक वस्तुओं में आसक्त मत होओ। इन्द्रियों को काबू में रखने का यत्न करो। अपना भला तब समझो, जबकि भवसागर से पार होने का यत्न करो। यदि अपना भला नहीं कर सकते हो, तो अपने को बहुत दुःख में पाओगे।

असली एकादशी व्रत करना है—मन को वश में करना। इस व्रत का फल यह होता है कि आवागमन से रहित हो जाएगा। ऐसा दान दो कि दान पानेवाले को कहीं दुःख न रह जाय। सुदामाजी को भगवान श्रीकृष्ण ने संग में ले जाने को कुछ नहीं दिया कि चोर-डाकू लूट लेंगे, लेकिन ईश्वर की कृपा से सुदामाजी का घर-द्वार सब बन गया।

बाहर के धन में, विषय-पसार की चीजों में भय लगा रहता है। इसीलिए इन चीजों को पाकर कोई निर्भय नहीं होता। ज्ञान-दान पाकर उसमें अपने को हमेशा याद रखे, तो कहीं डर नहीं रहे। अपनी आत्मा के प्रत्यक्ष ज्ञान को असली ज्ञान कहते हैं। आत्मा से जो भिन्न ज्ञान है, वह अज्ञान है। विषयज्ञान अज्ञान है। आत्मज्ञान का दान देना, सबसे नहीं होता। कोई-कोई कहते हैं, जो आत्मज्ञान के बारे में नहीं जाने, तो औरों से इतना कहना अच्छा है कि भजन कीजिए।

ईश्वर-भजन का भेद ऐसा है कि करते-करते ईश्वर को पाते हैं। भजन करने के लिए कहते हैं कि तीन अवस्थाओं को छोड़कर भजन करो। अभी जगे हो, फिर सोते हो, गहरी नींद में जाते हो। इन तीनों अवस्थाओं को छोड़कर भजन करो। यह गम्भीर ज्ञान है। जो अपने को जाग्रत में स्थिर कर समेट सकता है, वह ऊपर उठेगा, जागने के स्थान से ऊपर उठेगा, वह चौथी अवस्था होगी, तुरीय अवस्था होगी। कोई कहे कि जाग्रत स्थान से ऊपर उठकर स्वप्न में जाएगा या सुषुप्ति में, तो वह नहीं जानता है। स्वप्न और गहरी नींद का स्थान नीचे है। चौथी अवस्था इसमें नहीं होती। चौथी अवस्था में वह जाता है, जो कोई आँख के स्थान से ऊपर जाता है। मस्तक के अन्दर जो तल है, उसको वह प्राप्त करता है। मन के सिमटाव से यह होगा। इसी के लिए ध्यान है।

ध्यान के पहले जप करो। ध्यान भी दो तरह के हैं। एक मोटा ध्यान है,जिसको मानसध्यान कहते हैं, इससे पूर्ण सिमटाव नहीं होगा। लेकिन इसको किये बिना भी नहीं बनता। मानस जप, मानस ध्यान करो और दृष्टियोग करो। दृष्टियोग में एकविन्दुता होती है। मन में कुछ बनाने की जरूरत नहीं, गुरु संकेत के अनुसार ध्यान करो। स्थूलता से सूक्ष्मता में प्रवेश करोगे। सूक्ष्मता में प्रवेश करनेवाला मस्तक में रहता है, विविध दृश्यों को देखता है। वहाँ का भजन बाहर के विषयों से बचा हुआ होता है। बिना दृष्टियोग के यह भजन नहीं होगा।

दृष्टियोग में केवल देखा ही नहीं जाता, सुना भी जाता है। अन्तर्नाद सुनायी पड़ता हैं यह बहुत ऊँची बात है। गोस्वामी तुलसीदासजी इस बात को जानते थे। जो कोई इसका साधन करेगा, ईश्वर

तक पहुँचेगा। वह ईश्वर इन्द्रियज्ञान से परे है। सारे विश्व में व्यापक है। उस तक पहुँचोगे, जब तुम चौथी अवस्था में ध्यान करो। इसका भेद बतलानेवाले बतलाएंगे। लेकिन उकताने से नहीं होगा। बिना उकताए इसका अभ्यास करो, तो जीवन में प्रत्यक्ष लाभ पाओगे। साधना पूरी नहीं होने पर, शरीर छोड़ने पर वह फिर मनुष्य-शरीर पावेगा। यह भजन करनेवाला कभी नीचे नहीं गिरेगा। थोड़ा भी करेगा, तो इसका नाश नहीं होगा। इसका थोड़ा भी अभ्यास महाभय से बचाता है, फिर संस्कार उदय होगा। ईश्वर की ओर हम जाएँगे। यह संस्कार किसी दूसरे शरीर में उदय होने योग्य नहीं है। मनुष्य शरीर में ही उदय होने योग्य है। करते-करते कई जन्मों में काम खत्म होगा। जो कोई अच्छे साधु हैं, उनकी सेवा करो। साधु की सेवा से भजन का भेद जानोगे। साधु के संग से भजन में मन लगेगा। इसी से संसार-सागर से पार हो सकोगे।

n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मन्दिर मनिहारी में दिनांक २१.५.१९६६ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२३७. साधना में धैर्य और प्रेम

प्यारे लोगो!

संतों का साधन— ध्यान है। जो केवल मानस जप, मानस ध्यान और दृष्टि-साधन जानता है, किंतु नादानुसन्धान नहीं जानता है तो वह अपने संतमत को सही-सही नहीं जानता है। संतमत में शब्द का भी ध्यान है। शब्द ध्यान के सहित मानस जप, मानस ध्यान और दृष्टि-साधन भी है, वह पूरा संतमत है। शब्द से ही सारे संसार का पसार होता है। शब्द से ही सम्भाल होती है। शब्द से ही मनुष्य, मनुष्य बनता है। जितने विद्यालय हैं, सबमें शब्द की शिक्षा है। इसी शिक्षा से लोग बढ़ते हैं। संतों के यहाँ जो नादानुसन्धान है, इस साधना से ईश्वर तक पहुँचा जाता है। ध्यानयोग सब योगों से श्रेष्ठ है और सरल है। भगवान श्रीकृष्ण ने इसी पर जोर दिया है। संतों ने भी इसी को उत्तम साधन बताया है। हमलोगों को भी यह बताया गया है। इसका अल्प अभ्यास भी महाभय से बचाता है। महाभय क्या है? जन्म लेना और मरना यही महाभय है। बच्चा जब जन्म लेता है, तो वह रोता है। उसको कष्ट होता है, इसलिए वह रोता है। कोई किसी को मार डालना चाहे, तो मरने से भी लोग डरते हैं। इस तरह जन्म और मरण में दुःख होता है। इसी दुःख की निवृत्ति के लिए ध्यान है। जो ध्यान करेगा और चूक भी जाएगा, तो वह दूसरे जन्म में भी मनुष्य ही होगा; क्योंकि मनुष्य शरीर के अतिरिक्त और किसी शरीर में ज्ञान-ध्यान हो नहीं सकता। इसीलिए वह मनुष्य ही होगा। थोड़ा भी ध्यान में रत रहा और गिर गया तो फिर उसको मनुष्य शरीर ही होगा, दूसरा शरीर हरगिज नहीं होगा। कोई कहे कि फलाने का शरीर छूटा, जो ध्यान करता था और गिर गया। इसलिए उसने कुत्ते, बैल, गधे का ही शरीर पाया, यह हरगिज विश्वास करने योग्य नहीं है। ऐसी बात वह किसी द्वेष के कारण कहता है। उसकी कोई बात मानने योग्य नहीं है। संत कबीर साहब ने कहा—

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।

नीच कुल में जन्म लेने की बात इसलिए

कही गयी है कि उससे कुछ चूक हो गयी होगी। डॉ० अम्बेदकर मेहतर थे और जगजीवन राम चमार हैं, फिर भी डॉ० अम्बेदकर श्रीमान् थे और जगजीवन राम भी श्रीमान् हैं। उत्तर तरफ में इसी जिले में एक चमार है, जिसके यहाँ कुर्सी, चौकी लोगों के बैठने के लिए लगी रहती है। लोग जाते हैं, बैठते हैं और उसके यहाँ से कर्जा ले जाते हैं। आज भी डोमरा सड़क है, जिसको काशी के डोम ने बनवाया था अंग्रेज के समय में। हरिश्चन्द्र काशी में डोम के यहाँ ही बिके थे। डोम, चमार—नीच कार्य के लोग भी श्रीमान् होते हैं। सब दिन योग का अभ्यास अवश्य करो।

योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। हमलोगों को वही योग मिला है, जो भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में बताया है। कई जन्मों में हमलोगों का काम खत्म हो जाएगा। मान लीजिए, करोड़ो जन्म लेने पड़ते और अब लाख जन्म ही लेने पड़ेंगे, तो कितना कम हो गया।

एक लघु कथा है। एक राजा के मन में विरक्ति हो गयी। वे एक इमली गाछ के नीचे बैठकर तप करने लगे। एक दूसरा आदमी था, जो अपने परिवार से झगड़ा करके घर से निकल भागा और राजा की नकल में एक अरण्ड पेड़ के नीचे बैठकर तप करने लगा। भगवान की ओर से राजा के लिए उत्तम भोजन और उस अरण्ड गाछ के नीचे बैठनेवाले के लिए मडुवे की रोटी भेजी जाती थी। संयोग से एक दिन नारद मुनि उसी होकर जा रहे थे। राजा ने नारदजी से पूछा—आप कहाँ जा रहे हैं? नारदजी ने कहा—मैं विष्णुलोक जा रहा हूँ। राजा ने कहा—महाराज! जब आप विष्णु भगवान के यहाँ जा रहे हैं, तो भगवान से आप पूछेंगे कि मुझे इस इमली गाछ के नीचे कितने दिनों तक तप करने पर उनके दर्शन होंगे? नारदजी ने कहा—अच्छा, ठीक है। मैं पूछ लूँगा। नारदजी जब आगे बढ़े, तो अरण्ड गाछ के नीचे बैठनेवाले ने भी उनसे कहा कि महाराज! केवल राजा के लिए ही नहीं, मेरे लिए भी भगवान से पूछेंगे कि मुझे इस अरण्ड गाछ के नीचे कितने दिनों तक तप करना होगा? नारदजी ने कहा—बहुत अच्छा! तुम्हारे लिए भी मैं भगवान से पूछ लूँगा। नारदजी जब भगवान विष्णु के पास पहुँचे, तो भगवान विष्णु से उन्होंने पूछा कि भगवन्! एक राजा इमली गाछ के नीचे बैठकर तप कर रहा है और एक दूसरा आदमी अरण्ड गाछ के नीचे बैठकर तप कर रहा है। दोनों ने पूछा है कि हमलोगों को भगवान के दर्शन के लिए कितने दिनों तक तप करना होगा। भगवान विष्णु ने कहा—इमली के वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक राजा को तप करने के बाद मेरे दर्शन होंगे और अरण्ड गाछ के नीचे जो बैठा है, अरण्ड वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक उसको भी तप करना होगा, तब मेरे दर्शन होंगे। नारदजी जब भगवान विष्णु के यहाँ से वापस लौटे, तो पहले अरण्ड वृक्ष वाले से भेंट हुई। नारदजी ने उससे कहा—इस अरण्ड वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक तुमको यहाँ तप करना होगा। ऐसा तुम्हारे लिए भगवान विष्णु ने कहा है। वह आदमी जब अरण्ड पत्तों को देखने लगा, तो बहुत पत्तों को देखकर वह घबड़ा गया और यह कहकर चल दिया कि इतने वर्षों तक कौन तप करे? इससे तो अच्छा है कि घर का झगड़ा ही सही, घर ही में रहेंगे। वह अपना घर वापस हो गया। जब नारदजी राजा के पास पहुँचे, तो राजा ने बड़ी आतुरता से पूछा कि महाराज! मेरे सम्बन्ध में भगवान से जानकारी ली थी? नारदजी ने कहा—हाँ, भगवान विष्णु ने आपके लिए कहा है कि इस इमली वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक

आपको तप करना होगा, तब भगवान दर्शन देंगे। राजा यह सुनते ही प्रेम में मग्न हो गया और लगा नाचने। इतने में भगवान विष्णु वहाँ पहुँच गए। नारदजी ने भगवान से पूछा कि आपने भी हद कर दिया। मुझसे तो आपने कहा था कि इमली वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों तक तप करने के बाद मेरे दर्शन होंगे, लेकिन आप तुरत ही आ गए। भगवान विष्णु ने कहा कि देखते हैं राजा को कितना प्रेम है। इनके प्रेम के वशीभूत होकर ही मैं अभी तुरत यहाँ आया। जिस समय आपको इन्होंने मुझसे पूछने के लिए कहा था, उस समय ऐसा प्रेम इनमें नहीं था।

हमलोगों को भी खुश होना चाहिए कि जैसे इमलीवाले का काम खत्म हुआ, उसी तरह हमलोगों का भी होगा। गुरु महाराज की दया से हमलोग जन्म-मरण से जल्दी छूट जायेंगे। बिना प्रमाण के किसी की बात को नहीं मानिए। n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मन्दिर, मनिहारी में दिनांक २३. ५. १९६६ ई० के प्रातःकालीन श्रीमती बहिन दाय (झूलन दाय), जो आपकी (संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज की) सहोदर बहन थीं, की स्मृति के भण्डारे के सुअवसर पर आयोजित सत्संग में हुआ था।

२३८. संतों के प्रभाव से दुष्टों का उद्धार

प्यारे लोगो!

जानना चाहिए कि चार नीतियाँ हैं। सबसे ऊँचे दर्जे की नीति को अध्यात्म-नीति कहते हैं अर्थात् आध्यात्मिकता की नीति। उसके नीचे सदाचारिता की नीति—सद् आचरण में बरतने की नीति। उसके नीचे सामाजिक-नीति—समाज में कैसे रहा जाय, यह समझकर आपस में समाज में रहना चाहिए। बाद में है राजनीति—राज्य में जो नीति है, उसको समझकर रहना। अध्यात्म-नीति सबसे ऊँची नीति क्यों है? आत्मज्ञान से—ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान से ऊँचा ज्ञान और कोई नहीं है। इसलिए यह ऊँची नीति है। इसमें सदाचार का संग होता है। उत्तम आचरण से नहीं रहा जाय, तो अध्यात्म-नीति में नहीं जा सकेगा। अध्यात्म-नीति में नहीं जाने से सदाचार पालन में नहीं जा सकेगा। जैसे ऊँची आध्यात्मिकता होती है, वैसी ऊँची सदाचार की नीति होगी। अध्यात्म में बढ़ते-बढ़ते पूर्ण होता है, तो सदाचार भी पूर्ण हो जाता है। ऐसे समाज की नीति बड़ी अच्छी होगी। वह नीति पाप से हमेशा बचाती है।

सदाचार की नीति में थोड़ी-सी बात है कि मिथ्या मत बोलो, चोरी नहीं करो, व्यभिचार नहीं करो, हिंसा नहीं करो और मादक द्रव्यों का सेवन मत करो। ये पंच महापाप हैं, जो लोगों को नीचे गिराते हैं। इन सबका सरदार झूठ है। असत्य के झोरे (झोले) में सभी पाप अँट जाते हैं। जो असत्य से बचता है, सत्य ग्रहण करता है। उसके सभी पाप छूट जाते हैं। जो सत्य ग्रहण नहीं करता, वह कितना बड़ा वक्ता होने पर भी पाप करेगा। अध्यात्म में ईश्वर की भक्ति करो। उसमें अपने को लगाओ। इसका यत्न जानो और करो। जिस समाज में ऐसे लोग रहते हैं। उस समाज में दुष्टकर्म नही रहते, धीरे-धीरे सभी दुष्ट-कर्म लोप हो जाते हैं। ऐसे समाज के लोग सुखी होते हैं। ऐसे समाज के लोगों की जो नीति होगी, बड़ी अच्छी नीति होगी और तब जो राजनीति बनेगी, वह उत्तम बनेगी। इसलिए श्रीराम ने एक सभा की थी। अपने राजत्वकाल में और उन्होंने उपदेश दिया था। वह बड़ा अच्छा उपदेश है। श्रीरामजी ने अपनी प्रजा से कहा—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।

विषय पाँच हैं। इन्हीं पंच विषयों में सभी जीव लगे हैं—क्या देवता, क्या मनुष्य, क्या पशु-पक्षी। श्रीराम ने कहा—इन पंच विषयों से ऊपर उठो। जो रूप नहीं है, रस नहीं है, गन्ध नहीं है, स्पर्श नहीं है और शब्द नहीं है; इन पाँचों विषयों से जो ऊँचा है, वही अध्यात्म है। श्रीराम ने कहा कि मनुष्य से ही यह काम हो सकता है।

श्रीराम की सभा में सभी लोग बैठे थे। ऊँची-नीची जाति का कोई विचार नहीं। श्वपच के शरीर से इतना ऊँचा काम हो सकता है, जितना ब्राह्मण के शरीर से। नीच-से-नीच वर्ण के लोगों में भी अध्यात्म पुरुष हुए और ऊँचे-से-ऊँचे वर्ण के लोगों में भी अध्यात्म पुरुष हुए। नीच वर्ण के लोगों ने भी नीच-से-नीच कर्म किए और ऊँचे-से-ऊँचे वर्ण के लोगों ने भी नीच-से-नीच कर्म किए।

वाल्मीकि ब्राह्मण के पुत्र थे, लेकिन संग-दोष से बटमार (लुटेरे) हो गए थे। वे लोगों का धन हरण करते थे, लोगों को मार डालते थे। अन्त में नारदजी उस रास्ते से जा रहे थे। उनको भी मारना चाहा। नारदजी ने समझाया कि तुम ऐसे नीच काम करते हो, इसका जो फल है, उसका कोई भागी है? वाल्मीकिजी ने कहा कि मेरे माता-पिता, स्त्री-पुत्र भागी हैं। नारदजी ने कहा कि उन लोगों से तुम पूछ आओ। वाल्मीकिजी ने कहा कि हाँ, मैं पूछने जाऊँ और तुम फाँकी देकर भाग जाओ तब? नारदजी ने कहा—तुम मुझे वृक्ष में बाँधकर रखो और परिवार के लोगों से पूछ आओ। वाल्मीकिजी ने वैसा ही किया। वाल्मीकिजी ने अपने घर पर पहुँचकर माता-पिता, पत्नी और पुत्र से पूछा कि आपलोगों के भरण-पोषण करने में जो मुझे पाप-कर्म करना पड़ता है, उस कर्म के भागी आपलोग होंगे? परिवार के लोगों ने कहा कि हमलोग पाप-कर्म के भागी क्यों बनेंगे? आपका पाप आप जानिए। यह उत्तर सुनते ही उनके मन में चोट लगी और उनको ज्ञान हुआ। वे दौड़कर वापस आए और नारदजी के पैर पर गिर पड़े। नारदजी ने कहा कि ईश्वर-भजन करो। नारदजी ने भजन करने का यत्न बता दिया। वे ही वाल्मीकिजी भजन करके महाज्ञानी आदि कवि हो गए।

युधिष्ठिर के यज्ञ में एक नेवला गया। उसके शरीर का आधा भाग सोने-जैसा चमक रहा था। युधिष्ठिर के यज्ञ के पानी का नाला बह रहा था। उसमें उस नेवले ने गोता लगाया, लेकिन उसका शरीर जैसे-का-तैसा रहा। नेवले का जो आधा शरीर सोने-जैसा हो गया था, उसका कारण था कि एक उच्छवृत्ति के ब्राह्मण के यहाँ एक अतिथि ने भोजन किया था। भोजन के लिए वे सत्तू बनाए थे। अतिथि को ब्राह्मण ने अपना हिस्सा सत्तू दिया। उससे अतिथि का पेट नहीं भरा। तब ब्राह्मणी ने अपना हिस्सा भी सत्तू दिया। फिर भी अतिथि का पेट नहीं भरा। तब ब्राह्मण के पुत्र ने अपना हिस्सा सत्तू दिया। फिर भी कसर रह गई, तो ब्राह्मण की पतोहू (पुत्र वधू) ने भी अपना हिस्सा सत्तू दे दिया। अतिथि संतुष्ट हो गए। खाने के बाद जो अतिथि ने हाथ धोया था, उसी पानी में वह नेवला लोट-पोट हो गया था। उससे उसका आधा शरीर सोने का सा हो गया था। नेवले ने सोचा कि जब ब्राह्मण के सतुआ यज्ञ से मेरा आधा शरीर सोने का-सा हो गया, तो राजा युधिष्ठिर के यज्ञ के जल से मेरा सम्पूर्ण शरीर स्वर्णमय हो जाएगा। लेकिन वैसा नहीं हुआ। इसीलिए नेवले ने युधिष्ठिर को भरी सभा में कहा कि आपका यज्ञ सतुआ यज्ञ के बराबर नहीं हुआ।

युधिष्ठिर के यज्ञ में एक घण्टा लटका दिया गया था। यज्ञ पूर्ण होने पर वह घण्टा अपने आप ही बजनेवाला था। लेकिन उस यज्ञ में घंटा नहीं बजा था। देवता, ऋषि, मुनि—सभी भोजन कर गए थे। श्रीकृष्ण भगवान ने कहा कि काशी में एक डोम (श्वपच) हैं। वे बड़े भक्त हैं। उनको आदर से

बुलाकर लाओ और भोजन कराओ, तो घण्टा बजेगा। श्वपचजी आए और जैसे ही उन्होंने भोजन का ग्रास मुँह में लिया कि घण्टा टनाक से बज गया। राजा युधिष्ठिर का यज्ञ पूर्ण हो गया। यह किस्सा बताता है कि नीच वर्ण के लोगों में भी भक्त होते हैं। कबीर साहब कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन उनका वचन विद्यालय में निम्न वर्ग से लेकर एम०ए० तक पढ़ाया जाता है। रविदासजी चमार थे। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ब्राह्मण थे।

भगवान श्रीराम ने कहा था—'बड़े भाग मानुष तनु पावा।' मनुष्य-शरीर विषय में फँसने के लिए नहीं है। निर्विषय की ओर चलो। संसार-सागर को पार करने के लिए मनुष्य का शरीर नावरूप है। इसमें एक सद्गुरु की आवश्यकता है। ईश्वर की कृपा तो हई है। हमारा समाज अच्छा हो, राजनीति अच्छी हो, सदाचार अच्छा हो—इसके लिए अध्यात्म चाहिए। अध्यात्म-ज्ञान सत्संग से होता है। इसीलिए सत्संग की आवश्यकता है—

सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सोहाई।।

—रामचरितमानस

अर्थात् सत्संग पाकर दुष्ट आदमी इस तरह सुधर जाते हैं, जिस तरह पारस से कुधातु (लोहा) छूकर सुहावना—सोना हो जाता है।

इस कलिकाल में भगवान बुद्ध हुए, ढाई हजार वर्ष से कुछ अधिक ही हुए। उनके समय में एक ब्राह्मण पुत्र था। उसको गुरु ने दक्षिणा में एक हजार आदमियों को मारने के लिए कहा था। गुरु के मन में कुछ सन्देह हो गया था, इसलिए उसने ऐसी दक्षिणा माँगी थी कि जिससे अनेकों को यह मारेगा, तो इसको भी कोई मार देगा। इसीलिए वह ब्राह्मण पुत्र गुरु की आज्ञा से लोगों को मार-मारकर अंगुलियों की माला बना लेता था। इसीलिए उसका नाम ही अंगुलिमाल हो गया। उसके चलते लोगों में आतंक फैल गया, हाहाकार मच गया। सैकड़ों लोगों को उसने मारा। भगवान बुद्ध को जब यह सूचना मिली कि अंगुलिमाल नामक हत्यारा बड़ी निर्ममता से लोगों की हत्या कर रहा है, तो वे उसकी ओर चल पड़े। लोगों ने बहुत मना किया कि 'भगवन्! उस ओर मत जाएँ। अंगुलिमाल बहुत बड़ा हत्यारा है। वह आप पर भी प्रहार कर सकता है।' भगवान ने किसी की बात नहीं सुनी, सीधे अंगुलिमाल की ओर चलते रहे। जब अंगुलिमाल ने भगवान बुद्ध को अपनी ओर आते देखा, तो जोर से भगवान को कहने लगा—कौन हो, ठहरो! भगवान ने कहा कि मैं तो ठहरा हूँ, तुम ठहरो। भगवान बुद्ध धीरे-धीरे चल रहे थे और अंगुलिमाल तेजी से भगवान की ओर दौड़कर पकड़ना चाहता था, फिर भी वह नहीं पकड़ सकता था। वह दौड़ते रथ को पकड़ लेता था, दौड़ते घोड़े को पकड़ लेता था। जब वह थककर रुक गया, तो भगवान ने उसे स्पर्श करते हुए कहा—अरे! यह क्या करते हो? लोगों की निर्ममतापूर्वक क्यों हत्या कर रहे हो? भगवान का उसपर इतना प्रभाव पड़ा कि अपना हथियार फेंककर वह भगवान की चरणों पर गिर पड़ा। भगवान ने उसको समझाया, तो उसको अपने कर्मों से घृणा हुई और वह संन्यासी बन गया।

अच्छे संग से बुरे लोग भी अच्छे होते हैं, और बुरे संग से अच्छे लोग भी बुरे हो जाते हैं। इसीलिए सत्संग अवश्य करो। सत्संग से अच्छे लोगों का संग होता है। अच्छे लोगों का संग दुर्लभ होता है। इसलिए संतों की वाणी, सद्ग्रन्थों का पाठ करो। इसीलिए हमारे यहाँ ग्रंथों का पाठ होता है।

यह तो सभी जानते हैं कि कितनी भी ममता रखो, एक दिन ऐसा होगा कि सब रोते रह जायेंगे और तुम भी रोते हुए चले जाओगे। इसलिए ईश्वर भजन करो, सत्संग करो। n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मन्दिर, मनिहारी में दिनांक २८.५.१९६६ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२३९. शरीररूपी खेत में सत्संगरूपी फसल लगाते रहें

प्यारे लोगो!

यद्यपि लोग प्रत्यक्ष रूप में ईश्वर को नहीं देखते हैं, परन्तु विश्वास रखते हैं कि ईश्वर है। यह अन्धी-श्रद्धा मात्र नहीं है। विचार संग देता है, जो अन्धी-श्रद्धा नहीं रहने देता। विचार भी एक प्रकार का देखना है। इस संसार का आधार भी कुछ होना चाहिए। हम देखते हैं कि पृथ्वी पर जो कुछ है, सबका आधार है। बिना पृथ्वी के गाछ, जंगल, पहाड़ कुछ नहीं रह सकता। पृथ्वी के बिना उसका आधार कुछ रह नहीं सकता। पृथ्वी का भी आधार है। जैसे आप बहुत से तारों को निराधार देखते हैं। सभी तारे निराधार नहीं हैं। यह पृथ्वी भी एक तारा है। यह शून्य में है। पृथ्वी, चन्द्र, तारे का आधार सूर्य है। बिना सूर्य के ये नहीं रह सकते। सूर्य का भी आधार है।

जो सबका आधार है, वह परमात्मा है। सबका आधार कुछ नहीं है, यह मानने योग्य नहीं है। ज्ञानियों ने कहा है कि ईश्वर को तुम अपने से पाओगे। जैसे हमारी आँख खराब हो जाए, तो हम संसार की किसी चीज को नहीं देख सकते हैं। कोई चीज नहीं देखने के कारण संसार में कोई चीज नहीं है, यह बात नहीं। जिनको आँख है, वे देखते हैं। जिसके द्वारा हम ईश्वर को पायेंगे, वह है चेतन आत्मा। परमात्मा को हाथ से कोई पकड़ नहीं सकता। भीतर में मन-बुद्धि हैं। ये भी बाहर के पदार्थ पर आश्रित हैं। मन-बुद्धि भी ईश्वर को नहीं जान सकते। इनके परे चेतन आत्मा है। इसी से ईश्वर को जाना जाता है। इसी के कारण इन्द्रियों को ज्ञान है। उसका निजी काम ऐसा है कि मन, बुद्धि आदि को छोड़कर जो होता है, तब जो मिलता है, वह है ईश्वर। जो इस बात को नहीं जानते, वे इसी आँख से देखने, इसी हाथ से पकड़ने की चीज को ईश्वर मानते हैं। ऐसा विचार निश्चित कर लेने पर हम जानें कि उसको हम कैसे पावेंगे।

हमारा फँसाव संसार के पदार्थों में हो गया है। यह फँसाव छूटे, अपने तईं में रहें, तब ईश्वर को पहचानेंगे। अपने शरीर का ज्ञान सबको है, लेकिन अपने तईं का ज्ञान नहीं है। जैसे शरीर को चीन्हते हैं, वैसे ही अपने को चीन्हें—यह आवश्यक है। जबतक फँसाव नहीं छूटेगा, तबतक ईश्वर को नहीं जान सकते। जानना दो प्रकार का है—एक है परोक्ष और दूसरा है अपरोक्ष। श्रवणज्ञान और मननज्ञान—यह अप्रत्यक्ष-ज्ञान है। इसी को शास्त्रीय भाषा में परोक्ष ज्ञान कहते हैं। इससे पहचान तो नहीं होती, लेकिन निर्णय होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए क्या करो? इसी के लिए साधु, संत, महात्मा कहते हैं कि भक्ति का अवलम्बन करो। दूसरे कहते हैं कि योग का अवलम्बन करो। जहाँ योग है, वहाँ भक्ति है। जहाँ भक्ति है, वहाँ योग है। योग कहते हैं मिलाप को। भक्ति कहते हैं सेवा को। बिना सेवा के मिलाप नहीं। किसी की आवश्यकता पूरी करो, यह उसकी सेवा है। किसी को धन की आवश्यकता है, उसको धन दे दो, तो उसकी सेवा होगी। किसी का शरीर रुग्न हो गया, तो उसकी दवा-दारू करते हो, यह उसकी सेवा है।

ईश्वर को कोई आवश्यकता नहीं। उसकी क्या सेवा करोगे? लोग गंगा-सेवन करने आते हैं, गंगा को फूल चढ़ाते हैं। यह गंगा की सेवा है। पानी पीते हैं, टहलते हैं, अपने घर से गंगा तक आते हैं, यह गंगा की सेवा है। इसी तरह जिधर

चलकर ईश्वर मिलेंगे, उधर चलना ईश्वर की भक्ति है। गंगाजी का जल पाते हैं, वायु पाते हैं, इससे प्रत्यक्ष लाभ होता है। इसी तरह जो ईश्वर की ओर चलते हैं, वे प्रत्यक्ष लाभ पाते हैं। औषधि खाते हैं, तो औषधि-सेवन है। ईश्वर संबंधी जो अनुभूति होती है, यह ईश्वर-भक्ति की सूक्ष्म बात है। जिधर वे मिलें, उधर चलो। बाहर में इन्द्रियों के साथ रहेंगे। ईश्वर का ज्ञान इन्द्रियों के ज्ञान में रहने से नहीं होता। अन्दर चलिए, इन्द्रियों से छूटना होगा। आप अन्दर में चलकर, मन-बुद्धि से बढ़कर अपने ज्ञान में आ जायेंगे, तब ईश्वर का ज्ञान होगा। जैसे-जैसे अन्दर में बढ़ेंगे, वैसे-वैसे अनुभूति होती जाएगी और आपको शान्ति मिलती जाएगी। इसी को ब्रह्म-पीयूष कहते हैं।

ब्रह्म पीयूष मधुर शीतल, जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृग जल रूप विषय, कारण निशिवासर धावै।।

ब्रह्मपीयूष बाहर की वस्तु नहीं, अन्दर की है। जो कोई अपने को बहिर्मुख से अन्तर्मुख कर पाता है, उसी को ब्रह्मपीयूष मिलता है। यह अन्तर्मुख चलना ईश्वर की भक्ति है। इसी को योग कहते हैं। इस योग में बताया गया है कि बायीं और दायीं धार यानी इड़ा-पिंगला; इन दोनों के बीच में रहो, तो चलते-चलते चले जाओगे। यह शरीर खाने और मलमूत्र त्याग तथा भोग-विलास के लिए नहीं है। इस शरीर को तुम ठाकुरवाड़ी और शिवालय बना सकते हो और विलासमय भी। विलासी जीवन बन्धन का जीवन होगा और शिवालय तथा ठाकुरबाड़ी बनाने से ईश्वर की ओर जाओगे। इसका यत्न गुरु से जानो। घर-गृहस्थी में रहकर भी कर सकते हो और घर-गृहस्थी छोड़कर भी।

घर-गृहस्थी छोड़कर रहने की अपेक्षा घर-गृहस्थी में रहकर भजन करना अच्छा है। घर-द्वार छोड़ने से खाने की चिन्ता होगी। कहाँ जाओगे? घर-घर घूमोगे। खाने के लिए कष्ट होगा। संन्यास में भी और गृहस्थी में भी; दोनों तरहों से भजन करो। भजन तुरत ही समाप्त नहीं हो जाता। विद्या थोड़ा-थोड़ा पढ़ते-पढ़ते विद्वान होते हैं। विद्या का आरम्भ करो और उसको छोड़ दो, तो भूल जाओगे। गोया नष्ट हो जाएगी। लेकिन योग के बीज का नाश नहीं होगा। थोड़ा भी करोगे, भूल जाओगे, तब भी वह नष्ट नहीं होगा।

योग कोई भयावह चीज नहीं है। लोग कहते हैं—राम-राम भजो, हो गया। यह जपयोग है। यह भी ठीक है। यह आरम्भ की बात है। यह करने की मनाही कोई नहीं करता। इससे आगे भी जानिए और कीजिए। ईश्वर का ज्ञान इन्द्रियों में रखना भ्रम है। ईश्वर का ज्ञान इन्द्रियों से परे है। ईश्वर-स्वरूप का निर्णय होने पर ही ईश्वर के परोक्ष-ज्ञान का आरम्भ हो जाता है। लोग मोटी-मोटी बातों में उलझे हुए हैं। जहाँ मोटी-मोटी बात से काम चलता है, चलाओ, लेकिन ईश्वर को पाने के लिए, मोटी-मोटी बात से काम नहीं चल सकता। इसके लिए मन का संकल्प-विकल्प छुटाना होगा। संकल्प-विकल्प छुटा हुआ मन पवित्र होता है। संकल्प-विकल्प छूटे हुए मन में राग-द्वेष नहीं होता। संकल्प-विकल्पवाला मन राग-द्वेष उत्पन्न करता है। लोग ईश्वर-स्वरूप को जानें, मार्ग को जानें, अवलम्ब को जानें और साधना करके दर्शन करें। इससे अन्तस्साधना में प्रेरणा मिलेगा। जैसे खेत को जोतकर फसल बोते हैं और जबतक फसल न कटे, देख-रेख करते रहते हैं, इसी तरह शरीररूपी खेत में सत्संगरूपी फसल लगाते रहें, ऐसा करना चाहिए। सत्संग नहीं छोड़ना चाहिए। सत्संग और ध्यान करते रहो, कभी-न-कभी अपरोक्ष ज्ञान भी होगा। ■

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मन्दिर, मनिहारी में दिनांक २४.६.१९६६ ई० के अपराह्णकालीन सत्संग में हुआ था।

२४०. सेवाहीन होने से रंगने के स्थान पर भी नहीं रंगोगे

प्यारे लोगो!

कल्याणमय सुख सबको पसन्द है। सुख अकल्याणमय भी होता है, जिसको लोग जानते हैं। कल्याणमय सुख को सभी नहीं जानते, बहुत कम लोग जानते हैं। जो मन और इन्द्रियों को अच्छा लगता है, लोग उसी को सुख कहते हैं; किन्तु यह सुख कल्याणमय नहीं, अकल्याणमय है। कल्याण कहते हैं उस दशा को, जिसमें कभी कुछ भी आपदा नहीं होने पाए। शारीरिक रोग, मानसिक रोग और बाह्य संसार की परिस्थिति की उथल-पुथल में जो अच्छी नहीं लगनेवाली बात होती है, मन उससे दुःखित हो जाता है। लोग शारीरिक और मानसिक रोग से दुःखित होते हैं। संसार के सभी भोगों को कोई छोड़ दे, नहीं हो सकता है। लोग दो बातों को बहुत ऊँचा स्थान देते हैं—एक प्रतिष्ठा और दूसरा धन। प्रतिष्ठा के लिए धन कमाते हैं और प्रतिष्ठा के लिए जान को भी गँवाते हैं। मानसिक सुख और प्रतिष्ठा के लिए धन भी गँवाते हैं। धन को कुछ लोग आन्तरिक सुख के लिए और कुछ लोग बाहरी सुख के लिए भी गँवाते हैं; लेकिन आपदा छूटती नहीं। धन है तो उसको जोगने की चिन्ता रहती है, प्रतिष्ठा है, तो वह प्रतिष्ठा छूटने न पावे, ऐसा ख्याल रहता है। धन और प्रतिष्ठा में आपदा बनी रहती है। जहाँ आपदा है, वहाँ कल्याण नहीं। आपदा विघ्न-बाधा को कहते हैं। आपदावाले कल्याण को लोग जानते हैं। यथार्थ में कल्याणमय सुख को बहुत कम लोग जानते हैं। मन और इन्द्रियों के आगे भी कुछ है, बुद्धि से भी आगे कुछ है। वह तुम स्वयं हो। तुम न शरीर हो, न इन्द्रिय हो, न मन हो, न बुद्धि ही हो। तुम चेतन आत्मा हो। अकल्याणमय सुख चेतन आत्मा के साथ नहीं रहता। चेतन आत्मा का पद ऐसा है कि जिस पद के परे और कोई पद नहीं। उस पद से गिरना नहीं होता। उस पद पर पहुँचना दूसरे की निन्दा करने से नहीं होता, जैसा कि आजकल के लोग मिनिस्टरी में जाने वा मुखिया आदि बनने में करते हैं। वहाँ तो 'जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।' इस पद को पाने के लिए पैसे खर्च करने की जरूरत नहीं होती, केवल भजन करने की जरूरत होती है। उस पद पर जाने के लिए किसी सवारी की जरूरत नहीं होती। चलने में थकान नहीं होती। उस पद पर चलने के लिए जो जाता है, तो चलते-चलते आनन्द पाता है, थकान नहीं होती। अपना 'आपा' चीन्हते-चीन्हते चीन्हा जाता है। चीन्हने पर कहता है कि जो अपना 'आपा' है, वही परमात्मा है, अपने को आवरण के कारण भिन्न मान लिया था। जीवत्व दशा के कारण आवरण था। अब आवरण मिट गया, तो अपना और ईश्वर का भेद मिट गया—'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' हो गया। ब्रह्म को पहचाननेवाला ब्रह्म हो गया। वेदान्ती कहते हैं—'ब्रह्मज्ञानी आप परमेसुर' —गुरु नानकदेवजी ने कहा है। वहाँ कोई दूसरी चीज नहीं, जिसके अवलम्ब से सुखी हुआ जाए। वहाँ अपने ही 'आपा' में निरत होना होता है; नित्यानन्द, परमानन्द के सुख में रहना होता है। तब वह कल्याण होता है, जो मनुष्य चाहता है। माया-मण्डल में रहकर नहीं, माया-मण्डल से छूटकर ही उसको पाया जाता है। माया-मण्डल को कैसे पार किया जाए, इसी का पाठ अभी हुआ—वह शवरी की नवधा भक्ति है—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।

गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

शवरी के एक जन्म की कथा है कि वह खिखिरनी थी। दूसरे जन्म में राजा की रानी हुई और तीसरे जन्म में शवरी हुई। जैसे मकान की नींव होती है, उसी तरह भक्ति की नींव सत्संग है। इसमें साधु-संत लोग अपनी तरह की वार्ता चलाते हैं। वे ब्रह्म, माया, जीव, परमात्मा, बन्ध, मोक्ष आदि की वार्ता चलाते हैं; धन, प्रतिष्ठा की नहीं। सुकर्म, कुकर्म, त्याज्यकर्म, ग्राह्यकर्म का वर्णन करते हैं। ब्रह्म के निर्गुण-स्वरूप की वार्ता करते हैं। सत्संग से कल्याण और अकल्याण का ज्ञान होता है। ईश्वर-भजन का प्रेरण मिलता है, मन लगाकर सुनने से प्रेरणा मिलती है। मन लगाकर नहीं सुनने से प्रेरणा नहीं मिलती है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

नित प्रति दरसन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी काहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।
मन तो रमे संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

साधु-संग में जाकर भी मन कुछ-से-कुछ सोचे तो लाभ नहीं होगा। इसलिए मन एकाग्र करके कथा सुनो। प्रथम भक्ति संतों का संग करो और दूसरी भक्ति कथा-प्रसंग मन लगाकर सुनो। मन लगाकर सुनो तो काम हुआ, नहीं तो नहीं हुआ। लेकिन जो साधु के संग में नहीं जाता है, उससे वह अच्छा है जो साधु-संग में जाता है। कम-से-कम कभी-कभी तो वह सुनेगा। असल में मन लगाना सार है। कथा-प्रसंग में मन लगता है, तो कुछ करने की इच्छा होती हैं तब शिक्षा और दीक्षा की जरूरत होती है। उसको गुरु की आवश्यकता जान पड़ती है। खोजते-खोजते कहीं-न-कहीं मन के लायक श्रद्धास्पद मिल जाते हैं, तो वह गुरु धारण करता है और मान रहित होकर गुरु की सेवा करता है; यह तीसरी भक्ति है। गुरु-सेवा से ज्ञान होता है। सेवाहीन, ज्ञानहीन होता है। सेवाहीन होने से रंगने के स्थान पर भी नहीं रंगोगे। सेवा से रंगोगे। इसलिए गुरु की सेवा करो।

पहले से भी यह बात है कि प्रतिमा-पूजन बहुत जोरों से है। प्रतिमा-पूजन में अपने ईष्ट का भाव उस प्रतिमा में रखते हैं। नवधा भक्ति में प्रतिमा-पूजन का लेश मात्र भी संकेत नहीं है। संतों का संग और गुरु की सेवा करने को कहा। भगवान राम ने कहा—'**मो तें सन्त अधिक करि लेखा।**'

संत में ही कोई गुरु होते हैं। संत गृहस्थ वेश में भी हो सकते हैं और विरक्त वेश में भी। पहले भी ऐसे हुए हैं और आज भी संसार खाली नहीं है। वेश या रूप-रंग से कोई संत नहीं होता। आचरण से, सद्व्यवहार से, सुशीलता से संत पहचाने जाते हैं। संतों और गुरु की यह मर्यादा है कि वे कहीं ईश्वर से बढ़कर और कहीं ईश्वर के समान कहे गए हैं। गो० तुलसीदासजी महाराज ने लिखा है—

श्रीहरि गुरु पद कमल भजहिं, मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि, सुख निधान भगवान।।

यह संतोक्ति है। संतलोग ऐसा कहते हैं—

गुरु समरथ सिर पर खड़े, काह कमी तेहि दास।
ऋद्धि सिद्धी सेवा करें, मुक्ति न छोड़ै पास।।
गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।
गुरु हैं बड़े गोविन्द तें, मन में देखु बिचार।
हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार।।

'गुरु पारब्रह्म सदा नमसकारउ'—गुरु नानकदेव जी ने कहा है। गुरु की सेवा कह दी गयी। यही

प्रतिमा-पूजन हुआ। कहीं धातुमय, कहीं मृण्मय, कहीं मणि की प्रतिमा लोग बनाते हैं। बनाए हुए रूप का वे ध्यान करते हैं। वहाँ कोई धातु नहीं होती। गुरु के शरीर में हाड़, चाम और मांस है, लेकिन ध्यान करते समय हाड़, चाम और मांस कुछ नहीं रहता, तब मानस ध्यान होता है। दोनों तरह से एक ही घाट पर आते हैं। नवधा भक्ति में मूर्ति-पूजन नहीं है, ऐसा नहीं मानना चाहिए।

संथाल-परगना में एक आदमी मुझसे पूछने आए कि आप मूर्ति-पूजन मानते हैं वा नहीं? मैंने कहा—मानता भी हूँ और नहीं भी मानता हूँ। उन्होंने कहा—इसका खुलासा कीजिए। मैंने कहा—ध्यान करने के लिए मूर्ति-पूजन मानता हूँ, लेकिन मेला लगाकर आमदनी करने के लिए नहीं मानता हूँ। आजकल तमाम यही होता है कि मूर्ति बनाकर मेला लगाओ और आमदनी करो। मूर्ति पूजन किसलिए है? केवल मूर्ति-पूजन ही करते नहीं रह जाओ। मूर्ति-पूजन करके मन ठहराओ, फिर इसके आगे बढ़ने का काम करो। जिस जमीन पर कोई गिरता है, उसी का सहारा लेकर वह उठता है। स्थूल माया में हम गिरे हुए हैं, इससे उठने के लिए स्थूल सहारा लेना होगा। मूर्ति-पूजन स्थूल सहारा है। जैसे पक्षी या वायुयान पहले कुछ दूर तक धरती पर चलकर फिर ऊपर उड़ता है, उसी तरह मूर्ति का अवलम्ब लो, फिर आगे बढ़ो।

चौथी भक्ति कीर्तन—यशगान है। यशगान भी मन लगाकर करना, पाखण्डी बनकर नहीं। हमारे यशगान में लोग हमको भक्त समझें, ऐसा ख्याल करके यशगान करना पाखण्ड है। गुरु से पाए हुए मंत्र का जपो, यह पांचवीं भक्ति है। वह मंत्र होता है ईश्वर के अनेक नामों में से एक नाम को जपो। मन कहीं, जप कहीं, ऐसा नहीं। मन लगाकर जपो। सभी भक्तियों का एक दूसरे से सम्बन्ध है। इसी प्रकार पांच भक्ति तक करने से मन लगाने की शक्ति होती है।

छठी भक्ति में दमशीलता होना होता है। बहुत से कर्मों से हट जाना और सदा सज्जनों के धर्म में लवलीन रहना। सज्जनों का धर्म होता है—झूठ नहीं बोलने का, व्यभिचार नहीं करने का, मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करने का, हिंसा नहीं करने का। मनुस्मृति में आठ हिंसकों का वर्णन है—१.आदेश देनेवाला, २. मारनेवाला, ३.टुकड़ा करनेवाला, ४. बेचनेवाला, ५. खरीदनेवाला, ६. पकानेवाला, ७. परोसनेवाला और ८. खानेवाला। सज्जन चोरी नहीं करते, किसी की नजर बचाकर या किसी को लूटकर सज्जन नहीं लेते। जो पंच पापों को नहीं करते, वे सज्जन हैं। वे इन्द्रियों को वश में करने के स्वभाव वाले होते हैं। लोग विचार द्वारा मन को रोकते हैं, लेकिन फिर भी गिरते हैं। मन के सूत से इन्द्रियाँ विषयों को पकड़ती हैं। मन के सूत बाह्य इन्द्रियों से हट जाते हैं, तो बाह्य विषयों को इन्द्रियाँ नहीं लेतीं। इसके लिए जाग्रत और स्वप्नावस्था पर विचार करके जानिए। जाग्रत से स्वप्न में जाने के बीच में एक अवस्था होती है तन्द्रा। उस समय मालूम होता है कि शरीर के अन्दर-अन्दर सिमटाव हो रहा है। बाहर का कुछ ज्ञान रहता है, कुछ जाता है। फिर स्वप्न होता है। भीतर की ओर सिमटाव होने से बाहर की इन्द्रियों का सूत सिमट गया, इन्द्रियाँ विषयों में नहीं जाती। यही दीक्षा है। यह दृष्टियोग से होता है।

मन की पूरी एकाग्रता दृष्टियोग के बिना सुगमतापूर्वक नहीं होती। प्राणायाम से भी लोग एकाग्रता करते हैं, लेकिन यह कठिन है। जो कठिनाई में पड़ना नहीं चाहता, वह ध्यानयोग के द्वारा एकाग्र करे। गीता के छठे अध्याय में ध्यान-योग है। ध्यान-योग में कहीं प्राणायाम का वर्णन नहीं है। सरलतापूर्वक दृष्टिसाधन करो। देखने की

शक्ति को दृष्टि कहते हैं, आँख और उसकी पुतली को नहीं। दृष्टि को कहाँ लगाओ, इसका यत्न गुरु बतलाते हैं। अन्दर होने पर चैन मालूम होता है और उसमें मन आसक्त हो जाता है। जिसको विशेष पदार्थ मिले, वह सामान्य पदार्थ लेने क्यों जाएगा!

ईश्वर इस आँख से देखा नहीं जाता, केवल आत्मा से जानने योग्य है। साधक ध्यानयोग से माया के एक-एक आवरण को पार करता है,तब अपने से ही ईश्वर को पाता है। वहाँ हाथ, पैर, नाक, कान, मुख आदि कुछ नहीं है।

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सो आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

यह ऊँची श्रेणी की भक्ति है। नीची सीढ़ी पर भी चढ़ो और ऊँची सीढ़ी पर भी। इसलिए मंत्र जप भी करो, मूर्ति पूजन भी करो और दृष्टिसाधन भी करो। जो साधक बाहर के भोगों से सिमटकर भीतर गया, उसको भीतर में क्या मिला? बाहर में प्रकाश के बिना तुम नहीं रह सकते, उसी तरह भीतर में भी प्रकाश है। ईश्वर सर्वव्यापी होने के कारण, तुम्हारे अन्दर जो प्रकाश है, उसमें भी वह व्यापक है। उस प्रकाश को जो पाता है, उसको बड़ा रस मिलता है। जो इस सूक्ष्म बात को नहीं जानता, वह कहता है कि यह तो योग है। लेकिन यह समझो कि बिना योग के भक्ति नहीं होती और बिना भक्ति के योग नहीं होता। योगशास्त्र में 'शम-दम' का बहुत महत्त्व है। 'दम' के साथ भी मनोनिग्रह होता है। दृष्टियोग में सूक्ष्म माया है। इसको गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस तरह लिखा है—

रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावई जाई ।।
होई बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी।।

इसके बाद सातवीं भक्ति 'शम' का साधन है। यह 'शम' नादानुसंधान से होता है। संसार में कोई स्थान बिना शब्द के नहीं है। बाहर संसार में तमाम रगड़ है—वायु संचार में रगड़ है,सूर्यकिरण में रगड़ है। रगड़ से ध्वनि होती है। भारी ठेस से भारी आवाज होती है। बिना कम्प के कोई स्थान खाली नहीं है। सारा स्थान कम्पनमय है। कम्प में ध्वनि है। जो अन्तर्ध्वनि का साधन करते हैं, वे नामभजन करते हैं। यही ईश्वर का असली नाम है। इसी से पूर्णमनोनिग्रह होता है।

'न नाद सदृशो लयः।' शिवजी ने मनोलय के सवा लाख साधनों में नादानुसंधान को श्रेष्ठ बतलाया गया है। 'शम' से 'सम' होता है। समता में ही स्थितप्रज्ञ होता है। समता समाधि साधन से होती है। लोग इसलिए गिर-गिर जाते हैं कि केवल कर्मयोग करते हैं, ध्यानयोग नहीं। 'शम' के साधन में नादानुसंधान को अवश्य लेना चाहिए, तभी अपनी आत्मा के समान दूसरे को देखेगा।

आठवीं और नौवीं भक्ति में यथा लाभ संतोष, सरलता, छलहीनता आदि सद्गुण आ जायेंगे।

मोटी बात और महीन बात—दोनों को रखो। मोटी उपासना पैर के समान और सूक्ष्म उपासना सिर के समान है। पैर भी रखो और सिर को भी रखो। 'सिर' कहने का मतलब निर्गुण से है और 'पैर' का मतलब स्थूल सगुण रूप से है। इसी भक्ति का प्रचार हमारे सत्संग से होता है। यह ज्ञान आज छिप सा गया है। आज भारत में ४० करोड़ लोग हैं, उनमें से एक करोड़ भी इस बात को जानते हैं कि नहीं—कहा नहीं जा सकता। n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मन्दिर, मनिहारी में दिनांक १८. ६. १९६६ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२४१. बहिर्मुख सुख में दुःख लगा हुआ है

प्यारे लोगो!

आप जब निद्राह नींद में सो जाते हैं, तो उस समय कुछ भी खबर नहीं रहती है। आप नहीं जान पाते कि आप कहाँ हैं, परन्तु जब जग जाते हैं,तो सचेतता आती है और आप संसार की खबर पाने लगते हैं, अपने तईं में अपने शरीर को देखते हैं। अपने को नहीं जानते हैं। अपने तईं की खबर भी करनी चाहिए।

आप देखते हैं कि गाँव-गाँव में, घर-घर में मृत्यु होती है। यह अशुभ होने पर भी होती ही है। यह आप देखते हैं। आप अपने लिए सोचेंगे, तो विश्वास होगा कि आपका भी शरीर छूटेगा। मृत्यु के बाद घर-घर में श्राद्ध-क्रिया होती है। श्राद्ध-क्रिया में विश्वास है कि शरीर छूट गया है, इसको जला देते हैं, लेकिन शरीर में जो था, वह कहीं चला गया। जो चला गया, वह क्या था? वह वही था, जिसको अपने तईं कहते थे।

शरीर में रहनेवाला कोई एक ही चीज नहीं है। इस मोटे शरीर को जो कोई छोड़ता है, वह सूक्ष्म शरीर के साथ रहता है। उसके अन्दर कारण शरीर है, उसके अन्दर महाकारण शरीर है। इस स्थूल शरीर के सहित चार जड़ शरीर हैं। जड़ अर्थात् ज्ञानशून्य। इसमें ज्ञानमय पदार्थ को चेतन आत्मा कहते हैं। जो लोग सत्यवान और सावित्री की कथा को पढ़ते हैं, वा उसका नाटक वा सिनेमा देखते हैं, तो उनको यह बात मालूम होती है कि जब सत्यवान के स्थूल शरीर से यमराज ने सूक्ष्म शरीर को निकाल लिया, तो वह स्थूल शरीर मर गया और उसमें सूक्ष्म शरीर दे दिया, तो वह जीवित हो गया।

इस कथा में बताया गया है कि जो पुण्यवती स्त्री होती है, उसको पुण्यवान पति मिलते हैं। सावित्री के पातिव्रत्य धर्म के पालन के कारण सत्यवान जीवित हुआ, उसका राज्य लौटा। सत्यवान पुण्यवान था, इसलिए उसको इस तरह की पुण्यवती स्त्री मिली। पुण्यवान और पुण्यवती वे होते हैं, जो झूठ नहीं बोलते, चोरी नहीं करते, मादक द्रव्य का सेवन नहीं करते, हिंसा नहीं करते अर्थात् मांस-मछली आदि नहीं खाते और व्यभिचार नहीं करते।

यदि पंच पापों को नहीं करो, तो पुण्यवान होओगे। लोगों को पुण्यवान होना चाहिए। स्त्रियों को सावित्री की तरह और पुरुषों को सत्यवान की तरह होना चाहिए। साथ-ही-साथ यह भी सीखना चाहिए कि जीवात्मा लिंग शरीर के साथ निकलता है, केवल जीवात्मा नहीं निकलता। चेतन आत्मा चार जड़ शरीरों के साथ है। चेतन आत्मा के नहीं रहने से यह शरीर किसी काम का नहीं रहता।

हमलोग अभी अपने स्वरूप में नहीं हैं। चेतन आत्मा ज्ञानमय पदार्थ है और चार जड़ शरीर हैं, अज्ञानमय हैं। संघ में नहीं रहकर अकेले रहेंगे, तो क्या होता है, लोग इसको नहीं जानते। संघ में रहकर कुछ बनकर रहो।

कलिकाल में अशोक बहुत बड़ा सम्राट था। अंग्रेज बहुत बड़ा राजा था। भारत से बाहर भी उसका राज्य था। लेकिन धन चिन्ता-ही-चिन्ता देता है। धन नहीं रहे तो चिन्ता, धन रहे तो उसकी रक्षा के लिए चिन्ता। जहां चिन्ता है, वहाँ दुःख है। कितना भी संसार सुख पाओ, दुःख होगा ही। मन कहता है कि चिन्ता नहीं रहे, दुःख कभी पास नहीं आवे। ऐसा सुख

हो कि जिसमें उकताना नहीं हो, जो कभी छूटे नहीं, लेकिन संघ में रहने से ऐसा नहीं होता।

संतों ने कहा कि अकेले होकर रहो। यही कैवल्य दशा है। अपने को चारो जड़ शरीरों से भिन्न करके रखो, अकेलेपन की अवस्था आएगी। संतों ने इसके लिए कोशिश की और जिनको सुख मिला, उन्होंने कहा—उस सुख में कोई चिन्ता नहीं। कहावत है—'जैसा संग, वैसा रंग।'

ईश्वर ऐसा है कि वह ईश्वर—परमात्मा अकेले रहनेवाला है। लोग कहते हैं कि वह भी माया प्रकृति के साथ है। कितनी भी बड़ी प्रकृति वा माया हो, वह उसको ढँक नहीं सकती, और कह दिया कि वह ऐसा है कि—

जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।।

उसके लिए कुछ भी कहो, पूरा-पूरा कहा नहीं जा सकता। प्रकृति के तत्त्वों से भी वह पूर्ण ढँका नहीं है। वह अकेलेपन की अवस्था में है। तुम उसको पकड़ो, वैसे ही हो जाओगे।

जो ईश्वर तक पहुँचता है, वह कैवल्य-स्वरूप हो जाता है। परमात्म-प्राप्ति का सुख मन-इन्द्रियोंवाला नहीं है। मन-इन्द्रियों का सुख संसार में मिलता है। अपने तईं का सुख अपने स्वरूप में रहने से होता है। आप बाहर की चीजों को लेकर उसमें सुख पाते हैं, लेकिन गहरी नींद में आप सुख से सोते हैं, यह बाहर की बात नहीं, भीतर की बात है। इसमें बाहर की कोई चीज नहीं रहती, फिर भी सुख से रहते हैं। हमलोगों को विषयानन्द मिलता है, यह क्षणिक है। अपने आपमें रहो, यह नित्यानंद है, आत्मानन्द है।

इसके लिए ईश्वर की भक्ति करो। भक्ति का अर्थ है सेवा। किसी की जरूरत पूरी करो,यह उसकी भक्ति है—सेवा है। अन्दर-अन्दर चलो, जहाँ ईश्वर-दर्शन होंगे। ओर दो हैं—एक बाहर और दूसरा अन्दर। माया बाहर में है। माया को छोड़ने के लिए अन्दर चलो। पहले मन के साथ चलना होता है, शरीर उस पर नहीं चलता। पहले मन के साथ चलो। चलते-चलते मन का संग छूट जाएगा और कैवल्य दशा हो जाएगी।

जो जहाँ बैठा रहता है, वहीं से उसका रास्ता आरम्भ होता है। इस शरीर में जीव की जहाँ बैठक है, वहाँ से चलो। अच्छे-अच्छे ग्रंथों को पढ़कर लोग जानते हैं कि जाग्रत में जीव का वासा आँख में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीय में मूर्द्धा में होता है।

जाग्रत में आँख में नहीं रहने से बाहर का दृश्य देखा नहीं जा सकता। बिना स्वर के व्यञ्जन बोला नहीं जाता। स्वर का स्थान कण्ठ है। उसके नीचे हृदय का स्थान है, वहाँ द्वादश-कमल है। यहाँ शब्द है, लेकिन हम बोल नहीं सकते। आँख के स्थान से चलो। वे धन्य थे, जिन्होंने इन बातों को सोचकर निकाला।

हमलोगों ने सोचा नहीं है। उनलोगों के सोचे हुए को हमलोग पकड़ते हैं। उनके बासी को हमलोग ग्रहण करते हैं, लेकिन यह बासी त्याज्य भी नहीं है। मन के बाद केवल चेतन आत्मा चलती है। यही ईश्वर को पाती है। 'त्रैवर्ग पर' इसी को कहा गया है। इसी के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'त्रैवर्ग पर परमपद प्राप्य' कहा है। घर में रहकर यह काम हो सकता है। चाहे बाल-बच्चों के साथ रहकर भी यह काम कर सकते हो और छोड़कर भी। गाछ के नीचे बैठकर भी कर सकते हो। बहिर्मुख सुख में दुःख लगा हुआ है। अन्तर्मुख बनने से ईश्वर दर्शन होगा। बहिर्मुख होने से दर्शन नहीं होगा।

मनु-शतरूपा ने कठोर तपस्या की। शरीर छूटने के बाद विशाल स्वर्ग-सुख भोगकर उन्होंने

साकेत—अयोध्या में राजा दशरथ और रानी कौशल्या होकर जन्म लिया। पुत्ररूप में भगवान श्रीराम का अवतार उनके यहाँ हुआ। इतना सब कुछ होने के बावजूद बाहरी दर्शन के कारण माया का खेल नहीं छूटा। गोस्वामी तुलसीदासजी जैसे रामभक्त को भी सत्य को व्यक्त करने के लिए लिखना पड़ा—

सुरपति बसइ बाँहुँबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई।।
सूल कुलिस असि अंगवनिहारे। ते रति नाथ सुमन सर मारे।।

ऐसी तपी और वरदान पानेवाले भी काम से नहीं बच सके। मतलब यह कि बाहर के दर्शन से काम, क्रोध, मोह आदि से नहीं बच सकते।

बच कौन सकते हैं? जो अपने अन्दर-अन्दर चलते हैं ईश्वर-दर्शन के लिए। श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है कि बिना ईश्वर-दर्शन के विषय का रस नहीं छूट सकता। अन्दर-अन्दर चलने के लिए आँख के स्थान से चलो। यह दृष्टियोग की क्रिया है। दृष्टियोग से वह डोरी पकड़ी जाती है, जो ईश्वर से मिलाती है। वह डोरी है शब्द की। यह ईश्वर शब्द तक लगा हुआ है। जैसे कोई कुएँ में गिर पड़ा है, तो उसको ऊपर से डोरी दीजिए, उसको पकड़कर वह ऊपर चला आएगा। उसी तरह शब्द की डोरी पकड़कर ईश्वर तक जाना होता है।

शब्द से सृष्टि हुई है। जिस शब्द से जो बनता है, वह शब्द उसके कण-कण में व्यापक होता है। सृष्टि के निमित्त ईश्वर से जो शब्द हुआ, वह शब्द सृष्टि के कण-कण में व्यापक है। शरीर में पाँच मण्डल और संसार में भी पाँच मण्डल हैं। कोई भी मण्डल तबतक नहीं बनता, जबतक उसके केन्द्र से धारा प्रवाहित नहीं हो। प्रत्येक मण्डल के केन्द्र से शब्द की धारा प्रवाहित होती है। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है, नीचे का शब्द ऊपर दूर तक नहीं जाता। शब्द में अपने उद्गम स्थान तक खींचने का गुण है।

एक शब्द के केन्द्र से दूसरे केन्द्र पर पहुँचना होता है और शब्द के सहारे चलते-चलते अन्त में आदिनाद की पहचान होती है। जो उसको पकड़ता है, उसके लिए संत कबीर साहब ने कहा है—

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।

वह शब्द सर्वव्यापक है, इसलिए उसका नाम राम है। कल्याणकारी शब्द है, इसलिए उसका नाम है 'शिव'। आदिनाद ही रामनाम है, शिवनाम है, शक्ति शब्द है, आदि। शब्द के अतिरिक्त और कोई रास्ता ईश्वर तक पहुँचने के लिए मानने योग्य नहीं है। शिवजी से विशेष योग के जानकार और कोई हुए, भारत में माना नहीं जाता। उन्होंने सवा लाख साधन बताए और उन सबमें नादानुसन्धान को श्रेष्ठ बतलाया।

इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग है, यदि ऐसा कोई कहे कि हमारे गुरु ने ऐसा बताया है, तो मानने योग्य नहीं है। पहले दृष्टियोग का सहारा लो, फिर नादानुसन्धान का। यही ईश्वर-भक्ति है। ईश्वर की भक्ति में ईश्वर स्वरूप को ठीक-ठीक जाना जाय, अपने स्वरूप को जाना जाय। अपने दुःख को जाना जाय, अपने सुख को जाना जाय। विषयों की आसक्ति छूटे, इन सब बातों की जानकारी के लिए सत्संग है। पंच पापों से बचते रहना चाहिए और ईश्वर का भजन करना चाहिए। यह संतमत का सत्संग मन्दिर है। जिन्होंने बनवाया है, बड़े पुण्य का काम किया है। सब कोई मिल जुलकर सत्संग करते रहिए। n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत नवाबगंज, मनिहारी में दिनांक २१.६.१९६६ ई० के संतमत सत्संग मन्दिर के उद्घाटन के अवसर पर हुआ था।

२४२. सदाचार का पालन ही चमत्कार है

प्यारे धार्मिक सज्जनवृन्द!

किसी काम को उसका फल सोचे बिना नहीं करना चाहिए। जिस काम को करना हो, उसके बारे में पहले सोच लेना चाहिए। यदि उससे हमको लाभ होगा, ऐसा जानने में आवे, तौभी खूब सोच समझकर कीजिए। यदि निर्णय हो कि इससे हानि होगी, तो उसका इरादा भी नहीं कीजिए, छोड़ दीजिए।

हमलोग सत्संग कर रहे हैं, इसी काम में लग रहे हैं। हमलोगों का सत्संग दैनिक, साप्ताहिक और वार्षिक होता है। जिला वार्षिक और अखिल भारतीय वार्षिक सत्संग भी होता है। कभी-कभी अखिल भारतीय विशेषाधिवेशन सत्संग भी होता है। सत्संग से लाभ होगा, इसीलिए हमलोग सत्संग करते हैं।

मनुष्य क्या पाकर अपने को लाभान्वित हुआ समझता है? उन वस्तुओं का निर्णय होना चाहिए। ज्ञान हो, ज्ञान हमारा बढ़े, यह बड़ा लाभ है। ज्ञान के ऐसा पवित्र और कुछ संसार में नहीं है। संसार में यश बढ़े, यह भी लाभ है। शरीर छूटने पर शुभगति हो—ऊँचे दर्जे को जाया जाय, या मोक्ष हो, यह भी लाभ है। ऐश्वर्य लाभ हो, संसार में यह भी लाभ है। ऐश्वर्य में धन भी है, प्रतिष्ठा भी है और मेरे कहने को लोग मानें, यह भी है। अपने में भलपन होना यह भी लाभ है। तुलसीदासजी ने इसी को—

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ।।

ये पाँचों मिले, तब लाभ है। ये पाँचों किसी एक ही में हो, ऐसा पदार्थ कोई पाए हों, तो वे कितने खुश होंगे? संसार में यही पदार्थ लें। इसमें परलोक और संसार दोनों बनते हैं। यह लाभ सत्संग से होता है। यही मानकर हमलोग सत्संग करने में बहुत जोर देते हैं कि इन पांचों को पा सकें।

शीलता और मोक्ष, ये दोनों सबसे विशेष काम के हैं। जहाँ ये दोनों होते हैं, वहाँ वे बचे हुए तीन आप ही आ जाते हैं। इसलिए शीलता और मोक्ष पाने का यत्न करें।

शीलता का पालन मनुष्य सदाचार के पालन से कर सकता है और मोक्ष ईश्वर-भजन से पा सकता है। सत् आचार को सदाचार कहते हैं। वे सदाचार क्या हैं? झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पाँचों पापों का त्याग करना। इन पाँचों पापों को आहिस्ते-आहिस्ते छोड़ देना चाहिए। सदा इच्छुक रहना चाहिए कि इनको छोड़ दें। जो इन पाँचों पापों से बचते हैं, उनमें शीलता आती है। जो नहीं बचते हैं, उनमें शीलता नहीं आती। शीलता प्राप्त करना बहुत बड़ी बात है।

इन्द्र का राज्य हिरण्यकशिपु ने ले लिया था। वह चिन्तित होकर गुरु बृहस्पति के पास गए और बोले कि मुझे उपदेश दीजिए, जिससे मेरा दुःख दूर हो। बृहस्पति ने अध्यात्म-ज्ञान का उपदेश देते हुए कहा—श्रेय और प्रेय दो पदार्थ संसार में हैं। जिसके संग से विषयों में लगे, वह प्रेय है। इससे विशेष श्रेय है। इन्द्र ने कहा—मुझे श्रेय नहीं, प्रेय का उपदेश दीजिए। बृहस्पति ने कहा—शुक्राचार्य के पास जाओ। शुक्राचार्य के पास जाने पर वे भी अध्यात्म-ज्ञान कहने लगे। इन्द्र का उसमें मन नहीं लगता था। शुक्राचार्य ने कहा—मैं समझ गया। तुम्हारा राज्य हिरण्यकशिपु ने ले लिया है, इस हेतु तुम चिन्तित हो। तुम प्रह्लाद के दरबार में जाओ और उनको

प्रसन्न करो। जब वे प्रसन्न होकर वर माँगने कहें, तो तुम उनसे कहना कि आप में जो शीलता है, वह मुझे दीजिए। शुक्राचार्य के कहे अनुकूल वह प्रह्लाद के दरबार में ब्राह्मण वेष में रहने लगे और उनकी सेवा करने लगे। एक दिन प्रसन्न होकर प्रह्लाद ने वर माँगने कहा। इन्द्र ने कहा—आप अपनी शीलता मुझे दीजिए। प्रह्लाद हँसने लगे। उन्होंने कहा कि मैं पहचान गया, आप इन्द्र हैं, आप अपना राज्य ले लीजिए।

इससे शीलता की विशेषता जानी जाती है। शीलता हमलोगों को भी चाहिए। सत्संग के द्वारा यह शीलता आती है। शीलता में बहुत गुण हैं। शीलता में सदाचार का और ईश्वर-भक्ति का अवलम्ब है। कोई सदाचार का पालन करना चाहे और ईश्वर-भक्ति नहीं करे, तो बिना ईश्वर-भक्ति के अवलम्ब के सदाचार का पालन नहीं कर सकता।

एक साधु ने मुझसे कहा था—बिना चमत्कार के नमस्कार नहीं। मैंने पूछा—महाराज! चमत्कार क्या? वे चुप रहे। मैंने कहा कि चमत्कार यही है कि सदाचार का पालन हो। वे चले गए। सदाचार के पालन में मजबूत होना, सरल नहीं है और जो मजबूत है, वह छिपता नहीं।

ईश्वर-भक्ति के बिना ईश्वर की सहायता नहीं मिलती और बिना ईश्वर की सहायता के सत्य पर प्रतिष्ठित रहना बड़ा दुष्कर है। यह बहुत कठिन साधन है। धीरे-धीरे लोग इसमें पूरे होते हैं। भक्ति साधन में सदाचार-पालन आवश्यक है। सत्संग के द्वारा ये बातें जानी जाती हैं। इसलिए सत्संग की बड़ी आवश्यकता है।

सत्संग से दुष्ट कर्म बहुत छूट जाते हैं। इस तरह के अधिक लोग हो जायेंगे, तो झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार, ठगी, बेईमानी आदि दुष्टकर्म नष्ट हो जाएँगे। यह सीखना होगा, सत्संग में। सत्संग में दो तरहों से ज्ञान मिलता है। एक ग्रन्थ पाठ से, दूसरा प्रवचन से। यदि कोई सदाचारी हैं, तो उनको देखकर दूसरे भी सदाचार-पालन में लगते हैं। सदाचार को केवल वाक्य-ही-वाक्य में नहीं रखें, उसको चरितार्थ भी करें। सत्संग में 'मति कीरति गति भूति भलाई।' ये पाँचों पदार्थ मिलते हैं। सदाचार के लिए ईश्वर-भक्ति का अवलम्ब होना चाहिए। ईश्वर का उपकार हमको जानना चाहिए। ईश्वर के उपकार को नहीं मानना कृतज्ञता को नाश कर देता है। ईश्वर की ओर से बहुत लाभ है। ईश्वर की कृपा से ही हम श्वास ले पाते हैं। ईश्वर की ओर अपना मन लगाना चाहिए। उनकी स्तुति से उनका यशगान करें।

ईश्वर-भक्ति में उपासना, प्रार्थना और स्तुति अवश्य होती है। हमलोग नित्यप्रति स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते हैं। आध्यात्मिक लाभ के लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। उनको पाने के लिए मानस जप, मानस ध्यान, दृष्टि-साधन और नादानुसन्धान करना चाहिए।

ईश्वर का ज्ञान हमको नहीं मिलता, यदि संत नहीं होते। बिना गुरु के ईश्वर-प्राप्ति का यत्न नहीं मिलता। इसलिए वे संत और गुरु हमारे बड़े उपकारी हैं। हम उनके कृतज्ञ हों। हमें उनकी भी स्तुति करनी चाहिए। जो लोग कहते हैं कि प्रार्थना, स्तुति में समय लगाना, समय को बर्बाद करना है, वे भूल में है। ईसाई, इसलाम, वैदिक, सिक्ख; सब धर्मों में स्तुति और प्रार्थना है। धर्म की परिभाषा और सिद्धान्त को नहीं जानना, बहुत गलती बात है। हमलोग सत्संग नित्य करते हैं और स्तुति-प्रार्थना भी करते हैं। धर्म का सिद्धान्त और धर्म की परिभाषा भी जानो। लोग तुम्हें भरमा देंगे, यदि तुम धर्म का सिद्धान्त और उसकी परिभाषा का पाठ नहीं करोगे।

कुछ लोग केवल कुछ साधन बताते हैं और

ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना आदि की मनाही करते हैं, उनसे बचो। मनुष्य कर्म करता है, कौशलयुक्त कर्म करना चाहिए। बिना कर्म किए कोई रह नहीं सकता और कर्म का फल बन्धन है। बन्ध-दशा से छूटकर मुक्त दशा में हम रहें। मुक्त दशा की ओर जाने के लिए सांसारिक सुख को तुच्छ जानकर अनासक्त रहना चाहिए। सांसारिक इच्छा मोक्ष का बाधक है। इसलिए कौशल से कर्म करो। श्रीमद्-भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है— आत्म-निष्ठ होकर कर्म करो। इसलिए क्या करना होगा? अपने को अपने अन्दर रखो। मन बाहर- बाहर भागता है। उसको रोकने का यत्न करो। अपना निशाना अपने अन्दर रखकर अपने उसपर लगे रहना; यहाँ से आत्मरत होने का आरम्भ होता है। चलते-फिरते, उठते-बैठते इसका ख्याल रखे, तब आत्मरत होना होगा। तब वह कर्म बन्धनदायक नहीं होगा।

वह पद बहुत ऊँचा है, जहाँ कोई संसार नहीं, कोई शरीर नहीं। वहाँ पहुँचने पर दैहिक, दैविक, भौतिक; तीनों तापों से छूट जाओगे। सदा का मोक्ष प्राप्त कर लोगे। दुःख में फिर नहीं आओगे। ■

यह प्रवचन सहर्षा जिला संतमत सत्संग के वार्षिक अधिवेशन, वीरपुर में दिनांक २६. ६. १९६६ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२४३. नाम-भजन की साधना प्रधान है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

ईश्वर की भक्ति में नाम-भजन की साधना प्रधान है। नाम-भजन नहीं तो ईश्वर का भजन नहीं। 'नाम' शब्द को कहते हैं। जिस शब्द से किसी की पहचान हो, वह शब्द उसका नाम है। यह बहुत समझाने की बात नहीं है, खुलासा है। शब्द भी दो प्रकार के होते हैं—एक शब्द जो हमलोग इस धरातल पर, इस वायुमण्डल में, इस संसार में बोलते हैं और सुनते हैं। यह अनित्य शब्द है।

ईश्वर के नाम के विषय में अच्छी जानकारी होनी चाहिए। शब्द ही नाम है। इसलिए शब्द के विषय में ठीक-ठीक जानना चाहिए। शब्द दो तरह के होते हैं—नित्य और अनित्य। इस भूमण्डल पर, आकाश मण्डल में जो शब्द सुनते हैं, वह अनित्य शब्द है। इसको आकाश का गुण कहते हैं। बिना आकाश के यह शब्द नहीं हो सकता, लेकिन स्थूल आकाश जबतक है, तबतक इसके अन्दर के शब्द विद्यमान रहते हैं। आज के वैज्ञानिकों का ख्याल है कि जो शब्द पहले हो चुके हैं, उनको पकड़ा जाय; क्योंकि वे सभी शब्द आकाश में मौजूद हैं। यह शब्द नित्य है, लेकिन हमलोग इसको नित्य नहीं मानते। यह जड़ात्मक शब्द है, जड़ आकाश से बना है, जबतक यह आकाश है, तबतक वह शब्द है। इस आकाश के प्रलय होने पर वह शब्द भी नहीं रहेगा। इसलिए उसको अनित्य शब्द कहते हैं। ये मायावी शब्द हैं। इन शब्दों से ईश्वर के गुण प्रकट होते हैं। इनसे ईश्वर की महिमा जानते हैं और उस ओर हमारी वृत्ति होती है। इसलिए महात्माओं ने शब्द का जप बताया है। इसको वर्णात्मक शब्द कहते हैं। केवल वर्णात्मक शब्द है, ऐसा नहीं, ध्वन्यात्मक नाम भी है। ध्वन्यात्मक इसको इसलिए कहते हैं कि इसको लिख नहीं सकते। जो नाम कभी नाश नहीं हो, सो यह नहीं है। इसको सगुण शब्द भी कहते हैं। इसमें रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण; तीनों मिले हुए हैं। वर्णात्मक भी सगुण और ध्वन्यात्मक भी सगुण है, जो बाजे

यह प्रवचन नालन्दा जिलान्तर्गत पालि इंस्टिच्यूट नव विहार नालन्दा में दिनांक ७. ९. १९६५ ई० के सत्संग में हुआ था।

वगैरह के शब्द हैं। अपने अन्दर भी सगुण मण्डल के सभी शब्द सगुण हैं। ये सगुण शब्द अपने-अपने मण्डल की विद्यमानता के साथ हैं। जब प्रलय होते हैं, तब ये शब्द नहीं रहते, इसलिए इनको अनित्य शब्द कहते हैं। चाहे वर्णात्मक, चाहे ध्वन्यात्मक; सभी सगुण शब्द हैं, जो माया के मण्डल से प्रवाहित हुए हैं। इसका साधन सगुण शब्द का साधन है। ये कभी-न-कभी लय हो जाते हैं। इसलिए अध्यात्म-बुद्धि के लोग इसको अनित्य शब्द कहते हैं। ये सभी सगुण शब्द हैं। ईश्वर-भजन के लिए जो सगुण शब्द का भजन करते हैं, वे वर्णात्मक का जप और ध्वन्यात्मक का ध्यान करते हैं। ये सब शब्द ईश्वर को जाहिर कराते हैं, लेकिन इससे ईश्वर की पहचान नहीं होती। इन शब्दों से ऋद्धि-सिद्धि भी मिलती है, लेकिन ईश्वर की पहचान नहीं होती। ईश्वर की पहचान के लिए निर्गुण शब्द है। माया मण्डल का जहाँ पसार नहीं, त्रयगुणों का जहाँ पसार नहीं, वह सच्चिदानन्द मण्डल का शब्द निर्गुण है, वहाँ माया का, त्रयगुणों का पसार नहीं है। वह निर्गुण शब्द है।

यह विश्वास करने के लिए जानना चाहिए कि आदि में परमात्मा अपने आप ही थे। उनकी मौज से माया-रूपी सृष्टि हुई। जब सृष्टि के लिए उन्होंने मौज की तो कम्पन अवश्य ही हुआ। कम्पन हो और शब्द नहीं, यह युक्तिसंगत बात नहीं। प्रत्येक कम्प में शब्द है। कम्पन का सहचर शब्द अवश्य होता है। आदि में जो शब्द हुआ उसको निर्गुण कहते हैं। यह निर्गुण शब्द परमात्मा-कृत हुआ। परमात्मा तक इसकी धारा लगी हुई है। उसी धारा से ईश्वर तक पहुँचा जाता है।

इस नाम में वैसा ही गुण है, जो ईश्वर में है। जिस केन्द्र से कोई शब्द निकलता है, उस केन्द्र में जो गुण होता है, उस केन्द्र के गुण को लिए हुए वह शब्द होता है और सुननेवाले में वह गुण हो जाता है, जैसे किसी के गाने में प्रसन्नता का गुण है, तो उसको जो सुनता है, वह भी प्रसन्न हो जाता है। ईश्वर से जिस शब्द का विकास हुआ, उसको आदि-स्फोट भी कहते हैं। वह आदि-स्फोट ईश्वर का गुण लिए हुए है। जिसने उसको पहचान लिया है, तो उसमें भी ईश्वरीय गुण आ जाता है। इसलिए परमात्मा को जाननेवाला 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' हो जाता है। उसमें वही शक्ति आ जाती है।

निर्गुण नाम को बहुत कम लोग जानते हैं। निर्गुण नाम तो क्या, ध्वन्यात्मक नाम को भी बहुत कम लोग जानते हैं। बिना सगुण शब्द के साधन से निर्गुण शब्द पकड़ा नहीं जा सकता। नाम-जप सगुण शब्द है।

अपने अन्दर के सगुण मण्डलों के शब्द सगुण हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण—ये चारों जड़-मण्डल हैं। मण्डल के केन्द्र से धारा प्रवाहित होती है। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है। सूक्ष्म-स्थूल में स्वाभाविक ही समाता है। स्थूल मण्डल के केन्द्र पर सूक्ष्म का शब्द पकड़ा जाएगा। सूक्ष्म के केन्द्र पर कारण का शब्द पकड़ा जाएगा। कारण के केन्द्र पर महाकारण का शब्द पकड़ा जाएगा। जो साधक भजन करेगा, बढ़ते-बढ़ते महाकारण के केन्द्र पर पहुँचेगा। वहीं पर वह निर्गुण शब्द को पकड़ेगा। वह शब्द सर्वव्यापक है, लेकिन पहचान वहीं होगी। यही निर्गुण शब्द ईश्वर तक है, ईश्वर से प्रवाहित है और ईश्वर तक पहुँचाता है; इसलिए—

निर्गुण निर्मल नाम है, अवगत नाम अवंच।
नाम रते सो धनपती, और सकल परपंच।।

—संत गरीबदासजी

इसी निर्गुण नाम से ईश्वर की पहचान हो जाती है। अमृतनाद उपनिषद् में लिखा है—

अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अकण्ठताल्वोष्ठमनासिकं च।

अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।

यह आदि शब्द है। इसी के लिए संत कबीर साहब ने कहा है—

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।

इसी से ईश्वर की पहचान होगी। संतों को जब इसका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तो उन्होंने लोगों को इसका ज्ञान दिया। गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण में है—

बन्दउँ रामनाम रघुवर को। हेतु कृषाणु भानु हिमकर को।।

'राम' में 'र' कार, 'आ' कार और 'म' कार है। कृशानु में 'र' कार नहीं रहे, तो उसका अर्थ अग्नि नहीं होगा। 'भानु' में 'आ' कार नहीं रहे, तो उसका अर्थ सूर्य नहीं होगा और हिमकर में 'म' नहीं रहे तो उसका अर्थ चन्द्रमा नहीं होगा। यह निर्गुण रामनाम है, उपमा रहित है, गुणों का भण्डार है। त्रयगुणों का भण्डार भी यही है। मनुष्य-भाषा में इस निर्गुण नाम को 'ओ३म्' कहते हैं। ध्वन्यात्मक नाम को और वर्णात्मक नाम को भी जानिए। वर्णात्मक नाम बहुत हैं। ध्वन्यात्मक नाम भी बहुत हैं, लेकिन निर्गुण नाम एक ही है। जैसे काबेरी, गोदावरी, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ जब समुद्र में मिल जाती हैं, तो केवल समुद्र का ही शब्द रह जाता है, इसी तरह सब नाम निर्गुण में मिल जाते हैं।

सकल नाम जब एक समाना। तबही साध परम पद जाना।।
—कबीर साहब

एकाग्र मन से जप करना चाहिए। एकाग्रता की शक्ति होने से और काम किया जाता है। विशेष एकाग्रता के लिए किसी इष्ट मूर्ति का ध्यान करते हैं। संतों ने कह दिया—एक गुरु-मूर्ति का ध्यान करो। कोई प्रतिबन्ध नहीं है, जिसमें अपनी श्रद्धा हो, उसका ध्यान करो। मूर्ति-ध्यान में अनेक लकीर हैं। एक लकीर में कितने ही विन्दु हैं। बहुत-से विन्दुओं, बहुत-सी लकीरों और बहुत-से अंग-प्रत्यंगों के योग से मूर्ति बनती है, लेकिन केवल एक-ही-एक रह जाय, इसके लिए विन्दु ध्यान है।

विन्दु ध्यान में पूर्ण सिमटाव होता है। जिस मण्डल में पूर्ण सिमटाव हुआ, उस मण्डल से उसकी गति और आगे हो जाएगी।

'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा, वसत...' होने के कारण, विन्दु भी ईश्वर का रूप है। विन्दु रूप को देखने से पूरी शान्ति मिलती है। अन्य रूपों में यह शान्ति नहीं मिलती। हाथ-पैरवाले भगवान होते हैं और बिना हाथ-पैर के भी भगवान होते हैं। यदि बिना हाथ-पैर के भगवान नहीं माने जाते तो शिवलिंग में, शालिग्राम में अंग-प्रत्यंग, हाथ-पैर कहाँ है? फिर इसको भगवान कैसे मानते हैं?

विन्दु को ईश्वर-रूप मानना, यह कोई अन्ध-विश्वास नहीं है; क्योंकि जो सबमें रहता है, वह विन्दु में भी रहता है। इसलिए विन्दु भी उसका रूप है। इसमें पूर्ण सिमटाव होता है, इससे अन्दर में प्रवेश होना होता है, स्थूल से सूक्ष्म में, बाहर से भीतर में प्रवेश होना होता है। यहाँ सूक्ष्म नाद ग्रहण होता है। यह ईश्वर-उपासना की विधि है। इसी विधि से सब लोग उपासना करें।

मैं न तो राम भजने के लिए मना करता हूँ, न कृष्ण भजने के लिए और न देवी भजने के लिए मना करता हूँ। पंच पापों को करने के लिए मना करता हूँ। ईश्वर का भजन करो, पाप का क्षय हो जाएगा। गुरु, ध्यान, सत्संग और सदाचार; ये चार चीजें मिलकर संतमत हैं संतमत सत्य के साथ है, असत्य के खिलाफ है। यह पुरानी से भी पुरानी बात है। असल में यही सनातन धर्म है।

कोई कहे कि सनातन धर्म में विन्दु उपासना, नाद उपासना नहीं है, मूर्ति-ध्यान नहीं है, जप नहीं है, कहे। जो नहीं जानते हैं, वे विन्दु ध्यान और नाद

ध्यान का नाम सुनकर नया समझते हैं। यह भजन नित्य करो। मनुष्य के अतिरिक्त नीच योनि में नहीं जाने देगा। यह भक्ति का बीज है। यदि ऐसा नहीं होता, तो नाभा दास, रविदास आदि कैसे सन्त होते?

भजन नित्य करो। भजन का संस्कार अपने में लगाना बहुत प्रकार के भय से बचाता है। योग महाभय से बचाता है। योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। जन्म-जन्मान्तर पीछा करते हुए अन्त में मोक्ष दिलाकर ही छोड़ता है।

n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक १७. ७. १९६६ ई० को साप्ताहिक सत्संग में हुआ था।

२४४. साधनारम्भ में अन्तर की अनुभूतियों में सुख

प्यारे लोगो!

जब सब लोग निद्राह नींद में सोये रहते हैं, तो कोई ज्ञान नहीं रहता, कर्तव्य-अकर्तव्य का कुछ निर्णय नहीं हो सकता, कुछ काम करें, यह भी निर्णय नहीं होता। जगने पर कर्तव्य-अकर्तव्य को जानते हैं और करते हैं। इसलिए पहले ज्ञान चाहिए। यह पहला ज्ञान ऐसा होता है कि उसमें कुछ की प्रत्यक्षता होती है और कुछ की नहीं। इन्द्रियगम्य की प्रत्यक्षता होती है, इन्द्रियगम्य से परे की नहीं। सत्संग के द्वारा ईश्वर का ज्ञान, अपने तईं का ज्ञान, अपने सुख का ज्ञान, अपने दुःख का ज्ञान आदि होता है। जितने नाशवन्त पदार्थ हैं, वे ईश्वर नहीं हैं। ईश्वर इन्द्रियातीत हैं, इन्द्रियज्ञान से परे है। अपना भी ज्ञान ऐसा ही है।

यह शरीर इन्द्रियगम्य है, नाशवान है। आप नाशवान नहीं हैं। आप ठीक ईश्वर की तरह ही इन्द्रियज्ञान से परे और अपने से अपने को जानने योग्य हैं। बात यही है कि संतों ने बताया है कि शरीर में बसनेवाली चेतन आत्मा ईश्वर का ही अंश है। जैसे एक बूँद पानी और जलभरी गंगा नदी—दोनों तत्त्वरूप में एक ही हैं। महदाकाश और मठाकाश का स्वरूप एक ही है। इसी तरह ईश्वर और आप हैं।

भौतिक सुख-दुःख परिणामी और अभौतिक या मायातीत जो परमात्म-स्वरूप है या अपना स्वरूप है, उस स्वरूप में रहते हुए जो सुख होता है, वास्तव में वही सुख है, दूसरा सुख नहीं। उस सुख से हम छूटे हुए हैं। अपने स्वरूप को जानते हुए जो सुख होता है, वह सुख अथवा ईश्वर-दर्शन से जो सुख होता है, वह सुख हमको नहीं है।

माया का, इन्द्रियों का भौतिक सुख हमको होता है। अभौतिक सुख के लिए बाहर दौड़-धूप की जरूरत नहीं। अभौतिक पदार्थ आप हैं और आपके अंशी हैं, इसलिए अन्तर्मुख होइए। आप अपने शरीर में हैं ही और सर्वव्यापक होने के कारण ईश्वर भी आपके अन्दर है। इसलिए अंतर्मुख हो जाइए। अन्तर्मुख होने पर जो कुछ अनुभूति होती है, उससे वैसा नहीं होता, जैसे स्वप्न में कुछ दृश्य देखते हैं, उसमें सुखी-दुःखी होते हैं। अन्तर्मुख होने में सुख-ही-सुख है। इसलिए कहा जाता है कि अन्तर में रहो। अपने साधन-बल से अन्दर में रहो, कुछ-न-कुछ अवश्य देखोगे, सुनोगे।

साधनारम्भ में अन्तर की अनुभूतियों में सुख होता है। और भी इससे अधिक सुख की इच्छा बढ़ती है, तो और भी साधन करके आगे बढ़ते हैं। आन्तरिक अनुभूतियों को प्राप्त करते-करते वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ अपना और ईश्वर का प्रत्यक्ष

ज्ञान होता है, तब 'और सुख चाहिए'—यह सवाल समाप्त हो जाता है। ईश्वर को देखो, अपने को देखो, इसके लिए अन्तर्मुख चलो। बाहर दौड़-धूप में नहीं मिलेगा। संत दादू दयालजी ने कहा है—

दादू उलटि अपूठा आप में, अन्तर सोधि सुजाण।
सो ढिग तेरी बाबरे, तजि बाहरि की बाण।।

लोग कहते हैं कि प्रह्लाद को तो बाहर में ही दर्शन हुआ। भगवान खम्भ फाड़कर निकले, हृदय फाड़कर नहीं। ऐसा एक विद्वान भी कहते थे। मैं कहता हूँ—संत-साहित्य का अध्ययन और भी करो। खम्भ में ईश्वर को मानो और अपने अन्दर नहीं, तो ईश्वर की सर्वव्यापकता कहाँ रही! भगवान अचेतन पदार्थ में हो और चेतन में नहीं, यह ज्ञान कहाँ तक ठीक है? हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा था कि ईश्वर कहाँ है? प्रह्लाद ने कहा था—सब जगह है। हिरण्यकशिपु ने पूछा—इस खम्भे में भी है? प्रह्लाद ने कहा—हाँ। इसलिए भगवान उस खम्भे से निकले थे। यह ऐसा ही मौका था। जैसे प्रह्लाद को और मनु-शतरूपा को दर्शन हुआ, वह इन्द्रियगम्य रूप का दर्शन था। मात्र एक प्रह्लाद नहीं डरता था और सभी देव-दानव नरसिंह भगवान के डर से काँप रहे थे। उन्होंने जो जोर की आवाज की, तो संसार डगमगा गया। एक ब्राह्मणी का गर्भपात हो गया। यह दर्शन इन्द्रियगम्य है। इन्द्रियातीत का भी दर्शन चाहिए।

एक पुस्तक है—'पक्षपात रहित अनुभव प्रकाश'। यह पुस्तक सबसे पहले के काली कमलीवाले की बनायी हुई है। उसमें लिखा है—'प्रह्लाद केवल इन्द्रियगम्य ही नहीं जानते थे, इन्द्रियातीत भी जानते थे। प्रह्लाद से विष्णु भगवान ने कहा—समय पड़ता है, तो मुझे पुकारता है और उपासना निर्गुण ब्रह्म की करता है।' ईश्वर सर्वव्यापी है। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा वसत...।'

'एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं,
बाहर फिरत विकल भय धायो।।'

दूसरी बात —

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत।।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति; ये तीन अवस्थाएँ हैं। इन्द्रियगम्य दर्शन जितने को हुए, वे सभी जाग्रत अवस्था में थे। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—तीन अवस्थाएँ छोड़कर चौथी अवस्था में जाकर भजन करो, तब इन्द्रियगम्य रूप जो नहीं है, जो आत्मगम्य है, उसके लिए भजन करते हो, उधर चल रहे हो। इन्द्रियगम्य रूप के दर्शन से संसार के बहुत से सुख मिलते हैं, लेकिन इन सुखों से तृप्ति नहीं आती। संसार के सुखों में रहकर कभी दुःख नहीं आवे, यह कभी हो नहीं सकता। यह तो इन्द्र को भी नहीं हुआ। ब्रह्मा को भी ऐसा सुख नहीं मिला, इसीलिए ब्रह्मा ने शिवजी से जाकर पूछा था, तो शिवजी ने कहा—योग और ज्ञान दोनों करो।

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीह भोः।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि।।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्।।

— योगशिखोपनिषद्

अर्थ—योगहीन ज्ञान मोक्षप्रद भला कैसे हो सकता है? उसी तरह ज्ञानरहित योग भी मोक्ष कार्य में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए ज्ञान और योग, दोनों का अभ्यास दृढ़ता के साथ मुमुक्षु को करना चाहिए।

पहले थोड़ा ज्ञान होगा, तब कुछ योग करेगा। पहले ज्ञान साधन और योग साध्य, पीछे योग साधन और ज्ञान साध्य हो जाता है।

संत-महात्मा इसलिए योग-साधन करने के लिए कहते हैं। योग-साधन से ही अपने स्वरूप

और परमात्म-स्वरूप का ज्ञान होता है, तृष्णा क्षय हो जाती है, मोक्ष मिल जाता है। तब 'और कुछ हो,' 'और कुछ हो,' यह छूट जाता है। संत दादू दयालजी ने योग का वर्णन किया है और कहा है—

योग समाधि सुख सुरति सौं, सहजै सहजै आव।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव।।

वह द्वार बन्द है। आगे बढ़ने का द्वार बन्द है। आँखें बन्द करते हैं, तो अन्धकार मालूम पड़ता है। यह वज्रकपाट है। इस वज्रकपाट को खोलने के लिए गुरु नानकदेवजी महाराज ने कहा है—

बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।

इसके लिए क्या करो, तो कहा—

घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।

घर में जितनी चीजें हैं, सब कुछ को निकाल दो, लेकिन शून्य को नहीं निकाल सकते। परमात्मा सर्वव्यापी है, इसका प्रकाश सर्वव्यापी है, वह निकाला नहीं जा सकता। जैसे कोई पहले सूर्य के प्रकाश को देखता है, फिर सूर्य को, इसी तरह पहले ब्रह्म के प्रकाश को देखो, फिर ब्रह्म को देखोगे।

योग ऐसा हो कि जो सरल हो और पूर्ण भी हो। श्रीमदाद्य शंकराचार्यजी ने लिखा कि शिवजी ने मनोलय के सवा लाख साधन बतलाए हैं, जिनमें नादानुसन्धान सबसे श्रेष्ठ और सरल है। नादानु-संधान की उन्होंने स्तुति भी की है और कहा कि आपके प्रसाद से ही विष्णु के परम पद की प्राप्ति होगी—

सदाशिवोक्तानि सपादलक्ष लयावधानानि वसन्ति लोके।
नादानुसंधान समाधिमेकं मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्।।
नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महेतत्त्वपदं लयानाम्।
भवत्प्रासदात् पवनेन साकं विलीयते विष्णु पदे मनो मे।।
सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवानुसंधेयो योगसाम्राज्यमिच्छता।।

अर्थ—योगशास्त्र के प्रवर्तक भगवान शिवजी ने मन के लय होने के सवा लक्ष साधन बतलाए हैं, उन सबमें नादानुसंधान सुलभ और श्रेष्ठ है। हे नादानुसन्धान! आपको नमस्कार है, आप परमपद में स्थित कराते हैं, आपके ही प्रसाद से मेरा प्राणवायु और मन; ये दोनों विष्णु के परम पद में लय हो जाएँगे। योग साम्राज्य में स्थित होने की इच्छा हो तो सब चिन्ताओं को छोड़कर सावधान हो एकाग्र मन से अनहद नादों को सुनो।

नादानुसन्धान अर्थात् शब्द की खोज। संत कबीर साहब ने कहा है—

सबद खोजि मन बस करै, सहज योग है येहि।
सत्त शब्द निज सार है, यह तो झूठी देहि।।

बाहर संसार में हम देखते हैं कि पहले बिजली चमकती है, पीछे ठनके की आवाज सुनते हैं। बिना बिजली के हम ठनके की आवाज नहीं सुन सकते। इसी तरह अपने अन्दर में पहले देखो, फिर सुनो। पहले देखने के लिए जानो। साधन ऐसा हो कि दृष्टि सूक्ष्म हो जाय। इसी को दृष्टियोग, शाम्भवी मुद्रा और वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। पहले देखो, फिर सुनो; ये ही दो साधन हैं। देखो तो कैसे देखो? संत पलटू साहब ने कहा है—

काजर दिये से का भया, ताकन को ढब नाहिं।।
ताकन को ढब नाहिं, ताकन की गति है न्यारी।
एकटक लेवै ताकि, सोई है पिव प्यारी।।
ताकै नैन मिरोरि, नहीं चित अंतै टारै।
बिन ताकै केहि काम, लाख कोउ नैन संवारै।।
ताके में है फेर, फेर काजर में नाहीं।
भंगि मिली जो नाहिं, नफा क्या जोग के माहीं।।
पलटू सनकारत रहा, पिय को खिन खिन माहिं।
काजर दिये से का भया, ताकन को ढब नाहिं।।

दृष्टियोग और नादानुसंधान; इन दोनों को किए बिना ईश्वर तक जाना असम्भव है। जिस काम के बिना ईश्वर तक जाना असम्भव है, वही है ईश्वर की भक्ति। गोस्वामी तुलसीदासजी को

भी योग का आश्रय लेना पड़ा। उन्होंने लिखा—
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत बियोगी।।

रामानन्दी महन्त ने भी यौगिक क्रिया—नादानुसंधान का अच्छी तरह समर्थन किया है। इसी का प्रचार यहाँ से है। वैसे अपनी-अपनी क्रिया को सभी पूर्ण कहते हैं, लेकिन समझा नहीं सकते। यह नादानुसन्धान सरल भी है और पूर्ण भी। इसको समझाया जा सकता है। इन्द्रियातीत पदार्थ को बाहर-बाहर खोजने से पा लोगे, यह कैसे समझा सकते हो? ■

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक २४. ७. १९६६ ई० के साप्ताहिक सत्संग के अवसर पर हुआ था।

२४५. मस्तिष्क को ताजा बनाने के लिए सत्संग

प्यारे लोगो!

जिस क्षेत्र में हमलोग सत्संग कर रहे हैं, वह बड़े महत्त्व का है। यहाँ भगवान बुद्ध बहुत सत्संग किया करते थे। यहाँ निकट ही वेणुवन में भगवान बुद्ध सत्संग कराया करते थे। यहाँ और भी पहाड़ पर उनका स्थान है। यह पुण्यभूमि है।

आपलोग जो सत्संग-प्रेमी हैं, घर के कामों को छोड़कर, विहार के इस कठिन महँगाई के समय में भी खर्च करके यहाँ आए हैं। यह देखकर मेरे चित्त को बहुत ही प्रसन्नता होती है। हमलोग क्यों आए? इसलिए कि जहाँ ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध सत्संग करते थे, वहाँ सत्संग करें। सत्संग से हम क्या सीखते हैं? बच्चे खेल खेलने में—खिलौने में खुश होते हैं। वे कुछ वर्ष खुश रहते है। उनको समझाया-बुझाया जाता है, अभिभावक की ओर से उनको भय दिखाया जाता है, दबाव डाला जाता है और विद्याभ्यास में लगाया जाता है। जैसे- जैसे वे विद्याभ्यास में बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उनके ज्ञान का विकास होता है। वे समझते हैं कि बचपन का खेल भले ही छूट गया। वह सदा का सुखदायक नहीं था। पढ़-लिख लेने के बाद कर्तव्य और अकर्तव्य को समझने लगते हैं तथा उचित विचार कर उचित कर्म को करते हैं। ऐसे ही वे चलते हैं।

यहाँ ऐसे बच्चे हैं, जो देखते हैं कि केवल संसार के ही काम हैं। जो संसार के आगे का ख्याल नहीं रखते, वे भी बच्चे हैं। मैं कहूँगा, जिनको जीवन के बाद का ख्याल नहीं है, चाहे वे कितनी अधिक उम्र के हो गए हों, फिर भी वे बच्चे हैं, चाहे वे मेरी उम्र (८३ वर्ष) के हों वा मेरी उम्र से अधिक के हों।

विद्या से अनुचित और अनीति को समझते हैं, फिर भी उन्हीं में चलते हैं। किन्तु सत्संग से ज्ञान सीखकर जो संसार के बाद को भी सोचते हैं, उनको पता लगता है कि यह शरीर छोड़कर जाना है। लेकिन पता नहीं, कहाँ जाना है। जाना जरूर है। कहाँ जाना है? पता नहीं। रास्ता मालूम नहीं, स्थान मालूम नहीं, कितनी चिन्ता की बात है? इस बात को जो चेतते हैं, वे ही सयाने होते हैं। वे ही बालपन के खेल को छोड़ते हैं। इन्हीं बातों को समझाने के लिए संत लोग संसार में विचरते हैं।

संतों ने संसार के खेल को देखा और कहा कि इसको छोड़ देना अच्छा है। एक बात तो यह है कि संसार के कामों से उपराम होना और दूसरी बात यह है कि संसार के कामों में लगे रहने पर भी संसार से उपरामता रहे। संसार के कामों में त्रुटि नहीं होने देकर उसमें उपरामता रहे, यह उत्तम है। जो संसार

के कामों को छोड़कर रहते हैं, वे भी संसार के कामों और प्रबन्धों को छोड़कर नहीं रह सकते।

मनुष्य को समझ में आवे कि रास्ता क्या है? जाना कहाँ है? सबसे उत्तम स्थान कहाँ है? यह भी संसार का ही काम है। और कामों से मन को हटा लिया जा सकता है, लेकिन इससे हटा नहीं सकते। बड़े-बड़े संतों, महात्माओं को ऐसा ही देखा गया। वे लड़ाई के मैदान में नहीं गए, खेती करने नहीं गए, नौकरी नहीं की, लेकिन यह काम अपने ऊपर ले लिया कि 'चलना है रहना नहीं, चलना बिस्वाबीस।' यह ख्याल देते रहे। चलना किस रास्ते से है। कहाँ जाना है? इस बात को समझाते हैं। यह समझाना निर्वाण में जाकर नहीं होता, संसार में रहकर ही करते हैं। दूसरे वे हैं, जो संसार के कामों को करते हुए अपने चेतते हैं और दूसरों को चेताते हैं, जैसे भगवान श्रीकृष्ण।

भगवान बुद्ध संन्यासी हुए, औरों को भी उन्होंने संन्यासी बनाया। भगवान बुद्ध के समय में जितने संन्यासी हुए उतने किन्हीं के समय में नहीं। केवल संन्यासी ही नहीं बनाए, राजा और सेनापति भी उनके शिष्य थे। उनको उन्होंने संन्यासी नहीं बना लिया, उस तरह की शिक्षा दी। 'कर ते कर्म करो विधि नाना। सुरत राख जहँ कृपानिधाना।। युद्ध भी करो और स्मरण भी करो। 'तन काम में मन राम में।' 'करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय।' —कबीर साहब कर्म करते थे। उन्होंने अपने जीवन-यापन के लिए किसी दूसरे पर भार नहीं दिया। 'थोड़ा बनिज बहुत ह्वै बाढ़ी उपजन लागे लाल मई।' संतोष उनको बहुत था। थोड़ा-सा काम करते थे, अपना जीवन-यापन जिससे हो। मतलब यह कि जो संन्यासी हो जाते हैं, उनका कर्तव्य हो जाता है कि वे संसार के पार को बतावें। संसार में सदा रहना नहीं है।

समर्थ रामदास ऐसे थे कि वे शिवाजी राव को चलाते थे। राजा को भी अपनी राय देते थे। शिवाजी ने कहा कि मैं तप करूँगा। समर्थ ने कहा— मैं तुम्हारा तप करता हूँ, तुम तलवार लो। गुरु गोविन्द सिंहजी महाराज ने दोनों काम करके दिखाया—भजन भी, तलवार भी। गुरु गोविन्द सिंहजी महाराज कभी अनीति में नहीं गुजरे। बेटे मर गए, लेकिन उन्होंने शोक नहीं किया। उन्होंने समय को देखा। संसार में युद्ध-ही-युद्ध होता है।

वेद के उपदेश से यही मालूम हुआ कि इन्द्रिय का सुख, सुख नहीं है। संसार के पदार्थों में सुख नहीं, ईश्वर-भजन में सुख है। भगवान बुद्ध के वचन का धम्मपद ग्रन्थ से पाठ हुआ, उसमें भी यही आया, 'ईश्वर-भजन करो'—ऐसा तो उसमें नहीं आया, लेकिन यह आया कि संसार के सुखों में आसक्त मत होओ। तब क्या करो? संसार के सुख में नहीं फँसकर, शरीर-सुख से जो विशेष सुख है, उस ओर चलो। निर्वाण की ओर चलो। यह संसार जो दीप-टेम के समान जलता है, सदा के लिए बुझ जाए, उधर चलो। हमलोग इन्हीं बातों को याद दिलाने और जो नहीं सुने हैं, उनको सुनाने के लिए यह सत्संग करते हैं।

जिनको सत्संग का चसका लग जाता है, वे दूर-दूर से आते हैं। उनके मस्तिष्क को ताजा बनाने के लिए सत्संग होता है। सुनकर लोग विद्वान होते हैं। भगवान बुद्ध ने जो वचन कहे थे, लोगों ने सुने, याद रखे। लिखे तो पीछे गए।

उपनिषद् के पाठ में आया कि भवसागर को पार करने के लिए सूक्ष्म मार्ग का अवलम्बन करो। स्थूल रास्ते पर चलकर संसार भर ही रहोगे, बाहर नहीं जा सकते। संसार का मार्ग तो यह है कि यहाँ से कलकत्ता जाओ और कलकत्ता से यहाँ आओ। यह स्थूल मार्ग है। दूसरा मार्ग है कि शरीर

छूटने के बाद—संसार से जाने के बाद आराम से रहना हो। इसके लिए जो उत्तम-उत्तम कर्म हैं, स्थूल दर्जे के ही हैं। फिर भी उत्तम हैं, उनको करो। सूक्ष्म मार्ग बहुत उत्तम है। 'लखे रे कोई बिरला पद निर्वाण।' यह बाहर में नहीं है, भीतर का रास्ता है। उसपर पैर से चला नहीं जाता। सूक्ष्म अवलम्ब लेकर चलना होता है। 'बिन पावन की राह है, बिन बस्ती का देश। बिना पिण्ड का पुरुष है, कहै कबीर सन्देश।।'

इस सत्संग से ये ही सब बातें बतायी जाएँगी। मैं धीरे-धीरे बतलाऊँगा कि सूक्ष्म मार्ग कहाँ है, उसका आरम्भ कहाँ से है और अंत कहाँ है? मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं बतलाऊँगा कि जहाँ से आपको फिर लौटकर इस संसार में आना नहीं होगा। n

यह प्रवचन नालन्दा जिलान्तर्गत भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के विहार स्थल राजगीर में ५८वाँ अखिल भारतीय संतमत सत्संग का विशेषाधिवेशन दिनांक २८.१०.१९६६ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२४६. शरीर में नौ द्वार हैं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

अभी जो मैंने मान-पत्र सुना तथा स्वागताध्यक्ष का भाषण सुना तो दोनों के सुनने से मैं नहीं कह सकता कि प्रसन्नता मुझे नहीं हुई। मान-पत्र स्वाभाविक ही बढ़ा-चढ़ाकर लिखा जाता है। ऐसे मजमें में जो स्वागताध्यक्ष होते हैं, वे बड़े भाग्यवान होते हैं। आध्यात्मिकता के वास्ते शारीरिक सुख छोड़ दिया जाय, हो नहीं सकता। अवश्य ही भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, वशिष्ठ आदि जैसे महात्मा हों, तो वे दुःख को सुख बना लेते हैं। इतना सुख अवश्य चाहिए, जितने सुख से ध्यान में मन लगे। उतना सुख यहाँ है। अभी मौसम भी ऐसा है कि बाहर में सो भी सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपने बिछावन के लिए कम्बल या सन की चट्टी अवश्य रखनी चाहिए। १९०७ ई० में मेरे पास कोई सामान नहीं था। आरा जिला के धरकन्धा में एक संत थे, मैं वहाँ गया। उन्होंने मुझे मिट्टी का पात्र दिया। चार हाथ का एक अंगोछा बिछावन के लिए दिया। इस ख्याल से यदि सत्संग में लोग जायँ कि वहाँ बिछावन मिल जाएगा, अन्य सत्संगियों के लोटे और बिछावन से काम चला लेंगे, तो यह ठीक नहीं। यहाँ पर इतना भी बहुत है। यह ऐसा है, जो नहीं होने योग्य, सो हुआ है।

एक साधु ने मुझसे पत्र लिखकर कहा—'तुम राम को मनुष्य मानते हो, इसलिए तुमने राम की निन्दा की है।' संयोगवश जिस दिन मैं यहाँ आ रहा था, वे मुझसे मिलने आश्रम आ गये। मैंने कहा, आप आ गए, यह आपने बहुत कृपा की। मेरी यात्रा उत्तम हो गयी। मैंने उनसे कहा—राम की निन्दा कौन कर सकता है?

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।
भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।

राम ने भूप का या नर-शरीर को धारण किया। नर-शरीर को नर-शरीर अवश्य कहा जाएगा और जिसने शरीर धारण किया, उन्हें राम अवश्य कहा जाएगा। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का वर्णन किया है। उन्होंने कहीं नहीं कहा कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में भेद नहीं है, बल्कि उन्होंने यह कहा— सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मैं हूँ। केवल

क्षेत्र की महिमा कही जाय और क्षेत्रज्ञ की महिमा नहीं कही जाय, ऐसी बात कहने से अपने को भटकाना है। भगवान राम ने नर-शरीर धारण कर बहुत विलक्षण सब काम किए। उनका उपदेश सब काल के लिए बहुत उपयोगी है। उन्होंने सबसे पहले उपदेश दिया कि—'बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथहिं गावा।।' (रामचरिमानस, उत्तरकाण्ड) मनुष्य-तन पाना बड़ा भाग्य है। शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सबका बड़ा भाग्य है।

जिस इन्द्रिय से जो काम होना चाहिए, वह सबको मौजूद है। जो नीच है, वह कान से नहीं सुनकर पैर से नहीं सुनता है। कोई चीज खाओ, सबको एक ही स्वाद मालूम होगा। सबको भगवान ने बनाया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भगवान की भक्ति की,पूज्य हो गए। उसी तरह कबीर साहब, रैदास आदि भी भजन करके पूज्य होग गएं आज रैदासजी महाराज कहते हैं।

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुवीर परायण, जेहि नर उपज विनीत।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

विशेष बात इस शरीर में क्या है? इसमें साधनों का धाम और मोक्ष का द्वार है। समूचा शरीर द्वार नहीं है। इस शरीर में नौ द्वार हैं। ये जो नौ द्वार हैं, इनमें से कोई द्वार मोक्ष का द्वार नहीं है। संतवाणी से पता चलता है कि जो नौ द्वारवाले शरीर में रहते हैं, वे संसार में दौड़ते रहते हैं। इस शरीर में दसवाँ द्वार भी है। उस द्वार से गमन करो, तो निज घर में पहुँच जाओगे। यह शरीर स्थूल घर है। संत जो कहते हैं कि इसमें दशम द्वार है, यह बहुत कम लोग जानते हैं। बाहर से अपने को समेटकर अन्तर प्रविष्ट होकर अन्तर्मुखी जहाँ तक होना होता है, वही दसवाँ द्वार है। यह दसवाँ द्वार ही मोक्ष का द्वार है। इसमें शरीर नहीं जाता, मन अवश्य जाता है। यह इस द्वार की विलक्षणता है। जाग्रत में आप जहाँ रहते हैं, स्वप्न में आप वहाँ नहीं रहते। कण्ठ से स्वर का उच्चारण होता है। स्वर के बिना व्यंजन का उच्चारण नहीं हो सकता। प्रत्येक व्यंजन के साथ स्वर अवश्य रहता है। स्वर से व्यंजन हटाकर बोलिए, तो बोल नहीं सकते। स्वप्न में जब हम बोलते हैं, तो हमको जानना चाहिए कि हम कण्ठ में हैं। दसवें द्वार को योगियों के यहाँ आज्ञाचक्र कहा जाता है। यही है अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद का द्वार।

खेती करना बहुत कठिन काम है, परन्तु इसके बिना रह नहीं सकते। इसलिए खेती करते हैं। देश-रक्षा बहुत कठिन है, परन्तु देश की रक्षा करते हैं। साधना को कठिन कहकर इसलिए मानते हैं कि इसे करना आवश्यक नहीं समझते। यह काम अवश्य करना चाहिए। यह थोड़ा करने पर भी बहुत लाभ पहुँचावेगा। साधन अवश्य करो। मन को मारो। मन को सँभालो। दशम द्वार होते हुए मोक्ष की ओर चलो। यह शरीर विषय सुख के लिए नहीं है। 'एहि तन कर फल विषय न भाई।' (गोस्वामी तुलसीदासजी) विषय भोग छोड़ा जा सकता है। अपने को सँभालकर दशम द्वार में स्थिर करो, तो अवश्य छोड़ा जा सकता है। n

यह प्रवचन नालन्दा जिलान्तर्गत भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के विहार स्थल राजगीर में ५८वाँ अखिल भारतीय संतमत सत्संग का विशेषाधिवेशन दिनांक २८.१०.१९६६ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

p

२४७. पढ़ने के लिए प्रतिज्ञा

प्यारे लोगो!

संतों ने जीव-कल्याण के हेतु भक्ति का प्रचार किया है। भक्ति में स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए। ईश्वर को जानना हमारे लिए बहुत कठिन है। उन्हें जाननेवाले संत होते हैं। संत की अवश्य स्तुति होनी चाहिए। जिनके उपकार को पाकर हम उनकी स्तुति नहीं करें, उनका कृतज्ञ नहीं बने तो बड़ा पाप होता है। इसलिए उनकी भी स्तुति करें। फिर संतों में से कोई गुरु होते हैं। उनका बार-बार उपकार होता है।

'हेतु रहित जग जीव उपकारी' संतगण ईश्वर के सेवक अवश्य होते हैं। जिसमें ईश्वर की भक्ति नहीं, वे संत नहीं हो सकते। हमलोगों को नित्य ईश-स्तुति, सन्त-स्तुति और गुरु-स्तुति अवश्य करनी चाहिए। उपासना भी अवश्य करनी चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त्त काल, स्नान के बाद तुरत, फिर सायंकाल पवित्र होकर बैठो। जो नहीं जानते हो, इसकी युक्ति गुरु से सीखो। अभी जो कुछ पाठ हुआ, उसमें ईश्वर-स्वरूप का ही वर्णन किया गया है।

आँख से सब कुछ देखते हैं, परन्तु आँख को आँख से ही देखते हैं। इसी तरह आत्मा से ही आत्मा तथा ईश्वर को देखोगे। आत्मा नहीं, तो इन्द्रियाँ, मन या बुद्धि क्या करेगी? आत्मा को ऐसा बना लो कि वह निज ज्ञान में रहे। उस निज ज्ञान में अपने तथा परमात्मा का ज्ञान होगा। कैवल्य दशा में ही अपना तथा ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। अपने अन्दर अपने को प्राप्त करो, तो सबमें वही प्राप्त करोगे। यह ज्ञान जीवनकाल में ही प्राप्त करो।

यही धर्म का सिद्धान्त और परिभाषा जानते हो, तो ठीक है, नहीं तो बड़ी गलती करते हो। बहुत सत्संगी पढ़े-लिखे नहीं हैं। सत्संग में बैठकर सुनते-सुनते याद कर लिए हैं। आपलोगों को मैं सलाह देता हूँ कि अपने-अपने घर में सत्संग करें। जहाँ मेरी धान की खेती होती है, वहाँ एक सत्संगी धान काटने गया। वहाँ वे अपने बाल-बच्चों सहित स्तुति और सत्संग कर लेते थे। जो पढ़े-लिखे नहीं हो, तो रात में पढ़ो। जब मेरे पास ऐसा कोई आता है, तो मैं पढ़ने के लिए उससे प्रतिज्ञा कराता हूँ। इस वास्ते आपलोग यदि ऐसा कीजिए, तो समाज के लोग ईश्वर-भक्ति में संलग्न होंगे। सब अच्छे होंगे। ईश्वर-मुक्तिरूप जो प्रचण्ड ज्योति है, उसके उदय होने पर सब ज्ञान हो जाता है। इसलिए ईश्वर-भक्ति में सब कोई संलग्न होइए और घर का भी काम कीजिए। संसार में रहते हुए काम अवश्य करना होगा। कर्म का बंधन नहीं लगे, इसके लिए भक्ति करो। ईश्वर-अर्पण बुद्धि से कर्म करो। ईश्वर-अर्पण करना, आत्मरत होना है। अपना निशाना अपने अन्दर रखो, अपने को उस पर लगाए रखो। यही असली गुरु-दीक्षा है। ऐसा करते-करते उसमें ही आगे बढ़ने का रास्ता साफ हो जाएगा। उसी से ऊर्ध्वगति होगी, सभी आवरणों का छेदन होगा और आत्मज्ञान होगा। इसमें पूर्ण कर्मयोगी हो जाएगा। आत्मरत होकर आत्मज्ञान प्राप्त करके जो हो, उसका ज्ञान नहीं मिटेगा। जिसने इस दशा को नहीं पाया है, वह भूल-भूल जाएगा। जबतक पूर्णता नहीं होगी, तबतक अवश्य भूलेगा। इसको अच्छी तरह याद रखना, अच्छी तरह साधन करना। n

यह प्रवचन नालन्दा जिलान्तर्गत भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के विहार स्थल राजगीर में ५८वाँ अखिल भारतीय संतमत सत्संग का विशेषाधिवेशन दिनांक २९.१०.१९६६ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२४८. सृष्टि के आरम्भ में क्या है?

प्यारे लोगो!

संतों ने ईश्वर-भक्ति की ही प्रधानता को सत्संग के अन्दर रखा है। संत कबीर साहब कहते हैं—

संगत ही जरि जाव, न चर्चा राम की।
दुलह बिना बारात, कहो किस काम की।।

और गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम प्रधानू।।

इस तरह संतलोग भक्ति को प्रधानता देते हैं। हमलोगों को भी बुद्धि संतों की बुद्धि के अनुकूल हो, यही परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं। संतों की बुद्धि बहुत पवित्र थी, शान्त थी, स्थिर थी। संतों की बुद्धि में अनैतिकता कभी नहीं आती। हम संतों की बुद्धि पा जाएँ, तो हमारा परम कल्याण हो। इसलिए हमलोगों ने भी सत्संग में ईश्वर-भक्ति की ही प्रधानता रखी है।

ईश्वर की भक्ति में सबसे पहली बात यह होनी चाहिए कि हम इसकी आवश्यकता जानें। जिसकी आवश्यकता हो, उसको जानें, जिसकी आवश्यकता नहीं हो, उसके जानने में समय फजूल खर्च होगा। आपलोग स्वयं महसूस करते हैं कि आप स्ववश में नहीं हैं। जैसा-जैसा चाहते हैं, वैसा-वैसा नहीं होता। अपने शरीर को, अपने मन को अपने उत्कृष्ट विचार में नहीं रख सकते हैं। इससे मालूम होता है कि हम स्वतन्त्र नहीं हैं, किसी के अधीन में हैं। इसलिए गो० तुलसीदासजी ने कहा है।

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड।।
सो दासी रघुवीर कै, समुझै मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहउँ पद रोपि।।

माया के वश में हमलोग पड़े हैं। इस माया से हम छूटें, तब कल्याण है। माया से छूटने के लिए हम उनकी शरण जाएँ, जो माया के पति हैं। माया के पति ईश्वर हैं। इसलिए ईश्वर की भक्ति की आवश्यकता है। हमको चाहिए कि हम ईश्वर की भक्ति करें। ईश्वर की भक्ति में हम पहले ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करें। रामायण में गो० तुलसीदासजी ने जैसा वर्णन किया है, आपलोगों ने सुना—

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।
सोइ सच्चिदानन्द घनरामा। अज विज्ञानरूप बलधामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

ईश्वर विज्ञान-स्वरूप हैं। मनुष्य केवल भौतिक विज्ञान में लगे हैं, जो इनके सामने अत्यन्त अल्प हैं। भौतिक वैज्ञानिक उसमें भी पूर्ण नहीं हुए हैं। भौतिक विज्ञान का जो कुछ विस्तार है, वह बहुत अल्प है। एक जमाना ऐसा था कि लोग वाण चलाकर उसको वापस भी कर लेते थे। अश्वत्थामा ने बहुत उपद्रव किया, तो पाण्डव लोग उसके पीछे पड़े। अश्वत्थामा ने अपनी जान बचाने के लिए एक अस्त्र छोड़ा। उस अस्त्र के जवाब में अर्जुन ने भी अस्त्र छोड़ा। दोनों अस्त्र आपस में लड़ने लगे, जिससे अग्नि की वर्षा होने लगी। मुनि लोग आए और दोनों को अपना-अपना अस्त्र लौटाने कहा। अर्जुन ने अपना अस्त्र लौटा लिया, लेकिन अश्वत्थामा लौटाने की विद्या नहीं जानते थे। आज एक बम छोड़ दिया जाए, तो उसको लौटाने और उसके संहारकारी परिणाम से लोगों को बचाया जाना असम्भव हो जाएगा। लेकिन उस समय सम्भव था और अर्जुन ने करके दिखा दिया। श्रीकृष्ण और मुनियों की शक्ति से अश्वत्थामा के उस वाण की

शक्ति कम कर दी गई और उसकी महिमा रखने के लिए पाण्डवों का पोता परीक्षित जो गर्भ में था, मारा गया। पीछे जन्म लेने पर भगवान श्रीकृष्ण ने उसको जिलाया। आज का विज्ञान अभी बहुत बच्चा है। न मालूम क्या होगा? परमात्मा बहुत बड़ा वैज्ञानिक है। उसने सारी सृष्टि को साजा है। आज के वैज्ञानिक बिना उपादान कारण के कुछ बना नहीं सकते। इसलिए उनको कुछ-न-कुछ उपादान अवश्य चाहिए। किन्तु परमात्मा उपादान को अपने से उत्पन्न कर लेता है। बाबा नानक ने कहा है—

तदि अपना आपु आप ही उपाया।
नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया।।

इसलिए परमात्मा को विज्ञान-स्वरूप कहा गया है। विज्ञान के दो भाग कर सकते हैं—भौतिक और आध्यात्मिक। अभी तो भौतिक विज्ञान का ही अन्त नहीं हुआ है, अध्यात्म-विज्ञान तो बहुत दूर है। आज के भौतिक वैज्ञानिक अध्यात्म-विज्ञान के लिए कहते हैं कि उससे ऐसा काम नहीं हो सकता, जैसा भौतिक विज्ञान से। लेकिन परमात्मा विज्ञान-स्वरूप होते हुए सभी शक्ति के भण्डार हैं। वे व्यापक हैं और व्याप्य भी हैं। जिसमें घुसा जाय, वह व्याप्य और जो घुसे, वह व्यापक है। परमात्मा में सब कुछ समाया हुआ है तथा परमात्मा सबमें समाए हुए हैं। वे अनन्त हैं, पूर्ण हैं, बल के घर हैं।

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

कितने लोग कहते हैं कि तुलसीदासजी ने अति उक्ति कही है। लेकिन यह अति उक्ति नहीं, यथार्थ है। ईश्वर से क्या नहीं हो सकता? कोई कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर क्यों नहीं है? इसके लिए आपके पास क्या सबूत है? सबसे प्रथम का कोई तत्त्व अवश्य है, जो अनादि, अनन्त, असीम है और वही ईश्वर है।

प्रथम एक सो आपै आप। निराकार निर्गुण निर्जाप।।

सबसे प्रथम का जो है, वह असीम है। सबसे पहले का कुछ है कि नहीं? सबसे पहले का कुछ-न-कुछ अवश्य मानना पड़ेगा। पाँच तत्त्वों में पहले आकाश है। सौर जगत में सबसे पहले सूर्य है। सृष्टि के आरम्भ में क्या है? कुछ नहीं है, ऐसा क्यों मानो?

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

वह बुद्धि-पर पदार्थ है। ऐसा कुछ अवश्य है। सृष्टि के पहले आदि-अन्त-रहित तत्त्व था। आदि-अन्त-रहित कहने पर बड़ा विस्तार मालूम होता है। विस्तार रूप अणु और बहुत बड़ा भी हो सकता है। विस्तार में लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, गहराई, और ऊँचाई होती है। जिसमें लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, गहराई, और ऊँचाई हो, वह माया है। इसको भी अतिक्रमण करो। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

'प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।'

'सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।'

जहाँ देश-काल नहीं, वहाँ माया नहीं। जहाँ देश होगा, वहाँ काल और जहाँ काल होगा, वहाँ देश। परमात्मा देश-कालातीत है। उसके लिए विस्तृत कहने से भी नहीं बनता है।

जस कथिये तस होत नहीं, जस है तैसा सोय।
कहत सुनत सुख ऊपजै, अरु परमारथ होय।।

वह पदार्थ कितना गहरा है, कितना विस्तृत है, कहा नहीं जा सकता। ऐसा एक पदार्थ है, जो परम पुरातन, परम सनातन है। इसकी खोज में जाना सनातन धर्म है। इसी को पाना सनातन धर्म का अन्तिम परिणाम है। n

यह प्रवचन नालन्दा जिलान्तर्गत भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के विहार स्थल राजगीर में दिनांक २९.१०.१९६६ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२४९. नीच योनियों में जाना महाभय है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

हम सबलोग अपनी-अपनी हालतों को अच्छी तरह जानते हैं। हम जानते हैं कि संसार में भोग्य वस्तु जो हम पसन्द करते हैं, उसमें हम संतुष्ट नहीं होते। हम जानते हैं कि हमारी तरह हमारे मित्रगण भी भोग्य वस्तु को भोगकर संतुष्ट नहीं होते। देश के पुराणों को पढ़ते हैं तो उनमें भी हम पाते हैं कि उस समय के लोग भी भोगों को भोगते हुए भोग की इच्छा रखते ही संसार से चलते बने। हमलोगों की भी यही हालत होगी। फल क्या होगा? जिस इच्छा से जो शरीर छोड़ता है, उसी चक्र में वह घूमता है। उस चक्र में बारम्बार पड़ा रहता है। इस चक्र में चैन नहीं, शान्ति नहीं। लोग चैन चाहते हैं, शान्तिमय सुख चाहते हैं, परन्तु शान्तिमय सुख का मुख भी नहीं देख पाते। संतों ने कहा है—शान्तिमय सुख नहीं है, ऐसी बात नहीं है, संतलोग जानते हैं, उनसे जानो। कबीर साहब, नानक साहब सभी संत और ऋषि-मुनि कहते हैं कि वह शान्ति-स्वरूप परमात्मा है।

संसार में हम सभी पदार्थों को एक ही बार होते नहीं देखते। पाँच तत्त्वों में पहले आकाश है, फिर वायु, अग्नि, जल और तब पृथ्वी। सौर जगत में पहले आकाश है। सौर जगत और कितने हैं। सौर जगत स्थूल है। स्थूल बिना सूक्ष्म के नहीं हो सकता। सूक्ष्म भी बिना कारण के नहीं हो सकता। इस तरह जगत को तीन भागों में बाँट सकते हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। ये तीनों मायामय हैं। इन तीनों के अन्दर रहने से शान्तिमय सुख नहीं। सृष्टिक्रम को समझकर जैसे बिना कारण के सूक्ष्म नहीं और बिना सूक्ष्म के स्थूल नहीं, इसी तरह सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति है वा महाकारण है। इससे भी परे परमात्मा है।

प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

भगवान श्रीकृष्ण के वचन में पढ़ने से मालूम होता है कि अपरा प्रकृति जड़ात्मिका है। उससे परे परा प्रकृति है। इन दोनों से परे जो है, वह परमात्मा है। वही नित्य है, सत्य है, अटल है, ईश्वर है, खुदा है, गॉड है। जबतक उसको कोई नहीं पकड़ते, तबतक शान्ति नहीं। उसी को पकड़ने के लिए संत महात्मा कहते हैं। वह परम प्राचीन है, परम सनातन है। वह एक-ही-एक है। वह इतना व्यापक है कि उससे अधिक व्यापक कुछ नहीं है। वह ससीम नहीं है। ससीम मानने से बनेगा नहीं। ससीम के परे ससीम कहने से नहीं बनेगा। सब ससीम-ही-ससीम नहीं हो सकेगा। ससीम के परे असीम है। असीम के परे कुछ नहीं हो सकता। सबसे परे का वही है, वही शान्तिमय है। उसको पकड़ने से कोई शान्ति पाता है। उसको पहचानने से शान्ति मिलती है। उसके शासन से कोई बाहर नहीं जा सकता। इसलिए वह ईश्वर कहलाता है।

संसार में स्थूल, सूक्ष्म का भेद समझने पर मालूम होता है कि स्थूल से सूक्ष्म का मण्डल बड़ा है और स्थूल में सूक्ष्म स्वाभाविक समाया होता है। पाँच तत्त्वों में आकाश सबसे सूक्ष्म है। यह चार तत्त्वों में व्यापक है। वायु अपने से तीन तत्त्वों में व्यापक है। इसी तरह अग्नि दो तत्त्वों में और जल एक तत्त्व मिट्टी में व्यापक है। जो अनादि, अनन्त, असीम है,

वह उतना ही अधिक सूक्ष्म है। जो सबसे अधिक सूक्ष्म है, वह सबमें व्यापक होता है। उसके स्वरूप को बताते हुए संत लोग कहते हैं कि तुम इन्द्रियों को पकड़ नहीं सकते। हमारी इन्द्रियाँ स्थूल हैं। बाहर की कौन कहे, भीतर की इन्द्रियाँ—मन, बुद्धि आदि भी उसके मुकाबले में मोटी हैं।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

यह परमात्मा का स्वरूप है। वह इन्द्रियज्ञान में आने योग्य नहीं है। जो अपने को नहीं जानता, दूसरे को नहीं जानता। रात में सोए थे, अपने का ज्ञान नहीं था, जगने पर 'मैं हूँ' का ज्ञान हुआ। इसी तरह पहले अपने स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। संतों ने कहा कि तुम शरीर वा शरीर के अवयव वा इन्द्रियाँ वा चतुष्ट्य अन्तःकरण नहीं हो। इसके अतिरिक्त जो बचता है, वह तुम हो। श्रीमद्भगवद्-गीता के पढ़नेवाले जानते हैं कि भगवान ने क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान अलग-अलग बता दिया। पाँच स्थूल तत्त्व—मिट्टी, पानी, अग्नि, हवा, और आकाश; पाँच सूक्ष्म तत्त्व—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ मन बुद्धि, अहंकार, संघात, चेतना, धृति, प्रकृति और इनके चार विकार—इच्छा, द्वेष, सुख और दुःख; ये कुल इकतीस तत्त्व हुए। इन इकतीस को अलग कर इनको क्षेत्र कहो। इसको जो जानता है, वह है क्षेत्रज्ञ वा चैतन्य आत्मा। अपने को इनसे फुटाओ। इसके संग में रहते-रहते सर्वव्यापक तत्त्व का ज्ञान नहीं होता। ज्ञान का अर्थ बौद्धिक ज्ञान नहीं, अपरोक्ष ज्ञान है। ज्ञान की पूर्णता अपरोक्ष ज्ञान यानी प्रत्यक्ष ज्ञान में है। इसलिए प्रत्यक्ष ज्ञान को जानो। परोक्ष ज्ञान में सन्तुष्टि नहीं है। अपने को अगर बौद्धिक ज्ञान में जाना है, तो यह जानना विशेष नहीं। पुस्तक पढ़ लो, औरों से सुन लो। लेकिन यह श्रवण वा मनन ज्ञान रहेगा, विशेष नहीं जाएगा। संतों ने कहा—इससे आगे प्रत्यक्षता की ओर बढ़ो। अपने को जानने वा पहचानने के लिए कुछ साधन करना होगा। क्षेत्रज्ञ को सभी अवयवों से निकाल कर प्रत्यक्ष पाना है, जैसे दूध से घी को अलग निकाल लेते हैं। तुम्हें अपने स्वरूप से ही ईश्वर का दर्शन करना चाहिए। और किसी भी तरह से ईश्वर-दर्शन नहीं हो सकता। आँखों से शरीर के सब अंगों को देखते हो, लेकिन आँख को आँख से देखोगे। उसी तरह अपने को अपने से देखोगे। तब ब्रह्म छिपा नहीं रहेगा। इसीलिए तब जीवात्मा वा परमात्मा भिन्न नहीं रह जाता। कोई कहे कि हमको ईश्वर-दर्शन हुआ, इसका हमको विश्वास कैसे होगा? उपनिषत्कार कहते हैं—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

हृदय की ग्रन्थि टूटने पर जड़-चेतन का अलग-अलग ज्ञान हो जाएगा, उसके सारे कर्म क्षय हो जाएँगे। कर्मबन्धन उसको नहीं है, उसकी सब ग्रन्थियाँ छूट गई हैं, कैवल्य दशा प्राप्त है। अकेले हो जाने पर वह अपने को पहचानता है। ऐसे पुरुष संत कहलाते हैं। उनको कुछ जानना बाकी नहीं रहता। उनको किसी से कुछ पूछकर जानना नहीं रह जाता। लोग सिद्धान्त कहेंगे और वे प्रत्यक्ष देखेंगे। रामकृष्ण परमहंसजी ने कहा था— तुमलोगों का हृदय आइने की आलमारी है, इस तरह के देखनेवाले कुत्ते, गधे—सबके अन्दर उस ब्रह्म को देखेते हैं। इसके लिए क्या करना होगा? साधन-भजन करना होगा। जो कहता है कि हमसे साधन-भजन नहीं होगा, वह निज सुख को नहीं जानता है। वह इन्द्रिय-सुख को अपना जानता है। लेकिन यह अपना सुख नहीं है। इन सबको

छोड़कर वह चला जाएगा।

श्रीराम से लक्ष्मण ने पूछा था—माया किसे कहते हैं। इसके उत्तर में श्रीराम ने कहा था—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जान्हु भाई।।

तथा उपनिषद् का यह वाक्य—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

इन दोनों कसौटियों पर उसको कसकर देखो, जो कहते हैं कि 'हमको ईश्वर मिल गया।' कोई बन्धन तुम पर है वा नहीं, यह तुम प्रत्यक्ष जानोगे। जैसे रोगी को प्रत्यक्ष मालूम होता है कि मैं रोगमुक्त हो गया। यदि कोई मामूली ऋद्धि-सिद्धि को देखकर ही उसको पहुँचा हुआ समझता है, तो वह गलती करता है। उस परमात्मा को पाना, पाना क्या? वह तो सर्वत्र है ही। कबीर साहब ने कहा है—

सबकी दृष्टि पड़ै अविनाशी, विरला संत पिछानै ।
कहै कबीर यह भर्म किवाड़ी, जो खोलै सो जानै ।।

सब जगह है, फिर हम पहचानते क्यों नहीं? इसलिए कि हम मायिक आवरण में हैं। आवरण दूर करने के लिए क्या करना होगा? कूदना होगा वा आकाश में उड़ना होगा? शुकदेवजी आकाश में उड़ सकते थे। बुद्ध भगवान के समय में कितने भिक्षु आकाश में उड़ सकते थे और बुद्ध तो उड़ते ही थे। शुकदेवजी को व्यासदेवजी ने कहा कि—'तुम ज्ञान प्राप्त करने राजा जनकजी के पास जाओ। लेकिन मामूली तरह से पैदल चलकर, आकाश में उड़कर नहीं।' आकाश में उड़कर भी कोई मायिक आवरणों को पार नहीं कर सकता। बाहर को छोड़ो, अपने अन्दर चलकर अपने शरीर को छोड़ो। अपने अन्दर चलकर ही कोई शरीर छोड़ सकता है। स्थूल शरीर को छोड़ना ही काफी नहीं है। मरने पर तो स्थूल शरीर छूटता ही है। लेकिन जड़ के चारों शरीरों को छोड़ना है। जैसे केले का गाछ बाहर से देखने में एक मालूम पड़ता है, लेकिन उसमें अनेक डमखोले होते हैं। जैसे मूंज से सींक निकालते हैं, वैसे ही शरीररूपी मूंज में से सींक रूप आत्मा निकालोगे। इनका यत्न अपने अन्दर में करने से होगा, बाहर करने से नहीं। कोई कहे कि यह काम कठिन है तो सरल कौन काम है? सभी काम कठिन हैं। वीर लोग अपनी जान को हाथ में लेकर युद्ध के मैदान में जाते हैं। यदि ईश्वर-भजन को कठिन जानकर छोड़ दोगे तो अपना काम छोड़ दोगे। आज लोग स्वार्थवश निन्दा का काम करते हैं। वह भी स्वार्थ कैसा? संकीर्ण स्वार्थवश होकर करते हैं।

स्वारथ साँच जीव कर एहा। मन क्रम वचन राम पद नेहा ।।

असली स्वार्थ यह है। धीरे-धीरे आरम्भ करो। सरल से आरम्भ करके समाप्त करो। भगवान श्रीकृष्ण, कबीर साहब, नानक साहब, दादूदयाल आदि संतों ने सरल से ही आरम्भ कर खत्म किया। भगवान बुद्ध के वचन में आया कि 'अप्रमादी' बनो। भगवान बुद्ध स्वयं निरालस्य थे। आलस्य में वे पड़े ही नहीं। आलस्य को चीर फाड़कर फेंक दिया। जो निरालस्य हैं, वे अपने स्वार्थ को ठीक-ठीक समझते हैं। माया से अपने को ऊपर उठाओ, असली स्वार्थ यह है। स्वार्थ के कारण लोग पाप कर्म भी करते हैं, लेकिन इस काम (ईश्वर-भजन) के लिए जो चलते हैं, वे पवित्र होते जाते हैं। मन की चंचलता से मन की मलिनता होती है। मन की चंचलता विषय से होती है। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार; इनसे अपने को बचाते रहो। ईश्वर-भक्ति का आरम्भ करो। करते-करते कभी पूर्ण होओगे। ऐसा नहीं होता, ऐसी बात नहीं। ऋषि-मुनि कितने लोग पवित्र हो गए। हमको भी यह अपनाना चाहिए। जैसे एक तल से दूसरे तल पर, एक कोठरी से दूसरे कोठरी में जाते हैं, उसी तरह अपने अन्दर स्थूल-सूक्ष्म भेद से सभी में जा

सकते हैं। और ऐसा हो सकता है कि इसमें रोज आ सकते हैं। अभी आप स्थूल शरीर में रहते हैं, तो वायुयान पर स्थूल संसार में कहाँ से कहाँ तक उड़ते हैं। स्थूल से हटाकर सूक्ष्म में अपने को रखो, तो ब्रह्माण्ड दरसेगा और उसमें भी दूर-दूर तक जा सकोगे।

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।

—गोस्वामी तुलसीदास

इसके लिए अप्रमादी होकर नित्य साधन-भजन करना चाहिए। और ध्यान में सुगम नादानुसन्धान है। ध्वनि आपके अन्दर है। परन्तु उसका पकड़ना पहले नहीं होगा। पहले बिजली चमकती है, फिर बादल का गर्जन सुनते हैं। इसी तरह आपके अन्दर पहले बिजली चमकेगी, फिर शब्द सुनिएगा।

शबद खोजि मन वश करै, सहज योग है येहि।
सत्त शब्द निज सार है, यह तो झूठि देहि।।

—कबीर साहब

यह नादानुसन्धान है। किसी वस्तु का निर्माण करना चाहो, बिना कम्प के नहीं होगा। एक अक्षर या एक मिट्टी की गोली बनाना चाहो, बिना कम्प के नहीं बन सकती। कम्प शब्दमय होता है और शब्द कम्पमय होता है।

इतनी बड़ी जो सृष्टि हुई है, बिना कम्प के नहीं हुई है। कबीर साहब के 'शब्द' में आया है— 'साधो शब्द साधना कीजै। जेहि शब्द से प्रकट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै।' यही आदि नाद है—सारशब्द है। जो शब्द जिस पिण्ड के निर्माणार्थ होता है, वह शब्द उस पिण्ड में व्यापक होता है। आदिशब्द पिण्ड-ब्रह्माण्ड सबमें व्यापक है। हम पहचान नहीं सकते। २० फ्रीक्वेन्सी से कम और बीस हजार फ्रीक्वेन्सी के ऊपर के शब्द को नहीं सुन सकते। कोई-कोई तीस हजार फ्रीक्वेन्सी तक सुन सकते हैं। इससे अधिक को नहीं सुन सकते। भौतिक विज्ञान में फ्रीक्वेन्सी का यह ज्ञान है। कान के परदे से इसको सरोकार है। परन्तु अनहद और अनाहत शब्द अध्यात्म-विज्ञान का है, इसको कान के परदे से सरोकार नहीं है। इसको केवल मानस धारा और चेतन धारा से सरोकार है। इसको भौतिक विज्ञान की फ्रीक्वेन्सी (आवृत्ति संख्या) के द्वारा नहीं जान सकते। इसको केवल ध्यानयोग से ही जान सकते हैं। यह अध्यात्म-विज्ञान की वस्तु है। संसार में बिना शब्द के काम नहीं चल सकता, न बिना प्रकाश के काम होगा। संतों ने भी इन्हीं को अपनाया। इसी को शाम्भवी मुद्रा, वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। पहले यह ध्यान होता है, फिर उस प्रकाश मण्डल में नादध्यान होता है। दृष्टिसाधन में तीन तरह से देखते हैं—अमादृष्टि, प्रतिपदादृष्टि और पूर्णिमा दृष्टि। अमादृष्टि सरल है। आँख बन्द करो, अमादृष्टि हो गई। आँख बन्द करने से कष्ट होता, तो कोई सोता नहीं। यह सरल ध्यान है। यह मन की सूक्ष्म क्रिया है। इसके पहले कुछ जप कर लो। कुछ स्थूल रूप का ध्यान कर लो। इसलिए संतों ने मानस जप, मानस ध्यान बताया। इससे सिमटाव का बल मिलता है। शाम्भवी मुद्रा से पूर्ण सिमटाव होता है। पूर्ण एकाग्रता वा पूर्ण सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। यह स्वाभाविक है। इसको कोई हटा नहीं सकता। हमारे यहाँ कोशी नहर और गंगा नहर है। उसमें क्या होता है? जल को रोकते हैं। जल ऊपर उठकर बहता है। स्थूल में सिमटाव होने से सूक्ष्म में वृत्ति जाएगी। यही पिण्ड से ब्रह्माण्ड में जाना है। इसी भाँति आप माया से ऊपर उठ जाएँगे। यों तो माया के ऊपर स्वरूपत: आप हैं ही, लेकिन उसका प्रत्यक्ष ज्ञान आपको नहीं होता है। ध्यानविन्दूपनिषद् में आया है—

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।

भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

कई योजन तक फैला हुआ पहाड़ के समान यदि पाप हो, तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है। इसके समान पापों को नष्ट करनेवाला कभी कुछ नहीं हुआ है। ऐसा इसलिए होता है कि एकविन्दुता मे पूर्ण सिमटाव होता है। विन्दु में स्थान है, परिमाण नहीं।

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

परम विन्दु को किसी ने नहीं देखा। परम विन्दु का परिणाम स्थूल में कोई बता नहीं सकता। पेन्सिल की नोक से जो चिह्न होता है, वह असली विन्दु नहीं है।

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।

यह पूर्ण सिमटाव के लिए है। इसके पूर्व मानस जप, मानस ध्यान से अपनी एकाग्रता का बल कुछ बढ़ा लो। इससे आगे बढ़ना है एकविन्दुता के लिए। फिर वहाँ से नादानुसन्धान करो। नाद में अपने उद्गम स्थान पर खींचने का स्वभाव होता है, जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है। जो शब्द ऊपर से आता है, उसको जो पकड़ेगा, वह ऊपर खिंच जाएगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—योग का उलटा फल नहीं होगा। इसका मतलब है कि योग आवागमन से रहित करता है। उलटा फल है कि 'माया में फँसाकर रखे, ईश्वर की ओर नहीं जाने दे।' सो नहीं होता है। जब से इसका आरम्भ होता है, इसके बीज का नाश नहीं होता। कबीर साहब ने कहा—

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।
भक्ति बीज पलटै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।

योग महाभय से बचाता है। मैं कहता हूँ कि मनुष्य के लिए महाभय क्या है? गाय का हम बहुत आदर करते हैं, लेकिन किसी को कोई कह दे कि तुम गाय हो जाओगे, तो बड़ा दुःख मानेगा। हम नीचे की योनियों में नहीं गिरें, यह महाभय से बचाना है। नीचे योनियों में जाना महाभय है।

कर्म का फल अवश्य होता है। कर्म से संस्कार बनता है। इस ध्यानयोग कर्म का संस्कार मनुष्य-शरीर के अतिरिक्त और किसी शरीर में नहीं होगा। इसके लिए वह फिर मनुष्य-शरीर पावेगा और बारम्बार मनुष्य-शरीर पाकर कभी-न-कभी पूर्ण होगा। एक जन्म के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा एवं प्रकार से मनुष्य शरीर पाता रहेगा और अंत में मनुष्य-शरीर का फल—जो ईश्वर को पाना है, होगा। यह सनातन धर्म है, जब से लोगों ने इसको अच्छी तरह सोचा है, तब से यह है। जो कर्म परम सनातन को पकड़ा दे, वह सनातन धर्म है। ■

यह प्रवचन नालन्दा जिलान्तर्गत भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के विहार स्थल राजगीर में ५८वाँ अखिल भारतीय संतमत सत्संग का विशेषाधिवेशन दिनांक ३०.१०.१९६६ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२५०. दमशीलता कैसे आवेगी?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस समय मैं चाहता हूँ कि ईश्वर-भक्ति के विषय में ज्यादा खुलासा करके आपके सामने कहूँ। लोग समझते हैं कि परमार्थ साधनाओं में वा मोक्ष हेतु जो साधन है, उसमें ईश्वर की भक्ति बहुत सरल और सुगम है। मैं भी ऐसा कहता हूँ, परन्तु भक्ति के स्थूल और सूक्ष्म; दोनों भेदों को जानना चाहिए। लोग स्थूल भक्ति का ही अधिक ज्ञान

रखते हैं और समझते हैं कि स्थूल भक्ति से ही भक्ति का जो परिणाम होना चाहिए, सो हो जाएगा। परिणाम क्या होता है? गो० तुलसीदासजी ने कहा है—

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई।।
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई।।

जैसे बिना मिट्टी के जल नहीं रह सकता चाहे कोई करोड़ों उपाय करे, हे गरुड़जी! उसी तरह मोक्ष सुख हरि-भक्ति को छोड़कर अलग नहीं रह सकता। जहाँ हरि-भक्ति है, वहाँ मोक्ष है। भक्ति साधनाओं का परिणाम है कि मोक्ष मिल जाय। मोक्ष सबके लिए कल्याणकारी है। मोक्ष कहते हैं छुटकारा को। शरीर बन्धन है, संसार बन्धन है। दोनों बन्धनों से छूटकारा हो। इन दोनों बन्धनों से छूटने के लिए भक्ति का साधन सरल भी है और पूर्ण भी है।

एक व्याधे से एक मुनि ने कहा था कि तू दूर रह। व्याधे ने पूछा—'तुम भी मनुष्य हो, मैं भी मनुष्य हूँ, फिर दूर रहने क्यों कहते हो?' मुनि ने कहा—'तेरे शरीर से हिंसा की गन्ध आती है।' व्याधे ने अलग बैठकर कहा कि मुझे बताओ कि मैं शुद्ध कैसे होऊँगा? ऐसा साधन बताओ, जो सरल हो और पूर्ण फलप्रद भी हो। मुनि ने बता दिया कि शम-दम करो। व्याधे ने कुछ दिनों तक शम-दम का साधन किया। उसका ज्ञान ठीक हो गया। और जो प्रत्यक्ष होना चाहिए, वह हो गया। फिर जब वह मुनि के पास गया, तो मुनि के निकट में आदर से बैठाया और कहा कि तुम्हारी मलिनता छूट गई। बिना शम-दम के भक्ति नहीं होती। बिना मनोनिग्रह के काम, क्रोधादि विकार नहीं छूटते।

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय।।
—संत कबीर साहब

कामी, क्रोधी, लालची—मनोनिग्रह नहीं होने पर होता है। मनोनिग्रह होने पर ये विकार नहीं होते। भक्ति के साधन को सुनिए। भक्ति कहते हैं सेवा को। किसकी सेवा? ईश्वर की। किसी की कमी की पूर्ति करना उसकी सेवा है। रोगी है, औषधि दो। भूखा है, भोजन दो। इस प्रकार परहितार्थ कर्म सेवा है। अपने देश के हित में सेवा, सारे संसार के हित में सेवा, ये सभी सेवाएँ यानी भक्ति हैं। लेकिन अपने घर में आग लगे और पड़ोसी के घर में भी आग लगे, तो मनुष्य पहले अपने घर की आग बुझाता है, यह स्वाभाविक है। पहले अपने देश की सेवा करो, तब दूसरे देश की। आवश्यकता को पूरा करो, यही सेवा है। ईश्वर को क्या आवश्यकता है?

एक मुनि बालक जंगल में रहते थे। एक राजा उसी जंगल में शिकार खेलने गया। उसने मुनि बालक के रूप को देखकर उसे अपने साथ चलने कहा। और कहा कि तुम मेरे साथ चलो, तो मैं तुम्हें सब प्रकार की सुविधा दूँगा। मुनि बालक ने पूछा—तुम मुझे किस प्रकार की सुख-सुविधा दोगे? राजा ने कहा—जो मैं खाऊँगा, वह तुमको खिलाऊँगा। जैसा वस्त्र मैं पहनूँगा, वैसा तुम्हें भी पहनाऊँगा। जैसे महल में मैं रहूँगा, वैसे महल में तुमको भी रखूँगा। मैं सोता हूँ और पहरेदार मेरा पहरा करता है, उसी प्रकार तुम्हारे सोने पर पहरेदार तुम्हारा भी पहरा करेगा। मुनि बालक ने कहा—ऐसे राजा की मुझे आवश्यकता नहीं। तुम नहीं खाओ और मुझे खिलाओ, तुम वस्त्र नहीं पहनो, किन्तु मुझे पहनाओ। मैं सोऊँगा, तुम जगकर मेरा पहरा करो। इन शर्तों को मंजूर करो, तो मैं तुम्हारे साथ चलूँ। राजा ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता। मुनि बालक ने कहा—मेरा राजा मुझे खिलाता है, लेकिन स्वयं नहीं खाता है। मुझे कपड़े पहनाता है, किन्तु वह स्वयं कपड़ा नहीं पहनता। मैं सोता हूँ और वह जगकर मेरा पहरा करता है। ऐसे राजा को छोड़कर तुम्हारे साथ नहीं जा सकता। तुम तो भूख-प्यास के अधीन हो, माया के वश में हो। तुम मुझको क्या सुख दे सकते हो?

राजा ने समझा—यह साधारण बालक नहीं है। मुनि बालक जानकर प्रणाम करके राजा चला गया।

परमात्मा को कुछ आवश्यकता नहीं, कैसे भक्ति करोगे? लोग भक्ति करते हैं, जो कुछ वे जानते हैं। नहीं करने से कुछ करना अच्छा है। लेकिन भक्ति का साधन क्या है, समझ लीजिए।

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

केवल प्रीति जोड़ो, प्रीति जोड़ने की विधि जानो।

भाव अतिशय विशद प्रवर नैवेद्य,
शुभ श्रीरमण परम संतोषकारी।
प्रेम ताम्बुल गत शूल संशय सकल,
विपुल भव वासना बीजहारी।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

अगर ईश्वर के नाम पर रोते रहो, तब भी यह असली विधि भक्ति की नहीं है। बिना रोए भी ईश्वर की भक्ति होती है। रोओ मत। रोना बुरा नहीं है, लेकिन ईश्वर की ओर तुम्हारी वृत्ति होनी चाहिए। यहाँ ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। ईश्वर-स्वरूप ऐसा है कि इन्द्रिय-ज्ञान से बाहर है। आँख से रोने से क्या होगा? मन की पहुँच से बाहर है, बुद्धि से परे है। तब क्या करोगे? शरीर के बाहर और भीतर मायिक तत्त्वों को छोड़कर जो है, वही तुम हो। ऐसा विचार जानकर अपने को जोड़ो। दूध के साथ घी रहता है और यत्न से निकाल लिया जाता है, इसी तरह मन के साथ चेतन आत्मा है। फिर दोनों में भिन्नता भी हो जाती है। किसी धातु के तार को अधिक-से-अधिक महीन करना चाहते हैं, तो महीन-से-महीन छिद्र होकर खींचिए। मन की मोटाई के साथ चेतन आत्मा मोटी-सी हो गई है। इसको वहाँ ले जाइए कि मन की मोटाई नीचे रह जाए। सुनकर कठिन मालूम होता है, लेकिन इसके साधन में शरीर को कष्ट नहीं होता, संसार का रोजगार नहीं छूटता। नित्य थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करना है। नित्य साधन करो। चित्त एकाग्र करो। चेतन आत्मा का स्वरूप मन से बहुत सूक्ष्म है।

एकाग्रता के कारण सूक्ष्मता आएगी, पसार छूट जाएगा। पूर्ण सिमटाव पार कर एक मण्डल से दूसरे मण्डल में पहुँचा जाएगा। सिमटी हुई चीज ऊपर बढ़ती है, यह स्वाभाविक है। बिछावन फैले हैं, इनको समेटिए, ऊपर को जाएँगे। इसी तरह सिमटाव के कारण चेतन आत्मा की ऊर्ध्वगति होती है। इसके लिए प्रत्यक्ष अवलम्ब मिलता है, वह अवलम्ब मन से बनाना नहीं पड़ता, हई है। स्वाभाविक आपके अन्दर हई है। चेतन आत्मा के साथ बुद्धि ऊपर नहीं जा सकती, नीचे रह जाती है, और चेतन आत्मा आगे बढ़ती है। इस तरह ईश्वर की ओर होना होता है। जो इस तरह ईश्वर की ओर होता है, वह ईश्वर की ओर अपने को जोड़ता है। यह स्थूल भक्ति नहीं, सूक्ष्म है। जो इस भक्ति में नहीं आता, वह भक्ति को समाप्त नहीं करता। जो समाप्त नहीं करता, वह ईश्वर की भक्ति करके ईश्वर को नहीं पा सकता। ध्यानयोग से इसका साधन सुगम-सुगम से होता है। सुनने में इसकी सूक्ष्मता का ज्ञान होता है। विचारवान समझते हैं कि इसका साधन भी सूक्ष्म होगा। संतों ने इसका प्रचार किया। बहुत लोगों को ज्ञान हुआ। समय की प्रबलता से वह ज्ञान धीरे-धीरे विलीन हो गया। लोग केवल मोटी-मोटी बातों में रह गए।

मैं यह नहीं कहता कि मोटी भक्ति नहीं करो। सत्संग मोटी भक्ति है। मैं पूजा-पाठ करना मना नहीं करता, लेकिन केवल इसी में लगे नहीं रहो, आगे बढ़ो। मैं नहीं कहता हूँ कि शैव बनो, तब भक्ति होगी वा वैष्णव होओ, तब भक्ति होगी। वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, दरियापंथी, नानकपंथी, कबीरपंथी आदि सभी कर सकते हैं। सभी संतों का विचार एक कर लो, यही संतमत

है। मैं सभी सम्प्रदायों का आदर करता हूँ, किसी की निन्दा नहीं करता। किसी मत में गणेश, किसी मत में सूर्य, किसी मत में विष्णु आदि इष्ट होते हैं। कबीरपंथी, नानकपंथी सबमें स्थूल इष्ट की उपासना आरम्भ में होती है। बिना स्थूल भक्ति के सूक्ष्म भक्ति में नहीं जा सकते।

गीता में पढ़िये—क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में अभेद नहीं है। उपनिषद् में आया है कि ब्रह्म के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर होते हैं। किसी भी क्षेत्र के क्षेत्रज्ञ—आत्मतत्त्व को पहचाननेवाला परमात्मा को पहचानता है। सभी प्राणियों में वह उसको देखता है। जो यह जानता है, उसको किसी मत—सम्प्रदाय से भेद-भाव नहीं है। यह स्थूल भक्ति नहीं, सूक्ष्म है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका में कहा है—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

किसी कला में कुशल कोई कैसे होता है? पहले एक-एक अक्षर पर आपने कितनी बार हाथ घिसा? बारम्बार अभ्यास करते-करते अक्षर को सीखा, उसी प्रकार भक्ति में बारम्बार अभ्यास करो, कुशल होओगे। तुम्हारी वृत्ति वा सुरत वा मन सहित चेतनधार फैली नहीं रहे, सिमटी हो, तब अवलम्ब मिलता है। चेतनधार जो ईश्वर की ओर से इस शरीर में आती है, उसको मन से पकड़ा जाता है। उस धारा को दो रूपों में पाते हैं—एक ज्योतिर्मय धार और दूसरा शब्दमय धार। इसलिए संतों के ग्रन्थों और उपनिषदों में ज्योति और शब्द की बड़ी महिमा है। इन दोनों का जो अभ्यास करता है, वह ईश्वर को पाता है, दूसरा नहीं। इसके लिए ध्यानाभ्यास अत्यन्त अपेक्षित है। शरीर मरता है, हम रहते हैं। कबीर साहब ने कहा है—

सुन काया बौरी, चलत प्राण काहे रोई।
कहै प्राण सुन काया बौरी, मोर तोर संग न होई।।
तोहि अस मित्र बहुत हम त्यागा, संग न लीन्हा कोई।।

हमारे अन्दर मन है और सूक्ष्म, कारण शरीर हैं, ये नहीं मरते। इन्हीं के कारण से हमको पुनः-पुनः जन्म होता है। सूक्ष्म भक्ति में सफरी बनो। सफरी सबसे छोटी मछली होती है। वह जल प्रवाह की उलटी धारा पर चलती है। सुरत को उलटी धारा पर चलाओ। तुम न तो सफरी बनते हो, न चींटी। मतलब यह कि तुम फैलाव में हो। अपना सिमटाव नहीं करते हो। जड़धार बालू है, चेतनधार चीनी है। जड़धार से चेतनधार को फुटा लो। जो अपने को सफरी और चींटी बनाता है, वह योगी होता है, वह अपने अन्दर सारे संसार को देखता है, नींद छोड़कर सो जाता है। वह स्वप्न और गहरी नींद, दो में से किसी में नहीं रहता। वह तीन अवस्थाओं को छोड़कर चौथी अवस्था में रहता है।

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप अनंत।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

जागने की अवस्था में आप स्थूल शरीर और स्थूल संसार में रहते हैं। स्वप्न में मानसिक संसार है। सुषुप्ति में न अपने शरीर का ज्ञान है, न संसार का। स्थूल शरीर में रहकर आप स्थूल संसार में सैर करते हैं। सूक्ष्म शरीर में रहिए तो सूक्ष्म जगत में विचरण करेंगे। इसी तरह कारण, महाकारण के लिए है। वह द्वैत से अत्यन्तकर छूटा हुआ हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।

लोग time and space (टाइम एण्ड स्पेश) बोलते हैं। जहाँ तक समय और स्थान है, वहाँ तक माया का आच्छादन है। जो समय और स्थान को पार कर गया, वह माया को पार कर गया—वह स्वतंत्र है। तब 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' हो जाता है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने नवधा भक्ति का वर्णन किया है—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनहुँ नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

पाँच भक्ति तक लोग सुगमता से समझ जाते हैं। करने में भी—गुरु कोई मंत्र बता देंगे, तो करने लगेंगे। नवधा भक्ति में लोगों को मालूम होता है कि मूर्ति-ध्यान नहीं है। लेकिन 'गुरु पद पंकज सेवा' में मूर्ति-ध्यान निहित है। कबीर साहब ने कहा है—

जौं गुरु बसें बनारसी, शिष्य समुन्दर तीर।
एक पलक बिसरै नहीं, जौं गुन होय शरीर।।

तथा, गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।

जो गुरु आज्ञा करें, करो।

छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।

इसका केवल अर्थ लोग कर लेते हैं। बहुत से कर्मों से विरत होने तथा दमशीलता की ओर खूब ध्यान देना, यह कैसे होता है और सज्जनों के धर्म में चलनेवाला कैसा होता है? झूठ बोलनेवाला सज्जन नहीं होता, चोरी करनेवाला सज्जन नहीं होता, नशा खानेवाला सज्जन नहीं होता, व्यभिचार करनेवाला सज्जन नहीं होता, हिंसा करनेवाला सज्जन नहीं होता।

महापतित को? हिंसाचारी। धन्य कवन? जो पर उपकारी।

हिंसाचार से बचो। चाहे आपको अप्रिय मालूम हो, लेकिन सत्य है कि जो मांस-मछली खाते हैं, वे हिंसाचारी में हैं। मनु महाराज ने अष्टघातकों का वर्णन किया है। यह मेरी उक्ति नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि मैं मारने नहीं जाता हूँ। लेकिन खाने से हिंसा में आपका हिस्सा हो जाता है। यह हिस्सा भी नहीं हो, तो अच्छा है। भगवान बुद्ध का यही पंचशील पालन है कि पंच पापों को मत करो। यही उपदेश कबीर साहब और नानक साहब का है।

आपको आज स्वराज्य प्राप्त है, लेकिन आप सुखी हैं वा दुःखी, स्वयं सोचिए। मैं काँग्रेस का कभी चौअन्नियाँ मेम्बर नहीं बना, लेकिन जो आवश्यकता हुई, मैंने सेवा की। कई बार मुझसे नोटिस लिखवा लिया गया कि काँग्रेस को लोग 'वोट' दें। लोगों पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। लोगों ने 'मतदान' दिए। मेरे पास अधिक धन तो नहीं, फिर भी जो था, आवश्यकता जानने पर उससे मैंने उसकी सेवा की। मैं भी आशा करता था कि देश सुखी होगा। लेकिन सत्रह वर्ष हो गए, स्वराज्य पाकर क्या हुआ? कितना सुख है, देखिए। लेकिन यदि इन पंच पापों को छोड़ दीजिए, तो देखिए सुख बरसेगा।

लोग मेरे लिए कहते हैं कि 'वे देश का क्या करते हैं? कहते हैं—ध्यान करो, ध्यान करो।' मैं कहता हूँ कि वे समझते नहीं। मैं देश की जड़ को मजबूत करता हूँ। १९०९ ई० में हमारे गुरु महाराज कहते थे कि लोग हिंसात्मक कार्य करते हैं, यह उल्टा काम है। पहले आध्यात्मिकता रखो, फिर सदाचारिता और तब सामाजिक नीति, फिर राजनीति। जिस देश में लोगों में आध्यात्मिकता अधिक होगी, वहाँ के लोग अधिक सदाचारी होंगे, जहाँ के लोग सदाचारी होंगे, वहाँ की सामाजिक नीति अच्छी

होगी और जहाँ की सामाजिक नीति अच्छी होगी, वहाँ की राजनीति कभी बुरी हो नहीं सकती।

पंच पापों को छोड़ दीजिए, चौरी-डकैती आदि उपद्रव नहीं होंगे। यदि आप मेरी बात नहीं मानें, तो मैं कोई सजा नहीं दे सकता, लेकिन आप ईश्वरीय सजा से नहीं बचेंगे, इतनी बातें मैंने 'सज्जन धर्म' पर कहीं। अब दमशीलता के संबंध में सोचिए। यह दमशीलता कैसे आवेगी? बहुतों को ख्याल है कि विचार करके मन को रोकेंगे, लेकिन केवल विचार ही से मन को नहीं रोक सकिएगा। पहले यह जानिए कि आपका मन विषयों में कैसे चलता है, मन कैसे मलिन होता है? सब इन्द्रियों के साथ-साथ मन की धारें लगी हुई हैं, जाग्रत में सब इन्द्रियों में धारें लगी रहती हैं और स्वप्न में वे धारें अन्तर्मुखी हो जाती हैं। तब मन बाहर के विषयों में नहीं रहता। मन के साथ चेतन धार है, तब विषयों की ओर मन रहता है—मन विषय-लोलुप होता है।

सूक्ष्म मार्ग पर चलने का पहला साधन विन्दु ध्यान है। इसलिए ध्यान-अभ्यास करो, मन का सिमटाव होगा, बाह्य इन्द्रियों का मेल छूटेगा, पहले स्थूल इन्द्रियों से छूटकर थोड़ा ठहराव होगा, उस थोड़े-से-थोड़े ठहराव में जो-जो अनुभव होगा, उन अनुभवों में ऐसा सुख होगा, जैसा सुख मन ने पहले कभी नहीं पाया। उस सुख के लालच में फँसकर भक्त-अभ्यासी अधिक-अधिक साधन कर अधिक-अधिक सुख पाता है और इन्द्रिय-सुख से उपराम हो जाता है।

जाग्रत और स्वप्न के बीच में तन्द्रावस्था होती है। हाथ-पैर से शक्ति अन्दर की ओर सिमटती है, उस समय कष्ट नहीं मालूम होता, चैन मालूम होता है। वह ऐसा सुख है, जो किसी इन्द्रिय-विलास में सुख नहीं। अन्तर्मुख होने से क्या होता है, यह थोड़ा-सा नमूना है। अन्तर्मुख होओ, तो अपने ही सुख मिलेगा। यह छठी भक्ति है। इसको भक्ति इसलिए कहते हैं कि विषय से छूटकर निर्विषय परमात्मा की ओर हुआ जाता है। इसलिए कबीर साहब ने कहा—'भक्ति का मारग झीना रे।' और नानकदेवजी ने कहा—'भगता की चाल निराली।' उपनिषद् में कहा—'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम् पथस्तत्कवयो वदन्ति।'

यह केवल बौद्धिक बात नहीं है। साधन से इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। मन और चेतन सम्मिलित रूप से उस सूक्ष्म मार्ग पर जाते हैं। यह तलवार से कैसे कट सकता है? मनोनिग्रह को शम कहते हैं। इन्द्रियनिग्रह में भी मन का निग्रह होता रहता है, लेकिन पूर्ण नहीं। शम के साधन में इन्द्रियों का संग छोड़कर केवल मन के साधन में लगना होता है। नादानुसन्धान के द्वारा मन इन्द्रियों का संग छोड़कर शब्द ध्यान में लगा रहता है, तब पूरा-पूरा मनोनिग्रह होता है। शम-दम के साधन से चेतन आत्मा शरीर-इन्द्रियों से छुटकारा पाती है, अपने को पहचानती है और ईश्वर को पहचानती है। इसी का प्रचार इस सत्संग से होता है।

मोटी भक्ति का प्रचार बहुत है। इस सूक्ष्म भक्ति का बहुत कम प्रचार है। मोटी भक्ति में इस सूक्ष्म भक्ति को जोड़ दीजिए, तो सोने में सुगन्ध हो जाए। सिर भी रखो और पैर भी रखो। इसी तरह स्थूल भक्ति भी रखो और सूक्ष्म भक्ति भी। भक्ति के स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकारों को सब कोई समझ-समझकर करें। n

यह प्रवचन नालन्दा जिलान्तर्गत भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के विहार स्थल राजगीर में ५८वाँ वाषिक महाधिवेशन, दिनांक ३०.१०.१९६६ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२५१. मन तुरन्त ही समेट में नहीं आता

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

सब लोग अपने को बन्ध दशा में पाते हैं। कोई भी ऐसा नहीं जो अपने को बन्ध दशा में नहीं बता सके। बन्ध दशा में क्या होता है, सभी जानते हैं। संसार में विद्वान, अविद्वान, धनी, निर्धन कुछ बनकर रहो, मालूम होता है कि मैं बन्ध दशा में हूँ। मन वश में नही, इन्द्रियाँ भी बेकाबू। शरीर वश में नहीं, इसी शरीर में रहना, फिर बन्ध दशा में जीव कैसे नहीं? इन बातों को विचारने पर मालूम होता है कि कोई मार्ग मिलता, जिसपर चल कर मोक्ष दशा को प्राप्त होते। बन्ध दशा से छूटकर परमानन्द पाते। संतों ने यही सरल मार्ग बतलाया है–

संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सदग्रंथ।।

संतों का मार्ग मोक्ष का है। यह रास्ता कहाँ जाने का है? बन्धनों से छूटकर रहना हो, ईश्वर की प्राप्ति हो, यही मोक्ष का रास्ता है। यह रास्ता कहाँ है? धरती पर, आकाश में, पानी में? बाहर संसार में यह मार्ग नहीं है। इस मार्ग पर चलनेवाला शरीर नहीं है–जीवात्मा है। जो जहाँ बैठा रहता है, कहीं चलने के लिए उसका रास्ता वहीं से आरम्भ होता है। यह रास्ता ईश्वरकृत है। संतों ने उस रास्ता को जाना और ईश्वर की कृपा से जाना। आदि गुरु परमात्मा है। आदि संत जो कभी पहले हुए, ईश्वर की ओर से उस ज्ञान का विकास उनके अन्दर हुआ। उस मार्ग पर चलने का उपाय संतों ने बताया।

जीव की बैठक जाग्रत में आँख में है। विचारो, शरीर के बाहर भाग में तो हो नहीं, भीतर हो। भीतर देखने के लिए आँख बन्द करो। देखो और पूछो कहाँ हो? अन्धकार में–उत्तर आवेगा। नेत्र के अन्दर देखने की शक्ति है। आँख बन्द करने पर वह दृष्टिशक्ति वहीं रह गई। वहाँ अन्धकार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसी अन्धकार में वासा है। संत लोग भी यही कहते हैं और उपनिषद् के ऋषियों ने भी यही कहा कि जीव का जाग्रत में आँख में वासा रहता है। कबीर साहब ने कहा है–

इस तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।
–दरिया साहब

यहीं से रास्ता आरम्भ होता है। इसमें अपने मन का सम्हाल करना होता है। यही योग-अभ्यास है। इसके बिना कुछ नहीं होता। चित्तवृत्ति का निरोध वा मन का सिमटाव एक ही बात है। योग-क्रिया से मन का सम्हाल किया जाए, फिर आगे बढ़े, प्राणायाम भी इसलिए करते हैं कि मन का चांचल्य कम हो। इसीलिए आसन भी है। भगवान श्रीकृष्ण ने किसी आसन का नाम नहीं लिया। बल्कि कहा कि शरीर, मस्तक और ग्रीवा (गला) को सीधा करके बैठो। कई उपनिषदों में भी ठीक इसी तरह है। धड़, मस्तक और गला को सीधा करके बैठने से श्वास-प्रश्वास की गति धीमी होती है। गीता में भी ऐसा ही वर्णन है। लेकिन केवल किताब पढ़कर अभ्यास करना ठीक नहीं होगा। किसी गुरु से जानकर अभ्यास करो।

मन तुरन्त ही समेट में नहीं आता। अभ्यास करते रहो, करते-करते होगा। मन भागता है, उसको समेटकर लाओ, यह 'प्रत्याहार' है। प्रत्याहार करते-करते कुछ-न-कुछ टिकाव होगा, इस अल्प टिकाव को 'धारणा' कहते हैं। फिर देर तक मन टिकता है, यह ध्यान है। ध्यान तो यहाँ है। ध्यान से मन का सिमटाव होता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है, यह स्वाभाविक है। इसको कोई रोक नहीं सकता।

चेतन आत्मा और मन का साथ इस तरह है—जैसे दूध में घी। दूध से घी को अलग किया जाता है, इसी तरह मन से चेतन आत्मा को अलग किया जाता है। विशेष सिमटाव से अन्धकार से पार होना होता है, फिर प्रकाश मिलता है। जैसे अन्धकार में अन्धकार मार्ग, उसी तरह प्रकाश में प्रकाश ही मार्ग है। प्रकाश को छोड़ने पर कम्पन बचेगा। कम्प शब्दमय और शब्द कम्पमय होता है। इन दोनों को कोई अलग-अलग नहीं कर सकता। फिर शब्द का मार्ग होगा, यह अन्तर्मार्ग है। जहाँ से ज्योति मार्ग है, वहाँ से ही साधक को मालूम होने लगता है कि मैंने रास्ता पकड़ लिया है। जो सिमटाव करता है, उसको बायीं-दायीं ओर से अपने को रोकना होगा। बायीं-दायीं वृत्ति वा नाड़ी को रोकोगे तो स्वाभाविक ही वह बीच में रहेगी अर्थात् इड़ा-पिंगला से छूटकर सुषुम्ना में स्थिति होगी। यहाँ से ऊर्ध्वगति होती है। जैसे मछली को पानी का अवलम्ब होता है, तो वह भाठा से सीरा की ओर चढ़ती है। उसी तरह जीवात्मा शब्द को पकड़कर ऊपर की ओर जाती है। जैसे पक्षी प्रकाश को पाकर आकाश में उड़ता है, उसी तरह अन्तर के प्रकाशमय आकाश में सुरत उड़ती है। इसीलिए इसको 'विहंगम मार्ग' कहते हैं। शब्द के रास्ते पर चलना 'मीनमार्ग' है। नीचे में पाँच चक्र हैं। हठयोगी को नीचे से काम करना होता है। यह हठयोग है। यह 'पिपीलिका मार्ग' है। कुछ लोग पिपीलिका मार्ग से विहंगम मार्ग में आते हैं और फिर मीनमार्ग में आते हैं। और कुछ लोग विहंगम मार्ग से ही मीनमार्ग में आते हैं। लेकिन प्राणायाम द्वारा पिपीलिका मार्ग से विहंगम मार्ग में आने में अकुशल भी होता है। बहुत लोगों को यह पसन्द आया कि प्राणायाम छोड़कर केवल ध्यान किया जाय। गीता के छठे अध्याय में ध्यानयोग का वर्णन है, प्राणायाम का नहीं। अन्य अध्यायों में प्राणायाम का वर्णन है, लेकिन उसके लिए कठिन आसन आदि का वर्णन नहीं है। सब के लिए सरल ध्यानयोग है। इसके लिए घबराना नहीं चाहिए। कितने जन्मों से संसार में बन्धे हुए चले आ रहे हैं। तुरन्त कैसे यह बन्धन छूट सकता है। अभ्यास करो, धीरे-धीरे होगा।

संसार में जो काम होता है, वह भी प्रकाश और शब्द के द्वारा ही। बिना इन दोनों के कोई काम संसार का नहीं हो सकता। चुपचाप एकान्त में बैठो आप-ही-आप शब्द मालूम होगा। आँख के दाबने से प्रकाश मालूम हो, यह ठीक नहीं। देखने के यत्न को जानो, देखोगे। दूर का प्रकाश छोटा मालूम होता है, जैसे-जैसे नजदीक जाओ, वैसे-वैसे वह प्रकाश विशाल होता जाता है।

आपलोगों ने अभी वेद के पाठ में सुना—उषा आती है, उसको हाथ-पैर आदि नहीं है। इसी तरह जो आदिशब्द है, उसमें पाद, सर्ग आदि विभाग नहीं है। वर्णात्मक शब्द का विभाग होता है, आदिशब्द का नहीं। इसको ॐ, शिव, राम, सतनाम, सत्यशब्द आदि कहते हैं। ओंकार ऐसा शब्द है, जिसके अन्दर सभी शब्द भरे हैं। आप जो कुछ बोलते हो नासिका, मुख, ओष्ठ, कण्ठ, तालु आदि से। यदि ऐसा कोई शब्द है, जो उच्चारण के सभी स्थानों को भरकर होता है, तो वह 'ॐ' ही है।

इसीलिए ओंकार को सृष्टि का बीज कहते हैं। पहले जो कम्पन हुआ, उसी को 'ॐकार' कहते हैं। इसको बड़ा पवित्र माना गया है। अभी भी यह पवित्र है। इसी को शिव, राम, ॐ आदि कहा। मनुष्य-भाषा में जो शब्द सब बोलते हैं, जैसा वह सुनने में आता है, वैसा वह ॐ सुनने में नहीं आता। वह भिन्न ही है। पहले ही यह शब्द पकड़ा नहीं जाता है। गुरु से भेद लो, तब जानने में आवेगा।

बाहर संसार में जैसे बिना ज्योति और शब्द के काम नहीं चलता। उसी तरह अन्तस्साधन में शब्द और ज्योति के बिना काम नहीं होता। बिना कम्प के सृष्टि नहीं होती। आदि कम्प सारी सृष्टि में प्रविष्ट है। यह बड़ा सूक्ष्म है। इसलिए इसको किसी इन्द्रिय से नहीं जान सकते। चेतन आत्मा ही जान सकती है। चेतन आत्मा उस शब्द से खींचकर परमात्मा तक जाती है, फिर दुःख में नहीं गिरती है। परमात्मा को पाकर परम कल्याण पाती है। इसके लिए पवित्रता की आवश्यकता है। पवित्रता के लिए झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; पंच पापों से बचो। यदि कोई पाप हो जाय तो ईश्वर से प्रार्थना करो कि फिर हमसे पाप नहीं हो।

जो इस ध्यान-साधन का थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करता है, वह नीचे नहीं गिरता। ध्यान योग महाभय से बचाता है। जन्म-जन्म में वह बढ़ता ही चला जाएगा। यही सभी संत-महात्मा कहते हैं। अच्छी तरह साधन-भजन कीजिए, कभी-न-कभी मोक्ष अवश्य मिल जाएगा। मेरे सामने—मोक्ष मार्ग और दूसरा कोई नहीं है। इसी का मैं साधन करता हूँ। इसी में मेरा विश्वास है। गुरु महाराज ने जो बताया है, शास्त्रों और संतों की वाणियों में भी यह है। इसी का प्रचार इस सत्संग से होता है। मैंने साफ-साफ आपलोगों से कह दिया। ■

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत जमालपुर नगर में स्व० रायबहादुर तुलसीजी के निवास पर दिनांक १४.११.१९६६ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२५२. मूल में ही भूल

प्यारे लोगो!

जीवमात्र सुख पाने के ख्याल रखते हैं। सुख पाने के ख्याल से ही संसार में उद्यम करते हैं। अत्यन्त परिश्रम करते हैं, थकते हैं, फिर भी उद्यम करते हैं। अत्यन्त परिश्रम करते हैं, थकते हैं, फिर भी उस परिश्रम को छोड़ते नहीं। आप अन्य लोगों को देखिए और अपने को भी। सुख पाने के लिए एक अमीर भी बहुत परिश्रम करके थकते हैं और एक गरीब भी। यदि गरीब शारीरिक परिश्रम बहुत करते हैं तो अमीर शारीरिक परिश्रम तो कम करते हैं, लेकिन मानसिक परिश्रम अधिक करते हैं। शारीरिक वा मानसिक परिश्रम कितना भी किया जाए, लेकिन बिना इच्छा के छूटे—स्वप्न में भी सुख नहीं होता। यह इच्छा छूटे कैसे? एक तो संसार की असारता का ज्ञान हो, दूसरी बात यह है कि ज्ञान निर्णय करता है कि यह संसार असार है, इसमें असली सुख नहीं है। सुख वा स्वाद किसमें हैं? एक टुकड़ा मिश्री का मुख में रखते हुए भी यदि कोई स्वप्न में देखता है कि हम नीम का पत्ता चबाते हैं, तो उसको उस समय मिश्री का स्वाद नहीं मालूम होता। क्यों? लोग चेतन से ही ज्ञान पाते हैं। सोने पर चेतन अन्तर्मुख हो जाता है, बाहर

इन्द्रियों में नहीं रहता। इसलिए बाहर का सुख-दुःख नहीं मालूम होता। मन में नीम के पत्ते का स्वाद याद है। इसलिए स्वप्न में उसको तीता लगता है। जगने में भी खट्टा वा मीठा जीभ पर लगा नहीं रहता, लेकिन याद आने से मुँह में पानी आ जाता है।

असल में वहाँ तो है नहीं। जगने पर चेतन का पसार समूचे शरीर में हो जाता है और जिभ्या पर जो डाला जाता है, उसका स्वाद मालूम होता है। असल में चेतन के कारण स्वाद मालूम होता है। स्वाद वा स्वाद का सुख चेतन में है।

हमलोगों का शरीर दो चीजों से बना है—जड़ और चेतन। जड़-चेतन के संग का रूप हमलोगों का शरीर है। चेतन के अभाव में ज्ञान नहीं होता। चेतन के रहने पर ज्ञान मालूम होता है। सुख और स्वाद चेतन में है। असली सुख चाहें तो अपनी ओर घूमिए। बहिर्मुख से अन्तर्मुख होइए। किसी से पूछिए—तुम कहाँ हो? तो वह कहेगा कि मैं शरीर के अन्दर हूँ। अपनी ओर घूमने के लिए अन्दर होना होगा। अन्तर में जो आत्मा है, वही राम है। वही 'व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता' है। राम सबमें व्यापक है और राम में सब है। इसलिए वह व्यापक और व्याप्य दोनों है। शरीर के अन्दर रहने पर भी वह शरीर से पृथक है। जो राम की ओर जाते हैं, वे राम का सुख पाते हैं। राम को घर नहीं चाहिए, खाना नहीं चाहिए, पहनने के लिए कपड़ा नहीं चाहिए। फिर राम की सेवा कैसे करो? राम की ओर चलो, यही उनकी सेवा है। बाहर संसार के सभी पदार्थ नाशवान हैं, परिवर्तनशील हैं। परमात्मा अनाश है, अपरिवर्तनशील है। वह सबसे पूर्व का है, इतने पूर्व का है कि जिसके पूर्व का कुछ नहीं। जो उसकी ओर होता है, वही ईश्वर का भक्त है। अपनी ओर चलना ईश्वर की ओर चलना है। गंगा की ओर चलना गंगा की भक्ति है। जैसे-जैसे गंगाजी के निकट जाता है, उसकी वायु लगती है।

वहाँ पहुँचकर जल पीते हैं। वैद्य के कहने से गंगा-सेवन करने गया। गंगाजी की हवा में टहलता है। पानी पीता है। गंगा में भक्ति-भाव से डुबकी लगाता है। यही गंगा-सेवन है। गंगा-सेवन करते-करते रोग छूट जाता है।

ईश्वर कहाँ है, किस ओर चलोगे? ईश्वर का ज्ञान यहाँ सुनते हो, लेकिन प्रत्यक्ष नहीं होता। जहाँ जाकर, जिस ओर जाकर ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान हो, वहाँ जाओ। इन्द्रियों के संग में जहाँ जाओगे, माया के पसार में रहोगे। अपने को इन्द्रियों से जैसे-जैसे छुड़ाओगे, वैसे-वैसे माया के पसार से छूटते जाओगे। जहाँ माया का पसार खत्म होगा, वहीं ईश्वर-दर्शन होगा। माया के पसार से छूटने के लिए अपने अन्दर चलो। बाहर-बाहर चलने से माया का पसार नहीं छूट सकता। माया का मोटा रूप पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, आकाश है। इतना ही नहीं माया का सूक्ष्म रूप भी है। स्थूल रूप से छूटकर सूक्ष्म रूप में प्रवेश करें, तब सूक्ष्म रूप को देखेंगे। बिना सूक्ष्म के स्थूल नहीं होता और बिना कारण के सूक्ष्म नहीं होता। कारण भी बिना महाकारण के नहीं होता। इन चारो तत्त्वों को पार करे, तब माया को पार कर ईश्वर को पावेगा।

संसार और शरीर का ऐसा संबन्ध है कि संसार के जिस तल पर रहोगे, शरीर के भी उसी तल पर रहोगे। शरीर के जिस तल को छोड़ोगे, संसार के भी उसी तल को छोड़ोगे। शरीर के सभी तलों को पार करो तो ब्रह्माण्ड के भी सभी तलों को पार कर सकोगे। 'जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे'। तब ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। जैसे किसी का रोग छूट जाए तो वह स्वयं जानता है कि मुझे कोई रोग नहीं है। किसी की भूख मिट जाए तो वह स्वयं जानता है कि मुझे भूख नहीं है। उसी तरह

पिण्ड से—जड़ से छूटकर चेतन अवस्था को जब प्राप्त करोगे, तब प्रत्यक्ष होगा कि यही ईश्वर है। इसका प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। किसी के कहने से नहीं। तब जो सुख होगा, वही असली सुख है, ब्रह्म सुख है। इसको पाने के लिए अन्दर-अन्दर चलना होगा। बाहर-बाहर चलते-चलते कई जन्म भी लग जाय, नहीं पा सकता। जो अन्दर चलता है, वह भक्त होता है। वह योगी होता है। योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। इसका विपरीत फल नहीं होता। यह महाभय ये बचाता है। मनुष्य-शरीर से विशेष शरीर कोई नहीं है। मनुष्य के अतिरिक्त दूसरी योनियों में जाना महाभय है। कम समझ के लोग देवता का शरीर चाहते हैं, लेकिन ज्ञानवान कहते हैं—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रथहिं गावा।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

भक्ति के बीज का नाश नहीं होता। कभी बदलता नहीं। यह मोक्ष दिलाकर ही छोड़ता है।

भक्ति बीज पलटै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।

—कबीर साहब

इस बात को जानकर सबको चाहिए कि थोड़ा-थोड़ा उसका अभ्यास नित्य करे। एक-एक अक्षर सीखते-सीखते महाविद्वान होते हैं, उसी तरह थोड़ा-थोड़ा ईश्वर का भजन करते-करते, आवागमन के चक्र से छूटता है। ईश्वर को पाता है। ईश्वर के सुख को पाता है।

ईश्वर-भक्ति करने के लिए पापों से बचना आवश्यक है। पाँच पापों में झूठ सबसे बड़ा पाप है। कोई भी महापाप कर लो और झूठ बोल दो तो वह ढँक जाता है। जैसे अग्नि राख से ढँक जाती है। इसलिए झूठ सबसे बड़ा पाप है। चोरी मत करो। किसी की कोई चीज है तो उससे माँग कर लो। नहीं दे तो संतोष करो। नशीली चीज का सेवन नहीं करो। व्यभिचार नहीं करो और हिंसा नहीं करो। हिंसा नहीं करने के सिलसिले में मांस-मछली नहीं खाओ। इस तरह पंच पापों से छूटने पर ईश्वर-भजन बनता है। यह तो पारमार्थिक लाभ की बात हुई और संसार-लाभ यह है कि यदि एक गाँव के लोग वा एक थाने के लोग पंच पाप करना छोड़ दें, तो उस गाँव वा उस थाने में चोरी, डकैती, लूट, बदमाशी, आदि खल-उद्यम होंगे? कभी नहीं। लोग खल-उद्यम मिटाना चाहते हैं, लेकिन मिटता नहीं, क्यों? इसलिए कि मूल में ही भूल है। जहाँ धन अधिक है, उस देश की बात को अखबार में पढ़िए तो मालूम होगा कि वहाँ कितना खल-उद्यम है। इसलिए संतों ने जो बतायी है ईश्वर की भक्ति, उस भक्ति को करो। पंच पापों से बचो तो खल-उद्यम नहीं होगा और सभी शान्तिमय सुख को भोगोगे।

n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—नवाबगंज निवासी डॉ० नित्यानन्द सिंह के निवास पर दिनांक २.१२.१९६६ ई० के सत्संग में हुआ था।

२५३.सत्यनिष्ठ ही ईश्वर-उपासना में अग्रसर हो सकता है

प्यारे लोगो!

जीवन जन्म से शुरू होता है और मृत्यु में जाकर समाप्त होता है। जन्म होते ही शिशु रोता है। रोना कष्ट की निशानी है। शिशुकाल में कोई बोल नहीं सकता, अपने भाव को प्रकट नहीं कर सकता, परन्तु उसकी रुलाई प्रकट करती है कि उसे दुःख है। जन्म और मृत्युकाल दुःख से भरा रहता है। इस तरह का जीवन हमलोगों ने कितनी बार भोगा है, ठिकाना नहीं।

जबसे संसार उत्पन्न हुआ है, हमलोग जन्म-मृत्यु के अन्दर रहते हुए चले आ रहे हैं। बुद्धिमान मनुष्य जानते हैं कि जन्म से मृत्यु के अन्दर का समय एक जीवन होता है। मृत्यु के बाद क्या होता है? यह प्रत्यक्ष नहीं है। इसका ज्ञान शास्त्र से होता है। मृत्यु के बाद जीव कर्म का फल भोगने के स्थान में जाता है। इस तरह जीव आवागमन के चक्र में रहता है। जीव जो दुःख भोगता है, उससे छूटने की इच्छा तो रहती है, लेकिन उससे छूटने का उपाय का पता उसे नहीं मिलता। सत्संग तथा सद्ग्रन्थों से इसका पता चलता है। ऐसा यत्न चाहिए कि जिससे जीवन का अन्त हो जाय, फिर संसार में नहीं आया जाय। जिस परलोक में जाकर लौटना पड़े, वह नहीं चाहिए। जिस परलोक में जाने से लौटना नहीं पड़े, वह परलोक बहुत ही विचित्र है। वहाँ इन्द्रिययुक्त शरीर नहीं है। वहाँ पाँच तत्त्व नहीं हैं। पंच विषयों का जो महान स्थान है, वहाँ कुछ नहीं है। वह ऐसा परमतत्त्व है, जो अपने अन्दर इस संसार को विन्दुमात्र बनाकर रखता है। वह परम तत्त्व है—परमात्मा। ऐसा वह एक-ही-एक है। परमात्मा में जन्म मृत्यु-युक्त कष्टवाला स्थान नहीं है। संतलोग कहते हैं, उसकी प्राप्ति जीवनकाल में ही होगी। इसके वास्ते यत्न करना होगा। वह यत्न आप अपने घर में भी रहकर कर सकेंगे। वह यत्न संत सद्गुरु द्वारा जान सकते हैं।

पहले सत्संग करें, तब सद्गुरु की खोज करें। वे जो बतावें, उनके कहे अनुकूल जीवनभर साधन करते रहना चाहिए। पशु इस बात को नहीं जान सकता। अपने घर में रहकर भी बारम्बार जन्म लेने के कारण को मिटा सकते हैं। ऐसा बहुतों ने किया है। अब भी लोग कर रहे हैं। ईश्वर की कृपा से आपको जैसा घर मिले, उसमें रहिए और साधना कीजिए। आपका शरीर भी ईश्वरकृत घर है। आप अपने से घर बनाकर या पुश्तैनी घर बना हुआ मौजूद है, उसमें रहकर यत्न कर सकते हैं। परन्तु यदि अपने शरीर को घर नहीं मानें, तो फिर यत्न क्या करेंगे? अपने शरीर के अन्दर यत्न करेंगे, तो साधन हो सकता है। यह साधन शरीर रूपी घर में ही होगा। यह शरीररूपी घर अपवित्र भी बहुत है और पवित्र भी बहुत है। संतों ने बताया कि शरीर की अपवित्रता को छोड़ना चाहो तो अपनी वृत्ति को अगल-बगल नहीं रखकर मध्य में रखो। पवित्र बनते-बनते महान बन जाओगे। मध्य के वास्ते संतों ने सुषुम्ना का वर्णन किया है। अगल-बगल यानी इड़ा-पिंगला के मध्य सुषुम्ना का वर्णन किया है। जितना अधिक अपने को सुषुम्ना में रख सकोगे, उतना अधिक पवित्र हो सकोगे। यह मध्य में वृत्ति रखनेवाला होने के लिए जो यत्न है, वह सच्चे गुरु से सीखो।

कोई एक शब्द जपने को गुरु बताते हैं। गुरु के बताए शब्द—मंत्र को स्थिर होकर जपो। अर्थात् मन की स्थिरता के लिए जपो। लेकिन इतने से ही काम खत्म नहीं होता है। इससे जन्म-मरण के चक्र से नहीं छूटोगे। इससे आगे का काम ध्यान है। मोटा ध्यान मन की एकाग्रता के लिए बहुत अपेक्षित है। लेकिन इसके आगे का भी ध्यान करो। इसके लिए वृत्ति को मध्य में रखो। सर्वसाधारण भी इसे कर सकते हैं। इसके लिए प्राणायाम करना सबके योग्य नहीं है। ध्यानयोग सबके करने योग्य है। ध्यानयोग में किसी प्रकार की आपदा नहीं है। इसमें शीघ्रता का ख्याल रखनेवाला गलती में पड़ जाता है। वह इस लोभ में ऐसा करता है कि शीघ्र ही प्राप्ति होगी।

मैं कहता हूँ कि मध्यवृत्तिवाले बनो। इसमें मन की एकाग्रता होगी, स्थिरता आएगी। इसमें पूर्ण सिमटाव होगा। पूर्ण सिमटाव एकविन्दुता पर होता है। अपनी वृत्ति को मध्य में रखने का यत्न सच्चे गुरु से सीखो। पूर्ण सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। मन को स्थूल मण्डल में समेटोगे, तो उसकी गति स्थूल से ऊपर सूक्ष्म में हो जाएगी। ईश्वर तक जाने का विचार सत्संग में इसलिए कहा जाता है कि इस ऊर्ध्वगति में ईश्वर की ओर जाने में इन्द्रियों से चेतन छूटता है, माया के आवरणों से छूटने की ओर हो जाता है। तब वहाँ ईश्वर का दर्शन होता है। यह दर्शन मन को नहीं, चेतन आत्मा को होता है। चेतन आत्मा मन-इन्द्रियों से छूटकर अपने आप की दशा में रहकर ईश्वर का दर्शन करेगी। इस बात को खूब मजबूती से अपने हृदय में रख लीजिए कि ईश्वर का दर्शन इन्द्रियों से नहीं होता है, तीन अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति में नहीं होता है। चौथी अवस्था के भी आरम्भ में नहीं, अन्त में होता है। जो इन अवस्थाओं से सिमटता है और जो इन सबों के अन्त में पहुँचता है, उसको ईश्वर का दर्शन होता है। इस मार्ग पर यात्रा करनेवाला कोई थकता नहीं है। इस यात्रा में आनन्द-ही-आनन्द आता है। इसकी साधना का आरम्भ जाग्रत में जो आँख में जीव की बैठक है, वहीं से होता है।

यह अन्तर्मार्ग बनानेवाला परमात्मा है। यह रास्ता, मिट्टी आदि किसी मसाले से बना हुआ नहीं है। इस रास्ते पर चलनेवाले को अजीब आनन्द आता है। साधक जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, उसका आत्मबल भी बढ़ता जाता है। इसके लिए संतों ने कहा—सिमटी निगाह से देखो, फैली निगाह से नहीं, अपने अन्तर में ज्योति का पसार है। इसके लिए दायीं और बायीं धारों को छोड़कर मध्य में वृत्ति रखो। जो लोग खास तरह से अन्तस्साधन का भेद पाए हैं, सो वह भेद यही है। भेद जानो, लेकिन करो नहीं, तो क्या मालूम होगा?

जीवन में—यहाँ इस संसार में बिना वस्त्र तथा भोजन के नहीं रह सकते। इसके लिए खेती कीजिए, व्यापार कीजिए, नौकरी कीजिए; लेकिन साधना में आलस्य नहीं कीजिए। परमार्थ की बातों में आलस्य नहीं करें और फल-प्राप्ति के लिए शीघ्रता के फेर में न पड़ें। कहा है—

माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय।

अपने देश में प्रधानता खेती की है। खेती करने से अन्न उपजता है। अन्न का भोजन होता है। भोजन के बिना बिल्कुल अस्त्र-शस्त्र बेकाम। भोजन के बिना जो कुछ द्रव्य है, सब बेकार। इसलिए भोजन का इन्तजाम अपने आप करो।

खेती करने के लिए, हल चलाने के लिए बैल की आवश्यकता है। इसके लिए गौ माता की सेवा करो। अपने शरीर को पुष्ट बनाने के लिए गौ-दुग्ध चाहिए। गौ-दुग्ध पाने के लिए, खाद पाने के

लिए गौ माता की सेवा करो। अनुचित बात है—बूढ़े बैल तथा गाय को बेचना। जो उसे बेचते हैं, गोया उसे मारनेवाले के लिए देते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। जैसे माता-पिता बूढ़े हैं, उनकी सेवा अवश्य करो। ऐसा नहीं कि उसका बध कर दो। उसी तरह बूढ़े गाय-बैल की सेवा करो। गौ की सेवा से सुख मिलेगा। जीवन भर सुखी रहने के लिए गौ-पालन करो। लेकिन सांसारिक सुख पाकर ईश्वर को भूल जाओ, यह ठीक नहीं। संत कबीर साहब ने कहा—

सुख के माथे सिल पड़ै, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल-पल नाम रटाय।।

समाज में लोग रहते हैं। अपना अच्छा नमूना देकर अच्छे कर्म में समाज को लगाओ, तो बहुत अच्छा होता है। अच्छे समाज में रहते हुए ईश्वर की उपासना करो। हमलोगों के यहाँ ठाकुरबाड़ी है। उसमें पूजा के समय बाजा बजाते हैं। उसका तात्पर्य है कि उसमें सभी लोग भाग लें। मुसलमान लोग नमाज पढ़ते हैं। ईसाई भी सामूहिक प्रार्थना करते हैं। जितने आस्तिक लोग हैं, सभी सामूहिक प्रार्थना करते हैं। वेद में यही आज्ञा है—'सभी कोई आपस में मिलकर रहो।' इसके लिए पंच पापों से बचो। सब पापों में सरदार है झूठ। झूठ छोड़ना और सत्य को ग्रहण करना, यह संतों ने बहुत जोरों से कहा है।

ईश्वर-उपासना भी सभी मिलकर कीजिए। सभी कोई मिलकर रहिए। सदाचार का पालन कीजिए। साँच को ग्रहण कीजिए। सत्य की बड़ी प्रतिष्ठा है—प्रशंसा है। सत्यनिष्ठ ही ईश्वर की उपासना में अग्रसर हो सकते हैं। इसलिए सदाचार का पालन मजबूती से कीजिए। आलस्य छोड़कर अपना काम करना चाहिए।

जीवन का अन्त होना अनिवार्य है। ईश्वर की भक्ति करके वैसे लोक में जाना होगा, जहाँ से फिर दुःख-सागर में नहीं गिरेंगे। इसलिए सबों को ईश्वर का भक्त बनना चाहिए। n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत ग्राम भवानीपुर राजधाम के सत्संग भवन के प्रांगण में दिनांक २६.१२.१९६६ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२५४. इन्द्रियग्राह्य पदार्थ को माया कहते हैं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस समय ईश्वर-भक्ति के विषय में कुछ कहूँगा। आपलोग सावधानीपूर्वक सुनें। ईश्वर-भक्ति के वास्ते ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना बहुत जरूरी है। सो यदि ईश्वर-स्वरूप का सही ज्ञान नहीं होता है, तो ईश्वर-भक्ति के बदले में माया की भक्ति में ही लोग लगे रह जाते हैं।

ईश्वर माया के सिरजनहार हैं। माया का अदल-बदल होता है। ईश्वर की मौज से माया का नाश भी हो जाता है। माया ईश्वर की मौज से बनती है। इन्द्रियों के ज्ञान में जो कुछ आवे, उसे माया जानना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामायण में लिखा है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

इन्द्रियों को जो प्रत्यक्ष है और मन जहाँ तक जाता है, सबको माया-ही-माया जानो। अगर कोई इन्द्रिय से जानने योग्य चीज है, उसे यदि ईश्वर मानेंगे तो वह ईश्वर नहीं होगी, माया ही होगी। इन्द्रिय-ग्राह्य पदार्थ को माया कहते हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थात्—'उस परमात्मा को, जो परे-से-परे हैं,

देखने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, सारे संशयों का नाश हो जाता है और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।' सबके अन्दर दो वस्तुएँ हैं—एक ज्ञानमय तथा दूसरा अज्ञानमय। इन दोनों का मेल हो गया है। लेकिन दोनों दो चीजें हैं। एक है जड़ शरीर और दूसरा है चेतन आत्मा। चेतन आत्मा ज्ञानमय है और जड़ शरीर अज्ञानमय है। ईश्वर के दर्शन में जड़-चेतन का यह मेल नहीं रह पाता है। सारे संशयों का नाश हो जाता है। सारे कर्मफलों का बन्धन टूट जाता है। यदि ऐसा हो, तो जानो कि ईश्वर का दर्शन हुआ है। सारे संशयों का नाश और सभी कर्मों के बन्धनों से छूट जाना कब होगा? जब ईश्वर का दर्शन होगा।

आँख से देखने में जो आवे, वह रूप है। कितना ही सुन्दर वा दिव्यरूप हो, वह माया-ही-माया है। भगवान राम, भगवान कृष्ण, शक्तिमाता, भगवान शिव को लोग ईश्वर कहते हैं। इनके रूपों को, जब ये सब प्रकट थे, लोगों ने देखा, स्पर्श भी किया। महाभारत आदि ग्रन्थों को पढ़कर देखिए। अपने को भी आप समझिये। अपने शरीर को आप देख लेते हैं, लेकिन अपने आप जो जीवात्मा है, उसको नहीं देख पाते हैं। जीवात्मा ईश्वर का अंश है। ईश्वर और जीवात्मा तत्त्वत: एक ही तत्त्व हैं। शरीर को भले ही लोग देखते हैं, लेकिन शरीर निवासी जीवात्मा को कोई भी नहीं देख पाता।

सब इन्द्रियज्ञान से परमात्मा परे है। आप अपने तईं भी इन्द्रियज्ञान से ऊपर हैं। इन्द्रियज्ञान में जो कुछ आनेवाला है, सब माया-ही-माया है। इस बात को नहीं जाननेवाले औनाते फिरते हैं। सब कोई इसको जान लीजिए कि अपने तईं से जो जाना जाए, वह ईश्वर है। जो इन्द्रियों से जाना जाय, वह ईश्वर नहीं है। अद्‌भुतता के कारण लोग रूप को ईश्वर मानने लगते हैं। रूप को ईश्वर माननेवाले का संशय दूर नहीं होता है। अर्जुन को संशय था कि महाभारत के युद्ध में लड़ना चाहिए या नहीं। अर्जुन को भगवान कृष्ण का दर्शन था, लेकिन संशय दूर नहीं हुआ। भगवान कृष्ण शरीर में कैसे आए, सो भी लिखा है श्रीमद्‌भागवत में। भगवान वसुदेवजी की देह में आए। फिर देवकीजी की देह में आए। भगवान के शरीर को तो देखा, लेकिन शरीर को धारण करनेवाले को किसी ने नहीं देखा। भगवान के निज स्वरूप का दर्शन उनके शरीर के दर्शन से नहीं होता। शरीर-दर्शन से परे उनके आत्म-स्वरूप का दर्शन है। यह दर्शन कोई अपने आत्मज्ञान में रहकर ही पा सकता है।

जबतक भक्त इन्द्रियज्ञान में रहता है, तबतक ईश्वर-दर्शन नहीं पाता है। जैसे दूध और मक्खन मथने पर अलग-अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार जो अपनी चेतन आत्मा को जड़ से अलग करके अपने तईं में रहकर अपने को चीन्हेंगे, तभी परमात्मा को भी चीन्हेंगे। आँख नहीं, तब अपने तईं को चीन्हें। जैसे आँख से आँख को देखते हैं आइने के माध्यम से, उसी तरह साधन-रूपी आइने के द्वारा अपने तईं से अपने स्वरूप को देख सकते हैं।

भगवान के रूप को तथा रूप में रहनेवाले को फुटाए बिना भक्त का काम नहीं चल सकता है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का वर्णन आया है। पाँच स्थूल तत्त्व (मिट्टी, जल, अग्नि, हवा और आकाश), पाँच सूक्ष्म तत्त्व (गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द), अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, दशेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह, गुदा और लिंग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), मन, चैतन्य, संघात (कहे गए का संघ रूप), धृति (धारण करने की शक्ति) और इनके विकार इच्छा, द्वेष, सुख और दु:ख; इन इकतीस

के समूह को क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र को जाननेवाले की जड़-चेतन की गाँठ खुल जाएगी। यदि ऐसा नहीं हुआ, तब जो दर्शन हुआ, वह ईश्वर का दर्शन नहीं हुआ। इस दर्शन से माया की भक्ति हुई।

कोई भी लोक ऐसा नहीं, जहाँ जाकर माया से छूटे। ऐसी भक्ति हो कि माया के सब आवरणों से छूट जाए। इसके लिए ईश्वर-स्वरूप को जानो। बिना ईश्वर-स्वरूप को जाने भक्ति करनी उस मुसाफिर के समान है, जो चला जा रहा है, लेकिन उसको पता नहीं कि कहाँ जाना है। आखिर वह घूमते ही रहेगा। इसलिए पहले ईश्वर-स्वरूप को जानना चाहिए। भक्ति का वर्णन संत लोगों ने अपनी-अपनी वाणी में विलक्षण ढंग से किया है। विनय-पत्रिका में गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने लिखा है—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

यह भक्ति परा भक्ति है। यह अन्त तक पहुँचाने की भक्ति है। एक वह भक्ति है, जो मन में रहता है कि फलाँने-फलाँने रूप में दर्शन दिया। किसी रूप के दर्शन से माया से छुट्टी नहीं होती है। मनु-शतरूपा को जिस रूप का दर्शन हुआ, उस रूप को देखकर उनके ऐसा पुत्र पाने का वरदान माँगा। जब त्रेतायुग में राजा दशरथ के रूप में आए तो साधारण राजा की तरह शिकार का चस्का उनको लग गया। दिन-रात शिकार करते थे, वे थकते नहीं। संयोग से एक रात को शिकार में गए कि हाथी को मारेंगे। श्रवण कुमार अपने अन्धे माता-पिता को पानी पिलाने के लिए नदी से पानी लाने गए। कमण्डल में पानी भरते समय आवाज हुई। राजा दशरथजी को हुआ कि हाथी पानी पी रहा है, उन्होंने शब्दबेधी वाण चला दिया। वाण श्रवण को लगा। वह कराहने लगा। दशरथजी दौड़कर उनके पास गए। देखा कि हाथी नहीं, यह तो आदमी है। श्रवण ने कहा—'मुझे क्या देखते हैं, मेरे माता-पिता प्यास से व्याकुल हैं, आप उनको पानी पिला दीजिए।' दशरथजी पानी लेकर श्रवण के माता-पिता के पास पहुँचे और पानी पीने के लिए देने लगे। वे लोग श्रवण की बहुत देर से आशा देख रहे थे। उनलोगों ने पूछा—'बेटा! बहुत देर हो गयी, पानी लाने में?' दशरथजी कुछ बोले नहीं। तब उनलोगों ने कहा—'यदि बोलोगे नहीं, तो हमलोग पानी नहीं पीयेंगे।' लाचार राजा दशरथ को कहना पड़ा कि 'मैं आपका पुत्र नहीं हूँ। आपका पुत्र धोखे में मेरे वाण से मारा गया। मैं राजा दशरथ हूँ।' उनलोगों ने कहा—'जाओ, जिस तरह हमलोग अपने पुत्र के विरह में मर रहे हैं, उसी तरह तुम भी पुत्र-वियोग के शोक में मरोगे।' यह कथा प्रसिद्ध है।

लोगों को विचारना चाहिए कि जिस दर्शन से कर्म के बन्धन के अन्दर नहीं आना पड़े और फाजिल चस्का नहीं हो, यह रूप-दर्शन में नहीं होगा। यह होगा परमात्मा के दर्शन से। शरीर के अन्दर चेतन आत्मा है। चेतन आत्मा परमात्मा का अंश है, अभिन्न अंश है। सबके अन्दर अन्धकार , प्रकाश और शब्द के आवरण हैं। इन आवरणों से अपने को मुक्त करो। आवरणों के बन्धन से मुक्त करने का ढंग यह है कि अपने मन को एकाग्र करो। मन की एकाग्रता में पूर्ण सिमटाव होगा। जब

पूर्ण सिमटाव होगा, तो मन की ऊर्ध्वगति होगी। यही हिकमत है। मन की एकाग्रता की जानकारी के लिए ही इस तरह का सत्संग है। सत्संग द्वारा जानने में आवेगा कि मन की एकाग्रता क्या है?

सरलतम यत्न जो है, सो भक्ति है। भक्ति में प्रेम चाहिए। प्रेम किससे चाहिए? परमात्मा में प्रेम करो। सत्संग के वचनों को सुनकर भी विश्वास होता है। हमारे यहाँ मन्दिरों में दर्शनार्थ जाते हैं। भगवान को कभी देखा नहीं है, लेकिन सुनकर विश्वास हो गया है। इतना भी विश्वास होता है , तो उसमें मन उस ओर होता है। इस पर विश्वास होना चाहिए।

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया तो युधिष्ठिर ने कहा–'सब लोग मारे गए। अब राज्य किसके लिए किया जाए?' वे बहुत दुःखी हुए। व्यासजी ने सोचा इसका मन नहीं फिरेगा। इसलिए उन्होंने युधिष्ठिर से कहा–'तू यज्ञ कर।' युधिष्ठिर ने कहा–'महाराज! युद्ध में सब धन समाप्त हो गया। यज्ञ कैसे किया जाए?'

व्यासजी ने कहा–'पहाड़ में बहुत धन गड़ा हुआ है।' युधिष्ठिरजी ने कहा–'वह धन कैसे मिलेगा?' तो व्यासजी ने उसका अनुष्ठान बताया। युधिष्ठिरजी ने अनुष्ठान किया और उनको धन प्राप्त हुआ। इस कथा से यह बोध होता है कि व्यासजी के वचन पर युधिष्ठिरजी ने विश्वास किया तो धन मिला। इसलिए संतों के वचनों पर भी विश्वास होना चाहिए। परमात्म-रूप धन सारे प्रकृति मण्डल में व्याप्त है और उससे बाहर भी है, लेकिन प्राप्त नहीं होता है। इसके लिए यह ज्ञान जानो कि परमात्मा इन्द्रियों से जानने योग्य नहीं है।

जब जाग्रत से स्वप्न में और स्वप्न से सुषुप्ति में जाते हैं तो अपने बाहर के ज्ञान से छूटते हैं। उसी तरह इन्द्रियों के ज्ञान से छूटने के लिए अपने अन्दर जाओ अर्थात् अन्तस्साधना करो। इसकी विधि जानने के लिए सच्चे गुरु के पास जाओ। लोग कहते हैं, जिसको देखा नहीं, उसमें प्रेम कैसे होगा? ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान इसीलिए होना चाहिए। जानना चाहिए कि ईश्वर की प्राप्ति में मुक्ति होगी और सदा सुख में रहेंगे। यह जानने पर ईश्वर में प्रेम होता है।

पहले यह जानना है कि इन्द्रियों के ज्ञान से अपने को ऊपर उठाओ। पहले मन को ऊपर उठाओ। मन को पूर्ण रूप से समेटो। पूर्ण सिमटाव एकविन्दुता में होती है। परिमाणशून्य विन्दु बाहर में बनने योग्य नहीं है, केवल वह ज्ञान में आता है। आपकी दृष्टि बहुत सूक्ष्म है। लिखते समय जहाँ आप कलम रखते हैं, वहाँ चिह्न हो जाता है। उसी तरह से आप जहाँ दृष्टि ठहराएँगे, वहाँ विन्दु होगा। उस विन्दु पर पूर्ण सिमटाव होता है। वह ज्योर्तिमय विन्दु होगा। उपनिषत्कार ने बड़ा अच्छा कहा है–

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।

–तेजोविन्दूपनिषद्, अध्याय १

अर्थात् हृदयस्थित विश्वात्म तेजस्-स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है। चाहिए कि इसके भेद को जानें। सफरी सबसे छोटी मछली होती है। वह नदी में भाठे से सिरे की ओर आसानी से चली जाती है, लेकिन बड़ी लम्बी-चौड़ी देहवाला हाथी भाठे से सिरे की ओर नहीं जा सकता। आपके शरीर में चेतन धार ऊपर से नीचे की ओर आती है, उसको जो समेटता है, वही योगी होता है। उसी को ईश्वर का दर्शन होता है। जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं को छोड़कर चौथी अवस्था में रहेगा और उसका भी अन्त जो करेगा, वह योगी हरिपद को जानेगा। वह शोक, मोह, भय और हर्ष दिन-रात आदि से परे हो जाएगा। जिसको ऐसा नहीं, वह इन्द्रियों से नहीं छूटेगा। वह इन्द्रियों को काबू में

कैसे रख सकता है? बाहर इन्द्रियों के साथ-साथ मन की धारें भी रहती हैं और मन की धारों के साथ-साथ चेतन की धारें रहती हैं। जैसे आप अपने दोनों हाथों से किसी चीज को जोर से पकड़ते हैं तो आपके शरीर की सारी शक्ति हाथ पर आ जाती है। उसी तरह दृष्टि की धारें भी जब एक विन्दु पर स्थिर होती है, तभी इन्द्रियों से चेतन धारें सिमटकर एक हो जाती हैं। यह तो आरम्भ हुआ ऊपर उठने के लिए। इसमें योग्यता प्राप्त करने के लिए पहले मानस जप करना चाहिए। जप करते-करते मूर्ति-ध्यान करने की क्षमता आती है। माया के सारे आवरणों को टपने के लिए सुरत-शब्द-योग की साधना है। इसी को परा भक्ति कहते हैं। संत सुन्दरदासजी ने कहा है—

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिये रहै।
मिलि परमातम सो आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

यहीं भक्ति का अंत है। अन्त तक की भक्ति में मुक्ति है। अन्य भक्ति में मुक्ति बाकी रह जाती है।

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत ग्राम भवानीपुर राजधाम के सत्संग भवन के प्रांगण में दिनांक २६.१२.१९६६ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२५५. जहाँ सत्यता, वहाँ दुर्गण नहीं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

सत्संग से सत्य का ज्ञान होता है। सत्संग से सदाचरण का ज्ञान होता है। सत्संग से सद्गति का ज्ञान होता है। सत्य, सद्गति और सदाचरण; इन तीनों को लोग ग्रहण कर सकें, तो बहुत अच्छी बात है।

सत्य उसको कहते हैं, जिसका परिवर्तन नहीं होता, जिसका विनाश नहीं होता अर्थात् अत्यन्ताभाव नहीं होता। ऐसा जो है, वह है सत्य। सत्याचरण—उत्तम आचरण और शीलता के साथ संसार में बरतना चाहिए। शीलता में सत्यता और नम्रता रहती है। शीलता और नम्रता के साथ संसार में बरतना चाहिए। जहाँ सत्यता है, वहाँ कोई दुर्गुण नहीं रहने पाता। सत्य दुर्गुणों का विनाश कर देता है। सत्य हो, परन्तु नम्रभाव नहीं, तो सत्य में रूखापन रहता है। इसीलिए सत्यता के साथ नम्रता अवश्य चाहिए।

यदि झूठ का त्याग हो जाय, हिंसा का त्याग हो जाय, नशाओं का त्याग हो जाय, चोरी का त्याग हो जाय, व्यभिचार का त्याग हो जाय; इन पंच पापों का त्याग हो जाय, तो वह त्यागनेवाला पूर्ण त्यागी है। नम्रता के साथ सत्य का भाव हो, यही शीलता में चलना है।

हमलोगों का यह शरीर कुछ काल तक रहेगा। यह सदा नहीं रहेगा। बहुतों का शरीर छूटा तथा उनकी अन्त्येष्ठि-क्रिया को बहुतों ने देखा भी। हिरण्यकशिपु ने बहुत तप किया था। उसने वरदान में माँगा था कि मृत्यु आकाश में नहीं हो, धरती पर नहीं हो, दिन में नहीं हो, रात में नहीं हो, किसी अस्त्र-शस्त्र से नहीं हो, मनुष्य और जानवर द्वारा नहीं हो। अपने वरदान में उसने अपने को अमर ही मान लिया। सब तरह से उसने ब्रह्माजी को अपने वरदान में बाँध लिया। ब्रह्माजी ने वैसा ही वरदान दिया। हिरण्यकशिपु भी भक्त था, शिवजी में बहुत प्रेम रखता था। किन्तु विष्णु

भगवान से द्वेष करता था। विष्णु भगवान का नाम तक सुनना नहीं चाहता था। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद का जन्म हुआ। प्रह्लाद की माँ कुछ काल नारद मुनि की हिफाजत में रही थी। नारद मुनि का ज्ञान उसकी माँ सुनती थी। उसने हरि-भक्ति की बात बहुत सुनी। प्रह्लाद में वही नारद मुनि का गुण आ गया था। वह भगवान विष्णु का नाम जपता था। हिरण्यकशिपु ने बहुत मना किया, लेकिन प्रह्लाद ने नहीं माना। आखिर में तलवार लेकर उसने प्रह्लाद से पूछा—'बताओ, तुम्हारा भगवान कहाँ है?' प्रह्लाद ने कहा—'हममें तुममें खड़ग खम्भ में, सर्वत्र राम-ही-राम है।' हिरण्यकशिपु ने पूछा—'क्या खम्भे में भी तुम्हारा भगवान है?' प्रह्लाद ने कहा—'हाँ।' यह सुनते ही हिरण्यकशिपु ने खम्भे पर तलवार चलायी। उस खम्भे से नरसिंह भगवान प्रकट हुए। उन्होंने हिरण्यकशिपु को अपनी गोद में लेकर मकान की देहरी पर सूर्यास्त के समय उसके पेट को अपने नख से फाड़ दिया, उसकी मृत्यु हो गयी, वह अमर नहीं रह सका। तात्पर्य यह है कि शरीर का नाश अवश्य होता है। शरीर का नाश होता है, यह तो सभी जानते हैं, लेकिन शरीर छूटने के बाद कहाँ जाना होता है, इस बात का यत्न नहीं जानते हैं।

अपने देश में श्राद्ध-क्रिया होती है। श्राद्ध-क्रिया से पता चलता है कि शरीर छोड़कर जीवात्मा कहीं चला गया है। उसी की शुभगति के वास्ते श्राद्ध होती है। इसमें इतना ज्ञान अवश्य है कि शरीर नाशवान है और जीवात्मा अविनाशी है।

पुराणों को पढ़ने से स्वर्ग और नरक का ज्ञान होता है। जीव अपने कर्मानुसार दोनों का भोग भोगता है। स्वर्ग का भोग सद्गति नहीं है। भगवान श्रीराम ने अपनी प्रजा को उपदेश देते हुए कहा है—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई।।

स्वर्ग पाने की इच्छा छोड़ देनी है। सद्गति किसको कहते हैं? परमात्मा का संग हो जाना—ब्रह्म से मिलाप हो जाना असल में सद्गति है।

लोग संशय करते हैं कि ईश्वर है या नहीं। मैं कहता हूँ कि मेरे विचार में ईश्वर अवश्य हैं। सोचो, परम पुरातन, परम सनातन तत्त्व है कि नहीं! परम सनातन, परम पुरातन तत्त्व नहीं मानना बुद्धि विपरीत है। सारे अवकाशों को भरकर जो अवकाशहीन है, जिससे कोई जगह खाली नहीं है, वही सबसे पहले का है। वही ब्रह्म है, जो अपने तईं आप-ही-आप है। यही अध्यात्म-विज्ञान बतलाता है। यहाँ का वैज्ञानिक संसार के भण्डार से कुछ लेकर कुछ बनाते हैं। ईश्वर ऐसे वैज्ञानिक हैं कि वे बिना कुछ-के-कुछ बनाते हैं। वे बिना उपादान के सब कुछ बनाते हैं। यदि ईश्वर भी कहीं से कुछ लेकर कुछ बनाते हैं, तो मनुष्य से बढ़कर उनमें कोई विशेषता नहीं। सारी सृष्टि ईश्वर के नियंत्रण में है। ईश्वर वे हैं जो सबके प्रभु हैं अर्थात् वे शासक हैं। उनके शासन में सारी सृष्टि है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने उनकी महानता इस प्रकार व्यक्त की है—

राम काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकाशा।।
मरुत कोटि सत विपुल बल, रवि सत कोटि प्रकाश।
ससि सत कोटि सुसतील, समन सकल भव त्रास।।
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूम केतु सत कोटि सम, दुराधरष भगवन्त।।
प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला।।
तीरथ अमित कोटि सत पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।।
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिन्धु कोटि सत सम गंभीरा।।
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना।।
सारद कोटि अमित चतुराई। विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।
विष्णु कोटि सत पालन करता। रुद्र कोटि सत सम संघरता।।

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना।।
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा।।
निरुपम न उपमा आन, राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम, रवि कहत अति लघुता लहै।।
एहि भाँति निज निज मति विलास, मुनीस हरिहि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल, सप्रेम सुनि सचु पावहीं।।

यहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने ईश्वर को व्यक्त भाव का उदाहरण देकर अव्यक्त को बतलाया है। यह वर्णन करने की अद्‌भुतता है गोस्वामी तुलसदासजी की। ईश्वर में कोई उदाहरण लागू नहीं होता। जैसे करोड़ों जुगनुओं की उपमा सूर्य से देने में सूर्य की महिमा घटती है। उसी तरह करोड़ों विष्णु, करोड़ों ब्रह्मा आदि का उदाहरण दें, तो इसमें ईश्वर की हीनता होती है।

ईश्वर परम कल्याणकारी हैं, इसलिए वे शिव हैं। सबमें ईश्वर व्यापक हैं। एक ही ईश्वर सबमें ओत प्रोत हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़ा ही अच्छा रामायण में लिखा है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

इन बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि अनादि-अनन्त पदार्थ पर कोई उदाहरण लागू नहीं होता।

हमलोग इन्द्रियज्ञान में रहने के कारण परमात्मा को नहीं पहचान पाते हैं। शरीर इन्द्रियों के ज्ञान से छूटकर निजी ज्ञान में ईश्वर पहचानने योग्य है। अपने तईं में अपने ज्ञान में ईश्वर को पहचान सकते हैं। जैसे आँख से ही आँख को देखते हैं आइने के माध्यम से, उसी तरह साधन के माध्यम से अपने तईं के ज्ञान में अपने को तथा परमात्मा को पहचान सकते हैं।

शरीर-इन्द्रियों से अपने को भिन्न करने का काम करो। यही ईश्वर की भक्ति है। भक्ति से ही ईश्वर मिलते हैं। परमात्मा का ज्ञान जैसा होना चाहिए, सो कहा। श्रवण-मनन द्वारा पहले परोक्ष ज्ञान होगा, तब अपरोक्ष ज्ञान होगा। इसके लिए कुछ साधन चाहिए। इसकी साधना का नाम योग है। योग, ज्ञान और भक्ति; तीनों संग-संग हो तो ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। यही सद्‌गति है। संतों ने भी इसी सद्‌गति को मोक्ष कहा है। n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत ग्राम भवानीपुर राजधाम के सत्संग भवन के प्रांगण में दिनांक १.१.१९६७ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२५६. शरीर छोड़ने के बाद क्या हालत होगी?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

वर्षों से आपलोगों का यह सत्संग घर है। मैं साल-साल बहुत बार यहाँ आया हूँ। मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ, जब आपलोग मुझे बुलाकर सत्संग कराते हैं, आपकी पुकार मुझे बहुत पसन्द है। जैसे कोई घर बनाते हैं, उसकी नींव नीचे से मजबूत करते हैं। मैं चाहता हूँ कि देश की नींव मजबूत हो। कोई भी जो नीच श्रेणी के माने जाएँ और वहाँ धर्म ज्ञानोपदेश के लिए मुझे बुलाया जाता है, तो मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। मुझे तो नींव मजबूत करनी है और समूचे भारत की नींव मजबूत करनी है, फिर संसार के लिए देखा जाएगा।

यहाँ के सत्संगियों ने वर्षों से सत्संग घर बनवाकर रखा है। ये लोग इसको हिफाजत से रखते हैं और इसमें सत्संग करते हैं। मुझे याद नहीं कि किसी वर्ष ये मुझे नहीं बुलाए हों और मैं

नहीं आया होऊँ। मैं प्राय: प्रत्येक वर्ष आता हूँ।

आपलोग सत्संग के विषय को समझें और सारी जनता को भली बनावें। यह सत्संग का विषय है। जनता अच्छी होती है, आचरण-शुद्धि से। बहुत विद्या पढ़ने से लोग भले होते हैं, ऐसा कहा जाता है। इसको कौन इनकार कर सकता है? लेकिन बहुत विद्या पढ़ने पर भी यदि आचरण ठीक नहीं हो तो वह बहुत विद्या, अविद्या हो जाती है। इसलिए तुलसीदासजी ने कहा है—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घट में खान।
तब लग पंडित मुरखो, तुलसी एक समान॥

पढ़े-लिखे लोगों के मन में भी ये विकार होते हैं। ये विकार जिस तरह से छोड़े जा सकते हैं, उस तरह को अख्तियार करना चाहिए। मैंने बचपन में फारसी में पढ़ा था— विद्या धर्म जानने के लिए होती है, न कि दुनिया कमाकर खाने के लिए।

इल्म अज बहरे दीन परवर। अस्ता न अज बहरे दुनिया खुर्दन॥

लेकिन आज की विद्या दुनिया में कमाकर खाने की है। 'आज' कहने का मतलब आज ही नहीं, इसी शदी में नहीं, सदियों से यह बात है। संतों ने समझा कि पढ़े-लिखे लोग बड़े-बड़े औहदे के कामों को करते हैं, लेकिन आचरण पवित्र हो, ऐसी बात नहीं। उसमें भी सब तरह के लोग होते हैं। अच्छे भी होते हैं, लेकिन आज जैसा देखा जाता है, उसमें पवित्रता कहाँ है? प्रत्यक्ष है।

एक विद्या है कि पण्डितों—अध्यापकों के पास मिलती है। दूसरी विद्या होती है, जो साधु-संतों के संग में मिलती है। स्कूल, कॉलेज की विद्या में संसार के प्रबन्ध का ख्याल ज्यादे होता है और साधु-संतों के पास में जाने से जो विद्या आती है, उसमें संसार का प्रबन्ध तो रहता ही है, लेकिन यह भी रहता है कि शरीर छोड़ने के बाद तुम्हारी क्या हालत होगी, यह भी सोचो। संसार में रहने के लिए बहुत अच्छा प्रबन्ध किए। कुछ दिन वा कुछ वर्ष रहे, चले गए। कहाँ चले गए, इसका कोई ठिकाना नहीं। शरीर छोड़ने पर तुम दु:ख में नहीं जाओ, इसका प्रबन्ध कर लिया, तब तो ठीक है। लेकिन यदि नहीं किया तो अभी तुमको कुछ करना चाहिए। जाना जरूर है। लेकिन शरीर के बाद का जीवन बहुत लम्बा है, इसका प्रबन्ध करो। संसार का भी प्रबन्ध करना ही है और शरीर छूटने के बाद का भी प्रबन्ध सोचो। नहीं तो अपनी बहुत बड़ी हानि करते हो। बड़ी हानि से बचो और दूसरों को भी बचाओ।

ईश्वर के भजन से जीवन सुखमय होगा। अपने को भला बनाना ईश्वर-भजन से होगा। बहुत पढ़-लिख लिए इससे अपनी पूरी भलाई हो ऐसी बात नहीं। संसार में तुम अपने को सम्हाल कर रखो कि तुम्हारी कोई निन्दा न करे। यदि तुम्हारा आचरण ठीक है और लोग तुम्हारी निन्दा करें, तो परवाह मत करो और यदि तुमसे उस तरह का काम हो गया है, तब जो तुमको जो कुछ कहे तो उसको अपना मित्र मानो। ईश्वर की ओर चलने के लिए पवित्र भाव से रहना होगा। संसार की कमाई में पाप-पुण्य का कोई विचार नहीं होता, लेकिन ईश्वर-भजन में पाप-पुण्य का विचार करके चलना होगा। कोई चाहे कि ईश्वर-भजन भी करेंगे और पाप भी करेंगे, तो उससे ईश्वर का भजन नहीं होगा। ईश्वर का भजन आजकल-आजकल कहकर मत टालो।

संसार में पाँच ही तरह की चीजें हैं। एक वह जो देख सकते हो, दूसरा वह जो सुन सकते हो, तीसरा वह जो तुम गन्ध ले सकते हो, चौथा वह जो स्पर्श कर सकते हो और पाँचवाँ वह जिसका रसास्वादन कर सकते हो। ये सब मिलाकर पाँच होते हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। इन पाँचों में से कोई पदार्थ ईश्वर नहीं है। इन पाँचों

को चीन्हते रहोगे, लेकिन ईश्वर का दर्शन नहीं होगा। पाँचों चीजों का संघात मनुष्य-शरीर है। इसी तरह सभी शरीर हैं। कोई शरीर कितना भी सुन्दर हो, विकट हो, डरावना हो, उसमें भी ये ही पाँच हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पाँच को जहाँ पाओ, वहाँ समझो कि ईश्वर-दर्शन नहीं हुआ। ईश्वर रहता है सबमें, लेकिन किसी के जैसा नहीं होता।

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

सबमें रहकर सबसे विलक्षण है। पाँच विषयों को पहचानने के लिए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। जब इन पाँचों में से किसी को जानो तो वह ईश्वर नहीं है। तुम्हारे अन्दर मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार भी है, जिसको अंतःकरण कहते हैं। चार अन्तःकरण, पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच ज्ञानेन्द्रिय; इन चौदहों से युक्त तुम जिसको देखो वह ईश्वर नहीं है। ईश्वर इस संसार के अन्दर है, लेकिन इन चौदहों से वह जाना नहीं जाता। तुम भी इस शरीर में हो, लेकिन चौदहों इन्द्रियों में से तुम कोई नहीं हो। शरीर में हो, लेकिन इन सबसे तुम विलक्षण हो। तुम्हारी शक्ति से ही इन्द्रियों में शक्ति है। शरीर और इन्द्रिय का ज्ञान छोड़कर अपने ज्ञान में रहकर जिसको पहचानो, वह ईश्वर है। पढ़े-अनपढ़े सभी कोई इस बात को याद रखो। नहीं तो जहाँ भी ईश्वर नहीं, वहाँ ईश्वर का भाव रखोगे।

आँख से रूप, कान से शब्द, नाक से गन्ध, जिभ्या से रस और त्वचा से स्पर्श का ज्ञान करते हो। इन सबका संग छोड़कर तब तुम्हारा निजी ज्ञान है। और इसी निजी ज्ञान में ईश्वर की पहचान होगी। ईश्वर का भजन वह है, जिससे ईश्वर को पहचान सको। ईश्वर की पहचान नहीं हुई, तो वह भजन क्या? बाहरी-भीतरी इन्द्रियों के ज्ञान से अपने को हटाओ, तब ईश्वर की पहचान होगी। बाहर कहीं भी जाने से ईश्वर की पहचान नहीं होगी। अपने को सम्हालो—अपने को अन्दर करो, यही है—

सत सुरति समझि सिहार साधौ निरखि नित नैनन रहो।

जो अपने को अपने अन्दर समेटता है, वह ईश्वर की ओर जाता है। जो अपने को अपने में नहीं सम्हालता, वह माया में विचरता है।

ईश्वर को क्या चाहिए? धूप, दीप, नैवेद्य, आरती? इन सब चीजों की जरूरत ईश्वर को नहीं, लेग इनके द्वारा केवल अपना भाव दिखाते हैं। सूर्य को दीप दिखाते हैं, सूर्य तो स्वयं बहुत प्रकाशमान है, उसको दीपक क्या दिखाना? लेकिन अपना भाव दिखाते हैं। गंगाजी को, यमुनाजी को उसी का जल चढ़ाते हैं। गंगाजी को, यमुनाजी को उसकी क्या जरूरत? ईश्वर की भक्ति करो, इसके लिए ईश्वर को क्या जरूरत? जैसे आजकल जाड़ा का समय है, जैसे ही सूर्य उदय हुआ, वैसे ही जाड़ा भागा। इसी तरह जैसे परमात्म-दर्शन हुआ, वैसे दुःख भागा। लेकिन ईश्वर का भजन पाप-वृत्ति से नहीं होगा, विषयी होने से नहीं होगा। पाप-वृत्ति छोड़ो, विषय का त्याग करो। ईश्वर-भजन ईश्वर से प्रेम करने से होगा, ध्यान-योग से होगा। इस ध्यान-योग से चलते-चलते आखिर में ईश्वर-दर्शन होगा। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—'इस योग के आरम्भ का नाश नहीं होता, इसका उलटा परिणाम नहीं होता और यह महाभय से बचाता है।' मनुष्य शरीर के अतिरिक्त गाय, बैल, घोड़ा आदि जानवर होना महाभय है। यह योग इससे बचाता है। भजन नित्य करो, सत्संग करो। यह सत्संग-घर और मजबूत हो जाय, तो बड़ी अच्छी बात हो। n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत सिकन्दरपुर में हरिजनों द्वारा निर्मित संतमत सत्संग मन्दिर में दिनांक २.१.१९६७ ई० के सत्संग में हुआ था।

२५७. ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ विभूति : ज्योति और शब्द

प्यारे लोगो!

संतमत मोक्ष मार्ग बतलाने का मत है—

संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रंथ।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने ऐसा कहा है। यह मोक्ष मार्ग का रास्ता है। मोक्ष का तात्पर्य है—बन्धन से छूट जाना। शरीर के अन्दर जीवात्मा का निवास है। शरीर संसार में रहता है, तो संसार भी बन्धन है। शरीर और इन्द्रियाँ भी बन्धन हैं। इन सबसे छूट जाने को मुक्ति कहते हैं। इनमें बन्धे रहने से जीवात्मा कल्याण नहीं पाता, चैन नहीं पाता और इसमें शान्ति नहीं मिलती। संतों ने कल्याणकारी मार्ग बताया। यह मार्ग पहले से हई है। संतों ने इसको खोज निकाला। जो इस मार्ग पर चलते हैं, वे भक्त कहलाते हैं। मार्ग कहते हैं लम्बे चिह्न को, जिसके आरम्भ का छोर कहीं हो, उसका अन्तिम छोर कहीं हो और बीच में फासला—दूरी हो। यह भक्ति-मार्ग अन्दर का रास्ता है, इसको किसी मनुष्य ने नहीं बनाया है, ईश्वर ने बनाया है। संतो ने इसकी खोज की और उसको निकाल लिया। उस पर वे आप चले और औरों को भी चलने कहा। भक्ति-मार्ग इसलिए कहते हैं कि परम प्रभु परमात्मा की भक्ति इसमें है। सेवा ऐसी नहीं कि जैसा लोग जानते हैं। किसी की कोई आवश्यकता पूरी कर दे, उसकी भक्ति हुई। परमात्मा को कोई आवश्यकता नहीं। उसकी भक्ति कैसे होगी? जैसे गंगा को कोई आवश्यकता नहीं, लेकिन लोग गंगा किनारे जाकर स्वयं लाभ पाते हैं। इसी तरह ईश्वर की ओर चलनेवाले को स्वयं लाभ होता है। इसी को ईश्वर-भक्ति कहते हैं। भक्ति के बिना किसी का उद्धार नहीं होता। कबीर साहब ने कहा है—

भक्ती बिनु नहिं निस्तरै, लाख करै जो कोय।
शब्द सनेही ह्वै रहै, घर को पहुँचै सोय।।

बिना भक्ति के किसी का उद्धार नहीं है। भक्ति में शब्द स्नेही बनने की बात है, जिससे वह उस घर में पहुँचता है, जहाँ कोई बन्धन नहीं है। ईश्वर की ओर जाना, इसमें ज्ञानी लोग कहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी है, जाना कहाँ है? कहना बहुत अच्छा है। जिसको ईश्वर की सर्वव्यापकता पर विश्वास नहीं है, उसको ईश्वर में विश्वास नहीं। फिर भक्ति क्या? ईश्वर इसलिए सर्वव्यापक है कि वह अनादि, अनन्त, असीम है। उससे कुछ बाहर हो, संभव नहीं। ऐसा नहीं मानने से वह सर्वव्यापक नहीं होगा। तब वह ससीम होगा। ससीम होने से उसकी बराबरी का कुछ होगा वा उसके पहले का कुछ होगा? जिसकी बराबरी का कुछ हो वा जिसके पहले का कुछ हो सके, वह ईश्वर नहीं है। जिसकी बराबरी का कुछ नहीं, जिसके पहले का कोई नहीं, जो हई है, वह ईश्वर है। ऐसा नहीं कि किसी मौके पर प्रकट हो गए। परमात्मा अनादि, अनन्त, असीम है और वह अपरिमित शक्ति और ज्ञान युक्त है। वह परम मंगलमय, परम कल्याणमय है। उसके सम्मुख अकल्याण वा अमंगल का स्थान कहाँ? जैसे सूर्य के सम्मुख अन्धकार कहाँ? जैसे गंगाजी को कोई आवश्यकता नहीं, गंगा-सेवन करनेवाले लाभ उठाते हैं, इसी तरह ईश्वर को कोई आवश्यकता नहीं, उस ओर जानेवाले लाभ उठाते हैं। उस तक जाने का रास्ता ईश्वरकृत है, सबके अन्दर है। यह भक्ति इसलिए है कि ईश्वर की ओर जाना है।

उसको बुलाना नहीं है। जो सर्वव्यापक है, फिर उस ओर जाना क्या? यहाँ ईश्वर को हम नहीं पहचानते हैं। इसलिए वहाँ जाना है, जहाँ पहचान हो। हम अपनी कमजोरी से यहाँ नहीं पहचान सकते हैं। शरीर और इन्द्रियाँ कमजोर हैं। इन कमजोरों के साथ रहने से कमजोरी आ गयी है। कमजोरी यह कि नाना इच्छाएँ आ गयीं हैं। ईश्वर को पहचानने चलो। कहाँ चलोगे? जहाँ अपने आप रहो और शरीर, इन्द्रिय नहीं रहे। जहाँ ऐसा होगा, वहीं ईश्वर-दर्शन होगा। ईश्वर का दर्शन शरीर के साथ रहने से, इन्द्रियों के साथ रहने से नहीं होगा। शरीर, इन्द्रिय से छूटकर रहने पर ईश्वर-दर्शन होता है। अपने को शरीर, इन्द्रिय से छुड़ाना है। वहाँ जाना है जहाँ शरीर, इन्द्रिय छूटे। जिस घर में कोई रहता है, उस घर को छोड़ने के लिए, पहले घर के अन्दर-अन्दर चलना होगा, फिर घर की सीमा से बाहर होना होगा। शरीर से छूटने के लिए शरीर के अन्दर-अन्दर चलना होगा। अन्दर में ही इन्द्रियों के घेरों को पार किया जाएगा। अपने शरीर में अपने को पहचाना जाएगा। परम योगियों, भक्तों, संतों के अतिरिक्त कोई अपने को अपने तईं में नहीं पहचानता। जागने की अवस्था में जीवात्मा की बैठक जहाँ है, वहीं से रास्ता लगा हुआ है। यह रास्ता मनुष्यकृत वा देवकृत नहीं, ईश्वरकृत है। जो इस रास्ते से चलता है, ईश्वर को पाता है; क्योंकि अन्दर-ही-अन्दर इन्द्रियों से और शरीरों से छूटना होता है, अपने तईं की पहचान होती है। अपने को पहचानने पर ईश्वर को पहचानने में देर नहीं। दोनों की पहचान एक साथ होती है। यह भक्ति-मार्ग है।

पहले बाहर इन्द्रिय का संग छोड़कर मन का संग रहेगा, फिर मन सहित चेतन आत्मा चलेगी और फिर केवल चेतन आत्मा। जैसे गंगा की हवा से पहले ही लाभ होता है, उसी तरह उस भक्त के वास्ते, जो ईश्वर की ओर जाता है, सहारा मिलता है। वह है शब्द। बाहर में जो बातचीत होती है, वह शब्द भी सहारा है। लेकिन अन्दर चलने के लिए बाहर का शब्द सहारा नहीं। ईश्वर की ओर से सबके अन्दर-अन्दर शब्द है। शब्द मिलता है, गोया आज्ञा मिलती है कि चले आओ। आज्ञा मिलने के कारण उस स्थान का नाम है आज्ञाचक्र। पिण्ड में छह चक्र बताते हैं। पिण्ड में सबसे ऊपर आज्ञाचक्र है। आज्ञाचक्र में पहुँचे बिना, अवस्थित हुए बिना किसी को उधर के लिए आज्ञा नहीं मिलती। शब्द के बारे में मैंने तो यही समझ रखा है कि ईश्वर के लिए जितने चिह्न और प्रतीक लोगों ने अपनाए हैं, उन सबमें श्रेष्ठ शब्द है। देवरूप, ईश्वर कोटि के देवरूप, महात्मारूप इत्यादि बहुत से चिह्न लोग लेते हैं, ईश्वर की ओर अपने को फिराने के लिए। इनमें शब्द सबसे बढ़कर है। शब्द का छोर सारी सृष्टि में अटूट रूप से व्यापक है। लेकिन वह शब्द ऐसा नहीं कि आप कहें और मैं सुनूँ वा मैं कहूँ, आप सुनें। वह वर्णात्मक नहीं, ध्वन्यात्मक है। उन ध्वनियों को मालूम करने की विधि सन्त लोग बतला गए हैं। ईश्वर के लिए जितने भी प्रभावशाली चिह्न लिए जाएँ, शब्द से बढ़कर कोई नहीं। संसार से शब्द को हटा लीजिए, कोई कार-बार नहीं चलेगा। बोलना-लिखना बन्द हो जाएगा। शब्द को मुँह से कहकर जाहिर करते हैं वा लिखकर? बोलने के सभी संकेतों को बन्दकर दीजिए, सभी काम खत्म हो जाएँगे। शब्द से हीन संसार रहने योग्य नहीं है। शब्द कम्पनमय होता है और कम्पन शब्दमय होता है। यह संसार कम्पन से बना है। कम्पन को शब्द से और शब्द को कम्पन से हटाया जाय, नहीं हो सकता है। जैसे वर्णात्मक शब्द और उसके अर्थ को अलग-अलग नहीं किया जा सकता, उसी तरह वह शब्द और कम्प

ओत-प्रोत है। आदि सृष्टि में पहले कम्प हुआ। बिना कम्प के शब्द नहीं हुआ। कम्प कहो वा शब्द कहो, एक ही बात है। जिस पिण्ड के निर्माण के लिए जो कम्प वा शब्द होता है, वह कम्प उसके कण-कण में मौजूद रहता है। गंगा की ओर जाओ, जाते-जाते गंगा की हवा मिलती है, उसी तरह ईश्वर की ओर जाओ। ईश्वर का सहार सर्वत्र है, वह मिलेगा। किंतु लोग पकड़ नहीं सकते।

यही बड़ाई शब्द की जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं उबरै, केता करै उपाय।।

—कबीर साहब

जैसे चुम्बक लोहे को अपने केन्द्र में खींचता है, वैसे ही शब्द के पकड़नेवाले को शब्द अपने केन्द्र में खींच लेता है।

चुम्बक सत्त शब्द है भाई, चुम्बक शब्द लोक ले जाई।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा, सत्त शब्द जो बसै शरीरा।।

—दरिया साहब, बिहारी

भक्ति में ईश्वर की ओर से जो सहारा है शब्द, उसको पकड़ना चाहिए। वह पकड़ा जाएगा आज्ञाचक्र में। वह नयनाकाश में है। ईश्वर की ओर से एक इशारा दिया गया है कि शब्द कब पकड़ सकते हो? यह आसमान ईश्वर की ओर से है। उसमें बिजली चमकती है, तब आवाज आती है इससे ईश्वर बताते हैं कि देखो मेघ लगता है, बिजली चमकती है, तब ठनके की आवाज सुनायी पड़ती है। बिना बिजली चमके ठनके की आवाज न हुई, न होने को है। तुम्हारे अन्दर भी ज्योति है, बिजली है और आवाज है। पहले दर्जे में शब्द है, दूसरे दर्जे में ज्योति। शब्द उपासना तब करोगे, जब ज्योति पकड़ोगे और ज्योति तब पकड़ोगे, जब विन्दु प्राप्त करोगे।

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्ति निकेतनम्।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।
विन्दुनाद महालिंगं विष्णुलक्ष्मीनिकेतनम्।
देहं विष्ण्वालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

—योगशिखोपनिषद्

विद्वान जानते हैं कि विन्दु मन से बनाया नहीं जा सकता। इसलिए उपनिषत्कार ने परम विन्दु कहा है। रेखागणित के हिसाब के लिए जो विन्दु मानते हैं, वह कितने विन्दुओं से भरा है, ठिकाना नहीं।

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

एक ही श्लोक में सब कह दिया गया। कबीर साहब ने विन्दु को तिल कहा।

जो कोई निरगुन दरसन पावै।।
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै।।

आपकी अभी बैठक आँख में है। स्वप्न में आप कण्ठ में होते हैं और गहरी नींद में हृदय में। ईश्वर की ओर जाने के लिए आँख से ऊपर जाएँगे। क्या सहारा मिलता है?

तेजो विन्दुः परम ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम्।

विन्दु को कोई मन से बनाने लगेगा, नहीं होगा। उसको कोई स्थूल दृष्टि से नहीं देख सकता, सूक्ष्म दृष्टि से देख सकता है। सूक्ष्म दृष्टि के बाद शब्द-साधना करता है, तो ईश्वर की ओर जाने की सड़क पर चढ़ जाता है। वह बाहर-बाहर नहीं, अन्दर-अन्दर चलने का रास्ता है। इस स्थूल-शरीर की लम्बाई-चौड़ाई अधिक नहीं है। फिर भी जो कोई अपने अन्दर वृत्ति को रखते हैं, तो उनको पता चलता है। जैसा कि संत कबीर साहब ने कहा है—

कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय।।

डॉक्टर लोग वर्षों पढ़ते हैं, लेकिन वे बिल्कुल अचूक हो गए, ऐसा नहीं। यह तो स्थूल-शरीर

की बात है। सूक्ष्म और कारण के लिए तो कहना क्या है! जो अपनी वृत्तियों को अपने अन्दर रखता है, वह मृतक है। वही माणिक परखता है। यह अन्दर-अन्दर जाने की बात है। जिस भक्ति में केवल बाहर-ही-बाहर दर्शन है, उससे जो मुक्ति मिलती है, वह यथार्थ मुक्ति नहीं है। उससे जो स्वर्ग मिलता है, उससे आवागमन का चक्र नहीं छूटता। किसी भी जड़ शरीर में रहना आवागमन का कारण है। जिसने शरीर और इन्द्रियों से अपने को अलग किया, उसने अपने को पाया, ईश्वर को पाया, मुक्ति पायी। इसके अतिरिक्त कितनाहू कुछ दर्शन हो, पूर्ण कल्याण नहीं। इतिहास, पुराण पढ़कर देख लीजिए। आवागमन से छूटने के लिए अन्दर के रास्ते पर चलिए। मिट्टी पर रहने से मिट्टी-मार्ग है। उसी तरह ज्योति में रहने पर ज्योति का रास्ता और शब्द में रहने से शब्द का रास्ता मिलता है। जैसे चिड़िया आकाश में उड़ती है, वैसे ही आकाश में गमन होता है। यह विहंगम मार्ग ज्योति मार्ग है। फिर मीन मार्ग है, वह है शब्द मार्ग। इसी भक्ति का प्रचार इस सत्संग से होता है। कबीर साहब ने कहा था—'भक्ति सतोगुर आनी।' बाहर-बाहर में जो भक्ति है, वही भक्ति बस नहीं है। भीतर भी चलना होगा। बाहर के दर्शनों से संसार का लाभ होगा, लेकिन माया से छूट नहीं सकते। अन्दर-अन्दर चलने पर जो दर्शन होगा, वह माया नहीं। शरीर-इन्द्रिय से छूटकर जो दर्शन होगा, वह स्वरूप का दर्शन होगा।

ईश्वर की श्रेष्ठ विभूति ज्योति और शब्द है। इससे बढ़कर कोई विभूति नहीं। विराट रूप का दर्शन अर्जुन को दिया गया। बड़ा तेजोमय रूप था। हजारों सूर्य के समान उस रूप का तेज था। और उसी से उपदेश भी मिला। गोया प्रकाश और शब्द भी मिला। विराट रूप में भयंकरता और सुन्दरता दोनों रूप का मेल था। अर्जुन भयंकर रूप से डरता था। उस विराट रूप में से ज्योति निकाल लीजिए तो बिल्कुल अन्धकारमय हो जाएगा, उसमें सुन्दरता असुन्दरता कुछ नहीं रहेगी। विराट रूप का पहले दर्शन हुआ, तब उस आश्चर्यमय रूप से आवाज हुई, जिसको सुनकर अर्जुन को बिल्कुल भरोसा हो गया। बिना ज्योति के सुन्दरता नहीं और ज्योति हो, शब्द नहीं, ऐसा नहीं। अन्दर देखने के लिए दिव्य नेत्र चाहिए और सुनने के लिए अन्तर्वृत्ति की दिव्य श्रवण-शक्ति चाहिए। संतों ने इसका भेद बताया है, इसको जानना चाहिए। पण्डितों का वेद और संतों का भेद प्रसिद्ध है। पण्डित बड़े विद्वान होते हैं और सभी साधु-संत उतने पढ़े-लिखे नहीं। लेकिन ऐसा भेद जानते हैं कि वे सभी विद्या जानने लगते हैं। यदि विद्या भी हो और भेद भी जाना जाय, तो कितना अच्छा हो! दोनों रखिए। इस सत्संग से यह समझाया जाता है। कबीर साहब ने कहा है—

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।
भक्ति बीज पलटै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। इसका स्वल्प अभ्यास भी महाभय से बचाता है और इसका उलटा परिणाम नहीं होता।' लोगों को चाहिए कि भक्ति-योग को जानें। जानें और करें नहीं, तो क्या लाभ! इसलिए जानो और करो, तो कल्याण होगा।

n

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर में दिनांक ८.१.१९६७ ई० को साप्ताहिक सत्संग में हुआ था।

२५८. भक्ति बीज का उल्टा परिणाम नहीं होता

प्यारे लोगो!

आपलोगों को पहले से मालूम है कि इस सत्संग से ईश्वर-भक्ति का प्रचार होता है। ईश्वर की भक्ति इसलिए कि संतों को विश्वास हुआ कि ईश्वर की भक्ति से सब दुःख छूटते हैं, आवागमन छूट जाता है। ईश्वर-भक्ति के लिए यह भी समझना चाहिए कि आप संसार में किसके दबाव में हैं? किसके दबाव से कष्ट होता है? रामचरितमानस में लिखा है—

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड॥

अर्थात् माया की भयानक सेना संसार में फैली हुई है। उनके सेनापति काम, क्रोधादि हैं और दम्भ, कपट, पाखण्ड आदि योद्धा हैं। इनके ही दबाव में सभी लोग पड़े हैं। चाहे वे विद्वान हों, अनपढ़ हों, इस देश को हों, दूसरे देश के हों, वैज्ञानिक हों वा कोई हों। यहाँ तक कि देवता भी इस दबाव में हैं। इसलिए उनकी शरण लो, जो इनको अपने वश में किए हैं। जैसे नट के आदेशानुकूल नटी नाचती है, वैसे ही ईश्वर के इशारे पर माया नाचती है। माया पूर्णरूपेण ईश्वर के वश में है। भक्ति क्यों करें? इसका यह उत्तर हुआ।

अब समझो कि ईश्वर का स्वरूप क्या है? लोग समझते हैं कि कोई राजा के समान शरीरधारी ईश्वर है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। जो आप इन्द्रियों के ज्ञान में जानते हैं, वह ईश्वर नहीं है। ईश्वर वह तत्त्व है, जो तत्त्व स्वयं आप हैं। रामचरितमानस में यह लिखा हुआ है कि—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।

वह परमात्मा अनादि, अनन्त, असीम है। सबसे पूर्व का वह है। ईश्वर किसी के पीछे हुआ, ऐसी बात नहीं। सब कुछ का नाश होगा, ईश्वर का नाश नहीं होगा। क्योंकि अनादि, अनन्त, असीम का नाश कैसे होगा? वह सबसे सूक्ष्म है। इसलिए उसको बेजाहिर—अव्यक्त कहा गया है। जो इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आता है, वह ईश्वर है। इन्द्रियों में ज्ञान आपके कारण है। बाहर में दस और भीतर में चार ये चौदहो इन्द्रियाँ आपकी शक्ति से काम करती हैं। आप अपने को निजी ज्ञान में लाइए। आप अपना मेल इन्द्रियों से छुड़ा लेंगे, तब निजी ज्ञान में होंगे। निजी ज्ञान में जो पहचान में आवे, वह ईश्वर है। इन्द्रिय-ज्ञान में जो आवे, वह माया है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई॥

जैसे चार रंगवाले पाँच पहल वाली लालटेन के भीतर एक मोमबत्ती जला दीजिए तो शीशे के रंग के अनुरूप उसकी रोशनी बाहर निकलेगी। किन्तु यदि उस शीशे में से मोमबत्ती को अलग कर देखा जाय, तो मोमबत्ती की रोशनी उन रोशनियों से भिन्न ही होती है। इसी तरह इन्द्रियों की बनावट माया से है। एक माया से सुनते हैं, दूसरी माया से देखते हैं, तीसरी माया से स्पर्श करते हैं, चौथी माया से गंध ग्रहण करते हैं और पाँचवीं माया से रसास्वादन करते हैं। एक रोशनी जो उस लालटेन के अन्दर है, केवल उसका ज्ञान नहीं होता है। शीशे के रंग के साथ की रोशनी को आप जानते हैं। शीशे से मोमबत्ती को निकाल लें, तब मोमबत्ती की निजी रोशनी होगी। उसी तरह अपने को शरीर इन्द्रिय से निकाल लीजिए। तब जानने में आवेगा कि मैं कौन हूँ?

ईश्वर से मिलने का जो रास्ता है, वही ईश्वर का पंथ है। कबीर साहब ने कहा है—

भक्ति का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे।।
साधुन के सत्संग में रहे, निसि दिन भीना रे।
शब्द में सुर्त ऐसे बसे, जैसे जल मीना रे।।
मान मनी को यों तजे, जस तेली पीना रे।
दया छिमा संतोष गहि, रहे अति आधीना रे।।
परमारथ में देत सिर, किछु विलम्ब न कीना रे।
कहै कबीर मत भक्ति का, परगट कह दीना रे।।

बाबा नानक ने कहा—

भगता की चाल निराली।
चाल निराली भगताह केरी विखम मारगि चलणा।।
लबु लोभु अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाहीं बोलणा।।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।।
गुर परसादी जिनि आपु तजिया हरि वासना समाणी।।
कहै नानक चाल भगताह केरी जुगहु जुग निराली।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

ईश्वर की भक्ति किधर जाकर करनी चाहिए? बाहर-बाहर यत्न करेगा तो इन्द्रिय-ज्ञान में रहेगा। इन्द्रिय-ज्ञान में रहने से माया के लोकों से नहीं छूटेगा। इसलिए इन्द्रिय-ज्ञान से ऊपर होना आवश्यक है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने योग का संकेत किया है। अपने को फैलाव से सिमटाव में लाओ। स्थूल को छोड़कर सूक्ष्मता की ओर ले जाओ। आपके अन्दर सूक्ष्मरूप से जो चेतनधारा प्रवाहित होती है, उसको पकड़िए। यह भौतिक विज्ञान की खोज से नहीं होगा। अध्यात्म-विद्या में इसको खोजिए। इसका बहुत यत्न लोग बताते हैं। लेकिन थोड़ी ही दूर जाने पर विविध उपाय छूटकर एक हो जाता है।

मन आवै मन जाय, मन हि बटोरो रे।
मन बूड़वै मन तारै, मनहिं निहोरो रे।।

मन को बहुत समेटना होगा। इसलिए आसानी से समेटने के लिए कुछ जप करने कहा, फिर ध्यान में स्थूल और सूक्ष्म। सूक्ष्म में मन से कुछ बनाना नहीं होता। सूक्ष्म में सगुण और निर्गुण, दोनों हैं। सगुण में वर्णात्मक और श्रवणात्मक शब्द हैं। लेकिन जो वर्णात्मक वा श्रवणात्मक नहीं है, वह ध्यान करते-करते मालूम होता है। वह भी ईश्वर का नाम है। इसलिए अच्छी तरह ध्यान करना चाहिए। अपने मन से कुछ करने से नहीं होगा। गुरु से जानकर करो। गुरु का विश्वास शिष्य को और शिष्य का विश्वास गुरु को होना चाहिए। और दोनों का संग ऐसा कि कभी छूटे नहीं।

संसार में आचरण कैसा होना चाहिए?—'निरत निरन्तर सज्जन धर्मा।' झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार का करनेवाला सज्जन नहीं। इनसे जो छूटे रहते हैं, वे सज्जन कहलाते हैं। उनका संग करो। पढ़े-अनपढ़े, धनी-निर्धन, ऊँचे कुल-नीचे कुल; आदि की इसमें कोई बात नहीं। जो अच्छी चाल-चलन में रहते हैं, ध्यान करते हैं, वे अच्छे हैं। सदाचार का पालन कीजिए। सत्संग कीजिए और ध्यान कीजिए। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि—'योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। इसका स्वल्प अभ्यास भी महाभय से बचाता है। इसका

उलटा परिणाम नहीं होता।' जबसे भक्ति बीज पड़ गया, तबसे इसका आरम्भ हुआ। भक्ति बीज का उलटा परिणाम यह होगा कि विविध योनियों में जाना, सो नहीं होगा। किसी भी प्रकार के मनुष्य से कोई कहे कि आप जलचर हो जाइए, पशु हो जाइए, नभचर हो जाइए, तो वह अच्छा नहीं मानेगा। जो ईश्वर-भजन करेगा, वह मनुष्य-शरीर के अलावे किसी दूसरी योनि में नहीं जाएगा। अर्जुन ने पूछा—'हे श्रीकृष्ण! श्रद्धा तो हो, परन्तु पूरा प्रयत्न अथवा संयम न होने के कारण जिसका मन योग से विचल जावे, वह योग सिद्धि न पाकर किस गति को जा पहुँचता है? वह दोनों ओर से भ्रष्ट हो जाने पर छिन्न-भिन्न बादल के समान बीच ही में विनष्ट तो नहीं हो जाता?' भगवान ने कहा—'हे पार्थ! क्या इस लोक में, क्या परलोक में, ऐसे पुरुष का कभी विनाश नहीं होता। कल्याणकारक कर्म करनेवाले की कभी दुर्गति नहीं होती। पुण्यकर्ता पुरुषों को मिलनेवाले स्वर्गादि लोकों को पाकर वहाँ बहुत वर्षों तक निवास करके फिर वह योग-भ्रष्ट पवित्र श्रीमान् लोगों के घर में जन्म लेता है अथवा योगियों के ही कुल में जन्म पाता है। अपने पूर्व जन्म के अभ्यास से वह इच्छा न रहते हुए भी पूर्ण सिद्धि की ओर खींचा जाता है। और उद्योग करते- करते अनेक जन्मों के अनन्तर सिद्धि पाकर परम शान्ति पा लेता है।' जो थोड़ा-थोड़ा भी भजन करता है, वह कभी मनुष्य-शरीर से नहीं गिरेगा। उसका संस्कार दिन-दिन बढ़ेगा।

दिन दिन बढ़त सवाई। रामधन कबहुँ न लागत काई ।।

भक्ति बीज पलटै नहिं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटे न ताको मोल।
भक्ति बीज बिनसै नहिं, जो युग जाय अनन्त।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत ।।

स्वपच, नाभा, रविदास; इन लोगों को लोग जानते हैं। लेकिन ये लोग कितने बड़े हुए। नाभाजी को गरीबी के कारण उनके माता-पिता ने फेंक दिया था। महात्मा श्रीअग्रहरि दासजी ने उनको पाला पोसा। किसी अधिक निकृष्टकर्म में फँस जाने के कारण वे योग-भ्रष्ट हुए, योग-भ्रष्ट होने ही के कारण नीचकुल में जन्म लिए। नहीं तो सूरदास, तुलसीदासजी की तरह ऊँचे कुल में ही जन्म लेते। किसी भी कुल में जन्म हो, बड़ा भाग्य है, जो पूर्व अर्जित योग का संस्कार मिले। और 'बड़े भाग मानुष तनु पावा।' यह तो हई है। प्रत्येक दिन भजन करो। नीचे गिरने की ओर मत जाओ। यदि नीचे गिरने की ओर मन जाए तो उससे बचो। थोड़ा-थोड़ा साधन-भजन नित्य करो। होते-होते पूर्ण होगा। यह भक्ति ऐसी नहीं कि घर-बार छोड़ो। नदी तीर जाओ या पहाड़ की गुफा में जाओ। बाल-बच्चे के साथ रहो, ईश्वर-भजन करो, पूर्ण होओगे। इसका नमूना संतों ने दिया। यह ईश्वर-भक्ति का थोड़ा-सा सन्देश आपलोगों को दिया। विस्तार बहुत है। ■

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मंदिर, सिकलीगढ़ धरहरा में दिनांक ५. २. १९६७ ई० को सत्संग में हुआ था।

२५९. दो प्रकार के स्वार्थ

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जो सत्संगी लोग सत्संग में कुछ वचन कहकर सत्संग का प्रचार करने में उत्साह रखते हैं और ऐसा करते हुए वह पवित्र जीवन बिताने की कोशिश करते हैं, उनकी मैं तारीफ करता हूँ। उनको जानना चाहिए कि पवित्र जीवन बिताना उसी

तरह है, जैसे किसी मन्दिर को बनाने में उसकी नींव मजबूत होती है। कमजोर नींव मत दो। पवित्र जीवन में पाँच पाप का निषेध है—अत्यन्त निषेध है। वे पाँच पाप ये हैं—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार। यह बारम्बार सत्संग में कहा जाता है। इस पर ध्यान देना चाहिए।

दूसरा यह कि स्वार्थ छोड़कर सत्संग का प्रचार करो। अपने लिए ऐहिक सुख जानकर प्रचार करो, तो गलती होगी। स्वार्थ दो प्रकार के हैं—एक तो यह कि—

स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम वचन राम पद नेहा ।।

यह स्वार्थ उत्तम है। यह स्वार्थ रखो। ईश्वर में तुम्हारा प्रेम हो, यह तुम्हारा अपना खास है। स्वार्थ माने अपने वास्ते। अपने वास्ते क्या खास है? अपने क्या हो? शरीर-इन्द्रिय तो तुम हो नहीं, शरीर के साथ इन्द्रिय तुम नहीं हो, अन्तःकरण नहीं हो। इनके साथ तुम आत्मा हो। खास आत्मा के लिए जो चाहिए, सो है स्वार्थ। संसार में आत्मा के लिए कोई चीज नहीं, कि लिया जाय। अपने को पहचानो। अपने को पहचाने बिना जीव गलती में पड़ता है। अपने को पहचानो, यही लो, यही है स्वार्थ। जिन्होंने अपने को पहचाना, उनको संसार की किसी वस्तु के लेने की इच्छा छूट गई, मोक्ष मिल गया, ईश्वर का मिलना दूर नहीं रहा। यह स्वार्थ लो। ईश्वर को लो। ईश्वर का दर्शन आत्मा से ही होता है। जड़-शरीरों के साथ मिल-जुलकर रहने से ईश्वर-दर्शन नहीं होता है। इन शरीरों के साथ माया में रहना होता है। इन्द्रियों में रहना होता है। इन्द्रियों से जो ग्रहण होता है, वह माया है। शरीर-इन्द्रियों से छूटकर रहने से तब जो ग्रहण होता है, वह परमात्मा है, यह असली स्वार्थ है। संसार में जिसको लोग स्वार्थ समझते हैं, वह माया के ग्रहण करने हेतु है, वह असली स्वार्थ नहीं है। मन, इन्द्रिय, शरीर के सुख के वास्ते जो होता है, वह असली स्वार्थ नहीं है। इसमें भी दो प्रकार के स्वार्थ हैं। एक संकीर्ण स्वार्थ अर्थात् अपने शरीर-इन्द्रिय के सुख के लिए करता है। दूसरा जो अपने शरीर और इन्द्रियों के सुख के साथ दूसरों के सुख के लिए भी ख्याल करता है, यह उदार स्वार्थ है। जो संकीर्ण-स्वार्थ में लगता है, वह नरक में है और नरक में पड़ता है—अपने लिए संसार चक्र को बढ़ाता है। संकीर्ण-स्वार्थ का ख्याल छोड़कर सत्संग का प्रचार करो। असली स्वार्थ को समझकर सत्संग का प्रचार करो। अपने ऐहिक सुख के लिए दूसरे के ऐहिक सुख का घात न हो। अपने को उदार स्वार्थ में रखकर असली स्वार्थ में जाना चाहो। इस तरह का धर्म-प्रचार लाभ पहुँचावेगा। नहीं तो हानि होगी, नीचे गिरोगे।

सत्संग के प्रचार का हेतु क्या है? यह बतलाना चाहिए। फिर बताना चाहिए कि मूल स्तम्भ क्या है? उसको ईश्वर बताना चाहिए। ईश्वर-स्वरूप बताने में समझाना चाहिए कि मन-इन्द्रिय से जो ग्रहण होता है, वह माया है। जो चेतन आत्मा से ग्रहण होता है, वह ईश्वर है। संसार की वस्तुओं में से किसी को ईश्वर कहना गलत है। जो केवल आत्मा से ग्रहण हो—पहचान हो, वह ईश्वर है। आत्मा से पहचानने के लिए आवश्यक है, अपने को मन, इन्द्रिय से अलग करो। केवल विचार में नहीं। विचार में जानो और यथार्थ में अलग-अलग करो। इसके लिए ज्ञान योग-युक्त-भक्ति को ग्रहण करो। ज्ञान आत्मज्ञान है, ईश्वर से युक्त होना योग है। इसको संतों ने बहुत सरल बताया। चाहे पढ़ा-लिखा कुछ नहीं हो, तब भी कुछ जप कर सकता है। मानस ध्यान कर सकता है। जो पदार्थ देखा है, उसको मन में बनाकर ध्यान कर सकता है। लेकिन यह आरम्भिक

बात है। इससे भी आगे बढ़ो। इसके लिए संतों ने दृष्टियोग बताया। दृष्टियोग से सूक्ष्ममण्डल का ज्ञान तथा उसमें विचरण होता है। जो बहुत भाग्यवान है, वह अपने को उसमें रख सकता है। वह सारे ब्रह्माण्ड को देखता है। लेकिन ब्रह्माण्ड को देखने पर भी ईश्वर को नहीं देखता है। इसी के लिए निर्गुण नाम भजन है। वह शब्द जो ईश्वर का खास नाम है, उसको संतों ने शिव, राम आदि कहा। वह शब्द मुँह से बोला नहीं जाता। वह केवल अनुभवगम्य है। ध्यान करते-करते उसकी स्थिति का ज्ञान होता है। उसको कान से सुनना नहीं है। पवित्र सुरत से सुनना होता है। उसकी उत्पत्ति परमात्मा से है। उसकी उत्पत्ति से सारा संसार हुआ है। उसका छोर ईश्वर तक लगा है, इसका जो विश्वास करता है, उसको जानना चाहिए कि कोई भी शब्द अपने उद्‌गम स्थान पर खींचता है। जिधर से शब्द आता है, उधर को सुननेवाला खिंचता है। पशु भी मनुष्य की बोली सुनकर मनुष्य के पास आता है। जिस आवाज से कुत्ता को पुकारा जाता है, उस आवाज से पुकारने पर कुत्ता उधर ही दौड़ता है, जिधर से शब्द आता है। साँप भी शब्द सुनकर उस ओर आता है। मेरे कहने का मतलब है कि विषधर साँप भी शब्द के उद्‌गम की ओर आता है। बहुत दिन पहले एक कुत्ता मेरे साथ-साथ चलता था। मैं सत्संग मन्दिर में चला गया। लोग सब आगे सामियाने में बैठे थे। मेरी आवाज सुनकर वह कुत्ता मेरे पास चला आया। मैंने डाँट दी, तब वह कुत्ता बाहर चला गया। लोग शब्द की उत्पत्ति को नहीं जानते हैं। बिना शब्द वा कम्प के कुछ बन नहीं सकता। परमात्माकृत सृष्टि है। उन्होंने मौज की। मौज कम्प स्वरूप है। कम्प बिना शब्द के नहीं होता है। कम्प शब्द के साथ रहता है, शब्द कम्प के साथ रहता है। किसी शब्द को सुनते हो, किसी को नहीं सुनते हो। वैज्ञानिकों ने इसको जाँच किया है। तीस हजार फ्रीक्वेन्सी (आवृत्ति संख्या) तक सुन सकते हो,बीस से नीचे की फ्रीक्वेन्सी को नहीं सुन सकते। कम्प के बिना कुछ नहीं बनता। इसलिए शब्द से सृष्टि हुई है। जो शब्द जिस सृष्टि के लिए होता है, वह शब्द उस सृष्टि के कण-कण में समाता है। जो शब्द सबके अन्दर है, उस शब्द को जो पकड़ता है, ईश्वर तक पहुँचता है। क्योंकि उसकी उत्पत्ति परमात्मा से हुई है। अपने अन्दर ध्यान करो। ध्यान करते-करते एक दिन होगा—'शब्द सिन्ध में जाय सिरानी।' जैसे सभी नदी की गूँज समुद्र में समाप्त हो जाती है, उसी तरह सभी शब्द उसमें लय हो जाते हैं। केवल एक शब्द रह जाता है। वह शब्द तबतक अभ्यासी सुनता रहता है,जबतक उसका जीवन रहता है। वह शब्द भी ईश्वर में लय होता है। वह शब्द निर्गुण है, मुँह से बोला नहीं जाता। इसी को गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

बन्दउँ रामनाम रघुवर को। हेतु कृषाणु भानु हिमकर को।।
विधि हरि हर मय वेद प्रान सो। अगुण अनूपम गुण निधान सो।।

इस शब्द मार्ग का उपदेश वेद, उपनिषद् में मौजूद है और संतवाणी तो इसकी किताब ही है। इसका प्रचार करना चाहिए। पंच पाप का निषेध होना चाहिए। संकीर्ण स्वार्थ का स्वयं त्याग करो और औरों में भी इस त्याग का प्रचार करो। इससे अपना भी उपकार होगा और दूसरों का भी। पहले अपना ही उपकार होगा, पीछे दूसरों का। n

यह प्रवचन संथाल परगना जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मंदिर, विषहा, गोड्डा में दिनांक १६. २.१९६७ ई० के सत्संग में हुआ था।

२६०. जवानी में अच्छी तरह भजन करो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

हमलोग यहाँ इसलिए आए हैं कि यहाँ की जनता की सेवा जहाँ तक हो सके, वह करें और हम सब अपने पुराने विचारों को दुहरा-दुहरा कर सुनते रहें। इसी वास्ते हमलोग यहाँ एकत्र हुए हैं। मनुष्य को चाहिए कि यदि उसके पास में शारीरिक बल, बौद्धिक बल तथा धनबल हो तो इन तीनों से औरों को भी लाभ पहुँचावे। दूसरे को लाभ पहुँचाने के लिए सबके पास कुछ-न-कुछ अवश्य है। हमलोग यहाँ कुछ बौद्धिक विचार द्वारा यहाँ की जनता को लाभ पहुँचाना चाहते हैं। जिस बौद्धिक बल से लाभ पहुँचाना चाहते हैं, वह बल अध्यात्म-बल है। इससे हमलोग प्रेरणा लेते रहते हैं। इससे अपने तथा औरों के लिए शक्ति प्राप्त करते चले जाते हैं।

पहले हमलोग ईश-स्तुति, संत-स्तुति तथा गुरु-स्तुति करते हैं। फिर सिद्धान्त-पाठ और अपने सिद्धान्त की परिभाषा का पाठ करते हैं। इसे हमलोग कण्ठस्थ रखते हैं, औरों को भी कण्ठस्थ करने कहते हैं। जो पढ़े हैं, वे पढ़कर इसे याद करते हैं और जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे सुनकर याद करते हैं। हमलोग ईश्वर की कृपा से ही श्वास लेते हैं। सब तरह से ईश्वर की कृपा से ही हमारी रक्षा होती है। जो कुछ भी हमारी भलाई होती है, वह ईश्वर-कृपा से ही होती है। ईश्वर की कृपा प्राप्त करके हम संसार में जीवन धारण करते हैं। यदि ईश्वर की स्तुति नहीं करते हैं, तो हम कृतघ्न हैं। इसलिए ईश्वर की स्तुति अवश्य कीजिए। प्रतिदिन काम शुरू करने के पूर्व ही ईश्वर की स्तुति कर लीजिए। स्तुति से ईश्वर पर निर्भरता रहती है। इसलिए सब लोगों को चाहिए कि ईश्वर की स्तुति अवश्य करें।

राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि संत समीरा।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

परमात्मा समुद्र हैं और संत पुरुष बादल हैं। प्रभु चन्दन के वृक्ष हैं और सब संतगण पवन हैं। समुद्र से ही बादल बनता है। बादल से बर्षा होती है। वर्षा से अन्न उपजता है। अन्न से मानव का जीवन रहता है। वर्षा के बिना क्या होता है, सो अभी अपने देश में प्रत्यक्ष है। संत पवन हैं। ईश्वरी ज्ञान को तमाम फैला देना यह संतों का काम है। संत ईश्वर की महिमा को संसार में फैलाते हैं। संत नहीं होते तो मानव को ईश्वर का ज्ञान नहीं होता। संत नहीं होते तो हमारा जीवन अन्धकारमय होता। ईश्वर का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। ईश्वर का ज्ञान सिवा संत के और कोई देनेवाले नहीं। संसार को आरम्भ से ही संत के द्वारा ईश्वर का ज्ञान मिलता आया है। संतों के हमलोग बहुत ऋणी हैं। इसलिए उनकी भी स्तुति अवश्य करें। उपकारक की स्तुति नहीं करें तो हम महाकृतघ्न हैं। संतों का ज्ञान विशेष रूप से गुरु से पाते हैं। गुरु की भी स्तुति नहीं करने से कृतघ्न होते हैं। इसलिए गुरु की भी स्तुति नित्य होनी चाहिए।

धर्म की परिभाषा और सिद्धान्त को जानना चाहिए। सिद्धान्त में ईश्वर-स्वरूप का निर्णय होता है और उसमें दृढ़तापूर्वक बतलाया जाता है कि ईश्वर क्या है, जगत क्या है? इसका भी ज्ञान होना चाहिए। जीवात्मा, माया और ईश्वर का ज्ञान सिद्धान्त में होता है। सिद्धान्त को पढ़े-अनपढ़े सभी याद करें। इसमें साम्प्रदायिकता का भाव नहीं है। हमलोग मिलाकर देखते हैं कि हमारे गुरु के ज्ञान

में तथा संतों के ज्ञान में मेल है या नहीं। साम्प्रदायिक भाव में आपस में मेल नहीं रहता। उससे आपस में घृणा उत्पन्न होती है, कष्ट होता है और अशान्तिपूर्वक रहते हैं। अशान्ति नहीं रहे, इसके लिए मेल से रहो। मेल को जानने के लिए वेद, उपनिषद्, संतवाणी आदि को पढ़ो। एक विचार का बोल बोलो। विचार एक नहीं होने से मेल नहीं होता है। सामूहिक उपासना भी करो और व्यक्तिगत उपासना भी करो। उपासना के लिए, आपस में मिलकर रहने के लिए वेद में उपदेश है। यह बहुत काम का उपदेश है। बेमेल में बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और अकल्याण को प्राप्त करते हैं। सब दुःखों से बचने के लिए आपस में सब मिलकर रहो और सामूहिक उपासना करो। सामूहिक उपासना सब धर्मों में है।

संसार में कर्म किए बिना नहीं रह सकते। स्वप्न में भी बिना कर्म किए नहीं रह सकते। हम दुःख से दूर भागना चाहते हैं और सुख को अपने पास बुलाना चाहते हैं। इसलिए कर्म बहुत समझकर करना चाहिए। अन्धाधुन्ध करने से परिणाम अच्छा नहीं होता। मानसिक तथा शारीरिक दोनों कर्म से सुखी और दुःखी होते हैं। जो केवल पुरुषार्थ से होता है, वह क्रियमाण कर्म है। वह कर्म जब जमा होता है तो वह सञ्चित कहलाता है। सञ्चित में से जो भोग होता है, वह प्रारब्ध कहलाता है। तीनों कर्मों के जाल में हम फँसे रहते हैं। इससे ही अनेक जन्म-मृत्यु से छुटकारा पावेंगे। इससे छूटने के लिए यत्न चाहिए। उपनिषद् बतलाती है कि ध्यान से छूटोगे।

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

एक ध्यान ही ऐसा कर्म है, जिससे कर्म बन्धन से छूट सकते हैं। ध्यान मन के एकाग्र करने को कहते हैं। ऐसा कौन-सा कर्म है, जो संसार के विषयों से छुड़ा दे? संसार के विषयों को ग्रहण करो तो कर्म होने लगता है। इसलिए ऐसा ध्यान होना चाहिए, जिससे विषयों से छूट जाएँ। पंच विषयों से छूटा हुआ परमात्मा हैं या उनके पूर्ण भक्त संतगण। दूसरा कोई नहीं, चाहे वे कुछ कहलावें। भक्त बनने के वास्ते ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। इसका रहस्य गुरु के द्वारा खुल जाता है। ध्यान से विषयासक्ति छूटती है। जो ध्यान में जितना समय कोशिश करता है,उसमें अल्पकाल भी यदि ध्यान बन जाता है तो उस अल्प काल में भी विषयासक्ति से छूटता है। ध्यानी का फँसाव छूटते-छूटते छूट जाता है। कर्म से बचने के लिए हमको विषयासक्ति से हट जाना चाहिए, जो ध्यान से हटता है। ध्यान में ऊर्ध्वगति होती है। नीचे गिरा रहना विषयों में लिपट के रहना है। ऊपर उठने के लिए अभ्यास करते-करते कभी-न-कभी ऊपर उठकर अवश्य रहता है। कर्ममण्डल से ऊर्ध्वगति में छूटता है। ऊर्ध्वगति होते-होते कर्ममण्डल को पार करेगा। कितना भी बड़ा पाप हो और कितना भी फैला हुआ हो, वह ध्यान से छूट जाता है। सिवाय ऊर्ध्वगति होने के और कोई उपाय नहीं है कि कर्म-बन्धन से छूटें। जबतक संसार में रहेंगे, कर्म-जाल में फँसे रहेंगे और दुःख-सुख भोगते रहेंगे। जो कर्ममण्डल से बाहर निकलेगा, वह कर्म के प्रभाव से बाहर निकलेगा। सांसारिक पदार्थों के ध्यान से ऊर्ध्वगति नहीं होगी। जब कोई भी रूप-रंग नहीं रहेगा, तब ऊर्ध्वगति होगी। ऊर्ध्वगति नहीं होने से आवरण का छेदन नहीं होता। कर्म समझ बूझकर करना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—'अध्यात्म-वृत्ति रखते हुए कर्म करो।' अध्यात्म क्या है? अध्यात्म की खोज के लिए अपने अन्तर में देखो। अपने शरीर

के अन्दर में खोजो। अध्यात्म-वृत्ति के लिए अपना निशाना अपने अन्दर, उसपर अपने को लगाए रहो। इससे कर्म में निर्लेपता आती है, कर्म में जो आसक्ति है, वह छूट जाती है।

जीवात्मा जबतक बहिर्मुख है, तबतक शरीररूप पिंजरे में फँसा हुआ है। अन्तर्मुखी होने पर पिंजरे से छूटेंगे। ध्यान इसी वास्ते है। इसके लिए घर में रहे कि जंगल में? संत-महात्मा कहते हैं कि घर ही में रहो।

वन के गए कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ।।

—कबीर साहब

भगवान बुद्ध ने कहा कि 'तुम्हारा शरीर ब्रणों से भरा हुआ है।' जिस कारण से शरीर होता है, उस कारण को तोड़ दो। यह ध्यान से होता है। कर्मों से बचने के लिए संसार से अनासक्त रहो। ब्रह्मचर्य का पालन करो। जवानी में ऐसी कमाई कर लो कि बुढ़ापे में उसकी चिन्ता न रहे। जब जवानी का बल चला जाता है, तब भजन करने में मन नहीं लगता। बुढ़ापे में भजन नहीं कर सकते। जवानी में अगर परमात्मा की ओर अपने को लगाया जाय तो उसी आदत से वह गुजरता रहेगा। इसलिए जवानी में अच्छी तरह भजन करो, तो बुढ़ापे के जीवन में भी अच्छी तरह करते रहोगे। जो जीवनमुक्त नहीं हैं, वे पुनः मनुष्य-जन्म पाकर फिर भजन करेंगे। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यन्तर्गत तरयासुजान, देवरिया में अखिलभारतीय संतमत सत्संग का ५९वाँ वार्षिक महाधिवेशन, दिनांक २. ४. १९६७ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२६१. हर का नासा सबकी आशा

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं जिस विषय को अपने गुरु महाराज से जान पाया हूँ, वह आपलोगों को सुनाने आया हूँ। वह विषय खास तरह से ईश्वर की भक्ति है। ईश्वर की भक्ति इसका खास विषय है। जिस चीज की आवश्यकता नहीं हो, उसके बारे में कुछ कहना व्यर्थ है। यदि आवश्यकता हो तो कहना भी ठीक और सुनना भी ठीक।

किसी देश पर जब शत्रु की चढ़ाई होती है तो उस शत्रु को टालने के लिए अवश्य यत्न करते हैं। अपने देश में हाल ही में यह काम हुआ है। पाकिस्तान की चढ़ाई में बहुत बहादुरी से सैनिकों द्वारा उसको रोका गया। अपनी जिन्दगी गँवा-गँवाकर उसे रोक दिया और आगे बढ़ा। यह होना बहुत आवश्यक है।

खेती करने में हिंसा होती है, भोजन बनाने में हिंसा होती है, चिराग जलाने में हिंसा होती है। कभी-कभी किसान जंगल को जलाकर खेती करते हैं। जंगल जलाने में हिंसा होती है। यह अनिवार्य हिंसा है। आज जितने खेती करनेवाले हैं, वे यदि अनिवार्य हिंसा को छोड़ दें तो खेती नहीं हो सकेगी। गाँवों में कहावत प्रसिद्ध है कि 'हर का नासा, सब की आशा।' हल नहीं चले, वैज्ञानिक खत्म हो जाएँगे। बड़े-बड़े बहादुर भी खत्म हो जायेंगे।

जो असल ज्ञान है, वह गुढ़ और गम्भीर है। उसको जानने के लिए, जनानेवाले को बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। जैसे बंजर जमीन को उपजाऊ बनाने में परिश्रम करना पड़ता है। अपने मस्तिष्क को भी बंजर खेत की तरह विद्याभ्यास और सत्संग के द्वारा उर्वरा बनाना चाहिए। विद्याभ्यास हो और सत्संग

नहीं हो तो फसल अच्छी नहीं होगी। सत्संग के बिना अध्यात्म-ज्ञान नहीं होगा। अध्यात्म-ज्ञान के बिना विद्या अपवित्र है। संसार में इसका ताण्डव नृत्य हो रहा है। बड़े-बड़े विज्ञान जाननेवाले हैं, अगर अध्यात्म से विहीन हैं तो उनसे ऐसा काम होता है जो नहीं होने योग्य है। अध्यात्म-ज्ञान के जाननेवाले पवित्र काम करते हैं। अच्छे भी मायाधीन होकर भलेपन से चूकते हैं। परन्तु भलेपन का खजाना उनके पास मौजूद रहता है, जिससे फिर वे कुमार्ग से सुमार्ग में आते हैं। उनका जब दूसरा जन्म होता है तो वह संस्कार उनसे कभी दूर नहीं होता। इसमें कोई संशय नहीं है। जो ज्ञान ईश्वर-भक्ति के लिए अपेक्षित है, उसको बहुत जानना है। ईश्वर-भक्ति से विहीन लोगों से दुष्ट कर्म अधिक होते हैं। अपने दुःखी रहते हैं और दूसरों को भी दुःखी बनाते हैं।

सब चाहते हैं कि हम बहुत सुखी रहें। सुख इतना कि उसका अन्त नहीं। सुख के बाद दुःख आवे नहीं। जिस सुख में मन उकतावे नहीं, उसमें रस-ही-रस रहे, कभी तृष्णा होवे नहीं, उस सुख को पाने के लिए कोई इन्द्रियाँ समर्थ नहीं। बाहर संसार में इन्द्रियों के सुख से सुखी नहीं होते। सांसारिक सुख में कभी तृष्णा का अन्त नहीं होता। संसार में जो सुख पाता है, उससे कभी कोई तृप्त नहीं होता। इससे उपरामता पाने के लिए ईश्वर की भक्ति नितान्त आवश्यक है। मनुष्य को अविनाशी सुख चाहिए। उस सुख के वास्ते ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। मेरे गुरु महाराज इसी के वास्ते ईश्वर-भक्ति का प्रचार करते थे। भक्ति में ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान अवश्य चाहिए। स्वरूप-ज्ञान के बिना वह उस यात्री के समान है, जिसे अपना निर्दिष्ट स्थान मालूम नहीं, फिर यात्रा करता चला जा रहा है। इसलिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए।

संसार में सभी वस्तुओं का परिवर्तन होता है और अत्यन्ताभाव होता है। अत्यन्ताभाव में कुछ भी नहीं रहता है। यह शरीर जल जाएगा, सड़ जाएगा। अन्त में रूप का अत्यन्ताभाव हो जाएगा। दो प्रकार के नाश होते हैं, संसार में ऐसा देखने में आता है। हिमालय पहाड़ है, कुछ-न-कुछ उसका अंश झड़ता जाता है। अगर ऐसा कोई आयुवाला हो तो बतला सकता है कि इसमें कितनी बदली हुई। कुछ विद्वानों का कहना है कि हिमालय पहले समुद्र में था। संसार का सभी पदार्थ परिवर्तनशील है। ईश्वर तबसे है, जब देशकाल का भी पसार नहीं था। कबीर साहब कहते हैं कि 'आवे जाय सो माया।' ईश्वर सबसे पहले का है। जो सबसे पहले का है, वही परम प्राचीन, परम पुरातन, परम सनातन है। यह केवल कल्पना नहीं है। शून्य नहीं होता तो सौर जगत नहीं होता। सबसे पहले का वही है, जिसका आरम्भ नहीं, अन्त नहीं। ईश्वर को जब हम आदि-अन्त-रहित कहते हैं, तो उसके विस्तार का बोध होता है। विस्तृतत्व का ज्ञान माया के अन्दर होता है। ईश्वर विस्तृतत्व से भी बाहर है। कठोपनिषद् में है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।

प्रकृति के पार का जो स्वरूप है, वह हद, बेहद और विस्तृतत्व से भी परे का है, उसमें न परिवर्तन होता है और न अत्यन्ताभाव। बुद्धि के विचार में यह बात आती है। परमात्मा बुद्धि की शक्ति से परे है। उनके साथ-साथ दूसरा तत्त्व भी है, कोई बता नहीं सकता। वह एक-ही-एक है। 'प्रथम एक सो आपै आप।' शून्य में बहुत-सी चीजें रहती हैं। यह शून्य बहुत मोटा है, जिस शून्य में कुछ भी मोटाई नहीं, वह इतना सूक्ष्म है कि इससे अधिक सूक्ष्म कुछ हो नहीं सकता। आदि-अन्त-रहित के मुकाबले में आदि-अन्त-सहितवाला पदार्थ सब

तुच्छ है। आदि-अन्त-सहितवाले पदार्थ को मिलाकर कितना भी बड़ा मण्डल बना लो, वह आदि-अन्त-रहित नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि सूक्ष्म तत्त्व को स्थूल यंत्र ग्रहण नहीं कर सकता। हमारी इन्द्रियाँ सभी स्थूल हैं। इससे ईश्वर-स्वरूप का ग्रहण नहीं हो सकता। इसलिए—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

इतना सूक्ष्म परमात्मा का स्वरूप है। इस स्वरूप का नाश नहीं होता। इसको नहीं पाने से, ईश्वर की भक्ति हो गई—कभी नहीं हो सकता। अपने को मत हराओ। अपने को समझकर स्थिर रखो। अपने आप से जो ग्रहण कर सकें, वही ईश्वर है। उसे बुद्धि नहीं पकड़ सकती। अपने आप स्वयं पकड़ सकते हैं।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

अंश अंशी को अवश्य पकड़ता है। अंश उतना ही सूक्ष्म है, जितना परमात्मा। दोनों में जातीयता है। आप स्वयं अपनी सूक्ष्मता के कारण ईश्वर को पकड़ेंगे, अपने को पहचानेंगे। अपने से अपने को पहचानेंगे। जैसे अपनी आँख को अपनी आँख से ही ऐने के द्वारा देखते हैं। इसी तरह साधन-भजन द्वारा आप अपने को देखिएगा। आप अपने में ही संतुष्ट होंगे। जो अपने आप में संतुष्ट नहीं, उसको संसार के कोई भी पदार्थ संतुष्ट नहीं कर सकता। इसी के लिए संतों ने सत्संग का प्रचार किया है।

n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत तरयासुजान, देवरिया में अखिल भारतीय संतमत सत्संग का ५९वाँ वार्षिक महाधिवेशन, दिनांक २.४.१९६७ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२६२. मिथ्या धारणा को दूर करें

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जो कुछ पाठ आपको सुनवाता हूँ, उन सबसे आप निचोड़ निकाल लें। संसार में जो काम करते हैं, उसमें लाभ देखकर ही करते हैं। सत्संग भी लाभ देखकर ही करना चाहिए। सुनानेवाले परिश्रम करते हैं, सुननेवाले भी सुनी बातों को चुन-चुनकर अपने हृदय में नहीं रखते तो उनको लाभ नहीं होता। आप सत्संग की बातों को सुनें। सुनी हुई बातों के अनुकूल यदि नहीं चलते हैं तो जो उत्तम लाभ होना चाहिए, सो नहीं होता।

अपने देश में ईश्वर संबंधी ज्ञान बहुत ऊँचा है, इसमें लोगों की मैं बहुत भलाई समझता हूँ। मूल वस्तु को जानने में लोग कमजोर रहते हैं। मूल चीज को पाने की विधि को जानना तो दूर ही रहता है। मिथ्या धारणा को दूर करने के लिए मैं सत्संग में उपस्थित होता हूँ। ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो ईश्वर की स्थिति पर विश्वास नहीं करते हैं। बुद्धि विचार से नहीं समझकर केवल अन्धविश्वास में चलना ठीक नहीं। विचार यह है कि सबसे प्रथम का कुछ है, ऐसा मानना युक्ति-युक्त है। सबसे प्रथम का जो है, वह असीम, आदि, अन्तरहित है। विस्तृतत्वविहीन होते हुए वह सर्वव्यापक है। बाह्य इन्द्रियों को कुछ भी शक्ति नहीं, जो उसे ग्रहण कर सके। केवल चेतन आत्मा को वह शक्ति है, जो ईश्वर को चीन्हे और दर्शन कर सके। यह ज्ञान

जब मजबूत हो जाता है, तब इन्द्रियों के ज्ञान में जो कुछ आता है, उसे ईश्वर नहीं मानता। इन्द्रियों के पंच विषयों को लोग जानते हैं, इनसे परे को नहीं जानते। इनसे परे ईश्वर हैं, यह विश्वास मजबूत होता है। इसी के वास्ते मैं प्रयत्न करता हूँ। लोग कहते हैं, यह गम्भीर विषय साधारण लोग समझ सकेंगे? मैं कहता हूँ कि ऐसा आलसी कहता है। प्रयत्न करनेवाला नहीं कहेगा। जब सुग्गा सुनकर मनुष्य की बोली बोलने लग जाता है, तब मनुष्य नहीं सीखे, यह कहना ठीक नहीं। प्रयासी को विश्वास हो जाता है कि बिना पढ़े-लिखे लोग भी सीख सकते हैं। मतलब कहने का कि सबको सुनाया जाय, सबको दिखाया जाय। सब कोई सुनने योग्य हैं। गुरु नानकदेव ने कहा—'चहुँ बरना को दे उपदेश।' मैं भी इसी के लिए चेष्टा करता हूँ।

ईश्वर संबंधी ज्ञान में जब यह सिद्ध हो जाता है कि ईश्वर पंच विषयों से परे हैं, तब बाहर में ईश्वर के पाने का यत्न व्यर्थ है। अपने अन्दर में ही ज्ञान रहता है। सोचने-समझने की शक्ति अन्दर में है। बाहर में भी देखने की शक्ति अन्दर से ही आती है। केन्द्र में पहुँचने की शक्ति को विकसित करो। अपने को देखने के लिए शक्ति हासिल करो। मैं तो अंदर में कोशिश करता हूँ। मुझे कुछ-न-कुछ नमूना अवश्य मालूम है। अन्दर में वही देख सकता है, जो अन्धकार का छेदन करता है।

उघरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

जो अन्दर में कोशिश करता है,वह पाता है। जो अन्दर में कोशिश नहीं करता, केवल वाक्य जाल में फँसा रहता, वह नहीं पाता। इसके लिए मैं युक्ति बतलाऊँगा, जिसे करके आप ईश्वर को पायेंगे। आप युक्ति जानें। जबतक ईश्वर को इन्द्रिय-ज्ञान के परे नहीं जानेगा, तबतक ईश्वर-प्राप्ति का भेद उसके लिए कुछ नहीं। संतों के साधन में अन्दर का भेद बतलाया गया है। वे अन्दर के साधन के जानकार थे। संतों की गति सर्वव्यापक तक है।

ईश्वर शब्दातीत है। उनको निर्गुण-सगुण कहते नहीं बनता। वह त्रैगुणमय नहीं है। वह परा प्रकृति भी नहीं है। इसलिए वह निर्गुण भी नहीं। वह निर्गुण के भी परे है। वह देशकालातीत है। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत तरयासुजान, देवरिया में अखिल भारतीय संतमत सत्संग का ५९वाँ वार्षिक महाधिवेशन, दिनांक ३.४.१९६७ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२६३. मन की सम्हाल भक्ति में परम आवश्यक है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

ईश्वर-भक्ति के विषय में जो कहना चाहिए, मैं वही कहता हूँ। इस विषय के पहले ईश्वर-स्वरूप का निर्णय चाहिए। युधिष्ठिर बहुत दुःखी थे। वह राजा भी बनाए गए। फिर भी उनका मन नहीं लगता था। वे रोते रहते थे कि 'हाय! हमारे सब मर गए। बूढ़े-जवान सब मर गए।' व्यासदेवजी ने समझा कि इसके ख्याल को बदल दें। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा—'अरे! तू अश्वमेध यज्ञ कर।' युधिष्ठिर ने कहा—'यज्ञ के लिए धन कहाँ? भण्डार तो युद्ध में खाली हो गए। अन्य राजाओं से धन लेकर युद्ध में खर्च कर दिया।' व्यासदेवजी ने कहा—'पहाड़ में बहुत धन पड़े हैं। राजा मरुत ने इतना दान किया था कि दान लेनेवाले उसे ले जा न सके। उस दान

के धन को पहाड़ में गाड़कर वे लोग चले गए। उस धन के पाने के लिए मैं ठीक-ठीक रास्ता और अनुष्ठान बतलाता हूँ। तू अनुष्ठान कर। युधिष्ठिर ने वैसा ही किया और धन प्राप्त कर यज्ञ किया।

यह कथा कहने का मेरा मतलब यह है कि अव्यक्त धन को प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर अव्यक्त है, उस ईश्वर को प्राप्त कर अपने को महान बनाओ। उस रास्ते पर चलो, जिस पर चलने से अव्यक्त, व्यक्त हो जाए। ईश्वर मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को व्यक्त नहीं। मन, इन्द्रियों से छूटकर निजी ज्ञान में परमात्मा व्यक्त हो जाता है। परमात्मा तक पहुँचने से दुःख का अन्त हो जाता है। उस मार्ग पर चलने के लिए इस पैर की आवश्यकता नहीं। मन भी छूट जाता है, केवल चेतन आत्मा ही रहती है। जो परमात्मा तक जाती है, उस मार्ग पर चलने के लिए बहुत सूक्ष्म होना चाहिए। अपने को सिमटाव में लाना चाहिए। चेतन आत्मा सर्वव्यापी है। समस्त शरीर में वह एक रस व्यापक है। परन्तु जहाँ पर इसका विशेष प्रभाव है, वह भी कोई स्थान है।

जाग्रत में जीव का वासा आँख में है, स्वप्न में कण्ठ में तथा गहरी नींद में हृदय में। सबको आँख से ही चलना पड़ता है। संतों ने सुगम और सीधा रास्ता निकाला है। मन के सिमटाव से चेतन आत्मा मन से भिन्न हो जाती है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति स्वाभाविक है। अपने अन्दर में मन का सिमटाव होने से ऊर्ध्वगति होती है। सिमटाव मन की एकाग्रता से होता है। भक्त लोग मन को एकाग्र करेंगे, तो मोटे पदार्थ से मन को समेटेंगे।

जप एकाग्र मन से जपो। सब जपों में मानस जप उत्तम है। जप तीन तरह का होता है—वाचिक, उपांशु और मानस। मानस जप पर संतों ने बहुत जोर दिया है। जप बाहर में दिखलाने के लिए नहीं, मन-ही-मन जपो। इससे मन की एकाग्रता होती है। ईश्वर सर्वव्यापक है। प्रत्येक चराचर रूप हरि के हैं। गुरु के बताए हुए जो रूप अच्छा लगे, उसपर मन को टिकाओ। शून्य का ध्यान विशेष सिमटाव का काम है। विन्दु का स्थान है, परिमाण नहीं। वह ऐसा चिह्न है कि बाहर चिह्नित नहीं कर सकते हैं। यह विन्दु ध्यान परम ध्यान है।

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

अर्थात् परम विन्दु ही बीजाक्षर है, उसके ऊपर नाद है, नाद जब अक्षर (अनाश ब्रह्म) में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है।

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।

अर्थात् हृदयस्थित विश्वात्म तेजसस्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है। देखने के यत्न से देखो प्रकट होगा। वह विन्दु ध्यान, मानस ध्यान नहीं है। जब मन में कोई रूप नहीं रखते हैं, तब जो चिह्न उदय होता है, वही विन्दु है। आँख बन्द करने पर अन्धकार मालूम होता है। अन्धकार में सूझे तो ज्योतिर्विन्दु है। यहाँ जो विन्दु का उदय होता है, वह आन्तरिक शालिग्राम का रूप है। उसमें जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था नहीं रहती है। इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर चौथी अवस्था हो जाती है। 'तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।' गोस्वामी तुलसीदासजी सफरी बनने कहते हैं। सफरी एक छोटी मछली है, जो जल के प्रवाह के विपरीत दिशा को भी चल सकती है। अन्तस्साधन में जो प्रकाश मिला, वह उलटी धारा है, वही सूक्ष्म का प्रकाश है। उसमें अधिक गति है। उस पर चलनेवाला योगी होता है। योगी अपने अन्दर में सारे विश्व को देखता है। अनेक रूप को देखकर एक में रहता है। जो अनेक रूप का आधार है, उसको भी देखता है। अनेक रूप का आधार परमात्मा है। भक्ति,

ज्ञान और योग; तीनों संग-संग होने चाहिए। सत्संग के द्वारा यही प्रचार करते हैं। उसमें न ज्ञान को छोड़ते हैं, न भक्ति को, न योग को। ईश्वर की ओर चलनेवाले के वास्ते चाहिए अन्तस्साधन। दृष्टियोग में दृश्य तक रह सकता है। शब्द में उद्गम की ओर खींचने की शक्ति है। शब्द का साधन करते-करते शब्दातीत-पद को प्राप्त होंगे। ईश्वर-प्राप्ति के वास्ते इसी तरह की भक्ति करनी चाहिए। तुरीय अवस्था में भजन करो तो संशय निर्मूल होकर नष्ट हो जाएगा। भक्ति-मार्ग यहाँ तक पहुँचाता है।

मन की सम्भाल भक्ति में परम आवश्यक है। सत्संग में बाहरी बातों को छोड़कर बैठो और एकाग्र होकर सुनो। गुरु-सेवा बेमन से मत करो। बेमन की सेवा गुरु मंजूर नहीं करेंगे। खूब मन को संभालकर जप करो। दूसरे ख्याल को हटाते जाओ। इसमें मन की संभाल ही सम्भाल है। केवल विचार से क्षणिक काल के लिए दमशील होता है। मन चलायमान है। मन की धारें इन्द्रियों तक है। यदि मन की धारें इन्द्रियों के साथ नहीं रहें तो मन विषयी नहीं होता। इसको अन्तर्मुख करो, तो विषय छूट जाता है। अन्तर्मुख होने से इन्द्रियों का संग छूटता है। किसी बाहरी विषय में आसक्ति नहीं रहती। अन्तर्मुख होने से बाहर के ज्ञान से जाते रहेंगे। आँख से अगर आप ऊपर उठेंगे तो स्थूल जगत छूट जाएगा। अन्तर्मुख होने से चैन होती है। अन्दर के प्रकाश में रस मिलता है। बाहर का विषय फीका हुआ। इन्द्रिय का दमन हो गया। निर्विषय की ओर चलना परमात्मा की ओर चलना है। जो निर्विषय की ओर चला, वह ईश्वर का भक्त है। दम के बाद शम का साधन है। शम कहते हैं—मनोनिरोध को। मनोनिरोध के बिना शम नहीं होता। नादानुसन्धान में शम का साधन होता है। दम और शम योग का साधन है। थोड़े-थोड़े अभ्यास से अभ्यास में आगे बढ़ते जाओ। दुष्ट बुद्धि को छोड़ना चाहिए। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; पाँचों पापों से बचकर रहना चाहिए। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत तरयासुजान, देवरिया में अखिलभारतीय संतमत सत्संग का ५९वाँ वार्षिक महाधिवेशन, दिनांक ३.४.१९६७ ई० के अपराह्णकालीन सत्संग में हुआ था।

२६४. नगद सौदा

प्यारे लोगो!

जो कुछ आपको सुनाए जाते हैं, उन सब पाठों से यही बतलाना है कि ईश्वर-भक्ति के लिए मानस जप, मानस ध्यान, शाम्भवी मुद्रा तथा नादानुसंधान बहुत अपेक्षित है। इन साधनों के बिना भक्ति पूर्ण नहीं हो सकती। गुरु से पाए हुए शब्द का जप सबके लिए सरल है। स्थूल रूप का ध्यान भी सबके लिए सरल है। इसलिए हमारे बहुत से संन्यासी 'ॐ' लिखकर ध्यान करते हैं। सूफी लोग 'अल्लाह' वा 'अलिफ' लिखकर ध्यान करते हैं। स्थूल जप के द्वारा मन को सम्भालते हैं। स्थूल को छोड़कर एकाएक सूक्ष्म में चले जाएँ, कभी संभव नहीं। दृष्टियोग से एकविन्दुता आती है, निगाह को समेटकर स्थिर करो। इसका पूरा भेद गुरु से जानकर करो।

क्यों भटकता फिर रहा, तू ऐ तलाशे यार में।
रास्ता शहरग में है, दिलवर पै जाने के लिये।।

हमलोग जिसे सुषुम्ना कहते हैं, सूफी लोग उसे शहरग कहते हैं। ईश्वर तक जाने का रास्ता

वही है। पूरे गुरु से जाकर मिलो। जिसमें सच्चाई और संतोष नहीं है, वह गुरु का ज्ञान नहीं ले सकता है। दोनों को लेते हुए जो गुरु के पास जाता है, उसपर गुरु प्रसन्न होते हैं। गुरु उसे उत्तम जानकर भेद बतला देते हैं।

गोश बातिन हो कुशादा, जो करे कुछ दिन अमल।
ला इलाह अल्लाह हो, अकबर पै जाने के लिये।।

अन्दर का कान खुल जाता है। 'यहि घट बाजै तबल निशान। बहिरा शब्द सुने नहिं कान।' ईश्वर तक पहुँचने के लिए संतों के अन्दर यही आखिरी बात है। हम वेदों में खोजते हैं तो वहाँ भी नादानुसन्धान की चर्चा है। उपनिषदों में है। संतवाणी तो इसी की किताब है। केवल कहने से आज तक किसी को प्रत्यक्ष हुआ है? 'धन-धन कहत धनी जो होते निर्धन रहत न कोई।' विन्दु ब्रह्मज्योति का प्रतीक है। जो विन्दु को नहीं पकड़ सकते, वे स्थूल में गिर जाते हैं। विन्दु नहीं भागता, आप ही भाग गए। दृष्टियोग का अभ्यास करते-करते सुरत प्रौढ़ हो जाएगी और कोई दूसरी बात सुनने में अच्छी नहीं लगेगी। यह उधार सौदा नहीं है, नगद सौदा है। परिश्रम करो, अभ्यास करो। यह काम करके तब जो अनुभूति हुई, वही नगद सौदा पाना है। इड़ा-पिंगला को मिलाओ तो प्रकाश का उदय हो जाएगा। जबतक मिलाकर रखोगे, तबतक प्रकाश रहेगा। यह अन्दर का काम है। इसका प्रयोगशाला अपना शरीर ही है। इसमें मन इस तरह टिकता है कि दूसरी तरफ जाता नहीं। विन्दु और नाद यह ईश्वर की ओर जाने का अवलम्ब है। भरोसा नहीं छोड़ना चाहिए, शक्ति बढ़ाते-बढ़ाते बढ़ती है। भजन-अभ्यास करते-करते शक्ति बढ़ जाती है। खूब अभ्यास करना चाहिए। बाबा नानक ने कहा है—ईश्वर का कोई रूप नहीं है। इसके लिए कोई लकीर भी नहीं है। यदि कुछ निशान है तो 'साचे शबदि नीशाणु।' यही ईश्वर का चिह्न है। इस चिह्न को जो पाता है, वह ईश्वर को पाता है। अपने अन्दर में चलो 'साचे शबदि नीशाणु' मिल जाएगा। उसको जहाँ पकड़ा, ईश्वर मिल गए। जो शब्द-अभ्यास में पूर्ण होता है, वह ब्रह्म को पाता है।

प्रकाश को हटा दो, तो सारा कार-बार खत्म। शब्द के हटाने से कम्पन हट जाएगा। कम्पन के हटने से सृष्टि खत्म हो जाएगी। शब्द और प्रकाश को हटा दो, तो संसार नहीं रहेगा। ईश्वर को पाने के लिए इससे उत्तम दूसरा प्रतीक नहीं। इसको मन से बनाने की जरूरत नहीं। इसको देखने का कौशल होता है। देखने का कौशल जानो। जैसे यहाँ संसार में प्रकाश और शब्द की प्रबलता है, उसी तरह आपके अन्दर में भी शब्द और प्रकाश है। संतों ने इसको अपने अन्दर खोज निकाला। इसकी युक्ति उनकी वाणियों में मौजूद है। अगर सुरत नभ-द्वार में जमाओ तो यही शाम्भवी मुद्रा होगी। इसे करके देखिए, होता है कि नहीं? करने में कमजोरी नहीं रहे—खूब कीजिए। करते-करते शक्ति हो जाएगी। नाद विन्दु शिव-शक्ति का महान चिह्न है।

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्तिनिकेतनम्।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

कोशिश करके पकड़ो। इसी का उपदेश इस सत्संग में होता है। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत तरयासुजान, देवरिया में अखिल भारतीय संतमत सत्संग का ५९वाँ वार्षिक महाधिवेशन, दिनांक ४. ४. १९६७ ई० के प्रात:कालीन सत्संग में हुआ था।

२६५. अन्तर्नाद क्या है?

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं आपको संतवाणी के अनुकूल जनाना चाहता हूँ कि भक्त ईश्वर का किस आधार को पाकर ईश्वर तक पहुँचता है। भक्त ईश्वर के दर्शन के लिए लालायित रहता है। दर्शन के बिना वह विकल रहता है, यह भाव जिसके हृदय में है, वही भक्त है। यह भाव हृदय में रखना चाहिए। ईश्वर की भक्ति करो तो दर्शन होगा। ईश्वर से कल्याण होगा। नाद-विन्दु को ग्रहण करो। पहले विन्दु, तब नाद को ग्रहण करो। जहाँ नाद की समाप्ति है, वहीं ईश्वर का दर्शन है। यह सृष्टि जिसकी की हुई है, वह सबसे पहले का होगा। वह आदि-अन्त-रहित होगा। वह सबमें व्यापक होगा।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

वह एक-ही-एक है। जो सर्वत्र समाया हुआ है, वही परमात्मा है। उसके बाहर कुछ नहीं हो सकता। सब उसके शासन में है, सब उसके प्रभाव में है। परमात्मा सबके अन्दर है। स्थावर-जंगम सब ईश्वर का रूप है। सबसे पहले का जो है, उसने ही सृष्टि की है। कुछ बनने के लिए क्या चाहिए? बिना कम्प के कुछ नहीं होता। सबसे पहले कम्प हुआ। कम्प का सहचर शब्द है। शब्द सारे विश्व में समाया हुआ है। वह तमाम व्यापक है। शब्द की धार सबसे विशेष लम्बी है। जिस शब्द से जो पहचाना जाय, वह उसका नाम है। शब्द अपने उद्‌गम की ओर खींचता है। शब्द में उद्‌गम की ओर खींचने का गुण है। जो उसे ग्रहण करेंगे, शब्द के सहारे परमात्मा तक पहुँच जाएँगे।

शब्द शब्द सब कोई कहे, वो तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह।।

यह मनुष्य भाषा का शब्द नहीं है। इसे स्थूल ज्ञान में कभी नहीं प्राप्त करोगे। सृष्टि पर विचार करने से मालूम पड़ता है कि स्थूल से पूर्व सूक्ष्म अवश्य बना। सूक्ष्म भी कारण के बिना नहीं बन सकता। कारण के बिना कार्य नहीं होता। कारण से पूर्व मूल प्रकृति बनी। इसको साम्यावस्थाधारिणी मूल प्रकृति कहते हैं। इसका कम्पित भाग कारण होता है। जड़ के चार दर्जे हैं—स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण। यही अपरा प्रकृति है। जड़-जड़ के मिलन से चेतन बना, ऐसा कहा नहीं जा सकता। चैतन्य तत्त्व अलग है। इसका मण्डल लेकर पाँच दर्जे हुए। जड़-विहीन चेतन कैवल्य मण्डल है। किसी भी मण्डल का जबतक केन्द्र स्थापित नहीं होता, तबतक मण्डल बन नहीं सकता। पाँचों मण्डल के केन्द्रों से ध्वनियाँ होती हैं। वही अन्तर्नाद है। ऊपर के शब्द को नीचे के केन्द्र पर पकड़ सकते हैं। जिस केन्द्र से जो शब्द विकसित होता है, वह उसका गुण लिए रहता है। जो उसे ग्रहण करता है, उसको उस गुण से गुणान्वित करता है। आदिशब्द को जो पकड़े, वही संत होता है। इसीलिए 'संत-भगवन्त अन्तर निरन्तर नहिं किमपि विमल मति कह दास तुलसी।' सारशब्द को पकड़ने के लिए नीचे के केन्द्रों के शब्दों को

पकड़ते हुए आगे बढ़ो। माया के सारे मण्डलों को पार करके सारशब्द को पकड़ो। इसके लिए अन्दर में प्रवेश करो। अन्दर में प्रवेश विन्दु से होगा। किसी मण्डल का आरम्भ एक विन्दु से होता है और अन्त भी एक विन्दु से होता है। ध्यान करो। मन को एकाग्र करो। मन के सिमटाव करने की क्रिया को ही योगाभ्यास कहते हैं। मानस जप करो। सुषुम्ना में वृत्ति रखकर नाम जपो। इससे जब वृत्ति समेट में आती है, तब रूप का ध्यान होता है। जो जिस रूप को मानते हैं, वे उसका ही ध्यान करते हैं। नाम जपने के लिए गुरु जो मन्त्र बता दे, वही जपना चाहिए। जप ईश्वर का गुणवाचक हो, इससे पूर्णरूपेण सिमटाव नहीं होगा। विशेष सिमटाव कि लिए कुछ योग्यता होगी। विन्दु ध्यान में देखने के यत्न से देखो। देखने के यत्न से विन्दु प्रकट हो जाएगा। दृष्टि को स्थिर करके रखो। इसका यत्न गुरु से सीखो। जो दृष्टियोग अच्छी तरह करता है, वह सूक्ष्म में प्रवेश करता है। विन्दु पकड़कर नाद में चलो। नाद से नादों में चलकर आदिनाद को पकड़ो। वह ईश्वर तक पहुँचाएगा। सारा दुःख समाप्त हो जाएगा, अब जाने-आने का काम नहीं। माया के अन्दर में आदिशब्द को नहीं पकड़ सकते। उसको जो पकड़ लिया, वही संत हैं। उसको कितने जन्मों में पकड़ेंगे, पता नहीं। इसको पकड़ने के लिए विन्दु ध्यान है। ध्यान करो, रोशनी पकड़ी जाएगी। इसमें आँख को बिल्कुल तकलीफ नहीं होती है। उस पर चलने के लिए बहुत पवित्र होना चाहिए। झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, नशाओं को मत लो, व्यभिचार मत करो, हिंसा मत करो। मत्स्य-मांस भी मत खाओ। जो मछली-मांस खाते हैं, उनकी हिंसा की ओर रुचि रहती है। जिस देश में मछली-मांस खाए बिना नहीं रहा जाता, वहाँ के भी लोग साधन कर सकते हैं। फल यह होगा कि जिस देश में बिना खाए रह सकते हैं, वहीं उनका पुनर्जन्म होगा। अब विदेशों में भी लोग निरामिष भोजी होते जा रहे हैं। पंच पापों से बचोगे तो भजन में शक्ति बढ़ेगी। भजन से पाप त्याग में बल बढ़ेगा। यह साधन सबसे होगा। इसका आरम्भ सब कर सकते हैं। योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। इसका उलटा परिणाम नहीं होता। यह अभ्यासी को महाभय से बचाता है। मनुष्य योनि के अतिरिक्त पशु आदि योनियों में जाना महाभय है। योग के लिए प्रयास होना चाहिए। पंच पापों को छोड़ना ईश्वर की भक्ति में बहुत अपेक्षित है। ईश्वर-भक्ति में पापों से छूटता है। यदि सभी ईश्वर के भक्त बन जाएँ, तो दुष्ट कर्म मिट जाएँ। इसलिए ईश्वर की भक्ति बहुत आवश्यक है।

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।

ईश्वर-भक्ति कीजिए। देश से क्लेश निकल जाएगा और बड़ा सुख होगा। अपने देश में स्वराज्य है, पर क्लेश है ही। कानून बनानेवाले कानून बनाते हैं, पर सफल नहीं होते। संसार के कामों को करते हुए मानस जप और मानस ध्यान करते रहो। फिर कुछ काल एकान्त में बैठ-बैठकर भी ध्यान करो। करनेवाले करो। केवल सुनकर मत रह जाओ। प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में करो, स्नान के बाद तुरन्त, फिर सायंकाल और सोने के समय कुछ करके सोओ। हर एक काम के साथ-साथ करो। मनुष्य जीवन को बर्बाद मत करो। अपने समय को ठीक काम में लगाना चाहिए। मैंने वही कहा, जो मेरे गुरु ने कहा था। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत तरयासुजान, देवरिया में अखिलभारतीय संतमत सत्संग का ५९वाँ वार्षिक महाधिवेशन, दिनांक ४. ४. १९६७ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२६६. शहरग का रास्ता कौन बतावेगा?

प्यारे लोगो!

सत्संग में ग्रन्थों के द्वारा पाठकर जो कुछ आपको सुनाए जाते हैं, उन सब पाठों से यही बतलाया जाता है कि ईश्वर-भक्ति के लिए जप अपेक्षित है, मानस ध्यान अपेक्षित है, शाम्भवी मुद्रा वा वैष्णवी मुद्रा—सगले नसीरा यानी दृष्टियोग अपेक्षित है। इसके बाद नादानुसंधान या सुलतान-उलजकार बहुत अपेक्षित है। इन साधनाओं के बिना भक्ति पूरी नहीं होती। बहुत सुनाने, सुनने वा पढ़ने से यही मतलब है कि साधन किया जाय। गुरु से पाए हुए मंत्र का जप करना सबके लिए बहुत सरल है। इसीलिए हमारे बहुत संन्यासी ॐ अक्षर लिखकर उसका ध्यान करते हैं। यह भी स्थूल बात ही है। इसी तरह सूफी फकीर अल्लाह लिखकर ध्यान करते हैं या अलिफ का ध्यान करते हैं। कोई श्रीराम का, कोई श्रीकृष्ण का, कोई देवी माई का और कोई गुरु का भी ध्यान करते हैं। सूफी फकीर भी फनाफिल मुर्शिद होते हैं। यानी गुरु का ध्यान करने में तल्लीन हो जाते हैं और अपने को भूल जाते हैं। वे स्थूल साधन लेकर आरम्भ करते हैं। जो जहाँ गिरा रहता है, वह वहीं से उसी का सहारा लेकर उठता है। स्थूल का सहारा लिए बिना सूक्ष्माकाश में उड़े, संभव नहीं। इसलिए स्थूल अवलम्ब लेना आवश्यक है। जिसका वर्णन किया, कुछ लोग इसी स्थूल भक्ति में ही भक्ति को खत्म कर देते हैं। विशेष लोग और भी आगे बढ़ते हैं। दृष्टियोग वा सगले नसीरा—वैष्णवी मुद्रा वा शाम्भवी मुद्रा के द्वारा भक्ति में आगे जाते हैं। इससे क्या होता है? एकविन्दुता आती है। विन्दु ध्यान सुनकर लोग यह ख्याल करते हैं कि छोटे-से-छोटा चिह्न बनाकर ध्यान करते हैं। यह विन्दु ध्यान नहीं है। विन्दु ध्यान वह है कि फैली हुई दृष्टि को समेटकर एक करे। इसका यत्न गुरु से जाने। बिना गुरु से यत्न पाए नहीं कर सकते।

क्यों भटकता फिर रहा, तू ऐ तलाशे यार में।
रास्ता शहरग में है, दिलवर पै जाने के लिये।।

हमलोग सुखमना कहते हैं, सूफी महात्मा शहरग कहते हैं। एक ही बात है। यहीं से रास्ता आरम्भ होता है। उस शहरग वा सुखमना का रास्ता कौन बतावेगा?

मुर्शिदे कामिल से मिल, सिद्क और सबूरी से तकी।
जो तुझे देगा फहम, शहरग के पाने के लिये।।

—तुलसी साहब

सच्चाई और संतोष के बिना गुरु के पास जाने पर गुरु का ज्ञान नहीं पाता है। जो गुरु से पास सच्चाई और संतोष लेकर जाते हैं, वह वही प्रसाद लेकर जाते हैं, जिससे वे गुरु का ज्ञान पाते हैं। अपनी सच्चाई और संतोष को आचरण में करके दिखला देते हैं। यह उत्तम भेंट है। वैसे तो बहुत लोग गुरु के पास जाते हैं। गुरु सुखमना का बोध देगा। अभ्यास करोगे तो क्या होगा?

गोश बातिन हो कुशादा, जो करे कुछ दिन अमल।

हम अन्दर के कान से बहरे हैं, वह खुल जाएगा। होगा क्या? कान खुलेगा तो क्या होगा? कान खुलेगा तो कुछ सुनेगा। किसलिए सुनेगा, नतीजा यह होगा कि—

ला इलाह अल्लाह हो, अकबर पै जाने के लिये।।

ईश्वर तक पहुँचने का सहारा होगा। संतों के

अन्दर यही बात है। यही आखिरी बात है। हम वेदों में खोजते हैं, वहाँ भी है। उपनिषदों में भी है, संतवाणी तो इसी की किताब है ही। संतवाणी इसी कि किताब है, लेकिन सुन लेने से कुछ हुआ? केवल सुनने से क्या हुआ? केवल मान लेने से क्या होगा?

बिन देखे बिन दरस परस बिन, नाम रटे का होई।
धन धन कहत धनी जो होते, निर्धन रहत न कोई।।
—कबीर साहब

जब धन-धन कहने से धन नहीं आवे, तो और बात कैसे आ सकती है? कबीर साहब बड़े स्पष्ट बोलनेवाले थे। किससे देखोगे तो कहा—

चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।

देखने का यत्न जानो तो विमल विलोचन खुल जाएगा। विन्दु का ज्ञान होगा। स्थूल से सूक्ष्म में रखने की शक्ति विन्दु में है। उसको पकड़कर रखो तो सूक्ष्म में रहोगे। उसको पकड़कर नहीं रख सकते हो, इसीलिए गिर जाते हो। थोड़ी झलक मालूम हुई, फिर मालूम नहीं हुई, तो वह नहीं भाग गया, तुम ही वहाँ से हट गए।

झकझक्क लगा झकझक्क लगा यह झाँकि झरोखे देखिया रे।
—दरिया साहब, बिहारी

दृष्टियोग अभ्यास अतिहि करतहि करत।
कँपनी सहजहि छुटै प्रौढ़ होवै सुरत।।

तब और बात अच्छी नहीं लगेगी। कमाओ और पैसा मौजूद। यह उधार का सौदा नहीं है, नगद सौदा है। अभ्यास किया, यह दाम देना हुआ। तब जो अनुभूति हुई, वह सौदा पा लिया। यह केवल कहने के लिए नहीं है, भौतिक विज्ञान की तरह सत्य है कि ऑक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाओ, पानी होगा। इसी तरह इंगला-पिंगला को मिलाकर रखो, तो प्रकाश होगा। वैज्ञानिक आविष्कार जैसे सत्य है, वैसे ही यह सत्य है। यह अन्दर की बात है, बाहर की नहीं। इसकी प्रयोगशाला अन्दर में है, बाहर में नहीं। अन्दर जाने का रास्ता यहाँ से शुरू हुआ—श्रीगणेश हुआ। यहाँ ऐसा सिमट जाता है कि दूसरी तरफ मन नहीं जाता। बुद्धि में वैराग्य करते-करते साधक गिरता पड़ता है। लेकिन यहाँ ठहर जाने पर ठीक-ठीक वैराग्य होता है। लड़कपन में खेलते-कूदते थे, अब क्यों नहीं खेलते-कूदते हैं? इस अभ्यास में आकर वह आप-ही-आप छूट गए। कबीर साहब ने कहा है—

तजि दे बुधि लरिकैयाँ खेलन की।
करो जतन सखी साईं मिलन की।।

ईश्वर-मिलन का यत्न करो, तो लरिकैयाँ—खेल आप ही छूट जाएगा। विन्दु ध्यान और नाद ध्यान, ये दोनों ईश्वर की ओर से अवलम्ब हैं। जैसे मित्र को लेने के लिए मित्र अगुवानी आते हैं। ईश्वर परम मित्र हैं, उनसे बढ़कर मित्र कोई नहीं, वे बड़े मददगार हैं।

हमारा यार है हममें, हमन को इन्तिजारी क्या।

वह विन्दु-रूप में आकर आपको पकड़ ले जाना चाहता है। आप विन्दु तक नहीं पहुँचे हैं, वा विन्दु को पकड़ने की शक्ति आपमें नहीं है, इसलिए नीचे गिर जाते हैं। लेकिन हिम्मत नहीं हारनी चाहिए कि हममें शक्ति नहीं है। अभ्यास करते करते शक्ति बढ़ती है। जैसे व्यायाम करने से शरीर में बल बढ़ता है। यदि बल नहीं बढ़ता, तो कोई महात्मा नहीं होते। सब सत्संगी भाई यहाँ जमा हों, ज्ञान लें।

यहाँ फीस नहीं, टिकट नहीं कि इतने फीस दो, सुनो। जितना जो ले सको, मुफ्त में ले जाओ। यहाँ की जनता को मैं सलाह देता हूँ—यह लो, जितना लेना चाहो। पेट दर्द, सिर दर्द छुड़ाने वा बेटा-बेटी देने की बात नहीं। इसके लिए दूसरे जगह जाओ। मैं वह माल बता देता हूँ, जो तुम्हारे

अन्दर है। गुरु नानक ने कहा—

ना तिसु रूप बरणु नहिं रेखिआ, साचे शबदि नीसाणु ।।

ईश्वर का कोई निशान है वा चिह्न है? तो कहा—सारशब्द चिह्न है। लेकिन वह बड़ा गजब है। जो उसको पाता है, ईश्वर को पाता है।

शब्द गह्यो जीव संशय नाहीं, साहब भयो तेरो संग।

उसको पाना भी कठिनता से होता है। जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए जाने में समय लगता है। ऐसी ही कुछ बात है। अन्दर चलो, तब 'साँचे शबद निशान' का चिह्न मिलेगा। वह जब मिलेगा, तब ईश्वर दूर नहीं रहेगा। दो ही बातें जानने को हैं—शब्दब्रह्म और परब्रह्म।

द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्द ब्रह्म परं च यत्।
शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।

—ब्रह्मविन्दूपनिषद्

दो विद्याएँ समझनी चाहिए, एक तो शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। शब्दब्रह्म में जो निपुण हो जाता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है। जो शब्दब्रह्म को पाता है, वह परब्रह्म को पाता है। पहले ही यह नहीं मिलता है। पहले अनहद नादों को सुनो। उस नाद में आपको ऐसी सूक्ष्मता आएगी कि आप सारशब्द को पकड़ लेंगे। संसार में क्या है? प्रकाश को हटा दो, तो सारा कार-बार समाप्त हो जाएगा। शब्द को हटा दो, तो कम्प नहीं रहेगा। कम्प नहीं रहेगा, तो सृष्टि नहीं रहेगी। आपके शरीर से कम्प हट जाए, तो आपका शरीर नहीं रहेगा। संसार में प्रकाश और शब्द से सम्हाल होती है। ईश्वर की ओर का यह प्रतीक है—प्रकाश और शब्द। इससे उत्तम प्रतीक नहीं है। इसको मन से बनाने की जरूरत नहीं है। देखने के कौशल से देखो। देखने का कौशल जानो। जैसे संसार में प्रकाश और शब्द की प्रबलता है, वैसे ही अपने अन्दर में भी। प्रकाश नहीं तो संसार नहीं। शब्द नहीं तो संसार नहीं। इसी तरह ईश्वर की ओर जाने के लिए शब्द है और प्रकाश है। संतों ने इसको खोज कर निकाला। इसकी युक्ति संतों की वाणी में है। कबीर साहब की वाणी में है—

जो कोई निरगुन दरसन पावै।।
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै।।

राधास्वामी साहब की वाणी में है—

तू तो सुरत जमा नभ द्वार। शब्द मिले छूटै जंजार।।

यह शाम्भवी मुद्रा है। ध्यानविन्दूपनिषद् में लिखा है—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।

अर्थात् विन्दु मिले तो नाद खुलेगा। हमलोग विन्दु उपासना और नाद उपासना के लिए कहते हैं। गुरु महाराज के कहे अनुकूल उपासना इसलिए करते हैं कि जंजाल छूट जाए। यह केवल कहने के लिए है? नहीं। करके देखिए। करने के शक्ति नहीं है, तो अभ्यास कीजिए। करते-करते शक्ति आ जाएगी। नाद ईश्वर का प्रतीक है और विन्दु उसकी ज्योति का प्रतीक है। पहले सूर्य का प्रकाश होता है यानी उषा होती है, फिर अरुणोदय होता है, फिर सूर्य निकल आता है। जिसकी ज्योति है, वह पीछे निकलता है। इसी तरह पहले ईश्वर की ज्योति और नाद को पकड़ो। पीछे वह ईश्वर भी पकड़ा जाएगा।

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्तिनिकेतनम्।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

—योगशिखोपनिषद्

विन्दुनाद महालिंग है और शिवशक्ति का घर है। इस देह को शिवालय कहते हैं। सभी प्राणियों को इसमें सिद्धि मिलती है।

विन्दुनाद महालिंगं विष्णुलक्ष्मीनिकेतनम्।
देहं विष्णवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

—योगशिखोपनिषद्

विन्दु नाद रूप जो महालिंग है, वही विष्णु

लक्ष्मी का घर है इस देह को विष्णुमन्दिर कहते हैं। सभी प्राणियों को इसमें सिद्धि मिलती है।

इसी की तारीफ और इसी के साधन के लिए प्रेरण संतों के ग्रंथों में भरपूर है। नाद और विन्दु को संतों के ग्रंथों से निकाल दो तो वह सारहीन हो जाएगा। मनोलय के लिए शिवजी ने सवा लाख साधन बतलाए हैं। उनमें नादानुसंधान श्रेष्ठ है। शंकाराचार्यजी ने नादानुसंधान की स्तुति की है।

सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयावधानानि वसन्ति लोके।
नादानुसंधान समाधिमेकं मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्।।
नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महेतत्त्वपदंलयानाम्।
भवत्प्रासदात् पवनेन साकं विलीयते विष्णु पदे मनो मे।।
सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवानुसंधेयो योगसाम्राज्यमिच्छता।।

योगशास्त्र के प्रवर्तक भगवान शिवजी ने मन के लय होने के सवा लक्ष साधन बतलाए हैं, उन सबमें नादानुसंधान सुलभ और श्रेष्ठ है। हे नादानु-संधान! आपको नमस्कार है, आप परम पद में स्थित कराते हैं, आपके ही प्रसाद से मेरा प्राणवायु और मन, ये दोनों विष्णु के परमपद में लय हो जाएँगे। योगसाम्राज्य में स्थित होने की इच्छा हो तो, सब चिन्ताओं को छोड़कर सावधान हो एकाग्र मन से अनहद नादों को सुनो।

n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत तरयासुजान, देवरिया में अखिलभारतीय संतमत सत्संग का ५९वाँ वार्षिक महाधिवेशन, दिनांक ४. ४. १९६७ ई० के रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२६७. मन का स्वरूप क्या है?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

बात बहुत पुरानी है। परन्तु जो लोग नहीं सुने हैं, नहीं पढ़े हैं, उनलोगों के लिए बिल्कुल नयी बात है। समझदार समझ सकते हैं कि नयी बात हो वा पुरानी, जो सत्य हो वह माननी चाहिए। बात यह है कि जिस विषय पर मैं कहूँगा, उसमें यदि आपको लाभ हो, तो वह करना चाहिए। किंतु जिसमें अपना लाभ नहीं मालूम पड़े, उसको सुनकर उसके लिए समय लगाना व्यर्थ होता है। जो जानकार नहीं हैं, जानकार उनको जनावें। सभी लोग सभी कुछ जानते हैं, ऐसी बात नहीं। जिनकी कोई नई बात मालूम हो, उनकी वह भी सुननी चाहिए।

मैं आपको बहुत लाभ की बात कहूँगा। लोग सम्पत्ति मिलने में लाभ समझते हैं, प्रतिष्ठा में लाभ समझते हैं, संतान-सुख में लाभ समझते हैं। यह सांसारिक लाभ है। शरीर छूटने पर धन, प्रतिष्ठा समाप्त हो जाएगी। जिस संतान पर हमारी बड़ी ममता है, वह हमारे सामने चली जाय वा हम उसको छोड़कर चले जाएँ, एक दिन ऐसा अवश्य होगा। जबकि एक दिन शरीर छूटता है, अपनी स्थिति रहती है। धर्म पुस्तकों से उनको विश्वास दिलाया जाता है कि शरीर छूटा है, किन्तु शरीर में रहनेवाला अपने कर्म के अनुकूल दूसरे लोक में चला गया है। इसीलिए हमारे यहाँ श्राद्ध-क्रिया प्रचलित है। सभी धर्मों में किसी-न-किसी रूप में श्राद्ध-क्रिया प्रचलित है। श्राद्ध-क्रिया कहते हैं, जो श्रद्धा से किया जाए। जो शरीर छोड़कर चला गया है, वह है जीवात्मा।

लोग जीवनभर खुश रहने के लिए कोशिश करते हैं, जब वे जानते हैं कि शरीर छोड़कर

चला जाना है तो संसार के सुख में कैसे शान्ति मिलेगी। शरीर छोड़ने के बाद कहा गया है कि स्वर्ग जाओगे, पितृलोक जाओगे वा बुरे कर्म है तो नरक जाओगे। जो विशेषज्ञ हैं, वे जानते हैं कि इस चक्र से भी पार हो सकते हैं। वे कौन हैं, जिनका सहारा लेकर आवागमन चक्र को पार किया जाए। वे हैं ईश्वर। किसी को भी यह विश्वास नहीं है कि परमात्मा कभी नहीं थे, पीछे हुए। परमात्मा पीछे हुए, यह विश्वास करने योग्य नहीं है। सबसे प्राचीन जो हैं, वे हैं परमात्मा। वे हई हैं और सब बनाए गए हैं। और वे जस-के-तस ही हैं। उनपर आवागमन का बंधन नहीं है। उन ईश्वर—परमात्मा का सहारा लो तो आवागमन के चक्र से छूटोगे। उनके स्वरूप को जानो। वे आदि-अन्तरहित हैं, अनादि, अनन्त, असीम हैं। असीम होने के कारण वे सबसे विशेष व्यापक हैं। सबसे विशेष व्यापक होने के कारण वे सबसे विशेष सूक्ष्म हैं। वे सारे पिण्ड-ब्रह्माण्ड में व्यापक होकर सब पर शासन करते हुए एक-ही-एक हैं। वे इतने सूक्ष्म हैं कि हमारे शरीर के साथ जो हमारी सब इन्द्रियाँ हैं, वे उनको ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, बहुत स्थूल हैं। स्थूल-यंत्र से सूक्ष्म-तत्त्व का ज्ञान नहीं होता।

इस आँख से ईश्वर को देखना, इस हाथ से ईश्वर को छूना, पकड़ना हो नहीं सकता। तब उनको कौन जानेगा? तुम शरीर और इन्द्रियों से घेरे गए हो। जैसे दूध में घी का मिलाप होता है, वैसे ही तुम शरीर और इन्द्रिय में मिल गए हो। दूध से घी को अलग किया जाता है। दूध से अलग काम होता है और घी से अलग काम होता है। घी से पूड़ी छानते हैं, दूध से नहीं। शरीर-इन्द्रिय से जो काम हो सकता है, वह माया सम्बन्धी काम होता है। शरीर में रहने से माया का ज्ञान होता है। माया कहते हैं, जो क्षणभंगुर है, नाशवान है, जिसका अत्यन्ताभाव हो जाता है। मायिक पदार्थ कितना भी ग्रहण करो, संतुष्टि नहीं हो सकती। इन्द्रियों से जो कुछ ग्रहण हो, माया है। तुम माया के साथ में रहकर विषयों को ही ग्रहण करोगे।

जबतक शरीर में जीवनीशक्ति है, इन्द्रियों से काम होता है। इन्द्रियों में जो कुछ शक्ति है, चेतन आत्मा की शक्ति है। इन्द्रियाँ कहने से केवल बाहर की इन्द्रियाँ नहीं समझो। भीतर में भी इन्द्रियाँ हैं। वही है—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। चेतन आत्मा का ज्ञान भिन्न है। चेतन आत्मा के कारण ही इन्द्रियाँ विषयों को ग्रहण कर सकती हैं। अपने को शरीर-इन्द्रियों से फुटाकर रखो। तब जो ग्रहण होता है, वे ही ईश्वर हैं। ईश्वर क्या हैं? जो सबसे पुरातन हैं, पुराने हैं। कोई अवकाश उनसे बाहर नहीं है, फिर भी पहचान नहीं होती। क्योंकि वे इन्द्रियों से पहचानने योग्य नहीं हैं। ईश्वर वे हैं जो चेतन आत्मा से पहचाने जाएँ। जैसे जो आँख से ग्रहण हो, वह रूप है। वैसे ही जो चेतन आत्मा से ग्रहण हो, वे ईश्वर हैं। भक्तों को सबसे विशेष लाभकारी पदार्थ ईश्वर-दर्शन है। वह ईश्वर-दर्शन के लिए लालायित रहता है। ईश्वर-दर्शन के लिए ही साधन-भजन होता है। वह भजन कैसा होगा, बहिर्मुख वा अन्तर्मुख? आप जब सोते हो तो इन्द्रियों की वृत्ति अन्तर्मुख होती है। बाहर की इन्द्रियों से कोई काम नहीं करते। स्वप्न में बाहर की इन्द्रियाँ कोई काम नहीं करतीं।

यह शरीर देखने में एक मालूम होता है, लेकिन एक नहीं है। जैसे सींक के ऊपर अनेक मूंज होते हैं, उसी तरह चेतन आत्मा के ऊपर स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण; ये चार जड़ शरीर हैं। चेतन आत्मा पर ये सब खोल हैं। इन सब खोलों का संग छूटे, तब ईश्वर-दर्शन होता है। पहले स्थूल शरीर से छूटे, फिर सूक्ष्म, फिर कारण और

महाकारण से भी। जैसे एक मकान में कितनी भी कोठरी हो, एक-एक कोठरी पार करते-करते सभी कोठरियों को पार कर जाते हैं। उसी तरह सब शरीरों को छोड़कर चेतन आत्मा निकल जाती है। साधारण मृत्यु में एक शरीर छूटता है और सब शरीर रह जाते हैं। महाभारत में सावित्री-सत्यवान की कथा है। उसमें लिखा है कि यमराज ने सत्यवान के स्थूल शरीर से उसके लिंग शरीर को निकाला। इस कथा से समझो कि एक ही शरीर नहीं है और भी शरीर है। विशेष ज्ञान कहता है कि तीसरा और चौथा शरीर भी है। विश्वास नहीं हो, तो विचारो।

एक वृक्ष है, उसका कारण बीज होता है। बीज से अंकुर होता है। किसी का भी तीन रूप मानना पड़ता है। और सब बीजों का जो खजाना है, वह है महाकारण। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण; ये चार दर्जे हैं। आप एक मकान बनाते हो तो उसका कारण होता है। जिस कारण से बनाना चाहिए, उस तरह की बात इन्जीनियर को समझा देते हो। इन्जीनियर उसका चित्र मन में बनाकर, फिर कागज पर बनाता है। तब मिस्त्री ईंट-पत्थर से स्थूल घर बनाता है। बिना इन तीन रूपों के कुछ नहीं होता। कारण अनेक होते हैं। इन सबको मिलाकर चार होते हैं।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड में ऐसा सम्बन्ध है कि पिण्ड के जितने तल हैं, संसार के भी उतने ही तल हैं। शरीर के जिस तल पर रहो, संसार के भी उसी तल पर रहते हैं। शरीर के जिस तल को छोड़ते हैं, संसार के भी उसी तल को छोड़ते हैं। शरीर के सभी तलों को छोड़ दो तो संसार के भी सभी तल छूट जायेंगे। ऐसी भक्ति करो कि सभी शरीरों से छूटकर केवल चेतन आत्मा रहे, तब ईश्वर-दर्शन होगा। ईश्वर-दर्शन बाहर में नहीं, अन्तर में होता है। जबतक अन्तर्मुखी मन नहीं होता, ईश्वर-दर्शन नहीं होता। बाहर में जो पूजा-पाठ, प्रेयर, प्रार्थना, नमाज आदि करते हैं, तो इतना ही बस नहीं है। मन को ऐसा सिमटाव में लाओ कि कुछ फैलाव नहीं रह जाए। वह है विन्दु। विन्दु का परिमाण कोई नहीं बना सकता। उसका परिमाण नहीं होने के कारण मन में बनाना भी गलत है। योग के साधन से वह प्रकट होता है। जैसे कलम की नोक जहाँ रखते हो, वहाँ एक चिह्न हो जाता है, उसी तरह दृष्टि की धार जहाँ रखो, विन्दु उदय होगा। रेखागणित में जो विन्दु पढ़ते हैं, उसमें और इसमें अन्तर है। योगविद्या के कौशल से जो देखने के योग्य अपनी दृष्टि को बनाता है, वह उसको देखता है।

मन से आप कुछ करते हो, लेकिन मन का स्वरूप क्या है? उसको स्थूल दृष्टि से नहीं देख सकते। मन को समेट में लाना सहज नहीं है। किसी चीज को किसी ओर से समेटने पर उसके विपरीत ओर को गति हो जाएगी। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। जिसका अधिक सिमटाव होता है, वह स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश कर जाता है। तब वह स्थूल जगत का ही नहीं, सूक्ष्म के सहित स्थूल का भी ज्ञान रखेगा। जैसे सर्चलाइट की रोशनी दूर तक जाती है, वैसे ही दृष्टि-साधन करनेवाले की दृष्टि दूर तक जाती है। सूक्ष्म को पार करने के लिए फिर और सहारा मिलता है। हमलोग बिना सूर्य के नहीं रह सकते। सूर्य से मेघ बनता है, पानी बनता है। सूर्य के कारण ही हमलोग अन्न-पानी पाते हैं।

संसार में भी दो चीजें ऐसी हैं, जिसके सहारे बिना रह नहीं सकते। संसार में सूर्य नहीं रहे तो ज्योति वा तेज नहीं रहे। तो अन्धकार में क्या करोगे? इसी तरह ज्योति हो और शब्द नहीं हो तो क्या करोगे? ईश्वर की ओर जाने के लिए ब्रह्म-ज्योति और ब्रह्मनाद का सहारा अन्तर में मिलता है। बिना इसके उनको पकड़ नहीं सकते।

किसी भी निर्माण के लिए कम्प और शब्द साथ-साथ रहते हैं। सृष्टि-निर्माण के लिए पहले शब्द हुआ। वह सृष्टि की ओर-से-छोर तक मौजूद है। शब्द में गुण होता है कि उसके उद्गम में जो गुण होता है, वह उसको लिए रहता है। और सुननेवाले को उससे गुणान्वित करता है। शब्द में अपने उद्गम स्थान पर आकर्षण का गुण होता है। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है, किन्तु नीचे का शब्द ऊपर दूर तक नहीं जाता। जो कोई उस आदि- नाद को पकड़ते हैं, वे ईश्वर तक पहुँचते हैं। उस आदि-नाद को सारशब्द, रामनाम, शक्तिनाम, शिवनाम आदि कहते हैं। शब्द का ग्रहण होना आवश्यक है। ईश्वर-दर्शन सभी माया को छोड़ने पर ही होगा।

चुम्बक सत्त शब्द है भाई, चुम्बक शब्द लोक ले जाई ।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा, सत्त शब्द जो बसै शरीरा ।।
—दरिया साहब, बिहारी

भाषा ग्रन्थ वा और कोई ग्रन्थ हो, सबमें इस नाद का विस्तृत वर्णन है। एक सूरदास है, उसको सूझता नहीं, लेकिन बुलाने पर वह वहाँ पहुँच जाता है, जहाँ से शब्द उसके पास जाता है। शब्द में अपने उद्गम स्थान पर खींचने का गुण है। इसलिए सभी संतों ने शब्द पकड़ने कहा। शब्द को पकड़ने के लिए ज्योति को पकड़ना होगा। स्थूल साधना करो, सूक्ष्म साधना करो, विन्दु ध्यान करो और अन्त में नादध्यान करो। संतवाणी इसी का ग्रंथ है। जिनको मालूम नहीं है, उनको यह बात नयी मालूम होती है। जो कोई अन्तर्नाद को ग्रहण कर सकता है, वही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। यदि मुश्किल मालूम हो तो समझना चाहिए कि थोड़ा-थोड़ा करते ही कोई किसी काम में पूर्ण होता है। slow and study wins the race. जो चलता है, उसका रास्ता समाप्त होता है। पुरुष, स्त्रियाँ सभी इस साधना को कर सकते हैं। ऐसा नहीं समझो कि हमसे नहीं हो सकेगा।

पवित्र जीवन बिताओ। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार; इन पंच पापों को नहीं करो। हिंसा के सिलसिले में मांस, मछली, अण्डा सभी को छोड़ो। कोई कहते हैं कि जिस अण्डे में बच्चे नहीं होते, वह खाने में हिंसा नहीं है। लेकिन समझिए उसके खाने से आपमें चिड़िया का गुण होगा। चिड़िया की देह में बहुत गरमी है। उसके भोजन से आपमें चिड़ियावाली तमोगुणी गरमी आएगी। मुरगी क्या-क्या खाती है, देखो। निषिद्ध-से-निषिद्ध चीजें मुरगी खाती है। मनुष्य-शरीर में निषिद्ध चीजें खाना उत्तम नहीं। हमारा देश ऐसा नहीं है कि बिना मांस-मछली खाए नहीं रह सकते। मूल, फल, कन्द आदि खाओ। एक पशु का मांस जो खाता है, वह एक प्रकार का मांस खाता है। जो मछली खाता है, वह सभी प्रकार का मांस खाता है।

पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए जो ईश्वर-भजन करेंगे, वे सफल रहेंगे। जो पवित्र जीवन नहीं बिताते हुए ईश्वर-भजन करेंगे, उनको सफलता नहीं मिलेगी। अपवित्र कर्म से संसार में आपदा फैलती है, यह प्रत्यक्ष है। संसार में जो आपदा मालूम होती है, वह हमारे अपवित्र जीवन का फल है। जो पवित्र जीवन से रहकर ईश्वर-भजन कर मोक्ष पाते हैं, मनुष्य जीवन सफल करते हैं। जो चीज अच्छी नहीं हो, उसको त्याग करना चाहिए। और जो अच्छी चीज है, उसको ग्रहण करने में यदि कठिनाई मालूम होती है, तब भी उसको ग्रहण करना चाहिए। चिढ़ना या उकताना नहीं चाहिए। त्यागने योग्य वस्तु को त्यागना चाहिए और ग्रहण करने योग्य वस्तु को ग्रहण करना चाहिए। n

यह प्रवचन खगड़िया जिलान्तर्गत ग्राम मानसी के रेलवे कम्पाउण्ड में दिनांक १९. ४. १९६७ ई० को सत्संग में हुआ था।

२६८. कृतज्ञता से मुक्त होने के लिए : स्तुति करें

प्रियजनो!

आप किन्हीं का उपकार करें और आपको मालूम हो कि उपकृत लोग आपके कृतज्ञ नहीं हैं, तो मैं समझता हूँ आपको अच्छा नहीं मालूम होगा। यह एक ऐसी बात है कि जो सर्वसाधारण के लिए है। लोग ऐसे भी होते हैं, जो गम्भीर हैं, गहरे हैं, ज्ञानवान हैं तथा मन-इन्द्रिय पर काबू है, ऐसे जन संत कहलाने के योग्य हैं। इनको कुछ मालूम नहीं होता। परन्तु चाहे कोई संत-महात्मा उपकारक हों, वा साधारण जन, उपकृत को अवश्य कृतज्ञ होना चाहिए।

महाभारत में कथा है कि भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन, दोनों कुछ आराम के ख्याल से हवा खाने के ख्याल से रथ पर इधर-उधर विचरते थे। अग्निदेव उनके सामने आए और बोले कि मैं अग्नि हूँ। अर्जुन बोले कि हमलोगों के सामने आप किस हेतु से उपस्थित हुए हैं? अग्निदेव ने कहा—भोजन माँगता हूँ। एक खाण्डव वन है, वह भोजन के लिए मुझे दीजिए। अर्जुन ने कहा कि आप तो स्वयं भोजन वहाँ कर सकते हैं। अग्निदेव ने कहा—नहीं, मैं उसे जब जलाना चाहता हूँ, तब इन्द्र वर्षा कर देता है। मैं भोजन नहीं कर सकता। अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण वहाँ उस इन्द्र के उपद्रवों को रोकने गए। कारण था कि जंगल में मय नाम का एक दानव था। वह विश्वकर्मा जैसा था। वह इन्द्र का मित्र था। इन्द्र ने कहा था कि जंगल से कोई भाग न सके। मय दानव भी भाग चला। कृष्ण ने अपना चक्र चला दिया, तो वह अर्जुन का शरणार्थी हो गया। अर्जुन ने उसको बचा लिया। मय दानव बड़ा कृतज्ञ हुआ। वह अर्जुन और श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़कर बोला—मैं आपसे बड़ा उपकृत हुआ। आपकी क्या सेवा करूँ? वे भले विचार के लोग थे। केवल वचन से नहीं, कुछ सेवा भी करना चाहते थे। श्रीकृष्ण ने कहा कि इन्द्रप्रस्थ में ऐसी सभा बनाओ, जैसी सभा किसी ने आज तक नहीं बनायी। उसने वही किया। जो उपकृत हो, तो उसको चाहिए कि वह उपकारक की सेवा करे।

आप महाज्ञानी हैं, बड़े विद्वान हैं, अपने शरीर की रक्षा के लिए जो-जो भोजन करना चाहिए, जितना भोजन लेना चाहिए, समझ-समझकर आप लेते हैं। शरीर की सम्हाल रखते हैं। आप जब सो जाते हैं, अचेत हो जाते हैं, तब अपनी रक्षा कैसे करते हैं? मतलब यह है कि कितने भी कोई ज्ञानी हों, बलवान हों, लेकिन अपनी रक्षा अपने से सर्वकाल में नहीं कर सकते। लेकिन फिर भी रक्षा होती है। कैसे? असल में ईश्वर रक्षा करते हैं। सोने की बात तो जाने दें, जगने के समय आप अपने सामने की बात देखते हैं, जानते हैं, लेकिन अपनी पीछे की बात को नहीं देखते, नहीं जानते। जिधर आँख नहीं है, उधर नहीं देखते। अपनी रक्षा अपने से ही उस समय ठीक से नहीं कर सकते।

राजा लोग अंग-रक्षक रखते थे। आज भी राष्ट्रपति के लिए शरीर-रक्षक रहते हैं। परन्तु शरीर-रक्षक के रहते हुए भी कितने का घात हो गया है। अपनी रक्षा जितनी आप कर सकते हैं, उससे अधिक आपकी रक्षा अज्ञात होती है। वह ईश्वर के द्वारा होती है। अपनी ओर से हम चौकीदार रखते हैं, वह पहरा करता है। फिर भी अपने तईं हम बहुत अल्प शक्ति के हैं। हो सकता है कि हम जो श्वास भीतर करते हैं, वह लौटा नहीं सकें।

एक दिन शरीर छूटेगा। वह मरने का समय इतना छोटा होता है कि हमको पता नहीं चलता। श्वास भीतर आकर जीवन बढ़ाता है। और जो बाहर को जाता है, वह जीवन को सुखी करता है। प्रत्येक श्वास में ईश्वर की ओर से उपकार का होना दृढ़ है। मनुष्य को जानना चाहिए कि श्वास-श्वास में ईश्वर का उपकार हम पर है। हम ईश्वर से इतने उपकृत हैं, जितने और किसी से नहीं। एक काम था कि मय दानव उसको करके अपनी उपकृतता से मुक्त हुआ। लेकिन ईश्वर को कोई इच्छा नहीं, उनको कोई आवश्यकता नहीं। सब तरह से वे पूर्ण हैं। उनसे जो हम कृतज्ञ हैं, उनके लिए हम क्या करें? दो बातें हैं—एक तो यह कि उनका गुण गाइए अर्थात् स्तुति कीजिए। दूसरी बात यह है कि उनको खोजिए और उनका दर्शन कीजिए। अगर यह जानते हों कि ईश्वर सर्वव्यापी हैं, तमाम हई हैं, तो बड़ी अच्छी बात है। तब उनको खोजे कहाँ? हैं तमाम, पाते नहीं। जहाँ पावें, जहाँ पाने का स्थान है, उस स्थान को खोजिए, तब वहाँ जाकर पावेंगे। प्रत्यक्ष पाने का स्थान जहाँ हो, वहाँ जाने का प्रयास कीजिए, वहाँ जाकर दर्शन कीजिए। यही है कृतज्ञता से मुक्त होना। **कृतज्ञता से मुक्त होने के लिए स्तुति कीजिए** और उनका दर्शन कहाँ होगा, इसकी खोज लगाइए।

एक फूल उनके नाम पर चढ़ाते हैं, वे उसको मंजूर करते हैं। सर्वव्यापी होने से फूल में भी व्यापक हैं। फूल उनकी देन है। उनकी दी हुई चीज हम उनको देते हैं। ऐसे ही सभी वस्तुएँ, उनकी हैं। हम उनको फूल आदि अर्पण करते हैं, लेकिन उनको इसकी जरूरत नहीं। अर्पण करना बेकार नहीं है। क्योंकि उन वस्तुओं के द्वारा हम अपने को उस ओर करते हैं। यह खोज कि ईश्वर अपने अन्दर हैं। फलाँने जगह हैं, पता लग जाय तो भी वहाँ जाना थोड़ा काम नहीं है। लेकिन यह काम करना ही होगा। स्तुति और उनकी खोज दोनों ही करनी चाहिए। ईश्वर जो हमारे उपकार करते हैं, उनके पहले हमारा कोई उपकार किया हो, ऐसा नहीं। पहले-पहल वे ही करते हैं। उनकी स्तुति कब करें? सब कामों के पहले करें। प्रातः स्तुति करें, त्रिकाल सन्ध्या करें। हम लोग 'सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर औरु अक्षर पार में...' आदि कहकर ईश्वर की स्तुति करते हैं।

संसार में हम उनको प्रत्यक्ष जानते हैं, जो हमारा उपकार करते हैं। जैसे हमारी माता, हमारे पिता हमको विद्या देते हैं। विद्या दो तरह की है। सर्वश्रेष्ठ विद्या—अध्यात्म-विद्या है। दूसरी लौकिक विद्या है, जो अविद्या भी बन जाती है। स्कूल, कॉलेज की विद्या से बड़े-बड़े काम होते हैं। और इसको हम अविद्या भी बना देते हैं। सुकर्म से और नैतिकता से जबतक विद्या को युक्त रखते हैं, तबतक तो ठीक है। लेकिन उसी विद्या को कभी हम कुकर्म में लगाकर अविद्या बना देते हैं। अध्यात्म-विद्या नीचे ले जाने के लिए नहीं है। यह सर्वोत्कृष्ट विद्या है। यह विद्या सांसारिक ज्ञान और ब्रह्मज्ञान दोनों को देनेवाली है।

जो लोग माता-पिता का अनादर करते हैं, वे ठीक नहीं करते हैं। माता-पिता बहुत सिखाते हैं। ये भी गुरु हैं। अध्यात्म-विद्या से संसार में और परलोक में बड़ा उपकार होता है। इसलिए इस विद्या के सिखानेवाले गुरु की भी स्तुति करते हैं। संत लोग ऐसे पवित्र और अनासक्त होते हैं कि उनको किसी प्रकार का दाग नहीं लगता। उनके बिना हम परम प्रभु परमात्मा को नहीं जान सकते, इसलिए ईश्वर की स्तुति, संत की स्तुति और सद्गुरु की स्तुति; ये तीनों अवश्य करें। जो लोग नये हैं, उनको को भी मैं कहता हूँ कि स्तुति अवश्य कीजिए। स्तुति नहीं करने से बहुत हानि है, बहुत पाप है। थोड़े प्रयास से हम इस हानि से

और पाप से छूट सकते हैं।

स्तुति के बाद हमलोग धर्म के सिद्धान्त का पाठ करते हैं कि ईश्वर क्या है, जीव क्या है, प्रकृति क्या है आदि। जो अपने को धार्मिक व्यक्ति समझें और धर्म के सिद्धान्तों को नहीं जानें तो किस काम के? हम देखते हैं कि बहुत लोग धर्म के सिद्धान्त को नहीं जानते हैं। धर्म के सिद्धान्तों को जानना चाहिए। उसकी परिभाषा भी जाननी चाहिए। मैंने कोशिश की कि पढ़े-अनपढ़े सभी सत्संगी अपने-अपने घरों में या किसी खास स्थान में मिल-जुलकर ईश-स्तुति, संत-स्तुति, सद्‌गुरु- स्तुति, संतमत की परिभाषा तथा संतमत के सिद्धान्त का पाठ नित्य प्रातःकाल करें। जो पढ़े-लिखे हों, वे पुस्तक देखकर याद कर लें और जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे सुनकर याद कर लें।

पहले सुनकर विद्या आती थी। आजकल पुस्तकों की भी सहायता होती है। जो पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे लिखे, पढ़ें। किसी भी उम्र में थोड़ा या बहुत अवश्य पढ़ें। एक मुनि बालक थे, जो झट से बड़े विद्वान हो गए। उसके नाना, दादा, चाचा, आदि उनसे पढ़ने लगे। एक दिन उन्होंने वृद्ध समूह को 'हे वत्सगण' कह दिया। सब कोई मन-ही-मन अकुलाने लगे कि वह बड़ा घमण्डी हो गया है। लोग ब्रह्मा के पास गए और बोले कि—वह मुनि बालक घमण्डी हो गया है। सबको पुत्र कहकर सम्बोधित करता है। ब्रह्माजी ने कहा—उम्र में आपलोग बड़े हैं, लेकिन ज्ञान में वे वृद्ध हैं।

हमलोगों को नित्य स्तुति-प्रार्थना और ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। वेद की आज्ञा है कि परस्पर मिलकर रहो। मिलकर उपासना करो। मेल एक तरह चित्त होकर रहने से होता है। सत् वचन में मेल रहता है। कितनी भी प्रेम भरी वाणी बोलो, लेकिन कपट बात रहे तो मेल नहीं होगा। सत्य हो, सुहाता हो और एक तरह मन मिलाकर बोला जाए, तब मेल होगा। सामूहिक उपासना बहुत मेल मिलाता है। यहाँ इस जिले भर के और इससे भी बाहर के लोग एकत्र हैं। यह सामूहिक उपासना है। यह एक मेल में बाँधता है। ईश्वर-उपासना और धर्म; इन दोनों के सूत्रों में गुँथे हुए, बँधे हुए लोग अवश्य एक हो जाते हैं। ईश्वर की सामूहिक उपासना और धर्म में बल है कि दूर-दूर के लोगों को एक सूत्र में बाँध देते हैं। ठाकुरबाड़ी में घड़ी-घंट बजता है। इसमें देवता प्रसन्न होते हैं। यह तो मानी हुई बात है। लेकिन बात तो यह है कि उस आवाज को सुनकर बहुत-से लोग इकट्ठे होंगे और सामूहिक उपासना होगी। मुसलमानों को आप देखते हैं कि शुक्रवार को मस्जिद में सभी जमा होते हैं। किसी-किसी पर्व में, ईदगाह में भी इकट्ठे होते हैं। व्यक्तिगत एकान्त उपासना भी हो और सामूहिक उपासना भी होनी चाहिए।

देश के लोगों ने मिलकर शक्तिशाली शासन को भगाया। इस साल का तमाशा आपने देखा कि विद्यार्थियों ने बिहार के शासन-सूत्र को बदल दिया। उत्तरप्रदेश का भी मंत्री मण्डल बदल गया। राजस्थान में भी मंत्री मण्डल बदल ही गया। शासन भी बदल गया। राष्ट्रपति का शासन हो गया। ये सब एक मेल के कारण है। नतीजा जो भी हो, लेकिन फल है एक मेल का।

संसार में आप सम्पन्न होकर रहिए। धन, प्रतिष्ठा, खाने-पीने में अच्छे रहते हैं, तो कहते हैं कि ये सम्पन्न लोग हैं। यह किस तरह होगा? भोजन पर सभी निर्भर हैं। आपकी बड़ी प्रतिष्ठा हो, और देह पर बहुत सुन्दर वस्त्र हो, लेकिन भोजन नहीं हो, तो क्या होगा? समझिए। पानीपत की तीसरी लड़ाई में मरहठे जीत जाते तो भारत में फिर वैदिक राज्य हो जाता। लेकिन उनके दुश्मनों ने ऐसा प्रबन्ध किया कि उनके पास खाना जाना रोक दिया। उनके लिए जो भोजन जाय, उसको वे लोग

लूट लेते थे। हिटलर को आप जानते हैं। उनको भी भोजन के बिना चढ़ाई काम नहीं आयी। इसलिए भोजन उपार्जन करो। बिना खेती के भोजन नहीं। खेती के वास्ते गो-वंश की वृद्धि चाहिए। बिना गो-वंश से बैल, बछड़े नहीं। दूध और घृत भी नहीं। खेती के लिए बैल गो-वंश से पाते हैं। खेत को उर्वरा बनाने के लिए खाद गो-वंश से होता है। इसलिए वेद में आया है कि गो-वध नहीं करो, पालन करो। हमारे यहाँ बहुत गलत बात है, वृद्ध गाय-बैल को बेचते हैं। घर में माँ-बाप वृद्ध हो जाते हैं, तो उनकी सेवा करते हैं, मार नहीं देते हैं। इसी तरह बूढ़े बैल, बूढ़ी गाय की सेवा करो। प्राचीन काल में जो बूढ़े पिता, बूढ़ी माता की सेवा नहीं करे, तो उसको दण्ड होता था।

संसार में जितने लोग हैं, उनमें से पुण्य और पाप सबसे होते हैं। जो अच्छे लोग होते हैं, वे पुण्य कर्म अधिक करते हैं और पाप कर्म कम करते हैं। और जो पाप कर्म अधिक करते हैं, वे अच्छे लोग नहीं कहलाते। उनसे ध्यान न हो सकता, जबतक हृदय शुद्ध न हो। पवित्र हृदय में पाप की कमी होती जाती है। पुण्य का भी फन्दा नहीं हो और पाप का तो रहे नहीं। यह कैसे होगा? ध्यान से।

ध्यान से सिमटाव होता है। सिमटाव से ऊर्ध्वगति। और ऊर्ध्वगति में आवरण का भेदन होता है। वह पाप-पुण्य से ऊपर उठ जाता है। वह कर्ममण्डल से ऊपर उठ जाता है। इसलिए चाहिए कि सब कोई ध्यान करे। गीता, उपनिषद् आदि ग्रन्थ ध्यान करने के लिए बताते हैं। मोक्ष ध्यान के द्वारा होता है। कर्म मण्डल ध्यान के द्वारा टपा जाता है। गीता में कहा है कि कर्म करने का कौशल जानो। मोक्ष का अधिकारी बनने कहा। फल-आश छोड़कर कर्म करने कहा। कर्तव्य जानकर कर्म करने कहा। और आत्मरत होकर कर्म करने कहा। इसमें भी गलती होती है कि फल-आश छोड़कर कर्म करूँगा, तो इसमें घमण्ड हो जाता है। कर्तव्य समझकर काम करने में राजस और तामस बुद्धि में रहते हुए ऐसा होता है कि कभी उसी को कर्तव्य समझता है और कभी उसी को अकर्तव्य। अपने को नियंत्रित रखो, तो जो कर्तव्य है, वह किया जाएगा। अकर्तव्य छूटेगा।

जहाँ ईश्वर उपासना है, वहीं आत्मरत होना होता है। ईश्वर उपासना में सार बात यह है कि अपने अन्दर सिमटाव की कोशिश करो। उत्तम रीति से ईश्वर की उपासना करो, अन्तर प्रविष्ट करो। अपना निशाना अपने अन्दर है, अपने को उसपर लगाकर रखो। यह दृष्टियोग है। आत्मरत होने का यहाँ से आरम्भ होता है। आरम्भ नहीं, तो मध्य कहाँ? और मध्य नहीं, तो अन्त कहाँ?

संतवाणी में भगवान बुद्ध ने कहा कि शरीर नाशवान है। बुढ़ापा सब बल का संहार कर देता है। इसलिए शरीर का घमण्ड नहीं करो। जीवन में युवावस्था 'बल' की है। इसमें स्वार्थ-परमार्थ दोनों की पूँजी बढ़ाओ, नहीं तो बुढ़ापे में कष्ट पाओगे। गोरखनाथजी महाराज, कबीर साहब आदि सभी संतों ने ईश्वर-भक्ति के सम्बन्ध में कहा है। गोसाईं तुलसीदासजी ने एक बात अच्छी कही है—

पात पात कै सींचिवो, बरी बरी के लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु को न।।

कोई वृक्ष लगाते हैं, तो उसके जड़ में पानी देते हैं, तो वृक्ष के सभी डाल-पत्तों में पानी हो जाता है। इसी तरह बेसन की बरी बनाते हैं, तो बेसन में ही नमक दे देते हैं, तो छोटी-बड़ी बरी के अनुकूल ठीक-ठीक नमक हो जाता है। इसलिए बेसन में नमक दो और वृक्ष की जड़ में पानी दो। बरी-बरी में नमक देनेवाले और वृक्ष के पात-पात में पानी देनेवाले ठगे जाते हैं, गोया बहुदेव-उपासी नहीं बनो। एकनिष्ठ होओ। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत जिला वार्षिक अधिवेशन, खाब्दह डुमरिया में दिनांक २३.४.१९६७ ई० के सत्संग में हुआ था।

२६९. शिवजी का भी रूप बदलता है

प्यारे लोगो!

सूर्य को देखकर कोई नहीं कह सकता कि सूर्य नहीं है। यहाँ भारत में सूर्य देखो और दूसरे देश में जाकर देखो, एक ही तरह का सूर्य है। यहाँ का दूसरा और वहाँ का दूसरा सूर्य, ऐसा नहीं है। यहाँ जो गुण है, वहाँ वही गुण है। यहाँ सूर्य को पहचाननेवाला इंगलैण्ड में भी वैसा ही पहचानता है। इसी तरह दूसरे-दूसरे देशों में इसी तरह ईश्वर है। वह एक-ही-एक है। यहाँ देखो जैसा, दूसरे देश में जाकर देखो, तो वैसा ही है। अगर देख सको, तो अपने अन्दर जैसा, दूसरे के अन्दर भी वैसा ही। यही ईश्वर है और सब ईश्वर की माया है। बाहर में राम के दर्शन करो, कहो कि ईश्वर है। कृष्ण के दर्शन करो, कहो कि ईश्वर है, परन्तु सब संसार में ऐसा नहीं कि राम ईश्वर है और कृष्ण ईश्वर है। अपने भारत में राम और कृष्ण का बहुत आदर है, फिर भी तमाम लोगों का एक ही विचार नहीं है कि राम और कृष्ण ईश्वर हैं। अपना देश धर्म का मिलाप-देश है। अपने देश में वैदिक धर्म मूल है। इसके अन्दर बहुत-से सम्प्रदाय और पन्थ हैं। सब कोई मिलकर कहो कि राम और कृष्ण ईश्वर हैं, मानने को तैयार नहीं। वेद को सनातन धर्म के लोग और आर्यसमाजवाले भी मानते हैं, फिर भी सनातनी राम-कृष्ण को ईश्वर मानते हैं और आर्यसमाजी नहीं मानते। इसी तरह काली और दुर्गा को सभी कोई ईश्वर नहीं मानते। जबकि अपने देश की ही यह बात है, तो फिर अन्य देशों की क्या बात!

जबकि सूर्य को संसार में सभी लोग सूर्य ही मानते हैं। इसी तरह एक ईश्वर का ज्ञान होना चाहिए, इसी में सबको आना है, नहीं तो ईश्वर का ज्ञान नहीं है। ईश्वर एक ही है। एक से अधिक नहीं हो सकते। राम ईश्वर, कृष्ण ईश्वर, देवी ईश्वरी; इस तरह अनेक ईश्वर और ईश्वरियाँ हैं, लोग सुनकर हँसेंगे। ईश्वर तो एक ही होना चाहिए, वे एक ईश्वर कौन हैं? जैसे सारे संसार के लिए एक सूर्य है, वैसे ही संसार के लिए कौन से एक ईश्वर हैं? जितने पदार्थ संसार में हैं, चाहे इस देश के वा दूसरे देश के, सभी पदार्थों की बदली होती है। श्रीराम और श्रीकृष्ण का शरीर बच्चा था और फिर बढ़ते-बढ़ते वे सयाने हुए। यह बदली है। इसी तरह जहाँ-जहाँ बदली है, आप इन्द्रियों से जानते हैं। जहाँ बदली नहीं है, वहाँ इन्द्रियों का ज्ञान नहीं होता। आप कहेंगे कि काली माई, शिवजी का रूप तो नहीं बदला। मैं कहूँगा कि विविध प्रकार की कहानियाँ पुराणों में हैं। रावण मारा गया। लंका से राम अयोध्या आए। बातचीत हुई कि लंका में सबसे बड़ा वीर कौन था? किसी ने रावण को, किसी ने कुम्भकर्ण को, किसी ने मेघनाद को बताया। पीछे निर्णय हुआ कि मेघनाद सबसे बड़ा वीर था। रावण का कुछ देवताओं से भी युद्ध हुआ। रावण से जो काम नहीं हुआ, मेघनाद ने वह काम किया। देवताओं से युद्ध करने में रावण इन्द्र को नहीं पकड़ सका और मेघनाद ने पकड़ लिया। मेघनाद को लक्ष्मण ने मारा। लक्ष्मणजी की वीरता अद्‌भुत ठहरी। सीताजी बोली कि न तो राम ईश्वर हैं, न लक्ष्मण। वीरता में शक्ति की प्रधानता है और वह शक्ति मैं हूँ। सीताजी बोली

कि शक्ति से ही रावण वा कुम्भकर्ण वा मेघनाद पछड़ा। इसलिए सबसे बढ़कर शक्ति है। वह शक्ति तो मैं ही हूँ। यहाँ शक्ति की बड़ी प्रधानता है। विचारो तो शक्ति स्त्री है, वा पुरुष है वा सजीव प्राणी है? शक्ति न स्त्री है, न पुरुष और न सजीव प्राणी है। जब यह बात निकली तो सीताजी बोली कि एक और रावण है, उसको देखें कौन मारते हैं? एक कल्पीय रामायण है, उसमें मैंने पढ़ा। उस रावण के यहाँ सीता, राम, लक्ष्मण; तीनों गए। युद्ध हुआ, वह ऐसा था कि एक के अनेक रूप हो जाते थे। वह अपने बैठा रहता, उसके अनेक रूपों से राम-लक्ष्मण लड़ते-लड़ते थक गए। उनके खून की बूँद से रावण बन जाता था। श्रीराम और लक्ष्मण आघात खाकर गिर पड़े, तब सीताजी ने काली का रूप धारण कर क्रोध करके उस पर प्रहार किया। इतना बड़ा रूप कि उसका भार कौन सम्हाले। शिवजी शव का रूप धारणकर उसके पैर के नीचे चले गए। जबतक युद्ध हुआ, शिवजी पर दृष्टि नहीं पड़ी। युद्ध समाप्त होने पर पड़ी। देखा कि शिवजी शव के रूप में हैं। कभी काली का रूप, कभी सीता का रूप; क्या इसमें बदली नहीं है?

नानकपन्थ के दूसरे गुरु अंगद साहब थे। उनके समधी अमरदासजी तीसरे गुरु थे। एक बार अमरदासजी महाराज हिंगुला देवी की पूजा करने जा रहे थे। उस यात्रा काल में उन्होंने गुरु अंगददेवजी के यहाँ रात्रि-निवास किया। गुरु अंगददेवजी ने अमरदासजी महाराज का बहुत आदर-सत्कार किया। रात्रि-विश्राम के बाद ब्राह्ममुहूर्त्त में जब अमरदासजी महाराज की नींद टूटी, तो वे देखते हैं कि एक महासुन्दरी देवी गुरु अंगददेवजी के दरवाजे पर झाड़ू लगा रही हैं। अमरदासजी महाराज ने उन देवी से पूछा कि आप कौन हैं? आप यहाँ झाड़ू क्यों लगा रहीं हैं? उत्तर में देवी ने कहा—'तुम कहाँ जा रहे जो?' अमरदासजी महाराज ने कहा कि मैं हिंगुला देवी की पूजा करने जा रहा हूँ। देवी ने कहा कि वह हिंगुला देवी मैं ही हूँ। अमरदासजी महाराज ने कहा कि माताजी। आप यहाँ झाड़ू लगा रही हैं? देवी ने कहा—'अरे! ये तो संत हैं। इनके यहाँ लक्ष्मी और सरस्वतीजी भी झाड़ू लगाकर अपने सौभाग्य को सराहती हैं।' यह कहकर देवीजी अन्तर्धान हो गयीं।

यहाँ भी देवीरूप बदलती हैं। आजकल वाजित-पुर का नाम पड़ गया है विद्यापतिनगर। विद्यापतिजी शिवजी के भक्त थे। वे भजन गाते थे, शिवजी सुनते थे। शिवजी नौकर रूप से विद्यापति के पास रहने लगे। 'उगना' रूप से उनके पास रहते थे। इस तरह शिवजी का रूप भी बदलता है। भस्मा-सुर को शिवजी ने वरदान दिया कि जिसके सिर पर तुम हाथ रखोगे, वह भस्म हो जाएगा। जब भस्मासुर को यह वरदान मिला, तो भस्मासुर के मन में आया कि यदि शिवजी के माथे पर मैं अपना हाथ रखूँगा, तो ये भस्म हो जायेंगे तो पार्वतीजी मेरी हो जाएगी। भस्मासुर ने जैसे शिवजी की ओर हाथ बढ़ाया, तो शिवजी भागते जाते थे और भस्मासुर पीछा करता जाता था।

इस प्रसंग से यह भी ज्ञात होता है कि शिवजी का शरीर भी भस्म हो सकता था। इसीलिए वे भागते फिरते थे। शिवजी की रक्षा के लिए विष्णु भगवान पार्वती के रूप में भस्मासुर के सामने प्रकट हुए। भस्मासुर से कहा कि यदि तुम मुझे अपनाना चाहते हो तो जिस तरह भगवान शंकर एक हाथ कमर पर और एक हाथ माथे पर रखकर नाचते थे। उसी तरह तुम भी अपने हाथ को कमर और माथे पर रखकर नाच दिखाओ। भस्मासुर ने जैसे ही अपनी कमर और अपने माथे पर हाथ रखा, वह स्वयं ही जलकर भस्म हो

गया। इस तरह विष्णु भगवान के रूप में भी बदली होती है। इस तरह विष्णु, शिव, शक्ति—सबके रूपों में बदली होती है। भले ही उन बड़े-बड़े देवों के रूपों का नाश अधिक-से-अधिक दिनों में हो, लेकिन कभी-न-कभी बिना नष्ट हुए बच नहीं सकते। लेकिन ईश्वर का नाश कभी नहीं होता। इस तरह जो बदले और नष्ट हो, उसको माया समझो, ईश्वर वह नहीं है। इसलिए गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने कहा—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

ईश्वर एक हैं, जो राम के शरीर में, शिव के शरीर में, शक्ति के शरीर में, उस एक रूप को जो अपने अन्दर में पहचानता है, वह सबके अन्दर सब देशों में पहचानता है। वे एक ही ईश्वर हैं। वे इन्द्रिय-ज्ञान से परे हैं। चेतन आत्मा से जानने योग्य हैं। इसलिए—'**आतमगम्य भजहिं जेहि सन्ता।**'

उसी एक को रामरूप में, शिवरूप में, विष्णुरूप में, शक्तिरूप में संतों ने वर्णन किया है। इसीलिए अभी पाठ में सुना कि 'करोड़ों विष्णुओं के समान पालन करनेवाले, करोड़ों शिवों के समान संहार करनेवाले और करोड़ों ब्रह्माओं के समान सृष्टि करनेवाले' कहा गया। भगवान विष्णु का अवतार हुआ। उस शरीर का नाम श्रीराम और उस शरीर में व्यापक स्वरूप भी राम। उस स्वरूप को शक्ति भी कहते हैं। इसीलिए सब शक्तियों का वह भण्डार है। वह स्वरूप कल्याणस्वरूप है। इसलिए यह शिव है। उसको बाहर में नहीं, अन्दर में पावोगे। उसको पाने के दो सहारे हैं—ज्योति और शब्द। बिना ज्योति के क्या काम करोगे? बिना शब्द के संसार ही नहीं रह सकता। परमात्मा की अनेक विभूतियों में ज्योति और शब्द उत्कृष्ट है। वह ज्योति और शब्द आपके अन्दर है। पहले ज्योति पकड़ो, फिर शब्द पकड़ा जाएगा। परमात्मा इसका नमूना दिखाते हैं कि आकाश में पहले बिजली चमकती है, फिर शब्द सुनाई पड़ता है। संत लोग इसका यत्न बताए हैं। अपने अन्दर वह शब्द होता है, उस शब्द को जो पकड़ता है, वह नाम-भजन करता है। इसको संत गरीबदासजी ने कहा—

निरगुन निर्मल नाम है, अवगत नाम अवंच।
नाम रते सो धनपती, और सकल परपंच।।

जो सबमें व्यापक है, वही राम है, वही शिव है, वही विष्णु है, वही शक्ति है। जो शब्द अपने आप सबके अन्दर गूँज रहा है, उसको पकड़ो। यही नाम-भजन है।

अपने हृदय को पवित्र रखे बिना परम पवित्र परमात्मा का भजन नहीं हो सकता। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पाँचों से जो नहीं छूटता है, वह ईश्वर का ठीक-ठीक भजन नहीं कर सकता। यदि एक ही बार इतना पवित्र नहीं हो सको, तो थोड़ा-थोड़ा पापों को छोड़ते जाओ। इसका ज्ञान सत्संग से होगा। सत्संग करो। सत्संग से गुरु की भी जानकारी होती है। अच्छे गुरु से इसका यत्न जानो और करो।

लोग कहते हैं कि यह ज्ञान सबके लिए नहीं है। मैं कहता हूँ कि जबतक सुनाओ नहीं, तो कोई करे कैसे? सत्संग इसलिए है कि सब कोई सुनें, समझें और करें। मैंने देखा है कि सुनते-सुनते लोग करने भी लग गए हैं। त्रयकाल सन्ध्या करो। ब्राह्ममुहूर्त्त में, दिन में स्नान के बाद तुरंत और सन्ध्या के समय करो। n

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत संतमत सत्संग मन्दिर, मनिहारी में दिनांक ११.६.१९६७ ई० को अपराह्णकालीन सत्संग में हुआ था।

२७०. सम्पूर्ण संसार का शासनकर्ता कौन है?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संसार के सब प्राणी सुख पाने की इच्छा रखते हैं। इस सत्संग के द्वारा मैं आपको सुख का पता बताऊँगा। उस सुख को कैसे प्राप्त करें, इसके बारे में कहूँगा। साधारण तरह से लोग सुख उसको कहते हैं, जो मन को और इन्द्रियों को सुहाता है। इससे कोई विशेष सुख है, तो लोग समझतें हैं—बौद्धिक सुख है। परन्तु बुद्धि को मन और इन्द्रियों से ऐसा सम्बन्ध है कि मन, इन्द्रियों के सम्पर्क में नहीं है, तो ऐसे को बुद्धि नहीं समझ सकती। मतलब यह कि बुद्धि, मन और इन्द्रियों की संगिनी है। इतना ही फर्क है कि इन्द्रियाँ सब मन से स्थूल, मन उससे सूक्ष्म और बुद्धि मन से भी सूक्ष्म। परन्तु तीनों को मेल है। मन-इन्द्रियों से जहाँ मेल नहीं, उसको बुद्धि नहीं जानती। मन-इन्द्रियों से प्राप्त सुख को लोग जानते हैं। मन, इन्द्रियों से परे मानने योग्य और कोई सुख है, उसको बहुत अधिक लोग नहीं जानते। पहले आप देखिए कि मन और इन्द्रियों से जानने योग्य सुख से क्या फल आपको मिलता है। क्षणिक-सुख मिलता है। दुःख से मिश्रित सुख मिलता है। उसके बाद फिर दुःख आता ही है।

संसार में बहुत से प्रभावशाली लोग आए। बुद्धि में बहुत तीव्र लोग आए, उत्तम-उत्तम शासनकर्ता लोग आए। शारीरिक बल ऐसा कि उसको पढ़कर जानने से आश्चर्य लगता है, असंभव लगता है। ऐसे लोग संसार में आए, जिनकी पूजा होती थी। आज भी पूजा होती है। भारत के लोग जिनको बड़ी भक्ति और भाव से देखते हैं, वे भी पूर्ण सुखी रहे, ऐसा नहीं देखा जाता है। उन लोगों पर भी दुःख आया और वे कठिनाई से उसको सहन किए। मेरे कहने का भाव यह कि जो सुख मिलता है, वह सुख केवल सुख नहीं है, उसके साथ दुःख भी है। लोग चाहते क्या हैं? सुख हो दुःख नहीं हो। ऐसा सुख कि उसमें डूबे रहें, ऊबें नहीं। ऐसा सुख क्या संसार में है? क्या पुरानी बातों में, क्या अबकी बातों में ऐसा सुख संसार में देखा नहीं जाता। सुख-सुख कहकर जिस पदार्थ को मानते हैं, उसके साथ दुःख लगा रहता है। सुख भागता जाता है, दौड़ते-दौड़ते शरीर खत्म हो गया, तृप्ति कभी नहीं हुई, संतुष्टि कभी नहीं हुई। तृष्णा लेकर संसार से चले गए।

रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत क्या बतलाती है? सबमें यही कथा पढ़ते हैं, जो लोग बहुत विशेष थे, वे लोग भी बहुत दुःख पाए और उसको साहस से सहन किए। जो औरों से सहना कठिन था। उन्होंने नमूना दिया कि किसी को विश्वास नहीं करना चाहिए कि संसार में पूर्ण सुखी कोई है। मैं कहूँगा जो केवल इस संसार को जानते हैं, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं जानते, वे इस देश में और अन्य देश में राष्ट्रपति तो मानते हैं, लेकिन सम्पूर्ण विश्व का कोई एक ही मालिक हैं, वे ऐसा नहीं मानते। ज्यादे खोज करने पर एहिकालिक और पौराणिक-ग्रंथों में है कि सम्पूर्ण संसार का शासनकर्ता एक अवश्य है। और वह सुख भी है,जिसको पाकर कोई ऊबता नहीं। वह कभी फीका नहीं लगता। सदा मीठा रहता है। सदा ही लगा रहता है, कभी छूटता नहीं।

परम स्वाद सबहीं जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।

—भक्तवर सूरदासजी महाराज

गूँगा आदमी मीठा खाता है, स्वाद मालूम होता है, लेकिन वर्णन नहीं कर सकता। सूरदासजी कहते हैं परम स्वाद। आँख से रूप, कान से शब्द, नासिका से गन्ध, त्वचा से स्पर्श, जिभ्या से रस ग्रहण करते हैं। लेकिन ये सब कोई भी परम स्वाद नहीं। परम स्वाद इन्द्रियों में नहीं। कभी-कभी कोई-कोई बात जो समझ में आती है, वह भी अच्छी लगती है, लेकिन परम स्वाद सदा लगा ही रहता है। उसका फल अमित-तोष होता है, जिसका वर्णन कोई नहीं कर सकता। लेकिन मन नहीं जान सकता। वचन से नहीं बोला जा सकता। जो पाता है, वही जानता है। वह स्वाद भी है और सारा विश्व का एक शासक भी है। वह शासक कैसा है? वह कभी उत्पन्न नहीं हुआ। वह देशकालातीत है। स्थान और समय का पता नहीं, तब वह था। स्थान हो, समय नहीं हो; समय हो, स्थान नहीं, ऐसा हो नहीं सकता। जहाँ समय है, वहाँ स्थान और जहाँ स्थान है, वहाँ समय होगा। देश-काल माया है, वह देश-कालातीत है। वह कभी हुआ है, ऐसा नहीं। वह सबसे प्रथम का है। वह परम पुरातन, परम-सनातन है। साथ-ही-साथ देश-काल ज्ञान से अनादि है। और उपज-ज्ञान से भी अनादि है। न उपजा है, न देश-काल की सीमा में है। कहीं उसका अन्त नहीं, वह आदि-अंत-रहित है।

व्योम को व्योम अनंत अखण्डित, आदि न अन्त सुमध्य कहाँ है।

—सुन्दरदासजी

सबसे प्रथम का कुछ मानना युक्तिसंगत बात है या नहीं? सौर जगत में सूर्य से पहले का कुछ नहीं है। पंच भौतिक जगत में आकाश से पहले कुछ नहीं है। यहाँ बहस नहीं होता। यहाँ सौर जगत और पंच भौतिक जगत में पहले क्या है? सौर जगत में पहले सूर्य और पंच भौतिक जगत में पहले आकाश यह दृढ़ माना जाता है। समूचे संसार में यह ज्ञान है कि एक ब्रह्माण्ड नहीं है, अनेक हैं। प्रकृति से सारे ब्रह्माण्ड निर्मित हैं। इतना बड़ा मंडल है कि प्रकृति उससे भर नहीं जाती। इन सबमें रहते हुए सबसे परे अनादि-अनन्त-तत्त्व अवश्य है। सौर जगत के पहले अवश्य सूर्य होगा। और पंच भौतिक जगत के पहले अवश्य ही आकाश होगा। इन सबसे पहले का भी कुछ हो, यह क्यों नहीं माना जा सकता? सारे प्रकृति मण्डल में जो कुछ है, देश-काल से घिरा हुआ है।

जहाँ देशकाल नहीं, प्रकृति की रचना नहीं। वहाँ देश-काल नहीं है। देश-काल के परे कुछ है, वही सबसे प्रथम का है। वह हई है। न उसका कहीं आदि है, न अन्त है। वह सर्वज्ञान का भण्डार है। ज्ञान का भण्डार नहीं मानिए, तो ज्ञान कहाँ से आया? संसार में सबको ज्ञान है, किसी को कम, किसी को बेसी। यह कहाँ से आया? संसार में बड़ी-बड़ी शक्तियाँ हैं। यह शक्ति कहाँ से आई? जो अनादि-अनंत, देश-कालातीत है, वही ज्ञान का भण्डार है। वही सर्वशक्ति का खजाना है। वह कितना सूक्ष्म है कि मन-बुद्धि से भी अधिक सूक्ष्म है। इसलिए वह सर्वव्यापक होकर सबसे परे भी है।

जो अनादि-अनन्त नहीं होगा, वह सबसे प्रथम का नहीं होगा। अगर ऐसा अनादि-अनंत नहीं मानेंगे, ससीम मानेंगे तो उसके अतिरिक्त भी कुछ मानना होगा। उसके अतिरिक्त जो होगा, वही सबसे पहले का होगा। तब वही ईश्वर परमात्मा हो जाएगा। एक ऐसा अवश्य कहना होगा, जो आदि अन्त-रहित तत्त्व है। अनादि-अनन्त तत्त्व से परे कुछ है, ऐसा मानना हास्यप्रद है। असीम-अनादि से परे का माननेवाला असीम का, अनन्त का अर्थ नहीं जानता

है। जो जितना सूक्ष्म होता है, वह उतना अधिक व्यापक होता है।

एक सेर बर्फ की जितनी व्यापकता होगी, उसका पानी बना लेने से उसकी अधिक व्यापकता हो जाएगी। क्योंकि बर्फ से पानी सूक्ष्म होता है। यह 'मिसाल' बतलाता है कि जो जितना सूक्ष्म होता है, वह उतना अधिक विस्तार रखता है। जो सबसे अधिक सूक्ष्म है, वह सबसे अधिक व्यापक है। जहाँ तक रचना है, वहाँ तक व्यापक है। जिनका मण्डल सबसे विशेष विस्तार होता है, उनके अन्दर सब रहते हैं, उनके शासन में सब रहते हैं। जिनके शासन में, जिनके प्रभाव में रहना पड़े, वे ही प्रभु हैं, ईश्वर हैं। उन्हीं के लिए सुना—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

वह व्याप्य है और व्यापक भी है। जिसमें कुछ समावे, वह व्याप्य है; जो समावे, वह व्यापक है। प्रकृति मण्डल व्याप्य है। परमात्मा व्यापक हैं। प्रकृति परमात्मा के अन्दर है, इसलिए परमात्मा भी व्याप्य हैं। उनका टुकड़ा नहीं है, आकार नहीं है। आकार मानने से ससीम हो जाएगा। विराटरूप आदि-अन्त-रहित है, ऐसा कितने लोगों का ख्याल है। बलि के सामने पहले छोटे रूप में, पीछे बड़े रूप में भगवान हुए। आकार बहुत बड़ा था। '**पद पाताल शीश अज धामा।**' जामवन्त उस समय जवान थे। उन्होंने उनकी सात प्रदक्षिणा की। यदि विराटरूप आदि-अन्त-रहित होता तो प्रदक्षिणा कौन करे? अर्जुन को जो विराटरूप दिखाया गया उसके हाथ, मुँह, पैर आदि को कोई गिन नहीं सकता था। उसमें घोर-दर्शन भी और प्रिय-दर्शन भी था। अर्जुन उस रूप से बाहर थे। उस रूप को देखकर डर रहे थे। उस रूप के अतिरिक्त और स्थान था। तब अर्जुन अलग खड़े थे। यहीं ससीमता आ जाती है। और कौरव-पाण्डव दल के लोग सब ओर से टिड्डी की तरह आते थे, उनके मुँह में प्रवेश करते और मर-मरकर गिरते थे। यह भी ससीमता बताना है।

कितना बड़ा भी रूप होगा, वह ससीम होगा। रूप में ससीमता अवश्य होगी। विराटरूप से अधिक विस्तार रूप नहीं हो सकता। फिर भी उसकी ससीमता जानी जाती है। जामवन्त सात बार उनको घूम-घूमकर प्रदक्षिणा किए।

उभय घड़ी महँ दीन्हीं, सात प्रदच्छिन धाइ।

कोई भी शरीर आदि-अन्त-रहित कहकर जानने योग्य नहीं है। इसलिए—

निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

इसका अन्त नहीं होगा। इसमें इधर-उधर से कुछ नहीं आवेगा। सब उसी में है। सबसे प्रथम का कुछ नहीं है, कहा नहीं जा सकता। यदि कहता है तो जोर करता है, जिद्द करता है।

अनेक मानने के लिए अवकाश मानना पड़ेगा। बिना अवकाश के एक और अनेक का ज्ञान नहीं होता। कान और कनपट्टी के बीच में खाली जगह नहीं हो तो दोनों की पहचान नहीं हो सकती। संसार की रचना ईश्वर ने क्यों की? ऐसा वा वैसा क्यों किया? यह बात मैं नहीं करता। सीमित बुद्धि में असीम का ज्ञान करना हो नहीं सकता।

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

अपने यहाँ राम ईश्वर हैं, कृष्ण ईश्वर हैं, विष्णु ईश्वर हैं, शिव ईश्वर हैं, गणेश ईश्वर हैं, सूर्य ईश्वर हैं, काली माई ईश्वरी हैं? हाँ! हैं। क्योंकि इनमें शक्ति पाते हैं। बड़े-बड़े कर्म इनमें पाते हैं। तो क्या ईश्वर बहुत हैं? ईश्वर के मानने वाले एक से अधिक ईश्वर नहीं मानते। राम के

माननेवाले राम को, कृष्ण के माननेवाले कृष्ण को ईश्वर मानते हैं। ईश्वर अनेक नहीं, सबमें एक ही ईश्वर हैं। राम में, विष्णु में, शिव में; सबमें एक ही ईश्वर हैं।

श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीदुर्गा महान-महान विभूतियाँ हैं। राम, कृष्ण आदि रूप को पहचानते हैं। आँख नहीं हो तो रूप को कौन पहचाने? जन्मान्ध कभी कुछ नहीं देखता। जिसको देखने की शक्ति नहीं, उसको रूपज्ञान नहीं होता। सर्वव्यापी का ज्ञान—जिसको कहा कि त्रयगुणरहित है, निराकार है, उसके लिए न कान, न आँख काम कर सकती है। शरीर की सारी इन्द्रियाँ भी काम नहीं कर सकतीं। क्योंकि—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

वह स्वरूप ऐसा है कि वचन में आने योग्य नहीं, बुद्धि से परे है। देखने में नहीं आता। वह अपार है। केवल तुलसीदासजी ही नहीं कहते और संत भी कहते हैं। कबीर साहब, गुरु नानक साहब ने तो इसका वर्णन किया है—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूप अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।

आत्म-दृष्टि से खोजिए। गुरु नानक कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरबाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।

जिस इन्द्रिय का जो विषय नहीं है, उस इन्द्रिय से उस विषय को ग्रहण करने के लिए कोई चाहेगा, सो कैसे होगा? यदि ऐसा होता तो बहिरा आँख से सुन लेता, अन्धा कान से देख लेता। एक ही इन्द्रिय से सभी विषयों को नहीं पकड़ सकते। एक-एक इन्द्रिय का एक-एक विषय है। ईश्वर इन्द्रियों से जाना नहीं जाता, तब किससे जाना जाता है? आप कौन हो? आपकी इन्द्रियाँ हैं, आपका शरीर है। आप कुछ नहीं हैं? आँख में आप नहीं रहो तो देखने की शक्ति और कान में नहीं रहो तो कान से सुनने की शक्ति नहीं रहे। मृतक शरीर में तो देखा ही जाता है कि वह सुनता नहीं, देखता नहीं। किसके नहीं रहने से? आपके ही नहीं रहने से। आप निजी शक्ति कुछ नहीं रखते हैं। आपकी निजी शक्ति बहुत है।

यदि कोई कहे कि यदि एक ही शक्ति से देखा जाता है, सुना जाता है, तो उसी शक्ति से ईश्वर को क्यों नहीं देखेंगे? इसकी उपमा मैं देता हूँ कि देखो! रेलवे स्टेशन में रोशनी होती है, उसमें एक तरफ हरा शीशा और दूसरी तरफ लाल शीशा रहता है। जिस तरफ होकर रोशनी निकलती है, उस रंग का प्रकाश मालूम होता है। उसी तरह आपकी शक्ति इन्द्रियाँ होकर निकलती हैं, इसलिए इन्द्रियों का रंग और इन्द्रियों का गुण लेकर निकलती है। अपने पर से इन्द्रियों को हटा दें तो अपनी निजी शक्ति में आ जाएँगे। इसी को आत्मबल कहते है।

लोग सामान्य बात में भी कहते हैं कि उनमे आत्मबल है। लेकिन अपने को तो जाने नहीं। ईश्वर आत्मगम्य हैं। '**आतमगम्य भजहिं जेहि सन्ता।**'

ईश्वर तो बहुत दूर है। लेकिन आप तो अपने को भी नहीं पहचानते। फोटो में शरीर का रूप देखते हैं। लेकिन जिसको मेरा कहते हो, उसका फोटो नहीं होता। अलग-अलग इन्द्रियों के अलग-अलग विषय हैं और आपका भी विषय अलग है। वह है आपको अपने को चीन्हना और ईश्वर को चीन्हना। ईश्वर को देखने के लिए, चीन्हने के लिए आपका विषय है। जैसे आँख का विषय रूप है। आप अपने को क्यों नहीं पहचानते? कान से आँख को कोई देख नहीं सकता। आँख से ही आँख को देख सकता है ऐना लेकर। आँख में लाली हो गयी है किसी ने कहा। उसको देखने के लिए आप क्या करेंगे? ऐना वा जल नहीं हो तो आप नहीं देख सकते। क्योंकि उसमें प्रतिबिम्ब होता है। अपने को अपने से देखने के लिए क्या साधन है? अपने को इन्द्रियों के स्थान से, मन-बुद्धि के स्थान से, शरीरों के स्थानों से हटा दीजिए।

मरने पर स्थूल शरीर छूटता है, सूक्ष्म शरीर नहीं छूटता है। स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर है। उसके भीतर कारण, फिर उसके भी भीतर महाकारण; ये चार जड़ शरीर हैं। इनके अन्दर आपका वासा है। इनसे अपने को ऊपर उठावें। तब अपने से अपने को पहचानेंगे। 'आतम अनुभव सुख सु परकासा।' तब सर्वव्यापी ईश्वर आप-ही-आप सर्वत्र दर्शन देंगे। साधन यही है कि अपने को शरीर-इन्द्रियों से ऊपर उठाइए। यही ईश्वर की भक्ति है। ईश्वरीय ज्ञान के लिए इन्द्रिय-ज्ञान तक ही नहीं रहना चाहिए, आगे बढ़ना चाहिए।

गुरु-वाक्य, सच्छास्त्र और तर्क; तीनों मिल जाएँ, तब श्रद्धा है। तर्क जहाँ तक नहीं जाए, वहाँ श्रद्धा जाती है। फिर भी संशय रह जाए तो साधन करो। उसी साधन का नाम है ध्यानयोग। यह सरलतम साधन है। जैसे आँख देखने का सरलतम साधन ऐना है। इसी तरह अपने को और ईश्वर को देखने के लिए सरलतम साधन ध्यानयोग है। हठयोग जबरदस्त है। है तो है। लेकिन यह सबसे सधने योग्य नहीं है। राजयोग कहता है—'हे हठयोग! तुम्हारे बिना ही हम चल सकते हैं। लेकिन मेरे बिना तुम आगे नहीं बढ़ सकते।'

श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में केवल ध्यानयोग का वर्णन है, हठयोग का नहीं। उसी से ईश्वर-प्राप्ति, आत्म-स्वरूप की प्राप्ति और शान्ति की प्राप्ति बतायी है। ध्यानयोग में लौ लगाना पड़ता है। पढ़े-अनपढ़े जो थोड़ी भी बात समझ सकते हैं, वे लौ लगा सकते हैं। ईश्वर क्या है? रूप क्या है? जो आँख से पकड़ सको। शब्द क्या है? जो तुम कान से पकड़ सकते हो। इसी तरह ईश्वर क्या है? जो तुम अपने से प्रत्यक्ष जानो। अपने को जानने के लिए गीता में भगवान ने क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का भेद समझाया है। क्षेत्र के सभी तत्त्वों को गिना दिया है। पाँच स्थूल तत्त्व (मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश), पाँच सूक्ष्म तत्त्व (रूप, रस,गंध, स्पर्श और शब्द), अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, दशेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह, गुदा और लिंग; ये कर्मेन्द्रियाँ और आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा; ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), मन, चैतन्य, संघात (कहे गए का संघरूप), धृति (धारण करने की शक्ति) और इनके विकार—इच्छा, द्वेष, सुख और दुःख—इन इकतीस तत्त्वों के समूह को संक्षेप में क्षेत्र कहते हैं। शरीर से इन इकतीस को अलग कर दो, तब जो बचता है, वही आत्मतत्त्व है। '**ईश्वर अंश जीव अविनाशी।**'

जो अपने को ध्यानयोग के द्वारा चारो शरीर से ऊपर उठा सकते हैं, वे कैवल्य दशा को जड़

से भिन्न होकर पाते हैं। जैसे दूध मथने पर मक्खन अलग हो जाता है।।

जिमि दूध के मथन से, निकसत है घी जतन से।
तिमि ध्यान के लगन से, परब्रह्म ले निहारा।।
—स्वामी ब्रह्मानन्दजी

इस तरह सब क्षेत्रों से अलग हो गए। इनमें रहकर भी इनसे अलग हुए, वे ही जीवनमुक्त हैं। वे ही कैवल्य दशा प्राप्त किए हैं, वे ही अपने को पहचानेंगे। तब ईश्वर की खोज करने की बात नहीं रहेगी। जहाँ ऐसा होगा, वहीं सर्वव्यापी का दर्शन होगा। शरीर और मन सोता है, लेकिन चेतन आत्मा सोती नहीं। चेतन आत्मा शरीर से पृथक हो जाए, तब उसको न जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुप्ति है। तुरीय में रहकर ईश्वर का दर्शन करती है। जो इस तरह की भक्ति करता है, वह भक्त है। जैसे जगन्नाथजी की ओर जो जाते हैं, वे जगन्नाथजी के भक्त होते हैं। इसी तरह जो ईश्वर की ओर गमन करता है, वह ईश्वर का भक्त है। n

यह प्रवचन सहर्षा जिला वार्षिक अधिवेशन, सुपौल में दिनांक २४. ६. १९६७ ई० के सत्संग में हुआ था।

२७१. गौ-माता का पालन अच्छी तरह करो

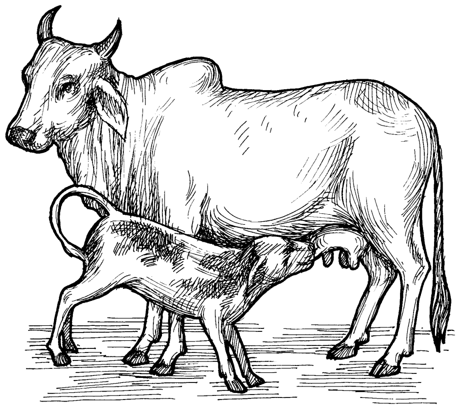

प्यारे भक्तजनो!

संसार में सुखपूर्वक रहना और शरीर छोड़ने के बाद भी सुख पाना मनुष्य को चाहिए। परन्तु सुख को पहचानना चाहिए। जिस सुख में शान्ति बनी रहे, जिस सुख में संतोष स्थिर रहे, वही सुख —सुख है। संसार के सुखों में संतोष नहीं बना रहता, शान्ति नहीं आती। इस वास्ते सांसारिक सुख यथार्थ में सुख नहीं है। फिर भी संसार के सुख में रहने की इच्छा होती है। इस मर्म को जानकर कि संसार में सांसारिक भोगों से शान्ति नहीं आती। भोगों के सुखों में अनासक्त भाव से बरतना चाहिए। जो कोई अनासक्त भाव से बरतते हैं, उनको एक विचित्र सुख मिलता है। संसार में यही सुख —सुख है। इस सुख को पाने के लिए जो ज्ञान चाहिए, अध्यात्म-साधन चाहिए। सांसारिक कामों के साथ अध्यात्म-साधन बड़ा अच्छा है। केवल भौतिक पदार्थों से कोई सुखी नहीं हो सकता। भौतिक पदार्थों को छोड़कर भी नहीं रहा जाता। इसलिए सांसारिक पदार्थों में अनासक्त भाव होकर बरतना चाहिए। शरीर में रोग होने पर औषधि का सेवन करते हैं। औषधि कोई कटु और कोई मधु होती है। उसमें मात्रा ठीक होनी चाहिए,

नहीं तो विपरीत फल होता है। कटु औषधि विशेष लिया नहीं जाता, लेकिन मधुर औषधि भी मात्रा के अनुकूल होनी चाहिए। कटु औषधि दुःख है और मधुर औषधि सुख है। सांसारिक सुखों में अनासक्त रहकर बरतना चाहिए। इसी का उपदेश संतों ने किया है। परलोक का सुख जो विषय सुख है, वह विषय सुख भी सांसारिक सुख के तुल्य है। उसमें भी ऐसी आसक्ति नहीं चाहिए कि वही भोग हो। परलोक जिसको मोक्ष कहते हैं, उसमें बिना आसक्ति रहे, कोई रह नहीं सकता। उससे अकल्याण होता नहीं, उसको छोड़ा जाता नहीं, उससे छूटा जाता नहीं। उसको अपनाना चाहिए। उसको अपनाकर ऐसे रहोगे कि—

न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़े पियारे से।

यह संतों का उपदेश है। संसार में रहकर अनासक्त भाव में कैसे रहा जाए? संसार का भी कुछ सुख मिलना चाहिए। इसके लिए घर में, आपस में मेल से रहो। आपस में प्रेम से बर्ताव करो। समाज में भी वैसे रहो। सब मिल-जुलकर जिस देश का समाज रहता है, वह देश पराधीन नहीं होता। जिस देश में भिन्न-भिन्न नियम और भिन्न-भिन्न समाज बनता है, वह देश पराधीन हो, इसका खटका बना रहता है। पहले घर, फिर समाज, फिर देश एक मेल से रहो। अपने देश में एक विचार हो जाए, फिर समूचे संसार में एक विचार, एक मेल हो, फिर कोई झगड़ा-झंझट नहीं। इसके लिए क्या चाहिए? वेद कहता है कि सामूहिक उपासना करो। सामूहिक उपासना एक बन्धन में बाँध देती है। इसलिए ईश्वर उपासना कोई मत भूलो।

दूसरी बात है कि गौ की रक्षा करो। इससे सभी पौष्टिक पदार्थ मिलते हैं। खेती होती है। बछड़े के बिना खेती नहीं होती। खेती के बिना अन्न नहीं मिलता। इसलिए गौ-रक्षा करो। बचपन से ही दूध की आवश्यकता होती है और जीवन के अन्त तक दूध की आवश्यकता रहती है। **गौ के दूध की बराबरी में और कोई दूध नहीं।** माता का दूध थोड़े ही काल तक और गौ का दूध जीवनभर। इसलिए गौ-माता कहते हैं। लोगो! गौ-हिंसा मत करो। लोगों से लड़ो-झगड़ो नहीं। अपने यहाँ गौ का पालन अच्छी तरह करो। बूढ़ी माँ, बूढ़े पिता को कोई घर से नहीं निकालते, न निकालना चाहिए। मौद्गल्यायन भगवान बुद्ध के बड़े शिष्य थे। उन्होंने अपने पूर्व जन्म के किसी एक जन्म में अपने बूढ़े पिता को जंगल में छोड़ दिया था। जिसका बहुत बुरा परिणाम उनको भोगना पड़ा। चोरों ने उनके हाड़-हाड़ को तोड़ दिया। बुद्ध के यहाँ वे पहुँचे अपने ऋद्धि के बल से। उसके बाद ही उन्होंने शरीर को छोड़ दिया। भगवान बुद्ध की बात झूठी नहीं है। महात्मा होने पर भी प्रारब्ध अपना भोग छोड़ता नहीं। लोगों को चाहिए कि अपनी बूढ़ी माँ, बूढ़े बाप को कष्ट न दें। इसी तरह गौ-माता को पालें। गौ बूढ़ी हो जाए, बैल बूढ़ा हो जाए, उसका पालन करें, सेवा करें। कभी-न-कभी उनका जीवन समाप्त होगा—मर जाएँगे, बेचो मत। यदि कोई उस तरह के बैल-गाय को बेचता है, तो उसको लेकर हिंसक हिंसा करते हैं। यह हिंसा कार्य में मदद मत करो।

हमारे कितने महात्मा लोग इसके लिए उपवास किए और चाह रहे हैं कि ऐसा कानून हो कि गौ-हिंसा नहीं हो। हमारे देश का राज्य सब धर्मों का राज्य है, कितने धर्म के लोग इस देश में बसते हैं। गाय-बैल बेचना ही हो तो उनके हाथ बेचिए जो कोई उनको हल में जोतें और उन गायों से दूध प्राप्त करें। और ऐसे को बेचिए कि जो हल में चलने काबिल हो—दूध देने काबिल हो।

बहिला गाय को मत बेचिए। उसके गोबर-

गोंत से आपके खेत की खाद होगी। गौ से दूध भी मिलेगा, गोबर और गोंत तो आपको मिलेगा ही, जो खाद होगी। वेद में आया है कि इनकी हिंसा नहीं करो। गौ-हिंसा सुनकर हमलोगों का खून खौल जाता है, लेकिन बूढ़े बैल, बूढ़ी गाय को बेचकर गौ-हिंसा में मदद नहीं कीजिए। सारे संसार से गौ-हिंसा दूर हो जाए, असम्भव है। लेकिन यही एक देश है, जहाँ के लोगों को गौ की हिंसा सुनकर रक्त खौल जाता है, लड़ाई-झगड़ा होता है। यहाँ ईसाई, इस्लाम, पारसी सभी धर्म के लोग हैं, केवल वैदिकधर्म के ही लोग नहीं हैं, इसीलिए हमारे ऊपर के लोगों को यह विधान बनाने में देर हो रही है कि 'गौ-हिंसा' बन्द हो। यद्यपि वे लोग भी गौ-हिंसा नहीं करना नहीं चाहते। सब-के-सब गौ-हिंसा करने के पक्ष में आ जाएँ। यदि समझ लें तो ठीक है—लड़ना- झगड़ना मेरे विचार में नहीं है। जो महात्मा लोग हठ कर रहे हैं, वे भी कुछ सोच-समझकर ही कर रहे हैं। गौ-पालन अवश्य करो। वह कभी भी मारने योग्य नहीं है।

आपलोगों को मैं अनेक संतों—कबीर, नानक, उपनिषद्, वेद और भगवान बुद्ध आदि के वचनों को सुनाता हूँ। यही संतों की वाणी का संग 'सत्संग' है। जैसे किन्हीं की चिट्ठी होती है, उसी तरह यह वाणी संतों की चिट्ठी है। चिट्ठी आधी मुलाकात होती है। जिन संतों की मुलाकात नहीं, उनकी वाणी की ही मुलाकात। यह आधी मुलाकात ही क्या कम है? इसलिए सब संतों की वाणियों को हमलोग पढ़ते हैं।

दूसरी बात यह है कि हमारा धर्म ऊँचा, हमारा मत ऊँचा दूसरे का नीचा, इस बात से देश को बहुत हानि हुई है; जैसे कि पहले छुआछूत के कारण देश को हानि हुई। साम्प्रदायिक अनमेल भी देश को बहुत नुकसान पहुँचाता है। यह धार्मिक सम्प्रदाय का अनमेल कैसे टूटे? इस तरह कि सब संतों का वचन लिया जाए और उसके सार को मिलाया जाए कि वह मिलता है वा नहीं? मैंने कोशिश की और देखा कि संतों के सदाचरण का एक उपदेश है। ईश्वर-प्राप्ति का एक रास्ता है। वेद, उपनिषद्, संतों की वाणियाँ, सबमें एक भाव है। मैंने 'सत्संग-योग' नाम की पुस्तक में इन वचनों को संग्रह करके दिखा दिया है। पहले भाग में वेद, उपनिषदादि संस्कृत ग्रंथों के वचन हैं, दूसरे भाग में पचास संतों की वाणियाँ हैं, तीसरे भाग में विद्वानों और साधकों के वचन हैं और चौथे भाग में मैंने वह लिखा है कि संतों के ज्ञान को जो मैंने समझा, गुरु ने जो उपदेश दिया तथा उसके अनुकूल साधन करके जो कुछ अनुभव हुआ, इन सब बातों को दिया है।

कोई किसी की पूजा का खण्डन न करे कि कोई पश्चिम मुँह नहीं करे वा कोई पूर्व मुख बैठकर नहीं करे। दूसरे सम्प्रदाय के जो लोग हैं, उनमें भी सूक्ष्म क्रिया एक है—सूक्ष्म साधन एक है। अन्दर-अन्दर चलो, इसमें सबका एक मत है। इस प्रकार साम्प्रदायिकता का भेद-भाव मिटने से बड़ी शान्ति रहेगी। कोशी के इस पार आप रहें और उस पार में आपके मित्र हों वा जिनको आप नहीं जानें, वे भी रहते हैं, तो क्या वह दूसरा हो गया? एक ही जिला है। उसी तरह बहुत पानी के बाद यानी समुद्र के पार में यदि कोई बसते हैं, तो वे दूसरे कैसे हैं? हम सभी एक हैं। एशिया महादेश और युरोप महादेश, इस देश का विभाजन किसने किया? पानी ने। पानी जड़ और हम चेतन। पानी मजबूत हो गया और हम कमजोर हो गए? धार्मिक, साम्प्रदायिक भेद-भाव मिट जाएँ और भी जो भेद-भाव हैं, सभी मिट जाएँ तो तोप,गोला, काहे को बने? इसको मारो, उसको मारो, यह बात क्यों होगी?

ऐसा भी तो बम बनाओ कि सब कोई मिलकर रहो। यह बम तब बन सकता है कि धार्मिक विचार एक हो जाए। एक मेल से रहने के लिए पहले हमलोग जिस गाँव में रहते हैं, जिस घर में रहते हैं जिस प्रान्त में रहते है, जिस देश में रहते हैं, मेल से रहें। इस एक मेल से रखनेवाला धर्म है।

आज विविध धर्म विविध तरह से फैलाये जा रहे हैं। असल में धर्म तो वह है कि जिससे ईश्वर से मिला जाए।

जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू।।

राम ही ईश्वर है। राम को हाथ भी और नहीं भी हाथ। राम व्यक्त भी और अव्यक्त भी। राम विराट भी अंग-प्रत्यंग बहुत भी और वह एक-ही-एक है। अंग-प्रत्यंग को देखो और उसमें व्यापक एक को नहीं देखो, यह कितना मोटा ज्ञान है? उस एक को माननेवाला उस एक तल जानेवाला सभी हो जाओ, यही सनातन धर्म है। इस परम सनातन को भूल जाओ और केवल प्रचलित पूजा में लग जाओ। कितनी गलत बात है। इस गलती को भूल जाओ। सब कोई मिल-जुलकर उपासना करो—यह वेद-आज्ञा है। इसी के अनुकूल मैंने आपलोगों से कहा।

बारीकी को देखो। विद्वान लोग कानून की बारीकी की ओर खूब जाते हैं, लेकिन धार्मिक विषय में, मोटे में लगे रहते हैं, यह बड़ी भूल है। धार्मिक विषय की सूक्ष्मता में भी जाओ। नाम वर्णात्मक भी है और ध्वन्यात्मक भी है। नाम कह और अकह है; दोनों को जानो।

अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अकण्ठ ताल्वोष्ठमनासिकं च।
अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।

—अमृतनाद उपनिषद्

इसको भी जानो। जिनसे हम उपकार पावें, उनकी स्तुति भी नहीं करें, तो क्या सेवा करेंगे? हम बड़े कृतघ्न हैं, यदि स्तुति नहीं करें। इसलिए ईश्वर, संत, सद्गुरु जो कि हमारे बड़े उपकारी हैं, इनकी स्तुति अवश्य करो। और धर्म के सिद्धान्त और उसकी परिभाषा जानो। इसके जाने बिना अनेक धर्म, अनेक सम्प्रदाय कहकर लोग प्रचार करते हैं और वह रह पाता नहीं, जो बहुत गलत बात है। यह नहीं होनी चाहिए। इसलिए धर्म के सिद्धान्त और उसकी परिभाषा जानो।

लोग कहते हैं कि सोनबरसा आने के लिए पूर्व से, पश्चिम से, उत्तर से और दक्षिण से भी आते हैं। उसी तरह ईश्वर के पास जाने के अनेक रास्ते हैं। मैं कहता हूँ—हजार बार कहता हूँ कि ईश्वर के पास जाने का रास्ता एक है, जैसे भोजन करने का रास्ता एक है। जिसको ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान नहीं है, अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है। अपने शरीर का ज्ञान नहीं है, उसके लिए अनेक रास्ते हैं। जिनको ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान है, अपने स्वरूप का ज्ञान है, उनके लिए अनके रास्ते नहीं, एक ही रास्ता है और वह अन्तर्मार्ग है। मोक्ष का रास्ता एक है, स्वर्ग-वैकुण्ठ का रास्ता भले अनेक हो।

बिना मोक्ष के संसार में रोना-पिटना होगा ही। रामायण कहती है कि श्रीराम जैसे अवतारी भी इस संसार में आकर रोए। श्रीकृष्ण जैसे हँसमुख को अन्त में मुख पर मायूसी आई। पाण्डव जैसे वीरों को भी जंगल-जंगल घूमना पड़ा। यही यह संसार है। इसलिए इस संसार से छूटने के लिए यत्न जानो। जैसे जल को पार करने के लिए जल ही सहारा और जल ही रास्ता होता है, वैसे ही अपने अन्दर ज्योति और शब्द का सहारा है और वही रास्ता है। केवल मोटी-मोटी बातों पर नहीं रहिए। धर्म की बारीकी को भी जानिए।

n

यह प्रवचन सहरसा जिलान्तर्गत ग्राम सोनबरसा में दिनांक १८. ७. १९६७ ई० के सत्संग में हुआ था।

२७२. चित्तवृत्ति का पूर्ण निरोध : विन्दु ध्यान में

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपलोगों को मालूम होना चाहिए कि इस सत्संग के द्वारा श्रीगुरु महाराज की आज्ञा के अनुसार मैं ईश्वर-भक्ति का प्रचार करता हूँ। उन्होंने बतलाया था कि मनुष्य का कल्याण ईश्वर-भक्ति से ही होता है। सांसारिक कल्याण भी ईश्वर-भक्ति से होता है। ईश्वर-भक्ति के लिए कोई जरूरी नहीं है कि घर-वार को छोड़ दें। नियम बाँधकर ईश्वर का भजन करें। ईश्वर-भक्ति के लिए पहली बात यह जान लेनी चाहिए कि इसके बिना हमारा क्या नुकसान होगा? संसार में सब तरह धनादि और विद्या से यदि पूर्ण हो तो भी ईश्वर-भक्ति की क्या आवश्यकता है? कुछ होकर रहिए, संसार में आपको शान्ति मिल रही है या नहीं, इसपर विचार कीजिए। यदि शान्ति मिल रही है तो खोज करने की आवश्यकता नहीं। यदि नहीं मिल रही है, तो खोज करनी चाहिए।

जो गरीब हैं, वे तो दुखिया हैं ही, अमीर भी दुःखी रहते हैं। शासित दुःखी रहते हैं। शासक भी दुःखी रहते हैं। कोई भी हों, सभी दुःखी रहते हैं। इंगलैण्ड के राजा पंचम जार्ज सेना को देखने के लिए घोड़े पर सवार होकर गए। जब सैनिकों ने राजा को सलामी दी, तो घोड़ा भड़क गया। राजा घोड़े पर से गिर गए। वे बहुत दुःखी हुए। कोई भी हो दैहिक, दैविक, भौतिक ताप किसी को नहीं छोड़ते हैं। इन तीनों तापों से शायद ही कोई संयमी छूटे हुए हैं। गो० तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है कि भगवान श्रीराम को भी दुःख देखना पड़ा। वे भी रोए। यहाँ संसार में कुछ भी बन जाइए, दुःख नहीं छूटेगा। सब दुःखों से छूटने के लिए, अशान्ति से छूटने के लिए संसार से आगे देखो।

संसार में पाँच चीजें हैं—रूप, रस,गन्ध, स्पर्श और शब्द। इनको जानने के लिए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों के ज्ञान में जो कुछ आ जाते हैं, वे सब विषय हैं। संसार में पंच विषयों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। पंच इन्द्रियों से ग्रहण होने योग्य जितने भी सुख हैं, सब माया के सुख हैं। माया का सुख स्थिर नहीं रहता है। यहाँ सुख के बाद दुःख होता ही रहता है। संसार में जहाँ तक हो, शान्तभाव बनकर अपने को रखें और सात्त्विकी बुद्धि से संसार की सेवा करें। त्रयकाल सन्ध्या में ईश्वर की उपासना करें। ईश्वर-भक्ति के बिना परम शान्ति मिलती नहीं। शरीर का अंत अवश्य होगा। संत चरणदासजी की शिष्या सहजोबाई कहती हैं—

चलना है रहना नहीं, चलना बिस्वाबीस।
सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुँधावै सीस।।

जहाँ मीराबाई हुई है, वहीं सहजोबाई हुई है। यहाँ मरना अवश्य है। प्रत्येक आदमी को यह विश्वास है कि यहाँ से चलना है। यह निश्चित नहीं कि कब मौत आ जाएगी? इसीलिए चलने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। ईश्वर की उपासना में जरूरत है कि संसार के कर्तव्यों को करते हुए साधन पथ पर चलें। इस तरह चलने से कभी-न-कभी जीवनमुक्त की दशा को प्राप्त करेंगे। संत कबीर साहब ने कहा है—

मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय।।
मरिये तो मरि जाइए, छूटि पड़ै जंजार।
ऐसी मरनी को मरै, दिन में सौ सौ बार।।

लोगों को यही हो रहा है। इसलिए कबीर

साहब कहते हैं—

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।

कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द।।

साधारण मृत्यु में स्थूल शरीर छोड़ना पड़ता है। अपने से अन्तर साधन करके शरीर छोड़ो। अंतर साधन करके सूक्ष्म, कारण, महाकारण आदि शरीरों को छोड़ो।

जो कोई ईश्वर की भक्ति करते हैं, उनको ईश्वर की कृपा मिलती है। ईश्वर महान कृपालु हैं। वे भक्तों को अपनी सहायता देते हैं। वे अपना अवलम्ब देते हैं। इसीलिए ईश्वर की भक्ति करो। सारे शरीरों से छूट जाना, शरीरों के घेरे से छूट जाना ईश्वर की भक्ति से होता है। इसी का नाम है ब्रह्मनिर्वाण।

ईश्वर-स्वरूप के ज्ञान के बिना भक्ति-मार्ग पर चलना उस मनुष्य के समान है, जो बिना निर्दिष्ट स्थान को जाने ही यात्रा करता है। इसलिए ईश्वर-स्वरूप का सही ज्ञान होना चाहिए। संसार के सभी पदार्थ परिवर्तनशील है। गो० तुलसीदासजी ने लिखा है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

अर्थात् इन्द्रियों को जो प्रत्यक्ष है, मन की गति जहाँ तक है, सब माया है। माया में परिवर्तन होना अनिवार्य है। ईश्वर-स्वरूप के सम्बन्ध में गो० तुलसीदासजी ने लिखा है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।

अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

उपनिषद् में भी आया है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थात् उस परे-से-परे तत्त्व का दर्शन कर लेने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाएगी, सारे संशयों का नाश हो जाएगा, सारे कर्म-बन्धन टूट जाएँगे।

ऐसे तो लोगों को शरीर ही चेतन मालूम होता है। शरीर के साथ-साथ इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान होता है, वह माया का ज्ञान होता है। शरीर इन्द्रियों के ज्ञान को छोड़कर चेतन आत्मा के निजी ज्ञान में जो पहचान में आवे, वही ईश्वर है। शरीर इन्द्रियों के ज्ञान में जो आता है, वह ईश्वर नहीं, ईश्वर की माया है। अपने शरीर के अन्दर जो चेतन आत्मा है, उसका ज्ञान होना चाहिए। आत्मा का ज्ञान आत्मा से होता है। जैसे आँख का ज्ञान आँख से ही होता है आइने के द्वारा। उसी तरह ईश्वर-भजन के द्वारा अपने आत्म-स्वरूप को जानो। आत्म तत्त्व से ही ईश्वर का दर्शन होगा। इस हालत में आने के वास्ते केवल मोटी-मोटी बातों में अपने को बाँधकर रखना पूर्ण फलदायक नहीं है। इसलिए योग का साधन करना चाहिए। मूर्ति-ध्यान में चित्तवृत्ति का कुछ निरोध होता है। चित्तवृत्ति के निरोध को ही योग कहते हैं। चित्तवृत्ति का पूर्ण निरोध विन्दु ध्यान में होता है।

जिस तरह सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है, उसी तरह मन के सिमटाव से मन की गति ऊपर की ओर हो जाएगी। ईश्वर-भक्ति में ईश्वर का गुणगान करना चाहिए। फिर जप करना चाहिए, फिर ध्यान करना चाहिए। पहले स्थूल ध्यान करना चाहिए, लेकिन उसमें पूर्ण सिमटाव नहीं होता है। श्रीमद्भागवत में भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धवजी से कहा है—

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः।

बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः।।

तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्।

नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्।।

तत्र लब्ध पदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।

तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिन्तयेत्।।

'बुद्धिमान पुरुषों को चाहिए कि मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से खींचकर उस मन को बुद्धि-रूपी सारथी की सहायता से सर्वांगयुक्त मुझमें ही लगा दे। सब ओर से फैले हुए चित्त को खींचकर एक स्थान में स्थिर करे और फिर अन्य

अंगों का चिन्तन न करता हुआ केवल मेरे मुस्कान-युक्त मुख का ही ध्यान करें। मुखारविन्द में चित्त के स्थिर हो जाने पर उसे वहाँ से हटाकर आकाश में स्थिर करे। तदनन्तर उसको भी त्यागकर मेरे शुद्ध-स्वरूप में आरूढ़ हो और कुछ भी चिन्तन न करे।'

शून्य ध्यान को ही विन्दु ध्यान कहते हैं। विन्दुध्यान में पूर्ण सिमटाव होता है। विन्दु में स्थान है, पर परिमाण नहीं। यह बाहर में नहीं बन सकता। यह गुरु के संकेत से बनता है। यहाँ से सूक्ष्म मार्ग का आरम्भ होता है। सूक्ष्ममार्ग में जो प्रवेश करता है, उसे ईश्वर की सहायता मिलती है। ब्रह्म ज्योति, ब्रह्मनाद के द्वारा प्रभु अपनी गोद में साधक को खींच लेते हैं। योगशिखोपनिषद् में आया है—

विन्दुनाद महालिंगं शिवशक्तिनिकेतनम्।
देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्वदेहिनाम्।।

अर्थात् विन्दुनाद महालिंग है और शिवशक्ति का घर है। इस देह को शिवालय कहते हैं। सभी प्राणियों को इसमें सिद्धि मिलती है।

यह गुरुगम्य है। इसके ध्यान से ऊर्ध्वगति होती है। अन्तस्साधना करनेवाले को ब्रह्म ज्योति और ब्रह्मनाद का सहारा मिलता है। नाद में अपने उद्गम की ओर खींचने का गुण है। आदिनाद परमात्मा से लगा हुआ है। जो इसे ग्रहण करेंगे, वे परमात्मा को प्राप्त करेंगे। संत दरिया साहब ने कहा है—

चुम्बक सत्त शब्द है भाई। चुम्बक शब्द लोक ले जाई।।
मृत्यु अन्ध जबही नियरावै। चुम्बक शब्द जीव मुक्तावै।।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा। सत्त शब्द जो बसै शरीरा।।

यह कागज में लिखा नहीं जा सकता। यह पूरी-पूरी भक्ति का वर्णन है। इसमें सत्संग की बड़ी आवश्यकता है। गुरु-सेवा, दृढ़ ध्यानाभ्यास आवश्यक है। इसके साथ-साथ आचरण की पवित्रता की भी आवश्यकता है। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों को छोड़ दें तो आपके पास कोई पाप नहीं आ सकता। साधन करते-करते पवित्रता में बढ़ेंगे। पवित्रता में बढ़ने से भजन में भी बढ़ेंगे। ईश्वर-भक्ति में पंच पापों का छोड़ना अनिवार्य है। इससे देश का बड़ा उपकार होगा। इस तरह के बहुत लोग हो जाएँ, तो देश में चोरी नहीं होगी। डकैती आदि दुष्कर्म नहीं होंगे। दण्ड देने पर भी लोग दुष्ट-कर्म करते हैं। साधन-भजन करने से इधर का सुख तो थोड़ा होता है, पर उधर का सुख, परमार्थ का सुख बढ़ जाता है। संसार में वह दुष्टकर्म से छूट जाता है।

हमें सुराज बुलाना चाहिए। सुराज बुलावेगी ईश्वर की भक्ति। कारागार का दण्ड होने पर भी दुष्टकर्मों से किसी का छुटकारा नहीं हो पाता, लेकिन ईश्वर-भक्ति में लोगों को आप ही ख्याल होने लगता है कि यदि ऐसा कर्म करेंगे तो भक्ति से गिर जाएँगे। जो इसमें चूक जाता है, वह पछताता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा है कि लड़ते रहो और ध्यान भी करो। पंच पापों को छोड़कर ईश्वर का भजन करना सदाचार है। ईश्वर-भजन में आत्मरत होना होता है। अपना निशाना अपने अन्दर है, उसपर लगे रहो। इसके लिए विद्वान-अविद्वान की बात नहीं। सभी कर सकते हैं। कैसा भी अनपढ़ हो उसको समझा दीजिए, वह भी साधन करने लग जाता है। विद्वान होकर भी भजन करो। हमारे गुरु महाराज बाबा देवी साहब कहते थे—सबसे पहले है आध्यात्मिकता, उसके बाद सदाचारिता, तब सामाजिक नीति। इसके बाद है राज-नीति। इस तरह राजनीति बिगड़ नहीं सकती।

n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक २३. ७. १९६७ ई० को साप्ताहिक सत्संग के अवसर पर हुआ था।

२७३. प्रकाश मण्डल भी मायिक है

प्यारे सत्संगप्रेमियो!

जिसमें परिवर्तन नहीं हो, जिसका विनाश कभी नहीं हो, वह ईश्वर है। जो मायिक पदार्थ है, उस सबमें परिवर्तन होता है और सबका विनाश भी होता है। परमात्मा का विनाश नहीं होता, परिवर्तन नहीं होता, वह अजर, अमर, अविनाशी है। उसका संग हो जाय, मेल हो जाए तो जानिए पूरा सत्संग हो गया। लेकिन यह एकीभाव मनुष्य के लिए बहुत दूर है। विचार से कह देना बहुत सुगम है, पर ठीक-ठीक होना बहुत दूर है। मायिक आवरणों में कोई ईश्वर का दर्शन नहीं पा सकता। आवरण तीन हैं—अन्धकार, प्रकाश और शब्द। इन तीनों में ईश्वर-दर्शन नहीं होता।

एक मुनि का शिष्य था। उसने गुरु से प्रार्थना की, 'ब्रह्म के द्वार का मुख प्रकाश के आवरण से बन्द है। मेरे वास्ते उसको हटा दीजिए।' अन्धकार को हटाने की प्रार्थना करते हैं, प्रकाश को हटाने की प्रार्थन करते हैं। अंधकार से बाहर जाना है और प्रकाश से भी बाहर जाना है। सभी मायिक आवरणों से बाहर जाना है। होते-होते जो आदिनाद है, वह भी आवरण है। उस आदिनाद में रहते हुए ईश्वर का दर्शन होता है। यहाँ ईश्वर-दर्शन द्वैत-भाव होते हुए भी होता है। एकीभाव में त्रिपुटी—ध्याता, ध्यान और ध्येय नहीं रहते। अंधकार, प्रकाश और शब्द के आवरण को पार करना बहुत दूर है। प्रकाश मण्डल भी मायिक है। शब्दों का आवरण कितना बड़ा है, इसको माप नहीं सकते। कबीर साहब ने कहा है—

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पन्थ बहु मार।
कहौ संतो क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि दीदार।।

इतना लम्बा कोई रास्ता नहीं है। विकटपंथ—जिस रास्ते पर चलकर पहुँचा जाता है, उस पर विघ्न बाधाएँ भी होती हैं। विघ्न-बाधा में मन को अशान्ति होती है। इसीलिए 'विकट पंथ बहु मार' कहा। थोड़ा-थोड़ा चलते-चलते लम्बा-से-लम्बा रास्ता भी कट जाता है। जो धीरजवान साधक है, वह चलते-चलते रास्ते को पार कर जाता है, तब परमात्मा का दर्शन होता है। यह दर्शन चेतन आत्मा को होता है। यह दर्शन बाह्य आँख से देखे बिना होता है। चेतन आत्मा को जो शरीर का संग है, इसी से अज्ञानता है। जो चेतन आत्मा की पहचान में आ जाय, वही ईश्वर है। जो इस बात को भूल जाएँगे, उनको ईश्वर का दर्शन नहीं होगा। किसी अवतारी रूप का दर्शन ईश्वर-स्वरूप का दर्शन नहीं है। आँख से जो दर्शन हुआ, वह माया का ही दर्शन हुआ। उससे आगे जो आत्मस्वरूप है, उसका दर्शन नहीं हुआ। सब रूपों में जो आत्मा है, उसका दर्शन रूपों के दर्शन से नहीं होता है। जैसे सबके शरीरों को सब कोई देखते हैं, लेकिन आत्मा को नहीं देखते हैं। आत्मा का दर्शन हो जाता है तो ईश्वर का भी दर्शन हो जाता है। लोग माया के दर्शन को ही ईश्वर का दर्शन मानते हैं। माया क्या है? गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामचरितमानस में लिखा है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

माया को पहचान लेने पर सारे संशयों से छूटना नहीं होता है। माया के दर्शन से पूर्ण शान्ति नहीं होती है। माया के दर्शन में आपदा आती ही

रहती है। सगुण-रूप उपासना में गुरु-रूप की उपासना भी आ जाती है। सगुण उपासना को छोड़कर कोई आगे नहीं बढ़ सकेंगे। बाहर में तो प्रतिमाओं का दर्शन नहीं करते, परन्तु गुरु की प्रतिमा बनाते हैं। चाहे प्रतिमा बनाओ वा तस्वीर बनाओ, कोई हर्ज नहीं। लेकिन ध्यान में मनोमय रूप बनाए जाते हैं। संतों ने कहा, केवल यहीं तक नहीं रहो, इससे आगे बढ़ो। यह स्थूल उपासना है। इससे आगे बढ़ने में जो उपासना होती है, वह सूक्ष्म सगुण उपासना है। इसका आरम्भ विन्दु ध्यान से होता है। पहले सगुण साकार रूप उपासना, फिर सूक्ष्म सगुण रूप उपासना है, फिर सूक्ष्म सगुण अरूप उपासना है। इसको खत्म करके तब जो उपासना है वही निर्गुण निराकार उपासना है। निर्गण को भी पार कर गया तो वहाँ केवल एकीभाव रहता है। इस चेतन से भी परे तत्त्व को चीन्ह लेने पर हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है। सारे संशयों का नाश हो जाता है और तब कर्मबन्धन टूट जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।

परम सुख को जो पाता है, वह द्वैत से छूटा हुआ होता है। वह शोक, मोह आदि से रहित होता है। उसकी पहुँच जहाँ होती है, वहाँ स्थान और समय नहीं रहते। जिनकी यह दशा नहीं हुई, उनका संशय निर्मूल नहीं हुआ। सब संशय जहाँ दूर होते हैं, उसका ज्ञान होना चाहिए। सत्संग से इन विषयों को बारम्बार समझाया जाता है। पढ़े-अनपढ़े को भी अच्छी तरह समझ में आ जाए, यह कोशिश सत्संग में की जाती है।

जहाँ ईश्वर का भाव नहीं रखना चाहिए, सत्संग नहीं करनेवाले वहाँ ईश्वर का भाव रखते हैं। जिस सत्संग में ईश्वर की चर्चा नहीं, वह सत्संग नहीं। साधना करके ईश्वर से मेल हो जाए तो यह ऊँचे दर्जे का सत्संग है। उपासना में प्रथम ही ईश्वर-दर्शन तो नहीं होता, लेकिन ईश्वर के ज्ञान में वह मजबूत होता है। आन्तरिक उपासना को आन्तरिक सत्संग कहते हैं। अद्वैत भाव में ईश्वर का दर्शन हो जाए, यह निर्गुण शब्दब्रह्म की उपासना से होता है। संत कबीर साहब ने कहा है—

संगति ही जरि जाव, न चर्चा राम की।
दूलह बिना बारात, कहो किस काम की।। n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक २०. ८. १९६७ ई० को साप्ताहिक सत्संग के अवसर पर हुआ था।

२७४. रूप का ध्यान कहाँ से आरम्भ होता है?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस सत्संग में ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान मिलता है। सत्संग में ईश्वर-भक्ति की चर्चा अवश्य होनी चाहिए। सत्संग में यदि यह चर्चा नहीं, तो वह सत्संग, सत्संग नहीं। हमलोगों का सत्संग ईश्वर-भक्तिपरक है। ईश्वर-भक्ति के ज्ञान के लिए जो ज्ञान अपेक्षित है, वह साधारण नहीं है। इसको वेदान्त में ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान कहा है। ईश्वर-भक्ति में स्तुति, प्रार्थना और उपासना; ये तीन बातें अवश्य होनी चाहिए।

ईश्वर का गुणगान करना स्तुति है। अपनी माँग ईश्वर के सामने रखना, यह प्रार्थना है। उपासना

में जप और ध्यान है। प्रार्थना गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनों तरह से होती है। जप में ईश्वर वाचक शब्द जो गुरु-प्रदत्त हो, उस शब्द का विश्वासपूर्वक जप करना चाहिए। परन्तु ऐसा कोई जप नहीं होना चाहिए, जो ईश्वर-भक्ति की ओर नहीं ले जाए। इसलिए सद्गुरु जो बतावें, वह जपना चाहिए। जप के लिए ईश्वर का कोई भी नाम हो, उसे जप सकते हैं। संत दादूदयालजी ने कहा है—

दादू सिरजनहार के, केते नाँव अनंत।
चित आवै सो लीजिये, यौं सुमिरै साधू सन्त।।

किसी एक शब्द पर जोर देना कि यही ठीक है, यह कहना गलत है। जप तीन तरह से किया जाता है—वाचिक, उपांशु और मानस। वाचिक जप मुँह से बोलकर किया जाता है। उपांशु जप इस तरह किया जाता है, जो अपने कान तक ही सुना जाता है। इससे भी उत्तम जप मानस जप है। यह जप मन-ही-मन होता है। हमारे गुरु महाराज ने कहा कि मानस जप करो। यह जप सगुण उपासना है। जिसको जो जप गुरु बता दें, वह करो। आरम्भ में ईश्वर का दर्शन बहुत दूर है।

ईश्वर है, इसका विश्वास करो। ईश्वर की स्थिति है। इन्द्रियों से जो भी ज्ञान होता है, वह माया का ज्ञान होता है। इन्द्रियों से परे जो ऊँचे दर्जे का ज्ञान है, वह आत्मज्ञान है। मन, बुद्धि-इन्द्रिय आदि सगुण हैं। जो परमात्मा अव्यक्त हैं, मायातीत हैं, उनका ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा नहीं होता। परमात्मा निर्गुण निराकार हैं। यदि ईश्वर को रूप-रंग में रखो, तो मन से पकड़ सकते हो और बाहरी इन्द्रियों से भी जान सकते हो। स्थूल सगुण उपासना में भी जिनको जिस रूप में श्रद्धा हो, उसका ध्यान करें। जो माया का ज्ञान है, उस ज्ञान से ईश्वर का दर्शन नहीं होता। मन, बुद्धि-इन्द्रिय से परे जो परमात्मा हैं, वे मायातीत हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

माया के सम्बन्ध में गोस्वामीजी ने लिखा है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

जो निर्मायिक तत्त्व है, उसे किसी इन्द्रिय से ग्रहण नहीं कर सकते। ईश्वर सर्वव्यापी होने के कारण सबके अन्दर अवश्य मौजूद है। ईश्वर सर्वव्यापक हैं, इसीलिए वे सर्वरूपी हैं। रामकृष्ण परमहंसजी महाराज को काली माई का प्रत्यक्ष दर्शन होता था। संयोग से तोतापुरी नाम के एक संन्यासी आए और उन्होंने रामकृष्ण परमहंसजी से कहा—'देखो जी! तुम ब्रह्मदीक्षा मुझसे ले लो।' रामकृष्ण परमहंस देवजी ने कहा—'बिना माई की आज्ञा से मैं ब्रह्मदीक्षा कैसे लूँ? तोतपुरीजी ने कहा—'माई से पूछ लो।' रामकृष्ण परमहंसदेवजी महाराज ने काली माई से प्रार्थना की। जब काली माई प्रत्यक्ष हुईं, तो कहा कि वे संन्यासी मुझे ब्रह्मदीक्षा लेने कहते हैं, मैं क्या करूँ? काली माई ने कहा—'ब्रह्मदीक्षा ले लो।' जब रामकृष्ण परमहंस जी महाराज संन्यासी तोतापुरी के पास गये तो तोतापुरीजी ने पूछा—'माई से आज्ञा माँग ली?' उन्होंने कहा—'हाँ महाराज! माई ने दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी।' उन्होंने ब्रह्मदीक्षा ले ली।

मायिक रूप का दर्शन हो जाने पर भी 'ब्रह्मरूप' का दर्शन बाकी रह जाता है। परन्तु उस मायिक रूप की अवज्ञा नहीं होनी चाहिए। जिस मन्त्र का जप करते हैं, वे करें; जिस रूप का ध्यान करते हैं, वे करें। ध्यान में स्थूल सगुण साकार रूप, फिर सूक्ष्म सगुण साकार रूप, फिर अगुण अरूप और अन्त में निर्गुण निराकार उपासना है। शब्द साधना में सगुण अरूप भी है और निर्गुण निराकार भी। आँख से केवल रूप ही देखने में

आता है, शब्द देखने में नहीं आता। सूक्ष्म सगुण रूप को समाप्त करके तब निर्गुण की उपासना होती है। शब्द में विविधता है। यह बहुत दूर तक है। आदिनाद में सब विविधता लय हो जाती है। वह आदिनाद कान को सुनने में नहीं आता है। संत तुलसी साहब ने कहा है—

सत सुरति समझि सिहार साधो, निरखि नित नैनन रहौ।

रूप का आरम्भ कहाँ से होता है? कोई रूप लकीर के बिना नहीं बन सकता। लकीर बिना विन्दु के नहीं बन सकती। विन्दु के बिना अक्षर नहीं बन सकता। इसीलिए उपनिषत्कार ने कहा—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्॥

अर्थात् सब अक्षरों का बीज विन्दु है, उस पर नाद अवस्थित है। विन्दु की परिभाषा में है कि उसका स्थान है, परिमाण नहीं। बाहर में बारीक-से-बारीक पेन्सिल की नोक से विन्दु बनाने पर भी कुछ-न-कुछ परिमाण अवश्य होगा। वह परम विन्दु नहीं होगा। परिभाषा के अनुसार परम विन्दु दोनों दृष्टियों के मिलन में होता है। जिसका मन दृष्टि के साथ समेटा हुआ होता है, वह विन्दु का दर्शन पाता है। यह सूक्ष्म सगुण रूप का दर्शन होता है। उपनिषत्कार कहते हैं—

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम्।

अर्थात् ज्योतिर्मय विन्दु का ध्यान श्रेष्ठ ध्यान है। वह विन्दु सबके अन्दर है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामचरितमानस में लिखा है—

लोचन चातक जिन करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे॥
निदरहिं सरित सिन्धु सर भारी। रूप विन्दु जल होहिं सुखारी॥

अर्थात् जैसे पपीहा पक्षी स्वाति जल के लिए बड़ी-बड़ी नदियों, तालाबों और समुद्रों का निरादर करके मेघ को एकटक से देखता रहता है और स्वाति जल को देख लेने पर उसे परम प्रसन्नता से ग्रहण करता है। उसी तरह भक्तियोग का साधक अपने हृदयाकाश के अंधकार रूप बादल में एकटक से टकटकी लगाकर देखता रहता है अर्थात दृष्टि-साधन करता रहता है और नदी आदि बड़े-बड़े जलाशय रूपी बड़े-बड़े दृश्यों को निरादर करके नहीं देखता है, पर विन्दु रूप को देखकर परम प्रसन्नता से दृढ़तापूर्वक धारण करता है। विन्दु देखने का अभ्यास करो। इसकी युक्ति सच्चे सद्गुरु से जानो। संत पलटू साहब ने कहा है—

काजर दिहे से का भया, ताकन को ढब नाहिं॥
ताकन को ढब नाहिं, ताकन की गति है न्यारी।
एकटक लेवै ताकि, सोई है पिव प्यारी॥

यह ऊँचे दर्जे का ध्यान है। विन्दु पर नाद स्वाभाविक होता है। नाद से नादों में चलते-चलते परम नाद को पाता है। यह जिसको होता है, उसके लिए किसी से पूछने की जरूरत नहीं। जैसे भूखा आदमी यदि भरपेट भोजन कर ले, तो उसे किसी से पूछने की जरूरत नहीं होती कि मेरा पेट भरा या नहीं। लोगों को विन्दु और नाद की उपासना करनी चाहिए। इसकी साधना में लोगों को घबराना नहीं चाहिए। ध्यान का आरम्भ पहले ही नहीं होता। पहले मानस जप होता है। तब मानस ध्यान होता है। इसके बाद ज्योति ध्यान अर्थात् विन्दु ध्यान होता है और तब नाद का ध्यान होता है। नाद ध्यान तो वह ध्यान है, जिस ध्यान में मन डूब जाए। इससे मन में दूसरे ख्यालों का आना बन्द हो जाता है। विन्दु ध्यान को ही शून्य ध्यान कहा है। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्द में वर्णन है—भगवान श्रीकृष्ण से उद्धवजी ने पूछा है कि मैं आपका ध्यान किस तरह करूँ? उत्तर में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'पहले मेरे सर्वांग शरीर का ध्यान करो, फिर मुखारविन्द का ध्यान करो। इसके बाद शून्य का ध्यान करो।'

जहाँ कोई परिमाण नहीं, वहाँ शून्य-ही-शून्य

है। संत कबीर साहब ने कहा—

शून्य ध्यान सबके मन माना। तुम बैठो आतम अस्थाना।।

अर्थात् शून्य ध्यान, विन्दु ध्यान में सबका मन मान जाता है। विन्दु ध्यान में एकाग्रता आती है। एकाग्रता में शान्ति का रस मिलता है। जैसे जहाँ पेन्सिल रखते हैं, वहाँ विन्दु बन जाता है। वैसे ही जहाँ दृष्टि स्थिर होती है, वहाँ प्रकाशमय विन्दु का उदय होता है। विन्दु अव्यक्त है, उसे देखने के लिए ठीक से यत्न करो तो मालूम होगा। इसमें थकना नहीं चाहिए। जितना बन सके, अभ्यास करते रहो। थोड़ा-थोड़ा ही करो, लेकिन छोड़ो मत। सफलता अवश्य मिलेगी। n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक २७. ८. १९६७ ई० को साप्ताहिक सत्संग के अवसर पर हुआ था।

२७५. बाहर में संत-पथ नहीं है, अन्दर में है

प्यारे लोगो!

आपलोग पढ़े-सुने होंगे—

संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रंथ।।

संतों का रास्ता मोक्ष में जाने का है—मुक्ति में जाने का है। संतगण सांसारिक इच्छाओं को छोड़ दिए होते हैं। वे संसार में लसक (फँस) कर नहीं रह जाते। वे मोक्ष-मार्ग पर बिना अटक (रूक) के जाते हैं। परन्तु जो सांसारिक वस्तुओं में इच्छा रखते हैं, उनको मोक्ष-मार्ग में जाने में अटक रहता है। 'जो जो करम कीउ लालच लगि, तिह तिह आपु बंधाइउ।'—नौवाँ गुरु तेग बहादुर का वचन है। जो-जो कर्मफल की इच्छा से किए, उन-उन कर्मों से अपने को बँधा लिया। जो सांसारिक इच्छाओं को नहीं त्याग सके, वे कर्म में फल इच्छा से लगे रहते हैं। उनको संत-पंथ पर जाने में अटक रहता है। धीरे-धीरे इच्छाएँ छूटती हैं। एक ही बार इच्छा नहीं छूटती। जबतक मन मण्डल से ऊपर चढ़ाई नहीं हो, तबतक इच्छा रहेगी ही। चाहे वह इच्छा सात्त्विकी ही क्यों न हो? इच्छा तीन प्रकार की होती है—तामसी, राजसी और सात्त्विकी। सात्त्विकी इच्छा ईश्वर की ओर ले जाती है। संसार में रहकर कुछ-न-कुछ इच्छा रहेगी। सात्त्विक कर्म का भी बन्धन होता है। इसलिए त्रय गुण से परे होने के लिए श्रीकृष्ण भगवान ने कहा था। त्रयगुण से परे तुरंत होना नहीं होता। क्रमशः तामस इच्छा को छोड़ते हैं, राजस को छोड़ते हैं और सात्त्विक में आते हैं। और अंत में इसको भी छोड़कर निस्त्रैगुण्य हो जाते हैं।

संसार की वस्तुओं को त्यागने की इच्छा, फिर सात्त्विक इच्छा के त्यागने की इच्छा करो। उस इच्छा को भी छोड़ दो। इस तरह आगे बढ़ोगे। जबतक मन पर विजय नहीं है, तबतक इच्छा होती रहेगी। त्रयगुणातीत होने पर भी—संत होने पर भी, जबतक कोई संसार में रहेगा, संसार से सम्बन्ध रखेगा। संसार में रहकर संसार के सब कामों को छोड़कर रहे, असम्भव है। जैसे जाग्रत में काम करते हैं, उसके लिए इच्छा होती है। स्वप्न में भी इच्छा होती है, गहरी नींद में इच्छा नहीं होती, लेकिन हाथ-पैर का वा किसी अंग का संचालन गहरी नींद में होता है। किन्तु उस अवस्था में हाथ-पैर सिकोड़ने की इच्छा नहीं होती है। इसी तरह कर्म करके उसके फल की इच्छा संत लोग

नहीं करते। उनसे राजस और तामस कर्म नहीं होगा, सात्त्विक कर्म होगा।

जो मुमुक्षु हैं, उनको चाहिए कि इच्छा को रोकें, दमन करें। तामस इच्छा का त्याग करें। इसी तरह राजस कर्म का भी त्याग करें। सात्त्विक कर्म में बरतने पर भी सात्त्विकी इच्छा का त्याग करना चाहिए। यह पंथ—रास्ता कहने भर के लिए ही है कि ठीक है भी? रास्ता कहते हैं, चिह्न को—लकीर को। चाहे रास्ता चौड़ा हो वा चौड़ाई विहीन लम्बा हो। क्या है? वह लकीर है। इसी तरह जो मोक्ष का रास्ता है, वह लकीर है। लेकिन बहुत लम्बी लकीर है—चौड़ी लकीर नहीं है। रेखा के लिए पढ़े होंगे कि उसमें लम्बाई है, चौड़ाई नहीं। ठीक वैसा ही, जैसे विन्दु का स्थान है, परिमाण नहीं। लेकिन ऐसा विन्दु वा लकीर संसार में कोई देखा है? वह चश्मा जिसको पहनकर पतले-पतले अक्षरों को मोटे-मोटे रूप में देखता है, कितनी भी पतली लकीर खींचकर उस चश्मा से देखो, तो उसमें चौड़ाई मालूम होगी। संसार में ऐसी लकीर नहीं, जिसमें लम्बाई हो—चौड़ाई नहीं। ऐसी लकीर अन्दर का मार्ग है। मोक्ष में जाने का रास्ता लम्बा-ही-लम्बा है, चौड़ा नहीं।

एक तो रास्ता बनाते हैं, चलने के लिए, दूसरा रास्ता चलते-चलते बनता है। जिस पर चला जाए, वह रास्ता है। संसार के रास्ते पर सवारी और पैर चलता है। मोक्ष के रास्ते पर न सवारी चलती है और न पैर चलता है, उसपर मन चलता है।

संतों का ज्ञान अध्यात्म-ज्ञान छोड़कर नहीं रह सकता। अपने को समझो कि तुम कौन हो? तुम मन नहीं हो, शरीर नहीं हो। किन्तु कुछ ज्यादे पढ़े-लिखे लोग, जिनको आत्मा की स्थिति का ज्ञान नहीं होता, वे कहते हैं—'शरीर ही शरीर है, शरीर बनने से ऐसा कुछ हो गया है।' जिस विज्ञान से वे कुछ कहते-सुनते हैं, वह अध्यात्म से सम्बन्धित नहीं है। अध्यात्म-ज्ञान सिखाता है कि आत्मा अभिन्न है, अनात्मा भिन्न है। आत्मा और मन, इसको समझाने के लिए बहुत बात नहीं, थोड़ा कहना है। जैसे शरीर माया है, वैसे ही मन माया है। मन की बनावट माया से हुई है। इसका भी रहना नहीं होगा। शरीर के जीवन में मन और आत्मा का मिलाप है। ऐसा मिलाप कि जैसे दूध और घी का। दूध को देखो तो उसमें घी का पता नहीं। घी का काम दूध से नहीं होता और दूध का काम घी से नहीं होता। कोशिश करो तो दूध को मथकर घी अलग कर लोगे। तब जो काम घी से होगा, वह दूध से नहीं। यह प्रत्यक्ष देखोगे। दूध का छेना (पनीर) होगा, लेकिन घी का नहीं। उसी तरह मन और आत्मा के मेल से जो काम होता है, वह काम केवल मन या केवल आत्मा से होने योग्य नहीं है। मन और आत्मा का मिलाप है। बिना मन के हम काम नहीं करते। कहीं चलने के लिए, कुछ बोलने के लिए मन प्रेरण करता है। पहले मन चलेगा, पैर नहीं। संत कबीर साहब ने कहा है—

बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देश।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहै कबीर सन्देश।।

कहाँ से चलेगा? रास्ता शुरू कहाँ से होगा? जो जहाँ बैठा रहता है, वहीं से चलता है। यह मन कहाँ बैठा हुआ है?

इस तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।

—कबीर साहब

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।

'दीद' कहते हैं आँख को और 'दाना' कहते हैं तिल को। कैसे रास्ता पकड़ोगे? तो कहा—'खोलो

कपाट यह बाट सहजै मिलै।' जाग्रत में आँख में, स्वप्न में कण्ठ में, सुषुप्ति में हृदय में और तुरीय में मूर्द्धा में वासा होता है।

मोक्षमार्ग पर चलने के लिए जाग्रत अवस्था से चलना होगा। बाहर में संत-पंथ नहीं है, अन्दर में है। इसी पर मन चलता है। जो कोई यहाँ से चलना बताता है, ठीक बताता है, यह आज्ञाचक्र है। कोई कहे कि नीचे से क्यों नहीं चलो? तो नीचे से हठयोगी चलते हैं। नीचे में वे स्थान मानते हैं, जिसको मूलाधार चक्र कहते हैं, वे वहीं से आगे बढ़ते हैं। कोई कहते हैं कि पैर में भी तुम हो, वहीं से क्यों नहीं चलते? तो पैर से चलने के लिए कोई नहीं बताते। कोई मूलाधार से, कोई हृदय से और कोई आज्ञाचक्र से चलना बताते हैं। हृदय से चलनेवाले को मूलाधार से चलनेवाला कहता है कि मूलाधार से क्यों नहीं चलते? हृदय से चलनेवाला अन्य दूसरों से कहता है कि हृदय से क्यों नहीं चलते? आज्ञाचक्र से चलनेवाला कहता है कि जिस कर्म से तुम अपने को समेटोगे, वह कर्म हमारे पास भी है। क्या मूलाधार और क्या हृदय, सबसे समेटकर हम आज्ञाचक्र से चलते हैं। शिवजी ने कहा है कि 'पंच पद्मों का जो-जो फल पहले कहा, सो समस्त फल आपही इस आज्ञा कमल के ध्यान से प्राप्त हो जाएगा।'

यानि यानि हि प्रोक्तानि पंच पद्मे फलानि वै।
तानि सर्वानि सुतरामेतज्ज्ञानाद्भवन्ति हि।।

—शिव-संहिता

संतों ने यहीं से अन्तर का रास्ता बताया है। रास्ता ज्योति का है और शब्द का है।

n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक ३.९.१९६७ ई० को साप्ताहिक सत्संग के अवसर पर हुआ था।

२७६. स्वर्ग में भी पाँच प्रकार के विषय हैं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

सब लोगों को जानना चाहिए कि दुःख किसी को भी प्रिय नहीं, सभी को यह बहुत ही अप्रिय है। इसलिए दुःख से छूटने के वास्ते और सुख पाने के लिए मनुष्य दिन-रात जी-तोड़ परिश्रम करता रहता है। यह कोई अनुचित बात नहीं, किन्तु सुख को समझना चाहिए। जो विषय-सुख है, उसको सब कोई जानते हैं—भोगते हैं। विषय पाँच हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। इन विषयों का भोग सभी को होता है। इनमें फँसे हुए तथा इनमें सुख खोजनेवाले तमाम संसार के लोग हैं। परन्तु यह सुख ऐसा है कि कभी तृप्ति होती नहीं। जीवनभर भोगते-भोगते कभी तृप्ति नहीं। इन विषयों को कोई कम और कोई अधिक भोगते हैं। कम भोगनेवाले वा अधिक भोगनेवाले, कोई भी तृप्त नहीं हो सकते। जैसे भोजन करने पर तृप्ति मिलती है, फिर पच जाने पर भूख लगती है, फिर भोजन करने की इच्छा होती है। इसी तरह प्रत्येक भोग के लिए है। जैसे भोजन से क्षणिक तृप्ति आती है, उसी तरह और भोग भी क्षणिक तृप्तिदायक है।

ज्ञानियों ने कहा कि इस जीव के अनेक जन्म हुए। प्रत्येक योनियों में रहकर इन पाँच विषयों को भोगते चला आ रहा है, लेकिन तृप्ति नहीं होती। बिना तृप्ति के सुख कहाँ? इसलिए विषय की ओर

मत दौड़ो। दूसरे शरीरधारी जीव इस बात को नहीं समझता, लेकिन मनुष्य समझता है। स्वर्ग भी यदि प्राप्त हो सके, तो वह भी थोड़ा है। पुण्य भोग के बाद फिर इस संसार में आना पड़ता है। स्वर्ग में भी पाँच प्रकार के ही विषय हैं। वहाँ के सुख भी प्रत्येक को बराबर-बराबर नहीं है। स्वर्ग में सबसे विशेष सुख इन्द्र को है, लेकिन इन्द्र भी उस सुख से तृप्त नहीं है, इसका इतिहास है। उससे ऊपर विशेष सुख में ब्रह्मा हैं, लेकिन उनको भी उस भोग से तृप्ति नहीं है।

श्रीराम ने कहा है कि परलोक दो तरह के हैं। मनुष्य-शरीर छूटने पर वह जीव दो प्रकार का परलोक भोगता है। एक कर्मानुसार भोग भोगता है। भोग समाप्त होने पर इस संसार में जन्म लेना पड़ता है। दूसरा परलोक वह है, जहाँ परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

ईश्वर को पा लेने पर पूर्ण तृप्ति होती है। और भी सुख हो, इसके लिए तृष्णा मिट जाती है। तृष्णा छूट जाने पर जन्म-मरण का कारण ही छूट जाता है। जो ईश्वर तक पहुँच गया, उसको संसार में लौटना नहीं है। जैसे नदी समुद्र में मिलकर नदी का नाम मिट जाता है, उसी तरह जीव ईश्वर को प्राप्त करने पर उसका जीवत्व-भाव मिट जाता है। आत्मसुख उसको मिलता है, जो सुख ईश्वर को है। तन्द्रा अवस्था होती है, उसमें एक प्रकार का सुख है, जो पंच विषयों में से किसी विषय का सुख नहीं है, अपने अन्दर रहने का सुख है। उसमें ऐसा सुख है कि जो सुख बाहर के विषयों में नहीं है। तन्द्रा में किसी प्रकार का दुःख होता तो कोई सो नहीं सकता। गहरी नींद में जाने से अपने अन्दर ही ऐसा सुख मिलता है कि उसको कुछ खबर नहीं रहता। लेकिन अफसोस है कि वहाँ अपना ज्ञान नहीं रहता। निज सुख पंच विषयों से विलक्षण है। वहाँ अपने को पाकर सुखी होता है। मान लो वहाँ सुख है, ऐसा नहीं।

अपने अन्दर चलते-चलते ईश्वर तक जाता है। जो अन्दर में चलना नहीं जानता, वह ईश्वर की ओर नहीं जाता। जो अपने अन्दर चलना जानता है, वही ईश्वर की ओर जाता है। शरीर और इन्द्रियों के संग-संग जाने से पंच विषयों में रहना होगा। विलक्षण-सुख आत्म-सुख है। आत्मा क्या है? जो परमात्मा है। ब्रह्म-सुख, ईश्वर-प्राप्ति का सुख, आत्म-सुख एक ही बात है।

जो अन्दर-अन्दर चलता है, वह बाहर विषयों से छूटता जाता है। जैसे आप सो जाते हैं तो बाहर इन्द्रियों का संग छूट जाता है। बाहर की इन्द्रियों के संग छूटने से जो सुख होता है, वह इन्द्रियों के संग दौड़ने से नहीं होता। संसार में कहीं जाओ, किसी तारे पर चढ़ जाओ, मंगल ग्रह में चले जाओ, लेकिन विषय नहीं छूट सकता। विषयों से छूटता कौन है? पहले मन के साथ चेतन आत्मा, पीछे केवल चेतन आत्मा। यह वेदान्त-ज्ञान है। वेदान्त का अर्थ है—ज्ञान का अंत। यहीं तृप्ति है और कहीं नहीं। आत्मा की ओर जाना चाहिए, सुख के लिए। इन्द्रियों के साथ से छूटकर अन्दर चलने से सच्चा सुख होगा। जिस सुख से छूटा नहीं जाय, वह आत्म-सुख है। अन्दर-अन्दर चलने से होगा। यही सुख ईश्वर की प्राप्ति से होता है। जैसे मिश्री देखी जाती है और चिखी जाती है। मिष्टान्न देखा भी जाता है और चखा भी जाता है। उसी तरह ईश्वर देखा जाता है और चखा जाता है। 'चखा जाता है' का अर्थ है—उसको पाने से तृप्ति होती है। संसार के सुख का लोभी तो क्या बनना, स्वर्ग के सुख का भी लोभी नहीं बनो।

यह शरीर नाव है। जैसे नाव को ठीक-ठीक ले जाने के लिए मल्लाह होता है, उसी तरह शरीर

को ठीक से चलानेवाला, कुमार्ग से रोकनेवाला सच्चा गुरु है। सच्चा गुरु वह है, जो सत्य ज्ञान जानता है, उसमें बरतता है और दूसरे को भी कुमार्ग से बचाकर सत्मार्ग पर लगाता है।

ईश्वर तक पहुँचने पर ही वह सुख मिलेगा, जो कभी छूटता नहीं। बाहर-बाहर नहीं, अन्दर-अन्दर चलने का रास्ता जानना चाहिए और उस पर चलना चाहिए। यह रास्ता ईश्वर का बनाया हुआ है, आदमी का बनाया हुआ नहीं है। इस पर चलने के लिए पहले मन सहित चेतन आत्मा चलेगी, पीछे केवल चेतन आत्मा। उस रास्ता पर मन को समेटकर चलाने की विद्या 'योगविद्या' है।

किसी चीज को समेटो, तो वह चीज उसके विपरीत ओर को हो जाती है। मन पंच विषयों में लगा है, संसार में घूमता है। इसमें मन का सम्हाल करेगा, तो स्थूल पंच विषय छूट जाएँगे। पीछे पंच सूक्ष्म विषय भी छूटेंगे। हमारे यहाँ इसीलिए 'योग विद्या' है। 'योगविद्या' को किसी ने बनाया नहीं, खोज निकाला। जैसे मिट्टी तेल को बनाया नहीं, मिट्टी खोदकर निकाल लिया। ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग किसी ने बनाया नहीं, उसको खोजकर निकाला। स्थूल जप-ध्यान से मन का सिमटाव करो, यह सरल योग है। इसके आरम्भ का नाश नहीं होता, इसमें उलटा फल नहीं होता और यह महाभय से बचाता है। ये तीनों बातें गीता में हैं। महाभय क्या है? मनुष्य-शरीर सबसे विशेष शरीर है, देवता को भी दुर्लभ है। तब फिर बैल, बन्दर, पशु आदि का शरीर विशेष कैसे हो सकता है? मनुष्य-शरीर से नीचे गिरना महाभय है।

तुलसीकृत रामायण में कथा है कि एक भक्त पूजा कर रहा था। गुरु के आने पर उसने आदर नहीं किया—उठा नहीं, तो शिवजी ने शाप दिया कि तुम अजगर हो जाओगे। गुरु की प्रार्थना करने पर फिर शिवजी ने वरदान दिया। लोमश मुनि से विवाद करने पर मुनि ने शाप दिया कि तुम कौआ हो जाओ? फिर मुनि ने कृपा करके कहा कि तुम जो शरीर धारण करना चाहोगे, वह हो जाएगा। मनुष्य का शरीर ही है, जिससे मुक्ति मिलती है और ईश्वर मिलते हैं, अन्य किसी शरीर में नहीं।

भक्ति में योग है, वह सरल योग है। जप है और ध्यान है। इसका भेद गुरु से जानो। जो इसका आरम्भ करता है, उसको यह योग मनुष्य-शरीर से गिरने नहीं देता। लेकिन जो बिना गुरु से जाने अपने ही करते हैं, वे ठीक-ठीक नहीं जानते, न कर सकते हैं। योग से डरना नहीं है। योग सरल भी है और कठिन भी। जो लोग सरल योग नहीं जानते, वे योग का नाम सुनकर घबराते हैं। लोगों को चाहिए कि सरल योग को जाने और उसका अभ्यास करे। विषय सुख में नहीं फँसे।

संसार में रहकर बिना विषय-सेवन के कोई रह नहीं सकता। इसलिए संतों ने कहा है कि जैसे दवाई का सेवन करते हो, उसी प्रकार विषय को लो। उसमें आसक्ति नहीं रखो। ऐसा विश्वास मत करो कि इसमें तृप्ति होगी। गुरु से ज्ञान-ध्यान की बात जानो और संयम करो। संयम यह कि पाँच पापों से बचो अर्थात् झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करो, तो कोई पाप नहीं होगा। हिंसा के सिलसिले में मांस-मछली नहीं खाओ। मनुस्मृति मे अष्टघातक का वर्णन है। अर्थात् हिंसा के लिए आदेश देनेवाला, मारनेवाला, टुकड़ा-टुकड़ा करनेवाला, बेचनेवाला, खरीदनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला और खानेवाला; ये आठों घातक हैं। मत्स्य-मांस खाने का सम्बन्ध हिंसा से है। जैसे गाँजा-भाँग खाने का असर होता है, वैसे ही मत्स्य-मांस खाने का भी असर होता है। किसी नशा की ओर नहीं जाओ। व्यभिचार हमारे देश के

लिए ऐसा खराब है कि उसको निन्दा की ही दृष्टि से सब देखते हैं। पंच पापों से छूटकर रहो, तो चोरी, डकैती, धोखेबाजी; सभी छूट जाएँगे। अपने देश में स्वराज्य प्राप्त करने के लिए कितना बलिदान हुआ, स्वराज्य मिला। लेकिन चोरी, डकैती, बेइमानी, लूट आदि दुर्गुण कमे नहीं, बढ़ ही गए हैं। संत लोग कहते हैं कि पंच पापों से बचो, तो चोरी, डकैती आदि बुरे कर्म नहीं होंगे। सभी शान्तिपूर्वक रहेंगे। सब लोगों को संतों के बताए मार्ग पर चलना चाहिए। n

यह प्रवचन पूर्णियाँ जिलान्तर्गत ग्राम आजमपुर गोला में श्रीविश्वनाथ चौधरी के निवास पर दिनांक १.१२.१९६७ ई० के सत्संग में हुआ था।

२७७. सेवा का महत्त्व

प्यारे लोगो!

सत्संग में, खासकर प्रातःकाल के सत्संग में हमलोग ईश्वर की स्तुति अवश्य करें, संतों की स्तुति अवश्य करें, गुरु की स्तुति भी अवश्य करें। स्तुति करने से जिनकी स्तुति होती है, उनकी महिमा का वा बड़प्पन का ज्ञान होता है। इस ज्ञान से उनके प्रति श्रद्धा होती है। जिनके प्रति श्रद्धा होती है, उनके प्रति विश्वास होगा, उनके लिए प्रेम उत्पन्न होगा। उस प्रेम में हम उनसे लाभ पाते हैं। बिना मिट्टी के हम गंध नहीं पाते हैं। इसी तरह बिना श्रद्धा के धर्म नहीं हो सकता। ईश्वर पर विश्वास नहीं, तो धर्म नहीं। ईश्वर के प्रति विश्वास में ईश्वर स्थिति का बोध रहता है। यह बोध नहीं, तो धर्म नहीं। इसलिए ईश्वर की स्तुति अवश्य करनी चाहिए। जिनसे लोग उपकृत हों, तो चाहिए कि उपकारक की सेवा करें। उनके उपकार को नहीं माने तो हम कृतघ्न हैं। उपकार को नहीं माननेवाले को कृतघ्न कहते हैं। हम कहेंगे कि हमारे परमहित के लिए ईश्वर ने हमको पाँच तत्त्व दिये हैं। इन तत्त्वों से हम इतना लाभ उठाते हैं, जिसका अन्दाजा नहीं। ये सब ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त हैं। उनसे हम बहुत उपकृत हैं। उनकी सेवा करनी चाहिए।

जिसकी जो आवश्यकता होती है, उसे पूर्ण कर देना ही उसकी सेवा है। लेकिन ईश्वर को कोई आवश्यकता नहीं। ईश्वर को कुछ चाहिए, सो नहीं। सोने पर हमको हवा चाहिए। बिना हवा के हम कैसे रहेंगे? ईश्वर का यह कितना उपकार है कि हमको हवा मिलती है। हमको आवश्यकता है, लेकिन ईश्वर को नहीं। सारी प्रकृति मण्डल की ईश्वर ने रचना की है। इससे ईश्वर को कोई लाभ पहुँचावे, सो नहीं। महात्माओं ने बताया है ईश्वर की कुछ भी सेवा नहीं कर सकते हो तो उनका गुण या यश गाओ। खुशी, ना खुशी तो मनुष्यों के लिए है, जीवों के लिए है, ईश्वर के लिए नहीं। गंगा-स्नान से गंगा को कुछ भी लाभ नहीं। कुछ भी चढ़ाओ, गंगा को उससे प्रसन्नता नहीं। इसी तरह ईश्वर को प्रसन्नता नहीं होती। स्तुति में हम उसकी महिमा को पाते हैं। इसलिए हम उसकी ओर चलते हैं। ईश्वर की ओर इसलिए चलते हैं कि हम माया में दुःख पाते हैं।

इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त सुख, दुःख परिणामी है। परन्तु ईश्वर की ओर चलने से माया के सुख-दुःख से हम छूट जाते हैं। जिधर से माया नहीं, उधर को हम जाते हैं। इसलिए ईश्वर की आराधना होनी चाहिए। माँग के लिए ईश्वर से प्रार्थना करो। ऐसा कुछ माँगो, जो किसी से नहीं दिया जा सके।

ईश्वर से यही माँगो कि हे ईश्वर! आप अपना मुझे पहचान करा दो। हम आपको पहचान कर आपका स्वरूप ही हो जाएँगे। सांसारिक सुख मत माँगो।

जो सुख सुरपुर नरक गेह बन, आवत बिनहि बुलाये।
तेहि सुख लगि जतन करत नर, समुझत नहिं समुझाये।।

परमात्मा चेतन का भी चेतन है। वह अपरिमित शक्तिमय तथा अपरिमित ज्ञानमय है। बात यह है कि ईश्वर से माँगो, लेकिन वही माँगो, जो ईश्वर से मिले। ईश्वर सर्वसुखदाता है। वह सब कुछ दे सकता है। इस तरह से एकनिष्ठ भाव रखो। यदि ईश्वर के उपकार का कृतज्ञ बनोगे तो ईश्वर की स्तुति करो। इसीलिए हमलोग प्रातःकाल ईश-स्तुति करते हैं।

संत नहीं होते तो भगवान का ज्ञान नहीं होता। इसलिए संत-स्तुति करो। संत के बारे में कहते हैं कि भगवान से भी बढ़कर संत हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।।

जैसे समुद्र से बादल बनता है। बादल से वर्षा होती है। तमाम जीव उससे सुखी होते हैं। इसी तरह ईश्वर समुद्र है और संत बादल के समान, जिससे सभी जीव सुख पाते हैं। ईश्वर चन्दन हैं और संत हवा। हवा नहीं रहे तो सुगन्ध नहीं मिले। संत की बड़ी महिमा है। संत बड़े उपकारी होते हैं। गुरु के उपकार भी कम नहीं हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी हनुमानजी से प्रार्थना करते हैं—

जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरु देव की नाईं।।

यहाँ गुरु के सम्बन्ध में विशेष बात हुई। गुरु शिष्य को हर तरह से समझा-बुझाकर ठीक बनाते हैं। संतों की स्तुति भी करो, कुछ सेवा भी करो।

ऊँचा महल अगम पुर जहँवा, संत समागम होय।
जो कोइ पहुँचे वही नगरिया, आवागमन न होय।।
—कबीर साहब

संत की ओर चलना ईश्वर की ओर चलना एक ही बात है। दूसरी बात यह है कि हमलोग सिद्धान्त का पाठ करते हैं। जीवनभर बात जानते रहें तो भी बहुत जानने को रह ही जाती है। इतना अवश्य जानो, जिससे काम चले। धर्म की परिभाषा क्या है? जानो। धर्म का सिद्धान्त जानना चाहिए। जो सिद्धान्त को नहीं जानते, वे धर्म के अनुकूल चलेंगे। क्या ठीक है? सिद्धान्त में ईश्वर-स्वरूप का निर्णय है। ईश्वर स्वरूपतः क्या है? यह समझा दिया गया है। उसकी प्राप्ति कैसे होगी, सो भी समझा दिया गया है। आचरण कैसा होना चाहिए, सो भी समझा दिया गया है। इसलिए हमलोग सिद्धान्त और परिभाषा का नित्य पाठ करते हैं। सिद्धान्त को ही भूल जाए तो धर्म क्या है, अधर्म क्या है? नहीं जान सकते। जो लोग पढ़े-लिखे हैं, वे ग्रन्थ-पाठ करते हैं। जो लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे भी सत्संग में सुन-सुनकर याद कर लेते हैं। पहले तो सुनकर ही विद्या होती थी। भगवान बुद्ध के समय में भी लिखा नहीं जाता था। भगवान बुद्ध का शिष्य आनन्द पीछे सेवा में आए। भगवान बुद्ध के शरीर में बड़ा बल था। होते-होते जब बूढ़ापा आने लगा, तब सहारा चाहिए, तो आनन्द ने कहा—मैं आपकी सेवा करूँगा। लेकिन मुझे आठ वरदान दीजिए। १. आपको भिक्षा-पात्र में भोजन की जो सामग्री मिले, वह मुझको नहीं दें; क्योंकि आपके लिए लोग उत्तम और स्वादिष्ट भोजन देंगे। २. आपको जिस मकान में लोग रखे, वहाँ मुझे रहने नहीं कहें। ३. आपको कोई जो वस्त्र दे, वह मुझे नहीं दें। ४. आपको यदि कोई व्यक्तिगत निमंत्रण दे, तो उसमें हमको नहीं ले जाएँ। ५. आप जो कुछ उपदेश करें, यदि मैं वहाँ नहीं रहूँ तो मेरे आने पर वह उपदेश मुझे सुना दीजिए। ६. मुझको कोई निमंत्रण दे, यदि आपको भी मैं चलने कहूँ तो उसमें आप भी चलें।

७. आप जहाँ ठहरें, वहाँ जाने में मुझे कोई रोक नहीं हो। ८. यदि कोई बाहर से आवे, उनको आपसे मिलाने में कोई रोक नहीं हो।

देखिए, कितने उपकारी थे आनन्द। सारिपुत्र और मोद्गल्यायन भगवान बुद्ध के दाहिने-बायें हाथ थे। सारिपुत्र को एक ब्राह्मण ने एक कलछुल भात कभी दिलवाया था। बहुत दिनों के बाद ब्राह्मण के मन में भिक्षु बनने की इच्छा हुई। वे भगवान के पास आए। भगवान बुद्ध ने सारिपुत्र की ओर देखा और कहा कि देखो जी! इस ब्राह्मण से तुम कुछ उपकार पाए हो, क्या? सारिपुत्र ने कहा—हाँ, भगवन्! एक कलछुल भात इन्होंने मुझे दिलवाया था। सारिपुत्र के द्वारा ही वह ब्राह्मण भिक्षु बनाए गए। देखिए! थोड़ा भी उपकार को वे लोग मानते थे। जिससे जो उपकृत हो तो उस उपकार को मानना चाहिए। हमारे गुरु महाराज कहते थे—'जो दान करोगे, सो मिलेगा। ज्ञान दान करो तो ज्ञान मिलेगा। ज्ञान के समान कोई चीज नहीं है।

वेद के मंत्र में पाठ हुआ कि एकमत होकर बात बोलो। आपस में मिल-जुलकर रहो। सामूहिक रूप से ईश्वर की उपासना करो। एकमत होने से भारत के लोगों ने स्वराज्य पाया। जब सम्पूर्ण देशवासी एकमत हो गए तो अंग्रेजों को यहाँ से भागना पड़ा। जबतक देश में दुष्टकर्म होते रहेंगे, तबतक स्वराज्य में सुराज को नहीं पायेंगे। दुष्टकर्म को हटाइए तो सुराज का भोग मिलेगा। सिपाही कितनी भी रखिए, दुष्टकर्म नहीं मिटेगा। एकमत को बिगाड़ देता है, झूठ। झूठ छोड़ देने से एकमत होगा। एकमत के लिए ईश्वर की उपासना करो। सत्संग ईश्वर का रूप ही है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने सत्संग को ईश्वर का अंग कहा—

देहि सत्संग निज अंग श्री रंग भव भंग कारण शरण शोकहारी।।

ईश्वर उपासना एकमत होकर करो। उपासना में एकमत होना बहुत आवश्यक है।

गौ-रक्षा करो। गौ नहीं रहे तो आदमी के पास भोथा हथियार है। गौ-रक्षा का जहाँ बल है, वहाँ भोथा हथियार नहीं है। अन्न उपजाने के लिए गौ से खाद पाते हैं। वेद में आया है कि गौ की सेवा करो, कभी मारो मत। बूढ़े गाय, बैल की भी सेवा करो, बेचो मत। बूढ़े गाय, बैल भी खाद देते हैं। ■

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ५९वाँ अखिल भारतीय संतमत सत्संग के विशेषाधिवेशन, कुरसेला में दिनांक २४.१२.१९६७ ई० को सत्संग के प्रातःकाल में हुआ था।

२७८. माया का आक्रमण

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस सत्संग के द्वारा ईश्वर-भक्ति का प्रचार किया जा रहा है। संतों ने अपने वास्ते भजन किया और औरों के लिए भी भजन करने का तरीका बताया। इसी वास्ते हमारे गुरु महाराज भी उपदेश दे गए हैं कि 'सत्संग करो, भक्ति करो, भक्ति से मुक्ति होगी।' उनके आदेशानुसार सत्संग करना अनिवार्य हो गया है। इसलिए हमलोग दैनिक सत्संग, साप्ताहिक सत्संग, मासिक सत्संग, जिला अधिवेशन, वार्षिक अधिवेशन (जो देवरिया जिला में हो चुका है) तथा विशेषाधिवेशन करते हैं। यहाँ के लोगों ने इस विशेषाधिवेशन का तन, मन, धन से आयोजन किया है। यहाँ के रायबहादुर साहब भी सत्संग से प्रेम रखते हैं। अगर ऐसे विचार के लोग नहीं मिलते तो इस अधिवेशन का जो रूप देख रहे हैं, नहीं हो पाता। इसलिए मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि

इनके सहित सभी लोगों की बहुत-बहुत शुभ उन्नतियाँ हों। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है कि—

बिनु सत्संग भगति नहिं होई। ते तब मिलहिं द्रवहिं जब सोई।।

साधु-संत तथा सज्जन के सत्संग भी तब मिलते हैं, जब ईश्वर की कृपा होती है। सत्संग में पाँच बातें मिलते हैं।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई।।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ।।

यदि आपको ये पाँचों (अच्छी बुद्धि, यश, मोक्ष, भलपन, सम्पत्ति) मिल जाए, तो बाकी क्या रह जाए? यदि यह पाँचो मिल जाए तो वह मनुष्य पूर्ण सफल है। सत्संग द्वारा ये पाँचों मिलते हैं। संत वचन में श्रद्धा होनी चाहिए। उन्नति किसी तरह की हो, यदि उसके साथ में सत्संग हो तो बहुत उत्तम, जैसे सोना में सुगन्ध हो जाए। गति में ऐसी गति कि ईश्वर मिल जाए। स्वर्ग आदि तो बहुत कम है। सत्संग द्वारा निर्वाण पद मिलता है। इसलिए सत्संग अवश्य होना चाहिए। सत्संग में मूल चीज ईश्वर भक्ति है। जिस बारात में दुल्हा नहीं हो, वह बारात किस काम का?

संगति ही जरि जाव, न चरचा राम की।
दुलह बिना बारात, कहो किस काम की ।।

—कबीर साहब

योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

जिस ज्ञान में, जिस कर्म वा धर्म में ईश्वर-भक्ति प्रधान नहीं है, उसके लिए ही ऐसा कहा। हमलोगों को इसकी शंका बनी हुई है। राष्ट्र-राष्ट्र में मेल नहीं। दोनों तरफ से तैयारियाँ चल रही हैं। दोनों तरफ आशंकाएँ बनी हुई हैं। हमारे ओर से तो यही है कि दूसरे की चढ़ाई वा आक्रमण को रोकना। जिस देश पर चढ़ाई होती है, उस देश के लोग सुखी नहीं रहते। यह तो बाहर संसार की बात हुई। अब देखिए कि हमलोगों की बात क्या है? अपनी इच्छा पवित्र हो, इसके विपरीत तामस वृत्ति अधिक होती रहती है। वह चंचल और मूढ़ बना देती है। राजसी वृत्ति चंचल बना देती और तामसी मूढ़ बनाती है। ऐसा मालूम होता है कि हममें कोई अख्तियार नहीं है। राजा औरों पर शासन करता है और संत-साधु अपने पर हुकूमत करते हैं। संत-महात्मा अपने पर शासन रखते हैं, अपने को संयमित रखते हैं। अपने मन पर शासन करते हैं। सब इन्द्रियों से मन तथा मन से बुद्धि और बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ है। जिसको आत्म-ज्ञान होता है, उसको केवल मौखिक वा परोक्ष नहीं, अनुभव ज्ञान होता है। यह अनुभव ज्ञान समाधि में प्राप्त होता है। भौतिक ज्ञान अप्रत्यक्ष है। इसी को परोक्ष ज्ञान कहते हैं। योग के आरम्भ में, मध्य में अनुभव ज्ञान नहीं होता। जिनको आत्मज्ञान होता है, वही मन पर काबू पाता है। चेतन आत्मा को सुरत कहते हैं। सुरत का अर्थ अच्छी तरह रत होना भी होता है। तबतक सुरत परमात्म-स्वरूप का दर्शन नहीं कर पाती है, जबतक कि उसको अनुभव ज्ञान न हो। साधन करते समय जो ज्ञान होता है, वह निदिध्यास ज्ञान है।

हमलोग अपने पर शासन रखने में असमर्थ हैं। संत-महात्मा कहते हैं कि अपने मन को काबू करने की कोशिश करते चलो। जबतक अपने पर काबू नहीं, तबतक अपने को बना नहीं सकते। माया का आक्रमण हम पर हो गया है।

व्यापि रहेउ संसार महँ, माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट, दम्भ कपट पाखण्ड।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

तमाम संसार में माया की भयंकर सेना फैली हुई है। अपने अन्दर भी देखो तो काम, क्रोध, दम्भ, पाखण्डादि जो माया के सेनापति हैं, मौजूद हैं। इसके दबाव में हमलोग हैं। इसको दबावें तो किसके द्वारा? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

सो दासी रघुवीर कै, समुझै मिथ्या सोपि।
छूट न राम कृपा बिनु, नाथ कहहुँ पद रोपि।।

माया रघुवीर राम की दासी है। अगर समझ गए तो माया मिथ्या है। अद्वैतवाद का पोषण नहीं हो सकता, अगर माया मिथ्यात्ववाद को नहीं माना जाय। माया को मृग-तृष्णा का जल भी कहते हैं। जैसे रस्सी में सर्प का भान होता है, उसी तरह माया में ब्रह्म का भान होता है।

रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानुकर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल महँ, भ्रम न सकइ कोउ टारि।।

योगी कहते हैं कि अगर तुम स्वप्न में रहोगे तो माया के मिथ्यात्व को कैसे जानोगे?

सपने होइ भिखारी नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे हानि न लाभ कछु, तिमि प्रपंच जिय जोय।।

संसार में मोह की रात्रि फैली हुई है।

मोह निशा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।

लेकिन यह स्वप्न छूटे कैसे? तो कहा—

यहि जग जामिनि जागहिं जोगी...।

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।

योगी बाहर संसार से तो सो जाता है, मगर अन्दर से सचेत रहता है। ऐसा जो होता है, वह हरिपद के परम सुख को पाता है।

'सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।'
'सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।'

देश-कालातीत पद भी है। भौतिक विज्ञान देश-काल के ज्ञान के अन्दर है। यह योगियों का विज्ञान आधिभौतिक है। इसका प्रयोगशाला मानव शरीर है।

सृष्टि का सारा मण्डल ईश्वर का सगुण रूप है। ईश्वर सर्वव्यापक है, इसलिए सर्वरूप उनका ही है। भगवान श्रीकृष्ण भी ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर ध्यान करते थे। ये जो ऋद्धि-सिद्धि हैं, ये शक्तियाँ मोक्ष मार्ग में बाधक हैं। 'रिद्धि सिद्धि प्रेरई बहु भाई।'

ये कम दर्जे की चीज हैं। जो महान हैं, वे इन शक्तियों में नहीं फँसते। वे ईश्वर तक जाते हैं। इसके लिए कोशिश करते जाओ, बल मिलेगा। जो कोशिश करता है, उसको ईश्वर सहायता देते हैं।

जौं तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई।।

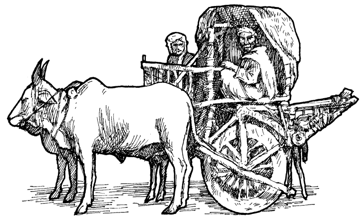

एक गाड़ीवान था, उसकी गाड़ी कीचड़ में फँस गई। वह हनुमानजी का भक्त था। वह हनुमानजी को पुकारने लगा। हनुमानजी वहाँ मनुष्य वेश में आए और गाड़ीवान से कहा—अरे! पहले अपना बल लगाओ, तब हनुमानजी सहायता करेंगे। गाड़ीवान ने वैसा ही किया। गाड़ी कीचड़ से निकल गई। इसी तरह अपने से अपने को आगे बढ़ाओ। कोशिश मत छोड़ो। योगाभ्यास करने में मन पहले भाग जाया करता है। बिजली की छटक की तरह होता रहता है। मन को एक जगह ठहराकर रखने के लिए जहाँ-जहाँ मन भागे, वहाँ-वहाँ से लौटाकर अपने लक्ष्य पर लगाओ। यही करो। यह सबके लिए होने योग्य है। प्रत्याहार करते-करते अल्प ठहराव होता है। इस अल्प ठहराव को धारणा कहते हैं। इसके बाद ध्यान होता है। मन को कहाँ लगावें, इसका भी ज्ञान होना चाहिए। ईश्वर-भक्ति में हमको अपना लाभ है, ईश्वर को कुछ भी लाभ नहीं है। लोग कहते हैं कि यह ज्ञान सबको कहते हैं? मैं कहता हूँ कि किसी का दोस्त बनो, किसी का नहीं, सो क्यों?

n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ५९वाँ अखिल भारतीय संतमत सत्संग के विशेषाधिवेशन, कुरसेला (कटिहार) में दिनांक २४.१२.१९६७ ई० को सत्संग के अपराह्नकाल में हुआ था।

२७९. निर्गुण पा लेने का ज्ञान

प्यारी जनता!

आपको कल से ही विदित है कि इस सत्संग के द्वारा ईश्वर-भक्ति का प्रचार होता है। ईश्वर-भक्ति जानने के लिए कुछ ग्रन्थपाठ अवश्य होना चाहिए। ईश्वर-भक्ति में पहली बात यह है कि किस लाभ के लिए ईश्वर-भक्ति करो। आप अपने सारे क्लेशों से निवृत्त होना चाहते हैं, इसी के वास्ते ईश्वर की भक्ति है।

वारि मथे घृत होय बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धांत अपेल।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

संसार के दुःखों से बिल्कुल परे हो जाना, यही ईश्वर की भक्ति है। बिना भक्ति के दुःखों से कोई छूट नहीं सकता है। जितने यत्नवान लोग हुए, उनलोगों ने खूब सोचकर यही बात निकाली कि ईश्वर-भक्ति से ही दुःखों से छूट सकते हैं। ईश्वर के पास दुःख नाम का कुछ है ही नहीं। जिस सुख के साथ दुःख है, वह सुख ईश्वर के पास नहीं है। वहाँ दुःख का अत्यन्त अभाव है, लेशमात्र भी दुःख नहीं है। किसी हालत में ईश्वर के पास दुःख नहीं। ऐसे ईश्वर से जो मिले, वह सुख-स्वरूप हो जाए। संसार में ऐसा किसी को नहीं जाना गया, जो सुख के पीछे नहीं दौड़ा हो। साधु-संत असली सुख को जानते हैं। ये लोग असली सुख के पीछे दौड़े। अधिकांश लोग सांसारिक सुख के पीछे दौड़े। जो असली सुख को जानते हैं, वे उसके पीछे जाते हैं। जो असली सुख को प्राप्त कर लेते हैं, उनका फिर सुख पाने की इच्छा नहीं रहती। सूरदासजी कहते हैं कि—

परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।

यह ईश्वर-प्राप्ति का जो स्वाद है, वही परम स्वाद है। इसको सभी नहीं जानते। इन्द्रियों में जो स्वाद होता है, वह तो सभी जानते हैं। इन स्वादों में संतुष्टि नहीं। इसका स्वाद तृष्णा को बढ़ानेवाला है। पंच ज्ञानेन्द्रियों का स्वाद मन को अच्छा लगा, सो स्वाद है। मन-बुद्धि के परे एक ही चीज है—चेतन आत्मा। केवल चेतन आत्मा को जो स्वाद मिलता है, वह परम स्वाद है। वह परम स्वाद परमात्मा का स्वरूप ही है।

कुछ लोग कहते हैं कि मैं स्वयं सुख-स्वरूप हूँ। मैं कहता हूँ—जब तुम सुख स्वरूप हो, तो फिर सुख की चर्चा क्यों करते हो? केवल कहने से कुछ नहीं होता है। सुख-स्वरूप होने का अधिकारी वही है, जो अपने को शरीर और इन्द्रियों से हटाकर अपने को पहचान लिया हो। उस सुख को पाने के लिए ईश्वर की भक्ति करो। ईश्वर-भक्ति के बारे में पहले ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। जो ईश्वर-स्वरूप को जाने बिना भक्ति में चलता है, वह उस यात्री के समान है, जो अपना निर्दिष्ट स्थान जाने बिना चल रहा है। उसको पता नहीं कि कहाँ जाना है? बहुत थोड़े में समझने के लिए यह जानना चाहिए कि इन्द्रियों के ज्ञान में जो आते हैं, वे सब बदलनेवाले हैं। बदलनेवाले नाशवान होते हैं। ईश्वर का स्वरूप नहीं बदलता। इसलिए वह नाशवान नहीं। जो बदलते हैं, वह नाशवान होते हैं। जो बदलता नहीं, वह इन्द्रियों के ज्ञान में आने योग्य नहीं है। जो केवल चेतन आत्मा के

पहचान में आवे, उसी को ईश्वर कहते हैं।

हमारा देश आस्तिक देश है। परन्तु ईश्वर कहकर क्या मानें, इस ज्ञान से बहुत लोग दूर हैं। सब में ईश्वर है। लेकिन आपस में लोग लड़ते-झगड़ते हैं। ईश्वर एक-ही-एक है। इन्द्रियगम्य रूप अनेक हैं। उसके रूप के अन्दर सारतत्त्व क्या है? जिस सार तत्त्व के होने से अनेक को ईश्वर मानते हैं? जबतक वह पहचान में नहीं आता, तबतक ईश्वर-ईश्वर कहते रहिए, पहचान नहीं होगा। इन्द्रियगम्य पदार्थ को ईश्वर मानना और इन्द्रियगम्य पदार्थ में ईश्वर है, एक ही बात नहीं है। घर में आपका शरीर है, घर और शरीर एक तो नहीं हो गया? इसी तरह आप और आपका शरीर एक नहीं है। पत्थर को सोना कहकर मानिए तो पत्थर सोना का काम दे दे, तो ठीक है; सो तो होता नहीं। असली तत्त्व की पहचान करना चाहिए। इसके लिए ईश्वर की भक्ति चाहिए। ईश्वर में बहुत संतुष्टि है। वहाँ तृष्णा नहीं। वह मन, वाणी को अगम अगोचर है। मन के लिए जानने योग्य नहीं। मन वहाँ तक पहुँच नहीं सकता। वह अगम है, अप्रत्यक्ष है। जिसको वह ईश्वर मिल जाता है, वह नित्यानन्द को पाता है। ईश्वर के स्वरूप के बारे में यह याद रखें।

निर्गुण कहने से गुण रहित का बोध होता है। इसमें एक तत्त्व मालूम होता है। सगुण कहने से दो चीज मालूम होती है। किसी को कहा जाय, वह वस्त्र-विहीन है। वस्त्र और जिसके साथ वस्त्र है, दो का बोध होता है। इसी तरह निर्गुण कहने से एक-ही-एक का बोध होता है और सगुण कहने से मालूम होता है कि गुण के साथ है। यहाँ गुण का अर्थ है स्वभाव। उत्पन्न करने का स्वभाव रजोगुण में है, पालने करने का स्वभाव सतोगुण है और नाश करने का स्वभाव तमोगुण में है। यहाँ जो कुछ पाते हैं, वे तीन गुणों के साथ हैं। जो तीन गुणों को धारण करता है, वह कभी उत्पन्न नहीं होता।

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

तीन गुणों के कारण जिनकी स्थिति नहीं है, वह एक-ही-एक है। तीन गुणों के साथ सगुण और तीन गुणों से छूटकर निर्गुण रहता है। दोनों का एक संग हो गया, वह निर्गुण ही सगुण कहलाया। आपका शरीर सगुण है। आप स्वयं निर्गुण हैं। सगुण रूप शरीर में निर्गुण को पा सकते हैं। इसलिए जो ईश्वर को पाना चाहते हैं, वे अपने शरीर में ही पा लेते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो ।।

गोस्वामी तुलसीदासजी को अपने अन्दर में ईश्वर प्राप्त हुआ तो कहा कि अपने हृदय में ईश्वर को नहीं खोजकर बाहर-बाहर विकल होते रहे। दोहावली में उन्होंने कहा है—

हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ।।

अर्थात् हृदय में निर्गुण है, आँखों से जो देखा जाता है, वह सगुण है। अपने अन्दर में यदि खोजो तो ईश्वर को पाओगे। यदि किसी दिव्य-शरीर को कहो कि यही ईश्वर है तो वह गलत है। दूसरे के अन्दर खोजो यह नहीं हो सकता है। अपने शरीर के अंदर खोजो तो ईश्वर का दर्शन होगा। जो अपने अन्दर नहीं पा सकता, वह किसी में नहीं पा सकता। निर्गुण को जो अपने अन्दर पा लेता है, उसको सबमें निर्गुण पा लेने का ज्ञान हो जाता है। इस बात को नहीं जानकर जो लोग भक्ति में जाते हैं, वह बाहर-ही-बाहर जाते हैं। जैसे मृगा के नाभि में कस्तूरी रहती है, लेकिन वह बाहर-ही-बाहर घास, पात, बिल, वृक्षादि में खोजता है। ऐसी

भक्ति होनी चाहिए, जिस भक्ति से अपने अन्दर में ईश्वर को प्राप्त किया जाए। अपने में प्राप्त करने पर सबमें ईश्वर को पाएँगे। ईश्वर के बारे में अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। बिना समझे जो भक्ति में जाते हैं, वह ठीक जाते हैं, कहा नहीं जा सकता। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ५९वाँ अ० भा० संतमत सत्संग का वार्षिक विशेषाधिवेशन, कुरसेला (कटिहार) में दिनांक २५.१२.१९६७ ई० को सत्संग के प्रातःकाल में हुआ था।

२८०. लोग रूप उपासना को ईश्वर उपासना मानते हैं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

अपना देश सदा आस्तिकता को माननेवाला होता चला आ रहा है। ईश्वर की मान्यता यहाँ के लोगों को पसन्द है। इस्लाम, ईसाई आदि भी आस्तिक हैं। यह बड़ी अच्छी बात है। अपने देश में ईश्वर का ज्ञान कम गया है। लोग मन्दिरों में भगवान के दर्शन के लिए जाते हैं। किसी मन्दिर में राम की मूर्ति स्थापित है, किसी मन्दिर में कृष्ण की मूर्ति है तो किसी में शिव की, किसी में लक्ष्मी की तो किसी में दुर्गा आदि देवियों की मूर्तियाँ हैं। लोगों के मन में होता है कि यही ईश्वर हैं, ईश्वरियाँ हैं। इसके बाहरी रंग-रूप को देखते हैं तो इसी में विश्वास करते हैं कि यही वह है। यहाँ समझना चाहिए कि ईश्वर एक से अधिक नहीं है। वह भिन्न-भिन्न रूपों में व्यापक है। **लोग रूप उपासना को ईश्वर की उपासना मानते हैं।** अनेक रूपों में अनेक ईश्वर को माननेवाले आपस में मतभेद रखते हैं। सब रूपों में एक ही ईश्वर, अनेक रूप ईश्वर नहीं। अनेक रूपों को धारण करनेवाला एक-ही-एक ईश्वर है। इसको ठीक-ठीक समझिए तो यह विश्वास हो जाएगा कि अनेक रूप ईश्वर के हैं। जैसे अनेक कपड़े को राजा पहनता है, ऐसी ही बात समझिए। रामायण में लोग पढ़ते हैं कि—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
जथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

इस पर खूब मनन कीजिए। एक नाटककार राजा हरिश्चन्द्र बनता है। जो हरिश्चन्द्र बनता है, वह हरिश्चन्द्र नहीं है। इसी तरह अनेक रूपों में एक ही ईश्वर है। सब रूपों को धारण करनेवाला भिन्न ही रह गया। इस तरह समझना है कि एक-ही-एक जो सबमें है, ऐसा ईश्वर है या नहीं? इन्द्रियों के ज्ञान में आनेवाला माया है। लक्ष्मणजी से भगवान राम कहते हैं—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

मानवरूप कभी चिदानन्दमय नहीं हो सकता। 'चिदानन्दमय देह तुम्हारी विगत विकार जान अधिकारी।' इसको अधिकारी ही जानते हैं। अधिकारी कौन होते हैं? **'योगिन्ह परम तत्त्वमय भासा।'**

अर्थात् योगी जानते हैं। चिदानन्दमय रूप जानने का अधिकारी योगी होते हैं। चिदानन्दमय रूप को जानने के वास्ते मायिक आवरणों को पार करना होगा। चिदानन्दमय रूप मायिक नहीं। चेतन आत्मा ही चिदानन्दमय रूप है। जो कोई योगी होता है, वह अपने शरीर में ऐसा भजन करता है, जिससे उसका जड़-चेतन का संग छूट जाता है। वह ज्ञान रखता है कि यह जड़ है, यह चेतन है। उसको यह प्रत्यक्ष ज्ञान

होता है। परमात्मा सब रूपों, सब शरीरों में व्यापक होते हुए, सब रूपों तथा सब शरीरों से परे है।

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।

परमात्मा प्रकृति में व्यापक होकर उसमें मर्यादित नहीं हो जाता, बल्कि उससे परे भी है। ऐसा एक-ही-एक हो सकता है। ईश्वर कभी नहीं हुआ है, वह हई है। वह देश-कालातीत है। सबसे पहले का क्या है? सबसे पहले का वही हो सकता है, जिसके पहले का कुछ नहीं हो, जिसके स्वरूप के बाहर कुछ नहीं हो। उसके बराबरी का दूसरा कुछ नहीं हो सकता। अगर उसके बराबरी का दूसरा हो, तो दो के बीच में अवकाश अवश्य होगा। इस तरह वह अनन्त नहीं हो सकता। वह एक-ही-एक परम सनातन, परम पुरातन है। जो परम प्राचीन, परम पुरातन है वा परम सनातन है, वही परमात्मा है। ईश्वर सबके पहले का होने के कारण आदि-अन्त-रहित है। जो सबसे विशेष सूक्ष्म होता है, वह अपने से स्थूल में स्वाभाविक ही व्यापक होता है। सबके अन्दर सबके बाहर एक ही ईश्वर व्यापक है।

यह जानना चाहिए कि जीवित शरीर में जो ज्ञान है, वह इन्द्रियों का निजी ज्ञान नहीं है। ईश्वर सबसे विशेष सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियों से ग्रहण होने योग्य नहीं है। ईश्वर सबसे प्रथम का है, इसी कारण से वह आदि-अन्त-रहित है। ईश्वर-स्वरूप के बारे में यह अवश्य कहा जाएगा कि उसका मण्डल इतना बड़ा है—जिसका आदि-अन्त नहीं है। वह आदि-अन्त-रहित है। अपरिमित शक्तियुक्त होने के कारण उसपर शासन कोई नहीं कर सकता। उसमें ज्ञान की कमी नहीं, ईश्वर स्वरूपतः ऐसा है। सबसे अधिक व्यापक होने के कारण वह सबसे अधिक सूक्ष्म है। वह सम्पूर्ण चराचर में व्यापक है और उससे परे भी है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

—कठोपनिषद्, अध्याय २, वल्ली २

अर्थात् ईश्वर सब रूप—क्या पिण्ड, क्या ब्रह्माण्ड, सबमें व्यापक होते हुए सबसे बाहर भी है। जिसके ज्ञान का अन्त नहीं, जिसकी शक्ति का अंत नहीं, वही ईश्वर है। ईश्वर ऐसा नहीं है कि जिसे अपने तईं का ज्ञान नहीं होता। अनेक जीवों के समूह को ईश्वर मानना, यह सिद्धांत ठीक नहीं है। इसी को समझाने के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है कि सौ करोड़ कामदेव के समान सुन्दरता ईश्वर में है। '**राम काम सत कोटि सुभग तन।**'

यह सुन्दरता शरीर राम की नहीं, शरीर में व्यापक राम की है। यहाँ की सुन्दरता के लिए लोग जेवर-वस्त्र पहनाकर सुन्दर बनाते हैं। ईश्वर को कोई जेवर-वस्त्र नहीं, फिर भी करोड़ कामदेव से बढ़कर सुन्दर है। आप अपने सुन्दरता को नहीं जानते हैं। जैसे-जैसे माया के आवरण आपके ऊपर से उतरते जाएँगे, वैसे-वैसे आपकी सुन्दरता बढ़ती जाएगी। उस सुन्दरता के सामने बाहर की सुन्दरता कुछ नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

'**नभ सत कोटि अमित अवकासा।**'

इसपर ध्यान दीजिए। कोई एक शरीर में इतना फैलाव हो सकता है? गोस्वामीजी इस तरह समझाते हुए राम के स्वरूप को निर्विषय कर देते हैं। 'सत कोटि' कहते-कहते उनको संतुष्टि नहीं हुई, इसलिए कहा राम की कोई उपमा नहीं।

निरुपम न उपमा आन, राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम, रवि कहत अति लघुता लहै।।

—रामचरितमानस

जैसे सौ करोड़ जुगनु को सूर्य के बराबरी में कहा जाय तो सूर्य की बहुत बड़ी हीनता होगी। इसी तरह असंख्य विष्णु, ब्रह्मा, रूद्र आदि के तुल्य ईश्वर को कहने से ईश्वर की हीनता होती है। ईश्वर

सबसे विशेष सूक्ष्म है। इसीलिए वह अगोचर है।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

—रामचरितमानस

अपने को पहचानो कि अपने क्या हो? तुम सत्य हो। तुम्हारा माया में विखार हो गया है। इस विखार के कारण अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। अपने को समेटकर अपने अन्दर में चलो।

इन्द्रियाँ माया से बनी है। इसलिए वह माया को ही जानने में समर्थ है। मायिक आवरण हट जाए तब जो ज्ञान होगा, वह दूसरा ज्ञान होगा। ईश्वर इन्द्रियातीत है। इन्द्रियातीत होने के कारण वह चेतन आत्मा के ज्ञान में आने योग्य है, दूसरे को नहीं। इन्द्रियों का ज्ञान छोड़कर निजी ज्ञान में रहकर ईश्वर को पहचान सकता है। उसकी पहचान माया के अन्दर नहीं हो सकता। ईश्वर का दर्शन करने के लिए बाहर संसार में कहीं जाएगा, वह शरीर और इन्द्रियों के साथ जाएगा। इन्द्रियों का संग छोड़कर चलना ही अपने तईं में अपने को रखना है। देह और इन्द्रियों का संग छोड़ने के लिए चलिए, जहाँ ईश्वर का दर्शन हो। असल में पूरी भक्ति यही है। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ५९वाँ अ० भा० संतमत सत्संग का वार्षिक विशेषाधिवेशन, कुरसेला (कटिहार) में दिनांक २५.१२.१९६७ ई० के अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२८१. संतमत की विलक्षण बात

प्यारे लोगो!

संतमत की विलक्षणता का क्या कहना है। संतमत ईश्वर के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान देता है। संतमत बतलाता है कि ईश्वर को कहाँ पाओगे? संतमत बतला देता है कि ईश्वर को पाने के लिए क्या अवलम्ब चाहिए। वह अवलम्ब बाहर से ढूँढ़ लाना है, सो नहीं। संतमत उस अवलम्ब को बतला देता है, जो तुम्हारे अन्दर है। संतमत उस आचरण को बतला देता है, जिस आचरण में चलकर उस अवलम्ब को पा सको, जिससे तुम परम मोक्ष वा परम कल्याण को पा लो। संतमत यह ज्ञान देता है कि इन्द्रियों से जो कुछ जानने में आवे, वह माया है। इन्द्रियों के ज्ञान में जो नहीं आता, जो इसके ज्ञान से बहुत दूर ऊँचा है, वह ईश्वर है। ईश्वर इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आता। परन्तु आपके निजी ज्ञान में आ सकता है। ईश्वर को आप निजी ज्ञान में प्रत्यक्ष जान सकते हैं। जैसे दृश्य वह है, जिसे आँख से देख सको। रस वह है, जिसे जिभ्या से लो। स्पर्श वह है, जिसे त्वचा से ग्रहण करो। शब्द वह है, जिसे कान से सुनो। गन्ध वह है, जिसे नाक से ग्रहण करो। इसी तरह ईश्वर वह है, जो चेतन आत्मा के ज्ञान में आवे।

इन्द्रियों से उच्च मन है, मन से उच्च बुद्धि, बुद्धि से भी उच्च जड़ प्रकृति और उससे भी उच्च आत्मा है। संतमत इन सबको बतला देता है। जड़ प्रकृति अपने स्वरूप में अव्यक्त है। उसी से यह व्यक्त संसार बना है। गीता में दो प्रकृतियों का वर्णन है—अपरा (जड़) और परा (चेतन)। इन दोनों प्रकृतियों से उच्च पुरुषोत्तम है। आत्मतत्त्व पर पहला आवरण ज्ञानमय है। चेतन प्रकृति रूपान्तरित नहीं होती। वह बहुत सूक्ष्म आवरण है। जैसे ऐने की आलमारी में जो कुछ रखा रहता है, वह बाहर से

दिखाई पड़ता है। इसी तरह चेतन आत्मा की आड़ में ईश्वर नहीं छिप सकता। चेतन आत्मा को ही सच्चिदानन्दघन कहा गया है। यह साफ-साफ बतला देता है, संतमत।

बहुत-सी बातें लोगों को याद नहीं रहती है। इसलिए थोड़े में संतों ने कहा—आँख बन्द करो, तो अन्धकार होगा। तुम्हारे अन्दर प्रकाश है। यदि अन्दर में प्रकाश नहीं होता, तो बाहरी प्रकाश को नहीं देख पाते। सजातीय पदार्थ को सजातीय पदार्थ से सहायता मिलती है। यह जो बाहर की चीजें हम देख रहे हैं, यदि आँख में देखने की शक्ति नहीं होती तो देखने की चीजों को नहीं देख सकते। घोर अंधकार है। कोई रोशनी नहीं है। यहाँ आँख मौजूद रहते हुए भी अंधकार में पड़े हैं। प्रकाश हो गया तो आँख से सारे पदार्थों को देखने लग गए। आपकी आँखों में ज्योति है, इसलिए देह गरम है। गरमी प्रकाश से होती है। प्रत्यक्ष देखने की युक्ति जानकर देखिए तो प्रकाश है। बाहर देखना बिल्कुल छोड़ दो। अन्दर में देखने की विधि जानो। श्रद्धालु के लिए सद्ग्रन्थ झूठा नहीं। एकान्त होकर बैठिए। अन्दर में तीन परदे हैं—अन्धकार, प्रकाश और शब्द। इन तीनों परदों के अन्दर माया का पसार है। तीनों परदों को पार करो, तो ईश्वर-दर्शन होगा। इसलिए संत दादू दयालजी ने कहा—

अविगत अंत अंत अंतर पट, अगम अगाध अगोई।
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई।।

अन्तर पट के अन्त में सर्वव्यापक परमात्मा है। अंधकार में शून्य है, प्रकाश में शून्य है और शब्द आकाश का गुण ही है। तीनों परदों को पार करने पर ईश्वर छिपा नहीं रहता। जहाँ तक ये तीनों हैं, वहाँ तक माया है। अन्धकार में तामस माया, प्रकाश में राजस माया और शब्द में सात्त्विक माया है। आपको इन तीनों के परे जाना है। अन्तर पट के अन्त में पहुँचिए। माया का सारा पसार इन तीनों के अन्दर है। संतमत यह समझाता है।

सृष्टि के आदि में सबसे पहले शब्द हुआ। किसी चीज की बनावट कम्प से होता है। कम्प शब्दमय होता है और शब्द कम्पमय होता है। यह ज्ञान पढ़न्त विद्या में नहीं है। यह साधन में है—योग विद्या में है। सबसे पहले शब्द हुआ। शुरू से आखिर तक उस शब्द की धारा मौजूद है। सबको ज्ञान होता है कि हम शरीर के अन्दर हैं। शरीर के अन्दर अन्धकार में हैं, आँख बन्द करके देखिए।

पहले बिजली चमकती है, तब ठनके की आवाज होती है। साधन में भी पहले देखो, तब सुनो। देखने की विद्या को शाम्भवी मुद्रा वा वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। पहले इसको पकड़ो, तब जो शब्द होता है, सो पकड़ो। संतमत बतला देता है कि ज्योति और शब्द वह अवलम्ब है, जिसके सहारे ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। शब्द को पकड़ने के लिए ज्योति का साधन है और ज्योति को भी पकड़ने के लिए कुछ रूप का ध्यान तथा कुछ जप कर लो। मानस जप, मानस ध्यान में अन्तःकरण शुद्ध होता है। ईश्वर चेतन आत्मा से ग्रहण होने योग्य है। संतमत में यही विलक्षण बात है। मोटी-मोटी तथा अपवित्र चीजों को हटाते जाओ और सूक्ष्म तथा पवित्र चीजों को पकड़ते जाओ। अन्दर की मलिनता को हटाते जाओ और अन्दर की अनुभूति को पकड़ते जाओ। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ५९वाँ अ० भा० संतमत सत्संग का वार्षिक विशेषाधिवेशन, कुरसेला (कटिहार) में दिनांक २६.१२.१९६७ ई० को सत्संग के प्रातःकाल में हुआ था।

२८२. सगुण उपासना के बाद ही निर्गुण तत्त्व की प्राप्ति

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस समय मैं ईश्वर-भक्ति के बारे में कहूँगा। ईश्वर-भक्ति के बारे में जानने के लिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान चाहिए। इन्द्रियों से नहीं, चेतन आत्मा से ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होगा। ईश्वर का स्वरूप वही है, जो चेतन आत्मा से पहचानने में आता है। चेतन आत्मा को यह ज्ञान प्रत्यक्ष हो जाता है। ईश्वर-भक्ति में यही विशेष बात है। भक्त ईश्वर का दर्शन अवश्य चाहता है। सर्व इच्छाओं को तिलांजलि देकर ईश्वर का दर्शन वह चाहता है। ईश्वर-दर्शन के वास्ते जो काम करना है, वही ईश्वर की भक्ति है। पहला काम यही है कि ज्ञान प्राप्त करो। केवल सांसारिक ज्ञान नहीं। सांसारिक ज्ञान के सहित अध्यात्म-ज्ञान भी प्राप्त करो। अध्यात्म-ज्ञान के बिना ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। यह ठीक है कि ईश्वर अव्यक्त है। अव्यक्त में मन लगाया जा सकता है। किस तरह? इस पर एक कथा सुनिए—महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका था। राजा युधिष्ठिर बहुत रोता था। वह कहता था कि मैंने युद्ध करके बहुत बड़ा पाप किया। इस युद्ध में बूढ़े-बच्चे सब मारे गए। आपस में लड़कर ठूँठ हो गए। इसलिए अब हमें जंगल में जाकर तप करना चाहिए। भगवान कृष्ण तथा व्यासजी ने बहुत समझाया। लेकिन युधिष्ठिरजी को बोध नहीं होता था। तब व्यासजी ने सोचा कि इसका मन दूसरी ओर लगाना चाहिए। व्यासजी ने कहा—'तुम अश्वमेध यज्ञ करो।' युधिष्ठिर ने कहा—'हमारे पास धन कहाँ? धन तो सब युद्ध में समाप्त हो गए।' व्यासजी ने कहा—'तुम नहीं जानते हो, तुम्हारे लिए धन अव्यक्त है। राजा मरुत ने यज्ञ किया था, उसमें उन्होंने इतना दान दिया था कि लोग ले जा नहीं सके। तब उस धन को उनलोगों ने पहाड़ में गाड़ दिया। उस धन को मैं जानता हूँ।' युधिष्ठिर को उस धन के पाने का अनुष्ठान और रास्ता बतला दिया गया। उसने उस धन को प्राप्त किया। पहले युधिष्ठिर के लिए वह धन अव्यक्त था, व्यासजी के वचन पर विश्वास कर धन को प्राप्त किया। अव्यक्त परमात्मा में भी मन ऐसे ही लगाया जाता है। संत इसको जानते हैं। ईश्वर-स्वरूप जो अव्यक्त है, वह भक्ति से व्यक्त होता है।

जबतक सद्‌ग्रन्थों तथा संतों में विश्वास नहीं किया जाएगा, तबतक धर्म को कोई नहीं जान सकता। विश्वास ऐसा कि कभी हिले-डोले नहीं। वह ईश्वर का स्वरूप रूपी धन अभी अव्यक्त है जो भक्ति से व्यक्त हो जाएगा। इससे यह निचोड़ निकलता है कि इन्द्रिय और शरीर से ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता। अपने को जड़-विहीन करके—केवल चेतन-ही-चेतन रहे, तब अव्यक्त हो जाएगा कि यह ईश्वर है। यदि भक्ति का फल परम मोक्ष चाहते हो तो यही काम करो। पहले तो अपने को और अपने शरीर को भिन्न-भिन्न करके जानना मुश्किल होता है। बहुत लोग कहते हैं कि हम तो जड़ से विहीन ही हैं। हमको तो स्वरूप का ज्ञान प्राप्त ही है। उनसे मैं कहता हूँ—'हे ज्ञानवान पुरुष! आपको ज्ञान प्राप्त ही है, तो आपको भूख और प्यास क्यों लगती है?' यहाँ तक कि पेशाब और पैखाना भी लगता है। ऐसे ज्ञान से कोई लाभ नहीं। खाली मन-ही-मन खीर बनाकर खा लेना कहाँ तक यथार्थ है? अन्धेरी रात में बैठकर केवल चिराग की बात करने से प्रकाश होगा?

तेल तूल पावक पुट भरि धरि, बनै न दिया प्रकासत।
कहत बनाय दीप की बातें, कैसे हो तम नासत।।
—संत सूरदासजी

इसलिए यत्न करना होगा। इन्द्रियों के ज्ञान से चेतन आत्मा का निजी ज्ञान भिन्न है। सुस्त बनने से वा साधन-विहीन होकर रहने से निजी लाभ नहीं होगा। जैसा संत लोग बताते हैं, वैसा करो। संतों ने जो रास्ता बताया है, वह व्यक्त-ही-व्यक्त है। साधक पहले स्थूल व्यक्त को जानता है, तब सूक्ष्म व्यक्त को जानता है। संत के कहे अनुसार यत्न करो, तो जो सूक्ष्म अव्यक्त है, वह व्यक्त हो जाएगा। सबसे पहला अव्यक्त जो पुरुषोत्तम है, वह भी व्यक्त हो जाएगा। वह चेतन आत्मा को व्यक्त होगा। जड़-विहीन चेतन आत्मा का जो ज्ञान होगा, उसी ज्ञान की दशा में ईश्वर का दर्शन होगा। गोस्वामी तुलसीदासजी केवल मोटी भक्ति में नहीं थे। विनय-पत्रिका में है—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत विकल भय धायो।।

सूरदासजी ने भी कहा—

अपुन पौ आपुन ही में पायो।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।।

अब बताइए कि नानक बाबा और कबीर बाबा इनसे आगे की बात कहे हैं क्या? इतना फर्क जरूर है कि सगुण भक्ति के बारे में गोस्वामी तुलसीदासजी तथा सूरदासजी ने विशेष जरूर कहा और निर्गुण के बारे में कम। सब संत बराबर हैं। कोई-कोई कबीर साहब को निर्गुणवाले मानते हैं। क्या वे गुरु को मानते थे कि नहीं?

गुरु का रूप सगुण ही हुआ। ईसाई बनो, तब भी गुरु है, इस्लामी बनो, तब भी गुरु है। जितने ईश्वर को माननेवाले हैं, सब में गुरु हैं। जितने सम्प्रदाय हैं, सबमें गुरु हैं। ईश्वर को नहीं माननेवाले नास्तिक को भी गुरु है। जबसे लोगों ने गुरु को माननेवाले की प्रतिष्ठा में कम स्थान दिया है, तब से लोग भूले। गुरु सगुण ही है। कबीर साहब कहते हैं—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

गुरु नानक साहब ने कहा—

गुरु की मूरति मन महिं धिआनु।

ये सब कैसे बिल्कुल निर्गुणवाले हो गए? जप, प्रार्थना—सगुण उपासना है। जितने संत हुए किसी-न-किसी तरह से सगुण उपासना करके ही निर्गुण तत्त्व को प्राप्त किए हैं। तमाम संसार के विश्वविद्यालयों का पाठ समाप्त करके आवे, निर्गुण बोल नहीं सकते। निर्गुण शब्द जिभ्या पर नहीं आ सकता। अमृतनाद उपनिषद् में आया है—

अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अकण्ठ ताल्वोष्ठमनासिकं च।
अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।

गोस्वामी तुलसीदासजी भी निर्गुण नाम जानते थे। मानस जप, मानस ध्यान, प्राणायाम; ये सब सगुण उपासना है। निर्गुण उपासना के लिए प्राणायाम से बारीक काम करना होगा, सो ध्यान है। प्राणायाम के बाद प्रत्याहार है। प्रत्याहार में मन पिछड़-पिछड़ जाता है, लेकिन बारम्बार कोशिश करते रहो, कुछ-न-कुछ ठहराव अवश्य होगा।

करत करत अभ्यास के, जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, शिल पर पड़त निसान।।

अल्प-से-अल्प ठहराव को धारणा कहते हैं। इसमें जब गहराई आवेगी तो ध्यान होगा। ध्यान के बाद समाधि होती है। इसी में योग समाप्त होगा। जबतक समाधि नहीं होगी, तबतक योग समाप्त नहीं होगा। संतगण कहते हैं—केवल ध्यान करो। प्राणायाम के कष्टों से बचकर केवल ध्यान से भी काम हो जाता है। गीता के छठे अध्याय में केवल ध्यानयोग का ही वर्णन है। इस योग के शुरू

करनेवाले को उलटा फल नहीं मिलता है। यह योग महाभय से बचाता है। इसका थोड़ा अभ्यास भी महाभय से बचाता है। इसके आरम्भ का नाश नहीं होता। योग का सीधा फल है, ईश्वर की प्राप्ति। महाभय क्या है? ऊँचे वा अनपढ़े में से किसी को कहा जाए कि तुम हाथी हो जा, घोड़ा हो जा, तो देखिए क्या कहता है। और यदि गधा का नाम कहा जाए तो मार ही हो जाए। मनुष्य-देह के अतिरिक्त कोई भी देह मिले, महाभय है। हाथी बनिएगा तो विवशता है, सिंह बनिएगा तो भी विवशता है। इस योग का जो थोड़ा भी अभ्यास करेगा, तो मनुष्य-शरीर अवश्य मिलेगा। यह संस्कार रविदासजी में पड़ा, वह संत हो गए। श्वपच भक्त थे। इनका भगवान ने भी आदर किया। श्वपचजी के भोजन करने पर ही युधिष्ठिरजी का यज्ञ सफल हुआ। जब वे भोजन कर रहे थे, तो द्रौपदी के मन में हुआ कि आखिर है तो डोम ही न! श्वपचजी ने खाना छोड़ दिया। जब युधिष्ठिर ने आग्रह किया तो उन्होंने कहा—अब हम खायेंगे तो डोमवाला भोजन होगा। पूछिए रानी से। द्रौपदी से पूछा गया तो कहा—'हाँ, मेरे मन में ऐसा ख्याल हुआ था।'

शवरी को देखिए—साधुओं से वरदान माँग कर नीच कुल में गई। असल में उनका नाम श्रमणी था। शवर कुल में जन्म हुआ, इसलिए शवरी कहलाई। नीच कुल में भी ऊँच पाए गए, असल में इसी भजन-अभ्यास से। भक्ति-योग ऐसा है कि वह छोड़ेगा नहीं।

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।
भक्ति बीज पलटै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।

—कबीर साहब

भगवान बुद्ध ने पहले कठोर तप किया, बाद में ध्यान किया। एक ही रात में उनको सारी अनुभूतियाँ हो गयीं। उनका शिष्य जिसका नाम देवदत्त था, वह कठोर-कठोर नियम बनाकर लाता। भगवान ने कहा—'इस कठोर नियम को मानता हूँ, लेकिन सहज में भी लोग कर सकते हैं। जिनको जो मंजूर होगा, सो करेंगे।' भगवान बुद्ध के नहीं मानने पर उनसे देवदत्त द्रोह करने लगा। ध्यान योग सबसे होने योग्य है। चाहे वह हल जोतनेवाला ही क्यों न हो। जो एक शब्द भी नहीं जानता, उससे भी होगा।

ऐसी सेवकु सेवा करै, जिसका जीउ तिसु आगे धरै।

ईश्वर की सेवा भक्त ऐसी करें कि—जिसका जीव; उसके आगे धरे। सब आवरणों को पार कर जाना ही है—'जिसका जीउ तिसु आगे धरै।' इस मार्ग पर चलो। अन्दर मार्ग पर चलना परम भक्ति है। मुझको इस पर बहुत मजबूती है। इस पर मुझसे कोई जितना बात करना चाहे, करूँगा।

मार्ग कहते हैं रास्ता को। आप अपने शरीर में हैं। ईश्वर भी आपके शरीर ही में है। आपको अपने शरीर के अन्दर ही चलना है। अन्तर्मार्ग पर चलनेवाला जीवात्मा है। प्राप्तव्य परमात्मा है। जहाँ जो बैठा रहता है, वहीं से मार्ग आरम्भ होता है। जगने की अवस्था में जीव आँख में रहता है, स्वप्न में कण्ठ में और गहरी नींद में हृदय में। तीन अवस्थाओं में रहने के कारण तीन स्थानों में जाते-आते रहते हैं। आँख से ऊपर तुरीय अवस्था है।

बाहर का देखना छोड़ दो तो अन्धकार में हो। इससे उलटी बात मानने योग्य नहीं। ईश्वर के पास जाने के लिए यहीं से रास्ते पर चढ़ना होगा, जो इस रास्ते पर चढ़ेगा, वह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में नहीं रहेगा। तुरीय अवस्था का जहाँ अंत हो जाता है, वहीं ईश्वर का दर्शन हो जाता है। यह भक्ति का पूरा रास्ता है। यह अन्दर का रास्ता एक-ही-एक है। इसपर विद्वान-अविद्वान सभी चल सकते हैं, कोई रोक-टोक नहीं।

आपके अन्दर ज्योति है और शब्द है। जैसे गंगा में कोई तैरता है, तो उसका पथ जल ही होता है। इसी

तरह जो ज्योति में जाता है, उसका ज्योति पथ है और ज्योति ही आधार है। ज्योति से जब शब्द में जाता है तो शब्द ही पथ होता है और शब्द ही आधार होता है। ज्योति पकड़ते हुए ज्योति को पार कर जाते हैं और शब्द को पकड़ते हुए शब्द को पार कर जाते हैं। सभी मनुष्यों को चाहिए कि इस पवित्र चीज को लेने के लिए बाहरी चीज कुछ नहीं लें।

यह पवित्र काम है। जिसके हृदय में पवित्रता नहीं है, वह इस काम को नहीं कर सकता। हृदय पवित्र रखने के वास्ते झूठ नहीं बोलो, चोरी मत करो, नशा न खाओ, न पीओ, हिंसा मत करो। हिंसा के सिलसिले में मांस-मछली मत खाओ। व्यभिचार मत करो। झूठ नहीं बोलोगे तो संसार के दुःख से छूट जाओगे। धन कमाओ, लेकिन शुद्धता पूर्वक कमाओ। तृष्णा को कम कर देना है। जो थोड़े में संतोष रखता है, वह साधन कर सकता है। यहाँ जिनको पण्डाल में जगह नहीं मिली, वे लोग बाहर में ही इस कड़ाके की जाड़े में सो जाते हैं। कोई पूड़ी-मिठाई खाते हैं और कोई सत्तू ही खाते हैं। कोई पूड़ी-मिठाई खाने के लिए अपने मन को पाप में मत डूबाओ। धन को बुरी तरह कमाना, यह आपको हानि में पहुँचा देगा। इसमें बहुतों को, बड़े-बड़े को धक्का लगा। बुरी तरीके से कौन छुड़ावेगा? हमलोगों को विश्वास है कि ईश्वर-भक्ति में जाए, तो बुरी तरीके से छूट जाएँ। बुरे कर्म से भक्ति द्वारा बचिएगा। संतोष परम लाभ है। लोभ-लालच से मन को बचा-बचाकर रखो। दुष्टकर्म से बचना कानून के डण्डे से नहीं होता है। आजकल देश में दुष्टकर्म का ताण्डव नृत्य हो रहा है। सबलोग भक्ति के पक्ष में आ जाएँ तो आपके देश में शान्ति विराजने लगेगी। तब स्वराज्य में सुराज आ जाएगा।

महात्मा गाँधी भक्त लोग थे। वे कितने सच्चे थे। जिस समय वे वकालत करते थे तो लोग जानते थे कि गाँधीजी झूठा मुकदमा नहीं लेते हैं। संयोगवश एक मुकदमें की झूठाई गाँधीजी को मालूम हो गई। उन्होंने हाकिम को कहा कि हमने जो इस केस में बहस किया था, सो सब झूठा है। कहने का मतलब यह है कि भक्ति के पक्ष में आने से देश से दुष्टकर्म भाग जाएगा। सदाचार के पालन से ही अध्यात्म-पथ में गमन होगा। सभी को भक्ति पक्ष में आना चाहिए। मोटी भक्ति से आरम्भ करके परा भक्ति तक आना चाहिए। सुन्दरदासजी ने कहा है—

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सो आतमा, पराभक्ति सुन्दर कहै।।

यह परा भक्ति है। इसी भक्ति के बारे में संत लोग कह गए हैं। इसी का इस सत्संग के द्वारा प्रचार होता है। वेद में खोजिए, वहाँ भी दृष्टियोग और शब्द साधन है। इससे मेरा दिल मजबूत हो गया है। संतों का मार्ग बहुत उत्तम है। साधन करने में जिनसे जितना सधे, उतना अवश्य करो। छोड़ो मत। यह आपको मुक्ति दिलाकर ही छोड़ेगा।

अब सत्संग समाप्त होने पर सबलोग अपने-अपने घर को जायेंगे। सत्संग करानेवाले तथा सत्संग में आनेवाले सब लोगों को मैं बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। इसमें जिन्होंने जितना लगाया, उन्होंने उतना ही पुण्य अर्जन किया। बहुत-बहुत भक्ति का हिस्सा लिया। इसके लिए सब लोगों को बहुत-बहुत धन्यवाद। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ५९वाँ अ० भा० संतमत सत्संग का वार्षिक विशेषाधिवेशन, कुरसेला (कटिहार) में दिनांक २६.१२.१९६७ ई० को सत्संग के अपराह्नकाल में हुआ था।

२८३. ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण और देव-ऋण से मुक्ति

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जिस उपलक्ष्य में आज यहाँ हमलोग उपस्थित हैं, यह प्रत्येक घर में जब-तब आया ही करता है। और यह उपलक्ष्य प्रत्येक घर के प्रत्येक लोग के लिए आता है। मेरे लिए और यहाँ उपस्थित सब लोगों के लिए यह उपलक्ष्य बारी-बारी से आवेगा, इसमें किसी को सन्देह नहीं। एक शरीर का जीवनकाल कुछ समय के लिए होता है। और जीवनकाल समाप्त होकर शरीर छूट जाता है और यह उपलक्ष्य आता है। शरीर छूट गया, शरीर के छोड़नेवाले किधर—कहाँ चले गए? कोई देखता नहीं। वे स्वयं जानते होंगे कि मैं कहाँ था और किधर जा रहा हूँ। जिनको इस बात के देखने की दृष्टि होगी, वे भी जानते होंगे कि वहाँ गए? जीवन-काल में सुखी रहना सभी पसन्द करते हैं। जीवन के बाद वे दुःखी होना पसन्द करेंगे, सम्भव नहीं। जहाँ रहें, सुखी रहें, यही आग्रह सब लोगों को होना चाहिए। कहा गया है कि जीवन-काल में जो सदाचारी हैं, सुकर्मों को करते हैं, ईश्वर-भजन करते हैं; वे परलोक में सुख पावेंगे, इसमें कोई शक नहीं। परन्तु यह परलोकवाला सुख भी इसी तरह है, जैसे पृथ्वी पर का सुख। कुछ काल सुख, फिर दुःख। इस पृथ्वी पर रहो, छोड़कर जाओ, फिर आओ। पृथ्वी पर आते और जाते लोगों को देखते हैं। आने का कारण यदि विदित है, तो आना निश्चित है। आने का कारण है—दुःख में अनासक्ति और सुख में आसक्ति। कैसा सुख? जैसा सुख इस संसार में मिलता है। इस संसार में मन और इन्द्रियों का सुख है। और यही सुख स्वर्ग में भी मिलता है, यह पुराणों से विदित है। परलोक का सुख समाप्त हो गया, तो फिर कहाँ जाएगा? जिधर आसक्ति है, उधर जाएगा। संसार में आवेगा; क्योंकि संसार में आसक्ति है और संसार में वह सुख मिलता है। यही आवागमन का चक्र है। इस प्रकार का सुख सदाचरण और शुभ कर्मों से मिलता है। दूसरे प्रकार का और सुख है, जिसमें इन्द्रिय और मन का सुख छूट जाए। वह कौन सुख है? आत्म-सुख है। शरीर-इन्द्रिय का सुख छोड़कर अपने तईं में जो सुख होता है। यह केवल सुकर्म का फल नहीं है। सुकर्म के सहित सदाचार का पालन करो तो उस सुख के पाने में सहायता मिलती है। लेकिन केवल सदाचार के पालन वा परोपकार से वह सुख नहीं मिलता है। परोपकार की बड़ी प्रशंसा है, लेकिन इसमें भी एक आसक्ति है। जहाँ उपकार किया है, जो-जो सहायता देकर उपकार किया है, उन-उनको पाने के लिए फिर जन्म इस संसार में हो, सम्भव है।

महात्माओं ने कहा है कि हमारे कितने जन्म गुजरे, ठिकाना नहीं। अर्जुन से भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था कि मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं जानता हूँ, तुम नहीं जानते। मैं इससे अविश्वास नहीं करता। जो कोई अविश्वास करते हैं, वे उस प्रकार की दृष्टि पहले बना लें, देखें, तब कहें। वह कैसा लोक है? वह सूक्ष्म लोक है और सूक्ष्म शरीर है। स्थूल शरीर की मृत्यु होती है। जैसे अभी स्थूल शरीर ऊपर में है और भीतर में सूक्ष्म है; उसी तरह मृत्यु होने पर ऊपर में सूक्ष्म शरीर रहता है। अपनी दृष्टि को इतनी बारीकी में

ले आओ कि कुछ भी पसार नहीं रहे। तब सूक्ष्म दृष्टि होगी और सूक्ष्म लोक को देखोगे, तब विश्वास होगा। दृष्टि को सूक्ष्म करना असम्भव नहीं है।

द्रौपदी का स्वयम्बर रचा गया था। उसमें बड़े-बड़े शूर-वीर आए थे। बहुत ऊँचे ऊपर में एक मछली टाँगी गई थी। उसके नीचे एक चक्र घूमता था, जिसको पार कर मछली की आँख को छेदना था। उस सभा में द्रोण और भीष्म भी थे, किन्तु वे लोग उठे नहीं। कर्ण ने उठकर धनुष पर डोरी चढ़ाई और लक्ष्य भेदना चाहा। किंतु द्रौपदी बोलीं—मैं सूत पुत्र से विवाह नहीं करूँगी। कर्ण बैठ गए, तब अर्जुन उठे और उन्होंने चढ़ी डोरी को धनुष से नीचे उतारकर पुनः चढ़ाया और लक्ष्य भेदन कर द्रौपदी से विवाह किया।

मेरे कहने को मतलब है कि दृष्टि को सूक्ष्म किया जा सकता है वा नहीं? दृष्टि को स्थूल पसार से ऊपर कर लो। बाहरी दृश्य में नहीं रखो, पहले जो देख चुके हो, उसको मन से छोड़ दो और किसी गुरु से जान लो कि कैसे देखें? तब पता लग जाएगा कि बात क्या है? तुम कर नहीं सकते हो, इसलिए बात गलती है, सो नहीं।

आवागमन का चक्र किसी सुकर्म से नहीं छूटेगा, ईश्वर की भक्ति से छूटेगा। गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़े दृढ़ शब्दों में कहा है—

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता तें बरु तेल।
बिनु हरि भजन भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल।।

शरीर छूटने के बाद एक बात है कि आवागमन वाला परलोक में जाओ। दूसरी बात है कि ईश्वर की भक्ति करो, आवागमन का चक्र छूट जाएगा। सब लोगों को याद रखना चाहिए, जब कि किसी श्राद्ध के उपलक्ष्य में एकत्र हों— कि मेरे लिए भी एक दिन ऐसा होगा।

स्वर्ग में भी सुख अल्प ही है। श्रीरामायण जी में उपदेश है कि श्रीराम ने कहा था कि संसार-सागर से छूटना चाहते हो तो ईश्वर की कृपा प्राप्त करो, सद्गुरु-संग प्राप्त करो और मनुष्य-शरीर प्राप्त करो; ये ही तीन बातें हैं। इन तीनों बातों से संसार-सागर से पार होना होता है। मनुष्य-शरीर है ही, ईश्वर की कृपा है ही, एक श्वास भी ईश्वर की कृपा से लेते हो। और सद्गुरु खोजने से मिलते हैं। सत्संग करें, सद्गुरु की खोज करें और उनके बताए ढंग से ईश्वर-भक्ति करें। यही काम धारण करें।

संन्यासी को श्राद्ध-जैसा कोई कर्म नहीं होता। सन् १९०४ ई० में पण्डित लोग हमको धमकाते थे कि तुमको स्वर्ग तो कहाँ से मिलेगा, नरक में भी मुलायम दुःख का स्थान नहीं मिलेगा। तुम्हारे ऊपर ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण और देव-ऋण हैं। एक षट शास्त्री पण्डितजी आए थे, वे वेदान्त भी जानते थे। लोगों ने उनसे मेरी निस्बत कहा कि ये पढ़ते थे। पढ़ना छोड़कर साधु हो गए हैं। इनके ऊपर ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण और देव-ऋण; सभी बाकी हैं, इनको स्वर्ग तो कहाँ से मिलेगा कि नरक में भी मुलायम दुःख का स्थान नहीं मिलेगा। पण्डितजी ने कहा—हाँ, ठीक ही कहते हैं। मैंने कहा—मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए और न नरक ही। पण्डितजी ने कहा—हाँ, ठीक ही बात है। मेरे पिताजी ने कहा—पण्डितजी! मेरे पुत्र की बात को भी आप 'ठीक' कहते हैं और उन पण्डितों की बातों को भी आप ठीक कहते हैं। यथार्थ में बात क्या है? उक्त षटशास्त्री पण्डितजी ने कहा—स्मृति के अनुसार पण्डित लोग ठीक कहते हैं और आपके पुत्र वेदान्त पढ़े तो नहीं हैं, लेकिन वेदान्त की उक्ति कहते हैं, यह बात भी ठीक है। मैंने कहा—'एक ही साधन सब ऋद्धि-सिद्धि साधि रे।' तुलसीदासजी ने कहा है।

वह साधन ईश्वर-भक्ति है। बिना ईश्वर भजन के संसार-सागर से कोई पार नहीं हो सकता।

पहले अधूरा रहेगा, उसके संस्कार से आगे जन्म में मनुष्य-शरीर पावेगा, पूर्व जन्म का संस्कार मिलेगा, भजन करेगा और संसार-सागर से पार हो जाएगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि भक्तियोग का थोड़ा भी परिश्रम महाभय से बचाता है, इसके आरम्भ का नाश नहीं होता और उलटा फल नहीं होता। यह तो श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में कहा गया है और छठे अध्याय में कहा है कि शरीर छूटने पर स्वर्ग सुख भोगेगा। इस संसार में श्रीमान् के घर में जन्म लेगा अथवा योगी कुल में जन्म लेगा और पूर्व अभ्यास से प्रेरित होकर भजन में लगेगा और अनेक जन्मों में सिद्धि प्राप्त कर लेगा और हमारे में जो शान्ति है, वही शान्ति वह पावेगा। मुझको इसका बहुत विश्वास है और आप लोगों को भी विश्वास दिलाता हूँ। भक्ति का बीज नाश नहीं होता। कबीर साहब ने कहा है—

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत।।
भक्ति बीज पलटै नहीं, आय पड़ै जो चोल।
कंचन जौं विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।

रविदास में भक्ति आई। नाभादास में भक्ति आई। काशी के वाल्मीकि डोम में भक्ति आई, तो क्या भक्ति की महिमा कम गई?

उपनिषद् में आया है कि लोग पाप-पुण्य कर्म करते हैं। लोग पाप कर्म के फल से डरते हैं और पुण्य कर्म के फल को भोगना पसन्द करते हैं। बन्धन लोहा का हो वा सोना का; दोनों ही बन्धन हैं। उसी तरह पाप हो वा पुण्य, दोनों कर्म के फल बन्धनकारक हैं।

महाराजा अशोक ने स्वयं खून किया था। एक ब्राह्मण न्यायाधीश ने इसका पता लगा लिया, तब उनको बुलाया गया। उसने अशोक की मूर्ति सोने की बनवा ली, फाँसी की जंजीर सोने की बनवा ली और उस साने की मूर्ति को फाँसी पर झूला दिया।

संभावित कहँ अपयश लाहू। मरण कोटि सम दारुण दाहू।।

युधिष्ठिर का अपमान अर्जुन ने किया और श्रीकृष्ण के समझाने पर पश्चात्ताप कर अपनी हत्या करना चाहा, तो कृष्ण ने कहा कि अपनी प्रशंसा मरण के समान है। अर्जुन अपनी प्रशंसा कभी नहीं करते थे, उस दिन उन्होंने अपनी दो-चार प्रशंसा की। श्रीराम ने लक्ष्मण को त्याग दिया। त्याग भी मृत्यु के समान है। ऐसी मृत्यु से भी लोगों को बचना चाहिए। ध्यानविन्दूपनिषद् में लिखा है कि ध्यान करो, पापों से छूटोगे। ईश्वर-भक्ति में ध्यान प्रधान है। मन कहीं, जप कहीं या पूजा कहीं, इससे नहीं होगा। ध्यान में एकओरता चाहिए। एकओरता विन्दुध्यान में होती है। विन्दुध्यान में पूर्ण सिमटाव होता है। सिमटी हुई चीज स्वाभाविक ही ऊपर की ओर होती है वा जिस ओर से समेटो, उसकी विपरीत ओर को उसकी गति होती है। कर्म मण्डल को ध्यानयोग से पार किया जाता है। '**कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हे।**'

कर्ममण्डल को पार करने से कर्म-फल छूटेगा। यह ध्यान से होगा। मनुष्य को अपनी आत्मा की ओर देखना चाहिए। आत्मा की ओर देखने के लिए आँखों को बन्द करना होगा। पहले जो बाहर में देखे हो, उसका ख्याल छोड़ दो। आँख बन्दकर तब जो देखता है, अन्दर में देखता है—यही है दृष्टियोग। जीवात्मा शरीर के बाहर में नहीं लगा है, अपने अन्दर में है। अपने को समेटने से ऊर्ध्वगति पाता है, कर्ममण्डल पार करता है, अपने आत्म-स्वरूप को पाता है। अपने अन्दर में जो कोई जाते हैं तो उनको अन्दर में चिह्न भी मिलते हैं। उसका वर्णन वेद, उपनिषद् और संतवाणी में है।

श्रीकान्त बाबू के श्राद्ध में उनके सुपुत्र ने जो कार्य किया, अच्छा किया है। उससे मुझे संतोष है।

श्रीकान्त बाबू गुरुभक्त, सत्संग-सेवी और बहुत ईमानदार आदमी थे। इन्होंने गुरु और सत्संग की अच्छी सेवा की। श्रीकान्तबाबू अपने जीवन को बहुत-से उलझनों से छुड़ाते हुए सत्संग, भजन और गुरु-सेवा में लगाते रहे। इन्होंने अपने पुत्रों को शिक्षित किया, धनोपार्जन कर दिया तथा इस शरीर और संसार को छोड़कर चले गए। हमलोग भी इसी तरह शरीर-संसार को छोड़कर चले जाएँगे। इस उपलक्ष्य में जो लोग यहाँ आए हैं, उनको यह उपदेश लेकर जाना चाहिए। n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम नवाबगंज, कटिहार में सुप्रतिष्ठित सज्जन बाबू श्रीकान्त सिंहजी की श्राद्धक्रिया में दिनांक १३.१.१९६८ ई० के सत्संग में हुआ था।

२८४. सुख पाने का साधन : ईश्वर-भक्ति

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

जिसको जो चाहिए, यदि उसको वह पदार्थ दिया जाए तो वह सुखी रहेगा। अथवा वह सुखी रहता है, प्रसन्न रहता है। आपलोग सोचिए कि आपको क्या चाहिए? चाहनाओं का कोई अन्त नहीं है। मैं कहता हूँ कि एक पदार्थ ऐसा है, जिसे प्राप्त कर लेने पर सब चाहनाओं का अन्त हो जाता है और सब सुख प्राप्त हो जाता है। सुख में रहना सब ही चाहते हैं। सुख में रहना यह सब लोगों की इच्छा है। इस एक चाहना के वास्ते लोग विविध प्रकार के प्रयास करते हैं। संतों ने उस सुख का मार्ग बताया है। उस सुख के मार्ग को पकड़ो तो वह सुख मालूम होने लगेगा। ऐसा सुख पाओ कि सब चाहना छूट जाए। इसके लिए संतों ने कहा है कि वह है ईश्वर की भक्ति। ईश्वर-भक्ति के वास्ते ठीक-ठीक यत्न यह है कि अपने अन्तर के मार्ग पर चलना। मैं आपको कहता हूँ कि अन्दर के मार्ग पर चलेंगे, तो सुख पायेंगे।

जब आप सोने लग जाते हैं, तो पहले तन्द्रा होती है। तन्द्रा में आप बाहर से विस्मृत होने लग जाते हैं। इसमें अपने ही आप यानी स्वाभाविक तरह से हाथ-पैर कमजोर होने लग जाते हैं। उस समय किसी को दुःख मालूम होता है? इसलिए कि उस समय अन्दर में गति होती है। उस काल में किसी को दुःख मालूम नहीं होता। यदि दुःख होता तो कोई सो नहीं सकते। यह सबको अपने आप मालूम होता है। जैसे भूखे को खाने के सुख को समझाने की जरूरत नहीं होती। जो खाता है, उसके सुख का अनुभव वह स्वयं करता है। उसी तरह अपने अन्दर की ओर होते जाओ, विचित्र चैन मालूम होगा। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि के भोगों में वह सुख नहीं मिल सकता। इन इन्द्रियगम्य सुखों से विशेष अन्दर का एक विलक्षण सुख मालूम होता है, जो सुख प्राप्त करना सबको सुलभ है, लेकिन अफसोस है कि लोग इस पर ध्यान नहीं देते। तन्द्रा में ऊपर नहीं उठा जाता है। तन्द्रा से स्वप्न में नीचे जाना होता है। स्वप्न से गहरी नींद में उससे भी नीचे जाता है। इसमें अवस्था बदलती है। अन्दर चलने की बात यहीं तक नहीं है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से ऊपर चलने की भी बात है। जागने की अवस्था में ही एक ऐसी क्रिया करो, जिससे मन का सिमटाव हो। सिमटाव के कारण मन की स्वाभाविक ही ऊर्ध्वगति होगी। ऐसी ऊर्ध्वगति होगी कि उसमें नीचे नहीं गिरने पाओगे। मन में मजबूती रहेगी। जो कोई इस गति को पाने के लिए यत्न करते हैं, वे इसका

साधन करते हैं। मन को केवल एक तरफ रहना पसन्द नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यही कहा था—'मन बड़ा चंचल है, लेकिन अभ्यास और वैराग्य से वश होता है।' मन की सम्हाल करते रहो। जहाँ-जहाँ मन भागे, उसको वहाँ-वहाँ से तत्क्षण लौटा-लौटाकर अपने ध्येय में लगाओ। इसका अभ्यास बहुत करना पड़ता है। इसी को प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार में जो हार जाता है, वह शान्ति के मार्ग में नहीं जा सकता है। इसमें थको नहीं। प्रत्याहार का फल धारणा अवश्य होगी। इसको बारम्बार करो। इससे धारणा में गहराई आएगी, तो यही ध्यान होगा।

जब मन एकाग्र होगा तो वह एक तरफ होने लगेगा और अवस्था बदलने लगेगी। एकाग्रता में अवस्था बदलती है। एकाग्रता में ख्यालों को छोड़ना होगा। बहुत-से ख्यालों को छोड़ते-छोड़ते सब ख्याल छूटते हैं। इसकी साधना ठीक से करते रहो, तो विचित्र चैन मालूम होने लगेगा। मन की एकाग्रता में शान्ति आती है। साधक अपने अन्दर में यह प्रत्यक्ष रूप में जानते हैं। जब एकाग्रता में शान्ति आने लगती है, तो सुख उपजता है। इसमें साधक को आनन्द मालूम पड़ता है। ऐसे स्थान से साधक नीचे नहीं गिरते हैं। इसी को चौथी अवस्था कहते हैं अर्थात् तुरीय अवस्था कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप अनंत।।
—विनय-पत्रिका

ईश्वर का भजन चौथी अवस्था में होने लगता है। चौथी अवस्था यानी तुरीयावस्था में मन को एकाग्र करनेवाला ही पहुँचता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका में लिखा है—

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।

यह योग गम्भीर भक्ति है। साधक मन की एकाग्रता की दशा में यानी चौथी अवस्था में पहुँचकर सारे ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर में देखता है। वह नींद में नहीं जाता है। वह संसार से गोया, सोया हुआ है। इसीलिए कि वह चौथी अवस्था में है। चौथी अवस्था से आगे बढ़ने पर यानी तुरीयातीतावस्था में द्वैत भाव बिल्कुल मिट जाता है। उसको यह भाव नहीं रहता है कि आत्मा अनेक है। 'अतिसय द्वैत वियोगी' यहाँ तक है कि वह ईश्वर को पहचान लेता है। ईश्वर को जानकर वह एक-ही-एक हो जाता है। 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।' की दशा को प्राप्त कर लेता है। इसी को संत कबीर साहब ने कहा—

जौं जल में जल पैस न निकसै, यौं ढुरि मिला जुलाहा।

गुरु नानक साहब ने भी कहा—

जल तरंग जिउ जलहि समाइया।
तिउ जोती संगि जोति मिलाइया।।
कहु नानक भ्रम कटे किवाड़ा, बहुरि न होइअै जउला जीउ।।

यहाँ परम सुख हैं। परमात्मा ज्ञानमय हैं, सुखमय हैं, शान्तिमय हैं। परमात्मा से एकीभाव को प्राप्त कर भक्त, साधक परम शान्ति को प्राप्त करता है। जो अविनाशी सुख सभी चाहते हैं, वह यहाँ मिलता है। इन्द्रियों के ज्ञान में यह सुख कहाँ है? सबके लिए यह सुख पाने का साधन ईश्वर-भक्ति है, अन्तर का मार्ग है। जो इस अन्तर मार्ग को जानते हैं, उनपर मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। यह ज्ञान सद्ग्रंथों द्वारा, गुरु-ज्ञान द्वारा और तर्क-बुद्धि से सिद्ध है। इसके लिए साधन करो अर्थात् अन्तस्साधन करो। अन्दर जाने का भेद गुरु से जानो। सत्संग करके सद्गुरु को जानो और युक्ति प्राप्त कर सिमटाव का साधन करो। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। इसी वास्ते विन्दु ध्यान है और नाद ध्यान है। विन्दु

ध्यान दृश्य में और नाद ध्यान अदृश्य में पहुँचाता है। नाद ध्यान सृष्टि के अन्त तक पहुँचा देता है। नाद ध्यान में बहुत दूर तक अनेकता, फिर ऐसी एकता कि द्वैत नहीं रहता।

हमारे गुरु महाराज यही प्रचार करते थे और हमलोगों को भी यही सिखलाए हैं। परमात्मा अनन्त हैं, वे ज्ञान के भण्डार हैं, वे शान्तिमय हैं। जो परमात्मा तक पहुँचते हैं, वे शान्तिमय सुख को प्राप्त करते हैं। विन्दु ध्यान और नाद ध्यान करके सारे आवरणों को पार कर आदितत्त्व परम प्रभु परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं।

लोग समझते हैं कि यह कठिन साधना है, लेकिन गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

राज महि राज योग महि योगी।
तप में तपीसुर गृहस्थ महिं भोगी।
ध्याय ध्याय भक्तह सुख पाया।
नानक तिस पुरुष का किन अंत न पाया।।

इस भजन में करनेवाले को आनन्द मिलता है। संत कबीर साहब ने कहा है—

भजन में होत आनंद आनंद।
बरसत बिसद अमी के बादर, भीजत है कोइ संत।।

यह मैं जो कुछ कह रहा हूँ, अपने गुरु से युक्ति प्राप्त कर जो साधन कर पाया हूँ, तो मुझको विश्वास हो गया है कि गुरुजी ने ठीक बतलाया है। मुझे बड़ा विश्वास है। अपने गुरु के उपदेश के कारण मैं बहुत दृढ़ हूँ।

ईश्वर की भक्ति से ही शान्ति मिलती है। बाहर की भी भक्ति है। इनमें सार है मन की एकओरता। जप में मन एकओर होता है। जप मनोयोगपूर्वक होना चाहिए। संत कबीर साहब ने कहा है—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहु दिसि फिरै, यह जो सुमिरन नाहिं।।
तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर उस पलक को, कलप न पावै कोय।।

मानस ध्यान में भी मन की एकओरता सार वस्तु है। मोटी भक्ति से साधना आरम्भ होती है, यहीं समाप्त नहीं होती। आगे और साधना बाकी रह जाती है। वह है सूक्ष्म साधना। सूक्ष्म साधना के अंत में शरीर रहते चार फल—काम, धर्म, अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति होती है। ईश्वर को प्राप्त करके मोक्ष दशा को प्राप्त करते हैं।

मन की एकाग्रता होती है तो समझिए कि ठीक पूजा होती है। जप और ध्यान में मन की एकाग्रता आवश्यक है। विन्दु ध्यान करने पर शब्द ग्रहण होता है और उस शब्द की विविधता भी मिट जाती है एक सारशब्द की प्राप्ति में। यह सीधा और सरल मार्ग है। इस साधना से वहाँ पहुँच होती है, जिसके लिए संत कबीर साहब ने कहा है—

कहौं उस देश की बतियाँ, जहाँ नहिं होत दिन रतियाँ।
नहिं रवि चन्द्र औ तारा, नहीं उजियार अंधियारा।।
नहीं तहँ पवन औ पानी, गये वहि देश जिन जानी।
नहीं तहँ धरनि अकाशा, करै कोई संत तहँ वासा।।
उहाँ गम काल की नाहीं, तहाँ नहिं धूप औ छाहीं।।
न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।
सोहंगम नाद नहिं भाई, न बाजै शंख शहनाई।
निहच्छर जाप तहँ जापै, उठत धुन सुन्न से आपै।।
मन्दिर में दीप बहु बारी, नयन बिनु भई अंधियारी।
कबीरा देश है न्यारा, लखै कोइ राम का प्यारा।।

n

यह प्रवचन बेगुसराय जिलान्तर्गत मक्खाचक (बखरी) में दिनांक ७. ३. १९६८ ई० को प्रात:कालीन सत्संग में हुआ था।

२८५. जड़-माया की पट्टी खोलने के लिए दृष्टियोग है

प्यारे लोगो!

आपलोगों ने अभी सुना ही है—

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयाल दास हित, मोह न छूटइ माया।।
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन, भव पार न पावइ कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन्हि, तम निवृत्त नहिं होई।।
जैसे कोउ एक दीन दुखित अति, असन बिना दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह, लिखे न विपति नसावै।।
षट्रस बहु प्रकार व्यंजन कोउ, दिन अरु रैन बखानै।
बिनु बोले संतोष जनित सुख, खाइ सोई पै जानै।।
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु विषय आस मन माहीं।
तुलसिदास तब लगि जग जोनि, भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज

यह बहुत अच्छा पद है। इस पद में गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने वर्णन किया है कि वाक्य-ज्ञान किसी को कितना भी अधिक है, उससे वह संसार से पार नहीं हो सकता। जैसे अंधेरे घर में यदि कोई दीपों की चर्चा करता रहे, तो घर में प्रकाश नहीं हो सकता। कोई बहुत दीन-दुःखी है, उसके सामने कल्पवृक्ष और कामधेनु के चित्र रख दे, तो उनसे दीन-दुःखी व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति नहीं होती। उसी तरह जबतक अपने अन्दर में प्रकाश नहीं होगा, तबतक विषयों की इच्छा मन से नहीं जाएगी और संसार में डूबते रहेगा। उसको सपने में भी सुख नहीं होगा। इसलिए अपने अन्दर प्रकाश चाहिए। गोस्वामीजी महाराज ने बड़ा अच्छा कहा है—

सद्गुरु वैद वचन विस्वासा। संयम यह न विषय कै आसा।।

विषयों के सुख से कोई सुखी नहीं होता है। हमलोग यही ज्ञान गोस्वामी तुलसीदासजी के इस पद्य से पाते हैं। केवल वाचक-ज्ञान से हमारा कल्याण नहीं होगा। इसके लिए जो साधन है, सो करना चाहिए। अपने अन्दर में प्रकाश किस साधन से होगा?

दृष्टि से लोग देखते हैं। दृष्टि को जोड़ने की क्रिया को दृष्टियोग कहते हैं। इसी को शाम्भवी मुद्रा या वैष्णवी मुद्रा भी कहते हैं। दृष्टि को अपने अन्दर इस तरह कौशलपूर्वक रखना चाहिए, जिससे आप-ही-आप प्रकाश हो जाए। कहाँ दृष्टि रखें, इसका कौशल जानना चाहिए। दृष्टि को कौशल से रखेंगे, प्रकाश होगा।

ईश्वर सर्वव्यापी हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामचरितमानस में कहा है—'कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।' तमाम ईश्वर व्यापक है। वे सबमें रहनेवाले हैं। वे सबको अपने अन्दर में रखते हैं। वे बहुत चमत्कारपूर्ण हैं। उनका दर्शन चेतन आत्मा को होता है। आत्म-प्रकाश से ही आत्मा और परमात्मा की प्रत्यक्षता होती है। आत्म-प्रकाश कोई भौतिक प्रकाश नहीं है। जिसे आत्म-प्रकाश कहते हैं, वह दिव्य ज्योति से भी श्रेष्ठ है। सर्वव्यापी परमात्मा का प्रकाश भी सर्वव्यापी है। गुरु नानक साहब ने कहा है—

घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।

सब शरीरों में ईश्वर व्यापक हैं। इनका प्रकाश भी सबमें है। फिर ईश्वर का दर्शन क्यों नहीं होता है? आत्म-दृष्टि प्राप्त नहीं है, इसीलिए ईश्वर का दर्शन नहीं होता है। आत्म-दृष्टि कहीं खो गयी है, सो नहीं। वह सबके साथ मौजूद है। जड़-माया की पट्टी आत्मा पर लगी हुई है, इसी कारण से आत्म-प्रकाश को कोई नहीं देख सकता है। इसी जड़ माया की पट्टी को खोलने के लिए

संतों ने बताया है। अन्दर का प्रकाश मालूम हो तो पट्टी खुले। पट्टी खोलने के लिए ही दृष्टियोग है। इसीलिए गुरु नानक साहब ने कहा है—

बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।

जो निडर होकर ध्यान करता है, वह पट्टी को खोलता है। वही देखता है कि घट-घट में परमात्मा की ज्योति समायी हुई है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा कि जबतक अपने अन्दर में प्रकाश नहीं होगा, तबतक संसार के बन्धन से कोई मुक्त नहीं होगा। इसलिए उन्होंने बताया कि केवल वाचक-ज्ञानी मत बनो। दिव्य ज्योति के दर्शन के लिए ध्यान करो। साधना के अन्त में आत्मज्योति का दर्शन होता है। तब ईश्वर छिपे नहीं रहते हैं। यह मनगढ़न्त बात नहीं है। इसके लिए ज्ञान और योग—दोनों की आवश्यकता है। ज्ञान की प्राप्ति योग के बिना नहीं हो सकती। और ज्ञान के बिना योग में भी सफलता नहीं मिल सकती। ज्ञान और योग दोनों की साधना जो करेंगे, उन्हीं को सफलता मिलेगी। ध्यानयोग का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में किया है। भगवान बुद्ध का ध्यान भी प्रसिद्ध है। ध्यान के द्वारा ही उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया था।

ज्ञान कहते हैं जानने को और ध्यान कहते हैं मन की एकओरता को। आप मन नहीं हैं, आप मन के संग हो गए हैं। पाँच कमेन्द्रियाँ हैं—मुँह, हाथ, पैर, गुदा और लिंग और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं—आँख, कान, नाक, जिह्वा और चमड़ा। चार अंदर की इन्द्रियाँ हैं। मन का काम है संकल्प-विकल्प करना, बुद्धि का काम है विचारना। यह मैं हूँ—यह ज्ञान अहंकार में होता है। जबतक कुछ कम्पन नहीं हो, तबतक कुछ हो नहीं सकता है। कम्पन स्वरूप चित्त है, वह सबको डोलाता है, तब मन-बुद्धि आदि काम करते हैं। इन सभी इन्द्रियों से छूटने के लिए ध्यान है। ध्यान स्थूल भी है, सूक्ष्म भी। मानस जप करने के बाद जो मानस ध्यान है, वह स्थूल ध्यान है। दृष्टियोग और शब्द योग सूक्ष्म ध्यान है।

सत्संग के द्वारा ज्ञान का अभ्यास होता है, यह अवश्य होना चाहिए। पढ़े-अनपढ़े सबको सत्संग चाहिए। और अन्तर में प्रकाश पाने के लिए ध्यान-योग अवश्य चाहिए। इसी में भक्ति निहित है। ध्यान करनेवाले ही सर्वव्यापी ईश्वर को प्राप्त करते हैं। सर्वव्यापी ईश्वर सबको भरकर और सबसे परे कितने हैं, अन्दाजा नहीं। वे सबसे पूर्व के हैं। वे कभी ससीम नहीं हो सकते। सबसे पूर्व का वही होगा, जो अनादि-अनन्त होगा। वही परम सनातन, परम पुरातन होगा। वही अनादि-अनन्त तत्त्व परमात्मा है। उनके स्वरूप का दर्शन माया के कारण नहीं होता। परमात्मा अनन्त हैं, उनकी शक्ति भी अनन्त है। उनसे बढ़कर कौन हो सकता है?

उनको पाने के लिए ज्ञान और योग, दोनों चाहिए। ईश्वर को जानने के लिए ज्ञान है और ध्यान करने से मायिक आवरण एक-एक करके छूटते हैं। सब आवरणों के छूटने पर एक ही ईश्वर रह जाते हैं। सत्संग एकाग्र मन से करें, यह भी योग है। मन लगाकर जप करें, यह जपयोग है। जो शाम्भवी मुद्रा वा दृष्टियोग करता है, वह सूक्ष्म में प्रवेश करता है। शब्द-साधना से आवरणों को पार कर ईश्वर-स्वरूप का दर्शन करता है। ज्ञान और योग के अभ्यास से ही यह काम होगा। अन्दर में चलनेवाले को सूक्ष्म प्रकाश प्राप्त होता है, फिर ध्यान की पूर्णता में आत्म-प्रकाश भी प्राप्त होता है। इसके लिए प्रेमपूर्ण भक्ति चाहिए। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने लिखा है—

जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू।।

ईश्वर-स्वरूप और आत्म-स्वरूप जानने के लिए सत्संग करो। और प्रत्यक्ष प्राप्त करने के लिए

योगाभ्यास करो। योग से बहुत लोग घबड़ाते हैं। संतों के ग्रंथों में ध्यान की बहुत महिमा है। श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में भी ध्यान योग का बहुत महत्त्व है। सुरत लगाने का भेद जानो, तो सहज ध्यान है। संत कबीर साहब ने कहा—

न योगी योग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।

यह साधना सबके लिए आसान है। धनी-गरीब, ऊँचे दर्जे के, नीचे दर्जे के—सभी लोग कर सकते हैं। यह डरावनी चीज नहीं है। सच्चे गुरु से इसकी युक्ति जाननी चाहिए। सुरत कहाँ लगानी है, इसका यत्न गुरु बताते हैं। बतलाने का काम तो थोड़े समय में हो जाता है, लेकिन करने के लिए बहुत समय चाहिए।

यह मन जब से है, तब से चंचल है। लोगों के अनेक जन्म हो चुके हैं, लेकिन मन नहीं बदला है। उसको थोड़े समय में काबू करके रखना वा उसका संग छोड़ देना हठात् संभव नहीं है। मन के सिमटाव के अभ्यास करते रहने से वह अवश्य वश में आता है। ध्यान में जब मन लग जाता है, तब उसको अंदर का चैन मिलता है, तब संसार की किसी चीज में आसक्ति नहीं रहती है। इसलिए कबीर साहब ने कहा—'भजन में होत आनन्द आनन्द।' इसके लिए सत्संग और ध्यान अवश्य चाहिए। केवल ज्ञान से प्रत्यक्षता नहीं होती। प्रत्यक्षता के लिए ध्यान चाहिए। एक आदमी है, जो भूगोल पढ़कर भूमण्डल की बात जानता है और दूसरा आदमी है, जिसने भूमण्डल पर घूमकर जाना है। दोनों की जानकारी में बहुत अन्तर है। कबीर साहब ऐसे ही महापुरुष थे। वे कहते हैं—

मैं कहता आँखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी।।

बहुत किताबों को पढ़कर संशय में रह सकता है। जिसने प्रत्यक्ष देखा है, उसको संशय नहीं होता है। इसी के लिए साधन-भजन करना चाहिए। ■

यह प्रवचन बेगुसराय जिलान्तर्गत मक्खाचक (बखरी) में दिनांक ८. ३. १९६८ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२८६. ईश्वर तक जाने का रास्ता कहाँ है?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

इस सत्संग के द्वारा ईश्वर-भक्ति का प्रचार होता है। मनुष्य जैसा कल्याण चाहता है, वैसा कल्याण केवल भोग्य पदार्थों के भोग में नहीं है। यह सबको प्रत्यक्ष है। भोग्य पदार्थ कितने भी एकत्र हो जाएँ, फिर भी संतुष्टि नहीं होती। इस लोक में यही हालत है। परलोक या स्वर्गादि की बातों को जानने पर यही ज्ञात होता है कि वहाँ भी यही बात है। इससे बढ़कर क्या है? क्या लेना है? संत लोग कहते हैं कि इससे बढ़कर परम कल्याण है, वही प्राप्त करना है। लेकिन यह भौतिक पदार्थों में नहीं प्राप्त होगा। परमार्थ क्या है? गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने लिखा है—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।।
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित निरूपहिं वेदा।।

परमार्थ को ग्रहण करते हैं, उन्हीं का परम कल्याण होता है। इसके अलावा दूसरा उपाय देखने में नहीं आता। इन्द्रियों से विषयों को ग्रहण करते हैं। आँख से रूप को देखते हैं, कान से शब्द सुनते हैं, नासिका से गन्ध लेते हैं, त्वचा से स्पर्श करते हैं और जिह्वा से रस का स्वाद लेते हैं। इन इन्द्रियों के ज्ञान से परमार्थ ज्ञान बाहर है। परमार्थ

अर्थात् परम प्रभु परमात्मा स्वरूपत: अपार हैं। जिसका आदि-अन्त मालूम नहीं पड़े, वह अपार है। संत सुन्दरदासजी ने कहा है—

व्योम को व्योम अनन्त अखण्डित आदि न अन्त सुमध्य कहाँ है।
को परमान करै परिपूरन द्वैत अद्वैत कछू न जहाँ है।।

परमात्मा अविगत यानी सर्वव्यापी हैं। उनका वर्णन करने में सब तरह से 'न इति' कहने योग्य है। जो सान्त नहीं होता, वह परमार्थ तत्त्व है। इस परमार्थ तत्त्व या परमात्मा की प्राप्ति से पूर्णरूपेण कल्याण होता है। कल्याण इस तरह का कि कुछ पाने को बाकी नहीं रहे अर्थात् इच्छा की ही समाप्ति हो जाती है। इच्छा के रहते किसी का कल्याण नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने कहा है— '**काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।**'

इसलिए उन्होंने कहा—**राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।**

ईश्वर-भक्ति से ही कामना का अन्त होता है। ईश्वर की भक्ति से ही परम कल्याण होता है। ईश्वर की भक्ति के लिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। परमात्मा को पानेवाला जीवात्मा है, उसका भी ज्ञान होना चाहिए। परम कल्याण का चाहनेवाला जीवात्मा है। जो शरीर इन्द्रियों से परे है, उसी का नाम जीवात्मा है। चेतन आत्मा को शरीर का संग हो गया है। सब शरीरों से छूटकर अपने तईं यानी अपने स्वरूप को जानना चाहिए। जीवात्मा सर्वेश्वर का अभिन्न अंश है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

यह चौपाई लिखकर गोस्वामी तुलसीदासजी ने सर्वसाधारण को जना दिया है।

शरीर कभी-न-कभी छूट जाएगा। कभी न कभी शरीर छूटेगा अवश्य, तो रह क्या जाएगा? जीवात्मा रह जाएगा। जीवात्मा पर स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण—ये जड़ के चार शरीर लगे हैं। चेतन आत्मा पर से इन चारों को हटा देने से तब जो रह जाता है, वह है जीवात्मा। जबतक ये चारो शरीर नहीं छूटते, तबतक कल्याण नहीं। संसार में क्या, परलोक में भी कल्याण नहीं। ब्रह्मा के धाम में भी कल्याण नहीं, वहाँ भी शापाशापी चलती है। आपलोग गर्ग-संहिता, महाभारत, पद्म-पुराण पढ़कर देख सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में कहा है—

नारद भव विरंचि सनकादी। जो मुनि नायक आतमवादी।।
मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा।।
ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ विडम्बना, कीन्ह न एहि संसार।।
गुण कृत्य सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही।।
चिंता साँपिनी काहि न खाया। को जग जाहि न व्यापी माया।।
कीट मनोरथ दारु शरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा।।

जहाँ-जहाँ ये लोग रहते हैं, वहाँ भी कल्याण का स्थान नहीं। नारद का मोह नहीं छूटा। जय-विजय को बैकुण्ठ में शाप ही मिला। कहीं भी कल्याण का स्थान नहीं है। जड़ के सब शरीरों को छोड़कर जो बच जाता है, उसी को कहते है, जीवात्मा वा चेतन आत्मा। शरीर होने का कारण ही मिट जाए, तब परम कल्याण होगा।

ईश्वर का दर्शन हो। दर्शन के लिए जो चलता है, उसके सब शरीर छूटते जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान दिया है। पाँच स्थूल तत्त्व (मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश), पाँच सूक्ष्म तत्त्व (रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द), अहंकार, बुद्धि, प्रकृति, दशेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुँह, गुदा और लिंग; ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा; ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), मन चैतन्य, संघात (कहे गए का संघरूप), धृति (धारण करने की शक्ति) और इनके विकार— इच्छा, द्वेष, सुख और दु:ख—इन

इकतीस तत्त्वों के समूह को क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र को छोड़कर जो बचता है, उसी को कहते हैं। क्षेत्रज्ञ वा चेतन आत्मा। इस ज्ञान को लोग नहीं जानते हैं। आत्मतत्त्व विदित नहीं होने पर सर्वज्ञता नहीं आती। उसमे अज्ञानता बनी रहती है। इस अज्ञानता को दूर करने के लिए ईश्वर की भक्ति है। भक्ति के साथ ज्ञान नहीं है, यह कहना युक्तिसंगत नहीं है। भक्ति के साथ योग नहीं है, यह कहना भी युक्तिसंगत नहीं है। योग से परमात्मा को पाने का काम होता है। अगर ज्ञान और योग को छोड़ दें तो मोटी भक्ति में मोटी इन्द्रियों के संग रहने के कारण सुख-दुःख का भोग भोगता रहेगा। बाहर में कहीं भी रहो, पहाड़ के शिखर पर रहो, कन्दरा में रहो, जहाँ कहीं भी रहो, अपने अन्दर ईश्वर पाने की कोशिश करते रहो। ईश्वर का दर्शन इन्द्रियों को नहीं होगा। इन्द्रियाँ स्थूल हैं। स्थूल इन्द्रियों से सूक्ष्म का ग्रहण नहीं होता। ईश्वर की उपमा आकाशवत् सूक्ष्म कहने से भी ठीक नहीं होती। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—

राम काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन।।
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकाशा।।
मरुत कोटि सत विपुल बल, रवि सत कोटि प्रकाश।
ससि सत कोटि सुसतील, समन सकल भव त्रास।।
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूम केतु सत कोटि सम, दुराधरष भगवन्त।।
प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला।।
तीरथ अमित कोटि सत पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।।
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिन्धु कोटि सत सम गंभीरा।।
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना।।
सारद कोटि अमित चतुराई। विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।
विष्णु कोटि सत पालन करता। रुद्र कोटि सत सम संघरता।।
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना।।
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा।।

और अन्त में कहा—

निरुपम न उपमा आन, राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम, रवि कहत अति लघुता लहै।।

जिस तरह सौ करोड़ जुगनुओं की उपमा सूर्य के साथ दी जाय तो सूर्य की हीनता होगी, उसी तरह सौ करोड़ विष्णु, सौ करोड़ ब्रह्मा, सौ करोड़ शिव, सौ करोड़ दुर्गा आदि की उपमा देने से राम की हीनता होगी।

ईश्वर सबसे सूक्ष्म हैं, इसी कारण वे सर्वव्यापक हैं। वे अनन्त हैं, आदि-अन्त-रहित हैं। वे सर्वव्यापकता से भी परे हैं। ऐसे परम प्रभु परमेश्वर से बढ़कर कोई नहीं हो सकते। आदि- अन्त-रहित तत्त्व एक ही हो सकता है। इन्द्रियाँ बहुत स्थूल हैं। परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। इसलिए परमात्मा इन्द्रियों से नहीं ग्रहण हो सकते। केवल जीवात्मा ही ग्रहण कर सकता है। जो अपने स्वरूप को जानता है, वही परम प्रभु सर्वेश्वर को भी जान सकता है। इसलिए कहा जाएगा कि परमात्मा वे हैं, जो चेतन आत्मा से ग्रहण होते हैं।

आप शरीर नहीं हैं, आप अपने शरीर को पहचानते हैं। शरीर का रूपान्तर होता है अर्थात् परिवर्तन होता है। शरीर नाशवान है। हमलोगों के यहाँ जो श्राद्ध-क्रिया की जाती है, उससे भी यह सिद्ध होता है कि शरीर छोड़नेवाला कहीं है अवश्य। इसलिए श्रद्धावश लोग श्राद्ध करते हैं। शरीर पाँच तत्त्वों से बना है।

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।।

यह रामायण में गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है। आप अपने शरीर को तो पहचानते हैं, लेकिन अपने स्वरूप को नहीं पहचानते हैं। अपने स्वरूप की पहचान कैसे होगी? जैसे अपनी आँख को आप आइने के माध्यम से, अपनी ही आँख से

देखते हैं, उसी तरह अन्तस्साधन के माध्यम से अपने स्वरूप को पहचान सकेंगे। तब ईश्वर को भी पहचान सकेंगे, तभी परम कल्याण होगा। इसी के लिए साधना की जरूरत होती है। इसके लिए अपने अन्तर के मार्ग पर चलो। मार्ग या रास्ता की भी परिभाषा जाननी चाहिए। ईश्वर के पास जाने के लिए एक मार्ग हैं विविध उपासनाएँ मार्ग नहीं हैं। मार्ग वह लकीर है, जिस पर कोई चलता है। जो कोई मार्ग का छोर पकड़ता है, तो वहीं से वह अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। ईश्वर तक जाने का रास्ता कहाँ है? मैं अपने शरीर में हूँ। शरीर के अन्दर ईश्वर भी हैं। ईश्वर दर्शन के वास्ते अपने अन्दर में चलना है। बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़ा अच्छा कहा है—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं,
बाहर फिरत विकल भय धायो।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद,
अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल,
परम सुगंध कहाँ ते आयो।।
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन,
ऊपर कछु सेंवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ,
चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।।
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुण,
तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि,
विषय बबूर बाग मन लायो।।
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम,
मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय,
कीजै नाथ उचित मन भायो।।

बाहर-बाहर में विश्वास रखनेवाले पढ़ें गोस्वामी तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका को। भक्तवर सूरदासजी ने भी कहा है—

अपुन पौ आपुन ही में पायो।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।।
ज्यों कुरंग नाभि कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायो।
फिर चेत्यो जब चेतन ह्वै करि, आपुन ही तनु छायो।।
राज कुँआर कण्ठे मणि भूषण, भ्रम भयो कह्यो गँवायो।
दियो बताइ और सत जन तब, तनु को पाप नशायो।।
सपने माहिं नारि को भ्रम भयो, बालक कहुँ हिरायो।
जागि लख्यो ज्यों को त्यों ही है, ना कहूँ गयो न आयो।।
सूरदास समुझै की यह गति, मन ही मन मुसुकायो।
कहि न जाय या सुख की महिमा, ज्यों गूँगो गुर खायो।।

—सूरदासजी महाराज

बात यह है कि मोटी-मोटी बातों की ओर सब कोई जाते हैं, लेकिन बारीकी की ओर नहीं जाते हैं। जितने संत हुए हैं, सभी ने अपने अन्तर की ओर चलकर परम प्रभु परमात्मा या मोक्ष पद को प्राप्त किया है।

इस शरीर में हमलोग नित्य प्रति जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में जाते आते हैं। इन तीन अवस्थाओं से ऊपर चौथी अवस्था है, जिसे तुरीय कहते हैं। ऐसी भक्ति करो कि तुरीय में जाओ और उसके भी परे तुरीयातीतावस्था तक पहुँचो। यहाँ तक पहुँचने के मार्ग का आरम्भ होगा, नेत्र से। यहाँ यानी नेत्र से जो छोर पकड़ेगा, उसको पकड़ने के अनेक रास्ते नहीं।

मोटी उपासना से एकाग्रता की शक्ति बढ़ती है। मोटी उपासना को अलग-अलग रास्ता मानना गलत बात है। अन्तर मार्ग के दरवाजे तक पहुँचने के लिए ही बाहरी उपासना की आवश्यकता है। संत कबीर साहब ने कहा है—

भक्ति का मारग झीना रे।।

नहिं अचाह नहिं चाहना चरनन लौलीना रे ।।
साधुन के सत्संग में रहे निसिदिन भीना रे ।।
सब्द में सुर्त ऐसे बसे जैसे जल मीना रे ।।
मान मनी को यौं तजे जस तेली पीना रे ।।
दया छिमा संतोष गहि रहे अति आधीना रे ।।
परमारथ में देत सिर कछु विलम्ब न कीना रे ।।
कहै कबीर मत भक्ति का परगट कह दीना रे ।।

इसी को गुरु नानकदेवजी महाराज ने भी कहा—

भगता की चाल निराली ।
चाल निराली भगताह केरी विखम मारगि चलणा ।।
लबु लोभ अहंकारु तजि त्रिसना बहुतु नाहीं बोलणा ।।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा ।।
गुर परसादी जिनि आपु तजिया हरि वासना समाणी ।।
कहै नानक चाल भगताह केरी जुगहु जुग निराली ।।

उपनिषत्कार ने भी कहा—

उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।।

(अरे अविद्याग्रस्त लोगो!) उठो, (अज्ञान निद्रा से) जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार क्षुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्त्वज्ञानी लोग उस मार्ग को वैसा ही दुर्गम बतलाते हैं।

जैसे भोजन को पेट मे पहुँचाने के लिए एक ही रास्ता है, मुँह, कान और नाक नहीं; उसी तरह ईश्वर तक जाने का एक ही रास्ता है। उस रास्ते को जानिए। इसी को जनाने के लिए यह सत्संग होता है। युक्ति जानकर भजन करें और भगवन्त तक पहुँचें। ईश्वर-स्वरूप के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं ।।

यहाँ आकर रास्ता समाप्त हो जाता है। यहाँ तक पहुँचने के लिए जड़ के चारो शरीरों को ध्यानयोग द्वारा छोड़ना पड़ता है। इस ज्ञान को सत्संग द्वारा अच्छी तरह समझिए। यह ज्ञान आपको जन्म-जन्म पीछा करके मुक्ति दिलाकर छोड़ेगा। n

यह प्रवचन बेगुसराय जिलान्तर्गत मक्खाचक (बखरी) में दिनांक ८. ३. १९६८ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

२८७. सभी धर्मों के लोगों के लिए उपासना

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता!

आपलोग अपने-अपने घर में सुख-शान्ति से रहना चाहते हैं, अपने-अपने समाज में सुख-शान्ति से रहना चाहते हैं। इसी तरह अपने देश में भी सुख-शान्ति से रहना चाहिए। संसार के सभी लोगों को मेल से रहना चाहिए, यही उत्तम बात है।

वेद का उपदेश है कि 'आपस में साँच-साँच बातें बोलो। आपस में सभी कोई मेल मिलाकर एक मेल से बोलो। सभी लोग एक मेल होकर उपासना करो।' वेद का यह उपदेश कितना अच्छा है, सभी लोग सोच-विचार सकते हैं। आपस में सत्य-सत्य बात बोलें, तो कितना मेल रहेगा। बिल्कुल दुष्टकर्म दूर हो जाएगा। सत्य व्यवहार के कारण अपने घर में लोग मेल से रह सकते हैं। इसी तरह सत्य व्यवहार के कारण समाज में एक मेल से रह सकते हैं। इसी तरह देश में भी। जिस तरह गाँव में सामाजिक सम्बन्ध में रहते हैं, उसी तरह देश में भी सम्बन्ध होना चाहिए। यही संबंध टूटने के

कारण देश गुलाम होता है।

पहले अपना देश छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। लोग अलग-अलग प्रदेश बनाकर रहते थे। दुनिया के बहुत भागों (देशों) को लोग नहीं जानते थे। एक देश से दूसरे देश जाने का पर्याप्त साधन नहीं था। अपने देश में तो ऐसा कायदा बन गया था कि दूसरे देश की कोई यात्रा नहीं कर सकते थे। समुद्र-यात्रा करने से लोग डरते थे। समुद्र-यात्रा करनेवाले से यहाँ के लोग द्वेष करते थे। इसके चलते अपने देश की बहुत हानि हुई। इस हानि को दूर करें। एक देश को दूसरे देश से संबंध रखने में हानि नहीं, बहुत लाभ होता है। दूर-दूर के देशों से संबंध रख सकें, यह उत्तम बात है।

ईसा मसीह हमारे देश से बहुत दूर में हुए। उनके धर्म का प्रचार यूरोप, अमेरिका आदि देशों में हुआ। ईसा मसीह को गुजरे अधिक वर्ष हो गए। फिर भी उनके धर्म का प्रचार सारे संसार में हुआ। इनके अनुयायी सब एक सूत्र में उनके धर्म के कारण बँध गए। इसी तरह इस्लाम धर्म का प्रचार हुआ। पढ़े-लिखे लोग जानते हैं। भगवान बुद्ध अपने देश में हुए। उनके धर्म का भी प्रचार बहुत दूर देशों में हुआ। उनके अनुयायी भी एक धर्म के सूत्र में बँध गए। वैदिक धर्म का प्रचार बहुत दूर देशों में बहुत कम है। बौद्धकाल में भी लोग एक सूत्र में बँधे थे। एक सूत्र में बाँधने के लिए धर्म ही एक मात्र महत्त्वपूर्ण साधन है। वेद में सारे संसार के लिए इसका उपदेश है। सभी लोगों को अपने धर्म में बँध जाना चाहिए।

किस तरह की उपासना हो, यह ज्ञान धर्म के द्वारा लोगों को मिलता है। सभी धर्मों के लोगों के लिए उपासना है। अपने देश, अपने प्रान्त के लोग इस पर गौर करें। सब मिलकर ईश-उपासना करें, यह बहुत अच्छी बात है। संतों ने इसके लिए कोशिश की। गुरु नानकदेव, संत कबीर साहब आदि संतों ने इसके लिए बहुत कोशिश की। इनके बाद के लोगों ने भी कोशिश की। संतों ने यह ज्ञान दिया, जो सब धर्मों के लोगों को मानने में कोई उजुर नहीं हो।

संतों ने ईश्वर-संबंधी जो ज्ञान दिया, उसमें किसी देश वा काल को स्थान नहीं दिया है। ईश्वर बिना देश-काल के हैं। वे किसी पर अवलम्बित नहीं हैं। वे बिना आधार के हैं, वे सर्वाधार हैं। सब धर्मों में कहा गया है कि ईश्वर सर्वव्यापी हैं, देश-कालातीत हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं— **'कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।'**
संत कबीर साहब कहते हैं—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य॥
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीँ तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा॥
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभा नमूना ऐना॥

परम प्रभु परमेश्वर कहाँ से कहाँ तक हैं, ठिकाना नहीं।

है सबमें सबही तें न्यारा। सबके निकट दूर सबही तें॥

परमात्मा सबको भरते हुए सबसे बाहर कहाँ तक है, इसका कोई ठिकाना नहीं। स्वरूपतः ईश्वर— परमात्मा ऐसे हैं। ईश्वर के लिए कोई मकान नहीं। वे सारे प्रकृति मण्डल में व्यापक हैं और उससे परे भी हैं, इसको कौन इन्कार कर सकते हैं। हम उन्हीं एक ईश्वर को माननेवाले हैं। ईश्वर अत्यन्त व्यापक होने के कारण जिनमें व्यापक है, उन सबसे अधिक सूक्ष्म है। वे किसी स्थूल तत्त्व से ग्रहण हो सकें, कभी संभव नहीं है। किसी इन्द्रिय से ग्रहण होना सर्वथा असंभव है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने कहा—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

ईश्वर-स्वरूप का वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी इस प्रकार करते हैं—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

ईश्वर इन्द्रियों के ग्रहण से बाहर हैं। इस विचार में सब देशों के, सब धर्मों के लोग विश्वास करेंगे। जो नहीं सुने हैं, वे सुनेंगे तो उनको विश्वास करना होगा। ईश्वर किसी से पीछे का नहीं, सबसे पूर्व के हैं। जो सबसे पूर्व का होगा, उससे पूर्व का कोई पदार्थ हो, संभव नहीं। यदि कोई दूसरा पदार्थ पूर्व का होगा, तो भिन्नता होगी। भिन्नता दोनों के आदि को विदित करेगी। जिसका आदि है, उसका कहीं-न-कहीं अन्त अवश्य होगा। दोनों आदि-अन्त-सहित हो जायेंगे। दोनों के समाप्त होने के बाद अनादि-अनन्त तत्त्व को मानना ही पड़ेगा। अनादि-अनन्त पदार्थ ही सबसे पूर्व का होगा। अनादि-अनन्त के पहले का कुछ नहीं हो सकता। सादि-सान्त पदार्थ का पीछे होना बुद्धि कबूल करती है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में लिखा है—

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।

संत कबीर साहब ने कहा—

प्रथम एक सो आपै आप। निराकार निरगुन निर्जाप।।

गुरु नानकदेवजी कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।

कठोपनिषद् में आया है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

परमात्मा सबमें रहकर सबके अनुरूप होते हुए सबसे बाहर भी है। क्या उपनिषद्, क्या संतवाणी— सबका मेल है। सबसे परे जो परमात्मा हैं, वे ही परम पुरातन, परम सनातन हैं। उन ईश्वर परमात्मा में विश्वास रखनेवाले सनातन धर्म को पकड़े रहेंगे, उन परमात्मा का जो भजन-पूजन, आराधना या उपासना है, वही सनातन धर्म है।

यह तर्क याद रखिए कि जो सबसे पहले का होगा, वह अनादि-अनन्त होगा। जो अनादि-अनन्त होगा, वही सबसे पहले का होगा और वह एक-ही-एक होगा। वही सर्वत्र होगा, सर्वव्यापक होगा। ऐसे ही तत्त्व को परमात्मा कहते हैं। इस ज्ञान को संतों की वाणी बतलाती है। इस ज्ञान को वेद मानता है।

परमात्मा इन्द्रियों को ग्रहण होने योग्य नहीं है। उनकी उपासना कैसे हो? उपासना का आरम्भ जप से होता है। इसके बाद मानस ध्यान है। इससे आगे सूक्ष्म उपासना दृष्टियोग और सुरत-शब्द-योग है। इस उपासना में संसार का कुछ भी सहारा नहीं लेना पड़ता है। बाहरी कोई चीज नहीं लेनी है। अपने को ले चलो, जहाँ ईश्वर—परमात्मा हैं। उनको ग्रहण करने में जीवात्मा ही सक्षम है। परमात्मा जब सर्वव्यापक हैं, तो वे हमारे अन्दर भी हैं। हमारे अन्दर के सभी आवरण हट जाएँ, तो उनका दर्शन होगा। अपने स्वरूप को जो पहचानते हैं, वे स्वयं अपने तईं ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। अपने अन्दर चलने के लिए बाह्य इन्द्रियों की

जरूरत नहीं है। अपने अन्दर पहले मन चलेगा। मन से चेतन आत्मा अधिक सूक्ष्म है। चेतन आत्मा आगे चलकर मन से भिन्न हो जाती है। इसकी साधना संतों ने की है। उन्होंने कहा—साधक अपने अन्दर चलते-चलते ईश्वर तक पहुँच जाता है। अपने अन्दर चलना ईश्वर की उपासना है। अपने अन्दर चलना ध्यान के द्वारा होता है।

अपने अन्दर चलने में बाहर का संसार छूट जाता है। जहाँ संसार नहीं, माया नहीं, वहीं ईश्वर है, परमात्मा है। जहाँ प्रकृति का, माया का अतिक्रमण हो गया, वहीं हैं परमात्मा। ध्यान करके प्रकृति मण्डल को पार करो, प्रकृति पार प्रभु को पाओगे। इस ज्ञान में सब लोग आ जायेंगे, तो सब एक सूत्र में बँध जायेंगे। जो ईश्वर को अनादि-अनन्त मानेंगे, वे किसी धर्म का खण्डन नहीं करेंगे। सब एक सूत्र में बँध जायेंगे। जो समझदार हैं, वे जानते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी हैं।

हमलोगों को किसी उपासक से भेद नहीं है। लेकिन उनको मालूम होना चाहिए कि केवल रूप की उपासना ही उपासना की हद नहीं है। जहाँ मन की एकाग्रता होती है, वहाँ सूक्ष्म में प्रवेश होता है। यह उपासना कैसे करें? जैसे विद्यालय में छात्रों को विद्या सिखानेवाले होते हैं, उसी तरह अध्यात्म-विद्या को भी सिखलानेवाले हैं। चाहिए कि इस विद्या को सच्चे जानकार से जानें और एक सूत्र में बँधकर आपस में मेल रखें और शान्तिपूर्वक रहें। n

यह प्रवचन बेगुसराय जिलान्तर्गत मक्खाचक (बखरी) में दिनांक ९. ३. १९६८ ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२८८. आपस में मेल नहीं रहने से नाश

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं यहाँ यों ही घूमने नहीं आया हूँ। मैं बहुत थोड़ा-सा कहूँगा। वह यह है कि आपलोग संसार में कुशल से रहें। कुशलदायक सुख के वास्ते पहले अपने वर्तमान जीवन को याद करें। वर्तमान जीवन में कुशलदायक सुख के वास्ते आपस में मेल से रहो। आपस में मेल के वास्ते अपने घर में मेल से रहो, अपने पड़ोसी से मेल से रहो, अपने समाज में मेल से रहो। अपने देश के सभी लोग मिल-जुलकर रहो, तो बड़ा सुख उपजेगा। जहाँ आपस में मेल नहीं, वहाँ कैसा परिणाम होता है, इसे जानने के लिए अपने देश में रामायण और श्रीमद्भागवत ग्रंथ प्रसिद्ध है। उनका अवलोकन करके सीख ले सकते हैं।

रावण को अपने भाई से बनाव नहीं था। उसके भाई ने समझाया, लेकिन उसको अहंकार बहुत था। उसने अपने भाई विभीषण को लातों से मारा, भरी सभा के बीच अपमान किया। विभीषण जानता था कि राम से रावण पार नहीं पावेगा। वह राम की शरण में चला गया। भाई से मेल नहीं रहने के कारण लंका राज्य का जो नतीजा हुआ, सभी जानते हैं। अपने परिवार सहित रावण मारा गया। आपस में मेल नहीं रहने के कारण बड़े-बड़े बलवान लोग नाश को प्राप्त हुए। श्रीमद्भागवत पढ़कर देखिए।

महाभारत ग्रंथ में कौरव और पाण्डव की कथा पढ़िए। पाँचो भाई पाण्डव में बड़ा मेल था। एक सौ एक भाई कौरव थे। उनलोगों को आपस में मेल नहीं था। दुर्योधन के अन्यायपूर्ण व्यवहार के कारण आपस में मेल नहीं था। उससे उनकी बड़ी भारी हानि हुई। अपने चचेरे भाई पाण्डवों से मेल

नहीं रहने के कारण अपने सभी भाइयों तथा पुत्रों के साथ मारा गया। आपस में मेल नहीं होने से ऐसा ही होता है।

एक कहानी है। एक आदमी था। वह बहुत गरीब हो गया। उसके पास भोजन भी नहीं रहा। उसको चार पुत्र थे। चारों में मेल था। एक दिन विचार किया कि चलो जंगल। चारो पुत्रों के साथ वह गरीब आदमी जंगल चला। साथ में मूंज, लोटा और हण्डी ले ली। जब जंगल पहुँचा, तो वह एक गाछ के नीचे बैठ गया। लड़कों को कहा—साफ-सुथरा करो इस जगह को। सभी लड़कों ने साफ किया। अपने मूंज की रस्सी बनाने लगा। एक लड़के को कहा कि आग लाओ। वह लड़का तुरत आग के लिए चला गया। दूसरे लड़के को कहा कि पानी लाओ। वह तुरत पानी के लिए चला गया। तीसरे लड़के को कहा—लकड़ी काटकर लाओ। तीसरा लड़का भी पिता की आज्ञा से तुरत लकड़ी के लिए चला गया। एक लड़के को कहा, चूल्हा बनाओ। चूल्हा भी बन गया। गाछ पर एक प्रेत रहता था। प्रेत सूक्ष्म शरीर में रहता है। जबतक उसकी ममता सांसारिक वस्तुओं में और परिवारों में लगी रहती है, तबतक वह प्रेत योनि में रहता है। अपने कर्मानुसार भोग-भोगकर अन्य योनि में जाता है। प्रेत से डरना ठीक नहीं। जीवात्मा की अमरता निश्चित है। इसलिए प्रेत से डरने की बात नहीं। अपने कर्म के मुताबिक जीव हानि-लाभ उठाता है। वृक्ष पर से प्रेत ने देखा कि बूढ़े के पास खाने का कोई सामान नहीं है, खाएगा क्या? उस बूढ़े से पूछा—'ऐ पुरुष! हण्डी में क्या पकाकर खाओगे?' बूढ़े ने पूछा—'तुम कौन बोलते हो, तुमको यह पूछने की क्या जरूरत है?' प्रेत ने कहा—'मैं प्रेत हूँ।' बूढ़े ने कहा—'मैं तुमको इस रस्सी से बाँधूँगा। हमलोगों को आपस में मेल है, इसलिए तुमको ही पकड़कर इस हण्डी में पकाऊँगा।' प्रेत ने कहा—'तुम्हारे अन्दर बहुत मेल है। तुमलोग मुझे पछाड़ सकते हो। मैं तुमलोगों के मेल पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमको धन चाहिए। यहाँ गाछ के नीचे धन गड़ा हुआ है, तुम ले जाओ।' वह बूढ़ा अपने पुत्रों के साथ मनचाहा धन लेकर घर वापस चला आया। यह तो मेल की बात हुई। बूढ़े के पड़ोस में एक दूसरा आदमी था। उसको भी चार पुत्र थे। उसने उस बूढ़े से पूछा कि आपको यह धन कैसे प्राप्त हुआ? बूढ़े ने जंगल का प्रेतवाला सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वह आदमी भी अपने पुत्रों के साथ उसी जंगल में उसी वृक्ष के नजदीक पहुँचा, जहाँ पर वह प्रेत रहता था। उसने अपने बेटों को कहा—'लकड़ी लाओ, आग लाओ, पानी लाओ।' बेटे ने कहा—'आप पागल हो गए हैं, इन सब चीजों की क्या जरूरत है?' किसी बेटे ने उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया। प्रेत ने कहा—'तुम जल्दी भागो, नहीं तो सबको पछाड़-पछाड़कर मार डालूँगा। तुमको आपस में मेल नहीं है।' वह बूढ़ा भाग गया।

यह तो दन्तकथा है। कोई प्रामाणिक नहीं है। लेकिन इसमें मेल का उपदेश है। मेल में बल है, मेल में बहुत लाभ है। भगवान श्रीकृष्ण के सामने ही आपस में मेल नहीं रहने के कारण छप्पन कोटि यदुवंशियों का नाश हो गया।

आपस में मेल से रहने के लिए झूठाई से अलग रहो। सत्य बोलो। सत्य के बिना मेल खत्म हो जाएगा। सत्यता को ग्रहण करो तो आपस में मेल खूब रहेगा। सत्य को जो ग्रहण करते हैं, वे ईश्वर को पाते हैं।

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाका हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप।।

इसलिए आपस में सत्य का वर्त्ताव करो। राजा बिम्बिसार को बेटे ने मरवा दिया। अजातशत्रु के

समय में लिच्छवी वंश के राजा लोग राज्य करते थे। उस समय जनतंत्र का राज्य था। अजातशत्रु राज्य प्राप्त करने का लोभी था। दूसरे राजा लोग मेल से रहते थे। उनलोगों का मेल देखकर अजातशत्रु साहस नहीं कर पाता था। भगवान बुद्ध उस समय मौजूद थे। भगवान बुद्ध से जब पूछा गया तो उन्होंने कहा–'मैंने उन सबों को जनतंत्र राज्य करने का उपदेश दिया है। जबतक वे लोग मेल से रहेंगे, तबतक कोई उन सबों पर विजय नहीं प्राप्त कर सकेगा।'

अजातशत्रु ने अपने मंत्री से कहा–'उनलोगों पर कैसे विजय मिलेगी?' मंत्री ने कहा–'बिना मेल तोड़े, वे लोग हार नहीं सकते। यदि आप मुझे आज्ञा दें, तो मैं मेल तोड़ दूँगा।' राजा ने कहा–'वैसा ही करो।' मंत्री ने कहा–'आप एक हुक्म निकाल दीजिए कि राज्य से मंत्री को निकाल दिया।' राजा ने वैसा ही किया। तमाम राज्य में ढोलहा पिटवा दिया कि मंत्री को राज्य से निकाल दिया है। वह मंत्री भी उस राज्य से निकल गया। घूमते-फिरते वह मंत्री लिच्छवी के पास पहुँचा। उनलोगों ने उस मंत्री का बड़ा सम्मान किया। उसका आदर होने लगा। मंत्री ने ऐसा विश्वास दिलाया कि सही माने में उसको राजा ने अपने राज्य से निकाल दिया है। मंत्री ने ऐसा विश्वास दिलाया कि लिच्छवी लोग मंत्री पर पूर्ण विश्वास करने लगे। वे लोग मंत्री की ओर से बेखबर हो गए। मंत्री अपनी कपट बुद्धि से लिच्छवियों का मेल तोड़ने में लग गया। सबको फुटा-फुटाकर उनलोगों के मेल को बिगाड़ दिया। अब राज्य का काम करने में गड़बड़ी होने लगी। जब इन लोगों में मेल नहीं रहा तो उस मंत्री ने राजा अजातशत्रु को गुप्त रूप से खबर दी और उसने लिच्छवियों पर चढ़ाई करके उसे जीत लिया। अगर लिच्छवियों में आपसी मेल रहता तो कभी भी अजातशत्रु उनलोगों पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता। अनमेल से बहुत नुकसान होता है। यदि आपस में झूठ का व्यवहार होगा तो कभी मेल नहीं होगा। आपस में बिल्कुल सत्य का ही व्यवहार करो। एक दूसरे के साथ सदा सत्य का ही व्यवहार करो।

अपने देश में जैसा सुख चाहिए, वैसा नहीं है। मतलब कि उपद्रवहीन स्थान में रहना सुखकर है। जहाँ चोरी होती है, डकैती होती है, एक दूसरे को कौशल से झूठ बोल-बोलकर पछाड़ते हैं, यद्यपि सरकार की ओर से सजा भी होती है, फिर भी उपद्रव नहीं जाता है। यदि आपस में मेल से रहे तो सारे उपद्रव दूर हो जायेंगे। स्वराज्य में सुन्दर राज्य होना चाहिए। देश को उपद्रवहीन राज्य बनाओ। आपस में मेल से रहने का आधार है– 'ईश्वर की भक्ति।' केवल वाचक ज्ञान से काम नहीं चलेगा। ज्ञान के साथ भक्ति और योग भी चाहिए। भक्ति के लिए ज्ञान भी चाहिए और योग भी। यदि लोग ईश्वर-भक्ति में बँधते हैं तो एक धर्म में बँधते हैं।

ईश्वर एक हैं, उनकी भक्ति करो। ईश्वर के भक्त को एक मेल में रहना चाहिए। संत कबीर साहब को लोग जानते हैं। वे काशी में रहते थे। वे वैदिक और मुसलमान को एक ही उपदेश करते थे। वे दोनों के लिए एक थे। ईरान में एक फकीर रहते थे, उनको कबीर साहब के संबंध में मालूम हुआ कि भारत में एक बहुत बड़े संत हैं। वे फकीर और कबीर साहब बूढ़े हो गए थे। फकीर साहब और कबीर साहब सूरत में एक जहाज पर मिले। दोनों ने आपस में हाथ मिलाया। दोनों एक दूसरे के हाथ पकड़े हुए रातभर बैठे रहे। मुँह से कोई बोल-चाल नहीं। जब सबेरा हुआ तो दोनों अलग-अलग हो गए। जहाज पर से उतरकर जब वापस चलने लगे तो दोनों के साथ के अनुयायियों ने पूछा कि 'आपलोग इतना कष्ट उठाकर इतनी दूर मिलने आए और कोई बातचीत नहीं की?' फकीर

साहब ने अपने अनुयायियों तथा कबीर साहब ने अपने साथ के अनुयायियों को समझाया कि हमलोगों ने बहुत बड़ी बातचीत की। अरे! हमारी आत्मा और उनकी आत्मा एक है। इसलिए हमलोगों की आत्मा, आत्मा से बातचीत हुई।

दोनों महात्मा दो देश में रहते थे। दोनों को आपस में ईश्वर की भक्ति ने मिलाया। साम्प्रदायिकता के भाव को ईश्वर-भक्ति महत्त्व नहीं देती है। भक्ति महत्त्व देती है ईश्वर में प्रेम करनेवाले को।

ईश्वर की भक्ति कैसे करें? सत्य को छोड़कर ईश्वर की भक्ति नहीं होती। ईश्वर के भक्त सब-के-सब सच्चे होते हैं। ईश्वर के भक्त सतत सत्य बोलने को तत्पर रहते हैं। ईश्वर-भक्ति के बिना लोग समता नहीं प्राप्त कर सकते। सब कोई यदि ईश्वर के भक्त बनें, तो आपस में मेल हो जाएगा। सत्य पर अटल रहनेवाला ईश्वर का भक्त होता है। वेद में भी आया है कि आपस में मेल से रहो, एक भाव से रहो। सब मिलकर एक ईश्वर की उपासना करो। जीवन में सुख पाने के लिए तथा परलोक में सुख से रहने के लिए सत्यता का पालन करो। ईश्वर-भक्ति के बिना सत्यता का पालन नहीं कर सकोगे।

दूसरी बात है कि देश में खेती के बिना सब रोजगार समाप्त हो जाएगा। खेती से अन्न उपजता है। अन्न को शास्त्रों में ब्रह्म कहा है। खेती के लिए गौ-पालन करो। गौ-पालन से खाद मिलेगा। गाय का गोबर, गोंत उत्तम खाद है। माता का दूध थोड़े दिन पीते हैं। गाय का दूध जीवनभर पीते हैं। गाय के बछड़े को हल में जोतते हैं। इसलिए गौ-पालन भी करो। देश में गौ-पालन का ख्याल बहुत कम हो गया है। इसलिए खेती में तरक्की नहीं हो रही है। खेती खूब करो। खेती के लिए गौ-माता की सेवा अवश्य करो।

अपने अन्दर अध्यात्म-ज्ञान रखो। अध्यात्म-ज्ञान के लिए ईश्वर-भक्ति करो। यह प्राचीन सिद्धान्त है, नयी बात नहीं।

अगर कोई बहिला गाय को बेचते हैं, यह देश-हित का काम नहीं करते हैं। कम-से-कम वह गाय गोबर-गोंत तो देती है। उससे खाद तो बनेगा ही। बूढ़े गाय-बैल को मत बेचो। उसको बेचोगे तो निन्दा करेंगे। कभी-न-कभी अपना शरीर भी छूट जाएगा। मनुष्य के शरीर के हाड़-चाम किसी काम में नहीं आते, लेकिन गाय-बैल के हाड़-चाम से बहुत काम करते हैं। गाय मरते-मरते भी नफा देकर जाती है। इसलिए गाय का पालन अवश्य करो और सब कोई आपस में मेल से रहो। ■

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिला संतमत सत्संग के वार्षिक अधिवेशन में, ग्राम—सधुवैली में दिनांक २३. ३. १९६८ ई० के सत्संग में हुआ था।

२८९. ईश्वर के मूल स्वरूप का दर्शन : नाद ध्यान से

प्यारे लोगो!

संतों का ज्ञान वा मार्ग मोक्ष दिलानेवाला है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है— **संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।**
कहहिं संत कवि कोविद, श्रुति पुरान सदग्रंथ।।

अर्थात् संतों का रास्ता मोक्ष में जाने का है और विषय चाहना का मार्ग संसार में रहने का है। ऐसा ही संत, कवि, विद्वान, वेद, पुराण आदि सद्ग्रंथ कहते हैं। सारे बन्धनों से छूट जाओ, यही मोक्ष है। शरीर का बन्धन सबको है। सबको यह

पता है कि शरीर के अन्दर हैं। सभी कोई शरीर के दुःख से दुःखी और शरीर के सुख से सुखी होते हैं। शरीर का बंधन और संसार का बंधन सबको है। शरीर के बन्धन से छूट जाओ तो संसार के बन्धन से भी छूट जाओगे। ईश्वर की प्राप्ति होगी तो मोक्ष होगा। ईश्वर का आनन्द जो है, वही नित्यानन्द वा ईश्वर का सुख है। इस सुख को पाने के बाद वह कभी नहीं छूटेगा। मोक्ष में यही बात है। संत लोग यही ज्ञान देते हैं। इसी का यत्न बतलाते हैं। केवल कहने से उतना लाभ नहीं होगा। यत्न जानकर करने से होगा। ईश्वर में प्रेम करने का वा उनको पाने का यत्न करो। अन्तःप्रकाश में जाने का यत्न करो। अन्तःप्रकाश में, अन्तर्नाद में जाने का यत्न करो, जो संतों की साधना है। शब्द साधना ही नाम-भजन है। शब्द नहीं तो नाम नहीं। जो कोई शब्द को छोड़ता है, वह नाम को छोड़ता है। जिस शब्द के द्वारा जिस किसी की पहचान हो जाती है, वह शब्द उसका नाम कहलाता है। संत लोग जो नाम-भजन करने कहते हैं, वह ईश्वर का नाम है। जो शब्द ईश्वर की पहचान करावे, असल में वही ईश्वर का नाम है।

जो पढ़े-लिखे लोग हैं, वे जानते हैं कि शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक सार्थक और दूसरा निरर्थक। सार्थक शब्द का अर्थ होता है और निरर्थक का कोई अर्थ नहीं। वैज्ञानिकों ने केवल कान से सुनने योग्य शब्दों को ग्रहण किया है, लेकिन और ऐसा भी शब्द है, जो कान से नहीं सुना जाता, उसको कहते हैं ध्वन्यात्मक। जिस शब्द का अर्थ होता है, वह अक्षरों में लिखा जाता है, वह वर्णात्मक कहा जाता है। ध्वन्यात्मक शब्द निरर्थक है, लेकिन बेफायदे नहीं। जैसे गाने में जो लय वा ध्वनि होती है, उसका तो कोई अर्थ नहीं होता, लेकिन वह बड़े काम का है, निरर्थक नहीं अर्थात् बेफायदे नहीं। कोई बाजा बजता है, उसकी ध्वनि सुनने में प्रिय लगती है। वह ध्वनि निरर्थक है, लेकिन बहुत प्रिय मालूम होती है। इसलिए वह बेफायदे की ध्वनि नहीं है। शब्द दो प्रकार के होते हैं। जितने नाम लोग लेते हैं, वे वर्णात्मक हैं। वर्णात्मक विहीन शब्द ध्वन्यात्मक है। उसका कोई अर्थ तो नहीं, लेकिन है बड़े काम का। वह ध्वन्यात्मक शब्द ईश्वर का नाम है। ईश्वर का असली नाम ध्वन्यात्मक ही है। वर्णात्मक नाम जितने हैं, उनसे ईश्वर के गुण प्रकट होते हैं। जैसे राम कहते हैं। इसका अर्थ हुआ सर्वव्यापी। यह ईश्वर का गुण प्रकट करता है। शिव का अर्थ होता है कल्याणकारी। इससे गुण प्रकट हुआ, लेकिन ईश्वर की पहचान नहीं। यहीं पर लोग कहते हैं, प्रह्लादजी ने नाम लेते-लेते भगवान को प्रकट कराया। प्रह्लाद के यहाँ जो भगवान का प्रकट होना था, उनकी देह बिल्कुल मनुष्य-जैसी थी और मुख सिंह के जैसा। यह ईश्वर का रूप हुआ। राम, कृष्ण, देवी, देवता आदि जिनको कहते हैं, वे सब ईश्वर के रूप हैं। इन सब रूपों के मूल में कौन हैं? सबके मूल में स्वरूपतः ईश्वर हैं। जितने रूप हैं, सब सगुण हैं। जिसमें गुण हैं अर्थात् त्रयगुण— सत्त्व, रज, तम, वह सगुण है। रजोगुण उत्पादक, सत्त्वगुण पालक और तमोगुण नाशकर्ता है। जो इन तीनों गुणों को साथ में नहीं लेते हैं, वे निर्गुण हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

अगुन अखंड अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होई॥

निर्गुण-स्वरूपी ईश्वर का अभाव न कभी था, न है और न होगा। मूल में क्या हुआ? अगुण, अखण्ड, अलख, अज। ये ही भक्त के प्रेम के कारण सगुण रूप धारण करते हैं। अपने शरीर नहीं होते, शरीर को धारण करते हैं। जो शरीर के अन्दर रहता है, वह शरीर नहीं हो जाता। ठीक से विचार द्वारा निर्णय करने पर जड़ शरीर चार

(स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण) प्रकार के सिद्ध होते हैं। ईश्वर इन चारो तत्त्वों से भिन्न हैं। जीव ईश्वर का अभिन्न अंश है। ईश्वर का मूल स्वरूप है अगुण। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

यह अपार स्वरूप ईश्वर सब रूपों में व्यापक हैं। जितने जीवात्मा हैं, सब गुणों के साथ हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

अचर चर रूप हरि, सर्वगत सर्वदा। बसत इति वासना धूप दीजै।
—विनय-पत्रिका

सगुण रूप बहुत हैं। सबके मूल में अगुण, अखण्ड, अलख, अज है। वह मूल एक-ही-एक है। वह निर्गुण है। वही निर्गुण जब गुणों को धारण करता है, तब सगुण कहलाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—

रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनव सोइ वर वारि अगाधा।।

गंभीर हो, परन्तु मैला हो, वह ठीक नहीं और स्वच्छ हो, परन्तु अल्प हो तो भी ठीक नहीं। लेकिन कार्य-विशेष में जिसमें गंभीरता है, उससे विशेष काम चलता है। इसके संबंध में गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़ा अच्छा कहा है—

हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

मतलब यह कि सोने के डिब्बे में मूल्यवान रत्न है। सोना भी मूल्यवान है, लेकिन उसमें जो सुन्दर रत्न है, उसका मूल्य सोने के डिब्बे से बहुत विशेष है। इसलिए न तो निर्गुण को छोड़ना चाहिए और न सगुण को। साधना की पहली अवस्था में सगुण से ही काम चलेगा, लेकिन मूल में बिना निर्गुण से काम नहीं चलेगा। सगुण में दृश्य है, दृश्य के साथ-साथ शब्द भी है। जिस रूप को श्रीराम, श्रीकृष्ण कहा, उस रूप के साथ शब्द है। वह शब्द रूप को विदित करता है। शब्द और रूप—दोनों संग-संग हैं। सगुण-निर्गुण के सम्बन्ध में कबीर साहब ने कहा—

सर्गुण की सेवा करो , निर्गुण का करु ज्ञान।
निर्गुण सर्गुण के परे, तहाँ हमारा ध्यान।।

उन्होंने सगुण रूप में गुरु को लिया है, इसलिए उन्होंने कहा है—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

गुरु नानक साहब ने भी कहा—

गुर की मूरति मन महि धिआनु। गुरु कै शबदि मंत्र मनु मानु।।
गुर के चरण रिदै लै धारउ। गुरु पारब्रह्म सदा नमसकारउ।।
मत को भरमि भूलै संसारि। गुर बिनु कोई न उतरसि पारि।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा—

बिनु गुरु भव निधि तरै न कोई। जौं बिरंचि शंकर सम होई।।

जब भगवान श्रीराम वाल्मीकिजी के आश्रम में पधारे, तो वाल्मीकि मुनि ने कहा—

तुम्हतें अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी।।

कोई इष्ट हों, वहाँ गुरु अवश्य हैं। गुरु के बिना काम नहीं चल सकता। ईश्वर की सगुण व निर्गुण उपासना में गुरु की बहुत आवश्यकता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका में लिखा है—

श्रीहरि गुरु पद कमल भजहिं, मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि, सुख निधान भगवान।।

गुरु की सेवा से ईश्वर को पाओगे। सब महात्मा लोग गुरु की महानता को मानते हैं। संसार और संसार के सभी पदार्थों में तथा संसार से बाहर भी ईश्वर हैं। अंधकार और प्रकाश में भी ईश्वर हैं। ईश्वर ज्ञान-स्वरूप हैं। जो ईश्वर को प्राप्त कर लेते हैं, उनको सब ज्ञान आ जाता है। कबीर साहब ऐसे ही थे। खूब पढ़ते-लिखते रहिए, लेकिन ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा। ईश्वर को

भजते रहिए, उसमें सब ज्ञान होगा। इस जगत को सौर जगत कहते हैं, बल्कि सूर्य को ईश्वर का अवतार ही लोग मानते हैं। सूर्य नहीं तो संसार नहीं। ज्योति नहीं रहे, तो संसार का सब काम बन्द हो जाएगा। इसी तरह अगर शब्द नहीं रहे, तब भी संसार नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। शब्द का बड़ा महत्त्व है। शब्द नहीं रहे तो कोर्ट-कचहरी, विद्यालय सब खत्म। शब्द का इतना महत्त्व है कि यदि कहीं भयंकर युद्ध हो रहा है और सेनापति अपने शब्द में कहे कि युद्ध बन्द करो, तो तुरन्त बन्द हो जाएगा। यह शब्द की करामात हुई। शब्द सबको शासन में रखता है। शब्द में ही विधान वा कानून बनता है। ज्योति और शब्द संसार में बहुत प्रभावकारी हैं। इसलिए शब्द और ज्योति ईश्वर की अति विशेष विभूतियाँ हैं। संतों ने इसे बहुत अच्छी तरह समझाया है। जिसने अपने अन्तर में ज्योति और नाद को प्राप्त किया अर्थात् ज्योति ध्यान और नाद ध्यान किया, उन्होंने ईश्वर को प्राप्त किया। ध्वन्यात्मक शब्द, सारशब्द ईश्वर को प्राप्त करा देता है। वही ईश्वर का असली नाम है। ध्वन्यात्मक शब्द ईश्वर तक पहुँचा देता है और परिचय करा देता है। वर्णात्मक शब्द में ईश्वर की पहचान कराने का गुण नहीं है। साधना के आरम्भ में इसकी भी बड़ी आवश्यकता है। इसलिए वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक, दोनों नामों का भजन करना चाहिए।

नाम जपत स्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरति शब्द एकै भया, जल ही ह्वैगा मीन।।

—कबीर साहब

इसलिए दोनों नामों को जानना चाहिए। नाद-विन्दु की उपासना करनी चाहिए। विन्दु उपासना में ज्योति पकड़ी जाती है और ज्योति में शब्द पकड़ा जाता है। ज्योति ग्रहण करो। ज्योति में केन्द्रीय शब्द को ग्रहण करना चाहिए।

प्रचलित ख्याल में लोग वर्णात्मक नाम को ही विशेष महत्त्व देते हैं। उसका भी महत्त्व है अवश्य, लेकिन एक हद तक। परन्तु ध्वन्यात्मक का महत्त्व है ईश्वर प्रत्यक्ष करने तक। वर्णात्मक नाम के जप से जो रूप प्रकट होता है, वह ईश्वर का मूल स्वरूप नहीं है। ईश्वर के मूल स्वरूप का दर्शन होता है नाद ध्यान के अभ्यास में। जबतक कोई नाद ध्यान का अभ्यास नहीं करेगा, तबतक ईश्वर तक नहीं पहुँच सकता। ■

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिला संतमत सत्संग के वार्षिक अधिवेशन में, ग्राम—सधुवैली में दिनांक २४. ३. १९६८ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२९०. ईश्वर समुद्र हैं और सज्जन बादल

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

संतों ने ईश्वर की भक्ति को बहुत दृढ़ता से सब लोगों के लिए दृढ़ा दिया है। उन्होंने बताया है कि ईश्वर की भक्ति से ही मनुष्य का कल्याण होगा। इसलिए ईश्वर की स्थिति में पूर्ण विश्वास करके भक्ति करो। ईश्वर की भक्ति में उनकी उपासना, स्तुति और प्रार्थना होनी चाहिए, इसको याद रखिए। स्तुति कहते हैं—यशगान करने को। प्रार्थना कहते हैं—नम्रता सहित कुछ माँगने को। ईश्वर तो सबको, जिसको जो कुछ देना चाहिए, देते हैं, फिर भी लोगों को धैर्य नहीं रहता है, तो माँगते हैं। माँगो, तो ईश्वर से माँगो। ईश्वर से वही चीज माँगो, जो ईश्वर ही दे सकते हैं और कोई नहीं। मेरी समझ से वह ईश्वर का स्वरूप ही है

और कुछ नहीं। ईश्वर अपने स्वरूप को आप व्यक्त कर सकते हैं, दूसरे को अधिकार नहीं। ऐसा हो जाए, तो कुछ बाकी नहीं रहेगा।

उपासना को आराधना भी कहते हैं। एकान्त में बैठ-बैठकर जप करो और ध्यान करो। जप विधि को जानो और ध्यान विधि को जानो। जप ध्यान करने से ईश्वर की ओर जाया जा सकेगा, पहुँचा जा सकेगा। ईश्वर की ओर जाना ईश्वर की भक्ति है। यह उपासना है, आराधना है। जिससे जो उपकृत हो, वह उपकारक का गुणगान करे। उनकी जो सेवा हो, करे; वही उचित है। ईश्वर से हम कितने उपकृत हैं, क्या कहा जाए! एक श्वास भी उनकी कृपा के बिना हम नहीं ले सकते। बिना वायुमण्डल के श्वास हम कैसे ले सकते हैं। एक श्वास से भिन्न रहकर हम ईश्वर को नहीं जान सकते। ईश्वर से बहुत उपकृत हैं, ईश्वर का गुणगान अवश्य करो। इससे ईश्वर में अनुरक्ति होती है। ईश्वर-भक्ति में रुचि बढ़ती है। इसलिए ईश्वर की स्तुति करो। ईश्वर का ज्ञान हमको मिलता है संतगण से। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा।।

ईश्वर समुद्र हैं और सज्जन (सत्+जन) बादल हैं। समुद्र में बहुत जल है, बादल उसी जल से बनकर तमाम संसार को सींचकर जीवन दान देते हैं। इसी तरह संतगण भी—धीर सज्जन भी ईश्वर के बनाए बनते हैं और तमाम संसार को ईश्वर का ज्ञान देकर ईश्वरमुख करके ईश्वर का भजन कराकर मोक्ष देते हैं। यह संत का उपकार है। जिनको ईश्वर की प्राप्ति होती है, उनका मोक्ष होता है। उनका सारा क्लेश दूर हो जाता है—कोई कष्ट नहीं रहता है। इसलिए संत-स्तुति भी कीजिए। 'सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर औरु अक्षर पार में।. ....'—यह ईश्वर की स्तुति है और 'सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी'—यह संत-स्तुति है

मनष्यों को जो परमार्थ का पाठ पढ़ानेवाले, उस ओर ले जानेवाले और युक्ति बतानेवाले होते हैं, वे गुरु होते हैं। संत की तरह इनका भी उपकार होता है। संतलोग कभी-कभी दर्शन देते हैं, गुरु भी कभी-कभी दर्शन देते हैं। लेकिन गुरु खास तरह से उपकार करते हैं। गुरु और संत के उपकार से मनुष्य कृतकृत्य होता है। इसलिए संत-स्तुति के बाद हमलोग गुरु-स्तुति करते हैं। इसके बाद हम अपने धर्म को जानें। धर्म कहते हैं—शुभ कर्म को। ऐसा कर्म करना, जिससे संसार के क्लेशों से छूटकर ईश्वर को पा लेना हो। धर्म की परिभाषा को जानना। संतों ने जो ज्ञान बताया है, उसका पीछे पाठ करते हैं। धर्म के सिद्धान्त और उसकी परिभाषा को नित्य पढ़ना चाहिए। कभी भूलना नहीं चाहिए। जो कभी-कभी पाठ करे, सब दिन पाठ नहीं करे, तो भूल जायेंगे। जो अपने सिद्धान्त को याद नहीं रखेंगे, वे अपने धर्म में दृढ़ रहेंगे, कैसे सम्भव है?

हमलोग संतों के ज्ञान के अनुकूल सत्संग करते हैं। संतों ने ईश्वर का ज्ञान दिया है कि जो इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आता केवल आत्मा के ही ज्ञान में आता है, वह है ईश्वर। इन्द्रियों में चेतन आत्मा की धारा है, तब इन्द्रियों में ज्ञान है। इन्द्रियों के संग में रहकर आत्मा को जो ज्ञान होता है और इन्द्रियों के संग को छोड़कर तब जो चेतन आत्मा को ज्ञान होता है, दोनों में बड़ी भिन्नता है। इन्द्रिय-ज्ञान में संसार के पदार्थों को पकड़ते हैं और केवल चेतन आत्मा के ज्ञान से ईश्वर की पकड़ होती है। ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान केवल चेतन आत्मा से ही होता है। जो देश-काल में है और अदलता-बदलता है, वह माया है। संसार की जितनी वस्तुएँ हैं, सभी देश-काल से घिरी हुई हैं और इन्हीं वस्तुओं को

हम जानते हैं। इन्द्रियों का संग छोड़कर तब कैसा ज्ञान होता है, पुस्तक में पढ़ते हैं, किसी से सुनते हैं, लेकिन प्रत्यक्ष रूप में नहीं जानते। प्रत्यक्ष रूप में नहीं जानने के कारण अधूरे रहते हैं। पूरा ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान में होता है। पढ़ो, सुनो, समझो—यह परोक्ष ज्ञान है, लेकिन यह पूर्ण नहीं है। इससे भी लाभ होता है। सद्ग्रंथों के पाठ से, सत्संग से ईश्वर-संबंधी परोक्ष ज्ञान पाते हैं। सो यह पाते हैं कि कैसा होने से ईश्वर का ज्ञान होता है। साधन करके, अपने आप में रहकर, तब निजी ज्ञान में कैसा होता है, वह अपने तईं को मालूम होता है। उसको मालूम होता है कि ईश्वर कैसा है? इसलिए पहले ईश्वर-स्वरूप का परोक्ष ज्ञान जानकर साधन करना चाहिए। साधन करते-करते अपरोक्ष ज्ञान होगा और पूर्णता होगी।

यह ख्याल नहीं करना चाहिए कि हम अधूरे गए। साधन-विधि को ठीक-ठीक समझो, साधन करते चलो, अन्त में ईश्वर की प्रत्यक्षता होगी। जिन लोगों को हुआ है, ऐसा ही हुआ है। उकताना नहीं चाहिए। जो भक्ति-मार्ग पर चलता है, वह कभी-न-कभी रास्ते का अंत अवश्य पाता है। उसको कभी-न-कभी पूर्णता अवश्य होगी। यह बात याद रखिए।

उपासना करो, स्तुति करो, प्रार्थना करो—यह ईश्वर की भक्ति है। किसी-न-किसी तरह ईश्वर की ओर अपनी वृत्ति जोड़ो, यह ईश्वर का भजन ही है। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत ६०वाँ अखिल भारतीय संतमत सत्संग में, भारत के महान तीर्थ हरिद्वार में दिनांक ८. ६. १९६८ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२९१. किस विधि से इन्द्रियों का संग छूटेगा?

पूज्य महात्मागण तथा धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

मैं यहाँ महात्मागण को ज्ञान उपदेश करूँगा, यह ख्याल कदापि नहीं रखता। उनसे सीखने आता हूँ। जनता में जो विज्ञ हैं, उनको क्या कहूँगा? जो जानते हैं, उनको याद हो जाएगा और जो कम जानते हैं, वे समझ पायेंगे। इस सत्संग में मुख्य बात है, ईश्वर की भक्ति। ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है। जैसे कोई पथिक अपने पहुँचने के स्थान को नहीं जाने, केवल चलता रहे, तो हैरान होता रहेगा। इस तरह ईश्वर-भक्ति में ईश्वर-स्वरूप निर्णय किए बिना जो भक्ति का आरम्भ करता है, वह भटकता रहता है और हैरान होता रहता है।

ईश्वर-स्वरूप के लिए थोड़ी-सी बात सुनिए। यदि जँच जाए, तो उसको स्मरण रखिएगा। संसार की वस्तुओं को जानने के लिए पंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनमें से कोई भी एक इन्द्रिय ऐसी नहीं कि जिससे संसार के सभी पदार्थों को जानें। संसार में बहुत पदार्थ हैं, लेकिन समास रूप में जानें, तो बहुत अच्छा है। एक पदार्थ जिसको दृश्य वा रूप कहते हैं, दूसरे को रस वा स्वाद कहते हैं, तीसरे पदार्थ को गन्ध, चौथे को स्पर्श और पाँचवें को शब्द कहते हैं। ये पाँच पदार्थ हैं। इन्हीं को पाँच सूक्ष्म पदार्थ वा पंच तन्मात्राएँ कहते हैं। ये ही पाँच पदार्थ संसार में हैं। रूप पदार्थ को ग्रहण करने की योग्यता केवल नेत्र को है। कान, नाक, जिभ्या, त्वचा—इन चारों को शक्ति नहीं कि दृश्य पदार्थ को ग्रहण कर सकें। नाक को यह शक्ति नहीं कि गन्ध के अतिरिक्त किसी विषय को ग्रहण करे। कान की यह शक्ति नहीं कि शब्द के अतिरिक्त किसी विषय को ग्रहण कर सके। जिभ्या को यह

शक्ति नहीं कि रस वा स्वाद के अतिरिक्त किसी अन्य विषय को ग्रहण कर सके। त्वचा को यह शक्ति नहीं कि स्पर्श विषय के अतिरिक्त किसी अन्य विषय को ग्रहण कर सके। मतलब यह कि एक-एक इन्द्रिय को एक-एक विषय ग्रहण करने की शक्ति है। इन इन्द्रियों को इतने ही तक की पहुँच हैं, मन इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अन्दर ही घूमता है। पंच पदार्थों का ही मनन करता है। बुद्धि भी इन्हीं में घूमती है और इन्हीं को विचारती है। बुद्धि बड़ी बलवती है। पंच पदार्थों के परे भी कुछ पदार्थ है, यह सोचती है। वह कहती है कि पंच पदार्थों के परे भी कुछ है। वह कहती है कि जीवात्मा! तुम हो, मैं जानती हूँ, लेकिन तुमको पहचानती नहीं हूँ। ईश्वर की स्थिति है, जानती हूँ, पहचानती नहीं।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

यह बुद्धि से परे का पदार्थ है। परमात्म-स्वरूप इन्द्रियों से वा मन-बुद्धि से ग्रहण होने योग्य नहीं है। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा था—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

सबको माया जानकर मायातीत को भी जानना आवश्यक है। जिस सुख के लिए लोग लालायित होते हैं, जिस सुख को पकड़ना चाहते हैं, उस सुख को पाते नहीं हैं। सुखस्वरूप तो परमात्मा हैं, दूसरा कुछ नहीं। बिना उनको पकड़े सुख नहीं मिल सकता। जीवात्मा को कौन जाने? कोई इन्द्रिय उसको नहीं जान सकती। बुद्धि भी नहीं जानती। परमात्मा को भी कौन जाने ? शरीर में जो जीवात्मा है, इसमें जो ज्ञान की शक्ति है, उसी से मन, बुद्धि और बाहर की इन्द्रियों में शक्ति है। असल में इन्द्रियों के ज्ञान में जीवात्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। तब क्या जीवात्मा स्वयं को स्वयं से नहीं पहचान सकता? हाँ, जीवात्मा ही अपने को अपने से पहचान सकता है।

आतम आपको आपही जानै। —संत सुन्दरदासजी

लेकिन जीवात्मा इन्द्रिय-ज्ञान में रहकर अपना प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं कर सकता। जब अपनी ही पहचान नहीं, तब ईश्वर को क्या पहचाने? जीवात्म-भाव में चेतन आत्मा तभी तक है, जबतक मन, बुद्धि के संग में है। इन्द्रियों के संग से हटकर अपने तईं में रहकर अपनी पहचान होगी और तभी ईश्वर की भी पहचान होगी।

ईश्वर-दर्शन की लालसा भक्त को बड़ी रहती है। अन्तिम ध्येय यही है। जीवात्मा अपने से अपने को और ईश्वर को पहचानेगा। लेकिन शरीर और इन्द्रियों का संग छोड़कर। जिस विधि से मन, बुद्धि का संग छूटे, इन्द्रियों का संग छूटे, अपना आपा जानने में आवे, उसकी जानकारी होनी चाहिए और इतना अभ्यास हो कि शरीर-इन्द्रियों का संग छूटे, अपने तईं में रहा जाए और ईश्वर की पहचान हो। संतों ने इसकी विधि बतायी है। जैसे रूप क्या है? तो जो आँख से चीन्ह लो। शब्द क्या है? जो कान से पकड़ सकते हो। रस क्या है? जो जिभ्या से पकड़ सकते हो। गंध क्या है, जो नाक से ग्रहण हो। स्पर्श क्या है? जो त्वचा से ग्रहण हो। इसी तरह ईश्वर क्या है? अपने तईं तुम क्या हो? तो दोनों का एक ही उत्तर है कि जो तुम अपने तईं से पहचान सको। अपने ज्ञान से, आत्मज्ञान से ही ईश्वर का दर्शन होता है। चेतन आत्मा जड़ का संग छोड़कर जो पहचाने, उसी को ईश्वर-दर्शन कहते हैं। ईश्वर क्या है? जो चेतन आत्मा के ज्ञान में पहचाने जाते हैं। जिनको केवल चेतन आत्मा ही पहचान सकती है। जिस साधन के द्वारा चेतन आत्मा शरीर-इन्द्रियों से छूटकर अपने तईं में रह सके, वही साधन ईश्वर की भक्ति है। आपलोग की याद रखिएगा। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत ६०वाँ अखिल भारतीय संतमत सत्संग में, भारत के महान तीर्थ हरिद्वार में दिनांक ८.६.१९६८ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२९२. पवित्र भूमि से पवित्रता की प्रेरणा

पावन स्वरूप तथा तीर्थों को भी पवित्र करने वाले उपस्थित महात्मागण को मैं प्रणाम करता हूँ। मैं आपको शिक्षा का कोई वचन कहने योग्य नहीं हूँ। हाँ, उपस्थित जनता को मैं कुछ कहूँ, जो लोग कि आपके दर्शन से पवित्र होते हैं, यह मेरे लिए शोभनीय है। इसलिए—

धर्मानुरागिनी जनता!

आपको ज्ञात है कि मैं संतमत का एक कनिष्ठ सेवक हूँ। मैं इसका थोड़ा-थोड़ा प्रचार कर रहा हूँ। और गुरु की आज्ञा से जो शक्ति है, उस शक्ति को प्रचार में लगाकर काम करता हूँ। मैं इस पवित्र भूमि में आकर सत्संग इसलिए करने के लिए प्रस्तुत हुआ कि यहाँ के महात्माओं से बहुत कुछ अध्यात्म-विषय का प्रेरण मिलेगा। पवित्र भूमि से पवित्रता का प्रेरण मिलेगा। श्रीगंगाजी से पवित्रता का प्रेरण मिलेगा। इसलिए मैं इस जर्जर अंग से भी आकर यहाँ उपस्थित होकर आपके सामने हूँ। चूँकि मैं संतमत का प्रचार करता हूँ, संतों की वाणी को छोड़कर मैं अपनी ओर से कुछ कहूँ, मेरे लिए कैसे शोभनीय हो सकता है। और संतों की वाणी का पाठ नहीं करूँ, नहीं सुनूँ, आपको नहीं सुनवाऊँ, यह भी शोभनीय बात नहीं है। संतमत में संतों की वाणी का आधार है, इसलिए संतों की वाणी का पाठ आपलोगों को सुनाया करता हूँ या सुनवाया करता हूँ।

संतमत में जो संतों की वाणियाँ हैं, वे वेद-वाक्य से, उपनिषद्-वाक्य से बाहर नहीं हैं। संतवाणी का वेद-वाक्य से और उपनिषद्-वाक्य से मेल है। मुझको ऐसा बोध हुआ है। जानने में आया है। सत्संग से मेरे हृदय में यह दृढ़ हो गया है और इस दृढ़ता का प्रतीक मेरे द्वारा संग्रह किया हुआ 'सत्संग-योग' है। जो लोग इसको पढ़ते हैं, तो उनको मालूम पड़ता होगा कि वेद-वाक्य, उपनिषद्-वाक्य, संत-वाक्य—इन सब वाक्यों में मेल है। न तो संतगण वेद-बाह्य विषय कहते हैं और न वेद-वाक्य संतों को अपने ज्ञान से बाहर होने देता है। इसीलिए वेद-मंत्र का भी एक-दो पाठ हो जाता है, उपनिषद् के श्लोकों का भी कुछ पाठ हो जाया करता है। आपलोगों ने सुना है—वेद में अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद के विषय में कहा गया है। ईश्वर को मन-बुद्धि से परे कहा गया है। उपनिषद् में यह बात आयी है। एक कथा है कि ब्रह्माजी शिव भगवान के पास जाकर कहने लगे कि संसार के जीवों के उद्धार के लिए आप क्या कहते हैं? कोई योग को श्रेष्ठ बतलाते हैं, कोई ज्ञान को श्रेष्ठ बतलाते हैं, आपका क्या मत है? कहिए। सुनकर शंकर भगवान ने कहा कि मेरा मत है कि योग के बिना ज्ञान अपूर्ण होता है और ज्ञान के बिना योग भी अपूर्ण होता है। इसलिए मोक्ष—मुक्ति चाहनेवाले को चाहिए कि ज्ञान और योग, दोनों का अभ्यास दृढ़ता से करे। यह आपने अभी सुना—पाठ हुआ था। हमलोग जो सत्संग करते हैं, इसमें ज्ञान का उपदेश होता है। इसको मन लगाकर सुनने से ज्ञान का अभ्यास हो जाता है। और मन एक तरफ लगा रहे, सुनता रहे, यह भी एक किस्म का योग है। तो, योग का और ज्ञान का संग-संग एक प्रकार से अभ्यास होता रहता है। इसलिए सत्संग का बड़ा फल होता है। सत्संग वचन में यह ज्ञान और योग

का साधन होता चला जाता है।

ईश्वर-भक्ति की बड़ी महिमा है। वह ईश्वर की भक्ति, ज्ञान और योग के सहित रहती है। जहाँ ज्ञान आता है, वहाँ भक्ति को पकड़ लाता है। जहाँ योग रहता है ज्ञान के साथ, तो वह भक्ति को छोड़ने नहीं देता—भक्ति को धारण किए हुए रहने के लिए शक्ति उत्पन्न कर देता है। इसलिए जहाँ ज्ञान और योग है, वहाँ भक्ति से खाली रहे, सो नहीं जानना चाहिए। अरे! योग, किसके लिए योग?

जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू।।

कबीर साहब कहते हैं—

संगति ही जरि जाव, न चर्चा राम की।
दुलह बिना बारात, कहो किस काम की।।

योग कहते हैं संयुक्त कर देने को। जो राम से संयुक्त कर देता है, ब्रह्म से संयुक्त कर देता है, वह जानो योग है। यहाँ तो ज्ञान, योग, भक्ति—ये सब संग-संग मौजूद हैं, संतों की वाणी में। और पूर्व के संत जो उपनिषद् कहे हैं ऋषि-मुनि लोग, उनकी वाणियों में ये सब मौजूद हैं। भगवान श्रीकृष्ण संध्या किया करते थे—भागवत में लिखा है, जो आप सब लोगों ने सुना है। संध्या किया करते थे। वे ब्राह्ममुहूर्त्त में जग जाते और उस वक्त संध्योपासना में लग जाते। उनका शरीर आनन्द से खिल जाता था, रोम-रोम खिल जाता था। ये क्या करते थे? धर्मवृत्ति में शारीरिक ज्ञान में अवश्य रहते थे। उपासना के समय में सारी शारीरिक वृत्ति को सम्भालकर केवल आत्मा में रत होकर रहते थे। बड़ी प्रसन्नता उनको आती थी। उस प्रसन्नता का भोग जो उनको अपने विषय में होता था, अपने में हो जाता था। वह भोग फैलता हुआ शरीर तक आता था और शरीर को भी प्रफुल्लित कर देता था। यह भगवान इसलिए करते थे कि वह अगर यह करना छोड़ देंगे, तो दूसरे लोग भी नहीं करेंगे। बड़े लोग जिस काम को धारण करते हैं, वही काम नीचे के लोग जो अनुसरण करनेवाले हैं, करते हैं। बड़े लोगों से अगर कोई त्रुटि हो जाती है तो त्रुटि को लोग धारण करने लग जाते हैं। बड़े लोग अगर ऊँचे कर्म करते हैं, तो ऊँचे कर्म को लोग धारण करने लग जाते हैं। भगवान कृष्ण इसीलिए संध्या करते थे कि सब कोई संध्या करें, कोई नहीं छोड़ें। अपने देश में कर्मयोग का प्रचार बहुत हुआ है। कर्मयोग का प्रचार इसलिए हुआ कि देश का काम रुके नहीं।

भगवान कृष्ण ने देश के काम को नहीं रोका, लेकिन योग को भी उसके सहित रखा। उन्होंने कर्मयोग का उपदेश दिया और कर्मयोग का उपदेश अपने देश में बहुत पूर्व काल से है। भगवान कृष्ण ने कहा कि इसका उपदेश में पहले मैंने सूर्य को दिया। सूर्य ने मनु को दिया। मनु ने इक्ष्वाकु को दिया और इस तरह से राजा की परम्परा में बहुत दिनों तक यह ज्ञान रहा। समय की प्रबलता से वह ज्ञान लुप्त हो गया था। वही आज तुमको कहता हूँ—अर्जुन से कहा। अर्जुन ने कहा कि आप तो अब हो, और सूर्य तो बहुत पहले हुए, आपने कैसे उनको कहा? तो कहा कि तुम्हें मालूम नहीं, मुझको मालूम है। तुम्हें स्मरण नहीं, मुझको स्मरण है। मेरे तेरे बहुत-से जन्म हुए। मुझे सब स्मरण है, तुम्हें मालूम नहीं—स्मरण नहीं है। इस तरह से उन्होंने कर्मयोग का उपदेश दिया। और जो कर्मयोग के उपदेश में अभी आपने पाठ में सुना है—उसमें सार बात यही है कि आत्मरत रहते हुए कर्म करो, बस यही कर्मयोग है। आत्मरत होते हुए कर्म करो और सब योग के जो अच्छे-अच्छे गुण हैं, सब आप-ही-आप आकर वहाँ जमा हो जायेंगे। आत्मरत होना—आत्मा की तरफ होना। यह हमारे शरीर से बाहर तो नहीं है। बाहर रहे तो हम पहचानते भी तो नहीं हैं, लेकिन अन्दर में अपने

शरीर के अन्दर में आत्मा है। यह अगर पहचान नहीं सकते, तो भी यह विश्वास अडिग है।

आत्मरत होनेवाला किधर को जाएगा? आत्मरत होनेवाला अन्तर की ओर जाएगा। बहिर्मुख होता हुआ विषयमुख होगा। रूप, रस,गन्ध, स्पर्श और शब्द में फँसेगा। अन्तर्मुख होओ। इसलिए आत्मरत होने का यत्न यह है कि अपना निशाना अपने अन्दर हो, अपने को इसी पर लगाकर रखो। यह एक मैं इशारा करता हूँ। यह है जिससे कोई आत्मरत हो सके। अपना निशाना अपने अन्दर रखो। कहाँ रखोगे? गुरु से जानोगे, यह गुरुगम्य है। अपना निशाना खूब समझ लो। सब लोग आत्मरत रहते हुए कर्म करो, कर्म का बन्धन नहीं लगेगा, मुक्त हो जाओगे। तो इसके लिए क्या करोगे? अपना निशाना अपने अन्दर में रखो; क्योंकि आत्मा अन्दर में पहचान करने में आ सकती है, इसलिए अपना निशाना अपने अन्दर रखो, अपने को उस पर लगाकर रखो। अपने ही निशाने पर अपने को लगाकर रखो।

जो इस तरह से रहते हुए कर्म करता है, तो आत्मरत रहते हुए कर्म करता है। अगर कर्म नहीं करता है, तो संसार में उसका रहना फिजूल होता है। संसार में रहता है, संसार का भोग-भोगता है और संसार के लिए काम नहीं करता है, तो वह क्या है? वह कृतघ्न है। संसार में रहता है, संसार का भोग-भोगता है और संसार में कर्म करके संसार की रक्षा या संसार में उचित कर्म करके जो इसका बढ़ाना है, वही नहीं बढ़ाता, तो वह कृतघ्न है। वह कृतघ्नता का पाप लेता है। इसलिए उचित कर्म करना उत्तम है और उसको छोड़ देना उत्तम नहीं है। उचित कर्म करो, कर्तव्य कर्म करो, अनासक्त होकर कर्मों को करो, इत्यादि उपदेश हैं। तब ऐसा बनोगे कैसे? एक क्षण अनासक्त, फिर आसक्त। यह कैसे छूटे? तो आत्मरत रहो, बनने के लिए यह कुंजी है। यह गुरुगम्य है। सो अपना निशाना अपने अन्दर करो। निशाना ऐसा हो, तुम पूर्ण सिमटाव में आ जाओ। यही करना है। निशाना ऐसा हो तो तुम पूर्ण सिमटाव में आ जाओगे। पूर्ण सिमटाव करनेवाला क्या है? पूर्ण सिमटाव करनेवाला विन्दु है। विन्दु और नाद के बारे में आपने सुना है, अभी उपनिषद्ग्रंथ से जो पाठ होता था। पूर्ण सिमटाव करनेवाला विन्दु है। जहाँ नहीं देख सकते हो, वहाँ दिखलानेवाला विन्दु है। जितनी दूर देखना इस चर्म-चक्षु से असम्भव है, वहाँ तक दिखलानेवाला विन्दु है। जिस तरह प्रत्यक्ष में बड़े-बड़े दूरबीनों को लगा-लगाकर देखते हैं, दूर-दूर तक देखते हैं, कहते हैं कि सूर्य के पार भी देखने लग गए। लेकिन संत दरिया साहब जो बिहार ही में हुए थे— आरा जिले में, उन्होंने बड़ा अच्छा कहा—

क्या जामे जमशेद का, क्या सिकन्दर ऐन।
दिल चश्मा से देखिए, अविगत सूझै नैन।।

सिकन्दर एक बादशाह था। उसने एक ऐना बनवाया था। उससे बहुत दूर तक मालूम होता था। जमशेद भी एक राजा था। उसने एक प्याला बनवाया था। उसमें देखता था। उसमें भी बहुत दूर तक देखता था। ये दोनों उस जमाने के लिए दूरबीन थे। तो दूरबीन से देखने के लिए बहुत दूर तक लोग देखते हैं। तो अपने अन्दर की दृष्टि से देखो। कबीर साहब कहते हैं कि—

चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।

रूह के नैना से—आत्मदृष्टि से—चेतन दृष्टि से देखता रहे, उसको सर्वव्यापी का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। इसके वास्ते अपने अन्दर में देखो। अपने अन्दर में लौ लगाओ। अपने अन्दर में निशाना हो, लेकिन मन से बनाओ मत निशाने के आकार को। एक बात यह भी है। मन से निशाने को मत

बनाओ, केवल अपनी वृत्ति को ठहराओ, निशाना अपने आप बनता है। अपनी वृत्ति को सूक्ष्म करके ठहराओ, निशाना अपने आप बनता है। वही निशाना विन्दु है। इसी पर दृष्टि रखते हुए इसका संकेत गोस्वामी तुलसीदासजी के वचन में है कि—

जब लगि नहि निज हृदि प्रकाश, अरु विषय आस मन माहीं।
तुलसि दास तब लगि जग योनि, भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं।।

अन्दर में प्रकाश होना चाहिए। उसी से—

उघरहिं विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

अपना निशाना अपने अन्दर हो, अपने को उस पर लगाते रहो। जिन लोगों की ऐसी धारणा है कि जिन संत की वाणी वह सुनने लगें और उनको ऐसा हो कि वे संत जैसे हमारे सामने खड़े हों। कबीर साहब की वाणी सुन रहा हूँ, तो मानो कबीर साहब ही सामने खड़े हों, मेरे सामने उपस्थित होकर वाणी कह रहे हों। गोया कबीर साहब के रूप पर ध्यान रहा। गुरु नानक की वाणी है तो गुरु नानक ही जैसे आ गए हों। गोरखनाथ की वाणी है तो जैसे गोरखनाथ ही आ गए हों। इस तरह जो संत में अनुरक्ति रखते हैं, उनके ख्याल में मशगुल रहते हैं, उनके वचन में मशगूल रहते हैं और उनकी वाणी का पाठ करके अपने को उनकी वाणी के अनुकूल बनाकर संयमित करते हैं, उस वाणी के अनुकूल साधन करते हैं, तो वह संसार-सागर को पार करते हैं। '**सत्संगति संसृति कर अन्ता।**'

संसृति का अन्त हो जाता है। यही जानना चाहिए। इसीलिए संतों की वाणी का पाठ होना चाहिए। हमारे देश में संतों के नाम पर अलग-अलग पंथ पड़ गए हैं। इसके लिए मुझको कोई ग्लानि नहीं होती, मुझको कोई दुःख नहीं होता। परन्तु मैं चाहता हूँ कि उन संतों में लोग भेद न रखें। मेरे संत बड़े और आपके संत नहीं बड़े, ऐसा भेद न रखें। कबीर साहब जैसे, गुरु नानक भी वैसे ही। दादूदयालजी भी वैसे ही, गोस्वामी तुलसीदासजी भी वैसे ही। इस तरह का संतों में एक भाव रहना चाहिए और एक ही भाव हृदय में धरकर, उनकी वाणियों का पाठ सुनकर, उन वाणियों के अनुकूल भजन करना चाहिए। आप कहेंगे कि तुलसीदासजी तो श्रीराम का इष्ट बनवाकर भजन करावेंगे या कराते हैं। मैं कहता हूँ—अवश्य। और कबीर साहब तो श्रीराम का इष्ट नहीं देकर गुरु का इष्ट देकर तब भजन कराते हैं। तो श्रीराम का इष्ट देकर तुलसीदासजी भजन करवाते हैं, तो तुलसीदासजी क्या गुरु छोड़वाते हैं? हरगिज नहीं।

श्रीहरि गुरु पद कमल भजहिं, मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि, सुख निधान भगवान।।

विनय-पत्रिका में है। गुरु हरि के रूप हैं। उनकी सेवा करो अभिमान छोड़कर, जिनकी सेवा से सुख-निधान भगवान को पाओगे। कबीर साहब कहते हैं—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।

तो इतना फर्क अवश्य है कि कबीर साहब जी, गुरु नानकदेवजी, दादूदयालजी महाराज गुरु को अवश्य मानते हैं। पर गुरु से भिन्न कोई दूसरा इष्ट सगुण रूप में नहीं लेते। वैसे ही गुरु बिना इनके चलते नहीं। गुरु अवश्य मानते हैं। तुलसीदासजी गुरु भी मानते हैं और एक इष्टदेव भी श्रीराम को मानते हैं। इसी तरह से सूरदासजी ऐसे और कितने महात्मा लोग। और गुरु नानक और कबीर साहब के अनुकूल भी कितने महात्मा लोग केवल गुरु। वहाँ सगुण रूप में श्री राम, श्रीकृष्ण या भगवान शिव या देवी माइयाँ सगुण रूप में। और इनको सगुण रूप में—'गुरु साहब तो एक हैं।' सगुण रूप में गुरु-ही-गुरु, गुरु-ही-गुरु। तो यह सगुण रूप से निर्गुण रूप तक कबीर साहब भी जाते हैं, तुलसी-दासजी भी जाते हैं, सूरदासजी भी जाते हैं। इनकी

वाणी को ठीक से पढ़कर देखिए। तुलसीदासजी ने यहाँ तक लिख दिया रामचरितामानस में कि—

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोय।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय।।

निर्गुण रूप में उसका वर्णन करते हुए 'व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता' इत्यादि-इत्यादि।

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।
—रामचरितमानस

यहाँ भ्रम उत्पन्न नहीं होता है। इसीलिए इसको सुगम कहा। वहाँ भ्रम उत्पन्न होता है, फिर भ्रम का क्षय भी होता है। फिर वह भी सुगम हो जाता है। तो इसलिए इन संतों में कोई भेद नहीं है। और यह भी अन्तर्ज्योति को पकड़ने कहते हैं, और वह भी अन्तर्ज्योति को पकड़ने कहते हैं। यह भी अन्तर्नाद को पकड़ने कहते हैं, वह भी अन्तर्नाद को पकड़ने कहते हैं। सूरदासजी महाराज ने कहा है कि—

अपुन पौ आपुन ही में पायो।
शब्दहिं शब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो।।

निर्गुण रामनाम और सगुण रामनाम—तुलसीदासजी ने दोनों को बताया—

बन्दउँ रामनाम रघुवर को। हेतु कृषाणु भानु हिमकर को।।
विधि हरि हर मय वेद प्रान सो। अगुण अनूपम गुण निधान सो।।

वह रामनाम अगुण भी है, सगुण भी है। अगुण रामनाम मुख से उच्चरित नहीं होता है। सो जो मुख से उच्चरित होता है, वह वर्णात्मक होता है। और जो मुख से उच्चरित नहीं होता है, ध्वनि स्वरूप है, सबके अन्दर उसकी गूँज हो रही है, वह ध्वन्यात्मक है। यह भी भजो और वह भी भजो। बड़ी अच्छी बात है। 'जाप अजपा हो सहज धुन परख गुरु गम धारिये।' अजपा जाप अन्दर में हो रहा है—उसको परखो। गुरु गम से परखो और उसको धारण करो। एक महात्मा हुए थे योगी। बड़े शुद्ध और बड़े पवित्र, वहाँ तिरहुत के इलाके में, वह स्थान आजकल सहरसा जिले के अन्दर में है, परमहंस लक्ष्मीनाथजी महाराज। उन्होंने कहा है कि—

अनहद अपने साथ है, अजपा ताको नाम।
अमल करो अपनाय के, अमर नाम घर ठाम।। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत ६०वाँ अखिलभारतीय संतमत सत्संग में, भारत के महान तीर्थ हरिद्वार में दिनांक ९.६.१९६८ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२९३. स्वप्न से छूटे इसके लिए कोई यत्न है?

पूज्यमान सर्व पवित्र महात्मागण तथा धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

आपने महात्माओं के जो उपदेश सुने हैं, वे अमोघ हैं, पवित्र हैं और बहुत लाभकारी हैं। इतना उत्तम उपदेश आप कहाँ सुनेंगे? जो लोग यहाँ रहते हैं, वे बारम्बार सुनते होंगे और जो दूर से आए हैं बहुत खर्च करके? जो खर्च और थकान हुए हैं, वे सभी खर्च और थकान इस उपदेश के सामने कुछ नहीं। आपने बड़ा अच्छा किया है।

सत्संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा।।

घर पर ऐसा होना मुश्किल था। आप कितने संत-महात्माओं के दर्शन एक साथ पाते हैं,उपदेश सुनते हैं। आप धन्य हैं।

गुरु शब्द बहुत उत्तम है, जिसका अर्थ लोग बहुत तरह से करते हैं और एक वह है, जो लोग गाँव-गाँव में जानते हैं। गुरु कहते हैं ज्ञान देनेवाले को—सिखलानेवाले को।

गुरु नाम है ज्ञान का, शिष्य सीख ले सोय।

ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु शिष्य न कोय ।।

असल में गुरु ज्ञान-स्वरूप हैं। शिष्य वह है, जो ज्ञान को धारण करे। जो गुरु ज्ञान नहीं दे सकता और जो शिष्य ज्ञान नहीं धारण कर सकता, तो न तो कोई गुरु और न कोई शिष्य ही है। आदिगुरु कोई है? परमात्मा हैं। उनमें अपरिमित ज्ञान है। वेद का ज्ञान उन्हीं से आया है। कबीर साहब ने उत्तम रीति से इसीलिए कहा है—

परमातम गुरु निकट विराजैं, जागु जागु मन मेरे।

परमात्मारूप गुरु हमारे निकट विराजमान हैं, फिर भी हम क्यों नहीं प्रत्यक्ष देखते हैं? इसलिए कि हम सोये हुए हैं। वे कहते हैं कि जागो, तुम सोये हुए हो। आप कहेंगे कि हम तो अभी सोए हुए नहीं हैं, जगे हैं। लेकिन यह भी स्वप्न है, फिर भी यह स्वप्न बड़ा अच्छा स्वप्न है। जिसमें आप महात्माओं के दर्शन पाते हैं। कोई स्वप्न में महात्मा को देखता है, तो अध्यात्म आकाश में विचरण कर परमात्मा को पाता है। हमलोग इस जागने में भी सोए हुए हैं। हम स्वप्न अवस्था में भी जाते हैं। तब समझते हैं कि जाग्रत अवस्था है। स्वप्न में पता नहीं लगता कि स्वप्न में मैं हूँ? जगने पर स्वप्न मालूम होता है। फिर सुषुप्ति में जाते हैं, फिर सुषुप्ति से स्वप्न में और स्वप्न से जाग्रत में आते हैं।

मोह निसाँ सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।

यह स्वप्न छूटे, इसके लिए कोई यत्न है? हाँ है। जागने से स्वप्न में और स्वप्न से सुषुप्ति में जाते हैं, यह स्वाभाविक है। जिस जगने को स्वप्न कहते हैं, उसके परे जाने के लिए कुछ करना होगा। तब अभी की जागृति स्वप्न की तरह मालूम होगी। वह क्या है?

एहि जग जामिनी जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

योगी जगते हैं। योगाभ्यास जो करते हैं, वे जगते हैं। वे परमात्म तत्त्व को ग्रहण करनेवाले होते हैं। उनको प्रपंच का त्याग स्वाभाविक हो जाता है। उनको उसी रीति से परमार्थ परम तत्त्व का, निज स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। संत लोग कहते हैं कि योग अभ्यास अवश्य करो। इसके बिना जागोगे नहीं। इस जगने में जो अवस्था होती है, वह विचित्र है। वह योगी जानते हैं। तीन अवस्थाओं के परे चौथी अवस्था—तुरीय अवस्था होती है। यह कैसा योग है, जिससे जगते हैं? चित्तवृत्ति का निरोध करो। बिखरी वृत्ति को एक करके एकाग्रता को प्राप्त करो। इसके करने के वास्ते सब योग्य हैं और सब योग्य नहीं, जब कोई योग को कष्टकर समझते हैं। हठ-क्रिया की बात कहते हैं, तो वह सबके योग्य नहीं है। लेकिन केवल ध्यान- योग से बिना हठ के भी कर सकते हो। यह सरल है और सबके लिए है। गीता में प्राणायाम की भी चर्चा है। लेकिन छठे अध्याय में केवल ध्यानयोग का वर्णन है। उसमें है कि समतल स्थान पर बैठो। कुशासन बिछाओ। उसपर मृग चर्म बिछाओ। उस पर वस्त्र दो। अर्जुन राजकुमार थे। उनके लिए ये चीजें मिलनी कठिन नहीं। लेकिन गरीब आदमी एक गमछी वा वस्त्र बिछाकर बैठे। अवधूत है, तो जमीन पर बैठ जाए। हाँ, गरदन, शरीर और मस्तक को सीधा करके बैठे। इससे मेरुदण्ड सीधा रहता है। भगवान श्रीकृष्ण ने किसी आसन का नाम नहीं लिया और कहा कि ध्यान-योग का अभ्यास करो। दिशाओं को मत देखो। नासाग्र में देखो। नासाग्र लिखा है, 'नासाग्र-भाग' नहीं लिखा है। टीकाकार अपनी ओर से 'भाग' शब्द जोड़ देते हैं। अग्र का अर्थ 'आगे' किया जाए, तब भी 'भाग' छूट जाता है। अग्र भाग को देखने कहा, तो दस दिशाओं में कोई-न-कोई दिशा हो जाएगी। किन्तु भगवान ने किसी दिशा को देखने नहीं कहा है। ऊपर देखने से ऊपर हो जाएगा, नीचे देखने से नीचा हो जाएगा। ये ऊपर-नीचे दस दिशाओं में से है। मुझको गुरु महाराज ने यह बताया—'भाग को छोड़ दो।' आँख बन्द करो, तब जो देखता है, वह

नासाग्र में देखता है। लेकिन यदि कोई मानसिक नासाग्र भाग को बनाता है, तो मानसिक ध्यान होता है। ध्यान ऐसा हो कि—

'ध्यानं निर्विषयं मनः।' 'ध्यानं शून्यगतं मनः।'

मन निर्विषय हो जाए, मन शून्यगत हो जाए। इसका यत्न गुरु से जानो। श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में है कि भगवान श्रीकृष्ण से उद्धव ने पूछा कि भगवन्! आपका ध्यान कैसे करूँ? तो कहा—

सम आसन आसीनः समकायो यथा सुखम्।
हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्र कृतेक्षणः।।

अर्थात् श्रीभगवान बोले—हे उद्धव! सुखपूर्वक सम आसन से शरीर को सीधा रखकर बैठे, हाथों को तर-ऊपर गोद में रखे और दृष्टि को नासिका के अग्र में स्थिर करे।

नाक का निचला भाग वा ऊपर का भाग दोनों इसमें छूट जाते हैं। इसका कोई यत्न खास तरह से है, जिसको गुरु से जान लेना चाहिए। असल में यही गुरु-दीक्षा है। जो इसका यत्न जानते हैं, तो बड़े विद्वान भी कर सकते हैं, जो पढ़ा-लिखा नहीं है, वह भी कर सकता है। पुरुष कर सकते हैं, स्त्रियाँ कर सकती हैं। स्त्रियों के लिए पातिव्रत्य धर्म का पालन धर्म है। परन्तु उसके साथ ईश्वर की उपासना भी अवश्य करनी चाहिए। इस ध्यान को जो कोई करते हैं, सभी ध्यानी हैं। स्त्री-पुरुष सभी कर सकेंगे। किसी से कम, किसी से बेशी होगा, लेकिन दोनों धीरे-धीरे बढ़ते जायेंगे। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति; तीनों अवस्थाएँ छूटेंगी।

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत।।

चौथी अवस्था में जाना होगा, तब जो जगना होता है, असली जगना होता है। इस शरीर में हम रहते हैं, लेकिन खास तरह से कहाँ हैं?

इस तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।

—कबीर साहब

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव दृष्टि ताना।।

—दरिया साहब, बिहारी

एक यत्न है। इससे जानिए कि जीव की बैठक आज्ञाचक्र में है। आँखों के अन्दर जब रहना होता है तो जागने की अवस्था में रहते हैं। जागने से स्वप्न में जाने लगते हैं, तब एक अवस्था और होती है, उसको तन्द्रा कहते हैं। उस समय ऐसा लगता है कि हाथ-पैर कमजोर होते जाते हैं। जोर करने पर भी बोल नहीं सकते। शक्ति भीतर की ओर खिंची जाती है। होते-होते स्वप्न में चला जाता है। स्वप्न में भी कभी-कभी कोई बोलता है। कभी चीख मारने पर, चिल्लाने पर बाहर के लोग भी सुनते हैं। लेकिन यह बोल आता कहाँ से है? स्वर और व्यंजन में हमलोग उच्चारण करते हैं। स्वर का स्थान कण्ठ है। सोलह स्वरों का स्थान कंठ है। इसको षोडशदल कमल भी कहते हैं। जब हम गहरी नींद में आते हैं, तो बोल नहीं सकते हैं। फेफड़े के स्थान में होते हैं, शरीर हृदय में होते हैं। तब हम श्वाँस को लेते हैं। और अपने से कुछ अनुभव नहीं होता। वहाँ व्यंजन है। द्वादश कमल है—पाँच कवर्ग, पाँच चवर्ग, ट और ठ। षोडशदल कमल में स्वप्न रहता है। द्विदल में जगना होता है और आँख के ऊपर रहना होता है तुरीय में। वहाँ कैसे जाया जाए? ध्यानयोग के अभ्यास से। जो जहाँ रहता है, वहीं से साधना करता है। आँख के अन्दर रहता है, यहीं से साधना करेगा। इसी को शाम्भवी मुद्रा, वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। नैन के मण्डल में रहकर वृत्ति को एकाग्र करेगा। इतना एकाग्र करेगा कि एकविन्दुता होगी। इससे ऊर्ध्वगति होगी। ऊर्ध्वगति होने से मूर्धा में वासा होगा, तुरीय

अवस्था में जाएगा। तब उसको ज्ञान होगा कि हम जगे हैं। तब परमात्मा का ज्ञान होगा। संतों ने इसके लिए इतना उत्तम साधन बताया है कि शरीर को कोई कष्ट नहीं। हाँ, प्रत्याहार करने में, धारणा में लाने में मन को कष्ट होता है। मन के फैलाव को अनवरत रूप से पूर्ण-पूर्ण समेटो, तो धारणा होगी। देर से धारणा होगी तो ध्यान होगा। जब से ध्यान का आरम्भ होगा, तुरीय अवस्था होगी। तब—

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

वह प्रपंच से छूटता है। प्राणायाम करके ध्यानयोग करो, ऐसा भी होता है और बिना प्राणायाम का साधन किए भी ध्यानयोग होता है।

न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।

गीता में ध्यानयोग पर बहुत जोर है। ख्याल लगाने का यत्न जानो। किसमें ख्याल लगाओ? इसका यत्न जानो। इसकी कोशिश करोगे, तो यह हो जाएगा। किसी से नहीं होगा, सो नहीं। महात्माओं ने कहा कि अन्तःकरण की शुद्धि करो। इसको कौन नहीं कहता?

अन्तःकरण की शुद्धि विचार से भी करो और इस ध्यानयोग का अभ्यास भी करो। दोनों को दोनों से सहायता मिलेगी। अन्तःकरण की पूरी शुद्धि पहले किसी को नहीं होती। पहले ही अन्तःकरण की शुद्धि पूर्णरूप से होना असंभव है। बल्कि ऐसा होता है कि मन शुद्ध करके रखा, माया की झपेट आयी और गिर गए। पहले विचार से मन को साफ करो और ध्यान भी करो तो मजबूती आएगी। अन्तःकरण शुद्धि की बड़ी आवश्यकता है। अन्तःकरण शुद्धि के लिए केवल बौद्धिक बल ही काफी नहीं है। बौद्धिक शुद्धि के साथ ध्यान-अभ्यास की भी आवश्यकता है।

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच जल संगा।।

अन्तःकरण कीच में फँसा है, नीचे गड़हे में गिरा है। ऊपर चढ़ाई हो, तो सफाई हो। ऊपर चढ़ाई का अर्थ आँख से ऊपर होना है।

मैं कहूँगा कि यह हरिद्वार का जो स्थान है, संत-महात्माओं का स्थान है। स्वर्ग से भी बढ़कर है। एक तो संत-महात्माओं के संग में रहें और दूसरी जगह जो लोग अज्ञान की बात करते हैं। नीच-नीच कर्म करते हैं, क्या फल होगा? महात्माओं के संग का फल उत्तम होगा। और नीच लोगों के संग में नीचे गिरे रहने का, विकारों में फँसे रहने का स्वभाव पायेंगे। इसीलिए महात्माओं के पास जाते हैं, धामों में जाते हैं, अच्छी सफाई के लिए। ऊपर उठो। योगबल प्राप्त करो। मन की एकाग्रता का बल प्राप्त करो। बुद्धि की स्थिरता का बल प्राप्त करो। समत्व प्राप्त करता है मन की एकाग्रता से। बिना 'शम' के 'सम' नहीं होता। सम का अर्थ है एक तरह रहना—हानि में, लाभ में, सुख में, दुःख में। यह होता है 'शम' अर्थात् मनोनिगग्रह से। शम होता है, समाधि साधन से। साधना करो, कभी-न-कभी परमात्मा की कृपा अवश्य होगी। तब 'सम' का रूप देखोगे। स्वयं देखोगे कि मन को इस तरह नहीं रखना चाहिए। फिर भी गिर जाता है, सो नहीं होगा। आपका अंतःकरण कैसे शुद्ध होगा? सो कहा। केवल बौद्धिक विचार से अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा। स्त्री, पुरुष, इस देश, उस देश, गरीब, धनी; सबके लिए यह ध्यान-साधन है। कभी ऐसा ख्याल नहीं कीजिए कि हमसे नहीं होगा। कठिन योग को छोड़िए, सरल योग कीजिए। यही कोशिश है, कीजिए। जिनको मालूम है, कीजिए। जिनको मालूम नहीं है, महात्माओं से जानिए, तब कीजिए। ■

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत ६०वाँ अखिलभारतीय संतमत सत्संग में, भारत के महान तीर्थ हरिद्वार में दिनांक ९. ६. १९६८ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२९४. परमात्मा की तेजोमयी विभूतियाँ

पूज्य महात्मागण तथा धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

ईश्वर की भक्ति से अपना कल्याण होगा। इसका विश्वास बहुत दृढ़ता से सबको करना चाहिए। कल्याण की खोज में लोग दौड़ते हैं। कल्याण अपने पास है। जो परमात्मा को भजते हैं, उनका कल्याण होता है। और जब परमात्मा को पा लेते हैं, तब ऐसा कल्याण होता है कि कभी अकल्याण नहीं होता है।

ईश्वर-भक्ति के लिए ईश्वर-स्वरूप को जानना आवश्यक है। जो ईश्वर की ओर अपना ख्याल जोड़ता है,कल्याण की ओर जाता है। ईश्वर इन्द्रियों को गोचर नहीं है। बाहर में ईश्वर को कोई पहचान नहीं सकता है। ईश्वर सर्वत्र हई है। कभी नहीं रहेंगे, ऐसी बात नहीं। कभी चले जाते हैं, कभी चले आते हैं, ऐसा नहीं। सर्वदेश में रहते हैं, सर्वकाल में रहते हैं। लेकिन इन्द्रिय-ज्ञान में उनको पहचानना असंभव है। इसलिए बाहर में नहीं पहचान सकते। फिर बाहर में क्या पकड़े, जिससे ज्ञान हो कि यह परमात्मा का रूप ही है। संतों ने कहा कि संसार में जितनी तेजोमयी विभूतियाँ हैं, सभी परमात्मा की हैं। इसलिए ईश्वर को किसी इन्द्रिय-गोचर विभूति का अवलम्ब लेकर ईश्वर-भजन का आरम्भ करने के लिए जो कहा है, वह ठीक ही कहा है। परमात्मा की कौन विभूति है, जो महिमा से युक्त है? यह जो हम प्रकाश देखते हैं, संसार में प्रकाश नहीं हो, तो प्रकाश से विहीन संसार की क्या हालत हो? इस संसार में कोई बड़े प्रभावशाली व्यक्ति हों, और प्रकाश नहीं हो तो कोई किसी को पहचान नहीं सकेंगे। कोई काम का नहीं होगा। संसार का सारा काम भ्रष्ट हो जाएगा। मैं कहता हूँ कि यह प्रकाश परमात्मा की विशेष विभूति है। दूसरी विभूति यह है कि जिसको शब्द कहकर पुकारते हैं। प्रकाश के अन्दर रहकर काम चलता है। अन्धकार के अन्दर भी कुछ काम चलता है, लेकिन बिना शब्द के काम नहीं चलता। शब्द ही संसार में विद्या को बिखेरता है। बिना शब्द के विद्वान नहीं होता। आदेश पाकर जो लोग अच्छे बनते हैं, सो बिना शब्द के नहीं बनते। आपस में, राष्ट्र में जो काम होता है, बिना शब्द के नहीं होता। बड़े-बड़े बम नहीं बन सकते। बम छूटता है, बड़ी आवाज होती है। शब्द बड़ा प्रभावशाली होता है।

संसार में कम्पन नहीं हो तो शब्द नहीं। शब्द नहीं, तो कम्पन नहीं। शब्द नहीं तो संसार में उन्नति की दशा में ले जानेवाले परमाणु नहीं रहेंगे। उस शब्द का कितना प्रभाव है? ईश्वर की यह बड़ी विभूति है। संतों ने कहा कि यह तो बाहर के प्रकाश और शब्द की बात है। क्या अपने अन्दर में भी है? अन्दर का प्रकाश बाहरी सूर्य का प्रकाश नहीं है, आत्मा का प्रकाश है। जो इस ज्योति को पकड़ता है, वह महान पुरुष हो जाता है। ऋद्धि-सिद्धि सब आ जाती है। मोह से छूटता है। अन्त:प्रकाश में जिसकी वृत्ति डूबती है, बाहर के विषयों में उसकी डूबती नहीं। अन्दर में प्रकाश सबको है। प्रकाशहीन कोई नहीं है। अन्दर में प्रकाश को जो पकड़े, वह ईश्वर की ओर जाता है। जो प्रकाश को पकड़ता है, वह ईश्वर की भक्ति में पूर्ण होता है। जो अन्तर्नाद पकड़ा जाता है, वह ईश्वर की ओर का

ही नाद है। अन्तर में नाद कहाँ से आया? यह जो सृष्टि है। यह जो सृष्टि हुई है, कुछ बनने के लिए कम्प चाहिए। एक शब्द वा एक अक्षर का उच्चारण करते हैं, सभी कम्पनमय हैं। एक मिट्टी की गोली बनाना चाहें, तो हाथ में कम्पन होता है। बिना कम्पन के कुछ बनावट नहीं हो सकती। इसीलिए—

साधो शब्द साधना कीजै।
जेहि शब्द से प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै।।

शब्द से सारी सृष्टि हुई है। उस शब्द को पकड़ो। पहले ईश्वर-ही-ईश्वर था। कम्प हुआ, तब सृष्टि हुई। कम्प के साथ-साथ परमात्मा हैं। आदिकम्प—आदिशब्द से सारी सृष्टि है। इसीलिए सारी सृष्टि का बीज शब्द है। इसीलिए—

शब्द तत्तु वीर्ज संसार। शब्दु निरालमु अपर अपार।।

वह प्रभु कैसा है?

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।।
जाति अजाति अजोनी संभउ, ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।

बाबा नानक ने कहा है—कुछ भी चिह्न अगर है, तो सत्‌शब्द है। सो शब्द वही है, जो सृष्टि के आदि में हुआ। संत दादू दयालजी के वचन में है—

एक सबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोइ।
आगै पीछै तौ करै, जे बल हीना होइ।।
पंच ऊपना शबद थैं, शब्द पंच सों होइ।
साईं मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ।।
शब्दै बंध्या सब रहै, शब्दै सब ही जाइ।
शब्दैं ही सब ऊपजै, सब्दै सबै समाइ।।

यह वर्णन संत लोग करते हैं। सबसे विशेष शब्द है, बहुत महत्त्वपूर्ण है। संतों ने जब अनुभव करके जाना, तब उनको बड़ा लाभ हुआ। उसी को सत्‌नाम, ॐ, रामनाम, शिवनाम आदि कहा। वह परम शक्तिमय है, लेकिन पहले ही उसमें वृत्ति जुटे, हो नहीं सकता है। वह सांसारिक शब्द नहीं है। वर्णात्मक वा सांसारिक ध्वन्यात्मक भी नहीं है। वह सांसारिकता से बहुत दूर है। वह ध्वन्यात्मक अन्तर्नाद है।

लोग कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजी निर्गुण रामनाम को नहीं जानते थे, सगुण राम को जानते थे। लेकिन जब वे स्वयं लिखते हैं कि—

बन्दउँ रामनाम रघुवर को। हेतु कृषाणु भानु हिमकर को।।
विधि हरि हर मय वेद प्रान सो। अगुण अनूपम गुण निधान सो।।

'गुण निधान' का अर्थ त्रयगुण और त्रयगुणातीत भी ले सकते हैं। जो हम कान से सुनते हैं, वे सब भी सगुण शब्द हैं। अन्दर में भी एक ही शब्द निर्गुण है, जिसकी पकड़ होने से ईश्वर तक पहुँचता है, ईश्वर को पाता है।

शब्द गह्यो जीव संसय नाहीं, साहब भयो तेरो संग।

प्राकृतिक रूप से शब्द को कैसे पाते हो? बिजली की चमक के बिना ठनके की आवाज कोई नहीं सुन सकता। पहले ज्योति दर्शन करो, फिर नाद ध्यान करो। इसलिए नाद उपासना पीछे और विन्दु उपासना पहले की जाएगी। पहले ज्योति पकड़ते हैं। इसलिए तेजोविन्दूपनिषद् में है कि—

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।

और ध्यानविन्दूपनिषद् में है—

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

परम विन्दु ही बीजाक्षर है, उसके ऊपर नाद है। जब यह नाद अक्षर ब्रह्म में लय हो जाता है, तो निःशब्द परम पद है। निःशब्द कहो वा अनाम कहो—एक ही बात है। पहले सगुण शब्द की उपासना करनी चाहिए, फिर निर्गुण की। पहले मोटे रूप से चित्तवृत्ति का सिमटाव करो। गुरु को ईश्वर की विभूति मानो। गुरु में अपने को लगाओ। बाबा नानक कहते हैं—

गुर की मूरति मन महि धिआनु। गुरु कै शबदि मंत्र मनु मानु।।

गुर के चरण रिंदै लै धारउ। गुरु पारब्रह्म सदा नमसकारउ।।

इस विभूति को पकड़ो अथवा राम, कृष्ण वा माई का ध्यान करो, लेकिन इससे मायिक दर्शन होता है। जो स्थूल रूप के बाद सूक्ष्म, कारण, महाकारण को भी पार करेगा, वह उस विशेषतापूर्ण तत्त्व को पावेगा, जिसका नमूना संसार में नहीं है। स्थूल शब्द का जप करो। स्थूल रूप का ध्यान करो। मन से जप करो। मन से ध्यान करो। गुरु की युक्ति जानो। इसके बाद फिर गुरु से युक्ति जानकर सूक्ष्म सगुण रूप का ध्यान करो। वह ज्योतिर्विन्दु। ज्यातिर्विन्दु मन से बनाने से नहीं होगा। जो उस युक्ति से साधन करेगा, वह स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश पाकर सूक्ष्म दर्जे का शब्द सुनेगा। शब्द सुनकर जहाँ के तहाँ पड़े रहोगे, सो नहीं। बल्कि शब्द के उद्‌गम स्थान पर पहुँचोगे। संत दादू दयालजी की वाणी में—

पंच ऊपना सबद थैं, सबद पंच सौं होइ।
साईं मेरे सब किया, बूझै बिरला कोइ।।

और कबीर साहब कहते हैं—

पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग।।

ये पाँच क्या हैं? सृष्टि के पाँच मण्डल हैं और उन पाँचों के पाँच केन्द्र हैं। इसी तरह अपने शरीर में पाँच दर्जे हैं। शरीर और संसार में घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर के जिस तल पर रहिए, संसार के भी उसी तल पर रहेंगे। शरीर के जिस तल को छोड़ते हैं, संसार के भी उसी तल को छोड़ते हैं, इस तरह जो शरीर के सभी तलों को पार कर सकेंगे, वे संसार के भी सभी तलों को पार करेंगे। साधक साधना द्वारा अपने में पाँच मण्डल पाते हैं। पंच मण्डलों से विशेष सृष्टि नहीं हो सकती। कोई भी मण्डल बनने के लिए उसका केन्द्र होगा और कुछ भी बनने के लिए कम्प चाहिए। वह कम्प उस मण्डल भर में व्यापक होता है। और ऊपर के मण्डल का शब्द नीचे के मण्डल में स्वाभाविक ही व्यापक होता है। संतों ने उसके लिए उपाय बताया कि पहले स्थूल मण्डल के शब्द को पकड़कर उसके केन्द्र पर आरूढ़ होकर आगे बढ़ो। किन्तु उस शब्द को पकड़ने के लिए एकविन्दुता प्राप्त कर लो। हाथरस के तुलसी साहब ने कहा—

स्रुति ठहरानी रहे अकासा। तिल खिड़की में निसदिन बासा।।
गगन द्वार दीसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा।।

ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है। स्थूल के केन्द्र पर पहुँचने पर सूक्ष्म नाद सुनाई देगा। उसको पकड़कर उसके केन्द्र पर पहुँचा जाएगा। इसी तरह धीरे-धीरे क्रम-क्रम से आगे बढ़ते हुए अन्त में वह आदिनाद को पावेगा, जिसके सहारे परमात्मा तक पहुँच होगी। जैसे समुद्र के गर्जन में और कोई गर्जन नहीं रहता, उसी तरह आदिनाद के गर्जन में अन्य सभी गर्जन समाप्त हो जाते हैं। वही नाद जाकर परमात्मा से मिलाता है।

लेकिन ऐसा ख्याल नहीं करो कि मरने पर होगा। यह जीवन काल में ही होने योग्य है। शरीर अनेक बार मरा है, लेकिन जीवात्मा अमर है। यह अनेक शरीर-रूप कपड़ों को छोड़ता, पहनता आया है। पहले यह करो कि ज्योति-दर्शन हो। फिर शब्द से मायावी मण्डलों को पार करना होगा। उसके बाद ईश्वर-दर्शन हुआ, काम खत्म हुआ। इसी विषय के प्रचार के लिए यह सत्संग है। अन्तःकरण की पवित्रता अवश्य चाहिए। जिसको अन्तर में रस मिलेगा, वह बाहर विषय रस को क्या समझेगा? वही परम संन्यासी होगा।

n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत ६०वाँ अखिल भारतीय संतमत सत्संग में, भारत के महान तीर्थ हरिद्वार में दिनांक १०. ६. १९६८ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

२९५. कमा कर खाओ नहीं तो खून खराब हो जाएगा

धर्मप्रेमी प्यारे लोगो!

मेरी आवाज से आपलोग समझ सकते होंगे कि मेरा स्वास्थ्य इस समय यहाँ (हरिद्वार) आने योग्य नहीं था, फिर भी कर्तव्यवश आ गया हूँ जैसे समस्त शरीर में प्राण ही असली चीज है, उसी तरह ईश्वर की भक्ति नहीं हो, तो सत्संग कुछ नहीं, धर्म कुछ नहीं। इसलिए कबीर साहब ने कहा कि—

संगति ही जरि जाव, न चर्चा राम की।
दुलह बिना बारात, कहो किस काम की।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं प्रेम परधानू।।

ईश्वर-भक्ति खास एक चीज है। भक्ति कहते हैं सेवा को। भजन भी सेवा करने को कहते हैं। किसी की सेवा की जाए तो क्या सेवा की जाए? अगर उसकी कुछ आवश्यकता हो तो उसकी पूर्ति उसकी सेवा होती है। जैसे सत्संग की सेवा। सत्संग का आयोजन करो। सत्संग में बैठो। सत्संग के वचनों को अच्छी तरह सुनो, समझो। यही सत्संग की सेवा है। कोई सत्संगी है, उनको बिठाने के लिए, आराम का स्थान देने के लिए आवश्यकता है, तो उनकी इस आवश्यकता को पूरा करना उनकी सेवा है। यद्यपि सत्संग वा सद्ज्ञान के प्रचार में सामूहिक रूप से जो वक्ता और श्रोता होता है, उनको मिलाकर सत्संग कहते हैं। यह बाहरी सत्संग है। यह एक बात है कि ईश्वर को क्या आवश्यकता है।

एक राजा जंगल गया था। वहाँ उसने एक मुनि बालक को देखा, मुनि बालक को देखकर वह मुग्ध हो गया। उसने मुनि बालक से कहा—तुम मेरे साथ चलो। मुनि बालक ने कहा—मुझे तुम्हारे साथ जाने की कोई आवश्यकता नहीं। राजा ने कहा—यदि तुम मेरे साथ चलो, तो जैसा में बढ़िया-बढ़िया खाना खाता हूँ, अच्छे-अच्छे वस्त्रों को पहनता हूँ, सुन्दर भवन में रहता हूँ और पहरेदार मेरा पहरा करता है, उसी तरह तुमको भी खिलाऊँगा, पहनाऊँगा, अच्छे भवन में सुलाऊँगा और पहरेदार तुम्हारा पहरा करेगा। मुनि बालक ने कहा—मुझे खिलाओ, तुम मत खाओ। मुझे अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनाओ, तुम मत पहनो। मुझे सोने दो और तुम जागकर पहरा करो। यदि शर्त को मंजूर करो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ। राजा ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता। मुनि बालक ने कहा—तब मैं तुम्हारे यहाँ नहीं जा सकता। हमारे जो मालिक हैं, वे कुछ खाते नहीं, मुझे खिलाते हैं। वे कुछ नहीं पहनते, मुझे पहनाते हैं। मैं सोता हूँ, वह जागकर मेरा पहरा करता है। ऐसे राजा को छोड़कर मैं तुम्हारे साथ कभी नहीं जा सकता। मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। इसी तरह ईश्वर को कोई आवश्यकता नहीं है। ईश्वर को किसी तरह का कष्ट होता ही नहीं। उसकी रक्षा का भार कौन उठावे, क्यों उठावे?

गंगा-सेवन करने लोग जाते हैं, तो कष्ट उठा-उठाकर जाते हैं। सवारियाँ हैं, लेकिन पैदल जाते हैं। कितने आदमी दण्ड-प्रणाम करते जाते हैं गंगा-सेवन करते हैं। क्या सेवन करते हैं? गंगा-जल का पान करते हैं। गंगा-जल में स्नान करते हैं तथा उसकी हवा में टहलते हैं। इसी को गंगा-सेवन

कहते हैं। इसी तरह ईश्वर की भी सेवा है। लोग गंगा जाते हैं, सेत बाँध जाते हैं। जिस मन्दिर में, जिस तीर्थ में श्रद्धापूर्वक जाते हैं, वह उनकी सेवा है। यहाँ पर क्या है? ईश्वर के लिए जो सच्चा ज्ञान है, वह है कि ईश्वर इन्द्रियों से परे हैं।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।
जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।
सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

इन भगवान की सेवा करे तो क्या करे? इनकी सेवा क्या सेवा हो? कहा जाता है कि दर्शन करो। कहाँ जाकर दर्शन करें? इन्द्रियों के साथ में रहकर जो दर्शन होता है, वह माया है। ईश्वर तमाम व्यापक हैं। प्रकृति मण्डल में व्यापक, फिर उसको भी भरकर उससे भी बाहर हैं। मनुष्य जबतक इन्द्रिय-ज्ञान में रहेगा, तबतक संसार के अन्दर-बाह्य ज्ञान में रहेगा। इन्द्रिय-ज्ञान में जो दर्शन होगा, वह माया का दर्शन होगा।

अगुन अखंड अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होई।।

नित्य स्वरूप, यह है निर्गुण। और सगुण रूप की भी सेवा करते हैं। इससे संसार में बड़े-बड़े लाभ होते हैं। परलोक में भी बड़े-बड़े लाभ होते हैं। सगुण के अन्दर जो निर्गुण स्वरूप है, जिससे उनके स्वरूप का ज्ञान होता है, सगुण रूप के दर्शन से वह बाकी रह जाता है। भक्त उस स्वरूप के लिए यत्न क्यों न करे? बड़ा परिश्रम लगेगा तो क्या होगा? संसार में सुरक्षित रहने के लिए, देश की रक्षा के लिए झुण्ड-के-झुण्ड सैनिक जान गँवाते हैं। कितना बड़ा काम है! शरीर नहीं रहेगा। प्राण छूटेंगे। हमको मारेगा वा हम मारेंगे, इतना बड़ा काम करने को लोग तैयार होते हैं। इसी तरह भगवान के सगुण रूप की भक्ति और निर्गुण स्वरूप की भक्ति के लिए कोई बड़ा काम हो तो क्या है? करना चाहिए। बहुत समय लगेगा, तो क्या होगा? सोते हैं तो बहुत समय मालूम पड़ता है। नींद टूटती है तो कहते हैं कि अभी तो सोया था।

हमलोग अभी सोए हैं। जागने से ऊपर की अवस्था को तुरीय कहते हैं। उस चौथी अवस्था में बाहरी इन्द्रियों के सब ज्ञान छूट जाते हैं। वह तुरीय अवस्था ऐसी ही है। यहाँ जो रहते हैं, ऊँचे स्थान में, पवित्र स्थान में रहते हैं। यह संसार स्वप्नवत् है। फिर भी, इसमें भी अच्छे-से-अच्छे स्थान हैं, ऊँचे स्थान हैं। इसी तरह तुरीय का संसार भी उत्तम और उत्तम है। आरम्भ में इतना उत्तम नहीं है कि ईश्वर-दर्शन हो, सब इन्द्रियों से छूटा जाय। जैसे-जैसे आगे बढ़े, पवित्रता अधिक बढ़ती गई, और आगे बढ़े तो मन इन्द्रियों के आवरण को पार कर गया। जो रहा, सो जड़ विहीन चेतन आत्मा कैवल्य दशा में रह गया। इस दशा में ईश्वर का दर्शन होता है। यह बड़ी उत्कृष्ट दशा है। इसमें 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।।' हो जाता है। ब्रह्म को जो जानते हैं, वे ब्रह्मविद ही नहीं, ब्रह्म ही हो जाते हैं। यह अन्दर-अन्दर चलने से होता है, बाहर-बाहर चलने से नहीं।

साधारणतः जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति; इसी में आते-जाते रहते हैं। भजन किया, तुरीय अवस्था में प्रवेश किया। मैं कहूँ कि कई जन्मों तक इस अवस्था में रहना होगा। उत्तम-उत्तम स्थान में रहना होगा और अन्त में ईश्वर-दर्शन होगा। लोग कहते

हैं कि इसमें बड़ा कष्ट होता है। क्या कष्ट होता है? मेरे पास तोशक है, तकिया है, पलंग है; जो बनता है, भजन करता हूँ, क्या कष्ट है? गुरु महाराज ने कहा—स्वावलम्बी बनो। जब जैसा हुआ, कमाई की। अब शरीर उस योग्य नहीं रहा। फिर भी निगरानी करता हूँ। यहाँ आया हूँ, सत्संग सेवा करता हूँ। यह भी तो काम ही है। गुरुजी ने कहा कि पिताजी के घर पर रहो, काम करके खाओ, नहीं तो खून खराब हो जाएगा। कभी बच्चों को पढ़ाया, कभी खेती का काम किया, चूल्हा चौका करना, बर्तन मलना, रोटी बनाना; यह सब बहुत किया। हाथ में ठेला है। मैं गुरु महाराज की आज्ञा का पालन करने से सुखी हूँ। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि ऐसा न समझो कि भजन करनेवाले काम नहीं करते हैं। कबीर साहब जीवन भर अपना ताना-बाना करते रहे। रविदासजी जीवन भर जूते का काम करते रहे। दादू दयालजी जीवन भर काम करते रहे। बाबा नानक जीवन भर गृहस्थी में रहे। संतों ने देश का भार होकर रहने नहीं कहा। भजन करो, काम करो। निठल्ले मत बैठो। तुरीय अवस्था में जाने के लिए वैरागी का वेष नहीं लिया, इससे भजन नहीं होगा, यह बात नहीं है। बाबा नानक ने कहा—

जोगु न खिंथा जोग न डंडै जोगु न भसम चड़ाईअै ।।
जोगु न मुंदी मूंड़ि मूड़ाइअै जोग न सिंञी वाईअै ।।
अंजन माहिं निरंजनि रहीअै जोग जुगति इव पाईअै ।।
गली जोगु न होई ।
एक द्रिसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीअै सोई ।।
जोग न बाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाईअै ।।
जोगु न देसि दिसंतरि भविअै जोगु न तीरथि नाईअै ।।
अंजन माहिं निरंजनि रहीअै जोग जुगति इव पाईअै ।।
सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईअै ।।
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईअै ।।
अंजन माहिं निरंजनि रहीअै जोग जुगति इव पाईअै ।।
नानक जीवतिया मरि रहीअै अैसा जोगु कमाईअै ।।
बाजे बाजहु सिंञी बाजे तउ निरभउ पहु पाईअै ।।
अंजन महि निरंजनि रहीअै जोग जुगति इव पाईअै ।।

जो दृष्टि को एक करता है, समता प्राप्त करता है, वह योगी होता है। इसलिए दस गुरुओं ने संसार के बहुत काम किए। इसमें दूसरे और तीसरे गुरु गृहत्यागी हुए और बाबा नानक तो घर में रहते हुए त्यागी थे। दसवें गुरु ने तो इसकी पराकाष्ठा को दिखा दिया। उन्होंने बहुत कष्टों को सहा। संत महात्मा घर छोड़ने को नहीं कहते। कबीर साहब कहते है—

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि वन नहिं जावै ।
वन के गए कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ।।
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ।।
उनमुनी रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ।
सुरत निरत सों मेला करिके, अनहद नाद बजावै ।।
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै ।
कहै कबीर सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै ।।

उन्होंने कहा ही नहीं, करके दिखा दिया। करते जाइए, करने से ही होगा।

भक्ति में ईश्वर की सगुण भक्ति को छोड़कर निर्गुण भक्ति में कोई नहीं जा सकते। यह फाजिल ज्ञान है कि कोई सगुण के, कोई निर्गुण के भक्त होते हैं। कबीर साहब अन्य इष्ट को नहीं रखकर गुरु को इष्ट रखते थे। गुरु सगुण है कि निर्गुण? अंतर्ज्योति सगुण ही है और अन्तर्नाद भी सगुण ही है। निर्गुण नाद तो एक ही है। उस अन्तिम नाद की परख होती है, तब निर्गुण भजन होता है। इधर कहाँ? प्राणायाम, दृष्टियोग सब सगुण ही हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण में जबतक वृत्ति रहती है, सगुण भजन ही होता है। उससे ऊपर जाने से निर्गुण भजन होता है। निर्गुण के बारे में कहने से

निर्गुण भजन नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदासजी को सगुण राम भी इष्ट और गुरु भी इष्ट—

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।
तुम्ह तें अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भायँ सेवहिं सन मानी।।
श्रीहरि गुरु पद कमल भजहिं, मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत सुख पाइय हरि, सुख निधान भगवान।।

कबीर साहब और गुरु नानक साहब ने आरम्भ में इष्ट में गुरु को ही माना और आखिर में उनका निर्गुण होता है। पहले ही निर्गुण नहीं होता है बाबा! मुँह से कहने से क्या होगा? मुझे बहुत दिन हुए इन बातों को समझते-समझते। भक्ति का आरम्भ सगुण से होता है और अन्त निर्गुण है। गोस्वामी तुलसीकृत रामायण में है—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।
आठवँ यथा लाभ सन्तोषा। सपनहुँ नहिं देखइ पर दोषा।।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।।

शवरी मतंग ऋषि की शिष्या थीं। वह बहुत ज्ञान जानती थीं। केवल सुन-सुनकर जानती थीं। ज्ञान केवल अक्षर पढ़ने से नहीं होता है। पाँच भक्ति तक लोग समझ जाते हैं। इनमें रहस्य क्या है?

नित प्रति दरसन साधु के, औ साधुन के संग।
तुलसी काहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।
मन तो रमे संसार में, तन साधुन के संग।
तुलसी याहि वियोग तें, नहिं लागा हरि रंग।।

साधु-संग करो, तो एकाग्र मन से बैठो। साधु-संग में जाओ, तो कथा-प्रसंग स्वाभाविक होता है, उसको मन लगाकर सुनो। सत्संग हो व कोई पण्डित कथा कहते हों, तो मन से सुनो। बाहर में आँख में आँसू बहे और मन में रहे कि लोग हमको भक्त समझें, तो यह कीर्तन नहीं है। जप तो ऐसा हो कि उसकी मादकता आ जाए। केवल माला में जप करो, मन भागे तो क्या होगा? ऐसा जप ठीक नहीं। एकाग्र मन से जो जप होता है, वही जप है।

तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कहे कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोई।।

मन लगते-लगते एकाग्रता की ओर झुकेगा। मन में एकाग्रता का बल होगा। छठी भक्ति यह है कि दमशील अर्थात् इन्द्रियों के निग्रह का स्वभाववाला बनो और बहुत से कर्मों से अपने को हटा लो। सज्जनों के धर्म के अनुसार चलो। सज्जनों का धर्म है—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों को नहीं करना। हिंसा नहीं करने के अन्दर मत्स्य-मांस का नहीं खाना है। लोग कहते हैं कि देश में युद्ध होगा, तो हिंसा के डर से युद्ध छोड़ दें? नहीं, नहीं! लड़ना होगा। जैसे कृषकों के लिए कृषि-कर्म है, वैसे ही युद्ध अनिवार्य हिंसा है। लोग कहने लगे कि तब तो इसका भी पाप लगेगा? मैंने कहा—हाँ, तो उसको भोग लिया जाएगा। मुझे एक जैन साधु से भेंट हुई थी। उनसे इस संबंध में बातचीत हुई थी। उनको भी कहना पड़ा कि शत्रुओं के आक्रमण करने पर युद्ध करना अनिवार्य हिंसा है। और अपनी एक कथा सुनाई कि एक जैनी राजा ने युद्ध में एक लाख को मारा था। इस अनिवार्य हिंसा को साधु भी मना नहीं करते। और जीभ के वश होकर अथवा व्यवसाय के ख्याल से हिंसा करना ठीक नहीं है। मन से, वचन से हिंसा होती है। जान से मार डालता है, यह भी हिंसा है। खेती और युद्ध की हिंसा अनिवार्य हिंसा है। युद्ध करनेवाले भी मांस-मछली नहीं खाते और युद्ध करते हैं। श्रीरामायणजी की

कथा क्या बताती है? रावण दल के लोग मत्स्य-मांस खाते थे और राम दल के वीर लोग फल-फूल खाते थे। फल क्या हुआ? कन्द, मूल, फल खानेवाले जीत गए और 'महिष खाय अरु मदिरा पाना' वाले हार गए। युद्ध करो, लेकिन मत्स्य-मांस खाना कोई आवश्यक नहीं है। जो झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करते, वे सज्जन हैं। सज्जन बनकर रहो, इसकी बड़ी आवश्यकता है। इन्द्रियों को रोकने का स्वभाववाला बनो, यह बड़ी बात है। बुद्धि से, विचार से कभी रुकेगी, कभी नहीं रुकेगी। इन्द्रियाँ विषयों में कैसे चलती हैं, इसको जानो। इन्द्रियों के साथ साथ चेतन धारा है, तब इन्द्रियाँ विषयों में जाती हैं। स्वप्न में कोई देखें कि मैं गन्ना (ईख वा केतारी) चबाता हूँ तो उसको गन्ने की मिठास मालूम होती है। गहरी नींद मे मन बाहरी विषयों में नहीं जाता। संतों ने कहा कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के स्थान से अपने को ऊपर उठाओ। ऊपर उठाने पर तुरीय अवस्था होती है। अधिक शक्ति हो जाने पर जबतक तुरीय में रहना चाहेगा, रहेगा। उसको बाहरी विषयों से घृणा हो जाएगी। अन्दर में ऐसा रस मिलता है कि बाहर का रस बेरस हो जाता है। यह दृष्टियोग के अभ्यास से होता है। इसको शाम्भवी मुद्रा, वैष्णवी मुद्रा भी कहते हैं। जहाँ दृष्टि रहती है, वहाँ मन रहता है। जैसे किसी चीज को दोनों हाथों से खूब जोर से पकड़ो तो शरीर का सारा बल उस ओर हो जाता है। उसी तरह दृष्टि साधन से दृष्टि जहाँ टिकी रहती है, तो शरीर की सभी धाराएँ वहाँ सिमट जाती हैं। 'दशेन्द्रिय थाके शून्य ते बन्धन...'

दसों इन्द्रियों की धारें वहाँ सिमटकर बँध जाती हैं। इस तरह से दृष्टियोग करता हुआ रहे और विचार से भी विषयों से रोकता हुआ रहे तो दमशील हो जाएगा। इसमें भक्ति क्या हुई? बड़ी भक्ति हुई। बहिर्मुख से अन्तर्मुख हुआ। बाहर विषयों की ओर से हटकर ईश्वर की ओर हो गया। लेकिन केवल 'दम' के साधन से पूर्णता नहीं होती। इसलिए 'शम' का साधन है। बिना 'शम' के 'सम' नहीं होगा। इन्द्रियों का संग छूटे, इसीलिए नादानुसंधान है। महायोगी शंकाराचार्य ने नादानु-संधान की वन्दना की है और कहा है कि—

नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महेतत्त्वपदंलयानाम्।
भवत्प्रासदात् पवनेन साकं विलीयते विष्णु पदे मनो मे।।

अर्थात् हे नादानुसंधान! आपको नमस्कार है, आप परमपद में स्थित कराते हैं, आपके ही प्रसाद से मेरा प्राणवायु और मन; ये दोनों विष्णु के परम पद में लय हो जायेंगे। कबीर साहब ने कहा है—

शबद खोजि मन बश करै, सहज योग है येहि।
सत्तशब्द निज सार है, यह तो झूठि देहि।।

जिसको शब्द की खोज कहते हैं, उसी को नाद की खोज वा नादानुसंधान कहते हैं। यह अन्तर्नाद की खोज है, बाहर नाद की नहीं। साधक साधना करते हुए अन्दर में विविध नाद पाते हैं। इसमें दृष्टि का काम नहीं होता। बाहरी कान से भी काम नहीं होता। केवल अन्तर वृत्ति से सुनते हैं। इसमें मन काबू में होता है। नादविन्दूपनिषद् में लिखा है—

नाद ग्रहणतश्चित्तमन्तरंग भुजंगमः।
विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः कुत्रचिन्नहि धावति।।

अर्थ—नागरूप चित्त को नाद का अभ्यास करते-करते पूर्ण रूप से उसमें लीन हो जाता है और सभी विषयों को भूलकर अपने में अपने को एकाग्र करता है।

मनोमत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।

अर्थ—नाद, मदान्ध हाथीरूप चित्त को, जो विषयों की आनन्दवाटिका में विचरण करता है, रोकने के लिए तीव्र अंकुश का काम करता है।

नादोऽन्तरंग सारंग बन्धने वागुरायते।
अन्तरंग समुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा।।

अर्थ– मृगरूपी चित्त को बाँधने के लिए यह (नाद) जाल का काम करता है। समुद्र तरंग-रूपी चित्त के लिए यह (नाद) तट का काम करता है।

आप वैष्णव, शाक्त, शैव कोई हों, नवधा भक्ति कीजिए; सगुण, निर्गुण कोई भक्ति नहीं बचेगी। संतमत में स्थूल भक्ति, सूक्ष्म भक्ति, अपरा भक्ति–सभी हैं।

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सो आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

यही संतमत का भक्तिमार्ग है। n

यह प्रवचन उत्तरप्रदेश राज्यान्तर्गत ६०वाँ अखिलभारतीय संतमत सत्संग में, भारत के महान तीर्थ हरिद्वार में दिनांक १०.६.१९६८ ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

२९६. निर्गुण ब्रह्म की महिमा

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता!

मुझको रामचरितमानस से प्रेम है लड़कपन के समय से ही। मेरा लड़कपन उस समय का है, जिस समय देवनागरी अक्षर का प्रचार बहुत कम था। जो लोग संस्कृत पाठ करते थे, उनके बीच यह अक्षर था, औरों के बीच नहीं। कैथी हिन्दी की किताब सरकार के लोग विद्या के महकमे में देते थे। उस समय लोअर पास का नाम भी नहीं था। मेरे पिताजी श्रीरामायणजी का पाठ करते थे। कभी-कभी उनकी आँखों से आँसू बहते थे। मैं सोचता कि ये पढ़ते हैं और रोते क्यों हैं? मेरे मन में आया कि इसको पढ़ना चाहिए। मैं हाई स्कूल में पढ़ने गया। उस समय उसको इन्ट्रेंस कहते थे। फारसी पढ़ने से मुसावदा अच्छा होता था। इसलिए पिताजी ने मुझे फारसी पढ़ने कहा। मैं पिताजी की आज्ञा से उधर लगा। लेकिन बासे में जाकर रामायणजी का पाठ करता था। पहले ठीक-ठीक समझा नहीं। समझा उसमें कथा है। उसमें योग, ज्ञान और भक्ति की गहराई है, समझ में नहीं आया। उम्र बढ़ी, थोड़ा-थोड़ा समझने लगा। मैंने देखा कि जितना-जितना सोचा, उतना-ही-उतना वह गहरा मालूम होने लगा। मेरे जीवन में जोर पकड़ गया कि पढ़ना छोड़कर भक्ति में जीवन बिताओ।

एक परीक्षा होती थी, उसमें पहला दिन अंग्रेजी का अनुवाद अंग्रेजी में करने के लिए दिया गया था। विषय 'बिल्डर्स' का था।

For the structure that we raise;
time is with material's field;
Our to-days and yesterdays
Are the blocks with which we build.

इसका बयान करते-करते मेरी कॉपी खत्म हो गई। मैंने गार्ड से कहा–May I go out, sir ?

गार्ड ने आदेश दिया। मैं चला सो चला ही गया। यह सन् १९०४ ई० की बात है। हाँ, मैं राम चरित-मानस की बातें कहने लगूँगा, तो बहुत समय लगेगा। लेकिन उतना समय है नहीं; क्योंकि मुझे अभी भागलपुर भी जाना है। इसलिए थोड़ा कहता हूँ।

रामचरितमानस राम का भक्तिमय ग्रन्थ है।

उसमें ज्ञान,योग और भक्ति मिश्रित है। केवल मोटी-ही-मोटी बातें नहीं हैं। भक्ति की पूर्णता ज्ञान और योग को छोड़ने से नहीं होती। और योग की पूर्णता भी भक्ति और ज्ञान के छोड़ने से नहीं होती। ये तीनों संग-संग हैं।

ज्ञान की बात परमात्मा के निर्गुण-स्वरूप का वर्णन है। माया और जीव का वर्णन भी ज्ञान है। योग का वर्णन यह है कि भक्ति के अन्दर में 'दम' और 'शम' को लिया गया है। इनको छोड़ने से भक्ति पूरी नहीं होती है। 'दम' इन्द्रिय-निग्रह को और 'शम' मनोनिग्रह को कहते हैं। भक्ति के अन्दर ये दोनों बातें हैं।

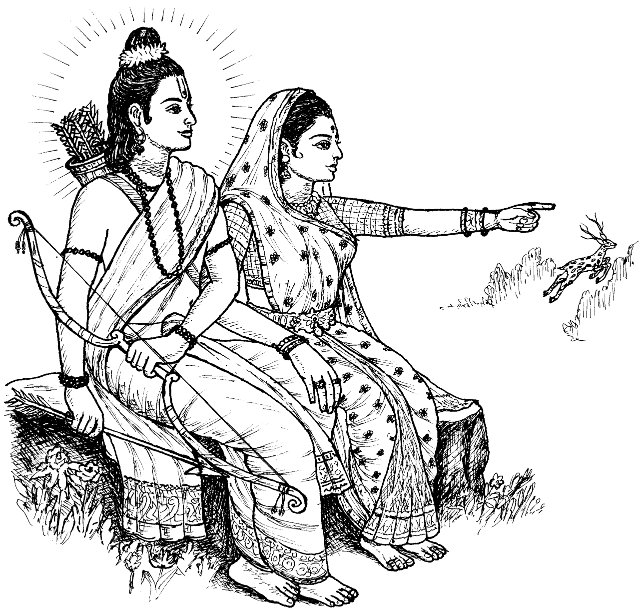

श्रीराम जंगल जाते हैं। वहाँ सीताजी का हरण होता है। सीताजी की खोज करते-करते वे शवरी के आश्रम में जाते हैं। वहाँ श्रीराम ने शवरी को नवधा भक्ति का उपदेश सुनाया है। वहाँ 'शम' और 'दम' दोनों पाये जाते हैं। जैसे—

प्रथम भगति सन्तन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।

छठी भक्ति में आते हैं तो कहते हैं—

छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।

यहाँ 'दम' आता है। बहुत से कर्मों के करने से मन में आसक्ति का भाव नहीं रहे। बहुत-से कर्मों से अपने को बचाए रहे और सज्जनों के धर्म में चले। सज्जनों का धर्म यह कि पाँच पापों को छोड़ दे। अर्थात् झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पाँचों पापों को छोड़कर कर्म करे, यह सज्जनों का धर्म है। पंच पापों में से कोई एक भी कर्म करे, तो भक्ति में कमी होती है। इन्द्रियों को रोकते-रोकते उसके रोकने का स्वभाव हो जाए, यह 'दम' है। कोई इन्द्रिय-निग्रह करता है, तो ईश्वर की ओर क्या प्रेम होता है? इन्द्रिय-निग्रह केवल विचार द्वारा नहीं होता है। इसके साथ योग होना चाहिए। योग-साधन में अवस्था बदलती है।

सपने होहिं भिखारी नृप, रंक नाकपति होय।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोय।।
मोह निसाँ सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।
यहि जग जामिनी जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

इसको नहीं लेते हैं तो इन्द्रिय-निग्रह नहीं होता है। योगी जगते हैं। क्या जगते हैं? वे तीन अवस्थाओं में नहीं रहते हैं। चौथी अवस्था में रहते हैं। जगने में अचेत, स्वप्न में अचेत और सुषुप्ति में अचेत। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत।।
—विनय-पत्रिका

तीन अवस्था को छोड़कर भजन करो। भजन करने के लिए तीन अवस्थाएँ छूटे, चौथी अवस्था आवे, तब स्थूल विषयों का संग जो इन्द्रियों को होता है, सो छूट जाता है। बिना योग के इन तीनों अवस्थाओं से छूटा नहीं जा सकता।

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

गोस्वामी तुलसीदासजी की यह वाणी आश्चर्य में डालनेवाली है।

जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।

इनको पढ़ने और ऊपरी भाव से समझने पर मोटा-भाव समझा जाता है। लेकिन है यह योगाभ्यास। इसलिए वे कहते हैं—

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।

जो कोई चींटी और सफरी बने, वह योगी हो जाए। अर्थात् स्थूल-भाव में अपने को नहीं रखकर सूक्ष्म-भाव में अपने को रखे।

संसार में रहकर सूक्ष्म-भाव में नहीं रहा जाता। जो अन्दर में जाता है, वह सूक्ष्म-भाव में जाता है। यह बिना योग के नहीं होता। नींद को छोड़कर योगी अचेत होता है। सूक्ष्म में प्रवेश करता है, तब इन्द्रिय-निग्रह होता है। यह किधर रहता है? अन्दर में लौटकर सूक्ष्म-भाव में रहता है। परमात्मा के प्रकाश में रहता है। बिना किसी आड़ के वह परमात्मा से एक सहारा पाता है। वह सहारा प्रकाश है, ब्रह्मज्योति है, जिसको पाकर ईश्वर-मुख होता है, संसार-मुख नहीं होता है। ईश्वर-भक्ति में यह प्रकाश पाना बहुत जरूरी है और इसके लिए योग-अभ्यास चाहिए। अन्दर का प्रकाश ब्रह्मज्योति पाना है वा ब्रह्मज्योति के अन्दर अपने को ले जाना होता है। तब इन्द्रियों को काबू में रखने के लिए हमें बाहर संसार में इधर वा उधर जाना चाहिए, सो छूट जाता है। इसलिए छठी भक्ति में जो 'दम' कहा गया है, इससे ईश्वर की ओर घूमने का बड़ा यत्न है। योग अभ्यास में यही नहीं समझना चाहिए कि कठिन-ही-कठिन है। कठिन भी है और सरल भी है। कठिन में नहीं जाइए, सरल में जाइए। यह है ध्यान-योग। धनी-निर्धन, पढ़े-अनपढ़े, स्त्री-पुरुष; सबके लिए सुगम है। इस ध्यान से मनोनिरोध होता है। पूर्ण सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। प्रकाश मिलता है। उस प्रकाश में जिसकी वृत्ति हमेशा रहती है, वह दमशील हो जाता है। ईश्वर-भक्ति में दमशीलता की बड़ी आवश्यकता है। योगशास्त्र में 'दम' के साथ 'शम' भी अवश्य होना चाहिए। जबतक 'शम' नहीं हो जाए, तबतक मन सूक्ष्म विषयों में घूमता है, माया के फेर में पड़ता है, अष्ट सिद्धियों में पड़ जाता है।

रिद्धि सिद्धि प्रेरई बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावई जाई।।
होई बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी।।

इसलिए मनोनिग्रह के लिए 'शम' का साधन अवश्य चाहिए। 'दम' और 'शम' से योग की समाप्ति होती है। जहाँ 'शम-दम' नहीं, वहाँ योग की समाप्ति नहीं। भगवान श्रीराम ने शवरी को सातवीं भक्ति में 'शम' का साधन बताया है; क्योंकि बिना 'शम' के 'सम' नहीं होता।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें सन्त अधिक करि लेखा।।
धर्म ते विरति जोग ते ज्ञाना। ज्ञान मोच्छ प्रद वेद बखाना।।

बिना योग के परमात्म-स्वरूप का ज्ञान नहीं

होता और बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं। भक्ति क्या है? प्रेम है।

प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिम्भ विचार।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार।।
—कबीर साहब

जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

प्रेम मन को बहुत समेटता है, उस ओर आसक्त करता है। जैसे विषय में मन आसक्त होता है, उसी तरह ईश्वर-प्रेम में मन आसक्त होता है। तब योग करो तो ठीक है। भक्ति करो, तो ठीक है। ईश्वर-भक्ति में प्रेम की प्रधानता है। ऊपरी भाव में प्रधानता नहीं है। प्रधानता प्रेम में है। 'शम' और 'दम' का वर्णन योग का वर्णन है। गोस्वामी तुलसीदासजी जहाँ रामचरितमानस नाम रखते हैं, वहाँ यह भी कहते हैं कि—

अस मानस मानस चखु चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही।।

रामचरितमानस को पहले शिवजी ने मन में रचा, फिर समय पाकर पार्वती से कहा—

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमय सिवा सन भाखा।।
—रामचरितमानस

लेकिन इसको देखने के लिए मन की दृष्टि चाहिए। मन की दो दृष्टियाँ होती हैं। एक मन के केन्द्र की और दूसरी मन की फैली हुई धार की। मन की धार जो संसार-मुख है, उसको तन-मन कहते हैं और जो समेटकर अंतर्मुख होती है, वह ब्रह्म-मुख होती है। मानस चक्षु के लिए तन-मन और निज मन यानी आत्ममुखी मन दोनों चाहिए। तब देखेगा कि 'कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान।' इसी को विनय-पत्रिका में कहा है—

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

यहाँ योग, ज्ञान, भक्ति सभी हैं। रामचरितमानस में सगुण ब्रह्म की कथा जल की स्वच्छता है और—

रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।

अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की महिमा जल की अगाधता है। गंभीरता नहीं रहे, केवल स्वच्छता रहे तो उतना ठीक नहीं। लेकिन स्वच्छता के साथ गंभीरता रहे, यह ठीक है। कहते-कहते यह भी कहते हैं कि—

निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण जान नहिं कोय।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय।।
जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा।।
सो प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा।।
सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञान रूप बल धामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता।।
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी।।
इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

इस तरह गोस्वामीजी ने निर्गुण तत्त्व को बहुत अच्छी तरह दृढ़ा दिया है। फिर यह भी कहा है कि—

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप।।
यथा अनेकन वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ।।

आपुन को भी खोजना है और आपुन जिसमें व्यापक है, उसको भी खोजना है। व्याप्य सगुण है तथा जो व्यापक है,वह निर्गुण है।

ईश्वर की उपासना में पहले सगुण-भाव चाहिए, बाद में निर्गुण। कितने कहते हैं कि कबीर साहब, गुरु नानक साहब आदि सगुण रूप नहीं मानते थे। उनको जानना चाहिए कि केवल दाशरथि राम को मानना ही सगुण नहीं है। कृष्ण-रूप, देवी-रूप,

शिव-रूप, गुरु-रूप; ये सब क्या सगुण नहीं हैं?

अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा, बसत इति वासना धूप दीजै।

सर्वगत रूप जो है, उसका भी ज्ञान होना चाहिए। चाहे कोई भी इष्ट हों, सगुण का भी ज्ञान होना चाहिए और सगुण में जो व्यापक है, उनका भी ज्ञान होना चाहिए।

हिय निर्गुन नयनन्हिं सगुन, रसना राम सुनाम।
मनहु पुरट संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम।।

यही राम के भजन का तरीका है। दोनों को पहचानो। रामचरितमानस के लिए ऐसा भी कहा है—

नव रसजप तप जोग विरागा। ते सब जलचर चारू तड़ागा।।

यह ग्रंथ क्या है?

सद्गुरु ज्ञान विराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के।।

इसके अन्दर ज्ञान, विराग, योग सभी हैं। यह थोड़ा-सा दिग्दर्शन आपके सामने कर दिया। रामचरितमानस में वर्णित स्थूल-सूक्ष्म सब प्रकार की भक्ति को विद्वान लोग जानते हैं। जो ज्ञान में बढ़े नहीं हैं, वे केवल स्थूल को ही जानते हैं, सो नहीं। स्थूल, सूक्ष्म दोनों रूपों को जानना चाहिए।

गोस्वामीजी ने मनोनिग्रह और इन्द्रिय-निग्रह दोनों करने कहा है। इन्द्रिय-निग्रह केवल विचार से नहीं होता है। विचार के साथ ध्यानयोग भी चाहिए। मन की धार जो इन्द्रियों में लगी है, उसको उस केन्द्र में केन्द्रित करना, जहाँ से यह बिखरती है। कबीर साहब ने एक पद्य में कहा है—

न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।

योगी लोग अष्टांग योग का साधन करके स्थूल देह का साधन करके, प्राणायाम करके तब ध्यान करते हैं। प्राणायाम के बाद प्रत्याहार, उसके बाद धारणा, फिर तब ध्यान होता है। प्राणायाम नहीं करके प्रत्याहार से जो ध्यान का आरम्भ करते हैं, यह सरल योग है। कबीर साहब कहते हैं, केवल ध्यान करो। यह कोई नई बात नहीं है, पुरानी बात है। श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने क्या कहा है? इस तरह की जमीन पर अर्थात् जो ऊँची-नीची नहीं हो—समतल हो, उसपर पवित्र आसनी बिछाकर फिर शरीर, मस्तक और ग्रीवा को सम करके स्थिर होता हुआ दिशाओं को नहीं देखते हुए नासाग्र में देखे। यहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने प्राणायाम का नाम भी नहीं लिया है। और इसका फल बताया है कि अनेक जन्मों के अनन्तर वह साधक सिद्धि पाकर अन्त में उत्तम गति अर्थात् मोक्ष पा लेगा। श्रीमद्भागवत में उद्धव ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा है कि मैं आपका ध्यान कैसे करूँ? इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि पहले मेरे सम्पूर्ण शरीर का, फिर मुस्कानयुक्त मुख का और उसको भी छोड़कर शून्य में ध्यान करो। यह विहंगम मार्ग है। सरल योग है।

बहुत लोग जानते हैं कि—कोई व्यवस्थित ढंग से और कोई अव्यवस्थित ढंग से। 'बिनु गुरु होय कि ज्ञान'—गोस्वामीजी ने कहा। जो अच्छे जानकार हैं, उनसे जानकर ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिए। बिना ध्यान के काम पूर्ण नहीं होगा। साम्प्रदायिकता के संकीर्ण भाव की बात नहीं। मेरा आग्रह है कि न सगुण छोड़िए, न निर्गुण। न स्थूल छोड़िए, न सूक्ष्म छोड़िए। न योग छोड़िए, न ज्ञान छोड़िए और न भक्ति छोड़िए। n

यह प्रवचन मुंगेर जिलान्तर्गत जमालपुर नगर में मानस समिति द्वारा आयोजित सत्संग में दिनांक १६.१२.१९६८ ई० को उद्घाटन भाषण के रूप में हुआ था।

२९७. उन्नीस सौ दस ईस्वी में सत्संग का रूप

प्यारे लोगो !

मैं तो केवल आपलोगों के दर्शनों के लिये ही उपस्थित होता हूँ। फिर भी कर्त्तव्यवश कुछ कहना चाहिये, इसलिये कुछ कह देता हूँ। आज इस सत्संग का रूप ऐसा है। १९१० ई० में इसका रूप बहुत छोटा था। इसका आरम्भ पुरैनियाँ जिला के अन्दर श्री गंगा जी के तट पर जो जोतराम राय भवानीपुर ग्राम था, उसी ग्राम से हुआ था। बहुत छोटा रूप था। उस जिला के अन्दर तब केवल ३० आदमी भजन-भेद पाये हुए सत्संगी थे और उनके साथ-साथ सत्संग करनेवाले श्रद्धालु २० आदमी थे। कुल ५० आदमी एकत्र थे। उस गाँव के लोग भी कोई दिलचस्पी नहीं लेते थे। बहुत थोड़े लोग बैठते थे। उस समय गुरु महाराज भी थे। वे दूर थे। उनको खबर भी नहीं दी गई थी। सत्संग के बाद खबर दी गई तो उन्होंने मंजूर किया और लिखा कि अच्छा किये कि मिल-जुलकर सत्संग कर लिये। उसी का रूप बढ़ता गया। पहले जिला वार्षिक सत्संग के नाम से जाहिर किया। बाद में बिहार प्रान्तीय और उसके बाद अखिल भारतीय नाम से जाहिर किया। इस सत्संग की उन्नति होती जा रही है। विचारने पर मालूम होता है कि ईश्वर की कृपा अब ऐसी है कि संसार में आध्यात्मिकता का विचार बढ़ता जाय और इसीलिये अधिक-अधिक बढ़ रहा है। इसीलिये इसका रूप भी बढ़ता जा रहा है।

मेरे ही समय में स्वामी विवेकानन्द जी महाराज कलकत्ता में विराजमान थे। कटिहार आश्रम में रहनेवाले उनके जो साधु थे, वे कहते थे कि हमारे स्वामी जी कह गये हैं कि अध्यात्म का प्रचार गाँव-गाँव में होगा, सो हो रहा है। कटिहार में अखिल भारतीय वार्षिक सत्संग हमलोगों का था। उसी का विशाल रूप देखकर वे बोले थे। विवेकानन्द जी महाराज ऊँचे दरजे के साधु थे, यह कहने की आवश्यकता नहीं। अपने देश में वे ही ऐसे पहले महात्मा हुए, जिन्होंने विदेश में जाकर भारत का मुख उज्ज्वल किया। पहले पुरुष वे ही थे, जो जल-जहाज पर विदेश के लिये दूर यात्रा किये थे, उस समय समुद्र-यात्रा करनेवाले भारतीय को भारतीय सनातनधर्मी लोग हेय दृष्टि से देखा करते थे।

आज भौतिकवाद की ठोकर खाते-खाते अध्यात्मवाद की ओर संसार जाना चाहता है—केवल भारत ही नहीं संसार भर की बात है। जहाँ-जहाँ भौतिकता से धन बहुत बढ़ गया है, वहाँ-वहाँ के लोग अब कुछ इस ओर की खोज कर रहे हैं कि जल्द-से-जल्द शान्ति मिल जाय। उनलोगों में इतनी अशान्ति है कि इतना भी नहीं हो पाता है कि वे रात में नींद भर सो सकें। समय भी उनको नहीं मिलता, समय घटता जा रहा है। आप कहेंगे कि समय कैसे घटता है? समय तो २४ घंटे की दिन-रात होती ही है। लोग काम बहुत करने लग गये हैं। काम करते-करते ही समय बहुत निकल जाता है। अध्यात्म-विचार और साधन के लिये समय कमता जा रहा है। लोग दूर-दूर में रहते हुए आपस में बातचीत कर लेते हैं। इतना होने पर भी मन को शान्ति आवे सो नहीं। मन को शान्ति आती नहीं, भौतिकता को बढ़ाकर विशेष ऊँची की गई है, परन्तु इति कहाँ होने को है, पता नहीं। जितनी ऊँची होती जा रही है, मन उतना ही और हो, और हो की तरफ बढ़ रहा है। और हो, और हो की तृष्णा में रहकर शान्ति नहीं आती। किधर

शान्ति आती है, इसकी खोज में लोग लग रहे हैं। वे सोचते हैं कि आध्यात्मिकता की ओर चलें तो कैसा हो? अब लोग यह विचारने लगे हैं। अब उन लोगों को भी ऐसा विश्वास हो रहा है कि आध्यात्मिकता में ही शान्ति आयेगी। इसीलिये इस ओर वे लोग बढ़ रहे हैं। ईश्वर की बड़ी कृपा है।

जिस आध्यात्मिकता का प्रचार इस सत्संग से होता है; उसमें एक तो है ज्ञान, और दूसरा वह ज्ञान जिस तत्त्व को ऊँचा-से-ऊँचा बताता है, उसको प्राप्त करो। तीसरा कैसे प्राप्त करो, इसकी विधि जानो। चौथी बात यह है कि विधि जानकर उसका अभ्यास करो।

हमारे पुराने लोग कहते आये हैं कि भौतिक तत्त्वों को जानते-जानते थक जाओगे, लेकिन ज्ञान हुआ है, कहा नहीं जायेगा। जानते-जानते बहुत जान गये, लेकिन ज्ञान हुआ नहीं। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि अध्यात्म-ज्ञान ही ज्ञान है और ज्ञान, अज्ञान है। असल में अध्यात्म-ज्ञान को ही ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान के अन्दर केवल श्रवण, मनन रह जाय तो ज्ञान अधूरा रहेगा। यह ज्ञान पूर्ण होगा उस साधन से, जिस साधन के द्वारा ज्ञान से निर्णीत तत्त्व को ठीक-ठीक पहचान लोगे। भारत में बहुत पूर्व काल से यह ख्याल है।

हमारे पुराने-पुराने ऋषि-मुनियों ने कहा है कि ज्ञान को चार भागों में बाँटो। श्रवण ज्ञान, मनन ज्ञान अर्थात् तो सुनकर जानते हो और सुनकर जो विचारते हो। तीसरा है कि जिसको सुन-विचार कर जाने हो, उसको प्रत्यक्ष करने के लिये अभ्यास करो, उसकी विधि जान कर। जबतक अभ्यास करोगे, तबतक ज्ञान बढ़ता है। क्या बातचीत से? नहीं। अभ्यास करने में जो कुछ प्रत्यक्ष मालूम होने लगता है, अनुभूति होती है; लेकिन अभी अंत नहीं हुआ है, उस अनुभूति में ज्ञान बढ़ता है। यह निदिध्यास ज्ञान है। साधन जब खत्म होता है, दूसरी कोई अनुभूति नहीं होती, उस अन्त की अनुभूति और अन्त के ज्ञान को अनुभव ज्ञान कहते हैं। इधर को चलो।

आजकल जो अच्छे-अच्छे ज्ञानी हैं, साधक हैं, वे कहते हैं कि साधन करो, शान्ति आयेगी। साधन में सार क्या है? मन को शान्त करो, यही सार है। मन को पूर्णरूपेण स्थिर करने के लिये साधन करो। जैसे-जैसे साधन करते जाओगे, शान्ति मिलती जाएगी। यह प्रत्यक्ष है, इसीलिये विश्वास भी लोगों को होता जाता है। जो साधन-विधि जाने और साधन नहीं करे, तो उसका हाथ खाली रहेगा। साधन इस तरह है कि कोई भी करो—बूढ़े करो, जवान करो, लड़के करो। जो कुछ समझ सकते हो तो समझकर करो। पुरुष वर्ग, स्त्री वर्ग, पढ़े-अनपढ़े जो करोगे, उसी से होगा। विद्या की बड़ी आवश्यकता होती है, लेकिन साधन के पहले तक। साधन के पहले निर्णय कर लेने के लिए विद्या चाहिये। निर्णय के बाद साधन करो। साधन की सफलता वहाँ है, जहाँ साधन करने में मन लगे। जहाँ साधन करने में उथल-पुथल हो, वहाँ सत्संग क्या है? जहाँ केवल वक्तव्य-ही-वक्तव्य हो और एकाग्रता के लिए साधन नहीं हो तो वह किस काम का? 'धन-धन कहे धनी जो होते, निर्धन रहत न कोई।' कबीर साहब का वाक्य है। धन कमाने से धन होता है, धन-धन कहने से नहीं। शान्ति पाने की विधि जानो और साधन करो। पूर्ण शान्ति नादानु-सन्धान की पूर्णता में है और बिना दृष्टियोग के नादानुसन्धान विशेष फलदायक नहीं होता। इसलिये नादानुसन्धान का सहायक दृष्टि-साधन है। दृष्टियोग का साधन सूक्ष्म है, इसलिये इसके पूर्व स्थूल-जप-ध्यान की साधन-विधि भी अवश्य ही है। इसीलिये विधि की सहायिका विधि है, ऐसा कहा जाता है।

जिन बातों से मन में चंचलता प्रवेश करती है, उन बातों को छोड़ो। जहाँ तक बच सको, बचो। जितनी भी विकारी बातें हैं— काम-विकार, क्रोध-विकार, हिंसा-विकार आदि, इन बातों से बचो। जो इन बातों से बचते रहते हैं, कुछ भोजन पर भी काबू रखते हैं तो वे जो साधन करते हैं तो भजन अच्छा बनता है। उनका ही ज्ञान बढ़ता है। नहीं तो बहुत शास्त्र पढ़कर भी ज्ञान नहीं होता। n

यह प्रवचन दिनांक ०९.०३.१९६९ ई० को भागलपुर जिलान्तर्गत अठगामा ग्राम में अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग के ६१वाँ वार्षिक अधिवेशन में प्रातःकालीन सत्संग के सुअवसर पर हुआ था।

२९८. भक्तिरूपा माता का सुख निराला है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

जैसे शिशु को, छोटे बच्चे को एक ही विश्वास रहता है कि मेरे शुभ के लिये, सारी मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिये केवल मेरी माता ही हैं—उसी तरह भक्तों को साथ-साथ मुझको भी यह विश्वास है कि मनुष्य के सब सुखों की एक ही माता है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरी और नहीं—एक-ही-एक माता ईश्वर की भक्ति है। ईश्वर की भक्ति-रूपा माता की गोद में जो अपने को रखता है, वह अशुभ कभी नहीं देखता। यही जान कर इसका दृढ़ विश्वास करके संतों ने संसार के लोगों के वास्ते जो शुभ बनाया है, वह शुभ के हेतु ईश्वर की भक्ति को ही बतला दी है।

ईश्वर की भक्ति से मनुष्य शुभ-ही-शुभ देखता हुआ अन्त में मोक्ष को पाता है। संसार के बंधनों में—जालों में फँसा हुआ मानव शुभ की मात्रा से अधिक अशुभ देखता है। और अशुभ देखते हुए वह संसार के जालों में रहकर कभी नहीं तृप्ति पाता है। तो भक्तगण, संतजन कहते हैं—ईश्वर की भक्ति सब सुख देनेवाली है। सब शुभ के लिए एक ही माता यही है। इस माता को अपना लो—इस माता की गोद में हो जाओ। इसी हेतु से हमारे गुरु महाराज ने ईश्वर की भक्ति का प्रचार जबतक उनका शरीर रहा, तबतक उन्होंने किया और हम लोगों को भी उन्होंने यही प्रचार करने का उपदेश दिया। तो दैनिक सत्संग और अखिल भारतीय वार्षिक सत्संग के द्वारा इसका प्रचार होता रहता है। इसका मूल कारण गुरु-आज्ञा है। तो मुझे इसमें बड़ा विश्वास है। आपलोगों से मैं कहता हूँ कि ईश्वर की भक्ति अच्छी तरह से समझिए। जिन माता के गर्भ से आपने जन्म लिया है, वह माता आपके वास्ते बहुत ही सुखदायिनी और शुभ में रखनेवाली अवश्य हैं; परन्तु भक्ति-रूपा माता आपको जिस सुख में रखेंगी, वह सुख निराला है।

भौतिक-जगत का सुख जन्मदात्री माता अवश्य देती हैं; परन्तु भौतिक-जगत में केवल सुख-ही-सुख मिले—इसका विश्वास न है, न कभी हुआ और न कभी होगा; होना भी नहीं चाहिए। क्योंकि भौतिक पदार्थों में ऐसा गुण नहीं कि किसी को सुख-स्वरूप कर दे। परन्तु ईश्वर की भक्ति में यह गुण है। तो ईश्वर की भक्ति अवश्य करनी चाहिए।

हमलोगों का देश जो प्राचीन काल से भारत कहकर या आर्यावर्त्त कहकर विख्यात है, वही देश फिर हिन्दुस्तान कहा जाने लग गया। यह कल-युगी बात है। कलयुग का भी बहुत समय गुजर गया, तब की बात है। आपलोग जब कभी-कभी

कर्म-काण्ड विषयक यज्ञ करने को होते हैं और करने लगते हैं तो आपके पुरोहित अवश्य ही उसमें आपके देश के नाम को याद करवा देते हैं—आर्यावर्ते, भरतखण्डे, जम्बूद्वीपे—ये सब नाम याद करवाते है; परन्तु 'हिन्दुस्ताने' नहीं याद करवाते हैं। तो यह कर्मकाण्ड की याद दिलवाना—हमारे लिए बड़ा अच्छा है—अपने साविक नाम को हम जानते हैं। अगर यह नहीं होता तो आज पहले का नाम इस तरह गुप्त हो जाता कि जैसे अपने होकर किसी को स्वप्न में वह भूल जाय बिल्कुल। तो, इस अपने नाम को भी आपलोग न भूलें। और जब से अपना देश है, तब से अपने कर्म का जो ग्रन्थ है—परम ज्ञानमय ग्रन्थ है, उसी को वेद कहते हैं।

वेद के अन्दर ईश्वर की मान्यता—ईश्वर में आस्था का बहुत जोरों के साथ विश्वास दिलाया गया है। वेद केवल यही बता देता है कि—ईश्वर है, ईश्वर है, ईश्वर है— सो नहीं। वेद बता देता है कि ईश्वर है, तुम प्रत्यक्ष में पा भी सकते हो। है, परन्तु अव्यक्त है। व्यक्त पदार्थ ईश्वर नहीं है। व्यक्त-पदार्थ माया है। जो अव्यक्त है—वह ईश्वर है। वह अव्यक्त,अव्यक्त ही नहीं रह जायेगा। अगर तुम उसकी भक्ति ठीक-ठीक करो तो वह तुम्हारे लिए व्यक्त होगा। माया पदार्थ व्यक्त मालूम होता है। इन्द्रियों के ज्ञान में इन्द्रियाँ तुम्हारे देह के साथ-साथ तुम्हारे सब अधीनस्थ चीजें हैं। इनके द्वारा तुम मायिक-तत्त्वों को ही जान सकते हो। मायिक तत्त्वों को जानने का जो यन्त्र है, उसी यन्त्र से तुम निर्मायिक-तत्त्व को भी जानो, ऐसा विश्वास रखना पागलपन है। जिस यन्त्र से तुम मायिक-तत्त्वों को जानते हो, वह यन्त्र तुम्हारे शरीर के साथ-साथ लगी हुई इन्द्रियाँ हैं बाहर और भीतर। यह ज्ञान मेरे गुरुजी ने मुझको सिखलाया है। इतना ही नहीं—उन्होंने सिखलाया अवश्य, परन्तु केवल उन्होंने ही सिखलाया सो नहीं—उन्होंने ही बतलाया कि यह ज्ञान वेदों का है। तो अव्यक्त—ईश्वर जो मायातीत है, अव्यक्त है, इन्द्रियों को प्रत्यक्ष कभी होने योग्य नहीं है। इन्द्रियों में जो ज्ञान है, वह ज्ञान तुम्हारा ही ज्ञान है। तुम अपने क्या हो, इसको नहीं सोच-समझ सकते हो। इसी वास्ते अपने को तुम समझते हो कि यदि इन्द्रियाँ न हों, मैं लूज हूँ—मैं ज्ञान-रहित हो जाऊँगा। ऐसा कुछ समझते हो तो यह तुम्हारी बड़ी गलती है। इन्द्रियों का खोल जैसे-जैसे तुम्हारे ऊपर से उतरेगा, वैसे-वैसे तुम्हारा ज्ञान विशेष जगता जाएगा। यदि इन्द्रियों के खोल सारे-के-सारे दूर हो जाए, तुम ऐसे हो जाओ कि जैसे वस्त्रहीन शरीर—अर्थात् तुम ऐसे हो जाओ कि तुम शरीर विहीन केवल तुम-ही-तुम अर्थात् केवल आत्मा-ही-आत्मा। अगर ऐसा हो जाओ तो तुम सर्वज्ञानमय होओ। तुम सर्वज्ञ होओ। तुमसे छिपा हुआ कुछ नहीं है। बिना यन्त्रों के, बिना इन्द्रियों के सब कुछ तुम जानते हो। तुम्हारा ज्ञान अगम है। अगम तक पहुँचा हुआ है। अगम की पहचान करने वाला है। तुम्हारे ज्ञान से बढ़कर ज्ञान नहीं है। अगर तुम अपना ज्ञान पा जाओ तो फिर तुमको कोई और सिखलानेवाले की जरूरत है—यह नहीं मालूम पड़ेगा। तुमको इसकी आवश्यकता नहीं रहेगी कि तुम किसी के पास जाकर पूछो कि यह बात कैसी है—यह बात कैसे होगी। अव्यक्त किस तरह व्यक्त होगा, यह तुमको पूछना नहीं होगा। ईश्वर अव्यक्त है। इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है—इसी को कहते हैं अव्यक्त।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।
सोइ सच्चिदानन्द घन रामा, अज विज्ञान रूप बलधामा ।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता, अखिल अमोघ शक्ति भगवंता।
निर्मल निराकार निर्मोहा, नित्य निरञ्जन सुख संदोहा ।

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी, ब्रह्म निरीह विरज अविनाशी।

ईश्वर का स्वरूप यह है। इसके वास्ते जो दर्शन करना चाहेगा, वह अपने को बिल्कुल शरीर आदि से हटा ले। कहने में तो कुछ ऐसा लगता है कि हेय बात है, लेकिन हेय बात नहीं—बड़ी ऊँची बात है। तुम अपने को बिल्कुल नंगा कर लो। जो यह शरीर का पहनावा तुम्हारे पर रखा गया है, यह पहनावा बड़ा दुखकर है। स्थूल-शरीर, सूक्ष्म-शरीर, कारण-शरीर, महाकारण-शरीर; यह बड़ा दुखकर है। इन सबसे रहित होकर 'चिदानंदमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी।।' इस स्वरूप में हो जाओगे। इस स्वरूप को फिर कहीं से खोज र नहीं लाना पड़ेगा। न गुरु महाराज को जाकर कहना पड़ेगा कि हमको इसी स्वरूप में ला दीजिए। वह कहेंगे कि बच्चा तुम खुद साधन करोगे, तुम तो यह हो ही। ऐसा जब हो जाओगे, तब अव्यक्त-ईश्वर ऐसा व्यक्त होगा, जैसे इन्द्रियों के सामने सूर्य भगवान व्यक्त हो जाते हैं। रात भर अव्यक्त रहते हैं और प्रातःकाल होते ही सूर्य भगवान व्यक्त हो जाते हैं, लेकिन फिर भी जो जन्मांध हैं, उन बेचारों के लिए अव्यक्त मालूम पड़ते हैं। सूर्य यह तो नहीं कर सकते हैं कि अपनी गर्मी से उसको बता दें कि हम सूर्य आ गए और तुमको गर्मी मालूम हो रही है।

संत लोग बतला गये हैं कि इस अव्यक्त-रूप को जानने के लिए तुमको क्या करना है? तो ईश्वर की भक्ति करनी है। तो वह भक्ति कैसी होगी, सो तफसीरवार के साथ अच्छी तरह से संतों ने बतला दिया है। यह ठीक-ठीक समझ लो तो ऐसा मालूम पड़ेगा कि कोई बहका नहीं सकता। इसीलिये ईश्वर की भक्ति का प्रचार होता है। हमारा देश अनादि-काल से जबसे यह देश है, पहला दिन कब हुआ, इसका कोई ठिकाना नहीं है। इसीलिए अनादि-काल से कह दिया। अनादि-काल से यह आस्तिक देश कहा जा रहा है। यह आस्तिक-देश है। इसीलिए वेद-ज्ञान यहाँ प्रगट हुआ है। तो यह आस्तिक-देश में ईश्वर का ज्ञान यथार्थ-ज्ञान होना चाहिए। न कि ऐसा ज्ञान कि जो ज्ञान कमजोर हो। इन्द्रिगम्य-रूप को ईश्वर मानना कमजोर ज्ञान है। इन्द्रिगम्य-रूप नहीं—इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर जो स्वरूप परमात्मा का है, परमात्मा को उसी स्वरूप में मानना है, यह ज्ञान एकदम मजबूत है। तो इस ज्ञान को सब लोग धारण करें।

यह मत सोचो कि मैं हल चलानेवाला हूँ, उतना ज्ञान कहाँ पाऊँगा। अरे! देखो तो कोई कुछ पैसा माँगता है? और यह ज्ञान तुमको बाँटता है। कोई माँगता है कुछ? बहुत जगह सत्संग होता है। सत्संगों में जाओ। यह ज्ञान पाओगे। नहीं पढ़े-लिखे हो, तब भी पाओगे। पढ़े-लिखे होकर के भी जो भूलते हो तो भी पाओगे और अपने भूल को समझ जाओगे। जो इस ज्ञान को नहीं पाता है, यदि वह ईश्वर की भक्ति में प्रवृत्त होता है, उसका प्रवृत्त होना वैसा ही है, जैसा कि कोई मार्ग चलने में प्रवृत्त हो जाए, यात्री बन जाए। चलता जाए, लेकिन उसको पता नहीं कहाँ पहुँचना है। कहाँ को जाना है। जब यही नहीं पता कि कहाँ को जाना है तो वह किधर जायेगा, न मालूम भ्रमता-भटकता उसकी क्या गति हो जायेगी। इसीलिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान पहले प्राप्त कर लो, फिर भक्ति-मार्ग में प्रवृत्त हो जाओ। और बेसी बात नहीं, इतनी ही बात समझ लो।

श्रीराम ने बहुत समास-रूप में—मुख्तसर में लक्ष्मणजी के पूछने पर कि माया किसको कहते हैं? तो उन्होंने बहुत समास-रूप में कह दिया कि इन्द्रियों के ज्ञान में, मन के ज्ञान में जो आवे, सब माया है। बस जाओ।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ।।

अब सब इन्द्रियों का ज्ञान छूट गया, बाकी क्या रहा, तुम्हारा निजी-ज्ञान। तुम्हारे ज्ञान से सब इन्द्रियों में ज्ञान है। तुम्हारा अपना निजी-ज्ञान कुछ नहीं है, यह कभी मत समझो। तुम्हारा अपना निजी-ज्ञान बड़ा विशाल है।

पूर्ण से जो निकलता है, वह भी पूर्ण। बाकी बचता है, वह भी पूर्ण। एक अजीब बात है। पूर्ण से जो निकलता है, वह भी पूर्ण और पूर्ण तो अपना पूर्ण है ही। निकलने से जो बच जाता है, वह भी पूर्ण। वही तुम निकले हुए पूर्ण हो। लेकिन अपने को नहीं पहचानते हो। यही बात है।

हमलोग समझते हैं कि अग्नि-पूंज से एक चिनगारी—एक चिनगारी में अग्नि भी कम, चमक भी कम और दाहक-शक्ति भी कम। लेकिन ईश्वर ऐसा नहीं है, उसकी चिनगारी ऐसी नहीं है। उसमें, स्वयं ईश्वर में जो गुण है, उसके कण-कण में वही गुण है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।

अंश कह करके कुछ दर्जा हो गया, अंश कहकर कुछ कम गुण हो गया, सो नहीं है। अगर उस कण को पहचान जाओ अर्थात् अपने तईं को पहचान जाओ तो यह अच्छी तरह से समझ जाओगे कि पूर्ण से यह कम, गोया जरा-सा जो लिया—सो भी स्वरूपतः वही है, वही गुण है। बाकी बचा हुआ भी पूर्ण ही है और वह जो पहले से पूर्ण है, सो तो पूर्ण है ही।

वैदिक-ग्रंथ को जो पढ़ते हैं, वे जानते हैं इस बात को। तो ईश्वर की भक्ति करो। ईश्वर की भक्ति करने के लिए ईश्वर-स्वरूप का पहले अच्छी तरह से निर्णय जानो। और तब भक्ति क्या हो सकती है, इसको ठीक-ठीक समझकर वैसा कुछ करो। यह सत्संग इसलिए नहीं होता है कि सुन लो, बस—बहुत तो याद रखो—इसीलिये नहीं कहा जाता है। इसके लिये यह सत्संग कभी सुखी नहीं है। यह सत्संग सुखी है तब—जो सुनो, अपने में रखो, अनुकूल चलने के लिये कोशिश रखो। शुरू तो कर दो। शुरु करो—आरम्भ करो—आहिस्ता-आहिस्ता भी चलोगे, तो कभी-न-कभी पूर्णता को पहुँच जाओगे। यही बात है। n

यह प्रवचन दिनांक ०९.०३.१९६९ ई० को भागलपुर जिलान्तर्गत अठगामा ग्राम में अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग के ६१वाँ वार्षिक अधिवेशन में अपराह्नकालीन सत्संग के सुअवसर पर हुआ था।

२९९. साकार और निराकार उपासना में भेद

प्यारे लोगो !

ईश्वर-भक्ति के सम्बन्ध में ईश्वर-स्वरूप का निर्णय अवश्य जानना होता है। उस स्वरूप के अन्दर में निर्गुण और सगुण, साकार और निराकार की बड़ी चर्चा होती है। इन चारों के अतिरिक्त व्यक्त और अव्यक्त यानी इन छहों की चर्चा बहुत होती है। और कहा जाता है कि निर्गुण की उपासना अलग है और सगुण की उपासना अलग है। निराकार की उपासना अलग और साकार की अपासना अलग है। आजकल समय के अनुकूल और विद्या के अनुकूल बड़े-बड़े विद्वान ज्ञान रखते हुए कहते हैं कि संत में दो प्रकार के हैं। एक सगुणियाँ-संत और दूसरे निर्गुणियाँ-संत होते हैं। इन्हीं बातों पर थोड़ा प्रकाश डालता हूँ, गौर कर लीजिए।

निर्गुण का अर्थ है, जिसमें गुण नहीं है। गुण कहते हैं विशेषण को या तारीफ को। यह एक

अर्थ है। किसी में किसी तरह की खूबी होती है, भलपन होता है, तो उसी खूबी और भलपन को उसका गुण कहते हैं। इसी को विशेषण भी कहते हैं। यह ऐसी चीज है कि इसके बिना कोई रह नहीं सकता। किसी की स्थिति नहीं रह सकती। कुछ-न-कुछ विशेषण सब में होता है। चाहे वह और कुछ न जाने। कुछ कहकर जिस नाम से जिसको पुकारें, वह उसका विशेषण है। बहुत दिन हुए, मैं पश्चिम में घूम रहा था। हाजीपुर पहुँचा। मेरा पहरावा ऐसा था कि कुछ लोग मुझको मुसलमान फकीर समझते थे। एक मुसलमान ने मुझको आदर से बुलाकर पूछा, आपकी तारीफ क्या है? मुसलमानों में, उनकी भाषा में उनके नाम के बदले तारीफ पूछते हैं। मुझसे उन्होंने कहा—'आपकी तारीफ क्या है?' मैं चकित हो गया। मैं नहीं जानता था। मैं समझ न सका। फिर उन्होंने मेरा नाम पूछा तो मैंने बता दिया। बिना नाम के संसार में किसी की स्थिति नहीं है। जितने लोग संसार में हुए हैं, होंगे, सभी सगुण हुए हैं, निर्गुण कोई नहीं। ईश्वर कहिए, ईश्वर कहने से ही गुण हो गया। इसीलिए ईश्वर भी सगुण है। और पदार्थों में भेद है। स्थूल, सूक्ष्मादि का भेद बताना भी तारीफ है। सब सगुण हैं। क्या जड़-पदार्थ, क्या प्राणयुक्त-पदार्थ, बिल्कुल-के-बिल्कुल सगुण हैं।

ईश्वर के निस्बत हमलोग लड़कपन से सुनते चले आये हैं कि ईश्वर भी संसार में जन्म लेते हैं। उस समय हम समझते तो नहीं थे, लेकिन इतना विश्वास होता था कि ईश्वर भी संसार में जन्म लेते हैं और सगुण कहलाते हैं। होते-होते कुछ समय व्यतीत हुआ। कुछ विद्या-बुद्धि हुई तो ईश्वर के विषय में यह भी जानकारी हुई की ईश्वर निर्गुण है। कुछ-न-कुछ विशेषण होने से सगुण के अतिरिक्त निर्गुण हई नहीं हैं, लेकिन निर्गुण-शब्द है। सो निर्गुण-शब्द क्या है? ज्ञान के उत्कर्ष में—ज्ञान का थोड़ा भी उत्कर्ष होने से समझ में आता है कि संसार में तीन शक्तियाँ हैं—उत्पादक, पोषक और विनाशक। कोई भी वृक्ष उत्पादक-शक्ति से निकलता है, उसका पोषक-शक्ति से पोषण होता है। और विनाशक-शक्ति से विनाश भी होता है और अंकुर-रूप में नया पौधा हो गया। अंकुर का नाश हो गया। अब तीसरा नाम पड़ जाता है। उस रूप का भी नाश हो गया, तब वृक्ष हो गया। तब उस वृक्ष की एक हद तक वृद्धि हुई, फिर कमने लग गया। कमने लग गया तब क्या हुआ? डाल सूखती जाती है। उसमें विनाश का काम दृष्टि गोचर होने लगा। होते-होते उसका पता नहीं रहा। इस तरह विनाशक-शक्ति का काम भी साथ-साथ होता है। इन तीनों शक्तियों का नाम ज्ञानियों ने अलग-अलग दिया है। उत्पादक का नाम दिया है रजोगुण, पालक का नाम सतोगुण और विनाशक का नाम है तमोगुण। इन तीनों गुणों के सहित जो हो जाय, वह है सगुण। अर्थात् जो इन गुणों के संग नहीं था, वह इन गुणों का संग कर लेने से सगुण हो गया। ईश्वर का मूल-रूप निर्गुण कहते हैं। जब वे तीन गुणों को संग कर लेते हैं, तब सगुण होते हैं। तीन गुणों को कैसे लेते हैं?

सृष्टि अपने-ही-अपने हो गई, सो हमलोग माननेवाले नहीं हैं। इस पर बहुत बहस भी होती है। एक दूसरे को हरा भी देता है, लेकिन हार कोई मानता नहीं है। सृष्टि हुई। सृष्टि के तत्त्वों के साथ-साथ सृष्टि-फैलाव के साथ-साथ ईश्वर रहा। सृष्टि के स्थूल-सूक्ष्मादि भेदों के साथ-साथ ईश्वर हो गया। सृष्टि के जितने दर्जे और फैलाव हैं, सब के साथ-साथ होकर ईश्वर हैं। लेकिन सृष्टि के तत्त्वों के अन्त होने पर उनका अन्त नहीं होता। अपने स्वरूप में वे रहे ही। सृष्टि के अन्दर भी

और सृष्टि के बाहर भी वही हैं। उपनिषद्कार ने इसी को समझाने के लिये इस तरह कहा है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।

अर्थात् 'जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक-रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण-भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक-रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।' सृष्टि के तत्त्वों के संग-संग जो हो गया, वह तीन गुणों के संग हुआ। इसीलिए स्थूल-सूक्ष्मादि भेद से सृष्टि त्रैगुणमय है। त्रैगुणमय तत्त्वों के साथ सृष्टि में ईश्वर सगुण कहलाते हैं। क्योंकि गुणों को वे धारण कर लेते हैं। लेकिन वे बदल कर त्रैगुण हो गये, सो नहीं। सगुण-शब्द ऐसा अर्थ देता है कि किसी ने गुणों का संग कर लिया है। सगुण-शब्द एक-ही-एक का ज्ञान नहीं देता। बल्कि कोई गुण के साथ हो गया है, ऐसा ज्ञान देता है। केवल अकेला रहता तो गुण-सहित कैसे कहा जाता? सृष्टि नहीं है, गुणों का पसार नहीं है, तब ईश्वर त्रैगुणरहित अर्थात् निर्गुण हैं। तुलसीदासजी सगुणियाँ हैं एक पंडित ने कहा था। गो० तुलसीदासजी लिखते हैं—

अगुण अखंड अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।

जिसमें त्रैगुण नहीं, जिसका टुकड़ा-पुर्जा नहीं, जो इन्द्रिय-ज्ञान से बाहर है। जो अज अर्थात् उत्पन्न नहीं हुआ। अगर उत्पन्न होता, तब वह निर्गुण नहीं कहलाता। वह निर्गुण-तत्त्व है। कभी नहीं था, इसका पता नहीं। कब से है? जब काल यानी समय नहीं था। स्थान नहीं था। देश और काल सृष्टि के अन्दर की चीज है। लेकिन वह देश कालातीत है। वह सगुण कहने योग्य नहीं है। अखंड=जो देश कालातीत है। देश और स्थान के बिना जो हो, उसका टुकड़ा किसी के दिमाग में कैसे आता है? स्थान-विहीन और टुकड़ा-टुकड़ा ऐसा भी कहीं होता है? स्थान भी नहीं था, तब था। इसीलिये वह अखंड है। उसका टुकड़ा नहीं है। इन्द्रियों के ज्ञान से वह बाहर है। उत्पन्न होनेवाला वह नहीं है।

अगुण अखंड अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।

तुलसीदासजी ईश्वर के अवतार की कथा कहेंगे। इसीलिये वे भूमिका बाँध देते हैं। अवतार क्यों? इसके उत्तर में वे कहते हैं—'भगत प्रेम बस सगुन सो होई।' सृष्टि के आरम्भ में जो था, वह 'भगत प्रेम बस सगुण' नहीं था। तब आपलोग कहेंगे कि ऐसे विराटरूप का भी वर्णन आया है कि जिसके अन्दर सारी-सृष्टि दर्शित होती थी। हालाँकि उसका आदि-अन्त नहीं मालूम पड़ता था। लेकिन जामवन्त ने दो घड़ी में उस विराटरूप की सात बार प्रदक्षिणा की थी। इस तरह यह उसकी सीमा हो गई।

अर्जुन को जो विराटरूप दिखाया गया था, वह भी अद्भुत था। लेकिन उसमें भी तो यह बात है कि अर्जुन अलग खड़ा था। अलग खड़ा होने से फिर भी सीमा हो गई। हाथ, पैर, पेट, नाक आदि बहुत थे। यदि प्रत्येक का हद नहीं हो, तो बहुत हाथ, पैर आदि को कैसे गिनेंगे? इसलिये अवतारी-पुरुषों ने कितना भी अद्भुत-रूप बनाया, लेकिन वह अनादि-अनन्त नहीं हो सका। लेखक ने अनंत-रूप बताया। लेकिन अनन्त कैसे है? उसको वे दृढ़ कर नहीं सके।

एक विद्वान ब्रह्मचारी ने हमारे एक सत्संगी से कहा कि वह विराटरूप तो अनन्त था, उसको सान्त कैसे बताते हो? वह सत्संगी चुप हो गया। दूसरे दिन उस विद्वान ने कहा—'तुम ठीक कहते हो।' तर्क में तो अवश्य सान्त हो जाता है। अनन्त कहाँ रहता है? विराटरूप सारी-सृष्टि में व्यापक है तब भी अनन्त कहते बनता नहीं। विराटरूप सगुण किसी भी तरह अनन्त नहीं हो सकता।

त्रिदेव—महेश, ब्रह्मा, विष्णु जो हैं, इनके लिए भी कहा जाता है कि ये भी ईश्वर हैं। विचारने पर ये भी ईश्वर के सगुण-रूप हैं। किनकी प्रार्थना से ये सगुण हुए? सो भी वर्णन नहीं है। परमात्मा की मौज से हुए। अवतारी-पुरुष जो होते हैं, उन्हीं के लिए खासतौर से है कि 'भगत प्रेम बस सगुण सो होई।' एक तो 'भगत-प्रेम बस सगुण', दूसरा ब्रह्मा, विष्णु, महेश का सगुण-रूप और तीसरा इन सब में व्यापक होता हुआ विराट सगुण-रूप; ये सभी इनकी खास मौज से हैं। तब भी सारे सगुण में व्यापक होते हुए भी सबसे परे अपना स्वरूप रखते ही हैं। वह है—निर्गुण। गुरु किसको कहते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निर्गुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास।।

इन गुरु को कौन पहचाने। उनमें अज्ञान का लेश मात्र नहीं है। जिस प्रकाश में अन्धकार नहीं है, बिना अन्धकार के प्रकाश को जो कहते हैं। यदि कहो कि सूर्य में तो प्रकाश-ही-प्रकाश है। अन्धकार कहाँ है? तो इस सूर्य से जिसको हम नहीं देख सकते हैं, उसके लिए वह तो अन्धकार ही है। यंत्रों के द्वारा—दूरवीन के द्वारा देखा। स्थूल का जर्रा-जर्रा देखा। सृष्टि के सूक्ष्म-भेद को भी देखा? स्थूल में जितनी बारिकी है, बहुत कुछ देखा और भी देख सकते हैं। लेकिन स्थूल को छोड़कर जो सूक्ष्म है उसको देखा?

मुझसे कोई पूछे कि स्थूल को छोड़कर सूक्ष्म है? तो मैं कहूँगा हाँ ! है। पूछे कि कहाँ है? तो कहूँगा कि तीन अवस्थाओं के परे है। कोई कहे कि जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति; इन अवस्थाओं के परे भी अवस्था होती है? मैं कहूँगा, हाँ ! होती है। लेकिन बहुतों को पता नहीं है। मैं यह भी कहूँगा, ग्रन्थ में लिखा है, चौथी अवस्था भी है, कोई कहे कि किताब में लिखने से क्या होगा? प्रत्यक्ष दिखाओ। तो मैं कहूँगा एक दृष्टि बनाकर देखो। तब जो देख सकोगे तो चौथी अवस्था हो जाएगी। एक दृष्टि एकविन्दुता में होगी। सबको एक समान देखना ही एक दृष्टि नहीं है। दृष्टि को इतना समेटो कि एकविन्दुता हो जाय। जबतक एकविन्दुता रहेगी, चौथी अवस्था में रहोगे। करके देखो, प्रत्यक्ष होगा। बाहर में निशाना करनेवाले भी दृष्टि को समेटकर देखते हैं, नहीं तो निशाना कैसे करते हैं? दृष्टि समेटना तुम्हारे अधिकार में है। दृष्टि को समेटो, यह योग की अवस्था है। चौथी अवस्था में रहकर देखो, तब जो देखने में आवेगा, वह किसी यंत्र से आज तक किसी ने नहीं देखा है।

कितना भी प्रखर-प्रकाश रहे, अन्दर में अन्धकार पहले मालूम पड़ता है। स्थूल, सूक्ष्म के भेद को जाना है। उसका थोड़ा-थोड़ा नमूना जाना है, तब विश्वास हुआ है। जो थोड़ा विश्वास था, थोड़ा-थोड़ा नमूना देखते-देखते और अधिक विश्वास हो गया। तुम नहीं-नहीं कहते रहो और हम हाँ-हाँ, कहते रहेंगे। और यहाँ आकर हार जाओगे, जहाँ 'तम बिनु कहै प्रकाश' है। वह प्रकाश कहाँ है? बता दो।

प्रथम का जो मूल-तत्त्व है, सर्व-पर जो तत्त्व है, सबसे पूर्व का जो पदार्थ है; वह निर्गुण है। सगुण में स्थूल, सूक्ष्म का भेद है। सगुण में साकार, निराकार का भेद है और दृश्य-अदृश्य का भेद भी है। साकार-भेदों में भी व्यक्त और अव्यक्त है। जैसे तुरीय-अवस्था में पहुँचो, तब जो देखो, सो सगुण है। लेकिन तीन अवस्थाओं में रहनेवाले के लिये यह अव्यक्त है। इन बातों की जानकारी चाहिये। केवल निर्गुणियाँ और सगुणियाँ कहकर फिरना और साधना करके जानना नहीं, विद्वानों के लिये यह उचित नहीं जँचता। साधना करके जो ज्ञान होता है, उनमें वे नहीं हैं। और वचस्-ज्ञान में

बहुत पारंगत हैं, उनकी बड़ी तारीफ भी होती है। लेकिन मैं कहता हूँ, उनको यह ज्ञान भी हो जाय तो सोने में सुगंध है। ये सब भेद सगुण और निर्गुण में हैं। निर्गुण में तो भेद है नहीं, भेद है सगुण में। साधना ऐसी हो कि पहले स्थूल-इन्द्रिय-गोचर, फिर सूक्ष्म-इन्द्रिय-गोचर और फिर ऐसा कि कभी भी इन्द्रियगम्य होने योग्य नहीं। अन्दर-अन्दर चलो तो ऐसा होता है। ईश्वर की उपासना में सगुण-उपासना भी चाहिये। नहीं तो कोई चल नहीं सकेंगे। सगुण-साकार की भी उपासना होनी चाहिए और निर्गुण-निराकार की भी। नहीं तो कोई भक्ति में पूर्ण हो नहीं सकता। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—'**रघुपति भगति करत कठिनाई।**' यह ठीक है। फुसलाने की बात नहीं है। सगुण-निर्गुण में जो भेद है कितना कहा जाय? सत्संग-योग के चौथा भाग में लिख ही दिया है। पढ़कर, मनन कर रखिये। कोई संत केवल सगुण-भक्त, कोई संत केवल निर्गुण-भक्त नहीं होते। कोई संत पर जबर्दस्ती कुछ लादे, हो नहीं सकता। उनको वचस्-ज्ञान भले बहुत हो, लेकिन यौगिक-दृष्टि से बहुत दूर हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी, सूरदासजी, कबीर साहब, गुरु नानक साहब आदि के समान आज कोई संत नहीं हैं, जो उनमें झूठ बतावें। कोई कहे कि तुलसीदास के कहने से क्या होगा? तो मैं कहूँगा, आपके कहने से क्या होगा? मैं बहुत जोर देकर कहता हूँ कि तुलसीदासजी और सूरदास जी उसी निर्गुण-तत्त्व तक पहुँचे हुए थे, जहाँ कबीर साहब और गुरु नानक साहब आदि संत पहुँचे थे। आप कहेंगे कि आप निर्गुण-सगुण के पार में कहते हैं, सो क्या? तो मैं कहूँगा, निर्गुण एक शब्द है, उसके परे मैं जाने कहता हूँ। सांख्य-शास्त्र के अनुकूल बहुत पुरुष हैं और वे सब निर्गुण हैं। जो शब्द-ब्रह्म है, वह भी निर्गुण है। इस तरह सांख्य के अनेक निर्गुण-पुरुष से और निर्गुण शब्द-ब्रह्म से परे जो है, वह निर्गुण के परे है। इस तरह निर्गुण के परे तो वे हई हैं और सगुण के परे भी हैं। इसलिये 'निर्गुण-सगुण के पार में' मैं कहता हूँ। ऐसा ख्याल रखते हुए लोगों को भक्ति-मार्ग में अपने को रखना चाहिए। जो भक्ति-मार्ग में ऐसा ख्याल नहीं रखता है और जो आज अपने को भ्रमित नहीं मानता है, एक-न-एक दिन उसकी समझ में आयेगी कि मैं भ्रम में था। जो कम पढ़े-लिखे हैं, सत्संग करें। सब बातें समझ में आ जाएँगी। समझने की शक्ति पुस्तकों में नहीं, समझने की शक्ति परमात्मा ने सबके मष्तिष्क में दे दी है। जो जितना अधिक धारण-ग्रहण कर सकता है, वह उतना विशेष होता है। परमात्मा ने पुस्तक मस्तिष्क को ही बना दिया है। इसलिये कभी-कभी ऐसे महात्मा यहाँ हुए, जो पढ़े-लिखे नहीं थे। परन्तु उनका मस्तिष्क बड़ा उर्वरा था। n

यह प्रवचन दिनांक १०.०३.१९६९ ई० को भागलपुर जिलान्तर्गत अठगामा ग्राम में अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग के ६१वाँ वार्षिक अधिवेशन में प्रातःकालीन सत्संग के सुअवसर पर हुआ था।

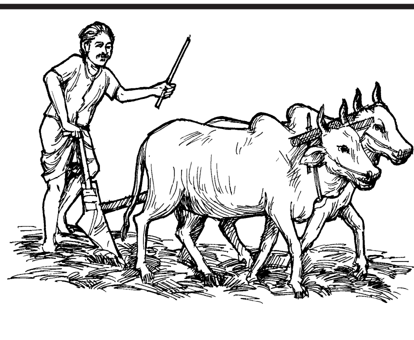

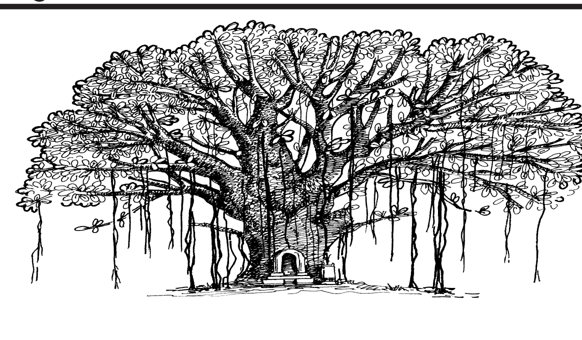

३००. गुरु से ज्ञान लेना उनका शिष्य होना है

प्यारे प्रेमीजनो !

इस सत्संग के विज्ञापन में जिसको पढ़कर, सुनकर, 'शान्ति-सन्देश' मासिक-पत्र से जानकर आपलोग यहाँ आये। उसमें अवश्य ही केवल अध्यात्म-विषयक चर्चा, ईश्वर-भक्ति की चर्चा होगी, यह लिखा था। और यही जानकर आपलोग आए। फिर भी इसमें भूदान-यज्ञ& वाली बात चल पड़ी, यह भी आपलोगों को नुकसान नहीं पहुँचावेगी। इस सम्बन्ध में बस इतना ही कहूँगा। लेकिन जिस विषय की जहाँ सभा हो, वहाँ वैसा कहा जाय, यही शोभा है। इसीलिये एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को, कुछ अच्छे व्यक्ति कुछ कहने को लाचार हुए। मैं कहूँगा कि ये भी उनलोगों को क्षमा कर देंगे।

ईश्वर-भक्ति के विषय में कल्ह से चर्चा होती चली आ रही है। ईश्वर-भक्ति के विषय के पहले ईश्वर-स्वरूप को जानना चाहिये। ईश्वर-स्वरूप को जाने बिना जो ईश्वर-भक्ति करता है, वह वैसा ही है, जैसे कि कोई यात्री यात्रा करता है, परन्तु उसको अपनी पहुँच के निर्दिष्ट-स्थान का ज्ञान नहीं हो तो वह किधर जायेगा? कहाँ पहुँचेगा? पता नहीं। भटकने का उसको बहुत डर है। इस तरह ईश्वर-भक्ति करनेवाले को पहले ईश्वर-स्वरूप का निर्णय होना चाहिए। उससे जो निर्णय हो, उस दिशा में चलना चाहिए। ईश्वर-स्वरूप-निर्णय के बिना जो साधक ईश्वर-भक्ति का आरम्भ करता है, वह उपर्युक्त यात्री की तरह ही भटकता है। इन्द्रिय-ज्ञान में जो कुछ आता है, वह माया है। स्थूल-इन्द्रियों के ज्ञान में केवल माया ही पकड़ी जायेगी। वह भी केवल स्थूल-माया ही। इसका सूक्ष्म और कारण-रूप भी इतना झीना है कि उसको पकड़ने के लिये स्थूल-इन्द्रियाँ कभी शक्य नहीं। जो मायातीत है, उसको मन-बुद्धि भीतर की इन्द्रियाँ भी नहीं पा सकती है। इसलिये कहा गया है कि—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

यह जो बात है बुद्धि पर तत्त्व है। तब किधर को जाना है? बुद्धि से परे तत्त्व को पाने के लिये बाहर-बाहर जाना है? पृथ्वी पर या जल पर अथवा आसमान में वायुयान पर उड़ना है? बाहर में किसी तरह उड़ो, जैसे कि पहले अष्ट-सिद्धि प्राप्त योगी लोग अपने स्थूल-शरीर से आकाश में उड़ते थे, उस तरह उड़ो। अथवा किसी भी तरह वायुयान से उड़ने पर मन, बुद्धि के परे नहीं जा सकते। आप कौन हैं?

पानी का सा बुल बुला, यह तन ऐसा होय ।
पीव मिलन को ठानिये, रहिये न पड़ि सोय ।।
रहिये ना पड़ि सोय, बहुरि नहिं मनुखा देही ।
आपुन ही कूँ खोज, मिलै जब राम सनेही ।।
हरि कूँ भूले जो फिरै, सहजो जीवन छार ।
सुखिया जबही होयगो, सुमिरैगो करतार ।।

'आपुन ही कूँ खोज' अर्थात् आप अपना निर्णय करो कौन हो? शरीर पाँच तत्त्व से बना है। यह तुम नहीं हो। इन्द्रियों में से कोई नहीं हो। अन्तःकरण में—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार; इन चारों में से कोई आप नहीं हो। ये सब इन्द्रियाँ आपकी हैं। जैसे आप शरीर पर कपड़े पहनते हैं। वे कपड़े आप के हैं। लेकिन आप कपड़े नहीं हैं। आप शरीर अथवा बाहरी वा भीतरी कोई भी इन्द्रिय नहीं है। मन, बुद्धि के आगे आप स्वयं है। आप क्या हैं? आप अपने को जैसा कि कहते हैं,

& सत्संग महाधिवेशन के अवसर पर सर्वोदय के महान नेता श्रीबिनोवा भावे के प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीकृष्णराज का मेहताजी का प्रवचन भूदानयज्ञ पर हुआ था। श्रोताओं की ओर से आग्रह हुआ कि अभी सत्संग के अनुकूल विषय पर ही प्रवचन हो, इसी पर पूज्यपाद महर्षिजी ने भूदान संबंधी उपर्युक्त बातें कहीं।

आप जीवात्मा हैं। आत्मा केवल कहने से जीवत्व-भाव का नहीं होना साबित होता है। जीवत्व-भाव के सहित जो आप हैं, मन-बुद्धि, इन्द्रियों से परे हैं। यहाँ तक कि जिस मूल-पदार्थ से ये इन्द्रियाँ आदि बनी हैं; उस जड़ात्मिका-प्रकृति से भी आप परे स्वरूपतः आप चेतन-आत्मा हैं। अन्तःकरण के साथ से जीवत्व-दशा आई है। आप को शरीर मिला है। इस तरह समझ सकते हैं। लेकिन आप अपने को पहचान नहीं सकते हैं। मन, बुद्धि आदि इन्द्रियों तथा मायिक-तत्त्वों को मैं यह नहीं हूँ, मैं यह नहीं हूँ कहकर अपने को जान सकते हैं। लेकिन अपने को पहचान नहीं सकते हैं। जबतक पहचान नहीं हो, तबतक का ज्ञान अधूरा है। इसलिये अपने को पहचान लें। अपने को पहचान लेंगे तो ईश्वर को भी पहचान लेंगे। ईश्वर मन आदि इन्द्रियों से परे है, आत्मगम्य है। आप अपने को अपने से ही पहचान सकते हैं। जैसे आँख से आँख को देख सकते हैं ऐना लेकर। इसी तरह भक्तियोग-रूप साधन है, उससे आप अपने से अपने को देखेंगे, फिर पता लग जायगा कि 'ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी है। यह प्रत्यक्ष हो जायगा। क्योंकि जिसको आत्म-दृष्टि होती है, उसका द्वैत दूर हो जाता है। सम्पूर्ण संसार में आत्मज्ञानी के लिये 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' हो जाता है। इसका साधन करना चाहिये। भक्ति करो, भजन करो। भक्ति-भजन का एक ही अर्थ है—सेवा।

ईश्वर की सेवा क्या है? एक छोटी-सी कहानी कहता हूँ। एक मुनि बालक था। वह जंगल में विचरण करता था। एक राजा ने उस मुनि बालक को देखा। वह बालक देखने में बहुत सुन्दर था। मालूम पड़ता था जैसे वह सनक, सनन्दन, सनत् कुमार, सनातन में से कोई एक हो। बालक को देखकर राजा बड़ा प्रभावित हुआ। राजा ने कहा—आप मेरे साथ चलें। बालक ने कहा—राजन्! मेरा शर्त मंजूर करो तो मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा।' राजा ने कहा— 'वह शर्त क्या है?' बालक ने कहा— 'मुझे खिलाओ, तुम मत खाओ। मुझे पहनाओ, तुम मत पहनो। मैं सोऊँ, तुम जगकर पहरा करो।' राजा ने कहा—'सो नहीं होगा। जो मैं खाऊँगा, सो तुझे खिलाऊँगा। जो मैं पहरूँगा, सो तुझे पहराऊँगा। मेरा जो पहरा करेगा, वही तुम्हारा भी पहरा करेगा।' बालक ने कहा—'मेरा राजा ऐसा नहीं है। वह स्वयं नहीं खाता, मुझे खिलाता है; वह स्वयं कुछ नहीं पहनता, मुझे पहनाता है; मैं सोता हूँ, वह जगकर हमारा पहरा करता है। अपने ऐसे राजा को छोड़कर मैं तुम्हारे साथ क्यों जाऊँ। वह है ईश्वर।

सेवा उसकी होती है, जिसको कोई जरूरत होती है। जिसको कोई जरूरत नहीं, उसकी क्या सेवा होगी। लोग गंगा-सेवन करने जाते हैं। कितने श्रद्धालु दंड-प्रणाम करते जाते हैं। कितने देवस्थान में जाते हैं। उस देव के दर्शन वा पवित्र नदी में स्नान के लिये जाना उसकी सेवा है। गंगा किनारे रहकर गंगा-स्नान करते हैं, उसका जल-पान करते हैं, यह गंगा-सेवन है। इससे गंगाजी को कुछ मिला नहीं, कुछ लाभ हुआ नहीं और गंगाजी कुछ चाहती भी नहीं है। इसी तरह जो उधर जाता है, जिधर जाते-जाते ब्रह्मसुख का आभास मिलता है, ब्रह्म-ज्योति की तेज का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, यह है ईश्वर की सेवा। उधर जाते-जाते इतनी पवित्रता आती है, जितनी कि अभी आई नहीं। जिधर जाने से ब्रह्म-दर्शन होता है, उधर जानेवाले को लाभ है। ब्रह्म को या ईश्वर को कोई लाभ नहीं। ब्रह्म या ईश्वर-दर्शन किस ओर होता है? जिधर जाने से शरीर, इन्द्रिय का संग छूट जाता है। तीन अवस्थाओं का संग छूटता है और गोसाईं तुलसीदासजी के लिखे अनुकूल देखता है—

यथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहिं सैल वन, भूतल भरि निधान ।।

यह भूतल भूरि निधान क्या है? तो कहा—

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवई निद्रा तजि योगी ।
सोई हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिशय द्वैत वियोगी ।।

कोई कहे कि हम तुलसीदासजी की बात क्यों मानेंगे; तर्क को मानेंगे। तर्क करो, तो शास्त्रार्थ में जाओ। उसमें गर्मागर्मी हो जाय, माथापच्ची हो जाय तो क्या फायदा हुआ? जिस दिन पाठशाला में प्रथम-प्रथम पढ़ने गये थे, तो अध्यापक ने कहा यह 'क' है तो बिना तर्क के बिल्कुल वर्णमाला हमने सीखी। गिनती सीख ली। होते-होते ज्ञान हुआ, तर्क हुआ और ज्ञान, तर्क होने पर वही वर्णमाला, वही गिनती रही, कोई फर्क नहीं पड़ा।

श्रद्धा भी हो, तो तर्क भी हो और गुरु—वाक्य के साथ मेल भी हो, मानने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदासजी, गुरु नानकदेवजी, कबीर साहब आदि सब संतों की बातें मिल जायँ तो क्यों न मानें। श्रद्धा हो और तर्क भी हो। अंधी-श्रद्धा गढ़हे में गिरावेगी और कोरा-तर्क भ्रमित रखेगा। आदमी की शिक्षा श्रद्धा से आरम्भ होती है। और बढ़ते-बढ़ते तर्क भी होता है। यह तो ऐहिक-विद्या के अन्दर की बात है। परमार्थिक-विद्या केवल किताबी-विद्या है, सो नहीं। गुरु द्वारा विद्या-पाठ का दरवाजा खुलता है, तब विद्यार्थी पढ़ता है। गुरु से संकेत लेता है। बिना गुरु के काम नहीं चलता। चाहे सांसारिक-ज्ञान हो, चाहे पारमार्थिक। गुरु में श्रद्धा होनी चाहिये। आप जानते हैं कि महाभारत का युद्ध भाइयों-भाइयों (कौरव-पाण्डव) में हुआ था। बहुत लोग मारे गये। राज्य पाण्डवों को मिला। पाण्डवों में बड़े युधिष्ठिर थे। ये रोते थे कि हमसे बहुत पाप हुआ। व्यासदेवजी उनको समझाये, लेकिन समझते वे नहीं थे। अन्त में व्यासदेवजी ने उनसे कहा कि तुम अश्वमेध-यज्ञ करो। युधिष्ठिर ने कहा उतना धन मेरे पास कहाँ है? व्यासदेवजी ने रास्ता बताया और धन पाने का अनुष्ठान बताया। युधिष्ठिर ने उनकी बातों में श्रद्धा की, उनके बताये मार्ग से गये और धन प्राप्त कर यज्ञ किये। जैसे वह धन युधिष्ठिर के लिए अव्यक्त था। श्रद्धा-युक्त होकर उन्होंने धन प्राप्त किया। और यज्ञ करके शोक-मुक्त हुए। यदि युधिष्ठिर व्यासजी की बात में श्रद्धा नहीं करते तो रोते रहते। इसी तरह संतों की वाणी में श्रद्धा अवश्य चाहिए।

कबीर साहब, गुरु नानक साहब, गोस्वामी तुलसीदासजी को देखने की जो दृष्टि थी, मेरी दृष्टि जो है, साधारण लोगों की दृष्टि जो है, सब में अन्तर है। संतों की दृष्टि मोटी-मोटी चीजों को भी देखती है और झीना-मार्ग को भी देखती है।

भक्ति का मारग झीना रे । **—कबीर साहब**

खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा ।
—गुरु नानक साहब

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।
—कठोपनिषद्

ऐसी दृष्टि हो तो देखा जाय मन, बुद्धि से आगे जाना होगा ईश्वर-दर्शन के लिये। जैसे गंगा-स्नान के लिए अपने गाँव से बाहर जाना होता है। किन्तु गंगा-स्नान करने से गंगा को लाभ नहीं। स्नान करनेवाले को लाभ होता है। वैसे ही ईश्वर दर्शन के लिए शरीर इन्द्रियों से बाहर जाना होगा। उसी रास्ते में चलकर ईश्वर की भक्ति होती है। ईश्वर का दर्शन होता है। उसपर चलने से आपको लाभ होगा, ईश्वर को कुछ लाभ नहीं। वह रास्ता बाहर संसार में नहीं अन्दर में है। 'क्षुरस्यधारा वा खंनिअहु तीखी वा झीना-मार्ग'—इस महीन-मार्ग पर चलने के लिये वायुयान से या संसार में किसी तरह से जाना नहीं हो सकता। जानेवाला कौन है? शरीर नहीं। शरीरों से छूट कर जाना है। जाने वाले आप हैं। पहले मन सहित आप जायेंगे। क्योंकि मन का साथ आपको है। जहाँ तक मन जायगा, वहाँ तक आप जायेंगे। जहाँ मन नहीं

जाएगा, वहाँ भी आप जायेंगे; क्योंकि मन से भी आप अधिक सूक्ष्म हैं। अन्दर- अन्दर आप जायेंगे। कहाँ से आप जायेंगे? जागने के समय शरीर में आप जहाँ रहते हैं, योगियों ने उसको आज्ञाचक्र कहा है। इसको रहस्यवादी संतों ने कंजाकमल भी कहा है। वहाँ से जाना होगा।

जानिले जानिले सत्त पहिचानिले, सुरत साँची बसै दीद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिव्दृष्टि ताना।।

—दरिया साहब, बिहारी

इस वास्ते आपको जो साधन करना है, उसमें मन को बहुत एकाग्र करना है। उसका पहला स्थूल—अवलम्ब जो है, वह है जप। दूसरा अवलम्ब है—मानस-ध्यान। तीसरा अवलम्ब है— जो तुम नहीं देखे हो, उसको देखो। गुरु जिस तरह बतावें, उस तरह देखो। उलटा देखो, यह रहस्यमयी वाणी है। उलटा देखने का अर्थ है, बहिर्मुख नहीं देखकर अन्तर देखो। फैली-निगाह से नहीं सिमटी-निगाह से देखो। इतना सिमटाव हो कि एकविन्दुता पर रह सको। तब समझो कि अन्दर के रास्ता पर आ गए। यहाँ से स्थूल से सूक्ष्म में जाने का रास्ता है। धीरे-धीरे अभ्यास करने से होता है। बाहर संसार में सदाचार का पालन करो। जो सदाचार-पालन नहीं करेगा, वह झूठ बोलेगा, चोरी करेगा, नशा खाएगा, हिंशा करेगा, व्यभिचार करेगा। इस तरह पाँचो पापों में रहकर कोई सदाचारी नहीं बन सकता।

अकेला मत जाना वह राह । गुरु बिन नहीं होगा निर्वाह ।।

—राधा स्वामी साहब

अपने को अपना गुरु मानकर चलना बुद्ध भगवान की तरह हो तो हो सकता है। लेकिन उनके समान और दूसरे कोई नहीं हुए। गुरु से ज्ञान लेना उनका शिष्य होना है। गुरु से शिक्षा प्राप्त कर दीक्षा लेना, गुरु के अधीनस्थ रहना है। और इसी तरह रहकर साधन करना है। जैसे वृक्ष में आम लगा। कच्चा आम खट्टा होता है। होते-होते पक जाता है, तो वही आम मीठा होता है। मेरे पिताजी कहते थे, बुरबक का आम खट्टा होता है। मैं मन में कहता था कि ये क्या कहते हैं। आदमी बुरबक हो वा भला हो, आम सबको एक समान लगता है। मैंने आम का एक पेड़ लगाया। वह फला तो आम खट्टा हुआ। उसी आम को पाल पर रखा तो वह मीठा हो गया। जबतक ठीक-ठीक साधन पूर्ण नहीं हुआ तो आम खट्टा होता है। जबतक परिपक्व नहीं हुआ, तबतक जो गुरु का संग छोड़ता है, गुरु का आदेश नहीं मानता है, तो उसमें ज्ञान पूर्ण नहीं होता है। इसीलिए गुरु महाराजजी का कहना था कि संतमत का अधिक सिद्धान्त नहीं है, केवल गुरु, ध्यान और सत्संग—ये तीन हैं। गुरु से शिक्षा लो, दीक्षा लो। जहाँ रहो उनकी आज्ञा के अनुकूल साधन-भजन करते रहो। तब बनते-बनते बन जाओगे। ध्यान करो और सत्संग भी करो।

यहाँ पर तो ज्ञान-विचार होता है, उसमें जब सगुण-ब्रह्म का विचार होता है तो वह गंगा की धारा है। ब्रह्म-ज्ञान का विचार सरस्वती की धारा है। और कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य की जो बात होती है, वह यमुना की धारा है। इस तरह यहाँ त्रिवेणी-धारा बहती है। इसमें अपने कर्म का निर्णय होता है। उसके अनुकूल दीक्षा लेता है और साधन करते-करते पूर्ण होता है। इन्हीं बातों में सन्तमत का ज्ञान पूर्ण होता है। यही हमलोगों को सीखना चाहिये।

मैं आप लोगों का अभिनन्दन करता हूँ। तथा आचार्य विनोवा भावे के संग से जो पवित्र महिला आयी हैं और जो पवित्र पुरुष आये हैं, इनके दर्शनों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। n

यह प्रवचन दिनांक १०. ०३. १९६९ ई० को भागलपुर जिलान्तर्गत अठगामा ग्राम में अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग के ६१वाँ वार्षिक अधिवेशन में अपराह्नकालीन सत्संग के सुअवसर पर हुआ था।

३०१. सहस्त्रदल कमल में जाने पर देवताओं का दर्शन

प्यारे लोगों !

इस पंच तत्त्वमय संसार के पाँचों में प्रथम का तत्त्व अवश्य ही आकाश मानना पड़ता है। फिर सौर-जगत् के आरम्भ में सूर्य अवश्य ही मानने योग्य है। इसी तरह यह प्रकृति के फैलाव के अन्दर की सब रचनाओं और प्रकृतियों के सहित आरम्भ में जो मानना पड़ता है, उसी को ईश्वर-परमात्मा कहते हैं। वह अत्यन्त-गुप्त है। पंच तत्त्वों के आरम्भ का जो आकाश है, यह तो लोग प्रत्यक्ष ही मालूम करते हैं और सौर जगत के आरम्भ के सूर्य को भी लोग प्रत्यक्ष देखते ही हैं। लेकिन प्रकृति के आरम्भ का जो परमात्मा है, वह अत्यन्त-गुप्त है। वह सबसे दूर है और सबसे नजदीक भी है। यह भी कह सकते हैं, जैसे कि संत कबीर साहब कहा है—

मंदिर में दीप बहु बारी, नयन बिनु भई अंधियारी।

इसी तरह वह गुप्त-से-गुप्त और प्रकट-से-प्रकट है। काहे?

है नेरे सूझत नहीं, ल्यानत ऐसो जिन्द।
तुलसी या संसार को, भयो मोतिया बिन्द ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

अपने को ही मोतियाबिन्द है। मोतियाबिन्द वह रोग है, जो आँख की पुतली पर पत्थर का सा परदा हो जाता है। आजकल लोग उसको डॉक्टर से निकलवा देते हैं, जिसको मोतियाबिन्द होता है, उसको सब कुछ रहते हुए कुछ दीखता नहीं। उसी तरह ईश्वर पाने के लिए जो अपेक्षित है, उस पर परदा है। वह नेत्र कैसा है? वह नेत्र का नेत्र है और देखने के दृश्य का देखनेवाला है। वही है—अक्षर। जिसमें परिवर्तन नहीं होता, जो क्षीण होते-होते क्षीण हो जाता है, सो वह नहीं है। वह अक्षर-पुरुष है। वही अक्षर-पुरुष अपने आपको समझो। यह चेतन-रूप है। इसी के ऊपर शरीर और इन्द्रियों का आवरण हो गया है। यही मोतियाबिन्द है। इस आवरण के कारण नहीं देख सकते हो, नहीं दर्शन कर पाते हो, ईश्वर का। जैसे मोतियाबिन्द के कारण बाहर का कुछ नहीं देख पाते। यही अक्षर-पुरुष अन्तःकरण का साथ कर जीवात्मा कहलाता है। इसी की संतों को भाषा में 'आदि-सुरत' कहते हैं।

आदि सुरत सत पुरुष तें आई। जीव सोहं बोलिये सो ताई ।।

—कबीर साहब

इस अक्षर पुरुष से भी जो परतत्त्व है, वही ईश्वर-परमात्मा है। वही सारे जगत के तत्त्वों के मूल में है और सबसे प्रथम का है। आप अपने शरीर में हैं। वही अक्षर-पुरुष है। उस अक्षर-पुरुष को उस प्रभु का दर्शन होना चाहिए। दर्शन करने की कोशिश को भक्ति हैं। भक्ति को ही सेवा कहते हैं। इस सेवा से ईश्वर को कोई लाभ नहीं। लेकिन अक्षर-पुरुष को बड़ा लाभ है। दर्शन होते ही—जैसे अभी आपको मालूम होता है कि शरीर और संसार कष्टमय है, सो कष्टमय नहीं मालूम होगा। तब आप शरीर और संसार में रहो वा नहीं रहो, दोनों में ब्रह्म-सुख का एक ही ज्ञान रहेगा। इसी के लिये भक्ति अपेक्षित है।

अभी जो श्रीसंतसेवीजी ने अपने प्रवचन में अन्तस्साधन की बात कही है, उसकी बड़ी आवश्यकता है। बाहर-बाहर वह भक्ति नहीं होती। अवश्य ही अभी जैसे सत्संग होता है, आरम्भ में मन लगाने के लिये यह बाहर का कुछ अवलम्ब है। लेकिन चाहिए कि अन्तर्वृत्ति हो। आपको बाहर की चीजों को पकड़ने की वृत्ति हो रही है। बाहरी चीजों का

ज्ञान-पहचान आप को है। लेकिन अन्तर्वृत्ति करके कैसा होता है, सो आपको मालूम नहीं है। अन्तर्वृत्ति करो, तब अन्तर्दृष्टि होगी। आपका श्वास अन्तर में रूककर रहे, तब अन्तर्वृत्ति होगी, ऐसी बात नहीं है। इसके लिए जिस तरह की अन्तर्वृत्ति होती है, वह ठीक-ठीक तभी जान सकते है, जब आप तीन अवस्थाओं में से अपने को हटाकर चौथी अवस्था में ले जायेंगे। उस अवस्था में ले जाने के लिए पहली बात समझो कि जागने के समय आँख में, स्वप्न के समय कण्ठ में, सुषुप्ति के समय शरीर-हृदय में जीव का वास होता है—योग-हृदय में नहीं। योग-हृदय में ले जाने के लिये साधन करना होता है। यह स्वाभाविक नहीं है। इसी यत्न को योगाभ्यास कहते हैं। यह आसान तरीके से भी होता है। और कठिन तरीके से भी। सन्तों ने सबसे कहा कि करो। और उस अन्तर्वृत्ति होने के साधन को दो भागों में बाँटा। स्थूल-भाग और सूक्ष्म-भाग। स्थूल-भाग में है—

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव ।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव ।।

—कबीर साहब

स्थूल-भाग यहाँ से आरम्भ किया जाता है। इससे लाभ यह होता है कि वृत्ति जो बहुत फैली हुई होती है, वह कुछ समेट में आ जाती है। लेकिन पूर्ण सिमटाव जिस तरह होता है, उसके करने से ही काम चलेगा। इसलिए उसका भी यत्न बताया है। स्थूल-भाग में जो साधन करते हैं, उनको सगुण-ही-सगुण मिलता है। जहाँ से सूक्ष्म आरम्भ होता है तो निर्गुण में जाने की डगर मिलती है। वहाँ तो 'मूल ध्यान गुरु रूप है' और यहाँ 'प्रथमहिं सुरत जमावै तिल पर।' यह है निर्गुण में जाने का साधन, सूक्ष्म में जाने का साधन। 'मूल ध्यान गुरु-रूप है' या 'गुरु की मूरति मन महिं धिआनु।' से इतना ही समझना चाहिये कि जो स्थूल-सगुण-रूप आप देख चुके हैं, उनको मन में बनाकर देखिये। इसी को गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'आम छाँह करि मानस पूजा।' मानस-पूजा भी इसको कहा है। मानस पूजा और मानस ध्यान एक ही बात है। इससे सूक्ष्म-मंडल में जाने की योग्यता होती है। और जिसको तिल पर स्थिरता होती है, उसका सूक्ष्म-मंडल खुल जाता है। स्वर्ग-नरक उसको मालूम होता है। गुरु महाराज ने लिखा है कि सहस्रदल-कमल में जो जाता है, वह वहाँ के देवताओं को भी देखता है। उनके विज्ञापन में छपता था कि 'कब्र में जाने और चिता में जलने के पहले मोक्ष प्राप्त करो।'

संतों ने निर्गुण में जाने का रास्ता बताया है। जो परमात्म-स्वरूप है, उसको पाने के लिए यत्न बताया है और कहा है कि तुम्हारा शरीर जो हाड़, चाम, मांस का है, सो इतना ही नहीं है। अन्दर के पहले भाग में अंधकार भरा है, दूसरे भाग में प्रकाश है और तीसरे भाग में ध्वनि-नाद व शब्द भरा है। विविधता इसमें भी और उन दोनों—अंधकार और प्रकाश में भी है। आखिरी में जो आदिनाद—आदि-शब्द मिलता है, वही परम-नाद है। जिसके लिये योगशिखोपनिषद् में 'अक्षरं परमोनादः शब्द ब्रह्मेति-कथ्यते' कहा है। उसी को संतों ने राम-नाम, सत्य-नाम आदि कहा है। 'सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा' दादू दयालजी ने कहा है। आदि-नाद जो है, वही निर्गुण है। उसके अतिरिक्त और जितने शब्द हैं, सभी सगुण-सगुण हैं। तीन शून्यों के पार में अपने को ले चलो, तो परमात्मा का दर्शन हो। तीन शून्यों को पार करने के लिये कहाँ जाओगे? अन्दर चलो। अन्दर पार करो तो बाहर भी पार हो जाओगे। अन्दर पार नहीं करो, तो बाहर पार नहीं होओगे। तीन शून्यों के परे जो है, उसको न तो निर्गुण कहते बनता है, न सगुण। अपने अन्दर में चलने का अन्त कर दो, तो फिर कहीं नहीं चलना

होगा। 'अविगत अन्त अन्त अन्तर पट' कहकर तीन शून्यों का इशारा किया है। अपने अन्दर अंधकार को पार करो, आश्चर्य नहीं है। संतों ने स्वयं किया है, तब उन्होंने इसकी युक्ति बताई है। उन्होंने कहा है कि मैंने किया है, मालूम हुआ है। तुम भी करो, तो मालूम होगा। तीनों शून्य खत्म हुए, काम खत्म हुआ। सारा संसार क्षर है और शरीर आपका क्षर है। यानी शरीर और संसार; दोनों क्षर है। इनसे परे अक्षर—चेतन-पुरुष है। इसके परे जो है, उसी को 'क्षेत्र क्षर अक्षर के पार में' कहा गया है। उसको क्या कहें, विचार में नहीं आता है। विचार वहाँ तक नहीं जाता है। साधना करके कोई प्रत्यक्ष में देख सकते हैं, सो होगा। लेकिन केवल सुनकर जो जान सकेंगे, सो पूर्ण जानना नहीं होगा। जैसे भूख लगती है तो भोजन करते है, तो भूख खत्म हो जाती है; उसी तरह यह बात है। ईश्वर का दर्शन इसलिए चाहिए कि आपको किसी तरह की भूख नहीं रह जाए। वह कारण नहीं बच जाय, जिससे आपको कष्ट हो। आप उस मूल-पुरुष को पाइयेगा, जिसको पाकर कभी वह छूटेगा नहीं। उसके छूटने का गुण आपमें नहीं होगा। यही ब्रह्म निर्वाण है। यही कारण है कि संतों ने भक्ति-मार्ग का उपदेश दिया है। यह भक्ति-मार्ग ऐसा नहीं कि केवल मोटी-मोटी बातों में रहो। अथवा मोटी-मोटी बातों को छोड़ दो, ऐसा भी नहीं। मोटी-मोटी भक्ति करके फिर सूक्ष्म-भक्ति भी करो। इसी को सुन्दर दासजी ने कहा है कि भक्त बिना कान के सुनता है और बिना आँख के देखता है—

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तरै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनन्द बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिये रहै।
मिलि परमातम सों आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

यह परा-भक्ति है, समझ-बूझकर साधन-भजन अच्छी तरह करना चाहिए। n

यह प्रवचन दिनांक ११. ०३. १९६९ ई० को भागलपुर जिलान्तर्गत अठगामा ग्राम में अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग के ६१वाँ वार्षिक अधिवेशन में प्रातःकालीन सत्संग के सुअवसर पर हुआ था।

३०२. सगुण दर्शन से अष्ट सिद्धि की प्राप्ति

प्यारे लोगो!

ईश्वर-भक्ति में बहुत-सी बातें हैं, जो आपके सामने कह दी गयी हैं। अब थोड़ी-सी बातें जो बाकी हैं, महत्त्वपूर्ण हैं, मैं कहता हूँ। आप शान्तिपूर्वक बैठे रहते हुए श्रवण करते जाइए और समझते जाइए। ईश्वर-भक्ति में दोनों ख्याल हैं। एक केवल सगुण भाव में रहते हुए भक्ति और दूसरा सगुण-निर्गुण दोनों भाव में रहते हुए भक्ति। दोनों तरह के भक्तों की यही उत्कट अभिलाषा रहती है कि भगवन्त वा परमात्म-दर्शन हो जाये। वे दर्शन के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते हैं। दर्शन से बढ़कर कोई पदार्थ नहीं जो वे चाहें। सगुण परमात्म-भक्ति में जो दर्शन होता है, वह इन्द्रियगम्य है। वह दर्शन मायामय है। परन्तु सगुण अथवा माया मण्डल के अन्दर उससे बहुत लाभ होता है। अष्ट सिद्धियाँ, नव निधियाँ उससे प्राप्त होती हैं। किन्तु ये ऐसे हैं कि इनको पाकर साधक को पूर्ण संतोष नहीं होता। इच्छा बिल्कुल चली नहीं जाती।

ये लोग यदि यहीं तक रह गए तो इहलोक में और परलोक में बहुत सुख पाते रहते हैं और कभी-न-कभी ये सब सुख छूट भी जाते हैं। लेकिन निर्गुण भक्ति में ऐसी बात नहीं है।

सगुण भक्ति को नहीं करते केवल निर्गुण की ही भक्ति करे, नहीं हो सकता है—नहीं हुआ है। सगुण भक्ति भाव के आगे निर्गुण भाव में चलनेवाले को मायामय दर्शन नहीं है। निर्गुण भाव में मायामय दर्शन से बढ़कर निर्गुण दर्शन होता है। वह इन्द्रियगम्य नहीं, आत्मगम्य है। भक्त जहाँ सगुण भक्ति करता है, वहाँ उसको इन्द्रियगम्य दर्शन होता है। उस दर्शन के लिए कहीं जाना पड़े, सो नहीं। लेकिन निर्गुण दर्शनवाले भक्त को जाना पड़ता है। अगर यह सन्देह हो कि वह निर्गुण परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण सर्वत्र हई है, फिर जाना कहाँ है? तो इसके उत्तर में संतों ने बताया है कि इसमें कोई शक नहीं कि निर्गुण स्वरूप सर्वव्यापक है, लेकिन वह पहचान में नहीं आता। इसलिए सर्वत्र दर्शन नहीं होता। वहाँ जाना होता है, जहाँ जाकर वह दर्शन हो—जहाँ निर्गुण पहचान में आवे। एक बार दर्शन हो जाने पर सर्वत्र दर्शन ही रहता है। कभी दर्शन होता है, कभी नहीं, ऐसा नहीं—

सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक विहीन नहिं तारा।
झिन झिन जंतर निसि दिन बाजै, जम जालिम पचिहारा।।

— दरिया साहब, बिहारी

जब वह मायामय से ऊपर उठकर समाधि में रहता है, तब जो दर्शन होता है, समाधि से उतरने पर भी वही दर्शन होता है। इसकी मिसाल नहीं। थोड़ा-सा कहता हूँ। जैसे आपने स्वादिष्ट भोजन किया है, वह याद है, वह बहुत याद रहता है। और स्वादों के साथ उसकी भी याद रहती है। यह तो नमूना है। लेकिन वह दर्शन ऐसा है कि माया और निर्माया दोनों में एक ही को जानता है। दो भेद रहते हुए भी वही दर्शन पाता है। श्रीराम वाल्मीकि के सामने उपस्थित थे, लेकिन वाल्मीकिजी कहते हैं—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

यह दर्शन भी और श्रीराम के सगुण रूप का भी दर्शन होता था। भक्त को पहले किसलिए जाना होता है? इसलिए कि मायामण्डल में उसको निर्गुण स्वरूप का दर्शन नहीं होता है। अपने को इन्द्रियगम्य प्रत्यक्ष ज्ञान में रखकर माया मण्डल के परे जो देखना चाहिए, वह माया में रहकर नहीं देख पाता है। अपने को इन्द्रियगम्य प्रत्यक्ष ज्ञान में रखना माया में रखना है। जब माया मण्डल को पार कर दर्शन पाता है, तब निर्गुण दर्शन है। जो सगुण ही सगुण चाहते हैं, उनको माया में ही रहना और मायिक ही दर्शन होता है।

राजा मनु ने बहुत तप किया। उनको सगुण रूप का दर्शन हुआ। लेकिन वे माया से नहीं छूटे। बल्कि उन सगुण भगवान की तरह पुत्र का वरदान उन्होंने उनसे माँगा। लालसा बन्द नहीं रहने के कारण उनको दूसरा जन्म लेना पड़ा और सांसारिक दुःख से छूट नहीं सके। और मायामण्डल में जो अज्ञानता होती है, वह अज्ञानता भी उन्हें रही और उनसे श्रवण-वध आदि अज्ञानता के कर्म हुए। यह कथा रामायण बताती है।

सगुण दर्शन में अष्टसिद्धि, नवनिधि, उत्तम-उत्तम मायिक सभी पदार्थ मिलते हैं। लेकिन लालसा नहीं छूटती है। और वह लालसा दुःख में ले जाती है। संतों ने कहा है कि निर्गुण का भी दर्शन करके देखो। उनके दर्शन करके लालसा छूटती है कि नहीं? इधर जाने पर लालसा का पता नहीं रहता। सूरदासजी ने कहा है—'अमित तोष उपजावै।'

अविगत गति कछु कहत न आवै।

ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै।।

इसके लिए भक्त को जाना पड़ता है। और अन्दर-अन्दर जाना पड़ता है। बाह्य धरातल पर वा आसमान में नहीं जाना पड़ता है। जिस पिण्ड में हो, उसको ब्रह्माण्ड से ऐसा संबंध है कि पिण्ड के जिस तल पर रहो, ब्रह्माण्ड के उसी तल पर रहोगे। पिण्ड के सब तल छूट जाएँ, तो ब्रह्माण्ड के भी सभी तलों से छूट जाएँगे। ब्रह्माण्ड के सब तल छूट गए तो माया मण्डल को पार कर गए। जो पिण्ड के जिस मण्डल को पार करते हैं, वे ब्रह्माण्ड के भी उस मण्डल को पार कर जाते हैं। इस जागने की अवस्था में आप पिण्ड के स्थूल तल पर ही रहते हो तो ब्रह्माण्ड के भी स्थूल तल ही पर रहते हो। स्वप्न में अपने शरीर के स्थूल तल को थोड़ा भी छोड़ देते हो, तो बाहर संसार को भी छोड़ देते हो। यह थोड़ा-सा नमूना है। इसी तरह पिण्ड के सभी तल छोड़ो तो ब्रह्माण्ड के सभी तल छूट जायेंगे। निर्गुण तल कभी छूटता नहीं, टूटता नहीं, नाश होता नहीं, वहाँ भक्त रहते हैं। आपने तुलसी साहब के एक छन्द के पाठ में सुना—

हिय नैन सैन सुचैन सुन्दरि, साजि स्रुति पिउ पै चली।।

प्रभु के पास सुरत-सुन्दरी चली। जाने की बात यहाँ है, बुलाने की नहीं। संत कबीर साहब कहते हैं—

भक्ति का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौलीना रे।।
साधुन के सत्संग में रहे, निसिदिन भीना रे।
सब्द में सुर्त ऐसे बसे, जैसे जल मीना रे।।

इस सूक्ष्म मार्ग पर चलना है—

ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहिं ठहराय।

यहाँ भी चलने की ही बात है। इस तरह संतों का जो वर्णन है, तो उसमें हम यही पाते हैं कि भक्त जाते हैं। सशरीर नहीं जाते, शरीर को छोड़ते जाते हैं। शरीर को छोड़ते-छोड़ते ऐसा होता है कि शरीर रहता नहीं। वह मायामय खोल है। इस खोल के उतर जाने पर वह दशा होती है, जो कभी छूटती नहीं। चेतन-स्वरूप रह जाता है। 'चिदानन्दमय देह तुम्हारी।' यह केवल भगवान के ही हैं, सो नहीं, भक्त को भी है। भगवान चिदानन्दमय होते हैं, तो भक्त भी अपने को चिदानन्दमय रूप में लाता है। जो अपने को चिदानन्दमय रूप में नहीं लाए हैं, उनकी भक्ति पूरी नहीं हुई है। शरीर और उस पर का जेवर कुछ नहीं। अपना स्वरूप ऐसा है कि इसकी सुन्दरता से बढ़कर कोई सुन्दरता नहीं। शरीर नंगा हो जाए तो कितना भी सुन्दर शरीर हो, तो वह अच्छा नहीं लगता। लेकिन चेतन आत्मा पर से शरीर-रूप खोल—आवरण उतर जाय, नंगा हो जाए, तो इतनी सुन्दरता होती है, जितनी सुन्दरता और किसी में नहीं। 'सुन्दर दीसत सुन्दर माहिं सु सुन्दरता कहि कौन उहाँ है।'—संत सुन्दरदासजी

जैसे पानी के अवलम्ब से पानी को पारकर सूखी जमीन पर जाता है।, उसी तरह माया का अवलम्ब लेकर माया को पार कर निर्माया तक जाते हैं। पहले स्थूल नाम और स्थूल रूप का अवलम्ब मिलता है। फिर सूक्ष्म अवलम्ब मिलता है। उसके ग्रहण से आगे बढ़ता है। सूक्ष्म मण्डल में सूक्ष्म सगुण रूप का दर्शन पाता है। वहाँ विविध प्रकार की ज्योतियाँ मिलती हैं। फिर वहाँ भी अवलम्ब पाता है, वही शब्द है। तभी नादानुसन्धान होता है या सुरत-शब्द-योग होता है। नाद का अवलम्ब ईश्वर से मिलाता है। वह नाद ईश्वर से निकला है, इसलिए उस आदिनाद से खिंचकर

ईश्वर तक पहुँचता है। वहाँ चेतनमय शरीर ही केवल रहता है। इस तरह ज्योति और नाद का अवलम्ब मिलता है। ये नाद और ज्योति ईश्वर के रूप ही हैं। जैसे प्रतिमा को भगवान का रूप मानते हैं। उसी तरह भक्त ज्योति और नाद का बहुत आदर करते हैं। इसलिए कि इसके बिना भक्त आगे नहीं बढ़ सकता। जिस प्रकार बाह्य प्रतिमा को देखकर उसका रूप मन में गठन कर ध्यान करते हैं, उस तरह ज्योति और अंतर्नाद को बाहर में देख व सुनकर भीतर में गठन व ध्यान नहीं किया जाता है। वे गुरु-गम्य युक्ति की साधना से स्वतः ही अन्दर में विदित होते हैं।

जो कोई निरगुन दरसन पावै ।।टेक।।
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै।।
बिन जिभ्या नामहिं को सुमिरै, अमिरस अजर चुवावै।
अजपा लागि रहै सूरति पर, नैनन पलक डुलावै।।
गगन मंदिल में फूल फुलाना, उहाँ भँवर रस पावै।
इंगला पिंगला सुखमनि सोधै, प्रेम जोति लौ लावै।।
सुन्न महल में पुरुष विराजै, जहाँ अमर घर छावै।
कहै कबीर सतगुरु बिनु चीन्हे, कैसे वह घर पावै।।

मायिक आवरणों से छूटने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। संत कबीर साहब कहते हैं—

यही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना शब्द नहिं उबरै, केता करै उपाय।।

चुम्बक सत्त शब्द है भाई, चुम्बक शब्द लोक ले जाई।
लेइ निकारि होखै नहिं पीरा, सत्त शब्द जो बसै शरीरा।।
—दरिया साहब, बिहारी

सभी संतलोग यही कहते हैं। इसके अलावा और कोई मार्ग है, मुझे विदित नहीं। और कोई मार्ग हई नहीं है। किसी को विदित नहीं है। यदि कोई कहते हैं तो वे प्रमाणित नहीं कर सकते।

परमात्मा से पहले क्या हुआ? शब्द हुआ। क्यों? इसलिए कि बिना शब्द के कुछ बनता नहीं। शब्द कम्पमय होता है और कम्प शब्दमय होता है। बुद्धि के सामने, समझ के सामने इसके अतिरिक्त और किसी उत्पत्तिकारी तत्त्व को कोई साबित नहीं कर सकता। इसलिए जो ईश्वर की ओर चलते हैं, उनको शब्द का सहारा मिलता है। वे शब्द से खिंचते हुए ईश्वर तक पहुँच जाते हैं। जो जाकर ईश्वर-दर्शन करते हैं, उनको अवलम्ब भी मिलता है और ईश्वर भी मिलते हैं। उनके जन्म-मरण के चक्र का कारण ही मिट जाता है। इसी का उपदेश संत महात्मा दे गए हैं। यहीं तक भक्ति की सीमा है। अब कुछ कहने को बाकी नहीं है। भक्ति के अन्दर यह भी कहना है कि संसार में भी सुखी रहो और परलोक में भी। इसलिए चोरी नहीं करो, झूठ मत बोलो, नशा मत लो, व्यभिचार मत करो और हिंसा नहीं करो अर्थात् सदाचार का पालन करो। हिंसा नहीं करो के सिलसिले में मत्स्य-मांस का भोजन नहीं करो। जो मत्स्य-मांस का भोजन करते हैं, उनके अन्दर हिंसा वृत्ति रहती है। भले ही वे नहीं मारें। लेकिन जबतक कोई दूसरा मारें नहीं, तो वे खायेंगे कैसे? इसलिए मत्स्य-मांस खानेवाले के अन्दर हिंसावृत्ति रहती है। महाराज मनु ने अष्टघातक का वर्णन किया है—१. मारने के लिए आज्ञा देनेवाला, २. शस्त्र से मांस काटनेवाला, ३. मारनेवाला, ४. बेचनेवाला, ५. खरीदनेवाला, ६. पकानेवाला, ७. परोसनेवाला, ८. खानेवाला।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः।।

इन आठो घातकों से भी बचो। खाने के लिए बहुत चीजें हैं। लोग कहते हैं कि अण्डा में हिंसा नहीं है। लेकिन हिसा नहीं होने पर भी अपवित्र है। और उसकी तासीर देखो कैसी है? शिवानन्द स्वामीजी महाराज कहते थे कि तुम एक महीना मत्स्य-मांस

नहीं खाकर डायरी लिखो। और देखो कि तुम्हारा मन कैसा-कैसा रहता है? और एक महीना खाकर डायरी लिखो। फिर दोनों को मिलाकर देखो। जितना पवित्र मन नहीं खाने के दिन में रहेगा, उतनी पवित्रता खाने के दिन में नहीं रहेगी। फिर तो तुम अपने ही छोड़ दोगे। किसी भी नशीली चीज की आदत नहीं रखो।

भाँग तमाखू छूतरा, अफयूँ और शराब।
कह कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार।।

इसके सेवन से तुम्हारा पैसा खर्च होता है। फजूल आदत के वश होते हो। इसमें नुकसान भी होता है। एक हमारे साथी थे, वे पीते भी थे और छोड़ते भी थे। लेकिन सदा के लिए नहीं छोड़ सकते थे। मैंने उनसे कहा कि इससे नुकसान होता है, छोड़ दीजिए। तो उन्होंने कहा—क्या हानि है? मैंने कहा—भजन करते समय भी उसकी याद आएगी तो मन भजन में नहीं लगेगा।

संसार में झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; ये पाँचो पाप नहीं हों तो दुष्ट-कर्म बन्द हो जाए। फिर पहरेदार की जरूरत नहीं पड़ेगी। सरकार का बहुत खर्च बच जाएगा। और दुष्ट कर्मों के बन्द हो जाने से उस देश की तारीफ दूसरे देशों में बहुत होगी। सरकार को भी लाभ है, देश को भी लाभ है और अपने लिए भी अच्छा है। अपनी बुरी आदत को छोड़ो। जैसे-जैसे भजन में बढ़ोगे, पाप करने की वृत्ति छूटेगी। पाप कर्मों को छोड़कर भजन करोगे तो भजन में बढ़ोगे। दोनों में लाभ है। भजन में लाभ होगा। संतों की वाणी को मानकर आपलोगों को चलना चाहिए और पापों को छोड़कर भजन करना चाहिए। इससे और कोई विशेष बात नहीं। कहने के लिए बात पर बात और हैं। लेकिन जितनी बातों से अपना काम चलेगा, वह कह दिया गया। सब सुखी-सुखी रहें। दुःखों से छूटते रहें। ज्ञान में वृद्धिशील रहें। एक दूसरों के साथ कुभाव नहीं रखें। सब की एक ही आत्मा है, यह भाव रखें तो अंत में वे एक ही आत्मा को देखेंगे। n

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत ६१वाँ अखिलभारतीय संतमत सत्संग में, ग्राम—अठगामा में दिनांक ११. ३. १९६९ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३०३. मैत्रेयी और मुनि याज्ञवल्क्य का वैराग्य

प्यारे लोगो !

कोई काम बिना सोचे-विचारे नहीं करना चाहिये। सोच-समझकर ही काम करना अच्छा होता है। मनुष्य जो सोचता है, उसमें यह ख्याल अच्छा रहता है कि जिस काम के करने से अपना लाभ हो—भला हो, उसको करो और जिस काम के करने से अपना लाभ—अपनी भलाई नहीं हो; उसको नहीं करो। यह सिद्धान्त है, जो सबके लिये एक समान है। किसी के लिये कम, किसी के लिये विशेष नहीं। हमलोग जो सत्संग करते हैं, इसमें लाभ है या नहीं, इससे अपना भला होगा या नहीं, यह समझो। सत्संग से अपना लाभ होगा, भला होगा। क्या लाभ होगा? क्या भला होगा? तो, लाभ और भला को समझने के लिये पहले अपने शरीर को समझो। शरीर सम्बन्धी जितनी वस्तुएँ हैं, हम उनके साथ सुखी रहने की कोशिश करते हैं। उससे क्षणिक-सुख मिलता है, किन्तु तृप्ति नहीं आती है। यह सबके लिये है। सांसारिक वस्तुओं से पूर्ण सुख नहीं मिलता, पूरी तृप्ति नहीं होती। तो यह अपने लिये भला नहीं हुआ। असल

में संसार की वस्तु सुखदायक नहीं है।

याज्ञवल्क्य मुनि बड़े ज्ञानी थे, बड़े योगी थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। उनको वस्तुएँ भी बहुत थीं। उनके मन में वैराग्य हुआ। सोचा कि संसार की वस्तुओं से तृप्ति नहीं होती। इससे मन को अलग रखना अच्छा है, इसमें अनुरागी होना ठीक नहीं। हरि-भजन करना ठीक है। ज्ञान लेना, ज्ञान देना, सत्संग करना, सत्संग कराना ही ठीक है। ऐसा निश्चय करके दोनों पत्नियों यानी कात्यायनी और मैत्रेयी से कहा कि आपलोग वस्तुओं को आपस में बराबर-बराबर बाँट लें। मेरे घर से जाने के बाद घर में झगड़ा हो, ठीक नहीं। कात्यायनी ने मंजूर किया। मैत्रेयी ने पूछा—'पतिदेव ! इन वस्तुओं को छोड़ देने से आपको बेसी क्या मिलेगा? यदि इनको छोड़ने पर बेसी कुछ मिलेगा, तो मैं भी वही क्यूँ न लूँ? जैसे आप छोड़ते हैं, वैसे मैं भी छोड़ती हूँ।' आखिर में यही बात हुई, बड़ी पत्नी की सब वस्तुएँ हुईं। मैत्रेयी और मुनि याज्ञवल्क्य; दोनों ने उन वस्तुओं को छोड़ दिया।

बेसी वस्तु क्या है? याज्ञवल्क्य ने कहा—ज्ञान है। ज्ञान जिसको बताता है, वह साधन-विशेष द्वारा प्राप्त होने योग्य है। और उस साधन से जहाँ पहुँचा जाता है, वह और भी बहुत विशेष है। मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य; दोनों का सारा जीवन सत्संग और साधन-भजन में व्यतीत हुआ। दोनों को उसी में आनन्द मालूम होने लगा। सुख मिलने लगा।

अपने शरीर को अच्छा रखने के लिये संयम रखने पर, मेहनत करने पर ठीक रहता है। और कभी-कभी ऐसा होता है कि शरीर अच्छा नहीं रहता है। और एक अवस्था ऐसी है, जो कि बेरोक-टोक आती है।

देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहुँ नाहिं बोलाई ।।
ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रगट देखु तनु माहीं ।।
सो प्रगट तनु जरजर जराबस, ब्याधि, सूल सतावई ।
सिर कम्प इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत, बचन काहु न भावई ।।
गृहपालहूतें अति निरादर, खान-पान न पावई ।
ऐसि दसा न बिराग तहँ, तृष्णा-तरंग बढ़ावई ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

वह भी समय सबको आनेवाला ही होता है। 'माल मुलुक को कौन चलावे संग न जात शरीर'—कबीर साहब ने कहा है। कितना भी सुन्दर और बलवान शरीर हो, छूटेगा जरूर। शरीर छूटने पर अपने-बेगाने सभी छूटेंगे। यह सबको होगा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि शरीर तो है और वस्तुएँ नाश हो गयीं। कभी-कभी किसी-किसी को यह दृश्य भी देखना पड़ता है कि सब सम्बन्धी संग छोड़ देते हैं।

संसार की यह हालत देखकर यही सोचना अच्छा है कि इससे बढ़िया क्या है? संतों ने कहा है— सबसे बढ़िया साधन-भजन और सत्संग है। इसके द्वारा क्या मिलता है? ईश्वर का दर्शन, ईश्वर से मेल और परम गति; इसका यह फल है। इसमें सबको लगकर रहना चाहिए।

याज्ञवल्क्यजी को जो वैराग्य हुआ, ऐसा भी लोग करते हैं। लेकिन वस्तुओं के साथ रहकर, सम्बन्धियों के साथ रहकर भी यह किया जाता है। इस नमूने के बड़े-बड़े लोग अपने देश में हुए हैं। यह अच्छा है। बिल्कुल त्याग कठिन है। बाहर में सबसे संग और मन में सबसे असंग रहना, ईश्वर-भजन और सत्संग करना, यह सबके लिये अच्छा है—आराम है। संतों ने यह रास्ता बताया—

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि वन नहिं जावै ।
बन के गये कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ।।
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ।।
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ।

सुरत निरत सों मेला करिकै, अनहद नाद बजावै ।।
घर में वसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै ।
कहै कबीर सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै ।।
—सन्त कबीर साहब

सहज शून्य का अर्थ है—स्वाभाविक शून्य। ऐसा नहीं कि मन से कुछ बनावे। और सहज समाधि कहते हैं—आसान ध्यान लगावे। सहज शून्य में समाने के लिए वे जानते हैं, जो दृष्टियोग का भेद जानते हैं। वे आसानी से ध्यान लगा सकते हैं। यह ध्यान करते-करते मनोलय होता है। मनोलय की अवस्था को उन्मुनि कहते हैं। मन में जो ख्याल आता था, सो अब नहीं आता है, तो गोया मन नहीं रहा—मन उन्मुन हो गया, मनोलय हो गया। जो मनोलय की अवस्था में रहेगा, वो ईश्वर को पहचान लेगा। परम-तत्त्व सार-शब्द है।

घर में रहे, घर में खाने-पीने, पहनने की वस्तु है और ब्रह्म-तत्त्व—जो कि लेना है, वह भी घर में ही लेना है। जैसे-का-तैसे घर में ही रहो। इसका नमूना कबीर साहब स्वयं थे। वे घर छोड़े नहीं थे। बाबा नानक भी ऐसे थे। रविदासजी, श्वपच भगत, जगजीवन साहब, शिवनारायण स्वामी, दादू दयाल जी, ये सभी इसी तरह के थे। ये सब इतने ऊँचे थे कि वे संसार को चेताने आये थे या थोड़ी कमी थी तो पूरा करने भी आये थे।

जो थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते हैं, तो इसका लसंग लग जाता है। जो कोई आचरण के अच्छे होते हैं, वे भूखे रहने पर भी सन्तुष्ट रहते हैं। वे समझते हैं कि मैंने चोरी तो नहीं की, दुष्ट-कर्म तो नहीं किया। ऐसा समझकर उनका मन सन्तुष्ट रहता है। जो चोरी करके, दुष्ट कर्म करके उपार्जन करते हैं, वे दुःखी रहते हैं। बड़े-बड़े लुटेरे बहुत लूटकर धन इकट्ठा किये, लेकिन मरते समय रोते थे। जबतक जीते रहो, संयम से रहो। साधन-भजन करो, सत्संग करो, घर में रहो। सन्तों ने जो पंच पापों का निषेध किया है, उनसे बचो तो भजन में ही बढ़ोगे और संसार में भी कल्याण से रहोगे। फिर जैसे सूरदास जी, गोस्वामी तुलसीदासजी, पलटू साहबजी आदि घर-वार छोड़ दिये थे, ऐसे भी लोग हुए। लेकिन जिससे अधिक लोगों को लाभ हो, वही अच्छा है। अपने को दुष्टकर्मों से बचाइये, इसके लिये सत्संग से प्रेरणा लीजिए। जिनको मालूम है साधन-भजन कीजिये। जिनको नहीं मालूम है, वे जानकर कीजिये। साधन-भजन स्त्रियाँ कर सकती हैं, पुरुष कर सकते हैं। धनी कर सकते हैं, निर्धन कर सकते हैं। पढ़े कर सकते हैं, अनपढ़े कर सकते हैं। इस तरह आप अच्छे बनेंगे। आपके साथी अच्छे बनेंगे, आपका समाज अच्छा बनेगा और आपका देश अच्छा बनेगा। n

यह प्रवचन दिनांक ०८.०४.१९६९ ई० को मुंगेर मण्डलान्तर्गत ग्राम बरईचक पाटम स्थित श्री सन्तमत सत्संग मन्दिर में हुआ था, जिसका आयोजन साधु श्रीभुजंगी दासजी ने तथा वहाँ के प्रेमी सत्संगी सज्जनों ने किया था।

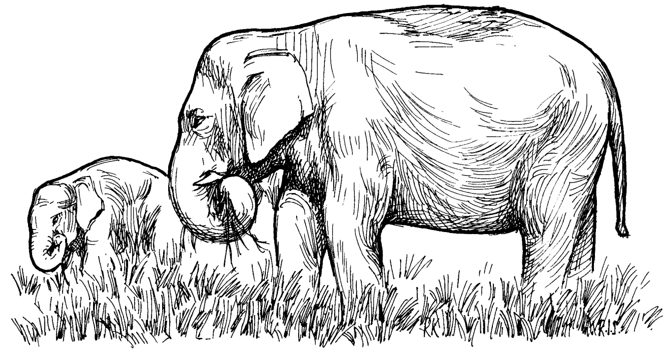

३०४. जीवात्मा को कर्मानुसार स्थान मिलता है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

मैं सोचता था कि ऐसे मौके पर आपलोगों को क्या सुनाया जाय। तो याद आ गया कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी कृत रामायण में लिखा है कि एक समय श्रीराम को अपनी राजत्व-काल में एक बार हृदय में ऐसा हुआ कि सब लोगों को बुलाकर उपदेश दिया जाय। उस उपदेश को गोस्वामी तुलसी-दासजी ने अपनी रामायण में लिखा। वह बड़ा सरल है। सबके समझने लायक है और संत विचार के पूर्ण अनुकूल है। उन्होंने यह देखा होगा कि संसार में लोग सुखी होना चाहते हैं। मेरा कर्त्तव्य है कि वह सुख प्रजाओं को पहुँचाऊँ। प्रजा को सुखी रखा जाय। प्रजा दुःखी है, ऐसी खबर नहीं थी। इसलिये संसार के सुख के लिये उनको कुछ कहना नहीं था। क्योंकि राजा से जैसा सुख मिलना चाहिये, सो सबको मिलता ही था। अब क्या बाकी रहा।

जीवन का अंत सब युग में होता है। सत्ययुग में जीवन का अंत, त्रेता में जीवन का अंत, द्वापर में जीवन का अंत और कलियुग में जीवन का अंत। यह तो प्रत्यक्ष देखते हैं। शरीर छोड़कर जीवात्मा चली जाती है, कहाँ गयी, किसी को पता नहीं। लेकिन जीवात्मा जानती है कि मैं यहाँ आयी हूँ। जिसको कुछ भी ज्ञान है, वह कहेगा कि शरीर के जीवन का अंत होता है। जीव तो अजर, अमर, अविनाशी है। जीव के जीवन का अंत नहीं होता है, वह रहता ही है। शरीर छोड़कर जीवात्मा कहीं चली गयी, लोग नहीं देखते हैं। लेकिन जो जीवात्मा गयी है, उसको मालूम है कि मैं वहाँ से यहाँ आयी हूँ। जैसा कर्म किया था, वैसे स्थान में आ गयी हूँ। शरीर-जीवन के बाद चेतन-आत्मा— जीवात्मा का जीवन रहता है। तो क्या केवल जीवात्मा जाती है वा जीवात्मा रहती है? नहीं, नही! केवल स्थूल शरीर छूटता है। इसके अन्दर सूक्ष्म शरीर है। उसके अन्दर कारण शरीर है। उसके भी अन्दर महाकारण शरीर है। ये चारों जड़ शरीर हैं। यह स्थूल शरीर जब सो जाता है, तो इसको कुछ ज्ञान नहीं रहता है। इसमें ज्ञानमयी-पदार्थ चेतन आत्मा है। अज्ञानमय चार जड़-शरीर है। स्थूल-शरीर छूटता है, बाकी तीन जड़-शरीर रहते हैं। इन तीनों जड़-शरीरों के साथ जीवात्मा को कर्मानुसार स्थान मिलता है। शरीर के जीवन के साथ तो सुखी रहना चाहते हो और शरीर के जीवन के बाद का जो जीवन है, उसमें सुख चाहते हो कि दुःख? सभी कोई सुख चाहते हैं। लेकिन लाचारी है। सुख-दुःख दिन-रात की तरह आते-जाते ही रहते हैं। तीन शरीरों के साथ जहाँ रहना होता है; वह है दुःख-सुख भोगने का परलोक। अर्थात् वह स्वर्ग है। ब्रह्मा का धाम, इन्द्र का धाम, इस तरह, तरह-तरह के धाम स्वर्गलोक में है। गुरु महाराज ने कहा है कि अंधकार को पार करके पहले स्थान के स्थानीय-दर्शन करके जो आगे बढ़ता है, उसको ज्योतिर्मय-स्थान मिलता है। उसको सहस्र-दल-कमल कहते हैं। लेकिन वहाँ सूर्य की ज्योति नहीं है। चन्द्र और तारे की ज्योति है। इसी के अन्दर सातो स्वर्ग है। जो भजन करते हैं, वे बड़े-बड़े देवताओं को देख सकते हैं और अनेक लोकों को देख सकते हैं। शरीर छूटना, फिर शरीर में आना, इस तरह आवागमन के चक्र में रहना होता है। कभी सुख, कभी दुःख मिलता रहता है। सुख मिलता है, लेकिन और मिले, और मिले होता

ही रहता है। और कितना सुख, इसका अन्दाजा नहीं। जितना मिले, उससे और विशेष चाहिये। तृष्णा और लोभ के मारे लोग यहाँ दु:खी और वहाँ भी दु:खी होते हैं। इसलिये श्रीराम ने कहा—

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुख दाई ।।

विषय कहते हैं—पदार्थ को। ये कितने हैं? पाँच। आँख से रूप देखते हैं। कान से शब्द सुनते हैं। जिभ्या से रसास्वादन करते हैं। त्वचा से स्पर्श का ज्ञान करते हैं और नासिका से गंध ग्रहण करते हैं। इन पाँच से बेसी न यहाँ है, न स्वर्ग में है। पाँच विषयों से अधिक स्वर्ग में भी नहीं है। बड़े-बड़े देव, ईश्वर-कोटि के देव के यहाँ भी ये ही पाँच विषय हैं। वहाँ भी काम, क्रोधादिक विकार होते रहते हैं। न काम मिटता है, न क्रोध की लहर मिटती है। अहंकार बढ़ता ही जाता है। लोभ का थैला सब दिन खाली ही रहता है।

एक राजा था। वह धन का बड़ा लोभी था। उसने सोचा, स्थल पर के सभी जन तो कर मुझे देते ही हैं, लेकिन समुद्र जो स्थल से अधिक जगह छेके हुए हैं, वह कुछ कर नहीं देता। यह सोचकर उसने ससैन्य समुद्र पर चढ़ाई कर दी और तोपों के द्वारा गोला-बारी की वर्षा शुरू कर दी। समुद्र मनुष्य के रूप में राजा के सामने खड़ा हो गया और पूछा—'राजन ! तुम गोला-बारी की वर्षा कर जल-जन्तुओं का संहार क्यों कर रहें हो?' राजा ने पूछा—'तुम कौन हो?' उसने कहा—मैं समुद्र हूँ।' राजा ने कहा—'स्थल से विशेष भाग जल का है। स्थल से मुझे कर मिलता है, किन्तु जल से मुझे कर नहीं मिलता है। इसलिये जल से कर वसूल करने के लिये मैंने तुम पर चढ़ाई की।' समुद्र ने एक स्थल बता दिया और कहा—'यहाँ से तुम जितना धन ले जाना चाहो, ले जाओ।' वहाँ से धन ढोते-ढोते राजा के कितने जानवर मर गये। धन से कितने मकान भर गये। पुनः नये-नये मकान बनते और धन से भरते गये। किन्तु समुद्र ने धन का जो स्थान बता दिया था, उस स्थान के धन का अन्त ही नहीं होता था। राजा ने समुद्र पर पुनः गोला-बारी शुरू की। समुद्र ने मनुष्य-रूप में आकर पुनः पूछा—'राजन्! अब क्यों मेरी प्रजाओं का संहार कर रहे हो?' राजा ने कहा—'तुमने जो धन का स्थान बता दिया था, उससे मैं बहुत धन ले गया, लेकिन तुम्हारे धन का अन्त ही नहीं होता है। अब तुम ऐसा बर्तन दो, जिसमें तुम्हारे सभी धन अँट सके।' समुद्र ने मृत मनुष्य की एक खोपड़ी दी और कहा—'इसमें ही धन रखते जाओ।' राजा धन रखते-रखते थक गया, किन्तु खोपड़ी भरती नहीं। पुनः उन्होंने समुद्र पर गोला-बारी शुरू की। पुनः समुद्र मनुष्य-रूप में प्रकट हुआ और राजा से गोलाबारी करने का कारण पूछा। राजा ने कहा कि 'न तो यह खोपड़ी भरती है और न तुम्हारे धन का अन्त होता है।' अब क्या करूँ? बता।' समुद्र ने कहा—'राजन्! तुम पागल हो गये हो। यह मनुष्य की खोपड़ी है। कितना भी धन हो, यह भर नहीं सकती। इसके ऊपर खाक डाल, तब यह भरेगी।' राजा ने वैसा ही किया और खोपड़ी भर गई। तात्पर्य है कि दिमाग में मिट्टी डालने से लोभ खत्म होता है। इन्द्र भी भोग से सन्तुष्ट नहीं और ब्रह्मा भी हैरान हुए हैं। गो० तुलसीदासजी ने कहा है—

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ।।
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा । केहिकर हृदय क्रोध नहिं दाहा ।।
कीट मनोरथ दारु शरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ।।

श्रीराम ने कहा कि क्या नर-लोक, क्या स्वर्ग-लोक, सब में विषय है, इनकी इच्छा नहीं करो। ऐसा करो कि कोई माँग नहीं हो। पूरी सन्तुष्टि हो जाए, यही है मोक्ष। मोक्ष-सुख पाने के लिये ही मनुष्य-शरीर है। संत लोग यही कहते हैं

कि स्वर्ग मोक्ष का धाम नहीं है। परमात्म-स्वरूप का दर्शन करो, यही मोक्ष है। दर्शन होने पर ईश्वर स्वरूप ही हो जाओगे। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है— 'जानत तुम्हहिं तुम्हइं होइ जाई।'

इसके लिये साधन-भजन करो। कहीं जाने की जरूरत नहीं है। संत कबीर साहब ने कहा है—

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि वन नहिं जावै ।
बन के गये कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ।।
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ।।
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ।
सुरत निरत सों मेला करिकै, अनहद नाद बजावै ।।
घर में वसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै ।
कहै कबीर सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै ।।

जरूरत है—जो कि श्रीराम ने कहा और गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा—

करन धार सद्गुरु दृढ़ नावा । दुरलभ साज सुलभ करि पावा ।।

तुम्हारा मनुष्य-शरीर भवसागर पार होने के लिये मजबूत नाव है और ईश्वर की कृपा अनुकूल पवन है। नाव हो, अनुकूल पवन हो और मल्लाह नहीं हो तो नाव की क्या हालत हो? इसलिए मल्लाह भी चाहिए। मल्लाह कौन है? सद्गुरु। सद्ज्ञान बतानेवाले, सद्युक्ति देनेवाले और साधन में प्रेरणा करनेवाले सद्गुरु होते हैं।

मुक्ती मारग जानते, साधन करते नित्त ।।
साधन करते नित्त, सत्त चित् जग में रहते ।
दिन दिन अधिक विराग, प्रेम सत्संग सों करते ।।
दृढ़ ज्ञान समुझाय, बोध दे कुबुधि को हरते ।
संशय दूर बहाय, संत मत स्थिर करते ।।
'मेँहीँ' ये गुण धर जोई, गुरु सोई सत चित्त ।
मुक्ती मारग जानते, साधन करते नित्त ।।

सद्ज्ञान जानते हों। अपने को उसमें रखते हों और अन्यों को चलने के लिये कहते हैं, वे सद्गुरु हैं। किसी को ख्याल नहीं करना चाहिए कि ईश्वर की कृपा हम पर नहीं है। बिना उनकी कृपा के हम एक श्वास नहीं ले सकते। ईश्वर की कृपा हई है। खोजने से सभी समय में संत सद्गुरु भी मिलते हैं। घर-वार छोड़ने की जरूरत नहीं है। घर में रहो, ईश्वर-भजन करो। असल-सुख संसार-सुख नहीं है, मोक्ष-सुख है। सद्गुरु चाहिए, सद्युक्ति चाहिये और सदाचार का पालन चाहिए। जो सदाचार का पालन नहीं करेगा, उसको ईश्वर-भजन में बल नहीं मिलेगा। जिसको भजन में मन लगेगा, वह सदाचार में दृढ़ होगा। सदाचार कहते हैं—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों के नहीं करने को। हिंसा के सिलसिले में मत्स्य-मांस नहीं खाओ। नशा नहीं लो। बीड़ी, तम्बाकू सभी नशा है। तम्बाकू साँप नहीं सह सकता है, इतना विष है। जो आदमी तम्बाकू खाता है, वह तो विष खाता है, सो नहीं खाओ। उपदेश करनेवाला यह नहीं कहता है कि मत्स्य-मांस, नशा नहीं खाओ, नहीं पीओ और इससे जो पैसे बचे, सो हमको दो या आधा भी दो। अरे! जो पैसा बचता है, उसका फल और दूध तुम्हीं खाओ। हमारे गुरु महाराज बाबा देवी साहब कहा करते थे— सबसे ऊपर में आध्यात्मिकता लिखो, उसके बाद सदाचारिता। उसके बाद सामाजिक नीति और उसके बाद राजनीति। जहाँ की आध्यात्मिकता उत्तम होगी, वहाँ की सदाचारिता अच्छी होगी। जहाँ की सदाचारिता अच्छी होगी, वहाँ की सामाजिक नीति अच्छी होगी। जहाँ की सामाजिक नीति अच्छी होगी, वहाँ की राजनीति बुरी हो नहीं सकती। इसलिये देश में आध्यात्मिकता का अधिक प्रचार हो, ऐसा करना चाहिये। इससे देश को बहुत लाभ होगा। n

यह प्रवचन दिनांक १५.०८.१९६९ ई० को बिहार राज्यान्तर्गत भागलपुर शहर के मोहद्दीनगर में हुआ था।

३०५. लोग दुःख को सह लेते हैं, लेकिन सुख को नहीं

प्यारे लोगो !

जन्म होता है, मृत्यु होती है; दोनों के बीच का जीवन होता है। इस बीच के जीवन में सम्पदा होती है, विपत्ति भी होती है। और यह सम्पत्ति और विपत्ति दिन रात की तरह आती-जाती रहती है। न तो सम्पत्ति बराबर ठहरती है। न विपत्ति ही। सम्पत्ति का समय कुछ प्रिय मालूम होता है; क्योंकि उसमें ऐहिक सुख है। लेकिन विपत्ति का समय प्रिय नहीं मालूम होता। सूरदासजी ने कहा—इसका विश्वास नहीं करो। जैसे वृक्ष में फूल होता है, फल होता है, फिर झड़ जाता है। उसी तरह सम्पत्ति आती है, विपत्ति आती है और जाती भी रहती है। जैसे किसी नदी में पानी होता है, बढ़ता है और फिर नदी सुख जाती है। उसी तरह सम्पत्ति आती है, जाती है। जैसे द्वितिया का चन्द्रमा बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमा तक बढ़ जाता है और घटते-घटते अमावस्या में समाप्त हो जाता है। इसी तरह आप के जीवन की सम्पत्ति और विपत्ति है। तब क्या करो? सूरदासजी ने कहा—'ताते सेइये यदुराई।' यह स्थिर है। यह कभी बदलनेवाला नहीं है। इसलिए ईश्वर की भक्ति करो—सेवा करो।

सन्त कबीर साहब भेद की वाणी कहते हैं। वे कहते हैं कि संसार में आये हो, तुम्हारी मृत्यु होगी, लेकिन तुम जाओगे किधर? माता के पेट से तुम बाहर संसार में आये हो। वस्तुतः तुम शरीर में आये हो और एक दिन जाओगे अवश्य। लेकिन जाओगे किस ओर? अनजान रास्ते में जाने में बड़ा कष्ट होता है। कबीर साहब कहते हैं कि इसकी चिन्ता मुझको है कि तुम किस ओर जाओगे? यह संसार मोह का नगर है। मोह कहते है अज्ञानता को। असत्य को सत्य कहकर पकड़ बैठे हो और इसमें शान्ति चाहते हो; कभी होने को नहीं है। लोग धन के वास्ते बहुत कोशिश करते हैं। धन पाने पर भी शान्ति नहीं। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

द्रव्य हीन दुःख लहइ दुसह, अति सुख सपनेहुँ नहिं पाये ।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों, धन दुख प्रद श्रुति गाये ।

द्रव्यहीनता की दशा और धन पाने की दशा; इन दोनों दशा में दुसह दुःख है। दोनों तरह से दुःख-ही-दुःख है। धन नहीं है तो अभाव की अग्नि में जल रहा है और धन मिल गया तो यह करो, वह करो, जीवन-भर कभी शान्ति नहीं। सम्पत्ति और विपत्ति की यही हालत है। लोगों को चाहिए की दोनों में सम रहे। दुःख आवे तो सहन करे, सुख को भी सहन करे। लोग दुःख को सह लेते हैं, लेकिन सुख को नहीं सह सकते। क्योंकि सम्पत्ति पाकर बुद्धि विकृत हो जाती है। 'श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।' लक्ष्मी का मद होता है, लोग पगला जाते हैं। प्रभुता हो जाती है तो बहरे बन जाते हैं— दूसरे के सुनते नहीं। लोग विपत्ति को सह लेते हैं, लेकिन सम्पत्ति में बावला हो जाते हैं।

एक दिन राजा राज युधिष्ठिर, अनुचर श्री भगवान ।
एक दिन द्रौपदी नग्न होत है, चीर दुसासन तान ।।

विराट की भरी सभा में कीचक ने द्रौपदी को लात भी मार दी। यह विपत्ति हुई। फिर सम्पत्ति हुई। फिर विपत्ति आई—पहाड़ में जाकर शरीर छोड़े। चाहिये कि दोनों में सम रहे। केवल विचार से ही समता नहीं होती। विचारवाली समता अल्प टिकाऊ है— सदा नहीं रहती। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि समाधि में समता होगी—स्थितप्रज्ञता होगी। तब कर्म करो तो कर्म योग पूर्ण है। नहीं तो अधूरा—

कच्चा होगा। इसीलिये लोग गिर-गिर जाते हैं। पहले समाधि का साधन करना चाहिये। तब समाधि प्राप्त होगी। समाधि-साधन तो लोग करते नहीं, समता कैसे आवे? पूर्व-संस्कार जिसको है, वे करते हैं। फिर भी जहाँ तक बन सके, ध्यान करो, बनते-बनते बनेगा। पैसा से समत्व खरीदा नहीं जा सकता। बिना भजन अभ्यास किये समत्व नहीं मिलेगा। चाहे कुछ करो। लोग चाहते हैं हम कि विचार से सम हो जायेंगे। लेकिन पिछड़-पिछड़ जाते हैं। यह भी उनको मालूम है कि हम पिछड़ गये। क्यों? ध्यान-साधन नहीं करते। ध्यान-साधन करो, तब जो निर्णय होगा, वह दृढ़ होगा। इस संसार में आने के लिये दो घन-घोर फाटक हैं। एक स्त्री-शरीर, दूसरा पुरुष-शरीर। अण्डज, पिण्डज, ऊष्मज कुछ होओ; स्त्री या पुरुष रूप में आना होगा। किसी रूप में आओ, स्थिर बुद्धि नहीं—शान्ति नहीं। मनुष्य-शरीर में भी स्त्री-पुरुष का शरीर है। इसको उपदेश है समत्व प्राप्त करने के लिये। समत्व प्राप्त करने के लिये पहले सुनो, फिर मनन करो, फिर समाधि-साधन का अभ्यास करो। विचार से भी मन को रोको और फिर ध्यान के द्वारा भी।

मनोनिरोध करने में पहले संकल्प-विकल्प छूटेगा, ध्यान लगेगा, समाधि होगी, तब स्थिर बुद्धि होगी—डाँवाडोल नहीं होगा। जितने काम-क्रोधादिक विकार पुरुष को होते हैं, उतने ही स्त्रियों को भी। शान्ति प्राप्त करने का ख्याल दोनों के मन में उठता है। जागतिक-सम्हाल का ख्याल भी दोनों को है। समत्व-साधन केवल विचार से नहीं होगा। साधन बढ़ते-बढ़ते वहाँ तक बढ़ता है, जहाँ जाकर समत्व का ज्ञान हो जाता है, वह है परमात्म-स्वरूप।

आत्मा कहने से जीवात्मा, परमात्मा दोनों का ज्ञान होता है, जैसे आकाश कहने से मठाकाश और महदाकाश दोनों का ज्ञान होता है। यह शरीर जीवात्मा नहीं है। इसके अन्दर जीवात्मा अजर, अमर, अविनाशी है। 'ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।' स्थूल-शरीर की पहचान है। इसके अन्दर तीन जड़-शरीर और है। इन सब जड़ शरीरों की पहचान क्यों न हो जाय, लेकिन यह स्थिर तत्त्व नहीं है। स्थूल-शरीर का टिकाव अल्प है। लेकिन सूक्ष्म और कारण-शरीर तबतक रहता है, जबतक इसको योग साधन द्वारा छोड़ नहीं दिया जाय। पहले विचार में निर्णय किया था, फिर साधन करते-करते उसको प्रत्यक्ष जाना। तब समत्व प्राप्त हुआ। मनोलय पहले ही हो जाता है। लेकिन जबतक मन के साथ रहोगे, आवागमन का चक्र बना रहेगा। जहाँ जड़ात्मिका-प्रकृति नहीं रहती, केवल चेतन-ही-चेतन है, वहाँ पहुँचने पर बुद्धि स्थिर हो जाती है— बुद्धि से भी छुट्टी हो जाती है, तब परमात्मा-ही-परमात्मा रह जाता है। तब 'जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' हो जाता है। केवल विचार से नहीं होता है।

घनघोर फाटक से निकल जाने का मन तो बहुत करता है, लेकिन आगे में संशय होता रहता है—करें कि नहीं। संशयात्मा का विनाश होता है। केवल अपने बल-बूते पर चलना असंभव है। संसार में भी लोग सहयोगी चाहते हैं—मदद चाहते हैं। ध्यान-साधन में किसका बल लोगे। गुरु से साधन का यत्न लिया और आगे बढ़ने का? लोग कहते हैं कि गुरु ही बढ़ा देते हैं। गुरु का अर्थ वहाँ ईश्वर रखिये तो बहुत अच्छा। गोस्वामी जी ने कहा है—जौं तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई।। हम जो बल पहले अपने से लगाते थे, उसमें सहायता मिलेगी। दूसरी बात यह है कि बाबा नानक ने कहा—अंतरि जोत भई गुर साखी चीने राम करंमा। यह ज्योति गुरु की गवाही है। करम = दया-दान। ईश्वर की तरफ से यह दया-दान है।

यह स्थूल-मंडल है। अन्धकार हो वा प्रकाश, शब्द से विहीन कहीं नहीं पायेंगे। तमाम शब्द-ही-शब्द है। जो शब्द आपको आगे को खींचे, वह शब्द भी मिलेगा। जैसे बादल में बिजली की छटक होती है, फिर शब्द सुनते हैं। इसे प्रकृति भी बताती है—पहले ज्योति देखो फिर शब्द सुनो। संसार में भी ये दोनों बहुत महत्त्व रखते हैं। अन्तर जगत में भी इन्हीं दोनों के द्वारा बढ़े जा सकते हैं—अच्छे-अच्छे गुण प्राप्त हो सकते हैं। बाबा नानक ने साधन किया और वे शीघ्र-शीघ्र तारा पर सवार हो गये। 'तारा चड़िआ लंमा किउ नदरि निहालिआ राम।'

ईश्वर की ओर से क्या सहायता मिलती है? धन-दौलत? यह तो थोड़ी बात है। ईश्वर की सहायता है कि अन्दर में ज्योति और नाद मिलता है। शरीर के अन्दर पाँच तत्त्व हैं। एक-एक तत्त्व के पाँच-पाँच स्वभाव हैं। जैसे आकाश का स्वभाव—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। आकाश-तत्त्व में केवल ध्यान बनता है, संसार का कोई काम नहीं होता। हवा का—बोलना, चलना, बल करना, पसरना, सिकुड़ना। अग्नि का—भूख, प्यास, नींद, आलस, हाफी। जल का—मूत्र, पसीना, रक्त, लार, वीर्य,। और पृथ्वी का—हाड़, मांस, चाम, केश, नश। इनके बिगड़ने से रोग होता है। पचीसो चोर से भी दुःख होता है।

ईश्वर से कैसे लौ लगावें, इसकी युक्ति जानो। तो कहा—'सत्त पुरुष इक बसैं पछिम दिसि, तासों करो निहोर।' पच्छिम क्या है? सबसे पहले पूर्व होता है, वह है अंधकार। प्रकाश देखो तो समझो, पच्छिम में हो। दहिना हाथ बड़ा मददगार है। सबसे बड़ा मददगार है शब्द। जितने अधिक शब्द की आपके पास पूँजी है, उतने ही बड़े लोग आप होंगे। सबसे उत्तर में है—निःशब्द। जो ऐसे सज्जन हैं कि जो अपने को पच्छिम में रखते हैं, उनसे प्रार्थना करो, वे राह बतावेंगे। फिर अपनी ओर पाओगे कि किधर जाना है?

शरीर छूटने पर स्थूल शरीर से जीवात्मा निकलती है। उसके बाद सूक्ष्म शरीर रहता है, उसके साथ जीवात्मा जाती है। जैसे जीवित-काल में ऊपर स्थूल-शरीर रहता है, वैसे ही शरीर छूटने पर ऊपर सूक्ष्म शरीर रहता है। ऐसा भजन करो कि जीते-जी प्रकाश में स्थिति कर लो तो पच्छिम में चले गए। तब मनुष्य से मनुष्य होना निश्चय होगा। नहीं तो अन्धकार में रहने से नीची-योनियों में भी गिर सकते हो। साधन बताया कि 'उलटि पाछिलो पैंड़ो पकड़ो पसरा मना बटोर।' बहिर्मुख से अन्तर्मुख होओ। नौ द्वार से दसवें द्वार में जाओ। ब्रह्माण्ड के ऊपर से ब्रह्माण्ड में आया था, ब्रह्माण्ड से पिण्ड में आया। इसको उल्टो। पिण्ड से ब्रह्माण्ड में जाओ, ब्रह्माण्ड से भी आगे उसके परे जाओ। रास्ता कैसे पकड़ो? तो कहा— पसरा मना बटोर।' ध्यान करो। ध्यान ऐसा हो कि उसमें एकविन्दुता हो जाय। यहाँ पूर्ण सिमटाव है, इसमें ऊर्ध्वगति होती है। इसके लिये जो साधन है, उसी को वैष्णवी-मुद्रा, शाम्भवी-मुद्रा कहते हैं। साधारण-शब्द में यही दृष्टि-योग है। यह सूक्ष्म-मण्डल में प्रवेश करने की पहली सीढ़ी है। मोह के शहर से निकलने के लिए कबीर साहब उपदेश देते हैं—यह पाँव का रास्ता नहीं है—चेतन आत्मा का रास्ता है। पहले मन-सहित चलेगा, फिर मन छूट जायगा, तब अकेले जायगा। यह यात्रा की बात है। n

यह प्रवचन दिनांक १६.०९.१९६९ ई० को पटना नगर में डॉ० नन्दलाल मोदी महोदयजी के यहाँ हुआ था।

३०६. हरि कूँ भूले जो फिरै सहजो जीवन छार

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

ईश्वर का ज्ञान बहुत गहन है। समझने में गहन, विचार में गहन प्राप्ति कैसे हो—यह गहन से भी गहन है। परन्तु यदि ईश्वर-दर्शन नहीं प्राप्त करो, तो संसार में रहने का क्लेश कभी नहीं छूटेगा। जैसे देश की सुरक्षा के वास्ते यदि अपने शरीर तक की भी परवाह छोड़कर देश की सुरक्षा में बाधा पहुँचानेवाले का सामना नहीं करते, तो देश पराधीन रहकर दुःख भोगता रहता। इसलिए देश की सुरक्षा रखनेवाले अपनी देह की परवाह छोड़कर लड़ते हैं। इसी तरह ईश्वर-दर्शन करने में जितनी कठिनाइयाँ हैं, उनको नहीं झेलो, तो संसार में आने का दुःख नहीं छूटेगा। उसके बाद का जितना जीवन होगा, उसमें दुःखी रहोगे। सुनने में जो कठिनाई मालूम होती है, वह करते-करते कठिनाई हल्की हो जाती है। और धीरे-धीरे उसी में मन बैठता है और वह सुगम हो जाता है। मेरी इस बात को तब विश्वास करोगे, जब तुम स्वयं करोगे। यदि तुम मेरे लिये यह समझो कि रोचक बात कहकर ईश्वर-प्राप्ति के कर्म में लगाना चाहते हैं, तो मैं कहूँगा कि आपको अनुभूति इसकी नहीं है, इसकी जानकारी नहीं है। मैं क्या कहूँ? यदि आप मुझको इसमें कुछ भी सच्चा मानो, मेरी उम्र को समझो, तो मैंने इतनी उम्र तक क्या किया? या तो विद्या लाभ किया और यही काम करता रहा। इतने में मुझको कुछ भी अनुभूति नहीं हुई, यह विश्वास करने योग्य नहीं है। यदि मेरी तहकीकात करना चाहो, तो मिल सकती है। विद्याभ्यास, सत्संग और उपासना, जो-जो कर्म इसके लिये अपेक्षित हैं, उसी में मैंने अपने को लगाया है। मैं अपने साधन के बल से कहता हूँ—बिल्कुल ठीक है। सुनने में कठिन, करने में कठिन पर मन लगाते-लगाते इतना सरल हो जायगा कि इसके बिना रह नहीं सकोगे। आपके ख्याल में होगा कि सो जाऊँ, तो भी यही बात ख्याल आवे। और दूसरी बात मिट जायेगी, जो उपासना में खलल पहुँचाती है। वह भी नाश हो जायगी, जो उपासना में बाधा पहुँचाती है। जो सुनने में और आरम्भ करने में कठिन है, वह किस बात के लिये? ईश्वर-भक्ति के लिए। ईश्वर क्या है? कोई पूछे कि रूप क्या है? आप झट से कह दो—जो तुम आँख से देखते हो। इसी तरह ईश्वर क्या है? तो तुम अपनी आत्मा से पहचान सको, वही ईश्वर है। जो इस बात को नहीं समझते, वे ही भटकते रहते हैं। संसार में बहुत-से रंग-रूप हैं। संसार के और विषयों में फँसे हुए मन को मालूम नहीं कि संसार के रंग-रूप के अतिरिक्त और कुछ है। संसार के विषयों-रंग-रूपों के अतिरिक्त आप स्वयं हो, इसको समझो। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं रही कि आप शरीर के अंग-प्रत्यंगों में कुछ नहीं हो। तुम अपने को नहीं पहचानते, शरीर को पहचानते हो। विषयों को पहचानते हो। अपने को पहचानने की कोशिश करो।

पहले ज्ञान में, विचार में जानने की कोशिश करो। साधिका सहजोबाई कहती हैं—

पानी का सा बुलबुला, यह तन ऐसा होय ।
पीव मिलन को ठानिये, रहिये ना पड़ि सोय ।।
रहिये ना पड़ि सोय, बहुरि नहिं मनुखा देहि ।
आपुन ही कूँ खोज, मिलै जब राम सनेही ।।
हरि कूँ भूले जो फिरै, सहजो जीवन छार ।
सुखिया जबही होयगो, सुमिरेगो करतार ।।

तुम अपने ही को नहीं जानते हो और ईश्वर को खोजना चाहते हो। तुम सो गये हो और अनमोल पदार्थ पाना चाहते हो। जगो ! जबतक तीन अवस्थाओं में हो, तबतक सोये हो। चौथी अवस्था-तुरीय अवस्था में आओगे, तो समझोगे कि जिसको सत्य समझते थे, वह असत्य था। ईश्वर का स्वरूप इन्द्रिय-ज्ञान से बाहर है ।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

अभी श्रीसंतसेवीजी ने श्रीरामायणजी से ईश्वर-स्वरूप का पाठ किया। इसको प्राप्त करना है, जो इन्द्रिय-ज्ञान से परे है। 'गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।' इन्द्रियों को जो सुहाता है, इन्द्रिय-ज्ञान में जो कुछ आता है, सब माया है। दूसरी बात इसको भी याद रखिये—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

अर्थ—उस परे-से-परे (ब्रह्म) को देख लेने पर हृदय की ग्रन्थि (गाँठ, गिरह) टूट जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

जड़ को हम पहचानते हैं, चेतन को नहीं। सो पहचान में आ जाय कि यह चेतन है, तो सारे कर्मबन्धन क्षय हो जायँगे—कोई संशय नहीं रहेगा। उस परे-से-परे का दर्शन पाकर ऐसा हो जायगा। जिसको ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, उसकी जड़-चेतन की ग्रन्थि छूट जाती है, सारे संशयों का नाश हो जाता है और सभी कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं। इन दोनों की कसौटी पर जाना जाता है कि मन-इन्द्रियों के बाहर जो है, वह ईश्वर है; और इन्द्रिय-ज्ञान के अन्दर जो है, वह माया है। विलक्षण से विलक्षण रूपों के दर्शन का वर्णन जो ग्रन्थों में आया है, जिसने उन दर्शनों को किया, उनका सन्देह मिटा कि नहीं, देख लो।

अर्जुन श्रीकृष्ण के साथ बहुत रहते थे। उनका संशय बिल्कुल क्षय नहीं हुआ था। सारे संशय उस दर्शन से मिट नहीं गये थे। उसी संशय के निवारणार्थ भगवान ने उनको उपदेश दिया। उससे भी उनके मन में विश्वास नहीं हुआ, तो भगवान ने उनको एक भयानक रूप दिखाया। उसमें अर्जुन ने देखा कि जितने कौरव-पाण्डव दल के लोग हैं, सब उनके मुँह में समाकर मर-मरकर गिरते जाते है। कितने लोग विराट् रूप को परमात्मा का अन्तिम दर्शन मानते हैं। लेकिन यह भी परमात्मा की माया थी। जो परमात्म-स्वरूप है, उसके मुँह में प्रवेश कर कौरव-पाण्डव-दल के लोग मर-मर कर क्यों गिरेंगे? अर्जुन को विराटरूप भगवान ने दिखाया और नारद मुनि जी को भी विराटरूप दिखलाया। तो नारद मुनिजी से भगवान ने कहा था— तुम मेरे जिस रूप को देख रहे हो, वह मेरी उत्पन्न की हुई माया है। जितने विकराल वा प्यार रूप को देखते हो, सभी ईश्वर की माया है। लोग कहते हैं—क्या उसमें ईश्वर व्यापक नहीं है? ईश्वर व्यापक है, लेकिन उस व्यापक रूप की पहचान उस रूप के दर्शन से नहीं होती। व्यापक रूप का दर्शन कैसे होता है? संतों ने बताया है। उपर्युक्त उपनिषद्-वाक्य और गोस्वामी तुलसीदास जी के वाक्य के अनुकूल उस दर्शन से संशय का रहना वा जड़-चेतन की ग्रन्थि का रहना नहीं होता। जिसकी जड़-चेतन की ग्रन्थि खुल गई, उसको किसी से कुछ पूछना नहीं है। तुलसीदास जी ने विनय-पत्रिका में लिखा है—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।

ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।
—विनय-पत्रिका

लेकिन कठिनाई सुनकर घबराओ नहीं। आगे कहा—'जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी ।' किसी काम में कोई कुशल कैसे होता है? अभ्यास करते-करते। आप अक्षर लिखते थे, कितनी कठिनाई होती थी! अब कैसा लगता है। इसीलिये मैं कहता हूँ—ईश्वर-भजन करते-करते वह भी सुगम हो जायेगा और उसके बिना रह नहीं सकोगे। फिर कहा कि— '**सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।**'

जो अपने मन को समेटता है, वह उल्टी धारा पर चला जाता है। वह उसको जानता है, जो ब्रह्माण्ड के ऊपर से ब्रह्माण्ड में और फिर पिण्ड में व्यापक है। यदि कोई कहे कि झूठी बात है तो करके देखो, झूठी है कि सत्य है। करते नहीं, कहते कि झूठ है। कोई कहे कि ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के मिलाने पर पानी नहीं होता है, तो मिलाकर देख लो।

ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।

बालू जड़ धार है। और चीनी चेतन धार है। इन दोनों का मिलाप इस शरीर के अन्दर हो गया है। इन दोनों को अलग-अलग फूटा लो। अपने को चींटी बनाओ। यह इशारा है। जैसे सफरी का इशारा है, अपने को समेटने के लिये; उसी तरह जो अपने का समेटता है, वह चींटी बनता है और अपने को जड़ से फुटा सकता है। तब वह सारी सृष्टि की रचना को अपने अन्दर देखता है। जो जाग्रत को, स्वप्न को और सुषुप्ति को छोड़ता है, वह जगता है।

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

वही हरि-पद का परम सुख पाता है। सुख यहाँ है और कहाँ सुख है? जहाँ दो—भेद से रहित हो जाता है, वह पद कैसा होता है? गोस्वामीजी ने कहा है—

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

देश-कालातीत पद में वह पहुँचता है। अरे ! संशय का नाश यहाँ होगा। इसके नीचे तो संशय रहेगा ही। तुलसीदासजी वहाँ जाने के लिये कहते हैं। और भी कहते हैं कि— तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त। मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनन्त।।' जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति; तीनों अवस्थाओं को छोड़कर भजन करो। जाग्रत से स्वप्न में जाने के समय तन्द्रा अवस्था आती है, उसमें ऐसा लगता है कि शक्ति भीतर खिंची जा रही है। हाथ, पैर कमजोर होते जा रहे हैं। होते-होते तन्द्रा से स्वप्न में आ जाता है, जबतक यहाँ टिका रहता है, स्वप्न में रहता है। उससे भी नीचे उतर आता है, गहरी नींद में चला जाता है। यही तीन अवस्थाएँ हमलोगों को रोज होती हैं। योगी लोग इन अवस्थाओं से ऊपर जाते हैं। ब्रह्मोपनिषद् में लिखा है कि तुरीयावस्था में आँख से ऊपर अर्थात् मूर्द्धा में वासा होता है। बिना उस अवस्था में गये कोई ईश्वर की ओर नहीं जा सकता।

रूप-रंगवाले को जो ईश्वर कहते हैं, वह ईश्वर की माया है। माया-रूप को पकड़ो, तो माया के अन्दर बहुत कुछ काम आपका होगा। लेकिन आप सन्तुष्ट नहीं होंगे; परन्तु जिनकी माया है, उनको पकड़ो, तो सन्तुष्टि होगी। एक राजा था। वह भगवान बुद्ध का संन्यासी शिष्य हो गया था। वह कभी-कभी बोलता था कि 'यह सुख है, यह सुख है।' अन्य भिक्षुओं ने भगवान से जाकर कहा कि जो राजा भिक्षु बन गया है, वह जब-तब

बोलता रहता है कि 'यह सुख है, यह सुख है।' भगवान ने उसको बुलाकर उसके इस तरह बोलने का कारण पूछा। इस पर उसने उत्तर दिया, भगवन्! जबतक मैं राज्य में रहा, तबतक मैं कैद में रहा। पहरे में रहा; सशंक रहा। सोने में सशंक। जागने में सशंक। घर में सशंक, बाहर में सशंक। तमाम सशंक रहता था। अब वृक्ष के नीचे रहता हूँ। किसी तरफ से सशंक नहीं और अन्दर में वह सुख मिलता है, जो सुख खाने-पीने व राज्य-सुख भोगने में कभी नहीं मिला। ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान योग से सम्बन्धित कर देता है। लोग कहा करते हैं—योग तो सब कोई नहीं कर सकेंगे। मैं कहता हूँ—योग सभी कर सकेंगे। स्त्रियाँ भी कर सकेंगी। पुरुष भी कर सकेंगे। एक मेहतर भी कर सकता है। मेहतर का अर्थ है— विशेष कृपालु। हमलोग बहुत बच्चे थे, तो हमारी माता, हमारी बड़ी बहन हमारे मैले को साफ करती थीं। पवित्र करती थी। और मेहतर हमारे-आपके मैले को साफ करते हैं। उनसे बढ़कर कौन कृपालु है? योग की क्रिया सभी पेशे के लोग कर सकते हैं। मैंने छपरे जिले में मेहतर के एक टोले को देखा था। बड़ी सफाई थी। उसके टोले में खाने-पीने की गड़बड़ी नहीं थी। तहबल दासजी उस टोले को चेताये थे। एक बार छपरा में दो संन्यासी आये थे। उनके सामने तहबल दासजी ने कहा कि महाराज ! आत्मा के बारे में कहिये। महात्मा ने कहा—तुम कौन हो? उन्होंने अपने हाथ का झाड़ू दिखलाकर कहा—'आप तो देख रहे हैं—मैं सफाई करनेवाला हूँ।' महात्मा बोले—'तुम समझ सकोगे?' उन्होंने कहा—'आप समझा देंगे, तो मैं समझ जाऊँगा।' महात्माजी ने कहा—'मेरी धारणा गलत थी कि ऐसे लोग समझ नहीं सकेंगे। अब मैं इन लोगों को भी समझाऊँगा।' कबीर साहब ने कहा है—

न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै ।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै ।।

कबीर साहब पढ़े-लिखे नहीं थे। कपड़ा बनाते थे, बेचते थे। उसी में सन्तुष्ट थे। दाम बढ़ाकर नहीं रखते थे। एक ही दाम रखते थे। उनके लिये यह कहावत प्रसिद्ध है—

कबीर चाले हाट को, कहै न कोइ पतियाय ।
पाँच टके का दोपटा, सात टके को जाय ।।

एक बार कबीर साहब कपड़े बनाकर हाट में बेचने गये। उन्होंने उसका मूल्य पाँच रुपये बतलाया। ग्राहक चार रुपये, साढ़े चार रुपये देते थे। कबीर साहब उस कपड़े को लेकर वापस लौट रहे थे। रास्ते में एक चतुर आदमी से उनकी भेंट हो गई। उन्होंने उनसे हाट से कपड़े वापस लाने का कारण पूछा। कबीर साहब बोले—इस चादर की कीमत पाँच रुपये है, किन्तु लोग पाँच रुपये देना नहीं चाहते। इसलिये वापस ले जा रहा हूँ। चतुर आदमी ने कहा—यह चादर आप मुझे दे दें। मैं इस चादर को बेचकर पाँच रुपये आपको दे दूँगा और जो अधिक बचेंगे, मैं ले लूँगा। कबीर साहब ने कहा—भाई ! मुझे तो पाँच ही रुपये चाहिये। उस चतुर मनुष्य ने उस चादर को बाजार में ले जाकर सात रुपये में बेचा। पाँच रुपये उन्होंने कबीर साहब को दिये और कहा कि ये दो रुपये मेरे हुए। कबीर साहब ने प्रसन्नतापूर्वक पाँच रुपये ले लिये। ऐसे सन्तुष्ट कबीर साहब थे। घर में रहते थे। साधन-भजन ऐसा किया कि कोई कमी नहीं रही। सर्व साधारण को उन्होंने उपदेश दिया। यही काम गुरु नानक ने किया। उन्होंने कहा—

चहुँ वरना को दे उपदेश । तिस पंडित को सदा अदेश ।।

हठयोग करके, प्राणायाम करके पक्का बन जाओ, तब प्रत्याहार करो, धारणा करो, फिर ध्यान करो और अन्त में समाधि लो; यह हठयोग की

बात है, कबीर साहब कहते हैं। हठयोग करने की बात नहीं। केवल सुरत का खेल जानो। वह क्या है? तो उन्होंने कहा– 'शून्य ध्यान सबके मनमाना। तुम बैठो आतम अस्थाना।।'

कोई पूछे कि पुराण में, शास्त्र में शून्य ध्यान है? तो कहूँगा– जो भागवत पढ़ते हैं, वे जानते हैं, ग्यारहवे स्कंद में है। उद्धवजी ने पूछा है कि आपका ध्यान कैसे करूँ? भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–'पहले हमारे सर्वांग का ध्यान करो, फिर मुस्कानयुक्त मुख का ध्यान करो। उसके बाद उसको भी छोड़कर शून्य में ध्यान करो।' जो इसकी विधि जानता है, वह जानता है कि क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी कर सकते हैं, लेकिन संयमित रहना पड़ेगा। अर्थात मत्स्य-मांस को नहीं लो। यह कबीर साहब को भी कहना पड़ा। कबीर साहब एक जुलाहे के घर में पाले गये थे। एक शिशु को लहरतारा तालाब से एक मुसलमान जुलाहा ले आये थे। वहीं उनका पालन-पोषण हुआ। कबीर साहब कहते हैं– मत्स्य-मांस नहीं खाओ। नशाओं को मत लो। हिंसा नहीं करो। व्यभिचार नहीं करो और चोरी नहीं करो। जो कोई यह परहेज करेगा, उन सबको लाभ होगा। उसके साथी को लाभ होगा। ऐसे लोग अधिक हो जायँगे तो देश को लाभ होगा। देश को क्या लाभ होगा? कोई दुष्ट कर्म करेगा नहीं, चोरी नहीं करेगा, डकैती नहीं करेगा, व्यभिचार नहीं करेगा, हिंसा नहीं करेगा। तो कितनी शान्ति रहेगी ! दुष्टकर्मियों को दुष्ट कर्मों से रोकने के लिये कितने ऑफिसर हैं? इसके लिये कितना खर्च है? सब खर्च बच जायेंगे। इसको देश की दूसरी सेवा, दूसरे काम में लगाए जायेंगे। किसी सरकार के अन्दर रहनेवाले दुष्ट कर्मों से छूटकर रहेंगे, तो शासन में सरकार को सहूलियत होगी। खर्च बहुत कम जाएगा। लोग मेरे लिये कहते हैं कि ये केवल मुक्ति-मोक्ष-अध्यात्म -ज्ञान देते हैं। देश के लिये कुछ नहीं करते हैं। अरे ! मैं तो देश की जड़ को मजबूत करता हूँ। जो कोई ईश्वर-भजन करते हैं, उनके लिये संसार-परमार्थ दोनों सरल होते हैं। महाराज अशोक के राज्य में बड़ी शान्ति थी। चोरी, डकैती, खून का मुकदमा कभी-कभी आता था। साल में एक वा दो ऐसे मुकदमें आये, तो बड़ा जुल्म हो गया, ऐसा समझा जाता था। महाराज अशोक के यहाँ एक ऐसी सभा थी, जो लोगों को उपदेश देती थी और उपदेशक को सरकारी सहायता बहुत मिलती थी।

लोग कहते हैं कि ईश्वर अव्यक्त है। उसका ध्यान कैसे करो? तो कहा कि संसार के जितने रूप हैं, सभी ईश्वर के रूप हैं। किसी में अपनी श्रद्धा रखो। कबीर साहब ने, गुरु नानक साहब ने गुरु का ध्यान बतलाया है। तुलसीदासजी भी रामायण में कहते हैं–

तुम्हतें अधिक गुरुहिं जियँ जानी। सकल भायँ सेवहि सनमानी।।

आप राम रूप मानते हो, तो बहुत अच्छी तरह से राम रूप का ध्यान करते हो। कृष्ण को माननेवाले कृष्ण का ध्यान करो। काली के मानने वाले काली का ध्यान करो। लेकिन मानस ध्यान करो और मानस जप भी करो। परन्तु यहीं तक पड़े नहीं रहो। जो यहीं साधन को खत्म करते हैं, वे गलती में रहते हैं। इससे आगे बढ़ो। भागवत में जो शून्य ध्यान बताया है, उसको जानो और करो। तब परमात्मा की ओर की बड़ी सहायता मिलेगी। अर्थात् ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद का सहारा मिलेगा। प्रत्यक्ष चाहते हो तो ब्रह्मज्योति प्रत्यक्ष हो जायेगी। फिर ब्रह्मनाद की भी प्रत्यक्षता हो जायेगी। जहाँ तक ज्योति की गति है, वहाँ तक ज्योति में जाओगे और जहाँ तक नाद की गति है, वहाँ तक नाद में जाओगे। नाद की गति परमात्मा तक है।

किसी वैज्ञानिक से पूछिये, सब कहेंगे—शब्द कम्पमय और कम्प शब्दमय होता है। आरम्भ में परमात्मा से जो शब्द हुआ, उसी को आदिनाद, प्रणवनाद, प्रणवध्वनि आदि कहते हैं। इसको पकड़ने से तुम स्वयं उस नाद से पकड़े जाओगे। दुःखी होओगे कभी नहीं। एक बंगाली साधु का वचन है—आनन्दे आनन्द बाढ़े प्रतिक्षण। दशे इन्द्रिय थाके शून्यते बन्धन। कितने लोग केवल स्थूल उपासना में डटे रहते हैं। मैं स्थूल उपासना मना नहीं करता। लेकिन कहता हूँ कि उपासना का अंत यहीं मत करो। मानस जप करो, मानस ध्यान करो, दृष्टि योग करो और शब्द योग का ध्यान करो। कैसे करो? जैसे गुरु बतावें। व्यक्त ही व्यक्त का सहारा लेते हुए अव्यक्त तक पहुँचोगे। जैसे पानी का सहारा लेकर सुखी जमीन पर जाता है। उसी तरह ज्योति का सहारा लेकर ज्योति को पार करता है, तब जानता है कि—प्रभा शून्यं मनः शून्यं बुद्धि शून्यं भी है। और तब शब्द का सहारा लेकर शब्द को भी पार करता है। फिर 'निःशब्दं परमं पदम्' का ज्ञान भी होता है। उस परम पद तक पहुँचो। यही आपलोगों को सुना दिया। बात का इतना विस्तार है कि थोड़े में समझ लो, तो अपना काम खत्म हो। नहीं तो जीवन भर सुनते रहो, समझते रहो, खत्म होने की बात नहीं।

सन् १९०९ ई० से आज तक मैं सत्संग में हूँ। और ऐसी बात मालूम पड़ती है कि जो नहीं जानता था, सो जानता जाता हूँ। यही थोड़ा कह दिया। यदि सत्य जानकर करेंगे तो आपका जीवन बहुत सफल होगा। परम शान्ति, परम सुख को पाकर उस दशा को पावेंगे। जिससे फिर लौटकर कभी नहीं आवेंगे। n

यह प्रवचन दिनांक १७.११.१९६९ ई० को भागलपुर जिलान्तर्गत सुलतानगंज में श्रीअनन्तराम रामशरण रामुकाजी के मकान के प्रांगण में भागलपुर जिला संतमत-सत्संग के विशोषाधिवेशन के अवसर पर हुआ था।

३०७. गुरुमति लोग बज्र कपाट खोलते हैं

प्यारे लोगो !

मैं बाबा नानक तथा उनके उपदेशों को ख्याल में रखता हूँ। आपलोग गुरु-ग्रंथ साहब को गुरु मानते हैं। उसमें गुरु का उपदेश है, इसलिये गुरु-ग्रंथ साहब आदरणीय हैं, पूज्य हैं। बाबा नानक ने ईश्वर की मान्यता दी। उनके शब्दों में है—

अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा।।
साचे सचिआर बिटहु कुरवाणु।
ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ साचे सबदि नीसाणु।।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु काम न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी।।
घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।
जंत उपाइ कालु सिरिजंता बसगति जुगति सवाई।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई।।
सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।

परमात्मा का प्रकाश सबमें विद्यमान है। यह कौन देखता है? जो गुरुमति लोग होते हैं, वे वज्र कपाट को खोलते हैं। निडर ध्यान लगाकर तब वे उस वज्र कपाट को खोलते हैं। ध्यान लगाते-लगाते वज्र कपाट को खोलते हैं। जो वज्र कपाट को खोलते हैं, वे ईश्वर को घट-घट में देखते हैं। निडर ध्यान लगानेवाले सद्गुरु की सेवा करते हैं। उन्हें परमात्मा की प्राप्ति होती है। परमात्मा बहुत

पवित्र हैं। परमात्मा को वे अपने में पाते हैं। सूचाचारी शुद्ध आचरण से रहनेवाले परमात्मा का प्रकाश पाते हैं। जो भक्त निडर होकर परमात्मा का ध्यान लगाते हैं, वे केवल परमात्मा का दर्शन चाहते हैं। यह निडर ध्यान सद्गुरु की सेवा करके प्राप्त करते हैं। ऐसा करनेवाले अपने को परमात्मा में लीन कर देते हैं। अभी मेरे पास गुरु-ग्रन्थ साहब हैं। उसमें है—

सागर महि बूँद बूँद महि सागरु कवणु बुझै विधि जाणै ।
उतभुज चलत आपि करि चीनै आपे ततु पछाणै ।।
ऐसा गिआन विचारै कोई तिसते मुकति परम गति होई ।
दिन महि रैणि रैणि महि दीनी अरु उसन सीति विधि सोई ।।
ताकि गति मति अवरु न जाणै गुर बिन समझ न होई ।
पुरख महि नारि नारि महि पुरखा बूझहु ब्रह्म गिआनी ।।
धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ गुर मुख अकथ कहानी ।
मन महि जोति जोति महि मनुआँ पंच मिले गुरु भाई ।।
नानक तिनके सद बलिहारी जिन एक सबदि लिवलाई ।

यह संसार सागर है। शरीर एक बूँद है। पिण्ड ब्रह्माण्ड के अन्दर है, यह सबको प्रत्यक्ष है। लेकिन पिण्ड-रूप बूँद में संसार-रूप समुद्र है, यह आश्चर्य-मय चरित्र है। अपने करो तो कहना नहीं होगा। इसको करनेवाला आत्मज्ञानी हो जाता है। उसकी मुक्ति और परम गति हो जाती है। गो० तुलसी-दासजी भी कहते हैं—

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवई निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख अतिशय द्वैत वियोगी ।।

तीन अवस्था के परे चौथी अवस्था के अन्त में परम गति होती है। जहाँ ऐसा होता है, वहाँ शोक-मोह आदि नहीं होते।

शोक मोह भय हरष दिवस निशि, देश काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास एहि दशा हीन, संशय निर्मूल न जाहीं ।।

इस दशा के बिना संशय दूर नहीं होता। यही सन्त कबीर साहब भी कहते हैं—

बूँद समानी समुँद में, यह जानै सब कोय ।
समुँद समाना बूँद में, बूझै बिरला कोय ।।

यह बूझना बहुत जरूरी होता है। जो अपने अन्दर में प्रविष्ट होकर देखते हैं, वे अन्दर में ब्रह्माण्ड को देखते हैं और होते-होते अपने स्वरूप को भी देखते हैं। वे शरीर से रहित होकर अपने आत्म-स्वरूप को पहचान लेते हैं। ऐसे ज्ञानवाले को परम गति होती है। इसके वास्ते हमलोगों को चाहिये कि ईश्वर को पाने की विधि को जानें। अपने में करके जानना चाहिये। जो अपने से नहीं करते हैं, उनको केवल बाहरी ज्ञान से तृप्ति नहीं होती है। पहचान में तृप्ति होती है। पहचान ध्यान करके होती है।

स्वरोदय योगशास्त्र में चन्द्र को इंगला और सूर्य को पिंगला कहते हैं। दोनों का मेल मिल जाने पर 'शम' हो जायेगा। मैं कहता हूँ—आप आजमाकर देखें तो आपको मालूम हो जायेगा। यदि जुकाम या सर्दी हो जाय तो दाहिने स्वर को बंद रखें तो बायें नासाग्र से पानी बह जायेगा और सर्दी छूट जायेगी। इड़ा-पिंगला का मिलन ध्यान में होता है। जो ध्यान करते हैं, वे स्वर को अपने अन्दर में पाते हैं—

घरि महि घरु देखाइ देइ सो सतगुरु परखु सुजाणु ।
पंच सबदु धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु निसाणु ।।
दीप लोअ पाताल तह खण्ड मण्डल हैरानु ।
तार घोर वाजिंत्र तह साचि तखति सुलतानु ।।
सुखमन कै घरि राग सुनि सुन मण्डल लिवलाइ ।
अकथ कथा बीचारिऐ मनसा मनहि समाइ ।।
उलटि कमलु अंम्रित भरिआ इहु मन कतहुँ न जाइ ।
अजपा जाप न बीसरै आदि जुगादि समाइ ।।
सभि सखिया पंचे मिलै गुरमुखि निज घरि वासु ।
सबदु खोजि इहु घरु लहै नानकु ता का दासु ।।

शब्द का ध्यान करना बहुत जरूरी है। सुषुम्ना में रहकर शून्य मण्डल में लौ लगाकर शून्य में ध्यान करें तो शब्द खुल जायेगा। गुरु महाराज से इसका यत्न जानें। ईश्वर की ओर की ध्वनि सुनेंगे। इन्हीं शब्दों के साथ मैं आपके समारोह का उद्घाटन करता हूँ।

n

यह प्रवचन दिनांक २१.११.१९६९ ई० को पटना सिटी के हर मन्दिर में गुरु नानक साहब की ५वीं जन्म शताब्दी के अवसर पर हुआ था।

३०८. मांस-रक्त का पिंजरा

प्रभु तोहि कैसे देखन पाऊँ ।
तन इन्द्रिन सङ्ग माया देखूँ, मायातीत धरहु तुम नाऊँ ।।
मेधा मन इन्द्रिन गहें माया, इन्ह में रहि माया लिपटाऊँ ।
इन्द्रिन मन अरु बुद्धि परे प्रभु, मैं न इन्हें तजि आगे धाऊँ ।।
करहु कृपा इन्ह सङ्ग छोड़ावहु, जड़ प्रकृति कर पारहि जाऊँ ।
'मेँहीँ' अस करुणा करि स्वामी, देहु दरश सुख पाइ अघाऊँ ।।

प्यारे लोगो !

यह बात बहुत प्रसिद्ध है। शास्त्रीय रूप से प्रसिद्ध है।

नर तन सम नहिं कवनिउँ देही। जीव चराचर जाँचत जेही ।।

अर्थात् मनुष्य शरीर के समान कोई भी शरीर नहीं है, जिसको जड़-चेतन सभी चाहते हैं। 'जीव चराचर'—चलनेवाले, नहीं चलनेवाले जितने प्राणी हैं, सभी मनुष्य शरीर चाहते हैं। मनुष्य, पक्षी चलनेवाला है और वृक्ष, पहाड़ चलनेवाला नहीं है। सभी चाहते हैं कि मनुष्य शरीर मिले। किसी मनुष्य से पूछिए कि हाथी बहुत बड़ा जानवर है, वह आप बनना चाहते हैं ? कोई पसन्द नहीं करेगा। गौ की पूजा हम करते हैं, लेकिन गौ या बैल होना कोई पसन्द नहीं करते । मनुष्य-शरीर, उत्तम शरीर है। कितना उत्तम है यह? उपनिषद्कार ने कहा है—'देहं शिवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्व देहिनाम्।।' मनुष्य-देह शिवालय है। इसमें सबको सिद्धि मिलती है। 'देहं विष्णवालयं प्रोक्तं सिद्धिदं सर्व देहिनाम।' मनुष्य-देह ठाकुरबाड़ी है, इसमें सबको सिद्धि मिलती है। हाड़-मांस को लोग अपवित्र समझते हैं। लेकिन जबतक जीवित मनुष्य-शरीर में लगा हुआ है, तबतक पवित्र है। संसार में जितने जो कुछ प्राणी हैं, सबसे विशेष मनुष्य है। परमार्थ—साधन, देव-पूजन, मोक्ष का साधन इसी शरीर से होते हैं और ये हैं भी इसी शरीर के लिए। मनुष्य—शरीर ही इस काम को आरम्भ कर सकता है और धीरे धीरे करके समाप्त कर सकता है और किसी शरीर में नहीं। 'सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हिं गावा' क्यों ? इसलिये कि यह शरीर सभी साधनों का घर है। जो यत्न करो, सफल होओगे। और जो मुक्ति में जाना चाहें, वे मनुष्य-शरीर में आकर ही जा सकते हैं। और किसी शरीर में नहीं। मोक्ष पाने का यत्न करना चाहिए, इसी के लिए सन्त उपदेश करते हैं—

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार ।
यह तन जल का बुदबुदा, विनसत नाहीं बार ।।

—कबीर साहब

यह शरीर बड़ा अच्छा है। लेकिन क्या बालपन, क्या बुढ़ापा, क्या जवानी का शरीर, यम के फन्दे में जो शरीर पड़ेगा, वह जाएगा ही। लेकिन ठिकाना नहीं कब यम के फन्दे में जाएगा ?

नहँ बालक नहँ यौवने, नहँ बिरधी कछु बन्ध ।
वह अवसर नहिं जानिए, जब आय पड़े जम फन्द ।।

—बाबा नानक साहब

इस शरीर से मोक्ष का साधन अवश्य करो। मोक्ष साधन करो और कोई काम नहीं करो, ऐसी बात सन्त लोग नहीं कहते। ऐसा भजन जिससे मोक्ष हो, सो करो। और जबतक जीवन है, तभी तक साधन कर सकते हो। मोक्ष के लिए साधन है। जो अत्यन्त अपेक्षित है, वह करो। जबसे होश हो, सचेत होओ, तबसे भजन करो। हमारे देश का पुराना नियम है, पहले ब्रह्मचर्य का पालन करो। ब्रह्मचर्य का पालन कब से करो ? जब से उपनयन हुआ, अर्थात् जन्म के बाद जो दूसरा संस्कार हो जाय। जन्म-धारण करने पर पाँच-सात वर्ष के

बाद उत्सव कराते हैं। उसमें जनेऊ देते हैं। उसी समय से शुचि से रहने के लिए सिखाया जाता है। गायत्री-मन्त्र का जप करने को भी कहा जाता है। इस मन्त्र के साथ प्राणायाम भी बताया जाता है। प्राणायामहीन गायत्री जप निर्जीव होता है—निष्फल होता है। संयम से जप करने से लाभ होता है। उपनयन होने पर विद्या के लिए गुरुकुल जाओ और वहाँ विद्याभ्यास के साथ गायत्री-मन्त्र का जप भी करो। विद्या समाप्त कर घर जाओ। गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करो और उपनयन के समय में जो दीक्षा प्राप्त किये हो, सो भी करो। फिर घर छोड़कर संन्यास लेने की बात थी, वह नियम अब खत्म हो गया, लेकिन ऐसा जाना जाता है कि उस समय बचपन से ही लोग योग सिखाने का काम करते थे। लोग योग सीखते थे। इन बातों को जो लोग नहीं जानते हैं, वे कहते हैं कि 'अभी बच्चे हो, नहीं करो।' संसार का काम भी करो और मोक्ष का साधन भी करो। यही अपने देश का नियम था। सब-के-सब मोक्ष का साधन भी कीजिए और घर के कामों को भी देखिए। दोनों काम संग-संग करो। कुछ काल ऐसा व्यतीत हुआ कि लोग मोक्ष का साधन भी करते थे और घर के कामों को भी। इसलिए घर में काम-धन्धा भी करो और मोक्ष साधन भी करो। दूसरे की देह का पालन नहीं कर सकते हो तो अपनी देह का पालन-पोषण तो करो।

बाबा साहब ने मुझसे पूछा था, 'तुम अपनी जीविका के लिए क्या सोचते हो? मेरे सत्संग में आये हो तो सेल्फ-सपोर्टर (Self-Supporter) यानी स्वाबलम्बी बनो।' अब मेरा जीवन बहुत अच्छा है, गुरु महाराज की बात मानकर। मोक्ष का साधन परिवार छोड़कर करें, ऐसी बात नहीं। ईश्वर का भजन भी करो जिससे मोक्ष मिले और घर का काम भी करो। यही बात भगवान श्रीकृष्ण ने कही है। कबीर साहब उसके पूर्ण स्वरूप थे। पूर्ण योगी थे। उनको ऐसा नहीं था कि हम जीविका नहीं करें। बचपन से वे जो काम करते थे, सब दिन करते रहे। बाबा नानक भी ऐसे थे। इनके सिलसिले में दशवें गुरु-गुरुगोविन्द सिंहजी थे। इनके यहाँ भी यही बात थी। दशवें गुरु ने सिक्ख धर्म को कायम किया। एक जाति कायम किया। पंच ककार दिया। वे लोग संसार के कामों को करते हुए परमार्थ साधन करते थे। सिर-रक्षा के लिए केश, कोई हथियार नहीं हो तो कड़ा-कृपाण, कच्छा इसलिए कि सदा तैयार, कोई लटपट नहीं। और उन्होंने पंजाब को स्वतंत्र किया। आज के जमाने में परमार्थ का साधन कैसे करना चाहिए? जिसका यह नमूना है। संसार का पालन-पोषण करो और ईश्वर का भजन भी करो। दश गुरुओं ने यह शिक्षा दी।

बाबा नानक बहुत घूमे। पूर्वीय गोलार्द्ध में बहुत घूमे। पैदल जहाँ तक जाने का था, तमाम गये। कुछ सामुद्रिक यात्रा भी किए, जैसे लंका गये। सन्तों ने बताया है कि तुम्हारा शरीर शिवालय और ठाकुरबाड़ी है। अपने शरीर को तुम ठाकुरबाड़ी बना सकते हो अथवा विष्ठा का घर बना सकते हो। परमार्थ-साधन नहीं जानते हो तो यह शरीर ठाकुरबाड़ी नहीं है। परमार्थ-साधन है तो ठाकुरबाड़ी है। अन्तःकरण पर शौच है, तो वह सदाचार है और बाहरी पवित्रता शुच्याचार है। सबको स्वभावतः भजन का अवलम्ब दिया गया है। उस अवलम्ब को पकड़ना चाहिए। जो पकड़ते हैं, वे ठीक-ठीक भजन करते हैं। सन्त कबीर साहब ने बताया है—

पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग ।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ।।
यहि घट चन्दा यहि घट सूर, यहि घट बाजै अनहद तूर ।
यहि घट बाजै तबल निसान, बहिरा शबद सुनै नहिं कान ।।

प्रकाश और शब्द; ये दोनों अवलम्ब तुम्हारे

अन्दर हैं। इस शरीर के अन्दर पाँच नौबत बजते हैं। मांस, खून, हाड़, चाम, नस; यह स्थूल शरीर का स्थूल भाग है। मांस-रक्त के पिंजड़े में शून्य भी है। शून्य में कहीं अन्धकार भी है, कहीं प्रकाश भी है। लेकिन शब्द से खाली कहीं भी नहीं है। एकान्त में बैठकर ध्यान कीजिए और शब्द पकड़िए। ईश्वर की ज्योति और नाद साधक के हेतु अन्तस्साधना में ये दोनों सहारे हैं। ईश्वर के पास पहुँचने का यह सरल उपाय है। इस मनुष्य-शरीर को पाकर ईश्वर-स्वरूप को जानना चाहिए। इसलिए ईश्वर-भजन करो। केवल खाना-सोना किस काम का ? पशु भी खाता-सोता है। मनुष्य-शरीर इसलिए नहीं है।

H

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत रानीगंज थाना में वार्षिक सत्संग के अवसर पर दिनांक २.१.१९७० ई० को प्रात: काल में हुआ था।

३०९. सगुणरूप के दर्शन से मुनियों के मन में भ्रम

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

हमलोग सत्संग के द्वारा ईश्वर-भक्ति का प्रचार करते हैं। इसलिए कि संसार के सुखों में शान्ति नहीं आती है, सो सबके लिए प्रत्यक्ष है। संसार के सभी सुख क्षणिक होते हैं, नाश भी हो जाता है। सन्तों ने यह बताया है कि ईश्वर की भक्ति करो। ईश्वर के दर्शन से वह सुख मिलेगा, जो सुख सन्तोषदायक है। कोई तृष्णा बाकी नहीं रह जाती है। ऐसी तृप्ति होती है, जिसमें सारी इच्छाएँ नाश हो जाती हैं। इसलिए ईश्वर की भक्ति करो। लोगों को मालूम होना चाहिए कि गोस्वामी तुलसीदासजी जैसे बड़े भक्त थे, वैसे ही सूरदास जी भी थे। वे कहते हैं कि ईश्वर-भक्ति में क्या है?

परम स्वाद सबही जू निरन्तर अमित तोष उपजावै ।

परम स्वाद का नाम सुन तो लो, लेकिन साधारण लोगों को मालूम नहीं है। इन्द्रियों के विषयों में परम स्वाद नहीं है। परम स्वाद कैसा है? उसमें बहुत-बहुत सन्तुष्टि होती है, लेकिन मन को ग्रहण नहीं होता है, उसके लिए अप्रत्यक्ष है। उसको वही जानता है, जो पाता है। भक्ति करते-करते जब ईश्वर-दर्शन हो जाता है, तब ईश्वर-दर्शन का परम स्वाद मिलता है। उसमें तृप्ति होती है, शान्ति होती है। संसार के सुखों में शान्ति नहीं है। ईश्वर की भक्ति करने के लिए ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान अवश्य चाहिए। जैसे मुसाफिर को अवश्य ज्ञान होना चाहिये कि उसको कहाँ पहुँचना है? क्या लेना है? यह ज्ञान नहीं है तो वह चलता ही रहेगा। कहाँ पहुँचना है, यह मालूम नहीं तो क्या रास्ता होना चाहिए, उसको क्या मालूम? जैसे मुसाफिर को मालूम नहीं कि क्या लेना है, कहाँ जाना है? तो वह हैरान-ही-हैरान होता रहेगा। इसी तरह ईश्वर-स्वरूप निर्णय के बिना भक्त भटकता रहता है। इसलिये ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान अवश्य होना चाहिये। जहाँ ईश्वर का दर्शन है, वहाँ पहुँचना है। क्या लेना है? ईश्वर-दर्शन। क्या स्वाद मिलेगा। परम स्वाद मिलेगा। कोई इच्छा नहीं रहेगी। कोई तृष्णा नहीं रहेगी। कोई विकार नहीं रहेगा। निर्विकार होकर, ईश्वर से मिलकर एकमेक हो जाता है। फिर भी दु:ख होता है? कभी नहीं। ईश्वर-स्वरूप में स्वरूप का अर्थ है—स्व=अपना, रूप=जो दृश्य है। जो केवल रूप है, वह केवल दृश्यमान है। हर-एक की देह भी दृश्यमान है, वह रूप है।

जैसा भी जो कुछ दृश्य है, वह रूप है। किसका रूप है? निज का नहीं, शरीर का रंग-रूप है। जैसे रंग-बिरंग के जो कपड़े पहनते हैं, सो रंग-बिरंग कपड़े के रंग हैं, शरीर के नहीं। अनेक रंग कपड़े के हैं, पहननेवाले के नहीं। इसी में कोई नाटा, कोई लम्बा, कोई तगड़ा है, तो यह शरीर का रूप है। आखिर में शरीर मरता है, जलाया जाता है। यह नाशवान है। यह नाशवान हमारा और आपका शरीर ही नहीं है, संसार में जितने दृश्यमान हैं, सभी नाशवान हैं, माया रूप हैं। कुछ काल है, फिर खत्म हो जाएगा। अपना स्वरूप क्या है? अर्थात् अपने तईं का रूप है आत्मा, जीवात्मा, चेतन आत्मा। इन तीनों में कुछ कहो, एक ही बात है। आत्मा को ही स्वरूप कहते हैं। ईश्वर को लोग सगुण भी कहते हैं और निर्गुण भी। शरीर-रूप को सगुण कहते हैं और निज-रूप को निर्गुण कहते हैं। दृश्यमान रंग-रूप को सगुण कहते हैं। जो शरीर में है, वह निर्गुण है। शरीर सगुण तो है ही, यह साकार भी है। साकार यानी इतना लम्बा-चौड़ा। निर्गुण जो है वह निराकार है। निर्गुण-निराकार सगुण-साकार शरीर में है। जैसे घर बनाकर शरीर को रखते हो, उसी तरह शरीर-रूप घर में तुम निर्गुण निराकार रहते हो। इसी तरह ईश्वर के लिए समझो। मूल में निर्गुण स्वरूप है—

अगुन अखण्ड अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

जब अपनी ही माया से वह सगुण रूपवाला शरीर को धारण करता है, तब वही सगुण कहलाता है। शरीर सगुण-साकार है। उसको धारण करनेवाला निर्गुण-निराकार है। ईश्वर-दर्शन तब पूरा-पूरा होता है, जब पहले सगुण-साकार के माया रूप का दर्शन होता है और पीछे निर्गुण-निराकार का दर्शन हो। सगुण-साकार का भी दर्शन हो और निर्गुण-निराकार का भी। जहाँ पहुँचने पर ऐसा दर्शन हो, वहाँ जाना है। और लेना क्या है? पहले सगुण-साकार का दर्शन, फिर निर्गुण-निराकार का दर्शन। ईश्वर का दर्शन, यह असली दर्शन है। बिना निर्गुण निराकार-दर्शन के संसार में आना-जाना बना रहेगा। और आने-जाने पर दुःख भोगना पड़ेगा। इसी को समझाने के लिए हमलोगों का सत्संग है। और अन्य भक्ति-परक सत्संग में सगुण-साकार पर जोर दिया जाता है, उसमें अमित तोष नहीं मिलता है। इसके लिए ऐसी भक्ति करो, जो निर्गुण-निराकार तक पहुँचावे। निर्गुण-निराकार भक्ति को बहुत कम लोग जानते हैं। सगुण-साकार को बहुत लोग जानते हैं। कितने कहते हैं कि निर्गुण के लिए कुछ कहना भूसा कूटना है। कोई कहते हैं कि बड़ा कठिन है। अरे ! जो जितने अधिक विद्वान हैं, वे उतने ऊँचे दर्जे पर संसार में रहते हैं। उन्होंने कठिन परिश्रम किया है। कड़ा-से-कड़ा परिश्रम कर वे विद्या उपार्जन कर ही लेते हैं। जैसे बड़ा परिश्रम कर विद्या अर्जन करते हैं, उसी तरह ईश्वर-दर्शन के लिए कड़ा परिश्रम कर ईश्वर-दर्शन करते हैं। सगुण-साकार का दर्शन बाहर में होता है और निर्गुण-निराकार का दर्शन अन्दर में होता है। सगुण-साकार का दर्शन-अदर्शन भी होता है। लेकिन निर्गुण-निराकार का दर्शन-अदर्शन कभी होने की बात ही नहीं है। सगुण-साकार का दर्शन इन्द्रियों के ज्ञान में रहते हुए होता है। निर्गुण-निराकार का दर्शन इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं होता है। सगुण-साकार का दर्शन इन्द्रियों से होता है। इन्द्रियों के द्वारा दर्शन—माया है, माया है, माया है। लक्ष्मणजी ने श्रीराम से पूछा था कि 'माया किसको कहते हैं?' तो श्रीराम भगवान ने कहा था—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

मन-बुद्धिवाला दर्शन माया-दर्शन है। माया-दर्शन से माया में कुछ लाभ करे सकते हो, लेकिन तृप्त नहीं हो सकते हो। इसके लिए मनु-शतरूपा,

कश्यप-अदिति और दशरथ-कौशल्या के इतिहास को पढ़कर जानो। मैं जो कहता हूँ, सत्य-सत्य कहता हूँ। तुलसीदास जी ने कहा—

निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुन जान नहिं कोय।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय।।

मुनियों के मन में भी भ्रम होता है सगुण रूप के दर्शन से। ब्रह्मा को भी भ्रम हुआ श्री कृष्ण भगवान की बाल-लीला को देखकर। उन्होंने ग्वाल-बाल और गौओं को पहाड़ में छिपा रखा। भगवान ने वैसे ही ग्वाल-बाल और गौवें बना लिये। ब्रह्मा ने देखा, ये सब ग्वाल-बाल और गौवें तो हैं ही, तब उनका भ्रम दूर हुआ। तब भगवान ने अपनी माया हटा ली। जो निर्गुण को केवल बात-ही-बात में कहते हैं, वे निर्गुण-स्वरूप को जानते नहीं हैं। यदि वे बौद्धिक रूप में जानते भी हैं तो लोगों को धोखा देते हैं। ईश्वर का ज्ञान प्रत्यक्ष केवल जीवात्मा को होता है। उसी से मन-बुद्धि में चेतन धारा है। जब-जब वह धारा सिमटती है, तब-तब मन-बुद्धि में ज्ञान नहीं रहता है। जगने पर सभी इन्द्रियों में ज्ञान रहता है। स्वप्न में बाह्य इन्द्रियों को ज्ञान नहीं रहता है। लोग समझते नहीं, सोचते नहीं। मन-बुद्धि और इन्द्रियों का ज्ञान चेतन आत्मा का ही ज्ञान है। मन के द्वारा इन्द्रियों को ज्ञान होता है। तो मन का भी अपना ज्ञान है, संकल्प-विकल्प करना। उसी तरह चेतन आत्मा का भी अलग ज्ञान है, और वह है ईश्वर का दर्शन। मन का ज्ञान संकल्प-विकल्प है। लेकिन इन्द्रियों में संकल्प-विकल्प नहीं है। चेतन आत्मा को इन्द्रियों के संग में वह ज्ञान नहीं होता, जो इन्द्रियों का संग छोड़कर होता है। यह समझकर आश्चर्य नहीं करो कि निर्गुण-निराकार का ज्ञान किसको होगा? आत्मा को होगा, इन्द्रियों को नहीं। आत्मा का ज्ञान अपने से होगा। जब चेतन आत्मा को अपना ज्ञान होगा, तभी ईश्वर का भी ज्ञान होगा। इसके लिए अपने अन्दर चलना होगा। अभी अमृत की वर्षा हुई। अध्यात्म ग्रन्थ का सार-सार ज्ञान कह दिया। जिसको याद रहा उसको अमृत मिला। जिसको याद नहीं रहा, वह अमृत को खो दिया।

सारांश यह कि आदि-अन्त-रहित, असीम, परम सनातन आत्मा को सर्वव्यापी और सर्वव्यापकता के परे भी कहना चाहिए। अन्तःकरण-युक्त शरीरस्थ आत्मा सर्व शरीर को, उसकी सब इन्द्रियों को चेतना, जीवन और ज्ञान देती है तथा इन्द्रियों को जो निज-निज विषय ग्रहण करने की जो ज्ञानमयी शक्ति है, वह चेतन आत्मा की ही है। इस तरह इन्द्रिय-युक्त होकर चेतन आत्मा का ज्ञान मायावी विषयों के अन्तर्गत ही सीमित रहता है। उससे मायातीत पदार्थ ग्रहण नहीं हो सकता। परन्तु इन्द्रियों के संग से असंग होकर चेतन आत्मा का जो निजी ज्ञान होता है, उससे मायातीत का ग्रहण होना पूर्ण रूपेण निश्चित है। इसी ज्ञान के द्वारा उसको ईश्वर का दर्शन होता है। अतएव यह ध्रुव है कि चेतन आत्मा को निजी ज्ञान में जो ग्रहण हो, वही मायातीत परम पुरातन, परम सनातन; असीम, अनन्त, सर्व-व्यापक और सर्वव्यापकता के भी परे परमात्मा-ईश्वर हैं। ईश्वर-भक्ति ईश्वर-दर्शन के लिये ही की जाती है। इस हेतु चेतन आत्मा को इन्द्रियों के संग से असंग करना अत्यन्त अपेक्षित है। यह पूर्ण ध्यान-योग से ही होने योग्य है। ध्यान-योग की पूर्णता नादानु-सन्धान की समाप्ति पर ही होगी। इसलिये भक्त साधक को चाहिये कि ध्यान-योग के विषय में पूर्ण रूप से जानकर ईश्वर-भक्ति के हेतु साधन करे।

H

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत रानीगंज में वार्षिक सत्संग के अवसर पर दिनांक २–१–१९७० ई० को अपराह्न में हुआ था।

३१०. जहाँ आपस में प्रेम रहता है, वहाँ सुबुद्धि रहती है

प्यारे लोगो !

आप अपने घर में कई समांग से हैं। सबको आपस में प्रेम रहे—इस भाँति एक साथ रहते रहेंगे तो आप बहुत सुख मालूम करेंगे, चाहे आप थोड़े लोगों से घर में रहें वा अधिक लोगों से। जिनके घरों में मेल से रहते होंगे, कितने सुख से रहते होंगे, समझिये। जहाँ आपस में प्रेम रहता है, वहाँ सुबुद्धि रहती है, जहाँ प्रेम नहीं रहता, वहाँ दुर्बुद्धि रहती है।

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।।

—गो० तुलसीदासजी

यह बहुत ठीक बात है। जहाँ सुमति है, वहाँ बहुत सम्पत्ति है, जहाँ कुमति है, वहाँ विपत्ति-ही-विपत्ति है। अपने देश की क्या हालत हो गई है? आपस की सुमति टूटी, दूसरे देश के लोग यहाँ आकर शासन करने लगे। जो इतिहास पढ़े हैं, उनको याद आता होगा—यहाँ के जो बड़े राजा थे। पृथ्वीराज, वे दिल्ली में रहते थे। पृथ्वीराज का घर वहाँ नहीं था, वे नाना के यहाँ रहते थे। उनके नाना को पुत्र नहीं था, इसीलिए इनको राजा बनाया गया था। कन्नौज में राजा जयचन्द रहते थे, वे भी दिल्ली के उन्हीं राजा के नाती थे। पृथ्वीराज और जयचन्द दोनों मौसेरे भाइयों में विवाद हुआ। जयचन्द जाकर दूसरे राजा को, जो देश से बाहर था—खबर दिया। वह पहले से ही दिल्ली दखल करना चाहता था, पर पृथ्वीराज से हार-हारकर अपना देश जाता था। दिल्ली दरवार और कन्नौज दरवार में फूट होने के कारण दूसरे देश का राज्य हो गया। इस्लाम धर्मवालों का सात सौ वर्ष तक राज्य—शासन चला। इसके बाद अंग्रेजों को शासन हुआ। इन बातों को समझनेवाले हमारे देश में हुए। पचास वर्षों तक कोशिश हुई। काँग्रेस यानी बड़ी सभा का शासन होगा, ऐसा हुआ। अंग्रेज बड़े शक्तिशाली थे। उनका देश बहुत छोटा, लेकिन एक मेल के लोग—एक ख्याल के वे लोग थे। वहाँ आज भी राजा है, लेकिन राजा से विशेष अधिकार सभा को है। अंग्रेज यहाँ राज्य करते थे। यहाँ मेल हो जाने पर अंग्रेजों को यहाँ से जाने को कहा गया। होते-होते उनकी शक्ति कम हो गई और वे यहाँ से चले गये।

हम सबको अब स्वराज्य है, स्वराज्य में कमी है सुराज होने की। सुराज कहते हैं—जहाँ चोरी, बेईमानी, ठगी, घूसखोरी आदि दुष्टकर्म नहीं हो। तब स्वराज्य में सुराज मिल जाये। एक मेल से स्वराज्य मिला है, लेकिन सुराज नहीं। सुराज कौन लावेगा, आज के शासक? कभी नहीं। ये लोग परिश्रम करते हैं, लेकिन सुराज ला नहीं पाते हैं। जैसे—एकमत पहले हो गये थे—विदेशी राज्य को भगाया, वैसे फिर एकमत हो तो सुराज आ जाए।

खेत में चीज है, तो उसका पहरा करो। घर में सामान की रक्षा के लिए पहरा रखो। बाहर जाओ तो अपनी रक्षा आप करो। यह सब काफी दिक्कतें हैं। क्यों? इसलिये कि सुराज नहीं है। सुराज लाने के लिए सुबुद्धि लानी होगी। सुमति लानी होगी। जो झूठ बोलता है, दुष्टकर्म करता है, उसको लोग कहते हैं कि इसको सुबुद्धि नहीं है—यह पापी है।

नहिं असत्य सम पातक पुञ्जा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

अपने देश में झूठ बहुत हो गया है, इसको

हटाओ। इसको हटाने कौन कहेगा? अधर्म तो थरथरा गया है। वह यदि आदमी होता तो कहता कि लोगों ने हमारी रीढ़ को तोड़ दिया है—अंग को खण्ड-खण्ड कर दिया है। इसलिए सब कोई धर्म से बँधो। जिससे शरीर ठीक रहे—रीढ़ ठीक रहे, वह है धर्म। पीठ की रीढ़ टूट जाये तो समझो क्या हालत हो? पीठिया घाव होता है तो बड़ा खराब हो जाता है। कितने मर ही जाते हैं। इसलिए सत्य बोलो। धर्म को अपनाओ। ईश्वर को मानना, ईश्वर की भक्ति, यही धर्म का सार है। जिस धर्म में ईश्वर की भक्ति नहीं, वह असार धर्म है। इसलिए हृदय खोलकर भक्ति को अपनाओ। जो भक्ति नहीं अपनाते, उनमें सत्य बोलने की शक्ति नहीं आती। ईश्वर को समझो, उसका प्रत्यक्ष रूप में संसार में दर्शन नहीं कर सकते। यद्यपि वे संसार में हैं, पर पहचानते क्यों नहीं हो? जिस यंत्र से पहचानना चाहिए, वह यन्त्र नहीं है। तो जैसे आँख से रंग-रूप देखते हो, आँख नहीं तो रूप-रंग क्या देखेगा? इसीलिये कहा—'खोजु रूह के नैना।' (कबीर साहब) उपनिषद् में भी आया है—आत्मा से ही आत्मा का ग्रहण होता है। कबीर साहब ईश्वर स्वरूप के लिये कहते हैं—'श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य। ऊँचे-नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।' उससे कहीं खाली नहीं है। 'दृष्टि दृष्टि सों देखा' यानी दृष्टि की भी दृष्टि जो है, उससे देखो। जो दृष्टि को भी दृष्टि शक्ति प्रदान करता है, वह है चेतन। हमलोग जिस आँख से देखते हैं। वह चर्म दृष्टि है। इससे उस ईश्वर को नहीं देख सकते। किससे देखेंगे? 'खोजु रूह के नैना।' कबीर साहब ने कहा है—यह बात बहुत गंभीर है। वह चेतन आत्मा आप स्वयं हैं। आप शरीर और इन्द्रियों से स्वयं बँधे हुए हैं। शरीर-इन्द्रियों के संग का ज्ञान माया का ज्ञान है। शरीर-इन्द्रियों के संग वाला ज्ञान नहीं हो। केवल चेतन आत्मा का ज्ञान ईश्वर-दर्शन का ज्ञान है। जो ज्ञान, जो शिक्षा इस ज्ञान की खोज के लिये हो, उसको प्राप्त करने का प्रयास करना धर्म है। इसकी शिक्षा संत लोग दे गये हैं। उसको जानना चाहिए और उसको करना चाहिए। पुस्तकों को खूब पढ़ लो और करो कुछ नहीं तो पढ़ने का क्या फल मिलेगा? खेती के लिए भी महाविद्यालय है—उसमें पढ़ लिया कि इस समय खेत जोतो, इस समय बोओ और खेत को जोतो-बोओ नहीं तो क्या होगा? बिना किये कुछ होता नहीं। इसी तरह ईश्वर-भक्ति के सम्बन्ध में चेतन आत्मा को शरीर इन्द्रियों के ऊपर उठाना है। इसके लिये जो काम अपेक्षित है—वह है पहला—सत्संग। दूसरा—आचरण ठीक रखो, तीसरा—उपासना—ध्यान करो। इन तीनों कामों को करो। सत्संग करो, ठीक से समझो, विधि भी जानो और उपासना करो। सत्संग के द्वारा उस कर्म का विचार दिया जाता है, जो कि नित्य करने के हैं। बनानेवाले बना देते हैं। अच्छे आचरण को सदाचार कहते हैं। अच्छे आचरण से रहोगे, जिसमें—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार पाँचों नहीं हैं। पाँचों पापों को नहीं करते रहोगे तो आपका धर्म अच्छा हो जायेगा। जितने लोग ऐसे बनोगे, एक मन के हो जाओगे। सत्यता आयेगी, झूठ भागेगा, तब आपस में मेल होगा। इसको कोई तोड़ नहीं सकेगा। सुख से रहोगे। तब स्वराज्य के साथ सुराज को भोगोगे। स्वराज्य अपना राज है और सुराज यानी दुष्ट कर्म-रहित राज। इस देश में कभी कोई पहले ताला नहीं लगाता था, जिसके घर में जो कुछ था, वैसे पड़ा रहता था, कोई कुछ लेता नहीं था। झूठ तो जानते ही नहीं थे। जो एकान्त में बात कहते थे, वही दस आदमी के बीच में। ऐसा नहीं कि एकान्त में एक बात हो और दस आदमी के बीच

में दूसरी बात हो। महाजन से जो कोई कर्ज-उधार लेते थे, उसकी कागज पर लिखा-पढ़ी नहीं होती थी। लेनेवाले ठीक-ठीक पहुँचा देते थे। सत्य में बरतो—एक धर्म में बरतोगे। आपस में मेल से रहोगे, सुख होगा। इसलिये वेद में आया कि आपस में मेल से रहो। एक मन से ईश्वर की उपासना करो।

एक दूसरे का खण्डन करते हैं। पहले कोई किसी का खण्डन नहीं करते थे। एक ईश्वर का ज्ञान जैसा दिया गया है, वैसी उपासना करते थे, सभी ईश्वर को अपने अन्दर खोजते थे। यदि सभी नहीं तो ऐसे लोग अधिक थे और ऐसे लोग कम थे, जिनमें धर्म की प्रबलता नहीं थी। धर्म की कमी के कारण देश में सुख की कमी हो गयी है। धर्म धारण होगा, घर में सुख से रहने के लिये। धर्म धारण होगा, मोक्ष पाने के लिये। संतों ने सबके ख्याल को मिलाकर कहा— सबका ईश्वर एक है, ईश्वर को पाने का एक ही रास्ता है। सब कोई अपने को अन्दर-अन्दर चलावेगा, शरीर-इन्द्रियों से अलग होकर अपने स्वरूप में रहकर मोक्ष पावेगा। ईश्वर-दर्शन होगा—सुख से रहोगे। ईश्वर की भक्ति ऐसी है कि उसमें सदाचार का पालन होता है। सदाचार पालन से सुन्दर देश बनता, सुन्दर लोग बनते हैं। पहरा के लिए चौकीदार वा अपराधी को पकड़ने के लिये पुलिस की जरूरत नहीं होती। सभी कोई धर्म को पकड़ो, सुखी रहोगे। H

यह प्रवचन जिला संथालपरगना करमाटाँड़ ग्राम में दिनांक ९–१–१९७० ई० को प्रातःकालीन सत्संग के अवसर पर हुआ था।

३११. सुख के लिए भटको नहीं अन्दर चलो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

मनुष्य को अपने जीवन में सुख से रहने के लिये बहुत इच्छा रहती है। मनुष्य यह भी अवश्य ही जानता है कि यह जीवन समाप्त हो जायेगा। जीवन के समाप्त हो जाने पर मैं यहाँ नहीं रहूँगा। कुछ लोगों का ख्याल है कि जीवन समाप्त हुआ, शरीर जला दिया गया, दफना दिया गया, कुछ बचा नहीं। परन्तु दूसरा ख्याल बतलाता है कि कुछ बचा नहीं सो मत समझो। बचा बहुत कुछ, थोड़ा ही नहीं रहा। जो जला दिया गया, वह बहुत थोड़ा-सा। दूसरा ख्याल बतलाता है कि जो बहुत बच गया, वह क्या है? देखने में तो कुछ नहीं आया। अवश्य ही उसको नहीं देख सकते, लेकिन बचा अवश्य। तुम्हारे देखने में जो शरीर था, वह जल गया। इस शरीर के अन्दर जो था, उसको जीवन-काल में भी नहीं देख सकते थे और मृत्यु होने पर तुम क्या देख सकते हो? देख सकते हो, लेकिन यदि तुम देखने की विधि जानो। यदि बुद्धि से ही काम लो, तो समझो कि जबतक अंकुर नहीं होता, छोटा पौधा नहीं होता। बिना बीज के अंकुर नहीं और बिना अंकुर के पौधा नहीं होता। किसी के होने में बीज होता है, फिर उसके उगने से अंकुर रूप आता है। वही बढ़ते-बढ़ते बड़ा वृक्ष होता है। मतलब बीज, अंकुर और वृक्ष। बीज को कारण समझो, अंकुर को सूक्ष्म समझो और वृक्ष को स्थूल समझो। ये तीनों साथ-साथ हैं। स्थूल शरीर जल गया तो सूक्ष्म और कारण बच गये। इन दोनों के बचने पर यह भी ख्याल करो कि उसके लिये कोई भण्डार है। कारण एक ही किस्म की नहीं है। उसके भण्डार को महाकारण कह

सकते हो अथवा अपने देश की शास्त्रीय भाषा में त्रिगुणात्मिका साम्यावस्थाधारिणी जड़ात्मिका मूल प्रकृति कह सकते हो। इससे कारण होता है, कारण से सूक्ष्म होता है, उससे फिर स्थूल होता है। स्थूल तुम देख सकते हो; सूक्ष्म, कारण और महाकारण नहीं देख सकते हो। जीवन-काल में नहीं देख सकते हो, तुम्हारी मृत्यु हो गई तो जो जीवित हैं, वे देखते हैं कि कुछ बचा नहीं। तीन बच गये, लेकिन ये तीनों-चारों जड़ हैं—ज्ञानहीन हैं। जीवन-काल में यह शरीर ज्ञानमय मालूम होता है, तो जाना जाता है कि शरीर के साथ-साथ ज्ञानमय पदार्थ भी है, उसको चेतन आत्मा कहते हैं। वह चेतन आत्मा मूल प्रकृति में व्यापक है। कारण में भी, सूक्ष्म में भी और स्थूल में भी वह चेतन आत्मा है। मृत्यु के उपरान्त तीन शरीरों के साथ जीवात्मा रहता है। मतलब यह कि स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण; इन चारों के अन्दर चेतन आत्मा है। मृत्यु होने पर केवल स्थूल शरीर जलाया वा दफनाया गया। बाकी तीन शरीरों के साथ जीवात्मा निकल गया। उसको तुम नहीं देख सके। जीवित काल में चार जड़ शरीरों के साथ जीवात्मा है। ऊपर से स्थूल शरीर है। स्थूल शरीर को ही जलाया गया। बाकी तीनों को तुम नहीं देख सकते हो। फिर चेतन आत्मा को क्या देखोगे? तुम्हारी दृष्टि सूक्ष्म नहीं है, फिर क्या देखोगे? तुम्हारी दृष्टि तत्त्वतः सूक्ष्म तो है ही; लेकिन स्थूल आवरण के साथ है। इसलिये नहीं देख सकते हो। स्थूल आवरण सहित दृष्टि को चर्मदृष्टि कहते हैं। स्थूल शरीर छूटने पर सूक्ष्म तत्त्व के संग जीवात्मा है। सूक्ष्म दृष्टि कैसे होती है, इसकी युक्ति प्राप्त करानेवाले गुरु के दर्शन तुमको नहीं हुए। उनकी युक्ति के बिना और उनके बताये साधन के किये बिना तुम सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकोगे। इसलिये स्थूल शरीरधारियों के लिये सूक्ष्म अव्यक्त ही रह गया। मेरे कहने का मतलब यह कि जीवन-काल में लोग सुख से रहना चाहते हैं, तो उनसे पूछो कि शरीर छूटने पर सूक्ष्म शरीर में रहने के लिये सुख चाहते हो कि दुःख? सुख चाहते हो। इसी तरह कारण शरीर में रहकर सुख चाहते हो कि दुःख? स्थूल जड़, सूक्ष्म जड़, कारण जड़; इन जड़ तत्त्वों के साथ रहने पर जड़ के संग जो सुख होना चाहिये, सो होगा। वह कैसा सुख होता है?

जैसे सड़सी लौह की, छिन पानी छिन आग।
तैसे सुख दुःख जगत के, सहजो तू तजि भाग॥

कभी आग में, कभी पानी में। कभी सुख में, कभी दुःख में। जो कुछ भी थोड़ा मिलता है, वह बिल्कुल संतुष्ट कर देनेवाला सुख नहीं है। इसी तरह सूक्ष्म का, कारण और महाकारण का भी सुख है कि दुःख के बाद सुख और सुख के दुःख आवेगा, सन्तुष्टि नहीं हो सकेगी। सन्तुष्टिवाला सुख कहाँ है? ढूँढ़ो। शरीरों को छोड़कर, अपने आप में रहकर कैसा होता है? अव्यक्त है। अन्दाज करो कि जड़ के साथ रहते थे, तब सुख कहाँ था? तब भी सुख के मूल तुम ही चेतन आत्मा थे। गोस्वामी तुलसीदासजी ने बड़ा अच्छा कहा है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी॥

तुम स्वयं सुख-रूप हो। ख्याल करो कि जब तुम जगे रहते हो, बाहर के विषयों का संग होता है। बाहर विषयों में इन्द्रियों के संग से सुख मानते हो। सोने पर बाहर का विषय नहीं, फिर भी तुम सुख पाते हो। यह सुख कहाँ है? तुम्हारी जिभ्या पर नीम का पत्ता था। लेकिन स्वप्न में तुम देखते हो कि मिसरी खाता हूँ, तो मिसरी की मिठास मालूम होती है, नीम का कड़वापन नहीं। मिसरी की मिठास कहाँ से आई? अपने अन्दर मिठास का ख्याल किया, मीठा लगने लग गया। असल में

सुख-स्वरूप तुम स्वयं हो। यही थोड़ा नमूना है कि जैसा चाहते हो, वैसा हो जाता है। स्वप्न, जाग्रत के बीच तन्द्रा होती है। वहाँ तुमको सरूर वा चैन मालूम होता है। यह सरूर वा चैन कहाँ है? तुम्हारे अन्दर है। सुख-स्वरूप तुम हो, सुख जड़ में नहीं, तुममें है। इस बात को केवल विचार-ही-विचार में रहकर प्रत्यक्ष रूप में नहीं जान सकते हो। जिभ्या में जो षट्रस मालूम होते हैं, ये जबतक जगे रहते हो, मालूम होते हैं। जब तुम सो जाते हो, तुम्हारी शक्ति वा चेतन-धारा बाहर की ओर नहीं है, अन्दर की ओर है, फिर भी तुम सुख पाते हो। विचार करने पर मालूम होता है कि अन्दर का सुख है। लेकिन स्वप्न और तन्द्रा का सुख क्षणिक है। जड़ के संग से छूटकर, अपने आप में रहकर कैसा होगा? जिसने कोशिश की, जिसने पाया, उसने कहा कि अब सुख हुआ। सूरदासजी महाराज ने कहा—

परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ।।

यहाँ संसार का सुख जो विषयों से मालूम होता है, इससे उस सुख को समझाया नहीं जा सकता। नमक कैसा लगता है, समझाया नहीं जा सकता। जिभ्या पर रखो, तब मालूम होगा। जब इन्द्रिय-सुख का वर्णन नहीं होता है, तब इन्द्रियातीत सुख का वर्णन कोई कैसे कर सकता है? सन्तों ने कहा—सुख के लिये भटको नहीं, अपने अन्दर चलो। जड़-विहीन होकर रहना, अपने आप में रहना अपनी ओर होना है। जो इस ओर जाता है, वह जानता है कि जड़ के संग के कारण से सुख जो मिलता है, वह सन्तुष्टि नहीं दे सकता है। अपनी आपा की ओर चलो। इसके लिये बाहर ढूँढ़ने की जरूरत नहीं। अपने शरीर के अन्दर अपनी आपा है, उसकी खोज अपने अन्दर करो, सन्तों ने कहा है। अवश्य ही ज्ञान चाहिये। ज्ञान के लिये सत्संग चाहिये। सत्संग से ज्ञान होता है कि इसको सिखलानेवाला चाहिये। संसार का ज्ञान सीखने के लिये गुरु की आवश्यकता है। इस अध्यात्म-विद्या वा ज्ञान के लिये गुरु की आवश्यकता नहीं है? गुरु की आवश्यकता है, गोरू की नहीं। गोरू यानी जानवर। अपना ज्ञान चाहिये। सत्संग में क्या है?

सन्त संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पन्थ ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, स्रुति पुरान सद्ग्रन्थ ।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

यह मोक्ष का धर्म है। परन्तु इसके लिये यह बात नहीं कि घर छोड़ो, घर के कर्त्तव्यों को छोड़ो, ऐसी बात नहीं। हमारे देश का शास्त्र सिखाता है कि घर के कर्त्तव्यों का पालन करते हुए मोक्ष का साधन यानी ईश्वर-भजन सभी कोई कर सकते हो। बाबा नानक ने कहा है—

राज महि राज जोग महि जोगी । तप में तपीसुर गृहस्थ महि भोगी ।।
ध्याय ध्याय भक्त: सुख पाया । नानक तिस पुरुष का किन अन्त न पाया ।।

ये सब-के-सब कर सकते हो। राज्य करते-करते राजा कर सकते हो। गृहस्थ हो, कर सकते हो। पुरुष हों, स्त्रियाँ हों, इस देश के, उस देश के, किसी देश के होओ, ध्यान करो, पाओगे। कबीर साहब ने कहा है—

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै ।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि वन नहिं जावै ।
वन के गये कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ।।
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै ।।
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ।
सुरत निरत सों मेला करि के, अनहद नाद बजावै ।।
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै ।
कहै कबीर सुनो हो अवधू, ज्यों का त्यों ठहरावै ।।

कबीर साहब जो कह गये हैं, सो ठीक है। वे

इसके नमूने थे। गुरु नानक और उनके पन्थ के दस गुरु इसके नमूने थे। दादू दयालजी इसके नमूने थे। हमको वे लोग उपदेश देते गये हैं। यदि हम कर्त्तव्य-पालन करते रहेंगे तो किसी-न-किसी जीवन में वह सुख अवश्य पायेंगे। इस जीवन में, इस संसार में सुख के वास्ते कौन काम है? तो वेद मन्त्र में आया है—'आपस में मेल से रहो।' घर के अन्दर जितने लोग हैं, मेल से रहो। एक पड़ोसी के साथ दूसरा पड़ोसी मिलकर रहो। एक गाँव के लोग दूसरे गाँव के लोगों से मेल करके रहो। एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त से मेल करके रहो। एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों से मिलकर रहो। यह मेल कौन करावेगा? सत्य का व्यवहार। सत्य के व्यवहार से आपस की प्रीति रहेगी। कबीर साहब ने कहा है—

साँचे को साँचा मिले, अधिका जुड़े सनेह।
साँचे को झूठा मिले, तड़ दे टूटे नेह॥

सब सत्य-सत्य रहो तो सुखमय संसार हो जायेगा। यह बहुत बढ़िया ज्ञान है। सत्य ही धर्म का मूल है। सबको एक साथ धर्म बाँधता है; क्योंकि इसकी जड़ में सत्य है। वह एक धर्म कौन-सा है? अध्यात्म-धर्म है। अध्यात्म-धर्म में सब मिल जाओ। चाहे वैदिक, ईसाई, इस्लाम कोई होओ। नाम चाहे कुछ दे दो। अध्यात्म-धर्म कहो वा और कुछ कहो। हमलोग संतमत कहते हैं। सभी सन्तों का धर्म है। सभी सन्तों का ज्ञान लेते हैं। यही सन्तमत है। सन्तमत किसी एक महात्मा के नाम पर का मत वा धर्म नहीं है। सारे संसार में सबको एक करके रखने के लिये सन्तमत है। सभी एक धर्म से मिलो। जैसे किसी का नाम रामदास, किसी का नाम कृष्णदास है, लेकिन सभी मनुष्य हैं। इसी तरह ईसाई, वैदिक, इस्लाम अलग-अलग धर्म के नाम है; लेकिन सबका मूल सत्य है। जो सत्य में रहता है, वह अध्यात्म में रहता है। जो अध्यात्म में नहीं रहता है, वह सत्य में नहीं रहेगा। जो सत्य धर्म को छोड़ेगा, वह गिरता-पड़ता रहेगा। सब कोई एक धर्म को स्वीकार करो। वैदिक, बौद्ध, ईसाई वा इस्लाम कोई हों, सबके भोजन का एक ही रास्ता है, उसी तरह ईश्वर पाने का सबका रास्ता एक है और वह रास्ता है अन्दर का। स्वराज्य है, बड़ी खुशी है। इसमें सुराज चाहिये। सुराज के लिये एक धर्म को स्वीकार करो। अन्तर्मुख चलो। अन्तर्मुख धर्म सबका एक है। इसी का प्रचार इस सत्संग से होता है।

यह प्रवचन भारत की राजधानी दिल्ली में अखिल भारतीय सन्तमत सत्संग के ६२वें महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक १.३—१९७० को प्रातःकाल में हुआ था।

३१२. जड़ आवरणों के हटाने पर ईश्वर-दर्शन

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

मेरे पूज्य गुरु महाराजजी ईश्वर-भक्ति का प्रचार करते थे। मैं भी वही प्रचार करता हूँ। ईश्वर-भक्ति के सम्बन्ध में यह जानकारी पहले ही चाहिए कि ईश्वर किनको कहें? पदार्थ-रूप में वे क्या हैं? और फिर ईश्वर-भक्ति के सम्बन्ध में विशेष जानें। मैं बहुत थोड़े-से शब्दों में कहता हूँ। जैसे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; इन पंच विषयों को पंच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा आप जानते हैं। एक इन्द्रिय का जो विषय है, वह दूसरी इन्द्रिय के

ज्ञान में नहीं आता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों में जो आता है, सब लोग वही जानते हैं, उससे विशेष नहीं जानते। ईश्वर के लिये कोई कहते हैं कि है; कोई कहते हैं कि नहीं है। आस्तिक लोगों का विश्वास है कि ईश्वर है। बुद्धि से विचारने पर भी ईश्वर का ज्ञान होता है और सद्ग्रन्थों में भी है। कठोपनिषद् में एक वाक्य है—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।

अर्थात् जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है।

ऐसा कुछ है कि नहीं, इस पर बुद्धिमान विचार करें।

सौर जगत—सूर्य का संसार—इस जगत को कहते हैं। इसके आदि में सूर्य को मानना अवश्य होता है। जो लोग पढ़े-लिखे हैं, वे जानते हैं कि सूर्य के नहीं होने से किसी जीव का कल्याण नहीं हो सकता। इस संसार को पंच भौतिक संसार भी कहते हैं। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर; इन पाँचों का ज्ञान हमें होता है। इनमें पहले मानने योग्य क्या है? तो कहा—आकाश है। आकाश के अन्दर वायु है। फिर अग्नि, जल और पृथ्वी है। प्रथम आकाश है। क्या आकाश से भी पहले कुछ मानने योग्य है? सद्ग्रन्थ में है—वह है अहंकार-समष्टि अहंकार। उससे भी पहले मानने योग्य है समष्टि बुद्धि। उससे भी पहले मानने योग्य है मूल प्रकृति। उससे भी पूर्व मानने योग्य है? वह है ईश्वर—परमात्मा। उससे भी पहले कुछ मानने योग्य है? कुछ नहीं। ईश्वर—परमात्मा के पहले कुछ मानना ईश्वर को नहीं मानना है। ईश्वर के लिये बाबा नानक कहते हैं—

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी सम्भउ, ना तिसु भाउ न भरमा।
साचे सचिआर विटहु कुरबाणु ।।

गो० तुलसीदासजी ने कहा—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

कबीर साहब ने भी कहा—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य ।।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य।
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा ।।
सबके मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा।
चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना ।।

मतलब यह कि सन्तों के ज्ञान के द्वारा ईश्वर-भक्ति का प्रचार हो। ज्ञान का प्रचार होता रहे तो सर्वसाधारण समझ सकेंगे। बाबा नानक के वचन को पंजाब के लोग भी और उससे कुछ बाहर के लोग समझ सकेंगे। पंजाबी भाषा वह है। जो कि आज राष्ट्रभाषा है, उसके जानकार भी उसको बहुत कुछ जान सकते हैं। कबीर साहब, गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज; ये सब ईश्वर के विषय में जो कहे हैं, देहात के लोगों को भी ज्ञान हो जाय, इसका प्रयास सन्त लोग किये हैं।

ईश्वर का ज्ञान इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं है; लेकिन वह परम पुरातन, परम सनातन है। उससे खाली जगह कोई नहीं हो सकती है। सबसे प्रथम वही मानने योग्य है। ईश्वर से प्रथम कुछ नहीं। लेकिन ईश्वर की पहचान किसके द्वारा हो? विषयों की पहचान इन्द्रियों के द्वारा होती है और ईश्वर की पहचान आत्मा के द्वारा। इन्द्रियों के द्वारा जिसकी पहचान हो, वह माया है—मिथ्या है। उसका नाश होता रहता है। ईश्वर इसलिये इन्द्रिय का विषय नहीं है कि वह माया नहीं है। ईश्वर की सत्ता है। माया की सत्ता नहीं है। एक अनादि अनन्त को

माने बिना यह निश्चय नहीं होगा कि सबसे पूर्व का क्या है? वह अनादि-अनन्त से पहले का कुछ हो, यह फाजिल बात है। अनन्त के पहले का, असीम के पहले का कुछ कैसे हो सकता है? अनन्त के पहले कुछ नहीं हैं। बहुत-सी चीजों को जोड़कर अनन्त नहीं हो सकता। सारे सान्तों के पार में अनन्त अवश्य है। अनन्त को किसी स्थान पर रखे, हो नहीं सकता। अनन्त सबका अवलम्ब है, अनन्त का कोई अवलम्ब नहीं है। कबीर साहब ने कहा है—

मूल न फूल बेलि नहिं बीजा, बिना वृच्छ फल सोहै ।

बिना वृक्ष के वह फल-स्वरूप है। ईश्वर अनादि-अनन्त-स्वरूपी है। ऐसे एक तत्त्व का होना बुद्धि में संभव है। सान्त को पहचानने के लिये जो इन्द्रियाँ हैं, वे उस अनन्त को पहचानने में अशक्य हैं। इसलिये वह इन्द्रियों से अप्रत्यक्ष है। उसको किससे प्रत्यक्ष करें? सन्तों ने कहा—आत्मा से। जो ईश्वर सबमें है, वह पूर्ण रूप से किसी एक रूप में व्यापक कैसे हो सकता है? अंश—रूप से व्यापक है। जैसे महदाकाश मठ में व्यापक होकर मठाकाश कहलाता है। आत्मा कहने से शरीरस्थ आत्मा का और परमात्मा का भी बोध होता है। लेकिन फुटा देने के लिये जीवात्मा और परमात्मा की संज्ञा अलग-अलग हो जाती है। इन्द्रियों का संग छोड़कर केवल अपने तईं में रहकर जिसका दर्शन होता है, वह ईश्वर है। ईश्वर इन्द्रियों के ज्ञान में आने योग्य नहीं है। इसलिये अपने को इन्द्रियों के संग से फुटाओ। पहले तो बहुत प्रेम चाहिये, यही है भक्ति। उसको जानो, यह है ज्ञान। और जिस यत्न से जानो, वह है योग। ज्ञान, भक्ति, योग; तीनों का मेल मिलाकर रखो, यदि ईश्वर-दर्शन चाहते हो। ईश्वर-दर्शन के लिये सरल योग भी है और कठिन योग भी है। किसी रूप को मन में बनाकर ध्यान करते हैं, इतना ही ध्यान नहीं है। यह तो आरम्भ है। आगे है—

ध्यानं निर्विषयं मनः। ध्यानं शून्यगतं मनः।।

इसमें पूर्ण एकाग्रता होती है। इतनी एकाग्रता हो कि एकविन्दुता हो जाय। यही है विन्दु-ध्यान। इसी को शाम्भवी मुद्रा-वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। जो इसमें प्रवेश करते हैं, वे पूर्ण एकाग्रता पाते हैं। उस एकाग्रता में ऊर्ध्वगति होती है। सूक्ष्म में प्रवेश करता है, तब परमात्मा का प्रकाश व्यक्त हो जाता है। इसी को बाबा नानक ने कहा—

घट घट अन्तरी ब्रह्मु लुकाइआ, घटि घटि जोति सबाई ।
बजर कपाट मुकते गुरमती, निरभै ताड़ी लाई ।।

मतलब यह कि जो गुरुमति हैं, गुरु की बुद्धि में चलते हैं, गुरु के अनुकूल चलते हैं, वे निडर ध्यान लगाते हैं, तो उनका बज्र-कपाट खुल जाता है और वे आगे बढ़ जाते हैं। कबीर साहब ने कहा है—

गुरुदेव के भेद को जीव जानै नहीं, जीव तो आपनी बुद्धि ठानै ।
गुरुदेव तो जीव को काढ़ि भवसिंधु तें, फेरि लै सुक्ख के सिंधु आनै ।।
बन्द कर दृष्टि को फेरि अन्दर करै, घट का पाट गुरुदेव खोलै ।
कहै कबीर तू देख संसार में, गुरुदेव समान कोई नाहिं तोलै ।।

ऐसे कोई गुरु मिलें, यत्न बतावें तो जानकर भजन करो।

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै, गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं।
गुरुदेव बिन जीव का तिमिर नासै नहीं, समुझि विचारि ले मने माहीं।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइए, जनम अनेक की अटक खोलै।
कहै कबीर गुरुदेव पूरन मिलै, जीव और सीव तब एक तोलै।।

यह सूक्ष्म मार्ग है। 'ध्यानं शून्यगतं मनः' यह है। सन्त लोग ऐसा कहते हैं, बिल्कुल ठीक है। कुछ भी भूल नहीं है, करके देखना चाहिए। ईश्वर के सम्बन्ध में ठीक-ठीक जानकारी हो, तभी साधन-भजन में मन ठीक-ठीक लगता है

सदाचार का पालन करना चाहिये। श्री मद्भगवद्गीता में कृष्ण भगवान ने जीव के लिए

कहा है कि जैसे पुराने कपड़े को छोड़कर प्राणी नया कपड़ा धारण करता है, वैसे ही स्थूल शरीर छूटने पर जीवात्मा सूक्ष्म शरीर धारण करता है। तब जीव सूक्ष्म शरीर में रहता है। उसके बाद कारण शरीर भी है। उसके अन्दर महाकारण शरीर भी है। इन सभी शरीरों में जीवात्मा रहता है। इसके लिये सत्यवान और सावित्री की कथा है कि सत्यवान के स्थूल शरीर से लिङ्ग शरीर को निकालकर यमराज ले गये। सत्यवान का स्थूल शरीर मर गया। सावित्री के पातिव्रत्य धर्म-पालन के कारण यमराज ने पुनः उसके लिङ्ग या सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर में प्रवेश करा दिया तो उसका पति जीवित हो गया। दादू दयालजी ने पाँच शरीरों का वर्णन किया है और कहा है—

घर माहैं घर निर्मल राखै, पंचौं धोवै काया कपरा ।।

स्थूल शरीर स्नानादि से पवित्र करो। सूक्ष्म को पवित्र करो और उसके ऊपर से स्थूल शरीर को हटाकर। कारण की पवित्रता होगी और उसके ऊपर से सूक्ष्म शरीर को हटाने से। महाकारण की पवित्रता होगी कारण शरीर को हटाने से और चेतनमय-चिदानन्दमय देह को पवित्र करो महाकारण को हटाकर। तब पूरी-पूरी पवित्रता आवेगी और ईश्वर-दर्शन होगा। यह स्थूल शरीर कुछ काल रहकर समाप्त होता है। लेकिन सूक्ष्म, कारण, महाकारण, ये शरीर योग-साधन—ध्यान-साधन करने से ही छूटते हैं। तब ईश्वर-दर्शन होता है। और कोई उपाय नहीं है। इसका यत्न करो। सन्तों ने इसका ज्ञान दिया है। यही उपदेश सुनाने मैं आया हूँ। यहाँ जो लोग जानते होंगे, जो लोग नहीं सुने हैं, वे भी सुनें, जानें। जो लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे भी बारम्बार सुनेंगे तो समझ जायेंगे। वे समझेंगे कि केवल स्थूल शरीर ही नहीं है। इसके अन्दर सूक्ष्म, कारण, महाकारण भी हैं। इन जड़ आवरणों को हटाने पर ईश्वर-दर्शन होगा। यह सूक्ष्म मार्ग है। बाबा नानक ने कहा है—

भगता की चाल निराली ।
चाल निराली भगताह केरी विषम मारगि चलणा ।।
लबु लोभु अहंकार तजि तृष्णा बहुतु नाहिं बोलणा ।
खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा ।।

और उपनिषद् में कहा है—

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।

यही सन्त कबीर साहब ने कहा है—

राह बारीक गुरुदेव तें पाइये जन्म अनेक की अटक खोलै।

यह बाहर का मार्ग नहीं है, अन्दर का है। बारम्बार सुनिएगा तो जानियेगा कि मैं अयुक्त बात नहीं कहता हूँ। सन्त-वाणी में इसका पूरा ज्ञान है। इसका मेल वेद से है और उपनिषद् से भी है। सन्तवाणी पढ़िये और वेद-उपनिषद् से मिलाइये तो एक मेल मिलेगा।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म के कौशल को योग कहते हैं। समत्व को योग कहते हैं। जिस-जिस कर्म में मन लगा है, वह योग कहलाता है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि समत्व में योग होता है। समत्व की प्राप्ति समाधि में होती है। यह साधन करो। श्री कृष्ण भगवान की बात मानकर जो इसमें लग जायेंगे, तो किसी-न-किसी जन्म में वे उसको अवश्य पायेंगे। सारे दुःखों से छूट जायेंगे। संसार में रहकर सन्तुष्ट रहेंगे। यहाँ सन्तुष्ट रहेंगे और परलोक में जाकर भी सन्तुष्ट रहेंगे, सुखी रहेंगे। इसी काम को मैं करता हूँ। आपलोग भी करें, सभी सम्प्रदायों में यही बात है कि ईश्वर को पाओ। सदाचारी बनो। ईश्वर-भजन करो। सन्तों के ज्ञान को जानो। H

यह प्रवचन भारत की राजधानी दिल्ली में अ० भा० सन्तमत-सत्संग के ६२वें महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक ४. ३. १९७० ई० को रात्रिकाल में हुआ था।

३१३.चौथी अवस्था में जाने का यत्न

प्यारे लोगो !

ईश्वर की भक्ति में तीन बातें अति आवश्यक रूप से होती हैं—स्तुति, प्रार्थना और उपासना। ये तीन बातें अति आवश्यक रूप से होती हैं। इनमें से किसी एक को हटा दो, ईश्वर-भक्ति नहीं होगी। सबसे पहले स्तुति करो। ऐसा कुछ भी नहीं, जो ईश्वर को पूजा-रूप में कोई दे सके; क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक हैं। जो कुछ है, ईश्वर के अन्दर है। ऐसा कुछ भोग्य पदार्थ नहीं, जो वे लें। सबके अंदर रहकर वे किसी वस्तु को नहीं लेते। कारण यह कि भोग्य वस्तु इन्द्रियगम्य है। इन्द्रियों के साथ रहनेवाले साधारण जीव हैं। वहाँ इन्द्रियों की पहुँच नहीं है। सबमें रहते हैं, किसी का भोग नहीं भोगते। ऐसा नहीं कि सबमें रहते हैं, तो भोगते ही होंगे। कहा गया है—

आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिन परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेखा।।
असि सब भाँति अलौलिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो उनको चढ़ायी जाय। बाबा नानक ने कहा है—

जा साहब से ना कछु चारा । ताको कीजै सद् नमस्कारा ।।

दण्डवत् प्रणाम के अन्दर ही स्तुति है। हम जो कुछ भी उपकार पाते हैं, ईश्वर की कृपा से पाते हैं। पहले कई दिनों तक मौसम खराब रहा, पानी पड़ा। सूर्य का प्रकाश हम ठीक-ठीक नहीं पाते थे, गर्मी ठीक-ठीक नहीं पाते थे। कष्ट पाते थे। अब सूर्य का उदय हो गया। गर्मी आ गई, कष्ट दूर हो गया। सूर्य जैसा पदार्थ कौन दे सकता है? ईश्वर के समान और ऐसा कोई शक्तिमान दाता नहीं, जो सूर्य के जैसा पदार्थ हमको दे सके। यदि कहो कि ईश्वर को हम नहीं देखते हैं, उनकी स्तुति हम कैसे करेंगे? तुम नहीं देखते हो; लेकिन वे ईश्वर तुमको देखते हैं। एक कथा है—

एक राजा था। वह जंगल शिकार खेलने गया। रास्ते में एक मुनि बालक को देखा। बालक बड़ा ज्ञानी था। राजा ने मुग्ध होकर मुनि बालक से कहा, तुम मेरे साथ चलो। मुनि बालक ने कहा—राजन्! तुम मेरी शर्त मानो, तो मैं तुम्हारे साथ जाऊँ। राजा ने कहा— तुम्हारी शर्त क्या है? मुनि बालक ने कहा—मुझे खिलाओ, तुम मत खाओ। मुझे वस्त्र पहनाओ, तुम मत पहनो। जब मैं सो जाऊँ, तुम जगकर पहरा करो। राजा ने कहा—सो नहीं होगा। जो मैं खाऊँगा, सो तुम्हें खिलाऊँगा। जो मैं पहनूँगा, तुम्हें भी पहनाऊँगा। मुनि बालक ने कहा—मेरा राजा ऐसा नहीं है। मुझे खिलाता है, वह नहीं खाता। मुझे पहनाता है, वह कुछ नहीं पहनता। मैं जब सोता हूँ, वह जगकर पहरा करता है। वह है ईश्वर।

मतलब यह कि परमात्मा ऐसे हैं, जो खाये नहीं, औरों को खिलावें। जो अपने वस्त्र नहीं पहनें, औरों को पहनावें। सब कोई सोते हैं, वे सोते नहीं, जगकर सबका पहरा करते हैं।

ईश्वर की ऐसी स्तुति करो कि उनके स्वरूप का ज्ञान हो जाय। इसलिए हमलोग प्रातःकाल ईश्वर की स्तुति करते हैं—'सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर...' आदि पद्यों को कहकर। जो ईश्वर की स्तुति नहीं करता, वह कृतघ्न है। उपकार के नहीं माननेवाले को कृतघ्न कहते हैं। जितने ईश्वर के माननेवाले धर्म हैं, सबमें ईश्वर-स्तुति की विधि है। इसलिये बराबर ईश्वर की स्तुति कीजिए।

ईश्वर की स्तुति के बाद और कोई स्तुति के योग्य हैं? हाँ ! हैं, संतजन। वे ईश्वर के प्रेम में रहते हैं, ईश्वर के भजन में रहते हैं और दूसरों को भी चेताते हैं। इसलिए वे भी स्तुति के योग्य हैं।

राम सिन्धु घन सज्जन धीरा । चन्दन तरु हरि सन्त समीरा ।।

राम समुद्र-रूप हैं और उनसे बादल-रूप सन्त निकलकर ज्ञान-रूप जल की वर्षा करते हैं। वे ईश्वर का भक्त बनाकर लोगों का बड़ा उपकार करते हैं। इसलिये सन्त भी स्तुति के योग्य हैं। इसलिए 'सब सन्तन्ह की बड़ि बलिहारी।' हमलोग पढ़ते हैं। सन्तों में से कोई हमारे गुरु होते हैं। वे हमारा ख्याल रखते हैं कि हम भूल में न पड़ें। वे हमको साधन-भजन बताते हैं। संसार की हानियों से भी बचाते और मोक्ष के लिये उपाय बताते रहते हैं। इसलिये उनकी भी स्तुति करते हैं। जो ईश्वर की, सन्त की, गुरु की स्तुति नहीं करते हैं, वे आत्महिंसक हैं। जो अपने उपकारक की स्तुति नहीं करे, वह आत्महिंसक की गति में जाता है।

किसी भी धर्म-सम्प्रदाय में अपने को मानो और उनके सिद्धान्त को नहीं जानो, तो किस काम का? गद्य और पद्य; दोनों में हमलोग सिद्धान्त को पढ़ते हैं। ईश्वर-नाम का कीर्तन भी हमलोग करते हैं—'अव्यक्त अनादि अनन्त अजय अज...' आदि। लोग वर्णात्मक शब्द को ही नाम कहते हैं। शब्द वर्णात्मक भी है और ध्वन्यात्मक में भी है। ढोलक, तबले, हारमोनियम आदि की आवाजें ही ध्वन्यात्मक शब्द नहीं हैं, बल्कि वे आपके अन्दर भी हैं। सृष्टि के मूल में जो शब्द हुआ, वह ईश्वर का असली नाम है। जिस नाम से जिसकी पहचान हो, वह शब्द उसका नाम कहलाता है। जिस शब्द के द्वारा ईश्वर की पहचान हो, वह ईश्वर का नाम है। उसी को स्फोट, ओ३म्, उद्गीथ आदि कहते हैं। जैसा सुनने में ये सब आते हैं, वैसा सुनने में वह नहीं है। जैसे ईश्वर सर्वव्यापक हैं, वैसे ही उनका आदि ध्वन्यात्मक नाम भी सर्वव्यापक है। ईश्वर वाच्य है, उसका वह ध्वन्यात्मक नाम वाचक है। वह ध्वन्यात्मक शब्द एक ही है और अव्यक्त है। फिर वह ध्वन्यात्मक शब्द वाच्य है और मनुष्य-भाषा के ये ओ३म्, स्फोट, उद्गीथ आदि वर्णात्मक शब्द कथित ध्वन्यात्मक के वाचक हैं। ईश्वर के नाम का भजन अवश्य करो। वर्णात्मक में ही रह जाओ, ध्वन्यात्मक में नहीं जाओ, यह ठीक नहीं। और केवल ध्वन्यात्मक का ही आदर करो और वर्णात्मक का नहीं, सो भी ठीक नहीं। दोनों का आदर करो। सन्तमत कोई एक महात्मा के नाम का पन्थ नहीं है। सब सन्तों का एक ही मत है। यह सन्तमत की परिभाषा हमलोग रोज पढ़ते हैं—'शान्ति स्थिरता वा निश्चलता को कहते हैं। शान्ति को जो प्राप्त कर लेते हैं, सन्त कहलाते हैं। सन्तों के मत वा धर्म को सन्तमत कहते हैं।' आदि।

भजन की विधि जानकर भजन करना चाहिए। नहीं तो लोग अपने धर्म को भूल जायेंगे। ईश्वर के नाम पर जो भजन नहीं करता, वह ठीक नहीं करता। प्रार्थना उसको कहते हैं कि मनुष्य को अपने सुख के लिये कुछ-न-कुछ इच्छा होती रहती है।

अपने सुख के लिये ईश्वर से माँग करो—प्रार्थना करो। इसलिए हमलोग विनती और प्रार्थना करते हैं। उपासना कहते हैं, ईश्वर के पास हम जायँ—ईश्वर के निकट हम अपने को करें। इसके लिए जो सुमिरण वा वर्णात्मक जप है, उसके द्वारा ईश्वर की ओर अपने को लगाते हैं। ईश्वर के पास जाने का जरिया हमलोगों ने जाना है, जो सन्तों ने बताया है। आप अपने शरीर में हैं और ईश्वर भी आपके शरीर में हैं, तब ईश्वर के पास जाने के लिए हम किधर जायँ? इन्द्रियों में रहकर केवल माया का ज्ञान होता है। मैं इस शरीर में हूँ और ईश्वर सर्वव्यापक होने के कारण हमारे अन्दर भी हैं, तब बाहर-बाहर क्यों जाओ। अन्दर-अन्दर

चलो। जैसे जागते हुए जानते हो कि हम इन्द्रियों के घाटों में हैं और स्वप्न में जाते हो, तो तन्द्रा में अपने को भीतर की ओर सिमटते मालूम करते हो। उस वक्त आपकी वृत्ति शरीर के बाहर नहीं, भीतर रहती है। बाहर के उस समय के ज्ञान से छूट जाते हैं, जब आप भीतर में जाते हैं, अन्दर-अन्दर यात्रा करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि अन्दर-अन्दर चलो, तो इन्द्रियों के ज्ञान से छूटते जाओगे, बाहर-बाहर चलने से इन्द्रियों के संग-संग रहोगे, इससे तृष्णा बढ़ती जायेगी। तन्द्रा में जाने से उससे अलग हो जाते हो। कोई बीमार हो जाता है तो लोग चाहते हैं कि उसको नींद हो जाय। नींद होने पर उसको मालूम नहीं पड़ता कि मैं बीमार हूँ। लेकिन इन तीन अवस्थाओं में रहने से स्वाभाविक तौर से इन्द्रियों से छूटना नहीं होता। जो योग करता है, भजन करता है, वह छूटता है। तीन अवस्थाओं में रहते हुए मनुष्य को चैन नहीं होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त ।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनन्त ।।

गोया तीन अवस्थाएँ छोड़कर चौथी अवस्था में रहो। चौथी अवस्था में जाने का जो यत्न है, वही योग है। यह है सरल योग ध्यान-अभ्यास। लोगों के मन में होता है कि योग बड़ा कठिन है। जो काम नहीं करे, वह सरल होने पर भी कठिन है। विद्यार्थी जबतक सीखते नहीं, तबतक कठिन मालूम होता है। सीख लेते हैं तो सरल हो जाता है।

न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै ।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै ।।

प्राणायाम नहीं करो, केवल ध्यानयोग करो। एक तो प्राणायाम करके—हठयोग करके ध्यान आरम्भ करते हैं। यह कठिन अवश्य है, लेकिन कबीर साहब कहते हैं—'न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै। सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।' इसलिए सुरत लगाने का यत्न जानो। कहाँ लगाओगे, सो जानो। क्या गरीब, क्या अमीर, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या विद्वान, क्या अविद्वान सभी कर सकेंगे। थोड़ा-थोड़ा करते-करते यही बात बड़ी होगी, जैसे छोटा वृक्ष बड़ा हो जाता है। करो तो प्रत्यक्ष हो जाएगा। जिसको पहले अव्यक्त कहते थे, वह व्यक्त हो जायेगा। स्थूल तो देखते ही हो। यदि स्थूल दृष्टि को सूक्ष्म दृष्टि गुरु की बताई विधि से करो, सूक्ष्म दृष्टि होगी और सूक्ष्म को देखोगे। संसार में भी सुखी रहोगे और परलोक में भी। साथ ही स्वराज्य में सुराज हो जायेगा। दुष्ट कर्म नहीं होंगे। H

यह प्रवचन भारत की राजधानी दिल्ली में अखिल भारतीय सन्तमत—सत्संग के ६२वें महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक २. ३. १९७० ई० को प्रात:काल में हुआ था।

३१४. अध्यात्म और सदाचार में मेल

प्यारे उच्च पदाधिकारी महोदयगण तथा धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

कल से आपको विदित है कि मैं ईश्वर-भक्ति का प्रचार करता हूँ। उसमें मैं कह चुका हूँ कि ईश्वर आत्मगम्य है, इन्द्रियगम्य नहीं। ईश्वर की खोज करना चाहें, प्रेम जोड़ना चाहें, वे बाहर की ओर ऐसा कर सकें, ईश्वर की ओर अपने को जोड़ सकें, सो नहीं होगा; क्योंकि बहिर्मुख इन्द्रियगम्य है और अन्तर्मुख कुछ दूर तक इन्द्रियगम्य अवश्य है, पर आगे चलकर ऊपर उठते-उठते इन्द्रिय के

संग से छुट्टी मिलती है और अपने को उस शुद्ध भाव में पाते हुए ईश्वर का दर्शन आत्मा से ही होता है। ईश्वर-दर्शन होगा। उनकी दृष्टि ऐसी बन जाती है कि उनकी दृष्टि में अन्दर-बाहर एक हो जाता है।

इस शरीर को पिण्ड कहते हैं और बाह्य जगत को ब्रह्माण्ड। यह बाह्य जगत (ब्रह्माण्ड) इतना ही बड़ा नहीं है, जितना बड़ा हम देखते हैं। इतना बड़ा यह है कि उस सम्पूर्ण को हम नहीं देख सकते। इसका विस्तार कितना बड़ा है, जान नहीं सकते, फिर भी अपनी आँखों से जितना देख सकते हैं, देखते हैं। इस स्थूल जगत के पूर्व का रूप सूक्ष्म है। सूक्ष्म भी बिना कारण के नहीं बन सकता। कारण भी बिना महाकारण के नहीं बन सकता। ये चारो जड़ हैं, इनमें ज्ञान नहीं। पिण्ड या जड़ शरीर में जो ज्ञानमय तत्त्व है, इससे पता चलता है कि ज्ञानमय तत्त्व भी है यानी चेतन भी है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसको—'ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी।।' कहकर जनाया है। इस तरह जड़ के चार और चेतन का एक—सब मिलकर ब्रह्माण्ड कहलाते हैं। पिण्ड और ब्रह्माण्ड का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि पिण्ड के जिस दर्जे पर रहो, ब्रह्माण्ड के उसी दर्जे पर रहोगे। पिण्ड में रहकर जिस तल पर विचरण करोगे, ब्रह्माण्ड के भी उसी तल पर विचरण करोगे। इसी तरह अपने शरीर के अन्दर के सूक्ष्म दर्जे पर विचरें, तो ब्रह्माण्ड के भी सूक्ष्म दर्जे पर विचरेंगे। पिण्ड के जिस दर्जे को जब हम छोड़ते हैं, ब्रह्माण्ड के भी उसी दर्जे को तब हम छोड़ते हैं। इसी तरह यदि पिण्ड के चारों जड़ात्मक मण्डलों को पार कर जाएँगे।, तो ब्रह्माण्ड के भी चारो जड़ात्मक मण्डलों को पार कर जायेंगे और चिदानन्द मण्डल में पहुँचेंगे। तब जो ईश्वर-दर्शन होगा, फिर वह कभी अदर्शन नहीं होगा। लेकिन वह दर्शन इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं होता। जिसको ईश्वर-दर्शन होता है, वह जब शरीर में बर्तता है, तो भी वह उस दर्शन से छूटता नहीं, उसका आवागमन छूट जाता है। किन्तु जिन्होंने इतनी ऊँची साधना नहीं की है, पूरे नहीं हुए हैं, तो वे संसार में जन्म-मरण के चक्र में रहेंगे। किन्तु वह जन्म पहले के जन्म से उत्तम होगा। परम पद को जबतक नहीं प्राप्त करेंगे, तबतक मनुष्य-जन्म अवश्य होता रहेगा और अन्तरात्मा की प्रेरणा से ईश्वर-दर्शन के कर्म में लगेंगे और किसी एक जन्म में अवश्य पूर्ण होंगे।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि इस कर्म के आरम्भ का यानी योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। भक्त, योग और ज्ञान से भक्ति को भिगोये रहते हैं और भजन करते हैं। ऐसा ही करना चाहिए, सन्तों ने कहा है। इस तरह मनुष्य-जन्म पायेंगे; क्योंकि ईश्वर-भजन का कर्म आगे बढ़ने के लिये अन्य किसी शरीर में नहीं हो पाता है। केवल मनुष्य-शरीर में यह मौका मिलता है, किसी दूसरे शरीर में नहीं। भगवान ने कहा—'योग का थोड़ा-सा प्रयास भी महाभय से बचाता है। ईश्वर-भजन-वाला कर्म मनुष्य-शरीर के अतिरिक्त किसी दूसरे शरीर पाने का बाधक हो जाता है। इस जन्म में यदि कम ही परिश्रम हुआ है तो महाफलदायक है। उलटा परिणाम नहीं होगा। उलटा परिणाम क्या होना चाहिए? सीधा परिणाम है कि ईश्वर-मार्ग में चलकर ईश्वर तक पहुँचे। उलटा परिणाम है कि ऊपर की ओर नहीं जाकर नीचे की ओर गिरे; सो नहीं होगा। जो भगवान के वचन में विश्वास करते हैं, उनके लिये बहुत विश्वास की बात है। ईश्वर-भजन का संस्कार और शरीर में नहीं होता, मनुष्य-शरीर में होता है। यह भगवान का वचन ठीक है। बारम्बार मनुष्य-शरीर पाता रहेगा और किसी-न-किसी जन्म में अवश्य पूर्ण होगा। इसलिये सन्तों ने कहा है—ईश्वर-भजन करो और अपना कर्त्तव्य कर्म भी करो।'

अवश्य ही हमारा देश भौतिकता में पिछड़ा

हुआ है। दूसरे देश की तरह इसमें प्रगति नहीं है। यह भी कभी वैसा हो जाय, सम्भव है। लेकिन सभी देशों से बढ़कर अध्यात्म-ज्ञान यहाँ बहुत विशेष है। दूर-दूर देश के लोग यहाँ आते हैं, गुरु खोजने यहाँ आते हैं; अध्यात्म-ज्ञान खोजने यहाँ आते हैं। भारत के अन्दर कलकत्ता में विवेकानन्द स्वामी हुए। वे शिकागो गये थे धर्म की बड़ी सभा में। इनको भी उस सभा में मौका दिया गया था अध्यात्म-ज्ञान कहने के लिये। इनके वचन से सभी बड़े प्रभावित हुए और वहाँ के लोगों को मानना पड़ा कि 'भारत का ज्ञान बहुत विशेष है वहाँ—भारत में दूसरे धर्म का प्रचार नहीं हो सकता।'

हमारे देश में जो सन्त-महात्मा हुए, वे राजाओं को भी सलाह देते थे। वह कौन बल था? अध्यात्म का बल था, तप का बल था, योग का बल था। तप असल में ब्रह्मचर्य-पालन को कहते हैं। जो अच्छी तरह ब्रह्मचर्य-पालन करे तो वह अच्छा तपी है। शरीर को तपावे और ब्रह्मचर्य का ध्यान नहीं रखे, तो वह उत्तम तप नहीं है।

सन् १९०९ ई० में हमारे गुरु महाराज ने कहा था। वे उत्तर प्रान्त के रहनेवाले थे। वे बहुत दिनों तक मुरादाबाद में रहे थे। उनका शरीर अलीगढ़ जिले का था। वे कहते थे—'सबसे ऊँचा समझो आध्यात्मिकता को। उसके नीचे सदाचारिता रखो। उसके नीचे सामाजिक नीति और उसके भी नीचे राजनीति।' वे समझाते थे—'जहाँ की आध्यात्मिक नीति उत्तम होती है; वहाँ के लोग सदाचारी अधिक होते हैं। जहाँ सदाचारी अधिक होंगे, वहाँ की सामाजिक नीति अच्छी होगी और जहाँ की सामाजिक नीति अच्छी होगी, वहाँ की राजनीति बुरी हो नहीं सकती। इसलिये आध्यत्मिकता को अपनाओ।'

हमलोग कहा करते हैं कि सदाचारिता अच्छी हो यानी सत्य व्यवहार हो। सभी साँच बोलें। कोई चोरी नहीं करें। कोई व्यभिचार नहीं करें। हिंसा नहीं करें। नशाओं को नहीं लें। इन पंच पापों से समाज के लोग बचेंगे, तो दुष्ट कर्म कैसे होगा? समाज के लोग ही दुष्ट कर्म करते हैं और दूसरों को क्लेश पहुँचाते हैं। दुष्ट कर्म नहीं करने से समाज में कष्ट—क्लेश नहीं होगा। तब जो राजनीति है—दुष्टों को सजा दो, सो ऐसा कम जायेगा कि नहीं के बराबर हो जायेगा। आध्यात्मिकता और सदाचारिता का बड़ा मेल है। आध्यात्मिकता की कमजोरी होगी, तो सदाचारिता यानी सदाचार-पालन में भी कमजोरी होगी। आध्यात्मिकता अच्छी है, तो सदाचारिता अच्छी होगी ही।

जीविका को चलाने के लिये लोग विविध प्रकार के कर्म करते हैं। कुछ लोग अध्यात्म की ओर जाते हैं। योग करते हैं। भक्ति करते हैं। वे सदाचार में अपने को बरताते हैं। बहुत लोग ऐसे हैं जो सदाचार पालन करने में कमजोर हैं और दुष्ट कर्म से जीविका चलाते हैं। इससे उनको शान्ति नहीं मिलती है। आगे चलकर उनको दुःख हो जाता है। सन्त लोग लोगों को ज्ञान-ध्यान में लाते हैं, ज्ञान-ध्यान बताते हैं। जो इसका आचरण करते हैं, उनमें बल आ जाता है राजनीति को पवित्र करने के लिये। मैं कहूँगा कि सरकार इसमें बल दे। अध्यात्म में ऐसा बल मिले, सरकार ऐसी सहायता दे कि देश उन्नति कर सके। सरकार की ओर से भी प्रचार हो, जिससे लोग अध्यात्मिकता में बढ़ें। केवल शासन द्वारा सदाचार का पालन नहीं हो सकता; जैसा कि अभी है।

अध्यात्म-ज्ञान-द्वारा, बिना कानून के, केवल ज्ञान-उपदेश के द्वारा लोग सदाचार का पालन करेंगे। राज्य की ओर से इसमें लोगों को बहुत प्रोत्साहन मिलना चाहिये। ज्ञान, ध्यान और सदाचार पालन का अधिक प्रचार होना चाहिये। केवल ईश्वर-भक्ति नहीं होती, उसके साथ सदाचार का पालन होता है। इसलिये इसका प्रचार बहुत अच्छा होना चाहिये।

कोई-कोई ख्याल करते हैं कि शरीर-शरीर चलने से, भीतर-भीतर भक्ति करने से, शरीर छूटने पर शरीर जल जायेगा, तब उन्नति कैसे हो सकती है? यह बहुत अल्प ज्ञान है। मैं कह चुका हूँ कि पिण्ड के जिस तल पर रहोगे, ब्रह्माण्ड के भी उसी तल पर रहोगे। पिण्ड के जिस जल को पार करोगे, ब्रह्माण्ड के भी उसी तल को पार करोगे। जड़ के चार मण्डल हैं और चेतन का एक। इस तरह पिण्ड में पाँच मण्डल और ब्रह्माण्ड में भी पाँच मण्डल हैं। जबतक महाकारण का अन्त नहीं होता, तबतक जड़ का दर्जा पार नहीं किया जाता। जो कोई महाकारण पार कर चेतन दर्जे में होता है, वह अपने को पहचानता है। जिस जीवन-काल में ऐसा हुआ, उसी जीवन में वह जीवन-मुक्त हो जाता है।

जीवन मुक्त ब्रह्म पर , चरित सुनहिँ तजि ध्यान ।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्ह के हिय पाषान ।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

ऐसे जीवन-मुक्त लोग सत्संग नहीं करें, तो सत्संग का महत्त्व कम होता जाता है। ऐसे लोग सत्संग में आते हैं, चाहे गुप्त होकर, चाहे प्रकट होकर। सब लोगों को इतना याद अवश्य रखना चाहिये कि ईश्वर चेतन आत्मा द्वारा ही प्राप्त होने योग्य है। इसलिये बहिर्मुख होकर खोज नहीं करें, अन्तर्मुख होकर खोज करें तथा गुरु और सत्संग का सहारा लेकर चलें। H

यह प्रवचन भारत की राजधानी दिल्ली में अ० भा० सन्तमत-सत्संग के ६२वें महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक २. ३. १९७० ई० को रात्रिकाल में हुआ था।

३१५. आत्मवत् सर्वभूतेषु कैसे होगा?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

जैसा कि आपलोग दो दिनों से सुन रहे हैं, ईश्वर-भक्ति का प्रचार—गुरु-आदेश से मैं कर रहा हूँ। यह जो सत्संग का प्रचार है वा ईश्वर-भक्ति का प्रचार है, इसका अवलम्बन खासकर संतों की वाणी है। गुरुदेव ने कहा कि सन्तों की वाणी का अवलम्ब लेकर सत्संग करो। इसलिये सन्तवाणी का पाठ करता हूँ और कराता हूँ। सन्तवाणी में बहुत गम्भीरता है। ऊपर-ऊपर सरलता मालूम पड़ती है। गुरु की कृपा से उस गंभीरता को थोड़ा-थोड़ा जाना है। उस गम्भीरता का थोड़ा-थोड़ा प्रकाश करूँ, इससे आपको लाभ हो, इसलिये सन्तों की वाणी का पाठ करता हूँ और समझाता हूँ। अभी आपलोगों ने सुना—

मेरी सुरत सुहागिनी जाग री ।।
क्या तुम सोवत मोह नींद में, उठि के भजनियाँ में लाग री।
चित से शब्द सुनो सरवन दे, उठत मधुर धुन राग री।
दोउ कर जोड़ि शीश चरणन दे, भक्ति अचल वर माँग री।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जगत पीठ दै भाग री।।

सुरत के कई अर्थ हैं। उसकी एक परिभाषा है। कबीर साहब के पन्थ के ग्रन्थ में एक चौपाई है। सन्त कबीर साहब एक अक्षर भी पढ़े-लिखे नहीं थे। उनके नाम से जो ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें से एक में लिखा है कि—

आदि सुरत सतपुरुष तें आई । जीव सोहं बोलिये सो ताई ।।

जिनको आप सच्चिदानन्द ब्रह्म कहते हैं, उसी को कबीर साहब सत्पुरुष कहते हैं। जिस पुस्तक का नाम अनुराग सागर है, उसी में यह है। सुरत का अर्थ ख्याल भी होता है; सुरत का अर्थ तुलसीदासजी ने स्मरण भी किया है। जैसे—

रहत न प्रभु चित चूक किये की । करत सुरत सै बार हिये की ।।

यह मैं बारम्बार का ख्याल करता हूँ। मेरे जानते परमात्मा परम उदार हैं, महादाता हैं; महाक्षमा-कर्त्ता हैं। यहाँ सुरत का अर्थ स्मरण करना हो जाता है। इसको दूसरी-दूसरी तरह से भी इस्तेमाल करते हैं। तुलसी साहब हाथरस में रहते थे। भारत के किस प्रान्त में उनका जन्म हुआ था, यह पता नहीं। आज के कुछ लोग उनके जीवन पर कुछ लिखे हैं। लेकिन ठीक-ठीक नहीं है। मैंने भी इसकी खोज की, ठीक-ठीक पता नहीं लगा। लोग इनको तुलसीदास, तुलसी साहब और गोसाईं तुलसी भी कहने लगे थे। घटरामायण उनकी पुस्तक है। उसमें लोगों ने कुछ मेल-मिलाप भी कर दिया है। उस पुस्तक की भूमिका में कहते हैं—

स्रुति बुन्द सिंध मिलाप, आप अधर चढ़ि चाखिया।
भाषा भोर भियान, भेद भान गुरु स्रुति लखा।।

अपने से चढ़ाई की। उसके रस को चखा। स्वयं साधन कर, कोशिश कर, आकाशी मार्ग पर चढ़कर आनन्द को चखा है। यहाँ 'स्रुति' सुरत के लिये लिखा है। यह सन्तों का पारिभाषिक शब्द है। व्याकरण का शुद्ध-अशुद्ध विचार यहाँ नहीं है। सब लोग सन्तवाणी को पढ़िये और इस अर्थ को भी रखिये। साहित्य के अर्थ को भी रखिये। कहीं यह अर्थ होगा, कहीं वह अर्थ होगा। सुरत, जीव, चेतन आत्मा एक ही बात है। यह सुरत सोई हुई है। मन उससे भिन्न पदार्थ है। मन सोया हुआ है। सुरत असल में सोती नहीं है। अन्तःकरण का संग होने से उसका निजी ज्ञान नहीं है। इसलिये कहते हैं कि सुरत सोई हुई है। हमलोगों की जाग्रत अवस्था सन्तों के विचार में नींद हैं। इस अवस्था में सुरत जगती नहीं है। स्वप्न में भी जगती नहीं। तन्द्रा में भी नहीं जगती है। गहरी नींद में तो क्या जगेगी? चौथी अवस्था-तुरीय में जगेगी। सुरत अपने आपको भूली हुई है। इसलिये वह सोई हुई है—

मोह निसाँ सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा।।
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।।

मोह की नींद में अनेक प्रकार का स्वप्न हो रहा है। जाग्रत अवस्था में जो हम कर रहे हैं, सन्तों के विचार में स्वप्न अवस्था में कर रहे हैं। योगी परमार्थी होते हैं। परम तत्त्व के ज्ञाता होते हैं। जो ब्रह्म का ज्ञान रखते हैं, वे परमार्थी होते हैं। इस परमार्थ तत्त्व को जो ग्रहण करता है, वह जगता है। संसार का ज्ञान जब है, तब सोया हुआ है।

सपने होई भिखारि नृप, रंक नाकपति होई।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोई।।

स्वप्न में राजा दरिद्र हो जाता है और दरिद्र इन्द्र बन जाता है; किन्तु जगने पर न तो दरिद्र को कुछ लाभ होता है और न राजा को कोई हानि होती है। जब कोई चौथी अवस्था में जायेगा, तो इस जाग्रत का हानि-लाभ स्वप्न का हो जायेगा। सुरत को जगने के लिये जो कहते हैं, वह तबतक जगती नहीं है, जबतक चौथी अवस्था में नहीं जाए। इसलिए इस जाग्रत अवस्था में भी जगने के लिये कहते हैं। भजन करोगे, तो जागोगे, नहीं तो क्या जागोगे? क्या भजन करो, तो कहा—

चित से शब्द सुनो स्रवन दे, उठत मधुर धुन राग री।

तुरीय अवस्था में जो शक्ति सुनने की होती है, उससे सुनो। इस कान से क्या सुनोगे? कोई सोया रहता है, उसको पुकारकर जगा देते हैं। कुछ काल तक अलसाया रहता है, तब फिर पूरा-पूरा जागता है। इसीलिए अन्दर का शब्द आवेगा और पूरा-पूरा जागोगे? यह साधन में अनुभूति की बात है। जिसको विश्वास नहीं है, तो करके देखो। गुरु के वचन में विश्वास तो था ही, है ही और बाबा नानक ने कहा है—

अन्तर जोति भई गुरु साखी, चीने राम करंमा।

अन्तर की ज्योति गुरु की गवाही हो गई। करनेवाला ठीक-ठीक करे। करने की युक्ति ठीक-ठीक हो, तो अवश्य होगा। ऑक्सीजन और हाईड्रो-

जन को मिलाकर देखो, पानी होता है कि नहीं? उसी तरह इस साधना को करके देखो, होता है कि नहीं। गुरु नानकदेवजी शीघ्रतापूर्वक दौड़कर तारे पर चढ़ गए। तारा क्या है? तुलसी साहब कहते हैं—

श्याम कंज लीला गिरि सोई। तिल परिमान जान जन कोई।।

वहाँ बहुत लीलाएँ होती हैं। वह पहाड़ कैसा है? तो कहा—'**तिल परिमान जान जन कोई।**'

और भी कहा—

स्रुति ठहरानी रहे अकासा। तिल खिड़की में निसदिन वासा।।
गगन द्वार दीसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा।।

इस ध्यान-साधना का अभ्यास करके देखो, होता है कि नहीं? करो नहीं, केवल गप हाँको तो क्या होगा? तारा क्या है?

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम्।
—तेजोविन्दूपनिषद्

इस ध्यान को जानते हो? नहीं जानते हो, तो जानकार से जानकर करो, होता है कि नहीं?

सेवक अपने कर्म में पूर्ण है तो सद्‌गुरु का शब्द मिलता है। सद्‌गुरु का शब्द वैखरी वाणी नहीं, अन्तर्नाद है। ईश्वर की ओर से यह दया-दान है—अन्तर्ज्योति का प्रगट होना। तो गुरु की गवाही ठीक है। सुरत के जगने पर यह होता है। यह तो पहली सीढ़ी है, पहला कदम रखने के लिये। आगे बहुत है! बहुत है!! बहुत है!!! पहले पहली सीढ़ी तो मिले पैर रखने के लिये। सन्तवाणी में जो गंभीरता है, वह आपके सामने कहता हूँ। आगे चलकर कबीर साहब कहते हैं—'जगत पीठ दै भाग री।' कहाँ भागो? ऊपर-नीचे, आग-पीछे, दायें-बायें, चारो कोण, दसो दिशाओं में कहीं भागो—'जगत पीठ' नहीं होगा। संसार की ओर पीठ तब होगी, जैसे अभी जगे हो तो संसार को देखते हो। स्वप्न और सुषुप्ति में इस संसार का ख्याल नहीं रहता है, तो संसार की ओर पीठ होती है। लेकिन घोर अंधकार का जगत तुम्हारे सामने रह जाता है। फिर जगत की ओर पीठ कहाँ हुई? ऐसा करो कि संसार का ज्ञान तुमको नहीं रहे। न जाग्रत में, न स्वप्न में, न सुषुप्ति में, कहीं भी संसार का ज्ञान नहीं रहे।

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।

इसपर विचार करो। वह द्वैत-वियोगी पद कैसा है?

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसीदास एहि दसाहीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

इन सब सन्तवाणियों को मिला-मिलाकर पढ़ो। पहले तो पढ़ने-समझने में ही अपने को बड़ा आनन्द मिलता है। करो तो और आनन्द मिलता है। ऐसा न समझो कि संसार में कुछ करना नहीं है। ध्यान का समय तो ऐसा ही है, लेकिन संसार में बेवकूफ बनकर भी रहना नहीं है। विद्या-उपार्जन करो और संसार के काम भी करो। संसार के काम के लिए सन्त लोग कहते हैं कि इस दर्जे में पहुँचोगे—'आत्मवत् सर्वभूतेषु', तब सारा संसार आत्मवत् होगा। इंगलैंड वा इस देश, उस देश की बात नहीं। सारे संसार के भूत आत्मवत् होंगे, लेकिन चालाकी से नहीं होगा। कबीर साहब कहते हैं—

कोई चतुर न पावे पार, नगरिया बावरी।

सन्तों की वाणी में बड़ी गम्भीरता है। केवल शब्दार्थ से ही अर्थ नहीं होता है। शब्दार्थ जाने, सन्तों के पारिभाषिक शब्दार्थ जाने और कुछ-कुछ साधन भी करे, तब जानोगे। सन्तवाणी को कुछ नहीं जानकर, केवल भौतिक बुद्धि-विलास में रहकर अपने को सर्वज्ञ जानना गलत बात है। जाग्रत की बात जानो, स्वप्न की बात जानो, सुषुप्ति की बात जानो और इन तीनों के परे कैसे जाओगे, सो भी जानो। तीन अवस्थाएँ स्वाभाविक ही आती-जाती रहती हैं। लेकिन तुरीय अवस्था स्वभाविक ही नहीं आती। इसके लिए कुछ और करो अर्थात् योग करो। योग के साधन में ईश्वर की भक्ति है और योग के अन्त में ईश्वर की प्राप्ति है। ईश्वर-

प्राप्ति को ही भक्त अपना असली धन मानता है। यहीं सारी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं।

परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर, सो जाने जो पावै।।

मैं १९०४ ई० से इस खोज में लग गया। आज तक इस खोज में हूँ। इसकी गंभीरता में जाता हूँ, तो जैसे-जैसे जाता हूँ, बड़ा आनन्द पाता हूँ। अभी और भी पाने को है। मुझे जो आनन्द मिला है, वह आनन्द सबको मिले। इस संसार में सबसे ऊँची बात है—'आत्मवत् सर्वभूतेषु।' संसार में बेवकूफ बनकर नहीं रहो, विद्या-अर्जन भी करो और संसार की संभाल भी करो। H

यह प्रवचन भारत की राजधानी दिल्ली में अ० भा० सन्तमत-सत्संग के ६२वें महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक ३. ३. १९७० ई० को प्रातःकाल में हुआ था।

३१६. मानस जप से मानस बल बढ़ता है

आत्मवत् सर्व मेरे प्रिय लोगो!

इस समय जो मैंने यहाँ आकर तीन व्याख्यानों को सुना, तो मालूम हुआ कि जो मुझे कहना था, प्रयास करना था, उस प्रयासों को तीन व्याख्यानों में व्याख्यान-दाताओं ने वर्णन किया है। ये लोग जैसे श्रेष्ठ पद के लोग हैं, वैसे इनके ज्ञान भी हैं। मैंने सोचा कि क्या कहूँ? ज्ञान एक परोक्ष होता है, दूसरा अपरोक्ष होता है। फिर कहते हैं कि ज्ञान श्रवण का, मनन का, निदिध्यासन का और अनुभव का होता है। श्रवण-मनन और निदिध्यासन परोक्ष ज्ञान होता है। अपरोक्ष ज्ञान निदिध्यासन के अन्त होने पर, अनुभव होने पर होता है। यहीं ईश्वर का दर्शन है। ज्ञान की पहुँच यहाँ तक है; परन्तु यह ज्ञान कुछ तो पहले श्रवण-मनन में होता है। परन्तु निदिध्यासन ज्ञान योग में होता है और योग का अन्त अनुभव में होता है। इसी में ईश्वर-दर्शन होता है। अनुभव करने का अथवा श्रवण-मनन से ऊपर जो निदिध्यासन ज्ञान है, उसकी विधि क्या है? क्या अवलम्ब है? यह भाग मेरे लिये रहा, यही मैं बताऊँगा। इसके लिये चाहिये कि ईश्वर-दर्शन के लिए जो चाहते हैं कि ईश्वर-दर्शन हो और परम शान्ति मिले, सो परम शान्ति-स्वरूप परमात्मा हैं। उनको पाकर मैं शान्त हो जाऊँगा, यह लोभ जो है, अच्छा है। इसी से अन्त तक पहुँचते हैं। कबीर साहब ने कहा है—

भक्ती का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरणन लौ लीना रे।।
साधुन के सत्संग में, रहे निसिदिन भीना रे।
सब्द में सुर्त ऐसे बसे, जैसे जल मीना रे।।
मान मनी को यों तजे, जस तेली पीना रे।
दया छिमा संतोष गहि, रहे अति आधीना रे।।
परमारथ में देत सिर कछु बिलम्ब न कीना रे।
कहै कबीर मत भक्ति का, परगट कह दीना रे।।

लोग कहते हैं कि लोभ को हटाओ। कबीर साहब कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति में ईश्वर-दर्शन की चाहना रहे। सांसारिक चाहना से हटाकर रखो। तब ग्रहण क्या करना चाहिए? ईश्वर के लिये इच्छा रखनी चाहिए, ईश्वर से मिलने का लोभ रखना चाहिए। हृदय को पवित्र रखना चाहिए। ईश्वर परम पवित्र है। बाबा नानक ने कहा—

सूचै भाड़ै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी।।

अपने हृदय को शुद्ध करके रखना चाहिए। शुद्ध कैसे होता है? कोई जल बाह्य संसार में नहीं है, जो हृदय को शुद्ध कर सके। सत्य का व्यवहार होना चाहिए। सत्य-रूप गंगा-जल में डूबना चाहिए।।

सत्य-रूप जल का पान करना चाहिए। सत्य-रूप गंगा के तट पर रहना चाहिए। सत्य का तट क्या है? सत्संग है। विधि-निषेध को जानो।

विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रवि नन्दनि वरनी।।

यह श्रवण, मनन, निदिध्यासन से इस तरह का ज्ञान होता है।

अपने हृदय को शुद्ध करने के लिए असत् का, व्यभिचार का, नशाओं का, चोरी का और हिंसा का त्याग करना चाहिए। इनके त्याग में जो सद्गुण हैं, उनको ग्रहण करना चाहिए। इस तरह अपने हृदय को शुद्ध करके निदिध्यासन में प्रवेश करना चाहिए। उसके लिये जो कर्म है, विद्या है, सो करना चाहिए। इसका ज्ञान गुरु से सीखना चाहिए।

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।।
बिनु गुरु भवनिधि तरै न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

गुरु क्या बतावेंगे? मन को एकाग्र करने के लिये।

मन आवै मन जाय, मनहिं बटोरो रे।
मन बुड़वै मन तारै, मनहिं निहारो रे।।

—कबीर साहब

मन यहाँ आता है, वहाँ जाता है। कभी भगवद्–भक्ति में आता है, कभी विषय-वासना में जाता है; इस मन को बटोरो। यही योग का उपदेश है—मनोवृत्ति का निरोध। यह कैसे होता है? एक तो यह है कि हठयोग की क्रिया करो। प्राणायाम करो, उसकी सिद्धि प्राप्त करो। इसके बाद प्राणायाम का अन्त होने से योग का अन्त हुआ, सो नहीं समझो। आगे बढ़ो। प्रत्याहार, धारणा और फिर ध्यान करो। गुरु जिसमें मन लगाने कहें, जिसका ध्यान करने कहें, जिधर मन को रखने कहें; उधर लगाओ। मन आगे समेटकर लाओ। जो प्रत्याहार करने के डर से भागेगा, उसकी धारणा नहीं होगी। प्रत्याहार के श्रम से भागना नहीं है। अभ्यास करते-करते क्या नहीं होता है? बड़े-बड़े विद्वान एक-एक अक्षर का अभ्यास करते-करते हो गये हैं। थोड़ा-थोड़ा ब्रह्मचर्य का पालन करते-करते ब्रह्मचारी हो गये हैं। थोड़ा-थोड़ा परिश्रम करके बलवान हो गये हैं।

प्रत्याहार के बाद थोड़ा-थोड़ा टिकाव होगा, वह धारणा होगी। धारणा देर तक ठहरने लगेगी, तब ध्यान होगा। ध्यान में अल्पकाल लगा रहा, फिर ज्यादा समय तक लगा रहा। इस तरह ध्यान में अनुभूतियाँ होती रहती हैं। अनुभूतियाँ धारणा से ही होने लगती हैं। कुछ मिलने लग जाता है। उस अल्प टिकाव के अन्दर की अनुभूति होती है कि कुछ मिल गया। वह हाथ से पकड़ने की चीज नहीं है। देखने की चीज है। इससे मन में बड़ी प्रसन्नता होती है। होता है कि जिसके लिये हैरान था, सो मिल गया। शान्ति मिली, यही लालच धारणा कराती है। देर तक अनुभूति होती है। तरह-तरह की अनुभूतियाँ होती हैं। तरह-तरह के रंग-रूप जो देखे जाते हैं, मन उसी ओर देखने का होता रहता है।

ध्यान में जो दर्शन होता है, वह दर्शन फिर लय हो जाता है, तब अनुभूति के अन्दर रूप-दर्शन अब नहीं होता है। तब क्या होता है, जो देखा नहीं जाय? फिर भी मिलता है। जैसे आप भजन-गान सुनने जाते हैं। महफिल सजी रहती है। बहुत रोशनी होती है। गाना-बजाना होता है, तो उस गाने-बजाने की ओर आपका मन हो जाता है। तब क्या देखता है? इसका होश नहीं रहता है। इसी तरह समझना चाहिये कि देखने से परे की बात है। देखने की बात गई और तब जो मिले, वह क्या है? वह अन्तर्नाद है—परमात्मा की पुकार है। इसमें जिसकी वृत्ति फँसी, फिर भटक नहीं सकती। जैसे माता की गोद में बच्चा पड़ जाय, माता गोद में उठा ले, उसी तरह परमात्मा अपनी गोद में उठा लेता है। तब 'जानत तुम्हहिँ तुम्हइ होइ जाई'

वाली बात हो जाती है।

साधक जिसको परोक्ष रूप में जानता था, उसको तब अपरोक्ष रूप में पाता है। परमात्मा को प्रत्यक्ष पाकर उसमें विलीनता हो जाती है। 'अहं ब्रह्मास्मि' हो जाता है। पहले 'सोऽहमस्मि' होता है। यहाँ द्वैत रहता है। और जब 'अहं ब्रह्मास्मि' होता है, तब अद्वैत होता है। द्वैत में अनुभूति होती है, अद्वैत में विलीनता होती है। काकभुशुण्डिजी कैसे ध्यान करते थे, सो गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकरि तर करई।
आम छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहिं दूजा।।
बट तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा।।

मतलब 'कथा-प्रसंग'—सत्संग करते थे। तुलसी साहब ने कहा है कि—

सखी सीख सुनि गुनि गाँठि बाँधौ। ठाट ठट सत्संग करौ।।

काकभुशुण्डिजी सत्संग करते थे, कुछ जप भी करते थे। यज्ञों में जप-यज्ञ श्रेष्ठ यज्ञ है। फिर मानस-पूजा भी करते थे। जो देख लिया है, जान लिया है, उसपर मन को लगाकर रखो। उस रूप को मन से बनाकर मन को उसपर लगाकर रखो। यह मानस पूजा है। मानस पूजा के बाद फिर ध्यान बताया। यह ध्यान क्या है? श्रीमद्भागवत में उद्धव ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा है कि मैं आपका ध्यान कैसे करूँ? इसपर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—पहले मेरे सम्पूर्ण शरीर का ध्यान करो, फिर चेहरे का ध्यान करो, फिर शून्य में ध्यान करो। जबतक कि देखा हुआ रूप रहा और उस रूप को छोड़कर मुखारविन्द रह गया, यह मानस पूजा है। इसी को मानस ध्यान हमलोग कहते हैं।

जप में वाचिक जप, उपांशु जप और मानस जप; ये तीन प्रकार हैं। इन तीनों में मानस जप को श्रेष्ठ बताया है। वाचिक जप में जप के शब्द दूसरे भी सुनते हैं। उपांशु जप में केवल अपना कान सुनता है और मानस जप मन-ही-मन होता है। यह सबके करने योग्य है, चाहे किसी देश का हो, किसी भाषा का जाननेवाला हो। मानस जप से मानस बल बढ़ता है। मानस जप में अपने इष्ट के नाम का जप करते हैं। इसके बाद इष्टदेव के रूप का ध्यान करते हैं। श्रीकृष्ण इष्ट हैं, तो उन्हीं के रूप का ध्यान करो। श्रीराम इष्ट हैं, तो उनके रूप का ध्यान करो। अथवा जो गुरु में विशेष श्रद्धा रखते हैं, वे गुरु के रूप का ध्यान करते हैं। यह मानस पूजा वा मानस ध्यान हुआ। इसकी मजबूती के लिये बारम्बार करना चाहिए। फिर शून्य में ध्यान करना चाहिए। दो सीढ़ियाँ हुईं—एक तो सम्पूर्ण शरीर का ध्यान, दूसरी मुस्कानयुक्त मुख का, समस्त शरीर में ख्याल रहा, तो पूर्ण सिमटाव नहीं हुआ। विशेष पसार रहा। इससे कम पसार हुआ चेहरे का ध्यान। फिर शून्य-ध्यान है। शून्य का ध्यान विस्तृत शून्य का ध्यान नहीं है। बल्कि मुखारविन्द से भी कम पसार होना चाहिये। मानस ध्यान में तो देखा हुआ रूप था। शून्य ध्यान कैसे करो? इसका यत्न गुरु बतावेंगे। फैली दृष्टि से नहीं, सिमटी दृष्टि से देखो। इससे एकविन्दुता होगी। वह ज्योतिर्मय विन्दु होगा।

तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम्।
—तेजोविन्दूपनिषद्

अर्थात् हृदय-स्थित विश्वात्म-तेजस्-स्वरूप विन्दु का ध्यान परम ध्यान है। यह उपनिषद्-वाक्य है। कबीर साहब कहते हैं—'मेरे नजर में मोती आया है।' तुलसी साहब कहते हैं—

स्रुति ठहरानी रहे आकाशा। तिल खिरकी में निस दिन वासा।
गगन द्वार दीसै एक तारा। अनहद नाद सुनै झनकारा।।

यह ज्योतिर्ध्यान है। सीखना चाहिये। बाबा नानक कहते हैं—

सुखमन कै घरि राग सुनि सुन मण्डल लिव लाइ ।
अकथ कथा वीचारीऐ मनसा मनहि समाइ।।

अर्थात् वे कहते हैं—शून्य मण्डल में लौ लगाकर सुखमना में रहो, फिर सुनो। जो इड़ा-पिंगला के बीच-सुषुम्ना में रह सकता है, वह ज्योति पाता है। बाबा नानक दूसरे शब्द में कहते हैं—

तारा चड़िआ लम्मा किउ नदरि निहालिआ राम।

इस तरह सन्त लोग बयान करते हैं। उनकी अनुभूति झूठी नहीं है। जो कोशिश करते हैं, वे अवश्य देखते हैं। लोग कहते हैं कि कुछ नहीं देखता हूँ। मैं कहता हूँ—'अपने को ठहरा नहीं सकते हो। ठहराकर देखो, अवश्य देखने में आवेगा।'

मैं यह नहीं कहता हूँ कि मैं पूर्ण हूँ। लेकिन पहला कदम मुझे प्रत्यक्ष हुआ है, उसको जानता हूँ। उससे मुझे जो आनन्द हुआ है, वह दूसरों को भी मिलेगा। मैं कुछ नहीं कहता कि इतने समय में पाओगे। जितना करोगे, पाओगे। बाहर में जो प्रकाश देखो, उसी को मन में बनाकर देखो, सो प्रकाश नहीं है। देखे हुए सभी को भूल जाओ, तब देखो कितनी शान्ति आती है, लेकिन यहाँ पूर्ण शान्ति नहीं है। पूर्ण शान्ति अभी बहुत दूर है। स्थूलाकाश का प्रकाश नहीं है। आँख बंद करके अन्धकार में देखो गुरु की युक्ति से। कबीर साहब ने कहा है—

घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अन्ध है।
लखत लखत लखि पड़ै, कटै जम फन्द है।।

हुजूर तक पहुँचना बहुत दूर है।

लम्बा मारग दूरि घर, विकट पन्थ बहु मार।
कहो सन्तो क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरि दीदार।।
अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अन्तरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।

प्रेम से ध्यान लगाओ सर्वव्यापी को पाने के लिये। आप अपने अन्दर रहते हो। ईश्वर भी तुम्हारे अन्दर हैं। बाहर भागने की जरूरत नहीं, अन्दर भागो। केवल प्रार्थना ही करो, देखने का काम नहीं करो। कैसे होगा? प्रार्थना भी करो और देखने का काम भी करो। एक कथा है—एक गाड़ीवान था। वह हनुमानजी का भक्त था। गााड़ीवान की गाड़ी कीचड़ में फँस गई। वह हनुमानजी को पुकारने लगा। हनुमानजी मनुष्य-वेश में आये और गाड़ीवान से बोले—केवल हनुमानजी को पुकारते हो और अपना बल तुम लगाते नहीं हो। हनुमानजी तुम्हारी सहायता कैसे करेंगे? गाड़ीवान ने कीचड़ में घुसकर गाड़ी में जोर लगाया। हनुमानजी की कृपा से गाड़ी कीचड़ से निकल पड़ी। अंग्रेजी में एक कहावत है—God helps those who help themselves.(गॉड हैल्प्स दोज हू हैल्प देमसैल्वस)। अर्थात् ईश्वर उसकी मदद करते हैं, जो अपनी मदद आप करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

जौं तेहि पन्थ चलइ मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई।।

कबीर साहब सहज समाधि की बहुत अच्छी बात कहते हैं—

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली।।
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवों तब करौं दण्डवत, पूजौं और न देवा।।
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खाँव पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावों दूजा।।
आँखि न मूदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नयन पहिचानौं हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारौं।।
शब्द निरन्तर से मन लागा, मलिन वासना भागी।।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी ताड़ी लागी।
कहै कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई।।
दुख सुख से कोई परे परम पद, ता पद रहा समाई।।

यह मनोलय की बात है। बिहार के सन्त दरिया साहब कह गये हैं—

सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक विहीन नहिं तारा।
झिन झिन जंतर निस दिन बाजै, जम जालिम पचिहारा।।

ध्यान में एकविन्दुता होने पर पूर्ण सिमटाव होता है। पूर्ण सिमटाव में आप-ही-आप ऊर्ध्वगति होती है। मन बड़ा सूक्ष्म है, इसको समेटिये पहले

स्थूल में उठेगा। स्थूल से सूक्ष्म में उठेगा, वहाँ ज्योतिर्विन्दु को पावेगा। और वहाँ क्या पावेगा? अनहद ध्वनि पावेगा। यह अनहद ध्वनि कहाँ शुरू होती है? आज्ञाचक्र में—दोनों आँखों के मुकाबले अन्दर में। ईश्वर की ओर से आज्ञा मिलती है, शब्द मिलता है। इसलिए उसको आज्ञाचक्र कहते हैं। बाबा नानक के वचन में शब्द को हुक्म कहा है। शब्द वह है, जिससे कोई पार होता है संसार से। शब्द अपने उद्‌गम-स्थान पर आकर्षित करता है। कुत्ते को 'तू-तू' कर पुकारो। जहाँ से शब्द आया है, वहाँ आ जायेगा। जो अपने अन्दर में नाद सुनेगा, वह वहाँ तक पहुँचेगा, जहाँ से शब्द आया है। आदि-शब्द परमात्मा से आया है। कबीर साहब कहते हैं—

'साधो सब्द साधना कीजै ।
जेहि सब्द से प्रगट भये सब, सोई सब्द गहि लीजै ।।
सब्दहि गुरु सब्द सुनि सिष भे, सब्द सो बिरला बूझे ।
सोई सिष्य सोइ गुरु महातम, जेहि अन्तरगति सूझे ।।
सब्दै वेद पुरान कहत हैं, सब्दै सब ठहरावै ।
सब्दै सुर मुनि सन्त कहत हैं, सब्द भेद नहिं पावै ।।
सब्दै सुनि सुनि भेष धरत हैं, सब्द कहै अनुरागी ।
षट दर्शन सब सब्द कहत हैं, सब्द कहै वैरागी ।।
सब्दै माया जग उतपानी, सब्द केरि पसारा ।
कहै कबीर जहँ सब्द होत है, तवन भेद है न्यारा ।।'

'शब्द तत्तु वीर्य संसार। शब्दु निरालमु अपर अपार ।।
शब्द विचारि तरे बहु भेषा। नानक भेद न शब्द अलेषा ।।
शब्दै सुरति भया प्रगासा। सभ को करै शब्द की आसा ।।
पंथी पंखी सिऊँ नित राता। नानक शब्दै शब्दु पछाता ।।
हाट बाट शब्द का खेलु। बिनु शब्दै क्यों होवै मेलु ।।
सारी स्रिष्टि शब्द कै पाछै। नानक शब्द घटै घटि आछै ।।'

—गुरु नानक साहब

सबदै बन्ध्या सब रहै, सबदै सबही जाई ।
सबदैं ही सब उपजैं, सबदैं सबै समाई ।।
जन्त्र बनाया साजि करि, कारिगर करतार ।
पंचौं कारज नाद है, दादू बोलणहार ।।
पंच ऊपना सबद थैं, सबद पंच सौं होई ।
साईं मेरे सब किया, बूझै बिरला कोई ।।

—सन्त दादू साहब

शब्द-अभ्यास खूब करो। लेकिन पहले सूक्ष्म में प्रवेश करो। किसी ने कहा—'शब्द-ध्यान करके क्या होगा? यह रग-रेशे की आवाज है, खून का दौरान होता है, वायु का संचार होता है।' मैंने कहा—'महाराज ! इस तरह शब्द-ध्यान नहीं होता है।' उन्होंने बड़े प्रेम से कहा—'तब कैसे होता है जी?' मैंने कहा—'पहले ध्यान करके एकविन्दुता प्राप्त कर लेनी चाहिए। एकविन्दुता प्राप्त कर लेने पर स्थूल में वृत्ति नहीं रहेगी, सूक्ष्म में रहेगी। तब नाद-श्रवण करना चाहिए।' आर्यसमाज के संन्यासी स्वामी श्रीसर्वदानन्दजी से यह चर्चा हुई थी।

शब्द का भेद जानना चाहिए। अन्तर में प्रवेश के लिये सूक्ष्म मार्ग को जानना चाहिए। अन्दर में साधना ऐसी हो कि एकविन्दुता प्राप्त हो जाय। प्रकाश का अवलम्ब लें और शब्द का अवलम्ब लेकर आगे बढ़ें। अपने से नहीं होगा। गुरु से इसका भेद लो, साधन करते-करते होगा। बड़े-बड़े लोग जो कहलाते हैं, उनसे होगा, महिलाओं से होगा, पुरुषों से भी होगा। इस देश के, उस देश के—सभी देशों के लोगों से होगा।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के छठे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने किसी आसन का नाम नहीं लिया है और नासाग्र में ध्यान करने कहा है। वहाँ प्राणायाम करने की चर्चा नहीं है। टीकाकार ने नासाग्र का अर्थ 'नाक का अग्र भाग' किया है। लेकिन भाग शब्द वहाँ नहीं है। जबकि भागवत में शून्य-ध्यान करने कहा और मुखारविन्द को छोड़ने कहा, तब नासिका भी चली गई। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा कि किसी दिशा को नहीं देखते हुए ध्यान करो। यह क्या बात हुई? विधि को ठीक-ठीक जानकर

तब उसका ध्यान करो। ध्यान का साथी सदाचार है। इसलिये शुद्धता से रहो। पिछड़ो तो फिर संभलो। सदाचार का पालन करो यानी झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पंच पापों से बचो। पिछड़-पिछड़ जाओ, तो फिर संभल-संभल जाओ। ध्यान करने में दृष्टि नहीं टिकती है, पिछड़ जाती है, तो संभाल-संभालकर ध्यान करो। दृष्टि स्थिर रखने की कोशिश करो। प्रत्याहार होते-होते धारणा होगी, फिर ध्यान होगा। कबीर साहब ने कहा है—

न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।

बिना प्राणायाम के ध्यान करो। यह सहज योग है।

शब्द खोजि मन बस करै, सहज जोग है येहि।
सत्त शब्द निज सार है, यह तो झूठी देहि।।

—कबीर साहब

सब काहू को होत है, तन मन पसरै जाई।
ऐसा कोई एक है, उलटा माहिं समाइ।।
क्यों करि उलटा आणिये, पसरि गया मन फेरि।
दादू डोरी सहज की, यौं आणै घेरि घेरि।।

सहज की डोरी क्या है? सहज की डोरी शब्द है।

साध शबद सौं मिलि रहै, मन राखै बिलमाय।
साध शबद बिन क्यौं रहै, तबहीं बीखरी जाय।।

—दादू दयालजी महाराज

साँप बाहर में टेढ़ा-मेढ़ा चलता है; लेकिन बिल में जाते समय वह सीधा हो जाता है। इसी तरह मन बाहर विषयों में टेढ़ा-मेढ़ा चलता है। शब्द-रूप बिल में सीधा हो जाता है।

मनो मत्त गजेन्द्रस्य विषयोद्यानचारिणः।
नियामन समर्थोऽयं निनादो निशितांकुशः।।

अर्थात् नाद मदान्ध हाथीरूप चित्त को, जो विषयों के आनन्द-वाटिका में विचरण करता है, रोकने के लिये तीव्र अंकुश काम करता है।

नादोऽन्तरङ्ग सारङ्ग बन्धने वागुरायते।
अन्तरङ्ग समुद्रस्य रोधे वेलायतेऽपि वा।।

अर्थात् मृगा-रूपी चित्त को बाँधने के लिए यह नाद जाल का काम करता है। समुद्र-तरंग-रूपी चित्त के लिए यह (नाद) तट का काम करता है। यह वचन नादविन्दूपनिषद् का है। इस तरह मैंने संतवाणी और ऋषि-मुनि-वाणी की खोज की, तो वेद और उपनिषद् में भी शब्द का बहुत वर्णन मिला है। 'वेद-दर्शन-योग में मैंने लिख दिया है।

जो सदाचार का पालन करेगा, वह पूज्य हो जायेगा। उसका जो साथी होगा, तो उसका समाज बनकर समाज में शान्ति होगी। जिस प्रान्त में, जिस राष्ट्र में ऐसे लोग होंगे, वहाँ दुष्टकर्म नहीं होगा। वहाँ राज्य-कानून का दण्ड नहीं चलेगा। राज्य को बहुत सहुलियत मिलेगी। देश को बहुत लाभ मिलेगा।

हमारे देश में पुरुषार्थी जो स्वराज्य लाए, बहुत अच्छा किया। लगभग हजार वर्ष की गुलामी चली गई। लेकिन दुःख है कि स्वराज्य में सुराज नहीं है। चोरी, डकैती, बेईमानी, घूसखोरी जहाँ है, वहाँ दुःख क्यों न आवे। राज्य सरकार उसको हटाना चाहती है, लेकिन हटता नहीं है। सन्तों ने कहा—लोगों का हृदय-परिवर्तन करो, उपदेश दो। लोगों का हृदय—परिवर्तन होगा, सभी ठीक होंगे। १९०९ ई० में गुरु महाराज ने कहा था—सबसे ऊपर लिखो आध्यात्मिकता, उसके नीचे लिखो राजनीति।

जहाँ की आध्यात्मिकता ऊँची रहेगी, वहाँ के लोग सदाचारी अधिक होंगे। जहाँ के लोग अधिक सदाचारी होंगे, वहाँ की सामाजिक नीति अच्छी होगी और जहाँ की सामाजिक नीति अच्छी होगी, वहाँ की राजनीति आप ही अच्छी होगी। बिना सदाचार-पालन किए ईश्वर-भक्ति नहीं होगी। ईश्वर-भक्ति में सदाचार पालन आवश्यक है। मैं कहता हूँ—स्वराज्य है, सुराज नहीं है। इसको बुलाना चाहिए। बुलाने की विधि यह है कि

ईश्वर-भक्ति करो। लोग ज्ञान का श्रवण-मनन करते हैं और वचन में ऐसा कहते हैं, जैसे उनको परमात्मा प्रत्यक्ष हो गया हो; लेकिन प्रत्यक्ष बाकी ही रह जाता है। प्रत्यक्ष के लिए दृष्टियोग और शब्दयोग करो। दृष्टियोग को ही शाम्भवी मुद्रा-वैष्णवी मुद्रा कहते हैं। शब्द-ध्यान को सुरत-शब्द-योग कहते हैं। यही असली नाम-भजन है। शब्द बिना कम्प के नहीं होता और कम्प बिना शब्द के नहीं होता। दोनों संग-संग रहते हैं, जैसे शब्द और उसका अर्थ।

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।

—गोस्वामी तुलसीदास जी

आदिशब्द को मुँह से कुछ बोलकर कोई कह नहीं सकते। वह है—

अघोषम् अव्यञ्जनम् अस्वरं च अकंठताल्वोष्ठम् अनासिकं च ।
अरेफ जातम् उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित् ।।

—अमृतनाद उपनिषद्

इसी को Voice of the Silence (वाईस ऑफ दी साइलेन्स) यानी 'अबोल वाणी' कहते हैं। पहले ही वह शब्द पकड़ा नहीं जाता। उस शब्द को पकड़ो, जो इस शब्द को पकड़ा दे। वही शब्द ईश्वर का असली नाम है। यह शब्द त्रयगुणात्मक नहीं है अर्थात् सगुण नहीं है, निर्गुण शब्द है।

बन्दौं रामनाम रघुवर को। हेतु कृषानु भानु हिमकर को।।
विधि हरिहर मय वेदप्राण सो। अगुण अनूपम गुन निधान सो।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

रामनाम निर्गुण भी है और सगुण भी है। सगुण शब्द को मुँह से बोलते हो, कान से सुनते हो। निर्गुण शब्द को कान से सुन सकते हो? कभी नहीं। नाम-भजन, नाम-भजन लोग कहते हैं। वर्णात्मक को लोग जानते हैं, ध्वन्यात्मक को भी जानो। बाहर में जिस रूप का दर्शन होता है, वह क्षेत्र का दर्शन है। रूप को धारण करनेवाले का नहीं, क्षेत्रज्ञ का नहीं। इसीलिये आज्ञाचक्र से साधना का आरम्भ करो। वहाँ ज्योति को पाओ, शब्द को पाओ और शब्द से भी शब्द में खिंचकर अनाम तक पहुँचो।

जो कोई चाहे नाम, सो नाम अनाम है।
लिखन पढ़न में नाहिं, निअच्छर काम है।।
रूप कहौं अनरूप पवन अनरेखते।
अरे हाँ रे पलटू गैब दृष्टि से सन्त नाम वह देखते ।।

केवल वर्णात्मक नाम का जानना अपूर्ण है। सगुण को भी जानो और निर्गुण को भी जानो। तब काम पूर्ण होगा। गुरु महाराज ने जो विधि बतायी है, वह मैं जानता हूँ, लोगों को बताता हूँ। जो करेंगे, सबको लाभ होगा। इस सत्संग में केवल मुक्ति-ही-मुक्ति की बात नहीं होती। जो इस मार्ग पर चलते हैं, सदाचारी होंगे। सदाचार से संसार में सुख होगा। कितना भी धन हो, सुख नहीं हो सकता। तुम स्वयं सुखस्वरूप हो। अपने अन्दर प्रवेश करो, अपने को जानो। ईश्वर को जानोगे। यह सन्देश सुनाने के लिए मन में किया था, सो सुना दिया।

यहाँ शासक लोग भली-भली विधि लेकर सुख पहुँचाना चाहते हैं, सो पहुँचावें। स्वराज्य में सुख होगा, ऐसा पहले कहते थे। स्वराज्य हो गया। लेकिन सुराज नहीं हुआ। कानून की लाठी कितने वर्षों से चली, लेकिन सुराज नहीं हुआ। जबतक दुष्टकर्म देश में होंगे, तबतक सुराज नहीं आ सकता। सुराज लाने के लिये लोगों को ईश्वर-भक्ति पर आना चाहिए। इसके साथ सदाचार पालन करना चाहिए। ज्ञान-योग-युक्त भक्ति करें। केवल श्रद्धावाली भक्ति नहीं। ब्रह्माजी ने शिवजी से पूछा था, तो शिवजी ने कहा था—

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम् ।

—योगतत्त्वोपनिषद्

अर्थात्—योग-हीन ज्ञान कैसे मोक्ष-प्रद हो सकता है? ऐसा सन्त लोग नहीं कहते हैं कि घार-वार छोड़ दो। कितने कहते हैं—'सन्त लोग कहते हैं कि हिंसा नहीं करो। वे परिश्रम से डरते

हैं।' वे नहीं जानते हैं कि ईश्वर-भक्ति में कितना परिश्रम करना पड़ता है।

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।

इन बातों को जानना चाहिये। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने कहा—ज्ञान भी चाहिए। अन्धी भक्ति ठीक नहीं। जैसे अंधे के कंधे पर लँगड़ा चढ़कर चले, उसी तरह श्रद्धा के संग ज्ञान होना चाहिये। बिना श्रद्धा के ज्ञान नहीं होता। बिना ज्ञान के आँख नहीं होती—'ज्ञान विराग नयन उरगारी।' गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है। सभी संसार में उन्नति करते जायँ। H

यह प्रवचन भारत की राजधानी दिल्ली में अ० भा० सन्तमत–सत्संग के ६२ वें महाधिवेशन के अवसर पर दिनांक २–३–१९७० ई० को अपराह्नकाल में हुआ था।

३१७. ज्ञानियों ने ईश्वर की स्थिति को माना है

प्यारे लोगो !

आपलोग यह बात बहुत सहूलियत से जान सकते हैं कि जो कुछ आप इन्द्रियों से जानते-पहचानते हैं, सब-के-सब नाशवान हैं, बदलनेवाले हैं। यह आप देख सकते हैं, जान सकते हैं, समझकर देखिए। आप सूर्य को, चन्द्र को, ताराओं को देखते हैं। कभी-कभी आप यह देखते हैं कि तारे के टुकड़े होकर उससे नीचे गिरते हैं। इससे जानिए कि सभी तारे ऐसे हैं। पृथ्वी भी ऐसी है। सूर्य चन्द्र भी ऐसे ही हैं। सूर्य की शक्ति भी कम होती जा रही हैं। ये सब नाशवान हैं। पृथ्वी से लेकर प्राकृतिक सभी दृश्य तक समाप्त हो जाएँगे।

इस संथाल-परगना में घूम-घूमकर मैंने देखा है कि सड़े पत्थर भी यहाँ हैं। पानी पड़ने से उससे गन्ध निकलती है। कितने पत्थर चूर-चूर होकर कण-कण हो गए हैं और जीवित पत्थर भी आप लोग देखते हैं। लोग नाप (माप) करने के लिए वाट रखते हैं, लोहे का वाट तो आपलोग देखते ही हैं, पर पहले पत्थर का वाट होता था। जो मरा पत्थर था, वह घिसते-घिसते कम हो जाता था और जीवित पत्थर बढ़ जाता था। इसलिए वह नहीं रखा गया। लोहे का वाट भी घिसते-घिसते कम हो जाता है, तब सरकार की ओर से उसको बदल दिया जाता है।

संसार में जिनकी स्थिति है, पर पहचान में नहीं आता है, ऐसा भी है। वह क्या है? ईश्वर है। ईश्वर को सर्वव्यापक कहते हैं। ईश्वर सबमें रहते हैं, सदा रहते हैं। सबके अन्दर रहते हैं, सबके बाहर रहते हैं। यह कैसा सत्य है कि अपने शरीर के भीतर हम रहते हैं, उसको भी नहीं पहचानते। ज्ञानियों ने, साधकों ने संसार को कह दिया कि यदि तुम शरीर में रहते हुए अपने को नहीं पहचानते हो तो क्या तुम नहीं हो? सभी कहेंगे कि मैं हूँ। लेकिन अपने तईं को तुम पहचानते नहीं। ईश्वर तमाम संसार में है और तुम्हारे शरीर के अन्दर भी है। लेकिन उनकी भी पहचान नहीं होती। **ज्ञानियों ने ईश्वर की स्थिति को माना है**, लेकिन उसकी पहचान हमको नहीं होती; क्योंकि इन्द्रियों से जो ज्ञान होता है, उसी का ज्ञान हमको है। इन्द्रियों से जिसका ज्ञान नहीं, उसका ज्ञान नहीं होता है। इन्द्रियों से विषयों का ज्ञान होता है, वह नाशवान है। जो नाशवान नहीं है, उसकी पहचान इन्द्रियों से नहीं होती।

यह संसार पहले नहीं था। तब जो था, वह ऐसा था जिसका कभी नहीं होना, हो नहीं सकता।

देश और काल तब भी नहीं था। फिर भी जो था, वह इतना महान था कि उसका शुरू और खत्म (अन्त) नहीं था। वह अनादि, अनन्त, असीम, अपरिमित था। सबका फना (नाश) होता है, उसका फना कभी नहीं होता। वह बना नहीं, वह आता नहीं और वह नाशवान नहीं है। उसका ज्ञान इन्द्रियाँ कैसे पा सकती हैं? इन्द्रियों के द्वारा पहचान उसकी नहीं, अपने तईं से उसकी पहचान होती है। इसका भी नाश नहीं होता। जिन इन्द्रियों से नाशवान पदार्थ को पहचानते हैं, उन इन्द्रियों से जीवात्मा की पहचान नहीं होती। तत्त्वरूप में जो ईश्वर है, जीवात्मा भी वही है। अन्तर यही है कि जीवात्मा अन्तःकरण और शरीर के आवरण से आवृत्त है। इसके लिए और भी ख्याल (विचार) हो सकते हैं, लेकिन हमारे यहाँ ऐसा ही कहते हैं। तत्त्वरूप में— जिस रूप में भेद नहीं है। भेद शरीर और अन्तःकरण में है। शरीर और इन्द्रियों से जो ढका नहीं है, वह परमात्मा है। दोनों तत्त्व एक-ही-एक है। इसलिए अपने आप को अपने से पहचानो, यह कोई आश्चर्य नहीं। जिस तत्त्व का जीवात्मा, उस तत्त्व का परमात्मा, इसलिए जीवात्मा परमात्मा को पावेगा। यही सन्तों ने कहा है। कबीर साहब ने कहा—

श्रूप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य॥
बड़ा तें बड़ा छोट तें छोटा मींहीं तें सब लेखा।
सब के मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा॥

'दृष्टि दृष्टि' यानी दृष्टि को जो देखने की शक्ति देती हे। चर्म दृष्टि से वह देखा नहीं जाता, रूह से—आत्मा से खोजो। इसी की कोशिश को ईश्वर की असली भक्ति कहते हैं, जिससे ईश्वर की पहचान होती है।

यहाँ (सत्संग-स्थल में) शून्य पहले से ही है। लेकिन सामियाने का परदा कर दिया है तो इसके अन्दर शून्य घिर गया है। लेकिन बाहर में भी शून्य है, उससे यह मिला-जुला है, अलग नहीं है। तत्त्वरूप में एक ही है। घेरे के अन्दर का आकाश पटाकाश और बाहर का आकाश महदाकाश कहलाता है। परमात्मा विभु है और जीवात्मा अणु है। दोनों में अंश और अंशी का भेद हैं। इसीलिए 'ईश्वर अंश जीव अविनासी' कहा गया है।

एक इन्द्रिय से एक ही चीज को पकड़ सकते हैं। देखने योग्य वस्तु को आँख से ग्रहण कर सकते हैं। रस को जिभ्या से ग्रहण कर सकते हैं। इस तरह पाँच ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय हैं। आँख का विषय जो है, सो कान का विषय नहीं है। कान को जो विषय है, वह नाक का विषय नहीं है। अलग-अलग विषयों का अलग-अलग इन्द्रियों में होता है। जो आँख से ग्रहण करते हैं उसे रूप, जो कान से ग्रहण करते है, उसको शब्द कहते हैं। इसी तरह जो केवल चेतन आत्मा से पहचान में आ जाए, वह है ईश्वर। इन्द्रियों से जो ग्रहण हो वह है माया। माया नाशवान है, ईश्वर का कभी नाश नहीं होता। इन्हीं बातों को जानकर कोई ईश्वर का भजन कर सकता है। नहीं तो ईश्वर को नहीं जान सकता। वैसे मोटी उपासना नाम-भजन लोभ करते हैं। ये सब बाहरी पूजा, नमाज आदि बेकार तो नहीं है, इससे मन पवित्र होता है, कुछ एकाग्रता आती है। लेकिन बाहर में कितना ही पूजा-पाठ करनेवाला हो, इन्द्रियों से जो दर्शन होता है, वह मायिक दर्शन है। ऐसा कोशिश करो कि मन बुद्धि आदि कुसंगी इन्द्रियों से संग छूट जाय इस बात को जो नहीं जानता, वह माया में भटकता रहता है। जहाँ ईश्वर नहीं वहाँ ईश्वर का भाव रखता है। संतों का मार्ग अंतर का मार्ग है। जन-साधारण को इसका ज्ञान नहीं है। वह कुछ अद्‌भुत है।

इन्द्रियों में तुम्हारा (आत्मा का) ही ज्ञान है। एक लालटेन है। जिसका शीशा अलग-अलग रंग का है। लालटेन को जलाने पर एक ओर से लाल रोशनी, दूसरी ओर से हरी, तीसरी ओर से पीली आदि निकलेगी। लेकिन भीतर की रोशनी न लाल

है, न हरी है, न पीली या नीली है। इन्द्रियों के ज्ञान में रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द; ये पाँच शीशे हैं, इनका असर लेते हुए जीवात्मा को माया की पहचान होती है। इनका संग छूटने पर चेतन आत्मा अपने तईं में रहता है, तब ईश्वर-दर्शन होता है। ईश्वर से प्रार्थना करो कि, इन्द्रियों से संग छूट जाय। यहाँ तक कि जड़ प्रकृति से भी पार हो जाए। संसार सुख के लिए क्या माँगना? संसार के सुख दुःख तो आते-जाते रहेंगे। कोई भी नवी, पैगम्बर, ऋषि, मुनि, साधु-महात्मा ऐसे नहीं आये कि उनको कोई कष्ट नहीं हुआ हो।

H

यह प्रवचन संथाल परगना जिलान्तर्गत महेशलिट्टी, गोड्डा में दिनांक १९.०३.१९७० ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

३१८. सुरत लगाने का यत्न जानो

प्यारे लोगो !

कबीर साहब का वचन यहाँ हो रहा था और बलख-बुखारे के सुलतान का जिक्र हो रहा था। आते-ही-आते मुझे कबीर साहब का बीजक याद आ गया। वह है—

संतो जागत नींद न कीजै ।

काल ना खाय कल्प नहिं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै ।।

कबीर साहब संतों को कहते हैं कि हे भाई, जागते हुए नींद में मत हो और जागते हुए नींद में हो, यह मत करो। लेकिन यह बड़ी बात है। जो कोई जागता है, वह अपने को पहचानता है। हमलोग सो जाते हैं तो 'मैं हूँ' का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। जागने पर 'मैं हूँ' का ज्ञान होता है, तब औरों का भी ज्ञान होता है। मतलब पहले अपने को जानते हो तो दूसरे को जानते हो।

जगने पर अपने की पहचान होगी। 'अपने की' से तात्पर्य अपने शरीर से नहीं, अंग-प्रत्यंग का नहीं, शरीर के भीतरी हिस्से का स्थूल-सूक्ष्म नहीं। अपने से तात्पर्य है कि आजकल जो डॉक्टरी विद्या का विज्ञान है, उससे जो देह के भीतर-बाहर जाना जाता है, वह भी नहीं। परन्तु शरीर के भीतर में ही तुम हो। कोई पूछे कि तुम शरीर के भीतर हो कि बाहर हो, कोई नहीं कहेगा कि मैं बाहर हूँ। अपने शरीर के अंदर जो अपना वासा है, उसको भौतिक विज्ञान अभी तक नहीं जाना है। अभी बहुत खोज हो रही है, लोग चाहते हैं कि भौतिक यंत्रों के द्वारा भौतिक ज्ञान में रहकर उसको प्रत्यक्ष जानें, जो अपने तईं है। सो न हुआ है, न होगा। प्रत्येक मनुष्य अपने अंदर भौतिक नहीं है, अभौतिक है। भौतिक यानी माया और अभौतिक यानी मायातीत पदार्थ। उसको संतों ने चेतन आत्मा कहा है। उसको 'आदि सुरत सत्पुरुष से आई। जीव सोहं बोलिये सो ताई।।' कहा है। बहुत से संतों ने उसको सुरत भी कहा है।

सत सुरत समझि सिहार साधौ । निरखि नित नैनन रहौ ।।

सुरत सत् है, माया असत् है, मायातीत सत् है। चेतनमय सुरत यानी जीवात्मा को अगर समझो तो इसको काल नहीं खाता है और समय के लम्बे अवधि को कल्प कहते हैं। वह कल्प भी नहीं व्यापेगा। चार युगों की चौकड़ी होती है, कितने युगों को जोड़कर कल्प होता है। जैसे यह भौतिक शरीर है, इसको काल भी खाता है। बुढ़ापा आता है, इसमें कमजोरी आती है, शक्ति कम होती है। शक्ति और कमजोरी भाव शरीर में होता है; उसमें (आत्मा में) नहीं होता है। जबतक इसको नहीं चीन्हा, तबतक जगे नहीं। देश की शास्त्रीय भाषा

में कहा जाय तो कहेंगे कि जबतक आत्म-ज्ञान नहीं हुआ है, तबतक जगे नहीं है। हमलोग जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति; इन तीनों अवस्थाओं में रहते हैं। अभी का जगना भी एक प्रकार का सोना है। सन्त लोग कहते हैं—

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि योगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिशय द्वैत वियोगी।।

जो कुछ भी दृश्य जगत है, अपने अंदर योगी देखता है और तीन अवस्थाओं को छोड़कर सो जाता है। 'सो जाता है' से तात्पर्य है कि तीनों अवस्थाओं के जो भाव हैं उनको छोड़कर—विस्मृत कर—भूलकर रहता है, तभी वह जागता है, ठीक-ठीक जागता है। उसी को हरि-पद का परम सुख मिलता है। वह द्वैत से—दो भेद से हीन हो जाता है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' लोग कहते हैं, लेकिन उसको प्रत्यक्ष हो जाता है। कहना और है, और प्रत्यक्ष होना और है। जबतक प्रत्यक्ष नहीं है, तबतक सोना ही है।

सपने होहिं भिखारी नृप, रंक नाकपति होय।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोय।।

स्वप्न में राजा भिखारी और दरिद्र इन्द्र हो जाता है, पर जग जाने पर न तो राजा को कोई हानि होती है और न दरिद्र को कुछ लाभ होता है। ऐसे ही संसार को मन में स्वप्नवत् जानो।

यही बात है कि हमलोगों को जगने में जो मालूम होता है, वही ठीक मालूम होता है। लेकिन वह अवस्था आवे तो—

यहि जग जामिनी जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

योग की अवस्था में जागना, सपनाना, गहरी, नींद; तीनों अवस्था नहीं होती है। योगी चौथी अवस्था में जाते हैं। बहुत लोग चौथी अवस्था सुने नहीं हैं। जितने सुने हैं, उतने को प्रत्यक्षता नहीं है। चौथी अवस्था में पहुचने पर यह जाग्रत भी स्वप्न हो जाता है।

तीन अवस्था तजहु भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनंत।।

चौथी अवस्था में होकर भजन करो, इसमें प्रत्यक्ष पाने का भजन होता है। कबीर साहब ने जो वचन कहा है—'जागत नींद नहीं कीजै' उसी आत्मतत्त्व को प्राप्त करने कहा है—चौथी अवस्था प्राप्त करने कहा है। जो ऐसा करते हैं, उन्हीं का आवागमन छूटता है। शरीर धारण करने का जो क्लेश है, सो दूर हो जाता है। संतों ने मोक्ष पाने का यत्न बताया है, सबको करना चाहिए। कितने लोग कहते हैं, इसके सभी अधिकारी नहीं हैं, लेकिन अधिकारी कौन होता है? ज्ञान लाभ करने से ज्ञान होता है। ज्ञानी के पास जाने पर, सत्संग करने पर यदि स्वयं ज्ञानवान हो, वह कहना नहीं जानता है, तो कोई कैसे ज्ञानी बनेगा। जाति-भेद से कोई अधिकारी नहीं होता, ज्ञान-भेद, अवस्था-भेद से अधिकारी होता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति का ज्ञान सबको है। जाग्रत का ज्ञान छूटकर स्वप्न का ज्ञान कैसे होता है? कितने जाग्रत में रोगी रहते हैं। स्वप्न में रोग का ज्ञान नहीं रहता है। मुझे बचपन की याद आती है कि बचपन में गेंद खेलने में पैर में चोट लग जाती थी, दुखता था; स्वप्न में चोट का ज्ञान नहीं, फिर गेंद खेलते थे। जो चौथी अवस्था में जाता है, उसको जो ज्ञान होता है, असली ज्ञान वही है। आत्म-ज्ञान होता है। चौथी अवस्था के आरम्भ में वा मध्य में आत्म-ज्ञान पूरा नहीं होता, तुरीय के अन्त में पूर्ण होता है। वह परम सुख भी पाता है—'सोई हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।' चाहिए कि संतों के ज्ञान-अनूकुल भजन करें। भजन करने की योग्यता वा अधिकार ज्ञानवान के संग से, सत्संग से होता है। जाति-भेद में जो ख्याल करते हैं कि नीच लोग को ज्ञान नहीं होगा, वे गलत हैं। ऐसा तो संतों को हुआ है। ऊँचे ज्ञानवालों का संग करो तो योग्यता होगी। पढ़े-लिखे हो तो भी, नहीं पढ़े-लिखे हो तो भी आत्म-ज्ञान होगा। साधन-भजन करने से प्रत्यक्ष होता है। जो

अच्छी तरह ध्यान लगाता है—

न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरत का खेल जेहि आवै।।

सुरत लगाने का यत्न जानो और करो। सत्संग करो, बिना सत्संग के कुछ नहीं होता है। केवल कुछ कहना-सुनना ही सत्संग नहीं है। कहने-सुनने पर समझो, ऐसा कि कभी भूलो नहीं। दूसरी बात यह है कि जैसा कुछ करने के लिए कहा जाता है, उसको करो भी, तब सत्संग ठीक है। यह बाहरी सत्संग है, जिसमें कहते सुनते हैं। ध्यान जो करते हैं, वह 'अंतरि सत्संग' है। इसमें मुँह क्या, मन को भी चुप करना होता है। H

यह प्रवचन संथाल परगना जिलान्तर्गत रामगढ़, दुमका में दिनांक २९ .०३. १९७० ई० के प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

३१९. भगवान का दर्शन भी हुआ और संदेह भी रहा !

आत्मवत् सज्जन लोगो !

ईश्वर-भक्ति का प्रचार इस सत्संग के द्वारा किया जाता है। ईश्वर की भक्ति में ईश्वर का दर्शन असली बात है। ईश्वर का दर्शन हो, भक्त खास तरह से यही चाहता है। भक्त को विश्वास होता है कि दर्शन होने से ही जो कुछ दुःख, विपत्ति, जंजाल है, सभी की निवृत्ति हो जाएगी। जैसे सूर्योदय होने पर प्रकाश और गरमी अवश्य मिलेगी, उसी तरह ईश्वर-दर्शन के संबन्ध में समझते हैं। जिन्होंने दर्शन किए, उन्होंने कहा कि दर्शन होने पर दैहिक बंधन, पिण्ड-ब्रह्माण्ड का बंधन समाप्त हो जाता है। लेकिन इसमें दो ख्याल हैं, एक यह कि किसी रूप में ईश्वर का ख्याल करो, उस रूप में आकर ईश्वर-दर्शन देंगे। गोस्वामी तुलसीदासजी भी इस दर्शन के बड़े भूखे थे। भक्त लोग ईश्वर-दर्शन के भूखे होते ही हैं। हनुमानजी से गो० तुलसीदासजी को बड़ी सहायता मिलती थी। उन्होंने राम के दर्शन के लिए हनुमानजी से प्रार्थना की। हनुमानजी ने कहा कि दर्शन होगा। चित्रकूट के घाट पर मन्दाकिनी के किनारे वे चन्दन घिस रहे थे। दो बालक आए और कहा कि मुझे तिलक लगा दीजिए। उन्होंने तिलक लगा दिया, लेकिन पहचान न सके। उन्होंने हनुमानजी से प्रार्थना की कि भगवान राम के दर्शन नहीं हुए। हनुमानजी ने कहा—'दो बालक को जो तिलक लगा दिए, वे ही राम-लक्ष्मण थे।' उन्होंने कहा—'मैंने पहचाना नहीं।' तुलसीदासजी के पुनः आग्रह करने पर हनुमानजी ने कहा—'अच्छा फिर दर्शन होगा।' इसके बाद तुलसीदासजी ने एक दिन देखा कि दो सुन्दर किशोर बालक घोड़े पर जा रहे हैं, किन्तु इस बार भी वे उन्हें पहचान न सके। हनुमानजी से भेंट होने पर बताया कि घोड़े पर आपने जिन दो बालकों को देखा, वे ही राम-लक्ष्मण थे।

दर्शन भी हो और पहचान नहीं हो, यह दर्शन कैसा? ब्रह्माजी को श्रीकृष्ण के दर्शन हुए, लेकिन उनको विश्वास नहीं होता था कि ये विष्णु के अवतार हैं। बाल-लीला से वे भ्रमित थे। ऐसे ही नारदजी भी दर्शन से भ्रमित रहे। दर्शन होने पर भी भ्रमित रहते हैं। यह बात बिल्कुल युक्तियुक्त नहीं है। ऐसे दर्शन में बात बाकी रह जाती है। उपनिषद् में कहा गया है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

उस परे-से-परे तत्त्व को अर्थात् परमात्मा को देख लेने पर जड़-चेतन की ग्रंथि खुल जाती है, जड़-चेतन की पहचान हो जाती है, सारे संशयों का नाश हो जाता है, कर्म-बन्धन खत्म हो जाता है। जिस दर्शन से ऐसा हो, वह ईश्वर-दर्शन असली

है। दर्शन भी हुआ, संदेह भी रहा, यह असली दर्शन नहीं, क्लेश कलह भी रहता ही है। पुराण को पढ़कर, रामायण को पढ़कर, महाभारत को पढ़कर, गीता को पढ़कर जान लीजिए। एक तो युद्ध के आरंभ में श्रीमद्भगवद्गीता है और दूसरी गीता है अणुगीता; दोनों पढ़ लीजिए। अणुगीता तब की है, जबकि युद्ध समाप्त हो चुका था। दोनों विश्राम करते थे, घूमते थे। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि युद्ध के मैदान में आपने जो उपदेश दिया था, चित्त स्थिर नहीं होने के कारण उसे ठीक-ठीक समझ न सका। आप पुनः मुझे उस ज्ञान का उपदेश करें। भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—उस समय मैं योगस्थ होकर उपदेश कर रहा था। अभी वैसी स्थिति नहीं है, फिर भी कहता हूँ। तब जो ज्ञान का कथन किए हैं, वह है अणुगीता। भगवान का दर्शन भी है और अर्जुन का संशय भी है और विस्मृति भी है। भगवान ने संशय दूर करने के लिए ज्ञान उपदेश दिया। अर्जुन को पीछे इतना दुःख हुआ, जितना किसी को नहीं। कृष्ण भगवान जब इस संसार से चले गए थे, तब उनका बल, विक्रम सब खत्म हो गया। पंजाब के लुटेरों ने उनको लूट लिया। मेरे कहने का आशय यह कि ऐसे दर्शनों से, दुःखों से छूटा नहीं जाता, विकारों से छूटा नहीं जाता।

सुरपति बसइ बाहँबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई।।
सूल कुलिस असि अंगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।

राजा दशरथजी का कितना तप है, वरदान है, फिर भी मनोविकार पर काबू नहीं, जंजाल से छूट जाता नहीं। बात यह है कि श्रीराम से लक्ष्मणजी ने पूछा था कि माया किसको कहते हैं, तो श्रीराम ने कहा था—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

हे भाई! इन्द्रियों को जो कुछ प्रत्यक्ष है और जहाँ तक मन जाता है, वह सब माया ही जानो। इसलिए संतों ने ईश्वर के निर्मायिक स्वरूप के दर्शन के लिए कहा है। तुलसीदासजी लिखते हैं—

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।

ईश्वर के मायिक रूप के दर्शन से माया में बहुत लाभ होता है, लेकिन मायिक दर्शन से दुःख-जंजाल से छूटा नहीं जाता। दूसरा भक्त कहता है, ईश्वर का दर्शन कहाँ करोगे, कैसे करोगे—शरीर-इन्द्रिय के साथ रहकर कि शरीर इन्द्रियों से छूटकर? शरीर-इन्द्रिय के साथ दर्शन में माया दर्शन होगा, इसमें जंजाल से, दुःखों से छूट नहीं सकते। दूसरे कहते हैं, अपने शरीर को शरीर-इन्द्रिय से ऊपर उठा लो, कैवल्य-दशा में अपने को लाओ, तब जो दर्शन होगा, वही असली दर्शन है। इसमें बुलाना नहीं है, अपने को उस ओर ले जाना है—

हिय नैन सैन सुचैन सुन्दरि, साजि स्रुति पिउ पै चली।
गिरि गवन गोह गुहारि मारग, चढ़त गढ़ गगना गली।।

यह काम करना है। अपने को ले चलना है, यह बहुत विस्तार बात है, छोटी नहीं। चलना कहाँ से होगा? कौन चलेगा—यह समझिए। शरीर नहीं चलेगा, मन चलेगा। मन के लिए कहते हैं कि माया तक चलेगा। लेकिन करोगे क्या? अभी मन और चेतन आत्मा का वैसा ही साथ है, जैसे दूध और घी का। यही जड़-चेतन का मिलाप है, यही गाँठ है। जो इस गाँठ को खोल सकता है, मन और चेतन को अलग-अलग कर सकता है, ईश्वर की महती कृपा से भजन को जो कर सकता है, वही ईश्वर-दर्शन पाता है। पहले मन और चेतन आत्मा दोनों संग-संग चलेगा। चलें तो कहाँ से चलें? जो जहाँ बैठा रहता है, वहीं से चलेगा। अभी आपलोग जहाँ-जहाँ बैठे हैं, सत्संग समाप्ति के बाद वहाँ-वहाँ से ही घर जायेंगे। यह समझिए कि चलना कब होगा—जागने में कि सोने में? जानो कि तुम शरीर में हो कि नहीं? कोई कह नहीं सकता कि मैं शरीर में नहीं हूँ। कोई कहे कि शरीर के अन्दर नहीं हूँ, तो वह पागल है। शरीर

में कहाँ हो? जगने में कहाँ रहते हो, स्वप्न में कहाँ रहते हो, सुषुप्ति में कहाँ रहते हो, तुरीय में कहाँ रहते हो? जागने में आँख में रहते हो। यदि आँख में नहीं रहते तो बाहर का कुछ नहीं देखते। परमात्मा ने सबसे ऊपर आँख को रखा है। वहीं से तमाम शरीर में धार आती है। ब्रह्मोपनिषद् पढ़ो, संतवाणी पढ़ो, तो मालूम हो जाएगा। कबीर साहब का कथन है—

इस तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और।।
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर।।

यह उत्तर दिया। बिहार में दरिया साहब हुए थे, उन्होंने कहा है—

जानिले जानिले सत्त पहचानिले, सुरति साँची बसै दीद दाना।

आँख में वासा है, बुद्धि से समझोगे तो समझो कि मैं शरीर के अन्दर हूँ, ऐसा सब कहते हैं। तो अन्दर में खोजो। अन्दर में कैसे खोजोगे, तो आँख बन्दकर खोजो। आँख बन्दकर देखोगे तो अंधकार मालूम पड़ेगा। तो वह अंधकार कहाँ है? आँख में है, तब पूछो कि कहाँ हूँ, तो उत्तर आवेगा कि अंधकार में हूँ। विचार में देखोगे तो यह होगा और शास्त्र-प्रमाण लो तो शास्त्रों को पढ़ो। जागने की अवस्था में काम करोगे। इसलिए इसको याद रखो, भूलो मत। आँख बन्दकर चलने की कोशिश करो। शरीर को चलाने के लिए पैर चलाना पड़ता है। इसमें क्या करना होगा? उलटा करना होगा।

बैठे ने रास्ता काटा। चलते ने बाट न पायी।।
है कुछ रहनि गहनि की बाता। बैठा रहे चला पुनि जाता।।

जिसका मन स्थिर होगा, वही चलेगा। जिसका मन स्थिर नहीं हुआ, उसको रास्ता नहीं मिलेगा। इसलिए—

मन आवै मन जाय, मनहिं बटोर रे।
मन बुड़वें मन टारे, मनहिं निहोरे रे।।

मन को बटोरो। कहाँ तक बटोरना होगा—एकविन्दुता तक। एकविन्दुता कैसे प्राप्त करोगे, गुरु से जानो। जो एकविन्दुता प्राप्त करता है, उसका पूर्ण सिमटाव हो जाता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति हो जाती है, चाहे वह कठिन पदार्थ हो, तरल हो वा वाष्पीय हो। मन सबसे सूक्ष्म है। इसको समेटोगे तो एकविन्दुता हो, असम्भव बात नहीं है। इसको ध्यान से प्राप्त करता है, मन से बनाता नहीं है। देखने के कौशल से देखता है, एकविन्दुता होती है, ऊर्ध्वगति होती है। ऊर्ध्वगति में आँख ऊपर जाता है। अभी जो जागने की अवस्था है, सो नहीं रहेगी। शरीर में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति की अवस्था नहीं रहेगी। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत।।

लोग पढ़ते भी नहीं, किसी से समझते भी नहीं। विनय-पत्रिका में है, पढ़ो। आँख के स्थान से चलना होगा। मन को समेटकर रखने से स्वाभाविक चलना होता है। आपलोग जो किसान हैं, वे अन्न को सुखाने के लिए फैलाते हैं और उसको समेटते हैं, तो ढेर हो जाता है। ऊपर उठो, जागने की अवस्था को छोड़ो। केवल ऊर्ध्वगति में सभी आवरण छूटते हैं। ईश्वर की कृपा की पहचान हो जाती है। गुरु नानक ने कहा है—

अन्तर जोति भई गुरु साखी चीने राम करंमा।
नानक हउमें मारि पतीने तारा चड़िया लंमा।।

अन्तर की ज्योति प्रकट हो गई और ईश्वर का दया-दान पहचान में आया, यह होने योग्य है, होना संभव है। हमलोग गुरु से यही विद्या सीखे हैं, करते हैं, दूसरे को सीखाते हैं। यह इतना सत्य है कि कोई इसको असत्य नहीं कर सकता, चाहे विचार से, चाहे ग्रन्थ प्रमाण से। इसी का प्रचार इस सत्संग से होता है। कबीर साहब ने कहा है—'संतो भक्ति सतोगुर आनि।' H

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर में दिनांक ८. ४. १९७० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३२०. परमात्मा की दो प्रकृतियाँ

प्यारे आत्मवत् प्रिय लोगो !

मैं बहुत थोड़ी-सी बात कहता हूँ। मेरे जानने में है कि सत् दो प्रकार के हैं। एक सत् वह है, जिसमें परिवर्तन नहीं होता, परन्तु कभी-न-कभी उसका अत्यन्ताभाव हो जाता है अर्थात् उसकी विलीनता हो जाती है, यह मानने योग्य है। उसकी उत्पत्ति हुई है। वह क्या है? परा प्रकृति। प्रकृति दो प्रकार के हैं—एक परा और दूसरी अपरा; उच्चकोटि और निम्नकोटि। निम्नकोटि में परिवर्तन होता है, किन्तु परा प्रकृति में परिवर्तन नहीं होता है। लेकिन इसकी विलीनता हो जाएगी ब्रह्म में अर्थात् इसका अत्यन्ताभाव हो जाएगा। दूसरा सत् है, जिसमें परिवर्तन नहीं होता और कभी विलीनता हो, सो नहीं; नहीं रहे, सो नहीं। न अत्यन्ताभाव, न किसी में विलीनता, न परिवर्तन। दोनों सत् के ज्ञान का लाभ जिस संग में हो, उसको सत्संग कहते हैं। अपरा प्रकृति का भी ज्ञान हो और परा प्रकृति का भी। परा प्रकृति का जिसने सृजन किया है, वह सत् है। जो श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पढ़ते हैं, वे जानते हैं कि भगवान ने दो प्रकृति का वर्णन किया है—अपरा और परा। अष्टधा को अपरा और चेतन को परा कहा है। मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु, आकाश और मन, बुद्धि, अहंकार; इन सबको मिलाकर आठ धातु जिस प्रकृति में हो, उसे अष्टधा प्रकृति कहते हैं—अपरा प्रकृति कहते हैं। जीव स्वरूप जो चेतन है, उसको परा कहते हैं। खुलासा यह हुआ कि परमात्मा की दो प्रकृतियाँ हैं—एक तो माया के रूप में, असत् रूप में और एक सत् के रूप में। स्वयं परमात्मा इससे परे हैं। क्षर पुरुष—अपरा प्रकृति नाशवान तत्त्व हैं और अक्षर पुरुष जो सब नाशवानों में अनाश होकर वर्तमान है, यही अक्षर पुरुष परा प्रकृति के रूप में जानने योग्य है। इन दोनों से उत्तम पुरुषोत्तम है। दोनों का ज्ञान होना चाहिए। क्षर पुरुष का भी ज्ञान होना चाहिए कि यह नाशवान है, इससे छूट जाना चाहिए। और परा प्रकृति का भी ज्ञान होना चाहिए, जो चेतन-रूपा है। यह जो क्षर पुरुष वा अपरा प्रकृति है, इसका ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा होता है। इन्द्रियों के ज्ञान के लिए रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द है। रूप के वास्ते आँख है, रस के वास्ते जिभ्या है, स्पर्श के वास्ते चमड़ा है, गन्ध के वास्ते नाक है और शब्द के वास्ते कान है। फिर संकल्प-विकल्प करना होता है, इसके लिए मन है। विचार के लिए बुद्धि है। 'मैं हूँ' इसके लिए अहंकार है। तीनों को कार्यान्वित करने के लिए चित्त है। इस तरह अपरा प्रकृति से निर्मित इन्द्रियाँ और मायिक विषयों का ज्ञान होता है। इन इन्द्रियों के अतिरिक्त अपने शरीर में आप स्वयं हैं। असल में आप ज्ञानमय हैं, आपही ज्ञान दाता हैं। चेतन को भी ज्ञानमय करना आपका काम है। इन्द्रियों में ज्ञान करा देना आप ही का काम है।

आपका निजी विषय कुछ है कि नहीं? है अवश्य। वह क्या है? जो इन्द्रियों के ज्ञान के द्वारा नहीं जाना जाता। आप अपने को ही इन्द्रिय से नहीं जानते हैं। जबकि आप अपने को ही नहीं जानते हैं, तो ईश्वर—परमात्मा को क्या जानेंगे! जानना केवल उपदेश सुनने-विचारने में नहीं है, यह तो बिना पहचान के जानना है। महात्माओं के वचन में जाना, पढ़कर जाना, विचारकर जाना; यह परोक्ष ज्ञान है। इसमें लालसा रह जाती है कि पहचान नहीं हुई। इसे पहचानने के लिए अपने से अपने को पहचान सकते हो। चेतन आत्मा—चेतन

आत्मा के द्वारा ही पहचानी जाएगी और चेतन आत्मा ही ईश्वर का अपरोक्ष ज्ञान पा सकती है, इसको भूलो मत। इसको जो नहीं जानते, वे ईश्वर का भाव वहाँ भी रखते हैं, जहाँ नहीं रखना चाहिए और उनको होता है कि मैंने ईश्वर को जाना। वे भ्रमित रहते हैं। जैसे आइने में अपने से अपने को देखते हैं, उसी तरह अपने को अपने से देखो। इसके लिए ज्ञान और योगमय भक्ति की जरूरत है। तीनों होना चाहिए। इससे यह होता है कि चेतन आत्मा को इन्द्रियों के ज्ञान से ऊपर उठाया जाता है। इन्द्रियों के आवरण से, शरीरों के आवरण से ऊपर उठाकर शरीरहीन, इन्दियहीन करके अपने ज्ञान में आया जाता है, उसी में अपने को और ईश्वर को पहचाना जाता है। इसके लिए साधन है—मानस जप, स्थूल ध्यान, सूक्ष्म ध्यान। सूक्ष्म ध्यान में ही दृष्टियोग और नादानुसंधान है। संतों के ज्ञान का सार थोड़े रूप में साफ-साफ कह दिया। फिर संतों के ज्ञान में है कि बहुत अधिक सच्चरित्रता चाहिए, सच्चरित्रता में हीन नहीं होना चाहिए। जो सदाचारी हैं, वे ही ज्ञान-योग-युक्त भक्ति में चल सकते हैं, दूसरे नहीं। सच्चरित्रता में है—झूठ नहीं बोलो, चोरी नहीं करो, नशाओं का सेवन नहीं करो, हिंसा मत करो, व्यभिचार मत करो। हिंसा मत करो के सिलसिले में मत्स्य-मांस भी नहीं खाओ। नशा में तम्बाकू भी नहीं लो, यह बड़ा विषैला है। यह बड़ा विषैला से विषैला साँप के मुँह में तम्बाकू दे दो, तो वह मर जाएगा। चाहे जर्दा खाओ, चाहे सिगरेट वा बीड़ी पीओ—नशा है।

भाँग तमाखू छूतरा, अफयूँ और सराब।
कह कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार।।
मद तो बहुतक भाँति का ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय।।
विद्या मद और गुनहु मद, राजमद्द उनमद्द।
इतने मद को रद करै, तब पावै अनहद्द।।H

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर में दिनांक ५. ४. १९७० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३२१. आनन्द और मंगल की जड़ : सत्संग

प्यारे आत्मवत् प्रिय लोगो!

मुझको बुलावा में कहा गया था कि मैं चलकर सत्संग का उद्घाटन करूँ। सत्संग मुझे बहुत प्रिय है, गोया जीवन का आधार है। इस आधार के लिए बुलावा हो, मैं उपस्थित नहीं होऊँ, तो मेरे लिए बहुत हानि, लज्जा, अपयश और अवनति का काम होगा, इसलिए आया। आते ही वेद-मंत्रों का पाठ होते पाया, तो मैं समझा—वेद-मंत्र से ही उद्घाटन होगा। फिर मुझे कुछ कहना चाहिए, सो कहता हूँ। आजकल आपके प्रान्त में और दूसरे प्रांतों में भी गोस्वामीजी की रामायण का बड़ा प्रचार है। उसमें लोग पढ़ते हैं, आप भी पढ़ते होंगे—

सतसंगति मूद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला।।

अर्थ बहुत सीधा है, तब भी थोड़ा-सा कहता हूँ कि गोस्वामीजी ने यह कह दिया कि मुद कहते हैं—खुशी को। आनन्द और मंगल, दोनों की जड़ सत्संग है। सत्संग आनन्द और शुभ की जड़ है। गोया सत्संग से ही आनन्द और शुभ होता है। ऐसा कोई नहीं, जो शुभ नहीं चाहे और आनन्द नहीं चाहे। आनन्द और शुभ की जड़ ही मिल जाए, तब तो कहना ही क्या है! जहाँ सत्संग होता

है, वे वहाँ से आनन्द पाते हैं और उनका कल्याण होता है। यह बहुत बड़ी बात है कि उन्होंने कहा—सत्संग की सिद्धि फल है कि सब साधन फूल हैं। फूल हों, फल नहीं लगे तो, पूरी संतुष्टि नहीं हो सकती। सत्संग की सिद्धि फल है, इसको समझाने की कोशिश करूँगा। 'सत' कहते हैं, जिसमें परिवर्तन नहीं हो, जिसकी स्थिरता रहे और अत्यन्ताभाव नहीं हो। परिवर्तन=बदल जाना, जैसे हमलोगों को शरीर है। बच्चे लोग बैठे हैं, इसी तरह हमलोगों का शरीर था, सुन्दरता और शक्ति चली गयी, फिर भी शरीर वही है; इस तरह परिवर्तन होता है। शरीर मर भी जाता है। कितने शरीर मर भी गए। कहते हैं कि पाँच तत्त्व का था, पाँचो तत्त्वों में मिल गया, तब भी रहा। कहते हैं प्रलय होता है और महाप्रलय भी होता है। प्रलय में कुछ रहता है और महाप्रलय में अत्यन्ताभाव हो जाता है। अत्यन्ताभाव होगा, तब वह सत्य नहीं है। सत्य क्या है? परिवर्तन हानेवाले पदार्थों में एक जीवनी शक्ति है, जिसको ज्ञानमय कहते हैं। उसको इसलिए चेतन कहते हैं, वह चेतन इस शरीर के अन्दर अंतःकरण के साथ रहता है और ब्रह्मतत्त्व—आत्मतत्त्व से भिन्न कोई रह नहीं सकता। शरीर मर गया, उसको जलाया गया, लेकिन ब्रह्मतत्त्व जलाया नहीं गया। इसी के लिए कहा गया है कि इसको हवा सुखाती नहीं, पानी भिंगाता नहीं, अस्त्र छेदता नहीं, अग्नि जलाती नहीं आदि। यह सत्य रह गया, इसलिए इसको ईश्वर का अंश कहते हैं—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

अपने यहाँ इसका बहुत विश्वास है कि शरीर को जलाया गया, चेतन आत्मा रही। यह अपने कर्मानुसार स्वर्ग-नरक भोगकर संसार में आती-जाती रहती है। शरीर के तरह इसका परिवर्तन नहीं होता। केवल आत्मा का कभी अभाव होता नहीं। कितने लोग चेतन और आत्मा को एक ही समझते हैं, लेकिन ऐसी बात नहीं। चेतन बदलता नहीं, लेकिन सृष्टि का पसार हुआ है, इसकी समाप्ति होगी, उस समय चेतन का भी विलीन हो जाना होगा। कभी-न-कभी अत्यन्ताभाव भी लोग मानते हैं, लेकिन आत्मा का अत्यन्ताभाव कभी होता नहीं।

'सत्' परा प्रकृति के नाम से, अक्षर के नाम से विख्यात है। नाशवान पदार्थ को क्षर पुरुष कहते हैं और अनाश को अक्षर पुरुष कहते हैं। इन दोनों से जो उत्तम है, वह पुरुषोत्तम है। गीता में इन तीनों का वर्णन है। पुरुषोत्तम में भी न परिवर्तन होता है, न अत्यन्ताभाव होता है। प्रलय, महाप्रलय में इसका कुछ बिगड़ता नहीं। अक्षर पुरुष, चेतन पुरुष, परा प्रकृति का कभी-न-कभी अत्यन्ताभाव होता है, लेकिन यह भी 'सत्य' है। और आत्मतत्त्व का कभी परिवर्तन नहीं होता, न अत्यन्ताभाव होता है, यह भी 'सत्य' है। उस सत् का इस सत् से मेल हो, यही है सत्संग का फल। चेतन आत्म-तत्त्व का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करो। शुद्ध आत्म-तत्त्व—ब्रह्मतत्त्व का प्रत्यक्ष ज्ञान हो, सत्संग की यही सिद्धि सत्संग करते-करते जड़-चेतन की भी गाँठ जाए; यह जड़ है, यह चेतन है—ठीक-ठीक पहचान में आ जाए और फिर आत्मतत्त्व का भी पहचान हो; यह सत्संग की सिद्धि है। लेकिन यह बाहर नहीं, अन्दर में होगा। और सब साधन फूल हैं, इसलिए कि संसार में यशस्वी होते हैं, यश की सुगन्धि फैलती है, वे संसार में प्रतिष्ठित होते हैं और यह है कि आत्मतत्त्व का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसके लिए ध्यान-भजन करना, ज्ञान अर्जन करना, योगाभ्यास करना, भक्ति करनी—ये सब साधन फूल हैं। जो इसको ग्रहण करते हैं तो संसार में सच्चरित्र होते हैं। उनकी सच्चरित्रता की बड़ाई है, वह तमाम होने लगती है। गोया यह है, यह बाहर की सिद्धि है। अंतर में साधन करते-करते जड़-चेतन और शुद्ध आत्मतत्त्व को—तीनों को

अलग-अलग कर प्रत्यक्ष जानते हैं, यह फल है। जो बराबर सत्संग करते हैं, उनके लिए है–

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।।
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ।।

बुद्धि, यश, मुक्ति, ऐश्वर्य और भलपन; जब कभी जहाँ कहीं, जिस किसी उपाय से जिसने पाया है, वह सत्संग के प्रभाव से हुआ, जानना चाहिए। लोक और वेद में इसके मिलने का उपाय नहीं। ये पाँच पदार्थ सत्संग करते-करते मिलते हैं। जिनको ये पाँच चीजें मिल जाएँ, संसार में उसको कुछ बाकी नहीं रह जाता है। वे स्वयं लाभान्वित होते हैं और संसार को लाभ पहुँचाते हैं। सत्संग ज्ञानमयी यज्ञ है। गीता में कहा गया है कि द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञानमय यज्ञ श्रेष्ठ है। यहाँ भी होगा। ये शुभ के लिए करते हैं। सबसे बड़ा शुभ है–ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होना। यह भी सभी प्राप्त कर लेंगे, जो सत्संग करते रहेंगे। कबीर साहब ने कहा–

सत्संग से लागि रहो रे भाई। तेरी बनत बनत बन जाई।।

मैंने जो आन्तरिक सत्संग करने के लिए कहा है, वह बड़ा विस्तार है। वह ध्यान से होता है। स्थूल ध्यान को लोग जानते हैं, सूक्ष्म ध्यान कम लोग जानते हैं। सूक्ष्म ध्यान में भी रूप ध्यान और अरूप ध्यान है। जो कोई जानते हैं, वे करें; जो नहीं जानते हैं, जानकर करें। इन्हीं शब्दों के साथ मैं उद्घाटन करता हूँ, सबका कल्याण चाहता हूँ। n

यह प्रवचन बाँका जिलान्तर्गत गाँव पैर में दिनांक ८. ४. १९७० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३२२. संतवाणी संतों की प्रतिमूर्ति है

धर्मप्रेमी जनता!

मैं अधिक अपने को जनाऊँ, यह तो कोई मेरे लिए ठीक बात नहीं है। कुछ कहूँ अपने को, तो सत्संग-सेवक कह सकता हूँ। कुछ नहीं कहूँ तब भी आप यही समझें। सत्संग–संतों के संग का नाम है। संतवाणी संतों की प्रतिमूर्ति है, ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिए जहाँ कहीं सत्संग-सेवा में जाता हूँ, वहाँ संतवाणी का पाठ स्वयं करता हूँ और अन्यों से कराता हूँ। गुरु महाराज ने संतवाणी को सत्संग की जड़ बताया है। अभी आपने सुना–

परमातम गुरु निकट विराजे, जागु जागु मन मेरे।
धाइ के सतगुरु चरणन लागो, काल खड़ा सिर तेरे।।
छिन छिन पल पल सबही सँवारे, अबहुँ जाग सबेरे।
काम क्रोध मद लोभ मोह तजि, छिमा दया दिल हेरे।।
भाई बन्धु कुटुम्ब कबीला, सब स्वारथ के चेरे।
जब जम जालिम आन पकरिहैं, कोइ न संग चले रे।।
भवसागर वाकी है धारा, लख चौरासी फेरे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जग से किए निबेरे।।

इस थोड़े-से पद्य के बीच में जितना ज्ञान है, उसको बताने के लिए ठीक-ठीक लिखा जाए तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो जाएगा। ईश्वर–परमात्मा सबके नजदीक ही हैं। मेरे नजदीक भी हैं। हमारा मन सोया हुआ है, इसलिए नजदीक नहीं जान रहे हैं। एक विश्वास होता है कि ईश्वर है, लेकिन पता नहीं कहाँ है? प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता है। यही प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होना, मनुष्य का सोना है। इस सोए से जगना चाहिए। इस निस्बत जो ज्ञान है, उसको श्रवण के द्वारा जानना भी जगना है। लेकिन यह जगना साधारण जगना है। पूरा जगने के लिए जड़ में श्रवण-मनन तो अवश्य चाहिए, लेकिन आगे है–

यहि जग जामिनी जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।

अर्थात् योग से जगते हैं। बिना योग के कोई

जग नहीं सकता। योगीजन जगते हैं। कैसे जगते हैं? हमारी तीन अवस्थाएँ हैं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। हमलोगों का जगना योगी के ख्याल से सोना है। योगी कहते हैं कि तीन अवस्थाओं के आगे भी अवस्था है, उस अवस्था का ज्ञान प्राप्त करो, तो जगोगे।

तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनंत।।

तीन अवस्थाओं को छोड़कर ईश्वर का भजन करो। यह कौन अवस्था होगी? जाग्रत वा राम-राम वा जैसा गुरु बतावें, वैसा कहते हैं। अधिक अभ्यास के कारण स्वप्न में भी भजन हो, लेकिन सुषुप्ति में क्या होगा? और इसके परे कौन अवस्था होगी? तीन अवस्था स्वाभाविक है। यह अपने आप प्राप्त होती है। योग अभ्यास करके चौथी अवस्था प्राप्त होती है। भजन चौथी अवस्था को भी पार कराता है। तुरीय से तुरीयातीत अवस्था को पहुँचाता है। यह दूर की बात है। पहले तीन अवस्थाओं को त्यागकर जो तुरीय अवस्था है, उसमें जाओ। यह योगाभ्यास से होगा, बिना योग के नहीं होगा। चित्तवृत्ति-निरोध को योग कहते हैं, मनोनिरोध को योग कहते हैं। कठिन साधन से हो सके तो, सो करो और सरल साधन से हो सके, तो भी करो। संतों ने कहा कि सरल साधन है। सबके लिए वही सुलभ है। कबीर साहब केवल श्रवण-मनन के लिए ही नहीं जगाते हैं। इसके बाद निदिध्यासन और अनुभव ज्ञान होता है।

योग साधन करते-करते जो ज्ञान होता है, वह निदिध्यासन ज्ञान है। उसका जो चरम लक्ष्य है अर्थात् निदिध्यासन का जब अन्त होता है, तब जो ज्ञान होता है, वह अनुभव ज्ञान है। यह पूरा-पूरा जगना है। साधक ईश्वर का प्रत्यक्ष देखता है, जैसे अपने आप शरीर को देखता है, वैसे ही वह अपने आप को देखता है। सुनना-विचारना पहला काम है, इसके बाद निदिध्यासन करो, फिर उसको भी खत्म करो। यह जगने का यत्न है। चौथी अवस्था में एक पल भी रहो, तो एक पल जग गए और अनुभव तक चले गए, तो ऐसा जगे कि कभी सोएँगे नहीं—

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

मैं देखता हूँ कि ईश्वर संबंधी ज्ञान में पूर्ण हो, ऐसा बहुत कम लोग हैं। केवल श्रवण-मनन के आधार पर ईश्वर-दर्शन आदि के बारे में सिद्धान्त बताने में कोई गलती हो जाए, असम्भव नहीं है। अपने को किससे जानोगे, इसका निर्णय जानना चाहिए। निर्णय संतवाणियों में और शास्त्र के अन्दर है। लेकिन उस ओर लोग ध्यान नहीं देते, बाहरी बातों में ध्यान देते हैं।

श्रवण-मनन के बाद निदिध्यासन में जाना है और इससे परे भी जाना है। चौथी अवस्था समाप्त हो जाए, उसका भी ज्ञान अवश्य चाहिए। उस ज्ञान के बिना काम पूरा नहीं होता। मैं जो कुछ कहता हूँ, श्रीसंतसेवीजी लिखते जाते हैं। यह भी प्रकाशित होता है। यह इसलिए मैं कहता हूँ कि श्रीअनूप बाबू कुछ लिखने कहते हैं, सो तो लिखने का काम हो ही रहा है। इन्हें मैं धन्यवाद देता हूँ कि मुझे कुछ लिखने का सुझाव दिया। समेली गाँव से मेरा संबंध १९११ ई० से है। कोशकीपुर से भी बहुत दिनों से सरोकार है।

अपने देश में अध्यात्म-ज्ञान की इतनी खोज हुई कि अब बाकी नहीं रही है। कही हुई बात को ही लोग कहा करते हैं। मैंने सबसे पहले संतवाणी का संग्रह किया। केवल तुलसीदासजी, कबीर साहब और नानक साहब की वाणी ही खोज नहीं की; उपनिषद् और वेद-मंत्र को भी साथ किया। आज के विद्वानों का विचार भी उसमें दिया। इसके तीन भाग हुए। फिर उससे मैंने क्या समझा, वह

चौथा भाग में लिख दिया। उसका नाम है 'सत्संग-योग'। फिर श्रीगीता-योग-प्रकाश लिखा। इसलिए कि गीता पर किसी ने ऐसा लिखा कि केवल कर्म पर जोर दिया। कहा—कर्म करो, कर्म करो। ध्यान को गौण कर दिया। इसलिए मैंने श्रीगीता-योग-प्रकाश लिखा। फिर मेरे मित्रों ने और मेरे साथियों ने वेद के संबंध में कहा, तो उसको भी मैंने मँगाया। वह चौदह जिल्दों में है। मैंने उसको पढ़ा और उसके अन्दर निशान लगाया। फिर उसको प्रकाशित किया, उसका नाम है—'वेद-दर्शन-योग।'

उत्तर भारत में तमाम संतों के ज्ञान का प्रचार है। दक्षिण में भी संतों का ज्ञान है। केवल कबीर साहब का ज्ञान ही संतमत नहीं है। पहले ऋषियों ने क्या कहा, यह भी देखता हूँ। बिल्कुल एकमेल है। साहित्य को पढ़ना चाहिए और मेधा=बुद्धि चाहिए। धारणावती बुद्धि को मेधा कहते हैं। पढ़ गए, सुन गए, भूल गए; यह मेधा नहीं है। पढ़ा-सुना याद रहा, यह मेधा है। पढ़-सुनकर ही काम नहीं चलता, निदिध्यासन करना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने साधन बताया, गीता और भागवत पढ़कर देखिए। संत लोग भी बताए हैं। अपने देश में संत-साहित्य मुख्य साहित्य है। उसे पढ़ना चाहिए और साधन करना चाहिए। साहित्य पढ़ा जाए और साधन नहीं करें, तो अधूरा रहेगा। पढ़-सुनकर साधन भी अवश्य करना चाहिए।

H

यह प्रवचन कटिहार जिलान्तर्गत ग्राम—समेली में दिनांक ११. ४. १९७० ई० को रात्रिकालीन सत्संग में हुआ था।

३२३. सामूहिक स्तुति अवश्य करो

प्यारे लोगो!

उपकार करनेवाले की सेवा करना चाहिए। जो नहीं भी उपकार करे, सेवा करने योग्य हो, फिर भी उसकी सेवा करनी चाहिए। जो उपकारक हो, उनकी सेवा तो अवश्य करो। भाँति-भाँति की सेवा होती है—'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा ।'

रामायण में है। भरतजी ने कहा था—आज्ञा मानो, आज्ञा पर चलो; इससे बढ़कर कोई सेवा नहीं। संतों की आज्ञा है कि ईश्वर का भजन करो। यह संतों की सेवा है। जो भजन करते हैं, वे संतों की आज्ञा मानते हैं, इसलिए संतों की सेवा करते हैं। फिर भी, और जो उचित हो, मौके-मौके पर सेवा करनी चाहिए। और ईश्वर ऐसे हैं कि उनकी आज्ञा क्या है, हम नहीं जानते हैं। ऋषि-मुनि, साधु-संत के बताने से जानते हैं। भेद की बात है कि अपने देश में जो योग-विद्या है, इसमें शरीर में स्थान-स्थान का भेद है, अलग-अलग नाम हैं। एक स्थान का नाम है आज्ञाचक्र। यह नेत्र संबंधी स्थान है, उनके नीचे पाँच चक्र और हैं। लेकिन जो नेत्र संबंधी स्थान है, जिसको योगियों ने आज्ञाचक्र कहा है, वहाँ ईश्वरीय आज्ञा होती है। जो उसकी आज्ञा की पूर्ति करता है, वह ईश्वर की ओर खींच जाता है। वहाँ ऐसे शब्दों में आज्ञा नहीं है, जैसे वर्णात्मक शब्दों में हमलोग बोलते हैं। सार्थक शब्द वा वर्णात्मक शब्द में वह आज्ञा नहीं है, सार्थक के अतिरिक्त निरर्थक या ध्वन्यात्मक शब्दों में है। निरर्थक का अर्थ बेकाम नहीं है, उसका अर्थ नहीं है। ध्वनि जो निकलती है—गाजे-बाजे बजते हैं, ध्वन्यात्मक शब्द हैं। इसका अर्थ नहीं होता, लेकिन बड़ा काम का शब्द है, बड़ा आकर्षक है। बाजे बजते हैं, उसका बड़ा आकर्षण होता है। आज्ञाचक्र में जो आवाज होती है, उसको बजानेवाला

दूसरा कोई नहीं है, परमात्मा है। वह ईश्वर की ओर से आज्ञा समझो। इसको साधक जानते हैं। आज्ञा में यही भाव है कि ईश्वर कहता है कि तुम मेरे तक आओ। तुमको ध्वन्यात्मक शब्द का सहारा दिया, यहाँ आओ। लेकिन उस आज्ञा को आज्ञाचक्र में जानोगे। जो आज्ञाचक्र में साधना करते हैं, तो उनको खास तरह से विदित होता है कि ध्वन्यात्मक शब्द है, आकर्षक है, अपने उद्गम स्थान पर खींचता है। इस आज्ञा को जो पकड़ता है, उस ओर खींचा जाता है। वह ईश्वर की आज्ञा मानता है। अथवा पकड़ने की कोशिश करता है, वह ईश्वर की आज्ञा को मानता है। अथवा पकड़कर धरे रहता है, वह ईश्वर की आज्ञा को मानता है। भक्ति कहते हैं—सेवा को। जो अपने अन्दर उस शब्द पकड़ता है, वह ईश्वर की आज्ञा को मानता है। यह ऊँचे दर्जे की बात है। इसकी ऊँचाई से भी कम की बात है, वह है कि ईश्वर का गुण गाओ। ईश्वर-भक्ति में तीन बातें होती हैं—स्तुति, प्रार्थना और उपासना। स्तुति कहते हैं गुणगान करने को। प्रार्थना कहते हैं नम्रतापूर्वक कुछ माँगने को, विनती करने को। उपासना है—ईश्वर में मन लगाना। इसके लिए जप और ध्यान खास है, जो कि एकान्त में बैठकर लोग करते हैं। वैसे तो स्तुति और प्रार्थना भी आराधना के अन्दर है, जब स्तुति-प्रार्थना को उससे हटा देते हैं तो जप-ध्यान ईश्वर की आराधना है। ईश्वर का गुणगान सबको करना चाहिए। जप,ध्यान पीछे, लेकिन स्तुति-प्रार्थना पहले। साधु-संत, भक्तजन के संग बैठकर सीखो कि स्तुति कैसे होती है? ईश्वर का गुण गावे, तो वह जान सकता है कि ईश्वर में जो अद्भुत शक्ति है, उससे वे मनुष्य को बहुत लाभ पहुँचाते हैं, बात-बात में पहुँचाते हैं। देखो, हवा का भोजन दिन-रात मिलता है। सिवा ईश्वर के कौन दे सकता है! हवा के बिना जी नहीं सकते। इसलिए स्वप्न में भी श्वास लेते हैं। हमलोग प्रातःकाल सूर्य का दर्शन करते हैं। सूर्य नहीं रहे तो हमारा जीवन नहीं रहे। सूर्य के कारण ही हवा में वेग आता है, बादल बनता है, वर्षा होती है, अन्न-फल होता है, उससे पालन-पोषण होता है। इस सूर्य का देनेवाला ईश्वर के सिवा और कोई हो नहीं सकता। ईश्वर की कृपा से होता है। संसार से सूर्य उठ जाए तो संसार तहस-नहस हो जाए। जो कोई आज्ञा मानते हैं, ईश्वर के शब्द को पकड़ते हैं, तो इस तरह भी ईश्वर की उपासना वा भजन करते हैं। यह अवश्य करना चाहिए।

मनुष्य को कुछ-न-कुछ इच्छा रहती है। किसी न चाहकर ईश्वर से चाहो, तो ठीक है। ऐसा कुछ नहीं जो ईश्वर के द्वारा नहीं मिल सकता है। इसीलिए स्तुति करो। जो उपकारक की सेवा स्तुति के रूप में नहीं कर सके वा उसका शब्द नहीं पकड़े, तो वह कृतज्ञ नहीं है, कृतघ्न है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने बहुत जोरदार शब्दों में कहा है कि वह आत्मघाती है—'आतमहन गति जाय।' अपने से अपने को दुःख में डालना, अपने से अपने को हनन करना 'आतमहन' है। किसी को 'आतमहन' नहीं होना चाहिए। इसलिए प्रातःकाल ईश्वर की स्तुति करते हैं—

सब क्षेत्र क्षर अपरा परा पर, औरु अक्षर पार में ।
निर्गुण सगुण के पार में, सत् असत् हू के पार में ।। ..

जो पढ़े-लिखे हों, वह याद कर लो; जो पढ़े-लिखे नहीं हों, वह भी सुन-सुनकर सीख लो और रोज करो। सबलोगों के बीच में इसीलिए स्तुति करते हैं कि सुनते-सुनते सीख जाते हैं। इसलिए सामूहिक स्तुति अवश्य करो और अकेले में भी करो। संत के बिना ईश्वर का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए संत का बड़ा उपकार हमलोगों पर है, उनकी भी स्तुति करो। संत-महात्मा लोग गुजर गए हैं, उनके वचन हमको मिलते हैं। संतलोग जबतक जीवित रहते हैं, बड़ा उपकार करते हैं। जब शरीर नहीं रहता, तो वे अपना ज्ञान छोड़ जाते हैं। दोनों तरहों से हमारा उपकार होता है।

इसलिए उनकी भी स्तुति करो। संत तो उपकारक होते ही हैं, गुरु और भी अधिक उपकार करते हैं। संतलोग गंगा की तरह पवित्र धारा है। जैसे गंगा बहती रहती है, वैसे वे चलते-रहते हैं। उन्हीं में से गुरु होते हैं, वे अपने शिष्यों की सम्हाल करते हैं। जहाँ तक हो सकता है उपदेश देते हैं, ज्ञान देते हैं, ध्यान की प्रेरणा देते हैं। इसलिए गुरु की भी स्तुति करो, नहीं तो कृतघ्न होने का पाप लगता है, इस पाप से बचो। पाप कोई भी अच्छा नहीं, लेकिन यह पाप सब पापों का सरदार है, इससे बचो। अपने मन को गुरु—संतों के चरणों में झुकाए रहने से ज्ञान की ओर मन लगता है। यह सब लोगों को करना चाहिए। फिर ईश्वर के नाम का लोग बहुत गुणगान करते हैं। जैसे ईश्वर का गुणगान, वैसे ईश्वर के नाम का गुणगान होता है। जितने भी ईश्वर के नाम हैं, सभी शब्द-ही-शब्द हैं। लेकिन यह शब्द वर्णात्मक है, सार्थक है। इसके अतिरिक्त ध्वन्यात्मक शब्द है, वह आज्ञाचक्र में मिलता है, वह पकड़ो—

श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक, वर्णात्मक विधि तीन।
त्रिविध शब्द अनुभव अगम, तुलसी कहहिं प्रवीन ।।

श्रवणात्मक और वर्णात्मक; दोनों को कान से सुनते हैं, लेकिन जो ध्वन्यात्मक है, वह कान से नहीं सुना जाता, सुनने के ढंग से अन्दर में सुना जाता है। श्रवणात्मक शब्द में बाहरी ध्वन्यात्मक शब्द भी है, लेकिन भीतरी शब्द की बात जो पहले कहा, वह शब्द भी जानो। इसलिए—

अव्यक्त अनादि अनन्त अजय, अज आदि मूल परमातम जो।
ध्वनि प्रथम स्फुटित परा धारा, जिनसे कहिए स्फोट है सो।।

स्फोट शब्द वर्णात्मक में कहा, लेकिन उसका अर्थ नहीं होता। इसीलिए कहा—'ध्वनि प्रथम स्फुटित परा धारा, जिनसे कहिए स्फोट है सो।' ईश्वर का ध्वन्यात्मक नाम को भजन से पकड़ा जाता है। ईश्वर के वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक; दोनों नामों को जानो। इस तरह ईश्वर की उपासना करो, ईश्वर की स्तुति करो, प्रार्थना करो। संतों की स्तुति करो, प्रार्थना करो। गुरु की स्तुति करो, प्रार्थना करो। नाम के दोनों भेदों को जानो और करो। फिर अपने सिद्धान्त को भी जानो। किसी मत वा धर्म का कहलाओ और अपने धर्म का सिद्धान्त नहीं जानो, तो उस सिद्धान्त के अनुसार चल नहीं सकोगे। जानो और याद रखो। जो याद नहीं रखेगा, वह क्या करेगा? इसलिए गद्य-पद्य दोनों में पाठ करते हैं। यह धर्म क्या है, संतों का ज्ञान क्या है? इसलिए उसकी परिभाषा पढ़ते हैं। यह भी अवश्य चाहिए। इसकी क्या उपयोगिता है, इसलिए मैं यह कहा। उपकारक का हम कृतघ्न हैं, यदि हम स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करते हैं। जब देशी राजाओं को राज्य था, उन राजाओं की कमजोरी से राज्य रक्षा की व्यवस्था ठीक नहीं रह सकी। दूसरे देश के लोग आए और देशवासी को हजार वर्षों तक दबाए रखा। लोगों को बड़ा अखरा कि हम पराधीन हैं, इसको हटाओ। उस समय के विद्वानों ने, ज्ञानवानों ने विचारा कि उससे लड़ने के लिए हमारे पास लड़ने की विद्या नहीं, धन नहीं, हथियार नहीं कैसे लड़ेंगे? तो कहा कि लड़ने के लिए बुद्धि से लड़ो। जितने कोई हो, एकमत हो जाओ। यही बात हुई और उसको बुद्धि से हटाकर भगा दिया। नहीं तो उनसे लड़कर जीत नहीं सकते थे। वह कटू उक्ति से नहीं, नम्रतापूर्वक कहा तो प्रबल शासक चला गया। एकमत होने से कितना लाभ हुआ, देखिए। एकमत में आनेवाला आपस का प्रेम है और प्रेम में लानेवाला सच्चाई है, ज्ञान है। जो ज्ञान है, वह धर्म-ज्ञान है, इसको रखना चाहिए। धर्म-ज्ञान में दूर-दूर देश के लोग भी मिलकर एक हो जाते हैं। संतों का ज्ञान गंभीर है, उच्च है। ज्ञान में सब एक मेल होकर रहिए। मेल रखनेवाला प्रेम है। प्रेम को दृढ़ करनेवाला है सच्चाई। प्रेम रखिए, मेल रखिए। आपस में मिलकर प्रार्थना कीजिए। आपके यहाँ लोग प्रति शुक्रवार

को सामूहिक प्रार्थना करते हैं, उनके भी मन्दिर हैं, उसको मस्जिद कहते हैं। बड़ा अच्छा है। आप भी सब कोई मिल-जुलकर सत्संग करें। अखिल भारतीय सत्संग होता है। यह भी सब कोई मिलकर करें। पहले गाँव के वास्ते, फिर देश के वास्ते, फिर संसार के लिए करें। इस संसार से जो गत हो गया, उसके लिए भी लाभदायक है। सबको चाहिए कि ईश्वर की स्तुति, गुरु की स्तुति, संत की स्तुति करें, फिर स्थूल और सूक्ष्म उपासना करें।

पहले विद्या लिखी नहीं जाती थी। बड़े-बड़े विद्वानों के मस्तिष्क में रहती थी। मौखिक ही लोग सीखते थे। जबसे स्मरण शक्ति घटी तो विद्वानों ने उसको कागज में लिखकर रखा। जड़ में लिखने की विद्या नहीं थी, स्मरण रखने के लिए कहा जाता था। जो पढ़े-लिखे नहीं हों, वह सत्संग में आकर बैठो, सुनो, समझो। होते-होते हो जाएगा। H

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—गैदूहा में दिनांक १३. ४. १९७० ई० को प्रात:कालीन सत्संग में हुआ था।

संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज की देश-रक्षार्थ मंगलमयी प्रेरणा

आज वा कल, कभी-न-कभी इस शरीर का नाश हो जाना ध्रुव निश्चित है, किन्तु लोक-कल्याणकारी कार्य में इस शरीर का बलि हो जाना अति श्रेयस्कर है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, हाथ कँपते हैं, फिर भी यदि देश-रक्षा के निमित्त सरकार मुझे युद्ध में जाने के लिए कहे तो मैं सहर्ष जाने के लिए तैयार हूँ। देश-रक्षार्थ युद्ध के लिए अपने देश के किसी भी व्यक्ति को मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। यह अनिवार्य हिंसा है, जैसे कृषकों के लिए कृषि-कर्म की हिंसा होती है। नवजवानों को साहसी, निरालसी और पुरुषार्थी होना चाहिए और सभी देशवासियों को तन, मन और धन से सतत सरकार की सहायता के लिए तत्पर, सावधान और क्रियाशील रहना चाहिए, जिससे देश का यह संकट शीघ्र टल जाय।

(यह बात उस समय की है, जब चीन और भारत के बीच युद्ध छिड़ गया था। देश को संकट में देखकर सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज ने १२ अक्टूबर १९६२ ई० को अपराह्णकाल में सभी आश्रम वासियों को बुलवाकर सामूहिक रूप से महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर के सत्संग मन्दिर में अपने साथ बैठाकर देश पर आए संकट टलने हेतु ध्यानाभ्यास करवाया। तदुपरान्त उन्होंने उपर्युक्त मंगलमयी उद्घोषणा की थी। उसी रात्रि में समाचार मिला कि युद्ध समाप्त हो गया, फलत: देश का संकट टल गया।)

—महर्षि संतसेवी परमहंस

३२४. उपासनाएँ अनेक : रास्ता एक

प्यारे लोगो!

मैं जो कुछ कहूँगा और मेरे साथी जो कुछ कहते हैं, सो सब ईश्वर संबंधी बातें ही हैं। ईश्वर की भक्ति के संबंध में जो बातें चाहिए, वे ही बातें होती हैं। कारण है कि—

स्रुति पुरान सद्ग्रन्थ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।।

इस सम्बन्ध में संतसेवीजी के प्रवचन में आपलोग सुन चुके हैं, उसपर मुझे कुछ कहना नहीं है। दो प्रकार के भक्त होते हैं। एक वह कि जैसा रंग-रूप में हम भगवान को चाहते हैं, वैसे रंग-रूप में आकर वे मुझे दर्शन दें। दूसरा चाहता है कि मैं अपनी ओर से क्या कहूँ आने के लिए, वे तो सर्वव्यापी हैं ही। इसलिए हे प्रभु! मुझे वैसा बना दीजिए कि मैं आपके सर्वव्यापक स्वरूप को देख सकूँ। संत लोग, गुरु लोग कहते हैं कि तुम ऐसा प्रयास करो कि तुम स्वयं वहाँ जा पहुँचो, जहाँ ईश्वर की पहचान हो। फिर यह ज्ञान उदय होता है कि जाऊँ कहाँ? वह तो सर्वत्र है। तब अड़चन क्या है कि यहाँ पहचान नहीं होती? गुरु कहते हैं—तुम इन्द्रिय-ज्ञान में बराबर रहा करते हो। कभी जाग्रत में, कभी स्वप्न में, कभी सुषुप्ति में रहते हो। इन तीनों अवस्थाओं में तथा इन्द्रिय-ज्ञान में रहकर ईश्वर-दर्शन नहीं होता है। इस बात को याद रखो। जो इस बात को याद नहीं रखता, वह वहाँ ईश्वर के लिए दौड़ता है, जहाँ ईश्वर की प्रत्यक्षता नहीं है।

अर्जुन अपने पुत्र के निधन पर शोकित था। श्रीकृष्ण भगवान उसको चन्द्रलोक ले गए और उसके बेटे को दिखलाया। वहाँ बेटा-बेटा कहकर अर्जुन ने उसको पुकारा। उसने बड़ा फटकारा और कहा—यहाँ कौन तुम्हारा बेटा है? एक समय था, जब मैं तुम्हारा बेटा था। अब वह समय चला गया, तुम जाओ।

आज के वैज्ञानिक लोग चन्द्रलोक गए हैं। लेकिन उनको पता नहीं लगा है कि वहाँ, कहाँ क्या-क्या है? उनको हारमोनियम जैसी आवाज सुनाई दी थी। कहीं भी जाओ, जहाँ तक पाँच तत्त्व हैं, स्थूल वा सूक्ष्म है; जहाँ तक इन्द्रिय-ज्ञान में जाओ, माया का ज्ञान है। कहीं भी ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। यह सुनकर लोग समझेंगे कि धामों को खण्डन हो गया और हमलोग धाम-दर्शन के लिए जाते हैं। मैं सत्य कहता हूँ, चाहे खण्डन हो, वा मण्डन हो। कितने धामों में घूमकर आए, उन्होंने कहा कि प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुआ। यदि मेरी बात का विश्वास नहीं हो तो तीर्थों और धामों में घूमकर देख लो। ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होने पर कैसा होता है? उपनिषद् कहती है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।

अर्थात् परे-से-परे ब्रह्म को देख लेने पर हृदय की गन्थि खुल जाती है, सभी संशय छिन्न हो जाते हैं और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। यहाँ के बड़े-से-बड़े वैज्ञानिक स्थूल जड़ के भी सम्पूर्ण बातों को समाप्त नहीं कर सके हैं। सूक्ष्म जड़ का पता नहीं लगा है। संतों का ज्ञान बड़ा विशाल है, जिसमें बड़े-बड़े वैज्ञानिक हैरान हो जाएँगे। लेकिन ईश्वर का ज्ञान इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं हो सकता। मेरी बात लिखी जा रही है। यह बात कब तक रहेगी, जबतक पुस्तक रहेगी। यह मेरी बात नहीं, संतों की बात है। बड़े-बड़े उपदेशों को सुन जाओ, लेकिन केवल सुनने से ईश्वर-दर्शन नहीं होगा।

जहाँ शरीर-इन्द्रिय से छूटना होगा, वहीं दर्शन होगा। यह नमूना अच्छा है कि लोग धामों के दर्शन के लिए जाते हैं, तो यह जाना भी भक्ति है। लोग दण्डवत् प्रणाम करते धामों को जाते हैं। कष्टों को उठाकर जाते हैं। मैंने सिकलीगढ़ धरहरा में सड़क पर जाते हुए लोगों को देखा है कि वे साष्टांग दण्डवत् करते हुए सिंहेश्वर स्थान जाते हैं, कितने वैद्यनाथजी जाते हैं। यह जाना उन धामों के देवों की भक्ति में दाखिल है। गंगा के किनारे जाते हैं, गंगा की ओर एक-एक डेग चलते हैं, यह चलना भी गंगा की भक्ति में दाखिल है। इसी तरह जो ईश्वर की ओर चलता है, ईश्वर की भक्ति है। ईश्वर की भक्ति कैसी है?—

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनंद बढ़ावै।।
बिनु शीश नवे जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिए रहै।
मिलि परमातम सो आतमा, पराभक्ति सुन्दर कहै।।
—सुन्दरदासजी

यह परा भक्ति है, स्थूल भक्ति नहीं है। हाथ से पकड़ो, पैर से दौड़ो, सो भक्ति नहीं है। यह तो वह भक्ति है, जिसमें बाहर से बिल्कुल चुप्प और अन्दर में यात्रा। संत लोग सरल उपाय बता गए हैं, लेकिन लोग तो बाहर-बाहर ही दौड़ते हैं। तुलसीदासजी कह गए हैं—

सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हत भाग्य देहिं भट भेरे।।

बाहर भ्रमण करते-करते लोगों को क्या-क्या हुआ, सो पुराण पढ़कर देख लो। बाहर में जो दर्शन होगा। माया के दर्शन में दुःख अवश्य उठाओगे। मनु-शतरूपा की कथा तुलसीकृत रामायण में लिखी है और कश्यप-अदिति का तप भी लिखा है।

उन्होंने कितना तप किया? पढ़कर देखो। जैसे रूप का दर्शन चाहते थे, वैसे रूप का दर्शन हुआ। वह क्या था? माया-रूप का दर्शन था, सो हुआ। उनसे माया का वरदान माँगा, यानी उनके जैसा पुत्र माँगा। कश्यपजी ब्राह्मण थे और क्षत्रिय हुए। ब्राह्मण का क्षत्रिय होना उनकी उन्नति नहीं कही जा सकती। दशरथ को कष्ट नहीं हुआ, दुःख नहीं हुआ, ऐसा रामायण नहीं बताता। उनको पुत्र नहीं था तो उसके लिए वे दुःखी थे। तप के कारण शरीर में बहुत बल था। किंतु मनोविकार नहीं छूटा था। इसलिए माया संबंधी दुःख उनका नहीं छूटा। गोस्वामी तुलसीदासजी साफ-साफ कहते हैं, छिपाते नहीं हैं। वे कहते हैं, दशरथ कितने बलवान थे—

सुरपति बसइ बाँहबल जाकें। नरपति सकल रहहिं रुख ताकें।।

ऐसे वे प्रभावशाली थे। फिर—

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई।।

तुलसीदासजी के कलम से ऐसा लिखा गया, आश्चर्य की बात है। लेकिन क्या किया जाए? उन्होंने सत्य-सत्य लिखा, जैसा लिखना था।

सूल कुलिस असि अंगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।

अब तुलसीदासजी और क्या कहेंगे? इसी से कहता हूँ। अगर रामायण है, तो बात सत्य है। मैं अपने से देखकर नहीं कहता। मनोविकार पर दशरथजी को विजय नहीं थी। लेकिन जो अपने अन्तर्मुख होते हैं और अभिलाषा रखते हैं कि शरीर-इन्द्रिय-ज्ञान से हीन हो जाऊँ, तब दर्शन करूँ, तो उनको ये बातें होती हैं कि उनको निर्मायिक रूप का दर्शन होता है, जहाँ कोई विकार नहीं, कोई कष्ट नहीं। कितने कहते हैं कि केवल ईश्वर का गुण गाओ, बस इसी में खत्म है, सो नहीं। गुणगान हमलोग भी करते हैं। लेकिन इसके आगे भी बढ़ो। केवल इतने में काम खत्म होता तो नौ प्रकार की भक्ति शवरी को भगवान श्रीराम क्यों बताते? नवधा भक्ति में पहली भक्ति—संतों का संग, दूसरी भक्ति—कथा-प्रसंग में प्रेम, तीसरी भक्ति—मान-हीन होकर गुरु की सेवा, चौथी भक्ति—कपट छोड़कर ईश्वर का गुणगान, पाँचवीं भक्ति—मंत्र

जप, छठी भक्ति दमशीलता, सातवीं भक्ति—शम का साधन, आठवीं भक्ति—यथा लाभ संतोष और नवीं भक्ति में सरल एवं छलहीन होने का वर्णन है। पाँच भक्ति तक लोग समझते हैं। लेकिन छठी और सातवीं भक्ति क्या है? समझते नहीं हैं।

छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा।।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें सन्त अधिक करि लेखा।।

श्रीराम ने शवरी से इन सभी प्रकार की भक्ति कही। शवरी की सभी भक्ति पूरी थी। श्रीराम ने कहा—'**सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।**' और उसका फल यह हुआ कि—

तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे।

शवरी में शम-दम दोनों साधन थे। 'शम' में जो पूर्ण होगा, वह ईश्वर-दर्शन करेगा। और तुलसीदासजी अपनी विनय-पत्रिका में कहते हैं—

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार, जानइ सो जेहि बनि आई।।
जो जेहि कला कुसल ता कहँ, सो सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहइ गज भारी।।
ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै।
अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि-पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा-हीन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

जो अन्तस्साधन करता है, वह ब्रह्माण्ड के अन्दर जाता है और उसको पार भी करता है। कहने के लिए एक मिनट है, लेकिन करने में जन्मों का काम है। अपने को समेटो, अति सूक्ष्म बनो, सफरी मछली की तरह। जैसे छोटी चींटी बालू से चीनी निकाल कर खाती है, उसी तरह भक्त अपने अन्दर जड़-चेतन को अलग-अलग कर देखता है और चेतन को ग्रहण करता है। किसी कला में कोई कुशल कैसे होता है? बहुत अभ्यास करते-करते एक अक्षर लिखते हो, एक-एक अक्षर सीखते-सीखते विद्वान होते हो। उसी तरह भक्ति-ज्ञान-योग में कोई आता है, तो बढ़ते-बढ़ते ईश्वर तक पहुँचता है। कोई ऐसा ख्याल नहीं कि हमसे ऐसा साधन नहीं होगा।

शून्य महल में दियना बारि ले, आशा से मत डोल रे।।
—कबीर साहब

जौं तेहि पंथ चलइ मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

अन्तर में चलना साधन-भजन करने से होगा। जो कोई साधन करेगा, उसका पूर्ण सिमटाव होगा। स्थूल में पूर्ण सिमटाव होना एक विन्दु पर आना है। संसार में जितने रंग-रूप हैं, सबके आरम्भ एक विन्दु से है। पढ़े-लिखे जानो की लकीर विन्दुमयी होती है। विन्दु से लकीर बनती है। विन्दु नहीं तो कोई रेखा नहीं, रूप नहीं। विन्दु ईश्वर का एक विचित्र रूप है। विन्दु कोई बनाता नहीं, ईश्वरकृत है। मैं कहता हूँ कि इसका नमूना बाहर में स्थूल शालिग्राम है। इसमें हाथ, पैर आदि अंग-प्रत्यंग नहीं हैं, लेकिन विष्णु भगवान कहकर लोग पूजते हैं। वह स्थूल रूप में भगवान है और सूक्ष्म रूप में विन्दु भगवान है। उसको देखने का कौशल गुरु से सीखो।

बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

चलो ईश्वर की ओर—

हिय नैन सैन सुचैन सुन्दरि साजि स्रुति पिउ पै चली।

यहाँ पहचान नहीं होगी। पहचान कहाँ होगी? जहाँ इन्द्रिय-ज्ञान से अपने को ऊपर कर सको। मेरे सत्संग से इस बात को नहीं सीखो, तो मेरे सत्संग को धिक्कार है। यही बात मेरे सत्संग में होती है और यही बात मेरे साथी कहते हैं। यही बात मेरे गुरु महाराज सिखा गए हैं। ईश्वर वही है, जिसका दर्शन केवल चेतन आत्मा से होता है। इसको याद रखो, जितने बैठे हुए हो, नहीं तो भ्रम में दौड़ते फिरोगे। तुलसीदासजी का ज्ञान विनय-

पत्रिका में है। अलौकिक ज्ञान कहकर कबीर साहब, गुरु नानक साहब के ग्रन्थों में है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

एहि तें मैं हरि ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं,
बाहर फिरत विकल भय धायो।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद,
अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल,
परम सुगंध कहाँ ते आयो।।
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन,
ऊपर कछु सेंवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ,
चाहत यहि विधि तृषा बुझायो।।
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुण,
तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुरतरु तजि,
विषय बबूर बाग मन लायो।।
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम,
मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह विचारि जिय,
कीजै नाथ उचित मन भायो।।

लोग शरीर-हृदय को जानते हैं, योग-हृदय को नहीं जानते हैं। योग-हृदय को जानो तो पता लगेगा—

श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
उघरहिं विमल विलोचन हिय को। मिटहिं दोष दुख भव रजनी को।।
—गोस्वामी तुलसीदासजी

ज्यों कुरंग जिन अंग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहीं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल परम सुगंध कहाँ ते आयो।।
—सूरदासजी

यह मृगा में ज्ञानहीनता है कि वह कस्तूरी की सुगन्ध बाहर में खोजता है। वैसे ही उसमें ज्ञानहीनता है, जो ईश्वर को बाहर-बाहर खोजता है।

ज्यों सर विमल वारि परिपूरन, ऊपर कछु सेंवार तृण छायो।

सरोवर में निर्मल जल है, लेकिन सेंवार और खर से आच्छादित है। उसके आवरण को हटाओ, निर्मल जल मिलेगा। इसी तरह ईश्वर ने जो स्थूल, सूक्ष्म रूप में मायिक आवरण का पसार किया है। उसको पार करो, ईश्वर प्रत्यक्ष मिलेंगे। लोग समझते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजी बाहर-बाहर ही भक्ति करते थे। हमारे देश के साहित्यकों ने लिखा है कि गोस्वामी तुलसीदासजी और सूरदासजी सगुणियाँ भक्त थे। मैंने कहा—इन्होंने खूब समझा है। अरे! कोई केवल सगुणियाँ भक्त और कोई केवल निर्गुणियाँ भक्त नहीं होता। संतों के साहित्य को पढ़ो, उसके पारिभाषिक शब्द को जानो। जो अपने अन्दर-अन्दर चलता है, वह कहाँ पहुँचता है? तो कहा कि जहाँ देश-काल नहीं है, जहाँ समय और स्थान नहीं है। समय और स्थान नहीं है, वहाँ दिन-रात कहाँ? सूर्य-चन्द्र कहाँ? इसी बात को उपनिषद् में पढ़ो, गीता में पढ़ो, संतों के सद्ग्रन्थों को पढ़ो। कबीर साहब ने यह भी कहा है कि—

न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देह जरवावै।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै।।

पहले हठयोग करके पीछे राजयोग करना 'जोगी जोग से ध्यावै' है। और—बिना हठयोग के राजयोग करता है, यानी ध्यान करता है तो—'न जोगी जोग से ध्यावै' है। सबसे यह पार लगने को नहीं है कि सभी कोई पहले हठयोग करे और पीछे ध्यान करे। तुम हठयोग करोगे और खाओगे क्या? तुम्हारे लिए दूसरा कोई अन्न उपजावेगा और तुम खाओगे? यदि सभी कोई हठयोग करने लगे तो क्या खाओगे? भागवत में उद्धवजी को भगवान ने ध्यान करने को कहा—पहले सम्पूर्ण शरीर का ध्यान करो, फिर चेहरे का। ध्यान करो, तब फिर शून्य ध्यान करो। गीता में नासाग्र में ध्यान करने कहा, लेकिन टीकाकारों ने नासाग्र भाग करके असली बात को भगा दिया। दिशाओं को देखना छोड़कर देखने कहा। उसके लिए क्या

करोगे? आँख खोलकर देखोगे, कोई न कोई दिशा अवश्य देखी जाएगी। इसलिए आँख बन्दकर ध्यान करो। इसका भेद गुरु से जानो। गोस्वामी तुलसीदासजी ने गुरु के लिए कहा है—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकाश।
निर्गुण कहै जो सगुण बिनु, सो गुरु तुलसीदास।।

त्रैगुण का घेरा—आवरण जहाँ नहीं है, वह निर्गुण है। कितना भी सुन्दर रूप हो,वह सगुण है, माया है। कोमल हो, कठोर हो, उष्ण हो, शीत हो; ये सब माया हैं। कबीर साहब कहते हैं—

गुरु नाम है ज्ञान का, शिष्य सीख ले सोय।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु शिष्य न कोय।।

मेरे कहने का मतलब है कि ईश्वर को ठीक-ठीक समझिए, गुरु को ठीक-ठीक समझिए। यह बात तो भूल जाओ कि बिना गुरु का तुमको इसका ज्ञान होगा। ए, बी, सी, डी, अलिफ, बे और क, ख, ग के लिए गुरु की जरूरत है और अध्यात्म-ज्ञान के लिए गुरु नहीं चाहिए? ऐसे ज्ञानवाले हमारे यहाँ बड़े-बड़े लोग हैं। ये लोग हमारे देश के धर्म की मर्यादा को तोड़ते हैं। सद्गुरु चाहिए, अन्तर मार्ग चाहिए। योग-हृदय से रास्ता खुलता है। गुरु के बताने से चलो। गुरु की शरण में जाओ। चलना क्या है?

बैठे ने रस्ता काटा। चलते ने बाट न पायी।।
— कबीर साहब

है कुछ रहनि गहनि की बाता। बैठा रहे चला पुनि जाता।।
—राधास्वामी साहब

मतलब यह कि चंचल मन को थिर करो। मन चलेगा। ईश्वर की ओर ले चलनेवाला तुम्हारा मददगार तुम्हारे साथ है, वह है अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद। लेकिन आँख है नहीं, देखोगे कैसे? श्रवण शक्ति है नहीं, सुनोगे क्या? जो अन्तर्मार्ग पर चलता है, उसको दिव्य दृष्टि होती है, जिससे दिव्य रूप देखता है और दिव्य श्रवण होता है, दिव्यनाद सुनता है। अपने ही अन्दर अपने को अवलम्ब मिलता है, दिव्य ज्योति और अन्तर्नाद ईश्वर की ओर से सहायता है। गुरु नानक ने कहा—

अन्तरि जोति भई गुरु साखी, चीने राम करंमा।।
—गुरु नानक साहब

गुरु ने कहा था—अन्तर में प्रकाश होगा, सो हुआ। यह गुरु की गवाही है। संतों की ठीक-ठीक वाणी लो और सभी लोग अपने-अपने घर में सत्संग जारी रखो। त्रयकाल संध्या अवश्य करो। कभी-न-कभी काम पूरा होगा। न घर छोड़ना है, न जंगल जाना है। ध्यान करने में स्त्री-पुरुष का कोई बर्जन नहीं, सभी कर सकोगे। पढ़ो तो, नहीं पढ़ो तो सभी इसको कर सकते हो। नहीं पढ़े आदमी भी सत्संग में बराबर आओगे तो अनपढ़े होकर भी ज्ञानवान होओगे। इसी में प्रेम है, भक्ति है, ज्ञान है। सहज उपाय से ईश्वर को पाओगे। श्रीराम ने कहा था कि—'एहि तन कर फल विषय न भाई।' सो हो जाएगा और कृतकृत्य हो जाओगे। मनुष्य जीवन सफल होगा। यह काम बहुत पवित्र है। इसलिए पवित्रता से रहो। इतनी पवित्रता होगी कि उसका सूर्य भी स्पर्श नहीं कर सकता। केवल स्नान से कोई पवित्र नहीं होता और स्नान नहीं करो तो रोग होगा। केवल स्नान करके पवित्र समझना भूल है। अन्तःकरण साफ करो। बाहर स्नान से पवित्र करो और भीतर अन्तःकरण को पवित्र करो। दरिया साहब ने कहा है—

भीतर मैल चहल की लागी, बाहर तन का धोवै है।

पंच पाप—झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार नहीं करोगे तो ऊपर की चढ़ाई बहुत-बहुत होगी, अन्त तक पहुँचोगे। जो ध्यान करेगा, वह पंच पापों से छूटने में मजबूत होगा। जो पंच पापों को छोड़ने में मजबूत होगा, वह ईश्वर तक पहुँचेगा। जो पंच पाप नहीं करता, संसार उसको जानता है, वह प्रसिद्ध हो जाता है। उसके साथी बढ़ जाते हैं। उसका समाज बढ़ जाएगा। ऐसा समाज बढ़ने से सामाजिक नीति अच्छी होगी। फिर राजनीति अच्छी

हो जाएगी। अभी स्वराज्य है, लेकिन सुराज नहीं है। जिस किसी भी देश में सोना बहुत है, लेकिन वहाँ सुराज नहीं है। वहाँ घीन कर्म—पाप कर्म बहुत होते हैं। जो देश अध्यात्म में अधिक बढ़ेगा, वहाँ पापों से अधिक छूटेगा। वहाँ शान्ति आएगी। मैं शासक को कुछ नहीं कहता, जनता से कहता हूँ—तुमलोग पवित्र बनो। सभी बढ़िया होगा। पवित्र होकर स्कूल जाओगे, स्कूल में पढ़ाओगे, बच्चे अच्छे होंगे। देश अच्छा होगा। इसलिए ईश्वर की भक्ति करो, अपना भला होगा, देश का भला होगा। नहीं तो—'आगे समुझ पड़ेगा भाई...।' यह ज्ञान-यज्ञ है। द्रव्य-यज्ञ से यह श्रेष्ठ है, गीता में भगवान ने कहा है। इसमें विश्वास करो, नहीं विश्वास करो तो हानि तुम्हारी होगी। उपदेश देनेवाला उपदेश देगा। यही संतमत है कि सबको एक पथ पर लाओ। वह रास्ता एक ही है—अन्तरपथ। लोग कहते हैं कि एक गाँव में आने के लिए अनेक रास्ते हैं, इसी तरह एक ईश्वर के पास जाने के अनेक रास्ते हैं। मैं कहता हूँ—रास्ता अनेक नहीं हैं। उपासनाएँ अनेक हैं, रास्ता एक ही। जैसे भोजन करने का इस देश, उस देश, सभी देशों के लोगों का रास्ता एक ही मुँह है। राम की, शिव की, कृष्ण की, देवी की, मसीह की, मुहम्मद की आदि की; इन सबकी उपासनाएँ हैं। इन अनेक उपासनाओं को लोग अनेक रास्ते कहते हैं। सो ये अनेक रास्ते नहीं हैं। इन उपासनाओं से अन्तःकरण में पवित्रता और मन में एकाग्रता का बल होगा, जिसके कारण उस स्थान पर ध्यान किया जा सकेगा, जहाँ से अन्तर का रास्ता खुलेगा। बड़े बड़े लोग भी इस बात को नहीं जानते, वे अपनी विद्या-बुद्धि में भूले हैं। H

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत ग्राम—गैदूहा में दिनांक १४. ४. १९५० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३२५. जो पक्का सदाचारी है, वह पक्का भक्त है

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता!

हमलोग सत्संग के द्वारा ईश्वर-भक्ति का प्रचार करते हैं। ईश्वर-भक्ति के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है; क्योंकि भक्ति के साथ सदाचार है और सदाचार में दुष्टकर्मों का क्षय है। दुष्टकर्मों के क्षय से देश में, राष्ट्र में शान्ति आती है। जिस राष्ट्र में इस तरह दुष्टकर्मों का क्षय हो, राष्ट्र में शान्ति आवे, तो देश को इन्तजाम में रखनेवाले इन्तजामी लोगों, दूसरे शब्दों में कह सकते हैं शासक लोगों को बहुत सुविधा होगी, खर्च बचेगा। दुष्ट लोगों पर निगरानी के लिए दण्ड-विधान आदि के लिए बहुत खर्च होते हैं; सब बच जायेंगे। देश का कल्याण होगा। दूसरा यह कि जो सदाचारी होते हैं, वे ही ईश्वर की ओर जाते हैं। जो सदाचार पालन नहीं करते हैं, वे ईश्वर की ओर नहीं जा सकते। बिना ईश्वर-भक्ति से सदाचारी कोई नहीं बन सकते। कितने कहते हैं कि मन पर अंकुश रखते हुए, बुराइयों से बचते हुए कर्म करो तो सदाचारी बन सकते हो। मैं कहता हूँ कि यह केवल कहना-ही-कहना है। महात्मा गाँधी एक विशेष लोग थे, जो शासन-पद्धति के अन्दर अच्छे राजनीतिज्ञ थे और वे ईश्वर के भक्त भी थे, मैं ऐसा विश्वास करता हूँ। अन्यथा गोली लगने पर भी मरते समय 'राम' क्यों कहते! उनके ग्रंथों को पढ़ो, तो अन्तस्साधना की बहुत बातें मिलती हैं। सदाचार पर प्रतिष्ठित रहने के कारण उनकी प्रतिष्ठा बहुत थी। अन्य देश के लोग भी उनके, विरोधी भी उनकी इज्जत करते थे, मानते थे। जब उनको गोली लगी तो देश में अप्रसन्नता और दुःख का भाव

प्रकट हुआ। यह देश को उचित ही था, देश का झंडा नीचा कर दिया गया। यह देश किया तो क्या किया! सभी देशों के लोगों ने अपना-अपना झण्डा नीचे किया, झुकाया। सारा संसार शोक मनाया। सदाचार का गुण ऐसा होता है। सदाचार जो ईश्वर-भक्ति के साथ है, बड़ा बलवान है। यह समझाने के लिए कहा। और लोग जो मन पर नियंत्रण कर देश का काम करने चले हैं, वे कितने विफल हुए, कितने गिरे हैं, वह इतिहास मुझे कहना ठीक नहीं है, लोग जानते हैं। जो पक्का सदाचारी है, वह पक्का भक्त है—

काम क्रोध मद लोभ न जाके। तात निरंतर वश मैं ताके।।

रामचरितमानस में है। जिसको काम, क्रोध, मद और लोभ नहीं है, उनके वश में मैं सदा रहता हूँ। भगवान ने कहा है—

विश्व उपकार हित व्यग्रचित सर्वदा त्यक्त मदमन्यु कृत पुण्य रासी।
यत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज सर्व हरि सहित गच्छन्ति क्षीराब्धि वासी।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका में लिखा है। संसार में सबका भला हो, इस तरह की इच्छा रखनेवाले और घमण्ड, गौरव, क्रोध को छोड़कर बहुत-से पुण्य करते हैं। ऐसे लोग जहाँ रहते हैं, वहाँ ब्रह्मा और रुद्र के सहित सभी देवता और विष्णु भगवान भी चले जाते हैं। ये जहाँ रहते हैं, उनपर छोह रखते हैं। महात्मा गांधी में ये गुण थे, औरों में यह बात नहीं मिली। महात्मा गांधी ईश्वर-भक्त थे, सदाचार में मजबूत थे, इसलिए उनकी प्रतिष्ठा हुई। इसलिए संत और फकीर बड़े आदर के लोग होते हैं। यूरोप में एक बड़ा पक्का फकीर था। वह एक टोकड़े में रहता था। वह पूर्व मुँह बैठकर धूप ले रहा था। उनके सामने अलेकजेण्डर दि ग्रेट खड़ा हुआ। उसने कहा—आप मुझे पहचानते हैं? फकीर ने उत्तर दिया—पहचानता हूँ। राजा ने कहा कि आपकी क्या सेवा करूँ? फकीर ने कहा—तू मेरे सामने से हट जाओ, धूप आने दो। बात यह कि—

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जाको कछु न चाहिए, सोई शांहशाह।।

ईश्वर की भक्ति में चाह चली जाती है। ईश्वर की ओर से ऐसा ज्ञान और एसी अनुभूति होती है कि उसमें उनको सुख आता है। सब इच्छाओं को भूल जाते हैं। ईश्वर की भक्ति से सारे दुःखों का नाश होता है। संसार की दौलत पाकर कोई सुखी नहीं होता। इच्छाओं के रहते हुए कोई सुखी नहीं रह सकता। इसलिए ईश्वर-भक्ति का प्रचार हो—देश में हो, संसार में हो तो सभी शान्तिपूर्वक रहें। भौतिक विज्ञान में बहुत तरक्की है, लेकिन भौतिक विज्ञान शान्ति नहीं ला रहा है। भौतिक विज्ञान के अतिरिक्त जो अध्यात्म विज्ञान है, उसका प्रत्यक्ष ज्ञान देनेवाला योग-अभ्यास है। यही ज्ञान की पूर्णता को पहुँचाता है। इसी से ईश्वर की भक्ति होती है। इसका प्रचार हो गया है कि योग-अभ्यास सबसे होने योग्य नहीं है, यह गलती प्रचार है, लोग इससे बचें। योग कठिन नहीं, सरल-सीधा साधन भी है, जिसको गीता में, वेद में, उपनिषद् में बताया गया है तथा संत कबीर साहब और संत लोग भी बताए हैं, उस सरल योग को करो। उस सरल योग के सहित जो ज्ञान भक्ति है, उसी का प्रचार इस सत्संग से होता है। जो कोई मुसाफिर है, वह रास्ता तो चलता है, लेकिन मंजिलें-मकसूद को नहीं जानता, तो उसको सिवा हैरानी के और क्या मिलेगा? इसी तरह ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान अवश्य चाहिए। ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान को जाने बिना जो भक्ति में अन्धा-धुन्ध चलता है, वह हैरान होता है। संसार में सुन्दरता है और असुन्दरता भी है, लेकिन इसमें तृप्ति नहीं है, अतृप्ति है। जितना भोगो, तृप्ति नहीं होगी। ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान यह है कि संसार का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा होता है। इन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान होता है, वह संसार की सब चीजों को ज्ञान होता है। संसार की चीजों को देखने से मालूम होता है कि उत्पन्न

हुआ, बना और नाश हुआ; इसी को माया कहते हैं। सारा संसार ईश्वर की माया है। ईश्वर का ज्ञान कैसे हो? ईश्वर माया नहीं है, ईश्वर से माया का फैलाव हुआ है। जो माया नहीं है, उसको माया पहचानने के यंत्रों से जानना कैसे हो सकता है? माया को जानने का ही यंत्र मनुष्य शरीर में इन्द्रियाँ हैं, इनसे केवल माया का ही ज्ञान होता है। विज्ञानवाला ज्ञान भी पूर्ण नहीं हुआ है। कहाँ तक बढ़ेगा, ठिकाना नहीं! पूर्णत: माया समाप्त हो जाए तो पता लगेगा कि उसके बाद क्या है? इसीलिए इन्द्रियों के ज्ञान में जो आता है, वह माया है। जो इन्द्रिय-ज्ञान में नहीं आवे, वह ईश्वर है। भक्ति करके वहाँ तक पहुँचना है। ऐसी भक्ति करे कि इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर हो जाए। बाहर संसार में कहीं जाओ, ईश्वर का ज्ञान नहीं होगा, अन्दर-अन्दर चलने से होगा। अन्दर-अन्दर चलने के लिए एक फकीर ने कहा—

सुन ऐ तकी न जाइयो जिनहार देखना।
अपने में आप जलवए दिलदार देखना।।
पुतली में तिल है तिल में भरा राजकुल का कुल।
इस परदये सियाह के जरा पार देखना।।
चौदह तबक का हाल अयाँ हो तुझे जरूर।
गाफिल न हो ख्याल से हुशियार देखना।।
सुन लामकां पै पहुँच के तेरी पुकार है।
है आ रही सदा से सदा यार देखना।।
मिलना तो याद का नहीं मुश्किल मगर तकी।
दुशवार तो ये है कि दुशवार देखना।।
तुलसी बिना करम किसी मुर्शद रसीदा के।
राहे निजात दूर है उस पार देखना।।

ऐ तकी! ईश्वर खोजने के लिए बाहर हरगिज नहीं जाओ। बाहर में जो ज्ञान होगा, वह माया का ज्ञान होगा। ईश्वर की खोज में पहले उसकी रोशनी मालूम होगी—

घट घट अंतरि ब्रह्मु लुकाइआ घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।।

बाबा नानक साहब कहते हैं—घट-घट में ईश्वर व्यापक है, उसका प्रकाश भी सबमें समाया हुआ है। उसको कैसे पाओ? तो कहा ध्यानयोग से होगा। सरल विधि ध्यान का जानो और अभ्यास करो। अवश्य ब्रह्मतेज का उदय होगा। ब्रह्मतेज उदय होने पर ईश्वर-दर्शन की आशा मजबूत हो जाएगी। चलने की इच्छा बलवती होगी। जो अपने अन्दर चलता है, इस बात को जानता है, वह बाहर दौड़ता नहीं है। अपने अन्दर में समेटने की विधि किसी गुरु से जानता है और करते-करते प्रकाश को पाता है। फिर हिल-डोल नहीं रह जाता। इसलिए कहता हूँ कि ईश्वर-भक्ति करो, ईश्वर के स्वरूप को जानो। ईश्वर इन्द्रियों से जानने योग्य नहीं है; कबीर साहब ने कहा है—

चाम चश्म सों नजरि न आवै खोजु रूह के नैना।
चून चगून वजूद न मानु तैं सुभानमूना ऐना।।
जैसे ऐना सब दरसावै जो कुछ वेष बनावै।
ज्यों अनुमान करै साहब को त्यों साहब दरसावै।।
जाहि रूह अल्लाह के भीतर तेहि भीतर के ठाईं।
रूप अरूप हमारि आस है हम दूनहुँ के साईं।।
जो कोउ रूह आपनी देखा सो साहब को पेखा।
कहै कबीर स्वरूप हमारा साहब को दिल देखा।।

दृष्टि से दृष्टि को देखोगे। देखने की शक्ति को दृष्टि कहते हैं। देखने की शक्ति जो देनेवाली आत्मदृष्टि है, उससे जो देखता है, वह ईश्वर को देखता है। चर्मदृष्टि से कोई देख नहीं सकता, आत्मदृष्टि से खोजो। ईश्वर के स्वरूप के बारे में जानो कि वह आत्मा से ही जानने—दर्शन करने योग्य है। बाहर में इधर-उधर दौड़ने से नहीं होगा। अन्दर का भेद जानकर जो अन्दर में चलता है, वह जानता है।

n

यह प्रवचन पुरैनियाँ जिलान्तर्गत बहादुरगंज, किशनगंज में दिनांक १९. ४. १९७० ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३२६. ध्यान करके गृहस्थ भी संसार-सागर को पार करेगा

प्यारे लोगो!

संतमत यह नहीं सिखलाता है कि घर-वार, रोजगार छोड़कर तब ईश्वर का भजन करो। सबमें हो। घर-वार, रोजगार सबमें रहो और ध्यान करके संसार-सागर को पार कर जाओगे। अगर राजा है, राज्य करता है, राज्य में रहता है, राज्य संभाल करते ध्यान करेगा, संसार-सागर को पार करेगा। कोई तप करता है, ध्यान करेगा तो, संसार-सागर को पार करेगा। कोई योग करता है, ध्यान करता तो वह भी संसार-सागर को पार करेगा। गृहस्थ है, बाल-बच्चे के साथ है, वह भी ध्यान करेगा तो संसार-सागर को पार करेगा।

उस प्रभु का अंत नहीं है, इसलिए उसका अन्त पाता है। उस प्रभु को पाता है, लेकिन उसका नहीं पाता है; क्योंकि वह अनन्त है। कबीर साहब कहते हैं—जो भूली है, उसके भूल-भटक को छुड़ाओ। घर छोड़े हुए है तो वह घर में रहकर घर [illegible] जानकर ध्यान करें। ठीक युक्ति घर में मिल सकती है और ध्यान करते-करते घर में ही मुक्ति हो सकती है। परन्तु एक बात विशेष है कि गुरु अच्छा होना चाहिए, जो अलख है, उसको लखा दे। आश्चर्य लगता है कि अलख को क्या लखेगा? स्थूल दृष्टि से किसी रंग-रूप को देखकर मन से ध्यान करता है, लोग इतना ही जानते हैं। अरे! इससे भी आगे है, जो नहीं देखे हो वह देखो, जो नहीं सुने हो वह सुनो, गुरु युक्ति से। जो अलख था, पहले नहीं देखते थे; गुरु ने युक्ति दी, ध्यान किया, वह अलख लखने में आया। वह दूर की बात नहीं। स्थूल से सूक्ष्म में जाओ, देखोगे। गुरु जो युक्ति बताते हैं, उस युक्ति से दृष्टि को रखो तो तुम शून्य में समा जाओगे। संसार में जो रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द पाते हैं, यह इन्द्रिय-ज्ञान में जहाँ तक है, शून्य नहीं है। गुरु की युक्ति से देखोगे तो यह छूट जाएगा। शून्य में देखोगे, तब वह देखोगे, जो पहले कभी देखा नहीं था। सहज ध्यान लगाओ और आसान तरीके से स्वाभाविक शून्य में अपने ध्यान को लगाओ। शून्य मन से बनाने का नहीं, स्वाभाविक है। गुरु से युक्ति जानकर देखो तो जो अलख था, वह देखने में आवेगा। यह हठयोग नहीं है कि हठ करके यह करोगे। ध्यान है, केवल ध्यान करो। ऐसे करते-करते मनोलय होगा। मन में बहुत संकल्प-विकल्प होते रहते हैं।, ये सभी छूट जायेंगे। मन का काम खत्म होगा, इसी को मनोलय कहते हैं। जबतक संकल्प-विकल्प होता है, तबतक मन की मौजूदगी रहती है। संकल्प-विकल्प छूटा, मन की मौजूदगी छूटी। मन के लय की दशा में रहोगे तो ब्रह्म में रहोगे। स्थूल-सूक्ष्म भेद से पाँच तत्त्व हैं। ये पाँचों तत्त्व ब्रह्म नहीं हैं। परम तत्त्व आदिनाद है, परमात्मा ने इसको प्रकट किया। क्योंकि कुछ बनाओ तो कम्प होगा। शब्द कम्प के बिना नहीं रहता और कम्प शब्द के बिना नहीं रहता है। जैसे शब्द का अर्थ उसके साथ रहता है। कम्प का सहचर आदिशब्द पहले हुआ, इसके बिना सृष्टि नहीं हो सकती। इसलिए इसको परमतत्त्व कहा। ध्यान में विशेष रत होकर इस ध्वनि को प्राप्त करता है। घर में रहते ही हो, शरीर-रूपी घर के अंदर वस्तु है। घर में ही रह सकते हो, उसको पा सकते हो। बिनकर हो तो घर में रहो, कपड़ा बिनो। कबीर साहब बिनकर थे, जीवनभर कपड़ा बिनते रहे। जिस

रोजगार में हो, जिस घर में रहते हो, रहते-रहते ध्यान करो, होगा। तुम्हारे अन्दर दो धारायें बहती हैं—इड़ा और पिंगला का प्रवाह भी होता है। बीच में सुषुम्ना का प्रवाह होता है। इन दोनों को छोड़कर बीच में रहो तो अलख लखने में आएगा। इसी का यत्न गुरु बताते हैं। घर से भागने की जरूरत नहीं। घर में रहनेवाले जितने हैं, घर से भागनेवाले उतने नहीं हैं। ब्रह्म और जीव का मिलन, राधा-कृष्ण का मिलन है, वह अपने अन्दर है। इसके लिए ध्यान करो, ध्यान करो, ध्यान करो। इड़ा-पिंगला का जहाँ सम्मिलन होता है, वहाँ प्राण-अपान भी मिल जाता है। जो वायु भीतर को लेते हो, वह प्राण है और जिसको भीतर से बाहर फेंकते हो, वह अपान वायु है। प्राण-अपान को मिलाने से मन स्थिर होता है तो ध्यान बनता है। मन स्थिर नहीं होता है, तो ध्यान ठीक-ठीक नहीं बनता है। इसी का ज्ञान इस सत्संग से होता है। जो सत्संगी हैं, वे जानते हैं। जो सत्संगी नहीं हैं, उनको सत्संग के द्वारा जनाया जाता है। दैनिक सत्संग होता है, साप्ताहिक सत्संग होता है, मासिक सत्संग होता है और वार्षिक सत्संग भी होता है। घर छोड़ना नहीं है, छोड़ना पाप है। पापी को दुःख भोगना पड़ता है और शरीर छोड़ने पर नरक जाता है। इसलिए पापों को छोड़ो। घर में जो रोजगार है—चर्मकार है, मेहतर है, जो रोजगार है, करो, ध्यान करो। इसी से संसार-सागर से पार जाओगे।

n

यह प्रवचन किशनगंज जिलान्तर्गत बहादुरगंज में दिनांक २१. ४. १९७० ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

३२७. योगशिक्षा में साररूप मन की सँभाल है

प्यारे लोगो!

बहुत पुराने समय की बात है। हो सकता है कि वह सत्ययुग काल वा त्रेता काल हो। ब्रह्मा गए शिवजी के पास और शिवजी से पूछा कि संसार के लोग माया-मोह में फँसकर अपने असली सुख को भूल गए हैं और दिनोंदिन अपने पर बंधन-पर-बंधन लिए जा रहे हैं। सो इन सब लोगों का उद्धार कैसे हो? माया-मोह से छूट जाय, सारे बंधनों से छूट जाय, कैसे हो? आप रास्ता बतलाइए, ज्ञान बतलाइए। शिवजी ने कहा—ज्ञान अवश्य चाहिए और ज्ञान के साथ-साथ योग चाहिए। ज्ञान बिना योग का क्या कार्य है, असली योग क्या है, समझ में नहीं आवेगा। और योग के बिना ज्ञान कैसे पूर्ण होगा, सो नहीं जानेगा। इसलिए ज्ञान और योग; दोनों का संग-संग अभ्यास करना चाहिए। ज्ञान का अभ्यास विद्यापाठ से और सत्संग से होते हैं। जिसे विद्यापाठ नहीं हो सकता, वे सत्संग करें। और जो विद्यापाठ करते हैं, वे भी सत्संग करें, दोनों को ज्ञान होगा। ज्ञान का अर्थ है कि जानकारी को ग्रहण करके रखना। यह विद्यापीठ से भी होता है और सत्संग से भी होता है। सत्संग में जो ज्ञान हो, उसको जो सुनते-सुनते ग्रहण करते जाते हैं, उनको ज्ञान हो जाता है।

एक तो भौतिक ज्ञान है अर्थात् संसार के पदार्थों का ज्ञान होता है। यह ज्ञान श्रेष्ठ नहीं है। दूसरा ज्ञान वह है कि जो अभौतिक पदार्थ का ज्ञान है। अभौतिक पदार्थ वह है, जो माया से सबंध नहीं रखता है अर्थात् मायिक नहीं है। भौतिक पदार्थ का संबंध तो माया से ही है। जिसको माया से संबंध नहीं है, वह भी पदार्थ है। उस पदार्थ का ज्ञान रखना, उसका स्मरण रखना, ज्ञान है। भगवान

श्रीकृष्ण ने समझाया है कि यह शरीर भौतिक है। इसके अन्दर जो ज्ञान रखता है कि यह मेरा शरीर है तो वह भौतिक पदार्थ नहीं है। उसी को 'ईश्वर अंस जीव अविनासी' कहा गया है। उसी को जीवात्मा, चेतन आत्मा कहा गया है। यही ज्ञान असल में ज्ञान है। भौतिक पदार्थ का ज्ञान वैसा नहीं है, जो सार वस्तु को लखा दे। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के ज्ञान को भगवान ने बतलाया था। क्षेत्र के ३१ तत्त्व को भौतिक बताया था। इसके ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते हैं। इसके अंदर जो चेतन आत्मा है, उसी के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। विद्यापाठ से भौतिक ज्ञान होता है और विद्यापाठ से निर्मायिक तत्त्व का भी ज्ञान होता है। परन्तु सत्संग की बड़ी आवश्यकता होती है। बिना सत्संग के लोग ठीक-ठीक नहीं समझ पाते हैं। इसलिए ज्ञान से भौतिक और आध्यात्मिक; दोनों का ज्ञान होता है।

अभौतिक ज्ञान यानी सार ज्ञान का ज्ञान भौतिक विज्ञान से नहीं होता। भौतिक विज्ञान कॉलेज में सिखाया जाता है, नाना प्रकार के यंत्र होते हैं; पर अभौतिक विज्ञान के लिए प्रयोगशाला बाहर में नहीं है। इसके लिए मनुष्य-शरीर ही प्रयोगशाला है। खासकर जिस विद्या से यह ज्ञान होता है, वह योग है। हमारे देश में योगशास्त्र का प्रचार इसलिए हुआ है। हमारे देश में जो योगशास्त्र का प्रचार हुआ है, उसमें बताया है कि संसार की सभी चीजें नाशवान हैं। आत्मा ही सार तत्त्व है। आत्मा का ज्ञान जो पुस्तकों को पढ़कर होता है, यह तो अल्प ज्ञान है। इसको बिना पहचाने ज्ञान कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में परोक्ष ज्ञान कहते हैं। बिना पहचाने जानना और पहचानकर जानना; दोनों में बहुत फर्क है। योग शिक्षा में सार-रूप मन की संभाल है। बिना मन की सँभाल के योग नहीं होता है। योग अपरोक्ष ज्ञान करा देता है। परोक्ष ज्ञान वस्तु का ज्ञान कराता है। पहचान के लिए योग बहुत अपेक्षित है। इसीलिए ज्ञान और योग; दोनों का अभ्यास करना बहुत उत्तम है, जो सत्संग से और साधन-भजन से होता है। योग सुनकर लोग कठिन समझते हैं और समझते हैं कि सबसे होने योग्य नहीं है। सरल योग भी होता है और कठिन योग भी होता है। सरल योग को ध्यान योग कहते हैं। क्या पुरुष, क्या स्त्री; यह सबसे होने योग्य है। क्या विद्वान, क्या अविद्वान; सबसे होने योग्य है। कोमल शरीर रखनेवाला वा कठोर शरीर रखनेवाला, सभी कर सकते हैं। क्या गृहस्थ, क्या विरक्त; सभी कर सकते हैं।

एक आदमी था, जो घर के कामों में बड़ा व्यस्त रहता था। सत्संग में दो-चार मिनट बैठ सकता था। इन्तजाम करते-करते बड़ा परेशान था। उसे एक साधु से भेंट हो गयी। उसने साधु से कहा—'मैं घर के कामों से परेशान हूँ। सँभाल नहीं हो रही है। साधु ने कहा—'तुम सो जाते हो तो परेशानी नहीं रहती है। सोने में थोड़ा समय देते हो। वैसे ही ध्यान में थोड़ा समय दो। उसने कहा कि सुनो बाबाजी ! थोड़ा करूँगा, बहुत कैसे हो जायगा? साधु ने कहा—'थोड़ा-थोड़ा बहुत दिनों तक करते-करते बहुत हो जाएगा। और तुम्हारी परेशानी खरीदने में मुझे मिलती तो खरीदकर ले लेता। तुम्हारी जैसी परेशानी मुझे होती तो जो ही समय बचता, उसी में थोड़ा-थोड़ा अवश्य करता। थोड़ा-थोड़ा करो, परमात्मा—ईश्वर तुमको बढ़ा देंगे। चाहे कृषक हो वा मजदूर, राजा हो वा रंक परिश्रम करें, पीछे सरल होगा। परेशानी कुछ काल के लिए छोड़कर, मन से ख्यालों को छोड़कर, बैठकर अभ्यास करो, साधन करो।

ध्यानयोग से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। जिससे अपना उद्धार हो, वह सबको करना चाहिए। पुराने समय में कहा गया है, आज भी वही बात है। अन्यथा संसार के कामों में संलग्न रहो, पाप-पुण्य करते-करते उसके भोगों को भोगो और फिर उसके अनुसार संसार में जन्म होगा।

आज भी यदि वैसे ही करो, तो वैसे ही होगा। पूजा-ध्यान के वास्ते थोड़ा समय बचाओ और करो। बढ़ते-बढ़ते बढ़ जाएगा। पूजा-ध्यान क्यों करो, ज्ञान यही बताता है। ब्रह्म—ईश्वर को जानो, जिस एक को पाकर संसार की कोई इच्छा नहीं रह जाती, उसको पाओ। संसार की कितनी भी चीजें ले लो, बेचैनी नहीं छूटेगी। इसलिए शिवजी ने कहा था कि ज्ञान और योग; दोनों करो। कोई कहते हैं कि भक्ति तो बड़ी सीधी है, वही क्यों न करूँ ! उनसे पूछिए कि भक्ति किसको कहते हैं। भक्ति की बात ठीक-ठीक कहने से उसमें भी योग आ जाएगा। पूजा करते हो, जप करते हो, फूल चढ़ाते हो और मन कहीं दूसरी जगह है, तो क्या वह पूजा-जप ठीक हुआ? मन लगाकर पूजा, ध्यान करो। मन लगाना ही योग है। मन भिन्न भिन्न विषयों में दौड़ता है; इसमें मनुष्य को चैन नहीं है। एक विन्दु की शक्ति होती है। उसी में अपने को रखो, उसी शक्ति में ज्ञान होता है। सच्चरित्रता से रहने के संस्कार उत्पन्न होते हैं। योग और कुछ नहीं, मन का सिमटाव है। अच्छे गुरु योग की बात बताते हैं, वह करते रहो। आप ही होते-होते हो जाएगा। ध्यान केवल मोटी बात के लिए नहीं है, महीन ध्यान भी होता है। जो गंगा के उस पार गए हैं, जो उस पार से इस पार आए हें, वे प्रत्यक्ष देखते हैं कि क्या है। अथवा इधर से उधर जाकर देखते हैं कि क्या है। इसी तरह अपनी चित्तवृत्ति को स्थिर करके रखो तो अनुभूति होगी; जो कभी नहीं सुने हो, सुनोगे; जो कभी नहीं देखे हो, देखोगे। यह मन की एकीभाव में होगा। ऊर्ध्वगति होगी, मायिक परदा का छेदन होगा, होते-होते निर्मायिक परमात्म-स्वरूप का उदय होगा। उदय तो है ही, लेकिन देख नहीं सकते हो, सो भी देखोगे। ये तीनों साधन—योग, ज्ञान, भक्ति साथ-साथ चलते हैं। यही ज्ञान जानकर सत्संग कीजिए। जो साधन अपेक्षित है, गुरु से जानकर अवश्य कीजिए। कभी-न-कभी पूरा अवश्य होगा। सुनिए, याद रखिए और अभ्यास भी कीजिए। जल्दबाजी करने से नहीं होगा। जो वृक्ष जितने दिन में फलने का होगा, उतने दिन में फलेगा। इसी तरह अभ्यास करते-करते होगा। मुसलमान भाई नमाज पढ़ते हैं। जो नहीं पढ़ते हैं, वे अच्छा नहीं करते हैं। वे लोग नमाज पढ़ें। आपलोग भी ध्यान करें।

H

प्यारे लोगो !

आज मैं आपलोगों के सामने बहुत पुरानी बात कहूँगा, जो मेरे गुरु महाराज कहते थे। आप जो संतमत का सिद्धान्त जानते हैं, इतना ज्यादे गुरु महाराज नहीं कहते थे। आवश्यकता जानकर सिद्धांत को विशेष किया गया। संतों के वचनों के अनुकूल गुरु महाराज कहते थे कि संतमत का सिद्धान्त बहुत छोटा है—पहली बात सत्संग, दूसरी बात सद्गुरु और तीसरी बात ध्यान। तीनों में सत्य का साथ है। सत्संग से मतलब है—जहाँ सत्य का विचार बताया जाता है, उस मजमा व सभा वा संघ को सत्संग कह सकते हैं। सत् वह है जो स्थिर है, जो बदलता नहीं, नाश होता नहीं। कुछ लोग कहते हैं जो हम प्रत्यक्ष देखते है, वह सत्य है। हाँ सत्य है, लेकिन इसका परिणाम सत्य नहीं है। यहाँ गंगाजी की धारा है, जो पहले नहीं थी। बहुत तप करके भगीरथजी ने इसको लाया। पहले नहीं थी, अब है। भागलपुर के पास आती है, फिर दूर जाती है, फिर आती है। रूप में परिवर्तन प्रत्यक्ष है। मैं भागलपुर आता हूँ १९०४ ई० के

यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत जिला पूर्णियाँ के जलालगढ़ में दिनांक २०-०५-१९७० ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था।

३२८. सदाचार के पालन से आत्मबल

एकाध वर्ष पहले से अथवा १९०४ ई० से। उस समय से इस समय में बहुत परिवर्तन है। गंगा पार कर, जंगल पार कर आता था। पहले गंगा सटकर बहती थी, फिर दूर चली गई। फिर नजदीक आयी है। लेकिन १९३३-३४ ई० में जितनी निकट थी, उतनी निकट नहीं आई है। गंगा से नहर निकाली गई है। लोगों को इससे बड़ा लाभ हुआ है। नहर निकालने में लोगों ने मनाही की थी। दरभंगा महाराज भी इन लोगों में थे। वे कहते थे—हमारे तीर्थ की महिमा घट जाएगी, लेकिन अंग्रेजों ने नहीं माना। १९२८ ई० की बात है, मैं गढ़मुक्तेश्वर गया था। गंगा के किनारे दो तीन स्थान बनवा लिया था। उस समय हमारे गुरु भाई नंदनजी भी साथ में थे। उस समय चैत महीना था। एक आदमी गंगाजी पैदल पार हो गया था। कब क्या हो जाएगा, ठिकाना नहीं। इतिहास में पढ़ा है कि सरस्वती और दृशदवती; दोनों नदियों के बीच में आर्य लोग बसते थे। आज सरस्वती और दृशदवती नदी का पता नहीं है। जो चीज देखने में आवे और कभी नहीं देखने में आवे, वह मूल सत्य नहीं है। अध्यात्म-शास्त्र को विचारने पर एक ईश्वर सत्य है और सबका परिवर्तन और अत्यंताभाव होता है। परिवर्तन भी नाश है और अत्यंताभाव होगा, यह हमारा वेदान्त शास्त्र कहता है। असत्य का रहना नहीं होता और सत्य का विनाश होता नहीं। पढ़ लीजिए श्रीमद्भगवद्गीता।

जहाँ सत्य के संबंध में बात हो, उसको सत्संग कहते हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में और भी बातें हैं। ईश्वर-स्वरूप निर्णय, ईश्वर की स्थिति क्यों मानना चाहिए, इन सब बातों की चर्चा जहाँ हो, वह सत्संग है। जो कोई इसको सुनता है, उसको होता है कि हम उस सत् को पहचानें। जैसे—रूप को आँख से देखते हैं, उसी तरह सत्य को हम देखें, आँख से नहीं तो जिस किसी से भी हो। संत कहते हैं कि तुम शरीर हो वा शरीर में रहनेवाले हो? सत्संग कहता है कि तुम शरीर नहीं हो, शरीर में तुम रहते हो। शरीर का नाश है, परिवर्तन है; तुम्हारा नाश नहीं है, परिवर्तन नहीं है। इसीलिए गीता में पढ़ते हैं—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

वह न मारता है, न मरता है, वह सत् है। तुम वही हो। तुम्हारे कारण तुम्हारी आँख देखती है। तुम ज्ञान के भण्डार हो। इन्द्रियों के संग में रहकर तुमको ज्ञान होता है। इन्द्रियों का संग छोड़कर तब देखो, तुम कौन हो?

सो तुम ताहि तोहि नहीं भेदा। वारि वीचि इव गावहिं वेदा।।

जब कोई यह ज्ञान सुनता और समझता है, तो अभिलाषा जगती है कि उस सत्य को मैं जानूँ। इन्द्रियों के संग से असंग कैसे होऊँ? सत्संग कहता है कि इसका यत्न कोई बतानेवाला भी है और वह है सद्गुरु। सत्संग करते-करते सद्गुरु की आवश्यकता मालूम होती है। सद्गुरु की आवश्यकता मालूम होती है तो कहीं-न-कहीं सद्गुरु मिल जाते हैं। हमारे गुरु महाराज कहते थे कि पंच पापों से बचो, यही सदाचार का पालन है। इन पंच पापों से आप बचें तो और कौन पाप आपसे हो? पापों से बचने से, सदाचार के पालन से आत्मबल बढ़ता है। नैतिक विचार उसका बड़ा पवित्र होता है। संसार में एक उत्पादक शक्ति देखते हैं, उसको रजोगुण शक्ति कहते हैं। दूसरी पालक शक्ति है, उसको सतोगुण कहते हैं। तीसरी शक्ति को विनाशक शक्ति कहते हैं, वह तमोगुण है। इन तीन गुणों के परे आप कुछ देखते नहीं। इन तीन गुणों के अन्दर

रहकर कोई चाहे कि हम आत्मबल में बढ़ जाएँ या आत्मबल में इतना बढ़ें, जितना बढ़ना संभव है। तो तीन गुणों में रहकर नहीं बढ़ा जा सकता। जैसे कोई कैद हो, वैसे तीन गुणों में जीवात्मा कैद है। सदाचार का पालन इस कैद से छूटने का बल देता है और गुरु लोग जो शरीर-इन्द्रियों के संग से असंग होने का यत्न बताते हैं, इसको पाकर वह बढ़ता जाता है। सदाचार-पालन उसका मददगार है। जो कोई सदाचार का पालन करता है, संसार में कष्टों को सह-सहकर भी सदाचार-पालन करता है, वह संसार में पूज्य हो जाता है। उसके साथी हो जाएँ तो संसार में दुष्टकर्म नहीं हो। एक केवल सत्य बोलने से संसार का दुष्टकर्म खत्म हो जाए। इसको और फुटाकर कहा—चोरी नहीं करो, नशा सेवन नहीं करो, हिंसा नहीं करो और व्यभिचार नहीं करो। इसका समाज बहुत बढ़ जाए, तो जिस देश में ऐसा होगा, वहाँ शान्ति आएगी, उस देश में सुराज हो जाएगा। 'जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ।'

इस संसार को भी बड़ा लाभ हुआ। मुझको लोग पूछते थे, अब भी पूछते हैं कि आप सत्संग कराए फिरते हैं, देश के लिए क्या करते हैं? सत्संग से दुष्टकर्म को छुड़ाते हैं। सरकारी कानून से कड़ी-से-कड़ी सजा मिली, लेकिन दुष्टकर्म नहीं छूटा। घर में खाना नहीं मिलता था, जेल में खाना मिलने लगा। वहाँ और अकड़ गया। दुष्ट का साथी दुष्ट होता है, उसी तरह भला का साथी भला होता है। भला बनो और लोग भले बनेंगे। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार का त्याग; यही है सदाचार का पालन। सत् आचार हुआ, इसलिए सदाचार हुआ। संत लोग सत्संग, सद्गुरु और ध्यान बता गए हैं। बाबा साहब कहते थे कि जहाँ कहीं सद्गुरु मिल जाएँ, उनकी सेवा करो, उनके बताए अनुकूल चलो। तीन बातों में सिद्धान्त को खत्म कर देते थे। आज बहुत बढ़ गया है, उसका खुलासा हो गया है। यही तीन बातें बौद्ध धर्म में भी हैं—बुद्धं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। बुद्ध की शरण गुरु है। संघ की शरण सत्संग है। धम्मं शरणं—यह ध्यान है। ध्यान सबसे बड़ा धर्म है। सत्संग करते-करते सत्य का ज्ञान होता है और सत्य का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, सत्य को पाया जाता है। गुरु महाराज से कोई बहस करते तो वे कहते थे कि But, लेकिन, मगर यह वकीलों की भाषा है, इसको छोड़ो। संत के यहाँ आए हो तो संत-वचन सुनो। सद्गुरु से भेद जानो, अभ्यास करो। सत्संग करके यदि मालूम हो कि गुरु ठीक नहीं हैं तो और अच्छे गुरु धारण करो।

n

प्यारे लोगो!

संतगण मनुष्य के उद्धार का ठीक-ठीक मार्ग बता गये हैं। इसी को संतमत कहते हैं, संत पन्थ कहते हैं। और जिन विचारों के द्वारा उस पंथ को स्थिर किया जाता है, उन सब विचारों को भी मिलाकर संतमत कहते हैं। पन्थ कहते हैं रास्ता को, जिस पर कोई चलता है, चलकर कहीं-से-कहीं तक पहुँचता है। रास्ता—लकीर है। जिस रास्ते पर हमलोग पृथ्वी पर चलते हैं। वह मोटी लकीर है। ईश्वर तक पहुँचने के लिए भी रास्ता है। या परम कल्याण में पहुँचने का भी रास्ता है। ईश्वर तक पहुँचना परम कल्याण में पहुँचना है। संतों ने बताया है कि ज्ञानी लोग जो कहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक है, तो वह तमाम हई है, जाना कहाँ है? मैं जवाब में कहता हूँ कि ईश्वर तक जाना उनकी सर्वव्यापकता के कारण कहीं नहीं है। वे प्राप्त ही हैं तो क्या आपको प्राप्त है? केवल ज्ञान का निरूपण नहीं कीजिए। ठीक-ठीक कहिए कि ठीक-ठीक प्राप्त आपको है? जो वाद-विवादवाले

यह प्रवचन किशनगंज जिलान्तर्गत बहादुरगंज में दिनांक १९-४-१९६७ ई० को अपराह्नकालीन सत्संग में हुआ था।

३२९.संतगण मनुष्य के उद्धार का ठीक-ठीक मार्ग बता गए है

नहीं हैं, ठीक जानना चाहते हैं, वे कहते हैं कि नहीं, प्राप्त नहीं है, पहचान नहीं है। मैं कहता हूँ—ईश्वर को पहचानने के लिए ही जाना है। जहाँ जाकर ईश्वर की पहचान हो, वह ईश्वर कैसा है? यह जानना होगा। और जिस विधि से उस रास्ते पर जाना होगा, उस विधि को भी जानना होगा। केवल बात-की-बात में रहो, विधि नहीं जानो, जाओ नहीं तो ईश्वर प्राप्त नहीं हो सकता। ईश्वर का ज्ञान गंभीर है और तीव्र बुद्धि के द्वारा उस बात को लोग जान सकते हैं। सुनकर जान लें और अपने में धारण नहीं करें यानी स्मरण नहीं रखें तो लाभ नहीं हो। सुनो, जानो और अपने अन्दर धारण कर लो। एक तो ग्रहणशीला बुद्धि होती है। दूसरी बुद्धि समझ सकती है, धारण नहीं कर सकती है। धारण करनेवाली बुद्धि श्रेष्ठ है। इसीलिए लोग विद्याभ्यास करते हैं। जैसे खेत अच्छी तरह जोतते हैं तो फसल अच्छी तरह होती है। उसी तरह विद्याभ्यास से मस्तिष्क की जुताई होती है। और तब जो कुछ कहा जाता है, ग्रहण करता है। सभी कोई विद्यालय नहीं जा सकते तो संतों ने कहा—सत्संग करो। सत्संग ही विद्यालय है। सत्संग करते-करते, बहुत सुनते-सुनते बुद्धि में धारण करने की शक्ति होती है। यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है। जो भैंस चराता था, वह सत्संग में बैठकर बहुत बातों को जान गया। मैंने १९२२ ई० में छपरा शहर में देखा। मेरा वासा सरयू के छाड़न में था। लोग सत्संग करते थे। उसी में वह भी आता था। उसकी एक बात सुनकर मैं चकित हो गया। अपनी उक्ति से उन्होंने कैसे कहा? मैंने पूछा—यह कैसे आपने कहा? उन्होंने कहा—एक महात्मा नानक पन्थी थे, उनसे सुना। मैंने अपने लिए भी देखा है, सत्संग करते-करते बहुत कुछ सीखा है। विद्यालय में विद्या धारण करते-करते बहुत विशेष होते हैं। उसी तरह सत्संग करते-करते भी विशेष होते हैं। लोगों को सत्संग में आना चाहिए। ईश्वर का ज्ञान संतों ने बड़ा विकट कहा है। जैसे सूरदासजी कहते हैं—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगहिं मीठे फल को रस, अन्तरगत ही भावै।।
परम स्वाद सबही जू निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें, 'सूर' सगुन लीला पद गावै।।

उस सर्वव्यापक की गति कहने में नहीं आती है। जैसे कोई गूँगा आदमी है, वह मीठा फल खाया, उसका स्वाद वह जानता है, लेकिन कह नहीं सकता। उसको अन्दर-ही-अन्दर बहुत अच्छा लगता है। संसार में जितने स्वाद हैं, किसी की तरह भी वह स्वाद नहीं है। जबसे वह स्वाद लगता है, सदा लगा ही रहता है। संसार का भोग जबतक भोगो, तबतक स्वाद लगता है। भोग छोड़ने पर फिर वैसा स्वाद नहीं लगता। लेकिन उसमें संतुष्टि होती है कि कहा नहीं जा सकता। मन से ग्रहण नहीं होता। वाणी से कहा नहीं जा सकता। उसकी प्राप्ति का गुण उन्होंने गाया। जिसको प्राप्ति होगी, वह किसी दूसरे से नहीं पूछेंगे कि ईश्वर कैसा है? उनकी जानकारी में यह है, वह नहीं; ऐसी बात नहीं। ईश्वर मायातीत है, माया उसकी है। माया क्या है?

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई।।

मन की गति और इन्द्रियों को प्रत्यक्ष क्या है? रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। मन को यही ग्रहण है। मन इन्हीं पंच विषयों तक जाता है।

परन्तु ईश्वर इन विषयों से न्यारा है। वह रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पर्श नहीं और शब्द नहीं। मन क्या जानेगा? इन्द्रियों को वह क्या प्रत्यक्ष होगा? ईश्वर को स्वरूपतः जानो, पहचाना तो नहीं, लेकिन जाना। जब पाओगे तो जानोगे कि ईश्वर को पाया। कहाँ तक जाओ कि पहचान हो? मन और इन्द्रिय-ज्ञान को पार करो। मन की जानकारी जहाँ तक है, उसको पार करो। रास्ता बहुत लम्बा है। रास्ता का आरम्भ वहाँ से है, जहाँ जाग्रत अवस्था में जीव बैठा रहता है।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ।।

वहाँ तक जाओ। यह रास्ता किसी का बनाया हुआ नहीं है। संतों ने पहचान कर जाना है। संतों ने कहा कि आरम्भ को पहले जानो। यह रास्ता मिट्टी पर का नहीं है। यही सूक्ष्म मार्ग है।

मैं संतसेवीजी का प्रवचन सुनता आ रहा था। वे कह रहे थे—'खंनिअहु तीखी बालहु नीकी एतु मारगि जाणा।' नैन नगर से रास्ता का आरम्भ होता है। जो कोई उसके आरम्भ को जानते हैं, वे बाहर का रास्ता भूल जाते हैं। चाहे अल्पकाल ही हो। अन्धकार से रास्ता आरम्भ होता है। कोशिश करो तो मालूम होता है कि प्रकाश के अन्दर से गुजरना होता है। अन्तर प्रकाश ही नहीं, अन्तर्ज्योति होकर जाना होता है और अन्तर्नाद सुनने को मिलता है। इसकी समाप्ति होने पर रूप, रस आदि कुछ नहीं रहते। मायावाला ज्ञान से छूट जाओगे, तब जो पाओगे, वह ईश्वर है। यह ध्यान का मार्ग है। अन्धकार, प्रकाश और शब्द होकर गुजरता है। शब्द के अन्त पर ईश्वर को पाता है। किसी भी अध्यात्म-ग्रन्थ को पढ़िए। सब में यही बात है।

इसके लिए अपना आचरण पवित्र रखो। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा, व्यभिचार; इन पंच पाँचों को छोड़ो। मन के अभ्यास के कारण यदि बारम्बार गिर जाते हो, तो ऐसा न समझो कि गिरते ही रहोगे। फिर ऐसा भी मालूम होगा कि इनसे छूटा हुआ हूँ। सदाचार का पालन करते हुए जो ध्यान

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक १३. ९. १९७० ई० को साप्ताहिक सत्संग में हुआ था।

३३०. माया के चारों आवरण को हटा दें

प्यारे धर्मप्रेमियों !

हम लोगों का यह सत्संग ईश्वर-भक्ति का उपदेश देता है। लोग साधारण तरह से समझते हैं कि पूजा-पाठ करो, स्तुति करो, जप करो, भगवद्मूर्ति का ध्यान करो— यह ईश्वर-भक्ति के अन्दर का काम है। इतना ही का उपदेश इस सत्संग से होता है सो नहीं। बल्कि यह सत्संग कहता है कि इन कामों के अतिरिक्त और काम है। और जो रहस्य है, सो भी समझ लो। मन लगा कर पूजा करो, मन लगाकर पाठ करो, मन लगाकर स्तुति करो, मन लगाकर भगवद्-मूर्ति का ध्यान करो। इन सबसे अगर मन लगाने की बात हटा लो तो ईश्वर-भक्ति के अन्दर की बात नहीं रहेगी। सार है मन लगाने की बात। मन लगाने का अर्थ है जिस समय यह काम करो, उस समय इसी काम में मन रखो। दमसरे ख्याल में मन को नहीं ले जाओ। मन जाय तो रोको। मन लगाना ही सार है। मन लगाने से क्या होता है? एक ओरता होती है। जिस देव की पूजा करते हैं, उसी देव के साथ मन लगा हुआ है। इष्टदेव के ख्याल में ही मन लगा हुआ है। इष्टदेव के साथ मन जुटा हुआ है। उस तरफफ लगा हुआ है। यह आदत करा देता हे। इस तरह का हिस्सक (आदत) हो जाय कि एक तरफ मन हो जाय तो पूजा, ध्यान, स्तुति सब ठीक है। इसके आगे भी बात है। भक्ति समाप्त हो गई इतनी ही बातों में, सो नहीं। इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं। इसी का खुलासा इस सत्संग से होता है। यह बिल्कुल स्थूल सगुण-उपासना की बात है। लेकिन केचल स्थूल ही स्थूल है, इससे आगे कुछ नहीं है, ऐसा ज्ञान नहीं रखना चाहिए। बड़ा वृक्ष कभी नहीं होता है, यदि उसका पहला रूप अंकुर नहीं हो। अंकुर पहला रूप है। वह अंकुर कभी नहीं हो सकता, यदि उसके पहले बीज नहीं हो। अंकुर, बीज और वृक्ष; इन तीन का ज्ञान तो लोगों को है। बीज कारण, अंकुर सूक्ष्म और वृक्ष स्थूल और वृक्ष स्थूल। माया को तीन रूपों में जानिए। इसका प्रत्यक्ष ज्ञान आपको करना चाहिए। चौथी बात है कि संसार में विविध प्रकार के बीज हैं। सबके भिन्न-भिन्न प्रकार के अंकुर आते हैं। जितने प्रकार के बीज हैं, इनका अगर भण्डार नहीं है तो ये कहाँ से आये? भण्डार रूप में उनके क्या-क्या नाम है? कहा नहीं जा सकता। भण्डार भी अवश्य ही मानना पड़ता है। सब बीजों का भण्डार प्रकृति है। उसको महाकारण भी कह सकते हैं। एक महाकारण भी कह सकते हैं। एक महाकारण भी है। अब माया के चार रूप मानने पड़ते हैं— स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण। यह किसकी माया है? ईश्वर की। प्रकृति किसकी? ईश्वर की। जो माया को पार करता है, वह ईश्वर का दर्शन पाता है। जो असली दर्शन है। उसमें ऐसा नहीं कि इस रूप में बन कर आइये। वह जस का तस कैसा है? वैसा ही दर्शन होता है। सन्तों ने कहा है— स्थूल भक्ति के बाद भक्ति सूक्ष्म में भी होनी चाहिए। सूक्ष्म में, कारण में, महाकारण में भी उसका रहना होता है। स्थूल सगुण-साकार वाली भक्ति लोग जानते हैं। सूक्ष्म सगुण-सकार का भी ज्ञान होना चाहिए। कारण सगुण-निराकार का भी ज्ञान होना चाहिए। फिर निर्गुण-निराकार का भी ज्ञान होना चाहिए। उसके बाद उनके स्वरूप का दर्शन भी होना चाहिए। माया के चारों रूप या

चारों आवरणों के परे जो दर्शन है, वह असली दर्शन है। सन्त कहते है– तुम स्थूल में हो तो स्थूल का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। तुम अपने को सूक्ष्म में भी जानो। कारण, महाकारण में जैसे स्थूल को पहचानते हो, वैसे सूक्ष्म को पहचानो, कारण को पहचानो ओर महाकारण को भी पहचानो। तब तुमको वह माया के रूपों के सम्बन्ध में जो भगवद् रूप है– सभी देखने में आवेंगे। जब तक ऐसा नहीं होगा, ईश्वर-दर्शन नहीं होगा।

ईश्वर अंश जीव अविनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ।।

समुद्र में बहुत जल है। एक बूंद जल भी वही है। तत्त्व रूप में जीवात्मा और ईश्वर एक ही है। माया के चारों रूपों के ऊपर उठ जाओगे, तब तुम अपने स्वरूप में आओगे। तब ईश्वर का प्रतयक्ष ज्ञान होगा। यही ज्ञान यह सत्संग देता हे।

मन को एक ओर करने का जो हिस्सक स्थूल जप, ध्यान में किये हो सो सूक्ष्म में भी करो। सूक्ष्म कैसे होगा? स्थूल का खण्ड करते-करते इतना खण्ड करो कि फिर उसका टुकड़ा नहीं हो, वह क्या कहलाता है? वह विन्दु है। खण्ड-खण्ड करते-करते इतना खण्ड हुआ कि विन्दु हो गया। उसका खण्ड नहीं होता हे।

बचपन में रेखागणित पढ़ा। उसमें विन्दु की परिभाषा पढ़ा– जिसका स्थान है, परिमाण नहीं वह विन्दु है। उस विन्दु-ध्यान को सीखो। सूक्ष्म में प्रवेश करोगे। सूक्ष्म का ज्ञान होगा, जैसे स्थूल का ज्ञान प्रत्यक्ष है। विन्दु तो दर्शनीय पदार्थ है। दृश्य-जगत् तक दर्शनीय पदार्थ है। लेकिन यह माया केवल सूक्ष्म में वा दर्शनीय पदार्थ में समाप्त हो जाती है सो नहीं। इसके आगे भी है। उसका कोई आकार नहीं हैं जैसे शब्द। शब्द का दर्शन नहीं होता। अदर्शनीय पदार्थ है। फिर भी अपना मण्डल रखता है सगुण दृश्य और सगुण अदृश्य भी। इसी तरह कारण, महाकारण को समझिये। इन चारों को खत्म करने पर उस अंशी रूप का पहचान होता है। जिसका यह जहव अंश है। अंश क्या उसका टुकड़ा हो गया? ईश्वर सर्वव्यापी है। आदि-अन्त रहित है। सर्वव्यापी होने के कारण वह एक ही एक बना रहता है, टुकड़ा नहीं नही होता। अंश कैसे होता है? बाहर में शून्य है, कोठरी के अन्दर शून्य। मकान के अन्दर आकाश को मठाकाश कहते हैं। बाहर के आकाश को महदाकाश कहते हैं। इसके अतिरिक्त पटाकाश और घटाकाश भी होता है। लेकिन वह टूटा हआ अंश नहीं है। इन चारों को जो पार करता है। वह अपने को जानता है, वह ईश्वर को भी जानता है। जो ईश्वर को जानता है तो वही हो जाता है–

जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई ।

पहले परोक्ष ज्ञान होता है। पीछे अपरोक्ष ज्ञान होता है। आपस में ईश्वर के सम्बन्ध में जो बोलते-चालते हैं, वह परोक्ष ज्ञान है।

माया के चारो आवरण को हटा दें, तब जो दर्शन हो वह सही दर्शन है। और वही अपरोक्ष ज्ञान है। नहीं तो माया के दर्शन हैं। अवतारी रूप, देव-रूप, अचर-चर सभी रूप उन्हीं के हैं। ये सभी रूप माया-रूप के दर्शन हैं। आगे जो वस्तु है, लेकिन दर्शनीय नहीं है, अदृश्य है। इस दृष्टि को गोचर नही है, निराकार है उसको पहचानते हैं, जब चारों आवरणों के ऊपर जाते हैं। ऊपर कैसे उठा जाएगा। सत्संग में आते रहिएगा तो सुनिएगा। थोड़ा-थोड़ा सुनिये, याद रखिये। याद नहीं रखते हैं तो मेधावी नहीं हैं। सुनने के समय सुनते हैं, समझते हैं अच्छे है। लेकिन याद नहीं रखते हैं तो मेधावी नहीं है। सुनिये याद रखिये।

H

यह प्रवचन भागलपुर जिलान्तर्गत महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक २०. ९. १९७० ई० को साप्ताहिक सत्संग में हुआ था।

महर्षि मेँहीँ सत्संग-सुधा-सागर ग्रंथ प्रकाशनार्थ सहयोग राशि दाताओं के नाम व पता :

१. महर्षि सन्तसेवी ध्यानयोग आश्रम, कोलकाता
२. श्री गौरव अग्रवाल — ८२ चन्द्रलोक, दिल्ली
३. श्री भिखारी भगत — अररिया
४. श्री अरुण अग्रवाल — कटिहार
५. श्री छोगमल डालमिया — कटिहार
६. श्रीमती सुशीला डालमिया — कटिहार
७. श्रीदीपक डालमिया — कटिहार
८. श्री हनुमान प्रसाद अग्रवाल — दुमका
९. श्रीमती पद्माबाई — गोविन्दपुर, धनबाद
१०. श्री हरिमोहन दास — महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट
११. श्रीमती ललिता देवी — भीखनपुर, भागलपुर
१२. श्रीमती सत्यभामा देवी — राघोपुर, सुपौल
१३. श्रीमती दुर्गा देवी — अररिया
१४. गुप्त दान — राँची के एक सज्जन
१५. श्रीमती रीता कमालिया — पटना
१६. श्रीमती सुमित्रा देवी — कोलकाता
१७. श्री सुरेश अग्रवाल — कोलकाता
१८. श्रीमती सुभद्रा देवी — साहुपाड़ा दिग्घी, भागलपुर
१९. श्री धर्मराज राय — राँची, झारखंड
२०. श्रीमती आभा पाण्डेय — स्टील सिटी, बोकारो
२१. श्रीमती लीला देवी — काजीचक, भागलपुर
२२. श्रीश्यामसुन्दर अग्रवाल — मधेपुरा
२३. श्रीशैलेन्द्र कुमार चौरसिया — शंकरनगर,रायपुर, (म० प्र०)
२४. श्रीमती बसंती देवी — डेहरी ओन सोन, रोहतास
२५. श्रीमती निरला देवी — बाराण, बनारस
२६. श्रीमती शकुन्तला चौधरी — नाथनगर, भागलपुर
२७. श्री छेदीलाल रामुका — सुलतानगंज, भागलपुर
२८. श्रीमती मीरा देवी रामुका — सुलतानगंज, भागलपुर
२९. श्री कैलाश कुमार रामुका — शालीमार बाग , दिल्ली
३०. श्रीमती मीना देवी रामुका — शालीमार बाग, दिल्ली
३१. श्री पीयूष कुमार अग्रवाल — शालीमार बाग, दिल्ली
३२. श्री मनोज कुमार शर्मा — भागलपुर
३३. श्री राजेन्द्र साह — छोटी केशोपुर, मुंगेर
३४. श्रीमती माया देवी कटारुका — पीरपैंती बाजार, भागलपुर
३५. श्री बाल्मीकी चौधरी — बरमसिया, कटिहार
३६. श्रीमती सविता आर्या — नारायणा, नई दिल्ली-२८
३७. श्रीमती प्रेमवती लंवर — नारायणा, नई दिल्ली-२८
३८. श्री कैलाश बनी — डाहर मेरठ, उत्तर प्रदेश
३९. श्रीमती आशा रानी — मुजफ्फरनगर, (उ० प्र०)
४०. श्रीमती यशोदा रानी — नागल, दिल्ली कैण्ट
४१. श्रीमती उर्मिला देवी — काजीचौक, भागलपुर
४२. श्रीमती लक्ष्मी देवी — पसारबीघा, नवादा
४३. श्रीमती सावित्री भारद्वाज — नई दिल्ली
४४. श्री संजय कुमार गुप्त — रेवाड़ी, हरियाणा
४५. श्रीमती कुसुम गुप्त — रेवाड़ी, हरियाणा
४६. श्री ओमप्रकाश 'निराला' — टाटानगर, जमशेद्पुर
४७. श्रीमती कान्ति देवी — सलेमपुर, भागलपुर
४८. श्री पी० के० अग्रवाल — जेल रोड, राँची
४९. श्री संजीव परशुरामुका — दिल्ली
५०. श्री पृथ्वीचन्द्र मण्डल — सिमरा, पूर्णियाँ
५१. श्री राजकुमार डोकानियाँ — बड़हरवा, साहेबगंज
५२. श्री ब्रह्मदेव सिन्हा — आदित्यपुर, जमशेद्पुर
५३. श्री केदार प्रसाद बसाँवल — अमरपुर, बाँका
५४. श्री विश्वनाथ बुवना — सोनाली, कटिहार
५५. स्वामी दशरथ बाबा, सत्संग मन्दिर मनिहारी, कटिहार
५६. श्री ओमप्रकाश पण्डित — शान्तिनगर, गोड्डा
५७. श्रीमती हेमवन्ती देवी — नगड़ी, राँची
५८. श्रीमती पुष्पा देवी — नगड़ी, राँची
५९. श्री बाबा दीनदयाल दास — बरबड्डा, अररिया
६०. श्री नारायण अग्रवाल — मनिहारी, कटिहार
६१. श्रीमती अरुण प्रभा देवी — गंगजला, सहरसा
६२. श्रीमती विन्दु देवी — गंगजला, सहरसा

महर्षि मेँहीँ सत्संग-सुधा-सागर ग्रंथ प्रकाशनार्थ सहयोग राशि दाताओं के नाम व पता :

६३. श्री धनंजय सिंह	सिद्धार्थनगर, उत्तरप्रदेश
६४. श्रीमती मंजू भुवानियाँ	बुढ़ानाथ रोड, भागलपुर
६५. श्रीमती उर्मिला देवी	वैशाली
६६. श्री धनेश्वर प्रसाद सिंह	खगड़िया
६७. श्री श्यामचन्द सिंह मुण्डा	रड़गाँव, राँची
६८. श्री श्याम मित्तल	जमशेदपुर, टाटा
६९. श्री राजेन्द्र प्रसाद अम्बष्ठ	असरगंज, मुंगेर
७०. श्रीमती सावित्री देवी	मुरलीगंज, मधेपुरा
७१. श्रीमती मीराबाई	सोनैली, कटिहार
७२. श्रीमती द्रौपदी देवी	सोनैली, कटिहार
७३. श्रीमती गीताबाई	सोनैली, कटिहार
७४. श्री रामफल विश्वास	कचौड़ा, कदवा, कटिहार
७५. गुप्त दान	कटिहार
७६. श्री बी०डी० मण्डल	बरईचक पाटम, मुंगेर
७७. श्री मोहनलाल अग्रवाल	मनिहारी, कटिहार
७८. श्री नारायण प्रसाद यादव	त्रिवेणीगंज, सुपौल
७९. श्रीमती रेणुका पोद्दार	टेल्को कॉलोनी, जमशेदपुर
८०. श्रीमती माया रानी	ललियाही, कटिहार
८१. श्री रामचन्द्र अग्रवाल	कैण्ट, हजारीबाग
८२. श्री जितेन्द्र प्र० सिंह	हजारीबाग
८३. श्री लक्ष्मण गोप	मूरहू, राँची
८४. श्रीमती उर्मिला देवी	अरगोड़ा बाईपास, राँची
८५. श्री बालमुकुन्द प्रजापति	बन्दगाँव, सिंहभूम
८६. श्रीमती उर्मिला देवी	निश्चल हाउस, हजारीबाग
८७. श्रीमती द्रौपदी देवी	गुमला
८८. श्री फतेहचन्द्र अग्रवाल	चुटिया, राँची
८९. श्री जयप्रकाश गुप्त	मोहद्दीनगर, भागलपुर
९०. श्री रामवचन दास	रैचियाही, बेगुसराय
९१. स्वामी कुमर बाबा, सं० सत्संग मन्दिर	सिमराही, सुपौल
९२. श्रीमती मूर्ति देवी	गोड्डा, झारखण्ड
९३. श्रीकमलेश्वरी मिस्त्री,शि०	तेतरी,नवगछिया,भागलपुर
९४. श्रीचेतानन्द पोद्दार	खरीकबाजार, भागलपुर
९५. श्रीमती शीला देवी	डेहरी ऑन सोन, रोहतास
९६. श्रीभगवत मिश्र	आलमबाग, लखनऊ
९७. श्रीमती नन्दरानी	आलमबाग, लखनऊ
९८. श्रीमती मिनती रानी	रोशनगंज, कटिहार
९९. पंचानन्द चौधरी	कोयला, गोड्डा
१००. साध्वी शान्ति	पसराहा, खगड़िया
१०१. श्रीमती रधिया देवी	मड़वा, कटिहार
१०२. दमयन्ती कुमारी	मिरजानहाट, भागलपुर
१०३. श्रीनारायण मण्डल	बाँका
१०४. श्री रामचन्द्र राम अकेला	परसैनी, पूर्वी चम्पारण
१०५. श्री अशोक कुमार खेतान	पीरपैंती बाजार, भागलपुर
१०६. श्री नन्दलाल पण्डित	बीबीगंज, किशनगंज
१०७. श्रीमती रामदुलारी देवी	बरबन्ना, पूर्णियाँ
१०८. श्री दिनेश प्रसाद यादव	सपाहा, नंदगोला, पूर्णियाँ
१०९. श्रीभुवनेश्वर यादव	बेलोरी,गुलाबबाग, पूर्णियाँ
११०. श्रीमती अनामिका अग्रवाल	कोलकाता
१११. श्रीकमलानन्द कमल	सहरसा
११२. श्री राधेश्याम अग्रवाल	सोनैली, कटिहार
११३. श्री नन्दकिशोर मालाकार	रूपनी करवा, खगड़िया
११४. डॉ० लखन लाल	राजेन्द्र नगर पटना
११५. गुप्त दान	भागलपुर
११६. श्रीमती आशा दास	आसनसोल (प० बं०)